SC 14/1/81
प/2
३२८
प/१
५१.५

॥ अथ श्रीमद्भागवतं भाषाटीकासमेतं प्रारभ्यते ॥

अस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणाधिकारः आंग्लराजकीयेन तदीय १८६७ तमसांवत्सरिक २५ तमनियमानुसारेण प्रकाशकाधीनः ।

यह ग्रन्थ खेमराज श्रीकृष्णदासने बंबई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन; स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया ।

2

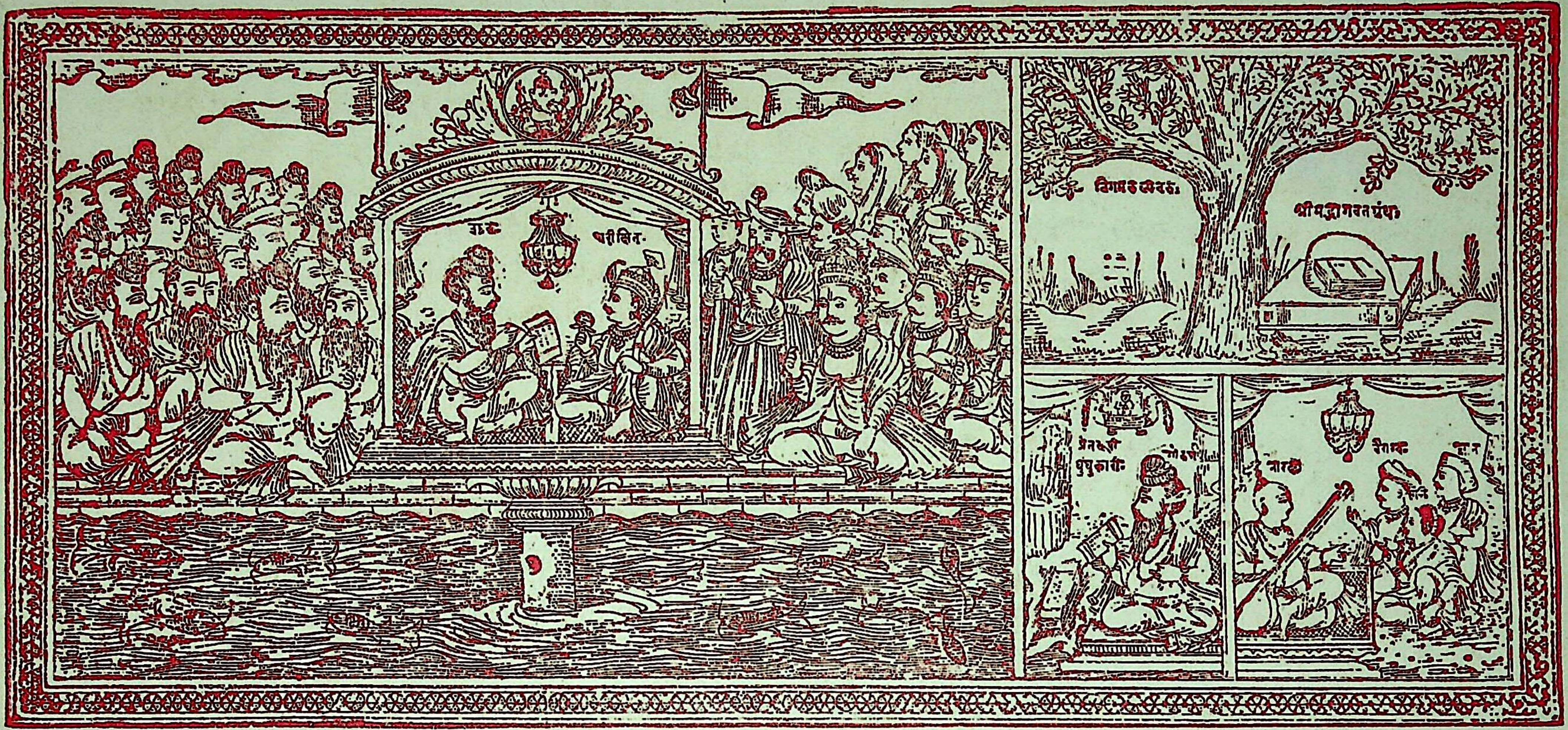
शुकदे
परीक्षित.
विशालबदरी.
श्रीमद्भागवत ग्रंथ.
प्रेतरूपी धुंधुकारी.
गोकर्ण.
नारद.
सनक.
सनन

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ १ ॥

सूचना ।

सर्वविद्वद्वर कृष्णचरणाम्बुजपरायणसे विनय है कि, संवत् १९४६ में इस महापुराण कल्पवृक्षका भारतान्तर्गत प्रथमजन्म अत्यन्त सरल सुखमय जगत्प्रसिद्ध व्रजभाषामें पदार्थमुक्तावलीनामक अतिशुद्ध भाषाटीका कराई और अत्युत्तम प्राचीन२कविवरोंके ज्ञान भक्तिमार्गी वचनचातुरी प्रेमप्रवाहके ५०० सुललित दृष्टांतभी सम्मिलित कराये,टीका अक्ष ,र्थ होनेपरभी अनेक श्रुति स्मृति पुराणके दृष्टांत देकर शंकासमाधान किया गया,परीक्षासे और मान्यवर पंडितोंकी विद्वत्तासे इसकी टीका ऐसी अत्युत्तम मनोरंजन दुःखभंजन हुई कि, जिसके श्रवणामृतपानसे कदापि इच्छा तृप्त नहीं होती।ऐसे अनुपम अमूल्य अलभ्य रत्नका विकास होतेही ग्राहकगण आनंदपूर्वक अंगीकारकर इस निगम कल्पतरुकी छायामें विश्रांत हो भवसेतुरूपी कथामृत पानकरपुनर्वार छापनेका सावकाश दिया।इसकी दूसरी आवृत्ति संवत्१९४८में छपाई इस अन्तरमें इतरक्षुद्र व्यापारियोंको व्यापारकी सूझी फिर क्या था रुपयाही कमाना अभीष्ट । झटपट सावकाश पा काट छाँट कागज स्याही पाठ नकल गढ यामिनी वामिनीकी गढी बना लिया । ग्राहक जानतेही हैं कि, असलसे तुच्छ नकलभी मन विकल करदेती है सो महिमाभी लम्बे लम्बे शब्दोंसे गाई गई,पर“क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः”इससे सावधान ।पुनः सावधान।।यह देखिये जिसकी बहुत दिनोंसे लोगचन्द्रचकोरकीसमानअपेक्षाकरतेथे सो तृतीयावृत्ति छपकरप्रसिद्ध होगई थी,तिस उपरांतभीभागवतरसास्वादी सत्पुरुषोंके कथारसपानार्थ पुनः भी छपनेका अवकाशआया इसलिये विशेषतः सज्जनलोगोंके प्रेमार्थ चतुर्थावृत्तिश्रीयुतविद्वद्वरकृष्णकृपापात्राधिकारीनानाविधग्रन्थनिर्माणनिपुणआयुर्वेदोद्धारक परमपवित्रचरित्रपण्डितमण्डलीमंडितमुरादाबादनिवासी श्रीशालिग्रामजीके रसमय मधुरसुन्दरभाषाटीकासे परिष्कृत करि पुष्ट कागजमें पहलेकी अपेक्षा बडे२टाईपमें छपीथी वोभी सबहाथोंहाथबिकगई फिरभी यह इसीप्रकार पंचमषष्ठ और सप्तमावृत्ति विकनेपर अष्टमावृत्ति पहलेकी अपेक्षा कथा दृष्टांतओरबडा अक्षर होनेसे बहुतही बढ गईहै सोयह अलभ्य स्वर्णसुगंध कल्पतरु भवसागरसेतु आनन्दमयसब प्राणिमात्रकोएक२प्रति रखनी परमावश्यकहै॥

दोहा–एक पंक्तिकी आधी हू, ताहूकी पुनि आध । कृष्ण कथा जे नित पढ़ैं, कटैं कोटि अपराध ॥ १ ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास “श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम) मुद्रणालयाध्यक्ष–मुम्बई.

प्रस्तावना ।

प्रिय पाठकवृन्द !

भारतवर्षके विद्वानोंपर यह बात छिपी नहीं है कि, संसारसागरसे पार करनेको भागवतही परमोत्तम ग्रन्थ है, जिसकी महिमा सारे भारतवर्षमें छारही है, सम्पूर्ण इतिहास पुराण भागवतकी प्रशंसा करते हैं, कारण यही है कि, चार वेद, छःशास्त्र, अष्टादश पुराणका सार भागवतमें विद्यमान है. वेदके गूढ आशय, वेदांतका रहस्य, सांख्ययोगका सार, मीमांसाका विचार, न्यायका सिद्धांत, श्रीमद्भागवतमें स्पष्टरूपसे दिखाकर सर्वोपरि भगवद्भक्तिकी महिमा वर्णन की है । यह वह महापुराण है कि, जिसको निर्माण कर श्रीवेदव्यासजीका व्यग्रभी चित्त शांत होगया; यह वही अमृत है जिससे श्रवणद्वारा पानकर राजा परीक्षित्ने अमरत्व लाभ किया, गोकर्णका भ्राता धुन्धुकारी इसीके श्रवण करनेसे प्रेतत्वसे मुक्त हुआ; सूतके द्वारा शौनकादिक श्रीमद्भागवतही श्रवणकर मुक्त हुए, यह क्या, लाखों जीव इसके श्रवणमात्रसे मुक्त होगये, होते जातेहैं, और होंगे, प्रतिवर्ष नगर २ गाँव गाँवमें इसका पारायण सप्ताह यज्ञके नामसे होताहै और स्त्री पुरुष रुचिके अनुसार इसे श्रवणकर अपनी मनोकामनाको प्राप्त होते हैं, शुकदेवजीके मुखसे निकलीहुई भागवतरूपी अमृतकी सरिता अनन्तधारा हो जगत्को पावन कर रही है, संपूर्ण धर्म कर्मके विचार और भगवद्भक्तिसे भरपूर यह "श्रीभागवत" श्रोतावक्ताओंका सर्वस्व है, इसीसे जगत्में भगवत महिमाअप्रतिहतरूपसे विराजरही है, चौबीसों अवतारोंकी कथा इसमें विस्तारसहित वर्णन की गई है, जिसके पाठसे मनुष्य भगवद्भक्तिका स्वरूप होजाताहै और चारोंपदार्थोंकीभी इच्छा नहीं रखता विशेषकर इसमें श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद नंदनन्दनमुकुन्द गोविंदके जन्मसे लेकर पश्चिमावस्थातक ऐसे मनोहर चरित्र वर्णन किये हैं, जिसके श्रवण करनेसे मनुष्योंका चित्त स्नेहमय होजाताहै, जिनश्रीकृष्णकी लीलाका आश्रयलेआज दिनब्रजमंडलसहितभारतमंडल उनके स्वरूपाकारहोरहाहै, संस्कृत प्राकृत भाषामें बडे२कवि काव्य बनाकर जिनकी लीलाओंका वर्णन औरअपनी जिह्वाको पवित्रकर गोलोकवासी हुएहैं, प्रत्येक मनुष्यके मुखसे जिन श्रीकृष्णके चरित्र मंगलकार्यमें श्रवणगोचर होतेहैं उन श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान करानेहारा औरउनके निकट प्राप्तकरानेहारा यह महापुराणही है, श्रीकृष्णकेगोलोक पधारनेपर उनकीमूर्तिरूप "श्रीमद्भागवत" विद्यमानहै जिसप्रकार मणियोंके भीतर सूत रहकर उनकी मालाकर देता है

इसीप्रकार इसके प्रत्येक पदमें भगवन्महिमा गर्भितहो इसकी महिमा विस्तार कररही है; यह ग्रंथ जैसा सम्पूर्ण वेद शास्त्र पुराणोंका सार है, उसी प्रकार बृहत् और महाकठिनभी है. इसी कारण इसके अर्थोंमें अच्छे विद्वानोंकी बुद्धिभी चकित हो जाती है कहाभी है कि–"विद्यावतां भागवते परीक्षा" यह विस्तृत ग्रंथ १२ स्कंध ३३५ अध्याय एवं १८००० अष्टादश सहस्र श्लोकोंमें पूर्ण हुआ है. इसकी कठिनतासे सर्व साधारणको इसका स्वाद मिलना बडाही कठिन था और सप्ताहयज्ञमेंही इसका श्रवण होताथा और जिनको अधिक विद्या नहीं थी, वे पंडित इसके बांचनेका साहस नहीं करतेथे और इसके स्वादसे बहुधा वंचित रहतेथे, इसी कारण चार पदार्थके साधक इस श्रीमद्भागवतको सर्व साधारणके समझनेके निमित्त जगद्विख्यात उपकारपरायण सज्जनमनरंजन गुणग्राहक सद्ग्रन्थप्रचारक वैश्यवंशदिवाकर सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयने विक्रम सम्वत् १९४६ में इस ग्रन्थको वृन्दावननिवासी सुप्रसिद्ध विद्वद्वर श्रीमन्नारायणशास्त्रीजीसे परमप्रिय सुमधुर ब्रजभाषामें "पदाथमुक्तावली" नामक भाषाटीका (जिस सरल सुखमय ब्रजभाषा, ब्रजवल्लभी, ब्रजमनरंजनी, ब्रजवचनामृतको देवताभी अपेक्षा करते) वही सुप्रसिद्ध पंडित गणेशीलालकी सहायतासे शुद्ध कराकर दोप्रकारसे यंत्रालयमें मुद्रित कराई, जिसमें एकमें तो मूल और भाषाटीका, दूसरी केवल भाषा–इसमें श्रीभागवतके प्रत्येक अध्यायके आदि अन्तका श्लोक लिखकर शेष श्लोकांकसहित केवल भाषाही छापकर इसका यथाथ नाम "शुकसागर" रक्खा. वास्तविक यह कार्य भारतवर्षमें प्रथमही हुआ, इससे पूर्व देशभाषामें ऐसी कोई टीका निर्मित नहीं हुई थी, बस छपतेही यह पुस्तक हाथोंहाथ महात्माओंने मँगाई और ऐसी मनभाई कि, थोडे महीनोंके पश्चात्ही यंत्रालयमें एकभी पुस्तक नहीं रही, इस कारण इसके छापनेकी आवश्यकता समझकर यंत्रालयाधिपतिने इसके शोधनेका भार श्रीयुत पंडित ज्वालाप्रसादजीको समर्पण किया उस समय उन्होंने इस महापुराणमें कथा कहनेवालोंके उपयोगी बहुतसे दृष्टांत मिलाकर और शोधकर इसे यंत्रालयमें संवत १९४८ में भेज दिया परन्तु छपनेहीकी देर थी कि, प्रेमी महाशयोंके पत्र पर पत्र आनेलगे और ग्रंथ यंत्रालयमें न रहनेके कारण तृतीयावृत्ति छापनेकी आवश्यकता हुई तबकी बारभी फिर इस ग्रन्थमें बहुतसे कथानक जो परिश्रमसे प्राप्त हुए हैं जो कि ब्रजवासी अपनी कथाओंमें कहा करतेहैं और पंचाध्यायीकी विशेष वार्ता दूसरे ग्रन्थोंसे संग्रह की हुई यह सब दशमस्कन्धमें यथास्थानमें टिप्पणी करके इन्होंने

लगा दिये हैं और दृष्टांतभी बहुत कथाके उपयोगी लिखदिये हैं और प्रत्येक श्लोकके अथ और आशयको श्रीधरीटीकाके अनुसार विचार कर बहुत स्पष्टतासे खोलदिया है जिससे पाठ करनेवालोंको किसीप्रकारकी भ्रांति न हो और शंका समाधानभी जिनका भागवतसे संबन्ध है उचितरीतिसे यथायोग्य अपनेस्थानोंपर लगादियेगये तब तो वह तृतीयावृत्तिभी भक्तिरसिकजनोंकी अत्यन्तउत्कण्ठासे थोडेही समयमें बिकगई ऐसी इस पुस्तककी तीन आवृत्तियां उठगई.और तोभी भक्तिमान् सद्गृहस्थोंकी इस ग्रन्थके संग्रहमें उत्कण्ठा अधिकतर रही इसवास्ते–और भी इस ग्रन्थमें वाचकजनोंके विशेष सुलभताके अर्थ भाषासौंदर्य आनेकी आवश्यकता थी सो पूर्ण करनेके लिये मेरेको कहा तब मैंने–पूर्व २ आवृत्तियोंमें पंडितजनोंने की हुई सब व्यवस्थाओंको विशेषरीतिसे अलंकृत कर भाषासौंदर्य पूर्ण रीतिसे लायाहै, बहुत कहनेसे क्या है,शब्द शास्त्रकी गंभीरताको विद्वान् जानतेहैं, उसका जितना खोज कियाजाय उतनाही सूक्ष्म अर्थ दीखताहै,सुवर्णको जितना आगमें धरा जाय उतनाही निखरता है,इसीप्रकार चतुर्थावृत्तिमेंभी बहुत सावधानीसे इसके अर्थ और शुद्धतापर ध्यान देकर यंत्रित किया गया है, पुनः पंचम षष्ठ और सप्तमावृत्तिके पुस्तक न रहनेसे अब अष्टमावृत्ति छपी है देखनेसे विदित हो जायगा कि,अबकी बार किसप्रकार इस महापुराणको अलंकृत किया है आपके प्रसन्न होनेही पर परिश्रमके सफल होनेकी आशा है, यद्यपि यथाशक्ति इसके शोधनादिमें सावधानी की गई है तथापि कहीं न्यूनाधिक होगया हो तो उसमें सज्जन महाशय हंसके समान गुणग्राही होंगे,कारण कि,सर्वज्ञ और निर्भ्रांत तो केवल एक परमेश्वरही हैं।

सज्जनोंका प्रेमाभिलाषी–शालिग्राम, मुरादाबाद–(पश्चिमोत्तर प्र०)

श्रीवैकुण्ठविहारिणे नमः।

अथ श्रीमद्भागवतभाषाटीकाविषयानुक्रमणिकाप्रारम्भः।

अध्यायाः। विषयाः।

प्रथमस्कन्धः १.

१ मंगलाचरण, नैमिषारण्योपाख्यान, सूतजीका आगमन और शौनकादिक ऋषियोंका प्रश्न
२ सूतजीका उत्तर तथा भगवद्गुणानुवर्णनका उपोद्घात
३ विष्णुभगवानके चौबीसों अवतारोंके चरित्रोंका वर्णन तथा अवतारकथाके प्रश्नोंका उत्तर
४ व्यासजीका तपस्यादिकसे सन्तोष और श्रीमद्भागवतके आरम्भका कारण
५ व्यास नारदका संवाद और भगवद्गुणोंका श्रेष्ठत्व सुनकर चित्तका सावधान होना
६ नारदमुनिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त वर्णन
७ श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ और अश्वत्थामाका निग्रह वर्णन
८ अश्वत्थामाके अस्त्रसे परीक्षित्की रक्षा तथा कुन्तीकृत स्तुति और युधिष्ठिरका पश्चात्ताप
९ भीष्मकृत युधिष्ठिरको धर्मोपदेश, भगवत्स्तुति, भीष्मजीकी मुक्ति, युधिष्ठिरराज्यप्राप्ति
१० श्रीकृष्णजीका आनर्तदेशमें आगमन और द्वारकावासियोंका श्रीकृष्णजीकी स्तुति करना
११ बन्धुसहित श्रीकृष्णजीका द्वारका पधारना और द्वारकावासियोंको श्रीकृष्णकी स्तुति करना
१२ उत्तराके गर्भमें श्रीकृष्णकृत परीक्षित्का रक्षण और परीक्षितका जन्मोत्सव
१३ विदुरकी तीर्थयात्रा, धृतराष्ट्रका मोक्ष और परीक्षित्के राज्याभिषेकका महोत्सव
१४ द्वारकाके कुशल वृत्तान्तमें युधिष्ठिरका वितर्क और अर्जुनके मुखसे श्रीकृष्णका परलोकगमनवर्णन
१५ कलियुगका प्रवेश और राजा युधिष्ठिरका स्वर्गारोहण
१६ राजा परीक्षित्का दिग्विजय और पृथ्वीका धर्मसंवाद
१७ महाप्रतापी राजा परीक्षित्का कलियुगको दण्ड देना
१८ धर्मपालक राजा परीक्षित्को विप्रपुत्रका शाप देना
१९ गंगाजीमें प्रायोपविष्ट राजा परीक्षित्के समीप शुकदेवजीका शुभागमन

द्वितीयस्कन्धः २.

१ श्रीशुकदेवकृत राजा परीक्षितके प्रश्नकी प्रशंसा और भगवान्के विराटरूपका वर्णन
२ भगवान्के सूक्ष्मरूपका ध्यानवर्णन तथा पुरुषसंस्थानुवर्णन
३ ब्रह्मादिक देवताओंकी पूजाका पृथक् पृथक् फल और भगवद्भक्तिमें परीक्षित्का प्रेम
४ सृष्टि आदि हरिचरित्र सम्बन्धी प्रश्नोंका ब्रह्मनारदसंवादरूप उत्तर
५ विराड्सृष्टि, भगवल्लीला तथा ब्रह्मानारदके संवादमें विराड्रूपका वर्णन
६ विराड्विभूति तथा पुरुषसूक्तके अर्थका वणन
७ गुणकर्मप्रयोजन सहित भगवान्के चौबीसो अवतारोंका वर्णन
८ राजा परीक्षित्कृत भगवत्तत्त्वमें अनेक प्रश्नविधि
९ भगवत्कृत चतुःश्लोकी भागवतवर्णन
१० पुराणके दशविधलक्षण और पुरुषसंस्थानका वर्णन

तृतीयस्कन्धः ३.

१ विदुर-उद्धव-संवाद
२ कृष्णके विरहमें व्याकुल होकर उद्धवजीका विदुरसे कृष्णके बालचरित्र कहना
३ व्रजसे द्वारकापर्यंत श्रीकृष्णचन्द्रका सूक्ष्म चरित्रवर्णन तथा प्रभासक्षेत्रमें श्रीकृष्णादि यादवोंका आगमन
४ विदुरोद्धवसंवादान्तर्गत यदुवंशका क्षय
५ विदुरमैत्रेयसमागम तथा विदुरमैत्रेयसंवाद विषे महदादिक सर्गमें सर्वदेवकृत स्तुति
६ विराट् देहमें ईश्वरका प्रवेश तथा आध्यात्मिक भेदका निरूपण
७ मैत्रेयजीका संशयशमन उत्तर श्रवण कर विदुरजीके अनेक प्रश्न विधान

5

अध्यायाः। विषयाः।
८ ब्रह्मदेवकृत सर्वोत्कृष्ट श्रीमन्नारायणका स्वरूप वर्णन
९ भगवान् और ब्रह्मदेवका संवाद और संवादके अन्तमें हरिका अन्तर्धान होना
१० ब्रह्मदेवकृत वैदिक मानसिक प्रजासृष्टि आदि दशविध प्रजा सृष्टिवर्णन
११ परमाणु आदि द्विपरार्द्धपर्यंत कालरूपी ईश्वरका वर्णन
१२ मनुसर्गका वर्णन
१३ स्वायंभुवमनुका चरित्र और श्रीवाराहप्रादुर्भाववर्णन
१४ दिति–कश्यप–संवादवर्णन
१५ देवताओंकी ब्रह्माजीसे प्रार्थना, जयविजयको विप्रशाप, श्रीवैकुंठलोकवर्णन
१६ वैकुण्ठविहारीसे वैकुण्ठलोकमें ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णन
१७ हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुकी उत्पत्ति और पुरुषार्थवर्णन
१८ हिरण्याक्ष और श्रीवाराहजीका महाभयंकर युद्धवर्णन
१९ ब्रह्मादिक देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्‌को हिरण्याक्षका वध करना
२० ब्रह्मदेवके देहसे सृष्टिका वर्णन
२१ स्वायंभुवमनुका वंशवर्णन और कर्दमाश्रममें स्वायंभुवमनुका समागम
२२ बर्हिष्मती नगरीमें स्वायंभुवमनुका आगमन वर्णन
२३ कर्दमजीके देवहूतिमें नवकन्याउत्पत्ति–वर्णन
२४ कपिल भगवान्‌का अवतार और कर्दमजीका सन्यास–वर्णन
२५ कापिलेय उपाख्यानमें योगविद्याके उपदेश समय भक्तिलक्षण वर्णन
२६ सांख्यशास्त्रकी रीतिसे चौबीस तत्त्वोंका लक्षण वर्णन
२७ प्रकृतिपुरुषके विवेकद्वारा मोक्षरीतिका वर्णन

अध्यायाः। विषयाः।
२८ योगका लक्षण और अष्टांगयोगका वर्णन
२९ महदादिकोंका लक्षण और अनेक प्रकार भक्तियोगवर्णन
३० कामीजनोंको नरकादिकप्राप्तिवर्णन
३१ पुण्य और पापके मिलनेसे संसारमें मनुष्ययोनिकी प्राप्ति और जीवकी गतिका वर्णन
३२ गृहस्थाश्रमियोंको ज्ञानोपदेशकी योग्यता और कापिलेयोपाख्यानकी समाप्ति
३३ देवहूतिका मोक्ष और कपिलदेवका अन्तर्धान होना

चतुर्थस्कन्धः ४.

१ मनुकी कन्याओंके पृथक् पृथक् वंश और नरनारायणअवतारका वर्णन
२ दक्ष और महादेवकी शत्रुता होनेका कारण
३ दक्षप्रजापतिके यज्ञमें जानेके लिये शिवजीका सतीको निषेधक०
४ अपना तिरस्कार होनेसे सतीने दक्षके यज्ञमें शरीरका त्यागकिया
५ शिवजीकेकोपसे उत्पन्नहुएवीरभद्रने दक्षका यज्ञविध्वंस किया
६ दक्षके जिलानेकेलिये ब्रह्मादिक देवताओंने शिवजीकी स्तुतिकी
७ दक्षयज्ञमें सब देवताओंकृत भगवान्‌की स्तुति
८ ध्रुवचरित्र, दूसरी माताके कहनेसे ध्रुवका तपस्या करनेके लिये वनमें जाना
९ ध्रुवको भगवान्‌की कृपासे राज्यप्राप्ति वर्णन
१० भाईका वैर लेनेके लिये ध्रुवका यक्षोंके साथ युद्ध
११ मनुके तत्त्वोपदेशसे ध्रुवने यक्षोंका वध निवारण किया
१२ कुबेरकृत ध्रुवकी प्रशंसा और अचलपदवीका प्राप्त होना
१३ वेन नाम पुत्रकी दुष्टतासे राजा अंगका वनमें जाना

अध्यायाः। विषयाः।
१४ राजावेनके देहमथनेसे निषाद आदि जातिकी उत्पत्तिकावर्णन
१५ राजा वेनकी भुजासे पृथुका उत्पन्न होना और राज्याभिषेक व०
१६ मुनि, सूत, बन्दीजन आदिकृत राजा पृथुकी स्तुति वर्णन
१७ प्रजागणको पीड़ित देख राजा पृथुने पृथ्वीपर कोप किया और पृथ्वीने पृथुकी स्तुति की
१८ दोह वत्स आदि भेद करके राजा पृथुने पृथ्वीका दोहन किया
१९ राजा पृथुकृत अश्वमेध यज्ञ और इन्द्रने पाखण्डरूप धर घोड़ेको चुराया
२० यज्ञमें राजा पृथुको भगवान्‌ने प्रत्यक्ष ज्ञान दिया और अनुशासन किया
२१ प्रजाओंके अनुशासनमें ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णन
२२ राजा पृथुको सनत्कुमारोंद्वारा परम अध्यात्मज्ञानका उपदेश वर्णन
२३ स्त्री सहित राजा पृथु योगसमाधिसे परमधामको गया
२४ प्राचीनबर्हिके पुत्र प्रचेताओंको शिवजीने रुद्रगीताका उपदेश किया
२५ रुद्रका अन्तर्धान होना,आत्मा और बुद्धिके संयोगरूप पुरंजन पुरंजनी चरित्र वर्णन
२६ पुरंजनने अपने अपने अपराधकी क्षमा मांगी
२७ कालकन्या आदि जरा और मृत्यु पुरंजनको प्राप्त हुए
२८ स्त्रीके चिन्तवनसे पुरंजनने स्त्रीका जन्म पाया
२९ अध्यात्मज्ञानका वर्णन
३० वृक्षोंकी कन्याके संग प्रचेताओंका विवाह और उनके गृहमें दक्षकी उत्पत्तिका वर्णन
३१ प्रचेता दक्षको राज्य दे मुक्तिमार्गको चले गये

अध्यायाः । विषयाः ।

पञ्चमस्कन्धः ५.

१ राजा प्रियव्रतका प्रथम वैराग्य फिर गृहस्थाश्रम प्रवेश, अन्तको ज्ञानसे मोक्षप्राप्ति
२ राजा आग्नीध्रके चरित्रका वर्णन
३ परम मंगलरूप राजा नाभिसे मेरुदेवीमें ऋषभदेवजीका अवतार वर्णन
४ ऋषभदेवजीके राज्यसुखका वृत्तान्त और उनके शत पुत्रोंका व०
५ ऋषभदेवजीका पुत्रोंको उपदेश देना और परमहंस होकर वनको जाना
६ ऋषभदेवजीका शरीरान्तवर्णन
७ भरतने राज्य करके हरिक्षेत्रमें जाकर पूजन किया; वहां शालग्रामकी उत्पत्ति, गंडकीमाहात्म्य
८ मृगके वत्ससे स्नेह करनेके कारण भरतको मनुष्यदेह त्यागने पर मृगका शरीर धारण करना
९ जडभरतको बलिप्रदानसे मोक्षका वर्णन
१० रहूगण और जड़भरतका संवाद
११ रहूगणका मनोविजय वर्णन
१२ रहूगणका जडभरत ब्राह्मणसे भगवत्कथास्वरूपका निरूपण वर्णन
१३ रहूगणको सूक्ष्मभवाटवीका वृत्तान्त वर्णन करना
१४ भवाटवीका परोक्षज्ञान वर्णन
१५ प्रियव्रतके वंशका वर्णन
१६ जम्बूद्वीपके नौखण्डका और मेरुपर्वतकी स्थितिका वर्णन
१७ इलावृत खण्डमें भगवान् संकर्षणका वर्णन
१८ रम्यक उत्तरखण्डमें सेव्य सेवक भुवनकोश वर्णन
१९ जम्बूद्वीपका और भारतखण्डका माहात्म्य वर्णन

अध्यायाः । विषयाः ।

२० क्षीर आदि समुद्र और प्लक्षआदि द्वीपोंका प्रमाण, लक्षण और स्थान वर्णन
२१ स्वर्गमण्डलका प्रमाण, खगोल वर्णन और ज्योतिषचक्र सूर्यरथमण्डल वर्णन
२२ ज्योतिषचक्रमें नवग्रहोंका वर्णन
२३ शिशुमारचक्र वर्णन
२४ पातालादि बिल जो स्वर्गमें रहते हैं उनका वर्णन
२५ श्रीशेषजी महाराजके स्वरूपका वर्णन, जो सातवें पातालके नीचे वास करते हैं
२६ नरकस्थानोंका वर्णन

षष्ठस्कन्धः ६

१ अजामिलके लेजानेमें विष्णुपार्षद और यमदूतोंका संवाद
२ भगवन्नामका महात्म्य, विष्णुपार्षदोंने यमदूतोंको सुनाया
३ यमराजने अपने दूतोंसे भगवद्भक्तिका महात्म्य वर्णन किया
४ प्रचेताओंसे दक्षकी उत्पत्ति और हंसगुह्य नाम स्तोत्र
५ नारदमुनिको दक्षने शाप दिया
६ दक्षसे सात कन्याओंकी उत्पत्तिका वर्णन
७ इन्द्रादिक देवताओंकी विनयसे विश्वरूपका पुरोहित होना
८ इंद्रका विश्वरूपसे नारायणकवच पाकर विजयी होना
९ विश्वरूपका वध और वृत्रासुरका जन्म और इन्द्रादिदेवकृत गद्यात्मक श्रीहरिस्तोत्रवर्णन
१० वृत्रासुरके पक्षपाती असुरोंका पराजयवर्णन
११ वृत्रासुरकृत भगवत्स्तोत्रवर्णन
१२ इन्द्रके हाथसे वृत्रासुरका मरणवर्णन
१३ ब्रह्महत्या मोचनके लिये इन्द्रकृत अश्वमेधयज्ञ वर्णन

अध्यायाः । विषयाः ।

१४ राजा चित्रकेतुके पुत्रमरणका शोक वर्णन
१५ चित्रकेतुको शोकातुर देखकर नारद और अंगिराका ज्ञानोपदेश करना
१६ नारदमुनिने राजा चित्रकेतुको अनंत भगवान्के लिये प्रसन्न करनेका स्तोत्र पढाया
१७ पार्वतीके शापसे राजा चित्रकेतुने वृत्रासुरका अवतार लिया
१८ उन्चास मरुद्गणोंका जन्मवृत्तान्त, अदिति और दितिके पुत्रों का वैर वर्णन
१९ पुंसवनव्रतका विधान वर्णन

सप्तमस्कन्धः ७.

१ जयविजय भगवान्के पार्षदोंको सनकादिकोंके शापसे तीन जन्म असुरत्वप्राप्ति वर्णन
२ हिरण्यकशिपुने दिति माता प्रति सांत्वनके समय उशीनर राजाकी कथाका वर्णन किया
३ हिरण्यकशिपुका ब्रह्माजीसे वर पाना
४ हिरण्यकशिपुके विजयमें प्रह्लादका साधुभाववर्णन
५ प्रह्लादने हिरण्यकशिपुके आगे नवधा भक्ति वर्णन की
६ प्रह्लादने दैत्योंके बालकोंके सामने ब्रह्मज्ञान वर्णन किया
७ प्रह्लादका अपने ब्रह्मज्ञानकाकारण पाठशालाके बालकोंसे कहना
८ भगवान्ने नृसिंहअवतार धारणकर हिरण्यकशिपुका वधकिया सर्वदेवकृत नृसिंहस्तोत्रवर्णन
९ कोप शान्त करनेके लिये प्रह्लादकृत श्रीनृसिंहस्तोत्रवर्णन
१० अपने जन प्रह्लादको भक्तिवरदान दे श्रीनृसिंह भगवान्का अन्तर्धान होना
११ सदाचारनिर्णयमें वर्णाश्रमधर्मवर्णन

अध्यायाः। विषयाः।
१२ चारों आश्रमोंका धर्म वर्णन
१३ भगवान् दत्तात्रेयजीने प्रह्लादके सामने परमहंसधर्म वर्णन किया
१४ गृहस्थाश्रमके धर्मका वर्णन
१५ जनोंका सदाचारवर्णन

अष्टमस्कन्धः ८.

१ स्वायंभुवमनु आदि चार मन्वतरोंका वर्णन
२ गजेन्द्रोपाख्यान अर्थात् ग्राहसे हार मानकर गजराजका भगवान्की स्तुति करना
३ गजेन्द्रमोक्ष अर्थात् गजराजको ग्राहसे आकर छुटाया
४ गजेन्द्रकृत भगवत्स्तोत्रवर्णन
५ रैवत मन्वतरका वर्णन
६ अमृतमथनमें मन्दराचल पर्वतका स्थानान्तर करना
७ हलाहलके भयसे देवताओंका शिवकी स्तुति करना
८ कामधेनु आदि रत्नोंका प्रादुर्भाव. दैत्योंको मोहनेके लिये भगवान्का मोहिनीरूप धारण करना
९ सब दैत्योंने मिलकर मोहिनीको अमृत दिया और मोहिनीने सब देवताओंको पान कराया
१० देवता और दैत्योंका परस्पर संग्राम वर्णन
११ देवासुर संग्राममें शुक्राचार्यकृत दैत्योंकी रक्षा वर्णन
१२ भगवान्ने अपना मोहिनीरूप शिवजीको दिखाया
१३ सप्तम मनुसे लगाकर छः प्रकारके मन्वन्तरोंका वृत्तान्त वर्णन
१४ मन्वतरमें मन्वन्तरके ईशोंका वर्णन
१५ राजाबलिका विजयवृत्तान्त–वर्णन
१६ अदितिको कश्यपजीने पयोव्रतकी शिक्षा दी
१७ पयोव्रतके प्रतापसे अदितिके गर्भमें भगवान्ने वामन अवतार लिया
१८ राजा बलिके यज्ञमें वामनजीका आना
१९ राजा बलिने तीन पग धरणी वामनभगवान्को दान करके दी और गुरुका कहना न माना
२० श्रीवामनजी कृत विश्वरूप दर्शन
२१ वामनजीकृत बलिनिग्रहवर्णन
२२ भगवान्ने राजा बलिपर संतुष्ट हो पातालका राज्य दिया
२३ वामनजीका प्रभाव वर्णन
२४ मत्स्यअवतारकी कथाका वर्णन

नवमस्कन्धः ९.

१ वैवस्वतमनुके पुत्रोंका वंश और सुद्युम्नका स्त्रीभाववर्णन
२ करूष आदि पाँच मनुपुत्रोंके वंशका वर्णन
३ मनुपुत्र शर्यातिका वंशवर्णन, सुकन्या और रेवतीका आख्यान
४ मनुपुत्र नभगका इतिहास, उसके पुत्र अम्बरीषराजाका उपा०
५ विष्णुभगवान्के चक्रसे अम्बरीषका रक्षण वर्णन
६ अम्बरीषका वंश. शशादसे लेकर मान्धाता पर्यन्त इक्ष्वाकुका वंश और सौभरि ऋषिकी कथा
७ पुरुकुत्स और हरिश्चन्द्रराजाका उपाख्यान
८ रोहितका वंश और कपिलदेवजीसे राजा सगरके पुत्रोंका विनाश
९ राजाअंशुमान्के वंशका खट्वांगतक वर्णन और पृथ्वीपर भगीरथकृत गंगा लाना
१० खट्वांगके वंशमें रामचन्द्रका जन्म और उनके चरित्र
११ श्रीरामचन्द्रजीका भ्राताओंसमेत अयोध्यामें राज्य और यज्ञ वर्णन
१२ रामचन्द्रके पुत्र कुशका और इक्ष्वाकुपुत्र शशादका वंश वर्णन
१३ इक्ष्वाकुपुत्र निमिराजाके वंशका वर्णन
१४ चन्द्रवंशका वर्णन और बृहस्पतिकी स्त्रीमें चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्ति
१५ पुरूरवाके पुत्रोंका वंश, सहस्रबाहु अर्जुनका वध
१६ परशुरामजीकृत क्षत्रियवंशका क्षय वर्णन
१७ पुरूरवाके ज्येष्ठपुत्र आयुके चार पुत्रोंका वंश
१८ राजानहुषके पुत्र ययातिराजाका इतिहास
१९ राजा ययातिकृत शोकवर्णन
२० पूरुके वंशमें भरतका यश वर्णन
२१ भरतवंशमें रंतिदेव अजमीढआदि राजाओंकी कीर्ति वर्णन
२२ दिवोदास,ऋक्षकेवंशमेंजरासन्ध,युधिष्ठिर,दुर्योधनादिरा०वं०
२३ अनु, द्रुह्यु तुर्वसु, यदुके वंशका वर्णन
२४ विदर्भके तीन पुत्रोंका जन्म और रामकृष्णतक अनेक वंश वर्णन

दशमस्कन्धपूर्वार्द्धः १०.

१ कंसका देवकीके पुत्रसे अपना मरण सुन उसके छः पुत्रोंका वध क०
२ ब्रह्मादिककृत गर्भस्तुति
३ भगवान्का चतुर्भुज रूपदेख उनको गोकुलमें पहुँचाया और योगमायाको ले आये
४ कंसकृत बालकवधादिक उपद्रव वर्णन
५ नन्दकेघरमेंपुत्रोत्सव और मथुरामेंवसुदेवजीसे मिलनेको जा०
६ पूतनाराक्षसीका वधवृत्तान्तवर्णन
७ शकटासुरका मारण, तृणावर्त्तका वध, विश्वरूपदर्शन
८ श्रीकृष्णका जातकर्म, नामकरण संस्कार और मट्टी खानेके बहानेसे मुखमें माताको त्रिलोकी दिखाई
९ श्रीकृष्णको यशोदाने उलूखलसे बाँधा

7

अध्यायाः । विषयाः ।
१० यमलार्जुनवृक्षोंका भंजन, नलकूबर,मणिग्रीवकृत कृष्णस्तुति
११ वत्सासुरवध और बकासुरका मारण
१२ अघासुरका वध और ग्वालबालोंकी रक्षा
१३ ब्रह्माजीका ग्वालबाल, वत्सोंका ह० कृष्णका वैसे ही रूप ध०
१४ श्रीकृष्णकी अद्भुत महिमा देख ब्रह्माने भगवान्‌की स्तुति की
१५ धेनुकासुरवध, कालियनागके विषसे ग्वालबालोंकी रक्षा
१६ कालियमर्दन और उसकी स्त्रियोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति
१७ कालियनागका वृत्तान्त वर्णन, दावाग्निप्राशन
१८ बलदेवजीकृत प्रलम्बासुरवध
१९ मुंजवनमें दावानलसे श्रीकृष्णने ग्वालबाल और गायोंकी रक्षा की
२० वर्षाऋतु और शरदृतुका वर्णन
२१ गोपियोंका वर्णन किया हुआ वेणुगीत
२२ कात्यायनीव्रत और गोपीवस्त्रहरणलीला वर्णन
२३ द्विजपत्नियोंको भगवान्‌ने अपनी भक्ता जान उनपर अनुग्रह व०
२४ इन्द्रयज्ञविध्वंस और गोवर्द्धनपूजा
२५ गोवर्द्धनपर्वतका बायें करकी उंगलीपर धरना,गोकुलकी रक्षा
२६ यशोदाके पास गोपियोंकी कृष्णलीलावर्णन और नन्दजीकृत गोपोंका संशयहरण
२७ कामधेनु व इन्द्रकृत श्रीकृष्णस्तुति व अभिषेकवर्णन
२८ नन्दजीका वरुणलोकसे आनयन और नन्दको वैकुण्ठलोक दिखाना
२९ रासलीलाका आरम्भ
३० गोपियोंका विरहवर्णन
३१ गोपीजनकृत श्रीकृष्णस्तुति
३२ रासलीलावर्णन
३३ पञ्चाध्यायी-रासलीला-वर्णन

अध्यायाः । विषयाः ।
३४ शंखचूडवध
३५ गोपीगीतवर्णन
३६ वृषभासुरका वध, कंसनारदसंवाद व्रजमें अक्रूरप्रेषण
३७ केशीवध, व्योमासुरवध
३८ अक्रूरका वृन्दावनमें जाना
३९ अक्रूरका आतिथ्यसन्मान व श्रीकृष्णसमेत मथुरामें प्रयाण०
४० अक्रूरकृत श्रीकृष्णस्तुतिवर्णन
४१ श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेश, धोबीके वस्त्र छीन माली व दर्जीको वर देना
४२ कुब्जाको वरदान देना और सभामें धनुषका तोडना
४३ कुवलयापीड हाथीका हनन
४४ चाणूर मुष्टिकका वध और कंसासुरका चोटी पकडकर मारना
४५ गुरुगृहवास, विद्याग्रहण, शंखासुरका वध
४६ उद्धवजीका वृंदावनमें जाना व नन्दयशोदादिकाशोक दूरक०
४७ उद्धवगोपीसंवाद और उद्धवका मथुराको प्रत्यागमन
४८ श्रीकृष्णकी कुब्जाकेसाथलीला,व अक्रूरका हस्तिनापुर०जा०
४९ अक्रूरकृत पांडव-आश्वासन और अक्रूरका मथुरामें लौटकर आजाना

दशमस्कन्धोत्तरार्द्धः १०.

५० जरासन्धका पराजय और द्वारकापुरीका समुद्रमें बसाना
५१ कालयवनका वध,मुचुकुन्दकी स्तुति
५२ कृष्णका द्वारकामें गमन व रुक्मिणीका श्रीकृष्णको ब्राह्मण द्वारा संदेश देना
५३ रुक्मिणीविवाहसमारम्भ और रुक्मिणीहरणलीलावर्णन
५४ रुक्मिणीविवाहोत्सव और चैद्यादिकोंका परा
५५ प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध
५६ जाम्बवती और सत्यभामाका विवाह और स्यमन्तकमणिहरण

अध्यायाः । विषयाः ।
५७ श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें गमन, शतधन्वाका वध, स्यमन्तकाख्यान
५८ श्रीकृष्णचन्द्रका इन्द्रप्रस्थमें गमन, अष्टमहारानियोंका वि[illegible]
५९ भौमासुरका वध और सोलहसहस्र राजकन्याओंका विवाह व कल्पवृक्षका हरण
६० रुक्मिणीमानलीला और कृष्णरुक्मिणीसंभाषण
६१ श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंके सन्तानका वर्णन, अनिरुद्धका विवाह और रुक्मीका वध
६२ उषास्वप्नदर्शन और अनिरुद्धका बन्धन
६३ उषाचरित्र, बाणासुरसंग्राम, उषाविवाहवर्णन
६४ राजानृगका उपाख्यान और श्रीकृष्णचन्द्रकृत धर्मोपदेशवर्णन
६५ बलदेवजीका वृन्दावनमें जाना, गोपीबलदेवसंवाद, बलदेव विजय और यमुनाकर्षण
६६ मिथ्यावासुदेव, पौंड्रकादिकोंका वध
६७ बलरामकृत द्विविदवानरका वध
६८ साम्बका विवाह, हस्तिनापुरका कर्षण, संकर्षणका विजय
६९ नारदमुनिका द्वारकामें आगमन
७० श्रीकृष्णकी राजसूययज्ञ देखनेके लिये इन्द्रप्रस्थमें जानेकी इच्छा
७१ उद्धवजीकी सम्मतिसे श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थमें जाना, मयकृत सभानिर्माण
७२ भीमसेनके हाथसे जरासन्धका वध वर्णन
७३ जरासन्धके मरनेके पीछे सब राजाओंको छुटाकर अपने अपने देशको भेज देना
७४ युधिष्ठिरके यज्ञमें अग्रपूजासमारंभ, वहां शिशुपालका वध
७५ यज्ञमें आयेहुए राजा ब्राह्मणादिकोंका सत्कार व दुर्योधनका मानभंग

अध्यायाः। विषयाः।
७६ राजा शाल्वका वध
७७ द्युमानराजाका वध, सौभराजाका बध
७८ दन्तवक्रका वध, बलदेवजीका नैमिषारण्यमें जाना
७९ बलदेवजीका तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान
८० सुदामाजीका श्रीकृष्णके दर्शनके लिये द्वारकामें जाना और श्रीकृष्णकृत सुदामाजीका आदर सत्कार
८१ सुदामाके तन्दुल चाबकर उसको त्रिलोकीकी सम्पदा देना
८२ श्रीकृष्णका सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जाना, वहां नन्दादिक गोपगोपियोंका मिलना
८३ श्रीकृष्णयुधिष्ठिरका संगम, श्रीकृष्णपत्नी और द्रौपदीका सं०
८४ श्रीकृष्णप्रभाववर्णन और तीर्थयात्रामहोत्सव
८५ श्रीकृष्णने अपनी माताको मरेहुए पुत्र ला दिया और अपने पिताको उपदेश किया
८६ अर्जुनकृत सुभद्राहरण और भगवान्‌ने श्रुतदेव ब्राह्मणको प्रसन्न किया
८७ नारायणनारदसंवाद और वेदस्तुति
८८ वृकासुरका वध और रुद्रमहादेव संकट मोचन
८९ भृगुजीने निश्चय किया कि सब देवोंमें विष्णु श्रेष्ठ हैं
९० द्वारकामें रहे श्रीकृष्णलीला और यदुवंशियोंकी असंख्यातताकावर्णन

एकादशस्कन्धः ११.

१ यदुवंशियोंको विप्रशापवर्णन
२ वसुदेवके आगे नारदमुनिका कहा शुद्ध वैष्णवधर्म वर्णन
३ जायन्तेय उपाख्यान. ब्रह्म व कर्म इन प्रश्नोंका उत्तर
४ द्रुमिलनाम योगेश्वरने अवतारकी चेष्टाके प्रश्नोंका उत्तर दिया

अध्यायाः विषयाः।
५ भक्तिरहित पुरुषोंकी गति और युगयुगमें पूजाकी विधिका वर्णन
६ ब्रह्माजीकृत कृष्णस्तुति, उद्धवजीकृत श्रीकृष्णचंद्रजीकी प्रार्थना
७ उद्धवजीको ज्ञान देनेके लिये अवधूतका इतिहास और गुरुके आठ गुण
८ अवधूतको अजगर आदि गुरुकी शिक्षा और पिङ्गला वेश्याका गीत
९ अवधूतको कुररपक्षी आदि गुरुकी शिक्षा और अवधूतगीता
१० आत्माको संसारके कारणका वर्णन
११ बद्ध, मुक्त, साधु और भक्तिके लक्षण
१२ सत्संगकी महिमा, कर्म करने और उसके त्यागनेकी रीति
१३ गुणका बन्ध छूटनेका प्रकार और हंसकी कथा
१४ परम श्रेष्ठ भक्तिका उत्सव और साधनसहित ध्यान वर्णन
१५ धारणासहित सिद्धिका और भगवान्‌की प्राप्तिका विघ्नत्व, परमेश्वरकी तत्परता वर्णन
१६ हरिकी विभूतियोंका वर्णन और ज्ञान,वीर्य प्रभावका वर्णन
१७ हंस अवतारसे ब्रह्मचारी और गृहस्थियोंके धर्मका वर्णन
१८ वानप्रस्थ और सन्यासियोंके धर्मका वर्णन
१९ विरक्तोंका आत्मानुभाव वर्णन
२० भक्ति, ज्ञान, क्रिया, तीनों योगोंका वर्णन
२१ द्रव्य, देश, आदि पदार्थोंका गुण दोष वर्णन
२२ तत्त्वोंकी संख्या,प्रकृति पुरुषका विवेक, जन्ममरणका प्रकार वर्णन
२३ भिक्षुगीतका वर्णन
२४ सांख्यशास्त्रके उपदेशसे मनका मोहनिवारण

अध्यायाः। विषयाः।
२५ सत्त्व, रज, तम. गुणकी वृत्तियोंका वर्णन
२६ साधुसंगसे योगसिद्धि और पुरूरवाराजाका उपाख्यान
२७ संख्याकी रीतिसे कर्मयोगका वर्णन
२८ ज्ञानयोगका संक्षेपसे वर्णन
२९ भक्तियोगका संक्षेपसे वर्णन
३० मुशलयुद्धसे यदुकुलका क्षय–वर्णन
३१ श्रीकृष्णका निजधाम जानेका वर्णन

द्वादशस्कन्धः १२.

१ मगधदेशके राजाओंकी उत्पत्ति और उनकी वर्णसंकरताका वर्णन
२ कलियुगके पुरुषोंकी स्थितिका वर्णन
३ युगयुगका अनुवर्णन
४ परमाणुआदि द्विपरार्धपर्यन्त कालका वर्णन, परमात्माका निर्णय
५ परमाणुका लक्षणवर्णन
६ व्यासदेवकृत वेदशाखावर्णन
७ शिष्यप्रशिष्य करके वेदकी शाखाओंके विस्तारका वर्णन
८ मार्कण्डेयजीके तपका वर्णन
९ मार्कंडेयजीको भगवान्‌ने अपनी माया दिखाई
१० मार्कण्डेयजीको शिवजीने दया करके वरदान दिया
११ आदित्यरूपकी व्यूहरचना वर्णन
१२ बारहों स्कन्धकी कहीहुई कथा राजाको फिर स्मरण करा[illegible]
१३ पुराणसंख्यावर्णन. तथा ग्रंथान्तमें मंगलमय वन्दना

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकाविषयानुक्रमणिका समाप्ता।

प्रथम स्कंध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	२६	२४	११	४६	८
२	३६	८	१२	२९	१६
३	४७	०	१३	५१	२०
४	३४	८	१४	४६	०
५	४१	४	१५	६४	२०
६	४०	०	१६	४१	२०
७	६०	२०	१७	४४	२०
८	५४	२४	१८	५६	१६
९	५५	०	१९	५२	४
१०	४१	२८	समाप्तम्		

॥ जोड प्रथमस्कंधको श्लोक ८८० ॥ अक्षर १६ ॥

द्वितीय स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.
१	४४	२४
२	५१	१०
३	२८	०
४	३०	१६
५	४३	०
६	५९	२४
७	८९	१६
८	२८	१६
९	५२	१२
१०	५२	०

जोड द्वितीयस्कंधको श्लोक ४७० ॥ अक्षर २२ ॥

तृतीयस्कंध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	८०	०	११	४२	८	२१	६०	०	३१	५६	२४
२	३८	२८	१२	५७	०	२२	९१	२८	३२	४४	१६
३	३०	०	१३	६२	८	२३	६३	१६	३३	४०	१६
४	३७	१६	१४	५७	२८	२४	४८	४			
५	५१	१२	१५	७५	१६	२५	४७	२४			
६	४०	२८	१६	४७	८	२६	७३	०			
७	४७	८	१७	३५	१६	२७	३०	१२			
८	४५	१६	१८	३५	१६	२८	५७	१६			
९	६२	२४	१९	४४	०	२९	४६	०			
१०	३०	०	२०	५४	२४	३०	३४	१६			

जोड तृतीयस्कंधको श्लोक १५२२ ॥
॥ अक्षर १२ ॥

चतुर्थ स्कंध

अ	श्लो	अ.	अ.	श्ला	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	६९	०	११	४१	४	२१	५४	०	३१	३१	३०
२	३६	१२	१२	५६	८	२२	७२	८			
३	३४	०	१३	५१	०	२३	४२	१६			
४	४९	१६	१४	४७	०	२४	८५	२४			
५	३२	१२	१५	२६	२०	२५	६४	२८			
६	५९	०	१६	२९	०	२६	२४	१६			
७	७९	१६	१७	४०	२	२७	३१	१६			
८	८७	१२	१८	३०	०	२८	६५	०			
९	७९	१२	१९	४३	८	२९	९३	१२			
१०	३२	८	२०	४३	२८	३०	५४	२०			

जोड चतुर्थस्कंधको श्लोक
१५९५ ॥ अक्षर ८ ॥

पञ्चम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	७९	२४	११	२३	१२	२१	३१	८
२	४१	२०	१२	२२	०	२२	३५	१४
३	३४	०	१३	३९	६	२३	२७	१३
४	३४	०	१४	८०	२६	२४	७२	२१
५	६३	३	१५	२७	३	२५	३२	७
६	६३	२८	१६	५१	३०	२६	९४	२१
७	३०	१५	१७	५०	०			
८	५३	१८	१८	६८	८			
९	५२	२	१९	५६	०			
१०	४६	२१	२०	८३	२६			

जोड पञ्चमस्कंधको
श्लोक १२६१ अक्षर ६

षष्ठ स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	६९	१२	११	३५	१०
२	५१	०	१२	३८	८
३	४०	२८	१३	२५	२८
४	६०	०	१४	६७	०
५	४४	०	१५	२८	२४
६	४५	१६	१६	७५	४
७	४०	८	१७	८३	०
८	४८	२६	१८	७८	१६
९	८०	०	१९	३४	४
१०	३५	२०			

जोड षष्ठस्कन्धको श्लोक ९४३ ॥ अक्षर १७ ॥

सप्तम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	५१	८	११	३६	१६
२	६१	२०	१२	३७	१६
३	४०	१२	१३	४६	१६
४	५०	०	१४	४२	१६
५	५८	१६	१५	८५	०
६	३५	८			
७	५६	२४			
८	७६	२०			
९	८३	०			
१०	७४	२८			

जोड सप्तमस्कन्धको
श्लोक ८३० ॥ अक्षर ८ ॥

अष्टम स्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	३४	१२	११	५१	८	२१	३६	२८
२	३९	२४	१२	५६	४	२२	४३	१२
३	४३	१६	१३	३६	०	२३	३४	२०
४	२८	१२	१४	११	०	२४	६७	४
५	५१	२८	१५	४०	१२			
६	९२	२८	१६	६३	०			
७	५७	२०	१७	३३	१			
८	५१	१९	१८	३९	०			
९	३२	१६	१९	४६	८			
१०	६१	२८	२०	४१	२४			

जोड अष्टमस्कंधको
श्लोक १०४४ ॥ अक्षर २२ ॥

9

नवमस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	४२	०	११	३८	१६	२१	३७	८
२	३६	१६	१२	१६	१६	२२	४९	१६
३	३८	१६	१३	२७	०	२३	३९	१६
४	७७	२०	१४	५०	०	२४	६९	८
५	३०	४	१५	४४	१६			
६	५८	२४	१६	२७	१६			
७	२७	०	१७	१८	१६			
८	३३	२०	१८	५१	१६			
९	५०	१२	१९	२९	२८			
१०	७१	४	२०	३९	१६			

जोड नवमस्कन्धको
श्लोक १०१४ ॥ अक्षर ॥ १६ ॥

दशमस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	७१	१२	११	६२	०	२१	३१	१३	३१	२६	२६	४१	५५	२४	५१	६२	१२	६१	४४	१३	७१	५४	२०
२	४३	१६	१२	५२	२०	२२	४१	०	३२	२४	२६	४२	४०	२४	५२	४१	८	६२	३४	१६	७२	५४	२४
३	५५	२४	१३	७३	२०	२३	५४	०	३३	४८	२०	४३	४२	१६	५३	६२	०	६३	५८	४	७३	३९	१६
४	४७	१६	१४	८१	१२	२४	३८	०	३४	३३	०	४४	५५	२०	५४	६२	१६	६४	४७	०	७४	५५	८
५	३२	२४	१५	५८	१६	२५	३४	०	३५	३५	०	४५	५१	१६	५५	४२	८	६५	३३	०	७५	४५	२४
६	४९	१६	१६	८४	८	२६	२६	२८	३६	४१	१६	४६	४९	१२	५६	४६	२४	६६	४८	२२	७६	३३	०
७	४४	६	१७	२६	०	२७	३१	१४	३७	३९	१६	४७	८३	०	५७	४३	४	६७	२८	०	७७	४१	१२
८	५१	२०	१८	३५	१६	२८	१७	१६	३८	५२	१२	४८	४३	२८	५८	५९	२४	६८	५३	८	७८	३५	०
९	२७	२०	१९	१६	२४	२९	६०	१६	३९	६४	१६	४९	३१	२४	५९	५०	८	६९	५२	८	७९	३४	१६
१०	४९	१६	२०	४८	०	३०	५०	०	४०	३२	१२	५०	६४	०	६०	७४	९	७०	५४	१६	८०	४६	२८

दशमस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.
८१	५४	२८
८२	५३	२४
८३	५१	२८
८४	७६	२४
८५	६४	४
८६	६२	०
८७	८३	१२
८८	४२	०
८९	७२	२०
९०	६०	१०

जोड दशमस्कन्धको श्लोक ४३६९ ॥ अक्षर ॥ २७ ॥

एकादशस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	२७	२४	११	५०	१६	२१	४३	१२	३१	३१	८
२	६१	१०	१२	२८	४	२२	६३	६			
३	६०	१६	१३	४६	१२	२३	६७	१२			
४	३४	१२	१४	४७	२०	२४	२९	०			
५	५८	४	१५	३६	०	२५	३६	१६			
६	६०	१२	१६	४४	२८	२६	३५	२८			
७	७६	२०	१७	५७	१२	२७	५५	०			
८	४४	२४	१८	४८	१६	२८	५१	२०			
९	३६	१६	१९	४७	१२	२९	५७	८			
१०	३७	१२	२०	३८	०	३०	५४	२८			

जोड एकादशस्कन्धको श्लोक ॥ १४६७ ॥अक्षर॥२४॥

द्वादशस्कन्ध.

अ.	श्लो	अ.	अ.	श्लो	अ.
१	४२	१६	११	५४	४
२	४४	१६	१२	७६	४
३	५२	२८	१३	२५	१६
४	४६	२८			
५	१३	१६			
६	८८	२४			
७	२५	१६			
८	५७	१६			
९	३९	२०			
१०	४२	१६			

जोड़ द्वादशस्कन्धको श्लोक ६०९
अक्षर २८

जोड संपूर्ण श्रीमद्भागवत द्वादशस्कंधको श्लोक १६००८ सोलह हजार आठ श्लोक हैं और उवाच श्लोक १२६७ मिलके १७२७५ हैं यह संख्या किसी एक पुस्तककी हैं. परतु अन्यान्य अनेक पुस्तक संग्रह करके हमने महापरिश्रमसे पाठ पाठांतर जितने मिले वे सब मिलाये हैं. ऐसे मिलाकर बराबर १८००० संख्याका यह संपूर्ण ग्रंथ संपादन करके भाषाटीका सुधारके अष्टमावृत्ति छपाया है यह ग्रंथ सर्वांगपरमसुन्दर साग्रहोनेसे वाचकलोकोंकोपरिपूर्णफलदेनेवाला है.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष–मुंबई.

श्रीगणेशाय नमः॥ दोहा–गणपति गौरिगिरीशश्री,–कृष्णचरण चितलाय। करत तिलक माहात्म्यको कीजै आय सहाय ॥ १ ॥व्यासदेव शुकदेव श्री,–शौनक सूत प्रणाम ॥ बार बार कर प्रेमसे, कीजे पूरणकाम ॥ २ ॥ जिन जातेहुएके पीछे चलते २ श्रीव्यासजी महाराज विरहमें व्याकुल होकर पुत्र २ पुकारने लगे, वही वार्ता तन्मय होजानेके कारण वृक्षोंने भी उनसे कहा उस सर्व प्राणियोंके हृदयमें स्थित मुनिको मैं नमस्कार करताहूँ ॥ १ ॥ नैमिषारण्य क्षेत्रमें बैठेहुए महाबुद्धिमान् सूतजीको प्रणाम करके कथारूपी अमृतस्वादके रसिक शौनकजी कहते भये ॥ २ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूत। सर्व अज्ञान अन्धकार नाशक कोटिसूर्यसम प्रकाशक हमारे श्रवणोंके आनन्ददायक रसायनरूप कथाओंका सार

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं प्रारभ्यते ॥ यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ १ ॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत॥ २ ॥ शौनक उवाच ॥ अज्ञानध्वांतविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ॥ सूताऽऽख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम्॥ ३ ॥ भक्तिज्ञानविरागाप्तविवेको वर्धते कथम् ॥ मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ४ ॥ इहघोरे कलौ प्राप्ते जीवश्चासुरतां गतः ॥ क्लेशाक्रांतस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥ ५ ॥ श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥ ६ ॥ चिंतामणिर्लोकसुखं सुरेंद्रः स्वर्गसंपदम् ॥ प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुंठं योगिदुर्लभम् ॥ ७ ॥

हमारे ऊपर अनुग्रह करके आप वर्णन कीजै ॥ ३ ॥ किस रीतिसे भक्ति, ज्ञान,वैराग्यकी प्राप्ति होती है,और ज्ञान किस प्रकारसे अधिक होता है, और महात्मा पुरुष किस भाँतिसे माया मोहको परित्याग करते हैं ॥४॥ इस महाघोर कलिकालके आनेसे संसारी जीवोंका चित्त असुर संज्ञाको प्राप्त होगया है, उस क्लेशसे ग्रसित जीवोंको उद्धार करनेके लिये, क्या कम करना चाहिये । ॥ ५ ॥ जो कुशलका कुशल पावनका पावन और सब प्रकार भगवत्की भक्तिका उत्पन्न करनेवाला साधन हो वह आप हमसे वर्णन कीज ॥ ६ ॥ चिन्तामणि, संसारका सुख, इन्द्रासन, स्वर्ग पर्यन्तकी पदवीको देताहै और गुरु प्रसन्न होकर योग भक्ति परमदुर्लभ वैकुण्ठगतिको देता है ॥ ७ ॥

श्री १०८ ... पुस्तकालय, ... भवन, ... काशी।

सूतजी बोले कि, हे शौनकमुनि ! तुम्हारे मनमें अधिक स्नेह है, इसलिये मैं पूर्ण विचार करके सर्वसिद्धान्तोंका सिद्धान्त संसारका भयनाशक आनन्दका प्रकाशक ॥ ८ ॥ भक्तिकी वृद्धि करनेवाला श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दके सन्तोषका कारण मैं तुम्हारे सम्मुख वर्णन करताहूँ, आपलोग सावधान होकर सुनिये ॥ ९ ॥ जो लोग कालरूपी सर्पके मुखकेग्रास होनेके त्रासका नाशकर्त्ता श्रीमद्भागवत पुराण श्रीशुकदेवजी महाराजने राजापरीक्षित्से कहा था ॥ १० ॥ उससे अधिक मनका शुद्ध करनेवाला और आनन्ददायक और कोई दूसरा उपाय नहीं है, अनेक जन्मके पुण्यका फल इकट्ठा होनेसे भागवतोंको श्रीमद्भागवतकी कथा प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ जिस समय राजापरीक्षित से शृंगीऋषिके शाप देने पश्चात् बडे बडे ऋषि मुनियोंकी सभामें श्रीशुकदेव व्यासनन्दन गंगा तीरपर आकर श्रीमद्भागवतकी कथा कहनेका

सूत उवाच ॥ प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य च ॥ सर्वसिद्धांतनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥८॥ भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥ कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ १० ॥एतस्मादपरं किंचिन्मनश्शुद्धचै न विद्यते ॥ जन्मांतरे भवत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ ११ ॥ परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥ सुधाकुंभं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ॥ १२ ॥ शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ॥ कथा सुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १३ ॥ एवंविनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ॥ प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १४ ॥ क सुधा क कथा लोके क काचः क मणिर्महान् ॥ ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवाञ्जहास ह ॥ १५ ॥

प्रारम्भ किया चाहते थे उसी समय सब देवताओंने अमृतका कलशा वहाँ लाकर रक्खा ॥ १२ ॥ और श्रीशुकदेवजी महाराजको दण्डवत् प्रणाम करके सब देवता बोले, कि हे महाराज ! कथारूप अमृत हमको दीजिये और इसके बदले यह अमृतका घट लीजिये देवता तो अपना प्रयोजन सिद्ध करनेमें प्रसिद्ध ही हैं ॥ १३ ॥ महाराज ! राजा परीक्षित्को तो आप अमृत पिलाइये, और हम देवता लोगोंका यह मनोरथ है कि उसके बदलेमें हम श्रीमद्भागवतरूपी सुधाका पान करें ॥ १४ ॥ कहाँ तो अमृत और कहाँ संसारमें यह कथा. कहाँ काँच कहाँ मणि, यह बात विचार शुकदेवजी देवताओंके ऊपर हँसे ॥ १५ ॥

उनको अभक्त जानकर जो सदा संकटमें सहायक भक्ति,मुक्तिदायक श्रीमद्भागवतकथारूपी अमृत नहीं दिया सो श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है ॥१६॥ इसप्रकार राजाकी मुक्ति देखकर ब्रह्मा अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुए फिर सत्यलोकमें तुलाको बाँध और साधनोंके संग इसको तोले ॥ १७ ॥ तो श्रीमद्भागवतके गौरवके आगे सब साधन हलके दीख पड़े, तब तो सब ऋषीश्वर मुनीश्वर अपने मनमें बडे चकित हुए ॥ १८ ॥ और भूमण्डलमें श्रीमद्भागवतको भगवद्रूपका स्वरूप समझकर कहा कि, यह मोक्षदायक शास्त्र पढ़ने सुननेसे तत्काल सुरपुरका वास देता है ॥१९ ॥ यह महापुराण सप्ताहमें श्रवण करनेवालेको सर्वथा मोक्षदायक है, यह सनकादिकोंने कृपाकरके नारद

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ॥ श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥१६ ॥राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः ॥ सत्यलोके तुलां बद्ध्वातोलयत्साधनान्यदः ॥ १७ ॥ लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ॥ तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः॥१८॥मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं क्षितौ ॥ पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुंठफलदायकम् ॥ १९ ॥ सप्ताहश्रवणेनैव सर्वथा मुक्तिदायकम् ॥ सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः॥२०॥ यद्यपि ब्रह्मसंबंधाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ॥ सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २१ ॥ शौनक उवाच ॥ लोकविग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ॥ विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तिपुष्टं कथानकम् ॥ शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २३ ॥

जीसे प्रथम ही कहा है ॥ २० ॥यद्यपि यह कथा देवर्षिने ब्रह्माजीसे सुनी है परन्तु सप्ताहपारायण सुननेका विधान सनत्कुमारने उनसे वर्णन किया है ॥ २१ ॥ यह बात सुनकर शौनकजी बोले कि,लोकमें विग्रह करानेवाले नारद दो घडीसे अधिक एकस्थानमें कभी नहीं रहसकते थे फिर किस प्रकार स्थिर होकर प्रीति पूर्वक सप्ताह पारायणकी विधि सुनी और सनत्कुमारका और इनका समागम कहाँ हुआ ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि तुम सावधान होकर सुनो। यह भक्तियुक्त मुक्तिदायक कथा मैं आपके सम्मुख वर्णन करता हूं. जो कुछ मुझसे श्रीशुकदेवजी महाराजने अपना अंतरंग शिष्य समझकर कहा है ॥ २३ ॥

एक समय बदरिकाश्रममें वे शुद्ध चारों ऋषि सत्संगके लिये नारदजीके देखनेको आये ॥ २४ ॥ कुमार बोले, कि हे नारदजी । तुम दीन मुख कैसे हो रहे हो, ऐसी क्या चिन्ता है ? जल्दीसे कहांको जाओगे और कहाँसे आते हो ॥ २५ ॥ इस समय तुम ऐसे शून्यचित्त जान पडते हो, जैसे किसीका धन हरगया हो अथवा कोई अद्भुत चरित्र देखा हो, मुक्तसंग आपमें यह बात अनुचित है, इसकारण इस शोकका कारण वर्णन कीजै ॥ २६ ॥ नारदजीने चारोंभाइयोंको नमस्कार करके कहा हे महाभाग्य । मैं सब लोकोंमें उत्तम भूलोकको जानकर पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, गयाको गया॥२७॥और हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र,श्रीरंग,सेतुबन्ध आदि तीर्थोंमें विचरता फिरा ॥ २८॥

एकदा तु विशालायां चत्वारो ऋषयोऽमलाः ॥ सत्संगार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २४ ॥ कुमारा ऊचुः ॥
कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तापरो भवान् ॥ त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २५ ॥ इदानीं सून्य
चित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ॥ तवेदं मुक्तसंगस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ अहं तु
पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ॥ पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २७ ॥ हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं
सेतुबन्धनम् ॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २८ ॥ नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनस्संतोषकारकम् ॥ कलि
नाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताऽधुना ॥ २९ ॥ सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ॥ उदरम्भरिणो जीवा
वराकाः कूटभाषिणः ॥३०॥ मंदाः सुमंदमतयो मंदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ पाखंडनिरताः संतो विरक्ताः सपरिग्रहाः
॥ ३१ ॥ तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ॥ कन्याया विक्रयो लोभाद्दंपतीनां च कल्कनम् ॥ ३२ ॥

परन्तु कहीं मनको सन्तोष करनेवाली कोई कल्याणदायक बात देखनेमें न आई,अधर्मके मित्र कलियुगने सब संसारमें ऐसा भ्रष्टाचार फैला रक्खा है ॥२९॥ कि सत्य, तप, शोच,दयाका कहीं नाम नहीं रहा, केवल झूठबोलने और उदरपोषण करनेवाले रह गयेहैं, इस कारण चित्तमें अत्यन्त चिन्ता है ॥ ३० ॥ आलसी, कुबुद्धि मन्दभागी, पाखण्डी, कुमार्गी, स्त्री पतियोंकी आज्ञा नहीं मानती उनसे अलग हो अपना व्यवहार करती हैं॥३१॥घरमें स्त्रियोंहीकी प्रभुताई है. शाले, सम्मतिदाता हैं लोभसे कन्याविक्रय होता है,स्त्री,पुरुषोंमें कलह रहने लगा है॥३२॥

आश्रम अर्थात् मठ, मंदिर, ठाकुरद्वारे, तीर्थ और नदियोंमें यवन लोगोंका अधिकार हो रहा है, देवताओंके स्थान दुष्टोंने जहां तहां नष्ट कर डाले हैं ॥३३॥ योगी, सिद्ध, ज्ञानी कोई सत्क्रियावाला पुरुष नहीं रहा, कलि रूपी घोर अग्निमें सब साधन जलकर भस्म होगये ॥३४॥ अन्नके बेचनेवाले तो जनपदके मनुष्य, वेद बेचनेवाले ब्राह्मण, भग बेचनेवाली कुलटा स्त्रियें, कलियुगमें अनेक होगी ॥३५॥ इसप्रकार कलियुगके अनेक दोष दुःख देखता पृथ्वीमें विचरता हुआ वृन्दावनमें यमुनाके निकट आया, जहाँ श्रीवृन्दावनविहारी कृष्ण मुरारीने अनेक प्रकारकी अद्भुत लीला करीथीं ॥३६॥ हे मुनियो । वहाँ एक अलौकिक आश्चर्य देखनेमें आया, सो मैं आपके सम्मुख वर्णन करताहूं, तहाँ एक युवा स्त्री अत्यन्त दुःखी

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ॥ देवतायत नान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३३ ॥ न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ॥ कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३४ ॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ॥ कामिन्यः केशशूलिन्यः संभवंति कलाविह ॥ ३५ ॥ एवं पश्यन्कलेर्दोषान्पर्यटन्नवनीमहम् ॥ यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३६ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३७ ॥ द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसंतावचेतनौ ॥ शुश्रूषंती प्रबोधंती रुदती च तयोःपुरः ॥ ३८ ॥ दशदिक्षु निरीक्षंती रक्षितारं निजं वपुः ॥ वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदंतिकम् ॥ मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४० ॥ बालोवाच ॥ भोभोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिंतामपि नाशय ॥ दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाऽघहरं परम् ॥ ४१ ॥

१२

मनमारे बैठी शोच कर रही थी ॥३७॥ और उसके समीप दो वृद्ध मनुष्य अचेत पडे लंबेलंबे श्वास ले रहे थे वह स्त्री उनकी शुश्रूषा करतीथी और बारंबार समझातीथी उनके आगे रोरोकर कहतीथी ॥३८॥ और अपने देहकी सहायता करनेवालेको दशों दिशामें आँखैं पसार देखती थी, और सहस्रों स्त्री उसको पवन करतीथी और बारंबार धैर्य देदेकर समझा रहीथी ॥३९॥ उसकी आश्चर्यमय दशा देखतेही मैं शोकाकुल बालाके निकट गया, वह मुझको देखते ही अचानक उठबैठी और व्याकुल होकर बोली ॥ ४० ॥ हे कृपासिंधु ! कुछ काल मेरे समीप ठहरकर मेरा कष्ट निवारण

---

१ अट्टमन्नं शिवो वेदः शूलो विक्रय उच्यते । केशो भगमिति प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

कीजिये आपका दर्शन संसारके जीवोंका निस्संदेह सब पाप दूर करनेवाला है ॥४१॥आपके अमृतरूपी वाक्योंसे मेरे दुःखकी शान्ति हो जायगी क्योंकि, जब कोई पूर्वजन्मका पूर्णपुण्य उदय होताहै तब आप सरीखे साधुओंका दर्शन होता है ॥४२॥ उसके मधुर वचन सुन मैंने उसस्त्रीसे बूझा कि,हे देवि!तू कोन है? अपने दुःखका विस्तारसहित कहो ? ॥ ४३ ॥ बाला बोली कि, हे भक्तवत्सल ! मैं भक्ति हूँ, और मेरा नाम सब संसारमें विख्यात है,और यह दोनों ज्ञान और वैराग्य मेरे पुत्र हैं कुसमयके प्रभावसे यह दोनों वृद्ध हो गये हैं अब कोई इनका आदर सत्कार करनेवाला नहीं रहा॥४४॥और यह जो स्त्रियें मेरे निकट बैठीं मेरा धैर्य बँधाती हैं यह गंगा,यमुना,सरस्वती आदिक नदी हैं,स्त्रियोंका रूप धारण कर मेरी सेवा करनेको आगईहै परंतु इनको सेवा करनेसे मेरा चित्त शांत नहीं होता ॥४५॥ हे तपोधन ! इससमय मेरी दीनताकी ओर ध्यान

बहुधा तव वाक्येन दुःखशांतिर्भविष्यति ॥ यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा॥४२॥नारद उवाच ॥ कासि त्वं
काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ॥ वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ४३ ॥ बालोवाच ॥ अहं
भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ॥ ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ४४ ॥ गंगाद्याः सरितश्चेमा
मत्सेवार्थं समागताः ॥ तथापि न च मे श्रेयः सेवितायाः सुरैरपि ॥ ४५ ॥ इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपो
धन ॥ वार्ता मे वितताऽप्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४६ ॥ उत्पन्ना द्रविड साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ॥ क्वचित्क
चिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४७ ॥ तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डितांगिका ॥ दुर्बलाहं चिरं याता पुत्रा
भ्यां सह मंदताम् ॥ ४८ ॥ वृंदावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ॥ जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठ रूपा तु सांप्रतम् ॥
॥ ४९ ॥ इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ॥ इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५० ॥

करके एक बात सुनो,मेरी कथा बहुत बडी है उसको सुनकर आपको परमानन्द प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ प्रथम द्रविड देशमें मेरा जन्म हुआ था और करणाटक देशमें मेरी युवावस्था हुई, कुछकाल पर्यन्त दक्षिणमें रहकर गुजरात और महाराष्ट्र देशमें पहुँची और उसी देशमें वृद्ध हो गई॥ ४७ ॥ और महाघोर कलियुगी लोगोंके पाखण्डोंसे मेरा और मेरे पुत्रोंका शरीर महादुर्बल होगया ॥४८॥ अब इस समय वृन्दावनमें फिर सुन्दर रूपवती हो गई हूँ ॥ ४९ ॥ यह मेरे दोनों पुत्र श्रमसे दुःखित पडे हैं इसस्थानको छोडके परदेशको जा रही हूँ ॥ ५० ॥

अब यह दोनों वृद्ध होगये इस महादुःखसे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ क्योंकि मैं तरुण और मेरे पुत्र कैसे वृद्ध होगये इस बातकी मुझे बडी लज्जा है ॥२१॥ हम तीनों सदा एकसंग रहते हैं यह विपरीतता कैसे हुई मानो माता वृद्धा पुत्र तरुण यह बात तो योग्य है परन्तु यह महाविपरीत है कि, माता तरुण और पुत्र वृद्ध ऐसा कहीं नहीं होता देखा॥२२॥ इसकारण बडे आश्चर्यपूर्वक अपने आत्माको शोचती हूँ सो हे योगी महात्मन्! आप कहिये यह क्या कारण है ? ॥२३॥ नारदजी बोले हे निष्पापे ! मैं अपने योगबलसे तेरे सब वृत्तान्तका विचार करता हूँ, तू अपने मनमें दुःख मत मानै परमेश्वर तेरा कल्याण करैंगे ॥२४॥ सूतजी बोले कि, क्षण मात्रमें सब विचार कर, नारदजी कहनेलगे कि हे देवि ! सावधान होकर सुन

जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ॥साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५१ ॥ त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ॥ घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति॥५२॥ अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ॥ वद योगनिधे धीमन्कारणं चात्र किं भवेत्॥५३॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ॥ न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥५४॥ सूत उवाच ॥ क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ नारद उवाच ॥ शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥ ५५ ॥ तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ जना अघासुरायंते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ॥५६॥ इह सतो विषीदंति प्रहृष्यंति ह्यसाधवः ॥ धत्ते धैर्यं तु यो धीमान्स धीरः पंडितोऽथवा॥५७॥ अस्पृश्याऽनवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ॥ वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मंगलं नापि दृश्यते॥५८॥

13

इस समय महाघोर कलियुग वर्त्त रहा है॥५५॥ इसलिये सदाचार,योगमार्ग,सत्य,तप लुप्त होगये हैं और मनुष्योंका पाप करनेके लिये असुरोंकेसा स्वभाव होगया है॥५६॥ इस कलिकालमें संत अत्यंत दुःख पाते हैं,कपटी कुचाली प्रसन्न रहते हैं, जो ज्ञानीपुरुष धैर्य धारण करते हैं वही धीर पंडित हैं॥२७॥ यह शेषजीको भार करनेवाली पृथ्वी अब छूने और देखनेके अयोग्य होगई है और प्रतिवर्ष क्रमसे ऐसी ही होती जाती है, अब कहीं शुभकर्म देखनेमें नहीं आता॥ ५८॥

अब तुझको भी पुत्रसहित कोई नहीं देख सकता पुत्र दारा धनादिके अभिमानमें अन्धे हो रहे हैं, इसीलिये तेरा आदर सम्मान कोई नहीं करता और इसीकारण तेरा शरीर दुर्बल हो गया है ॥ ५९ ॥ वृन्दावनके आनेसे अब फिर तू नवीन तरुणी होगई है इससे यह वृन्दावन धन्य है. जहां मुक्तिदायक भक्ति विराजमान है ॥ ६० ॥ इस वृन्दावनमें यह ज्ञान वैराग्य ग्राहकोंके न होनेसे अपनी वृद्ध अवस्थाको नहीं छोडेंगे, इसस्थानमें ज्ञान वैराग्यकी और तेरी भी काम क्रोधादि दुःखाभावसे सुखपूर्वक स्थिति होगी, क्योंकि और सब स्थानोंसे यह वृन्दावन परमोत्तम मानाजाता है ॥ ६१ ॥ नारदजीकी मनोहरवाणी सुन भक्ति बोली, कि हे आनन्दरूप ! जब कलियुग ऐसा महापापी और दुष्टात्मा है तो राजा परीक्षित्ने इसको क्यों स्थापित किया, इसके प्रवृत्त होते ही सबका सारबल कहाँ चलागया ॥ ६२ ॥ और दयासिंधु भगवान् विष्णु इस पापको कैसे देखसकने हैं, कृपाकरके यह सन्देह मेरा निवारण करो, तुम्हारी मनोहर वाणीसे मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न है ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले, कि हे बाले ! जो तैंने बूझा है तो सावधान होकर सुन मैं तेरे सम्मुख समस्त कथा वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे तेरा सब दुःख दूर होगा ॥ ६४ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी पृथ्वीको छोडकर अपने परम धामको सिधारे, उसी दिनसे सब साधनोंको बाधक कलियुगने आकर संसारमें प्रवेश किया ॥ ६५ ॥ जब दिग्विजय करते कलियुगको राजा परीक्षित्ने देखा उसी समय उसके मारनेको उपस्थित हुए तब यह दीन बन राजाकी शरण हुआ तब राजाने अपने मनमें विचारा कि, यह मेरी शरण आया है, इस

न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति सांप्रतम् ॥ उपेक्षिताऽनुरागांधैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ५९ ॥ वृंदावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ॥ धन्यं वृंदावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६० ॥ अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुंचतः ॥ किंचिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६१ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ॥ प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६२ ॥ करुणापरेण हरिणाऽप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ॥ इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखिताऽस्म्यहम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ॥ सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६४ ॥ यदा मुकुंदो भगवान्क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ॥ तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ॥ ६५ ॥ दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ॥ न मया मारणीयोऽयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६६ ॥

कारण इसका मारना उचित नहीं समझा, यह राजा सारकी नाईं सारङ्गका भोगनेवाला है॥ ६६॥ दूसरा इसमें एक गुण और उत्तम देखा इसलिये इसको नहीं मारा, और युगोंमें जो फल, तपस्या और योग, समाधि, यज्ञ, दान करनेसे भी नहीं होता, वह फल कलियुगमें केवल भले प्रकार चित शान्तकर नारायणका नाम लेनेसे मिलता है॥ ६७॥ जिसमें केवल एक भक्ति ही साधक है, और ज्ञान वैराग्य जिसमें निरस हैं ऐसे कलियुगको देख कलियुगवासी मनुष्य भक्ति करनेसे ही तरजायँगे ऐसा शुभगुण विचार राजाने इसका स्थापन किया ॥ ६८ ॥ परन्तु कलियुगवासियोंसे साधारण काम भी नहीं हो सकता इस लिये कलियुगने सबका धर्म कर्म भ्रष्ट कर दिया, कुकर्माचरण करनेसे सबका स्थिरांश निकल गया है और पृथ्वीमें पदार्थहीन, वीर्यहीन, बुद्धिहीन मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने थोडे धनके लोभसे भगवत्सम्बन्धी

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्त्तनात ॥६७॥ एकाकारं कलिं दृष्ट्वा
सारवत्सारनीरसम् ॥ विष्णुरातः स्थापितवान्कलिजानां सुखाय च ॥६८॥ कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ६९॥ विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ॥ कारिता कणलोभेन
कथासारस्ततो गतः॥७०॥ अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ॥ तेऽपि तिष्ठंति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः
॥७१॥कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः॥तेऽपि तिष्ठंति तपसि तपस्सारस्ततो गतः॥७२॥मनसश्चाजयाल्लोभाद्दं
भात्पाखंडसंश्रयात्॥शास्त्रानभ्यसनाच्चैव यानयोगफलं गतम्॥७३॥पंडितास्तु कलत्रेण रमंते महिषा इव॥पुत्रस्योत्पादने
दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने॥७४॥नहि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरस्सरा॥एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले॥७५॥

वार्ता घर घरमें जिस तिस मनुष्यके सम्मुख कहनी आरम्भ कर दी, इसलिये कथाका फल जातारहा ॥ ७० ॥ बडे बडे भयंकर अत्याचारी, कुकर्मी, पापी, पाखण्डी मनुष्य कपटवेष धारणकर तीर्थोंमें वास करने लगे, इसलिये तीर्थोंका सार जातारहा ॥ ७१ ॥ जिनके चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोहसे अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं वह लोग झूठा तप करने लगे, इसलिये तपस्याका सार जाता रहा ॥ ७२ ॥ मनको नहीं जीतनेसे लोभ, दम्भ, पाखण्डका आश्रय करनेसे और शास्त्र पुराणोंके अनभ्याससे ध्यान योगका फल जाता रहा ॥७३॥ पंडित महिषकी नाईं स्त्रियोंके संग रमणकर पुत्र उत्पन्न करनेमें तो चतुर और विलक्षण हैं परन्तु मुक्तिसाधनमें मूर्ख हैं॥७४॥ वैष्णवोंकी जो श्रेष्ठ सम्प्रदायक हैं वह कहीं नहीं

पाई जाती, बात बातमें ठगविद्या, इसलिये स्थान स्थानमें सब पदार्थोंका तत्त्व जाता रहा॥७५॥ फिर यह तो कलियुगका धर्म ही ठहरा इसमें किसीका क्या दोष है ? इसकारण पुण्डरीकाक्ष निकट स्थितहुए भी सहन करते हैं॥७६॥ सूतजी बोले, हे शौनक ! इसप्रकार नारदजीके वचन सुन अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो ॥७७॥ भक्ति फिर बोली, कि हे देवर्षि ! तुम धन्य हो ! मेरे भाग्यसे ही इस स्थानपर आगये हो साधुओंका दर्शन लोकमें सब सिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ७८ ॥ जगत्में जिसने तुम्हारी केवल अनुपम वचनरचनाको सुन लोकमें कयाधू पुत्र प्रह्लादने मायाका त्यागकिया और जिसकी कृपासे ध्रुवने अचलपदवी पाई सब क्षेमोंके पात्र ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीको मैं बारंबार नमस्कार करती हूँ॥७९॥

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ॥ अतस्तु पुंडरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥७६॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७७ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ॥ साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७८ ॥ जयति जयति मायां यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥ ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नताऽस्मि ॥७९॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ वृथा खेदायसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजं स्मर दुःखं गमिष्यति॥ १॥ द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ॥ पालिता गोपसुंदर्यः स कृष्णः कापि नो गतः ॥ २॥ त्वं तु भद्रे प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ॥ त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि, हे देवि ! किसलिये वृथा खेद करती है और क्यों इसप्रकार शोकाकुल हो रही है, श्रीमन्नारायण जगत्हितकारी वृन्दावनविहारीके चरणारविन्दका स्मरण कर जो तेरा सब संकट कटजाय ॥ १ ॥ जिन श्रीकृष्ण द्वारकाधीशने कौरवोंके महासंकटसे द्रौपदीकी सहाय करी और उसकी लज्जा रक्खी और गोपकुमारियोंको शंखचूड आदिकसे बचाया और गजेन्द्रको ग्राहसे बचाया, वह वृन्दावनविहारी वृन्दावनसे कहीं चले नहीं गये ॥ २ ॥ और तू तो उनको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है तेरे बुलाये भगवान् तो नीचोंके घरोंमें भी आते हैं ॥ ३ ॥

सत्ययुग, द्वापर, त्रेतामें ज्ञान वैराग्य मुक्तिके साधक थे कलियुगमें केवल भक्ति ही प्रधान वही ब्रह्मसायुज्यकी देनेवाली है ॥ ४ ॥ वह परमात्मा पूर्णब्रह्म चिद्घनानन्द जनार्दनने, हे सुन्दरी कृष्णवल्लभा! अपना निजस्वरूप तुमको उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥ जब तैंने हाथ जोडकर विनय करी कि, हे वैकुण्ठनाथ! मेरे लिये क्या आज्ञा है? तब कृष्णचन्द्रवनवारी भक्तिहितकारीने कहा तू मेरे भोलेभाले भक्तोंको पुष्टकर ॥ ६ ॥ जब तैंने उनका वचन अंगीकार किया तब तो भगवान् वासुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए; और तेरी सेवा करनेके लिये मुक्ति दासी है और ज्ञान वैराग्य तुझको दिये ॥ ७ ॥ अपने निजस्वरूपसे तो तू वैकुण्ठधाममें भक्तोंका पालन पोषण करती है, और पृथ्वीपर भक्तोंके विशेष आनन्दके

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ॥ कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥ इति निश्चित्य चिद्रूपः
सरूपां त्वां ससर्ज ह ॥ परमानंदचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥ बद्धांजलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ॥
त्वां तदाऽऽज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ॥ ६ ॥ अंगीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥ मुक्ति दासीं ददौ
तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥ पोषणं स्वेन रूपेण वैकुंठे त्वं करोषि च ॥ भूमौ भक्तिविपोषाय छायारूपं त्वया
कृतम् ॥ ८ ॥ मुक्ति ज्ञानं विरक्ति च सह कृत्वा गता भुवि ॥ कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥ कलौ
मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखंडामयपीडिता ॥ त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुंठं पुनरेव सा ॥ १० ॥ स्मृता त्वयापि चात्रैव
मुक्तिरायाति याति च ॥ पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥ उपेक्षातः कलौ मंदौ वृद्धौ जातौ सुतौ
15 तव ॥ तथापि चिंतां मुंच त्वमुपायं चिंतयाम्यहम् ॥ १२ ॥

लिये तैंने छायारूप धारण कररक्खा है ॥ ८ ॥ फिर मुक्ति और ज्ञान वैराग्यको अपने साथ लेकर तू मृत्युलोकमें आई और सतयुगसे लेकर द्वापरके अन्ततक ऋषीश्वर मुनीश्वर तेरा बडा आदर सत्कार करते रहे और बहुत आनन्दसे भूमंडलमें तू रही ॥ ९ ॥ अब कलियुगमें पाखंडियोंके पाखण्ड फैलानेसे अत्यन्त पीडित हो मुक्ति क्षय हो गई. फिर तेरी आज्ञा शीशपर धारण कर शीघ्र ही वैकुण्ठलोकको चली गई ॥ १० ॥ और फिर तेरे स्मरणमात्रसे ही इस स्थानमें आनकर उपस्थित हो जाती है और यह मुक्ति क्षणमात्रको भी तेरे वचनोंका उल्लंघन नहीं करती और तैंने ज्ञान वैराग्यको अपना पुत्र समझकर अपने निकट ही रक्खा है ॥ ११ ॥ कलियुगमें दुराचारियोंके त्याग करनेसे यह तेरे दोनों पुत्र अत्यन्त

वृद्ध हो गये हैं परन्तु तो भी तू कुछ चिन्ता और शोच मत कर, इनके लिये मैं कुछ उपाय उत्तम विचारता हूँ ॥ १२ ॥ हे भक्ति । कलियुगके
समान कोई उत्तम युग नहीहै, इसमें तुझे मैं घर घर हर मनुष्यके हृदयमें स्थापित करूंगा ॥ १३ ॥ और सब धर्मोंका निरादर कर और महोत्सवोंको
आगे धर जो मैं संसारमें तेरा प्रचार न करूं तो परमेश्वरका दास मुझको मत कहना ॥ १४ ॥ और जो कलिकालमें तेरे प्रेमी जीव होंगे और वह
पापी दुराचारी भी होंगे तोभी देवमन्दिर ठाकुरद्वारोंमें नित्य प्रति जाया करेंगे ॥ १५ ॥ और जिनके हृदयमें तेरा वास होगा वह पुरुष पापी और
कुकर्मी होनेपर भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करेंगे, तेरी कृपासे वैकुण्ठलोकका ही वास उनको मिलेगा ॥ १६ ॥ और तेरे माननेवाले महात्मा

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ॥ तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥ अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य
पुरस्कृत्य महोत्सवान् ॥ तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥ तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह
॥ पापिनोऽपि गमिष्यंति निर्भयाः कृष्णमंदिरम् ॥ १५ ॥ येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ॥ न ते पश्यंति
कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥ १६ ॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वाऽसुरोऽपि वा ॥ भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न
प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥ न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ॥ हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥
नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ॥ कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥ भक्तिद्रोहकरा
ये च ते सीदंति जगत्त्रये ॥ दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिंदकः ॥ २० ॥ अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं
मखैः ॥ अलं ज्ञानकथाऽऽलापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥

पुरुषोंका भूत, पिशाच, राक्षस, असुर कोई भी हाथ नहीं पकड सकता ॥ १७ ॥ जप, तप, व्रत, नियम, दान, पुण्य, वेद, ज्ञान कोई परमेश्वरको ऐसा वशमें
नहीं कर सकता जैसा कि त्रिलोकीनाथको तू वशमें करती है, इसमें गोपियोंका और द्विज पत्नियोंका प्रमाण है, भक्ति करनेसे सहजमें ही मुक्त हो
गईं ॥ १८ ॥ और युगोंमें सहस्रों जन्मके अनुष्ठान करनेसे मनुष्यकी भक्तिमें प्रीति उत्पन्न होती है कलियुगमें केवल भक्तिसे ही भगवान् भक्तवत्सलका
दर्शन होता है ॥ १९ ॥ जो भक्तिका अथवा भक्तजनोंका द्रोह करते हैं वह लोग त्रिलोकीमें सदा दुःखी रहते हैं, जैसे भक्तिकी निन्दा करनेसे दुर्वासाऋषि
बडे दुःखी हुए थे ॥ २० ॥ तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ, जप, तप, ज्ञान, वैराग्य कथालापसे क्या है, एक भक्ति ही मुक्ति देनेको बहुत है ॥ २१ ॥

सूतजी बोले, कि इस प्रकार नारदजीके मुखसे अपनी प्रशंसा और माहात्म्यको सुनकर भक्ति सर्वांग पुष्टिसन्तुष्ट हो नारदजीके सम्मुख खडी होकर ॥ २२ ॥ बोली कि हे देवर्षि ! तुमको धन्य है तुम्हारे चरणारविन्दमें मेरी दृढ़ प्रीति है, सो मैं कभी त्याग न करूंगी, सदा अपने चित्तमें धारण किये रहूँगी ॥ २३ ॥ हे महात्मन् ! आपने मुझपर कृपा करके मेरी सब बाधा क्षणमात्रमें दूर करदी और मुझको धैर्य बँधाया परन्तु अभी मेरे पुत्रोंको चैतन्यता नहीं हुई अबतक अचेत पडे हैं, कृपा करके इनको भी जगाओ तो मेरा हृदय ठण्ढा हो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! दयालु नारदजी भक्तिके मधुर वचन सुनकर सहज सहजमें हाथसे सहराकर ज्ञान वैराग्यको जगाने लगे ॥ २५ ॥ जब सहरानेसे ज्ञान

सूत उवाच ॥ इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ॥ सर्वांगपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥
श्रीभक्तिरुवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ॥ न कदाचिद्विमुंचामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥
कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ॥ पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ तस्या
वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ॥ तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥ मुखं संयोज्य कर्णांते शब्दमुच्चैः
समुच्चरन् ॥ ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥ वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ॥ बोध्यमानौ तदा तेन
कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥ नेत्रैरनवलोकंतौ जृंभंतौ सालसावुभौ ॥ बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमांगकौ ॥ २८ ॥
क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ॥ ऋषिश्चिंतापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥ २९ ॥ अहो निद्रा कथं
याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ॥ चिंतयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥

6

वैराग्य न जागे तब कानके समीप मुख करके नारदजीने उच्चस्वरसे पुकारा, अरे ज्ञान ! शीघ्र जाग अरे वैराग्य ! शीघ्र उठ. जब जगानेसे उन दोनोंने अपने नेत्र खोले, तब नारदजीने ॥ २६ ॥ वेद वेदान्तके शब्द और बारंबार भगवद्गीताके पाठ उनको सुनाये तब वह बलपूर्वक बडी कठिनाईसे उठे ॥ २७ ॥ आँखें मीचे ही मीचे बडे आलस्यसे जँभाई लेनेलगे बगलेके समान श्वेतबाल हो रहे थे सूखे काष्ठके सदृश शरीर सूख रहा था ॥ २८ ॥ भूखके मारे क्षीण होनेके कारण वह फिर सोगये जब उनकी यह दशा देखी तब तो नारदजी बहुत चिन्ता करनेलगे, अब मैं क्या उपाय करूँ ॥ २९ ॥ यह दोनों क्यों नहीं उठते इनकी यह घोर निद्रा किस प्रकार जायगी, इसी भाँति विचार करते २ नारदजी श्रीगोविंद भगवान्के चरणार

विन्दका ध्यान करने लगे ॥३०॥ इस समय आकाशवाणी हुई कि हे तपोधन ! खेद मत करोः तुम्हारा उद्यम सफल होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३१ ॥ हे देवर्षि ! इनके लिये सत्कर्मका आरम्भ करो;और संतोंके भूषण महात्मा पुरुष सत्कर्म आपसे कहेंगे.(विना सत्कर्म यह नहीं जागेंगे) ॥ ३२॥ सत्कर्मके करनेमात्रसे ही इन दोनोंकी निद्रा और वृद्धता जाती रहेगी और सब संसारमें भक्तिका प्रकाश हो जायगा ॥३३॥ यह आकाशवाणी उन सबने सुनी, नारदजीने कहा यह क्या बात है मैं अबतक नहीं समझा मुझको बडा आश्चर्य है ॥ ३४ ॥ फिर नारदजी बोले कि इस आकाशवाणीका प्रयोजन मैंने नहीं जाना, इसने भी गुप्तरूपसे ही कहा सो वह कौनसा साधन है, जिससे इन दोनोंका कार्य सिद्ध

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ॥ उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः॥३१॥एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ॥ तत्ते कर्माभिधास्यंति साधवः साधुभूषणाः ॥ ३२ ॥ सत्कर्मणि कृते तस्मिन्सनिद्रा वृद्धताऽनयोः ॥ गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥३३॥ इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ॥ नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अनयाऽऽकाशवाण्याऽपि गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥ किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥ ३५ ॥ क भविष्यंति संतस्ते कथं दास्यंति साधनम् ॥ मयात्र किं प्रकर्तव्यं तदुक्तं व्योमभाषया ॥३६॥ सूतउवाच ॥ तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ॥ तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे नीश्वरान् ॥ ३७ ॥ वृत्तांतः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ॥ असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥ ३८ ॥ मूकीभूतास्तथाऽन्ये तु कियंतस्तु पलायिताः ॥ हाहाकारो महानासीत् त्रैलोक्ये विस्मयावहः ॥ ३९ ॥

हो ॥ ३५ ॥ संतलोग कहां होंगे और साधन किस प्रकार होगा, जो आकाशवाणीने कहा है उसको मैं किस प्रकार कहूँ ॥३६॥ सूतजी बोले कि नारदजी इसी शोच विचारमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको इसी स्थानपर छोडकर आप वहाँसे साधुवोंकी खोजमें प्रत्येक तीर्थोंमें जा जा के, ऋषी मुनियोंसे बूझा॥३७॥सबने उनका वृत्तान्त सुना परन्तु किसीने निश्चय करके उत्तर नहीं दिया,कोई बोला असाध्य है, किसीने कहा तुम्हारा प्रश्न हमारी समझमें नहीं आता ॥ ३८ ॥ कोई सुनकर चुप होरहा, कोई सुनतेही चलदिया, इस प्रकार त्रिलोकीमें महा विस्मयदायक बडा

हाहाकार मचा परन्तु किसीने कोई यत्न न बताया ॥ ३९ ॥ और वेद वेदान्त और बारंबार गीताके सुननेसेभी, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका तिगड्डा (त्रिक)न जागा तो॥४०॥इससे अधिक और कौनसा उपायहै यह वार्त्ता मनुष्य कानोंमें कहनेलगे और जहां जाओ वहाँ यही चर्चा थी कोई कहता था कि हे भाई! नारदसे योगिराजकी बुद्धिमें भी तो यह बात नहीं आई ॥ ४१ ॥ तो और इतर मनुष्य इस बातको किसप्रकार कह सकते हैं,यह दुर्गमवार्त्ता ऋषियोंने निश्चयकरके नारदजीसे कहा ॥ ४२ ॥ तब नारदमुनि चिन्तातुर होकर बद्रिकाश्रममें आये और यह अपने मनमें निश्चय किया कि यहाँ तप करूँगा ॥ ४३ ॥ उसीसमय सनकादिक मुनि कहींसे घूमते घामते नारदजीके सम्मुख आगये जिनकी

वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥४०॥ उपायोनापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ॥ ४१ ॥ तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ एवं मृषिगणैः पृष्टं निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥ ततश्चिंतातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ॥ तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥ तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ॥ कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः स्थितः ॥ कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५ ॥ भवंतो योगिनः सर्वे बुद्धिमंतो बहुश्रुताः॥पंचहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥ सदा वैकुंठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ॥ लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥ हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ॥ अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८ ॥

कोटिसूर्यके समान कान्ति देखकर मुनिश्रेष्ठ महाभाग्य भक्तभूषण ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि हे मुनिसत्तम! इससमय बडे भाग्यसे आपका दर्शन हुआ है हे कुमारो! मेरे ऊपर कृपा करके तुम शीघ्र कहो ॥ ४५ ॥ क्योंकि तुम सब बुद्धिमान्, शास्त्रवेत्ता, योगिराज हो, सदा पांचवर्षके बने रहते हो. और सबसे पहिले आप उत्पन्न हुए हो ॥ ४६ ॥ सदा वैकुण्ठमें रहकर भगवान् वासुदेवके गुणानुवाद गाते हो और भगवत् लीलारूपी अमृतरससे मत्त केवल एक कथामात्रसे ही जीते हो ॥ ४७ ॥ "हरिःशरणम्" अर्थात् परमात्माकी शरण हूँ यही वचन आपके मुखसे

सदा निकलता है,इस करण वृद्धापन आपको बाधा नहीं करता ॥ ४८ ॥ पहिले नारायणके जय विजय नामक दो द्वारपाल आपके भ्रूभंगमात्रसे ही पृथ्वीपर गिरे और फिर आपकी कृपासे शीघ्र वैकुण्ठको गये ॥ ४९ ॥ कोई मेरा बडा ही भाग्यका उदय है जो आपका दर्शन हुआ, आपसे दयालुओंको मुझ दीनपर दया करनी चाहिये ॥ ५० ॥ और जो कुछ आकाशवार्णीने कहा है वह क्या साधन है, सो आप कृपा करके मुझको बताओ कैसे इसका अनुष्ठान करना चाहिये, सो आप विस्तारपूर्वक मुझसे कहो ॥ ५१ ॥ और भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको किस प्रकारसे सुख प्राप्त होगा और सब वर्णोंमें किस प्रकारसे प्रेमपूर्वक इनका प्रचार और स्थापन होगा ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार

येषां भ्रूभंगमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ॥ भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ ॥ ४९ ॥ अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ॥ अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥ अशरीरर्गिरोक्तं यत्तत्कि साधनमुच्यताम् ॥ अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवंतु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ॥ स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥५२ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ मा चिंतां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ॥ उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥ अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ॥ सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥ त्वयि चित्रं न मंतव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ॥ घटते कृष्णदासस्य भक्तेः स्थापनता सदा ॥५५ ॥ ऋषिभिर्बहवो लोके पंथानः प्रकटीकृताः॥ श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः॥५६॥ वैकुंठसाधकः पंथाः स तु गोप्यो हि वर्तते॥ तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥

बोले कि, हे देवर्षि ! तुम इस शोक संतापको छोडो कुछ चिन्ता मत करो प्रसन्न होओ, इसका उपाय सुखसाध्य पहिलेसे ही है ॥ ५३ ॥ हे नारद ! तुम धन्य हो, विरक्तोंके शिरोमणि हो, श्रीवृन्दावनविहारीके दासोंमें तुम अग्रणी हो, भक्तोंके भूषण हो, योगके मार्त्तण्ड हो ॥ ५४ ॥ भक्तिके लिये परिश्रम करना यह आपमें कुछ विचित्र वार्ता नहीं है, श्रीकृष्णके दासोंको तो सदा भक्तिकी स्थापना करनी उचितही है ॥५५॥ पूर्वकालमें ऋषीश्वरों मुनिश्वरोंने संसारमें धर्म कर्मके अनेकमार्ग प्रगट किये हैं परन्तु वह सब श्रमसाध्य है और स्वर्गके फलको देनेवाले हैं॥५६॥ और जो वैकुण्ठसाधक पंथ हैं वह अत्यन्त गुप्त हैं इसके उपदेशक और मार्ग बतानेवाले गुरु भाग्यसेही मिलते हैं॥५७॥

और जो पूर्व आकाशवाणीने तुमको सत्कर्मका उपदेश किया है सो स्थिरचित्त करके सुनो, हम आपके सम्मुख कहते हैं॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, (वेदका पढ़ना) ज्ञानयज्ञ यह सब कर्मफलसे स्वर्गादिक देनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु सत्कर्मके जतानेवाले पण्डितोंने ज्ञानयज्ञ कहा है,वह ज्ञानयज्ञ श्रीमद्भागवत है जो श्रीशुकदेवादिक महात्माओंने गाया है॥६०॥उसके सुननेसे भक्ति,ज्ञान,वैराग्यका बल बढैगा और दोनोंका कष्ट क्षणमात्रमें दूर हो जायगा,और भक्तिको भी अधिक सुख मिलैगा ॥६१॥ श्रीमद्भागवतके उच्चारमात्रसे कलिकालके सब दोष

सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ॥ तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे॥स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्चै ते तु कर्मविसूचकाः ॥ ५९ ॥ सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ॥ श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः॥६०॥भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ॥ व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति॥ ६१ ॥प्रलयं हि गमिष्येति श्रीमद्भागवतध्वनेः॥कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव॥६२॥ ज्ञानवैरायसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा॥ प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ वेदवेदांत घोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम्॥भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ॥ तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदेपदे॥६५॥ छिंदंतु संशयं ह्येतं भवंतोऽमोघदर्शनाः ॥ विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार नाश हो जायँगे जैसे सिंहके शब्दसे भेडिये, शृगाल वन छोडकर भागजाते हैं ॥ ६२ ॥ तब ज्ञान,वैराग्यकी हितकारिणी प्रेमरस वर्षानेवाली भक्ति घर घर मनुष्योंके हृदयमें क्रीडा करैगी ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले जब कि वेद वेदान्तके शब्दसे और भगवद्गीताके पाठसे भी भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका त्रिक नहीं जागा ॥ ६४ ॥ तो श्रीमद्भागवतके आलापसे कैसे चैतन्यताको प्राप्त होंगे,उस कथामेंभी तो श्लोक श्लोकमें पद पदमें वेदार्थ ही है ॥ ६५ ॥ हे अमोघ दर्शन । आप लोग यह मेरा सन्देह दूरकीजिये, हे शरगागत वत्सलो । इसमें विलम्ब मत करो

॥६६॥ सनत्कुमार बोले, कि वेदोपनिषद्के सारसे श्रीमद्भागवतकी कथा हुई है,इसलिये पृथक्भूत हुई, और उत्तम उत्तम फलोंकी बढानेवाली होगई है॥ ६७ ॥ जैसे मूलसे लेकर अग्रभाग तक रसवाली वस्तुमें वह रस उतना स्वादिष्ठ नहीं होता जितना कि वहीरस पृथक् फलमें होकर विश्वमनो हररूप होता है ॥ ६८ ॥ जैसे दूधमें स्थित घृत ऐसा स्वादिष्ठ नहीं होता जैसा कि पृथक् होकर वह स्वादिष्ठ देवताका रसवर्द्धक होता है ॥६९ ॥जैसे खांड गन्नेमें सर्वत्र व्यापक रहती है परन्तु वह पृथक् होकर और ही स्वाद हो जाती है और अधिक मीठी लगती है इसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी कथाहै ॥ ७० ॥ यह सर्ववेदसम्मत श्रीमद्भागवत पुराण ज्ञान वैराग्यके स्थापन करनेकेही लिये संसारमें प्रकाश किया है

कुमारा ऊचुः ॥ वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ॥ अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलोन्नतिः ॥ ६७ ॥
आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वदते यथा ॥ संभूय स पृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥६८॥यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न
स्वादायोपकल्पते ॥ पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥ ६९ ॥ इक्षूणामपि मध्यांतं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ॥
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥७०॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्था
पनाय प्रकाशितम्॥७१॥ वेदांतवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ॥ परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥
तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ॥ तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥ ७३ ॥ तत्र ते विस्मयः
केन यतः प्रश्नकरो भवान् ॥ श्रीमद्भावतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४ ॥

॥७१॥ वेद वेदान्तके पारगामी भगवद्गीताके कर्त्ता श्रीव्यासजी महाराज अज्ञानसागरमें मोहित हो दुःखको प्राप्त हुए ॥७२॥ तब तुमने व्यासजीको धैर्य दिया और जो चतुःश्लोकीभागवत श्रीनारायणने ब्रह्माको उपदेश किया, और ब्रह्माजीने तुमको पढाया, वही चतुःश्लोकी भागवत आपने व्यासजीसे कही,जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल व्यासजीका दुःख दूर होगया॥७३॥फिर तुमको इसमें क्या सन्देह है और क्यों यह संशय तुमको प्राप्तहुआ जो बारम्बार प्रश्न करते हो इसी भागवतके चार श्लोकोंको व्यासजीने विस्तार पूर्वक रचकर अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढाई अब इसी संकटहरणी आनन्दकरणी शोकनाशिनी श्रीमद्भागवतका पाठ साधनसहित ज्ञान वैराग्यको सुनाओ ॥ ७४ ॥

नारदजी बोले,कि जिसका दर्शन अशुभकर्मोंका दूर करनेवाला और संसारके दुःखारियोंका दुःख दूर करनेवाला कल्याणकारी और संतापहारी है सम्पूर्ण शेषजीके मुखोंसे गाईहुई कथाके रसिकजनोंके प्रेमसे,प्रकाश करनेवाले भगवान्‌की मैं शरण हूं ॥ ७५ ॥ बहुत जन्मके भाग्य उदय होनेसे मनुष्यको महात्माओंके सत्संगकी प्राप्ति होती है तब अज्ञानकृत मोह मदके अन्धकारका नाश होकर ज्ञान वैराग्य उदय होता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां कुमारनारदमुनिसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारदजी बोले कि हे दयासागर ! अब मैं यत्नपूर्वक भक्ति ज्ञान वैराग्यके स्थापनके लिये शुकशास्त्रकी कथाका उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूंगा ॥ १ ॥ जहां यह महायज्ञ किया

नारद उवाच ॥ ॥ यद्दर्शनं च विनिहंत्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ॥ निश्शेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ॥ अज्ञानहेतुकृतमोहमदांधकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १॥ यत्र कार्यो महायज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ॥ महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥ कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं ब्रुवतामितः॥३॥ कुमारा ऊचुः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ॥ गंगाद्वारसमीपे तु तटमानंदनामकम् ॥ ॥ ४ ॥ नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ॥ नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ५ ॥

जाय, आप उस उत्तम स्थानको बताओ, वेदके जाननेवालोंमें शुकशास्त्रकी महिमा कहने योग्य कौन है ॥२ ॥ और यह श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंतक सुननी चाहिये और उसमें क्या क्या विधान है सो मुझसे आप कृपाकरके कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमार बोले, कि हे नारदजी ! सावधान होकर सुनो, हम आपसे कहते हैं नम्रीभूत ज्ञानवालेको गंगाद्वारके निकट ही आनन्द नाम तट है ॥ ४ ॥ अनेक ऋषिगणोंसे युक्त देवता सिद्धोंसे सेवित अनेक वृक्ष लताओंसे संघटित नवीन कोमल वालुकासे शोभित ॥ ५ ॥

बडा मनोहर रमणीक एकान्तस्थान सुवर्णके आकारवाले कमलोंकी सुगंधसे परिपूर्ण है, जिसके समीपके रहनेवाले जीवोंके मनमें वैर नहीं होता ॥६॥ इस स्थलमें तुमको अप्रयत्न होकर ज्ञानयज्ञ करना चाहिये, और उसी स्थानपर अपूर्व रसरूपयुक्त कथा होनी योग्य है ॥ ७ ॥ और आगे निर्बल जरासे जरित देहके ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित वहांपर हम भी आवेंगे ॥ ८ ॥ जहां श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, तहां भक्ति आदिक सब जाते हैं और कथा शब्द श्रवणसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका त्रिक करुणायुक्त होता है ॥९॥ सूतजी बोले, कि इस प्रकार वार्त्तालाप

रम्यमेकांतदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितम् ॥ यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ॥ अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥ पुरःस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ॥ तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्रागमिष्यति ॥८॥ यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ॥ कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ॥ गंगातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥ यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ॥ भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः ॥ धावंतोऽप्याऽऽययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥ भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ॥ रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकंडुपुत्रोऽत्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥

करके चारों कुमार नारदजीके साथ ही कथामृतपान करनेको उसी समय गंगाके तीरको चल दिये ॥ १० ॥ जब गंगाजीके निकट वह पहुँचे तब इनके जानेसे बडा कोलाहल हुआ, भूलोकमें देवलोकमें और इसप्रकार ब्रह्मलोक तक कोलाहल मचगया ॥ ११ ॥ और श्रीमद्भागवतरूपी अमृतके पान करनेको जो वैष्णवलोग थे वह चारोंओरसे दौडे ॥ १२ ॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथी, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मृकण्डके पुत्र मार्कंण्डेय, अत्रिके पुत्र दत्तात्रेय, पिप्पलाद ॥ १३ ॥

योगेश्वर याज्ञवल्क्य, जैगीषव्य, व्यास, पराशर, छाया, शुक, जाजलि,जहु,यह मुख्य मुख्य ऋषिगण पुत्र पौत्र शिष्य स्त्रियों समेत प्रणयपूर्वक आये ॥१४॥ और वेद, वेदान्त, वेदमंत्र.तंत्र अपनी अपनी मूर्ति धारणकर चले आते थे इसी प्रकार सत्रहपुराण छःशास्त्र भी आये ॥ १५ ॥ फिर गंगा यमुना सरस्वती आदिक नदियें पुष्करादि सरोवर और सब क्षेत्र दिशा दण्डकादि वन ॥ १६ ॥ पर्वतादिक सब आये, और गन्धर्व, देवता, दानव,किन्नर, यक्ष, नाग शरीरके गौरवसे नहीं आये, इनको आदर सन्मान सहित ब्रह्माजीके पुत्र भृगुजी बुलालाये ॥ १७ ॥ और आसन सबको दे देकर बैठाया तब नारदजीसे दीक्षित हो दियेहुए उत्तम आसनपर कृष्णकथामें तत्पर सबसे नमस्कृत हो सनत्कुमार बैठे ॥१८॥ वैष्णव,

योगीश्वरौ व्यासपराशरौ च च्छायाशुको जाजलिजहुमुख्याः ॥ सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिरा
ययुरतिप्रणयेन युक्ताः॥१४॥वेदांतानि च वेदाश्च मंत्रास्तंत्राः समूर्तयः ॥ दश सप्त पुराणानि षट् शास्त्राणि तथाऽऽययुः
॥१५॥गंगाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च॥ क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिवनानि च॥१६॥नगादयो ययुस्तत्र
देवगंधर्वकिन्नराः ॥ गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः संबोध्य चानयत् ॥ १७ ॥ दीक्षिता नारदेनाथ. दत्तमासनमुत्तमम् ॥
कुमारा वंदिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥ वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ॥ मुख्यभागे स्थि
तास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥ एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ॥ वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थोऽन्यत्र
स्त्रियोऽन्यतः॥२०॥जयशब्दो नमश्शब्दः शंखशब्दस्तथैव च ॥ चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥
विमानानि समारुह्य कियंतो देवनायकाः ॥ कल्पवृक्षप्रसूनानि सर्वे तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥

विरक्त;संन्यासी, ब्रह्मचारी यह मुख्यभागमें स्थित हुए और सबके आगे नारदजी बैठे ॥ १९ ॥ एकभागमें ऋषिगण एकभागमें देवता और एक स्थानमें वेद उपनिषद एक स्थानमें तीर्थादिक और एक स्थानमें स्त्रियें बैठीं ॥२०॥ तब चारोओरसे जय जय शब्द नमःशब्द और शंखध्वनि होने लगी और चूर्ण,खीलैं और पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥ २१ ॥ कितने तो देवनायक विमानोंमें बैठे आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे और सब अपने अपने मनोंमें यह विचार कर रहे थे कि देखिये सनत्कुमारजी कब कथाका आरम्भ करैं ॥ २२ ॥

सूतजी बोले कि इस प्रकार सबके एकचित्त होकर बैठनेमें नारदजीके निमित्त सनत्कुमारने भागवतमाहात्म्य कहना प्रारम्भ किया ॥ २३ ॥
सनत्कुमार बोले, कि हम तुमको वह कथा सुनाते हैं जो व्यासनंदन शुकदेवजीसे उत्पन्न हुई श्रीमद्भागवत है, जिसके श्रवणमात्रसे श्रीकृष्णचन्द्र
चित्तमें प्राप्त होते हैं ॥२४॥२५॥ इस ग्रन्थमें अठारह सहस्र श्लोक और बारह स्कन्ध हैं और यह वह भागवत है जो श्रीशुकदेवजी महाराजने
राजा परीक्षितसे कही थी, वह श्रीमद्भागवत हम आप लोगोंको सुनाते हैं आप सावधान होकर सुनिये ॥ २६ ॥ पुरुष अज्ञानसे तबतक इस

सूत उवाच ॥ एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ॥ माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥ कुमारा
ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामो महत्त्वं शुकशास्त्रजम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥
सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥ ग्रंथोऽष्टादशसा
हस्रो द्वादशस्कंधसंमितः ॥ परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥ तावत्संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतेऽज्ञानतः
पुमान्॥यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७॥ किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः॥एकं भागवतं
शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥२८॥ कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥
॥ २९ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हंति षोडशीम् ॥३०॥ तावत्पापानि
देहेऽस्मिन्निवसंति तपोधनाः ॥ यावन्न श्रूयते सम्यक्छ्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥ न गंगा न गया काशी पुष्करं न
प्रयागकम् ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥

संसारचक्रमें भ्रमता है जबतक शुकशास्त्रकी कथा क्षणमात्रको कर्णगोचर नहीं होती ॥ २७ ॥ बहुतसे शास्त्र और भ्रमानेवाले पुराणोंके सुननेसे
क्या है एक श्रीमद्भागवत ही मुक्तिदान करनेमें बहुत है ॥ २८ ॥ जिसके घरमें नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा होती है वह घर तीर्थरूप है वहाँ
रहनेवालोंके सम्पूर्ण पाप नाश हो जाते हैं॥२९॥सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ शुकसागरकी कथाकी सोलहवीं कला भी नहीं हैं॥३०॥
हे महात्मा पुरुषो ! तबतक ही इस शरीरमें पाप निवास करता है जबतक मनुष्य मन लगाकर भागवतकी कथा नहीं सुनते॥३१॥ शुकसागरके

फलकी समता गंगा, गया, काशी, प्रयाग,पुष्कर भी नहीं कर सकते।।३२॥ जो जन मुक्तिकी इच्छा रखते हों तो नित्य ही अपने मुखसे एक आधा चौथाई श्लोक श्रीभागवतका उच्चारण किया करें ॥ ३३ ॥ वेदादि ओंकार, वेदमाता गायत्री, पुरुषसूक्त, ऋक्, यजु, साम तीनों वेद, भागवत पुराण "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षरमंत्रः ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा सूर्य प्रयाग, संवत्सरात्मककाल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, कामधेनु, द्वादशी ॥ ३५ ॥ तुलसी, वसन्तऋतु, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इनको बुद्धिमान् तत्त्वसे पृथक् पृथक् भाव नहीं देखते हैं।।३६ ॥ जो पुरुष भागवत पुराणको अर्थसहित पढ़ते हैं,उनके कोटिजन्मके पाप क्षणमात्रमें नष्ट होजाते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३७ ॥ जो कोई श्रीमद्भा

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम्॥३३॥ वेदादिर्वेदमाता च
पौरुषं सूक्तमेव च ॥ त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च॥३४॥द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः॥ब्राह्मणा
श्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा॥३५॥तुलसी च वसंतश्च पुरुषोत्तम एव च॥ एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृग्भाव इष्यते
॥३६॥यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम्॥ जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः॥३७॥श्लोकार्धं श्लोकपादं
वा पठेद्भागवतं च यः॥ नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥३८॥ उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिंतनम्॥
तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥३९ ॥ अंतकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ॥ प्रीत्या तस्यैव वैकुंठं
गोविंदोऽपि प्रयच्छति॥४०॥हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ॥ कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥४१॥

गवतका आधा चौथाई श्लोक प्रीतिसहित प्रतिदिन पढ़ते हैं, इनको राजसूय अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ नित्यप्रति भागवतका कथन,नारायणका कीर्त्तन, तुलसीका पोषण, गौओंका सेवनसमान है ॥ ३९ ॥ अन्तकालमें जिसने शुकसागरकी वाणी श्रवण करी है उसको श्रीवैकुण्ठनाथ प्रसन्न होकर वैकुण्ठका वास देते हैं ॥४०॥ जो जन श्रीमद्भागवतका पुस्तक सुवर्णके सिंहासनपर धरकर वैष्णवके निमित्त प्रदान करते हैं,वह पुरुष निःसन्देह श्रीनारायणकी सायुज्यपदवीको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

जिस मूर्खने जन्मसे अन्ततक मन लगाकर सुधारूपी शुकसागरकी कथाका पान नहीं किया उसने चाण्डाल और खरकी नाइ अपना जन्म वृथा खोया और उत्पन्न होकर अपनी माताको वृथा कष्ट दिया ॥४२॥ जिसने कभी शुकसागरकी कथाका कोई वचन नहीं सुना वह पापकर्मा जीता ही मृतक समान है,उस पशुवत् पृथ्वीपर भाररूप मनुष्यको धिक्कार है ऐसा ब्रह्मादिक देवता कहते हैं ॥४३॥ श्रीमद्भागवतकी कथा संसारमें मनुष्योंको महादुर्लभ है,कोटि जन्मके प्राप्त हुए पुण्योंसे यह भागवतरूपी कथा प्राप्त होती है ॥४४॥ इसलिये हे योगनिधान ! बुद्धिमान् महात्माजनो ! यह

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किंचिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ॥ चांडालवच्च खरवद्बत तेन नीतं मिथ्या
स्वजन्म जननी निजदुःखभाजा॥४२॥ जीवञ्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ॥
धिक्तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदंति दिवि देवसरोजमुख्याः॥४३॥ दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ॥
कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते॥४४॥ तेन योगनिधे धीमञ्छ्रोतव्या सा प्रयत्नतः॥ दिनानां नियमो नास्ति
सर्वदा श्रवणं मतम् ॥४५॥ सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया
॥४६॥मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ॥ दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम्॥४७॥श्रद्धातः श्रवणं नित्यं
माघे तावद्धि यत्फलम् ॥ तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥ मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात्॥
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ अनायासेन तत्सर्वं
सप्ताहश्रवणाल्लभेत् ॥ ५० ॥

कथा यत्नपूर्वक सुननी चाहिये,इसमें किसी दिनका नियम नहीं है सदा सुनै ॥ ४५ ॥ सत्य और ब्रह्मचर्य सहित यह कथा नित्यप्रति सुनै, अशक्य होनेसे कलियुगमें शुकआज्ञासे विशेषता कही है ॥४६॥ मन वृत्तियोंका जितना नियमाचरण करना दीक्षा करनेमें अशक्य हो तो सप्ताह सुनना श्रेष्ठ है ॥४७॥ नित्य श्रद्धा पूर्वक माघमासमें कथा सुननेसे जितना फल होता है वही फल सप्ताहपारायणके सुननेमें होताहै॥४८॥ मनके अजय होनेसे रोग होनेसे और आयुके क्षय होनेसे और कलियुगके अनेक दोष होनेसे सप्ताहका सुनना बहुत श्रेष्ठ है॥४९॥ जो फल तप

योग समाधिसे नहीं होता है सो फल अनायास सप्ताहके सुननेसे होता है ॥५०॥ यज्ञसे, व्रतसे, दानसे, पुण्यसे, संयमसे, नियमसे, तपसे, तीर्थोंसे सप्ताहयज्ञ नित्य बलवान् है ॥५१॥ योगसे, समाधिसे, ज्ञानसे, ध्यानसे, सप्ताह बलवान् है, उसके बलवंतताको हम क्या कहें वह सबके ऊपर अरररर करके गर्जता है, जब तक भागवत नहीं सुनी तबहीतक व्रतादिक हैं, इसके सुननेके उपरान्त और कुछ नहीं, क्योंकि इसीके अन्तरमें सब आजाते हैं ॥ ५२ ॥ शौनकजी बोले, कि हे महाभाग्य ! यह बडे आश्चर्यका कथानक सुनाया कि ज्ञान धर्मादिकोंको तिरस्कार करके अब परब्रह्मका सूचक श्रीभागवत पुराण मोक्ष देनेवालाहै सो अवश्य सुनाओ॥५३॥ सूतजी बोले कि, जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द

यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ॥ तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति॥५१॥ योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति॥ किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥५२॥ शौनक उवाच ॥साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिधर्मान्विगणय्य सांप्रतम्॥निःश्रेयसे भागवतंपुराणं जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥५३॥सूत उवाच॥ यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गंतुमुद्यतः॥एकादशं परिश्रुत्याऽप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥५४ ॥ उद्धव उवाच॥त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ॥मच्चित्ते महती चिंता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ५५ ॥ आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यंति पुनः खलाः ॥ तत्संगेनैव संतोऽपि गमिष्यंत्युग्रतां यदा ॥५६॥तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ॥ अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥ अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ॥ भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः॥ ५८ ॥

पृथ्वीको त्यागकर अपने निजधामको जानेलगे उस समय एकादशस्कन्धके कहे हुए ज्ञानको सुनकर ॥५४ ॥ उद्धवजी बोले, कि हे भगवन् ! आप तो भक्तोंका कार्य करके वैकुण्ठलोकको जाते हो, मेरे मनमें बडी चिन्ता है उसको सुनकर मुझे समझाकर सुखी करो॥५५॥यह महाघोर कलियुग आता है इसमें बडेबडे दुष्ट और दुराचारी उत्पन्नहोंगे उनके संगसे साधुसंत भी जब उग्रताको प्राप्त होंगे॥५६॥तबयह गोरूप भूमि भाराक्रान्त होकर किसका आश्रय करैगी ? हे दीनानाथ ! तुम विना इसका कोई रक्षक नहींहै ॥५७ ॥ इसलिये हे भक्तवत्सल! हे अन्तर्यामी!

हे पुरुषोत्तम! सत्पुरुषोंके ऊपर दया करके मत जाओ, हे आदिपुरुष अविनाशी! निराकार चिन्मय आपने भक्तोंहीके कारण सगुण रूप धारण किया है ॥ ५८॥ तुम्हारे वियोगसे तुम्हारे भक्त संसारमें कैसे रहेंगे, निर्गुण उपासनामें कष्ट होगा इससे कुछ विचारिये ॥५९ ॥ ऐसे अपने मित्र उद्धवके दीन वचन सुनकर भगवान् भक्तहितकारी श्रीवैकुण्ठविहारी प्रभासक्षेत्रमें विचार करनेलगे कि भक्तोंके अवलम्बनके लिये मुझे क्या करना चाहिये॥ ६०॥ यह शोच समझ उद्धवसे कहा हे प्राणप्यारे! जो कुछ मुझमें तेज था वह अपना तेज तो मैंने श्रीमद्भागवतमें धरदिया है. इसीको मेरा शरीर समझकर पूजना इतना कह अन्तर्धान होकर श्रीमद्भागवतरूपी शुकसागरमें प्रवेश करगये ॥ ६१ ॥ इसलिये यह श्रीकृष्णकी वाणीरूप

त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यंति भूतले ॥ निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥ ५९ ॥ इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिंतयद्धरिः ॥ भक्तावलंबनार्थाय किं विधेयं मयेति च॥६०॥ स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्॥ तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥ ६१ ॥ तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ॥ सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥ ॥६२ ॥ सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ॥ साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३ ॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ॥ कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः॥६४॥ अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ॥ कथं त्याज्या भवेत्पुंभिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः॥६५॥ सूत उवाच॥ एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ॥ आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते सशृणु शौनक त्वम्॥ ६६ ॥ भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत्॥ श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदंती॥६७॥

प्रत्यक्ष मूर्ति है सेवन, श्रवण, पाठ, दर्शन करनेसे सब पाप दूर करती है ॥ ६२ ॥ इसलिये सबसे अधिक फल सप्ताह सुननेका कहा है और सब साधनोंका तिरस्कार करके कलियुगमें यह उत्तम धर्म कहाहै॥ ६३॥ दुःख, दरिद्र, दुर्भाग्य और पापके धोनेके लिये काम क्रोधकी जयके कारण कलियुगमें यही धर्म परमोत्तम है ॥ ६४॥ अथवा जो वैष्णवी माया देवताओंको भी दुस्तर है सो मनुष्योंको कैसे त्यागन होगी इसलिये सप्ताह विधि कही है॥ ६५॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार जब ऋषियोंने सप्ताहधर्म सुननेका बडा प्रकाश किया तब एक बडा आश्चर्य उस समय हुआ सो हे शौनकजी! तुम सुनो ॥ ६६ ॥ जब सभामें लाखों ऋषीश्वर मुनीश्वर आ आकर बैठे उस समय भक्ति भी अपने दोनों तरुण हुए ज्ञान वैराग्य

पुत्रोंको संग लेकर शीघ्र प्रेमके मारे सभामें प्रगट हुई और श्रीकृष्ण,गोविन्द,हरे,मुरारे यह नाम बारंबार उच्चारण करने लगी॥६७॥ इस भागवतार्थभूषणसे सुन्दर वेष किये सभामें आई हुईको सब देखने लगे और यह कहने लगे कि यह कैसे मुनिजनोंके मध्यमें आई?इसप्रकार सब परस्पर चर्चा करने लगे॥६८॥तब सनत्कुमार बोले,कि यह इस समय कथाही सुननेके लिये आई है, इस प्रकार वह ज्ञान, वैराग्य सहित सनत्कुमारके वचन सुनकर बडी नम्रतासे॥६९॥भक्ति बोली, कि कलियुगमें प्रनष्ट हुई मुझको कथारस सुनाकर पुष्ट किया अब मैं कहां रहूँ सो बताओ ? तब ब्रह्माके पुत्र

तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ॥कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयंतः॥६८॥
ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताऽधुनेयम्॥एवं गिरः सा ससुता निशम्यसनत्कुमारंनिजगाद नम्रा॥
॥६९॥ भक्तिरुवाच ॥ भवद्भिरद्यैव कृताऽस्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन ॥ काह तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवंतु ब्राह्मा इदं
तां गिरमूचिरे ते ॥७०॥ भक्तेषु गोविंदसुरूपधर्त्री प्रेमैककर्त्री भवरोगहंत्री ॥ सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरंतरं
वैष्णवमानसानि ॥७१॥ ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके॥एवं तदाज्ञाऽवसरेऽपि भक्ति
स्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते॥७२॥सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका॥ हरि
रपि निजलोकं सर्वथातो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३ ॥

सनत्कुमार उससे इस प्रकार बोले ॥७०॥ हे गोविन्दके समान रूप धारण करनेवाली ! हे भक्तहितकारिणी! हे संसारसंकटनिवारिणी ! बडे बडे धैर्य धारण करनेहारे श्रीकृष्णके प्यारे वैष्णव भक्तोंके मनमें तू नित्यप्रति वास कर ॥७१॥ तो इस कलियुगके दोष तुझको देखनेको समर्थ न हों,इस प्रकार सनत्कुमारकी आज्ञा मान जो जो नारायणके भक्त वहाँ बैठेथे उनके हृदयमें प्रवेश कर गई॥७२॥इस संसारमें वह निर्धन भी धन्य जिनके हृदयमें भक्ति निवास करती है,भक्ति मात्रसे वशीभूत हो भगवान् अपने लोकको छोडकर उनके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥ ७३ ॥

इस ब्रह्मरूप श्रीमद्भागवतका पृथ्वीपर हम क्या माहात्म्य कहैं जिसके सुननेसे श्रोता वक्ता कृष्णके समान विभूतिको प्राप्त करते हैं फिर और धर्मोंमे क्या प्रयोजन है ? ॥७४॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥ सूतजी बोले,कि हे शौनकमुनि।वैष्णव लोगोंके चित्तमें अलौकिक भक्ति देख भगवान् भक्तवत्सल ॥ १ ॥ वनमाली, घनश्याम, श्रीवृन्दावनविहारी पीतवस्त्र धारी मनोहर वेषधारि,चन्दन केशरका तिलक दिये,मोर मुकुट धरे त्रिभंगी छबि करे ॥ २ ॥ मकराकृति कुण्डल पहिरे सुन्दर कौस्तुभमणि हियेमें विराजमान कोटि कामदेवके समान शोभायमान कटिकिंकिणी पहिरे हुए ॥ ३ ॥ परमानंद चिन्मूर्ति मधुर मुरली करमें

ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ॥ यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडेश्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वाभक्तिमलौकिकीम्॥निजलोकं परित्यज्य भगवान्भक्तवत्सलः ॥१॥वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ॥ कांचीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः॥२॥त्रिभंगललितश्चारुकौस्तुभन विराजितः ॥ कोटिमन्मथलावण्यो हरिचंदनचर्चितः ॥ ३ ॥परमानंदचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः॥आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥४॥ वैकुंठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः॥तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः॥ ॥५॥ तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ॥ चूणप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शंखरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥ तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ॥दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत्॥७॥अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ॥ मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवंति ॥ ८ ॥

लिये भक्तोंके निर्मल मनोंमें प्रवेशकिया॥४॥जो वैकुण्ठधामके रहनेवाले थे और जो वैष्णव उद्धवादिक थे वह सब गूढ़ रूपसे कथा सुननेको स्थित हुए॥ ५ ॥ इस समय चारों ओर जय जय शब्द रसरूप श्रीमद्भागवतकी पुष्टि चूर्ण और पुष्पोंकी वृष्टि धूमधामसे होने लगी और बारम्बार शंख ध्वनि महात्मा लोग करने लगे॥६॥ इस सभामेंजो जो ऋषीश्वर,मुनीश्वर,महात्मा पुरुष उपस्थित थे उनको अपने देह गेह और आत्माकी कुछ सुधि बुधि न रही, सबकी तन्मय अवस्था देख देखकर नारदजी मधुरवाणीसे कहने लगे॥७॥हे मुनीश्वरो ! आज इस जनसुखदायकमें मैंने सप्ता

हकी अलौकिक महिमा देखी कि,जिसको सुनकर मूढ़, शठ,पशु,पक्षी तक भी सब निष्पाप होते हैं॥८॥ इसलिये इस कलियुगमें चित्तके शुद्ध करनेको और पापके समूह हरनेको इसके समान पृथ्वीमें और कोई दूसरा उत्तम उपाय नहीं है ॥९॥ परंतु यह आप मुझसे कहिये कि कथामयसप्ताहयज्ञसे कौन कौन विशुद्ध होते हैं,महात्माओंने लोकका हित विचारकर क्या कोई नवीन मार्ग स्थापित किया है ॥१०॥ सनत्कुमार बोले,कि जो मनुष्य पापात्मा, सदा दुराचारी, कुत्सितमार्गी, अपनी क्रोधाग्निसे आप जलनेवाले कुटिल, कामी हैं वह भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जायँगे॥११॥सत्यहीन,माता पिताके दोषी, तृष्णासे व्याकुल, आश्रम धर्मसे वर्जित जो पाखण्डी, घमण्डी,हिंसक भी हैं वह

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ॥ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति
चान्यत् ॥९॥ के के विशुध्यंति वदंतु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ॥ कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोऽपि
नवीनमार्गः ॥ १० ॥ कुमारा ऊचुः ॥ ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ क्रोधाग्निदग्धाः
कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ ११ ॥ सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मव
र्जिताः॥ ये दांभिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञन कलौ पुनंति ते ॥ १२ ॥ पंचोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः
पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ॥ ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १३ ॥ कायेन वाचा मन
सापि पातकं नित्यं प्रकुर्वंति शठा हठेन ये ॥ परस्वपुष्टा मलिनादुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १४ ॥ अत्र
ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥

भी सप्ताहयज्ञसे कलियुगमें पवित्र होजायँगे ॥१२॥ पाँच बडे उग्र ताप हैं छल छद्मकारी जो क्रूर पिशाचोंकी नाईं निर्दयी हैं जो ब्राह्मणोंका धन चुरा चुराकर पुष्ट होते हैं और जो व्यभिचारी हैं वह भी मलिनमन दुष्टात्मा कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जायँगे॥ १३॥और जो शठ हठपूर्वक मन वचन कर्मसे नित्यनये पाप करते हैं,पराया द्रव्य लेकर अपनी आत्मा पोषण करते हैं, वह अत्याचारी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होजायँगे ॥१४॥ यहाँ हम तुमसे एक पुरातन इतिहास वर्णन करते हैं, जिसके सुननेसे पापोंका नाश हो जाता है ॥१५ ॥

तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक सर्वोत्तम नाम नगर था जिसके चारोंवर्ण अपने अपने धर्मोंके सत्कर्मोंमें तत्पर थे॥ १६॥उसी नगरमें सब वेदोंका जाननेवाला आत्मदेव नाम ब्राह्मण श्रौत स्मार्त कर्मोंका पारंगत दूसरे सूर्यके समान निवास करता था ॥ १७ ॥ वह भिक्षुक धनवान् था उसकी स्त्रीका नाम धुन्धली, सुन्दरी सत्कुलोत्पन्ना सदा अपनी टेक रखनेवाली थी ॥ १८ ॥ लोकवार्त्तामें प्रीति करनेवाली क्रूरा और बहुत बोलती थी बलवान घरके कार्योंमें कृपण,क्लेशकारिणी थी ॥ १९ ॥इस प्रकार प्रेमपूर्वक इन दोनोंको रहते विहार करते हे राजन्! अर्थ काम सम्पन्न गृहादिक इनको सुखकारी न हुआ ॥ २० ॥ तब इन्होंने सन्तानके निमित्त दीनोंको गौ भूमि सुवर्ण सदा देदेकर धर्म करना प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ जब कि उन दोनों स्त्री पुरुषोंने धर्ममार्गमें आधा धन लगा दिया और तो भी कोई बेटी बेटा न हुआ, तब ब्राह्मणको अत्यन्त चिन्ता हुई॥२२॥तब वहब्राह्मण घरसे निकल वनको चल दिया जब दुपहर हुआ तो प्यासके मारे व्याकुलहो एक सरोवरके निकट पहुँचा ॥ २३॥ और जल पीकर सन्तानके दुःखसे दुःखी हो वह वहीं बैठ गया और अपने मनमें अनेक प्रकारसे विचार करने लगा, दो घड़ी उपरान्त एक संन्यासी वहां आ निकला ॥ २४ ॥ जब वह महापुरुष जल पी चुका तब वह ब्राह्मण समीप जा दंडवत् कर उसके चरणारविन्दकी वन्दना करी और लम्बे लम्बे श्वास लेनेलगा ॥ २५ ॥

तुंगभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ॥ यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥ आत्मदेवः पुरे तस्मिन्सर्ववेद
विशारदः ॥ श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः॥१७॥भिक्षुको वित्तवांल्लोके तत्प्रिया धुंधुली स्मृता॥स्ववाक्य
स्थापिका नित्यं सुंदरी सुकुलोद्भवा॥१८॥लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका॥शूरा च गृहकृत्येषु कृपणाकलह
प्रिया॥१९॥एवं निवसतोः प्रेम्णा दंपत्यो रममाणयोः॥अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम्॥२०॥पश्चाद्धर्माः
समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे ॥ गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥२१॥ धनार्थं धर्ममात्रेण ताभ्यां नीतं
तथाऽपि च ॥ न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिंतातुरो भृशम् ॥ २२ ॥ एकदा स द्विजो दुःखाद्गृहं त्यक्त्वा वनं गतः॥
मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान्॥२३॥पीत्वा जल विषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः॥मुहूर्तादपि तत्रैव संन्या
सी कश्चिदागतः॥२४॥दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदंतिकम्॥नत्वा च पादयोस्तस्यनिःश्वसन्संस्थितःपुरः॥२५॥

यतिरुवाच॥ कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिंता बलीयसी॥ वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम्॥२६॥ब्राह्मण
उवाच॥ किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन सचितम्॥ मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुंजते॥२७॥मद्दत्तं नैव गृह्णंति
प्रीत्या देवा द्विजातयः ॥ प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥२८॥ धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां
विना ॥ धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ॥२९॥ पाल्यते या मया धेनुः सा वंध्या सर्वथा भवेत्॥यो मया
रोपितो वृक्षः सोऽपि वंध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३० ॥ यत्फलं मद्‌गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति ॥ निर्भाग्यस्यानपत्यस्य
किमतो जीवितेन मे ॥३१॥ इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वे दुःखपीडितः ॥ तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी
॥ ३२ ॥ तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥

यति बोला कि, हे ब्राह्मणदेवता ! तू क्यों रोता है ? और तेरे मनमें क्या चिंता है और किस लिये अकेला वनमें विचरता फिरता है, तू शीघ्र अपने दुःखका कारण कह ॥ २६ ॥ तब ब्राह्मण बोला कि, हे दीनदयालु ! हे कृपासागर ! अपने सब पापोंसे संचित किये हुए दुःखको आपमे कहता हूँ मेरे पूर्व पितर दियेहुए जलको गर्म गर्म श्वास भरकर पीते हैं कि, आगेको कोई सन्तान इसके न होनेसे हमको जल नहीं मिलनेका ॥ २७ ॥ मेरे दिये हुए दानको प्रीति और सन्मानसे देवता और ब्राह्मण भी ग्रहण नहीं करते,मैं सन्तानके दुःखसे जडताको प्राप्त हो प्राणत्याग करनेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ २८ ॥ सन्तानके विना संसारमें जीनेको धिक्कार है विना सन्तानके घरको धिक्कार है पुत्रहीनके धनको धिक्कार है,अपुत्रके कुलको धिक्कार है ॥ २९ ॥और मैं ऐसा भाग्यहीन हूँ कि जो मैं गाय भी पालता हूँ तो वह भी वन्ध्या हो जाती है,और जो मैं वृक्ष लगाता हूँ तो वह भी नहीं फलता ॥ ३० ॥ जो फल कहींसे मेरे घर आता है वह भी मेरे भाग्यसे सूखजाता है तो मुझ मन्दभागी पुत्रहीनका जीना जगत्‌में अकार्य है ॥ ३१ ॥ ऐसे शोक सन्ताप भरे वचन कहकर वह ब्राह्मण उस संन्यासीके समीप बैठकर उच्चस्वरसे बडा विलाप कर करके रोनेलगा तब उस महात्मा साधुके मनमें बडी दया आई ॥ ३२ ॥ वह योगी उस ब्राह्मणके मस्तककी रेखा देख अनेक प्रकारके

विचार करके ॥३३॥ यति बोला कि, हे ब्राह्मण! सन्तानरूपी अज्ञानको त्याग कर, तेरे प्रारब्धमें सन्तान नहीं लिखा, कर्मकी गति बडी बलवती है कोई जान नहीं सकता अब तू ज्ञानके आश्रित हो संसारकी वासनाको परित्याग कर ॥ ३४ ॥ क्योंकि इस समय मैंने तेरे भाग्यको सब प्रकारसे विचार कर देखा, परन्तु सातवर्षतक तेरे पुत्र होनेको आशा नहीं ॥ ३५ ॥ देखो! सन्तानके होनेसे सगर, और अंगराजाने कैसे कैसे दुःख पाये क्या इनका इतिहास तैंने नहीं सुना, अरे मूर्ख! पुत्र पौत्रोंमें क्या रक्खा है? यह सब संसार स्वप्नकीसी माया है न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिता है, सब अपने अपने प्रयोजनके हैं, अन्त समय विना परमेश्वरके भजनके और कुछ काम नहीं आता और पुत्रादिमें मन लगानेसे नारायणका भजन नहीं बनता और उसकी ममतामें फँसकर नरक भोगना पडता है, इस लिये हे ब्राह्मण! तू पुत्रादिकोंकी आशा छोडकर

यतिरुवाच ॥ मुंचाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ॥ विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ३४ ॥
शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ॥ सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥ संततेः सगरो
दुःखमवापांगः पुरा तथा ॥ रे मुंचाद्य कुटुंबाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ विवेकेन भवेत्किं
मे पुत्रं देहि बलादपि ॥ नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥३७॥ पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क
एव हि ॥ गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ॥ चित्रकेतुर्गतः
कष्टं विधिलेखविमार्जनात् ॥ ३९ ॥ न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ॥ अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं कि
वदाम्यहम् ॥ ४० ॥ तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ॥ इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥४१॥

संन्यास धारणकर, जिसमें सर्वथा सुख मिलै ॥३६॥ ब्राह्मण बोला कि, हे कृपा सिन्धु! मुझे ज्ञान ध्यानसे कुछ प्रयोजन नहीं जैसे वैसे एक पुत्र मुझको दीजिये, नहीं तो मैं तुम्हारे आगेही अपने प्राणोंका घात करके मरजाऊंगा ॥ ३७ ॥ पुत्रादिक सुखविना यह संन्यास भी वृथा ही है, गृहस्थ जो पुत्र पौत्र संयुक्त हैं वही लोकमें प्रसन्न हैं॥३८॥ ब्राह्मणकी यह दशा देख तपस्वी फिर उसको समझाने लगा कि, हे ब्राह्मण! विधिके अङ्क मिटानेसे चित्रकेतुकी कैसी दुर्दशा हुई थी, इसलिये प्रारब्धका अतिक्रमण नहीं करना ॥ ३९ ॥ जैसे दैवहत होनेसे उद्यम वृथा होता है, इसीप्रकार पुत्रसे तुझे कुछ सुख नहीं प्राप्त होगा, इसकारण तुझ हठी अर्थीसे मैं क्या कहूँ ॥ ४० ॥ उस ब्राह्मणका अत्यन्त आग्रह देखकर

तपस्वीने उस ब्राह्मणको एक फल दिया और यह कहा कि तु यह फल अपनी स्त्रीको खिला दे परमेश्वर चाहेगा तो तेरे एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ सत्य, शौच, दया, दान पूर्वक रहने दुपहरके उपरान्त एक अतिथिको भोजन कराके पीछे आप भोजन किया करै इस प्रकार एक वर्षतक वह स्त्री अपने धर्मकर्मसे शुद्ध और चैतन्य रहेगी तो एक श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥४२॥ यह वचन कह वह महात्माजी तो कहींको चलदिये और वह ब्राह्मणदेवता अपने घर आया और वह फल अपनी भायाको देकर उसका विधान बताया और कहा कि इसकेखानेसे तेरेएक महातेजस्वी स्वरूपवान् पुत्र होगा, यह कह वह ब्राह्मण तो अपने किसी कामको चलागया ॥४३॥ उसकी तरुणी कुटिल तो थी ही उसके निकट उससमय एक सखी कहींसे

सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ॥ वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥४२॥ एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ॥ पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥४३॥ तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ॥ अहो चिंता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४ ॥ फलभक्ष्येण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ॥ स्वल्पभक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥४५॥ दैवाद्धाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ॥ शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥ ४६ ॥ तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ॥ प्रसूता दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥४७॥ मंदाया मयि सर्वस्वं ननांदा संहरेत्तदा ॥ सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥ लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ॥ वंध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥

आगई, तब वह ब्राह्मणी अपनी सहेलीके सम्मुख रुदन करने लगी और कहने लगी कि, हे प्यारी! आज मुझे बडी चिन्ता उत्पन्न हुई है मैं इस फलको कभी नहीं खाऊंगी ॥४४॥ फल खानेसे गर्भ रहेगा फिर पेट बढैगा थोडा भोजन करनेसे शरीर निर्बल हो जायगा तो घरकेकाम काजमें बाधा होगी ॥४५॥ कहीं भाग्यसे गाँवमें आग लगजाय तो गर्भिणीका भागना महाकठिन है, तोतेकी नाईं रहते हुए गर्भको कोखसे कैसे त्यागन करै ॥४६॥ और जो कहीं दैवइच्छासे गर्भ टेढा पडगया तो वृथा प्राण गये। मैंने सुना है बालक होनेके समय बडा कष्ट होता है, वह कुमारी स्त्री नहीं सह सकती ॥ ४७ ॥ जो इस दुःखसे मुझ मन्दभागिनीका मरण होगया तो मेरे सर्वस्व धनको ननँद हरण करलेगी और फिर सत्य शौचादि नियमसे मुझे यह दुःसाध्य ही दीखै है ॥४८॥ फिर बालकके लालन पालनमें बडा दुःख होता है, या तो वन्ध्या ही और विधवानारी

अच्छी जो यह नित्यदुःख कभी देखनेहीमें न आवै ॥४९॥ ऐसी ऐसी अनेक प्रकारकी कुतर्कणा करके उसने वह फल नहीं खाया जब पतिने पूछा, हे चंद्रानने ! वह फल तैंने खालिया नहीं, तो बाला बोली कि, हे स्वामिन् ! अबतक क्या था मैंने उसीसमय वह फल खालिया ॥५०॥ एक समय उसकी भगिनी निजइच्छासे इसके घर आई और अपनी बहनको अपना सब वृत्तान्त सुनाकर कहा कि, मुझको बडी भारी चिन्ता है ॥५१॥ इसी दुःखकी मारी मैं निर्बल हो रही हूँ, हे भगिनी ! बता तो क्या करूं, तब उसकी बहन बोली मुझे गर्भ है उत्पन्न होनेपर तुझे दूंगी ॥५२॥ तबतक तू गर्भवतीसी होकर घरमें सुखी रह और मेरे पतिको कुछ धन देकर प्रसन्न करलेना वह उस बालकको प्रसन्नतापूर्वक तुझको

एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ॥ पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥५०॥ एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहे स्वेच्छयाऽऽगता ॥ तदग्रे कथितं सर्वं चिंतेयं महती हि मे ॥५१॥ दुर्बला तेन दुःखेनह्यनुजे करवाणि किम् ॥ साऽऽब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥५२॥ तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ॥ वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥ षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ॥ तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥५४॥ फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु सांप्रतम् ॥ तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥५५॥ अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ॥ आनीय जनको बालं रहस्ये धुंधुलीं ददौ ॥ ५६ ॥ तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ॥ लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजादयात् ॥५७॥ ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वार मगलं बहु ॥ ५८ ॥

देदेगा ॥५३॥ और मैं सबमें यह बात प्रगट करदूंगी कि बालक होकर मरगया और प्रतिदिन तेरे बालकको अपना दूध पिला जाया करूंगी ॥५४॥ और परीक्षाके लिये अपनी गायको खिला दे, यह बात सुनकर उस ब्राह्मणीने स्त्री स्वभावसे प्रसन्न होकर उसका कहना स्वीकार किया और वह योगेश्वरका दिया हुआ फल गायको दे दिया ॥५५॥ कुछ समय उपरान्त उस ब्राह्मणीकी बहनके बालक उत्पन्न हुआ तब उसकी बहनके पतिने एकान्तमें छिपाकर वह बालक लाकर धुंधलीको दे दिया ॥५६॥ तब धुन्धलीने अपने पतिसे कही कि, मेरे सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न हुआ, यह सुधासम वचन सुनकर आत्मदेवको अत्यन्त हर्ष हुआ और उस ब्राह्मणके पुत्र होनेसे बहुतलोगोंको आनन्द हुआ ॥५७॥ जातकर्म किया और

अपने वित्तसमानइनको दान दिया,गीतबाजोंके शब्द और सब प्रकारके मंगलाचार उसके द्वारपर होने लगे ॥५८॥ धुंधली अपने पतिसे बोली मेरे कुचोंमें दूधनहीं उतरा सो मैं निर्दुग्धा दूसरी धायके दूध विना इस फुलवासे बालकको कैसे पालूँगी ॥ ५९ ॥ मेरी बहनका थोडेही दिनोंका बालक मरगया है आपकी आज्ञा हो तो मैं उसको अपने घर बुलालूं, वह सब घरका काज भी करलेगी और बालकको भी पालेगी ॥ ६० ॥ ब्राह्मणनें भी पुत्रकी रक्षाके लिये सब बातें अंगीकार कर ली और अपने पुत्रका नाम धुन्धकारी रक्खा ॥ ६१ ॥ तीन महीने उपरान्त उस गायके भी एक बालक उत्पन्न हुआ मनुष्योंकेसा स्वरूप सर्वांग सुन्दर उज्ज्वल दिव्य शरीर सुवर्णकी सदृश ॥६२॥ ब्राह्मण उसको देख बहुत प्रसन्न

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ॥ अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥ मत्स्वसायाः
प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ॥ तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥ पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहे
तवे ॥ पुत्रस्य धुंधुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥६१॥ त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ॥ सर्वांगसुन्द
दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान्स्वयमादधे ॥ मत्वाश्चर्यं जनाः सर्वेदिदृक्षार्थं समारं
गताः ॥६३ ॥ भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ॥ धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४॥
न ज्ञातं तद्रहस्य तु केनापि विधियोगतः ॥ गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥ ६५॥ कियत्कालेन तौ
जातौ तरुणौ तनयावुभौ ॥ गोकर्णः पंडितो ज्ञानी धुंधुकारी महाखलः ॥ ६६ ॥स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोध
संयुतः ॥ दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनः ॥ ६७ ॥

५७

हुआ और स्वयं उसका संस्कार किया और इस अद्भुत आश्चर्यको बहुत लोग देखनेको आये॥६३॥देखो अब आत्मदेवका भाग्य उदय हुआ,गौने भी देवरूपी बालक उत्पन्न किया है बडे आश्चर्यकी बात है॥६४॥ दैवसे किसीने भी इस भेदको नहीं जाना सब शरीर तो मनुष्यकेसा था, परन्तु कानही गौकेसे थे, इस कारण पिताने उसका नाम गोकर्ण रक्खा ॥ ६५ ॥ कालोपरान्त वह दोनों बालक तरुण हुए,गोकर्ण थोड़ी ही अवस्थामें लिखपढ़कर बडा ध्वजाधारी पंडित और बुद्धिमान् हुआ और धुन्धकारी महाजुआरी और दुष्टाचारी हुआ ॥६६॥शौच क्रियाहीन, कुत्सितकर्म करनेवाला, क्रोधी कुकर्मी, विग्रहकर्त्ता चांडालोंके हाथका भोजन करै ॥ ६७ ॥

चोरीमें चित्त,सबसे शत्रुता,पराये घरोंमें आग लगादे छोटे२बालकोंको देखकर कुएँमेंडाल दे॥६८॥हत्यारा शस्त्रधारे,दीन और अन्धोंको दुःख दे, चांडालोंसे प्रीति रक्खै पंक्षियोंके फांसनेको जाल लिये फिरै॥६९॥ वेश्याओंकी संगतिमें उसने अपने पिताका सब धन नष्ट करदिया एकदिन माता पिताको मारपीटकर घरके बर्त्तन ले गया॥७०॥ जब वह ब्राह्मण अत्यन्त कृपण और धनहीन होगया तब उच्चस्वरसे रोने लगा कुकर्मी पुत्र होनेसे तो मैं अपुत्रही अच्छा था, क्योंकि कुपुत्र सदा दुःखदायक है॥७१॥ कहाँ रहूँ कहाँ जाऊँ कौन मेरे दुःख दूरकरै मैं दुःखसे प्राण त्याग दूंगा । हा बड़ा कष्ट है॥७२॥ उस समय वह ज्ञानी गोकर्ण आकर पिताको ज्ञान वैराग्य दिखाकर समझाने लगा॥७३॥ हे पिता ! यह संसार

चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ॥ लालनायार्भकान्हत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत्॥६८॥ हिंसकः शस्त्रधारी च दीनांधानां प्रपीडकः ॥ चांडालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्च संगतः ॥ ६९॥ तेन वेश्याकुसंगेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ॥ एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥ तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ॥ वंध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥७१॥ क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ॥ प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२॥ तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ॥ बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥ असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ॥ सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥ न चेंद्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकांतजीविनः ॥ ७५ ॥ मुंचाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ॥ निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥

असार है दुःखरूप है मोहका बढानेवाला है,किसका सुत किसका धन यह सब मिथ्या है प्रेम करनेवाला रात दिन दुःखी रहता है॥७४॥इन्द्रको भी कुछ सुख नहीं,न चक्रवर्त्तीको कुछ सुख है संसारमें जिसने जन्म लिया इसको एक न एक दुःख लगाही रहता है,परन्तु एकांतसेवी परमेश्वरका भजन करनेवाला ऋषि मुनियोंको ही कुछ आनन्द प्राप्त होता है॥७५॥इस संतानरूपी अज्ञानको छोडो,मोहसे नरक होता है यह देह एक न एक दिन गिरजायगा इसका कुछ भरोसा नहीं,इसलिये सब मोहममताको तज वनमें जाय नारायणका भजन करो ॥ ७६ ॥

आत्मदेव पुत्रके मनोहर वचन सुन वनके जानेकी इच्छाकर अपनेपुत्र गोकर्णसे कहा हे पुत्र! वनमें जाकर क्या २ करना उचित है सो विस्तार सहित कहो ? ॥ ७७ ॥ स्नेहके पाशमें बँधाहुआ मैं लँगडा, लूला, मूर्ख, कर्मोंसे इस संसाररूपी कूपमें पडा हूँ, हे दयालु पुत्र! तू मुझे इस जगत् जंजालसे निकाल ॥ ७८ ॥ गोकर्ण बोला हे पिता! इस अस्थि, मांस, रुधिरसे बने हुए देहका अभिमान मत करो, स्त्री पुत्रोंसे स्नेह ममताका त्यागन करो, इस संसारको प्रतिदिन क्षणभंग जानो, भक्तिमें प्रीतिकरके वैराग्यका अनुभव करो ॥ ७९ ॥ नित्य भागवतधर्मोंको सेवन करो, काम्य कर्मोंका त्यागन करो, काम और तृष्णाको छोड साधु सन्तोंकी सेवा करो, औरोंके दोष गुणोंका चिन्तवन छोड

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गंतुकामः पिताऽब्रवीत् ॥ किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सुविस्तरम् ॥ ७७ ॥ अंधकूपे स्नेहपाशैर्बद्धः पंगुरहं शठः ॥ कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुंच ॥ पश्याऽनिशं जगदिदं क्षणभंगुरत्वं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥ धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ॥ अन्यस्य दोषगुणचिंतनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥ एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥ भक्तो हरेरनुदिनं परिचर्यया‌ऽसौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ॥ क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

भगवत्की सेवा करो सुधारूपी कथा को सदा पियो ॥ ८० ॥ यह पुत्रका उपदेश सुन प्रसन्न हो स्त्री पुत्र, गृहका महामोह त्यागकर साठ वर्षकी अवस्थामें स्थिर चित्त करके वनको चला गया और नित्य प्रति श्रीकृष्णचन्द आनन्दकंदके चरणारविन्दकी वन्दना और दशमस्कन्धका पाठ करनेसे श्रीकृष्णको प्राप्त हो गया ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि, पिताके मरजानेसे धुन्धुकारी माताको मारने लगा और कहा, बता धन कहाँ रक्खा है? जो नहीं बतावेगा तो मैं तुझे

मारडालूगा ॥ १ ॥ इसप्रकार धुन्धली इसके वचनोंसे भयभीत और दुःखी हो रातको कुएँमें जापडी और मरगई॥२॥जब गोकर्णने माताकी यह दशा देखी तो इसके निकट अपना रहना अच्छा न समझ, योगमें स्थित हो तीर्थयात्राको चलदिया वह गोकर्ण ऐसा सुबोध और ज्ञानी था कि दुःख,सुख, शत्रु,मित्रको समान समझता था॥३॥धुन्धुकारी इस घरमें पांच वेश्याओंके साथ रहने लगा, बडा कुत्सितकर्मी,उन वेश्याओंका पालन, पोषण मूर्खतासे करनेलगा ॥४॥ एक समय उनको गहनेकी इच्छा हुई तो वह धुन्धुकारी कामान्धमृत्युका भय तजकर घरसे कहींको चल दिया ॥५॥ और इधर उधरसे बहुतसा धन संग्रह करके फिर घरको आया और उनको अनेक अनेक प्रकारके भूषण वस्त्र दिये ॥६ ॥

इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ॥ कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥ गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं
निर्गतो योगसंस्थितः ॥ न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बांधवः ॥ ३ ॥ धुंधुकारी गृहेऽतिष्ठत्पंचपण्यवधूवृतः ॥
अत्युग्रं कर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः॥ ४॥एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ॥ तदर्थं निर्गतो गेहात्का
मांधो मृत्युमस्मरन् ॥ ५ ॥ यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ॥ ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियंति च
॥ ६ ॥ बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो व्यचारयन् ॥ चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ वित्तं
हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ॥ अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥ निहत्यैनं गृहीत्वार्थं
यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥ पाशं कंठे निधायास्य तन्मृत्युमु
पचक्रमुः॥त्वरित न ममारासौ चितायुक्तास्तदाऽभवन् ॥ १० ॥

बहुत धन देखकर वह वेश्यायें रात्रिमें विचारकरने लगीं कि यह दुष्ट प्रतिदिन चोरीकरके द्रव्य हमारे लिये लाताहै कदाचित् राजाने इसको पकड लिया तो हम लोगोंको भी अवश्य दण्ड होगा॥७॥ और यह सब धन लेकर इसको भी मारडालेगा, इस लिये धनकी रक्षाके निमित्त गुप्तरीतिसे हमहीं इसको मारडालैं तो अच्छा है॥८॥ क्योंकि इसको मारकर यह सब धनले अपनी इच्छा पूर्वक जहां जी चाहैगा वहाँ जायँगी. यह बात निश्चयकरके उन्होंने सोए हुएको रस्सियोंसे बाँधा॥९॥इसके गलेमें फांसी डालकर मारने लगीं जब वह जल्दी न मरा तो चिन्ता करने लगीं॥१०॥

फिर बहुतसे अंगारोंसे उसका मुख जलाया, तब अग्निके लगनेसे वह अकुला कर मरगया ॥ दोहा--जो गणिकाके सँग रमै, तेहिकी यह गति
होय ॥ तासे कबहूं भूलसे, इनसे रमो न कोय ॥ ११ ॥ उन साहसी गणिकाओंने एक गहरा गडहा खोदकर उसको गडहेमें गाड दिया,
यह भेद किसीको प्रगट न हुआ ॥१२॥ जब उस वारांगनाके निकटवर्त्तियोंने बूझा कि धुन्धुकारी तुम्हारा मित्र कहाँ गया, तब उन वेश्याओंने
कहा हमारा प्यारा द्रव्य उपार्जनके लिये परदेशको गया है,इस वर्षके अन्तमें आवेगा ॥१३॥ पण्डितोंको योग्य है कि,दुष्टोंका और वेश्याओंका
विश्वास कदापि न करैं,जो इनका विश्वास करता है वह अनेक दुःख भोगता है,यह दुष्टा पहिले धन हरकर अन्तको प्राणोंकी ग्राहक होती हैं

तप्तांगारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥११॥ तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः
साहसिकाः स्त्रियः॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च॥ १२ ॥लोकैः पृष्टा वदंति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः॥
आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन्वित्तलोभविकर्षितः॥१३॥स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद् बुधः ॥ विश्वासे यः स्थितो
मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥१४॥सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम्॥हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम्
॥१५॥ संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृका ॥ धुंधुकारी बभूवाऽथ महान्प्रेतः कुकर्मतः॥ १६ ॥ वात्यारूपधरो
नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥ न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहु
र्वदन्॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतंलोकादबुध्यत ॥ १८ ॥ अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत्॥ यस्मिंस्तीर्थे तु
संयाति तत्र श्राद्धं प्रवर्तयन् ॥ १९ ॥

॥१४॥ इनके वचन कामियोंके रस बढ़ानेवाले अमृतके-समान हैं, हृदय इनके खांडकी धारके सदृश तीव्र हैं, यह किसीकी मित्र नहीं ॥१५॥ वह
कुलटा बहुत भर्ता करनेवाली उसका सब धन हरकर चलीगई और धुन्धुकारी कुकर्मसे बडाभारी प्रेत हुआ॥ १६ ॥ वायुरूप धारण किये हुए
नित्य दशों दिशाओं में फिरे, शीत धूपसे व्याकुल निराहार भूखा प्यासा॥ १७॥कहीं शांतिको प्राप्त न हुआ,हा देव!हा देव! ऐसा बारम्बार कहने
लगा कुछ कालोपरान्त गोकर्णने लोगोंसे सुना कि, धुन्धुकारी मरगया ॥१८॥ उसको अनाथ जानकर गयाजीमें श्राद्ध किया और जिस जिस

तीर्थमें जाय तहाँ तहाँ इसका श्राद्ध करे॥ १९॥ इस प्रकार भ्रमण करता हुआ अपने नगरमें प्राप्त हुआ, रात्रिके समय घरके आँगनमें सोनेको
आया इसको किसीने न पहिचाना ॥२०॥ वह धुन्धुकारी अपने भाई गोकर्णको सोता जान भयानक रूप दिखानेलगा ॥ २१ ॥ कभी मेढा,
कभी हाथी, कभी भैंस हो जाय, कभी इन्द्र, कभी अग्नि हो जाय, फिर पुरुष हो जाय॥ २२ ॥ इस विपरीतताको देखकर धैर्य धारण कर गोकर्णने
जाना कि यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ है, ऐसा निश्चय करके॥२३॥गोकर्ण बोला, हे भाई ! तू कौन है जो रातमें यहाँ आया है और क्यों तू

एवं भ्रमन्स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहांगणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय
धुंधुकारी स्वबांधवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥ सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत्॥
सकृदिंद्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥ वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोऽपि
निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥२३॥ गोकर्ण उवाच ॥ कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ॥ किं वा प्रेतः पिशाचो
वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनःपुनः ॥ अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञा
मात्रं चकार ह॥२५॥ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयन् ॥ तत्सेकाद्धतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥
प्रेत उवाच ॥ अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुंधुकारीति नामतः ॥ स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥

इस दुर्दशाको पहुँचा, क्या तू भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस है, अपना वृत्तान्त हमसे कह ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक ऋषियो ! जब
इस प्रकारसे गोकर्णने बूझा तो वह उच्चस्वरसे रोने लगा, परन्तु बोलनेका सामर्थ्य नहीं था, केवल संकेतसे ही कहा॥२५॥ तब गोकर्णने अंजलीसे
जल लेकर मंत्र पढकर उसके ऊपर छींटा मारा उस जलके छिडकनेसे वह प्रेत पाप रहित हो कहने लगा ॥२६ ॥ हे गोकर्ण ! मैं धुन्धुकारी तेरा
भाई हूँ अपने ही दोषसे मैंने अपना ब्राह्मणत्व नाश कर दिया ॥ २७ ॥

महा अज्ञानमें रहनेवाले उन कुकर्मोंकी संख्या नहीं है मैं लोकोंका मारनेवाला मुझे वेश्याओंने फाँसी देकर महादुख दे मारडाला ॥ २८ ॥ इस कारण मैं प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ हूँ अपनी दुर्दशा भी कहता हूं, दैवाधीनके फल प्राप्त होनेसे मैं पवन भक्षण कर करके जीता हूं॥ २९॥ हे कृपासिन्धु बन्धु ! मुझे इस महा संकटसे शीघ्र छुड़ाओ जो मेरा उद्धार हो, धुन्धुकारीकी यह बात सुनकर॥ ३०॥ गोकर्ण बोला हे भाई ! मैंने तेरे उद्धारके लिए गयाजीमें पिण्ड दिये और फल्गूपर श्राद्ध किया था तो भी तेरी मुक्ति नहीं हुई, यह बडे आश्चर्यकी बात है॥ ३१॥ जो गयामें पिण्ड देनेसे मुक्ति नहीं हुई तो फिर और कुछ उपाय नहीं है. हे बन्धु ! अब मैं क्या करूं सो विस्तार सहित कह ॥ ३२॥ प्रेत बोला कि, हे भ्राता !

कर्मणो नास्ति संख्या मे महाऽज्ञाने विवर्तिनः ॥ लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥ अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ॥ वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥ २९ ॥ अहो बंधो कृपासिंधो भ्रातर्मामाशु मोचय॥ गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ ३०॥ गोकर्ण उवाच॥ त्वदर्थं तु गयापिंडो मया दत्तो विधानतः ॥ तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१॥ गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ॥ किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२॥ प्रेत उवाच ॥ गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥ उपायमपरं किंचित्तद्विचारय सांप्रतम् ॥ ३३ ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ॥ शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४॥ इदानीं तु निजस्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ॥ त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥ धुंधुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ॥ गोकर्णश्चिंतयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥ ३६ ॥

एक गया क्या सौ गयाश्राद्धसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी, क्यों कि मैंने महापाप किया है अब और कोई उपाय तुम विचारो ॥ ३३ ॥ उसकी यह बात सुनकर, गोकर्णको बडा आश्चर्य हुआ कि, जो सौ श्राद्धसे भी मुक्ति न होगी तो तेरी मुक्ति असाध्य है ॥ ३४॥ अब तू प्रेत ! अपने स्थानमें निर्भय रह तेरी मुक्तिका साधन मैं विचारकर करूंगा॥ ३५ ॥ यह सुनके धुन्धुकारी अपने स्थानको गया गोकर्णने सब रात्रिमें विचार किया परन्तु कोई उपाय निश्चित न हुआ ॥ ३६ ॥

प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ॥ तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥३७ ॥ विद्वांसो योग
निष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः॥तन्मुक्तिं नैव पश्यंति पश्यंतः शास्त्रसंचयान्॥३८॥ततःसर्वैः सूर्यवाक्यंतन्मुक्तौस्थापित
परम्॥ गोकर्णः स्तंभनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ॥ ३९ ॥ तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन्ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ॥ ४० ॥
तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमेतदभाषत॥श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु ॥ ४१ ॥ इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं
तु विश्रुतम्॥सर्वेऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ॥ ४२ ॥ गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः॥तत्र संश्रव
णार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ॥४३॥ पंग्वंधवृद्धमंदाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै॥समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः
॥ ४४ ॥ यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥ ४५॥

जब प्रातःकाल हुआ तो गोकर्णका आना सुन सब नगरनिवासी उसके देखनेको आये तब गोकर्णने उन सब लोगोंका यथायोग्य आदर सत्कार कर कुशल क्षेम बूझ अपने निकटबैठाय रातका वृत्तान्त सबसे कहा ॥३७॥यह बात सुनकर पण्डित, विद्वान्, योगी, ब्रह्मचारी पुरुष बहुत शास्त्र देखनेलगे परन्तु कोई उत्तम उपाय उसकी मुक्तिका सिद्ध नहीं हुआ ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया कि, तुम सूर्यभगवान्से इसका उपाय बूझो जो वह कहैं सो करना, तब गोकर्णने सावधान हो सूर्यभगवान्का ध्यानकर मंत्र पढा और सूर्यके वेगको रोककर विनती करने लगा ॥ ३९ ॥ हे जगत्पते । हे जगत्के साक्षी । तुमको बारंबार नमस्कार है, हे तमनाशक । इस मेरे भ्राता धुन्धुकारी की मुक्तिका कोई उपाय बताओ जिससे इसका उद्धार हो ॥ ४० ॥ गोकर्णके दीनवचन सुन भगवान् भास्कर दूरसे प्रगट होकर बोले कि, हे गोकर्ण। श्रीमद्भागवतका सप्ताह यज्ञकर, इस प्रेतकी मुक्ति सुनतेही हो जायगी ॥ ४१ ॥ धर्मरूप श्रीभगवान् सूर्यनारायणका यह वचन सबने सुना और अत्यन्त प्रसन्न होकर सब नगरवासी कहने लगे कि अवश्य यह शुभकर्म करना चाहिये ॥ ४२ ॥ गोकर्ण भी मनमें निश्चयकर श्रीमद्भागवतके सप्ताहकी कथा बांचनेमें प्रवृत्त हुए । उस सप्ताह पारायणके सुननेको देश देश और ग्राम ग्रामके मनुष्य दूर दूरसे आए॥४३॥ लँगडे, अंधे, वृद्ध, मन्दभागी भी पाप दूर करनेको आए, देवताओंको विस्मयदायक यह सभा हुई ॥ ४४ ॥ जब आसनपर बैठकर गोकर्ण कथा कहने लगे,तब धुन्धुकारी भी वहाँ आया और इधर उधर देखने लगा ॥ ४५ ॥

वहाँ एक सात गाठोंका बाँस रक्खा था उसके मूलमें छिद्रके मार्गसे प्रवेशकर सुननेको बैठ गया ॥ ४६ ॥ वह पवनरूपी था इसलिये स्थित न रह सका तब बाँसमें प्रवेश किया गोकर्णने मुख्य वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता कल्पना करके ॥ ४७ ॥ श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कन्धकी कथा प्रेमपूर्वक सबको सुनाई, जब सन्ध्यासमय कथा विसर्जन हुई तब एक बडा आश्चर्य हुआ ॥ ४८ ॥ कि जिस बाँसमें धुन्धुकारी घुस बैठा था उस बांसकी एक गांठ फट गई और बडा घोर शब्द हुआ उसे सुनकर सब लोग विस्मित होगये कि यह क्या कारण है, इसीप्रकार दूसरे दिन कथा होनेसे

सप्तग्रंथियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणाय स्थितो ह्यसौ ॥ ४६ ॥ वातरूपी स्थितिं
कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ॥४७॥ प्रथमस्कंधतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजो
ऽकरोत् ॥ दिनांते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ॥४८॥ वंशैकग्रंथिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ द्वितीयेऽह्नि
तथा सायं द्वितीयग्रंथिभेदनम् ॥४९॥ तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रंथिभेदनम् ॥ एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रंथिविभेदनम्
॥ ५० ॥ कृत्वापि द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममंडितः ॥ ५१ ॥
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ॥५२॥ त्वयाहं मोचितो
बंधात्कृपया प्रेतकस्मलात् ॥ धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥ ५३ ॥

फिर सन्ध्या समय दूसरी गाँठ फट गई ॥ ४९ ॥ तीसरे दिन फिर कथा आरम्भ हुई और सन्ध्या समय तीसरी गांठ फट गई, इसीप्रकार सात दिनमें सातों गांठें फट गईं ॥ ५० ॥ द्वादशस्कन्ध सुननेसे धुन्धुकारीने प्रेतयोनिको त्याग दिव्य रूप धारण किया,तुलसीकी माला कण्ठमें विराज रही ॥ ५१ ॥ पीतवस्त्र पहरे घनश्याम मुकुट धारे मकराकृति कुण्डल पहरे,अपने भाई गोकर्णके निकट जाकर नमस्कार करके बोला ॥ ॥५२॥ भाई ! तुमने बड़ी कृपाकरके प्रेतयोनिसे मुझको छुटाया यह भागवतकी कथा धन्य है जो प्रेतबाधाकी विनाश करनेवाली है ॥५३॥

यह सप्ताह धन्य है जो कृष्णलोकका फल देनेवाला है सप्ताह सुननेको बैठते ही मनुष्यके पाप काँपने लगते हैं॥५४॥हम प्रेतोंकी तो यह भागवत प्रलय कर देगी,गीला,सूखा,लघु, स्थूल, वाणीसे, मनसे,कर्मसे किये हुए ॥ ५५ ॥ पापोंको सप्ताहयज्ञ नाश कर देता है जैसे अग्नि समिधाको, इस भारतवर्षमें देवताओंकी सभामें विद्वानोंने कहा है ॥ ५६ ॥ कि बिना कथा सुननेवालोंका जन्म निष्फल है, मोहसे रक्षा कर करके पुष्ट बलवान् देहसे क्या फल है ॥ ५७ ॥ जिस शरीरने यह शुकशास्त्रकथा नहीं सुना वह अस्थियोंका स्तम्भ नसोंमें बँधा माँस रुधिरसे

सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ कंपंते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ॥ ५४ ॥ अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ॥ ५५ ॥ श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि ॥ ५६ ॥ अकथाश्रविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ ५७ ॥ अश्रवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ अस्थिस्तंभं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ॥ ५८ ॥ चर्मावनद्धं दुर्गंधं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ जराशोकविपाकार्तं रोगमंदिरमातुरम् ॥५९॥ दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभंगुरम् ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञांतं शरीरमिति वर्णितम् ॥६०॥ अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्नः हि ॥ यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ॥ ६१ ॥ तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरि ॥ ६२ ॥

लेपित ॥ ५८ ॥ चर्मसे आच्छादित, दुर्गन्धयुक्त, मूत्रपुरीषका पात्र है, बुढ़ापा, शोकके फल समेत रोगका भवन दुःखरूप ॥५९॥ कभी भरता नहीं, दुर्धर खोटा दोष सहित क्षणभंगुर है कीडे विष्ठा और भस्मकार कारण यह शरीर कहा है॥६०॥इस अस्थिरदेहसे सदैव रहनेवाला कर्म क्यों न साधन किया जाय, जो प्रातःकाल खायाहुआ अन्न सायंकालको नष्ट हो जाता है॥६१॥ सो अन्नादिकके रसोंसे पुष्ट इस कायाकी क्या नित्यता है क्षणभंगुर है सप्ताह सुननेसे लोकमें भगवान् वासुदेवके निकट ही प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

इन दोषोंकी निवृत्तिके लिये एक सप्ताहका ही साधन बहुत है, जैसे जलमें बुद्बुदे, जन्तुओंमें मच्छर, डांसादि ऐसेही कथाके न सुननेवाले मनुष्य संसार में वृथा ही उत्पन्न होते हैं ॥ ६३ ॥ जहाँ जड और सूखेबांसकी गाँठ फटगई तो फिर चैतन्य चित्तकी ग्रन्थि फट जाय तो क्या आश्चर्य है ॥ ६४ ॥ उनके हृदयकी ग्रन्थि फट जाती है सब सन्देह शमन होजाते हैं, कर्मोंका क्षय हो जाता है, जो सप्ताह प्रेमपूर्वक सुनते हैं ॥ ६५ ॥ संसाररूपी कीचडमें सनेहुओंको धोनेके लिये इस शुकशास्त्राकी कथा परमोत्तम है, जिसका मन कथारूपी तीर्थमें है उसकी पंडित लोगोंने मुक्ति कही है ॥ ६६ ॥ यह वचन उसके कहते ही एक विमान वैकुण्ठसे आया जिसके चारों ओर प्रभाकरकीसी प्रभा फैलीहुई

अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम्॥बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जंतुषु॥जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३ ॥ जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रंथिविभेदनम्॥चित्रं किमु तदा चित्तग्रंथिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥ ६५ ॥ संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ॥ कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ॥ ६६ ॥ एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानमगमत्तदा ॥ वैकुंठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमंडलम् ॥ ६७ ॥ सवषां पश्यतां भेजे विमानं धुंधुलीसुतः ॥ विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ अत्रैव बहवः संति श्रोतारो मम निर्मलाः॥ आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥ श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ॥ फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवंतु हरिप्रियाः ॥ ७० ॥ हरिदासा ऊचुः ॥ श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽपि संस्थितः ॥ श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥ ७१ ॥

वैकुण्ठवासियोंसे युक्त ॥ ६७ ॥ विमानमें सबके देखते हुए धुन्धुकारी बैठा और उस विमानमें वैष्णवोंको बैठा देखकर ॥ ६८ ॥ गोकर्ण बोला कि यहां बहुतसे सुननेवाले उज्ज्वल चित्तके हैं इनके लिये विमान क्यों नहीं आये ॥ ६९ ॥ जबकि सबका सुनना समान होता है तो फलमें भेद क्यों हुआ हे हरिके प्यारे भगवज्जन ! इसका कारण कहो ? ॥ ७० ॥ हरिदास बोले कि, सुननेके भेदसे फलका भी भेद होता है, सबने सुना परन्तु उस प्रकार मनन किसीने नहीं किया ॥ ७१ ॥

इसलिये भजनेसे भी फलमें भेद हुआ, सातरात तक जागरणकर एकाग्रचित्त हो प्रेतने सप्ताह श्रवण किया ॥ ७२ ॥ और उसने स्थिरचित्त होकर मननादि भी किया, जिसको दृढ़ नहीं होता उसका ज्ञान हत हो जाता है और जो प्रमादसे कथा सुनता है उसका ज्ञान भी हत हो जाता है ॥७३॥ और संदिग्धका मंत्र हत होजाता है, व्यग्रचित्तका जप निरर्थक है वैष्णवरहित देश हत है, अपात्र सद्गुण रहितको श्राद्धमें देना भी वृथा है ॥ ७४ ॥ विद्याहीनको दान देना वृथा है सदाचाररहित कुलहत है. गुरुके वाक्योंमें विश्वास और अपने आपमें दीनताकी भावना करनी योग्य है॥ ७५॥ मनके दोषोंको जीतना कथामें निश्चल बुद्धि रखनी, जब इस प्रकारसे विश्वस्त शुद्ध चित्त हो, तब कथाके सुननेका

फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम्॥७२॥ मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम्॥७३॥ संदिग्धो हि हतो मंत्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ॥ ७४ ॥ हतमश्रोत्रिये दानमनाचारहतं कुलम् ॥ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन्दीनत्वभावना॥७५॥ मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा व श्रवणे फलम् ॥७६ ॥ पुनः श्रवांते सर्वेषां वैकुंठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ गोकर्ण तव गोविंदो गोलोकं दास्यति स्वयम्॥७७॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुंठं हरिकीर्तनाः ॥ श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः॥७८॥ सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद॥७९॥ विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह॥ जयशब्दा नमश्शब्दास्तत्रासन्बहवस्तदा॥८०॥

फल होता है॥ ७६ ॥ फिर कथान्तमें सबका वैकुण्ठलोक वास होता है, हे गोकर्ण ! तुझे तो श्रीगोविन्द वासुदेव भगवान् स्वयं गोलोक देंगे ॥ ७७ ॥ इसप्रकार सब वृत्तान्त कहकर वह भगवान्के पार्षद सब वैकुण्ठलोकको चलेगये, फिर श्रावण महीनेमें गोकर्णने कथाका आरम्भ किया ॥ ७८ ॥ फिर सात रात्रिशाली सप्ताह कथा को बहुत मन लगाकर सुना । हे नारदजी ! जब सप्ताह कथा समाप्त हुई तब ॥ ७९ ॥ विमानों और भक्तों समेत श्रीनारायण वासुदेव आकर प्रगट हुए तब चारोंओरसे जयजयध्वनि और नमः शब्द होने लगा ॥ ८० ॥

इस समय भगवान् द्वारकानाथने अत्यन्त प्रसन्न होकर वहां पाञ्चजन्य शंखध्वनि कर गोकर्णको अपने हृदयसे लगा लिया अपने रूपके समान बना लिया ॥८१॥ और जितने श्रोता थे उनको क्षणमात्रमें श्रीवैकुण्ठनाथने घनश्याम पिताम्बर युक्त किरीट कुण्डलधारी कर लिया ॥ ॥८२॥ और जो उस ग्राममें श्वानसे लेकर चाण्डालादि जातिके थे वह भी गोकर्णकी कृपासे विमानमें स्थित हुए ॥ ८३ ॥ उनको भगवान्ने उस स्थानमें भेज दिया जहां योगीजन गमन करते हैं और गोपाल श्रीकृष्णचन्द्र गोकर्ण सहित गोलोकको गए ॥ ८४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेसे भक्तवत्सल भगवान् ऐसे प्रसन्न होगए जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्र अयोध्यावासियोंको साकेत लोकको ले

पांचजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ॥ गोकर्णं तु समालिंग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥ श्रोतॄनन्यान्घनश्यामान्पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥ तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचांडालजातयः ॥ विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३ ॥ प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ॥ ८४ ॥ कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ॥ ८५ ॥ तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ॥ तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥८६॥ ब्रूमोऽद्य ते किं फलवृंदमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ॥ कर्णेन गोकर्णकथाक्षरं यैः पीतं च ते गर्भगता न भूयः ॥८७॥ वातांबुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ॥ योगैश्च संयाति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन याति याम् ॥ ८८ ॥

गये थे ॥ ८५ ॥ इसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी योगियोंको जो गोलोक दुर्लभ है उस गोलोकको उन्हें अपने साथ ले गये वहां सूर्य चन्द्रमा और सिद्धोंकी भी कभी गति नहीं होती ॥८६॥ जो सप्ताह यज्ञमें इस कथाके सुननेसे फल प्राप्त होता है, हे महात्माओ ! हम, उस माहात्म्यका कहाँ तक वर्णन करें जिन्होंने गोकर्णकी कथाके अक्षर कर्णद्वारा पान किये हैं वह फिर गर्भमें नहीं आवेंगे ॥ ८७ ॥ जिस गतिको सप्ताह सुननेसे प्राप्त होते हैं उस गतिको पवन, जल, पत्र भक्षण कर तपस्यासे देहके सुखानेवाले बहुत दिनोंसे उग्र तपके संचय

करनेवाले तथा योगी भी नहीं पहुंचते ॥८८॥ इस पवित्र इतिहासको शांडिल्य ऋषीश्वर चित्रकूटमें पाठकरनेसे ब्रह्मानंदसे व्याप्त हुए ॥ ८९ ॥
यह पवित्र आख्यान है जो इसका एक बार भी पाठ कर लेता है, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और जो श्राद्धमें पढ़ते हैं उनके पितरोंकी
तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषा
टीकायां गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सनत्कुमार बोले कि, अब हम तुम्हें सप्ताहश्रवणकी विधि सुनाते हैं, जो विधि धनसे
भीसाध्य है॥ १ ॥ प्रथम तो ज्योतिषीको बुलाकर मूहूर्त्त बूझे फिर जैसी विवाहादिकमें मण्डपरचना होती है उसी प्रकार रचना करे ॥ २ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं शांडिल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानंदपरिप्लुतः ॥ ८९ ॥ आख्यानमेतत्परमं
पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥ श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे
उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्षवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामः
सप्ताहश्रवणे विधिम् ॥ सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः॥१॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ॥
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥२॥ नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः॥ एते मासाः कथारंभे
श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥ मासानां विग्रहे यानि तानि त्याज्यानि सर्वथा॥सहायाश्चेतरे चात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च
ये ॥ ४ ॥ देशेदेशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ॥ भविष्यति कथा चात्र आगंतव्यं कुटुंबिभिः ॥ ५ ॥ दूरे
हरिकथाः केचिद्द् दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६ ॥

भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़, श्रावण यह छः महीने कथा सुनने वालोंको मोक्षदायक हैं ॥ ३ ॥ जो महीनोंके विग्रह हैं अर्थात्
भद्रा, दग्ध, व्यतीपात, वैधृति, गंडांत, रक्ष, मृत्यु, उत्पातादि निन्दित दिनोंको त्याग दे और सहाय जो अच्छा दिन नक्षत्रादि हैं सो सर्वथा
करणीय हैं ॥ ४ ॥ सब नगरमें यत्नपूर्वक अपने इष्टमित्रोंको यह बात प्रगटकर देनी कि, हमारे यहां अमुक बारको सप्ताहयज्ञका प्रारम्भ होगा
सब कुटुम्ब सहित तुम लोगोंको आना उचित है ॥ ५ ॥कोई हरिकथासे दूर है, कोई अच्युतके गुणकीर्त्तनसे दूर है, स्त्री शूद्रादिकोंको जिस

प्रकारसे बोध होय वह काम करना ॥ ६॥ देश देशमें जो विरक्त वैष्णवलोग कथाके प्रेमी और हरिगुणके कीर्त्तन करनेवाले हैं, उनके पास पत्र भेजने और यह लिखना ॥ ७ ॥ महादुर्लभ सात दिनतक सत्पुरुषोंकी सभा होगी और अपूर्व रसरूपी भगवान्की कथा होगी ॥ ८॥ श्रीमद्भागवतरूपी अमृतपानमें रसलंपट आप प्रेमीजन शीघ्र आइये॥९॥यदि आप लोगोंको सावकाश न हो तो एक दिनको तो अवश्यही आइये क्योंकि इस सभाका क्षणमात्रका सत्संग भी दुर्लभ है ॥ १० ॥ इस प्रकारसे उनको पत्र भेजकर बुलावे, और आयेहुवोंके लिए उत्तमवास और

देशेदेशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम्॥७॥सतां समाजो भविता सप्त रात्रं सुदुर्लभः ॥ अपूर्वरसरूपेव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः॥भवंतश्च तथा शीघ्रमायांतु प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥ नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ॥ सर्वथागमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥ एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ॥ आगंतुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥११॥ तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम्॥विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम्॥१२॥शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमंडनम्॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत्॥१३॥ अर्वाक्पंचाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ॥ कर्तव्यो मंडपः प्रोच्चैः कदलीखंडमंडितः ॥१४॥फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ॥ १५ ॥

उत्तमस्थान नियत करै ॥ ११ ॥ चाहे तीर्थमें चाहे उप वनमें चाहे वाटिकामें चाहे घरमें कथा सुनैं परन्तु वह कथाका स्थान कहीं बडी लम्बी चौडी पृथ्वीमें कल्पना करै जहां बहुतसे भवन अतिथि परदेशी लोगोंको ठहरनेको हो ॥ १२ ॥ जलादिकोसे मार्जन कर, बुहारीसे बुहार,गोबरसे लीप दे,फिर गेरू आदिक रंगोंसे चित्रितकर घरकी सामग्री उठाकर एक कोनेमें लगा दे ॥ १३ ॥पाँच दिन पहिले आसन संग्रह कर रक्खे केलेके वृक्षोंसे मंडित मण्डप ऊंचा बनावै ॥ १४ ॥ फल पुष्प पत्रादि चारोंओर वन्दनवार बांधे, और ध्वजा गाडै,वितान अर्थात् चंदोवा तानै ॥ १५॥

34

वेदिकाके ऊपर भागसे सातलोक अर्थात् सात स्थान बनावै उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बैठावै ॥ १६ ॥ प्रथम तो उनको यथायोग्य आसन दे,फिर
वक्ताको भी एक परमदिव्य सुन्दर ऊंचा आसन दे,जिसपर बैठकर कथा कहै ॥ १७ ॥ वक्ता उत्तरकी ओर को मुख करके बैठे और सुननेवाले
पूर्वकी ओर मुखकरके बैठे अथवा वक्ता पूर्वकी ओरको मुख करके बैठ तो श्रोता उत्तरकी ओरको अथवा पूजा करनेवाले और पूज्यके मध्यमें
पूर्वदिशामें सब सुननेवाले बैठें ॥ १८ ॥ १९ ॥ जो अपने धर्ममें विरक्त वैष्णव, ब्राह्मण वेद शास्त्रानुसार शुद्ध अथवा वेदशास्त्र जाननेवाला
दृष्टांतदेनेमें कुशल, धीर, निर्लोभ, ऐसा वक्ता होना चाहिये ॥ २० ॥ जो अनेक धर्मोंमें भ्रमते हैं अर्थात जहाँ जैसा देखा वहां धनके लिये

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥ पूर्वं तेषामास
नानि कर्तव्यानियथोत्तरम्॥वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मु
खस्तदा ॥ प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥ अथवा पूर्वदिग्ज्ञेयाः पूज्यपूजकमध्यतः ॥ श्रोतॄणा
मागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः॥१९॥विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्राभिशुद्धिकृत् ॥ दृष्टांतकुशलो धीरो वक्ता
कार्योऽतिनिस्स्पृहः ॥२०॥ अनेकधर्मविभ्रांताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः॥ शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पंडिताः
॥ २१ ॥ वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः॥ पंडितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥ वक्त्रा
क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ॥ अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ २३ ॥ नित्यं संक्षेपतः कृत्वा
संध्याद्यं संप्रयत्नतः ॥ कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

वैसाही मत स्वीकार कर लिया,स्त्रीलम्पट, पराई स्त्रियोंको चोरीसे ले भागनेवाले पाखण्डवादी यदि वह पंडित भी हों तो भी इस श्रेष्ठमहा
पुराणकी कथा उनसे न कहलावे, क्योंकि नीचअपने नीचपनको नहीं छोडता॥२१॥कथा कहनेवालेके समीप एक और भी पण्डित स्थापन
करना उचित है जो सन्देहोंके निवारण करनेमें समर्थ हो लोगोंको इच्छापूर्वक समझा सके ॥२२॥ फिर वक्ताको एक दिन पहिले व्रतके लिये
क्षौर कराना चाहिये,और अरुणोदय होते ही शौचादिकर्मसे निवृत्त हो स्नान करै ॥२३॥ प्रथम तो नित्य सन्ध्या संक्षेपसे करके कथाके विघ्न

के लिये गणेशजीका पूजनकरै ॥ २४ ॥ फिर पितरोंका तर्पण करके शुद्धिके अर्थ प्रायश्चित करै और एक मण्डल बना कर कृष्णचन्द्रका पूजन
करै ॥ २५ ॥ फिर "नमःकृष्णाय" इस मंत्रसे आरम्भ कर पुजा सम्पूर्ण करै और प्रदक्षिणा नमस्कारादि करके पूजाके अन्त स्तुति करै ॥ २६ ॥
हे करुणानिधान ! संसारसागरमें मग्नहुए मुझ दीनको जो कि मै कर्म मोहसे ग्रसित होरहाहूँ आप इस संसारसागरसे उद्धार कीजिये ॥२७॥ फिर
श्रीमद्भागवतकी भी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये फिर प्रीतिसे धूप दीप, नैवेद्य करै॥२८॥ फिर श्रीफल चढ़ाकर नमस्कार करै और प्रसन्नचित्त
हो स्तुति करै॥२९॥ श्रीमद्भागवतकी कथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्णरूपही है, हे नाथ! मैंने भवसागरसे मुक्ति होनेके लिये स्वीकार किया है ॥३०॥ यह

पितॄन्संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ मंडलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥ कृष्णमुद्दिश्य
मंत्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ॥ प्रदक्षिणनमस्कारान्पूजांते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणा
निधे ॥ कर्ममोहगृहीतांगं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥ श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ॥ कर्तव्या विधिना
प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥ २८ ॥ ततस्तु श्रीफलं दत्त्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं
तदा ॥२९॥ श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥ ३० ॥
मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया॥ निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव॥३१॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं
चाथ पूजयेत्॥ संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजांते तं च संस्तवेत्॥३२॥ शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रका
शेन मदज्ञानं विनाशय॥३३॥ तदग्रेनियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा॥ सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि॥३४॥

मेरा मनोरथ तुमसे ही सफल होगा सो महाराज मैंआपका दास हूं ऐसी कृपा करो कि यह सप्ताहयज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाय॥३१॥ ऐसे नम्र
वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करै, वस्त्राभूषणसे भूषितकर फिर पूजा करके स्तुति करै॥ ३२ ॥ हे कृपासिन्धु ! आप शुकदेव रूप ज्ञानदायक
सब शास्त्रोंके ज्ञाता हो, इस भास्कररूपी कथाके प्रकाशसे मेरा अज्ञान तिमिर नाश करो॥३३॥ फिर वक्ताके आगेकल्याणके निमित्त नियम करै,
प्रसन्नहो कर यथा शक्ति सातरात्रितक नियम धारण करै ॥ ३४ ॥

कथा भंगनिवृत्तिके लिये पांच ब्राह्मणोंका वरण करै, वह(ॐनमोभगवते वासुदेवाय)इस द्वादशाक्षर मंत्रका जप करते रहैं॥३५॥और वैष्णव ब्राह्मणोंको तथा हरिचरित्र कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार कर विनय पूर्वक उनसे आज्ञाले आप आसन पर बैठै ॥ ३६ ॥ लोक, धन, स्थान पुत्रादि सबकी चिन्ता त्याग करके कथामें शुद्ध बुद्धिसे मन लगावै उसको उत्तम फल प्राप्त होता है॥३७॥ सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहरतक कथा बांचनी योग्य है और शीघ्रता न करै धीरे कण्ठसे समझाकर कहै ॥३८॥ दुपहरको दोघड़ीके लिये कथाका विराम करे,कथाके अन्तमें वैष्णव लोग भगवान्का कीर्त्तन करैं ॥३९॥ मल मूत्रकी बाधा शान्तिके लिये लघु भोजन करना चाहिये उन कथा सुनने वालोंको चावल दुग्धादिका भोजन एक बार करना चाहिये॥ ४० ॥ यदि शक्ति हो तो सात रात्रितक व्रत करके कथा सुनै, अथवा घृतपान दुग्धपान करके सुनै ॥ ४१ ॥ वा फलाहार करके सुनै वा एकहीबार सूक्ष्म भोजन करै, अथवा जिस प्रकारसे कथा सुननेमें आलस्य न आवै सुख प्राप्त हो वह कामकरै॥४२॥ कथा सुननेके समय आलस्य न आवै इतना भोजन करना चाहिये,यदि उपवास करनेसे कथा सुननेमें विघ्न पडे तो वह भी अच्छा नहीं ॥४३॥

वरणं पंचविप्राणां कथाभंगनिवृत्तये ॥ कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ ३६ ॥ लोकवित्तधनागारपुत्रचिंतां व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम्॥ ३७ ॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरांतिकम् ॥ वाचनीया कथा सम्यग्धीरकंठं सुधीमता॥३८॥ कथा विरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ॥तत्कथामनुकार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा॥३९॥मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥ उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥ घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम्॥४१॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारणम् ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ ४३ ॥

हे नारदजी ! सप्ताहव्रत करनेवालोंके तुम नियम सुनो विष्णु दीक्षा विहीन जो गायत्रीका जप वा जिन्होंने भगवान्का मंत्र गुरुसे नहीं लिया है उनको कथा सुननेका अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यसे रहना, पृथ्वी पर शयन करना, पत्तलमें भोजन करना, कथा समाप्तिके समय नित्यप्रति भोजन पावै ॥ ४५ ॥ कथा सुननेवाले ब्रती रहैं, दो पत्तेवाला अन्न (दोपत्तेवाला अन्न उसको कोहते हैं जिसमें उपजनेके समय पृथ्वीमें दोपत्ते निकलैं) मधु, गरिष्ठ अन्न, स्वाभाविक दुष्ट अन्न और बासी अन्नका सदा त्याग करै ॥ ४६ ॥ काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ मोह, वैर कथा सुननेवाला त्याग दे ॥ ४७ ॥ कथाका ब्रती, वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गौ, व्रतधारी स्त्री, राजकुमार

सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु नारद॥विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः
पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ कथामाप्तौ भुक्ति च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४५ ॥ द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव
च॥भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥ कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ दंभं मोहं तथा द्वेषं
दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ४७ ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती॥४८॥
रजस्वलांत्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥ सत्यं शौचं दयां मौन
मार्जवं विनयं तथा ॥ उदारं मानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ॥ ५०॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥
अनपत्यो मोक्षकामश्शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५१ ॥ अपुष्पा काकवंध्या च वंध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा
च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

और कन्याओंकी निन्दा न करै ॥ ४८ ॥ रजस्वला, नीच, पतित, म्लेच्छ, चांडाल, द्वेषी, ब्राह्मण और जो वेदबाह्य हैं, उन लोगोंसे ब्रती बात न करै ॥ ४९ ॥सत्य, पातिव्रत्य, दया, मौन नम्रता, विनय, उदारता यह ब्रतीको करना उचित है॥५०॥दरिद्री, क्षयी, रोगी, निर्भाग्य, पापकर्मा जिसके पुत्र न हो और मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला इस कथाको सदा सुनै ॥ ५१ ॥ जिस स्त्रीको रजोधर्म न होता हो काकवन्ध्या अर्थात् एकबार जिसके बालक हुआ हो अथवा जिसके बालक होकर मरजाते हों, जिसका गर्भ गिरजाता हो वह स्त्री भी इस कथाको

प्रयत्नसे सुनै ॥ ५२ ॥ इन सातदिन तक जो विधि पूर्वक सुनै तो अक्षय फल होता है। यह दिव्य कथा अत्युत्तम है जो सुनेगा इसको यह यज्ञका फल देनेवाली है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार व्रतका विधान करके फिर उद्यापन करे, फलकी इच्छा करनेवालेको जन्माष्टमीके व्रतकी नाईं यह व्रत करना चाहिये ॥ ५४ ॥ और निष्काम भक्तोंको उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है, वह निष्काम वैष्णव श्रवण मात्रसे ही कृतार्थ हो जाते हैं॥ ५५ ॥ इस सप्ताह यज्ञकी समाप्तिमें श्रोताओंको पुस्तककी और वक्ताकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ ५६ ॥ प्रसाद, नैवेद्य,

एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत् ॥ अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३ ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ॥ जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकांक्षिभिः ॥ ५४ ॥ अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥५५॥ एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याऽतिभक्तितः ॥५६॥प्रसादतुलसी मालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ॥ मृदंगतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७ ॥ जयशब्दं नमश्शब्दं शंखशब्दं च कारयेत् ॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥ विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ॥ गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशांतये ॥ ५९ ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६० ॥ अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः॥ तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥

तुलसी, पुष्पमाला सुननेवालोंको देना चाहिये फिर मृदंग, ताल आदि बाजोंसे परमेश्वरका कीर्तन करना योग्य है ॥ ५७ ॥ फिर जय जय शब्दः नमःशब्द, शंखध्वनि करै, ब्राह्मणोंको और याचकोंको धन और अन्न दे ॥ ५८ ॥ जो मुख्य श्रोता विरक्त हों तो दूसरे दिन गीताका पाठ करै और जो गृहस्थ होय तो कर्म शांतिके निमित्त. हवन करै ॥५९॥६० ॥ अथवा गायत्रीसे सावधान होकर हवन करै। क्योंकि यह महापुराण तत्त्वसे गायत्रीमय ही है ॥ ६१॥

जो होम करनेमें असमर्थ हो तो बुद्धिमान उसके फलकी सिद्धिके लिये होम करने योग्य वस्तु देदे, अनेक प्रकारके छिद्रशांतिके अर्थ और न्यूनता अधिकादि ॥ ६२ ॥ दोषोंके शान्त करनेको विष्णुसहस्रनामका पाठ करै, इससे सब फल पूर्ण हो जाता है, क्योंकि इससे परे और कुछ नहीं ॥ ६३ ॥ फिर बारह ब्राह्मणोंको बूरा मिश्रित खीरसे भोजन करावै और व्रतपूर्तिके निमित्त सुवर्णकी गाय देनी योग्य है ॥ ६४ ॥ और समर्थ हो तो तीन पल सोनेका सिंहासन बनाकर उसके ऊपर सुन्दर अक्षरोंसे लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापन करै ॥ ६५ ॥ फिर पूजन कर आवाहनादिक उपचार दक्षिणा सहित वस्त्रालंकार गन्धादिसे पूजित जितेन्द्रिय॥६६॥ आचार्यके लिये

होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ॥ नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः ॥ ६२ ॥दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः॥६३॥द्वादश ब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः॥ दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४ ॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥ संपूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ॥ वस्त्रभूषणगंधाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६ ॥ आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबंधनैः ॥ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥ फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ॥ धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥६८॥ कुमारा ऊचुः ॥ इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ॥ सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७० ॥

बुद्धिमान् पुरुष उसका प्रदान करै तो भवभयबन्धनसे मुक्त हो जाय इसप्रकारके सब पाप हरनेवाले विधानके करनेसे ॥ ६७ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण फलदायक होता है यह धर्मार्थकाम मोक्षका साधन है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ सनत्कुमार बोले कि, हे नारद ! यह तो सब कुछ तुमको सुनाया अब क्या सुननेकी इच्छा है, श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेसे ही भुक्तिमुक्ति हाथों हाथ होती है ॥ ६९ ॥ सूतजी बोले कि ऐसे मनोहर वचन सुनकर फिर महात्मा नारदजी श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवणकरने लगे जो कथा सब पापोंकी हरनेवाली पुण्य भुक्ति

मुक्तिको देती है ॥ ७० ॥ इस सप्ताह यज्ञको सब जितेन्द्रिय महात्मा और सब प्राणियोंने यथाविधि श्रवण करके पुरुषोत्तम भगवानको प्रसन्न किया ॥ ७१॥ उसके अन्त में ज्ञान वैराग्य और भक्तिकी बडी पुष्टि हुई, सब प्राणियोंके मन हरनेवाले ज्ञान वैराग्य तत्काल तरुण हो गये ॥७२॥ नारदजी अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेसे कृतार्थ होगये, शरीर पुलकित सर्वांगमें आनन्द भरगया ॥ ७३ ॥ इसप्रकार भगवान्के प्यारे नारदजी कथा सुनके प्रेमसे गद्गदवाणी हो, हाथ जोड सनकादिकोंसे॥७४॥नारदजी बोले कि,मैं धन्य,हे करुणासागर । आपने मेरे ऊपर बडी कृपाकरी, आज मुझे सब पापहरनेहारे हरि भगवान् मिल गये ॥ ७५ ॥ हे तपोधन ! हे कथा सुननेवाले महात्माओ ! सब धर्मोंसे श्रवणधर्म अधिक

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ॥ यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥ तदंते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता पुरा ॥ तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७२ ॥ नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे॥ पुलकीकृतसर्वांगः परमानंदसंभृतः ॥७३॥ एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृतांजलिः॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ॥ अद्य मे भगवाँल्लब्धः सर्वपापहरोहरिः ॥७५॥ श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ॥ वैकुंठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते॥७६॥सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ॥ परिभ्रमन्समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७ ॥ तत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचंद्रमाः ॥ कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन्भागवतं शनैश्शनै ॥ ७८ ॥

है, किसकारण कि जिसके श्रवणसे वैकुण्ठमें स्थिति और श्रीकृष्णचन्द्र प्राप्त होते हैं ॥७६॥ सूतजी बोले कि, हे वैष्णवोत्तम ! नारदजी जिस समय यह कह रहे थे उसी समय कहींसे विचरतेहुये योगीश्वर शुकदेवजी आगये ॥ ७७ ॥ षोडश वर्षकी अवस्था, वेदव्यासजी महाराजके पुत्र महाज्ञानसागरके चन्द्रमा श्रीमद्भागवतके प्रकाशक, कथावसानमें अपने ही लाभसे परिपूर्ण, प्रेमपूर्वक शनैः शनैः श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे और परमात्माके ध्यानमें मग्न थे ॥ ७८ ॥

बडे बडे उग्र तेजस्वी महात्मा इनको देखते ही सब सभासद उठ खडे हुए और महादिव्य आसन दिया और नारदजीनें उनका प्रीतिपूर्वक पूजन किया, तब सुखसे स्थित हो श्रीशुकदेवजी बोले ॥ ७९ ॥ वेद कल्पवृक्ष है, उसका यह भागवत फल है, सो मुझ शुकदेवजीके मुखसे पृथ्वीपर गिरा है, अमृतरूपी रससे संयुक्त है, “जिस फलमें तोतेकी चोंच लग जाती है वह अधिक मीठा हो जाता है, यहाँ शुकरूपी शुकदेव जीने इसका स्वाद लिया है, इस कारण यह अधिक मीठा हो गया है,यह भाव है”यह भक्तिरूप रससे परिपूर्ण है, हे रसिको ! हे भगवच्चरितामृतपान करने वाले महात्माओ ! इससे मोक्ष भी न्यून है, इस कारण इसे बारंबार पान करो ॥ ८० ॥ जिस श्रीमद्भागवतमेंसे फलाकांक्षारूप कपट

दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ॥ प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ॥७९॥ श्रीशुक उवाच ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥८० ॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्रपरमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रुषुभिस्तत्क्षणात्॥ ८१ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्प्रपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥ ८२ ॥

धर्म सम्यक् त्याग दिया है केवल ईश्वरसेवारूप धर्म निरूपण किया है मत्सरता रहित सत्पुरुषोंका इसमें अधिकार है, महामुनि श्रीनारायणके बनाये हुए, इस श्रीमद्भागवतमें वास्तव परमार्थरूप एक परमेश्वर ही जानने योग्य हैं,जो कल्याणदायक तीनों तापका नाश करनेवाला है. निश्चय श्रीमद्भागवतके सुननेवाले माहात्माओंके हृदयमें शीघ्र ईश्वर प्राप्त हो जाता है, क्या और शास्त्रोंसे शीघ्र हृदयमें प्राप्त हो जाता है ? अर्थात् कभी नहीं होता ॥ ८१ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराणोंमें श्रेष्ठ,वैष्णवोंका परमधन है;जिसमें भक्तोंके परमप्रिय ज्ञान, परब्रह्म श्रीकृष्ण ही गाये जाते हैं जिस श्रीमद्भागवतमें ज्ञान, वैराग्य भक्ति सहित निष्कर्मतारूप ब्रह्म हृदयमें प्राप्त होते हैं इसके श्रवण करनेसे, पाठकरनेसे, विचार करनेसे, भक्ति

करनेसे, मनुष्य मुक्त हों जाता है ॥ ८२ ॥ स्वर्गमें सत्यलोकमें कैलासमें वैकुण्ठमें यह रस नहीं है इसलिये हे सद्भाग्यवाले महात्मा पुरुषो ! इस आनन्दरूपी रसको पियो, कभी मत त्यागन करो यह रस बडे भाग्यसे प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ सूतजी बोले कि, जिस समय श्रीशुकदेवजीने मधुरवाणीसे प्रेमपूर्वक यह मनोहर वचन कहे, उसी समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द भक्तहितकारी वृन्दावनविहारी पीताम्बर पहिरे मुकुट शिरधरे त्रिभंगी छबि करे चन्दन केशरका तिलक दिये वनमाल हिये मुरलीकर धारण किये, ध्रुव, प्रह्लाद, बलि, उद्धव, अर्जुनादिक भक्तोंको संग लिये उसी सभाके मध्यमें प्रगट हो गये इस अद्भुत आश्चर्यको देख सबको परमानन्द प्राप्तहुआ और सबने खडे होकर बडे आदर सन्मानसे

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुंठे नास्त्ययं रसः ॥ अतः पिबतु सद्भाग्या मा मा मुंचत कर्हिचित् ॥ ८३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे सति बादरायणे मध्ये सभायां हरिराविरासीत ॥ प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सूरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्त्तनमग्रतस्तदा ॥ भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय ॥ ८५ ॥ प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत ॥ इंद्रोऽवादीन्मृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता रसविरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८६ ॥ ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ॥ अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥ ८७ ॥ मत्तो वरं भागवताः श्रृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि सांप्रतम् ॥ श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥ ८८ ॥

ऊंचे आसनोंपर बैठाया और नारदजीने प्रेम सहित प्रथम श्रीवैकुण्ठनाथ वासुदेवका पूजन किया फिर उद्धवादिकका पूजन किया ॥ ॥८४॥ फिर आसनोंपर बैठेहुए भगवान्के सन्मुख सब महात्मा पुरुष कीर्तन करने लगे, तब पार्वती सहित शिव और ब्रह्माजी कीर्तन दर्शन करनेके लिये वहाँ आये ॥ ८५ ॥ और सब खड़े होगये, प्रह्लादने खडतालैं धारणकरीं, तरलगतिसे उद्धवने हाथमें छैने लिये नारदजी वीणा स्वर भेदमें कुशल होनेसे अर्जुनने राग गाना आरम्भ किया, इन्द्रने मृदंग लिया सनत्कुमारादि जयजय अथवा धन्य धन्य कहने लगे, और सबके आगे रसकी बिरचनता भाव बतानेवाले श्रीशुकदेवजी हुए ॥ ८६ ॥ इस स्थानमें भक्ति ज्ञान वैराग्यका

तिगड्डा नाचने लगा, नटोंकी नाईं यह अलौकिक नाटक और कीर्तन देखकर श्रीवैकुण्ठविहारी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले हे भक्तो ! तुम्हारे कीर्तनसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ जो इच्छा हो सो वर मांगो, श्रीभगवान्‌के यह वचन सुनकर सब हरिभक्त प्रेममें मग्न हो गद्गद्कंठसे बोले ॥८७॥८८॥ महाराज ! सप्ताहकी कथाओंमें आपको इसीप्रकार प्रगट होना चाहिये, अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रगट होना उचित है, यही हमारा मनोरथ पूर्ण करो, बहुत अच्छा ऐसा कहकर श्रीनारायण अंतर्धान हो गये ॥ ८९ ॥ इसके उपरान्त नारदजी सनकादिकके चरणोंको नमस्कार करतेहुए और शुकदेवजी तथा अन्य तपस्वियोंको भी नमस्कार किया, वह सब मोहरहित प्रसन्न हो

नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात्॥ मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वान्तरधीयताच्युतः ॥ ८९ ॥ ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ॥ अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९० ॥ भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ॥ अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥ दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ॥ संसारसिंधौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥ शौनक उवाच ॥ शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ॥ सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिधि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥ सूत उवाच ॥ आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ॥ नवमीतो नभस्ये च कथारंभं शुकोऽकरोत् ॥ ९४ ॥

कथामृत पान करके अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥९०॥ और भक्ति ज्ञान वैराग्य सहित शुकदेवजीने इन तीनोंको इस श्रीमद्भागवतमें स्थापित किया है, इसलिये श्रीमद्भागवतके सेवन करनेसे भगवान् वैष्णवोंके चित्तमें नित्य प्राप्त होते हैं॥९१॥ दरिद्र, दुःखज्वरसे दुःखित, मायापिशाचिनीसे मर्दित, संसार सागरमें गिरे हुवोंको कल्याणके लिये यह श्रीमद्भागवतकी कथा बलवान् है ॥ ९२ ॥ शौनकजी बोले कि, हे आनन्ददायक ! श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित् को यह कथा कब सुनाई और महात्मा गोकर्णने कब सुनाई और सनत्कुमारने नारदजीको कब सुनाई, यह हमारा संशय आप कृपाकरके दूर कीजे ॥ ९३ ॥ सूतजी बोले कि, श्रीकृष्णचन्द्र त्रिलोकीनाथके परलोकजानेके तीस

वर्ष उपरान्त भादोंके शुक्लपक्षकी नवमीको शुकदेवजीने यह कथा राजा परीक्षित्को सुनाई ॥ ९४ ॥ राजा परीक्षित्को कथा सुनानेके दोसौ वर्ष पीछे आषाढके शुक्लपक्षमें गोकर्णने कथाका आरम्भ किया था ॥ ९५ ॥ उसके पश्चात् फिर कलियुगके तीनसौ वर्ष व्यतीत होनेसे कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें सनकादिकोंने नारदजी को कथा सुनाई ॥ ९६ ॥ हे पापरहित ! जो कुछ तुमने बूझा सो मैंने तुमको सुनाया, कलियुगमें यह श्रीमद्भागवतकी वार्ता संसारके रोगोंको नाश करनेवाली है ॥ ९७ ॥ श्रीकृष्णकी प्यारी सब पापोंकी शमन करनेहारी मुक्तिके कारण भक्तिकी लीला करनेहारी यह कथा है, जो जो महात्मा प्रेम प्रीतिसे इस कथाका पान करते हैं उनको और तीर्थोंके सेवन करनेकी क्या आवश्यकता है ॥ ९८ ॥ यमराजने पाश हाथमें लिया तब अपने दूतोंको कानमें कहा कि, जो पुरुष भगवत् कथारसमें मत्त हैं उनके निकट कभी मत जाइयो मैं औरोंको निग्रह करता हूं परन्तु वैष्णवोंका दास हूं, क्योंकि वह प्रतिदिन भगवत्की सेवा करते रहते हैं ॥ ९९ ॥ इस असार संसारमें विषयरूपी बिषके संसर्गसे व्याकुलबुद्धिवालोंको उचित है कि आधेक्षणको तो अतुल अमृतरूपी श्रीशुकदेवजी महाराजकी गाथाको कल्याणके निमित्त पान करैं, अरे कुत्सित कथाके कुमार्गमें क्यों व्यर्थ फिरते हो इस कथाके श्रवण करनेसे निश्चय मुक्ति होती है, इस वार्त्ताके महाराजा परीक्षित् साक्षी हैं ॥ १०० ॥

परीक्षिच्छ्रवणांते च कलौ वर्षशतद्वये ॥ शुद्धे शुचौ नवम्याञ्च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ ९५ ॥ तस्मादपि कलौ प्राप्ते
त्रिंशद्वर्षगते सति॥ ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥ इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥
कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ ९७ ॥ कृष्णप्रियं सकलकल्मलनाशनं च मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलास
कारि ॥ संतः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८ ॥ स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथासु मत्तान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥ असारे
ससारे विषयविषसंगाकुलधियः क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथाऽतुलसुधाम् ॥ किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे
कुत्सितकथे परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्येककथने ॥ १०० ॥

रसप्रवाहसे युक्त श्रीशुकदेवजीने यह कथा कही है जो कोई इसे कण्ठमें धारण करता है, वह वैकुण्ठका प्रभु होता है ॥ १०१ ॥ हे शौनक ! इस प्रकारसे यह परमगुह्य सब सिद्धांतोंका सिद्धान्त अनेक शास्त्रोंकी आलोचनाकर कहा है इस जगत्में शुक कथासे निर्मल और कुछ नहीं है परमसुखके कारण द्वादशस्कंधात्मक श्रीमद्भागवतरसका पान कर ॥ १०२ ॥ जो नियमित होकर इस कथाको श्रवण

रस प्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ॥ कण्ठे संबध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ॥१०१॥ इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुंजं विलोक्य ॥ जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कंधसारम् ॥१०२॥ एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ॥ तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्नहि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥ १०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

करते हैं और भक्ति प्रीतिसे शुद्ध वैष्णवोंके आगे सुनाते हैं, वह वक्ता श्रोता सम्यक् विधान करनेसे सम्पूर्ण फलको प्राप्त होते हैं, सत्य वचनसे अधिक संसारमें कोई वस्तु भी असाध्य नहीं है ॥ १०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कान्यकुब्जवंशोद्भवसुखानंदमिश्रसूनुपण्डितज्वालाप्रसादकृत भाषाटीकायां श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ शुभमस्तु ॥

कवित्त–नित्यप्रति प्रेम नेम यम व्रत धारकर राखिकै विश्वास सुनै कथा मन लायकै ॥ ताके सब पापके पहारहू विलाय जात होय सो पवित्र ब्रह्म तीर्थमें नहायकै ॥ कैसोही हो कार्य अभिलाष हियेमाहिं धरो तुर्त होय सिद्ध सुखपाइये अघायकै ॥ कहै ज्वालाप्रसाद जो पाठ करै सदैवहू धर्म अर्थ काम मोक्ष लेवै सो बुलायकै ॥ १ ॥

दोहा–श्रीव्रजचन्द मुकुन्दको, ध्यान हृदयमें लाय । कियो महातमको तिलक, यदुपति रहैं सहाय ॥

एतच्छ्रीमद्भागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं मुंबय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराजेन स्वकीये “श्रीवेंकटेश्वर” स्टीम्–यन्त्रालयेऽङ्कितम् ।
वैशाख कृष्ण शके १८४५, संवत् १९८०

श्रीभागवतस्थवृत्तलक्षणानि उवाचपरिगणनं ग्रन्थसंख्यागणना च।

॥ श्रीहरिः ॥ निगमकल्पतरोः० ॥ द्रुतविलंबितमाह नभौ भरौ ॥ जयजय जह्यजामजित० ॥ यह वेदस्तुतिमें नर्कुटक छंद है ॥ ताको लक्षण ॥ यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्कुटकम्॥वामबाहुकृतवामकपोलो० ॥ इहां युगलगीतमें स्वागता छंद है॥तस्यलक्षणम् ॥ स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम् ॥ जन्माद्यस्य यतो० ॥ यह शार्दूलविक्रीडित छन्दहै ॥ तस्य ल० ॥ सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥॥ नृवाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं० ॥ यह रुचिरा छंद है॥ तस्य लक्षणम्॥ जभौ सजौगिति रुचिराचतुर्ग्रहैः॥चतुर्थमें दक्षयज्ञकी स्तुतिमें ॥सदस्याऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र०॥ यह मन्दाक्रांता छंदहै ॥ तस्यलक्षणम् ॥ मंदाक्रांतांबुधिरसनगैर्मोभनौ तौगयुग्मम् ॥ रुद्र उवाच॥ तववरदवराङ्घ्रा०॥यह मालिनी छन्द है॥तल्लक्षणम्॥ननमयययुततेयं मालिनी भोगिलोकैः॥पत्न्य ऊचुः॥यज्ञोयं तव यजनाय०॥ यह प्रहर्षिणी छन्दहै ॥ तल्लक्षणम्॥आशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षणीयम्॥सिद्धा ऊचुः॥अयं त्वत्कथामृष्टपी यूषनद्याम्॥यहभुजंगप्रयातछन्द है॥तल्लक्षणम्॥भुजंगप्रयातंचतुर्भिर्यकारैः ॥ यजमान्युवाच॥स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः० ॥ यह स्रग्विणी छन्दहै॥तल्लक्षणम्॥कीर्त्तितैषा चतूरेफिकास्रग्विणी॥लोकपाला ऊचुः॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं यह वातोर्म्मी छन्दहै॥तल्लक्षणम्॥वातोर्म्मीयं गदिताम्भौतगौगः॥ब्राह्मणा ऊचुः॥त्वं क्रतुस्त्वंहविः०॥यहभी स्रग्विणी छन्दहै॥योगेश्वरा ऊचुः॥जगदुद्भवस्थितिलयेषु०॥यह मंजुभाषिणी छन्द है॥तल्लक्षणम्॥सजसा जगौ च यदिमंजुभाषिणी॥गंधर्वाप्सरसऊचुः॥ अंशांशास्ते देवमरीच्यादय एते०॥यह मत्तमयूर छंद है ॥ तल्लक्षणम् ॥ वेदैरंध्रैर्म्तौयसगा मत्तमयूरम् ॥ सप्तममें प्रह्लादचरित्र देवतानकी स्तुतिमें ॥ चारणा ऊचुः॥ हरेतवांघ्रिपंकजम्०॥यह प्रमाणिका छंदहै॥तल्लक्षणम्॥प्रमाणिका जरौलगौ॥तीर्थंचक्रे नृपाणां यदजनियदुषु०॥यहस्रग्धराछंदहै॥ ताको लक्षण ॥ म्रभ्नैर्यानांत्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्॥इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा० ॥ यह भीष्मजीकी स्तुति॥ पुष्पिताग्रा छंद है ताको लक्षण॥अयुजि नयुगरेफतोयकारो युजि तु नजो जरगाश्च पुष्पिताग्रा॥नायं देहो देहभाजां नृलोके०॥यहशालिनी छंद है॥तल्लक्षणम्॥ मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः॥इति छंदांसि॥अथ उवाच॥प्रथमस्कंधमें ॥ वेदव्यास०॥३॥सूत०॥२३॥ ऋषय० ॥२॥शौनक०॥६॥नारद०॥३॥ अर्जुन०॥१॥भगवान्० ॥२॥ कुन्त्युवाच॥ १॥भीष्म उवाच॥ १॥ राजोवाच॥३॥ ब्रह्मणा ऊचुः ॥ १॥युधिष्ठिर उ० ॥४॥संजय०॥१॥ धारण्युवा० ॥१॥धर्म उ० ॥ १ ॥ प्रथमस्कंधमें सब उवाच ६३ हैं ॥ अथ द्वितीयस्कंध ॥ शुकउ०॥८॥राजोवा०॥३॥शौनकउ० ॥२॥सूत०॥४॥ नारदउ० ॥१॥ब्रह्मा उ०॥४॥भगवानु०॥२॥द्वितीयस्कंधमें सब उवाच२४हैं॥अथ तृतीयस्कंधमें॥शुक उ०॥१४॥राजोवा०॥२॥सूत उ०॥५॥विदुर०॥११॥

उद्धव ३ भगवान् २० मैत्रेय ४२ शौनक २ कुमाराः १ देवाः २ ऋषिरु० ४ ब्रह्मो० ८ मनु २ ऋषयः२ दिति ३ कश्यप २ मुनयः १देवहूती ७ जीव १ ॥ तृतीयस्कन्धमें सब उवाच १३४ हैं॥अथ चतुर्थस्कंधे ॥मैत्रेय ६६ विदुर ९ शुक २ अत्रि १ देवाः२सती १ ऋषिरु०१भगवान्६ देवी १ ब्रह्मा २ दक्ष २ महादेव १ राजो०९सूत २ऋत्विजः १ सदस्याः१ रुद्र ३ भृगु १ इंद्र १पत्न्यः १ ऋषयः २सिद्धाः१यजमानी१ लोकपालाः १ योगेश्वर १ अग्नि १ ब्राह्मण १ पृथ्वी १ देव्यः१राम २ प्रचेतस २ सुरुचि १ नारद १ध्रुव ३ मुनयः २ मनु १ धनद १ सुनंदनंदौ १ अंग२ सदसस्पतयः १ वेन १पृथु४ प्रजा१धरा १ सनत्कुमार१॥ चतुर्थ स्कन्धमें सब उवाच १५९ हैं॥अथ पंचमस्कंधे॥ राजो०६शुक२२ब्रह्मो०१भगवान् २ ऋषभदेव३ऋषिरु० ४ सहो १ब्राह्मण ३ रहूगण१भद्रश्रवस १॥ पंचमस्कंधमें ४२ हैं॥अथ षष्ठस्कंधे॥राजो० १० शुक२९बादरायणि६विष्णुदूताः २ऋषिरु० ३ ब्रह्मो०१ विश्वरूप १ देवा३यम १ सूत ३ प्रजापति १ भगवान् ३ दक्ष१वृत्र १ इंद्र १ परीक्षित् १ चित्रकेतु४अंगिरा२पार्वती१ दिति २ कश्यप २ नारद २ जीव१॥ षष्ठस्कंधमें सब ९२हैं॥अथ सप्तमस्कंधे ॥ राजो० २ शुक ३ नारद २८युधिष्ठिर ६ऋषि१हिरण्यकशिपु९ यम २ प्रह्लाद ८ ब्रह्मो० ४ गुरु १ दैत्यपुत्रा१ इंद्र २ रुद्र १ विद्याधर १ सिद्धा १ पितरः १ऋषयः १ नागा १ मनवः१प्रजापतयः १ गंधर्वा१चारणा १ किंपुरुषा वैतालिका १ किन्नरा १ विष्णुपार्षदा १ भगवान् ४ ब्राह्मण १ ॥ सप्तमस्कंधमें सब ८२ हैं ॥ अथ अष्टमस्कंधे॥राजो०७ ऋषि २ मनु १ शुक ४९ सूत ३ गजेंद्र १ गुरु १ भगवान्११ब्रह्मो० ४प्रजापति १शिव२ बलि६ विंध्यावली१नारद १बादरायणि १ अदिति ३ कश्यप १ प्रह्लाद १ शुक्र १॥ अष्टमस्कंधमें ९९ हैं ॥ नवमस्कन्धे ॥ राजो० ८ शुक ३१ सूत१ब्रह्मा १ शंकर १ भगवान् २ बादरायणि ४ अंबरीष १ दुर्वासा १ अंशुमान १ ब्राह्मण १ देवा १ पुरूरवा १ उर्वशी२ ययाति १ यदु१ पूरु१ शकुंतला १ दुष्यंत१॥ नवमस्कंधमेंसब६१हैं॥ अथ दशमस्कन्धपूर्वार्द्धे॥राजो० १०शुक ९३ सूत३वसुदेव ५ देवकी १ भगवान् १९नंद ३ नंदादय ऊचुः१ गर्ग२नारद १ब्रह्मा १ नागपत्न्यः१ काली १ ऋषि२गोपा ऊ० १ यज्ञपत्न्यः १ इंद्र १ सुरभि१बादरायणि ५ वरुण १ गोप्य ऊ० ६ सर्प १अक्रूर९सैरंध्री१चाणूर १ गुरु १समुद्र १ उद्धव २ धृतराष्ट्र१॥पूर्वार्द्धमें सब १६८ हैं ॥ अथ उत्तरार्द्धे ॥ शुक७३भगवान् २९ राजो० १४ मुचकुन्द २ बादरायणि १२रुक्मिणी२ ब्राह्मण ३ रति १ युधिष्ठिर ३ कुन्ती १ वसुदेव४द्रौपदी १ सत्यभामा १ जांबवती १ भद्रा १ मित्रविंदा १ लक्ष्मणा २ कालिंदी २ महिष्यः २ मुनयः १ सूत ३ देवकी १ बलि १ श्रुतदेव १ भूमि १ उषा १ चित्रलेखा १ज्वर १ रुद्र १ नृग१नारद ५ ऋषि ४ ऋषयः ३ दूत १ उद्धव १ राजा १ सारथि १ अर्जुन १ परीक्षित १ सनंदन १ श्रुतय ऊ० १ ॥ उत्तरार्द्धमें सब १९०हैं इति दशमः॥अथ एकादशस्कंधे॥बादरायणि२राजो०७

शुक १३ वसुदेव १ नारद ३ निमि ४ कवि १ हरि १ अंतरिक्ष १ प्रबुद्ध १ पिप्पलायन १ आविर्होत्र१ द्रुमिल १ चमस १ करभाजन १ देवाऊ० १ ब्रह्मा १ भगवान् ४४ उद्धव २३ यदु १ ब्राह्मण ४ पिंगला १ सनकादयः १ ऋषि१द्विज१ऐल १ एकादशमें सब ११६हैं॥ अथ द्वादशस्कंधे ॥ शुक ५ राजो०२ सूत १८शौनक ४याज्ञवल्क्य १मार्कंडेय ३ भगवान् ३ ऋषि ३ ॥ द्वादशमें ३७ हैं॥ सब १२ स्कंधोंका जोड१२६७ ॥

अथ स्तुतिर्लिख्यते ॥ प्रथमस्कन्धमें अर्जुनस्तुति २ कुंतीस्तुति १ भीष्मस्तुति ३॥ द्वितीयमें तृतीयमें महदादिकृस्तु०४ब्रह्मस्तुति ५ ऋषिस्तुति वराहकी ६ देवस्तुति ब्रह्माकी ७ कुमारस्तुति ८ कर्दमस्तुति ९ जीवस्तुति १० देवहूतिस्तु० ११ ॥ चतुर्थमें नरनारायणस्तुति १२ शिवप्रार्थना १३ दक्षसे क्षमाकराई १४ दक्षस्तुति विष्णुकी १५ऋत्विज १६ सदस्य १७ रुद्र१८भृगु १९ ब्रह्मा २०इन्द्र२१ पत्नी २२ ऋषि २३सिद्धा २४यजमानी २५लोकपाल २६ योगेश्वर २७ ब्रह्मा२८अग्नि २९ देवता ३० गंधर्वाप्सरा३१विद्याधर ३२ ब्राह्मण ३३ ध्रुवस्तु० ३४ पृथुस्तु० ३५पृथ्वीकृत पृथुस्तुति ३६पृथुकृतविष्णुस्तव ३७ प्रजाकृतस्तुति पृथुकी ३८ प्रचेताकृत विष्णुस्तुति ३९ ॥ पंचममें ऋत्विग्जनकृतविष्णुस्तु० ४० भवकर्तृक संकर्षणस्तु० ४१ भद्रश्रवःकर्तृकहयग्रीव० ४२ प्रह्लादकृत नृसिंहस्तुति ४३ लक्ष्मीकर्तृक भगवत्स्तु० ४४ सत्यव्रतकर्तृक मत्स्यस्तु० ४५ पृथ्वीकर्तृक वराहस्तु० ४६ हनुमत्कर्तृकरामस्तु० ४७ नारदकर्तृक नरनारायणस्तु० ४८॥ षष्ठस्कन्धमें हंसगुह्यस्तव ४९ वृत्रदेवकर्तृक विष्णुस्तु० २० पुनः देवकृत विष्णुस्तव ५१ चित्रकेतुकृतसंकर्षणस्तव ५२ ॥ सप्तमस्कंधमें ॥ हिरण्यकशिपुकर्तृक विष्णु० ५३ ब्रह्मकर्तृकनृसिंहस्तव ५४ रुद्रकर्तृकनृ०५५ इन्द्रकर्तृक नृ० ५६ ऋषिक०नृ० ५७पितृक०नृ० ५८सिद्धक०नृ० ५९विद्याधरक०नृ० ६० नागकन्याक० नृ० ६१ मनुक० नृ० ६२ प्रजापतिक० नृ० ६३ गधर्वक० नृ० ६४ चारणक० नृ० ६५यक्षक० नृ० ६६किंपुरुषक० नृ० ६७ वैतालिकक० नृ० ६८ किन्नर० नृ० ६९ विष्णुपाष० नृ० ७० प्रह्लाद० नृ० ७१ पुनर्ब्रह्मक० नृ० ७२॥अष्टममें॥मनुकृतविष्णुस्तव ७३ गजेंद्रकृतविष्णुस्तव ७४देवकृ०वि०स्त० ७५ ब्रह्मकृत वि०स्त० ७६ देवादिकृ०शिवस्त० ७७ शिवकृत० वि० स्त० ७८ अदितिकृत वि० स्त० ७९ ब्रह्मकृत वि० स्त०८० सत्यव्रतकृत० वि० स्त० ८१ ॥ नवमस्कंधमें ॥ अंबरीषकृतसुदर्शनस्तव ८२ अंशुमत्कृतकपिलस्तुति ८३॥ दशममें पूर्वार्धमें ॥ गर्भस्तुति ८४वसुदेवकृतस्तव ८५ देवकीक० स्तुति ८६ यमलार्जुन० स्तव ८७ ब्रह्मस्तुति ८८ नागपत्नी० स्तु० ८९इंद्रकृ० स्तुति ९० नारदस्तु० ९१ अक्रूरस्तुति ९२ पुनःअक्रूरस्तव ९३ ॥उत्तरार्द्धमें॥मुचुकुंदस्तुति ९४ भूमि० स्तव० ९५ ज्वर०स्तव ९६ रुद्रस्तुति ९७ कौरवकृतबलदेवस्त० ९८ राजकृतस्तव९९बलिराजकृ० स्त० १०० श्रुतदेवस्त० १०१ बहुलाश्व० स्तव० १०२ देवस्तव १०३ ॥ एकादशमें ॥ देव० स्तव १०४ द्वादशमें मार्कंडेयस्तव १०५ ॥

जिला मथुरा, ग्राम गोवर्धननिवासी महाभारती-पंडित-गोवर्धनात्मजस्य आनन्दवल्लभस्य कृतिरियं परोपकाराय ।

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकासहिते प्रथमस्कन्धप्रारंभः ॥

42

प्रथम स्कन्ध

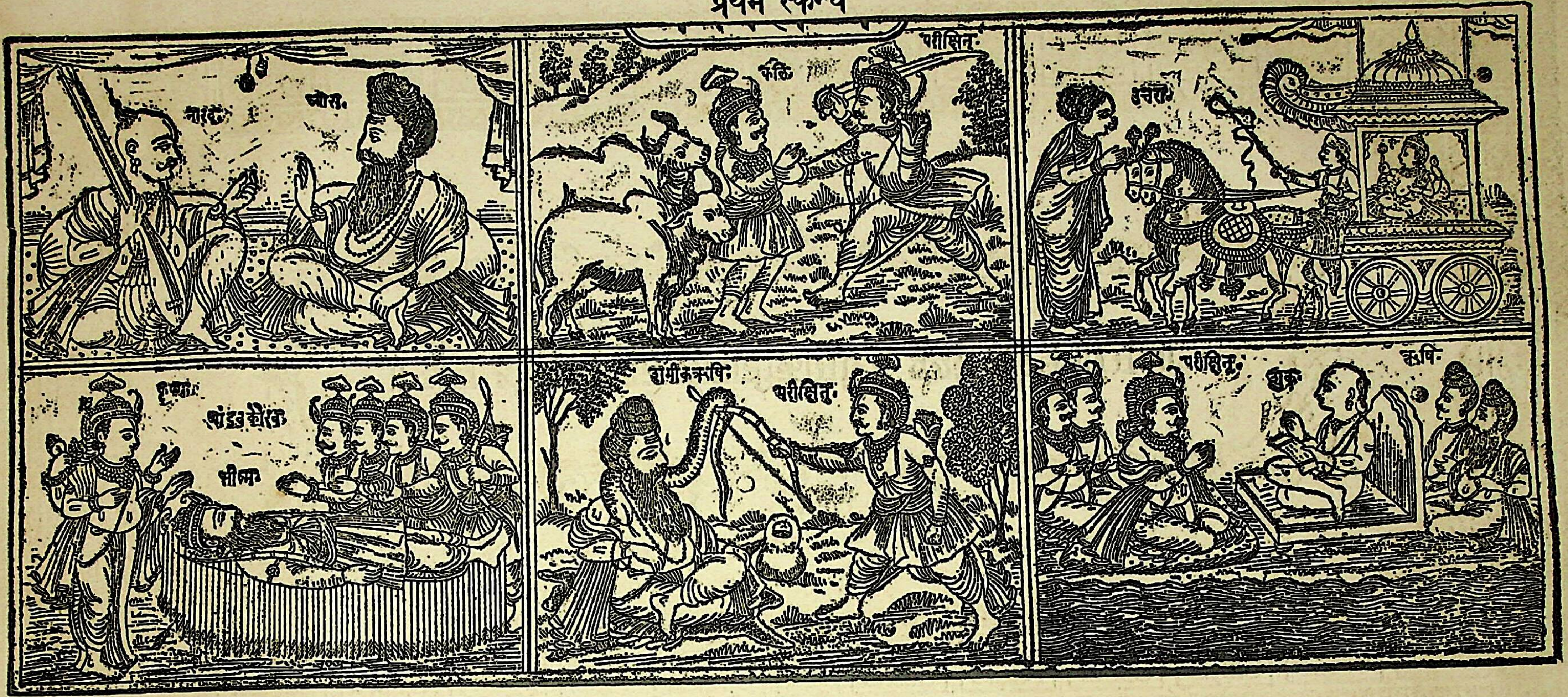
नारद
व्यास
कलि
परीक्षित
उत्तरा
कृष्ण
पांडव कौरव
भीष्म
शृंगी ऋषि
परीक्षित
परीक्षित
शुक
ऋषि

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ सोरठा–ऋद्धिसिद्धिदातार, सिद्धिसदन वारणवदन ॥सुमिरौं बारम्बार,मदनकदनके लालको ॥१॥ गणपतिकृपानिधान,
ज्ञानखानि आनँदभवन॥देहु मोहिं वरदान, वरणौं भाषा भागवत॥२॥जय शिव आनन्दकन्द,भूतनाथ भवभयहरण॥भक्तिविषय निर्द्वन्द, गौरवरण
मंगलकरण॥३॥हे ब्रजचन्द मुकुन्द, ब्रजभूषण दूषणहरण ॥ काटहु भवभयफन्द,चरणशरणलीआनकर ॥४॥जयजयजय जगदेव, सेवत शेषमहेश
अज ॥ महिमा अमित अभेव,वेद भेद जानत नहीं॥५॥देहु मोहिं वरदान,राधावर यह वर सदा॥प्रेमभरी मुसकान,नित चितमें खटकत रहै ॥६॥
मुहि चहिये कछुनाहिं,और वस्तु प्रभु जगत की॥बसी रहै मनमाहिं,यह बांकी झांकी सदा॥७॥लिये लकुटिया हाथ,गायनके पाछे फिरत॥ ग्वालबाल
लिये साथ,मोरमुकुट शिरपर धरे ॥८॥ करमुरली उरमाल, शीशमुकुट कटिपीतपट ॥या छबिसों नँदलाल,बसहु हृदय मम निशिदिवस ॥९॥ गुरुपद
रज धरि शीश,कहूँ भागवतकी कथा ॥ जो शुकदेव मुनीश,कही परीक्षित नृपतिसों॥१०॥

❋ श्रीभगवत् कलावतार, श्रीवेदव्यासजी, एक समय अनेक पुराण और अनेक शास्त्र तथा महाभारतादिक प्रबन्ध किये परन्तु चित्तको शान्ति न हुई अरु उन उन शास्त्रोंके कहे हुए सिद्धान्तोंमें अप्रसन्न हुए, भगवत्के अवतार श्रीनारदमुनिके उपदेशसे श्रीमद्भागवत शास्त्र रचा जिसमें श्रीभगवत्हीके गुण वर्णन किये, उसके प्रारम्भमें विघ्नकी निवृत्ति और आनन्दकी सिद्धिके लिये श्रीभागवतके इष्ट देवका स्मरणरूप मंगलाचरण करते हैं ॥ श्रीभगवान् व्यासजी ग्रन्थके मंगलाचरणमें परमेश्वरका स्वरूपलक्षणा और तटस्थलक्षणासे वर्णन करते हैं प्रथम स्वरूपलक्षणाको कहते हैं जो परमेश्वर त्रिकालमें एकरस सत्य स्वरूप हैं जिसमें मायाके सत, रज, तम,तीन गुण अपने(पंचभूत इन्द्रिय देवता रूप प्रपंच)कार्यसहित सर्वत्र मिथ्या भासते हैं जिस अधिष्ठान

❋ **प्रश्न**–कवियोंने छोटेसे छोटे ग्रन्थ बनाये और बडे बडे ग्रन्थभी बनाये परन्तु मंगलाचरणके दश दश पांच पांच श्लोक सबने कहे और व्यासजीने भी छोटे छोटे ग्रन्थोंमें मंगलाचरणके श्लोक बनाये और बड ग्रंथोंमें तो देवी देवता सबही मनाये परन्तु श्रीमद्भागवत पुराणकी आदिमेंगणेशकी वा गुरुकी वंदनामें एक श्लोकभी नहीं लिखा केवल विना प्रीति ब्रह्मका ध्यान व्यासने दो श्लोकोंमें किया जो ब्रह्मका ध्यानभी दश वीस श्लोकोंमें प्रीति सहित करते तो हमारे मनमें ऐसी शंका नहीं होती अब इस हमारी भारी शंकाको निवारण करो कि मंगलाचरण न होनेका क्या कारण है ?

उत्तर–जब बडे बुद्धिमान् व्यासजीने अठारहपुराण अनेकशास्त्र और इतिहास बनाये परन्तु उनके मनको संतोष न हुवा, तब भगवानके चरित्र गानेके लिये नारदमुनिने व्यासजीको उपदेश किया, उस समय हर्षरूप समुद्रमें व्यासजी मग्न होगये, जैसे कामी पुरुष सुंदर स्त्रीको पाकर सुखी होताहै, वैसेही नारदमुनिकी आज्ञा पाकर व्यासजी सुखी हुये और श्रीमद्भागवतके बनानेकी इतनी शीघ्रताकी कि मंगलाचरणका बनानाही भूलगये, आतुरतामें एक श्लोक अकेले ब्रह्मके ध्यानमें लिखदिया ॥

ब्रह्मकी सत्यतासे असत्य प्रपंच सत्यकी समान दृष्टि आता है इस कारण वह सब सत्य है जैसे किसीको रात्रिके समय ऊषर भूमिमें जलका भ्रम और थलका भ्रम होताहै और दिनमें मरुमरीचिकामें जल दृष्टि आता है जैसे कांचमें जलका भ्रम होता है यह सब भ्रम अधिष्ठानकी सत्यतासे सत्यही दिखाई देतेहैं ऐसे ही अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे मिथ्या भी प्रपंच सत्यसम दीखता है अथवा ब्रह्मकी ही पारमार्थिकी सत्यता कथन करनेंके हेतु प्रपंचको मिथ्याभाव वर्णन कियाहै "जिस ब्रह्ममें यह प्रपंच सर्व कालमें सत्य है कभी सत नहीं है" इसके कहनेसे ब्रह्ममें प्रपंचरूपी उपाधिका सम्बन्ध कहा है उसकी निवृत्ति करते हैं, जिसने अपने तेजसे सर्व कालमें मायाके लक्षण कपट दूर कियेहैं अन्धकारमें जो रस्सी पड़ी हो और उसमें किसीको सर्प प्रतीत हुवा सो वास्तवमें उस सर्प और रस्सीका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसेही अधिष्ठान ब्रह्ममें अज्ञानअवस्थामें जो प्रपंच प्रतीत होता है उसका ज्ञानअवस्थामें कुछ भी सम्बन्ध नहीं, उस परमेश्वरका हम ध्यान करतेहैं। अब तटस्थ लक्षणासे कहतेहैं, जो

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ अथ श्रीमद्भागवतं प्रारभ्यते ॥ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यंति यत्सूरयः ॥ तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा
निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, प्रलय करता है जो घट पटादिक पदार्थोंमें सत्यरूपसे व्यापक और अकार्य अथवा प्रपंचका सत्तारूप कारण हैजैसे घटका कारण मृत्तिका और कुण्डलादिक आभूषणका कारण सुवर्ण है अथवा ब्रह्मका विश्व, मृत्तिकाका घट, सुवर्णका कुण्डल कार्य है,जो जिसका कार्य है वह उससे भिन्न नहीं. श्रुतिमें लिखा है "यतो वेति" जिससे सम्पूर्ण जीव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हुए हैं, जिसके जिवाये जीते हैं और प्रलयकालमें जिसमें समाते हैं, और मुक्तिकालमें जिसमें प्रविष्ट होते हैं. और स्मृतिमें भी लिखा है "यतः सर्वाणीति" युगकी आदिमें जिस ब्रह्मसे सब जीव उत्पन्न होते हैं और युगके अन्तमें सब उसीमें लय हो जाते हैं, इत्यादिक। यदि कोई कहै कि जगत्का कारण तो जड माया है उसका ध्यान करते हो? सो कहते हैं, हम सर्वज्ञ स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् जिसने सबसे पूर्व ब्रह्माको उत्पन्न किया उनके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया जो सत्य स्वरूप है जिसकी सत्यतासे असत्य प्रपंच सत्यसा दीखता है जो मायारूपी कपटजालसे दूर है उस परमेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

इस श्रीमद्भागवतमें ईश्वराराधनाके धर्म वर्णन करते हैं जिसमें मोक्षपर्यन्त फल चाहनारूप कपटका लेश नहीं इसकारण यह कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड,ज्ञानकाण्डविषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठ है। अब अधिकारियोंकी श्रेष्ठता कहते हैं,जो मत्सररहित कृपालुसंत हैं। यहां कर्मकाण्डकी श्रेष्ठता कही उनको परमार्थरूप वस्तु (यहां द्रव्य गुणादिक वास्तव परमार्थ वस्तु नहीं कही है) जानने योग्य है अथवा वस्तु जो ब्रह्म उसका अंश जीवहै और वस्तुकी शक्ति माया है यह तीनों ब्रह्मरूप हैं भिन्न नहींहैं यह विना यत्न ही जाननेको योग्यहैं क्योंकि परम सुखदायक अरु अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों तापोंको जडसे उखाडनेहारा है, ज्ञानकाण्डकी श्रेष्ठता दिखाकर अब कर्त्ताकी श्रेष्ठता दिखातेहैं, महामुनि नारायणने यहप्रथम संक्षेपसे रची है (देवताकाण्डसे श्रेष्ठता दिखाते हैं) और शास्त्रोंके साधनसे ईश्वरकी स्थिति शीघ्र हृदयमें नहीं होती, और इसके श्रवणमात्रसेही ईश्वरकी स्थिति हृदयमें होती है इसलिये परमादर कर सेवनीय है ॥२॥ जब परमादर सत्कारसे सेवनयोग्य है तो यह कहते हैं

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते
महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥

कि "निगमेति" अखिलकामनादायक वेद रूपीकल्पवृक्षका फल श्रीभागवत है(जो मुझे स्वर्गसे नारदजीके द्वारा प्राप्त हुई) मैंने अपने पुत्र शुकदेवजीके मुखमें धरा,शुकदेवजीके मुखसे निर्गत होनेसे अमृतके समान मीठे रससे युक्त होगया "लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि जिस फलमें ११ तोतेकी चोंच लगैहै सो फल मीठा होवै है" यहां शुकरूप श्रीव्यासनन्दन शुकदेवकी चोंच लगनेसे उनके शिष्यरूप पत्तोंपर लुडकता हुवा धीरे धीरे पृथ्वीमें प्राप्त हुवा, आशय यह है कि इतने ऊँचेसे गिरा और फूटा नहीं, रस वही है कि जिस रसके प्राप्त होनेसे जीवको परमानन्द प्राप्त हो,हे रसिकजनो ! रस जाननेवालो! धन्य भाग्य है तुम लोगोंका जो ऐसा अमृतरूपी फल पृथ्वीपर प्राप्त हुवा यह अलभ्य लाभकी उक्तिहै इस कारण इस भागवतफलको बारम्बार पियो यह फलरसरूपी है इसमें छिलका और गुठली किंचित्मात्र भी नहीं है केवल रसहीरस भरा है,इसलिये पीनेकोकहा,इसकारण श्रीमद्भागवत अमृतरूपी रसका पान जीवन्मुक्ति अवस्थामेंभी पान करनाउचित है स्वर्गादिक सुखके समान त्यागना नहींहै

सेवनही करने योग्य है ॥३॥इन तीन श्लोकोंमें श्रीमद्भागवतकी उत्तमता और श्रेष्ठता और गौरवता दिखाकर, अब सब शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवतके इष्टदेवका स्मरण कर इस ग्रन्थका प्रारंभ करूं हूं। ब्रह्माजीका मनोमय चक्र कुण्ठितधारहोकर गिरा उसी तीर्थका नाम नैमिष है यह कथा वायुपुराणमें है "एक समय बहुतसे ऋषि लोग ब्रह्माजीकेपास गये और यह कहा कि हे ब्रह्मन्! हमको तपके योग्य कोई उत्तम तीर्थ बताओ कौनसा तीर्थ अत्यन्तपावन और पवित्र है, ऋषि लोगोंका यह वचन सुन ब्रह्माजी बोले कि हे ऋषिगण! मैं मनोमय चक्र बनाकर छोडता हूँ तुम सब इसके पीछे पीछे चले जाओ, जिस स्थानपर इस चक्रकी धार कुंठित होकर गिरपड़े वह भूमि तपके योग्य जान लेना, यह कह ब्रह्माजीने मनोमय चक्र छोडा, उसका प्रकाश मार्तण्डकी सदृश सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें फैल गया, वह चक्र जिस स्थानपर गिरा उस स्थानका नाम उस दिनसे नैमिषारण्य विख्यात हुवा" और वाराहपुराणमें ऐसा लिखा है कि "किसी समय गौरवमुख ऋषिसे भगवान्‌ने कहा था कि हे गौरवमुख ! इस

नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥ त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ॥ सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥६॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ॥ अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥

वनमें मैंने निमिष मात्र कालमें अनेक दानवोंकी सेनाका संहार कियाहै इसलिये इस वनका नाम नैमिषारण्य हुवा" ब्राह्मणोंको तपस्याके लिये यह भूमि परमोत्तम है। एक समय शौनकादि ८८००० अट्ठासीसहस्र ऋषियोंने स्वर्गकी प्राप्तिके हेतु नैमिषारण्य क्षेत्रमें १०००० दशसहस्र वर्षतक यज्ञ करनेका संकल्प किया ॥ ४ ॥ एक दिन वह मुनि प्रातःकाल उठ नित्यक्रिया कर जब नैमित्तिक अग्निहोत्र करचुके उसी समय व्यासजीके परम कृपापात्र सूतजी आपहुंचे, तब ऋषियोंने सूतजीको देख ब्रह्मासन बिछादिया, सूतजी सब ऋषिगणको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसनपर बैठे और परस्पर कुशल क्षेम बूझचुके तब ऋषिलोग सूतजीसे बोले ॥ ५ ॥ कि हे सूतजी ! हे निष्पाप ! सर्वशास्त्र, पुराण, इतिहास तुमने व्यासजी महाराजसे पढ़े हैं और देखे हैं ॥ ६ ॥ और ज्ञानियोंमें जो शिरोमणि श्रीव्यासजी महाराज जिन जिन शास्त्रोंको जानतेहैं और सगुण

निर्गुण ब्रह्मके उपासक और भी जिन जिन शास्त्रोंको जानतेहैं ॥ ७ ॥ हे सौम्य, हे सूतजी! उन सब शास्त्रोंकोगुरुकी कृपासे तुम यथार्थ जानतेहो क्योंकि निष्कपट प्रेमी शिष्यको गुरु गुप्तपदार्थको भी प्रगट करदेतेहैं ॥८॥ हे आयुष्मन् ! उन सब शास्त्रोंका सिद्धान्त निश्चय कर सरल रीतिसे हमको उपदेश करो जिस सिद्धान्तको जानिकै मुमुक्षु जीव सुगमसे साधन कर मोक्षके भागी हों ॥ ९ ॥ इस कलियुगमें प्रथम तो जीवोंकी आयुही अल्प है; दूसरे आलसी, तीसरे मन्दबुद्धि अरु मन्दभागी, चौथे विघ्नोंसे व्याकुल, पांचवें रोगग्रसित हैं ॥ १० ॥ हे सूतजी! बहुतसे शास्त्रोंके सुननेंसेंही फलकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि विभागपूर्वक सुननेके योग्य सैकड़ों शास्त्र हैं, इसकारण हे साधो ! सब साधनमें सारभूत जो सिद्धान्त

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्रतत्रांजसा
ऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकांततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥ प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे
जनाः ॥ मंदाः सुमंदमतयो मंदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥ भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ॥ अतः
साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनाऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ११ ॥ सूत जानासि भद्रं ते भग
वान्सात्वतां पतिः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यंगानुवर्णितुम् ॥
यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥ आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नामविवशो गृणन् ॥ ततः सद्यो विमुच्येत य
द्बिभेति स्वयं भयम् ॥१४॥ यत्पादसंश्रयाः सुत मुनयः प्रशमायनाः ॥ सद्यः पुनंत्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया॥१५॥

होय उसे अपनी बुद्धिसे निश्चय करकै हम लोगोंको उपदेश करो जिससे हम श्रद्धालुओंकी बुद्धि शांत होय (यह शौनकका पहिला प्रश्न हुवा)॥ ॥ ११ ॥ हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याण हो, यह तुम जानतेहो भगवान् वसुदेवजीकी स्त्री देवकीके पुत्र किस कार्य करनेके लिये हुएथे ॥१२॥ हे अंग सूतजी ! जिनका साधारण अवतार प्राणियोंके कल्याण और समृद्धिके हेतु होताहै उनके चरित्र वर्णन कीजिये ॥ १३॥ पराधीन जीवभी जिसके नाम स्मरण कर संसारके बन्धनसे छूट तुरन्त मुक्ति पातेहैं और जिनसे भयभी भयभीत है ॥ १४ ॥ उस भगवान्के चरणारविन्दोंका आश्रयी

शान्त मार्गमें निपुण मुनि संगतमात्रसेही जीवको पवित्र करदेतेहैं, और गंगाजीका जल तो बहुत दिनों सेवा करो तब पवित्र करता है ॥१५॥ साधारण भी जिनके कर्मोंको गाकर पुण्यश्लोक कहाये उन भगवान्के कलिमलनाशक यशको अंतःकरणकी शुद्धि चाहनेवाला कौन नहीं सुनैगा (यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुवा) ॥ १६ ॥ नारदादि मुनियोंने जो भगवान्के उदारकर्म गाये उन गुणोंके सुननेके श्रद्धावान् हम हैं सो कृपा करकै हमैं सुनाओ, जो लीलासे ब्रह्मा रुद्रादिक मूर्ति धारण करतेहैं (यह तीसरा प्रश्न समाप्त हुवा)॥ १७॥ हे बुद्धिमन्! जो परमेश्वर अपनी माया करकै यथेष्ट लीला अवतारोंको धारण करै हैं, उनकी मनोहर कथा कृपा करकै हमैं सुनाओ ॥ १८ ॥ हे सूतजी! उस परमेश्वरकी महिमा और उनके

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ॥ शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥ तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥ अथाऽऽख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ॥ लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्याऽऽत्ममायया ॥१८॥ वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ॥ यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादुस्वादु पदेपदे ॥ १९ ॥ कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ॥ अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥ २० ॥ कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम् ॥ आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥ २१ ॥ त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ॥ कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥ २२ ॥

पराक्रमोंको सुनते सुनते हमारी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि रसिकोंको भगवान्का यश पद पदपै स्वादसे अधिक स्वादिष्ठ लगताहै, भगवान्का यश अनेक प्रकार स्वादसे पूरित है (यह चौथा प्रश्न हुवा)॥ १९ ॥ श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दने गोवर्द्धनोद्धारणादिक जो मनुष्योंसे दुःसाध्य कर्म कपटसे मनुष्यरूप धरके किये सो कहो ॥ २० ॥ महाघोर कलियुग आता जान इसके डरसे वैकुण्ठके जानेकी इच्छा करकै हम इस नैमिषारण्य वैष्णव क्षेत्रमें एक सहस्र वर्षका संकल्प कर श्रीभगवान्के गुणानुवाद सुननेको बैठे हैं ॥ २१ ॥ हे सूतजी! इस समय आपका दर्शन भगवत्की कृपासेही हमको हुवाहै, क्योंकि अति धैर्यवानोंके धैर्यरूपी सेतुके तोड़नेवाले महा कराल

कलिकालरूप समुद्रके तरनेकी इच्छा जैसे हमको हुई, उसी समय आपका दर्शन हुवा, जैसे समुद्र पार करनेको जहाज़सहित मल्लाह आजाय (यह पांचवाँ प्रश्न समाप्त हुवा) ॥२२॥ धर्मके कवचवत् रक्षक, ब्रह्मण्य, योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने निज परमधामको सिधारे तब धर्म किसकी शरणमें रहा ? (यह छठा प्रश्न समाप्त हुवा) ॥२३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां नैमिषारण्योपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–इस द्वितीयअध्यायमें, शुक वन कीन्ह प्रवेश ॥ जैसे आये निजभवन, नारदके उपदेश ॥ १ ॥ *श्रीवेदव्यासजी बोले कि शौनकादिक ऋषियोंका प्रश्न सुनकर, रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा उसके वचनकी प्रशंसा करके उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए ॥ १ ॥ सूतजी बोले, कि जो

16

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥ स्वांकाष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ इति प्रसंप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१॥ सूत उवाच ॥ यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेतितन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥ यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोंऽधम् ॥ संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥

जन्म लेतेही कर्ममार्गको त्याग संन्यास लेकर वनको चले और व्यासजी उन शुकदेवके विरहमें व्याकुल हो, पुत्र ! पुत्र ! ! पुकारते उनके पीछे हुए, तब पिताके मोह दूर करनेको वृक्षरूप बनके उत्तर दिया, और उनका स्नेह दूर किया, जो सब जीवोंके योगबलसे हृदयमें प्रवेश किये हैं, ऐसे शुकदेवजीको बारम्बार नमस्कार करूंहूं ॥ २ ॥ जिसमें अपना प्रभाव और सब श्रुतियोंका सार, एक अध्यात्मविद्याका साक्षात् दीपक संसारको तरनेकी इच्छा करनेवाले जीवोंपर कृपा करके जो शुकदेवजीने गोप्य पुराण कहाहै, उन व्यासपुत्रकी हम शरण हैं ॥ ३ ॥

---

* **शंका**–प्रथमस्कंध पहिले अध्यायके आरम्भमें व्यास उवाच क्यों नहीं लिखा, फिर दूसरे अध्यायके प्रारम्भमें व्यास उवाच क्यों लिखा ?

उत्तर–व्यासजीने बडे हर्षसे श्रीमद्भागवतके बनानेका प्रारम्भ किया, परन्तु शीघ्रतामें अपने नामके लिखनेका ध्यान नहीं रहा, पीछे जब व्यासको ध्यान आया तो दूसरे अध्यायके आदिमें अपना नाम लिखा कि व्यास उवाच ॥

नारायण नरनरोत्तम देवी सरस्वती और व्यासजी को नमस्कार करके जयरूप ग्रन्थका वर्णन करताहूं ॥ ४ ॥ हे मुनियो! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया सब लोकका मंगलदायक श्रीकृष्णचंद्र ब्रजनायकका जो वृत्तान्त बूझा यह सब शास्त्रोंका सार है और इस असार संसारसे उद्धार करनेवाला है और आत्माको प्रसन्न करताहै॥५॥धर्म दो प्रकारका है, प्रवृत्तिमार्ग, अरु निवृत्तिमार्ग, स्वर्गादिकके लिये जो किया जाय वह धर्म प्रवृत्तिमार्ग है और श्रवण, आदर आदिक जो लक्षणा भक्ति है,सो निवृत्तिमार्ग है,वह मुक्तिदायक है,सोई पुरुषोंका परमधर्म है,जिससे नारायणमें फलरहित,विघ्नरहित भक्ति होय उससे

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ मुनयः साधु पृष्टोऽहं भव
द्भिर्लोकमंगलम् ॥ यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनाऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ५ ॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ॥
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं
यत्तदहैतुकम् ॥ ७ ॥ धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ॥ नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥
धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्य धर्मैकांतस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥ कामस्य नेंद्रियप्री
तिर्लाभो जीवेत यावता ॥ जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥ वदंति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञान
मद्वयम् ॥ ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥

जीवात्मा अत्यन्तप्रसन्न होताहै ॥६॥ वासुदेव भगवान्में भक्तियोग करै तो शीघ्र ज्ञान अरु वैराग्य उपनिषद्का उत्पन्न होताहै॥७॥ अच्छा अनुष्ठान करा हुवा धर्म मनुष्योंको विष्वक्सेन भगवान्की कथामेंजो प्रीति न करावै तो वह केवल श्रमही है ॥८॥ मोक्ष पर्यन्त धर्म फलप्राप्त होनेसे प्रयोजन नहीं है, और धर्मके योग्य धनव्यय करना उसका फल कामलाभके लियेनहीं है, धन धर्मका योग्य फल मोक्ष है॥९॥ कामको विषय भोगकर इन्द्रियोंसे प्रीति लाभ नहीं होती, इससे जबतक जीवित रहै तबतक यह जीवतत्त्वके जाननेकी इच्छा करतारहै, कर्मका फल स्वर्गादि नहीं है मोक्षप्राप्ति फल है॥१०॥ तत्त्ववेत्ता जो अद्वि

तीय ज्ञान कहते हैं, उसी को उपनिषद् ब्रह्म कहैंहैं, परमात्माकहैं हैं भगवान् कहैंहैं ॥ ११॥ मुनि जन उस ब्रह्ममें ज्ञान वैराग्ययुक्त भक्ति श्रद्धासे वेदान्त सुनकर
आत्माका दर्शन करतेहैं ॥ १२ ॥ हे ऋषियो ! इससे वर्णाश्रमके विभागसे सुन्दर अनुष्ठित धर्मकी यही सिद्धि है कि परमेश्वरका प्रसन्न करना
यही मनुष्योंके योग्य है ॥ १३ ॥ इस कारण एकाग्रमनसे भगवान् सात्वतपतिका श्रवण,कीर्तन, ध्यान, पूजन,करना योग्य है ॥ १४ ॥ जिस
भगवानका ध्यानरूप खड्ग लेकर कर्मरूप ग्रन्थिके बन्धनका विद्वान् पण्डित खण्डन करतेहैं, उनकी कथामें कौन प्रीति नहीं करैगा ॥ १५ ॥

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यंत्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ १२ ॥ अतः पुंभिर्द्विजश्रेष्ठा
वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ १३ ॥ तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतां पतिः ॥
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४ ॥ यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रंथिनिबंधनम् ॥ छिंदंति कोवि
दास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥ १५ ॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यती
र्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ हृद्यंतःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥१७॥
नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ १८ ॥ तदा रजस्तमोभावाः कामलो
भादयश्च ये ॥ चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥ १९ ॥ एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्त्ववि
ज्ञानं मुक्तसंगस्य जायते ॥ २० ॥

हे द्विजो ! वासुदेव भगवान्की कथामें सुननेवालेश्रद्धालुकी रुचि महात्मा लोगोंकी सेवा करनेसे और पुण्यतीर्थकी सेवासे होती है ॥१६॥ सत्य पुरुषोंके
मित्र; पुण्यरूप,श्रवण,कीर्तन करनेयोग्य श्रीकृष्ण अपनी कथा सुननेवाले सज्जनोंके हृदयमें वास कर सब अमंगल नाश करतेहैं॥ १७॥ जब नित्यप्रति
भगवान्की सेवा करनेसे अमंगल नष्ट हो गये तब भगवान् वासुदेवमें फलानुसन्धान रहित निष्काम भक्ति उत्पन्न होतीहै ॥ १८ ॥ तब रज
तम, भाव कामादि लोभादिकसे जिनका मन वींधा नहीं उनका मन सतोगुणमें स्थित होकर प्रसन्न होताहै॥ १९॥ भगवान्की भक्तियोगसे जिसका
मन प्रसन्न है उसको भगवान्के तत्त्वका ज्ञान मुक्तसंग होनेसे होताहै ॥ २० ॥

जीव जब अपनेही रूपमें परमात्माका दर्शन करताहै तब उसके हृदयकीग्रन्थि खुल जातीहै, और सब संशय मिट जाते हैं, सब कर्मोंका क्षय हो जाता है ॥२१॥ इस कारण सज्जन पुरुष मनको शुद्ध करनेवाली भक्ति नित्य वासुदेव भगवान्‌में करतेहैं ॥२२॥ सत्व, रज, तम, यह तीनों मायाके गुण हैं उन तीनों गुणोंसे मिलाहुवा परम पुरुष एकइस विश्वके उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह संज्ञा धारण करते हैं परन्तु इन तीनोंमें कल्याणके और शुभफलके दाता वासुदेव ही हैं ॥ २३ ॥ पृथ्वीके विकारसे काठमें धुआं होताहै, जिससे वेदत्रयीप्रतिपाद्य कर्मसाधक अग्नि होताहै इसीप्रकार तमसे रज रजसे सतोगुण बढके ब्रह्मका दर्शन होताहै ॥ २४ ॥ इसकारणसे पहिले विशुद्ध सत्वमूर्ति इन्द्रियोंसे परे भगवान्‌को

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥ २१ ॥ अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ॥ वासुदेवे भगवति कुर्वंत्यात्मप्रसादिनीम् ॥ २२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहाऽस्य धत्ते ॥ स्थित्यादये हरिविरिंचिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥ २३ ॥ पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २४ ॥ भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवंतमधोक्षजम् ॥ सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पंते येऽनु तानिह ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ ॥ नारायणकलाः शांता भजंति ह्यनसूयवः ॥२६ ॥ रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजंति वै ॥ पितृभूतप्रजेशादीञ्छ्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ॥ वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८ ॥

कल्याणके हेतु मुनीश्वर लोग भजतेथे, अबभी जो उनके पीछे इसप्रकार भजैहैं, वह जीव इस संसारमें परमानन्द पातेहैं ॥ २५ ॥ इसकारण मुक्तिके चाहनेवाले घोररूप भूतपतियोंकोत्याग कर, निन्दाको छोड शान्तरूप नारायणकी कलाको भजैहैं ॥२६॥ राजसी तामसी स्वभाववाले और सामान्य शीलवाले, पितर, भूत- प्रेत, प्रजाके अधीश्वरोंको लक्ष्मी, ऐश्वर्य, पुत्रके लिये पूजते हैं॥ २७ ॥ सब शास्त्रोंका सार यही है कि मोक्षके लिये मोक्षदाता वासुदेवका भजन करै, वेदभी वासुदेवकाही वर्णन करते हैं, और यज्ञभी वासुदेवको कहैं हैं, योगभी वासुदेवको

कहैं हैं सब क्रिया वासुदेवका प्रतिपादन करैं हैं ॥२८॥ ज्ञानभी वासुदेवको कहैंहैं. तपभी वासुदेवको कहैं हैं, सब धर्म वासुदेवहीका वर्णन करैं हैं, गति सब वासुदेवहीको कहैं हैं॥२९॥उस भगवान्‌ने अपनी मायासे पहिले इस विश्वको रचा, सत् असत्‌रूप गुणमयी मायासे आप समर्थ हैं ॥३०॥ उस मायाके गुणोंमें गुणवान्‌की भांति विज्ञानसे अधिक बढ़कर भीतर प्रवेश कर प्रकाश करैं हैं ॥३१॥ जैसे अपने उत्पत्तिस्थान काष्ठमेंही अग्नि अनेक भांतिसे प्रकाश करैहै ऐसेही विश्वात्मा पुरुष सब भूतोंमें नानारूपसे प्रकाश करताहै ॥३२॥ वह परमेश्वर गुणमय भूतसूक्ष्म, इन्द्रिय, आत्माके भावसे अपने रचेहुए पंचभूतोंमें उन गुणोंको भोगै है ॥३३॥ वह वासुदेव भगवान् जगत्कर्ता संसारको सत्त्वगुणसे पालन करै है; देव, पक्षी, मनुष्यादिमें लीलावतार धारणकरैहै॥३४॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां भगवद्गुणानुवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥दोहा-परब्रह्म अवतारजो, धरेचार अरुवीस ॥ सो वरणौं अब चरित सब, सुनिये कथा ऋषीश ॥१॥ * सूतजी बोले कि हे शौनकऋषि ! इस अध्यायमें चौबीस

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥ वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥२९॥ स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ॥
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥३०॥ तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ॥ अंतःप्रविष्ट आभाति
विज्ञानेन विजृंभितः ॥३१॥ यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु॥नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥३२॥
असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेंद्रियात्मभिः ॥ स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुंक्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥ ३३ ॥ भावयत्येष सत्त्वेन
लोकान्वै लोकभावनः ॥ लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥३४॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः॥
॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥ संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥१ ॥

98

---

*शंका-सनकादिकोंने सूतजीसे श्रीकृष्णके अवतारकी कथा बूझी थी सूतनें श्रीकृष्णके अवतारकी कथाको छोडकर आदिसे भगवान्‌के सब अवतारोंकी कथा क्यों वर्णन की ? बड़े सन्देहकी बात है ।

उत्तर-श्रीकृष्णके चरित्र दो प्रकारके संसारमें देख पडते हैं, सत्संग करनेवाले मनुष्य तो श्रीकृष्णके चरित्रको मोक्षरूप मानेंगे और मूर्खलोग श्रीकृष्णके चरित्रको विषयका समुद्ररूप मानेंगे, और युगयुगमें श्रीकृष्णका चरित्र बहुत विस्तारसे लिखाहै, यह विचार किया कि सनकादिक तो परमहंस हैं श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनके मोक्षरूप मानेंगे, परन्तु पहले कृष्णचरित्रको मूर्खलोग सुनेंगे तो वह मूर्खलोग उसको मोक्षरूप नहीं समझेंगे उसको जारसुख मानकर श्रीकृष्णकी नाईं परस्त्रियोंसे क्रीडा करेंगे और रौरव नरकमें पडैंगे. पाहिले श्रीकृष्णका अमृतरूप चरित्र जो वर्णन करैंगे तो मूर्खलोग कृष्णके चरित्ररूप अमृतको अमृत नहीं जानेंगे विषयरूपी समुद्र समझकर उसमें डूब मरेंगे और जो पाहिले और २ अवतारोंके चरित्र वर्णन करेंगे तो उन चरित्रोंको धीरे २ सुनकर मूर्ख भी ज्ञानी हो जावेंगे और पीछेसे श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनैंगे तो भ्रम नहीं करैंगे, मोक्षरूप मानेंगे इसलिये प्रथम कृष्णका चरित्र सूतजीने वर्णन नहीं किया ।

अवतारोंकी कथा है, प्रथम पुरुष अवतार हुआ, भगवान्ने महत्तत्त्व आदिले पुरुषरूप धारण किया, संसार रचनेकी इच्छा कर सोलह कलाओंके रूपसे अवतार लिया ॥१॥ जब जलशायी नारायणने योगनिद्रा विस्तारी उस समय श्रीनारायणकी नाभिरूप सरोवरके कमलमेंसे विश्वरचनेवालोंके पति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए॥२॥जिनके अंगसे जगत्का विस्तार हुआहै, वह भगवान्का विशुद्धतत्त्व महाबलिष्ठरूप है॥३॥जिनके असंख्य चरण,जंघा, भुजा, मुख अद्भुतहैं और जिसमें असंख्य मस्तक, श्रवण,नेत्र,नासिका हैं,असंख्य शिर,भूषण,वस्त्र,कुण्डल विराजरहेहैं ऐसे स्वरूपका ज्ञान नेत्रोंसे योगीजन दर्शन करते हैं॥४॥यह आदिनारायण सब अवतारोंका बीज अव्यय है सब कार्य अन्तसमय इसीमें प्रवेश करैंहैं,जिसके अंश ब्रह्माजी हैं जिनके

यस्यांभसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥ नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥ यस्यावयवसंस्था
नः कल्पितो लोकविस्तरः ॥ तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यंत्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सह
स्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यंबरकुंडलोल्लसत् ॥ ४ ॥ एतन्नानावताराणां नि
धानं बीजमव्ययम् ॥ यस्यांशांशेन सृज्यंते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५ ॥ स एव प्रथमो देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखंडितम् ॥६॥ द्वितीयं तु भवायाऽस्य रसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः
सौकरं वपुः ॥ ७ ॥ तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ॥ तंत्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कार्मिणां यतः ॥ ८ ॥
तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ॥ भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥

अंशसे मरीचि आदिक देव,पशु,पक्षी,मनुष्यादि रचेजातेहैं॥५॥ प्रथम सनत्कुमार अवतार श्रीनारायणने लिया उनका चरित्र वर्णन करतेहैं सो प्रथम देवकुमार हुए, ब्राह्मण होकर भी अति अखण्ड कठिन तपकर ब्रह्मचर्य व्रत करते रहे॥६॥ दूसरी बार वाराह अवतार धारणकर रसातल गईहुई पृथ्वीको उठालाये, इसविश्वकी उत्पत्तिकेलिये यज्ञेश वाराहजीहुए॥७॥तीसरी बार सो भगवान् नारदजी हुए ऋषियोंमें देवऋषि होकर सब कर्मोंके बन्धनसे छूट गये,जिन्होंने वैष्णवोंकेलिये पञ्चरात्र तंत्र कहा॥८॥ चौथी बार धर्मकी कला नाम स्त्रीके उदरसे नरनारायण नाम विख्यात ऋषि हुए

और संसारके जीवोंको दिखानेकेलिये बदरीकेदारमें जाकर तप किया॥९॥ पाँचवीं बार कपिलदेव अवतार धरकर सिद्धेश कपिल नाम होकर बहुत दिनोंसे जो तत्त्वसमूहोंका ज्ञान नष्ट हो गया था उसके निश्चय करनेको सांख्यशास्त्र बनाकर आसुरी ब्राह्मणोंको उपदेश किया और अपनी माताको ज्ञान दिया॥१०॥छठा दत्तात्रेय अवतार ले अत्रिमुनिके पुत्र हुए और अनसूयाको प्रसन्न करा अरु राजा अलर्क अरु प्रह्लाद भक्तको आत्मविद्या पढाई ॥११॥ सातवां यज्ञावतार हुवा रुचि प्रजापतिकी आकूती नाम स्त्रीके उदरसे यज्ञ भगवान्‌ने जन्म लिया यामानाम देवगणसमेत स्वायंभुव मन्वन्तरकी रक्षा करी॥१२॥आठवींवार ऋषभदेवजी अवतार हुवा नाभीनाम राजाकी मेरुदेवीनाम इन्द्रकी कन्यासे प्रगट हुएसब आश्रम जिसको नमस्कार

पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचाऽऽसुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥१०॥ षष्ठमत्रेरपत्यत्वं
वृतः प्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रल्हादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥ ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञो
ऽभ्यजायत ॥ स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवांतरम् ॥ १२ ॥ अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म
धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ॥ दुग्धेमामौषधीर्विप्रास्तेनायं स
उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे ॥ नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥
सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मंदराचलम् ॥ दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥१६॥ धान्वतरं द्वादशमं त्रयो
दशममेव च ॥ अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥ १७ ॥

करतेथे जिन्होंने धीर पुरुषोंको पारमहंस आश्रम दिखाया॥१३॥ नवां पृथु अवतार राजा वेनके शरीर मथनेसे हुवा ऋषियोंकी चाहनासे पृथु अवतार धारण करकै सब औषधि जिसने छिपादी उस गऊरूपी पृथ्वीको दुहकर सबवस्तुका सारांश निकाला यह अवतार अत्यन्त श्रेष्ठ हुवा॥ ॥ १४ ॥ दशवींवार मत्स्यावतार धार चाक्षुष मन्वन्तरमेंसब समुद्र एक हुए, मयनामक दैत्यसे वैवस्वत मन्वन्तरकी रक्षा करी औरसत्यव्रतको सप्तऋषियों समेत नौकापर बैठालकर ज्ञान उपदेश किया और उसको अपनी माया कौतुक दिखाया॥१५॥ ग्यारहवींवार कच्छरूप धरा जब सुर असुरोंने समुद्रको मथा, उस समय कच्छप अवतार धार मंदराचल पर्वतको भगवान्‌ने पीठपर धरा ॥१६॥ बारहवींबार धन्वन्तारि अवतार धारणकर

एक कलश अमृतका हाथमें लिये समुद्रसे उत्पन्न हुए. तेरहवींवार मोहिनी अवतार धारण कर दैत्योंको अपनासुंदर स्वरूप दिखाकर मोहित किया और अमृतका कलश उनसे लेलिया और देवताओंको पिलाकर उनकी रक्षा करी ॥ १७॥ चौदहवींबार नृसिंहरूप धर हिरण्यकशिपुदैत्यका नखोंसे उदर बिदार अपने प्यारे. भक्त प्रह्लादकी रक्षा करी ॥१८॥ पन्द्रहवींबार वामनतनु धार राजाबलिके यज्ञमें गये और तीन पग पृथ्वीमांगकर इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया और बलिको पातालका राजा किया "परन्तु मांगना अत्यन्त बुरा काम है, मांगनेवालेको सब ठौर छोटा बनना पडताहैइसीकारण नारायणने छोटारूप धारण किया" ॥१९॥ सोलहवां परशुराम अवतार धर क्षत्रियोंका क्षय किया और उनसे इक्कीसबार पृथ्वीको जीतकर ब्राह्मणोंको दान करदी ॥ २० ॥ सत्रहवींबार पराशरजीकी पत्नीसत्यवतीके उदरसे व्यासजी अवतारले पुरुषोंको निर्बुद्धि और अज्ञानी जानकर वेदका विभाग

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येंद्रमूर्जितम् ॥ ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥ पंचदशं वामनकं कृत्वा
ऽगादध्वरं बलेः ॥ पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥ अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ॥
त्रिस्सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम्॥२०॥ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चक्रे वेदतरोः शाखा
दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ॥ रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते
संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धो नाम्नाऽजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥

और वेदकी शाखाओंका विस्तार और अठारह पुराण महाभारतादिक ग्रन्थ रच संसारका उद्धारकिया ॥२१॥ अठारहवीं बार श्रीरामचन्द्र अवतार धारणकर भक्तोंके कार्य करनेके [illegible] रावण, घननाद, कुम्भकर्णादि राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतारा औरअनेकाश्चर्य युक्त कर्म करके देवताओंकी रक्षा [illegible] र बलराम और श्रीकृष्णचन्द्र अवतार धरकर कालयवन, जरासन्ध, कंसादिक दुष्ट राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उ[illegible] करनेके लिये अद्भुत चरित्र दिखाये ॥ २३ ॥ बीसवींबार कलियुगकी प्रवृत्ति देख जिनसुत बुद्धने गयाके समीप [illegible] ब कलियुग आया तब देवताओंने यज्ञ कर करके दैत्योंका बल नहीं चलने दिया,

तो दैत्योंने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे बूझा कि हे भगवन्! देवतालोग सर्वथा इन्द्रपुरीका राज्य करना चाहतेहैं कोई ऐसाउत्तम उपाय बताओ जिसमें दैत्यकुलका राज्य बना रहै। शुक्राचार्यने कहा हे दैत्यो! देवताओंका राज्य यज्ञादिक कर्म करनेसे निष्कण्टक बनरहाहै तुमभी यज्ञ करो शुक्राचार्यका उपदेश मान दैत्योंनेभी यज्ञ करना आरंभ करदिया तब तो सब देवता भयभीत होकर विष्णुके पास गये और बहुत स्तुति कर हाथ जोड़कर बोले कि, हे वैकुण्ठनाथ! अब दैत्यलोगभी यज्ञ करनेको उपस्थित हैं। जो उनका यज्ञ पूर्ण होगया तो वह लोग हमसे बलवान् होजायंगे और हमारा बल उनके सन्मुख कुछ न चलैगा और फिर हम उनको कभी नहीं जीत सकैंगे, अब हमको कोईऐसा उपाय बताओ जिसमें हमारा कल्याण होय। देवताओंका यह वचन सुन श्रीनारायणजीनेउसी समय बौद्ध अवतार धारण किया और सेवडेका रूपधर मैले कुचैले वस्त्र पहन चौंरी हाथमेंलेकर वहां पहुँचे जहां दैत्य लोग यज्ञ कर रहेथे दैत्योंने उनका तेजस्वी स्वरूप देख और ज्ञानवान् जान बड़ा आदर सन्मान किया और उनसे बूझा कि, हे कृपानाथ! आपके हाथमें यह क्यावस्तु है? बौद्धजीने कहा यह चौंरी है, दैत्य बोले कि हे नाथ! इसके हाथमें रखनेसे क्या लाभ है? बौद्धजीने उत्तर दिया कि जिस स्थानपर मनुष्य बैठताहै उसके नीचे छोटेछोटे जीव जो पृथ्वी पर रहतेहैं, वह दबकर मरजातेहैं, सो इस चौंरीसे भूमिको झाड़कर बैठना चाहिये जिससेजीवोंकी रक्षा हो, फिर दैत्योंने बूझा कि हे स्वामिन्! आपके वस्त्र मैले कुचैले किस कारण हैं? बौद्धजीने कहा कपड़े धोनेसे भी जीवहिंसा होतीहै क्योंकि वस्त्रोंमें भी अनेक जीव रहतेहैं, दैत्योंने जब इस प्रकारके वचन सुने, तब तो दैत्योंके मनमें दया उपजी और यज्ञ करनेसे उनका चित्त हटगया और परस्पर विचार करने लगे कि, यज्ञ करनेमें तो अनेक जीवोंकी हिंसा होगी तो हमारा सब यज्ञ करना निष्फल है, बरन् और दूना पापका भागी होना पडैगा ऐसे मनही मनमें सोच समझ दैत्योंने यज्ञकरना बंद कर दिया, तब तो उनका सब पुरुषार्थ ढीला होगया और सब धर्म कर्म नष्ट होगये और देवताओंका बल बढ़ा ॥ २४ ॥ युगकी सन्धिमें जब राजाभी चोर होजायंगे, तब सम्भलग्राममें विष्णुयश नाम ब्राह्मणके यहाँ जगत्पति कल्कि अवतार धारण करेंगे ॥ २५ ॥ उस सत्त्वगुणी परब्रह्म परमेश्वरके अनंत अवतार हैं, जैसे कभी जिस सरोवरसे जल नहीं घटै, उस सरोवरसे तुच्छ प्रवाहवाली अनेक नदी बहैं हैं ॥ २६ ॥

अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ॥ जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥
50
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ॥ यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ॥ कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७ ॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥ इंद्रारिव्याकुलं लोकं मृडयंति युगेयुगे ॥२८॥ जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ॥ सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ॥ मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ॥ एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥३१॥ अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम्॥३३॥ यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ॥ संपन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥

ऋषि, मनु, देवता, मनुसुत, महाबली, प्रजापति यह सब परब्रह्म परमेश्वरकी कला हैं॥२७॥उस अविनाशी पुरुषके यह सब अंश और कला हैं, श्रीकृष्णचंद्र स्वयं भगवान् हैं शत्रुओंसे जब जगत् व्याकुल होजाताहै तब युग युगमें अवतार ले सबको सुखी करतेहैं ॥ २८ ॥ उस अविनाशी अव्यय पुरुषके छिपे हुए जन्मोंकी कथा जो नर पवित्र होकर सन्ध्यासमय और प्रातःकाल पढ़ें हैं, और सुनें हैं वह लोग अनेक २ कष्टोंके समूहोंसे छूट जाते हैं ॥ २९ ॥ जिसका रूप नहीं और चित्त एकरस व्यापक उसका वह रूप है, यह तत्त्वादि मायाके गुणोंसे जीवात्मा अन्तर्यामीमें प्रगट होते हैं॥३०॥जैसे पवनके आश्रयसे मेघ आकाशमें रहते हैं, यह अज्ञानियोंने मान रक्खाहै, जैसे पृथ्वीके रेणुको धुन्धकारादिक पवनमें अज्ञानी समझतेहैं तैसे द्रष्टा आत्मामें दृश्यत्वादि शरीरधर्म ज्ञानियोंने मानाहै ॥ ३१ ॥ इस कारण पर ईश्वर अतिसूक्ष्म है, अनंत, आकारविशेष रहित है, अदृष्ट अश्रुतवस्तु है, इसलिये जीवांतर्यामी है,बारंबार अपना ज्ञान होनेके हेतु जीवरूपसे होताहै ॥३२॥ जिसमें अपने ज्ञानसे यह सत् असत्रूप अविद्यासे जीवात्माके अन्तर्यामीमें विचारे तो ब्रह्मका दर्शन होताहै ॥ ३३ ॥ जो यह क्रीडा करनेवाली परमेश्वरकी यामा दूर होजाय तो श्रेष्ठमतवाले ब्रह्मरूपमें लय होतेहैं और अपनी महिमामें आपही पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥

ऐसे अकर्ताके कर्म और अजन्माके जन्म वेदमें छिपे हुएहैं यह सब लक्षण अन्तर्यामीके हैं ऐसे कवीश्वरलोग वर्णन करते हैं ॥ ३५ ॥ अमोघ ली
लाधारी ईश्वर इस विश्वको रचेहैं, पालन करै हैं,प्रलय करैहैं परन्तु इसमें आसक्त नहीं होता सब जीवोंमें अन्तर्हित हैं, स्वतन्त्र हैं,छै गुणोंके ईश्वर हैं
परंतु छहों इन्द्रियोंके विषय दूरसे ग्रहण करैहैं, छहों इन्द्रियोंका स्वामी है ॥ ३६ ॥ मन वचनसे नाम रूपका विस्तार करैहैं ऐसे ईश्वरकी लीलाको
कोई मनुष्य सम्पूर्णतासे नहीं जान सकता, जैसे नटकी लीलाको मूर्ख लोग नहीं जानते ॥३७॥ जो मनुष्य कुटिलभाव त्याग सदा अनुकूलतासे
परमेश्वरके चरणारविन्दोंकी सुगन्धको भजैहै, सो मनुष्य चक्रधारी, महाप्रतापी, दीर्घपराक्रमी, धाता परमेश्वरकी पदवीको जानतेहैं ॥ ३८ ॥ इससे

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ॥ वर्णयंति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥ स वा इदं विश्वममोघली
लः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषु चांतर्हित आत्मतंत्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥ नचास्य कश्चि
न्निपुणेन धातुरवैति जंतुः कुमनीष ऊतीः ॥ नामानि रूपाणि मनोवचोभिः संतन्वतो नटचर्यामिवाऽज्ञः ॥ ३७ ॥
स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरंतवीर्यस्य रथांगपाणेः ॥ योऽमायया संततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगंधम् ॥
॥ ३८ ॥ अथेह धन्या भगवंत इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वंति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिव
र्त उग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥ निश्श्रेयसाय लो
कस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥ सर्ववेदेतिहासानां सारंसारं समुद्धृतम् ॥ ४१ ॥
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ प्रायोपविष्टं गंगायां परीतं परमर्षिभिः ॥ ४२ ॥

S1

तुमलोग सब धन्य हो जो सब लोकके नाथ परमेश्वरमें सर्वात्मासे आत्मभावना करते हो, अब तुम्हारा जन्म मरण संसारमें नहीं होगा ॥ ३९ ॥
सब वेदोंके समान, भगवान्के चरित्रोंसे परिपूर्ण ऐसा उत्तम यह श्रीमद्भागवत महापुराण व्यासजीने बनाया है ॥ ४० ॥ संसारके सुखके
लिये धनदायक मंगलदायक महान् ज्ञानवान् आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजीको सब वेदों और इतिहासोंका सार निकालकर
पढ़ाया ॥४१॥ वही श्रीमद्भागवत समस्त वेद इतिहासोंका तत्त्व निकालकर शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को सुनाया; परमऋषि समेत राजा

परीक्षित् गंगाकिनारे अन्तसमयतक बैठरहे ॥ ४२ ॥ धर्मज्ञानादिसहित जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकासे परमधामको गये तब
कलियुगका समय जान लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट देख श्रीवेदव्यासजीने यह श्रीमद्भागवतमहापुराण धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश किया॥४३॥ हे ऋषियो!
श्रीशुकदेवजी तेजस्वीने राजा परीक्षितसे यह बात कही वहाँभी उनकी कथा संक्षेपसे हमने सुनी सो कथा जैसी हमने सुनीहै और गुरुसे पढीहै,
अपनी बुद्धिके अनुसार आपलोगोंसे विस्तारसहित सुनावैंगे॥४४॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भा०टी० प्रथमस्कंधे चतुर्विंशत्यवतारकथावर्णनं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥दोहा-सुनत प्रश्नसब ऋषिनके, हर्षे सूत सुखदाय॥जेहिविधि बने पुराण सब,कहों कथा समझाय॥ १॥व्यासजी बोले

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥४३॥तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षे
र्भूरितेजसः ॥ अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ॥ सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाऽधीतं यथामति ॥ ४४ ॥ इति
श्रीभा०म० प्रथमस्कं० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूतसूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥ कथां
भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ॥ कुतः संचोदितः कृष्णः
कृतवान्संहितां मुनिः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः॥एकांतमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते॥४॥

कि, पूर्ण यज्ञकर्त्ता मुनिमण्डलीके मध्य सूतजी जो विराजमान थे, उनसे वृद्ध कुलभूषण ऋग्वेदपारगामी शौनकमुनि बोले ॥ १ ॥ कि, हे सूत!
हे महाभाग ! हे सत्यवक्ता ! श्रीमद्भागवतकी पुण्यदायक कथा हमको सुनाओ, जो भगवान् श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्से कहीथी ॥ २ ॥
कौनसे युगमें किस स्थानमें किस कारणसे भागवतकी प्रवृत्ति हुई,व्यासजीके चित्तमें किसने प्रेरणा करी,जो मुनिवरने यह अमृतरूपीसंहिता रची
॥३॥ उनके पुत्र महायोगी, दिगम्बरवेषधारी, समदर्शी, भेदभावरहित, सत्यवादी, जितेन्द्रिय,भगवत्भजनमें लवलीन ऐसे शुकदेवजीने॥ ४ ॥

जिस समय जन्म लिया उसी समय संन्यास ले,संसारकी माया तज, नारविवारसहित वनको चलदिये और मनमें यह विचार किया कि, यहाँ रहनेसे सैकडों आपत्ति हैं, इसलिये अभी वनमें जाकर परमेश्वरका भजन करना चाहिये, पुत्रकी यह दशा देख व्यासजी मनमें अत्यंत सोच कर मोहवश पुत्रके विरहमें व्याकुल हो, पुत्र पुत्र पुकारते पुत्रके पीछे दौडे, हे पुत्र ! हमको कहाँ छोडे जातेहो ठहरो ठहरो किञ्चिन्मात्र खडे होकर हमारी एक बात तो सुनते जाओ, परन्तु शुकदेवजीने खडा होना उचित न समझा क्योंकि यह तो संसारसे पहिलेही विरक्त होकर परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें अपने मनको लवलीन करचुके थे, शुकदेवजीने अपने मनमें कहा देखो हमारे पिताको इस अवस्थामें भी कुछ ज्ञान नहीं, संसारकी मायामें लिप्त होरहेहैं, उनको धैर्य देनेके लिये वनके वृक्षोंमें प्रवेश होकर कहा,"हे व्यासजी ! तुम किस मायामें भूल रहेहो न कोई किसीका पुत्र है न: कोई किसीका पिता है यह सब स्वप्नकेसा व्यवहार है, संसारकी गति सदासे इसी भाँति चली आती है और यह जीव बारंबार

दृष्ट्वाऽनुयातमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुं
भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः॥५॥कथमालक्षितः पौरैःसंप्राप्तःकुरुजांगलान् ॥उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये॥६॥

संसारमें जन्म लेताहै और मरताहै, यह संसार आवागमनकी जड है, यह बात सुन व्यासजीको धैर्य हुआ" यह कह शुकदेवजी आगेको चले तो मार्गमें एक सरोवर दृष्टि आया उसमें देवस्त्री नंगी स्नान कर रहींथीं उन्होंने शुकदेवजीको देख कुछ लज्जा नहीं करी उसीभाँति नंगी खडी रहीं; पीछे व्यासजी वृद्ध बाबाभी वहाँ पहुँचे, तब तो सब देवांगना लज्जित हो अपना अंग वस्त्रोंसे ढकने लगीं, यह विचित्र भाव देख व्यासजी अपने मनमें विचार करनेलगे कि, शुकदेव हमारे पुत्रको देख इन्होंने लज्जा नहीं करी और मुझ वृद्ध मनुष्यको देख वस्त्र पहन लिये, इसका क्या कारण है, उन देवांगनाओंने देवदृष्टिसे व्यासजीके मनका भ्रम जान कहा हे व्यासजी ! आप स्त्री और पुरुषके भेद भावको भलीभाँति जानतेहो, इसलिये आपसे लज्जा की- और शुकदेवजीकी परमहंस गति है वह स्त्री और पुरुषमें कुछ भेद नहीं समझते" वह समदर्शी हैं, इसलिये हमने उनसे कुछ लज्जा नहीं करी । यह बात सुन व्यासजीके मनका सन्देह जातारहा ॥ ५ ॥कुरु जांगल देशमें गये तो कैसे विदित हुआ कि, यह शुकदेवजी हैं, उन्मत्त गूँगे जडकी नाई हस्तिनापुरमें फिरते थे ॥ ६ ॥

सो परम भागवत शुकाचार्यसे राजऋषि परीक्षित्का सम्वाद कैसे हुआ? ॥७॥हे सूतजी ! इस बातका हमको बडा सन्देह है जो महाभाग्य शुकाचार्य गोदोहनमात्रसे अधिक कहीं नहीं ठहरसक्तेथे, ऐसे विरक्त होकर सातदिन राजा परीक्षित्के निकट कैसे ठहरकर कथा सुनाते रहे और उनके आश्रमको पवित्र किया ❀॥८॥हे सूत!अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्को भागवतोंमें उत्तम कहते हैं, सो उनका जन्म कर्म महाआश्चर्य

कथं वा पांडवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ॥ संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥ ७ ॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥ अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ॥ तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥९॥ स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाङ्नां मानवर्धनः ॥ प्रायोपविष्टो गंगायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥१०॥ नमंति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हाऽऽनीय धनानि शत्रवः ॥ कथं स वीरः श्रियमंग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११ ॥

का है, सो कहो॥९॥हे शौनकमुनि,पाण्डुकुलभूषण चक्रवर्ती महाराज परीक्षित् राज्यलक्ष्मीका अनादर कर किस हेतुसे गंगाके किनारे अन्न जल त्यागकर अन्तसमयतक बैठे सो कहो॥१०॥हे मित्रसूत !शत्रुलोग धन लाकर जिनके चरणोंको प्रणाम करते हैं अपनी देहकी रक्षाके लिये ऐसी लक्ष्मीको बीर तरुण राजा परीक्षित्ने प्राण सहित त्यागनेकी कैसे इच्छा करी ?॥ ११ ॥

❀.**शंका**-श्रीशुकदेवजी जिसके ऊपर अत्यन्त कृपा करते थे उसके स्थानपर इतनी देर ठहरते थे कि, जितनी देर गायके दुहनेमें लगतीहै सो शुकदेवजी गंगाके किनारेपर सातदिन क्यों ठहरे ? और राजा परीक्षित्को श्रीमद्भागवत क्यों सुनाई ।

उत्तर-एक दिन अपनी इच्छासे श्रीशुकदेवजी गोलोकको गये,तब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने विधिपूर्वक शुकदेवजीका पूजनकिया पूजनग्रहण करके जब शुकदेवजी चलने लगे तब राजा परीक्षितके मोक्ष होनेके लिये श्रीकृष्णने शुकदेवजीको प्रार्थना की कि,मुने!पाण्डव मेरे बडे मित्र थे, उन अर्जुनका यह परीक्षित् पोताहै,शृंगीऋषिके शापसे तक्षक सांपने उसको काटाहै और सर्पकाटा निःसन्देह नरकमें जाताहै जब वह परीक्षित् नरकमें गया तो त्रिलोकीमें मेरी बडी दुर्नामता होगी और लोग हँसी करैंगे कि कृष्णके मित्रका पोता नरकमें जाता देखो भाई!अब जैसी आपकी इच्छा हो उसी प्रकारसे परीक्षित्को नरकसे उद्धारकरो और उसको मेरे लोकको भेजो इसप्रकार श्रीकृष्णजगदाधारकी प्रार्थनासे गंगाके निकट राजा परीक्षित्के पास सातदिन रहकर श्रीमद्भागवतकी कथा सुनाई ।जिसके सुननेसे महादुस्तर संसारका निस्तार होजाता है क्योंकि चार वेद छहशास्त्र अठारह पुराण भारतादि अनेक ग्रन्थोंका सार निकालकर मुक्तिदायक वेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतकोही ।हिताचित्तसे रचाहै ।

संसारके कल्याणके लिये सब जीवोंके ऐश्वर्यके अर्थ सुन्दर यशस्वी श्रीनारायणके परायण जन जीते हैं कुछ अपनी देह आत्माके कारण नहीं जब ऐसाहै तौ अनेक जीवोंको जीवदान देनेवाली देहको वैराग्य लेकर कैसे त्याग किया॥१२॥हे कृपासिन्धु! जो कुछ मैंने बूझा और जो कुछ मेरे बूझनेसे रह गया होय सो सब कृपा करके हमसे कहो क्योंकि, वेदविषय छोडकर वाणीसे जानने योग्य अर्थमें तुम चतुर और पारगामी हो॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि, हे सनक मुनि !बहत्तर ७२ चतुर्युगियोंमें जब तीसरी वार द्वापरयुग आया तब पराशर मुनिसे उपरिचर वसुके वीर्यसे उत्पन्न सत्यवतीमें योगीश्वर श्रीव्यासजी महाराजने विष्णुकी कलासे अवतार लिया ॥१४॥ सो व्यासजी एक समय सरस्वतीमें स्नान कर पवित्र हो सूर्योदयके समय एकांत स्थान बदरिकाश्रममें बैठे थे ॥ १५ ॥ भूत भविष्यके ज्ञाता श्रीव्यासदेव कलियुगके कारणसे युग युगमें पृथ्वीपर सब वर्णाश्रम धर्म उलटेहुए जानकर ॥ १६ ॥ शरीरधारियोंको शक्तिहीन, श्रद्धाहीन, सत्त्वगुणहीन, बुद्धिहीन, आयुहीन ॥ १७ ॥ ऐसे दुर्भागी जीवोंको देख श्रीमुनिराज दिव्यज्ञान चक्षुसे सब वर्णोंका और सब आश्रमोंका हित विचारकर ॥ १८ ॥ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र, इन चारोंसे अनुष्ठेय प्रजाओंका शुद्धिकारक वैदिककर्मको जानकर यज्ञोंके अविच्छेदके लिये एक वेदके चार भाग किये॥ १९॥

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ॥ जीवंति नात्मार्थमसौ पराश्रयंमुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन ॥ मन्ये त्वा विषये वाचां स्नातमन्यत्र च्छांदसात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥ स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि ॥ विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगेयुगे ॥ १६ ॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निस्सत्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥१७॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८ ॥ चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसंततये वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद यह चार अलग अलग किये, इतिहास पुराणोंको पंचमवेद कहाहै ॥ २० ॥ पैलमुनिने ऋग्वेद पढा, जैमिनि पंडितने सामवेद सीखा, वैशंपायनजी यजुर्वेदके पारंगत हुए ॥ २१ ॥ अंगिरागोत्री, सुमन्तमुनि अथर्ववेदके ज्ञाता हुए उस वेदके मारण उच्चाटनादिकर्म करनेसे उनका नाम दारुण हुआ और इतिहास पुराणोंके पारगामी हमारे पिता रोमहर्षणजी हुए॥२२॥ वह सब ऋषि अपने अपने वेदका अनेक प्रकारसे विभाग करनेलगे, उनके शिष्य और प्रशिष्य और उनकेभी शिष्योंसे वेदोंकी शाखा हुई ॥ २३ ॥ पहिले बड़े बड़े चतुर और अति विशालबुद्धि वेदका अर्थ जानतेथे; अब उन्हीं वेदोंको मूर्ख निर्बुद्धि लोग पढके उनके उलटे पुलटे अर्थ करनेलगे तब व्यासजी महाराजने यह बनाया ॥२४॥ स्त्री, शूद्र और मूर्ख इन तीनोंको वेदत्रयी पढनेका अधिकार नहीं उनके कल्याणके लिये यह विचार कृपापूर्वक महाभारत बनाया॥२५॥और व्यासजीनेउसमें सब वेदका सार लेकर उसे बनाया॥२६॥हे शौनकादिक मुनियो! सब जीवोंके हितके लियेअधिक परिश्रम करके महाभारतादिक ग्रन्थ रचे परन्तु मन तौभी प्रसन्न नहीं हुआ और बारबार यही विचार करते थे कि अब हम कौनसा ग्रन्थ रचें जिसमें हमारे मनको धैर्य हो ॥ २७ ॥ इसी चिन्तामें व्यासजी पवित्र सरस्वतीके किनारे एकांतमें बैठे अनेक अनेक तर्क वितर्क करते करते

ऋग्यजुःसामाऽथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ॥ इतिहासः पुराणं च पंचमो वेद उच्यते ॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरः पैलः
सामगो जैमिनिः कविः ॥ वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥ २१ ॥ अथर्वांगिरसामासीत्सुमंतुर्दारुणो मुनिः ॥
इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२॥ त एव ऋषयो वेदं स्वंस्वं व्यस्यन्ननेकधा ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यै
र्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥ २३ ॥ त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यंते पुरुषैर्यथा ॥ एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥
॥ २४ ॥ स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥ इति भारतमाख्यानं
कृपया मुनिना कृतम् ॥ २५ ॥ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ॥ सर्वात्मकेनापि यदा नाऽतुष्यद्धृदयं
ततः ॥ २६ ॥ नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ २७ ॥ धृतव्रतेन
हि मया छंदांसि गुरवोऽग्नयः ॥ मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥ २८ ॥

उदासीनचित्त होकर धर्मात्मा व्यासजी कहने लगे मैंने व्रत करके, अनेक शुद्ध कर्म करके गुरु, अग्नि, सबको निष्कपट भावसे माना और उनकी आज्ञाको अपने शिर धारण किया ॥ २८ ॥ भारतके बहानेसे सब वेदका अर्थ कहा, जिस भारतमें स्त्री शूद्रादिकका भी धर्म, अर्थ काम जानपडे ॥ २९ ॥ मैं ब्रह्मतेजवालोंमे श्रेष्ठभी हूँ परन्तु बडे खेदकी बात है कि मेरा जीव समर्थ मनसे प्रसन्न नहीं ॥ ३० ॥ अथवा वोह भागवत धर्म अनेक प्रकारसे नहीं कहे हैं जो भागवत धर्म परमहंसोंको प्यारे हैं वह भगवत्को प्यारेहैं ॥ ३१ ॥ अपने आपको छोटा समझ खेदितमन इसी सोचमें व्यासजी सरस्वतीके निकट बैठे विचार कर रहे थे कि, उसी अवसरपर श्रीनारदजी उस आश्रमपर आये ॥ ३२ ॥

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥ दृश्यते यत्र धर्मादिस्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥ २९ ॥ अथापि बत मे दैह्यो ह्या
त्मा चैवात्मना विभुः ॥असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥ ३० ॥किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः॥प्रियाः
परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥३१॥ तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः॥ कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्र
मं प्रागुदाहृतम् ॥ ॥ ३२ ॥ तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ॥ पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम्॥३३॥
इति श्रीमद्भा० म० प्रथ० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिः
प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १ ॥

उनको देख व्यासजी अत्यन्त प्रफुल्लित हो शीघ्रतासे उठे और विधिवत् पूजन कर बड़े आदर सत्कारसे आसनपर बैठाया ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां नारदव्याससंगमो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥ दोहा—इस पंचम अध्यायमें, नारद व्यासमिलाप॥ कही कथा सब देवऋषि, जैसे मुनि भये आप ॥ १ ॥ इतनी कथा कह सूतजी बोले कि, सुखपूर्वक बैठे व्यासजी सर्व विद्यासागर जगत् उजागर वीणा हाथमें लिये देवऋषि नारदजी मुसकाके बोले ❋ ॥ १ ॥

❋ **शंका**—त्रिलोकीमें किसी जीवको नारदजी देखके अत्यन्त दुःखी होते थे और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडते थे और विह्वल हो जातेथे भगवान्‌के भक्त नारदजी उस जीवके दुःख दूरकरनेके लिये अनेक उपाय करतेथे कि, कोई प्राणी दुःखी न हो, यह विचार सदा सबका उपकार करते, फिर ऐसे दयालु भगवान्‌के प्यारे वेदव्यासजीको दुःखी देखकर नारदमुनि क्यों हँसे. और यह अयोग्य काम क्यों किया, यह बडा भारी सन्देह है कि, अपना स्वभाव क्यों छोडा ?

उत्तर—नारदमुनिने बडा स्नेहकरके बडे आदरसे व्यासजीको निवारण किया कि, हे व्यास! संसारके ठगनेवाले ग्रन्थ मत बनाओ जिसके नामका ग्रन्थ उसकी तो प्रशंसा और दूसरेकी निन्दा, फिर दूसरे नामका

हे पराशरपुत्र ! महाभाग ! आपके शरीरसे शरीरका अभिमानी प्रसन्न है और मनका अभिमानी मनसे प्रसन्न है कि नहीं ? ॥ २ ॥ जो जानने योग्य था सो भी आपने जाना अद्भुत अद्भुत सब अर्थोंकी खानि महाभारत भी आपने रचा ॥ ३ ॥ जो सनातन नित्य परब्रह्मकोभी विचारसे आपने प्राप्त किया एक वेदके चार भाग किये और उनका सार निकाल और बहुतसे ग्रन्थ और पुराण रचे तौभी ऐसे सोचवश हो रहेहो जैसे किसीने अनेक यत्नकर अपना कार्य सिद्ध कियाहो और उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआहो जैसे वह सोच करै है, हे प्रभो ! तुम सर्वज्ञ होकर ऐसे

नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ॥ परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥ जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् ॥ कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ॥ तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥ स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ॥ परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसंगः ॥ ६ ॥

सोचवश किस कारण होरहेहो ? ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले जो तुमने कहा सो सब सत्य है, परंतु तौभी मेरा मन प्रसन्न नहीं है, इसका कारण मैं नहीं जानता इसलिये आपको ब्रह्माजीका पुत्र ब्रह्मज्ञानी जान आपसे बूझूँहूँ ॥ ५ ॥ जो सबसे गुप्त बात है सो आप भलीभाँति जानते हो क्योंकि, जो पुराणपुरुष है उसकी तुमने उपासना करीहै, गुणरहित कार्य कारणके नियन्ता जो अपने मनसेही सब विश्वको रचै पालै संहार करैहै ॥ ६ ॥

–ग्रन्थ उसीकी प्रशंसा और जिसकी प्रशंसा की थी दूसरे ग्रन्थमें उसकी निन्दा, ऐसे ग्रन्थ मत बनाओ कि, जिसमें मोक्षदायक यदुनायकका नाम नहो, सुखका समुद्र और जिसमें भगवान्के अनेकप्रकारके चरित्र हों कोई ऐसा मोक्षदायक ग्रन्थ वर्णन करो, इसप्रकारकी शिक्षा वारंवार नारदमुनिने व्यासजीको दी, व्यासजीको अपनी कविताका बडाभारी अभिमान था उन्होने नारदकी कही हुई एक बात भी नहीं मानी और अनेक प्रकारके ग्रन्थ बनाये, परन्तु उन ग्रन्थोंके बनानेसे व्यासजीको किंचित् मात्र भी सुख नहीं हुआ, ग्रन्थ बनानेके पीछे वरन् व्यासजीको और अधिक दुःख प्राप्त हुआ तब फिर व्यासको नारदजीने दुःखी देखा तब उनके ऊपर कृपा करके और व्यासको त्रास देनेके लिये नारदमुनि हँसे थे कुछ अभिमानसे निर्दयी होकर नहीं हँसे थे, व्यासजीको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और उनके मनका संशय हरलिया.

सूर्यकी भाँति त्रिलोकीमें तुम विचारते हो पवनकी नाईं सबके अंतःकरणकी जानते हो, बुद्धिकी वृत्तिको भलीभाँति जानते हो परन्तु मैंभी परब्रह्म और वेदमें धर्मसे और व्रतसे परायण हूँ तौभी मेरे मनकी न्यूनता नहींगई सो तुमको भलीभाँति प्रगट है॥७॥श्रीनारदजी बोले कि, हे व्यास मुनि!आपने भगवान्‌का निर्मल यश वर्णन नहीं किया,इसीलिये आपका मन प्रसन्न नहीं है यही न्यूनता समझो॥८॥हे मुनिश्रेष्ठ !जिस प्रधानतासे आपने धर्म अर्थादिक कहे हैं, उस प्रधानतासे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी महिमा वर्णन नहीं किया ॥९॥ जिसमें जगत्‌के पवित्र करने वाले परमात्माका यश नहीं कहा,चाहे उसमें कैसे ही चित्र विचित्र पद हों और वह काकतुल्य कामियोंको अच्छी लगे ऐसी कविताईको

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमंतश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ॥ परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥ ॥ ७ ॥ नारद उवाच॥ भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ॥ येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥ ८ ॥ यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥ ९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमंत्युशिक्षयाः ॥ १० ॥ तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि॥ नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यच्छृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ११ ॥

सत्त्वगुणप्रधान परब्रह्ममें निवास करनेवाले मनस्वी सार असारके ज्ञानी ब्रह्मवादी काकतीर्थ कहैं हैं, अत्यन्त करके उस कविताईको नहीं पढ़ते ❁ जैसे प्रसिद्ध है कि, मानससरोवरवासी हंस मानससरोवरहीमें विचरतेहैं वह कमल वनको त्याग जहाँ जूठन डाली जाती है और काक काँव काँव करते हैं वहाँ हंस कभी नहीं जाते इसी भाँति भगवद्भक्त भगवत्‌हीके चरित्रोंके ग्रन्थ पढैंहैं, रसिक ग्रन्थोंमें ध्यान नहीं लगाते ॥ १० ॥ एक एक श्लोक चाहे जिस ग्रन्थका अशुद्ध हो.परन्तु परमेश्वरका विषय हो, जो संसारके जीवोंका पाप नाश करै है, और सुयशका प्रकाश करै ऐसी कविताई और कथाको साधु ब्राह्मण गावैं हैं और सुनावैं हैं और सुने हैं ॥ ११ ॥

❁ कवित्त--कहा भयो जो न काव्य भेदभाव द्वंद्व विना, हरियश जामें सोई वहत सुहाई है । सन्त जन गावैं सुनैं कहैं जपैं ताहि कोरी,कविता बनाई देखगिरा पछिताई है ॥ रामरस विना जैसे फीका लगे स्वाद तिमि, रामरस बिना स्वाद गन्धहू न आई है। भक्त मनभाई सुखदाई है सुहाई जामें, कृष्णकथा गाई सोई सांची कविताई है ॥ १ ॥

और जिसने ब्रह्मार्पण कर्म किया परन्तु भगवद्भक्तिसे रहित है, वह उपाधिरहित अत्यन्त ज्ञान शोभाको नहीं प्राप्त होता, फिर फलके समय भी दुःख होताहै जिसने निष्काम कर्म ईश्वरमें समर्पण नहीं किये उसकी ऐसीही गति होती है ॥ १२ ॥ इसकारण हे महाभाग ! आप यथार्थद्रष्टा हो, शुद्ध, यशस्वी, तेजस्वी, सत्यवादी, सब व्रत करनेंवाले हो अब आप चित्तको सावधान करके परमेश्वरकी लीला वर्णन करो, जिसको पढ़कर संसारके बन्धनसे लोग छूटें और ॥ १३ ॥ भगवान्के यश विना जो कुछ पृथग्दृष्टिसे वर्णन किया है उस नाम रूपमें पड़कर बुद्धि चंचल होजाती है जैसे वायुसे कम्पित नौका जलमें एक ठिकाने नहीं रहती ॥ १४ ॥ धर्मके लिये शिक्षा करनेवाले, तुम्हारी नैष्कर्म्यकी आज्ञाको देख दुष्टजन

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्य
कारणम् ॥ १२ ॥ अथो महाभाग भवानमोघदृक्शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ॥ उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये
समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूप नामभिः ॥ न कुत्रचि
त्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥ १४ ॥ जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यति
क्रमः ॥ यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥ विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनंतपा
रस्य निवृत्तितः सुखम् ॥ प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः ॥ १६ ॥ त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणा
म्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ॥ यत्र क्व वाऽभद्रमभूदमुष्य किं को वाऽर्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥

महा अन्याय करेंगे और तुम्हारे वाक्योंसे संसारके तुच्छ जीव यही मानेंगे कि यह भी एक प्रकारका धर्म है, यह नहीं जानेंगे कि, इसका व्यासजीने निवारण किया है ॥ १५ ॥ जो अति निपुण हैं वे स्वभावसे अनन्त अपार परमेश्वरके स्वरूपको जानेंहैं गुणोंसे प्रवर्त्तमान जीवोंसे भिन्न समर्थ ईश्वरलीला तुम वर्णन करो ॥ १६ ॥ अपने धर्मको त्यागकर वासुदेवके चरणारविन्दका भजन करते २ जो अधबीचमें मरजाय तो उसको अपने धर्मके त्यागनेका दोष होता है परंतु स्वधर्मसे भजनेवाले इस जीवका जहाँ कहीं कुयोनिमें भी जन्म होय तौ भी भक्त ही होता है, भक्ति सदा

कल्याणकी दात्री है, भक्ति सब कार्यको सिद्धि करै है॥१७॥ विदेकी उस सुखके लिये यत्न कर और वह सुख ब्रह्मलोकतक होजाओ और नीचे स्थावरतक हो जाओ परन्तु सुख नहीं मिलता, विषयसुख प्राचीनकर्मसे सब ठौर नरकादिकमेंभी विना यत्न किये दुःख किसीभाँति प्राप्त होता है ऐसेहीं सुखभी प्राचीन कर्मसे गम्भीर वेगवाले कालसे विनाही चाहे आनकर प्रगट होजाता है ॥ १८ ॥ मुकुन्दसेवी जन, कभी भी संसारमें नहीं आता है, हे मित्र! केवल कर्मनिष्ठावालोंकी भाँति, क्योंकि भगवच्चरणारविन्दका स्पर्श फिर स्मरण करैहै त्यागनेकी इच्छा नहीं करते वह रस

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः॥तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा॥
॥१८॥ न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदंग संसृतिम् ॥ स्मरन्मुकुंदांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न
रसग्रहो यतः ॥ १९ ॥इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ॥ तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथाऽपि वै
प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥ त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक्परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ॥ अजं
प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥ इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्त
स्य च बुद्धिदत्तयोः॥अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥ २२ ॥

मानकर उसको ग्रहण करते हैं॥१९॥ यह विश्व ईश्वररूपही है और नहीं है जिससे जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है सो तुम सब भली भाँति जानो हो तौभी आपको एक देशमात्र दिखाया है॥२०॥ हे अमोघदृष्टिवाले! परपुरुष परमात्माकी तुम साक्षात् कला हो सो मनसे परमात्माको जानो जिसे अजन्मा कहते हैं, उसी परमात्माने जगत्के कल्याणके लिये जन्म लिया ऐसे महाप्रतापीकी लीला वर्णन करो ॥२१॥ पुरुषके तप, श्रवण, दान, पुण्य, करने और सुन्दर कूप, बावडीबनाने श्रेष्ठयुक्तिका, बुद्धिका यही प्रयोजन कवियोंने कहा है कि परमात्माका गुण गाना ॥२२॥

हे व्यासदेव ! मैं पहिले जन्ममें एक देदवादी ब्राह्मणकी दासीसे उत्पन्न हुआथा, मुझे बाल अवस्थाहीमें वर्षाकालमें ठहरे हुए साधुवोंकी सेवा करनेको नियुक्त करदिया था वह ब्राह्मण साधुसंतोंकी सेवामें लवलीन था, वर्षाके दिनोंमें उस ब्राह्मणके स्थानपर साधु संत आकर उसके यहाँ विश्राम किया करतेथे और उस ब्राह्मणने साधुलोगोंके चौका वर्तनकी टहलके लिये मेरी माताको नियत करदिया था, मैंभी अपनी माताके संग उन साधुओंके निकट रहकर आठोंपहर उनका दर्शन करतारहता था, जिस समय साधुलोग परस्पर बैठकर श्रीनारायणकी कथा वार्ता कहतेथे, उस समय मैंभी उनके समीप बैठा सुनता रहता और उनकी सेवा करतारहता था और वह ऋषिभी मेरे ऊपर दया करतेथे ॥२३॥ मेरे चित्तकी

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ॥ निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३ ॥ ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दांतेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ॥ चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोल्पभाषिणि ॥ २४ ॥ उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुंजे तदपास्तकिल्बिषः ॥ एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥ तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ॥ ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यंग ममाभवद्रुचिः ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्य स्खलिता मतिर्मम ॥ ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥ २७ ॥

सब चंचलता दूर होगई, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता थोडा बोलता और वह समदर्शी साधुभी मुझपर अनुग्रहकरते थे ॥२४॥ उस ब्राह्मणकी आज्ञानुसार उन साधुओंके पात्रोंमें उच्छिष्ट जो शेष रहजातीथी मैं नित्यप्रति वही भोजन पाताथा इससे मेरे सब पाप दूर होगये जब मैं ऐसे विशुद्ध चित्तसे रहने लगा तब तो उस धर्ममें मेरी अधिक रुचि होगई ॥२५॥ हे मित्र ! दिनरात कृष्ण कथा उनके मुखसे सुननेसे प्रिय यशवाले भगवान् वासुदेवमें मेरी रुचि दिन दिन अधिक होती गई ॥ २६ ॥ हे व्यास ! श्रीनारायणके चरणारविन्दोंमें जब मेरी अधिक रुचि बढी तौ मेरी अखण्डित बुद्धि होगई, यह सब मुझको दीखने लगा सत् असत् अपनी मायासे ब्रह्ममें कल्पित माननेलगा ॥ २७ ॥

इसप्रकार शरद वर्षाऋतुमें दिनरात परमेश्वरका निर्मल यश सुनता रहूँ जो महात्मा मुनियोंने गाया उससे आत्माके रज,तम नाश करनेवाली प्रवृत्ति होगई ॥ २८ ॥ वह अनुरागी, नम्र, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, मुझ सेवक बालकपर अत्यन्त कृपा करनेलगे ॥ २९ ॥ वह दीनवत्सल साधु चलते समय मुझे साक्षात् श्रीभगवान्के मुखसे निर्गत गुह्यतम ज्ञानका उपदेश करगये ॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे सर्वव्यापक भगवान् वासुदेवकी मायाका प्रभाव जाना जिससे उस परम पदवीको सब जातेहैं ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह आध्यात्मिकादि तापत्रयीकी औषधि है जो बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट,चैतन्य, पूर्णरूप, भगवान् ब्रह्म, ईश्वरमें सब कर्म समर्पण करना॥३२॥हे सुव्रत ! जो रोग जिस वस्तुसे जीवोंको होय वह रोग उस

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ॥ संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मर
जस्तमोपहा॥२८॥तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ॥ श्रद्दधानस्य बालस्य दांतस्यानुचरस्य च ॥ २९ ॥
ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम्॥अन्ववोचन्गमिष्यंतः कृपया दीनवत्सलाः॥३०॥ येनैवाहं भगवतो वासुदे
वस्य वेधसः ॥ मायानुभावमविदं येन गच्छंति तत्पदम् ॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ॥
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥ आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ॥ तदेव ह्यामयं द्रव्यं
न पुनाति चिकित्सितम्॥३३॥एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः॥त एवात्मविनाशाय कल्पंते कल्पिताः परे॥३४॥

वस्तुसे उसका नहीं जाता चाहे कैसीही चिकित्सा करो ॥३३॥ऐसे मनुष्योंके सब कर्मकाण्ड अपने निमित्तसे करै तो सदा संसारमें जन्मता मरता रहताहै और अपना विनाश होयहै,वही सब परमेश्वरमें समर्पण करै तो अपना मोक्ष होताहै प्रथम तो महात्मा पुरुषोंकी सेवा, उससे उनकी कृपा होय उस कृपासे उस धर्ममें श्रद्धा होय तब भगवत्कथा सुननेसे ईश्वरमें प्रीति होय उस प्रीतिसे दोनों देहोंको विवेक होय ऐसा आत्मज्ञान होताहै तब दृढ भक्ति उस भक्तिसे भगवान्का तत्त्वज्ञान उस तत्त्वज्ञानसे सर्वज्ञत्व सर्वात्मत्व अपहतपाप्मत्व इत्यादि भगवद्गुण,प्रगट होनेका यह क्रम है॥३४॥

जिस कर्ममें भगवत्की प्रसन्नता है यह जानिके जो कर्म करै हैं उस कर्मके अधीन भक्तियोंसमेत ज्ञान होताहै ॥३५॥ भगवान्की आज्ञा है कि, सब शुभ कर्म करो यह जान जो कर्म करैं हैं उनका मोक्ष होताहै, जो मनुष्य श्रीकृष्णके गुण अपने मुखसे उच्चारण करै है वह निःसन्देह मोक्षका भागी है ॥३६॥ भगवान्को नमस्कार और वासुदेवका ध्यान करै, प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धको नमस्कार करै ॥३७॥ इन मूर्तियोंके नामसे मंत्रोक्त मूर्ति बनावै वह मूर्तियोंके नामसे है और बाह्यकी यह मूर्ति नहीं है ऐसा जानकर जो पूजन करै तो वह पुरुष सुन्दर दर्शन करने योग्य होजाताहै ॥३८॥ ब्रह्मन्! यह अपना ज्ञान जो मैंने अनुष्ठान किया इससे परमात्माने मुझको ज्ञान ऐश्वर्य दिया ॥३९॥ हे बहुश्रुत! विभुकी लील

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम्॥ ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥३५॥ कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगव
च्छिक्षयाऽसकृत्॥ गृणंति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरंति च ॥ ३६ ॥ ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ ३७ ॥ इति मूर्त्यभिधानेन मंत्रमूर्तिममूर्तिकम्॥ यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्श
नः पुमान् ॥ ३८ ॥ इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम्॥ अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥ ३९ ॥
त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदा बुभुत्सितम्॥ आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशंति
नान्यथा ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भा० प्रथ० व्यासनारदसं० पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य
भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ॥ भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते
विज्ञानादेष्टृभिस्तव ॥ वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥ २ ॥

तुमभी कहो जिससे ज्ञानियोंके सब जाननेकी इच्छा पूरी होजाय और दुःखसे पीडित जीवोंका सब क्लेश जिससे शान्त होगा और प्रकारसे नहीं ॥४०॥ इति श्रीभा० महा० प्रथमस्कंधे भा०टी० श्रीव्यासनारदसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥५॥ दोहा-मिले छठे अध्यायमें, ज्यों नारदको सिद्ध ॥ जगत् माहिं जातेभये, नारद परमप्रसिद्ध ॥ १ ॥ इतनी कथा सुनाय सूतजी बोले कि हे शौनक ऋषि! सत्यवतीसुत व्यासजी देवऋषि-नारदके जन्म कर्मकी कथा सुनकर फिर नारदजीसे बूझने लगे ॥ १ ॥ कि, हे कृपासिन्धु! वह ज्ञानदाता भिक्षु जब सब चलेगये तो आपने प्रथम

अवस्थामें क्या किया ? ॥२॥ हे स्वायंभुव! आपने पिछली अवस्था कैसे व्यतीत करी जब काल आया तो वह शरीर कैसे त्यागन किया॥३॥ हे सुरसत्तम ! प्रथम कल्पका स्मरण तुमको कैसे बना रहा सबको परलोकदाता यह काल खंडित न हुआ तुम्हारी स्मृतिभी खंडित नहीं हुई सो कहो ॥ ४ ॥श्रीनारदजी बोले कि, ज्ञानदाता भिक्षु जब चलेगये तब आयुकी आदिमें यह किया ॥ ५ ॥ मेरी माता स्त्रीस्वभाव मूढ़ दासी कोई बाततक करनी जिससे न आवै एक मैंही उसके अकेला बेटा मुझसे अधिक स्नेह रक्खै ॥६॥और मेरे निर्वाहकी चिंता रात दिन करती रहै परन्तु

स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ॥ कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥ प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं
ते सुरसत्तम ॥ नह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥४॥ नारद उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥
वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी ॥ मय्यात्मजेऽनन्यगतौ
चक्रे स्नेहानुबंधनम् ॥ ६ ॥ साऽस्वतंत्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ॥ ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी
यथा ॥ ७ ॥ अहं च तद्ब्रह्मकुलं ऊषिवांस्तदवेक्षया ॥ दिग्देशकालाऽव्युत्पन्नो बालकः पंचहायनः ॥८॥ एकदा निर्गतां
गेहाद्दुहंतीं निशि गां पथि॥ सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः॥ ९ ॥ तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभी
प्सतः॥ अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम्॥ १० ॥

वहभी पराधीन और असमर्थ थी जैसे काठकी पुतली नटुवेके वशमें रहती है ॥ ७ ॥ माताके स्नेहसे मैं उसब्राह्मणके पास रहता रहा परन्तु मनमें दिनरात बिचार करता रहूँ कि, इस मोहकी फाँसीसे किस दिन छूटूंगा साधुलोगोंकी कृपासे मैं अपने आपको पांच वर्षका नहीं समझता था ॥८॥ एकदिन मेरी माता उस ब्राह्मणके लिये दूध दुहानेको जाती थी सो मार्गमें उस बिचारीको काले सर्पने डसलिया ❀ ॥९॥तब मैं अत्यन्त आनन्द हो उस समय यही बिचार किया कि ईश्वर भक्तोंकासदा कल्याण करते हैंऔर मुझे अपनादास जान मुझपरभी अनुग्रह किया

शंका--नारदकी माताके ऊपर मुनिलोगोंकी बडी कृपा थी,क्योंकि जो कृपा नहीं करते तो मुनियोंके सकाशसे नारदका जन्म उस दासीमें क्यों होता ऐसी मुनियोंकी. कृपासे नारदजीकी माता सर्पके काटनेसे यों मरगई,ऐसी खोटीमृत्यु,नारदजीकी माताको सुनके हमको बडी शंका होती है.

उत्तर--नारदकी माताने मुनियोंको तीर्थयात्रा करनेके लिये जाता देखकर और अपने पुत्र नारदको ज्ञानमें रमण करता जानके और इन्द्रियोंको बडी बलवान् समझके भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करने लगी

यह बात निश्चय समझ मैं उसी समय उत्तर दिशाकी ओरको चलदिया ॥१०॥ समृद्धदेश, राजधानी, ग्राम, व्रज, रत्नादि उत्उत्पत्तिस्थान, किसानोंके गांव; सुपारी पुष्पोंकी वाटिका स्वतःसिद्ध वृक्षसमूहोंके बन डट रहे और वृक्षसमूहोंके सुन्दर उपवन देखे ॥ ११ ॥ चित्रधातु विचित्र पर्वत हाथी वृक्षोंकी शाखा तोडरहे निर्मल जल भरे ताल झकोल रहे मार्गमें जहाँ तहाँ मनोहर कूप, बावडी, ताल, नदी, वन दृष्टि आते थे ॥ १२ ॥ सुन्दर सुन्दर भ्रमर जहाँ तहाँ गुञ्जार रहेथे पक्षी चित्र विचित्र अपनी अपनी बोली बोल रहेथे. नर्सल, बांस, वीरण मूलके

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥११॥ चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ॥ जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥१२॥ चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ॥ नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥ १३ ॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ॥ घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम् ॥ १४ ॥

समूह कुशा बांसोंमें आपसे आप छिद्र हो रहेहैं उसमें पवन भरकर बांसुरीके समान सुरीले शब्द निकल रहेहैं वह कीचक कहातेहैं, इनसेही महागम्भीर हो रहा॥१३॥मैं अकेलाऐसे महाघोरभयंकर वनमें सर्प, बिच्छू, शृगालजहाँ भयानक बोलीबोल रहेथेउनको देखता चलजाताथा॥१४॥

—और अपने मनमें यह विचारनेलगी कि, मुनिलोग तो मुझको छोडकर अपने अपने आश्रमको चलदिये और पुत्र मेरा ज्ञानमें मतवाला है, अब मेरी प्रतिपाल कौन करेगा क्योंकि इन्द्रिय तो अपनी ओरको मेरे प्राण खैंचखैंच मुझको कठिन दुःख देंगी नारदकी माताने विचार किया कि शूद्रकुलमें मेरा जन्म हुआ, शूद्रोंकी मैंने संगति की, किसी शुभकर्मके प्रभावसे मुझकोमुनियोंकी संगति प्राप्त हुईहै और ज्ञान ध्यानसे हीनहूँ, मेरे हृदयमें कुछभी ज्ञान नहीं, अब मैं निराधार हूं, मेरा मरण शीघ्र होना चाहिये इसप्रकार भगवान्से विनय करने लगी, तब भगवान् ने उसकी विनय स्वीकार करके शीघ्र मृत्यु होनेके लिये सांपसे कटवाया जब वह मरगई तो उसको सुरपुरका वास दिया और उसको अपने सन्मुख रक्खा, इसलिये सर्प बाधासे नारदजीकी माताका मरण हुआ, इसलिये उसको अपने सन्मुख रक्खा, कि, जिस प्राणीको सांप डस लेता है उसकी दुर्गति होती है उसकी कुगति न हो और नारदकी माताको मुनियोंकी कृपासे भगवान्ने अपने सन्मुख वासस्थान दिया.

चलते चलते सब शरीर शिथिल होगया तो एक सुन्दर सरोवर मुझको दृष्टि आया तब मैं भूखा प्यासा उस तालके जलमें स्नान करके जल पिया तो मेरे शरीरका सब श्रम दूर हुआ ॥ १५ ॥ उस महागम्भीर सरोवरके तीर एक पीपलका वृक्ष था मैं उस पीपलके नीचे बैठकर परमेश्वरके स्वरूपका हृदयमें ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भावसे मन जीतकर परमात्माके अमलचरणकमलका ध्यान करनेलगा, प्रीतिवशःहो नेत्रोंसे आंसू बहनेलगे तब धीरे धीरें हृदयमें भगवान् वासुदेवका दिव्यरूप ऐसा दिखाई दिया कि, एक पुरुष सुन्दर स्वरूप जिसके मुखारविन्दका प्रकाश कोटि भास्करसे भी अधिक, चतुर्भुजी मूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म चारों हाथोंमें लिये पीताम्बर पहने वैजयंती माला कण्ठमें धारण किये, किरीट मुकुट शिर धरे, त्रिभंगी छबिकरे मकराकृतकुण्डल कानोंमें पहने, श्यामरूप, कमलनयन, लम्बी भुजा, तापहारिणी चितवन

परिश्रांतेंद्रियात्माऽहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ॥ स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥१५॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये
पिप्पलोपस्थ आस्थितः ॥ आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिंतयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणांभोजं भावनिर्जितचेतसा ॥
औत्कंठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७ ॥ प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकांगोऽतिनिर्वृतः ॥ आनंदसंप्लवे
लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥ १८ ॥ रूपं भगवतो यत्तन्मनःकांतं शुचापहम् ॥ अपश्यन्सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना
इव ॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ॥ वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥ २० ॥ एवं यतंतं
विजनेमामाहागोचरो गिराम् ॥ गंभीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥ २१ ॥

मन्द मन्द मुसकाते बाँकी झाँकी दिखाते मेरे सम्मुख आये,उस मनमोहन स्वरूपको देखतेंही मैंने परमानन्द होकर चाहा कि इसीसुन्दर स्वरूपको निहारता रहूँ ॥१७॥ प्रेम प्रीतिके भावसे हृदय पुलकायमान होगया मनमहासुखी हो आनन्दके महाप्रवाहमें लीन हो गया देहकी सब सुधि बिसरगई परमात्माकीभी सुधि नहीं रही ॥ १८ ॥ मनका सुखदायक शोकनाशक जो भगवान्का रूप है सो एक संग हृदयमें दीखा और मैं आनन्दसे दीखता रहा, विवशतासे मेरा मन कुछ खेदित हुआ जब वह स्वरूप मेरे ध्यानसे अन्तर्धान हुआ ॥१९॥ उस रूपके देखनेको फिर हृदयमें मन लगाया प्रथम जो रूप देखा था वह रूप फिर दिखाई नहीं दिया ॥ २० ॥ उस एकांत वनमें मुझ यत्नशीलको परमेश्वरने गम्भीर

अकाशवाणीसे मेरे मनका सब शोक दूर किया ॥ २१ ॥ बडे खेदकी बात है कि, इस जन्ममें तू मेरा दर्शन करनेके योग्य नहीं था क्योंकि
कामके मल जिनके हृदय और मनके दग्ध नहीं हुए हैं उन कुयोगियोंको मेरा दर्शन नहीं होता ॥ २२ ॥ हे पापरहित ! एकबार मैंने अपना
वरूप तुझको इसलिये दिखायाहै कि,तेरे मनमें अनुराग बढ़ै और जो मेरे चाहनेवाले साधक लोग हैं वह सब कामादिक विषयका त्याग करदेते,
हैं ॥२३॥ और थोड़ीहीसी सज्जनोंकी सेवासे तेरी मति मुझमें अत्यन्तदृढ़ होगई अब इस निन्दित देहको त्याग तू मेरा पार्षद होगा ॥ २४ ॥
और मुझसे तेरी प्रीति सृष्टिके आदि अन्तमें कभी नहीं छूटैगी और मेरी कृपासे तुझे इस जन्मका सब वृत्तान्त स्मरण रहेगा ॥२५॥इस श्लोकमें

हंतास्मिञ्जन्मनि भवान्न मां द्रष्टुमिहार्हति ॥ अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥२२॥सकृद्यद्दर्शितं रूपमेत
त्कामाय तेऽनघ ॥ मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुंचति हृच्छयान् ॥ २३ ॥ सत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मयि दृढा
मतिः ॥ हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गंता मज्जनतामसि ॥२४॥ मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ प्रजासर्गनिरो
धेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥२५॥ एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिंगमलिंगमीश्वरम् ॥ अहं च तस्मै महतां
महीयसे शीर्ष्णावनामं विदधेऽनुकंपितः॥ २६ ॥नामान्यनंतस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ॥
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥२७॥ एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ॥ कालः
प्रादुरभूत्काले विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २८ ॥

विलक्षण बातहै कि,जिसकी देह नहीं,सबसे बड़ी जिसकी श्वास आकाशके भीतर जिसकी मूर्ति, ऐसे ईश्वर परमात्मा मुझसे कहकर चुप होगये
मैंने भी सब बड़ोंकी कृपासे उस परब्रह्म परमेश्वरको वारंवार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और सब लज्जा तजकर भगवत्का भजन करनेलगा, जो
मांगलिक छिपेहुए परमेश्वरके चरित्र थे उनका स्मरण करने लगा और सब पृथ्वीपर फिरूं और अपने मनको प्रसन्न रक्खूं किसी वस्तुकी चाहना
नहीं करता मद,मत्सर,ईर्षा,सब त्याग दी,कालकी वाट दिनरात देखता रहता ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे अकस्मात् सुदामा पर्वतसे बिजली निकलै और
उसीमें समाय उसकी समान कृष्णमें मेरी मतिहुई और किसीमें आसक्त नहीं,निर्मल आत्मा मेराहोगयाजब मृत्युका समय आया तो मृत्युहोगई२८

प्रारब्धकर्म समाप्त हुए तब पञ्चभूतका शरीर गिरपडा शुद्ध भगवत् पार्षदका देह जो शुद्ध सत्त्वमय है सो परमात्माने मुझको दिया ॥ २९ ॥
कल्पके अंतमें इस त्रिलोकीका संहार कर श्रीनारायणने क्षीरसमुद्रमें सोनेकी इच्छा करी और वह शेषशय्यापर सोये, तब उनके श्वासके संगमें
प्रविष्ट हो गया॥ ३० ॥जब सहस्रयुग सोतेसोते होगये तब उठे,तब ब्रह्मा अंतर्यामी ईश्वरने इसके रचनेकी इच्छा करी; तब मरीच्यादि ऋषि हुए
और प्राणसे हम हुए॥ ३१॥सब ठौरमें मेरे जानेकी गति होगई बाहर भीतर त्रिलोकीमें कहीं चलाजाऊं अखण्डित ब्रह्मचर्यलेकर महाविष्णुके अनु
ग्रहसे सब संसारमें पर्यटन करूंहूं॥ ३२॥श्रीईश्वरके दिये जो 'सा, री,ग म,प,ध, नी,' यह सात स्वर हैं, ब्रह्मरूप इनके ग्राम इस वीणामें बजाता,

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ॥ आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ॥ २९ ॥ कल्पांत इदमादाय
शयानेऽम्भस्युदन्वतः ॥ शिशयिषोरनुप्राणं विविशेंऽतरहं विभोः ॥ ३० ॥ सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थायेदं सिसृक्षतः ॥ मरीचि
मिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे॥ ३१ ॥अंतर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कंदितव्रतः ॥अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः
क्वचित् ॥ ३२ ॥ देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥ मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥ ३३ ॥ प्रगायतः
स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ॥आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥ ३४ ॥ एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया
मुहुः ॥ भवसिंधुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥ ३५ ॥ यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ॥ मुकुन्दसेवया यद्वत्तथा
ऽत्माऽद्धा न शाम्यति॥ ३६ ॥सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम्॥ ३७ ॥

परमेश्वरके गुण गाता, सब संसारमें घूमता फिरूँहूँ ॥ ३३ ॥ और भगवान्‌के चरित्र जब मैं गाऊंहूँ तो ऐसा मग्न होजाऊँ हूँ मानो श्रीकृष्णचन्द्र
आनन्दकन्द शीघ्र चित्तमें आके दर्शन देतेहैं और मुझको बुलातेहैं ॥ ३४ ॥ आतुर चित्तवालोंको विषय स्पर्शकी इच्छासे वारंवार संसारसमुद्रके
तरनेकी नाव हरिके चरित्रोंका वर्णन करनाहै॥ ३५ ॥काम, लोभ, मोहसे ग्रसित जीवका मन योगके मार्गमें यम नियमादिसे शान्त नहीं होता जैसे
मुकुन्दकी सेवा मात्रसे मन शान्त होताहै॥ ३६ ॥ हे पापरहित व्यासजी ! जो तुमने बूझा सो हमने सब जन्म कर्मका रहस्य आपसे कहा और

आपका मन प्रसन्न किया॥३७॥सूतजी बोले कि, शौनक मुनि सत्यवतीके पुत्र श्रीव्यासजीसे भगवान् नारदमुनि ऐसे कहके उनसे आज्ञा ले वीणा बजाते हरिगुणगाते स्वप्रयोजन संकलपशून्य होकरचलेगये ॥ ३८ ॥ देवर्षि धन्य हैं जो भगवान्की कीर्ति गातेहैं और आनन्द होतेहैं और नित्य प्रति वीणा बजाकर सब आतुर संसारका उद्धार करतेहैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां व्यासं प्रति नारदपूर्वजन्मकथावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥दोहा–इस सप्तम अध्यायमें, रची भागवत व्यास॥ पुनि पढ़ाय निजपुत्रको,पूरी मनकी आस॥७॥ शौनकमुनि बोले कि, हे सूतजी ! जब नारदमुनि चलेगये, तब उनका सब अभिप्राय सुनकरसर्व समर्थ विभु व्यासजीने क्या किया ? ॥ १ ॥

सूत उवाच ॥ एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ॥ आमंत्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ३८ ॥ अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ॥ गायन्माद्यन्निदं तंत्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमा० प्रथम० व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ शौनक उवाच ॥ निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः ॥ श्रुतवांस्तदभिप्रेतमितः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ॥ शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥ २ ॥ तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमंडितं ॥ आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥ ३ ॥ भक्तियोगेन मनसि सम्यक्प्रणिहितेऽमले ॥ अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥ ४ ॥ यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ॥ परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥ ५ ॥ अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ॥ लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ ६ ॥

ब्रह्मनदी सरस्वतीनदीके किनारे ऋषियोंकायज्ञ बढ़ानेवाला पश्चिमकी ओर शम्याप्रासनामक एक आश्रम था ॥ २ ॥ उस आश्रमके चारों ओर बेरके वृक्ष शोभा देरहेथे, उनकी शीतल छायामें व्यासजी बैठे आचमन कर मनसे परमेश्वरका ध्यान करनेलगे ॥३॥ भक्तियोगसे अपने निर्मल मनको निश्चल किया तो पूर्ण पुरुषका दर्शन हुआ और उनके आधीन जो माया है उसकोभी देखा॥ ४ ॥ जिस मायाके मोहित होनेसे जीव त्रिगुणसे परभी आत्माको देहरूप मानताहै और उस देहमें जो सुखदुःख होतेहैं सो आत्मामें मानताहै ॥ ५ ॥ अनर्थनाशक साक्षात्

भक्तियोग भगवान्‌में जब लोग न करनेलगे तो श्रीव्यासजीने श्रीमद्भागवत संहिता बनाई ॥६॥ जिस श्रीमद्भागवत संहिताके हितचित्तसे सुननेसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द परमपुरुषके चरणारविन्दोंमें मोह, शोक,जरानाशक,सुखप्रकाशक भक्ति पुरुषको उत्पन्न होतीहै * ॥७॥सो व्यासदेव श्रीभागवत संहिता रचकर और शोधकर अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ानेलगे वह शुकदेवजी सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहतेथे॥८॥ शौनक ऋषि बोले कि, हे सूतजी ! जो सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहैं सब संसारसे जिनका त्याग आत्मामें रमण करते रहैं ऐसे शुकदेवजीने किसकारण ऐसी भारी संहिताके पढ़नेका अभ्यास किया ॥९॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! आत्माराम क्रोध अहंकाररूपी गाँठैं जिनकीदूर होगई. ऐसे मुनि

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ॥ भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहजरापहा ॥७॥ स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनु
क्रम्य चात्मजम् ॥ शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥ ८ ॥ शौनक उवाच ॥ स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको
मुनिः ॥ कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥९॥ सूत उवाच ॥ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथा अप्युरुक्रमे ॥
कुर्वंत्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥ १० ॥ हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः ॥ अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं
विष्णुजनप्रियः ॥११॥ परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्म कर्म विलायनम् ॥ संस्थां च पांडुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥१२॥

6/

लोग फलकी इच्छा नहीं करते विनाही फल परमेश्वरकी भक्ति करैं हैं हरिके गुण ऐसेही हैं ॥१०॥ श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंमें जिनकी परम प्रीति ऐसे भगवान् शुकाचार्यने यह महाव्याख्यान पढ़ा उन शुकदेवजीको विष्णुके भक्त बड़े प्यारे हैं ११॥ अब हम तुमको परीक्षित् राजऋषिके जन्म,कर्म,

---

* **शंका**--सूतजीने ऐसे वचन क्यों कहे ? कि, भागवत सुनेगा तो श्रीकृष्णमें भक्ति होगी इस बातसे तो यह विदित होताहै कि, भागवतके सुननेसे केवल; अकेले कृष्णकी भक्ति होती है और जो भगवान्‌के अनन्त अवतार हैं उनमें भक्ति नहीं होगी यह बडे सन्देहकी बात है।

उत्तर—मुनिलोग आदर सत्कार करके व्यासजीकोभी कृष्ण कहतेहैं,क्योंकि भगवान्‌के अनन्त नाम हैं कृष्ण विष्णु जगन्नाथ इनको आदि लेके और अनेक नाम हैं, तोभी व्यासजी सूतके गुरु हैं कृष्ण नाम सूतजीके हृदयमें सदा प्यारा है,इसलिये एकरूपमें सूतने कहा कि भागवतके सुननेसे कृष्ण जो व्यासहैं उनमें भक्ति होगी कुछ विरुद्ध नहीं कहा क्योंकि सब संसार कृष्ण भगवान्‌का रूप है, भगवान्‌के एकरूपमें भक्ति हुई तो अनन्त रूपमें होवेगी ईश्वरके रूपोंमभी कुछ भेद नहीं है।

मुक्ति,मृत्युकी औरपांडुपुत्रोंके स्वर्ग जाने और श्रीकृष्णचन्द्रकी कथाओंका उदय सुनाते हैं॥ १२॥जैसे–जब परीक्षित् गर्भमें थे तब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे श्रीकृष्णचन्द्रने रक्षाकरी उसकथाका प्रारम्भ करतेहैं। जिस समय युद्धमेंकौरव पाण्डव धृष्टद्युम्नप्रभृतियों समेत वीरलोग जब वीरगतियोंको गये. भीमसेनकी फेंकी गदाके लगनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी जंघा टूटी थी ॥ १३ ॥ उस समय अश्वत्थामा दुर्योधनका प्रिय मित्र, उसकी जंघा टूटी देखकर द्रौपदीके सोतेहुए पुत्रोंका शिर काटलाया, यह बहुत बुरी बात है। इस निन्दित कर्मकी शास्त्रमें बडी निन्दा लिखी है ॥ १४ ॥ द्रौपदी पुत्रोंका मरना सुनकर महा दुःखी हो रोती पीटती आँखोंसे आंसू बहाती अर्जुनके पास आई, अर्जुनने उसको रोनेसे बंद किया और यह

यदा मृधे कौरवसृंजयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ॥ वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदंडे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३ ॥ भर्तुः
प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ॥ उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्ह
यंति ॥ १४ ॥ माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना ॥ तदारुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी तां सांत्वयन्नाह
किरीटमाली ॥ १५ ॥ तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ॥ गांडीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्र
म्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥ इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सांत्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ॥ अन्वाद्रवद्दंशित
उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥ १७ ॥ तमापतंतं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन ॥ पराद्रवत्प्राणपरी
प्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथा कः ॥ १८ ॥

कहा ॥ १५ ॥ हे भद्रे आगका लगानेवाला १, विषका देनेवाला २, शस्त्रका बाँधनेवाला ३, धनका चुरानेवाला ४, पराई भूमिका हरनेवाला ५, स्त्री और बालकोंका मारनेवाला ६,यह छ आततायी कहलाते हैं,सो ब्राह्मणोंमें अधम आततायी अश्वत्थामाका शिर गाण्डीव धनुषसे निकले बाणोंसे काटकर तेरे सन्मुख लाऊँ, उसके ऊपर खडी होकर तुम स्नान करोगी तो तुम्हारे पुत्रोंके मरनेका शोक दूर होगा ॥ १६ ॥ ऐसे द्रौपदीको मन मनोहर विचित्र वाक्योंसे प्रसन्न करके श्रीकृष्ण जिसके मित्र और सारथी, कवच पहरे, गाण्डीव धनुष हाथमें लिये कपिध्वज अर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे रथपर चढ़कर दौड़ा ॥ १७ ॥ बालघाती कम्पितहृदय प्राणोंका भय किये जी लिये अश्वत्थामा अर्जुनको दूरसे अपने

पीछे आता देख, रथपर बैठकर जहाँतक भागागया वहाँतक भागा। जैसे शिवके भयसे सूर्य भागेथे। वामनपुराणमें ऐसे लिखा है "विद्युन्माली नाम एक शिवका भक्त राक्षस था उसको शिवजीने सोनेका एक विमान दिया, सो वह राक्षस विमान पर चढ़ सूर्यके पीछे२ फिरा करै विमानके प्रकाशसे रात होनी दूर होगई, तब सूर्यने देखाकि, मेरा तेज नष्ट होगया यह जान उसका विमान पृथ्वीपर गिरादिया,यह सुनकर महादेवजी कोप करके सूर्यके मारनेको दौडे तब तौ सूर्य घबराकर भागे और रुद्रकी क्रूरदृष्टिसे जलकर काशीमें गिरे, सो आजतक काशीमें लोलार्क नाम तीर्थ विख्यातहै"॥१८॥जब अश्वत्थामाके रथके घोडे थकगये और अपने शरीरका कोई रक्षक नहीं दिखाई दिया तब विप्रपुत्रने अपनी रक्षाके लिये ब्रह्मास्त्र

यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रांतवाजिनम् ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९ ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं
संदधे तत्समाहितः ॥ अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥ २० ॥ ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचंडं सर्वतोदिशम् ॥ प्राणा
पदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥ २१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्णकृष्ण महाभाग भक्तानामभयङ्कर ॥ त्वमेको दह्य
मानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥ २२ ॥ त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ॥ मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये
स्थित आत्मनि ॥ २३ ॥ स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ॥ विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयोधर्मादिलक्षणम् ॥ २४ ॥
तथाऽयं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥ स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥ २५ ॥

चलानेकी चेष्टा की ॥ १९॥ तब आचमन कर प्राण बचानेकेलिये ब्रह्मास्त्र चलाया परन्तु ब्रह्मास्त्रका फेरना वह नहीं जानताथा ॥ २० ॥ सब ओरसे प्रचण्डतेज जब ब्रह्मास्त्र प्रगटा और प्राणोंपर आपत्ति आई जान, अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! महाभाग ! तुम भक्तोंके अभयकारक और संसारके जीवजंतुओंके सुखदायक हो ॥ २२॥ तुम आदि पुरुष साक्षात् केवल मायासे परे हो अपनी चिच्छक्तिसे मायाका तिरस्कार कर कैवल्य आत्मामें आप स्थित हो ॥ २३ ॥ मायामोहित चित्त ऐसे जीवलोकका अपने प्रभावसे धर्मादिक लक्षण कल्याण सो तुमही विधान करोहो॥२४॥यह आपका अवतार भूमिका भार उतारनेकी इच्छासे है और अपने जाति और एकान्तभक्तोंके ध्यानके लिये है॥२५॥

हे देवदेव ! यह क्या है ? कहाँसे आयाहै ? सब ओरसे परमदारुण तेज आवेहै हम नहीं जानते ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पार्थ ! प्राणोंपर आपत्ति आती देख द्रोणाचार्यके पुत्रने ब्रह्मास्त्र चला है सो यह चलाना तो जानताहै परन्तु अपने पास बुलाना नहीं जानता ॥ २७ ॥ इस अस्त्रको दूर करनेवाला और कोई उपाय नहीं है तुमभी अपना ब्रह्मास्त्र चलाकर अपने तेजसे इसका नाश करो, क्योंकि तुम दोनों बातें जानते हो ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! शत्रुनाशी अर्जुन भगवान्की बात सुनकर जलसे आचमनकर श्रीकृष्ण महाराजकी परिक्रमा करके उस ब्राह्मणपर ब्रह्मास्त्र चलाया ॥ २९ ॥ तब दोनों ब्रह्मास्त्र परस्पर लडने लगे उनका तेज महाप्रचण्ड पृथ्वी आकाशको ढककर महाप्रलयकासा

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ॥ नैवासौ वेद संहारं प्राणघात उपस्थिते ॥ २७ ॥ न ह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ॥ स्पृष्ट्वाऽपस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥ २९ ॥ संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ॥ आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऽस्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत् ॥ दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥ ३१ ॥ प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ॥ मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ॥ ३२ ॥ तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ॥ बबंधामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥

समय करदिया । जैसे महाप्रलयमें संकर्षणके मुखकी अग्नि, ऊपरसे सूर्यका तेज यह दोनों मिलकर बढैं हैं, उसी भाँति दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज बढ़ा ॥ ३० ॥ उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज महाघोर त्रिलोकीको फूंक डालताथा और जलीहुई प्रजा कहतीथी कि, आज महाप्रलयका समय आगया ॥ ३१ ॥ प्रजा और लोकका नाश होता देख वासुदेवका मत लेकर अर्जुनने दोनोंको शान्त कर अपने पास बुलालिया ॥ ३२ ॥ बडे वेगसे उनको पकडकर गौतमवंशकी गौतमी कृपीके कठोर पुत्र अश्वत्थामाको क्रोधसे लाल लाल तांबेके रंगकेसे नेत्र किये यज्ञके पशुकी भाँति

बाँधलिया ॥३३॥ शोक रोष युक्त धनंजयकी धर्मनिष्ठा देख श्रीकृष्णजी सेनानिवासस्थानमें बलसे रस्सीसे वैरीको बांधकर लेजाते अर्जुनसे क्रोधित हो बोले॥३४॥हे पार्थ ! यह अधम ब्राह्मण रक्षाकरने योग्य नहीं, इसको अभी मारडालो इस पापीने सोते हुए निरपराधी बालकोंको मारा है॥३५॥धर्मशास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, जो कोई मद्यादिकसेमत्त हो १ या और किसी प्रकारसे प्रमत्त हो २, ग्रहवातादिसे उन्मत्त हो ३, सोता हुआ जीव ४, बालक ५, स्त्री ६, जो कोई उद्यम नहीं जानता ७, जो कोई अपनी शरण आया हो ८ इन आठ जीवोंकी धर्मवेत्ताओंकोसदै वरक्षा करनी चाहिये चाहै यह अपने शत्रुभी हो तौ भी इनका मारना योग्य नहीं ॥ ३६॥ पराये प्राण लेकर जो निर्दयी दुष्ट अपने प्राण पुष्ट करताहै उसका

शिबिराय निनीषंतं दाम्ना बद्धा रिपुं बलात् ॥ प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥ ३४ ॥ मैनं पार्थार्हसि त्रातुं
ब्रह्मबंधुमिमं जहि॥ योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान्॥ ३५ ॥ मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ॥
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हंति धर्मवित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः॥ तद्वधस्तस्य हि श्रेयो
यद्दोषाद्यात्यधः पुमान्॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतं च भवता पांचाल्यै शृण्वतो मम ॥ आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि
पुत्रहा ॥ ३८ ॥ तदसौ वध्यतां पाप आततताय्यात्मबंधुहा॥ भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ॥ ३९॥ एवं परी
क्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ॥ नैच्छद्धंतु गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान्॥ ४० ॥ अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविंदप्रि
यसारथिः ॥ न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचंत्या आत्मजान्हतान् ॥ ४१ ॥

मारनाही श्रेष्ठ है उस दुष्टके मारनेसे पुरुष नरकमें नहीं जाते ॥ ३७ ॥ मेरे सन्मुख आपने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा कीथी कि, हे प्राणप्रिये ! जो तेरे पुत्रोंका मारनेवाला है उसका शिर काटकर तेरे आगे लाऊंगा ॥३८॥ सो तुम अपने पुत्रके वध करनेवाले आततायीको अवश्य मारो । हे वीर ! दुर्योधन भी इन बालकोंको देख दुःखी हुआ. यह अपने कुलमें धूरि समान है ॥३९॥ ऐसे श्रीकृष्णचंद्र आनंदकन्द अर्जुनको समझाने लगे. और अर्जुन यह जानताथा कि, यही मेरे पुत्रोंका मारनेवालाहै तोभी गुरुपुत्र समझ मारनेकी इच्छा नहीं करी ॥ ४० ॥ ऐसे धर्मध्वजाधारी अर्जुन जिनके श्रीकृष्णसरीखे मित्र और सारथी सो अश्वत्थामाको पकडकर अपने दलमें लाया जहाँ द्रौपदी बैठी अपने मरे पुत्रोंका शोक कर

रही थी, कहा हे द्रुपदनंदिनि ! तुम्हारे पुत्रोंका मारनेवाला उपस्थितहै ॥ ४१ ॥ पशुके समान गलेमें फांसी पडी निंदित कर्मसे नीचेको मुखकरे अपराधी गुरुपुत्र अश्वत्थामाको देख कृपा करके शील स्वभाववाली द्रौपदीने नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ और अपने पति अर्जुनसे कहा हे स्वामी ! इसका बाँधना मुझको सहन नहीं हो सक्ता, छोडदो छोडदो, यह ब्राह्मण हमारा पूज्य है इसके मारनेसे हमारे पुत्र जी नहीं सक्ते यह हत्यारा अपने कर्मोंका फल आप भोगैगा जिस भाँति मैं अपने मरेहुये पुत्रोंका शोक करती हूँ इसीप्रकार कृपी इसकी माताभी पुत्रके मरनेका दुःख देखैगी ॥ ४३ ॥ और आपको इसके पिताने गोप्य मंत्र सहित धनुर्वेद और ब्रह्मास्त्र चलाना और बुलाना दोनों बातें

तथाऽऽहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ॥ निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ॥४२॥ उवाच चासहंत्यस्य बंधनानयनं सती ॥ मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥ ४३ ॥ सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ॥ अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥ तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ॥ वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वंद्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ॥ यथाऽहं मृतवत्सार्ता रोदिम्य दुःखी मुहुः ॥ ४७ ॥

सिखाई और इसको इसके पिताने ब्रह्मास्त्र चलाना सिखाया परंतु बुलाना नहीं सिखाया, इसलिये जिस द्रोणाचार्यकी कृपासे सब अस्त्र, शस्त्र, यंत्र मंत्र तंत्र, तुम सिखेहो इसलिये इसको गुरुपुत्र समझकर छोडदो ॥ ४४ ॥ क्योंकि उन भगवान् द्रोणाचार्यने तुमको पुत्र करके समझा, सो उन द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगिनी कृपी इस पुत्रके रहनेसे सती नहीं हुई इस इकलौते अपने पुत्रका मुख देख देख जिये है, हाय ! जैसे मैं अपने मरेहुये पुत्रोंका शोक करूं हूँ, ऐसेही वहभी सोच करेगी ॥ ४५ ॥ इसलिये हे धर्मज्ञ ! हे महाभाग ! आप गुरु कुलको कष्ट नहीं दीजिये, बारंबार पूजन और वन्दन करने योग्य ब्राह्मण हैं ॥ ४६ ॥ पतिव्रता गौतमी इसकी माताको सोच न हो, क्योंकि

जैसे मेरे मुखपर आंसू बारंबार सलिल धारासे चले जातेहैं और मैं शिर पटक पटक रोरहीहूँ ऐसे कहीं वह पुत्रके शोकमें न रोवै ॥४७॥ ब्राह्मण कुल जिसपै कोप करै, चाहै वह कैसाही राजा हो उसका वंश और परिवार क्षणमात्रमें ब्रह्मतेजसे भस्म होजाताहै॥४८॥सूतजी बोले कि,हे ब्राह्मणो! निष्कपट धर्मशीला शान्त स्वभाववाली द्रौपदीके वचन सुन धर्मपुत्र युधिष्ठिरने बड़ी प्रशंसा करी ॥४९॥नकुल सहदेव, सात्यकी,अर्जुन,देवकी नन्दन भगवान् और जो स्त्रियें वहां प्रस्तुत थीं द्रौपदीकी यह बात सुन सबका मन प्रसन्न हुआ॥५०॥उस समय भीमसेन द्रौपदीकी बात सुनकर बडे क्रोधसे बोले कि,ऐसे दुष्टका मारनाही अच्छा है, क्योंकि अपने मित्र दुर्योधनका और अपना दोनोंका कुछ प्रयोजन सोते हुए बालकोंको

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः ॥ तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबंधं शुचाऽर्पितम् ॥ ४८ ॥ सुत उवाच ॥ धर्म्यं
न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ॥ राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनंदद्वचो द्विजाः ॥ ४९ ॥ नकुलः सहदेवश्च युयु
धानो धनंजयः ॥ भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥ ५० ॥ तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः ॥
न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन्सुप्ताञ्छिशून्वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ॥ आलोक्य वदनं
सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबंधुर्न हंतव्य आततायी वधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्य
नुशासनम् ॥ ५३ ॥ कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सांत्वयता प्रियाम् ॥ प्रियं च भीमसेनस्य पांचाल्या मह्यमेव च ॥ ५४ ॥

64

मारनेसे नहीं निकला "तुमने अश्वत्थामाके शिरकाटनेकी प्रतिज्ञा कीथी,सो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये और जो तुम कहतेहो कि हमको ब्रह्महत्याका कलंक लैगगा सो इसमें ब्रह्मअंश और ब्राह्मणका एक कर्मभी नहीं रहा, राजाओंका धर्म है कि ऐसे मनुष्योंको अवश्य मारना चाहिये" ॥५१॥ भीमसेनकी यह बात सुन द्रौपदी और अर्जुनकी ओर देखकर ॥५२॥ श्रीकृष्ण भगवान् वासुदेव बोले कि, आततायी वधके योग्य है और ब्राह्मण होय तो मारना नहीं चाहिये दोनों बातें हमने कही हैं परन्तु,ब्राह्मणके लिये देहदण्ड देना उचित नहीं यह हमारी आज्ञा है कि, सदा ब्राह्मणोंकी रक्षा करो,उनको धन दो,पूजा करो,ब्राह्मण कैसाही अपराध करे परन्तु वह वधके योग्य नहीं॥५३॥द्रौपदीके सन्मुख जो आपनें

प्रतिज्ञा की है उसका प्रतिपालन करो और भीमसेनकी बात माननाभी अवश्य चाहिये और राजा युधिष्ठिरका वचनभी स्वीकार करना चाहिये और मेरी भी प्रसन्नता करो और द्रौपदीकी भी प्रसन्नता करो ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले कि, हरिके हृदयकी बात जानकर अर्जुनने विचारा कि, कोई ऐसा यत्न करना चाहिये कि, अश्वत्थामाका प्राणभी बच जाय और मरण तुल्यभी हो जाय. ऐसा विचारकर अर्जुनने अश्वत्थामाके मस्तककी मणि अपनी तरवारकी नोकसे चीरकर निकालली और मूंड उसका मुंडवादिया ॥५५॥ रस्सीसे जो उसके हाथपांव बँधेथे और गलेमें फांसी पडी थी वह खोलदी बालोंके मुंडनसे उसकी कांति मलीन होगई और तेजहीन दृष्टि आनेलगा और मणिछीन अपने दलसे बाहर निकाल दिया. मुंडनकरना धन

सूत उवाच ॥ अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ॥ मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥५५॥
विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् ॥ तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥५६॥ वपनं द्रविणादानं स्थाना
न्निर्यापणं तथा॥एष हि ब्रह्मबंधूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकातुराः सर्वे पांडवाः सह कृष्णया ॥
स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भा० प्रथ० द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
सूत उवाच॥ अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम्॥ दातुं सकृष्णा गंगायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥

हरना और देशसे निकालदेना यही ब्राह्मणका मारनाहै और देहदण्ड तो हत्या है ॥५६॥५७॥ सब पाण्डव शोकसे व्याकुल हो द्रौपदीको आगे कर मरेहुए पुत्रोंकी दाहक्रिया करने लगे ॥५८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां भागवतसंहितावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

दोहा–अब अष्टम अध्यायकी, कथा सुनो देकान । नृपदुर्योधनकी क्रिया, कीन्ही वेदविधान ॥ १॥ इतनी कथा कह सूतजी बोले कि, हे ऋषीश्वरो! अश्वत्थामाके छोडनेके उपरान्त राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पाकर, दुर्योधन आदिक वीरोंकी लोथें जो रणस्थलमें पड़ीथीं उनके पुत्र पौत्र बन्धु उठा लेगये और विधिपूर्वक उनकी दाहक्रिया करी और पुत्रोंको तिलांजली देनेके लिये द्रौपदीको साथ ले और स्त्रियोंको आगेकर गंगा

किनारे गये॥ १॥ वह सब जल देकर बारम्बार विलापकर श्रीगंगामहारानीके अमृतरूपी जलमें स्नान किया॥२॥ तहाँ युधिष्ठिर धृतराष्ट्र भीमादि सहित पुत्रशोकातुर गांधारी, कुन्ती, द्रौपदी आदिको श्रीकृष्णचन्द्रने ॥ ३ ॥ जिनके पुत्र बन्धु मरगयेथे उन शोकाकुलोंको शांत किया और जिसका कोई कुछ न करसके ऐसे बलशाली कठिन करालकालकी चाल सब जीवोंमें दिखाने लगे ॥४॥ कपटी दुर्योधनादिकोंसे छीनाहुआ राज्य युधिष्ठिरको दिलवादिया और द्रौपदीकीचोटी पकड़नेसे जिनकी अवस्था नष्टहोगई ऐसे खोटे राजाओंको मरवायकर ॥ ५ ॥ और उत्तम उत्तम यज्ञकी सामग्री मँगाकर तीन अश्वमेध यज्ञ करवाकर उनका पवित्र यश इन्द्रकी भाँति दशों दिशाओंमें विस्तार किया ॥ ६ ॥ पांडुपुत्रोंसे

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ॥ आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥ २ ॥ तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं
सहानुजम् ॥ गांधारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥ सांत्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ्छुचार्पितान् ॥ भूतेषु
कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥ साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैर्हृतम् ॥ घातयित्वाऽसतो राज्ञः
कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ ५ ॥ याजयित्वाऽश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ॥ तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥६॥
आमंत्र्य पांडुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ॥ द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥ गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां
रथमास्थितः ॥ उपलेभेऽभिधावंतीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥

आज्ञा लेकर सात्यकी उद्धव सहित महा पूजनीय द्वैपायन आदि विप्रोंने उनकी पूजा करी॥७॥ हे ऋषियो! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी द्वारका जानेकी इच्छा हुई और रथमें बैठ सबसे बिदा मांगी, उससमय अश्वत्थामाने अपना अपमान समझ फिर ब्रह्मास्त्र चलाया तब वह पांचमुख बना कर पांचोंभाई पाण्डवोंकी ओरको आया और एक छोटीसी चिनगारी उसमेंसे निकली उसने उत्तराके उदरमें प्रवेश किया कि, इसके गर्भका बाल कभी भस्म होजाय तो अच्छा है, जब उत्तराके उदरमें अचानक आगसीभडक उठी और हृदय फूंकनेलगा, तब वह उस कृशानुके जलनेसे अत्यन्त

व्याकुल और भयभीत होरोती डकराती श्रीकृष्णके पासको दौडी * ॥८॥ और आकर प्रार्थना की हे महायोगिन् ! हे दीनवत्सल ! हे जगत्पते ! मेरी क्षरा करो मेरी रक्षा करो! इस अग्निकी मृत्युसे इस विश्वमें आपके अतिरिक्त अभयदाता मुझको कोई दृष्टि नहीं आता॥९॥हे ईश!तप्त लोहके समान बाण सामनेसे चला आता है हे समर्थ! हे दीनानाथ! चाहै मेरा दाह होजाय परन्तु मेरा गर्भ स्थित रहै॥१०॥सूतजी बोले कि,भक्त वत्सल भगवान् उत्तराके दीन वचन सुन कहनेलगे कि,हे उत्तरे!अश्वत्थामाने यह समझकर ब्रह्मास्त्र चलायाहै कि,पाण्डवोंकेवंशमें कोई न रहै॥११॥

पाहिपाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ॥ नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥ अभिद्रवति मामीश
शरस्तप्तायसो विभो ॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ उपधार्य वचस्तस्या
भगवान्भक्तवत्सलः ॥ अपांडवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ११ ॥ तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पांडवाः पंच सायकान् ॥
आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ १२ ॥ व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ॥ सुदर्शनेन स्वास्त्रेण
स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः॥१३॥अंतःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः॥स्वमायया ऽऽवृणोद्गर्भं वैराटयाः कुरुतंतवे।१४॥

देखो तो पांच बाण पांचों पाण्डवोंके भस्म करनेके लिये सामनेसे अग्निसम प्रकाश करते चले आते हैं यह देखकर पाण्डव अपने अस्त्र ग्रहण करने लगे ॥१२॥ पाण्डवोंको अपने हितकारी जान श्रीबाँकेबिहारी भक्तभयहारी मुनिमनरंजन कोटि कष्टभंजन देवकीनंदनने पांडवोंकी रक्षाके लिये चक्रसुदर्शन सँभाला॥१३॥सब जीवमात्र–सुखके अंतर्यामी व्यापक सकल दुःखहर्ता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अपनी मायासे कौरवोंके संतानकी

---

* **शंका**–ब्रह्मास्त्रका ऐसा प्रताप शास्त्रमें लिखाहै कि,जिस समय योद्धालोग ब्रह्मास्त्रको धनुषपररखकर छोडते हैं तो कभी तीन लोकके भस्म करनेको छोडते हैं, धनुषसे छूटतेही त्रिलोकीको भस्मकरडालता है,परन्तुउत्तराकी देहमें ब्रह्मास्त्र लगके उसी समय उत्तराको भस्म क्यों नहीं किया ?

उत्तर–पतिहीन उत्तरा रात दिन अत्यन्त भक्तिसे श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्मरण करती थी,नेत्रोंसे प्रेमके आसुओंकी धारा बही चली जाती और इस मंत्रको निरन्तर बैठी जपती रहती थी मंत्र ‘ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृपालो भक्तरक्षक । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः’ ।। १ ।। अर्थ– हे हरि, हे कृष्ण, हे हरि, हे कृष्ण, आपको नमस्कार है आप कृपालु हैं और भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं,उसीसमय अश्वत्थामाका छोडा हुआ ब्रह्मास्त्र उत्तराकी देहमें लगके, श्रीकृष्णके स्मरणके प्रभावसे ठंढाहोगया तोभी उत्तरा व्याकुल होकर कृष्ण कृष्ण पुकारने लगी जो ईश्वरका भजन उत्तरा न करती तो उसी समय ब्रह्मास्त्र उसको भस्म करदेता, परन्तु भजनके प्रभावसें उसका शरीर नहीं जला ।

vृद्धिके लिये विराटकी बेटी उत्तराका दुःख देख चक्रसुदर्शनको आज्ञा दी कि, तुम उत्तराके उदरमें जाकर ब्रह्मास्त्रकी गर्मीको शान्त करो और पीछे आप भी श्रीकृष्ण मुकुन्द मधुसूदनभक्त हितकारी अंगुष्ठमात्र तनु धारणकर उत्तराके उदरमें घुसगये और ऐसी शीतलाई फैलाई, कि उसके हृदयका सब कष्ट शमन होगया उस समय परीक्षितने मधुसूदनकी माधुरी मूर्तिको अपने हृदयमें धारण करलिया और कहा हे वैकुण्ठनाथ! इस दासपर आपने बडा अनुग्रह किया जो गर्भहीमें मुझे दर्शन दिया धन्य है मेरा भाग्य! आपकी कृपाका कहाँतक उपकार वर्णन करूं ॥१४॥ हे शौनक ऋषि! जो कभी निष्फल नहीं होता, जिसका संसारमें कोई सामना नहीं करसकै और उसकी प्रबल प्रचंड ज्वालासे त्रिलोकीमें कोई जीवमात्र न बच सकै, सो ब्रह्मास्त्रभी विष्णुके चक्रसुदर्शनके सन्मुख क्षणमात्रमें शान्त होगया॥१५॥सबको आश्चर्य दिखानेवाली भगवान्‌की

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ॥ वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥ १५ ॥ मामंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ॥ य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हंत्यजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ॥ प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ॥ अलक्ष्यं सर्वभूतानामंतर्बहिरवस्थितम् ॥१८॥ मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् ॥ न लक्ष्यसे मूढदृशां नटो नाटचधरो यथा ॥ १९ ॥

लीलामें कुछ आश्चर्य मत मानो वह अपनी प्रकाशिनी मायासे इस विश्वको रचै है, रक्षा करै है, संहार करै है और आप अजन्मा है॥१६॥ब्रह्मास्त्रसे छुटे पुत्रोंको देख कुन्ती द्रौपदी समेत श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारका जानेका समाचार सुन हरिके समीप आनकर ॥१७॥ कुन्ती बोली कि हे आदि पुरुष! अविनाशी, प्रकृतिसे परे, जो किसीके देखनेमें न आवै, सब जीवोंके बाहर भीतरकी जाननेवाले तुम संसारमें व्यापक हो तुमको वारंवार नमस्कार करूंहूं॥१८॥जो मायारूपी जवनिकासे दृष्ट और अदृष्ट है, जो इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए ज्ञानसे नहीं जानेजाते, अविनाशी आपको मैं मूढ अज्ञानी स्त्री क्या जानूँ मूढ दृष्टियुक्त पुरुष तुमको नहीं देखसक्ते।जैसे नटकी मायाको नाटकीविद्याविहीन पुरुष नहीं जानसक्ते तैसेहीआप हो१९

66

जीवात्माके द्वारा जो परमात्माको देखनेवाले परमहंस मनन करनेवाले मुनि, राग द्वेष शून्य निर्मल अन्तःकरण युक्त महात्माओंकोभी जाननेमें नहीं आते भक्तियोग विधानके निमित्त आपने अवतार धारण किया हैं सो मैं स्त्री आपकी महिमाको कैसे जानूं॥२०॥वासुदेव, देवकी नन्दन, नन्दगोपकुमार, गोविन्द, श्रीकृष्णचंद्र आनन्दकन्दको बाम्बार नमस्कार है ॥२१॥जिनकी नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, ऐसे कमल मालाधारी, कमललोचन, कमलसमान कोमल अमल चरणवालेको बारंबार नमस्कार है ॥२२॥ हे हृषीकेश ! दुष्ट कंसके भयसे देवकी बहुत दिनतक घरमें बन्द रहीथी तब अकेली देवकीकी आपहीने रक्षा करी और मेरी आप समर्थने पुत्रोंसहित विपत्तिसे वारंवार रक्षा करी और अपनी माताके समान आप सदा मुझपर दया करतेरहे॥२३॥और जिन जिन विपत्तियोंसे रक्षा करी वह विपत्ति यहथीं—भीमसेनको विषके लड्डुओंसे लाक्षामन्दिरमें अग्निसे, पुरुष खानेवाले हिडबादि बकके दीखनेसे, खोटी सभासे,वनवासके कष्टसे,संग्राममें अनेक महारथियोंके अस्त्रसे,अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे और सब ओरकी विपत्तियोंसे अनेकवाररक्षाकरी॥२४॥हेजगद्गुरो!जहाँ तहाँ हमपै तो विपत्तियाँही रहैं,क्योंकि उन विपत्तिओंमे मोक्षदाता तुम्हारा दर्शन होताहै,जिससे फिर संसारमें जन्म नहीं होता॥२५॥सत्कुलमेंजन्म,ऐश्वर्य,शास्त्र, लक्ष्मी इनके होनेसे पुरुषको अभिमान होजाताहै,सो भक्तजन आठपहर जिनके नाम भजैं, श्रीकृष्ण, गोविन्द, नारायण, वासुदेव, ऐसे उच्चारण करनेके योग्य नहीं होते ॥ २६ ॥

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ॥ भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ २० ॥ कृष्णाय वासुदेवाय
देवकीनंदनाय च ॥ नंदगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ॥२१॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमःपं
कजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये॥२२॥ यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ॥ विमोचिताऽहं च
सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३ ॥ विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रात्॥
मृधेमृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः॥२४॥ विपदः संतु नः शश्वत्तत्रतत्र जगद्गुरो ॥ भवतो
दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ ॥ जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ॥ नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकि
ञ्चनगोचरम् ॥ २६ ॥

जिनको किसी वस्तुकी कांक्षा नहीं जो ऐसे भक्त हैं जिनके मन धन गुणोंकी वृत्ति दूर होगई, उन आत्माराम शान्त मोक्षदाताको नमस्कार है॥२७॥ काल ईश्वर जिसका आदि अन्त नहीं ऐसे प्रभु समदर्शी सबको एक भाव वर्तैं सब जीवोंमें किसी निमित्तसे परस्पर क्लेश होता है ऐसे तुमको मानूं हूँ ॥२८॥ हे भगवन्! मनुष्योंको एक लीलामात्र चेष्टा करो, ऐसी तुम्हारी करनेकी इच्छा है सो कोई भी नहीं जानता, जिसका कोई शत्रु मित्र नहीं यह ईश्वरसैं मनुष्योंको विषममति होती है कि, इसपै कृपा करै हैं, इसपै कृपा नहीं करते॥२९॥ हे विश्वात्मन्! सबमें तुम व्याप्त हो ऐसे तुम्हारे अकर्त्ताके कर्म, अजन्माके जन्म आश्चर्यमय हैं, कभी वाराहरूप, कभी रामचन्द्ररूप, कभी वामनरूप, कभी मत्स्यरूप धारण करते हो, यह सब

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ आत्मारामाय शांताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥ मन्ये त्वा कालमीशानमना
दिनिधनं विभुम् ॥ समं चरंतं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥ न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां
विडंबनम्॥ न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम् ॥ २९ ॥ जन्म कर्म च विश्वात्मन्न
जस्याकर्तुरात्मनः ॥ तिर्यङ्नृषिषु यादस्सु तदत्यंतविडंबनम् ॥ ३० ॥ गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या
ते दशाऽश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ॥ वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥
केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये॥ यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥ ३२ ॥ अपरे वसुदेवस्य दे
वक्यां याचितोऽभ्यगात् ॥ अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥

कहनेमात्रको हैं ॥ ३०॥ जिस समय यशोदाने तुम्हारे अपराधको देखकर बांधनेके लिये रस्सी ली तब तुम आंसुओंसे आंखोंका अंजन बहाय व्याकुल हो नीचेको मुखकर भयके भावसे अलग जा बैठे और जिस समय दधिके भाजन फोड डाले उस समयकी जो आपकी दशा है, मुझको मोह करावै है क्योंकि, जो भय आपके सन्मुख थरथर काँपै है सो तुम यशोदासे आप डरो हो यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥३१॥ पुण्यश्लोकोंके कीर्तनके लिये प्रिय यदुके वंशमें आपने अजन्मा होकर जन्म लिया, जैसे मलयगिरिपर चन्दन उपजैहै उसीप्रकार अजन्माने जन्म लिया, कोई कोई ऐसे कहै हैं॥३२॥ और कोई मुनीश्वर ऐसे कहै हैं कि, वसुदेव देवकीकी चाहनासे अवतार लिया, आप जन्म कभी नहीं लेते तोभी इस विश्वके

कल्याणके लिये और देवद्रोहियोंके वधके कारण अवतार धारण करते हैं ॥ ३३ ॥ और कोई ऐसे कहै हैं कि, समुद्रमें जैसे नाव डूबती हो उसकी रक्षा करै इस प्रकार महाभारसे व्याकुल पृथ्वीको निहारभूभार हरनेको ब्रह्माकी प्रार्थनासे अवतार लेतेहैं ॥ ३४ ॥ कोई आचार्य ऐसे कहैहैं, अविद्या,कामकर्मसे दुःखी होकर विश्वके जीव पुनि श्रवण स्मरण करै हैं इस कारण अवतार धारणकरते हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य तुम्हारी लीलाको देखते हैं और चरित्रोंको सुनते हैं और सुनाते हैंऔर बारंबार स्मरण करते हैं और यश गाते हैं और मनहीमनमें मग्न होते हैं,वह मनुष्य थोड़ेही दिनोंमें संसारके प्रवाहनाशक तुम्हारे चरणारविन्दका दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे भक्ताभीष्टदायक ! हे प्रभो ! निश्चय हैं कि, आपके दर्शनहीसे

भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ॥ सीदंत्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥ भवेऽस्मिन्क्लिश्यमा
नानामविद्याकामकर्मभिः ॥ श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ ३५ ॥ शृण्वन्ति गायन्ति गृणंत्यभीक्ष्णशः
स्मरंति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ॥ त एव पश्यंत्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमंपदाम्बुजम् ॥ ३६ ॥ अप्यद्य
नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ॥ येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजि
तांहसाम् ॥ ३७ ॥ के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पांडवाः ॥ भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥ ३८ ॥ नेयं
शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ॥ त्वत्पदैरंकिता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥ इमे जनपदाः स्वृद्धा सुपक्वौषधि
वीरुधः ॥ वनाद्रिनद्युदन्वंतो ह्येधंते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥

जीते हैं, आपके सुहृद हैं उनको आप अब त्यागो हो, हम तो आपहीकी कृपासे शत्रुओंके दुःखदायक हैं हमको आपके चरण कमलके अतिरिक्त कोई वस्तु सुखदायक नहीं है ॥ ३७ ॥ [illegible] सहित हमारा विना आपके दर्शनके नामरूपसे क्या है, जैसे विना जीवके इन्द्रियोंके नामरूपसे कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ [illegible] जैसी अब पृथ्वी शोभायमान है फिर ऐसी शोभा नहीं देगी,क्योंकि अब तो आपके वज्र,यव, अंकुश आदि चिह्नयुक्त च[illegible] अभाव हो जायगा ॥ ३९ ॥ आपके होनेसे यह देश सुन्दर समृद्धिमान् है, सुन्दर सुन्दर रूपकी ओषधी, लतायें, [illegible] यह सब आपके देखनेसे वृद्धिको प्राप्त हैं ॥ ४० ॥

इसलिये हे विश्वेश ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वमूर्ते ! अपने जनोंमें, पाण्डवोंमें, यादवोंमें, यह स्नेहकी जो फांसी है, इसको तुम काटो ॥ ४१ ॥ हे मधुपते ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी यह बुद्धि सदा लगी रहै और कहीं नहीं लगै, जैसे गंगाका प्रवाह निरन्तर समुद्रमें मिला रहता है॥४२॥ हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुनसखे ! हे यादवकुलभूषण ! हे पृथ्वीद्रोहीक्षत्रियवंशनाशक ! हे अक्षीणप्रभाव ! हे गोविन्द ! हे गरुडध्वज ! हे गोब्राह्मणदेवताक्लेशनाशक ! हे योगीश्वर ! हे अखिलगुरो ! हे भगवन् ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥४३॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषिगण ! सब महिमा जिसमें उदित है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनकी मधुर मधुर पदोंसे जब कुन्तीने स्तुति करी, तब भगवान् परमानन्द मन्द मन्द मुसकाये, मानो मायासे मोहका जाल डाल रहेहैं हरिकी हाँसी सब जनोंको उन्माद करतीहै ॥४४॥ हे कुन्ती ! जो तुम्हारी इच्छा होय सो वर माँगो, मैं तुम्हारे

अथ विश्वेश विश्वात्मन्विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ॥ स्नेहपाशमिमं छिंधि दृढंपांडुषु वृष्णिषु ॥ ४१ ॥ त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ॥ रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥४३॥ सूत उवाच ॥ पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ॥ मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥ ४४ ॥ तां बाढमित्युपामंत्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ॥ स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥४५॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः ॥ ४६ ॥

सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करूंगा ऐसे कह हस्तिनापुरमें आय सुभद्रादि स्त्रियोंसे बूझकर अपने नगरको चलनेको उपस्थित हुए, उससमय युधिष्ठिरने बहुत कहा कि, आपको यहाँसे हमैं छोडकर जाना नहीं चाहिये, तुम्हारे जानेसे हम लोगोंको बडा दुःख होगा, तुम विना हमारी सहायता कौन करैगा, जो सुख हमको तुम्हारे कोमल अमल चरणकमलके देखनेसे मिलता था, वह सुख हमको इस राज्यके पानेसे नहीं मिलता, तुम्हारे चरणारविन्दोंके विना देखे हमको धैर्य किस भाँति होगा और शत्रुओंके हाथसे कौन बचावैगा, हे नाथ! अब हमको शत्रुओंसे जीतनेका उपाय कौन बतावेगा अब हम क्या करें॥४५॥ईश्वरकी चेष्टा जाननेवाले व्यासादिकोंने और अद्भुत कर्मवाले श्रीकृष्णजीने अनेक इतिहासोंसे ज्ञानभी दिया, तोभी शोकके मारे

युधिष्ठिरका मन शान्त न हुआ ॥४६॥ उस समय राजा युधिष्ठिर अपने मरे सुहृद् बांधवोंका चिंतवनकर बोले कि, हे ब्राह्मणो! मैं उससमय अज्ञान और मोहवश होगयाथा, हाय! मुझ दुरात्माके हृदयमें ऐसा अज्ञानसमूह होगयाकि जिस देहको श्वान शृगालभी नहीं खाते, मैंने इसी देहके पोषणके लिये बहुत अक्षौहिणी सेना मारी, उस अक्षौहिणीकी संख्या इस प्रकार है (२१८७० जिसमें हाथी, ६५६१० घोडे, २१८७० रथ, १०९३५० पैदल इसको अक्षौहिणी कहते हैं)॥४७॥४८॥बालक, ब्राह्मण, सुहृद्, मित्र, पिता, भ्राता, गुरु, इनका द्रोही जो मैं हूं सो मेरा नरकसे करोड़ों वर्ष तकभी उद्धार न होगा॥४९॥आप जो कहतेहैं धर्मयुद्धमें द्वेषियोंके वध करनेसे प्रजापालक राजाओंको पाप नहीं होता इस शिक्षाके वचन मेरे मनको

आह राजा धर्मसुतश्चिंतयन्सुहृदां वधम् ॥ प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥४७॥ अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ॥ पारक्यस्यैव देहस्य बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः॥४८॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ॥ न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥४९॥ नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ॥ इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥५०॥ स्त्रीणां मद्धतबंधूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥ ५१ ॥ यथा पंकेन पंकांभः सुरया वा सुराकृतम् ॥ भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२॥ इति श्रीभा० प्र० अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ सूत उवाच ॥ इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया॥ ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत्॥१॥

बोध नहीं करते॥५०॥मेरे हाथसे भ्रातृगण [illegible] उनकी स्त्रियोंके मनमें उठा हुआ तीव्र द्रोह दूर करनेको मैं कितनेही गृहस्थाश्रमके कर्म करूं तोभी मैं उस पापसे उद्धार नहीं होसकता॥५१॥[illegible] कीचसे नहीं धोया जाता, मदिरासे मदिराका पात्र नहीं शुद्ध होता तैसेही हठसे एकजीवकी हिंसा यज्ञोंके करनेसेभी [illegible] महापुराणे प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–कहौं नवम अध्यायमें, भीष्म[illegible]को दियो, मेटो सकलविषाद ॥१॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषिराज ! युधिष्ठिर प्रजाके द्रोहसे भयभीत हो, सब ध[illegible] भीष्मपितामह कुरुक्षेत्रमें बाणोंकी शय्यापर पड़ेथे उनके पास आये ॥ १॥

और सब भाई सुवर्णभूषणभूषित घोडोंके रथोंपर आरूढ हो भीष्पपितामहके निकट पहुँचे और उसीसमय व्यास, धौम्य, कृपाचार्यादिकभी
वहाँ आगये॥२॥ हे शौनक ! अर्जुनको और द्रौपदीको अपने साथ लिये रथपर बैठे भगवान् इस प्रकार शोभित हुए जैसे यक्षों सहित कुबेर शोभा
पावैं॥३॥स्वर्गसे मानो कोई देवता गिरपडाहै इसप्रकार पृथ्वीपर पडे भीष्मपितामहको सब सभृत्य पाण्डव और श्रीकृष्णचन्द्र सहित प्रणामकिया
॥४॥तहाँ हे सत्तम ! देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि,भीष्मपितामहके देखनेको आये॥५॥पर्वतमुनि, नारदमुनि, धौम्य,भगवान् बादरायणजी, बृहदश्व, भर

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ॥ अन्वगच्छन्त्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानपि विप्रर्षे
रथेन सधनंजयः॥ स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ॥ प्रणेमुः
पांडवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥४॥ तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ॥ राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं म[illegible]वम्
॥ ५ ॥ पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः ॥ बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः॥६॥वसिष्ठ इन्द्र[illegible]
गृत्समदोऽसितः ॥ कक्षीवान्गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥ अन्ये च मुनयो ब्रह्मन्ब्रह्मराता[illegible]
शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपांगिरसादयः ॥८॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ॥ पूजयामास धर्मज्ञ[illegible]
कालविभागवित् ॥९॥ कृष्णं च तत्प्रभावज्ञं आसीनं जगदीश्वरम् ॥ हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥ १[illegible]तो
पांडुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसंगतान् ॥ अभ्याचष्टानुरागास्रैरंधीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥

द्वाज, सशिष्य परशुराम॥६॥ वसिष्ठ,इन्द्रप्रमद,असित,त्रित,गृत्समद, कक्षीवान्, गौतम,अत्रि,कौशिक,सुदर्शन॥७॥ और निर्मल शुकाचार्यादिक
मुनि शिष्योंको संग लेकर, कश्यप अंगिरा आदि अनेक ऋषि मुनि आये॥८॥सूतजी बोले, हेब्रह्मन् ! उस समय धर्मज्ञ पितामह उन स[illegible] महात्मा
पुरुषोंको देख, देश काल विभाग जाननेवाले भीष्म पितामहने मानसी पूजन किया॥९॥जगदीश्वर हृदयनिवासी,अपनी मायासे जिन्होंने विग्रह
धारण किया,सिंहासनपर विराजमान श्रीकृष्णका,भगवत्के प्रभाव जाननेवाले भीष्म पितामहने पूजन किया ॥१०॥विनय स्नेहसे[illegible]म [illegible] बैठे

नेत्रोंमें जल भरकर पाण्डुपुत्रोंसे प्रेम प्रीतिसनी वाणीसे भीष्मपितामह बोले॥ ११॥महाकष्ट है,बड़ा अन्याय है,हे धर्मपुत्रो! ब्राह्मण धर्म भगवान्के आश्रित होकर भी क्लेशसे जीते हो*॥१२॥महारथी राजा पाण्डुके मरे पीछे बालक जिनकी सन्तान ऐसी,वधू कुन्तीने तुम्हारे लिये बड़ा क्लेश भोगा॥१३॥ जो आपको अप्रिय है सो सब यह समयकी करी हुई बात है सो काल वह है कि, जिसके वशमें सब लोगहैं, जैसे मेघपंक्ति पवनके वशमें रहती है ॥ १४ ॥ जहां धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसे गदाधारी, जहां अर्जुनसे गाण्डीवधनुष्धारी, श्रीकृष्णसे मित्र,

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनंदनाः ॥ जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥ संस्थितेऽतिरथे पांडौ
पृथा बालप्रजा वधूः॥युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहुः॥१३॥ सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ॥
सकलो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥ १४ ॥ यत्र धर्मसुतोराजागदापाणिर्वृकोदरः ॥ कृष्णोऽस्त्री गांडिवं [illegible]
सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥१५॥ न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् ॥ यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यंते [illegible]
ऽपि हि ॥ १६ ॥ तस्मादिदं दैवतंत्रं व्यवस्य भरतर्षभ ॥ तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो। धाय कल्पते
वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ॥ मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥ अस्यानु ॥ ५१ ॥।
न्वेदगुह्यतमं शिवः ॥ देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ॥ १९ ॥

तहांभी विपत्ति पड़ी॥१५॥हे युधिष्ठिर! मुझको पूर्णविश्वास है कि, विना परमात्माकी इच्छा कोई कार्य नहीं होता उसकी अपार महिमा कोई नहीं जानसक्ता,जिनके जाननेकी इच्छाकरके बड़े बड़े कविलोग भी मोहको प्राप्त होते हैं॥१६॥हे युधिष्ठिर! यह संसारके दुखसुख दैवाधीन हैं, हे नाथ! हे प्रभो! उनके अनुवर्ती जो आप हो, सो तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो॥१७॥यह साक्षात् भगवान् आद्य नारायणपुरुष हैं,मायासे लोकको मोहितकर वृष्णियोंमें छिपकर विचरें हैं ॥१८॥ इनका प्रभाव जो छिपाहुआ है उसको महादेवजी जाने हैं,वा देवऋषि नारदजी और

---

*शंका– भीष्मजीको ज्ञानियोंकी सभामें मुनिलोग महात्मा कहा करते थे, वह भीष्मजी मूर्खोंके समान खोटे वचन पाण्डवोंकोक्यों कहतेथे?

उत्तर– भीष्मजीने पांडवोंको बडा उन्मत्त बडा अभिमानी जानके उनके ऊपर कृपा करके उनका अभिमान दूर करनेके लिये ऐसे क्रूरवाक्य कहेथैं

साक्षात् भगवान् कपिलदेवजी जानैंहैं ॥१९॥अज्ञानसे जिनको तुम मामाका पुत्र परममित्र, सुहृदोत्तम मानो हो,जिन्होंने तुम्हारा मंत्रीपन किया,
दूत बने, और तुम्हारे प्यारे हितकारी व सारथी बने ॥२०॥ सर्वात्मा, समदृष्टिवाला जिनके समान कोई नहीं,जिनको अहंकार नहीं, रागा
दिकका जिनमें लेश नहीं,ऐसे ईश्वरको नीचउच्च कर्म करना,यह हमारे योग्य है यह बात हमारे योग्य नहीं है यह बुद्धिकी विषमता परमेश्वरमें नहींहै
॥२१॥हे राजा युधिष्ठिर! यद्यपि परमेश्वरमें यह बात है तौभी जो उनके एकान्तमें ध्यान करनेवाले भक्त हैं उनपर दया ही करै हैं“अपने भाग्य
की बड़ाई औरउनकी बड़ाई कहाँतक कहूं”देखो!जो मेरे प्राण त्यागनेके समय श्रीकृष्णचन्द्रने आनकर दर्शन दिया ॥२२॥भक्तिसे जिनमें मन

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम्॥अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम्॥२०॥सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वय
स्यानहंकृतेः ॥ तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥ तथाप्येकांतभक्तेषु पश्य भूपानुकंपितम् ॥ यन्मे
ऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः॥२२॥भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् ॥ त्यजन्कलेवरं योगी
मुच्यते कामकर्मभिः ॥ २३ ॥ स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्॥ प्रसन्नहासारुणलोचनोल्ल
सन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपंजरे ॥ अपृच्छद्विवि
धान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥ २५ ॥ पुरुषस्वभावविहितान्यथावर्णं यथाऽऽश्रमम् ॥ वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातो
भयलक्षणान् ॥ २६ ॥ दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः ॥ स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥२७॥

लगाकर वाणीसे जिनका नाम आठप्रहर कीर्त्तन करै और इसी ध्यानमें देह त्याग करै तौ वह पुरुष कामकर्मसे छूट जाताहै ॥२३॥ जबतक
मैं देह त्याग न करूं तबतक प्रसन्नवदन कमलनयन रुचिरमुखकमल चतुर्भुज देवदेव तुम्हारा मार्ग ध्यानयोग्य है मेरे सन्मुख दर्शन देते रहो ॥२४॥
सूतजी बोले कि,बाणोंकी शय्या पर सोये भीष्मजीकी यह वाणी सुन युधिष्ठिर सब ऋषियोंके मध्यमें अनेकधर्म बूझने लगे ॥२५॥जो धर्म पुरुषके
स्वभावके योग्य हैं, वर्णोंके धर्म,आश्रमोंके धर्म, वैराग्य राग उपाधियोंके धर्म, वेदोक्त प्रवृत्तिमार्ग,निवृत्ति मार्ग॥२६॥दानधर्म,राजधर्म,मोक्षधर्म,

70

स्त्रियोंके धर्म,भगवद्धर्म संक्षेप विस्तारसे अलग अलग कहे॥२७॥धर्म,अर्थ, काम,मोक्षके उपाय,हे मुने ! अनेक अनेक प्रकारके इतिहास कथामें तत्त्ववेत्ता भीष्मजीने वर्णन किये उस समय द्रौपदीभी वहां भीष्मपितामहके निकट बैठीथी जब भीष्मपितामहने कहा कि जो कोई धर्मात्मा इस धर्मका जाननेवाला मनुष्य बैठाहो और उस सभामें कोई अधर्मी अधर्म करना चाहै,तो धर्मात्मा पुरुषको उचित है कि उसपापीको पाप कर्मसे वर्जै. कदाचित् वह वार्जित करनेके योग्य नहीं होय और कुछ सामर्थ्य न रखता हो तो उस सभासे उठकर चलाजाय, भीष्मपितामहका यह वचन सुनकर द्रौपदी राजायुधिष्ठिर और अर्जुनकी ओर देखकर हँसी, और फिर अत्यन्त लज्जित होकर कहा देखो ! राजा दुर्योधनकी सभामें,भीष्मपितामहके सन्मुख अधर्मसे मेरी दुर्दशा हुई, और दुःशासनने मुझको नग्न करनेके लिये मेरा वस्त्र खेंचा, और राजा दुर्योधनने मुझे अपनी जंघापर बैठानेका उद्योग किया और सब सभा मेरा उपहास करनेको उस समय उपस्थित थी, उस समय ऐसी महादुर्दशा होनेपर मुझ पापिनीके पापी प्राण न निकले, और मैं इतनेपरभी अपना मुख तुम लोगोंको दिखातीहूँ, ऐसे जीवनसे तो मरनाही भला था, परन्तु क्या कीजे ? परमेश्वरकी इच्छासे किसीका वश नहीं चलता, मेरे भाग्यमें ऐसाही लिखा था, जो उस विपत्तिमें द्वारकापति

धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने ॥ नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥

मेरी पति न रखते तो सब धर्म डूब जाते, तब भीष्मपितामहने द्रौपदीको उदास और मनमलीन देखतेही उसके अन्तःकरणकी बात अपने ज्ञानसे जानकर कहा, हे पुत्री ! तुम अपने मनमें कुछ सोचसंकोच मत करो, यह सब धिक्कार मेरे ऊपर है, क्योंकि जिससमय यह महा अन्याय तेरे ऊपर हुआ था, उस समय मैं वहां तौ था परन्तु मेरे मनमें तब यह ज्ञान नहीं था, इसकारण हे बेटी ! मेरा अपराध क्षमा कर, परमात्माकी इच्छा इसी भाँति थी, जो परमेश्वरको करना होताहै, उसका उसी प्रकार बानक बन जाता है, किसीकी चतुराई नहीं चलती, इसका एक कारण और है, सो मैं तुझसे कहूँ हूँ,कोई मनुष्य कैसाही चतुर और ज्ञानी हो परन्तु अधर्मीकी संगतिसे उसका धर्म कर्म ज्ञान ध्यान सब नष्ट होजाता है-और समय पर काम नहीं आता. जो कोई अधर्मीका अन्न भोजन करता है उसकी बुद्धि उसीके समान होजाती है,सो मैंने उन दिनों दुर्योधन अधर्मीका अन्न भोजन किया था, इस कारण मुझको उस समय धर्म अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा और मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई, अब मुझको एक महीना छब्बीस दिन अन्न जलछोड़े और बाणोंकी शय्यापर पड़े होगया, इसलिये अब मेरे शरीरसे दुर्योधन

दुराचारीके अन्नका विकार और उसके संगका प्रभाव निवृत्त होगया, तो अब मुझे इस बातका विचार हुआ कि मैंनेभीअत्याचारियोंके संग रहकर अत्याचार किया। हे पुत्री ! इस बातपर मुझको एक दृष्टान्त महाभारतका स्मरण हुआ. त्रेतायुगमें राजा शिबिके राज्यमें एक बड़े महात्मा परमहंस पुरुष रहते थे, बड़े धर्मात्मा और ज्ञानवान् थे राजा उनकी सेवा तनमनसे करता था उस राजाके नगरमें एक ब्राह्मणने अपनी कन्याका आभूषण किसी सुनारको बनानेके लिये दिया. सो उस सुनारने सुवर्ण तो बदललिया और पीतलका गहना बनाकर और ऊपरसे सोना चढाकर ब्राह्मणको दिया उस ब्राह्मणने विना दिखाये भलाये वह गहना अपनी पुत्रीको पहनादिया. वह लडकी उस आभूषणको पहनकर अपनी ससुरालको चलीगई. उसका पति चतुर था.पीतलका गहना देखकर अत्यन्त क्रोधवन्त हुआ और उस लडकीको पिताके घर पहुँचा दिया.तब उस ब्राह्मणने बहुतदुःख मानकर राजा शिबिके समीप जाय निवेदनपत्र दे अपना सब वृत्तान्त कहा. तब राजा शिबिनेउस ब्राह्मगकी बात सुनकर सुनारको पकड मँगाया और उसको अपराधी समझकर सब उसका अन्न धन लुटवाकर भंडारमें मँगालिया और उसको कारागारमें भिजवादिया. उसी अन्नका भोजन परमहंसने भी किया उस सुनारका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और रानीका रत्नजडित हार चुरालिया और अलग किसी गुप्त स्थानमें जा छिपे और अन्न जलभी तीन दिनतक उनको नहीं प्राप्त हुआ तब तो उपासं करनेसे सुनारके अन्नका विकार उनके उदरसे जातारहा तो फिर ज्ञान हुआ तो समझा कि मैंने बडा अन्याय किया, जो रानीका हार चुरालिया यह समझ राजाके सम्मुख जाकर कहा मैंने बडा पाप किया, इस पापके बदले मुझको नरक भोगना पडैगा, इसलिये अपने कर्मका दण्ड इसी देहसे भोग लेना उचित है,जिसमें परलोककी चिन्ता न रहे, इसकारण हे पृथ्वीनाथ ! इस पापके बदलेमें मेरे दोनों हाथ कटवा दीजिये कि मैं अपने अधर्मका दण्ड इसी जन्ममें भोगलूं,न जानिये परलोकमें क्या दशा होगी, यह बात सुनतेही राजाने उदास होकर पंडित और ज्ञानियोंको बुलाकर बूझा कि,यह क्या कारण है, जो परमहंसका चित्त उस दिन ऐसा बदल गया,कि इन्होंने हार चुराया और अब आपही उस हारको लेकर मेरे पास आये, और कहते हैं कि मेरे हाथ कटवा दो,ब्राह्मणोंने अपनी विद्याके विचारसे कहा कि,हे भूपालमणि ! जिस दिन परमहंसने चोरी करी थी उस दिन किसी पापीका अन्न खानेसे परमहंसकी यह गति होगई सो राजाने बूझा तो विदित हुआ कि उसी सुनार अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि बदल गई थी, सुनारको बुलाकर बूझा कि तैंने पीतलपर सोना कैसे चढ़ाया? उसने कहा कि, एक घाती किसीके बालकको मारकर उसका गहना मेरे हाथ बेंचा, उस धान्यके

खानेसे मैं मतिहीन हो गया सो हे द्रौपदी! एक दिन अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसका ज्ञाननष्ट हो गया, जो उसने चोरी करी और मैं राजा दुर्योधन अधर्मीका सदा अन्न भोजन करताथा और उसके संग रहताथा, मुझे उस समय इतना ज्ञान नहीं हुआ जो दुर्योधनको तेरे ऊपर अन्याय करनेसे उसे वर्जित करता और वह नहीं मानता, यह सब मेराही अपराध क्षमा कर, यह कह भगवान् वासुदेवकी मनोहर मूर्त्तिको हृदयमें धारणकर नेत्र बन्द करलिये ॥ २८॥ उसी समय काल आनकर प्राप्त हुआ जिसको अपनी इच्छासे मोक्ष जाना होय सो उत्तरायण काल है ॥ २९ ॥ युद्धमें सदा सबके समीप रहनेवाले,सहस्रों मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले,सो भीष्मपितामहने सहस्र अर्थ कहनेवाली वाणीसे, आदि पुरुष भगवान् पीताम्बधारी चतुर्भुज सम्मुख स्थित श्रीकृष्णजीमें सब संग छोड मन लगाया ॥३०॥ बुद्धिको शुद्ध औ

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ॥ यो योगिनश्छंदमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥ २९ ॥ तदोपसंहृत्य गिरः
सहस्रणीर्विमुक्तसंगं मन आदिपूरुषे ॥ कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३० ॥
विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुधश्रमः ॥ निवृत्तसर्वेंद्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्द
नम् ॥ ३१ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि॥ स्वसुखमुपगते क्वचि
द्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ॥ वपुरलककुला
वृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥

मन:स्थिर करनेसे जिनके पाप नष्ट होगये,और श्रीकृष्णजीके दर्शनसे आयुधोंके लगनेकी व्यथा दूर होगई और सब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका भ्रमभी जिनका दूर होगया सो भीष्मजी देह त्यागनेके समय जनार्दन भगवान्की स्तुति करके बोले ॥ ३१ ॥ हे यादवकुलश्रेष्ठ ! महामहिमायुक्त स्वरूपभूत परमानन्दको प्राप्त किसी समय विहार करनेके निमित्त योगमायाके आश्रित हो देह धारण करते हो, जिससे संसार कृतार्थ होय. ऐसे भगवान् षड्गुणऐश्वर्यवान् श्रीकृष्णजीमें मैंने निष्काम बुद्धि समर्पण करी ॥ ३२ ॥ त्रिलोकीमें सुन्दर तमालवत् नीलवर्णसूर्यकी किरणसम प्रकाशवान् तनुपर उज्ज्वल वस्त्र धारण किये, मुखारविन्दपर सघनसमूहवत् अलकैं चारों ओरको छिटक रहीं,

ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र यदुनायकमें निष्काम मेरी प्रीति हो ॥ ३३ ॥ युद्धमें घोड़ोंके खुरोंकी धूरिसे अटी हुई अलकैं इधर उधरको बिखरी हुईं, और अलकोंके श्रमसे जिस मुखपर पसीना ऐसे आरहा था, जैसे श्यामकमलके फूलपर ओसके कण चमकते हैं, कठिन पैने बाणोंसे जिनकी देह मैंने भेदन कर डाली, ऐसे शोभायमान कवचधारी श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी बुद्धि लगै॥३४॥अर्जुनका वचन सुन शीघ्र अपने रथको कौरवोंकी सेनामें खडा करके शत्रुओंके सेनापतियोंकी आयु छीनकर, यह भीष्म, यह द्रोण, यह कर्ण ऐसे उंगली दिखानेके बहानेसे सबकी आयु खैंचकर अर्जुनकी जय कराई ऐसे पार्थसखा श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी प्रीति हो॥३५॥दूर खड़ी सेनाका मुख देख, मोहित खिन्न अर्जुनकी कुमतिको अध्यात्मविद्या(गीताशास्त्र) के उपदेशसे दूर किया ऐसे श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति मेरे नेत्रोंमें बसी रहै॥३६॥हे नाथ! आप अपने भक्तोंका ऐसा

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ॥ मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण
आत्मा ॥ ३४ ॥ सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ॥ स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥ ३५ ॥ व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाभिमुखस्य दोषबुद्ध्या ॥ कुमतिमह
रदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥ स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ॥
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हंतुमिभं गतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥

वचन प्रतिपालन करते हैं, कि जब महाभारत भी नहीं हुआ था तो आपने प्रतिज्ञा करीथी, कि हम विना शस्त्र धारण किये केवल पाण्डवोंकी सहायता करैंगे, और इधर मैंने प्रण कियाथा कि जो मैं भीष्मपितामह हूँ तो आपको संग्राममें व्याकुल करके तुम्हारी प्रतिज्ञा छुडाकर एकबार आपको शस्त्र ग्रहण करादूंगा, सो आपने भक्तभावकी रीतिसे सोचा कि मेरी प्रतिज्ञा छूटजाय तो छूटजाय परन्तु मेरे भक्तिकी प्रतिज्ञा नहीं छूटै, क्योंकि जब भक्तकी प्रतिज्ञा छूट गई तो फिर कोई भक्त पूर्ण प्रतिज्ञा नहीं करैगा और भक्ति संसारसे उठ जायगी, यह समझकर अपनी प्रतिज्ञा छोडदी और मैंने अपना प्रण पूरा करनेके लिये अर्जुनके रथका चक्र तोडकर घोडोंका घात किया, और उसके रथकी ध्वजा तोड धनुषको काटकर गिरादिया, तब आप अत्यन्त क्रोधित होकर उसी रथका चक्र उठाकर मेरे मारनेके लिये मेरेपीछे दौड़े, उस समय दुपटेसे कैसे-शोभायमान दिखाई देते थे

72

जैसे श्याम घटामें चपला चमक जाती है,जब आप दौडते दौडते व्याकुल होगये उस समय आपका पीताम्बर पृथ्वीपर गिरपडा उसके गिरनेका यह अभिप्राय था, कि जब आपने अपनी प्रतिज्ञा त्यागकर शस्त्र धारण किया, तब पृथ्वीका हृदय कांपने लगा, कि श्रीकृष्ण भगवान्ने तो भूमिका भार उतारनेके लिये संसारमें अवतार लिया है कहीं वहभी अपनी प्रतिज्ञा न छोड दें,मेदिनीके मनका भाव जानकर उसका संशय मिटानेके लिये अपना उपर्णा धरणीपर गिरादिया,और यह कहा कि हे वसुधे! धैर्य धारण कर धैर्य धारणकर, शोकाकुल मत हो।मैंने अपने भक्तकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये अपना प्रण छोडा है परन्तु तेरा भार अवश्य उतारूंगा,तू किसी प्रकारका सन्देह मत कर हे वसुमती!जब तेरे मनमें विस्मय हुआमैंने उसी समय तुझको धैर्य देनेके लिये अपना पीतांबर तुझको सौंपा,कि जबतक तेरा भार न उतारूं तबलों मेरा उपर्णा अपने पास रक्खा रहने दे ऐसे पृथ्वीको धैर्य देनेवाले मदनमोहनमें मेरी रुचि हो ॥३७॥मुझ आततायीके तीक्ष्ण बाणोंसे आपका कवच भग्न हो शरीरमें रुधिर

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ॥ प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान्ग
तिर्मुकुंदः ॥ ३८॥ विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये॥ भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह
निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपम् ॥ ३९ ॥ ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ॥ कृतमनुकृतवत्य
उन्मदांधाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥४०॥

निकलने लगा उस समय हठपूर्वक मेरे सम्मुख मुझे मारनेको आये "और मैं चाहता था कि पाण्डवोंकी सब सेनाको मारकर भगादूं तब तुम मेरे रथके चारों ओर आनकर अनेक अनेक प्रकारके अपने रूप मुझको दिखाते थे जिन रूपोंको देखकर मेरे मनमें भ्रांति होती थी कि इनमें कौनसा रूप सत्य है कौनसा मायाका है? तब तुम मेरे बाणोंकी चोट सहकर मेरी सराहनाकरते थे अब मैं उन बातोंका स्मरण करताहूँ तो आपके सन्मुख मेरा मुख नहीं होता; सो आपने मेरे अपराधपर कुछ ध्यान नहीं किया और मरते समय मुझको आनकर दर्शन दिया, हे घनश्याम! यही श्यामस्वरूप मेरे नेत्रोंमें बसा रहै॥३८॥अर्जुनके रथरूप कुटुम्बमें कोडा लिये घोडोंकी पचरंगी बागडोर पकडे सारथीपनकी शोभा धारण किये, दर्शनीय भगवान्में मुझ मरणशीलकी प्रीति होय, जो आपके दर्शन करते करते युद्धमें मरे सो आपके स्वरूपको प्राप्त हुए ॥३९॥ ललित गति विलास मनोहर हास्ययुक्त नम्र विलोकन श्रीकृष्णके चरित्रोंका अनुष्ठान करनेवाली मदमत्त गोपवधूभी जिनके स्वरूपको प्राप्त होगई ॥ ४० ॥

राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अनेक मुनिगण नृपतिसमूहके समक्ष जिनकी सबसे पहिले पूजा हुई, आज मेरा धन्य भाग्य है, सो श्रीकृष्णचन्द्र दर्शनयोग्य मेरी दृष्टिके सम्मुख आनकर प्रगट हुए ॥४१॥ अपने रचेहुए शरीरधारियोंके हृदयमें विराजमान जन्मरहित, मोहरहितकी मैं शरणागत हूँ,जैसे सब प्राणियोंकी दृष्टियोंमें एक सूर्य अनेक घटोंमें दिखाई देताहै ऐसे एक ईश्वर जीवोंके शरीरके भेदसे अनेक दृष्टि आते हैं ॥४२॥ सूतजी बोले कि हे ऋषिगण!भगवान् कृष्णमें मन वाणी दृष्टिकी वृत्तियोंसहित जीवात्मा लगाकर भीष्मजी अंतःश्वासी उपरामको प्राप्त हुए॥४३॥भीष्मजीको उपाधिब्रह्ममें लीन जानकर,जैसेसन्ध्या समय सब पक्षी चुपहो जातेहैं ऐसे सब चुप होगये॥४४॥देवता मनुष्योंकेबजायेहुए बाजे बजे,राजाओंमें साधु

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तःसदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम्॥ अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशि गोचर एष आविरात्मा ॥४१॥ तमिममहमजं शरीरभाजां हृदिहृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम्॥प्रतिदृशमिव नकधाऽर्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः॥४२॥सूत उवाच ॥ कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ॥आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तश्श्वास उपारमत् ॥ ४३ ॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥ ४४ ॥ तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ॥ शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव ॥ युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥

प्रशंसा करने लगे, आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई ॥४५ ॥ हे शौनक मुनि ! भीष्मजीकी दाहक्रिया कर एक घड़ी शोकसे अपने मनमें बहुत दुःखी हुए, "उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने पाण्डवोंको बहुत समझाया कि जसी मृत्यु संसारमें भीष्मजीकी हुई है, ऐसी मृत्यु दूसरेकी होनी दुर्लभ है, संसारमें जिसने शरीर धारणकिया वहअवश्य एकदिन कालकौर होगा इसलिये इनको मरनेका शोच करना वृथाहै,जो कोई संसारमें नरतनुपाकर माया मोहमें लिप्त रहै और परमात्मासे विमुख रहकर कलह क्लेशमें अपने दिन व्यतीत करै और वह अपना तनुत्याग करै तो उसके लिये शोक अवश्य करना चाहिये,क्योंकि वहनरकमें वासकर कष्ट भोगैगा,और भीष्मपितामहने तो संसारमें भक्तिपूर्वक धर्मसंयुक्त रहकर तनुत्याग किया,इसलिये इनके

मरनेका क्या शोक संताप है? आप तो चतुर और ज्ञानी हैं; अधिक समझाना तो मूर्खोंको चाहिये, यह बात सुनकर युधिष्ठिरने अपने मनको धैर्य दिया" ॥४६॥ उस समय सब मुनियोंने प्रसन्न होकर छिपे नामोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करी और श्रीकृष्णकी मनोहरमूर्ति हृदयमें बसाय सब अपने अपने आश्रमको गये ॥४७॥ तब श्रीयदुनाथसमेत युधिष्ठिरने हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्रसहित तपस्विनी गान्धारीको शान्त किया ॥४८॥ धृतराष्ट्र और वासुदेवने राजा युधिष्ठिरकी सराहना करी और समर्थ राजा युधिष्ठिरने सप्रन्न हो धर्म कर्मसे अपने परदादाकी राजगद्दीपर बैठकर धर्मराज करने लगे ॥४९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां भीष्मस्तुतियुधिष्ठिरराजप्रलंभो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ॥ ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ॥ ४७ ॥ ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ॥ पितरं सांत्वयामास गांधारीं च तपस्विनीम् ॥४८॥ पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥ चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥४९॥ इति श्रीमद्भा० प्रथ० युधिष्ठिरराज्यप्रलभनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥
शौनक उवाच ॥ हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ॥ निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥ २ ॥ निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ॥ शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः पारिध्युपांतामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥

दोहा–कियो दशम अध्यायमें, धर्मराजसुत राज । गमन द्वारकाको कियो, कृष्णचन्द्र महाराज ॥ १॥ इतनी कथा सुन शौनकमुनि बोले, कि हे सूतजी महाराज ! जो अपनेसे अधिक राज्यकी इच्छा करते थे, उन अन्यायी दुराचारियोंको मारकर, धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसमेत वैरागी होकर कैसे अपना समय व्यतीत किया, सो वर्णन कीजे ? ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि ! जो कुरुवंशरूप दावानलसे जले वंशको श्रीकृष्णचन्द्रने फिर अपनी कृपादृष्टिसे, उत्पन्नकर हस्तिनापुरके राज्यमें युधिष्ठिरको प्रवेश कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२॥ और राजा युधिष्ठिर, भीष्मपितामह और श्रीयदुनाथ भगवान्‌का परमज्ञान सुनकर, सब भ्रम और भटकनाको छोड़ श्रीकृष्णाश्रयसे सब

भाइयोंसमेत समुद्रपर्यन्त पृथ्वी और प्रजाका इन्द्रकी समानपालन करने लगे ॥३॥ जब इच्छा होती तब मेघ बरसता, सब पृथ्वी कामधेनु हो रहीथी, गौओंसे व्रज पूरित हो रहाथा ॥४॥ नदी, समुद्र, पर्वत, वन, वनस्पति, लतासमेत सब औषधियें, सब ऋतुमें इच्छापूर्वक फूलती फलती थीं॥५॥और राजायुधिष्ठिरके राज्यमें किसी जीवको किसीसमय मानसी व्यथा रोग, शीत उष्णादिक, अध्यात्म, आधिदैव, आधिभूत, दुःख नहीं होतेथे॥६॥ श्रीद्वारकानाथ देवकीनंदन अपने मित्र पाण्डवोंका दुःख दूर करनेके लिये और भगिनीकी प्रीतिकी इच्छासे कुछ दिनों हस्तिनापुरमें वास करके पश्चात् युधिष्ठिरसे सम्मतिकर और आज्ञा ले भेंट प्रणाम कर, और वहांके पुरुषोंसे यथायोग्य मिल प्रणामको प्राप्त हो श्रीभगवान्

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ॥ सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४ ॥ नद्यः समुद्रा गिरयः
सवनस्पतिवीरुधः ॥ फलंत्यौषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै॥५॥ नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ॥ अजा
तशत्रावभवञ्जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित्॥ ६ ॥ उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः ॥ सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च
प्रियकाम्यया ॥ ७ ॥ आमंत्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ॥ आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥८॥
सुभद्रा द्रौपदी कुंती विराटतनया तथा ॥ गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥९॥ वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो
मत्स्यसुतादयः ॥ न सेहिरे विमुह्यंतो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥ सत्संगान्मुक्तदुस्संगो हातुं नोत्सहते बुधः ॥ कीर्त्य
मानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥

रथपर वासुदेव बैठे ॥७॥८॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, "जो धृतराष्ट्रके वीर्यसे वेश्यासे जन्माथा" कृपाचार्य, नकुल, सहदेव ॥ ९ ॥ भीम, धौम्य ऋषि, मत्स्यसुता उत्तरा आदि मोहके वश हो, मदनमोहन व्रजनाथ बाँकेबिहारीके वियोगको न सहसके (मत्स्यसुता सत्यवतीका भी नाम है)॥ १० ॥ महात्मा पुरुषोंके मुखसे जो बुद्धिमान् एकवार भी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके यशको सुना, उसने उसी समय सब लोभ मोह स्त्री पुत्रादिकोंकी प्रीति तज उस श्रीकृष्ण गुण गानेवालेके सत्संगको नहीं त्यागसक्ता, और जो साक्षात् परमेश्वर परस्पर दर्शन स्पर्शन संभाषण और स्थानमें सोना बैठना भोजन नित्य करनेवाले युधिष्ठिरादिक हैं वह उस विरहको कैसे सहसकें॥ ११॥

जिन युधिष्ठिरादिकोंकी श्रीकृष्णमें अलौकिकप्रीति, नित्यप्रति आना जाना, हँसना बोलना, देखना भालना, चलना फिरना, शयन आसन रहताथा-उनसे उनका विरह किसप्रकार सहाजाय॥१२॥सब अतिस्नेहके मारे बँधेहुए श्रीकृष्णकी पूजाकरनेके लिये जहां तहां चले॥१३॥देवकीसुतकी यात्रामें किसी प्रकारका अमंगल न हो इसलिये बांधवोंकी स्त्रियोंने उत्कण्ठाके मारे आँखोंके आँसू आँखोंहीमें रोके॥१४॥और जहां तहां मृदंग, शंख, वीणा,

तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् ॥ दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥ सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनु द्रुतचेतसः ॥ वीक्षंतः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्रतत्र ह ॥ १३ ॥ न्यरुंधन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कंठ्याद्देवकीसुते ॥ निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बांधवस्त्रियः ॥ १४ ॥ मृदंगशंखभेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥ ॥ धुंधुर्यानकघंटाद्या नेदुर्दुंदुभयस्तथा ॥ १५ ॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ॥ ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ॥ रत्नदंडं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

भेरी, गोमुख, धुंधरी, घण्टा, दुंदुभी बाजे बडे गम्भीरशब्दसे बजरहे थे॥१५॥और कौरवोंकी स्त्रियें छज्जोंपर बैठीहुई श्रीमदनमोहन बाँके विहारी की प्रीतिके जालमें फँसीलज्जाकी मारी मनहीमन मुसकाय तिरछी चितवनसे देखतीथीं, और जय जय शब्दकरश्रीकृष्णपर सुगंधितपुष्पोंकी वर्षा करती थीं ❀॥१६॥महाहर्षसे श्रीकृष्णजीके ऊपर श्वेत छत्र अर्जुन लगाये खडेथे, जिसमें सुन्दर रत्नोंकी डंडी और मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥१७॥

शंका—विधवा जो कुरुवंशियोंकी स्त्रियें थीं सो उन्होंने प्रेम करके लज्जाकर मुसकायके श्रीकृष्णको क्यों देखा ? पतिव्रता स्त्री अपने पतिको प्रीतिसे वा लज्जासे अथवा मुसकानसे देखती हैं और जारिणी स्त्री व्यभिचारी पुरुषको विषयवासनासे देखती हैं, कौरवोंकी स्त्री सब बडे बडे कुलकी जन्मी हुई बडी पतिव्रता शुद्ध धर्म कर्म करनेवाली, ऐसी स्त्री किसी जन्मके पापसे विधवा होगई तो कुछ चिन्तानहीं परन्तु श्रीकृष्ण परपुरुष हैं उनको उन्होंने प्रेमसे लज्जासे मृदुमुसकानसे क्यों देखा? जो कभी कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको भगवान् जानके प्रेमसे, लज्जासे, मृदुमुसकानसे देखा तो भी अयोग्य है, भगवान्ही जान लिया था कृष्णको तोभी हाथ जोडकर नमस्कार करना चाहिये था अपनी दीनता दिखाकर कृष्णके सन्मुख खडी हो नेत्रोंके जलसे उनके चरणकमलको धो उनका चरणामृत लेतीं इस प्रकारसे नमस्कार करना योग्य था फिर यह क्यों नहीं किया ?

उत्तर—कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने अपने२ मनमें विचार किया कि हमारे सबके पतियोंको पाण्डवोंने युद्धमें मारा है अब हम सब अनाथ हो रही हैं इसलिये हमारी सबकी रक्षा करनेवाले एक भगवान् हैं

परम अद्भुत पखा उद्धव और सात्यकी हाथमें लिये पवन कर रहे थे और पुरुषोत्तमपर पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें होती चली जातीथी, उस समयकी शोभाको कौन वर्णन करसके ? ॥ १८ ॥ निर्गुणसगुण परमेश्वरके जो अनेक अनेक रूपके योग्य सत्य आशीर्वाद जहां तहां ब्राह्मणोंके मुखसे सुनाई आतेथे ॥ १९ ॥ मन लगाये कौरवेंद्र युधिष्ठिरके पुरकी स्त्रियोंके परस्पर कहे मनोहर वचन मनको मोहे लेतेथे ॥ २० ॥ उत्तम आत्मामें निश्चय

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥ अश्रूयंताऽऽशिषः सत्यास्तत्रतत्र द्विजेरिताः ॥ नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥ अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तम श्लोकचेतसाम् ॥ कौरवेंद्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २० ॥ स्त्रिय ऊचुः ॥ स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीद विशेष आत्मनि ॥ अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥ स एव भूयो निज वीर्यचोदितां स्वजीवमायाप्रकृतिं सिसृक्षतीम् ॥ अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२ ॥

करके पुरातन एक पुरुष यह हुए, समस्त जगत् जिनकी देहमें गुणोंसे आगे जिनका जन्म निशामें जो शक्ति सो उस समय आँखें न मीचेंसो यह पूर्णपरमात्मा हैं ॥ २१ ॥ अपने वीर्यसे प्रेरित सबकी जिवानें रचनेवाली प्रकृतिको नामरूप जिस आत्मा व्यापकमें नहीं होसके, उसमें रूप, नाम,

75

—इस लिये कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने प्रेमसे श्रीकृष्णको देखा और कौरव पाण्डवोंका युद्ध जब नहीं हुआ था तब श्रीकृष्ण अनेकवार हस्तिनापुरको आये और हस्तिनापुरमें जो जो कौरवोंकी सभायें थीं उनमें बैठे और कौरवोंने बारम्बार श्रीकृष्णका अनादर किया इस बातको कौरवोंकी स्त्रियें भली भांति जानती थीं कि हमारे पतियोंने श्रीकृष्णका निरादर कियाहै ऐसा स्त्रियोंने जानभी लिया मोती कामदेवसे उन्मत्त होरही थीं स्त्री भगवान्‌का आदर सन्मान कभी न करतीं परन्तु विषयसुखके अभिमानसेमतवाली होरही थीं, उन भगवान्‌के अनादरको कुरुवंशियोंकी स्त्री स्मरणकरके श्रीकृष्णके संग पहिले तो उन्मत्त होकर बुराई की, फिर उसी कर्म करके बहुतलज्जाको प्राप्त होकर मुख नीचेको करके अत्यन्त लज्जासे देखा, क्षत्रियोंके कुलमें जो स्त्रियें तथा पुरुष उत्पन्न होतेहैं उनका स्वभाव महाकठिन होताहै सहस्र वर्ष बीत जानेपरभी अपने शत्रुको नहीं भूलते, जिसने अपने आपको दुःख दियाहै उससेबदला लेनेके लिये मरतेसमय अपनी सन्तानसे कह जातेहैं कि शत्रुसे बदला अवश्य लेना, जब अपने प्राण छोडतेहैं, इसलिये कौरवोंकी स्त्री अपने स्वभावमें चतुर थीं, इस कठिन स्वभावसे कौरवोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको मुसकायकर देखा, कौरवोंकी स्त्रियोंने विचार किया कि जिस प्रकारसे हम सबको इन कृष्णने पतिहीन करके हमपर विपत्ति डाली है ऐसे ही इनकी भी सब स्त्रियें इन करके थोडेही दिनोंमें हीन हो जायँगी, इस लिये कौरवोंकी स्त्रियोंने मन्दहास्यसे कृष्णको देखा

विधान करनेको, सब शिक्षाशास्त्र करनेवाले सो यह फिर मायामें स्थित हुए॥२२॥निश्चय यह परमेश्वर हैं जिनके पदको बडे बडे जितेन्द्रिय विवेकी देखै हैं,सो यह श्रीव्रजानन्द सब जीवात्माओंके शुद्ध करवानेले हैं॥२३॥सो यह ईश्वर वह हैं कि,जिनकी सत्कथा सखाओंने और वेदमें गुह्यनामोंमें इनकी एकान्तकी बातें जाननेवालोंने कही गाई हैं,कि यह एक परमात्मा अपनी लीलासे संसारकी उत्पत्ति,पालन,संहार करते हैं, परन्तु इस विश्वमें आसक्त नहीं होते॥२४॥जब तामसी बुद्धिवाले राजा पृथ्वीपरसे अधर्मसे राज्य करै हैं,तब परब्रह्म परमात्मा सात्विक रूप धरकर निःसन्देह संसार स्थितिके लिये युग युगमें अपना रूप धारणकर ऐश्वर्य,सत्यप्रतिज्ञा, यथार्थ वार्ता,भक्तोंपर कृपा यह अद्भुत कर्म करतेहैं ॥२५॥

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेंद्रिया निर्जितमातरिश्वनः ॥ पश्यंति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥ स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ॥ य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥ यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवंति तत्रैष हि सत्वतः किल ॥ धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगेयुगे ॥ २५ ॥ अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ॥ यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चंक्रमणेन चांचति ॥ २६ ॥ अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ॥ पश्यंति नित्यं यदनुग्रहेषितस्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः॥ २७॥नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः॥ पिबंति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुमुहुर्यदाशयाः ॥२८॥

यह यादवकुल अत्यन्त श्लाघा करने योग्य है,यह मधुवन अत्यन्त पुनीतस्थान है,जिसेसब जगत्के स्वामी श्रीपतिनें जन्म ले और चल,फिरकर पूजनके योग्य किया ॥२६॥ यह द्वारकापुरी पुण्य यशकर्त्री और स्वर्गके उत्तम यशको तिरस्कार करनेवाली है,जिसमें नित्य अनुग्रहीत दृष्टि और मधुर मुसकानयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रजीको उनकी प्रजा देखतीहै॥२७॥ सखी ! जिन स्त्रियोंका इन्होंने पाणिग्रहण कियाहै निश्चय उन स्त्रियोंने जन्मान्तरमें व्रत,स्नान,हवनसे ईश्वरका पूजनकियाहै.औरजिसके अधरामृतमें अपने अंतःकरणलगाकर ब्रजबाला बारंबार मोहित होतीथीं॥२८॥

जो शिशुपाल आदिक बड़े२ नामी राजाओंको जीतकर अपने पराक्रमरूप वीर्यसे स्वयम्वरसे सुन्दरियोंको हर लाये,और प्रद्युम्न, साम्ब अम्बादि
पुत्र जिनसे उत्पन्न हुए और भौमासुरको मारकर जो कई सहस्र स्त्री लाये, उन सबके धन्य भाग्य हैं ॥ २९ ॥ यह परम स्त्रीभावको ही
प्राप्त थीं क्योंकि जिसमें चतुराई नहीं, शोकसंताप नहीं परन्तु देवी शोभित हुईं यह सब व्रत पूजनका प्रभाव है कि जिन्होंने हृदय
ग्राहिणी मधुर वाणियोंसे व्रजराजको मोहित करलिया, कि कभी उनके घरसे बाहर नहीं निकलतेथे ॥ ३० ॥ वह पुरकी स्त्रियें
इस प्रकारसे बातें करतीथीं और व्रजचंद्र उनकी ओर देखा आनन्दित होकर मुसकाते चलेजाते थे ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरने भगवान्‌को

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ॥प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे
सहस्रशः ॥ २९ ॥ एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ॥ यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति
र्नजात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३० ॥ एवंविधा गदंतीनां स गिरः पुरयोषिताम् ॥ निरीक्षणेनाभिनंदन्सस्मितेन
ययौ हरिः ॥ ३१ ॥ अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ॥ परेभ्यः शंकितः स्नेहात्प्रायुंक्त चतुरंगिणीम् ॥ ३२ ॥
अथ दूरागताञ्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् ॥ सन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥ कुरुजांगलपां
चालाञ्छूरसेनान्सयामुनान् ॥ ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः
परान् ॥ आनर्तान्भार्गवो पागाच्छांतवाहो मनाग्विभुः ॥ ३५ ॥

76

अकेला जान शत्रुओंकी शङ्कासे अपनें स्नेहसे रक्षाके लिये थोड़ीसी सेना उनके साथ भेज दी,जिसमें हाथी घोडे रथ पालकी पैदलथे॥३२॥
और आप चारोंभाई बहुत कुरुवंशियों समेत पहुंचानेको संग चले, प्रेमप्रीतिसे जब बातें करते करते बहुत दूर निकलगये, तब विरहातुर
कौरवोंको श्रीकृष्णजीनें हस्तिनापुरको लौटादिया और आप द्वारकाजीको चल दिये ॥ ३३ ॥ कुरु, जांगल, पांचाल,शूरसेन,यमुना किनारेके
देश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य देश, सरस्वती तीरके देश ॥३४॥ मारवाडसे बड़े सौवीर, आभीरदेश और २ देशोंमें होते हुए आनर्तदेशमें जो

द्वारकाके समीप है पहुँच और घोडे थकजानेके कारण वहीं विश्राम किया॥३५॥ जहाँ जहाँ सूर्यास्त होनेपर श्रीकृष्णने विश्राम किया वहां वहां
के वासी श्रीकृष्णजीके निकट आनआनकर भेंट दे दे पूजन करते थे, और परस्पर कहते थे कि यही आदिपुरुष अविनाशी भूमिका भार उतारनेके
लिये संसारमें जन्म ले अपनेभक्तोंको सुखदेतेहैं,जिनका दर्शन शिव, विरंचि,नारदादि देवताओंके ध्यानमें नहीं आता,उनका दर्शन हम लोगोंको
बडे भाग्यसे प्राप्तहुआ, और धन्यभाग्य उन वृन्दावनके ग्वाल ग्वानियोंके हैं जिन्होंनेव्रजमें रहकर दिन रात इनके साथ आहार व्यौहार रास
विलास किया, और इन्होंने कौरव पाण्डवोंमें महाभारत कराके कुरुवंश विध्वंस करादिया, कोई यह कहतेथे कि यदुवंशियोंने पूर्वजन्ममें बडा
उग्रतप किया होगा,जिसके प्रतापसे इनको अपना हितू और सम्बंधी समझ दिनरात संग रहकर आनन्द भोगा, और उनको अनेक अनेक प्रकारका
सुखदिया और उन नगरनिवासियोंकी नारी बाँकेविहारीकी बाँकी झांकी देख मतवालीहो परस्परकहतीथीं,आली! इस साँवलीसूरत मोहनीमूरतने
तो हमारे ऊपर ऐसी मोहनी डाली,न खानेकी,न पीनेकी,न सोनेकी,न जागनेकी,क्या करैंक्या न करैं!किसीप्रकार मनको धैर्यनहींहोता,दूसरीसखी
बोली—अरी तेरी तो एकही दिनमें यह गति होगई,वह व्रजनारी बिचारी कैसे जीती होंगी,जिन्होंने जन्मभर इन्हींके संग रासविलासकिया,और सारी

तत्रतत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यताहणः ॥ सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भा० प्र० दशमो
ऽध्यायः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् ॥ दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥

अवस्था इनहीकेनेग लगा दी, उनकी क्या गति होगी!हमतो एकही इनकी तिरछी चितवन देख तिरछी होगई और एक सखीबोली—आली!जो यह
वनमाली सदा यहां रहैं तो हमारा मनोरथ पूर्णहो.एक बोली,अरी!हमारे ऐसेभाग्यकहाँहैं,एकबोली—प्यारी! अभीसे तो.हारीहारी बातेंमतकरै,अभीतो
कुंजविहारी तुम्हारी आँखोंके आगे ही फिररहेहैं.एकबोली—अरी!कहींइनके फंदमें अपना मन मतफँसादेना यह बडेकपटीहैं,जो राधाही अपनी प्यारी
कोवनमेंअकेली छोड़कर चलेगये तोऔर किसके होंगे !सखी!तू नहींजानती यह सच्ची प्रीतिकेप्रेमीहैं, द्रौपदीकी कैसी लाज रक्खी,गजको ग्राहसे
कैसा बचाया,रुक्मिणीके बुलानेसेकैसे पहुँचे,प्रह्लादके हेत खंभ फाड़कर कैसेप्रगटे, भारतमें भारतीके अण्डे कैसे बचाये!इसप्रकार सब स्त्री पुरुष हरिके
गुणगाय गाय आनन्दित होते थे,हे शौनकऋषि!ऐसेही चलते चलते श्रीकृष्णचन्द्र आनर्तदेशमें पहुँचे जो द्वारकाके समीपही है,वहां घोडे थक
गये और उसी स्थानपर द्वारकाधीशने वास किया॥ ३६ ॥इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायांश्रीकृष्णस्थानानर्तदेशागमनं
नाम दशमोऽध्यायः॥ १० ॥दोहा—एकादशअध्यायमें,कृष्णद्वारकाचन्द।जाय द्वारकापुरीमें,दियो सबहिं आनन्द॥ ११॥श्रीकृष्णचन्द्रआनन्दकन्दने

समृद्ध आनर्तदेशसे चल द्वारकाके निकट जाय यदुवंशियोंका विषाद शान्त करनेको पांचजन्य शंख बजाया॥ १॥जिसका श्वेत उदर श्रीभगवान्के अधरकी ललाईसे लाल होगया.कमलसदृश हस्तसम्पुटमें धराहुआ ऐसा शोभायमान दिखाई देताथा,जैसे लाल कमलके समूहमें राजहंस शोभित होताहै ॥ २ ॥ जगत्के भयनाश करनेवाले शंखकीधुनि सुन कृष्णदर्शनाभिलाषी प्रजा कृष्णचन्द्रका आगमन जान सम्मुख चला ॥३॥और कृष्णचन्द्रको बडे आदर सत्कारसे भेंट दी, जैसे कोई सूर्यनारायणको दीपदान देता है, भगवान् तो आप आत्माराम पूर्णकाम हैं, निजलाभसे

स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणिशोणिमा ॥ दाध्मायमानः करकंजसंपुटे यथाऽब्जखंडे कलहंस
उत्स्वनः ॥ २ ॥ तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ॥ प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥ ३ ॥ तत्रोपनीतब
लयो रवेर्दीपमिवादृताः ॥ आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४ ॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ॥
पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥ ५॥ नताः स्म ते नाथ सदांघ्रिपंकजं विरिंचिवैरिंच्यसुरेंद्रवंदितम् ॥ परायणं क्षेम
मिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परः प्रभुः ॥६॥ भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताऽथ सुहृत्पतिः पिता ॥
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥ अहो सनाथा भवता स्म यद्वयंत्रै विष्टपानामपि
दूरदर्शनम् ॥ प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥ ८ ॥

72

नित्य प्रसन्न हैं॥४॥प्रसन्नवदनसे अत्यन्त हर्षित हो गद्गदकण्ठसे मधुर वचन बोले,जैसे सब सुहृद् रक्षक पितासे बालक मीठे बोल बोलै हैं॥५॥ हे नाथ!ब्रह्मा, शिव,सनकादिक देवता इन्द्रसे नमस्कृत कुशलकी इच्छावालोंको परम आश्रयदायक जहाँ कालसामर्थ्य नहीं ऐसे आपके चरण कमलको सदा नमस्कार करेहैं॥६॥हे विश्वभावन!हमसबकी उत्पत्ति आपहीसे है,तुमही माता हो,तुमही भ्राता हो,तुमहीपति हो,तुमही पिता हो, तुमहीसुहृद् हो,तुमहीहमारे परमदेवताहो,जो हमसब तुम्हारीसेवा करके कृतार्थ होतेहैं॥७॥स्वर्गवासी देवताओंकातो दूरसेहीदर्शनहोताहै और जिसमें

---

* **शंका**--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका गुरु एकही होताहै, चाहे दुष्ट हो, चाहे महात्मा हो, परन्तु गुरु नारायणकी समान हैं, तीनलोकरूप ब्रह्माकी बनाई हुई सब वस्तु अनेक प्रकारकी देख पडती हैं, परन्तु गुरुओंका बहुत होना कभीभी कोई प्राणी नहीं देखता, जो कोई सज्जन ऐसा कहै कि दत्तात्रेयने चौबीस २४ गुरु किये तो यह बात सत्य है. परन्तु दत्तात्रेयने चौबीसका लक्षण ग्रहण किया चौबीसजनोंने दत्तात्रेयको मंत्र उपदेश नहीं किया, उपदेश देनेवालेको शास्त्रमें गुरु कहते हैं, उपदेश देनेवाला दत्तात्रेयका एक गुरु दत्तात्रेयकामन था, ऋषियोंनेभी कहाहै कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको गुरु एक करना चाहिये.

सब प्रकारकी सुन्दरताई और प्रेमभरी मुसकान, मनोहर वचन, बाँकी चितवन सहित आपके मुखको सदा देखे हैं, इस कारण हम ऐश्वर्यवान् हैं॥८॥ हे अंबुजाक्ष ! हे अच्युत ! जब आप हस्तिनापुरको अथवा मथुराको अपने इष्टमित्रोंके देखनेको पधारो हो, वह समय करोड वर्षके समान हमको व्यतीत होताहै, जैसे सूर्यके विना नेत्रोंसे कुछ नहीं दीखता, ऐसी हमारी गति होजातीहै ॥ ९ ॥ प्रजाकी मधुर मधुर वाणी सुनकर

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाऽथ सुहृद्दिदृक्षया॥ तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाऽक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥ इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ॥ शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥ १० ॥ मधुभोजदशार्हार्हकुकुरांधकवृष्णिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण भक्तवत्सलने आनन्दसहित सबको अनुग्रहकी दृष्टिसे देख कुशल क्षेम बूझते बूझते द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥१०॥ अपने समान जिनमें बल ऐसे मधु, भोज, दाशार्ह, अर्ह, कुकुर, अंधक, वृष्णिवंशोत्पन्न यादव जैसे भोगवपुरीकी नाग रक्षा करतेहैं उसी भाँति वह द्वारकापुरीकी

–लोक, शास्त्र तो गुरुएकही होना कहताहै तो फिर द्वारकावासी प्रजाने श्रीकृष्णको क्यों कहा कि आप हमारे सबके सद्गुरु हैं। इस बातसे ऐसाभी जानाजाताहै कि असत् गुरुभी होतेहोंगे जैसे पाप, पुण्य, जन्म मरण, लाभ, यश अपयस झूंठ सत्य, रात दिन आदिकी जोडी है, इसीप्रकार सत् असत्‌कीभी जोडी है।

उत्तर–त्रिलोकीके चर अचरकेलिये कृष्णभगवान्ने अवतार नहीं लियाथा, जब देवताओंको राक्षसोंने बहुतही दुःखदिया तब विष्णु-भगवान्ने कुछ दिनोंउपरान्त श्रीकृष्ण अवतारधारकर चर अचरकी रक्षाकी और यदुवंशियोंकी रक्षा तो सब प्रकारसे निशिदिन करतेही रहे, और द्वारकावासी मनुष्योंको गर्गमुनि सदा यही शिक्षा करते रहे, कि तुम सब श्रीकृष्णचन्द्रको परब्रह्म जानो, इनसे अधिक और कोई दूसरा देवता त्रिलोकीमें नहीं है, इस प्रकार गर्गमुनिके कहेहुए वाक्योंको सब प्रजाने अपने अपने हृदयमें बसालिया और त्रिलोकीके सब पदार्थोंको हृदयसे त्यागदिया, और वेदशास्त्रके अनुसार चलने लगे, यह कर्म करना योग्य है, यह कर्म करना अयोग्यहै, ऐसा विचारकर शुद्ध चित्त हो सब प्रजागण अपने मनमें यह जानने लगे कि जो जो वस्तु संसारमें ब्रह्माने रची हैं वह सब श्रीकृष्णमय हैं, उन सबोंको कृष्णरूप जानतेथे, त्रिलोकीके चर अचरको कृष्णरूप जानके आप हमारे सबके सद्गुरु हो, ऐसे वाक्य द्वारकावासी प्रजागण कहतेथे ।

रक्षा कर रहे हैं॥११॥ जिस द्वारकापुरीमें सब दिन वसंतही ऋतु बनी रहै है, सब प्रकारके जिसमें वन उपवन आराम शोभित हैं, जिसमें सब ऋतुओंके पुष्प खिले पुण्यदायक वृक्ष लतामंडप शोभित हैं, फलप्रधान होंय वह उद्यान कहावैहैं,और पुष्प प्रधान होंय वह उपवन कहाताहै खेलनेके अर्थ जो वन हैं उसको आराम कहतेहैं यह जहाँ शोभितहैं और तालोंमें कमलोंकी शोभा न्यारीही हो रहीथी॥१२॥गोपुर द्वारमार्गोंमें उत्सव होरहाहै, तोरण बन्दनवारैं बाँधी हैं.चित्र विचित्रगरुड चिह्नसे अंकित ध्वजा लगरही हैं,जयदायक यंत्र जिसमें कढे ऐसे बडे बडे झण्डे जहाँ तहाँ फहराय रहे हैं, जिनकी ओटसे धूप घोरे नहीं आती॥१३॥ महामार्ग, छोटेमार्ग, दूकानदारोंके मार्ग, चौराहे सब झाडे बुहारे स्वच्छ हैं,

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ॥ उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२ ॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरंतः प्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥ संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ॥ सिक्तां गंधजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षतांकुरैः ॥ १४ ॥ द्वारिद्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ॥ अलंकृतां पूर्णकुंभैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ निशम्य प्रेष्ठमायांतं वसुदेवो महामनाः ॥ अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासनभोजनाः ॥ १७ ॥ वारणेंद्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमंगलैः ॥ शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ॥ प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥ वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ लसत्कुंडल निर्भातकपोलवदनश्रियः ॥ १९ ॥

उनपर सुगन्धियोंका जल छिडकाहुआ है, फल, पुष्प, अक्षत, दूर्वा अंकुर जहाँ तहाँ बिखर रहे हैं॥१४॥ मंदिरोंके द्वारद्वारपर, दधि, अक्षत, चन्दन, पान सुपारी, फल, फूल, कंचनके कलश, बलिदान, धूप,दीप,शोभा दे रहेहैं.ऐसी द्वारकाकी शोभा होरही है॥१५॥ उस समय देवकीनन्दनका आनासुनकर महाबुद्धिमान् वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, बलराम अद्भुत पराक्रमी सब आये ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जाम्बवती सुत साम्ब, अत्यन्त हर्षके मारे शयन, आसन, भोजन त्याग चल दिये॥१७॥एक गजेन्द्र आगेकर ब्राह्मण मंगल गाते शंख बजाते आतेहैं,ब्राह्मणोंके वेदपाठका गम्भीर शब्द होरहाहै ॥ १८ ॥ रथपर बैठे श्रीकृष्णको देख नमस्कार दंडवत्कर स्तुतिकरने लगे. और जो बडे बडे यादव थे

वे श्रीकृष्णसे भेंटकर अत्यन्त प्रसन्न हुये॥१९॥सहस्रों वेश्या श्रीकृष्णके दर्शनके लिये रथोंमें बैठबैठ कर आईं तिनके सुन्दर सुन्दर कपोलोंपर कुण्डलअद्भुत शोभा देरहेहैं ॥२०॥ नव रस जाननेवाले नट (तालके संग नाचैं वह) नर्तक, गानेवाले गन्धर्व, पुराणवक्ता सूत, वंशोंके जाननेवाले मागध, जैसा देखैं वैसा कहैं वह बन्दीजनयह सब यदुनाथके अद्भुत चरित्र गावैंहैं॥२१॥श्रीकृष्णजीने उन गुणियों और पुरवासियोंको आता देख यथाविधि आदर सन्मान किया॥२२॥ शिरसेकोई नवैं, कोई वाणीसे नवैं, कोई मिलैं, कोई हाथसे हाथ मिलावैं, किसीको मुसकाकर देखा, चाण्डाल तकका हृदय शान्तकर सबको यथायोग्य वर दिया॥२३॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषिराज ! जब श्रीकृष्णजी राजमार्गमें आये तब द्वारकाकी सर्व

नटनर्तकगंधर्वाः सूतमागधबंदिनः॥गायंति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥ २० ॥ भगवांस्तत्र बंधूनां पौराणाम
नुवर्तिनाम् ॥ यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २१ ॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ॥ आश्वास्य चा
श्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ॥ आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्बंदिभिश्चा
विशत्पुरम् ॥ २३ ॥ राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ॥ हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ २४ ॥
नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ॥ न वितृप्यंति हि दृशः श्रियो धामांगमच्युतम् ॥ २५ ॥ श्रियो निवासो
यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ॥ बाहवो लोक पालानां सारंगाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः
प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ॥ पिशंगवासा वनमा लया बभौ घनो यथाऽर्कोडुपचापवैद्युतैः ॥ २७ ॥

स्त्रियें उनका महाउत्सव देखनेको कोठोंपर जा बैठीं॥२४॥श्रीजीका धाम जिनका अंग ऐसे अच्युतको नित्य देखनेवाले द्वारकावासियोंकी दृष्टि तृप्त नहीं हुई॥२५॥लक्ष्मी जिनके हृदयमें निवास करै, जिनका मुख सब प्राणियोंकी दृष्टियोंकी सौंदर्यतामृतपानार्थ पात्रहै जिनके बाहु लोकपालोंका निवासस्थान है ॥ २६॥ शुक्लछत्र चमरकी शोभा निरालेही ढंगकी है, मार्गमें पुष्पोंकी वृष्टि औरही रंग दिखा रहीहै, श्याम अंगपर पीतांबर वनमालाकी छबि औरही प्रकारथी यहसब छबि मिलकर कैसी ज्ञात होतीथी मानो सूर्य, तारागण, इन्द्र धनुष, बिजली, यह एक संग विराजमान हैं, शुक्लछत्रसे सूर्यकी उपमादी, पुष्पवृष्टिसे नक्षत्रोंकी, चन्द्रमा सम भ्रमें मण्डलाकारकचमरकी, धनुषसेवनमालाकी; बिजलीसे पीतांबरकी यहअद्भुतोपमा कहावैहैं २७

राजभवनमें आनकर अपनी मातासे मिले फिर पिताके मंदिरमें जाकर पिताको दंडवत् कर शिरसें सातों देवकीआदि माताओंकी आनन्दित हो वन्दना करी॥२८॥उन्होंने पुत्रको गोदीमें बैठायास्नेहसे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा हर्षसे विह्वल होकर दहने नेत्रोंके जलसे सींचा।“पीछे हस्तिनापुरकी कुशल और महाभारतका वृत्तान्त और पाण्डवोंका विजय सब ब्योरेवार सुनाया, पाण्डवोंका विजय सुन व वसुदेव, देवकी प्रसन्नहुए परन्तु गान्धारीके पुत्रोंका अरु औरऔर महारथियोंका मरण सुन शोकहुआ॥२९॥सब कामसे निश्चिंतहो रनवासमें प्रवेशकिया जहाँ सोलहसहस्र एकसौ आठ रानी छज्जोंपर बैठी देख रहीथीं॥३०॥श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर बहुतआनन्दहो जैसे नियमसे व्रती बठीं थीं वैसेही बांकेविहारीकी बांकी, छबि देख

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ॥ ववंदे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥ २८ ॥ ताः पुत्रमंकमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ॥ प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥ पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ॥ उत्तस्थुरारात्सहसाऽऽसनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥ तमात्मजैर्दृष्टिभिरंतरात्मना दुरंतभावाः परिरेभिरे पतिम् ॥ निरुद्धमप्यास्रवदंबुनेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥ ३२ ॥ यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्यांघ्रियुगं नवंनवम् ॥ पदेपदे का विरमेत तत्पदा चलाऽपि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥ एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ॥ विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥

लज्जित नेत्र किये सोलहों शृंगार कर उठधाईं “याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है, क्रीडा करना, मलके शिर धोना, समाजमें जाना, उत्सव देखना, हंसी करनी, पराये घर जाना जिसका पति परदेशमें होय उसस्त्रीको यह छः काम नहीं करना चाहिये”॥३१॥ सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि! पुत्रोंसे दृष्टिसे अंतःकरणसे, जिनका श्रीकृष्णमें अत्यन्त भावहै सो अपने पतिसे मिलीं, प्रेमकी विह्वलतासे लज्जित नेत्रोंका जल नहीं रुकसका आंसू बह निकले ॥३२॥ यद्यपि श्रीकृष्ण उनके पास हैं एकान्तमें रहतेहैं तोभी उनके दोनों चरणोंका नवीन २ संगम क्षणक्षणमें कौन भूलेगा जिनके घोरेसे चञ्चल लक्ष्मीभी नहीं जाती ॥ ३३ ॥ पृथ्वीपर भाररूप जिन राजाओंके जन्म जिनकी अक्षौहिणी सेनाका चारोंओर तेज फैल रहाथा,

ऐसे राजाओंका परस्परमें वैर कराकर वध करादिया और आप उपरामको प्राप्तहुये जैसे बांसके वनमें आपसमें बांससे बांस घिसनेसे अग्नि
उत्पन्न हो वनको जलाकर आपही शान्त होजातीहै॥३४॥सो यह अपनी मायासे मनुष्यलीला करनेको अवतार धारण करतेहैं, स्त्रीरत्नसमूहमें
स्थित भगवान् प्राकृत संसारी जीवोंकीनाईं रमण करने लगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियोंके गंभीर अभिप्राय, मनोहर वचन, सुन्दर लाज सहित
हास्यसे ताडित महादेवजीने मोहित होकर अपना पिनाक धनुष त्यागन किया,ऐसी वह स्त्री श्रीकृष्णजीकी इन्द्रियोंको वश करनेको कपटभावसे
समर्थ न हुईं ॥ ३६ ॥ उन श्रीकृष्णजीको यह प्राकृत लोग अपने सदृश,अपना साथी, अपना मित्र मनुष्यही मानैहैं,वह आदिपुरुष अविनाशी

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ॥ रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥३५॥ उद्दामभावपिशुनामलव
ल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ॥ संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येंद्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः
॥३६॥तमयं मन्यते लोको ह्यसंगमपि संगिनम् ॥ आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥३७॥ एतदीशनमी
शस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः॥ न युज्यतेऽसदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया॥३८॥ तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानु व्रतं
रहः ॥ अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंध एकादशोऽध्यायः॥११॥
शौनक उवाच ॥ अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ॥ उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाऽऽजीवितः पुनः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र किसीका संग नहीं करतेहैं,और जो उनको अज्ञानी व्यापारीविषयी मानैहैं सो मूर्ख हैं॥३७॥ईश्वरकी यही ईश्वरता है,कि मायामें
स्थित होकर, असत्सुख दुःखादिक मायाके गुणोंसे लिप्त न होना. जैसे मायाश्रया बुद्धि मायाकी उपाधिमें लिप्त नहीं होतीहै ॥३८॥वह मूर्ख
स्त्री श्रीकृष्णके प्रभावको न जानकर स्त्रियोंके प्रेमी एकान्त विहार शील अपने पतिको मानती थीं, जैसे अहंकारवृत्तियुक्त बुद्धि ईश्वरको
स्वाधीन मानतीहै ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीद्वारकानाथद्वारकाप्रवेशो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
दोहा-इस द्वादश अध्यायमें, प्रगटे कुरुकुलचंद । धर्मध्वज कलिमलदलन, पूरण आनँदकन्द ॥ १ ॥ इतनी कथा सुन शौनकमुनि बोले-हे

सूतजी महाराज ! अश्वत्थामाके छोडे, ब्रह्मास्त्रसे जो उत्तराका गर्भ नष्ट होगया था, उसे फिर ईश्वरने बचा दिया ॥ १ ॥ उसका आश्चर्ययुक्त जन्म कर्म, राज्यस्थिति और किस प्रकार शरीर त्यागन किया ? सो कहो ॥ २ ॥ आप इसके कहने योग्य हैं. सो आपसे हम सुननेकी इच्छा करनेवाले श्रद्धालुओंको सुनाओ, जो कुछ शुकदेवजी वर्णन कियाहै ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक मुनि ! राजा युधिष्ठिर पिताके सामने प्रजाको सुख देते और राज्यका पालन करते थे, सब कामकी चाहना त्याग श्रीकृष्णके चरणकमलकी सेवा करते थे॥ ४ ॥ सम्पत्ति, यज्ञ, लोक, स्त्री, भाई, पृथ्वी, जम्बूद्वीपका राज्य, यश,स्वर्गतक पहुँचा ॥ ५ ॥ हे शौनकऋषि ! जिनका मन परमेश्वरमें लगरहाहै, उन्हें देवताओंके

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ॥ निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥ २ ॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामि गदितुं यदि मन्यसे ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रंजयन्प्रजाः ॥ निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया ॥ ४ ॥ सम्पदः क्रतवो विप्रा महिषी भ्रातरो मही ॥ जंबूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥ ५ ॥ किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुंदमनसो द्विजाः ॥ अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६ ॥ मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनंदन ॥ ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ॥ अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ॥ ८ ॥ श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकांचनकुंडलम् ॥ क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥ ९ ॥ परिभ्रमंतमुल्काभ्यां भ्रामयंतं गदां मुहुः ॥ अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ॥ विधमंतं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ १० ॥

प्रिय कामादिकभी आनन्द नहीं देते. जैसे भूँखोंको पुष्पमाला, चन्दन इत्यादि सुख नहीं देते ऐसेही राजा युधिष्ठिरको जानो ॥ ६ ॥ हे भृगुनन्दन ! जब माताके गर्भमें भी अस्त्रके तेजसे उत्तरासुत तपित हुए, तब एक पुरुष दृष्टि आया ॥७॥ अंगुष्ठमात्र निर्मलकान्ति, सुवर्णसमान मस्तक, अतिसुन्दर श्यामवर्ण, बिजली सदृश पीताम्बर पहरे श्रीअच्युत भगवान्को देखा ॥८॥ शोभायमान लम्बी लम्बी चार भुजा, मकराकृत कुण्डल,लाल लाल नेत्र, गदा हाथमें लिये चारोंओर घूमते फिरैहैं॥९॥एक ओर उल्कासी घूमती दीखै,अत्यन्त श्रेष्ठ भक्तोंकी रक्षामेंपरायण ऐसी

कौमोदकी गदाको बारम्बार घुमा रहेहैंअपनी गदासे ब्रह्मास्त्रके तेजका नाश कर दिया, जैसे सूर्यके तेजको कुहर नाश करैहै. चारोंओरको नेत्र खोलकर देखा कि,यह मेरे निकट कौन फिरैहै॥१०॥धर्मरक्षक देह विभु भगवान् उस ब्रह्मास्त्रके तेजको दूरकर दशमासके बालकके देखते देखते तहां ही अन्तर्द्धान होगये॥११॥तब सब गुणसम्पन्न अनुकूलग्रहोंके उदयके समय,वंशधारी पाण्डुके वंशमें जन्म लिया मानो फिर पाण्डुराजा संसारमें जन्मे॥१२॥प्रसन्नमन राजा युधिष्ठिरने धौम्य कृपादिक ब्राह्मणोंको बुलाकर बालकके जन्मसमयके सब कर्म कराये,स्वस्तिवाचन मंगलाचरण कराये ॥ १३ ॥ जबतक नालछेदननहीं होता तबलों सूतक नहीं लगता, नाल काटनेके पीछे सूतक लगैहै. सो सुवर्ण, गो, धरती,ग्राम, हाथी,

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः ॥ मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ ११ ॥ ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ॥ जज्ञे वंशधरः पांडोर्भूयः पांडुरिवौजसा ॥ १२ ॥ तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ॥ जातकं कारयामास वाचयित्वा च मंगलम् ॥ १३ ॥ हिरण्यं गां महीं ग्रामान्हस्त्यश्वान्नृपत्तिर्विरान् ॥ प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १४ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयानतम् ॥ एष ह्यस्मिन्प्रजातंतौ कुरूणां पौरवर्षभ ॥ १५ ॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ॥ रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १६ ॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ॥ भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर उवाच॥ अप्येष वंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः ॥ अनुवर्तिता सुयशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८ ॥

घोड़े श्रेष्ठसमय जानकर याचकोंको देनेलगे,सुन्दर सुन्दर भोजन ब्राह्मणोंको जिमाये,पुत्रके उत्पन्न होनेके समय तीर्थमें दान करनेके समान दान किया ॥१४॥ उस समय प्रसन्न ब्राह्मण नम्रीभूत राजा युधिष्ठिरसे बोले, हे कुरुकुलमुकुटमणि ! यह पुत्रभी प्रजापालनमें आपकी समान होगा॥१५॥ कोई राजा इसके सम्मुख स्थित न होगा, यह बालक ऐसे समयमें और शुद्ध दिनमें उत्पन्न हुआ है कि,तुम्हारे सबके ऊपर अनुग्रहके लिये सर्वव्यापक सबके उत्पत्तिकर्त्ता, प्रभु विष्णु भगवान्ने इसकी रक्षा करी है ॥ १६ ॥ इसलिये इसका नाम लोकमें विष्णुरात होगा, बड़ यशस्वी अरु महाभागवत होगा इसमें सन्देह नहींहै॥१७॥श्रीयुधिष्ठिरजी बोले कि,हे सत्तमो!पुण्यश्लोक महात्मा राजा ऋषियोंके वंशके अनुसा

सावधानसे उनका अनुवर्ती होगा कि नहीं होगा सो कहो?॥ १८॥ब्राह्मणबोले,कि हे पार्थ!यह पुरुष प्रजारक्षक साक्षात् इक्ष्वाकुकी सदृश ब्रह्मण्य, सत्यवादी दाशरथी रामचन्द्रके समान होगा॥ १९॥यह बड़ा दानी शरणागतका प्रतिपालक राजा शिबि उशीनर देशवासीकी नाईं होगा(उशीनरदेशवासी राजा शिबिने अपना मांस सिकरेको देकर शरणागत कपोतकी रक्षा करी।अपनोंका यश संसारमें विस्तारित करैगा, भरतसमान याज्ञिकोंमें

ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ॥ ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा॥१९॥ एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः॥यशो वितनिता स्वानां दौष्यंतिरिव यज्वनाम्॥२०॥ धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चाऽर्जुनयोर्द्वयोः ॥ हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः॥२१॥ मृगेंद्र इव विक्रांतो निषेव्यो हिमवानिव ॥ तितिक्षुर्वसुधेवाऽसौ सहिष्णुः पितराविव ॥ २२ ॥ पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः॥ आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः॥२३॥

यशविस्तारी होगा॥२०॥धनुषधारियोंमें अग्रणी सहस्रार्जुन व अर्जुनकी नाईं, अग्निके समान दुर्धर्ष, सागरके समान गंभीर होगा॥२१॥सिंहकी समान विकराल,धैर्यमें हिमाचलके सदृश,वसुधाकी नाईं सहशील अरु माता पिताकी नाईं सहनेवाला होगा॥२२॥ ❋साम्यभावमें ब्रह्माके समान

9/

❋ **शंका**–परीक्षितका जन्म हुआ तब परीक्षित कैसा होगा, ऐसी भविष्यकालकी बात युधिष्ठिरने ज्योतिषी ब्राह्मणोंसे बूझी, तब ज्योतिषी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर!यह बालक बडा बुद्धिमान् होगा, और सब संसारको ब्रह्माके समान एकदृष्टिसे देखेगा,दान देनेमें शिव महादेवके समान उदारचित्त होगा, रमापति विष्णु भगवान्के समान सब प्राणियोंका स्वामी होगा, संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहारके करनवाले जो तीन देवता हैं, उनकी समताकी उपमा कभी भी किसीने नहीं दी, ब्राह्मणोंने तीनों देवताओंकी उपमा परीक्षितको दी,परन्तु ऐसी उपमा संसारमें आजतक किसीको भी नहीं दीगई, और ऐसी उपमा हमने कभी सुनी भी नहीं फिर ऐसी उपमा क्यों दी ?

उत्तर–"पितामहसमस्साम्ये" इस श्लोकमें ब्राह्मणोंने ब्रह्माको पितामह नहीं कहा था, शिवजीको गिरिश नहीं कहा था. विष्णुको रमाश्रयनहीं कहा था, पांच पांडव धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव इनका बालकजो परीक्षित् अपने दादाके समान संसारको एक दृष्टिसे देखेगा ऐसा मुनियोंने कहा है,ब्रह्माके समान नहीं कहा है,जैसा भूमिमें सुन्दरकर्म करनेवाला गिरीश है,हिमवान् पर्वतकी नाईं चलायमान नहीं होता. जैसे दूसरेको वर देनेमें बडा उदार है,तैसे परीक्षितको भी गिरीश कहा,हिमवान्के समान देनेमें उदार होवेगा,रमानाम प्रकाशका है उस प्रकाशके स्वामी सूर्य हैं, इसलिये सब प्राणियोंका स्वामी सूर्य है सूर्य विना प्राणीका निर्वाह नहीं होता. मुनियोंने कहाथा कि जैसे सूर्यउदय होकर संसारको आनंद देता है वैसेही परीक्षितभी राजा होकर अपनी प्रजाको आनन्द देगा ऐसा मुनियोंने कहाथा कुछ ईश्वरकी तुल्य परीक्षितको नहीं कहाथा ।

होगा, शीघ्र प्रसन्न होनेमें महादेवकी सदृश, समस्त जीवोंके आश्रय भगवानकी नाईं रहैगा॥२३॥सब सद्गुणोंका माहात्म्य यह कृष्णभक्त होगा, उदारतामें रंतिदेव, और धर्मात्माओंमें ययातिके समान होगा ॥ २४ ॥ धैर्यमें बलिसमान, समतामें श्रीकृष्णचन्द्रकी नाईं, प्रह्लादकी नाईं सब सत्यपदार्थग्राही होगा. और अश्वमेध करके वृद्धजनोंकी उपासना करैगा॥२५॥बुद्धिमें बृहस्पति, और शूरतामें परशुरामके समान होगा, सुखविलासियोंमें इन्द्रकेसमान और सत्य बोलनेमें आपकी सदृश होगा, राजर्षियोंका उत्पन्नकर्त्ता पाखण्डियोंका शिक्षक, भूमिके धर्मके कारणसे यह कलियुगको पकड़ैगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मणके पुत्रके शापसे तक्षकसर्पके काटसे मृत्यु होगी, सबकसंग त्यागकर श्रीमद्भागवत सुन श्रीवैकुण्ठनाथके वैकुण्ठको प्राप्त होगा ॥२७॥ आत्माकी यथार्थता जानकर व्यासपुत्रशुकदेवसे ज्ञान सुन, श्रीगंगाजीमें देहत्याग अभय पदवीको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ ज्योतिषीब्राह्मण, पंडित लोग यह वचन राजासे कहकर पूजा दक्षिणा लेकर अपने अपने स्थानोंको चलेगये ॥ २९ ॥ और संसारमें नाम परीक्षित् विख्यात हुआ, क्योंकि गर्भमें श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया, और उनहीके ध्यानमें रहकर सब जनोंकी परीक्षा करते थे ॥ ३० ॥ राजकुमार दिन दिन ऐसे बढ़ने लगे जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढ़ता है, उसी समान पूर्ण हुए ॥ ३१॥ सजातियोंके द्रोह त्यागनेकी इच्छासे अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये, राजाका कर दंडकेबिना धन प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ यह प्रयोजन जानकर भगवान्के भेजे, सब भाई

सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः ॥ रंतिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥ धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः ॥आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः॥२५॥राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ॥ निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥२६॥ तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ॥ प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसंगः पदं हरेः ॥२७॥जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ ॥ हित्वेदं नृप गंगायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥२८॥ इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः ॥ लब्धोपचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान्गृहान्॥२९॥ स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ॥ गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ॥ ३० ॥ स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः ॥ आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥ ३१ ॥ यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ॥ राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदंडयोः ॥ ३२ ॥ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ॥ धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥ ३३ ॥

उत्तरकी दिशासेबहुत धन लाये ॥३३॥ उस धनसे सब सामग्री उपस्थितकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने तीन अश्वमेधयज्ञ किये, जातिके द्रोहसे डरकर यज्ञोंमें भगवान् वासुदेवका पूजन किया॥३४॥ राजायुधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाय ब्राह्मणोंसे यज्ञ कराय अपने सुहृद्जनोंके प्यारकी इच्छासे कुछ मास वहां निवास किया॥ ३५ ॥ इतनी कथा सुनाय सूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! कुछ दिन पीछे राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा ले, द्रौपदीसे बूझ भाई बंधु मित्रोंसे बिदा हो, नौकर चाकर यादवोंसमेत श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकापुरीको चलेगये ॥ ३६ ॥ इति श्रीभाषाभागवते उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते महापुराणे प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्मोत्सवो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–त्रयोदशम

तेन संभृतसंभारो लब्धकामो युधिष्ठिरः ॥वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥३४॥ आहूतो भगवान्राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृप ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृदः प्रियकाम्यया ॥ ३५ ॥ ततो राज्ञाऽभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बंधुभिः ॥ ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते प्रथम० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ॥ ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयाऽवाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥ यावतः कृतवान्प्रश्नान्क्षत्ता कौषारवाग्रतः ॥जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥२॥ तं बंधुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ॥ धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ ३ ॥ गांधारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी ॥ अन्याश्च जामयः पांडोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥ प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ॥ अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वंगाभिवादनैः ॥ ५ ॥

82

अध्यायमें, विदुर कथा उपरांत। धृतराष्ट्रके मोक्षकी, वरणों सब वृत्तान्त ॥ १ ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! विदुरजी तीर्थयात्रामें मैत्रेयजीसे श्रीकृष्णचन्द्रकी गति सुनके हस्तिनापुरमें आये, अरु जिस बातके जाननेकी इच्छा थी सो सब पूरी हुई ॥ १ ॥ और विदुरजीने मैत्रेयजीके आगे जितने प्रश्न करे उनमें तीन चार प्रश्नसेही विदुरजीकी श्रीगोविन्दमें पूर्ण भक्ति हुई,सो उन प्रश्नोंसे उपराम हुआ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! अपने भाई विदुरजीको आता देख सब भाइयों समेत धर्मपुत्र,धृतराष्ट्र,युयुत्सु,सञ्जय, कृपाचार्य,कुंती॥३॥गांधारी,द्रौपदी,सुभद्रा उत्तरा कृपी(द्रोणाचार्यकी स्त्री,) जातिकी स्त्रियें,पुत्रसहित और स्त्रियें ॥ ४ ॥ अत्यन्त हर्षसे जैसे देहमें प्राण आवें ऐसे आये, अरु सब बडे आदरसत्कारसे मिले ॥ ५ ॥

विरहकी उत्कण्ठासे प्रेमके विवश होकर नेत्रोंसे जलधारा प्रवाह बहनेलगा, युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर पूजनकर आसनपर बैठाला॥ ६॥जब भोजनसे चिश्चिंत हो आसनपर विश्राम किया, उस समय नम्रतासे प्रणाम कर उनके चरण दाबनेलगे,और यह बोले कि आपने हमारे ऊपर बडा अनुग्रह किया जो इस समय आनकर दर्शन दिया ॥ ७ ॥ हम पांचोंभाई आपके पक्षरूपी छायामें पले आप हमको कभी स्मरण करते थे वा नहीं,जैसे पक्षीअपने पुत्रोंको अतिस्नेहसे पंखोंकी छायामें बढावें हैं, उसी रीतिसे आपने हमको बढाया अरु हमारी माता सहित सब विपत्तियोंसे बचाया, विषसे, अग्निसे और अनेक कठोर विघ्नोंसे रक्षा करी“जिस समय दुर्योधनादिक कौरवोंने हमको लाक्षाके कोटमें बन्द करके यह विचार कियाकि इनको भस्म करडालें उस समय आपने कृपा करके पहिलेही सुरंग खुदवाकर हमको बचाया,हम कहांलों आपकी बडाई करें?आपतो सदा हमारी सहाय करते रहे ॥८॥ इस क्षितिमंडलमें आपने कौन वृत्तिसे शरीरका निर्वाह किया ?इस भारतवर्षमें पृथ्वीपर जितने तीर्थक्षेत्र मुख्य हैं सो सब आपने किये॥ ९ ॥ आपसरीखे महात्माओंकी तीर्थयात्रा तीर्थोंपर कृपा करनेके लिये है, कुछ अपने अर्थ नहीं । आप सरीखे भागवत तो आपही तीर्थरूपहैं, आपके दर्शनसे तीर्थ भी पवित्र होजाते हैं । अपने अंतःकरणके निवासी गदाधारी भगवान्‌से मलिनजनोंके कुसंगसे तीर्थ भी मलिन होजाते हैं, उनको फिर सत्कर्म, अनुष्ठानी, वेदांती, ज्ञानी, भगवद्भक्त,पवित्र, सत्त्वादिगुणयुक्त,ब्राह्मण पवित्र करैहैं,भगवद्भक्तोंके सत्संगसे तीर्थ भी पवित्र होजाते हैं ॥ १० ॥ हे पितः ! आपने बहुत तीर्थ किये, परन्तु द्वारकापुरीमें भी गये थे वा नहीं ? क्योंकि हमारे सुहृद् बांधव श्रीकृष्णादिक यादवोंको आप भली भांति जानते हैं हमको जबसे राज्य देकर गये हैं तबसे उनका कुछ समाचार नहीं मिला

मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कंठ्यकातराः ॥ राजा तमर्हयांचक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥ ६ ॥ तं भुक्तवंतमासीनं विश्रांतं
सुखमासने ॥ प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छा
यासमेधितान् ॥ विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ८ ॥ कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् ॥
तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥ ९ ॥ भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो ॥ तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि
स्वांतःस्थेन गदाभृता॥१०॥अपि नः सुहृदस्तात बांधवाःकृष्णदेवताः॥दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते॥११॥

पुरीमें कैसे हैं कैसे नहीं?सो कृपा करके कहो॥११॥ धर्मराजने जब यह बूझा तब विदुरजीने सब तीर्थोंका वृत्तान्त कहा जैसा कुछ देखा था वैसा परंतु यदुकुलके क्षय होनेका वर्णन नहीं किया॥१२॥यह भलीभांति निश्चयहै कि जो बात अप्रिय है सहने योग्य नहीं है वह मनुष्योंको आपही प्रगट होजातीहै.दयालु विदुरजीने अपने सामने उनका दुःखी देखना उचित न जानकर नहीं कहा ॥१३॥"जब रनवासमें स्त्रियोंने विदुरजीके आनेका वृत्तान्त सुना, तब द्रौपदी आदिने अपने पास बुलाया अरु परमेश्वरका परम भक्त जानकर विदुरजीको दंडवत् किया और उनके आनेसे बहुत प्रसन्न हुईं. फिर विदुरजी धृतराष्ट्रके भवनमें जाय उन्हें और गांधारीको दंडवत् करी तब धृतराष्ट्रने उन्हें उठाय हृदयसे लगाय नेत्रोंमें जल भरकर कहा–हे भ्रातः! तुम्हारे जानेके पीछे मेरे ऊपर बड़ा कष्ट पडा अरु हमारे सब पुत्र मारे गये,राज्य नष्ट होगया,यह बात सुनकर विदुरजीने

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् ॥ यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥ १२ ॥ नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां
स्वयमुपस्थितम् ॥ नावेदयत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥ १३ ॥ कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥ १४ ॥

कहा हे भ्रातः! च्छा बलवान् है उसकी गतिसे किसीकी पार नहीं बसाती,:परमेश्वरकी इच्छा इसीप्रकार थी.उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण संसारमें अवतारलिया था,दैवगति किसीसे जानीनहीं जाती,अब धैर्य धारण करनेका समय है,यहतो कहो कि,राजा युधिष्ठिर तुम्हारा आदर सत्कार किसप्रकारकरतेहैं?धृतराष्ट्रने उत्तरदियाकि युधिष्ठिर तो हमसे बडा स्नेह रखता हैमुझको अपनेपिता और गांधारीको महतारीकी समान मानताहै और सब भाईभी हमसेअधिकरीति प्रीतिरखतेहैं,परन्तु:भीमसेन,युधिष्ठिरके पीछे हमको दुर्वाक्य कहताहै,यहदुखनहीं देखाजाता धृतराष्ट्रकी बातें सुन कुछ काल विदुरजीने तहांवासकिया.और देवताओंकी समान सुखीहो,बडे भ्राताके कल्याणके कारण सबसे रीति प्रीतिकरतेरहे॥ १४॥ *

---

* इसकी कथा इसप्रकार है–किसी देशमें चोर किसीका धन चुराकर भागे, और राजाके दूत उनके पीछे दौडे, वह चोर भागते भागते वहाँ पहुँचे जहाँ मांडव्य ऋषि तप कर रहेथे,उनके निकटही चोरं जाकर छिपरहे, राजाके दूतोंने उनके समीप जाकर ऋषि समेत चोरोंको पकडकर राजाके पास लेगये, राजाने आज्ञा दी कि सबको शूली देदो, राजाकी आज्ञासे चोरोंको शूलीपर चढाना आरम्भ किया, माडव्य ऋषिकी ओरको जो देखा तो उनको ऋषि जान शूलीसे उतारलिया अरु दण्डवत् प्रणाम कर अपना अपराध क्षमा करा उनको प्रसन्न किया, पीछे मांडव्यऋषि धर्मराजके निकट जाकर बडे क्रोधसे बोला कि, अरे यम! तैंने मुझे किस अपराधसे शूलीपर चढाया ! तब यमराज बोले कि महाराज ! आपने बालकपनमें टीडीको कुशाके अग्रभागसे छेदकर खेलेथे, उसके बदलेमें शूलीपर आप चढाये गये, यमराजका यह वचन सुन मांडव्य ऋषिने यमराजको शापदिया कि मैंने बाल अवस्थामें अज्ञानसे यह काम किया उसका तैंने मुझे ऐसा भारी दंड दिया, अब तू शूद्र हो, यह वही विदुरजी हैं ।

यमराज मांडव्यके शापसे शूद्रयोनिमें विदुर हुयेथे, तबतक यमराजके स्थानमें अर्यमा काम करते रहे ॥ युधिष्ठिर राज्यपाय पोतेको कुलोद्धारका देख लोकपालसमान भ्राताओं सहितपरम लक्ष्मीसे आनन्दितहुए॥ १६॥गृहके व्यापारमें ऐसे आसक्तहोगये उन्हें विदित न हुवाकि परमदुस्तर कालका समय आन पहुँचा॥ १७॥यह अभिप्राय जानकर विदुरजी धृतराष्ट्रसे बोले हेराजन्! शीघ्र निकलो यह भयंकर भय आताहै, सो देखो॥ १८॥ हे प्रभो! जिसकालके लौटानेका कोई उपायनहींहै जो कहींसे कभीभी नहीं जासकैहै सो यह भगवान् काल सबको हमको ऐसेही आवैहै ॥ १९॥ जिसकालसे ग्रसा हुवा जीव अधिक प्रियप्राणोंसे तत्काल वियोग पाताहै और धन पुत्रादिककी तो बातही क्याहै ॥ २० ॥ जब पिता, भ्राता, सुहृद,

अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ॥ यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम् ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ ॥ एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ॥ अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥ १७ ॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ॥ राजा न्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥ १८ ॥ प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ॥ स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥ १९ ॥ येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ॥ जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ २० ॥ पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ॥ आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥ २१ ॥ अहो महीयसी जंतोर्जीविताशा यया भवान् ॥ भीमेनावर्जितं पिंडमादत्ते गृहपालवत् ॥ २२ ॥ अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ॥ हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥ २३ ॥ तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः ॥ परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥ २४ ॥

पुत्रही सब तुम्हारे मारेगये, सब आयु तुम्हारी होचुकी, देहको बुढ़ापेने घेर लिया तौभी पराये घरमें रहतेहो ॥२१॥ बड़े आश्चर्यकी बातहै कि इस जीवको जीवनकी बड़ी आशा लगरही है, सो तुमकोभी है, भीमसेनके दियेहुए कड़े श्वानकी नाईं तुम खाओहो ॥२२॥ तुमनेभी तो अपनी चलतीमें उनके साथ कुछ कसर नहींकरी, लोहेके कोटमें बन्दकरकै आगलगाई। लड्डुओंमें विषदिया, उनकी स्त्री द्रौपदीकी सभामें अवज्ञाकरी, पृथ्वी उनकी छीनी, धन धाम उनका लिया, अब उनका दियाअन्न खाकर शरीर पुष्ट करनेसे कुछ प्रयोजननहीं निकलेगा॥२३॥ कृपणपनसे जीनेकी

इच्छा अच्छी नहीं, और जो इच्छाभी है तौभी यह तुम्हारा जराजीर्ण शरीर सब प्रकार क्षीण हो गयाहै जैसे पुरानेवस्त्र त्यागने योग्यहोतेहैं ऐसी तुम्हारी देहकी गति है सो अब धैर्य धरो ॥२४॥ विरक्त सब बन्धनोंसे मुक्तहो, इस देहको त्यागे सो अविज्ञातगति स्वार्थ रहित धीर कहाता है ॥२५॥ जो कोई अपने आप अथवा पराये उपदेशसे आत्माको पहिचानकर हृदयमें परमेश्वरके चरणारविन्दोंको धारणकर घर त्याग संन्यास धारण करतेहैं वेही मनुष्य मनुष्योंमें श्रेष्ठहैं ॥ २६ ॥ अपने सम्बन्धियोंसे छिपकर तुम उत्तराखण्डको चलो, इससे पीछे पुरुषोंका गुण नाशक बहुत बुरा समय आवैगा ❋ ॥ २७ ॥ आजमीढ़ वंशी जन्मान्धको इसभांति विदुरजीने जब समझाया तब तो धृतराष्ट्र अपना

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबंधनः ॥ अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥ २५ ॥ यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥ २६ ॥ अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ॥ इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥ २७ ॥ एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः ॥ छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥ २८ ॥

---

*शंका-धृतराष्ट्र और पाण्डुका छोटा भाई विदुर कैसे था, सब शास्त्रोंमें और भारत इत्यादि इतिहासोंमें ऐसा लिखाहै, कि अपने जन्म होनेके पीछे अपनी माताके उदरसे जो बालक उत्पन्न होता है, उसको शास्त्रमें और लोकमें छोटा भाई कहते हैं, दूसरी माताका जन्मा बालक लोकमें और शास्त्रमें छोटा भाई नहीं कहाता, धृतराष्ट्र और पाण्डु यह क्षत्रानीके पुत्र, और विदुर शूद्रीका पुत्र, फिर धृतराष्ट्रका छोटा भाई विदुर क्यों कर हुवा ?

उत्तर-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इन चारो वर्णोंके विवाह होनेकी विधि, शास्त्रमें अथवा लोकमें कही है वही विधि श्रेष्ठ है, और प्रथम है, और शास्त्रसे और लोकसे जो विवाहकी विधि है उसको अनु कहतेहैं, शास्त्रमें उसअनुकी विधि माने और अन्यायसे जो जन्म ले उसको मुनीश्वरलोग अनुज कहते हैं इसीलिये विदुर लोगोंका नाम अनुजहै, विदुर वर्णसंकरकोभी कहते हैं, अथवा अपने जन्मके पीछे अपना मातामें जो जन्म लेताहै उसकोभी शास्त्रमें और लोकमें अनुज कहते हैं, शब्दके अर्थ अनेक प्रकारके हैं, परन्तु जो अर्थ जिस स्थानमें जैसा घट जाय अथवा अयोग्य न जानपडै वही अर्थ उस पदका लगाना चाहिये, जैसे पय पानीको कहते हैं और पय दूध कोभी कहते हैं, गो, धेनुका नामभीहै गो, पृथ्वीका नामभीहै, गौ जलका नामभीहै, गो, इन्द्रियोंको नामभीहै, गो, वाक्स्थानका नामं भी है, देखिये गो, शब्दके कितने अर्थहुए इसलिये 'विदुरेणानुजेन' ऐसा वचन व्यासजीने कहा, धृतराष्ट्रको छोटा भाई नहीं कहा ॥

चित्त दृढ़कर कुटुम्बके लोगोंसे स्नेह त्याग विदुरजीने जो मुक्तमार्ग बताया उसपर आरूढ़ होकर वहांसे चल ॥ २८ ॥ और पतिके जानेका समाचार सुन, सुबलदुहिता, पतिव्रता, साध्वी गान्धारी भी उनके संग चलनेको उपस्थित हुई संन्यस्त दण्ड ले अतिहर्षसे हिमालयको गये, मनस्वी शूरोंको जैसे युद्धमें सुन्दर प्रहार प्यारेलगै हैं तैसे जानो ॥ २९ ॥ राजा युधिष्ठिर सन्ध्यावन्दनसे निश्चिंत हो, अग्निहोत्रकर, तिल, गौ, भूमि, सुवर्णदानदे, बाह्मणोंको नमस्कारकर माता पिताकी वन्दना करनेके लिये उनके मन्दिरमें गये, वहां विदुर, धृतराष्ट्र, गान्धारीको न देखा ॥ ३० ॥ उद्विग्नमनसे वहां बैठगये और संजयसे बूझा.कि हे संजय ! हमारे चाचा वृद्ध नेत्रहीन सो कहांचले गये ? पुत्रोंके शोकसे महाव्याकुल हमारी चाची भी नहीं दिखाई देती. जो आपको विदित हो तौ कहो. क्योंकि व्यासजी महाराजकी कृपासे तुम सब जानते हो ॥३१॥ मुझ बुद्धि हीनमें अपराध विचार बन्धुओंके मरनेसे दुःखी होकर स्त्री सहित गंगामें तौ नहीं डूबमरे ॥३२॥ जब हमारे पिता परमधामको चलेगये तो हम सबको बालक जानकर अनेक कष्टोंसे हमारी रक्षा करी अरु पाला वह हमारी चाची चाचा यहांसे कहां चलेगये?॥३३॥सूतजी बोले, कि हे शौनकमुनि! जय अपने ईश्वर युधिष्ठिरको महादुःखी देख अतिपीड़ित हुआ, और मुखसे कुछ नहीं कहसका ॥३४॥ दोनों हाथोंसे आंसू

पतिं प्रयांतं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी॥हिमालयं न्यस्तदंडप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः॥२९॥अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ॥गृहं प्रविष्टो गुरुवंदनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥३०॥ तत्र संजयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ॥ गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥ अम्बा च हतपुत्राऽऽर्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत् ॥ ३१ ॥ अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबंधुः सभार्यया ॥ आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ॥ अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकार्शितः ॥ आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥ ३४ ॥ विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥ ३५ ॥

पोंछ बुद्धिको सावधानकर मनको धैर्यदे प्रभुके चरणोंका स्मरण करते अजातशत्रुसे बोले, और प्रभुके चरणोंका स्मरण किया ॥३५॥संजय बोले, कि हेकुरुनन्दन!तुम्हारे पिताके समाचार मैं कुछ नहीं जानता. और गान्धारी तुम्हारी चाचीके जानेकी भी मुझको कुछ सुधि नहीं. मैं इन महात्माओंसे वंचित हुआहूँ ॥ ३६ ॥उसी समय कहींसे घूमते घामते नारदजी भी तुम्बुरू गन्धर्वको संगलिये आगये, उनको देख भाइयों समेत उठ पूजा सत्कार प्रणामकर बोले ॥ ३७ ॥ कि हे भगवन् ! हमारे चाचा चाची न जानिये कहां चले गये पुत्रोंके निधन होनेसे महाःदुखी हो. तपस्विनी गांधारी कहांगई? ॥ ३८ ॥ अपार शोकसागरमें डूबेहुएको धैर्यरूपी केवट बनकर नारदजी आप आन पहुंचे. “हे अज्ञाननाशक! महाबुद्धिमान, सर्वज्ञानी, विघ्नहर्ता,सबकी विपत्तिमें आनकर सहायक होतेहो,जो उनको कहीं.सिंह व्याघ्रने खालिया, अथवा कहीं कुयेंमें डूबकर मरगये तो मेरी बड़ी दुर्नामता होगी,किसीके सन्मुखमुख दिखानेका भी न रहूँगा आप दिव्यदृष्टी हैं, दया करकै बतादीजै हम उनकी विनतीकर उनको यहां लौटा लावेंगे क्योंकि भोजन छाजनमें अत्यन्त दुःखीहोंगे” युधिष्ठिरके वचन सुनकर, मुनिसत्तम भगवान्नारदजी बोले, कि हे राजन् ! शोक संताप मत करो, यह सब संसार ईश्वरके वशमें है ॥३९॥४०॥जो सबका ईश्वर है उसको अपने पालकसहित सब लोग भेंटते हैं वोही परमात्मा सब जीवोंका संयोग वियोग करै है जैसे बलवान बैल नाथके वशमें होकर अपने स्वामीका सब कार्यकर बलिदेताहै, ऐसे यह करना यह

संजय उवाच ॥ नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनंदन ॥ गांधार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥३६ ॥
अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुम्बुरुः ॥ प्रत्युत्थायाभिवाद्याऽऽह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥
नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन्क्क गताबितः ॥अम्बा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्क गता च:तपस्विनी॥३८॥ कर्णधार इवापारे भग
वान्पारदर्शकः ॥ अथाबभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ ३९ ॥ मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥
लोकाः सपाला यस्येमे वहंति बलिमीशितुः ॥ ४० ॥ स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ यथा गावो
नसि प्रोतास्तंत्यां बद्धाः स्वदामभिः ॥ वाक्तंत्यां नामभिर्बद्धा वहंति बलिमीशितुः ॥ ४१ ॥ यथा क्रीडोपस्कराणां
संयोगविगमाविह ॥ इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥ ४२ ॥

न करना ऐसी वेदकी वाणीरूप डोरमें वर्णाश्रम धर्मरूप नाथसे बंधे सबजीव परमेश्वरको बलिदेते हैं जैसे खेलनेवालेकी इच्छासे खेलकी सब सामग्रियोंका संयोग वियोग होजाता है,इसीप्रकार ईश्वरकी इच्छासे सब जीवोंका संयोग वियोग समझना चाहिये॥४१॥४२॥जो लोकको ध्रुवमानो. अथवा अध्रुव मानो.वा दोनोंको मतमानो,मोहसे,स्नेहसे,सबप्रकारसे.शोककरना नहीं चाहिये॥४३॥हे युधिष्ठिर!यह जो अज्ञानपनकी तुम्हारी व्याकुलता है इसको त्यागो, क्योंकि तुम कहो हो,कि अज्ञान, अनाथ,कृपण,अन्धे,मुझ विन वनमें कैसे रहैंगे,और उनके,खाने पीनेकी सुधि कौन लेगा,यह सोच करना तुम्हारा सब वृथाहै ॥४४॥कालकर्मगुण इनके आधीन यह पञ्चतत्त्वका बनाहुवा देह है,सो यह किसकी रक्षा करसक्ताहै.जैसे

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ॥ सर्वथा हि न शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥ ४३ ॥ तस्मा
ज्जह्यंग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ॥ कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरन्वनमाश्रिताः ॥ ४४ ॥ कालकर्मगुणाधीनो
देहोऽयं पांचभौतिकः ॥ कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथापरम् ॥ ४५ ॥ अहस्तानि सहस्तानामपदा
नि चतुष्पदाम् ॥ फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥ ४६ ॥ तदिदं भगवान्राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां
स्वदृक् ॥ अंतरोऽनंतरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥ ४७ ॥ सोयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः ॥ कालरूपोऽव
तीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम् ॥ ४८ ॥ निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ॥ तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥
॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गांधार्या च स्वभार्यया ॥ दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥ ५० ॥

अजगरसर्प ग्रसितजीव औरको कैसे बचा सकैगा॥४५॥चार पगवाले पशु आदि तृणादिकको खातेहैं,हाथ जिनके हैं वह जीव और सूक्ष्म वस्तुका भक्षण करैहैं,ऐसेही सब जीवमात्रजीवोंका जीव बचावैहैं परन्तु सब कालग्रसितहैं॥४६॥हे राजन्!सर्वद्रष्टा एक सबआत्माओंमें एक भीतर बाहर जामें नहीं.मायासे बहुत दीखै हैं,सजातीय विजातीय स्वगतभेद शून्य यह भगवान् प्रकाश करैहैं॥४७॥हे महाराज!भगवान् सो यह भूतभावन कालरूपने सुरद्रोहियोंके मारणके कारण पृथ्वीपर मनुज अवतार धारण किया है ॥ ४८ ॥ देवताओंका तो सब कार्य कर चुके हैं केवल यदुकुलकी और बाट देखरहे हैं, तब लों तुम भी यहां रहो जब लों ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यहां रहैं, पीछे तुमभी चले जाना ॥ ४९ ॥ हे:राजन्! धृतराष्ट्र,

विदुर सहित गान्धारीके लिये हिमाचलकी दक्षिण ओर ऋषियोंके आश्रममें गयेहैं ॥५०॥ जहां गंगाजी सात ओरबहकर, आप सातरूप हुईहैं, सातों ऋषियोंकी प्रीतिके अर्थ सप्तस्रोत ऐसे विख्यात हैं ॥५१॥ वहां सदा स्नानकर यथाविधि अग्नि होत्रकर, वायुभक्षणके आश्रय रहकर अति शान्त मनसे परमात्माके चरणोंमें चित्तलगा सब कुटुम्बसे स्नेह तज वहाँ वास करेंगे ॥५२॥ आसनजीत,श्वासजीत इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके हरि भावनासे दूर होकर राजस, तामस, सात्त्विक सब मल जिनके भस्म होगये ॥ ५३ ॥ विशेष ज्ञानकी व्यापक जिनकी देह, जीवान्तर्यामी, सर्वाधार,बृहत्त्वादि गुण विशिष्ट, चैतन्य ब्रह्ममें जीवात्माका संयोगकर, तद्रूप होकर परमात्मामें लीन होंगे, जैसे घट फूटनेसे घटाकाश महाकाशमें

स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ॥ सप्तानां प्रीतये नाम्ना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५१ ॥ स्नात्वा
ऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ॥ अब्भक्ष उपशांतात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥ ५२ ॥ जितासनो जित
श्वासः प्रत्याहृतषडिंद्रियः ॥ हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ॥ ५३ ॥ विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविला
प्य तम् ॥ ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥५४॥ ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः॥ निवर्तिताखिलाहार
आस्ते स्थाणुरिवाचलः ॥५५॥ तस्यांतरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥ स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पंचमेऽहनि ॥
कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति॥५६॥ दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ॥ बहिः स्थिता पतिं साध्वी
तमग्निमनुवेक्ष्यति ॥ ५७ ॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनंदन ॥ हर्षशोकयुतस्तस्माद्गंता तीर्थनिषेवकः ॥ ५८ ॥

लीन होजाताहै ॥ ५४ ॥ माया गुणोंकी वासना जिनसे सर्वत्र दूर होगई, इन्द्रियें अंतःकरण जिनका शुद्ध होगया.सब प्रकारके आहार जिन्होंने त्यागदिये, सो खम्भकी सदृश अचल होगये ॥५५॥ सब कर्मोंसे संन्यस्त हैं उसमें कोई विघ्न मत करना, हेराजन्! सो वह आजसे पांच दिन उपरान्त अपना शरीर त्यागन करेंगे, और देह आपही भस्म होजायगी. विदुरजीके ज्ञानसे धृतराष्ट्रको मोक्ष प्राप्त होगी ॥ ५६ ॥ पर्णशाला अग्निसे जब देह भस्म होजायगी, तो गान्धारी उनकी स्त्रीभी उसी अग्निमें प्रवेश करके सती होजायगी ॥ ५७ ॥ हे कुरुनन्दन! विदुरजी यह

इत्युक्त्वाऽथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ॥युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥ ५९ ॥इति श्रीमद्भा० प्रथ०
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥सूत उवाच ॥ संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बंधुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य
च विचेष्टितम् ॥ १ ॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नाऽयात्ततोऽर्जुनः ॥ ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वह ॥
॥ २ ॥ कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधार्मिणः ॥ पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ ३ ॥ जिह्मप्रायं
व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥ निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते
नृणाम् ॥ लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बंधुदिदृक्षया ॥
ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥

आश्चर्य देखकर अति:हर्ष शोकयुक्त तीर्थयात्राको चलेजायँगे॥५८॥ ऐसे कह तुंबुरू गन्धर्व समेत नारदजी स्वर्गलोकको चलेगये, और युधिष्ठिर उनका वचन मान हृदयसे सब शोकसंताप त्यागकर वासुदेव भगवानके ध्यानमें लवलीन हुए ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोक्त्या धृतराष्ट्रमोक्षवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥ दोहा–पार्थ द्वारकाकी कथा, जैसे वरणी आय ॥भयो दुखी सुन धर्म सुत,कहों सकल समझाय॥१॥जब द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द देवकीनन्दनका समाचार बहुत दिनोंसे न मिला,तो युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा,कि"भाई!तुम द्वारकाको जाओ और द्वारकानाथकी सुधि लाओ. धर्मराजकी यह बात सुनकर बन्धुके देखनेकी इच्छासे पार्थने द्वारकाको गमन किया." पुण्ययशस्वी श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधिके लिये॥१॥ हे शौनकमुनि!जब कईमास व्यतीत होगये और अर्जुन द्वारकासे न लौटे; उस समय युधिष्ठिर घोर उत्पात देखने लगे ॥२॥कालकी घोरगति, धर्मका उलटापन दिखाई देनेलगा, मनुष्योंके मनमें क्रोध, लोभ, मोह,मिथ्यावाद बसगया, सब जीवोंकी पापयुक्त बातें दीखने लगीं ॥३॥ सब लोग व्योहारमें कपट करनेलगे,सुहृदतामें ठगपना, पिता, पुत्र, स्त्री, पुरुष,भाई बन्धुओंमें क्लेश होनेलगा॥४॥अत्यन्त अरिष्टकारी शकुन होनेलगे,ऐसा समय आगयाकि लोभसे आदि लेकर अधर्मकी प्रकृति देखकर युधिष्ठिर सोचवश हो भीमसेनसे बोले ॥ ५ ॥ भ्रातः!अर्जुनको श्रीकृष्णजीकी सुधि लेनेको द्वारकाको भेजाहै. न जानिये पुण्ययशवाले श्रीयदुनाथकी

क्या करनेकी इच्छाहै ॥६॥ सो हे भइया भीम ! सात महीने अर्जुनको गये बीते, सो अबतक आया नहीं, न जानिये क्या कारणहै यह भेद हम कुछ नहीं जानसक्ते ॥७॥ ऐसा निश्चय होताहै कि नारदजी जो कहगयेथे वह समय आगया, क्योंकि जिस समय सब क्रीड़ाके साधन श्रीभगवान् शरीरको त्यागेंगे वह समय सब अमांगलीक होगा॥८॥ जिन श्रीकृष्णकी कृपासे सब हमारे सम्पदा,राज्य,स्त्री,प्राण,कुल,प्रजा,वैरियोंसे विजय, सब लोकका धन हुआ॥९॥हे नरव्याघ्र ! स्वर्गके, भूमिके, शरीरके, दारुण बुद्धिके, मोहके करानेवाले भयानक* उत्पातको देखो॥१०॥ छातीका वामभाग,वामनेत्र,वामभुजा, बारम्बार फड़कतीहैं और हृदय बारम्बार कांपताहै, इन लक्षणोंसे यह विदित होताहै, कि शीघ्र कुछ अप्रियबात सुनाई

गताः सप्ताऽधुना मासा भीमसेन तवानुजः ॥ नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमंजसा ॥ ७ ॥ अपि देवर्षिणा
ऽऽदिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ॥ यदात्मनोंगमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥ यस्मान्नः सम्पदो राज्यं
दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ॥ आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥ पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्स
दैहिकान् ॥ दारुणाञ्शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥ ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरंत्यंग पुनःपुनः ॥ वेपथुश्चापि
हृदये आराद्दास्यंति विप्रियम् ॥ ११॥ शिवैषोद्यंतमादित्यमभिरौत्यनलानना ॥ मामंग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभी
रुवत् ॥ १२ ॥ शस्ताः कुर्वंति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ॥ वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥ १३ ॥ मृत्युदूतः
कपोतोऽयमुलूकः कंपयन्मनः ॥ प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥ १४॥ धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः
सहाद्रिभिः ॥ निर्घातश्च महानासीत्साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥

देगी॥११॥ सूर्यके सन्मुख खड़ी होकर शृगालिनी रोतीहैं और मुखसे आग उगलती हैं, हे भइया भीम ! मेरे सन्मुख निःशंक खड़े होकर श्वान रोते हैं ॥ १२ ॥ अच्छे पशु गौ आदिक तौ मेरे बांये ओर होकर निकलतेहैं और गर्दभ आदि दुष्ट पशु मेरी परिक्रमा करैहैं, हे पुरुषसिंह भीम ! मेरे रथके घोड़े जब सवार होताहूं तब रोतेसे दीखैहैं ॥ १३ ॥ मृत्युके दूत यह कपोत, काक, उलूक, श्वान, रातको बोलतेहैं, इनका बोलना विश्वका शून्य करना चाहताहै. ऐसे कुलक्षणोंको देख २ मेरा हृदय कांपताहै ॥ १४ ॥ सब दिशाओंमें धुन्ध छा रहाहै (सूर्य चन्द्रमाके

---

* दोहा—जाने हरि इच्छा कहा, कछु नहिं जानीजात । हे भइया मोहिं होतहैं नित नये उत्पात ॥ १ ॥

मण्डल बंधेहैं) पर्वतों सहित भूचाल होरहाहै, विना बादल आकाशसे गर्जनेका शब्द सुनाई आताहै ॥ १५ ॥ पवन धूरी लेकर आकाशको चढ़ैहै,सब नभमण्डलमें रेतसे अन्धकार छा रहाहै, सब ओरसे भयानक मेघ रुधिर बरसातेहैं ॥ १६ ॥ स्वर्गमें सब गृह परस्पर लड़ते हैं. सूर्य कान्तिहीन दृष्टि आताहै-यह देखो भूतगणोंसे व्याकुल होकर सब पृथ्वी मानों अग्निसम उत्तप्त हो रहीहै ॥१७॥ नदी और नद ताल और सरोवर क्षोभको प्राप्तहैं,अग्नि घृत डालनेसे प्रज्वलित नहीं होती-न जानिये यह कुसमय क्या करैगा॥१८॥बछड़े गायोंका दूध प्रसन्न होकर नहीं पीते,माता स्तनोंसे दूध नहींछोड़ती,धेनु सूर्य नारायणके सन्मुख खड़ीहोकर नेत्रोंसे जलधारा बहातीहैं,खड़कोंमें वृषभ प्रसन्न चित्तसे शब्द नहीं करतें॥१९॥

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजस्तमः ॥ असृग्वर्षंति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥१६॥ सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं
मिथो दिवि ॥ ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥ १७ ॥ नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च॥न ज्वलत्य
ग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥ न पिबंति स्तनं वत्सा न दुह्यंति च मातरः ॥ रुदंत्यश्रुमुखा गावो न हृष्यं
त्यृषभा व्रजे ॥ १९ ॥ दैवतानि रुदंतीव स्विद्यंति ह्युच्चलंति च ॥ इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियो
निरानंदाः किमघं दर्शयंति नः ॥२०॥ मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ॥ अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥
॥ २१ ॥ इति चिंतयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ॥ राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥ तं पादयोर्नि
पतितमयथापूर्वमातुरम् ॥ अधोवदनमब्बिन्दून्मुंचंतं नयनाब्जयोः ॥ २३ ॥

मन्दिरोंमें देवताओंकी प्रतिमा रुदन कर रहीहैं. पसीना आताहै, कम्पायमान हो रहीहैं; देश, ग्राम, पुर, नगर, कूप, वाटिका, आश्रम, इन सबकी शोभा मलीन होगई; आनन्दका नाम नहीं,न जानिये यह हमको क्या दुःखदेंगे॥२०॥निश्चय है कि इन उत्पातोंसे अनन्य पुरुष श्रीकृष्णकी शोभासे और भगवत्के चरणारविन्दसे जिसका सौभाग्य हीनहोगया. इसलिये भूमिकी शोभा नष्ट होगई ॥२१॥-हे ब्रह्मन्! जिस समय राजा युधिष्ठिरजी बैठे यह विचार कररहेथे कि यह अरिष्ट क्या करैंगे. उसी समय राजा युधिष्ठिरके समीप यदुपुरीसे अर्जुन आये ॥२२॥आतेही नीचेको

मुखकर धर्मराजके चरणोंमें गिरपड़े; अत्यन्त व्याकुल, आंसुओंसे पूर्णनेत्र ॥ २३॥ कान्तिहीन सुहृद अर्जुनके सन्मुख नारदजीके वचन स्मरणकर कम्पित हृदय हो राजा युधिष्ठिर बूझने लगे ॥२४॥ हे भ्रातः! मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्व, अन्धक, वृष्णि, यह सब राजा आनन्दित हैं * ॥२५॥ मान्यवर शूर नाना वसुदेव तो प्रसन्न हैं, भाई सहित मामा कुशल हैं ॥ २६ ॥ सातों बहिनें उनकी स्त्रियें, हमारी मामी, पुत्रसहित, पुत्रवधू

विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ॥ पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ॥ मधुभोजदशार्हार्हसात्वतांधकवृष्णयः ॥ २५ ॥ शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाऽथ मारिषः ॥ मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुंदुभिः ॥ २६ ॥ सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ॥ आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥ २७ ॥ कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ॥ हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयंतगदसारणाः ॥ २८ ॥ आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ॥ कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ॥ २९ ॥ प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ॥ गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्तते भगवानुत ॥३०॥

सहित, देवकी आदिकी क्षेम है ॥ २७ ॥ राजा आहुक, देवक भाई सहित जिसका पुत्र महा खोटा है वह जीवैहै हृदीक पुत्रसहित अक्रूर, जयन्त, गद, सारण ॥२८॥ शत्रुजित आदिक कुशलहैं भगवान् सात्वतोंके प्रभु बलदेवजी अच्छेहैं? ॥ २९ ॥ सब वृष्णियोंमें महारथी प्रद्युम्न तो सुखी हैं

---

* **शंका**—सातद्वीप पृथ्वीके राजा युधिष्ठिर थे उनको चिट्ठीसे अथवा दूतसे यह बात क्यों नहीं जानपडी कि सब यदुवंशी परस्परलडकर मरगये, यह बडे आश्चर्यकी बात है और बडी शंकादेतीहै, कोई छोटा राजाभी होताहै वहभी अपने राज्यका सब समाचार पाता रहता है और धर्मराज सात द्वीपके राजा थे तोभी उनको यह समाचार नहीं मिला कि यदुवंशका विध्वंस होगया, यदुवंशीभी कुछ ऐसे वैसे नहींथे बडे नामी और पुरुषार्थी पुरुष थे. फिर क्या कारण जो उनके मरनेका समाचार नहीं मिला?

उत्तर—जिस दिन द्वारकासे अर्जुन युधिष्ठिरकेपास आया उसके दश दिन पहिले दूतोंसे धर्मराजने सुनाथा कि सब यदुवंशी कुशल क्षेमसेहैं कालकी गति महाकठिनहै ब्राह्मणके शापसे एक क्षणमात्रमें सब यदुवंशका नाश होगया तब सबका मृतक कर्म करके सातवें दिन अर्जुन राजा युधिष्ठिरके पास आया बीचमें भाइयोंका चित्त दुःखी होनेके लिये समाचार किसी दूत के द्वारा नहीं भेजा ॥

भगवान्‌की समान महागम्भीर वेगवाले अनिरुद्धजी कुछ बड़े हुएहैं कि अभी छोटे हैं ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण जाम्बवतीपुत्र साम्ब और सब श्रीकृष्णसुत पुत्र सहित ऋषभादिक॥३१॥श्रीकृष्णजीके अनुचर श्रुतदेव उद्धवादिक सुनन्द, नन्द यादवोंमें मुख्य श्रेष्ठहैं॥३२॥राम कृष्णकी भुजासे पालित वह सब प्रसन्न हैं, जिन्होंने हमसे सौहृद कियाहै वह सब कुशल हैं? ॥३३॥ ब्राह्मणोंके पालनेवाले भक्तवत्सल गोरक्षक भगवान् भाई बन्धु समेत द्वारकामें सुधर्मा सभामें सुखीहैं॥३४॥सब लोगोंके मंगलके लिये सबकी कुशलके अथ सबकी वृद्धिके कारण शेषजीके सखा आदिपुरुष श्रीकृष्ण

सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥३१॥ तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदे
वोद्धवादयः ॥ सुनंदनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥ ३२ ॥ अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ॥ अपि
स्मरंति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥ ३३ ॥ भगवानपि गोविंदो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुख
मास्ते सुहृद्वृतः ॥३४॥ मंगलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ॥ आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनंतसखः पुमान् ॥
॥ ३५ ॥ यद्बाहुदंडगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ॥ क्रीडंति परमानंदं महापौरुषिका इव ॥ ३६ ॥ यत्पादशुश्रूषण
मुख्यकर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ॥ निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरंति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥
यद्बाहुदंडाभ्युदयाऽनुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ॥ अधिक्रमंत्यंघ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमो
चिताम् ॥ ३८ ॥ कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ॥ अलब्ध मानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥३९॥

यदुकुलमें प्रसन्न हैं?॥३५॥जिनकी भुजारूपी दण्डसे रहित द्वारकामें पूजित होकर,यादव परमानन्दसे वैकुण्ठनाथके पार्षदकी नाईं क्रीडा करतेहैं ३६॥ जिनके चरणारविन्दकी सेवारूप मुख्य कर्मसे सत्यभामादिक सोलहसहस्र स्त्रियां संग्राममें देवताओंको जीत उन देवभोग्य पारिजातादिकोंको भगवान् स्वर्गसे लाकर द्वारकामें रक्खा जो इन्द्राणीके उचितहैं ३७॥यादवलोग जिनकी भुजाओंके प्रतापसे निर्भय उत्साहित सुरसत्तम योग्य सुधर्मा सभा अपने बलसे लाये और वारंवार उसमें चरण धरतेहैं ३८हे तात!हेभैया!तुमतो प्रसन्नहो?मुझको ऐसा विदितहोताहै कि तुम्हारा तेज नष्ट होगया,

कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमंगलैः ॥ न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥ कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ॥ शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥ कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् ॥ पराजितो वाऽथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥ ४२ ॥ अपिस्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् ॥ जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥४३॥ कच्चित्प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबंधुना ॥ शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० प्र० युधिष्ठिरदर्शनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाविकल्पितः ॥ नानाशंकास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकार्शितः ॥ १ ॥

अथवा बहुत दिनोंके रहनेसे भाइयोंने तुम्हारा आदर सत्कार नहीं किया.क्या तुम्हारी अवज्ञा करी? किसीने अमंगल शब्द प्रेमरहित वाणीसे तौ तुमको नहीं पुकारा ? पहिले किसीको आशाका भरोसा दे पीछे क्या वस्तु उसे नहीं,दी,ऐसा तो नहींहुवा?॥३९॥४०॥कोई भयभीतब्राह्मण,बालक गौ, वृद्ध,रोगी,स्त्री,तुम्हारीशरण आये होंय उनको तो तुमने कहीं नहीं त्यागदिया?॥४१॥अगम्यस्त्री से तुमनें रमण तो नहीं किया।अथवा विना शृंगारवाली नीच स्त्रीसे तो तुम नहीं बोले?अथवा उत्तम वा सामान्य पुरुषने मार्गमें तुमको पराजय तो नहीं किया?॥४२॥अथवा भोजनके समय किसी ब्राह्मण वा वृद्ध, वा बालक,वा और किसी पुरुषको त्यागकर पहिले तुमने तो भोजन नहीं करलिया,अथवा कोई असह्य महानिषिद्ध कर्म तो तुमने नहीं किया?॥४३॥ अथवा हमारे प्यारे नेत्रोंके तारे हृदयरूप बन्धु श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सर्व सुख देनेहारे तो कहीं परमधामको नहीं सिधारे जिनके मारे तुम अत्यन्त व्याकुल होरहेहो?और कोई रोग तो मुझे विदितनहीं होता,यह कारण क्या है वर्णन तो करो क्यों ऐसे तनु छीन मनमलीनकांतिहीन होरहेहो ? जो बात हो सो सत्य सत्यकहो जो मेरे मनको धैर्यहो॥४४॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भा०टी० युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥दोहा--पञ्चदशमअध्यायमें, सुन यदुवंशविनास ॥धर्मराज सब राज तज,कियो हिमालयवास॥१॥सूत जी बोले,कि हे शौनकऋषि!श्रीकृष्णके सखा अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने अनेक अनेक प्रकारसे बूझा परन्तु यदुनाथके वियोगमें ऐसे कृशितहोगये॥१॥

कि उत्तर न दिया था, शोकके मारे मुख हृदयकमल सूखगया, शरीरकी कांति जाती रही, श्रीकृष्ण सर्व समर्थका ध्यान करनेलगे, परन्तु मुखसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं रही ॥२॥ बड़े कष्टसे शोकको रोक:नेत्रोंके आंसू पोंछ श्रीकृष्णके अंतर्ध्यान होजानेके कारण प्रेमवश व्याकुल हो॥३॥ उनका सारथीपनका समय, सखाभाव,मित्रता, सुहृदताका स्मरण कर, भाई युधिष्ठिरके आगे शोकको रोक रुके गदगद कण्ठसे बोले ॥ ४ ॥ हे महाराज ! बन्धुरूप श्रीहरि ने मुझको ठगलिया, देवताओंको विस्मयदायक मेरा तेजभी जातारहा "मैं क्या कहूं और क्या आप वारंवार मुझसे बूझतेहो ? हमारे प्राण प्यारे द्वारकानाथ हमारी पीठपर हाथ धरनेवाले हमको धोखा देकर परमधामको चलेगये और हम अपने मूर्खपनसे उनको अपना ममेरा भाईही समझते रहे, उनको आदिपुरुष अविनाशी नहीं जाना, जो परमात्मा समझकर हम उनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते तो भवसागरसे पार उतर मोक्षको प्राप्त होते उनकीमाया ऐसी प्रबल है उसके फंदमें फँसकर हमने जगदीश्वरको नहीं पहिचाना जैसे एक समय

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ॥ विभुं तमेवाऽनुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥ कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽमृज्यनेत्रयोः ॥ परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कंठ्यकातरः ॥ ३ ॥ सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ॥ नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ वंचितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ॥ येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥

चन्द्रमा दक्ष प्रजापतिके शापसे बहुत कालतक क्षीरसमुद्रमें रहा,यह बात सबको विदित है कि चन्द्रमामें अमृत रहताहै,और कच्छ, मच्छ आदिक अनेक जलचर उसमें रहतेथे और उसी समुद्रमें चन्द्रमा बसता था,और संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं जो अपना अमर होना न चाहै सब यही इच्छा रखतेहैं कि अमृत मिलै तो हम पीकर अमरहों संसारमें रहकर आनन्द भोगें परन्तु मच्छ कच्छ सहस्रों वर्षतक चन्द्रमाके संगरहे और अमृतका कुछ ध्यान नहीं किया,जिसप्रकार उन समुद्रके जीवोंने चन्द्रमाका भेद नहीं जाना और उसकोभी समुद्रका एक जीव माना, इसीप्रकार हम लोगोंने भी परब्रह्म परमात्माको नहीं पहिचाना,यदुवंशीही जाना.अब वह बात समझ कर हमको बडा पश्चात्ताप आताहै कि हाय हम भाईकेही धोखेमें रहे! और परमेश्वर हमारे हाथसे निकल गये,हाय!हमने आदिपुरुष अविनाशीको अपना सारथी समझा,हे भ्रातः!जो समस्त भूमंडल मेरे तेजके सन्मुख थरथर

कांपता था आज वह मेरा सब तेज नष्ट होगया ॥ ५ ॥ जिस प्राणके क्षणमात्रके वियोग होनेसे यह लोग नहीं रहते मृतक कहावे हैं सो प्राणरूप श्रीभगवान्के अन्तर्ध्यान होनेसे हमभी मृतकके समान होगये ॥ ६ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके आश्रयसे द्रुपदके यहां आये कामसे उन्मत्त राजाओंका तेज स्वयंवरमें मैंने हरा और धनुष सूधाकर मत्स्य वेधन किया और द्रौपदीको हम ले आये ॥ ७ ॥ जिन श्रीविपिनविहारीके समीप रहकर खाण्डववन अग्निको भोजन करनेके लिये दिया और देवगण सहित सुरेशको जीतकर मयनाम दैत्यकी बनाई हुई अद्भुत सभा जिसमें अनेक अनेक प्रकारकी शिल्पकारी विद्याकी कारीगरी थी सो सभा हमको मिली, और आपके यज्ञमें सब देशोंके राजाओंने

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ॥ उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥ ६ ॥ यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपा
गतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ॥ तेजो हृतं खलु मयाऽभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाऽधिगता च
कृष्णा॥ ७ ॥ यत्संनिधावहमु खांडवमग्नयेऽदामिंद्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ॥ लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया
दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥ ८ ॥ यत्तेजसा नृपशिरोंऽघ्रिमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ॥
तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ॥ ९ ॥ पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्ला
घिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ॥ स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥१०॥

आन आनकर भेंटैं दीं. यह सब उन्हीं यदुनन्दनकी दया थी ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे राजाओंके शिरपर चरण धरनेवाला जरासन्ध जिसमें दशसहस्र हाथीका बलथा, ऐसे बडे भारी बलवान्को भीमसेनने यज्ञके लिये मारा, और भैरवजीके यज्ञके कारण उसने जिन राजाओंको रोक रक्खा था उनको छुटाया, और वह सब नरेश आपके यज्ञमें भेंट लाये ॥ ९ ॥ आंखोंसे आंसू बहाती श्रीकृष्णजीके चरणमें पडी, तुम्हारी द्रौपदीका राजसूययज्ञमें रचित गुंथाहुआ अभिषेक होनेसे श्लाघनीय श्रेष्ठ रमणीका जूडा जिन कपटी दुर्योधनादिकोंने सभामें छूकर बखेरा यह देख भीमसेनने प्रतिज्ञा करी, कि इसे जूडेके खोलनेवालोंको मारकर उनकी स्त्रियोंका जूडा खुलवाया क्योंकि वैधव्यकालमें

माथेका जूडा खोलाजाताहै और फिर नहीं बंधताहै इसी प्रकार भगवान्ने विचारा कि मेरे भक्तोंकी स्त्रियोंका जूडा तो थोडेही दिनों खुला रहैगा परंतु तुम्हारी विधवाओंका जूडा जबतक जियेंगी तबतक खुला रहैगा. यह सब उन्हीं पूर्ण प्रतापीका प्रतापथा॥ १०॥ *हे नरेन्द्र! जिन श्रीकृष्णजीने वनमें आये दशसहस्र शिष्योंको संग लिये दुर्योधनके भेजे अत्यन्त दुरन्त कष्टसे दुर्वासा ऋषिसे हमारी रक्षा करी और शाकपात्रको पाय त्रिलोकीकी तृप्ति करी, कि जलमें स्नान करते सब चेले भागगये ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे पार्वती सहित महादेव शूलपाणिको

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरंतकृच्छ्रद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः ॥ शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त
सलिले विनिमग्नसंघः ॥ ११ ॥ यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ॥
अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेंद्रभवने महदासनार्धम् ॥ १२ ॥

---

* भारतमें यह इतिहास इस भाँति लिखाहै–किसीसमय दुर्योधनने दुर्वासा ऋषिको भोजन करवायाथा. दुर्योधनसे प्रसन्नहो दुर्वासा ऋषि बोले,कि कुछ मांगे; तब दुर्योधनने मनमें विचार किया कि दुर्वासाके शापसे पाण्डवकुल नष्ट होजायतो अच्छाहै, तब दुर्योधनने कहा कि युधिष्ठिर हमारे कुलमें मुख्यहैं, जब द्रौपदी प्रसादले उस समय तुम दससहस्र शिष्योंको साथले उसके घरको भोजनको जाना,यह वचन सुन पाय दुर्वासाने वैसाही किया,युधिष्ठिर दुर्वासाको देख अत्यन्त आदर सन्मानसे मध्याह्नकृत्य कर दण्डवत् प्रणाम किया, दुर्वासाने कहा मुनिसमूह जलमें स्नान करनेको गयेहैं भोजन करैंगे, युधिष्ठिरने कहा बहुत अच्छ यह बात सुन द्रौपदीने चिन्तासे आतुर होकर श्रीकृष्ण विश्वंभरका स्मरण किया कि हे दीनानाथ ! आज धर्मराजकी और मेरी लाज आपके हाथहै,हे यदुपति ! जो मेराअपति हुई तो आपहीकी अपतिहै, कृष्णचन्द्र बनवारी भक्तहितकारी तत्क्षण आन उपस्थित हुए और द्रौपदीसे बूझा क्यों?द्रोपदी बोली कि, हे दीनबन्धु ! हे भक्तवत्सल!हेभगवन्!आज दुर्वासाऋषि शिष्योंसहित हमारेघर आयेहैं, और यहां भोजनकी कुछ सामग्री उपस्थित नहीं क्याकियाजाय?इसकारण आपका स्मरण कियाहै यह बात सुन श्रीविश्वनाथ बोलें, कि हमभी भूखेहैं,पहिले हमको भोजन करादो पीछे दुर्वासाको देखा जायगा,तब द्रौपदी अत्यन्त लज्जित हुई और हाथ जोडकर बोली–कि हे स्वामी ! मेरे भोजन पर्यन्त अक्षय अन्न बटलोईसे निकलताहै,जब मैं इसमेंका भोजनकरलूहूँ।फिर इसमें भोजन नहीं रहता सो हे नाथ!अब मैं भोजन करचुकी इससे अब कुछ भोजन नहीं रहा.फिर भगवान् बोले कि उस बटलोईको यहांतो लाओ यह सुन वह बटलोई लाई उसके किनारेमें कोई शाकान्न लगा रहगयाथा सो पायकर भगवान् बोले कि इस शाकान्नसे विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न होंय यह कह युधिष्ठिरसे कहा कि, अब मुनि समूहको भोजनके लिये बुलाओ सो यह स्नान करके सब भागगये क्योंकि भगवान्ने तो उनके पेट पहलेहीं भरदियेथे, दुर्वासा ऋषिने कहा कि हमने वृथा पाक बनवाया यह भय मान सब चेलोंसमेत दुर्वासा ऋषि वहाँसे भागगये अरु यह वरदान दिया कि वासुदेव भगवान् सदा तुम्हारी जय करै ।।

भुलादिया उन्होंने मुझको अपना पाशुपत अस्त्र दिया फिर औरोंनेभी अनेक अस्त्र दिये. इसी शरीरसे इन्द्रलोकमें आधा आसन इन्द्रका हमको मिला॥ १२ ॥ तहां स्वर्गमें हम विहार करतेथे तब इन्द्र सहित देवताओंने निवातकवच वैरियोंके मारनेके लिये मेरा गाण्डीव धनुष मेरे भुजदण्डका आश्रय कियाथा. हे युधिष्ठिर ! ऐसा मेरा प्रभाव बढ़ाया ऐसे श्रीद्वारकानाथने अपनी माया दिखाकर मुझको ठग लिया ॥ १३ ॥ जिन श्रीकृष्णरूप बन्धुके आश्रित हो अपार भीष्मादि महारथीरूप ग्राहोंसे दुस्तर कुरुसेनारूप सागरको अकेला रथसे पार हो गया और मोहास्त्रसे मोहितकर उत्तर गोग्रहमें शत्रुओंके शिरोंसे तेजवन्त मणिमय मुकुट कुण्डल पाग बहुत धन लाया. हाय! सो श्रीकृष्ण हमारे

तत्रैव मे विहरतो भुजदंडयुग्मं गांडीवलक्षणमरातिवधाय देवाः॥सेन्द्राःश्रिताय दनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः
पुरुषेण भूम्ना॥ १३ ॥ यद्बांधवः कुरुबलाब्धिमनंतपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्यसत्त्वम् ॥ प्रत्याहृतं बहुधनं च मया
परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः॥१४॥ यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमंडलमंडितासु ॥
9/ अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥१५॥ यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्ण
द्रौणित्रिगर्तशलसैंधवबाह्लिकाद्यैः ॥ अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥ १६ ॥

प्यारे अन्तर्धान होगये ❀ ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर! बड़े राजेन्द्रोंके रथोंसे शोभित भीष्मपितामह, गुरु, कर्ण, शल्य, इनकी सेनामें सारथी होकर मेरे आगे चलैं और उन रथी यूथपालोंकी आयु, मन, बल, सब शस्त्रादिकुशलता दृष्टिसे क्षीण करते चले जातेथे ॥ १५ ॥ उन्होंने मुझे अपनी भुजाओंमें रखलिया. फिर गुरु, भीष्म, कर्ण, द्रोण, त्रिगर्त, शल्य, सैंधव, बाल्हीक, इनके अमोघ महिमावाले तीव्र अस्त्र मेरे शरीरको स्पर्श न करसके जैसे भगवतके दासको नीच लोग नहीं छू सकते ॥१६॥

शंका—कुरुक्षेत्रमें जो क्षत्रिय आयेथे वह सब मरगये, कौरवोंमें तीन बचे और पाण्डवोंमें सात बचे, फिर अर्जुनने युधिष्ठिरसे क्यों कहा कि जिन भगवान्‌की कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मारकर मैं अकेला पार गया !

उत्तर—युधिष्ठिरसे अर्जुनने निस्सन्देह यहकहा कि जिन भगवान्‌की कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मार कर पार होगया, परन्तु यह बात कुरुक्षेत्रकी नहीं है, जब कौरवोंने विराट्‌की गायोंको हरनाचाहा, यह वहांकी बात है, भीष्मकी आज्ञा पाकर जब कौरवोंने विराट्‌की गायोंको बलात्कार लेनेकी इच्छा की तब अर्जुनने सब कौरवोंको मूर्छित करके और जो सेनाके बडे बडे नामी योद्धा और बलवान्‌थे उनके मुकुट उतार उतार कर बहुत शीघ्रताके साथ विराट् नगरको चलागया, और सभामें जाकर उन मुकुटोंको राजा विराट्‌की भेंटमें रख दिया, उस समयकी बात राजा युधिष्ठिरसे अर्जुनने कही थी ॥

जिनके चरणकमलका श्रेष्ठ जन मोक्षके लिये दिन रात भजन करतेहैं जब मेरे घोड़े थकजानेसे मैं रथसे नीचे उतरकर खड़ा होगया तब मुझको श्रीकृष्णके प्रभावसे परास्त, रथी, वैरी न मारसकें, ऐसे त्रिलोकीके नाथको मैंने अपना सारथी बनाया. हाय! मुझसे बड़ी भारी भूलहुई ॥१७॥ हे नरदेव! श्रीकृष्ण जब उदार रुचिर शोभित मधुरमुसकानयुक्त मृदुल मनमोहनी वाणीसे, हे अर्जुन! हे पार्थ ! हे धनंजय! हे सखे! हे कुरुनन्दन! कहतेथे वह बातें जब मुझको स्मरण होतीहैं तो हृदयमें शूलसा खटक जाताहै ॥ १८ ॥ शय्या, आसन, अटन चाहै जैसे मैं बोलता भोजन इत्यादिमें हे बन्धो! हे सखे! सत्यहै. जो तुम कहोहो सब सत्यहै, ऐसे बोलते जैसे सखाका अपराध सखा सहै, पिता पुत्रके अवगुण सहै, श्रीकृष्णजी अपने बड़प्पनसे मुझसे कुमतिके अपराध सहतेथे॥१९॥हे राजन्! अंग, सखा, प्रीतम, हृदयवल्लभ, पुरुषोत्तमके विना मैं ऐसा शून्य होगयाहूं कि श्रीकृष्णके परिवारकी रक्षा करते हुए मुझे मार्गमें भीलोंने लूट लिया॥२०॥ देखो भाई! जो पृथ्वीके राजा मेरे नामसे थरथर कांपतेथे मैं वही धनंजयहूं, और वही रथहै, वही घोड़ेहैं, वही धनुषहै, वही बाण हैं वही मेरी भुजाहैं, जिन भुजाओंके बलसे मैंने महेश, सुरेश, गन्धर्व और मयनाम राक्षसको परास्त करदिया, और भीष्म पितामह, कर्ण, जयद्रथ आदि बड़े बड़े बलशाली योद्धाओंका विध्वंस किया और यज्ञके घोड़ेके संग गया अरु बड़े बड़े नामी नरेशोंका मान भंग करके उनको अपने संग लिया और सब पृथ्वीपर यज्ञके घोड़ेको

सौत्ये वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजंति भव्याः ॥ मां श्रांतवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥ १७ ॥ नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनंदनेति ॥ संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठंति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ॥ सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥ १९ ॥ सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥ अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमंग रक्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥ तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमंति ॥ सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१ ॥

फिराकर हस्तिनापुरमें लाया,अश्वत्थामाका मस्तक चीरकर मणि निकाली, परन्तु विना द्वारकानाथके यह सब निष्फल होगये. जैसे भस्ममें किया हुवा हवन, कपटीसे मिला धन, ऊषरमें बोया अन्न निष्फल होताहै॥२१॥हे नरेन्द्र ! सुहृदपुरके सुहृद जो आपने बूझे वह सब दुर्वासा ऋषिके शापसे परस्पर कटकटकर मरगये ॥२२॥ "आदिपुरुष अविनाशी त्रिलोकीनाथनें चित्तमें विचारा कि, यह यदुवंशी हमारे वंशमें बड़े नामी और बलवान्हैं,न जानिये मेरे पीछे संसारमें क्या क्या उपद्रव मचावैं और लोगोंको कैसे कैसे दुःखदें, इसलिये अपने आगे ही इन लोगोंका कुछ उपाय करना चाहिये, परन्तु अपने हाथसे उनका मारनाभी उचित नहीं समझा, इसलिये दुर्वासा ऋषिसे उनको शाप दिलवा दिया" तब वह वारुणी मदिरा पीपीकर ऐसे उन्मत्त हुए कि तन मनकी सुधि बुधि कुछ न रही:अजानकीभांति सब परस्पर कटमरे,चार पांच शेष रहगये

राजंस्त्वयाऽनुपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ॥ विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥ २२ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा
मदोन्मथितचेतसाम् ॥ अजानतामिवान्योन्यं चतुष्पंचावशेषिताः ॥ २३ ॥प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ॥
मिथो निघ्नंति भूतानि भावयंति च यन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसां जले यद्वन्महांतोऽदंत्यणीयसः ॥ दुर्बलान्बलिनो
राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥ २५ ॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः ॥ यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहार
ह ॥ २६ ॥ देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ॥ हरंति स्मरतश्चित्तं गोविंदाभिहितानि मे ॥ २७ ॥

हैं ॥२३॥ हे भ्रातः! प्रायः यह ईश्वरकी चेष्टा है कभी परस्पर विध्वंस करतेहैं. कभी पालन करातेहैं,जैसे समुद्रके वासी बड़े जीव छोटे जीवोंको खा जातेहैं ऐसे बली राजा निर्बलको परस्पर जीतलेतेहैं॥२४॥२५॥ऐसे बली महान् यादवोंसे छोटे छोटे यादवोंका विध्वंस करवाकर भूमिका भार उतारा ॥ २६ ॥ देश, काल, अर्थ, योग्य, हृदयतापके नाशक श्रीकृष्णके वचन जब मैं स्मरण करताहूँ तो मेरा चित्त व्याकुल हो जाताहै उसी समय मेरे प्राण देहसे निकल जाते परन्तु इसकारण यह पापी प्राण देहमें पाप भोगनेको रह गये, जब यदुनाथ परमधामको सिधारे थे तो दारुक सारथीसें मुझे यह बात कहलाभेजी थी, कि स्त्री और बालकोंको द्वारकासे हस्तिनापुरको अपने साथ लेजाना,और मेरे वियोगका कुछ सोच मतकरना जो कुछ ज्ञानगीतामें हमने तुमसे कहा है उसीके अनुसार इस शरीरको झूठा समझना और चैतन्य आत्माको सत्य जानकर अपने

मनको धैर्य देना,हेभ्रातः!वहीज्ञान समझकर मैंने संतोष कियाहै॥२७॥ऐसे सोचते२अर्जुनने श्रीकृष्णके चरणकमलको हृदयमें धारणकर अपने चित्त को धैर्य दिया॥२८॥ और भगवान् वासुदेवके चरणोंमें प्रीति बढाई जिस भक्तिके प्रभावसे सब कामादिक अरु मल नष्ट होगये ॥ २९ ॥ जिस गीताका ज्ञान संग्रामके आदिमें भगवान्ने मुझको सुनाया था, वह ज्ञान काल, कर्म अंधकारसे मैं भूल गयाथा, अब फिर श्रीकृष्णकी कृपासे प्राप्त हुवा ॥ ३० ॥ ब्रह्मज्ञानसे जब अविद्या लीन होगई तो फिर निर्गुण हो,स्थूलशरीरहीन सुन्दर भोग योग्य होकर, द्वैतभ्रम सब नष्ट होगया तब विशोक होताहै ॥ ३१ ॥ भगवन्मार्गकी बात सुनकर यदुकुलका विध्वंस सुनकर युधिष्ठिरने निश्चल चित्त करकै स्वर्गके जानेका विचार किया

एवं चिंतयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ॥ सौहार्देनातिगाढेन शांताऽऽसीद्विमला मतिः ॥२८॥ वासुदेवांघ्र्यभिध्यानपरिबृंहितरंहसा ॥ भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥ २९ ॥ गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि ॥ कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥३०॥ विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संच्छिन्नद्वैतसंशयः ॥ लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिंगत्वादसंभवः ॥ ३१ ॥ निशम्य भगवान्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ॥ स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥ पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ॥ एकांतभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३ ॥ ययाऽहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ॥ कंटकं कंटकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥ ३४ ॥

"भीमसेन सहदेवादि अपने भाइयोंसे कहा, अब हम जीकर क्या करैंगे और यह राज्य हमारे किस कामका है,जब हमारी बातका बूझनेवाला और पतिका रखनेवाला जबजब हमपर भीड़ पड़ती थी उसी समय आयकै सहाय किया करतेथे हाय! अब कौन हमारी रक्षा करैगा?" ॥ ३२ ॥अर्जुनके मुखसे द्वारकानाथके परमधामके जानेका समाचार कुन्तीने सुनकर एकान्तभक्ति कर भगवान् वासुदेवमें मन लगाय हाय करकै अपना शरीर त्यागकर जीवन्मुक्तहुई,"और द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदिने रोरोकर इतना विलाप किया कि जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता"॥३३॥ "युधिष्ठिर बोले, क्यों वृथाविलाप करो हो" जन्मरहित भगवान्ने जिस शरीरसे भूमिका भार दूर किया उस शरीरको भी त्याग

दिया. जैसे कांटको कांटेसे निकाले हैं ऐसेही समझो. क्योंकि परमेश्वरको तो दोनों शरीरसमान हैं ॥३४॥ जैसे मत्स्यादिकरूपको अजन्मा ईश्वर धारण करैहै त्यागनकरैहैं जैसे नट अनेक रूप धरता है फिर त्यागन करता है, जिस देहसे जैसे भूभारका नाशकिया, ऐसेही वह तनु भी त्याग दिया ॥३५॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र इस संसारको त्यागकर परमधामको गये उसी दिनसे अज्ञानियोंके चित्तमें अधर्मका हेतु कलियुग आनकर वर्तने लगा ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् राजायुधिष्ठिरने अपने घर राज्यनगरमें कलियुगका आगमन जान लोभ, झूठ, कपट, हिंसा, अधर्मका चक्र आता देख वन गमनकी इच्छा करी ॥३७॥ राजायुधिष्ठिरने अपने पोतेको गुणमें अपने समान विनयी गुणग्राही जान, समुद्रपर्यन्तकी भूमिका राज्यतिलक

यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः॥भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥३५॥यदा मुकुंदो भगवानिमां
महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ॥ तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरस्तत्परि
सर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि॥ विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥ ३७ ॥
स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ॥ तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिंचद्गजाह्वये ॥ ३८ ॥ मथुरायां
तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥ ३९ ॥ विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलया
दिकम् ॥ निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबंधनः ॥४०॥ वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ॥ मृत्या
वपानं सोत्सर्गं तं पंचत्वे ह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वे हुत्वाऽथ पंचत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ॥ सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्म
ण्यात्मानमव्यये ॥ ४२ ॥चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ ४३ ॥

हस्तिनापुरमें कर दिया ॥ ३८ ॥ और शूरसेन देशके पति वज्रनाभको मथुराका राज्याभिषेक कर प्रजापतिपनेकी अग्निको परमेश्वरने पीलिया ॥ ३९ ॥ तहां सब वस्त्र कंकण आदिकोंको त्याग, ममताछोड़, अहंकार तज, सब उपाधिको अलग किया॥४०॥ वाणीको मनमें लगाय, मनको प्राणमें लीनकर, प्राणको अपानमें और अपानको मृत्युमें लीनकर उत्सर्ग वायुके सहित मृत्युको पंचत्वमें होम दिया ॥४१॥ पंचभूतोंको त्रिगुणमें, त्रिगुणको अविद्यामें, अविद्याको जीवमें, जीवको अव्ययब्रह्ममें लीन करदिया ॥४२॥ चीर वस्त्र पहन, भोजन त्याग, मौन बन, शिरके बाल खोल,

अपनारूप पांचों भाइयोंने जड़ उन्मत्त पिशाचकी सदृश बनालिया ॥४३॥ सबकी ओरसे दृष्टि फेरली, कान बन्द करलिये.हिरेसे बन उत्तर दिशाको चल दिये,उस दिशाको बडे२ महात्मा पुरुष पहिलेभी गये हैं॥४४॥हृदयमें परब्रह्मका ध्यान करैं जहांके गये फिर नहीं आते हैं, ब्रह्मका वेत्ता ब्रह्मही होताहै, पीछे ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ४५ ॥ सब भैया निश्चयकर युधिष्ठिरके पीछे चलदिये, अधर्मके मित्र कलियुगने सब प्रजा भूमिमें स्पर्श कर लिया,यह देखा ॥४६॥ सब कृत्योंको साधकर, आत्माकी अत्यन्त क्षेमजान वैकुण्ठनाथ भगवान्के चरणारविन्दोंका मनसे ध्यान करने लगे॥४७॥ उनकेध्यान और बढ़ीहुई भक्तिसे सब इन्द्रियें विशुद्धकर परात्पर नारायणमें एकान्त मतिकर परमगतिको प्राप्त हुए. विषयी

अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ॥ उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ॥४४॥ हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नाऽवर्तेत यतो गतः ॥ सर्वे तमनु निर्ज्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥४५॥कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽत्यंतिकमात्मनः ॥४६॥मनसा धारयामासुर्वैकुंठचरणाम्बुजम् ॥ तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ॥४७॥तस्मिन्नारायणपदे एकांतमतयो गतिम् ॥ अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ॥ विधूतकल्मषा स्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥ ४८ ॥ विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ॥ कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥ ४९ ॥ द्रौपदी च तदाज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ॥ वासुदेवे भगवति ह्येकांतमतिराप तम् ॥५०॥ यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ॥ शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम्॥५१॥इति श्रीमद्भा० महा० प्रथ० पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

असत् पुरुषोंको वह नहीं प्राप्त होती, सब कल्मष धोयकर निर्मलशरीर हो वैकुंठस्थानको गये ॥ ४८ ॥ आत्मज्ञानी विदुरजीभी प्रभास क्षेत्रमें देहत्याग कर श्रीकृष्णमें चित्त लगाय युधिष्ठिरादिसहित अपने अधिकारस्थानको गये ॥ ४९ ॥ अपनी ओर न देखें ऐसे पतियोंको जान द्रौपदी भगवान् वासुदेवमें एकान्तमन लगाय परमपदको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ भगवत्के प्यारे पाण्डुके पुत्रोंका यह स्वर्गारोहण श्रद्धासे जो सुनै हैं वह पवित्र होते हैं,सदा मंगल होते हैं, श्रीनारायणमें भक्ति होकर सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृत प्रथमस्कन्धे पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–पाय परीक्षित राज जिमि, देखे सब निज देश ॥ सो सब वरणों हितसहित, जोकुछ लखेउ नरेश ॥१५॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि! महाभागवत परीक्षित जब ब्राह्मणोंकी शिक्षासे पृथ्वीकी रक्षा करनेलगे, जन्मके समय सब विद्वान् आनकर जैसे जैसे गुण कह गये थे, वैसेही सब महागुण उनमें सम्पन्न थे ॥१॥ राजा परीक्षितने राजा उत्तरकी पुत्री इरावतीके साथ विवाह किया उससे जन्मेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥२॥ ब्राह्मणोंको अनेक अनेक प्रकारकी दान दक्षिणा देकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये, गंगातीरपर कृपाचार्यको गुरु कर जिस यज्ञमें देवता सन्मुख आन २ कर अपना अपना भाग लेगये ॥ ३ ॥ किसी समय राजाओंकेसा वेष धारण किये शूद्र गौको और बैलको

सूत उवाच ॥ ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ॥यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १ ॥ स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ॥ जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयन् सुतान् ॥ २ ॥ आजहाराश्वमेधांस्त्रीन्गंगायां भूरिदक्षिणान् ॥ शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ॥ ३ ॥ निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ॥ नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नंतं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥ शौनक उवाच ॥ कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ॥ नृदेवचिह्नधृक्छूद्रः कोऽसौ गा यः पदाऽहनत् ॥५॥ तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥ अथ वाऽस्य पदाम्भोजमकरंदलिहां सताम्॥६॥किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः क्षुद्रायुषां नृणामंग मर्त्यानामृत मिच्छताम् ॥ ७ ॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहान्तकः ॥ ८ ॥ एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ॥ अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥ ९ ॥

पाँवसे मारता कलियुगको दिग्विजयमें अपने पराक्रमसे राजाने पकड़ा ॥४॥ शौनक ऋषि बोले, कि राजा परीक्षितने दिग्विजयमें किसलिये कलियुगको पकड़ा! राजाओंके चिह्न धारनेवाला वह शूद्र कौन था जो पांवसे गौको मारताथा? ॥५॥ हे महाभाग! जो कृष्णकथा आधीन बात होय सो, अथवा श्रीकृष्णके पद कमलके मकरन्दके स्वाद लेनेवाले संतोंकी कथा होय सो कहो ॥६॥ खोटी कथाओंसे क्या प्रयोजन है जो वृथा आयुको क्षय करै! जो लोग वृथा अपनी आयुको खोतेहैं, वही नरकमें वास करतेहैं ॥७॥ हे मुने! थोड़ी आयु मरणवाले मोक्षकी इच्छावाले मनुष्योंको मृत्यु है, उसको सब कर्म बन्धनका शमन करनेवालेने यज्ञमें बुलाया जबतक यह मृत्यु यहां रहैगी तबतक कोई नहीं मरैगा, इसलिये भगवान्

मृत्युको परम ऋषियोंने बुलाया और कहा तुमभी यहां बैठकर कथा सुनाकरो ॥ ८ ॥ ९ ॥ अहो मनुष्यो ! नरलोकमें हरिलीलाकथा अमृत पियो. कलियुगमें हरिचरित्र श्रवण करनेसे वैकुण्ठवास मिलता है, मंद मंद बुद्धिवाले थोड़ी आयुवाले जीव रात तो सोनेमें गमावेहैं और दिन व्यर्थ कर्मोंमें खोवेहैं॥ १० ॥ सूतजी बोले, कि जब परीक्षित कुरुजांगल देशमें बसतेथे तब अपने चक्रसे रक्षित राज्यमें कलियुग आता जानकर बहुत अमंगलीक बातें सुन परीक्षितने धनुष बाण हाथमें लिया ॥ ११ ॥ सेनापतिको बुलाकर कहा, शीघ्र सेना सजाओ, सुन्दर शृंगार किये

"यस्मिन्पीते कृतं सर्वमिष्टापूर्तादिकं भवेत्" ॥ मंदस्य मंदप्रज्ञस्य वयो मंदायुषश्च वै ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ यदा परीक्षित्कुरुजांगले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ॥ निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौंडिराददे ॥ ११ ॥ स्वलंकृतं श्यामतुरंगयोजितं रथं मृगेंद्रध्वजमास्थितः पुरात् ॥ वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ १२ ॥ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् ॥ किंपुरुषादीनि सर्वाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १३ ॥ तत्रतत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ॥ प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १४ ॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ॥ स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १५ ॥

श्यामकर्ण घोड़े जिसमें जुतेहुए सिंहध्वज रथमें बैठ, रथ घोड़े हाथी सिपाहियोंकी चतुरंगिनी सेना संग लिये दिग्विजयको निकले* ॥ १२ ॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारतवर्ष उत्तरतक, किंपुरुष, हरिवर्ष, रम्यक, हरिण्यमय इत्यादि खंड़ोंको जीतकर बलि लिया ॥ १३ ॥ और उन खण्डोंमें अपने पूर्वके महात्मा पुरुषोंका और कृष्णका माहात्म्य जितानेवाला गायाहुवा यश सुना ॥ १४ ॥ अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे अपनी रक्षा,

---

* **शंका**–जब राजा परीक्षित दिग्विजयको गये तब पाण्डवोंका यश सब देश देशान्तरोंमें सुना, वह पाण्डवोंका यश और बडाई करनेवाले कौन थे ? क्योंकि जिनको पाण्डवोंने दण्ड दिया उन्होंने पाण्डवोंका यश क्यों गाया ?

उत्तर–जुआरी, चोर, व्यभिचारी, ठग, बटमार, लम्पट, और लबारी आदि लेकर जो अनेक दुष्ट हैं, जिनसे भयभीत और डरे हुए जो मुनिजन थे वह सब वारम्वार अनेक अनेक प्रकारसे पाण्डवोंका यश गान करकर के राजापरीक्षितको सुनातेथे, कि हे राजन्! तुम्हारे दादा परदादा ऐसे धर्मात्मा और बलवानथे कि जिनके राज्यमें हम सब आनन्दसे तप करतेथे, और अब तुम्हारे राज्यमें दुष्ट और अत्याचारी हमारी तपस्यामें भङ्ग डालते हैं, और दुःख देते हैं, ऐसे दुःख भरे मुनियोंके वचन सुनकर राजापरीक्षित्ने उसी समय दुष्टोंको मारकर मुनियोंको निर्भयरूप धन प्रदान किया.

यादवोंका और पाण्डवोंका स्नेह उनकी केशवमें भक्ति यह सुनी ॥ १५ ॥ उनपर अति सन्तुष्ट हो, प्रीतिसे प्रफुल्लित नयनकर महामना परीक्षितने महा धनवस्त्र हार दिये ॥ १६ ॥ अपने प्यारे पाण्डवोंका सारथीपन, पारषद बनना, सेवा करनी, सख्यभाव, दूतबनना, वीरासन बैठकर रक्षाकरनी, उनके पीछे चलना, प्रणाम करना, विष्णुकी जगत्कर्तृता सुन राजा परीक्षितने विष्णुके चरणारविन्दोंमें मन लगादिया ॥ १७ ॥ ऐसे राजाथे दिन रात उनकी ऐसी वृत्तिथी पूर्व पुरुषाओंकी भांति राज्य करतेथे. थोड़ी देर पीछे एक ऐसा आश्चर्य हुवा सो सुनो ॥ १८ ॥ वृषरूपधारी धर्म एक पदसे चलताहै और उसके तीन पद टूट रहेहैं, आंखोंसे आंसू चलेजातेहैं, कान्तिहीन बछड़े जिसके नष्ट होगये हैं सबकी माता पृथ्वी गोरूप धारण

तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृंभितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ॥ १६ ॥ सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ॥ स्निग्धेषु पांडुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविंदे ॥ १७ ॥ तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ॥ नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत्तन्निबोध मे ॥ १८ ॥ धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् । पृच्छतिस्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ १९ ॥ कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि म्लायतेषन्मुखेन ॥ आलक्षये भवतीमंतराधिं दूरे बंधुं शोचसि कंचनाम्ब ॥ २० ॥ पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणाम् ॥ अथो सुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥ २१ ॥

किये उसके समीप खड़ीहै दोनों परस्पर कुछ वार्तालाप कर रहेहैं. धर्मने पूछा ॥ १९ ॥ हे भद्रे! हे अम्बे! तुम अच्छी तो हो? मुख मलीन सा होरहाहै, तनु छीन दिखाई देताहै, आपके हृदयमें कुछ पीड़ा तो नहीं है? अथवा तुम्हारे बन्धु कहीं दूर तो नहीं चलेगये जिस कारण तुम्हारी यह दशा है ? ॥ २० ॥ क्या तुमको मेरे पैर टूटे देखकर सोच हो गया जो तुम रोतीहो ? कदाचित् तुमको मेरे तीन पांव टूट जानेका दुःख है ? तुममें शूद्र राज्य करैहैं यह कष्ट है ? अथवा यज्ञमें जिनको भाग नहीं मिलता उन देवताओंका शोक है ? वा प्रजाका दुःख है?

क्या मेघ जो नहीं बरसता यह संशय है?॥२१॥हे पृथ्वी! पमाता पिताकी पुत्र रक्षा नहीं करतेहैं क्या यह संताप है वा तुम्हैं पुरुष खानेवाले निर्दयी महाक्लेशित सब हैं यह विषाद है? कुकर्मियोंमें सरस्वती जाय बसीं. अथवा जो ब्राह्मणोंको न मा नें उनके घर लक्ष्मी देवी गई? राजा लोग ब्राह्मणोंको न मानने लगे. कुलीन ब्राह्मण सेवकाई करने लगे क्या यह सन्देह है ? ॥ २२ ॥ अथवा कलियुगग्रसित क्षत्रिय होगये ? उनके राज्य सब कलियुगी होगये ? सब जीव इधर उधर भोजनके लिये, जल पीनेके अर्थ, स्नान के कारण, मैथुन करनेको ऊपरको मुख उठाये फिरैहैं ॥ २३ ॥ हे अम्ब! हे धरणि! अथवा तुम्हारे ऊपर जो बड़ा भारी भार है इसके उतारनेवाले ईश्वरअवतारधारी अन्तर्धान होगये यह शोक

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालाञ्छोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान्॥ वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥२२॥ किंक्षत्रबंधून्कलिनोपसृष्टान्राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ॥ इतस्ततो वाऽशनपानवासःस्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥२३॥ यद्वाम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि॥ अंतर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥२४॥ इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुंधरे येन विकर्शितासि ॥ कालेन वा ते वलिना बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमद्य सौभगम् ॥२५॥ धरण्युवाच ॥ भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि॥ चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥२६॥ सत्यं शौचं दया क्षांतिस्त्यागः संतोष आर्जवम् ॥ शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥२७॥

तो नहीं है? वा मोक्षदायक उनके करे हुए कर्मोंको स्मरण करोहो?॥२४॥हे वसुन्धरे! जिसलिये तुम अति कृशित हो, सो अपने दुःखका कारण कहो? अथवा बलियोंके बली कालसहित देवताओंका पूजनीय सौभाग्य अब हरा गयाहै क्या यह अप्रसन्नता है?॥२५॥पृथ्वी बोली,हेधर्म! आप तो सब जानो हो तो भी मुझसे बूझेहो, अच्छा मैं ही कहती हूं,लोकके सुखदाता चारपादसे आप वर्तते हैं॥२६॥यथार्थ बोलना १शुद्ध रहना २पराया दुःख सहना ३ क्रोध आवै उस समय मनको रोकना ४धन मांगै उसको सदा धन देना ५ सदा मग्न रहन ६ किसीसे टेढ़ा न होना ७ मनको निश्चल रखना ८ बाह्य इन्द्रियोंका निश्चल करना ९ अपने धर्मका त्याग न करना १० शत्रुमित्रका दुर्भाव न रखना ११और अपराध सहना १२

लाभ प्राप्तिमें उदासीन रहना १३ सत्शास्त्रका विचार करते रहना॥१४॥२७॥ परमेश्वर है यह ज्ञान मानना १५ तृष्णाका त्याग करना १६
हमारा नियन्ता है यह मानना १७ संग्राममें उत्साह करना १८ प्रभाव रखना १९ चतुराई रखना २० जो काम करना हो उसका स्मरण रखना २१
पराधीन न रहना २२ सब क्रिया कर्ममें निपुण रहना २३ सदा शोभायमान रहना २४ कभी व्याकुल न होना २५ कठोर चित्त न रखना २६
॥ २८ ॥ बुद्धिको प्रकाशित रखना २७ विजयी रहना २८ सुन्दर स्वभाव रखना २९ सहनशक्ति रखना ३० पराक्रम रखना ३१ देहमें बल रखना
३२ सब भोग भोगना ३३ गम्भीर चित्त रहना ३४ चञ्चल न रहना ३५ सबमें श्रद्धा रखना ३६ जिसमें यश होय सो काम करना ३७ पूजा होय

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ॥ स्वातंत्र्यं कौशलं कांतिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥२८॥ प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं
सह ओजो बलं भगः ॥ गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥ २९ ॥ एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महा
गुणाः ॥ प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियंति स्म कर्हिचित् ॥ ३० ॥ तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ॥
शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥ ३१ ॥ आत्मानं चानुशोचामि भवंतं चामरोत्तमम् ॥ देवान्पि
तॄनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः ॥
सा श्रीः स्ववासमरविंदवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ ३३ ॥

सो कर्म करना ३८ अभिमान न करना ३९ ॥२९॥ हे भगवन्! यह उनतालीस गुण भगवान्में हैं और भी महागुण हैं, महत्त्वकी इच्छा वालोंको
यह करना योग्य है हरिमेंसे यह गुण कभी भी नहीं जाते॥३०॥ सब गुणपात्र श्रीनिवास सदा हितकारी अब इस पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये सोच
करूं हूं कि पापी कलियुगने सब लोग ग्रसलिये हैं यही सोच है॥३१॥ मेरे तो वत्स न रहे, केवल आप एक पदसे रहे हैं, देवश्रेष्ठको, देवताओंको,
पित्रोंको, ऋषियोंको, साधुवोंको, सब ब्राह्मण आदि वर्णोंको, सब आश्रमोंको मैं सोचतीहूँ॥३२॥ लक्ष्मीका कटाक्ष हमपर होय यह कामना कर बहुत
दिनतक भगवत्प्रपन्न ब्रह्मादिकने तप किया. सो लक्ष्मी अपने वासस्थान कमलको त्यागकर जिनके चरणारविन्दकी सुन्दरताको अपने हृदयमें

96

ध्यान करती है ॥३३॥भगवान्के कमल, वज्र,अंकुश, ध्वजा, इत्यादि चिह्न अंकित श्रीमच्चरणकमलमें अलंकृत थी; और भगवत्विभूतिको प्राप्त
होकर त्रिलोकीमें शोभायमान हुई,यह गर्व जब मुझको हुवा तो सब लोक समेत मुझे त्याग दिया यह सोच है ॥ ३४ ॥ मेरे ऊपर
अतिभारकारी असुरवंशी राजाओंकी सैकडों अक्षौहिणी आपने अपने अधीन होकर मारडालीं, स्थित होनेमें असमर्थ आप धर्मको अपने
पुरुषार्थसे स्थापनकर यादवोंमें शरीर धारण कर कार्य किया ॥ ३५ ॥ प्रेमका अवलोकन, मनोहर मुसकान, कोमल वचनोंसे सत्यभामादिकका
मान धीरता मथन करते हुए,उनके शोभायमान चरणस्पर्शसे मुझे रोमांच हो आताथा ऐसे मनमोहनका विरह कौन सहन कर सक्ता है?॥३६॥

तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृतांगी ॥ त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोका
न्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदंते ॥ ३४ ॥ यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतंत्रः ॥
त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदंगम् ॥ ३५ ॥ का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य
प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ॥ स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदंघ्रिविटंकितायाः ॥ ३६ ॥
तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ॥ परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३७॥ इति श्रीमद्भा० महा०
प्रथम० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥ दण्डहस्तं च वृषलं
ददृशे नृपलांछनम् ॥ १ ॥ वृषं मृणालधवलं मेहंतमिव बिभ्यतम् ॥ वेपमानं पदैकेन सीदंतं शूद्रताडितम् ॥ २ ॥

धरिणी और धर्ममें परस्पर यह वार्ता होरही थी, उसी समय पूर्ववाहिनी सरस्वतीयुक्त कुरुक्षेत्रमें परीक्षित नामक राजऋषि पहुँचे ॥ ३७ ॥ इति
श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां धरणीधर्मसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ दोहा--सप्तादश
अध्यायमें, धर्मनृपति सम्बाद ॥ जेहिप्रकार मेटो सकल, धरणीधर्मविषाद ॥ १ ॥ सूतजी बोले,कि हे शौनकऋषि!तहां राजा परीक्षितने देखा कि
दण्ड हाथमें लिये शूद्र राजाओंकेसा वेष किये,एक पुरुष गाय और बैलको माररहा है ॥१॥ कमलनालकी समान श्वेतवर्ण भयभीत एक पदसे

स्थित चलनेमें असमर्थ होनेके कारण कम्पायमान, गोबर करते हुए दुःखित शूद्रसे ताड़ित बैलको देखा ॥ २ ॥ धर्मको पूर्ण करनेवाली, दीन, शूद्रके चरणप्रहारसे तिरस्कृत, वत्सहीन, कृषित, भोजनमें इच्छाहीन, नेत्रोंसे आँसू बहाती, गोरूपधारिणी पृथ्वी देखी ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित् सुवर्णखचित रथमें बैठे, धनुषबाण चढ़ाये, मेघसमान गम्भीर वाणीसे बूझने लगे ॥४ ॥ अरे नीच! तू कौन है ? सब पृथ्वीका राजा तो मैं हूँ, और मेरे सन्मुखर अपने बलसे निर्बलोंको मारता है, प्रगटमें तैंने राजाका वेष धारण कर रक्खा है, परन्तु नटकी नाईं है, तेरा कर्म शूद्रोंकी समान है ॥५॥ तू कौन है? क्या गांड़ीवधनुषधारी अर्जुनको तैंने दू गया जाना है, और श्रीकृष्णचन्द्र महाराज त्रिलोकीनाथको तू भूलगया, अरु उनको वैकुंठ गया समझा ? क्या तैंने पृथ्वीको अभीसे वीरविहीन समझ लिया, जो गायको और बैलको एका त में

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ॥ विवत्सामश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥ पप्रच्छ रथमारूढः
कार्तस्वरपरिच्छदम् ॥ मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४ ॥ कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान्बली ॥
नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥ ५ ॥ कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गांडीवधन्वना ॥ शोच्योऽस्यशोच्यान्रहसि
प्रहरन्वधमर्हसि ॥ ६ ॥ त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ॥ वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥
न जातु कौरवेंद्राणां दोर्दंडपरिरम्भिते ॥ भूतलेऽनुपतंत्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥ मा सौरभेयाऽनुशुचो व्येतु
ते वृषलाद्भयम् ॥ मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥ यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यंते साध्वसाधुभिः ॥
तस्य मत्तस्य नश्यंति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १० ॥

सताता है ? इस कारण तू महा अपराधी है अरु वध करनेके योग्य है ॥ ६ ॥ तब राजाने बैलसे बूझा, हे कमलनाल सदृश धवलकाय ! तुम कौन हो? अरु तीन पांवरहित हो ? एकचरणसे चलना चाहते हो ? बैलरूप धारण किये कोई देवता तो तुम नहीं हो जो मुझे भ्रम करा तेहो?॥ ७ ॥ कौरवोंकी भुजदण्डोंसे रक्षित पृथ्वीपर तुम्हारे विना किसी प्राणीमात्रके दुःखसे आँसू नहीं निकलते हैं ॥ ८ ॥ हे सुरभिनंदन ! इस शूद्रसे अब तुमको कुछ भय नहीं होगा. हे गोमाता ! तुम्हाराभी कल्याण होगा. मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ ॥ ९ ॥ जिस राजाके देशमें साधु प्रजा दुष्टोंसे दुखित होती है, उस मदान्धराजाके चारगुण कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य, परलोक, नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥

राजाओंका यही परम धर्म है कि आताकी पीडा दूर करनी इसलिये मैं इस दुष्टको जीता नहीं छोडूंगा ॥११॥ हे सुरभिनन्दन ! तुम्हारे तीन चरणोंको किसने तोडा तुम तो चारचरणवाले हो "तुम शीघ्र बताओ! मैं अभी उसके हाथ काटूंगा, मैं श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक अर्जुनका पोताहूँ, जो तुम्हारा दुःख दूर नहीं करूंगा तो पांडवोंके कुलको दोष लगैगा, मनुष्यकी तो क्या सामर्थ्य है जो देवताभी मेरे राज्यमें आन किसी दीनको सतावेगा, निःसन्देह मैं उसी समय उसका शिर काट डालूंगा" श्रीकृष्णके सेवक राजाओंके राज्यमें तुम सरीखा कोई न होय ॥ १२ ॥ हे वृषभ ! तुम्हारा कल्याण हो. निरपराधी साधु सन्तोंको विरूप करना यह राजाओंकी कीर्तिको दूषण लगानेवाला है ॥ १३ ॥ निरपराधी

एष राज्ञां परोधर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ॥ अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥ ११ ॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्री
न्सौरभेय चतुष्पद ॥मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम्॥ १२ ॥ आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृताग
साम् ॥ आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥ १३ ॥ जनेऽनागस्यघं युंजन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ॥ अनाग
स्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरंकुशः ॥ आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि सांगदम् ॥ १४॥ राज्ञो हि परमो धर्मः
स्वधर्मस्थानुपालनम् ॥ शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥ १५ ॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वः पाण्डवेयानां युक्त
मार्ताभयं वचः ॥ येषां गुणगणैः कृष्णो दूत्यादौ भगवान्कृतः ॥ १६ ॥

पुरुषको अपराध लगानेवालेको सब ओरसे मेरा भय रहताहै; ब्राह्मण, बालक, गौ, इनको जो दोष निरंकुश होकर लगावै वह देवताभी होय तो उसकी बाजूसमेत भुजा काटडालूं ॥ १४ ॥ परम धर्म राजाओंका यही है कि स्वधर्ममें जो स्थित हो उसका पालन करना और विना विपत्तिके समय पाखण्डियोंको शास्त्रके अनुसार शिक्षा करना ॥ १५ ॥ धर्म बोला, कि पाण्डुवंशियोंको यही अभयदान वचन कहना युक्त हैंजिनके गुणोंसे वशीभूत भगवान्ने दूतादिक कर्म स्वीकार कियेथे ❋ ॥ १६ ॥

---

* शंका–बैलरूप धर्मसे राजा परीक्षित्ने पूछा कि हे धर्मरूप वृष! तुमको कानसा दुष्ट प्राणी दुःख देता है, उसको मुझे बताओ, मैं अभी तुम्हारे दुःख देनेवाले दुष्टको मार डालूंगा, तब धर्मने अपने दुःख देनेवाले शत्रुको नहीं बताया कि कलियुग मुझको बडा दुःख देता है यह बडे आश्चर्यकी बातहै कि क्यों नहीं बताया, और क्यों झूठबोला कि मैं अपनेदुःख देनेवालेको नहीं जानता. झूठ बोलना धर्मकाकाम नहीं.

उत्तर--धर्मने ऐसा विचारकर राजा परीक्षित्के सन्मुख अपने वैरीको नहीं बताया कि यह राजा परीक्षित् पांडवोंका पोताहै, और बडा बुद्धिवान् है अपने मनसेही सब संसारके चरित्रोंको जानलेगा और ऐसा भी लिखाहै कि अपना प्राण नष्ट होताहो, और दूसरेका प्राण अपने झूठ बोलनेसे बचजाय तो वह झूठ बोलनाभी सत्यकी समान है, धर्मने अपने मनमें विचारा कि जो मैं अपने शत्रुको बताऊंगा तो उसी समय राजा उसको मार डालेगा, मुझको पाप होगा, अपने मनसे मेरे शत्रुको जैसा चाहेगा वैसा करेगा इसलिये धर्म झूठ बोला ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ जहां क्लेशका बीज होताहै वहभी मैं नहीं जानता, जिनके वचनोंके मदसे जीव विमोहित होताहै ॥१७॥ कोई विकल्पवादी आत्मामें आत्माको मानते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहेहैं, कोई कर्मको, कोई स्वभावको प्रभु मानते हैं॥१८॥किसीने तर्क अनिर्देशनिश्चय कियाहै, जिस परमेश्वरकी इच्छासे सब जीव उत्पन्न होतेहैं वहीपरमात्माहै इसमें जो आपको जान पड़े सो अपनी बुद्धिसे विचारलो "मैं किसीका नाम नहीं बतासक्ता कि किसने मुझे सताया"॥१९॥हे द्विजसत्तम ! धर्मने जब ऐसे वचन कहे तब तो राजा परीक्षित् चित्त सावधान करके बड़ा दुःखी हुवा और मनमें विचारा कि "यहवृषरूप धारण किये धर्म है, और गोरूपी धरणी है, और यह शूद्र रूपधारी कलियुग है. इसी दुष्टने धर्मके पांव तोड़कर धरणीको दुःख दिया है, और इस वसुन्धराके स्वामी परमेश्वर परमधामको चलेगये इसीलिये यह आंखोंमें आंसू भरे चिन्ता कररही है, धर्मात्माका नाम लेनेसे

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ॥ पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥१७॥ केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः॥ दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥ १८ ॥ अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ॥ अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश्य स्वमनीषया ॥१९॥ एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड् द्विजसत्तम ॥ समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥ २० ॥ धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ॥ यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥ २१ ॥ अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा॥ चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥२२॥ तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ॥ अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसंगमदैस्तव ॥ २३ ॥ इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः॥ तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २४ ॥

धर्म और पापींका नाम लेनेसे पाप होता है इसी कारण वृषरूपी धर्मने कलियुगको पापी जानकर उसका नाम नहीं लिया", यह विचार परीक्षित बोला ॥२०॥ हे धर्मज्ञ! क्या तुम धर्म हो? वृषरूप धारण किये बोलते हो, जो कोई अधर्मकी बात करता है और जो उसकी सूचना करता है उन दोनोंको इकसार पाप होता है॥२१॥ अथवा देवताओंकी मायाको कोई नहीं जानसक्ता, मन वचनसे जो जीवोंको निश्चय होय वही श्रेष्ठ है॥२२॥ धर्मके चारचरण- तप, सत्य, शौच, दया हैं, और अधर्मके अंशसे विस्मय, परस्त्री प्रसंग, मद, यह तीन हैं. इनके प्रवृत्त होनेसे तीन चरण टूटकर एक चरण शेष रह गया है॥२३॥ अब हे धर्म! सत्य एकचरण तुम्हारा रह गया है, उसकोभी यह कलियुग तोड़ना चाहता है, क्योंकि झूठ बोलनेसे

यह कलियुग बढ़ता है ॥ २४॥भगवान्‌ने सब भार जिसका दूर किया ऐसी सती वसुन्धरा श्रीमान् पदोंके स्पर्शसे सब ओरसे मंगलरूप होरही थी
॥ २५ ॥ सो आज कृष्ण महाराजके विरहसे व्याकुलहो आंखोंसे आंसू बहारही है, साध्वी जैसे दुर्भागिनीहो शोक करै है ब्राह्मणनिन्दक राजा
रूपधारी शूद्र मेरे ऊपर राज्य करै यह कठिन दुःख है ॥ २६ ॥ महारथी राजाने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको शान्त कर, तीक्ष्णखड्ग अधर्मी
कलियुगको वधकेनिमित्त उठाया ॥ २७ ॥ जब कलियुगने देखा कि यह बलवान् राजा इस समय क्रोधमें भर रहा है और मुझको मारनेके
उपस्थित है, और मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं जो इससे युद्ध करूं,यह विचार कर नृपके सब चिह्नत्याग भयभीतहो.राजाके चरणोंमें गिर पड़ा

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥ २५ ॥ शोचत्यश्रुकला साध्वी
दुर्भगेवोज्झिताऽधुना ॥ अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यंति मामिति ॥ २६ ॥ इति धर्मं महीं चैव सांत्वयित्वा
महारथः ॥ निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २७ ॥ तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ॥ तत्पादमूलं
शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥ २८ ॥ पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ॥ शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं
हसन्निव ॥ २९ ॥ राजोवाच ॥ न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ॥ न वर्तितव्यं भवता कथं
चन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबंधुः ॥३०॥ त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ॥ लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो
ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥ ३१ ॥

और अपने प्राणबचानेके लिये राजाकी विनती करने लगा ॥ २८ ॥ राजा उस शूद्रको अपने पैरोंमें पड़ा देख दीनवत्सल कृपालु हँसकर बोले,
कि शरणागतको नामी नरेश नहीं मारते ॥ २९ ॥ राजा बोले कि अर्जुन सरीखे यशस्वियोंके हाथ जोड़, जो शरण आया है उसको
किसी प्रकारका भय नहीं है, परन्तु तू अधर्मका रूप है जहांतक हमारा राज्य है तुझे रहना उचित नहीं.शीघ्र यहांसे चलाजा ॥ ३० ॥ नरदेह
धारण कर जो तू रहैगा तो अधर्मका समूह बढ़ैगा. लोभ, अनृत, चौर्य, मूर्खता, अहंकार, पाप, माया, क्लेश, दम्भ यह अधिक बढ़ैंगे॥ ३१॥

हे अधर्मके मित्र, तू यहां मत रहु, और जो सत्य, धर्म, व्रत, करै तो रहु, यज्ञके विस्तारमें चतुर ज्ञानी लोग इस ब्रह्मावर्त विठूरमें यज्ञेश्वरकी यज्ञसे यजन करै हैं ॥३२॥ इस यज्ञमें भगवान् वासुदेवका पूजन होता है. यज्ञमूर्त्तीश्वर यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करतेहैं. अमोघ सब कामना पूर्ण होती हैं. जैसे स्थावर जंगमोंके बाहर भीतर वायु रहे है तैसे ईश्वर रहैहै॥३३॥सूतजी बोले, कि हे ऋषियो! जब राजा परीक्षितने यह वचन कहे तब तो कलियुग थरथर कांपनेलगा. खड्ग हाथमें लिये यमराजकी नाईं राजा परीक्षित्को देखकर बोला ॥३४॥ हे महाराज! तुम्हारी आज्ञासे जहां कहीं रहूंगा तो वहांभी आप धनुष बाण लिये मेरे पीछे फिरोगे, इस कारण मैं यहां नहीं रहूंगा ॥ ३५ ॥ हे धर्मध्वज! ब्रह्माने चार युग रचे सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, अपना अपना राज्य भोगचुके, अब मेरे राज्य करनेका समय आया, और ४३२००० चार लाख बत्तीस सहस्र वर्षकी मेरी अवस्था है;

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ॥ ब्रह्मावर्ते यत्र यजंति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३२ ॥
यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ॥ कामानमोघान्स्थिरजंगमानामंतर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा॥
॥ ३३ ॥सूत उवाच॥ परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ॥ तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३४ ॥ यत्र
क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ॥ लक्षये तत्रतत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥ ३५ ॥ तन्मे धर्मभृत्तां श्रेष्ठ स्थानं
निर्देष्टुमर्हसि ॥ यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ३६ ॥

सो मुझको भोगनी पडैगी और मुझे आप आज्ञा देतेहैं कि तू हमारे राज्यसे निकल जा सो सातद्वीप नौखण्डमें तो आपका राज्य है फिर मैं कहां जाकर बसूं? और जो विधाताका लेख है वह किसी प्रकार मिट नहीं सक्ता. फिर मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? हे दीनदयालु ! आप मेरे अवगुणोंका विचार तो करते हैं परन्तु मेरे गुणोंकी ओर ध्यान नहीं करते. सो मुझमें एक गुण अत्यन्त उत्तम है वह आपसे निवेदन करताहूं. सतयुगमें जिस राजाके राज्यमें एक मनुष्य अपराध करताथा और समस्त राज्यभरके मनुष्य दण्डपातेथे; त्रेतामें एक मनुष्यके पाप करनेसे सब ग्रामका ग्राम दण्डका भागी होताथा और द्वापरमें जोकोई कुकर्म करताथा तो उसके सब कुटुम्बको शासनादी जातीथी और कलियुगमें जो पुरुष अन्याय करताहै वही अपने शरीरसे भोगता है दूसरेसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, और युगोंमें मनुष्योंको मनसा पाप

लगताथा और उसका दण्ड भोगना पडताथा, सो मेरे राज्यमें मनसा पाप नहीं लगता, बरन् मनसा पुण्यका फल मिलताहै, जब इस बातपर राजा परीक्षित संतुष्ट न हुये और उनके मनमें दया नहीं आई तो फिर कलियुगने कहा हे दीनानाथ! मुझमें एक गुण और बडा लाभदायक है, सतयुगमें जो कोई वैकुण्ठके जानेलिये दशसहस्र वर्ष जप तप संयम करताथा तब उसकी मनोकामना सफल होती थी, त्रेतामें जब मनुष्य बहुतसा धन लगाकर सहस्रवर्षतक अश्वमेध यज्ञ करते थे तब उनका मनोरथ सिद्ध होता था, द्वापरमें सौवर्षतक, दान, व्रत, पूजा, ध्यान भगवान् वासुदेवका करनेसे इच्छा पूर्ण होतीथी और मेरे राज्यमें जो मनुष्य एक पल मात्रकोभी एकाग्रचित्त करके सच्चे मनसे परमेश्वरका भजन करै, वा सच्चे मनसे हृदयमें ध्यान करै, और उनकी कथा वार्ता सुनै वह अपने सर्वत्र कार्यको साध अनेक जन्मके पापोंसे छूट मोक्षका भागी होताहै जब कलियुगमें यह पूरा गुण सुना, तब तो राजा परीक्षित् कलियुगपर बहुत प्रसन्न हुये. तौ कलियुग हाथ जोडकर बोला, कि हे पृथ्वीनाथ! हे दयानिधि! हे दीनदयालु! जो आप मुझपर प्रसन्न हो तौ कृपा करके मुझको प्राणदान दीजै. और जिस स्थानपर आपकी आज्ञा मेरे रहनेकी हो मैं वहां निश्चिन्त होकर रहूँ, और सदा आपका आज्ञाकारी रहूँगा ॥ ३६ ॥ जब इस प्रकार कलियुगने प्रार्थना करी तब राजा कलियुगके लिये स्थान बताने लगे, जहां जुआ होता हो, जहां मदिरा बिकता हो, जहां वेश्या रहतीहों, और जहां जीवहिंसा होतीहै, यह चार स्थान तुमको दिये तुम इन चारों स्थानोंमें वास करो ॥ ३७ ॥ फिर विनती करके कलियुग बोला कृपासिन्धो! मेरा कुटुम्ब बहुत है इन स्थानोंमें कैसे समायगा. तब राजाने कहा, सोनेमेंभी तुम रहो इसी प्रकार झूठ, मद, काम, रजोगुण, वैर यह पांच स्थान तुमको और दिये ॥ ३८ ॥ राजा परीक्षितके दिये हुये उन्हीं पांच स्थानोंपर अधर्मी कलिने अपना वास किया ॥ ३९ ॥ जो पुरुष संसारमें अपनी वृद्धि चाहै तो इन पांचों बातोंके निकट न जाय, धर्मात्मा

सूत उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ॥ द्यूतं पानं स्त्रियस्सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥३७॥ पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ॥ ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पंचमम् ॥३८॥ अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ॥ औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥ ३९ ॥ अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ॥ विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥ ४० ॥

राजा,लोकपति, गुरु, विशेष करकै इनका सेवन नहीं करै॥४०॥धर्मरूपी वृषके तीन पद, तप,शौच, दया यह नष्ट होगये थे,इनको अपने धर्मसे अच्छा किया, और पृथ्वीकोभी धैर्य देकर शान्त किया ॥४१॥ सो यह राजा परीक्षित राजाओंके योग्य आसनपर बैठे जो राजसिंहासन राजा युधिष्ठिर और अर्ज़ुन वनको जातेसमय इनको देगयेथे ॥ ४२ ॥ अब वह राजऋषि कौरवोंकी शोभा बढानेवाले महाभागवत चक्रवर्ती, महायशस्वी, हस्तिनापुरमें हैं॥ ४३ ॥ राजा अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षितका ऐसा प्रताप है कि वह समस्त पृथ्वीका पालन करतेहैं, तबही तुम यज्ञ करतेहो ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां कलिनिग्रहोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ॥

वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति ॥ प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४१ ॥ स एष एतर्ह्यध्यास्ते आसनं पार्थिवोचितम् ॥ पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञाऽरण्यं विविक्षता ॥ ४२ ॥ आस्तेऽधुनास राजर्षिः कौरवेंद्रः श्रियोल्लसन् ॥ गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४३ ॥ इत्थम्भूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः । यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० प्रथमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ॥ अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥१॥ ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ॥ न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥ २ ॥ उत्सृज्य सर्वतः संगं विज्ञाताजितसंस्थितिः॥ वैयासकेर्जहौ शिष्यो गंगायां स्वं कलेवरम् ॥ ३ ॥ नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतांतत्कथामृतम् ॥ स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥

दोहा–अष्टादश अध्यायमें, कियो नृपति अतिपाप ॥ ताके बदलेमें दियो, शृंगीऋषिने शाप ॥ १ ॥ जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर माताके पेटमें नहीं मरे, यह अद्भुत कर्मवाले श्रीकृष्णजीकी ही कृपा थी ॥ १ ॥ ब्राह्मणने क्रोध करकै यह शाप दिया कि तुझको तक्षक सांप काटैगा, तौभी इस प्राण नाशक महाभयसे मोहित न हुए और भगवान् वासुदेवके चरणकमलमेंही लवलीन रहे ॥२॥ सबका संग त्याग वैराग ले भगवत् तत्त्व जान व्यासपुत्र श्रीशुकदेवमुनिके समीप श्रीगंगाजीके तटपर तनु त्याग किया ॥३॥ ऐसे श्रीमद्भागवतकी

वार्त्ता सेवन करनेवाले, उनकी कथा अमृत पान करनेवालोंको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलस्मरण करनेवालोंको अन्तकालमेंभी संभ्रम नहीं होताहै ॥ ४ ॥ कलियुग प्रविष्ट तो हुआ, परन्तु सब स्थानोंमें अभी तक प्रवेश नहीं हुआ. जबतक पृथ्वीनरेश परीक्षित राज्य करते रहे ॥ ५ ॥ जिस दिनसे जिस समयसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने पृथ्वीको त्यागा, उसी दिनसे यहां अधर्मवर्द्धक कलियुगने सब पृथ्वीपर प्रवेश किया ॥ ६ ॥ राजा परीक्षितने कलयुगसे शत्रुता नहीं की. भ्रमरवत् सारग्राही हुए, क्योंकि जिस कलियुगमें मानसी पुण्य तो संकल्प मात्र करनेसे सिद्ध होताहै, और संकल्प करनेसे पाप नहीं होता. अरु जो कदाचित् करो भी तो उसका फल तत्काल नहीं होता ॥ ७ ॥ जो प्राणी

तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ॥ यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ॥ तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥ ६ ॥ नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारंग इव सारभुक् ॥ कुशलान्याशु सिध्यंति नेतराणि कृतानि यत् ॥ ७ ॥ किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ॥ अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥ ८ ॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया ॥ वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९ ॥ यायाः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ॥ गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ॥ यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११ ॥ कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ॥ आपाययति गोविंदपादपद्मासवं मधु ॥ १२ ॥

धैर्यसे कार्य करनेवाले हैं उनका अधर्मी कलियुग क्या कर सक्ता है ? मदान्ध मनुष्योंमें कलियुग शीघ्र प्रवेश करै है जैसे बालकोंमें भेडिया आताहै और शूरमाओंके निकट नहीं आता ॥ ८ ॥ पुण्यरूप परीक्षितका आख्यान हमने आपके सामने वर्णन किया भगवान् वासुदेवकी कथा वार्ता जिसमें होय ऐसा आख्यान कोई और बूझो ॥ ९ ॥ कथनयोग्य श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म हैं उन भगवान् वासुदेवकी जो जो कथा गुण कर्म आश्रय हैं वह मनुष्य संसारमें सुखकी इच्छा करनेवालोंको सदा सेवने योग्यहैं ॥ १० ॥ सब ऋषि बोले कि हे सूत! हे सौम्य ! सहस्र वर्षकी तुम्हारी आयुहो, बहुत दिनोंतक संसारमें तुम्हारा यश रहै. जो तुम श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्र मनुष्योंको अमृतके तुल्य पान करातेहो ॥ ११ ॥ अविश्वासवाले इस

कर्मरूपी धुयेंसे धुंधुरी आत्मा हमारी होगई, सो आप मनुष्योंको अमृतरूपी श्रीकृष्णके चरणारविंदोंको मधुपान कराओ ॥ १२ ॥ भगवतके भक्तोंके संग करनेवालोंको एक लव मात्रके सत्संगकी समता स्वर्ग नहा कर सक्ता, न मुक्तिका आशीर्वाद उन्हें देसक्ते हैं॥१३॥महात्माओंके एकान्त ध्यान उनकी कथामें कौन रसवेत्ता तृप्त होताहै, कोई नहीं. निर्गुणी ईश्वरके गुणोंका अन्त योगेश्वर शिव ब्रह्मादिक नहीं जान सक्ते॥१३॥हे विद्वज्जंन! हरिके उदार विशुद्ध चरित्र सुननेवाले लोगोंसे भगवत्प्रधान आप विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १५ ॥ महाभागवत मोक्षके जाननेमें चतुर बुद्धिवान,

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्॥भगवत्संगिसंगस्यमर्त्यानां किमुताशिषः ॥१३॥ को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां
महत्तमैकांतपरायणस्य॥ नांतं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः॥ १४ ॥ तन्नो भवान्वै भगवत्प्रधानो
महत्तमैकांतपरायणस्य॥ हरेरुदाराचरितं विशुद्धं शुश्रुषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥ स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनां
पवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ॥ ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेंद्रध्वजपादमूलम् ॥ १६ ॥ तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्या
नमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ॥ आख्याह्यनंताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥१७॥ सूत उवाच॥ अहो वयं जन्म
भृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्याऽपि विलोमजाताः॥ दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥
कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ योऽनंतशक्तिर्भगवाननंतो महद्गुणत्वाद्यमनंतमाहुः ॥ १९ ॥

राजा परीक्षित, व्यासपुत्र शुकाचार्यके कहे हुए ज्ञानसे गरुडध्वजी श्रीहरिके चरणोंके समीपको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ अतिश्रेष्ठ,पुण्यदायक,जिसमें सुगम अर्थ अति अद्भुत, योगागम्य अनन्त चरित्र युक्त परीक्षितका जिसमें कथानक, भागवतोंको आनन्ददायक,बहुत बड़ा आख्यान हमसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो! बड़े आनन्दकी बात है कि विलोममें हमारा जन्म है तौ भी वृद्धोंकी सेवासे हमारा जन्म सफल हुवा,और महात्माओंका सत्संग कुलके जन्मकी जो मानसी पीड़ा है उसको शीघ्र नाश करताहै॥१८॥महात्माओंका एकान्तमें चिन्तवन योग्य

श्रीनारायणका नाम लेना सब पापोंसे छुड़ाताहै, अनन्तशक्ति भगवान् अनंत महागुणवान होनेसे अनंत कहातेहैं ॥ १९॥ बस इतनाही कहना पूर्ण है कि गुणोंमें जिनकी समान कोई नहीं, लक्ष्मीकी जिनको इच्छा नहीं, ऐसे परमात्माके चरणोंकी रेणुओंको लक्ष्मी दिन राति सेवन करती है. और ब्रह्मादिककी प्रार्थनाको भी त्याग देती है ॥ २० ॥ जिनके चरणनखका प्रक्षालन गंगाजी ब्रह्माजीसे धोयाहुआ जल सबको पवित्र करताहै ऐसे सर्वसामर्थ्यवान् भगवान्वासुदेवसे अधिक और भगवत् पदार्थ लोकमें कौनहै, अर्थात् कोई नहींहै ॥ २१ ॥ जहाँ अनुरागी धीर देहादिकोंमें सबका संग त्यागकर परमहंसोंका आश्रम जो सबके पीछेका है उसको जातेहैं. जिसमें कोई हिंसा नहींहै, उपशांति आदि अपना

एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ॥हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्यांघ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥ २०॥
अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिंचोपहृतार्हणांभः ॥ सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुंदात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥२१॥
यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु संगमूढम् ॥ व्रजंति यत्पारमहंस्यमंत्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥
॥ २२ ॥ अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ॥ नभः पतंत्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं
विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥ एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वने ॥ मृगाननुगतः श्रांतः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥
॥ २४ ॥ जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ ददर्श मुनिमासीनं शांतं मीलितलोचनम् ॥ २५ ॥ प्रतिरुद्धेंद्रिय
प्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ॥ स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥ २६ ॥

धर्म उसमें है॥२२॥ हे सूर्यसमान हे त्रयीमूर्ति! आपने जो हमसे बूझा है सो जितना मुझको ज्ञान है उतना हम आपसे कहैंगे, जैसे पक्षी अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उडैहैं, उसीभांति विष्णुनारायणकी लीलाकोअपनी बुद्धिके अनुसार विद्वान् लोग कहतेहैं॥२३॥एक दिन राजापरीक्षित धनुष बाण लेकर वनमें अखेट खेलनेको गये, मृगोंके पीछे दौड़नेसे भूख प्यासके मारे अत्यन्त व्याकुल हो ॥ २४॥ जलाशय ढूंढते ढूंढते एक आश्रममें प्रवेश किया वहां एक ऋषीश्वर शान्तस्वरूप नेत्रमूंदे बैठे देखे॥२५॥ प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियें, सब जीते, सबसे उपराम हुए, तीनों अवस्थासे

तुरीया अवस्थाको प्राप्त हुए, क्रियारहित, ब्रह्मभूत, ब्रह्मरूप हो रहेथे ॥ २६ ॥ जटा सब शरीरपर बिखर रहीं रुरुनामक मृगके चर्मके ऊपर बैठे, जिनको देहका कुछ अनुसंधान नहीं, उन शमीक मुनिसे भूख प्यासका मारा शुष्ककण्ठ राजा बोला ॥ २७ ॥ "मैं पियासा हूं" जब ऋषिने तृण, भूमि, अर्घ्य, मीठे वचनोंसे राजाका सत्कार नहीं किया, तब राजाने अपने मनमें समझा कि इसको अपने तपका घमण्ड है. उसलिये इसने मेरी अवज्ञा करी, यह समझ राजाके मनमें क्रोध उत्पन्न हुवा ॥२८॥ हे ब्रह्मन्! ऐसा कभी नहीं हुवा जो राजा भूख प्याससे व्याकुल हो ब्राह्मणों

विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ॥ विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥ २७॥ अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः ॥ अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥ २८ ॥ अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ॥ ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च ॥ २९ ॥ स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ॥ विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥३०॥ एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ॥ मृषासमाधिराहोस्वित् किं नः स्यात्क्षत्रबंधुभिः ॥ ३१ ॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः ॥ राज्ञाऽघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

पर क्रोध और मत्सरता की हो ॥ २९ ॥ यह विचारकर राजा परीक्षितने उस ऋषिके कण्ठमें मरा हुवा सर्प क्रोध करकै धनुषके अग्रभागसे डालदिया और अपने नगरको चला आया "अरु मार्गमें मनही मन यह कहता जाताथा" ❋ ॥ ३० ॥ सब इन्द्रियोंको रोके नेत्र मूंदे झूठी समाधि लगाये इसने अपने मनमें यह समझा होगा कि क्षत्रिय लोग हमारा क्या करेंगे ॥ ३१ ॥ उनका अतितेजस्वी बालकपुत्र बालकोंके

---

* **शंका**—राजापरीक्षित तो बडा बुद्धिवान था फिर उसकी बुद्धि भ्रष्ट क्यों होगई? जो नीचपनसे राजा परीक्षितने मराहुवा साँप उठाकर मुनिके गलेमें डालदिया, यह क्या कौतुक किया! ऐसा काम तो कोई उन्मत्तभी नहीं करता, जो कदापि ऐसा मान लियाजाय कि परीक्षित्की बुद्धि कलियुगने भ्रष्ट करदी तोभी शोभा नहीं होती, क्योंकि कलियुगका राजा परीक्षितने रहनेके लिये स्थान दिया, तब कलियुगसे राजापरीक्षितने कहाकि हमारे राज्यमें तू अपना पराक्रम मत करना, इसप्रकार राजाका और कलियुगका वचन हुआ था सो कलियुगने तुरन्तही अपने वचनको छोड दिया।

उत्तर—राजा परीक्षित सात वर्षका बालकथा, तब बालकोंका खेल खेलते खेलते पाण्डवोंकी सभामें गया वहाँ पावक मुनि बैठेथे उनको सूतके सर्पसे डरादिया, तब सभामें पावक मुनि जो विराजमानथे उन्होंने परीक्षितको शाप देदिया, और कहा कि पाण्डवोंके देखते देखते हे दुष्ट बालक! हमको सर्पसे डराता है इस लिये तेरी मृत्युभी सर्पसे होगी, उस मुनिके शापसे राजाकी बुद्धि भ्रष्ट होगईथी, तब ऐसा बडा पाप राजा परीक्षितने किया।

संग खेलता था, वहां किसी लड़केने आकर कहा,हे बन्धो ! आज तुम्हारे पिताके गलेमें राजा परीक्षित मरा हुवा सांप डाल गये हैं. यह बात सुन शृंगीऋषि कहने लगा॥३२॥बड़ा अधर्म है, कि पालक, पुष्ट, दास,द्वारपालक,राजाओंको अपने स्वामीसे अपराध करना नहीं चाहिये, जैसे काक श्वान करते हैं ॥ ३२ ॥ क्षत्रियोंको ब्राह्मणोंने द्वारपालक किया है.सो द्वारवासी घरमें जाकर उसी पात्रमें कैसे भोजन करने योग्यहै॥३४॥ पाखण्डियोंके शिक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीसे चलेगये, सो मैं धर्मके सेतु तोड़नेवालोंको आज भली भांति शिक्षा करता हूँ,तुम सब मेरा पुरुषार्थ देखो॥३५॥यह कह शृंगीऋषिने क्रोधसे लाल नेत्र कर अपने समान बालकोंके सन्मुख कौशिकी नदीका जल हाथमें लेकर राजाके ऊपर वाक्वज्र छोड़ा॥३६॥आजसे सातवें दिन मर्यादा नाशक कुलमें अंगाररूप मेरा भेजा तक्षकसर्प मेरे द्रोहीको काटै॥३७॥पीछे आश्रमपर आनकर अपने पिताके गलेमें सर्प पड़ा देख बहुत दुःखी हुवा और धाड़ें मार मारकर रोने लगा ॥३८॥हे ब्रह्मन्! वह अंगिरागोत्री शमीकऋषि पुत्रका विलाप सुन साधारणसे नेत्र खोलकर अपनेकण्ठमें मरा सांप देखा ॥ ३९ ॥ उसको निकाल पुत्रसे बोले, हे पुत्र ! क्यों रोता है ? किसने तेरा अनादर किया ? यह बात पिताके मुखसे सुन, उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया॥४०॥यह बात सुन शमीकऋषि घबराकर बोले -“अरे बेटा! तैंने

अहो अधर्मः पालानां पीव्नां बलिभुजामिव ॥ स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रबंधुर्हि द्वारपालो निरूपितः ॥ स कथं तद्गृहे द्वास्स्थः सभांडं भोक्तुमर्हति ॥३४॥ कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ॥ तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥३५॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ॥ कौशिक्याऽप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥ ३६ ॥ इति लंघितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ॥ दंक्ष्यति स्म कुलांगारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥ ३७ ॥ ततोऽभ्येत्याऽऽश्रमं बालो गले सर्पकलेवरम् ॥ पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकंठो रुरोद ह ॥ ३८ ॥ स वा आंगिरसो ब्रह्मञ्छ्रुत्वा सुतविलापनम् ॥ उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोगरम्॥३९॥विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि ॥ केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत्॥४०॥निशम्य शप्तमतदर्हं नरेंद्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनंदत् ॥ अहो बतांहो महदद्य ते कृतं स्वल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१ ॥

यह क्या किया ? जो राजापरीक्षित शापके योग्यनहीं थे उनको तैंने विना समझे शाप दिया, अरे पुत्र ! यह अच्छा नहीं हुवा बड़े खेदकी बात है कि थोड़े अपराध करने पर द्रोहसे ऐसा कठिन दण्ड दिया ॥४१॥ हे मूर्ख ! राजा परीक्षित मनुष्योंके समान नहीं हैं, उसका पराजय करना योग्य नहीं है. जिनके महातेजसे प्रजा रक्षित हो भयरहित सदा सुख भोगती है ॥ ४२ ॥ श्रीभगवत्का स्वरूप राजा प्रजाकी रक्षा न करै तो यह लोक चोरोंके बढ़नेसे नष्ट हो जाँय, मेंढोंके समूहकी भांति ॥ ४३ ॥ जब राजा नष्ट हो जायगा तो उनका धन भी लूट जायगा. इस पापसे हमारा सब वंश पाप भोगैगा, परस्पर मारैंगे, मरैंगे, शाप देंगे, बहुत चोर लुटेरे बढ़कर, पशु, स्त्री, इत्यादि अनेक पदार्थ हरे जायँगे ॥४४॥

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ॥ यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विंदंति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥४२॥
अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथांगपाणावयमंग लोकः ॥ तदा हि चौरप्रचुरो विनंक्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात्
॥ ४३ ॥ तदद्य नः पापमुपैत्य नन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुंपकात् ॥ परस्परं घ्नंति शपंति वृंजते पशून्स्त्रियोऽर्थान्पु
रुदस्यवो जनाः ॥ ४४ ॥ तदार्य धर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥ ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्म
नां शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥ ४५ ॥ धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राट् बृहच्छ्रवाः ॥ साक्षान्महाभागवतो राजर्षि
र्हयमेधयाट् ॥ क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवाऽस्मच्छापमर्हति ॥ ४६ ॥ अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ॥ पापं कृतं
तद्भगवान्सर्वात्मा क्षंतुमर्हति ॥ ४७ ॥

तब सदाचार, धर्म, वेदोक्त वर्णाश्रम, आचार, सब मनुष्योंके लीन होजायंगे, अर्थ, कामकी अभिलाषा करनेवाले, वानर, श्वान, पशुओंकी नाईं सब वर्णसंकर हो जायँगे ॥ ४५ ॥ हे पुत्र ! धर्मकी रक्षा करनेवाला नरपति साक्षात् महायशश्वी, राजर्षि, अश्वमेधकारी, राजा परीक्षित हैं । क्षुधा, तृषा, परिश्रमसहित, अपने स्थानपर आया और हमारे यहां आकर उलटा शापित हुआ, क्या वह शापके योग्य था ? ॥ ४६ ॥ यह बात शमीक ऋषिने अपने पुत्र शृंगी ऋषिसे कही फिर परमात्माका ध्यान करके यह प्रार्थना की कि हे नाथ! मेरे पापरहित अज्ञान बालक

सेवकसे बड़ा अपराध हुआ. इस अजान बालकका दोष क्षमा करो ॥ ४७ ॥ तिरस्कृत, वंचित, शापित, अवमानित, ताड़ित भगवान्के भक्त अपने अपराध करनेवालेको शाप नहीं देते ॥४८॥ पुत्रके अपराधसे महामुनि अत्यंत दुःखी हुए, परन्तु राजाने जोअपराधकिया उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया॥४९॥ बाहुल्य करके लोकमें परकार्यके साधक ब्राह्मणोंको दुःख सुख कुछ नहीं व्यापता, न उनको कोई व्यथा होय, न वह प्रसन्न होय, क्योंकि वह गुणोंसे सर्वव्यापक ईश्वरके समान आप हो जाते हैं * ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि॥ नास्य तत्प्रतिकुर्वंति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि॥४८॥ इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ॥ स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिंतयत् ॥४९॥ प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वंद्वेषु योजिताः ॥ न व्यथंति न हृष्यंति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥५०॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे प्रथमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ सूत उवाच ॥ महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिंतयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥ अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥

विप्रशापवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा–वरणौं कथाविशेष सब, यथाशाप इतिहास ॥ राजकाजतज नृपति ज्यों, कीन्ह गंगतट वास ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे शौनकमुनि! राजा परीक्षितने अपने आप जो निंदितकर्म किया उसका चिन्तवन कर अपने मनमें बहुत दुःखी होकर कहने लगे, कि मैंने विना अपराध ब्राह्मणको सताया. जिनका तेज छिपाहुवा निरपराधी ब्राह्मणपर महानीच

---

*"फिर शमीकऋषिने सोचा कि जो कुछ होनाथा सो हुआ परन्तु राजाको यह वृत्तान्त अवश्य कहला भेजना चाहिये, जिससे वह अपनी मोक्षका उपाय करले, यह बात सुनकर जगत्के लोग तो शृंगी ऋषिको दूषण देंगे परन्तु ऐसे धर्मात्मा राजाको यह बात अवश्य जतादेनी चाहिये" यह विचार शमीकमुनिने एक अपने शिष्यसे कहा तू राजा परीक्षितके पास जाकर हमारि ओरसे आशीर्वाद देकर यह कहना कि, शृंगीने तुमको शाप दियाहै कि सांपके काटनेसे तुम्हारी अकालमृत्यु होगी, सो तुम सावधान होकर अपनी मोक्षका यत्न करो. इतनी कथा कह सूतजी बोले, कि हे ब्रह्मन्! देखो जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके अस्त्रसे बचा जिसने धर्मकी और धरणीकी रक्षाकर कलिकालको अपने वशमें किया, वही राजा परीक्षित एक ब्राह्मणके बालकके शापसे सर्पके मुखमें गया और किसीसे उसकी रक्षा न हुई ऐसा तेज और महा घोर क्रोध ब्राह्मणोंका है ॥

कर्म अपनी मूर्खतासे मैंने किया ॥१॥ निश्चय है कि मैंने ईश्वरके भक्त महात्माकी अवज्ञा करी है इसलिये थोड़े दिनोंमें अत्यन्त दुःख शीघ्र इस पापके प्रायश्चित्तके लिये मुझको हो, मेरी यह इच्छा है क्योंकि अपने आप फिर ऐसा पाप मैं न करूं॥२॥राज्य, सेना, ऋद्धि, कोष अत्यन्त कुपित ब्राह्मणके कुलसे उठी आग क्षणमात्रमें सबको भस्म करदे, जो मुझ अमंगलीककी ऐसी पापी बुद्धि ब्राह्मण, गौ, देवतामें फिर कभी न होय ॥३॥ ऐसे चिंतवन करही रहेथे, उसी समय शमीकमुनिक भेजे हुए एक शिष्यने आकर कहा, कि हे राजन्! शमीकमुनिके पुत्र शृंगीऋषिने आपको यह शाप दियाहै, कि आजसे सातवें दिन तक्षक सांप राजाको डसैगा, जिससे मृत्यु हो जायगी, यह सुन राजाने तक्षकाग्निको बहुत उत्तम माना, क्योंकि

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ॥ तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥२॥ अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे॥दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ॥ ३ ॥ स चिंतयन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ॥ स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥४॥ अथो विहायेममसुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ॥ कृष्णांघ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥ या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णांघ्रिरेण्वभ्यधिकांबुनेत्री ॥ पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥

विषयासक्तोंको यह विरक्तताका कारणहै॥४॥राज्य और देह दोनों पहिलेही त्यागनेके योग्यहैं, और यह अधिकताहै कि श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी सेवा करूंगा, यह विचार श्रीगंगाजीके तट जानेकी इच्छा करी॥५॥तुलसीमिश्रित श्रीकृष्णके चरणोंकी रेणुसे अत्यन्त शोभित अधिक पवित्र, निर्मल जल बहानेवाली गंगाजी दोनों लोकोंको ईशसहित सबको पवित्र करैहै, ऐसी गंगाको जिसकी मृत्यु निकट आईहो अवश्य सेवनकरै“परन्तु राजाके मनमें इस बातका बड़ा खेद था कि इस अन्यायके बदले ऋषिने मुझको तुरन्त दंड नहीं दिया जो तुरन्त प्राण छूट जाते तौ सातदिनतक

कवित्त–सर्वअंग भंग होत, गुरुकी जो निन्दाकरै, नरकमाहिं वासहोत, नारीके चुरायेसे। अन्धे और लूलेहोत, जिवनके हिंसक जे, ज्ञानबुद्धिनष्ट होत, नीचधान्य खायेसे॥ कुष्ठी आर मूक होत, मुनिनको सतावैं, जो, नरकमाहिं वास होत, परनिंदा गायेसे। विप्रनके पूजनसे, यश होत शालिग्राम, वंशको विनाश होत, विप्रनके सतायेसे ॥ १ ॥

इस पापी शरीरके रखनेका क्या अभिप्राय था? अब मुझको उचित है कि सात दिन जो मेरे मरनेके हैं इस अन्यायी शरीरको यही दण्ड है कि अन्न पानी न दूं क्योंकि जिस देहसे परमेश्वरका भजन और भक्ति न हो वह देह किसी कामका नहीं, अब सब माया, मोह, स्त्री पुत्र, धनधाम त्याग परमात्माके ध्यानमें लय होना चाहिये इतनी अवस्था हमारी संसारके माया मोहमें वृथा नष्ट हुई और तौ भी यह पापी मन विरक्त न हुवा और जब मैं सातवें दिन मरजाऊँगा तब यह राज्य और धन धराही रहैगा, इसलिये मुझको उचितहै कि मैं पहिलेही इन सबका माया मोह त्यागदूं और श्रीगंगाजीके निकट जाऊं जो तीनों लोकोंका निस्तार करती है. सातदिन वहीं बैठकर वैकुण्ठनाथका भजन करूं तो मोक्ष हो: क्योंकि संसारमें जो जन्म लेगा वह अवश्य मरैगा ब्रह्मादिक देवताभी अमर नहीं रहते, इस संसार में जो कोई जैसा कर्म करताहै वैसा फल भोगताहै और चौरासी लक्ष योनिमें भ्रमता फिरताहै सो इस सात दिनमें अब कोई ऐसा उपाय करूं जिसमें आवागमनके फन्देसे मुक्ति पाऊँ, यह बात विचार सर्व नगरनिवासियोंको बुलाय जनमेजय नाम अपने बड़े पुत्रको जिसकीचौदह वर्षकी अवस्था थी राज्य सिंहासनका अधिकारी किया और सब राजकाजका भार मंत्री और प्रधानोंको सौंपकर जनमेजयसे कहा–हे पुत्र ! गो, ब्राह्मण, साधु, संतकी रक्षा करना और प्रजाको पुत्रके समान पालना, किसीपर अन्याय न करना, यह कह राजाने अपना मन विरक्त कर भूषण बस्त्र तनुसे उतार रानियोंको समझाया कि स्त्रियोंका धर्म यही है कि जिस बातमें उसके पतिकी पति रहै वह काम करना चाहिये, पतिके धर्ममें विघ्न नहीं डालै. परमेश्वर जन्मेजयादि पुत्रोंको जीता रक्खै तुमको सर्व प्रकारका सुख है, इस भांति सबको धैर्य दिया, हे शौनकमुनि! सो पाण्डुनन्दन यह निश्चय कर अनशन व्रत ले गंगातीर जाय सब भाव हरिमें कर मौनव्रत धार सब संग त्याग भगवान्के चरणोंका ध्यान करनेलगे॥६॥७॥सर्वत्र भुवनके पवित्रकर्त्ता महा अनुभव ज्ञानी शिष्योंसहित बहुतसे तीर्थयात्राके मिससे आप सर्व तीर्थोंको पवित्र करनेवाले ब्राह्मण मननशील मुनि आने लगे॥८॥अत्रि, वसिष्ठ यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर,

इति व्यवच्छिद्य स पांडवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ॥ दध्यौ मुकुंदांघ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसंगः
॥७॥ तत्रोपजग्मुर्भुवनंपुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः॥प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनंति संतः
॥८॥ अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरंगिराश्च ॥ पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इंद्रप्रमदेध्मबाहौ ॥९॥

विश्वामित्र,परशुराम,उतथ्य,इन्द्रप्रमद,इध्मबाहु॥९॥मेधातिथि,देवल,आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम,पिप्पलाद,मैत्रेय,और्व,कवष, अगस्त्य,द्वैपायन, भगवत्अवतार श्रीनारद ॥१०॥ और देवर्षि ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ राजर्षिवर्य, अरुणादिक नाना ऋषिवर्य आये ॥ ११ ॥ जब आनन्दपूर्वक सब बैठगये तब राजाने सबको प्रणाम किया एकांत चित्त कुशासनपर बैठे हाथ जोड़कर जो अपनी करनेकी इच्छा थी सो कही॥१२॥ फिर बोले,कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि शीलवान् महात्माओंने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, इसकारण मैं राजाओंमें धन्य हूँ, क्योंकि ब्राह्मणोंके चरणामृतने राजाओंका कुल दूरसे त्यागा है और एक मुझसे यह निंदित कर्म होगया॥१३॥घरमें बारम्बार आसक्त चित मुझ पापीको ज्ञानदायक पर

मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ॥ मैत्रेय और्वः कवषः कुंभयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ ॥ १० ॥ अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ॥नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववंदे ॥ ॥११॥ सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ॥ विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ॥ राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥ १३ ॥ तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ॥ निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥१४॥ तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गंगा च देवी धृतचित्तमीशे ॥ द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥ पुनश्च भूयाद्भगवत्यनंते रतिः प्रसंगश्च तदाश्रयेषु ॥ महत्सु यांयामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६ ॥

अवरोंमें ईश्वरही ब्राह्मण शापरूप होगये जिसमें मुझे शीघ्र भय होता है॥१४॥ हे मुनीश्वरो! मैं आपकी शरणागत हूँ. यह जानो कि परमेश्वरको और गंगाजीको चित्तमें धारण कर लिया, विप्रके शापसे कपटी तक्षकके काटनेका मुझे भय नहीं; आप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी कथा गाइये॥१५॥ जिससे अनन्त भगवान्में मेरी प्रीति अधिक होय,और उनके आश्रयी महात्मा ब्राह्मणोंमें मेरी मैत्री होय,और जहां जहां मेरा जन्म होय तहां तहां सबको नमस्कार होय और ब्राह्मणोंकी शरणमें रहूँ ॥१६॥

राजा परीक्षित ऐसे निश्चयकर पूर्वके मूल कुशाके आसनपर महाधीर उत्तरकी ओरको मुख कर समुद्रकी स्त्री गंगाजीके दक्षिणकी ओर बैठे,और
जन्मेजयको सब राज्यकाभार पहिलेही सौंप गयेथे ॥१७॥ जब वह नरदेव अन्न जल त्याग एकाग्रचित्त बैठे तब देवताओंके समूहके समूह
स्वर्गमें प्रशंसा करकर दुन्दुभी बजाय बजाय बारम्बार भूमिमें पुष्पोंकी वष करने लगे ॥१८॥ जो महाऋषि आयेथे वह सब प्रशंसा और बड़ाई
करने लगे, जिनका प्रजाके अनुग्रहके अर्थ शील सार है वह मुनि उत्तमश्लोकके सुन्दर गुण वर्णन करने लगे ॥ १९ ॥ हे राजर्षिवर्य ! श्रीकृष्णके
अनुवर्ती आपमें यह कुछ विचित्र बात नहीं है;क्योंकि भगवत्के समीप की चाहनावाले राजाने किरीटोंसे सेवित राज्य त्यागदिया ॥ २० ॥

इति स्म राजाऽध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ॥ उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुत
न्यस्तभारः ॥ १७ ॥ एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः ॥ प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुं
दुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥ महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ॥ ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदु
त्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥ १९ ॥ न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ॥ येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं
सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥२० ॥ सर्वे वयं तावदिहास्म हेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय ॥ लोकं परं विरजस्कं वि
शोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१ ॥ आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुश्च्युद्गुरु चाव्यलीकम् ॥ आभाष
तैतानभिवंद्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥ २२॥ समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ॥ नेहाथ
वाऽमुत्र च कश्चनाऽर्थमृते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३ ॥

जबतक यह शरीरको नहीं त्यागेंगे तबतक हम इनहीके निकट बैठे रहेंगे; क्योंकि यह भागवतोंमें प्रधान पवित्र विशोक वैकुण्ठको जायँगे
॥२१॥ सब ऋषिगणोंका पक्षपात शून्य अमृतरूपी गम्भीर अर्थ सत्य वचन राजा परीक्षित सुनकर विष्णुके चरित्र सुननेकी इच्छासे सब
ऋषीश्वरोंको प्रणाम करकै यह बोला ॥ २२ ॥ त्रिलोकसे ऊपर सत्यलोकमें जैसे वेद मूर्ति धारणकर बैठे हैं ऐसे ही सब आनकर मेरे
निकट विराजमान हुएहो, पराये अनुग्रहके लिये परिश्रम करनेका आपका स्वभाव है, इस लोकमें जो कर्तव्य होय ; अथवा

परलोकके लिये जो कुछ श्रेय सो सब कृपाकरके वर्णन कीजिये॥२३॥ हे मुनिगणो ! आपपर विश्वास कर जो कुछ बूझने योग्य है सो बूझताहूं, कि इस समय क्या करना चाहिये, सब प्रकारसे जिसकी मृत्यु आई होय उसकी शुद्ध कृत्य होनेका कृपा पूर्वक सम्मतिकर कोई उपाय बताइये ॥२४॥ यह सुन कोई बोले,कि यज्ञ करो,किसीने कहा योग करो,कोई बोले तप करो,किसीने कहा दान करो,यह विवाद हो रहाथा,उसी समय व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी अपनी इच्छासे विचरते२ इच्छारहित, आश्रमचिह्नरहित, यथालाभसंतुष्ट, स्त्री बालक पीछे कौतूहलसे लगे, अवधूत वेष किये, शुकदेवजी आये ॥ २५ ॥ षोडश वर्षकी अवस्था, चरण,हाथ हृदय, बाहु, कन्धा, कपोल, शरीर सुन्दर, विशालनेत्र, उठे

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ॥ सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशता
भियुक्ताः ॥ २४ ॥ तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ॥ अलक्ष्यलिंगो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रि
बालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥ तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ॥ चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कंबु
सुजातकंठम् ॥ २६ ॥ निगूढजत्रुं पृथुतुंगवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ॥ दिगंबरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलंबबाहुं
स्वमरोत्तमाभम् ॥ २७ ॥ श्यामं सदाऽपीच्यवयोंगलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ॥ प्रत्युत्थितास्ते मुनयः
स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥ २८ ॥ स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ॥ ततो
निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥ २९ ॥

एहु दोनों तुल्यकर्ण, सुन्दर भौं, मुख, शंखसमान कण्ठ शोभायमान ॥२६॥ मांससे छिपी हुई कण्ठसे नीचेकी दोनों हड्डी, चौडा ऊंचा वक्षस्थल कुण्डके समान गोल गम्भीर नाभिस्थल तिरछी झुकी हुई रेखाओंसे मनोहर उदर, दिगम्बर अर्थात् नग्न, फैले हुए केस, लम्बे भुजदण्ड यह शोभ सुरोत्तम भगवान्की हो रही ॥ २७ ॥ सुन्दर श्यामशरीर, श्रीयुक्त अंग, मनोहर मुसकान, गुप्ततेज, ऐसे लक्षणोंसे पहिचान कर मुनि आसनोंसे उठ खड़े हुए ॥२८॥ राजापरीक्षितने अतिथिशुकदेवजीको देख दण्डवत् प्रणाम कर पूजन किया, अज्ञानी स्त्री बालक सब चले गये यह पूजितहो

महासिंहासन पर बैठे ॥२९॥ तहां महापूज्योंमें ब्रह्मऋषि, राजर्षि, देवर्षियोंके समूहमें भगवान् शुकदेवजी अत्यन्त शोभित हुए, जैसे ग्रह नक्षत्र तारागणोंके समूहमें चन्द्रमा शोभा देताहै॥३०॥सब अर्थमें जिनकी बुद्धि अति शान्त बैठे ऐसे शुकदेव मुनिको भागवत नृप प्राप्त होकर मस्तकसे प्रणाम कर सावधानीसे हाथ जोड नमस्कार कर कोमल वाणीसे बूझने लगे ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन्! आज ब्राह्मणोंकी सेवा करके क्षत्रिय लोग सफल जन्म हुए, अतिथिरूप आपने कृपा करके मुझे दर्शन दिया॥३२॥जिन ब्राह्मणोंके स्मरणसे पुरुषोंके गृहादिक शीघ्र शुद्ध होजातेहैं,और दर्शन स्पर्शन

स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः ॥ व्यरोचताऽलंभगवान्यथेंदुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥ ३० ॥
प्रशान्तमासीनमकुंठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य॥प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृतांजलिर्नत्वा गिरासूनृतयाऽन्वपृच्छत्
॥३१॥ अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबंधवः॥ कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः॥३२॥ येषां संस्मरणात्पुं
सां सद्यः शुध्यंति वै गृहाः॥ किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥ सान्निध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महांत्य
पि ॥सद्यो नश्यंति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः॥३४॥ अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः॥पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थं
तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः॥३५॥अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथंनृणाम्॥ नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः॥३६॥
अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ॥ पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥

पाद धोनेसे मिष्टान्न भोजन करानेसे तो अत्यन्तही शुद्ध और पवित्रहोतेहैं, सब पाप ताप कांप जातेहैं॥३३॥ हे महायोगिन्! आपकी समीपतासे पुरुषोंके महापातक नष्ट हो जातेहैं, जैसे विष्णुकी समीपतासे गयादिक असुर नष्ट होगये॥३४॥यद्यपि ऐसाहै तथापि श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र पर प्रसन्न हुए जो आप रूप धारणकर फूफीके कुलवालोंकी प्रीतिके अर्थ उस गोत्रके कारण भाई बन्धु होकररहे॥३५॥अत्यन्त मृतक संसिद्ध याचक, मनुष्योंको अप्रगटगति वालोंका दर्शन होना कठिनहै॥३६॥इससे योगियोंके परम गुरु आपसे सिद्धिका उपाय पूछताहूँ, इस संसारमें मरणधर्मी पुरुषोंको सर्वथा जो कर्तव्य होय

सो कहो ❋ ॥ ३७ ॥ हे प्रभो! मनुष्यसे जो श्रवण, जप, स्मरण, भजनके योग्य होय, अथवा कुछ और प्रकारसे जो होय सो कहो ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन्! गृहस्थीके घरमें गोदोहन कालसे अधिक स्थिति होना आपको बहुत कठिन है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनक मुनि! राजाने कोमल वाक्योंसे जब

यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥ प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कंधे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ छ ॥ समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥ १ ॥

यह बूझा तो धर्मज्ञ शुकाचार्य कहनेलगे ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषाटीकायां शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

107

❋ **शंका**–मुनिने राजा परीक्षितको शाप दिया कि आजसे सातवें दिन सर्पके काटनेसे राजाकी मृत्यु होगी, तब सात दिनमें राजा परीक्षित्ने सब काम कार्यका प्रबन्ध कैसे किया? मुनिका शाप सुनकर पुत्रको राज्यतिलक दे गंगाके तटपर गया, फिर सात दिनमें मुनियोंके आना, और बडे बडे मुक्तिमार्गके जाननेवाले महात्मा पुरुषोंका बुलाना, और श्रीशुकदेव मुनिका कथा प्रसंग सुनाना, और अनेक प्रकारके काम जैसे गंगा किनारे आये जो देव, मुनि, राजर्षि और भी बहुत से साधु, संत उनका पूजन करना, आदर सत्कार सहित सबको आसन देकर बैठाना, और बारम्बार कथामें प्रश्नकरना, यह सब काम सात दिनमें कैसे किये?

उत्तर–शृंगीऋषिके मुखसे अपने शापको मुनिसे सुनके व्याकुल हो फिर धैर्य धारण कर हित चित्तसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करने लगे और आँखोंसे आँसू बहने लगे, कि अब क्या किया जाय. जिस दिन मुनिने मुझको शाप दिया वह दिन आज है, क्योंकि कल मैंने मुनिका अपराध किया था आज मुझको शाप दिया आजसे सातवें दिन मेरी मृत्यु होगी, और अभी काम मुझको बहुत करने हैं, ऐसा विचार फिर ब्रजचन्दके चरणारविन्दका ध्यान करने लगा, उसी समय वृन्दावनबिहारी भक्तहितकारी कृष्ण भगवान्ने सात दिन सात युगके समान कर दिये, तब राजा परीक्षितके सात दिनमें सब काम बन गये,

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते प्रथमस्कन्धः समाप्तः ॥

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कन्धप्रारंभः ॥

108

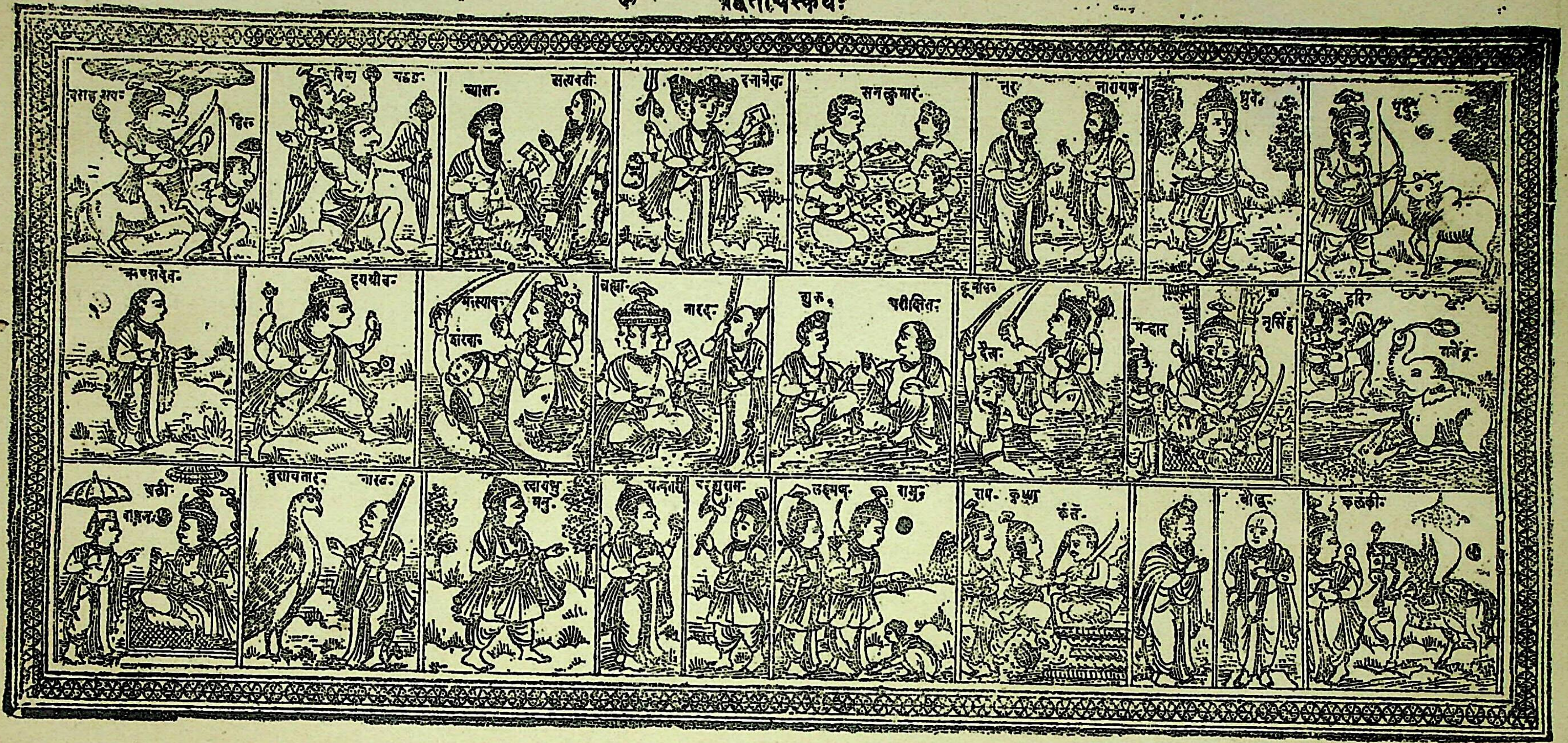
वराह अवः
हिर
विष्णु
गरुडः
व्यासः
सत्यवती
दत्तात्रेयः
सनत्कुमारः
नर
नारायणः
ध्रुवः
पृथुः
ऋषभदेवः
हयग्रीवः
मत्स्यावः
शंखः
ब्रह्मा
नारदः
शुकः
परीक्षितः
कूर्मः
दैत्यः
मन्दार
नृसिंहः
हरि
गजेंद्रः
बली
वामनः
हंसावतारः
नारदः
स्वायंभुव
मनुः
धन्वंतरी
परशुरामः
लक्ष्मणः
रामः
राम
कृष्ण
कंसः
बौद्धः
कलंकीः

पाद्मकल्प सम्पूर्णतासे कहते हैं सो सुनो ॥ ४७ ॥ शौनकजी बोले कि, हे सूतजी ! जो तुमने कहा कि हमने भागवतोत्तम विदुरजीको समझा है, जो त्यागने रहित बांधवोंका त्यागकर पृथ्वीके सब तीर्थोंमें विचरते फिरे ॥ ४८ ॥ मैत्रेय और विदुरजीका कहा संवाद जिसमें ब्रह्मविद्याक वर्णन था अथवा मैत्रेयजीने उनसे बूझा तौ विदुरजीने उनसे क्या तत्त्वज्ञान कहा ? ॥ ४९ ॥ हे सौम्य ! उन विदुरजीकी कथाका वर्णन करो;

शौनक उवाच ॥ यदाह नो भवान्सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः ॥ चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बधून्सुदुस्त्यजान् ॥ ४८ ॥ कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ॥ यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ह ॥ ४९ ॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् ॥ बंधुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥ तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

10

बांधवोंके त्यागनेका कारण;और फिर किस प्रकार प्रत्यावर्तन किया सो सब विस्तार सहित वर्णन कीजे ॥५०॥ सूतजी बोले कि,जो राजापरीक्षितने व्यासनन्दन शुकदेवजीसे बूझा और भूपालसे जो कुछ भगवान् महामुनि शुकदेवजीने कहा सो राजेंद्रकेही प्रश्नके अनुसार हम तुमसे कहतेहैं, ध्यान लगाकर सुनो ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषाटीकायां पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कंधः समाप्तः ॥

सोरठा–जयवृन्दावनचन्द, श्रीमुकुन्द गोविन्द हरि ॥ नंदनँदन सुखकन्द, कृपा करहु जन जान निज ॥ १ ॥अति सुन्दर कमनीय, जो छबि श्यामाश्यामकी ॥ बसहिं सदा मम हीय,यह वर देहु गणेश मुहिं॥२॥गुरु पद रज धर शीश,कहों द्वितीयस्कन्ध अब ॥ सब मिलि देहु अशीश, शीघ्र भागवत पूर्ण हो॥३॥दोहा–कहत प्रथम अध्यायमें, नृपसों श्रीशुकदेव॥आदि विराट स्वरूपको, वर्णत हैं सब भेव॥१॥श्रीवासुदेवायनमः॥ "जैसे द्वितीय स्कन्धके प्रथमाध्यायमें श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितके प्रश्नकी प्रशंसा करके भगवत्के विराट्स्वरूपका वर्णन कियाहै, सो सब कथा वर्णन करेंगे"श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जगत्हितकारी,भक्तजनोंका सम्मत श्रवण योग्य और अत्यन्त श्रेष्ठ है,ऐसा यह अच्छा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप॥आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥१॥ श्रोतव्यादीनि राजेंद्र नृणां संति सहस्रशः ॥ अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥२॥ निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः॥दिवा चार्थेहया राजन्कुटुम्बभरणेन वा ॥ ३ ॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ॥ तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४॥ तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥ ५ ॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ॥ जन्मलाभः परः पुंसामंते नारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥

110

प्रश्न किया ॥१॥ हे राजेन्द्र! जो आत्मतत्त्वको नहीं विचारते हैं और घरमें जहां पांच हत्या नित्य होती हैं * ऐसे मनुष्योंकी श्रवणयोग्य बात सहस्रों हैं,हे राजन् !रात्रिमें निद्रा और मैथुनमें आयुको नष्ट करते हैं,दिनमें धनके प्राप्तकरने व कुटुम्बके पालन पोषणकी चिन्तामें सब अवस्थाको क्षय करते हैं ॥२॥३॥ अपनी आत्माकी अत्यन्त खोटी सेना, देह, पुत्र, स्त्री इनके मोहमें आसक्त होकर इनका नाश देखते हैं, तथापि परमात्माकी ओर नहीं देखते ॥ ४ ॥ हे भारत! ताते सबके अन्तर्यामी, सुन्दर भगवान् वासुदेव, कष्टहर्ता, ईश्वरकी कथा श्रवण करने व कीर्तन करने योग्य है, मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको उन्हींका नाम स्मरण करना चाहिये ॥५॥तत्त्वोंका विचार, सांख्य, अष्टांग योग, स्वधर्ममें अत्यन्त

---

* वह पाचँ हत्या यह हैं १ ऊखल, २ चक्की, ३ चूल्हा, ४ पलहडी, ५ बुहारी, इन स्थानेंमें सदा जीव मरते हैं.

शंका –शुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि श्रीमद्भागवत जो यह महापुराण है सो ब्रह्मके गुणसे मिलाहुवा है परन्तु भागवतमें ब्रह्मके लक्षणका वर्णन एकभी कहीं नहीं देख पडता ॥

निष्ठा करनी, यही संसारमें जन्म लेनेका परम लाभ है, कि अन्त समयमें नारायणमें स्मृति होय॥६॥ प्रायः विधि निषेध रहित मुनिलोग श्रीकृष्णके गुण कथनमें और निर्गुणबृहत्त्वादि गुण विशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें रमण करतेहैं ॥ ७ ॥ श्रीभगवत्प्रोक्त यह भागवत नामक पुराण वेदके समान, ब्रह्मका सुन्दर ज्ञान करानेवाला है । सो द्वापरके आदिमें वेदव्यास पितासे हमने पढ़ा था ॥ ८ ॥ हे राजर्षे! उत्तम यशस्वीकी लीलासे निर्गुणमें हमारी अत्यन्त निष्ठा थी । श्रीकृष्णके चरित्रोंने मन ग्रहण करलिया इस कारण यह आख्यान पढ़ा ॥ ९ ॥ महापुरुष श्रीविष्णुके गुणग्राहक आप हो, सो हम आपसे कहैंगे, इसमें श्रद्धा करनेवालोंकी मुक्तिदायक माधव मुकुन्दमें प्रीतियुक्त मति होतीहै॥ १०॥ हे नृप! अत्यन्त वैराग्यवान्

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ॥ नैर्गुण्यस्था रमंते स्म गुणानुकथने हरेः ॥ ७ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं
ब्रह्मसंमितम् ॥ अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥ परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ॥ गृहीतचेता
राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ ९ ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ॥ यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे
मतिः सती ॥ १० ॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ॥ योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥
किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ॥ वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥ १२ ॥ खट्वांगो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्ता
मिहायुषः ॥ मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥ १३ ॥

मुमुक्षुजनोंको और योगियोंको निर्भय श्रीकृष्णका नाम सदा कीर्तन करना; सबने यही निर्णय कियाहै ॥ ११ ॥ जो मदान्ध हैं उनको कुछ नहीं देख पड़ता, और बरसोंमें भी उनसे कुछ नहीं होता, और जो शुभकार्यमें यत्न करै उसकी वह दो घड़ी भी श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥ खट्वाङ्ग नाम राजर्षि दो घड़ी अपनी आयु जान एक मुहूर्तमें सबको त्यागकर अभयदायक परमेश्वरको प्राप्त हुए, जब राजाने इन्द्रकी सहायता कर दैत्योंको जीता तब देवता प्रसन्न होकर बोले, वर माँगो ! यह सुन राजानेकहाकि प्रथम मेरीअवस्थाकावृत्तान्त कहिये कि मैं कितने दिन और जीऊँगा तब देवताओंने कहा तुम दो घड़ी और जियोगे, यह सुन राजा खट्वाङ्ग शीघ्र विमान पर बैठ भूमिमें आ श्रीकृष्णकी शरणागति कर

उत्तर-व्यासदेवजीने पहले श्रीमद्भागवतमें अनेक प्रकारके इतिहास तथा राजाओंके चरित्र वर्णन किये हैं ब्रह्मज्ञानी मनुष्य सब भले बुरे, जो संसारी जीवोंको ब्रह्मरूप जानतेहैं तथा जो पुरुष ब्रह्मज्ञानसे हीन हैं वह लोग अभिमान युक्त नेत्रोंसे बहुत प्रकार संसारको देखते हैं भलेको भला बुरेको बुरा और श्रीशुकदेवजी महाराज ब्रह्मज्ञानीथे, चर अचर सबको ब्रह्मरूप जानतेथे ईतिहास, पुराण, राजाओंके चरित्रोंकोभी ब्रह्मरूप जानके श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसम्मत कहते हैं ॥

मुक्त होगया॥१३॥सो हे राजन्!तुम तौ सात दिन जियोगे,जो जो परलोक साधनकी क्रिया हैं सो सावधानीसे करो ॥१४॥ जब अंतमें काल आवै तब यह पुरुष मृत्युके भयसे रहित होकर असंगरूप शस्त्रसे इस देह और इसके पीछे जो पुत्र कलत्रादिकसे सुखकी इच्छा है उसको काटै ॥१५॥ घरसे निकलकर धीर पुरुष पुण्यतीर्थोंके जलमें तौ स्नान करै, एकान्तमें विधिवत् पवित्र आसन पर बैठे ॥१६॥ शुद्ध अ उ म् यह तीन अक्षरयुक्त परब्रह्मस्वरूप ओंकारका मनमें अभ्यास करै; मनको व श्वासको जीतै; ब्रह्मका जो बीज मंत्र प्रणव उसको कभी भूलै नहीं ॥१७॥ बुद्धि सारथीसे मन इन्द्रियोंको विषयोंसे जीतै, अनेक कर्मोंसे मनको खैंचकर, भगवत्के रूपमें बुद्धिसे धारण करै ॥ १८ ॥

तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीविताविधिः ॥ उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम्॥१४॥अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिंद्यादसंगशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥ १५ ॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं पदम् ॥ मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १७ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥१८॥ तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा॥ मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥१९॥ रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः ॥ यच्छेद्धारणया धीरो हंति या तत्कृतं मलम् ॥ २० ॥ यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः ॥ आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥ २१ ॥

और एक मुहूर्त्तकोभी परमात्माके चरणकमलोंका ध्यान न भूलै, सब रूपका ऐसे चित्तसे ध्यान करै मनको सब विषयोंसे हटाय, परमानंदके साक्षात्कार विना कुछ भी स्मरण न करै वही विष्णुका परमपद है जिससे मन प्रसन्न होय;जो मानसी पूजामें लवलीन हैं, उनको वैकुण्ठवास मिलताहै॥१९॥ अपना मन रजोगुणसे प्रेराहुआ, तमोगुणसे विमूढ़ धारणा करकै रज तमके करे हुये मलका नाश करै ॥२० ॥ जिस धारणाके करते२अपने कल्याणके करनेवाले आश्रयको देखते हुए प्राणीको, उसी कल्याणसे भगवत्के रूपमें भक्तिरूप योग प्राप्ति शीघ्र होती है॥२१॥

राजा परिक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन्! जैसी सम्मत धारणा सुन्दर होतीहै; जिस धारणासे शीघ्र पुरुषका मन निर्मल होय सो कहो ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि अतिस्थूल विराट्रूप हम कहते हैं सो तुम चित्त सावधान करके सुनो; आसन और श्वासको जीतो, संग सुसंग करो, सब इन्द्रियोंको जीतो। भगवत्के स्थूल रूपमें मनको और बुद्धिको लगाओ ॥२३॥ जितने रूप हैं उनके मध्यमें विराट्देह यह है कि जहां भूत, भविष्यत्, वर्तमान, सत् विश्व ईश्वरमें ही दीखता है ॥ २४ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व यह सप्त आवरणसहित इस ब्रह्मांड अथवा शरीरमें जो विराट् पुरुष है सो भगवान् इस धारणाके आश्रय है॥२५॥ अब विराट् रूपका वर्णन करते हैं. सर्वव्यापक ईश्वरके

राजोवाच ॥ यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता ॥ यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेंद्रियः ॥ स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥ २३ ॥ विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ॥ यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥२४॥ आंडकोशे शरीरेऽस्मिन् । सप्तावरणसंयुते ॥ वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान्धारणाश्रयः ॥ २५ ॥ पातालमेतस्य हि पादमूलं पठंति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ॥ महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥ २६ ॥ द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ॥ महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणंति ॥ २७ ॥ उरस्स्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ॥ तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २८ ॥ इंद्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ॥ नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गंधो मुखमग्निरिद्धः ॥ २९ ॥

पादमूलमें पाताल है, एड़ीमें रसातल है; विश्व रचनेहारेकी एड़ीके ऊपरकी गाठोंके भागमें महातल है; और तलातल विराट् पुरुषकी जंघामें है ॥ २६ ॥ विश्वमूर्तिके दोनों जानुओंमें सुतल लोक है; दोनों ऊरूमें वितल, अतल लोक हैं, महातल जंघनमें है, नभस्थल नाभिमें है ॥२७॥ ज्योतियोंका समूह जहां सूर्य चन्द्रमा रहते हैं वह स्वर्ग ईश्वरके हृदयमें है। ग्रीवामें महर्लोक, वदनमें जनलोक और आदिपुरुषके ललाटमें तपलोक है। और सहस्र शिर धारीके शिरमें सत्यलोक है॥२८॥ तेजोमय इन्द्रादिक बाहुमें, सब दिशा कर्णोंमें, शब्द श्रोत्रमें, अश्विनीकुमार नासिकामें, गन्ध

घ्राण इन्द्रियोंमें, दे दीप्यमान अग्नि मुखमें है ॥२९॥ अन्तरिक्ष नेत्र गोलक हैं; चक्षु इन्द्रिय सूर्य है, विष्णुके दोनों पलक दिन रात हैं; भ्रुकुटियोंका चलना ब्रह्मपद है; जल इनका तालु है, रस इनकी जीभ है ॥ ३० ॥ अनंतके वेद शिर हैं; यमराज डाढ़, स्नेह दांत, सब जनोंको उन्माद करानेवाली माया हँसी, अपार विस्तार स्वर्ग अर्थात् विश्वरचना उनका कटाक्ष है ॥३१॥ लज्जा ऊपरका होंठ, लोभ नीचेका होंठ, धर्म उनके स्तन, अधर्मका मार्ग पीठ है, प्रजापति शिस्न इन्द्रिय है, मित्रावरुण अंडकोश हैं, कोखमें सातों समुद्र हैं; और सब पहाड़ उनके हाड हैं ॥३२॥ सब नदी इनकी नाड़ी, सब वृक्ष शरीरके रोम हैं; हे नृपेन्द्र ! श्रीभगवान् विश्वरूप हैं; अनंतवीर्य हरिका श्वास पवन है; गति; अवस्था है,

द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ॥ तद्भ्रूविजृंभः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥ छंदांस्यनंतस्य शिरो गृणंति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ॥ हासो जनोन्मादकरी च माया दुरंतसर्गो यदपांगमोक्षः ॥ ३१ ॥ व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ॥ कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥ ३२ ॥ नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेंद्र ॥ अनंतवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥३३॥ ईशस्य केशान्विदुरंबुवाहान्वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ॥ अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चंद्रमाः सर्वविकारकोशः ॥ ३४ ॥ विज्ञानशक्तिं महिमामनंति सर्वात्मनोंतःकरणं गिरित्रम् ॥ अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशः ॥ ३५ ॥ वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ॥ गंधर्वविद्याधरचारणाप्सरःस्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥ ३६ ॥

गुणप्रवाह संसार भगवान्का कर्म है॥३३॥ मेघघटा उनके शिरके बाल हैं, हे कुरुनन्दन! व्यापक ईश्वरके वस्त्र संध्या है, प्रभात छाती है, सब विकारोंका कोष चन्द्रमा भगवान्का मन है॥३४॥ विज्ञानशक्ति महत्तत्त्व है, सर्वात्मा श्रीहरिके अंतःकरण शिवजी हैं, हाथी, घोड़े, ऊंट, और खिच्चर परमेश्वरके नख हैं, सब मृग पशु नितम्ब हैं॥३५॥ भगवान्के विचित्र व्याकरण शब्दशास्त्र सब पक्षी हैं, सब मनुष्योंके निवास मनु भगवान्की बुद्धि है, गंधर्व, विद्याधर, चारणादिक यह षड्ज ऋषभादि सात स्वर हैं, उर्वश्यादि अप्सरा भगवान्की स्मृति हैं, और असुरोंकी सब सेना उनका पराक्रम है॥३६॥

ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरु, और चरणके आश्रित श्यामवर्ण शूद्र उनके पद हैं, नाना प्रकारके जिनके नाम, सब प्रकारसे पूजनीय, देवगणसहित, जिसमें अनेक द्रव्योंसे प्रयोग विस्तार यज्ञ जो होता है, वह यज्ञ भगवान्का वीर्य है ॥ ३७ ॥ ईश्वरके विग्रहकी यह अवयवोंकी स्थिति है, सो मैंने तुमसे कही इस स्थूल शरीरमें मन अपनी बुद्धिसे मुमुक्षुजनोंकरके भलेप्रकार धारण किया जाता है। इससे परे और कुछ नहीं है ॥३८॥ सब बुद्धिकी वृत्तिसे अनुभव करके स्वप्नके समय एक आत्माको ही जो जन सब ओरसे देखते हैं, और मन लगाय सत्यस्वरूप आनंदसागर ईश्वरको, और वस्तुओंमें आसक्तरहित होकर भजन करै, क्योंकि आसक्त होनेसे संसार बन्धनमें स्थिति होती

ब्रह्माऽऽननं क्षत्रभुजो महात्मा विडूरुरंघ्रिश्रितकृष्णवर्णः ॥ नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्मवितानयोगः ॥ ३७ ॥ इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते ॥ संधार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ॥ ३८ ॥ स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥ तं सत्यमानंदनिधि भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥३९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे महापुरुषसंस्थावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥ १ ॥

है, ईश्वर विद्याशक्तिके आश्रय है, इसकारण बन्धनमें नहीं आता। और जीव अविद्याशक्तिके आश्रय हैं इस कारण संसारके बन्धनसे मुक्त नहीं होता ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां विराट्स्वरूपवर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–कहूं द्वितिय अध्यायमें, हरिको सूक्षम रूप ॥ पुनि कछु वरणों पुरुषकी, आकृति परम अनूप ॥ १ ॥ ❋ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे पहले प्रलयके समयमें इस धारणासे ईश्वर प्रसन्न हुए। ब्रह्माजी उनसे सृष्टिके रचनेकी स्मृतिको प्राप्त होकर महाप्रलयके पहले जैसा यह विश्व था उसी

---

* शंका–व्यासदेवजीने यह शंका उत्पन्न करनेवाला वचन किसलिये वर्णन किया है. दूसरे अध्यायकी आदिमें पहले तो ब्रह्मका वर्णन किया है फिर पीछे भगवान्की भक्तिका वर्णन किया है. उसके पीछे भगवान्की कथाकी प्रीति वर्णन करीहै इसमें शंका यह है कि पहले कथाकी प्रीति, फिर भक्ति, तब ब्रह्मका चिन्तवन होना चाहिये ॥

उत्तर–कथाके सुननेसे भक्तोंके हृदयमें भक्ति उत्पन्न होती है, भक्तिसे ज्ञान उत्पन्न होता है. ज्ञानसे ब्रह्मका चिन्तवन होताहै, इसलिये ज्ञानमें जो चतुर व्यासदेवजी हैं उन्होंने मुक्ति होनेके लिये तीन धर्म वर्णन किये तथा ब्रह्मके ध्यानमें जो मतवाले योगी हैं उनको ऐसा विचार नहीं रहता कि यह बात पहिले वर्णन करनी चाहिये, यह बात पीछे वर्णन करनी चाहिये वह सबको समान समझते हैं इसलिये उन महात्मा पुरुषोंके कुछ आगे पीछेका विचार नहीं ॥

प्रकारका फिर रचा; उनकी निश्चयकारी बुद्धि और अमोघ दृष्टि थी। इस धारणासे विश्व रचनेकी सामर्थ्य होती है ॥ १ ॥ उपासना फल सेवी विरक्तको शुद्ध आत्मधारणामें अधिकार है। इसलिये वैराग्यके अर्थ सब कर्म फलकी निन्दा करते हैं। शब्दब्रह्म जो वेदका मार्ग यह है, कि जिसमें कुछ प्रयोजन नहीं;ऐसे स्वर्गादिक नामसे साधककी बुद्धि ध्यान करै है।सो उन २ लोकोंमें घूमताभी है,परन्तु अपने अभिप्रायको नहीं पहुँचता;क्योंकि मायामयवासनामें यह सो रहा है।इस कारण अखण्डित सुख इसको नहीं मिलता॥२॥इसलिये पण्डितलोग नाममात्रभोगके योग्य पदार्थोंमें,जितनेमें देहका निर्वाह हो; उतनेहीमें आसक्त होकर यह निश्चय करनेवाली बुद्धि है।विना परिश्रम जब प्रयोजन सिद्ध होजाय तौ उनमें परिश्रम समझ कर यत्न न करै॥३॥विना परिश्रम यह पदार्थ हैं,फिर इनके लिये ज्ञानीपुरुष परिश्रम नहीं करै। शयनके लिये जब पृथ्वी है,तौ शय्याके कारण परिश्रम करना वृथा है; स्वतःसिद्ध तकियेके लिये भुजा हैं, फिर तकिया बनानेकी क्या आवश्यकता है?जल पीनेको अंजली और भोजनको अन्न बहुत है फिर पात्रका रखना वृथाहै। दिगम्बर रहै, वल्कल पहिरै, वस्त्रसे कुछ प्रयोजन न रक्खै॥४॥मार्गमेंसे चीर लाकर उनका कंथा बनावै वृक्षोंसे फलादिक भिक्षा मांग पेट भरै.सबकी भरण पोषण करनेवाली नदियोंसे जल पिये; वह कभी शुष्क नहीं होती। पर्वतकी कन्दराओंमें वास करै;उनहीमें शरणागतोंकी रक्षा परमेश्वर करता है।फिर क्यों विद्वान् महात्मा,धनमें अंधे भये अज्ञानियोंका सेवन करै॥५॥ ऐसे अपना चित्त जब अपने आपही सिद्ध होय,तब ईश्वरको अपना प्रिय जान, भगवान् अनंतके महा आनंदसे निश्चित स्वरूपको भजै तब संसारके

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पंथा यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ॥ परिभ्रमंस्तत्र न विंदतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः
॥२॥अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥ सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्ष
माणः ॥ ३ ॥ सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासबाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥ सत्यंजलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या
दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः॥४॥चीराणि किं पथि न संति दिशंति भिक्षां नैवांघ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्॥
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्कस्माद्भजंति कवयो धनदुर्मदांधान् ॥ ५ ॥ एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा
प्रियार्थो भगवाननंतः ॥ तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६ ॥

हेतुओंका नाश होता है ॥ ६॥ ऐसा कौन है जो परमेश्वरके ध्यानकी चिन्ताको त्याग विषयोंका ध्यान करै; पशुबुद्धिवाले तौ विषयका ही सेवन करते हैं; अपने करे हुए कर्मोंके क्लेशोंको सहन करनेवाले जीव वैतरणी नदीमें पड़ते हैं, यह देख सदा परमात्माका स्मरण करै। उसे एक पलको न भूले ॥७॥ अब मानसी पूजाका वर्णन करते हैं । कोई अपने देहके भीतर हृदयके भीतर अवकाशमें जहां तर्जनी अंगुष्ठ फैलावै एक विलस्त भरमें पुरुष बसते हैं। चारभुजा, कमल, चक्र, शंख, गदाधारे, प्रसन्न मुख ईश्वरकी धारणा करके स्मरण करते हैं* ॥८॥ प्रसन्न मुख, पद्मदलवत् लोचन,

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिंतामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात् ॥ पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम्
॥७॥ केचित्स्वदेहांतर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसंतम् ॥ चतुर्भुजं कंजरथांगशंखगदाधरं धारणया स्मरंति ॥८॥
प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदंबकिंजल्कपिशंगवाससम् ॥ लसन्महारत्नहिरण्मयांगदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुंडलम्
॥ ९ ॥ उन्निद्रहृत्पंकजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ॥ श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकंधरमम्लानलक्ष्म्या
वनमालयाऽऽचितम् ॥ १० ॥ विभूषितं मेखलयांगुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकंकणादिभिः ॥ स्निग्धामलाकुंचितनील
कुंतलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥ ११ ॥

कदम्ब प्रसूनकी समान पीताम्बर धारण किये, सुवर्णके भुजबन्दोंमें शोभायमान महारत्न दमक रहे; और महामणियोंके जड़े हुए किरीट कुण्डल धारे हैं ॥९॥ प्रसन्नहृदयकमलके पत्ररूप स्थानपर, जिनके चरणकमल योगीश्वरोंके स्थापन किये जाते हैं, महालक्ष्मी भृगुलता हृदयमें दीख हैं कौस्तुभरत्न कण्ठमें धारण किये हैं, जिसकी कांति कभी मलीन नहीं होती ऐसी प्रसूनमाल ग्रीवामें शोभायमान है ॥१०॥ कोंधनी, अँगूठियें,

---

* **शंका**—द्वितीय स्कन्धकी आदिमें शुकदेवजीने परीक्षित्से कहा कि राजा यह तुम्हारा प्रश्न बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु भगवान्को नमस्कार क्यों नहीं किया भगवान्को नमस्कार करना अवश्य चाहिये था तीन अध्याय बितायके तथा तीनों अध्यायोंमें अनेक प्रकारकी कथा कहिके पीछेसे बहुत श्लोकोंसे चौथे अध्यायमें भगवान्को नमस्कार शुकदेवजीने क्यों किया ?

उत्तर—शुकदेवजीने राजाकी नवीन संगत देखके प्रशंसा भी कियाहै कि राजा तुम्हारा प्रश्न बहुत अच्छा है, नई रीति प्रीतिमें तुरन्त मन प्रसन्न नहीं होता. पीछेसे भगवान् वासुदेवमें परीक्षित्की प्रीति देखके शुकदेवजी बहुत आनन्द हुए, शापका भय नाश करनेको, ब्रह्माका लेख उलट देनेमें परीक्षित्को वैकुण्ठकी प्राप्ति करनेमें शुकदेवजी समर्थ हैं इसलिये बहुत श्लोकोंसे भगवान्के चरणोंका नमस्कार किया ॥

कड़े, कंकण, नूपुर इत्यादिकोंसे भूषित हैं। चिकनी, निर्मल, घूँघरवाली श्यामअलकोंसे शोभित, मनहरण मुस्कान युक्त ॥ ११ ॥ उदारलीलासे हास्य, नेत्रोंपर अत्यंत शोभित भ्रुकुटीका चलाना, उससे बड़ा अनुग्रह सूचित होताहै. चिंतवन करके प्रगट होताहै, उनका दर्शन करै, जबतक मन धारणा करके उनमें स्थित रहै॥ १२॥ गदाधरके चरणोंसे लेकर हाँसी पर्य्यन्त एक २ अंगको बुद्धिसे अनुभव करै, जो जो स्थान विनायत्न प्रगट होजाँय, उसको त्यागकर और और जंघा आदिको ध्यान करै तैसेही बुद्धि शुद्धि होती जायगी॥ १३॥ पर अवर द्रष्टा विश्वेश्वरमें भक्तियोग जबतक न होय, तबतक स्थूल विराट् पुरुषका रूप आवश्यक कर्मके अनुष्ठानके उपरान्त नियमोंमें तत्पर हो स्मरण करै. यह तो समीप

अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभंगसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ॥ ईक्षेत चिंतामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥१२॥ एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ॥ जितंजितं स्थानमपोह्य धारयेत्परंपरं शुद्ध्यति धीर्यथायथा ॥ १३ ॥ यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ॥ तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४ ॥ स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममंग लोकम् ॥ काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥१५॥ मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ॥ आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशांतिर्विरमेत कृत्यात् ॥ १६ ॥ न यत्र कालोऽनिमिषो परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ॥ न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥ १७ ॥

मृत्युवालेका कर्तव्य है ॥१४॥ और अपने आप देह त्यागै उसका कर्तव्य है। हे नरनाथ! जो इस लोकके त्यागनेकी इच्छा करै वह स्थिर सुखद एक आसन पर बैठ शुभ कालमें पुण्यदेशमें मनको आसक्त न करै, प्राणको जीतै, मनसे योगाभ्यासही योगीको मोक्षदायक है ॥ १५ ॥ अपनी निर्मल बुद्धिसे बुद्ध्यादिकोंका द्रष्टा जीवमें मन लगावै। जीवात्माको शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें एक करके आनंदको प्राप्त होकर सब कृत्यसे विराम करै उससे परे कोई कार्य कर्तव्य नहीं है ॥ १६ ॥ जिस आत्मस्वरूपमें देवनका परम प्रभु, कालभी समर्थ नहीं हो सकैहै, वहां जगत्के ईश्वर देवताओंकी क्या सामर्थ्य है? वहां न सतोगुणकी चलै, न तमोगुणकी, न रजोगुण, न अहंकार, न महत्तत्त्व, न माया, इन सबकी कुछ सामर्थ्य

नहीं,फिर जगत्की तौ क्या सामर्थ्य है?॥१७॥यहभी"नहीं नहीं"कहनेवाले उसको विष्णुका परमपद कहते हैं,आत्माको त्याग,कर औरमें मित्रता नहीं
करते; पूजनीय ईश्वरको क्षण २ में हृदयसे मिलते हैं॥१८॥ईश्वरका चिंतवन करके इसप्रकार मुनि स्थित होकर सबसे उपराम करै,ब्रह्मज्ञानकी दृष्टिके
बलसे विषयवासना त्यागकर,अपनी एडीसे गुदाको बंदकर,सब परिश्रम जीत, नाभिआदि छः स्थानोंमें पवनको प्राप्त करै॥१९॥वह पवन जो नाभिके
मणिपूरक चक्रमें स्थित है उसको हृदयमें अनाहत चक्रमें रोककर उदानगतिसे, कण्ठके विशुद्ध चक्रमें उस पवनको प्राप्त करै वहमुनि है,पीछे बुद्धिसे
अनुसंधान कर चित्तको जीतनेवाला अपने तालुके मूलमें धीरेसे उस वायुको प्राप्त करै॥२०॥दोनों कान,दोनों नेत्र,दोनों नाक;व एक मुख,इन सातोंको

परं पदं वैष्णवमामनंति तद्यन्नेतिनेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे
पदे ॥ १८ ॥ इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरंधिताशयः ॥ स्वपार्ष्णिनाऽऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं स्था
नेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥ १९ ॥ नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ॥ ततोऽनुसंधाय
धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद्भ्रुवोतरंरमुन्नयेत निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ॥ स्थित्वा मुहूर्ता
र्धमकुंठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत् परं गतः ॥ २१ ॥ यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ॥ अष्टा
धिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेंद्रियैश्च ॥ २२ ॥ योगेश्वराणां गतिमाहुरंतर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनांतरात्मनाम् ॥
न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवंति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥

रोककर चाहना न करै,किसी वस्तुकी. वो मुनि वहांसे उस भ्रुकुटी भीतर आज्ञाचक्र है उसमें प्राप्त करै, एक घड़ी स्थित होकर,शुद्धदृष्टि कर,परब्रह्मको
प्राप्त हो ब्रह्मरंध्रको भेदकर देह इन्द्रियें सबको त्याग करै॥२१॥यह पूर्वोक्त सद्योमुक्ति कही, अब क्रममुक्ति कहते हैं;हे नृपेन्द्र!जो ब्रह्माके स्थानसे
होकर जाता है, जहां गगनचारी सिद्धोंका विहारस्थान है,और अणिमादिक अष्ट सिद्धि मिलती हैं,इस ब्रह्माण्डमें मन इन्द्रियोंके साथही चला
जाता है; क्योंकि मृत्युके समय जो वासना प्राणीके हृदयमें रहती है कि सब लोकोंके भोग भोगता हुआ जाऊं; तौ मन इन्द्रियसहित जीव
जाता है ॥ २२ ॥ पवनरूप जिनकी देह, उपासना, भगवद्धर्म, अष्टांगयोग समाधि, इनके करनेवाले योगीश्वरोंको त्रिलोकीके

बाहर भीतर सब स्थानोंमें जानेकी गति होती है; जो ऐसे कहते हैं वह उस गतिके कर्मोंसे नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ हे भूपाल ! आकाशमें होकर, ब्रह्मलोकके मार्गमें ज्योतिर्मय सुषुम्णानाड़ीसे अग्निअभिमानी देवताको प्राप्त होता है. पीछे सब मलरहित हो, सो ऊपर वर्तमान हरिसंबंधी तारारूप शिशुमारचक्रको प्राप्त होता है, शिशुमारचक्रका वर्णन पंचमस्कन्धमें करेंगे ॥२४॥ श्रीविष्णु भगवान् और सूर्यादिकोंका आश्रयभूत विश्वकी नाभिरूप चक्रको उल्लंघन करते हैं। क्योंकि उससे परे फिर स्वर्गियोंकी गति नहीं है; इसकारण एकही निर्मल लिंग शरीर अणुरूप होकर औरोंसे नमस्कृत ब्रह्मवेत्ताओंके स्थान महर्लोकको प्राप्त होता है । महाकल्पकी आयुवाले पंडित भृगु आदिक जहां रमण करते हैं ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त कल्पान्तमें श्रीशेषजीके मुखकी अग्निसे संसारको भस्महुआ देखकर, सिद्धेश्वरोंसे सेवित स्थान जो द्विपरार्द्धमें स्थित रहै है, उस ब्रह्मलोकको जाते हैं ॥ २६ ॥ उस ब्रह्मलोकमें शोक, वृद्धापन, मृत्यु, दुःख, भय, कहींसे कभी नहीं होता है; जो भगवत्के ध्यानको नहीं जानतेहैं, उनको भगवत्की कृपा बिना, दुःखकारी चित्तको व्यथा उपजानेवाला जन्म मरण होता रहता है, परंतु वहां शोकादिक कभी नहीं होता है। जो ब्रह्मलोकमें जाते हैं, उनकी गति तीन प्रकार की है, जो बहुत पुण्य व बहुत दान कर गये हैं, वह कल्पान्तरमें पुण्यकी न्यूनाधिकतासे अधिकारी होते हैं, जो हिरण्यगर्भादिककी उपासनाके बलसे गये हैं वह ब्रह्माके संग मुक्ति पावेंगे; जो भगवत्के उपासक हैं, वे अपनी इच्छासे ब्रह्माण्डको भेदकर श्रीवैकुठमें वैष्णवपदको जाते हैं ॥ २७ ॥ पीछे लिंगदेहसे पृथ्वीरूपको प्राप्त होकर, भय त्याग पृथ्वीरूप हो जलको प्राप्त

वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ॥ विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम्
॥ २४ ॥ तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ॥ नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा
रमंते ॥ २५ ॥ अथो अनंतस्य मुखानलेन दंदह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ॥ निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्वै
पराध्यं तद्‌ पारमेष्ठ्यम्॥२६॥न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ॥ यच्चित्ततोऽदः कृपयाऽनि
दंविदां दुरंतदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥ २७ ॥ ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोऽनलमूर्तिरत्वरन् ॥ ज्योतिर्मयो
वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिंगम् ॥ २८ ॥

हो शीघ्रता न करकै ज्योतिर्मय हो, वायुको प्राप्त हो, पवनरूप होकर, बड़े भारी ब्रह्मके स्वरूप आकाशको प्राप्त होताहै॥२८॥भगवद्भक्तको ब्रह्माण्ड भेदनेका जो प्रकार है सो कहते हैं ईश्वररचित प्रकृतिके किसी अंशसे महत्तत्त्व होता है, उसके अंशसे अहंकार, और उसके अंशसे शब्द बनता है, उसकी मात्राके द्वारा आकाश, आकाशके अंशसे स्पर्श, उसकी मात्राके द्वारा वायु, वायुके अंशसे रूप, तन्मात्राके द्वारा तेज, तेजके अंशसे रस, उसकी मात्रासे जल, जलसे गंध, और जलकी मात्रासे पृथ्वी होती है, यह सब मिलकर चतुर्दश भुवनात्मक विराट्शरीर ब्रह्माण्ड होता है, उस ब्रह्माण्डका पंचशतकोटि योजन विस्तार है, पृथ्वीशब्दवाच्य विशेष अंडकटाह शतकोटि योजन विस्तारवाला है। कोई२ पंचाशतकोटि योजन कहते हैं फिर वायु आदिकोंके अनगिनत अंश हैं सो वह उत्तरोत्तर दशगुणे अधिक हैं। आठ पृथ्वीके आवरण व्यापक हैं ॥ घ्राणसे गंध, रसनासे

घ्राणेन गंधं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ॥ श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥ २९ ॥ स भूतसूक्ष्मेंद्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधम् ॥ ३० ॥ तेनाऽऽत्मनाऽऽत्मानमुपैति शांतमानंदमानंदमयोऽवसाने ॥ एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ॥ ३१ ॥ एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च ॥ ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः ॥ ३२ ॥

रस, दृष्टिसे रूप, त्वचासे श्वास, श्रोत्रसे आकाशके गुणको प्राप्त होकर योगी प्राणसे उन२ क्रियाओंको प्राप्त होतेहैं ॥ २९ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है, तामस, राजस, सात्त्विक, तामससे जडभूत सूक्ष्म उत्पन्न होतेहैं, राजससे बहिर्मुख दश इन्द्रियें, सात्त्विकसे मन इन्द्रिय देवता, उनका लय अहंकारसे होताहै। सो योगी भूत सूक्ष्म इन्द्रियालय, मनोमय, देवमय, अहंकारको गतिसे प्राप्त होकर, गुणोंका जिसमें लय, ऐसे महत्तत्त्वको प्राप्त होताहै ॥३०॥ हे नरेश! आनन्दमय जीव उपाधियोंके अंतमें प्रधानरूपसे उस आत्माको प्राप्त होता है, भगवत्की गतिको जो गया है सो फिर इस संसारमें आसक्त नहीं होता ॥३१॥हे राजेंद्र! यह दोनों मार्ग वेदने गाये हैं, सनातनमार्ग आपने जाना है। पहिले भगवान्

की ब्रह्माने आराधना करी थी, तब भगवान् वासुदेवने यह गति ब्रह्माजीसे कहीथी ॥३२॥ जो जीव संसारमें फँस रहेहैं, उनको इससे अधिक और कल्याणदायक मार्ग नहीं है, जिससे कि भगवान् वासुदेवमें भक्तियोग हो ॥ ३३ ॥ भगवान् चतुरानन निर्विकारी एकाग्र चित्त करके वेदको तीनवार बुद्धिसे विचारकर आत्मामें प्रीति होय जिससे वही निश्चय करते हुए ॥ ३४ ॥ भगवान् सब जीवोंमें अपने आत्मा करके श्रीहरि दीखेहैं, बुद्धि आदि जो ईश्वरके देखेनेके उपाय हैं और अनुमान करनेके जो लक्षण है उनसे दीखतेहैं॥३५॥हे नृपेन्द्र ! इस कारण सर्वात्मा हरि सर्वत्र सब कालमें श्रवण करनेके योग्य हैं । और वही मधुसूदन सब जीवोंके स्मरण करने योग्य हैं ॥ ३६ ॥ जो कोई भगवान् सर्वव्यापककी अथवा

न ह्यतोऽन्यः शिवः पंथा विशतः संसृताविह ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्॥३३॥भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येंन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥३४॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ॥ दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥३६॥ पिबंति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ॥ पुनंति ते विषयविदूषिताशयं व्रजंति तच्चरणसरोरुहांतिकम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वितीयस्कंधे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥ नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥ इंद्रमिंद्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंकी कथाअमृतको श्रवणोंसे भली प्रकार भर २ कै पीतेहैं वह विषयोंसे अति दूषित अंतःकरणको पवित्र कर श्रीहरिके चरणकमलोंके समीप जाते हैं ॥३७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां सूक्ष्मरूपध्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–कहों तृतिय अध्यायमें, देवार्चनको हेत ॥ जौन जौनसे देवता, जेहि २ फलको देत ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले जो बात आपने हमसे पूँछी सो हमने कही. आसन्न मृत्यु बुद्धिमान् मनुष्योंको यह श्रीहरिकी कथा श्रवणादिक ही श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ परन्तु अनेक कामोंके फलप्राप्तिके लिये अन्य अन्य देवताओंका भी भजन करना योग्य है, ब्रह्मतेज बढ़ानेकी इच्छावाले वेदपति ब्रह्माका पूजन करै, इन्द्रियोंकी पुष्टता चाहनेवाले इन्द्रकी

पूजा करै, सन्तानवृद्धि चाहनेवाला दक्षप्रजापतिकी पूज करे * ॥ २ ॥ लक्ष्मीकी इच्छावाला दुर्गादेवीकी पूजा करै, तेजकी अभिलाषवाला अग्निकी पूजा करै; धनकी कामनावाला श्रेष्ठ धनदाता वसुका पूजन करै, जो वीर्यवान् होना चाहै वह महादेवकी पूजा करै ॥ ३ ॥ अन्नादिक भोगकी इच्छावाला अदितिकी सेवामें अनुरक्त हो, स्वर्गकी कामनावाला द्वादश आदित्योंकी पूजा करै, राज्यकी कामनावाला विश्वेदेवका भजन करै, जो देश देशान्तरकी प्रजाको अपने आधीन करना चाहै वह साध्यनामक देवताका पूजन करै ॥ ४ ॥ आयुका प्रार्थी अश्विनीकुमारको, और पुष्टिकी कामनावाला पृथ्वीको स्वच्छ कर पूजन करै । जिसको अपनी प्रतिष्ठाकी वाञ्छा हो वह लोकप्राप्त

देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥ वसुकामो वसून्रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३ ॥ अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥ ४ ॥ आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥ प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥ ५ ॥ रूपाभिकामो गंधर्वान्स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम् ॥ आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥ यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ॥ विद्याकामस्तु गिरिशं दांपत्यार्थ उमां सतीम् ॥ ७ ॥ धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तंतुं तन्वन्पितॄन्यजेत् ॥ रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८ ॥

द्यावापृथ्वीकी पूजा करै ॥ ५ ॥ रूपका चाहनेवाला गन्धर्वोंका, सुन्दरस्त्री चाहनेवाला उर्वशी अप्सराका, और सब देशके राज्यकी कामनावाला परमेष्ठी नामक ईश्वरका पूजन करै ॥ ६ ॥ यशकी इच्छावाला यज्ञपुरुषकी, और कोशकी इच्छावाला प्रचेता वरुणकी, विद्या चाहनेवाला महादेवजीकी, दंपतिमें प्रीत्यर्थ पार्वतीजीकी ॥ ७ ॥ धर्मका चाहनेवाला विष्णुकी, संतानकी वृद्धि चाहनेवाला अर्यमा नामक

---

* **शंका**–शुकदेवजीसे राजा परीक्षितने बूझा कि, हे मुनिराज! मरनेवाले मनुष्यको क्या काम करना चाहिये ? सो शुकदेवजीने इसका उत्तर तो पीछे दिया, और जो राजाने सब देवताओंका पूजन नहीं बूझा था, सो शुकदेवजीने देवताओंका पूजन क्यों वर्णन किया ?

उत्तर–शुकदेवजीने अपने मनमें विचारा कि, सब कामना सिद्ध होनेके लिये पृथक् पृथक् देवताओंके पूजनकी विधि हम वर्णन करैंगे तो सब जीवोंको सुख उत्पन्न होगा. ऐसा विचारके राजाने नहीं भी बूझा था तो भी सब कामोंकी प्राप्ति होनेके लिये सब देवताओंका पृथक् पृथक् पूजन वर्णन किया. शुकदेवजीने विचार किया कि, सब मनुष्य अपने अपने हृदयमें अपने अपने कामोंको देखके हमारी कही हुई विधिसे देवताओंका पूजन करके सुखको प्राप्त होंगे ॥

पितरोंकी,जो सदा बाधा विपत्तिसे अपनी रक्षा चाहै वह यक्षोंकी, बलकी कामनावाला मरुत गणोंकी ॥८॥ जिसको राजगद्दीकी इच्छा होय वह मनु महाराजकी, और शत्रुका नाश चाहनेवाला निर्ऋति मृत्युकी, भोगकी इच्छा हो तौ चंद्रमाकी, किसी कामकी इच्छा न हो केवल वैराग्यकी चाहना हो वह परम पुरुष भगवानकी॥९॥जिसको किसी वस्तुकी चाहना न हो,अथवा सब वस्तुकी इच्छाके संग मोक्षकी भी कामना हो तौ उदार भक्ति और तीव्र बुद्धिसे परम पुरुष विष्णु भगवानकी पूजा करै॥१०॥ईश्वरमें अचल भावहो, ब्राह्मण भगवत् भक्तोंकी संगत करना यही सब कर्म करनेवालेको परम पुरुषार्थका लाभ है ॥११॥ सब ओरसे रागादिकका समूह जिससे दूर हो जावे, ऐसा ज्ञान जिस कथामें होता है तब

राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् ॥ कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥१०॥ एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ॥ भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसंगतः ॥ ११ ॥ ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसंगः ॥ कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात्॥१२॥शौनक उवाच ॥ इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः॥ किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥१३॥ एतच्छुश्रूषतां विद्वन्सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ॥ कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४॥ स वै भागवतोराजा पांडवेयो महारथः ॥ बालक्रीडनकैः क्रीडन्कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५ ॥

आत्मा मन प्रसन्न होता है, जब सब विषयोंसे मन हटै है तब कैवल्यसम्मत मार्गमें भक्तियोग होता है; तब सब सुख होते हैं और तब हरिकथामें प्रीति करतेहैं ॥ १२॥ शौनकजी बोले–कि भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ राजापरीक्षित्ने यह कथा सुनकर, फिर व्यासपुत्र शब्दब्रह्मके ज्ञाता, परब्रह्मदर्शी शुकदेवजीसे क्या बूझा?॥ १३ ॥ हे विद्वज्जन ! सुननेकी इच्छावाले मुझसे आप कहनेके योग्य हो । संतोंकी सभामें श्रीभगवान्की कथा ही फल है, सो निश्चय करनेसे होता है॥ १४॥सो भागवत पाण्डुनन्दन महारथी परीक्षित् बालक्रीड़ामें खेलनेके समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी

क्रीड़ा किया करते थे ॥१५॥ और व्यासपुत्र भगवान वासुदेवमें परायण, कथन योग्य श्रीवृन्दावनविहारीके उदार चरित्र संतोंकी सभामें सदा कहा करते हैं॥१६॥सूर्यनारायण उदय अस्त होकर नित्य पुरुषकी आयु हरण करते हैं। उत्तम यशस्वी परमेश्वरकी चिंतनाके विना जो क्षण व्यतीत होते हैं, यह आयु वृथा जाती है॥१७॥वृक्ष क्या नहीं जीते हैं?धौंकनी क्या श्वास नहीं लेती है,और ग्रामके पशु क्या नहीं खाते हैं ? वा विष्ठादिक नहीं करतेहैं?इनकी आयु व्यर्थ ही है॥१८॥विष्ठा खानेवाला श्वान,ऊँट,गधा;यह जिसकी स्तुति करें वह व्यक्ति भी पशु है।जिसके श्रवणमें कभी भगवच्चरित्र न सुनाया गया है वह पुरुष पशुतुल्य है ॥१९॥परमेश्वरके चरित्र जो मनुष्य कानसे न सुने वह कान साँपके बिल

वैयासकिश्च भगवान्वासुदेवपरायणः ॥ उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६ ॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं
च यन्नसौ ॥ तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥ १७ ॥ तरवः किं न जीवंति भस्त्राः किं न श्वसंत्युत॥ न
खादंति न मेहंति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८ ॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ॥ न यत्कर्णपथोपेतो जातु
नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ॥ जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चो
पगायत्युरुगायगाथाः ॥ २० ॥ भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुंदम् ॥ शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां
हरेर्लसत्कांचनकंकणौ वा ॥ २१ ॥ बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥ पादौ नृणां तौ
द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥

समान हैं । और हे सूत!जिनकी जीभसे परमात्माका नाम नहीं निकलता, और भगवत्कथा नहीं होती वह खोटी जीभ मेंडककी जिह्वावत् है और वृथा बकवाद करती है ॥२०॥ रेशमी वस्त्रवेष्टित, शोभायमान किरीटयुक्त शिर; जो भक्तवत्सलको प्रणाम नहीं करता; वह मस्तक केवल शरीरपर भार है।यदि हाथोंमें सुन्दर २ कंकणादि शोभित हों, वह भुजा हरिकी सेवा करै नहीं तौ वह भी काष्ठकी करछीके तुल्य हैं ॥ २१ ॥ जिन नेत्रोंने बाँकेविहारीकी मनोहर झाँकी न निहारी, और महात्मा पुरुषोंका दर्शन नकिया वह आँख मोर पंखकी सदृशहैं और जिन पैरोंसे

मधुसूदनके क्षेत्रोंमें न फिरा, और तीर्थयात्रा न करी वह पद वृक्षोंकी समानहैं॥२२॥जिसके शरीरमें ब्राह्मणों और नारायणके चरणकी रजका न स्पर्श हुआ वह प्राणी जीता हुआ मृतकतुल्य है।जिसने विष्णुभगवान् और शालिग्रामके ऊपर चढ़ी हुई तुलसीपत्रकी सुगन्ध न ली वह श्वास लेता हुआ मृतक है ॥ २३ ॥ बड़े खेदका विषय है कि ग्रहण करने योग्य जो भगवत्के नाम हृदयसे नहीं लेते वह हृदय प्रस्तरकी नाईं हैं। जिन्हें हरियश श्रवण करनेसे हृदयमें विकार न हो और आंखोंमें जल न आवै;शरीरके रोम खडे न हों वह हृदय पाषाण निर्मित समझो॥२४॥जो अभक्त हैं, उनका किया कर्म सब व्यर्थ है। हे अंग!हमारे मनके अनुकूल तुम कहो, भक्तोंमें प्रधान व्यासनन्दन आत्मविद्याके ज्ञातासे जो राजाने बूझा

जीवञ्छवो भागवतांघ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गंधम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ॥ न विक्रियेताऽथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ २४ ॥ अथाभिधेह्यंग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ॥ यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे श्रोतृश्रद्धानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः॥ उपधार्य मतिं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु ॥ राज्ये चाविकले नित्यं निरूढां ममतां जहौ ॥ २ ॥ पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥ कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥ ३ ॥

और उन्होंने कहा सो आप भी कहिये॥२५॥ इति श्रीमद्भा०महा० द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मादिदेवपूजनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥ दोहा—अब कछु वर्णन सृष्टिको, वर्णत मतिअनुसार ॥ रचना पालन लय करन, भगवत् कौन प्रकार ॥१॥सूतजी बोले कि शुकाचार्यके आत्माके तत्त्व निश्चय करनेवाले वचन सुनकर भली भांति राजेन्द्र परीक्षितने कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना मन लगाया ॥१॥ शरीर, स्त्री, पुत्र,घर,भ्राता, बन्धु, राज्य, पशु, और धन इन सबकी ममता संपूर्ण त्याग दी॥२॥ हे श्रेष्ठजनो ! जो तुमने मुझसे पूछा.इसीको श्रीकृष्णके अनुभव सुननेमें श्रद्धावाले

पुरुष बूझते हैं॥ ३॥ अपनी मृत्यु निकट जान, धर्म, अर्थ, काम इनको सम्यक्प्रकार ईश्वरमें समर्पण कर पतितपावन गोवर्धनधारी नारायणमें अपनी आत्माको लगाया॥ ४॥ परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन्! हे पापरहित! श्रीवासुदेव भगवान्की कथा कहनेवाले वचन बहुत सुन्दर हैं, जिससे मेरा सब अंधकार दूर होगया ॥ ५॥ जिसकी चिंता ब्रह्मादिक करतेहैं, ऐसे इस विश्वको भगवान् अपनी मायासे जिसप्रकार आप रचना करतेहैं वह मैं सुना चाहताहूं॥ ६॥ जैसे इस विश्वको रचकर पालन व फिर संहार करते हैं; जिस शक्तिका आश्रय लेकर परपुरुष बहुत शक्ति धारण करते हैं; सो कहो ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन्!

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ॥ वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ ॥ तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥५॥ भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ॥ यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥ ६ ॥ यथा गोपायति विश्वं यथा संयच्छते पुनः ॥ यांयां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ॥ आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन्करोति विकरोति च ॥७॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्हरेरद्भुतकर्मणः ॥ दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८ ॥ यथागुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा ॥ बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥ विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा ॥ शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ॥ हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥११॥

अद्भुतकर्म करनेवाले लोकनाथ हरिकी चेष्टा यथार्थ बडे २ कवियोंसेभी निश्चय नहीं करी गई है ऐसा विदित होता है ॥ ८ ॥ जन्म धारण कर कर्मकर्ता एक ईश्वर एक कालमें अथवा क्रम २ से प्रकृतिके गुणोंको धारण करते हैं ॥ ९ ॥ यह श्रवण करनेकी मेरी इच्छाहै सो आप कृपाकर कहिये। क्योंकि, आप परमेश्वर और शब्द परब्रह्मके भली प्रकार पारंगत हैं ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि, श्रीहरिके गुणानुवाद कहनेको नरनाथ परीक्षित्ने ऐसे प्रार्थना की, तब व्यासनंदन श्रीशुकदेवजीने श्रीवृन्दावनचन्द्रका स्मरणकर श्रीमद्भागवतके कहनेका प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हरिकी महिमाका प्रमाण नहीं, इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार इन चरित्रोंसे ब्रह्मादिक तीन शक्ति धारण करनेवाले घट२वासी, किसीको जिनका मार्ग नहीं दीखै ऐसे परम पुरुष ईश्वरको मेरे नमस्कारहैं॥१२॥धर्मवर्ती संतोंके कष्टनाशक, अधर्मी असंतोंके विनाशक, सब जीवमात्रमें जिनकी मूर्ति परमहंस आश्रममें स्थित पुरुषोंको वार २ ढूंढनेकी योग्यता देनेवाले परमेश्वरको फिर नमस्कार है॥१३॥ भक्तपालक, कुत्सित योगियोंसे दूर अपने समान वा अधिकतासे रहित, ऐश्वर्यसे अपने स्वरूपमें रमण करनेहारे परब्रह्मको वारंवार नमस्कार है

श्रीशुक उवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ॥ गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामंतर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२ ॥ भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाऽखिलसत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदा शुषे ॥ १३ ॥ नमोनमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ॥ निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वंदनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ॥ लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्संगं व्युदस्योभयतोंतरात्मनः ॥ विंदंति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः ॥ १६ ॥ तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मंत्रविदः सुमंगलाः ॥ क्षेमं न विंदंति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः॥ १७ ॥

॥१४॥ जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, कथाश्रवण, पूजन सब लोकोंके पापको शीघ्र नाश करता है। सुन्दर मंगलरूप यशस्वी परमात्माको नमस्कार है। सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वरको सब ओरसे नमस्कार मात्रही श्रेष्ठ है॥ १५ ॥ विवेकी लोग जिनके चरणकी सेवासे आत्माका दोनों ओरसे संग त्याग परिश्रम रहित परब्रह्मकी गतिको प्राप्त होते हैं ऐसे मंगलरूप यशस्वीके अर्थ नमस्कार है ॥ १६ ॥ तपस्वी, महादानी, यशस्वी, मनस्वी, मंत्रवेत्ता, मंगलकारी, अपने २ करेहुए जिन कर्मोंको परमेश्वरमें समर्प्पण किये विना क्षेमको प्राप्त नहीं होते हैं,

ऐसे सुन्दर मंगलरूप यशस्वीको नमस्कार है॥१७॥ किरात, हूण, आंध्र, पुलिन्द,पुल्कस,आभीर, कंक, यवन, खशादिक और और पापी भी जिनके आश्रयसे शुद्ध होजाते हैं उस सर्वव्यापक शीलयुक्त ईश्वरके अर्थ नमस्कार है ॥ १८॥ आत्मज्ञानियोंके आत्मा,सबके ईश्वर, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय, निष्कपटी,ब्रह्मा, शंकरआदियोंसे अति आश्चर्य्यद्वारा जिनकी मूर्ति देखने योग्य है सो भगवान् मुझपर प्रसन्न होवें ॥१९॥ श्रीभूलीलानायक, यज्ञपति, प्रजापति,बुद्धिपति,लोकपति, धरापति,अन्धक, वृष्णि,सात्वतोंके पति, गति,संतोंके पति, मुझपर प्रसन्न होवें ॥ २० ॥

किरातहूणांध्रपुलिंदपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खशादयः॥येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यंति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥१८॥ स एषआत्माऽऽत्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः॥ गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिंगो भगवान् प्रसीदताम्॥१९॥श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः॥ पतिर्गतिश्चांधकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः॥ २० ॥ यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यंति हि तत्त्वमात्मनः॥ वदंति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुंदो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ॥ स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलाऽऽस्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥ २२॥ भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः॥ भुंक्ते गुणान्षोडश षोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे॥ २३ ॥

जिनके दोनों चरणोंके निरन्तर ध्यानरूप समाधिसे धुईहुई बुद्धिसे सगुण, निर्गुण उपासना करके ईश्वरके तत्त्वका दर्शन करतेहैं और पंडित लोग अपनी बुद्धिके अनुसार इस तत्त्वका वर्णन करते हैं सो मुकुंद भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥२१॥ कल्पके आदिमें ब्रह्माके हृदयमें सृष्टिके रचनेवाली स्मृतिको विस्तार करनेवालेसे प्रेरित सरस्वती ब्रह्माके मुखसे प्रगट हुई वह असाधारण लक्षण ऋषियोंके भी बड़े श्रेष्ठ ईश्वर मुझपर प्रसन्नहोवें ॥२२॥ जो ईश्वर पंचभूतोंसे इन सबको निर्माण कर इनके भीतर बसते हैं, वे षोडशकलाधारी समर्थ सोलह गुणोंके भोक्ता भगवान् मेरे वचनोंको

अलंकृत करैं ॥ २३ ॥ ब्रह्माके अन्तर्यामीभक्तजन जिनके मुखकमलके मादक ज्ञानमय रसको पीते हैं,उन ब्रह्माके अन्तर्यामी भगवान्वासुदेवके अर्थ नमस्कार है ॥२४॥हे नृपाल!वेदगर्भ साक्षात्हरि व्यापक ईश्वरने जो ब्रह्माजीसे कहा, ब्रह्माने नारदजीसे कहा वह यही बात है जो तुमने प्रश्न किया ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां वक्तृश्रद्धानिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥

दोहा–इस पंचम अध्यायमें, विराट्लीलारूप ॥ विराट्की सब सृष्टिको, वरणों परम अनूप ॥ १ ॥श्री नारदजी बोले! कि हे देवाधिदेव ! हे सर्व जीववत्सल ! हे पूर्वज ! आपके अर्थ नमस्कार है, आत्माके तत्त्वका निरन्तर दर्शन देनेवाला ज्ञान आप कहिये ॥ १ ॥ हे प्रभो ! जो रूप है

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखांबुरुहासवम् ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥ वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे वक्तृश्रद्धानिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ छ ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ॥ तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥ यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ॥ यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ २ ॥ सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ ३ ॥ यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ॥ एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४ ॥ आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयम् ॥ आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥

जिसके आश्रय यह सब हैं, और जिससे यह सब रचागया है जिसमें यह लीन और जिसके आधीन है, जो कुछ है वह तत्त्व सिद्धान्तसे आप कहो ॥ २ ॥ हे प्रभो! तुम भूत भविष्यत् वर्तमान यह सब जानते हो, हाथमें जैसे निर्मल जलकी बूंद अथवा आमला होय ऐसे अत्यन्त ज्ञानकर निश्चिन्त हो इस विश्वको तुम जानते हो ॥३॥ जो विशेष ज्ञान है जो आधार है जिसमें तुम परायण हो; जो स्वरूप है अपनी मायासे सब जीवोंको एक तुमरचो हो मुझको तौ तुमही ईश्वर जान पड़ते हो ॥ ४ ॥ उन सबको आपही पालन करते हो, तुम्हारा

तिरस्कार कोई नहीं कर सकता जसे श्रमरहित मकरी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर घर रचती है तद्वत् तुम हो ॥५॥ हे विभो ! इस विश्वमें उत्तम अधम समान मनुष्यादि नाम-रूप द्विपदत्वादि गुण शुक्लत्वादिसे साध्यसूक्ष्म स्थूल और तुमसे परे कोई नहीं है यह सब तुमसे ही होताहै ॥६ ॥ सावधान अच्छी प्रकार होकर आपभी घोर तप करते हो इसलिये हमको बड़ी चिन्ता व खेद उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे सकलेश्वर ! मैं जो जिज्ञासा करता हूँ सो आपसे शिक्षित जैसे मैं जान सकूं तैसे विशेषकर मुझसे तुम कहो ॥८॥ श्रीब्रह्माजीबोले कि, हे पुत्र!

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो ॥ नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ॥ ६ ॥ सभ वानचरद्धोरं यत्तपः सुसमाहितः ॥ तेन खेदयसे नस्त्वं पराऽऽशंकां प्रयच्छसि ॥ ७ ॥ एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ॥ यदहं चोदितो धर्मं भगवद्वीर्यदर्शने ॥ ९ ॥ नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ॥ अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ॥ यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥ तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवंति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥ विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ॥ विमोहिता विकत्थंते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३ ॥

दयावन्त तुम्हारा सन्देह ठीक है ॥ हे सौम्य ! भगवतके वीर्यके प्रकाशमें जो तुमने मुझसे प्रेरणा की ॥ ९ ॥ हे नारद ! जैसे आप मुझसे कहते हैं यह ऐसेही है तुम्हारा कहनामिथ्या नहीं है. मुझसे परे और कौन है ? यह ऐसेही है ॥ १० ॥ जिनके प्रकाशित प्रकाशसे विश्वको मैं प्रकाश करूँ हूँ, जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे ये ईश्वरकी सत्तासे सब प्रकाश करते हैं. ॥ ११ ॥ तिन भगवान्को नमकार है। वासुदेवका ध्यान करते हैं जिनकी दुर्जय मायासे मुझको सब जीव जगद्गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥ उस ईश्वरके सन्मुख खड़े होनेसे जिसको लाज

आवै ऐसी मायासे मोहित दुर्बुद्धिवाहले हमसरीखे ब्रह्मादिक 'यह मेरा है, यह हम हैं' ऐसी श्लाघा करते हैं ॥ १३ ॥ सबका उत्तर ब्रह्मदेव कहते हैं कि-द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव, यह सिद्धान्तसे विचारे हैं । तौ हे ब्रह्मन् ! वासुदेवसे परे कुछ नहीं हैं॥१४॥वेद नारायणको कहते हैं,सब देवता नारायणके अंशसे जन्मे हैं, सब लोक नारायणका वर्णन करते हैं, सब यज्ञ नारायणका वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥ योगशास्त्र नारायणका वर्णन करते हैं, तप नारायणको कहता है, ज्ञान नारायणको कहता है, सबकी गति नारायणही है॥१६॥जीवके द्रष्टा जो ईश्वर, सर्वान्तर्यामी,सर्व व्यापी, उनके रचे हुये पदार्थ मैं रचू उन्होंने मुझको रचा है, उनके कटाक्षसे मैं प्रेरित हूं ॥ १७ ॥ आपके निर्गुण ईश्वरमें सत्त्व,रज, तम ये

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः॥१४॥नारायणपरा वेदा देवा नारायणांगजाः ॥ नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५ ॥ नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥१६॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ॥ सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ॥ बध्नंति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥ १९ ॥ स एष भगवाँल्लिंगैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ॥ स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥ कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया॥ आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥ २१ ॥ कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः॥ कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२ ॥

।२।

तीन गुण उत्पत्ति, पालन, संहारमें मायासे ग्रहण करते हैं ॥ १८॥ कार्य कारण कर्ता, अपनेमें द्रव्य ज्ञान क्रियाके आश्रयी गुण नित्य मायावी पुरुषको बंधन करते हैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! सो ये भगवान् तीन गुणोंसे सबके और मेरे ईश्वर हैं,उनके ब्राह्मणोंकोही उनकी गति देखनेमें आती है॥२०॥ काल कर्म स्वभाव अपनी मायासे मायाके स्वामी आत्मामें अपनी इच्छासे प्राप्त विविध प्रकारसे होनेकी इच्छासे ग्रहण करते हैं ॥ २१ ॥ कालसे गुणोंका उलट पलट होताहै स्वभावसे औरका और रूप होजाता है,पुरुष जिनके स्वामी ऐसे कर्मसे महत्तत्त्व होय है ॥२२॥

रज सत्त्वसे बढ़ेहुए महत्तत्त्वसे, द्रव्य ज्ञान क्रियात्मक तम प्रधान होता है ॥२३॥ उसीको अहंकार कहते हैं, उसमें तीन प्रकारके विकार होते हैं। वैकारिक, तैजस, तामस ये तीन भेद होते हैं हे प्रभो! द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति हुई ॥२४॥ सब भूतोंका आदि तामस जब विकारको प्राप्त हुआ तब आकाश हुआ उसकी मात्रा शब्द गुण है, जो द्रष्टा और दृश्य इनका जतानेवाला है ॥२५॥ जब आकाश विकारको प्राप्त हुआ तब स्पर्श गुणवाला पवन हुआ वह आकाशका शब्दगुणवाला होनेसे शब्दवान्, और ओज, सह, बल, प्राण इनका कारण हुआ ॥२६॥ काल कर्मके

महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् ॥ तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥२३॥ सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्व
न्समभूत्त्रिधा ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥ द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥ तामसा
दपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ॥ तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिंगं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५ ॥ नभसोऽथ विकुर्वाणाद
भूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥२६॥ वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः ॥
उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥ २७ ॥ तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदंभो रसात्मकम् ॥ रूपवत्स्पर्शवच्चांभो
घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥ विशेषस्तु विकुर्वाणादंभसो गन्धवानभूत् ॥ परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥
वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोश्विवह्नींद्रोपेंद्रमित्रकाः ॥३०॥ तैजसात्तु विकुर्वाणादिंद्रि
याणि दशाभवन् ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ ॥ श्रोत्रं त्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेंढ्रांघ्रिपायवः ॥३१॥

स्वभावसे जब विकारी वायु हुआ तब रूपके सदृश स्पर्श, शब्दकी सदृश तेज, उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ तेज जबविकारी हुआ तब रस आत्मा जल हुआ रूपकी सदृश, स्पर्शकी सदृश, जल शब्दत् हुआ, जल जब विकारको प्राप्त हुआ, तब जलसे पृथ्वी हुई, सबमें व्याप्त रस स्पर्श रूप गुण हुये ॥ २८ ॥ २९ ॥ विकारी आत्मासे विकारी दश देव हुये दिशा, पवन, सूर्य, प्रचेताअश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, ब्रह्मा ये दश हुये ॥ ३० ॥ तैजस अहंकार जब विकारी हुआ तब दश इन्द्रियें हुईं। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, बुद्धि, प्राण, तैजस, अहंकारसे हुए।

कान, त्वचा, नाक, नेत्र, जीभ, वाणी, भुजा, लिंग, गुदा, चरण ये हुये ॥३१ हे ब्रह्मवित्तम! जब यह भूत, इन्द्रिय, भुजा, मन, गुण न मिले तब शरीर रचनेमें समर्थ न हुये ॥३२॥ तब भगवत्की शक्तिसे प्रेरित सब पस्पर मिलकर सत् असत्को ले समष्टि सब (ब्रह्माण्ड) व्यष्टि (एक २ शरीर) युक्त विश्व रचा ॥३३॥ जब असंख्य वर्ष होगये तब यह अण्ड जलमें पडारहा, फिर काल कर्म स्वभावमें स्थित होकर सदा जीनेवाले परमात्मा अचेतन जीवको जिवाते भये ॥ ३४ ॥ सो यह पुरुष सहस्र उष, चरण भुजा, नेत्र और सहस्र शिर वाले हुए ॥ ३५ ॥ जिसकी

यदैतेऽसंगता भावा भूतेंद्रियमनोगुणाः ॥ मदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ३२ ॥ तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ॥ सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रांते तदंडमुदकेशयम् ॥ कालकर्म स्वभावस्थो जीवो जीवमजीवयत् ॥ ३४ ॥ स एष पुरुषस्तस्मादंडं निर्भिद्य निर्गतः ॥ सहस्रोर्वंघ्रिबाह्वक्षः सहस्रानन शीर्षवान् ॥ ३५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयंति मनीषिणः ॥ कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥ ३६ ॥ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ॥ ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥ ३८ ॥ ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तन द्वयात् ॥ मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९ ॥ तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ॥ जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां तु तलातलम् ॥ ४० ॥

लेश मात्र चेष्टासे बुद्धिमान् लोकोंको कल्पना करतेहैं, कमरसे नीचे सात लोक हैं और सात लोक जंघादिकके ऊपर हैं ॥ ३६ ॥ परब्रह्म पुरुषका मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजा, ऊरु वैश्य और पांवसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं ॥३७॥ भूलोक पगमें, भुवर्लोक नाभिमें, स्वर्गलोक हृदयमें, और उरमें महर्लोक है ॥ ३८ ॥ ग्रीवामें जनलोक, स्तनोंमें तपलोक, मस्तकमें सत्यलोक है। ब्रह्मलोक वैकुण्ठ सनातन है इस ब्रह्माण्डमें नहीं है ॥ ३९ ॥ उनकी कमरमें अतल लोक, विभुके ऊरुमें वितल लोक, जानुमें शुद्ध सुतल लोक, जंघामें तलातल लोक ॥ ४० ॥

गुल्फोंमें महातललोक, एँड़ियोंमें रसातल और पादके तले पाताल लोक है। ऐसे लोकमय पुरुष ईश्वर हैं ॥ ४१ ॥ पांवमें भूर्लोक, नाभिमें भुवर्लोक, और स्वर्ग लोक मस्तकमें है ॥ ऐसे भी, लोकोंकी कल्पना है ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीविराट्सृष्टिहरिलीलाविराड्रूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—इस षष्ठम अध्यायमें, कहीं विराट् विभूति ॥ नरसूक्तार्थ बखानिहों, सकल विश्व करतूति ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले कि अब विराट् पुरुष की विभूति वर्णन करते हैं। अस्मदादिकोंकी वाणीके स्वामी वह्नि उन ईश्वरका मुख उत्पत्ति स्थान है। इनमें चार बातें हैं। बाणी तो इन्द्रिय है, वरुण देवता, मुख उत्पत्ति स्थान है, रसका स्वाद लेना यह उसका विषय है, यह बात सब स्थानोंमें जानलेना। ग्रन्थ विस्तारके कारण अधिक नहीं लिखा है। गायत्री आदि सात छन्द जो हैं सो अपने लोगोंकी सप्त

महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ॥ पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यांभुवर्लोकोऽस्य नाभितः॥स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्विती० जननिरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छंदसां सप्त धातवः ॥ हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ १ ॥ सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ॥ अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥ २ ॥ रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ॥ कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः॥३॥तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥ ४ ॥ रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः केशश्मश्रुनखान्यस्यशिलालोहाभ्रविद्युताम् ॥ ५ ॥

त्वचा हैं। जो देवताओंके निमित्त दिया जाय वह हव्यहै। जो पितरोंकेलिये दियाजाय वह अन्न कव्य है इस अन्नकी सब रस और अमृतकी जिह्वा कारणहै ॥ १ ॥ हमारे सबके प्राण वायु उत्तम क्षेत्र उनकी नाकहै जिसमें मोद प्रमोद जाननेवाली घ्राणेन्द्रिय है। अश्विनीकुमार देवताहैं सब औषधी विषयहैं॥ २ ॥रूप और रूपप्रकाशक तेज इन परमेश्वरके चक्षु इन्द्रिय स्थान है। स्वर्ग और सूर्य इनका स्थान परमेश्वरके नेत्रगोलकहैं। दिशा और तीर्थ इनका स्थान परमात्माके कर्ण अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके अधिष्ठान हैं और आकाश और उसका सूक्ष्मरूप शब्द इन दोनोंका स्थान ईश्वरका श्रोत्र इन्द्रिय॥ ३ ॥वस्तुके सारांश, स्थान ईश्वरका शरीरहै, स्पर्श गुणवाला वायु ईश्वरकी त्वचा है। ४ ।सब वृक्ष ईश्वरके रोमहैं जिनसे यज्ञ पूर्ण होतेहैं। शिला,

लोह मेघ बिजली केश मूछ नखहैं॥५॥क्षेमकारी लोकपाल हरिकी बाहुहैं।क्षेमी ईश्वरका पाद रखना भूर्भुवः स्वर्ग लोक है॥६॥सबकाम ववर हरिके चरण स्थानमें;है,ब्रह्मा जिसका देवता ऐसे विश्वके मेघ शुक्र हैं॥७॥ईश्वरकी शिश्न उपस्थ वह है जो संतानार्थ भोग करतेहैं जिसमें आनन्द सुख और नहीं है हे नारद!मल त्यागका यम मित्र इनका पायु इन्द्रिय गुदा है तिरस्कार अधर्म अज्ञान यह भगवानकी पीठ है॥८॥९॥ सरोवर व नदी ईश्वरकी नाडियें हैं, समस्त पर्वत ईश्वरके हाथ हैं, प्रधान रस समुद्र है जिसमें जीवोंका नाश है॥१०॥वह उस महापुरुषका पेट है, हृदयमनका

बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ विक्रमो भूर्भुवस्स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥ ६ ॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरणमास्पदम् ॥ अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ ७ ॥ पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानंदनिर्वृतेः ॥ पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ॥ ८ ॥ हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ॥ नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥९॥ अव्यक्तरससिंधूनां भूतानां निधनस्य च ॥ १० ॥ उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ॥ ११ ॥ विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥ अहं भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः ॥ १२ ॥ सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥ गंधर्वाप्सरसो यक्षा रक्षो भूतगणोरगाः ॥१३॥ पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणाः द्रुमाः ॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ॥ १४ ॥ ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ १५ ॥

स्थान है, धर्मका मेरे तुम्हारे, सनकादिकको, महादेवजीका ॥११॥ शेष ज्ञानका और सतोगुणका जो परमेश्वरका चित्त है सो स्थान है। हम तुम शिव ये सबमुनि लोग जो तुमसे पहलेजन्मे हैं ॥१२॥ देवता,असुर,नर, नाग,पक्षी,मृग, सर्प, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष,राक्षस,भूतगण, उरग, ॥१३॥ पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और अनेकप्रकारके जितने जीव हैं जल, थल, और आकाशके॥१४॥नवग्रह,अश्विन्यादि नक्षत्र, प्रलयके समय जो पूछल तारे होतेहैं वह, और विजली, गर्जनशब्द, भूत, भविष्यत्, वर्तमान और जो कुछ है यह सब पुरुषपरमेश्वर स्वरूपही हैजो

R3

सब जीवमात्रके शरीररूप पुरियोंमें बसे वह पुरुष ईश्वर है ॥१५॥ उन ईश्वरसे व्याप्य यह विश्व है कि वितस्ति भरमें विराजते हैं। सूर्य अपने मंडलको प्रकाशित करता हुआ जैसे बाहर भीतर प्रकाश करता है ऐसेही विराट् देहको प्रकाश करता हुआ ब्रह्मांडको ईश्वर प्रकाशित करता है ॥१६॥ ऐसे इन विराट् रूपमें बाहर भीतर पुरुष तपते हैं भयरहित मोक्षके ईश्वरने मरणधर्मक अन्नकर्म फलको प्रगट किया ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन्! ईश्वर पुरुषकी महिमा बड़ी कठिन है, ईश्वर पुरुषके पादमें सब जीवोंकी स्थिति है। ऐसा जानो ॥१८॥ क्षेमदायक, अभयदायक अमृत, त्रिलोकीके शिरपर रक्खा, अथवा क्षेमी, अभयी, मरण जहां नहीं ऐसी त्रिपाद विभूति त्रिलोकी शिरपर रक्खी। त्रिपाद विभूति बाहर है,

तेनेदमावृतं विश्वं वितस्ति मधितिष्ठति॥स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ॥ १६ ॥ एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यं तर्बहिः पुमान् ॥ सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥ १७ ॥ महिमैष ततो ब्रह्मन्पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ॥१८॥ अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥ पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः ॥ अंतस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥ १९ ॥ सृती विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ॥ यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥ २० ॥ यस्मादंडं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः ॥ तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥ २१ ॥ यदाऽस्य नाभ्यां नलिनादहमासं महात्मनः ॥ नाविदं यज्ञसंभारान् पुरुषावयवादृते ॥ २२ ॥ तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ॥ इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २३ ॥

जो नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंके स्थान हैं आश्रम हैं ॥ १९ ॥ इस त्रिलोकीके भीतर गृहस्थी ब्रह्मचर्य नहीं करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका घरमेंही सदा मोक्ष होती है, अनेक प्रकारसेसब ओरसे जिनकी पूजा होय वह ईश्वर शिक्षाशास्त्र और एक विना शिक्षाका शास्त्र जिसमें दोमार्ग प्रगट किये; विद्या अविद्या रची. परन्तु ईश्वर दोनोंके आश्रित हैं; अविद्या बंधनको करनेवाली है और विद्या मुक्तिकी दाता है ॥ २० ॥ भूत इन्द्रियसे गुणात्मक विराट् ब्रह्माण्ड हुआ. जिससे अनेक द्रव्य हुए इस विश्वको सूर्यकी नाईं ईश्वरने तपाया ॥ २१ ॥ जिस समय व्यापक ईश्वरकी नाभिके कमलसे मैं उत्पन्न हुआ, तब पुरुषके अवयवके विना यज्ञकी कुछ सामग्री न देखा ॥ २२ ॥ तिनके यज्ञके

पशु, वनस्पति,कुशा, और देवताओंके यजन योग्य स्थान रचे, और जिसमें बहुत गुण ऐसा समय रचा ॥ २३ ॥ सब पात्रादि रचे, औषधी, घृतादिक, मधुरादिक, सुवर्णादिक धातु, मृत्तिका, जल,ऋग्वेद,यजुर्वेद,सामवेद, अथर्वणवेद, चार ब्राह्मण;और जिसमें हवन करै वह कर्म रचा, हे सत्तम॥२४॥ज्योतिष्टोमादिनाम सुवर्णादि दक्षिणा,एकादश्यादि सब व्रत; देवताओंके नाम सबके निमित्त बौधायनादि कर्म पद्धति संकल्प अनुष्ठानकी क्रियातंत्र ॥ २५ ॥ विष्णुक्रमादि गति देवताओंका ध्यानादि मति प्रायश्चित्त जो करना उनको भगवान्में समर्पण करना पुरुषके अवयवोंसे मैंने सब सामग्री रची॥२६॥पुरुषके अवयवोंकी ऐसे सब सामग्रीसे पूजनीय परमात्माने पुरुषकायज्ञ किया ॥ २७॥उनके पीछे प्रजापति

वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥ २४ ॥ नामधेयानि मंत्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ॥ देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तंत्रमेव च ॥२५॥ गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् ॥ पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥२६ ॥ इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम् ॥ तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥२७॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ॥ अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥ २८ ॥ ततश्च मनवः काल ईजिरे ५९ ऋषयोऽपरे ॥ पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥ २९ ॥ नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ॥ गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ ३० ॥ सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३१ ॥ इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि ॥ नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥ ३२ ॥

नौ,यह तुम्हारे भ्राता सावधान होकर इन्द्रादि रूप, अपने आपही पुरुषका पूजन करने लगे ॥ २८ ॥ उसके पीछे अपने समयमें सब मनुष्य सब ऋषि और सब पितर, विबुध, दैत्य, मनुष्य यज्ञोंसे समर्थ जनार्दनका यज्ञ किया ॥ २९ ॥ यह सब विश्वभगवान् नारायणमें स्थित है इस सृष्टिके रचनेकी आदिमें बहुत मायाके गुण किये आप सब गुणोंसे पृथक् रहे ॥ ३० ॥ उसी परमात्माकी आज्ञासे संसारको मैं रचताहूं, और ईश्वरके वश होकर शिव संहार करैहैं पुरुष विष्णुरूप होकर विश्वकी रक्षा करते हैं तीनशक्तिधारी मायाधारी ईश्वर है ॥ ३१ ॥ हे नारद ! जैसे हमसे तैंने बूझा उसी प्रकार मैंने कहा। भगवान्के विना सत् असत् आत्मक इस विश्वमें कुछ भी नहीं है ॥ ३२ ॥

हे अंग! हे नारद! मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती, और मनकी गति कभी मिथ्या नहीं होती। मेरी इन्द्रियें कभी खोटे मार्गमें नहीं जातीं, क्योंकि निश्चय करके अत्यन्त भक्तिसे हृदयमें हरिको धारण किया है ॥ ३३ ॥ सो हम वेदमय, तपोमय प्रजापतियोंका पति सबसे वन्दित सुन्दर योगमें स्थित होकर तप करते हैं परन्तु मैं अपने सृजन करने हारेको अबतक नहीं जानता ॥ ३४ ॥ शरणागतके रक्षक, संसारके नाशक, स्वस्तिदाता, मंगलदायक, नारायणके चरणके हम आश्रित हैं । जो भगवान् अपनी मायाका विस्तार आपभी नहीं जानते, जिस प्रकार आकाशका अंत आकाश नहीं जानसकता, इसी प्रकार औरोंकी तौ क्या सामर्थ्य है, जैंसे आकाशके पुष्पको न देखना कुछ सर्वज्ञताका नाश नहीं करता

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ॥ न मे हृषीकाणि पतंत्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥ ३३ ॥ सोऽऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवंदितः पतिः ॥ आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तन्नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥ ३४ ॥ नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ॥ यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वांतमथापरे कुतः ॥ ३५ ॥ नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ॥ तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥ ३६ ॥ यस्यावतारकर्माणि गायंति ह्यस्मदादयः ॥ न यं विदंति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥ ३७ ॥ स एष आद्यः पुरुषः कल्पेकल्पे सृजत्यजः ॥ आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽऽत्मानं संयच्छति च पाति च ॥ ३८ ॥ विशुद्धं केवलं ज्ञानंप्रत्यक्सम्यगवस्थितम् ॥ सत्यं पूर्णमनाद्यंतं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥ ३९ ॥

॥ ३५ ॥ जिसकी गतिको न हम, न तुम सब, न शिवजानें. फिर देवताओंकी तौ क्या सामर्थ्य है उनकी मायासे मोहित बुद्धिवाले सब इस मायाके रचे हुए विश्वको अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन करते हैं ॥ ३६ ॥ जिन ईश्वरके अवतारोंके कर्म (अस्मदादिक) अर्थात् हम सब गाते हैं परन्तु सिद्धांतसे उनको नहीं जानतें उन त्रिलोकनाथके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ ३७ ॥ सो अजन्मा पुरुष ईश्वर सबसे प्रथम है, । वही कल्प२ में विश्व रचता कर्ता अधिकरण साधन कर्म सब रूप आपही है, वही संहार करताहै, वही रक्षा करताहै ॥ ३८ ॥ विषय आकार रहित है जलशायी है ज्ञानस्वरूप है सबका अन्तर्यामी है, संदेहादिरहित है । स्थिर है सत्यरूप है ।

सबमें पूर्ण है।आदि अंत रहित है।मायाकृत गुण जिसमें नहीं हैं सदा रहैंहै । ईश्वरके विना और कोई नहीं है॥ ३९ ॥ प्रसन्न आत्मा मन इन्द्रियें अतःकरण होते हैं । तब मुनिगण ईश्वरको जानते हैं।हे नारद!जब खोटेलोग खोटीतर्क करतेहैं तब सब ईश्वरका ज्ञान नष्ट होकर आदि पुरुष अन्तर्ध्यान हो जाते हैं ॥ ४० ॥ परब्रह्मका प्रथम अवतार पुरुष है । काल स्वभाव सत् असत् मन महाभूत अहंकार मन आदि इन्द्रियें विराट् स्वरूप स्थावर जंगम यह सब परमेश्वरके अवतार हैं ॥४१॥ हम महादेव यज्ञ प्रजेश्वर दक्षादिक तुम सब स्वर्लोक पालक, खगलोक पालक, मनुष्यलोक पालक, तललोक पालक,सब ईश्वरकी विभूति हैं ॥ ४२ ॥ गन्धर्व,विद्याधर, चारण, ईश, यक्ष, राक्षस, उरग, सर्पोंके

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेंद्रियाशयाः॥यदा तदैवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम्॥४०॥आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ॥ द्रव्यं विकारो गुण इंद्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥ ४१ ॥ अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ॥स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥४२॥ गंधर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ॥ ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येंद्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः॥अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्मांडयादोमृगपक्ष्यधीशाः॥४३॥यत्किं च लोके भगवन्महस्वदोजस्सहस्वद्बलवत्क्षमावत्॥श्रीह्री विभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥४४ ॥ प्राधान्यतो यान्नृष आमनंति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ॥ आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भा०म० द्वि० विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थ वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

125

स्वामी,जो ऋषियोंसे बडे हैं। पित्रीश्वर, दत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवेन्द्र और प्रेत, पिशाच, भूत,कुष्माण्ड, जलजन्तु,मृग, पक्षियोंके ईश इस ब्रह्माण्ड कटाहमें जो कुछ है सो स्वरूप सब परमेश्वरका है ॥ ४३ ॥ जो कुछ इस लोकमें है सो भगवान्के महा पराक्रम बलकी नाईं क्षमावत् श्रीलज्जा,संपदा और ईश्वरके समान जो है वह जो रूपवान है, जो विनारूपवान है यह सब परम तत्त्व है ॥ ४४ ॥ प्रधानतासे जिन्हें ऋषिलोग नमस्कार करते हैं, वह लीलावतार पुरुषब्रह्मके हैं, वह कानोंका मल दूर करनेवाले हैं । वह सुन्दर अब हम तुमसे कहेंगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां विराट्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–इस सप्तम अध्यायमें, जो हरि किये विहार ॥ भिन्न भिन्न वर्णन करों, चौबीसों अवतार ॥७॥ ब्रह्माजी बोले कि, अब वाराह अवतार कहते हैं। पृथ्वीतल उद्धारके कारण श्रीवाराहजीअनंत भगवान्ने वाराहरूप धारण किया। जब हिरण्याक्षदैत्य महासमुद्रमें आया तब उसको मार धरतीको डाढ़पर रखलाये। जिसप्रकार पाकशासनने पर्वतोंको विदार डाला था, इसी रीतिसे भगवान् वाराहजीने हिरण्याक्षका उदर दाँतोंसे फाडडाला॥ १॥ अब यज्ञावतार कहतेहैं रुचि प्रजापतिकी आकूतीनाम स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका सुयज्ञ नाम प्रसिद्ध हुआ. वह सुयज्ञ अपनी सुदक्षिणा नाम स्त्रीसे सुयमनामक देवताओंको उत्पन्न करता हुआ। उसीने इन्द्र होकर तीनों लोकोंकी महापीडाका नाश किया. जो पहिले सुयज्ञ नामक था

ब्रह्मोवाच ॥ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनंतः ॥ अंतर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाऽद्रिमिव वज्रधरो ददार॥ १॥ जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ॥ लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ २ ॥ जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥ ऊचे ययाऽऽत्मशमलं गुणसंगपंकमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥ अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्टो दत्तो मयाहमिति यद्भगवान्स दत्तः ॥ यत्पादपंकजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः॥ ४ ॥

परंतु मातामहने हरिनाम रक्खा. देवोंकी उत्पत्ति लोकत्रयकी पीडा हरना उनका काम है यह सब अवतारमें और अवतारका कर्म सब स्थानोंमें जान लेना ॥ २ ॥ अब कपिल अवतार कहते हैं । हे नारद ! कर्दमजीके घर देवहूतीसे नौ भगिनी सहित कपिलदेवजीने अवतार लिया और अपनी माताको सांख्यशास्त्र-अर्थात् ब्रह्मविद्याका उपदेश किया । जिस ब्रह्मविद्यासे जो जीव मलीन करनेवाले संसारकीचको इसी जन्ममें धोकर महात्मा कपिलदेवजीकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ अब दत्तात्रेय अवतारका वर्णन करते हैं, जब अत्रिऋषिने पुत्रकी चाहना की तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर कहा "मैं स्वयंही तुम्हारे घर जन्म लूंगा" इसकारण दत्तात्रेय नामसे हृषीकेशने अवतार लिया, जिनके चरणपंकजकी रजसे

निर्मल आत्मा यदु, हैहयादिक, ऐहिक, आमुष्मिक, भुक्तिमुक्तिरूपा योगसिद्धिको प्राप्त हुये ॥४॥ अब सनकादिक अवतारका वर्णन करते हैं. पहिले अनेक लोक रचनेकी इच्छासे बहुत तप किया, तपके प्रभावसे परमेश्वरने सनकादिकका अवतार लिया पहिले कल्पके प्रलयमें नष्ट आत्मतत्त्वको सुंदरतासे वर्णन किया । जिनके कहनेमात्रसे मुनिलोगोंने अपने आपमें साक्षात् परमात्माको देखा ॥ ५ ॥ अब नर नारायण अवतारकी कथा कहते हैं । धर्मकी स्त्री दक्षसुता मूर्तिनामसे प्रसिद्ध थी । उसमें अपने तपके प्रभावसे नर नारायणहुए । उनका तप भंग करनेको कामसेना नामक अप्सरा उनके पास गई, परन्तु नर नारायणके निकट अपनी समान उवशी आदि स्त्रियोंको देख अपने रूपका अभिमान

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुस्सनोऽभूत् ॥ प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं
सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥
दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनंगपृतना घटितुं न शेकुः ॥ ६ ॥ कामं दहंति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या
रोषं दहंतमपि ते न दहंत्यसह्यम् ॥ सोऽयं यदंतरमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७ ॥
विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरंति राज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ॥ तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः
स्तुवंति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥

भूलगई और ईश्वर नर नारायणका व्रतभंग न करसकी ॥ ६ ॥ महासुकर्मकारी त्रिपुरारीने, क्रोध दृष्टिसे कामदेवको भस्म किया. परन्तु देहके जलानेवाले क्रोधको भस्म न करसके थे सो यह रोष नर नारायणके हृदयमें प्रवेश करनेसे बहुत डरा फिर कुसुमायुध उनके हृदयमें कैसे प्रवेश करसके ? ॥ ७ ॥ अब ध्रुव अवतार कहते हैं, उत्तानपाद नरनाथके गृहमें ध्रुवजीने जन्म लिया, एक समय ध्रुवने पिताके अंकमें बैठनेको मन किया तब निकट बैठीहुई सुरुचिविमाताके कहे कटुवाक्य बाणोंसे विद्ध होकर बालक ध्रुवजी तपके अर्थ काननमेंचलेगये और स्तुति करनेसे प्रसन्न हो हरिने ध्रुवको ध्रुवपद दिया. स्वर्गवासी उत्तानपाद राजर्षिके समीप भृगुआदिक ऊपरसे, और नीचेसे सप्तर्षि जिनकी स्तुतिकरते हैं ॥८॥

अब पृथु अवतार कहते हैं । एक समय राजा वेनके पाखण्ड अवलम्बनसे धर्म नष्ट होगया तब ब्राह्मणके वाक्यरूप वज्रसे उसका पुरुषार्थ और सब ऐश्वर्य नष्ट होगया और नरकमें गिरा, तब मुनियोंकी प्रार्थनासे भगवान्ने पृथु होकर रक्षा करी. जगत्में ❋ पुत्र नाम विख्यात किया । महात्मा पृथुने पृथ्वीको दुहा और सब वस्तु निकाली ॥ ९ ॥ अब ऋषभअवतारका वृतान्त सुनो, यह परमेश्वरकी नाभिके पुत्र सुदेवीपुत्र ऋषभदेवजी हुए । समानद्रष्टा जडकी नाईं बन योगाभ्यास किया. जिनके पारमहंसपदको ऋषियोंने नमस्कार किया. स्वस्थ इन्द्रियें जिनकी शांति सबका संग त्याग ऐसे ऋषभदेवजी हुए, जिनसे जैनमत प्रगट हुआ ॥ १० ॥ अब हयग्रीव अवतारका वर्णन सुनो ।

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतंतम् ॥ त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि
वसुधा सकलानि येन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् ॥ यत्पारमहंस्यमृषयः
पदमामनंति स्वस्थः प्रशांतकरणः परिमुक्तसंगः ॥ १० ॥ सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनी
यवर्णः ॥ छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११ ॥ मत्स्यो युगांतसमये
मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतुः ॥ विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह
वेदमार्गान् ॥ १२ ॥ क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ॥ पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार
गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकंडूः ॥ १३ ॥

मेरे यज्ञमें हयग्रीव अवतार भगवान् हुए । साक्षात् यज्ञपुरुष, सुवर्णसदृश वर्ण, वेदमय, यज्ञमय, सर्व देवतामय, वेदरूप सुन्दरबाणीसे अर्थात् वेदरूपा नामके श्वाससे हुए ॥ ११ ॥ अब मत्स्यावतार कहते हैं । प्रलयकालके समयमें वैवस्वत मनुने पृथ्वीमय सब जीवोंका आश्रयरूप मत्स्यभगवान्को देखा. महाभयानक जलमें मेरे मुखसे गलित वेदमार्गोंको लाकर हर्षसे प्रलयके जलमें विहार किया ॥ १२ ॥ अब कच्छपावतार कहते हैं । सत्ययुगमें क्षीरसमुद्रमें अमृतके लिये देवता और दानवयूथ मथन करने लगे । तब आदिदेव भगवान्ने कच्छपरूप धारण कर मन्दराचल पर्वतको पीठपर धर ज्यों२घुमातेथे त्यों२ कूर्म महाराजका खुजाहट जाता था और सुख प्राप्त होता था । जब निद्राके वशहो बहुतसे

❋ "पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा "॥

श्वास छोडे उस दिनसे आजतक समुद्रमें विलास करते हैं॥१३॥अब नृसिंह अवतारका वर्णन सुनो। सुरगणोंको महाभयभीत देख नरसिंह रूप अतिघोर धारण किया, कि महाभयंकर रूप,टेढ़ी२भ्रुकुटि, महाकालकी समान भयानक डाढ़ें, नेत्र लाल २अग्निवत् प्रदीपमान, शीघ्र गदा लेकर निकट आये हिरण्यकशिपुके हृदयको महाकराल नखोंसे फाडडाला। अब हरि अवतारका वर्णन करते हैं–त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें महाबलवान् ग्राहने गजेंद्रका पांव पकडकर जलमेंको खैंचा।तब यूथपति गजनाथ व्याकुल हो कमल फूल शुण्डमें ल यह कहने लगा।हे आदि पुरुष!हे दीन बन्धु!हेत्रिलोकीनाथ ! हे पुण्ययश ! हे श्रवणमंगलनामधेय! रक्षा करो ॥ १४ ॥ १५॥श्रीहरि शरणागतवत्सल, गजेंद्रकी पुकार सुनकर महाबली

त्रविष्टपोरुभयहा स नृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ॥ दैत्येंद्रमाशु गदयाऽभिपतंतमारादूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरंतम् ॥ १४ ॥ अंतःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरंबुजहस्त आर्तः ॥ आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेयः॥ १५ ॥ श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ॥ चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥ १६ ॥ ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथाधियज्ञः ॥ क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्ञामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ॥ १७ ॥ नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखां धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ॥ यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमंग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥ १८ ॥

चक्रायुध लिये गरुडपर बैठ तत्काल आप चक्रसे मगरका मुख काट शुण्ड पकड कृपा करके गजका उद्धार किया ॥ १६ ॥ आपसे अब वामन अवतार कहते हैं। गुणोंमें सबसे बडे, अदितिके द्वादश पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे वामनजी हुए, जिन्होंने तीनों लोकोंको दोनों पगोंसे नाप लिया। यज्ञ भगवान्‌ने पृथ्वी: वामनरूप धारणकर बलिसे तीन पदके मिषसे लेली क्योंकि धर्ममार्गमें वर्तमान समर्थको ईश्वर मांगनेकी वृत्तिके विना चलायमान न कर सके॥१७॥हे नारदजी!श्रीभगवान्‌के चरणोंका धोवन गंगाजल बलिने शिरपर धारण किया, राज्यप्राप्तिके लिये नहीं, क्योंकि राजा

बलिने जो प्रतिज्ञाकी थी, उससे अधिक इच्छा करनेपर अपनी देह और शिरमें हरिका तीसरा चरण पूरा किया ॥ १८ ॥ हंस अवतार कहते हैं। हे नारद ! हंस भगवान्ने अत्यन्त भक्तिभावसे प्रसन्न हो ज्ञानयोग भागवत आत्मज्ञानका प्रकाशक तुमसे कहा जिसको वासुदेवके शरणागत भक्त विना परिश्रम प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ अब मन्वन्तर अवतार कहते हैं। दशों दिशाओंमें जिसकी अप्रतिबन्ध आज्ञा वर्तनेसे सुदर्शनचक्र मन्वंतरोंमें मनुवंशधारी भगवान्ने धारण किया और दुष्ट राजाओंको दंड दिया और त्रिलोकीमें अपने चरित्रोंको प्रकाशकर अपनी सुन्दर कीर्तिका विस्तार किया ॥ २० ॥ अब धन्वन्तरिका वर्णन सुनो । धन्वन्तरि भगवान्ने अपनी कीर्तिसे

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ॥ ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासुदेव शरणा विदुरंजसैव ॥ १९॥ चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वंतरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ॥ दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वंतरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हंति ॥ यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥ क्षत्रं क्षयाय विधिनो पभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ॥ उद्धंत्यसाववनिकंटकमुग्रवीर्यस्त्रिस्सप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ॥ तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकंधर आर्तिमार्च्छत् ॥ २३ ॥

अपने नामसे महारोगियोंका रोग दूर किया और यज्ञमें अमृत असुरोंसे लाये । लोकमें वैद्यकशास्त्र आयुर्वेद अवतार लेकर विस्तार सहित मनुष्योंको सिखाया ॥ २१ ॥ अब परशुराम अवतार कहते हैं । दैवसे प्राप्त ब्राह्मणद्रोही, वेदमार्गत्यागी, नरकभागी, धरतीपर कण्टक, क्षत्रियोंके क्षयके अर्थ उग्रवीर्य धार तीक्ष्ण धारके परशेसे इक्कीसबार क्षत्रियोंको मार २ कर पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान करदी ॥ ॥ २२॥ अब श्रीरामचन्द्र अवतार वर्णन करते हैं । हमारे ब्रह्मादिकोंके ऊपर प्रसन्न हो पन्द्रह कलाका अवतार धार कलाके ईश्वर ईक्ष्वाकुवंशियोंमें श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हो राजादशरथकी आज्ञामान सीता लक्ष्मण सहित वनको गमन किया जिनसे विरोधकर लंकानाथ रावण विनाशको

प्राप्तहुआ॥२३॥सीताके विरहमें क्रोधसे लाल२नेत्र करके समुद्र तीक्ष्ण तेजके ताप और भयके मारे थर२काँपने लगा ❋॥२४॥युद्धमें रावणके वक्ष स्थलके स्पर्शसे इन्द्रका ऐरावत हाथीघबड़ा गया और उसके दांतोंके टुकडे२हो गये थे इसी गर्वसे राक्षसाधिपति दशशीश दशों दिशाओंमें निर्भय विचरता फिरता था। उस सीताहारी राक्षसेन्द्रके वर्द्धित महागर्वको शीघ्र प्राणसहित मर्य्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने नाश किया॥२५॥अब श्रीकृष्ण अवतारका वर्णन करते हैं।असुरोंके अंशी राजाओंके समूहसे दुःखित भूमिक्लेश नाशकर,बलदाऊ सहित कृष्ण जिनके केश,किसी मनुष्यसे जिनका

यस्मा अदादुदधिरूढभयांगवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः॥ दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः॥२४॥ वक्षस्स्थलस्पर्शरुग्णमहेंद्रवाहदंतैर्विडंबितककुब्जुष ऊढहासम्॥ सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये॥ २५ ॥भूमेः सुरेतरवरूथविमार्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्ण केशः॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबंधनानि॥ २६ ॥ तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः॥ यद्रिंगताऽन्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम्॥२७॥

मार्ग नहीं जाना जाय,वह परब्रह्म श्रीकृष्णावतारधारणकर अपनी महिमाके प्रगट करनेवाले कर्म करेंगे।कोई यह तर्क न करै कि,केशमात्र अवतारहैं क्योंकि भारका उतारना क्या बड़ा कार्य है?हमारे केश हैं।यह प्रगट करनेके लिये और राम कृष्ण वर्ण सूचनाके लिये ऐसा लिखाहै ❋॥२६॥ जिन्होंने बालकपनमें पूतनाको मारा और जब तीन मासके हुए तब शकटासुर, बकासुरका संहार किया, जब घुटनों चलने लगे तब

❋ **शंका**-किसी शास्त्र पुराणमें यह नहीं सुना कि,त्रिपुरासुरके पुरको जलानेकी इच्छा शिवजीने की तब शिवको पुरके सन्मुख जानेके लिये समुद्रने मार्ग दिया.इसी प्रकार नारदसे ब्रह्माने कहा कि,रामचंद्रको लंकामें जानेके लिये सागरने मार्ग दिया,जो तीनों पुरके जलानेकी इच्छा की और महादेवको समुद्रने मार्ग दिया यह बडी भारी शंका है।

उत्तर-शंकरके चरणोंमें शंकरके भक्तोंका अधिक जो प्रेम है वही समुद्र है.उसी प्रेमसमुद्रमें शिव सर्वदा मतवाले रहते हैं, जब कभी भक्तोंके ऊपर शिवजी क्रोध करते हैं तब प्रेमरूपी समुद्र शिवके भक्तोंके पास जानेके लिये क्रोधको पन्थ नहीं देता, जब तीन पुर जलानेके लिये विष्णुआदि सब देवताओंने शिवजीकी प्रार्थना की तब भोलेनाथ अपने हृदयमें त्रिपुरको थोडा भक्त समझ उसके ऊपर क्रुद्ध हुए, उस क्रुद्ध होनेके कारणसे प्रेमके समुद्रने मार्ग दिया, मार्ग देना यह है कि, त्रिपुरको जलानेके लिये शिवजीने सम्पूर्ण निश्चय करलिया इसीलिये ब्रह्माने यह कहा॥

❋ "सचापि केशौ हरिरुच्च जह्रे शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम्। तौ चापि केशावविशेतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च॥१॥तयोरेको बलभद्रो बभूव योसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः॥ कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योसो वर्णतः कृष्ण उक्त"॥ महाभारतमें लिखाहै कि, ईश्वरने दो बाल काले सफेद उखाडे, वह दोनों बाल यादवोंके कुलमें रोहिणी और देवकी स्त्रीमें प्रवेश करगये। जो उन देवका श्वेत केश था, उससे संकर्षण उत्पन्न हुये दूसरे श्यामवर्णकेशसे केशीवधकारी गोपी आनंदकारी विहारी श्रीकृष्णचन्द्र हुए।

अति उन्नतु यमलार्जु वृक्षको मूलसे उखाडा, भला यह कार्य विनाईश्वरके कौन साधन करसकताहै ? ॥ २७ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दने व्रजमें व्रजके गाय वत्स जब कालीदहका जल पीकर अचेत हो गयेथे, उन पर अनुग्रहकर अमृत दृष्टिकी वृष्टि कर उनको जिलाया, और यमुनाकी शुद्धिके लिये उसमें विहारकर और अति चञ्चल जिह्वावाले कालीनागको नाथ और उसेमें जलसे निकाल लाये ॥ २८ ॥ उन भक्तवत्सल यशोदानन्दनके अलौकिक कर्म हैं । क्योंकि जब दावाग्निसे पवित्र वन जला तौ आप उस सोते थे । उस भीषणाग्निसे निश्चय सबका काल आया था यह जान भक्तवत्सलने सबसे कहा कि, नेत्र बंद करो । नेत्रोंके बंद करतेही व्रजको उबारा और अग्निको पान कर गये॥२९॥जब यशोदा मैया श्रीकृष्णके बाँधनेको रस्सी लाई और वह रज्जु पूरी न हुई तब वह दूसरी और लाई

यद्वै व्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान् पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ॥ तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन्ह्रदिन्याम् ॥ २८ ॥ तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निश्शयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ॥ उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितांतकालं नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥ २९ ॥ गृह्णीत यद्यदुपबंधममुष्य माता शुल्बं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति ॥ यज्जृंभतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधिताऽऽसीत् ॥ ३० ॥ नंदं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुना च ॥ अह्न्यापृतं निशि शयानमतिश्रमेण लोके विकुंठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥ ३१ ॥ गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ॥ धर्तोंच्छिलींध्रमिव सप्त दिनानि सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ ३२ ॥

जब वहभी ओछी हुई तब और लाई, इस भाँति सब घरकी रस्सियें जोडीं परन्तु पूरी न हुई।जब श्रीकृष्णने कहा कि, मैया"मैंने माटी नहीं खाई मेरा मुख देख ले"श्रीकृष्णनें यशोदाको मुख दिखलाया तौ उसमें सब विश्व दृष्टिआया,यशोदा विश्वको देख शंकित हुई।परन्तु पश्चात्‌ज्ञान हुआ ॥ ३० ॥ वरुणकी फाँसीसे भयभीत नंदको बचावेंगे । व्योमासुरके पर्वतकी गुफामें गायोंको बंद करनेपर उन्हें छुटावेंगे । और दिनमें तौ सब काम करके रात्रिको अतिश्रमसे सोयेहुये सब गोकुलवासियोंको वैकुंठ दिखलावेंगे॥३१॥हे नारद!जब गोपोंने इन्द्रयज्ञ न किया तब व्रजका नाश करनेको क्रोधित हुआ इंद्र जब मूसलधाराओंसे वर्षा करेगा तब सात वर्षके श्रीकृष्णचंद्र गौ आदिकोंकी रक्षाके लिये छत्राककी तरह

सात दिनलों गिरि गोवर्द्धनको बायें हाथकी कन उँगलीपर धारण करेंगे॥३२॥चन्द्रमाकी किरणोंसे युक्त श्वेत रजनीमें रासकी इच्छा करके क्रीड़ा करती मधुरपदसे नाच२राग गाय २ व्रजयुवतियोंका कामदेव जगाया। गोपस्त्रियोंके हरनेवाले कुबेरके सेवक शंखचूड़के शिरका रत्न हरैंगे॥३३॥और प्रलम्बासुर,धेनुकासुर,बकासुर,केशी,अरिष्टासुर, मल्ल,कुवलयापीड,कंस,कालयवन,नरकासुर,पौंड्रकादिक, शाल्व,द्विविद बंदर,बल्वल,दंतवक्र, सप्त वृषभ, शम्बर,विदूरथ, रुक्मैया आदिक और संग्राममें श्लाघनीय धनुषधारी काम्बोज,मत्स्य,कुरु,कैकय,सृंजय आदिक यह सब बलदेव,भीमसेन,

क्रीडन्वनं निशि निशाकररश्मिगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन॥उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३ ॥ ये च प्रलंबखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौंड्रकाद्याः ॥ अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदंतवक्रसप्तोक्षशंबरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ ३४ ॥ ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः कांबोजमत्स्यकुरुकैकयसृंजयाद्याः ॥ यास्यंत्यदर्शनमलंबलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥ ३५ ॥ कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ॥ आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥ ३६ ॥ देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ॥ लोकान्घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७ ॥यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखंडिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ॥ स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्रशास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगान्ते ॥ ३८ ॥

अर्जुन इनके मिषसे दुर्लभ दर्शन श्रीहरि ऐसे दुष्टोंको वैकुण्ठधाम पहुचावैंगे॥३४॥३५॥अब व्यासअवतार कहते हैं।कालकरके मनुष्योंकी बुद्धि संकुचित हुई और मनुष्योंकी आयु थोडी होनेलगी और वह वेदको भूलने लगे।तब युग २ में सत्यवतीसे श्रीव्यासजी प्रगट हो वेदरूप वृक्षकी शाखा भेद करके उनका विस्तार करेंगे ॥ ३६ ॥ अब बौद्ध अवतार कहते हैं ।देवताओंके द्रोही वेदमें निष्ठाकरनेवालोंको मयदैत्यकी रची हुई पुरिओंसे अदृश्य लोकोंको त्रासकारकबुद्धिके मोह करनेहारे, लोभ बढ़ानेहारे पाखण्ड धर्मको बौद्धजी कहैंगे॥३७॥अब कल्कि अवतारका वर्णन करते हैं।

जिस समय कहीं हरिकी कथा न होगी, ब्राह्मण पाखंडी हो जायँगे,शूद्र राजा बन राज्य करैंगे । स्वाहा, स्वधा,वषट् यह वेदवाणी जब न होगी मनुष्य पशुकी समान हो जायँगे,उस समय कलियुगके अंतमें भगवान् कल्की अवतार धारणकर शिक्षा करेंगे॥ ३८॥माया गुणावतार भगवान्की विभूति हैं सो इस संसारके रचनेमें तप हम सप्तऋषि, नौ प्रजाके ईश, स्थान, धर्म,यज्ञ,मनु, देवता,राजालोग अंतमें अधर्महरनेवाले क्रोधी असुर आदिक बहुत शक्तिधारी ईश्वरकी मायाकी यह सब विभूतियें हैं॥ २९॥यह अवतारोंकी कथा मैंने संक्षेपसे कही है, विस्तारसहित कहनेको किसकी सामर्थ्य है? अर्थात् किसीका भी नहीं,विष्णुके चरित्र कोई नहीं कहसक्ता; चाहे पृथ्वीके रजके कण गिन ले, जो ईश्वरने अत्यन्त वेगसे कंपाय

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ॥ अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥ ३९ ॥ विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कंभ यः स्वरहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकंपयानम् ॥ ४० ॥ नांतं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ येषां स एव भगवान्दययेदनंतः सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ॥ ते दुस्तरामतितरंति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥ ४२ ॥

मान सत्यलोक पर्यंत लोक धारण किया, ऐसा अधिक जिनका वेग है ॥ ४० ॥ पुरुष ईश्वरके मायाबलके अंतको हम नहीं जान सक्ते । हे मुनि ! यह तुम्हारे भाइयोंमेंसेभी कोई नहीं जान सक्ता । सहस्रमुखधारी आदिदेव शेषजी भी सदा ईश्वरके गुण गाते हैं, परन्तु अबतक पार नहीं पाया, और न पावें। फिर औरोंकी तौ क्या गिनती है? ॥ ४१ ॥ कोई यह शंका करै कि, कोई हरिके गुणोंको न कहसक्ता हो तौ मोक्ष कैसे होताहै?उत्तर–मोक्ष हरिकी कृपासे होता है और किसीसे नहीं हो सकता सो भी जब अनन्त भगवान् कृपा करें और सबप्रकारसे निष्कपट होकर जो उनके चरणारविंदोंका आश्रय लेकर अतिदुस्तर देवताओंकी मायासे तरजाते हैं और श्वान शृगालोंके भोज्य देहमें आसक्तिवान् पुरुष

नहीं तरसकैंगे ॥४२॥ हे नारद ! उनहीकी कृपासे परमात्माकी योगमायाको मैं जानता हूँ। और यह सब जानते हैं । तुम, शिव, भगवान, प्रह्लाद, मनुकी स्त्री शतरूपा, स्वायंभुवमनु, उनके पुत्र प्राचीनबर्हिऋभु, ध्रुवजी ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु, नृपति ऐल, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, नृपेंद्र रघु, अम्बरीष, सगर, नहुषादिक, मान्धाता, अलर्क, शतधनु, पश्चात् रतिदेव, भीष्मपितामह, बलि, अमूर्तरय, दिलीप ॥ ४४ ॥ सौभरि, उत्तंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण, विभीषण, हनुमान्, उपेन्द्र, दत्तात्रेय, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर, श्रुतदेववर्य ॥४५॥ यह सब

वेदाहमंग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिर्ऋभुरंग उत ध्रुवश्च ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकुरैलमुचुकुंदविदेहगाधिरघ्वंबरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ॥ मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरंतिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतंकशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ॥ येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेंद्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ ४५ ॥ ते वै विदंत्यतितरंति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ॥ यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥४६॥ शश्वत्प्रशांतमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ॥ शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥४७॥ तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥ सध्र्यङ्नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिंद्रः ॥ ४८ ॥

जानते हैं, इससे तरगये, ईश्वरकी मायाको स्त्री, शूद्र, हूण, यवन, शबर और पापी जीव, जो अद्भुत चरित्रकारी, ईश्वरपरायण, जिन्होंने भली भाँति शिक्षा ली है वह और जिन्होंने ईश्वरधारणा की है वह यह सब जानतेहैं, और पशु पक्षियोंकी तौ क्या चर्चा है यह सब तरगये ॥४६॥ अब भगवत्का स्वरूप वर्णन करते हैं। सदा प्रशांतमन, भयरहित, ज्ञानघन, शुद्ध, समान, कार्यकारणसे परे, आत्माका तत्त्व है । जहां बहुत कारकवान् क्रियाकारक शब्द नहीं कह सक्ते हैं जिनके सन्मुख माया लज्जाके मारे मुख नहीं करती, दूरसे दूरही भागती है ॥ ४७ ॥ सोई परमपुरुष ईश्वर वह स्थान है जिसको कोई ब्रह्म निरन्तर, यतिलोग मनको जिसे प्राप्त होकर अकर्त्तापन और साधनोंको त्याग देते हैं । जैसे

कुयें खोदनेपर फावडे आदिको छोड़ देते हैं,बाजेसे इन्द्र स्वयं बादलरूप होनेसे खनित्रादि वस्तुको नहीं ग्रहण करते ॥ ४८ ॥ सो भगवान् सर्व कल्याणकारी कर्मके फलदायक हैं । इसलिये इस विश्वका भाव स्वभाविहित सत् पदार्थकी प्रसिद्धि है । जेस सब धातुओंके वियोगसे देह नष्ट होता है परंतु देहके संग आकाशका नाश नहीं होता,ऐसेही अजन्मा पुरुष देहके साथ जन्म लेते हैं परंतु सबके फलदाता आप हैं॥४९॥हे नारद! सो यह भगवान् सब विश्वमें जिनकी भावना है उन राधारमणके चरित्र मैंने संक्षेपसे कहे हैं।इन ईश्वरसे पृथक् सत् असत् कुछ नहीं है॥५०॥जो मुझसे भगवान्ने कहा है सो यह भागवतपुराण महा आनन्ददायक है।हरिकी विभूतियोंका संग्रह है अब इसे तुम विख्यात करो॥५१॥जिस रीतिसे

स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ॥ देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्यो
मेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥ ४९ ॥ सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः ॥ समासेन हरेर्नान्यदन्य
स्मात्सदसच्च यत् ॥ ५० ॥ इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ॥ संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥
यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ॥ सर्वात्मन्यखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय ॥ ५२ ॥ मायां वर्णयतोऽमुष्य
ईश्वरस्यानुमोदतः ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययाऽऽत्मा न मुह्यति ॥ ५३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय
स्कन्धे ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन्गुणाख्यानेऽगुणस्य च ॥
यस्मैयस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥ १ ॥

वृन्दावनविहारीमें मनुष्योंकी भक्ति हो सबके आधार ईश्वरका चिंतवन करके तुम वर्णन करो॥५२॥जो परमेश्वरकी मायाका वर्णन करतेहैं और उनकी प्रशंसा करतेहैं और जो श्रद्धासे नित्य परमात्माके चरित्र सुनतेहैं वह माया करके कभी मोहको प्राप्त नहीं होते॥५३॥इति श्रीमद्भागवते महापुराण द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशावतारवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥दोहा-ब्रह्मा नारदको सुनत,अति अनुपम संवाद।देवराज शुकदेवसों,पूछो अति आह्लाद॥८॥राजा बोलताहै हे ब्रह्मन्! इस प्रकार ब्रह्माजीसे प्रेरितहो देवदर्शन नारदजी निर्गुण ईश्वरके गुण जिन२के अर्थ कहते भये सो आप

वर्णन कीजिये ॥ १॥ हे विदांवर ! मुझे उसके सुननेकी अभिलाषाहै । अद्भुत पराक्रमी ईश्वरकी कथा लोकमें सुन्दर मंगल करनेवाली है ॥२॥ हे महाभाग ! वह कथा वर्णन करो। जिससे मन हटाय वैराग्य ले सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजीमें मन लगाऊँ और इस दुःखदायी देहका त्याग करूँ, सो कहो ॥३॥ जोश्रद्धायुक्त हो हरिके गुण नित्य श्रवण करनेसे श्रीकृष्णलीलाओंको मुखसे कहै । थोडेही दिनोंमें भगवान् हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥४॥ कानके छिद्रमें हो सदा मधुसूदन अपने जनोंके हृदयका जो कमल है और उसमें जो मल है उसका नाश करदेते हैं। जैसे जलका मल शरदऋतुके आनेसे दूर होजाताहै ॥ ५ ॥ पवित्र आत्मापुरुष श्रीवासुदेवके चरणमूलका त्याग नहीं करते वह सब क्लेशोंसे छूट जाते हैं. जैसे मार्ग चलनेवाले अपने घर

13

एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदां वर ॥ हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमंगलाः ॥२॥ कथयस्व महाभाग यथाऽहमखि
लात्मनि ॥ कृष्णे निवेश्य निस्संगं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥३॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ॥ कालेन ना
तिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥ ४ ॥ प्रविष्टः कर्णरंध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ॥ धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा
शरत् ॥ ५ ॥ धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुंचति ॥ मुक्तसर्वपरिक्लेशः पांथः स्वशरणं यथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो
ब्रह्मन्देहारंभोऽस्य धातुभिः ॥ यदृच्छया हेतुना वा भवंतो जानते यथा॥७॥ आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ॥
यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥ ८ ॥ अजः सृजति भूतानि
भूतात्मा यदनुग्रहात् ॥ ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ ९ ॥

आय सब दुःखसे छूट जाते हैं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्वचा, रुधिर, मांस, स्नायु, मेद, मज्जा, हाड इन सात धातुओंसे रहित जिनकी देह ऐसे ईश्वरका पञ्चभूत देहधारना निजइच्छासे है या किसी कारणसे शरीर धारण करते हैं ? जो आप यथार्थ जानते हो सो कहिये ॥७॥ सब लोकोंकी रचनारूप कमल जिनकी नाभिमें यह पुरुष रचतेहैं जैसे अवयवोंसे अलग २ हैं और इतने हैं यह सब कहो ? तितनेही यह ईश्वर कहेहैं। संख्या अवयवकी समान है. हे शुकाचार्य ! जिसको हम न जानते हों सो आप सब कहें ॥ ८ ॥ अजन्मा ईश्वर सब जीवोंको रचते हैं उनकी कृपासे ब्रह्मा

रचते हैं, नाभिकमलसे जन्में ब्रह्माजीने उनका रूप देखा ॥ ९ ॥ वह ईश्वर पुरुष विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार करता है। मायाके ईश, अपनी मायाको त्याग सबके अन्तर्यामी भी कहां सोते रहतेहैं ? ॥ १० ॥ पुरुषके अवयवोंसे पूर्वकल्पित लोकपाल इनके अवयवोंसे रचेगये यह सब श्रवण कराइये॥ ११ ॥ जैसा कल्प है, जैसा विकल्प है, जैसा कालका अनुमान किया जाताहै, भूत भविष्यत् वर्तमान आयुका जो प्रमाण है सो कहो ॥१२॥ कालकी गति जो छोटी मोटी है जितनी कर्मकी गतियें हैं और जैसी गति होतीहै सो हे द्विजसत्तम ! शुकाचार्य ! आप कहिये ॥ १३ ॥ सत्वादिगुणोंका देवादिरूप परिणामकी इच्छा करनेवाले जीवोंके मध्यमें जिसपरिणाममें पुण्यपापके कर्मोंका स्वरूप समूह

स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ मुक्त्वाऽऽत्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ॥ १० ॥ पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ॥ लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ ११ ॥ यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ॥ भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥ १२ ॥ कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ॥ यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥ १३ ॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यया येनोपगृह्यते ॥ गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १४ ॥ भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ॥ सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदोकसाम् ॥ १५ ॥ प्रमाणमंडकोशस्य बाह्याभ्यंतरभेदतः ॥ महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥ १६ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥ युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥ १७ ॥ नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च योदृशः ॥ श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १८ ॥

किस कर्मके समुदायसे कैसे करनेसे कौन अधिकारी देवआदि भावको प्राप्त होताहै ? सो कहो ॥१४॥ भूमि, पाताल, सब दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप इनकी उत्पत्ति और जो इनके वासी हैं सो कहो ॥१५॥ इस ब्रह्माण्डका प्रमाण, बाहर भीतरका भेद, महात्माओंका चरित्र, वर्णाश्रमका निर्णय, जिन २ स्वभावोंसे सब वर्ण आश्रमका निर्द्धार होय सो कहो ॥ १६ ॥ अत्यन्त आश्चर्यदायक, श्रीहरिअवतारोंके चरित्र और युगयुगोंके प्रमाण और युग २ में जो धर्म होयँ सो कहो॥ १७ ॥ मनुष्योंके साधारण धर्म हों सो कहो और जो जो व्यवहारियोंके

धर्म होयँ सो कहो, और प्रजापालोंके अधिकारी राजर्षियोंके धर्म हों सो कहो। सब जीवमात्रका आपद्धर्म कहिये॥ १८॥ तत्त्वोंकी संख्या, और उनके लक्षण, अथवा किसी हेतुसे उनके लक्षण जैसे होंय सो कहो। परमेश्वरके पूजनकी विधि, अष्टांगयोगकी विधि, ब्रह्मविद्या, यह सब कहो॥ १९॥ योगीश्वरोंके ऐश्वर्यकी गति, अर्चिरादिमार्गके योगियोंके लिंगदेहके भंगकी गति, ऋगादिवेद, आयुर्वेदादि, धर्मशास्त्रोंकी गति, इतिहास व पुराणोंका सार यह सब कहो ॥ २० ॥ सब जीवनका प्रलय स्थिति महाप्रलय वैदिक कर्म पूर्तकर्म कामना करके कर्म करना, अर्थ धर्म कामकी विधि यह सब

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ॥ पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥ १९ ॥ योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिंगभंगस्तु योगिनाम् ॥ वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥२०॥ संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ॥ इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥२१॥ यश्चानुशायिनां सर्गः पाखंडस्य च संभवः ॥ आत्मनो बंधमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २२ ॥ यथाऽऽत्मतंत्रो भगवान्विक्रीडत्यात्ममायया ॥ विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥ २३ ॥ सर्वमेतच्च भगवन्पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ॥ तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥ २४ ॥ अत्र प्रमाणं हि भवान्परमेष्ठी यथात्मभूः ॥ परे चेहानुतिष्ठंति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥ २५ ॥

कहिये ॥ २१ ॥ उपाधिरहित जीवोंके धर्म, उनकी रचना, पाखंडकी उत्पत्ति, जीवोंका बंधमोक्ष व स्वरूपमें स्थिति कहो ॥२२॥ जैसे स्वाधीन भगवान् अपनी मायासे क्रीडा करतेहैं; कभी मायाको त्याग साक्षी समान विभु विराजतेहैं सो कहो ॥ २३ ॥ इन प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे अपने सिद्धान्तसे आप कहने योग्य हो, हे महामुनि! मैं तुम्हारे आश्रित हूँ॥२४॥ इसमें स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रमाण हैं पहिलेसे पहिले हुए वह और सब इसी

---

१ "वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥ अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते" बावडी, कुआं, तालाब आदि, देवमंदिर बनाना, ईश्वरके निमित्त सदा अन्नदान करना, बाग लगाना इनको पूर्त कहतेहैं ।

मार्गमें स्थित रहैंगे ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन्! मेरे प्राण भूख प्याससे नहीं निकलेंगे भागवतकथामृत पान करनेवाले मुझको कुपित द्विजके सर्पका भय किंचित्‌भी नहींहै ॥२६॥ सूतजी बोले संतोंके प्रति हरिकी कथामें इस प्रकार राजाने प्रार्थना की तब सभामें राजा परीक्षित्‌से शुकदेवजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ वेदके समान भागवत नाम पुराण ब्रह्मकल्पमें ब्रह्मासे भगवान्‌ने कहा था ॥ २८ ॥ पांडवोंमें श्रेष्ठ परीक्षित जो जो पूछतेहैं सो सब संक्षेपसे और विस्तारसे व्याख्या करनेको प्रारंभ किया ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां राजकृतप्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–कथा नवम अध्यायकी, नाशक सब सन्देह । चतुःश्लोकी भागवत, वरणों सहित सनेह ॥ ९ ॥

न मेऽसवः परायंति ब्रह्मन्ननशनादमी ॥ पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपितद्द्विजात् ॥२६॥ सूत उवाच ॥ स उपामंत्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ॥ ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥२७॥ प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥२८॥ यद्यत्परीक्षिदृषभः पांडूनामनुपृच्छति ॥ आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥२९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः ॥ न घटेतार्थसंबंधः स्वप्नद्रष्टुरिवांजसा ॥१॥ बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ॥ रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥ २ ॥ यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाययोः ॥ रमेत गतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३ ॥ आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतम् ॥ ब्रह्मणे दर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! अनुभवात्मा परमेश्वरको देहका संबंध अपनी मायाके विना नहीं होता। जैसे अनायास करके स्वप्नके द्रष्टाको स्वप्नके समयका देहसंबंध नहीं होताहै ॥ १ ॥ अनेक रूपवाली मायासे बाल युवादि रूप देव नरादिरूपकी नाईं प्रकाश करती है। इस मायाके गुणमें रमण करके "मेरा है" "हम हैं" ऐसे आप माने हैं ॥ २ ॥ जिस समय अपनी महिमामें रमण करताहै उस काल मायासे परे ईश्वरमें सब मोह त्याग औंर अहंकार ममकार दोनोंको त्याग साक्षीकी सदृश रहता है ॥ ३ ॥ जीवके तत्त्वशुद्धिके कारण जो भग

वान्‌ने सत्य कहाहै सो निष्कपट तपके विना नहीं होता । ब्रह्माको अपना रूप दिखायाहै ॥ ४ ॥ सो आदिदेव ब्रह्माजी जगत्‌के परमगुरु अपने कमलमें बैठकर जगत्‌के रचनेका विचारकरने लगे, इस संसारके रचनेके योग्य दृष्टिको नहीं पहुँचे, जिससे यह विश्व रचनेकी विधि ठीक होय ॥ ५ ॥ एक समय ब्रह्माजी यही चिंतवन कर रहेथे, तब उस जलमेंसे दो बार यह शब्द सुनाई आया कि, तप करो २ (क) से लेके (म) पर्यंत अक्षरोंकी स्पर्श संज्ञा है । इनमें १६ वाँ अक्षर (त) है और इक्कीसवाँ (प) है दोनों मिलकर तप हुआ ॥ हे राजेन्द्र! जिनको किसी वस्तुकी चाहना नहीं ऐसे मुनियोंका वह धन है । तपोधन मुनि प्रसिद्ध हैं॥६॥तप करो यह सुन ब्रह्माजीने सब ओर देखा ।और वक्ताके देखनेकी इच्छा करी । तब कमलपर बैठ अपना हित विचार तप करनेको मनमें धारणा की* ॥ ७ ॥ सफल दर्शन पवन, मन, जीत कर्म इन्द्रियें और ज्ञान इन्द्रियें जीत तप करनेवालोंमें अति तपस्वी ब्रह्माजीने सब लोकको प्रकाश करनेवाला दिव्य तप सहस्र वर्षतक किया ॥८॥ जिससे श्रेष्ठ और कोई नहीं. क्लेश, मोह, संभ्रम जहां नहीं, सत्पुरुषवान् आत्मवेत्ता अपने दर्शन करनेवालोंसे श्रीवैकुण्ठलोकको प्रसन्न हो भगवान्‌ने ब्रह्माके लिये दिखाया ॥ ९ ॥ जिस वैकुण्ठमें राजस, तामस नहीं, शुद्ध सत्त्व जहां बर्तैहै, रज तम मिला सत्त्वगुण जहां नहीं । जहां कालका पराक्रम नहीं

133

स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ॥ तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र संमतां प्रपंचनिर्माणविधि
र्यया भवेत् ॥५॥ स चिंतयन्द्व्यक्षरमेकदांभस्युपाशृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः॥स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किंचना
नां नृप यद्धनं विदुः ॥६॥ निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः॥ स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य
तद्धितं तपस्युपादिष्ट इवाऽऽदधे मनः ॥७॥ दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेंद्रियः॥अतप्य
तस्माखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥ ८॥ तस्मै स्वलोकं भगवान्सभाजितः संदर्शयामास परं न
त्परम् ॥ व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥९॥ प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न
च कालविक्रमः ॥ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥

---

* **शंका**-भगवान्‌की आज्ञाको पाकर ब्रह्मा कमलके फूलपर बैठकर तपस्या करने लगे,परन्तु उस तपका क्या नाम है तप तो अनंत हैं, ब्रह्माने कौनसा तप किया? ॥

उत्तर-ब्रह्मा नारायणकी आज्ञापाकर अपने मनको हृदयमें स्थिर करके बडे प्रेमसे नारायणके नामका जप करने लगे सो परमतप है।

चलता,मायाका नाम नहीं वहां रागादिककी क्या सामर्थ्य है?देव असुर जिनका दोनों पूजन करें ऐसे भगवत्के पार्षद जहां हैं॥१०॥पार्षदोंका वर्णन करते हैं। श्यामसुन्दर,उज्ज्वल स्वरूप,कमलनयन, पीतांबर पहिरे, परममनोहर, अतिसुकुमार उत्तम२रत्न मणिजटित॥११॥सब आभूषण धारण किये अतितेजस्वी मूंगा वैडूर्य मणि कमलके तन्तुकेसी कांतिवाले और देदीप्यमान कुंडल मुकुट माला धारण किये और चार भुजा धारण किये ऐसे सब भगवान्के पार्षद हैं महात्माओंके प्रकाशमान शोभित विमानोंकी पंक्तियोंसे श्रीवैकुण्ठ लोक सब ओरसे विशेष करके प्रकाशमान होरहाहै ॥१२॥उत्तम स्त्रियोंकी कांतिसे ऐसा प्रकाशित हो रहा है,जैसे बिजुलीसहित मेघमालासे आकाश शोभित होता है। दामिनीसदृश तो स्त्रियें हैं।

श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशंगवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः॥ सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः
सुवर्चसः॥ प्रवालवैडूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुंडलमौलिमालिनः॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्वि
मानावलिभिर्महात्मना॥ विद्योतमानः प्रमदोत्तमादिभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः॥१२॥ श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगाय
पादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः॥ प्रेंखं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती॥१३॥ ददर्श
तत्राखिलसात्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम्॥ सुनंदनंदप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं
विभुम्॥ १४ ॥ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम्॥ किरीटिनं कुंडलिनं चतुर्भुजं पीतांबरं
वक्षसि लक्षितं श्रिया॥ १५ ॥

मेघपंक्तिकी समान विमान हैं,आकाशकी तुल्य वैकुण्ठ लोकहै॥१३॥वहां वैकुण्ठमें रूपवती महालक्ष्मीजी श्रीनारायणके चरणमें अनेक विभूतियोंसे मानकरें हैं। और हिंडोलेमें झुलावें हैं।वसंतके अनुचर,भ्रमर अनेक २ प्रकारसे गुंजार करते हैं। और अपने प्यारे प्रीतमके चरित्रोंको गाती जातीहैं और आनंदसे झुलतीहैं॥उस वैकुंठमें सब भक्तोंके पति श्रीभूलीलानायक यज्ञपति जगत्पालक सुनंद,नंद, प्रबल, अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षद सब ओरसे जिनकी सेवाकरें उन समर्थ त्रिलोकीनाथका ब्रह्माजीने दर्शन किया भृत्यजनोंके प्रसादमें जिनका मुखदर्शन करनेवालोंको प्रमदाकी नाईं हर्षदायक, प्रसन्ननयन,जिनकी मुसकानसे नेत्र मुख लाल हो रहे, शीशपर मुकुट, कानोंमें कुंडल, चार भुजा,पीतांबर धारण किये, हृदयमें श्रीजी

विराजमान हो रही हैं॥ १४॥ १५॥ अत्यन्त पूजनयोग्य, सिंहासनपर विराजमान, परब्रह्म प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व अहंकार चार तौ यह, और ग्यारह इन्द्रियें, पंच महाभूत, सोलह पांच उनकी मात्रा इन शक्तियों और अपने सब स्वाभाविक जो ऐश्वर्य उनसे युक्त, योगियोंका ध्रुव आगामी ऐश्वर्य समेत अपने मंदिरमें सदा रमण करते हैं॥ १६ ॥ जिनके दर्शनके आनंदसे अंतःकरण प्रसन्न मन रोमाञ्चित देह प्रेमके भावसे नेत्रोंमें आंसू भर आनंदमें मग्नहो ब्रह्माने श्रीवासुदेवके चरणसरोरुहको नमस्कार किया. जिनका दर्शन परमहंसोंको ज्ञानमार्गसे होताहै। उनका दर्शन ब्रह्माजीने किया ॥ १७॥ संसारके रचनेमें जो हरिकी आज्ञा उसकी सुन्दरतामें स्थितचित्त उन ब्रह्माजीसे मंद मुसकानकी वाणीसे चिदानंद घनश्याम, आप

अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुष्षोडशपंचशक्तिभिः ॥ युक्तं भगः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन्रममाणमीश्वरम्॥ १६ ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतांतरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ॥ ननाम पादांबुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥ १७ ॥ तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ॥ बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयाऽहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया॥ चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ १९ ॥ वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः॥ २० ॥ मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् ॥ यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥ २१ ॥

ब्रह्माका हाथसे हाथ पकड़कर ॥ १८ ॥ बोले कि हे वेदगर्भ ! विश्वके रचनेकी इच्छासे तुमने हमें बहुत प्रसन्न किया और सहस्र वर्षतक अत्यन्त तप किया, जो मूर्ख योगीजन हैं, उनसे मैं बहुत प्रसन्न नहीं होता हूँ ॥ १९॥ हे ब्रह्मा ! आपका कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ जो इच्छा हो सो वर मांगो-कल्याणकी प्राप्तिमें पुरुषको जबतक भ्रम है तब तक मेरा दर्शन नहीं होता। अब तुम्हें मेरा दर्शन होगया अब तुमको कोई परिश्रम न होगा। जो इच्छा हो सो मांगो॥ २० ॥ मेरे मनकी इच्छाका यह प्रभाव है कि मेरे लोकका तुमको दर्शन हुआ, यह मनमें मत विचारना

कि मैंने तपके बलसे यह किया है। स्वतन्त्र कभी न होना। मेरीही कृपासे तुमको यह दर्शन हुआ। जो श्रवण करके एकान्तमें तुमने सहस्रवर्ष तप किया ॥२१॥जब कर्मसे तुम विशेषमोहित हुए तब मैंने तुमसे कहा हे पापरहित! तप कर, तप मेरा हृदय है, तप साक्षात् मेरा देह है, तप मेरी भीतरकी शक्ति है ॥ २२ ॥ तपसेही इस विश्वको रचताहूँ, और फिर तपसेही संसारका पालन व संहार करता हूँ, यह तपरूप बडा पराक्रम है, बडा दुस्तर है। तपका बडा प्रभाव है तप करना बडा कठिन है ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोकेश! सब जीवमात्रके अधिष्ठाता सबमें स्थित हो, दृढ ज्ञानमें जो करनेकी इच्छा है उसको तुम जानतेही हो ॥२४॥यद्यपि आप ऐसे हैं तौ भी हे नाथ! आपसे जो मांगे ऐसे

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते॥ तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ॥२२॥ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः॥ बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः॥२३॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् ॥ वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥ २४ ॥ तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ॥ परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥ २५ ॥ यथाऽऽत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ॥ विलुंपन्विसृजन्गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते॥ तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥ २७ ॥ भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतंद्रितः ॥ नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं त्वदनुग्रहात् ॥ २८ ॥ यावत्सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गं विभजामि भो जनम् ॥ अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥ २९ ॥

मनुष्यको जो याचित पदार्थ है सो तुम हो। निर्गुण तुम्हारे सूक्ष्म स्थूलको जैसे जानूँ सो कहो॥२५॥जैसे आप मायाके संयोगसे अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे वर्द्धित विश्वका संहार, रचना, पालन आपही चतुरानन आदिरूप, धारणकर क्रीडा करतेहो ॥ २६ ॥हे अमोघसंकल्प! जैसे मकरी अपने तन्तुओंके जालसे आप रूल जाती है ऐसेही आप क्रीडा करते हैं। हे माधव! अब आप दयाकरके सृष्टिके रचनेकी बुद्धि मेरे हृदयमें धारण करो ॥ २७ ॥ जो आपसे शिक्षित होकर मैं निरालस्य हो तुम्हारे अनुग्रहसे प्रजासर्गकी चेष्टा करूँगा, परंतु अहंकारका बन्धन न हो ॥ २८ ॥ हे ईश! तुमने लौकिक सखाकी समान जान, स्वर्गादिकमें मेरा सन्मान किया सो प्रजाके रचनेरूप कर्ममें अव्याकुल

होकर उत्तम मध्यमादिक भेदसे जीवका विभाग करूँ तब "अजमानी" मुझको यह महामद न होय सो कीजे ॥ २९ ॥ श्रीभगवान्जी बोले कि, मेरा शास्त्रोक्तज्ञान अत्यन्त छिपा हुआ है वह अनुभव, भक्ति सब साधन सहित है सो कहताहूँ तुम श्रवण करो ॥ ३० ॥ स्वरूपसे जैसे हम हैं, और जैसे सत्तावान् हैं, जो रूप कर्म गुण हमारे हैं, इसी प्रकार तत्त्वोंका ज्ञान विशेष करके मेरी कृपासे तुमको होय ॥ ३१ ॥ इस सृष्टिसे पहले मैं ही था अतिरिक्त मेरे और दूसरा कोई नहीं था, अरु स्थूल सूक्ष्म इनका परम कारण कुछ भी नहीं था। पीछे सृष्टिका कारण मैं ही हूँ. पीछे सृष्टिके उपरान्त भी मैंही हूँ॥३२॥जो यह विश्व है सो भी मैं ही हूँ; जो कुछ शेष रहेगा सो भी मैंही हूँ। जो कुछ सब सृष्टिका मूल हैं सोभी मैं ही हूँ । जिस प्रकार सुवर्णके अलंकार नाक, कान, हाथ, पांवके भिन्न होतें हैं जैसे कंकण, कुण्डल, कर्णफूल, मालादिक पृथक्२ होतेहैं

श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ॥ सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया॥ ३० ॥ यावानहं
135 यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ ३१ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदस
त्परम् ॥ पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ॥ तद्विद्या
दात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ ३३ ॥ यथा महांति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा
तेषु न तेष्वहम्॥३४॥ एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥३५॥

जब सबको गला दिया तौ फिर केवल कंचनका कंचन, इसी भांति मुझको समझना कि अनादि अनन्त अद्वितीय परिपूर्ण मैंही हूँ अर्थके बिना जो प्रतीत होताहै और आत्मामें प्रतीत नहीं होता है उसीको मेरी माया जानौ। जैसे दो चन्द्रमा प्रतीत होते हैं, जैसे राहु ग्रह मण्डलमें स्थित है परन्तु दीखता नहीं । ग्रहणके द्वारा दीखता है। इस प्रकार यह माया कार्योंके द्वारा दीखती है साक्षात् प्रगट नहीं होती ॥ ३३ ॥ जैसे पंचमहाभूतसे संसारीके छोटे बडे जीव मात्रमें प्रविष्ट, अप्रविष्टकी समान विदित होते हैं ऐसेही प्रकार मैं उनमें ज्ञात नहीं होता हूँ॥३४॥आत्मतत्त्वके जाननेवालेको इतनाही जानना योग्य है। अन्वयव्यतिरेकसे जो सब ठौर सदा ही ईश्वर है । कार्यमें कारणभावसे जो सदावर्ते उसका नाम

अन्वय है, कारणअवस्थामें उनसे अलग रहे सो व्यतिरेक ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मा! एकाग्रचित्त करके परम समाधिसे तुम इस मतमें स्थिर रहोगे तौ तुम कल्पों विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है उसका तुमको कभी भी यह अभिमान न होगा कि इस संसारका कर्त्ता मैं हूँ॥ ३६॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि मनुष्योंमें श्रेष्ठ जो ब्रह्माजी हैं उनसे अजन्मा ईश्वर यह कह कर अंतर्धान हो गये॥ ३७॥ आदिरूप अविनाशी जगदीश्वरके अन्तर्धान होने उपरान्त सब जीवमय ब्रह्मा श्रीविश्वनाथको हाथ जोड़कर विश्वको पहिलेकी रीतिसे रचना आरम्भ करने लगे ॥ ३८॥ प्रजापति धर्मपतिने एक समय यमनियमको प्रजाके कल्याणके लिये और अपने स्वार्थकी कामनाके लिये रचना की, और यमनियमा

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् ॥ पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः॥ ३७ ॥ अंतर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहितांजलिः ॥ सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥ ३८ ॥ प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् ॥ भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥ ३९॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः ॥ शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥ ४० ॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः ॥ महाभागवतो राजन्पितरं पर्यतोषयत् ॥ ४१ ॥ तुष्टं निशम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम्॥ देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥ ४२ ॥ तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ॥ प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥ ४३ ॥

दिकमें आप स्थित हुये ॥ ३९ ॥ अतिप्रिय भागलेनेवालोंमें पुत्रोंमें पिता ब्रह्मामें अनुरक्त शील नम्रतादि शुश्रूषा करनेहारे नारदजी ब्रह्माजीकी सेवा करने लगे ॥ ४०॥ हे राजन्! मायाके ईश्वर व्यापक विष्णुकी मायाको जाननेकी इच्छाकर महामुनि महाभागवत नारदजीने पिताको प्रसन्न किया "वेवेष्टीति विष्णुः" सबमें व्यापै उसका नाम विष्णु है, व्याकरणमें 'विष्लृ व्याप्तौ' धातुहै उससे विष्णु शब्द व्युत्पादित होता है॥ ४१॥ सब लोकके पितामह ब्रह्माको प्रसन्न जानकर नारदने बूझा था, जो आप हमसे पूछतेहैं॥ ४२॥ देश लक्षणयुक्त, अत्यन्त शोभायमान, श्रीभागवत पुराण जो

भगवान्‌ने ब्रह्माजीसे कहा और उन्होंने अपने प्रियपुत्र नारदजीसे कहा ॥४३॥ हे पृथ्वीनाथ ! सरस्वतीके तटपर नारदजीने परब्रह्मके ध्यानी, परमज्ञानी, महातेजस्वी व्यास मुनिको सुनाया ॥ ४४ ॥ जो हमसे तुमने जिज्ञासा किया कि, विराट् पुरुषसे यह विश्व कैसे होता है ? वह और तुम्हारे कहे हुए सब प्रश्न हैं और और भी बातें जैसी हैं तैसेही कहैंगे ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुःश्लोकीभागवतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–तहँ शुकदेव प्रमोदभर, लक्षण दशहु पुरान। भूप परीक्षितसे कहत, संयुत अर्थ महान ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि अब सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय ॥ १ ॥

136

नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ॥ ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायाऽमिततेजसे ॥ ४४ ॥ यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥ यथाऽऽसीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० द्वितीयस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥ मन्वंतरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥ वर्णयंति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चांजसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेंद्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ॥ ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥ ३ ॥ स्थितिर्वैकुंठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ॥ मन्वंतराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥ ४ ॥

दशवें आश्रयलक्षणकी विशेष शुद्धिके लिये नौ लक्षण महात्मा लोग सुन अर्थसे अनायास वर्णन करते हैं अथवा श्रुतियोंसे कहतेहैं ॥ २ ॥ अब दशों लक्षणोंका वर्णन करतेहैं । नभ, मही, जल, तेज, वायु, गन्ध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस । पायु, उपस्थ, पद, कर, वाक्, यह पाचों कर्मेन्द्रिय हैं । नाक, कान, रसना, त्वचा, नेत्र यह पांचों ज्ञानेद्रिय हैं । अहंकार, मन, बुद्धि, अंतःकरण इन पंच भूतमात्रा इंद्रियोंकी उत्पत्तिको सर्ग कहतेहैं । ब्रह्मासे गुणकी विषमता होनेसे विराट् पुरुषसे जो उत्पन्न हुआ उसका नाम विसर्ग है ॥ ३ ॥ वैकुण्ठका विजय यह है कि परमात्माकी रचीहुई मर्य्यादाओंका पालन करना, इसका नाम स्थान है । अपने भक्तोंपर कृपा करना इसका नाम पोषण है । मन्वन्तरोंके

अधिपतियोंका जो धर्म वा सद्धर्मका नाम मन्वन्तर है। कर्मकी वासनाका नाम ऊति है ॥ ४ ॥ श्रीआदिपुरुष नारायणके अवतारोंका चरित्र और इनके पीछे महात्मा पुरुषोंके नाना प्रकारके आख्यानोंकी अधिक वार्त्ताका नाम ईशकथा है ॥ ५ ॥ इस ईश्वरकी योगनिद्राके पश्चात् शक्ति और उपाधियोंसहित लय होजानेका नाम निरोध है। अन्यथारूपको त्याग करके अपने स्वरूपमें स्थिति होनेका नाम मुक्ति है ॥ ६ ॥ जो सृष्टिको उत्पन्न पालन और लय करता है, जिसको परब्रह्म कहते हैं उसीका नाम आश्रय है ॥ ७ ॥ जो यह आध्यात्मिक पुरुष है, सोई यह आधिदैविक है, जो इनमें विभक्त है सोई आधिभौतिक है॥८॥एकको एकके अभावमें जब नहीं प्राप्त होता है, उसमें जो दृक्,रूप,सूर्य, वपु,

अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ॥ पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥ ५ ॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ॥ मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ ६ ॥ आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते ॥ स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥ ७ ॥ योध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ॥ यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषोह्याधिभौतिकः ॥ ८ ॥ एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥ त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः ॥ ९ ॥ पुरुषोण्डं विनिर्भिद्य यदासौ स विनिर्गतः ॥ आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥ १० ॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ॥ तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥ ११ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ यदनुग्रहतः संति न संति यदुपेक्षया ॥ १२ ॥ एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थितः ॥ वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजत्त्रिधा ॥ १३ ॥

इस त्रितयको जो जानता है सो आत्मा अपने आश्रय है, उसकोभी आश्रय कहते हैं॥९॥जब विराट् पुरुष अंडको भेद कर बाहर निकले, तब अपने रहनेके अर्थ स्थानकी इच्छा करी, आप ईश्वर पवित्र हैं इस कारण पवित्र जलकी रचना की ॥ १०॥ अपने रचेहुये जलमें सहस्र वर्षतक वास किया, तदनन्तर परब्रह्म सच्चिदानन्दने नररूप धारण किया, इस कारण नारायण नाम हुआ ॥ ११ ॥ द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव, जिनकी कृपासे होता है और जिनकी इच्छा नहीं होय तौ नहीं होय ॥ १२ ॥ एक परमात्माने जब नानाप्रकार होनेकी इच्छा की तब योग

शय्यासे उठ सुवर्णमय अपने वीर्यके तीन भाग किये ॥ १३ ॥ अधिदैव; अध्यात्म और अधिभूत; इनको ईश्वरने रचा, एक पुरुषका वीर्य तीन प्रकारके भेदोंको प्राप्त हुआ सो तुम ध्यान करके सुनो॥१४॥जब विशेष चेष्टा की तब पुरुषमेंसे इन्द्रियशक्ति, मनःशक्ति, देहशक्ति, यह हुई और सबमें मुख्य प्राण हुए॥१५॥ सब जीवोंमें ईश्वर प्राणरूप चेष्टा करता है,सो सब इन्द्रियें चेष्टा करती हैं,जो चेष्टाका त्याग करता है तो प्राणभी चेष्टा त्याग करतेहैं. जैसे राजाके पीछे राजाका भृत्य, राजा चलै तौ भृत्य भी चलै, राजा खडा होजाय तौ भृत्यभी खडे होजाते हैं ॥ १६ ॥ एक देह जो परमात्माने रची, तब उसमें प्राणने प्रेरणा की तब भूँख प्यास हुई तब जल पीने और भोजन करनेको प्रथम मुख निकला, यहां यह बात जाननी उचित है कि तालु अधिष्ठान है, जिह्वा इन्द्रिय है, नाना प्रकारके रस विषय हैं, वरुण देवता हैं यह सर्वत्र जान लेना ॥ १७ ॥ मुखसे तालु हुआ तहां जिह्वा हुई जीभसे अनेक प्रकारके स्वादोंका ज्ञान हुआ ॥ १८ ॥ फिर कुछ बोलनेकी इच्छा हुई उस समय जीवकी अग्नि देवता, वाणी इन्द्रिय सुन्दर शब्द निकला, परन्तु जलमें वचनकी रुकावट होती है नासिकाका पवन जब अत्यन्त चलायमान हुआ, तब नासिका हुई, वायु जिसका देवता है. सो सुगन्धदाता घ्राण इन्द्रिय सूँघनेको हुई ॥ १९ ॥ २० ॥ जब देखनेकी इच्छा हुई कुछ न

अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमितिप्रभुः ॥ यथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाऽभिद्यत तच्छृणु ॥ १४ ॥ अंतश्शरीर आकाशात्पुरुषस्य विचेष्टतः ॥ ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥ १५ ॥ अनुप्राणन्ति यं प्राणाः प्राणंतं सर्वजंतुषु ॥ अपानंतमपानंति नरदेवमिवानुगाः ॥ १६ ॥ प्राणेन क्षिपताः क्षुत्तृडंतराऽऽजायते प्रभोः ॥ पिपासतो जक्षतश्च प्राङ् मुखं निरभिद्यत ॥१७॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते ॥ ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ विवक्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः ॥ जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥ १९ ॥ नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति ॥ तत्र वायुर्गंधवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ॥ निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥

देखा, देवतात्मक रूपगुण करनेहारी चक्षु इन्द्रिय हुई ॥२१॥ जब देववचनसुननेकी इच्छा हुई तब दिशा देवता वारिदेवता श्रोत्र श्रवण इन्द्रिय गुणके ग्रहण करनेहारे कान निकले ॥ २२ ॥ वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, लघु, गुरु, उष्ण, शीतके ज्ञानकी इच्छा हुई तब केश रोम जिसमें वृक्षसमान ऐसी त्वचा उत्पन्न हुई बाहर भीतर पवनके प्रवेश गुणवारी त्वचासे स्पर्शका ज्ञान हुआ । उसमें सर्व लोकोंके पालन करनेवाले पवन देवने प्रवेश किया॥२३॥जब अनेक प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई तब बल इन्द्रिय इन्द्र देवतात्मक सब पदार्थोंके धरने उठानेके कर्म योग्य दो हाथ बने ॥ २४ ॥जब इसकी इच्छा हुई कि,जहां मेरा मन होय तहां जाऊँ, तब विष्णु भगवान् जिनके देवता, यज्ञादिकके समिधादिकलाना

बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः ॥ कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रहः ॥२२॥ वस्तुनो मृदुकाठि
न्यलघुगुर्वोष्णशीतता ॥ जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां रोममहीरुहाः॥तत्र चांतर्बहिर्वातस्त्वचा लब्धगुणो वृतः॥२३॥
हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया॥ तयोस्तु बलमिंद्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥ २४ ॥ गतिं जिगीषतः पादौ
रुरुहातेऽभिकामिकाम् ॥ पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥२५॥ निरभिद्यत शिश्नो वै प्रजानन्दामृता
र्थिनः ॥ उपस्थ आसीत् कामानां प्रियं तदुभयाश्रयम्॥२६॥उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदम् ॥ ततः पायुस्ततो
मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥२७॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः ॥ तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभया
श्रयम् ॥ २८ ॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यंत्रनाडयः ॥ नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥ २९ ॥

और अनेक कर्म करने तथा तीर्थगमन योग्य चरण प्रगट हुये ॥ २५ ॥ जब यह इच्छा हुई कि पुत्र होवे; विषय आनंद अमृत सुखहो तब शिश्न इन्द्रिय प्रजापति जिसके देवता, कामप्रिय लिंग बनाया जो दोनों कार्य करे ॥ २६ ॥ भोजन करने उपरांत जब उसके मल त्यागनेकी इच्छा हुई तब पायु इन्द्रिय मल त्याग कर्म युक्त मित्र देवतात्मक उभयकार्यसाधक गुदा हुई ॥ २७॥ जब इस देहरूप पुरीसे देहरूप पुरोंमें जानेकी दोअभिलाषा हुई तब नाभिद्वारकी अपानवायुसे अपानद्वारा मृत्यु होना, पृथक् होना दोनों कर्यसाधक नाभि उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ जब अन्न पानी ग्रहण करनेवाली इच्छा हुई, तब कोष, कुक्षि, आँते, नाडियें हुईं, नदियें समुद्र कोष पानीके देवता हुए । पुष्टि तिनके

आश्रयरूपहुई ॥ २९ ॥ ईश्वरकी मायाके अत्यंत चिन्तवनकी इच्छा हुई तब हृदय हुआ। उस हृदयमें मन चन्द्रमा देवता समेत संकल्प काम इत्यादिक हुए ॥३०॥ त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, हाड यह सप्तधातु हुईं, सप्तप्राण और यह सप्तधातुयें, भूमि, जल, तेज, वायु; आकाशसे होते हैं ॥३१॥ सब इन्द्रियें गुणोंसे होती हैं, और गुण अहंकारसे होते हैं, मन सब विकासका स्वरूप हैं, बुद्धि विशेष ज्ञानकी रूपिणी है ॥३२॥ यह नारायणका स्थूलरूप मैंने तुमसे कहा, जो पृथ्वींसे आदि आठ आवरणसे बाहर व्यापते हैं ॥ ३३ ॥ मायासे सूक्ष्मतम अव्यक्त, विशेषण रहित अनादि मध्य अनंत सदा एकरूप वाणी मनसे परे वह परमात्मा हैं ॥ ३४ ॥ यह दोष गुण निर्गुणरूप आदि पुरुष नारायणके मैंने तुमसे

निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ॥ ततो मनस्ततश्चंद्रः संकल्पः काम एव च ॥ ३०॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः ॥ भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमांबुवायुभिः ॥३१॥ गुणात्मकानींद्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ॥ मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी॥३२॥ एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ॥ मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥ ३३ ॥ अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ॥ अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥ ३४ ॥ अमुनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते ॥ उभे अपि न गृह्णंति मायासृष्टे विपश्चितः ॥३५॥ स वाच्यवाचकतया भगवान्ब्रह्मरूपधृक् ॥ नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माकर्मकः परः ॥ ३६ ॥ प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ॥ सिद्धचारणगंधर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७ ॥ किन्नराप्सरसो नागान् सर्पान्किंपुरुषोरगान्॥मातृरक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥ ३८ ॥ कूष्मांडोन्मादवेतालान्यातुधानान् ग्रहानपि॥खगान्मृगान्पशून्वृक्षान्गिरीन्नृप सरीसृपान्॥ ३९ ॥

वर्णन किये, परंतु इस मायाके रचे विद्वान् लोग दोनोंको ग्रहण नहीं करते ॥३५॥ सो भक्तवत्सल ब्रह्मरूपधारी कुछकर्म नहीं करते। वह परमेश्वर कर्मकारक वाच्यरूपसे नाम धारण करते और वाच्यरूपसे रूप किया धारण करतेहैं ॥ ३६ ॥ जो जो रूप यशोदानंदन जगत्कार्यके अर्थ धरतेहैं सो हम आपसे कहतेहैं, कि प्रजापति, मनुदेवता, ऋषि, पित्रोंके गण, पृथक् २ सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, सुर, गुह्यक ॥ ३७ ॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, वानर, उरग, सप्तमातृका, राक्षस, पिशाच, भूत; प्रेत, विनायक॥३८॥ कूष्माण्ड, उन्मादकारी ग्रह, वेताल, यातुधान,

ग्रह, पक्षी मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, रंगनेवाले जीव, सरीसृप ॥३९॥ स्थावर, जंगम रूप दो प्रकारके जीव और जल,स्थल, आकाशवासी जीव,उत्तम नीच, कुछ २ दोनों मिलेहुए यह कर्मकी गतियें हैं, यह सब रूप भगवान्ने धारण किये ॥ ४० ॥ हे राजन्! सत्त्व, रज, तम इन तीनोंसे देवता मनुष्य नारकी जीव होते हैं। उनमें भी एक२ गति तीन तीन प्रकारसे भेदको प्राप्त होती है जब एक और गुणसे और प्रकारका होजाताहै, तब स्वभाव नष्ट होताहै। जिसका जैसा स्वभाव होताहै उसकी गति भी उसी प्रकार होजाती है ॥ ४१ ॥ वही भगवान् वासुदेव धर्मरूपधारी जगत्के धारण करनेवाले इस विश्वमें तिर्यक् पशु पक्षियोंमें अवतार लेकर इसका स्थापन कर पुष्ट करते हैं ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त काल अग्नि

द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः॥कुशलाकुशला मिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥४०॥सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः ॥ तत्राप्येकैकशो राजन्भिद्यंते गतयस्त्रिधा ॥ यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥ ४१ ॥ स एवेदं जगद्धाता भगवान्धर्मरूपधृक् ॥ पुष्णाति स्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥४२॥ ततः कालाग्निरुद्रात्माय त्सृष्टमिदमात्मनः ॥ संनियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः ॥ ४३ ॥ इत्थंभावेन कथितो भगवान्भगवत्तमः ॥ नेत्थं भावेन हि परं द्रष्टुमर्हंति सूरयः॥४४॥ नास्य कर्माणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते ॥ कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययाऽऽरोपितं हि तत् ॥ ४५ ॥ अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः ॥ विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः ॥ ४६ ॥ परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् ॥ यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥ ४७ ॥

रूप,रुद्रान्तर्यामी ईश्वर जिसमें यह सब रचा हुआ है। इस संसारका कालसे संहार किया करतेहैं। जैसे मेघके समूहको पवन उडा देताहै॥४३॥ इस प्रकारसे भगवान् भक्तवश्यका वर्णन किया इस भावके विना और प्रकारसे बडे २ विवेकी लोग भी उन्हें नहीं देख सक्ते ॥ ४४ ॥ इन परमेश्वरके जन्मादिक और कर्मकर्तापनेके भाव मायासे होतेहैं ॥ ४५ ॥ यह ब्रह्माका कल्प विकल्पसहित कहा। जहाँ साधारण विधि है जिसमें प्राकृत वैकृत सर्ग होते हैं ॥ ४६ ॥ परिमाण, कल्प, लक्षण, विग्रह, स्थूल, सूक्ष्म कालको तृतीयस्कंधमें कहेंगे, अब

इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायां द्वितीयस्कन्धो समाप्तः

शौनक उवाच। यदाह नो भवान् सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः। चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बन्धून् सुदुस्त्यजान् ॥४८॥ कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः। यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ह ॥४९॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम्। बन्धुत्याग निमित्तं च यथैवागतवान् ~~कुमानः~~ पुनः ॥५०॥ सूत उवाच,, राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन् महामुनिः। तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते तृतीयस्कन्धः प्रारभ्यते ॥

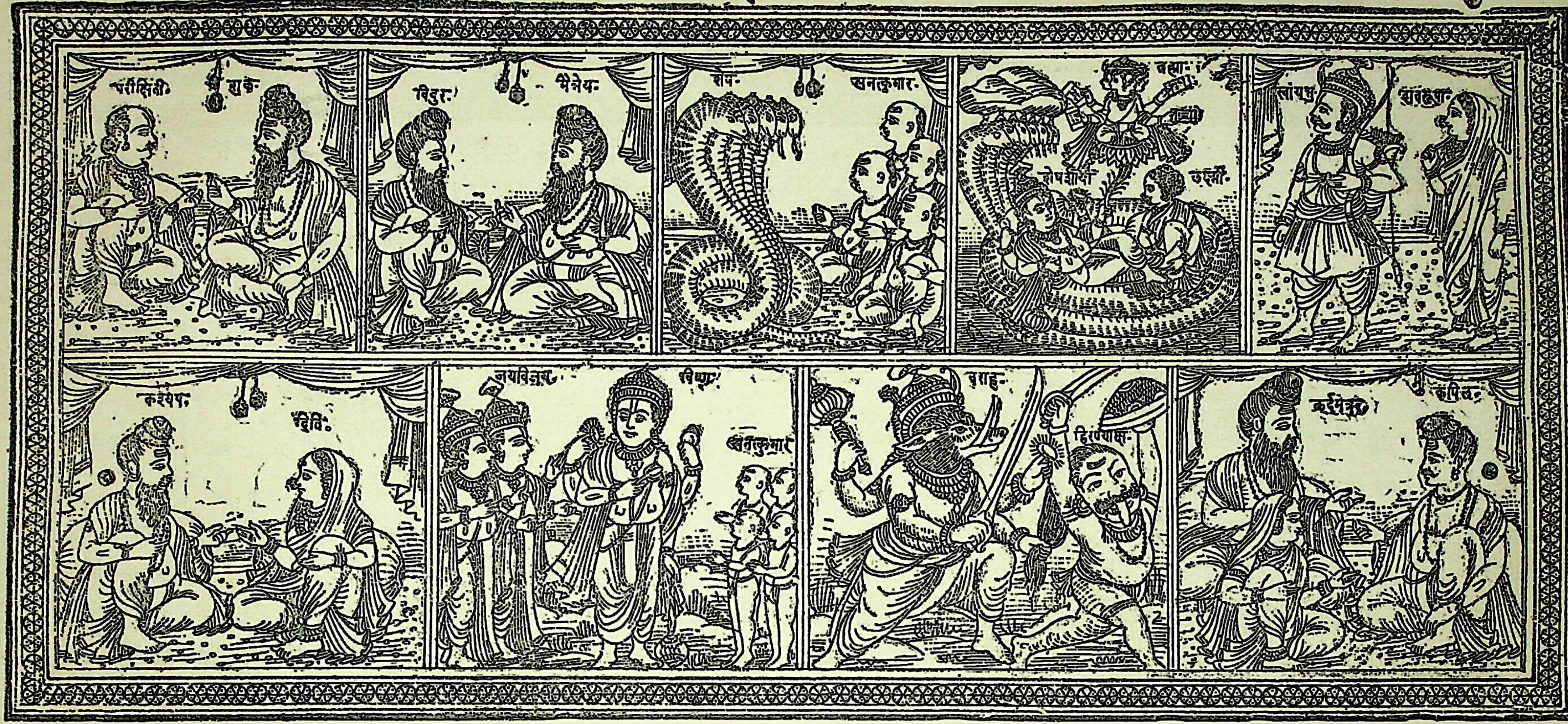
परीक्षित
शुक
विदुर
मैत्रेय
शेष
सनत्कुमार
ब्रह्मा
शेषशायी
लक्ष्मी
स्वायंभुव
शतरूपा
कश्यप
दिति
जयविजय
विष्णु
सनत्कुमार
वराह
हिरण्याक्ष
कर्दम
कपिल

सोरठा–जय गजवदन गणेश, विघ्नकदन प्रद-सुखसदन ॥ एकरदन सम वेश, मदनकदनके वर नँदन ॥ १ ॥ जय श्रीनन्दकुमार, व्रजभूषण दूषण हरण ॥ अपनो दास निहार, दयासिंधु कीजे दया ॥२॥ दोहा--कह्यो द्वितीय स्कन्ध शुक, पुनि प्रभुपद धर ध्यान ॥ कथा तृतीय स्कंधकी, लागे करन बखान ॥ ३ ॥ इस तृतीय स्कन्धके, तैंतीसों अध्याय ॥ कहे परीक्षितनृपतिसों, शुकाचार्य समुझाय ॥४॥ तीसरे स्कन्धमें तेंतीस अध्याय हैं, जिनमें सर्गका वर्णन है। ईश्वरकी इच्छासे गुणोंके चलायमान होनेसे ब्रह्माण्डका होना इसका नाम सर्ग है। प्रथम अध्यायमें क्षीणआयु बान्धवोंको त्याग विदुरजी जैसे घरसे चलेगये उनका संवाद आदिसे वर्णन करते हैं। पहिले भगवान्का और ब्रह्माका संवाद संक्षेपसे कहाहै; अबफिर शेषजीकी कही भागवत सुन्दर विस्तारसे कहतेहैं। दो प्रकारसे श्रीमद्भागवतके संप्रदायकी प्रवृत्ति है, एक संक्षेपसे श्रीनारायण ब्रह्माके द्वारा, और विस्तारसे शेषजी, सनत्कुमार, सांख्यायनादिद्वारा हुई. तहां द्वितीयस्कंधमें श्रीनारायण ब्रह्माके संवादमें संक्षेपसे "अहमेवासमेवाग्रे" इत्यादि करके 'चतुःश्लोकी–भागवत' कही. सोई ब्रह्म नारदके संवादसे दशलक्षणसे कुछ विस्तारसहित कही, सोई शेषजीकी कहीहुईको अब अति विस्तारसे कहनेके कारण तृतीयस्कंधका प्रारम्भ है। पहिले चार अध्यायमें विदुर मैत्रेयका संगम, फिर आठ अध्यायमें विसर्गसहित सब प्रपंच कहा, विसर्गके प्रस्तावसे सात अध्यायमें बाराहअवतारका वर्णन किया है, एक अध्यायमें विसर्गकी संपूर्णता कही हैं; फिर चार अध्यायमें कपिलदेवजीके अवतारकी कथा कहीहै; इसके पीछे नव अध्यायमें कपिलदेवजीका आख्यान किया। इस प्रकार तृतीयस्कंधकी तेंतीस अध्यायमें प्रवृत्ति है ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! सर्व सम्पदासे पूर्ण गृहको त्याग वनमें जा विदुरजीने निश्चयकर भगवान् मैत्रेयजीसे पहले यह चरित्र इसप्रकार बूझा ॥१॥ सर्वके ईश्वर, षड्गुणऐश्वर्यवान् यह जगन्नाथ श्रीकृष्ण तुम्हारे पांडवोंके मंत्री हुए. और दुर्योधनके गृहको त्याग विदुरको अपना जान उनके घरपर गये ॥२॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने कहा कि, हे समर्थ शुकाचार्य ! भगवान् मैत्रेय और विदुरजीका सत्संग कहां हुआ? और

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल ॥ क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥ यद्वा अयं मंत्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ॥ पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः ॥ कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥

किस समय हुआ ? सो विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ हे मुने ! उन शुद्धात्मा विदुरजीका प्रश्न ऐसे महात्मा मैत्रेयजीसे कुछ थोड़े प्रयोजनका देनेवाला तौ न हुआ होगा, बरन् अधिकही प्रयोजनका साधक होगा; क्योंकि जिसके प्रश्नकी सराहना महात्मा पुरुष करते हैं ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि, "राजा परीक्षितका अत्युत्तम प्रश्न सुनकर आत्मज्ञानी प्रसन्नमन श्रीशुकदेवजी बोले" कि, हे नरपाल! सुनो—जिस समय दुष्ट राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंको पुष्ट कियाथा; इसलिये अधर्मसे विनष्टदृष्टि हुई, सो छोटे भाई पाण्डुके अनाथपुत्रोंको लाक्षाभवनमें प्रवेश करवाकर उनको जलानेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ ६ ॥ जिस समय सभामें अपनी पुत्रवधू राजा युधिष्ठिरकी पत्नी द्रौपदी अपने अश्रुजलसे पयोधरोंकी कुंकुमको धोरहीथी; उसके केशोंको

नह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः ॥ तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमृ
षिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ॥ प्रत्याह तं स बहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा तु राजा
स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ॥ भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून्प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥ ६ ॥ यदा सभायां
कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ॥ न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरंत्याः कुचकुंकुमानि ॥ ७ ॥
द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलंबस्य वनागतस्य ॥ न याचतोऽदात्समयेन दायं तमोजुषाणो यदजातशत्रोः ॥ ८ ॥
यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ॥ न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥ ९ ॥
यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ॥ अथाह तन्मंत्रदृशां वरीयान्यन्मंत्रिणो वैदुरिकं वदंति ॥ १० ॥

पकड़ खैंच रहाथा, यह पुत्रका कुकर्म देखकरभी धृतराष्ट्रने उसको नहीं निवारण किया ॥ ७ ॥ अधर्मसे जुएमें हरे हुए, सीधे सत्यवादी बारहवर्ष वनमें बस जब घर आए तब पुरोहितको भेजा और अपना राज्य मांगा, और महाप्रतापी राजा युधिष्ठिर जिनका कोई शत्रु नहीं उनको अधर्मी दुर्योधनसेवी धृरातष्ट्रने भागदेना नहीं स्वीकार किया ॥ ८ ॥ जिस समय युधिष्ठिरके भेजेहुए जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजीने सब पुरुषोंको अमृततुल्य वचन सभामें सुनाये तब नष्टपुण्यधृतराष्ट्रने उन वचनोंका बहुतमान न किया ॥ ९ ॥ जिस कालमें धृतराष्ट्रका बुलाया हुवा विदुर भवनमें प्रविष्ट होनेपर बडे भ्राता धृतराष्ट्रने मंत्र (सलाह) के वास्ते पूछा और इसके अनंतर मंत्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ विदुरने जो जो मंत्र कहे

उनको मंत्री सभामें अबतक भी यह विदुरनीति है ऐसे दृष्टांत देते हैं॥ १० ॥ "जो जो विपत्ति युधिष्ठिरके सहने योग्य न थी, वहभी उसने सही, उस असह्य अपराधके सहनेहारे युधिष्ठिरका अंश तुम देदो। सब भ्राताओं सहित सर्परूपी भीमसेन क्रोधसे श्वास ले रहा है, जिससे तुम सदा भयभीत रहतेहो"॥११॥विदुरजी फिर कहने लगे हे धृतराष्ट्र! तुम भीमसेन और अर्जुनसमान बलवान नहीं हो; और अपने मनमें यह अभिमान मत करो कि मेरे बहुतसे पुत्र हैं क्योंकि तुम यह नहीं जानते कि पांडवोंके पृष्ठरक्षक श्रीयदुनायकका हाथ और उनको श्रीमुकुन्दने निजभावसे ग्रहण किया है, और वह मुकुन्द स्वयं भगवान् हैं ,जिनके साथ सब देवता और मुनीश्वर हैं; सो अपनी द्वारकापुरीमें विद्यमान हैं, कहीं चले नहीं गये हैं; फिर वह द्वारकानाथ यदुवंशीय राजाओंके पूज्य हैं और उनके संग यदुवंशी भी बलवान् और एकसे एक

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवाऽऽगः ॥ सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्मृषा यत् त्वमलं बिभेषि ॥११॥पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुंदो गृहीतवान्स क्षितिदेवदेवः॥ आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेव देवः॥१२॥स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या॥ पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुल कौशलाय ॥ १३ ॥ इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ॥ असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥ १४ ॥

19|

गुण निधान हैं, और जिन वसुदेवकुमार वासुदेव भगवान्ने बडे २ राजाओंको जीतकर स्वाधीन किया, इसलिये सब राजालोगभी उनके पक्षमें सहायक हैं, इससे केवल अपने पुत्रोंकी धीरता और वीरताका जो अभिमान है, उसको छोड़कर पांडवोंको उनका भाग देदो ॥१२॥ सो यह श्रीकृष्णसे विमुख दुर्योधन विनष्टश्री होकर दोषरूपधारी तुम्हारे घरमें घुसा है.जिसको तुम पुत्रबुद्धिसे पुष्ट करतेहो,कृष्णविमुख श्रीनष्ट एक दुर्योधनको कुलकी कुशलताके अर्थ शीघ्र त्याग करो, जिससे कुल विनाश न हो वही अपत्य है॥१३॥अत्यन्त शीलवान् विदुरजी उस सभामें ऐसा कह रहे थे इसको सुन दुर्योधनका कोप अत्यन्त बढ़ा, होंठ फड़कने लगे,और वह लाल २ नेत्र कर बोला,-"इस दुष्टको यहांसे निकालो" इसी प्रकार कर्ण, दुःशासन,शकुनिनेभी उनका तिरस्कार किया.इन्होंने कहा था-"इस कपटीको इहां किसने बुलाया है;!यह दासीपुत्र होकर हमसे

पाला जाकर हमारेही प्रतिकूल शत्रुओंकी कुशल चाहता है; इसलिये इस जीतेहुए अमांगलिकको शीघ्र नगरसे निकालो ॥ १४ ॥ अपने भाई धृतराष्ट्रके सन्मुख दुर्योधनके वचनबाणसे विद्धहो कहा कि ईश्वरकी मायाका माहात्म्य ऐसाही है,ऐसे मनमें विचार विदुरजी अपने धनुषको द्वारपर रखकर तीर्थयात्राको चलदिये॥१५॥१६॥कौरवोंके पुण्यकर्मसे प्राप्त विदुरजी हस्तिनापुरसे निकल अपने चरणोंसे हरिके क्षेत्रोंको पवित्र करने

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ॥ तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥ १५ ॥ स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ॥ स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥ १६ ॥ स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ॥ अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥ पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुंजेष्वपंकतोयेषु सरित्सरस्सु ॥ अनंतलिंगैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥ १८ ॥ गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधश्शयनोऽवधूतः ॥ अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ १९ ॥

चले गये. पृथ्वीपर जहां२ब्रह्म,रुद्र आदि अनेक रूप हो आप निवास करतेहैं:तहां२सब क्षेत्रोंमें गये* ॥१७॥पुरोंमें पुण्यदाता जो उपवन उनमें, पर्वतोंमें,कुञ्जोंमें,सरोवरोंमें,अपंक नदियोंमें,ईश्वरके चिह्नोंसे सुन्दर अलंकृतोंमें,और जो जो तीर्थोंके स्थान क्षेत्रहैं उन सबमें अकेले विदुरजी विचरते फिरे॥ १८॥एकांतवृत्ति, शांतस्वभाव, पवित्र आत्मा सदा सब तीर्थोंमें स्नान करैं,पृथ्वीपर शयन करैं,शरीरकेसंस्कार न करैं,अवधूत रहैं,वल्कल

---

* शंका–यमराजके हृदयमें सदा अपने राज्यकी प्रीति और अनरीति बनी रहती है. सो यमराज विदुरजी होतेहुए तो विदुरजीने यमराज बनकर तीर्थसेवन आदि लेके उत्तम क्रिया क्यों करी ? यमराजका वश चले तो दूसरा जीवभी उत्तम कर्म नहीं करने पाता, फिर विदुरने यमराज बनकर यह शुभकर्म क्यों किया ? और मनुष्य जिस योनिमें जन्म लेता है उस योनिकी प्रकृति महाकाठिनतासे छूटती है. फिर विदुरजीसे यमकी प्रकृति क्यों छूटगई ? जो तीर्थयात्रा करने लगे ॥

उत्तर–यह तुम्हारा वचन बहुत सत्य है कि, सब प्राणियोंकी प्रकृति महाकाठिनतासे छूटती है. परन्तु उसी महादुःखसे छूटनेवाली प्रकृतिको महात्मापुरुषोंकी संगति नीच प्रकृतिकोभी उच्च प्रकृति कर देती है दुष्ट जीवोंके त्रास देनेवाले यमराज हैं, महात्मा पुरुषोंसे वेभी डरतेहैं. और विदुरजीने तो व्यासजीके अंशसे जन्म लिया था. इसलिये यमराज विदुररूप होकर दुष्ट कर्मोंको त्याग उत्तम क्रिया करने लगे. और व्यासजी महाराजकी कृपासे विदुरजी भगवान्‌के भक्त हुए ॥

वसन पहिनैं,रूपको छिपाये अवधूत वेष बनाए वे व्रत करने लगे जिससे परमात्मा प्रसन्न हो॥१९॥इस भाँति भारतवर्षमें विचरते २ बहुतदिन होगए,उस समय राजा युधिष्ठिर श्रीपुण्डरीकाक्ष कृष्णचन्द्रकी सहायतासे पृथ्वीपर एकछत्रराज करतेथे॥२०॥जैसे बाँसोंके वनमें बाँसोंके रगड़नसे अग्नि निकल बाँसोंको जलाकर निवृत्त होजाती है.उसीप्रकार प्रभासक्षेत्रमें अपने सुहृद् कौरवपाण्डवोंका विनाश सुना कि,परस्पर ईर्षा करके भस्म होगये; उनका अत्यन्त शोक किया,फिर चुप होकर पूर्ववाहिनी सरस्वतीके निकट गये॥२१॥उस सरस्वतीके निकट एकादश तीर्थ हैं.ब्रह्मविष्णुशिवतीर्थ १,शुक्राचार्यका मन्दिर २,मनुका स्थान ३,पृथुका भवन ४,अग्निकुण्ड ५,शनैश्चरका चित्र ६,वायुका वासस्थान ७,सुदास राजाकी प्रतिमा ८,

इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ॥ तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥
तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ॥ संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन् सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥ तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ॥ तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥ अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः॥ प्रत्यंगमुख्यांकितमंदिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरंति ॥ २३ ॥ ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजांगलांश्च ॥ कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥ २४ ॥स वासुदेवानुचरं प्रशांतं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम्॥ आलिंग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥ २५ ॥

192

गोशाला ९,स्वामिकार्तिकका मंदिर १०,श्राद्धदेवमनुकी सभा ११,इन सबका विदुरजीने सेवन किया॥२२॥औरभी ऋषियोंके,देवताओंके बनाएहुये,विष्णुके स्थान वहांपर हैं.जिनमें विष्णुके संपूर्ण अङ्गकीशोभा करनेवाले आयुधोंमें मुख्य जो सुदर्शनायुधसे चिह्नित शोभायमान अनेकानेक प्रकारके मंदिरहैं,उनके दर्शनसे श्रीकृष्णका स्मरण होता था,तहाँ२मज्जन वंदन करते फिरते थे॥२३॥सुराष्ट्र,ऋद्ध,सौवीर,मत्स्य,कुरु,जांगल इन सब देशोंको यथाक्रम उल्लंघन करके यमुना पुलिनपर आये तहाँ परम भागवत उद्धवको देखा॥२४॥ श्रीकुञ्जविहारीके अनुचर, प्रशांत बृहस्पतिके नीतिशास्त्रमें पहिले विख्यात शिष्य उद्धवको हृदयसे लगा विदुरजी मिले,और भगवत्की प्रजा,और अपने इष्टमित्रोंकी कुशलकी विदुरजीने जिज्ञासाकी॥२५॥

और फिर बूझा कि,श्रीरामकृष्ण कुशलहैं,जो पुराण पुरुष अपनी नाभिमेंसे पैदा हुये ब्रह्माजीकी सेवासे प्रसन्न हो यहां अवतार लिया,और पृथ्वीको कुशल विधानकर अब इस समय अवकाशसे शूरसेनके गृहमें विराजते हैं॥२६॥ कुरुके परमसुहृद्‌ हमारे भगिनीपति तेजस्वी परमपूज्य वसुदेवजी कुशल हैं? जो अति उदार वसुदेवजी अपनी बहिनोंको बहुत धन दे तृप्त कर शूरसेनकी समान सदा धन देते रहे हैं ॥२७॥सब सेनाके सेनापति, यादवाधीश, महावीर प्रद्युम्न कुशल हैं ? जिन मदनके अवतारको रुक्मिणीने पूर्वजन्ममें अनेक प्रकारकी आराधना कर पाया है ॥२८॥सात्वत, वृष्णि, भोज, दशार्ह, इनके स्वामी उग्रसेन महाराज सुखी हैं ? नृपासनाशात्यागी उग्रसेनको कमलनयन भगवान्‌ने स्वयं नृपासन त्याग

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ॥ आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगृहे ॥ २६ ॥ कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमंग शौरिः॥ यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वर तर्पणेन ॥ २७ ॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमंग वीरः ॥ यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥ २८ ॥ कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ॥ यमभ्यषिंचच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु सांबः ॥ असूत यं जांबवती व्रताढ्या देवं गुहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे॥३०॥ क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ॥ लेभेऽञ्जसाऽधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥ ३१ ॥ कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ॥ यः कृष्णपादांकितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥ ३२ ॥

अभिषेक किया॥२९॥हे सौम्यउद्धव ! महारथियोंमें अग्रगण्य वृन्दावनविहारीकी समान शीलवान्‌ जैसे पूर्वजन्ममें शैलसुत भवानीने स्वामि कार्तिकको उत्पन्न किया; इसी प्रकार व्रतकरके जाम्बवतीने जिन्हें उत्पन्न किया सो श्रीकृष्णतनय साम्ब अच्छे हैं? ॥ ३० ॥ जो गति यतियोंको महादुर्लभ है सो श्रीयदुनायककी सेवासे सहजमें प्राप्त हुई और जिनको अर्जुनसे धनुरहस्य प्राप्तहुवा ऐसे शान्तरूप सात्यकी सुखी हैं ?॥३१॥ अत्यन्त बुद्धिमान्‌,निष्पाप,भगवत्के शरणागत आठों याम श्रीकृष्णके प्रेमरसमें जो मग्न,सब लज्जाको तज ब्रजकी रजमें लोटनेहारे श्वफलकसुत

अक्रूर तो आनंदमें हैं?॥२२॥देवकनाम भोजकी कन्या, अदितिकी समान सब जगत्के स्वामी;आदिब्रह्म, अविनाशी त्रिलोकीनाथ जिनके पुत्र,
श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दको जिन्होंने गर्भमें इसप्रकार धारणकिया जैसे वेदत्रयी यज्ञके विस्तृत अर्थको धारण करती है सो देवकी प्रसन्नहैं॥३३॥
भगवान् उपासकोंकी कामनाके दाता आपके अनिरुद्धजी तौ कुशल हैं?जिनको वेद शब्दशास्त्रके कारण मनोमय अंतःकरणके चतुर्थतत्त्व मानते
हैं ॥ ३४ ॥ हे विद्वज्जन ! अपने आत्मदेव अनन्य वृत्तिसे जो भगवत्परायणहैं वे सुखीहैं ! हृदीकादि सत्यभामाके पुत्रचारुदेष्ण, गद आदिमें
जिनके सो भगवान्के पुत्र प्रसन्न हैं॥३५॥अर्जुन श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंसे धर्मसमेत धर्मके सेतुकी धर्मावतार युधिष्ठिर क्या रक्षाकरतेहैं?जिनकी

कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ॥ या वै स्वगर्भेणदधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम्
॥ ३३ ॥ अपिस्विदास्ते भगवान्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ॥ यमामनंति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं
सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ॥ हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्ण
गदादयः स्वस्ति चरंति सौम्य ॥ ३५ ॥ अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ॥ दुर्योधनो
ऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥३६॥ किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुं
चत् ॥ यस्यांघ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥ ३७ ॥ कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गांडीवधन्वोपर
तारिरास्ते। अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृतौ
पक्ष्मभिरक्षिणीव॥ रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥ ३९ ॥

193

सभासे विशेष जयकी अनुवृत्ति और सम्राट्पनकी लक्ष्मीसे दुर्योधन तपताहुआ॥ ३६ ॥अपराधकारी कुरुओंमें क्रोधी भीमसेन सर्पकी सदृ
महाघोर श्वास लेनेवाला गदा ग्रहणकर विचित्र मार्गोंमें विचरते समय जिस भीमसेनके चरणकी धमक धरती नहीं सहन कर सक्ती सो पवनपुत्र भीम
सेन प्रसन्न हैं॥३७॥ महारथी यूथपोंमें यशस्वीशत्रुनाशक अलक्षित जिनके बाणोंकी मायासे ठगे हुए भीलरूप धारण कियेहुए भूतनाथ प्रसन्नहुए सो
गाण्डीव धनुषधारी इन्द्रसुतअर्जुन अच्छीतरह हैं?और माद्रीके पुत्रोंकोभी तुमने देखा?जिनका कुन्ती पुत्रसमान पालन करती है,और जिसप्रकार

पलक नेत्रोंकी रक्षाकरतेहैं उसी प्रकार रक्षा की, शत्रु इन्द्रके मुखसे जैसे गरुड अमृत लावै उनकी सदृश युद्ध करके बरजोरी अपना भाग लेकर विहार करते हैं वे प्रसन्न हैं ॥३८॥३९॥बड़े आश्चर्यकी बातहै कि, पाण्डुराजर्षिके विना केवल पुत्रोंकी रक्षाके अर्थ कुन्ती जीवन धारण करती है एकही वीर जिन पांडुने एक धनुष लेकर अकेलेचारों दिशाओंको जीतकर शत्रुओंका विनाश किया ॥ ४० ॥ हे सौम्य उद्धव! हमारा ज्येष्ठ बंधु जो अभिमानके मदमें अंधा होरहाथा उसका मैं सोच करता हूँ कि, वह नरकमें पड़ेगा क्योंकि उनके आश्रित होकर जिससे परलोकमें गये पांडुभ्राताके साथ द्रोह करा अर्थात् पांडुके पुत्रोंको दुःख दिया और मैं जीवता हुआ सुहृद् भ्राता पुरसे निकाला गया इसलिये वह नरकमें

अहो पृथाऽपि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनाऽपि तेन ॥ यस्त्वेकवीरोऽधिरथोविजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥४०॥सौम्यानुशोचे तमधः पतंतं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः॥ निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन॥ ॥ ४१ ॥ सोऽहं हरेर्मर्त्यविडंबनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः॥नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन्गतविस्मयोऽत्र ॥४२॥ नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः॥ वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशो व्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥४३॥ अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ॥ नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतंत्रम्॥ ४४ ॥

कैसे नहीं पड़ेगा ॥४१॥ मनुष्योंमें अवतार धर नरलीला कर मनुष्योंके बुद्धिको चलायमान करता, सब संसारके धारक श्रीवृन्दावनविहारी के प्रसादसे मैं परम पदवीको प्राप्तकर विषादरहित हो सब पृथ्वीपर विचरता फिरा और मैंने अपने रूपको ऐसाछिपाया कि किसीने मुझको नहीं पहिचाना ॥४२॥ इन तीनों मदोंसे युक्तहो सेनासे सब धरतीको चलायमान करैं, उनका हठ हटानेके अर्थ वध करने और शरणागतोंका कष्ट हरनेको देवकीनंदनने कौरवोंका अपराध क्षमा किया॥ ४३ ॥ अजन्मा ईश्वरके जन्म पाखण्डी और दुष्टोंके नाश करने और अकर्ताके कर्म, पुरुषोंके ग्रहण करनेके अर्थ हैं इनके बिना गुणोंसे परे जो ईश्वर हैं उनकेबिनाकर्मके वश होना और ब्रह्मनिष्ठाका धारण और देहके योग्य नहीं है॥४४॥

---

१ विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदांधानां त एव हि सतां दमाः ।

हे सखे! शरणागत सब लोकपालोंके और अपनी आज्ञामें जो स्थित हैं उनके कारण यादवोंमें जन्म लिया, ऐसे तीर्थरूप वसुदेवकुमार बांके विहारी, कृष्णमुरारीकी मनोहर कथा सुनाओ ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—कहौं द्वितीय अध्यायमें, उद्धव विरह विलाप । जैसे वरणो विदुरसे, सकल शोक सन्ताप ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, श्रीकृष्णका स्मरण

तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥ अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥ प्रतिवक्तुं न चोत्सेहे औत्कंठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥ यः
199 पंचहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ॥ तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ २ ॥ स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः ॥ पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥

करानेहारी ऐसी बातें भागवत विदुरजीने उद्धवसे पूछीं, तब श्रीवृन्दावनविहारीके विरहमें उद्धव सब सुधि बुधि विसराय खडे होगये और मुखसे कुछ न कहसके ❋ ॥ १ ॥ जिस समय उद्धव पांच वर्षके थे, तब बाललीलामेंभी श्रीगोविन्दके चणारविंदकी पूजा करते रहे थे, और जब प्रातःकाल मैया भोजनको बुलाती तबभी न जाते ॥ २ ॥ सो उद्धवजी उनकी सेवा करते २ अब वृद्ध होगये थे, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलका स्मरण कर जो कुछ

❋ **शंका**—सब विष्णुके भक्तोंमें तथा सब ज्ञानियोंमें तथा सब शास्त्रोंमें उद्धवजी बडे ज्ञानी बडे भक्त, कृपाके सागर श्रीकृष्णने जिनको अपना परम प्रियतम जानकर ज्ञान दिया, सो ऐसे बडे ज्ञानी होकर उद्धवजी विदुरजीके मुखसे श्रीकृष्ण बलराम आदिक सब यदुवंशियोंका विनाश सुनकर मूर्खोंकी समान शोक क्यों करनेलगे ?

उत्तर—उद्धवजीने विचार किया कि, जो मैं श्रीकृष्णजीके विरहको सुनकर शोक संताप न करता तो मेरा चरित्र सुनके कलियुगमें सब प्राणी भगवानका विरह सुनकर कोई भी शोक न करैगा तो सब प्राणियोंको कलियुगमें श्रीवैकुण्ठनाथका वैकुण्ठधाम नहीं मिलेगा इसलिये उद्धवजी परमज्ञानीभी थे और विष्णुभक्त भी थे तो भी भक्तजनोंके प्रीति बढानेके लिये शोक किया कि, कलिकालके लोगोंको प्रेमसेही परमधाम प्राप्त होगा.

जिज्ञासा किया सो वर्णन करने लगे ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णके चरणामृत और पूर्ण भक्तिमें अत्यन्त मग्न हो अतिसुख पाय मुहूर्तमात्रको मौन होगये
॥ ४ ॥ और पुलकायमान हो नेत्र मूँद शोक तज प्रेमप्रवाहमें निमग्न सब अर्थ परिपूर्णसी दशा होगई ॥ ५ ॥ धीरे २ भगवान्के ध्यानसे फिर संदेहानुसन्धानमें
आन अश्रुनिवारण कर उद्धवजी फिर विदुर जीसे बोले ॥६॥ "हे विदुरजी! हमारे नेत्रोंके तारे, श्रीकृष्णरूप सूर्य अस्त होगये" और
कालरूप अजगरने सब शोभित ग्रहोंको डसलिया अब मैं किसकी कुशल और प्रसन्नता कहूँ ॥ ७ ॥ यह सब लोक भाग्यहीन हैं. और यादव तौ
सभी महा अभागे हैं प्रारब्धके मंद हैं. जो आदिपुरुष अविनाशीके निकट वास करते रहे और तौभी लोकनाथ विश्वात्माको नहीं पहिचाना । जैसे

स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णांघ्रिसुधया भृशम् ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ॥ ४ ॥ पुलकोद्भिन्नसर्वांगो
मुंचन्मीलद्दृशा शुचः ॥ पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥५॥ शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ॥ विमृज्य
नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥ ६ ॥ उद्धव उवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ॥ किं नु नः कुशलं
ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥७॥ दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ॥ ये संवसंतो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥
इंगितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्त्वताः ॥ सात्त्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥ देवस्य मायया स्पृष्टा ये
चान्यदसदाश्रिताः ॥ भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ॥
आदायांतरधाद्यस्तु स्वबिंबं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥

एक समय सुधाकर किसी शापसे जलनिधिमें मीन होकर रहा, परन्तु किसी जलचरने नहीं जाना कि, यह अमृतकी खानि है. अथवा जैसे मीन
अवतारको जलचरोंने संसारतारक नहीं समझा. और कहीं ऐसाभी लिखा है कि, समुद्रमथनसे पहले चंद्ररूप हरिको संसारतापहारक नहीं माना इसी
प्रकार हमारी गति जानो ॥८॥ भगवत् चित्तके ज्ञाता, अतिनिपुण एक स्थानमें सदा रहनेहारे, यादवोंने यदुनाथ, यादवश्रेष्ठ जगन्निवास ईश्वरको
अपना मित्र करके माना ॥९॥ असत्पदार्थके अधीन असुरादिक ईश्वरकी मायासे फँसे हुए थे उनके वाक्योंसे आत्मा हरिमें जिनका चित्त लगा
ऐसी हमारी बुद्धि भ्रमी ॥ १० ॥ तप नहीं किया दृष्टि तृप्त नहीं हुई ऐसे मनुष्योंको संसारके नेत्र अपने मनमोहन स्वरूपका दर्शन दिखाय आप

अन्तर्धान होगये ॥ ११ ॥ जिन्होंने नरलीलाके योग्य अपनी योगमायाका बल दिखानेको शरीर ग्रहण किया, सो अपनेको विस्मय करानेवाले, अत्यन्त सौभाग्य, ऋद्धिके भण्डार, भूषणके भूषण श्रीभगवान् वासुदेव हैं ॥१२॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें दृष्टिके आनन्ददायक मदनमोहनकी मनोहर छबि देख तीनों लोकोंने यह माना कि, ब्रह्माकी सृष्टिमें आज श्रीकृष्णचंद्रजीके श्रीअंगमें सब चतुराई बिसर गई, क्योंकि सब अवतारोंके अंग चतुराननके रचे हुए नहीं हैं आप स्वयंभू हैं ॥१३॥ जिनकी परमसुखदायक प्रेमयुक्त अनुराग रसभरी मुसकानतिरछी चितवन देख, सुधासम मधुरवाणी सुन, सुन्दर रासविलास देख, दृष्टिसे वह बुद्धिसे न जाने जायँ, अपूर्णमनोरथसी, मानवती, व्रजबाला ऐसी होगई कि, व्रजविहारीको जाता देख उनके संग अपने नेत्रोंको भी भेजदिया कि, हमारे प्यारे अकेले जातेहैं और आप अपनी सुधि बुधि बिसार ठगीसी रह गई॥ १४॥ भगवान् अपने शान्त अशान्तरूपोंमें और स्वरूपोंसे, दुखारी दासोंपर दयालु देह धार पर अवरके ईश महाअंशसे युक्त अजन्म ईश्वरने जन्म लिया, जैसे महाभूतरूपमें नित्य बसनेहारी अग्नि काष्ठमेंसे प्रगट हुई, इसीप्रकार अवतार धर सब दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारा॥ १५॥ उद्धवजी बोले अतर्क्य अगम्यके यह चरित्र समझकर मुझकोभी खेद होता है अजन्माभी वसुदेव देवकीके घरमें जन्म ले और व्रजमें सब घर२घूमे. शत्रुओंके भयसे भयभीत रहे जिनमें अनन्त बल और जरासन्धके भयसे द्वारका बसाई, और मथुरा तजकर वहां रहे ॥१६॥ हे विदुर ! इन बातोंका स्मरण कर २के मेरे चित्तमें

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ॥ विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणांगम् ॥१२॥ यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ॥ कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ॥ व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ स्वशांतरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकंपितात्मा ॥ परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्यथाऽग्निः ॥ १५ ॥ मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडंबनं यद्वसुदेवगेहे ॥ व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनंतवीर्यः ॥ १६ ॥ दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवंद्य पित्रोः ॥ तातांब कंसादुरुशंकितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥ १७ ॥

198

व्यथा और हँसी दोनों आती हैं, जब मातापिताके चरणारविन्दकी वन्दना कर यह बोले कि, हे तात! हे जननी! मेरा अपराध क्षमा करो मुझपर
प्रसन्नहो, कंसकी शंकासे आपकी सेवा मुझसे कुछ बन नहीं पड़ी॥१७॥जिन्होंने चलायमान भ्रूविटपरूप यमधर्मराजसे पृथ्वीका भार उतारा, उनके
चरणारविन्दकी रजको कौन ऐसा मूर्ख है जो भूलसक्ता है॥१८॥धर्मराजके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णकी निन्दा कर शिशुपालको जो सिद्धि प्राप्त
हुई सो आपने देखी जिस सिद्धिके सुन्दरयोगसे योगीजन मोक्षको प्राप्त होते हैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका वियोग कौन सहसक्ता है?॥१९॥
इसीप्रकार भारतके युद्धमें वीर मनुष्य नेत्रोंके आनंददायक श्रीकृष्णके मुखारविन्दका रस नेत्रोंसे पान करने लगे, अर्जुनके अस्त्रसे पवित्र होकर

को वा अमुष्यांघ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ॥ यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतांतेन तिरश्चकार ॥
॥ १८ ॥ दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ॥ यां योगिनः संस्पृहयंति सम्यग्योगेन कस्तद्वि
रहं सहेत ॥ १९ ॥ तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविंदम् ॥ नेत्रैः पिबंतो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः
पदमापुरस्य ॥ २० ॥ स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ॥ बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः
किरीटकोटयेडितपादपीठः ॥ २१ ॥ तत्तस्य कैंकर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यंग यदुग्रसेनम् ॥ तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठि
धिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥ २२ ॥अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ॥ लेभे गतिं धा
त्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ २३ ॥

भीष्मादिक वीरलोग बेखटके वैकुण्ठको चलेगये॥२०॥आज श्रीकृष्णकी समान कोई बलवान् और उनसे अधिक नहीं है, अपनी राज्यलक्ष्मीसे
सब भोग जिनको प्राप्तहैं और चिरलोकपाल ब्रह्मादिक शक्रादिक बलिदानपूर्वक जिनके चरणारविंदकी चौकीको अपने किरीटके अग्रभागसे स्तुति
करते हैं ॥२१॥ सो प्रभु सुधर्मासभामें राज्यसिंहासनपर बैठे और उग्रसेनसे कहते रहे थे "हे देव! आप हमको निरन्तर धारण करो" उनकी यह
बात सुनकर हम दासोंको बडा विस्मय होता है॥२२॥आश्चर्यकी बात है कि, महादुष्ट पूतना राक्षसीने स्तनोंमें कालकूट लगा मारनेकी इच्छाकर

दूध पिलानेके बहाने यशोदानन्दनको गोदमें लिया और उसको यशोदा माताकी समान मान परमगति दी, ऐसे दीनदयालु, परमकृपालु, श्रीकृष्ण प्यारेके बिना किसकी शरण जायँ॥२३॥ देखो महाक्रोधसे असुरोंने श्रीकृष्णमें मन लगाया हम उनको परमभागवत मानते हैं जो संग्राममें गरुडजीके ऊपर चढ़ अपने सन्मुख आयेहुए श्रीकृष्णके दर्शन कर वैकुण्ठको गये॥२४॥ कंसके बन्धनमें वसुदेवदेवकीके घर पृथ्वीका भार उतारनेको ब्रह्माकी प्रार्थना करनेपर अवतार धारण किया॥२५॥ दुष्ट कंसके भयसे वसुदेवजीने नन्दके घर ब्रजमें पहुँचाया, तहां एकादशवर्ष अपने तेजको गुप्त करके ब्रजमें वास किया और अनेक प्रकारके चरित्र दिखलाये॥२६॥ ग्वालबालसमेत गोपाललालने गाय वत्स चराये, कालिन्दीके कूलपर

मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरंभमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ॥ ये संयुगेऽचक्षत ताक्ष्र्यपुत्रमंसे सुनाभायुधमापतंतम्
॥२४॥ वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेंद्रबंधने ॥ चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥२५॥ ततो नंदव्रजमितः
पित्रा कंसाद्वि बिभ्यता ॥ एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥ परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन्व्याहरद्विभुः ॥
यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥ २७ ॥ कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ॥ रुदन्निव हसन्मुग्धबाल
सिंहावलोकनः ॥ २८ ॥ स एव गोधनं लक्ष्म्यानिकेतं सितगोवृषम् ॥ चारयन्ननुगान्गोपान्रणद्वेणुररीरमत् ॥ २९ ॥
प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ॥ लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥ ३० ॥

कुञ्जोंमें वृक्षोंमें कोकिलादिक पक्षियोंके समूह मनोहरशब्द करते और नवललितलतिका जहां लहलहारही थीं उन उपवनोंमें नित्यप्रति विहार करते थे ॥२७॥ मुग्ध तथा बालसिंहकी तरह है देखना जिनका ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र रोते हुएकी तरह और हँसते हुएकी तरह देखने योग्य बालअवस्थाके सुख ब्रजवासियोंको दिखाते भये॥२८॥ जब बांकेविहारी अधिक बड़े होगये तब लक्ष्मीका स्थान गोवर्धनके निकट गाय बैलोंको चराय बांसुरी बजाय २ ग्वालबालोंके संग अनेक २ ढंगके रास रंग इत्यादिक खेल किया करते थे ॥ २९ ॥ उस समय महाबली कंसके भेजे बड़े २ बलशाली दैत्य नानाप्रकारके रूप धरकर ब्रजमें आये उनको भक्तहितकारी बांकेविहारीने बाल्यक्रीड़ासे विनष्ट कर वैकुण्ठको भेजदिया

विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ॥ उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥ ३१ ॥ अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ॥ वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥३२॥ वर्षतींद्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ॥ गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् ॥ गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मंडलमंडनः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ उद्धव उवाच ॥ ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ॥ निपात्य तुंगाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥ १ ॥ सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ॥ तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पंचजनोदरात् ॥ २ ॥

जिसप्रकार बालक घरौंदा बनाके विगाड़ देतेहैं॥३०॥फिर भगवान्नेविष जलपानकरनेसे मरेहुए गोप और गायोंको जिलाय कालीदहमें कूद काली अहिको नाथकर निकाल अपना चरणचिह्न उसके मस्तक पर लगाय रमणकद्वीपको पहुँचाया;और कालिन्दीका जल निर्मल करके वही जलगोप गायोंकोपान कराया ॥३१॥ फिर ब्राह्मणोंके द्वारा समर्थ भगवान्ने नन्दजीसे गौओंकी पूजाके अर्थ यज्ञ कराया ॥३२॥अपनी प्रतिष्ठा भंग समझकर इन्द्रने क्रोधयुक्त हो व्रजमें मूसलधार जल बरसाया तब गोप ग्वाल बछडोंको दुःखी देख मंगलकी इच्छाकर श्रीव्रजनाथने कंदुक इव गोवर्द्धनको उठाय बायें करकी कनअंगुलीपर धारणकर व्रजमण्डलकी रक्षा की ॥३३॥ शरद शशधरकी विमलकिरणोंसे प्रकाशित रजनीमुखको मान मनमोहनने मनमोहिनी मुरली मनोहर गीत गाय, व्रजबालाओंको बुलाय उनके संग विहार किया ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषाटीकायां विदुरश्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा--कहौं तृतीय अध्यायमें, व्रजको सब वृत्तान्त। फेर द्वारकाके चारित, वरणों आद्योपान्त ॥१॥उद्धवजी बोले कि, फिर श्रीकृष्णचन्द्र सुखधाम बलराम समेत अक्रूरके संग मधुपुरीमें आये और अपने पिताके कल्याणकी इच्छा:कर संकर्षणसहित रंगभूमिमें जाय ऊंचे मंचपरसे असुरनाथ कंसके केश पकड पृथ्वीपर धर पटका,प्राग निकलने उपरान्त उसके शवको घसीटते फिरे॥१॥फिर सान्दीपनि गुरुके घर जाय उनके मुखसे कहे हुये चारों वेद एकबारमें विस्तार सहित पढ़ चौंसठ कला स्मरण कीं,

फिर गुरुके मरेहुए पुत्र पञ्चजनके उदरसे लाकर गुरुदक्षिणामें गुरुजीको देदिये *॥२॥ फिर श्रीमहालक्ष्मीके सदृश रूपवती रुक्मिणीजीके विवाहकी इच्छाकर अनेक भूपालोंको साथ ले राजा शिशुपाल व्याहने आया उसकाल भगवान् वासुदेव सबके देखते बडे नरेशोंके मध्यसे उन लोगोंके शिरपर पग धरकर रुक्मिणीको इस प्रकार हरलाये, जिसप्रकार पक्षिराजने अमृत हरण किया था ॥३॥ फिर यदुवीर अवधनगरमें जा सात बेनथे बैलोंको नाथकर स्वयंवरमें नग्नजितकी पुत्रीके संग विवाह किया, और बैलोंने जिनका मानभंग किया सो अत्याचारी नाग्नजितीके अभिलाषी,

समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ॥ गांधर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥३॥
ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ॥ तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञाञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥
प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छद्द्युतरुं यदर्थे ॥ वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषांधः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥ ५ ॥
सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसंतं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ॥ आमंत्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदंतःपुरमाविवेश ॥ ६ ॥

अज्ञानी शस्त्रधारी दुष्टोंका अपने शस्त्रसे विध्वंस किया ॥ ४ ॥ जिस सत्यभामा प्रियाके प्रेमनिमित्त संसारी मनुष्योंकी सदृश पारिजात समूल उखाड़ लाये, और जब सब दलसमेत क्रोधसे अन्धा स्त्रियोंके मध्यमें मर्कट विषयी इन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रसे लड़नेको आया तौ क्षणमात्रमें गर्वप्रहारी बाँकेविहारीने उसका गर्व दूर किया ॥५॥ फिर श्रीवैकुण्ठनाथने संग्राममें बड़े लम्बे भौमासुरका चक्रसे वध किया. उसे गिरा देख उसकी माता

---

* **शंका**–उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि, सान्दीपनि नाम गुरुके पास रहकर श्रीकृष्णजीने मोक्ष प्राप्त होनेकी विद्या सीखी सो मोक्षविद्या प्राप्त होनेपर फिर रागद्वेष जीवोंसे क्यों किया ? ।
उत्तर–सान्दीपनि गुरुसे श्रीकृष्णजीने चौंसठ कलाओंको प्राप्त किया, परन्तु तीन लोक चौदह भुवन ब्रह्मके अंशसे प्रकाशमान हो रहे हैं और चौंसठ कला भी उसके अंशसे प्रकाशित हो रही हैं, ऐसी कोई वस्तु संसारमें नहीं है जो कि ब्रह्मके अंशसे शून्य हो ऐसा श्रेष्ठ ज्ञान चौंसठ कलाके मिससे श्रीकृष्णजीने सीखा, तब जिस जीवको जैसी अभिलाषा रही उसके संग वैसी ही लीला करी. फिर राग, द्वेष कहां रहा? इसलिये उद्धवजीने ब्रह्मविद्या प्राप्त होनेको कहा था ।

पृथ्वीने अत्यन्त व्याकुल होकर प्रभुसे प्रार्थना की.भूमिकी विनय सुन उसके पौत्र भगदत्तको राजतिलक दे उसके भवनमें गये॥६॥तहाँ भौमासुर
की हरीहुई सोलह हजार भूपालोंकी कन्याओंने श्रीवृन्दावनविहारीकी बाँकी छबि निहार शीघ्र उठ अति हर्षित हो लाज अनुरागकी चितवनसे
मनहीमन विवाहकी अभिलाषा की॥७॥और उन स्त्रियोंके मंदिरोंमें एक मुहूर्तमात्रमें अपनी मायासे उनके चितानुसार हो विवाहयोग प्रकार
सहित पाणिग्रहण किया॥८॥और फिर उन सोलह सहस्र युवतियोंको द्वारकामें लेजाय षोडश सहस्र सदनोंमें एक संग बसे.तब उन सब रानियोंमें
एक एकमें गुणोंमें अपने समान दश२ पुत्रोंको मायाको अनेकप्रकार करनेकी इच्छासे उत्पन्न किया॥९॥ फिर कालयवन,जरासन्ध,शाल्वादिकोंने

तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबंधुम् ॥ उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहितावलोकैः॥ ७ ॥
आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ॥ सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥ ८ ॥ तास्वपत्यान्यजनयदा
त्मतुल्यानि सर्वतः ॥ एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागधशाल्वादीननीकैः रुंधतः पुरम् ॥ अजी
घनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत्॥१०॥शंबरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ॥ अन्यांश्च दंतवक्रादीनवधीत्कांश्च
घातयत् ॥११॥ अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ॥ चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः॥१२॥स कर्ण
दुश्शासनसौबलानां कुमंत्रपाकेन हतश्रियायुषम् ॥ सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननंद पश्यन् ॥१३ ॥

सेनाको जब द्वारकाको भेजा तब उनका विध्वंस किया, और अपने पूर्वजोंके दिव्य तेजको जागृत किया ॥ १० ॥ फिर शंबरासुर,द्विविद वानर,
बाणासुर, मुर, निकुम्भ, बल्वल और दंतवक्रादिक जो बड़े २ बलवान् असुर थे उनमेंसे किसीको आपने मारा और किसीको औरके हाथोंसे
कालकवलित कराया॥ ११ ॥ इनके पीछे तुम्हारे भ्राताके पुत्रोंकी और जो नरेश थे उनकी सेना आनेसे कुरुक्षेत्रकी भूमि कंपित हुई थी ॥१२॥
कर्ण, दुःशासन, सौबलके कुपरामर्शसे जिसकी राजलक्ष्मी आयु नष्ट हुई,पवनकुमार भीमसेनने घोर युद्ध करके जिसकी जंघा तोड़ी उसको पृथ्वी

पर अचेत पड़ा देख श्रीकृष्ण कुछ प्रसन्न नहीं हुए॥ १३॥ द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, फाल्गुन, भीमसेन, जिसमें मूल थे उन अठारह अक्षौहिणियोंके
न होनेसे क्या लाभ हुआ? मेरे अंश प्रद्युम्न आदि असह्य यादवरूप अभी हैं, भूमिपर बडा भारी भार तौ इनहींका है ॥ १४॥ जब मीठी वारुणीके
मदमें मतवाले हो, यादवलोग परस्पर विवाद करें, यही इनके संहार करनेका सहज उपाय है और इनके मरनेका दूसरा उपाय नहीं, और जब हम इस
कामके करनेका प्रारंभ करेंगे तौ एक चित्तवालेभी ये यादव आपही नष्ट हो सब अन्तर्धान होजावेंगे ॥ १५॥ ऐसे विचारकर भगवान्नें अपने राज्यको
स्थापित कर श्रेष्ठ रीति दरशाय सुहृदोंसहित आनंदित होते हुये ॥ १६॥ साधु अभिमन्युने विराट्पुत्री उत्तरामें गर्भधारण किया, उसको द्रोणपुत्र

किया‌न्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ॥ अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम्
॥ १४॥ मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ॥ नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते
स्वयं स्म ॥ १५ ॥ एवं संचिन्त्य भगवान्स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम् ॥ नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥ १६॥
उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ॥ स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥ १७॥ अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधै
स्त्रिभिर्विभुः ॥ सोऽपि क्ष्मामनुजै रक्षन्रेमे कृष्णमनुव्रतः॥ १८॥ भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ॥ कामान्सिषेवे
द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥ १९ ॥ स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ॥ चरित्रेणाऽनवद्येन श्रीनिकेतेन
चात्मना ॥ २० ॥ इमं लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् ॥ रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥

अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करना चाहा था, तब उस गर्भस्थित बालककी प्रणतपाल दीनदयालु त्रिलोकीनाथने रक्षा की. फिर सामर्थ्यवान् जगत्प
तिने तीन अश्वमेध यज्ञ राजा युधिष्ठिरसे करवाये और महाराज युधिष्ठिर श्रीवासुदेवकी कृपासे भ्राताओं समेत पृथ्वीपर विहार करते रहे॥ १७॥ १८॥
तदनंतर भगवान् विश्वात्माने लोकवेदमार्गानुसार द्वारावतीमें वास कर सांख्यशास्त्रमें मन लगाय सब प्रजाकी शिक्षाके कारण धर्म कर्म किये॥ १९॥
मनोहर मुसकानकी दृष्टिसे और सुधा विनंदित मधुर वाणीसे लक्ष्मीनिवास शरीरसे सबको आनन्द देते रहे ॥ २० ॥ इस लोक और उस

लोकमें निरंतर यादवोंको रमण कराया और सोलह सहस्र रमणियोंसे आप रमण करते रहे॥२१॥बहुत वर्षतक रमण करते२श्रीकृष्णको गृहस्थाश्रममें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ जो हरि किसीके अधीन नहीं, अपने कार्योंमें स्वतन्त्र, परमात्माको विराग हुआ, तौ जिनके काम पराये अधीन हैं और आप भी वे पराधीन हैं;उनमें कौन ऐसा योगेश्वर है जो भगवत्का भजन करता हुआ दैवाधीन कार्योंमें प्रीति करेगा॥२३॥एक समय द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके बालकोंद्वारा खेलमें मुनिकी हँसी कराई,तब भगवदिच्छाके अनुकूल मुनिने उनको महाघोर शाप दिया॥२४॥फिर कुछ मास पश्चात् वृष्णि,भोज, अन्धक आदिक प्रसन्न हो रथपर बैठे दैवसे विमोहित हो प्रभासक्षेत्रमें गये॥२५॥वहां स्नानकर उसी वारिसे पितृ, देव

तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् ॥ गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥ २२ ॥ दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ॥ को विस्रंभेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ २३ ॥ पुर्यां कदाचित् क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ॥ कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥ २४ ॥ ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः ॥ ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्दैवविमोहिताः ॥ २५ ॥ तत्र स्नात्वा पितृन्देवानृषींश्चैव तदंभसा ॥ तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥ २६ ॥ हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकंबलान् ॥ यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥ २७ ॥ अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ॥ गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते म०तृतीय०तृतीयोऽध्यायः॥३॥ उद्धव उवाच ॥ अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥ तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥

ऋषियोंका तर्पण कर बहुत दूधवाली गायें अलंकारयुक्त ब्राह्मणोंके दान करीं ॥२६॥और सुवर्ण, चांदी,और अनेक प्रकारके रत्न,आभूषण, शय्या, वस्त्र, दुशाले,पीताम्बर,मृगचर्म, सवारी,रथ,हाथी,घोड़े,कन्या, पृथ्वी जिससे सब वृत्ति चले ऐसा दान विप्रोंको दिया॥२७॥फिर जिसमें अनेक रस पूर्ण ऐसा अन्न महीसुरोंको दे भगवत्के समर्पण किया; फिर उन गो ब्राह्मण हितकारी यादवोंने श्रीकृष्णजीके प्रसन्नतार्थ भूमिमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया ॥२८॥ इति श्रीमद्भा०महा०तृती०भाषाटीकायां प्रभासक्षेत्रगमनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥दोहा—इस चतुर्थ अध्यायमें,बन्धु निधन सुन कान । उद्धवशिक्षासे विदुर, गये मित्रसुत जान ॥उद्धवजी बोले कि ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले भोजन करा, फिर वारुणी पान करनेसे सब

यादववीर ज्ञानशून्य होगये.और परस्पर बुरी २ बातें कर मर्मस्थानमें वचनबाण एक दूसरेके मारने लगा॥१॥उस मदके दोषसे उनके चित्त विषम होगये,सूर्य अस्त होनेके समय जिसप्रकार बांस घिसकर अग्निके उत्पन्न होनेसे नष्ट हो जाते हैं,ऐसेही परस्पर वे लड़कर शापाग्निसे नष्ट होगये॥२॥ भगवान् अपनी मायाके इस प्रभावको देख सरस्वती नदीमें आचमन कर एक वृक्षकी जड़में बैठगये ॥३॥ उस समय शरणागतके पीड़ानाशक, अपने वंशके विध्वंस करनेवाले भगवान्ने मुझसे कहा कि, तुम बदारिकाश्रमको जाओ॥४॥यद्यपि उनके अभिप्रायोंको मैं भलीप्रकार जानता था; तौभी मैं शत्रुविनाशकारी, दैत्यारी श्रीवासुदेवके पश्चात् ही गया, क्योंकि श्रीयदुनाथके कोमल चरणोंका वियोग मैं सहन नहीं करसका॥५॥तब मैं

तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ॥ निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥ २ ॥ भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ॥ सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहं प्रोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिंदम ॥ पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥ ५ ॥ अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् ॥ श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥ ६ ॥ श्यामावदातं विरजं प्रशांतारुणलोचनम्॥दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशांबरेण च ॥ ७ ॥ वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणांघ्रिसरोरुहम् ॥ अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥ ८ ॥ तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखः ॥ लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥ ९ ॥ तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुंदः प्रमोदभावानतकंधरस्य ॥ आशृण्वतो मामनुरागहासरमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥

वृन्दावनविहारीके चरणचिह्न खोजता हुआ सरस्वतीके तटपर पहुँचा.देखा तो राधाचित्तचोर श्रीनिवास स्वतंत्र अकेले वहाँ बैठेहैं॥६॥श्यामसुन्दर शुद्ध सत्वमय शांत लाल नेत्रवाले चारभुजाधारी आनंदस्वरूप पीतांबर धारण किये॥७॥ दहिना चरण बायें चरणपर स्थापितकिये; पीपलके पेड़के निकट बैठे,पुष्टशरीर, जिन्होंने संपूर्ण विषयोंका त्यागकर दिया॥८॥तहाँ दैवइच्छासे महाभागवत व्यासजीके सुहृद्सखा मैत्रेयजीभी विचरण करते हुए उधर आ निकले॥९॥तब भक्तअनुरागी आनन्दभावसे नीची ग्रीवा करे मेरे सन्मुख प्रेमहास्यकी दृष्टिसे विश्राम दे आनंदित होकर मुनीश्वरसे

श्रीव्रजनाथजी बोले हे वसुरूप उद्धव!तुम्हारे मनकी जो गति है वह मैं भलीप्रकार जानता हूँ और तुम्हारी अभिलषित वस्तु तुमको दूंगा,जो औरोंको प्राप्त नहीं होती,प्रथम विश्वके रचयिता वसुओंके यज्ञमें मेरी सिद्धिकी कामनासे तुमने मेरा यजन कियाथा॥१०॥११॥सो हे तात!मेरी कृपासे यह आपका अंतिम जन्म है,इसी जन्ममें तुम मेरे अनुग्रहका फल भोग लो,अब मैं मृत्युलोक त्याग वैकुण्ठधामको जाताहूँ,इस समय मेरा एकान्तमें एकान्त भक्तिसे दर्शन करो यही परमानंद है ॥१२॥ पहिले पाद्मकल्पकी आदिसृष्टिमें कमलासन ब्रह्माजीसे मैंने अपनी लीलाका प्रकाशक परम श्रेष्ठ ज्ञान कहा था, जिसको महाज्ञानी परमचतुर विद्वान् लोग "भागवत" कहते हैं सोई ज्ञान प्रथम मैंने तुमको दिया. अब तुम उस विमलज्ञानको विचार

श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहमंतर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ॥ सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः॥ ११ ॥ स एष भावश्चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ॥यन्मां नृलोकान्रह उत्सृजंतं दिष्ट्या दद्दश्वान्विशदानुवृत्त्या ॥ १२ ॥ पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ॥ ज्ञानं परं मन्महिमाव भासं यत्सूरयो भागवतं वदंति॥ १३ ॥इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ॥ स्नेहोत्थरोमास्खलिताक्षरस्तं मुंचञ्छुचः प्रांजलिराबभाषे ॥ १४ ॥ को न्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ॥ तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन्भवत्पदांभोजनिषेवणोत्सुकः ॥ १५ ॥कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ॥ कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥ १६ ॥

संसारी माया मोह तज मेरा भजन करो॥१३॥ऐसे आदरभावसे जब कृपानिधानने मुझे समझाया तब परमपुरुषके क्षण२के प्रति अनुग्रहका पात्र स्नेहसे मेरे रोमांच खडे होकर गद्गद कण्ठहोगया,मुखसे शब्द न निकला, शोकाश्रु नेत्रोंमें आगये तब मैं बडे कष्टसे हाथ जोडकर बोला॥१४॥ हे ईश ! हे प्रभु!यद्यपि इस संसारमें तुम्हारे पदपंकज सेवन करनेवालोंको चारों पदार्थोंमें सब पदार्थ प्राप्त होते हैं तथापि मैं भी आपके चरणकमलका सेवक हूँ परन्तु मुझको उन पदार्थोंमेंसे किसीकी इच्छा नहीं ॥ १५ ॥ जो अघटमान हैं सो कहते हैं कि,जो चेष्टा न करै अकर्ताके कर्म,

अजन्माके जन्म, शत्रुओंके भयसे भागना, कालकी आत्मा असंख्यात रमणियोंसे विहार करना अपनी आत्मामें सदा रमण करना, ऐसे तुम्हारे अद्भुतचरित्र देखकर इस संसारमें सब विवेकियोंकी बुद्धि खेदको प्राप्त होती है ॥१६॥ हे प्रभो ! हे देव ! सब कालमें अखंड अन्तर्यामी, जगत्के कारण अजानकी नाईं मुझे निकट बुलाकर मंत्र बूझतेथे और मुझकोबड़ाई देतेथे इसकारण मेरा मन आपके चरणकमलको नहीं छोडा चाहता॥१७॥ अपने आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला ज्ञान सम्पूर्ण ब्रह्मासे तुमने कहा.हे स्वामिन्!जो मेरे जानने योग्य हो सो कहो,जिससे अनायास संसारके दुःखसे हम सब तरैं॥१८॥ऐसे मेरे हृदयकी प्रीति जान श्रीवासुदेव भगवान् कमलनयननें आत्माकी परम स्थितिका ज्ञान कहा*॥१९॥तब मैंने उसीप्रकार भगवान् वासुदेवका आराधन किया उनके चरणामृतके प्रतापसे आपसे आप तत्त्व आत्माके ज्ञानका मार्ग मुझको प्राप्त होगया तब मैं उनके चरणोंको प्रणाम कर परिक्रमा दे विरहमें आतुर हो यहां आया हूँ ॥२०॥ उनके दर्शन प्राप्तिके हर्ष और वियोगकी पीडासे खेदित हो प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रम मण्डलको जाऊंगा॥२१॥जहां नारायण देव और नर ऋषि सब उपद्रवरहित दुश्चर तप कल्पपर्यंत सब लोकके अनुग्रहके

मंत्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुंठिताखंडसदात्मबोधः ॥ पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥१७॥
ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ॥ अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदांजसा यद्वृजिनं तरेम॥१८॥
इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः ॥ आदिदेशारविंदाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥ स एवमाराधितपादती
र्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ॥ प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥ २० ॥ सोहं तद्दर्शनाह्लादवि
योगार्तियुतः प्रभो॥ गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममंडलम्॥ २१ ॥ यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ॥
मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥ २२ ॥

---

* **शंका**—उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि, हे विदुर! भगवान् मुझको बडी सुन्दर अपनी स्थिति बतलाते थे सो भगवान्की बडी सुन्दर स्थितिका ठिकाना कहां है ?

उत्तर—भगवान्की बडी सुन्दर स्थिति भक्तिमें है वा भक्तजनोंके हृदयमें है, वहीं सदा भगवान् वास करते हैं भगवान्की बडी स्थिति दोही स्थानोंमें है उनही अपनी बडी स्थितिके स्थानोंमें भगवान्ने उद्धवसे कहा था।

कार्य करते थे ॥ २२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि,उद्धवजीके मुखसे अपने सुहृद्बंधुओंका वध सुन बुद्धिमान् विदुरजीको शोक संताप हुआ उसको ज्ञानके प्रकाशसे तुरत मिटाय ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णके परिवार यदुवंशका विध्वंस सुन उद्धव महाभागवतसे भगवत्के गमनका वृत्तान्त सुन विश्वास कर विदुरजी यह बोले॥२४॥कि,हे उद्धव!आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला परमज्ञान जो योगीश्वर श्रीकृष्णजीने आपसे कहा, वह ज्ञान आप हमसे कहिये. क्योंकि, श्रीकृष्णके उपासक ब्राह्मणलोग अपने दासोंके प्रयोजन साधनेको विचरते हैं.जो कृतार्थ हैं उनको और कुछ कृत्य करनेको नहीं है ॥२५॥उद्धवजी बोले कि,हे विदुरजी ! निश्चय तत्त्वोंकी सुन्दर सिद्धिके ज्ञाता मैत्रेयजी आपको ज्ञान सुनावेंगे

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुस्सहं वधम् ॥ ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥ २३ ॥ स तं
महाभागवतं व्रजंतं कौरवर्षभः ॥ विश्रंभादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥ २४ ॥ विदुर उवाच ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहः
प्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ॥ वक्तुं भवान्नोर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरंति ॥२५॥ उद्धव उवाच ॥
ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्तिके ॥ साक्षाद्भगवताऽऽदिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥२६॥ श्रीशुक उवाच ॥
इति सह विदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ॥ क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां
ततोऽगात् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ॥ स तु कथमवशिष्ट उद्धवो
यद्धरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवांछितः ॥ संहृत्य
स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्देहमचिंतयत् ॥ २९ ॥

जो मनुष्यलोकके त्याग करनेवाले भगवान्ने कहाहै॥२६॥श्रीशुकदेवजी बोले, इस प्रकार विदुरजीके साथ मोहनमूर्तिके गुणोंकी कथारूप अमृतसे सब जिनका ताप नष्ट होगया तब उद्धवजीने कालिन्दीके पुलिनमें एक रात्रि वास किया, वह रात्रि एक पलके समान व्यतीत हुई ॥२७॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि,कृपासिंधु!वृष्णि,भोज, महारथी यूथपालोंमें मुख्य२ जब नष्ट होगये और ब्राह्मणके शापसे त्रिगुणोंके स्वामी कृष्ण परमात्माने जब मनुष्यके आकारको त्याग दिया फिर उद्धवजी कैसे बचरहे ? यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले,

शापकी तौ कुछ सामर्थ्य नहीं थी ब्राह्मणके शापका तो एक मिष था कालानुसार अमोघ वांछावाले श्रीकृष्णजी अपने कुलका संहार कर शरीरको त्याग तिस समय चित्तमें यह विचारने लगे॥२९॥जो मैं इस लोकसे चला जाऊं तौ मेरा यह परमज्ञान आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवके अतिरिक्त और कोई समझने योग्य नहीं॥३०॥उद्धव ज्ञान जाननेमें अणुमात्रभी मुझसे न्यून नहीं हैं,सब भाँति मेरी ही समान हैं इनके गुणोंसे कभी ईश्वरका चित्त पीडित न हुआ मेरे सम्बन्धका ज्ञान जो छः प्रकारकी शरणागत है उसे उपदेश करूं ॥३१॥ शब्दमात्रके कर्ता, वेदके कर्ता, त्रिलोकी के गुरुसे जब यह आज्ञा पाई, तब बदारिकाश्रममें जाकर समाधि लगा श्रीहरिके चरणकमलका ध्यान करने लगे ॥ ३२ ॥ जिन्होंने लीलाके लिये मनुष्य शरीर धारण कर श्लाघनीय कर्म किये सोःश्रीकृष्णपरमात्माके गुण उद्धवजीके मुखसे विदुरजीने श्रवण किये॥३३॥और वैकुण्ठनाथके अनन्तधामको जाना, धैर्यवालोंको धैर्य देता हुआ और अधीरपुरुषोंको अति दुष्कर जानपडा॥३४॥हे कुरुश्रेष्ठ।जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करते हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी चलेगये,तब विरहवश हो विदुरजी क्रंदन करने लगे॥३५॥फिर सिद्ध हुए विदुरजी कालिंदीके तटसे वहां गंगा द्वारको गये कि, जहां मैत्रेयजी थे ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोद्धवसम्वादवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् ॥ अर्हत्युद्धव एवाद्धा संप्रत्यात्मवतां वरः ॥ ३० ॥ नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ॥ अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥ ३१ ॥ एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना ॥ बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥ ३२ ॥ विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥ ३३ ॥ देहन्यासं च तस्यैवं धीराणां धैर्यवर्धनम् ॥ अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥ ३४ ॥ आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ॥ ध्यायन्गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥३५ ॥ कालिंद्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ॥ प्रापद्यत स्वस्सरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा--विदुर पञ्चमाध्यायमें,बूझो जगविस्तार। महत्तत्त्व सब सृष्टिको वरणो मित्रकुमार॥५॥इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, हे अभिमन्युनंदन कुरुवंशभूषण,अच्युतके भावसे शुद्ध गुण,दया,शीतलतासे तृप्त विदुरजी गंभीरज्ञानी हरिद्वारमें मैत्रेयजीके निकट पहुँचे॥ १॥उनको दंडवत् प्रणामकर विदुरजी बोले कि,कर्म सब सुखके अर्थ करतेहैं,परन्तु न सुखमिला,न दुःखका विनाश हुआ,सो सब जन्म दुःखहीमें व्यतीत हुआ.इसलिये जो करनेयोग्य उपाय हो सो बताओ?क्योंकि,आप सर्वज्ञ हैं॥२॥श्रीनारायणसे विमुख,प्राचीन कर्मसे अधर्ममें रुचि,अत्यंत दुःखी जीवोंके ऊपरदया करनेको,इस संसारमें परमात्माके भक्त मंगलकारी, परोपकारमें निरत ब्राह्मण विचरते हैं॥३॥इस कारण हे साधुवर्य! सुखका मार्ग कहो,जिससे पुरु

श्रीशुक उवाच ॥ द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ॥ क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ
सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥ १ ॥विदुर उवाच ॥ सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा ॥
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ॥ २ ॥ जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखि
तस्य ॥ अनुग्रहायेह चरंति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥ ३ ॥ तत्साधुवर्याऽऽदिश वर्त्म शं नः संराधितो भग
वान्येन पुंसाम् ॥ हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥ ४ ॥ करोति कर्माणि कृतावतारो
यान्यात्मतंत्रो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यथा ससर्जाऽग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥ ५ ॥ यथा पुनः स्वे
ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः॥ योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽऽसीत् ॥ ६ ॥ क्रीडन्वि
धत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ॥ मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥ ७ ॥

षोंके हृदयमें भगवान् वासुदेव स्थित हों और भगवद्भक्तिसे पवित्र हृदयमें अनादि वेदप्रमाणसिद्ध तत्त्वज्ञान दें ॥ ४ ॥ त्रिगुणी मायाके नियंता स्वतंत्र भगवान् अवतारधारण कर जिन कर्मोंको करतेहैं निष्क्रिय होकर ईश्वरने जिस प्रकारसे प्रथम इस संसारको रचा,पीछे स्थिरतासे जगत्की वृत्तिको विधान किया॥ ५ ॥ जैसे फिर अपने हृदयआकाशमें इसको स्थिर करके सब वृत्तियोंसे निवृत्त होकर अन्तःकरणमें सोते हैं, जब फिर सर्जनकाल आवै है तब योगीश्वरोंके ईश्वर एक इस विश्वमें प्रविष्ट होके बहुतसे होतेहैं ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, गौ,देवताओंके क्षेमके लिये कल्परमें

अवतारभेदसे विहारकारी कर्म करते हैं.सुन्दरयशस्वियोंमें मुकुटमणि श्रीनारायणके चरित्रामृत पान करनेसे हमारा चित्त तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ सबलोकोंके नाथोंके अधिपतिने जिन तत्त्वोंके भेदसे लोक और अलोक पर्वतसे बाहर सब लोकपाल सहित कल्पना की. जहाँ सब जीवोंके समूहोंके भेद अधिकारीसे प्रगट करते हैं ॥ ८ ॥ हे विप्रवर ! जिस प्रकारसे प्रजाके आत्मा कर्म रूप नाम भेद विश्व रचनेवाले स्वतः सिद्ध नारायणने प्रगट किये सो आप हमसे वर्णन कीजिये॥९॥हे भगवन्! श्रीकृष्णजीकी कथामृत समूह पानके विना जिनके मुख मलीन होरहे हैं. उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंके धर्म व्यासजीके मुखसे वारंवार हमने सुने हैं. परन्तु उनके श्रवण करनेसे हमारी तृप्ति नहीं हुई॥ १०॥

यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान्सहलोकपालान् ॥ अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥८॥येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ॥ नारायणो विश्वसृगात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥ ९ ॥ परावरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ॥ अतृप्नुमः क्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्ण कथामृतौघात् ॥ १० ॥ कस्तृप्नुयात्तीर्थपदाभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ॥ यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥ ११ ॥ मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखाऽपि ते भारतमाह कृष्णः ॥ यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥ १२ ॥ सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ॥ हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥ १३ ॥

आपके यज्ञमें नारदादिकोंने श्रीभगवान्के जो यश गाये हैं ऐसे भगवत्नामसे तृप्ति नहीं होसक्ती.जो नाम पुरुषोंकी कानकी नाडीमें प्राप्त होकर संसारकी देनेवाली घरमें जो प्रीति है उसका,खंडनकर पतित और पामरोंको पावन करनेवाली है ॥ ११ ॥ श्रीव्यासमुनिकी मोक्षधर्मके अंतमें नारायणीय उपाख्यानमें भगवतके गुणोंके कहनेकी इच्छा हुई. तब आपके सुहृद् सखा व्यासजीने महाभारत कहा. जिस भारतमें संसारसुखके बहानेसे हरिकी कथामें भक्ति ग्रहण किये हैं. सो सब बात इतिहाससमुच्चयमें है ॥ १२ ॥ श्रद्धालु लोग नारायणके चरणारविंदोंमें अपना मन लगानेसे आनंदित होतेहैं ऐसे पुरुषोंकी बढ़ीहुई भक्ति संसारके सुखोंमें विराग करती है. और सब दुःखोंका नाश करती है ॥ १३ ॥

मैं शोच्य नरोंको और शोच्योंकेभी शोच्योंको शोचता हूं. शोच्य उसको जानना चाहिये कि, जो राजालोगोंकी संग्रामादिक मनोरम विषय रसभरी कथा केवल मनके स्थिर होनेके अर्थ है, और किसी प्रयोजनके अर्थ नहीं, ऐसे भारतके तात्पर्यको नहीं जानते वे शोच्य हैं; और जो जान बूझकर भी श्रीभगवान् वासुदेवकी कथासे विमुख हैं, वे शोच्योंके भी शोच्य हैं क्योंकि, "काल भगवान्" वाद जो वाणीका व्यापार, गमन जो देहका व्यापार, स्मरण जो मनका व्यापार यह तीनों व्यापार जिसके वृथा हैं, अर्थात् वाणीसे तौ आदिपुरुष श्रीनारायणका नाम नहीं लिया, देहसे चलकर प्रधान २ ईश्वरके धामोंमें पांव नहीं दिया, और मनसे श्रीकृष्णचंद्र आनंद कंद वृंदावनविहारी, मोरमुकुटधारीका ध्यान नहीं किया उनकी आयुको क्षीण करता है ॥ १४ ॥ हे मैत्रेयजी ! इसलिये संसारके

ताञ्छोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे हरेः कथायां विमुखानघेन ॥ क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषामायुर्वृथा वादगति
स्मृतीनाम् ॥ १४ ॥ तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ॥ उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबंधो शिवाय नः
कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥ स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ॥ चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानी
श्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवं भगवान्पृष्टः क्षत्रा कौषारविर्मुनिः ॥ पुंसां निःश्रेयसार्थेन
तमाह बहु मानयन् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता ॥ कीर्तिं वितन्वता लोक
आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥ नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे ॥ गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥१९॥

सुखदायक श्रीव्रजनायककी कथामें सार पवित्रात्मा दीनबन्धु, भक्तवत्सल श्रीनारायणकी कथा कहो. जैसे पुष्पोंसे निकाल २ मधुको मक्खियें लाती हैं उसी भाँति सब वेद शास्त्र पुराणोंका रस निचोड़ २ कर आप मुझको पान कराओ. मेरे मनकी तृप्ति हो ॥ १५ ॥ आदिपुरुष अविनाशीने जगत्की उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये, शक्तिसे अवतार धार जो चरित्र मनुष्योंसे न हो सकैं सो किये; वे चरित्र विस्तारसहित कृपा कर मुझसे कहो ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार मैत्रेयमुनिसे विदुरजीने पूछा, तब मैत्रेयजी पुरुषोंके मोक्षके लिये उनका अत्यन्त आदर सत्कार कर ॥ १७ ॥ बोले कि, हे साधो ! सब संसारके जीवोंपर अनुग्रह कर ईश्वरमें मन लगानेहारी और लोकोंमें कीर्ति बढ़ानेहारी तुमने अतिसुन्दर विषय जिज्ञासा की ॥ १८ ॥ हे विदुर ! व्यासजीसे

उत्पन्न होनेके कारण आपमें यह बात विचित्र नहीं है. तुमने सब प्रकार भक्तअनुरागसे ईश्वरको ग्रहण किया है॥१९॥मांडव्यऋषिके शापसे सब
प्रजाके दंडदाता यमराजहीने विचित्रवीर्य भ्राताके क्षेत्र भुजिष्यादासीमें व्यासजीके वीर्यसे तुम जन्म ले प्रकट हुए हो॥२०॥भगवज्जनसहित भग
वान्को सदा तुम प्यारे हो, जो कि तुमको ज्ञान उपदेश करनेके लिये परमधामको चलते समय भगवान्ने मुझे आज्ञा दी ॥ २१ ॥ अब हम
तुमसे उत्पत्ति संहार पालनकर्ता भगवान्की लीला विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं जो योगमायासे बढ़ी हुई लीला हैं ॥ २२ ॥ और व्यापक सब
जीवोंके स्वामी समर्थ अपनी इच्छानुसार आप अनेक मतिसे सबको समीप देखनेवाले एक आदिपुरुष अविनाशी सर्वशक्तिमान् भगवान्

मांडव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः ॥ भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥ २० ॥ भवान्भगवतो
नित्यं संमतः सानुगस्य च ॥ यस्य ज्ञानोपदेशाय माऽऽदिशद्भगवान्व्रजन् ॥ २१ ॥ अथ ते भगवल्लीलाः
योगमायोपबृंहिताः ॥ विश्वस्थित्युद्भवांतार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥२२॥ भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ॥
आत्मेच्छानुगतो वाऽऽत्मा नानामत्युपलक्षणः ॥ २३ ॥ स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ॥ मेनेऽसंतमिवा
त्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥ सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ॥ माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे
विभुः ॥ २५ ॥ कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ॥ पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥ २६ ॥

सबसे पहले थे ॥ २३ ॥ उस समय यह ईश्वर, सर्वद्रष्टा एक सर्वशक्तियां जिसकी जागती रहती हैं परन्तु इस वैभवको कोई देखनेवाला नहीं,
सब शक्तियां अपने आपमें लीन हैं उस समय सर्वद्रष्टा एकमात्र जिसकी शक्ति जागती है इस प्रकार यह ईश्वर रहता है; उस समय कामना
हुई कि हम बहुतरूप होकर अपनेको देखें ॥२४॥ हे महाभाग! तब सर्वद्रष्टा परमात्माकी कार्य कारण रूपिणी माया महाशक्ति अनुसंधानरूपा
हुई, उससे सर्वसमर्थ ईश्वरने सब संसारको रचा ॥ २५ ॥ गुणमयी कालकी शक्तिसे मायामें पुरुषरूप धरके परमेश्वने वीर्यको धारण

किया * ॥२६॥ कालप्रेरित अव्यय मायासे महत्तत्त्व प्रगट हुआ, तमोगुणनाशक विज्ञान आत्मा जीवके देहमें स्थित होकर विश्वका प्रकाश किया॥२७॥सो जीव, अंश, गुण, काल, आत्मा भगवत्‌की दृष्टिके सम्मुख इस जगत्‌को रचनेके कारण जीवात्माने अपने आत्माका रूपान्तर करता भया॥२८॥जब महत्तत्त्व विकारको प्राप्त हुआ, तब अहंकार उत्पन्न हुआ, जो कार्य, कारण, कर्ता, इनका आश्रय और पञ्चभूत, इन्द्रिय, मनोमय हुआ॥२९॥वह अहंकार वैकारिक, तैजस, तामस भेदसे तीन प्रकारका हुआ. अहंकार विकारको प्राप्त हुआ, तब विकारी अहंकारसे मन हुआ

ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ॥ विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थं विश्वं व्यंजंस्तमोनुदः ॥ २७ ॥ सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ॥ आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥ २८ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ॥ कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेंद्रियमनोमयः ॥ २९ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥ वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यंजनं यतः ॥ ३० ॥ तैजसानींद्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥ तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिंगमात्मनः ॥ ३१ ॥ कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः ॥ नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३२ ॥ अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ॥ ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३३ ॥

वैकारिक देवता हुए, उनसे शब्दादि गुण प्रकाश हुआ, जिससे रज, सत्त्व, तमोमय ब्रह्मा विष्णु शिवहैं॥३०॥तैजस अहंकारसे ज्ञान कर्ममय इन्द्रियें हुई, और तामस अहंकारसे पञ्चभूत सूक्ष्म आदि आकाश व्यापकका चिह्न हुआ“आकाशं शरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः” ॥ ३१ ॥ काल मायाके अंशयोगसे भगवत्‌से देखा हुआ आकाशके पीछे स्पर्श हुआ, स्पर्शके विकारसे पवन प्रगट हुआ ॥३२॥ आकाशके अत्यन्तबलसे जब वायु विकारको प्राप्त

---

* **शंका**–मैत्रेयजीने विदुरसे ऐसे वाक्य कहे कि, अपनी मायामें भगवान् वीर्यकी स्थापना करतेहुए, तब जो अपने हृदयमें सब वस्तुओंको स्थापित कर रहे हैं सो भगवान् कभी अपने हृदयसे किसी वस्तुको बाहिर नहीं जानेदेते तो मायामें कैसे वीर्यको धारण किया ?

उत्तर–त्रिलोकीमें निराधार कोई वस्तु नहीं है, इसालिये भगवान्‌ने जगत्‌के आधारका पात्र मायाको बनाकर सृष्टिकी रचना करनेको भगवान्‌की इच्छा हुई तब सोई इच्छारूप वीर्य मायामें भगवान्‌ने धारण किया. इस वीर्यके धारणरूप मैत्रेयजीके वाक्यको वीर्यका ग्रहण मत करना, जैसा कि जीवोंका वीर्य होता है उस वीर्यकी शंका मत करना.

हुआ तब उसकी मात्रासहित सब लोकका लोचनप्रकाश प्रगट हुआ॥३३॥ईश्वरके देखनेसे पवनसहित ज्योति जब विकारको प्राप्तहुई तब काल
मायाके अंशोंके योगसे रसमय जल उत्पन्न हुआ॥३४॥ब्रह्मकी इच्छासे ज्योतिकरके जलसहित कालमायाके अंशोंके योगसे गन्धगुणवाली पृथ्वी
हुई ॥ ३५ ॥ हे विदुर! आकाशादिक पञ्चभूतोंको जो पर अवर हैं उनके परमसंगसे यथाक्रम गुणोंको जानो.आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण
स्पर्श, तेजका गुण रूप, जलका गुण रस है, परन्तु पृथ्वीमें सब गुण होतेहैं ॥३६॥कालमाया अंशरूपी विष्णुकी ये सब देवता कला हैं.भाँति२के

अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् ॥ आधत्तांभो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥ ३४ ॥ ज्योतिषाऽम्भोऽनु
संसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् ॥ महीं गंधगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥ ३५ ॥ भूतानां नभ आदीनां यद्य
द्भव्यावरावरम्॥ तेषां परानुसंसर्गान्यथासंख्यं गुणान्विदुः ॥ ३६ ॥ एते देवाः कला विष्णोः कालमायां शलिं
गिनः ॥ नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुः प्रांजलयो विभुम् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमाम ते देव पदारविंदं प्रपन्नता
पोपशमातपत्रम् ॥ यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपंति ॥ ३८ ॥ धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्ता
पत्रयेणोपहता न शर्म ॥ आत्मँल्लभंते भगवंस्तवांघ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥ मार्गंति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छं
दस्सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ॥ यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ४० ॥

रूप होनेसे जब ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें समर्थ न हुये तब हाथ जोड़कर सबने परमात्माकी स्तुति की ॥३७॥ सब सुर बोले—हे शरणागतताप
नाशक! क्षत्ररूप आपके चरणारविन्दको हे नाथ!हम बारंबार नमस्कार करते हैं. आपके चरणकमलके आश्रित हो यतीलोग संसारसमुद्रके पार
होजाते हैं॥३८॥हे धातः!हे आत्मन्!हे ईश! हे भगवन्। तीन तापोंसे दुःखी जीव इस संसारमें सुखको नहीं प्राप्त होते हैं. इसकारण विद्यासहित
तुम्हारे चरणोंकी छायाकाआश्रय लेते हैं॥३९॥जिन चरणोंसे भगवती भागीरथी प्रगट हुई,जिनका जल पाप तापनाशक है,जो नदियोंमें श्रेष्ठहैं

उन श्रीगंगाजीके स्थान आपके चरणकमलकी शरणागत हो ऋषिलोग एकांतमें बैठकर तुम्हारे चरणकमलके मुखमें बसेहैं और वेद पक्षी होकर तुम्हारे मार्गको खोजते हैं;जैसे अपने घोंसलेमेंसे निकल फिर पक्षी अपने घोंसलेमें आजाते:हैं,उसीप्रकार वेद आपसे उत्पन्न होकर सब:स्थानोंमें विचर फिर आपहीमें प्रवेश करते हैं॥ ४०॥जिन पदपंकजोंको श्रद्धाभक्तिसे शुद्ध हृदयमें धारणकर ज्ञानसे वैराग्यके बलसे धीर पुरुष आपके चरणकमलके पीठके निकट प्राप्त होतेहैं ॥४१॥हे विश्वनाथ ! विश्वके उत्पत्ति,पालन,संहारके लिये आप अवतार धारण करते हो. तुम्हारे पदारविन्दकी हम सब शरण हैं.सो आप अपने दासोंको स्मरण करने योग्य अभयदान दीजे ॥४२॥ हे भगवन्!असत् देह और गेहमें, जिनकी मति लवलीन है,

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय॥ ज्ञानेन वैराग्यबैलेन धीरा व्रजेम तत्तेंघ्रिसरोजपीठम्॥४१॥ विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थें कृतावतारस्य पदांबुजं ते ॥ व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥ ४२ ॥ यत्सानुबंधेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ॥ पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ॥ ४३ ॥ तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतांतर्मनसः परेश ॥ अथो न पश्यंत्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥ ४४ ॥ पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ॥ वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथांजसाऽन्वीयुरकुंठधिष्ण्यम् ॥ ४५ ॥ तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ॥ त्वामेव धीराः पुरुषं विशंति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥ ४६ ॥

कुटिल और कुमति हैं आपके चरण कमलके भक्तिहीन हैं ऐसे दुराग्रहसे देहपुरीमें वास करते हैं ऐसे पुरुषोंको तुम दुष्प्राप्य तुम्हारे चरणकमलको हम भजते हैं॥४३॥हे उरुगाय ! क्रूर, कुमति, कपटी, खोटे मार्गमें जानेवाली इन्द्रियोंसे जिनके मन लौलीन हैं वे मनुष्य आपके चरणारविन्द सेवनके विलासकी शोभाको नहीं देखते ॥ ४४ ॥ हे देव! आपके कथामृत पानके करनेसे अत्यंत अधिक भक्ति करनेसे विशाल अन्तःकरणवाले वैराग्यके सार, विज्ञानको प्राप्त होकर, विनाही प्रयास संसारको तज श्रीवैकुण्ठधामको चले जाते हैं॥ ४५॥ इसीप्रकार और भी आत्मयोगबलसे बली प्रकृतिको जीतकर धीरपुरुष तुममें प्रवेश करते हैं, और जो लोग आपके चरणोंकी सेवा नहीं करते उनको परिश्रम होता है. हे आद्यपुरुष !

आपने लोकके रचनेकी इच्छा कर तीन गुणोंसे रचे सो हम सब विरुद्ध स्वभावसे पृथक् हैं, सो आपके विहारसे इस ब्रह्माण्डको आपको
समर्प्पण करनेकी हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे अज ! जबतक हम आपको समयमें भेंट देवें, जहां हम सब अन्नको जिसप्रकारसे
भक्षण करैं, जैसे आपको हमको यह सब निःसन्देहतक छोड़कर लोग बली दें अन्नको पावें सो कीजिये यही हमारी प्रार्थना है ॥ ४८ ॥
हे प्रभो! तुम हमारे और देवताओंके सब वंशोंके आद्यपुरुष, पुराण, अविक्रिय, अजन्मा हो, सत्त्वादिगुणकर्मकी कारणरूप शक्ति मायामें क्रान्तदर्शी
वीर्यको धारण किया है ॥४९॥ हे आत्मन्! हे देव ! ताते सत्प्रमुख हम सब महदादि जो अर्थ हुए हैं सो हम आपका क्या काम करें ? हे नाथ!

तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म॥सर्वे वियुक्ताःस्वविहारतंत्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते॥४७॥
यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र॥ यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरंतोऽन्नमदंत्यनूहाः॥४८॥
त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः॥त्वं देव शक्त्या गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः
॥४९॥ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमाऽऽत्मन्करवाम किं ते॥त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहा
णाम्॥५०॥इति श्रीमद्भागवते म० तृतीयस्कंधे पंचमोऽध्यायः॥५॥ऋषिरुवाच॥इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य
सः ॥ प्रसुप्तलोकतंत्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः॥१॥ कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ॥ त्रयोविंशतितत्त्वानां
गणं युगपदाविशत् ॥२॥ सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् ॥ भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥ ३ ॥

आपके अनुग्रहके पात्र जो हम सब लोग हैं, हमको सब संसारके रचनेकी सामर्थ्य अपनी शक्ति, अपना ज्ञान, सब ओरसे कृपा करके दो.
दोहा—रचनहेत ब्रह्माण्डके, हमको उत्पन कीन्ह । ज्ञानशक्ति अब देहु प्रभु, हम तुम्हरे आधीन ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे
भाषाटीकायां महदादिसर्गे सर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ दोहा—प्रभू षष्ठ अध्यायमें, विराट तनको धार । अधिदेवादिक भेद सब,
वरणों सहित विचार॥ मैत्रेयजी बोले, इसप्रकारसे अत्यन्त विस्मृत लोकरचनावाली उन अपनी विभिन्न स्थित शक्तियोंकी गतिको जान ईश्वरने
प्रवेश किया॥ १॥ उस समय कालसंज्ञा शक्तिको ईश्वरने धारणकर तेईस(२३)तत्त्वोंके गणमें एकसंग प्रवेश किया॥ २ ॥ सो भगवान् चेष्टारूपसे

उस तत्त्वात्मक गणमें प्रवेश कर फिर सुप्तकर्मोंको बोधन करते अलग२जो सब गण थे उनको एकत्र करदिया॥३॥ईश्वरकी प्रेरणासे जागकर तेईस तत्त्वोंके गणनें अपने अंशोंसे विराट्‌देहको उत्पन्न किया ॥४॥ जिसमें ईश्वरने अपने अंशोंसे प्रवेश किया-जिसमें चराचर लोक हैं,ऐसा वह विश्व रचनेवालोंका समूह परस्पर इकट्ठा हो अपनेहीमें चलायमान हुआ ॥ ५ ॥ सुवर्णमय सब ब्रह्माण्डका कोशभूत, सब जीवोंसे वर्द्धित,उस पुरुषने सहस्रवर्ष पर्यन्त जलमें वास किया॥६॥देव कर्म,आत्माइन तीनःशक्तिवालेने उन विश्व रचनेवालोंका गर्भ अपनी आत्मासे एक,दश,तीन विभाग किये, दैवशक्ति अर्थात् ज्ञानशक्तिसे हृदयमें चैतन्यरूपसे विराजमान है;और कर्मशक्ति जो क्रियाशक्ति,उससे प्राणरूप करके दशरूप होते हैं,

प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः ॥ प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥ ४ ॥ परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृग्गणः ॥ चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥ ५ ॥ हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ आंडकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ६ ॥ स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् ॥ विबभाजात्मनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा॥ ७ ॥ एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ॥ आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥ ८ ॥ साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ॥ विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥ ९ ॥स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ॥ विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥१०॥ अथ तस्याभितप्तस्य कतिचायतनानि ह ॥ निरभिद्यंत देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥ ११ ॥

आत्मशक्ति अर्थात् भोक्तृशक्तिसे तीनप्रकारके होते हैं इसीप्रकार जान लेना ॥ ७ ॥ परमात्माकी आत्माका अंश, सब जीवमात्रके अन्तर्यामी यह हैं, यह प्रथम अवतार है जिससे सब जीवमात्रका जन्म होता है ॥८॥ अधिभूत, अध्यात्म, अधिदैव यह तीन प्रकार हैं,विराट्प्राण दश प्रकारका है, एकरूपसे हृदयमें है ॥ ९ ॥ इस प्रकारका स्मरणसे विराट्के विनती करनेपर विश्व रचनेवालोंके ईश्वरने अपने तेजसे इन महदादिकोंकी वृद्धिके लिये तप किया ॥१०॥ अब उस विराट्के मुख आदिसे जितने स्थान देवताओंके निकले मैं उनका वर्णन करता हूँ, तुम ध्यान

लगाकर सुनो ॥११॥ प्रथम विराट्का मुख प्रगट हुआ,उसमें लोकपालक अग्निने प्रवेश किया, जिस अपनी वाणीके अंशसे, यह विराट्देह जो कुछ कहनेके योग्य है उसको प्राप्त हुआ.मुख अधिष्ठान है १ वाणी इंद्रिय है २ अग्नि देवता है ३ वचन विषय है ४ ॥ १२॥ हरिरूप विराट्के तालु प्रगट हुआ उसमें लोकपाल वरुणने प्रवेश किया, जिस रसनाके अंशसे इस विराट्देहने रसास्वादन किया॥ १३ ॥ उस व्यापक विष्णु विराट्के नासिका निकली, उसमें अश्विनीकुमारने प्रवेश किया,घ्राणके अंशसे सुगन्धिकी सिद्धि हुई ॥१४॥ विभुके विराट्देहमें दो नेत्र उत्पन्न हुए तब उनमें लोकपाल सूर्यने प्रवेश किया तौ चक्षुके अंशसे रूपकी सिद्धि हुई॥१५॥उस परमात्मा विराट्के देहमें चर्म प्रगटा उसमें लोकपाल

तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम् ॥ वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ निर्भिन्नं तालु
वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ॥ जिह्वयांशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१३॥ निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां
पदम् ॥ घ्राणेनांशेन गंधस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१४॥ निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालोऽविशद्विभोः ॥ चक्षुषांशेन
रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १५ ॥ निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् ॥ प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ
प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥ कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ॥ श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥१७॥
त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमौषधीः ॥ अंशेन रोमभिः कंडूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥ मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं
स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ॥ रेतसांशेन येनासावानंदं प्रतिपद्यते ॥१९॥ गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत्॥
पायुनांशेन येनाऽसौ विसर्गं प्रतिपद्यते॥ २० ॥

पवनने प्रवेश किया तब प्राणके अंशसे इसका स्पर्श होनेलगा ॥१६॥ फिर विराट्के देहसे कान निकले तो दिशाओंने अपना स्थान जान उसमें प्रवेश किया तौ श्रोत्रके अंशसे शब्दकी सिद्धि इसको होतीभई ॥ १७ ॥ फिर हरि विराट्के देहसे त्वचा उत्पन्न हुई, तब औषधियोंने प्रवेश किया जिनके अंशसे रुवोंमें खुजाहट हुई ॥ १८ ॥ फिर उस भगवान् विराट्के देहसे लिंग उत्पन्न हुआ उसमें प्रजापतिने वास किया तब वीर्यके अंशसे आनन्द हुआ ॥ १९ ॥ जब उस आदिपुरुष विराट्के देहसे गुदा उत्पन्न हुई तब उसमें लोकेश मित्रने प्रवेश किया

जिस वायुके अंशसे मलका त्याग हुआ ॥ २० ॥ फिर इनके हाथ निकले तब उनके (हस्तोंके) स्वामी इन्द्रने उनमें प्रवेश किया. वार्ताके अंश करके निज भुजाओंसे सब वृत्ति यह विराट् देह करनेलगा ॥ २१ ॥ फिर चरण पैदा हुए उनमें सर्व लोकोंके ईश्वर विष्णुने प्रवेश किया चलने फिरनेके अंशसे जो प्राप्तियोग्य हो उसको प्राप्त हुआ ॥२२ ॥ फिर बुद्धि हुई इसमें वीणापाणि सरस्वतीने प्रवेश किया तब ज्ञानके अंशसे संकल्प विकल्प आदि क्रियाओंको प्राप्त हुआ ॥२३॥ जब इस विराट्के देहसे हृदय हुआ उसके अधीश निशानाथ चन्द्रमा देवता हुए; उनके अंशसे यह देह संकल्परूप विकारको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ फिर इसको अहंकार प्राप्त हुआ उसके:पति शिवने हृदयमें प्रवेश किया जिस

हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविंद्रः स्वःपतिराविशत् ॥ वार्तयांशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते॥२१॥पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् ॥ गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते॥ २२ ॥ बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत्॥ बोधेनांशेन बोद्धव्यं प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ २३ ॥ हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् ॥ मनसांशेन येनाऽसौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥ २४ ॥ आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ॥ कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥ २५ ॥ सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान्धिष्ण्यमुपाविशत् ॥ चित्तेनांशेन येनाऽसौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥ शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ॥ गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयंते सुरादयः ॥ २८ ॥ आत्यंतिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ॥ धरां रजस्स्वभावेन पणयो ये च ताननु ॥ २७॥ तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ॥ उभयोरंतरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः॥ २९ ॥

कर्मके अंशसे सब कार्य करनेयोग्यकी योग्यताको प्राप्त हुआ ॥२५ ॥ फिर इसके पीछे सत्त्व हुआ तौ ब्रह्माजीनें उसमें प्रवेश किया जिस चित्तके अंशसे यह विराट् ज्ञानको प्राप्तहुआ ॥२६ ॥ इसका शिर और नाभि आकाशमें, पांव पृथ्वीमें जिनमें गुणोंकी वृत्तियोंसे देवता आदि प्रतीत होते हैं॥२७॥अत्यन्त सतोगुण अधिक होनेसे देवताओंने स्वर्गमें वास किया जो रजोगुणके स्वभावसे यज्ञादिक व्यवहार करने लगे वे मनुष्य और गौ आदिक पृथ्वीपर प्राप्त हुए ॥२८॥तीसरे तमोगुणसे भगवान्की नाभिके आश्रयवाले दोनोंके मध्यमें आकाश हुआ जहां रुद्रके

पार्षद भूतप्रेतगण वसे ॥२९॥ हे राजन्!उस महापुरुषका मुख वेद ब्रह्म हुआ,वेदके मुखके कहनेसे सब वर्णोंमें मुख्य ब्राह्मण गुरु हुए ॥३०॥भुजाओंसे पालनरूप कर्म हुआ. उससे क्षत्रिय हुए उन्होंने चोरादिकोंके उपद्रवसे रक्षा की,इससे ईश्वरांश हुए, जिससे जन्मसे वर्णोंकी रक्षा की ॥३१॥ उनके ऊरूसे कृष्यादिक व्यवहार हुए, वे संसारके सब व्यवहार करनेवाले वैश्य हुए जिनसे मनुष्योंकी सब व्यवहार वार्ता हुई॥३२॥शुश्रूषाकी सिद्धिके अर्थ विष्णुके चरणोंसे सेवकवृत्तिवाले शूद्र हुए,जिनकी जीविकासे परमेश्वर अत्यन्त प्रसन्नहुए॥३३॥इन चारों वणानें अपने धर्मसे अपने गुरु हरिका पूजन किया,श्रद्धासे आत्माकी विशुद्धिके लिये सब वृत्तिसमेत सब वर्णहुए॥३४॥हे क्षत्तः!दैव कर्म आत्मारूपी भगवान्‌की योगमायाका बल कौन वर्णन करसक्ता है ?॥३५॥ *हे विदुर! जैसी मेरी बुद्धि है अथवा जैसा मैंने सुना है, वैसा अपनी वाणीको शुद्ध करनेके अर्थ हरिका

मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह ॥ यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥ ३० ॥ बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं
क्षत्रियस्तदनुव्रतः ॥ यो जातस्त्रायते वर्णान्पौरुषः कंटकक्षतात् ॥ ३१ ॥ विशोऽवर्तत तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ॥
वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥ ३२ ॥ पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये ॥ यस्यां जातः पुरा शूद्रो
यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥ ३३ ॥ एते वर्णाः स्वधर्मेण यजंति स्वगुरुं हरिम् ॥ श्रद्धयाऽऽत्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सहवृ
त्तिभिः ॥ ३४ ॥ एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः ॥ कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥ अथाऽपि
कीर्तयाम्यंग यथामति यथाश्रुतम् ॥ कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधाऽसतीम् ॥ ३६ ॥

***शंका**--एक समय मैत्रेयजीने विदुरसे कहा कि; हे विदुर ! व्यासके भ्राताका क्षेत्र जो दासी उसमें तुम जन्मे हो,तब व्यासका भ्राता जो शान्तनु राजा तथा सत्यवतीका पुत्र उसका क्षेत्र दासी कैसे हुई? क्योंकि हमने सबशास्त्रोंमें और लोकोंमें कहीं नहीं सुना कि कोई भी क्षात्रिय होकर शूद्रोंके साथ अपना क्षेत्र कल्पित करै इस श्लोकमें प्रथम जो क्षेत्र शब्द है उसका अर्थ सो नहीं कियाजायगा क्षेत्र कहिये धर्मकी रक्षा करनेके लिये दासीके गर्भमें बडे ज्ञानी जन्मते हुए क्या धर्म नष्ट हुआ जाता था जिसकी रक्षा करनेके लिये विदुरजीने जन्म लिया ॥

उत्तर--व्यासके छोटे भाई जो चित्रांगद थे उनका वंश नष्ट हुआ जाता था उसकी रक्षा करनेके लिये विदुरजीने जन्म लिया, धृतराष्ट्र अथवा पाण्डुको ज्ञान सिखाना यही रक्षा है ॥

चरित्र वर्णन करताहूँ क्योंकि यह खोटी वाणी और२वर्णनसे अशुद्ध होगई है॥ ३६॥पुरुषोंके वचनको एकान्तमें लाभदायक जिन्हें श्रुतियोंसे विद्वानोंने संग्रह कियाहै,कथामृतमें जिनका वर्णन है उन सुन्दर यशस्वियोंके शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृंदावनविहारीकेगुणानुवाद कहते हैं॥ ३७॥हे विदुरजी!श्रीनारायणकी महिमाको ब्रह्मादिक योगाभ्याससे निश्चलबुद्धि करकेभी सहस्रवर्षके अन्ततक नहीं जानसक्के॥ ३८॥ इसकारण भगवान्की माया मायावियोंको भी मोह करानेवालीहै,क्योंकि जब सर्वव्यापक श्रीविश्वनाथ आप अपनी मायाकी गतिको नहीं जानसक्के फिर और दूसरोंकी क्या सामर्थ्यहै ?॥ ३९॥जिस ज्ञानके लिये मनसमेत वाणी वर्णन करते२अन्त न पाकर उलटी लौट आती है,हम व सब देवताभी जिसको

एकांतलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ॥ श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥३७॥
आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ॥ संवत्सरसहस्रांते धिया योगविपक्कया ॥ ३८ ॥ अतो भगवतो माया
मायिनामपि मोहिनी ॥ यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥ ३९ ॥ यतोऽप्राप्य निवर्तंते वाचश्च मनसा सह ॥
अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ॥ प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥ विदुर उवाच ॥
ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः ॥ लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥ २ ॥ क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य
कामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः ॥ स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥ ३ ॥

नहीं जानसक्के,उस षड्गुण ऐश्वर्यसम्पत्तिमान् श्रीभगवान्कोवारंवार नमस्कारहै ॥४०॥ इति श्रीम०म०तृ०भाषा०विराट्देहे ईश्वरप्रवेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–इस सप्तम अध्यायमें, सुनि मुनिवचन विवेक। बहुरि प्रशंसा कर विदुर, कीन्हें प्रश्न अनेक ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इसप्रकार कहते हुए मैत्रेयजीको परमबुद्धिमान विदुरजी वाणीसे प्रसन्न करके बोले ॥ १ ॥ विदुरजी बोले, हे ब्रह्मन् ! षड्गुण ऐश्वर्यसंपत्तिमान्, चैतन्यमात्र,अविकारी, निर्गुण,बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्यब्रह्मकी क्रिया और गुण,लीलासे कैसे होते हैंसो कहिये ॥ २ ॥ बालकको क्रीडामें उद्यम करना यह काम है, और खेल करनेकी इच्छा करनी योग्य है, परन्तु अपने आप तृप्त सदा औरसे निवृत्त, ईश्वरका

काम और इच्छा कैसे होती है सो कहिये ॥३॥ गुणमयी अपनी मायासे इस संसारको रचते हैं, फिर पालन करते हैं तदुपरान्त संहार करते हैं॥४॥ देश, काल, अवस्थाद्वारा अपनी ओरसे जिसका ज्ञान नष्ट नहीं होता सो यह ईश्वर मायासे किसप्रकार संयुक्त होते हैं? सो कहिये ॥५॥ भगवान् एक है, सब क्षेत्रमें व्यापक है इनका दुर्भागीपन, क्लेश होना, यह कर्मोंसे किसप्रकार होसक्ताहै? सो कहिये॥६॥ हे विद्वन्! हे विभो! इस अज्ञान संकटमें मेरा मन अत्यन्त खेदको प्राप्त होरहा है, सो कृपादृष्टि करके मेरे मनका यह महासंकट तुम दूर करो॥७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, तत्त्व जाननेके अभिलाषी विदुरजीने यह वार्ता मैत्रेयजीसे बूझी, तब भगवद्भक्त मैत्रेयजी यह प्रश्न सुनकर मुसकाये ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, यही

अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्यात्ममायया॥ तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यभिधास्यति ॥ ४ ॥ देशतः कालतो योऽसा
ववस्थातः स्वतोऽन्यतः॥ अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥ ५ ॥ भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ॥
अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्मे मनो विद्वन्खिद्यते ज्ञानसंकटे ॥ तन्नः पराणुद विभो
कश्मलं मानसं महत् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ॥ प्रत्याह भगवच्चित्तः
स्मयन्निव गतस्मयः ॥८॥ मैत्रेय उवाच ॥ सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुद्ध्यते ॥ ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत
बंधनम् ॥९॥ यदनर्थं विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः॥ प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥१०॥ यथा जले चंद्र
मसः कंपादिस्तत्कृतो गुणः ॥ दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः॥११॥ स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकंपया ॥
भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥ १२ ॥

भगवान्की माया है जो तर्कसे प्रवृत्त होतीहै, विमुक्त ईश्वरका कृपण होना बन्ध न होना यह तर्कसे होते हैं॥९॥ जो कोई पुरुष स्वप्नमें देखेकि, मेरा शिर कटगया, शिर छेदनके विना स्वप्नके साक्षी पुरुषको यह आत्माका उलटा पुलटा होना प्रतीत होता है ॥ १० ॥ जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जलकी उपाधिसे कम्पायमान दृष्टि आताहै, कुछ आकाशमें जो चन्द्रमा स्थितहै उसमें कम्पादिक दोष नहीं, इसीप्रकार आत्माका देहादिधर्म सत् नहीं है परन्तु तदभिमानी द्रष्टा तदंतर्यामी ईश्वरको दीखे है सो यह केवल मिथ्याहै॥ ११॥ सो देहके गुणोंका आत्मामें अज्ञानकृत आभास निश्चय

करके निवृत्तिमार्गके धर्मसे भगवान् वासुदेवकी कृपासे भगवत्की भक्तियोगसे धीरे२अर्थात् साधनके अनुसार सब नष्ट होजाताहै तात्पर्य यहहै कि, जैसा साधन करैगा उतनेही कालमें अज्ञान नष्ट होगा,उत्तम साधनसे शीघ्र,और निकृष्टसाधनसे विलंब॥ १२॥ जब सब इंद्रियें शांत होजाती हैं, तब द्रष्टा आत्मामें सब क्लेश विशेष करके लीन होजाते हैं, जैसे सोतेहुएका सब क्लेश नष्ट होजाताहै,इसीप्रकार जानलीजे ॥ १३॥जब श्रीमुरारी भक्तहितकारीके गुणानुवाद संपूर्ण कष्टको नष्ट करनेवाले हैं, इसीप्रकार उनके चरणारविन्दके परागकी प्रीति आत्माके लाभ करनेहारी है॥ १४॥ विदुरजी बोले, हे विभो!आपके खड्गरूपी वचनोंसे मेरे सब संशय कटगये, परन्तु हे भगवन्!यह जीव परतन्त्र है, और परमात्मा स्वतन्त्र है इन

यदेंद्रियोपरामोऽथ द्रष्टात्मनि परे हरौ ॥ विलीयंते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥१३॥ अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रमणं मुरारेः ॥ कुतः पुनस्तच्चरणारविंदपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥ १४ ॥ विदुर उवाच ॥ संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ॥ उभयत्रापि भगवन्मनो मे संप्रधावति ॥ १५॥ साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममाया यनं हरेः॥आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः॥ १६॥यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ॥ तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यंतरितो जनः॥ १७॥अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः॥ तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे॥ १८॥

दोनों बातोंमें मेरा मन फिर दौड़ता है सो कहो ❀॥ १५॥ हे ब्रह्मन् ! बहुत सुन्दर बात कही कि,श्रीनारायण अपनी मायामें निवास करते हैं, परन्तु यह कुछ सिद्धान्त नहीं है,निर्मूल है परन्तु बाहरसे विश्वकी यही माया कारण है ॥ १६॥लोकमें जो अत्यन्त मूर्ख हैं, वे सदा सुखी रहतेहैं. और अत्यन्त बुद्धिमान् हैं वे भी सदा आनन्दित रहते हैं. परन्तु जो न मूर्ख हैं न बुद्धिमान् हैं वे अधबीचके जीव हैं, वे सदा क्लेश सहते रहते हैं ॥ १७ ॥ एक सबमें दिखाई दे, ऐसे संसारमें अर्थके भावको निश्चय कर तुम्हारे चरणकमलकी सेवासे उस मायाको त्याग करतेहैं॥ १८॥

❀ **शंका**-भक्ति, ज्ञान, वैराग्य प्राप्त होनेपर उपाय त्यागकर जिस प्रकारसे ब्रह्माने संसारको रचा उसका विस्तार मैत्रेयजीसे विदुरने बूझा, उससे विदुरजीको क्या फल प्राप्त हुआ ?

उत्तर-योगीजन नित्य भगवान्का ध्यान अपने हृदयमें करते हैं उस समय भगवान्के स्वरूपमें सब चर, अचर संसारको देखतें हैं संसारकी रचना विना सुने अपने हृदयमें कैसे ईश्वरको रूपसहित देखैंगे इसलिये योगीजन संसारकी रचनाको बहुत आनंदसे बूझतेहैं.

सब सम्प्रदाय कहो, और कलियुगके धर्म कहो, श्रीवैष्णवमत और सर्गोंका विभाग, गर्भसे जो प्रगट हुए हैं, स्वेदसे जो उत्पन्न होते हैं, वृक्षोंसे जिनकी उत्पत्ति है सो सब कहिये ॥ गुण, अवतार, संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार श्रीनिवासने जो जो रचे हैं उनके उदार चरित्र कहिये ॥२८॥ वर्णाश्रमके विभाग, रूप, शील, स्वभाव, ऋषीश्वरोंके जन्म, कर्म आदि वेदके विभाग ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! यज्ञोंके विस्तार, योगका मार्ग, फलकी चाहना त्यागकर कर्म करना, सांख्य भागवत नारदपञ्चरात्रतंत्र सो कहो ॥ ३० ॥ पाखण्डका मार्ग उनका उलटा होना, वर्णसंकर होजाना, गुणकर्मसे जीवकी जो जो गति होती हैं सो कहिये ॥ ३१ ॥ जिसमें किसीप्रकारका विरोध न पडै सो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कहो.

गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् ॥ सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥२८॥ वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः॥ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम्॥२९॥ यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ॥ नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तंत्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥३०॥ पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ॥ जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥३१॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः ॥ वार्ताया दंडनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥ ३२ ॥श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन्पितॄणां सर्गमेव च ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥३३॥ दानस्य तपसो वाऽपि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम् ॥ प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३४॥ येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ॥ संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ ॥ ३५ ॥ अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ॥ अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥ ३६ ॥

17

दंडनीतिके श्रवण करनेकी वार्ता पृथक् २ शास्त्रकी विधि कहो ॥ ३२॥ हे ब्रह्मन् ! श्राद्धका विधि, पितरोंकी सृष्टि, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, कालके अवयवोंकी स्थिति कहो ॥ ३३ ॥ दान, तप, इष्टापूर्तका फल, परदेशका धर्म जो पुरुष आपत्तिमें धर्म करे सो कहो ॥ ३४ ॥ हे पापरहित ! धर्मके कारण भगवान् जिससे प्रसन्न होकर कृपा करैं सो धर्म कहिये जिनके ऊपर भगवान् प्रसन्न हुए हों वह भी कहिये ॥ ३५॥ हे विद्योत्तम! अनुरागी शिष्योंको और अपने पुत्रोंको, दीनवत्सल, दीनानाथ, गुरुजन* बिना जिज्ञासा की हुई बातको भी कह देते हैं ॥ ३६ ॥

---

* "गुकारस्त्वन्धकारः स्याद्रुकारस्तन्निरोधकः । अन्धकारविनाशित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते" ॥

जिनकी सेवासे सर्वान्तर्यामी मधुद्वेषी भगवान्के चरणोंमें सब कष्टको विनाश करनेवाली तीव्र प्रीति होती है॥१९॥थोड़े तप करनेवालोंकी सेवा
श्रीहरिके मार्गमें नहीं पहुँचती,क्योंकि देवोंके देव वासुदेवका यश जिसमें नित्य गाया जाय वह सेवा महादुर्लभ है॥२०॥क्रमसे विकारसहित महदा
दिकको रचकर उनसे विराट्देह उत्पन्न कर उसे विभुने उसमें प्रवेश किया॥२१॥कि, जिसको हजार हों चरण जंवा भुजाओंवाला आद्यपुरुष कहते
हैं और :जिसमें अवकाश सहित ये संपूणलोक स्थित हैं॥२२॥इंद्रिय इंद्रियोंके अर्थसहित तीन वृत्तिवाले सब दशविध प्राण जिसमें हुए,तुमसे प्रेरित

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ॥ रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥ १९ ॥ दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा
वैकुंठवर्त्मसु ॥ यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥ २० ॥ सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ॥ तेभ्यो
विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशद्विभुः ॥ २१ ॥ यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्रांघ्र्यूरुबाहुकम् ॥ यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं
समासते ॥ २२ ॥ यस्मिन्दशविधः प्राणः सेंद्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् ॥ त्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥ २३ ॥
यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ॥ प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥ २४ ॥ प्रजापतीनां स पति
श्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् ॥ सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वंतराधिपान् ॥ २५ ॥ एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि
च ॥ उपर्यधश्च ये लोकाभूमेर्मित्रात्मजासते ॥ २६ ॥ तेषां सस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ॥ तिर्यङ्मानुषदे
वानां सरीसृपपतत्रिणाम् ॥ वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥ २७ ॥

जिसमें सब वर्ण होते हैं, उनकी विभूति हमको सुनाओ ? ॥२३॥जिस संसारमें पुत्र, पौत्र, नाती, गोत्रसमेत अनेक अनेक प्रकारकी आकृतिकी
प्रजा होकर जिससे यह विश्वमें विस्तार हुआ सो कहो?॥२४॥प्रजापतियोंके मध्यमें किस २ को प्रजापति किया?सर्ग,अनुसर्ग, मनु, मन्वन्तरोंके
स्वामी कौन हुए ? सो कहो ॥२५॥ हे मैत्रयजी ! इनके वंशोंके वंशमें जो हुए उनके चरित्र और भूमिके ऊपर नीचेके जो लोक हैं सो हमसे
कहो ॥ २६ ॥ उनकी स्थिति उनके प्रमाण और भूलोकका वर्णन करो;सुर,नर,मुनि,देवता,पशु,पक्षी, सर्पादिक इन सबका वर्णन करो॥२७॥

हे भगवन् ! तत्त्वोंकी संख्या कहो, प्रलयमें कौन २ उनकी उपासना करता है ?और कौन उनके पीछे सोता रहताहै? सो कहिये॥३७॥पुरुषकी स्थिति, परमेश्वरका स्वरूप, निगमका ज्ञान,गुरुशिष्यका प्रयोजन सो कहिये. हे कृपासिन्धो! जो महात्माओंने निमित्त कहे हैं ॥३८॥ उन पुरुषोंको अपने आप ज्ञान भक्ति वैराग्य कैसे होता है सो कहिये, परमात्माके जाननेकी इच्छासे जो मैंने ये प्रश्न कियेहैं सो आप कृपा करके वर्णन कीजिये.आप मेरे मित्र हैं और मायाके प्रभावसे मेरी दृष्टि नष्ट हो गई है॥३९॥सब वेद, यज्ञ, तप, दान, हे:पापरहित!जीवके अभयदान करनेको एक कलासे भी समर्थ नहीं हैं ॥४० ॥श्रीशुकदेवजी बोले-कौरवोंमें श्रेष्ठ विदुरने मुनिप्रधान पुराणोंमें जिनका विस्तारसहित वर्णन है

तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः ॥ तत्रेमं क उपासीरन्क उ स्विदनुशेरते ॥ ३७ ॥ पुरुषस्य च संस्थानं
स्वरूपं वा परस्य च ॥ ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः ॥ ३८ ॥
स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥ एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया ॥ ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वाद
जया नष्टचक्षुषः ॥३९॥ सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ॥ जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥ ४० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ॥ प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहस
न्निवाह ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सत्सेवनीयो
बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ॥ बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदेपदे नूतनयस्यभीक्ष्णम् ॥ १ ॥

ऐसे मैत्रेयजीसे सब बूझा.भगवत्की कथामें जिनका अधिक प्रेम,सो विदुरजीको प्रेरणा कर बोले॥४१॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां विदुरोक्तब्रह्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥दोहा-इस अष्टम अध्यायमें, वरणों कथा अनूप । मैत्रेय जिमि विदुरसों, वरणो हरिको रूप ॥८॥ मैत्रेयजी बोले-दोहा-अहै प्रशंसायोग्य यह,कुरुभूपतिको वंश।विदुरभागवत जहँ भये, संतनकुलअवतंस॥मैत्रेयजी बोले कि हम बहुत आनंदित हैं कि यह पुरुवंश संतोंकी सेवा करनेयोग्य है.जो भगवान्के मन्त्री यम, तुम धर्मराज हुए. श्रीनारायणकी कीर्तिरूप मालाको क्षण२ में

नवीनसी करो हो॥१॥तुच्छ सुखके लिये जो मनुष्य महादुःखको प्राप्त होते हैं उनका वह दुःख दूर करनेके अर्थ मैं श्रीमद्भागवत पुराणका प्रवर्तन करूं हूँ;जो साक्षात् श्रीभगवान्ने ऋषियोंके सम्मुख वर्णन किया है ॥२॥ आदि संकर्षण भगवान् जो पातालमें विराजमान हैं जिनका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता,उन शेषजीसे भगवान् वासुदेवके तत्त्वके जाननेकी इच्छासे सनत्कुमारआदि मुख्य मुनियोंने बूझा ॥३॥अपने हृदयमें विराजमान उन वासुदेव भगवान्को सर्वोत्कर्षसे पूजनेहारे सनत्कुमार आदिकोंकी कृपाके लिये नीचेको शिरकर नयनकमलको किञ्चित् खोलकर देखा॥४॥श्रीमद्भागवत सुननेको सत्यलोकसे पाताललोकमें गंगाद्वार होकर सनत्कुमारादिक गये. गंगाजलसे उनके केश भीग गये थे,उन अपने भीगे जटासमूहोंसे श्रीशेषजीके चरणकमलमें सनकादिकोंने अपना शिर धरकर नमस्कार किया.जिन चरणारविन्दोंको नागराजकन्या अत्यन्त प्रेमसे अनेक२प्रकारकी भेटें धरधर पतिकी चाहनेके लिये आनंद होहोकर पूजन करतीहैं॥५॥भगवान् शेषजीके चरित्रके माहात्म्यको जो जाननेवाले हैं वे अनुरागसहित गद्गद वचनोंसे बारंबार उनकी स्तुति करतेहैं,जिनके सहस्रों किरीटोंके मणि रत्नोंसे अत्यन्त प्रकाशित हो रहे हैं॥निवृत्तिमार्गके धर्मसंयुक्त सनत्कुमारके अर्थ निश्चयकर भगवान् शेषजीने कहा हे राजन्!वही धर्म सर्वव्रतधारी सांख्यायनने सनत्कुमारसे पूछा तब सनत्कुमारने उनसे कहा॥६॥७॥

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ॥ प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २ ॥
आसीनमुर्व्यां भगवंतमाद्यं संकर्षणं देवमकुंठसत्त्वम् ॥ विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन्॥३॥
स्वमेव धिष्ण्यं बहु मानयंतं यं वासुदेवाभिधमामनंति॥ प्रत्यग्धृताक्षांबुजकोशमीषदुन्मीलयंतं विबुधोदयाय ॥४॥
स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशंतश्चरणोपधानम्॥ पद्मं यदर्चंत्यहिराजकन्याः सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥
मुहुर्गृणंतो वचसाऽनुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः॥ किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥ ६ ॥
प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ॥ सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायांग धृतव्रताय ॥ ७ ॥

कि परमहंसोंमें मुख्य सांख्यायनजीको भगवतकी विभूति कहनेकी इच्छा हुई, तब उनके समीप पराशर और बृहस्पतिजी आये, जो हमारे गुरु हैं. उनकी प्रीति जानकर श्रीभागवतपुराण सांख्यायनने उनको कह सुनाया ॥८॥ पुलस्त्यमुनिने पराशरको यह वर दिया कि, तुम पुराणके वक्ता हो सो उनही पराशरमुनिने दयालुभावसे आद्यपुराण भागवतपुराण मुझको सुनाया. हे वत्स! दोहा-वर्णन करिहौं सकल विधि, श्रद्धा जानि तुम्हार। सावधान हो सुनहु अब, हरिकीरति मनधारि॥ हे विदुर! हम श्रद्धालु नित्य सेवा करनेवाले आपसे सो भागवत पुराण कहते हैं ॥ ९ ॥ जब महाप्रलयमें यह विश्व नष्ट होगया, उस समय चिच्छक्तिको त्याग नेत्र मूँद शेषशय्यापर शयन कर केवल एक श्रीविश्वनाथ सावकाश प्राप्तकर अपने आत्माकी

सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ॥ जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च॥८॥ प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ॥ सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ ९ ॥ उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ्न्यमीलयत् ॥ अहींद्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतो निरीहः ॥ १० ॥ सोऽन्तश्शरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ॥ उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥११॥ चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ॥ कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतंत्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥ १२ ॥ तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ॥ गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥ १३ ॥

रतिमें चेष्टारहित होते हुए॥१०॥ शरीरके भीतर भूत सूक्ष्म उनके अर्पितकालात्मिका अपनी शक्तिको प्रेरणा करके आप अपने जलस्थानमें वास करनेलगे. जैसे काष्ठमें अग्नि अपने पराक्रमको रोककर निवास करती है, रगडनेसे उसी काष्ठसे फिर वही अग्नि प्रगट हो जाती है इसीप्रकार जान लीजे॥११॥ चारों युगोंके सहस्रों वर्षतक उस जलमें सोते हो गये और अपनी प्रेरित कालरूपी शक्तिसे सब कर्म जिनको प्राप्त होते रहे; वे त्रिलोकनाथ सब लोकोंको अपनेमें लीन देखते हुए॥१२॥ सूक्ष्म अर्थमें सब ओरसे जिनकी प्रविष्टदृष्टि उन ईश्वरके अन्तरका जो कारण था, वह रजोगुणसे सूक्ष्म

---

१ इस प्रसंगमें इस प्रकारकी कथा है कि, पिताको राक्षससे खायाहुआ सुन पराशरजी राक्षसोंके विनाशार्थ यज्ञमें प्रवृत्त हुए. तब वसिष्ठजीके कहनेसे निवृत्त हुए तब पुलस्त्यमुनिने अपनी सन्तानकी रक्षा समझकर प्रसन्न होकर यह वर दिया कि तुम सब पुराणोंके वक्ता होगे।

होकर कालके अनुसार गुणसे चलायमान होकर सूखा, तब नाभिसे एक कमल पैदा हुआ ॥ १३ ॥ कर्मका प्रतिबोधक समय पाकर एक संग वह सबका कोष एक कमल निकला और आप अत्यन्त अनूप अपनी कांतिसे विशाल, उस जलके प्रकाशक, तमनाशक, मार्तण्डकी नाईं समस्त ब्रह्माण्डके कारण सूक्ष्मरूप हुए ॥ १४ ॥ संपूर्ण जीव भोग्योंको प्रकाश करनेवाला वह लोकात्मक कमल जिस विष्णु भगवान्‌से उत्पन्न हुआ था वही विष्णु भगवान् जब उसमें प्रविष्ट हुए तब स्वयं वेदमय विधाता उससे उत्पन्न हुए कि, जिनको स्वयंभू कहते हैं ॥ १५॥उस कमलके दलोंके ऊपर बैठे२इधर उधरको देखा तो लोक दृष्टि न आये.तब आकाशकी ओर नेत्र घुमाये तब चारों दिशा देखनेको चार मुख प्रगट

स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन॥स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः॥१४॥
तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ॥ तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदंति
सोऽभूत् ॥ १५ ॥ तस्यां स चांभोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ॥ परिक्रमन्व्योम्नि निवृत्तनेत्रश्चत्वारि
लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६ ॥ तस्माद्युगांतश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ॥ अपाश्रितः कंजमु लोकतत्त्वं
नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥ १७ ॥ क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ॥ अस्ति ह्यधस्तादिह
किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सतानुभाव्यम् ॥ १८ ॥ स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरंतर्जलमाविवेश ॥ नार्वाग्गतस्त
त्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविंदताजः ॥ १९ ॥

हुए॥ १६॥प्रलयकी वायुसे जल कांप रहा, गंभीर लहरोंसे भँवर पड़ रहे,उस जलमें सब लोकका तत्त्व,कमलमें विराजमान आदिदेवब्रह्माने साक्षात् अपने आपको और कमलको कुछ नहीं जाना ॥ १७॥जो मैं कमलकी पीठके ऊपर बैठा हूँ सो मैं कौनहूँ? एक यह कमल जलमें कहांसे प्रगट होगया ? नीचेतक हैं कि,यहींसे उत्पन्न हुआ है जो यहां स्थित है तो इसका उत्पन्न करनेवाला भी कोई होगा.इससे यह संभावना निश्चित होतीहै पीछे कमलकी नाल जिनकी नाभि,जहां वह नाभि है यह खोजते २ बाहर निकले,परन्तु कमलकी मूलका ठिकाना नहीं लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥

हे विदुरजी! उस निबिड अन्धकारमें अपने रचनेवालेको ढूँढ़ते ढूँढ़ते जब ब्रह्माको बहुत दिन होगये, तौ अजन्मा ईश्वरके कालने देहधारियोंको भय दिया. श्रीविष्णुके सुदर्शनचक्र कालरूपने सबकी आयु क्षीण की. इसका अभिप्राय यह है कि, सौ वर्ष ब्रह्माको ढूँढ़ते ढूँढ़ते होगये तोभी भेद न मिला कि, कहां हैं ॥ २० ॥ जब निवृत्त हुआ और मनकामना पूरी न हुई तौ फिर ब्रह्मदेव अपने कमलपर आनकर बैठे; धीरेसे श्वास जीत सब

तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः॥यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥२०॥ ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ॥ शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥२१॥ कालेन सोऽजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ॥ स्वयं तदंतर्हृदयेऽवभातमपश्यताऽपश्यत यं न पूर्वम् ॥२२॥ मृणालगौरायतशेषभागे पर्यंक एकं पुरुषं शयानम् ॥ फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वांतयुगान्ततोये ॥ ॥ २३ ॥ प्रेक्षां क्षिपंतं हरितोपलाद्रेः संध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ॥ रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो वेणुभुजांघ्रिपांघ्रेः ॥ २४ ॥

निवृत्तचित्त कर योग साध समाधि लगाकर बैठे॥२१॥सौ वर्षके उपरान्त उस योगसाधनासे ब्रह्माको ज्ञान उत्पन्न हुआ तौ आप अपने हृदयमें प्रकाशित जो कभी नहीं देखा था उनका दर्शन हुआ॥२२॥कमलनालवत् गौर विस्तृत शेषजीके फणरूप शय्यापर एक पुरुष अत्यन्त प्रकाशवान् सो रहे हैं, दशहजार फणोंके छत्ररूप मस्तकोंके रत्नोंकी कांतिसे महाप्रलयके अन्धकारको दूर कर रहेहैं*॥२३॥सन्ध्याकालके मेघवत् पीताम्बर

---

* **शंका**-मैत्रेयजीने मनुजकी समान भगवान्का शृंगार वर्णन किया, यह महा अन्याय है, क्योंकि त्रिलोकीनाथको मणि, मोती, हीरा आदिका आभूषण हुआ तो क्या आश्चर्य है; जैसे राजाको कोई कहै कि राजा आज अनेक प्रकारका सुन्दर भोजन कर रहे हैं, यह बात कहनी बडी अयोग्य है, जिनके घरमें करोडों रुपये पडे हैं और ऋद्धिसिद्धिसे भंडार भर रहे हैं उनको सुन्दर भोजन करना क्या आश्चर्य है? ऐसेही त्रिलोकीनाथके आभूषणोंका वर्णन करना इसमें बडी शंका है ।

पहिरे, अनेक सुवर्ण शिखर जिसमें किरीट समान रत्नजलधारा,पुष्पोंकी वनमाला,बांस भुजाके तुल्य वृक्ष चरणवत् जिसमें ऐसे मरकत शिलामय पर्वतकी शोभाको अपनी सुन्दरतासे तिरस्कार करते हैं. उस पर्वतमें स्थित रत्नादिक होते हैं. बांस भुजातुल्य है, वृक्ष पदसमान हैं ॥ २४ ॥ अतिदीर्घ विस्तृत अपना मान करनेवाला, लोकत्रयके संग्रहदेहसे विचित्र दिव्य आभरण वस्त्रोंकी शोभा, देहका वेष अलंकार किया है ॥२५॥ अपनी२कामनासे वेदगीतमार्गोंसे पूजतेहुए मनुष्योंको नखरूप चन्द्रमाओंकी किरणोंसे सुन्दर अलग२ अंगुलीरूप जिसमें पत्र सो सम्पूण मनोरथोंके

आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण ॥ विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृताश्रियाऽपाश्रितवेषदेहम्॥२५॥
पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघांघ्रिपद्मम् ॥ प्रदर्शयंतं कृपया नखेंदुमयूखभिन्नांगुलिचारुपत्रम् ॥२६॥
मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुंडलमंडितेन ॥ शोणायितेनाधरबिंबभासा प्रत्यर्हयंतं सुनसेन सुभ्र्वा ॥ २७ ॥
कदंबकिंजल्कपिशंगवाससा स्वलंकृतं मेखलया नितंबे ॥ हारेण चानंतधनेन वत्स श्रीवत्सवक्षस्स्थलवल्लभेन ॥ २८ ॥
पराध्र्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दंडसहस्रशाखम् ॥ अव्यक्तमूलं भुवनांघ्रिपेंद्रमहींद्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥ २९ ॥

पूर्ण करनेवाले,अत्यन्त कोमल कमलसे चरणोंको कुछ ऊपरको उठाकर दिखारहेथे. ऐसे नारायणको देखा ॥ २६ ॥ लोककी क्लेशनाशक मधुर मुसकान, चारोंओरसे झमकनेवाले कुण्डल कानोंमें झलक रहे;लाल२ बिम्बाफलसमान होठोंकी कान्ति,शुकतुण्डसी सुन्दर नाक; भ्रू, मुखसे अपने पूजन करनेवाले पुरुषोंका सम्मान करते हैं ॥२७॥ कदम्बके केसरवत् पीले पीताम्बरसे, क्षुद्रघंटिकासे कटिका पश्चात्भाग सुन्दर अलंकृत है. हे वत्स! भगवान् वासुदेवके वक्षस्थलमें कौस्तुभमणि और अमूल्य हारोंसे श्रीजीका चिह्न भृगुलता शोभितहै॥२८॥ अमूल्य भुजबन्दोंकी उत्तम२

उत्तर–ज्ञानी पुरुष तो भगवान्को त्रिलोकीनाथ जानते हैं परन्तु अज्ञानीलोग भगवान्को कुछभी नहीं जानते, सुन्दर पदार्थोंके भगवान् करके मानते हैं उन अज्ञानियोंको लोभकरनेके लिये मनुष्योंकी समान भगवान्के शृंगारका वर्णन किया है, जिन भगवान्के शृंगारको सुनकर अज्ञानी जनभी मोहको प्राप्त होंगे और जानेंगे कि, ऐसे बडे लक्ष्मीवान् भगवान् हैं ऐसा जानकर अज्ञानीभी धनवान् होनेके लिये भगवान्की भक्ति करेंगे, फिर धीरे धीरे ज्ञानी होजायँगे, इसलिये मुनीश्वरलोगोंने मनुष्यके आभूषणोंके समान भगवान्का शृंगार वर्णन किया.

मणियोंसे भुजादंड सहस्रशाखासम व्याप्त होरहे हैं.जैंसे चन्दनके वृक्ष केयूरादिकतुल्य फलपुष्पादिसे व्याप्त होते हैं इसीप्रकार जानो.अप्रगट जिसका मूल है,सकलभुवनात्मक वृक्षराज शेषजीके फनोंसे स्कन्धादिकशाखा ईश्वर हैं,जैसे चन्दन सर्पोंसे वेष्टित होता है ऐसे महाशेषजीसे परमेश्वर वेष्टित हैं॥२९॥जिसमें चर अचरका भवन और भगवान्ही जिसमें पर्वत, शेषजीके बन्धु जिसमें जल,सहस्रकिरीट सुवर्ण शृंगसमानहैं,कौस्तुभरत्न गर्भमें जिनके ऐसे ईश्वर हैं॥३०॥वेदरूप भ्रमरोंसे शोभावाली अपनी कीर्तिरूप वनमाला कण्ठमें पहिरे,सूर्य,चन्द्रमा,वायु, अग्नि ये जिनको न जानसकें त्रिलोकीमें संग्राम करनेको फिरनेवाले,भगवत् प्रधानिकों(सुदर्शनादि) से श्रीहरि असहहैं ॥३१॥ जिस समय भगवान्को देखा उसी समय नाभि

चरांचरौको भगवान्महीध्रमहींद्रबंधुं सलिलोपगूढम् ॥ किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥ ३० ॥
निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ॥ सूर्येंदुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरा
सदम् ॥३१॥ तर्ह्येव तन्नाभिसरस्सरोजमात्मानमंभः श्वसनं वियच्च ॥ ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकवि
सर्गदृष्टिः॥३२॥ स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ॥ अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीडचमव्यक्तवर्त्मन्यभि
वेशितात्मा ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे ब्रह्मकृतं सर्वोत्कृष्टश्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नामाष्टमो
ऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ॥ नान्यत्त्वदस्ति
भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥

सरोवरमें कमल, अपना देह, प्रलयका जल, पवन, आकाश,जगत्के निधान करनेवाले ब्रह्माजीने देखा कि,इससे परे लोकके विशेषकरके रचनेकी दृष्टि न देखी॥३२॥सो ब्रह्माने सब कर्मोंका सब बीज,रजोगुणसे युक्त प्रजाके रचनेकी इच्छाकी.दृष्टसे विसर्गमें चित्त किये,श्रीभगवान्के गुप्तमार्गमें निवेशित चित्त ब्रह्माजी स्तुति योग्य भगवान्की स्तुति करनेलगे॥३३॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां ब्राह्मणसर्वोत्कृष्ट श्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ दोहा--इस नवमें अध्यायमें,अज तप कियो अपार।देख दुखी वनको भयो,रचे लोक दशचार॥९॥

ब्रह्माजी बोले कि, हे नाथ! अब मुझको आपके स्वरूपका ज्ञान होजानेसे मैं अपनी कृतार्थताको प्राप्त हुआ और बहुतकाल तप करके अब मैंने आपको जाना. देहधारियोंसे आपकी महिमा नहीं जानीजाती, यही दोष है कि, वे आपके चरणकमलमें मन नहीं लगाते. हे भगवन् ! तुमसे परे और कोई शुद्ध नहीं है, क्योंकि चलायमान होनेसे तुम अनेकरूप प्रकाश करोहो. आप किसीसे भिन्न नहीं, आप सब चराचरभूतोंके स्वामी और अन्तर्यामी हो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मा ! तुमभी भलीभांति मेरे स्वरूपको नहीं जानते हो, क्योंकि यह रूप जो तुमने देखा है यह भी गुणात्मक है और सत्य तौ निर्गुण ब्रह्महीहै; इस शंकाको उठाकर अब समाधान करते हैं. ज्ञानरस सूर्यके उदय होनेसे सदा अंधकार दूर होजाता है. इसीप्रकार तुम

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ॥ आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमा
विरासम् ॥ २ ॥ नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानंदमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ॥ पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्म
भूतेंद्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ ३ ॥ तद्वा इदं भुवनमंगल मंगलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ॥
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसंगैः ॥४॥ ये तु त्वदीयचरणांबुज कोशगंधं जिघ्रंति
कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ॥ भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयांबुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥

उपासकोंके अनुग्रहके अर्थ शत अवतारोंका एक बीज, यह रूप आदिमें आप ग्रहण करते हो, इसकी नाभिकमलसे मैं हुआ ॥२॥ हे पुरुषोत्तम! हे आत्मन्! आनन्दमात्रमें कोई संकल्पविकल्प न करै, सदा तेजोमय विश्व रचकर एक विश्वसे, और दिव्यपंचभूत इन्द्रियात्मक आपका यह आनन्दरूप है. इससे परे और कुछ नहीं, यह मैं देखताहूँ इसकारण आपके चरणकमलकी शरण हूं॥३॥ हे भुवनमंगल! आपनें ध्यानमें मुझसरीखे उपासकोंको चौदहभुवनोंका मंगलदायक चिदानंदस्वरूपका दर्शन कराया भगवान् दयानिधानको मेरा वारंवार नमस्कारहै. जो नरकके भागी, खोटे प्रसंगके करनेवाले हैं और इस सगुणरूपका तिरस्कार करते हैं, उनको स्वप्नमेंभी इस स्वरूपका दर्शन नहीं होता ॥ ४ ॥ वेदसे प्राप्त जो तुम्हारे

चरणारविन्दकी सुगंधिको सूँघे हैं और अत्यन्तभक्तिसे चरण ग्रहण करते हैं.हे नाथ! आप ऐसे पुरुषोंके हृदयकमलसे निकलकर कभी नहीं जाते हो निरन्तर वास करते हो ॥ ५ ॥ जबतक ये लोग आपके अभयदायक चरणकमलका आश्रय नहीं लेते, तबतकही धन,स्त्री,पुत्रमें भय होता है. सुहृदोंके निमित्त शोक, मोह,लोभसे अत्यन्त अनादर होता है.खोटा आग्रह सदा दुःखदायक है॥६॥जिन भाग्यहीनोंकी बुद्धि नष्ट होगई और तुम्हारी कथा सब अशुभनाशक यशप्रकाशसे जिनकी इन्द्रियें विमुख लोभमें लौलीन ऐसे मनुष्य लेशमात्र कामसुखके लिये उचित अनुचित कुछ नहीं समझते और जिसमें अपनी कुशल न हो ऐसे कर्म करते हैं॥७॥हे उरुक्रम ! क्षुधा, तृषा, वात, पित्त, कफसे वारंवार दुःखित, शीत, उष्ण, पवन, वर्षासे पीडित, कामाग्नि और आपके अत्यन्तकोपसे प्रजाको दुःखी देखकर मेरा मन कम्पायमान होताहै॥८॥हे ईश! जबतक इस शरीरकी इंद्रियें,अर्थ, मायाबल, मैं हूँ ईश्वरसे अलग समझे है तबलों यह जीव संसारसे मुक्ति न पावैगा और अनेक दुःखदाई व्यर्थ कर्म करता रहैगा॥९॥दोहा—"दिनभर कर व्यापार बहु, श्रमित करहिं निशि सैन । विवश विषयसुख उझकि झकि, लहत न कबहूँ चैन॥"दिनके व्यापारसे थकितहैं इंद्रियें जिनकी ऐसे मनुष्योंको रात्रिमें विषयसुखका लेशभी नहीं होता और स्वप्नदर्शनोंसे क्षणक्षणमें निद्राभी भंग होजातीहै मनमें अनेक प्रकारके मनोरथ करते हैं, परन्तु दैववशसे सिद्ध एकभी नहीं होता,सब नष्ट होजाते हैं;हे देव ! तुम्हारे प्रसंगसे विमुख जो ऋषिलोग इस संसारमें

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः॥ तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेंघ्रिमभयं
प्रवृणीत लोकः ॥६॥ दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसंगात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेंद्रिया ये॥ कुर्वंति कामसुखलेशलवाय
दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत्॥ ७ ॥ क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च॥
कामाग्निनाऽच्युत रुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे॥ ८ ॥ यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इंद्रियार्थ
मायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ॥ तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थाऽपि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था॥ ९ ॥
अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निश्शयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ॥ दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव
युष्मत्प्रसंगविमुखा इह संसरंति ॥ १० ॥

वारंवार जन्मते मरते हैं॥ १०॥हेउरुगाय!हे नाथ!भावयोगशोधित,जिनके हृदयकमलमें तुम वास करो हो,तुम्हारी कथा सुनकर तुम्हारा दर्शन करते हैं उन पुरुषोंके हृदयमें तुम रहो हो तौभी.जो जो बुद्धि करके अपनी इच्छासे तुम्हारे भक्त तुम्हारा रूप जैसा२देखा चाहते हैं,उसीप्रकारका स्वरूप आप अपने भक्तोंपर अनुग्रह करके धारण करते हो॥ ११॥जिनके मनमें अनेक २प्रकारकी कामना लग रही हैं उन देवगणोंके रचे उपचार आराधनासे ऐसे प्रसन्न नहीं होते हो,जितना कि;जो सब जीव मात्रपर दया करतेहैं उनपर प्रसन्न होतेहो,यह असंतोंको प्राप्त नहीं होता इसलिये तुम,सब जीवोंके अन्तरमें निरन्तर वास करो, सुहृद्व्यापक तुम प्रसन्न होओ ॥ १२॥ इसलिये पुरुषोंके अनेक कर्म यज्ञादिकसे तप, दान, संयम, नियम उग्रव्रतसे

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ॥ यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयंति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ ११ ॥ नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ॥ यत्सर्वभूतदयया ऽसदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदंतरात्मा ॥१२॥ पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च॥ आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्भ्रियते न यत्र॥१३॥शश्वत् स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥१४॥ यस्यावतारगुणकर्मविडंबनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणंति ॥ तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयांत्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥ १५ ॥

आपका आराधनरूप सत्क्रियाअर्थदायक धर्म जिसने तुमको समर्पण किया, वह कभी नष्ट नहीं होता है॥ १३॥ सदा स्वरूपके तेजसे भेदमोहका नाश करै, ज्ञान बुद्धि जिसमें परेसे परे, जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहारके निमित्त, नित्य अद्भुत २ लीला करनेहारे ईश्वरके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिनके अवतारोंका कथन, देवकीनन्दनादि गुणकथन, सर्वज्ञ भक्तवत्सलादि गुणकर्मकथन, गोवर्द्धनका उद्धरण,कंसाराति इत्यादिक गुणकथन, प्राणान्तके समय विवश होकर जो पुरुष इनका नाम लेते हैं वे अनेक जन्मके पाप नष्टकर तत्काल सत्यस्वरूप ईश्वरको

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ॥ भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्रोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ १६ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥ यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ॥ तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥ १८ ॥ तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ॥ रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥ योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ॥ अंतर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २० ॥ यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ॥ तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥

प्राप्त होते हैं. मैं ऐसे ईश्वरके शरणागत हूँ॥१५॥मैं शिव, विष्णु, आप उत्पत्ति, पालन, नाशके हेतु हैं,आप जिसके मूल,ब्रह्मादिक बडे २ जिसके कन्धे,मरीचिमन्वादिरूप जिसकी अनेकशाखा ऐसा एक वृक्षरूप होकर जो बढ़े, उस भुवनद्रुम श्रीभगवान्‌को नमस्कार है ॥ १६ ॥ जो लोक विरुद्धकर्ममें सदा लगे रहते हैंऔर सुखदायक आपका पूजनरूप कर्म करनेकी आपने आज्ञा दी है उन कर्मोंमें मन नहीं लगातेहैं.जबतक जिस जनकी जीवनकी आशा काटो हो ऐसे कालरूप,आपको वारंवार नमस्कार है॥ १७ ॥ हे प्रभो ! मैंभी आपसे डरता हूं, महाप्रलयके स्थानमें सब लोग स्थित हो जिसको नमस्कार करतेहैं ऐसा तप बहुत वर्षतक किया सो सब यज्ञोंके अधिष्ठाता आप हैं आपको वारंवार नमस्कार है ॥ १८ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, देवतादिक योनियोंमें अपनी इच्छासे अपने करेहुए धर्मसेतुओंके पालनकी इच्छासे रमण करते हुए जिसने विषय सुख नहीं माना, अपने वीर्यको जिसने रोक रक्खा ऐसे परमपुरुष आपको वारंवार नमस्कार है ॥ १९ ॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अंधतामिस्र इस पांच प्रकारकी अविद्यारहित, सबलोक जिनके उदरमें वास करें सो ईश्वर भयंकर लहरोंकी मालावाले जलमें शेषशय्यापर शयन करनेसे अनुकूल निद्राको प्राप्त हुए, मानो संसारके जनोंको निद्राका सुख सिखाया ॥ २० ॥ हे स्तुतियोग्य ! त्रिलोकीके

रचनेका पात्र आपने अपनी कृपासे अपनी नाभिकमलसे मुझको उत्पन्न किया. आपके उदरमें विश्व योगनिद्राके अंतमें प्रफुल्लित कमलके समान जोआपके नेत्रहैं ऐसेआपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे समस्त संसारके सुहृद्! एक आत्मा तत्त्वऐश्वर्यके द्वारा सब संसारको सुख देते हो वही दिव्यदृष्टि मुझको मिले; जो पूर्वकी नाईं इस विश्वको रचूं आप अपने दासोंके प्यारे ईश्वर हैं ॥ २२ ॥ शरणागतके वरदायक, हे विश्वनायक! श्रीलक्ष्मी अपनी शक्तिसेसगुण अवतार धार २ अनेक २ प्रकारकी लीला, और विहार संसारके सुख देनेको करते हो.हे नाथ! मुझको इस विश्वके रचनेमें प्रवृत्त करो. मैं अज्ञानफन्दमें न फँसूं; और कर्मके करे हुए

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ॥ तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाऽहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ॥२२॥एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ॥ तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युंजीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥ नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमास मनंतशक्तेः॥ रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥ २४ ॥ सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनांबुरुहं विजृम्भन् ॥ उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसंभवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ॥ यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥ २६ ॥ अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः ॥ विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकरांभसा ॥ २७ ॥

पापोंको मैं त्याग करूं ऐसी कृपा मेरे ऊपर करो ॥ २३ ॥ अनन्तशक्तिवाले महापुरुषकी नाभिसरोवरसे जलमें विज्ञानशक्तिरूप मैं प्रगट हुआ, इस विश्वका विचित्र विस्तारक, और मेरी वेदकी अवयवरूप वाणीका उच्चारण लुप्त न होजाय ॥ २४ ॥ सो हे महादयालो भगवन्! अत्यन्त अधिकप्रेमकी मधुर मुसुकानसे नयनकमलका प्रकाश कर शीघ्र विश्वविजयके निमित्त, मेरे ताप और क्लेशको मनोहर वाणीसे दूर करो; क्योंकि दासोंपर दया करनेकी सदा तुम्हारी बाणी है ॥२५॥ मैत्रेयजी बोले, कि इस विधिसे जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द, मोहन मुकुन्दसे अपना जन्म सुन,तप विद्यासमाधिसे जहांतक मन वचन पहुँचा वहांतक स्तुति करके थक गये ॥२६॥ उस कल्पके उलटे करने

वाले जलसे खेदित ब्रह्माका अभिप्राय भगवान् जान कर ॥ २७ ॥ लोककी स्थितिविज्ञानमें ब्रह्माका मोह दूरकर: गंभीर वाणीसे ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि हे वेदगर्भ! ब्रह्मन्! आलस्य मत करो सृष्टि रचनेमें उद्यम करो, जिस कारण तुमने मेरी प्रार्थना की है सो शक्तिमय मैं प्रथमही तुमको दे चुका ❋ ॥ २९ ॥ हे चतुरानन! फिर तुम तप करो तौ मेरी विद्यासे विस्तृत सब लोकोंको अपने हृदयमें देखोगे ॥ ३० ॥ हे कमलासन ! फिर

लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः ॥ तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा वेदगर्भ गास्तंद्रीं सर्ग उद्यममावह ॥ तन्मयाऽऽपादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥ २९ ॥ भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ॥ ताभ्यामंतर्हृदि ब्रह्मँल्लोकान् द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥ ३० ॥ तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ॥ द्रष्टाऽसि मां ततं ब्रह्मन्मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥ ३१ ॥ यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् ॥ प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥ ३२ ॥ यदा रहितमात्मानं भूतेंद्रियगुणाशयैः ॥ स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ॥ ३३ ॥ नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः ॥ नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥ ३४ ॥

पीछे आत्मामें, लोकोंमें, भक्तिसहित सावधानतासे मुझको व्याप्त देखोगे, और लोकको मुझमें देखोगे, जीवोंको देखोगे ॥ ३१ ॥ जैसे काठमें आग स्थित रहती है, इसभाँति जब सब जीवोंमें तुम मुझको देखोगे तो सब पातक और मल तुम्हारे उसीसमय जलकर भस्म होजायँगे ॥ ३२ ॥ भूत इन्द्रियें अंतःकरण गुणसे रहित आत्माको मेरे स्वरूपसे जब युक्त देखोगे तब अपने राज्यको प्राप्त होगे ॥ ३३ ॥ अनेक २ कर्मोंके विस्तारकर

❋ **शंका**–ईश्वर ब्रह्माके सन्मुख खडे होकर अपना रूप ब्रह्माको दिखाय ब्रह्मासे बोले कि, हे ब्रह्मा ! संसारके रचनेके लिये तुम उपाय करो, तब ईश्वरने अपने स्वरूपसे तथा अपने दर्शनसे उद्यमको बडा क्यों माना ? जिस उद्यमको करनेके लिये ब्रह्माको आज्ञा दी, क्या ईश्वरका दर्शन ब्रह्माने किया? और दूसरे ईश्वरके वचन क्या इन दोनोंसे बिना उद्यम ब्रह्मा संसारको नहीं बनासका, यह बडे आश्चर्यकी बात है.

उत्तर–इस संसाररूप समुद्रमें विना उद्यम कोईभी कार्य नहीं बनसक्ता, क्योंकि यह उद्यम जो है सो नारायणका शरीर है, नारायणके दर्शनसे अथवा नारायणके वचनसे बडा नहीं है परन्तु संसारमें उद्यमही सुखकी खान है, इसलिये ब्रह्मासे नारायणने उद्यमकी बडाई करके उद्यम करनेके लिये कहा.

बहुत प्रजा रचनेवाली तुम्हारी आत्मा नहीं फँसेगी.यह मेरीही कृपा है जिससे तुम वृद्धत्व रहो॥३४॥आद्यऋषे !तुमको यह पापी रजोगुण नहीं
व्यापैगा,क्योंकि प्रजा रचनेके समय तुमने अपना मन मुझमें लगाया है॥३५॥देहधारियोंको मेरा जानना बहुत दुर्लभ है, नहीं जाना जाता;
सो तुमने मुझको जान लिया. अब भूत, इन्द्रिय, गुण, आत्मासे जो तुमने मुझेको माना, वह ठीक है॥ ३६ ॥ कमलकी नालके द्वारा जलमें
कमलकी जड़ ढूँढ़ने और मेरे जाननेकी अभिलाषा की तब मैंने अपना रूप तुम्हारे हृदयमें प्रगट किया ॥३७॥हे ब्रह्मन्!मेरी कथाके उदयवाली
जो तुमने मेरी स्तुति की और जो तपमें तुम्हारी निष्ठा है; यह सब मेरीही कृपा है ॥ ३८ ॥ हे अज ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम्हारा

ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः ॥ यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥ ३५ ॥ ज्ञातोऽहं
भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ॥ यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतेंद्रियगुणात्मभिः ॥ ३६ ॥ तुभ्यं मद्विचिकित्साया
मात्मा मे दर्शितोऽबहिः ॥ नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥ ३७ ॥ यच्चकर्थाग मत्स्तोत्रं मत्कथा
भ्युदयांकितम् ॥ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥ ३८ ॥ प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ॥
यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं माऽनुवर्णयन् ॥ ३९ ॥ य एतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ॥ तस्याऽऽशु
संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥ ४० ॥ पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना ॥ राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्व
विन्मतम् ॥४१॥ अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि ॥ अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृतेप्रियः ॥४२॥

कल्याण हो, लोकोंकी विजयके मनोरथसे गुणमय मेरी प्रार्थना की और मुझे निर्गुण वर्णन किया ॥ ३९ ॥जो मनुष्य इस प्रकार स्तुति कर
स्तोत्रोंसे मेरा भजन करतेहैं, उनसे मैं सब प्रकार प्रसन्न होकर कामवर देता हूं ॥ ४० ॥ कुआँ,बावडी बनानेसे,जप,तप,दान,धर्म, कर्म करनेसे,
योग, यज्ञ, समाधिके लगानेसे, मनुष्योंका यह सिद्धान्त है, कि परमात्मामें भी हमारी प्रीति हो,यह तत्त्ववेत्ताओंका मत है॥४१॥सो मैं सबकी
आत्मा सब आत्माओंका पोषण करनेवाला प्यारोंका प्याराहूं,इसलिये मुझसे प्रीति करै,मुझसे प्रीति करनेसे वे देह आदि सब प्रिय होतेहैं॥४२॥

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ॥ प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ व्यज्येदं स्वेन रूपेण कंजनाभस्तिरोदधे ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते म० तृतीयस्कंधे विदुरमैत्रेयसंवादे ब्रह्मणो भगवद्दर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ विदुर उवाच ॥ अंतर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥ १ ॥ ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ॥ तान्वदस्वानुपूर्व्येण छिंधि नः सर्वसंशयान् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संचोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः ॥ प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान्हृदिस्थानथ भार्गव ॥३॥ मैत्रेय उवाच ॥ विरिंचोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥ ४ ॥

सब वेदमय मेरी आत्मा तुम हो, मैंही तुम्हारा आदिकारण हूँ, जो प्रथम मुझमें प्रजा लीन है, जैसा जगत् प्रथम था वैसाही अब रचना चाहिये॥४३॥ मैत्रेयजी बोले, कि प्रधानपुरुष ईश्वर जगत्के रचयिता ब्रह्माको इस भाँति अपना स्वरूप दिखाकर अंतर्धान होगये ॥४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९॥ दोहा-प्रश्न दशम अध्यायमें, कीन्हें विदुर अनेक । प्रगट किये दश सर्ग अज, सो वरणौं यक एक ॥१०॥ विदुरजी बोले, हे मैत्रेय ! जब भगवान् वासुदेव अंतरर्धान होगये तब लोकपितामह ब्रह्माजीने दैहिकी, मानसी, कितनी प्रजा रची? ❋॥१॥ हे बहुवित्तम ! हे भगवन्! जो जो बातें मैंने आपसे बूझीं उनको प्रथमसे लेकर अबतक वर्णन करो, जिससे हमारे सब संशय मिटजायँ ॥२॥ सूतजी बोले, हे शौनक! विदुरजीने मैत्रेयजीसे यह प्रश्न किये तब अतिप्रसन्न हो जो हृदयमें स्थित प्रश्न थे उनके प्रकाश करनेकी इच्छा की ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ब्रह्माजीने परमेश्वरमें मन लगाय दिव्य सौ वर्षतक तप किया, जो भगवान् अजन्माने आज्ञादी थी उसके

❋ शंका-विदुरजीने मैत्रेयजीसे फिर सृष्टिकी रचना क्यों बूझी ? यह शंका बडीभारी है कि मुझको काढनेवाला बुद्धिमान् संसारमें कोई नहीं है.

उत्तर-जैसे मणिको नष्ट देखकर सर्प दुःखी होता है तथा धनको नष्ट देखकर मनुष्य क्लेश मानता है पुत्रको नष्ट देखकर सब जाग्रदुःखी होते हैं ऐसेही विदुरजीभी उद्धवके मुखसे श्रीकृष्णका, यदुवंशियोंका कौरवपांडवोंका, और सब राजाओंका विनाश सुनकर श्रीकृष्णके विरहसे विदुरजी बहुत दुःखी होगये, विह्वल होनेपर किसी वस्तुकी सुधि नहीं रहती ऐसे विदुरको कुछ सुधि न रही, कि यह प्रश्न पहिले हमने किया था, विह्वल होकर सृष्टिकी रचना फिर बूझने लगे.

अनुसार कार्यमें प्रवृत्त हुये ॥ ४ ॥ प्रलयकालके पराक्रमी पवनसे जलकमलको कांपता ब्रह्माजीने कमलपर बैठे देखा ॥ ५ ॥ उस समय बढ़हुए तप आत्मविद्यासे जलसे अत्यंत जिनका विज्ञानबल था सो पवनके संग सबको पीगए॥६॥जब आकाशतक कमलको स्थित देखा तब विचार किया कि,इस कमलसे पहले मैं तीन लोक रचूंगा ॥७॥भगवत्की इच्छासे अपने कर्ममें प्रेरित उस कमलपर बैठकर एक विश्वको त्रिलोकीरूपकर चतुर्दश भुवनरूप बहुत प्रकारसे भावनाके योग्य विभाग किये॥८॥जीवलोककी रचनाका विशेष इतनाहै निष्काम धर्मका फल श्रीब्रह्माजीका अवतार

तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः ॥ पद्ममंभश्च तत्कालकृतवीर्येण कंपितम् ॥५॥ तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ॥ विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं महांभसा ॥६॥ तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ॥ अनेन लोकान्प्राग्लीनान्कल्पिताऽस्मीत्यचिंतयत् ॥ ७ ॥ पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः ॥ एकं व्यभांक्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥८॥ एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ॥ धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥ ९ ॥ विदुर उवाच ॥ यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन्यथा वर्णय नः प्रभो ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ॥ पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ॥ ११ ॥ विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ॥ ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥ १२ ॥ यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् ॥ सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥ १३ ॥

है॥९॥विदुरजी बोले,कि हे ब्रह्मन्! बहुरूपी, अद्भुत कर्मकारी, परमात्माको जैसे तुम कहते हो और उनके कालका लक्षण जैसे है,वैसा हमसे कहौ ॥१०॥मैत्रेयजी बोले कि,सामान्यसे कालकास्वरूप पहले कहतेहैं,अगले अध्यायमें विशेष करके कहेंगे,गुणोंका औरसे और आकार करना जिसका कोई विशेषण नहीं एक स्थानपर रहै नहीं;सबका उपादान कारण आप ईश्वरका आत्मा ऐसे कालको श्रीनारायणने अपनी लीलासे रचा॥११॥निश्चय है कि,विश्व ब्रह्मस्वरूपहीहै,विष्णुकी मायासे स्थित और गुप्तमूर्ति कालरूप परमात्मासे अलग प्रकाशितहै॥१२॥जैसा यह विश्व अबहै,ऐसाही आगे

था और ऐसाही पीछे रहैगा, परंतु संसारके रचनेकी विधि नौ प्रकारकी है,सो एक प्रकृतिसे होती है और एक विकारसे होती है यह दशवां सर्ग
है॥ १३॥केवल कालसे सदा प्रलय होता है,और संकर्षणकी अग्निरूप द्रव्यसे नैमित्तिक प्रलय होता है।अपने अपने कार्योंके ग्रसनेवाले गुणोंसे
प्राकृतिक प्रलय होता है, यह तीन प्रकारका प्रलय है, प्रथम प्रलय यह है कि महत्तत्त्वका सर्ग गुणोंकी विषमतासे सर्वव्यापक ईश्वरसे होताहै॥ १४॥
द्रव्य ज्ञानक्रिया उदय दूसरा अहंकार है, उनकी मात्राद्रव्य शक्तिमान् तीसरा भूतसर्ग है ॥ १५ ॥ ज्ञान और क्रियाकी आत्मा चौथा इन्द्रियोंका
सर्ग है, विकारी देवताओंका पांचवां सर्ग सो मनहै॥ १६॥हे प्रभो ! छठों अज्ञानियोंका किया तामस सर्ग है, यह छै प्रकृतियोंके सर्ग हैं। अब

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ॥ आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वितीयस्त्वहमो यत्र
द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ॥ भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥ १५ ॥ चतुर्थ ऐंद्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रिया
त्मकः ॥ वैकारिको देवसर्गः पंचमो यन्मयं मनः ॥ १६ ॥ षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ॥ षडिमे
प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥ १७ ॥ रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ॥ सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्त
स्थुषां च यः ॥ १८ ॥ वनस्पत्यौषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ॥ उत्स्रोतसस्तमःप्राया अंतस्स्पर्शा विशेषिणः
॥१९॥ तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशतिधा मतः ॥ अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० ॥

जो विकारके सर्ग हैं सो सुनो॥ १७॥राजससे भी भगवान् हारिपूजनीयकी यह लीला है, मुख्य सर्ग सात हैं और छै प्रकारकी स्थावरोंकी रचना
है॥ १८ ॥ छै प्रकारके सर्ग ये हैं सो वर्णन करते हैं; जो विना फूलके फल हैं, सो वनस्पति हैं, जिनका फल अंतमें पकै वे औषधि हैं,सहा
रेसे बढ़ै सो बेल हैं,त्वक्सार वेणु आदिहैं आश्रय विना बढैं वह वीरुधहैं,पहिले फूल आकर पीछे फल लगें वे द्रुमहैं,जिनका आहार संचार ऊपरसे
होय, वे तामसी हैं चैतन्यगुप्त हैं, भीतरसे घटने बढ़नेको जानते हैंइनके घटने बढ़नेका प्रमाण नहीं है अनेक भेद होते हैं ॥१९॥ पशुओंका
आठवां सर्ग अट्ठाईस प्रकारका है, कलको क्या होगा? ऐसे ज्ञानसे वे रहितहैं,आहारादिकका ज्ञानमात्र जानते हैं,नासिकाके स्वरसे जो कुछ अपना

अपना इष्ट अर्थ है।सो जानलेते हैं दीर्घज्ञानशून्य हैं॥२०॥अट्ठाईस भेद कहते हैं, गौसे आदि लेकर ऊँटतक द्विशफके(दोखुरके) नौ हैं,गौ,बकरा, भैंस, कृष्णसारमृग,लीलगाय,रुरुमृग, भेड, ऊँट, हे सत्तम ! इन पशुओंके खुर बीचसे चिरे हुए होतेहैं॥२१॥खर,अश्व,खच्चर,गौरमृग,चित्रमृग, चमरगाय,हे विदुरजी! इनके खुर चिरे हुए नहीं होतं अब पंचनखके पशु सुनो॥२२॥कुत्ता,शृगाल, भेडिया,बाघ,बिलाव,ससा,सेही,सिंह,बन्दर, हाथी, कछुआ,गोह,मगरादिक इनके पांचनख हैं॥२३॥अब पक्षियोंके नाम कहते हैं काला कौवा, गीध, बट, शिकरा, अरुणशिखा,मोर,हंस

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयोरुरुः ॥ द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥२१॥ खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शर
भश्चमरी यथा ॥ एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पंचनखान्पशून् ॥ २२ ॥ श्वा शृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशश
ल्लकौ ॥ सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥ कंकगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ॥ हंससारसच
क्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥ २४ ॥ अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ॥ रजोधिकाः कर्मपरा दुःखे च
सुखमानिनः ॥ २५ ॥ वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ॥ वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥ २६ ॥
देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ॥ गंधर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥ २७ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च
विद्याध्राः किन्नरादयः ॥ दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥ २८ ॥

सारस, चकवा, श्वेतकाक, उलूक यह विहंगजातिहैं ॥२४॥हे विदुर!नीचेसे जिनका मल निकले यह नवमसर्ग मनुष्योंका है, राजस अधिक है ये कर्म परायण हैं, दुःखमें सुख मानतेहैं॥२५॥हेसत्तम!देवताओंका सर्ग तीन प्रकारकाहै वैकारिक जो कहाहै सो कौमार सर्ग दो भांतिकाहै॥२६॥देवसर्ग आठ प्रकारकाहै, विबुध, पितर,सुर,गन्धर्व,अप्सरा,सिद्ध,यक्ष,राक्षस,चारण॥२७॥ भूत, प्रेत,पिशाच, विद्याधर, किन्नरादिक हैं, हे विदुर!विश्वके रचयिता

ब्रह्माने दश सर्ग भेद किये हैं ॥ २८ ॥ इसके पीछे अब वंश और मन्वंतर कहतेहैं, राजस व्याप्त हैं कल्पके आदिमें हरिरूप ब्रह्माने रचे॥२९॥पूर्ण संकल्प आपहीकोआप रचते हैं- सदा शुद्ध चैतन्यस्वरूपी नारायणही सब आप हो जाते हैं॥३०॥ इति श्रीम० महा० तृतीयस्कन्धे भाषाटी० दशविधसर्गवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥दोहा–कहुँ परमाणुन कालके, चिह्न इकादशमाहिं । युग मन्वंतरकल्प सब, गुप्त रहै कछु नाहिं ॥ मैत्रेय बोले कि, हे विदुरजी!कालके विशेष लक्षण कहते हैं सो सुनो,सच्चे विशेषका जो" अन्त जिसका विभाग न होसके, किसीमें मिलै नहीं, सदा रहै जिससेऔर कोई वस्तु सूक्ष्म न हो, वह परमाणु जानो,जिन परमाणुओंसे मनुष्यको ऐसा भ्रम होय है कि एक है ॥ १॥ सतही है जो पदार्थ

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वंतराणि च ॥ एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥२९॥ सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना॥३०॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥१०॥ मैत्रेय उवाच ॥ चरमः सद्विशषाणामनकोऽसंयुतः सदा ॥ परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥१॥ सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ॥ कैवल्यं परममहानविशेषो निरंतरः॥ २ ॥एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ॥ संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः॥३॥स कालः परमाणु [illegible] यो भुंक्ते परमाणुताम् ॥ सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥ अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ॥ जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्न गाम् ॥ ५ ॥

अपने स्वरूपमें स्थित है वह केवल अत्यन्त महाबडा है; जिसका कोई विशेष नहीं, निरंतर है ॥ २ ॥ हे सत्तम!सूक्ष्म स्थूलरूपसे ऐसे कालका अनुमान किया है, सुंदर स्थितिकी व्याप्तिसे विभु भगवान् अव्यक्त हैं सो मायाको भोगते हैं ॥३॥ सो काल परमाणु है,जो परमाणुभावको भोगता है, उससेभी अधिक भोगै सो काल अत्यन्त बडा है. इसका यह अर्थ है कि,ग्रह,नक्षत्र, ताराचक्र इत्यादिकसे सूर्यका पर्यटन कहते हैं; तहां सूर्य जितने परमाणुके देशको उल्लंघन करै उस कालका नाम परमाणु है,जितनी द्वादश राशि रूप होकर सब ब्रह्माण्डमें विचरै है वह परममहान् संवत्सर कहाता है,उस क्रमसे युग मन्वंतर आदि क्रमसे द्विपरार्द्ध अन्तकाल होता है, सब कालका विभाग हम पांचवें स्कन्धमें कहेंगे ॥४॥ द्वो अणुसे परमाणु

होता है और तीन अणुका एक त्रसरेणु होता है वह त्रसरेणु झरोखोंमें सूर्यकी किरणोंसे दिखाई देता है, जो अतिसूक्ष्म है पृथ्वीमें नहीं आता है, आकाशको उडता दीखता है ॥ ५ ॥ तीन त्रसरेणु की एक त्रुटि,त्रुटि उसे कहते हैं जितने कालमें चुटकी बजावे, सौ बेर चुटकी बजानेसे जो काल व्यतीत हो उसे वेध कहते हैं, तीन वेधका एक लव होता है ॥ ६ ॥ तीन लवका एक निमेष होता है और तीन निमेषका एक क्षण कहलाता है, पांच क्षणकी एक काष्ठा बनती है, पन्द्रह काष्ठासे एक लघु होता है ॥ ७ ॥ पन्द्रह लघुकी एक नाडी होती है,(इसे दण्डभी कहते हैं,)और दो नाडियोंका नाम मुहूर्त है, छे दण्ड अथवा सात दंडका एक प्रहर वा याम होता है.सो याम दिनका चौथा भाग है और रात्रिकाभी चौथा भाग होता है.

त्रसरेणुत्रिकं भुंक्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ॥ शतभारस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥ ६ ॥ निमेषस्त्रिलवो
ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ॥ क्षणान्पंच विदुः काष्ठां लघुतां दश पंच च ॥ ७ ॥ लघूनि वै समाम्नाता दश पंच च
नाडिका ॥ ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड् यामाः सप्त वा नृणाम् ॥ ८ ॥ द्वादशार्धतलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरंगुलैः ॥ स्वर्णमाषैः
कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥ यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ॥ पक्षः पंचदशाहानि शुक्लः
कृष्णश्च मानद ॥ १० ॥ तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम् ॥ द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥ ११ ॥

दिनरातके घटने बढ़नेका यह नियम है कि; घटनेमें छे घड़ीका और बढ़नेमें सात घड़ीका अन्तर समझना चाहिये. क्योंकि नित्य २ दिन और रात्रिके घटने बढ़नेके गिननेमें बहुत परिश्रम है इसलिये छे और सात घडीका मोटा प्रमाण समझलिया ॥ ८ ॥ एक घडीका अनुमान कहते हैं-छे पलभर तांबेका पात्र हो सो उस पात्रमें चार मासे सोनेकी शलाका बनाकर उस शालाकासे उस पात्रमें छिद्र करना, उस छिद्रसे जितने समयमें प्रस्थभर जलके प्रवेश होनेसे वह पात्र जलमें डूबजावे, उतने समयको घडी कहते हैं ॥ ९ ॥ चार चार प्रहरके मनुष्योंके दिन रात होते हैं. हे मानद ! पंद्रह दिनका शुक्लपक्ष और पंद्रह दिनका कृष्णपक्ष होता है ॥ १० ॥ दोनों इकट्ठे होनेसे एक मास होता है,

---

१ "दशार्द्धगुञ्जंप्रवदन्ति माषं माषाह्वयैः षोडशभिश्च कर्षम् । कर्षैश्चतुर्भिश्च पलं तुलाज्ञाः कर्षं सुवर्णस्य सुवर्णसंज्ञम्"इति ।

120

वह पितरोंका एक अहोरात्र होता है दो मासकी एक ऋतु और छै मासका एक अयन,एक दक्षिण एक उत्तर होता है ॥ ११ ॥ और येही दोनों अयने क्रमसे देवताओंके दिन और रात्रि होते हैं. और बारह मासका संवत्सर होताहै. उसको वर्षभी कहते हैं. मनुष्यकी परमायु सौ वर्षकी होती है॥ १२॥इस क्रमसे यह सूर्य उदय अस्त होकर जगत्की आयु क्षीण करता है और यह कहते हैं कि.ग्रह जो चन्द्रआदि,नक्षत्र अश्विनी आदि जो और नक्षत्र उनसे उपलक्षित अर्थात् जिनसे जो कालचक्र जानाजाता है, उसमें स्थित काल आत्मा व्यापक समर्थ सूर्यनारायण हैं और संसार जो बारह राशिप्रमाण भुवनकोश है उसका पर्यटन करते हैं ॥ १३ ॥ हे विदुरजी ! संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर,अनुवत्सर, यह वर्षोंकी संख्या वर्णन की है,ऐसे कालात्मा सूर्यनारायणका अप्रमत्त होकर नित्य पूजन करै॥ १४॥अकुंरआदि कार्य जिनका विषय है ऐसी बीज आदिकोंकी शक्तिको कालस्वरूप अपनी शक्तिसे बहुतप्रकार कार्यके सम्मुख करता हुआ अन्तरिक्षमें धावताहै,सो कौनहै?जो कि महाभूतविशेष तेजो मण्डल रूपी सूर्य है, वह किस प्रयोजनसे दौडताहै ? पुरुषके मोहको दूर करनेके अर्थ अर्थात् दिनरातके प्रमाणसे आयुआदिके क्षीण होनेसे विषयोंमें लगीहुई प्रीतिको छुडवाता है, और सकाम पुरुषोंको तो गुणमय स्वर्गादि फलको यज्ञोंसे विस्तार करवाता है,उस संवत्सरपञ्चकप्रवर्त्तककी पूजा करो ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले, पितर,देव, मनुष्योंकी आयु आपने कही,अब जो इस कल्पसे बाहर ज्ञानी पुरुष हैं उनकी गति कहो॥ १६ ॥

अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादशः स्मृतः ॥ संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥ ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ॥ संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥ १३ ॥ संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ॥ अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरेवं प्रभाष्यते ॥ १४ ॥ यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्या पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ॥ कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वं स्तस्मै बलि हरत वत्सरपंचकाय ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ॥ परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ १६ ॥

---

१ संवत्सरादिकाभेद,सौर,बार्हस्पत्य,सावन,चांद्र, नाक्षत्रमासके भेदसे जानलेना,जब शुक्लपक्षकी संक्रांति पडेवाको होतीहै तब सौरचांद्रमाससे एकसंग वर्ष होजाताहै. और सौरमानसे वर्षमें छः दिन बढते हैं और चान्द्रमानसे वर्षमें छः दिन घट जाते हैं.इस प्रकार बारह दिनके घटने बढनेसे दोनोंका आगापीछा होजाताहै. ऐसे विचारसे पांच वर्ष होतेहैं,उनके मध्यमें दो मलमास होतेहैं फिर छटा संवत्सर होताहै ॥

निश्चय है कि, कालरूप ईश्वरकी गति आप जानते हो, जो धीरपुरुष हैं वे अपने योगाभ्यासकी सिद्धिके नेत्रोंसे विश्वकी सब गति जानते हैं॥ १७॥ मैत्रेयजी बोले,हे विदुरजी! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर,कलियुग ये चार युग संध्या और संध्यांशके समेत दिव्य द्वादशवर्षोंसे निरूपण कियेहैं॥ १८॥ फिर बारह सहस्र दिव्यवर्षोंकी यह अवस्था है,कि सत्ययुगका प्रमाण तो चार सहस्र ४००० दिव्यवर्ष,और उसकी सन्ध्या सन्ध्यांशका प्रमाण आठसौ ८०० दिव्यवर्ष, त्रेतायुगका प्रमाण तीन सहस्र ३००० दिव्यवर्ष, और इसकी सन्ध्या संध्यांशका प्रमाण छै सौ ६०० दिव्यवर्ष,और द्वापरयुगका प्रमाण दो सहस्र २००० दिव्यवर्ष,और इसकी सन्ध्या सन्ध्यांशका प्रमाण चार सौ ४०० दिव्यवर्ष,और कलियुगका प्रमाण एक सहस्र १००० दिव्यवर्ष और इसकी संध्या संध्यांशका प्रमाण दो सौ २०० दिव्यवर्ष होते हैं॥ १९॥ दिव्यवर्षोंको सैंकड़ोंसे जिनका प्रमाण कहा, वे संध्या और अंश हैं. और उनके बीचमें जो काल है उसकी युगसंज्ञा है कि,जिसमें गवालम्भ यज्ञ आदिक विशेषधर्मका विधान है,और साधारण धर्म तो संध्या और अंशमेंभी

भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ॥ विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ कृतं त्रेता
द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥ १८ ॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु
यथाक्रमम् ॥ संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥ १९ ॥ संध्यांशयोरंतरेण यः कालः शतसंख्ययोः ॥
तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥ २० ॥

---

१ इन सबका जोड लगानेसे संध्या और अंशसमेत चारों युगोंका प्रमाण बारह सहस्र १२००० दिव्यवर्ष होतेहैं. मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिनरात्रि होताहै पूर्वायनका दिन है उत्तरायणकी रात्रि इसप्रकार मनुष्योंके तीनसौ साठ ३६० वत्सरका देवताओंका एक वर्ष होताहै, इस स्थूलमतके माननेसे १४४०००० चौदह लाख चालीस सहस्र मनुष्योंके वर्षोंसे सत्ययुगका प्रमाण होताहै, इसके संध्यांशका प्रमाण दो लाख अट्ठाईस हजार २२८००० मनुष्योंके वर्ष होतेहैं और त्रेतायुगका प्रमाण दश लाख पचास सहस्र १०५०००० मनुष्योंके वर्ष होतेहैं, और त्रेतायुगके सन्ध्यांशका प्रमाण दो लाख सोलह सहस्र २१६००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और द्वापरयुगका प्रमाण सात लाख बीस सहस्र ७२०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं, और द्वापरयुगके संन्ध्यांशका प्रमाण एक लाख चवालिस सहस्र १४४००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं. और कलियुगका प्रमाण तीन लाख साठ सहस्र ३६०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं. और कलियुगके संन्ध्यांशका प्रमाण बहत्तर सहस्र ७२००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं.इस प्रकार संध्या और अंशोंसमेत चारों युगका प्रमाज ४३२०००० तेंतालिस लाख बीस हजार मनुष्योंके वर्ष होते हैं ॥

होता है. युगके आदिमें संध्या और अंतमें अंश होते हैं॥२०॥सत्ययुगमें चारों पदसमेत धर्म मनुष्योंका सेवन करताहै.और वही धर्म त्रेतादिक युगोंमें एक २ चरणसे रहित होता है जिस२प्रकारसे एक२पांवसे अधर्म बढ़ता है.उसी भांति कलिकालमें तीन चरणोंसे धर्मरहित होजाता है. यह कथन केवल वैराग्यके लिये है कुछ धर्मके त्यागनेको नहीं॥२१॥त्रिलोकीसे बाहर जो महर्लोकसे आदि लेके ब्रह्मलोकतक हैं उनमें सहस्र १००० चतुर्युगीक एक दिन होता है.हे तात ! उन लोकोंमें रातभी,सहस्र १००० चौयुगीकी होती है. कि जिस रात्रिमें जगत्का रचनेवाला ब्रह्मा शयन करताहै॥२२॥ रात्रिके अंतमें लोकोंकी रचना आरंभ होती हैं, ब्रह्माके एकदिनमें चौदह मनु होते हैं ॥ २३॥ इकहत्तर ७१ चौकडी युगतक एक२ मनु अपना२

धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते ॥ स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥ २१ ॥ त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ॥ तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥२२॥ निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ॥ यावद्दिनं भगवतो मनून्भुंजंश्चतुर्दश ॥ २३ ॥ स्वंस्वं कालंमनुर्भुंक्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ॥ मन्वंतरेषु मनवस्तद्वंशा ऋषयः सुराः ॥ २४ ॥ भवंति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥ एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ॥ तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ॥ २५ ॥ मन्वंतरेषु भगवान्बिभ्रत् सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २६ ॥

समय भोगता है, उन मनुओंके वंशमें देवता ऋषि होते हैं सप्तऋषि गन्धर्व यह क्रमसे होते हैं और इन्द्रादिक जो उनके पीछेके हैं वे एकसंग होते हैं ❋॥२४॥त्रिलोकीके प्रवर्त्तक चतुरा ननके दिनकी यह रचना है.पशु,मनुष्य,पितर, देवताओंका जन्म कर्मसे होता है॥२५ ॥ मन्वन्तरोंमें आदिपुरुष नारायण अपनी मूर्तियोंसे सत्यको धारण करते हैं,और अपने पुरुषार्थको उदय कर मन्वादिकोंकी सृष्टिकी रचना करते हैं ॥२६॥

❋ **शंका**–मैत्रेयजीने विदुरजीसे कहा कि सब प्राणियोंकी उत्पत्ती अपने तपके कर्मसे हुई है परन्तु जब प्रलयकालमें सब चर अचर नष्टहोगये तब केवल एक नारायणही रहगये. कुछ कालोपरान्त नारायणकी नाभिसे एक कमलका फूल प्रगट हुआ फूलसे ब्रह्मा जी उत्पन्न होकर सृष्टिकी रचना करने लगे तब सृष्टिके पहिले कर्म कहां रहा ? कर्म तो जब प्राणी जन्म लेंगे तब करैंगे तो कर्म होंगे यह बडीशंका है.

उत्तर–ज्ञानवान् जो मुनि हैं सो कर्मको 'प्रारब्ध' नहीं कहते सब योनियोंके उपायको कर्म कहतेहैं, जिस योनिका जैसा उपाय ब्रह्माजीने देखा उसी योनिका उसीप्रकारका रूप, शब्द,चलना, खाना,पीना आदि सब कारणसे पृथक् पृथक् सब योनियोंको बनाया हैं।

तामस अंशका ग्रहण कर अपने विक्रमसे रोकते हैं, और समय पाकर सब अपनेमें लीन देख सायंकालके समय मौन साध लेते हैं ॥ २७ ॥ भुवआदि लोक उनमें लीन होजाते हैं. जैसे जब निशा प्रवृत्त होती है तब चंद्रमा सूर्य शुद्ध होते हैं ॥२८॥ शेषजीके मुखसे जब अग्निकी लपटें निकलती हैं तब त्रिलोकी भस्म होने लगती है, तब अग्निकी दाहसे पीडित हो भृगुआदि ऋषीश्वर महर्लोकसे जनलोकको चले जाते हैं ॥२९ ॥ कल्पान्तमें समुद्रका जल बढ़कर शीघ्र त्रिलोकीका उत्कट क्षोभित चंड प्रचंड पवनोंकी चलायमान लहरोंसे सबको डुबादेताहै और जलही जल दृष्टि आता है॥३०॥शेषजीकी शय्यापर श्रीपति नारायण जलमें योगनिद्रासे नेत्र मूँद स्थित होते,और जनलोकनिवासी वारंवार स्तुति करतेहैं॥३१॥ इस प्रकार कालगतिसेदिन रात इस प्राणीकी आयु क्षीण होतीहै परमायु सौ वर्षकी है ॥३२॥ आधी आयुको परार्द्ध कहते हैं,पूर्वार्द्ध परार्द्ध,होचुका अब द्वितीय परार्द्ध प्रवृत्त हुआ है ॥ ३३॥ पूर्वपरके आदिमें ब्रह्मा नामक कल्प हुआ उसका नाम ब्रह्ममतिधाम है, जहां ब्रह्माजी:नाम शब्दब्रह्म हैं ॥ ३४ ॥ उसके अंतमें जो कल्प हुआ उसका नाम पाद्म है जो श्रीनारायणके नाभिसरोवरसे सर्व लोक उत्पन्नकर्ता कमल:हुआ ॥ ३५ ॥

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ॥ कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥ २७ ॥ तमेवान्वपि धीयंते लोका भूरादयस्त्रयः ॥ निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥ २८ ॥ त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना ॥ यांत्युष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥ २९ ॥ तावत्रिभुवनं सद्यः कल्पांतैधितसिंधवः ॥ प्लावयंत्युत्कटाटोपचंडवातेरितोर्मयः ॥ ३० ॥ अंतः स तस्मिन्सलिल आस्तेऽनंतासनो हरिः ॥ योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥ ३१ ॥ एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ॥ अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयःशतम् ॥ ३२ ॥यदर्द्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते॥ पूर्वः परार्धोऽपक्रांतो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥ ३३ ॥ पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ॥ कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥ ३४ ॥ तस्यैव चांते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते॥यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥ ३५ ॥

हे भारत ! यह कल्प तो हुआ, अब दूसरा वराहकल्प हुआ जहां आदिपुरुष अविनाशी भगवान्ने वराह अवतार धारण किया ॥ ३६ ॥
जिसकी अचिन्त्य शक्ति कार्योंकी उपाधिरहित अनंत आदि जगत्की आत्मा ईश्वरका द्विपरार्द्ध निमेष काल कहाजाता है. इस क्रमसे आयुकी
गणना गणनी नहीं चाहिये ॥ ३७ ॥ परमाणुआदि द्विपरार्द्ध पर्यन्तका यह कालरूप ईश्वर जो अभिमानी तेजस्वियोंको वश करनेकी सामर्थ्य
नहीं है ॥ ३८ ॥ जो मैंने इस ब्रह्माण्डका वर्णन किया सो सब विकारोंसे भरा हुआ, विशेषादिसे वेष्टित बाहरसे यह अंडकोश पंचाशत्कोटि

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ॥ वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः॥३६॥ कालोऽयं द्विपरार्धा
ख्यो निमेष उपचर्यते ॥ अव्याकृतस्यानंतस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥ ३७ ॥ कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धांत
ईश्वरः ॥ नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥ ३८ ॥ विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ॥ आंडकोशो
बहिरयं पंचाशत्कोटिविस्तृतः॥३९॥ दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ॥ लक्ष्यंतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यंडरा
शयः॥४०॥तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते
महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे कल्पादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
मैत्रेय उवाच॥ इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः॥ महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ ॥

योजनका विस्तार है ॥ ३९ ॥ इस ब्रह्मांडमें परमाणुकी नाईं दशगुण अधिक कोटानकोट ब्रह्मांडोंके समूह औरोंकेभी रक्षित होते हैं ॥ ४० ॥
महात्मा पुरुष विष्णुका जो परमधाम है तिसको संपूर्ण कारणोंका कारण अक्षर ब्रह्म कहतेहैं ॥ ४१ ॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे
भाषाटीकायां परमाण्वादिद्विपरार्द्धपर्यन्तकालस्वरूपेश्वरवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–द्वादशमें सब सृष्टिको, कियो विचार
कुमार । तनके किये विभाग दो, मनु शतरूपा नार ॥ १ ॥ इतनी कथा कह श्रीमैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी ! कालरूप भगवान् वासुदेवकी

यह अद्भुत महिमा आपके सम्मुख वर्णन की. अब वह सुनिये कि, जैसे ब्रह्माजीने सृष्टि रची ॥ १॥ प्रथम अंधतामिस्र, तामिस्र, महामोह,मोह, तम, यह ब्रह्माने रचे,ये सब अज्ञानकी प्रवृत्तियें हैं॥२॥अपनी सृष्टिको पापी देख ब्रह्माने अपने मनमें आनन्द नहीं माना,और फिर भगवान्का ध्यान कर अपने मनको पवित्र दूसरी सृष्टिके रचनेका विचार किया॥३॥तब मनसे सनक, सनन्दन, सनातन,सनत्कुमार ये चार ऋषि ब्रह्माजीने उत्पन्न किये, इन्होंने क्रिया छोड़ वीर्य ऊपरको चढ़ालिया, नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए ॥ ४ ॥ तब ब्रह्माजीने कहा,हे पुत्रो ! जगत् रचो, तब चारोंने

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत्॥ महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः॥२॥ दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मनं
बह्वमन्यत ॥ भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत्॥३॥ सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ॥ सनत्कुमारं च
मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥४॥तान्बभाषे स्वभूः पुत्रान्प्रजाः सृजत पुत्रकाः॥ तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः॥
॥५॥सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः॥ क्रोधं दुर्विषहं जातं नियंतुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोऽपि
भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ॥ सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान्भवः ॥
नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥ ८ ॥ इति तस्य वचः पाद्मो भगवान्परिपालयन् ॥ अभ्यधाद्भद्रया
वाचा मा रोदीस्तत्करोमि ते ॥ ९ ॥

सृष्टिके रचनेकी इच्छा नहीं की. मोक्षधर्ममें परायण श्रीनारायणके ध्यानमें सदा लौलीन रहनेलगे ॥ ५ ॥ मेरी आज्ञा पुत्रोंने न मानी यह विचार, ब्रह्माजीको रोष उत्पन्न हुआ फिर पुत्र जानकर क्रोधसंवरणकिया॥६॥ बुद्धिसे क्रोध रोका तौभी ब्रह्माकी भृकुटीमेंसे उसीसमय वह क्रोध, नीलवर्ण बालकरूप बन उत्पन्न हुआ ॥७॥ वह देवताओंसे प्रथम प्रादुर्भूत, रुदन करताहुआ ब्रह्मासे बोला,हे पितः ! हे जगद्गुरो ! मेरा नामकरण करो; और मेरे रहनेको स्थान बताओ॥८॥बालकका यह वचन सुन ब्रह्मा पालन करतेहुए सुन्दर वाणीसे बोले—मत रोओ, जो तुम कहोगे सो करेंगे ॥९॥

हे सुरश्रेष्ठ ! उद्वेगसे बालकसदृश तुम रोये इस कारण सब प्रजा तुम्हें रुद्र नामसे पुकारैगी ॥ १० ॥ हृदय, प्राण, इंद्रियें, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी; सूर्य, चन्द्रमा, तप ये स्थान पहलेहीसे हमने तुम्हारे वास करनेके लिये रचे हैं. इनमें तुम वास करो॥११॥और सब संसार ग्यारह नामोंसे तुम्हारा पूजन करैगा. मन्युं, मनुं, महिनसं, महाँन्, शिवं, ऋतध्वजं, उँग्ररेता, भंव, कांल, धृतव्रंत, वामदेवं॥१२॥और एकादश शक्तियां तुम्हारी होंगी. उनके नाम इस प्रकार हैं. धी, वृत्तिं, उँशना, उँमा, नियुंत, संर्पि, इलां, अम्बिंका, इरावंती सुधां, दीक्षां हे रुद्र ! ये ग्यारह रुद्राणी

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः॥ ततस्त्वामभिधास्यंति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिंद्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ॥ सूर्यश्चंद्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥ मन्युर्मनुर्महिनसो महान्छिव ऋतुध्वजः॥ उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १२ ॥ धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाऽम्बिका ॥ इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥ १३ ॥गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः॥ आभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥ इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः ॥ सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥१५॥ रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समंताद्ग्रसतां जगत् ॥ निशाम्यासंख्यशो यूथान्प्रजापतिरशंकत ॥ १६ ॥ अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ॥ मया सह दहंतीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥ १७ ॥ तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ॥ तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥ १८ ॥

तुम्हारी स्त्रियाँ हैं॥१३॥और स्थान और नारी तुम ग्रहण करो. अपनी स्त्रियोंसमेत तुम प्रजा रचो, जिससे तुम प्रजापति कहाओ॥१४॥जब ब्रह्माने यह आज्ञा दी, तब नीलकण्ठ शिवजीने अपनी आकृति स्वभावसे अपने समान भयंकर प्रजा रची॥१५॥जब रुद्रके रचेहुए भूत प्रेत सब जगत्को सब ओरसे खानेलगे, तब यह चरित्र देख प्रजापतिको अतिशंका हुई॥१६॥हे सुरोत्तम! ऐसी प्रजाके रचनेसे मैंने भरपाया ! बस करो! तीव्र नेत्रोंसे मुझसमेत ये प्रजा खानेको उपस्थित हैं ॥१७॥ तुम्हारा कल्याण हो, तप करो, जिससे सब जीवोंको सुखदायक जैसी प्रजा प्रथम थी तपसे वैसाही

प्रजा रचोगे ॥१८॥परमज्योति-स्वरूप भगवान् अधोक्षज, सब जीवोंके हृदयमें वास करै उस ईश्वरको तप करके अनायाससे प्राप्त होता है ॥१९॥ मैत्रेयजी बोले, ब्रह्माजीकी आज्ञा मान परिक्रमा दे बहुत अच्छा कहकर, तप करनेको वनमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ कुछ समय उपरान्त ब्रह्माके फिर जगत्के रचनेकी इच्छा हुई; तब भगवत्की शक्तियुक्त लोककी सन्तानके हेतु दश पुत्र उत्पन्न किये॥२१॥ मरीचि[1],अत्रि[2], अंगिरा[3], पुलस्त्य[4],

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विंदते पुमान् ॥१९॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमात्मभुवा
ऽऽदिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिम् ॥ बाढमित्यमुमामंत्र्य विवेश तपसे वनम् ॥ २० ॥ अथाभिध्यायतः सर्ग दश पुत्राः
प्रजज्ञिरे ॥ भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसंतानहेतवः ॥ २१ ॥ मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठो
दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥ उत्संगान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः ॥ प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि
करात्क्रतुः ॥ २३ ॥ पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ॥ अंगिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसो
ऽभवत् ॥ २४ ॥ धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ॥ अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ २५ ॥

पुलह[5], क्रतु[6],भृगु, वसिष्ठ[8], दक्षप्रजापति[9], और दशवें नारद[10] हुए ॥ २२ ॥ विरंचिके उत्संगसे नारदजी हुए, स्वयम्भूके अंगुष्ठसे दक्ष, प्राणसे वसिष्ठ, त्वचासे भृगु हुए * ॥ २३ ॥नाभिसे पुलह, श्रवणसे पुलस्त्य, आननसे अङ्गिरा, नेत्रोंसे अत्रि, मनसे मरीचि हुये ॥ २४ ॥ दक्षिणस्तनसे धर्म हुआ, श्रीनारायण जिस धर्ममें विराजमान हैं, पीठसे अधर्म प्रगट हुआ जिससे सब संसारकी भयानक मृत्यु हुई ॥ २५ ॥

---

* **शंका**-ब्रह्माने अपनी देहसे पृथक् पृथक् अंगोंसे दश पुत्र क्यों उत्पन्न किये ? देहके एक अंगसे क्यों नहीं उत्पन्न किये ? दश पुत्रोंको पृथक् पृथक् उत्पन्न करनेका क्या प्रयोजन था ?

उत्तर-नारदादि दश पुत्रोंको ब्रह्माने ध्यानसे जान लिया कि,यह दशों पुत्र हमारी मोक्षविद्याको नहीं जानेंगे,संसारके कर्ममें बडे चतुर होंगे इसलिये देहके जिन आदि दश पुत्रोंको मनसे नहीं उत्पन्न किया,ब्रह्माने जान लिया कि, निश्चय करके ये हमारे दश पुत्र कभी मोहको, कभी क्रोधको,कभी कामको इत्यादिक अनेक प्रकारके जो संसारके कर्म हैं उनमें चतुर होंगे.इसलिये देहके जिस अंगको जैसा स्वभाव उस अङ्गसे चाहिये वैसेही पुत्र ब्रह्माने उत्पन्न किये.

हृदयसे काम, भ्रुकुटीसे क्रोध, नीचेके ओष्ठसे लोभ, मुखसे वाणी, लिंगसे समुद्र, गुदासे मृत्यु हुई, जो पापकी आश्रित है ॥ २६ ॥ छायासे कर्दमऋषि हुए जो देवहूतिके प्राणनाथ थे इस प्रकार ब्रह्माके मन और शरीरसे जगत् उत्पन्न हुवा ॥ २७ ॥ मुखसे वीणापाणि सरस्वती

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ॥ आस्याद्वाक्सिंधवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥ २६ ॥
छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहुत्याः पतिः प्रभुः ॥ मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥ २७ ॥ वाचं दुहितरं तन्वीं
स्वयंभूर्हरतीं मनः ॥ अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥ २८ ॥ तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ॥
मरीचिमुख्या मुनयो विश्रंभात्प्रत्यबोधयन् ॥ २९ ॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यंति चापरे ॥ यत्त्वं दुहितरं गच्छे
रनिगृह्यांगजं प्रभुः ॥ ३० ॥

127

उत्पन्न हुई. यद्यपि यह सुन्दरी अकामा थी, परन्तु हमने ऐसा सुना है कि, ब्रह्माजी इसे देखकर कामातुर होगये थे * ॥ २८ ॥ पिताकी बुद्धि अधर्ममें देख ब्रह्माके पुत्र मरीचि मुख्य मुनियोंने अपने ज्ञानसे उपदेश किया ॥ २९ ॥ हे पिता ! आजतक ऐसा अनुचित कर्म किसीने

---

* **शंका**–नारदसे ब्रह्माने कहा कि, हमारी इंन्द्रियें खोटे मार्गकी ओर कभी नहीं जातीं, उसां ब्रह्माने अपनी कन्या सरस्वतीको देखकर उसके सङ्ग भोगकी इच्छा क्यों की? यह तो महा चांडाल कर्म है,

उत्तर–तारकासुरका किया हुआ दुःखका समुद्र उमसें डूबेहुए ब्रह्मा विष्णु एक दिन देवता और मुनियोंको सङ्ग ले कैलासको गये, तारकनाम दैत्यके मारनेका उपाय बूझनेके लिये शिवजीके सन्मुख जा ब्रह्मा विष्णु देव मुनिसहित सबने खडे होकर बारंबार नमस्कार किया; हे गिरिजापते ! हे त्रिपुरारे ! तारकासुरने हमको अत्यन्त दुःख दे रक्खा है. उसके मारनेका कोई उपाय बताइये; उसीसमय बडे जितेन्द्रिय जो गरुडजी थे वे एक हंसिनीको देख कामवश हो मोहित होगये. ब्रह्मा उनको देखकर शिवजीकी सभामें मुसकाये, ब्रह्माको अभिमान जानकर गरुडजीने ब्रह्माको शाप दिया अरे अभिमानी ! हमने तो अपनी जातिके सङ्ग क्रीडा करनेकी इच्छा की थी, पक्षीके संग रमण करना यह अन्यायकर्म नहीं है तौभी तुमने हमारी हँसी करी, परन्तु तुमने हँसी क्या करी हमारे शापसे तुम्हारी हँसीभी सब संसारमें होगी. तुम अपनी पुत्रीको दखकर मोहित होगे. और उसके संग संभोग करनेका मनोरथ करोगे. और सब जगत्में तुम्हारी दुर्नामता होगी और कोई तुम्हारा पूजन न करैगा, उसी शोकमें तुम्हारा देहपात होगा. इस शापवश होकर ब्रह्माने अपनी दुहिताके साथ कुकर्म करनेकी कामना की कुछ अपनी इच्छासे ब्रह्माने यह चाण्डालकर्म नहीं किया. इसमें सन्देह करना वृथा है. देखो शापके प्रतापसे जय, विजय, भगवान्के पार्षद, राक्षस होगये, शापसे नारदमुनिका मुख बन्दरकी सदृश होगया. दुर्वासा ऋषिके शापसे राजा नहुष अजगर सर्प होगया. ब्राह्मणोंके शापसे राजा नृग गिरगिट होकर कुएमें पडा रहा, वसिष्ठजीके पुत्रोंके शापसे राजात्रिशंकु चाण्डाल होगया, श्रवणके पिताके शापसे राजा दशरथको प्राण त्यागने पडे.

नहीं किया, न आगे कोई करैगा, तुम जो सरस्वतीमें गमन करो हो, कामको जीतो; तुम समर्थ हो ॥ ३० ॥ हे जगद्गुरु! तेजवन्तोंके योग्य यह कार्य नहीं है जिनके कर्मअनुसार कर्म करनेसे सब संसारको सुख मिलता है॥ ३१॥ उस परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है कि; जिसने इस सृष्टिको अपने तेजसे आत्मामें स्थित किया है, वह परमेश्वर धर्मकी रक्षा करने योग्य है ॥ ३२॥ प्रजापति इस भांति अपने पुत्रोंका विनय सुन अत्यन्त ग्लानि मान मनमें अति लज्जित हुये और उसी समय अपना शरीर त्याग दिया॥ ३३॥ उस धीरवान् शरीरको दिशाओंने ग्रहण किया; जो तम नीहारनामसे प्रसिद्ध हुआ जो कभी२अबभी संसारसे दृष्टि आता है जिसको आजकल कुहर कहते हैं, फिर ब्रह्माने द्वितीय शरीर धार यह विचार

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ॥ यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३१ ॥ तस्मै नमो भगवते य इदं
स्वेन रोचिषा ॥ आत्मस्थं व्यंजयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥ ३२ ॥ स इत्थं गृणतः पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ॥
प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥ तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥ ३३ ॥ कदाचिद्ध्यायतः
स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ॥ कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथापुरा ॥ ३४ ॥ चातुर्होत्रं कर्मतंत्रमुपवेदनयैः
सह ॥ धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाऽऽश्रमवृत्तयः ॥ ३५॥ विदुर उवाच ॥ स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् ॥
यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ३६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यान्वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥
शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥ ३७ ॥

किया कि, जैसे पूर्वकालमें सब संसार रचित था, अब वैसा किस प्रकार रचाजायगा? यह विचार करही रहे थे कि, उसी समय चार मुखोंसे चार वेद हुये॥ ३४॥ जिसको चार ब्राह्मण मिलकर करें वह यज्ञ. यज्ञोंका विस्तार. उपवेद. न्यायसहित ये धर्मके चार चरण हैं, इसीप्रकार चार आश्रम हैं, चारों आश्रमोंकी चार वृत्तियें ब्रह्माजीने रचीं ॥ ३५॥ विदुरजी बोले कि, हे तपोधन! संसारके रचयिता विधाताने वेदादिको मुखसे किस प्रकार रचा और जो जो जिसने रचा हो सो कृपाकर मुझसे सब कहो ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी! ऋक्, यजु, साम, अथर्व नामक पहिले चारों वेदोंको पूर्वादि चारों मुखोंसे रचा; क्रम पूर्वक जो गानेमें न आवै उन मंत्रोंका स्तोत्र, यज्ञका कर्म स्तुतियोंका समूह, प्रायश्चित्त, ये भी सब

क्रमसे रचे ॥ ३७ ॥ फिर अ[illegible] पूर्वादिमुखोंसे (आयुर्वेद) अर्थात् वैद्यकशास्त्र (धनुर्वेद) अर्थात् धनुष्यविद्याका शास्त्र, (गान्धर्ववेद) गानविद्याका शास्त्र, सरिगमइत्यादि, (स्थापत्य) मन्दिर बनानेका शास्त्र, जिसको देवशिल्पी विश्वकर्मा भलीभांति जानता है, ये चारों उपवेदभी उसी क्रमसे रचे ॥३८॥ सबके दर्शनीय चतुराननने इतिहास पुराण पंचमवेद सब मुखोंसे रचा ॥ ३९ ॥ षोडशी, उक्थ्य, यह पूर्वकी ओरके मुखसे रचा, अग्निचयन, अग्निष्टोमयज्ञ ये दक्षिणामुखसे रचे, आप्तोर्यमा, अतिरात्र यह पश्चिममुखसे रचे, वाजपेय यज्ञ, गोमेध यज्ञ, उत्तरमुखसे रचे ॥ ४० ॥ विद्याके द्वारा शौच करना, दया, तप, सत्य, दान ये धर्मके चार चरण हैं सब वृत्तियोंसे यथाविधि आश्रम रचे॥४१॥ गायत्रीके उपासकोंको सावित्र कहते हैं एक वर्षतक व्रत करे उनको प्राजापत्य कहते हैं वेदपाठ करना यह ब्राह्मणका धर्म है,

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गांधर्वं वेदमात्मनः ॥ स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३८ ॥ इतिहासपुराणानि पंचमं
वेदमीश्वरः ॥ सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजेसर्वदर्शनः ॥ ३९ ॥ षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्याग्निष्टुतावथ ॥ आप्तोर्यामा
तिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम्॥४०॥विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च ॥ आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह
वृत्तिभिः ॥ ४१ ॥ सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ॥ वार्तासंचयशालीनशिलोंछ इति वै गृहे ॥ ४२ ॥
वैखानसा वालखिल्यौदुंबरा फेनपा वने ॥ न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥ ४३ ॥

नैष्ठिकब्रह्मचर्य्यको बृहद्व्रत कहते हैं जिसका कोई निषेध न करै उसको वार्तावृत्ति कहते हैं, खेती करनी, यज्ञ करनेको:यज्ञ करानेको संचयवृत्ति कहते हैं,विना मांगे जीविका करनेको शालीनवृत्ति कहतेहैं, गिराहुआ अन्न बीनकर निर्वाह करनेको शिलोञ्छवृत्ति कहते हैं, घरमें रहकर उदरपूर्ण करनेको गृहवृत्ति कहते हैं इस प्रकार वृत्तियें रचीं॥४२॥ और जो सांवेके चाव लोंका भोजन करके तप करते हैं, वे वैखानस कहाते हैं और जो नया अन्न मिलनेपर पहिल अन्न परित्याग करते हैं वे वालखिल्य कहाते हैं और जो प्रातःकाल उठकर जिस दिशाको जाय. और उधरको जो फल प्रथम मिलै, उसका भक्षण कर जो अपनी आत्माको संतुष्ट करते हैं वे औदुम्बर कहाते हैं. जो फल आपसे आप पककर पृथ्वीपर गिरै उसे खाकर जो आत्मा पोषण करते हैं वे फेनप कहाते हैं, ये चार प्रकारके वनवासी ब्राह्मण हैं अपने आश्रमके कर्ममें प्रधान रहैं, वे कुटीचक

हैं, जो कुछ काम करके जीविका निर्वाह करते हैं, और ज्ञान सीखते हैं वे बह्वोद हैं और जो ज्ञानमें अभ्यास करतेहैं वे हंस हैं, तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करने वाले निष्क्रिय हैं, ये चार प्रकारके संन्यासी इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठहैं॥ ४३॥ वेदविद्या, वेदत्रयीकी वार्ता, दण्डविद्या, नीतिकी वार्ता, भूरादिक व्याहृति ये प्रणव ब्रह्माके हृदयसे होतीहुई ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजीके बालोंसे उष्णिक्छन्द प्रगट हुआ, त्वचासे गायत्रीछन्द हुवा, मांससे त्रिष्टुप्छन्द हुआ, हाडोंसे जगतीछंद हुआ, स्नायुसे अनुष्टुप्छंद हुआ ॥ ४५ ॥ मज्जासे पंक्तिच्छन्द हुआ, और प्राणसे बृहती छन्द हुआ, जीवसे स्पर्श हुआ, और देहसे स्वर हुए ॥ ४६ ॥ 'श' 'ष' 'स' 'ह' ये ऊष्म ब्रह्माकी इन्द्रियोंसे हुए. 'य' 'र' 'ल' 'व' ये अन्तस्थ ब्रह्माके

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च ॥ एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥ ४४ ॥ तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ॥ त्रिष्टुब्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ मज्जायाः पंक्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ॥ स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥ ४६ ॥ ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरंतस्स्था बलमात्मनः ॥ स्वराः सप्त विहारेण भवंति स्म प्रजापतेः ॥४७॥ शब्दब्रह्मात्मनस्तात व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ॥ ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥ ४८ ॥ ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ॥ ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥ ज्ञात्वा तद्वृद्धये भूयश्चिंतयामास कौरव ॥४९॥ अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥ न ह्येधंते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् ॥ ५० ॥ एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥ कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥५१॥ ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥ ५२ ॥

बलसे हुए, षड्जादिक सप्तस्वर श्रीब्रह्माजीके विहार से हुये, इसीप्रकार सब जानो ॥ ४७ ॥ प्रगट अव्यक्त जिसकी आत्मा उस शब्दब्रह्मसे परे ब्रह्म विस्तृत अनेक२ शक्तिसे प्रकाश करै है ॥ ४८ ॥ इसके पीछे अपरविद्याका आश्रय लेकर फिर सृष्टि रचनेकी इच्छा करी, बडे वीर्यवान् ऋषियोंके महाविस्तृत सर्ग वर्णन किये, परन्तु बढे नहीं. हे राजन् ! अनेक २ प्रकारके विचार कर करतार हृदयमें चिंता करने लगा कि यह बडा आश्चर्य है कि, मैं नित्य ऐसे २ प्रचार करता हूँ परन्तु संसार बढ़ता नहीं ॥ ५० ॥ मुझको निश्चय होताहै कि दैव इस सृष्टिको बढ़ने नहीं देता इसकारण प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, इसप्रकार जब ब्रह्माने दैवको दोष दिया ॥ ५१ ॥ तब ब्रह्माके तनमेंसे दो रूप

प्रगट हुए,जिसको काय कहतेहैं,तब उन दोनों वरूपोंसे मिथुन अर्थात् जोड़ा उत्पन्न हुआ। उनमेंसे जो पुरुष था उसका नाम स्वायंभुव मनु हुआ और जो स्त्री थी उसका नाम शतरूपा हुआ,वह उन महात्माकी रानी हुई ॥ ५२ ॥ उन दोनोंने मैथुन धर्म प्रगट किया, मैथुनकर्म करनेसे प्रजा बढी, मनुने शतरूपाके गर्भसे पांच पुत्र पुत्री उत्पन्न किये ॥५३॥ हे सत्तम! प्रियव्रत, उत्तानपाद ये दो पुत्र औरे आकूति, देवहूति, प्रसूति ये तीन कन्या पांच सन्तान हुईं ॥ ५४ ॥ आकूति, रुचि प्रजापतिको व्याहीगई, देवहूति कर्दमजीको, प्रसूति दक्षको. इनसे सब जगत् भरगया ॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां मनुसर्गवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥दोहा--इस त्रयोदश अध्यायमें,

स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्योधांबभूविरे ॥ ५३ ॥ स चापि
शतरूपायां पंचापत्यान्यजीजनत् ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥५४॥आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति
सत्तम ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ॥ दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥ ५५ ॥ इति
श्रीमद्भा० तृती० द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥श्रीशुक उवाच॥निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ॥ भूयः पप्रच्छ कौ
रव्यो वासुदेवकथादृतः ॥१॥ विदुर उवाच॥ स वै स्वायंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः॥ प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं
किं चकार ततो मुने॥ २ ॥ चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ॥ ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥३॥
श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वंजसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ॥ तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुंदपादारविंदं हृदयेषु येषाम् ॥४॥

176

वराह प्रादुर्भाव। कथा परम आनन्दकी,वरणों सहज स्वभाव॥१३॥इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजा परीक्षित्!श्रीशुकाचार्यकी अत्यन्त मनोहर वाणी सुन भगवान् वासुदेवकी कथामें आदरकर कुरुनंदन फिर बूझने लगे ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे महामुने! ब्रह्माजीके प्यारे पुत्र स्वायंभुवमनु राजेश्वरने प्रियपत्नीको पाकर क्याकिया? ॥ २ ॥ हे उत्तम! उस आदिराजका चरित्र मुझसे कहो, जो मुझको श्रद्धा है वह श्रीवृन्दावनविहारीके आश्रित हो ॥ ३ ॥ बहुत प्राचीन राजाओंकी कथा श्रवण करनेका यही फल है और यही महात्माओंने कहा है कि श्रीमुकुन्दके चरणारविन्द जिनके हृदयमें वास करते हैं उनके गुणानुवादका श्रवण करना शुभफलका देनेवाला है ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि विनीत सहस्र शिरवाले भगवान्के चरणारविन्दमें जिनके शिर सो मत्रेयजी भगवत्की कथामें अत्यंत प्रसन्न रोमांचित हो विदुरजीके सन्मुख बोले॥५॥मैत्रेयजी बोले कि, जब अपनी प्रियपत्नीसमेत स्वायम्भुवमनु हुए तब हाथ जोडकर ब्रह्माजीसे बोले ॥६॥ तुम सब जीवोंके उत्पन्न करनेवाले वृत्तिदायक पितामह हो, हे नाथ ! कौनसे कर्मद्वारा यह प्रजा आपकी से [illegible]र ॥ ७ ॥ हे स्तुतियोग्य ! आप बताइये कि आपको किस प्रकार नमस्कार हो और अपनी सामर्थ्यानुसार जो कर्म करसके जिसके करनेसे लोक परलोक दोनोंमें सुयश हों और

श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ॥ प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥५॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः ॥ प्रांजलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥६॥ त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता ॥ अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥ ७ ॥ तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ॥ यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्तात्द्वां क्षितीश्वर ॥ यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनार्पितम् ॥ ९ ॥ एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ॥ शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥१०॥ स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः ॥ उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥ ११ ॥ परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप ॥ भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥१२॥

सब प्रकारसे उत्तम गति प्राप्त हो ॥ ८ ॥ स्वायंभुवमनुकी विनय सुन मैत्रेयजी बोले, कि हे पुत्र पृथ्वीश्वर ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; संसारमें तुम्हारा यश बढ़ै, मंगलकी वृद्धि हो; निष्कपट हृदयसे जो मैंने कहा सो तुमने किया और सब प्रकार मेरी आज्ञा मानी॥ ९ ॥हे वीर ! ईर्षा त्याग अपनी शक्त्यनुसार आदरसे पिताकी आज्ञा मानले,पिताको इतनीही पूजा करनी बहुत है॥१०॥हे आत्मज! तुम्हारे समान जिनमें गुण और पुरुषार्थसी सन्तान इस शतरूपा स्त्रीमें उत्पन्न कर धर्मसे पृथ्वीकी शिक्षा करो और परमेश्वरमें मन लगाओ ॥ ११ ॥ हे नृप ! प्रजाकी रक्षा

मन लगाकर करो, यह मेरी परम शुश्रूषा है, भगवान् सब प्रजाके भर्ता हृषीकेश प्रसन्न होंगे ॥ १२ ॥ यज्ञरूप जनार्दन भगवान् जिनपर संतुष्ट नहीं होते उनका मनुष्य देहधारण करना केवल श्रममात्र हुआ है, आपही धन्य हैं जो नारायणका आदर किया ॥ १३ ॥ मनुजी बोले कि, हे पापनाशक ! हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञा अवश्य करूँगा, परन्तु मेरा वासस्थान और प्रजाके रहनेको जगह बताइये ॥ १४ ॥ हे देव! सब जीवमात्रका

येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिंगो जनार्दनः ॥ तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥ १३ ॥ मनुरुवाच ॥ आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ॥ स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥ १४ ॥ यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महांभसि ॥ अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् ॥ कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥ १६ ॥

जिस पृथ्वीपर वास करनेका स्थान है, सो पृथ्वी महाप्रलयके जलमें निमग्न हो रही है, इस भूदेवीके उद्धारका कोई यत्न विधान करो, जिसपर यह प्रजागण वास करैं* ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, चतुरानन जलमें धरणीको डूबी देख मनमें बहुत कालतक चिंतवन करते रहे कि, किस प्रकारसे

---

* **शंका**--भागवतके तृतीयस्कन्ध बीसवें अध्यायके तेरहवें श्लोकके अर्थसे विदित होता है कि, हिरण्यकशिपु आदि राक्षसोंके मरनेके पीछे सृष्टिकी रचना ब्रह्माने करी है तब सृष्टिके पहिले हिरण्यकशिपु आदि राक्षस कैसे उत्पन्न हुए ? जिन राक्षसोंके भारसे पृथ्वी रसातलको चलीगई अच्छा जब पृथ्वी रसातलको गई तौ ब्रह्माको क्यों नहीं जानपडा ? जब मनुराजाने पृथ्वीका वृत्तान्त ब्रह्मासे कहा तौ ब्रह्माको ज्ञात हुआ कि, पृथ्वी रसातलको चलीगई यह बडी भारी शंका होती है.

उत्तर–जिस दिन स्वायंभुवमनुने ब्रह्मासे कहा कि, पृथ्वीको तो हिरण्याक्ष हर लेगया उसदिन मरीचिके कुलमें राक्षस बहुत जन्मे थे. तथा उसीदिन सृष्टिसहित हिरण्याक्ष तपस्याके प्रभावसे आधी पृथ्वीको हर लेगया उसदिन शीघ्रताके कारण नीचेके सात लोकोंको ब्रह्माने नहीं रचा था केवल नीचेके सात लोकोंकी ठौरपर जल भर रहा था पृथ्वीका हरण हुए पीछे घडी दो एक व्यतीत हुई थी, देवता पृथ्वीका वृत्तान्त ब्रह्मासे कहनेके लिये जातेही थे तबतक स्वायंभुवमनुने शीघ्र जाकर पृथ्वीके हरनेका वृत्तान्त ब्रह्मासे कहदिया तब ब्रह्माने सुनकर अपने चित्तमें बडा खेद माना तब उसीसमय विष्णु भगवान्ने प्रगट होकर सब कार्य सिद्ध किया, इस प्रकारसे सृष्टिके पूर्वकालमें राक्षसोंने जन्म लिया.

इसका उद्धार कियाजायगा जो प्रजागण इसपर वास करैं ॥ १६ ॥ विश्व रचनेकेही समय मेरे सम्मुख जलमें डूबकर पृथ्वी रसातलको चलीगई, अब हम सब इस वसुधाके निकलनेका क्या उपायकरैं?॥१७॥जिसके हृदयकमलसे मैं उत्पन्न हुआहूँ वह करुणासिंधु,तीर्थरूप कीर्तिवाले भगवान् मेरा मनोरथ पूरा करेंगे ॥१८॥ हे अनघ ! ब्रह्माजी यही विचार कर रहे थे, कि उसीसमय पितामहकी नासिकाके छिद्रसे अकस्मात् अंगुष्ठमात्र वराहका एक बच्चा निकला॥१९॥हे नरनाथ ! सबके देखते २ वह एक क्षणमें आकाशतक पहुँचा, गजके समान बढकर महाअद्भुतरूप दृष्टि आनेलगा मरीचिआदि ब्राह्मण सनत्कुमारादि मनुसहित ब्रह्माजी सूकरको निहार अनेक २ प्रकारके विचार करने लगे ॥२०॥ यह वाराहरूप

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता ॥ अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥ १७ ॥ यस्याहं हृदया
दासं स ईशो विदुधातु मे ॥ इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ ॥ वराहतोको निरगादंगुष्ठपरिमाणकः ॥ १८ ॥
तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत ॥ गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥ १९ ॥ मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारै
र्मनुना सह ॥ दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥ २० ॥ किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ॥ अहो
बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिस्सृतम् ॥ २१ ॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गंडशिलासमः ॥ अपि स्विद्भगवानेष
यज्ञो मे खेदयन्मनः॥२२॥इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणा सह सूनुभिः॥भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेंद्रसन्निभः॥२३॥ब्रह्माणं
हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥ २४ ॥ निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्ष
यिष्णु मायामयसूकरस्य ॥ जनस्तपस्सत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयो गृणन्स्म ॥ २५ ॥

धारण कर कोई स्वर्गवासी तौ नहीं चला आया है, बडे आश्चर्यकी बात है कि,मेरी नासिकामेंसे यह सूकररूप धारण कर कौन निकला?॥२१॥ पहिले तौ अंगुष्ठसमान था,एक क्षणमें गजसम दृष्टि आनेलगा, अब बडे पर्वतसमान स्थूल दृष्टि आनेलगा, कहीं यज्ञ भगवान् मेरे मनको खेद तौ नहीं करतेहैं?॥२२॥पुत्रोंसमेत ब्रह्माजी यह विचार कर रहे थे कि उसी समय ब्रह्माके सम्मुख यज्ञपुरुष भगवान् बादलकी समान गर्जनेलगे ॥ २३ ॥ उन उत्तम ब्राह्मणोंको और ब्रह्माको श्रीवाराहजीने महामोदित किया और सामर्थ्यवान् श्रीवाराहजीके गर्जनसे सब दिशा गर्जन कर उठीं ॥ २४ ॥ उस समय

मायामय वाराहजीका क्लेशनाशक घुर्घुर शब्द सुनकर जनलोक तपोलोक निवासी मुनिगण परमपवित्र वेदत्रयीमंत्र पढ़ २ मधुरवाणीसे स्तुति करनेलगे ॥२५॥ उन सज्जनोंके वेद विस्तारक ब्रह्म अपने गुणानुवादोंको सुनकर श्रीवाराहजीने गर्जकर,देवताओंके उदयके अर्थ गजेन्द्र समान लीला कर जलमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ जिनकी पुच्छ ऊपरको उठ रही, आकाशमें विचरैं, कठोर कन्धे, धूसर रंगके बाल फकड रहे, तीक्ष्ण रोमोंवाली त्वचा, श्वेतदंष्ट्र भयानक दृष्टि पृथ्वीके उद्धारक श्रीवाराहजीने प्रकाश किया ॥ २७ ॥ स्वयं यज्ञ मूर्ति भगवान् कराल डाढ़वाला वाराहरूप धारणकर नासिकासे पृथ्वीके मार्गको ढूँढते हुए कोमलदृष्टिसे ऋषियोंको जलमें प्रवेश करगये ॥ २८ ॥ हीरापर्वतके

तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ॥ विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेंद्रलीलो जलमाविवेश ॥२६॥ उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् ॥ खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः॥२७॥घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेशः स्वयमध्वरांगः ॥ करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ॥ २८ ॥ स वज्रकूटांगनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ॥ उत्कृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥ २९ ॥ खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽप उत्पारपारं त्रिपुरू रसायाम् ॥ ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥ ३० ॥ स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ॥ तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतंतं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥ ३१ ॥

समान अंग जलमें कूदनेके वेगसे कोखें फटीं, इस प्रकार समुद्रका जल इधर उधर फैलगया दीर्घ तरंगमाला भुजायेंसी दृष्टि आती हैं, दुःखी जन कहते थे कि, हे यज्ञेश्वर ! हमारी रक्षा करो ॥ २९ ॥ यज्ञमूर्ति वाराहजी महाराजने अथाह जलकी थाह लेनेके लिये जलको कुदालकी नाईं तीव्र खुरोंसे चीरते फाड़ते जाकर पृथ्वीको देखा, जिस सब जीवोंको धरनेवाली धरणीको प्रलयके समय आप श्रीजलनाथने उदरमें धारण किया था ॥३०॥ जो धरणी जलमें डूबगई थी उस पृथ्वीको अपनी डाढ़से उठाय रसातलसे ऊपरको लाये तब अत्यन्त शोभा

हुई, चक्रसे सहस्रगुण तीव्र तेज जिनमें ऐसे वाराहजीने हिरण्याक्षदानवको गदा हाथमें लिये आता हुआ देखा ॥ ३१ ॥ वाराहजीके सम्मुख आ मार्ग रोककर खड़ा हुआ, और भूमिके छीननेका उद्योग करने लगा. तब वाराहजीका क्रोध अत्यन्त बढा, और सिंहसमान गर्जकर दोनों दांतोंसे हिरण्याक्षका सब शरीर चीरडाला. और उसके रुधिरकी कीचमें अटीहुई अपनी तुण्डसे लीला करनेलगे ॥ ३२ ॥ हे भूपाल ! तमालसमान नीलश्वेत दांतोंके अग्रभागोंसे गजलीलाकी भांति पृथ्वीको उछालते हुए सब ऋषि, मुनि, ब्रह्मादिक देवताओंने वाराहजीको देख और हाथ जोड़ वेदके मन्त्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ ऋषिलोग बोले कि, हे अजित ! हे यज्ञभावन ! आपने सबको

जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं सलीलयेभं मृगराडिवांभसि॥तद्रक्तपंकांकितगंडतुंडो यथा गजेंद्रो जगतीं विभिंदन्॥३२॥
तमालनीलं सितदंतकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपंतं गजलीलयाऽङ्ग ॥ प्रज्ञाय बद्धांजलयोऽनुवाकैर्विरिंचिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥३३॥ ऋषयः ऊचुः ॥ जितंजितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनूं स्वां परिधुन्वते नमः ॥ यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणमूकराय ते ॥ ३४ ॥ रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ॥ छंदांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वंघ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ ३५ ॥ स्रुक्तुंड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरंध्रे ॥ प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३६ ॥ दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ॥ जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते॥ ३७ ॥

जीता है; वेदत्रयीमय रूप धरकर शरीरको कँपाया सो आपको नमस्कार हैं ॥ ३४ ॥ हे देव ! निश्चय है कि, दुष्टकर्म करनेवालोंके इस आपके यज्ञस्वरूपका दर्शन होना कठिन है सब छन्द आपकी त्वचामें हैं, यज्ञ रोममें हैं, सुन्दर आज्य दृष्टिमें है, चातुर्होत्र यज्ञ चरणोंमें हैं॥ ३५ ॥ हे ईश ! जुहू नामक स्रुवा आपकी तुण्ड है, द्वितीय स्रुवा आपकी नासिका है, भक्षणका पात्र चमस कर्णका छिद्र है, ब्रह्मभाग पात्र मुखका छिद्र है, चर्वण अग्निहोत्र है ॥ ३६ ॥ दीक्षा आपका जन्म, तीन इष्टि शिर, ओष्ठ, ग्रीवा हैं दीक्षाके पीछेकी इष्टि और समाप्तिकी इष्टि आपकी डाढ़े हैं, जो प्रथम महावीर करा जाय सो रसना है, यज्ञ तुम्हारा शीश है, उपासनाकी अग्नि सभासद है,

इष्टकाचयन तुम्हारे पंच प्राण हैं ॥३७॥ हे देव ! चंद्रमा आपका वीर्य है,सब यज्ञ अवस्थिति है,संस्थाभेद तुम्हारी सप्त धातु हैं,वह संख्या विभेद यहहै अग्निष्टोम १ अत्यग्नि २ उक्थ्या ३ षोडशी ४ वाजपेय५अतिरात्र६आप्तोर्याम ७ आपही सब यज्ञ शरीरकी सन्धि हैं.आपही सब यज्ञ इष्टिबन्धन हो॥३८॥सब मन्त्रदेवता द्रव्यरूप,सर्वक्रियारूप यज्ञरूपके अर्थ नमस्कार है.वैराग्य भक्ति,पुत्रसे अनुभव किये ज्ञानरूप विद्या गुरुके निमित्त प्रणाम है॥३९॥हे भगवन्! हे भूधर!डाढ़के अग्रभागपर पर्वत सहित धरणी तुमने धारण कीहै,सो अत्यन्त प्रकाशमान हो रहीहै,जैसे जलमेंसे निकले गजेंद्रके दातोंपर धरी हुई कमलिनी शोभा देती है,इसीप्रकार आपके दशनोंपर पृथ्वी शोभायमान होरही है॥४०॥वेदत्रयीमें यह वाराहरूप है, सो

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्था विभेदास्तव देव धातवः ॥ सत्राणि सर्वाणि शरीरसंधिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबंधनः ॥ ३८ ॥ नमोनमस्तेऽखिलमंत्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ॥ वैराग्यभक्त्याऽऽत्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमोनमः ॥ ३९ ॥ दंष्ट्राऽग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ॥ यथा वनान्निस्सरतो दता धृता मतंगजेन्द्रस्य सपत्र पद्मिनी ॥४०॥ त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ॥ चकास्ति शृंगोढघनेन भूयसा कुलाचलेंद्रस्य यथैव विभ्रमः ॥४१॥ संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ॥ विधेम चास्यै नमसा सहत्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥ कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ॥ न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४३ ॥

भूमण्डल आपने दातोंपर धारण किया,डाढ़ारूढ शृगपर मेघवत् विदित होताहै, बडेभारी कुलाचल:पर्वतका जिसप्रकार विलास सोहै,इसीप्रकार आपकी शोभाहै॥४१॥हे नाथ! इसको स्थित करो यह स्थावरजंगमकी माता है लोकके अर्थ तुम्हारी भार्या है,तुम हमारे पिता हो,हम तुमसमेत अचलादेवीको नमस्कार करते हैं.जिस पृथ्वीपर अपना तेज अग्निको काष्ठमें तुम धारण करते हो॥४२॥हे प्रभो!रसातल गई मेदिनीका लाना आपके बिना कौन करसक्ता है?विस्मय करनेवालोंको आपके कर्तव्यमें कुछ विस्मय नहीं है जो अपनी मायासे इस विस्मयकारी विश्वको रचा॥४३॥

हे ईश! वेदमय निजशरीरको कँपानेसे जो आपके बाल उठे उस समय सुन्दरजलकी बिन्दुओंसे स्नान किये, तप, जन, सत्यलोकवासी हम सब पवित्र होगये॥४४॥हे कर्मरहित!जो तुम्हारे कर्मोंका पार मानते हैं वे निश्चय मतिहीन हैं. हे भगवन्!योगमायाके गुणोंसे मोहित तुम सब विश्वके मंगलकर्ता हो॥४५॥मैत्रेयजी बोले कि, ब्रह्मादिक देवताओंने जब इस भाँति स्तुति की तब वाराहजीने अपनी धारणाशक्तिद्वारा, पृथ्वीको अपने खुरोंसे मथित जलपर अचल किया ॥ ४६ ॥ सो वाराह भगवान् विष्वक्सेन प्रजापति हरि रसातलसे लीलाकरके पृथ्वीको ला जलपर स्थापित कर वैकुण्ठको चलेगये॥४७॥ जो श्रोता इस मायावी, पवित्र श्रीवाराहजीकी महासुन्दर, आनन्दकारी, विघ्नहारी कथाको भक्तिसे प्रीति लगाकर सुनते हैं अथवा सुनाते हैं उनके हृदयमें जनार्दन भगवान् अपना वासस्थल बनातेहैं॥४८॥जब सब आशीर्वादोंके स्वामी प्रसन्न हुए फिर जीवोंको कोई बात दुर्लभ नहीं. सब कुछ प्राप्त हुआ, अनन्यदृष्टिसे भजनेवालोंके अन्तःकरणवासी, अपनी परमगतिको आपही देतेहैं॥४९॥इस लोकमें पुरुषार्थ सारवेत्ता पुरातनकथामें भगवत्कथामृतको कर्णअंजलीसे जिसने पान किया है, यह कथा उसके सब संसारी पापोंका नाश करनेवाली है;

विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपस्सत्यनिवासिनो वयम् ॥ सटाशिखोद्धूतशिवांबुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥४४॥ स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैषते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ॥ यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥४५॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ सलिले स्वखुराक्रांत उपाधत्तावितावनिम् ॥ ४६ ॥ स इत्थं भगवानुर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः ॥ रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः॥ ॥ ४७ ॥ य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ॥ शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याऽऽशु हृदि प्रसीदति ॥ ४८ ॥ तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभो किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ॥ अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥ ४९ ॥ को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुरा कथानां भगवत्कथासुधाम्॥आपीय कर्णांजलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम्॥५०॥इति श्रीमद्भा०म०तृ०त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

एक पशु ही तौ नहीं, और सबको ज्ञान प्राप्त होता है ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीवाराहावतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥ दोहा–इस चौदह अध्यायमें, हिरण्याक्षवध मूल ॥ सांझ समयके गर्भकी, कहौं कथा प्रतिकूल ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे कुरुनंदन! जगत्कारण, वाराहतनधारी, श्रीवैकुंठनाथकी कथा मैत्रेयजीसे सुन हाथ जोड़कर विदुरजीने बूझा * ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे मुनिसत्तम! यज्ञमूर्त्तिश्रीवाराहजीने आदिदैत्य हिरण्याक्षका जिस प्रकार वध किया वह मैंने सुना॥२॥परन्तु हे ब्रह्मन्! त्रिलोकीनाथ डाढ़के

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां सूकारणकरात्मनः ॥ पुनः स पप्रच्छ समुद्यताञ्जलिर्न चाति तृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ॥ आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम॥ २ ॥ तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ॥ दैत्यराजस्य च ब्रह्मन्कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ॥ यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥ ४ ॥ ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः ॥ मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यंघ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥ ५ ॥

सूकरका
त्मनः

अग्रभागपर धरकर धराको लीलापूर्वक जब लाये उस समय श्रीवाराहजी और हिरण्याक्षमें किसप्रकार संग्राम हुआ? सो कृपापूर्वक कहिये ॥३॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे कुरुकुलमणे! तुमने यह मनोहर भगवान् जगदाधारकी कथा मनुष्योंके कालकर्म छुटानेवाली बहुत अच्छी बूझी ॥४॥ श्रीनारदमुनिकी कही यह कृष्णकथा सुनकर राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव पांच वर्षका बालक भक्तिके प्रभावसे मृत्युके मस्तकपर पाँव रखकर

---

* **शंका**–विष्णुभगवान्ने पृथ्वीको हिरण्याक्षसे छुटानेके लिये अनेक प्रकारके श्रेष्ठ श्रेष्ठ शरीरोंको छोडकर जैसे कोई जीव बुरा कर्म करै और उस जीवको निन्दित कर्म करनेसे खोटी योनि धारण करनी पडती है। इसलिये अत्यन्त निन्दित सूकरकी योनि विष्णुभगवान्ने क्यों धारण करी? सूकरकी योनि तो अत्यन्त दुष्ट है।

उत्तर–विष्णुभगवान्ने जानलिया कि, यह हिरण्याक्ष ब्रह्माके वरदानसे अत्यन्त प्रमादसे उन्मत्त होरहाहै, संसारमें जितने चराचर जीव ब्रह्माके बनायेहुए हैं उनमेंसे केवल एक वाराहके व्यतिरिक्त यह और किसीसे नहीं मरनेका, बराहसेही मरैगा. यह विचार श्रीलक्ष्मीके नाथ नारायणने सूकरका शरीर धारण करके हिरण्याक्षको मारडाला और जलमें डबीहुई पृथ्वीको जलसे निकालकर पृथ्वीके स्थानपर पृथ्वीको रखदिया।

विमानमें बैठे विष्णु भगवान्के धामको प्राप्त हुआ॥५॥यह इतिहास मैंने सुनाहै;यह प्रथम देवताओंके बूझनेंपर लोककर्ता चतुराननजीने देवताओंके सन्मुख पहिले वर्णन किया था॥६॥अब हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुकी उत्पत्ति कहतेहैं,एक समय सन्ध्याकालमें दक्षपुत्री दितिने पुत्रार्थ कामशरसे पीड़ित हो मरीचिसुवन कश्यपनामक अपने स्वामीके पास जाय उनसे विषयकी इच्छाकी ॥७॥उससमय अग्निजिह्व यजुर्वेदके पति विष्णु भगवान्का दूधसे यजन करके कश्यपजी सूर्यअस्तके समय यज्ञशालामें सावधानतासे बैठेथे॥८॥ दिति बोली कि,हे स्वामिन्!पञ्चशर घोर धनुष बाण लेकर मुझे तुम्हारे कारण दुःख देता है,और मुझ अबलापर बल प्रकाश करता है.जिसप्रकार मतवाला हाथी केलेके वृक्षपर बल प्रकाश कर उसको व्यथा देता है इसी भाँति यह मनसिज मेरे तनरूपी वनको भस्म किये डालता है॥ ९ ॥ पुत्रवती सौतनकी बढ़ती मुझसे नहीं देखीजाती.अब आप मुझपर कृपा करके सर्वगुणखान, महाबलवान् एक पुत्र मुझे दीजिये ॥ १० ॥ भर्तासे बहुत सम्मानित स्त्रियोंका यश सब संसारमें फैलजाता है; सो आपसरीखे मेरे पति हो और फिर भी मेरे पुत्र न हो यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ ११ ॥ हे नाथ ! पुत्रियोंके परम हितकारी हमारे पिता पुत्रियोंसे अत्यन्त स्नेह करतेथे.एकदिन पिता हम सबसे हँसकर बोले कि हे पुत्रियो! तुम किसके संग अपना विवाह करोगी?इसभाँति प्रत्येकसे पृथक् २ बूझने लगे ॥ १२ ॥उससमय हम तेरह बहनोंने आपमेंही मन लगाया तब हम सब पुत्रियोंको संतान होनेका भावजान तेरह बेटियोंको

अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ॥ ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥६॥ दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं
कश्यपं पतिम् ॥ अपत्यकामा चकमे संध्यायां हृच्छयार्दिता ॥७॥ इष्ट्वाऽग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ॥ निम्लो
चत्यर्क आसीनमग्न्यागारे समाहितम् ॥८॥ दितिरुवाच ॥ एष मां त्वत्कृतो विद्वन्काम आत्तशरासनः ॥ दुनोति दीनां
विक्रम्य रंभामिव मतंगजः ॥ ९ ॥ तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ॥ प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुंक्तामनु
ग्रहम् ॥ १० ॥ भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानां विशते यशः ॥ पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥११॥पुरा पिता
नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥१२॥ स विदित्वाऽऽत्मजानां नो भावं
संतानभावनः ॥ त्रयोदशाऽददत्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥ १३ ॥

पिताजीने तुम्हें दिया और हम सब तुम्हारे शील स्वभावके अनुसार चलीं॥१३॥हे कल्याणकर्ता ! हे कमलनयन । हे प्राणनाथ ! हमारी इच्छा पूर्णकरो. हे भूमन् !आपसरीखे महात्माओंके निकट आर्तोंका आना व्यर्थ नहीं होता॥१४॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर!इस प्रकार महाकृपण दितिके मनोहर वचन सुन उसकी अत्यन्त प्रशंसा कर मदनका बल वर्द्धित देख कश्यपजी मधुरवाणीसे बोले॥१५॥हे भीरु!जो तेरा मनोरथ है यह प्रिय विधान मैं सब तेरा पूर्ण करूंगा.जिस स्त्रीसे धर्म,अर्थ,काम सब पदार्थ प्राप्त हो उसका काम कौन नहीं कर सक्ता!स्त्रीके विना चारों वर्णोंका तिरस्कार है,इसलिये गृहस्थ होना मुख्य धर्म है॥१६॥सब आश्रमोंको ग्रहण कर जो अपने गृहस्थाश्रममें रहते हैं वे सब व्यसनोंके समुद्रको तर जाते

अथ मे कुरु कल्याण कामं कंजविलोचन॥आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि॥१४॥इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ॥ प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानंगकश्मलाम् ॥ १५ ॥ एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ॥ तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥ सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ॥ व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथाऽर्णवम् ॥ १७ ॥ यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ॥ यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥ १८ ॥ यामाश्रित्येंद्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ॥ वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ १९ ॥ न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ॥ अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥२०॥ अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् ॥ यथा मा नातिवोचंति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ २१ ॥

हैं;जिसप्रकार जहाजमें बैठ समुद्र पार होजाते ; ऐसेही संसारमें गृहस्थ लोग भवसागर पार होजाते हैं॥१७॥हे मानिनि!श्रेयःकामके लिये अपनी अर्द्धांगिनी जिसको कहते हैं; जिसमें अपना सब भार धर पुरुष विगतज्वर होकर विचरते हैं॥१८॥और आश्रयोंके जीतनेके अयोग्य उन दुर्जन इंद्रियरूप शत्रुओंको जिस स्त्रीके आश्रयसे लीला करके हम पराजित करतेहैं, जैसे दुर्गेश दुर्गमें अवस्थानकर चोरोंका पराभव करता है ॥१९॥ अरी गृहेश्वरी ! तुम्हारे किये उपकारका प्रत्युपकार करनेको संपूर्ण आयुसे तुम्हारे समान होनेकी सामर्थ्य नहीं है,और जो प्रियगुण तुममें हैं उनके वर्णन करनेकी भी सामर्थ्य मुझे नहीं है ॥ २० ॥ तौ भी पुत्रकी उत्पत्तिके लिये तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगा.परन्तु एक मुहूर्त धीर धारण करो.

जिससे संसारी मनुष्य निन्दा न करैं ॥ २१ ॥ इस समय महाघोर तम है. बरन् घोरोंको भी घोरतम दिखानेवाले भूतनाथके गण इस समय जहाँ तहाँ विचरते हैं ॥ २२ ॥ हे शुभानने ! इस सायंकालमें भगवान् भूतभावन, त्रिपुरारी भूतनाथ, भूतपार्षदोंके गणसहित श्रीमहादेवजी वृषारूढ़ हो संसारमें पर्य्यटन करते हैं ॥ २३ ॥ श्मशानस्थ पवनमण्डलीसे उड़ी हुई धूलि और धूम्रसे व्याप्त, विथुरे प्रकाशित जटासमूह, रजतसरिस शोभायमान तनपर चिताभस्म लगाये, महाभयंकर काले नाग लिपटाये, तुम्हारे देवर, शिवशंकर, चन्द्र, सूर्य, अग्नि इन तीनों नेत्रोंसे आठों प्रहर देखते रहते हैं सो वे अवश्य हमारे तुम्हारे विहारको देखेंगे ॥ २४ ॥ और महादेव ऐसे बेलाग हैं कि, संसारमें न कोई उनका मित्र है, न

एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ॥ चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥२२॥ एतस्यां साध्वि संध्यायां भगवान्भूतभावनः ॥ परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥ २३ ॥ श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतसटाकलापः ॥ भस्मावगुंठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥ २४ ॥ न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ॥ वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥ २५ ॥ यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणंत्यविद्यापटलं बिभित्सवः ॥ निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥ २६ ॥ हसंति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्रतस्याविदुषः समीहितम् ॥ यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २७ ॥

शत्रु है; न अतिआदरणीय, न निन्दायोग्य है, जिनके चरणोंसे त्यक्त भोग जिसके भोगे व्रतों करके उनकी विभूतिरूप महाप्रसादकी आराधन कर, हम सब आशा करते हैं॥२५॥ जिन भूतभावन, भोलानाथके विषयशक्तिशून्य अनिंद्य चरित्र, अविद्यानाशक, विलक्षण बुद्धिमान् महात्मा लोग वर्णन करतेहैं, उनकी समान वा उनसे बड़ा ज्ञानवान् जगत्में और कोई नहीं, सज्जनोंको गति देनेवाले आप सदाशिव पिशाचवत् लीला करतेहैं ॥ २६ ॥ सदा अपनी आत्मामें रमण करें; सर्वज्ञ, त्रिकालके ज्ञाता जिन महादेवके चरित्रोंको देख २ दुर्भागी लोग हँसते हैं, परन्तु भुजंग

भूषणके आचरणोंका आशय नहीं जानते,वे अभागे अनेक २ प्रकारके वसन वस्त्र आभूषण पहिने,चन्दन सुगन्ध लगाये; जिस शरीरको श्वान काक खायँ उस देहको अत्यन्त प्रिय मानते हैं और जानते हैं कि, यह देह आत्मा है, यह समझ उसका अत्यन्त लालन पालन करतेहैं ॥ २७॥ ब्रह्मादिक देवता दिक्पाल जिनकी स्थापित मर्यादाको पालते हैं,इस जगत्के जो कारणहैं उनकी आज्ञाकारिणी माया है वहभी पिशाचिनियोंकी भांति रहती है,ये परमेश्वरके चरित्र तर्कमें नहीं आते, उनकी अपार महिमाका कौन पार पासक्ताहै॥ २८॥मैत्रेयजी बोले कि,कश्यपजीने दितिको इसप्रकार बहुत समझाया, परन्तु दितिके ध्यानमें एक न आया,और मदनके मदसे अचेत होकर निर्लज्जतासे वेश्याकी तरह कश्यपजीका वस्त्र पकड लिया॥२९॥और कश्यपजी निषिद्धकर्ममें अपनी पत्नीका हठ जान भाग्यरूप भगवान् वासुदेवको नमस्कार कर उसे हठीली करनेलगे ॥ ३० ॥ भार्य्यासे जब विहार भोगविलाससे निश्चिन्त हो,स्नान कर,मौन हो प्राणायाम किया, रजोगुणरहित सनातन ब्रह्म ज्योतिस्वरूपके ध्यानमें मग्न हो जप तप ध्यान करनेलगे॥३१॥हे परीक्षित्!उस निन्दितकर्मसे दिति लज्जित हो,अछताय,पछताय,नीचे शिर झुकाय अपने पतिके निकट आकर बोली॥३२॥ हे ब्रह्मन्!सर्वजीवमात्रके ईश्वर मेरे इस गर्भका विध्वंस न करैं, क्योंकि सब भूतोंके स्वामी रुद्र हैं उनकी मैंने लज्जा न करी,यह मुझसे शिवका बड़ा भारी अपराध हुआ है॥३३॥दुःखके दूरकर्ता, भयहर्ता,रुद्रदेव,उग्रतपधारी,सबके फलदायक,मंगलरूप,दयासिन्धु,दुष्टोंके संहारार्थ

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया॥आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडंबनम्
॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेंद्रिया ॥ जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥ २९ ॥
स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बंधं विकर्मणि ॥ नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥३०॥ अथोपस्पृश्य सलिलं
प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ध्यायञ्जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ ३१ ॥ दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन
भारत ॥ उपसंगम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥ ३२ ॥ दितिरुवाच ॥ मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन्भूतानामृषभोऽवधीत् ॥
रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥ ३३ ॥ नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ॥ शिवाय न्यस्तदंडाय
धृतदण्डाय मन्यवे ॥ ३४ ॥

प्रचण्ड क्रोध करनेवाले श्रीमहादेवजीको मेरा नमस्कार है॥ ३४ ॥ वे हमारे भगिनीभर्ता,अत्यन्त अनुग्रहकारी,सदाशिव, त्रिपुरारी, कृपासागर, स्त्रियोंके देव,सतीपति, निर्दयीपरभी दया करनेवाले,भूतनाथ मुझपर प्रसन्न होवें॥३५॥मैत्रेयजी बोले कि,अपनी सन्तानका शुभ आशीर्वाद दोनों लोकोंके योग्य चाहनेवाला शरीर जिसका थर२काँपरहा उस अपनी प्यारी पत्नीसे संध्यावन्दनके नियमसे निवृत्त होकर॥३६॥कश्यपजी बोले कि, हे प्रिया!तुम्हारे चित्तके अशुद्ध होनेसे सायंकालके दोषसे मेरी आज्ञाका भंग करनेसे देवताओंका अनादर करनेसे॥३७॥हे चण्डी!हे अमंगलरूपिणी! महा अमंगलरूप अत्यन्त अधम अति भयानक,दोपुत्र तेरे होंगे जो लोकपाल सहित त्रिलोकीको जीतेंगे वे संसारके प्राणियोंको दुःख देंगे॥ ३८॥

स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ॥ व्याधस्याप्यनुकंप्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥
स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम्॥ निवृत्तसंध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥ ३६ ॥ कश्यप उवाच ॥
अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ॥ मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥ ३७ ॥ भविष्यतस्तवाभद्राव
भद्रे जाठराधमौ ॥ लोकान्सपालांस्त्रींश्चंडि मुहुराक्रंदयिष्यतः ॥ ३८ ॥ प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ॥
स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥ ३९ ॥ तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः ॥ हनिष्यत्यवतीर्यासौ
यथाऽद्रीञ्छतपर्वधृक् ॥ ४० ॥ दितिरुवाच ॥ वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ॥ आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा
क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥ ४१ ॥

पराई स्त्रियोंको पकड़२कर लेजायँगे, दीन निरपराधी जीवोंको मारेंगे,संतों और साधुओंको सतावेंगे तब महात्मालोग कोप करेंगे॥३९॥उस समय देवताओंकी पुकार सुन आदिपुरुष अविनाशी सच्चिदानंद विश्वेश्वर भगवान् त्रिलोकपावन क्रोधकर वाराह अवतार धार जैसे इंद्रने पर्वतोंको मारा इस प्रकार मारेंगे॥४०॥दिति यह बात अपने पतिके मुखसे सुन अत्यन्त दुःखी होकर बोली, हे स्वामिन्! मेरा मनोरथ यह नहीं था; कि,मेरे पुत्र देवताओंको जीतकर सुरपुरका राज्य पा आनन्द भोगें,और देवता,साधु,संत,गो,ब्राह्मण आदिकोंको सतावें,ऐसी पापी संतान होनेसे तो मैं असंतान ही

भली थी; परंतु एकबातको श्रवण कर मेरे मनमें आनंदभी होता है कि, मेरे पुत्र ऐसे बलवान् होंगे कि, जिनको चक्रायुधधारी उदार बाहुसे साक्षात् अचिन्त्यरूप भगवान् वध करेंगे इससे अधिक और क्या ? परंतु मेरे दोनों पुत्रोंको कोई क्रोधी ब्राह्मण न मारै ॥ ४१ ॥ क्योंकि ब्राह्मणोंके दंडसे दग्ध सब जीवोंके भयदातापर नरकवासी भी दया नहीं करते, वे जिस योनिमें जाते हैं वहां निरादरही पाते हैं, प्रियाके ऐसे असमंजसयुक्त वचन सुनकर ॥ ४२ ॥ कश्यपजी बोले कि, अपने करे अपराधके विचारनेसे यह कर्म योग्य है, यह अयोग्य है यह विचारनेसे भगवान्में बहुत मान करनेसे, श्रीमहादेवमें मुझमें बहुत आदर करनेसे ॥ ४३ ॥ तेरे बडे पुत्र हिरण्यकशिपुके पुत्रोंके मध्यमें एक परम ज्ञानी, भक्तजन संतहितकारी, महातपधारी उत्पन्न होगा, जिसका यश परमेश्वरके यशके संग भक्तजन गावेंगे और सब हरिभक्तोंमें उसकी परमपदवी होगी,

न ब्रह्मदंडदग्धस्य न भूतभयदस्य च ॥ नारकाश्चानुगृह्णंति यांयां योनिमसौ गतः ॥ ४२ ॥ कश्यप उवाच ॥ कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ॥ भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥ ४३ ॥ पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ॥ गास्यंति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥ ४४ ॥ योगैर्हेममेव दुर्वर्णं भावयिष्यंति साधवः ॥ निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्त्तितुम् ॥ ४५ ॥ यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ॥ स स्वदृग्भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥ ४६ ॥ स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ॥ प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुंठमिमं विहास्यति ॥ ४७ ॥ अलंपटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ॥ अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाघिकं तापमिवोडुराजः ॥ ४८ ॥

भागवतोंमें महाप्रतापी, शीलसिन्धु गुणग्राहक जगतउजगार देवता, दैत्य, जिसका गुण गावेंगे प्रह्लाद उसका नाम होगा जिसका शुद्ध यश भगवत्के समान पौराणिक वर्णन करेंगे ॥ ४४ ॥ जैसे दुर्वर्ण कांचन तपानेसे सुवर्ण हो जाता है, उसी भाँति निर्वैरादि करके उसके आत्मवत् बननेको अपने शरीरको साधुजन भावना करेंगे ॥ ४५ ॥ जिनकी कृपासे जिनका स्वरूपभूत यह विश्व प्रसन्न होता है, तैसे सर्वान्तर्यामी भगवान् अनन्यदृष्टिसे संतुष्ट होंगे ॥ ४६ ॥ सो महाभागवत महात्मापुरुष महाप्रभाववाले महज्जनोंमें अत्यन्त महान् अत्यन्त अधिकभक्तिसे अनुभव करे हुए अंतःकरणमें श्रीवैकुंठनाथ भगवान्को प्रवेश कर इस शरीरका त्याग करेंगे ॥ ४७ ॥ सबसे विरक्त, शीलधारी, सकलगुणभूषण, पराई संपदासे

आप प्रसन्न, पराये दुःखसे आप दुःखी संसारमें जिसका कोई शत्रु न होगा, सबका दुःखहर्ता इसप्रकार होगा, जैसे कि, तापको सुधांशु दूर करताहै॥४८॥ भीतर बाहर निर्मल, कमलनयन अपने भक्तोंकी रक्षासे जो अवतार धारण करते हैं और कुण्डलोंसे मण्डित मुखारविन्द कमलापति कमलनयन लक्ष्मीजी दिनरात निहार २ जिनके चरणकमलको पलोटती हैं, ऐसे परमात्माका दर्शन तुम्हारा पोता करेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, नातीका भागवत होना सुनकर दिति प्रसन्न हुई, और दोनों पुत्रोंकी मृत्यु विष्णुके हाथसे श्रवण कर मनको संतोष देती हुई॥५०॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां दितिकश्यपसंवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥ दोहा–पन्द्रहवें अध्यायमें, गए अजढिग सब

अंतर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ॥ पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुंडलमण्डिताननम् ॥ ४९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ॥ पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वाऽऽसीन्महामनाः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० तृती० चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ॥ दधार वर्षाणि शतं शंकमाना सुरार्दनात्॥ १ ॥ लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः ॥ न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वांतव्यतिकरं दिशाम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ॥ न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥३॥ देवदेव जगद्धातर्लोकनाथ शिखामणे ॥ परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥४॥ नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे ॥ गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥ ५ ॥

देव। अजने सब वर्णन कियो, सनकादिकको भेव ॥ १ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, देवताओंकी पीडाकी शंकासे शत्रुओंके तेजका नाशक कश्यपका वीर्य दितिने अतिआनंदपूर्वक सौ वर्षतक धारण किया ॥ १ ॥ उसगर्भके तेजसे त्रिलोकीको विह्वल, और दशों दिशाओंमें अन्धकार देख सब लोकपाल व देवतागण अत्यन्त दुःखी हो ब्रह्माजीके निकट गये॥२॥और हाथ जोड़ विनती कर बोले, हे समर्थ। इस अन्धकारको आप जानते हैं जिससे हम सब डरे हुए हैं, दुर्भेद्य भगवान्‌को कालकरके हम नहीं जानसक्ते ॥ ३ ॥ देवता ब्रह्माकी परमेश्वररूपसे स्तुति कहतेहैं हे देवदेव ! हे जगत्पितः ! हे लोकेश ! हे शिखामणे ! आप पर अपर लोकस्थ जीवोंके भाववेत्ता हो॥४॥ विज्ञानवीर्य मायासे यह देहधारी सब गुण आपने ग्रहण

किये, तुम्हाराआदिकारण प्रगट नहीं होता,आप सब जगत्के ईश्वर और अन्तर्यामी हैं,आपको बारंबार नमस्कार है॥५॥आत्माके भावन,आत्मासे मिलेहुए,सब भुवन सत् असत्से परे जो आपहैं,सो हम आपको अनन्यभावसे भजतेहैं॥६॥उन सुन्दर,परिपक्व योगसाधनोंका श्वास,इन्द्रिय,आत्मा जीतनेवाले ऐसे जिन पुरुषोंको तुम्हारे प्रसादसे जिनको प्राप्त हुआ,उनका कहीं भी तिरस्कार नहीं होता॥ ७॥ जैसे रस्सीके वश बैल होता है, उसीप्रकार आपकी वाणीरूप रस्सीमें सब प्रजागण बँधकर आपके अधीन हो बलि देतेहैं,सो हे सब देवताओंमें मुख्य!आपके अर्थ नमस्कारहै॥८॥ हे भूमन्! तुम हमारा कल्याण करो और इस अंधकारसे जो सब संसारके कर्म लुप्त होरहेहैं और हमपर महाआपत्ति है सो आप देवताओंमें

ये त्वाऽनन्येन भावेन भावयंत्यात्मभावनम् ॥ आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम्॥ ६ ॥ तेषां सुपक्वयोगानां
जितश्वासेंद्रियात्मनाम्॥ लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः॥७॥ यस्य वाचा प्रजाः सर्गा गावस्तंत्येव यंत्रिताः॥
हरंति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः॥८॥ स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम्॥ अदभ्रदयया दृष्ट्या
आपन्नानर्हसीक्षितुम्॥९॥ एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम्॥ दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि॥१०॥
मैत्रेय उवाच॥ स प्रहस्य महाबाहो भगवाञ्छब्दगोचरः॥ प्रत्याचष्टाऽऽत्मभूर्देवान्प्रीणन्रुचिरया गिरा ॥ ११ ॥
ब्रह्मोवाच॥ मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः॥ चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः॥ १२॥

मुख्य ईश्वर हमारे सब कष्ट निवारणहारे अत्यन्तदयाकी दृष्टिसे देनेवाले हो॥९॥ हेजगत्पते!हे नाथ! यह दितिका गर्भ है,इसमें कश्यपमुनिका पराक्रम झलक रहा है, इसने दशों दिशाओंमें अंधकार करदिया, जिसप्रकार ईंधनमें क्षण २ अग्नि अधिक होती जाती है इसी भाँति दितिका गर्भ बढ़ता चलाजाता है,इसको निहार २ नये२भय उत्पन्न होते हैं,दिन रात कुछ नहीं जाना जाता,इससे चित्तको और भी अत्यंत खेद होताहै॥१०॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे महाबाहो! विदुरजी!शब्दके जाननेवाले करतार चतुरानन हँसकर मधुरवाणीसे देवताओंको प्रसन्न करते हुए॥११॥ब्रह्माजी बोले, हे देवगण!तुमसे भी प्रथम मेरे मनसे चार कुमार उत्पन्न हुए सनक,सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ये परमेश्वरके पूर्ण भक्त हैं,आकाशमार्ग

होकर त्रिलोकीमें सदा निष्प्रयोजन घूमते रहते हैं ॥१२॥ एक समय सनकादिक पवित्रआत्मा श्रीस्वर्गनाथके साक्षात् करनेको वैकुण्ठको जातेहुए, जिस वैकुण्ठको सब नमस्कार करतेहैं॥ १३ ॥जिस वैकुण्ठके सब पुरुष विष्णुभगवान्के समान चतुर्भुजी हैं.जिससे कोई प्रयोजन नहीं उस निमित्तके धर्मसे श्रीमन्नारायणका पूजन करते हैं॥ १४॥जिस वैकुण्ठ लोकमें आदिपुरुष शब्दमात्रके वक्ता श्रीविष्णुनारायण विराजते हैं,शुद्धसत्त्वमयस्वरूप धारण किये विरजानदीके तीर अपने पार्षदोंको सदा सुख देते हैं॥१५॥जहाँ निरन्तर सुखदायक नैःश्रेयस नामक वन है जिसमें सब कामना पूर्ण करनेवाले फलफूलोंसे शोभित सुन्दर२वृक्ष हैं,यह बाग षड्ऋतुकी शोभासे आठों याम प्रकाशित रहताहै.मानो कैवल्य मूर्तिमान् हो विराजमानहै॥ १६॥

त एकदा भगवतो वैकुंठस्यामलात्मनः ॥ ययुर्वैकुंठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ वसंति यत्र पुरुषाः सर्वे
वैकुंठमूर्तयः ॥ येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ॥ १४ ॥ यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवाञ्छब्दगोचरः ॥ सत्त्वं
विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः॥१५॥ यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ॥ सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव
मूर्तिमत् ॥ १६॥ वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायंति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ॥ अंतर्जलेऽनुविकसन्मधुमा
धवीनां गंधेन खंडितधियोऽप्यनिलं क्षिपंतः ॥१७॥ पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः॥
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥ १८ ॥ मंदारकुंदकुरवोत्पलचंपकार्णपुन्नागनाग
बकुलांबुजपारिजाताः ॥ गंधेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहुमानयंति॥ १९ ॥

जिस वैकुण्ठमें श्रीमन्नारायणके सब लोकोंके पापनाशक चरित्र, स्त्रियोंसमेत भगवत्पार्षद विमानोंपर बैठ२ मधुर २ स्वरोंसे गान करते हैं, जहाँकी नदीके जलमें प्रफुल्लित मधुमालती लताओंकी सुगन्धसे जिनकी बुद्धियें विघ्नित हो रही हैं,तौभी उस गंधप्रापक पवनको तिरस्कारित करतेहैं.भाव यह कि;सुगंधित वायुसे मोहको प्राप्त होकरभी भगवद्गुणगाना बंद नहीं करतेहैं ॥१७॥कपोत,कोकिला, सारस, चकवा,हंस,जलकाक,शुक,तीतर, मयूर, बक,चकोरोंका कलरव जब विरामको प्राप्त हुआ तौ भृङ्गराज जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका यश गा रहे हैं. वे सब दिव्यरूप हैं, सबके शुद्ध सत्त्वमय प्राकृत देह हैं इससे वहांके पक्षियोंकेभी हरिकथा श्रवण आदिपरम अनंद सूचना किया॥१८॥कल्पवृक्ष, कुन्द,तिलवृक्ष,रात्रिमें प्रकाश

करनेवाले कमल, चंपक, जिनको भवनमें रखनेसे मनुष्य ऋणी नहीं होता; जिसकी छाया पुरुषोंको हस्तीकी समान बलदायक वे पुन्नाग, नागकेशर, बकुल, दिनमें प्रकाश करनेहारे कमल, परिजनमे वह पारिजात वृक्षोंके पुष्पोंकी सुगन्ध बहुत उड़ती है, तौ भी तुलसीके सुगन्ध हरिसे सम्मानित होनेसे उस काननमें उनका सब फल बहुमान करते हैं, सब वैकुण्ठ पारिजातादि कल्पवृक्षोंसे शोभित हैं ॥ १९ ॥ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठ नाथके चरणारविन्दोंको नमस्कार करते दीखे हैं, वैदूर्य्य मरकत सुवर्णमय विमानोंसे वैकुण्ठ सघन होरहा है. बहुत मुसकानसे शोभित मुखवाली स्त्रियां श्रीकृष्णमें मन लगानेके कारण उनको परिहासादिकसे रजोगुण उत्पन्न नहीं होता ॥ २० ॥ श्रीलक्ष्मीजी चरणारविन्दमें

तत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैडूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ॥ येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णात्मनां
न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥ २० ॥ श्री रूपिणी क्कणयती चरणारविंदं लीलांबुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा॥ सँल्लक्ष्यते स्फ
टिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥ २१ ॥ वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता
निजवने तुलसीभिरीशम् ॥ अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमतांग यच्छ्रीः ॥ २२ ॥ यन्न
व्रजंत्यघभिदो रचनानुवादाच्छृण्वंति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ॥ यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्ता
न्क्षिपंत्यशरणेषु तमस्सु हंत ॥ २३ ॥

नूपुरकी धुनि करती, लीलाके लिये कमल हाथमें लिये, सब दोष जिससे दूरहों, जिसके लिये ब्रह्मादिक कोटि यत्न करैं सो लक्ष्मी वैकुण्ठमें सुवर्णसे जडित स्फटिकके आलयमें संमार्जन करती हुई लक्षित होती हैं ॥ २१ ॥ सुन्दर २ वापी, तडाग, जिनकी विद्रुमकी सीढ़ी निर्मल जल भरी बावडीपर अपने निजवनमें तुलसीसे दासीसमेत ईश्वरकी आराधना करतीहुई, सुन्दर अलकें, सुन्दर नासिकावारे मुखको देख भगवत्के भोगयोग्य श्रीजी मानती हुई ❋ ॥२२॥ उस वैकुण्ठको वे लोग नहीं जाते जो पापहारी श्रीवृन्दावनविहारीके चरित्रोंको त्यागकर

❋ **कवित**–जिनको कभी स्वप्नमाहिं सुख नाहिं देखो हम उनहीकी सेवामें आठों याम रहना परो ॥ जिनको अपराधी व्याधी सम जानरहे उनहीको कोप नैन नीचेकर सहनो परो ॥ दूर २ करत जिन्हें धोरे नाहिं बैठदियो उनहीके पायनको रातदिन गहनोपरो ॥ धन लक्ष्मीजी तुम्हें धन्य आपको प्रताप मूर्खोंको महाराज महाराज कहनो परो ॥

विषयकी बढ़ानेवाली बुद्धिको विनाश करनेवाली कहानी सुनते हैं. बडे खेदकी बात है कि भाग्यहीन पुरुषोंने जो कुत्सित कथा सुनी उनके सब मनोरथ नाश होते हैं, कोई उनकी रक्षा नहीं करता और वह नरकमें डाले जाते हैं॥२३॥जिस मनुष्यदेहको ब्रह्मादिक चाहैं उस मनुष्यगतिको पाय ज्ञानतत्त्वका विषय धर्मसहित जिस देहसे प्राप्त कर जो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका आराधन नहीं करते वे अज्ञानी मूर्ख इनकी मायासे अत्यन्त मोहित हैं यह महाखेद है॥२४॥जो देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथकी सेवा कर हमसे ऊपर रहतेहैं और करुणामय शीलस्नेहसे परस्पर सुन्दर२भगवत्के पवित्र चरित्र चित्तसे वणन कर अनुरागवश हो, नेत्रोंसे अश्रुपात बहाते हैं और क्षण२में शरीर पुलकायमान होता है.

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ॥ नाराधनं भगवतो वितरंत्यमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥ २४ ॥ यच्च व्रजंत्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ॥ भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृतांगाः ॥ २५ ॥ तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवंद्यं दिव्यं विचित्र विबुधाग्र्यविमानशोचि ॥ आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकुंठम् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ॥ देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्डल किरीटविटंकवेषौ ॥ २७ ॥

ऐसेही ज्ञानी ध्यानी महात्मापुरुषोंको वैकुण्ठधामका वास मिलताहै. और देवतालोग उनको प्रणाम करतेहैं और सदा भगवान् वासुदेव नारायणकी लीलाको देख२मग्न होते हैं. और बारंबार अपने भाग्यकी बडाई करतेहैं॥२५॥जहां समस्त विश्वके गुरु विराजमान चौदह भुवनोंमें एक वन्दन करने योग्य दिव्य२विचित्र देवेन्द्रोंके विमानोंकी अत्यन्तकान्ति उस वैकुण्ठधाममें योगमायाके बलसे सनकादिक मुनिजोकभी प्रथम नहीं देखा था सो वहाँ पहुँचकर परमानंदको प्राप्त हुए ॥२६॥ वहाँकी शोभा देख, सनक सनन्दन अत्यन्त प्रसन्न हुए, जब छः द्वारोंको लाँघ सातवें द्वारपर पहुँचे तहाँ गदा हाथमें लिये अमूल्यरत्नजडित कुण्डल कानोंमें पहिरे, शीशपर किरीट धरे,सुन्दरवेषधारी श्यामतन, एकसा स्वरूप,समान वेष,

द्वारके दो ओर दोनों पार्षद जय, विजय नामक खडे देखे ॥ २७ ॥ ऐसी सुन्दर वनमाला पहिरे, जो सुन्दर विशाल भुजाओंके मध्यमें धरीहुई दीखैं, कुटिल भ्रुकुटी, जैसे अभी कुछ मुखसे बोलैं, लाल२नेत्रोंसे कुछ थोडासा क्रोध किये ऐसे जयविजय मुनियोंके मुखकी ओर देखने लगे॥२८॥ कंचनमें जडित हीरोंके कपाटकी अनुपम शोभा ऐसे पहिले छः द्वारोंको जैसे लांघते आये, उसी भाँति इनको देखते इस द्वारमें भी वे मुनि घुसने लगे, क्योंकि सर्वत्र वे अविषम दृष्टि होनेसे, उनको नहीं रोक सकै जिनको कुछ भी भय नहीं निःशंक चले गये, हरिके द्वारपालोंसे कुछ नहीं बूझा, जैसे सरल लोकमें विचरते थे उसी भाँति वैकुण्ठलोकको समझा ॥ २९ ॥ वे पवनआधारी चारों कुमार बुद्धिमान् दीखैं, पांच वर्षकी अवस्था,

मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तया सितचतुष्टयबाहुमध्ये ॥ वक्रभ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन
च मनाग्रभसं दधानौ ॥ २८ ॥ द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ॥ सर्वत्र तेऽविषमया
मुनयः स्वदृष्टया ये संचरंत्यविहता विगताभिशंकाः ॥ २९ ॥ तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो
विदितात्मतत्त्वान् ॥ वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥ ३० ॥ ताभ्यां मिषत्स्व
निमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमाह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ॥ ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभंग ईषत्कामानुजेन सहसा त
उपप्लुताक्षाः ॥३१॥ मुनय ऊचुः ॥ को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः॥तस्मिन्
प्रशांतपुरुषेगतविग्रहे वां को वाऽऽत्मवत्कुहकयोः परिशंकनीयः ॥ ३२ ॥

आत्मतत्त्वके ज्ञाता, रोकने योग्य नहीं, उन सनकादिकोंको भगवत्के प्रतिकूल शीलवान् दोनों पार्षद बेतसे भगवतके तेजको हँसकर रोकने लगे ॥ ३० ॥ देवताओंमें सुन्दर पूज्यतम श्रीवैकुंठनाथके द्वारपालोंने उनको वैकुंठ जानेसे निषेध किया, तब अत्यन्त प्यारे श्रीमन्नारायणके दर्शनकी इच्छाभंग होनेसे मनमें दुःख मान क्रोधसे लाल २नेत्र कर ॥ ३१ ॥ सनकादिक मुनि बोले कि, तुम दोनों कौन हो? जो बडीभारी भगवान्की परिचर्या कर इस वैकुण्ठमें आता है यहाँ सब वैकुण्ठवासी शीलके सागर और सुखकी राशि हैं, किसीके मनमें अहंकारविकार नहीं है, सब वस्तुको इकसार समझते हैं, तुम वैकुण्ठके मध्य ऐसे विषमस्वभाव होकर कैसे वसते हो? इस वैकुण्ठमें तो प्रशान्त पुरुष श्रीभगवान् वासुदेवके

विग्रह दर्शन करनेको भगवद्भक्त बिना और कौन आसकता है ? जैसे तुम आप कपटी हो ऐसेऔरको भी कपटी समझते हो॥३२॥ इस दिव्य त्रिपादविभूतिमें सब विश्व जिसकी कोखमें,सब आत्माओंके आत्मामें धीर पुरुष किंचित् भेद नहीं रखते जैसे आकाशमें आकाशका भेद नहीं होता,इसलिये तुम हरिकेसे वेषधारियोंमें यह भेद कैसे उत्पन्न हुआ ? हमने जाना कि, तुम परमेश्वरके दास नहीं हो. केवल पेट भरनेवाले हो;

न ह्यंतरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः॥ पश्यति यत्र युवयोः सुरलिंगिनोः किं व्युत्पादितं
ह्युदरभेदि भयं यतोस्य ॥३३॥ तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मंदधीभ्याम् ॥ लोकानितो
व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥ ३४ ॥

जैसे पेटभरनेवाला दूसरे उदरपोषकको देख भय पाता है ऐसे ही तुम हो * ॥ ३३ ॥ इस कारण श्रीवैकुण्ठनाथ परम श्रेष्ठ ईश्वरके पार्षद तुम सरीखे मन्दभागियोंका जिसमें कल्याण हो सो हमने करनेका विचार किया है, इस वैकुण्ठसे तुमलोग उन लोकोंमें जाओ जहाँ भेदभाव

---

* **शंका**-प्राणियोंकी बुद्धिका नाश करनेवाले काम क्रोधादिक अनेक शत्रु वैकुंठमें नहीं हैं. ऐसा हमने सब शास्त्रों और पुराणोंमें सुना है फिर जय विजयकी बुद्धिमें भेद क्यों हुआ कि, यह ब्राह्मण सनक सनन्दनादि वैकुंठनाथ भगवान्के पास जाकर कुछ उत्पात करेंगे तथा दूसरे फिर सनकादिक मुनियोंने लालमुख हो क्रोध क्यों किया ? और वैकुंठलोके काम क्रोध, भेद आदिका समुद्र क्यों होगया ?

उत्तर-भगवान्ने भृगुजीकी स्त्रीको जब मारडाला तब भगवान्के नेत्र क्रोधसे लाल होगये. तब ऐसे ईश्वरके रूपको देखकर सनकादिक भगवान्से बूझने लगे कि, हे वैकुंठ ! आप तो बडे दयालु हो आपमें कामदेवका छोटा भाई जो क्रोध है सो क्यों है श्रीभगवान् सनकादिकसे बोले कि, हे ब्राह्मणो ! सब प्राणियोंकी इन्द्रिय महाप्रबल हैं, योगियोंके चित्तको खैंचकर खोटे मार्गमें डालदेती हैं तो मैं दीन किस गणनामें हूँ प्रबल इन्द्रियोंके वशीभूत होकर मेरे मनमें भी क्रोध आगया, भगवान्के ऐसे सुन्दर: अद्भुत वचनोंको सुनकर सनकादिकने नहीं माना, और बडे अभिमानसे सनकादिकने कहा कि, क्या इन्द्रिय ऐसी प्रबल हैं ? इन्द्रिय कुछ भी नहीं करसक्तीं. भगवान्ने सनकादिकके अभिमानको जानके कुछ कालोपरान्त अपने पार्षद जय विजयको मायाके वश करके सनकादिकोंको रुकवाते हुए और सनकादिकोंके हृदयमें क्रोधकी अग्नि भडकाके जय विजयको सनकादिकोंसे शाप दिलवाते हुए. भगवान्ने यह भी समझा कि, जयविजयको दुःख होगा. परन्तु सनकादिकोंका मान अवश्य दूर होना चाहिये. क्योंकि, भक्तके हृदयमें अभिमानका अंकुर उत्पन्न होना अत्यन्त दुःखदायी है.

दृष्टिसे काम,क्रोध,लोभ,यह पापी रहते हैं येही तीनों इस प्राणीके शत्रु हैं॥३४॥अतिघोर ब्रह्मशाप जो अस्त्रोंके समूहोंसे निवारण न होसकै ऐसा महाघोर शाप मुनियोंके मुखसे श्रवणकर दोनों पार्षद काँपने लगे और अतिकायर होकर उन मुनियोंके चरणोंमें गिड़गिड़ाकर गिरपडे और बोले॥३५॥ हे नाथ! जो दण्ड आपने हमें दिया वह पादयोनि हमें अंगीकार है परन्तु वासुदेवकी अवज्ञारूप हमारा अपराध दूर होजाय चाहे हम नीचसे नीच योनिमें जायँ तौभी हमें आनन्द है परन्तु आपकी कृपासे भगवत्की स्मृतिका नाशक मोह हमको न होय. हमने अज्ञानतासे आपको रोका उसका फल तत्काल नेत्रोंसे देखलिया अब हमारा अपराध क्षमा कीजे और कृपापूर्वक यह वर दीजे यह प्रार्थना की ॥३६॥ इस

तेषामितीरितमुभाववधाय घोरं तं ब्रह्मदंडमनिवारणमस्त्रपूगैः ॥ सद्यो हरेरनुचरावुरु बिभ्यतुस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥ ३५ ॥ भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दंडो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ॥ मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥ ३६ ॥ एवं तदैव भगवानरविंदनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ॥ तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ॥ ३७ ॥ तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ॥ हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकरांबुम् ॥ ३८ ॥ कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशंतम् ॥ श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयंतमिवात्मधिष्ण्यम् ॥ ३९ ॥

प्रकार उसी समय बड़ोंके मनमोहनेहारे कमलनाभ भगवान् अपने पार्षदोंसे अपने प्यारे भक्तोंका अपराध हुआ जान परमहंस महामुनि जिन चरणोंको खोजें उन चरणोंसे श्रीमहालक्ष्मीजीसमेत तहाँ आनकर आप उपस्थित हुए॥३७॥ भगवत्पार्षद श्रीनारायणके उपयोगी छत्रचामर लिये भगवान्के संग आवें नेत्रोंके सम्मुखहुए अपनी समाधिरूप भाग्यसे हंसतुल्य दो पखोंके समान सुखदायक पवनसे चलायमान शुक्लचन्द्रवत् छत्रके मोतियोंकी झालरोंसे जलकर्ण झरतेहैं ऐसे श्रीवैकुण्ठनाथका सबने दर्शन किया॥३८॥सबपर प्रसन्न होनेमें सुमुख,चाहने योग्य सुन्दर तेज प्रेमयुक्त

कटाक्षसे हृदयको स्पश करें, श्याम विशाल वक्षस्थल श्रीजीके शोभित स्वर्गका शिरमुकुट अपने वैकुण्ठको शोभित करते हैं ॥३९॥ कटिपश्चाद्गागपर पीताम्बर धारण करे दमकती हुई क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित भ्रमर गुंजार करें ऐसी मनोहर वनमाला धारण किये चार भुजाधारी जिनमें भुजबन्द कडे विराजैं, एक हाथ गरुड़पर धरे दूसरे हाथमें कमलको घुमाते ॥ ४० ॥ विद्युच्छटाकी द्युति दूर करनेवाले मकराकृत कुण्डलोंसे सुशोभित कपोल, ऊँची नाक, मनोहर सुन्दर मुख, मणिमय किरीट धारण किये, भुजदण्डके समूहोंके मध्य कंठमें अमूल्य हार, कंधेमें कौस्तुभमणि धारे शोभित हैं॥४१॥श्रीमहालक्ष्मीजीकी सब सुन्दरता भगवत्के आगे अस्तश्री दृष्टि आतीहै, अपने भक्तोंकी बुद्धिसे विशेषकरके रचेहुए आभूषण बहुत सुन्दर

पीतांशुके पृथुनितंबिनि विस्फुरंत्या कांच्याऽलिभि विरुतया वनमालया च ॥ वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥ ४० ॥ विद्युत्क्षिपन्मकरकुंडलमंडलार्हगंडस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ॥ दोर्दंडखंडविवरे हरता परार्ध्यहारेण कंधरगतेन च कौस्तुभेन ॥ ४१ ॥ अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिंदिरायाः स्वानां धियां विरचितं बहुसौष्ठवाढ्य म् ॥ मह्यं भवस्य भवतां च भजंतमंगं नेमुर्निरीक्ष्य न वितृप्तदृशो मुदा कैः॥ ४२ ॥ तस्यारविंदनयनस्य पदारविंदकिंजल्कमिश्रतुलसीमकरंदवायुः ॥ अंतर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥४३॥ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्यसुन्दरतराधरकुंदहासम् ॥ लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमंघ्रिद्वंद्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥ ४४ ॥

आभूषण उनको धारेहैं, भक्त चाहैं जैसी सुन्दरता धारण करैंहैं, मेरेअर्थ महादेवके लिये और जो कोई भजन करें, उनके निमित्त शरीरधारी होंय ऐसे श्रीप्रभु लीलानायक श्रीमन्नारायणको देख:दर्शन करते२दृष्टिसे अतृप्त हो सनकादिकोंने आनन्दसे भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें अपने२शिर झुकाय नमस्कार किया ॥४२॥ कमलनयनके पदारविन्दकी केशरमिश्रित तुलसीके सुगन्धकी वायु नासिकाके छिद्रमें प्रवेश कर, ब्रह्मानन्द सेवा करनेवालोंके भी चित्त देहका बहुत क्षोभ करती हुई ॥४३॥ श्रीवैकुण्ठपतिके बहुत सुन्दर अधरोंकी ललाई कुन्दकली समान जिनमें हास्य ऐसे मनोहर

मुखारविन्दको निहार सब आशीर्वादोंको प्राप्त होकर उनके दोनों चरणोंके लाल२ नख मणिसमानका आश्रय देख निरन्तर हृदयमें सनकादिक ध्यान करनेलगे ॥ ४४ ॥ इस संसारमें योगमार्गसे पुरुषोंकी गतियोंको ढूँढ़ें उनके ध्यानयोग्य, बहुत सम्मानित, नयन आनन्ददाता, पुरुषदेह धार दर्शन दे अनन्यसिद्ध औत्पत्तिक अणिमाद्यष्ट सिद्धि सहित श्रीमन्नारायणकी स्तुति करनेलगे॥४५॥ सनकादिक बोले कि,हे अनन्त!जो आप हृदयमें प्राप्तभी हो तो भी दुरात्माओंको दर्शन नहीं देतेहो सो आप हमारे नेत्रोंके सम्मुख प्राप्त हुए हम आपसे उत्पन्न आपने एकान्तमें उपदेश किया ऐसे पितामह ब्रह्मासे जिस समय कर्णके छिद्रसेजन्में उसीसमय अन्तःकरणमें आय प्राप्त हुए॥४६॥ हे भगवन्!परेसे परे आत्मतत्त्वकी हम जानतेहैं

पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ॥ पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः॥४५॥कुमारा ऊचुः ॥ योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनंतराद्धः ॥ यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्राऽनुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥४६॥ तं त्वा विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयंतमेषाम् ॥ यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रंथयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥ ४७ ॥ नात्यंतिकं विगणयंत्यपि ते प्रसादं किं त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ॥ येऽङ्ग त्वदंघ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥४८॥ कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ॥ वाचश्च नस्तुलसिवद्यदितैंघ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरंध्रः ॥ ४९ ॥

सो वर्तमानसे इन भक्तोंकी क्षण२में प्रीतिको रचते हैं,आपकी कृपासे जानना योग्यहै दृढ़ भक्तियोगसे विगत मुनीश्वर आपको जानते हैं ॥४७॥ और आपके अत्यन्त प्रसादकी इच्छा रखते हैं, और आपकी भ्रुकुटीसे भयमाननेहारे इन्द्रकी पदवीका भी आदर नहींकरते. हे भगवन्! आपकी कथा, कीर्तन, तीर्थ, यश होय ऐसे कर्ममें कुशल रसज्ञ तुम्हारे चरणोंकी शरण होते हैं॥४८॥हे भगवन्!आपके भक्तोंको शाप दिया सो हमारा भलेही नरकोंमें वास होय,परन्तु चित्त भ्रमरसमान सदा तुम्हारे पदपद्मोंमें रमा रहै,तुलसीसदृश आपसे सम्बन्ध रखनेवाली तुम्हारे चरणकी शोभा

हमारी वाणी कहै, और कर्णके छिद्र आपके गुणगणोंसे पूरित रहैं ॥ ४९ ॥ हे विपुलकीर्ते! जो यह रूप आपने प्रगट किया इससे
हमारी दृष्टिको अत्यन्त आनन्द हुआ इस कारण आपको वारंवार नमस्कार है, अजितेंद्रियोंको अप्रगट हो तो भी आप हमारे
सम्मुख हो ॥ ५० ॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीवैकुण्ठमहिमविप्रशापवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
दोहा—सोलहमें हरि सान्त्व सुनि, मुनि मन मानो हार। दैत्यदेहपर भी मुनिन्ह, कीन्ही कृपा अपार ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले, इस प्रकार जब
मुनीश्वरोंने जगदीश्वरकी स्तुति की, तब योगाभ्यासी मुनियोंकी अत्यन्त सराहना कर श्रीवैकुण्ठवासी वासुदेव॥१॥ भगवान् बोले, इन दोनों

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ॥ तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरु
दयो भगवान्प्रतीतः ॥५०॥ इति श्रीमद्भा०म०तृतीय०पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तद्गृणतां तेषां मुनी
नां योगधार्मिणाम् ॥ प्रतिनंद्य जगादेदं विकुंठनिलयो विभुः ॥१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विज
य एव च ॥ कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रांतामतिक्रमम् ॥२॥ यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ॥ स एवानुमतो
स्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥३॥ तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे ॥ तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः
॥४॥ यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ॥सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हंति त्वचमिवामयः ॥ ५ ॥

पार्षदोंने आपका अपराध किया, और मेरे धर्मपर कुछ ध्यान नहीं दिया इसकारण ये मेरे भी अपराधी हैं ॥ २ ॥ मेरे अनुवर्ती जो आप हैं,
और आपने इनको दण्ड दिया; यह बहुत अच्छा किया, मेरी भी यही सम्मति है क्योंकि जो लोग विप्रोंका अनादर करते हैं वे मुझकोभी
प्रिय नहीं लगते ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परमदेवता हैं, और सदा मेरा चित्त ब्राह्मणोंके चरणोंमें रहता है, मेरे इष्टदेव ब्राह्मण हैं इसलिये आपको
मैं प्रसन्न करूँगा, क्योंकि हमारे पार्षदोंने जो आपका अपराध किया है सो मैंने ही किया है इसकारण मैं अपने शिर धरताहूँ ॥४॥ कि, जिसके
अनुचर अपराध करते हैं, तो लोक उसके स्वामीको ही दोष देते हैं उनका नाम कोई नहीं लेता । असाधुवाद सब कीर्तिका नाश करता है कि, जैसे

श्वेतकुष्ठका रोग सब शरीरको बिगाड देताहै॥५॥जो मुझ श्रीमन्नारायणका सुधासागरसमान निर्मल यश श्रवणमें स्नान करना जगत्के श्वपचपर्य्यन्तको क्षणमात्रमें पावन पवित्र करै है यह सब ब्राह्मणोंकी ही सेवाका प्रताप है, और यह कीर्ति और वैकुण्ठकी पदवी आपही लोगोंके प्रसादसे प्राप्त हुई,इसकारण तुम्हारी वृत्तिके विपरीत जो हमारी भुजातुल्य इन्द्रादि हों तौ भी उस समय मारडालो कुछ विचार मत करो॥६॥जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करके मेरे चरणकी पवित्र रजसेशीघ्र सब पाप नष्ट होते हैं,ब्राह्मणोंकी ही सेवा करके यह शील और बड़ाई विरक्तता मुझको प्राप्तहुई और इसीकारणलक्ष्मी मेरा त्याग नहीं करती, जिस लक्ष्मीके लवमात्र अनुग्रहसे ब्रह्मादिक नित नये नियमोंको करते हैं ॥७॥यज्ञमें यजमानकी

यस्यामृतामलयशश्श्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुंठः सोहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिद्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥६॥ यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ॥ न श्रीर्विरक्तमपि मा विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहंति ॥७॥ नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन ॥यद्ब्राह्मणस्य मुखितश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥ ८ ॥ एषां बिभर्म्यहमखंडविकुंठयोगमायाविभूतिरमलांघ्रिरजःकिरीटैः ॥ विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणांभः सद्यः पुनाति सह चंद्रललामलोकान् ॥ ९ ॥ ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ॥ द्रक्ष्यंत्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्गृध्रा रुषा मम कुषंत्यधिदंडनेतुः ॥ १० ॥

चरुपुरोडाशादि हवि,अग्निमुखसे भोजन करतीहै ऐसे मैं भोजन नहीं करता हूँ,जैसा घृत टपकै ऐसा मोहनभोगादिक ग्रास२में रसका स्वादपूर्वक भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके मुखसे हम पाते हैं, और निज कर्मफलोंसे मैं उनपर प्रसन्न होता हूँ॥८॥जिन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दोंके निर्मल रज अखण्ड अकुंठित योगमायाका वैभववाला और चरणोदकरूप गंगासे शिवसहित लोकोंको पवित्र करनेवाला मैं किरीटोंपर धारण करता हूँ, उन ब्राह्मणोंका अपमान कौन करसक्ताहै?* ॥९॥मेरे शरीरके सबकामपूरक मेरे ब्राह्मण जिनका मेरे बिना कोई रक्षक नहीं जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको

---

* **कवित्त**—विघन विनाशै भवपाश होत नाशै भाशै पुण्यपुञ्जकी प्रकाशै रंगरंगाके ॥ सुखकी समाजै उपराजै साज छाजै क्षितिवनसे गराजै राजै शीश ईशनंगाके ॥ कहै पद्माकर सुजान करशानै जानै तानै मनज्ञान भोग अ.नै देव अंगाके ॥ सुन्दर सुभंगा नित अमित अभंगा अछे आछे ओघ भंगा रात रंगा देव गंगाके ॥

जो भेदबुद्धिसे देखते हैं उनकी पापसे नष्ट दृष्टि है ऐसे ब्राह्मणद्रोहियोंको मेरे दंडदाता यमके सर्पवत् क्रोधी गीध रोषपूर्वक चोंचोंसे छेदन करते हैं ॥ १०॥ और जो कठोरभाषी ब्राह्मणोंको ईश्वरकी समान पूजतेहैं और हृदय जिनके तुष्ट स्मितसुधासिक्त पंकजसे मुखवाले प्रेमशोभित वाणीसे स्तुति करते हैं, मानो वे मुझको संबोधन करते हैं, उन्हीं महात्मापुरुषोंने मुझको वशमें कर रक्खा है जैसे भृगुजीने मेरे हृदयमें लात मारी तब मैंने कुछ नहीं कहा, इसी भृगुलताके चिह्नसे ऋषि मुनियोंमें मेरी प्रतिष्ठा हुई ॥ ११ ॥ ब्राह्मण मेरा शरीर है जो धीर पुरुष हैं वे इसमें अन्तर नहीं समझते और जो लोग ब्राह्मणोंमें और मुझमें भेद समझते हैं वे अभागे यमपुरके भागी होते हैं, और जन्मानुजन्म नरकमें वास करते हैं, सो इन पार्षदोंने मेरे अभिप्राय और मेरे प्रभावको नहीं जाना, ये दोनों पार्षद तुम्हारे अपराधकी उचित गतिको शीघ्र प्राप्त होकर मेरे निकट आवेंगे, यह मेरी कृपा है

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयंतस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ॥ वाण्याऽनुरागकलयाऽऽत्मजवद्गृणंतः संबोधयंत्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥ ११ ॥ तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ॥ भूयो ममांतिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥ १२॥ ब्रह्मोवाच॥ अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् ॥ नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माऽप्यतृप्यत॥ १३॥ सतीं व्यादाय शृण्वंतो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम्॥ विगाह्याऽगाधगंभीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम्॥ १४॥ ते योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम्॥ प्रोचुः प्रांजलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः॥ १५॥ ऋषय ऊचुः ॥ न वयं भगवन्विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ॥ कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥ १६ ॥

कि, मेरे भृत्योंको थोड़े ही काल विवास रहै; क्योंकि मेरा विरह नहीं सहिसकेंगे॥ १२॥ ब्रह्माजी बोले कि, सुन्दर प्रकाशित ऋषिकुलयोग्य विष्णुकी मनोहर वाणी सुनकर क्रोधसर्पसे डसे हुए ऋषियोंका आत्मा तृप्त न हुआ॥ १३॥ सुन्दर, श्रेष्ठ, थोड़े अक्षर, अधिक गम्भीर, अत्यन्त गौरववाली, भगवान्की वाणी कानसे सुने परन्तु उसका अभिप्राय न समझे कि, श्रीवैकुण्ठनाथकी इच्छा क्या है हमारी बडाई करते हैं, या बुराई करते हैं, अथवा हमारे शापको छुटाना चाहते हैं वा अधिक किया चाहते हैं॥ १४॥ योगमाया और ब्राह्मणोंका महा उदय जान हाथ जोड प्रसन्नवदन रोमांचित ॥ १५॥ सनकादिक ऋषि बोले कि, हे भगवन्! हे देव! हे आनन्दमूर्ते! तुम्हारे करनेकी इच्छाको हम नहीं जानते, आपने हम पर बडा अनुग्रह किया

जो हमें दर्शन दिया, और हमसे बोले॥ १६॥हे नाथ! आप निश्चय करके ब्रह्मण्य होय, आपके परम देवता ब्राह्मण हैं, आप देवताओंके देव आत्मदेव हैं॥ १७॥सनातनधर्म आपसे ही है, आप ही अवतार धार संसारकी रक्षा करते हैं, और परमगुप्त धर्मके निर्विकाररूप आप ही हैं॥ १८॥निवृत्तिमार्गमें लगेहुये योगीजन जिनके अनुग्रहसे अनायास तरजाते हैं, सो आप परसे पर जो हैं वे भी अनुग्रह करते हैं ॥ १९ ॥ जो लक्ष्मी क्षण २ आपके चरणोंकी सेवा करती हैं, और धनार्थी सब उन पदोंकी रजको शीशपर धारण करते हैं और धनियोंसे अर्पित तुम्हारे चरणारविन्दमें तुलसीकी

ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो ॥ विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥ १७ ॥ त्वत्तः सनातनो धर्मो
रक्ष्यते तनुभिस्तव ॥ धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकल्पो भवान्मतः ॥ १८ ॥ तरंति ह्यंजसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात्॥
योगिनः स भवान्किं स्विदनुगृह्येत यत्परैः ॥ १९ ॥ यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा
धृतपादरेणुः ॥ धन्यार्पितांघ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥२०॥ यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्त
मानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः ॥ स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥
॥२१॥ धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुगे त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ॥ नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च
सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥ २२ ॥ न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदिहात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ॥
तर्ह्येव नंक्ष्यति शिवस्तव देव पंथा लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम्॥ २३ ॥

नवीन मालाक धाम भ्रमरपंक्तिकी नाईं वैकुण्ठकी इच्छा श्री जी सदा करतीहैं ॥२०॥ एकांत चरित्रवालोंसे अनुवर्तमान श्रीजीको आप अत्यन्त आदर नहीं करते हो, परन्तु परमभागवतोंमें तुम्हारा प्रसंग ब्राह्मणोंके मार्गकी पुण्यरजसे पुनीत हो श्रीवत्सचिह्न भृगुलताका चिह्न धारण कर तुम सब ऐश्वर्यके पात्र हुए॥ २१ ॥आप अपने धर्मके तीनों युगोंमें तप, शौच, दया, तीनों चरणोंसे चराचर इस विश्वको ब्राह्मणदेवताओंके लिये निश्चय धारण करते हो और उनके घातक रज, तमको सब वरदायक तनुसे आप हमारे दूर करते हो ॥ २२ ॥ हे प्रभो! आपके रक्षायोग्य उत्तम

ब्राह्मणोंके कुलोंकी जो अत्यन्त पूजन करके कोमलवाणीसे आप द्विजोत्तमोंकी रक्षा न करते,और मर्यादा न बाँधते, तो कल्याणरूप आपका नष्ट हो जाता, श्रेष्ठ पुरुष जो कार्य करते, हैं उनका प्रमाण सब लोग मानते हैं* ॥२३॥ अत्यन्त शुद्ध सत्त्वमय,क्षेमविधान करनेको जीवोंके लिये अपनी शक्तियोंसे जिन्होंने धर्मप्रतिपक्षी दूर किये हैं आपको ब्राह्मणोंका पूजन करना योग्य ही है, त्रिगुणमायाके स्वामी विश्वभर्ताका तेज कुछ ऐसी बातोंसे नष्ट नहीं होता, आपका नमस्कारादिक करना भी एक आनंद है ॥ २४ ॥ हे अधीश! इन दोनोंको और दंडविधान करो अथवा कोई कपटरूप वृत्ति इनसे करानी चाहिये,और जो हमारे योग्य उचित दंड हो सो हमें दीजिये,जो निरपराधी पार्षदोंको हमने शाप दिया॥२५॥

तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धतारेः ॥ नैतावता अधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः॥२४॥यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम्॥ अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दंडो येऽनागसो वयमयुंक्ष्महि किल्बिषेण॥२५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरंभसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ॥ भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच॥ अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानंदभाजनम् ॥ वैकुंठं तदधिष्ठानं विकुठं च स्वयंप्रभम्॥२७॥भगवंतं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ॥ प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसंतो वैष्णवीं श्रियम् ॥२८॥ भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् ॥ ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्राह्मणो ! ये दोनों असुरयोनिको प्राप्त होकर फिर शीघ्र ही मेरे समीप आवेंगे क्रोधावेश समाधिबन्धनके योगका यही फल है, इनको आपने कुछ अनुचित शाप नहीं दिया.बरन् मैंने ही आपके द्वारा इनको शाप दिलवाया है,हे ब्राह्मणो!आप तो सब जानते हो ॥ २६॥ ब्रह्माजी बोले कि, सनकादिक सब मुनिजन नेत्रानंदपात्र श्रीवैकुण्ठनाथ और वैकुण्ठलोक, स्वयंप्रकाश स्थान देखकर ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्की प्रदक्षिणा दे प्रणाम कर,आज्ञाले वैष्णवी श्रीशोभाकी प्रशंसाकर परमानन्दित हो चले गये॥२८॥तब उन दोनों पार्षदोंसे श्रीलक्ष्मीनाथजी

---

* ''यद्यदाचति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते '' ॥

बोले कि,तुम कुछ भय मत करो,तुम्हारा सबप्रकारसे आनन्द होगा तुम्हारा सन्ताप देख यद्यपि मैं ब्रह्मतेजको दूर कर सकताहूँ परन्तु यह मुझको उचित नहीं ॥२९॥ जब हम उपरामको प्राप्त हुए तब आनन्दसे क्रोधित होकर श्रीलक्ष्मीजीने प्रथम ही कहा था कि,सनत्कुमारादिक मुनि द्वारपर आवेंगे और उनको जय विजय पार्षद रोकेंगे हे पार्षदो ! अपने क्रोधके योगसे ब्राह्मणोंके शापसे मोक्ष पाकर थोडे कालमें मेरे समीप आओगे ॥३०॥ इसप्रकार दोनों द्वारपालोंको समझाय बुझाय विमानोंकी पंक्तियोंसे शोभित सबसे सुन्दर श्रीलक्ष्मीजीसमेत श्रीवैकुण्ठनाथने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ वे दोनों पार्षद पवित्रात्मा महादुस्तर हरिलोकसे विप्रोंके शापसे महाविस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ हे पुत्रो! जिससमय वह

मयि संरंभयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ॥ प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥ ॥ ३० ॥ द्वास्थावादिश्य भगवान्विमानश्रेणिभूषणम् ॥ सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥ ३१ ॥ तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः ॥ हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥ ३२ ॥ तदा वैकुंठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ॥ हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥ ३३ ॥ तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ॥ दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३४॥ तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ॥ आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥ ३५ ॥ विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ॥ क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वैकुण्ठसे गिरे तो विमानोंके आगे महा हाहाकार हुआ वेही दोनों विष्णुके पार्षद दितिके उदरमें कश्यपजीके महातेजरूप प्रविष्ट हैं ॥३३॥३४॥ उन दोनों असुरोंके तेजके आगे तुम लोगोंके तेजका तिरस्कार होगया इसी कारण संसारमें तुम्हें अन्धकार दिखाई देता है अब तुम उनहीं वैकुण्ठनाथका भजन करो,वे ही श्रीनाथ, भक्तहितकारी, दीनवत्सल, दीनानाथ, तेजरूप तुम्हारे तेजको बढ़ावेंगे ॥ ३५ ॥ विश्वकी उत्पत्ति स्थितिका हेतु उनकी मायाका योग आद्य योगीश्वरोंसे न जानाजाय,वेही आदिपुरुष अविनाशी सर्वशक्तिमान् भगवान् वासुदेव तुम्हारा क्षेम करेंगे,

हमारे विचारसे क्या होगा!वे त्रिगुणोंके स्वामी हैं ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां वैकुण्ठनाथकर्तृकवैकुण्ठब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥दोहा–इस सत्रह अध्यायमें,सुमिर रमापति कांत।हिरणकशिपु हिरणाक्षको,वरणौं जन्मवृतान्त ॥ १७॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! ब्रह्माका कहाहुआ दितिके गर्भका सर्व वृत्तान्त और ईश्वरके अवतारकी कथा सुन सब देवता अपने २ स्थानको चलेगये ॥ १॥ दितिने सौ वर्षतक गर्भ धारण किया परन्तु पतिके वचनोंसे पुत्रोंकी ओरसे शंकित रहती थी;जब शतवर्ष पूरेहुए तब सती साध्वी दितिने दो पुत्र उत्पन्न किये॥२॥उनके जन्म लेतेही धरती व आकाश व अन्तरिक्ष इन लोकोंमें बहुत भय सूचना करनेवाले अनेक प्रकारके उत्पात होनेलगे॥३॥पर्वतों सहित भूचाल होनेलगा, दशों दिशाओंमें अग्निसी प्रज्वलित होगई. उल्कासहित; जहाँ तहाँ वज्रपात होनेलगे, आर्तिके हेतु केतुका उदय हुआ ॥ ४ ॥ बारम्बार सर्पवत् फुंकार करतेहुए चारों ओरसे महाभयंकर पवन चलने लगे, उस महाप्रचण्ड समीरके वेगसे वृक्ष जडसहित उखड २ पक्षियोंकी तुल्य उड़नेलगे ॥ ५ ॥ मूसलधार जलसे और दामिनीकी द्युतिसे सूर्यकी संपूर्ण प्रभा नष्ट होगई, आकाशमें ऐसा अँधियारा था कि, कोई स्थान नहीं दृष्टि आते थे॥६॥समुद्रके वारिमें महाघोर शब्द उठने लगे व लहरें उछलने लगीं. जिससे मकरादिकोंका चित्त चलायमान होगया, वापी, कूप, तडाग, जिनमें पंकज खिल रहे; गम्भीर नीर झकोर रहे, सो सब सूख गये, अथाह

मैत्रेय उवाच ॥ निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शंकयोज्झिताः ॥ ततः सर्वे न्यवर्तंत त्रिदिवाय दिवौकसः ॥ १ ॥ दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशंकिनी ॥ पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥ २ ॥ उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः ॥ दिवि भुव्यंतरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥ ३ ॥ सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ॥ सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥ ४ ॥ ववौ वायुः सुदुस्स्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ॥ उन्मूलयन्नगपतीन्वात्याऽनीको रजोध्वजः ॥ ५ ॥ उद्धसत्तडिदंभोदघटया नष्टभागणे ॥ व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥ ६ ॥ चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः ॥ सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपंकजाः ॥७॥

नदियें चलायमान होगईं, सूर्यचन्द्रमामें मण्डल दिखाई देनेलगे बारम्बार विना बादल गर्जनशब्द सुनाई आनेलगा, राहु, केतु, सूर्यचन्द्रमाको विनाही योगहुए ग्रसनेलगे,पहाडोंमें रथकेसा शब्द होनेलगा ॥७॥८॥ शृगाल उलूक दिनमेंही महाभयंकर शब्द करनेलगे, और गीदडी ग्रामोंके भीतर आन आन मुखसे भयंकर अग्नि उगलनेलगीं, और अति डरावनी बोली बोलनेलगीं, अग्निका तेज मंद पडगया ॥ ९ ॥ सारंगीकेसा शब्द ऊपरको मुख उठाउठाकर और नेत्र बन्दकर२ अनेक अनेक प्रकारकी वाणी श्वान बोलने लगे॥१०॥हे विदुर!गर्दभ तीक्ष्ण खुरोंसे पृथ्वीको खोदते हुये और भयंकर शब्द करते हुये मत्त होकर चारों तर्फ दौडने लगे उनके चिल्लानेका शब्द सुन२कर हृदय विदीर्ण होता था ॥११॥गधोंके रेकनेके भयानक कोलाहलसे पक्षी भयभीत हो खोतोंसे गिर २ कर घरोंमें वनमें विष्ठा मूत्र बारम्बार करने लगे ॥ १२ ॥ त्रासके मारे गायोंके थनोंसे रुधिर बहनेलगा, बादलसे पीब और राधकी वर्षा होनेलगी,देवतांओंकी प्रतिमायें मंदिरोंमें रुदन करने लगीं,विना पवन वृक्ष उखडनेलगे ॥ १३ ॥ पुण्यतम नक्षत्रगण, गुरु, बुध आदि ग्रहोंकी दीप्ति, और क्रूर मंगलादिक वक्रगतिसे विपरीतचालद्वारा परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ १४ ॥ उस तत्त्वके न जाननेवाली प्रजाअनेक२उत्पात देखकर डाहके मारे प्रलयकाल समझ अत्यन्त शोक करनेलगीं, परन्तु ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंने कुछ भय नहीं माना ॥ १५ ॥ वह आदिदैत्य बलपूर्वक अपने पुरुषार्थको प्रगट कर २ पाषाणसम शरीरसे पर्वतकी भाँति बढ़नेलगे ॥ १६ ॥

मुहुः परिधयोऽभूवन्सराह्वोः शशिसूर्ययोः ॥ निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥ अंतर्ग्रामेषु मुखतो वमंतो वह्निमुल्बणम् ॥ सृगालोलूकटंकारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः॥९॥ संगीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् ॥ व्यमुंचन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥ १० ॥ खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नंतो धरातलम् ॥ खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥११॥ रुदंतो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगाः ॥ घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥१२॥ गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ॥ व्यरुदन्देवलिंगानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम् ॥ १३ ॥ ग्रहान्पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः ॥ अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातानतत्तत्त्वविदः प्रजाः ॥ ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम्॥१५॥तावादिदैत्यौ सहसाव्यज्यमानात्मपौरुषौ॥ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव॥१६॥

जिनके सुवर्णके किरीटका अग्रभाग स्वर्गको स्पर्श करता था. इससे सब दिशाओंको अवरोध किये दमकते बजुल्ले भुजाओंमें पहिरे, चरणोंसे पृथ्वी कँपाते,सुन्दर तगडीशोभित कमरसेसूर्यको उल्लंघन कर स्थित हुए (अर्थात् कोंधनीकी चमक सूर्यप्रभासे अधिक थी) ॥ १७ ॥प्रजापति कश्यपजीने उन दोनोंका नामकरण किया,जो कि पहिले कश्यपसे ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम प्रजागणने हिरण्यकशिपु कहकर पुकारा, और जो दितिसे पहिले हुआ उसका नाम हिरण्याक्ष कहनेलगे* ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपुने अपनी भुजाओंके बलसे और ब्रह्माके वरदानसे

दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदंगदाभुजौ ॥ गां कंपयंतौ चरणैः पदेपदे कट्या सुकांच्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥ १७ ॥ प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत ॥ तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥ १८ ॥ चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ॥ वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥ हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ॥ गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥ २० ॥ तं वीक्ष्य दुस्सहजवं रणत्कांचननूपुरम् ॥ वैजयंत्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥ २१ ॥ मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ॥ भीता निलिल्यिरे देवास्तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥ २२ ॥

त्रिलोकीके लोकपालोंको अपने वशमें करलिया;वे बड़े भारी बलवान् सबसे अवध्य योधा हुए ॥१९॥ हिरण्याक्ष उसका प्यारा भाई दिनरात उससे प्रीति रखता;वह गदाहाथमें लेकर स्वर्गमें गया, और युद्धकी इच्छासे किसी रणधीरको खोजने लगा॥ २० ॥ वे असहवेगी शब्दायमान सुवर्णके नूपुर वैजयन्ती माला पहिरे,और कन्धेपर महाभयानक गदा धरे॥२१॥शूरता और बलसे बढ़ाहुआ अभिमान,जिसपर कोई अंकुश नहीं

---

*जिससमय वीर्य योनिके पुष्पमें प्रवेश करताहै तो वीर्य दो भागसे होकर पहिले पीछे होकर प्रवेश करताहै तब यम(दोगर्भ)होतेहैं फिर वह दोनों गर्भ माताके पेटसे दूसरे क्रमसे निकलते हैं. अर्थात् जो बिन्दु गर्भाधानके समय प्रथम योनिके पुष्पमें पडता है,उस बिन्दुका गर्भ माताके गर्भाशयसे पीछे निकलताहै और जो बिन्दु योनिपुष्पमें पीछे गिरताहै उसका गर्भ पहिले निकलता है,सोई पिण्डसिद्धिमें कहाहै कि,"यदा विशेद्द्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत् । द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्ययात् ॥१॥" अर्थ–जिससमय गिरता हुआ वीय दोभागसे होकर पुष्पमें प्रवेश करताहै तो दोगर्भ होतेहैं और जन्म दूसरे क्रमसे होता है।

जो किसीका भय न माने,उनके भयसे देवता लोग कंदराओंमें जा छिपे,जैसे गरुडके भयसे उरग बिलोंमें घुस जातेहैं॥२२॥दोनों भ्राताने अपने तेजसे देवताओंको भागा जान फिर दैत्यराज इन्द्रसमेत देवगणोंको देखकर अत्यन्त गम्भीरनाद करनेलगे॥२३॥वहाँसे लौट क्रीड़ाकी इच्छाकर गम्भीर शब्द करके महाबली मत्तहाथीकी सदृश समुद्रमें घुसकर स्नान करने लगे ॥२४॥इनके जलमें घुसतेही वरुणके सेनापति जलके गण अधीर बुद्धिवाले भ्रमसहित उनके तेजसे ताडित हो घबराये हुए बहुत दूरको भाग गये ॥२५॥ हे तात ! वे दोनों महाबली अनेक वर्षतकपवनप्रेरित सागरकी लहरोंको बारंबार लोहेकी गदासे मारते थे, और जल उछल२आकाशको जाता था, उसके वेगसे नभचर अधीर हो२ करनीरमें पतित

स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ॥ सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥ २३ ॥ ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन्गंभीरं भीमनिस्स्वनम् ॥ विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ॥ अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥ स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीञ्छ्वसनेरितान्मुहुः ॥ मौर्व्याऽभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥ २६ ॥ तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ॥ स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥ २७ ॥ त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ॥ विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽयजत्प्रभो ॥ २८ ॥ स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः ॥ रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदंगोपशमं गता वयम् ॥ २९ ॥

होते थे; और जलमें गदा लगनेसे जलचर व्याकुल हो२कर अपने प्राण छोडते थे;इसप्रकार जलविहारकर प्रचेता वरुणकी विभावरी नाम्नी पुरीको गये ॥ २६ ॥ वहाँ जाकर असुरलोकपालक जलके गणोंके ऋषभ प्रचेताको प्रणामकर मुसकाकर हँसे,और नीचोंकी नाईं बोले हे अधिराज!हमसे युद्ध करो!॥२७॥हे प्रभो!तुम सब लोकपालोंके स्वामी महा यशस्वी दुर्मदवीर मानियोंके पराक्रमनाशक हो.सो आपने प्रथम सब दैत्यदानवोंको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था॥२८॥सो इसप्रकार अत्यन्त मदसे वैरसे भगवान् जलके पति हँसाये गये तब वरुण बहुत उठेहुए क्रोधको अपनी

बुद्धिसे शान्तकर बोले कि हे दैत्येन्द्र! अब तौ मैं युद्धादिककी सब कुशलता छोड़कर भगवत्के भजनमें सदा लौलीन रहताहूँ मैं तुम्हारी समान योद्धा
नहीं हूँ॥२९॥हे असुराधिप! पुरातन पुरुषसे अधिक रणविद्यामें चतुर और दूसरा कोई मुझको दृष्टि नहीं आता वे संग्राम करनेमें बडे विचक्षण हैं, वेही
आपका मन संतुष्ट करेंगे, आप उनके पास जाइये, आपसरीखे मनस्वी सदा उनकी स्तुति करतेहैं॥३०॥उन महावीरके समीपजा गर्व नष्टकर रणभूमिमें
शृगाल कुत्तोंके मध्यमें तुम सोवोगे; जो परमात्मा तुम सरीखे असंतोंके नाशार्थ सज्जनोंके ऊपर कृपा करके अनेक अवतारोंको धारण करते हैं॥३१॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥दोहा—अष्टादश अध्यायमें,

पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ॥ आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवा
दृशाः ॥३०॥ तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः॥यस्त्वद्विधानामसतां प्रशांतये रूपाणि धत्ते सद
नुग्रहेच्छया ॥३१॥ इति श्रीमद्भा०म०तृ०हिरण्याक्षदिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥ मैत्रेयउवाच॥तदेवमाकर्ण्यजले
शभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः॥ हरेर्विदित्वा गतिमंग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥ ददर्श तत्रा
भिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ॥ मुष्णंतमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥

दैत्यराज ह्वै क्रुद्ध। जाय रसातलमें कियो, श्रीवराहसों युद्ध॥१८॥मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर! वरुणके दीन वचन सुन महामनस्वी अभिमानी
वरुणको कुछ वस्तु न मानकर नारदजीसे बूझा कि वाराहजी कहाँ रहतेहैं? नारदजी बोले कि श्रीवाराह भगवान् रसातलमें वास करते हैं, नारदजीके
वचनका विश्वास मान हिरण्याक्षने अतिद्रुतगतिसे पातालमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ तहाँ सब ओरसे जीतनेवाले, धराधारी, डाढ़के अग्रभागपर
पृथ्वीको धर ऊपरको उठाये लाते थे, अपने नेत्रोंकी लाल२ शोभासे दैत्योंके तेजको दूरसे नाश करनेवाले श्रीवाराहभगवान्को देख हिरण्याक्ष
हँसकर बोला, कि वनवासी सूकर तुमहीं हो, दूसरा अर्थ—इस स्तुतिमें सरस्वती करतीहै वनगोचर (जलशायी; नारायण) मृग (जिन्हें योगिजन

खोजतेहैं)॥२॥फिर हिरण्याक्ष बोला कि,ब्रह्माने यह पृथ्वी हमको समर्प्पण करदीहै सो छोडदो,तुम अज्ञानी हो,मेरे सम्मुख तुम मंगलको प्राप्त नहो सकोगे.दूसरा अर्थ यह है;हे सर्वज्ञ!हे सुराधम!हे सुरोत्तम! हे सूकराकृते!मेरे सम्मुख इस पृथ्वी समेत तुम मंगलको प्राप्त न हो सकोगे॥३॥हेपरोक्षजित! तुम हमारे सपत्नोंके नाशार्थ उत्पन्न हुए हो,सो तुम मायासे असुरोंका संहार करते हो.हेचतुर!तुम्हारा बल योगमायाहै सो भी थोड़ाहै,अब मैं तुमको मारकर अपने सुहृदोंका शोक दूर करूंगा ॥ ४ ॥ तुम्हारे शिरको तोडनेवाली मेरी भुजा जब गदासे तुम्हारा मस्तक चूर्ण करेगी फिर जो तुम्हें भेंट देनेवाले ऋषि व देवता हैं वे स्वयंही निर्बल होजायँगे॥५॥शत्रुके दुष्ट वचन रूप शस्त्रोंसे व्यथित शरीर डाढ़के अग्रभागसे पृथ्वीको भीत देख उसके

आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुंच नो रसौकसां विश्वसृजेयमार्पिता ॥ न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥ त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हंत्यसुरान्परोक्षजित् ॥ त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः॥४॥ त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ॥ बलिं हरंत्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यंत्यमूलाः॥५॥स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ॥ तोदं मृषन्निरगादंबुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥ ६ ॥ तं निस्सरंतं सलिलादनुद्रुतो हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ॥ करालदंष्ट्रोऽशनिनिस्वनोऽब्रवीद्गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥ स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ॥ अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥ ८ ॥ परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं कांचनचित्रदंशम्॥मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदंतं दुरुक्तैः प्रचंडमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥ ९ ॥

बुरे वचनोंको मृषा मान जलसे बाहर निकले, जिसप्रकार ग्राहोंसे मार खाकर हस्तिनी सहित गज निकलता है॥६॥सुवर्णके रंग समान बाल, डाढ़ महाकराल, वज्रके समान शब्दयुक्त विकटरूप वाराहजीको जलसे निकलते देख हिरण्याक्ष उनके पीछे धावमान हुआ. यथा गजराजके पीछे मगर दौड़ता है, और बोला कि,अरे निर्लज्ज ! दुष्टोंको कौनसा कर्म निंदित है? ॥ ७ ॥ ब्रह्मा जिनकी स्तुति कर रहे. और देवता जिनपर फूल बरसा रहे थे ऐसे वाराहजीने पृथ्वीको जलपर धरकर उसको अपनी आधाररूप शक्तिसे स्थित किया ॥ ८ ॥ वाराहजीके पीछे गदा हाथमें लिये,

सुवर्णके आभूषण पहिरे वह सोनेंहीका कवच धारणकिये और खोटे वचनोंसे बारंबार हृदयमें पीड़ा देताहुआ चलाआता था, उस हिरण्याक्षसे प्रचण्ड क्रोधवाले वाराहजी हँसकर बोले ॥ ९॥ श्रीभगवान्जी बोले, हिरण्याक्ष! तू सत्य कहता है हम वनवासी सूकरहैं परन्तु तुझ सरीखे श्वानोंको खोजते फिरते हैं, रे अभद्र ! जो मृत्युरूप पाशमें बँधेहुए हैं उनके कुवचनोंको कभी धीरलोग ग्रहण नहीं करते॥ १०॥ यह तैंने सत्य कहा कि, यह धरती तेरी है सो रसातलवालोंकी धरोहरके पचानेवाले हमही हैं, जब देखा कि भागनेसे निस्तार नहीं तब तुम्हारे सम्मुख समुद्रके तीर अब संग्राममें स्थित होगये, क्योंकि तुझ सरीखे वीरोंसे वैर बिसाहकेभागकर हम कहाँ जांयगे ॥ ११॥ तुम पदाति रथियोंके स्वामी हो, यूथपोंके स्वामी हो, अब

श्रीभगवानुवाच ॥ सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ॥ न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णंत्यभद्र ॥१०॥ एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्राविताास्ते ॥ तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥११॥ त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ॥ संस्थाप्य चास्मान्प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥ १२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ॥ आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीडमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥ सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेंद्रियः ॥ आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥

तर्क और विवादको तज हमारे मारनेका कोई उपाय शीघ्र कीजे जो अपने बन्धुगणोंसे उऋण हो उनके आंसू पोंछो. जो वीर अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते, वे सभामें बैठनेके योग्य नहीं होते ॥ १२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान्ने जब ऐसे आक्षेपकर क्रोधसे अत्यन्त उपहास किया उससमय दानवेन्द्र महाक्रोधमें भरगया, जैसे काला भुजंग क्रीड़ा करनेको क्रोध करै ॥ १३ ॥ क्रोधसे इन्द्रियें चलायमान होगईं, गंभीर श्वास भरर घोर गदाले वह वाराहजीकी ओरको धाया, और महा डरावनी नाद करके बड़े वेगसे वाराहजीकी वक्षस्थलमें गदा प्रहार किया ॥ १४॥

वैरीकी चलाई हुई छातीपर आती हुई गदाको बचाकर तिरछे उछलकर ऐसे निकल गए जैसे योगी जन कालसे बचजातेहैं॥ १५॥ वह असुर फिर दूसरी गदाको बारंबार घुमानेलगा, उसे आता देख श्रीपति दांतोंसे अधरोंको पीसते क्रोध सहित दौडे॥ १६॥ श्रीभगवान्ने शत्रुकी दाहिनी भौंहमें गदा मारी, हे विदुर! उस कुशल राक्षसने वही गदा फिर भगवान्के ऊपर फेंककर मारी ॥ १७॥ इसप्रकार भारी२ गदाओंसे हिरण्याक्ष और वाराहजी जीतनेकी इच्छा करके परस्पर घोर युद्ध करनेलगे, वह इनको मारता, और ये उसको मारते और युद्ध करते थे ॥ १८ ॥ दोनों वीर महारणधीर युद्धमें

भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ॥ अवंचयत्तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥ १५ ॥ पुनर्गदां स्वामा
दाय भ्रामयंतमभीक्ष्णशः ॥ अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरंभाद्दष्टदच्छदम् ॥ १६ ॥ ततश्च गदयाऽरातिं दक्षिणस्यां
भ्रुवि प्रभुः ॥ आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥ १७ ॥ एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ॥
जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८ ॥ तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहतांगयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ॥
विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥ दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायया गृहीतवारा
हतनोर्महात्मनः ॥ कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥

जिनके मन, तेज गदाप्रहारोंसे जिनके शरीर घावोंसे रुधिरकी धारा निकलते देख क्रोध क्षण २ में अधिक होता था, और पृथ्वीके निमित्त इस प्रकार लडतेथे कि जैसे गौके निमित्त वृषभ लडते हैं॥ १९॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! जिस दैत्यके मारनेको यज्ञ

---

१ छंद–दोउ बीर धीर अतिबलनिधान । दोउ गदायुद्धमें अतिसयान ॥ दोउ चहत आपनी विजय भूर । दोउ किये चित्तसे शंक दूर ॥ दोउ करहिं युद्धमें सिंहनाद । दोउ करहिं परस्पर वीरवाद ॥ दोउ जात कबहिं उडके अकाश । दोउ गिरत करन चाहत विनाश ॥ दोउ लगत गदा अंगनप्रहार । दोउ देहनतें बहै रुधिरधार ॥ दोउ ओर शोर है रहे घोर । भर रह्यो भुवनेंम चहूँ ओर ॥ जब हिरण्याक्ष ह जात वाम ॥ तब गहै नाथ दाहिनी ठाम ॥ जब हिरण्याक्ष दक्षिणाहिं जात । तब वाम दिशा श्रीपति लखात ॥ जिमि लरहिं वृषभ द्वै सुरभिहेत । तिमि धरणिहेत दोउ बलनिकेत ॥

अवतार श्रीवाराहजी महात्माने वाराहतनु ग्रहण कियाहै, उन द्वेषियोंके मायावी युद्ध देखनेको ऋषियोंसहित ब्रह्माजी आये ॥ २० ॥ चातुर्यता जिसको प्राप्त, मोहसे दूर, अनेक प्रतीकारकारी जिसके पराक्रमको कोई रोक न सकै, ऐसे दैत्यको बलवान् जान सहस्र ऋषियोंके स्वामी, भगवान् ब्रह्माजी आदिवाराहरूपधारी श्रीमन्नारायणके निकट जाकर ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे देव ! हे भक्तवत्सल ! आपके चरणारविन्दके समीप प्राप्त होनेवाले देवता, गौ, ब्राह्मण इन निरपराधी जीवोंको ॥ २२ ॥ वृथाही यह महाभयकारी, दुष्टाचारी हम लोगोंको सदा क्लेश देता है, हमसेही वर पाकर हमारेही मारनेको उपस्थित है, यह महाकंटक देवताओंको

आसन्नशौंडीरमपेतसाध्वसेकृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ॥ विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणीर्जगाद नारायणमादिसूकरम्
॥२१॥ ब्रह्मोवाच ॥ एष ते देव देवानामंघ्रिमूलमुपेयुषाम्॥विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥२२॥ आगस्कृ
द्भय कृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ॥ अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कंटकः ॥२३॥ मैनं मायाविनं दृप्तं निरंकुशमसत्त
मम् ॥ आक्रीड बालवद्देव यथाऽऽशीविषमुत्थितम् ॥ २४ ॥ न यावदेष वर्धेत स्वां लीलां प्राप्य दारुणः ॥ स्वां देव
मायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥ २५ ॥ एषा घोरतमा संध्या लोकच्छंबट्करी प्रभो ॥ उपसर्पति सर्वात्मन्सुराणां
जयमावह ॥२६॥ अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ॥ शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥ २७॥

सब लोकोंमें खोजता फिरता है ॥ २३ ॥ हे सुरोत्तम ! इस मायावी महाअभिमानीको मत रक्खो इसको अपने बलका बडा घमंड है; हे नाथ ! बालककी नाईं सर्पकी पूंछ पकड़ पकड़ मत खिलाओ सांपको खिलाना अच्छा नहीं होता॥२४॥हे कृपासिन्धो!यह दारुण असुर जबतक सन्ध्या समयअपने अधिकारको न पावे उससे पहिलेही इसका विध्वंस होजाय तो अच्छाहै, इसलिये अपनी योगमायामें स्थित होकर इस दुष्टको तुम शीघ्र मारो॥२५॥ हे सर्वात्मन्! यह संध्यासमय डरावना दैत्योंको हुलास और लोकोंका विनाश करनेवाला है, हे प्रभो ! इस समय देवताओंकी जय करो ॥२६॥ इस समय इसके मारनेका मुहूर्त और अभिजितयोगभी आगया है, हम सुहृदोंके कल्याणार्थ शीघ्र इस कष्टसे हमारी

करो ॥२७॥ हे संसारके मंगलकर्त्ता ! भयभीतोंके भयहर्त्ता ! जिसके मारनेको आपने यह वाराहतनु धारण किया सो यह पापी आपही आपके सन्मुख आगया, अब इस पराक्रमीको संग्राममें मार देवताओंकी रक्षा करो ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीवाराहहिरण्याक्षयुद्धवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा-उन्निसवें अध्यायमें, अजविनती सुन कान। कियो प्रशंसायोग्य वध, हिरण्याक्ष बलवान ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, निष्कपट सुधासम ब्रह्माके वचन सुनकर मुसकाय प्रेमके कटाक्षसे ग्रहण किये ॥ १ ॥ जब अपने सम्मुख उस शत्रुको विचरता और चहुँ ओरसे भयरहित देखा, तब उसके निकट शीघ्र कूदकर वाराहजीने उसकी ठोडीमें एक गदा

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ॥ विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥२८॥ इति श्रीमद्भा० तृतीय० हिरण्याक्षयुद्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अवधार्य विरिंचस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ॥ प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपांगेन सोऽग्रहीत् ॥१॥ ततः सपत्नं मुखतश्चरंतमकुतोभयम् ॥ जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥ २ ॥ सा हता तेन गदया विहताभगवत्करात् ॥ विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३ ॥ स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् ॥ मानयन्स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥ ४ ॥ गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते ॥ मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चास्मरद्विभुः ॥५॥ तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ॥ चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्माऽऽसन् स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥ ६ ॥

मारी ॥ २ ॥ वह सुवर्णसे बनी फेंकीहुई गदा भगवान्के करसे छूट घूमकर गिरी, सो अद्भुत हो शोभित हुई ॥ ३ ॥ तब भगवान्को निरायुध देख संग्रामका धर्म मान शस्त्र न चलाया, और वाराहजीकोभी कोप बढ़वाया ॥ ४ ॥ इस आश्चर्य्यको देख सब देवता मनमें शंका मान हाहाकार करनेलगे, संग्रामके धर्मको मान विभु वाराहजीने चक्रकास्मरण किया ॥ ५ ॥ वह अधम दितिसुत भगवान्को चक्र गहे देख महाक्रोधित

---

१ कवित्त-नन्दके दुलारे हम दास हैं तुम्हारे सदा, भक्तनके काज आप कोटिरूप धारेजू ॥गिरिवर करधारे प्रह्लादजन उबारे, और हिरण्याक्ष मारे और ध्रुवभक्त तारेजू ॥ इन्द्रमान मारे दुष्ट दल सब दलडारे, काटे गजफंद कष्ट देवीके निवारेजू । द्रौपदीकी लाज जैसे राखी कुरुसभामाहिं, ऐसेही हमारी लाज राखो कृष्णप्यारेजू ॥

हो घोर शब्द कर गदा ग्रहण कर दौडा, हिरण्याक्षको आता निहार सब देवता हाहाकार कर बोले,हे नाथ! अब शीघ्र इस हिरण्याक्ष दुष्टको मार हमारा शोक दूर करो तुम्हारा कल्याण हो॥६॥ श्रीवाराहजी कमलनयनको सुदर्शनचक्र लिये खड़ा देख,क्रोधमें भर गंभीरश्वास ले दांत चाबने लगा॥७॥विकराल कालसमान नेत्रोंमें ऐसी प्रचण्डज्वाला प्रज्वलित होरही थी मानो अभी भस्म करैगा,ऐसे हरिकी ओर देख गदा फेंककर मारी और पुकार कर बोला कि अब मेरे हाथसे बचना बहुत कठिनहै ॥८॥ सूतजी बोले कि हे साधो!भगवान् यज्ञवाराह लीला कर शत्रुको देखते२ वायुवेगसमान गदाको बांयें चरणसे फेंककर ॥९ ॥ बोले आयुध लो चेष्टा करो जो तुमको जीतनेकी अभिलाषा है, तो जब भगवान्नें यह

स तं निशाम्यात्तरथांगमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम्॥विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेंद्रियो रुषा स्वदंतच्छदमादश
च्छ्वसन्॥७॥करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां संचक्षाणो दहन्निव॥अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम्॥८॥पदा सव्येन तां साधो
भगवान्यज्ञसूकरः॥ लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥९॥ आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि॥ इत्युक्तः
स तदा भूयस्ताडयन् व्यनदद्भृशम् ॥ १० ॥ तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः ॥ जग्राह लीलया प्राप्तां गरु
त्मानिव पन्नगीम् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः ॥ नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥ १२ ॥
जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम्॥ यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥१३॥ तदोजसा दैत्यमहाभटा
र्पितं चकासदन्तः ख उदीर्णदीधिति ॥ चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्रमुज्झितम्॥ १४ ॥

कहा तब फिर वह दैत्य शस्त्रप्रहारसे ताडनकर अत्यन्त दहाड़ने लगा॥१०॥उस गदाको आता देख गदाधरने इस प्रकार रोका जैसे सर्पिणीको गरुड पकड़ै, ऐसेही लीलापूर्वक गदाको पकड़लिया ॥ ११ ॥ असुरका पुरुषार्थ जब नष्ट होगया तब वह घबराकर गिरपड़ा और लज्जित हो उसने कमलाक्ष भगवान्की गदाको लज्जित हो ग्रहंण नहीं किया,और भगवान्ने उसकी सब कान्ति नष्ट करदी॥ १२॥जलतीहुई प्रलयकी अग्निके समान तीन शिखायुक्त त्रिशूलको लेकर उसने फिर वाराह भगवानपर चलाया.जैसे कोई ब्राह्मणके ऊपर मारण प्रयोग करता है॥१३॥उससमय महा

बलवान् दैत्यका फेंका हुआ तीव्र कान्तिवाला त्रिशूल आकाशलों प्रकाशित करनेलगा. श्रीवाराहजीने त्रिशूलको आता देख सुदर्शनचक्रसे उसके खंड़२ करदिये, जैसे गरुडजीके छोडे हुए पंखको इन्द्रने अपने वज्रसे काटा था ॥ १४ ॥ श्रीहरिके चक्रसे अपना त्रिशूल बहुतबार कटा जान; अपने आपको निरायुध समझ विशालवक्षस्थल श्रीमान् भगवान्के सन्मुख आन अत्यन्त क्रोध कर वह दुष्ट मुष्टिप्रहारपूर्वक अन्तर्धान होगया ॥ १५ ॥ हे विदुर! भगवान् आदिवाराह हृदयमें मुष्टि खाय हटे नहीं जैसे फूलके मारनेसे हाथी नहीं हटता. इसी भाँति भगवान् किञ्चिन्मात्र भी न कांपे ॥ १६ ॥ जो योगमायाके ईश्वर उन भगवान्के संग वह अज्ञान माया रचने लगा, उसको देख प्रजा और देवता

वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत्।प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहत्यांतरधीयतासुरः ॥ १५ ॥ तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः ॥ नाकंपत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥ अथोरुधासृजन्मा यां योगमायेश्वरे हरौ ॥ यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥ १७ ॥ प्रववुर्वायवश्चंडास्तमः पांसवमैरयन् ॥ दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥ द्यौर्नष्टभगणाऽभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥ १९ ॥ गिरयः प्रत्यदृश्यंत नानायुधमुचोऽनघ ॥ दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥ २० ॥

भीत हो विश्वका नाश मानने लगे ॥ १७ ॥ धूल और अंधकारको फैलाता हुआ प्रचण्ड पवन चारों ओर चलनेलगा, सब दिशाओंमें पत्थरोंकी वर्षा होनेलगी, जैसे कोई फेंक २ कर मारता है ॥१८॥ आकाशसे नक्षत्रसमूह नष्ट होगये; कभी चपलाका प्रकाश, कभी गर्जनका शब्द सुनाई आता था, कभी काली २ घटा छाजातीथी, कभी पृथ्वी और आकाशमें धुन्धुकारही धुन्धकार दृष्टि आता था, कभी रुधिरकी, कभी केशोंकी, कभी पीबकी, कभी विष्ठाकी, कभी मूत्रकी, कभी हाड़ोंकी, कभी पद, कन्ध, कर्ण, मांस, मज्जा, मेदकी वर्षा होती थी ॥१९॥ कभी अनेक२ प्रकारके आयुध दिखाई देते थे, कभी चारों ओर ऊंचे पहाड़ दिखाई देते थे, कभी पिशाचिनी भूतिनी नग्न, हाथोंमें शूल लिये शिरके

केश खोले पृथ्वीपर घूमती फिरतीहुई दिखलाई देती थीं ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, सिपाही, घोड़, रथ और हाथी व आततायी लोग हँसते और कुत्सितवाणी बोलते थे ॥ २१ ॥ जब हिरण्याक्षने नानाप्रकारकी माया प्रगट करी तब समरमें वाराह भगवान्ने त्रिपदी सुदर्शनास्त्रका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तब दितिका हृदय कांपनेलगा, स्तनोंसे रुधिरकी धारा छूटी और उसको अपने पतिके वचनोंका ध्यान आया कि आज हरिके हाथसे हिरण्याक्षका वध होगा ॥ २३ ॥ जब उस दुष्टकी सब माया नष्ट होगई तब फिर वाराहजीके सन्मुख क्रोध करके धाया और बाहर हरिको स्थित देखा ॥ २४ ॥ उसने उन वैकुण्ठनाथके हृदयमें वज्रसमान घूसे मारे थप्पड़ मारा, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके मारा

बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुंजरैः ॥ आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥ २१ ॥ प्रादुष्कृतानां मायाना
मासुरीणां विनाशयन् ॥ सुदर्शनास्त्रं भगवान्प्रायुंक्त दयितं त्रिपात् ॥ २२ ॥तदा दितेः समभवत्सहसा हृदि वेपथुः ॥
स्मरंत्या भर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे ॥ २३॥ विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाऽऽव्रज्य केशवम् ॥ रुषोपगूहमानोऽमुं
ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥२४॥ तं मुष्टिभिर्विनिघ्नंतं वज्रसारैरधोक्षजः ॥ करेण कर्णमूलेऽहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥
स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ॥ विशीर्णबाह्वंघ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रो लुलितो
नभस्वता ॥ २६ ॥ क्षितौ शयानं तमकुंठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ॥ अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो
इमां को नु लभेत संस्थितिम् ॥२७॥यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायंति लिंगादसतो मुमुक्षवः ॥ तस्यैष दैत्याप
सदः पदाहतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥ २८ ॥

था ॥ २५ ॥ विश्वके जीतनेवाले श्रीमुकुन्दने जब उसकी अवज्ञा कर उसको मारा तब उसका शरीर घूमकर वह वमन करनेलगा, दोनों नेत्र निकलकर बाहर आपड़े, तथा हाथ पांव कन्धा और शिर जिसका टूटगया, जैसे पवनके झोकेसे वृक्ष उखडकर गिरपडता है इसप्रकार भगवान्का थप्पड लगतेही हिरण्याक्ष पृथ्वीपर गिरगया ॥ २६ ॥ दांतोंसे अधरोंको दबाये हुये करालदंष्ट्राओंवाला, तेजस्वी हिरण्याक्षको पृथ्वीपर सोता हुआ देवताओंने देखा और वाराहजीसे बोले कि इसकी समान मृत्यु किसको मिलैगी? ॥ २७ ॥ असत्शरीरसे मोक्षकी इच्छाकर

योगसमाधिसे एकान्तवनमें योगी जिसका ध्यान करतेहैं सो दैत्य अधम भगवत्के हाथसे माराजाय और मुख देखते२तनुत्याग करै ॥२८॥ कोई कहता था यह दोनों असुर नहीं हैं नारायणके पार्षद हैं ब्राह्मणके शापसे राक्षस होगये थे तीन जन्म असुरतन भोगकर फिर वैकुण्ठमें जायँगे॥२९॥ देवता कहते थे कि सब यज्ञोंके विस्तारके कारण स्थितिके लिये निर्मल सत्यमूर्ति ग्रहण करनेवाले तुम्हारे अर्थ वारंवार नमस्कारहै.आपने यह बहुत अच्छा किया जो सब जगत्के दुःख देनेवालेको देमारा.हे ईश!तुम्हारे चरणारविन्दकी भक्तिसे हम अत्यन्त पवित्र हुए ॥३० ॥ मैत्रेयजी बोले कि,

एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् ॥ पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येते ह जन्मभिः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥
नमोनमस्तेऽखिलयज्ञतंतवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ॥ दिष्टचा हतोऽयं जगतामरुंतुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश
निर्वृताः ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ॥ जगाम लोकं स्वम
खंडितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥ ३१ ॥ मया यथाऽनूक्तमवादि ते हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ॥
यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगव
त्कथाम् ॥ क्षत्ताऽऽनंदं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥ ३३ ॥ अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ॥ उपश्रुत्य भवे
न्मोदः श्रीवत्सांकस्य किं पुनः ॥ ३४ ॥

श्रीआदिवाराहजी महापराक्रमी हिरण्याक्षको मार ब्रह्मादिक देवताओंकीस्तुति सुन श्रीवैकुण्ठलोकको चलेगए॥३१॥हे सुमित्र! मैंने तुमसे ऐसे अवतारी हरिकी चेष्टा वर्णन की.जैसे उदारपराक्रमी हिरण्याक्षको महासंग्राममें खेलकीसी नाईं तिरस्कार किया॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि, यह मैत्रेयजीकी कही हुई वाराहजी भगवान्की कथा सुन विदुर महाभागवतोत्तम परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ जब कि, पवित्रात्मा विख्यातयश ब्राह्मणोंकी

---

१ कवित्त–जैजै यज्ञरूप जैजै, नाशी भवकूप जैजै जैजै सुरभूप जय हो सदा कष्टहारीकी ॥ जैजै हिरण्याक्षहत, जैजै प्रभु रमाकन्त, जैजै श्रीअनन्त जै हो,अधमउधारीकी॥ जै हो श्रीवराहजीकी,जै हो सुरनाहजीकी, जै हो मुरारी जै हो भक्तहितकारीकी ॥ जै हो गिरधारीकी, श्रीपति असुरारीकी, जै हो प्रभुदुष्टदमन, द्वारकाविहारीकी ॥

कथा सुननेसे आनन्द होजाता है तब श्रीरुक्मिणीकान्तकी कथा सुन पवित्र हो तो इसमें आश्चर्य्य क्या है?॥३४॥जिनके चरणारविन्दका ध्यान कर तेही मगरग्रसित गजेन्द्रको हथिनियोंके पुकारनेसे क्षणमात्रमें कष्टसे छुटाया ॥३५॥ अनन्यशरणागत कोमलमनुष्योंसे सुखाराध्य हरिको कृतज्ञ कौन न सेवन करैगा ? जो भगवान् दुष्टोंसे सदा दुराराध्य हैं ॥३६॥ जो महात्माजन वाराहजीकी लीलाको महाअद्भुत तथा हिरण्याक्षके वधको मन लगाके सुनते और प्रीतिपूर्वक गाते हैं व अनुमोदन करते हैं हे ब्राह्मणो ! वे पुरुष ब्रह्महत्याके पापसेभी छूटजाते हैं ॥२७॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्!यह चारित्र महापुण्य अत्यन्तपवित्र यशऐश्वयदायक,वैकुण्ठवास देनेवाला, आयुआशीर्वाददाता॰प्राणइन्द्रियोंकी

यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायंतं चरणांबुजम् ॥ क्रोशंतीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद् द्रुतम् ॥ ३५ ॥ तं सुखाराध्यमृजु
भिरनन्यशरणैर्नृभिः ॥ कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥ ३६ ॥ यो वै हिरण्याक्षवधे महाद्भुतं विक्रीडितं
कारणसूकरात्मनः ॥ शृणोति गायत्यनुमोदतेऽजसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥ ३७ ॥एतन्महापुण्यमलं पवित्रं
धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ॥ प्राणेंद्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽन्ते गतिरंग शृण्वताम्॥३८॥इति श्रीमद्भा०
म० तृतीयस्कन्धे नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ शौनक उवाच ॥ महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः ॥
कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥ १ ॥ क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकांतिकः सुहृत् ॥ यस्तत्याजाग्रजं
कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥

संग्राममें शूरता बढ़ानेवाला और अंतसमयमें श्रीनारायणके निकट पहुँचानेवाला है ॥३८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटी० हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा–कहौं बीस अध्यायमें, वराहका अवतार । इसकारण मनुवंशको, बरणौं अबकी बार ॥ २० ॥ शौनकमुनि बोले कि, हे सूतपुत्र! जब पृथ्वी स्थित हुई उसके पीछे स्वायंभुवमनुने जन्म लिया, और उनके मार्गके अर्थ कौन २ द्वारमें स्थित हुए सो कहो ? ॥ १ ॥ महाभागवत विदुरजी श्रीव्रजरत्नजीके परममित्रने श्रीकृष्णजीके साथ पुत्रोंसहित शत्रुता करतेहो धृतराष्ट्रको

---

१ कवित्त–सुन गजेन्द्रकी गुहार, धारी गिरधारी कान, लगी नाहिं वार, शीघ्र चक्र ले सिधारो है ॥ पक्षिराज पादुका लै, धायो पैन पायोपाय, खसत महीमाँहि, पीतपट नासँभारो है ॥ कहै रघुराज मेरे नाथ सो कृपालु कौन, सरके समीप शुद्ध सिन्धुर निहारो है ॥ जौ लौं ग्राह ग्रीवापै, गुविन्दजू चलावै चक्र, तौ लौं ग्राहं ग्रीवाको, अगाउ काटडारोहै ॥

त्याग दिया ॥ २ ॥ यह व्यासजीसे महिमामें न्यून नहीं थे क्योंकि उनहीके शरीरसे इनका शरीर उत्पन्न हुआ है, सब प्रकारसे श्रीकृष्णजीमें आसक्त हैं, श्रीकृष्णके प्यारे हैं, अनुवृत्तिसे तत्पर हैं ॥३॥ तीर्थोंके सेवन करनेसे रजोगुण जिनका नष्ट होगया, ऐसे विदुरजीने हरिद्वारमें आकर तत्त्वदर्शी मैत्रेयजीसे क्या क्या पूछा ? ॥४॥ हे सूत ! उनके संवादसे यह निर्मलकथा प्रगट हुई. जैसे हरिके चरणारविन्दआश्रयसे गंगाजल सब पापोंका नाशक है इसीप्रकार भगवत्कथा सब पापनाशिनी और आनन्दप्रकाशिनी है ॥ ५ ॥ सो वह कथा मुझसे कहो तुम्हारा मंगल होवे, कहने योग्य उदारकर्मवाले जनार्दनकी लीलाका अमृत पीते २ कौन रसज्ञ तृप्त होसक्ता है ? ॥ ६ ॥ नैमिषारण्यनिवासी ऋषिगणोंने उग्रश्रवासे

द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः ॥ सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥३॥ किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया ॥ उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥ तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः ॥ आपो गांगा इवाघघ्नीर्हरेः पादांबुजाश्रयाः ॥५॥ ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ॥ रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥ ६ ॥ एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः ॥ भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ॥ लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं संजातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥८॥ विदुर उवाच ॥ प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ॥ किमारभत मे ब्रह्मन्प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥९॥

बूझा, तब परमात्माके परमभक्त उग्रश्रवा उन कथाओंको मुदित हो वर्णन करनेलगे सो सुनिये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, श्रीवाराहरूपधारी हरिने अपनी मायाके द्वारा रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया. और हिरण्याक्षको अवज्ञासे मारकर लीला की ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले कि प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माने प्रजा रचनेके लिये प्रजापतियोंको उत्पन्न करके किस कर्मका आरंभ किया ? हे भगवन् ! भगवन्मार्गके जाननेवाले आप अनुग्रह करके इस वृत्तान्तको कहिये ॥ ९ ॥

जो मरीचिआदि ऋषि हैं जो स्वायंभुवमनु हैं इन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर कैसे इस विश्वको उत्पन्न किया ? ॥ १० ॥ अपनी स्त्रियोंसमेत अथवा अकेले मरीचिआदि ऋषियोंने स्वतन्त्र होकर इस संसारको रचा अथवा सबने इकट्ठे होकर इस संसारका विस्तार किया?सो हे मुनिवर!कृपा करके वर्णन कीजै ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले, "ब्रह्माने किस कर्मको आरंभ किया ?" इस प्रश्नका उत्तर यक्षआदिकोंको रचा, इसके उत्तरको कहनेके लिये प्रथम कही हुई सृष्टिका स्मरण कराया,और मनुष्यादिकोंके प्रश्नका उत्तर अगले अध्यायमें कहैंगे, किसीके समझमें न आनेयोग्य जीवोंका भाग्य, और प्रकृतिका अधिष्ठाता अर्थात् महापुरुष और काल इन हेतुओंसे निर्विकार भगवत्से क्षोभको प्राप्त जो जो रज,सत्त्व, तम

ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवो मनुः ॥ ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥ १० ॥ सद्वितीयाः किमसृजन्स्वतंत्रा उत कर्मसु ॥ आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥११॥ मैत्रेय उवाच ॥ दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ॥ जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥ १२ ॥ रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिंगो दैवचोदितात् ॥ जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पंचशः॥१३॥ तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ॥ संहत्य दैवयोगेन हैममंडमवासृजन् ॥ १४ ॥ सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आंडकोशो निरात्मकः ॥ साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥१५॥ तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ॥ सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥ १६ ॥ सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ॥ लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥ १७ ॥

ये तीनों गुण इनसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ रजोगुणप्रधान दैवप्रेरित महत्तत्त्वसे सब भूतोंका आदि त्रिगुण अहंकार हुआ, अहंकारसे पांच भूतमात्रा,और पांच महाभूत, और पांच ज्ञानेन्द्रिय, और पांच कर्मेन्द्रिय और पांच २ उन इंद्रियोंके देवता उत्पन्न हुए॥१३॥वे सबके सब तत्त्व एक२पृथक्२होकर जब रचनेके योग्य न हुए तब दैवयोगसे सबने मिलकर सुवर्णमय अंड रचा ॥१४॥ सो आत्मासे रहित अंडकोश समुद्रके जलमें हजार वर्षतक पड़ारहा, जब उसमें परमात्माने प्रवेश किया, तब वह चैतन्य होगया ॥ १५ ॥ उसकी नाभिसे सब जीवोंके समूहको धार सहस्रभानुके समान कान्तियुक्त एक कमल उत्पन्न हुआ, उसमें जगत्कर्ता स्वयंभू ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ जो जलरूप हृदयमें सोतेरहे सो

नारायणके आश्रयसे सब लोककी रचना करी जैसी कि पूर्वकालमें थी, उसीप्रकार नामरूपके विभागसे निर्माण की ॥१७॥ आगेसे पांच पर्ववाली अविद्या छायासे रची; तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महत्तम ये पांच पर्व हैं ॥१८॥ जिस तनसे यह विश्व रचा था, उस तनको त्याग दिया क्योंकि वह तमोमय था, इससे रात्रि उत्पन्न हुई, इसलिये वह प्रसन्न न हुए. तब भूख प्यास लगानेवाली रात्रिको यक्षराक्षसोंने ग्रहण करलिया ॥ १९ ॥ वे ब्रह्माके बनाये यक्षराक्षस भूखसे व्याकुल हो अजकेही खानेको दौडे, वे भूखसे अधीर हो बोले कि इसकी रक्षा मत करो इसे खाही जाओ ॥ २० ॥ ब्रह्माजी घबराकर उनसे बोले कि तुम मुझे मत खाओ, मेरी रक्षा करो. हे यक्षराक्षस! तुम मेरी प्रजा होवो ॥ २१ ॥ अपनी

१०७

ससर्ज च्छाययाऽविद्यां पंचपर्वाणमग्रतः ॥ तामिस्रमंधतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥ विससर्जात्मनः कायं नाभिनंदंस्तमोमयम् ॥ जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रि क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥ १९ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः ॥ मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥२०॥ देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ॥ अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥२१॥ देवताः प्रभया या या दीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् ॥ ते अहार्षुर्देवयंतो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥ देवोऽदेवाञ्जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् ॥ त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥ ततो हसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ॥ अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥ २४ ॥ स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥२५॥ पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ॥ ता इमा यभितुं पापा उपक्रामंति मां प्रभो ॥२६॥

प्रभासे जो जो देवता रचे उस प्रकाशित प्रभातेजको देवताओंने ग्रहण किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माजीने जाँघसे असुरोंको उत्पन्न किया वे स्त्रीमें लंपट महाकामी, लज्जाको त्याग ब्रह्मासे मैथुन करनेको दौड़े ॥ २३ ॥ उन निर्लज्ज असुरोंको भगवान् ब्रह्माजी पीछे आतेहुए देख अत्यन्त क्रोध करनेलगे परंतु फिर डरकर भागगये ॥ २४ ॥ जब कहीं बचनेका ठीक न लगा. तब दीनदुःखहरण शरणागतवत्सल भक्तोंके अनुग्रहके अर्थ भक्तोंकी इच्छानुसार आप स्वरूप धारण करतेहैं, ऐसे प्रभुबिरदवरदायक, श्रीसुरनायककी शरण जाकर ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे परमात्मन्!

हे प्रभो ! हे अभयदायक ! मेरी रक्षा करो. आपकी आज्ञासे मैंने प्रजा रची, सो यह पापी प्रजा मुझसेही मैथुन करनेके लिये मेरे पीछे दोड़ी आती है ॥२६॥ निश्चय है कि तुमही एक सब लोकोंके क्लेशके नाशक हो. हे नाथ ! जो तुम्हारे चरणकमलका आश्रय नहीं लेते उनको तुमही एक क्लेश देनेवाले हो॥२७॥वे आदिपुरुष अविनाशी श्रीनारायणजी,ब्रह्माका यह कृपणभाव जान एकान्तमें ब्रह्मविद्यासे जिनका दर्शन हो सो भगवान् बोले कि इस शरीरकोभी त्यागो, यह श्रवण करतेही विरंचिने उस शरीरको त्याग दिया ॥२८॥ चरणोंमें नूपुरोंकी झमक,मदभरे विह्वलनेत्र,कांचीकलापसे शोभित, वस्त्रोंसे कटिपश्चात्भाग जिसका ढकाहुआ ॥२९॥ कंचनके कलशसमान परस्पर अड़नेके कारण जिनके बीचमें कुछ बीच नहीं

त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः ॥ त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥ २७॥ सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ॥ विमुंचात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥ २८ ॥ तां क्वणच्चरणांभोजां मदविह्वललोचनाम् ॥ कांचीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥ २९ ॥ अन्योन्याश्लेषयोत्तुंगनिरंतरपयोधराम् ॥ सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥३०॥ गूहंतीं व्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम् ॥ उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥ अहो धैर्यमहो रूपमहो अस्या नवं वयः ॥ मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥ ३२ ॥ वितर्कयंतो बहुधा तां संध्यां प्रमदाकृतिम् ॥ अभिसंभाव्य विश्रंभात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥ ३३ ॥

रहा, ऐसे मनोहर जिसके स्तन और अत्यन्त सुन्दर कीरकेसी जिसकी नासिका बनीहुई,दाडिमके दानोंकीसी दाँतोंकी पाँति,और प्यारी मन मोहनेवाली जिसकी हँसी, तिरछी चितवन, लाजके मारे वस्त्रोंकी जवनिकासे अपने शरीरको ढकती दबाती कालेकाले केशोंकी सघनघटामें चन्द्रसा मुखारविंद दीप्तमान ऐसी मृगनयनी,पिकबयनी,मनहरनी,चंपकवरनी,चंचलचटकीली,सजीली,सोहिनी,मनमोहिनी,बालाकोदेख सब दैत्य मोहित होगये ॥३०॥३१॥ अहो रूप!अहो धैर्य्य !! अहो इसकी किशोर अवस्था!!!हे चाहनेवालो!यह अनचाहीसी फिर रहीहै॥३२॥स्त्रीकी आकृतिवाली उस

संध्याको असुरोंने बहुत वितर्क कर विश्वाससे सत्कार कर कुबुद्धिवालोंने बूझा॥३३॥हे चंद्राननने!तुम कौन हो?किसकी कुमारिका हो यहां क्यों आईहो? तुम्हारा क्या प्रयोजन है,रूपधनके व्यवहारद्वारा तुम हमसे अभागियोंको बाधा देतीहो॥॥३४॥हे भामिनी!तुम्हारा कल्याण हो हमारे बड़ेभाग्यहैं जो तुम्हारा दर्शन हमें प्राप्तहुआ.गेंद खेलनेकी इच्छासे यहाँ आये थे सो हम असमर्थोंके मनको तुमने मथनकर चित्त चुरालिया ॥ ३५ ॥ हे शालिनी ! तुम्हारे चरणकमल एक ठिकाने नहीं ठहरते,तुम बारंबार गेंदको फेंकतीहो,बडे स्तनके भारसे मध्यभाग विषाद पारहा है शान्तकी नाईं तुम चलती हो और केश तुम्हारे बहुत सुन्दर हैं ॥३६॥ इसप्रकार सायंतनकी संध्या स्त्रीरूपधारिणी लोभ करानेवाली स्त्री ऐसे मान मूर्ख असुरोंने उसको पकड लिया॥३७॥ गंभीरभावसे हँसके अपने आपको आप सूंघती उस कांतिसे भगवान् ब्रह्माजीने फिर सृष्टि रचनेका विचार किया और गंधर्व अप्सराओंको बनानेलगे ॥३८॥ ज्योत्स्ना कान्तिमयी प्रियाकोभी जब त्याग दिया तब विश्वावसु गंधर्वने मुख्य प्रीतिसे उसको ग्रहण किया ॥३९॥ फिर ब्रह्माजीने अपने आलस्यसे भूतपिशाचोंको रचकर नंगे बालोंको खोले खडा देखकर नेत्र बंद करलिये॥४०॥हे प्रभो!उनका रचाहुआ जृंभारूप तनभी त्याग दिया वह निद्रा इन्द्रियको विवश करनेवालीहै जिसे सब जीवोंमें देखतेहैं। जिससे उच्छिष्टको घिसतेहैं उसको उन्माद कहते हैं,

कासि कस्यासि रंभोरु को वाऽर्थस्तेऽत्र भामिनि ॥ रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥ ३४ ॥ या वा काचित्त्वमबले
दिष्ट्या संदर्शनं तव ॥ उत्सुनोषीक्षमाणानां कंदुकक्रीडया मनः ॥ ३५ ॥ नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं घ्नंत्या
मुहुः करतलेन पतत्पतंगम् ॥ मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शांतेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ॥ ३६ ॥ इति
सायंतनीं संध्यामसुराः प्रमदायतीम् ॥प्रलोभयंतीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम्॥३७॥प्रहस्य भावगंभीरं जिघ्रंत्यात्मा
नमात्मना ॥ कांत्या ससर्ज भगवान् गंधर्वाप्सरसां गणान् ॥३८॥ विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कांतिमतीं प्रियाम् ॥
त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥३९॥ सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतंद्रिणा ॥ दिग्वाससो मुक्तकेशान्
वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥४०॥जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृंभणाख्यां तनुं प्रभोः ॥ निद्रामिंद्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्य
ते ॥ येनोच्छिष्टान्धर्षयंति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

उन्मादसे सर्व जीवोंको महाक्लेश होताहै॥४१॥भगवान् ब्रह्मा बढीहुई आत्माको मान प्रत्यक्षकरके साध्यगण पितृगण प्रभुने रचे जिनको कर्मकोविद लोग श्राद्धादिकद्वारा हव्यकव्य देते हैं ॥४२॥ अपने सर्गका काय पितासे प्राप्त होकर साध्यपितर इनसे कभी होय हैं॥४३॥ब्रह्माजीने सिद्धविद्याधरोंको तिरोधानसे रच अंतर्धान नामक अद्भुत आत्मा उनको दी ॥४४॥ अपने प्रतिबिम्बसे ब्रह्माजीने किन्नरकिंपुरुषोंको रचा आत्मासे आत्माको मान आत्माका प्रकाश देखा॥४५॥ जो तन ब्रह्माजीने त्याग दिया था वह रूप उन्होंने ग्रहण किया,उसीको एकत्र होकर प्रातःकालमें सब गातेहैं

ऊर्ज्जस्वंतंमन्यमान आत्मानं भगवानजः ॥ साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणाऽसृजत्प्रभुः ॥४२॥तमात्मसर्गं तत्कायं पितरः प्रतिपेदिरे ॥ साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥ ४३ ॥ सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् ॥ तेभ्योऽददात्तमात्मानमंतर्धानाख्यमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ स किन्नरान्किंपुरुषान्प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ॥ मानयन्नात्मनाऽऽमानमात्माभासं विलोकयन् ॥ ४५ ॥ ते तु तज्जगृहू रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ॥ मिथुनीभूय गायंतस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥ ४६ ॥ देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिंतया ॥ सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥ ४७ ॥ येऽहीयंताऽमुतः केशा अहयस्तेंग जज्ञिरे ॥ सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकंधराः ॥ ४८ ॥ स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ॥ तदा मनून्ससर्जांते मनसा लोकभावनान् ॥४९॥ तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् ॥ तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥ ५० ॥ अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् ॥ प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥ ५१ ॥

॥४६॥ अत्यन्त चिंतासे सोये भोगवान् देहसे बडी सृष्टिमें क्रोधसे उस वपुको रच फिर इस शरीरकोभी तजदिया ॥४७॥ जो इस देहसे बालच्युत हुए वे अहिनामक (सर्प)हुए; सर्प चलनेसे और क्रूर नागभोग उरुकन्धर ये हुए॥४८॥जब ब्रह्माजीने अपने आपको कृतकृत्यकी नाईं माना तब अंतमें लोकपालक मनुओंको मनसे रचा ॥ ४९ ॥ फिर आत्मवान् ब्रह्माने अपना पुररूप नरशरीर रचा वह पहिले रचेहुए देखकर प्रजापतिकी प्रशंसा करनेलगे॥५०॥धन्य है,जगत्स्रष्टाने बड़ा सुकृत किया है,जिसमें स्थित होकर कर्म करतेहुए हम सब अन्न हबी भाग आदिकी पारणा करेंगे॥५१॥

तपविद्यासे युक्त सुन्दर योगसमाधिसे हृषीकेश ब्रह्माने अपने समान प्रजा और ऋषियोंको रचा॥५२॥और जो योग,विद्या,समाधि,तप,भक्ति,ज्ञान, वैराग्य, सिद्धि; विरक्ति उन सबको एक२ अंशविभागसहित ब्रह्माजीने दिया और ऐसा अद्भुत शरीर रचा,नहीं जानाजाता कि इसमें कौन बोलता है ? और इसका नाम क्याहै?॥५३॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तीयस्कन्धे भाषाटीकायां सर्गवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥दोहा--इक्किसमें हरि लखो, कर्दमतेज अपार। मनुकन्या इन योग्य है, कीन्हों यही विचार ॥२१॥ विदुरजी बोले कि,हे भगवन्! स्वायम्भुव मनुका परमश्रेष्ठ वंश कहो कि,

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना॥ ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः॥५२॥तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ॥ यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भा० म०तृती० विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥ विदुर उवाच ॥ स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः ॥ कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः॥१॥प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य वै ॥ यथाधर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम्॥२॥ तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता॥ पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयाऽनघ॥३॥ तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ॥ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥ ४॥ रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन् दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ॥ यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥ ५॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजाः सृजेति भगवान्कर्दमो ब्रह्मणोदितः ॥ सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥ ६ ॥

४०२

किसप्रकार मैथुन करके प्रजा बढी?॥ १॥स्वायम्भुव मनुके दो पुत्र हुए;प्रियव्रत और उत्तानपाद उन्होंने धर्म और सप्तद्वीपवती पृथ्वीकी रक्षाकी,सो किस प्रकार की? उसका सविस्तर वर्णन कीजे॥२॥हे ब्रह्मन्!हे पापरहित ! स्वायंभुवमनुकी एक कन्या हुई जिसका नाम देवहूति जगत्में विख्यात था, वह कर्दममुनिको व्याही थी उसका वृत्तान्त कहो ॥ ३ ॥ सो कर्दम मुनि महायोगी योगलक्षणसंपन्नने देवहूतिमें कितने पुत्र उत्पन्न किये ? ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मसुत दक्ष और रुचिप्रजापति मनुने भार्याको प्राप्त हो किसप्रकार सृष्टि उत्पन्न की ?॥५॥मैत्रेयजी बोले कि, जब भगवान्

---

१ **कवित्त**–केशशीशजूडभाल, भ्रूहणीपलकनैन, गोलकक्षपोलगंडनासामुख श्रौनहै ।। ठोडीहोठडाढदन्त, रसनातजूडातालू, चिबुककंठकांधकर मौन है ।। कांखकटिभुजानाडी, नाभीकुच पेटपीठ अंगुली हथेलीनख जंघास्थल जौनहैं ।। नितंब चरणरोम, रातेनामअंगनके, तामें तौ विचार नर तेरो नाम कौन है ।।

कर्दममुनिसे ब्रह्माजीने कहा कि, तुम अपार सृष्टि रचो, तब सरस्वतीनदीके किनारे दक्षने हजार वर्षतक तप किया ॥ ६ ॥ तब समाधियुक्त योग क्रियासे प्रयत्नकर भक्तिसे वरदायक भगवान् वासुदेवको प्राप्त हुए ॥ ७॥ हे विदुर! तब श्रीत्रिलोकनाथ भक्तभूषण भगवान्ने सत्ययुगमें प्रसन्न हो, शब्दब्रह्मरूप शरीर धार कर्दमजीको अपना सुन्दरस्वरूप दिखाया॥८॥रजोगुणरहित कोटिसूर्यसम वदनका प्रकाश,शुक्लकमलकीमाला विराज रही॥ दोहा–नीलअलक झलके झलक, छलक छलक छबि जात । ललक ललक जिनको अमर, ललना लखत लुभात ॥ घूँघरवाली अलकें मुखार विन्दपर विखरी, निर्मलवस्त्र पहिने ॥९॥ किरीट मुकुट शिरपर धारण किये, कानोंपरके कुण्डल कपोलोंपर लटक रहे; शंख,चक्र, गदा,पद्म,शोभा

ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः ॥ संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥ ७ ॥ तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे ॥ दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥ ८ ॥ स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् ॥ स्निग्धनीलाल कव्रातवक्त्राब्जं विरजोंबरम् ॥ ९ ॥ किरीटिनं कुंडलिनं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनस्स्पर्शस्मिते क्षणम् ॥१०॥ विन्यस्तचरणांभोजमंसदेशे गरुत्मतः ॥ दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षश्श्रियं कौस्तुभकंधरम् ॥११॥ जातहर्षो ऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः ॥ गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृतांजलिः ॥१२॥ ऋषिरुवाच॥ जुष्टं बताद्या खिलसत्त्वराशेः सांसिद्ध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ॥ यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥१३॥

देरहे,श्वेतकमल घुमातेहुए आनन्द देनेवाला मन्दहास अवलोकनवाले ॥१०॥ गरुडजीके कंधेपर चरणकमल धारे,कौस्तुभमणि गलेमें पडी,हृदयमें श्रीजी,यह अद्भुतशोभा मनको हरलेती थी ॥ ११ ॥ दर्शनसेही सब मनोरथ पूर्ण जान कर्दमजीने अत्यन्त हर्षसे पृथ्वीमें शिर नवा साष्टांग प्रणाम किया, फिर प्रेमसे,प्रीतिसे,वाणीसे व मनसे स्तुति करने लगे॥ १२॥कर्दमजी बोले कि हे भक्तवत्सल!हे स्तुति करने योग्य! आज मेरे नेत्र सफल हुए आज सब सत्त्वराशि, और सब सिद्धि, मुझको प्राप्त हुई,जो आपका दर्शन हुआ इस आपके दर्शनके कारण योगीजन कोटानकोटी जन्म समाधि

लगाकर वांछा करते हैं ॥१३॥ जो तुम्हारी मायाके वश मंदबुद्धिवाले मनुष्य हैं, वे संसारसमुद्रमें नौकारूप तुम्हारे चरणारविन्दकी लेशमात्रकामके लिये उपासना करते हैं, उनके तुम सब मनोरथ पूर्ण करतेहो परन्तु वे मनोरथ नरकमें भी प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नाथ ! मुझको विवाहकी इच्छा है, परन्तु स्त्री शीलवान् बुद्धिनिधान ज्ञानवान् मेरे समान हो, स्त्रीसे त्रिवर्ग सिद्ध होता है, अब मैं सब कर्मपूरक कल्पवृक्षरूप आपके चरण शरणमें पड़ा हूँ,हे प्रभो ! मेरा अंतःकरण अच्छा नहीं है जो आपसे कामकी कामना चाहता हूँ ॥१५॥ हे जगदीश ! प्रजापतिरूप तुम्हारे वचनरूप रस्सीसे कामान्ध बँधा हुआ यह संसार है. हे शुक्ल ! मैं भी निश्चय करके इस संसारमें प्राप्त कालरूप तुम्हारे अर्थ बलि देता हूँ ॥१६॥ जो

ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविंदं भवसिंधुपोतम् ॥ उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥
॥ १४ ॥ तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ॥ उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघांघ्रिपस्य
॥ १५ ॥ प्रजापतेस्ते वचसाऽधीश तंत्या लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ॥ अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लाऽनिमिषाय तुभ्यम् ॥ १६ ॥ लोकांश्च लोकानुगतान्परांश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ॥ परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ १७ ॥ न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ॥ षण्नेम्यनंतच्छदि यत्त्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ १८ ॥एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीयमात्मन्नधियोगमायया ॥ सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवान् स्वशक्तिभिः ॥ १९ ॥

लोक लोकोंके त्याग परस्पर तुम्हारे गुणानुवाद मादक अमृतपानसे लोकधर्मका त्याग करते हैं वे मनुष्य आपके चरणरूप छत्रके आश्रित हुये कालभयको नहीं गिनतेहैं ॥१७॥ यह कालचक्र तुम्हारे भक्तोंकी आयु नहीं काटसक्ता और सब विश्वकी आयु काटनेको तुम्हारा कालचक्र घूमता है,ब्रह्मरूप अक्षमें तो वह घूमे हैं, तेरह मास चक्रके आरे हैं, तीनसौ साठ दिन उसके पर्व (पुरजा)हैं,छः ऋतु उसकी नेमी हैं,क्षणलवादि अनंत हैं; शीत, उष्ण, वर्षा ये तीन नाभिहैं, कठोर उसका वेग है(ये सात विशेषण कालचक्रके हैं) ॥ १८ ॥ जब तुम अकेले होते हो तो आप जगत

रचनेकी इच्छा कर, दूसरी अपनी योगमायासे मकडीकी नाईं अपनी शक्तियोंसे इस संसारको रचते, पालते, नाश करते और पुनः रचते हो ॥१९॥ हे अधीश ! आप हमसे भक्तोंको अपनी माया करके विषयसुख देते हो परन्तु वह आपको अच्छा नहीं लगता, तौ भी अपनी कृपाके लिये वह हमको देनाही योग्य है, क्योंकि तुलसीमालासे शोभित आपके स्वरूपका दर्शन करनेसे मोक्ष होता है ॥२०॥ अनुभवजन्य ज्ञानसे क्रियाके अर्थ जिनके दूर होगये हैं अपनी मायासे सब लोकोंको रचते हो एसे नमस्कार योग्य चरणकमल आपकेथोडेसे भजन व सेवा पूजासे बहुतसे काम सिद्ध हों ऐसे जो आप हैं सो मैं आपको वारंवार नमस्कार करताहूँ ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार नमस्कार करनेसे निष्कपट कमलनाभ भगवान्

नैतद्बताधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ॥ अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या तनुवा
विलक्षितः ॥२०॥ तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्तितलोकतंत्रम् ॥ नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पी
यसि कामवर्षम् ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यव्यलीकं प्रणतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ॥ सुपर्णपक्षोपरि
रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥२२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विदित्वा तव चत्त्यं मे पुरैव समयोजितत् ॥ यदर्थ
मात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥ २३ ॥ न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् ॥ भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृ
भितात्मनाम् ॥२४॥ प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमंगलः ॥ ब्रह्मावर्तं योऽधिवसञ्छास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥ २५ ॥

वासुदेव अमृतसमान वचन बोले, गरुड़के ऊपर विराजमान हैं, और प्रेमके स्मितसे जिनकी भ्रुकुटी चलायमान हैं ॥२२॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ऋषे ! जिसकारण तुमने चित्त लगाकर मेरा पूजन भजन किया है सो मैंने पहिले ही तुम्हारे मनकी अभिलाषा जानकर सब ठीक उपाय कर रक्खा है ॥ २३ ॥ मैं सब प्रजाका स्वामी हूँ, मेरा पूजन कभी मिथ्या नहीं होता, मुझमें जिनकी आत्मा और आपसे महात्माओंके हृदयमें तौ मैं सदा वास करता हूँ ॥२४॥ प्रजापतिसुत राजा मनु विख्यात मंगलीक है और शतरूपा उसकी स्त्रीका नाम है सो ब्रह्मावर्तजो विठूर है

तहां सदा बसता है और सात द्वीप नौ खंड सबका पालन पोषण करता है ॥ २५ ॥ हे मुने ! सो राजर्षि शतरूपा अपनी स्त्रीसमेत, परसोंतक आपके देखनेको यहां आवेगा ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! सुन्दर कटाक्षवाली, शीलगुणवती, सुकुमार अवस्था, पतिके प्रेमकी अभिलाषिणी सो उसके तुम अनुरूप हो. वह जगत्पति अपनी पुत्री तुमको देजायगा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने इतने वर्षोंसे जिस स्त्रीमें मन लगाया वह राजकन्या तुम्हारे मनोरथको शीघ्र पूर्ण करैगी ॥ २८ ॥ जो वह तुम्हारे वीर्यके नव विभागोंसे नव कन्या उत्पन्न करेगी और तुम्हारी कन्याओंमें ऋषिगण अनायाससे अपनी संतान उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ तुम सदा मेरी आज्ञामें स्थित होकर मुझको तीर्थ समान मान सब कर्मफल मुझकोही समर्पण कर मुझकोही प्राप्त होगे ॥ ३० ॥ सब प्राणियोंपर दया कर आत्मज्ञानी हो सबको अभयदान दे मुझमें आपसहित सब संसारको देखोगे और सब संसारमें व अपने आपमें मुझको देखोगे ॥ ३१ ॥ हे महामुने ! मैं अपने अंशकलासमेत, तुम्हारे वीर्यसे तुम्हारी स्त्री देवहूतिमें कपिलमुनि अवतार धारण कर तत्त्वसंहिताका प्रकाश करूंगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, प्रत्यक्षभूत इन्द्रियोंके सम्मुख आनकर श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद कर्दमऋषिसे यह बात कह सरस्वती परिवेष्टित बिंदुसरसे परमधामको चलेगये ॥ ३३ ॥

स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया ॥ आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥२६॥ आत्मजामसितापांगीं वयश्शीलगुणान्विताम् ॥ मृगयंतीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥ २७॥ समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् ॥ सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥२८॥ या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ॥ वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यंत्यंजसाऽऽत्मनः ॥ २९ ॥ त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ॥ मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे॥३०॥कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ॥ मय्यात्मानं सहजगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम्॥३१॥ सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ॥ तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम्॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः ॥ जगाम बिंदुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥ ३३ ॥

कर्दम ऋषिके देखतेर चलेगये, सब सिद्धेश्वरोंसे स्तुति किया सिद्ध मार्ग है. ऐसे वासुदेव भगवान् जो जिनका गरुड़जीके पंखोंसे स्तोत्रसमुदाय सामवेद स्वरसहित उच्चारण हुआ सुननेलगे॥ ३४॥ भगवान् जब चलेगये तब कर्दममुनि बिन्दुसरपर बैठे उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे॥ ३५॥ और यहाँ राजा मनु स्वर्णजटित रथपर बैठ अपनी पुत्रीको बैठाय स्त्रीसमेत पृथ्वीपर्यटन करनेको चलदिये॥ ३६॥ हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विदुरजी! तब तो राजा विचरतेर उस शान्तव्रतमुनिके आश्रमपर आये जहाँ कर्दमऋषिने विवाहके हेतु तप किया था ॥ ३७ ॥ जहाँ दयाके कारण भगवान्ने शरणागत कर्दमपर प्रसन्न होनेसे अश्रुबिन्दु गिराये हैं॥ ३८ ॥ उसी दिनसे उस आश्रमका नाम बिन्दुसरोवर हुआ, सरस्वतीसे परिवेष्टित है, पुण्यदायक है; आरोग्य करता है, सुधासमान जल है, महर्षिगणोंकरके सेवित है॥ ३९॥ फलदायक वृक्षलताओंसे शोभित, मनोहर कुञ्जें, खगमृगपक्षियोंसे दीप्त, सब ऋतुओंमें फलफूलसे वनपंक्तियोंसे शोभायमान थे ॥ ४०॥ मतवाले पक्षिगण जहाँ मनभावनी सुहावनी बोली बोलरहे, मतवाले भौंरे गुञ्जार कर रहे, मोर नटोंकी सदृश पंख पसार पसार मधुर २ वाणीसे पुकार रहे, मदमाती कोयल मीठी २ कूकसे कूकरहीं ॥ ४१॥ कदंब, चम्पक, अशोक; करंज,

निरीक्षतस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ॥ आकर्णयन्पत्ररथेंद्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ॥ ३४ ॥ अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः॥ आस्ते स्म बिंदुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥ ३५ ॥ मनुः स्यंदनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् ॥ आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥ ३६॥ तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् ॥ उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥ ३७ ॥ यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिंदवः ॥ कृपया संपरीतस्य प्रपन्नोऽर्पितया भृशम् ॥ ३८ ॥ तद्वै बिंदुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ॥ पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥ पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यवनराजिश्रियाऽन्वितम् ॥ ४०॥ मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम्॥ ४१॥ कदम्बचम्पकाशोककरंजबकुलाशनैः ॥ कुंदमंदारकुटजचूतपोतैरलंकृतम् ॥ ४२ ॥

बकुल, अशन, कुरबक, कुन्द, मंदार, कुटज, आम इत्यादिक भाँति२के वृक्षोंकी शाखा फलफूलोंके भारसे नीचेको झुकरही हैं ॥४२॥ सुन्दर२ तालोंमें
जलकुक्कुट, जलकुक्कटी, मेंडक, हंस, कुरर, सारस, चकई, चकवे, चकोर जलक्रीडा कर२ मनोहर शब्द कर रहे ॥४३॥ कहीं हिरन, वराह, रोझ,
श्वान, शल्लक, गवय, मतङ्गज, गोपुच्छ, वानर, सिंह, नकुल, कस्तूरीमृग डरावनें सुहावने शब्द कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ राजा मनुने अपनी पत्नी और
पुत्रीसमेत उस श्रेष्ठतीर्थमें प्रवेश किया, हवन योग्य अग्निमें होम करते हुये कर्दममुनिको बैठादेखा ॥४५॥ उग्र योगवाले शरीरसे देदीप्यमान और
भगवत्के स्निग्ध कटाक्षके देखनेसे और चंद्रकलामय अमृतसरीखी वाणीके श्रवणसे तपसे कृशहुयेभी अकृश (आनंदित)॥ ४६॥ ऊंचे ऊंचे

कारंडवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः ॥ सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गु कूजितम्॥४३॥तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवय
कुंजरैः ॥ गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम्॥४४॥ प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः ॥ ददर्श मुनिमासीनं
तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥४५॥ विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् ॥ नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापांगावलोकनात्
॥ ४६ ॥ तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥ प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ॥ उपसंसृत्य मलिनं यथा
ऽर्हणमसंस्कृतम्॥ ४७ ॥ अथोटजमुपायांतं नृदेवं प्रणतं पुरः ॥ सपर्यया प्रत्यगृह्णात्प्रतिनंद्यानुरूपया ॥ ४८ ॥ गृही
तार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ॥ स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४९ ॥ नूनं चंक्रमणं देव सतां
संरक्षणाय ते ॥ वधाय चासतां यत्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥ ५० ॥

कन्धे कमलनयन विशालमूर्ति जटाधारी वल्कलवसन पहिरे मलिन जैसे कोई महारत्न संस्काररहित इसप्रकार कर्दममुनिको मनुजीने देखा॥४८॥
इसके उपरान्त मनु पर्णशालाके निकट आये, कर्दमजीने राजा मनुको आता देख आगे बढ़कर उनको लिया. राजाने प्रणाम किया, राजाको
यथायोग्य आशीर्वाद और बडाई दी और पूजा करके उनको ग्रहण किया ॥ ४९ ॥ पूजन कर जब बैठगये तब मुनिने राजाको प्रसन्न कर
भगवान् वासुदेवका वचन स्मरण करके कोमल वाणीसे कहा ॥ हे देव ! तुम लोगोंका फिरना सज्जनमहात्माओंकी रक्षाके निमित्त है और

असतोंके वधके लिये है जो तुम भगवान्की अनपायिनी शक्ति हो ॥५०॥ जो राजा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इंद्र, वायु, यम, धर्म, प्रचेता इनका स्वरूप धारण कर स्थान २ में सब कार्य करते हैं उन धर्मात्मा तुमसरीखे राजाओंको बारंबार नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे आदिनृपेंद्र! जो जयप्रद कनक कलित मणिजटित रथपर बैठ प्रचण्ड कोदंड ले पापी दुराचारियोंको त्रास न दो और पृथ्वी पर न घूमो तो सब धर्मका नाश होजाय॥५२॥ अपनी चतुरंगिणी सेनासे भूमण्डलको खूंदो और सब सेनासमेत मार्तण्डकी सदृश सात द्वीप नव खण्डोंमें तुम विचरते हो॥५३॥ हे राजन्! जब आप पर्यटन नहीं करते हो तब वर्णाश्रमके निबंधनरूप भगवत्के रचेहुए सेतु चोरोंके विदीर्ण होजाते हैं॥५४॥ जब तुम सो जाते हो तो लोभी, लंपट और

योऽर्केंद्वग्नींद्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् ॥ रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥ ५१ ॥ न यदा रथमास्थाय
जैत्रं मणिगणार्पितम् ॥ विस्फूर्जच्चण्डकोदंडो रथेन त्रासयन्नघान् ॥ ५२ ॥ स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मंडलं भुवः ॥
विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥५३॥ तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबंधनाः ॥ भगवद्रचिता राजन्भिद्येरन्बत
दस्युभिः ॥५४॥ अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यंकुशैर्नृभिः ॥ शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनंक्ष्यति ॥५५॥ अथा
पि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ॥ तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा॥५६॥ इति श्रीमद्भा० तृतीयस्कन्ध एक
विंशतितमोऽध्यायः॥२१॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ॥ सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच
ह ॥ १ ॥ मनुरुवाच ॥ ब्रह्माऽसृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया ॥ छंदोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलंपटान् ॥ २ ॥

निरंकुश जीवोंसे अधर्म और पाप बढ़जाता है; लोग चोरोंसे ग्रसित होकर सब विनष्ट होनेलगते हैं ॥५५॥ हे वीर! मैं आपसे यह बात बूझता हूँ कि आपका यहाँ आना किसका रण हुआ? सो आप वर्णन कीजे. हम निष्कपट हृदयसे आपकी आशा पूर्ण करेंगे ॥५६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कर्दमाश्रमे स्वायंभुवमनुसमागमनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा—बाइसवें अध्यायमें, देवहूतिको व्याह। जैसे कर्दमऋषीसों, कियो मनू नरनाह ॥ २२ ॥ मैत्रेयजी बोले जिनके गुणका और कर्मका प्रकाश संसारमें उदय हो रहाहै. सो मनु लज्जावालोंकी नाईं लज्जाकरके अत्यन्त हर्षित होकर ॥ १ ॥ मनुजी बोले कि, हे मुनिराज! आपको अपनी रक्षाके कारण ब्रह्माजीने अपने मुखसे अपनी

समान वेदविद् विद्यायोगयुक्त अलंपट तुम ब्राह्मणोंको प्रगट कियाहै॥२॥और अनन्त भगवान्ने अपनी अनन्त भुजाओंसे ब्राह्मणोंके प्रतिपालके लिये हमको उत्पन्न कियाहै, उनका हृदय ब्राह्मण हैं और क्षत्रिय भुजा हैं ॥ ३ ॥ इसलिये ब्राह्मण क्षत्रियोंकी रक्षा करैं. और क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी रक्षा करैं इस प्रकार परस्पर आदिपुरुष अविनाशी देव सत् असत् आत्मा सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ आपके दर्शनसे मेरे सब संशय मिटगए, जो आप भगवान्ने स्नेहकरके रक्षाकी इच्छासे धर्मका वर्णन किया ॥ ५ ॥ धन्यभाग जो हमको आपका दर्शन हुआ, अवशेंद्रियोंको आपका दर्शन नहीं होता, धन्य है जो मुझ अमंगलीकके शिरपर मंगलीक चरणोंकी रजका स्पर्श हुआ ॥६॥ बडे आनन्दकी बात है; बड़ा अनुग्रह है जो

तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोस्सहस्रात्सहस्रपात् ॥ हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमंगं प्रचक्षते ॥ ३ ॥ अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ॥ रक्षति स्माऽव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ ४ ॥ तव संदर्शनादेव च्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ॥ यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥ ५ ॥ दिष्ट्या मे भगवान्दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ॥ दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥ ६ ॥ दिष्ट्या त्वयाऽनुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् ॥ अपावृतैः कर्णरंध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥ ७ ॥ स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ॥ श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम ॥ अन्विच्छती पतिं युक्तं वयश्शीलगुणादिभिः ॥ ९ ॥ यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवतो गुणान् ॥ अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥ १० ॥ तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया ॥ सर्वात्मनाऽनुरूपा ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥ ११ ॥

आपने आज्ञा की, आज मेरे कर्णकुहर पवित्र हुए जो आपकी अमृतसम मनोहर वाणी सुनी ॥ ७ ॥ हे मुने! मैं पुत्रीके प्रेम विवश दीन हूँ यह कन्या मुझको अत्यन्त प्यारी है, सो आप कृपा करके मेरी विनय सुनिये ॥ ८ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपादकी यह भगिनी है, और मेरी पुत्री है, शील, रूप, गुण, वयमें अपने समान पतिसे मिलनेकी अभिलाषा करती है ॥ ९ ॥ जब नारदजीके मुखसे आपके गुणरूपशील अवस्थाकी प्रशंसा सुनीहै उसी दिनसे इसने अपने मनसे निश्चय आपको अपना पति समझ लिया है ॥ १० ॥ हे द्विजाग्रगण्य ! श्रद्धासे इस कन्याको

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ॥ अपि निर्मुक्तसंगस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥ १२ ॥ य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ॥ क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥१३॥ अहं त्वाऽशृणवं विद्वन्विवाहार्थं समुद्यतम् ॥ अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा ॥ आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥१५॥ कामः स भूयान्नरदेव तस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ॥ क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयाऽङ्गकांत्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥ १६ ॥ यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदंघ्रिशोभां विक्रीडतीं कंदुकविह्वलाक्षीम् ॥ विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥ १७ ॥

आपके चरणशरणमें लाया हूं, सो आप इसको ग्रहण कीजे.आपके गृहस्थकर्म करनेको यह सबप्रकार योग्य है ॥ ११ ॥ जो वस्तु आप घर बैठे मिलजाय उसका त्यागना उचित नहीं, जो सब संगसे निर्मुक्त है उसकी तौ क्या बात है? ॥१२॥ जो कोई प्राप्त होती वस्तुका निरादर करतेहैं और पीछे याचना करते हैं उनका बढ़ा हुआ यशक्षीण होजाताहै और,मानभी हत होजाताहै ॥ १३ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैंने सुना था कि आपकी इच्छा विवाह करनेकी है, इस कारण इस देवहूतिकन्याको आप ग्रहण करैं ॥ १४ ॥ ऋषि बोले कि, आपने बहुत अच्छा विचारा मेरी विवाह करनेकी इच्छा है, तुम्हारी दुहिताभी अप्रमत्त अविवाहित है हमारे दोनोंके अनुरूप यह आद्य विवाहकी विधि है ❋ ॥ १५ ॥ हे नरनाह ! तुम्हारी इस कन्याका मनोरथ पूर्ण होवै,और हमें तुम्हें उत्साह होवै यही वेदविधि है,भूषण वसनोंसे भूषित,अपनी कांतिसे श्रीकी कांतिको क्षीण करनेहारी इस तुम्हारी सुताका कौन आदर नहीं करैगा?॥१६॥यह तुम्हारी कन्या पिकवयनी, मृगनयनी, चम्पकवरनी, मनहरनी तुम्हारी कन्या

❋('अप्रमत्त' इसपाठमें) **शंका**-कर्दममुनिने स्वायंभुवमनुसे कहा कि तुम्हारी कन्या देवहूति प्रमादकर्मोंसे हीन है,सुन्दर कर्म करनेवाली है,इसलिये हम उसके साथ विवाह करैंगे. यह बडी शंका है कि कर्दममुनिने देवहूतिको कैसे जाना कि प्रमत्तकर्मोंसे रहित है ?

उत्तर-कदममुनि नारदके मुखसे देवहूतिके उदरसे भगवान्का जन्म सुनके अपने हृदयमें विचार करने लगे कि नीचकर्म करनेवाली स्त्रीके पुत्र भगवान् कैसे होंगे ? भगवान्का जन्म सुनके कर्दमजीने जानलिया कि देवहूति उत्तमकर्म करनेवाली है इसलिये मनुजीसे कहा.

एक समय महलके ऊपर चढी गेंदसे क्रीडा कररहीथी इसकी मनोहर छवि निरख मोहसे मोहित चित्त होकर विश्वावसुगन्धर्व अपने विमानसे नीचे गिरपडा ॥ १७ ॥ देवललना उसकी ललितकलित छबि निहार मन मारमार कर रह जाती थीं और रमाके चरणोंकी सेवा उनसे नहीं होती भई ऐसे पुरुषोंसे अदृष्ट सब स्त्रियोंकी मुकुटमणि सो मनुकी पुत्री उत्तानपादकी भगिनी अपने आप प्राप्त हो ऐसी कन्याको कौन न भजेगा ॥ १८ ॥ इस कारण ऐसे समयमें इस तुम्हारी साध्वी कन्याको हम अवश्य भजेंगे, परन्तु जबतक इसके पुत्र न होगा, तबतक इसका अंगस्पर्श करेंगे, इसके पीछे हम परमहंसोंके मुख्य भगवत्प्रोक्त हिंसारहित धर्म मानेंगे ॥ १९ ॥ जो परमात्मा अनन्त विश्व रचता है, पालन करता है, संहार करता है, सोई प्रजापतियोंके पति अनन्त भगवान्के वचन मुझे प्रमाण हैं ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे उग्रधन्वा विदुर ! यह कह भगवान् कर्दमजी चुप होगए, बुद्धिसे व मंदमुसकानसे देवहूतिके मनको लुभाय ग्रहण किया ॥ २१ ॥ रानी शतरूपा और पुत्रीकी संमति लेकर प्रसन्न हो गुणवान् कर्दमजीको अपनी बेटी समर्प्पण की ॥ २२ ॥ फिर शतरूपा महारानीने दहेजमें बहुतधन और अनेक प्रकारके वस्त्राभूषण घरकी सब सामग्री स्त्रीपुरुष दिये ॥ २३ ॥ राजाने सब व्यथासे दूर हो समान वरको कन्या देकर उत्कण्ठासे विवश हो भुज भरकर देवहूतिको

तां प्रार्थयंतीं ललनाललाममसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ॥ वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥ १८ ॥ अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ॥ अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्याञ्छुक्लप्रोक्तान्बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥ १९ ॥ यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाऽवतिष्ठते ॥ प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननंतः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविंदनाभम् ॥ धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥ २१ ॥ सोऽनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ॥ तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥ २२ ॥ शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ॥ दंपत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥ २३ ॥ प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ॥ उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कंठ्योन्मथिताशयः ॥ २४ ॥

हृदयसे लगाया ॥ २४ ॥ सुताका वियोग राजा रानी न सहसके, नेत्रोंसे बारंबार आंसू गिरनेलगे फिर शतरूपा अपनी पुत्रीको गोदमें बैठाय, हे दुहिता !हे बेटी ! कह, नेत्रोंके नीरसे पुत्रीकी शिखाको सिक्त करनेलगी स्वायंभुवमनु शतरूपा कन्याको धैर्य दे मुनिवरसे बिदा मांग रथमें बैठ स्त्रीसमेत अपने नगरको चलदिये ॥ २६ ॥ ऋषि और मुनियोंसहित सरस्वती तीर देख दंडवत् कर दोनों ओरकी शान्त ऋषियोंके आश्रमोंकी सम्पदा देखते २ चलेगये ॥ २७ ॥ जब स्वायंभुव मनु ब्रह्मावर्त्तदेशमें आये तौ प्रजागण गीत गाय बाजे बजाय अत्यन्त हर्षसे सब

अशक्नुवंस्तद्विरहं मुंचन्बाष्पकला मुहुः ॥ आसिंचदंब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥ २५ ॥ आमंत्र्य तं मुनि
वरमनुज्ञातः सहानुगः ॥ प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः॥२६॥ उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः॥
ऋषीणामुपशांतानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥ २७ ॥ तमायांतमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् ॥ गीतसंस्तुतिवा
दित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥ २८ ॥ बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसंपत्समन्विता ॥ न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्यांगं
विधुन्वतः ॥ २९ ॥ कुशाः काशास्त एवासञ्छश्वद्धरितवर्चसः ॥ ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥ ३० ॥
कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः॥ अयजद्यज्ञपुरुषं लब्ध्वा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥ बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां नि
विश्य समावसत् ॥ तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥ सभार्यः सप्रजः कामान्बुभुजेऽन्याविरोधतः ॥ ३२ ॥
संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥ प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥ ३३ ॥

सम्मुख खड़े हो स्तुति कर॥ २८ ॥ सब संपत्तिसहित बर्हिष्मती नाम पुरीमें लाये, जहां यज्ञरूप श्रीवाराहजीने अपने अंगको झाड़ा और उनके रोम वहां गिरे थे ॥ २९ ॥ उन रोमोंके हरे रंगके कुश और काश होगये. जिन कुशाओंसे यज्ञनाशकोंका तिरस्कार कर ऋषिलोगयज्ञ करनेलगे ॥ ३० ॥ भगवान् स्वायंभुव मनुभी कुशकाशका आसन बिछाय यज्ञ कर आनंदसहित स्थानपर आये ॥३१॥ बर्हिष्मती नाम पुरीमें प्रवेश किया जहांके मनोहर भवन त्रितापके हरनेवाले थे तहां पत्नीपुत्रोंसमेत वास करनेलगे और भोग भोगने लगे ॥३२॥ गंधर्व स्त्रियों सहित

अपनी कीर्ति भी गान कर रहे हैं, तथापि स्वयं प्रातःकाल अनुरागी हृदयसे श्रीनारायणकी कथा नित्यप्रति सुनते भये॥३३॥योगमायामें निमग्न रहते भगवत्परायणको अनेकप्रकारके भोग भ्रष्ट करनेको समर्थ न हुए ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्की कथा सुनते२ ध्यान करते २ परमात्माका गुण गाते २मन्वन्तरका काल व्यतीत करदिया॥३५॥इसीप्रकार इकहत्तर युग कथासे मन्वन्तरको जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंको कृष्ण कथाहीमें व्यतीत किया, कारण कि इस देहका यही फल है कि सुकृतकर्ममें अपनीआयुको व्यतीत करै॥ ३६॥हे व्यासनन्दन विदुर! यह शरीर दैविक, भौतिक, मानसिक और जो शीतोष्णादिक अनेकप्रकारके ताप हैं, वे श्रीवृन्दावनविहारी भक्त हितकारीके आश्रयवालेको कभी बाधा नहीं

निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् ॥ यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥ ३४ ॥ अयातयामास्त
स्यासन्यामाः स्वांतरयापनाः ॥ शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥ ३५ ॥ स एवं स्वांतरं निन्ये युगा
नामेकसप्ततिम् ॥ वासुदेवप्रसंगेन परिभूतगतित्रयः ॥ ३६ ॥ शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ॥
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधंते हरिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधाञ्शुभान् ॥ नृणां वर्णाश्रमा
णां च सर्वभूतहितः सदा ॥ ३८ ॥ एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ॥ वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु
॥३९॥ इति श्रीमद्भागवते म० तृतीयस्कंधे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच॥ पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी
पतिमिंगितकोविदा ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥

करते ॥३७॥ वर्णाश्रमादिकअनेक प्रकारके शुभधर्म मनुष्योंके धर्म, सब जीवोंके धर्म जो जो मुनियोंने बूझे सो मनुने वर्णन किये ॥ ३८ ॥ आदि नृप स्वायंभुवमनुका चरित्र मैंने सब आपसे वर्णन किया अब उनके सन्तानोंकी कथा सुनो ॥३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायांसपत्नीकस्वायंभुवमनोर्बर्हिष्मतीं प्रत्यागमनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥ दोहा—तेइसवें अध्यायमें, सम्पत युक्त विमान ॥ रच कर्दम क्रीडाकरत, नव कन्या उपजान॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब शतरूपा और स्वायंभुवमनु अपने नगरको चलेगए तब साध्वी

---

*कवित्त—पायोहै मनुजदेह औसर बन्योहै आय, ऐसी देह बार २ कहो कहां पाइये। भूलतहै बावरे तू सबसे सयानो होय, रतन अमोल यह काहेको गँवाइये ॥ समुझ विचार कर ठगनके संग त्याग, ठग जैहै देख कहूँ मन न डुलइये सुन्दर कहत तू अबभी सावधान होय, हरिके भजन कर हरिमें समझाइये ॥

देवहूति अपने पतिके मनकी बात जाननेवाली नित्यप्रति प्रीतिसे पतिकी सेवा करनेलगी, जिस प्रकार हिमाचलपुत्री महेश्वरकी सेवामें दिनरात लगी रहती हैं ॥ १ ॥ विश्वास, शौच व अपने गौरवसे दम, सुहृदता व मधुरवाणीसे शुश्रूषा करैं ॥ २ ॥ कपट, दंभ, द्वेष, लोभ, पाप, मद इन सबको त्यागकर महातेजस्वी मुनीश्वरको संतुष्ट करती रहैं. इस प्रकार अपने शरीरकी सब सुध बिसार कांतकी सेवा करते करते सब शरीर शिथिल होगया, परंतु पतिकी सेवा करनेसे मन न थका ॥ ३ ॥ निश्चयकरके सो देवर्षियोंमें श्रेष्ठ कर्दम, उस मानवी सदा सेवा करनेवाली सबसे बडे भाग्यवाली पतिसे बडे २ आशीर्वादोंकी अभिलाषा करनेवाली ॥ ४ ॥ बहुत दिन सेवा करनेसे जिसका शरीर दुर्बल होगया है ऐसी मानवी

विश्रंभेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च॥शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः॥२॥विसृज्य कामं दंभं च द्वेषं लोभमघं मदम् ॥ अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥३॥ स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ॥ दैवाद्गरीयसः पत्यु राशासानां महाशिषः॥४॥कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ॥ प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत् ॥५॥ कर्दम उवाच ॥ तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ॥ यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥ ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपस्समाधिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ॥ तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥७॥ अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृंभविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ॥ सिद्धाऽसि भुंक्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥ ८ ॥

देवहूतिसे प्रेमसहित गद्गदवाणीसे पीडित हो कृपा करके ॥ ५ ॥ कर्दमजी बोले कि, हे मानवी ! आज मानदात्री तुम्हारी परम शुश्रूषासे और अत्यन्त भक्तिसे मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ; जो अपना देह देहधारियोंको अत्यन्त प्याराहै सो देह तुमने मेरी सेवाके अर्थ लगादिया, और अपना जीवन मरण कुछ न समझा, इस कारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥ ६ ॥ जो मैंने स्वधर्ममें रत होकर तप, समाधि, विद्या, आत्मयोगसे जीते भगवत्के दिव्यप्रसाद प्राप्तकिये हुए हैं, उनको मेरी सेवा करके तैंने अपने वशमें करलिया है अब मैं तुझको दिव्यदृष्टि देताहूँ जिसके प्रतापसे अभय अशोक सविस्तार संसारको तुम देखोगी॥७॥तो फिर भगवान्की भ्रुकुटि टेढी होनेसे जिनकी अर्थ रचनाका विनाश होजाताहै ऐसा वैभव

क्या वस्तु है?तू सिद्ध होगईहै, इसलिये निजधर्मपूर्वक प्राप्त हुएहैं उन वैभवोंको अनुभव करो जो नृपोंकीसी क्रिया करनेवाले मनुष्योंकोभी नहीं प्राप्त होते॥८॥इसप्रकार पतिकी सब योगमाया और विद्या व पांडित्यको देखकर देवहूतिकी सब पीडा और चिन्ता नष्ट होगई और फिर विनय प्रेमसे विह्वल हो गद्गदवाणीसे कुछ लज्जाकी चितवनसे विलसित हँसित मुखारविन्दवाली ॥ ९ ॥ देवहूति बोली कि, हे विप्रवर!हे प्राणनाथ !! हे स्वामिन् ! ! ! आप अमोघ मायाके स्वामी हो, तुममें यह सब प्रस्तुत है यह मैं भलीप्रकार जानूं हूँ, परन्तु तुमने जो मुझसे कहा था कि, पुत्र उत्पत्तितक मैंतेरे साथ विहार करूंगा सो अपने कहे अनुसार एकबार अंगसंग करना योग्य है;क्योंकि महातेजस्वी पतिसे जो सतीस्त्रियोंके

एवंब्रुवाणमबलाऽखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ॥ संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडाऽवलोकवि
लसद्धसिताननाह ॥ ९॥ देवहूतिरुवाच ॥ राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाऽधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ॥ य
स्तेऽभ्यधायि समयः सकृदंगसंगो भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥ १० ॥ तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं
येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयात्मा ॥ सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥ ११ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः ॥ विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥ १२ ॥
सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तंभैरुपस्कृतम् ॥ १३ ॥ दिव्योपकरणोपेतं
सर्वकालसुखावहम् ॥ पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥ १४ ॥

संतान उत्पन्न होती हैं वे अत्यन्त गुणवान् होती हैं ॥१०॥ हे प्रभो ! अंगसंग करने योग्य कामशास्त्रोंकी शिक्षाहै,जिससे मेरी यह मलीन और क्षीण देह रमण करनेयोग्य हो तुम्हारे कियेहुए कामसे मैं धर्षित हूँ,इसकारण उसको शान्त करनेके लिये उत्तम भवन बनाना चाहिये ॥ ११॥ मैत्रेयजी बोले कि,हे विदुरजी!प्रियाके प्रियवचन सुन कर्दमजीने योगबलसे उसी समय एक ऐसा परमोत्तम विमान प्रगट किया कि इच्छानुसार सब भूमण्डलमें घूमनेवाला॥१२॥सर्व इच्छा पूर्णकरनेवाला दिव्ययान बडे मूल्यके रत्नोंसे जड़ाहुआ सब वृद्धियोंके समूहोंसे संचित मणिमाणिकोंके खम्भोंसे शोभित॥१३॥दिव्यसामग्रीसमेत प्रत्येककालमें सुख देनेवाला नानाप्रकारकी अद्भुत२ध्वजा व विचित्र पताकाओंसे विभूषित१४॥

विचित्र पुष्पोंकी सुन्दर२ माला लटक रहीं जिनपर भँवरोंके झुण्डके झुण्ड गुंजार रहे, रेशमी वस्त्र बढ़िया पीतांबरादिक अनेक प्रकारसे लगेहुए ॥ १५॥चौखंडे पञ्चखंडे रचेहुए स्थानों व मंदिरोंमें पृथक् २ शय्या,चमर, पर्यङ्क,व्यजन, आसन जहाँ तहाँ विराजमान॥१६॥ उन स्थानोंमें नानाप्रकारकी शिल्पकी कारीगरीसे चित्रसारीऔर तिवारी ऐसी मनोहर सवारी थी कि जिनकी मणिमरकतमय भूमिमें अद्भुत वेदी बनरहीथी॥१७॥ द्वारोंपर विद्रुमकी देहलियोंका प्रकाश हीरोंसे जडे वज्रकिंवाड विद्युच्छटासम चमक रहे, शिखरोंपर इन्द्रनील मणि लसी हुई,कनकके कलशियां दमकरहे॥१८॥भीतोंके भीतर हीरे,माणिक,पद्मराग जहाँ तहाँ चित्रविचित्र नेत्रोंकी समान चमक रहेथे और रंगबिरंगे अधिक मोलके शामियाने तने थे॥१९॥मणियोंके कृत्रिम हंस व कपोतोंको देख२हंस कबूतरोंके झुण्ड उसको अपना सजातीय समझ उड२उनके निकट आआकर बैठतेथे॥२०॥विहारस्थान, शयन भवन,विश्रामगृह,उपभोगस्थल,आँगन,दुर्गसे बाहरके मन्दिर सविस्तार चौक उसमें ऐसे२अद्भुत भवन यथासुख बने थे कि, जिनको देख कर्दमजीको भी विस्मय होता था ॥२१॥ऐसे शोभायमान मंदिरोंको देख, देहकी मलिनता और सखियोंके न होनेसे

स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मंजुशिंजत्षडंघ्रिभिः ॥ दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम्॥१५॥ उपर्युपरिविन्यस्तनिलयेषु पृथक्पृथक् ॥ क्षिप्तैः कशिपुभिः कांतं पर्यंकव्यजनासनैः ॥ १६ ॥ तत्रतत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ॥ महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥ १७ ॥ द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ॥ शिखरेष्विंद्रनीलेषु हेमकुंभैरधिश्रितम् ॥ १८ ॥ चक्षुष्मत्पद्मरागाद्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ॥ जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥ १९ ॥ हंसपारावतव्रातैस्तत्रतत्र निकूजितम् ॥ कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥ २० ॥ विहारस्थानविश्रामसंवेशप्रांगणाजिरैः ॥ यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥ २१ ॥ ईदृग्गृहं तत्पश्यंती नातिप्रीतेन चेतसा ॥ सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम्॥ २२ ॥

देवहूति अपने मनमें अत्यानन्द न हुई, तब सब जीवमात्रके अन्तर्यामी कर्दमजी देवहूतिसे बोले ❋ ॥ २२ ॥ हे सुमुखि ! इस बिन्दुसरोंवरमें स्नान करके इस विमानमें बैठ यह तीर्थ अपने नेत्रोंसे आनन्दका बिन्दु इस भूमिपर डालकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने उत्पन्न किया है, यह मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला, और आशीर्वादका देनेवाला है ॥ २३ ॥ वह पंकजनेत्रा देवहूति पतिका वचन मान, मलिनवस्त्र पहिरे दुर्बल शरीर, वेणीभूत केश धारण किये ॥ २४ ॥ मैली देह, कीचमट्टीमें सनीहुई, ऐसी देवहूतिने उस विस्तीर्ण सरस्वतीके शिवसरोवरमें स्नान किया ॥ २५ ॥ सरोवरके भीतरसे एक हजार कन्या सब किशोरवय सर्वगुणसंपन्न, कमलसमान सुगंधवाली दृष्टि आईं ॥ २६ ॥ देवहूतिको देख हाथ जोड़कर सब स्त्रियें बोलीं, कि हम आपकी दासी हैं और सब कर्मकी करनेवाली हैं, हमको जो आज्ञा दो वह करैं ॥ २७ ॥ उस मनस्विनीको स्वच्छतासे स्नान कराकर अमूल्य वस्त्र दासियोंने पहिराकर ॥ २८ ॥ सर्व स्वादुयुत अन्न जिमाय अमृतसमान मिष्ट मादक जल पिलाया और अमोल रत्नजटित वस्त्राभूषण पहिराये ॥ २९ ॥

निमज्यास्मिन्ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ॥ इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥ सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ॥ सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥ अंगं च मलपंकेन संच्छन्नं शबलस्तनम् ॥ आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥ २५ ॥ साऽन्तस्सरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः ॥ सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगंधयः॥२६॥ तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्रांजलयः स्त्रियः ॥ वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥ स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ॥ दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानद ॥ २८ ॥ भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमंति च ॥ अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥२९॥

❋ **शंका**—देवहूतिने अपने पति कर्दममुनिसे प्रथम तो रतिसुखके लिये सुन्दर २ स्थान, मन्दिर बनानेकी याचना की, जब कर्दममुनिने महा अद्भुत अत्यन्त शोभायमान भवन बनाये, तब मन्दिरोंको देखकर उदास क्यों होगइ ?

उत्तर—प्रथम देवहूतिने अपने पतिके प्रभावको नहीं जाना था जब तपस्यासे कर्दममुनिने महाअद्भुत विमान बनाया, उसको देखकर अपने पतिके प्रभावको जानलिया कि ये बडे सिद्ध हैं मैंने ऐसा सामर्थ्यवान् पति पाकर तुच्छ स्थान मांगा मोक्ष क्यों नहीं मांगा. इसलिये देवहूति अपने मनमें उदास होगई थी.

फिर देवहूतिने पुष्पोंकी माला पहिर, शुक्ल वस्त्र धार निर्मल स्वस्त्ययन करीहुई, बहुत कन्या सम्मान करें ऐसे अपने अंगको आरसीमें देखा ॥ ३० ॥ शिरसे स्नान किये सब आभरण शोभित गलेमें हार और हाथोंमें कंकन पहिरे, सौभाग्यके सब मांगलिक पदार्थ धारण किये पावोंमें स्वर्णके नूपुर झनझनाती ॥ ३१ ॥ बहुत रत्नोंकी करधनी कटिमें पहिरे, हीरोंके हार कण्ठमें शोभायमान ॥ ३२ ॥ सुन्दर दांत, सुन्दर भौंहैं, मनोहर प्रेमरसभरे कटाक्षवाले नेत्र, पद्मरागकी निन्दा करनेवाले नेत्र नील मेघनिभ अलकोंसे शोभित मुखारविंद दृष्टि आया ॥ ३३ ॥ उस मनोहर छबिको निरख ऋषिश्रेष्ठ अपने प्राण

अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजांबरम् ॥ विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥ ३० ॥ स्नातं कृतशिरस्स्नानं सर्वाभरणभूषितम् ॥ निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥ ३१ ॥ श्रोण्योरध्यस्तया कांचन्या बहुरत्नया ॥ हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥ ३२ ॥ सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापांगेन चक्षुषा ॥ पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥ ३३ ॥ यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् ॥ तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यंत्रास्ते स प्रजापतिः ॥ ३४ ॥ भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ॥ निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥ स तां कृतमलस्नानां विभ्राजंतीमपूर्ववत् ॥ आत्मनो बिभ्रतींरूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥ ३६ ॥ विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ॥ जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥

प्रीतमका देवहूतिने स्मरण किया, वह वहाँ गई जहाँ सब ऋषियोंमें अग्रगण्य कर्दमजी विराजते थे ॥ ३४ ॥ हजार सहचरियों समेत, प्यारे अपने पतिकी योगमायाको देख देवहूतिको महासंशय हुआ कि, यह क्या आश्चर्य है! ॥ ३५ ॥ मज्जनस्नान करनेसे अपूर्व शरीरकी कांति प्रकाशित है जैसे कि विवाहके समय थी, उस रूपको धारण किये वस्त्रसे उरोजोंको छिपाये कर्दमजीने देवहूतिको देखा ॥ ३६ ॥ सहस्रविद्याधरियोंसे सेवित, मनोहर वस्त्र पहिरे उस मनोरमाको देखकर हे विदुरजी! कर्दममुनिने देवहूतिका कोमल मृणालवत् कर पकड़कर प्रेमसहित उस विमानपर बिठाया ॥ ३७ ॥

महिमा जिनकी लुप्त न हुई प्रियोंमें आसक्त विद्याधरियोंसे शुश्रूषित कर्दमजी प्रफुल्लित पद्मकी समान सुन्दर आकाशमें तारागणसेवित चन्द्रमाकी समान शोभा पानेलगे ॥ ३८॥ उस विमानमें बैठकर आठों लोकपालोंके विहारका स्थान कामदेवके सखा शीतल, मंद, सुगन्ध, बयार चलरही, गंगाके गिरनेका कल्याणदायक शब्द होरहा ऐसे सुमेरुपर्वतपर कन्दराओंमें कुबेरसम कर्दमजी ललनागणोंको साथ लिये, सिद्ध जिनकी स्तुति करते रमण करनेलगे॥ ३९॥ फिर कर्दमजी प्रसन्न होकर वैश्रंभक, नन्दन सुरसन, पुष्पभद्रक, मानस, चैत्ररथ, इन देवताओंकी वाटिकाओंमें अपनी रमणीके साथ रमण करनेलगे ॥ ४० ॥ प्रकाशवाला ऐसे जहाँ पुरुष चाहै वहाँ जायँ, बडे विमानमें बैठकर लोकोंमें जैसे पवन चलै तैसे सब विमानोंको

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययाऽनुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ॥ बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृत
इवोडुपतिर्नभस्स्थः ॥ ३८ ॥ तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनंगसखमारुतसौभगासु ॥ सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपात
शिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥३९॥ वैश्रंभके सुरसने नंदने पुष्पभद्रके ॥ मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे
रामया रतः॥४०॥ भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ॥ वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान्यथाऽनिलः ॥ ४१ ॥
किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम्॥ यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥४२॥ प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै
यावान्स्वसंस्थया ॥ बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥ विभज्य नवधाऽऽत्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम्॥
रामां निरमयन्रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥४४॥ तास्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ॥ न चाबुध्यत तं काल
पत्याऽपीच्येन संगता ॥ ४५ ॥

उल्लंघनकर कर्दमजी सबके शिरोमणि हुए ॥ ४१ ॥ उन धैर्यवानोंको कौन वस्तु दुर्लभ है? जिन्होंने कष्टहरण श्रीनारायणके कमलरूपी चरणका आश्रय लिया है. सब व्यसन उनके नाश होजाते हैं॥४२॥ फिर जितना भूमंडल है सो सब अपनी भार्याको दिखाया जिससे वह आश्चर्य्यान्वित हुई-सबमें विचरकर महायोगी कर्दमजी अपने आश्रमको आये ॥४३॥ मनुकन्याने नव कन्या उत्पन्न कीं तौभी मैथुनमें जिसका मन ऐसी अपनी प्रिया देवहूति स्त्रीसे बहु सौवर्ष एक मुहूर्तकीनाईं रमण करते कर्दमजीको बीतगये॥४४॥ तबउस विमानपर स्थित होकर देवहूति अपने पतिके साथ ऐसी

मोहित हुई कि समयकी कुछ सुधि न रही॥४५॥इसप्रकार योगके प्रभावसे स्त्री पुरुषको आनन्द क्रीडा करतं२कामकी लालसामें सौ वर्ष व्यतीत होगये ॥४६॥देवहूतिको अत्यन्त स्नेहके कारण आत्मज्ञानी आत्माका भाव जानकर नौ प्रकारका रूप विधानकर विभु सब संकल्पके ज्ञाता कर्दमजीने देवहूति वीर्य धारण किया.पुरुषका वीर्य अधिक होय तौ पुत्र,स्त्रीका रज अधिक होय तो कन्या होती है॥४७॥इसकारण देवहूतिके शीघ्रही नौ कन्या उत्पन्न हुईं वे सब श्रेष्ठ कोमलांगी,जिनका लाल कमलकेसा रंग,और अंगमें सुगन्धि थी॥४८॥फिर जिससमय कर्दमजीने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार संन्यास ले वनके जानेकी इच्छाकी उससमय पतिको देख सती देवहूति मोहसे विवशहृदय हो मुसकाई॥४९॥नीचेको ग्रीवाकिये,मणिसमान कांतिवाले

एवं योगानुभावेन दंपत्यो रममाणयोः ॥ शतं व्यतीयुः शरदः काममलालसयोर्मनाक् ॥ ४६ ॥ तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित् ॥ नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसंकल्पविद्विभुः ॥ ४७ ॥ अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ॥ सर्वास्ताश्चारुसर्वांग्यो लोहितोत्पलगंधयः॥ ४८ ॥ पतिं सा प्रव्रजिष्यंतं तदालक्ष्योशती सती ॥ स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥ ४९ ॥ लिखंत्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ॥ उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥ ५० ॥ देवहूतिरुवाच॥ सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ॥ अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥ ५१ ॥ ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ॥ कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ ५२ ॥ एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रांतेन मे प्रभो ॥ इंद्रियार्थप्रसंगेनपरित्यक्तपरात्मनः ॥ ५३ ॥ इंद्रियार्थेषु सज्जंत्याः प्रसंगस्त्वयि मे कृतः ॥ अजानंत्याः परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे ॥ ५४ ॥

चरणके अँगूठेके नखसे धरतीको खोदनेलगी,और धीरे२ आंखोंसे आंसू पोंछ मृदुलवाणीसे॥५०॥देवहूति बोली कि,हे नाथ! आपने सबप्रकार मेरा मनोरथ पूरा किया, तौभी मैं आपकी शरण आई हूँ, मुझको आप अभयदान दीजिये ॥५१॥हे ब्रह्मन् ! आपको इतनी कृपा और करनी चाहिये कि इन कन्याओंके योग्य कोई उत्तम कुलका वर ढूँढकर विवाह करतेजाओ, व एक मेरा शोकहर्ता पुत्र उत्पन्न कर पीछे वनको जाइयो ॥५२॥ हे प्रभो!इन्द्रियोंके प्रसंगसे मैंने परब्रह्मको त्यागकर इतना समय व्यतीत किया,इसीमें मेरा मन तृप्त होगया॥५३॥ इन्द्रियसुखमें आसक्त होकर

मैंने आपसे भोग विलास किया सो आपके परमभावको मैं नहीं जानती थी, तौभी मेरे अभयके अर्थ कुछ उपाय करना चाहिये॥५४॥संयोग संसारसे बन्धनका कारण है सो कुबुद्धिमें असत्पदार्थोंमें संयोग किया,वही संयोग महात्माओंसे किया जाय तो निश्चय मोक्ष होजाय॥५५॥इस संसारमें आनकर जिसने धर्मार्थ न तौ कोई उत्तम कर्म किया, न वैराग्यार्थ कुछ तप किया,न नारायणके चरणारविन्दोंकी सेवा करनेको कुछ उपाय किया है वह पुरुष जीताहुआ मृतककी समान है ॥५६॥ निश्चय है कि मैं भगवान्‌की मायासे मोहित होगई जो आपसे मोक्षदायक पतिको पाकर भी इस संसारके बन्धनसे न छूटी. मनुष्य कितनाही बुद्धिमान् हो परन्तु भगवान्‌की भक्ति विना सब वृथा है॥५७॥इति श्रीम॰ महा॰ तृती॰

संगो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितो धिया ॥ स एव साधुषु कृतो निस्संगत्वाय कल्पते॥५५॥ नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ॥ न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ५६ ॥ साऽहं भगवतो नूनं वंचिता मायया दृढम् ॥ यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बंधनात् ॥५७॥ इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कंधे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥ मैत्रेय उवाच ॥ निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः॥ दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिंदिते ॥ भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते ॥ २ ॥ धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च ॥ तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥ ३ ॥

भाषा॰ नवकन्योत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥ दोहा–चौविसवें अध्यायमें, कपिलदेव अवतार । कर्दममुनि वनको गये, त्याग जगत व्योहार ॥ २४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि मनुतनया देवहूतिने जब इस प्रकार ज्ञानवैराग्यके वचन कहे, उस समय भगवान् वासुदेवके कहे वचन स्मरण करके महात्मा कर्दमजी देवहूतिकी प्रशंसा कर ॥ १ ॥ ऋषि बोले, कि हे राजपुत्रि ! खेद त्यागो,अपने आत्माकी इस प्रकार निंदा मत करो, अक्षर भगवान् थोडेही दिनोंमें तुम्हारे गर्भमें आनकर प्राप्त होंगे ॥२॥ तुमने अनंतव्रत धारण किये हैं तुम्हारी कुशल होगी. दम, नियम,

---

[१] सवैया ॥ बुद्धि बडी चतुराई बडी मनमें ममता आति नालिपटीहै ॥ नाम बडो धनवान बडो करतूत बडी जगमें प्रगटीहै ॥ गजबाजिय द्वार मनुष्य हजार तौ इन्द्र समानसे कौन घटीहै ॥ सो सव विष्णुकी भक्तिविना मानो सुन्दर नारिकी नाक कटीहै ॥

तप,धन, दान,श्रद्धासे परमात्माकी सेवा करो॥ ३ ॥तुम आदिपुरुष अविनाशी श्रीमन्नारायणका आराधन करोगी तो त्रिलोकीनाथ ज्ञानउपदेशक श्रीभगवान् तुम्हारी,उदरसे उत्पन्न होकर मेरा यश विस्तारकर तेरे हृदयकी ग्रंथि और मोह ममताका छेदन करेंगे✻ ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, देवहूति कर्दमप्रजापतिके वचन सुन उनपर पूर्ण विश्वास कर श्रद्धासहित अचिन्त्यरूप कूटस्थ पुरुष जगद्गुरु ईश्वरका भजन करनेलगी ॥५॥ कुछ दिनोंके उपरांत मधुसूदन भगवान् कर्दमजीके वीर्यको प्राप्त होकर,जैसे काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होती है तैसे देवहूतिके उदरसे उत्पन्न हुए॥६॥उस समय

स त्वयाराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः ॥ छेत्ता ते हृदयग्रंथिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः ॥ सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥५॥ तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ॥ कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥ ६ ॥ अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ॥ गायंति तं स्म गंधर्वा नृत्यंत्यप्सरसो मुदा ॥ ७ ॥पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः ॥ प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अंभांसि च मनांसि च ॥ ८ ॥ तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्याः परिश्रितम् ॥ स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥ ९ ॥ भगवंतं परब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ॥ तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥ १० ॥

आकाशमें बड़े शब्दसे बाजे बजनेलगे,गन्धर्व गानेलगे, अप्सरायें नाचने लगीं ॥७॥ दिव्य आकाशवासियोंके छोड़ेहुए पुष्प वर्षने लगे, सब दिशा जल और मन अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ८ ॥ सरस्वतीपरिवेष्टित उस कर्दमजीके आश्रमपर मरीचिआदि ऋषियोंको संग लेकर ब्रह्माजी आये ॥ ९ ॥ हे रिपुसूदन ! विदुरजी!भगवान् परब्रह्म सत्त्वअंशसे सम्यक् सांख्यशास्त्रको प्रगट करनेके लिये जन्म लिया है,यह बात स्वतःसिद्ध आत्मज्ञानवाले

---

* **शंका**--कर्दममुनिने देवहूतिसे कहा कि तुमने भलीभाँति श्रीलक्ष्मीनारायणका पूजन किया है. इसलिये श्रीभगवान् तुम्हारे पुत्रहो परन्तु यह भ्रम होता है कि किस जन्ममें ? यह सुन देवहूति फिर एकाग्रचित्त कर सावधानीसे परमेश्वरका पूजन करने लगी.

उत्तर–इसी जन्ममें देवहूति अपने हृदयमें रातादिन भगवान्को अपना पुत्र होनेके लिये मानसिकपूजन करती थी इन देवहूतिके कर्माकें कर्दममुनिने जान लिया,

ब्रह्माजीको प्रगट हुई॥ १०॥ब्रह्माजी विशुद्धचित्तसे उनके करनेकी जो इच्छा प्रगट हुई उसको अत्यन्त सत्कारकर हर्षितचित्तसे कर्दमजीसे ॥११॥ बोले कि,हे पुत्र! हे मान देनेवाले! तुमने निष्कपट होकर मेरी पूजा की जो मेरा वचन मानसे तुमने ग्रहण किया॥ १२॥पुत्रोंको पिताकी इतनीही शुश्रूषा करनी चाहिये;“जोआज्ञा”ऐसा कहकर पितृवचन, गुरुवचन गौरवतासे माने ॥ १३ ॥ हे सभ्य ! यह तुम्हारी सुन्दर नव पुत्रियें अपने प्रभावसे अनेक प्रकारकी सृष्टिको बढ़ावेंगी॥ १४॥इसलिये इनके शील और रुचिके अनुसार मुख्य२मरीचिआदि ऋषियोंके लिये इन कन्याओंको दो, और संसारमें अपना यश विस्तार करो ॥१५॥ हे मुने!हम इस बातको भलीभांति जानते हैं कि प्राणियोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आदि

सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ॥ प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ॥ यन्मे संजगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥ १२ ॥ एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः ॥ बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥ १३ ॥ इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः ॥ सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यंत्यनेकधा ॥ १४ ॥ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि॥ आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ १५ ॥ वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ॥ भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥ १६ ॥ ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरञ्जटाः ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदांबुजः ॥ १७ ॥ एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ॥ अविद्यासंशयग्रंथिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥ १८॥ अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः ॥ लोके कपिल इत्याख्यां गंता ते कीर्तिवर्धनः ॥ १९ ॥

५/3

पुरुषने अपनी मायासे कपिलदेह धारण कियाहै॥ १६॥हे देवहूति!जो आदिपुरुषने तुम्हारे गर्भमें प्रवेश कियाहै,सो ज्ञान(जो शास्त्रका सिद्धान्त) और विज्ञान (जो अपरोक्ष,) अर्थात् विना देखे, विना सुने,विना कहे यथार्थ वस्तुका जान लेना; येही दोनों एक उपाय हैं, इनसे कर्मोंके जो मूल हैं, अर्थात् वासना, उनको उखाडेंगे सो सुवर्णकेश, कमलनयन, पद्मचिह्नवाले जिनके चरणारविन्द हैं, ऐसे कैटभदैत्यके मारनेवाले तुम्हारे आत्मरूपका अज्ञान और मिथ्या ज्ञानकी ग्रंथिरूपोंको काटकर सब पृथ्वीपर विचरेंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ और ये तुम्हारे पुत्र सब संसारमें

प्रसिद्ध होंगे, सिद्धगणोंमें मुख्य और सांख्यशास्त्रके आचार्योंमें सेव्यमान और लोकमें कपिलदेव नामसे विख्यात होकर तुम्हारी कीर्तिको बढावेंगे ॥१९॥ मैत्रेयजी बोले कि, जगत्कर्त्ता चतुरानन उन दोनों स्त्रीपुरुषोंको धैर्य्य देकर सनत्कुमार और नारदमुनिसहित हंसवाहनपर बैठकर सत्य लोकको चलेगये ॥ २० ॥ हे विदुर! जब ब्रह्माजी अपने लोकको चलेगये, तब कर्दमजीने ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार अपनी नवों कन्याओंको विश्व रचनेवाले मरीचिआदि मुनीश्वरोंको देदिया ॥२१॥ कलानाम कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अंगिराको, हविर्भू पुलस्त्यको॥२२॥ योग्यगति पुलहको, क्रियासती यज्ञको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वकोदी जिस शान्तिसे यज्ञ समृद्ध होताहै इस प्रकार

मैत्रेय उवाच ॥ तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सह नारदः ॥ हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ॥ २० ॥ गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ॥ यथोदितं स्वदुहितॄः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥ २१ ॥ मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ॥ श्रद्धामंगिरसेऽयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥ २२ ॥ पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ॥ ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुंधतीम् ॥ २३ ॥ अथर्वणेऽददाच्छांतिं यया यज्ञो वितन्यते ॥ विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान्सदारान्समलालयत् ॥ २४ ॥ ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमंत्र्य तम् ॥ प्रातिष्ठन्नंदिमापन्नाः स्वंस्वमाश्रममंडलम् ॥२५॥ स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ॥ विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥ २६ ॥ अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमंगलैः ॥ कालेन भूयसा नूनं प्रसीदंतीह देवताः ॥ २७ ॥ बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ॥ द्रष्टुं यतंते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥ २८ ॥

उन श्रेष्ठब्राह्मणोंके साथ विवाह करके स्त्रियोंसहित उनको अत्यन्त लालन किया॥२३॥२४॥ हे विदुर! विवाह होनेके उपरान्त ऋषि कर्दमजीसे बिदा मांग आनन्दित हो अपने २ आश्रमोंको चलेगये ॥ २५ ॥ कर्दमजी अपनी स्त्रीमें देवश्रेष्ठ विष्णु अवतार हुआ जानकर, एकान्तमें आ प्रणाम कर बोले ॥ २६ ॥ हे हरे! अपने पापकर्मोंसे पापीजीव नरकमें दुःख भोगते हैं, उनका बहुतकाल बीतनेपर देवता उनपर प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ महात्मापुरुष एकान्तस्थानमें बैठकर अनेक जन्मके करेहुए सुन्दर योगसमाधिसम्बन्धी जप तप साधन कर आपके पदपंकजके दर्श

नार्थ उपाय करते हैं ॥ २८ ॥ वही त्रिभुवनपति नारायण आज हमारे अपराधोंको बिसारकर, अपने दासोंका पक्ष पुष्ट करनेवाले हमसे तुच्छ ग्रामवासियोंके घरमें आपने जन्म लिया ॥ २९ ॥ अपना प्रण पूरा करनेको और ज्ञानवैराग्यकी शिक्षा करनेको और भक्तोंका मान बढ़ानेको मेरे घर आनकर आपने अवतार लिया ॥३०॥ हे भगवन् ! यद्यपि चतुर्भुजआदि जो अद्भुतरूप है वही आपके योग्य है, तथापि आपके सुजन भक्तोंको जिस जिस प्रकारके रूपकी इच्छा होती है हे रूपरहित! आप उसीप्रकारका रूप धारण कर उनको प्रसन्न करते हो ॥३१॥ हे भगवन् ! प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञानके मनोरथसे महात्मापुरुष जिन आपके चरणपीठको नमस्कार करते हैं उन ऐश्वर्य्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य, श्रीसे पूर्ण जो आपहैं, सो

५१७

स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः ॥ गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥ स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ॥ चिकीर्षुर्भगवाञ्ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥ ३० ॥ तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ॥ यानियानि च रोचंते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥ त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाभिवादार्हणपादपीठम् ॥ ऐश्वर्यवैराग्ययशोवबोधवीर्यश्रिया पूर्तमहं प्रपद्ये ॥ ३२ ॥ परं प्रधानं पुरुषं महांतं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ॥ आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपंचं स्वच्छंदशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥ आस्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णर्णं उताप्तकामः ॥ परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युंजन्विशोकः ॥ ३४ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ॥ अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥ ३५ ॥

मैं आपकी शरणहूँ; अर्थात् सर्वगुणनिधान आपकी शरणहोनेसे मैंभी निष्काम होगया॥३२॥ परमेश्वरका प्रधानपुरुष महत्तत्त्व, काल, कवि, अहंकार लोक और लोकपालक, अपने अनुमानसे संसारमें आते हैं, भक्तोंके अधीन जिसकी शक्ति और जिनके स्वरूपमें सब प्रपंच समाया रहताहै ऐसे कपिलदेव भगवान्की मैं शरणहूँ॥३३॥ हे प्रजापतियोंके पति! मैं आपसे संन्यास धारणके कारण आदेश मांगता हूँ और यह भी जानता हूँ कि आपके अवतार लेनेसे मैं पितृऋणसे छूटगया और मेरी मनःकामना भी सिद्ध हुई, अब संन्यासियोंकी पदवीमें स्थित हो, आपको हृदयमें धारणकर विशोक होकर विचरण करूँगा ॥३४॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे मुने! सत्य लौकिकमें सब कार्योंमें मेरा कहना सबको प्रमाण है इस कारण जो वाक्य मैंने

आपसे कहे थे वे सब सत्य करनेको तुम्हारे यहां मैंने जन्म लिया॥३५॥इस लोकमें लिंगशरीरसे मुमुक्षुलोगोंको आत्माके दर्शनके लिये और जगत्की
दुर्वासना मोक्षके लिये,और तत्त्वोंकी संख्याके लिये संसारमें मैंने जन्म लियाहै॥ ३६॥ बहुतकालसे यह सूक्ष्म, अनादि ईश्वरसम्बन्धी ज्ञानमार्ग
नष्ट होगया था,उसके प्रचार करनेको यह मनुजअवतार संसारमें मैंने धारण कियाहै॥३७॥जो कुछ कर्म करो वह मेरे निमित्त समर्पण करो यही पूर्ण
संन्यासहै इस बातको मनमें धारण कर जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ और अत्यन्त दुर्जय इस मृत्युको जीतकर मोक्षके अर्थ मेरा भजन करो॥३८॥
मैं आत्मज्योति हूँ और सब जीवमात्रके हृदयमें वास करता हूँ सो अपनी बुद्धिसे सर्वत्र परमात्माको जानकर विगतशोक हो अभयपदको प्राप्त

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् ॥ प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥ ३६ ॥ एष आत्मप
थोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ॥ तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥ ३७ ॥ गच्छ कामं मयाऽऽपृष्टो मयि
संन्यस्तकर्मणा ॥ जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥ ३८ ॥ मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ॥
आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥३९॥ मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ॥ वितरिष्ये
यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥४०॥ मैत्रेय उवाच॥ एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ॥ दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो
वनमेव जगाम ह ॥ ४१ ॥ व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ॥ निस्संगो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः
॥ ४२ ॥ मनो ब्रह्मणि युंजानो यत्तत्सदसतः परम् ॥ गुणावभासे विगुण एकभक्त्याऽनुभाविते ॥ ४३ ॥

होओगे॥३९॥सब कर्मोंका नाश करनेवाली ब्रह्मविद्याका उपदेश अपनी माताके लिये विस्तारसहित कहूँगा, जिससे वह संसारबन्धनसे छूटकर
तरजायगी॥४०॥मैत्रेयजी बोले जब कपिलदेवजीने इस प्रकार कर्दमजीसे वचनकहे,तब कर्दमप्रजापति कपिल देवजीको प्रदक्षिणा करके वनको
चलेगये ॥ ४१ ॥ मुनिलोगोंका धर्म जो मौनव्रत है उसमें स्थित होकर; आत्माके शरणागत हो सबका सत्संग तजकर मोहविगत हो फलाहार
करनेलगे,एकस्थानपर न ठहरें,सब पृथ्वीपर विचरते रहैं॥४२॥ जो कार्यकारणसे परे ब्रह्महैं उसमें मन लगाय गुणोंका जिसमें प्रकाश है ऐसे निर्गुण

ब्रह्ममें लवलीन हो एक भक्तिको अनुभव करतेहुये ॥ ४३ ॥ अहंकार, ममतात्याग, सुखदुःख समान समझ समदर्शी ज्ञानदर्शी हो सबसे शान्त बुद्धि कर जैसे समुद्रमें सब तरंगें शान्त हो जाती हैं ॥४४॥ इसीप्रकार महाधीर प्रजापति कर्दमऋषि अपना मन सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान् सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामीमें लगा परमभक्तिभावसे आत्मज्ञान प्राप्त कर सब बन्धनसे मुक्त हुए ॥ ४५ ॥ सब जड चेतनमें आत्मा भगवान् वासुदेवको स्थित देखनेलगे और सब जड चेतनको भगवान् वासुदेव आत्मामें देखनेलगे ॥ ४६ ॥ कामना द्वेषको त्याग सर्वत्र समान चित्त कर भगवान्की भक्तिमें लय हो भगवद्गतिको प्राप्त हुए॥४७॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कपिलदेवावतारवर्णनं नाम

९।s

निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वंद्वः समदृक् स्वदृक् ॥ प्रत्यक् प्रशांतधीर्धीरः प्रशांतोर्मिरिवोदधि ॥ ४४ ॥ वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ॥ परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबंधनः ॥ ४५ ॥ आत्मानं सर्वभूतेषु भगवंतमवस्थितम् ॥ अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥ ४६ ॥ इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ॥ भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भगवती गतिः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ शौनक उवाच ॥ कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ॥ जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ १ ॥ न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ॥ विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यंति मेऽसवः ॥ २ ॥ यद्यद्विधत्ते भगवान्स्वच्छंदात्माऽऽत्ममायया ॥ तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥ ३ ॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥ दोहा–देवहूति पचीसमें, बूझत मुक्ति उपाय। भक्ति मुक्तिकी रीति सब, कही कपिल समझाय॥२५॥श्रीशौनकजी बोले कि, तत्त्वसांख्यशास्त्रके कर्ता भगवान् कपिलदेवजी मनुष्योंको आत्मतत्त्वका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे आपही अजन्मा भगवान्ने जन्म लिया ॥ १ ॥ सब पुरुषोंमें शिरोमणि, योगिजनोंमें श्रेष्ठ ऐसे वासुदेव भगवान्की कीर्ति और परमेश्वरके अत्यन्त चरित्र सुननेसेभी मेरी इन्द्रियें तृप्त नहीं होतीं ॥२॥ अपने प्यारे भक्तोंकी इच्छासे जो जो स्वरूप त्रिभुवनेश्वर भगवान् धारण करते हैं और अपनी मनमोहनी मायासे

जो जो अलौकिक लीला करते हैं.और अपनी मनमोहिनी मायासे जो जो अलौकिक लीला की हैं वे चरित्र मुझ श्रद्धालुको कीर्तन करनेके योग्य हैं, सो कृपा कर कीर्तन कीजे ॥ ३॥ सूतजी बोले कि, वेदव्यासजीके प्यारे सखा ब्रह्मविद्यामें प्रेरित मैत्रेय भगवान्‌ने विदुरजीसे प्रीतिके मारे,इसी प्रकारके वचन कहे थे, जैसा तुमने मुझसे प्रश्न किया, सो हम तुमसे कहेंगे,आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥४॥मैत्रेयजी बोले कि जब कर्दमजी वनको चलेगए,तब कपिलदेवजी अपनी माताकी मनःकामनाको पूर्ण करनेके अर्थ उसी बिन्दुसरोवरपर वास करनेलगे ॥ ५ ॥अपने सुत अकर्मी तत्त्वमार्गके अग्र दिखानेवाले कपिलदेवजीको बैठा देखकर ब्रह्माका वचन स्मरण कर ॥ ६ ॥ देवहूति बोली, हे भूमन्! हे प्रभो! खोटी इन्द्रियोंकी

सूत उवाच॥ द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रयो भगवांस्तथा ॥ प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच॥ पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ॥ तस्मिन्बिंदुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥ ५ ॥ तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् ॥ स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः॥६॥देवहूतिरुवाच ॥ निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिंद्रियतर्षणात् ॥ येन संभाव्यमानेन प्रपन्नांधं तमः प्रभो ॥ ७ ॥ तस्य त्वं तमसोंऽधस्य दुष्पारस्याद्यपारगम् ॥ सच्चक्षुर्जन्मनामंते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥८॥ य आद्यो भगवान्पुंसामीश्वरो भगवान्किल ॥ लोकस्य तमसांधस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः॥९॥ अथ मे देव समोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ॥ योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन्योजितस्त्वया ॥१०॥

तृष्णासे अब वैराग्य प्राप्त हुआ जिन विषयोंकी भावनासे अन्धतममें गिरनापडा ❋ ॥ ७ ॥ जो महागम्भीर दुःखके समुद्रसे कठिनाईपूर्वक पार जासकै,उसके अन्धकारको पार करनेवाले,अनेक जन्मोंके अन्तमें आपकी कृपासे मुझको इस सुन्दर स्वरूपका दर्शन हुआ है॥८॥पुरुषोंमें आद्य पुरुष भगवान् ईश्वर हैं सो आप हो; अँधियारेसे अन्धेहुए लोकोंके सूर्यके समान नेत्ररूप तुम उदित हुए हो ॥ ९ ॥ इस कारण हे देव!

---

*शंका–देवहूतिने कपिलमुनिसे कहा कि हे पुत्र ! खोटी इन्द्रियोंसे तौ मैं खेदित हो छूटगई हूं तौ फिर कपिलमुनिसे मुक्ति होनेका उपाय क्यों बूझा ! क्योंकि जो खोटी इन्द्रियोंसे छूटगया तो वह सब संसारसे छूटगया उसको मुक्ति होनेके उपाय पूँछनेसे क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–देवहूति खोटी इन्द्रियोंसे छूटगई है तौभी भगवान्‌को अपना पुत्र देखके मुक्ति होनेवाले कर्मोंका लोभकरके अथवा मुक्तिके कर्मोंको पुष्ट करनेके लिये पूँछती हुई।

जो यह असत्आग्रह, अहं, ममता, मोह, आपनेही इनसे संयोग कर रक्खा है, सो आप हमारे मोहको दूर कीजे॥ १०॥शरणागतप्रतिपालक, भक्त वत्सल, अपने भक्तोंकी मृत्युके वृक्षको काटनेके लिये कुठाररूप, सद्धर्ममें श्रेष्ठ, प्रकृतिपुरुष जाननेकी इच्छा करके मैं तुम्हारे शरण आई हूँ,इसलिये आपको प्रणाम करती हूँ॥११॥ मैत्रेयजी बोले कि इसप्रकार अनिंद्य चाह, अपनी माताकी सुनी जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली बुद्धिसे सराहना कर आत्मज्ञानी सन्तोंकी गति भगवान्‌ने मंदमंद मुसकानसे शोभायमान मुखसे अपनी मातासे कहा॥ १२॥कि, पुरुषोंके कल्याणार्थ ब्रह्मविद्यामें आशा रखनी यही मेरा मत है,जिस ब्रह्मविद्याके लाभ होनेसे सुखदुःखका नाश होजाता है॥ १३॥हे अनघे!सर्वप्रकारसे बहुत निपुण योगको सुननेकी इच्छावाले योगियोंको जो योग मैंने प्रथम कहा था वही कहता हूँ,तुम श्रवण करो॥ १४॥चित्त निश्चयकरके इसके बन्धनार्थ है,और आत्माका चित्त मुक्तिके अर्थ भी कहा है,गुणोंमें आसक्तता होनेसे बन्धन होता है और जिस पुरुषका चित्त ईश्वरमें लगै वह मुक्त होजाता है॥ १५॥ मैं, मेरा,यह अभिमानसे उठाहुआ,कामलोभादि मलोंसे रहित शुद्ध मन होता है तब सब दुःखोंका नाश होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १६॥ तब पुरुष आत्मा केवल प्रकृतिसे परे निरन्तर स्वयंज्योति अणुमात्र अखंडित परमेश्वरको ॥१७॥ ज्ञानवैराग्यभक्तियुक्त आत्मद्वारा सबसे उदासीन प्रकृतिके

तं त्वा गताऽहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ॥ जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां
वरिष्ठम् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ॥ धियाऽभिनंद्यात्मवतां
सतां गतिर्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥१२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निश्श्रेयसाय मे ॥
अत्यंतोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥ तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुरानघे ॥ ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं
सर्वांगनैपुणम् ॥ १४ ॥ चेतः खल्वस्य बंधाय मुक्तये चात्मनो मतम् ॥ गुणेषु सक्तं बंधाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥
अहम्ममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ॥ वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥ १६ ॥ तदा पुरुषमात्मानं
केवलं प्रकृतेः परम् ॥ निरंतरं स्वयंज्योतिरणिमानमखंडितम् ॥ १७ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ॥
परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥ १८ ॥

९।6

पराक्रमका नाश करनेवाला ब्रह्म जीव ब्रह्मको देखता है॥१८॥भगवान् अखिलात्मामें लगेहुएके समान योगियोंकी ब्रह्मसिद्धिके लिये इससे अधिक और मंगलदायक मार्ग नहीं है॥ १९॥ इस जीवको जगत्में आसक्त होजाना यह अजरअमर फांसी है, यही आसक्ति साधुसन्तोंमें करै तौ उसके लिये मोक्षका द्वार खुला हुआ है ॥ २० ॥ मुनिजनोंका कथन है कि सबकी सब बातैं सहैं, सब देहधारियोंपर दयालुता रक्खैं, सब जीवमात्रके साथ सुहृद्भावसे वर्तैं, किसीको अपना शत्रु न समझे; शांतगुण परकार्यसहायक साधुओंके अलंकारहैं॥२१॥जो मुझमें अनन्यभावसे दृढभक्ति करके मेरेलिये सब काम त्यागते हैं, और सब स्वजन बन्धुओंसे स्नेह छोड़ते हैं॥२२॥जो मेरीही कथा मनोहर मृदुलको सुनते हैं, अथवा कहते हैं, और

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ सदृशोऽस्ति शिवः पंथा योगिनां ब्रह्मसिद्धये॥१९॥ प्रसंगमजरं पाश
मात्मनः कवयो विदुः ॥ स एव साधु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥२०॥ तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्॥
अजातशत्रवः शांताः साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥ मय्यनन्येन भावेन भक्ति कुर्वंति ये दृढाम् ॥ मत्कृते त्यक्तकर्माण
स्त्यक्तस्वजनबांधवाः॥२२॥मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वंति कथयंति च॥तपंति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः॥२३॥
त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः ॥ संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते ॥२४॥ सतां प्रसंगान्मम वीर्यसं
विदो भवंति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ॥ तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥२५॥भक्त्या पुमाञ्जात
विराग ऐंद्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिंतया ॥ चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ २६ ॥

जो अपना मन मुझमें लगाते हैं उनको किसीप्रकारका ताप नहीं व्यापसक्ता ॥ २३ ॥ हे साध्वि ! जो साधु हैं वे सब संगसे रहित हैं और किसी तापसे तापित नहीं होते, उन महात्माओंका संग करना चाहिये, किसलिये कि वे सब संगतिके दोष दूर करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ हे जननि !संतोंके प्रसंगसे मेरे पुरुषार्थवाली कथा हृदय और कर्णको सुखदायक आत्मज्ञान करानेवाली कथा होती है, उसके सुनने और प्रेम करनेसे मोक्षमार्गमें शीघ्र श्रद्धा, प्रीति, भक्ति, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदमें सहज २ में उत्पन्न होसक्ती है ॥ २५॥ मेरे चरित्रोंका चिन्तवन करनेसे प्रथम मनुष्यके

हृदयमें भक्ति प्रगट होतीहै, और भक्ति करनेसे पुरुषको वैराग्य उत्पन्न होता है, और वैराग्यमें मेरी अलौकिक रचनाके विचार करनेसे योगयुक्त होकर चित्तके ग्रहणार्थ कोमल योगके मार्गोंसे यत्न करै ॥ २६ ॥ प्रकृतिके गुणोंकी सेवा न करनेसे और ज्ञान वैराग्य अधिक बढ़ानेका चिन्तवन करै, योगका साधनकरै, सब कर्म मेरे समर्पण करै और एकाग्रचित्त हो मेरी दृढभक्ति करनेसे प्राणी सर्व अन्तर्यामी मुझको प्राप्त होताहै॥२७॥देवहूति बोली कि,ऐसी कौनसी भक्ति है जिसको मैं करसकूं? क्योंकि मैं स्त्री हूँ, मुझको किसप्रकारकी भक्ति करनी चाहिये? जिसके प्रभावसे विना प्रयास तुम्हारा मोक्षपद प्राप्त होता है ऐसा मैंने सुनाहै॥२८॥भगवान्का उपलक्ष करनेवाला योग तुमने कहा है.सो कैसा है?और उसके कितने अंग हैं ?

असेवयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृंभितेन॥ योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुंधे॥२७॥
देवहूतिरुवाच ॥ का स्विक्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ॥ यया पदं ते निर्वाणमञ्जसाऽन्वश्नवा अहम्॥२८॥
यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ॥ कीदृशः कति चांगानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ २९ ॥ तदेतन्मे विजा
नीहि यथाऽहं मंदधीर्हरे ॥ सुखं बुध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विदित्वाऽर्थं कपिलो मातु
रित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाऽभिजातः ॥ तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदंति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥ ३१ ॥ श्रीभग
वानुवाच ॥ देवानां गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम् ॥ सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥ अनिमित्ता
भागवती भक्तिः सिद्धिर्गरीयसी ॥ जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ३३ ॥

जिससे तत्त्वज्ञान होताहै२९॥हे हरे!ऐसी सुगमरीतिसे कोई शिक्षा मुझको करो कि,जिसके प्रभावसे मैं मन्दमति स्त्री भी तुम्हारे अनुग्रहसे कठिन बातको सहजमें समझलूँ॥३०॥मैत्रेयजी बोले कि, कपिलदेवजीने अपनी जननीके मनोरथको जानकर अधिक स्नेह किया,जहाँ शरीरधारी होकर जन्मे उस माताको तत्त्वोंकी संख्यावाले सांख्यशास्त्रकी शिक्षा भक्ति विस्तृत योगकी रीतिसे कपिलदेवजी कहनेको उद्यतहुए॥३१॥श्रीभगवान् बोले कि,गुणोंके जिनके शरीर वेदविहित कर्म करैं, ऐसे देवताओंका सतोगुण एक मन है.उनकी जो स्वभावकी वृत्ति है वही भक्तिहै ॥३२॥ निष्प्रयोजन की हुई

भागवती भक्ति सिद्धिसेभीबडीहै,जैसे जठरानल भोजन कियेहुए अन्नको भस्मकर देता है,वैसेही भक्तिभी वासनाको जला देतीहै ॥३३॥मेरे चरणोंकी
सेवामें जिन पुरुषोंकी चेष्टा रहतीहै,और केवल मेरेही लिये सब कर्म करतेहैं वे लोग सायुज्यमोक्षकी इच्छा नहीं रखते,वे सज्जन पुरुष इकट्ठे होकर मेरे
चारित्रोंकी प्रशंसा करते हैं॥३४॥हे अम्बा!वे महात्मा लोग मेरे कोटि शशिसम प्रसन्नवदन,अरुणनयन दिव्य वरप्रद रूपोंको वाणीसे वद२कहते हैं और
आनन्द हो होकर निहारते हैं ॥३५॥ दर्शनयोग्य रूप, उदार, विलास, हास, अवलोकन, संभाषण, अत्यन्त मनोहर सूक्तोंसे जिनके प्राण व मन
और इंद्रियोंको वशमें कर लियाहै,उनको विना इच्छाके भी सूक्ष्मगति देताहै॥३६॥इसलिये विभूति,ऐश्वर्य,अष्टाङ्गयोग,भागवती श्रीकल्याणदायिनी

नैकात्मतां मे स्पृहयंति केचिन्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः॥येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्ज्य सभाजयंते मम पौरुषाणि
॥३४॥ पश्यंति ते मे रुचिराण्यंब संतः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ॥ रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां
वदंति॥३५॥ तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः ॥ हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं
प्रयुंक्ते॥३६॥अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम्॥श्रियं भागवतीं वास्पृहयंति भद्रां परस्य
मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥३७॥ न कर्हिचिन्मत्पराः शांतरूपे नक्ष्यंति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः॥ येषामहं प्रिय आत्मा
सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ ३८ ॥ इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ॥ आत्मानमनु ये चेह ये
रायः पशवो गृहाः ॥३९॥ विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ॥ भजंत्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये
॥४०॥ नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ॥ आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥ ४१ ॥

भक्ति पश्चात् आपही प्राप्त होतेहैं जो सत्पुरुष मुझमें परायणहैं,वे शान्तरूप कभी नाश नहीं होते और मेरा कालचक्र उनको नहीं मारसक्ता, क्योंकि,
जिनका मैं प्रिय आत्मा हूँ पुत्रके तुल्य प्रतिपालक,मित्रके समान विश्वासी,गुरुके सदृश उपदेशक,भ्राताके समान हितकारी और देवतावत् पूज्यवर हूँ
॥३७॥३८॥इस लोक और परलोकको और दोनों लोकोंमें जानेवाले आत्माको और आत्माके पीछे जो यहाँ धन,पशु,गृह इत्यादिक और वस्तुहैं॥३९॥
उनको सबको त्यागकर और विश्वमुख मुझको जो अनन्यभावसे भजतेहैं उनको मैं संसार सागरसे पार उतार देताहूँ॥४०॥भगवान् प्रधानपुरुषेश्वर और

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ॥ वर्षतींद्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात्॥४२॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ॥ क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशंत्यकुतोभयम् ॥४३॥एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निश्श्रेयसोदयः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम्॥४४॥ इति श्रीमद्भा॰म॰तृती॰ कपिलोपाख्याने पंचविंशतितमोऽध्यायः॥२५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥ यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥१॥ ज्ञानं निश्श्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ॥ यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रंथिभेदनम् ॥२॥ अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः॥ प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥३॥ स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ॥ यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥

सब पदार्थोंका आत्माव अधिष्ठाता जो मैं हूँ, मेरी शरणागत विना आत्माको सब जीवोंका तीव्रभय कभी निवृत्त नहीं होसक्ता॥४१॥मेरे भयसे पवन चलताहै, सूर्य तपताहै,इंद्र जल वर्षता है, अग्नि दाह करताहैऔर मृत्यु संसारमें घूमता फिरताहै॥४२॥ ज्ञान वैराग्ययुक्त भक्तियोगसे योगीजन अपनी कुशलके लिये निर्भय हो मेरे चरणारविन्दका आश्रय लेते हैं॥४३॥पुरुषोंको आनन्दका हेतु इसलोकमें इतनाही है कि, तीव्र भक्तियोगसे स्थिरमन मुझमें अर्पित करै * ॥४४॥ इति श्रीमद्भा॰महापु॰तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कपिलयोगोपाख्याने योगमाणिक्यमंजूषायां भक्तिलक्षणवर्णनं नाम पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥ दोहा–छब्बिसवें अध्यायमें,पुरुषप्रकृतिको ज्ञान । भिन्न भिन्न लक्षणसहित, कहों पदार्थ बखान॥२६॥ श्रीभगवान् बोले कि,अब मैं तुमको तत्त्वोंके लक्षण पृथक्२सुनाता हूँ; जिनके जाननेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त होजाता है ॥ १ ॥ पुरुषके आत्माका दर्शन जो ज्ञानमोक्षके लियेहैसो तुमसे वर्णन करता हूँ वही ज्ञान हृदयकी ग्रन्थिका भेदन करनेवाला है॥२॥अनादि,आत्मापुरुष,निर्गुण, प्रकृतिसे परे,पूजनीय,तेजका आप ज्योतिःस्वरूप हैं, जिससे यह विश्व प्रकाशित है ॥३॥ सो यह प्रभु सूक्ष्म दैवी गुणमयी, यदृच्छासे प्राप्त प्रकृ

---

* सवैया–मंगल होत सबै सुख देत सदा अणिमादिक मोद बढावत ॥ पावन औरनहूको करै प्रियसंतसभा धनिवादको छावत ॥ शुद्धहि ते नितयुक्ति चितै कर कर्मावितैकै इतै नहिं आवत ॥ जो भजिहै यदुनन्दनको सोई जन्मपदारथको फलपावत ॥

तिको लीलाकरके प्राप्त हुये.यहाँ यह सिद्धांत है"आवरणशक्ति औरविक्षपशक्ति भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी है" आवरणशक्ति जो है वही जीवोंकी उपाधि अविद्याहै,और विक्षेपशक्ति जो है वह परमात्माकी मायाहै और पुरुष भी जीव और ईश्वर दो प्रकारका है; जो प्रकृतिके अज्ञानसे संसारमें आता है वहतो जीव है और जो प्रकृतिको वशमें करके विश्वकी सृष्ट्यादि करता है वह ईश्वर है॥४॥ ज्ञानकी ढकनेवाली मायाको विचित्र अपने समान प्रजाको गुणोंसे रचती देख सो जीव ज्ञानचेष्टासे मोहित हो अपने स्वरूपको भूलगया, अर्थात् मैं देह हूँ यह समझनेलगा ॥ ५ ॥ इसप्रकार परमेश्वरके ध्यानसे और प्रकृतिके करेहुए गुणोंसे कर्म करनेपर भी यह जीव कहता है कि, मैं कर्म करता हूँ कर्ताभावको आत्मामें मानता है॥६॥ यद्यपि यह पुरुष साक्षीमात्र है,इसकारण अकर्ता है तौ भी इस अकर्ताकोही अपनेमें कर्मत्वधर्मको माननेसेही कर्मका बंधन होता है, और जो

गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥ विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया॥५॥ एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं
प्रकृतेः पुमान् ॥ कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते॥६॥ तदस्य संसृतिर्बंधः पारतंत्र्यं च तत्कृतम् ॥ भवत्यकर्तुरी
शस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ॥ भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः
परम् ॥ ८ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ॥ ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥ १० ॥

किसीके अधीन नहीं है, उसीको भोगोंमें पराधीनता होती है, और जो सुखात्मकहै उसको जन्म अर्थात् मृत्युप्रवाह होता है ॥७॥ कार्य कारण कर्तृत्वमें कारण प्रकृतिको जानो;सुखदुःखका भोक्ता प्रकृतिसे परं पुरुष है ॥८॥ देवहूति बोली कि,हे पुरुषोत्तम! प्रकृतिपुरुषका लक्षण कहो,और उनका सत् असत आत्मकका कारण है सो कहो ॥९॥ श्रीभगवान् बोले कि, स्वतः विशेष अर्थात् भेदरहित होनेपर भी जो सर्व विशेषोंका आश्रय और प्रधानत्व है उसे प्रकृति कहते हैं,क्या ब्रह्मको प्रकृति कहतेहो ? नहीं वह त्रिगुण है और ब्रह्म गुणरहित है, तब क्या महत्तत्त्वादि हैं ? नहीं वह कार्य नहीं है;महत्तत्त्वादि कार्य हैं;क्या काल आदि है?नहीं वह कार्य कारण रूप है; कालकार्यकारणरूप नहीं है,तब क्या जीव प्रकृति है? नहीं

वह नित्य है ॥ १० ॥ पांच २, चार और दश यह चौबीस तत्त्वोंका समूह प्रकृतिकी बनावट होनेसे प्राकृतिक कहलाता है ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश, ये पांच महाभूत होते हैं, और गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द ये पांच तन्मात्रा हैं ॥ १२ ॥ कर्ण, त्वचा, दृष्टि, जिह्वा, श्रोत्र, ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं, वाक्, कर, चरण, शिश्न, गुदा, ये पांच कर्मेंद्रिय हैं, नासिका यह मिलकर दश इन्द्रियें हुईं ॥ १३ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये आत्माके भीतर हैं, लक्षणरूप वृत्तियोंसे चार प्रकारका भेद लक्षित होता है ॥ १४ ॥ सगुणरूपका इतनाही व्याख्यान है यह

४/७

पंचभिःपंचभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ॥ एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः॥११॥ महाभूतानि पंचैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ॥ तन्मात्राणि च तावंति गंधादीनि मतानि मे ॥१२॥ इंद्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः॥वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते॥१३॥मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यंतरात्मकम्॥चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया॥१४॥ एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ॥ सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पंचविंशकः ॥१५॥ प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् ॥अहंकारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥१६॥ प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ॥ चेष्टा यतः स भगवान्काल इत्युपलक्षितः ॥ १७ ॥अंतः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ॥ समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥१८॥ दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ॥ आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥ १९ ॥

संक्षेपमात्र मैंने तुमसे कहा, जो काल है वह भी मायाकी ही एक अवस्था पचीस तत्त्व होकर रहतीहै ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहंकारवश हो मूढ़तासे कहते हैं कि, यह काल परमेश्वरका प्रभावहै और देहहम हैं, इसप्रकार अज्ञानतासे देहाभिमानी पुरुषको जगत्का भय बना रहता है ॥ १६ ॥ हे माता ! जिसको कोई विशेष नहीं, त्रिगुणसाम्यभाव ही जिसका स्वरूपहै, प्रकृतिकी चेष्टा काल है, जिससे भगवान्का अनुमान होता है ॥ १७ ॥ जो भगवान् अपनी मायासे सब जीवमात्रके भीतर प्राप्त होरहे हैं, भीतर पुरुषसे और बाहर कालरूपसे रहते हैं ॥ १८ ॥ दैवसे क्षोभको जिसके

धर्म प्राप्त हुए, ऐसी अपनी योगमायामें परपुरुषने हिरण्मय महत्तत्त्वको रचा ॥ १९ ॥ अपने भीतर विश्वको जो धारण किया था उसको प्रगट किया और सर्वान्तःस्थिर जगत्का अंकुर महत्तत्त्वको अपने आप सुलानेवाले तमको अपने तेजसे पीलिया ॥२०॥ जो सत्त्वगुण स्वच्छ, शांत, रागद्वेषरहित, भगवत्का उत्तम स्थान है, जिसको वासुदेव कहते हैं,महत्तत्त्वरूप चित्त है, पंडितलोग इसमें यह सिद्धांत करते हैं कि, उपास्य वासुदेवहैं,क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता है. इसी प्रकार उपास्य व अहंकारमें संकर्षण उपास्य हैं,रुद्र अधिष्ठाता हैं,मनमें अनिरुद्ध उपास्य है,चन्द्रमा अधिष्ठाता है, बुद्धिमें प्रद्युम्न उपास्य है, ब्रह्म अधिष्ठाता है॥ २१॥ पृथ्वीका संसर्ग होनेसे प्रथम जैसे जलकी स्थिति स्वच्छ और शांत होती है तैसेही दूसरे

विश्वमात्मगतं व्यंजन्कूटस्थोजगदंकुरः ॥ स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥ २० ॥ यत्तत्सत्त्वगुणं
स्वच्छं शांतं भगवतः पदम् ॥ यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥ २१ ॥ स्वच्छत्वमविकारित्वं शांतत्वमिति
चेतसः ॥ वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा ॥ २२ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् ॥ क्रियाशक्तिर
हंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ २३ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ॥ मनसश्चेंद्रियाणां च भूतानां महतामपि
॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनंतं प्रचक्षते ॥ संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेंद्रियमनोमयम् ॥ २५ ॥ कर्तृत्वं करणत्वं च
कार्यत्वं चेति लक्षणम् ॥ शांतघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥ २६ ॥ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ॥
यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः ॥ २७ ॥

विकारके प्राप्त होनेसे प्रथम स्वच्छता अर्थात् भगवान्के विभवका ग्रहणकरना,लयविक्षेप शून्य होना,शांत होना,इन वृत्तियोंद्वारा महत्तत्त्वका लक्षण कहाजाता है ॥२२॥ भगवत्के वीर्यसे जिसकी उत्पत्ति ऐसा महत्तत्त्व विकारको प्राप्त हुआ; तब क्रियाशक्ति अहंकार त्रिविध उत्पन्नहुआ ॥२३॥ वैकारिक, तैजस, तामस जिससे हों,वह मन इन्द्रियें पंचभूत महत्तत्त्व इनसे प्रगट होते हैं ॥ २४ ॥ अहंकारके उपास्य देवता भगवान् शेषजी हैं जिनके सहस्र शीश हैं उनको साक्षात् अनंत कहते हैं. वे संकीर्ण पुरुष हैं, भूतइंद्रिय मनोमय हैं ॥ २५ ॥ कर्तृत्व, करणत्व, कार्यत्व, शान्तत्व, घोरत्व, विमूढ़त्व यह अहंकारका लक्षण है ॥ २६ ॥ जब सात्विक अहंकार विकारको प्राप्त होता है, तब मनस्तत्त्व प्रगट होताहै और

संकल्प, विकल्पसे जो कामना उत्पन्न होती है वह मनका लक्षण है ॥२७॥ सब इन्द्रियोंके अधीश्वर, शरदकालके नीलकमल समान श्यामस्वरूप, योगियोंसे सुन्दर आराधन करनेके योग्य उनको अनिरुद्ध कहतेहैं॥२८॥ हे जननि! तैजस अहंकारतत्त्व जब विकारको प्राप्त हुआ तब बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ, इसमें द्रव्यका स्फुरणज्ञान इन्द्रियोंका अनुग्रह होता है ॥ २९ ॥ संशय, मिथ्याज्ञान, निश्चय, स्मृति, निद्रा ये बुद्धिके लक्षण हैं सब वृत्तियोंसे पृथक् ॥३०॥ ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय ये दशों राजस अहंकारसे उत्पन्न हुई कहते हैं, क्रियाशक्ति प्राणकी है और विज्ञानशक्ति बुद्धिकी है ये दोनों राजस अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं, इसलिये ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय भी इससे उत्पन्न हुई हैं॥ ३१ ॥ भगवत्के वीर्यसे प्रेरित तामस

४20

यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ॥ शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥ २८ ॥ तैजसात्तु विकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति ॥ द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिंद्रियाणामनुग्रहः ॥ २९ ॥ संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ॥ स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥ ३० ॥ तैजसानींद्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ॥ प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥ ३१ ॥ तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ॥ शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं च शब्दगम् ॥ ३२ ॥ अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिंगत्वमेव च ॥ तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥ भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरंतरमेव च ॥ प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥ ३४ ॥

अहंकार जब विकारको प्राप्त हुआ, उससे शब्दमात्र प्रगट हुआ, और शब्दसे नभ उत्पन्न हुआ, और शब्दकी उपलब्धि करनेवाली श्रोत्रइन्द्रिय, राजस अहंकारसे उत्पन्न हुई है ॥ ३२ ॥ शब्दसे सब पदार्थोंके नाम होते हैं, जो मनुष्य दृष्टिमें नहीं आता तौभी वह किसी पदार्थको देखकर उसके चिह्नमात्रका ज्ञान होना, उसकी मात्रा जाननी यह कवियोंने आकाशका लक्षण कहाहै, शब्दके अर्थको अर्थात् जिससे सब पदार्थोंके नाम रक्खे जाते हैं जानना और देखनेवालेके चिह्नमात्रका ज्ञान न होना और उसकी मात्राको पहिचानना यह बुद्धिमानोंने आकाशका लक्षण कहा है ॥ ३३ ॥ सब प्राणिमात्रमें अवकाशका छिद्र रखना और बाहर भीतर व्यवहारको आश्रय देना, प्राण इन्द्रिय आत्मामें स्थान रखना आका

शकी वृत्तिका लक्षण है ॥३४॥ शब्द मात्रावाला आकाश जब कालकी गतिसे क्षुभित हुआ तब उससे स्पर्शतन्मात्रा प्रगट हुई उससे वायु उत्पन्न हुई त्वचा इंद्रियसे स्पर्शका ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठिनता, शीतलता, उष्णता यह स्पर्शरूपवाले पवनकी तन्मात्रा हैं,यही स्पर्शका लक्षण है ॥ ३६ ॥ वृक्षादिकोंके पत्तोंको चलायमान करना, शब्दका लेजाना, तृण आदिकोंको मिलाना, प्राप्त कराना, सब इंद्रियोंको बल देना,यह कर्मद्वारा वायुका लक्षण कहा है ॥ ३७ ॥ जब स्पर्शवाली वायु दैवसे प्रेरित हुई तब उससे रूप प्रगट हुआ, उससे तेज हुआ उससे ग्रहण करनेवाली चक्षुइंद्रिय हुई॥३८॥ हे माता ! रूप पदार्थोंको आकार देता है और द्रव्यमें गौणरीतिसे प्रतीत होना और पदार्थोंकी रचनाके पीछे प्रतीत होना यह भी रूपमात्राकी वृत्ति हैं ॥ ३९ ॥ प्रकाश, पाचन, पान, भोजन, शीत, मर्दन, भूख, प्यास, सुखाना ये तेजकी वृत्तियें हैं ॥ ४० ॥ जब दैवइच्छासे रूपगुणवाला तेज विकारी हुआ, तब उससे रसमात्रा हुई, उससे जल हुआ, उसकी ग्रहण करनेवाली जीभ हुई ॥ ४१ ॥ यह एकरस भौतिक विकारसे कसैला, मधुर, चर्परा, कडुआ, खट्टे आदि अनेक भेदोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ गीलापन, गोला बांधना, तृप्ति करना,जीवन;प्यास मिटाना;नर्म करना,ताप दूर करना, कूपादिसे जल निकालने पर भी अधिक होना यह जलवृत्ति है ॥ ४३ ॥

नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ॥ स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक्स्पर्शस्य च संग्रहः ॥ ३५ ॥ मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ॥ एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥ ३६ ॥ चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥ वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं देवेरितादभूत् ॥ समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षूरूपोपलंभनम् ॥३८॥ द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च ॥ तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥ ३९ ॥ द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ॥ तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृंडेव च ॥४०॥ रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ॥ रसमात्रमभूत्तस्मादंभो जिह्वारसग्रहः॥४१॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा ॥ भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥ ४२ ॥ क्लेदनं पिंडनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोदनम् ॥ तापापनोदो भूयस्त्वमंभसो वृत्तयस्त्विमाः ॥ ४३ ॥

रसगुणवाला जल, जब दैवसे प्रेरित हो विकारको प्राप्त हुआ तब उसमें गन्धतन्मात्रा हुई, उससे पृथ्वीहुई; नासिकासे गन्ध ग्रहण होताहै ॥४४॥ यह एकही गन्ध संसर्गवाले पदार्थोंकी विषमतासे मिली गंध और सुगन्ध शांत व उग्रादि अनेक भेदवाली होती है ॥४५॥ प्रतिमादिरूपसे ब्रह्मका भाव करना, स्थान देना, धारण करना, आकाशादिकोंका मठाकाश आदि रूपसे अवच्छेदक होना, और सब जीवमात्रके गुणका भेद करना यह पृथ्वीकी वृत्तिका लक्षण है ॥ ४६ ॥ आकाशका मुख्य गुण शब्दविषयवाली श्रोत्र इंद्रिय कहलाती है और वायुके मुख्यगुणयुक्त स्पर्शगुणवाली त्वचा इंद्रिय कहलाती है ॥४७॥ तेजके मुख्यगुणरूपविषयवाली चक्षुइंद्रिय है और जलके मुख्य गुण रसविषयवाली जिह्वा इंद्रिय है, पृथ्वीका

रसमात्राद्विकुर्वाणादंभसो दैवचोदितात् ॥ गंधमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गंधगः ॥ ४४ ॥ करंभपूतिसौरभ्य
शांतोदग्रादिभिः पृथक् ॥ द्रव्यावयववैषम्याद्गंध एको विभिद्यते ॥ ४५ ॥ भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ॥
सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥४६॥ नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ॥ वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य
१२१ तत्स्पर्शनं विदुः ॥ ४७ ॥ तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ॥ अंभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ॥
भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥ परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् ॥ अतो विशेषो भावा
नां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥ ४९ ॥ एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ॥ कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत्
॥ ५० ॥ ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् ॥ उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥ ५१ ॥

मुख्यगुण गन्धविषयवाली घ्राणइंद्रिय कहलाती है ॥ ४८ ॥ इन पूर्वके पदार्थोंका पिछले पदार्थोंमें संबन्ध होनेसे अपने कारण आकाशादिपदार्थोंका धर्म शब्दादिकार्यरूप, वायुआदि पदार्थोंमें अपने धर्म स्पर्शादिके संग दीखताहै. इसीसे पृथ्वीमें चारों कारणोंके धर्म–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और अपना धर्म गन्ध ये देखनेमें आते हैं ॥ ४९ ॥ जब यह महत्तत्त्वादि सातों पदार्थ परस्पर न मिले, तब इनमें और तत्त्वोंमें भी कालकर्म गुणोंके साथ जगदादि ईश्वरने प्रवेश किया ॥ ५० ॥ फिर परमेश्वरके प्रवेश करनेसे जब यह क्षोभको प्राप्त हुए, तब अचेतन अंड प्रगट हुआ, उससे

विराट्पुरुष हुआ॥५१॥चौदह भुवनवाला यह भगवान्का स्वरूपभूत पृथ्वीरूप ब्रह्माण्ड बाहरकी ओर प्रधानसे घिरेहुए, जलादि सात आवरण जो क्रमसे एक २ से दशगुणे बडे हैं; उनसे घिरे हैं ॥५२॥ उदासीनताका त्यागन कर भगवान् महादेवने जलमें पडे हुए हिरणमय अंडकोशमें प्रवेशकर बहुत प्रकारसे छिद्र कर दिये॥ ५३ ॥ मुख प्रथम प्रगट हुआ, इससे वाणी हुई, उसके देवता वह्नि हुए, फिर नाक उत्पन्न हुई, जो प्राणको चलानेवाली हुई, इससे घ्राण इन्द्रिय हुई ॥ ५४॥ घ्राणसे वायु उत्पन्न हुई, इन दोनोंका अक्षिर्णी चक्षु हुए उससे सूर्य उत्पन्न हुआ, फिर कान प्रगट

एतदंडं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ॥ तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ॥ यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥५२॥ हिरण्मयादंडकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ॥ तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥ ५३ ॥ निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ॥ वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोऽतो घ्राण एतयोः ॥ ५४ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः ॥ तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः ॥ ५५ ॥ निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः ॥ तत औषधयश्चासञ्छिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥५६॥ रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ॥ गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयंकरः ॥५७॥ हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ॥ पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥ ५८ ॥ नाड्योऽस्य निरभिद्यंत ताभ्यो लोहितमाभृतम् ॥ नद्यस्ततः समभवदुदरं निरभिद्यत ॥ क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ॥ ५९ ॥

हुए, उसमें श्रोत्र इन्द्रिय हुई. उनसे दशों दिशाप्रगट हुईं ॥ ५५ ॥ फिर विराट्की त्वचा निकली, उसमें रोम. मूँछ, केश आदि हुए, उनसे सब औषधि उत्पन्न हुईं, फिर शिश्नेंद्रिय हुई ॥ ५६ ॥ उसमें जलरूप वीर्य उत्पन्न हुआ फिर गुदा उत्पन्न हुई गुदामें अपान रहता है, अपानवायुसे लोकोंको भय देनेवाली मृत्यु प्रगटी ॥ ५७ ॥ फिर विराट्के दोनों हाथ उत्पन्न हुए,उनमें बल हुआ और इन्द्रदेवता प्रगट हुए. फिर विराट्के पांव निकले, उनमें गति हुई और हरिदेवता प्रगट हुए ॥५८ ॥ फिर नाडियां निकलीं, उनमें रुधिर भरा और नदियां प्रगटीं.फिर उदर उत्पन्न हुआ

उसमें भूख प्यास हुई, सागर देवता हुआ ॥ ५९ ॥ फिर विराट्के हृदय उत्पन्न हुआ, उसमें मन उत्पन्न हुआ मनमें चन्द्रमा प्रगट हुआ फिर सब वाणियोंके पति बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ. फिर हृदयमें अहंकार उत्पन्न हुआ उसमें क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता प्रगट हुए. फिर विराट्के हृदयमें चित्त इन्द्रिय उत्पन्न हुआ, और चित्तमें क्षेत्रज्ञ प्रगट हुआ ❋ ॥ ६० ॥ यह सब देवता उत्पन्न होकर उस विराट्के देहमें घुसे, परन्तु उसको उठा न सके, फिर क्रमसे आकाशादिकोंने उठानेको उसमें प्रवेश किया वाणीके मार्ग हो अग्निने मुखमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा॥६१॥ घ्राण इन्द्रिय सहित नाकमें पवन घुसा तौ भी विराट् न उठा, चक्षु इन्द्रिय सहित भास्करने नेत्रोंमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा॥ ६२ ॥ श्रोत्रके संग दिशायें घुसीं तौ भी विराट् न उठा, फिर रोमसहित सब औषधियें त्वचामें प्रविष्ट हुईं तौ भी विराट् न उठा ॥ ६३ ॥ वीर्यसहित जलने शिश्नमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा, अपानसहित मृत्यु गुदामें आई तौ भीविराट् न उठा ॥ ६४ ॥ इन्द्रने बल सहित हाथोंमें प्रवेश किया तौभी विराट् न उठा, गतिसहित विष्णुने चरणोंमें प्रवेश किया तौभी विराट् सावधान

अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥ मनसश्चंद्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः ॥ अहंकारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्त्यस्ततोऽभवत् ॥ ६० ॥ एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् ॥ पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥ वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६१ ॥ घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६२ ॥ श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् त्वचं रोमभि रोषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६३ ॥ रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ॥ ६४ ॥ हस्ताविन्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट्॥ ६५ ॥

शंका–हे मुनियो! मैं ईश्वरवाचक जीव जलमें जो विराट्रूप अंड रहा उसको उठानेके लिये सब इन्द्रियगण अपने अपने देवताओंसमेत अपना अपना यत्न करनेलगीं, परन्तु वह वहांसे नहीं उठा, वह विराट् कौन है ?

उत्तर–जिस विराट्रूप परमात्मासे ये तीन लोक चौदह भुवन उत्पन्न होते हैं वह विराट् उसको नहीं जानना चाहिये, यह जो विराट् कहीं चौरासी लाख योनिकी देहको विराट् मुनियोंने कहा है, जो देह जीवसे चैतन्य होरही है जीवसे ही नष्ट होजाती है सब इन्द्रियें अथवा देवता देहमें ही रहते हैं, परन्तु जीव विना देह नष्ट होजाता है. ऐसी देह विराट्रूप विराट् जीवको पाकर चैतन्य होगई ॥

न हुए ॥ ६५ ॥ नदियें रुधिर सहित नाड़ियोंमें घुसीं तौ भी विराट् न जागा क्षुधा तृषासहित समुद्रने उदरमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न चेता॥ ६६ ॥ मनसहित हृदयमें चन्द्रमाने प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा फिर बुद्धिसहित ब्रह्मा हृदयमें पैठे तौ भी विराट् न उठा. अभिमानसहित रुद्रने हृदयमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा ॥ ६७ ॥ चित्तसहित चित्तके स्वामी क्षेत्रज्ञ ईश्वरने जब हृदयमें प्रवेश किया उसी समय विराट् पुरुष जलमेंसे उठ बैठा ॥ ६८ ॥ जैसे सोयेहुए पुरुषको प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि जिनके विना कोई अपने पराक्रमसे उठा नहीं सक्ता, इसीप्रकार इस विराट् पुरुषको चेतन क्षेत्रज्ञके विना कोई नहीं उठासका ॥६९॥ सब जीव २के प्रति इन ईश्वरके योगसे उत्पन्न जो बुद्धिकी प्रवृत्ति

नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६६ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिंधुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ हृदयं मनसा चंद्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ बुद्ध्या ब्रह्मापि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६७॥ चित्तेन हृदयं चैत्त्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ॥ विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥६८॥ यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेंद्रियमनोधियः॥प्रभवंति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥ ६९ ॥ तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥ भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिंतयेत्॥७०॥ इति श्रीमद्भा० म० तृतीय० कापिले० तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ श्रीभगवानुवाच॥प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥ अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥ १ ॥

होतीहै, उससे विरक्ति और विरक्तिसे एकान्तमें बैठकर ज्ञान उत्पन्न करै, फिर पुरुषको चाहिये कि, देहमें आत्माका विचार करै, जब आत्माका विचार निश्चय होजाय तब नित्य प्रति उसीका चिन्तवन किया करै॥७०॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशतितत्ववर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥ दोहा--सत्ताइस अध्यायमें, साधनयोगविचार। प्रकृतिपुरुषके ज्ञानसे, वरणों मोक्षविचार ॥२७॥ भगवान् कपिलदेवजी बोले कि यद्यपि पुरुष प्रकृतिमें स्थित है तौभी प्रकृतिके गुणोंके करेहुए दुःखसुखादि गुणोंमें लिप्त नहीं होता क्योंकि पुरुष

निर्विकारी होनेसे, अकर्ता होनेसे, निर्गुण होनेसे जलमें सूर्यकी परछांईकी नाईं लिप्त नहीं होता, और उसीभाँति पुरुषदेहके गुणोंसे भी लिप्त नहीं होता ॥१॥ वही पुरुष गुणोंमें सब ओरसे आसक्त होजाताहै, तब कहता है कि, देह मैं हूँ, इसप्रकार अहंकारसे विमूढ़ बनकर फिर कहताहै कि, आत्माका कर्ता मैं हूँ, इसप्रकार सदा अभिमानी बना रहता है ❀ ॥२॥ इसी अभिमानसे विवश होकर और सुख न पाकर सत्‌असत्‌ मिश्रित योनियोंमें प्रकृतिके संगके

स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ॥ अहंक्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यते ॥ २ ॥ तेन संसारपदवीमव
शोऽभ्येत्य निर्वृतः ॥ प्रासंगिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ ३ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो
विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ४ ॥ अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ॥ भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च
नयेद्वशम् ॥ ५ ॥ यमादिभिर्योगपथैरभ्यसेच्छ्रद्धयान्वितः ॥ मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥ ६ ॥

कर्म और दोषोंसे संसारके चक्रमें घूमते रहते हैं. कभी जन्म कभी मरण ॥३॥ विचारकी रीतिसे देखिये तो संसार कोई वस्तु ही नहीं और विषयवासना करनेवालोंसे संसार छूटता ही नहीं, स्वप्न सब प्रकारसे झूठाहै. तौभी उस स्वप्न देखनेवाले मनुष्यके वे अनर्थ उससमय नष्ट नहीं होते, अनर्थका आगम भोगनाही पड़ताहै ॥४॥ इसलिये कुकर्मियोंके मार्गसे आसक्त चित्तको सहज२ में तीव्र भक्तियोग विरक्तिसे अपने वशमें करै ॥५॥ श्रद्धासहित योगमा

---

* **शंका**–जीव निश्चयकरके अभिमानी होजाता है. सो भगवान्‌की इच्छासे क्या अपनी इच्छासे भ्रष्ट होजाता है? यह हमारे मनमें बडी भारी शंका है ?

उत्तर–निरंजन जो जीव हैं न तो अपनी इच्छासे अभिमानी होता है और न भगवान्‌की इच्छासे अभिमानी होता है, खोटीइन्द्रियोंकी नित्य संगति करता है उसी कुसंगतिसे मूर्ख होकर अभिमानी होजाता है; जैसे वारुणीके पात्रमें गंगाजल रक्खा जाय तौ गंगाजल मदिरा नहीं होगा जलही रहैगा परन्तु मनुष्य मदिरा जानकर उसको छुवेंगे नहीं, तथा गंगाजलके बर्तनमें मदिरा रखदियाजायगा तौ मदिरा गंगाजल नहीं होगा मदिराही रहैगा। परन्तु मनुष्य यही जानेंगे कि, इस पात्रमें गंगाजलहै इसीप्रकार गंगाजलकी समान जीव मदिराके पात्रसरीखे खोटी इन्द्रियोंकी संगतिसे अभिमानी होजाताहै.

यहां एक दृष्टान्तहै कि, “एक लकडी बेचनेवाला लकडियोंका बोझा शिरपर धरे कहींसे आता था, गर्मीका समय था. एक इमलीके पेडके नीचे कूवेके समीप ठंढी छाया देखकर बैठगया, उसी समय एक सिपाही घोडेपर सवार, घोडेको कुदाता नचाता दौडाता चला आताथा. सवारको देख लकडहारा मनमें कहने लगा कि, सब अवस्था लकडीही बेचने२ बीती और खोपडीमें गढे पडगए, जो परमेश्वर मुझकोभी घोडा देता तौ मैंभी इसीप्रकार सवार होकर नचाता कुदाता। इसी मनोरथमें शरीरको पवन जो लगी तौ नींद आगई फिर स्वप्नमें क्या देखताहै कि, उस बोझका घोडा बनाकर स्वप्नमें सवार होकर कुदानेको

र्गादिकोंसे अभ्यास करताहै और मुझसे निष्कपट प्रीति रक्खै; मेरी कथा सुनै ॥ ६ ॥ सब जीवमात्रमें समभाव वर्तै, किसीसे शत्रुता न करै, कुसंगका त्याग करै, ब्रह्मचर्य्य धारण करै, मौनव्रत गहै, अपना धर्मबलवान् समझकर उसमें स्थिर रहै ॥ ७ ॥ जो भगवत् इच्छासे मिलजाय उसीमें संतुष्ट रहै, सूक्ष्म भोजन करै, मुनियोंकी वृत्ति धारण करै, एकान्तमें वास करै, शान्तिवृत्तिमें सबसे मित्रता रक्खै, सबसे दयालु हो, आत्मज्ञानी रहै ॥ ८ ॥ कुटुम्बसहित देहमें आसक्त न हो, ज्ञानसे तत्त्वका दर्शन करै, प्रकृतिपुरुषको देखै ॥ ९ ॥ प्रकृतिपुरुषका जब निश्चय विवेक होजाताहै तब बुद्धिकी तीनों अवस्था जाग्रदादिसे निवृत्त होजाती हैं, उस समय सब अमंगलोंसे पृथक् रहै, बुद्धिसे परमात्माको प्राप्त

सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसंगतः ॥ ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥ यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टो मितभुङ् मुनिः ॥ विविक्तशरणः शांतो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ८ ॥ सानुबंधे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ९ ॥ निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ॥ उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥ ॥ १० ॥ मुक्तलिंगं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ॥ सतो बंधुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥ ११ ॥ यथा जलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ॥ स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥ १२ ॥

होय जैसे चक्षु इन्द्रियद्वारा सूर्यको देखै, उसीप्रकार अपने अहंकारावच्छिन्न आत्मासे शुद्ध आत्माको जानकर आत्माका दर्शन करै ॥ १० ॥ इस प्रकार अभ्यास करते २ परमात्मा जो उपाधिरहित मिथ्याभूत अहंकारमें सद्रूपसे आभासमान मायाका अधिष्ठान ब्रह्मको प्राप्त होता है, सद्बन्धु, असत्के चक्षु, सर्वत्रमें परिपूर्ण हैं उनके अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं है ॥ ११ ॥ जैसे आकाशके भास्करका जलस्थित प्रकाश स्थलवासी पुरुषको दीखै, उसी भाँति अपने प्रकाशसे सूर्य जलस्थित प्रतिबिम्बसे स्वर्गस्थ सूर्य दीखै है ॥ १२ ॥

—ज्यों झपटा दिया त्योंही झट कुवेमें जापडा, ज्यों त्यों करके पथिकोंने उसको निकाला तौ वह बोला, कि आज मैंने अपने मनमें घोडेपर चढनेका संकल्प कियाथा तब यह कुदशा हुई और जो नित्य घोडे पर चढते होंगे, न जानिये उसकी क्या गति होगी ? कदाचित् वह तो घडी २ नदी और कुवोंमें गिरते होंगे, इसलिये मैं अपनी लकडीही बेचनेमें प्रसन्न हूं मुझको किसी घोडेपोडेसे प्रयोजन नहीं'' अनर्थ आगमन होनेसे उसको उसका फल मिला, इसीप्रकार विषयोंके ध्यान करनेसे संसारके बन्धनसे नहीं छूटता ॥

इसीप्रकार तीन वृत्तिवाला अहंकार पञ्चभूत इंद्रिंय मनोमय अपने प्रकाशसे इस सदाकालमें होनेवाले आभाससे सत्य दृष्टि ईश्वर लक्षित होता है ॥१३॥ सुषुप्ति अवस्थामें निद्राकेकारण पञ्चमहाभूत, उनके शब्दादिक सूक्ष्मरूप मन इन्द्रियें बुद्ध्यादिक इस संसारमें निद्रासे असत्में लीन होजाता है; विनिद्रित होकर सब अहंकारको त्याग देता है ॥१४॥ तब आत्मा नष्ट तौ नहीं होता है, परन्तु झूठे ही नष्टवत् मानै है. जब सब अहंकार नष्ट होजाता है, तब नष्टचित्तवाला जैसे आतुर होता है वैसे ही ईश्वरके दर्शनकी इच्छा होती हैं ॥१५॥ यह जीव ऐसे विचारके आत्माको प्राप्त हो जाता है, अहंकार सहित द्रव्यकी जो अवस्था है वह मेरी ही कृपा है ॥१६॥ देवहूति बोली कि, हे ब्रह्मन्! हे जनार्दन! प्रकृति कभी पुरुषको नहीं

एवं त्रिवृदहंकारो भूतेंद्रियमनोमयैः ॥ स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥१३॥ भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ॥ लीनेष्वसति यस्तत्र निर्निद्रो निरहंक्रियः ॥१४॥ मन्यमानस्तदाऽऽत्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ॥ नष्टेऽहंकरणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥ १५ ॥ एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते ॥ साहंकारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥ १६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुंचति कर्हिचित् ॥ अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥ १७ ॥ यथा गंधस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ॥ अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥ १८ ॥ अकर्तुः कर्मबन्धोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ॥ गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥१९॥ क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्वणम् ॥ अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥

छोडती, क्योंकि पुरुष प्रकृतिके आश्रित है और प्रकृति पुरुषके आश्रित है इसकारण इनका विलग होना बन नहीं सकता ॥१७॥ जैसे गन्ध कभी पृथ्वीसे पृथक् नहीं होती, गन्धमें पृथ्वी पृथ्वीमें गन्ध, जलमें रस, रसमें जल, इसी प्रकार परमेश्वरमें बुद्धि है. प्रकृति और पुरुषका अलग होना कठिन है ॥१८॥ अकर्ता पुरुषको और जिसके आश्रयसे कर्मके बन्धनमें और प्रकृति सद्गुणोंमें यह पुरुष फँसा हुआ है उसको कैवल्यमोक्ष कैसे होसक्ता है? सो कहिये ॥१९॥ कभी तत्त्वके विचारनेसे यह महा तीव्र भय दूर होजाता है, परन्तु उसका निमित्त नष्ट नहीं होता सो फिर पीछे यह

शंका खड़ी होजाती है॥२०॥श्रीभगवान् बोलेकि. हे जननि ! कोईनिमित्त हो ऐसे निमित्तके धर्म करनेसे, मन निर्मल होनेंसे, बहुत दिनके शास्त्र सुननेंसे, मुझमें तीव्र दृढभक्ति करनेसे ॥२१॥ तत्त्वदर्शन होता है, ऐसे ज्ञानसे; बलवान् वैराग्यसे, तपसहितयोगाभ्याससे, तीव्र अपनी समाधिसे ॥२२॥इस पुरुषकी माया दिनरातजलकर शनैः शनैः छिपजाती है. जैसे अग्नि काष्ठको जलाकर उसीमें लीन होजातीहै जैसे अग्निकी आदिकारणभूत लकडी अपने आपमेंसे उत्पन्न हो अग्निसे आप जलकर भस्म होजाती है, इसीप्रकार साधनदशामें अविद्याके किये हुए देहादि अभिमानसे उत्पन्न ज्ञानादि साधनोंसे दह्यमान प्रकृति नष्ट होजाती है॥२३॥भोग भोगकर फिर अपनेमें उसका दोष विचारकर उसको त्याग दिया,सो प्रकृति अपनी

श्रीभगवानुवाच ॥ अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ॥ तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरम् ॥ २१ ॥
ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ॥ तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥ २२ ॥ प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना
त्वहर्निशम् ॥ तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥२३॥ भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ॥ नेश्वरस्याशुभं
धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥ २४ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय
कल्पते ॥ २५ ॥ एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ॥ युंजतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥ २६ ॥
यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ॥ सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥ २७ ॥ मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्र
सादेन भूयसा ॥ निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥ २८ ॥

महिमा स्थित पुरुष ईश्वरका कभी कुछ अशुभ नहीं करसकती॥२४॥जैसे सोतेहुए पुरुषको स्वप्न दिखाई देता है,जबतक वह न जागे तबतक वह स्वप्न उस मनुष्यको अनेक दुःखोंका देनेवालाहै और वही स्वप्न जागनेसे जब उसको ज्ञानका संस्कार हुआ तो कुछ भी कष्टकारी नहीं होसक्ता॥२५॥ इसीप्रकार तत्त्वके जाननेवाले और मुझमें मन लगानेवाले आत्मारामको प्रकृति कभी अपने वशमें नहीं करसकती॥२६॥ इसप्रकार अनेक जन्मके साधन करनेसे ब्रह्मलोकतक सब पदार्थोंके त्यागनेंसे मेरे पूर्णभक्त मेरी अनंतभक्तिसे जब मेरे यथार्थरूपका ज्ञान उसको होजाताहै तब अध्यात्मज्ञानमें उसकी प्रीति होती है.तब आत्मज्ञानसे मुनि होताहै॥२७॥ मेराभक्त मेरी अतीव कृपासे मोक्षका भागी होता है, मोक्षदायक मेरा स्थान कैवल्य

जिसका नाम मेरे आश्रयहै उस वैकुण्ठको॥२८॥इस संसारमें धीर अनायास प्राप्त होतेहैं.अपनी दृष्टिसे सब संशय नष्ट होजाताहै. इस शरीरको त्याग कर वहाँ जाताहै जहाँके गये योगीजन फिर लौटकर संसारमें नहीं आते॥२९॥हे माता!जब योगीजनोंका योग बढ़ताहै तब मायाकी वृद्धि होनेसे अणिमादिक सिद्धियाँभी बढ़ती हैं,उनके बढ़नेका कुछ और प्रयोजन नहीं है केवल वह विघ्न करनेके लिये आती हैं. जो उस समय भक्तका चित्त उनमें आसक्त न हुआ तौ उसको मेरी अनन्य अत्यन्तसुखदायिनी व अनपायिनी गति प्राप्त होती है.जहाँ मृत्युका कुछ भय नहीं॥३०॥

प्राप्नोतीहांजसा धीरः स्वदृशा छिन्नसंशयः॥यद्गत्वा न निवर्तेत योगी लिंगाद्विनिर्गमे ॥ २९ ॥ यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जतेंग॥ अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यंतिकी यत्र न मृत्युहासः॥३०॥इति श्रीमद्भा० म० तृती० सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥ मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम्॥१॥स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ॥ दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां मोक्षरीतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७॥दोहा–वरणौं अट्ठाईसमें, योगाष्टांग विधान। निरुपाधी वर्णन करूँ, हरिस्वरूपको ध्यान॥२८॥भगवान् बोले कि,हे नृपात्मजे!अब बीजसहित योगका लक्षण कहता हूँ कि जिस विधि अनुष्ठानसे प्रसन्न होकर मन सत्पथमें लगताहै ❋ ॥१॥ अपनी सामर्थ्यभर स्वधर्मका आचरण करै पापसे अलग रहै,जो अपने भाग्यके अनुसार

---

[1] **कवित्त**–कामी है न यती है,न सूम है न सती हैं न, राजा है न, रंक है न, तन है न मन है॥सोवै है न, जागै है न, पाछे है न आगे है न, गृही है न,त्यागी हैं न,घर है न घर है न वन है॥ स्थिर है न डोलै है न मोन है न बोलै है न, बँधो है न खुलोहै न स्वामी है न जन है ॥ ऐसो जब होवै तब मेरी गति जाने तब, सुन्दर कहत ज्ञानी ज्ञानशुद्धबन है ॥

❋**शंका**–कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि,हे माता! बीजसहित योगका लक्षण मैं तुमसे कहूंगा,ऐसा वचन अपनी मातासे कहा परंतु योगका बीजसहित लक्षण क्यों नहीं कहा? सो योगके बीजका लक्षण क्या है ।

उत्तर–सज्जनोंकी संगतिमें प्रेम करना और दुष्टजनोंकी संगतिमें प्रेम न करना ऐसा विचारकर,नेत्रोंसे नित्य भगवान्‌में स्नेह देखना. और दुष्टकर्मको बुरा देखना यही योगके बीजका लक्षण है. और कपिलदेवजी पहिलेसे जानते थे कि हमारी माता ज्ञानमें कच्ची है इसलिये योगके बीजका लक्षण कहनेको प्रस्तुत थे पीछे संगति कही परन्तु फिर भली भांति जान लिया कि हमारी माता ज्ञानमें बडी पक्की है इसलिये योगके बीजका लक्षण कहनेकी क्या आवश्यकता है ॥

प्राप्त हो उसीमें सन्तोष करै आत्मज्ञानी पुरुषोंके चरणारविंदोंका पूजन करै॥२॥लौकिक सम्बन्धी धर्मसे निवृत्त रहै,मोक्षधर्ममें प्रीति करै,परिमित और महाशुद्ध भोजन करै,परिमित इसको कहते हैं पेटके दो भाग तो अन्नसे भरै और एकमें जल,चौथा वायुके आनेजानेको खाली रक्खै,एकान्त स्थानमें वास करै जहां किसीप्रकारकी बाधा न हो॥३॥ जीव हत्या न करै, सत्य बोलै,चोरी न करै, जितनेमें अपना प्रयोजन सिद्ध हो उतनाही सञ्चय करै, अधिक न करै,ब्रह्मचर्य धारण करै, तप करै, शौचसे रहै,वेदका पाठ करै, श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके चरणारविन्दकी वन्दना करै॥४॥ वृथा न बोलै,मौनधारण करै, आसनको जीतनेका अभ्यास करै, स्थिर रहै, शनैः २ प्राणको जीतै, मनको और इंद्रियोंको विषयसे खींचकर

ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा ॥ मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥३॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थ
परिग्रहः ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥४॥ मौनं सदासनजयः स्थैर्यं प्राणजयः शनैः॥प्रत्याहारश्चेंद्रि
याणां विषयान्मनसा हृदि॥५॥ स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ॥ वैकुण्ठलीलाऽभिध्यानं समाधानं तथा
त्मनः ॥ ६ ॥ एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ॥ बुद्ध्या युंजीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतंद्रितः ॥७ ॥ शुचौ देशे
प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ॥ तस्मिन्स्वस्तिसमासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूर
कुम्भकरेचकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचंचलम् ॥ ९ ॥

हृदयमें रक्खै ॥ ५ ॥ सब प्राणोंके स्थान जोमूलाधारादिक हैं उनमेंसे एक देशमें मनसहित प्राणको धारण करै, और त्रिलोकीनाथ भगवान्की लीलाका ध्यान करै, और मनको आत्माकार करै॥६॥ इनसे और इनके अधिक और उपायोंसे और साधनोंसे मनको जीतै,और असत् मार्गोंमें जो मन लगा है उसको धीरे२ बुद्धिसे जीतै,और प्राणको जीतै, निरालस्य होकर रहै ॥७॥ पवित्र देशमें रहै, विशेष करके प्रथम तो आसनको जीतै फिर कुशाओंपर कृष्णचर्म,उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर मांगलिक आसन मारकर बैठे,शरीरको सीधा रखकर प्राणको वश करनेका अभ्यास करै यह स्वस्तिकासन है ॥८॥ पूरक, कुम्भक, रेचकसे प्राणके मार्गको साधै; और प्राणायामोंके उलटे क्रममें चित्तका शोधन करे,जिससे यह चित्त

फिर चंचल न होय ऐसा स्थिर करै ॥९॥ जिसने श्वास जीते ऐसे योगियोंका मन थोड़ेही दिनोंमें शुद्ध होजाता है जैसे पवन अग्निसे धमाहुआ सुवर्ण, मलको त्यागकर निर्मल होजाता है ॥१०॥ प्राणायामोंसे तौ वात, पित्त, कफके मलोंको दूर करे, और धारणासे सब पापोंको दूर करै और प्रत्याहारसे विषयोंको दूर करै, और ध्यानसे रागादिकोंको दूर करै ॥ ११ ॥ जब योगके प्रभावसे मन शुद्ध होजाय तब सावधानतासे भगवत्के स्वरूपका ध्यान करै और अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहै ॥ १२ ॥ वारिजसमान जिनका प्रसन्न वदन, अरुणकमलवत् नेत्र, नीलकमलदलसम श्याम वर्ण, शंख, चक्र, गदा धारणकर रहे हैं, यह ध्यान करै ॥ १३ ॥ सुन्दर सरसिजके सरवत् पीताम्बर पहिरे, श्रीवत्स

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥ वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥ १० ॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥ यदा
मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ॥ काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्नवदनांभोजं
पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥ लसत्पंकजकिंजल्कपीतकौशेयवाससम ॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकंधरम् ॥ १४ ॥ मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥ परार्ध्यहारवलयकिरीटां
गदनूपुरम् ॥ १५ ॥ कांचीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयांभोजविष्टरम् ॥ दर्शनीयतमं शांतं मनोनयनवर्धनम् ॥ १६ ॥
अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ संतं वयसि कैशोरे भक्तानुग्रहकातरम् ॥ १७ ॥

वक्षःस्थलमें देदीप्यमान है, कौस्तुभमणि मुक्तामयमाला कण्ठमें विराजमान है ॥ १४ ॥ मत्त भ्रमरोंकी ध्वनि जिसपर होरही ऐसी मनमोहनी सोहनी वनमाला धारण किये हैं, और अमूल्यहार, कंकण, किरीट, भुजबन्द, नूपुर जिनके चरणारविन्दोंमें दीप्यमान हैं ॥ १५ ॥ क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित कटिपश्चात् भाग है, भक्तोंके हृदयकमलमें जिनका आसन है, दर्शन करने योग्योंमें दर्शनयोग्य, शांतचित्त मन और नयनोंका आनंद बढ़ानेवाला जिनका मनोहर स्वरूप है ॥ १६ ॥ अत्यन्त शोभायमान जिनका दर्शन है, सब लोकवासी जिनको नमस्कार

और दंडवत् करतेहैं, जिनकी किशोर अवस्था है, अपने अनुचरोंपर अनुग्रह करनेमें नित्यप्रति कुशल हैं ॥ १७ ॥ तीर्थरूप यश जिनका कीर्तन करने योग्य है. पुण्यश्लोकोंमें यश करनेवाले भगवान्के अंगोंका ध्यान करे, अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहै, जबतक कि, मन उस बांके बिहारीकी मूर्तिमें लय न होजाय॥ १८॥ दर्शनके योग्य जिनकी अलौकिक लीला है, ऐसे घटघटवासी वृन्दावन निवासी, सुखरासी मदनमोहनकी चाहै विराजमान मूर्तिका चाहै फिरते चलते स्वरूपका चाहै शयन करती हुई श्यामसुन्दरकी मूर्तिका, चाहै खडीहुई प्रतिमाका शुद्ध चित्तके भावसे ध्यान करै; उनकी अद्भुत लीला देखनेही योग्य है ॥ १९ ॥ मुनिलोग उनको चित्तमें स्थान देकर, सब अवयव सुन्दरस्थित ईश्वरका दर्शनकर

कीर्तन्येतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ॥ ध्यायेद्देवं समग्रांगं यावन्न च्यवते मनः ॥ १८ ॥ स्थितं व्रजंतमासीनं
शयानं वा गुहाशयम् ॥ प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥ १९ ॥ तस्मिंल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ॥
विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादंगे भगवतो मुनिः ॥२०॥ संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविंदं वज्रांकुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ॥
उत्तुंगरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयांधकारम् ॥ २१ ॥ यच्छौचनिस्सृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन
मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ ध्यातुर्मनश्शमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविंदम् ॥२२॥ जानुद्वयं
जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याऽखिलस्य सुरवंदितया विधातुः ॥ ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्संलालितं हृदि
विभोरभवस्य कुर्यात् ॥ २३ ॥

भगवान्के एक अंगमें अपने मनको लगावै ॥२०॥ पहिले तो वज्र, अंकुश, ध्वज, पद्म इन चिह्नोंसे युक्त उठेहुए अरुणशोभित नखमंडलकी किरणोंसे ध्यान करनेवाले भगवान्के चरणकमलका ध्यान करै॥२१॥ जिनके चरण प्रक्षालनरूप गंगाजलतीर्थके मस्तकपर धारण करनेसे मंगलमय भूतनाथ और अत्यन्त मंगलरूप होगए. इसीप्रकार जिनके चरणचिह्नरूप वज्रसे ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वत चूर्ण करनेवाले भगवान्के पादांबुजका बहुत कालतक ध्यान करै ॥२२॥ सब जगत्का विधान करनेवाला विधाता ब्रह्माकी माता, साक्षात् लक्ष्मी; सब देवता सदा प्रेम प्रीति

सहित दिनरात जिसके चरणारविंदकी वंदना करते हैं, कमलसे जिसके नेत्र, वह महालक्ष्मी अजन्मा विभुके ललित उस जानुद्वय, अपने हृदयमें करपल्लवकी कांतिसे बडी लालित्यके साथ जिनका सेवन करती हैं.उन भवभंजन भगवान्के दोनों घुटनों पर्यंत युगल जंघाओंका हृदयमें ध्यान करे ॥२३॥फिर गरुड़जीकी भुजाओंमें शोभित महापराक्रमी अलसीके कुसुम समान दोनों ऊरुओंका चित्तमें ध्यान करै,फिर अतिलंबा पीतांबर झमझमाताहुआ,उसमें वर्तमान कांचीकलापका मिलना, ऐसे भगवान्के शोभायमान नितम्बका ध्यान करै ॥२४॥ फिर चर्तुदश भुवनोंके कोष जिनके हृदयमें विराजमान,जहां आत्मयोनि ब्रह्माका स्थानहै,सब लोकात्मक कमल जिसमें उत्पन्न हुआ था उसके नाभि सरोवरका ध्यान करै;फिर

927

ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ॥ व्यालंबिपीतवरवाससि वर्तमानकांचीकलापपरिरंभि नितंबबिंबम् ॥ २४ ॥ नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ॥ व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥ २५ ॥ वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ॥ कंठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ २६ ॥ बाहूंश्च मंदरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान्॥संचिंतयेद्दशशतारमसह्यतेजः शंखं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥२७॥

उठेहुए मस्तकमणिके श्रेष्ठ विशद हारोंकी चटकीलीकिरणोंसे गौरवर्ण भगवान्के दोनों स्तनोंका ध्यान करै जिनकी कैसी सुन्दर शोभा है ॥२५॥ सर्व श्रेष्ठ महाविभूति श्रीलक्ष्मीजीका वासस्थान, महात्माओंके मन और नेत्रोंको परम सुखदायक वक्षस्थलका मनमें ध्यान करै;सब लोकजिनको नमस्कार करतेहैं,उन प्रभुके कण्ठमें जो कौस्तुभमणि भूषण भूषितहै उसकी शोभाका चित्तमें ध्यान करै ॥ २६ ॥ फिर मंदराचलके घूमनेसे घिसकर जो उज्ज्वल होगये हैं,बाहुओंके कंगन, जिनमें लोकपाल देवता वास करते हैं उन भुजाओंका ध्यान करै,फिर जिसका अनन्ततेज सहा न जाय, ऐसे हजार धारवाले सुदर्शनका चिंतवन करै,फिर जिन भगवान्के हस्तकमलमें राजहंसवत् शंख विराजमान है,उसका ध्यान करै॥२७॥

फिर वासुदेव भगवान्की प्यारी कौमोदकी गदा जो कि शत्रु वीरोंके रक्तकी कीचमें लिपटीहुईहै उसका स्मरण करै, भ्रमरोंके झुण्डके झुण्ड जिसपर गुंजार रहेहैं उस भगवान्की वनमालाका ध्यान करै जो जीवात्माकी परमतत्त्व निर्मल कौस्तुभमणि भगवान्के कण्ठमें दीप रहीहै उसका ध्यान करै॥२८॥अपने भृत्योंके ऊपर कृपा करके अपनी बुद्धिसे जिन्होंने मूर्तिमान् अवतार धारण किये हैं,उन भगवान्के मुखकमलका ध्यान करै कि जिसपर दमकतेहुए मकराकार कुण्डलोंके प्रकाशसे निर्मल कपोलोंकी शोभा और उदार जिसमें नाक है॥२९॥श्रीजीका जहां स्थान अपने वैभवकी शोभासे भ्रमरोंसे सेव्यमान कुटिलकुन्तल समूहयुक्त हो मीनद्वयका तिरस्कार करनेवाले, मनोमय निरालस भ्रू जिसमें ऐसे श्रीभगवान्के नेत्रकमलका

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ॥ मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्त्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कंठे ॥ २८ ॥ भृत्यानुकंपितधियेह गृहीतमूर्त्तेः संचिंतयेद्भगवतोवदनारविंदम् ॥ यद्विस्फुरन्मकरकुंडलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ २९ ॥ यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिषेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिलकुंतलवृंदजुष्टम् ॥ मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतंद्रित उल्लसद्भ्रु॥३०॥ तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोरतापत्रयोपशमनाय विसृष्टमक्ष्णोः ॥ स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम् ॥३१॥हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ॥ संमोहनाय रचितं निजमाययास्य भ्रूमंडलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥ ३२ ॥ ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठभासाऽरुणायिततनुद्विजकुंदपंक्ति ॥ ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्त्यार्द्रयार्पितमना न पृथग् दिदृक्षेत् ॥ ३३ ॥

ध्यान करै ॥३०॥ फिर अपनी कृपासे महाघोर अत्यन्तभयानक त्रयतापके नाश करनेके लिये नेत्रोंसे निकस मनोहर मुसकानसंयुक्त बहुत प्रसन्न होनेवाले प्रसादयुक्त अत्यन्त भावनासे हृदयमें अनंतकालतक भगवान्के अवलोकनका ध्यानकरै॥३१॥अवनतोंके सब तीव्रशोकसे प्रगट हुए अश्रुसागरके शोषणहारे अतिउदार श्रीभगवान्के मंदहास्यका ध्यान करै, फिर भगवान्ने अपनी मायासेजो मकरध्वजकेभी मोहनेके लिये रचा है और जो मुनिजनोंको मोहित करनेवाले ऐसे मकरध्वजके मोहके भ्रूमण्डलका ध्यान करै॥३२॥ ध्यानका स्थान प्रहसित और अधरहोंठकी कांतिसे लाल तनमें झांईके

पड़नेसे कुन्दकलीके दाँतोंकी पंक्ति भी कुछ२अरुणाईसी लिये ज्ञात होतीहै,उनका अपने हृदयाकाशमें ध्यान करै,इसप्रकार प्रेमरसीली विष्णुकी भक्तिसे उसीमें मनको लगावै, उसके अतिरिक्त और किसी वस्तुके देखनेकी चाहना न करे. चित्तको उसीमें स्थिर रक्खे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार भगवान्‌का ध्यान करते २ भावसे हरिमें लोभकर भक्तिसे द्रवीभूत हृदयमें अत्यन्त आनन्द प्रफुल्लित होजाय, और भगवत्‌से मिलनेकी अति उत्कण्ठासे अश्रुपात करके बारंबार पीडित धीरसे चित्तरूप मत्स्यवेधन काँटेके सदृश उसे शनैःशनैः भगवत्‌के अंगसे ध्यान न्यून करदे ॥३४॥ मुक्तोंके आश्रय जब निर्विषय विरक्तमन सहसा सूर्यकी सदृश मोक्षको प्राप्त होजाताहै. जब पुरुष आत्माको आनंदमय एकरूप देखैहै तब संसारसे

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ औत्कंठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुंक्ते ॥ ३४ ॥ मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथाऽर्चिः ॥ आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥ ३५ ॥ सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ॥ हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥ देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासो यथा परिवृतं मदिरामदांधः ॥ ३७ ॥

निवृत्त होजाताहै ॥३५॥ इसप्रकार मनकी अंतिमनिवृत्तिसे सुखदुःखसहित ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हुआ योगी,सुखदुःखका भोगना,जो पहिले अपने स्वरूपमें विदित होता था,उसे अविद्यासे उत्पन्न हुए अहंकारमें त्याग देताहै,अर्थात् सुखदुःखका भोक्तापनके असत् अहंकारमें ही है,मुझमें नहीं है, ऐसे देखता है, क्योंकि उसको आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष दीखता है अर्थात् होचुका है ॥३६॥ पहिले कहेहुए लक्षणसे सिद्ध हुआ योगी अपनी देहको भी नहीं देखता,फिर सुखदुःखको क्योंकर देखै ? जैसे मदमत्त मनुष्योंको पहिनेहुए वस्त्रका ज्ञान नहीं रहता इसीप्रकार योगीको अपने शरीरका ज्ञान

नहीं रहता. मत्तपुरुषका वस्त्र प्रारब्धसे जाता रहै, वा रहजाय उसको उसकी सुधि नहीं रहती, इसीप्रकार योगीका देह चाहै आसनपर रहै वा चलाजाय उसे उसकी सुधि नहीं रहती ॥ ३७ ॥ प्रारब्धके अधीन हुआ उसका देह जबतक उसका प्रेरक होवै तबतक इंद्रियसहित जीता रहता है,परंतु समाधिपर्य्यन्त योगको प्राप्त हुआ आत्मस्वरूपका ज्ञाता योगी स्वप्नअवस्थाकी देहके समान,मैं और मेरा करके नहीं जानता॥३८॥जैसे पुत्र धनसे पुरुष अपने आपको अलग मानताहै ऐसे ही आत्मभाव मानकर अभिमत देहादिकसे ईश्वरको पृथक् मानताहै॥ ३९॥ जैसे अज्ञानी मनुष्य

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः॥तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भज
ते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३८ ॥ यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ्‌ मर्त्यः प्रतीयते ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा
॥ ३९ ॥ यथोल्मुकाद्विस्फुलिंगाद्धूमाद्वाऽपि स्वसंभवात् ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमतात्तदग्निः पृथगुल्मुकात् ॥ ४० ॥
भूतेंद्रियांतःकरणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ॥ आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान्ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ४१ ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं
सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥ ४२ ॥ स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ॥
योनीनां गुणवैषम्यात्तथात्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥

ज्वलितकाष्ठसे कणका धूम होताहै ऐसा पृथक् मानतेहैं,परन्तु वास्तवमें दाहक और प्रकाशक अग्निसे अलगहै, इसप्रकार सब ब्रह्ममयही है ॥४०॥ जैसे पंचभूत इन्द्रियें अन्तःकरण प्रधान जीवसंज्ञासे आत्मा अलगहै इसीप्रकार द्रष्टा भगवान् ब्रह्म पृथक् है ॥४१॥जैसे सब प्राणिमात्रमें आत्मा व्यापीहै और सब जीवमात्र आत्मामें व्यापैहै,इसीप्रकार सब पदार्थोंमें मैं हूँ, और मुझमें सबपदार्थहैं ऐसे अनन्य भावकरके सब प्राणियोंमें तदात्मासे देखतेहैं वे सिद्ध हैं ॥४२॥ जैसे अपनी योनि काष्ठमें एक अग्निकी ज्योति योनियोंके गुणविषमतासे दीर्घ ह्रस्व दृष्टि आती है, इसीप्रकार

आत्मा एक होनेपरभी प्रत्येक देहके गुणोंकी विषमतासे दीर्घ ह्रस्वादि भेदके कारण अनेक प्रकारका दृष्टि आताहै ॥ ४३ ॥ इसलिये अपनी सत असत् आत्मिक विचारमें आवै ऐसी यह प्रकृतिको भगवान्‌की कृपासे जीतकर अपने स्वरूपमें स्थित होते हैं, और कुमति,कपट, लोभ मोहमें फँसकर खोटे संगसे जीवका नाश होजाता है॥ ४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कापिलेयोपाख्याने अष्टांगयोगध्यानयोगवर्णनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥ दोहा–भक्तियोग उनृतीसमें, कालतेज वैराग्य। घोर दुःख जीवन मरण, कहौं जासु जस भाग्य॥ २९॥ देवहूति बोली कि, हे प्रभो! महदादिकोंका लक्षण और प्रकृतिपुरुषका स्वरूप पारमार्थिक जैसा होय, और जिसप्रकारसे इनका ज्ञान होय सो कहो

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥ दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥४४॥ इति श्रीमद्भा० म० तृती० साधनानुष्ठानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां तेन तत्पारमार्थिकम् ॥ १ ॥ यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ॥ भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥ २ ॥ विरागो येन पुरुषो भगवन्सर्वतो भवेत् ॥ आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा लोकसंसृतीः ॥ ३ ॥ कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ॥ स्वरूपं बत कुर्वंति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥४॥ लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ॥ श्रांतस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥५॥

॥ १ ॥ हे भगवन्! जैसे सांख्य शास्त्रमें इनकी मूल आपने कही, परंतु उसके कहनेका अभिप्राय भक्तियोग है, इसकारण भक्तियोगका मार्ग मुझसे विस्तार सहित आप कहिये॥ २॥ हे जगत्पते! जिससे इस पुरुषको सब ओरसे वैराग्य उत्पन्न होजाय. ऐसा लोकका अनेकप्रकारका आवागमनहै सो कहो ॥ ३॥ और ईश्वररूप कालका स्वरूप कहो, जिसके भयसे लोग कुशलकर्म करतेहैं॥ ४॥ झूंठे अभिमानी, शरीरादिक पदार्थोंमें अहंकार करनेवाले, अज्ञानी, धर्मासक्त, निराधार अहंकारमें बहुत दिनसे सोयेहुए, कर्म करते करते श्रान्त होगये, ऐसे शठलोगोंके चैतन्य करनेके लिये, उनकी निर्मलबुद्धि

---

१ कवित्त–कुमतिसे यश जाय, गर्वसे लक्षण जाय, कुनारीसे कुल जाय, योग जाय संगसे ॥ भूखसे मर्यादा जाय, लडायेसे पुत्र जाय, सोचसे शरीर जाय, शीलता कुसंगसे ॥ कपटसे धर्म जाय, लोभसे बडाई जाय, माँगनेसे मान जाय, पाप जाय गंगसे ॥ क्रोधसे तपस्या जाय, अनीतिसे राज्य जाय, वंशकी प्रशंसा जाय वीरमुरे जंगसे ॥

करनेके अर्थ:योगशास्त्रका प्रकाश करनेको आपइस जगत्में सूर्यरूप उत्पन्नहुए ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि,हे कुरुश्रेष्ठ विदुर!इसप्रकार माताके बहुत मीठेवचनोंकी सराहनाकर,महामुनि अत्यन्त प्रसन्न हो प्रीतिसे भरे करुणासे पीडित मीठे वचन कहे॥ ६॥श्रीभगवान् बोले कि,हे जननि!भक्तियोग अनेक प्रकारकाहै, और बहुत मार्गोंसे प्रकाशित होताहै, पुरुषोंकी प्रकृति सतरजतमोगुणके होनेसे उनके संकल्पमें भेद पडजाताहै॥७॥संकल्पसे, हिंसासे,दंभसे,मत्सरतासे,क्रोधसे, भिन्नदृष्टिका भाव मुझमें करतेहैं,वह तामसीभक्ति है ॥८॥ विषयभोगकी चाहना कर यश ऐश्वर्य्यकेलिये जो अर्चादिकमें मेरी भावना करतेहैं वह राजसी भक्तिहै॥९॥पाप नाशनेके उद्देशसे अथवा सिद्धिसाधनके उद्देशसे मूर्ति आदिकमें जो कर्मकरे अथवा

मैत्रेय उवाच॥इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनंद्य महामुनिः ॥ आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥ ६ ॥ श्रीभग
वानुवाच ॥ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ॥ स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ ७ ॥ अभिसंधाय
यद्धिंसां दंभं मात्सर्यमेव वा ॥ संरंभी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ ८ ॥ विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव
वा ॥ अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥ ९ ॥ कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ॥ यजेद्यष्टव्यमिति
वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥ १० ॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥ मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगांभसोऽम्बुधौ
॥ ११ ॥ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ॥ अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥

जो पूजन करै उसमें यह मानै कि, भगवत्की आज्ञा है इसलिये पूजनकेही योग्य है,ऐसे भावसे जो भक्ति करते हैं,वहसात्त्विकी भक्ति है।इसका प्रयोजन यहहै कि,श्रवण कीर्तनादिक जो नवधा भक्तिहै,वही फलदेनेकेलिये तीन प्रकारकी तामस,तीनप्रकारकी राजस,तीनप्रकारकी सात्त्विकभक्ति होनेसे सत्ताईस (२७) प्रकारकी हुई, और सुननेसे एक २ में नौ नौ भेद होजाते हैं, तब इक्यासी (८१) प्रकारकी होजातीहै यह सगुणभक्तिके भेद हैं ॥१०॥ मेरे गुणके श्रवणमात्रसे मैं जो अन्तर्यामी हूँ, मुझमेंसे कभी न निकलै,इसप्रकार मनकी गति लगावै. जैसे गंगाजल धाराप्रवाहसे समुद्रमें लय होजाता है, फिर नहीं लौटता, ऐसेही ईश्वरमें लीन हो जाय भेद न रक्खे ॥११॥निर्गुणभक्तियोगका यह लक्षणहै. पुरुषोत्तमके फला

नुसन्धान भेदभावरहित भक्ति करै,श्रीपतिके अतिरिक्त दूसरेकी आशा न करै॥ १२॥ मेरे साथ एकलोकमें वास, समान ऐश्वर्य सदा निकट रहै,मेरे समान रूप हो जाय,एक रूप हो जाय,इन पांचों मुक्तियोंको मैं देता हूँ, परन्तु मेरे भक्त मेरी सेवा केअतिरिक्त औरकुछ नहीं ग्रहण करते ॥ १३॥ यह अत्यन्त निर्गुणभक्ति योगभक्तिहै,जिससे तीनों गुणोंका उल्लंघन करके मेरे भावको प्राप्त होताहै,इससे अधिक और दूसरी भक्ति नहीं ॥ १४॥ सुन्दर नित्य नैमित्तिक महास्वधर्मके अनुष्ठान करके निष्काम नारदपंचरात्रतंत्रोक्त पूजा करनेसे और हिंसारहित पूजा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है॥ १५॥ मेरी प्रतिमाके दर्शन स्पर्शन,पूजा,स्तुति, प्रणामादिकसे सब जीवमात्रमें मेरी भावनासे, धैर्यसे,वैराग्यसे हृदय पवित्र होताहै॥ १६॥

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥ दीयमानं न गृह्णंति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १३ ॥ स एवभक्तियोगाख्य आत्यंतिक उदाहृतः ॥ येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥ निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा॥ क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥ १५ ॥ मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवंदनैः ॥ भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासंगमेन च ॥ १६ ॥ महतां बहुमानेन दीनानामनुकंपया ॥ मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १७ ॥ आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्च मे ॥ आर्जवेनाऽऽर्यसंगेन निरहंक्रियया तथा ॥ १८ ॥ मद्धर्मिणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ॥ पुरुषस्यांजसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥ १९ ॥ यथा वातरथो घ्राणमावृंक्ते गंध आशयात् ॥ एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥ २० ॥ अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ॥ तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडंबनम् ॥ २१ ॥

महात्मालोगोंका आदर सम्मान करनेसे,दीनोंपर दया करनेसे,अपने समान कक्षामें मित्रता करनेसे,यम नियमकरनेसे शरीर शुद्ध होजाताहै॥ १७॥ ब्रह्मविद्याके सुननेसे,मेरेनामोंके उच्चारण और संकीर्तनसे साधुसंतोंकी संगति करनेसे,अहंकार त्यागनेसे चित्त शुद्ध होताहै॥ १८॥ जो पुरुष मेरे धर्मके गुणोंका साधन करताहै, उसका हृदय शुद्ध हो जाताहै,केवल मेरे गुणोंके सुननेसे ही पुरुषको मेरा स्वरूप विनाही श्रम प्राप्त होता है॥ १९॥ जैसे सब स्थानोंमें पवनद्वारा गंध आवेहै उसी प्रकार भक्तियोगमें लगा हुआ अविकारःमन,आत्मामें आप आमिलताहै॥ २०॥ सब जीवमात्रमें भूतात्मा मैं सदा

स्थिर रहताहूँ, मेरी अवज्ञा करके जो पुरुष केवल मूर्तिका पूजन करते हैं, वह विड़म्बनामात्रहै॥२१॥मैं सबके शरीरमें रहनेवालाहूँ, मुझे छोड़कर जो मनुष्य मूर्तिकी अर्चा करते हैं, वे अपनी मूर्खतासे राखमें हवन करते हैं *॥२२॥ सब प्राणियोंकी देहमें जो मैं विराजमान हूँ, जो मुझसे द्वेष रखताहै, अभिमान रखता है, भेदभाव रखता है ऐसे उन प्राणियोंका मन कभी शांत नहीं होता॥२३॥हे मातः! ऊँचे नीचे द्रव्योंसे, क्रियासे, अर्चासे, मैं संतुष्ट नहीं होता हूँ और जो जीवोंका अनादर करताहै उसपर मैं प्रसन्न नहीं॥२४॥सब जीवमात्रमें परमात्मा मैंहूँ, जबतक मेरा अनुभव हृदयमें प्रकाश न होय, तब तक मनुष्योंको मूर्ति आदिकका पूजन करना चाहिये॥२५॥ आपमें और मुझमें जो प्राणी अन्तर समझते हैं, उन भिन्नदृष्टिवालोंको मैंसदा कष्ट देता रहता हूँ ॥२६॥ इसलिये मुझको सब जीवोंमें और भूतोंमें विराजमान जानकर सब प्राणियोंका अन्तर्यामी मैं हूँ मुझसे दान मान मित्रता रखकर भेद

यो मां सर्वेषु भूतेषु संतमात्मानमीश्वरम्॥हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥२२॥द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ॥ भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शांतिमृच्छति ॥ २३ ॥अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे ॥ नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः॥२४॥अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ॥ यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ २५ ॥ आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यंतरोदरम्॥ तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्वणम् ॥२६॥ अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्॥अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥ २७ ॥

---

* शंका—कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि, हे जननि! सब चराचर जीवोंमें हम स्थित हैं. हमको तो कोई जानता नहीं हमारा अनादर करके प्रतिमाका पूजन करते हैं उन लोगोंको कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता जैसे राखमें हवन करनेसे कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होता, प्रतिमाका पूजन वेदके वाक्य मानके होता है ऐसे वेदोंके वचनका छेदन मूर्ख भी नहीं करते, और कपिलदेवजीने बडे ज्ञानी होकर वेदोंके वचनका छेदन क्यों किया ? कि, प्रतिमाका पूजन नहीं करना ?

उत्तर—सब देहोंमें परमात्माको मानना, कि परमात्मा सब देहोंमें स्थित है, यह ज्ञानियोंका कर्म है. ऐसा माननेवाले प्राणी प्रतिमाको नहीं मानते, यह कर्म अज्ञानियोंके लिये नहीं है. अज्ञानियोंका कर्म प्रतिमाका पूजन है, कपिलदेवजीकी माता ज्ञानी है तथा कपिलदेवजी भी ज्ञानी हैं. इसलिये ऐसे ब्रह्मज्ञानके वाक्य कहे हैं, कुछ अज्ञानियोंके लिये नहीं कहा.

दृष्टिसे न देखना चाहिये॥२७॥हे शुभे!अचेतन जीवोंमें सचेत अर्थात् प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं,उनसे प्राणवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चित्तवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं,उनसे इंद्रियवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं ॥२८॥ उनमें स्पर्श ज्ञानी श्रेष्ठ हैं,उनमें रसज्ञानी मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं, उनमें गंधज्ञानी भ्रमरादिक श्रेष्ठ हैं, उनमें शब्दज्ञानी सर्पादिक श्रेष्ठ हैं ॥२९॥ उनमें रूपवेत्ता काकआदिक श्रेष्ठ हैं; उनमें दोनों ओर दन्तवाले श्रेष्ठ हैं, उनमें बहुत पांववाले श्रेष्ठहैं, उनसे चौपाये श्रेष्ठ हैं उनसे दोपदवाले श्रेष्ठ हैं॥३०॥द्विपदोंमें चारों वण श्रेष्ठ हैं,उनमें ब्राह्मणवर्ण श्रेष्ठहै, ब्राह्मणोंमें वेदपाठी श्रेष्ठ हैं, वेदपाठियोंमें अर्थके जाननेवाले श्रेष्ठहैं॥३१॥अर्थजाननेवालोंमें संशयच्छेदी मीमांसा करनेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे स्वकर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं,उनसे मुक्तसंगी श्रेष्ठ हैं, उनसे ईश्वरके

जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ॥ ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेंद्रियवृत्तयः ॥२८॥ तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः
प्रवरा रसवेदिनः ॥ तेभ्यो गंधविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥ २९ ॥ रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः ॥ तेषां
बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥३०॥ ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ॥ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञो
ऽभ्यधिकस्ततः ॥३१॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत् ॥ मुक्तसंगस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः॥३२॥
तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियाऽर्थात्मा निरंतरः॥मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥ न पश्यामि परं भूतमकर्तुः
समदर्शनात् ॥३३॥ मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥३४॥ भक्तियो
गश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ॥ ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥ ३५ ॥

धर्मकर्ता श्रेष्ठहैं ॥ ३२ ॥ जिस पुरुषने अपने धर्म कर्मका फल और अपना शरीर मेरे अर्पण करदिया है उनमें वह श्रेष्ठ है, मुझमें जिसने अपनी आत्मा समर्पी मुझमेंही सब कर्मोंका संन्यास करताहै उस समदृष्टि महात्मासे कोई अधिक श्रेष्ठ नहीं ॥ ३३ ॥ ऐसे समदर्शीके समान कोईदूसरा नहींहै,समदर्शी मनुष्य वैकुण्ठको जाता है वह आदिपुरुष अविनाशी सबके घट घटमें विराजमान है, इसलिये सब जीवमात्रको अत्यन्त आदरसम्मानसे मनहीमनमें दंडवत् प्रणाम करे ॥ ३४ ॥ हे मनुसुते !भक्तियोग और योग दोनों मैंनें तुमसे कहे, इन दोनोंमेंसे एकका भी साधन करें तो वह पुरुष परमेश्वरके निकट पहुँच सक्ता है ॥ ३५ ॥

सबका स्वामी प्रकृतिपुरुषरूप और उनसे पृथक् जो परमात्मास्वरूपहै. परम प्रधानपुरुष उसीको देव कहते हैं, जिसमें यह जीव अनेक२ प्रकारकी योनियोंको भोगता है ॥ ३६ ॥ रूपभेदके आश्रय होनेसे दिव्यकाल कहलाता है, जिससे भिन्नदृष्टिवालेको महदादिभूतोंका भय होताहै॥ ३७॥ सर्वाधार और यज्ञोंके फलदायक जो ईश्वर जीवोंके भीतर प्रविष्ट होकर सब जीवोंको भक्षण करते हैं, वही विष्णु हैं, वही अधियज्ञ है, वही काल है, वही वशी करनेवालोंका प्रभुहै ॥ ३८॥ इसकालका न तौ कोई प्याराहै, न कोई शत्रु है, न कोई बांधव है, अप्रमत्त होकर प्रमत्तपुरुषोंका अन्त

एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्म विचेष्टितम् ॥ ३६ ॥ रूपभेदास्पदं दिव्यं काल
इत्यभिधीयते ॥ भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥ ३७ ॥ योंतः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्यखिलाश्रयः ॥
स विष्णवाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः॥ ३८॥ न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बांधवः॥ आविशत्य
प्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमंतकृत् ॥ ३९ ॥ यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति
यद्भयात् ॥ ४०॥ यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ॥ स्वेस्वे कालेऽभिगृह्णंति पुष्पाणि च फलानि च ॥ ४१॥
स्रवंति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ॥ अग्निरिंधे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥ ४२॥ नभो ददाति श्वसतां पदं
यन्नियमाददः ॥ लोकं स्वदेहं तनुते महान्सप्तभिरावृतम् ॥ ४३॥ गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ॥ वर्तं
तेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥

करै है॥ ३९॥ जिस कालके भयसे पवन चलता रहता है, मार्तण्ड तपा करता है, इन्द्र वर्षा करता है, तारागग प्रकाश करते हैं॥ ४०॥ जिसके भयसे वनस्पति, वृक्ष, लता, औषधीसहित अपने २ समयपर पुष्प और फल उत्पन्न करती हैं॥ ४१॥ जिसके भयसे नदियें दिनरात बहती रहतीहैं, समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोडसक्ते, अग्नि प्रज्वलित होता रहता है, पर्वतोंसहित भूमि, डूबती नहीं ॥ ४२॥ जिसकी आज्ञासे यह आकाश, सब श्वास लेनेवालोंको सावकाश देताहै महत्तत्त्व सात आवरणयुक्त इस लोकमें इस देहका विस्तार करता है ॥ ४३॥ जिसके भयसे गुणाभिमानी देवता,

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, स्वर्गादिकमें युग २ वर्तमान रहते हैं, और बारबार संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करते रहतेहैं॥४४॥सो अनंत अंत करनेवाला काल अनादि आदि करनेवाला है, अव्यय है, जनोंसे जनोंको जन्माता है परन्तु कालकोभी मृत्युसे संहार करताहै, वह परमात्मा कालरूप अपनी इच्छानुसार काम करता है॥४५॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां वधभक्तियोगवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २९ ॥दोहा–नारीतनके नेहमें, जीव जिनका दिनरात। करौं तीस अध्यायमें, तिनको यश विख्यात ॥३० ॥कपिलदेवजी बोले कि, इस कालकरालके पराक्रमको यह जीव नहीं जानसक्ता, जैसे पवनसे चलायमान मेघमाला वायुके विक्रमको नहीं जानसक्ती॥१॥अपने शरी

सोऽनंतोंतकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः॥जनंजनेन जनयन्मारयन्मृत्युनांतकम्४५॥इति श्रीमद्भा०म०तृती०एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥२९॥कपिल उवाच॥तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ॥ काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः॥१॥यंयमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे॥तंतं धुनोति भगवान्पुमाञ्छोचति यत्कृते॥२॥यदध्रुवस्य देहस्य सानुबंधस्य दुर्मतिः ॥ ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥ जंतुर्वै भव एतस्मिन्यांयां योनिमनुव्रजेत् ॥ तस्यांतस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥ ४ ॥ नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ॥ नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु ॥ निगूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥ ६ ॥

रके सुखकेलिये वह जीव अनेक दुःख करके जिस वस्तुका संग्रह करताहै; उस वस्तुको कालभगवान् नाश करदेतेहैं, जिसके लिये रातदिन प्राणी शोचमें पडा रहता है॥२॥शोचमें क्यों पडारहताहै? कि, जो वस्तु नाशवान्है, यह मूर्ख परिवारसहित देहको धनको खेतको मोहसे इन नाशवान् वस्तुओंको यह अज्ञानी ध्रुवसमान स्थिर मानताहै॥३॥निश्चयकरके यह जो जीव संसारमें, जिस जिस योनिमें जाताहै, उसी उसी योनिमें आनन्दसे रहताहै; परन्तु कभी वैराग्यधारण नहीं करता॥४॥नरकवासी जीवभी अपने शरीरके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते नरककोही आनन्दभवन मानते हैं. देवकी मायासे जीव ऐसे विमोहित होरहे हैं॥५॥और शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, गज, वाजी, बंधुजनोंमें अपना हृदय अत्यन्त फँसाहै, सो अपने

आपको बहुत बुद्धिमान् और सुखनिधान मानताहै॥ ६॥और अपने कुटुम्बियोंके पालन पोषणके सन्देहमें सब शरीर,उसका सरदी गरमीसे जलता रहताहै,तौ भी वह मूढ बुरे हृदयसे सदा बुरे२कर्म करताही रहताहै॥ ७॥खोटी वेश्यादिक स्त्रियोंकी एकान्तमें मैथुनादिक मायासे शरीर इंद्रिय सब विक्षिप्त रहती हैं और तोतली रसभरी बालकोंकी मधुरवाणीके साथ झूँठी बातें कर २ उन्मत्तसा बनारहता है. ॥ ८ ॥ धनके लोभसे धर्म करै उसमेंभी अधर्म सदा दुःख,ऐसे घरमें आलस्य तज दुःख दूरकरनेके लिये उपाय करतेहैं,और गृहस्थीको सुखके समान मानतेहैं॥९॥और महाहिंसा

संदह्यमानसर्वांग एषामुद्वहनाधिना ॥ करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥ ७ ॥आक्षिप्तात्मेंद्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ॥ रहो रचितयाऽऽलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतंत्रेष्वतंद्रितः ॥ कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥९॥अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥ पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥१०॥वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनःपुनः ॥ लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥११॥कुटुंबभरणाकल्पो मंदभाग्यो वृथोद्यमः ॥ श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्वसिति मूढधीः ॥१२॥ एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तदा ॥ नाद्रियंते यथापूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ १३ ॥

करके इधर उधर धन इकट्ठाकर,परिवारका पालन पोषण करते हैं और आप उनकी जूँठन खा खाकर अपनी अवस्था पूरी करते हैं,और अन्त समय नरकमें जातेहैं॥ १०॥जबउनकी जीविका बन्द होजातीहै,तब उसके उपार्जनके लिये सहस्रों उपाय करतेहैं, इसीप्रकार बारम्बार वह महा लोभी, वह निर्धन यत्न करता जब मनमें हार मानताहै तब पराये धनके लेनेकी इच्छा करताहै॥ ११॥कुटुम्बके पालन पोषणकी सामर्थ्य न रही और उद्यम निष्फल होनेलगा, तब वह मंदभागी मन्दबुद्धि कृपण अत्यन्त शोचवश होकर लम्बे२ श्वास लेनेलगताहै॥१२॥इसप्रकार जब वह

---

१ **कवित्त**–दाताघर जाती तौ कदर ऐसी नाहिं पाती, मेरे घर आई तौ बधाई बांट बावरी । खाने दशखानेते खानमें छिपाय राखूं, होउ ना उदास मेरो यही चितचावरी॥ खवाऊं न खवाऊं मरजाऊं तौ सिखाय जाऊं, नाती और पूतनको अपनो स्वभावरी ॥ दमडी न देहुं कर्मी स्वप्नमें भिकारिनको, कृपण कहै लक्ष्मीसे बैठी गीतगावरी ॥

प्राणी कुटुम्बके पालन पोषणमें सामर्थ्य नहीं करता, तब उसके कुटुम्बीलोग पहिलेकेसा उसका आदर सत्कार नहीं करते, जिसप्रकार किसान बूढ़े बैलका आदर नहीं करते ॥१३॥ इतनेपर भी ज्ञान और वैराग्य उन मूर्खोंको नहीं होता अब वह वृद्ध मनहीमन कहता है कि, हाय ! जिनका लालन पोषण मैं करता था, आज वह मेरा पालनकरते हुए कडुवे वचन कहते हैं, हा ! जराके आनेसे मेरा रूप कुरूप होगया, मरनेके सम्मुख घरमें घुटना पडा ॥ १४ ॥ घरके लोग जब भोजन कर चुके हैं तब अनादरसे कुछ खानेपीनेको श्वानकी समान दूरसे टुकडा डालते हैं; रोग शरीरमें प्रगट होगए, मंदाग्निसे भोजन भी थोडा खायाजाता है; उठने बैठनेकी सामर्थ्य नहीं रही, नेत्रोंसे दीखना बंद होगया ॥ १५ ॥

तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयंभृतैः ॥ जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥ आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ॥ आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥ वायुनोत्क्रमतोत्तारकफसंरुद्धनाडिकः ॥ कासश्वासकृतायासः कंठ घुरघुरायते ॥ १६ ॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबंधुभिः ॥ वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ १७ ॥

जब मृत्युका समय आया तब वायुसे नेत्र फटनेलगे, पुतलियें ऊपरको चढ़गईं; आंसू निकलने लगे, नाडियें रुक गईं, कास श्वासके किये हुए क्लेशोंसे कंठमें कफ घिरनेलगा॥१६॥उस समय शोचवश हो भाईबन्धु चारों ओरसे घेरकर बैठ जाते हैं और बहुतही पुकार २ कर बूझते हैं कि,हे पिता ! हे दादा ! कुछ धन धराधराया हो तो बतादो, अब तुम्हारा चित्त कैसे है ? वह तौ कालकी फाँसीमें फँसाहुआ है, कंठ रुका हुआ है, अपना सुख दुःख मुखसे कुछ नहीं कहसक्ता, तब लोग फिर उसको समझाते हैं, कि आप कुछ द्रव्य बतावें तो हम गाय मँगायके आपपर पुण्य करावैं ॥ १७ ॥

---

[१] **कवित्त**–द्रव्यहीसों पितापर पुत्रको सनेह होत, द्रव्यहीसों पुण्य और द्रव्यहीसों नामहै । द्रव्यहीसों देवी और देवता प्रसन्न होत, द्रव्यहीसों जगत्माहिं होत सारा काम है ॥ द्रव्यहीसों धर्म अर्थ मनोरथ पूरे होत, द्रव्यहीसों धर्म अर्थ काम परम धाम है । द्रव्यहीकी खातर औ पातर होत द्रव्यहीसों, शालिग्राम द्रव्यहीकी महिमा सब ठामैहै ॥

जिसने कुटुम्बके भरनेमें और चारों ओरसे उनके पालन करनेमें कसर न की, अपनी इन्द्रियोंको न जीता, वह नष्टबुद्धि वह अज्ञानी रोते हुए अपने बन्धुबान्धवोंमें मरगया ॥१८॥ उस समय उसके लेनेके लिये, क्रोधसे लाल२ नेत्र किये, महाभयानक यमराजके दो दूत आये दंडपाश उनके हाथोंमें देख त्रासके मारे वह पापी जीव विष्ठा मूत्र कर रहता है॥१९॥वह दूतउसीसमय बरवश उसे पकड़ गलेमें फांसी डाल उस नरदेहमेंसे उस

एवं कुटुंबभरणे व्यापृतात्माऽजितेंद्रियः ॥ म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥ १८ ॥ यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ॥ स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुंचति ॥ १९ ॥ यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ॥ नयतो दीर्घमध्वानं दंड्यं राजभटा यथा ॥ २० ॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ॥ पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥

जीवको निकाल, यातनादेह (जो यमलोकमें कष्ट भोगनेको नियत है) में रख, हाथ बांधकर, राजाके दूत जैसे अपराधीको बरबश पकड़ व घसीटकर लेजाते हैं, उसीभाँति उस जीवको बडी दूरके मार्गको लेजाते हैं * ॥२०॥ उन दूतोंके मारने पीटनेसे, उसका हृदय फटजाता है, देह काँपने लगती है, गिरते पड़ते, मार्गमें कुत्ते फाड़नेको दौडते हैं, उस समय वह प्राणी आर्त होकर अपने किये पापोंको याद करता है ॥२१॥

***शंका**–कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि, यमराजके दूत यमकी पाशसे जीवके गलेमें बांधकर घसीटते घसीटते यमपुरीमें जीवको लेजातेहैं यह बडे सन्देहकी बात है कि, जीवके गला नहीं है फिर विना देहके गला कैसे होसक्ता है, जिसमें पाश डालकर जीवको यमपुरीको यमदूत ले जाते हैं.

उत्तर–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन पांचके अंशसे चौरासीलाख योनियोंकी देह बनी है, परन्तु प्रत्यक्ष दीखनेमें वायुसे देह वर्द्धित होती है. पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश ये चार तो देहमें प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आते. और पवन प्रत्यक्ष मुखमें, नाकमें, गुह्यमें चलता हुआ दिखाई देता है. जबतक देहमें वायु चलती रहती है तबतक देह जीती कहलाती है. और पवनके बन्द होतेही देहको मृतक कहते हैं जीवकी वार्ताको महात्मा पुरुषोंने और कविजनोंने अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया है. परन्तु सब शास्त्रोंका भी ऐसा मत है कि, इस शरीरमें पवन जो है वही जीव है, वायुके अंशसे देहके सब अंग चैतन्य रहते हैं, इसलिये यमदूत पवनरूप जीवके गलेमें यमके पाशसे बांधकर उसी वायुरूप जीवको यमपुरीमें लेजाते हैं.

मार्गमें क्षुधा तृषा सताती है,भोजन देखनेको भी नहीं मिलता, ऊपरसे सूर्यकी गर्मी पडती है, और नीचे धरती जलती है फिर तपतीहुई बालूपर तपना पडताहै,जब कहीं थककर बैठजाता है और नहीं चलता तब यमदूत बडे निर्दयीपनसे कोडे मारतेहैं, मार्गमें न कहीं ठहरनेका ठिकाना है, न कहीं पानी पीनेको मिलता है, उस समय मुखसे हाय२ निकलती है ॥ २२ ॥ और जहाँ तहाँ थकित होकर गिरपडता व मूर्च्छित होजाता हैं,फिर उठकर चलनेलगता है इसीप्रकार उस पापी जीवको महा अन्धकार व्याप्त मार्गमें होकर यमदूत यमपुरीको लेजाते हैं ॥२३॥ निन्यानवे हजार ९९००० योजन मार्ग चार घड़ीमें उस महापापीको लेजाते हैं और पापीको छः घडीमें यमपुर लेजाते हैं,वहां अनेक२ प्रकारकी यातना

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तवालुके ॥ कृच्छ्ण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥ २२ ॥ तत्रतत्र पतञ्छ्रांतो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ॥ यथा पापीयसानीतस्तमसा यमसादनम् ॥ २३ ॥ योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ॥ त्रिभिर्मुहूर्तद्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥ २४ ॥ आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ॥ आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥ २५ ॥ जीवतश्चांत्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ॥ सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥ कृंतनं चावयवशो गजादिभ्योभिदापनम् ॥ पातनं गिरिशृंगेभ्यो रोधनं चांबुगर्तयोः ॥ २७ ॥ यास्तामिस्रांधतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ॥ भुंक्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः ॥ २८ ॥

१९५

भोगनी पडतीहै॥२४॥कहीं तो उस जीवकी देह लकडियोंसे जलातेहैं,कहीं इसीका मांस इसको भक्षण करातेहैं,कहीं आपही अपने मांससे अपना पेट भरता है॥२५॥कहीं यमलोकमें श्वान गीध जीतेकी आंतें निकाल२ लेजाते हैं,कहीं सांपबिच्छू डांसादिककी पीडासे दुःख पाकर अपने कर्मोंका किया फल भोगता है॥२६॥कहीं उसका शरीर काट २ कर खण्ड२करतेहैं,कहीं हाथी दांतोंपर धर२कर घुमा२कर पटके देतेहैं,कहीं पाँवोंसे दबाय२ शुण्डसे उठाय चीर२ कर बगेल देते हैं, कहीं पावोंसे पीस २ कर मारते हैं,कहीं पर्वतोंके शृङ्गोंसे पटक देते हैं, कहीं पानीमें डुबो देतेहैं,कहीं गढ़ेमें बन्द कर देते हैं ॥२७॥ जो तामिस्र, अन्धतामिस्र, और रौरवादिक नरकोंकी पीडा है; सो नर नारी भोगते हैं,जो पूर्व कुकर्म किये हैं उनका फल

उनको भोगना पड़ता है॥२८॥हे मातः!यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है,क्योंकि नरक और स्वर्ग दोनों यहीं दिखाई देते हैं,जो२ कष्ट नरकमें सहने पड़ते हैं वे संसारके मध्य भी देखनेमें आते हैं॥२९॥जो प्राणी केवल इसप्रकार अपने परिवारका पालन पोषण करता है वा अपना उदर भरता है उसके वह कर्म उसके साथ जाते हैं,और जब मरकर यमपुरीमें जाताहै,तब उसको अपने पापका फल इकलेही भोगना पड़ता है॥३०॥इस अपने शरीरको छोड़कर एकही जीव नरकको जाता है;भूतद्रोहके लिये जो पाप किये हैं, वे सब वहीं भोगने पडते हैं ॥३१॥ दैवके प्राप्त कियेहुए उसको अकेलेमें पुरुष सब कष्ट भोगता है,कुटुम्ब पालनेका फल यहां भोगता है, और जिसका धन लूटजाता है ऐसे पुरुषकी नाईं वह आतुर होजाता है ॥३२॥

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ॥ या यातना वै नारक्यास्ता इहाप्युपलक्षिताः॥२९॥एवं कुटुंबं बिभ्राण उदरंभर एव वा ॥ विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम् ॥३०॥ एकः प्रपद्यते ध्वांतं हित्वेदं स्वकलेवरम् ॥ कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम्॥३१॥दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान्॥भुंक्ते कुटुंबपोषस्य हृतवित्त इवातुरः॥३२॥ केवलेन ह्यधर्मेण कुटुंबभरणोत्सुकः ॥ याति जीवोऽधतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावती र्यातनादयः ॥ क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः॥३४॥ इति श्रीमद्भा०म० तृती० कर्मविपाको नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जंतुर्देहोपपत्तये ॥ स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥१॥

केवल अधर्मसे जो परिवार पालनेमें तत्पर है वह प्राणी अन्धतामिस्रतमका जो स्थान है उसमें जाता है* ॥ ३३ ॥ नरलोकसे जो नीचे यातनादिक नरक हैं, उन सबको क्रमसे भोगकर जब पाप क्षीण होता है, तब फिर शुद्ध होकर मनुष्यदेह पाता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कामिनां नरकादिकवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा–इकतिसमें वर्णन करौं, शोणितवीर्य मिलाप । राजसयोनी होत जब, मिलत पुण्य औ पाप ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि दैवप्रेरित पिछले जन्म कर्मोंके प्रभावसे देहप्राप्तिके

---

* **राग बिहाग** ॥ तबतें गोविंद क्यौं न सँभारे । अपने लोभ लाभके कारण चलत न कबहूँ हारे ॥ १ ॥ अपने एकजीवके कारण जीव सहस दश मारे । उन जीवनपर क्यों छूटोगे दावन गीर तुम्हारे ॥२॥ भूमिपरे तब सोचन लागे भये कठिन दिनभारे ॥ सूरदास कहै कंठ पकरि तब निकसत प्राण दुबारे ॥ ३ ॥

लिये यह जीव पुरुषके वीर्यकणमें आश्रय लेकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है* ॥ १ ॥ एक रातमें तो शुक्रशोणित मिलता है, पांच रातमें बुद्बुदासा होताहै, दश दिनमें बेरके समान हो जाता है, फिर मांसपिंडाकार होजाता है ॥ २ ॥ एक मासमें शिर बनता है, दो मासमें बाहु; चरण आदि अंगके आकार बनजाते हैं तीसरे मासमें नख, रोम, हाड़, चाम, सब इन्द्रियोंके छिद्र बनजाते हैं ॥३॥ चौथे मासमें सातों धातु प्रगट होती हैं. पांचवें मासमें भूख प्यास उत्पन्न होती है, छठे मासमें जेरमें लिपटाहुआ माताकी दाहिनी कोखमें घूमा करता है ॥४॥ माताके भोजन करेहुए

कललं त्वेकरात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदम् ॥ दशाहेन तु कर्कंधूः पेश्यंडं वा ततः परम् ॥२॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्व
ड्यार्द्यंगविग्रहः ॥ नखलोमास्थिचर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ३ ॥ चतुर्भिर्धातवः सप्त पंचभिः क्षुत्तृडुद्भवः ॥ षड्
भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥४॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते ॥ शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जंतुर्जंतु
संभवे ॥ ५ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वांगः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ॥ मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ ६ ॥ कटु
तीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्वणैः ॥ मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वांगोत्थितवेदनः ॥ ७ ॥

२९५

अन्नादिकसे इसकी धातु बढ़ती है,और वह जीव जीवोंकी खान ऐसे ऐसे विष्ठा और मूत्रके गर्तमें दिनरात पडारहताहै "मार्कंडेयपुराणमें लिखाहै कि, स्त्रीकी नाभिमें एक बालककी वृद्धि करनेवाली आप्यायनी नाडी बँधी है,उसीके द्वारा स्त्रियोंके खाये पिये पदार्थका रसांश उस गर्भको पहुँचता है, और वह जीव उसको पीपीकर दिन २ बढ़ताहै" ॥५॥ सुकुमारतासे गर्भके कीडे जो क्षण२में उसको काटते हैं, उस कठिन पीडासे वह जीव अत्यन्त व्याकुल हो मूर्च्छित होजाता है,वह कृमि भूखसे व्याकुल होकर जीवको सतातेहैं॥६॥और कीडोंके काटेहुए घावोंपर जो जननीके

---

* **शंका**–कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि, जीव यमपुरीमें कष्टको भोग करके पुरुषका वीर्य होकर स्त्रीके उदरमें; प्रवेश करता है ऐसा हम सब सुनते हैं बडे आश्चर्यकी बात है कि, वायुरूप जीव सो शीश और राँगकी नांई गलकर जलरूप कैसे होगया ?

उत्तर–वायुरूप जीवको नित्य सब पदार्थोंमें जाना होता है,वह सब वस्तुमें चर‚अचरमें सूक्ष्मरूप होकर प्रवशे करता हैइसीलिये वायुकी देह रूप जीव यमपुरीमें कष्ट भोगकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है, क्योंकि वायु तो सबमें जब चाहै तब जैसा चाहै तैसा रूप धरके घुसजाता है ॥

खाये कटु, तीक्ष्ण,उष्ण,लवण,रूखा,अम्लादि नानाभाँतिकीवस्तु जो खाती हैं उनके लगनेसे उस जीवके शरीरमें अत्यन्त पीडा होतीहै॥७॥उदरके भीतर जरायुसे बँधा, और बाहर जननीकी आंतोंसे बँधा, नीचे योनिकी ओर शिर किये धनुषकीसी टेढी पीठ झुकाये मलमूत्रमें पडा रहता है, हाथ पाँवतक नहीं चलासक्ता, यह माताका उदर नहीं है, बन्दीगृह है ॥ ८ ॥ अपने तनकी चेष्टा करनेमें कुछ सामर्थ्य नहीं रहती, जैसे पिंजरेमें पक्षी अपना मनोरथ सिद्ध नहीं करसक्ता, वहाँ इस प्राणीको पिछले सौ जन्मके कर्मोंकी याद आती है उस समय वह दीर्घ श्वास भरकर पश्चात्ताप करता है, और सुख तौ वहाँ नामकोभी नहीं मिलता ॥९॥गभकी समान दुःख तौ न हुआ न होय-सातवें महीनेमें इसको अधिक बाधा होती

उल्वेन संवृतस्तस्मिन्नंत्रैश्च बहिरावृतः ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ ८ ॥ अकल्पः स्वांगचेष्टायां
शकुंत इव पंजरे ॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥ स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विंदते
॥ ९ ॥ आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ॥ नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥ १० ॥ नाथमान
ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृतांजलिः ॥ स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥ ११ ॥ जंतुरुवाच ॥ तस्योपसन्न
मवितुं जगदिच्छयाऽऽत्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविंदम् ॥ सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्य
सतोऽनुरूपा ॥ १२ ॥ यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेंद्रियाशयमयीमवलंब्य मायाम् ॥ आस्ते विशुद्धमविका
रमखंडबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥ १३ ॥

है,यह एक ठिकाने नहीं ठहर सक्ता,प्रसूतिकी वातसे सदा काँपता रहता है और विष्ठेके कीडोंको अपना सम्बन्धी समझताहै॥१०॥उससमय दुःखी हो वह जीव वारंवार परम उदास हो,गर्भवासकी त्रास देख सात धातुवोंसे बँधा हुआ हाथ जोड़ व्याकुलवाणीसे उस परमात्माकी स्तुति करताहै॥११॥ जीव कहताहै कि हे शरणागतवत्सल! विश्वके पालन करनेके लिये आप अपनी इच्छासे अनन्तरूपधारी भूमिपर पर्यटन करतेहुए आप भगवान् वासुदेवके निर्भय चरणारविंदके मैं शरण हूँ.कि जिसने मुझ पापीको यह गर्भवासकी गति दिखाई॥१२॥जो ईश्वरकी मायासे इस संसारके कर्मबन्धनसे जननीके उदरमें पञ्चमहाभूत इन्द्रिय अन्तःकरणरूप मायाका आश्रय लेकर कर्मोंसे बँधाहुआ हूँ अब उस विशुद्ध,अविकार,अखण्डज्ञानस्वरूपको

इस तपित हृदयमें वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥१३॥ जो ईश्वर पञ्चभूतरचितशरीरमें ढ़काहुआ विदित होता है, जैसाही इंद्रय, गुण, अर्थ, चैतन्य आत्मक मैं हूँ तैसे देहरहित होनेपरभी प्रसिद्ध महिमावाले ऋषि परमेश्वर प्रकृति पुरुषसे परे जो आपहैं सो मैं आपके चरणारविंदोंकी वन्दना वारंवार करता हूँ ॥१४॥ जिसकी मायासे अपने निजस्वरूप और ज्ञानका विस्मरण होनेसे यह जीव बहुत गुण कर्मसे करे हुए इस जगत्सम्बन्धी मार्गमें महा कष्टसे विचरण करताहुआ यह परमात्माकी कृपाबिना और किसी युक्तिसे अपने निजस्वरूपको नहीं जानसक्ता; क्योंकि भगवत्कृपाविना ज्ञान नहीं होसक्ता और ज्ञान विना मोक्ष कहाँ! इसलिये ईश्वरकी सेवा करनी उचित है ॥१५॥ स्थावरजंगममें अनुवर्तें जिसका अंश ऐसे देव ईश्वरके विना जो

यः पंचभूतरचिते रहितः शरीरे छन्नो यथेंद्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ॥ तेनाविकुंठमहिमानमृषिं तमेनं वंदे परं प्रकृति
पूरुषयोः पुमांसम् ॥ १४ ॥ यन्माययोरुगुणकर्मनिबंधनेऽस्मिन्सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ॥ नष्टस्मृतिः पुनरयं
प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमंतरेण ॥१५॥ ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितां
शः ॥ तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥१६॥ देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्र
कूपपतितो भृशतप्तदेहः ॥ इच्छन्नितो विवसितुं गणयन्स्वमासान्निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन्कदा नु ॥ १७ ॥ येनेदृशीं
गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ॥ स्वेनैव तुष्यति कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनां
जलिमस्य कुर्यात् ॥ १८ ॥

यह कालका ज्ञान मुझको हुआ, इस ज्ञानको मेरे हृदयमें किसने प्रकाश किया? वह कौन है इसलिये जीवकर्मपदवीमें वर्तमानके त्रयतापनाशार्थ उस परमात्माको भजताहूँ ॥ १६॥ माताके देहरूपी विवरमें यह तन जठराग्निसे अति तपित रुधिर विष्ठामूत्रके कूपमें अतितम देहसे जीव यहाँसे बाहर निकलनेके लिये अपने मासोंको गिनताहै और यह कहताहै कि, हे दीनबन्धो! दीनानाथ! इस जीवको यहांसे कब निकालोगे? ॥ १७॥ हेनाथ! दशमासको बडे अनुग्रहसे आपने ऐसी गति दी सो दीनानाथ आप अपने किये उपकारसे आपही संतुष्ट होते हो, केवल हाथ जोडनेके अतिरिक्त

आपका प्रत्युपकार कौन करसक्ता है? ॥१८॥ सात धातुका जिसके शरीर सो तौ देहसम्बन्धी दुःखसुखहीको देखता रहता है, और मैंतो परमात्माकी कृपासे उसके दिये ज्ञानसे जो शमदम आदि सब साधन बनसकैं ऐसी स्थितिमें हूँ,उन पुरुषको मैं बाहर और हृदयके भीतर चित्तकी नांई विश्वस्त मन कर देखता हूं॥१९॥ हे विभो! सो मैं अत्यन्त दुःखवासमें वसूं हूँ तौ भी इस अन्धकूपसे बाहर निकलनेकी इच्छा नहीं, क्योंकि बाहर आतेही आपकी माया व्यापैगी, और जिसके संबन्धसे स्त्रीपुत्रादिकके मोह ममतामें फँसना पडैगा॥२०॥इसकारण अब मैं यहीं चित्तको स्थि करके आपके कोमल चरणकमलोंको हृदयमें धारण करूंगा,और उनहींके अनुग्रहसे अपनी सुहृदआत्माको तुमसे उद्धार करूँगा; फिर ऐसा अनेकरन्ध्रोंका शरीर जिसमें नानाप्रकारके व्यसन होते हैं यह देह मेरा न होय, और कठिन कष्ट मुझको भोगना न पडै, क्योंकि अब श्रीकृष्णचन्द्र कृपानिधानका मैंने आश्रय लिया है ॥२१॥ कपिलदेवजी बोले कि इसप्रकार गर्भमें जो दशमासका जीव स्तुति कर रहा था उसको बाहर निकालनेके लिये प्रसूतिवायुने तुरन्त उसको पृथ्वीपर फेंकदिया॥२२॥वायुके फेंकनेसे वह जीव नीचेको मुख किये श्वास बन्द बड़े कष्टसे बाहर निकलता है,और सब ज्ञान उसीसमय शमन होजाताहै ॥२३॥ भूमिपर गिरकर रुधिरमूत्रमें विष्ठाकी समानचेष्टा करताहै,और कहां २ करके वारंवार रोता है

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ॥ यत्सृष्टयाऽऽस तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्त्यमिव प्रतीतम् ॥ १९ ॥ सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरंधकूपे ॥ यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥ २० ॥ तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ॥ भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरंध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २१ ॥ कपिल उवाच ॥ एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥ सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २२ ॥ तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्छिर आतुरः ॥ विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २३ ॥ पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥ रोरूयतिगते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २४ ॥

और ज्ञानके जाते रहनेसे विपरीत गति होजातीहै॥२४॥अतिरिक्त रोनेके और वह कुछभी नहीं कहसक्ता.अपने पराये प्रयोजनको नहीं जानता, जननी जनक उसके पोषणके लिये उसको भूखा समझ कभी दूध पिलाते हैं,कभी उदरकी बाधा समझ घूटी देतेहैं,परन्तु उसकी इच्छानुसार एक काम भी नहीं होता. जब वह भूखका मारा रोता है तब माता पिता उसकी दीठ उतारते हैं परन्तु वह किसी बातको 'हां''ना' नहीं करसक्ता ॥२५॥ गरमी सरदीसे पीड़ित अपवित्र शय्यापर पडा रहता है,मच्छर, मक्खी,खटमल आदि उस जीवको काटते हैं उस समय न तौ वह अपने तनको खुजासक्ता है न उठासक्ता है. न बैठसक्ता है, न कोई उपाय ही करसक्ताहै, केवल अपनी व्यथाको आप ही जानता है॥२६॥ कच्ची खालमें मच्छर डांस खटमल आदि अनेक जीव इस जीवको काटते हैं. इसीसे वह बालक बार२रोता है, ज्ञान सब नष्ट होजाताहै,जैसे और कीडेहैं.ऐसेही

परच्छंदं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥ अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः॥२५॥ शायितोऽशुचिपर्यंके जंतुः
स्वेदजदूषिते ॥नेशः कंडूयनेंगानामासनोत्थानचेष्टने ॥२६॥ तुदंत्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥ रुदंतं विगत
ज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा॥इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगंडमेव च ॥२७॥ अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचा
ऽर्पितः ॥ सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥ करोति विग्रहं कामी कामिष्वंताय चात्मनः॥२८॥भूतैः पंचभिरारब्धे
देहे देह्यबुधोऽसकृत्॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥२९॥ तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ॥
योऽनुयाति ददन्क्लेशमविद्याकर्मबंधनः ॥ ३० ॥

इसको भी एक कीडा समझो ॥२७॥ इसभांति अनेक भांतिके कष्ट भोगकर फिर बालअवस्थामें पठनपाठनका दुःख सहकर अज्ञानपनसे उसको भी नहीं सीखता.खेलकूदमेंही वृथा समय खोया,जब तरुणाई आई तब मनमानी वस्तु पाकर महा अभिमानी बनने लगा.अज्ञानसे क्रोध करने और कष्ट उठाने देहके संग बढ़ेहुए कामक्रोधके घमंडमें विषयीजनोंके संग मिलकर अपनी आत्माके नाशार्थ लडाई करताहै ॥२८॥ पंचभूतके देहमें वारंवार यह अज्ञानी जीव अपने अभिमानसे कहताहै कि,यह शरीर मेराहै,मैं इसका पालन करता हूँ,ऐसी असत् बातें ग्रहण करने लगता है. कुमतिसे सुमतिका नाश होजाताहै ॥ २९ ॥देहके अर्थ कर्म करता है, जिस कर्मसे बँधकर संसारको प्राप्त होता है, क्लेश देता हुआ जो यह शरीर है

इसके लिये यह प्राणी दिन रात कर्म किया करता है, और सदा जीवन मरणके चक्रमें पडा घूमताही रहता है॥ ३० ॥ फिर शिश्न और उद्यमकारी असतोंके मार्गमें स्थित होकर उसी मार्गमें चलने लगता है, और फिर कुसंगतिके प्रभावसे उसीभांति नरक भोगता है ॥ ३१ ॥ और सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य यह सब खोटे पुरुषोंकी संगतिसे नष्ट होजाते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये अशान्त, मूढ़, अज्ञानी, खंडितआत्मा अपने असाधु शोचके योग्य योषिताओंकी क्रीडामृग अर्थात् नीच स्त्रियोंसे रमण, और नीच मनुष्योंकी संगति कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ और प्रसंगोंसे जैसा यह बँधे है उससे अधिक मोह नहीं होता जैसा कि, स्त्रियोंके संगसे होता है,

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ॥ आस्थितो रमते जंतुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ॥ शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम् ॥ ३२ ॥ तेष्वशांतेषु मूढेषु खंडितात्मस्वसाधुषु ॥ संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥ ३३ ॥ न तथाऽस्य भवेन्मोहो बंधश्चान्यप्रसंगतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३४ ॥ प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ॥ रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥ ३५ ॥ तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोन्वखंडितधीः पुमान् ॥ ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥ ३६ ॥

और उनकी संगति करनेवाले पुरुषोंकी संगतिसे अत्यन्त ही मोह बढ़ता है, और महाक्लेश होता है ॥ ३४ ॥ चतुरानन अपनी सरस्वतीको देख उसके वश होगये, जब सरस्वतीसे कुछ न बनपडा तौ मृगीका रूप धारणकर भागी, उससमय ब्रह्माजीभी लज्जा तज मृग बन उसके पीछे भागे ॥ ३५ ॥ जब ब्रह्माजीसे ज्ञानीकी यह गति है तब उनके रचे मरीच्यादि उनके रचेहुए कश्यपादि, उनके रचे हुए देवता मनुष्यादिमें मनका ऐसा अखंडित बुद्धिवाला कौन है,! जो उसका चित्त योषितारूप मायाको देख खण्डित न होय. एक श्रीनारायणको तौ हम नहीं कह सकते जो सब संसारके प्रलय पालन करनेवाले मौनरूप धारण किये विराजमान हैं ॥ ३६ ॥

मेरी स्त्रीमयी मायाका बल देखो, जो दिशाओंके जीतनेवाले शूर वीरोंकोभी केवल भ्रुकुटी चढ़ाके अपने पाँवोंमें लुटालेती है ॥३७॥ कदाचित् जो मनुष्य योगका पार पाना चाहै वह स्त्रियोंका संग न करै, मेरी सेवासे आत्मज्ञानी होता है फिर वह योगीश्वर स्त्रियोंको नरकका द्वार समझता है ॥३८॥ परमेश्वरकी रची हुई स्त्रीरूपी माया जो धीरे२अपने निकट आवै तौ उसको अपनी मृत्यु जानै.जैसे तृणोंसे छिपाहुआ कुआ॥३९॥ मुमुक्षु स्त्रीके प्रति कहते हैं, पुरुषसमान आचरण करती हुई मेरी माया उस वित्तके देनेवालेको पति माने तौ पुरुषरूप;मायाको मृत्यु:समझे जिससे पूर्वजन्ममें आप पुरुष था; फिर मरणसमय स्त्रीके ध्यानमें स्त्रीधर्मको प्राप्त हुआ इस भांति फिर जो पुरुषधर्मको प्राप्त होगा फिर स्त्रीकी इच्छासे

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ॥ या करोति पदाक्रांतान्भ्रूविजृंभेण केवलम्॥३७॥संगं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ॥मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदंति या निरयद्वारमस्य ॥३८॥ योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ॥ तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥३९॥ या मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् ॥ स्त्रीत्वं स्त्रीसंगतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥ ४० ॥ तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् ॥ दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥४१॥ देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ॥ भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥४२॥ जीवस्यानुगतो देहो भूतेंद्रियमनोमयः ॥ तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु संभवः ॥ ४३ ॥ द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा ॥ तत्पंचत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ ४४ ॥ यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा ॥ तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥ ४५ ॥

स्त्री होगा॥४०॥पति, पुत्र, गृहरूप, नारी अपनी मृत्यु जानो. वधिकके गाने और वीणा बजानेसे जैसे मृगकी मृत्यु है इसीप्रकार दैवसे प्राप्त नारीको अपनी मृत्यु जानना चाहिये ॥ ४१॥ जीवरूप अपने शरीरसे दूसरे शरीरमें एक कर्मका भोक्ता निरन्तर पिछले कर्मको किया करता है ॥ ४२ ॥.पञ्चभूत इंद्रिय मनोमय देह जीव इसके संग है, जीवका रुकना इसका मरण है, आविर्भाव होना जीवका संभवहै॥४३॥द्रव्यकी प्राप्ति इसको द्रव्यसे चेष्टा अयोग्यता जब होती है, अहंकारसे; मानसे, उत्पत्ति, द्रव्य, दर्शन ये नाश हो जाते हैं ॥४४॥जैसे नेत्रोंका द्रव्य अवयव

दर्शनकी अयोग्यता जब होती है, तबहीं चक्षुके द्रष्टाको इनके द्रष्टृत्वाभावकी योग्यता होती है ॥ ४५ ॥ इसकारण न तौ मृत्युका भय माने, न जीवनकी आशा ठाने,और न जीवनको प्रयत्नोंका आदर करना चाहिये. जीव गति जानकर धीर मुक्तसंग होकर इस संसारमें बिचरे॥४६॥ सुन्दर देखनेवाली, योग और वैराग्यवाली सत्य विचार करनेवाली बुद्धिसे मायाविरचित लोकमें शरीरकी आसक्ति त्यागकर आनंदसे विचरै॥४७॥ इति श्रीमद्भा०महा०तृती० भाषाटीकायां कापिलेयोपाख्याने पुण्यपापैरिहमनुष्ययोनिसम्प्राप्तौ जीवगतिवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१॥ दोहा–बत्तिसमें सुरलोकको, सात्त्विकपनसे जाय। तत्त्वज्ञान विन फिर फिरै, शिर धुनि धुनि पछिताय ॥ ३२ ॥ कपिलदेवजी बोले कि,कोई

तस्मान्न कार्यः संत्रासो न कार्पण्यं न संभ्रमः ॥ बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसंगश्चरेदिह ॥ ४६ ॥ सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ॥ मायाविरचिते लोकेचरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भा०म०तृतीयस्कंधे पुण्यपापैर्जीवगतिवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ कपिल उवाच ॥ अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानेवावसन् गृहे ॥ काममर्थं च धर्मांश्च दोग्धि भूयः पिपर्ति तान्॥१॥ स चापि भगवद्धर्मान्काममूढः पराङ्मुखः ॥ यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयाऽन्वितः ॥२॥ तच्छ्रद्धयाऽऽक्रांतमतिः पितृदेवव्रतः पुमान्॥ गत्वा चांद्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति॥३॥ यदा चाहींद्रशय्यायां शेतेऽनंतासनो हरिः ॥ तदा लोका लयं यांति त एते गृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥

गृहस्थ गृहस्थके धर्मोंका आचरण घरमें बेठकर करते हैं, और अर्थकामरूपकी कामनाके लिये उन सब कामोंका अनुष्ठान कर फिर उन सब कामोंको पूर्ण करते हैं ॥ १ ॥ वे मनुष्य कामनाओंमें विमूढ़हो भगवद्धर्मसे पराङ्मुख होकर श्रद्धालु बनकर यज्ञोंसे देवतापितरोंका भजन करते हैं ॥ २ ॥ और जिनकी बुद्धि और श्रद्धा पितृ और देवताओंमें लगरहीहै वे मनुष्य पितृदेवताओंका व्रत कर चन्द्रलोकमें जाते हैं. और वहाँ अमृत पानकर फिर जन्म लेते हैं॥ ३ ॥ जब शेषशय्यापर अनन्तासन नारायण शयन करतेहैं तब गृहस्थियोंके सब लोक लयको प्राप्त होजाते

---

* कवित्त–योग करै यज्ञ करै वेदविधि त्याग करै, जप करै तप करै योंहि आयु खूटि है ॥ यम, करै नेम करै तीर्थहू व्रतादि करै, पुहुमि अटन करै वृथा श्वास टूटि है ॥ जीवको यतन करै वनमाहीं वास करै, पचि पचि योंहि मरै काल शिर कूटिहै ॥ औरहू अनेक विधि कोटिन उपाय करै, सुन्दर कहत बिनुज्ञान नहीं छूटिहै ॥

हैं, इससे ज्ञात होताहै कि, सकामकर्म करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होतेहैं वे स्थिर नहीं रहते ॥ ४॥ जो धीरपुरुष कामअर्थके लिये स्वधर्मका आचरण करते हैं वे संग त्याग, सब कर्म त्याग,अनन्त शान्त शुद्धचित्तसे श्रीभगवान्के निवास स्थानको जाते हैं ॥ ५ ॥ जो पुरुष निवृत्ति कर्ममें प्रीति करते हैं; और ममता व अहंकारको त्यागकर:अपने स्वधर्मका सात्त्विकभावसे आचरण करके अत्यन्त शुद्ध चित्तसे भगवत्के लोकको जातेहैं ॥ ६ ॥ और सूर्यद्वारा करके विश्वमुख पुरुषको प्राप्त होते हैं, पर अपवर्गके स्वामी प्रकृतिके पति इस विश्वकी उत्पत्ति पालन संहार करते हैं ॥ ७ ॥ जो पुरुष परमेश्वर दृष्टिसे ब्रह्माका पूजन करते हैं सो ब्रह्माके सौ वर्षके अन्तमें जो प्रलय होता है तब तक तौ ब्रह्माके लोकमें वास करते हैं ॥ ८॥ फिर द्विपरार्द्ध लक्षण कालका अनुभव कर पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, मन, इन्द्रिय :उनके अर्थ, पञ्चभूत, अहंकार इनसे युक्त संसारके संहारकी इच्छा करनेवाला गुणत्रयमय शरीर वाला ब्रह्मा अपने सौवर्षको भोगकर परमेश्वरमें लीन होजाताहै ॥ ९ ॥ तब यहांसे दूर जाकर भगवत्के सेवन योगीजन जिन्होंने पवनमनको जीत वैराग्य लिये हैं, वे ब्रह्माहीके साथ अमृतस्वरूप;पुरुष पुराण प्रधान ब्रह्मको अभिमान त्यागनेवाले प्राप्त होतेहैं, परन्तु ब्रह्मासे पहिले उस पदवीको नहीं पासक्ते, क्योंकि ब्रह्माके समयतक उन देहाभिमानियोंका अभिमान निवृत्त नहीं होसक्ता ॥ १० ॥ हे प्रकाशरूपिणि ! अब सब जीवोंके हृदय कमलमें जिनका स्थान है उनका अनुभव सुन भावसे

ये स्वधर्मान्न दुह्यंति धीराः कामार्थहेतवे॥ निस्संगा न्यस्तकर्माणः प्रशांताः शुद्धचेतसः ॥५॥ निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहंकृताः॥ स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा॥६॥ सूर्यद्वारेण ते यांति पुरुषं विश्वतोमुखम् ॥ परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यंतभावनाम् ॥ ७ ॥ द्विपरार्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ॥ तावदध्यासते लोकं परस्य परचिंतकाः ॥ ८ ॥ क्ष्मांभोऽनलानिलवियन्मनइंद्रियार्थभूतादिभिः परिवृतंप्रतिसंजिहीर्षुः ॥ अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयंभूः ॥ ९ ॥ एवं परेत्य भगवंतमनुप्रविष्टा ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ॥ तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयांत्यगताभिमानाः ॥१०॥ अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ॥ श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥

श्वर शरण जाव ॥११॥ स्थावर जंगमके आद्य ऋषि सहित ब्रह्माजी योगीश्वर सनकादिक सिद्ध योगप्रवर्तक वे भी ॥ १२ ॥ भेददृष्टिं करके
अभिमानसे निष्कामकर्म करके कर्ताभाव होनेसे पुरुषोंमें श्रेष्ठ सगुणब्रह्मको ॥ १३ ॥ सो ब्रह्मा अपने पदको प्राप्त हो ईश्वररूप काल करके
संसारमें फिर जन्म लेकर जैसे पहिले ब्रह्म थे उसी पदवीको फिर प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ हे सति ! परमेष्ठीके ऐश्वर्यकीधर्मनिमित्त सेवा कर फिर

आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ॥ योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥१२॥ भेददृष्ट्याभिमानेन निः
संगेनापि कर्मणाम् ॥ कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥ स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ जाते
गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥ १४ ॥ ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ॥ निषेव्य पुनरायांति गुणव्यति
करे सति ॥ १५ ॥ ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयाऽन्विताः ॥ कुर्वंत्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥ १६ ॥
रजसा कुंठमनसः कामात्मानोऽजितेंद्रियाः ॥ पितॄन्यजंत्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥ १७ ॥ त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा
विमुखा हरिमेधसः ॥ कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥ १८ ॥

संसारमें जन्म लेते हैं ❋ ॥ १५ ॥ और जो लोग इस संसारमें आसक्तमन हैं श्रद्धाकर कर्ममें लग रहेहैं, सब ओरसे जिनका कोई निषेध न करै
ऐसे कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ और रजोगुणसे उनके मन हरे गयेहैं, कामोंमें आत्मा उनकी लगी हुई है, इन्द्रियें नहीं जीती हैं, घरमें जिनका मन
सदा लगा रहता है और नित्य पितरोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥ अर्थ, धर्म, काममें मनको लौलीन रखते हैं, ईश्वरसे विमुख कथनीय, गाने

---

* **शंका**–कपिलदेवजी महाराजने अपनी मातासे कहा कि, सब प्राणी संसारके कार्य सिद्ध होनेके लिये दुष्ट इन्द्रियोंके वशीभूत नित्य परमात्माको भूलकर पितरोंका पूजन करते हैं. ऐसे भेदरूप वचन
सांख्ययोगशास्त्रके जाननेवाले कपिलमुनिने क्यों कहा ? सांख्ययोगवाले तो सदा चरअचरको एकसम मानते हैं.
उत्तर– सांख्ययोगके जाननेवाले मुनियोंने कहा है कि, पितर जो हैं सो ईश्वरका रूप है. सब भगवान्के रूप जो पितर उसमें भेद कहो पितर और हैं भगवान् और है.
१ **शंका**–ऐसी दृष्टि कपिलदेवजीने क्यों करी? **समाधान**–कपिल मुनिने ऐसे रोचक वाक्य इसलिये कहे कि किंचिन्मात्र भेद कियेसे भगवान्में मनुष्योंका प्रेम बढेगा, तौ मनुष्य सुख पावेंगे. और
भगवान्की भक्तिकी पुष्टता होजायगी. जैसे किसी ग्रामको जाना होय तो भटकना क्यों ? किसीसे सुन्दरमार्ग बूझ लेना, समझकर उस ग्रामको चलेजाना, ऐसेही वाक्य कपिलदेवजीने कहे हैं
भेदरूप वचन नहीं कहे ।

योग्य जिनके पराक्रम हैं, उन मधुद्वेषीकी कथामें जो विमुख हैं ॥ १८ ॥ और जो पुरुष नारायणकी सुधारूपी कथाको त्यागकर रसिकग्रन्थोंमें मन लगाते हैं, और उनही चरित्रोंको पढ़कर प्रसन्न होते हैं, जैसे सब उत्तमोत्त पदार्थोंको तजकर विष्ठाभोजी विष्ठादिसे प्रसन्न होता है ऐसे जो नीचलोगोंकी कथा कहानी सुनते रहते हैं, अभागी निश्चय भाग्यके मरेहुए हैं, दैवने उनको भाग्यहीन बनाया है ॥१९॥ जिन्होंने गर्भसे लेकर श्मशानपर्यन्त क्रिया की हैं, वे पुरुष सूर्यसे दक्षिणमार्ग होकर पितृलोकको जाते हैं. फिर कुछ काल व्यतीत कर अपने पुत्रादिकोंमेंही आनकर जन्म लेते हैं ॥ २० ॥ हे सति ! पितृलोकसे जब उनका सुकृत क्षीण होता है, तब देवतालोग उसके सब साधनोंको नष्ट कर देते हैं उससे वह प्राणी विवश होकर फिर इसी मृत्युलोकमें आनकर जन्म लेता है ॥ २१ ॥ इसलिये सब भावसे परमेश्वरके पदारविन्दका भजन करना मुख्य है, उनके गुणाश्रयीभूत भक्तिसे भजनीय चरणकमल भगवान्के हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोग करै तौ शीघ्रही वैराग्यज्ञान ब्रह्मदर्शन होजाता है ॥ २३॥ जब इस भक्तका मन इन्द्रियोंकी वृत्ति करके समान अर्थोंमें जो प्रिय अप्रियमें विषमभावको नहीं ग्रहण करता ॥ २४ ॥ जब निःसंग समदर्शी त्यागने और ग्रहण करनेसे रहित है, तब उसको आपही विदित होजाता है कि, स्वयंप्रकाश आत्माका परमानंद मैंही हूँ, ऐसा निश्चय होजाता है ॥ २५ ॥

नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ॥ हित्वा शृण्वंत्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥ १९ ॥ दक्षिणेन पथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजंति ते॥ प्रजामनु प्रजायंते श्मशानांतक्रियाकृतः ॥२०॥ततस्ते क्षीणसुकृता पुनर्लोकमिमं सति ॥ पतंति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥ २१ ॥ तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ॥ तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदांबुजम् ॥२२॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२३॥ यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विंद्रियवृत्तिभिः ॥ न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥ २४ ॥ स तदैवाऽऽत्मनात्मानं निस्संगं समदर्शनम् ॥ हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥ २५ ॥

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ॥ दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥२६॥ एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः ॥ युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसंगस्तु कृत्स्नशः ॥२७॥ ज्ञानमेकं पराचीनैरिंद्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ॥ अवभात्यर्थरूपेण भ्रांत्या शब्दादिधर्मिणा ॥ २८ ॥ यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पंचविधः स्वराट् ॥ एकादशविधस्तस्य वपुरंडं जगद्यतः ॥२९॥ एतद्वै श्रद्धया भत्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ॥ समाहितात्मा निस्संगो विरत्त्या परिपश्यति ॥३०॥ इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ येनानुबुध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥३१॥ ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ॥ द्वयोरप्येक एवार्थभगवच्छब्दलक्षणः ॥३२॥ यथेंद्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ॥ एको नानेयते तद्वद्भगवाञ्छास्त्रवर्त्मभिः ॥ ३३ ॥ क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्शनैः ॥ आत्मेंद्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥ ३४ ॥

ज्ञानमात्र परब्रह्म परमात्मा ईश्वर पुरुष भगवान् देखनेके योग्य पृथक्भावसे एक प्रतीत होते हैं ॥२६॥ इस विश्वमें समग्र योगसे योगीजन अपना अभिमत अर्थ इतनाहीसे मानते हैं कि, सब प्रकारसे सबसे संग छूटजाय ॥ २७ ॥ बहिर्मुख इंद्रियोंसे, अर्थरूपसे, भ्रांतिसे, शब्दादिधर्मसे, एक ज्ञान रूप निर्गुण बृहत्त्वादिगुणसे, विशिष्टचैतन्यब्रह्म प्रकाश है॥ २८ ॥ जैसे प्रथम एकरूप परमात्माका था वही महत्तत्त्व, त्रिगुण, अहंकाररूप, हुआ पंचभूत रूपकरके पांचप्रकारका एकादशइंद्रियरूप करके एकादशविधिका स्वराट् (जीवरूप) हुआ तिस जीवका शरीर खण्ड हुआ, खण्डसे शरीर अनन्तरूपसे प्रगट हुए, जिन महत्तत्त्वादिकोंसे इस प्राणीका देहरूप जगत् उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ जिस पुरुषका मन भक्तिसे, वैराग्यसे, श्रद्धासे, योगाभ्याससे, एकाग्र होगया है, जिसकाआत्मा सब संग त्यागकर विरक्ति करके देखता है, वह महात्मा पुरुष इस भेदका निश्चय करसक्ता है॥३०॥ हे मातः! साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप होजाताहै, और प्रकृतिपुरुषका तत्त्व दीखने लगता है. वह ज्ञान मैंने तुमको सुनाया ॥ ३१ ॥ मुझमें निष्ठाका ज्ञानयोग करना, और निर्गुणभक्ति इन दोनोंका अर्थ एकही है भगवत्शब्द लक्षणरूप है ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार रूपरसादि अनेक गुणयुक्त सबही वस्तु पृथक् २ मार्गवाली इंद्रियोंसे अनेक भाँतिकी विदित होती हैं, जैसे कि हरड़ नेत्रसे हारित, जिह्वासे कसैली, त्वचासे अशीत प्रतीत होती है, इसही प्रकार एकही भगवान् शास्त्रोंके द्वारा नानाप्रकारके ज्ञात होते हैं ॥३३॥ अनेकप्रकारकी शुभक्रिया

करनेसे जैसे कुआ, बावड़ी, वाटिका, धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय आदिक, यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ, आत्माके विचार, :इन्द्रियोंके जीतने, मनके दमन और कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास करनेसे ॥ ३४ ॥ अनेक अंगके योगाभ्यास, भक्तियोग, दृढ वैराग्य, सकाम निष्काम धर्म, प्रवृत्तिनिवृत्ति मार्गमें निष्ठासे ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वबोध, दृढ वैराग्य, सगुणनिर्गुणस्वदृक् भगवान्की इन सब साधनोंसे प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥ मैंने भक्तियोगका स्वरूप तुमसे चार प्रकारका कहा, और संसारके संहारकर्ता अप्रगट गतिवाले कालकाभी स्वरूप तुमसे कहा ॥ ३७॥ हे मातः ! प्राणीकी अनेक योनि अविद्याकर्मसे निर्मित होती हैं; जिनकी गतियोंमें प्रविष्ट होनेसे अपने शुद्धस्वरूपको भूलजाता है; जैसा है वैसा नहीं

योगेन विविधांगेन भक्तियोगेन चैव हि ॥ धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेन
वैराग्येण दृढेन च ॥ ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणस्स्वदृक् ॥ ३६ ॥ प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ॥
कालस्य चाव्यक्तगतेर्योंतर्धावति जंतुषु ॥ ३७ ॥ जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥ यास्वंग प्रविशन्नात्मा
न वेद गतिमात्मनः ॥ ३८ ॥ नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ॥ न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय
च ॥ ३९ ॥ न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥ नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥ ४० ॥ श्रद्दधानाय
भक्ताय विनीतायानसूयवे ॥ भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥४१॥ बहिर्जातविरागाय शांतचित्ताय दीयताम् ॥
निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥ ४२ ॥

जानता, और न ईश्वरकी गतिको पहिंचानता है॥३८॥यह ज्ञान खल, अविनयी, अभिमानी, दुराचारी, पाखण्डीको कभी सुनाना नहीं चाहिये ॥३९॥ लोभीको, गृहस्थित अभक्तको और मेरे भक्तोंका द्रोहकरनेवालोंको तौ कभी भूलकर यह ज्ञान न सुनावे ॥ ४० ॥ इस ज्ञानके सुननेके अधिकारी वे हैं जो श्रद्धालु, भक्त, नम्र, किसीसे शत्रुता न करैं, जीवमात्रसे मित्रता करनेवाला, शुश्रूषा करनेवाला, मेरी सेवामें तत्पर हो ॥ ४१ ॥ बहिर्मुख, वैराग्यवाला, शान्तचित्तवाला, मत्सरतारहित, पवित्रआत्मा जो मुझको सबसे अधिक प्यारा मानै ऐसे पुरुषोंको यह

ज्ञान उपदेश करना उचित है ॥ ४२ ॥हे अम्ब ! जो पुरुष श्रद्धासे वारंवार इसकथाको सुनै और कहै वह मुझमें मिलकर मेरी पदवीको प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कापिलेयोपाख्यानवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ दोहा–तेति सवें अध्यायमें, कपिलदेवको ज्ञान । सुनो देवहूती जबै, पायो पद निर्वांन ॥ ३३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार कपिलदेवजीके ज्ञानरूपी वचन सुनकर, मोहपटली जिसकी दूर होगई वह कर्दमजीकी प्यारी पत्नी, और कपिल देवजीकी माता देवहूति तत्त्वविषयोंसे अंकित सिद्धिभूमि सांख्यशास्त्रके कर्ता कपिलदेवजीको प्रणाम कर स्तुति करनेलगी ॥ १ ॥ देवहूति बोली कि, यद्यपि आप ऐसे हैं तौभी अजन्मा जलशायी

य इदं शृणुयादंब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ॥ यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भा० म० तृतीयस्कंधे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ॥ विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्वविषयांकितसिद्धिभूमिम् ॥१ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ अथाप्यजोंतः सलिले शयानं भूतेंद्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ॥ गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥ स एव विश्वस्य भवान्विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसंधिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥

पंचमहाभूत इंद्रियार्थात्ममय यह आपका शरीर है,आप मेरे उदरसे जन्मे, सबका बीज यह संसार उसमें तुम्हारा मैं वारंवार ध्यान करूँहूँ ॥ २ ॥ हे नारायण ! जिस समय आप जलके भीतर शेषशय्यापर शयन कर रहे थे, उस स्वरूपका ब्रह्माजीनेभी केवल ध्यान मात्र दर्शन किया, उनको उस स्वरूपका साक्षात् दर्शन नहीं हुआ, वे चतुरानन आपही जिनकी नाभिकमलसे प्रगट हुए हैं, वे आपकी महिमाको नहीं जान सक्ते, आपही विश्वको उत्पन्न पालन संहार करो हो, अनेक वीर्योंके विभाग किये कोई क्रिया नहीं करते, सत्यसंकल्प आत्माके ईश्वर तर्कमें

सवैया ॥ प्रीति प्रचण्ड लगै परब्रह्महिं और सबै कुछ लागत फीको ॥ शुद्ध हृदयमन होय सो निर्मल द्वैतप्रभात्र मिटै सब जीको ॥ गोष्ठह ज्ञान अनन्त चलैं जहँ सुन्दर जैसे प्रवाह नदीको ॥ ताहित जान करौ निशिवासर साधुको संग सदा अतिनीको ॥

४९-2

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ॥ विश्वं युगांते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरंघ्रिपानः
॥४॥ त्वं देहतंत्रप्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये॥ यथावतारास्तव सूकरादयस्तथाऽयमप्यात्मपथो
पलब्धये ॥५ ॥ यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ॥ श्वादोपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः
पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥ अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्यज्जिह्वाऽग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ॥ तेपुस्तपस्ते जुहुवुः
सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणंति ये ते ॥७ ॥ तं त्वामहं ब्रह्मपरं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ॥ स्वतेजसा
ध्वस्तगुणप्रवाहं वंदे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ॥
वाचा विक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥ ९ ॥

नहीं आते, सहस्रशक्ति रूप आप हो ॥ ३ ॥ हे नाथ ! जिस उदरमें प्रलयके समय यह सब विश्व था और आप अपनी विश्वमोहिनी मायासे बालक बन अपने चरणका अँगूठा चचोड़ते हुए वटपत्रपर शयनकर रहे थे, सो हे प्रभो ! तुमको मैंने उदरमें धारण किया ॥४॥ हे समर्थ ! पापियोंके नाशके लिये और अपनी आज्ञापालन तथा ऐश्वर्यप्राप्तिके कारण जैसे आपने शूकरादिक अवतार धारण किये हैं इसीप्रकार आपने आत्मज्ञान प्राप्ति करनेके लिये अवतार लिया है ॥ ५॥ आपके नाम श्रवण, कीर्तन, प्रणाम,स्मरण करनेसे चाण्डालभी यज्ञ करनेके योग्य होजाताहै, हे विभो! जिसने आपका दर्शन कियाहै, उसके शुद्ध होनेमें तौ संदेहही क्याहै? ॥६॥ हे नाथ! वह चाण्डालभी श्रेष्ठ है, जिसकी जीभसे आपका नाम निकलता है, इसलिये वह प्राणी सब प्राणियोंसे उत्तमहै.विदित होताहै कि,जो पुरुष आपका यश वर्णन किया करते हैं,उन्होंने निः न्देह पिछले जन्ममें कोई तप किया होगा.अथवा होम तीर्थस्नान और एकाग्रचित्त हो वेदपाठ किया होगा,बिना पूर्वजन्मके प्रभावसे भगवद्भजन करना बहुत कठिनहै,जिसने तुम्हारा नाम लिया उसने सब कुछ किया* परब्रह्म, परमपुरुष, सावधान हृदयमें ध्यान करने योग्य, और तेजके प्रतापसे संसारकी मायाके नाश करनेवाले; ऐसे सर्वव्यापक, विष्णु, वेदगर्भ आप कपिलदेवजीको मैं वारंवार प्रणाम करूँहूँ ॥८॥ मैत्रेयजी बोले पर पुरुष

---

* **भजन** रे मन कृष्णनाम कहलीजै ॥ गुरुके बचन अटलकर मानहु साधुसमागम कीजै । पढिये गुनिये भक्ति भागवत और कहा कथ कीजै ॥ कृष्णनामरस बह्यो जात है तृषावन्तह्वै पीजै ॥कृष्णनाम विन जन्म वाद है वृथा जीवन कह जीजै ॥ सूरदास हरिशरण ताकिये जन्म सुफल कर लीजै ॥

भगवान् कपिलदेवजीकी जब देवहूतिने इस प्रकार स्तुति की तब गम्भीर वाणीसे कपिलदेवजी अपनी जननीपर दयालु हो ॥ ९ ॥ कपिलदेवजी बोले कि, हे मातः! सुन्दर सेवन करनेयोग्य मेरे कहे मार्गमें स्थित होनेमें तुम थोडेही कालमें जीवन्मुक्तिको प्राप्त होगी ॥ १० ॥ जिस ब्रह्मविद्याका ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षियोंने सेवन कियाहै सो इस मेरे मतपर श्रद्धास्नेहसे चल,जो इस भवभयसे निवृत्त हो मेरे समीप रहै और जो ज्ञानी पुरुष मेरे इस सिद्धान्तका शान्त चित्तसे चिन्तवत करते हैं वे मेरे अभय लोकको जाते हैं और जो इस मतसे विमुख हैं वे सदा जन्ममरणके चक्रमें घूमाकरते हैं॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान् कपिलदेवजी उस ब्रह्मवादिनी अपनी माता सती देवहूतिको अपनी आत्मगति दिखाकरऔर समझाकर

कपिल उवाच ॥ मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ॥ आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥ १० ॥ श्रद्धस्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभिः॥ येन मामभवं याया मृत्युमृच्छंत्यतद्विदः ॥११॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रदर्श्य भगवान्सतीं तामात्मनो गतिम् ॥स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥१२॥ सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ॥ तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥ १३ ॥ अभीक्ष्णावगाहकपिशाञ्जटिलान्कुटिलालकान् ॥ आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥१४॥ प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृंभितम् ॥ स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ १६ ॥

आज्ञा ले आप तो वहांसे चले गये॥ १२॥और वह देवहूति पुत्रके कहे हुए मार्गसे योगाभ्यासमें एकाग्रचित्त हो सब आश्रमोंमें मुकुटतुल्य,पुष्परचित सरस्वती नदीके तीरपर सावधानतासे वास करने लगी * ॥ १३॥ उसी बिन्दुसरोवरमें तीन बार स्नानकर;पीत कुटील अलकोंको धारण किये कृशशरीरपर चीर पहिरे,अपने आपको उग्रतपसे धारते हुए ॥ १४ ॥ तप और योगके प्रभावसे वार्द्धित जिसकी उपमा नहीं देवता जिसकी प्रार्थना करैं ऐसे अनुपम गृहस्थाश्रमको प्रजापति कर्दमजीने त्याग दिया ॥ १५॥हाथीदांतके जिसमें पाये,सुवर्णकी सामग्री, ऐसेदुग्धफेनके समान निर्मल

---

* यह स्थान गुजरातमें सिद्धपुरके समीप है वहां सरस्वती वहती हैं वहीं बिन्दुसरोवर है, वहीं कपिलदेवजीका आश्रम इत्यादि सब हैं ॥

और कोमल शय्या, सुन्दर स्पर्शयोग्य कंचनके आसन जहाँ बिछे थे ॥ १६ ॥ महामरकतमणि जड़ी स्वच्छ स्फटिकके भीतोंमें रत्नोंके दीपक प्रकाश करते थे, और स्त्रीरत्नोंसे सब स्थान शोभायमान थे ॥ १७ ॥ भवनोंके उद्यान जिसमें अनेक २ प्रकारके पुष्पवाले वृक्ष फूलोंसे फूलेहुए कल्पवृक्षोंसे रमणीक, पक्षियोंके जोड़े जहाँ कूँज रहे, मतवाले भौंरे जहाँ गुंजार रहे,सरोवरोंमें सुन्दर२कमल खिलरहे, जिनकी मकरन्दका भ्रमर पान करते थे,और झरझरकर जलमें गिरती थी ॥ १८ ॥ उस फुलवाडीमें हरिके पूजनार्थ जिस समय देवहूति जाती थी तौ उस समय देवताओंके भृतकगण गंधर्व समीप मधुर२स्वरोंसे गाते थे और कमलकी सुगन्धीवाली वापीके भीतर जिसको कर्दमजी रमण कराते थे ॥१९॥

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नप्रदीपा आभांति ललनारत्नसंयुताः ॥१७॥ गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं
बह्वमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहंगमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥ यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ॥ वाप्यामुत्पलगं
धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥१९॥ हित्वा तदीप्सिततममप्याखंडलयोषिताम् ॥ किंचिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा
॥ २० ॥ वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ॥ ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥ २१ ॥ तमेव ध्यायती
देवमपत्यं कपिलं हरिम् ॥ बभूवाचिरतो वत्स निस्स्पृहा तादृशे गृहे ॥ २२ ॥ ध्यायंती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगो
चरम् ॥ सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिंतया ॥ २३ ॥

देवहूतिका सुखभुवन ऐसा शोभायमान था कि, इन्द्राणी उसके सुखकी अभिलाषा करती थी, ऐसे सुखको कर्दमजीके वियोगमें त्याग दिया था, जब पुत्रका वियोगहुआ तौ उसके विरहमें आतुरतासे उसका मुख कुम्भला गया ॥ २० ॥ प्रजापति कर्दमजीके स्त्रीपुत्रका मोह तज वनको चलेजानेसे और जब दूसरा पुत्रका वियोग हुआ,उस समय तत्त्वज्ञान जाननेंपरभी इतनी अधिक देवहूति व्याकुल हुई कि,जैसे बछड़ेके बिछुडनेसे साधु गायकी दुर्दशा होजाती है ॥२१॥ हे विदुरजी! वह देवहूति अपने पुत्र कपिलदेवजीका ध्यान करनेसे थोड़ेही कालमें वैभवयुक्त घरकी इच्छा त्याग अनन्यगतिको पहुँचगई ॥२२॥जो ज्ञानध्यानगोचर भगवद्रूप भगवान् कपिलदेवजीने देवहूतिसे कहा था उसीका ध्यानकरनेलगी और

प्रसन्न मुखवाले पुत्रकी चिन्ताका त्याग किया ॥ २३ ॥ भक्तिके प्रवाहयोगसे,बली वैराग्यसे और युक्तअनुष्ठानसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ जीवात्मा विशुद्धसे विश्वमुखआत्माको अपने अनुभवसे जिस मायाके विशेष गुण छिपे हैं उसका ध्यान करने लगी ॥२५॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् ब्रह्ममें जिसका मत स्थिर होगया; और सब भाव दूर होगया, सब क्लेश मिटगया, और सब जीवनमुक्तका सुख प्राप्तहुआ ॥ २६ ॥ नित्य समाधि लगानेसे गुणोंके सब भ्रम दूर होगये, उस समय अपने देहका अनुसंधान न रहा, जैसे स्वप्नकी वस्तुका स्मरण जागेहुए पुरुषको नहीं रहता, इसीप्रकार देवहूतिको अपने देहका स्मरण जाता रहा ॥ २७ ॥ वह देह कर्दमादिसे रक्षित अकृश मनको कुछ ग्लानि नहीं मानती

भक्तिप्रवाह योगेन वैराग्येण बलीयसा॥ युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना॥२४॥विशुद्धेन तदात्मानमात्मना विश्वतो
मुखम् ॥ स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम्॥२५॥ ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ॥ निवृत्तजीवापत्तित्वा
त्क्षीणक्लेशाऽऽप्तनिर्वृतिः॥२६॥नित्यरूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा॥न सस्मार तदात्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥२७॥
तद्देहः परतः पोष्योऽप्यकृशश्चाध्यसंभवात् ॥ बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ स्वांगं तपोयोगमयं
मुक्तकेशं गतांबरम् ॥ देवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥ २९ ॥ एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम् ॥
आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं भगवंतमवाप ह ॥ ३० ॥ तद्वीराऽऽसीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा
संसिद्धिमुपेयुषी॥३१ ॥ तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ॥ स्रोतसां प्रवरा सौम्यसिद्धिदा सिद्धसेविता ॥३२॥

थी, मलसे ढकी हुई धूमसहित अग्नि जैसे प्रकाश करती है ॥ २८ ॥ तपयोगमय, खुले केश, वस्त्र पहिने, ईश्वररक्षित, वासुदेवमें जिसकी बुद्धि प्रविष्ट सो अपने शरीरका अनुसंधान भूलगई ॥ २९ ॥ इस प्रकार कपिलदेवजीके कहेहुए मार्गमें चलनेसे थोड़ेही दिनोंमें परब्रह्म आत्माके स्वरूप भगवान्को प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ हे विदुर ! जहाँ वह देवहूति जीवन्मुक्त हुई, पुण्यतम, परमपवित्र, त्रैलोक्यमें विदित, सिद्धपदनामसे वह आश्रम विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ हे विदुर ! योगबलसे उसके शरीरका सब मल भस्म होगया, और देवहूतिका मनुष्यदेह सरस्वती नदीरूप होगया वह नदी सब नदियोंसे श्रेष्ठ हुई, सब सिद्धोंकी सिद्धिको देनेवाली है, जिसके निकट सिद्धपुरुष वास करते हैं ॥ ३२ ॥

भगवान् कपिलदेवजी महायोगी पिताके आश्रमसे मातासे आज्ञा लेकर ईशानकोणकी ओरको गये ॥३३॥ वहाँ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, सुर, मुनि,
अप्सरागणोंने उनकी स्तुति की; और समुद्रनेभी उनका पूजन कर अनेक २ प्रकारकी भेंट दे अपने भीतर रहनेको स्थान दिया * ॥ ३४ ॥
भगवान् कपिलदेवजी महाराज त्रिलोकीकी शान्तिके निमित्त सावधान हो योग धारणकर अब तक उसी स्थानपर विराजमान हैं और सदा
सांख्यशास्त्रके आचार्य उनकी सेवा करते हैं॥३५॥ हे तात ! हे पापरहित ! जो तुमने भगवान् कपिलदेवजी और सती देवहूतिका पवित्र संवाद

कपिलोऽपि महायोगी भगवान्पितुराश्रमात् ॥ मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥ सिद्धचारणगंधर्वैर्मुनिभि
श्चाप्सरोगणैः॥स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥३४॥ आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ॥ त्रयाणामपि
लोकानामुपशांत्यै समाहितः॥३५॥एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ॥ कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः
॥ ३६ ॥ य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ॥ भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगव
त्पदारविंदम्॥३७॥इति श्रीमद्भा० म० तृ० कपिलोपाख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः॥३॥

हमसे बूझा सो विस्तारसहित हमने वर्णन किया ॥३६॥ यह परमगुह्य कपिलदेवजीका आत्मयोग साधनेके लिये जो महात्मा पुरुष सुनेंगे और
कहेंगे; उनकी बुद्धि गरुडध्वज भगवान्के चरणारविन्दोंमें लगी रहेगी॥३७॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां कपिलान्त
र्धानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३३ ॥ ॥ शुभमस्तु ॥ समाप्तेयं तृतीयस्कन्धभाषाटीका ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ शुभमस्तु ॥

---

* **शंका**—त्रिलोकीके नाथ कपिलदेव भगवान्ने समुद्रकी दीहुई भूमिमें बैठकर क्यों तप किया ? जो दीनसे दीनभी होता है वह कोई वस्तु और दूसरेसे मांगता है.

उत्तर—सांख्ययोग नष्ट होगया था, उस सांख्ययोगको प्रगट करके और पृथ्वीमें सांख्ययोगकी स्थिति करनेके लिये भगवान् कपिलदेवजीने अवतार धारण किया है. जैसा चराचर जीव प्रसन्न होकर शुभकर्म करेंगे, तसा भगवान्भी कर्म करेंगे, किसी प्राणिमात्रको दुःख नहीं देंगे, इसलिये समुद्रका दिया स्थान उसमें पूजन ग्रहण करतेहुए.

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम्। शके १८४५, संवत् १९८०.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते तृतीयस्कन्धसमाप्तिः

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
मुमुक्षु भवन, काशी.

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते चतुर्थस्कन्धप्रारम्भः ॥

चतुर्थस्कंधः

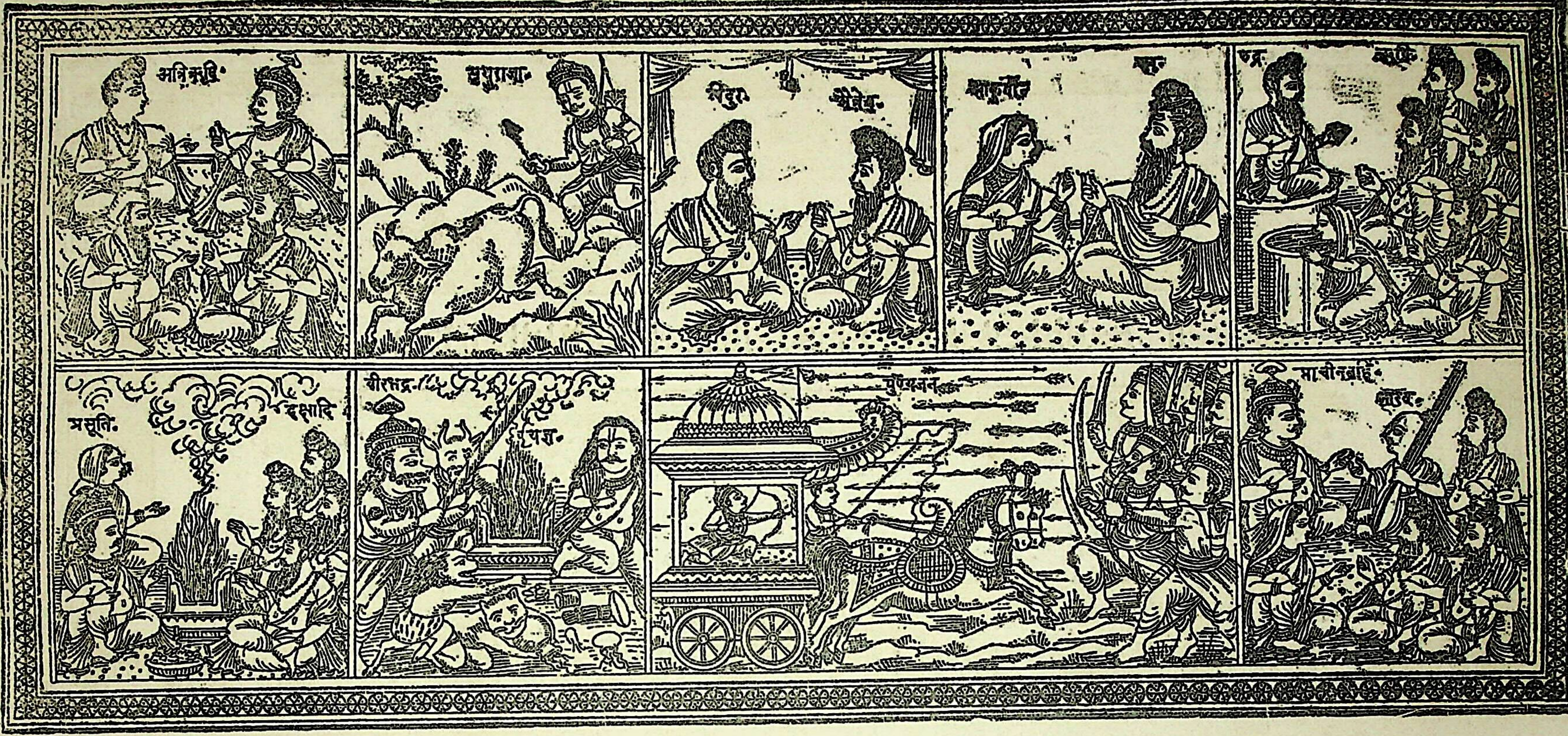
अत्रिऋषि
पृथुराजा
विदुर
मैत्रेय
आकूति
ध्रुव
ऋषि
प्रसूति
दक्षादि
वीरभद्र
यज्ञ
पुण्यजन
प्राचीनबर्हि
नारद

सोरठा–जय प्रभु जगदाधार, करुणानिधि करुणायतन । भक्तहेत तन धार, हरत भूमिको भार तुम ॥ जय वृन्दावन ईश, जय यदुपति जय श्यामघन । जय जय जय जगदीश, चरण शरण मुहिं राखिये ॥ हे वृन्दावनचंद, श्रीगोविन्द सुखकन्द हरि । हरहु सकल दुखद्वंद, काटे गजके फंद जिमि ॥ शिव अज सनत्कुमार, नारद शारद शेष शशि । राखों नाम तुम्हार, शरणागतवत्सल प्रभु ॥ करहु कृपा तुम आज, मूषकवाहन राजवदन । जय गणेश गजराज, कहों चतुर्थस्कंध अब ॥ दोहा–इस चतुर्थस्कंधमें, हैं इकतिस अध्याय । तिनकी भाषा रचतहौं, सुमर श्रीयदुराय ॥ १ ॥ कहों प्रथम अध्यायमें, मनुपुत्रिनको वंश । यज्ञरूप अवतार धर, करे असुरविध्वंस ॥ २ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, मनुजीनेशतरूपानारीमें विख्यात आकूति, देवहूति, प्रसूति नाम तीन पुत्री और दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ यद्यपि रुचिप्रजापति आकूतिका भाई अर्थात् मनुका पुत्र था, परन्तु

श्रीकृष्णाय नमः ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मनोस्तु शतरूपायां तिस्रःकन्याश्च जज्ञिरे ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥ आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ॥ पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥ प्रजापतिः स भगवान्रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥ यस्तयोःपुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ॥ या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ॥ ४ ॥ आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्या पुत्रं विततरोचिषम् ॥ स्वायंभुवोमुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥ तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ॥ तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥

४१८

तौभी मनुने शतरूपाकी सम्मतिसे रुचिप्रजापतिके साथ पुत्रिका धर्मका आश्रय लेकर उसका विवाह करदिया. पुत्रिकाधर्म उसको कहते हैं. कि यह कन्या विना भाईकी अलंकृत (भूषित) तुमको दूहूँ इससे जो प्रथम पुत्र उत्पन्न होगा मैं लूँगा ॥ २ ॥ ब्रह्मतेजस्वी श्रीभगवान् रुचिप्रजापतिने परमसमाधिसे उसमें एक जोडा उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ जो उनमें पुरुष हुआ वह साक्षात् विष्णु यज्ञस्वरूपधारी थे; और जो स्त्री हुई वह नित्य श्रीनारायणके संग रहनेवाली दक्षिणा हुई. यह लक्ष्मीजीके अंशसे थी ॥ ४ ॥ उस महाप्रकाश अपनी पुत्रीके पुत्रको अत्यन्त प्रसन्नतासे स्वायम्भुवमनु अपने घर लाये और रुचिप्रजापतिने आनंदसहित दक्षिणाको अपने पास रखलिया ॥ ५ ॥ दक्षिणा जब कामकी इच्छाके योग्य हुई,

तब भगवान् यज्ञपतिने उसके साथ विवाह किया, और अत्यन्त प्रसन्न होकर उस दक्षिणामें बारह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ तोष,प्रतोष, सन्तोष भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव, रोचन॥७॥यह स्वायम्भुवमन्वन्तरमें तुषित नामके देव हुए,मरीचि आदि ऋषि हुए और यज्ञ सुरगण ईश्वर इन्द्र हुए.श्रीभगवान्जीके छे प्रकारके अवतार यह भी हैं॥८॥राजा मनुके महाबली और अतिपराक्रमी प्रियव्रत उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए उनके पुत्र पौत्र नातियोंके वंशमें मन्वन्तर अत्यन्त भर गया ॥९॥हे तात!मनुने देवहूतिका विवाह तो कर्दमजीके साथ करदिया,उसकी कथा तौ मैं प्रथमही आपसे कह आया हूँ॥१०॥अब भगवान् मनुजीने ब्रह्माजीके पुत्रदक्षको प्रसूतिनाम कन्या विवाहदी,जिसप्रसूतिके वंशका विस्तार

तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शांतिरिडस्पतिः ॥ इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥ ७ ॥ तुषिता नाम ते
देवा आसन्स्वायंभुवांतरे ॥ मारीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥८॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥
तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदंतरम् ॥९॥ देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ॥ तत्संबंधि श्रुतप्रायं भवता गदतो
मम ॥ १० ॥ दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिंभगवान्मनुः ॥ प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥ ११ ॥ याः
कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ॥ तासां प्रसूति प्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥१२॥ पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे
कर्दमात्मजा ॥ कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥१३॥ पूर्णिमाऽसूत विरजं विश्वगं च परंतप ॥ देवकुल्यां
हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥ १४ ॥

संसारमें ऐसा बढ़ा कि, जिसका यश आजतक त्रिलोकीमें छारहा है॥११॥ और जो कर्दमजीकी नौ पुत्रियें थीं वह ब्रह्मर्षियोंकी पत्नियें हुईं उनमेंसे प्रसूतिके जो सन्तान हुई उनका वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ १२ ॥ मरीचिकी पत्नी कर्दमकी कन्या कलाने कश्यप व पूर्णिमा दो पुत्र उत्पन्न किये उन दोनोंके वंशसे यह सब संसार परिपूर्ण होगया ॥ १३ ॥ हे शत्रुतापन! पूर्णिमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, विरज व विश्वग इनके अतिरिक्त सुरकुल्यानामक एक पुत्री उत्पन्न हुई, जो नारायणके चरण नित्यप्रति प्रेमसे धोतीथी और उन्हीके प्रतापसे जन्मांतरमें आकाशगंगा अर्थात् सुरस

रिता हुई ॥ १४ ॥ अत्रिमुनिकीपत्नी अनसूयाके सुन्दर यशकर्ता तीनपुत्र उत्पन्न हुए, जो ब्रह्मा विष्णु शिवके अंशसे दत्तात्रेय, दुर्वासा, सोम ये तीनों नामोंवाले महातेजस्वी हुए॥ १५॥ विदुरजी बोले कि, हे गुरो ! अत्रिऋषिके भवनमें देवताओंमें श्रेष्ठ उत्पत्ति, पालन, संहार कर्ता इन तीनोंने किसकारण आनकर अवतार लिया ? सो कृपा कर मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ मैत्रेय ऋषि बोले कि, अत्रिऋषिको ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ समझ कर ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेके लिये प्रेरणा की, उस समय अत्रिऋषि अपनी भार्याको संग ले कुलाचलपर्वतपरके ऋक्षनामक तीर्थमें जाकर तप करनेलगे ॥ १७ ॥ जहाँ पुष्पोंके गुच्छे अशोक व पलाशके वृक्षोंमें लाल लाल लटक रहे हैं, उसकी अद्भुत शोभा व निर्विन्ध्या नदीके चारों ओर झरनोंके जलका शब्द होरहा है ॥ १८ ॥ उस मनोहर स्थानमें सुखदुःखको समान समझकर प्राणायामसे चित्तको रोक सौ वर्षतक एक पांवसे खड़े हो, पवनको भक्ष बना तप करनेलगे ॥१९॥ और इस प्रकार वोह वारंवार चिंतवन करते थे कि, जगदीश्वर जगत्का स्वामी जो है मैं उसकी शरणागत हूँ, वह जैसा आप है इसीप्रकारकी सन्तान मुझको दे* ॥२०॥ प्राणायामकी बढ़ीहुई अग्नि जो ऋषीश्वरके शीशमें प्रगट हुई उससे

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ॥ दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥
अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥
ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः ॥ सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥
तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ॥ वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विंध्यायाः समंततः ॥१८॥ प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ॥
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वंद्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥ शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ॥ प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिंतयन् ॥२०॥
तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना ॥ निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥२१॥

४५७

---

* **शंका**—ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अत्रिमुनिसे कहा कि जो संकल्प आपने अपने मनमें करके तप किया है. उसी संकल्पकी सिद्धि होनेके लिये हम तीनों जन आपके सन्मुख आये हैं. अत्रिमुनिने अपने मनमें जो संकल्प करके तप किया था वह क्या संकल्प था ? जिसको अत्रिमुनिनेभी गुप्त रक्खा और ब्रह्मा, विष्णु महेशनेभी, गुप्त रक्खा.

उत्तर—अत्रिमुनिने ॐ कारअक्षरको ब्रह्मा, विष्णु, शिव समरूप समझकर और ॐकारका रूप ब्रह्मा विष्णु, शिवको अपना पुत्र होनेके लिये ॐ कारअक्षरका जप किया. ब्रह्मा विष्णु. शिवने अत्रिमुनिके हृदयका गूढार्थ विचारकर तीनों देव अत्रिमुनिके पुत्र हुए (दत्तात्रेयजी दुर्वासामुनि और चन्द्रमा,)

त्रिभुवन तपनेलगा। उस समय तीनों देवता अर्थात ब्रह्मा,विष्णु,महेश ॥२१॥ अत्रिमुनिके स्थानपर गये, जाकर देखा तो अप्सरा,मुनि,गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग ये सब देवता अत्रिमुनिके यशका गान करते हैं॥२२॥ इन तीनों देवताओंके प्रगट होनेसे मुनिका मन चकित होगया,परन्तु तौभी एकपांवसे खड़े होकर मुनिने श्रेष्ठदेवको देखा ॥२३॥ और पुष्पादिक अञ्जलिमें लेकर,प्रसन्न मनसे दण्डवत् प्रणाम कर वृष,हंस,गरुडपर बैठे और अपने अपने त्रिशूल,कमण्डलु, चक्र इन चिह्नोंसे चिह्नित तीनों देवताओंका पूजन किया ॥२४॥ अनुग्रहकी दृष्टि व मुसकाते मुखसे,प्रसन्न जानकर और उनकी सुशोभित कांतिसे मिचेहुए अपने नेत्रोंको मल॥२५॥दोनों हाथःजोड़;उनहींमें अपने मनको लगा कोमल मधुर मनोहर वाणीसे

अप्सरोमुनिगंधर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥ २२ ॥ तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ॥ उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददृशे विबुधर्षभान्॥२३॥प्रणम्य दंडवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणांजलिः ॥ वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैस्स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥ २४ ॥ कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलंभितान्॥ तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥ चेतस्तत्प्रवणं युंजन्नस्तावीत्संहतांजलिः ॥ श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीत देहाः॥ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥२७॥ एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ॥ अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरा ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयोमे ॥ २८ ॥

त्रिलोकीनाथकी स्तुति कर ॥ २६ ॥ अत्रि मुनि बोले कि, युगयुगमें सृष्टि, उत्पत्ति,पालन व संहार करनेके लिये विभाग किये हुए मायाके गुणोंसे जिन्होंने देह धारण कियेहैं,ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशहो सो आप तीनोंको मैं बारंबार नमस्कार करताहूँ, उन तीनोमेंसे आप कौनहैं?मैंने तो एकको बुलाया था. इस बातको आप मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ मैंने यहां विविधविधान व अनेक प्रकारके उपचार करके संतान होनेके लिये केवल एक भगवान्का ध्यान किया था, आप तीनों देव कृपा करके यहां कैसे आये?क्योंकि आप शरीरधारियोंके मनसेभी दूर हो अर्थात् मनमें नहीं आसकते

ऐसे आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए यह बडा आश्चर्य है॥२८॥मैत्रेयजी बोले कि,हे ब्रह्मन्! वे तीनों देवश्रेष्ठ इसप्रकार मुनीश्वरके वचन सुनकर और हँसकर कोमलवाणीसे इसप्रकार कहनेलगे॥ २९॥ देवता बोले कि, हे ब्रह्मन्! जैसा संकल्प आपने किया था, उसीप्रकार हम आये. इसमें किंचिन्मात्रभी अंतर नहीं हुआ,आपने हम सबहीका ध्यान किया था॥ ३० ॥ हे मुने! इसलिये हम तीनोंके अंशसे जगत्विख्यात आपके तीन पुत्र होंगे और सब संसारमें आपके यशका विस्तार करेंगे, उसीसे आपका कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ इसप्रकार वे तीनों सुरेश्वर मनोवांछित वर देकर,और मुनिसे

मैत्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ॥ प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥ २९ ॥
देवा ऊचुः ॥ यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ॥ सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥
अथास्मदंशभूतास्त आत्मजा लोकविश्रुताः ॥ भवितारोंग भद्रं ते विस्रप्स्यंति च ते यशः॥३१॥एवं कामवरं दत्त्वा प्रति
जग्मुः सुरेश्वराः ॥ सभाजितास्तयोः सम्यग्दंपत्योर्मिषतोस्ततः ॥३२॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवि
त्॥दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधांगिरसः प्रजाः ॥ ३३ ॥ श्रद्धा त्वंगिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः॥ सिनीवाली
कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥३४॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेंतरे ॥ उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च
बृहस्पतिः ॥३५॥ पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ॥ सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥ ३६ ॥

आदर पाकर उन दोनों स्त्रीपुरुषोंके सन्मुखसे अपने स्थानको गये ॥ ३२॥ कुछ कालोपरान्त ब्रह्माके अंशसे सोम सुत हुआ और विष्णुके अंशसे योगवेत्ता दत्तात्रेयजी प्रगट हुए,और शिवके अंशसे महाऋषि दुर्वासा उत्पन्नहुए.अब अंगिराऋषिके वंशका वृत्तांत्त सुनो॥३३॥अंगिराकी श्रद्धानाम पत्नीमें चार कन्या उत्पन्न हुईं, सिनीवाली,कुहू, राका और चौथी अनुमति ॥३४॥ उनके दो पुत्र और हुए, जो स्वायंभुवमन्वन्तरमें विख्यातहैं. एक तो साक्षात् भगवान् उतथ्य हुए और दूसरे ब्रह्मज्ञानी सुरगुरु बृहस्पतिजी ॥३५॥और पुलस्त्यजीके हविर्भू नाम पत्नीमें अगस्त्यजी उत्पन्न

हुए, जो दूसरे जन्ममें जठराग्निरूप हुए, और उनके दूसरा पुत्र महातपस्वी विश्रवा हुआ ॥ ३६ ॥ विश्रवाके इडविडाभार्यामें यक्षपति देवता कुबेर हुआ, केशिनी नाम आदिभार्यामें रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तीन पुत्र हुए, ❀ ॥ ३७ ॥ हे महामुने! पुलहकी गति नाम सती स्त्रीमें तीन पुत्र उत्पन्न हुए. कर्मश्रेष्ठ, वरीयांस, सहिष्णु ॥ ३८ ॥ और क्रतुकी क्रियानाम भार्याने ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान साठ सहस्र वालखिल्यादि ऋषि उत्पन्न

तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ॥ रावणः कुंभकर्णश्च तथाऽन्यस्यां विभीषणः ॥ ३७ ॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ॥ कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥ ३८ ॥ क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ॥ ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३९ ॥ ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ॥ चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४० ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ॥ उल्वणो वसुभृद्यानो द्युमाञ्छक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥ चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ॥ दध्यंचमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥ ४२ ॥

किये ॥ ३९ ॥ हे महामुने ! वसिष्ठजीकी ऊर्जा नाम स्त्रीमें चित्रकेतुआदि निर्मल ब्रह्मऋषि सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ चित्रकेतु, सुरोचि विरजा, मित्र, उल्बण, वसुभृद्यान, द्युमान्, और दूसरी भार्यामें शक्ति आदि दूसरे पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ और अथर्वणकी चित्ति नाम पत्नीमें धृतव्रत,

---

❀ एक थोडे पढे लिखे पंडित थे, परंतु बात बनानेमें पल्लेसिरेके चतुर थे, वह एक दिन किसी शास्त्रीपंडितके स्थानपर गये, शास्त्रीजीने बडे आदरसत्कारसे अपने निकट बैठालकर पूछा कि आप कहांसे आयेहैं? उक्त पंडितजी बोले कि श्रीगंगाजीके किनारे मधुसूदनजीके मंदिरमें रामायणकी कथा होतीहै वहां गयाथा. शास्त्रीजी बोले कि, कौनसा काण्ड होताहै और आज क्या कथा हुईथी. पंडितजी बोले कि, लंकाकाण्ड होताहै और आज पंडितजीने रामराभणका युद्ध इसप्रकार वर्णन किया कि, सब श्रोता पंडितजीको वारम्बार धन्यवाद देते थे । शास्त्रीजी बोले कि, आप पंडित होकर अशुद्ध शब्द बोलतेहो रामण शब्द नहीं है, रावण है, पंडितजी बोले कि, कुम्भकर्ण, विभीषण, दोनोंके नाममें तो दूसरा अक्षर (भ) है फिर रावणके नाममेंभी दूसरा अक्षर (भ) अवश्य होनाचाहिये क्योंकि वह तो सबसे बडा था, उसके नाममें दूसरा अक्षर (व) किसी प्रकार नहीं बनसकता, बरन् इसकी साक्षीमें किसी महात्माने यह श्लोकभी कहाहै; श्लोक–"भकारः कुम्भकर्णेऽस्ति भकारोऽस्ति विभीषणे । तयोर्भ्रातरि ज्येष्ठे च भकारो न कथं भवेत्" ॥

दध्यंच, अश्वशिरा, नाम पुत्र उत्पन्न हुए. अब हमसे भृगुमुनिके वंशका वृत्तांत सुनो ॥४२॥ हे महाभाग ! ख्यातिनाम भार्यामें भृगुजीने धाता, विधाता नाम दो पुत्र और एक कन्या भगवत्परायण श्रीलक्ष्मीजीको उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ मेरुने अपनी आयति, नियति, दोनों पुत्री धाता, विधाताको विवाहदीं. धाताके आयति नाम पत्नीमें मृकंडनाम सुत हुआ और विधाताके नियतिनाम भार्यामें प्राण नाम पुत्र हुआ ॥४४॥ और मृकंडके पुत्र मार्कण्डेय हुए और प्राणके सुत वेदशिरा मुनि हुए, और भृगुके पुत्र शुक्राचार्य्य हुए और शुक्राचार्य्यके भगवान् उशना नाम पुत्र हुए ॥ ४५ ॥ हे विदुर ! मुनीश्वरोंने सृष्टि रचकर इसप्रकार लोकोंकी वृद्धि करी. ऐसे कर्दमकन्याकी संतति मैंने तुम्हारे प्रति कही है यह श्रद्धासे

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ॥ धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥ ४३ ॥ आयतिं नियतिं
चैव सुते मेरुस्तयोरदात्॥ ताभ्यां तयोरभवतां मृकंडः प्राण एव च ॥४४॥ मार्कंडेयो मृकंडस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः॥
कविश्च भार्गवो यस्या भगवानुशनाः सुतः ॥ ४५ ॥ त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन् ॥ एष कर्दमदौहित्रसं
तानः कथितस्तव ॥४६॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः॥ तस्यां
ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥४७॥ त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां
भवच्छिदे ॥४८॥ श्रद्धा मैत्री दया शांतिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः॥४९॥
श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया शांतिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥ ५० ॥

४१७

सुननेवालोंके पापोंको नष्ट करती है ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुकी प्रसूति नाम कन्याके संग विवाह किया और उसमें निर्मल कांतिवाली चन्द्रवदनी सोलह पुत्रियें उत्पन्न करीं ॥ ४७ ॥ उनमेंसे तेरह तो धर्मको विवाहदीं, एक अग्निको एक पितृगणोंको और एक संसार नाशक शिवजीको विवाहदी ॥ ४८ ॥ श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, मूर्ति, ये तेरह धर्मकी दारा हुईं ॥ ४९ ॥ श्रद्धाने शुभ नाम पुत्रको उत्पन्न किया, मैत्रीने प्रसाद, दयाने अभय, शांतिने सुख, तुष्टिने मुद, और पुष्टिने गर्व

पुत्र उत्पन्न किया ॥५०॥ क्रियाने योग, उन्नतिने दर्प, बुद्धिने अर्थ, मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम, ह्रीने प्रश्रय पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ और मूर्तिके यहाँ सब गुणोंके उत्पादक नर नारायण नाम दो ऋषि पुत्र उत्पन्न हुए. जिनके जन्मके समय यह विश्व परमानंदित हुआ ॥५२॥ और मन, दशों दिशा, वायु सरित और सब पर्वत अत्यंत प्रसन्न हुए और स्वर्गमें दुन्दुभीआदि उत्तम उत्तम बाजे बजनेलगे, देवता पुष्पोंकी वर्षा करनेलगे, ऋषीश्वर, मुनीश्वर प्रसन्न हो स्तुति करनेलगे ॥ ५३ ॥ गन्धर्व किन्नर, मधुर मधुर स्वरोंसे गाने लगे देवांगना नृत्य करने लगीं, ब्रह्मादिक देवता स्तोत्र पढ़ पढ़ स्तुति करनेलगे, इसप्रकार सबसंसारमें परममंगल होगया ॥ ५४ ॥ सबदेवता कहने लगे कि, जो भगवान्

योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥ ५१ ॥ मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यानंदत्सुनिर्वृतम् ॥ ५२ ॥ मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः दिव्यवाद्यंत तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ५३ ॥ मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥ नृत्यंति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममंगलम् ॥ देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ यो मायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ॥ एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाऽद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५५ ॥ सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ॥ दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविंदम् ॥५६॥ एवं सुरगणैस्तात भगवंतावभिष्टुतौ ॥ लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गंधमादनम् ॥५७॥

अपनी निजमायासे आकाशरूपकी नाईं अपनी आत्माको प्रकाशके लिये आज धर्मके मंदिरमें आद्यऋषि मूर्तिरूप हो प्रगट हुए, उन आद्य पुरुष महात्माको हम नमस्कार करते हैं॥५५॥ अपने विद्याके बलसे जिनके तत्त्वका अनुमान करते हैं, सो भगवान् जगत्की मर्यादाका अन्यथाभावके नाशके लिये सत्त्वगुणसे रचित हम सुरगणोंका लक्ष्मीके स्थान कमलकीभी विनाशवाली तिरस्कारकर्ता अपने करुणायुक्त दृष्टिसे देखो॥५६॥ हे विदुर! इसप्रकार जब देवताओंने प्रार्थना करी तब भगवान् नरनारायण देवताओंकी ओर निहार अपनी पूजा अंगीकार कर गन्धमादनपर्वतको

चलेगये ॥ ५७ ॥ सो ये उन्हीं दोनोंने भूमिका भार उतारनेके लिये यहाँ अवतार धारण कियाहै इनमें नरके अंशसे तो कुरुकुलमें अर्जुन उत्पन्न हुआ और साक्षात् नारायणने यदुकुलमें श्रीकृष्णरूप धारण किया ॥५८॥ अग्निकी पत्नी स्वाहाने महाबलशाली तीन पुत्र उत्पन्न किये. पावक, पवमान, शुचि ये उनके नाम हैं ॥५९ ॥ इन तीनोंसे पैंतालीस अग्नि उत्पन्न हुए, इसप्रकार प्रपिता, पितामह, पिता, पुत्र मिलकर उनचास(४९) पवनहुए ॥ ६० ॥ वैदिक कर्मरूप यज्ञमें ब्राह्मण जिनका नाम लेलेकर अग्निदेवताको आहुति देते हैं वे सब अग्नि ये हैं ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, सौम्य और आज्यप ये पितृगण हैं इनमें कोई साग्नि हैं और कोई अनग्नि हैं इनसबकी पत्नी केवल एक दक्षपुत्री स्वधा है ॥ ६२ ॥

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ॥ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥५८॥ स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्म
जांस्त्रीनजीजनत् ॥ पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥ ५९॥ तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पंच च ॥ त
एवैकोनपंचाशत्साकं पितृपितामहैः ॥६०॥वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यंते
ऽग्नयस्तु ते॥६१॥अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः॥ साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा॥६२॥
तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ॥ उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ६३ ॥ भवस्य पत्नी तु सती
भवं देवमनुव्रता ॥ आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६४ ॥ पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायाऽनागसे रुषा ॥ अप्रौढै
वात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

४५८

पितरोंसे स्वधानें दो कन्या उत्पन्न हुईं यमुना और धारिणी, वे दोनों ब्रह्मवादिनी और ज्ञान, विज्ञानमें परायण हुईं ॥ ६३ ॥ शिवजीकी पत्नीसती, शिवजीकी सेवा करनेलगी, परन्तु सतीको आपके समान गुणवान्, शीलवान् पुत्र प्राप्त नहीं हुआ ॥ ६४ ॥ दक्षप्रजापतिने शिवजीको सती विवाही; परन्तु अपने समान नहींसमझा, और शिवजीके प्रतिकूल चला, तब सतीने रोष करके युवा अवस्था न देखी, छोटीही अवस्थामें योगाभ्यास करके निर्मल बुद्धिसे अपनी देहका त्याग करदिया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां मनुकन्यान्वये नर–नारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा–कहौं द्वितीयाध्यायमें, प्रजापतिनको यज्ञ । कियो वैर जिमि शम्भुसन, दक्षप्रजापति अज्ञ ॥ १ ॥ सुनि मित्रासुतके वचन, विदुर परमसुख पाय । जोरि युगल करकञ्ज पुनि, विनय करत परि पांय ॥ २ ॥ विदुरजी बोले कि, शीलवानोंमें शीलसिंधु शिवसे दुहितृवत्सल दक्षप्रजापतिने किसलिये विद्वेष किया ? और अपनी कन्या सतीका अनादर क्यों किया ? ॥ १ ॥ शांतिरूप चराचरके स्वामी, द्वेषरहित, जगतपूज्य, त्रिलोकनाथ, आत्माराम, सुराधीश ऐसे भोलेभाले शिवसे दक्षने क्यों विरोध किया ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जामाता और श्वशुरमें ऐसा भारी वैर कैसे पड़गया ? जिससे सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंको त्याग दिया. यह सब कथा भिन्नभिन्नकर मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, विश्व रचनेवाले मरीचिके यज्ञमें वसिष्ठनारदादि बड़े बड़े ऋषीश्वर मुनीश्वर, देवगण अपने अपने अनुगामियों सहित सिद्ध और अग्नि सब इकट्ठे हुए ॥ ४ ॥ उस महासभाका अधिकार अपने अपने तेजकी कांतिसे दूर करते हुए सूर्य्यके समान प्रकाशवान् दक्षको आता देखकर ॥ ५ ॥ सब सभासद अपने २ स्थानोंसे अग्निसमेत उठ खड़े हुए, क्योंकि उनके तेजके प्रभावसे सबके हृदयमें घबराहट उत्पन्न होगया, परन्तु ब्रह्मा और महादेवजी यह आसनसे न उठे* ॥ ६ ॥ और सब सभासदोंने दक्षप्रजापतिका अत्यन्त आदर सन्मान किया, तब दक्ष लोकगुरु ब्रह्माजीको प्रणाम कर

विदुर उवाच ॥ भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥ १ ॥ कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शांतविग्रहम् ॥ आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मञ्जामातुः श्वशुरस्य च ॥ विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः ॥ तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥ तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वार्कमिव रोचिषा ॥ भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वंतं तन्महत्सदः ॥ ५ ॥ उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाऽग्नयः ॥ ऋते विरिंचिं शर्वं च तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधुसत्कृतः ॥ अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥

---

* **शंका**–शास्त्रोंमें लिखाहै कि, श्वशुरको पिताकी समान मानना चाहिये, ऐसी मर्यादाके रक्षण करनेवाले महादेवजी ब्रह्माकी सभामें दक्ष जो सतीके पिता थे और शिवजीके श्वशुर थे उनको देखकर अपने आसनसे शिवजी क्यों नहीं उठे ? यह बडी शंका है.

उनकी आज्ञासे आसनपर बैठगया ॥ ७ ॥ अपने आनेसे पहिले शिवको बैठा देखा और अपने मनमें समझा कि, शंकरने मेरा अनादर किया, क्योंकि मुझको देखकर न उठे, इस बातको न सहसका, और कोपदृष्टिसे तिरछे नेत्र कर बोला ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मऋषियो ! हे देवताओ ! ! हे अग्नि सहित सब जनो !!! सुनो महात्मापुरुषोंका जो उत्तमाचार है, सो कहता हूँ कुछ अज्ञान और ईर्षासे नहीं कहता ॥९॥ शिवको कुछ लज्जा नहीं; यह लोकपालोंके यशका नाश करनेवालाहै, इस अभिमानीने अपने अभिमानसे सज्जनोंके चलायेहुए मार्ग और आचरणोंको दूषित करदिया॥१०॥ यह मेरा जामाता मेरे शिष्यभावको प्राप्त है, ब्राह्मण और अग्निके सन्मुख, गायत्रीतुल्य मेरीं पुत्रीका साधुकी नाईं पाणिग्रहण कियाहै ॥११॥

प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः ॥ उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥ श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सह देवाः सहाग्नयः ॥ साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥९॥ अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ॥ सद्भिराचरितः पंथा येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥ एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ॥ पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत्॥११॥ गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाऽप्यकृत नोचितम्॥१२॥ लुप्तक्रियायाऽशुचये मानिने भिन्नसेतवे ॥ अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ १३ ॥

४३/

और इस मर्कटसम नेत्रवालेने मेरी मृगछौना केसी नेत्रवाली भोलीभाली कन्याका पाणिग्रहण किया. उसको उचित था कि, औरोंकी समान उठ कर मुझको प्रणाम करता, परन्तु इसने वाणीसेभी मेरा सत्कार नहीं किया॥१२॥इसलिये मैं अपनी कन्या इस क्रियारहित, अशुचि, अनाचारी महाअभिमानी, मर्य्यादाहीनके साथ विवाह करना नहीं चाहता था, परन्तु मैंने अपनी मूर्खतासे बिना इच्छाके बेटी विवाह दी, जैसे कोई

–उत्तर–जब बडा राज्य दक्षप्रजापतिको प्राप्त हुआ तब दक्ष सब सज्जन महात्माओंकी निन्दा रात दिन करनेलगा और बडा अभिमान होगया, तब सब सज्जन महात्माओंने दक्षका अभिमान नाश करनेके लिये शिवजीकी प्रार्थना की, तब शिवजीने दक्षका मानभंग करनेके लिये बीज उत्पत्ति करनेके वास्ते सभामें आये उससमय दक्षको देखकर शिवजी नहीं उठे, शिवजीने विचार किया कि, उसको देखकर हमको अपने आसनसे उठाना चाहिये हम नहीं उठेंगे तो यह महाअभिमानी हमको क्रोधसे कटुवचन कहैगा. तब इसके अभिमानका हम नाश करेंगे.

शूद्रको सुन्दरवाणी वेदलक्षण सिखाता है॥ १३ ॥ यह घोर मरघटका निवासी भूत, प्रेत, पिशाचोंके संग रहनेवाला, उन्मत्तकी तुल्य नंगा, शिरके बाल खोले, कभी हँसता, कभी रोता, फिरा करता है ❀ ॥ १४॥ चिताकी भस्मको सदा शरीरसे लगाता है, प्रेतोंके मुण्डोंकी माला सदा कण्ठमें पहनता है, हड्डियोंके गहने पहने श्मशानमें विचरता है, नाम तो लोगोंने इसका शिव रखदिया है, परन्तु निरा अमंगलका खान है, और उन्मत्त लोगोंसे प्रीति है ॥ प्रमथ भूतोंका पति यह है इस भूतनाथ, भ्रष्टाचरण, दुष्टहृदय, कठोरचित्त, अज्ञानी शिवको

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ॥ अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥ १४ ॥ चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्न्रस्थिभूषणः ॥ शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ॥ पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥ १५ ॥ तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ॥ दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥ १६॥ मैत्रेय उवाच ॥ विनिंद्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ॥ दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥ अयं तु देवयजन इंद्रोपेंद्रादिभिर्भवः ॥ सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाऽधमः ॥ १८ ॥ निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ॥ तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥ १९ ॥

ब्रह्माके कहनेसे अपनी महासूधीसाधी सती विवाहदी, मुझे यह बडा भारी खेद है ॥ १५ ॥ १६॥ मैत्रेयजी बोले कि, अपने अप्रतिकूल बैठे शिवकी इसप्रकार निन्दा करके वह क्रोधी दक्ष जलका आचमनकर शिवको शाप देनेलगा ॥ १७ ॥ कि, यह शिव देवताओंके यज्ञमें इन्द्र, उपेन्द्र विष्णु, देवताओंके संगमें भागका अधिकारी न हो, क्योंकि देवगणोंमें यह अधम है ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! सब सभासदोंमें जो मुखिया थे उन्होंनेभी अत्यन्त निषेध किया, तो भी दक्षप्रजापति शिवको शाप देकर; वहांसे उठ अपने स्थानको ॥ ७ ॥

❀ कवित्त–वेष जगत्से निराला, पिये भाँग भर प्याला, नित रहै मतवाला, साथी भूतगण बनायेहैं। गल सोहै मुंडमाला, कर डमरू विशाला, सदा ओढे मृगछाला, चिताभस्म तन लगाये है ॥ एक मत्तबैल पाला, जातै होत प्रतिपाला, नाम धरोहै अकाला जटाजटा शिर चढाय है। ऐसा हृदयका काला, कहीं नहीं देखा भाला, वैर नेत्रोंमें ज्वाला, व्याल तनपे लिपटाये हैं ॥ १ ॥

चलागया ॥ १९ ॥ शिवजीके गणोंमें प्रधान नन्दीश्वरने जब शिवके शाप देनेका समाचार सुना, उस समय महारोषमें भर लाल लाल नेत्रकर महादारुण शाप दिया और जिन ब्राह्मणोंने शाप देनेके समय दक्षकी बडाई करी थी उनकोभी शाप दिया ॥ २० ॥ श्रीभगवान् महादेवजी समदर्शी हैं, किसीसे द्रोह नहीं रखते, ऐसे प्रभुसे द्रोह करके जो अज्ञानी पृथक् दृष्टिवाला तत्त्वसे विमुख होय ॥२१ ॥ जो कपटकर्ममें परम प्रवीण गृहोंमें संसारकी सुखकी इच्छासे आसक्त हैं, वेदवादियोंमें नष्टबुद्धि होकर कर्मको केवल मुख्य धर्म मानते हैं॥२२॥ देहको जीवको ईश्वर माननेवाली बुद्धिसे पशुवत् ईश्वरकी गतिभूल स्त्रीकामी दक्षका थोडेही समयमे बकरेकेसा मुख होजाय ॥२३ ॥ विद्या,बुद्धि,अविद्या, कर्ममयी

विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नंदीश्वरो रोषकषायदूषितः॥दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्वि
जाः॥२०॥ य एतन्मर्त्यमुद्दिष्य भगवत्यप्रतिद्रुहि॥ द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥२१॥ गृहेषु कूटधर्मेषु
सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतंत्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥२२॥ बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः॥
स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ २३ ॥ विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ॥ संसरंत्विह
ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥ २४ ॥ गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्यामधुगंधेन भूरिणा ॥ मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यंतु
हरद्विषः ॥ २५ ॥ सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः ॥ वित्तदेहेंद्रियारामा याचका विचरंत्विह ॥ २६ ॥ तस्यै
वं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ॥ भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदंडं दुरत्ययम् ॥ २७ ॥

में यह जड होय,और यहां जो लोग शिवजीका अपमान करनेवाले हैं और जो उन(दक्ष)के साथी हैं वे सदा संसारमें जन्मते मरते रहैं ॥ २४ ॥ जिसकी मीठी वाणी पुष्पकी समान खिलीहुई बहुत सुगन्ध देनेवाली केवल चित्तको प्रसन्न करनेंवाली है ऐसी वेदवाणीके मोह करानेवाले मधुरवचनसे मूर्खोंके मन मथित होरहे हैं वे हरद्वेषी सदा मोहको प्राप्त होयँ॥ २५ ॥ और ब्राह्मण भक्ष्याभक्ष्यविचाररहित हों, सबके घर भोजन करैं. केवल उदरपोषणकेही लिये विद्या, तप, व्रत करैं और धन शरीरके सुखके लिये संसारमें याचक बनैं. और घर घर माँगते फिरैं ॥ २६ ॥ द्विजकुलको नन्दीने जब इसप्रकार शाप दिया, यह शाप सुन भृगुजीसे न रहागया, और महाकठोर शाप दिया कि ॥ २७ ॥

जो कोई शिवका व्रत धारण करेगा; और उनका अनुवर्ती होकर चलेगा, वह पाखण्डी हो सत्‌शास्त्रोंमें भ्रष्ट होगा ॥२८॥ नष्टाचरण, मूढमति,
जटाभस्मधारी; हड्डियोंकी माला पहने, जिन्होंने मद्यमांसही देवताओंकी समान पूज्यवर मान रक्खा है शिवकी दीक्षामें वे लोग प्रवेश करें॥२९॥
ब्रह्म ब्राह्मणोंकी जो तुम निन्दा करते हो यह पुरुषोंकी मर्यादास्थापक है, इसलिये जो शिवके गण हैं, सो सब पाखण्डके आश्रित होंगे ॥
॥ ३० ॥ सनातनका श्रेष्ठ मार्ग लोगोंका यहीहै, ऋषीश्वर मुनीश्वर इसीपर आरूढ़ थे, क्योंकि वेदमार्ग सदालाभदायक है, इसमें भगवान् वासु
देव प्रमाण हैं ॥ ३१ ॥ सो वह ब्रह्म परमशुद्ध महात्माजनोंका सनातनमार्ग है; सो उसकी तुम निन्दा करोहो, इसलिये पाखण्डी हो. और वह

भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः ॥ पाखंडिनस्ते भवंतु सच्छास्त्रपरिपंथिनः ॥२८॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभ
स्मास्थिधारिणः ॥ विशंतु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम्॥२९॥ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिंदथ ॥सेतुं विधारणं
पुंसामतः पाखंडमाश्रिताः ॥३०॥ एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ॥ यं पूर्वेचानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः
॥ ३१ ॥ तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ॥ विगर्ह्य यात पाखंडं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥३२॥ मैत्रेय उवाच ॥
तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान्भवः ॥ निश्चक्राम ततः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥३३॥ तेऽपि विश्वसृजः सत्रं
सहस्रपरिवत्सरान् ॥ संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः॥३४॥आप्लुत्यावभृथं यत्र गंगा यमुनयाऽन्विता ॥ विर
जेनात्मना सर्वे स्वंस्वं धाम ययुस्ततः ॥३५॥ इति श्रीमद्भागवते म० चतुर्थस्कंधे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

रहो, जहां भूतेश्वर तुम्हारे देवता हैं ॥ ३२ ॥मैत्रेयजी बोले कि, जब भृगुजीके मुखसे इसप्रकारका शाप सुना, तब महादेव कुछ विमनसे होकर
अपने गणोंसमेत वहांसे उठकर कैलासको चलेगये ॥ ३३ ॥ हे विदुर ! उन प्रजापति विश्व रचनेवालोंने सहस्र वर्षतक यज्ञ करके सबसे श्रेष्ठ
पूजनीय विष्णुभगवान्‌का पूजन किया ॥ ३४ ॥ फिर तीर्थ गंगायमुनाके संगममें यज्ञान्त स्नानकर निर्मलचित्त हो, अपने अपने स्थानको
चलेगये ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षशापवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–सती तृतीय अध्यायमें, सुनेउ पितागृह यज्ञ। बिन न्योते लागी चलन, वर्जेउ शिव सर्वज्ञ ॥३॥ मैत्रेयजी बोले कि, सदा इसीप्रकार वैरभाव करते महदेवजीको और दक्षको महाकाल व्यतीत होगया ॥१॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीने दक्षको सब प्रजापतियोंका अधीश नियत किया, तो उसको बड़ा गर्व हुआ ॥ २ ॥ तब दक्षने वाजपेययज्ञ कर अपने अभिमानसे ब्रह्मेष्ठियोंका निरादर कर सब यज्ञोंका उत्तम बृहस्पतिसव नामक यज्ञका आरम्भ किया ॥ ३ ॥ उस समय यज्ञमें ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता, सब अपनी अपनी भायाओंका शृँगार कराकर अपने अँपने संग लाये॥४॥

मैत्रेय उवाच॥सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः॥जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे॥ १ ॥ यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥ प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥ २॥ इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठान्नभिभूय च ॥ बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ आसन्कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥ ४॥ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ॥ सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥५॥ व्रजतीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ॥ विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककंठीः सुवाससः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुंडलाः ॥ पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥ ७ ॥

तब आकाशमें देवगणोंको जाते देख परस्पर संभाषण करते उनके मुखसे सती दाक्षायणीने देवोंके अपने पिताके यज्ञका महोत्सव सुना ॥ ५ ॥ और सबदिशाओंसे आतीं, अपने अपने पतियोंको लिये विमानोंमें बैठी पदक कण्ठमें पहने अमूल्य वस्त्र धारण किये॥६॥ चञ्चलाक्षी उज्ज्वल रत्नजडित कुण्डलोंसे देदीप्यमान ऐसी सुन्दर युवतियोंको सती अपने आश्रमके निकट निहार उत्कण्ठित हो अपने पति महादेवजीसे कहा ॥ ७ ॥

सती बोली कि,हे नाथ!आपके श्वशुर दक्षप्रजापतिके यहां यज्ञके महोत्सवका आरम्भहै.हे वाम!जो आपकी इच्छा होय तो मुझको लेकर आपभी वहां चलिये, अभी वहां यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुआ है, क्योंकि अभी सब देवता बराबर चले जातेहैं॥८॥उस यज्ञमें अपने पतियोंसमेत मेरी बहिनेंभी निश्चय सुहृदोंके देखनेको और उनसे मिलनेको जायँगी,इससे मेरीभी अभिलाषा है कि आपके साथ चलकर मैंभी अपने मातापितासे मिल उनके दियेवस्त्र आभूषण ले अपने मनकी आशा पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे प्राणपते! मुझको निश्चयहै कि, अपने भर्ताओंसमेत मेरी बहिनें, पिताकी बहिनें, माताकी बहिनें अवश्य आवेंगी;सो स्नेहबुद्धि वा कोमलचित्त अपनी माताको देखूंगी;क्योंकि मुझको बहुतकालसे उनके देखनेकी उत्कण्ठा है

सत्युवाच ॥ प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य सांप्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ॥ वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी
विबुधा व्रजंति हि ॥ ८ ॥ तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यंति सुहृद्दिदृक्षवः ॥ अहं च तस्मिन्भवताभि
कामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥९॥ तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियं च मातरम् ॥ द्रक्ष्ये चिरो
त्कंठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥१०॥ त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्म
कम्॥ तथाऽप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११॥ पश्य प्रयांतीरभवान्ययोषितोऽप्यलंकृताः
कांतसखा वरूथशः ॥ यासां व्रजद्भिः शितिकंठ मंडितं नभो विमानैः कलहंसपांडुभिः ॥ १२ ॥

और महाऋषियोंका किया जो उत्तम यज्ञ है, उसकेभी देखनेकी लालसा है ॥ १० ॥ यद्यपि यह आश्चर्य जगत्में आपकी मायासे निर्मित त्रिगुणात्मक यह जगत् आपमें प्रकाश कररहाहै, इसलिये आपको तो इस बातका कुछ सन्देह नहीं परन्तु मैं जो दीन स्त्रीजाति हूँ सो तुम्हारे तत्त्वको नहीं जान सक्ती, ऐसी मैं अबला अपनी जन्मभूमिको देखना चाहती हूँ सो हे नाथ ! आप मेरे साथ चलिये॥११॥ हे संसारनिवर्तक! हे शितिकण्ठ!! और भी तो स्त्रियें पतियोंके संग जारही हैं, उनको देखो तो कैसे २ मनोहर हंसवत् श्वेत विमानों पर बैठी मेरे पिताके घरकोजाती हैं.

जिनके समूहोंसे आकाश शोभित है॥ १२॥ हे मरणधर्मरहित ! पिताके घर कौतुक सुनकर बेटीका देह किसप्रकार चलायमान न होगा? पति, गुरु, पिता, मित्र, सुहृद, सम्बन्धी इनके घर तो बिना बुलाये भी जानेमें कुछ दोष नहीं है॥ १३॥ हे देव ! सो मेरे ऊपर आप कृपा करके यह मेरी मनोवांछा पूरी करो, आप परमज्ञानी हैं तौभी मुझपर अनुग्रह करके मुझे आपने अपने अर्द्धांगमें दिव्यचक्षु करके धारण किया है. इसलिये मैं आपसे वारंवार विनय करती हूँ, कि इस समय मुझपर अनुग्रह करनाही उचित है॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब इसप्रकार सतीने शिवजीकी विनय करी, तब विश्व

कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेंगते॥ अनाहुता अप्यभियंति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम्
॥ १३ ॥ तन्मे प्रसीदेदममर्त्यवांछितं कर्तुं भवान्कारुणिको बतार्हति ॥ त्वयात्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपितामाऽ
नुगृहाण याचितः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ॥ संस्मारितो
मर्मभिदः कुवागिषून्यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अना
हुता अप्यभियंति बंधुषु ॥ ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥ १६ ॥ विद्यातपोवित्तव
पुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ॥ स्मृतौ हतायां मृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यंति हि धाम भूयसाम्॥ १७॥

रचनेवालोंकेसन्मुख दक्षने मर्मभेदी कटुवचनरूपी बाण मारे थे उसका स्मरण कर सबके सुहृद महादेवजीने अपनी प्रिया सतीसे हँसकर कहा, ॥ १५ ॥ शिवजी बोले कि, हे शोभने! यह तेरा कहना बहुतठीक है कि, बिना बुलाये बंधुवोंके घर जायँ, परन्तु कब ? कि, जो जब अपने बली मदके क्रोधसे दोषदृष्टि उत्पन्न न करै, तौ जानेमें कुछ अपराध नहीं॥ १६॥ और जब विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था, कुल ये छै जो सत्पुरुषोंके गुण हैं और असत्तम अति धूर्तोंसे प्रेरित होतेहैं तब बुद्धि विनष्ट होजाती है, और अभिमान बढजाता है, उस समय मदांध हो महात्माजनोंके

पराक्रमको नहीं देखते ॥१७॥ जिनके चित्त ऐसे असावधान हैं उनको सज्जनसंगकी इच्छा नहीं इससिये सज्जनोंके घरकी ओरको दृष्टि उठाकर देखनाभी नहीं चाहिये. क्योंकि वह कुटिलबुद्धि अपने घर आयेहुओंको महाक्रोधसे भ्रुकुटी चलाय तिरछी दृष्टिसे देखाकरते हैं॥ १८॥ऐसे अभिमानी कुटिल कुटुम्बियोंकेदुर्वाक्योंसे जैसी कठिन पीडा होती है ऐसी वैरियोंके शराघातसे शरीर छिन्नभिन्न भी होगया हो तौभी नहीं होती, क्योंकिजिसके हृदयको शर फाडकर पारभी निकल जाय उसको भीकिसीसमय निद्रा आजाती है परन्तु दुष्टसम्बंधियोंके दुर्वाक्योंसे जो मर्मस्थान वेधा जाता है वह

नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ॥ येऽभ्यागतान्वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥१८॥ तथाऽरिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दितांगो हृदयेन दूयता ॥ स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः॥ १९ ॥ व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता ॥ अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥ २० ॥ पापच्यमानेन हृदातुरेंद्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ॥ अकल्प एषामधिरोढुमंजसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिम् ॥ २१ ॥ प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ॥ प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥ २२ ॥

दग्धहृदय दिन रात दहताही रहता॥१९॥हे शुभानने! यह मैं भली भाँति जानता हूंकि,तुम दक्षप्रजापतिकी पुत्रियोंमें सबसे अधिक प्यारी हो,इसमें किंचिमात्रभी सन्देह नहीं, तोभी उन पितासे तुमको आदर सन्मान प्रदान न होगा, क्योंकि मेरे नामसे दक्षके हृदयमें ताप आता है ॥२०॥ सत्पुरुषोंकी उत्तम कीर्ति और यश देखकर दुष्टजन उनकी श्लाघा और उच्चपदवीको पहुँच नहीं सक्ते; वे पापीहृदयवाले कुजन अपने मनमें जलकर उनसे द्वेषकरै हैं, जैसे राक्षस हरिसे वैर करते हैं ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे ! जो सज्जनपुरुष आपसे बडेको देखकर परस्पर उठ खडे होते हैं,

---

* शंका–सतीसे शिवजीने कहा कि, जो प्राणी अभिमानकरके अभ्यागतोंसे द्रोह करता है उसका त्याग करनाही उचित है और उससे बोलना बन्द करके सबकामोंमें उस दुष्टको त्याग देना चाहिये, जिन महात्मा और अभ्यागतोंका ऐसा उत्तम माहात्म्य है, वे अभ्यागत कौनसे हैं ?

उत्तर–जो प्राणी कभी भी देहके सुखदुःखको नहीं जानते और भजन करनेमें अत्यन्त चतुर हैं. ऐसे पुरुषोंकी अभ्यागतसंज्ञा है, वेही अभ्यागतलोग त्रिभुवनको पवित्र करते हैं.

प्रणाम करते हैं, दंडवत् करते हैं, यह मर्यादा परमोत्तमहै. वे लोग सर्वान्तर्यामी,परपुरुष गुहाशय, ईश्वरका मान करते हैं, कुछ देहाभिमानियोंको नहीं करते, सो हम उस समय करते हैं॥२२॥ विशुद्धसत्त्व अन्तःकरण वासुदेव शब्दसे कहाहै, तहां आवरणरहित पुरुष वासुदेव प्रकाशे हैं, इससे सब जीवमात्रमें शुद्धसत्त्व भगवान् वासुदेव विराजमान हैं,इससे ऐसे अन्तःकरणमें भगवान् वासुदेव जो कि इंद्रियोंसे अगोचर हैं, मैं उनकी प्रणामद्वारा सेवा करता हूँ ॥२३॥ हे वरारोहे!यद्यपि दक्षप्रजापति तुम्हारा देहकर्ता पिता है,परन्तु तोभी मेरा द्रोही है, तुमको उसको देखनाभी नहीं चाहिये. क्योंकि उसके अनुचरभी मुझसे वैर रखते हैं. सब देवता जानते हैं कि; मेरा कुछ अपराध नहीं था जो दक्षने विश्व रचनेवालोंके यज्ञमें

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥ सत्त्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे मनसा विधीयते ॥ २३ ॥ तत्ते निरीक्ष्यो न पिताऽपि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ॥ यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥ २४ ॥ यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥ संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० चतुर्थ० उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः पत्न्यंगनाशं ह्युभयत्र चिंतयन् ॥ सुहृद्दिदृक्षुः परिशंकिता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥ १ ॥ सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद्रुदंत्यश्रुकलाऽतिविह्वला ॥ भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥ २ ॥

मुझको दुर्वचन कहकर मेरा अपमान किया॥२४॥जो मेरे वचनका उल्लंघन कर दक्षके घर जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण न होगा,क्योंकि अति प्रशंसित अपने सुजनोंसे तिरस्कार हो मरणके तुल्य होता है॥२५॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायामुमाशिवसंवादो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–हर तज चतुराध्यायमें, सती गई पितुगेह । शंभुभाग देखेउ नहीं, तुरत उठी जर देह ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, शिवजी तो यह बात कहकर चुपहोगये, परन्तु मनमें कहनेलगे कि, सतीके तनका दोनों ओरसे विनाश हुआ. और सती पिताके देखनेकी इच्छा कर महादेवके भयसे कभीबाहर जाती थी, और कभी भीतर आती थी; दुबधामें मन था ॥१॥ सुहृदोंके दर्शनकी इच्छाके नाशसे विमन हो प्रेमके

वशीभूत हो रोनेलगीं और आँखोंसे आंसुवोंकी धारा बह निकली सती क्रोधमें आनकर काँपने लगी. और ऐसी विह्वल हुई कि उनके समान दूसरा कोई नहीं हो, इसप्रकार भवको भवानीने देखा मानों अभी भस्म करदेगी ॥२॥ फिर वहांसे कठिन श्वासलेती घरसे निकल, शिवको त्याग शोक और क्रोधसे व्यथित हो हृदयमें दुःख मान स्त्रीस्वभावसे मूढ़मति सतीको महात्माजनोंके प्यारे श्रीविश्वनाथ शिवने प्रेमसे अपना आधा अंग बांट दिया, ऐसे भोलेनाथका साथ छोड़ पिताके घरको चलदी॥३॥तब सतीको शिवके गण नंदीगणपर चढ़ाय, मैना, गेंद, दर्पण, कमल, श्वेतछत्र, पंखा, भाला आदि लिये गाते और दुन्दुभी, शंख, वीणा, बासुरी बजाते प्रसन्न होकर चले ॥ ४ ॥ ५॥ चहुँ ओरसे ब्राह्मण वेदध्वनि करके यज्ञ संबन्धी

ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ॥ पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्प्रेम्णात्मनो योऽर्धं मदात्सतां प्रियः ॥ ३ ॥ तामन्वगच्छन्द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ॥ सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरोवृषेंद्रास्तरसा गतव्यथाः ॥४॥ :तां सारिकाकंदुकदर्पणांबुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ॥ गीतायनैर्दुंदुभिशंखवेणुभिर्वृषेंद्रमारोप्य विटंकिता ययुः ॥५॥ आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ॥ मृद्दार्वयःकांचनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभांडं यजनं समाविशत् ॥६॥ तामागतां तत्र न कश्चनाऽऽद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ॥ ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥ ७ ॥ सोदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्त्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ॥ दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनंदिता सती ॥ ८ ॥

पशुको मार रहे हैं, ब्राह्मण पूजन कर रहे हैं, चारों ओर देवता विराजमान हैं. मृत्तिका, काष्ठ, लोहा, सुवर्ण, कुश और चर्म इनके बनायेहुए पात्र जहां यज्ञशालामें धरे थे उस यज्ञमें सती पहुँची ॥ ६ ॥ परन्तु यज्ञकर्ता दक्षके भयसे माता और भगिनीके अतिरिक्त और किसी देव, मुनि, नगरनिवासीने कुशल क्षेम न बूझी, और उसकी ओर न देखा क्योंकि उसके पिताने जो उसका आदर सन्मान नहीं किया. केवल एक माता और बहिन तो स्नेहके आंसू भर गद्गद कण्ठसे प्रीतिसहित आनन्दसे मिलीं ॥७॥ पिताके निरादर, और अवज्ञासे माता और मौसियोंके उत्तम आसनका देना और

निरादरसे शुश्रूषाका करनासतीने कुछ स्वीकार न किया और बहिनोंने कुछ रीति प्रीतिकी बातें करीं परन्तु सतीने उनकाभी कुछ ध्यान न किया ॥ ८ ॥ क्योंकि, उस यज्ञमें कहीं शिवजीका भाग नहीं देखा तो समझा कि, विश्वेश्वर विभुका विना अपराध निरादर किया ऐसे अभिमानी यज्ञको देख भुवनेश्वरी भवानी महाक्रोधमें भरगई मानो अभी त्रिलोकीको भस्म करदेगी, इसप्रकार यज्ञशालामें सतीने रोष किया * ॥ ९ ॥ तब भूतगण दक्षके मारनेको दौडे; उस समय अपने तेजसे शिवगणोंको रोककर शिवद्रोही कर्ममार्ग करनेसे जिसको अभिमान हुआ, उस अभिमानी और

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ॥ अनादृता यक्षसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥ ९ ॥ जगर्ह साऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ॥ स्वतेजसा भूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥ १० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायिनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ॥ तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवंतं कतमः प्रतीपयेत् ॥ ११ ॥ दोषान्परेषां हि गुणेष्वसाधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ॥ गुणांश्च फल्गुन्बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥ १२ ॥

अज्ञानी दक्षको सब सभाके सन्मुख गम्भीर वाणीसे धिक्कार देकर ॥ १० ॥ सती बोली सब शरीरधारियोंके प्रिय आत्मा, अचिंत्यरूप, चिदानन्द, ऐसे भोलेभाले शिवजी, न तो कोई इनसे बड़ा, न किसीके शत्रु, सबके आत्मा, उनसे तेरे बिना कौन शत्रुता करे ? ॥ ११ ॥ हे द्विज ! औरोंके गुणोंमें साधु दोष ग्रहण नहीं करते हैं; तुम सरीखे निंदक, खोटे मनुष्य थोड़े गुणोंको बहुत नहीं करते हैं, और मध्यस्थ पुरुष अपने ज्ञानसे यथावस्थित

---

* **शंका**—दक्षने अपने यज्ञमें शिवकी निन्दा करनेके लिये क्या चिह्न कर रक्खा था. जिस चिह्नको देखकर सती भस्म होगई ?

उत्तर—दक्षने अपनी यज्ञशालाके एक खम्भेमें अपने हाथसे ऐसा लिखकर लगादिया था कि सबके लिये सूचना की जाती है कि इस हमारे यज्ञमें जो कोई प्राणी शिवका नाम मुखसे उच्चारण करेगा वह प्राणी उसी समय यज्ञशालासे बाहर निकाल दिया जायगा, जो कदापि हमारा पिता ब्रह्मा भी इस यज्ञमें शिवका नाम लेगा तो वहभी यज्ञसे बाहर निकाल दिया जायगा और दूसरे प्राणीकी क्या सामर्थ्य है भावीके वशीभूत होकर सब मुनिभी दक्षके त्राससे डरगये इसीलिये. उत्तर दक्षको नहीं दिया कि यह दुष्ट क्या अन्याय करताहै ?? जो खम्भेमें शंकरकी ऐसी निन्दा लिखी है, उसी निन्दाको खम्भेमें लिखी हुई देखकर सतीको अत्यन्त क्रोध हुआ और यज्ञकी अग्निमेंजलकर भस्म होगई.

गुणदोष ग्रहण करते हैं और जो सत्पुरुष हैं,वे केवल गुणोंहीको ग्रहण करते हैं,दोषोंपर ध्यान नहीं देते, बरन् थोडेसे गुणोंको अधिक करके मानते हैं, अरे शठ ! ऐसे सज्जन पुरुषोंका तैंने अपमान किया ॥ १२ ॥ शरीरमें जीवको माननेवाले नीच लोग सदा ईर्षासे महत्पुरुषोंकी निंदा करते हैं, यह बात कुछ आश्चर्य्यकी नहीं है, क्योंकि महात्माजनोंके चरणारविन्दोंकी रजसे और प्रतापसे शठ और दुष्ट जनोंके लिये निंदाही शुभ है ॥ १३ ॥ शिव यह जो दो अक्षरका नाम है, जो कोई किसीप्रकारसे एकबारभी यह नाम मुखसे लेता है, उसके पापोंका तत्क्षणही विनाश होजाता है,ऐसे आनंदस्वरूप जिनकी आज्ञा संसारमें कोई उल्लंघन न करसके, तू ऐसे सर्वसामर्थ्यवान् शिवजीसे द्रोह करता है, तेरा

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिंदा कुणपात्मवादिषु ॥ सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजस्सु तदेव शोभनम् ॥ १३ ॥ यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसंगादघमाशु हंति तत् ॥ पवित्रकीर्तिं तमलंघ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥ १४ ॥ यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ॥ लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान्द्रुह्यति विश्वबंधवे ॥ १५ ॥ किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादय स्तमवकीर्य जटाश्श्मशाने ॥ तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥ १६ ॥ कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ॥ छिंद्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥ १७ ॥

कल्याण कभी न होगा ॥१४॥ अरे! जिन कैलासपति महादेवजीके पदपंकजकी रज ब्रह्मरस आसवकी इच्छावालोंके मनरूपी भ्रमरोंसे सेवित है, सब लोकोंके मनकी कामना पूर्ण करनेवाले, विश्वबन्धुसे तैंने द्वेष किया है ॥ १५ ॥ जिन शिवको तू अशिव कहता है,क्या तेरे अतिरिक्त ब्रह्मादिक उनको नहीं जानते ? श्मशानमें जटा फैलाये, चिताभस्म शरीरसे लगाये, मनुष्योंके कपालोंकी माला धारण किये, भूतगणोंको साथ लिये पिशाचोंमें वास करते हैं. तोभी उनके चरणकमलकी रज ब्रह्मादिक अपने मस्तकपर धरते हैं ॥ १६ ॥ धर्मके रक्षक ईशकी निरंकुश होकर जहां लोग निंदा करते होंय, और वहां अपनी कुछ पार न बसाय, तौ कान बंद करके वहांसे उठजाय, और जो निंदकके मारनेकी सामर्थ्य होय तो जैसे बनै

वैसे उसकी जिह्वा काटकर खंड खण्ड कर डाले,फिर अंतको अपने प्राण त्याग कर दे,यह सनातन धर्महै॥१७॥हे नीलकण्ठके निंदक!तेरे:शरीरसे जो यह मेरा देह उत्पन्न है इस देहको नहीं रक्खूंगी,क्योंकि जो कोई:भूलसे अशुद्ध अन्नका भोजन कर ले,वह वमन.करनेसेही शुद्ध होताहै॥१८॥ अपने धर्ममें रहनेवाले महामुनिकी मति वेदके विधिनिषेध वाक्योंमें प्रीति नहीं करती,जैसे देवता और मनुष्योंकी गति अलग अलग है, एक संग नहीं होसकती; इसलिये:प्रवृत्तिमार्ग हो,अथवा निवृत्तिमार्ग हो परंतु अपने धर्ममें स्थित होकर किसीकी निन्दा करनी उचित नहीं॥१९॥मुनियोंने दोनों मार्ग सत्य कहेहैं, प्रवृत्तिकर्ममें अग्निहोत्रादिक करना चाहिये और निवृत्तिकर्ममें शम,दमादि, सत्यभाषण, राग और विराग इन दोनों चिह्नोंका आश्रय करना चाहिये, यह सब वेदोंने बहुत विचार करके कहा है और जो मनुष्य इन दोनों कर्मोंको एकही समय करै तो ये परस्पर विरोधी होजाते हैं और शिव तो परब्रह्म ईश्वर हैं;वे चाहै ईश्वरकी आज्ञा माने,:चाहैं न माने उनपर वेदकी आज्ञा नहीं है॥२०॥हे पितः!जो पदवी हमको प्राप्तहै, वोह तुमको कभी नहीं मिलसकती,क्योंकि हमारी इच्छामात्रसे अणिमा,महिमादिक सिद्धियां उत्पन्न होसकतीहैं,जिनका बड़े बडे ब्रह्मज्ञानी और ध्यानी सेवन करते हैं, जो अन्न खानेवाले प्राणपोषी यज्ञशालामें हवन कर धूममार्ग सेवन करते हैं,उनको प्राप्त नहीं होती, हमारी पदवी ऐसी है कि जिनके चिह्न प्रगट हैं,अवधूत लोग जिनकी सेवा करतेहैं॥ २१ ॥अरे शिवापराधी! तुझसे जो यह मेरा देह उत्पन्न हुआ है इस देहसे मेरा

अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकंठगर्हिणः ॥ जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमंधसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥ न वेदवादाननुवर्त्तते मतिः स्वएव लोके रमतो महामुनेः ॥ तथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥ १९ ॥ कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिंगमाश्रितम् ॥ विरोधि तद्योगपदैककर्त्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि धर्मः नर्च्छति ॥२०॥ मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ॥ तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिंगा अवधूतसेविताः ॥ २१ ॥ नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ॥ व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसंगतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥ २२ ॥

कुछ प्रयोजन नहीं; तुझसरीखे कुमति दुर्जनके नामसे मुझे लाज आतीहै,उसके जन्मको धिक्कारहै जो महात्माओंका निन्दकहै ॥ २२ ॥ भगवान् शिव वृषध्वज हांसीसेभी कभी पुकारेंगे कि,हेदक्षसुते! उस समय मुझे महाक्लेश होगा और मुसकान मान तज लज्जित होना पडैगा, इसलिये वह अधम शरीर जो तुझसे उत्पन्न हुआ है;मैं अभी त्याग करूंगी ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोलेकि हे शत्रुहन् !इसप्रकारकी बातें सती दक्षसे कह मौन हो उत्तरकी ओरको मुख करके बैठगई और आचमन कर पीतवसन धार नेत्र मूँदकर योगमार्गका साधन करनेलगी॥ २४॥और आसनको जीत प्राण अपान पवनको समान कर नाभिचक्रको उदानवायुसे उठाय, बुद्धिसे हृदयमें स्थित कर निश्चल होकर कण्ठमार्गसे भ्रुकुटीके मध्यमें लाकर स्थापित किया ॥ २५ ॥ इसप्रकारमहात्माजनोंके परमपूज्य सदाशिवने जिसको आदरसन्मानसे गोदीमें रक्खा ऐसे अपने कोमल शरीरको दक्षप्रजापतिपर क्रोधकर मनस्विनी सतीने पवन और अग्निको धारण किया ॥ २६ ॥ और जगद्गुरु शिवजी अपने पतिके चरणकमलका चिंतवन करनेलगी. उस निर्दोषी सतीने औरको नहीं देखा; अपने कल्मषदेहको देख समाधिके अनलसे अपने गात्रको भस्म करदिया ॥२७॥ उस समय देखनेवालोंका पृथ्वी और आकाशमें महाभयानक हाहाकार शब्द हुआ कि,खेद करके शून्य;शिवजीकी प्रिया सतीने दक्षके निरादरसे

गोत्रं त्वदीयं भगवान्वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ॥ व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यंह व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदंगजम् ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शांतवाक् ॥ स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥ २४ ॥ कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ॥ शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरवस्थितं कंठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिंदिताऽनयत् ॥ २५ ॥ एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमंकमादरात् ॥ जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणम् ॥२६॥ ततः स्वभर्तुश्चरणांबुजासवं जगद्गुरोश्चिंतयती न चापरम् ॥ ददर्श देहं हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥ २७ ॥ तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धाहेति वादः सुमहानजायत ॥ हंत प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥ २८ ॥

क्रोधित होकरअपना तन त्याग दिया ॥ २८ ॥ अहो प्रजाओ ! इस महादुरात्मा चराचरके प्रजापतिकी घोर,दुष्टता तो देखो,जिसके अनादर करनेसे अनेक प्रकारके मान करनेयोग्य निष्पाप सतीने अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥२९॥ सो यह अत्यन्त क्रोधी, कठोरहृदय,शिवद्रोही लोकमें बडी दुर्नामताको प्राप्त होगा. क्योंकि जिसने अपने अपराधसे मरतीहुई पुत्रीको नहीं बचाया ॥३०॥ इस प्रकार परस्पर लोग बातें कररहेथे उसीसमय अद्भुत सतीका देहत्याग देखकेमहादेवके पार्षद आयुध लेलेकर दक्षके मारनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ गणोंके आनेका वेग सुनकर भगवान् भृगुजी यज्ञके नाशकोंके नाशक यजुर्वेदमंत्रकी आहुतिसे दक्षिणकी अग्निमें होम करनेलगे ॥ ३२ ॥ भृगुजीके हवन करनेसे और अपने तपके बलसे

अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ॥ जहावसून्यद्विमतात्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥ २९ ॥ सोयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ॥ यदंगजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥ ३० ॥ वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ॥ दक्षं तत्पार्षदा हंतुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ ३१ ॥ तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान्भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ॥ ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥ ३३ ॥ तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ॥ हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० चतुर्थ० सतीदेहोत्सर्गो०चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥ स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥

अमृत पियेहुए सहस्रों ऋभु नामक देवता बड़े वेगके साथ वेदीसे उठकर निकलपडे ॥ ३३ ॥ हवनकी अधजली लकड़ी हाथमें लिये सुन्दर ब्रह्मतेजसे बढ़ेहुए ऋभुनामक देव गणोंको मारनेलगे,सो सब प्रमथ गुह्यक शिवके पार्षद यक्षोंसमेत भूत प्रेत सब दिशाओंको भागनेलगे॥ ३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां सतीदेहत्यागवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा-इस पंचम अध्यायमें, सतीमरण सुन ईश । वीरभद्र भेजो तुरत, हरो दक्षको शीश ॥५॥ मैत्रेयजी बोले कि, दक्षप्रजापतिके निरादरसे सतीके तनका त्याग, और अपने पार्षदोंकी

सेनाका ऋभु नामक देवताओंसे विद्रावण, शिवजीनेजो नारदकेमुखसे सुना तो महादेवजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ और क्रोधित होकर दांतोंसे होठोंके पुट दबाय धूर्जटी रुद्र झट उठकर भयंकररूपसे अट्टहासके साथ महाघोर नाद कर बिजलीकी अग्निके समान बालोंकी उग्रकांतिवाली जटाको उखाडकर पृथ्वीपर देमारी ॥ २ ॥ जटाको धरणी पर पटकतेही उसमेंसे एक वीरभद्रनामक पुरुष प्रगट हुआ, महादेहधारी, स्वर्गतक लम्बा शरीर, सहस्र भुजा, मेघवत् वर्ण, तीन सूर्यके समान लाललाल नेत्र, महाविकराल डाढें, प्रज्वलित अग्निसदृश बाल, कपालमाला धारण किये, अनेकप्रकारके उठेहुए आयुध हाथोंमें लिये श्रीभूतनाथके सन्मुख हाथ जोडकर विनती करनेलगा ॥ ३ ॥

क्रुद्धस्सुदष्टौष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम्॥उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्गंभीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥ २ ॥ ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ॥ करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥३॥ तं किं करोमीति गृणंतमाह बद्धांजलिं भगवान्भूतनाथः ॥ दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे ॥ ४ ॥ आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ॥ मेने तदात्मानमसंगरंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥ ५ ॥ अन्वीयमानः सह रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ॥ उद्यम्य शूलं जगदंतकांतकं स प्राद्रवद्घोषणभूषणांघ्रिः ॥ ६ ॥

कि, हे नाथ ! मैं क्या करूँ ? मेरे लिये क्या आज्ञा है ? इसप्रकार वीरभद्रको हाथ जोडे खडा देख भगवान् भूतेश्वर बोले कि,हे रुद्र ! हे भट ! तू मेरे सब भटोंमें अग्रणी हो क्योंकि तू मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है, अभी दक्षका नाश कर, तुझ बिना और दक्षको कोई नहीं मारसकेगा ॥४॥ हे विदुर ! अत्यन्त क्रुद्ध श्रीमहादेवजीकीआज्ञा पाय वीरभद्र देवोंके देव, सर्वसमर्थ शिवजीकी परिक्रमा करके उस समय अप्रतिम वेगसे वह अपने आपको महाबलियोंका बल विनाश करनेको बलवान् जानता था ॥ ४ ॥ ५॥ फिर अत्यन्त गंभीर नाद करनेवाले रुद्रपार्षदोंको संग ले वीरभद्रने महाभयंकर शब्द कर मृत्युका नाश करनेवाला त्रिशूल हाथमें ले चरणोंके घुँघुरुओंके शब्दसे दिशाओंको

शब्दायमान करता, वीरोंका मान हरता, धरणीको धमकाता, पर्वतोंको गिराता, दक्षके देशकीओरको धाया ॥ ६ ॥ जब दक्षका मख पांच योजन रहा तब ऋत्विज, यजमान, सभापति ब्राह्मण, उत्तर दिशाकी ओर धूलि उडती, और महा धुंधुकार देख परस्पर विचार करनेलगेकि आज उत्तरकी ओर यह कैसा अन्धकार है ? अरे ! यह धूलि कहांसे आई ॥७॥ऐसा तीव्र पवनभी नहीं चलता ? चोरभी नहीं है, उनको उग्र दंडदाता राजा प्राचीनबर्हि अभी जीता है, और गौवोंके आनेका भी यह समय नहीं है तो फिर यह धूलि कहांसे आती है? आज सब संसार प्रलय तो नहीं होजायगा ? यह आश्चर्य्य देख सब चकित होरहे थे॥८॥प्रसूति आदि सब स्त्रियें उद्विग्न मन कर बोलीं, अरी ! यह वही अपराध है, जो

अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ॥ तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजप
त्न्यश्च दध्युः ॥ ७ ॥ वाता न वांति नहि संति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवतीहोग्रदंडः ॥ गावो न काल्यंत इदं कुतो
रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥ प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ॥
यत्पश्यंतीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥ ९ ॥ यस्त्वंतकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पित
दिग्गजेंद्रः ॥ वितत्यनृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं
मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या॥ कराल दंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतोविधातुः ॥ ११ ॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशो
च्यमाने जनेन दक्षस्य मखे महात्मनः ॥ उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥

सब बेटियोंके देखते देखते निरपराधिनी अपनी सुता सतीका दक्ष अन्यायीने अनादर किया ॥९॥जो भूतेश्वर त्रिभुवननाशक शिव अन्तकालमें जटा ट फैलाय अपने त्रिशूलके अग्रभागसे दिग्गजोंको निर्मूल करते हैं, और जब अस्त्रोंको उठाकर भुजारूपी ध्वजाओंको फैलाकर नाचते हैं. और उच्चाट्टहाससे गर्जन शब्द करके दशों दिशाओंके दिग्गजोंको विदीर्ण करनेवाले॥१०॥क्रोधका तेज जिनका सहा नहीं जाय उन महाक्रोधीकी क्रोधभरी भ्रुकुटीसे और कठिन करालदाढ़ोंसे बखेर दिया है. सर्वत्र नक्षत्रमण्डल जिन्होंने, और प्रलयकालकी ज्वालावत्लाल लाल तीन नेत्र हैं विशाल जिनके, ऐसे प्रचण्ड अखण्ड तेजवान् शिव शूलपाणीके कोपसे ब्रह्माभीसुख नहीं पासक्ता॥११॥इस प्रकार महात्मा दक्षके यज्ञमें उद्विग्न दृष्टि कर

परस्पर वार्ता कररहेथे, इतनेमें अनेक भाँतिके सहस्रों उत्पात महाभयदायक पृथ्वी और आकाशमें होनेलगे॥१२॥हे विदुर! इतनेमें अनेकप्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये,काले पीले वेष किये,मगरके समान जिनके उदर,मुख, वामनआदि अनेक शंकरकिंकर, रुद्रगणोंने दक्षके यज्ञको चारोंओरसे घेर लिया *॥१३॥किसीने यज्ञशालाके पूर्व पश्चिम स्तम्भके समीप पश्चिमका देवशाला प्राग्वंश था उसको तोडा, किसी गणने यज्ञशालाके पश्चिम ओर पत्नीशाला थी उसको फोडा, यज्ञशालाके आगे स्थित सभामण्डप था किसीने उसको तोडा,सभाके आगे अग्नि करनेकी शाला थी किसीने उसको तोडा,किसीने यजमानोंके घर तोडे, किसीने पाक भोजनशालातोडडाली ॥ १४ ॥ किसीने यज्ञके पात्र तोड कलश फोडदिये,किसीने

तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ॥ पिंगैः पिशंगैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत॥१३॥
केचिद्बभंजुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथा परे ॥ सद आग्नीध्रशालां च तद्विहार महानसम् ॥ १४ ॥ रुरुजुर्यज्ञपात्राणि
तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुंडेष्वमूत्रयन् केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥ १५ ॥ अबाधंत मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् ॥
अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६ ॥ भृगुं बबंध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम् ॥ चण्डीशः पूषणं देवं
भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत्॥१७॥सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः॥तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन्॥१८॥
जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः ॥ भृगोर्लुलुंचे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥

अग्नि बुझादी, किसीने कुण्डमें मूत दिया, किसीने वेदी और मेखला भेदन कर दिया ॥१५॥ कोई कोई मुनियोंको मारनेलगे कोई स्त्रियोंको भयानक वेष दिखाकर डराने लगे, किसीने देवताओंको खड़ा देख कर पकडलिया॥१६॥मणिमान्‌ने भृगुको बांध लिया,वीरभद्रने दक्षको घेर लिया, चण्डीशने पूषादेवको पकड़ा, नन्दीश्वरने भगदेवको पकड़ा ॥१७॥ शिवके गणोंने और पार्षदोंने उनके तकतककर ऐसे पत्थर मारे कि जिससे ऋत्विज,सभासद,सब देवता,अत्यन्तपीडीत होकर चारों ओरको भागगये॥१८॥हाथमें स्रुवा लिये जो हवन कर रहे थे उन भृगुजीकी दाढी

---

* **शंका**—दक्षके यज्ञकी ब्राह्मणोंने वेदके मंत्रोंसे रक्षा की थी. और जब वीरभद्रने यज्ञका विध्वंस करडाला तब उन वेदके मंत्रोंने वेद रूप होकर यज्ञकी रक्षा क्यों नहीं की?

उत्तर—जब यज्ञके हवनकुंडमें सती जल भस्म होगई, तब सतीके शरीरको देखकर भविष्यके जाननेवाले मुनियोंने जानलिया कि, यज्ञ अब बहुत शीघ्र भ्रष्ट होगा देर नहीं है ऐसा जानकर बहुत शीघ्र वेदके मंत्रोंका विसर्जन कर दिया.

मूँछे पकडकर वीरभद्रने उखाड़ डालीं, क्योंकि शिवशापके समय भृगु मोछोंपर हाथ फेरकर हँसे थे॥ १९॥भगवान् वीरभद्रनें भगदेवताकी आंखें निकाल लीं, क्योंकि शापके समय दक्षको उसने सभामें आंखोंसे सूचना की थी॥२०॥और पूषाकी गर्दन पकड़कर उसके दांत उखाड़ डाले,जैसे बलदेवजीने कलिंगदेशके राजाके दाँत तोड डाले थे. इसीप्रकार पूषाके दांत झाड़दिये,क्योंकि यहभी शिवजीको शापदेतेसमय दांतदिखाकर ठट्ठे मार मार कर हँसा था॥२१॥दक्षकी छातीपर चढ़कर वीरभद्र महातीक्ष्ण शस्त्रोंसे उसकाशिर काटनेको उद्यत हुए, तौभी काटनेकी सामर्थ्य न हुई ॥ ॥ २२ ॥ जब अस्त्रशस्त्रोंसे उसकी त्वचा न कटसकी तब वीरभद्रको बड़ा विस्मय हुआ,और पशुपतिको मनमें धार बहुत कालतक विचार करता रहा ॥ २३ ॥ पशुओंके पति वीरभद्रने उस यज्ञमें कण्ठ घोटकर मारनेका उपाय देखकर यजमान पशुरूप दक्षका शिर पराक्रम करके देहसे मरोडकर उखाड़लिया॥२४॥बहुत अच्छा हुआ यह उसके कर्मकी जहांतहां भूत-प्रेत-पिशाचोंमें प्रशंसा हुई,और दक्षके पक्षमें महाशोकसंताप हुआ ॥ ॥ २५॥ उस समय वीरभद्रने अत्यन्त क्रोधित होकर दक्षका शीश दक्षिणाग्निमें हवन करदिया,और यज्ञस्थानको विध्वंस करफूंक पजार अपनी भूतसेनाको संग ले कैलासको चलेगये ॥२६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा-इसी षष्ठ अध्यायमें, ब्रह्मादिक सब देव । दक्ष जिवावन हेत सब, गये जहां महादेव ॥ ६ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब सब

भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि ॥ उज्जहार सदःस्थोऽक्ष्णा यः शपंतमसूसुचत् ॥ २० ॥ पूष्णश्चापातयद्दंतान्कालिंगस्य यथा बलः ॥ शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ २१ ॥ आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ॥ छिंदन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत् त्र्यंबकस्तदा ॥ २२ ॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ॥ विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥२३॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ॥ यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः॥२४॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन् दक्षिणाग्नावमर्षितः॥तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भा०म० दक्षयज्ञविध्वंसनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच॥अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥ शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥

देवगण शिवकी सेनासे पराजित हो त्रिशूल, पट्टिश,निस्त्रिंश, गदा, परिघ, मुद्गर इनसे मारेगये ॥ १ ॥ तब टूटे कटे अंगभंग सब देवता डरके मारे अत्यन्त व्याकुल होकर ऋत्विक् और सभापतियोंको संग ले ब्रह्माके समीप जा नमस्कार कर सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २ ॥ परन्तु इस भविष्यवृत्तान्तको कमलोद्भव ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण पहलेसेही जानते थे. इसीलिये वे दोनों दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥ देवताओंकी दुहाई सुनकर ब्रह्माजी बोले कि,तेजवन्तोंका अपराध किया हो, और दूसरा उस अपराधका बदला चाहै तो उसका मनोरथ उसको फलदायक न होगा ॥४॥ यद्यपि उन्होंने तुम्हारे साथ ऐसा भी किया, तोभी तुम सब उनके अपराधी हो क्योंकि जो सदा यज्ञमें शिवको भाग

उच्छिन्नभिन्नसर्वांगाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ॥ स्वयंभुवे नमस्कृत्यकार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥ २ ॥ उपलभ्य पुरैवै
तद्भगवानब्जसंभवः॥नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥ तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ॥
क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ॥
प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीतांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ :आशासना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपिते
न यस्मिन् ॥ तमाशु देवं प्रियया. विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥६ ॥ नाहं न यज्ञो.न च यूयमन्ये ये देहभा
जो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतंत्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥ ७ ॥

मिलतारहा और आज शिवका भाग नहीं निकाला अब तुम शीघ्र शुद्ध चित्तकर शीघ्रप्रसन्न होनेवाले शिवके चरण पकड़कर उनको प्रसन्न करो,तो वह तुम्हारा सब अपराध क्षमाकरेंगे॥५॥मैं यह चाहता हूँ कि, दक्षजी उठैं, और यज्ञ फिर होय जिन महादेवके कोपसे लोकपालसहित लोक नष्ट होजाते हैं,उन सदाशिवके पास जाकर शीघ्र निवेदन करो,जो कि,दुष्टदक्षके दुर्वाक्योंके बाणोंसे उनका हृदय विंध रहाहै॥ ६ ॥ और उन स्वाधीन शिवके तत्त्व और पुरुषार्थके प्रमाण और बलवीर्यको न तो मैंने जाना और न विष्णु भगवान् जानसक्तेहैं,न तुमलोग जान सक्ते हो और दूसरे पुरुषकी

तो क्या सामर्थ्य है ? ॥७॥ फिर ऐसे अवसरपर क्या उपाय बन सक्ताहै? ब्रह्माजी इसप्रकार देवताओंको समझाय बुझाय पितरोंको और प्रजापतियोंको संग ले अपने स्थानसे जहाँ त्रिपुरारी शिवजीके रहनेका परमश्रेष्ठ आश्रम जो पर्वतोत्तम कैलास है वहांको चले ॥ ८ ॥ जहाँ जन्म, औषधि,तप,मन्त्र और योगकी सिद्धि रहती है, और किन्नर,गन्धर्व,अप्सरा नित्य बसती हैं ॥ ९ ॥ नानाप्रकारकी मणिमय शृंगवाले गेरुआदि धातुओंसे चित्र विचित्र रंगोंसे शोभा होरही थी, और भांति भांतिके वृक्ष लता गुल्म फूल फलोंसे भरे लटक रहे थे,नानाप्रकारके मृगोंके समूह जहां तहां दौड़ते फिरते थे॥ १०॥नानाप्रकारके निर्मल झरने झर रहे थे, अनेकप्रकारकी कन्दरा और शिखर शोभा दे रहे थे, उनमें सिद्धलोगोंकी

स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ॥ ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥८॥ जन्मौषधितपोमंत्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ॥ जुष्टं किन्नरगंधर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥ ९ ॥ नानामणिमयैः शृंगैर्नानाधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥ १० ॥ नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकंदरसानुभिः ॥ रमणं विहरंतीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥ मयूरकेकाभिरुतं मदांधालिविमूर्च्छितम् ॥ प्लाविते रक्तकंठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥ आह्वयंतमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः ॥ व्रजंतमिव मातङ्गैर्गृणंतमिव निर्झरैः ॥ १३ ॥ मंदारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ॥ तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥ १४ ॥

युवतियें अपने अपने पतियोंके संग अत्युत्तम रीति प्रीतिसे विहारकर रही थीं॥ ११॥मयूर अपनी मयूरनियोंके संग उमंगमें भर मधुरवाणी बोल रहे थे,कामांध भ्रमरोंकी पंक्तिकी पंक्ति गुंजार रही थी,रक्तनेत्रवाली कोकिला कुहू कुहू शब्द उच्चार रही थी,और अनेकप्रकारके पक्षी अपनी२ मनोहर बोलियां बोल रहे थे॥ १२॥मनकी अभिलाषाके पूर्ण फलदायक वृक्षोंकी शाखा, ऊंचे ऊंचे पर्वतोंपर पवनके झकोलोंसे ऐसे झूमरही थीं, मानों हाथ उठा उठाकर पर्वत पक्षियोंको बुला रहेहैं,मन्द मन्द गति हाथियोंकी ऐसी दृष्टि आतीथी मानो पर्वत चल रहेहैं,झरनोंकी ध्वनि ऐसी सुनाई आती थी मानों भूधर परस्पर बात कर रहे हैं॥ १३॥ और वहां मन्दार,पारिजात, सरल, ताल, तमाल, शाल, कोविदार, असन, अर्जुन ॥ १४॥

आम, नीम, कदंब, पुन्नाग, नागकेशर (चम्पक) गुलाब, अशोक, बकुल, कुन्द, कुरबक ॥ १५ ॥ स्वर्णपर्ण, शतपत्र, अनेक प्रकारकी वांसी, कुब्जक, मल्लिका, माधवीलताकी न्यारीही शोभाथी॥ १६॥ पनस, पलाश, गूलर, पीपर, पाकर, न्यग्रोध, वट, हींग, भोजपत्र, ओषधी, सुपारी, मोटी सुपारी, जामुन, राजपूर, खजूर, आम्रातक, आमडें, प्रियाल, मधुक, इंगुदी॥ १७॥ हिंगौट आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंकी शोभा होरहीथी औरभी अनेक जातिके वृक्ष और वेणु कीचकोंसे शोभायमानथे, कहीं तालोंमें कुमुद, उत्पल, कह्लार, शतपत्र जातिकी ॥ १८॥ कमलिनी खिल रहीं थीं, सरोवरोंमें मनोहर पक्षियोंके वृंदोंकी कलकल ध्वनि मनको मोहे लेती थी मृग, शाखामृग, मर्कट, सिंह, सूकर, ऋक्ष, शेही ॥ १९ ॥ गवय, रोझ, कस्तूरीमृग,

चूतैः कदंबैर्नीपैश्च नागपुन्नागचंपकैः ॥ पाटलाशोकबकुलैः कुंदैः कुरबकैरपि ॥ १५ ॥ स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वरवेणुक जातिभिः ॥ कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मंडितम् ॥ १६ ॥ पनसोदुंबराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिंगुभिः ॥ भूर्जैरोष धिभिः पूगै राजपूगैश्च जंबुभिः ॥ १७ ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेंगुदैः ॥ द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकी चकैः ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः ॥ १८ ॥ नलिनीषु कलं कूजत्खगवृंदोपशोभितम् ॥ मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेंद्रैर्ऋक्षशल्यकैः ॥ १९ ॥ गवयैर्नाभिभिर्व्याघ्रैर्निर्जुष्टं महिषादिभिः ॥ कदलीषंडसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥ ॥ २० ॥ पर्यस्तं नंदया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ॥ विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥ २१ ॥ ददृशु स्तत्र ते रम्थामलकां नाम वै पुरीम् ॥ वनं सौगंधिकं चापि यत्र तन्नामपंकजम् ॥ २२ ॥

भेड़िये और महिषादिक पशु जहाँ तहाँ घूमरहेथे ॥ कर्णोंमें आंतवाले पशु, एक पगके जीव, घुडमुहे पशु, वृक, और केलेके समूहोंसे ढकीहुई कमलनियोंकी शोभा हो रही थी ॥२०॥ आगे बढकर देखा तौ नन्दा नाम गंगा चारों ओर बहरही हैं, तटके निकट जल चला जाता है, और सतीजीके स्नानकी सुगन्धिसे पुण्यरूप होरही है, और जहाँ तहाँ पुलिन कदलीवनसे घिरेहुए हैं सुन्दर शोभायमान शिवजीके परमोत्तम कैलासपर्वतको देखकर सब देवता अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २१ ॥ और उसके निकट अतिरमणीक अलकानाम्नी कुबेरकी पुरीको देखा

और सौगंधिकनामक कमलोंका वन दृष्टि आया॥२२॥श्रीपति भगवान् वासुदेवके पदपंकजकी रेणुसे परमपवित्र नंदा और अलकनंदा नगरसे बाहर दो सरिता बह रहीहैं॥२३॥हे विदुर! उन सरिताओंमें नित्यप्रति रतिसे कर्शित देवांगना अपने अपने विमानोंसे उतर उतरकर विहारकरती हैं, और अपने भर्ताओंके अतिसूक्ष्म शरीरधारी पुरुषोंपर नीर छिडक उनका श्रम:हरती हैं, ॥२४॥ देवरमणी जो सरिताओंमें मज्जन करती हैं, और कुचोंसे कुंकुम धुलधुलकर जो जलमें बहाती हैं, तो उन सरिताओंका सलिल पीतवर्ण और सुगंधित होरहा है, उसी सुगन्धके कारण बिनाही प्यास उस जलको हाथी पीतेहैं, और अपनी हथिनियोंको पिलाय २ मुदित करते हैं ॥२५॥वे देवांगना रत्नोंसे जडित चांदीसोनेके

नंदा चालकनंदा च सरितौ बाह्यतः परम् ॥ तीर्थं पादपद्मांभोजरजसाऽतीव पावने॥२३॥ ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य
स्वधिष्ण्यतः॥ क्रीडंति पुंसः सिंचंत्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२४॥ ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुंकुमपिंजरम् ॥ वितृ
षोऽपि पिबंत्यंभः पाययंतो गजा गजीः ॥२५॥ तारहेममहारत्नविमानशतसंकुलाम् ॥ जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं
सतडिद्घनम् ॥ २६ ॥ हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगंधिकं च तत् ॥ द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २७ ॥
रक्तकंठखगानीकस्वरमंडितषट्पदम् ॥ कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदंडजलाशयम् ॥ २८ ॥ वनकुंजरसंघृष्टहरिचंदनवायुना ॥
अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥ २९ ॥ वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ॥ प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वा त
आराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३० ॥

सैकडों विमानोंमें बैठी कैसी शोभा देरही थीं,जैसे गगनमंडलोंके बादलोंमें बिजली चमकतीहैं ॥२६॥ऐसी कुबेरकीपुरीसे निकलकर सौगंधिकवनमें पहुँचे जहां परमसुखदायक चित्रविचित्र सुमन मनवांछित मनोरथ पूर्णकरनेवाले,कल्पवृक्षकी समान सहस्रों वृक्ष शोभायमान थे लाल कंठवाली कोकिलाओंके वृन्दके वृन्द मृदुलवाणीसे जहांतहां कोलाहल कर रहेथे,भ्रमरोंका मनोहर शब्द होरहा था,कमलयुक्त जलाशय देदीप्यमानथे ॥२७॥ कलहंसादिक जलविहंग निजपत्नियोंके संग विचररहेथे॥२८॥वनके बलवान् हाथियोंके संघृष्ट हरिचंदनके वृक्षोंमें सुगंधयुक्त पवनके प्रभावसे यक्षोंकी रमणियोंका मन (मन्मथ) वारंवार मथ रहा था ॥२९॥ प्रवाल रत्नकी सोपानवाली बावडियें कमलमालासे शोभायमान दृष्टि आती थीं और

किंपुरुष वहां विहार कररहेथे, उस मनोहरवाटिकाको त्यागकर सौगंधिक वनकी ऐसी अनुपम शोभा देखते हुए आगे बढे, तौ निकटही एक वटवृक्ष दृष्टि आया ॥ ३० ॥ वह वटका तरुवर चार सौ कोस ऊंचा और तीनसौ कोसमें उसका विस्तार था, चारोंओर उसकी सघन छाया आठोंप्रहर रहतीथी.और न किसी पक्षीका उसमें घोंसला था,और धूप तौ वहाँ देखनेको भी नहीं थी॥३१॥ उस वटके नीचे महायोगमय मुमुक्षुजनोंके रक्षक सदाशिव विराजमान थे,मानो क्रोध तजकर अंतक बैठाहै इसप्रकार देवताओंने महादेवजीको बैठादेखा॥ ३२॥शांतिशरीरवाले सनंदनआदि महासिद्ध शांतस्वरूप शिवजीकी सेवाकररहेथे और यक्षराज राक्षसोंका अधीश और शिवका सखा कुबेर मस्तक नवाये चरणारविन्दोंकी ओर तकतक ज्ञान वैराग्य और आनंदका रस छक रहा था॥३३॥सो शिवजी महाराज विद्या,तप,योगमार्गमें स्थित सबके ईश्वर विश्वके सुहृद

स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ॥ पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणं सुराः ॥ ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवांतकम् ॥ ३२ ॥ सनंदनाद्यैर्महासिद्धैः शांतैः संशांतविग्रहम् ॥ उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥३३॥विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ॥ चरंतं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमंगलम् ॥ ३४ ॥ लिंगं च तापसाभीष्टं भस्मदंडजटाजिनम् ॥ अंगेन संध्याभ्ररुचा चंद्रलेखां च बिभ्रतम्॥ ॥ ३५ ॥ उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् ॥ नारदाय प्रवोचंतं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥ ३६ ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ॥ बाहुप्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥ ३७ ॥

और वात्सल्यतासे सब लोकके मंगल करनेवाले हैं॥३४॥और अतीव सुहावन और मनभावन तपस्वीवेष धारण किये हैं,शीशपर जटा बढाये, मृगचर्म अंगमें विभूति लगाये,हाथमें दंड लिये, संध्याकालके मेघपंक्तिकी कांतिके समान अपने मस्तकपर चंद्ररेखा धारण कर रहेहैं ॥ ३५ ॥ दोहा–कुशआसन आसीन प्रभु, लसत भाल विधुबाल । जेहि दरशत सब जननके, मिटत सकल जंजाल ॥ इसप्रकार आसनपर बैठे हैं और नारदजी जो कुछ उनसे बूझते हैं उनको सब सज्जनोंके सम्मुख सनातन परब्रह्मका ज्ञान सुना रहे हैं ॥ ३७ ॥ बांयें चरणको दहिने ऊरुपर धर और बांई जानुपर अपना कर धरकर दाहिने बाहुके प्रकोष्ठपर अक्षमालासहित तर्कमुद्रा धारण किये बैठे हैं ॥ ३७ ॥

ब्रह्मसुखकी समाधिमें स्थित सबसे विरक्त गिरीश योगज्ञानी सब मनुओंके आद्यमनु महादेवजीको हाथ जोडकर सब लोकपाल मुनिलोगोंने प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ सुर असुर जिनके चरणकमलको नित्य प्रति दंडवत करते हैं, सो महादेव देवताओंसहित चतुराननको आता देखकर शीघ्र उठ खडे हुए, और जैसे सर्वपूज्य विष्णु वामनजीने कश्यपजीको प्रणाम किया था, उसीप्रकार शिवजीने ब्रह्माजीको नमस्कार किया ॥ ३९ ॥और जो सिद्धगण महर्षियोंसहित शशिशेखर शिवजीके समीप उपस्थित थे, उन लोगोंने भी उसीभाँति ब्रह्माजीको प्रणाम किया, इस प्रकार जिन ब्रह्माजीको सबने नमस्कार किया सो ब्रह्माजी चन्द्रचूड महादेवजीसे हँसकर बोले ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे ईश! तुमको मैं

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ॥ सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥ ३८ ॥ स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवंदितांघ्रिः ॥ उत्थाय चक्रे शिरसाऽभिवंदनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः॥३९॥ तथाऽपरे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समंतादनु नीललोहितम् ॥ नमस्कृतः प्राह शशांकशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥४०॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ॥ शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरंतरम् ॥ ४१ ॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४२ ॥ त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ॥ त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान् ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः॥ ४३ ॥ त्वं कर्मणां मङ्गल मंगलानां कर्तुःस्म लोके तनुषे स्वः परं वा ॥ अमंगलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥ ४४ ॥

भलाभाँति जानता हूँ कि,तुम विश्वरूप जगत्के योनि, बीज, शक्ति, प्रकृति पुरुषके ईश, भेदरहित, निर्विकार, परब्रह्म,निरंतर, ईश, सर्वान्तर्यामी हो ॥ ४१ ॥ हे भगवन्! स्वरूपधारी, शिवशक्तिरूप प्रकृतिपुरुषमें विहार करतेहुए तुमहीं मकरीकी नाईं इस सृष्टिको रचते हो, पालते हो, फिर अपने आपमें लीन करलेते हो. तुम्हारी गतिका कोई पार नहीं पासक्ता ॥ ४२ ॥ धर्म, अर्थ, पूर्ण करनेको और वेदकी रक्षाके लिये दक्ष निमित्तमात्रने यज्ञ किया था और सब संसारकी मर्य्यादा भी आपकीही बांधीहुई है, जिन मर्यादाओंको व्रतधारी ऋषिलोग श्रद्धासहित आजतक पालन करेजाते हैं ॥ ४३ ॥ हे मंगलरूप! शुभकर्म करनेवालोंको तुम स्वर्ग परलोक दायक हो. और अशुभ कर्म करने

वालोंको भयंकर नरक अंधतामिस्रवासके देनेवाले हो, तो फिर किसकारणसे किसी पुरुषको इन मर्यादाओंके प्रतिकूल फल प्राप्त होता है ? ॥ ४४ ॥ तुम्हारे पादारविंदोंमें जिनके मनात्मा अर्पित हैं और सर्वजीवमात्रमें आपको ही देखते हैं और सब जीवोंमें ईश्वरको देखते हैं, आत्मा सब जीवोंमें देखनेवाले महात्माजनोंको कभी क्रोध नहीं आसक्ता और आपका तो कहना ही क्या है ? ॥ ४५ ॥ पृथक् जिनकी बुद्धि, कर्मोंपर दृष्टि, दुष्टहृदय, दूसरोंके प्रतापसे रात्रिदिन दुःख पानेवाले, दुर्वाक्योंसे औरोंके मर्मभेदन करनेवाले, दैवसे भ्रष्ट, अनेक कर्मोंके मारे आपसरीखे महात्माओंका धर्म है कि, उनको न मारैं, क्योंकि वे तो आपही अपने कर्मोंके मारे हैं ॥ ४६ ॥ जिस देशमें जिस समय

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ॥ भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥ ४६ ॥ पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ॥ परान्दुरुक्तैर्वितुदंत्यरुंतुदास्तान्माऽवधी द्दैववधान्भवद्विधः ॥ ४७ ॥ यस्मिन्यदा पुष्करनाभमायया दुरंतया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ॥ कुर्वंति तत्र ह्यनुकंपया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥ ४८ ॥ भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरंतयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ॥ तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४९ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनोः प्रजापतेः ॥ न यत्रभागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥ ५० ॥

नारायणकी दुस्तर मायासे पृथक् दृष्टिवाले जो अभिमानी मोहित होकर सज्जनोंसे विरोध करते हैं, परंतु तौ भी साधुजन अपनी नम्रतासे परमेश्वरकी इच्छा ऐसी ही थी यह विचार कर उन लोगोंपर कृपा करतेहैं, परन्तु उनको मारते नहीं॥४७॥आप तो परमपुरुषकी कठिन मायासे लिप्त नहीं हो, समस्त जगत्के द्रष्टा हो, भगवत्के दासोंमें श्रेष्ठ हो,दयाके समुद्र हो, हे प्रभो ! जो सदा कर्मोंकेबन्धनमें बँधे हैं, उनपर तुम कृपा करनेयोग्य हो॥४९॥हे रुद्र! आपकेही विना दक्षका यज्ञ समाप्त न हुआ, अब तुम मरेहुए दक्षप्रजापतिके यज्ञका उद्धार करो, जहाँ कुत्सित होम

करनेवालोंने तुमको भाग नहीं दिया था, उसका फल तत्काल अपनी आँखोंसे देखलिया॥४९॥अब इतना अनुग्रह कीजे कि, यह हमारा यजमान तो जीजाय और भगदेवको नेत्र दिये जांय, भृगुकी मूछैं निकल आवें और पूषाके दांत पहलेसे होजायँ ॥ ५०॥ हे मन्यो! देवताओंके और ऋत्विजोंके अंग जो आयुध और पाषाणोंसे टूट गये उनपर अनुग्रह करके तुम सबको आरोग्य करो ॥ ५१॥ हे कल्याणरूप ! हे यज्ञविध्वंसक ! जो कुछ इस यज्ञमें शेषभाग बचाहै वह सब आपका भाग है इसप्रकार यह सब अंगीकार करते हैं, हे यज्ञहन्! हे रुद्र! अब आप कृपा करके यह कहदीजे कि,

जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ॥ भृगोः श्मश्रूणि रोहंतु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५०॥ देवानां भग्नगात्राणा
मृत्विजां चायुधाश्मभिः ॥ भवतानुगृहीतानामाशु मन्योस्त्वनातुरम् ॥५१॥ एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य
वै ॥ यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० चतुर्थ० रुद्रसांत्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः
॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥ अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १ ॥

रुद्रके भागसे यह यज्ञ तुम्हारा पूर्ण हो; इसलिये हम सब देवता आपके पास यह कहने आयेहैं* ॥५२॥इति श्रीमद्भा० मह्रा० चतु० भाषाटीकायां रुद्रसान्त्वनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, प्रगट भये भगवान। शिव ब्रह्मादिक देव सब, सुस्तुति करत बखान ॥ ७॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे महाबाहो विदुर! जब ब्रह्मानें इसप्रकार शिवजीकी स्तुति करी, तब महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो हँसकर बोले कि, हे कमंडलुपाणे!

कवित्त—अहो मुण्डमाली बलशाली को तुमसमान, बारबार विनय करैं आपको मनायकै ॥ ज्ञान ध्यान ज्ञाता तुम सम्पतिके दाता तुम, छोडो मत नाता तुम लीजै अपनायकै ॥ ऐसे समय महिमाके बखान को शालिगराम, आज करामात सब बिश्वको दिखायकै ॥ सांकरेमैं शंकर सहाय करो शीघ्र जाय, जगतमांहि लीजे यश दक्षको जिवायकै ॥

***शंका**—ब्रह्माजीने शिवजीसे कहा कि, हे पार्वतीनाथ ! यज्ञमें जो वस्तु सबके खाने भोगनेसे बचै वह आपका भाग है ऐसी घृणितवस्तु शिव जगत्पति होकर क्यों ग्रहण करते हैं ?

उत्तर—व्याकरणशास्त्रके प्रमाणसे उच्छिष्टशब्दका अर्थ जूंठका नहीं है. उच्छिष्टशब्दका यह अर्थ है कि, तीन लोक चौदह भुवनोंमें जो चराचर जीव हैं सबका नाश हुए पीछे जो वस्तु शेष रहै, अपनी आत्मामें आनन्दरूप ब्रह्म जो है उसकी उच्छिष्ट संज्ञाहै उस आनन्दरूप ब्रह्मको उच्छिष्ट जानो. और भजन करनेमें जिसका स्वभावहै उसको यज्ञ कहना. यज्ञ नाम संसारका है उस यज्ञरूप संसारका नाश होनेके पीछे जो ब्रह्मानन्द शेष रहताहै वह भाग शिवका है. ब्रह्माने कहा कि, हे भूतेश्वर! आप ब्रह्मानन्द हो. मूर्खोंके कर्मका स्मरण करना नहीं चाहिये.

सुनिये॥ १॥श्रीमहादेवजीबोले कि, हे प्रजेश! इन अज्ञानियोंके अपराधको मैं अपने मुखसे कुछ नहीं कह सक्ताहूँ, और न कुछ चिंतवन करता हूँ, क्योंकि ये मूर्खलोग देवकी मायासे मोहित होरहे हैं इसलिये मैंने इनको उचित दंड दियाहै ✻॥२॥दक्षप्रजापतिका शिर तो जलादिया, इसलिये बकरेका मुख उसके धड़पर लगा दिया जाय और भगदेव अपने मित्रके नेत्रोंसे यज्ञके भागको देखें॥३॥पिसाहुआ अन्न पूषा यजमानोंके दातोंसे भक्षण किया करे और जिन देवताओंने मुझको यज्ञका उच्छिष्ट दियाहै, उनके सर्वांग पूर्ण होजायँगे॥४॥और जिनके अंग सर्वत्रही नष्ट होगये हैं

श्रीमहादेव उवाच ॥ नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये ॥ देवमायाऽभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया॥२॥ प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥ ३ ॥ पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ॥ देवाः प्रकृतसर्वांगा ये म उच्छेषणं ददुः ॥४॥ बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ॥ भवंत्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ॥ परितुष्टात्मभिस्तात साधुसाध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततो मीढांसमामंत्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ॥ भूयस्तद्देवयजनं समीढद्वेधसो ययुः ॥ ७ ॥

उनकी भुजाओंका काम अश्विनीकुमारकी भुजाओंसे होगा. और हाथोंका काम पूषाके हाथसे हुआ करेगा. अध्वयु और ऋत्विज जैसे पहले थे वैसेही होजायँगे और भृगुकी दाढ़ी मूंछ बकरेकी मूंछ होगी॥५॥मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर! शिवजीके स्नेहभरे वचन सुनकर भूतमात्र और देवतालोग अत्यन्त प्रसन्न हो साधु साधु कर धन्यवाद देनेलगे॥६॥फिर सब देवता और मुनियोंने जब शिवजीकी विनय की कि, कृपा करके आप वहाँ चलिये और सब कार्य पूर्ण कीजिये तब देवताओंकी आज्ञा शिरपर धर शिवजी ब्रह्मा और ऋषियों सहित देवताओंको साथ ले उस देवयज्ञशालामें पहुँचे॥७॥

✻ **शंका**-ब्रह्मासे शिवजीने कहा कि, हे ब्रह्माजी ! मूर्खोंके कर्मोंका हम चिन्तवन नहीं करते उत्तम मध्यम कर्म जो नीच हमारेलिये करते हैं वे सब हम सह लेते हैं फिर दक्षका नीच कर्म समझकर उसके यज्ञका विध्वंस क्यों किया ?

उत्तर-शिवजीने विचार किया कि, दक्ष महापापी है. और बड़ा अभिमानी है जो सब प्राणीमात्रकी रक्षा करता है; दक्ष ऐसा दुष्ट होरहा है जो दंड नहीं पावेगा तो कर्म छोडके राक्षस होजायगा, ऐसा अनुग्रह करके शिवने दक्षके यज्ञका नाश करके उसको दंड दिया. दक्षका नीचकर्म समझकर उसके यज्ञका नाश नहीं किया,

और सम्पूर्णतासे यज्ञ कराय जो कुछ शिवजीने कहा, उसी भाँति यज्ञमें पशुका शिर काटकर दक्षके धडपर धरकर जोड़दिया ॥ ८ ॥ शीश जोडकर शिवजीने दयादृष्टिसे उसकी ओर देखा. दृष्टिके पड़तेही दक्षप्रजापति ऐसे उठकर बैठगया मानो निद्रासे अभी जागाहै, और नेत्र खोलकर देखातो शिवजी सन्मुख खड़े हैं॥९॥यद्यपि शिवके द्वेषसे उसका चित्त दूषित हो रहा था परन्तु शशिशेखरका दर्शन करतेही सब वैरभाव मिटगया और शरद्कालके तडागकी तुल्य दक्षका मन निर्मल होगया ॥ १० ॥ और वारंवार मनमें यह विचार करताथा कि, दीनदयालु भूतेश्वर महादेवजीकी स्तुति करूं परन्तु अनुरागवश हो कुछ मनसे नहीं उच्चार सका और अपनी मरीहुई दुहिता सतीका स्मरणकर उत्कण्ठासे आंखोंमें आंसू भरलाया

विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान्भवः ॥ संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः॥८॥ संधीयमाने शिरसि दक्षो
रुद्राभिवीक्षितः ॥ सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम्॥९॥ तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ॥ शिवावलो
कादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ॥ औत्कंठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां
स्मरन्॥ ११ ॥ कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितस्सुधीः ॥ शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥ १२ ॥
दक्ष उवाच॥ भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ॥ न ब्रह्मबंधुषु च वां भगवन्न
वज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥ १३ ॥ विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं
त्वमस्राक्षू ॥ तद्ब्राह्मणान्परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदंडः ॥ १४ ॥

॥ ११ ॥ और जैसेतैसे बडी कठिनाईसे मनको रोककर प्रेमसे व्याकुल हो वह सुबुद्धि दक्ष कपटभावको हृदयसे त्यागनकर शिवजीकी स्तुति करनेलगा॥ १२॥ दक्ष बोला कि हे भगवन् ! मैंने तो आपका तिरस्कार किया था. तोभी आपने उस अपमानका ध्यान त्याग करके मुझको दंड दिया. यह आपने मुझ दीनपर बड़ी दया करी. जो अधम ब्राह्मण तिरस्कारयोग्यहैं, आप और विष्णु भगवान्, जब उन्हीं ब्राह्मणोंका निरादर नहीं करते, तब तपव्रतधारी श्रेष्ठब्राह्मणोंकी अवज्ञा आपसे कब होसक्ती है ? ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! आपने विद्या-तपव्रतधारी ब्राह्मणोंको वेदमार्गकी रक्षा

करनेके लिये प्रथम अपने मुखसे प्रगट कियाहै,इसलिये हे विभो।आप सब विपत्तियोंमें ब्राह्मणका पालन करते हो, जैसे पशुपालक दंड हाथमें लेकर पशुओंकी रक्षाकरता है ॥१४॥ आपके तत्त्वज्ञानको मैंने न जानकर सुरसभाके मध्य दुर्वाक्यरूप शरोंसे आपको दुःखित किया था, तौ भी आपने उस दोषको नहीं माना और प्रतिष्ठित जनोंकी निन्दा करनेके कारण नरकमें पडते हुयेमुझको क्षमा दृष्टिसे बचालिया, हे नाथ।अपने करेहुए उपकारसे आपही संतुष्ट होओ, मेरी सामर्थ्य नहीं जो इसका बदला मैं आपको देसकूं॥१५॥मैत्रेयजी बोले कि इसभांति दक्षने शिवजीसे अपना अपराध क्षमा कराय चतुराननकी सम्मतिसे उपाध्याय ऋत्विज अग्निसहित यज्ञकर्मका सुन्दरतासे विस्तार किया॥१६॥तीन कपालका

योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ॥ अर्वाक्पतंतमर्हत्तमनिंदयाऽपादृष्टया
ऽर्द्रया स भगवान्स्वकृतेन तुष्येत् ॥१५॥ मैत्रेय उवाच ॥ क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमंत्रितः ॥ कर्म संतान
यामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥ १६ ॥ वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ॥ पुरोडाशं निरवपन्वीरसंसर्ग
शुद्धये ॥ १७ ॥ अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशांपते ॥ धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥ १८ ॥ तदा
स्वप्रभया तेषां द्योतयंत्या दिशो दश॥सुपर्णस्तेज उपानीतस्ताक्ष्येंण स्तोत्रवाजिना॥१९॥श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककि
रीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमंडितकुंडलास्यः॥कंब्वब्जचक्रशरचापगदाऽसिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥२०॥

पुरोडाश विष्णुके निमित्त; यज्ञ सम्पूर्ण करनेके हेतु, प्रमथादिक वीरोंकी शुद्धिके लिये श्रेष्ठब्राह्मणोंको वह दिया ॥ १७ ॥ हे विदूर।अध्वर्युने जब हवि हाथमें लेकर यजमानसे विशुद्धबुद्धिसे हवन कर श्रीवासुदेव भगवान्का ध्यान किया, उसीसमय श्रीभगवान् आनकर प्रगट हुए॥१८॥जिस गरुडके पंखोंसे सामवेदके मंत्रोंकी ध्वनि निकलती है उसपर विराजमान होकर श्रीभावान् आये उस समय उनके तेजके सन्मुख सबका तेज मन्द विदित होता था और दशोंदिशा उनके तेजसे प्रकाशमान होरहीं थीं॥१९॥ श्यामवर्ण,पीताम्बरधारी, सूर्य समान किरीट शिर धारे,नील अलकें भ्रमरवत् शोभितमुखवाले,श्रवणोंमें कुण्डल लटकाये नानाप्रकारके आभूषण पहिरे, भुजाओंमें शंख,चक्र, गदा,पद्म, शर, चाप, खड्ग, ढाल,धारण

किये कनेरके पुष्पवत् श्रीभगवान् देदीप्यमान विदित होते थे ॥२०॥ वक्षस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान वनमाला पहरे उदार हांसीयुक्त अवलोकनकी कलासे विश्वको रमण कराते पार्श्वमें घूमते हुए व्यजन चमर राजहंसवत् दोनों ओर ढुलरहे थे और ऊपरकी ओर पूर्ण शशिसम श्वेतछत्र अत्यन्त शोभाको बढ़ा रहा था ॥२१॥ उन भगवान्‌को ब्रह्मा, इन्द्र, शिव और सब देवगणादिकोंने आता देख उठकर दंडवत् प्रणाम किया ॥ २२ ॥ उन श्रीवासुदेव भगवान्‌के तेजके प्रकाशसे सबकी कांति मलिन होगई. ऐसे वह पुरुष अंजलियोंके संपुट शिरपर करके मोहसे संभ्रमित हो गद्गदवाणीसे भगवान्‌की स्तुति करनेलगे॥२३॥ तब ब्रह्मादिक देवताओंके मनवाणीकी सब वृत्तियां बिसरगईं,भगवान्‌की महिमाको

वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ॥ पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रश
शिनोपरि रज्यमानः ॥ २१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ॥ प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेंद्रत्र्यक्षनायकाः ॥
॥ २२ ॥ तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ॥ मूर्ध्ना धृतांजलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥ २३ ॥ अप्यर्वा
ग्वृत्तयो यस्य महित्वात्मभुवादयः ॥ यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥ २४ ॥ दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं
यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम् ॥ सुनंदनंदाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन्प्रपेदे प्रयतः कृतांजलिः ॥ २५ ॥ दक्ष उवाच ॥ शुद्धं
स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ॥ तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवा
नपरिशुद्ध इवात्मतंत्रः ॥ २६ ॥

नहीं पहुँचसकीं तोभी उन्होंने कृपा करनेके लिये निजस्वरूप धारणकर अपने निकट आयेहुए भगवान्‌की यथामति सबने स्तुति की ॥ २४ ॥ यज्ञाधीश विश्वके रचनेवाले, ब्रह्मादिकोंके परमगुरु और नंद सुनंदआदि पार्षदोंसहित भगवान्‌के समीप जाकर प्रजापति दक्षने पूजाकी सामग्री समर्पण की, तब श्रीनारायणने वह पूजाके द्रव्यका पात्र अपने हस्तकमलसे ग्रहण किया. तब दक्षने प्रसन्न हो हाथ जोड बडी सावधानीसे भगवान्‌की स्तुति करी ॥ २५ ॥ दक्ष बोला, कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थासे रहित अपने रूपमें स्थित, पवित्र चैतन्यरूप, अद्वितीय,

केवल एक आपही हो.आप मायाका तिरस्कार कर स्वाधीन होनेपरभी फिर उसीमें स्थित होकर पुरुषरूप,बन मायारूपी नाटक रचोहो,तब उस मायामें रहनेसे ऐसा विदित होता है कि, रागद्वेषादिक कर्म आपमेंही आगये हैं,परंतु यह मेरी दृष्टिका भेदहै,आप तो निर्लेप और निर्विकार हैं ॥२६॥ सब ऋत्विज बोले कि,हे निरंजन!हे उपाधिरहित!!हे भगवन्!!!रुद्रकेशापसे केवल कर्मोंमें दुराग्रह रखनेवालेहैं, परंतु आपके तत्त्वोंको हम लोग नहीं जानसक्ते,धर्मका उपलक्षण वेदत्रयीप्रतिपाद्य यह यज्ञ है;ऐसे जानकर हम यज्ञ करते हैं, जिससे अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव यह तीनों अवस्था दूर होतीहैं॥२७॥ सभासद् बोले कि,हे शरणागतवत्सल ! इस उत्पत्तिके कालरूपी संसारका महाकठिन पंथ है, जिसमें कोई विश्रामका स्थान दृष्टि नहीं आता,न कोई रक्षकहै और हैं भी तो अनेक क्लेशदायक विषमस्थानहैं,मृत्युरूप उग्रसर्प फणाउठाये फुंकार रहाहै,सुख दुःखादिकरूप नानाप्रकारके अनेक गंभीर गढ़ेहैं,दुष्ट पुरुष मृगरूपी घातकप्राणियोंके भयदायकहैं, मोहरूपी नदी नालेहैं,और शोकरूपी दावाग्नि भडक रही है,तृष्णा और कामनासे दुःखित हो उस मार्गमें जाताहै,विषयमार्ग तृष्णावश अज्ञानको साथलिये भ्रमके भारको शिरपर धरे शीघ्रचलता है,फिर यह कामव्याप्त जीव कब आपके चरणरूपी मंदिरको प्राप्त होसक्ताहै ॥२८॥ रुद्र बोले कि,हे वरद!सर्व विषयोंमें वैराग्यवाले सत् अर्थदायक असक्त मुनियोंके आदरभावसे पूजनीय तुम्हारे चरणकमलमें रचित बुद्धिवाला,अविद्याकामसे लोकमें विंधा हुआ.आपके पूर्ण प्रेमभरी दयादृष्टिसे मैं अपने मनको लगा रहाहूँ.उसको मूर्ख लोग आचारभ्रष्ट कहतेहैं तौभी आपके अनुपम अनुग्रहसे उस बातको मैं कुछभी नहीं समझता॥२९॥

ऋत्विज ऊचुः ॥ तत्त्वं न ते वयमनंजन रुद्रशापात्कर्मण्यवग्रहधियो भगवन् विदामः ॥ धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदो व्यवस्था ॥ २७ ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेश दुर्गेंतकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः ॥ द्वंद्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥ २८ ॥ रुद्र उवाच ॥ तव वरद वरांघ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ॥ यदि रचितधियं माऽविद्यलोकोपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥ २९ ॥

भृगुजी बोले कि,आपकी गंभीरमायासे देहधारी ब्रह्मादिक देवताभी अंधकारमें सोएहुए आत्मज्ञानको भूलरहेहैं. आत्मामें रहनेपरभी आपके तत्त्वको अबतक नहीं जानते, सो हे भक्तोंके आत्मबंधो! भगवन्! मुझपर प्रसन्न होओ ॥३०॥ ब्रह्माजी बोलेकि ज्ञान,अर्थ, गुणाश्रय पदार्थोंको पृथक् पृथक् रीतिसेविचार करनेवाली इंद्रियोंसे प्राणियोंकी दृष्टिमें जो कुछ आता है,वह आप सत्यस्वरूप नहींहैं,क्योंकि ज्ञानपदार्थ और इंद्रियोंका अधिष्ठानरूप आपको मायाके पदार्थोंसे सर्वत्र पृथक्है ॥३१॥ इन्द्र बोले कि, हे अच्युत! विश्वभावन, संसारपालक,चिदानंद, असुरवंशविध्वंसकरनेवाले, यह ऊंचे उठेहुए आयुधवाला अष्टभुजी सुन्दर स्वरूपभी आपका अप्राप्त नहीं है ॥ ३२ ॥ पत्नियें बोलीं कि, हे यज्ञरूप!

भृगुरुवाच ॥ यन्मायया गहनयाऽपहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपंतः॥ नात्मन्श्रितं तव विदन्त्यधुनाऽपि तत्त्वं सोऽयं प्रसीदतु भवान्प्रणतात्मबंधुः ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थभेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ॥ ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद्व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥ ३१ ॥ इंद्र उवाच ॥ इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानंदकरं मनोदृशाम् ॥ सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदंडैरुपपन्नमष्टभिः॥ ३२ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाऽद्य दक्षकोपात् ॥ तं नस्त्वं शवशयनाभशांतमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः॥ अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ॥ विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥

४67

हे रमेश!! यह यज्ञ केवल तुम्हारेही यजनके लिये दक्षप्रजापतिने रचा था,सो पशुपति महादेवने आज दक्षपर कोप करके विध्वंस करदिया, सो हे कमलनयन! हे शांतबुद्धे!! हे यज्ञात्मन्!!!सो यह यज्ञ उत्सवरहित श्मशानवत् महाअशुचि होगया है, आप अपनी कमलवत् पावनदृष्टिसे इसको पवित्र करो॥३३॥ऋषिबोले कि, हे भगवन्! आपकी माया बडी दुरंत है, किसीसे जानी नहीं जाती, जिसरूपसे आप विचरतेहो उसमें लिप्त नहीं होते,जिस हेतुसे ऐश्वर्य्यके लिये ईश्वरी लक्ष्मीजीकी उपासना ब्रह्मादिक करतेहैं,वह लक्ष्मी आठ पहर आपके चरणारविन्दोंकी ओर

तकती रहतीहै; तौभी आप उसको आदर नहीं देते॥३४॥सिद्धलोग बोले कि, क्लेशरूपी दावाग्निसे दग्ध हुआ, प्याससे पीडित हो, यह हमारा मातंगरूपी मन,आपकी कथारूपी उज्ज्वल अमृतकी नदीमें स्नान करनेसे और शीतल जल पीनेसे फिर जगत्रूप दावानलको स्मरण नहीं करता, और उस नदीमेंसे बाहर नहीं निकलाचाहता. अब हमको विदित होता है कि;परब्रह्मके संग रंग होगया ॥३५॥ दक्षकी स्त्री प्रसूति बोली कि, हे रमापते! हे श्रीनिवास !! हे परमात्मन् !!!तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, श्रीसहित हमारी रक्षा करो,तुम्हारे विना हे अधीश! यह यज्ञ शोभा नहीं देता था, जैसे शिरहीन कबंध शोभा नहीं देता॥३६॥लोकपाल बोले कि,हे भूमन् ! विज्ञानरूप,ज्ञानगुणप्रकाशक, दृश्यमात्रको जाननेवाले, प्रत्यगा

सिद्धा ऊचुः॥ अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः॥तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्का
मति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥३५ ॥ यजमान्युवाच॥स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कांतया त्राहि नः ॥ त्वा
मृतेऽधीश नांगैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबंधो यथा पूरुषः॥३६॥ लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं
प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ॥ माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्यस्त्वं षष्ठः पंचभिर्भासि भूतैः ॥३७॥ योगेश्वरा ऊचुः ॥
प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ॥ अथापि भक्त्येश तथोपधावतामन
न्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ॥ ३८ ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममायया ॥ रचितात्मभेदमतये
स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥ ३९ ॥

त्मरूप,सर्वद्रष्टा,आप होयह असत्पदार्थोंकी ग्रहण करनेवाली हमारी इन्द्रियें तुम्हारा स्वरूप देख नहीं सकतीं,क्योंकि यह पंचभूतात्मक शरीरमें जो छठे जीवरूपसे आप विदित होतेहो, वही आपकी माया है॥३७॥ योगेश्वर बोले कि,हे प्रभो ! हे ईश !!हे वत्सल!!! तर्क करते हैं कि; आप विश्वात्माहैं, आपसे जीव अपनी आत्माको भिन्न नहीं समझता, उससे अधिक प्यारा और आपको कोई नहीं है, यद्यपि ऐसे हैं तौ भी अनन्य भक्तिसे जो आपकी उपासना करते हैं उनपर अनुग्रह करो॥३८॥ दैवसे जगत्की उत्पत्ति और लयमें जीवके अदृष्टके कारण जिसके गुणोंका

नानाप्रकारसे भेद होता है,ऐसी आपकी अद्भुतमायाने जिनके स्वरूपमें ब्रह्मा, विष्णु,महेश,आदि भिन्न भिन्न भेद रचेहैं,परंतु स्वरूपकी स्थिति देखते जिनमें भेदभाव दूर करनेसे उसका कारण कुछभी नहीं है, ऐसे आप परब्रह्मको हम वारंवार नमस्कार करते हैं॥३९॥ ब्रह्माजी बोले कि, सत्त्वावच्छिन्न, चैतन्यस्वरूपधारी; धर्मादिकोंके उत्पन्न करनेवाले और जिनके गुणतत्त्वको न तो मैं जानता हूँ,और न कोई दूसरा जानता है, ऐसे निर्गुण निर्विकारको वारंवार नमस्कार है॥४०॥अग्नि बोले कि, आपके तेजसे मुझमें प्रकाशहै इससे उत्तम उत्तम यज्ञोंमें टपकते हुए घृतका हव्य मैं धारण करताहूँ और सब देवताओंको पहुँचाता हूँ,उन यज्ञोंके रक्षक और यज्ञरूप पांच प्रकारके पंच यजुमंत्रसे सुन्दर यज्ञ करे जातेहैं,सो

ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये॥निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपिच ॥४०॥ अग्निरुवाच॥
यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम्॥ तं यज्ञियं पंचविधं च पंचभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोस्मि
यज्ञम् ॥ ४१ ॥ देवा ऊचुः ॥ पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन्सलिल उरगेंद्राधिशयने ॥
पुमाञ्शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥ गंधर्वा ऊचुः ॥
अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेंद्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ॥ क्रीडाभांडं विश्वमिदं यस्य च भूमंस्तस्मै नित्यं
नाथ नमस्ते करवाम ॥ ४३ ॥

हे यज्ञमूर्ते भगवन्! हम वारंवार आपको प्रणाम करतेहैं॥४१॥देवता बोले कि,पहले आप महाप्रलयमें अपने रचेहुए विश्वको अपने उदरमें धरकर आपही आद्य पुरुष उस जलमें शेषशय्यापर सोये थे,सिद्धोंने अपने हृदयमें जिनकी अध्यात्मपदवी विचारीहै;सो वह भगवान् आज हम लोगोंके नेत्रगोचर हुए,सो आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया,आप सदा दासोंका ऐसेही पालन किया करते हैं ॥४२॥ गन्धर्व बोले कि हे देव! मरीचि आदि ऋषि,ब्रह्मा, इन्द्रादिक देवगण, रुद्र जिनमें मुखिया हैं,ये सब आपके अंशके अंशभाग हैं,और यह सब संसार आपके विहार करनेका खिलौ

---

[1] वह पांच ऐतरेय उपनिषद्की श्रुतिमें हैं—"स एष यज्ञः पंचविधिः अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ,चातुर्मास्यानि, पशुः सोम इति ।" तथा च श्रुतिः-"आश्रावयेति चतुरक्षरम् । अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् । यजेति द्व्यक्षरम् । ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम् । द्व्यक्षरो वषट्कारः" । अर्थ—आश्रावय, अस्तु श्रौषट्, यज ये यजामहे, वषट् इत्यर्थः ॥

ना है.हे विभूमन्! हे!हे नाथ!हे दीनबन्धो!!! ऐसे जो आपहैं हम निरन्तर आपको नमस्कार करते हैं॥४३॥विद्याधर बोले कि, ऐसा पराक्रमी और पुरुषार्थी देह पाकर जो पुरुष आपकी मायाके अधिकारमेंहो, अभिमानमें आनकर कोई कोई मनुष्य कहने लगतेहैं कि,मैं हूँ, यह मेराहै ऐसे वचन कह उलटे मार्गमें चलने लगतेहैं अपने कुटुम्बियोंके अनादर करनेपरभी मूर्खतासे तुच्छ विषयोंमें तृष्णा रखतेहैं;सो वहभी आत्माका मोह तुम्हारी कथामृतके सेवन करनेसे सब नष्ट होजाताहै॥४४॥ब्राह्मण बोले कि,यज्ञ,हवि,अग्नि,मंत्र, समिधा,दर्भ,पात्र,सभासद,ऋत्विज,यजमान,यजमानकी स्त्री,देवता,अग्निहोत्र,स्वधा,सोमवल्लीलता,घृत,दुग्ध और यज्ञपशु सब आपही हो, इसलिये आपको नमस्कारहै॥४५॥हेत्रयीगात्र ! आपने पहले

विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्माययाऽर्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ॥ क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्यदस्येत् ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मंत्रः समिद्दर्भपात्राणि च ॥ त्वं सदस्यर्त्विजो दंपती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥ ४५ ॥ त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ॥ स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥ ४६ ॥ स प्रसीद त्वमस्माकमाकांक्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ॥ कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाःक्षयं यांति तस्मै नमः ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्ररुद्रावमर्शितम् ॥ कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ॥ ४८ ॥

महासूकररूप धारणकर योगीजनोंके स्तुति करनेसे महागम्भीर शब्द कर डाढ़पर वसुधाको रखकर रसातलसे ऐसे लेआये, जैसे गजेंद्र लीलापूर्वक पद्मिनीको ले आताहै,हे प्रभो!यज्ञ और क्रतुरूप आपहीहो ॥४६॥तुम हमलोगोंपर प्रसन्नहोओ और सत्कर्मसे परिभ्रष्ट जो तुम्हारे दर्शनकी चाहनावालेहैं,उनपर अनुग्रह करके उनको अपना दर्शन दो.हे यज्ञेश!जब यज्ञमें लोग आपके नामका उच्चारण करते हैं, उसी समय यज्ञके सब विघ्न क्षय होजाते हैं,हे विघ्नविनाशन!आपके अर्थ नमस्कारहै॥४७॥मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर! इसप्रकार सब देवगण ऋषिलोगोंने हृषीकेश भगवान्की

स्तुति की. तब दक्षनेकवि,रुद्र,वीरभद्रके विनाशित यज्ञको फिर प्रवृत्त किया॥४८॥सर्वात्मा, सब भागके भोक्ता, यज्ञभावन भगवान्,अपना भाग ले प्रसन्न हो दक्षप्रजापतिसे बोले ॥४९॥श्रीभगवान्बोले कि,जगत्का परमकारण सर्वात्मा, ईश्वर, साक्षी,स्वयंप्रकाश, उपाधिरहित जो मैं हूँ वही ब्रह्मा और शिव जगत्के आदिकारण हैं॥५०॥हे द्विज ! मैंही त्रिगुणात्मक अपनी गुणमयी मायाको धारणकर विश्वकी स्थिति करनेकेलिये उन उन कार्योंके योग्य पृथक् पृथक् क्रिया,योग, संज्ञा; धारण करताहूँ॥५१॥ केवल अद्वितीय,परमात्मा, परब्रह्म जोमैं हूँ सो अज्ञानी लोग ब्रह्मा,शिव और जीवमें भेद समझकर भिन्न भिन्न रीतिसे देखते हैं॥॥५२॥जैसे पुरुष अपने शिर हाथ चरण आदि अपने अंगोंमेंसे किसी अंगको दूसरेका

भगवान्स्वेन:भावेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ॥ दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं
ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः:कारणं परम् ॥ आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥ ५० ॥ आत्ममायां समाविश्य सोऽहं
गुणमयीं द्विज ॥ सृजन्रक्षन्हरन्विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ॥
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥५२॥ यथा पुमान्न स्वांगेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् ॥ पारक्यबुद्धिं कुरुत एवं
भूतेषु मत्परः॥५३॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ॥ सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन्स शांतिमधिगच्छति ॥५४॥
मैत्रेय उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टःप्रजापतिपतिर्हरिम् ॥ अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ रुद्रं च स्वेन
भागेन ह्युपाधावत्समाहितः ॥ कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥ उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥५६॥

नहीं जानता. इसीप्रकार महात्मा पुरुष सब प्राणियोंमें मेराही रूप मानते हैं॥५३॥हे ब्रह्मन्!सब जीवमात्रका आत्मा और अद्वितीय केवल मैं हूँ जो पुरुष ब्रह्मा,विष्णु, महेश तीनोंका भाव समझताहै और भेदबुद्धिसे नहीं देखता,वह शांतिको प्राप्त होताहै॥५४॥मैत्रेयजी बोलेकि, इसप्रकार हृषीकेश भगवान्ने जब दक्षप्रजापतिको उपदेश किया तब प्रजापतियोंके पतिदक्षनेअपने यज्ञमें प्रथम उनका पूजनकर फिर दूसरेदेवताओंका पूजन किया॥५५॥फिरचित्तको सावधान करके यज्ञके अवशेषभागसे सम्पूर्ण कर्म पूर्ण करनेवाले महादेवजीका पूजनकरके कर्मसे समाप्तिके देनेवाले दूसरे जो अमृतपान करनेवाले देवताहैं उनको भाग दिया ॥ फिर सब कर्मको समाप्त करके स्तुति करनेलगे. ऋत्विजोंको साथ लेकर उनसे

भाग दे पीछे यज्ञांत स्नान किया, और विप्रोंके लिये दक्षिणा देकर यथाविहार करनेलगे ॥५६॥ भगवान्की कृपासे दक्षको अपनेही प्रभावसे सब सिद्धियां प्राप्त होगईं थीं, तोभी धर्ममें बुद्धि रहनेका वरदान देकर सब देवता सुरपुरको चलेगये ॥ ५७ ॥ इसप्रकार दक्षसुता सतीने अपने पूर्वतनुको त्यागकर पीछे हिमाचलकी भार्या मेना नाम्नी रानीमें 'जन्म लिया. यह बात हम सबने सुनी है ॥५८॥ वह हिमाचलकी पुत्री अम्बिका भवानी. पार्वती प्रलयकालमें सोईहुई,शक्ति जैसे आद्यपुरुषको प्राप्त होती है इसीप्रकार फिर दूसरी वारभी उन्हीं शिवजीको प्राप्त हुई जो एक वृत्तिसे भक्तोंके मुख्य आश्रयरूप है ॥ ५९ ॥ दक्षप्रजापतिके यज्ञविनाशक भगवान् शिवजीका यह कर्म भागवत बृहस्पतिजीके

तस्मा अप्यनुभावेन स्वैनेवावाप्तराधसे ॥ धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥ ५७ ॥ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ॥ जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ५८ ॥ तमेव दयितं भूय आवृंक्ते पतिमंबिका ॥ अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥ ५९ ॥एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ॥ श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥ ६० ॥ इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥ यो नित्यदाऽऽकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० चतुर्थे० सप्तमोध्यायः ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ॥ नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यवसन्नूर्ध्वरेतसः ॥ १ ॥

शिष्य उद्धवजीसे मैंने सुना था; सो आपको सुनादिया ॥६०॥ पापपुंजका हर्ता, और कोटि कष्ट विनाश कर्ता, यश और आयुका बढ़ानेवाला, तेजका चमकानेवाला, यह अत्यन्त पवित्र शिवजीका चरित्र है. जो मनुष्य प्रेम प्रीतिसे सुने और सुनावे वह प्राणी शिवकी भक्तिके प्रतापसे सब पापोंसे छूट जाताहै ❋ ॥६१॥इति श्रीम० महा० चतुर्थस्कन्धे भाषा० दक्षयज्ञे सर्वकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥दोहा–ध्रुव अष्टम अध्यायमें, मातवचन सुनि कान । गये विपिन तप करनको, मिले आय भगवान ॥८॥मैत्रेयजी बोले कि, सनकादिक, नारद,ऋतु, हंस, अरुणि

❋ भजन–शंकर सुख करन सदा संतन सुखदाई । सेवत सुर नर मुनीश, आद्यरूप जगतईश । सोहत नित गंग शीश, भस्म अंग छाई ॥ १ ॥ पंच वदन अति विशाल, सोहत दृग लाल लाल वालचन्द्र लसत माल, शोभा अधिकाई॥२॥ पूरण आनन्दकन्द, मेट सकल द्वन्द्व गंध । बैठे निर्द्वन्द मंद मैनको जराई ॥३॥ ज्ञान भक्ति मुक्ति धाम,रटत रहत अष्टयाम, राम राम राम राम रघुपति रघुराई॥४॥

और यति इन ब्रह्माजीके पुत्रोंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होनेके लिये गृहस्थाश्रम नहीं किया ऊर्ध्वरेता हुए ॥१॥ हे शत्रुदमन ! अधर्म भी ब्रह्माजीका पुत्र है, इसलिये उसके वंशकाभी वर्णन करते हैं, अधर्मकी मृषा नाम पत्नीमें दंभ नामक पुत्र और माया नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई, सो मृत्युके पुत्र नहीं था.इसलिये न दोनोंको अपने घर उसने रख लिया ॥२॥ हे महामते! दंभकी माया नाम भार्यामें लोभनामक पुत्र और निष्कृति नाम पुत्री हुई. लोभकी निष्कृति नामस्त्रीमें क्रोध नामक सुत और हिंसा नाम्नी सुता उत्पन्न हुई,क्रोधके हिंसा नाम्नी पत्नीमें कलि नाम तनय और दुरुक्ति नाम्नी तनया प्रगट हुई ॥३॥ हे सत्तम! कलिकी दुरुक्ति नाम स्त्रीमें भय नाम पुत्र और मृत्यु नाम दुहिता प्राप्त हुई. भयकी मृत्यु नामक स्त्रीमें

मृषाऽधर्मस्य भार्यासीद्दंभं मायां च शत्रुहन्॥ असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥ २ ॥ तयोः समभवल्लोभो निष्कृतिश्च महामते ॥ ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः॥३॥दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम॥ तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥ ४ ॥ संग्रहेण मयाऽऽख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ॥ त्रिः श्रुत्वैतत्पुमान्पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥५॥ अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ॥ स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः॥६॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ॥ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥ ७ ॥ जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ॥ सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥ ८ ॥ एकदा सुरुचेः पुत्रमंकमारोप्य लालयन् ॥ उत्तमं नारुरुक्षंतं ध्रुवं राजाऽभ्यनंदत ॥ ९ ॥

निरय नाम बेटा और यातना नाम्नी बेटी हुई ॥ ४ ॥ हे अनघ! संक्षपसे मैंने यह सर्ग वर्णन किया,जो पुरुष तीन बार इस अधर्मवंशावलीको सुने उसके शरीरके सब मलोंका नाश होजाता है ॥ ५ ॥ हे परीक्षित् ! पुण्यकीर्तिवाले श्रीभगवान्के अंशसे जिनका जन्म हुआ, उन स्वायम्भुवमनुका वंश वर्णन करताहूँ ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति मनु भगवान्के वासुदेवकी कलासे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए और-जगत्की रक्षामें स्थित रहने लगे ॥ ७ ॥ राजा उत्तानपादकी दो रानियां थीं सुनीति और सुरुचि सो उसमें सुरुचिपर राजाका अधिक प्रेम था, और सुनीति जो ध्रुवजीकी माता थी वह राजाको प्यारी नहीं थी ॥८॥ एक दिन वह राजा सुरुचिके पुत्रको गोदमें बिठाकर खिला रहा था उसका नाम उत्तम

था, उसीसमय ध्रुवजी भी कहींसे आगये और पिताकी गोदीमें बैठनेको उपस्थित हुए.तब राजाने उनका लालन पालन नहीं किया ॥९॥ और
कुछ कहनेकी इच्छा थी इतनेमें सुरुचिने अपनी सौतके पुत्र ध्रुवजीको सुनाय राजाके सन्मुख ईर्षासे अभिमानके वचन कहे ॥१०॥ सुरुचि बोली
कि, हे पुत्र ! आप राजकुमार हो तौभी राजसिंहासनके बैठने योग्य नहीं हो, क्योंकि तैंने मेरी कुक्षिमें जन्म नहीं लिया है॥ ११ ॥ अरे ! अभी
तू बालक है इसीलिये तुझे कुछ इसबातका ज्ञान नहीं कि, मैं और स्त्रीके गर्भसे जन्मा हूँ, जो चेष्टा तू करता है, वह मनोरथ तेरा बहुत दुर्लभ
है ॥ १२ ॥ यदि तू राजसिंहासनकी इच्छा करता है, तौ तपसे आदिपुरुष परमात्माका आराधन कर उनकी कृपासे मेरे गर्भमें जन्म लेगा तौ राज

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम्॥ सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥१०॥ न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं
भवानारोढुमर्हति ॥ न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मज ॥११॥ बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् ॥
नूनं वेद भवान्यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥ १२ ॥ तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ॥ गर्भे त्वं साधयात्मानं
यदीच्छसि नृपासनम् ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन्रुषा दंडहतो यथाहिः ॥ हित्वा
मिषंतं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम् ॥ १४ ॥ तं निःश्वसंतं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्संग उदुह्य बालम् ॥
निशम्य तत्पौरमुखान्नितांतं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्या ॥ १५ ॥ सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावल
तेव बाला ॥ वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥ १६ ॥

सिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करना ॥ १३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, सौतेली माताके दुवाक्यरूप कठिन बाणोंसे विंधा हुआ. वह ध्रुव रोषसे
श्वास लेता दंडहत उरगकी सदृश मौन साधे देखता हुआ पिताके सन्मुखसे रोताहुआ माताके समीप गया ॥ १४ ॥ क्रोधके मारे अधर होठ
जिसके फडक रहे थे, अपने पुत्र ध्रुवको गम्भीर श्वास लेता हुआ देखकर उसकी माता सुनीतिने दौड़कर उसको गोदीमें उठालिया, और जो
कुछ उसको सौतने कहाथा, पुरवासियोंके मुखसे वह बात सुनके अत्यन्त पीडित हुई ॥ १५ ॥ और धैर्य्यको त्याग शोकदावाग्निके मध्यमें स्थित
लताकी नाईं वह अबला विलाप करने लगी और सौतके वचनोंको स्मरण करकरके वह कमलाक्षी कमलसे नेत्रोंसे आंसू बहानेलगी॥ १६ ॥

लम्बे लम्बे श्वास भरती दुःखके पारको न पाती वह अबला अपने बालकसे बोली कि हे पुत्र! औरोंका अपराध मत मानो, जो पहले दूसरेको दुःख देता है, उसको उसका फल निःसंदेह भोगना पडता है ॥ १७ ॥ सुरुचिने जो कहा सो सब सत्यहै, क्योंकि एक तो तैंने मुझ भाग्यहीनके उदरमें जन्म लिया, दूसरे मेरे स्तनोंका दूध पीकर इतना बडा हुआ, राजा मुझको भार्या कहतें तो हैं परन्तु मनमें अत्यंत लज्जित होते हैं ॥ १८॥ हे वत्स! ईर्षा छोडकर निष्कपट होकर जो सत्यवचन तेरी विमाताने कहा है, उसको तू स्वीकार करके श्रीवासुदेव भगवान्‌के चरणारविन्दोंको आराधन कर, जो उत्तमकी नाईं राजाकी इच्छा हो तौ ॥ १९ ॥ सत्वगुणी भगवान् वासुदेवके चरणकमलकी सेवा कर संसारके पालनेके लिये

दीर्घं श्वसंती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ॥ माऽमंगलं तात परेष्वमंस्था भुंक्ते जनो यत्परदुःख
दस्तत् ॥ १७ ॥ सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः ॥ स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा
वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥ आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं समात्राऽपि यदव्यलीकम् ॥ आराधयाऽधोक्षजपादपद्मं
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥१९॥ यस्यांघ्रिपद्मं परिचर्य विश्वविभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ॥ अजोऽध्यतिष्ठत्खलु
पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवंद्यम् ॥ २० ॥ तथा मनुर्वो भगवान्पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ॥ इष्ट्वा
ऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥ २१ ॥ त्वमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदा
ब्जपद्धतिम् ॥ अनन्यभावे निजधर्मभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥ २२ ॥

जो निश्चय करके आत्मश्वास जीतनेवाले जिसकी वंदना करते हैं. ऐसे परमपदको ब्रह्माजी प्राप्त हुए हैं ॥ २० ॥ उसी भांति तुम्हारे पितामह भगवान् मनु, जिन आदिपुरुष अविनाशी अन्तर्यामीकी कृपासे उत्तम दक्षिणाके यज्ञ करके पूजन किया और और उपायसे नहीं मिले वह भूमिके, स्वर्गके, मुक्तिके सुखको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे पुत्र! जिन भक्तवत्सल श्रीनारायणके चरणारविन्दोंके पंथको मुमुक्षु लोग खोज रहे हैं, तुमभी उन भगवान्‌का आश्रय लो. और दूसरा भाव न होय. ऐसे निजधर्मसुशोभित मनमें आद्यपुरुषको स्थित कर भगवान् वासुदेवका भजन करो ॥ २२ ॥

विना कमलनयन भगवान्‌के तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला मुझको कोई नहीं दिखाई देता. हे वत्स ! ब्रह्मादिक सब देवता जिनकी खोजमें रहते हैं और लक्ष्मीजीकोमलकमलसे हाथमें कमल लिये जिनकी चाहना करतीहैं, उनके चरणारविन्दकी उपासनाकरो॥२३॥मैत्रेयजी बोले कि, ऐसे मनवांछित माताके मधुर वचन सुन अपनी मातासे और छोटे छोटे अपने संगके खेलनेवाले बालकोंसे तप करनेकी अपनी इच्छा कह और वासुदेव भगवान्‌को अपना हितू जान पिताके पुरसे चलदिया ॥२४॥ नारदजी इस बातको सुनकर उसके मनका पूर्ण दृढव्रत जान भगवान्‌के परमभक्त पापनाशक अपना हस्तकमल उसके शिरपर धरकर विस्मित हो मनही मनमें कहने लगे॥२५॥अहो!क्षत्रियोंका तेज ऐसा उग्रहै, कि यह अपने मानभंगको किञ्चित्

नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन ॥ यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरंग विमृग्यमाणया ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ॥ संनियम्यात्मनात्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥ २४ ॥ नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥ २५ ॥ अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभंगममृष्यताम् ॥ बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाप्यपमानं ते संमानं वापि पुत्रक ॥ लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥२७॥ विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः ॥ पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥ २८ ॥परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ॥ दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥ २९ ॥

मात्रभी सहन न करसका. यह बालक है, तोभी विमाताके दुर्वाक्योंको हृदयमें धारण नहीं करसका॥२६॥नारदजी बोले कि, हे कुमार ! खेलनेमें आसक्त बालकोंका कोई अपमान करे, वा सन्मान करेतो उसमें हम कुछ बुरा भला नहीं देखते ॥ २७ ॥ जो तुमको मान अपमानका ज्ञान है तौ सन्तोषके हेतु यह भिन्न नहींहै, क्योंकि संसारमें पुरुषको विना मोह अपने कर्मोंसे सुख दुख होते हैं, और किसी प्रकार नहीं होते॥२८॥ हे तात !इसलिये जब ईश्वर सहाय होते हैं, तौ कार्यभी सिद्ध होतेहैं, इस बातको निश्चय कर, परमात्मासे जो कुछ प्राप्त हो उतनेहीमें मनुष्यको चाहिये कि अपने

मनमें सन्तोष करले ॥२९॥और तू माताके कहेहुए योग करनेको योग्य है, जिनका प्रसन्न होना पुरुषोंपर बहुत कठिनहै,दुःखसे आराधन करने योग्य है,यह मुझको भी सम्मतहै॥३०॥मुनिलोग सबका संग तजकर तीव्र योगसमाधिसे अनेक जन्मोंसे उसकी पदवीका अनुसरण करतेहैं,तौभी जान नहीं सक्ते॥३१॥इसलिये इस हठको छोडदे क्योंकि यह तेरीहठ अच्छी नहींहै और अभी फलदायकभी नहीं होगी,जब योगसाधनका समय वृद्धअवस्था आजायगी तब इसके लिये भी प्रयत्न करना ॥ ३२॥ दैवने जिनके भाग्यमें जो लिखाहै,उसको उचित है कि,सुखसे दुःखसे उतनेहीमें अपने मन को प्रसन्न रक्खे,क्योंकि जो उतनेहीमें अपने आत्माको संतुष्ट रखता है वह पुरुष निःसन्देह मोक्षका भागी होता है ॥ ३३॥ जो

अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि ॥ यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥ ३० ॥ मुनयः पदवीं यस्य
निस्संगेनोरुजन्मभिः ॥ न विदुर्मृगयंतोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥ ३१ ॥ अतो निवर्ततामेष निर्बंधस्तव निष्फलः ॥
यतिष्यति भवान्काले श्रेयसां समुपंस्थिते ॥ ३२ ॥ यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ॥ आत्मानं तोषयन्देही
तमसः पारमृच्छति ॥ ३३ ॥ गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ॥ मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते
॥ ३४ ॥ ध्रुव उवाच॥सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम्॥ दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥३५॥
अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः ॥सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि॥३६॥ पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः
साधुवर्त्म मे ॥ ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥३७॥

आपसे गुणमें अधिक होय तो उसको देखकर आनंदित होना चाहिये,उसकी निन्दा न करै,और जो आपसे हीन होय तो उसपर अनुग्रह रखना चाहिये, उसका अनादर न करे,और जो अपने समान हो तो उससे मित्रभाव रखना चाहिये.परन्तु उससे अपनी उन्नति न चाहै,जो पुरुष इस रीतिसे चलता है, उसका किसीप्रकारके तापसे विनाश नहीं होता ॥३४॥ ध्रुवजी बोले कि, अपने सुख दुःखसे अभागे पुरुषोंपर कृपा करके भगवान्ने शांतिका यह उपाय दिखाया है. हमसरीखे मतिमंद मनुष्योंको दर्शन नहीं होसका ॥३५॥ तौभी घोर क्षत्रियस्वभाववाले मुझ अविनीत अभागेके हृदयमें आपके मधुर वचन ठहर नहीं सक्ते, क्योंकि सुरुचिके दुर्वाक्यरूपी शरोंसे मेरा हृदय बिंधा पडा है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन्! संसारमें जो उत्तम

पदहै उसको कोई नहीं पासक्ता, जिस पदको हमारे पिता पितामह और कोई दूसराभी उस पदवीको नहीं पहुँचा हो. ऐसे त्रिभुवनके उत्तम पदको जीतनेका मेरा मनोरथहै. सो उपाय कृपा करके मुझे बताओ ॥ ३७ ॥ आप साक्षात् भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हो और वीणा हाथमें लिये जगत्के हितके हेतु मार्तण्डकी नाईं खण्डखण्डमें घूमते फिरोहो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी:बोले कि, नारद ध्रुवके ऐसे गम्भीर वचन सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और सत्यवाक्योंसे उस बालकपर परम स्नेह किया ॥३९॥ नारदजी बोले कि तेरी जननीने जो तेरे अभिप्रायका पन्थ बतायाहै, वह निश्चय मोक्षदायक और वासुदेव भगवान्से मिलानेवालाहै, इसलिये मनको सावधान करके उन्हींका भजन:कर ॥ ४० ॥ जो मनुष्य अपना सुख चाहै, तो वह धर्म,

नूनं भवान्भगवतो योंगजः परमेष्ठिनः ॥ वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥३८॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तथा ॥ प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकंपया ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ जनन्याऽभिहितः पंथाः स वै निःश्रेयसस्य ते ॥ भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्थं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः॥ एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥४१॥ तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ॥ पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिंद्याः सलिले शिवे ॥ कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥ ४३ ॥ प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेंद्रियमनोमलम् ॥ शनैर्व्युदस्याभिध्यायन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥ ४४ ॥ प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥ सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुंदरम् ॥ ४५ ॥

अर्थ, काम, मोक्षके निमित्त श्रीमन्नारायणके चरणारविंदका आराधन करे, क्योंकि प्रधान कल्याणका कारण वहीहै ॥४१॥ इसलिये हे पुत्र ! श्रीयमुनाजीके तटपर:अत्यन्तरमणीक मधुवन नाम क्षेत्र है, जहां श्रीकृष्णचन्द्रआनंदकन्द सदा विराजतेहैं; तहां तू जा निश्चय तेरा कल्याण होगा॥४२॥ उस पवित्रआश्रममें जाकर नित्य यमुनाजीके अमृतरूपी जलमें त्रिकाल स्नान कर अपने नित्यकृत्यसे निश्चिंत हो दृढ आसन जमाकर वहां तू रहना ॥४३॥ पूरक, रेचक, कुम्भक ये तीन प्रकारकी जिसकी वृत्ति हैं. ऐसे प्राणायामसे धीरे धीरे इन्द्रिय मनके मलको दूर करके धीरमनसे गुरुरूप कृष्ण भगवान्का ध्यान कर ॥ ४४ ॥ अपने ऊपर प्रसन्न होनेमें सुमुख निरन्तर प्रसन्न वदन, सुन्दर नेत्र, सुन्दर नासिका, सुन्दर भ्रुकुटी,

सुन्दर, कपोल देवताओंमें सुन्दर ईश्वर हैं ॥ ४५ ॥ तरुण अवस्था, रमणीय अंग, अरुण होंठ; देखने योग्य बिंबवत् अधर, नम्रीभूत उनके आश्रय सुखदायक, शरण्यरूप, करुणानिधान ॥ ४६ ॥ श्रीवत्सका चिह्न, मेघवत् श्याम वर्ण, वनमाली, अन्तर्यामी, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभित चतुर्भुज हैं ॥ ४७ ॥ किरीट कुण्डल, केयूर, कंकणसे देदीप्यमान कौस्तुभमणि और आभरण ग्रीवामें लसे, पीताम्बर पहरे ॥ ४८ ॥ कटिमें क्षुद्रघंटिका धारण किये कंचनके नूपुर चरणारविन्दोंमें सजाये अत्यन्त दर्शनयोग्य शांतचित्त मन और नेत्रोंके आनन्दवर्द्धक ॥ ४९ ॥ नख मणि पंक्तिसे शोभित पूजित चरण हृदयकमलकी कलियोंपर विराजमान, जीवात्मामें स्थित हैं ॥ ५० ॥

तरुणं रमणीयांगमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥ ४६ ॥ श्रीवत्सांकं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ॥ शंखचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥४७॥ किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवनमालिनम्॥ कौस्तुभाभरण ग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ ॥ कांचीकलापपर्यस्तं लसत्कांचननूपुरम् ॥ दर्शनीयतमं शांतं मनोनयनवर्धनम् ॥ ४९ ॥ पद्भ्यां नखमणिश्रेण्याविलसद्भ्यां समर्चताम् ॥ हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥ ५० ॥ स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम् ॥ नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥ ५१ ॥ एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ॥ निवृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ॥ ५२ ॥ जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ॥ यं सप्तरात्रं प्रपठन्पुमान्पश्यति खेचरान् ॥ ५३ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद्द्रव्यमयीं बुधः ॥ सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥

मन्द मन्द मुसकाते, प्रेमसहित अवलोकन वरदायकोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपका पहिले धारणासे दृढ हुए एकाग्रमनसे ध्यान कर ॥ ५१ ॥ इसप्रकार मंगलदायक श्रीयदुनाथके स्वरूपका जो ध्यान करता है, उस पुरुषका मन तुर्त परमानंदित हो अन्यविषयोंसे निवृत्त होजाता है ॥ ५२ ॥ हे नृपनन्दन ! परमगुह्य जो जपनेयोग्य मन्त्र है सो सुन, जिसको सात रात्रि मनुष्य जपै तो आकाशके सब देवता प्रत्यक्ष देखनेमें आवैं ॥ ५३ ॥ “ॐ नमोभगवते वासुदेवाय” उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता, षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान् सब जीव जिनमें

निवास करैं,उनके लिये नमस्कार है,सज्जन पुरुषोंको उचित है कि इस मंत्रसे भगवान् वासुदेवकी नानाप्रकारकी पूजाकी सामग्रियोंसे देशकालके विभागको जानकर द्रव्यमयी पूजनकरै॥५४॥पवित्र जल वनके फलफूल आदिक सुन्दर अंकुर,वस्त्र,तुलसीदलसहित भगवान् वासुदेवका पूजन करै ॥५५॥शालिग्रामशिलादिककी मूर्ति बनाकर द्रव्यमयी पूजा करै।तथा अर्चाका, पृथिवी जलआदिकसे पूजन करै,इन्द्रियोंको भी जीत मनको शांत कर मौन बन वनके कन्दमूल खाय॥५६॥और अपनी इच्छासे जो अवतार धारण करतेहैं उनका चिंतवन करै और विष्णु भगवान् फिर अपनी अचिंत्य माया करके अवतारले सुन्दर सुन्दर लीला करैंगे इसप्रकार हृदयमें ईश्वरका ध्यानकरै॥५७॥पहिले ऋषीश्वरोंने मुनीश्वरोंने भगवान् वासुदेवकी

सलिलैःशुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ शस्तांकुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम्॥५५॥लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां
क्षित्यंब्वादिषु चार्चयेत् ॥ आभृतात्मा मुनिः शांतो यतवाङ् मितवन्यभुक् ॥ ५६ ॥ स्वेच्छावतारचरितैरचिंत्य
निजमायया॥ करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयंगमम् ॥ ५७ ॥ परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ॥ ता
मंत्रहृदयेनैव प्रयुंज्यान्मंत्रमूर्तये ॥ ५८॥ एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ॥ परिचर्यमाणो भगवान्भक्तिम
त्परिचर्यया ॥ ५९ ॥ पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ॥ श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥ ६० ॥
विरक्तश्चेंद्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ॥ तं निरंतरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥ ६१ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य
च नृपार्भकः ॥ ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥

परिचर्या जिसप्रकार करीहै,उन्हीं विधानोंसे द्वादशाक्षर मंत्रका उच्चारण करके मंत्रमूर्तिके अर्थ प्रयोग करै ॥ ५८ ॥इसप्रकार मन,वचन, शरीरसे मनोगत ईश्वरकी परिचर्य्या करै इस भांतिकी सेवा करनेसें भगवान्, भक्ति करनेवालेको मनोवांछित फल देते हैं ॥ ५९ ॥ निष्कपट भजन करनेसे पुरुषोंको भाववर्द्धन करनेवाले भगवान् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थ और जो मनोभिलषित धन पुत्रादिक फल चाहतेहैं, उसीसमय उसको देतेहैं ॥ ६० ॥जो भक्त मुक्ति होनेकी इच्छा करै वह विरक्त होकर भक्तियोगके दृढ़ कियेहुए भावसे साक्षात् निरंतर भावसे भजन करै ॥६१॥ नारदजीके ऐसे मनोहर वचन सुनकर सुनीति-कुमार ध्रुवजीने उनकी परिक्रमा दे प्रणाम क भक्तिरूप हरिचरणारविंद से

शोभित मथुराके निकट मधुवनको चलदिया ॥ ६२ ॥ ध्रुवजीके वन जानेके उपरांत नारदजी राजा उत्तानपादके अंतःपुरमें पहुँचे, राजाने नारदजीको आता देख अर्घ्य दे बड़े आदरसत्कारसे पूजनकर आसन दिया उसपर आनन्दपूर्वक विराजमान होकर ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन्! आपका मन मलीन तन छीन होरहा है, ऐसीक्या चिंता है! आपका धर्म, अर्थ कर्मसहित नष्ट तो नहीं होगया ॥ ६४॥ राजा बोले कि. हे ब्रह्मन्! मैंने स्त्रीके विवश होकर निर्दयीपनसे सकल सुलक्षणधाम महात्मा अपने पांच वर्षके बालक पुत्रको उसकी मातासमेत उसे घरसे निकाल दिया॥६५॥हे नारदजी ! जिसका कोमल मुखारविंद कुम्हला रहाहै, ऐसे अनाथ भूखे थके हुए सोते बालकको कहीं भेडिया न खा जाय, क्योंकि

तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोंतःपुरं मुनिः॥अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम्॥६३॥नारद उवाच॥राजन्किं ध्या
यसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता॥किं वा करिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः॥६४॥राजोवाच॥सुतो मे बालको ब्रह्मन्स्त्रैणे
नाकरुणात्मना॥ निर्वासितः पंचवर्षः सह मात्रा महान्कविः॥६५॥अप्यनाथं वने ब्रह्मन्मा स्माऽदंत्यर्भकं वृकाः ॥ श्रांतं
शयानं क्षुभितं परिम्लानमुखांबुजम् ॥ ६६ ॥अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय॥ योंकं प्रेम्णाऽऽरुरुक्षंतं नाभ्य
नंदमसत्तमः ॥ ६७ ॥ नारद उवाच ॥ मामा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते ॥ तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृंक्ते यद्यशो
जगत् ॥ ६८ ॥ सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ॥ एष्यत्यचिरतो राजन्यशो विपुलयंस्तव ॥ ६९ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ॥ राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिंतयत् ॥ ७० ॥

वनमें अकेला होगा ॥६६॥ हाय ! मुझ दुरात्मा दुर्जन दुर्भाग्य स्त्रीजितकी ओर तो देखो, वह बालक प्रेमसे मेरी गोदमें चढ़ता था, और मुझ महानीचने नारीविवश हो उसको गोदीमें न लिया ॥६७॥ नारदजी बोले कि, हे राजन्! आपने अपने पुत्रकी महिमाको नहीं जाना, वह बडा प्रतापी है और भगवान् उसके रक्षक हैं, इसलिये ऐसे सुतका सोच तुम न करो, क्योंकि "जिसका राम रक्षक, उसका कौन भक्षक"॥ ६८ ॥ जो लोकपालोंसे भी न होसकै ऐसेर महाकठिन कर्म करके वह ध्रुव, तुम्हारा यश विस्तार करता हुआ बहुत शीघ्र आवैगा॥६९॥मैत्रेयजी बोले कि,

राजा उत्तानपाद नारदजीका यह वचन सुनकर पुत्रका शोच करने लगे,और राजलक्ष्मीका किंचित् मात्रभी आदर न किया ॥ ७० ॥ ध्रुवजीने देवर्षिकी आज्ञानुसार मथुराजीमें आन यमुनाजीमें स्नानकर वहाँ एक रात्रि उपवास किया.फिर सावधान हो एकान्तचित्तकर भगवान्का ध्यान करनेलगा॥७१॥तीन तीन रात्रिके अन्तमें कैथा और बेरोंके आहारसे अपने शरीरकी निवृत्तिके अनुसार एक मास व्यतीत किया. और अत्यन्त

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ॥ समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥ ७१ ॥ त्रिरात्रांतेत्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ॥ आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥ ७२ ॥ द्वितीयं च तथा मासं षष्ठेषष्ठेऽर्भको दिने ॥ तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥ ७३ ॥ तृतीयं चानयन्मासं नवमेनवमेऽहनि ॥ अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥ ७४ ॥ चतुर्थमपि वै मासं द्वादशेदाशेऽहनि ॥ वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥ ७५ ॥

प्रीति बढाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दका ध्यान किया *॥७२॥ दूसरे मासमें ध्रुवजीने छठे छठे दिन आपसे आप गिरे हुए तृण और पत्तोंको खाखाकर उदर पूर्ण किया. और हरिका भजन किया ॥ ७३ ॥ तीसरे मासमें नौ नौ दिनमें जलपान करके उत्तमश्लोकईश्वरका समाधिसे पूजन किया ॥७४॥ चौथे महीनेमें बारह२ दिनमें श्वासको जीतकर वायु भक्षणकर श्रीगोविन्दके चरणारविंदका ध्यान किया ॥ ७५॥

---

* **शंका**–कठल,बद्रीफल,सूखे पत्र,जल,वायु,इन भोजनोंसे ध्रुवकी भूखभी नहीं गई और उपासनाका व्रतभी भ्रष्ट होगया.तब इन फलोंको छोडकर केवल उपवासही करके ध्रुवजीने तप क्यों नहीं किया ? **उत्तर**–यह वचन धर्मशास्त्रमें लिखा है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जो यज्ञोपवीत नहीं लेने पावे और बालकपनेंमेंही वनको चलागया तो बिना जनेऊके पहिरे उपवास करके तप करना चाहिये, किंतु बिना आहार किये उस तपकी सिद्धि न होगी.बडे बुद्धिमान् ध्रुवने ऐसा जानके फल और पत्र खाकर तप किया ऐसा भोजन कियेपर उपवासी नहीं हुआ और तृप्ति भी नहीं हुई।

जब पांचवें मासका प्रारंभ हुआ तब नृपनंदन श्वासको जीत खंभकी नाईं एकचरणसे खडे होकर परब्रह्म परमात्माका ध्यान करनेलगे॥ ७६ ॥
इसके अनंतर पञ्चभूत इंद्रिय निवास करते हैं जिसमें ऐसे मनको सब ओरसे हृदय खैंचकर भगवत्के रूपका ध्यान करनेलगे, ऐसे कृष्णमय
होगये कि जहां देखें वहां कृष्णही कृष्ण दिखाई देते थे ॥७७॥ जब महत्तत्त्वादिकोंके आधार प्रधान पुरुषके ईश्वरकी उसने इसप्रकार धारणा
की तब एकाएक तीनों लोक काँप उठे॥ ७८॥ जबवह नृपकुमार एकचरणके आधारसे खडा रहा तब धरणी उसके अँगूठेसे दबी तौ झुकनेलगी

पंचमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ॥ ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥ सर्वतो मन आकृष्य
हृदिभूतेंद्रियाजयम् ॥ ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥ ७७ ॥ आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥
ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकंपिरे ॥७८॥यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदंगुष्ठनिपीडिता मही ॥ ननाम
तत्रार्धमिभेंद्राधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदेपदे ॥ ७९ ॥ तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्याऽसुमनन्यया
धिया ॥ लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम्॥ ८० ॥ देवा ऊचुः ॥ नैवं विदामो भग
वन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥ ८१॥

जैसे गजेन्द्र, एक पग दक्षिण धरनेसे नौका झुक जाती है. ऐसे थोडीसी एक ओरको झुकगई॥७९॥अनन्यमन प्राण जीत दशों द्वारोंको रोककर
आत्माके साथ अभेददृष्टिसे विश्वात्म विष्णु भगवान्का उसने ध्यान किया.तब श्वासके रोकनेसे सब विश्वका श्वास रुका और लोकोंका दम
घुटनेलगा तब लोकपाल और सब देवता महादुःखी हुए,और इस भेदको न जान भगवान्की शरणमें गये ॥८०॥ देवता बोले कि, हे भगवन् !
सर्वान्तर्यामी चराचरलोकके प्राण क्यों रुक गये ? इसका कारण हम नहीं जानते.हे शरणागतवत्सल! हम सब आपकी शरणहैं,इसमहाविपत्तिसे

हमें बचाओ ॥८१॥ श्रीभगवान् बोले कि, तुम कुछ भय मत करो. एक बालकने तप किया है. सो उसको मैं अभी जाकर निवृत्त करूंगा तुम अपने अपने स्थानको जाओ। उत्तानपादका पुत्र ध्रुव तप करनेसे मुझमें उसकी आत्मा सम्यक् प्रकारसे प्राप्त हुई है ❀॥ ८२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां ध्रुवस्य मधुवनसमागमवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा—इस नवमें अध्यायमें, ध्रुव हरिसों वर पाय। आय भवन सबसे मिले, मातचरण शिर नाय ॥ १ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब उन देवताओंका भय दूर होगया, तब सब भगवान् वासुदेवको प्रणाम कर करके सुरपुरको चलेगये, और श्रीभगवान् गरुडपर चढ़कर अपने भृत्यके देखनेके लिये मधुवनमें आये ॥ १ ॥ ध्रुव नेत्र बन्द किये अपने

श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ॥ यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥ ८२ ॥ इति श्रीमद्भाग० म० चतुर्थ० ध्रुवोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ त एवमुच्छिन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ॥ सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥ १ ॥ स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम्॥ तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥ २ ॥ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षितावर्वंदतांगं विनमय्य दंडवत् ॥ दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकं पिबन्निवास्येन भुजैरिवाऽऽश्लिषन्॥ ३ ॥

ध्यानमें मग्न था, योगसे पकीहुई तीव्र बुद्धि करके हृदयकमलके कोशमें प्रकाशित चपलासम चमकवाले भगवत्के चतुर्भुजी स्वरूपको उसने जब हृदयमें न देखा तो एकाएकी चौंक उठा और आंख खोलकर चारों ओरको देखा, तो वही सुन्दर सुहावनी मनभावनी मूर्ति जिसका हृदयमें ध्यान कर रहा था वही भगवान् सन्मुख विराजमान हैं ॥ २ ॥ उनका दर्शन करके विस्मयको प्राप्त हो, देहको पृथ्वीमें नवाय दंडवत् प्रणाम करीऔर ऐसा जानपडा कि, मानो मनोहर छबिके रसको नेत्रोंसे पियेगा, मुखसे चुम्बन करेगा, भुजाओंसे मिलैगा इसप्रकार

---

* **राग भैरवी**—भक्त हैं मेरे जीवनप्रान ॥ जब भीर परत भक्तनपर धरत हमारी ध्यान ॥ उसी समय सुधि लेत गरुड चढ त्याग खान अरु पान ॥ १ ॥ भक्त० ॥ भक्तहेत अवतार लेतहूं भूमंडलमें आन ॥ मैं भक्तनको भक्त हमारे करत सदा सन्मान ॥ २ ॥ भक्त० ॥ कोई मेरी शरण लेतहैं मुझको अपनो जान ॥ मेरे हृदय वसत सो निशिदिन सजन सज्जन सुजान ॥ ३ ॥ मै अपने पूरण भक्तोंको देत हृदय अस्थान ॥ शालिगराम नामसे वढकर और कौनसो दान ॥ ४ ॥ भक्त० ॥

ध्रुवजीने दंडवत् साष्टांग किया ॥ ३ ॥ और कुछ भगवान्‌की स्तुति करनेकी इच्छा थी. परन्तु कुछ कहना नहीं जानता था, सो इस भोलेभाले बालकके और सब जीवमात्रके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् वासुदेवने उसके मनकी भावना जान हाथ जोडे खडादेख, उसपर अनुग्रह करके पांचजन्य शंख उसके कपोलोंसे छुवादिया * ॥४॥ सो ध्रुवजी उसी समय देववाणीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे जीव और ईश्वरके निर्णयको जान ज्ञान और विज्ञान भक्तिभावसे सबप्रकार प्रगट है प्रताप जिनका ऐसे ध्रुवस्थाननिवासी भगवान्‌की स्तुति करनेलगे॥५॥ ध्रुवजी बोले कि, जो अखिल

स तं विवक्षंतमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वाऽस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः॥ कृतांजलिं ब्रह्ममयेन कंबुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥ ४ ॥ स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ॥ तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुव क्षितिः॥५॥ ध्रुव उवाच ॥ योंतः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ॥ अन्यांश्च हस्त चरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ॥ सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥ त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तः प्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ॥ तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यंते कृतविदा कथमार्तबंधो ॥ ८ ॥

शक्तिधारक मेरे भीतर प्रवेश कर मेरी सोईहुई वाणीको और हाथ, पांव, कर्ण, त्वचा प्राणादिकोंको अपने तेजसे जिवाते हैं, उन भगवान् पुरुषके लिये मेरा नमस्कार है ॥६॥ हे नाथ! यद्यपि तुम एक हो, तदपि जैसे काष्ठमें अग्नि नानारूप होकर प्रकाश करती है तैसेही आप अपनी मायारूप अनेक गुणवाली शक्तिसे महदादिक, सब यह जगत् रचकर पीछे उसमें प्रविष्ट होकर इस मायाके असत् गुणोंमें नानारूप होकर प्रकाशो हो, ॥७॥ हे भगवन् ! शरणागत ब्रह्मा आपके दिये हुये ज्ञानसे जैसे सोता हुआ उठताहै, ऐसे इस विश्वको रचता है, हे आर्तबन्धो ! आपके किये उपका

---

* **शंका**–ध्रुवजीने पहिले भगवान्‌को अपने हृदयमें देखकर फिर तुरंत अपने सन्मुख खडा देखकर फिर जानबूझकर मूर्ख क्यों हुए? भगवान्‌का किंचिन्मात्र नाम लेनेसे मनुष्य परमज्ञानी होजाते हैं. और ध्रुवजीने तौ दर्शन किया. फिर पीछे मूर्ख क्यों हुए ?

उत्तर–पांचवर्षकी अवस्थामें ध्रुवको पिताने त्यागदिया, इसलिये रातादिन ध्रुव दुःखी होतेहुए और भगवान्‌को देखकर प्रेमसे ध्रुवकी आंखोंसे जल बहनेलगा और कण्ठ गद्गद होगया, शरीर पुलकायमान होगया, इसकारण ध्रुवसे बोला नहीं गया. इसीकारण भगवान्‌की स्तुतिभी ध्रुवसे नहीं होसकी.

रोंका जाननेवाला, मुक्तजनोंकी रक्षा करनेवाला आपके पादमूलको किस प्रकार भूलसक्ता है?॥८॥ जन्ममरणसे मोक्ष देनेवाले आपको जो पुरुष
विषयादिक कर्मोंके लिये भजते हैं, निःसन्देह वे आपकी मायासे निश्चय भ्रष्टमति हैं, क्योंकि कल्पवृक्षके सदृश आपको पूजकर वे पुरुष मृतककी
नाईं, शरीरकरके उपभोगकी चाहना करते हैं. हायहाय!! अरे मूर्खो !!! विषयजन्य सुख तो प्राणियोंको नरकमेंभी प्राप्त होसक्ता है ॥९॥ हे नाथ !
शरीरधारियोंको जो सुख आपके चरणारविंदके ध्यानसे अथवा आपके वैष्णवजन ब्राह्मणोंकी कथा श्रवणसे भी नहीं होता है, वह आनंद अपनी
महिमामें और ब्रह्ममें तो हैही नहीं फिर यमराजके खड्गरूप कालसे मरनेवाले विमानसे गिरनेवाले सुरपुरवासियोंको कहाँ मिल सक्ता है?॥१०॥

नूनं विमृष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः॥ अर्चंति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छंति य
त्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥९॥ या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि
स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्किं त्वंतकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥ १० ॥ भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसंगो
भूयादनंत महताममलाशयानाम् ॥ येनांजसोल्वणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथाऽमृतपानमत्तः ॥११॥ ते न
स्मरंत्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ॥ ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविंदसौगंधलुब्धहृदयेषु
कृतप्रसंगाः ॥ १२ ॥ तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ॥ रूपं स्थविष्ठमज ते मह
दाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ १३ ॥

हे अनंत ! सदा आपकी निरन्तरभक्ति करनेवाले, अत्यन्त निर्मल अन्तःकरणवाले महात्माजनोंका सदा सत्संग बना रहै; जिन सज्जनोंके मुखसे
आपके गुणोंकी कथारूपी अमृतके पान करनेसे उन्मत्त हो इस महादुःखदाई संसारको विना प्रयास उल्लंघन करूंगा ॥ ११ ॥ हे ईश ! हे कमल
नाभ !! जो पुरुष आपके चरणकमलकी सुगंधिके लोभी हृदयवालोंसे सत्संग करते हैं, वे लोग न तो अतिशय प्रिय अपनी देहको समझते हैं और
इस शरीर संबन्धी सुत, सुहृद्, भवन, धन, स्त्री इत्यादिका अनुसंधान करते हैं ॥ १२॥ हे ईश ! हे परम ! ! पशु, पक्षी, पर्वत, द्विज, सर्प, देव,

दैत्य, सत् असत्, विशेषसमेत महदादि अनेक कारणवाले आपके केवल इस विराट्‌रूपको तो मैं जानता हूँ, परंतु इससे परे उस परमेश्वरके स्वरूपको नहीं जानता, जहाँ कोई वाद विवाद न करसके और शब्दकाभी ज्ञान नहींहै ॥१३॥ महाप्रलयके समय इस विश्वको उदरमें रखकर सर्वद्रष्टा आप शेषजीकी गोदमें एक पुरुषरूप शयन करते हो, जिनकी नाभि समुद्रसे उत्पन्न हुए सुवर्णमय लोकको कमलकी कर्णिकामें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उन भगवान्‌को मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ तुम नित्यमुक्त सब ओरसे विशुद्ध सदा ज्ञानवान् व्यापक सर्वान्तर्यामी आदिपुरुष भगवान् त्रिगुणोंके ईश्वर जो बुद्धिकी अवस्था हैं तिन्हें अखण्ड अपनी दृष्टिसे देखते हो विश्वकी स्थितिमें अतिपूज्य सबसे पृथक् होकर तुम रहते

कल्पांत एतदखिलं जठरेण गृह्णञ्छेते पुमान्स्वदृगनंतसखस्तदंके ॥ यान्नाभिसिंधुरुहकांचनलोकपद्मगर्भे द्युमान्भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥ १४ ॥ त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविशुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यद्बुद्ध्यवस्थितिमखंडितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥ १५ ॥ यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतंति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ॥ तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनंतमाद्यमानंदमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥ १६ ॥ सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ॥ अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ॥ अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता ॥ भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनंद्येदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

हो ॥१५॥ जिसमें विरुद्धगतिवाले विद्यादिक सर्वशक्तिमान संक्षेपसे निरंतर उत्पन्न होते हैं उस विश्वके उत्पन्न करनेवाले अनंत, अखण्ड, अनादि, निर्विकार, आनंदमय, परब्रह्मके मैं शरणहूँ ॥१६॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणकमलके भजन करनेवालोंके पुरुषार्थ और मूर्तिके आशीर्वाद सब सत्य होते हैं, हे श्रेष्ठ ! यह वार्ता ऐसे हैतथापि जैसे नवप्रसूता गौ अपने बछड़ेको दूध पिलाकर सिंहादिकसे रक्षा करती है, उसीकी नाईं आप अनुग्रहयुक्त करुणारससे कातर होकर मुझसरीखे दीनोंकी सब ओरसे रक्षा करते हो ॥१७॥ मैत्रेयजी बोले कि, सत्य संकल्पवाले बुद्धिमान् ध्रुवने जब

इस प्रकार स्तुति करी तब, भक्त अनुरागी भक्तवत्सल भगवान्ने आनंदित होकर यह वचन कहा ॥ १८ ॥श्रीभगवान् बोले कि, हे राजपुत्र ! तेरे मनका विचार मैं जानता हूँ, हे सुव्रत ! तेरा मंगल होगा हे ध्रुव! यह पद और दूसरे मनुष्यको आजतक दुःखसेभी नहीं मिला ॥१९॥ हे भद्र! जो प्रकाशमान ध्रुवस्थान है, वहां और कोई स्थित नहीं है,जिसमें ग्रह, नक्षत्र, तारोंका अर्पित ज्योतिषचक्र है ॥२०॥ उसी ज्योतिश्चक्रकी * मेढीमें लगेहुए वृषभचक्रवत् स्थित ऊपरके कल्पवासियोंने कल्पना किया है, उसका त्रिलोकीके लय होनेपरभी लय नहीं होता, धर्म, अग्नि, कश्यप, शुक्र, वनवासी मुनि अर्थात् सप्तऋषि तारामण्डल सहित जिसकी परिक्रमा करके विचरते रहते हैं हे ध्रुव ! वह सबमें सिद्ध ध्रुवस्थान मैंने तुझको दिया ॥ २१ ॥ अब तू अपनें नगरको जा, तेरा पिता तुझको राज्यतिलक देकर बनको जायगा और तू गन्धर्वोंसे युद्ध कर अपना मनोरथ पूज धर्मानुसार छत्तीससहस्र वर्षपर्यन्त भूमंडलकी रक्षा करेगा ॥ २२ ॥ तेरा भाई उत्तम आखेटको जायगा वहां उसका प्राण नष्ट होगा,तब अपने पुत्रके ढूँढ़नेके लिये उसकी जननी वनमें जायगी और वहां जब वह न मिलेगा तो उसीके ध्यानमें दावानलमें जलकर मरजायगी ॥ २३ ॥ तब तू महाचक्रवर्ती हो यज्ञ करेगा और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा दे, इन्द्रसे भी अधिक विभूतिको प्राप्तकर सब सत्य आशीर्वाद वहां भोग अंतमें मेरा स्मरण करेगा ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ॥ तत्पृच्छामि च भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९ ॥
नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ॥यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ २० ॥ मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्तु
परस्तात्कल्पवासिनाम् ॥ धर्मोऽग्निः कश्यपः शक्रो मुनयो ये वनौकसः ॥ चरंति दक्षिणीकृत्य भ्रमंतो यत्सतारकाः
॥२१॥प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिता मंडलं भुवः ॥ २२ ॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे
मृगयायां तु तन्मनाः ॥ अन्वेषंती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥ २३ ॥ इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ॥
मुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अंते मां संस्मरिष्यसि ॥ २४ ॥

---

* धान्य निकालनेको घूमतेहुए पशुओंके बंधनका जो बीचका खंभ होताहै उसको ''मेढी'' कहते हैं ॥

फिर सब लोग जिसको प्रणाम करते हैं, सप्त ऋषियोंसेभी ऊपर उस मेरे स्थानको जायगा जहाँका गया फिर लौटकर यहाँ नहीं आसक्ता ऋषि तेरी स्तुति करेंगे॥२५॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार पूजित हो, अपना स्थान दिखाय उसबालकके देखते२ गरुडध्वज भगवान्ने अपने स्थानको प्रस्थान किया॥२६॥ यद्यपि वह ध्रुव विष्णु भगवान्के पादारविंदकी सेवामें लब्धसंकल्प मोक्षरूप अपनी मनोकामनाको प्राप्त होगया था तौभी अपने मनमें प्रसन्न न हुआ, क्योंकि श्रीपतिभगवान्के दर्शनका वियोगविचारकर अत्यन्त दुःखी हो अपने नगरकी ओरको चला॥२७॥ विदुरजी बोले कि, जो

ततो गंतासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ॥ बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥ २६ ॥ सोऽपि संकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ॥ प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥ २७ ॥ विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्चितम् ॥ लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् ॥ नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २९ ॥ ध्रुव उवाच ॥ समाधिना नैकभवेन यत्पदं विदुः सनंदादय ऊर्ध्वरेतसः ॥ मासैरहं षड्भिरमुष्यपादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥ ३० ॥

विष्णु भगवान्का परमपद सकाम पुरुषोंको महादुर्लभहै, सो भगवत्के पदार्चनसे उस सिद्धिको एकही जन्ममें प्राप्त होकर उसने अपने आपको निष्फलसा क्यों समझा? ध्रुव तो सब अर्थवेत्ता थे॥२८॥ मैत्रेयजी बोले कि, विमाताके वाक्यरूपीबाणोंसे बिंधेहुए हृदयमें दुर्वचनोंका ध्यान बनारहा इसलिये मुक्तिपति भगवान्से मुक्ति नहीं माँगी राज्यकाही अनुराग मनमें लगारहानेसे राज्य मांगा परंतु पश्चात् बहुत ताप हुआ ॥ २९ ॥ तब ध्रुवजी बोले कि, अनेक जन्मोंसे समाधि लगाकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनंदनादिकोंने जिस पदको नहीं पाया, सो मैं भिन्नमति छः मासमें अव्यक्त भगवान्की

पादच्छायाको प्राप्त होकर,फिर संसारका संसारमें रहा॥३०॥अहो! मंदभागी मेरी दुरात्माका भाव तो देखो-संसारनाशक भगवत्के चरणकमलको प्राप्त होकर नाशवान् पदार्थको माँगा ॥ ३१ ॥ मेरे वरदानको सुनकर देवतालोग सहन न करसके, उन देवताओंने मेरी मति हर ली.हाय! मेरी मति मदं होनेका कारण यही है, जो मुझ दुरात्माने नारदजीका वचन न माना ॥ ३२ ॥ जगत्में कोई दूसरा मेरा विरोधी नहीं था तौभी दैवी मायाके अधीन होकर जैसे सोया पुरुष स्वप्नमें अद्वितीय अनेक असत्वस्तु भाई चाचाका जो हृदयमें शत्रुभाव लगरहा है; उस क्लेशसे वृथा संतापको प्राप्त होता हूँ ॥ ३३ ॥ जैसे आयुक्षीणकी चिकित्सा करना वृथाहै;इसी प्रकार मैंने जो यह मांगा है सो सब वृथाहै;क्योंकि जो अनेक

अहो बत ममानात्म्यं मंदभाग्यस्य पश्यत ॥ भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदंतवत् ॥३१॥ मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ॥ यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥३२॥ दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ॥ तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३३ ॥ मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ॥ प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥ भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥ ३४ ॥ स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ॥ ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ न वै मुकुंदस्य पदारविंदयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ॥ वांछंति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनस्समृद्धयः ॥ ३६ ॥

जन्म तप करनेसे अत्यन्त कठिनतासे प्रसन्न होते हैं,उन सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा विश्वाधार भगवान्को प्रसन्न करके मुझ कर्महीन अभागेने फिर इस नाशवान् संसारहीको माँगा धिक्कार धिक्कार है मेरी इस अज्ञानताको,सब ठौर भाग्यही बलवान् है, न तप है, न विद्या है ॥३४॥भगवान् तो मुझको परमधाम देते थे और अपनी समान बनाते थे, परन्तु मुझ भाग्यहीनने अपनी शठतासे शठ बन मान मांगा, जैसे निर्धन पुरुष चक्रवर्ती राजाको प्रसन्न करके धन धान्यको छोड़ धानोंका तुष मांगै,इस प्रकार मैंने मान मांगा॥ ३५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे तात ! आपके

---

* इस बातपर एक दृष्टांत स्मरण हुआ—" चार पंडित रोजगारके लिये अपने घरसे परदेशको चले. उनमें एक ज्योतिषी, दूसरा नैयायिक, तीसरा व्याकरणी, चौथा वेदान्ती था, वह एक नगरमें पहुँचे और सबने यह विचार किया, राजासे मिलनाचाहिये; ज्योतिषीजीसे कहा कि, कोई श्रेष्ठ मुहूर्त विचारो, ज्योषीजीने कहा कि, आधीरातका मुहूर्त बहुत श्रेष्ठ है, यह विचार चारों आधीरातके समय राजभवनको—

समान जो भगवान् वासुदेवके चरणमूलकी सेवा करनेवाले दासहैं, वे दास्यभावके विना और पदार्थकी इच्छा नहीं करते-क्योंकि मनकी समृद्धि तो यदृच्छासेही प्राप्त होजाती है ॥३६॥ नगरके निकट जब ध्रुव आया तो दूतोंने राजासे कहा कि, महाराज ! आपका पुत्र ध्रुव आता है पुत्रका आना सुन राजाको विश्वास न आया, जैसे मरेहुएके आनेका वृत्तांत सुनकर कोई विश्वास नहीं करताहै, ऐसेही पुत्रका आना सुन राजाने श्रद्धा न करी और कहा कि मुझ अमङ्गलीकके मंगल कहांसे आया!॥३७॥ फिर नारदजीके वाक्योंमें विश्वास करके आनन्दके वेगसे धर्षित हो; ध्रुवजीके

आकर्ण्यात्मजमायांतं संपरेत्य यथागतम् ॥ राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥ ३७ ॥ श्रद्धाय वाक्यं देवर्षे हर्षवेगेन धर्षितः ॥ वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥ ३८ ॥ सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबंधुभिः ॥ ३९ ॥ शंखदुंदुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ॥ निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४० ॥

अनेका समाचार सुन दूतोंको बहुत धन और हार दिये ॥३८॥ उत्तम२ वस्त्रोंसे मढ़े जिनमें श्यामकर्ण घोडे जुते, ऐसे२ सुहावने मनभावने सुन्दर सुवर्णके रथोंपर बैठ बैठकर, ब्राह्मण, गुरु, कुलवृद्ध, मन्त्री, सज्जन, बन्धुजनोंको साथ लिया ॥३९॥ और शंख दुंदुभी बाँसुरी बजाते ब्राह्मण वेदध्वनि

–चलदिये, वहांका दरवाजा बंद होगयाथा, बहुत सोच विचार किया अब क्या करैं ? निदान परनालेके मार्ग होकर प्रवेशकिया, देखा तो वहां एक धानकी भूसीका ढेर पडा है, सब बोले कि, इसीको लेचलो. हमारी भैसकी सानीकेही काम आवैगी. यह कह चारोंने भूसी बांधी. व्याकरणी बोले कि, राजासे तो भेंट हुई ही नहीं, भाई ! राजासे भेंट करलो, जाकर देखा तो राजा पलंगपर सोरहेहैं. इनको निहार राजा पुकार उठा कि, चोर है !चोर है ! ! पकडलो. यह बोले कि, हम चोर नहीं हैं हम पंडित हैं आपके दर्शन करनेके लिये आयेहैं. तब राजाने दंडवत करके कहा कि, आपने बडे कुसमय शुभागमन किया पंडित बोले, महाराज! मुहूर्त इसी समयका था. फिर राजाने कहा कि, आपकी जो इच्छा हो सो मांगो, पंडितोंने कहा केवल आपके दर्शनोंकी ही कांक्षा थी और लेनेके लिये तो पहिलेही भूसकी गठरियें बांधचुके. राजाने कहा तुम्हारी इच्छा, मार्गमें आनकर बडा पश्चात्ताप चारोंने किया, सोई गति ध्रुवजकी हुई ॥

करते पुत्रके दर्शनकी उत्कण्ठासे राजा शीघ्र पुरसे चला॥४०॥सुनीति और सुरुचि दोनों राजा उत्तानपादकी स्त्री सुंदर शृंगार करकर सुवर्णकी पालकियोंमें बैठ बैठ उत्तम कुमारको संगले ध्रुवकी अगवानीको चलीं॥४१॥उपवनके समीप ध्रुवको आता देख राजा शीघ्र स्यन्दनसे उतरकर प्रेमविवश पुलकायमान हो पुत्रके पास गया ॥४२॥ और मनमें अत्यन्त उत्कलित होनेके कारण श्वास लेता. भगवत्के चरणस्पर्शसे जिस ध्रुवके सब पाप नष्ट होगये थे, उस अपने सुतसे भुजा पसारकर मिले॥४३॥ और वारंवार उसका शिर सूँघकर राजाने शीतल नेत्रोंके जलसे सुतको स्नान कराया और राजा उत्तानपादके मनके सब मनोरथ सुफल हुए ॥४४॥ फिर ध्रुवने पिताके चरणोंको दण्डवत् प्रणाम किया,राजाने बहुत प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, फिर विमाताके पदोंमें मस्त नवाकर प्रणाम किया जो ध्रुव सज्जनोंमें अग्रणी और आदर सन्मान पानेवाला था ॥ ४५॥अपने पांवोंमेंसे उस ध्रुवको उठा हृदयसे लगाकर नेत्रोंसे आंसू बहाय गद्गदकण्ठसे सुरुचि बोली कि,हे पुत्र!युग युग जियो ॥४६॥जो सुरुचिने ध्रुवसे अत्यन्त प्रेम प्रीति भरी बातें करीं तो क्या आश्चर्य है ? जिसके ऊपर आप भगवान् हरि मैत्रीआदि गुणोंसे प्रसन्न होते हैं.उसको सब प्राणी मात्र नमस्कार करते हैं जैसे जल आपसे आप नीची ओरको ढला चलाजाता है ॥४७॥उत्तम और ध्रुव दोनों प्रेमविवश परस्पर मिलनेसे रोमांचित हो नेत्रोंसे

सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ॥ आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४१ ॥ ते दृष्ट्वोपवनाभ्याश
आयांतं सरसा रथात्॥ अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥ ४२ ॥ परिरेभंगजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कंठमनाः श्वसन् ॥
विष्वक्सेनांघ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबंधनम्॥ ४३ ॥अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः॥स्नापयामास तनयं जातोद्दा
ममनोरथः ॥४४॥ अभिवंद्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमंत्रितः ॥ ननाम मातरं शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ४५॥
सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ॥ परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥४६॥ यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणै
मैंत्र्यादिभिर्हरिः ॥ तस्मै नमंति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥ ४७ ॥ उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योऽन्यं प्रेमविह्वलौ ॥ अंग
सगादुत्पुलकावस्रौघं:मुहुरूहतुः ॥ ४८ ॥

अश्रुधारा बहाने लगे॥४८॥फिर सुनीति ध्रुवकी जननीने अपने प्राणोंसे प्यारे सुतसे मिलकर हृदयकी दाहको शान्त किया,और अंगके स्पर्शसे परमानन्दित हो सब विषाद मनसे तज दिया॥४९॥हे विदुर!उस समय सुनीतिके स्तनोंसे तो दूध टपकने लगा और नेत्रोंसे निर्मल जलकी धारा बहने लगी,उस समय वीरपुत्रको जननी दोनों धाराओंसे वारंवार सींच रहीथी॥५०॥उस सुनीतिकी सब लोग सराहना करने लगे कि, बहुत अच्छा हुआ जो भक्तोंके दुःखका हरनेवाला,समस्त भूमण्डलका रक्षक, पांचवर्षका तेरा पुत्र जो नगरसे निकल गया था, सो धरणी और धर्मका आधार कुशलपूर्वक तुझको मिला॥५१॥निश्चय होताहै कि भगवान् वासुदेव प्रणतोंके दुःखभञ्जन भक्तमनरञ्जन,श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दका तैने

सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम्॥उपगुह्य जहावाधिं तदंगस्पर्शनिर्वृता॥४९॥पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः
सलिलैःशिवैः॥ तदाऽभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः॥५०॥ तां शशंसुर्नरा राज्ञी दिष्टया ते पुत्र आर्तिहा॥प्रति
लब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मंडलं भुवः॥ ५१ ॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्त्तिहा ॥ यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं
जिग्युः सुदुर्जयम् ॥ ५२ ॥ लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ॥ आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥
॥ ५३ ॥ तत्रतत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ॥ सवृंदैः कदलीस्तंभैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥ ५४ ॥ चूतपल्लववासस्स्रङ्
मुक्तादामविलंबिभिः ॥ उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुंभैः सदीपकैः ॥ ५५ ॥ प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुंभपरिच्छदैः ॥
सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥ ५६ ॥

भलीभाँति आराधन कियाहै;जिनके ध्यानकरनेवाले वीरपुरुष महाकठिन मृत्युको जीत लेते हैं ॥५२॥ इसप्रकार जिस ध्रुवकुमारको वारंवार लाडलडाते और देखर सुख पातेथे,उस ध्रुव उत्तम कुमारसमेत हथिनीपर चढ़ाकर राजाने आनन्दपूर्वक नगरकी ओरको प्रविष्ट किया, और सब लोग आगेरस्तुतिकरते चले॥५३॥उस नगरमें जहां तहां मरकतमणि लस रहेथे तोरण वन्दनवार द्वारद्वारपर विराज रहीं थीं,समूहके समूह केलेके खंभ तथा श्रीफल सुपारीके छोटे छोटे वृक्ष जहां शोभा दे रहे थे ॥५४॥ आम्रपल्लव, वस्त्रमाला और मोतियोंके लम्बे लम्बे हार जिनमें लटक रहेथे, द्वारद्वार पर दीपोंकी जगमग ज्योति होरही थी, उनके प्रकाशसे सुवर्णके कलश कलशियां बिजलीसी झमझमा रही थीं॥५५॥ नगरकोट, कोटद्वार,गोपुर,

मन्दिरमन्दिरपर सुन्दर सुन्दर सुवर्णकी सामग्री सुशोभित और सब ओरसे श्रीमत् विमान शिखरोंकी कांतिसे देदीप्यमानथे॥५६॥ जहां सुन्दर २ चौबटियां,वीथी,अटा, अटारी और मार्ग सेवतीके जलसे छिडका हुआ चन्दनसे चर्चित,खीलैं,चावल,पुष्प, फल,तंडुल, लोग बखेर रहेहैं और भेटें धरी हैं ॥५७॥ दधि, दूर्वा,सरसों,फल,फूल, अक्षत थालोंमें धरकर पुरकी स्त्रियें धाय धायकर ध्रुवसे मिलनेको आती थीं॥५८॥ और अत्यन्त स्नेहसे सत्य आशीर्वाद देती थीं उन कोकिलकण्ठियोंके मनोहरगीतोंको सुनतेहुए ध्रुवजी पिताके भवनमें चलेगये॥५९॥महामणियोंके समूहयुक्त उस परमोत्तम मन्दिरमें पिताने बहुत लालन पालन किया,स्वर्गमें देवता जैसे वास करते हैं, ऐसे भवनमें ध्रुवजी निवास करने लगे॥६०॥जिसमें हाथी

मृष्टचत्वररथ्याऽट्टमार्गचंदनचर्चितम् ॥ लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तंडुलैर्बलिभिर्युतम्॥५७॥ ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्रतत्र पुर
स्त्रियः ॥ सिद्धार्थाक्षतदध्यंबुदूर्वापुष्पफलानि च॥५८॥उपजह्रुः प्रयुंजाना वात्सल्यादाशिषः सतीः॥शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि
प्राविशद्भवनं पितुः॥५९॥ महामणिव्रातमये स तस्मिन्भवनोत्तमे ॥ लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥
॥ ६० ॥ पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि महाऽर्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥ ६१ ॥
यत्र स्फटिककुडचेषु महामारकतेषु च ॥ मणिप्रदीपा आभांति ललनारत्नसंयुताः ॥ ६२ ॥ उद्यानानि च रम्याणि
विचित्रैरमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहंगमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६३ ॥ वाप्यो वैडूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ॥ हंसकारं
डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसः ॥ ६४ ॥

दांतके पायोंका पलंग सुवर्णकी सामग्री,दूधके फेनकी समान शय्या बिछी हुई थी; श्रेष्ठ आसनोंकी शोभा होरही थीं और सब कार्यकी सामग्री ठौर २ धरीथी ॥ ६१ ॥ बिल्लोरकी भीतें जिनमें महामरकतमणिके आले बनेहुए उनमें मणियोंके दीपक जहां तहां धरे जगमगा रहे हैं और स्त्रीरत्न जहां बहुत इकट्ठे हैं॥६२॥ अत्यन्त रमणीक जहां बाग लग रहे हैं तहां विचित्र कल्पद्रुम समान वृक्षोंपर रंगरंगके पक्षियोंके जोडे अपनी२मनोहर बोलियें बोलरहेथे और मतवाले भ्रमरोंके झुण्डके झुण्ड गुन्जार रहेथे॥६३॥कनकमयी बावडी तड़ागोंमें निर्मल नीर झकोल रहे थे वैदूर्यमणियोंकी

सुन्दर शोभायमान सोपान चारों ओर बन रही थी.पद्म, कन्ज, उत्पल, कह्लार जिसमें चार प्रकारके कमल फूल रहे थे, और हंस सारस, बक, चकवे, चकवियोंके समूहके समूह किलोंलें कर रहे थे, सुरेन्द्र, नागेन्द्र और किसी नरेन्द्रके जो विभूति आजतक नहीं हुई, सो सब ऐश्वर्य्य भगवान्की कृपासे ध्रुवजीके नगरमें उपस्थित था॥६४॥उत्तानपाद राजा ऋषिपुत्रका अद्भुत प्रभाव कानोंसे सुनकर और नेत्रोंसे देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ॥६५॥ध्रुवजीको हरिभक्त जानकर और अपनी वृद्धावस्था देखकर प्रजा और मंत्रियोंको बुलाकर बोला कि अधिकार तौ उत्तम कुमारका है वह श्रेष्ठ पुत्र है परन्तु मेरे मनमें यह विचार है कि, राज्यपद ध्रुवजीको दूं क्योंकि ध्रुवमें सब गुण हैं.सचिव और प्रजागण एकबार पुकार उठे कि, हे पृथ्वीनाथ! आपने ठीक विचार विचारा ध्रुवजीकोही राज्याभिषेक देना चाहिये, प्रजागणकी सम्मतिसे सबको अनुरागी देख राजाने राज्य

उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥ ६५ ॥ वीक्ष्योढवयसं तं च
प्रकृतीनां च संमतम् ॥ अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥ ६६ ॥ आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः॥
वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥६७ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० चतुर्थस्कन्धे नवमोऽध्यायः॥९॥ छ॥मैत्रेय
उवाच ॥ प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ॥ उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥ इलायामपि भार्यायां
वायोः पुत्र्यां महाबलः ॥ पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥२॥ उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा॥ हतः
पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ॥ ३ ॥

अधिकार दे पृथ्वीका पति ध्रुवको किया॥६६॥और राजा उत्तानपाद अपना देह वृद्धावस्थाका जानकर सबसे विरक्त हो अपनी आत्माकी गति विचार करके तप करनेके लिये वनको चलदिया ॥ ६७॥इति श्रीम०महा०चतु०भा०टी०ध्रुवस्य भगवत्कृपया पुना राज्यप्राप्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥ दोहा--इस दशवें अध्यायमें, ध्रुव अलकापुर जाय। जैसे मारे यक्ष सब, अति वीरता दिखाय ॥ १ ॥मैत्रेयजी बोले कि, शिशुमार प्रजापतिकी भ्रमी नाम्नी कन्यासे ध्रुवजीने विवाहकरके उसमें कल्प और वत्सर नाम दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इला नाम्नीसे महाबली ध्रुवजीने उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न किया और उसी रानीसे एक रत्नरूप एक कन्या उत्पन्न करी ॥ २॥ उत्तम कुमारने अपना

विवाहही नहीं किया था, वह पहलेही हिमालय पर्वतके भीतर आखेट खेलनेको गया था, एक बलवान् यक्षने उसको मारडाला और उसकी माताभी उसकी समान गतिको पाकर मरगई ॥ ३ ॥ ध्रुवजीको मालूम हुआ कि उत्तमकुमार यक्षोंके हाथसे मारागया तब कोप, अमर्ष शोकमें मग्नहो जयदायक रथमें बैठकर अकेलेहीने पुण्यजनोंके निवासस्थल अलकापुर पर चढ़ाई की ॥४॥ रुद्रके अनुचर जिसमें वास करें ऐसी उत्तरदिशामें जाकर हिमालयकी गुफामें ध्रुवजीने अलकापुरी देखी ❋ ॥ ५ ॥ तब बडी बाहुवाले ध्रुवने पांचजन्यसम शंखध्वनि करी, जिसके शब्दसे आकाश और दशोंदिशा गूँज उठीं मानों वज्रपात हुआ, हे विदुर! उद्विग्नमन करके यक्षोंकी स्त्रियें अत्यन्त भयभीत हुईं॥६॥

ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचाऽर्पितः ॥ जैत्रं स्यंदनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥४॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम्॥ ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥ ५ ॥ दध्मौ शंखं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ॥ येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥ ६ ॥ ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ॥ असहंतस्तं निनादमभि पेतुरुदायुधाः ॥ ७ ॥ स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः ॥ एकैकं युगपत्सर्वानहन्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥

तब शंखनाद सुनकर कुबेरके महाबली उपदेव, महाभट, गुह्यक, राक्षस, गन्धर्वोंने प्रथम तो पृथ्वी और पर्वतोंकी ओर देख जब कुछ दृष्टि न आया तो क्रोधवन्त हो कुबेर बोला कि, ऐसा कौन बलीहै, जो हमसे युद्ध करने आया ? और शंख बजाया ? यह कहा हथियार उठाये ध्रुवजीके सन्मुख आए॥ ७॥ प्रचंड कोदंड हाथमें लेकर ध्रुवजी सारथीसे बोले कि, शत्रुसेनाकी ओर शीघ्र रथको ले चल, आज इस

❋ **शंका**–ध्रुवने अपने भ्राता उत्तमकुमारके मरनेका वृत्तान्त सुनकर बडा भारी युद्ध मूर्खोंकी सदृश क्यों किया ? भगवान्का प्यारा होकार विचारसे हीन काम करना यह बडे आश्चर्यकी बात है. और राज्यके लिये क्षत्रियोंको युद्ध करना यह बडी शोभा है. बिना प्रयोजन युद्ध करना यह अत्यन्त मूर्खपन है.

उत्तर–भाईके मरणका कारण सुनकर, क्षत्रियोंको निन्दितहै ऐसा ध्रुवजी जानते रहे तौ भी लोककी निन्दासे डरे कि, सब जगत्में दुर्नामता होगी कि ध्रुवके भाईको यक्षोंने मारडाला और ध्रुवने कुछ भी उनसे बदला नहीं लिया और यक्षोंको त्रास नहीं दिया.यह कायरपन क्षत्रियोंको नहीं करना चाहिये. इस लोकनिन्दाके भयसे भगवान्के प्यारे ध्रुवजीने यक्षोंके साथ युद्ध किया.

शत्रुदलको हन, मनकी अभिलाषा पूर्ण करूंगा. नृपनंदनके गम्भीर वचन सुन सूतने रथको ऐसा दौडाया कि,जिसको देख पवनभी मनमें लज्जित होता था,जातेही धनुषटंकार कर मार मार मचा दी,और रथको ऐसे दौडाता फिरता था,जैसे घनमें दामिनी दौडती है कभी यहां कभी वहां बाणोंसे चारों ओर ऐसा अंधकार छागया कि वीरोंको दिशाओंका ज्ञानभी नहीं रहा; कि कहां है पूर्व और कहां है पश्चिम, एक एक यक्षके तीन तीन बाण एकसंग मारे ॥ ८ ॥ जब उनके मस्तकोंमें तीक्ष्ण बाणोंके घाव लगे, तब सब अपने आत्माको पराजय मानकर ध्रुवके पराक्रम और वीरताकी प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ परन्तु ध्रुवजीकी धीरता और वीरता यक्षोंसे सही नहीं गई, जैसे भुजंगके अंगमें पांव लगनेसे वह उसको सहन नहीं करसक्ता, इसीप्रकार यक्षोंके हृदयमें क्रोधकी दावानल भडकी और महाक्रोधवन्त हो ध्रुवसे द्विगुण बाण चलाने लगे,क्योंकि

ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ॥ मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥ तेपि चामुममृष्यंतः
पादस्पर्शमिवोरगाः ॥ शनैरविध्यन्युगपद्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ १० ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ॥ शक्त्यृ
ष्टिभिर्भुशुंडीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ ११ ॥ अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ॥ इच्छंतस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि
त्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ॥ न उपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ १३ ॥
हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ॥ हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥ १४ ॥ नदत्सु यातुधानेषु
जयकाशिष्वथो मृधे ॥ उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥

इनको तो अपना बदला लेना था ॥ १० ॥ परिघ, निस्त्रिंश,पाश, शूल,खड्ग, परशु,शक्ति, ऋष्टि, भुशुंडी और विचित्र पक्षोंवाले विशिख वर्षाने लगे ॥ ११ ॥ एक लक्ष तीस सहस्र १३०००० यक्षोंने ध्रुवजीको चारों ओरसे आनकर घेरलिया और अपने अपने रथोंपर बैठे अत्यन्त कुपित हो बाण चला रहे थे ॥ १२ ॥ उस समय उत्तानपादका पुत्र बहुत शस्त्रोंसे ऐसे ढकगया जैसे अधिक वर्षा होनेसे सुमेरुपर्वत घटामें छिप जाता है॥ १३ ॥ जो सिद्धलोग आकाशमेंविमानोंपर बैठे देख रहे थे, उनमें बडा हाहाकार शब्द हुआ कि, हाय ! आज सर्वनाश होगया, आज मनुवंशका मार्तण्ड पुण्यजनरूपी सागरमें डूबगया ॥ १४ ॥ जय चाहनेवाले यातुधान जब युद्धस्थलमें जय जय शब्द उच्चारण करने लगे

उस समय ध्रुवके रथका एक ऐसा प्रकाश हुआ, जैसे कुहरामेंसे सूर्य निकलता है, और दशों दिशाओंमें प्रकाश होजाता है ॥ १५ ॥ उस समय ध्रुवजीने अपने दिव्य धनुषकी टंकार कर, द्वेष और खेदके उत्पन्न करनेवाले शत्रुओंके शस्त्रसमूहोंको अपने तीव्रबाणोंसे काटकर ऐसे बखेर दिया, जैसे पवन मेघोंके समूहको खण्ड खण्ड कर देता है ॥ १६ ॥ ध्रुवके धनुषसे जो बाणोंके निकर निकलते थे, वे यक्षोंके कवचोंको भेदकर उनके शरीरके भीतर ऐसे घुस जाते थे जैसे वज्र पर्वतको तोडकर भीतर प्रवेश करता है, एक एक बाण दश दश यक्षोंके हृदयको विदीर्ण कर निकल जाताथा ऐसे लक्षों बाण ध्रुवने यक्षोंको मारे ॥ १७ ॥ कंचनके कुंडल जिनमें झलक रहे ऐसे ऐसे सहस्रशिर शरोंसे

धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ॥ अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ॥ कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७ ॥ भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुंडलैः ॥ ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥ १८ ॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ॥ आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥ १९ ॥ हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ॥ प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेंद्रविक्रीडितयूथपा इव ॥ २० ॥ अपश्यमानः सतदाततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः ॥ पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥ २१ ॥

छिदेहुए, हेमतालसम जंघा, कंकण, भुजबन्द, जिनमें शोभित ऐसी सहस्रों भुजायें काटडालीं ॥ १८ ॥ हार, केयूर, मुकुट, पगड़ियोंसे ढकीहुई, संग्रामभूमि योद्धाओंका मन मोहनेवाली ऐसी अनुपम शोभायमान दिखाई देती थी मानों नये नये शृंगार किये आनन्दमें मग्न है ॥ १९ ॥ क्षत्रियवंशउजागर जो ध्रुवजी हैं, उनके तीक्ष्णबाणोंसे जिनके अंग कट गये थे ऐसे वीरपुरुष रणस्थलमें पडे थे और जो मरनेसे बच रहे थे वे संग्रामांगणसे ऐसे भागगये, जैसे पंचाननको देखतेही हाथियोंके यूथके यूथपलायित होजाते हैं ॥ २० ॥ मनुकुलभूषण ध्रुवजीनेजब उस महासंग्राममें किसीशस्त्रधारीको खडा न देखा तो शत्रुकी पुरीमें जानेका विचार किया. फिर मनहीमनमें विचारा कि, ये गुह्य

कलोग बड़े मायावी होतेहैं न जानिये क्या उपद्रव कर उठावैं ।(इनके कर्तव्यको मैं नहीं जानसक्ता,हे सारथे! तेरी क्या इच्छा है?मैं नगरमें जाऊँ वा न जाऊँ? सारथी बोला कि,हे नाथ! कदापि भूलकरभी नगरमें पैसार न कीजिये,क्योंकि माया रचनेमें ये यक्ष बडे छली और बडे बलीहैं कोई न कोई छल अवश्य करैंगे तो फिर जीती हुई बाजी हाथसे जाती रहेगी और सदा पश्चाताप मनमें बना रहेगा)॥२१॥ध्रुव विचित्र रथी अपने सारथीसे यह बातें कर रहे थे और वैरियोंके पुनरुद्योगकी शंकासे यह यत्नवान् हो रथको रोंके हुए खडा था कि, इतनेमें अनाश्रित समुद्रके गर्जनेकेसा शब्द सुनाई दिया और चारों ओरसे आँधीसी धूर उडती दृष्टि पडी,पवन ऐसे वेगसे चलनेलगा मानों आजही सब भूमिके भूधरोंको उखाडकर बगेल देंगे॥२२॥एक क्षणमात्रमें सब गगनमण्डल मेघसमूहोंसे व्याप्त होगया,संसारमें अंधकार छागया,चारों ओर अनेक प्रकारकी दामिनी दमकने

इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यतः परेषां प्रतियोगशंकितः ॥ शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजो
ऽन्वदृश्यत ॥ २२ ॥ क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ॥ विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना ॥ २३ ॥
ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ॥ निपेतुर्गगनादस्य कबंधान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥ ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः
सर्वतोदिशम् ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥ २५ ॥ अहयोऽशनिनिश्श्वासा वमंतोग्निं रुषाक्षिभिः ॥
अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥ २६ ॥

लगीं,भयानक वज्रपात होने लगा,और बादलके गर्जनेका ऐसा महाघोर शब्द होता था, मानों आजही प्रलय होजायगी ॥२३॥ हे पापरहित विदुर! क्षणमात्र पश्चात् आकाशसे रक्तकी धारा वर्षने लगी,फिर पुरीष, पीब,मूत्र,चर्बी,मांसादिक अधम पदार्थोंकी वृष्टि होने लगी, और ध्रुवके आगे आनकर कबंध गिरने लगे ॥ २४ ॥ फिर आकाशमें एक बड़ा लम्बा चौड़ा पहाड़ दिखाई दिया मानों चारों दिशानमें एक वितान तान दिया है, फिर उसमेंसे लाखों पाषाण गिरनेलगे,फिर अखंड वृक्षोंकी वर्षा होने लगी,फिर अत्यन्त भयानक अग्निके अंगारके अँगारे आनेलगे,फिर दशों दिशाओंसे गदा, परिघ,मुसल, खड्ग और महाकठोर कुठार गिरनेलगे॥२५॥फिर कुपित हो वज्रसमान सहस्रों सर्प फण उठाये फुँकारते श्वास लेते

हुए कुपित हो आँखोंसे अग्निकेसी लपटें निकालते ध्रुवपै धाये फिर मतवाले मतंग, सिंह, व्याघ्र, वराह, ऋक्ष, श्वानोंके समूहके समूह चारों ओर दौड़नेलगे, फिर दो दो शिरवाले, पांच पांच शिरवाले, दश दश शिरवाले, पांच भुजावाले, दश भुजावाले, बीसभुजावाले, तीनचरणवाले, छह चरण वाले नौ चरणवाले अनेक अनेक भांतिके भूत, प्रेत, वैताल, आनेलगे और ध्रुवजीको भय दिखाने लगे ॥ २६ ॥ फिर समुद्र भयंकर लहरें लेता चारों ओरसे भूमिको डुबाता भूधरोंको गिराता चलाआता है और प्रलयकालकी समान महाघोर शब्द करता हुआ भयानकरूपसे ध्रुवजीके समीप आगया ॥ २७ ॥ कायरोंके ऐसे अनेक प्रकारके तीक्ष्ण त्रास दिखानेके लिये असुरोंने अपनी आसुरी माया रची ॥ २८॥ असुरोंने जब

समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् ॥ आससाद महाह्रादः कल्पांत इव भीषणः ॥ २७ ॥ एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ॥ ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥ २८ ॥ ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ॥ निशम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥ २९ ॥ मुनय ऊचुः ॥ औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ॥ यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा लोकोंजसा तरति दुस्तरमग मृत्युम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ध्रुवजीपर अत्यन्त दुस्तर मायाओंका प्रयोग किया, तब ऋषीश्वर और मुनीश्वर अत्यंत कृष्णभक्त ध्रुवको दुःखी देखकर आकाशसे पुकार पुकार मंगलवाची शब्द कहने लगे ॥ २९ ॥ सप्तऋषि बोले कि, हे ध्रुव ! हे उत्तानपादके कुमार !! कुछ शंका न कीजिये श्रीगोविन्दके चरणारविन्दसे ध्यान लगाओ, वह शार्ङ्गधनुष धरनहारे भृत्योंके भय हरनहारे, वासुदेव भगवान् शरणागतप्रतिपालक तुम्हारे शत्रुओंका शीघ्र नाश करेंगे हे ध्रुव ! जिनका नाम लेनेसे सुननेसे विना परिश्रम विना उपाय मनुष्य इस संसारसे पार होजाते हैं* ॥३०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषाटीकायां ध्रुवस्य यक्षैःसह युद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

* **भजन**–श्रीगोविन्द परमानन्द सन्तन हितकारी ॥ दीनबन्धु दामोदर, मधुसूदन मुरलीधर, विश्वनाथ विश्वंभर व्रजपति वनवारी ॥१॥ जनपर जब परत सरि, तुरत धरत नरशरीर, क्षणभरमें हरत परि, सावरे विहारी ॥ २ ॥ हरि हरि जब टेरो गज, धाये झट खगपति तज, धन धन धन गरुडध्वज, भक्तनभयहारी ॥ ३ ॥ करुणाकर कष्टहरण, वीरोत्तम धीरधरण अब तो हूं चरण शरण–

दोहा–एकादश अध्यायमें, देख यक्षसंहार। मनुने वर्जा ध्रूवको, हे सुत इनहिं न मार॥ ११॥ मैत्रेयजी बोले कि, सप्तऋषियोंका यह वचन सुनतेही ध्रुवजीने आचमन करके धनुषमें नारायणास्त्रका संधान किया ॥ १॥ हे विदुर! नारायणास्त्रका संधान करतेही यक्षोंकी रचीहुई माया क्षणमात्रमें ऐसे विनष्ट होगई, जैसे ज्ञानके उदय होतेही सब क्लेश दूर होजातेहैं॥ २॥ जब ध्रुवजीने नारायणास्त्रका प्रयोगकिया उस समय सुवर्णके अन्तभागवाले

मैत्रेय उवाच॥ निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः॥ संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम्॥ १ ॥ संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः॥ क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा॥ २॥ तस्याऽऽर्षास्त्रं धनुषि प्रयुंजतः सुवर्ण पुंखाः कलहंसवाससः॥ विनिस्सृता निर्विविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखंडिनः॥ ३ ॥ तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः॥ तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः॥ ४ ॥ स तान्पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान्॥ निनाय लोकं परमर्कमंडलं व्रजंति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः॥ ५ ॥

४०१— मनोहर हंसोंके पंखरूपी बाण धनुषसे निकल निकलकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश करनेलगे, जैसे भयंकर शब्दवाले मोर वनमें प्रवेश करते हैं ॥ ३ ॥ कठिन धारवाले शरोंसे मारेहुए पुण्यजन संग्राममें अत्यन्त क्रुद्ध हो शस्त्र उठा उठा कर चारों ओरसे ध्रुवजीपर झपटे, जैसे गरुडके सन्मुख सर्प फणा उठाकर दौड़ता है ॥ ४ ॥ ध्रुवके बाणोंसे रणस्थलमें जिनके बाहु, ऊरु, जंचा, ग्रीवा, उदर, कटगये थे उनको सूर्यमण्डलसे परे जो परमधाम

–हे प्रभु तुम्हारी ॥ ४ ॥ दुःशासन दुष्टराज, नग्न करन चहत आज, देखरह्यो सब समाज, लाज सब बिसारी ॥५॥ वेग आय लो बचाय, नातो सब लाज जाय, फिर तुम कहा करहु आय, जब न रहे सारी ॥ ६ ॥ हे गोविंद हे गिरिधर, हे यदुपति हे श्रीधर, ऐसे कह आँसूं भर, द्रौपदी पुकारी ॥ ७ ॥ खगपति पर हो सवार, धाये यशुदाकुमार, बढादिये पट अपार, झटपट असुरारी॥ ८ ॥ धन धन ध्रुव ज्ञान मान, भक्तनमें अतिसुजान, जगमें को तुम समान, धर्मध्वजाधारी ॥ ९ ॥ जो जन हैं परमभगत, हरि हरि दिनरात जप्त, तिनको नाहिं देखसकत, एक क्षण दुखारी ॥ १० ॥

है,वहां पहुँचा दिया जहाँ भक्तजन सूर्यमण्डलको भेदकर जाते हैं❋ ॥ ५ ॥ महाबाहु ध्रुवके हाथसे निरपराधी बहुत गुह्यकोंको मरेहुए देखकर ध्रुवके पितामह करुणासागर मनुजी सप्तऋषियोंसहित ध्रुवजीके समीप आनकर ॥ ६॥ बोले कि, पुत्र! यह क्रोध पापका रूप और नरकका देनें वाला है इसको छोड़दे, वृथा रोष करके इन पुण्यजनोंको तुमने मारा ॥७॥ हे वत्स ! हमारे कुलके योग्य वह कर्म तुम्हारा नहीं है, निरपराधी यक्षोंका मारना इस कर्मकी सत्पुरुष निन्दा करते हैं ॥ ८ ॥ एक यक्षके अपराध करनेसे तैंने सहस्रों यक्ष मारडाले. हे भ्रातृवत्सल! हे अंग!!एक

तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ॥ औत्तानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सह
र्षिभिः ॥ ६ ॥ मनुरुवाच ॥ अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ॥ येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ७ ॥
नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ॥ वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८ ॥ नन्वेकस्यापराधेन प्रसं
गाद्बहवो हताः ॥ भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयांग भ्रातृवत्सल ॥९॥ नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ॥ यदात्मानं
पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥१०॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ॥ आराध्याऽऽप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं
पदम् ॥ ११ ॥ स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः ॥ कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥ १२ ॥

भाईके वध होनेसे तुमने कुपित होकर सब यक्षकुलका विध्वंस करदिया ॥ ९ ॥ हृषीकेश भगवान्के भक्तोंका यह मार्ग नहीं है;जो उत्तम शरीर पाकर आत्मज्ञानी होकर,पशुओंके समान जीवोंकी हिंसा करते हो॥ १०॥सब जीवमात्रमें अपने समान भाव जानकर सब जीव जिसमें वसतेहैं ऐसे हरिका आराधन करनेके प्रतापसे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके परमपदको प्राप्त हुआ ॥११॥ और तैंने भगवान्का ध्यानभी कियाहै, और

❋ शंका-ध्रुवने यक्षोंको मारकर योगियोंके लोकको क्यों भिजवाया जो पुरुष युद्धमें मारेजाते हैं उनको स्वर्ग प्राप्त होता है. परन्तु ब्रह्माण्डमें: प्राणोंके चलानेवाले और ब्रह्माण्डको फोडकर परमपदको जानेवाले मुनियोंके लोकको युद्धमें मरेहुए प्राणी कभी भी नहीं जासकैंगे ध्रुवने यक्षों को कैसे उस लोकको भिजवादिया ?

उत्तर-ध्रुवने यक्षोंको नारायणास्त्र मारा और नारायणास्त्र यक्षोंके शरीरमें छूगया. नारायणास्त्रके मारनेसे अथवा उसी अस्त्रका छूके वा भगवान् दास ध्रुवको देखकर यक्षोंने अपने प्राणोंको छोडदिया इसलिये यक्ष परमपदको प्राप्त हुए.

श्रीवैष्णवोंमें श्रेष्ठभी है और महात्मापुरुषोंके वृत्तिकी शिक्षाभी पाई है,फिर यह निंदित कर्म क्यों किया? ॥१२॥ सहनशीलता, दया, मैत्री, क्षमा,
सब जीवमात्रमें करनी योग्य है,क्योंकि सबमें समताभाव रखनेसे विष्णु भगवान् प्रसन्न होतेहैं॥ १३॥जब भगवान् वासुदेव जिसपर प्रसन्न होते हैं
तब प्राकृत गुणोंसे वह पुरुष छूटकर जीवन्मुक्त हो ब्रह्मके आनन्दको प्राप्त होताहै॥ १४॥और पञ्चभूतसे यह सब स्त्री पुरुष जन्म लेतेहैं और सब
जानते हैं कि स्त्री पुरुषहीके मैथुनकर्म करनेसे इस जगत्में नर नारी उत्पन्न होते हैं.फिर पिता,भ्राता,पुत्रादिक सम्बंध सब वृथाहै॥ १५॥हे राजन् !
परमात्माकी विचित्रमाया करके गुणोंके उलटे पुलटे होनेसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन,संहार होता रहता है॥ १६॥ इसमें निर्गुण पुरुष श्रेष्ठ ईश्वर

तितिक्षयाकरुणया मैत्र्या चाखिलजंतुषु ॥ समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ १३ ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः
प्राकृतैर्गुणैः॥ विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ १४ ॥ भूतैः पंचभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ॥ तयोर्व्य
वायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ॥ गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमा
त्मनः ॥ १६ ॥ निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥ १७ ॥
स खल्विदं भगवान्कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ करोत्यकर्तैव निहंत्यहंता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥
॥ १८ ॥ सोऽनंतोंतकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनांतकम् ॥ १९ ॥

तो केवल निमित्तमात्र है, उसमें कोई गुण नहीं. जैसे चुम्बक पत्थरके निमित्तसे लोहा घूमता है इसीप्रकार यह कार्य्यकारणात्मक संसार घूमता
रहता है ॥ १७ ॥ संसारकरके जिनके वीर्यका विभागकियागया है, वह भगवान् अपनी कालशक्तिसे आप अकर्ता है, तौभी इस संसारको
वारंवार रचता है और आप अहंता होनेपरभी इस संसारका वारंवार संहार करता है. निश्चय है कि, सर्वशक्तिमान् भगवान्की चेष्टा कोई जान
नहीं सक्ता“चौपाई ॥ हरि चरित्र को जाननहारा । कहां करत कह करन विचारा”॥१८॥सो अनंत अन्त करनेवाला काल अनादि सबकी आदि

करनेवाला है,सो जनोंसे जनोंको जन्माता है और मृत्युसे कालरूप होकर मारताहै ॥ १९ ॥ वह परमात्मा प्रजाको समानभावसे देखता है, उस
मृत्युरूप परमेश्वर कालरूपके न तो कोई अपना है, न कोई पराया है, असमर्थ अनाथ होकर यह सब जीवसमूह कर्मोंके वश होकर कालके
दौडनेसे उससे पीछे दौडतेहुए चले जाते हैं, जैसे पवनके प्रसंगसे रजके कण उडे चलेजाते हैं ॥ २० ॥ जीवकी आयुकी हानि और रक्षा ये
दोनों बातें कर्माधीन हैं,और परमात्मा तो स्वयं इच्छाचारीहै,उसके तो कभी न क्षति है,न कभी वृद्धि है, कभी स्वस्थ कभी अस्वस्थ,ऐसे जीवका
भगवान् निधान करते रहते हैं।॥२१॥हे नृप! इस संसारकी अद्भुत रीति है,कोई आचार्य तो कर्मको ईश्वर कहतेहैं,कोई स्वभावको ईश्वर कहतेहैं,

न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विंशतः समं प्रजाः ॥ तं धावमानमनुधावंत्यनीशा यथा रजांस्यनिलं
भूतसंघाः ॥ २० ॥ आयुषोऽपचयं जंतोस्तथैवोपचयंविभुः ॥ उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥ २१ ॥
केचित्कर्म वदंत्येनं स्वभावमपरे नृप॥एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्यु
दयस्य च ॥ न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसंभवम् ॥ २३ ॥ न चैते पुत्रक भ्रातुर्हंतारो धनदानुगाः ॥ विसर्गा
दानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥ २४ ॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हंति च ॥ अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते
गुणकर्मभिः ॥ २५ ॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः॥स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च॥२६॥

कोई कालको ईश्वर कहते हैं,कोई भाग्यको ईश्वर कहतेहैं और वात्स्यायनादि ऋषि कामदेवको ईश्वर कहतेहैं॥२२॥उस अप्रमेय,अव्यक्त शक्तिरूप,
महत्तत्त्वादि अनन्त शक्तियोंके उत्पन्न कर्ता भगवान्की इच्छाको कोई नहीं जानसक्ता,तो फिर उनके जन्मकर्मका भेद कैसे जान सक्ता है ?॥२३ ॥
हे वत्स ! इन कुबेरके यक्षोंने तुम्हारे भ्राताको नहीं मारा है, हे तात! जन्म मरण तो पुरुषके भाग्यसे होता है॥२४॥वही विश्वका रचनेवालाहै वही
पालन करनेवालाहै और वही नाश करनेवाला है,यद्यपि ऐसाहै तोभी अहंकारके त्यागनेसे गुणकर्ममें लिप्त नहीं होता॥२५॥ वही कालरूप ईश्वर

भूतात्मा भूतोंका ईश,सबका पालक, अपनी माया शक्तिसे मुक्त होकर सब जीवोंको रचता है, पालता है, संहार करताहै॥२६॥हे तात! जो अभक्तोंको मृत्युरूप, भक्तोंको अमृतरूपहै,उस जगत्परायण सर्वात्माकी शरणमें तू जा, जिसको विश्वके रचनेवाले ब्रह्माजीभी बलि देते हैं,जैसे नथनोंमें पोईहुई रस्सीके वशीभूत हो"बैल"सब स्थानोंमें घूमता फिरता है ॥ २७ ॥ जब तू पांच वर्षका था, तब विमाताके मर्मभेदी वचनोंसे मर्मस्थानमें छिद्र होनेके कारण अपनी माताको त्याग वनमें जाकर परमात्माके चरणारविन्दका आराधन कर, साक्षात् दर्शन किया और त्रिलोकीके मस्तकपर जो सर्वोत्तम स्थान है वह उच्चपद लिया ॥ २८ ॥ हे अंग ! आत्मासे विरोधको दूर करके आत्मामें स्थित निर्गुण एक अक्षर आत्माको तू अनुशरण कर कि, जिसमें यह असद्भेद प्रतीत होता है ॥ २९ ॥ जब तू दिव्यदृष्टि करके परमात्माका अनुशरण करैगा, उस समय पृथक् आत्मरूप अनन्त. आनन्दमात्र,व्यापक सर्वशक्ति जिसमें प्राप्त ऐसे परमात्मामें पराभक्ति होगी, फिर पीछे धीरे धीरेसे " मम" "अहंकार" जो अविद्याकी ग्रन्थिहै वह कट जायगी❀॥३०॥ हे पुत्र ! जैसे औषधिके सेवन करनेसे रोग शान्त होजाता है, इसीप्रकार भगवद्भजनसे

तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ॥ यस्मै बलिं विश्वसृजो हरंति गावो यथा वै नसि दामयत्रिताः ॥ २७ ॥ यः पंचवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ॥ वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥ २८ ॥ तमेनमंगात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ॥ आत्मानमन्विच्छ विमुक्त आत्मदृग्यस्मिन्निदम्भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनंत आनंदमात्र उपसन्नसमस्तशक्तौ ॥ भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रंथिं विभेत्स्यसि ममाहमितिप्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ॥ श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥ ३१ ॥

---

* ॥ रागिनी भैरवी ॥ इस प्राणीको कृष्णभजन हीं परमानन्द दिखाताहै रे ॥ विनाकिये हरिभक्ति जगत्में मुक्ति न कोई पाताहै रे ॥१॥ धन दौलत अरु कुटुमकबीला कोई काम न आताहै रे ॥ सब अपने स्वारथके मुख देखेको नाताहै रे ॥ २ ॥ दारा पुत्र पौत्रके ऊपर झूला नहीं समाताहै रे ॥ माया मोह लोभके वश हो वृथा जन्म गँवाताहै; रे ॥३॥ अब भी समझ अरे अज्ञानी कहै जिन्हैं तू भ्राताहै रे ॥ अंतसमय कोईकाम न आवे आप अकेला जाताहै रे ॥ ४ ॥ काल आय जब शिरपर गाजत कफ घटमें घिर आताहै रे. ॥ आंख फाड तब चहुँ दिशि देखत शिर धुनि धुनि पछताताहै रे ॥५ हरि हरि भज राजस तामस तज जो तेरा सुखदाताहै रे ॥ वोहीं सर्व जगत्का स्वामी सब दुख द्वंद्व मिटाताहै रे ॥ ६ ॥ माया मोह द्रोह ममता तज जो नर हरिगुण गाता है रे ॥ शालिगराम' वोहीं इस जगमें पूरण भक्त कहाताहै रें ॥ ७ ॥

इस क्रोधको शान्त कर,जिससे तेरा कल्याण होय,यह क्रोध अमंगलका मूलहै अनेक शास्त्रोंके सुननेका यही फलहै,किंचित् जिसमें शान्ति हो ॥ ३१ ॥ और जो पुरुष क्रोधके वशमें होजाता है, उसको ज्ञान नहीं रहता, सबको डराताहै,इसलिये जो अपने आत्माका अभयचाहै तो वह प्राणी क्रोधसे बचारहै, क्योंकि क्रोध बुद्धिका विनाशकहै ॥ ३२ ॥ शिवके भ्राता कुबेरका जो तुमने अपमान किया और यह समझकर यक्षोंका वध किया कि, मेरे भाईको मारडाला है ॥३३॥ हे वत्स! नम्रतासे मीठे वचनोंसे उनको प्रसन्न करो, क्योंकि महात्मा पुरुषोंके तेजसे हमारे वंशका नाश न होजाय ॥ ३४ ॥ इसप्रकार अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा कर उसकी वन्दनाको स्वीकार करके सप्तऋषियोंको साथ स्वायंभुव मनुने अपने

येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम्॥ न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः॥ ३२ ॥हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ॥ यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥ तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः ॥ न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् ॥ तेनाभिवंदितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥ इति श्रीमद्भा० म० चतु० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच॥ ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ॥ तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृतांजलिम्॥१॥ धनद उवाच॥ भोभोः क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥ न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ॥ काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥ ३ ॥

भवनको गमन किया ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे मनुना तत्त्वोपदेशेन यक्षवधनिवारणवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–द्वादशमाहिं कुबेरने, ध्रुवयश कियो वखान । तब ध्रुव निजपुर जायकै,कीन्हें यज्ञ महान ॥ १२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ध्रुवजीको हिंसा करनेसे निवृत्त देख और क्रोध विगत हुआ जान चारन, यक्ष, किन्नरोंसे स्तुत हुए कुबेर अंजलि बांध ध्रुवजीको वचन कहने लगे हाथ जोड ॥ १ ॥ कुबेर बोले कि,हे क्षत्रियनंदन! हे पाप रहित!! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ.क्योंकि तैंने अपने दादाकी आज्ञा मानकर दुस्त्यज वैरको त्याग दिया ॥ २ ॥ न तो तुमने यक्षोंको मारा और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा, सब प्राणियोंका जीवन मरणका कारण कालहीहै॥३॥

"मैं" और "तू" यह बुद्धि पुरुषकी अज्ञानसे होतीहै.सो सब स्वप्नवत् है. जैसे असत्पदार्थके ध्यान करनेसे स्वप्नद्रष्टाको सत्‌ही भासेहै,यही बंध मोक्षका कारणहै॥४॥हे ध्रुव!तुम्हारा मंगल होय.तुम अपनें स्थानको जाओ और भगवान् अधोक्षज सर्वभूतात्मविग्रह परमेश्वरको सर्वभावसे प्राप्त होओ ॥५॥ भजनीय जिनके चरणकमल, संसारके नाशक,शक्तियुक्त, गुणमयी,आत्ममायासे रहित परमात्माको संहारनिवृत्तिके लिये तुम भजो ॥ ६ ॥हे नृपनंदन ! जो तुम्हारे मनमें इच्छा होय निःशंक होकर सो वर मांगो; क्योंकि तुम वर दानके योग्य हो और हमनें यह भी सुना है कि तुम भगवान् कमलनाभके चरणारविन्दके आश्रित हो ॥७॥ मैत्रेयजी बोले कि, राजाओंके राजा कुबेरने जब परमात्माके परमभक्त महाविद्वान् ध्रुवजीसे कहा कि, वर माँगो तब महाभागवत ध्रुवने यह वर माँगा कि मेरा मन हरिमेंसे कभी चलायमान न हो उस भगवद्भक्तिमें सर्वदा ऐसीहीप्रीति बनीरहै जिससे यह पुरुष इस दुरत्यय अंधकारसे विना यत्न किये पार होजातेहैं ॥८॥ इडविडाके पुत्र कुबेर प्रसन्नमनसे ध्रुवको यह वरदान दे ध्रुवजीके सन्मुख अंतर्धान होगये और ध्रुवजीने अपने नगरको चलदिये ॥९॥ फिर अनेक प्रकारकी दक्षिणा दीनी, ऐसे यज्ञोंसे यज्ञेशका पूजन कर द्रव्य क्रिया और देवतासंबंधी कर्म करके साध्य जो फलरूप कर्महै और उसके फलदायक यज्ञपति विष्णुभगवान्‌का यजन किया॥१०॥और सबके आत्मा सर्वत्रव्यापक; अच्युतदेवकी तीव्र वेगवाली भक्ति करते २ अपने आत्मामें और सबजीवोंमें स्थित एक सर्वसामर्थ्यवान् भगवान्‌को देखने

अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ॥ स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥ ४॥ तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥ भजस्व भजनीयांघ्रिमभवाय भवच्छिदम् ॥ युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥६॥ वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशंकितः ॥ यतो वरार्होम्बुजनाभपादयोरनंतरं त्वां वयमंग शुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स राजराजेन वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ॥ हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडासुतः ॥ पश्यतोंतर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥९॥ अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥ सर्वात्मन्यच्युते सर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ॥ ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥

लगे॥ ११॥और शीलसिंधु,ब्रह्मण्य, दीनदयालु, धर्मकी सीमाके रक्षक सर्वशास्त्र और श्रुतियोंके ज्ञाता,उस ध्रुवको सब प्रजा पिताकी समान माननेलगी॥ १२॥इसीप्रकार छत्तीस(३६०००)सहस्र वर्षतक उसने भूमंडलमें राज्य किया, भोगोंसे पुण्यको और अभोगोंसे अशुभ पापको क्षय करतेरहे ॥ १३॥इसीप्रकार बहुत कालतक जितेंद्रिय हो,त्रिवर्गको व्यतीतकर,अपने पुत्रको राज्यतिलक देदिया॥ १४॥इस संसारको मायारचित मानकर अविद्या रचित स्वप्न गंधर्वनगर समान जाननेलगे॥ १५॥तन,धन, स्त्री,पुत्र,सुहृद,सेना,ऋद्धि,भण्डार,अन्तःपुर,रमणीक विहारकी भूमि और समुद्रपर्यन्त भूमण्डलका राज्य इन सबको कालसे नाशवान् मानकर ध्रुवजी बदरिकाश्रमको चलेगये ॥ १६ ॥ वहां सर्वेंद्रिय विशुद्ध कर शुद्धचित्त हो कल्याणरूप

तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ॥ गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥ १२ ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास
क्षितिमंडलम् ॥ भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम्॥ १३॥ एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेंद्रियः ॥ त्रिवर्गौपयिकं
नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम्॥ १४॥मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि॥ अविद्यारचितं स्वप्नगंधर्वनगरोपमम्॥ १५॥
आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमंतःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ॥ भूमंडलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्ट
मिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥ तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्ध्वाऽऽसनं जितमरुन्मनसाऽऽहृताक्षः ॥ स्थूले
दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ॥ १७ ॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानंदबाष्प
कलया मुहुरर्द्यमानः ॥ विक्लिद्यमानहृदयः पुलकांचितांगो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिंगः ॥ १८॥ स ददर्श विमा
नाग्र्यं नभसोऽवतरद्ध्रुवः॥विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥

जलमें स्नानकर आसन लगाय पवन,मन,सब इन्द्रियें जीत,भगवान्के स्थल विराट्स्वरूपमें मनको लगाया फिर बहुत कालतक उस स्वरूपका ध्यान करते करते अभेद हो, समाधिमें स्थितप्रज्ञहो, स्थूलस्वरूपकोभी तज ब्रह्मरूप हो गये ॥ १७॥ श्रीहरिभगवान्की निरन्तर भक्ति करते करते यह गति होगई कि,आनंदके बाष्पबिन्दुओंके प्रवाहसे वारंवार पीडित हो हृदय द्रवीभूत होगया देह पुलकायमान होगया,लिंगशरीरके त्यागनेसे उन्हे अपने आत्माकाभी स्मरण न रहा॥ १८॥उस समय आकाशसे उतरता हुआ एक अनुपमविमान ध्रुवजीको दिखाई दिया,जैसे पूर्णिमासीका चन्द्रमा दशों

दिशाओंको प्रकाशित करता है इसीप्रकार सब दिशाओंमें प्रकाश होगया ॥ १९ ॥ उसमें चतुर्भुजी श्यामवर्ण किशोरवय, अरुणांबुजसमान नेत्र, पीतपट धारण किये, किरीट, हार, भुजबन्द, मकराकृत कुण्डल पहने, गदा हाथमें लिये, नन्द सुनन्दनामक देवश्रेष्ठ भगवान्के दो पार्षद खड़े देखे ॥ २० ॥ उनको विष्णु भगवान्के पार्षद जानकर शीघ्र उठ खड़े हुए और चित्तमें संमोह हो जानेके कारण पूजाके क्रमकी विस्मृति होगई औरभगवान्के मुख्य पार्षद समझ भगवत्के नाम लेते हुए दोनों हाथ जोडकर दण्डवत् प्रणाम करनेलगे ॥ २१ ॥ भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दमें जिनका मन लगा, नीची गर्दन किये हाथ जोड़े ध्रुवको खड़े देखा तब सुनन्द नंद उनके निकट आये और मंदमंद मुसकाय भगवान् कमलनाभके परम

तत्रानुदेवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणांबुजेक्षणौ ॥ स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहारांगदचारुकुंडलौ ॥ २० ॥ विज्ञाय तावुत्तमगायकिंकरावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ॥ ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहतांजलिः ॥ २१ ॥ तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धांजलिं प्रश्रयनम्रकंधरम् ॥ सुनंदनंदावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ॥ २२ ॥ सुनंदनंदावूचतुः ॥ भोभो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ॥ यः पंचवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥ २३ ॥ तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ॥ आतिष्ठ तच्चंद्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षताराः परियंति दक्षिणम् ॥ २५ ॥

संमत पार्षदोंने कहा ॥ २२ ॥ सुनन्द नन्द बोले कि, हे महाराज ! तुम्हारा कल्याण हो सावधान होकर हमारी वाणी सुनो; आपने पांच वर्षकी छोटी अवस्थामें महाकठिन तप करके देवताओंको तृप्त करनेवाले भगवान्को प्रसन्न किया है ॥ २३ ॥ उन सब जगत्के धारण पोषण करनेवाले धनुषधारी श्रीनारायणके हम पार्षद हैं तुमको भगवान्के परमधामको लेजानेके लिये हम यहां आये हैं ॥ २४ ॥ जो महाऋषियोंसे न जीतागया जिसका आजतक विचारही कर रहे हैं उस विष्णुपदको तुमने जीता है जिसके प्राप्त होनेंके लिये बड़े बड़े विवेकी खड़े सोच विचार कररहे हैं इस स्थानपर चलकर तुम विराजमान होओ जहां सूर्य चन्द्रमादिक ग्रह, नक्षत्र, तारागण आपकी प्रदक्षिणा किया करेंगे ॥ २६ ॥

हे ध्रुव ! आजतक जिस स्थानमें न तो कोई आपका पुरुष पहुँचा, न कोई और प्राणी पहुँचा, उस जगद्वंद्य विष्णु भगवान्के परम पदमें तुम निवास करो ॥ २६ ॥ इसलिये परमोत्तम विमान, देवताओंके शिरोमणि श्रीविष्णु भगवान्ने तुम्हारे लिये भेजा है, सो हे आयुष्मन् ! आप इस पर चढ़ो ॥ २७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, उरुगाय भगवानके प्यारे ध्रुवनें भगवत्के परम अधिकारी पार्षदोंके सुधारूप वचन सुन स्नान कर नित्य कृत्यसे निश्चिन्त हो, मांगलिक अलंकार पहन; मुनियोंको प्रणाम कर, उनसे आशीर्वाद लिया ॥ २८ ॥ फिर उसी विमानकी प्रदक्षिणा कर पूजनके पश्चात् पार्षदोंके चरणोंकी वन्दना कर हिरण्मय स्वरूप धारण करके उस उत्तम विमानपर बैठनेकी इच्छा करी ॥ २९ ॥ उसीसमय मृत्यु

अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यंग कर्हिचित् ॥ आतिष्ठ जगतां वंद्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥ एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ॥ उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य वैकुंठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतां वाचमुरुक्रमप्रियः ॥ कृताभिषेकः कृतनित्यमंगलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥ परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवंद्य च ॥ इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥ २९ ॥ तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शांतकमागतम् ॥ मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥३० ॥ तदा दुंदुभयो नेदुर्मृदंगपणवादयः ॥ गंधर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥

आनकर उपस्थित हुआ और ध्रुवजीको प्रणाम करके बोला कि, कृपानाथ ! मुझे अंगीकार करो, तब ध्रुवजी बोले कि, तू आगया यह बहुत अच्छा किया, परन्तु थोड़ी देर विलम्ब कर, इसप्रकार उसे बैठाय उसके शीशपर चरण धर उस अद्भुत विमानपर बैठे* ॥ ३० ॥ उस समय मृदंग, दुन्दुभी, ढ़ोल इत्यादिक अनेक प्रकारके बाजे बजनेलगे, बड़े बड़े मुखिया गंधर्वलोग गीत गानेलगे, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी ॥ ३१ ॥

***शंका**-त्रिलोकीमें अनेक प्रकारके भगवद्भक्त हुए परन्तु कोई भक्त ऐसा नहीं हुआ कि, जिसने कालके मस्तकको पांवोंसे दाबकर श्रीविष्णु भगवान्के लोकको गया हो। और कल्पकल्पान्त तप करते मुनियोंको व्यतीत होगये हैं परन्तु कालके मस्तकको पांवसे दाबकर कोई मुनिभी परमपदको आजतक नहीं गया और ध्रुवने बडा आश्चर्य किया कि, थोडेही दिन तपकरके कालके मस्तकको पगसे दाबकर भगवान्के लोकको गया यह बडे भारी सन्देहकी बात है.

उत्तर-तपस्वियोंमें ध्रुवजी कुछ बडे तपस्वी नहीं हैं, और बहुत तपस्या भी ध्रुवने नहीं करी परन्तु भगवान् कृपाके सागर हैं और ध्रुवको समझा कि, यह अत्यन्त बालक है इसके पिताने घरसे निकाल दिया है अब इसके पिता हमही हैं ऐसा जानकर ध्रुवके ऊपर भगवान्ने अनुग्रह किया इसीके प्रभावसे ध्रुव कालके मस्तकको चरणसे दाबकर भगवान्के परमपदको गया.

जब ध्रुव ध्रुवलोकको जानेलगा तब उसको अपनी माता सुनीतिका स्मरण हुआ तब उसका अपराध क्षमा कर बोला कि, यह सब सुनीति
काही प्रभाव है,इस दीन अबलाको अकेली छोडकर कैसे मैं स्वर्गको जाऊँ ॥ ३२ ॥ यह निश्चय ध्रुवजीका जान देवश्रेष्ठ सुनन्द नन्दने विमानमें
बैठी आगेजाती सुनीतिको दिखाया ॥ ३३ ॥ जहाँ तहाँ मार्गमें विमानोंपर बैठे देवता ध्रुवजीकी प्रशंसा करते थे और क्रमक्रमसे सब ग्रह और
देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३४ ॥ देवपथसे त्रिलोकीको उल्लंघन कर सप्त ऋषियोंको उल्लंघन किया, फिर सबसे परे अचलगतिवाले
विष्णुपदको प्राप्त हुए ॥३५॥ जो विष्णुधाम अपनी कांतिसेही देदीप्यमान है और उसीके प्रकाशसे ये तीनों लोक प्रकाशतेहैं और जो मनुष्य

स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिंजननीं ध्रुवः ॥ अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥इति व्यवसितं तस्य
व्यवसीय सुरोत्तमौ ॥ दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥ ३३ ॥ तत्रतत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैस्सुरैः ॥
अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४ ॥ त्रिलोकींदेवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ॥ परस्ताद्यद्ध्रुवग
तिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥ ३५ ॥ यद्भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजंत एते ॥ यन्नाव्रजञ्जन्तुषु
येऽननुग्रहा व्रजंति भद्राणि चरंति येऽनिशम् ॥३६॥ क्षांताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरंजनाः ॥ यांत्यंजसाच्युतपद
मच्युतप्रियबांधवाः॥३७॥ इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥ अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥३८॥
गंभीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥

मनुष्योंपर दया नहीं करते हैं वे वहाँ नहीं जासक्ते, क्योंकि दिनरात शुभकर्म करनेवाले वहाँ जाते हैं ॥३६॥ और जिनके स्वभावशांतहैं, सम
दृष्टिहैं, शुद्ध चित्त हैं,सब जीवोंकी रक्षा करते हैं.अच्युत भगवान्कोही अपना प्रियबांधव मानतेहैं,वे लोग जिस अच्युतभगवान्के लोकमें जातेहैं,
वही लोक ध्रुवजीको प्राप्त हुआ ॥३७॥ इसप्रकार उत्तानपादका तनय ध्रुव भगवत्परायण होनेसे त्रिभुवनका निर्मल चूडामणि हुआ ॥ ३८॥
हे विदुर ! गम्भीरवेगका आलस्यरहित, ज्योतिषचक्र जिसमें लगरहा है जिसके घूमनेसे मेढीकी नाईं, बैलोंका समूह भ्रमण करता है उस पदको

ध्रुवजी प्राप्त हुए ॥३९॥नारदजीने ध्रुवजीकी महिमा देखकर,वीणा बजाते प्रचेताके यज्ञमें भगवन्माहात्म्य गानेके समय ध्रुवजीका चरित्र तीन श्लोकोंमें बनाकर गाया ॥४०॥श्रीनारदजी बोले कि,पतिव्रता सुनीतिके सुत ध्रुवजीको तपके प्रभावसे जो पदवी मिली उस परमपदवीको भगवद्धार्मिक वेदवादी लोग अनेक यत्न करनेसे भी नहीं पासकते, तो और नरेशोंकी तो बातही क्या है॥४१॥ जिस ध्रुवने पांच वर्षकी अवस्थामें अपनी विमाताकी वाणीरूप बाणोंसे बिंधेहुए हृदयसे वनमें जाकर जो भगवान् विजयी होकर भक्तोंके गुणोंसे पराजित हो जातेहैं उन विश्वविजयी भगवान्‌को अपने वशमें करलिया ॥ ४२ ॥ और जो क्षत्रबन्धु भूमिमें उस पदवीको अनेक वर्ष तप करके भी नहीं प्राप्त करसक्ते,सो पांच छै ही

महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ॥ आतोद्यं वितुदञ्श्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ॥ दृष्ट्वाभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगंतुं प्रभवंति किं नृपाः ॥ ४१ ॥ यः पंचवर्षो गुरुदारवाक्छरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ॥ वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥ ४२ ॥ यः क्षत्रबंधुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ॥ षट्पंचवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥४३॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोहमिह त्वया ॥ ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ॥ ४४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥४५॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ॥ भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥ ४६ ॥

वर्षकी अवस्थामें थोड़े दिनोंके तपसे भगवान्‌को प्रसन्न कर ध्रुवजी प्राप्त हुए ॥४३॥ मैत्रेयजी बोले कि, महाप्रतापी, कीर्तिमान् महात्मा पुरुषोंका प्रिय ध्रुवजीका चरित्र जो आपने मुझसे बूझा,वह सब वृत्तांत मैंने आपके सन्मुख यथावत् वर्णन कर दिया ॥४४॥यह ध्रुवचरित्र धन,यश,पुण्य, आयु, मंगल, स्वर्ग और ध्रुवपदका देनेवाला, आत्माको पवित्र करनेवाला प्रशंसाको बढ़ानेवाला और सब पापोंका नाशक है ॥४५॥ जो कोई इस भगवान्‌के प्रिय मनोहर चरित्रको बारंबार श्रद्धासे सुने उसको भक्ति प्राप्त होती है जिससे सब क्लेशोंके समूहोंका नाश होजाता है ॥ ४६ ॥

इस चरित्रके सुननेवाले अपनी मनोकामनाको प्राप्त होतेहैं,बड़ाईवालेकोबड़प्पन, शीलवालेको शीलता, तेजकी इच्छावालेको तेज और मनस्वियोंको मानका देनेवाला है ॥४७॥ परमपवित्र आत्मा ध्रुवजीका यह उत्तम चरित्र प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करके ब्राह्मणोंमें बैठकर सावधानतासे वर्णन करना और सुनना चाहिये ॥४८॥ पूर्णमासी, अमावास्या, द्वादशी मिश्रित एकादशी, श्रवणादि नक्षत्रमें, व्यतीपातयोगमें,संक्रांतिमें और रविवारको जो पुरुष निष्काम होकर भगवान्की भक्तिसहित॥४९॥ श्रद्धा धारण करनेवाले सज्जन पुरुषोंको यह चरित्र सुनावे,उसकी कोई कामना शेष नहीं रहती वह आप अपने स्वरूपमें हो सिद्धिको पाकर सिद्ध होजाता है ॥५०॥ और जो पुरुष अज्ञानियोंको भगवान्के

महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ॥ यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम्॥ ४७ ॥ संयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ॥ सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत्॥४८॥ पूर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथ वा ॥ दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि च ॥४९॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ॥ नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं संतुष्ट इति सिध्यति ॥५०॥ ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ॥ कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ॥ हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा॰ म॰ चतुर्थ॰ ध्रुवोपाख्यानं नाम द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥

सन्मार्गका प्रदान करता है और ज्ञान देता है उस कृपालु और दीनोंके उद्धारक मनुष्यपर देवता सदा अनुग्रह करते रहते हैं ॥५१॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जिस ध्रुवजीके पवित्र कर्म आजतक प्रसिद्ध हैं, उसका यह चरित्र तुम्हारे आगे वर्णन किया कि, जो ध्रुव बालकपनेहीमें खेल खिलौने और अपनी माताके घरको त्यागकर भगवत्के चरणारविन्दकी शरणागत हुआ था, सो उन भगवान्के चरण सदा भक्तोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले और सब संशयके मिटानेवाले हैं * ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भावते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां ध्रुवचरित्रवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

* ॥ भजन ॥ हरियश सब दुख काटनहारा ॥ यह संसार स्वप्नकी माया, जिसको सत्य बिचारा ॥ यहां कोई अपना नहिं दीखै, झूठा धुन्ध पसारा ॥ १ ॥ माई बंधु अरु कुटुँब कबीला, मात पिता सुत दारा ॥ येही तेरे परम शत्रु हैं जिन्हैं कहै तू प्यारा ॥ २ ॥ विन ब्रजचंद मुकुंद नंद सुत, कोई नहीं हमारा ॥ जिनके चरणकमलसे निकली, श्रीगंगाकी धारा ॥ ३ ॥ तीन लोककी पावनकरनी, सगरवंश निस्तारा ॥ "शालिग्राम" भक्तमनरञ्जन, क्यों हरिनाम विसारा ॥ ४ ॥

दोहा—इस तेरह अध्यायमें, पृथुसुत अंग सुजान। देख पुत्रकी दुष्टता, वनको कीन पयान॥१३॥ सूतजी बोले कि, पांच अध्यायोंमें तो ध्रुवचरित्र वर्णन किया और अब ग्यारह अध्यायोंमें राजा पृथुका चरित्र वर्णन करेंगे, ध्रुवजीके विष्णुपद प्राप्त होनेका वृत्तांत मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भगवान् अधोक्षजमें भाव उत्पन्न होनेसे विदुरजीने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न करना प्रारंभकिया ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि, हे सुव्रत! प्रचेता कौन थे और क्या नाम था? और किसके कुलमें विख्यात हुए? और किसके पुत्र थे? और किस स्थानपर यज्ञ किया? सो भिन्न भिन्न सब मुझसे कहो ॥२॥ महाभागवत देवताओंके समान जिनका दर्शन उन नारदजीको मैं मानताहूँ, जिन्होंने भगवत्की परिचर्या विधि योगक्रि

सूत उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुंठपदाधिरोहणम्॥प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः
प्रचक्रमे॥१॥विदुर उवाच॥के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत॥कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत॥२॥
मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम्॥ येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः॥३॥ स्वधर्मशीलः पुरुषो भगवान्यज्ञ
पूरुषः ॥ ईज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥ ४ ॥ यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ॥ मह्यं शुश्रूषवे
ब्रह्मन्कात्स्न्येंनाचष्टुमर्हसि ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच॥ ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ॥ सार्वभौमश्रियं
नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥ ६ ॥ स जन्मनोपशांतात्मा निस्संगः समदर्शनः ॥ ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमा
त्मनि ॥ ७ ॥आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ॥ अवबोधरसैकात्म्यमानंदमनु संततम्॥ ८ ॥

याकी रीति जिसप्रकार "पंचरात्र"ग्रन्थमें कहीहै ॥३॥ स्वधर्मपालक प्रचेतासे पूजित,यज्ञपुरुष भगवान्का वर्णन भगवान् नारदमुनिने किया है ॥४॥ सो हे ब्रह्मन्! जो कुछ वहां नारदजीने भगवत्की कथा वर्णन करी है,वह मेरे आगे वर्णन करो, क्योंकि, भगवत्कथा सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, अपने पुत्र उत्कलको ध्रुवजी जब राज्य दे वनको चलेगये, तब उत्कलनेपिताकी सब भूमि और राज्यलक्ष्मीके लेनेंकी इच्छा नहीं की ॥ ६ ॥ वह जन्मसे शांतात्मा संगरहित, समदर्शी और अपनी आत्माको सब लोकमें पूर्ण और जगदात्माको अपनेमें मानता था ॥ ७ ॥ ब्रह्मसुखमें शांत हो अपनें देहको भूलगया और ज्ञानरसमें निमग्न, आनंदमय और मोक्षरूप परब्रह्म

परमात्माको जानताथा ॥८॥ और अखंडित योगाग्निसे उसके सब पाप और अन्तःकरणकी भावना जलकर भस्म होगई थी. अपने स्वरूपका अनुसंधान कर अपनेसे भिन्न और किसीको नहीं देखता था॥९॥ वह आत्मज्ञानी अकेला नगरसे निकलकर चलदिया, राखमें दबी अग्निसमान वह तेजधारी उत्कल मार्गमें जाता हुआ, जड, अंध, बधिर, उन्मत्त, मूककेसी आकृति किये बालकोंकी दृष्टि आता था ॥ १० ॥ सचिव और कुलके वृद्धपुरुषोंने उत्कलको उन्मत्त और जड समझकर उससे कनिष्ठ भूमिके सुत वत्सरको राज्याधिकार देदिया ॥ ११ ॥ वत्सरकी

अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ॥ स्वरूपमवरुंधानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥ जडांधबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ॥ लक्षितः पथि बालानां प्रशांतार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समंत्रिणः ॥ वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥ स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् ॥ पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥१२॥ पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ॥ प्रातर्मध्यंदिनंसायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥ प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ॥ व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥ स चक्षुस्सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ॥ मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥ १५ ॥ पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवंतं धृतव्रतम् ॥ अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम्॥१६॥ उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ॥ अंगं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमगिरसं गयम्॥ १७ ॥

प्यारी बडी स्त्री स्वर्वीथिके छह पुत्र उत्पन्न हुए–पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय ॥१२॥ पुष्पार्णकी प्रभा और दोषा नाम दो पत्नी थीं, उनमेंसे प्रभाके तीन पुत्र उत्पन्नहुए, प्रातर्, मध्यंदिन और सायम्॥१३॥ और प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट ये तीन पुत्र दोषानें उत्पन्न किये व्युष्टने पुष्करिणी नाम भार्यामें सर्वतेजस नाम पुत्र उत्पन्न किया॥१४॥ और सर्वतेजसकी आकृति नाम स्त्रीमें चक्षु नाम पुत्रहुआ. मनुकी पटरानी नड्वलामें॥१५॥ पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋतव्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिबि और उल्मुक ये ग्यारह पुत्र उत्पन्नहुए ॥१६॥ उल्मुकके पुष्करिणी

नाम भार्यामें छह पुत्र उत्पन्न हुए अंग,सुमना,ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय ॥ १७ ॥ अंगकी सुनीथा नाम पत्नीमें महाभयंकर वेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ कि, जिसकी दुष्टतासे राजर्षि अंग बैरागी होकर नगरसे निकल गया॥१८॥हे विदुर! वेनके महापाप कर्म देखकर मुनियोंने वाग्वज्र रूपी शाप दिया,जिससे उस वेनका प्राणांत होगया॥१९॥जब पृथ्वीपर कोई राजा नहीं रहा तो चोरोंके भयसे प्रजा अत्यन्तदुःखीहो गई,तब मुनियोंने वेनके दाहिने हाथको मथा, जिससे नारायणके अंशसे आद्यराजा पृथुने पृथ्वीपर अवतार धारण किया॥२०॥विदुरजी बोले कि महाशीलवान् साधु,ब्रह्मण्य,सज्जनोंके सन्मान करनेवाले महात्मा अंगके ऐसा अन्यायकारीदुष्टरूप पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ कि,जिसका अन्याय देखकर

सुनीथांगस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्वणम् ॥ यद्दौश्शील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥ यमंग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ॥ गतासोस्तस्य भूयस्ते ममंथुर्दक्षिणं करम् ॥ १९ ॥ अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ॥ जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः॥राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ॥२१॥किं वांहो वेनमुद्दिश्य ब्रह्मदंडमयूयुजन् ॥ दंडव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥ नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ॥ यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥ २३ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अंगोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ॥ नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥ २५ ॥

राजा विमन हो वनको चलागया॥२१॥और राजा वेनका क्या ऐसा पाप देखा जो मुनीश्वरोंने ऐसे दंडधारी राजाको महाघोर शापदिया॥२२॥उत्तम रीति तो यह है कि प्रजापालक पापात्माभी होय तोभी प्रजाको उसका अनादर करना योग्य नहीं. क्योंकि राजामें आठ लोकपालोंका अंश होताहै और अपनी सामर्थ्यसे लोकपाल देवताओंकी शक्ति धारण करताहै॥२३॥हे ब्रह्मण्य!राजावेनका चरित्र सम्पूर्ण मुझसे कहो क्योंकि इस चरित्रके सुननेकी मुझको परम अभिलाषा हैऔर मैं तुम्हारा भक्त हूँ॥२४॥मैत्रेयजी बोले कि, राजर्षि अंगराजाने महाअश्वमेध यज्ञकिया उसमें वेदवादी

विप्रोंके आह्वान करनेसे देवतालोग नहीं आये. तब आश्चर्यमय होकर ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि॥२५॥ हेराजन्!आप श्रद्धासहित जो यज्ञके उत्तमोत्तम पदार्थ देतेहो, तोभी तुम्हारा हवि हवनदेवता ग्रहण नहीं करते॥२६॥हेराजन्! यह हवनयोग्य जो हैं सो सब बहुत शुद्ध हैं और श्रद्धा विधियुक्त देते हैं,वेदमन्त्रोंका आजतक सार गया नहीं है फिर हविपदार्थका अनादर देवताओंने कभी नहीं किया,न जानिये यह क्या कारण है, कुछ हमारी समझमेंनहीं आता ॥ २७ ॥ यहां जो हमसे किंचित्मात्रभी उनका कोई अपमान भी नहीं हुआ फिर कर्मके साक्षी देवतालोग अपना भाग

तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ॥ हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णंति देवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्यदुष्टानि
श्रद्धयाऽऽसादितानि ते ॥ छंदांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥ २७ ॥ न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ॥
यन्न गृह्णंति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अंगो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः ॥
तद्द्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥२९॥ नागच्छंत्याहुता देवा न गृह्णंति ग्रहानिह ॥ सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं
मया कृतम् ॥३०॥ सदसस्पतय ऊचुः॥ नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक्स्थितम् ॥ अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक्त्व
मप्रजः ॥३१॥ तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप॥इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥ ३२ ॥

क्यों नहीं लेतेहैं॥२८॥मैत्रैयजी बोले कि,जब ब्राह्मणोंने यह वचन कहे तो राजाअंग अति उदासहो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे मौनवृत्तिको तजकर सभासदोंसेबूझा॥२९॥कि,हे सभासदो!न तो देवता बुलायेसे आतेहैं और न अपना भाग लेतेहैं,सो ऐसा मैंने देवताओंका क्या अपराध किया है ? और मुझसे क्या व्यतिक्रम हुआ सो मुझको समझाकर कहो॥३०॥सभासदोंने कहा कि,हे नरोत्तम!इस जन्ममें तो आपने कोई पापकिया नहीं है परन्तु यह कोई पूर्वजन्मका पापहै,जिससे आप पुत्रहीन हो❋॥३१॥इसलिये आप पुत्र होनेका कोई उपाय करो और इसी मनोरथसे आपयज्ञपुरुष भग

❋ कहीं ऐसाभी लिखाहै, एकसमय राजा अंग बालकपनमें मानससरोवरके निकट क्रीडा गयेथे सो वहां एक तरुवरपर किसी राजहंसके बचे घोसलेमें रक्खथे और हंसहंसिनी कहीं वनमें चलेगयेथे. उनमेंसे एक बचेको राजाने बालकपनकी चंचलतासे पकडकर मुट्ठीमें दवालिया और वह बच्चा दबनेके कारणसे मरगया. जब हंसहंसिनी वहां आये और बचेको नहीं देखा. तबतोअत्यन्तव्याकुल होनेत्रोंमेंआंसूभरकर—

वान्‌का यजनभी करो कि, जिसमें यज्ञपुरुष भगवान् आपको पुत्र देंगे॥ ३२॥ जब ऐसा हुआ तो अपने अपने भागभी देवता लेलेंगे, क्योंकि पुत्रके अर्थ जो आप भगवान्‌कायजन करोगे तो उस यज्ञमें यज्ञपुरुष भगवान्‌के संग देवता आपसे आप आवेंगे ॥ ३३॥ पुरुष जिस जिस मनोरथके लिये भगवान्‌का यजन करता है, भगवान् उनकी आशा पूर्ण करते हैं, क्योंकि जो जिस संभावनासे भगवत्‌आराधन करता है. परमेश्वर वैसाही

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यंति दिवौकसः ॥ यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ३३ ॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्कामयते जनः ॥ आराधितो यथैवैषां तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥ इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ॥ पुरोडाशं निरवपञ्छिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ३५ ॥ तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलांबरः ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ ॥

फल उसको देते हैं ॥ ३४ ॥ इसप्रकार जब सब ब्राह्मणोंने निश्चय किया तब राजाने पुत्रके होनेके लिये सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक विष्णु भगवान्‌के पुरोडाशका हवन किया❀ ॥ ३५ ॥ जब पुरोडाशका हवन विष्णु भगवान्‌ने पाया, तब उस कुण्डसे सुवर्णकी माला पहरे श्वेतवस्त्र

—बोले कि हाय! हमारे प्यारे बच्चेको कौन लेगया. हंस हंसिनीकी कुदशा देख किसीने कहा कि, तुम्हारे बच्चेको राजा अंगने मारडाला. यह वृत्तान्त सुन हंस बोला कि, राजा अंगने जैसा हमारा वंश निर्वंश किया. इसीप्रकार राजा अंगका भी वंश निर्वंश होजायगा. हंसिनी बोली कि, हे स्वामी! हम पशुओंसे क्या होनाहै, राजासे तो अनेक प्राणियोंका पालन होताहै, आपको ऐसा कठिन शाप देना उचित नहीं था. हमारे कर्ममें तो दुःख भोगना लिखा ही था परंतु राजाको दुःखी क्यों किया? हंसिनीकी मृदुल वाणी सुनकर हंसने वर दिया कि, यज्ञपुरुषकी पूजा करनेसे राजाके पुत्र होगा. सो हे राजन्! तुम यज्ञपुरुषका पूजन करो ॥

+ **शंका**—राजा अंगने अश्वमेध यज्ञ किया तब. उसके यज्ञमें देवताओंने अपना अपना भाग ग्रहण नहीं किया. तब राजा अंगने बडा दुःख माना उससमय ब्राह्मणोंने राजा अंगसे कहा कि, हे राजन्! तुम्हारे पुत्र नहीं है इसलिये तुम्हारे यज्ञमें देवता भाग ग्रहण नहीं करते क्योंकि अपुत्रके हाथका जल अन्न पितर और देवता ग्रहण नहीं करते फिर अनेक निर्वंशी राजाओंने यज्ञ किये तो उन राजाओंके यज्ञमें देवताओंने अपना भाग क्यों ग्रहण किया?

उत्तर—अंगसे दूसरे गिनतीसे हीन जो और राजा थे वह अपने कुलके धर्ममें निपुण थे और बडे विवेकवान् थे इसलिये पुत्रहीन थे तोभी ज्ञानहीन नहीं थे, इसकारण देवता उनके यज्ञोंमें भाग लेतेथे और राजा अंगकी सुनीथा स्त्री थी उनके संग रातदिन भोगकी इच्छासे अपने कुलके धर्मको भ्रष्ट करदिया. नीचबुद्धि होगया इसलिये अंगको पुत्रहीन जानकर अंगका दियाहुआ भाग देवताओंने ग्रहण नहीं किया.

[1] सोमलताके अमृतमे भींजी हुई इमिरतीको "पुरोडाशः" कहते हैं ॥

धारण किये कंचनके एक बडे भारी थालमें सुन्दर खीर लियेहुए एक पुरुष निकला, उसका सबने दर्शन किया ॥ ३६ ॥ सो राजाने ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे उस पुरुषके हाथमेंसे वह खीर अपने हाथमें लेली और प्रसन्नतासे उसे सूंघकर अपनी भार्याको देदी ॥ ३७॥ वह पुत्र होनेवाली रानीने खीरको पाकर पतिके गर्भको धारण किया. तदनन्तर समयपूर्ण होनेपर पुत्र उत्पन्न किया॥३८॥ वह बालक अपने नाना मृत्युके अनुसार हुआ. मृत्यु अधर्मके अशसे उत्पन्न हुवाथा; इसलिये वह अधार्मिक हुआ उसके जन्मके समय बडा भयानक उत्पात हुआ ब्राह्मणोंने इसका नाम वेन रक्खा उसके सब आचरण नानाकेसे हुए ॥ ३९ ॥ वह धनुषबाण धारणकिये, वनमें फिरता था और जो मृग, साधु, दीन

स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वांजलिनौदनम् ॥ अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥३७॥ सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्यतौ पत्युरादधे ॥ गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥ स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ॥ अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥ स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ॥ हंति साधून्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥ ४० ॥ आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः ॥ प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥४१॥ तं च वीक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ॥ यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥ प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ॥ कदपत्यभृतं दुःखं ये न विंदंति दुर्भरम् ॥४३॥ यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ॥ यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनंतकः ॥ ४४ ॥

सम्मुख आता उसको कभी नहीं छोडता और यह निर्दई वेन आता है ऐसे प्रजा पुकारा करती थी ॥ ४० ॥ खेलनेके स्थानमें अपने समान क्रीडा करनेवाले बालकों को अतिदारुण निर्दई हठकरके अहेरीकी नाईं पकड पकडकर मारडालता ॥ ४१ ॥ उस महानीच पुत्रका अत्याचार देखकर राजाने उसे अनेक प्रकारसे समझाया, जब शिक्षा करनेपरभी उसका आचरण शुद्ध न हुआ तो अत्यन्त दुःखित होकर आपही आप कहनेलगा ॥४२॥ कि, जिन पुरुषोंके पुत्र नहींहै, उन्होंने भगवान्का पूजन भलीभाँति किया है. क्योंकि उनको दुष्टसंतानका महाकठिन दुःख तो भोगना नहीं पडता है ॥४३॥ जिससे अपयश, अपकीर्ति, अधर्म मनुष्योंको होता है और सबको जिससे द्रोह और अनंतव्याधी होतीहै॥४४॥

पुत्रका मोह आत्माका बंधन करनेवाला है सो कौन ऐसा पंडित है; जो इससे अधिक मान करेगा इसलिये अनेक क्लेशोंका देनेवाला घर है॥ ४५॥ शोक देनेवाले: सुपुत्रसे कुपुत्रको मैं अच्छा समझताहूँ क्योंकि कुपुत्रके * घरमें रहनेसे पुरुषके मनमें वैराग्य होजाता है और ग्लानि मानकर घर छोडदेना पडताहै ॥ ४६॥ इसप्रकार वैराग्ययुक्त हो आधीरातके समय सोतेसे उठकर, अपनी पत्नी सुनीथाको सोतीही छोडकर सर्व समृद्धिसहित गृहकोत्याग अकेला वनको चलदिया ॥ ४७॥ जब प्रातःकाल हुआ और राजा अंग मंदिरमें न देखा, तब तो पुरोहित, सचिव, औरसुहृद्गण आदि

कस्तं प्रजाऽपदेशं वै मोहबंधनमात्मनः ॥ पंडितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ४५ ॥ कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ॥ निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥ ४६ ॥ एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ॥ अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥ ४७ ॥ विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ॥ विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥ अलक्षयंतः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ॥ ऋषीन्समेतानभिवंद्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरवभर्तृविप्लवम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० चतुर्थ० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ छ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ॥ गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यंतः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥

कोंने अतिशोकसे कातर होकर सब पृथ्वीपर ढूँढा, परन्तु राजा कहीं नहीं मिला, जैसे, कुत्सित योगी हृदयके भीतर अंतर्यामी पुरुषका अनुसरण करते हैं और नहीं पाते ॥ ४८॥ जब राजा अंग इनको कहीं नहीं मिला, तो सब उद्यमसे हार मान नगरमें आये, सबने इकट्ठे होकर ऋषियोंकी वंदना करी, हे विदुर! नेत्रोंमें आंसू भरकर बोले कि, पुत्रका दुष्टाचरण देख दुःखतहो राजा अंग आज कहीं घरसे चलेगये॥ ४९॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां वेनसुतदुःखात् अंगनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—इस चौदह अध्यायमें, अंगपुत्र भयमान। गये विपिन तब वेनको, दियो राज्य सन्मान ॥ १४॥ मैत्रेयजी बोले कि, लोगोंके क्षेमचिंतक भृगुआदि मुनि विना राजाकी पृथ्वीको देख मनु

---

* **सवैया**—आयसु मातपिताकि न मानत, नीति तजै कुलरीति वहावत । आपतो मानगुमान भरे, सतसंगिनहूँको गरूर गहावत॥ एकहूँ कामसरो न कभू, निर्लज्ज अघी लघु लोम लहावत। कायरकाम कुमारगगामि सुऐसी कुचाली कपूत कहावत ॥

च्योंकी पशुसमान संज्ञा देखी ॥ १ ॥ वह ब्रह्मवादी ब्राह्मण मंत्रीलोग वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर सब प्रजाकी संमतिसे वहांका राज्यतिलक वेनको दिया ❀ ॥२॥ अति उग्रशिक्षक वेनको नृपासनपर बैठा देखकर सर्पके भयसे जैसे मूँसे छिपजाते हैं तैसे चोर बटमार जहाँ तहाँ छिप रहे ॥ ३ ॥ राज्यासनपर बैठ, आठ लोकपालोंकी विभूतिसे गर्वित, महा अहंकारी, अपने आपको उत्तम बलवान् माननेवाला, वह महा अभिमानी वेन महात्माओंका तिरस्कार करनेलगा ॥४॥ और निरंकुश हाथीकीनाईं मदांध अभिमानसे भराहुआ, पृथ्वी आकाशको मानो कंपायमान

वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ॥ प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिंचन्पतिं भुवः ॥२॥ श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ॥ निलिल्युर्दस्यवः सर्वे सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥ स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ॥ अवमेने महाभागांस्तब्धः संभावितः स्वतः ॥ ४ ॥ एवं मदांध उत्सिक्तो निरंकुश इव द्विपः ॥ पर्यटन्रथमास्थाय कंपयन्निव रोदसी ॥५॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ॥ इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ ६ ॥ वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ॥ विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः॥७॥ अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ॥ दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥

कररहा है, इसप्रकार रथमें बैठकर समस्त पृथ्वीपर विचरता था ॥५॥ और सब प्रजाकेलिये यह आज्ञा करादी कि, कोई मनुष्य होम, यज्ञ, दान मत करो, नगरमें भेरी और धौंसा बजाकर धर्मका निवारण करदिया ॥ ६ ॥ उस दुराचारी वेनका यह अत्याचार देखकर लोगोंको दुःखी जानकर दयाकरके सब मुनिलोग एकत्र हो विचार करनेलगे ॥७॥ और परस्पर बोले कि, अरे कष्ट! तू दोनों ओरसे लोगोंको सतानेलगा, जैसे काष्ठमें

❀ शंका—मुनियोंने वेनको दुष्ट जानकर भी राजा क्यों बनादिया फिर राजा बनाकर उसे भस्म क्यों किया यह तो बालकोंके सदृश कौतुक किया, जो कोई कहै कि, राज्य पाकर वेन सबको दुःख देनेलगा तो यह ठीक नहीं क्योंकि उसे दुष्ट तो पहिलेहीं जानलियाथा फिर मुनियोंने राज्य उसको क्यों दिया ?

उत्तर—ब्राह्मणोंने ऐसा विचार कियाथा कि, वेन राजा होजायगा तो बडे बडे महात्मा पुरुषोंकी संगति पाकर परमज्ञानी और अतीव बुद्धिमान् होजायगा, परन्तु वेनने राज्य पाकर महात्मालोगोंकी आज्ञा नहीं मानी और सुखके बदलेमें उलटा दुःख देने लगा तब राज्य देनेवाले मुनियोंने वेनको शाप देकर भस्म करदिया.

दोनों ओरसे अग्नि लगजातीहै, तो बीचमें चेंटी मरजातीहैं,वह दशा अब इसप्रजागणकी होरहीहै, क्योंकि एक ओर तो चोरोंका भय और दूसरी ओर राजाका भय यह महाकठिन कष्ट इन लोगोंसे कैसे सहाजायगा॥८॥विना राजाके नगरको सूना समझकर तो इस अयोग्यको हमने राज्यका भार सौंपा, अब इसकी ओरसेभी सब देहधारियोंको भय होताहै,फिर अब हम लोगोंका कल्याण कैसे होगा॥९॥जो भुजंगको दूध पिलापिलाकर पालता है वह अनर्थकारी सर्प प्रथम अपने पालनेवालेहीको काटताहै. ऐसेही यह महाक्रूरबुद्धि दुष्टस्वभाव वेन सुनीथाके गर्भमें जन्माहै॥१०॥ हमने अच्छा समझकर प्रजापालक बनायाथा, सो यह दुष्टऔर उलटा हमारा नाश करताहै, क्या करें।अब तौ हमने इसको अपना राजा बनाही

अराजकभयादेषः कृतो राजाऽतदर्हणः ॥ ततोऽप्यासीद्भयंत्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥ अहेरिव पयःपोषः
पोषकस्याप्यनर्थभृत् ॥ वेनः प्रकृत्यैवखलः सुनीथागर्भसम्भवः॥१०॥निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः॥
तथापि सांत्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ॥ सांत्वितो यदि
नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत्॥१२॥लोकधिक्कारसंदग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा॥ एवमध्यवसायैवं मुनयो गूढमन्यवः॥
उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सांत्वयित्वा च सामभिः ॥ १३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ नृपवर्य निबोधैतत्त्ते विज्ञापयाम भोः ॥ आयु
श्श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥ १४ ॥ धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ॥ लोकान्विशोकान्वित
रत्यथानंत्यमसंगिनाम् ॥ १५ ॥

लिया इसलिये उसको चलकर समझादें फिर हमारे शिर कोई दोष न रहेगा॥११॥हमने जान बूझकर इस अत्याचारीको भूप बनाया है सो अब साम, दामसे समझावेंगे और वह मंदभागी हमारे समझानेमेंभी नहीं मानेगा तो जानेंगे कि, यह बडा अधर्मी है ॥१२॥ तब लोगोंकेधिक्कारसे दग्धहुए इस दुष्टको हम लोग अपनी शक्तिके तेजके प्रभावसे लेशमात्रमें जलाकर भस्मकर देंगे इसप्रकार परस्पर शोच विचारकर क्रोधको छिपाय सब ऋषिमुनिऔर प्रजागण उसके निकट जाकर साम, दाम इत्यादिक उपायोंसे उसको समझाया ॥ १३ ॥ सब मुनिलोग बोले,कि हे राजन्! हे पुत्र!। हे नृपवर्य!!! हम आपसे यह बात कहने आयेहैं,जिसमें आपकी आयु,बल,कीर्ति और लक्ष्मी अधिक हो॥१४॥पुरुषनको उचितहै कि,

तन,मन,वचन और बुद्धिसे धर्मके आचरण करते रहैं, जिससे शोकरहित परलोककी प्राप्ति होती है, जहाँ सर्वत्यागी लोग निवास करते हैं और सदा आनंद रहताहै ॥ १५ ॥ हे वीर! वहां प्रजाकी कुशलसे आपके धर्मका नाश नहीं होता,इसलिये धर्मका नाश होनेसे राजा धर्म तथा ऐश्वर्यसे नष्ट होजाताहै ॥ १६ ॥ हे राजन् ! दुष्टमंत्री और चौरादिकोंसे राजा अपनी प्रजाकी रक्षा यथावत् करैं और शास्त्रमर्यादाके अनुसार दंडलेवें तो राजाको इस लोकमें और परलोकमें परमानंद प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ जिस राजाके राज्यमें पुरमें भगवान् यज्ञपुरुष अपने वर्णाश्रम धर्मसे सदा पूजेजातेहैं ॥ १८ ॥ हे महाभाग! जो राजा अपनी निज शिक्षासे स्थित हैं उनके ऊपर भगवान् सर्वधर्मपालक विश्वात्मा अत्यन्त प्रसन्न होते

स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ॥ यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥ राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चौरादिभ्यः प्रजा नृपः ॥ रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥ १७ ॥ यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥ १८ ॥ तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ॥ परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ॥ लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरंति बलिमादृताः ॥ २० ॥ तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ॥ यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥ २१ ॥ यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कला हरेः ॥ स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशंति वांछितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥ २२ ॥

हैं ॥ १९ ॥ और जगत्‌के राजाओंकेभी महाराजा जगदीश्वर श्रीकृष्णचंद्र प्रसन्न हों तौ उस प्राणीको कौनसी वस्तु दुर्लभ है ? क्योंकि लोकपाल सहित सब लोक, उसके भयसे उसका आदरसन्मान कर उसको भेंट देते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! सब लोक, देवता, यज्ञ, जिनमें सदा निवास करते हैं उन वेदत्रयीमय, द्रव्यमय, तपोमय, ईश्वरको आपकी कुशलके अर्थ नानाविधके विधानोंसे विचित्र यज्ञोंसे सब प्रजा समृद्धिके लिये यजन करती है सो आप उनके यज्ञोंमें सहाय करनें योग्यहो ॥ २१ ॥ हे वीर! आपके देशमें ब्राह्मणलोगोंके यज्ञ करनेसे श्रीनारायणकी कला देवतालोग

संतुष्ट होकरसबको मनोवांछित फल देवेंगे, इसलिये उन देवताओंकी अवज्ञा आपको नहीं करनी चाहिये ॥२२॥ वेन बोला कि, तुम सब मूर्ख हो, जो अधर्मको धर्म करके मानते हो, क्योंकि जो सब समृद्धियोंका दाता है, उस पतिको त्यागकर जारपतिकी उपासना करते हो ॥२३॥ जो मूढ नृपरूपी ईश्वरका अनादर करतेहैं, वह प्रजागण इस लोकमें और परलोकमें कहीं सुख और कल्याण नहीं भोगते हैं ॥ २४ ॥ और वह यज्ञपुरुष भगवान् कौन है? जिसमें तुम्हारी भक्ति है,अरे मूर्खो ! तुम लोग ऐसे हो, जसे परकीय स्त्रियां अपने पतिको तजकर जारसे स्नेह करती हैं इसी प्रकार तुम्हारी झूठी भक्ति है ॥२५॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र, उपेंद्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुबेर, चंद्र, पृथ्वी, अग्नि, सागर ॥ २६ ॥

वेन उवाच ॥ बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ॥ ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥ २३ ॥ अवजानंत्यमी मूढा भूपरूपिणमीश्वरम् ॥ नानुविंदंति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥२४॥ को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ॥ भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ २५ ॥ विष्णुर्विरिंचो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ॥ पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपांपतिः ॥२६॥ एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ॥ देहे भवंति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २७ ॥ तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ॥ बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक्पुमान् ॥२८॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ॥ अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमंगलः ॥ २९ ॥ इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ॥ भग्नायां भव्ययाच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३० ॥ हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ॥ जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

यह और जो वर, शापदायक देवता हैं, वह सब राजाकी देहमें वास करते हैं क्योंकि सर्वदेवमय नरेश होता है ॥ २७ ॥ इसलिये हे ब्राह्मणो ! ईर्षा, वैर त्यागकर सब कर्मोंमें मेरा पूजन करो. और यज्ञरूप मैं हूँ, मुझको बलिदान दो, मुझसे अधिक और कौन दूसरा यज्ञपुरुष पूजनकरनेके योग्य है? ॥२८॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार वह कुमार्गी, कुबुद्धि, पापी पाखण्डमतमें स्थित सब मंगलसे भ्रष्ट, उस वेनको बहुत समझाया, परन्तु उस दुष्ट नरेशने मुनियोंका उपदेश न माना ॥२९॥ उस अभिमानी अपने आपको पण्डित समझनेवाले वेनने घर आये ब्राह्मणोंका जब अत्यन्त अनादर किया,तब हे विदुर ! वे ब्राह्मण अपना उपदेश व्यर्थ समझकर बडे क्रोधित हुए ॥ ३० ॥ और उन मुनीश्वरोंने यह निश्चय

किया कि इस पापीक स्वभाव महादारुण है इसलिये इसका मारनाही उचित है. क्योंकि जो यह चांडाल जीतारहेगा, तो अवश्य सारे संसारको भस्म करडालेगा ॥३१॥ यह अत्याचारी नरदेवोंके योग्य सिंहासनपर बैठने योग्य नहीं है. क्योंकि यह निर्लज्ज यज्ञपुरुष भगवान्‌की निन्दा करके धर्मका विध्वंस करना चाहताहै ॥३२॥ जिन भगवान्‌ने अपनी कृपा करके इसको इसप्रकार विभव और बड़ाई दीहै, उन भगवान्‌की इस अशुभ वेनके विना दूसरा कौन निन्दा करसक्ता है॥३३॥इसप्रकार क्रोधमें भरकर उन ऋषियोंने उस अच्युत भगवान्‌के निन्दा करनेवाले वेनको हुंकार शब्दसे मारदिया. क्योंकि यह हुंकारशब्द; मारण प्रयोगमें आताहै *॥३४॥इसप्रकारसे वेनको मारकर सब ऋषि मुनि अपने२स्थानको चलेगये, तब उस शोकवती सुनीथाने मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे पुत्रके कलेवरकी रक्षा कराकर उसको रख छोड़ा क्योंकि वह विद्यायोग

नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ॥ योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिंदत्यनपत्रपः॥ ३२॥ को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृते
ऽशुभम् ॥ प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः। ३३ ॥इत्थं व्यवसिता हंतुमृषयो रूढमन्यवः ॥ निर्जघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतम
च्युतनिंदया ॥ ३४ ॥ ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ॥ सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५॥
एकदामुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ॥हुत्वाऽग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे॥३६॥वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहु
र्लोकभयंकरान्॥अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः॥३७॥एवं मृशंत ऋषयो धावतां सर्वतो दिशः॥पांसुः समुत्थितो
भूरिश्चोराणामभिलुंपताम्॥३८॥तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुंपताम्॥भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम्॥३९॥

ऋषियोंका भलीप्रकार जानतीथी ॥ ३५ ॥ एकसमय सब मुनिजन सरस्वतीजीके जलमें स्नानकर अग्निमें हवनादिकसे निश्चिन्त हो, सरिताके तटपर बैठेहुए सत्कथा कह रहेथे॥ ३६॥ इतनेमें संसारको भयदायक उत्पात दृष्टिसे आने लगे उनको देखकर ऋषिलोगोंनेविचारा कि, इससमय पृथ्वीपर कोई प्रजापालक नहीं है इसलिये हमको इस अनाथ पृथ्वीपर चोरोंका भयहै ॥३७॥ मुनिलोग यह विचारही रहेथे कि इतनेमें चोरोंके दलके दल घिर आये और उनके घोडोंके दौडनेसे चारों ओर धूरि उडती उनके देखनेमें आई राजाके मारेजानेसे लोगोंका सब धन चोर लूट कर लेगये ॥३८॥ और बड़ा भारी उपद्रव मचा प्रजामें परस्पर मारपीट होनेलगी तब ऋषियोंने विचार किया कि ॥ ३९ ॥

---

* **कवित्त**–जाने हरि त्यागे ताहि त्यागो सब लोगनने, ऐसेही वेननृप डरोनाहिं पापसे। आपहीको ब्रह्मा शिव विश्वनाथ कहवायो, काहूको अधिक नाहिं समझैहै आपसे ॥ सूर्य और चंद्रमामें मेरोही प्रकाश होत, देवत मैं महातेज मेरेही प्रतापसे । बुरो होत शालिग्राम विप्रनको दुःख दैनो, वेनको विनाश भयो विप्रनके शापसे ॥

यदि: ऐसाही उपद्रव रहा तो हम लोगोंको बडा दोष लगेगा, क्योंकि जो ब्राह्मण समदृष्टि और शान्त होनेपरभी उन लोगोंकी रक्षा न करे तो उनका सब ब्रह्मतप क्षीण होजाता है,जैसे फूटेपात्रमें दूध नहीं रहता इसीप्रकार उनका तेज नष्ट होजाताहै॥४०॥४१॥यद्यपि आप इस उपद्रवको शान्त करसकते हैं. तोभी राजर्षि अंगके वंशमें यह स्थित होने योग्य नहीं है,इस वंशमें सब राजा श्रीकृष्णाश्रय होनेवाले परमभक्तही हो आये हैं ॥ ४२ ॥ इसप्रकार निश्चय कर सब ऋषिलोग मिलकर नगरमें आये और मन्त्रोंसे मरेहुए वेन महीपतिकी जंघा शीघ्र मथनेलगे, तब उसमेंसे एक छोटासा पुरुष प्रगटहुआ ॥ ४३ ॥ काकके सदृश काला, अत्यन्त छोटे छोटे हाथ, पांव,ठोडी बडी, गहरी नाभि, लम्बी नाक, लाल नेत्र

चौरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ॥ लोकान्नावारयञ्छक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥ ४० ॥ ब्राह्मणः समदृक् शांतो
दीनानां समुपेक्षकः॥ स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभांडात्पयो यथा ॥ ४१ ॥ नांगस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ॥
अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४२ ॥ विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ॥ ममंथुरूरुं तरसा
तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४३ ॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वांगो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ॥ ह्रस्वपान्निम्ननासाऽग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्ध
जः ॥४४ ॥ तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ॥ निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥ ४५ ॥ तस्य वं
श्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ॥ येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्वणम् ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे
चतुर्थस्कन्धे पृथूपाख्याने निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

और लालही शिरके बाल थे ॥ ४४ ॥ वह पुरुष नम्रीभूत दीनकीनाईं हाथ जोडकर मुनियोंसे बोला कि मेरेलिये क्या आज्ञा है? हे विदुर तब मुनियोंने उससे कहा कि, "निषाद" अर्थात् बैठजा; इसलिये उस पुरुषका नाम निषाद हुआ ॥ ४५ ॥ इसके वंशमें निषाद अर्थात् भील लोगहुए.क्योंकि उस वेनदुष्टके शरीरमें महापाप भराहुवाथा,वही पाप निषादरूप बनकर बाहिर निकला और वेनवंशमें किसीप्रकारका कलंक नहीं रहा, इसीलिये उसके वंशवालोंको नगरमें वास करनेका अधिकार नहीं है, पर्वतोंकी खोहोंमें रहते हैं ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषाटीकायां निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥

दोहा–पञ्चदशो अध्यायमें, मथे वेनके हाथ। ताते पृथु प्रगटो तुरत, भयो सो पृथ्वीनाथ॥१५॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, फिर उस अपुत्र वेन महीपतिकी भुजाओंको मुनियोंने मथा, तो उसमें एक जोडा अर्थात् एक कन्या और पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ उस जोडेको जन्मा देखकर वह ब्रह्मवेत्ता ऋषि भगवान्‌की कला जान अत्यन्त संतुष्ट हो बोले * ॥ २ ॥ ऋषिबोले कि, यह परमपुरुष संसारकी रक्षाके लिये, विष्णु भगवान्‌की कलासे उत्पन्न हुआ है और यह देवी श्रीनारायणके हृदयमें नित्यप्रति वास करनेवाली श्रीलक्ष्मीजीकी कलासे प्रगटी है ॥३॥ यहजो पुरुष है, सो

मैत्रेय उवाच ॥ अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ॥ बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वा मिथुनं
जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एष विष्णोर्भगवतः कला
भुवनपालिनी ॥ इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥ ३ ॥ अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ॥
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥ इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ॥ अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवा
वरुंधती ॥ ५ ॥ एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ॥ इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥

सब राजाओंमें आदिराजा बडा तेजस्वी और यशस्वी महाराज पृथु नामसे प्रसिद्ध होंगा और सब संसारमें अपना यश विस्तार करेगा ॥ ४ ॥ और यह सुन्दर सुदती देवी गुणभूषणोंसे भूषित वरारोहा अर्चिनाम, छबिकी छबि बढानेवाली, अपने पति पृथुकी सेवनीय होगी ॥५॥ और यह पृथु तो संसारकी रक्षाकेलिये साक्षात् विष्णु भगवान्‌का अंश प्रगट हुआ है औरयह श्रीनारायणके सदा हृदयमें वास करनेवाली, भगवत्परायणा

---

* **शंका**–ऐसे महादुष्ट वेनके देहसे श्रीलक्ष्मीनाथ नारायण क्यों प्रगट हुए और भूमिको दुःखी देखेविना भगवान् कभी अवतार नहींलेते. वेनके समयमें पृथ्वीको क्या दुःख हुआ जिसकारण शीघ्र आनकर भगवान् प्रगट हुये ?

उत्तर–वेनने जो प्रजाको दुःख दिया और उसका नाश किया उस प्रजाके दुःखको देखकर अथवा जीती प्रजाको महाक्लेशित देखकर दीनबन्धु दीनानाथ मुनिमनरञ्जन भक्तभयभञ्जन भगवान्‌ने भूमिके और प्रजाके ऊपर अनुग्रह करके शीघ्र प्रगट होनेकी इच्छा की तब भगवद्भक्त ब्राह्मणोंने परमात्माका विचार जानकर वेदोंके मन्त्रोंसे वेनकी देहको शुद्ध करनेलगे तब उसी शुद्धशरीरसे भगवान् उत्पन्न हुए.

श्रीलक्ष्मीजीने आनकर अवतार लिया है ॥६॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार ब्राह्मणलोग उनकी प्रशंसा करनेलगे, गंधर्व यश गानेंलगे, सिद्धलोग पुष्पोंकी वर्षा बरसानेलगे; और देवांगना नृत्य करनेलगीं ॥ ७ ॥ स्वर्गसे शंख, तूर्य, मृदंग और दुंदुभी आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते देवता, ऋषि, पितृगण॥८॥सब लोकपाल शिवको साथ लेकर जगद्गुरु ब्रह्माजीभीवहाँ आये और पृथुके दहिने हाथमें गदाधारी चक्रका चिह्न देखा ॥९॥ और दोनों पाँवोंमें कमलके चिह्न देखकर ब्रह्माजीने समझलिया कि यह साक्षात् विष्णु भगवान्की कलासे उत्पन्नहुवा है क्योंकि, जिसके हाथमें दूसरीरेखाओंसे मिलाहुवा रेखाका चक्र न होवे उसको परमेश्वरका अंश जानना चाहिये ॥१०॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने उसके अभिषेकका आरम्भ किया, और

मैत्रेय उवाच ॥ प्रशंसंति स्म तं विप्रा गंधर्वप्रवरा जगुः ॥ मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यंति स्वः स्त्रियः ॥ ७ ॥ शंखतूर्यमृदंगाद्यानेदुर्दुंदुभयो दिवि ॥ तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितृणां गणाः ॥ ८ ॥ ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवः सहासृत्य सुरेश्वरैः ॥ वन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥ ९ ॥ पादयोररविंदं च तं वै मेने हरेः कलाम् ॥ यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥ ११ ॥ सरित्समुद्रा गिरयो नगा गावः खगा मृगाः ॥ द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥ सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः ॥ पत्न्यार्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥ तस्मै जहार धनदो हैमं वीरवरासनम् ॥ वरुणः सलिलस्त्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥ १४ ॥ वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ॥ इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दंडं संयमनं यमः ॥ १५ ॥

सब ओरसे अभिषेकके पदार्थ लोग लानेलगे ॥ ११ ॥ नदियें, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, नाग, गौ, खग, मृग, आकाश, पृथ्वी और सब जीवमात्र भेंट लेलेकर उपस्थित हुए ॥१२॥ और महाराज पृथुने स्नान करके सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन अलंकृत अर्चिपत्नीसे शोभित मानो दूसरा अग्नि विराजमान है ऐसे देदीप्यमान दिखाई देनेलगे ॥ १३ ॥ हे विदुर ! कंचनका सिंहासन तो कुबेरने और चन्द्रकांतिसमान छत्र वरुणने उसके लिये समर्पण किया. जिसमेंसे सदा शीतल जल टपकता रहै ॥ १४ ॥ और अत्यन्त विशाल दो चमर वायुने और कीर्तिमय माला धर्मने और

परमोत्तम किरीट दिया और संयमन नाम दण्ड यमराजने दिया, जो दुष्टोंका विनाश करनेवाला था ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीने ब्रह्ममय कवच दिया, सरस्वतीने उत्तम हार चक्रधर श्रीहरिने सुदर्शन चक्र अर्पण किया और श्रीलक्ष्मीजी अखंडित ऐश्वर्य देतीभई ॥१६॥ रुद्रने दशचन्द्रनाम खड्ग दिया और शतचन्द्र नाम ढाल श्रीपार्वतीजीने दी चन्द्रमाने अमृतमय घोडे दिये और अत्यन्त सुन्दर रथ त्वष्टाने दिया॥१७॥ अग्निने मेढे और बैलके सींगोंसे बना हुआ धनुष दिया, सूर्यने किरणमय शत्रुके भस्म करनेवाले बाण दिये, भूमिने योगमय पादुका दी कि, जिनको पहनकर जहाँ चाहै वहाँ चले जाओ और आकाश सदा पुष्पोंका हार देता रहा ॥ १८ ॥ और आकाशके विचरनेवाले नभचर लोगोंने नाट्य, सुन्दर

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ॥ हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम्॥१६॥दशचंद्रमसिं रुद्रः शतचंद्रं
तथांबिका ॥ सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥ १७ ॥ अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥ भूः
पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥१८॥ नाट्यं सुगीतं वादित्रमंतर्धानं च खेचराः ॥ ऋषयश्चाशिषः सत्याः
समुद्रः शंखमात्मजम् ॥ ॥१९ ॥ सिंधवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥ सूतोथ मागधो बंदी तं स्तोतुमुपतस्थिरे
॥ २० ॥ स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥
भोः सूत हे मागध सौम्यबंदिँल्लोकेधुनाऽस्पष्टगुणस्य मे स्यात् ॥ किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां माभय्यभूवन्वि
तथा गिरो वः ॥ २२ ॥

गीत, बाजे और अन्तर्धान होनेंकी शक्ति दी; ऋषिमुनियोंने सत्य आशीर्वाद दिये समुद्रने अपना पुत्र शंख दिया॥ १९॥समुद्र, पर्वत, नदियोंने उस महात्माके रथको मार्ग दिया, सूत, मागध, बन्दीजन उनकी स्तुति करने लगे ॥२०॥ उन स्तुति करनेवालोंको अपने समीप खडा देखकर महाप्रतापी वेनपुत्र पृथुने मेघसमान गम्भीर वाणीसे हँसकर यह वचन कहा ॥२१॥ पृथु बोला कि, हे सूत ! हे मागध ! हे सौम्य बन्दीजनो ! ! अभीतक लोकमें मेरे गुण प्रगट नहीं हैं, तुम किसलिये मेरी स्तुति करतेहो ? संसारमें जिसके गुण विदित होते हैं उसकी स्तुति करनी चाहिये, तुम्हारी वाणी मेरेलिये मिथ्या न होनी चाहिये, हे श्रेष्ठवाणीवाले पाठको ! इसलिये कालान्तरमें जब हमारे गुण प्रगट दीखनेलगेंगे ॥ २२ ॥

तब तुम भले प्रकार हमारे वंशकी प्रशंसा करना, यह तुम नहीं कहसक्ते कि, हम सभ्योंकी प्रेरणासे तुम्हारी स्तुति करतेहैं,क्योंकि उत्तमश्लोक परमेश्वरके गुणानुवादके आगे और मनुष्योंके गुण सभासद नहीं गातेहैं॥२३॥ आत्माके महागुणके सन्मुख स्तावकोंसे असतोंके गुणकी संभावनामात्रसे कौन स्तुति करावे, वह मूर्ख इस बातको नहीं जानते कि, यह गुण मुझमें होंगे इस बातसे वंचित होनेके कारण वे लोग मेरा उपहास करेंगे ॥२४॥ जो सामर्थ्यवान्,लज्जावन्त और कीर्तिमान् पुरुष हैं वह अपनी स्तुति करानेमेंभी निन्दा समझते हैं, जैसे विक्रमी ब्राह्मणका वध आदि पुरुषार्थकी निन्दा करते हैं ऐसे परमउदार पौरुषकी सामने स्तुतिकी निन्दा करते हैं ॥ २५॥ हे सूतादिको ! हम श्रेष्ठकर्मकरके अभी लोकमें विख्यात

तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ॥ सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयंति
सभ्याः ॥ २३ ॥ महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ॥ तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो
जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥ २४ ॥ प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्संत्यतिविश्रुताः ॥ ह्रीमंतः परमोदाराः पौरुषं वा
विगर्हितम् ॥ २५ ॥ वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ॥ कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥
इति श्रीमद्भा०म०चतु०पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ॥
तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥१॥ नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया ॥ वेनांगजातस्य च
पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥ २ ॥

नहीं हुएहैं, फिर बालककी नांई आपसे कैसे अपनी स्तुति करावें ? ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पृथोरवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ दोहा–इस षोडश अध्यायमें, पृथुको अति सत्कार । लोकपाल अरु सूतगण, कीनो विविध प्रकार ॥१६॥ मैत्रेयजी बोले कि, राजा पृथु तो इस प्रकार अपनी बडाईका उनसे निषेध करताही रहा, परन्तु मुनियोंकी प्रेरणासेप्रसन्नमन होकर पाठकगण और गायक अमृतरूपी वाणीसे उसकी सेवा और स्तुति करनेलगे ॥१॥ जो आपने साक्षात् देववर्य मायासे अवतार लिया है; और बेनके अंगसे उत्पन्न

हुएहो,जब आपके पुरुषार्थोंमें बृहस्पत्यादिकोंकीभी बुद्धि भ्रमजालमें आजाती है, तो फिर आपके चरित्र वर्णन करनेकी हमारी क्या सामर्थ्यहै ॥२॥यद्यपिआप ऐसेहैं तोभी उदारयशस्वी और भगवान् विष्णुकी कलावतार पृथुके कथा अमृतमें आदृत होकर मुनिलोगोंका जैसा उपदेशहै और उन्होंने अपने योगबलसे जैसा हमारे हृदयमें प्रकाशकिया है,उसके अनुसार आपकी अनुपम महिमाका विस्तार करतेहैं॥३॥आप धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, और लोगोंको धर्मके मार्गमें चलानेवाले हैं.और धर्मकी सीमाकी रक्षाके लिये सेतु हो,धर्मकी मर्यादारूप सेतुके तोड़नेवालोंके नाशक हो ॥ ४ ॥ केवल आपही अपनी देहसे तन धारण करते हो यही समय समयके यथाभाव होना,लोकका हित करतेहैं,एक देहमें लोकपालोंके शरीर

अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलाऽवतारस्य कथाऽमृतादृताः ॥ यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि
वयं वितन्महि ॥ ३ ॥ एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपंथिनाम् ॥
॥ ४ ॥ एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः ॥ कालेकाले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥ ५ ॥ वसु काल
उपादत्ते काले चायं विमुंचति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥६॥ तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रामतामपि ॥
भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान्॥७॥ देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः॥ कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्य
त्यंजसेंद्रवत् ॥८॥ आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ॥ सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥९॥ अव्यक्त
वर्त्मैष निगूढकार्यो गंभीरवेधा उपगुप्तवित्तः ॥ अनंतमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥ १० ॥

धारण करते हैं ॥ ५ ॥ उसीप्रकार लोकपालोंके शरीरका पालन, पोषण और यह सुकालमें धन लेवेंगे और दुर्भिक्षकालमें धन देकर प्रजाकी सहायता करेंगे. सब जीवमात्रमें समान वर्तावकर सब जीवमात्रपर समदृष्टि रखकर अपने प्रतापका प्रकाश बढावेंगे॥६॥जैसे वसुमती सर्व संसारका भार सहन करती है ऐसेही यह कृपालुपृथु पृथ्वीकी गति धारण करके दीन दुःखीजन इसके ऊपर पगभी धरदेंगे तोभी उनका अपराध क्षमाकरेंगे॥७॥ जो कभी इन्द्र वर्षा नहीं करेगा तो यह नरदेव देहधारी विना प्रयास श्रीहरिदेव कृच्छ्रप्राणसे इन्द्रके सदृश वर्षा करके आर्तजनोंकी रक्षा करेंगे ॥८॥ चंद्रवत् वदन अमृतमूर्तिसे अनुरागी चितवनके देखनेसे मनोहर मंद मुसकानसे सब संसारको तृप्त करेंगे ॥९॥यह अप्रगट मार्ग होंगे जैसे वरुणके

सब कामगुप्त हैं ऐसेही यह पृथु पृथ्वीनाथ गंभीरबुद्धि रक्षितचित्त होंगे और इसके गमनागमन मार्गको कोई नहीं जानसकेगा और इनके परिणामकी किसीको सुधि न होगी कि, यह क्या करेंगे और इनके प्रयोजनका भाव कोई नहीं जान सकेगा और यह अनन्त महात्माओंके गुणोंके एक धाम हैं, यह पृथु प्रचेताकी नाईं जितेंद्रिय होंगे॥१०॥वेनरूप अरणिसे प्रगटहुए पृथुरूप अग्निका कोई शत्रु शीतल करनेवाला न होगा और सबके निकट रहनेपरभी शत्रुको ऐसे ज्ञात होंगे कि अत्यंत दूर बैठा है और कोई पुरुष अपने पुरुषार्थसे इसको जीत न सकेगा ॥११॥ सब जीवमात्रके बाहर और भीतरके सब कर्मोंको चारद्वारा देखताहुवा जैसे सब प्राणियोंका अधीश आत्मभूत वायुकी नाईं सदा उदासीनसे रहेंगे॥१२॥धर्ममार्गमें

दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ॥ नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः॥११॥अंतर्बहिश्च भूतानां पश्य
न्कर्माणि चारणैः ॥ उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मैव देहिनाम् ॥१२॥ नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि ॥
दण्डयत्यात्मजमपि दंड्यं धर्मपथे स्थितः ॥१३॥ अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात्॥ वर्तते भगवानर्को याव
त्तपति गोगणैः ॥ १४ ॥ रंजयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ॥ अथामुमाहू राजनं मनोरंजनकैः प्रजाः ॥ १५ ॥
दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ॥ शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिः परस्त्रीषु
पत्न्यामर्ध इवात्मनः ॥ प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किंकरो ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७ ॥

ऐसे सत्यवादी होंगे कि अदंडको दंड कभी न देंगे, चाहे पुत्र हो, चाहे शत्रु, न्यायके समय किसीका पक्षपात न करेंगे,जो दंड देनेके योग्य होगा उसीको दंडका भागी करेंगे ॥ १३ ॥इन पृथुका अखण्ड शासन मानसाचलपर्वतसे लेकर जहांतक भगवान् भास्कर अपनी किरणोंसे तपते हैं,वहां तक राज्य करेगा * ॥१४॥ अपनी चेष्टा करके सब लोकोंको प्रसन्न करेंगे,फिर मनके आनन्दकारी मनोहर वाक्योंसे प्रजाको अत्यानन्द करेंगे और प्रजा प्रसन्न होकर कहेगी कि, महाराज हमारे दुःखभंजन हैं ॥ १५ ॥ दृढव्रत, सत्यवादी, ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले, वृद्धजनोंके दास. शरणागतवत्सल,सब प्राणीमात्रके मानदाता,दीनदयालु होंगे॥१६॥परस्त्रीको माताके समान तथा अपनी भार्याको अपने अर्द्धांगसदृश मानने

---

*शंका—जो जो अवतार नारायणने धारणकिये वह सब त्रिभुवनपति होतेहुए परन्तु सूतलोगोंने ऐसा क्या कहा कि जहांतक सूर्य अस्त होगा वहां तक राजा पृथु रक्षा करेंगे?

उत्तर—तीन लोकके पति ईश्वरने राजा बेनसे पृथ्वीको नष्टहुई जानके राजाओंकी सनातन मर्यादाहुई जानके अकेले पृथ्वीको सुख देनेके लिये पृथु भगवान् प्रगट अतः पृथुका सूतोंने केवल भूपाल वर्णन किया.

वाले, प्रजामें पिताकी नाईं प्रीति करनेवाले ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके किंकर होंगे ॥ १७ ॥ सब देहधारियोंको अपनी आत्माके समान प्रिय, सुहृदोंको आनंद बढानेवाले, निःसंग पुरुषोंकी संगतिवाले, दुष्टोंको दंड देनेवाले होंगे ॥ १८ ॥ यह तो साक्षात् [त्रिभुवननायक, निर्वेद भगवान्, त्रिगुणी मायाके अधीश सबमें प्रवसे हैं; आत्माकी कलासे अवतार धारण किया है जिसमें अविद्यारचित निरर्थक नानाभाँति प्रतीत होते हैं ऐसे दृष्टि आते हैं ॥ १९ ॥ यह नरदेवोंके नाथ, उदयाचलसे लेकर सबभूमंडलकी जैसे मार्तंड प्रदक्षिणा देताहै, इसीप्रकार अकेले जयप्रद रथमें बैठ धनुषबाण लेकर समस्त भूमंडलकी प्रदक्षिणा करेंगे ॥ २० ॥ आठोंलोकपाल सहित सब राजालोग जहाँ तहाँ इनके लिये भेंट देंगे और उन आदिराज चक्रायुधकी स्त्रियें इन आदिराजको श्रीनारायणकी कला समझकर वारंवार यश उच्चारण करेंगी ॥ २१ ॥ यह अधिराज गौरूपधरणीको दुहेंगे और प्रजाकी प्रजापतिकी नाईं वृत्ति करेंगे और लीला करके अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंको तोडकर सब पृथ्वीको समान करेंगे, इन्द्रकी नाईं पर्वतोंको भेदकर चूर्ण करेंगे ॥ २२ ॥ जिससमय ये अपने आजगव धनुषका टंकार करके निर्द्वंद्व होकर जैसे पूँछ उठाकर पञ्चानन पृथ्वीपर घूमता है तैसे संग्राममें विचरेंगे, तब सब दिशाओंसे दुष्टलोग भाग जायँगे ॥२३॥ जहाँ सरस्वती प्रगट हुई है, तहाँ

देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नंदिवर्धनः ॥ मुक्तसंगप्रसंगोऽयं दंडपाणिरसाधुषु ॥ १८ ॥ अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयाऽवतीर्णः ॥ यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यंति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥ १९ ॥ अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः ॥ आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ॥ २० ॥ अस्मै नृपालाः किल तत्रतत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ॥ मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उद्धरंत्यः ॥ २१ ॥ अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ॥ यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोटचा भिंदन्समां गामकरोद्यथेंद्रः ॥ २२ ॥ विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ॥ तदा निलिल्युर्दिशिदिश्य सन्तो लांगूलमुद्यम्य यथा मृगेंद्रः ॥ २३ ॥ एषोऽश्वमेधाञ्छतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ॥ अहारषीद्यस्य हयं पुरंदरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥ २४ ॥

यह सौ (१००) अश्वमेध यज्ञकरेंगे, जबसौ यज्ञ पूर्ण होजायँगे तब अन्तमें वर्तमान होनेपर इन्द्र आकर इनका घोडा चुराकर लेजायगा ॥ २४ ॥ यह अपने स्थानके समीपके उपवनमें भगवान् सनत्कुमारको इकला पाकर श्रद्धापूर्वक उनका आराधन करके साक्षात् निर्मल वासुदेव भगवान्के ज्ञानको प्राप्त करेंगे कि, जिस ज्ञानके करनेसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ जहाँ तहाँ प्रजागण महापराक्रमी भूपतिका यश मधुर वाणियोंसे गानकर विख्यात करेंगे तब अपने पराक्रमकी कथा अपने कानोंसे सुनेंगे ॥ २६ ॥ और इनकी आज्ञाको कोई भंग न करसकेगा, सब दिशाओंको जीतकर अपने तेजसे सबलोकके शूलोंको निकालकर सुर असुर इन्द्र इनकी गाथाको गावेंगे और यह महानुभावी भूमिके पति होवेंगे ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां मुनिप्रयुक्तसूतादिकृतस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा- सत्रहमें सब अन्नको, धरणि बीज गइ खाय । जब पृथु कोपे धरणिपर, धरणि शरण ली आय॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब इसप्रकार उस भगवान् पृथुको गुणकर्मोंसे विख्यात किया, तब राजा पृथुने उनकी अत्यन्त सराहनाकर प्रणाम किया, फिर उनका पूजन कर आदर सत्कार सहित उनको सतुष्ट किया ॥ १ ॥ और ब्राह्मणादिक चारों वर्ण,भृत्य, अमात्य,पुरोहित, पुरवासी, सब प्रकृति (प्रजा) का राजा पूजन करनेलगे ॥ २ ॥ विदुरजी बोले कि,अनेकरूप धरनेवाली धरणीने क्यों गोरूप धारण किया ? और जब पृथुने उसको दुहा तो उससमय वत्स कौन था

एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ॥ आराध्य भक्त्याऽलभताऽमलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥२५॥ तत्रतत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ॥ श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥२६॥ दिशो विजित्याऽप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ॥ सुरासुरेंद्रैरुपगीयमानमहाऽनुभावो भविता पतिर्भुवः ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भा०म०चतुर्थ०षोडशोऽध्यायः॥१६॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं स भगवान्वैन्यःख्यापितो गुणकर्मभिः॥छन्दयामास तान्कामैःप्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥१॥ ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ पौराञ्जानपदाञ्छ्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत्॥२॥विदुर उवाच॥कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ॥ यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम्॥३॥

और दोहनी क्या थी? ॥३॥ और स्वभावसे ऊँची नीची पृथ्वीको समान क्यों किया? और उसके पवित्र यज्ञके घोडेको इन्द्रदेवता क्यों चुराकर लेगया? ॥४॥ हे ब्रह्मन्! हे वेदवादियोंमें श्रेष्ठ!! भगवान् सनत्कुमारसे परमज्ञानको प्राप्तकर पूर्ण ज्ञानी हो, वह राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुआ? ॥५॥ और श्रीकृष्णचंद्र आनन्दकन्द भगवान्का और भी जो कुछ सुन्दर विख्यात यश पुण्यदायक भगवान् पृथुकी कथाके आश्रित हो सो आप वर्णन कीजिये॥६॥ आपके चरणारविन्द अनुरागी भगवत्का भक्त जो मैं हूँ सो मुझसे आप कहो कि उस पृथुने वेनके अंगसे उत्पन्न होकर पृथ्वीको किसलिये दुहा? ॥७॥ सूतजी बोले कि, जब विदुरजीने वासुदेव भगवान्की कथाके लिये इसप्रकार प्रेरणा की, तब उसकी प्रशंसा कर प्रसन्नमन होकर मैत्रेयजीने कहा ॥८॥ मैत्रेयजी बोले कि हे अंग! जब पृथुको राज्यतिलक ब्राह्मणोंने दिया और प्रजापालनका आमंत्रण किया तब सब भूतल अन्नरहित होगया और सब प्रजागण क्षुधार्त हो कृश शरीर होगये तब प्रजापतिके समीप जाकर बोले॥९॥ हे राजन्! हमको क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कररही है जैसे वृक्षमध्यस्थित अग्निसे वृक्ष जलते हैं, ऐसेही जठराग्निसे हम सब जल रहे हैं, हे शरणागतपालक! हम तुम्हारी शरण हैं और ब्राह्मणोंने आपको हमारा अधिपति बनाया है आप हमारी सब वृत्तियोंका साधन करो ॥१०॥ हे पृथ्वीनाथ! हमारी रक्षा करो, भूखोंके मारे हमारे

प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ॥ तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥ ४ ॥ सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् ॥ लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥ ५ ॥ यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः ॥ श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥ भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च॥ वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ॥ प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदाभिषिक्तः पृथुरंग विप्रैरामंत्रितो जनतायाश्च पालः ॥ प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥९॥ वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ता यथाग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ॥ त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥१०॥ तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेव देव ॥ यावन्न नंक्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥ ११ ॥

301

प्राण प्रयाण किया चाहतेहैं अन्न देनेके लिये आप कोई ऐसा यत्न करो कि,जिससे हमको अन्न प्राप्त हो.हे नरदेव!इतनी शीघ्रता करो जो अन्न बिना हमारे प्राण न निकलजायँ क्योंकि जब हमारा शरीरही न रहा तो फिर अन्न हमारे किस कामका ? चौपाई–“का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूक पुनि का पछताने”॥ आपको यह उपाय शीघ्रही करना चाहिये क्योंकि परमात्माने आपको जीविकाका पति और लोगोंका पालक बनायाहै ॥११॥मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर! प्रजागणोंके आर्त वचन सुनकर पृथुने बहुत कालतक विचार किया,तो भलीभाँति दुर्भिक्षके प्रयोजनको समझ लिया॥१२॥कि वसुमती सब औषधियोंके बीजको निगलगईहै,इसीसे अन्नको उत्पन्न नहीं करसकती. यह बात अपने चित्तमें निश्चय कर,धनुष

मैत्रेय उवाच ॥ पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवनम् ॥ दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥१२॥ इति
व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ॥ संदधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥१३॥ प्रवेपमाना धरणी निशम्यो
दायुधं च तम् ॥ गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥१४॥ तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ॥ शरं धनुषि
संधाय यत्रयत्र पलायते ॥ १५ ॥

बाण ले जैसे त्रिपुरासुरके मारनेके लिये शिवने धनुष चढ़ाया था, उसी प्रकार भूमिके भस्म करनेको महाकालकी समान क्रोधित होकर परमप्रचण्ड बाण धनुषमें संधान किया❋॥१३॥जब पृथुको क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये और चाप चढ़ाये देखा तो पृथ्वी डरकीमारी थरथर काँपने लगी, और धेनुका रूप धरकर भागी,जैसे वधिकके भयसे मृगी भागतीहै ऐसेही वसुंधरा व्याकुल होकर भागी ॥१४॥ भागतीहुई भूमिको भूप देखकर

❋**शंका**–प्रजाके वचनोंको सुनकर उससमय राजा पृथुने कुछ दूसरा और उपाय प्रजाके सुखी होनेके लिये नहीं विचारा,प्रजाके सुख देनेवाले सब यत्न त्यागकर बडे भारी मूखाकीनाई पृथ्वीको मारनेके लिये क्यों उद्यत हुए ? क्योंकि प्रजाके सुख होनेके उपाय लोकशास्त्रमें अनेक प्रकारके वर्णन किये हैं और पृथ्वीको मारना किसी शास्त्रमें नहीं लिखा ?

उत्तर–बडे दयावान् पृथुराजा अवतार धारण करक राजगद्दीपर बैठे तौ क्या देखा कि, महाघोर अन्याय पृथ्वीपर होरहाहै;उसको देखकर पृथु राजाने अपने मनमें विचार कियाकि, यह राजा वेनके राज्यके बिगडेहैं अब और आगेको होंगे वह राजाभी इनको देखकर बिगड जायँगे तौ पृथ्वी रसातलको चलीजायगी इसालिये इन दुष्टोंको त्रास दिखाकर शिक्षा देनी चाहिये; दुष्टराजाओंको ऐसा मालुम पडाकि पृथ्वीने प्रजाको दुःख दिया था सो वेनके राजसे अब पृथुराज पृथ्वीको प्रजाका द्रोही जानकर प्रजाके सुख देनेके लिये पृथ्वीको मारनेको धनुष उठाया तब तो सब राजा परस्पर कहने लगे कि, अरे भाई ! प्रजाको सुख दो नहीं तो सब मारेजांयगे ऐसे दुष्टराजा सब पृथुकी त्राससे प्रजाको सुख देनेलगे इसलिये पृथ्वीको मारनेका विचार राजा पृथुने किया था. कुछ क्रोध करके पृथ्वीको मारनेका विचार नहीं कियाथा.

रथपर चढ़ महाक्रोधित हो अरुणनयनकर धनुषबाण चढाय उसके पीछे भागा और जहां जहां पृथ्वी गई वहाँ वहाँ पृथुने उसका पीछा न छोडा ॥१९॥ वह देवी वसुमती दिशा, विदिशा, अवनि, आकाश, नरपुर, नाकपुर, नागपुर उनके मध्य अंतरिक्ष जहाँ जहाँ भागकर गई, उन्हीं उन्हीं स्थानोंपर पृथुको शस्त्र लिये आता हुआ अपने पीछे देखा, सब लोकपालोंके लोकोंमें अत्यन्त शोकाकुल हो भागी भागी फिरी ॥१६॥ जैसे प्रजा मृत्युके सन्मुख थरथर काँपतीहै, और कोई नहीं बचासक्ता, ऐसेही पृथुके सामने किसीकी सामर्थ्य न थी जो बिना दीनदयालुके दीन पृथ्वीकी रक्षा करें, जब कहीं शरण न मिली तब भागनेसे निवृत्त हो पीछेको लौटी॥१७॥ और मस्तक नवाकर महाबाहु राजा पृथुसे बोली कि, हे धर्म। हे शरणागतप्रतिपालक!! हे आपद्रक्षक!!! सब संसारके पालन करनेके लिये आप उत्पन्न हुएहो, तो मेराभी पालन करो॥१८॥ मुझ दीन निरपराधिनी

सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चांतरं तयोः ॥ धावती तत्रतत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥ १६ ॥ लोके नाविंदत त्राणं
वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ॥ त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥ १७ ॥ उवाच च महाभागं धर्मज्ञाऽऽपन्नवत्सल ॥
त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥ १८ ॥ स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् ॥ अहनिष्य
ःकथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः॥ १९ ॥ प्रहरंति न वै स्त्रीषु कृतागस्स्वपि जंतवः ॥ किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीन
वत्सलाः ॥ २० ॥ मां विपाट्याऽजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमंभसि धास्यसि
॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ भागं बर्हिषि या वृंक्ते न तनोषि च नो वसु
॥ २२ ॥ यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौषधं पयः ॥ तस्यामेवं हि दुष्टायां दंडो नात्र न शस्यते ॥ २३ ॥

को क्यों मारतेहो? आप तो धर्मज्ञ कहातेहो फिर मुझ अबलापर कैसे हाथ डालोगे? ॥१९॥ यद्यपि स्त्री कोई अपराधभी करे तो साधारण मनुष्य भी उसको नहीं मारते और आप तो आर्तबंधु, प्रणतपाल, दीनवत्सल हो, आपका तो कहनाही क्या है?॥२०॥ जिसमें सब विश्व स्थित ऐसी दृढ नौकारूप मुझको तोडकर फिर इस संसारको और अपने शरीरके आधारको जलपर किसप्रकार धारण करोगे?॥२१॥ पृथु बोले कि, वसुंधरे! तैंने मेरी आज्ञाका उल्लंघन कियाहै, इसलिये मैं तुझको बिना मारे कदापि न छोडूँगा, क्योंकि यज्ञमें तू अपना भाग लेनेको तो उपस्थित होजातीहै और धान्यादिक उपार्जन नहीं करती, फिर तू दंडकी भागी न होगी?॥२२॥ और सुन, जो गाय सदा घास और दाना तो खाय, और दूध दे नहीं, तो

उस दुष्टको दंड देना योग्य है वा नहीं ? ॥ २३॥ तैंने मुझे अयोग्य समझकर, ब्रह्माजीके पहिले रचेहुए जो औषधियोंके बीज थे वह अपने उदरमें रोकलियेहैं, उनको तू प्रगट नहीं करती ॥२४॥ चौ० "रे धरणी कुमती दुखदाई। नहिं जानत मेरी प्रभुताई॥" यह दीन प्रजा भूखोंकी मारी व्याकुल हो अत्यन्त दुःखी होरहीहै सो अब अपने तीव्र बाणोंसे तेरा शरीर विदीर्ण कर तेरी मज्जासे इस आर्त प्रजागणको प्रमुदित करूँगा ॥ २५॥ पुरुष, स्त्री, नपुंसक, अपनी बडाई आप करनेवाला, प्रजाको क्लेश देनेवाला, दयाहीन, साधुओंसे द्रोह रखनेवाला और अधम इतने पुरुषोंका मारना राजाको न मारनेके समान है क्योंकि, इनके मारनेका कुछ दोष नहीं ॥ २६ ॥ अरी गर्वीली कुमतिभरी दुर्मदवाली धरणी ! तैंने कपट करके गौरूप

त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक्सृष्टानि स्वयंभुवा॥ न मुंचस्यात्मरुद्धानि मामावज्ञाय मंदधीः ॥ २४ ॥ अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ॥ शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥ २५ ॥ पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः ॥ भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥ २६ ॥ त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ॥ आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ २७ ॥ एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतांतमिव बिभ्रतम् ॥ प्रणता प्रांजलिः प्राह मही संजातवेपथुः ॥ २८ ॥ धरोवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ॥ नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥ येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः ॥ स एव मां हंतुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥ ३० ॥

धारण किया मैं तिल तिल समान तेरे खंड खंड करके अपने अनुपम योगबलके प्रतापसे प्रजाको जलके ऊपर धारण करूँगा ॥ २७॥ क्या तैंने मेरे प्रतापको कुछ नहीं समझा, इसप्रकार क्रोधमयी महाकराल मूर्ति कालकी समान, धारणकिये पृथुको देख धरणी नम्र हो थरथराती कांपती हाथ जोडकर बोली॥२८॥ धरा बोली कि, जय परमपुरुष पृथ्वीश नाना प्रकारकी माया करके शरीर धारण करनेवाले, आत्मा स्वरूपके अनुभवसे दूरहुए द्रव्य, क्रिया और कारकसंबंधी अहंकार और अहंकारनिमित्तक रागद्वेषादिक, ऐसे धर्मज्ञको मैं वारंवार नमस्कार करतीहूँ ॥ २९ ॥ जिसब्रह्माने अपने रचेहुए जीवोंके लिये मुझको रचा है और मुझको सब प्राणिमात्रका आधार बनाया है स्वेदज, अण्डज, पिंडज, जरायुज यह चारों प्रकारके

जीव मेरे ऊपर वासकरते हैं, सोई स्वतंत्र विश्वनाथ आज हाथमें धनुषबाण लेकर मेरे मारनेको उद्यत हुए हैं, अब मैं ऐसे परमात्माको छोडकर और किसकी शरण लूँ? ॥३०॥ आदिमें जो परमेश्वरने अपने अधीन रहनेवाली प्रवर्तक मायासे चराचरको उत्पन्न कियाहै और उसी अपनी मायासे संसारकी रक्षाके लिये हुआ है, सो वह धर्मपरायण परमात्मा मुझको किसलिये मारता है ॥ ३१ ॥ सत्यहै कि, परमात्माकी चेष्टा उनकी दुर्जय मायासे विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंसे नहीं जानीजाती कि, जिस स्वतः एक होनेपरभी मायासे अनेकरूप और स्वाधीन परमेश्वरने यह जगत् रचा और ब्रह्माके द्वाराभी चराचर विश्वको उत्पन्न करवाया है ॥ ३२ ॥ द्रव्य, क्रिया, कारण, चेतन, आत्मा, करके अपनी शक्तियोंसे इस

य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययाऽऽत्माश्रययाऽवितर्क्यया ॥ तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो
जिघांसति ॥ ३१ ॥ नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभिः ॥ न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽ
नेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥ ३२ ॥ सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ॥ तस्मै समुन्नद्ध
निरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥ स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियांतःकरणात्मकं विभो ॥ संस्था
पयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहारांभस आदिसूकरः ॥३४॥ अपामुपस्थं मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिर
क्षिषुः किल ॥ स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५ ॥

विश्वकी उत्पत्ति, पालन, प्रलय, करता है अति उत्कट और निरुद्ध शक्तिवाले वेधा परमपुरुषके अर्थ मैं वारंवार नमस्कार करती हूँ ॥ ३३ ॥ हे विभो ! हे अज ! आप उसी अपनी आत्मासे रचेहुए महाभूत इंद्रिय अंतःकरणात्मक इस अपने उत्पन्न किये हुए विश्वको उत्तमरीतिसे स्थित करनेके लिये आदिवाराहरूप धर हिरण्याक्ष दुष्टको मार रसातलसे मेरा उद्धार कियाथा ॥ ३४ ॥ और पानीके उपर नौकारूपसे स्थापित आधारभूत मेरे ऊपर रहीहुई प्रजाओंके पालन करनेके लिये जो आप पृथुरूपधारण करके उत्पन्न हुए हो उसी धरणीके धारण करनेवाले आप उग्र बाण चढ़ाकर मेरे मारनेको उपस्थित हो. क्या कहूँ बडे अचंभेकी बात है ॥ ३५ ॥

निश्चयहै कि,मुझसरीखे जिनके चित्तपरमात्माकी मायासे मोहितहै वह पुरुष भगवान्के भक्तोंकीचेष्टाभी जब नहीं जानसके तो फिर परमात्माकी
चेष्टा जाननी तो महा कठिनहै उसको कैसे जानसक्तेहैं?भगवान्की समान जितेन्द्रिय वीर पुरुषोंके लिये वारंवार मेरा नमस्कारहै कोई कहे कि,
पृथुने इतनी बड़ी पृथ्वीको व्याकुल करदिया तो यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है भगवत्के भक्तोंको सब सामर्थ्यहै*॥३६॥इति श्रीमद्भागवते
महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पृथुधरणीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अष्टादश अध्यायमें, धरा वचन प्रियमान ।
वत्सपात्र सब जानके, लगे करन पय पान ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, क्रोधसे होठ जिनके फडक रहे ऐसे पृथुराजकी स्तुति कर भयभीत

नूनं जनैरीहितमीश्वराणामस्मद्विधस्तद्गुणसर्गमायया ॥ न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीर यशस्करेभ्यः
॥३६॥ इति श्रीमद्भागवते म० चतुर्थ० पृथूपाख्याने धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥
इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ॥ पुनराहाऽवनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ १ ॥ संनियच्छामि भो मन्युं
निबोध श्रावितं च मे ॥ सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः॥२॥ अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥
दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयःप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् ॥ अवरः श्रद्धयोपेत
उपायान्विदतेंजसा ॥ ४ ॥

पृथ्वीने बुद्धिसे मनको सावधान करके फिर बोली कि ॥ १ ॥ हे नृपेन्द्र ! क्रोधको शांत करो और मुझको अभयदान देकर मेरी विनय सुनो
जैसे भ्रमर पुष्पका सार सार रस लेलेता है, ऐसेही जो बुद्धिमान् विलक्षण लोग होते हैं वे सब वस्तुका सार ग्रहण कर लेते हैं॥२॥इस लोकमें और
परलोकमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुरुषोंके कल्याणकी सिद्धिके लिये योगप्रयोग कृषीआदि उपाय बतलायेहैं और उन्होंने कर्मारम्भ किये हैं ॥ ३ ॥
जो महात्माजनोंने उपाय बतलाये उन प्रयत्नोंको जो लोग श्रद्धासहित अच्छी रीतिसे सावधानहो अनुष्ठान करते हैं वह प्रतिकूल पुरुषभी उन

---

* **भजन**–कहा कमी जाके राम धनी ॥ मनसा माहिं मनोरथ पुरवे, शुभनिधान जाकी वात वनी। अर्थ धर्म कामना मोक्ष फल, चार पदारथ देत छनी॥इन्द्रादिक हैं जाके सेवक नर वपुरेकी कौनगनी। कहा कृपणकी माया धनीहै,करत फिरत अपनी अपनी॥खाय न सके खर्च नहीं जाने,जों भुजंगवश रहत मनी।आनँगमदन रामगुणगावत,विंसरत दुखकी काट तनी।सूरदास प्रभुको सुमिरत नित,तिनसों हरिसों सदाबनी॥

उपायोंको बिना आयास प्राप्त होजाते हैं ॥ ४ ॥ जो अज्ञानी उन प्रयत्नोंका तिरस्कार करके अपने मनसे अथवा और किसी रीतिसे नूतन उपाय करते हैं तो उनके वारंवार प्रारम्भ किये हुए फल सब नष्ट होजाते हैं ॥ ५ ॥ हे विशांपते! ब्रह्माजीकी पहिली रचीहुई औषधी और जो अन्नादिक था, उनको वेनआदि व्रतरहित कुकर्मी लोगोंको भोगते मैंने देखा ॥ ६ ॥ जब आपसे लोकपाल होकर, न तो मेरा पालन किया और न प्रजाका पालन किया और उलटा उसका निरादर किया, जब लोकमें चोरही चोर होगये तब मैं यज्ञके लिये सब औषधियोंको ग्रस लिया, क्योंकि यह औषधि पापियोंके योग्य नहींहैं,जो इन औषधियोंको पापी भक्षण करलेंगे तो फिर मुनिलोग यज्ञके समय कहाँसे लावेंगे, मैंने अपनेमनमें यह बिचार कर सब अन्नका भक्षण करलिया, इसी कारण संसारमें दुर्भिक्ष होगया ॥ ७ ॥ निश्चयहै कि, वह द्रुम वेली अब

ताननादृत्य यो विद्वानर्थानारभते स्वयम् ॥ तस्यव्यभिचरंत्यर्था आरब्धाश्च पुनःपुनः ॥ ५ ॥ पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते ॥ भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥ ६ ॥ अपालिताऽनादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः ॥ चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥ ७ ॥ नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा ॥ तत्र योगेन चेष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥ वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ॥ धोक्ष्येक्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥ दोग्धारं च महा बाहो भूतानां भूतभावन ॥ अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥ १० ॥ समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ॥ अपर्त्तावपि भद्रं त उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥

अधिक समय व्यतीत होनेसे मेरे देहमें क्षीण होगईहैं सो जो कुछ उपाय महात्माजनोंने बतलाया है, उसी उपायसे और अपने योगबलसे आप मुझसे लेलो ॥ ८ ॥ हे वीर ! प्रथम तो एक वत्स कल्पना करो जिससे मैं तुम्हारी प्यारी रहूँ और दूसरे उसी प्रकारकी मेरे अनुसार दोहिनी बनाओ, जिससे मैं आपपर प्रसन्न होकर दुग्धरूपी आपकी सब अभिलाषा पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे महाबाहो । हे भूतभावन !! जो तुम प्राणियोंके लिये मनोवांछित अन्नकी इच्छा करोहो तो किसी दुहनेवालेको स्थापित करो ॥ १० ॥ हे विभो ! हे राजन् ! ! आप मुझको बराबर करदीजिये कि जिसमें वर्षाऋतुके समाप्त होजानेपरभी देवका वर्षायाहुआ पानी मेरे ऊपर सदा नालोंमें भराही रहे ॥ ११ ॥

ऐसे प्रियहितकारी वाक्य पृथ्वीके सुनकर भूपतिने मनुको वत्स बना, हाथोंमें सुन्दर दोहनी ले, धेनुरूप धरणीसे अन्न दुहनेलगे ॥ १२ ॥ उसी प्रकार औरभी ज्ञानी लोग सब ओरसे सारग्रहण करने लगे, सो औरभी ऋषिमुनिआदिक पन्द्रह जनोंने महाराज पृथुकी वश करीहुई पृथ्वीको अपनी इच्छानुसार दुहा॥ १३॥हे विदुर ! ऋषियोंने बृहस्पतिजीको वत्स बनाया और इन्द्रियरूप पात्रमेंपरमपवित्र वेदमय दूधको दुहा ॥१४॥ देवताओंने इन्द्र को वत्स बनाया और कंचनमय पात्रमें अमृत,वीर्य, ओज, बलरूप पय दुहा ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने असुरश्रेष्ठ प्रह्लादको वत्सबनाकर लोहके पात्रमें सुरा,आसवरूप दूध दुहा॥ १६॥ गंधर्व और अप्सराओंने विश्वा वसुको वत्स बनाकर कमलमय दोहनीमें मधुरवाक्य और सुन्दरता सहित गानविद्यारूप दूध दुहा ॥ १७ ॥ महाभगवान् श्राद्धदेवता श्रद्धा करके अर्यमा नाम पितृको वत्स बनाकर कच्चे माटीके वर्तनमें पितृगणके योग्य अन्नरूप क्षीरको दुहा ॥ १८ ॥ सिद्धलोगोंने कपिल देवजीको वत्स बनाकर, संकल्पमयी नाम सिद्धिविद्याको दुहा और जो विद्याधर आदिकथे उन्होंने आकाशपात्रमें खेचरविद्यारूप दूधको दुहा ॥ १९ ॥ और जो मायावी लोग थे उन्होंने मयदैत्यको वत्स बनाकर गुप्त होजाना इत्यादिक अद्भुत प्रकृतिवाले पुरुषसंबधि संकल्पमात्रसे प्रगट होनेवाली मायारूप दूधको दुहा ॥ २० ॥

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ॥ वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥ १२ ॥ तथा परे च सर्वत्र
सारमाददते बुधाः ॥ ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥१३॥ ऋषयो दुदुहुर्देवीमिंद्रियेष्वथ सत्तम ॥ वत्सं
बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छंदोमयं शुचि ॥१४॥ कृत्वा वत्सं सुरगणा इंद्रं सोममदूदुहन् ॥ हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो
बलं पयः ॥ १५ ॥ दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ॥ विधायादूदुहन्क्षीरमयःपात्रे सुराऽऽसवम् ॥ १६ ॥ गंधर्वा
ऽप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः ॥ वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गांधर्वं मधु सौभगम् ॥ १७ ॥ वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं
क्षीरमधुक्षत ॥ आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥ १८ ॥ प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः संकल्पनामयीम् ॥
सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥ १९ ॥ अन्ये च मायिनो मायामंतर्द्धानाद्भुतात्मनाम् ॥ मयं प्रकल्प्य
वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥ २० ॥

यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच जो रुधिरपान करनेवाले थे, उन्होंने रुद्रको वत्स बनाकर कपालोंमें रुधिररूप मदिराको दुहा ॥ २१ ॥ तैसेही वृश्चिकादिक सर्प, नागोंने तक्षकको वत्स बनाकर बिलरूप पात्रमें विषरूप दूधको दुहा जिनके डसनेसे मनुष्य उसी समय मरजाता है ॥ २२ ॥ सब पशुओंने नंदिकेश्वरको वत्स बनाकर वनरूप पात्रमें मृगेंद्रदंष्ट्रि करके घास तृणादिकरूप दुग्ध दुहा ॥ २३ ॥ मांसाहारी जीवोंने सिंहको वत्स बनाकर, अपने शरीररूप पात्रमें मांसरूप दूधको दुहा और पक्षियोंने खगराजको वत्स बनाकर, सब पक्षी चर कीटादि अचर फलादिरूप दूधको दुहा ॥ २४ ॥ वृक्षोंने वटको वत्स बनाकर वनस्पतिआदि अनेक प्रकारके रसरूप दूधको दुहा. पर्वतोंने हिमाचलको वत्स बनाकर

यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ॥ भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥२१॥ तथाऽहयो दंदशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ॥ विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥ २२ ॥ पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ॥ अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेंद्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥ क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ॥ सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाऽचरमेव च ॥ २४ ॥ वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ॥ गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून्स्वसानुषु ॥ २५ ॥ सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वेस्वे पात्रे पृथक्पयः ॥ सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥ एवं पृथ्वादयः पृथ्वी मन्नादाः स्वन्नमात्मनः ॥ दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥ २७ ॥ ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ॥ दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥ २८ ॥

शिखररूप पात्रमें नानाप्रकारकी धातुओंको दुहा ॥ २५ ॥ सबजनोंने अपने अपने मुखियाओंको वत्स बनाकर अपने पात्रमें सब मनोवांछित फलदेनेंवाली पृथुराजाकी वशीभूत करीहुई पृथ्वीसे अपने २ मनमाना पृथक् पृथक् दूध दुहा ॥ २६ ॥ हे कुरुनंदन ! ऐसे अन्नभोजन करनेवाले पृथु आदिक सर्वत्र पुरुषोंने अपने अपने अभीष्ट अन्नको दुहा परंतु दोहिनी वत्सादि भेद हो जैसे उस दूधमेंभी होगया ॥ २७ ॥ फिर तो राजा पृथु पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और सब कामदात्री पृथ्वीको अपनी प्यारी पुत्री बनाई और प्रेमसे दुहिताके वत्सल हुए ॥ २८ ॥

फिर राजाधिराज विभु अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंके शिखरोंको तोडफोड कर इस भूमंडलको इकसार करदिया ॥ २९ ॥ फिर प्रजाओंके जीवनका दाता, पिताके समान आनंद देनेवाले भगवान् पृथु जहाँ तहाँ इस पृथ्वीपर यथायोग्य निवासके लिये उत्तम उत्तम निवासस्थान कल्पना करनेलगे ॥ ३० ॥ ग्राम, नगर, पुर, अनेक प्रकारके दुर्ग, गोशाला, ग्वालियोंके रहनेके लिये स्थान, सेनाओंके रहनेकेलिये सैन्यभवन, पर्वतकेप्रान्तभागके ग्राम जहाँ तहाँ वसादिये ॥ ३१ ॥ पृथुके राज्यसे पहिले पुरग्रामादिककी रचना कहींभी नहीं थी जहाँ अपना सुख देखतेथे,

चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ॥ भूमंडलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥ २९ ॥ अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ॥ निवासान्कल्पयांचक्रे तत्रतत्र यथार्हतः ॥ ३० ॥ ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ॥ घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान्खेटखर्वटान् ॥ ३१ ॥ प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ॥ यथा सुखं वसंति स्म तत्रतत्राकुतोभयाः ॥३२॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० चतुर्थस्कन्धे पृथूपाख्यानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ॥ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥

वहाँ निर्भय होकर स्थान बनालेतेथे उन्हीं लोगोंको हम वारंवार धन्यवाद देते हैं ❀ ॥३२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दोहनवत्सादिभेदेन पृथुराज्ञा पृथ्वीदोहनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, इन्द्र हरो पृथुबाज। ताके मारनके लिये, उद्यत भए पृथुराज ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, फिर राजा पृथुने सौ(१००) अश्वमेध यज्ञ करनेका संकल्प किया, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वतीहै और मनुका

---

१ **कवित्त**--वाल्मीक नारद वसिष्ठ व्यास विश्वामित्र भारद्वाज लोमशऋषि आदि जे कहावैहैं। दिनोरात भगवत महिमामें मगन रहै, जाके यश वेद रु पुरान सदा गावैं हैं॥ घन शीत वर्षा सब वनमहीम ठेर करी, उनहींको'शालिग्राम' पूरण बतावैहैं । आज कालके मनुष्य थोरेसे जीवनपर अटा औ अटारी न्यारी न्यारीही बनावे हैं ॥

❀ **शंका**–राजापृथुके राजमें पहिले पृथ्वीपर पुर, ग्राम, नगर, पट्टन, नहीं थे और पहिले पृथ्वीपर राजा तौ अनेक होगये, जो पृथ्वीपर राजा पृथुके पूर्वकालमें नगर, ग्राम, पुर, पट्टन और किसानलोगोंके रहनेको खेती करनेके ग्राम नहीं थे तो राजालोगोंका कोष (खजाना) किसप्रकार भरताथा और राजाओंके लाखों रुपयेके काम किस रीतिसे होतेथे? और राजालोग भाग किस वस्तुका लेतेथे इससे ज्ञात होताहै कि पहिले केवल जंगलही जंगल होगा ।

उत्तर–विद्वान्लोक पृथुके पहिले अर्थमें बहुत दिन नहीं मानते पृथुके पहिले इस अर्थमें पृथुको पहिले वेनका राज्य मानतेहैं, सो वेनके राज्यमें सब नगर ग्रामादिक नष्ट होगयेथे इसबातमें कुछ शंका करनी नहीं चाहिये.

ब्रह्मावर्त क्षेत्र है ॥ १ ॥ भगवान् इन्द्रने पृथुका यह अभिप्राय समझा कि, जो इसके सौ यज्ञ संपूर्ण होजायँगे, तो यह मेरा इन्द्रासन छीन लेगा, इसलिये उनके महोत्सवको न देखसका ॥ २ ॥ उस यज्ञमें यज्ञपति साक्षात् भगवान् वासुदेव ईश्वर सर्वात्मा सर्व लोगोंके गुरु श्रीभगवान् आनकर प्रत्यक्ष प्रगट हुएथे ॥ ३ ॥ जिसके साथ चतुरानन ब्रह्माजी, पंचानन महादेवजी, लोकपाल और लोकपालोंके अनुचरभी उद्यत थे और गन्धर्व, मुनि, अप्सरागण, सब आपका यश वर्णन कररहेथे ॥ ४ ॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, गुह्यक, आदि सुनंद, नंद, मुखिया भगवान् हरिके पार्षद ॥ ५ ॥ कपिलदेव, नारद, दत्तात्रेय, सनकादिक, योगेश्वर और जो जिनके मन भगवत्सेवनमें थे, वे सब आनकर उपस्थित हुए ॥ ६ ॥ हे भारत ! जहाँ सर्व मनोवांछित देनेवाली भूमि गोरूप धारण कर राजा पृथु यजमानको, सब मनोरथ पूर्ण करनेवाले अर्थको देतीहुई ॥ ७ ॥ क्षीर, दधि, गोरस, सबप्रकारके रस नदियोंमें बहनेलगे, और जिनके विस्तृत देह ऐसे मधुस्रावी वृक्ष फलादिक पदार्थ उत्पन्न करनेलगे ॥ ८ ॥ समुद्रने रत्नोंके समूह दिये, पर्वतोंने चार प्रकारका अन्न भेंट किया भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य और लोकपालसहित सब लोगोंने भेटें दीं ॥ ९ ॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेव जिसके रक्षक ऐसे महाराज पृथुराजाके अत्यंत उदयवाले कर्म देखकर भगवान् इन्द्रके मनमें ईर्षा उत्पन्न हुई और पृथुके शुभकर्मका सहन उससे न हो सका इसलिये प्रतिघात (विघ्न) करनेलगा ॥ १० ॥

306

तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः ॥ शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ २ ॥ यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ॥ ३ ॥ अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ॥ उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ ४ ॥ सिद्धविद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥ ५ ॥ कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ॥ तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥ ६ ॥ यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकामदुघा सती ॥ दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥ ७ ॥ ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् ॥ तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥ सिंधवो रत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ॥ उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकास्सपालकाः॥९॥ इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ॥ असूयन्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत्॥१०॥

और यहां अन्तके सौवें (१००) अश्वमेध यज्ञमें पृथु यज्ञपतिकी पूजा करनेलगे, तब इंद्रने आत्मश्लाघा करके अंतर्धान हो यज्ञके घोडेको चुराकरलेगया॥ ११॥आकाशमार्गमें भागताहुवा इन्द्रको भगवान् अत्रिऋषिने देखा कि राजापृथुके यज्ञका अश्व चुराये लिये जाता है,जिसने सब स्थानोंमें पाखंड फैला रक्खाहै जो अधमसे धर्मकेसा भ्रम करानेवालाहै॥ १२॥अत्रिऋषिके संकेत करनेसे महाराजपृथुका पुत्र महारथी महाक्रोधकर उसके पीछे दौडा औरपुकारकर बोला, खडा रहो ! खडा रहो! कहाँ भागे जाताहै अरे चोर ! अरे अभिमानी!किसने तेरा देवराज नाम रक्खाहै, अरे निर्लज्ज ! अरे अधम ! मेरा तुरंग लेकर कहां जायगा मैं अभी पकड़कर तेरा शिर काटूँगा, हमारे पिताके यज्ञका अश्व हरलेना तैंने सहजही समझ लिया, बस अब आगे न भाग ॥ १३ ॥ जब महारथी पृथुके पुत्र विजिताश्वने समीप जाकर देखा तो तनमें भस्म मले जटा धारण किये,

चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम्॥ वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्द्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥ ११ ॥ तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा॥ आमुक्तमिव पाखंडं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥ १२॥ अत्रिणा चोदितो हंतुं पृथुपुत्रो महारथः ॥अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १३ ॥तं तादृशाकृति वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणम्॥ जटिलं भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुंचति॥ १४ ॥ वधान्निवृत्तं तं भूयो हंतवेऽत्रिरचोदयत्॥ जहि यज्ञहनं तात महेंद्रं विबुधाधमम्॥ १५ ॥

यह तो मूर्तिमान् धर्म जानपड़ता है अथवा यह कोई संन्यासी है इन्द्र नहीं ऐसा समझ उसपर बाण नहीं चलाया और उससे पूछा कि हे तपस्वी ! तुमने इन्द्रको घोड़ा लिये जाता देखा ? तपस्वीने कहा कि, इन्द्रको मैंने तुरंग लिये जाता नहीं देखा तब जाना कि, माया करके इन्द्र अन्तर्धान होगया, निदान इन्द्रके वधसे निराश होकर विजिताश्व लौटनेको उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥ जब अत्रिने समझा कि, पृथुराजका पुत्र इन्द्रके वधसे निवृत्त होगया, तब अत्रि ऋषिने फिर उसके वध करनेके लिये विजिताश्वको भेजा और कहा कि, हे पुत्र ! इस अधर्मीको मार, यही तेरे पिताके मखका विध्वंस करनेवाला है. यही सुराधम इन्द्र है। यह संन्यासी नहीं है। इसीने घोडा चुरायाहै* ॥ १५ ॥

---

* **शंका**–अत्रिमुनि मुनियोंमें बडे श्रेष्ठ और भूत, भविष्य, वर्तमान कालके जाननेवाले ज्ञानियोंमें चंद्रमाकी समान प्रकाशवान् ऐसे अत्रिमुनिके सन्मुख इन्द्र पृथुके यज्ञमें घोडेको चुराकर लेगया उससमय अत्रिमुनिने रक्षा क्यों नहीं की ?–

जब अत्रिने पृथुके पुत्रको इसप्रकार समझाया, तब विजिताश्व अत्रिकी वाणी सुन फिर लौटा और धनुषबाण संधान कर बोला कि,हे नाथ! मुझे धोखा होगया परंतु अब किसी प्रकार यह नहीं बचसकता. चाहे ब्रह्मलोकमें क्यों न जाय यह कह आकाशमार्गमें होकर उसके पीछे ऐसे दौडा जैसे गृध्रराट् रावणकाप्रति दौडाथा॥१६॥जब पुरंदरने जाना कि,मैं इसके:हाथसे नहीं बचूँगा तब भागा उस समय विजिताश्वने कोदंडपर कठिन प्रचण्ड बाण चढाया. तब, वह इन्द्र अश्व और अपना पाखण्डरूप त्याग अंतर्धान होगया, वह महारथी अपने अश्वको लेकर पिताकी यज्ञशालामें आया,और दंडवत्करके वह अश्व अपने पिताको दिखाया ॥१७॥ बडे बडे वेदवेत्ता महात्मा पुरुष और ऋषि लोगोंने उसके अद्भुत विक्रमको देखकर और सुरेन्द्रका पराजय कर घोडा ले आनेसे इसका विजिताश्व नाम रक्खा ॥ १८ ॥ वह सामर्थ्यवान् पुरंदर फिर वहां आया

एवं वैनसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ॥ अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥१६॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा
अन्तर्हितः स्वराट् ॥ वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥ १७ ॥ तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः ॥
नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥ उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ॥ चषालयूपतश्छन्नो हिरण्य
रशनं विभुः ॥ १९ ॥ अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा ॥कपालखट्वांगधरं वीरो नैनमबाधत ॥ २० ॥

और घोर अंधकार फैला फिर गुप्तरूप धरा कि, जिसको कोई पहचान न सके यज्ञके खंभसे जो सुवर्णकी संकलामें तुरंग बँधरहाथा उससे खोल संकलसमेत घोडेको चुराकर लेगया. "परंतु यह भेद किसीने न जाना, जब इन्द्र वाजीको कुछ दूर लेगया तब सब अंधकार जातारहा॥१९॥ फिर अत्रिने आकाशमार्गमें इन्द्रको घोडा लिये जाता हुआ देखा तो फिर राजकुमारसे कहा कि हे विजिताश्व ! जिस अश्वको तू इन्द्रसे छीन कर लायाथा, उस अश्वको इन्द्र फिर चुराकर लेगया, विजिताश्वने कहा कि, अब इन्द्रको जीताही न छोडूँगा जो फिर उपद्रव करे, यह कह फिर धनुषबाण ले इन्द्रके पीछे हुआ, उसे आते देख भयभीत हो इन्द्रने झट अपनी माया रच अघोरी रूप धारण कर लिया माथे पर

उत्तर–पूर्वजन्ममें इन्द्रने जब सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ कियेथे तब स्वर्गके राज्यको पायाथा इसालिये इन्द्रदेवता भगवान्को बडा प्याराहै, यशके प्रभावसे भगवान् इन्द्रका मानभंग नहीं करते इसीलिये मुनिजन मंत्रोंसे यज्ञकी रक्षा बहुत प्रकारसे करते हैं. परंतु इन्द्र यज्ञमें ताभी विघ्न करदेता है वेदमंत्रोंका तथा ईश्वरका उसको किंचिन्मात्रभी भय नहीं होता, क्योंकि पूर्वकालके यज्ञोंका पुण्य उसके पासहै इसीलिये पृथुकी यज्ञमें अत्रिकोभी घोडेकी रक्षा करनेका वश नहीं चला.

अत्रिणा चोदितस्तस्मै संदधे विशिखं रुषा ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावंतर्हितः स्वराट् ॥२१॥ वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ॥ तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥२२॥ यानि रूपाणि जगृह इन्द्रो हयजिहीर्षया ॥ तानि पापस्य खण्डानि लिंगं खण्डमिहोच्यते ॥२३॥ एवमिंद्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया॥तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखंडेषु मतिर्नृणाम् ॥ २४ ॥ धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ॥ प्रायेण सज्जते भ्रांत्या पेशलेषु च वाग्मिषु॥ २५॥

मनुजकपाल धारे एक हाथमें मृतकशरीर लिये एक हाथसे बैलकी नाथ पकडे आगे आगे जाता देखा परंतु कपाल खट्वांग धारण किये देखकर राजकुमारने इसपर बाण प्रहार न किया, फिर विजिताश्वने बूझा कि, इधरको कोई पुरुष घोडा लेकरगया है, अघोरीने कहा कि, हमने नहीं देखा, उससमय विजिताश्व निराश हो फिर अपने भवनको फिरा ॥ २० ॥ अत्रिने फिर प्रेरणा की कि अरे पुत्र! घोडाका चुरानेंवाला देवराज यही है तब विजिताश्वने फिर क्रुद्धित होकर शरसंधान किया, फिर इन्द्र अश्वको और उस रूपको तजकर अंतर्धान होगया ॥ २१ ॥ फिर आगे बढकर विजिताश्वने देखा तो घोडा तो खड़ा है परन्तु पुरंदर नहीं, वह महाबलवान् तुरंगको लेकर फिर पिताके यज्ञमें आया और महर्षि महात्मा और पिताके चरणोंमें प्रणाम किया उससमय सब सिद्ध मुनि और समाजके मनुष्य विजिताश्वकी प्रशंसा करने लगे कि कौन इसकी समता करसकताहै कि, जिसने सुरेशको जीतकर घोडा छुडालिया और पुरंदरने जो जो पाखण्डरूप धारण कियेथे, उन्हीं निन्दनीय वेषोंको अज्ञानी और मूर्खलोग धर्म समझकर ग्रहण करते हैं ॥ २२ ॥ घोडेके चुरानेके मनोरथसे वासवने जो जो वेष धारणकिये वेही पापके चिह्न खण्डखण्डमें प्रगट हुए ॥ २३॥ पृथुके मखभंग करनेकी अभिलाषासे अश्वके चुरानेके लियें, जो जो रूप धरकर इन्द्रने अपना पीछा छुडाया उन पाखण्डोंमें मनुष्योंकी मति लगीरहतीहै ॥२४॥ वह पाखण्डधर्म यह है, दिगम्बर अर्थात् नग्न रहना जैसे जैन रक्तपट अर्थात् बौद्ध भगौएँ वस्त्र धारण करनेवाले और कापालिक शिरपर जटाजूट बांधे शरीरमें भस्म लगाये सेली, सींग गलेमें डाले, हाथोंमें झोली खप्पड लिये जैसे गोरखपंथी, और कोईपरमहंस कहलाते हैं अनेक प्रकारके जो यह धर्मके समान प्रगट होनेवाले पाखण्डमार्ग

प्रसिद्ध हैं इनको धर्मका मार्ग समझकर बहुधा बहुत मनुष्य भ्रांतिमें आकर इनके भ्रमजालमें फँसजाते हैं, क्योंकि यह बाहरसे देखनेमें बडे शोभायमान, और मनोहर और हेतुवादमें विलक्षण होते हैं। परंतु भीतर, कपट, क्रोध, लोभ,मोहमें लवलीन रहते हैं. हे विदुर! ऐसे पाखण्डी लोगोंका संग विद्वान् लोग नहीं करते,क्योंकि पाखंडियोंका संग सदा पाप और अज्ञानको उत्पन्न करता है॥२५॥इन्द्रका यह अनर्थ देखकर और यह अभिप्राय जान भगवान् पृथुने उस अभिमानी इन्द्रपर महा क्रुद्धित हो धनुष हाथमें लेकर बाण संभाला उस समय ऐसा जान पडताथा कि मानो ब्रह्मांडको अभी खंड खंड करदेगा, दश दिशाओंमें अग्निसी प्रज्वलित हो गई, और सब ओर लालही लाल दृष्टि आने लगा, धरणी कँपकँपाने और कूर्म्म कुलमलाने लगा,उल्कापात आकाशमें प्रगट होगये, समुद्रने अपनी मर्यादा छोडदी दिग्गज चिक्कारने लगे,त्रिभुवनमें हाहा

तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः॥इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥२६॥ तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितं
विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ॥ निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥ २७॥ वयं मरुत्वंत
मिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ॥ अयातयामोपहवैरनंतरं प्रसह्य राजञ्जुहवाम तेऽहितम् ॥ २८ ॥
इत्यामंत्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ॥ स्रुग्घस्ताञ्जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत ॥ २९ ॥

कार मचगया॥२६॥ जिसके सन्मुख जाना तो क्या? परंतु देखनाभी अति कठिनहै,ऐसे असह वेगवाले पृथुकी वासवकी वधकी इच्छा जानकर मुनियोंने राजासे कहा कि अहो महाबाहो! इस यज्ञमें पशुवधके अतिरिक्त और दूसरेका वध करना उचित नहीं॥२७॥और यदि इन्द्रके मारनेही की आपकी इच्छा है तो हे नृपनन्दन! हे नृपेन्द्र!! तुम्हारे यशसे हतकांति अनर्थनाशक,मनोरथके विध्वंस करनेवाले, अभिमानी इन्द्रको हम उन मन्त्रोंसे आह्वान करके बुलालेंगे, जिनके सार नहीं गये हैं, फिर हम हठकरके आपके वैरी इन्द्रको इसी अग्निकुण्डमें होम करदेवेंगे, आप क्य तुच्छ इन्द्रपर शर चलातेहो इसके पीछे लाखों जीवोंका घात करना यह धर्मात्माओंका काम नहीं क्योंकि एक अकेला इन्द्रही नहीं मरेगा, सब स्वर्गका क्षय होजायगा॥२८॥ ब्राह्मणोंका वचन सुन पृथुने कहा कि; जबतक तुम उस अधर्मी इन्द्रको मेरे सन्मुख अग्निमें न होम दोगे,तबलों मैं

कदापि धनुषबाण हाथसे न त्यागूँगा, क्योंकि इस पापीने मेरे यज्ञमें विघ्न डालाहै, हे विदुर! पृथुकी आज्ञा मान रोषित हो अपने अपने हाथमें स्रुवा उठा इन्द्रका उद्देश कर अग्निकुण्डमें आहुति देने लगे, तब शक्रको गिरता देख उसी समय ब्रह्माजीने आनकर मुनियोंसे कहा ॥ २९ ॥ आप लोगोंके भस्म करनेयोग्य इन्द्र नहींहै,क्योंकि जिस इन्द्रके मारनेकी तुम्हारी इच्छा है. वह यज्ञरूप भगवान् है उसका यज्ञद्वारा यजन किया जाता है, वह सब देवताओंका स्वरूप है, ईश्वरको परम प्रिय है, और दूसरे यज्ञ यह नाम सातवां इन्द्र साक्षात् भगवान्का अवतार है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! इन्द्रके वधकरनेमें बड़ा अधर्म है इसलिये मित्रता करो, इन्द्रने जो पृथुके कर्मको विध्वंस करना चाहा और पाखण्ड वेष धारण किया, केवल अधर्मके लिये अघोरी तन धरा, उसको देखो ॥ ३१ ॥ हे पृथो ! एक कम सौ यज्ञोंसेही आपकी महाकीर्ति है, और पूरेही सौ यज्ञ होगये तो क्या ? आपके भलीप्रकार यजन कियेहुए बहुत यज्ञ होगये, अब आप और यज्ञ करके क्या करोगे? क्योंकि तुम तो मोक्षधर्मके वेत्ता हो क्या तुच्छ इन्द्रपदके लिये इतना परिश्रम करतेहो,जिसके सौयज्ञ पूरे हो जाते हैं, वह इन्द्र होताहै,सो आपको इन्द्रासनकी क्या आवश्यकता है, जो कीर्ति आपकी आजदिन संसारमें छारही है वह सुरेशको स्वप्नमेंभी नहीं मिलसक्ती ॥ ३२ ॥ हे पृथुराज ! इंद्र आपहीका स्वरूप है इसलिये इन्द्रपर आपको कोप करना नहीं चाहिये आपकी जय हो, आप और सुरेश दोनों भगवत्का स्वरूप हो यह बात सब संसारमें प्रसिद्ध है ॥ ३३ ॥ हे महाराज! अब इस यज्ञमें आप विघ्नकी चिंता मत करो, हमारा वचन आदरपूर्वक सुनो, जिसकार्यका दैव विनाश करताहै

न वध्यो भवतामिंद्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ॥ यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥ ३० ॥ तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ॥ इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ॥ ३१ ॥ पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ॥ अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥ ३२ ॥ नैवात्मना महद्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ॥ उभावपि हि भद्रं त उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥ ३३ ॥ माऽस्मिन्महाराज कृथाः स्म चिंतां निशामयाऽस्मद्वच आदृतामा ॥ यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोऽतिरुष्टं विशते तमोंधम् ॥ ३४ ॥

और जो पुरुष उसका ध्यान चित्तमें करता रहताहै,वह क्रोधका मारा अन्धा होकर मोहरूपी कूपमें जा पडताहै,फिर उसका कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, क्योंकि चित्तपर शांति नहीं रहती और जो पुरुष क्रुद्धित चित्तसे कार्य करता हो वह नरकमें जाताहै॥३४॥ अब इस यज्ञको मत करो, देवताओंके मनमें इसका दुराग्रह होताहै,क्योंकि इन्द्रके अनेक प्रकारवाले पाखण्डोंसे महा अधर्म होताहै॥३५॥जिस वासवने तुम्हारे यज्ञका घोड़ा चुराया और यज्ञभंगकरनेके लिये अनेक उपद्रव किये,उस पुरंदरके रचेहुये नये नये पाखण्डोंसे लोग धर्मको छोड अधर्ममें प्रवृत्त होंगे तो इस पापके भागी आप होंगे,इस लिये आप क्रोधको तज इन दीन जनोंकी ओर देखो॥३६॥वेनके अधर्मसे सब धर्मोंका नाश होगया सब वस्तु लुप्त

क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ॥ धर्मव्यतिकरो यत्र पाखंडैरिंद्रनिर्मितैः ॥ ३५ ॥ एभिरिंद्रोपसंसृष्टैः पाखंडैर्हारिभिर्जनम् ॥ ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥ ३६ ॥ भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ॥ वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलाऽसि वैन्य ॥ ३७ ॥ स त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापतेः संकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ॥ ऐंद्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचंडपाखंडपथं जहि प्रभो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयउवाच ॥ इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः ॥ तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च संदधे ॥ ३९ ॥ कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे ॥ वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥ ४० ॥

होगई और उसीके तनसे आप भगवद्रूप भगवत्की कला उत्पन्न हुएहो,हे वेन वंशोद्भव पृथो!धर्मकी मर्यादा और महात्मा पुरुषों की रक्षाके लिये आपने संसारमें अवतार लियाहै॥३७॥हे प्रभो! हे प्रजापते!!इस लिये विश्वकी उत्पत्ति विचार; इस विश्वका मंगल जैसे होसकै वैसाही उपाय करके विश्वरचनेवाले प्रजापतियोंके संकल्प परिपूर्ण करो और पाखण्डरूपी इन्द्रकी माया प्रबलप्रचण्ड नवीन मार्ग चलानेवालीका नाश करो॥३८॥मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार जब जगद्गुरु ब्रह्माजीने राजा पृथुको समझाया तब राजा पृथुने यज्ञकी हठ त्याग वात्सल्यभाव कर इन्द्रसे मिलाप करलिया ॥३९॥ जब राजा पृथु यज्ञांतके समय दीक्षान्त स्नानसे निवृत्त होगये तब उस महा कर्मकारी पृथुके यज्ञमें ब्राह्मणोंने जो मांगा वहीवस्तु दे उनके

मनोरथ पूर्ण किये. और प्रसन्नहुए ब्राह्मणोंनेभी राजा पृथुको अनेकप्रकारके वरदान दिये ॥ ४० हे विदुरजी ! सत्य आशीर्वादवाले श्रद्धासे लब्ध दक्षिणावाले, सत्कार किये ब्राह्मण प्रसन्न होकर आदिराज पृथुको आशीर्वाद देकर कहने लगे ॥ ४१ ॥ कि हे महाबाहो ! तुम्हारे बुलाये पितर, देव, ऋषि, मनुष्य इम सभी आये हैं और दान व मानसे पूजित हुए अतिसंतुष्ट हैं ॥ ४२ ॥ इसप्रकार राजा पृथुसे पूजित हुए संपूर्ण देवआदि, राजापृथुको आशीर्वाद देकर उसके उत्तम यज्ञकी श्लाघा करते अपने २ स्थानोंको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पृथुचरित्रे इन्द्रकृतपाखंडमार्गवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा-पृथुहि बीस

विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः ॥ आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥ ४१ ॥ त्वयाऽहूता महाबाहो सर्व एव समागताः ॥ पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥४२॥ इति श्रीमद्भा० म० चतुर्थ० एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ ऋषिरुवाच॥भगवानपि वैकुंठः साकं मघवता विभुः ॥ यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक्तमभाषत॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एष तेऽकारषीद्भंगं हयमेधशतस्य ह ॥ क्षमापय तमात्मानममुष्य क्षंतुमर्हसि॥२॥ सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ॥ नाभिद्रुह्यंति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥३॥ पुरुषा यदि दुह्यंति त्वादृशा देवमायया॥ श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥ ४ ॥

अध्यायमें, आये श्रीभगवान ।करी परस्पर प्रीति अति, दीन्ह महावरदान ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, श्रीभगवान् वैकुण्ठनाथ यज्ञपति यज्ञोंके भोक्ता,विभु, सुरेशको अपने साथ ले यज्ञोंसे प्रसन्न हो राजा पृथुसे कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, इस इन्द्रने आपका सौवां(१००) अश्वमेध यज्ञ भंग करना चाहा था सो अब यह आपकी शरण है और आपसे अपना अपराध क्षमा कराया चाहता है, सो आप इसका अपराध क्षमा करिये ॥ २ ॥ हे नरदेव ! उत्तम बुद्धिवाले साधुपुरुष संसारमें जीवोंसे द्रोह नहीं रखते, क्योंकि वह लोग भली भाँति जानतेहैं कि, देह आत्मा नहीं है॥ ३ ॥ जब आप सरीखे पुरुष द्रोह करें और देवमायासे मोहित होजायँ तो फिर:बरसोंतकका किया हुआ सन्तोंका

सत्संग, शास्त्रोंका प्रीतिपूर्वक श्रवण करना; वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करनेसे क्या फल हुआ ? केवल वृथा परिश्रम किया ॥४॥ देखो! अविद्याजन्य, कामनाकृत कर्मोंसे यह अधम शरीर रचा गया है जो ब्रह्मवेत्ता इसप्रकार इस क्षणभंगुर शरीरको समझते हैं व आत्मज्ञानी पुरुष इस देहमें कभी आसक्त नहीं होते ॥५॥ जो इस देहमें आसक्त नहीं हैं, वह महात्मा लोग इस देहसे उत्पादित घरमें, पुत्रमें, धनमें कब मन लगा सक्ते हैं? ॥६॥ यह आत्मा शरीरसे अलगहै क्योंकि आत्मा एकहै, और शरीर बालक, युवा वृद्धादि भेदसे अनेक प्रकारके रूप दृष्टि आतेहैं। आत्मा शुद्धचैतन्य है शरीर मलिनहै आत्मा स्वयंप्रकाश है, शरीर जड़वस्तुहै, आत्मा निर्गुण है, शरीर सगुण है, अत्मा गुणोंका आश्रय है शरीर कारणभूत गुणोंके

अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः ॥ आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥ ५ ॥ असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्न
मुनोत्पादिते गृहे ॥ अपत्ये द्रविणे वाऽपि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥ ६ ॥ एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ
गुणाश्रयः ॥ सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥ ७ ॥ य एवं संतमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः ॥ नाज्यते
प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥ ८ ॥ यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः ॥ भजते शनकैस्तस्य
मनो राजन्प्रसीदति ॥ ९ ॥ परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ॥ शांतिं मे समवस्थानं ब्रह्मकैवल्यमश्नुते
॥ १० ॥ उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् ॥ कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥

आश्रित है, आत्मा सर्वव्यापकहै, शरीर परिच्छिन्न है, आत्मा आवरणरहित है, शरीर घरद्वारसे आवृतहै; आत्मा सबका साक्षीहै, शरीर दृश्य है आत्मा निरात्म है, शरीर स्वात्म है, आत्मा सब जीवोंसे परेहै ॥७॥ जो पुरुष इसप्रकार सब आत्माओंको आत्मामें स्थित, ऐसे सबमें ईश्वरको जाने हैं, वे मायामें स्थितभी हैं, तौभी मायाके गुणोंमें लिप्त नहीं होसक्ते, क्योंकि वे मुझमें स्थित हैं ॥८॥ हे राजन्! फलकी कामनाको त्याग कर श्रद्धायुक्त स्वधर्मसे जो पुरुष सदा मेरा भजन करता है उसका चित्त धीरे धी` प्रसन्न होजाता है ॥ ९ ॥ जब पुरुष विशाल हृदय प्रसन्नचित्त होगया तब सब गुणोंको त्याग ज्ञानी हो शांतिको प्राप्त होकर कैवल्य ब्रह्मको प्राप्त होजाता है ॥ १० ॥ उदासीनकी नाईं द्रव्य, ज्ञान, क्रिया,

आत्माके भीतर स्थित परमात्माको जो जानते हैं वे पुरुष निःसंदेह मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ इस नाशवान् भिन्नलिंग शरीरका संसार है, द्रव्य,क्रिया, कारक और चेतनके चिदाभासात्मक दीखता है और जो ज्ञानी पुरुष मुझमें स्नेह रखते हैं वे सदा सम्पत्ति और विपत्तिको समान समझकर विकारको प्राप्त नहीं होते ॥ १२ ॥ हे वीर ! सम, उत्तम, मध्यम, अधम, सुख–दुःखमें समदृष्टि हो, इन्द्रिय और अन्तःकरणको जीत अपने रचेहुए लोगोंको लोकयुक्त होकर जो मैंने तुझको सचिवादिकका अधिकारी किया है,उसको अपने संग रखकर सब लोगोंका पालन कर ॥ १३ ॥ राजाका धर्म है कि,प्रजाकी पालना करे उसीमें उसका कल्याण होता है, जो राजा प्रीतिपूर्वक प्रजाकी रक्षा करताहै वह उस सुकृतका छठा भाग परलोकमें पाताहै और जो प्रजाका पालन नहीं करता, उनसे दंडलेताहै, उसका सब पुण्य क्षय होजाताहै और प्रजाका पाप भोगना पडता है ॥ १४ ॥ इसप्रकार उत्तम ब्राह्मणोंमें ब्रह्मोत्तमोंने जो परंपराके धर्मको मुख्य रक्खा है, उसमें प्राप्त होकर और और धर्मोंमें आसक्त न होकर, इस पृथ्वीकी रक्षा करोगे तो प्रजागण आपसे अत्यन्त प्रसन्न होंगे और कुछ काल व्यतीत होनेपर सनकादिक तुम्हारे स्थानपर आवेंगे और आनंदसहित उनका दर्शन आपको होगा, क्योंकि सब लोग आपसे अनुरक्त हैं ॥ १५ ॥ हे मानवेंद्र! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ कुछ तो वर माँगो, क्योंकि मैं आपके गुण और शीलसे वशीभूत होगया हूँ न तो मैं यज्ञसे प्रसन्न हूँ न तपसे,न योगसे,मैं तो केवल समदर्शी पुरुषोंसे

भिन्नस्य लिंगस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ॥ दृष्टासु संपत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियंते मयि बद्धसौ
हृदाः ॥ १२ ॥ समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे च जितेंद्रियाशयः ॥ मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व
वीराऽखिललोकरक्षणम् ॥ १३ ॥ श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात्षष्ठमंशम् ॥ हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः
प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥ १४ ॥ एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः ॥ ह्रस्वेन
कालेन गृहोपयातान्द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥ १५ ॥ वरं च मत्कंचन मानवेंद्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयंत्रितः ॥
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥ १६ ॥

प्रसन्न हूँ और उन्हींके हृदयमें सदा वास करता हूँ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोलेकि,जब विश्वनाथ भगवान्‌ने इसप्रकार आज्ञा करी तो विश्वविजयी पृथुने विष्णु भगवान्‌की आज्ञा अपने शिरपर धारण की ॥ १७ ॥ और प्रेमसे अपने चरणोंको स्पर्श करते; अपने कर्मसे लज्जित, ऐसे इन्द्रसे राजा पृथु मिला और मनसे सब शत्रुताका परित्याग करदिया ॥ १८ ॥ फिर विश्वात्मा भगवान्‌का राजा पृथुने पूजन किया और अनेक प्रकारकी भेंट आगे धरीं, और अधिक प्रेमभरी भक्तिसे भगवान्‌के पदांबुज ग्रहण किये॥ १९॥ यद्यपि श्रीवैकुण्ठके नाथ वैकुण्ठ जानेको उद्यत थे, परंतु अपने प्रियभक्त पृथुराजपर कृपा करके विलंब किया और सज्जन सुहृद कमलनयन विष्णु भगवान् पृथुकी ओर देखने लगे और निजधामको नगये॥२०॥

मैत्रेय उवाच ॥ स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ॥ अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥ स्पृशंतं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ॥ शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥ १८ ॥ भगवानपि विश्वात्मा पृथुनोपहतार्हणः ॥ समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणांबुजः ॥ १९ ॥ प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलंबितः ॥ पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥ २० ॥ स आदिराजो रचितांजलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ॥ न किंचनोवाच सबाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥ २१ ॥ अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ॥ पदा स्पृशंतं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्त हस्ताग्रमुरंगविद्विषः ॥ २२ ॥ पृथुरुवाच ॥ वरान्विभो त्वद्वरदेश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ॥ ये नारकाणामपि संति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥ २३ ॥

सो आदिराज पृथु हाथ जोड़े खड़े थे परंतु हरिको देख न सके क्योंकि नेत्रोंमें जल भर रहा था और मुखसे वचन इसलिये न निकलसके कि,पुलकायमान शरीर होनेसे गद्गद कण्ठ होगया,मुखसे नहीं बोलागया,बैठकर हृदयमें भगवान्‌का ध्यान करनेलगे ॥ २१ ॥ फिर कुछ कालोपरांत आंसू पोंछकर आदिराजने आदिपुरुषका दर्शन किया हरिकी मनोहर मूर्तिको देखतेरनरेशकी तृप्ति न हुई; यद्यपि देवता धरणीपर पांव नहीं रखते, परंतु प्रेमके वशीभूत हो भगवान् पदसे पृथ्वीको स्पर्श करे और गरुडजीके ऊंचे कन्धेपर करका अग्रभाग धरे दृष्टिगोचर श्रीनारायणके नरनाहने जैसे तैसे कर कहा॥२२॥पृथु बोला कि,हे विभो! सब वर देनेवाले परमात्माको सम्मुख पाकर बुद्धिमान् पुरुष कैसे वर माँग सक्ताहै? ब्रह्मा होना,इन्द्र होना,

न कामये नाथ तदप्यहं कचिन्न यत्र युष्मच्चरणांबुजासवः ॥ महत्तमांतर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष
मे वरः ॥ २४ ॥ स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदांभोजसुधाकणानिलः ॥ स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥२५॥ यशः शिवं सुश्रव आर्यसंगमे यदृच्छया चोपशृणोति तेऽसकृत् ॥ कथं गुणज्ञो
विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥ २६ ॥ अथाभजे त्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ॥
अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥ २७ ॥

यह तुच्छ वरदान नरकवासी देहधारियोंकोभी प्राप्त होसक्ते हैं, इसलिये हे कैवल्यपते। हे विश्वेश!। यह वर मैं आपसे नहीं माँगूंगा ॥ २३ ॥ हे हृदयानंद। वह वर तो अलग रहे,परंतु मुझको तो मोक्षकीभी इच्छा नहीं क्योंकि वहाँ महात्माजनोंके अंतरहृदयसे मुखद्वारा निकला हुआ तुम्हारे पदपंकज मकरंद अर्थात श्रवणादिक आनंद नहींहै फिर मैं उस ब्रह्मानंदको लेकर क्या करूं इस लिये हे नाथ। जो आप मुझपर प्रसन्न हो और मुझको वरदान देना चाहतेहो तो यही वरदान दो कि, आपको कथा श्रवणके अर्थ मेरे (१००००) दशसहस्र कर्ण होजावें॥२४॥ हे उत्तमश्लोक। महत्पुरुषोंके मुखारविंदसे निकलती हुई आपके पदाम्बुजकी कथारूप सुधाके कणिकासे मिलीहुई पवनभी तत्त्वमार्गकी विस्मृतिमार्गमें भूले पडे हैं,उन कुत्सित योगीजनोंको स्पर्श करतेही आत्मज्ञानका ध्यान करातीहै,इसलिये मैं तो आपकी भक्तिका सारग्राही हूं मुझको और वरदानोंसे कुछ प्रयोजन नहींहै ॥२५॥ हे सुश्रव। महात्मापुरुषोंके सत्संगमें जो मनुष्य एकबारभी आपके मंगलदायक यशको श्रवण करलेता है,यदि वह गुणज्ञभी होवे परंतु उससे कभी अवसान नहीं पाता और जो पशुही होय तो उसकी गिनती नहीं और त्रिभुवनकी ठकुरायनी श्रीलक्ष्मीजीभी सब गुणोंको संग्रह करनेकी इच्छासे आपहीके सुयशका वर्णन करतीहैं ॥२६॥इसलिये आप जो सब पुरुषोंमें पुरुषोत्तम और गुणोंके स्थान हो मैं लक्ष्मीकी नाईं आपके चरणारविन्द सेवन करूँगा. यद्यपि एकही कालमें एकही पतिकी एकही प्रकारकी सेवा करनेसे हम दोनोंमें परस्पर कलह होनेका भयहै और जो आप यह कहो कि,सेवा करनेका अपना अपना समय नियत करलो तो क्लेश न होगा,सो हे स्वामी। समयका व्यतीत करना

महाकठिन है, हमसे क्षणभरभी आपका वियोग नहीं सहाजायगा, भला कहीं जीवभी शरीरसे भिन्न होसक्ता है ? परंतु इतना मैं मानताहूँ कि, लक्ष्मीजीका और मेरा क्लेश न होगा क्योंकि मेरा और लक्ष्मीजीका चित्त आपके चरणोंमेंही एकाग्र रहेगा, तो फिर उसमें किसीप्रकारका कलहका अंकुर नहीं उत्पन्न होगा ॥ २७ ॥ हे जगदीश ! जगज्जननी लक्ष्मी जिसके हृदयेशके चरणारविन्दोंमेंसे मेरी भागलेनेकी इच्छा है, उससे कदाचित् विरोधभी होगा तोभी कुछ सन्देह नहीं क्योंकि आप दीनदयालु हो इससे मेरी तुच्छ सेवाकोभी बहुतकरके मानोगे और आप तो अपनेही स्वरूपानन्दमें रमण करते हो, इसलिये आपके मनमें लक्ष्मीका कुछ पक्ष नहीं, आपका नाम तो समदर्शी है ॥ २८ ॥

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ॥ करोति फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥ २८ ॥ भजंत्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ॥ भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥२९॥ मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजंतमात्थ यत् ॥ वाचा नु तंत्या यदि ते जनोऽसितः कथंपुनः कर्म करोति मोहितः ॥ ३० ॥ त्वन्माययाऽद्धा जन ईश खंडितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ॥ यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥ ३१ ॥

हे भगवन् ! जो पुरुष मायाक गुणोंके कायसे रहित है वे ज्ञानी पुरुष आपका भजन करते हैं, उन सज्जन पुरुषोंको आपके चरणकमलके अनुस्मरणके अतिरिक्त और दूसरा कुछभी अभिप्राय हमको नहीं जानपड़ता ॥ २९ ॥ आपके भजन करनेवाले जो भक्तलोग हैं, उनसे जो आप कहतेहो कि, बरदान मांगो; यह कहना आपका विशेषकरके विश्वको मोहनेवाला है, यह मैं भलीप्रकार जानता हूँ क्योंकि आपकी प्रवृत्ति निवृत्तिरूप वाणीरूपी डोरीमें जो यह जन बँधे हुए हैं, और जो यह बँधेहुए न होते तो वारंवार मोहित जीव फिर कैसे कर्म कर सक्ते हैं ? ॥ ३० ॥ हे ईश्वर ! साक्षात् आपकी मायानें आपके सत्यरूपसे अलग कररक्खा है और ज्ञानीलोग आपके परमानन्द स्वरूपको

त्यागकर पुत्र पौत्रादिककी आशा करते हैं; इसलिये मनुष्योंमेंसे मैं भी एक जीव हूँ सो मुझे वरदान क्या करना है ? मेरा हित तो आपको इसप्रकार करना चाहिये जैसे पिता विना प्रार्थना किये अपने पुत्रपर प्यार करता है और कुमार्गसे बचा सुमार्गमें चलाता है ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार आदिराजने विश्वनाथ भगवान्की स्तुति की, तब वासुदेव भगवान् शार्ङ्गपाणी हँसकर बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारी प्रीति मेरे चरणोंमें अधिक है, इसलिये मेरी पूर्णभक्ति तुमको प्राप्त होगी, मुझको बड़ा आनन्द हुआ जो आपने मेरी भक्ति करनेकी

मैत्रेय उवाच ॥ इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक्तमाह राजन्मयि भक्तिरस्तु ते ॥ दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥ ३२ ॥ तत्त्वं कुरु मयादिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ॥ मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ॥ ३३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनंद्यार्थवद्वचः ॥ पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गंतुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥ ३४ ॥ देवर्षिपितृगंधर्वसिद्धचारणपन्नगाः ॥ किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः ॥ ३५ ॥

इच्छा करी, ऐसी इच्छासे मेरी दुस्त्यज मायासे जीव तरसकताहै ❀ ॥ ३२ ॥ हे प्रजापते ! मदमोहको त्यागकर जो पुरुष मेरी आज्ञानुसार सावधानतासे चलताहै वह सब ठौर आनन्द पाताहै॥ ३३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार वेनवंश उत्पन्न पृथुराज ऋषिके गम्भीरवचनोंकी सराहना कर पूजन करवाय उसपर अनुग्रहकर वासुदेव भगवान्ने वैकुंठ जानेका विचार किया ॥ ३४ ॥ तहाँ देवता, ऋषि, पितृ, गंधर्व सिद्ध, चारण,

---

❀ **शंका**–श्रीमद्भागवतमें प्रथम तो श्रीशुकदेवजीने वर्णन किया कि, पृथुराजा विष्णुका रूप है और फिर पृथुकी यज्ञके अंतसें भगवान्ने राजा पृथुसे कहा कि, हे राजन् ! हमारे स्वरूपमें तुह्मारी भक्ति तथा बुद्धि सैदेवकाल इसी प्रकारकी बनी रहेगी इस बातसे ज्ञात होता है कि, राजा पृथु भगवान्का अवतार नहीं हैं मनुष्यकी समान भगवान्ने वरदान दिया सो कौन विष्णुहै कौन पृथु है ? हमकों यह बडा भारी सन्देह है

उत्तर–आप स्वयं भगवान अवतार नहीं धारणकरते पृथ्वीका भार नाश होनेकेलिये अपने अंशकरके अवतार लेतेहैं भगवान्के अंश अनेक प्रकारके रूप धरकर भगवान् सरीखे कार्य करते हैं किसी अवतारमें भगवान् अपने अंशको सिखाताहै और भूमिमें आनकर किसी अवतारमें नहींभी सिखाते. सिखाना क्या भगवान् कहते हैं कि, तुम हमारे अंश हो हमको भूलना नहीं इसलिये पृथुकोभी सिखाय गये हैं कि, हमारे रूपमें तुह्मारी भक्ति और बुद्धि सदा बनी रहेगी.

पन्नग किन्नर,अप्सरा, मनुष्य,खग, और जोअनेक प्राणी॥३५॥यज्ञमें आये थे उनको यज्ञरूप ईश्वरकी बुद्धिसे राजाने सबको आदरसत्कारसहित वाणीसे धनसे हाथ जोड़कर सन्मान कियाथा उन सबको भगवद्रूप मान बिदा किया और उनके पीछे भगवान्के पार्षदभी चलेगये ॥३६॥और भगवान्भी राजर्षि उपाध्यायसहित अच्युत राजा पृथुका मन हरकर अपने परमधामको चलेगये ॥३७॥ आत्मरूपके उपदेशक, जिनकी महिमा जाननेमें नहीं आती, सो देवाधिपति देव श्रीवैकुण्ठनाथ इस पदको कहतेहुए अंतर्धान होगये, तब उनको नमस्कार कर राजा पृथु अपने पुरमें गया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायांविष्णुना पृथोर्यज्ञ अनुशासनवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्तांजलिभक्तितः ॥ सभाजिता ययुः सर्वे वैकुंठानुगतास्ततः ॥ ३६ ॥ भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ॥ हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥ अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने ॥ अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भा० म०चतुर्थ० विंशोऽध्यायः॥२०॥ मैत्रेय उवाच ॥ मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ॥ महासुरभिभिर्धूपर्मंडितं तत्रतत्र वै ॥ १ ॥ चंदनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वर मार्गवत् ॥ पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरार्चिभिरर्चितम् ॥ २ ॥ सवृन्तैः कदलीस्तंभैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ॥ तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम्॥३॥प्रजास्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमंगलैः॥ अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमंडिताः॥४॥

दोहा–इक्किसवें अध्यायमें,आये देव दिनेश । राजा पृथुने सबनको,दियो ज्ञानउपदेश॥२१॥मैत्रेयजी बोले कि,जब राजा पृथु नगरमें गया तोदेखा कि मोती,पुष्पमाला, वस्त्र, सुवर्णके तोरणोंसे सब नगर देदीप्यमान होरहा है और महासुगंधित धूपकी जहाँ तहाँ सुगंध होरहीहै ॥१॥ चंदन अगरके जलसे वीथी चौहटे राजमार्गोंमें छिडकाव होरहाहै.पुष्प,अक्षत,फल,अंकुर.,खीलें दीपमालिकाकी शोभा ऐसी विदित होती थी मानों मणियोंकी माला तनी हैं ॥ २ ॥ सुन्दर २ सुगंधित पुष्पफलादि लगेहुए केलेके खंभ और छोटे छोटे पुगीफलके वृक्ष थोडी थोडी दूरपर लगा दियेगये हैं, आम्रपत्रकी वंदनवारें उनमें शोभित हैं,अनेक वृक्षोंके पल्लव और मालाओंकी शोभा ठौर ठौर बनाई गई है ॥ ३ ॥ उज्ज्वल उज्ज्वल मणियोंसे

जटित कुण्डल कानोंमें पहिरे सुन्दर२ कन्याएँ दधि,दूर्वा,फल, फूल, अक्षत, रोली चन्दनादि मांगलिक द्रव्यके थाल हाथोंमें लिये राजा पृथुका शुभागमन सुन सन्मुख चलीं ॥ ४ ॥ शंख सहनाई और दुन्दुभीका शब्द और ब्राह्मणोंकी अखेद वेदध्वनिसे सबनगर पूरित होरहाथा, और सब प्रजागण उनकी स्तुति करतेथे परंतु सब प्रकारका ऐश्वर्य होने पर भी राजा पृथुने अपने मनमें किसी प्रकारका अभिमान न मान अपने राजभवनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ महाकीर्तिवान् पृथुराजने जहाँ तहाँ नगरनिवासियोंसे सन्मान पाकर फिर पीछे सब पुरवासियोंका यथायोग्य आदर सत्कार किया और अत्यन्त प्रसन्न हो उन लोगोंको नानाप्रकारके पारितोषिक और प्रियपदार्थ प्रदान किया ॥ ६ ॥ निन्दारहित शुभकर्मकर्ता महात्मा पृथुराजने अनेक प्रकार श्रेष्ठ कर्म करके जगत्की रक्षा करी और अपने पूर्णप्रतापके मार्तण्डका समस्त भूमंडलमें प्रकाश किया और

शंखदुंदुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् ॥ विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥५॥ पूजितः पूजयामास तत्रतत्र महायशाः ॥ पौराञ्जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥ स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ॥ कुर्वञ्छशासावनिमंडलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ तदादिराजस्य यशो विजृंभितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ॥ क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणंतमर्चयन् ॥८॥ विदुर उवाच ॥ सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेषसुरार्हणः ॥ बिभ्रच्च वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणोंमें अनुराग कर मोक्षको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकमुने ! अनेक गुणसम्पन्न और महात्म पुरुष जिसकी श्लाघा करते हैं ऐसा आनन्ददायक महाराज पृथुराजका सुयश सुनकर, उस उत्तम यशके वर्णन करनेवाले मैत्रेयजीका आदरसन्मान कर भगवान्के परमप्रिय सभाजित विदुर महाभागवतने कहा ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले कि, जब राजा पृथुको ब्राह्मणोंने राज्यतिलक कियाथा और देवतालोगोंने श्रेष्ठ श्रेष्ठ पदार्थ भेंटमें दियेथे और विष्णु भगवान्ने अपना तेज दियाथा, उस तेजको अपनी बाहुओंमें धारण करके उन बाहुओंसे वसुधाको दुहा ॥ ९ ॥

ऐसा कौन अभिज्ञ पुरुष है जो उस महाभागवत पृथुकी कीर्तिको न सुने। क्योंकि, जिनके कियेहुए पराक्रमके उच्छिष्ट सब भूप हैं और उसकेही वसुमतीको दुहनेसे सब लोक, लोकपाल और देवताओंकी अबतक प्रतिपालन होती है इसलिये उसका पावन पवित्र चरित्र मुझसे कहो ॥१०॥ मैत्रेयजी बोले कि. गंगा यमुना नदियोंके बीचके क्षेत्रमें राजा पृथु निवास करतेथे सुखकी इच्छाके लिये नहीं, केवल अपने किये पुण्यका त्याग करनेकी इच्छासे अपने भाग्यके भोगको भोगने लगे ॥ ११ ॥ सात द्वीप नवखंडमें जिसकी आज्ञाको कोई उल्लंघन न कर सका

को न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ॥ लोकाः सपाला उपजीवंति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गंगायमुनयोर्नद्योरंतरा क्षेत्रमावसन् ॥ आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ॥ ११ ॥ सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदंडधृक् ॥ अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥ १२ ॥ एकदासीन्महासत्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ॥ समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हतः ॥ उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥ १४ ॥

३।१-

और सब संसारमें केवल यही एक दंडदाता राजा पृथु था, एक तो ब्राह्मणकुलको कभी दंड नहीं दिया दूसरे अच्युत गोत्रवाले वैष्णवोंसे दंड नहीं लिया, जो कि, भगवत्के पूर्ण भक्त थे * ॥१२॥ हे पांडुवंशभूषण! एक समय राजा पृथुने महायज्ञमें दीक्षा ली, तो वहां सब भूपति, देवता, ब्रह्मर्षि,राजर्षि,लोगोंका बडा भारी समाज जुडा ॥ १३॥ उस समाजमें जो बडे २ महात्मा पुरुष आये थे उन सबका यथायोग्य आदर

---

* **शंका**–चारों वेदोंमें सब गोत्र लिखेहैं और हम लोगोंने सुनेभी हैं परन्तु अच्युतगोत्र क्या है जिस अच्युतगोत्रमें कुछअपराधभीहोगया हो तौभी वह अदण्डय होताहै। जब ऐसा कोई मृत्युलोकमें कहेगा कि, साधुओंको अच्युतगोत्रसंज्ञा है तौभी सत्य कृत त्रेता द्वापरमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य साधु होतेथे तो यह अच्युतगोत्र कैसे होसकेंगे क्योंकि इन तीनोंका जो गोत्र गृहस्थंम रहा सोही बनारहेगा.

उत्तर–जिन प्राणियोंको दश १० इन्द्रियोंका सुख नहीं जान पडेगा और अजगरकी नाई पडारहना मिलगया तो खालिया और नहीं मिला तो चिन्ता नहीं करना और त्रिलोकमें सब देहोंमे भगवान्का रूप देखना ऐसा जो जीव उनको अच्युतगोत्र शास्त्रमें कहा है ऐसा अच्युतगोत्र भगवान्का प्राण है,

सन्मान पूजन करके जब राजा उठा तो ऐसा विदित होता था कि, जैसे तारागणके मध्यमें चंद्रमा उदय होताहै ॥१४॥ अनुपम उसके अंगकी शोभा थी उन्नत शरीर,पुष्ट और दीर्घ बाहु, गौरवर्ण, कमलवत् अरुण नयन, सुन्दर नाक, चंद्रमासा मुख सुधासम मृदुल वाणी,सौम्य स्वरूप, ऊंचे कंधे,मदनमदहरन रद और मंद मुसकान मनकी मोहनेवाली थी ॥ १५॥ विशाल वक्षःस्थल,दीर्घ कटिपश्चाद्भाग, त्रिवलीसंयुत उदरमें गोल रेखा, गम्भीर नाभि, मानों छबिका कूप, महापराक्रमी, कंचनसे उज्ज्वलकदलीवत् ऊरु, उठे अग्रभागवाले चरणारविन्द थे ॥ १६ ॥ सूक्ष्म कुटिलश्याम और चिकने शिरके बाल, कंबुसम कंठ, कामधनुषसी भ्रुकुटी अर्धचन्द्रसम त्रिपुण्ड्र भालपर विराजमान, अमूल्य वस्त्र पहिरे और यज्ञोपवीत धारण कररहेथे ॥ १७ ॥ सब शरीरकी शोभा उन झीने वस्त्रोंमें प्रगट होरहीथी और नियममें सब आभूषणोंको त्याग कृष्णमृगका चर्म

प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कंजारुणेक्षणः ॥ सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥१५॥ व्यूढवक्षा बृहच्छ्रो
णिर्वलिवल्गुदलोदरः ॥ आवर्तनाभिरोजस्वी कांचनोरुरुदग्रपात् ॥ १६ ॥ सूक्ष्मवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कंबुकंधरः ॥
महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥ १७ ॥ व्यंजिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ॥ कृष्णाजिनधरः श्रीमान्कुश
पाणिः कृतोचितः ॥ १८ ॥ शिशिरः स्निग्धताराक्षः समैक्षत समंततः ॥ ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥
चारुचित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् ॥ १९ ॥ (सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव) राजोवाच ॥ सभ्याः
शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः ॥ सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥ २० ॥

धारणकरलियाथा और कुशा हाथोंमें लिये श्रीलक्ष्मीवान् अपने यज्ञकृत्यसे निश्चित होकर सभामें बैठेथे॥१८॥ शरदऋतुके प्रकाशवान् तारोंके समान चिकने और दाहके बुझानेवाले प्रेमसरोवर नक्षत्र मानो पुतलीकी समान शोभायमान नेत्रहैं,ऐसे नेत्रोंसे राजा पृथुने चारों ओरको देखकर सब सभासदोंको हर्ष बढाया,और चार चित्रपद, मुनिमन हरनेवाली मनोहर गम्भीर वाणीसे सुगम वचन उस समय बोले ॥१९॥राजा बोले कि, हे सभासदो!आपका कल्याण हो जो जो साधु सज्जनपुरुष यहाँ आये हों मैं सबकी सेवामें यह वचन निवेदन करताहूँ,जिसमें सबके लिये आनन्द हो केवल मेरे कहनेका अभिप्राय यहहै कि,जो बुधवर अपने सब धर्मके जाननेकी इच्छा करे वह अपने विचारको महात्माजनोंके संमुख प्रगट

करे ॥ २० ॥ प्रजाकी रक्षा करनेको चोर और दुष्टात्माओंके दंड देनेको अपनेको आजीविका देनेको सब धर्मके उत्तम धर्मकी मर्यादा पृथक्२ सबको स्थापन करनेको सब कार्योंमें मुझको नियत किया है ॥ २१ ॥ मुझको वह लोक कामदायक प्राप्त होय, जिसकी प्रशंसा ब्रह्मवादी लोग करते हैं. मुझको निश्चय है कि, जिनपर भगवान् संतुष्ट होते हैं, उन वेदवेत्ता पुरुषकी सम्पूर्ण कामना सिद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ जो राजा प्रजासे दंड लेते हैं और धर्म नहीं सिखाते वह प्रजाके पापको भोगते हैं. और अपने:ऐश्वर्यका नाश करते हैं ॥२३॥ इसलिये हे प्रजागणो! मेरा मंगल करनेके लिये भगवान्में चित्त लगाकर तुम अपने धर्मका पालन और अपना कर्तव्य कर्म करो और तुम द्वेष छोड़कर विष्णु भगवान्की भक्ति करोगे तो मैं तुम्हारा अत्यन्त उपकार मानूँगा ॥ २४ ॥ हे देवर्षि, पितृगण, देवता, ऋषि, निर्मल बुद्धिवालो ! तुमभी मेरे कहनेकी सराहना करो, क्योंकि धर्मके विषयमें कर्ता, शिक्षक आज्ञा देनेवालोंको मरे उपरांत परलोकमें बराबर फल मिलता है ॥ २५ ॥ हे पूजनीय ! हे महात्मा जनो ! कोई तो ऐसे हैं, ईश्वरको नहीं मानते, कोई २ ऐसेभी हैं, जो ईश्वरको मानतेहैं. और कोई ऐसेहैं कि, न आप माने न दूसरेको मानने दें इन तीनोंको एकही प्रकारका फल प्राप्त होता है. और यह फल सयुक्तिकभी प्रतीत होता है ॥ २६ ॥ इस लोकमें और परलोकमें कोई तो अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य और आरोग्य देह पाता है, और कोई भिखारी और रोगी दिखाई देता है, इससे विदित होता कि, कोई जगत्का कर्ता ईश्वर न होता तो इसका होना कैसे होता ? मनु उत्तानपाद महीपति ध्रुव, प्रियव्रत राजर्षि, और हमारे पिताके पिता अर्थात् दादा राजा

अहं दंडधरो राजा प्रजानामिह योजितः ॥ रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥२१॥ तस्य मे तदनुष्ठानाद्या
नाहुर्ब्रह्मवादिनः॥ लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥२२॥ य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ॥
प्रजानां शमलं भुंक्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥ २३ ॥ तत्प्रजा भर्तृपिंडार्थं स्वार्थमेवानसूयवः ॥ कुरुताधोऽक्षजधिय
स्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥२४॥ यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोऽमलाः ॥ कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम्
॥ २५ ॥ अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषांचिदर्हसत्तमाः ॥ इहामुत्र च लक्ष्यंते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ॥ २६ ॥ मनोरुत्ता
नपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः ॥ प्रियव्रतस्य राजर्षेरंगस्यास्मत्पितुः पितुः ॥ २७ ॥

अंगको जो करनेके योग्य था सो किया ॥ २७ ॥ इसीप्रकार ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, राजा बलि, धर्मकी मर्यादा बांधनेवाले यह सब श्रीभगवान् वासुदेवको अपना इष्टदेव और सृजनहार मानते रहे और इसीप्रकार और महात्मा लोगोंनेभी कहा है कि, कर्म जड़ है. यह कुछ आप फल नहीं देसकता, इसलिये कर्मका फल देनेवाला निश्चय परमेश्वर है।।२८।।राजा वेन परमेश्वरको नहीं मानतेथे और धर्मसे विमोहितथे, इसलिये स्वर्ग और अपवर्गकी निन्दा करने योग्य थे, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मिलनेमें सबका एकसा विचार कियाजाय तो कर्म जड़ होनेसे उनका दातृत्व नहीं घटता और देवता पराधीनहैं, इसलिये देवताभी फल देनेयोग्य नहीं. इसप्रकार दो पुरुषको कर्म समान होनेपरभी उनके फलमें अंतराय पडताहै और किसी समय कर्मकरनेसेभी उसका फल नहीं मिलता. इसलिये अपने आप सर्व कर्मका कर्ता विकर्ता सर्व सामर्थ्यवान् निश्चय एक परमेश्वरही

ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ॥ प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥ २८ ॥ दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्म विमोहितान् ॥ वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥२९॥यत्पादसेवाऽभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ॥ सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदांगुष्ठविनिस्सृता सरित् ॥ ३० ॥ विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसंगविज्ञानविशेषवीर्यवान् ॥ यदंघ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥ ३१ ॥ तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः॥ अमायिनः कामदुघांघ्रिपंकजं यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः॥३२॥असाविहानेकगुणोऽगुणोध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ॥ संपद्यतेऽर्थाशयलिंगनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥ ३३ ॥

जानपडता है॥२९॥उस परमेश्वरके चरणारविन्दका स्नेह दिनरातका बढाहुआ महात्माजनोंके जन्म जन्मके पापका नाश करताहै, जैसे विष्णुके पदांगुष्ठसे निकलीहुई श्रीगंगाजी बुद्धिके मलका नाश करतीहै ॥ ३० ॥ मनके सकल मल नष्ट होनेसे वैराग्यकेलिये विषेश विज्ञानवाला वीर्यवान् जिनके चरणकमलके मूलमें जिनका वास, ऐसे पुरुष क्लेशके देनेवाले संसारमें नहीं आते ॥ ३१॥ सब छल कपट त्याग, तुम सकल कामना सिद्ध करनेहारे चरणारविंदको अपनी आत्माकी वृत्तियोंकरके तन, मन, वचन, काय, गुण, अपने कर्मोंसे भजो, यह भले प्रकार समझ लो कि, जैसे अधिकार हैं वैसेही अर्थकी सिद्धि होगी क्योंकि भगवत्के पादारविन्द सब मनोरथ पूर्णकरनेंवाले हैं ॥ ३२ ॥ यद्यपि विष्णु भगवान्

स्वरूपसे पवित्र अनेक गुणवान् और निर्गुण हैं तौभी कर्ममार्गमें नानाप्रकारसे यज्ञरूप भी वहीहैं,क्योंकि यज्ञरूप सबसे पृथक् विधि हैं; द्रव्य, गुण, क्रिया, मंत्र, संकल्प, पदार्थशक्ति उक्तियोंकरके अर्थ अंतःकरण लिंगनामकरके विशुद्ध ज्ञानस्वरूपसे प्राप्त होतेहैं, परंतु सब कर्म भगवत्केही रूप हैं ॥ ३३ ॥ माया काल अंतःकरण धर्मसंग्रहमें यह शरीर चेतनाको प्राप्त होकर क्रियाफलके भावसे विभु भगवान्ही आनंदस्वरूपमें प्रकाश करतेहैं, जैसे अग्नि एकरूप होनेपरभी काष्ठकी संगतिसे काष्ठहीके सदृश होजाती है इसीप्रकार परमात्माका विचार है ॥ ३४ ॥ अहो ! यह सब मुझपर अनुग्रहकरेंगे, क्योंकि यज्ञभोक्ताओंके ईश्वर श्रीभगवान् वासुदेव सब गुरुको अपनें धर्मके योगसे पृथ्वीमें निरंतर दृढव्रतधारी

प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ॥ क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः॥ ३४ ॥ अहो ममामी वितरंत्यनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ॥ स्वधर्मयोगेन यजंति मामका निरंतरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥ ३५ ॥ मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षया तपसा विद्यया च ॥ देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम् ॥३६॥ ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवंदनात् ॥ अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥३७॥ यत्सेवयाऽशेषगुहाशयः स्वराट् विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ॥ तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥ ३८ ॥

मेरे जन यजन करते हैं सो धन्य हैं ॥३५॥ अब हरिभक्ति दृढ़ताके लिये ब्राह्मणोंकी भक्ति प्रथम करै यह कहते हैं कि, भगवान् जिनके देवत ऐसे ब्राह्मण देदीप्यमानमें राजकुलसे किसी प्रकार तिरस्कार नहीं होसकता महाऋषिसे सहनशीलता तपविद्यासे कुछ नहीं होता है ॥३६॥ ब्रह्मण्यदेव और महापुरुषों में प्रधान पुरातन पुरुष भगवान् नित्य जिनके पादारविन्दकी वंदना करनेसे अखंडित लक्ष्मी और जगत्का पवित्र करनेवाला यश और सब बडोंमें अग्रगण्यताको प्राप्तहुए॥३७॥जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करनेसे सर्वान्तर्यामी स्वयंप्रकाश जिनको अत्यन्त प्यारेहैं, उन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दोंमें अनुराग देखनेसे बहुत संतुष्ट होतेहैं, इसीलिये उन सर्वधर्मपरायणोंके कहेहुए धर्मोंमें मन लगाना और सब

प्रकारसे ब्राह्मणोंके कुलकी सेवा करनी उचितहै ॥३८॥ जिनके नित्य संबंध जिनकीनित्यप्रति सेवा करनेसे आपही तत्काल हृदय शुद्ध होजाता है और उन्हींकी सेवासे मोक्षको प्राप्त होजाताहै, उनहींकी सेवासे मनको समता और सुख प्राप्त होजाताहै ऐसे ब्राह्मणोंसे बढकर और देवताओंका मुख कौनसा है? नहीं, ब्राह्मणही देवताओंका मुख है ॥ ३९ ॥ यह निश्चय है कि, तत्त्ववेत्ता अपने हाथमें श्रद्धासहित; ब्राह्मणोंको भगवान्की चैतन्यमूर्त्ति समझकर जिन जिन देवताओंके नाम लेलेकर, ब्राह्मणोंके मुखमें उत्तम उत्तम भोजन कराते हैं उस उत्तममिष्टान्नको अनन्त भगवान् प्रसन्न होकर भोजन करतेहैं जिसको कुछ ज्ञान नहीं ऐसा जो अचेतन अग्नि है उसमें हवन करनेसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते, विप्रोंकी सेवा करनेवालोंको परमहंसको जो गति मिलती है वह गति उनको प्राप्त होती है ॥४०॥ हे आर्यपुरुषो! जो ब्राह्मण नित्य, निर्मल, सनातन, श्रद्धा, तप, मंगल, मौन, संयमोंसहित समाधिसे अर्थदृष्टिके निमित्त इस वेदको धारण करतेहैं जिसमें यह संसार दर्पणकी सदृश प्रकाश करताहै मंगल इसका नामहै ॥४१॥ उन ब्राह्मणोंकी चरणरजको समस्त आयुपर्यन्त अपने किरीटपर धारण करूं मेरा यह मनोरथ है इसलिये इस सुन्दर रजको तुम लोगभी अपने शीशपर धारणकरो, क्योंकि जो इस रजको अपने शीशपर धारण करतेहैं उनके अनेक जन्मोंके पाप नाश होजातेहैं और सब गुण उस जीवको प्राप्त होतेहैं ॥४२॥ सब गुणोंके स्थान, शीलवान्, धनी, वृद्धोंके आश्रमोंकी सब सिद्धि आप उसका वर्णन करतीहैं जो ब्राह्मणोंके कुलका दास है,

पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यंतशमं स्वतः स्वयम् ॥ यन्नित्यसंबंधनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥ ३९ ॥ अश्नात्यनंतः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ॥ न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥ ४० ॥ यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमंगलमौनसंयमैः ॥ समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥ ४१ ॥ तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहेयाऽधिकिरीटमायुः ॥ यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजंति ॥४२॥ गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणुतेऽनु संपदः ॥ प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥ ४३ ॥

उन ब्राह्मणोंका कुल गौवनका कुल सब मुझपर प्रसन्न होओ और जनार्दन अपने पार्षदोंसहित मुझपर प्रसन्न होओ॥ ४३॥श्रीमैत्रेयजी बोलेकि, जब राजाने इसप्रकार मधुर वचन कहे तब राजासे पितृदेव, द्विजाति, देवता, महात्मा पुरुष, प्रसन्न मनसे धन्यवाद देकर राजाकी स्तुति करने लगे॥ ४४॥पुत्रके सुकर्मसे पिता स्वर्गलोग जीतलेता है और यही सत्य सत्य वेदकी वाणी है और ब्राह्मणोंकी शापरूपी दंडसे मराहुआ पापात्मा वेन पृथुके पुण्यके प्रभावसे नरकसे तरगया॥ ४५ ॥ देखो! हिरण्यकशिपु भगवत्की निन्दा करके नरकमें जाता था, परंतु पुत्रके प्रभावसे नरकसे बच स्वर्गवासी हुआ ॥ ४६ ॥ हे वीरवर्य ! हे पृथ्वीनाथ ! ! भगवान् तुमको दीर्घायु करें और तुम सब प्रजाका पालन करो, क्योंकि आपने

मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥ ४४ ॥ पुत्रेण जयते
लोकानिति सत्यवती श्रुतिः ॥ ब्रह्मदंडहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥४५॥ हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निंदया तमः ॥
विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥ ४६ ॥ वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः संजीव शाश्वतीः ॥ यस्येदृश्यच्युते
भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥ ४७ ॥अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुंदनाथाः ॥ य उत्तमश्लोकतमस्य
विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥४८॥ नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् ॥ प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः
करुणात्मनाम् ॥ ४९ ॥ अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो ॥ भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥ ५० ॥

त्रिभुवनके स्वामी श्रीनारायणके चरणारविन्दमें दृढ भक्ति करीहै आपके समान ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवालोंमें और दूसरा कौन है ॥ ४७ ॥ हे पवित्र कीर्तिवाले ! बडे आनंदका समय कि तुमसे नाथ पाकर आज हम सनाथ हुए, क्योंकि हम जानतेहैं कि, जो श्रीमुकुंद हमारे नाथ हैं तुम उन परमपवित्र उत्तमश्लोक ब्रह्मण्यदेव विष्णुभगवान्की कथाका उपदेश कराते हो ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! सब जीवमात्रको शिक्षा करना, आपकोकुछ अतिअद्भुत बात नहीं है क्योंकि दयालु महात्माओंका प्रजापर दया करनेका स्वभावही होताहै ॥४९॥हे प्रभो! हम अभागी अपने अभाग्यसे नष्टदृष्टि होकर इस संसारसागरमें पडे भटकरहेथे,आपने अपनी वाणीरूप नौकापर चढ़ाय आज हम अज्ञानियोंको पार उतार दिया ॥५०॥

चारोंवर्णोंमें प्रवेश करके अपनें तेजसे प्रजाको और इस विश्वको धारणकरनेवाले और प्रजाके हितकारी सत्त्वगुणोंकी खानि विश्वनाथ विश्वंभरके अर्थ हम वारंवार नमस्मार करते हैं. * ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां प्रजानामनुशासने ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा—बाइसवें अध्यायमें, हरि आज्ञा अनुसार । ब्रह्मज्ञान वर्णन करन, पृथुसों सनत्कुमार ॥ २२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार महापराक्रमवाले राजा पृथुकी सब प्रजागण स्तुति कररहेथे उसी समय वहां सूर्यके समान तेजवान् चार मुनि सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार राजा पृथुकी सभामें आनकर उपस्थित हुए ॥ १ ॥ उन सिद्धेश्वरोंको

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ॥ यो ब्रह्मक्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० चतु० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ॥ तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥ १ ॥ तांस्तु सिद्धेश्वरान्राजाव्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ॥ लोकानपापान्कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥ २ ॥ तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान् प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ॥ स सदस्यानुगो वैन्य इंद्रियेशो गुणानिव ॥ ३ ॥ गौरवाद्यंत्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकंधरः ॥ विधिवत्पूजयांचक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥ ४ ॥

राजा पृथु और उनके भृत्योंने अपने तेजसे लोगोंका पाप नाश करते आकाशसे उतरते देखा और अपने जीमें जानलिया कि, यह तेजपुन्ज अघभंजन मुनिरंजन सनकादिक महाराज हैं ॥ २ ॥ उनके दर्शनसे प्राण गयेहुए मानों फिर पीछेको लौटे, इसप्रकार सभासद और भृत्योंसहित राजा पृथु उठ खडा हुआ, जैसे महाउत्कण्ठासे जीवात्मा गंधादिक विषयोंके सम्मुख जाता है ॥ ३ ॥ फिर विनती कर शिर नवाय राजा पृथुने गौरवके वशीभूत हो उन ऋषियोंको कनकासन अर्घ्यादि देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा और आदरसन्मान

---

* भजन—प्रभुजी तुमबिन कौन सहाई ॥ सब अपने अपने स्वारथके, कुटुँब लोग अरु भाई॥ १ ॥ संपतिमें मित्राई राखत, गुण अवगुण न गनाई ॥ विपत पडे कोइ संग न लागत, छाँडत मीत मिताई ॥ २ ॥ घरकी नारी गारी माषत, नित उठ करत लराई ॥ कर्मरेखको दोष न लावत, निन्दा करत पराई॥ ३ ॥ सब विधि भक्त भयो कमलापति, यदुनायक यदुराई॥ सिंधु अथाह बीचके बोरत तुमबिन कौन गहाई ॥ ४ ॥ ज्यों गज औ प्रह्लाद उबारे, महिमा ध्रुवहि दिखाई॥ विपति विदारण पतित उधारण तुमरो नाम कहाई ॥ ५ ॥ कांजे लाज नाम अपनेकी, संकट मेटो आई॥ सूर पुकारत आरत तेरी, राखिलेहु शरनाई ॥ ६ ॥

किया ॥ ४ ॥ और उनके चरणारविन्दोंको पखारकर वह चरणोदक अपने शिरपर सींचा, सो उस शीलसिंधुनृपतिका यह वृत्त शीलवानोंका अत्यन्त आदरसत्कार करनेवाला था ॥ ५ ॥ कंचनके सिंहासनपर बैठे ऐसे शोभायमान दृष्टि आतेथे जैसे वेदीके बीचमें अग्नि प्रज्वलित होती है नीतिसहित दोनों हाथ जोडकर उन शिवजीके ज्येष्ठ भ्राता सनकादिकोंसे राजाने श्रद्धा संयम संयुक्त प्रसन्न होकर प्रार्थना की ॥ ६ ॥ पृथु बोले कि. हे मंगलायनो! अहो! मैंने ऐसा क्या सुकर्मकिया हैजो मुझको आपका दर्शन हुआ, क्योंकि योगीजनोंकोभी आपका दर्शन महा कठिन है ॥ ७ ॥ उसको इस लोकमें और परलोकमें कौनसी बात दुर्लभहै जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न हैं और जिनपर ब्राह्मणोंकी दयादृष्टि है उनपर

तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबंधनः ॥ तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥ ५ ॥ हाटकासन आसीनान्स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ॥ श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥ ६ ॥ पृथुरुवाच ॥ अहो आचरितं किं मे मंगलं मंगलायनाः ॥ यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥ ७ ॥ किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च ॥ यस्य विप्राः प्रसीदंति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥ ८ ॥ नैव लक्षयते लोको लोकान्पर्यटतोऽपि यान् ॥ यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥९॥ अधनाअपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ॥ यद्गृहा ह्यर्हवर्यांबुतृणभूमीश्वराऽवराः॥१०॥ व्यालालयद्रुमा वैतेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः ॥ यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥ ११ ॥ स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः ॥ चरंति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहंति च ॥ १२ ॥

महादेव और भगवान् पार्षदों सहित सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ८ ॥ यद्यपि आप त्रिभुवनमें पर्यटन करते हैं और आपको कोई नहीं देखसक्ता संसारके वशीभूत बुद्धिवाले जैसे सर्वव्यापक परमात्माको नहीं देखसक्ते॥९॥ वह निर्धन साधु गृहस्थभी धन्य हैं जिनके घरमें पूज्योंमें श्रेष्ठ लोग जल, तृण, भूमिसे आदरसत्कार पाते हैं, उनको परमश्रेष्ठ और भाग्यवान् जानना चाहिये ॥१०॥ जिनके घर तीर्थपादीय श्रीवैष्णवोंके पादतीर्थसे वर्जित हैं वह घर सर्व धनधान्यसे परिपूर्ण हो तोभी साँपोंके बिलके समान है. और घरकेवासी वृक्षवत् हैं. उनकी सम्पदा किसी कामकी नहीं ॥ ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिन व्रतोंको मुमुक्षुलोग श्रद्धासे धीर धरकर करतेहैं, वह नियम आपने बाल अवस्थासे किये हैं सो आपका शुभागमन

हमको बहुत अच्छा हुआ ॥ १२ ॥ हे समर्थों ! हम लोग विषयोंकोही स्वार्थ मानते हैं और अपने कर्म करके अनेक व्यसनवाले संसारमें हमसे पतितभी कुशल हैं ॥ १३ ॥ आप सरीखे आत्माराम महात्मा पुरुषोंसे कुशल बूझना उचित्त नहीं. क्योंकि आप तो जगत्के कुशलदायक हो और सदा भगवान्के प्रेममें मग्न रहते हो, आपके तो कुशल और अकुशल यह सब चित्तकी वृत्ति है ॥ १४ ॥ आप तपस्वीपुरुषोंके मित्र हो, इस लिये आपकी प्रतीति करके मैं आपसे बूझता हूँ कि इस संसारमें विना परिश्रम किये क्षेम किस प्रकारसे होता है ॥ १५ ॥ निश्चय है कि आत्मज्ञानियोंको आत्मारूप आत्मस्वरूपको प्रकाशित करनेवाले आप साक्षात् भगवत्के स्वरूप हो और आपने अपना अजन्मसिद्ध रूप जो धारण

कच्चिन्नः कुशलं नाथा इंद्रियार्थार्थवेदिनाम् ॥ व्यसनावाप एतस्मिन्पतितानां स्वकर्मभिः ॥ १३ ॥ भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ॥ कुशलाकुशला यत्र न संति मतिवृत्तयः ॥ १४ ॥ तदहं कृतविस्रंभः सुहृदो वस्तपस्विनाम् ॥ संपृच्छे भव एतस्मिन्क्षेमः केनांजसा भवेत् ॥ १५ ॥ व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ॥ स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पृथोस्तत्सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु ॥ स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाचह ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ॥ भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥ १८ ॥ संगमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः ॥ यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥ १९ ॥ अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विषःपादारविन्दस्य गुणानुवादने ॥ रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमंतरात्मनः ॥ २० ॥

किया है और पृथ्वीपर पर्यटन करते हो. यह अपने दासों पर अनुग्रह करनेका कारण है ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, पृथुकी सुन्दर सारभरी मधुर वाणी सुनकर, प्रीतिसे मंद मंद मुसकाकर सनत्कुमारने कहा ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाराज पृथो! आप कौनसी बात नहीं जानते क्योंकि आपने सब जीवमात्रका हित करके बहुत अच्छा प्रश्न किया, हम आपकी प्रसंसा नहीं करसक्ते, महात्मा पुरुषोंकी बुद्धि ऐसाही परोपकारिणी होती है ॥ १८ ॥ निश्चय है कि, साधुलोगोंका सत्संग दोनोंके लिये सुखदायक है क्योंकि उनके प्रश्नोत्तर और ज्ञानवैराग्यसे परिपूर्ण कल्याणका विस्तार होताहै ॥ १९ ॥ हे राजन् ! आपने अपनी मोक्षका साधन तो ठीकठीकबनाही रक्खा है, क्योंकि मधुनामक दैत्यके मारने

वाले मधुसूदन भगवान्के पदपंकजके गुणानुवादमें अलौकिक प्रीति आपकी है, यही मोक्षका मुख्य साधन है और यही अत्यंत कठिनहै, सो आपने भलेप्रकार साधही रक्खा है जिस भगवत्के चरणारविंदकी रतिसे नैष्ठिककी मति आत्माके भीतर कोमल कामवासनाओंका कषैलापण, और मल नष्ट होजाता है ॥ २० ॥ मनुष्योंके मंगलके लिये शास्त्रोंने भलेप्रकर विचार कर यही साधन सिद्ध किया है,किसीमें संग नहीं सबसे पृथक् व्यापक आत्मानिर्गुण ब्रह्ममें अच्छी पूर्ण प्रीति होनी.यह सब सिद्धांतोंका सिद्धांत है ॥ २१ ॥ और प्रीति होनेका मुख्य साधनभी यही है कि, श्रद्धा करना भगवद्धर्मका आचरण करना, परमात्माके जाननेकी इच्छा करना, आत्मविद्यायोगमें निष्ठा रखना, योगेश्वरोंकी उपासना करना, सदा पुण्ययशवाले श्रीमन्नारायणकी पुण्यरूप कथा नित्य प्रसन्न होकर सुनना॥२२॥धन,इन्द्रिय,बाग,गोष्ठी इनमें तृष्णा न करना, उनके

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः ॥ असंग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥ २१ ॥ सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया ॥ योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवःकथया पुण्यया च ॥२२॥ अर्थेंद्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया तत्संमतानामपरिग्रहेण ॥ विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥ २३ ॥ अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुंदाचरिताग्र्यसीधुना ॥ यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिंदया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ २४ ॥ हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृंभमाणया ॥भक्त्या ह्यसंगः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चांजसा रतिः ॥ २५ ॥

संमत जो कामादिक उनका संग्रह न करना, एकांतमें भगवान्के अनुसन्धानमें रुचि रखकर अतिसंतुष्ट रहना, श्रीहरि गुणरूप अमृतपान करके अपनी आत्माको प्रसन्न रखना ॥ २३ ॥ जीवमात्रका हिंसा न करना,परमहंसोंकी नाईं सदा मग्न रहना,श्रीमुकुन्द आनंदकन्दके चरित्रामृतका प्रेमसे पान करना, कामवासना त्यागकर यमनियमकरण करना, किसीके अनुचित कर्म देखकरभी निंदा न करना, किसी वस्तुमें चेष्टा न करना, लाभहानिमें हर्षविषाद न करना,दुःख सुखको समान समझना,शीत उष्ण सदा सहना ॥२४॥ भक्तोंके वारंवार कार्य पूर्ण करनेवाले श्रीनारायण भगवान्के गुण नामोच्चारण करना अर्थात् प्रातःकाल महाभारत, मध्याह्नकालमें रामायण और संध्याकाल श्रीमद्भागवतका श्रवण कर,इस प्रकार

अपना सब समय व्यतीत करना और अत्यन्त भक्तिमें मन लगाना,सत् असत्में संग न करना.इसप्रकार साधन करनेसे संपूर्ण कार्य कारणरूप पदार्थसे प्रबल भक्ति और वैराग्य उत्पन्न होता है और अनात्मा निर्गुण ब्रह्ममें अनायाससे प्रीति होती है ॥ २५ ॥ जब ब्रह्ममें अत्यन्त निष्ठाकी बुद्धि होती है. तब विज्ञानकी अग्नि हृदयमें ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे बढती है. वह ज्ञान विना आचार्य और गुरुजनोंके प्राप्त नहीं होसकता, उसके प्रतापसे महापंचभूतात्मक जीवके रहनेका कोश,हृदयकी अविद्या आदि पंचक्लेशरूप लिंगशरीरका अंकुर पीछे उत्पन्न न होजाय वह ज्ञानाग्नि सब वासनाओंको भस्म करदेतीहै, जैसे बढीहुई दावानल काष्ठको भस्म करदेती है, फिर अहंकारका वीर्य उत्पन्न नहीं होता ॥ २६ ॥ जब अन्तःकरण दग्ध होगया तब सब विधि गुणोंसे मुक्त आत्माको बाहर भीतर कुछ अन्तर नहीं जानपडता, उसके कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि सब गुण नष्ट होजातेहैं, फिर परमात्माका और जीवात्माका भेद जो कि, पहले रहता था वह सब निवृत्त होजाताहै,फिर वह प्राणी जैसे स्वप्न व्यतीत हुएपर स्वप्नावस्थाके भावको नहीं देखता,इसीप्रकार अपने स्वरूपसे संसारके घटादिक पदार्थोंको और अंतःकरणके सुखदुःखोंको भी नहीं देखता ॥ २७ ॥ आत्मा इन्द्रियोंके अर्थ जीव ईश्वरमें भेद अंतःकरणरूप उपाधि होनेसे पुरुषको प्रतीत होताहैऔर किसी प्रकारसे नहीं, क्योंकिजाग्रत् और स्वप्नमें अंतःकरणकी उपाधि होनेसे आप देखनेवाला और देखनेकी वस्तु और उनका मेलकर्ता, अहंकार दृष्टिमें आताहै, परंतु सुषुप्तिमें हृदयकी उपाधि न होनेसे कुछभी देखनेमें नहीं आता ॥ २८ ॥ यहां साक्षीके लिये दृष्टान्तहै, यह सब संसार जल अथवा वर्षण आदि निमित्त होनेसे पुरुष आपमें और अपने प्रतिबिम्बमें भेद समझताहै और कहताहै कि,एक मैंहूँ और दूसरा प्रतिबिम्बहै.परंतु जब जल और दर्पण नहीं रहता.तो फिर एकही दृष्टि

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवाञ्ज्ञानविरागरंहसा॥ दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पंचात्मकं योनिमिवोत्थितो
ऽग्निः ॥ २६ ॥ दग्धाशयो मुक्तसमस्ततद्गुणो नैवात्मनो बहिरंतर्विचष्टे ॥ परात्मनोर्यद्व्यवधानं पुरस्तात्स्वप्ने यथा
पुरुषस्तद्विनाशे ॥ २७ ॥ आत्मानमिंद्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ॥ सत्याशय उपाधौ वै पुमान्पश्यति नान्यदा ॥
॥ २८ ॥ निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ॥ आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥ २९ ॥

आताहै दूसरा नहीं दिखाई देता. ऐसेही जीवका और ईश्वरका भेदहै और किसी प्रकार नहीं॥२९॥ विषयोंकी ओर ध्यान करनेवाले प्राणियोंकी इन्द्रियोंको विषय अपनी ओर खैंचलेताहै.और इन्द्रिय मनको खैंच खांचकर अपने वशीभूत करलेतीहै और मन बुद्धिकी विचारचेतनाको हरलेताहै,जैसे सरोवरके तटपर वीर्णमूलका वृक्ष वह अपने मूलद्वारा नीचेही नीचे नीरको खैंचलेताहै इसीप्रकार समझलेना परंतु वह गुप्तभेद अज्ञानी पुरुषोंके ज्ञानमें नहीं आता इसीप्रकार इंद्रियोंकी खिंचावट अज्ञानी लोगोंके ध्यानमें नहीं आती॥३०॥बुद्धिकी चेतनाके अचेत होनेसे सब अगली पिछली बारंबारकी स्मृति नष्ट होजातीहै और स्मृतिके नाश होनेंसे चित्तज्ञान दोनों भ्रंश होजाते हैं,उनके रोकनेको महात्मापुरुष आत्माका वश करना कहते हैं॥ ३१ ॥इससे अधिक पुरुषको और कोईभी अपने स्वार्थका नाश नहींहै,क्योंकि जिस परमात्माको तजकर विषयको प्रिय समझताहै, यह सब अपनी ही आत्माकी हानि करनीहै॥३२॥अर्थ और इंद्रियोंका ध्यान करना और रातदिन विषयवासनाका विचार रखना, यही पुरुषके सब पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है,क्योंकि यह तृष्णा और विषयवासना शास्त्रजन्य ज्ञान और स्वरूपानुभव,दोनोंका नाश करदेतीहै और इसका विनाश होनेसे जीव स्थावर संज्ञाको प्राप्त होताहै॥३३॥जो पुरुष इसगूढ अंधकार नरकसे पार होनेकी इच्छाकरे;वह पुरुष कभी विषयवासनाओंको संग न करे.क्योंकि यह विषयवासना धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष चारों पदार्थोंका अत्यन्त क्षतिकारकहै॥३४॥इन चारों पदार्थोंमें मोक्षही प्रधान समझा जाताहै,क्योंकि धर्म अर्थ काममें सदा कालको भय बनारहताहै परंतु मोक्षमें किसी प्रकारका भय नहीं ॥ ३५ ॥ जगत्में ब्रह्मा

इंद्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ॥ चेतनां हरते बुद्धेः स्तंबस्तोयमिव ह्रदात् ॥ ३० ॥ भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं
ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ॥ तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥ ३१ ॥ नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ॥
यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥ ३२ ॥ अर्थेंद्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ॥ भ्रंशितो ज्ञानवि
ज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥ ३३ ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्संगं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यद
त्यंतविघातकम् ॥ ३४ ॥ तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यंतिक तयेष्यते ॥ त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतांतभयसंयुतः॥३५॥
परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ॥ न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥ ३६ ॥

शिवादिक जो आपसे उत्पन्न हुए उन सबके अस्मदादिक जो भाव हैं; सो गुणोंके उलट पलट होनेसे ईश्वरसे सबके आशीर्वादोंका विध्वंस होजाता है इसलिये यथार्थ सुख किसीको प्राप्त नहीं होता ॥३६॥ हे नरेन्द्र ! जगत्के स्थावर जंगम प्राणियोंके देह,इंद्रिय,प्राण, बुद्धि और अहंकारसे आवृत्त जो क्षेत्रजीवहैं.उनके अन्तर्यामी हृदयमें सब प्रकारसे प्रकाशमान् होप्रत्यक्ष तथा देश, काल तथा वस्तुके प्रमाणसे रहित हो प्रकाशते हैं और अन्तर्वृत्तिसे जो ज्ञातभी होतेहैं,वह आदिरूप अविनाशी चिदानंद भगवान् मैंही हूँ इसप्रकार समझते हैं ॥३७॥ मायाका विवेक जिसमें नहीं है उसमें यह विश्व सत् असत् भावसे प्रकाश करताहै,जैसे मालामें सर्पके समान मायारूप:भासेहै ऐसे जानो.वह परमात्मा जो नित्यमुक्त,

तत्त्वं नरेंद्र जगतामथ तस्थुषां च देहेंद्रियाऽसुधिषणात्मभिरावृतानाम् ॥ यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विष्वगाविः प्रत्यक् चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥ ३७ ॥ यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति माया विवेकविधुति स्रजि वाऽहि बुद्धिः ॥ तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वं प्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥ ३८ ॥ यत्पादपंकजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयंति संतः ॥ तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥ ३९ ॥ कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषंति ॥ तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमांघ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥ ४० ॥

शुद्ध चैतन्य, ज्ञानस्वरूप,सब ओरसे जानागया, तब कर्मोंसे मलिन प्रकृति जिससे दूर होगईहै,उन परमेश्वरकी शरणमें मैं हूँ ॥ ३८ ॥ तिनके चरणारविन्दकी पल्लवरूप उँगलियोंकी सौन्दर्यताकी भक्ति करके बडे बडे सज्जन पुरुष कर्मआशयरूप हृदयकी ग्रंथीको साधुजन दूर करतेहैं, ऐसाही विषयोंकी ओर जातीहुई अपनी इन्द्रियोंको रोककर यतिलोग वासुदेव भगवान्का भजन करते हैं ॥ ३९ ॥ छः इन्द्रियरूप मगर जिसमें सदा वास करतेहैं, ऐसे महागंभीर दुस्तर संसाररूप समुद्रको जो योगादिक साधनोंसे हरिनामरूपी नाव विना पार उतरनेकी चेष्टा करतेहैं उन मनुष्योंको अत्यन्त कष्ट उठाना पडताहै इसलिये आप तो सब बाधाको त्याग, भगवान्के भजन करने योग्य चरणकमलरूप नाव बनाकर

32/

इस दुस्तर कष्टरूप संसारसागरसे पार होओ॥४०॥मैत्रेयजी बोले कि ऐसे ब्रह्माजीके पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमारने इस प्रकार सुन्दर आत्मज्ञानका मार्ग दिखाया, तब राजापृथु सनत्कुमारकी अत्यंत प्रशंसा करनेलगे ॥ ४१ ॥ राजा बोले कि, हे भगवन् ! आर्तरक्षक हरिने प्रथमही मुझपर अनुग्रह किया था, उसके सिद्ध करनेके लिये हे ब्रह्मन् ! आप लोग यहां आये*॥ ४२ ॥ और आप दयालु धर्मवेत्ताओंने दया करके मेरा संपूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया, यह राज्य और मेरा देहादिक जो है सब साधु लोगोंहीका उच्छिष्ट है. हे नाथ ! गुरुदक्षिणामें मैं अब क्या दूं ॥ ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन्! प्राण,स्त्री, पुत्र, गृह,सब परिवार, राज्य, सेना, धरणी, भण्डार यह सब साधु लोगोंकाही है,इसलिये मेरा इनपर कुछ अधिकार नहीं है अब मैं दक्षिणामें इनको कैसे देसक्ताहूँ? यह तो सब आपहीका है जैसे दास स्वामीकीही वस्तु स्वामीको देताहै, इसीप्रकार आपका सर्वस्व आपहीको समर्पण करताहूँ ॥ ४४ ॥ सैनापत्य, राज्य; दंड, न्याय और सबको प्राप्त करना सब लोकोंका स्वामित्व और वेदशास्त्रज्ञता धारण करना. सब ब्राह्मण लोगोंहीके अधिकारके योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपनेंही पदार्थको आप भोगते हैं, अपनी वस्तुको आप धारण

मैत्रेय उवाच ॥ स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा ॥ दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं नृपः ॥४१॥राजोवाच ॥ कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणाऽऽर्त्तानुकंपिना ॥ तमापादयितुं ब्रह्मन्भगवन्यूयमागताः॥४२॥ निष्पादितं च कात्स्न्येंन भगवद्भिर्घृणालुभिः ॥ साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥४३॥ प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ॥ राज्यं बलं महीं कोशं इति सर्वं निवेदितम् ॥ ४४ ॥ सैनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५ ॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुंजते क्षत्त्रियादयः ॥ ४६ ॥

---

* शंका–ऐसा हमने सब शास्त्रोंमें सुनाहै, कि सनकादिक मुनियोंने न तो किसीकी स्तुति की है और न किसीकी निन्दा कीहै, सब देहोंमें भगवान्का रूप देखतेहैं, फिर राजा पृथुकी प्रशंसा क्यों की ! उत्तर–सनकादिकमुनि नित्यप्रीत भगवान्की स्तुति करतेहैं तथा पृथुभी भगवान्का अंश हैं, इसलिये सनकादिक मुनियोंने पृथुकी प्रशंसा किया तो कुछ अयोग्य नहीं, योग्य है,

करतेहैं और अपनाही द्रव्य आप लेतेहैं और ब्राह्मणोंहीके चरणारविन्दके अनुग्रहसे क्षत्रियादिक विप्रोंके दिएहुए अन्नको नवीन नवीनप्रकारसे भोग लगाते हैं ॥४६॥ निगमागम और ब्रह्मविद्यामें कुशल, वेदके जाननेवाले आपने जो मुझको अध्यात्मज्ञानका उपदेश किया और हरि मिलनेका मार्ग दरशाया, उस उपकारका प्रत्युपकार केवल विनय करनेके अतिरिक्त और कुछ मैं नहीं करसक्ताहूं? और गुरुजनोंमें कोई किसी उपायसे उऋण नहीं होसक्ता और जो उऋण होना चाहै वह सब प्रकारसे शठ और अज्ञानी है इसलिये हे महादयालो ! आपही अपने कियेहुए उपकारसे मुझपर दया करो ॥ ४७ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब इसप्रकार उन मुनियोंका राजा पृथुने अत्यन्त आदरसन्मान किया तब वह आत्मयोगके अधिपति, आदिराज श्रीपृथुराजके शीलस्वभावकी वारम्वार सराहना करते वह ब्रह्मवेत्ता सनकादिक सब मनुष्योंके देखते देखते

यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवाद एकांततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ॥ तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं को नाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम्॥४७॥त आत्मयोगमतय आदिराजेन पूजिताः॥शीलं तदीयंशंसंतः खेऽभूवन्मिषतां नृणाम् ॥ ४८ ॥ वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याऽध्यात्मशिक्षया ॥ आप्तकाममिवात्मानं मेने आत्मन्यवस्थितः ॥ ४९ ॥ कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम् ॥ यथोचितं यथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ॥ ५० ॥ फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषंगः समाहितः ॥ कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥५१॥ गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियाऽन्वितः ॥ नासज्जतेंद्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥ ५२ ॥

आकाशमार्ग होकर ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ४८ ॥ पृथुमहाराज महात्मा पुरुषोंमें श्रेष्ठ अध्यात्मविद्यामें स्थित होकर सब कामकी सदृश पूर्ण आत्माको कृतार्थसा मानता हुआ॥४९॥उस राजा पृथुने देश, काल, धन, बल और योग्यताके अनुसार जो जो उचित कर्म थे उसी रीतिसे करके ब्रह्मको साक्षात्कार माननेलगा॥ ५०॥और सब कर्मोंका फल ब्रह्ममें समर्पण करके कर्मोंकी आसक्तिको त्याग सावधान होकर,सब कर्मोंका अध्यक्ष आत्माको प्रकृतिसे परे मानकरके राजा पृथु अपने नगरमें राज्य करतारहा ॥ ५१ ॥ यद्यपि वह राजा पृथु घरमें वास करताथा और सब पृथ्वीका चक्रवर्ती राजा था और लक्ष्मीसे सर्वत्र भवन परिपूर्ण था परन्तु तौभी इन्द्रियोंके अर्थमें आसक्त न हुआ और अहंकारको त्याग

सूर्यके समान दूरही अपने प्रतापके तेजसे संसारके अंधकारको दूर करता रहा ॥ ९२ ॥ इसप्रकार ब्रह्मज्ञानसे कर्मोंको करनेलगा, तब उस राजा पृथुने अर्चि नाम स्त्रीमें अपने समान पांच पुत्र उत्पन्न किये ॥ विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण, वृक सब लोकपालोंके गुणोंको राजा पृथु अकेला धारण करताथा ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ जैसा जैसा समय आता था, राजा पृथु उसीप्रकार सृष्टिकी रक्षा करता था और जगत् सृष्टिकी रक्षाके लिये भगवान्के अवताररूप राजापृथुने अपने मन क्रम और शीलस्वभावकी वृत्तियोंसे सुन्दर गुण करके प्रजाका मनरञ्जन करताथा ॥ ९९ ॥ पृथुराजाकी पदवी इनको मिली और सोमराजाकी समान आप होतेहुये जैसे सूर्य आठ महीनेतक पृथ्वीका जल सोखता रहता है और चार

एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ॥ पुत्रानुत्पादयामास पंचार्चिष्यात्मसंमतान् ॥ ५३ ॥ विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥ ५४ ॥ गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वेस्वेऽच्युतात्मकः ॥ मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरंजयन्प्रजाः ॥ ५५ ॥ राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ॥ सूर्यवद्विसृजन्गृह्णन्प्रतपंश्च भुवो वसु ॥ ५६ ॥ दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेंद्र इव दुर्जयः॥ तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥ ॥५७॥ वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ॥ समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥५८॥ धर्म राडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव ॥ कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥ ५९ ॥

महीनेमें सब त्याग देताहै इसी भाँति यह राजा पृथुभी अपने समयपर द्रव्य प्रजासे लेताथा और उनकी आवश्यकताके समय उनको देदेताथा ॥ ९६ ॥ तेजसे पावकके सदृश दुर्धर्ष और महेन्द्रके समान दुर्जय क्षमामें क्षितिकी नाईं और स्वर्गके समान मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला था ॥ ९७ ॥ जैसे घन वर्षा करके सब संसारके जीवोंका मनोरथ पूर्ण करताहै, इसप्रकार राजा पृथु सबको मनोवांछित वस्तु देदेकर संतुष्ट करताथा. वह समुद्रके समान अगाध बुद्धिवाला और पराक्रममें सुमेरु पर्वतकी नाईं अचल और धैर्यवान् था ॥ ९८ ॥ शिक्षामें धर्मराजकी नाईं आश्चर्य कर्म करनेवालोंमें हिमाचलके समान, धनमें कुबेरके सदृश धनवान् और अर्थ गुप्तरखनेमें वरुणके समान था ॥ ९९ ॥

बल, विक्रम और वेगमें पवनवत् पृथ्वीपर भ्रमण करताथा और दुःसहतामें भगवान् भूतनाथ रुद्रके समान शत्रुओंको देखताथा॥६०॥स्वरूपमें कामदेवके समान, मनस्वितामें मृगराजके समान, मनुष्योंपर स्नेह रखनेमें मनुके समान और प्रभुतामें भगवान् ब्रह्माजीके सदृश॥६१॥ वेदवादियोंमें सुरगुरुके समान स्वाधीनता और आत्मज्ञानियोंमें साक्षात् श्रीविष्णु भगवान्के समान. गो,ब्राह्मण,गुरु और हरिभक्तोंकी भक्ति करनेमें मानो लज्जा,विनय,सुशीलता और परोपकारमें सदा अपने आत्माके समान था ॥ ६२ ॥ कीर्तिवान् पुरुषोंमें जहाँ तहाँ त्रिभुवनमें उच्चस्वरसे पृथुराजका यश गाया इसलिये उसका सुयश,रामचन्द्रके यशके समान सुरसुन्दरी मधुरवाणीमे वारंवार गानकरती भई❀॥६३॥ इति श्रीमद्भाग

मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा ॥ अविषह्यतया देवो भगवान्भूतराडिव ॥ ६० ॥ कंदर्प इव सौंदर्ये मनस्वी मृगराडिव ॥ वात्सल्ये मनुवन्नॄणां प्रभुत्वे भगवानज ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मवाद आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः ॥ भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥ ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥ ६२ ॥ कीर्त्योर्ध्वगीतया पुंभिस्त्रैलोक्ये तत्रतत्र ह ॥ प्रविष्टः कर्णरंध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥ इति श्रीमद्भा० म० चतु० पृथूपाख्याने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ दृष्ट्वात्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान् ॥ आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः॥ १ ॥जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सताम् ॥ निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥ २ ॥

वते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पृथुचरिते सनत्कुमारेण परमाध्यात्मोपदेशो वर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥दोहा–तेइसवें अध्यायमें, जग तज पृथु महिपाल । नारिसहित आनन्दसे,गयउ स्वर्ग तत्काल॥२३॥मैत्रेयजी बोले कि,एकसमय आत्मज्ञानी राजा पृथुने अपनी आत्माको वृद्ध देखा,जिसमें अपनी आत्मासे सब संसारके पदार्थ बढाये सो प्रजापति हुए॥१॥ स्थावर, जंगम,जगत्के सब जीवोंको जीविकाके दाता, महात्मा पुरुषोंके धर्मधारी, जितेंद्रिय राजा पृथुने जिस कार्यके लिये पृथ्वीपर जन्म लियाथा, परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार वह कार्य सिद्ध किये ॥ २ ॥

❀ धन धन धन पृथुराज पृथ्वीपति,संतनके सुखदायक हो जी । याचक किये अजाचक तुमने, गो द्विज साधु सहायक हो जी ॥ पुत्रसमान प्रजा सब पाली, राजनमें नृपनायक हो जी । सकल देवता करत प्रशंसा, हे प्रभु तुम लायक हो जी ॥ महिमा अपरम्पार तुम्हारी, गुणियोंके गुणगायक हो जी ॥

विरहसे रुदन करतीहुई पृथ्वीको अपने पुत्रोंको सौंपकर, प्रजामें जिसका मन नहीं, सो राजा पृथु अपनी स्त्रीको साथ ले, अकेला तप करनेके लिये तपोवनको चलदिया॥३॥ वहाँभी दृढतासे सब नियमोंको धारण करके वैखानस आश्रममें संमत हो वानप्रस्थमार्गमें मन लगाय उग्र तप करनेका आरम्भ किया, जैसे पहले धरामण्डलके विजय करनेमें बड़ा परिश्रम कियाथा, वैसेही वानप्रस्थ पुरुषोंके परममान्य तप करनेमें प्रयत्न किया॥४॥ कभी तो कन्द, मूल, फल आहार करके दिन व्यतीत करे, कभी सूखेहुऐ पत्तोंको भोजन किया करे, कितने एक पक्ष जलही पीपीकर रहा, फिर पीछे पवनका भक्षण करनेलगा॥५॥ वीर मुनि ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि तापतारहे और चातुर्मासकी वर्षाका जल अपने:शिरपर सहतारहता रहे, शीतकालमें गले भर जलमें खडारहे और सदा पृथ्वीपर सोवे ॥६॥ उस सहनशीलने प्रथम वाणी जीती, फिर इन्द्रियोंको जीत ऊपरको वीर्य चढ़ाया, फिर पवनको जीतकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी उपासनाके अर्थ अत्युत्तम तप करनेलगा ॥७॥ धीरे२ तपकी शक्ति अधिक होनेसे कर्म नष्ट होजानेसे राजाका अन्तःकरण शुद्ध होगया और प्राणायामके प्रभावसे छःइंद्रियें वश होगईं और सब बंधन छूट गये ॥८॥ सनत्कुमार भगवान्ने जो परम अध्यात्मक ज्ञानकी शिक्षा कीथी, उसी योगमार्गसे परमपुरुष परमेश्वरका वह पुरुषश्रेष्ठ राजा पृथु भजन करनेलगा ॥९॥ भगवद्धर्मी साधु श्रद्धाके यत्न

आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव ॥ प्रजासु विमनस्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥ ३ ॥ तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते ॥ आरब्धउग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥ ४ ॥ कंदमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ॥ अब्भक्षः कतिचित्पक्षान्वायुभक्षस्ततः परम् ॥ ५ ॥ ग्रीष्मे पंचतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ॥ आकंठमग्नः शिशिर उदके स्थंडिलेशयः ॥ ६ ॥ तितिक्षुर्यत वाग्दांत ऊर्ध्वरेता जितानिलः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥ ७ ॥ तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्ममलाशयः ॥ प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गच्छिन्नबंधनः ॥ ८॥ सनत्कुमारो भगवान्यदाहाध्यात्मिकं परम् ॥ योगं तेनैवपुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ॥ भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत्॥ १० ॥

करनेसे उस महात्मा राजापृथुकी भगवान् ब्रह्ममें एक ईश्वरकी निष्ठावाली अनन्य भक्ति होगई॥ १०॥ मन कर्म शुद्धसत्त्वात्मा उन भगवान्‌की बारंवार संस्मरणरूप अनुपूर्तिसे राजाको विरक्तमान ज्ञान हुआ, उस तीक्ष्णज्ञानके प्रभावसे उसने सन्देहके स्थानको तोडकर निज जीवकोशकी ग्रंथियोंको काटदिया॥ ११॥सब धनबंधनके छिन्न होजानेसे निजस्वरूपकोप्राप्त हुआ और आत्मा गति चेष्टाको त्यागकर धीरे२सब वासनाको त्याग दिया. फिर ब्रह्मज्ञान उदय करके इस शरीरकोभी त्यागतेहुए परन्तु जबतक योगगतियोंमें प्रमत्त नहींहोता; तबतक योगीकी सिद्धियोंमें रूपके आसक्त होनेकी भूल हुआ करतीहै, इसलिये राजा पृथुका हरिभक्तिमें अनुराग होनेसे सिद्धियोंकी ओर चित्त चलायमान नहुआ॥ १२॥ इसप्रकार वह वीरा

तस्यानया भगवतः परिकर्म शुद्धसत्त्वात्मनस्तदनुसंस्मरणानुपूर्त्या ॥ ज्ञानं विरक्तिमद्भून्निशितेन येन चिच्छेद संचय
पदं निजजीवकोशम् ॥११॥ छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्त्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ॥ तावन्न योगगति
भिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥ एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ ब्रह्मभूतो दृढं
काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥१३॥ संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयञ्छनैः ॥ नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरः
कंठशीर्षणि ॥१४॥ उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निःस्पृहः॥ वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥ १५ ॥
खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः ॥ क्षितिमंभसि तत्तेजस्यदो वायुं नभस्यमुम् ॥१६॥ इंद्रियेषु मनस्तानि
तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ॥ भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनि संदधे ॥ १७ ॥

तम वीर पृथु आत्मामें मन लगाय साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो दृढ़ समय पाय उसने अपने कलेवरको त्याग दिया और ब्रह्मोपासनाकरता हुआ॥ १३॥ पांवकी एड़ीसे गुदाको दाबकर मूलाधारसे शनैः शनैः पवनको रोककर नाभिके कोठेमें स्थित किया, वहांसे हृदयमें फिर उरःस्थानमें, फिर कण्ठमें, फिर शिरमें चढ़ाते हुए ॥१४॥ सबसे इच्छा छोड अनुक्रमसे उस वायुको ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचाया. वायुको वायुमें और शरीरके पार्थिवभागको पृथ्वीमें और तेजके भागको तेजमें मिलाया ॥ १५ ॥ आकाशको आकाशमें और जलका अंश जलमें इस रीतिसे अपने अपने विभागसे पांचों तत्त्वोंको पांचों तत्त्वोंमें मिला दिया फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें ॥ १६ ॥ मनको इंद्रियोंमें और इंद्रि

योंको इंद्रियोंकी मात्रामें जो जिसमें उत्पन्न हुआथा उसको उसीमें मिलादिया फिर आकाशको तामस और अहंकारमें लीनकर अहंकारको मह
त्तत्त्वमें मिला दिया ॥ १७ ॥ और सब कार्योंके निवासरूप महत्तत्त्वोंको प्रकृतिमें मिलाया उस प्रकृतिको जीवमें धारण किया और जीवको
आत्मामें लगाया और आत्माको परमात्मामें लगाकर फिर ज्ञान और वैराग्य वीर्यसे परब्रह्म स्वरूपमें स्थित होकर कैवल्यमुक्तिको राजा पृथु
प्राप्त हुए. जब सामर्थ्य होजातीहै तब प्रसन्न आत्मा जीव वैकुण्ठको जाताहै ॥ १८ ॥ अर्चिनाम उनकी महारानी जो कि, अतिसुकुमारी छबिकी
खानि जिसने कभी चरण पृथ्वीपर नहीं धरा था सो अपने पतिके पीछे चली गई थी॥ १९॥ और जिस जिस रीतिसे राजा पृथु जिस धर्म्मका अनुष्ठान

तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ॥ तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थो
ऽजहात्प्रभुः ॥१८॥ अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् ॥ सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥ १९ ॥
अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषया चार्षदेहयात्रया ॥ नाविंदतार्तिं परिकार्शिताऽपि सा प्रेयस्करस्पर्शनमाननि
र्वृत्तिः ॥ २० ॥ देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ॥ आलक्ष्य किंचिच्च विलप्य सा सती
३२१ चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥ २१ ॥ विधाय कृत्यं ह्रादिनीजलाप्लुतादत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः॥ नत्वा दिविष्ठांस्त्रिद
शांस्त्रिः परीत्य विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥ २२ ॥

करता था उसीका अनुष्ठान यहभी करती थी और ऋषियोंकीसी वृत्ति करके कन्द, मूल, फल आदि खाकर अपने स्वामीकी सेवा करतीथी और
सेवाके परिश्रमसे उसका शरीर भी बहुत दुर्बल होगया था परंतु तोभी उस पीड़ाको वह नहीं मानती थी. क्योंकि, अपने प्यारे पतिके करस्पर्श
और मान मिलनेके सुखसेउस क्लेशको किञ्चित्भी नहीं समझतीथी ॥ २० ॥ जब सब चेष्टा जिसमेंसे जाती रही, तब अपने प्यारे पृथ्वीके पतिका
मृतक शरीर देखकर उस सतीने कुछेक विलाप किया और दुःखित होकर नेत्रोंसे नीर बहाया, फिर मनमें धैर्य धारणकर पर्वतके निकटवर्ती भूमिमें
ईंधन इकट्ठाकर चिता बनाया उसमें अपने स्वामीकी देहको धरा॥ २१॥ और फिर उसने आपभी नदीमें स्नानकर चिताके समीप आकर मृतकसंस्कार

---

* शंका–श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहाथा कि राजा पृथुने ब्रह्ममें लीन होकर अपने शरीरको त्यागदिया क्योंकि ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणीको अग्निसंस्कार नहीं लिखा है और ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणियोंकी दाहक्रिया हम लोगोंने आजतक कहीं नहीं सुनी··

कर उदारकर्म करनेवाले अपने भर्ताको जलांजली देकर आकाशमें देखनेको जो देवता आये थे उनको नमस्कार कर अग्निकी तीन परिक्रमा दे अपने पतिके पादारविन्दको ध्यान करके अग्निमें प्रवेश किया ॥२२॥ अपने भर्ता वीरवर राजा पृथुके पीछे उस महाराजेश्वरी पतिव्रता अर्चिको सती हुई देख वरदान देनेके लिये सहस्रों देवांगना देवताओंको संगलिये उसकी स्तुति करती थीं ॥ २३ ॥ उस मन्दराचल पर्वतकी चोटीपर पुष्पोंकी वर्षा कर करके देवांगना और देवता आकाशमें दुन्दुभी बजाय बजाय परस्पर उसकी प्रशंसा करतेथे ॥ २४ ॥ देवांगना बोलीं कि, अहो यह पृथुपत्नी संसारमें बड़ी भाग्यवान् और पतिव्रता है इसके शीलकी प्रशंसा हम नहीं कर सकतीं क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी जैसे यज्ञपुरुष

विलोक्यानु गतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् ॥ तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥ २३ ॥ कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मि
न्मंदरसानुनि ॥ नदत्स्वमरतूर्येषु गृणंति स्म परस्परम् ॥ २४ ॥ देव्य ऊचुः ॥ अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजं
पतिम् ॥ सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥२५॥ सैषा नूनं व्रजंत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती ॥ पश्यतास्मानतीत्या
र्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥ २६॥ तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् ॥ भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधय
न्त्युत ॥ २७ ॥ स वंचितो बतात्म कृच्छ्रेण महता भुवि ॥ लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥ २८ ॥

नारायणकी सेवा करती हैं ऐसेही इस भाग्य शीलाने सब प्रकार अपने स्वामीका सेवन किया है ॥ २५ ॥ सो यह सती निश्चय करके महाराज पृथुके पीछे पीछे जाती है देखो ! विचारमें नहीं आसक्ता ऐसे अचिंत्य कर्मके प्रतापसे अस्मदादिकोंको उल्लंघन करके अपने पतिके संग वैकुण्ठको जाती है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य इस संसारमें चंचल आयुको पाकर भगवत्पदके पालनेवाले आत्मज्ञानका साधन करे, हम तर्क करके कहते हैं कि, उन पुरुषोंको कोईभी पदार्थ दुर्लभ नहीं है ॥ २७ ॥ महाकष्टसे इस मुक्तिदायक मनुष्य देहको पाकर जो पुरुष विषयोंके वशीभूत

उत्तर–आपका कहना बहुत सत्य है. ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणीका दाह होना नहीं लिखा परन्तु पातिव्रतास्त्रीको अपने पतिके साथ जलना लिखाहै सो पृथुकी स्त्री पतिव्रताथी. पृथुकी देहके संग अपनी देह जलानेकी इच्छा करके अपने प्यारे पतिकी प्रीतिसे अपने पतिकी देहको जलाकर उसी पतिकी देहके साथ आपभी जलकर पतिलोकको चलीगई इसलिये राजा पृथु ब्रह्ममें लीन होगये परन्तु स्त्री अपने पातिम लीन होनेके लिये पतिकी देहको चितामें धरकर उसके संग आप जलकर भस्म होगई ।

होजाता है उसको आत्मद्रोही और ठगा हुआ जानना चाहिये ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, देवताओंकी स्त्रियें इसप्रकार स्तुति कर रहीथीं,
उससमय आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवद्भक्त पृथु राजाने जिस लोकमें गमन किया था उसी लोकमें अर्चिनेभी गमन किया ॥ २९ ॥ महाप्रतापी
राजा पृथुका पराक्रमथा सो उस अत्यन्त श्रेष्ठ चरित्रवाले पुण्यात्माका चरित्र जैसा था वैसा हमने आपसे वर्णन किया ॥ ३० ॥ जो मनुष्य
सावधान होकर इस महापुण्यरूप चरित्रको एकाग्रचित्त हो श्रद्धासहित पाठ करे और सुने अथवा औरोंको सुनावे वह पृथुकी पदवीको पावेगा
॥ ३१ ॥ ब्राह्मण तो ब्रह्मतेजस्वी होगा, क्षत्रिय पृथ्वीपति होगा,वैश्य जो पाठ करेगा तो समृद्धिवान् होगा और शूद्र सुने तो शुद्ध होय ॥३२॥

मैत्रेय उवाच ॥ स्तुवंतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः ॥ यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥२९॥ इत्थं
भूतानुभावोऽसौ पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥३०॥ य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः
पठेत् ॥ श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् ॥३१॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ॥ वैश्यः पठ
न्विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात्॥३२॥त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथ वाऽऽदृता॥ अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो
धनवत्तमः ॥ ३३ ॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः ॥ इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममंगल्यनिवारणम्॥३४॥ धन्यं
यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक् सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ ३५ ॥ श्रद्धयैतदनुश्राव्यं
चतुर्णां कारणं परम् ॥ विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदनुयाति यान् ॥ बलिं तस्मै हरंत्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥३६॥

जो नर नारी इस चरित्रको आदर सहित तीनवार सुने तो अपुत्रको पुत्र प्राप्त होगा और निर्धनको धन प्राप्त होगा ॥३३॥ अकीर्तिमान्की कीर्ति
अधिक होगी, मूर्ख चतुर होगा यह उत्तम चरित्रपुरुषोंको परम मंगलदायक औरअमंगलका नाश करनेवाला है॥३४॥ धन,यश,आयुका बढ़ा
नेवाला और परमधामका पहुँचानेवाला है और कलिमलका नाशक है,धर्म,अर्थ, काम, मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको सिद्धिदायक है ॥ ३५ ॥
और उनको उचितहै कि,वह इस उदार चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनें, क्योंकि इन चारों पदार्थोंका यह चरित्र मुख्य कारणहै परमेश्वरके परमधामका
प्राप्त करनेवालाहै और मोक्षदायकहैं राजा दिग्विजय करनेके लिये निकलै उसको उचितहै कि, चलते समय इस उत्तम चरित्रको घरसे

सुनके चले क्योंकि जिन राजाओंके देशमें वह जायगा वह राजा जैसे पृथुको भेंट देतेथे उसी प्रकार उस राजाके आगे भेंट रखकर उसकी
प्रार्थना करेंगे॥ २६ ॥ इसलिये ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि, सर्व संग त्याग केवल भगवत्में निष्प्रयोजन भक्ति रखकर यह राजा पृथुका पावन
पवित्र पुराणरूप चरित्र सुनें, सुनावें और प्रेमसहित पढें ॥ २७॥ हे विचित्रवीर्यके पुत्र विदुर! महामाहात्म्यका सूचक यह आख्यान हमने तुमसे
कहा सो जो पुरुष इसको मन लगाकर सुनेगा वह राजा पृथुकी गतिको प्राप्त होगा ॥ २८॥प्रतिदिन जो मनुष्य इस चरित्रको आदर सहित सुने
अथवा सुनावे वह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जिनके चरणारविन्द भवसागरसे पार उतारनेको नौकारूपहैं,उनकी उत्तम गतिसे मोक्षको प्राप्त हो ❀

मुक्तान्यसंगो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ॥ वैन्यस्य चरितं पुण्यं श्रृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥ ३७ ॥ वैचित्रवीर्याभिहितं
महन्माहात्म्यसूचकम् ॥ अस्मिन्कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥३८॥ अनुदिनमिदमादरेण श्रृण्वन्पृथुचरितं
प्रथयन्विमुक्तसंगः ॥ भगवति भवसिंधुपोतपादे स च निपुणां लभते गतिं मनुष्यः ॥३९॥इति श्रीमद्भा०महा०चतुर्थे०
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच॥ विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ॥ यवीयोभ्योऽददा
त्काष्ठः भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥ १ ॥ हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम्॥ प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे
विभुः ॥ २ ॥ अंतर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वांतर्धानसंज्ञितः ॥ अपत्यत्रयमाधत्त शिखंडिन्यां सुसंमतम् ॥ ३ ॥

॥३९॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पृथुचरित्रवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥ दोहा–चोंबिसवें महँ कहब जिमि,
पृथुप्रपौत्र प्राचीन।बर्हि पुत्र प्रचेतानको,रुद्रगीत निजदीन॥२४॥ मैत्रेयजी बोले कि,वन गमनके पश्चात् महायशश्वी राजा पृथुका पुत्र विजिताश्व
महाराजा हुआ उसने अपने छोटे भाइयों पर अत्यन्त स्नेह करके सब दिशोंका राज्य उनको दिया॥ १ ॥ हर्यक्षको पूर्वकी ओरका, धूमकेशको
दक्षिणकी ओरका,वृकसंज्ञकको पश्चिमकी ओरका और द्रविणसको उत्तर दिशाका राज्य दिया ॥२॥राजा पृथुने जब अश्वमेध यज्ञ किया था

---

१ भजन–राग खंमाच तिताला । याते सब तज भज हरिनाम ।विन हरिभजन त्रिलोकीमाहीं, किन पायो विश्राम ॥ १ ॥ शिव विरंचि नारद जाको यश गावत आठों जाम । सो त्रिभुवननायक, सुखदायक जनपालक घनश्याम ॥ २ ॥ पतित उवारन भवभयटारन, नाम एक श्रीराम । शालिगराम नामही निर्मल, भक्ति मुक्तिको धाम ॥ ३ ॥

तो इन्द्र यज्ञका घोड़ा चुराकर लेगया था उस घोड़ेको यह इन्द्रके पाससे ले आया था तब इन्द्रने इसको अंतर्धान होनेकी विद्या सिखादी थी, तब से इसका नाम लोग अंतर्धानी कहने लगे थे फिर शिखंडिनी नाम स्त्रीमें इसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, पावक, पवमान, और शुचि ॥३॥ यह तीनों अग्नियोंके नाम हैं यह तीनों अग्नि पहिले वसिष्ठजीके शापसे विजिताश्वके घर पुत्ररूपसे उत्पन्नहुए फिर यहांसे मोक्ष पाकर अपनी योगगतिको प्राप्त हुए ॥४॥ अन्तर्धान विद्यावाले विजिताश्व राजाने दूसरी नभस्वती नाम स्त्रीमें हविर्धान नाम पुत्र उत्पन्न किया, वह ऐसा प्रतापी था, जिसने अश्व चुरानेवाले इन्द्रको जानभी लिया परन्तु तोभी उसको नहीं मारा ॥५॥ राजाओंकी वृत्ति यही है कि, करलेना दण्ड देना और बिना मूल्य

पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा ॥ वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥ ४ ॥ अंतर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत ॥ य इंद्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥ ५ ॥ राज्ञां वृत्तिं करादानदंडशुल्कादिदारुणाम् ॥ मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥ ६ ॥ तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ॥ यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥ ७ ॥ हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् ॥ बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्ण सत्यं जितव्रतम् ॥ ८ ॥ बर्हिषत्सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः ॥ क्रियाकांडेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥ ९ ॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः ॥ प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥ १० ॥

दिये किसीकी वस्तु भय दिखाकर लेलेना यह सब निर्दयकर्म समझकर राजा विजिताश्वने दीर्घकालसे यज्ञके मिसकरके सबकर्म त्यागकर वनमें वास किया ॥६॥ वहांभी सब भयभंजन भक्तमनरंजन परमात्मा हंस पुरुष सर्वांतर्यामी भगवान्का एकाग्रचित्तसे पूजन करता था, वह ब्रह्मज्ञानी अपनी समाधिसे विष्णुलोकको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ हे विदुर! हाविर्धानने हविर्धानी अपनी भार्यामें बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत ये छः पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ हे राजा परिक्षित्! उन हविर्धानके पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र महाभाग्य बर्हिषद राजा बड़ा उग्रबुद्धि और धर्मपरायण हुआ और कर्मकाण्डमें पारंगत था, योग विद्यामें अत्यंत विलक्षण था ॥ ९ ॥ इस महाप्रतापी राजाने समस्त भूमण्डलमें कोई स्थान यज्ञ विना नहीं

छोड़ा और जिसके देवयजनमें बारम्बार यज्ञ होते थे और प्राचीन दिशाकी ओर अग्रभाग करके कुशाओंसे इस सब वसुधाको परिपूर्ण करदिया, इसीलिये इसराजाका नाम प्राचीनबर्हि हुआ * ॥ १० ॥ इसने ब्रह्माकी आज्ञासे शतद्रुति समुद्रकी पुत्रीसे विवाह किया, यह कन्या सर्वांग सुन्दरी, नवयौवना, किशोरवय, मनमोहिनी, छबिकी धाम, सोलह शृंगार किये सर्वभूषणसम्पन्न विवाहमें अग्निकी प्रदक्षिणा करहीथी, जैसे अग्नि सप्तऋ

सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् ॥ यां वीक्ष्य चारुसर्वांगीं किशोरीं सुष्ठ्वलंकृताम् ॥ परिक्रमंतीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥ ११ ॥ विबुधासुरगंधर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ॥ विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयंत्यैव नूपुरैः ॥ १२ ॥

षियोंकी स्त्री शुकी पर मोहित होगया था ऐसेही उसकी मनोहर कांति देखकर राजा प्राचीनबर्हि उसपर आसक्त होगया ॥११॥ उस नवविवाहिता शतद्रुतिने अपने नूपुरोंकी झनकारसे दश दिशाओंके दिग्पाल, देवता, दैत्य, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नागलोकके नागोंको मोहितकरलिया १२।

---

* **शंका**–राजा प्राचीनबर्हिने यज्ञमें बडे विस्तारसे पूर्वदिशाको कुशोंका मुख किया और पश्चिमदिशाको कुशोंका मूल किया, इसप्रकार कुशोंको बिछाकर अनेक यज्ञ किये, सात द्वीप पृथ्वी कुशोंके बिछौनेके नीचे होगई जैसे पलंग बिछौनेके नीचे होजाता है यह बडे कौतूहलकी समान सुननेमें आया और बडा अयोग्य वाक्य है कि सात द्वीप पृथ्वी कुशोंके बिछौनेके नीचे होगई. यह बात हम लोगोंको अत्यन्त कौतुकरूप जानपडतीहै.

उत्तर–मैत्रेयऋषीने सातद्वीप पृथ्वीको वसुधातल नहीं कहाथा ब्राह्मणोंका शरीर जो है उसको वसुधातल कहाथा, वसुधा नाम भगवान्का है उन भगवान्को जो हृदयमें धारण करे उसका नाम वसुधा है, भगवान्में प्रीतिरखना उसका नामभी वसुधा है, भगवान्के प्रीतिही सुन्दर आनन्दभवन है वही ब्राह्मणोंका हृदय है. और साक्षीकेलिये यह श्लोक हैं.

महीतलं न मुनिना प्रोक्तं हि वसुधातलम ॥ ब्राह्मणानां शरीरं तु कथ्यते वसुधातलम् ॥ १ ॥ येश्वरं च वसुं धत्ते सा प्रोक्ता वसुधा द्विजैः ॥ विष्णुप्रीतिस्तलं तस्या द्विजानां हृदयं स्मृतम् ॥ २ ॥ आत्मदेहं दर्शयित्वा विदुराय महामुनिः ॥ चकाराङ्गुलिनिर्देशं ब्राह्मणास्तेन तर्पिताः ॥ ३ ॥

भगवान्ने अपनी देह अपने हाथकी अंगुलीसे विदुरजीको दिखाई कि, हे विदुर! यह मेरा हृदय जो है सोई वसुधातल है इसी वसुधातलको प्राचीनबर्हि राजाने कुशाओंका बिछौना करके शरीरको ढकदिया और ब्राह्मणोंको तृप्तकर दिया, क्योंकि उनके बिनामाँगे दिया और संकल्प करनेके समय हाथमें कुश ले तौ कुशाका मुख पूर्वदिशाकी ओर रक्खे और कुशाकी मूल पश्चिमदिशाकी ओरको रखनी चाहिये. यह शास्त्रकी रीतिसे संकल्पकी बिधि है सो राजाने इसप्रकार कुशा हाथमें लेकर संकल्पकिया और ब्राह्मणोंके हृदय वसुधातलको कुशाओंके बिछौने के नीचे करदिया ऐसा अर्थ मैत्रेयजीने कहाथा इस प्राणियोंके वसनेवाली वसुधाको नहीं कहा था.

[१] यह कथा महाभारतमें इसप्रकार लिखीहै कि, एकसमय सप्त ऋषियोंकी यज्ञमें सप्तऋषिकी स्त्रीको देखकर अग्नि कामाग्निसेसंतप्त होउसपर मोहित होगया औरअग्निकी भार्या स्वाहा नाम सप्तऋषिभार्यारूपधा

प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ॥ तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥ १३ ॥पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ॥ दशवर्षसहस्राणि तपसाऽर्चंस्तपस्पतिम्॥ १४॥ यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ॥ तद्ध्यायंतो जपंतश्च पूजयंतश्च संयताः॥१५॥विदुर उवाच ॥ प्रचेतसां गिरित्रेण यथासीत्पथि संगमः ॥ यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत् ॥ १६ ॥ संगमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् ॥ दुर्लभो मुनयो दध्युरसंगाद्यमभीप्सितम् ॥१७॥ आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ॥शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः ॥ १८ ॥

प्राचीन बर्हिने शतद्रुति नाम भार्यामें दश पुत्र उत्पन्न किये, यह दशों प्रचेता नामसे विख्यात थे और सब एकसे नाम एकसे व्रत धारण करनेवाले और सब धर्मपरायण थे॥ १३॥सृष्टि रचनेके लिये पिताने इन सबको आज्ञा दी, तब यह सब तप करनेके लिये समुद्रके तटपर गये वहां इन्होंने जलमें खडे होकर दशसहस्र वर्षतक तप करके तपोंके पति श्रीमन्नारायणका पूजन किया ॥१४॥ जब वह तप करनेके लिये घरसे चले थे उससमय मार्गमें शिवजीने दर्शन देकर प्रसन्नतापूर्वक जिस मन्त्र और पूजनका उपदेश किया था, उसी उपदेशके अनुसार एकाग्रचित्त हो इन्द्रियोंको जीत वासुदेव भगवान्का ध्यान करने लगे ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले कि, हे ब्रह्मन्! प्रचेतानसे शिवजीका मार्गमें जिसप्रकार समागम हुआ और प्रीतिपूर्वक उनको उपदेश किया वह और जो दिनरातके तप करनेमें प्रसन्न हुए सो सब यथावत् वर्णन करो ॥१६॥ हे विप्रर्षे ! योगसाधनेवाले योगीजनभी आठ पहर जिन महादेवका एकाग्रमनसे ध्यान करते हैं, परन्तु साक्षात् उनका दर्शन नहीं पाते, ऐसे कल्याणरूप ब्रह्मानन्द सदाशिवका दर्शन प्राणियोंको होना महाकठिन है ॥ १७ ॥ भगवान् शिव आप आत्मारामभी हैं तो भी इस लोककी रक्षाकेलिये महाभयानक अपनी शक्तिको संगलिये घूमते फिरा करते हैं ॥ १८ ॥

—रिणी होके माया उसके वीर्य शुक्रीरूप करके अग्नि कामना करते हुए और उसपर अत्यन्त मोहित होगये. इसप्रकार यह संपूर्ण कथा समझनी चाहिये यहां इस नवविवाहिता नवोढा शतद्रुतिके नूपुरोंकी ध्वनिने दशों दिशाओंके देवता,दैत्य, गंधर्व, मुनि, सिद्ध,नर, नागादिकोंको जीतलिया ॥

मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसाऽऽदाय साधवः ॥ दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्यादृतचेतसः ॥ १९ ॥ समुद्रमुपविस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः ॥ महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥ २० ॥ नीलरक्तोत्पलांभोजकह्लारेंदीवराकरम् ॥ हंससारसचक्राह्वकारंडवनिकूजितम् ॥ २१ ॥ मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलतांघ्रिपम् ॥ पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥ २२ ॥ तत्र गांधर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ॥ विषिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदंगपणवाद्यनु ॥ २३ ॥ तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रमन्तं सहानुगम् ॥ उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥ २४ ॥ तप्तहेमनिकायाभं शितिकंठं त्रिलोचनम् ॥ प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥ २५ ॥ स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः धर्मज्ञाञ्छीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥ २६ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, वह साधु प्रचेता पिताकी आज्ञाको शिरपर धारणकर तप करनेकी अभिलाषासे पश्चिम दिशाको चलेगये॥ १९॥ चलते चलते समुद्रके निकट पहुँचे, तहाँ एक अत्यन्त विस्तृत महागम्भीर सागरके समान एक सरोवर देखा, वह सरोवर सज्जनोंके मनके समान निर्मल जलसे भर रहाथा और जलमें क्रीडा करनेवाले जलजन्तु मच्छ कच्छपादिक अत्यन्त प्रसन्नताके साथ प्रीतिपूर्वक आनन्दसहित रहते थे ॥ २० ॥ नीलकमल, रक्तकमल, उत्पल, अम्भोज, कह्लार, इन्दीवर आदि नानाप्रकारके कमलोंकी खानि थीं, जिसमें हंस, सारस, चकवा, चकवी, कारण्डव पक्षी जहाँ तहाँ मनोहर शब्दकर रहथे ॥ २१ ॥ मतवाले भ्रमरोंके सुन्दर सुरीले शब्दोंसे वृक्ष और लताओंके रोम खड़े हो रहेथे और कमलोंके समूहोंकी पराग पवनके संग दशों दिशाओंको सुगंधित कहरहीथी ॥ २२ ॥ तहाँ दिव्य मार्ग था, गंधर्वोंका मनोहर गान होरहाथा, सुन्दर मृदंग ढोलका शब्द सुनाई देताथा, उस मनोहर शब्दको सुनकर दशों राजपुत्र विस्मित होगये ॥ २३ ॥ उसी समय उस सरोवरसे पार्षदोंसहित श्रीभगवान् महादेवजीभी निकले तो इन दशों कुमारोंको आनन्दसहित शिवजीका दर्शन हुवा, उनके सन्मुख देवगण गन्धर्वआदि उनकी स्तुति कररहे थे ॥ २४॥ तपेहुए सुवर्णके समूहके समान कांतिमान् त्रिनेत्र प्रसन्न होनेमें सुमुख ऐसे नीलकण्ठ भूतनाथको देखकर महाआनन्दसेउन दशों कुमारोंने प्रणाम किया॥ २५॥ तब शरणागत प्रतिपालक, धर्मवत्सल, दीन दुःखहरण, धर्मके जाननेवाले शीलसंपन्न श्रीभगवान्शिवजी प्रीतिसहित

मधुरवाणीसे प्रचेताओंसे बोले ॥२६॥ रुद्रबोले कि, हे प्राचीनबर्हिके पुत्रो! जो कुछ तुम्हारी करनेकी इच्छा है सो हमने जानली.तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मैंने तुमको दर्शन दिया है॥ २७॥ जो कोई वेगसे परे साक्षात् त्रिगुण जीवसंज्ञितसे परे जो भगवान् वासुदेवकी शरणागतहै वह मेरा परमप्रियहै॥२८॥जो पुरुष अपने धर्ममें निष्ठा रखताहै वह सौ जन्ममें ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै,सहस्र जन्म जो पुण्यमें निष्ठा रखताहै वह मेरे पदको पाता है और जो परमभागवत हैं वे तो निःसन्देह मायारहित विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं । सब देवता और मैं अविकारीके अन्तमें परमेश्वरके लोकको प्राप्त होते हैं, अब मैं शिव होकर अधिकारीके समान वर्तमान हूँ॥ २९॥ तुम सब भागवत भगवत्के भक्त हो मुझको इसलिये अधिक

श्रीरुद्र उवाच॥यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ॥ अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम्॥२७॥यः परं रंहसः
साक्षात्त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् ॥ भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥२८॥ स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिं
चतामेति ततः परं हि माम् ॥ अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं पदं यथाऽहं विबुधाः कलात्यये ॥ २९ ॥ अथ
भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान्यथा ॥ न मे भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥३०॥ इदं विविक्तं जप्तव्यं
पवित्रं मंगलं परम्॥ निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यनुक्रोशहृदयो भगवा
नाह ताञ्छिवः ॥ बद्धांजलीन्राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥जितं त आत्मविद्धुर्य स्वस्तये स्व
स्तिरस्तु मे ॥भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ ३३ ॥

प्यारे हो, भगवद्भक्तोंसे परे और कोई दूसरा मुझको अधिक प्यारा नहीं है॥ ३० ॥ इसलिये यह स्तोत्र परम पवित्र और मंगलमय मोक्षदायक और सब विघ्नोंका शान्त करनेवाला है सो तुमसे कहता हूँ, तुम चित्त लगाकर सुनो और जिसप्रकार होसके उस प्रकार एकान्तमें बैठकर जप करना ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ऐसे परमदयालु दीनानाथ भगवद्भजनमें परायण, भगवान् शिवजी हाथ जोडे खडे देख,उन राजपुत्रोंको उपदेश करने लगे ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र बोले–कि, हे प्रभो ! आपकी महिमा बडे बडे आत्मज्ञानी पुरुषोंको परमानन्ददायक है तो वह आनन्द मुझको भी देना चाहिये,जो सदा सिद्धिदायक मङ्गलरूपहै आपने उसका सेवन कियाहै इसलिये मैं सबकी आत्माके अर्थ नमस्कार करता हूँ॥३३॥

कमल जिनकी नाभिमें है भूतसूक्ष्म और पञ्च महाभूत इन्द्रियोंके आत्मा सर्वान्तर्यामी अपने आप प्रकाशरूप जो वासुदेवरूपसे चित्तके नियन्ता निर्विकार हो सो हे भक्तिरूप! आपके लिये मेरा नमस्कारहै॥३४॥संकर्षणरूपसे आप अहंकारके हरनेवाले सूक्ष्म अनन्त और मुखाग्निसे प्रलयके समय लोकको दाह करनेवाले हो और विश्वके ज्ञानदायक यदुकुलके नायक सर्वान्तर्यामी प्रद्युम्नके अर्थ मेरा नमस्कार है ॥३५॥ सब इन्द्रियोंके ईश, सब इन्द्रियोंके आत्मा अनिरुद्धके निमित्त मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ,जो आप सूर्यरूप धारण कर समस्त भूमण्डलको अपने तेजसे प्रकाशित करतेहो और जो आप परमहंस पूर्ण क्षयवृद्धिरहित हो सो आपको प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ स्वर्ग मोक्षके द्वाररूप सदा पवित्र हृदयमें निवास

नमः पंकजनाभाय भूतसूक्ष्मेंद्रियात्मने ॥ वासुदेवाय शांताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥ ३४ ॥ संकर्षणाय सूक्ष्माय दुरं
तायांतकाय च ॥ नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायांतरात्मने ॥ ३५ ॥ नमोनमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेंद्रियात्मने ॥ नमः
परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ३६ ॥ स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ॥ नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय
तंतवे ॥ ३७ ॥ नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ॥ तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥३८॥ सर्वसत्त्वात्मदे
हाय विशेषाय स्थवीयसे ॥ नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च ॥३९॥ अर्थलिंगाय नभसे नमोऽतर्बहिरात्मने ॥
नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४० ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ॥ नमो धर्मविपाकाय
मृतवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥

करतेहो आपकेलिये नमस्कारहै, हिरण्यसम जिसका वीर्य, चातुर्होत्र करनेवाले यज्ञोंके साधनरूप और यज्ञोंका विस्तारकरनेवाले अग्निरूप मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥३७॥ पितृ और देवताओंके अन्नदाता, तीनों वेदोंके पति और यज्ञ वीर्यरूपवाले चन्द्ररूप आपको मैं बारंबार नमस्कार करताहूँ प्राणियोंके तृप्तिदायक और सब रसमय जलरूप आत्मा मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ सब जीवमात्रके शरीररूप, पृथ्वीरूप स्थूल तनधारी त्रिभुवनके पालनेवाले–इन्द्रिय शरीरके बलरूप पवनरूप ईश्वरको मेरा प्रणामहै॥३९॥ अर्थ चिह्न, शब्द, गुणोंसे सबको नाम देनेवाले आकाशरूप बाहिर भीतर जिसकी आत्मा पुण्यलोकरूप अत्यन्त तेजस्वी पवित्र स्वर्गरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥४०॥ प्रवृत्ति निवृत्ति मार्गरूप

नमस्ते आशिषामीश मनवे कारणात्मने॥नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे॥पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय
च ॥४२॥शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ॥ चेत आकूतिरूपाय नमो वाचो विभूतये॥४३॥दर्शनं नो दिदृक्षूणां
देहिभागवतार्चितम् ॥ रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेंद्रियगुणांजनम् ॥४४॥ स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्य्य-संग्रहम् ॥
चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ॥ ४५ ॥ पद्मकोशपलाशाक्षं सुंदरभ्रूसुनासिकम् ॥ सुद्विजं सुकपोलास्यं सम
कर्णविभूषणम् ॥ ४६ ॥ प्रीतिप्रहसितापांगमलकैरुपशोभितम् ॥ लसत्पंकजकिंजल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४७ ॥
स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ॥ शंखचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४८ ॥

पितृदेवरूप कर्मवाले धर्मफलदायक और मृत्युरूपसे अधर्म्मका फलरूप क्लेश देनेवाले आपको बारम्बार मेरा नमस्कारहै॥४१॥सब आशीर्वादोंके ईश्वर मनुरूप कारणरूप जिसकी आत्मा,दीर्घ धर्मवाले,अखण्ड ज्ञानरूप आदिपुरुष मंत्ररूप कृष्णमूर्तिको मेरा नमस्कार है ॥ ४२॥ कर्ता, कर्म, कारण, तीनों शक्तियों सहित, रुद्ररूपधारी अहंकारमय आनंद आत्माके लिये मेरा नमस्कार है अर्थ, चित्त,क्रिया, शक्तिरूप वाणीको नाना प्रकारसे उत्पन्नकरनेवाले विभूतिरूपके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ४३ ॥ सब भागवतोंसे पूजित अत्यन्त प्रियतम रूपधारी अपने भक्तोंके लिये सब इंद्रियें गुणअंजनरूप जो आपका दर्शन है, सो दर्शन कृपा करके हमसे दीन दासोंको दो,क्योंकि हमारे चित्तमें सदा इस दर्शनकी लालसा बनीरहती है॥ ४४ ॥ सघन वर्षाकालके मेघवत् श्यामवर्ण सब सुन्दरताकी राशि,सुन्दर विस्तृत चार बाहु शोभायमान, सकल सौंदर्यका मूल अत्यन्त रुचिर मुखकी छबि है ॥ ४५॥कमलकोशकी कोमल पँखुरी और पलाशपुष्पके समान शोभायमान नेत्र, सुन्दर भ्रू,सुन्दर नाक,सुन्दर दांत, सुन्दर कपोलवाला मुखारविंद जिसमें सुशोभित समकर्णसहित ॥ ४६ ॥ प्रीतिसे हास्ययुक्त नेत्र और अलकोंसे शोभायमान सुशोभित कमलकी पीली केशरके समान पीताम्बर धारण किये उज्ज्वल उज्ज्वल कुण्डल कानोंमें देदीप्यमान हैं ॥ ४७ ॥ दमकते हुए किरीट, वलय, हार,नूपुर और क्षुद्रघंटिकासे मंडित शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये वनमाला और कौस्तुभ मणिकी अद्भुत सम्पदाओंसे भूषित॥ ४८ ॥

सिंहके समान कन्धोंपर कुण्डलादि भूषणोंकी शोभा धारण किये ग्रीवामें कौस्तुभ मणि सौभाग्ययुक्त विराजमान विश्लेषरहित लक्ष्मीजीके स्वर्णरेखांकित पाषाण कसौटी रूप वक्षःस्थलमें शोभित है॥ ४९ ॥ पूररेचकसे संविग्न कङ्कणवत् मनोहर पीपल पत्रके समान उदर, श्वास और उच्छ्वासके कारण चलायमान त्रिबलीसे शोभित जलके भ्रमरके समान गंभीर नाभि, मानो उसीमेंसे विश्वकी उत्पत्ति हुईहै और फिर विश्वको उसीमें प्रवेश करनेके लिये उपस्थित हैं ऐजा जान पड़ता है ॥ ५० ॥ श्याम कटिपश्चाद्भागपर सुन्दर पीताम्बरके ऊपर सुवर्णकी कोंधनी पहिने समान चरण, जंघा ऊरुमें गम्भीर जानु शोभित हैं॥५१॥शरद्कालसम्बन्धी मनोहर कमलपत्रके समान शोभायमान कांतिवाले, नखोंकी कांतिसे अन्तःकरणके

सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत् सौभगग्रीवकौस्तुभम् ॥ श्रियानपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥४९॥ पूररेचकसंविग्नव
लीवल्गुदलोदरम् ॥ प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥ ५० ॥ श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ॥
समचार्वङ्घ्रिजंघोरु निम्नजानु सुदर्शनम् ॥५१॥ पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ॥ प्रदर्शय
स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरोमार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ ५२ ॥ एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सता ॥ यद्भक्तियो
गोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥५३॥ भवान् भक्तिमतां लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥ स्वाराज्यस्याप्यंभिमत एकां
तेनात्मविद्गतिः ॥५४॥ तं दुराराध्यमाराध्यं सतामपि दुरापया ॥ एकान्तभक्त्या को वान्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५५॥

अज्ञानका नाश करनेवाले पादारविंदसे अपने प्यारे ध्रुव प्रह्लादादिक भक्तोंके भय दूर करनेवाले आप अपने मनहरण स्वरूपका दर्शन हमको दिखाओ हे गुरो ! हमसे तमोगुण सेवियोंको मार्गके दिखानेवाले गुरु आपही हैं॥ ५२ ॥ जिस पुरुषको अपनी मलिन आत्माको शुद्धकरनेकी इच्छा हो, उसको चाहिये कि, आपकेइस मनोहर स्वरूपका ध्यान करे और अपने धर्मको न छोडे क्योंकि जो अपने धर्ममें स्थित है उसको आप भक्तियोग और अभय दान देनेवाले हो ॥ ५३ ॥ स्वर्गवासी देवताभी जिनकी आशा रखते हैं वह और आत्मज्ञानी लोगोंकी आप गति हो और देहधारियोंको दुर्लभ हो, परन्तु तोभी आप अपने भक्तिमान् पुरुषोंको सुलभ हो ॥ ५४ ॥ महात्माजनोंकोभी जिस भक्तिका

मिलना महादुर्लभहै,उसे एकांतभक्तिसे दुराराध्य आपकी उपासना करके और आपके मनोहर चरणारविन्दोंके मूल छोडकर और किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते,क्योंकि यह आनन्द स्वर्गादिकमेंभी नहीं मिलता॥५५॥जो काल अपने तेज और बलवीर्यके प्रभावसे अपनी भ्रुकुटीके चढानेहीसे विश्वका विध्वंस करसक्ता है,वहभी आपके चरणसेवियोंपर दृष्टि उठाकरभी नहीं देखसक्ता और उनपर अपना अधिकार नहीं चलासक्ता और दंड देना तो बहुत कठिन है॥५६॥भक्तजनोंका सत्संग करनेवालोंकी संमतिके आगे क्षणके समान न तो मैं स्वर्गको समझता हूँ और मुक्तिको, और मनुष्योंके आशीर्वादोंकी और राज्यआदिक सुखकी तो चर्चाही क्या है?॥५७॥ इसलिये पापहारी तीर्थरूप यशस्वी आपके चरणारविन्दहैं,

यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ॥ विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ ५६ ॥ क्षणार्धेनापि तुलये न
स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५७ ॥ अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिः
स्नानविधूतपाप्मनाम् ॥ भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥५८॥ न यस्य चित्तं बहिरर्थे
विभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ॥ यद्भक्तियोगानुगृहीतमंजसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥ ५९ ॥
यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ॥ तत्त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६० ॥ यो माययेदं
पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ॥ यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥६१॥

उनके सेवनकरनेसे और गंगाजीके स्नानसे जिनके बाहिर भीतरके सब पाप नष्ट होगयेहैं,सब जीवोंपर दया करतेरहतेहैं,निर्मल अन्तःकरण और शीलस्वभाववाले महात्मा पुरुषोंसे हमारा सत्संग बनारहै,यह अनुग्रह मैं आपका चाहताहूँ ॥ ५८ ॥ जब महात्मा पुरुषोंकी सेवा करनेके लिये चित्त विषयोंके विक्षेपसे रहित होजाय.और हृदय गुफाका तम दूर होजानेसे जब अन्तःकरण विशुद्ध होय तब उस चित्तमें योगीजनोंको आपकी अद्भुत गति और आपका मनोहर स्वरूप देखनेमें आता है ॥ ५९ ॥ जिस ब्रह्ममें यह सब विश्व दृष्टि आताहै और सब विश्वमें जो ब्रह्म दिखाई देता है सो तत्त्व परब्रह्म ज्योतिस्वरूप आकाशवत् सबमें आपही व्यापक हो और आपहीका विस्तार है ॥ ६० ॥ बुद्धिमें भेद करनेवाली माया है

सो आपके विषय कोई कामभी नहीं करसक्ती, ऐसी बहु धरणी मायासे जो ईश्वर आप निर्विकार हो इसविश्वको रचताहै, पालता है,नाश करता है, जिसमें किञ्चित् भेदबुद्धि नहीं, सत्यकी समान प्रकाशवान् है ऐसे स्वाधीन ईश्वरकी हम शरणागत हैं ॥६१॥ यह मुझको भलीप्रकार निश्चय है कि, आप मन्दभावसे रहित हो, तोभी पंचभूतइन्द्रिय और अन्तःकरणसे जानेजाते हो, सो महात्मालोग श्रद्धासहित नानाप्रकारकी क्रियाओंसे आपके अद्भुत रूपका अनेक विधियोंसे पूजन करतेहैं उन्हीं पुरुषोंको हम वेदशास्त्रमें चतुर कहते .हैं सो ऐसे विलक्षण स्वरूपको त्यागकर केवल ज्ञानमें मनको लगातेहैं.उनको हम विचक्षण नहीं समझते॥६२॥आपही एक आद्यपुरुष हो;क्योंकि प्रलयके समय तो आपकी मायाशक्ति निद्राके वशीभूत होजाती है और विश्व रचनेके समय, उस मायाशक्तिसे जब आप रज सत्त्व तमका भेद करतेहो, तब उन भेदोंसे महत्तत्त्व, अहंकार,

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ॥ भूतेन्द्रियांतःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६२ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ॥ महानहं खं मरुदग्निवाधराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥ ६३ ॥ सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ॥ अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः॥६४॥ स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः॥भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥ ६५ ॥

आकाश, पवन, अग्नि, जल, देवता,ऋषि,भूतगण और भी अनेक पदार्थोंकी खानि यह विश्व जिनसे उत्पन्न होताहै ॥६३॥आप अपनी शक्तिके प्रभावसे अपने रचेहुए विश्वमें प्रविष्ट होकर अपने आत्माके अंशसे उस विश्वरूप पुरमें चार चार प्रकारके जीवको रचतेहो.स्वेदज,अंडज,जरायुज, उद्भिज्ज, इन जीवोंमें आप प्रवेश करतेहो,इसलिये इस जीवका नाम पुरुषहै और ऋषि लोग बाहरभीतर वसके इन्द्रियोंके द्वारा सुखभोग भोगते हैं ॥६४॥ महाप्रचण्ड जिसका वेग सबको चलायमान करताहै सो यह काल है,उसको तुमने अपने वशमें कर रक्खाहै,पंचभूतोंसे पंचभूतोंका तत्त्व अनुमान करतेहो; जैसे मेघपंक्तियोंको पवन जहां चाहे तहां खैंच लेजातीहै;इसी प्रकार जीवोंको दूसरे जीवोंसे चलायमानकर आप खैंचलेजातेहो;

परंतु यह सब संसारका खैंचनेवाला आपका कालरूप किसीके देखनेमें नहीं आता॥६५॥प्रमत्त महाचिंतासे प्रवृद्ध जिसको लोभ, विषयोंमें जिसकी लालसा,और विषय प्राप्तहोनेपरभी अत्यन्त लोभ करनेवाले प्राणी, नित्य सावधानतासे रहनेवाले कालरूप आप क्षुधासे गलफुओंको चाटताहुवा सर्प जैसे मूसेको निगलजाताहै;ऐसेही झटपट आप उसको झपट लेतेहो ॥ ६६ ॥ ऐसा कौन पण्डित है जो आपके चरण कमलको त्यागेगा जो आप कहें वह अपमानसे व्यथितभी है और उनका शरीर जीर्णभी होगया है तोभी आपको कभी नहीं त्यागेंगे,जिसकी शंकासे हमारे गुरु ब्रह्माने आपके चरणारविन्दोंका पूजन कियाहै,जिनकी प्राप्तिके लिये दृढ विश्वाससे चतुर्दश मनुओंने मृत्युके भयसे जिनका भजन कियाहै ॥ ६७ ॥ हे ब्रह्मन्! हे परमात्मन्!! सब विश्व रुद्रके भयसे त्रासवान् होरहा है, इसलिये जाननेवाले जो हम हैं सो आपही हमारे शरणरूप और भयनाशक हैं ॥ ६८ ॥ महादेवजी बोले कि,हे नृपनन्दनो!एकाग्रचित्तकरके इस"रुद्रगीत" स्तोत्रका जप करो और स्वधर्ममें निष्ठा रक्खो और अन्तःकरण भगवत्को अर्पित करो इसीमें तुम्हारा मंगल होगा ॥६९॥ जो सबकी आत्मामें स्थित आत्माहै; और सब प्राणीमात्रमें स्थित हैं; उन्हींका पूजन ध्यान स्तुति और उन्हीं हरिका वारंवार स्मरण करो॥ ७०॥ इस योग आज्ञाको करके मुनिव्रत धारण करो और चित्तको सावधान करके सबजने आदर सत्कारपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करो और अभ्यास आदरसे इसका जप करो ॥ ७१ ॥ जब हम सब ब्रह्माजीके पुत्र भृगु आदिने सृष्टि रचनेकी इच्छा की; तब प्रथम प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने सृष्टिके बढ़ानेके लिये हमको यह स्तोत्र पढायाथा ॥ ७२ ॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्॥त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोहिरिवाखुमन्तकः ॥६६॥ कस्त्वतपदाब्जं विजहाति पण्डितोयस्तेऽवमानव्यथमानकेतनः॥विशङ्कयास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्ति मनवश्चतुर्दश ॥६७॥ अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन्विपश्चिताम्॥ विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भयागतिः ॥६८॥ इदं जपत भद्रं वो विशुद्धानृपनंदनाः॥स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः॥६९॥तमेवात्मानमात्मास्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम्॥ पूजयध्वंगृणंतश्च ध्यायंतश्चासकृद्धरिम्॥ ७० ॥ योगादेशमुपासाद्य धारयंतो मुनिव्रताः॥समाहितधियः सर्वमेतदभ्यसताऽऽदृताः ॥७१॥इदमाह पुराऽस्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः ॥ भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम्॥७२॥

हमने इसी स्तोत्रका पाठ करके तमोगुणको ध्वस्त किया और विविध प्रकारकी प्रजा रची ॥ ७३ ॥ जो मनुष्य नित्य सावधान होकर इस मंत्रका जप करे तो वह भगवान् वासुदेवमें परायण होगा और थोडेही कालमें कल्याणको प्राप्त होगा ॥ ७४ ॥ इस विश्वमें सब कल्याणोंका कल्याणदेनेवाला परमश्रेष्ठ और सबसे प्रधानयह ज्ञान है जिस पुरुषको ज्ञानरूप नाव प्राप्त हो जाती है, वह इस महादुस्तर अपार संसारसे बेखटके पार होजाताहै ॥ ७५ ॥ कोई श्रद्धासहित मेरे गायेहुए इस भगवत्स्तोत्रका पाठ करेगा,वह बिना प्रयास दुराराध्य भगवान् वासुदेवका आराधन करेगा ॥ ७६ ॥ परमेश्वरसे जो पुरुष जिस वस्तुकी आशा करता है, वह सब पदार्थ उसको प्राप्त होताहै और मेरे इस गीतको जो प्रेम

तेवयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ॥ अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥ ७३ ॥ अथेदं नित्यदा युक्तो
जपन्नवहितः पुमान् ॥ अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७४ ॥ श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ॥ सुखं
तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७५ ॥ य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ॥ अधीयानो दुराराध्यं हरिमा
राधयत्यसौ ॥ ७६ ॥ विंदते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरन् ॥ मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥ ७७ ॥ इदं
यः कल्य उत्थायप्रांजलिः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबधनैः ॥ ७८ ॥ गीतं मयेदं नरदेव
नंदनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ॥ जपंत एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमंते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥ ७९ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

और प्रीतिसे गाते हैं, उनसे भगवान् बहुत प्रसन्न होतेहैं और शीघ्र ज्ञान दे अपावनकोभी पावन कर अनेक प्रकारके मंगल देतेहैं ॥ ७७ ॥ जो कोई प्रातःकाल उठकर हाथ जोड़ श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करे,वा सुने;अथवा औरको सुनावै, वह इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता ॥ ७८ ॥ हे राजकुमारो! परमपुरुष परमात्माका जो यह स्तोत्र मैंने गायाहै इसको जपो और एकाग्रमन करके महातप करो,तो अन्तमें तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध होगा ॥ ७९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

१ **भजन**—पूजा इस विधि प्रभुकी करिये ॥ धूप दीप नैवेद्य पुष्प फल, हरिके सन्मुख धरिये ॥१॥ गद्गद कण्ठ अंग पुलकावलि. प्रेमनीर चखभरिये ॥ गाय गाय गुण प्रेमप्रीतिसों, भवसागर सों तरिये॥२॥ श्रीयदुवरकी चरण शरण गहि, कलि मलते क्यों डरिये ॥ शालिग्राम दया कर हे हरिये,पाप ताप सब हरिये ॥ ३ ॥

दोहा-मनबुद्धीके संगते, जन्म मरणको भाव ॥ पच्चिसवें अध्यायमें, कथा पुरञ्जन राव ॥२५॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि अब राजा पुरञ्जनका उपाख्यान वर्णन करतेहैं आप सावधानहोकर सुनिये जब इसप्रकार शिवजीने राजपुत्रोंको उपदेश किया तब प्रचेताओंने विधिपूर्वक शिवजीकी पूजा की. उस पूजाको अंगीकार कर, राजकुमारोंके देखते २ हर वहीं अंतर्धान होगये ॥ १ ॥ रुद्रका गाया: हुआ भगवत्स्तोत्रका जप करते करते उन सब प्रचेताओंको जलके भीतर खडे खडे दश सहस्र वर्ष बीतगये ॥२॥ हे विदुर ! प्राचीनबर्हि राजाके मन कर्मोंमें अत्यन्तही आसक्त था, इस परमकृपालु वेदांततत्त्वज्ञाता नारदजीने उसको ज्ञानोपदेश किया ॥३॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! कर्म कर करके तुम कौनसा कल्याण चाहते हो ? एक कल्याण तो वह होता है कि, जिसमें दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्तिहो सो इस यत्नके करनेसे यह प्राप्त नहीं होसकता ॥४॥ राजा प्राचीनबर्हि बोले कि, हे महाभाग ! मेरी बुद्धि तो कर्मोंमें बिंध रही है, सो मैं कल्याणको नहीं जानता आप मुझे ऐसे निर्मल ज्ञान कहो कि, जिसके प्रभावसे मैं कर्मोंके बंधनसे मुक्ति पाऊँ ॥५॥ जिसमें अनेकप्रकारके छल छिद्ररूप धर्म हैं, ऐसे घरमें पुत्र, दारा, धनको मुख्य समझनेवाले अज्ञानी लोग संसारमार्गमेंही घूमते फिरते रहते हैं और परमेश्वरको नहीं जानते ॥६॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे राजन् ! हे प्रजापते! आपने अपने यज्ञमें निर्दई बनकर सहस्रों पशुओंको मारडाला, उन जीवोंको देखकर तुमको दया नहीं आई॥७॥

मैत्रेय उवाच ॥ इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः ॥ पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवांतर्दधे हरः ॥ १ ॥ रुद्रगीतं
भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ॥ जपंतस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥ २ ॥ प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ॥
नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥ श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणात्मन ईहसे ॥ दुःखहानिः सुखावाप्तिः
श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ॥ ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय
कर्मभिः ॥ ५ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः ॥ न परं विंदते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥
भोभोः प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे ॥ संज्ञापिताञ्जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७ ॥

यह सब पशु तुम्हारा मरण चाहते हैं और तुमने जो जो दुःख इनको दिये हैं उनको स्मरण कर करके अपने मनमें क्रोध उत्पन्न करते हैं जब तुम मरोगे तो यह लोहेके मढे हुए शृंगोंसे तुम्हारा शरीर विदीर्ण करेंगे ❋ ॥ ८ ॥ अब मैं इस विषयमें एक पुरातन इतिहास वर्णन करता हूँ जिसमें राजा पुरञ्जनका चरित्र है, वह आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! बड़ा यशस्वी एक पुरंजन नाम राजा था, जिसका अविज्ञात नामक एक सखा था. जो सब चेष्टाओंको जानता था ॥ १० ॥ इस कथाको आगे

एते त्वां संप्रतीक्षंते स्मरंतो वैशसं तव ॥ संपरेतमयःकूटैश्छिंदंत्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥ अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् ॥ पुरंजनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥ ९ ॥ आसीत्पुरंजनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः ॥ तस्या विज्ञातनामाऽऽसीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥ १० ॥ सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ॥ नानुरूपं यदाविंदद भूत्स विमना इव ॥ ११ ॥ न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ॥ कामान्कामायमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये॥ १२ ॥

पंचमस्कन्धमें विस्तार सहित वर्णन करेंगे और किसी किसी कठिन शब्दका व्याख्यान जहाँ शब्द आवेगा, उसको वहीं कहेंगे. जैसे "स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः। न विज्ञातं चेष्टितं यस्य स ईश्वरः तस्य सखा" अविज्ञात नामा पुरंजन जीवका नाम है, अविज्ञात चेष्टा वाला अविज्ञात ईश्वरका नाम है; वह पुरंजन राजा अपनी राजधानीके लिये उत्तम स्थानके ढूँढ़नेको समस्त भूमंडलमें फिरा, परन्तु अपने समान कोई स्थान नहीं पाया, तब मनमें अत्यन्त दुःखी हुआ॥ ११॥ विषयसुख भोगनेवाले उस राजाको पृथ्वीपर जितने पुर हैं उनमेंसे एक पुरभी सब

❋ शंका—नारदमुनिने प्राचीनबर्हि राजासे कहा, कि राजा यज्ञमें तुमने बहुत जीव मारेहैं सो वह सब जीव तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं. कि जब राजाका देहान्त होगा तो राजा इसी मार्गमें होकर अवेगा तो हम उससे अपना पलटा लेंगे और जैसे झटका झटकाकर हमको मारा है इसी प्रकार हम उसको मारेंगे राजा जब तुम मरोगे तो तुम्हारा जीव उसी पथको जायगा, तब तुमको वह सब जीव कुठारसे काटेंगे. हम कहते हैं कि, जिस समय देहको जीव त्यागता है उसी समय जैसा कर्म जीव करता है वैसेही योनियोंमें जन्म लेता है फिर बहुत दिन मार्गमें बैठना वैरियोंको देखना कुठारोंसे काटना, यह बातें नारदजीने क्यों कहीं?

उत्तर—जो प्राणी जिस प्रकार जीवोंको मारता है उसीप्रकारका रूप यमराजके दूत धारण करके मारनेवाले प्राणियोंको बडा दुःख देते हैं उस समय उस जीवको ऐसा विदित होता है कि जिसको मैंने मारा वह यही है, यह नहीं ज्ञात होता है कि, यह वह नहीं है. यह तो यमके दूत हैं, इसलिये नारदजीने जीवका मार्गमें बैठना वर्णन किया है.

सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला वह पुर कौनसेहैं ? पशु, पक्षी, कीटादिक, जो जो देह हैं, वह सब दुःखोंकी खान हैं, कोई मनोवांछित सुखका देनेवाला नहीं और है तो मनुष्यदेह है सो अनेक जप तप करनेसे प्राप्त होताहै, इसलिये और कोई दूसरा देह उसको सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला ॥ १२ ॥ एक समय वह राजा फिरता फिरता हिमाचल पर्वतकी दक्षिणभूमिके नीचे चलागया वहां उसने एक अद्भुत नगर देखा कि जिसमें अत्यन्त सुन्दर नव द्वार सर्व सुलक्षण संपन्न किसीप्रकारका दोष उसमें नहीं जानपड़ा, वह मनुष्यदेह था, उसमें मुख, नेत्र, श्रवण, नासिका, गुदा, लिंग, यह नव द्वार हैं, वहां अन्धा, लँगडा, लूला, कोईभी अंगवैकल्यरूप दोष नहीं था. हिमाचलके दक्षिण ओर कहनेका कारण यह है कि, भरतखंड हिमाचलके दक्षिणहीकी ओर है, जो भरतखंड कर्मभूमि कहलाताहै ऐसा मनोहर नगर देखा ॥ १३ ॥ यह नगर, प्राकार, उपवन, अटारी, खाई, झरोखे, तोरणोंसे अत्यन्त देदीप्यमान था और सोने, चांदी, लोहेके शृंगोंसे चारों और सब भवन जगमगा रहेथे. यह जो उस नगरकी शोभा वर्णन की, वह जो अष्टांग और देहमें षट्चक्र हैं, वही मंदिर अटा अटारी हैं और वह जो राजस, तामस, आदिक चित्तकी वृत्तियां हैं, वेही स्थानोंपर सोने, चांदी, लोहेकी कलश कलशियां हैं ॥ १४ ॥ इस नगरीके मंदिर, स्थान, नीलमणि, स्फटिक, वैडूर्य्य, मुक्ता, मरकतमणि और माणिकादिरत्नोंके बनेहुए हर्म्यस्थलीसे प्रकाशित हैं, श्रीयुक्त नागपुरी अर्थात् नागलोगोंकी भोगपुरीसे इस नगरीकी शोभा कुछ न्यून नहीं थी ॥ १५ ॥ कहीं सभा, चौराहे, राजमार्ग, हाटे, कहीं विश्रामस्थान, ध्वजा, पताका और मृगोंकी वेदियोंसे संयुक्त अत्यन्त शोभायमान थे ॥ १६ ॥ इस पुरीके बाहिरकी ओर एक सुंदर उपवन दिव्य वृक्षलताओंसे सघन चन्दनादिसे सुगंधित होरहाथा, तालोंमें कंजोपर भ्रमरोंका

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ॥ ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरीं लक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥ प्राकारोपवनाट्टालपरिखै रक्षतोरणैः ॥ स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥ १४ ॥ नीलस्फटिकवैडूर्यमुक्तामरकतारुणैः ॥ क्लृप्तहर्म्य स्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ॥ चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवे दिभिः ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ॥ नदद्विहंगालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥

गुंजार और अनेक प्रकारके जहाँ तहाँ कोलाहल होरहेथे ॥३७॥ तापत्रयकी हरनेवाली पुष्प और शीतल जलके झरनोंके कणोंसे लगी हुई पवन बह रहीथी उससे चलायमान मूँगोंके समान वृक्षोंकी शाखा और पत्तोंकी शोभा सरोवरके जलमें झलक रही थी उन तालोंमें कमलिनी खिलरहींथीं उनकी पराग जो उड़तीथी उससे सब भूमि सुगंधित होरहीथी ॥१८॥ अनेक वनके मृगसमूह मुनिव्रत धारण किये, अहिंसाधर्मका पालन कररहेथे और निर्भय एकसंग विचरते फिरतेथेकोकिला कुंजोंमें जो कूज रहेथे तो उनकी मधुर वाणियोंसे यह बात ज्ञात होतीथी,कि मानों पथिकोंको अपने निकट बुलारहे हैं॥१९॥ऐसा मनरंजनपुर देखकर पुरञ्जनने वहां निवास किया तदुपरान्त एक दिन प्रसन्न मन हो उसपुरके उपवनमें विहार करने गया तो वहां क्या देखा ! कि उस उपवनमें अपनी इच्छासे एक सुन्दर स्त्री दश अनुचरोंको साथ लिये फिरती है और एक एक दासीके संग सौ सौ पुरुष

हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ॥ चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥ १८ ॥ नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ॥ आहूतं मन्यते पांथो यत्र कोकिलकूजितैः॥१९॥यदृच्छयाऽऽगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ॥ भृत्यैर्दशभिरायांतीमेकैकशतनायकैः ॥ २० ॥ पंचशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः ॥ अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥ २१ ॥ सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ॥ समाविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुंडलश्रियम् ॥ २२ ॥ पिशंगनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ॥पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव ॥ २३ ॥ स्तनौ व्यंजितकैशोरौ समवृत्तौ निरंतरौ ॥ वस्त्रांतेन निगूहंतीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥ २४ ॥

उनके चारों ओर खडे रक्षा कररहे हैं ॥ २० ॥ एक पाँच शीशवाला सर्प उस मनोरमा स्त्रीकी रक्षामें उपस्थित है;वह कामरूप कामिनी जिसकी सोलह वर्षकी अवस्था परमसुन्दरी उस उपवनमें अपने लिये किसी वरको ढूँढती फिरती है॥२१॥उस यौवनवती बालाके दाडिम बीजकेसे दांत, शुककीसी नासिका,आरसीके सदृश गोल कपोल,चन्द्रमाके समान श्रेष्ठ मुख और एक प्रकारके दोनों कुण्डल कानोंमें विराजमान हैं॥२२॥पीले रंगके वस्त्र पहिरे,सुन्दर कटिपश्चाद्भागवाली श्यामवर्ण अतिसूक्ष्म कटिमें सुवर्णकी कौंधनी धारण किये,चपलाकासा चंचलाहट और चरणोंमें रत्न जटित नूपुरकी झनझनाहटसे ऐसा विदित होताथा मानो देवमाया पृथ्वीपर उतर आई॥२३॥यौवनकी अवस्थाकी झलकाहटसे कंचनके कलशके

समान स्तन प्रगट होरहेहैं, दोनों इकसार चकवी-चकवाके समान व्यवधान रहित थे; वह मत्तमतंग गतिवाली लज्जाके मारे वारंवार उनको अञ्चलसे ढाँपतीथी॥२४॥ लज्जासहित मंदमुसकानसे अत्यंत शोभायमान दृष्टि आतीथी. वह चञ्चलाक्षी मनोहर कटाक्षसे और ऊपरकी ओर घूमतीहुई भ्रुकुटीरूप धनुषसे छूटेहुए प्रेमभरे बाणोंसे और नेत्रोंकी अनीरूप भालोंसे राजा पुरंजनके हृदयमें शालहोगये, तब राजा पुरञ्जनने बडी चतुराईके साथ उस मृगनयनीसे बूझा॥२५॥ हे पिकवयनी! तुम कौन हो? और किसकी दुहिता हो और हे सती! यहां कहांसे आईहो, यह पुरी किसकी है? नगरीके निकटवर्ती इस उपवनमें किसकारण फिरतीहो? और क्या तुम्हारी इच्छा है? सो मुझसे कहो॥२६॥ यह ग्यारह जो महाभट तेरे संगहैं यह कौन हैं? इनमें ग्यारहवाँ बड़ा बलवान् जानपड़ताहै, सो इसका क्यानामहै? और सौ सौ ललना जो इनके साथहैं, यह कौनहैं और यह जो

तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ॥ स्निग्धेनापांगपुंखेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा॥२५॥ का त्वं कंजपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ॥ इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे॥२६॥ क एतेऽनुपथा ये ते एकादश महाभटाः ॥ एता वा ललना सुभ्रु कोऽयं तेऽहिः पुरस्परः ॥ २७ ॥ त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहोवने ॥ त्वदंघ्रिकामाप्तसमस्तकामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥ २८ ॥ नाऽऽसां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ॥ अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥ २९ ॥

तेरे आगे आगेरक्षाके लिये सर्प चलताहै यह कौनहै? ॥२७॥ तुम लज्जा तो नहीं हो? जो धर्म अपने पतिको ढूँढती फिरोहो? वा भवानी हो? जो शिव ब्रह्मज्ञानीको खोजोहो? जैसे सरस्वती ब्रह्माका और लक्ष्मी नारायणका अनुसरण करतीहै, ऐसे मुनिवत् इस एकांत वनमें किसके अनुसरणमें विचरती फिरतीहो? मैं भलेप्रकार जानताहूँ कि तुम्हारा जो प्यारा प्रीतम होगा उसकी सब अभिलाषा तुम्हारे चरणारविंदके प्रभावसे परिपूर्ण होती होंगी, अब मुझको सबप्रकारसे निश्चय होताहै कि, तुम साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी हो परंतु यह बताओ कि, तुम्हारे हस्तके अग्रभागोंमें जो कमलका फूल था, वह कहां गिरादिया ॥ २८ ॥ हे सुमुखि! मैं भलीभाँति जानताहूँ कि तुम पूर्वोक्त स्त्रियोंमें नहीं हो और यह सब देवांगना हैं मध्यमें भूमिकी छूनेवाली और कोई नहीं है. इसलिये लक्ष्मी जैसे श्रीनारायणके साथ वैकुण्ठलोकको शोभित करतीहै; ऐसे मैं जो महावीर

अनेक कर्मकारी सकल सुलक्षणधाम हूँ, मेरे साथ रहकर तुम इस पुरीको सुशोभित करो. क्योंकि मेरे साथ इस पुरीमें रमण करने योग्य तुमही हो ॥२९॥ हे शोभने! तेरी लाजभरी मृदु मुसकान, घूमती भ्रुकुटीसे प्रेरण कियाहुआ तुम्हारी दृष्टीकी तिरछी चितवनकी पैनी अनीसे खंडित इन्द्रिय वाला मुझको बाधा करता है ॥३०॥ इसलिये हे मृदुहासिनि! तुम्हारा यह मनोहर मुखारविन्द इन्दुका लजानेवाला, जोकि बाँकी भ्रुकुटी और चंचल नेत्रोंसेशोभित, लम्बे लम्बे श्याम पूर्ण अहिशावकसम अलकोंके समूहसे घिराहुआ कोकिलावत् मधुरवाणी बोलनेवाला व इन्दुकालजानेवाला जो कि यह तुम्हारा मनोहर मुखारविंदहैसो तुम लाजके मारे अपने मुखको मेरे सन्मुख नहीं करती ॥ ३१ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, इस प्रकार

यदेष माऽपांगविखंडितेंद्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भुवा ॥ त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण
शोभने ॥ ३० ॥ तदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालंबिनीलालकवृंदसंवृतम् ॥ उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं यद्व्रीड
या नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं पुरंजनं नारी याचमानमधीरवत् ॥ अभ्यनंदत तं वीरं
हसंती वीरमोहिता ॥३२॥ न विदाम वयं सम्यक्कर्तारं पुरुषर्षभ ॥ आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥३३॥
इहाद्य संतमात्मानं न विदाम ततः परम् ॥ येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः॥ ३४ ॥ एते सखायः सख्यो मे
नरा नार्यश्च मानद ॥ सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ॥ ३५ ॥

राजा पुरंजन अधीरवत् उस नारीके सन्मुख याचना कर रहेथे. तब वह नारीभी राजाकी छबि देखकर मोहित होगई ॥ ३२ ॥ और अत्यन्त आदरसत्कार करके राजाका वचन मान हँसकर बोली, हे पुरुषसिंह! मैं उसका नाम नहीं जानती कि, किसने मुझे उत्पन्न कियाहै और यह भी विदित नहीं कि, मेरा क्या नाम रक्खाहै और क्या गोत्र है ॥ ३३ ॥ हे वीर! मैं यह भी नहीं जानती कि, कबसे मेरी आत्माहै मुझको तो केवल इतनी सुधि है कि, अभी मैं इस उपवनमें आई हूँ इससे अधिक और कोई बात मुझको ज्ञात नहीं. मैं इतनाभी तो नहीं कहसकती कि, यह नगरी किसने वसाई और कौन इसका बनानेवालाहै ॥ ३४ ॥ हे मान देनेवाले! यह जो ग्यारह पुरुष हैं सो मेरे मित्रहैं, यह नारी जो हैं यह मेरी सखीहैं और जब मैं सोजातीहूँ तो यह नाग

जागता रहताहै और इस नगरकी रक्षा करताहै॥३५॥हे शत्रुनाशक!आपने यह बहुत अच्छा किया जो यहाँ शुभागमन किया मुझको परमानन्द हुआ आपका कल्याण होय जो आपको सांसारिक विषयवासनाओंके भोगनेकी चाहनाहै तो मैं अपने बंधुओं समेत और इनके साथ जो यह स्त्रीहैं, इन सबको साथ लेकर आपकी सेवा करूंगी॥३६॥हे विभो! यह जो नवद्वारकी नगरी है इसको आप अपनी समझकर इसमें विराजमान हो,सौ वर्षतक मेरे संग सुखसे आनंद भोग करो॥३७॥ आपसे अधिक रसिकशिरोमणि और दूसरा पुरुष कौनहै, जिससे मैं रमण करूं,जो कि न तो रतिके आनंदको जानताहै, न वह पण्डितहै,न किसी औरही विद्यामें विचक्षणहै, सब विषयवासनाओंको त्याग चितवन कर बैठगयाहै,न परलोककी चिंताहै, न इस लोककी चिंता है,सो पशुप्राय है ॥ ३८॥ इस गृहस्थाश्रममें धर्म, अर्थ,काम, पुत्र, सुख,मोक्ष,अमृतसम सुयश,शोक और रजोगुण जिसमें लेशमात्रभी नहीं ऐसे निर्मल लोक बहुत मिलते हैं.परंतु संन्यासी लोग इनको कुछ नहीं समझते॥३९॥सब लोग इस गृहस्थाश्रम हीको पितृ,देवता,ऋषि, मनुष्य, पशु, पक्षी, सब जीवमात्रके आत्माका परमसुख देनेवाला कहते हैं ॥ ४०॥ वीरोंमें विख्यात, उदार, रूपवान्, प्रियदर्शनदायक, आपसरीखे पतिको पाकर मेरे समान कौन ऐसी स्त्री है जो आपसे वरको न वरे ॥४१ ॥ हे महाबाहो ! भुजंगदेहसमान लम्बी भुजावाले आपसे पुरुषमें किसका मन आसक्त न होगा. जो आप अनाथ समूहोंके सब दुःखको दयायुक्त मंद हास्यके अवलोकनसेही पीडा दूर

दिष्ट्याऽऽगतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे ॥ उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबंधुभिररिंदम ॥ ३६ ॥ इमां त्वमधि
तिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो ॥ मयोपनीतान्गृह्णानः कामभोगाञ्छतं समाः ॥ ३७ ॥ कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञ
मकोविदम् ॥ असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम् ॥ ३८ ॥ धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानंदोऽमृतं यशः ॥ लोका
विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥ ३९ ॥ पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ॥ क्षेम्यं वदंति शरणं भवे
ऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥ ४० ॥ का नाम वीरविख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् ॥ न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं
पतिम् ॥ ४१ ॥ कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ॥ योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धत
स्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥ ४२ ॥

करनेके लिये विचरते फिरतेहो ॥ ४२ ॥नारदजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार वह स्त्री–पुरुष दोनों उस स्थानपर परस्पर रीति प्रीतिकी बातें कर पुरंजनीका हाथ पकड़, राजा पुरंजन उस पुरीमें प्रवेश कर सौ वर्षकी अवधि बांधकर आनंदभोग करनेलगे ॥ ४३ ॥ जहाँ तहाँ उस राजा पुरंजनकी उत्तम कीर्ति गायक लोग ललित रागोंमें गारहेथे और स्त्रीसहित पवित्र पुष्करिणीमें स्नान करके जलक्रीडा कररहे थे ॥ ४४ ॥ उसी पुरीमें जो सात द्वार हैं वह पृथक् पृथक् देशोंके जानेके मार्ग हैं, सात द्वार तो ऊपरके हैं और दो द्वार नीचे हैं. मुख१नासिका २ नेत्र२ कान२ यह सात ऊपरके द्वार हैं और गुदा, लिंग यह दो नीचेके द्वार हैं, यह नवों छिद्र पृथक् पृथक् विषयोंके भोगके लिय बने हैं, इसमें जो सत्यस्वरूप आत्माराम है उसको कोई नहीं जानता ॥ ४५ ॥ उस पुरीमें पांच (५) द्वार तो पूर्वकी ओर हैं, एक दक्षिणकी ओर है, एक उत्तरकी ओर और दो पश्चिमकी ओर हैं. हे महीश्वर ! अब इनके नाम पृथक् पृथक् मैं तुमसे कहताहूँ ॥ ४६ ॥ पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी दो द्वार नेत्र हैं । पटवीजनेकी नाईं थोड़ा प्रकाश करता है सो वामनेत्र है और अधिक प्रकाश करता है सो दक्षिण नेत्र है । यह दोनों एक सूधपर बनाये गये हैं, इन दोनों द्वारोंमें राजा पुरंजन विभ्राजित नाम (रूप) देशमें द्युमान् नाम (चक्षुइन्द्रिय) मित्रके साथ जाताहै ॥ ४७ ॥ नलिनी और नालिनी नाम (नाक) दो द्वार पूर्वकी ओर हैं । यहभी एकही सूधमें हैं, वामदक्षिण दोनों नाकके छिद्र हैं. इन द्वारोंसे राजा पुरंजन अवधूत (घ्राण) नाम सखाके संग सौरभ नाम (गंध) देशमें जाता है ॥ ४८ ॥ उसी दिशामें मुख्या (मुख)

नारद उवाच ॥ इति तौ दंपती तत्र समुद्य समयं मिथः ॥ तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥ ४३ ॥ उपगी
यमानो ललितं तत्रतत्र च गायकैः ॥ क्रीडन्परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥ ४४ ॥ सप्तोपरि कृता द्वारः पुर
स्तस्यास्तु द्वे अधः ॥ पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥ ४५ ॥ पंचद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ॥
पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥ ४६ ॥ खद्योताविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ विभ्राजितं जनपदं
याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥ ४७ ॥ नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति
सौरभम् ॥ ४८ ॥मुख्या नाम पुरस्ताद्द्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ ॥ विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥ ४९ ॥

११८

पितृहूर्नृपपुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरंजनः ॥राष्ट्रं दक्षिणपंचालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५० ॥ देवहूर्नाम पुर्या द्वारुत्तरेण पुरंजनः ॥
राष्ट्रमुत्तरपंचालं याति श्रुतधरान्वितः॥ ५१ ॥ आसुरी नाम पुर्या द्वास्तया याति पुरंजनः॥ ग्रामकं नाम विषयं
दुर्मदेन समन्वितः ॥ ५२ ॥ निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः ॥ वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः
॥ ५३ ॥ अंधावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ ॥ अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥ ५४ ॥ स यर्हीं
तः पुरगतो विषूचीनसमन्वितः॥ मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥ ५५ ॥

नाम पांचवां द्वार है इस द्वारसे पुरंजन राजा (बोलना) अनेकप्रकारके अन्नका स्वाद लेना,रसज्ञाता,व्यवहारकारी,अन्न नाम देशमें रसज्ञ नाम (रसना) प्रीतमके साथ जाता है ॥ ४९ ॥ इस पुरीमें पितृहू (दक्षिणकर्ण) दक्षिणकी ओरके पितरोंका बुलानेवाला और देवहू (वामकर्णः) वाम ओरका कर्ण देवताओंका बुलानेवालाहै, इन द्वारोंसे राजा पुरंजन दक्षिण पांचालदेश(प्रवृत्तिमार्गवाला.कर्मकाण्डविषयक शास्त्र)में श्रुतिधर नाम (श्रोत्रइन्द्रिय) अपने प्यारेके साथ जाताहै ॥५०॥इस पुरीमें देवहू नाम (वामकर्ण) यह द्वार उत्तरकी ओर देवताओंका बुलानेवाला है. इस द्वारसे राजा पुरंजन श्रवणसे उत्तर पांचाल नाम (निवृत्तिशास्त्र) देशमें श्रुतिधर नाम (श्रोत्रइन्द्रिय) सखाके साथ जाताहै ॥ ५१ ॥ इस पुरीमें आसुरी नाम (शिश्न) पश्चिमकी ओरका द्वार है, इस द्वारसे राजा पुरंजन दुर्मद नाम (उपस्थइन्द्रिय) मित्रके साथ ग्रामक (मैथुनसुख) नाम देशमें जाताहै ॥ ५२ ॥ निर्ऋति नाम (गुदा) पश्चिमकी ओरका द्वार है इस द्वारसे राजा पुरंजन लुब्धक नाम (पायुइन्द्रिय) मित्रके संग वैशस नाम (मलत्याग)देशमें जाता है ॥ ५३ ॥ इस मनोहर पुरमें नव द्वारोंके व्यतिरिक्त निर्वाक् (चर) और पेशस्कृत (हाथ) नाम दो द्वार औरभी हैं, इनपर दो अंधे द्वारपाल सदा बैठे रहते हैं परंतु यह कभी खुलते नहीं, सदा बंदही रहतेहैं, इनमेंसे निर्वाक् नाम द्वारसे इन्द्रियोंका राजा पुरंजन चलाताहै दूसरे द्वारवाला अंधा उससे कार्य कराता है ॥ ५४॥ यह राजा विषूचीन (मन) नाम द्रष्टाको साथ लेकर अपने अंतः पुर(हृदय)में जाता है, तब अपनी भार्या (बुद्धि) और पुत्रों (इन्द्रियोंके परिणाम) की संगतिमें मोह(तमोगुणका कार्य) प्रसाद(सत्त्वगुणकार्य)

और अत्यन्त हर्ष (रजोगुणकार्य) को प्राप्त होताहै॥५५॥इसप्रकार कर्मोंके वशीभूत हो कामकी आतुरतासे मोहके जालमें फँस,ठगाहुवा यह मूर्ख राजा पुरंजन (जीव) अपनी पत्नी (बुद्धि) के आज्ञानुसार कार्य करनेवाला ॥ ५६ ॥ जिस समय वह बाला पुरंजनी मदिरा पीतीहै तो यह आप मदिरा पीताहै उसके मदमें ऐसा विह्वल होगया कि,जो कुछ वह करती सोही यह करता,जब वह भोजन करती और जल पीती तो उसीसमय आपभीभोजन करता और जल पीता॥५७॥जब पुरंजनी गाती तो यहभी गाता,जब वह रोती तो आपभी रोने लगता,जब वह हँसे तो आपभी हँसनेलगे,जब वह बोलती तो आपभी बोलता ॥५८॥जब वह पुरंजनी भागती तो आपभी भागता, वह बैठजाती तो आपभी बैठजाता,जब वह सोती तो आपभी सोजाता, जब वह उठबैठती तो आपभी उठ बैठता॥५९॥जो पुरंजनी किसीकी बात सुनती तो यहभी सुनता और पुरंजनी किसीकी ओर देखती तो यह भी देखता, वह कुछ अपनी नासिकासे सूँघाती तो यहभी सूँघता,जो वहकिसीको छूती तो यह भी उसको स्पर्श करता ॥६०॥जो उस पुरंजनीको शोकाकुल देखे तो आपभी शोकके समुद्रमें डूबजाय,जो उसको हर्षित देखे तो आपभी हर्षित होजाय,जब वह प्रफुल्लित होती तो आपभी प्रफुल्लित होता॥६१॥जिससे सब प्रकारसे उसको स्त्रीने ठगकर ऐसा वशमें करलिया, इसलिये उसकी,विना इच्छा वह कोई कार्य नहीं करसक्ताथा.और मृगकी तरह वशीभूत रहताथा॥६२॥इति श्रीम०च०भा०टी०पुरंजनपुरंजनीरमणचरित्रवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

एवं कर्मसु संयुक्तः कामात्मा वंचितोऽबुधः ॥ महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥ ५६ ॥ क्वचित्पिबंत्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः ॥ अश्नंत्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥ ५७ ॥ क्वचिद्गायति गायंत्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् ॥ क्वचिद्धसंत्यां हसति जल्पंत्यामनुजल्पति ॥ ५८ ॥ क्वचिद्धावति धावंत्यां तिष्ठंत्यामनुतिष्ठति ॥ अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥ ५९ ॥ क्वचिच्छृणोति शृण्वत्यां पश्यंत्यामनुपश्यति ॥ क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रंत्यां स्पृशंत्यां स्पृशते क्वचित् ॥६०॥ क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ॥ अनुहृष्यति हृष्यंत्यां मुदितामनुमोदते ॥ ६१ ॥ विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवंचितः ॥ नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा-छव्विसवें आखेट अरु,जाग्रतस्वप्नवृतान्त । रहो नारिके नेहमें, वियो नाहिं चित शान्त ॥२६॥ श्रीनारदजी बोले कि, वह महाधनुषधारी पुरंजन राजा (जीव) एक समय सुवर्णका कवच(रजोगुण) पहन कञ्चनमय रथ (स्वप्न अवस्थासम्बन्धी देह) में बैठकर अक्षय तूणीर (अनंत वासनाओंसे भराहुआ अहंकार) पंचप्रस्थ नाम(पांचविषय)वनमें मृगया खेलनेके लिये गया वह रथ अत्यन्त वेगगामी और शीघ्र चलनेवाला था; (स्वप्नअवस्थाका देह जाग्रदवस्थाकी देहके समान नहीं रहता;इसलिये वेगगामी कहा) अत्यन्त तीव्र वेगवाले उसमें पांच अश्व जुतेहैं (पञ्चज्ञानेंद्रिय) उसमें दो दंडीहैं (अहंता और ममता) दो उसमें चक्र हैं (पुण्य और पाप)एक उसमें जुवा है (माया अर्थात् अज्ञान)जिसमें तीन वेणुकी ध्वजा हैं(त्रिगुण सत्त्व,रज,तम,)पांच जिसमें बंधन हैं(पंचप्राण)ऐसे शोभायमान रथमें बैठकर राजा पुरंजन वनमें विहारके लिये गया॥ १॥

नारद उवाच ॥ स एकदा महेष्वासो रथं पंचाश्वमाशुगम् ॥ द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पंचबंधुरम् ॥ १ ॥
एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ॥ पंचप्रहरणं सप्तवरूथं पंचविक्रमम् ॥ २ ॥ हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षये
षुधिः ॥ एकादशचमूनाथः पंचप्रस्थमगाद्वनम् ॥ ३ ॥ चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ॥ विहाय जायाम
तदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥

९९७

जिसमें एक बागडोर है(मन)एक सारथी है (बुद्धि)एकही रथवानके बैठनेका स्थान है (अंतःकरण)और दो धुरे हैं(शोक और मोह)पांच उसकी विक्रम गति हैं (पंच कर्मेन्द्रिय) सात उसमें वरूथ हैं (सात धातु) पांच प्रकारकी इस रथकी सामग्री है (पांचविषय) प्रक्षेप करनेवाली है ॥ २ ॥ उस पुरंजनराजाने सुवर्णके आभूषण पहन, कंचनका कवच (रजोगुण) अक्षय बाणरूप तरकस (अनंत वासनाओंसे भरा हुआ अहंकारउपाधि) एक बडा भारी धनुष (कर्ता और भोक्ता मैं ही हूँ ऐसा अभिनिवेश) धारण किये, दश अक्षौहिणी (दश इंद्रिय) और एक उनका सेनापति(मन) को पुरंजन राजा (जीव) अपने संग लेकर पंचप्रस्थ नाम (पांच विषय) वनको चला ॥ ३ ॥ वह महा अहंकारी राजा पुरंजन धनुष (विषयभोगमें अभिनिवेश)बाण (रागद्वेषादिक) हाथमें उठा अपनी परमप्रिया रानी (बुद्धि) जो त्यागनेके

योग्य नहीं थी; उस विवेकवती बुद्धिको त्यागकर (मृगरूपविषयों)को मारने (भोगने) की इच्छासे निर्जन वनमें जाकर मृगया खेलने लगा.
(विषयभोगने लगा)॥ ४ ॥ वह महानिर्दयी क्रूरचित्त राजा पुरंजन असुरबुद्धि वनमें जाकर तीक्ष्णशरोंसे वनके जीवोंको मारनेलगा ॥ ५ ॥
आखेटके लिये शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है, तीर्थ श्राद्धादिक जब आवे तो राजा पवित्र पशुओंको वनमें जाकर लुब्धककी नाईं मारलावे परन्तु उन्हीं

आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ॥ न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥
तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने ॥ यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥ ६ ॥
य एवं कर्म नियतं विद्वान्कुर्वीत मानवः ॥ कर्मणा तेन राजेंद्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥ ७ ॥
अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ॥ गुणप्रवाहे पतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥ ८ ॥

पशुओंको मारना कि, जिनका मांस धर्मशास्त्रमें पवित्र लिखा है उनकोभी वनहीमें मारना, घरपर उनके मारनेकाभी निषेध है * ॥६॥ जिस प्रकार
शास्त्रमें हिंसामें नियम नियत किये हैं इसी रीतिसे और कर्मोंमेंभी नियम नियत किये हैं. जो विद्वान् पुरुष इसप्रकार निश्चय करके कर्मोंको करते
हैं उन मनुष्योंको अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है, और ज्ञानसे वह पुरुष किसी प्रकारके कर्ममें लिप्त नहीं होते॥७॥और जो इन नियमोंके विरुद्ध

---

* फिर इसी प्रकारकी शास्त्रमें औरभी अनेक विधि हैं, यह कभी मत समझना कि शास्त्रमें इनके मारनेहीकी विधि है देखो! जब बालकका चित्त अत्यन्त खेलमें लवलीन हो,तब वह एकाएकी किसीप्रकार नहीं रुकसकता, उसको शनैःशनैः रोकोगे तो रुकजायगा, और कोई विघ्न नहीं होगा, कोई समय उसके खेलनेका नियम करदियाजाय कि, तू पांच श्लोक कंठाग्र करके फिर अपना खेल खेलो परंतु उसमेंभी इतना ध्यान रक्खो कि, कुलीन और सुबोध लडकोंके साथ खेलना, उसमेंभी इतना और विचार लेना कि, धूप न हो ठण्डका समय देखलेना, परन्तु रातभी न हो जब उसके सब समय छुटादिये केवल एक संध्याका समय शेष रहगया, फिर उसका यज्ञोपवीत करके संध्या पढादी और कहा कि, हे पुत्र ! विना संध्या-तर्पण किये गति- मुक्ति नहीं होती, जब वह संध्या-तर्पण करनेलगा तो उसका संध्याका खेलनाभी छूटगया ऐसेही शास्त्रने जो एकाएकी लोगोंको रोकता तो लोग कभी नहीं मानते और अनेक विघ्न होते, इसलिये शास्त्रने विषयीलोगोंका मान रखनेके लिये कुछ नियम लिखकर हिंसाका निषेध कियाहै कि जिससे लोग आपसे आपही कुछ दिनों पीछे समझ बूझकर हिंसासे निवृत्त होजाँय ॥

कर्म करे तो उसका हृदय शुद्ध नहीं होता, और हृदयकी शुद्धि बिना ज्ञान कहां, तो फिर अज्ञानी बन मदमत्सरताके वशीभूत हो ऐसे कहने लगता है कि, "मैं कर्ता हूँ" इस प्रकार अभिमानमें आरूढ होकर बुद्धिका विनाश करलेता है. जब बुद्धि न रही तो बुद्धिहीनवत् संसारसागरकी लहरोंमें पडकर महानीचसे नीच योनिमें जन्म लेताहै॥८॥राजा पुरजनके उस वनमें चित्र विचित्र पक्षवाले शरोंसे अनेक जीवोंके अंगभंग हुए और वे दुःख पानेलगे उन दुःखी जीवोंका नाश हुआ यह बात दयालु पुरुषोंसे नहीं सहीगई *॥९॥शशा, सूकर, अरण्यमहिष, लीलगाय, रुरु, शेही, पवित्र, अपवित्र,

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ॥ विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुस्सहः करुणात्मनाम् ॥ ९ ॥
शशान्वराहान्महिषान्गवयान्रुरुशल्यकान् ॥ मेध्यानन्यांश्च विविधान्विनिघ्नञ्छ्रममध्यगात् ॥१०॥
ततः क्षुत्तृट्परिश्रांतो निवृत्तो गृहमेयिवान् ॥ कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥ ११ ॥
आत्मानमर्हयांचक्रे धूपलेपस्रगादिभिः ॥ साध्वलं कृतसर्वांगो महिष्यामादधे मनः ॥ १२ ॥
तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कंदर्पाकृष्टमानसः ॥ न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥ १३ ॥

अनेकप्रकारके पशुओंको मारता संहारता राजा पुरंजन अत्यन्त श्रमित होगया॥१०॥स्वप्नावस्थाका वर्णन तो तुमको सुनाया, अब जाग्रत् अवस्थाका वर्णन करतेहैं, तब भूख-प्याससे अत्यन्त पीड़ित हो, थकाथकाया लौटकर पुरंजन अपने घरपर आया, श्रम दूरकर स्नानसे निवृत्त हो भोजन करके शय्यापर शयन किया. निद्राके आनेसे शरीरकी सब थकावट दूर हुई॥११॥आंख खुलगई तो सुगंध, चंदन, पुष्प, हारादिकसे शरीरको सुगंधित और सुशोभित कर, सब अंगोंमें सुन्दर सुन्दर आभूषण पहन, स्त्रीके समीप जानेकी इच्छा की॥१२॥तृप्तचित्त, प्रसन्नवदन, अभिमानमें

---

* **शंका**—पुरंजनी रानी पहिले जिस कर्मको करतीथी, उसके पीछे उसी कर्मको पुरंजन करताथा. ऐसा श्रीमद्भागवतमें लिखा है. फिर पुरंजनी जो अपनी स्त्री थी उसको त्यागकर पुरंजन राजा बनको क्यों चलागया?

उत्तर—राजा पुरंजन तो विचारसे हीन था और स्त्रीके वशमें था. और ठगाभी गया था, इसीसे रातदिन व्याकुलभी रहता था मूर्खभी था मृगमारनेमें मनको लगाकर स्त्रीको त्यागकर चलागया और यह नहीं विचारा कि, पीछे मेरी दुर्गति पुरंजनी क्या करेगी।

भराहुआ, कामविवश चित्त होकर,रनवासमें गया,वहां श्रेष्ठ बुद्धिवाली,शय्यायोग्य गृहस्थिनी, अपनी सुमुखी भार्याको नहीं देखा ॥१३॥ तो उस समय अत्यन्त उदास होकर, उस वरारोहा अपनी प्रियाकी सखियोंसे बूझनेलगा कि, हे स्त्रियो ! तुम्हारी कुशल तो है? जैसे तुम अपनी स्वामिनी समेत पहिले आनंदचित्त विचरिती फिरा करतीथीं,ऐसे आज क्यों नहीं विचरतीं? और गृह संपत् गृहमें पहलेकी तरह क्यों नहीं इसका क्या कारण है?॥१४॥जिस घरमें घरकी शोभा शुभानना स्त्री,वा सर्व सुख देनेवाली माता नहीं होती, अथवा पतिविना स्त्रीही होय तो उस घरकी सम्पदा शोभाको प्राप्त नहीं होती ऐसे घरमें कौन विद्वान् पुरुष वास करसकता है कौन चतुर बिना पहियोंके रथमें आरूढ होगा? कहां है वह मेरी

अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ॥ अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥ न तथैतर्हि रोचंते गृहेषु गृहसंपदः ॥ १४ ॥ यदि न स्याद्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥ व्यंगे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीनवत् ॥१५॥ क्व वर्तते सा ललना मज्जंतं व्यसनार्णवे ॥ या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयंती पदेपदे॥१६॥ रामा ऊचुः ॥ नरनाथन जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति ॥ भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन्॥१७॥ नारद उवाच॥ पुरंजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ॥ तत्संगोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १८ ॥ सांत्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता॥ प्रेयस्याः स्नेहसंरंभलिंगमात्मनि नाभ्यगात् ॥ १९ ॥

प्राणप्यारी? जो क्षण क्षणमें उत्तम परामर्श दे और प्यार कर करके मेरे मनको मोहित करती थी ॥१५॥ वह ललना कहां है? जो इस व्यसनरूप सागरमें डूबतेहुए उबारती थी और पद पद मेरी बुद्धिको सावधान करती रहती थी,वह कहां चली गई? ॥१६॥स्त्रियां बोलीं कि,हे नरनाथ!हे शत्रुनाशक!हम नहीं जानतीं कि,स्वामिनीकी क्या इच्छा है;परंतु विना बिछौना बिछाये पृथ्वीमें पडी सोरहीहैं चलकर देखलो॥१७॥नारदजी बोले कि,पुरंजन अपनी स्त्रीको पृथ्वीमें पडी देखकर जिसके संगमें इसका सब ज्ञान नष्ट होगया था,अत्यन्त दुःखित हुआ॥१८॥राजा पुरंजन मनमें अत्यंत उदास हो मधुरवचनोंसे सांत्वना कर दुःखी चित्तसे अपनी प्यारीके प्रेमको बढ़ाने लगा और जो क्रोधदृष्टि थी,उसको अपने आत्मामें मान

लिया, परंतु उसके देखनेमें ऐसा चिह्न और लक्षण कोई भी नहीं जानपडाकि, जानबूझकर यह किस कारणसे कोप कियाहै ॥ १९ ॥ फिर प्यारीको प्रसन्न करनेके लिये वह वीर राजा पुरंजन धीरे धीरे उसके समीप गया और उसके चरणारविन्दको छू अपनी गोदीमें बैठायकर इसप्रकार प्रार्थना करनेलगा ॥ २० ॥ पुरंजन बोला कि, हे चन्द्रानने! निश्चय है कि तुम्हारे कियेहुए पुण्यरूप ईश्वरको वह समान भृत्य प्रसन्न रहते हैं, और स्वामी उनको अपना समझकर शिक्षा और दंड दे और जो स्वामी दासको दंड नहीं देते तो दासोंको भाग्यहीन जानना चाहिये ॥ २१ ॥ अपने भृत्योंको जो स्वामी दंड देवे तो भृत्योंको अपना अहोभाग्य समझना चाहिये. हे कृशोदरि ! वृद्धोंके दंड देनेका जो बालक दुःख मानते हैं और क्रोध करते हैं वह अत्यन्त मंदभागी हैं. क्योंकि वह बालक अपने वृद्ध पुरुषको नहीं जानते कि, यह हमारे हित

अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः ॥ पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्संगलालिताम् ॥ २० ॥ पुरंजन उवाच ॥ नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ॥ कृतागस्स्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादंडं न युंजते ॥ २१ ॥ परमोऽनुग्रहो दंडो भृत्येषु प्रभुणार्पितः ॥ बालो न वेद तत्तन्वि बंधुकृत्यममर्षणः ॥ २२ ॥ सा त्वं मुखं सुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलंबविलसद्धसितावलोकम् ॥ नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥ २३ ॥ तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ॥ पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥ २४ ॥

कारक हैं ॥ २२ ॥ हे सुदति ! हे सुभ्रु ! ! हे मनस्विनि ! ! ! तेरा मनोहर मुखारविन्द अनुरागभारसे भूषित लाजसे शोभित, मधुर हास्य युक्त, तिरछी चितवनके अवलोकनके कारणसे अत्यन्त शोभायमान जानपडताहै, जिसमें श्याम वर्ण सर्पिणीसी कपोलोंपर पडी अमृतके कणोंको चाट रही, सुभग नासिका और मनोहर भाषणवाले मुखपरसे घूँघटपट उठाकर क्यों नहीं अपना चंद्रवदन अपने प्रेमियोंको दिखाती हो॥ २३ ॥ हे वीरबाला ! ब्रह्मवंश और भगवद्भक्तके व्यतिरिक्त और किसी दूसरेने तेरा अपराध किया हो तो बता, उसे मैं दंड दिये बिना कभी न रहूँगा यह तू निश्चय समझलेना, क्योंकि त्रिभुवनमें अथवा चौदह भुवनमें निरंतर मेरा भय न मानकर प्रसन्न रहनेवाला कोईभी वीर पुरुष

मुझको नहीं दिखाई देता॥२४॥आजतक तेरा मुखारविन्द विना तिलक, मलीनहर्षरहित, कोपसे भयानक प्रेमशून्य मेरे देखनेमें नहीं आयाथा और यह तेरे मनोहर कुचभी शोकसे चले नेत्रोंके जलके भीजे नहीं देखे और बिंफलसे लालरंगवाले सुधारसभरे कोमल अधर तांबूलके न खानेसे कुंकुमकेसीकांति जिनमें नहीं दीखती ऐसे अधर कभी मेरे देखनेमें नहीं आये ॥ २५ ॥ इतना अपराध तोमुझसे अवश्य हुआहै कि, तुझसे विना बूझे व्यसनमें आतुर होकर आखेटको चलागया वह अपराध क्षमा कर, कामदेवके बाणोंके वेगसे सब ऐश्वर्यको त्याग धैर्य रहित हो, जिस पत्नीका पति वारंवार उसके चरणोंमें पडे, तो अपने वशीभूत अपने पतिकी अभिलाषा न पूर्ण करनेवाली ऐसी

वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरंभभीममविमृष्टमपेतरागम् ॥ पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिंबाधरं विगतकुंकुमपंकरागम् ॥ २५ ॥ तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥ का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्यं ॥२६॥ इति श्रीमद्भाग० म० चतुर्थ० पुरंजनोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थ पुरंजनं सम्यग्वशमानीय विभ्रमैः ॥ पुरंजनी महाराज मेरे रमयती पतिम् ॥ १ ॥ स राजा महिषीं राजन्सुस्नातां रुचिराननाम् ॥ कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनंदद्दुपागताम् ॥ २ ॥

कौन स्त्री है जो अपनें पतिको कंठसे न लगावेगी? जो कुलीन स्त्रीः हैं, वह सदा अपने पतिकी सेवामें तनमनसे उपस्थित रहतीं हैं ✻ :॥ २६॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पुरंजनेन स्वापराधक्षमापनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, पुत्रादिककी प्रीत । भई पुरंजन राजके, कन्याकाल प्रतीत ॥ २७ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, महाराज ! इस प्रकार पुरंजनको पुरंजनीने अपने मधुर वाक्य और सुन्दर कटाक्षोंसे मोहित करके वशमें किया और उसे विहार करानेलगी और आपभी विहार करनेलगी ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस राजा पुरंजनने सुन्दर स्नान करी हुई चंद्रमुखवाली सुन्दर शृंगार करी

कवित्त–नारीही स्वर्गरूप नारीही जीवनप्राण नारीही जगत्मूल सब सुरमुनि कहते हैं।नारीहीं तरण तारण नीवारण कोटिकष्ट ब्रह्माशिवाविष्णुशोभा नारीसों लहतेहैं ॥ वृंदासी नारीको धारी शीश शालिग्राम चतुर और अनारी सब नारीको चहते हैं । नारीही सारी संसारीमें जीवन मूल अंतसमय सबके प्राण नारीमें रहते हैं ।

हुई स्वस्त्ययन जिसका किया हुआ और तृप्त अपनेसमीप आती हुई अपनी राजमहिषीका बहुत आदर सन्मान किया ॥२॥ दोनों अत्यन्त लिपट लिपट कर मिले फिर हृदयसे लगाय एकांतमें गुप्त भाषणसे उस कामिनीका मन अपने वशकर, ज्ञान, ध्यानको तज, उस मनमोहिनी बालाकोही सर्व साधनरूप समझने लगा और ऐसा आसक्त हुआ कि,दिनरात दुरत्यय कालके प्रचण्ड वेगकोभी भूलगया औरउसीके संग रहने लगा ॥ ३ ॥सुंदर सुहावनीको रंसीली शय्यापर अपनी मनरंजनी पुरंजनीको भुजाकी तकिया लगाये, वह महांध महामनस्वी शयन करता रहा और उसीको सर्वोत्तम अत्यन्त श्रेष्ठ मान अपने सत्यस्वरूपको भूल गया और अपने परायेकाभी कुछ ध्यान न रक्खा॥४॥हे राजन्!इसप्रकार जब अत्यन्त कामासक्त हो रमण करनेंसे ऐसा बेसुध हुआ कि उसकी युवावस्था क्षणार्धकी नाईं व्यतीत होगई ॥५॥ तब राजा पुरंजनने अपनी

तयोपगूढः परिरब्धकंधरो रहोऽनु मंत्रैरपकृष्टचेतनः॥न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥
शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः॥तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोऽभिभूतो न निजं परं च
यत् ॥ ४ ॥ तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ॥ क्षणार्धमिव राजेंद्र व्यतिक्रांतं नवं वयः ॥ ५ ॥ तस्यामजनय
त्पुत्रान्पुरंजन्यां पुरंजनः ॥ शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात्॥६॥ दुहितॄर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः॥
शीलौदार्यगुणोपेताः पौरंजन्यः प्रजापते ॥७॥ स पंचालपतिः पुत्रान् पितृवंशविवर्धनान् ॥ दारैः संयोजयामास
दुहितॄः सदृशैर्वरैः ॥८॥ पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतंशतम् ॥ यैर्वै पौरंजनो वंशः पंचालेषु समेधितः ॥ ९ ॥

भार्या पुरञ्जनीमें ग्यारह सौ (११००) पुत्र उत्पन्न किये, (ग्यारह इंद्रियोंके परिणाम) इतनेमें सम्राट्की आधी आयु व्यतीत होगयी॥६॥ हे प्रजापते ! उसके एकसौ दश (११०) पुत्री उत्पन्न हुईं (बुद्धिकी वृत्तियें) माता पिताका यश और कीर्ति बढ़ानेवाली और सब शीलवान् गुण निधान उदारतासे युक्त थीं॥७॥अब पौरञ्जन वंश चला,सो पांचालदेशके(शब्द–स्पर्श आदि विषय)अधीश्वरउस राजा पुरञ्जनने अपने अपने वंशकी वृद्धि करनेवाले पुत्रोंका अच्छी कुलीन कन्या (हित,अहित,चिंता) के साथ विवाह किया, और कन्याओंकाभी उनके समान वर(योग, विषय, भोग,)देखकर करदिया॥८॥राजा पुरञ्जनके पुत्रोंमेंसे एक एक पुत्रके सौ सौ(१००।१००)पुत्र उत्पन्न हुए. (अनेक प्रकारके कर्म)

जिनसे राजा पुरञ्जनका वंश पांचालदेशमें बहुत बढा॥९॥घरमें धन अधिक देख पुत्र पौत्रोंकी प्रीतिके वश हो,मोहपाशमें फँस विषयके बंधनमें बँध गया. जैसे मर्कट और कीर पीञ्जरेमें बन्द होजाते हैं॥ १०॥उस राजा पुरञ्जननेभी तेरे समान पशुमारक अनेकप्रकारकी घोर पशुओंकी दीक्षा लेकर महाभयानक पशुवाले यज्ञोंसे देव, पितृ और भूतपतिओंका यजन किया॥ ११॥इस प्रकार उस योग्य प्रमत्त कर्महीन परिवार आसक्तचित्त राजा पुरञ्जनका वह समय आया(वृद्धावस्था)जो समय स्त्रियोंको. अत्यन्त अप्रियहै॥ १२॥हे महीश्वर!चण्डवेग नाम(वर्ष) गंधर्व लोकका अधीश्वर है और तीनसो साठ(३६०)महाभट योधा उसके समीप (दिन) रहते हैं॥ १३॥और उतनीही: उनकी भार्याहैं (रात्रि) मैथुनयोग्य सित असित हो

तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ॥ निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥ १० ॥ ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ॥ देवान्पितॄन्भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥ ११ ॥ युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुंबासक्तचेतसः ॥ आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥ १२ ॥ चंडवेग इति ख्यातो गंधर्वाधिपतिर्नृप ॥ गंधर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ १३ ॥ गंधर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ॥ परिवृत्त्या विलुंपंति सर्वकामविनिर्मितान् ॥ १४ ॥ ते चंडवेगानुचराः पुरंजनपुरं यदा ॥ हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः॥१५॥ स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः॥ पुरंजनपुराध्यक्षो गंधर्वैर्युयुधे बली ॥ १६ ॥ क्षीयमाणे स्वसंबंध एकस्मिन्बहुभिर्युधा ॥ चिंतां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबांधवः ॥ १७ ॥

जातीहैं(कृष्णपक्षकी और शुक्लपक्षकी)नित्यप्रति अपने पतियोंके साथही विचरती रहतीहैं,और पुरुष–स्त्रीदोनों मिलकर सदा पुरंजनकी शोभायमान पुरीको लूटते रहतेहैं.(अवस्थाको)॥१४॥ जब चण्डवेगके अनुचर पुरंजनकी नगरीको अधिक सतातेहैं, तब इस पुरीका पुराधीश, रक्षा करनेवाला पंचवक्र साँप (पंचप्राण) उनको रोककर उनसे युद्ध करनेको उपस्थित होताहै ॥१५॥ सातसौबीस (७२०): महाबलवान् गन्धर्व-गंधर्वनियोंसे पुरंजन नगरके नरेशने सौ वर्षतक युद्धकिया॥१६॥अपने सब सम्बन्धी जब क्षीयमाण होगये और आप अकेलेने जब बहुत पुरुषोंसे युद्ध किया तब

वह सर्प बलहीन होगया और पुरञ्जन सब नगरनिवासियों समेत अपने कुटुम्बियोंके निकट बैठकर चिंता करनेलगा॥ १७॥ वह मधुभोगी अपने अनुचरों सहित पांचालदेशमें वास करता और जो कुछ उसके पार्षद भेज देते उसीको ग्रहणकर अपने मनको संतुष्ट करता और नारीके वशीभूतहुआ वह राजा पुरंजन देश छिन जाने (मृत्यु) के भयसेभी कुछ भयभीत न हुआ ॥ १८॥ हे राजन् ! उसीसमय कालकी पुत्री अपने वरके लिये, सब त्रिलोकीमें ढूँढती फिरी, परंतु उसको किसीने अंगीकार नहीं किया॥ १९॥ तब उस दुर्भागिनीका दुर्भगा नाम जगत्में विख्यात हुआ, प्रथम इस

स एव पुर्यां मधुभुक्पंचालेषु स्वपार्षदैः ॥ उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद्भयम् ॥ १८ ॥ कालस्य दुहिता काचि
त्रिलोकी वरमिच्छती ॥ पर्यटंती न बर्हिष्मन्प्रत्यनन्दत कश्चन ॥ १९॥ दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ॥
या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात्पूरवे वरम् ॥ २० ॥ कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ॥ वव्रे बृहद्व्रतं मां तु
जानती काममोहिता॥ २१॥ मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुस्सहम् ॥ स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने॥ २२॥

दुर्भगाको राजा पुरुने वरा तब उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा पुरुको राज्य दिया ॥ २० ॥ एकसमयमें ब्रह्मलोकसे मैं मृत्युलोकको आता था और यह कालकन्या चारों ओर पर्यटन करती फिरती थी, मार्गमें मुझे मिली और मुझको देखकर मोहित होगई और मुझसे बोली कि, हे स्वामिन्! मुझको वरलो वह अपने जीमें यहभी जानती थी कि, यह पूर्ण ब्रह्मचारी हैं परंतु कामके वशीभूत हो फिर हठकर मेरे निकट आई औरकहा हे स्वामिन्! मुझको वरनाही पडेगा * ॥ २१ ॥ जब मैंने उसका कहना स्वीकार नहीं किया तब वह मेरे ऊपर बड़ी क्रोधित हुई और मुझको यह दुःसह

---

* **शंका**–प्राचीनबर्हि राजासे नारदजीने कहा मैं कामको अपनी देहमेंसे नष्ट करनेवाला हूँ, इसलिये मेरा नाम देवर्षि है. ऐसे नारदजी कामकी सुन्दर मंदिर जो कामिनी है उससे क्यों मोहित होगये औ उन्मत्तोंकी नाईं स्त्रियोंके पीछे २ रोते फिरे. विष्णुपुराण तथा विष्णुसंहितामें यह कथा लिखी है नारदको मोह न होनेकी सो नारदको मोह कैसे हुआ !

उत्तर–जिस दिन प्राचीनबर्हिसे नारदजीने कहा, कि मैंने जितेन्द्रिय हो कामदेवका नाश करदिया. उस दिनके पीछे नारदजीको मोह उत्पन्न हुआ. जिस दिन प्राचीनबर्हिसे कहाथा, उस दिन तो वैसेही रहेथे दूसरे दिन मोहित होगये नारदका वाक्य सत्य है.

शाप दिया कि, हे मुने! मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया, अब तू एक स्थानपर वास नहीं करसकेगा ॥ २२ ॥ जब उसकी अभिलाषापूर्ण न हुई तब वह निराश होनेलगी. तब मैंने उससे कहा कि, तू यवनोंके राजा भयको वर वह मेरी आज्ञा मान भयनरेशके निकट गई ॥ २३ ॥ हेवीर ! आप यवननरेशहैं इसलिये मुझे अधिक प्रिय जान पड़ते हो; इसलिये मेरा मन आपके वरनेको चाहताहै, जो स्त्री-पुरुष अपनी जिस कामनाके लिये आपके पास आताहै, उसकी मनोकामना पूर्ण होतीहै॥ २४॥ लोककी अथवा शास्त्रकी रीतिके अनुसार जो पदार्थ देने योग्यहै उस पदार्थकी कोई आकर याचना करै और वह पदार्थ उसको न मिले, अथवा जो पदार्थ लोक और शास्त्ररीतिके अनुसार लेने योग्य हैं, वह पदार्थ कोई उसको समर्पण करै और वह उसे स्वीकार न करै, वे दोनों जने मूर्ख और अज्ञानी हैं ॥ २५ ॥ हे मंगलरूप! अब आप मुझको अंगीकार करो क्योंकि मैं

ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ॥ मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥ २३ ॥ ऋषभं यवनानां त्वां
वृणे वीरेप्सितं पतिम् ॥ संकल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥ २४ ॥ द्वाविमावनुशोचंति बालावसदवग्रहौ॥
यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥ २५ ॥ अथो भजस्व मां भद्र भजंतीं मे दयां कुरु ॥ एतावान्पौरुषो
धर्मो यदार्ताननुकंपते ॥ २६ ॥ कालकन्योदिता वाचो निशम्य यवनेश्वरः ॥ चिकीर्षुर्देवगुह्यं स सस्मितां तामभाषत
॥ २७ ॥ मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ॥ नाभिनंदति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम् ॥ २८ ॥ त्वम
ऽव्यक्तगतिर्भुंक्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ॥ याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥ २९ ॥

आपके ऊपर मतवाली हूँ आप मुझपर दया करो, दीनोंपर दया करनाही साहसी पुरुषोंका परमधर्म है॥ २६॥ जब कालकन्याने इसप्रकार विनयपूर्वक वचन कहे, तब यवनेश्वर भय जो कि बात देवताओंकी समझमेंभी आनी कठिन (मरण) है, वह मुसकाकर उससे बोला ॥ २७ ॥ मैंने अपने आत्मज्ञानसे तेरे लिये पति अनुसरण कर लियाहै, सो तू अमंगलरूप श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं है, यदि तू किसीके सन्मुख जाकर विनय करेगी, तौभी कोई तुझको अंगीकार नहीं करेगा ॥ २८ ॥ इसलिये तू मेरा कहना मान, कर्मसे विनिर्मित लोकको तू प्रगटगतिसे भोग, यह किसीको विदित न हो कि, कहांसे आई? और कैसी है? कोई तुझको न पहिचाने, इसप्रकार सब संसार (सब शरीर) जो कि कर्मोंसे बनेहुएहैं, उनको

बलात्कार पकडकर भोग और मेरी सेना अपने संग लेजा, इस रीतिसे एक क्या सब संसारके पुरुष तेरे पति हो सक्तेहैं।(सब प्रजा नाशको प्राप्त होसक्तीहै)॥२९॥नारदजी बोले कि,हे बर्हिष्मन् ! तू यहभी भय मत करना कि,संसारमें मुझको कोई हत्यारी समझकर मारडालेगा,तूही सबको अपने वशमें रक्खेंगी और प्रजा गंधर्व मेरा भ्राताहै,और तू मेरी भगिनी बन जा,मैंभी अपनी भयानक सेनाको साथ लिये तुम दोनोंके पीछे पीछे सब संसारमें गुप्त होकर फिरता रहूँगा,परंतु ऐसे महात्मा पुरुषोंको नहीं सताऊंगा॥३०॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां कालकन्योपाख्यानवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥दोहा–अट्ठाइस अध्यायमें, वैदर्भी आख्यान।पुरञ्जनीको जन्म पुनि,मोक्ष परम बलवान॥२८॥

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥ चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः॥३०॥ इति श्रीमद्भा० म०चतु०पुरंजनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन्दिष्टकारिणः ॥ प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥ त एकदा तु रभसा पुरंजनपुरीं नृप ॥ रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥ २ ॥ कालकन्याऽपि बुभुजे पुरंजनपुरं बलात् ॥ ययाऽभिभूतः पुरुषः सद्यो निस्सारतामियात् ॥ ३ ॥ तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतो दिशम् ॥ द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन्सकलां पुरीम् ॥ ४ ॥ तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरंजनः ॥ अवापोरुविधांस्तापान्कुटुंबी ममताकुलः ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी बोले कि,हे बर्हिष्मन्। भय नामक यवनेशकी सेनाके जो बलवान् योधा (रोग) थे वे प्रज्वार और कालकन्याके संग संसारमें घूमने लगे ॥१॥ हे नरेश। उन्होंने एक दिन वेगसे भूमिके भोगयुक्त जीर्ण प्राणरूप सर्पसे रहित उसपुरञ्जनकी पुरीको आनकर झटपट घेर लिया॥२॥ कालकन्या पुरञ्जनकी पुरीको बलात्कार भोगनेलगी, जिससे तिरस्कृत पुरुष शीघ्र निस्सारताको प्राप्त होते हैं ॥३ ॥ सब नगरीके चारों ओरके द्वारोंमें होकर यवनराजके सैनिक,नगरीमें घुस भाँति भाँतिकी पीडा देकर उसे लूटनेलगे॥४॥जब इस प्रकार अपनी पुरीमें पुरंजनने पीड़ा देखी तब

कवित्त–मानुषको जन्म पाय कीन्हों जिन साधुसंग गुरुसों लह्यो है भेव सोई बडभागी है ॥ कुमतिको विदार सुमतिसों बढाई प्रीति वोहि संयोगी जाकी सुरतशब्द पागी है ॥ सोई संन्यासी जो शून्यीखर वासी भयो कर्मको विनाशी और हरिपद अनुरागी है ॥ हो मनको त्यागी अनुरागा ईशदरशनको सोई वैरागी जाकी राम लवलागी है ॥

अभिमानी पुरंजन, कुटुम्बीकी ममतासे व्याकुल हो, अनेक प्रकारके तापोंसे पीडित होने लगा॥५॥ उस कालकन्याने जिससे मिलाप किया वह श्रीहीन,कृपण, विषयोंमें आत्मा बुद्धि नष्ट होगई, और गंधर्वोंने बलसे सब ऐश्वर्य नष्ट करदिया ॥६॥ जब पुरंजनकी पुरीका सब विभव लूटकर विध्वंस करदिया, तब पुत्र, पौत्र, भृत्य (इन्द्रियें और कार्यकर्ता इंद्रियोंके देवता) को प्रतिकूल चलता देखा,(मनवांछित विषय न देनेःऔर अवाञ्छित विषय देनेसे) निरादर करने लगे. (अपने वशमें न रहे) और प्यारी पत्नीनेंभी सुहृदता त्याग दी,(बुद्धिभी ठिकाने न रही)स्त्रीभी अपनी नहींरही॥७॥ अपने देहको जरा कन्यासे ग्रसित देख और पांचाल देशको (विषय)शत्रुओंसे (विघ्न) दुःखित देखकर राजा पुरंजन मनमें अत्यंत चिन्ता करने लगा,उसके दूर होनेका कोई यत्न न बनसका ॥ ८॥ जब सब विषय कालकन्याके भोगनेसे निःसार होगयेथे और कुटुम्बियोंनेभी

कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ॥ नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यों गंधर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥ विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ॥ पुत्रान्पौत्राऽनुगामात्यान्जायां च गतसौहृदाम् ॥ ७ ॥ आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पंचालानरिदूषितान् ॥ दुरंतचिंतामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥ कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया ॥ विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥ गंधर्वयवनाक्रांतां कालकन्योपमर्दिताम् ॥ हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥ १० ॥ भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ॥ ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥ ११ ॥ तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः ॥ कौटुंबिकः कुटुंबिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥ १२ ॥

स्नेह त्याग दियाथा, तोभी वह दीन पुरंजन उनकी वांछाही करतारहा, परलोक संबन्धी कल्याणोंसे अथवा इस लोकसम्बन्धी परिवारादिकोंकी प्रीतिके छूटनेपरभी पुत्र दाराका लालन-पालन चित्तमें बनाही रहा॥९॥जब गन्धर्व यवनोंने उस पुरीमें भारी उपद्रव मचाया और कालकन्याने पुरवासियोंका मर्दन किया और पुरंजनको नगरसे बाहर निकालना चाहा परंतु उस समय पुरंजनकी इच्छा निकलनेकी नहीं थी ॥ १०॥ निदान बेवशीको निकालनाही पड़ा उससमय भय(मृत्यु)का बडा भ्राता प्रज्वार (कालज्वर) आनकर उपस्थित हुआ और अपने भाईके हित करनेके लिये उसने उस नगरीको भस्म करदिया ॥ ११ ॥ जब सब परिवारसमेत वह पुरी जलकर भस्म होगई तब उस कुटुम्बिनीके साथ वंशसहित अत्यन्त

संताप करने लगे॥ १२॥यवनोंने सब स्थान जब घेरलिया और कालकन्याने पुरीको ग्रसा और प्रज्वारनेपुरीको धरकर आग लगादी तब वह पुरपालक (सर्प) भी परिताप करने लगा ॥ १३॥ अत्यंत दुःखसे थरथर कांपनेलगा और जब,नगरीकी रक्षा उससे न होसकी तब उस जलतीहुई आग मेंसे निकलकर भागनेकी इच्छा की, जैसे जलतेहुए वृक्षकी खखोडलमेंसे साँप निकलकर भागता है॥ १४॥हे राजन्! जब सब अवयव उसके ढीले होगये और सब पुरुषार्थ गन्धर्वोंने हर शत्रु यवनोंने पुरीको चारों ओरसे घेरा तब वह पुरंजन नेत्रोंसे आँसू बहानेलगा ॥ १५ ॥दुहिता,पुत्र,पौत्र, बंधु जामाता, अनुचर, गृह, कोश सब परिवार जिसमें केवल एक स्वत्व मात्र शेष रहगया कि,यह मेरे हैं यह स्वत्वभाव हुआ॥ १६॥और उसको

यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया ॥ पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥ न शेके सोऽवितुं तत्र
पुरुकृच्छोरुवेपथुः ॥ गंतुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥ १४ ॥ शिथिलावयवो यर्हि गंधर्वैर्हृतपौरुषः ॥
यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥ १५ ॥ दुहितः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ॥ स्वत्वावशिष्टं यत्किंचि
द्गृहकोशपरिच्छदम् ॥ १६ ॥ अहं ममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ॥ दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते
॥१७॥लोकांतरं गतवति मय्यनाथा कुटुंबिनी॥ वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती॥१८॥न मय्यनाशिते भुंक्ते
नास्नाते स्नाति मत्परा ॥ मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ॥ १९ ॥ प्रबोधयति मामज्ञव्युषिते शोक
कर्शिता ॥ वर्त्मैतद्गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥ २० ॥

मोह ममतासे अपना समझकर घरोंके भीतर कुबुद्धिसे बँधाहुआ,उस दीन पुरञ्जनका जब भार्यासे वियोगका समय उपस्थित हुआ तब पुरंजन मनमें विचारने लगा॥ १७॥कि, जब मैं इस लोकको त्यागकर परलोकको चलाजाऊँगा, तो यह अनाथा कुटुम्बिनी मेरी पत्नीअपने छोटे२ बालकोंका किस प्रकार पालनपोषण करेगी ॥ १८ ॥ यह ऐसी शीलवान् और पतिव्रताथी कि,इसने आजतक विना मेरे भोजन कराये कभी भोजन नहीं किया, पहिले मुझको स्नान करादिया, तब पीछे आप स्नानकिया,और जब कभी मैंने क्रोध किया,तो थर थर कांपने लगी, और सदा मेरे स्नेहमें परायण रहती थी, जो मैं ललकारता तो नीचेको दृष्टिकर चुप साधलेती॥ १९॥जब मेरा क्रोध शांत होता तो यह सुबोधा मुझको बोध करती,

जब मैं कभी परदेशकोजाता तो यह शोककीमारी आधीभी नहीं रहतीथी, यह पुत्र पौत्रवतीभी है और गृहस्थीके सब व्यवहारकोभी जानतीहै, परंतु तौभी मुझे बिना मृतकके समान होजायगी॥२०॥हाय!यह पराये घरकी धन पुत्री और यह अनाथ छोटे छोटे पुत्र मुझ विना कैसे अपने दिन व्यतीत करेंगे?मैं भलीभाँति जानताहूँ कि इनकी वह कुमति होगी कि,जो दुर्दशा समुद्रमें नाव टूटजानेपर बैठनेवालोंकी होतीहै॥२१॥यह अपनी कृपण बुद्धिसे इसप्रकारके सोच करने लगा परंतु यह ऐसे कठिन शोक करनेके योग्य नहीं (परमात्माका अंश)था उसीसमय उसके पकड़नेके लिये भयनामक यवनोंका राजा आकर उपस्थित हुआ॥२२॥और पशुकी नाईं इस राजा पुरञ्जनको जब यवनलोग बांधकर अपनेघरकी ओरको लेचले, तब उसके अनुयायी अत्यंत व्याकुल हो,शोकमेंडुबेहुए हाहाकार करते उसके पीछे भागे॥२३॥उससमय नागसेभी कुछ उपाय न बनपडा तब

कथं नु दारका दीना दारकीर्वा परायणाः ॥वर्तिष्यंते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ॥२१॥एवं कृपणया बुद्धया शोचं
तमतदर्हणम् ॥ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत॥२२॥पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् ॥ अन्वद्रवन्ननुपथाः
शोचंतो भृशमातुराः॥२३॥पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजंगमः ॥ यदा तमेवानुपुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता॥२४॥विकृ
ष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ॥ नाविंदत्तमसाऽऽविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥२५॥ तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्तायेऽदया
लुना ॥ कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरंतोऽमीवमस्य तत्॥२६॥अनंतपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः॥शाश्वतीरनुभू
यार्तिं प्रमदासंगदूषितः॥२७॥तामेव मनसा गृह्णन्बभूव प्रमदोत्तमा ॥ अनंतरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥२८॥

वहभी नगरीको छोडकर चलदिया, उनके जातेही सब पुरी विशीर्ण होकर अपने अपने ठिकानेको चलीगई॥२४॥और जब बलवान् यवनोंने पुरजनको बलात्कार पकड घसीटनेलगे तोभी उस अज्ञानीको अपना पूर्व सुहृदका स्मरण नहीं हुआ॥२५॥ उस दयालुने यज्ञादिक सकाम कर्मोंमें निर्दई बनकर जिन जिन पशुओंको मारा था,वह सब पशु उनके अपराधको स्मरण कर, महाक्रोधित हो कुल्हाडोंसे उसका शरीर छेदन करनेलगे ॥ २६ ॥ और अपारतमसे स्मृति जिसकी विस्मृति होगई और प्रमदाके प्रसंगसे दूषित होगया ऐसे उसराजा पुरंजनने अनेक वर्षतक पीडाको भोगा ॥ २७ ॥ परंतु मनमें उसी पुरंजनीका ध्यान बनारहा उसी ध्यानसे वह उत्तम स्त्री विदर्भराज सिंहके घरमें जाकर उत्पन्न हुआ ॥ २८॥

इसप्रसंगसे यह जानलेना कि, स्त्रीके ध्यानमें स्त्रीही होता है, धार्मिक विशुद्ध मलयध्वज नामक भागवतके संग हुआ उस सत्संगके कारण विष्णु भक्ति और वैराग्यके हेतु उसी पतिरूप गुरुकी पतिव्रताके धर्मसे सेवा करते करते भगवतकी कृपासे ज्ञान प्राप्त होनेके कारण स्त्रीजन्म लेनेवाले पुरंजनकी मुक्ति हुई इस विदर्भराजाकी पुत्री (पूर्वजन्ममें जो राजा पुरंजन था वह) का स्वयम्बर हुआ, उस स्वयंवरमें ऐसा नियम नियत किया गयाथा कि, जिस नरेशका विक्रम अधिक हो, उसको यह कन्या दीजाय (पण्डा अर्थात बुद्धिपांड्य बुद्धिवान्) जो कि शत्रुओंका जीतनेवाला, और दक्षिणदेशमें (दक्षिणदेशमें भक्ति अधिक है, इससे ज्ञात होता है कि, वह परमवैष्णव था) श्रेष्ठ और पराक्रमी गिनाजाताथा, उस राजाने संग्राममें दूसरे शत्रुओंको पराजय कर विदर्भराजाकी पुत्रीका पाणिग्रहण किया (पुरञ्जनको भगवद्भक्तका सत्संग हुआ) ॥ २९ ॥ उस

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ॥ युधि निर्जित्य राजन्यान्पांड्यः परपुरंजयः ॥ २९॥
तस्यां स जनयांचक्र आत्मजामसितेक्षणाम् ॥ यवीयसः सप्त सुतान्सप्त द्रविडभूभृतः॥३०॥
एकेकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् ॥ भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वंतरं परम् ॥ ३१ ॥
अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमेधृतव्रताम्॥ यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः॥३२॥

मलयध्वजने उस स्त्रीमें एक मनोहर कन्या श्रीकृष्णअनुरागिनी श्यामकमलसे नेत्रवाली उत्पन्न करी फिर उस कन्याके जन्म होनेके उपरांत उस राजाके सात पुत्र और उत्पन्न हुए. श्रवण, कीर्तन, स्मरण, रणसेवन, अर्चन, वन्दन और दास्यरूप. जो कि द्रविड देशके रक्षक गिनेजाते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इन सात पुत्रोंसे एक एकके अनेक सुत उत्पन्न हुए. (श्रवण आदिक भक्तिके सात्त्विक, राजस और तामसादिक अनन्त भेद हैं) जिनके वंशमें (अनेक संप्रदाय) इस पृथ्वीकी मन्वन्तरसेभी कुछ अधिक कालतक रक्षा करेंगे, फिर अज्ञानादिकोंसे बचावेंगे ॥ ॥ ३१॥ पांड्यराजाकी कन्या कृष्णसेवा रुचि; जो कि उत्तमव्रत धारण करनेवाली थी उसका विवाह अगस्त्य (मन) मुनिके साथ हुआ, अगस्त्यमुनिने इस स्त्रीमें दृढच्युत नाम (वैराग्य) पुत्र उत्पन्न किया. दृढच्युतके इध्मवाह नाम पुत्र हुआ, (ब्रह्मज्ञानी गुरुकी शरणागत लेना,

ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा लेनेके लिये गुरुके समीप जाना, उस समय समिध हाथमें लेनेके लिये वेदमें आज्ञा है, इसकारण इध्म (समिध) को वाह अर्थात् उठानेका यह अर्थ है, सो गुरुकी शरणागत होनेसे सूचित करता है; वैराग्य होनेसे गुरुकी शरणागत जाना बनसक्ता है, इस लिये वैराग्य और इध्मवाहके पिता-पुत्रका संयोग कहा और वैराग्य पिता अगस्त्य अर्थात् मन और माता कृष्णसेवा रुचिको कहा सो यहभी होनाही है) ॥ ३२ ॥ राजर्षि मलयध्वजने अपने पुत्रोंको पृथ्वीके विभाग करके पृथक् पृथक् सबको बांटदिये, फिर उस राजाने भगवत्भजन करनेको कुलाचल पर्वतको जानेकी संभावना की ॥ ३३ ॥ मदभरे नेत्रवाली रानी वैदर्भी गृह, पुत्र, भोजनको तजकर ऐसे चलनेलगी जैसे चन्द्रिका चन्द्रमाके पीछे पीछे चलती है, ऐसेही अपने स्वामीके पीछे दौडी. स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवाही मुख्य है, क्योंकि स्त्रियोंके तो पतिही

विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥३३॥ हित्वा गृहान्सुतान्भोगान्वैदर्भी मदिरेक्षणा ॥ अन्वधावत पांड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥३४॥ तत्र चंद्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ॥ तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ॥ ३५ ॥ कंदाऽष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ॥ वर्तमानः शनैर्गात्रकर्शनं तप आस्थितः ॥ ३६ ॥ शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ॥ सुखदुःख इति द्वंद्वान्यजयत्समदर्शनः ॥ ३७ ॥ तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ॥ युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षोऽनिलाशयः ॥ ३८ ॥ आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ॥ वासुदेवे भगवतिनान्यद्वेदोद्वहन्रतिम् ॥ ३९ ॥

परमेश्वर हैं ॥ ३४ ॥ वहां चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, और वटोदका नाम बडी गम्भीर गम्भीर नदियाँ हैं, उसके पावन (पवित्र) जलसे मज्जनकर दोनों स्त्री पुरुषोंने अपने अन्तःकरणकी शुद्धि और देहके मलोंका विनाश किया ॥ ३५ ॥ कंद, मूल, फल, दल, तृण व जलसे धीरे धीरे निर्वाह किया, फिर शरीरको कृश कर ऐसा महाकठिन तप करनेलगा ॥ ३६ ॥ कि; शीत, गर्मी, पवन, वर्षा, क्षुधा, प्यास, प्रिय, अप्रिय और सुख दुःख इन सबको जीत समदर्शी होगया ॥३७॥ जप, तप, यम, नियमोंके करनेसे सब बासनाएँ भस्म होगईं, तब राजाने इन्द्रियें, पवन, अन्तःकरण, मनको जीतकर अपने आत्माको परब्रह्ममें लगाया ॥३८॥ देवताओंके सौ वर्षतक खंभकी नाईं स्थिर होकर, वह राजा एक स्थानपर खड़ा

रहा और निरंतर भगवान् वासुदेवमें प्रीति रखनेसे उसको शरीरादिक अनात्म वस्तुओंका कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥३९॥ सो आत्माकी व्यापकता मान और आत्मासे भिन्नभी नहीं है यह जान संसारको स्वप्नसमान समझकर साक्षीसे विरामको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ हे राजन्! जिसका साक्षात भगवान्रूप गुरुने भलीप्रकार वेदमें विचार कियाहै,ऐसे विशुद्ध ज्ञान दीपकके चारों ओर प्रकाश होनेसे विश्वमुख ईश्वरकी स्फूर्ति होगई तब जाना कि, जोअनन्त ब्रह्म है वह मैंही हूँ और जो मैं हूँ वह ब्रह्म है यह तत्त्वज्ञान महात्मा पुरुषोंने यथार्थ वर्णन कियाहै॥४१॥ परब्रह्ममें तो सब प्राणियोंको माना और परब्रह्मको सब प्राणियोंमें जाना, इस दृष्टिसे सब विश्वको देखकर अपने शरीरका त्यागन किया॥४२॥विदर्भराजाकी पुत्री जो कि महाश्रेष्ठ पतिव्रताथी,वह सब सुखभोग त्यागकर ब्रह्मज्ञानी पतिकी देवतासमान मान मलयध्वजकी प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगी॥४३॥और नियम,

स व्यापकतयात्मानं व्यतिरिक्ततयात्मनि॥ विद्वान्स्वप्नइवामर्षं साक्षिणं विरराम ह ॥४०॥ साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा
हरिणा नृप॥विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम्॥४१॥परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथात्मनि॥वीक्षमाणो विहाये
क्षामस्मादुपरराम ह ॥४२॥ पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ॥ प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान्सा पतिदेवता ॥४३॥
चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा॥बभावुपपतिं शांता शिखा शांतमिवानलम्॥४४॥ अजानती प्रियतमं यदोप
रतमंगना ॥ सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत्॥४५॥ यदा नोपालभेतांघ्रावूष्माणं पत्युरर्चती॥आसीत्संविग्नहृदया
यूथभ्रष्टा मृगी यथा॥४६॥आत्मानं शोचती दीनमबंधुं विक्लवाऽश्रुभिः॥स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा॥४७॥

धर्म,व्रतोंके करनेसे वह अत्यन्त दुर्बल होगई,बालोंकी लटायें बँधगई और वल्कलवसन पहिने ऐसी दिखाई देतीथीं मानो धूमरहित अग्निकी शिखा अग्निको शांत होजानेपर आपसे आप शांत और शीतल होजाती है,ऐसे वह शीलवतीभी अपने पतिके निकट रहनेंसे शांतस्वरूप होगईथी॥४४॥ और इसने अपनें प्रियतमके मरनेका कुछ ध्यान नहीं किया,जैसे नित्यप्रति अपने पतिकी पूजा किया करतीथी उसीप्रकार स्थिर हो आसनपर बैठकर अपने पतिकी सेवा करनें लगी॥४५॥जब पतिकी सेवा करते करते चरणारविन्दोंका स्पर्शकिया,तो पद गरम नहीं जान पडे तब तो संविग्नहृदय हो ऐसी शोकाकुल हुई जैसे मृगपतिसे बिछुरकर मृगी शोकसारमें डूबजातीहै॥४६॥वह अनाथिनी अबला अपने आत्माका सोचकर अश्रुधारासे

स्तनोंको सींच अत्यन्त व्याकुल हो उस महागम्भीर वनमें उच्चस्वरसे रोरोकर विलाप करनेलगी ॥४७॥ हे राजर्षे! हे प्रियतम !! हे भयहरण ! ! ! उठो उठो यह दीन पृथ्वी चोर और अधम क्षत्रियोंके भयसे व्याकुल होरहीहै इस दीन दुखियाकी रक्षा कौन करेगा? बिना आपके इस कार्यका करनेवाला मुझको कोई दृष्टि नहीं आता ॥४८॥ इसलिये आप समुद्रपर्यंत इस वसुधाकी रक्षा करो,ऐसे विलाप कर करके वह अनाथिनी बाला वनमें पतिका अनुसरण कर फिर अपने स्वामीके चरणोंमें शिर धरकर अश्रुधारा बहानेलगी ॥ ४९ ॥ फिर उसने मनमें धैर्य धारणकर काष्ठ बटोर

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्ष इमामुदधिमेखलाम् ॥ दस्युभ्यः क्षत्रबंधुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥ ४८ ॥ एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम्॥ पतिता पादयोर्भर्तुः रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥ ४९ ॥ चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम्॥ आदीप्य चानुमरणे विलपंती मनो दधे ॥ ५० ॥ तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् ॥ सांत्वयन्वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥ ५१ ॥ब्राह्मण उवाच ॥ का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि॥ जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥ ५२ ॥

चिता रचकर उसपर पतिका देहधर अग्नि लगाया आपभी उस चितामें बैठनेको प्रस्तुत हुई ॥ ५० ॥ हे प्रभो! उसी समय इसका प्राचीन सखा (ईश्वर) जो कि परमज्ञानी था, वह विप्ररूप धरकर वहां आया और मनोहर वाणीसे धैर्य देकर उस रोतीहुई वैदर्भीसे यह वचन कहा ॥५१॥ ब्राह्मण बोला कि, तू कौनहै और किसकी कन्याहै?और यह चितामें जो सोरहाहै यह कौनहै जिसके सोचमें तू मग्न होरही है और तू मुझकोभी जानती है कि नहीं? मैं तेरा प्राचीन सखा हूँ और सृष्टिके समय मुझमें स्थित होकर तैंने मेरे संग अनेक प्रकारके सुखविहार कियेथे * ॥५२॥

---

* **शंका**–जब पुरंजन स्त्री बनकर अपने पतिके संग भस्म होनेके लिये चितामें बैठनेको उपस्थित हुआ तब भगवान्ने ब्राह्मणका रूपधरके ज्ञानकरके सब हाल जीव स्त्री होगयाथा उसको बतलानेलगे, परंतु प्रथम ज्ञान क्यों नहीं दिया कि ऐसा जीव दुःख पाताहै. यह सन्देह है.

उत्तर–प्रथम स्त्रीरूप पुरंजन अपने अभिमानसे बडा उन्मत्त होरहाथा. भगवान्ने ज्ञान दिया. सो सुनलिया परंतु स्मरण नहीं रक्खा. जब अभिमान नष्ट होताहै तो जीव ज्ञानको सीखताहै. मानवालेको ज्ञान कहा. भगवान्ने जीवरूप स्त्रीको बडा अभिमानी जानके पहिले वारम्वार ज्ञान नहीं कहा, जब मान नष्ट होगया तब कहतेही जीवने ईश्वरके वाक्यको मानलिया.

हे सखे। आप मुझको जानते होंगे परंतु इतना तो मुझकोभी ध्यान आता है कि, मेरा एक अविज्ञात नामक सखाथा, (परमात्मा)और मुझको त्याग भूमिकी इच्छासे विषयवासना भोगनेके लिये आश्रमके खोजनेको गयाथा ॥५३॥ हे आर्य। हम तुम तो दोनों मानससरोवर (हृदय) वासी हंस (शुद्ध)हैं सो हम और आप दोनों मित्र सहस्रों वर्षतक बिनाही स्थान रहेथे (महाप्रलय हुआ उस समयतक) जीव तुम हो ईश्वर मैं हूँ ॥ ५४ ॥ हे बन्धो ! उससमय विषयोंमें आपकी बुद्धि थी,सोमुझको त्यागकर विषयके सुखकी कामनासे तुम पृथ्वीमें गये और किसी स्त्री(माया)की रचीहुई पुरीतुम्हारे देखनेमें आई,उसमें तुम विचरनेलगे, ऐसे पृथ्वीपर मैंनें तुमको देखा, अब उस पुरीका वर्णन आपसे करते हैं ॥५५॥उस पुरीमें पांच तो उपवन थे, और नवद्वार थे,तीन कोट थे,छः वणिक थे,पांच हाटें थीं.और पांचही मूलकारण थे,और एक स्त्री वहांकी स्वामिनीथी,एक उस पुरीका

अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ॥ हित्वा मां पदमन्विच्छन्भौमभोगरतो गतः ॥ ५३ ॥ हंसावहं च त्वं
चार्य सखायौ मानसायनौ ॥ अभूतामंतरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ ५४ ॥ स त्वं विहाय मां बंधो गतो
ग्राम्यमतिर्महीम् ॥ विचरन्पुरमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥ ५५ ॥ पंचारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ॥
षट्कुलं पंचविपणं पंचप्रकृति स्त्रीधवम् ॥५६ ॥ पंचेंद्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ॥ तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि
कुलमिंद्रियसंग्रहः ॥ ५७ ॥ विपणस्तु क्रियाशक्तिभूतप्रकृतिरव्यया ॥ शक्त्यधीशः पुमांस्तत्र प्रविष्टो नावबुध्यते
॥ ५८ ॥ तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ॥ तत्संगादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥ ५९ ॥

रक्षक था, ऐसी वह पुरी थी ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह तो पांच उपवन समझो देहमें जो प्राणरूप नव छिद्र हैं उन्हींको नवद्वार समझो, एक जो प्राणहै, वही पुरीका रक्षक समझो पृथ्वी, तेज,जल, यही तीनों दुर्ग समझो. श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण यह पांच ज्ञानेंद्रिय और छठा मन इन छहोंको वणिक् समझो ॥५७॥ कर, पद, वाणी, शिश्न, गुदा इन्हीं पांच कर्मेंद्रियोंको हाटें समझो. क्षिति,जल तेज, वायु, आकाश इन पंच महाभूतोंको मूलकारण समझो.और बुद्धिको स्वामिनी समझो,उसका पति जो वह आत्माहै अपनी भार्याके विवश होनेसे अपने निजस्वरूपको भूलजाताहै ॥ उस पुरीमें क्रियाशक्तिरूप व्यवहार होताहै जिसका नाश कभी नहीं होता,वह भूत प्रकृतिहै और इसमें

जो पुरुष है वह शक्तिका अधीशहै वही उस पुरीमें वास करताहै परंतु जाना नहीं जाता है ज्ञात हुआ, आप उस पुरीमें जाकर उस स्वामिनीके दास बने और उसके संग रमण करनेलगे, इसकारणतुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं रही-हे प्रभो! उसी कुसंगसे इस पापीय दशाको आप प्राप्त हुए ॥ ५८॥५९॥ न तो तुम विदर्भराजाकी पुत्री हो, और न यह राजा पांड्य तुम्हारा स्वामी है न पुरंजनीके तुम पति हो केवल उस नौ द्वारवाली पुरीमें मोहके वशीभूत होकर रुकरहे हो॥६०॥ यह सब माया मेरीही रचीहुई है, जो तुम पूर्वजन्ममें अपने लिये पुरुष मानतेथे और अब अपने लिये सती स्त्री मानतेहो यह यथार्थमें दोनों बातें वृथाहैं, यह माया तो मेरीही रची हुईहै हम तुम तो दोनों शुद्ध हंस हैं अब मैं अपना सत्यस्वरूप वर्णन करताहूँसो कान लगाकर सुनो. और मेरी गति देखो ॥ ६१॥ हे जीव! हम तुम दोनों एकही हैं, जो तू है वह मैं हूं इस बात को ज्ञानरूपी

नत्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव ॥ न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥६०॥ माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पु
मांसं स्त्रियं सतीम्॥मन्यसे नाभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥६१॥ अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः ॥
न नौ पश्यंति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥६२॥ यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ॥ द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवांत
रमावयोः ॥६३ ॥ एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ॥ स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥ ६४ ॥

नेत्रोंसे विचार कर देखले .भिन्न नहीं है, जो पंडित हैं वे कभी हमारे तुम्हारे बीचमें भेद नहीं समझते ॥ ६२ ॥ तो अल्पज्ञ सर्व जन भेद कैसे मानतेहैं ? उसका उत्तर यहहै कि, जैसे एक देहका प्रतिबिम्ब आदर्शमें देखा जाय तो दीर्घ विमल और स्थित दिखाई देताहै, उसी प्रतिबिम्बको कोई दूसरे दर्पणमें अपनीही आँखसे देखे तो लघु, मलीनऔर चंचल दृष्टि आताहै, इसमें दर्पणके छोटे बडे होनेका भेद है, प्रतिबिम्बका भेद नहींइसीप्रकार दोनोंमें विद्या और अविद्यारूप उपाधिके विकारका भेद है. परंतु वास्तवमें किंचिन्मात्रभी भेद नहीं है ॥६३॥ इसप्रकार मानसहंस जीवको उस मानससरोवरवासी हंस ईश्वरने ज्ञान दरशाया, तब इसने अपने स्वरूपमें स्थित होकर ध्यान किया तो ध्यानके करतेही उसको वह स्मृति हुई कि, मैं ब्रह्म हूँ और ईश्वरके वियोगकी बुद्धिरूप स्मृति जो नष्ट होगयी थी सो फिर प्राप्त होगई ॥६४॥

हे प्राचीनबर्हि! मैं तेरे आगे साक्षात् आत्मज्ञानकी कथा कहता तो कभी तू नहीं समझता और न तेरे ध्यानमें आता, इसलिये अध्यात्मज्ञान परोक्ष करके हमने तुझे दिखाया, परोक्ष उसको कहते हैं, जो नेत्रोंसे देखनेमें न आवे, और परोक्षरीतिसे वर्णन करनेका यह अभिप्राय है कि, परोक्षप्रिय भगवान् विश्वपालक इस इतिहासके विचारनेसे चित्तमें प्रगट होजाते हैं. ॥६५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पुरंजनोपाख्याने स्त्रीविचिन्तया स्त्रीत्वप्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिवर्णनंनामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८॥ दोहा--उनतिसवें आध्यायमें, कहूं स्पष्ट परोक्ष । नारिसंगसे नरक है, हरिप्रसंगसे मोक्ष॥२९॥ प्राचीनबर्हि नृप बोले कि, हे भगवन्! आपका वचन मेरी समझमें अच्छीरीतिसे नहीं आया

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥ यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान्विश्वभावनः ॥६५॥ इति श्रीमद्भा॰म॰चतुर्थ॰
पुरं॰ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥२८॥ प्राचीनबर्हिरुवाच॥ भगवंस्ते वचोस्माभिर्न सम्यगवगम्यते॥ कवयस्तद्विजानंति न
वयं कर्ममोहिताः॥१॥ नारद उवाच॥ पुरुषं पुरंजनं विद्याद्यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम्॥ एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम्॥२॥

क्योंकि, ऐसी महाकठिनार्थ वार्ताको तो वह समझ सक्ते हैं जो वेदान्ती, आत्मज्ञानी, कविजन हैं और मैं तो केवल कर्मकाण्डमें मोहित होरहाहूं ऐसी गूढ बातोंको मैं कैसे समझूं? इसलिये मुझको फिरसे समझाकर कहो* ॥१॥ नारदजी बोले कि, जिसको मैंने राजा पुरंजन कहा है उसको जीव समझना चाहिये क्योंकि जीव अदृष्टरूप द्वारसे अपने आत्माके पुरोंको प्रगट करता है कि, जिन जीवोंमें कितने तो एक २ पगवाले होते हैं कितने दो पांवके होते हैं कोई तीन चरणवाले कोई चार चरणवाले कोई अनेक पगवाले होते हैं, और कोई बिनाही चरणके होते हैं ॥ २ ॥

---

१ **भजन**—जाको तू नरतनु मानत, यह आपरूप भगवान् है ॥ अहंकारने जबसे घेरो, कहन लगो मेरो और तेरो ॥ भूलगयो निजरूप अनेरो, तू सर्वज्ञ सुजान है ॥ १ ॥ भली बुरी करनी जब करी है, बंधनमें तबही तो परि है ॥ निष्क्रियको कछु नाहीं डर है तो को तो कर्मकी आन है ॥२॥ मै हूं देह ये देहहै मेरी, केवल यही भूल है तेरी॥ पंचतत्त्वकी यह तो ढेरी, जान क्यों भया अजान है॥३॥ सत् चित् आनंद भाव साँवरो. पंचकोशते हो जा न्यारो ॥ नामरूप कछु नाहीं निहारो, येही निर्मल ज्ञान है ॥ ४ ॥

* **शंका**—नारदमुनि सबके हृदयकी बात जाननेवाले थे और प्राचीनबर्हिराजाको अत्यन्त मूर्ख समझलियाथा. तो फिर गूढ ज्ञानके वचन राजासे क्यों कहे ? क्योंकि गूढार्थको चतुरप्राणी समझते हैं मूर्ख लोग कभी नहीं समझते,

उत्तर—नारदजीने पहिलेही प्राचीनबर्हि राजाका ज्ञानसे कच्चा हृदय जानकर और श्रेष्ठकर्मोंसे हीन समझकर उन्मत्त कामी क्रोधी जान राजाके ऊपर अनुग्रह करके एक क्षणमात्रमें प्राचीनबर्हिको परम ज्ञानी बनाकर फिर महागूढार्थ वचन राजासे कहे.

और अविज्ञातनामक जो जीवका सखा कहा उसको ईश्वर समझना चाहिये. वह ईश्वर नाम, क्रिया, गुणोंसे किसीके जाननेमें नहीं आसक्ता ॥ ३॥ जब संपूर्णतासे पुरुष प्रकृतिके भोगनेकी इच्छा करता है, तब उस शरीरमेंसे नव छिद्र, दो हाथ, दो पांववाले नरदेहको उसने बहुत उत्तममानकर वास किया ॥ ४ ॥ और जिसको मैंने पुरंजनी कहा वह बुद्धिहै जिसके संबधसे जीव मैं और मेरा कहने लगता है, और इस देहमें जीव बुद्धिके आश्रित होकर इंद्रियोंके द्वारा विषयोंको भोगता है ॥५॥ उस पुरंजनीके जो दश (१०) सखा कहे, वे इंद्रियां हैं, जिनमेंसे किसी किसी इंद्रियोंसे विषयोंका ज्ञान होना है, किसी किसी इंद्रियोंसे केवल कर्मही होताहै, इसमें जो पुरंजनीकी सहेलियाँ कही हैं वे इद्रियोंकी वृत्तियांहैं और पांच

योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ॥ यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥ ३ ॥ यदा जिघृक्षुः पुरुषः कात्स्न्र्येन प्रकृर्गुणान् ॥ नवद्वारं द्विहस्तांघ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥ ४ ॥ बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ॥ यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुंक्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥ ५ ॥ सखाय इंद्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ॥ सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पंचवृत्तिर्यथोरगः ॥ ६ ॥ बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेंद्रियनायकम् ॥ पंचालाः पंचविषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥ ७ ॥ अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ॥ द्वेद्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिंद्रियसंयुतः ॥ ८ ॥ अक्षिणी नासिके अस्यामिति पंच पुरः कृताः ॥ दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥ ९ ॥ पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ॥ खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे चैकत्र निर्मिते ॥ रूपंविभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥ १० ॥

शिरका सर्प जो हमने कहा, वह पंचवृत्तिरूप प्राण है (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान) ॥ ६ ॥ जिसको मैंने महाबलशाली सेनापति कहा, वह मनहै, वह मन ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंका नायकहै, और पांचालदेश जो कहा, वे पांच इन्द्रियोंके विषयहैं, जिसमें नव द्वारका पुर है ॥७॥ जिसमें दो नेत्र, दो नासिका, दो श्रवण, एक मुख, एक लिंग, गुदा, ये नव द्वार हैं, इन इन द्वारोंसे जीव इन्द्रियोंको अपने साथ लेकर बाहिर आता है ॥८॥ दो नेत्र, दो नासिका और एक मुख, ये पांच तो पूर्वके द्वार हैं, दक्षिण कान दक्षिणकी ओरका द्वार और वाम कान उत्तरका द्वार है ॥ ९ ॥ पश्चिमकी ओर नीचेके दो द्वार एक गुदा और एक शिश्न इस शरीरमें है, खद्योता आविर्मुखी नाम जो कहे, वे दोनों

समसमान एक सूधमें निर्माण कियाहै,इनको नेत्र समझना इनही द्वारोंसे जीवात्मा चक्षुरिंद्रियकी सहायतासे विभ्राजित नाम देशमें जाकर रूपको देखताहै ॥१०॥और नलिनी नालिनी नाम जो द्वार कहे वह नासिका है और सौरभ देश जो कहा, वह गन्ध है, जिससे सुगंधका ज्ञान होता है नाक,मुख दोनों कम्पायमान करनेवाली व्यवहारकारी वाणी रसज्ञानी,रस आपण व्यवहार यहां है,विचित्र अन्न बहूदन है, वाणी और रसना यह दोनों परम मित्र हैं, बोलना उसका धर्म है और भोजनका निवारण करनेवाला है पितरोंका बुलानेवाला दाहिना कान है और देवताओंका बुलानेवाला बांया कान है ॥११॥१२॥ दक्षिण पांचालदेश प्रवृत्ति मार्गका शास्त्रहै, और उत्तर पांचाल देश निवृत्तिमार्गका शास्त्र है पितृयान और देवयान शास्त्र सुन जैसे पितृलोक और देवलोकका वास होता है॥१३॥आसुरी नाम जो पश्चिमद्वार कहा वह शिश्न है,वह नीचेका द्वारहै,जिससे मैथुन करतेहैं, वह मैथुन करनेवाले ग्रामक लोग हैं,दुर्गदमित्र जो कहा वह उपस्थ इन्द्रिय है और निर्ऋति गुदाका देवता है॥१४॥लुब्ध जो कहा वह पायु इन्द्रियहै और वैशसदेश जो कहा वह नरकहै, लुब्ध जो अंधीन्द्रीयहैं,सो मैं कहताहूँ अधद्वार हाथ पाँव दो हैं, जिनसे यह पुरुष कर्म करता है और चलता है॥१५॥अन्तःपुर कहा वह हृदय है,और उसमें जो द्रष्टा कहा वह मनहै जिसको सत्त्व,रज और तमसे हृदयमें प्रसाद हर्ष मोह उत्पन्न होताहै,और जीवात्मा सब जानताहै,तौभी बुद्धिके उन उन गुणोंकरके गुणोंसे युक्त होकर दर्शन स्पर्शन आदिक जो जो कार्य बुद्धिकरती है, उन सब कर्मोंको अपना कर्तव्य मानताहै,और स्वप्नमें उसीके अनुसार विकारको प्राप्त होताहै,अथवा जागनेपरभी उसी प्रकार इंद्रियोंको बदलता।

नलिनी नालिनी नासे गंधः सौरभ उच्यते ॥ घ्राणोऽवधूतो मुख्याऽऽस्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥११॥ आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रगंधो बहूदनम् ॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥१२॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पंचालसंज्ञितम्॥पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छतधराद्व्रजेत् ॥ १३ ॥ आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ॥ उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥ १४ ॥ वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोंधौ तु मे शृणु ॥ हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च॥१५॥ अंतःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते॥तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः॥१६॥ यथायथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ॥ तथातथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥ १७ ॥

रहता है कभी विकारी होताहै, कभी उसीप्रकार जो उपद्रष्टा जीव है उन वह वृत्तियोंको करता रहता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ रथ जो कहा, वह स्वप्न अवस्था देह है,इंद्रियरूप घोडे जिसमें जुतरहे हैं, रथकी उग्रगति जो कही वह संवत्सरका वेग है, जो किसी समय नहीं रुकता और दो पहिये जो कहे, वे पुण्य और पाप हैं, तीन ध्वजा जो कहीं, वह सत्त्व, रज,तम तीन गुण हैं,पांच बन्धन जो कहे, वह पंच प्राण हैं॥१८॥रस्सी जो कही, वह मन है,सारथी जो कहा वह बुद्धि है,बैठनेका स्थान जो कहा,वह हृदय है,जुआ जो कहा वह सुखदुःख आदि द्वंद्व हैं सामान जो कहा वह पांच विषयहैं, यवनिका जो कही वह सप्तधातु हैं॥१९॥आकूति जो प्राणोंकी शक्तिहै वह रथका पराक्रम कहा.वह मृगतृष्णाका दौड़नाहै उसके संग सेना जो कही, वह एकादश इंद्रियें हैं.और आखेट जो कहा, वह पंच ज्ञानेंद्रियोंका आनंद देनेवालाहै.और चंडवेग गंधर्व जो कहा,वह महा

देहो रथस्त्विंद्रियाश्वः संवत्सररयो गतिः ॥ द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पंचासुबंधुरः॥१८॥मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वंद्व
द्वकूबरः ॥ पंचेंद्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥ १९ ॥ आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ॥ एकादशेंद्रि
यचमूः पंचसूनाविनोदकृत् ॥ संवत्सरश्चंडवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥ २० ॥ तस्याहानीह गंधर्वा गंधर्व्यो रात्रयः
स्मृताः ॥ हरंत्यायुः परिक्रांत्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ २१ ॥ कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनंदति ॥ स्वसारं
जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनश्वरः ॥ २२ ॥ आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्वराः ॥ भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो
विविधो ज्वरः ॥ २३ ॥ एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः ॥ क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥ २४ ॥

प्रचंड वेगवाला संवत्सर है, जिससे काल उपलक्षित होता है॥२०॥तीनसौ साठ जो गंधर्व कहे,वे सवत्सरके दिन हैं, और तीनसौ साठहीं सावली और गोरी जो उनकी स्त्रियां कहीं वह कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके वर्षभरकी रात्रि है, यह दिनरात व्यतीत होती हैं और आयुका क्षय करती हैं ॥ २१ ॥ कालकी सुता जिसका कोईभी सन्मान नहीं करता है, वह जगत्में वृद्धअवस्था है,उस मृत्युको लोगोंका क्षय करनेके लिये यवनेश्वरने अपनी बहिन बनाया ॥२२॥ मृत्युके चहुँओर घूमनेवाले सैनिक जो कहे वह आधिव्याधि उस यवनकी सेनाके वीर हैं, और जो प्रज्वार कहा. वह शीतोष्ण दो प्रकारका ज्वर समझाना जो मृत्युका भ्राता है और सब प्राणियोंको पीडा देनेमें महाप्रचंड जिसका वेग है, वह प्रज्वार नामक अनेक प्रकारका ज्वर है ॥ २३ ॥ ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके आध्यात्मिकादिक त्रयताप क्लिश्यमान शरीरमें शरीरही तमोगुणमें होकर ज्ञानी स्वयं

प्राणेंद्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ॥ शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥ २५ ॥ यदात्मानमविज्ञाय
भगवंतं परं गुरुम् ॥ पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक्॥२६॥ गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ॥ शुक्लं
कृष्णं लोहितं वा यथा कर्माभिजायते ॥२७॥ शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ॥ दुःखोदर्कान्क्रियायासां
स्तमश्शोकोत्कटान्क्वचित् ॥२८॥ क्वचित्पुमान्क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमंधधीः ॥ देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं
भवः ॥ २९ ॥ क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहंगृहम् ॥ चरन्विंदति यद्दिष्टं दंडमोदनमेव वा ॥ ३० ॥ तथा
कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ॥ उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥ ३१ ॥ दुःखेष्वेकतरेणापि
दैवभूतात्महेतुषु ॥ जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥ ३२॥

निर्गुण होनेपरभी अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता हुआ ॥२४॥ प्राण इंद्रिय मनके धर्म आत्मामें निश्चय करके निर्गुणजीव विषयोंकी तृष्णाके लवमात्र सुखका ध्यान कर सोजाता है. मम, अहं, यह कर्म करता है ॥२५ ॥ स्वयं परमात्मारूप होनेपरभी यह जीवात्मा जो कि, परमात्मा परमगुरु वासुदेव भगवान् हैं उनको जानकरभी अविद्याकी प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त होजाता है ॥ २६ ॥ तब गुणोंका अभिमानी जीव परवश होकर सात्त्विक; राजस, तामस कर्म कियाकरता है, और उन कर्मोंके करनेसे महा कष्टदायक लोकोंमें जाता है, अरु उनही कर्मोंके अनुसार बारंबार संसारमें जन्म लेता है ॥ २७ ॥ सात्त्विक कर्म करनेसे महा प्रकाशवान् लोकोंमें जाकर उत्तम कुलमें जन्म पाता है, राजसकर्म करनेसे महादुःखदायक लोकमें परिश्रमसे पूरित मध्यम वंशमें जन्म लेता है और तामस कर्म करनेसे महाशोकवाले लोकमें अज्ञान और क्लेशकारी लोगोंके घरमें उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥ यह महाअधम जीवात्मा अपने कर्मोंके गुणानुसार कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी नपुंसक, कभी देवता, कभी मनुष्य, कभी पशु, कभी पक्षीका जन्मधारण करतारहताहै॥ २९ ॥ जैसे भूखा, श्वान, दीन होकर घरघरमें भटकता फिरता है, कहीं तो अच्छेसे अच्छा भोजन खाताहै,और कहीं मार खाकर आता है, अपने भाग्यके अनुसार भोग भोगता है॥३०॥ ऐसेही कामासक्त हृदयवाला जीव स्वर्ग,पृथ्वी और अंतरिक्षमें उच्चनीच जातिमें भ्रमण करताहुआ प्रारब्धानुसार सुखदुःख पातारहता है ॥ ३१॥ कष्टके दूर करनेका सच्चा उपाय तो

सम्पूर्ण हैही नहीं और जो कियाभी जाय तो भी दैवसे, भूतसे, आत्मासे, हेतुसे, किसीरीतिसेभी जीवका वियोग नहीं होसक्ता ॥ ३२ ॥ जसे बहुत बोझके भारको मनुष्य शिरपर धरकर चलता है, जब शिर दुखने लगता है, तब उस भारको कन्धेपर धरलेता है परंतु वह सब भार शरीरहीपर है, ऐसेही दुःख दूर करनेके जो उपाय हैं वह भी दुःखरूपीही हैं इसलिये यह प्राणी दुःखसे कभी छूट नहीं सक्ता ॥ ३३ ॥ दुःखको जड़भूत तो कर्मही ठहरा वह कर्म और कर्म करनेसे कभी नहीं छूट सक्ता क्योंकि कर्म केवल ज्ञानरहित और वासनासहित है; इसलिये जैसे अपने दूसरे कर्मको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं करसकता और जैसे एक स्वप्नमें दूसरा स्वप्न देखता है, तो वह पहला स्वप्न दूसरे स्वप्नको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं करसकता, इसीप्रकार एक कर्म उसका दूर करनेवाला दूसरा कर्म यह दोनों अज्ञानजन्य होनेके कारण एकरूप होनेसे उसमेंका

यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् ॥ तं स्कंधेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥ ३३ ॥ नैकांततः प्रतीकारः
कर्मणां कर्म केवलम् ॥ द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥३४॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ मनसा
लिंगरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥ ३५ ॥ अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरंपरा ॥ संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या
परमया गुरौ ॥ ३६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ॥ सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥ ३७ ॥
सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥ ३८ ॥

एक कर्म दूसरे कर्मको दूर नहीं करसकता ॥ ३४॥ यद्यपि स्वप्न झूठा है, तो भी उपाधिरूप मनकी जबतक स्वप्न अवस्था रहे तबतक वह उपाधि मिट नहीं सक्ती, ऐसे यह संसार सम्पूर्ण मिथ्या है तो भी चित्तमें जबलों विषयोंका ध्यान बना रहे है, तबतक वह किसी रीतिसे मिट नहीं सक्ता ॥ ३५॥ इसलिये अज्ञान जो महा बलवान है कि जिसके हेतु परमपुरुषार्थरूप आत्मा अखंड प्रवाहरूप संसार हुआ है. उस अज्ञानका विध्वंस परमगुरुरूप भगवान्की भक्तिसेही हो सक्ताहै ॥ ३६॥ वासुदेव भगवान्में अत्यन्त प्रीतिसे दृढ भक्तियोग किया जाय तो उससे ज्ञान और वैराग्य दोनों उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजर्षे! भक्तियोगका मुख्य कारण केवल अच्युत भगवान्की कथाहै इसलिये जो पुरुष श्रद्धा

सहित भगवान् वासुदेवकी कथा सुनतेहैं,और निरन्तर अपने चित्तमें अध्ययन करतेहैं उनको स्वल्पकालमें भक्तियोग प्राप्त होजाताहै॥३८॥ हे राजन्! भागवत साधु निर्मल अन्तःकरण वाले भगवत्के गुणानुवाद श्रवण व कीर्तनमें जिनका चित्त लगारहाहै॥३९॥ऐसे महात्मा सज्जन पुरुष जहां होतेहैं वहां मधुदैत्यके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके चरित्रामृतकी नदियें सब ओर बह रहीहैं सो हे राजन्!इन सुधारूप नदियोंका जल जो पुरुष छल छिद्ररहित होकर सावधानतासे श्रवणद्वारा पान करतेहैं और तृप्त नहीं होते,:उन भक्तजनोंको क्षुधा पिपासा,भय,शोक, मोह कोईभी स्पर्श नहीं करसक्ता॥ ४० ॥ विना सत्संमके यह जीव सदा दुःखी रहता है, यह बातें सब स्वभावसे होती हैं, जब स्वाभाविक क्षुधा तृषादिक उपद्रवोंसे आलसी पुरुषोंके लिये हरिकथामृतकी प्राप्ति होनी महाकठिन है और अहंकारी पुरुष भगवान् वासुदेवकी कथारूप अमृतके सागरमें पहुँचकरभी प्रेमरूपी सुधाका पान नहीं करसक्ता ॥४१॥ प्रजापतियोंके पति साक्षात् ब्रह्माजी, भगवान् शिवजी, मनु दक्षादिक प्रजापति सनकसनन्दनादिक, नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥ ४२ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा,पुलस्त्य, पुलह, क्रतु भृगु, वसिष्ठ और मैं भगवत् कथामें जो कि ब्रह्मचारी ॥ ४३ ॥ अबतक वेदवाणियोंके वक्ता तप, विद्या, समाधि करके सबके देखनेवाले परमेश्वरको देखरहेहैं, तौभी उसको जान नहीं सक्ते हैं ॥ ४४ ॥ क्योंकि, वेदका विस्तार और उसकी:महिमा अपरम्पार है और कोई अर्थोंकाभी पार नहीं पाता इसलिये वेदवादी जो महात्मा पुरुष हैं, वे वेदके मन्त्रोंमें कहेहुए चिह्नवाले इन्द्रादिक देवताओंकी कर्मसे आग्रहसहित भक्ति करतेहैं,उनकोभी परब्रह्म परमात्माका ज्ञान होना महाकठिनहै॥४५॥

यत्र भागवता राजन्साधवो विशदाशयाः ॥ भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः॥३९॥तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभि
च्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवंति॥ता ये पिबंत्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशंत्यशनतृड्भयशोकमोहाः॥४०॥
एतरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ॥ न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम्॥४१॥ प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवा
न्गिरिशो मनुः ॥ दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥ ४२ ॥ मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदंता ब्रह्मवादिनः ॥४३॥ अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः ॥ पश्यंतोऽपि न पश्यंति
पश्यंतं परमेश्वरम्॥ ४४ ॥ शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरंत उरुविस्तरे ॥ मंत्रलिंगैर्व्यवच्छिन्नं भजंतो न विदुः परम् ॥४५॥

इसलिये हृदयमें चिन्तवन करनेसे जिस समय भगवान् आत्मामें भावित जिसपर अनुग्रह करते हैं, तब वह पुरुष जगत्के व्यवहार और कर्मकाण्डको त्याग वेदमार्गमें लगजाता है ॥ ४६ ॥ हे प्राचीनबर्हि ! इसलिये यज्ञादिक सकाम कर्म अज्ञानसे सत्यकी नाई प्रतीत होते हैं और उनके फलादेश सुननेसे कानोंको प्रिय लगते हैं ऐसे कर्ममें परमार्थदृष्टि मत करो, यह कर्म केवल श्रोत्रइन्द्रियस्पर्शी हैं सिद्धान्त वस्तुके स्पर्श करने वाले ये कर्म नहीं हैं ॥ ४७ ॥ वे लोक अपने लोकको नहीं जानते जहां भगवान्जनार्दन देव विराजमान हैं. धूम्रसमान बुद्धिवाले लोग कहते हैं, कि, वेदका तात्पर्य केवल कर्मोंपर है, वे मूर्ख वेदके तात्पर्यको नहीं जानते, और अकर्मवेदको सकर्म कहते हैं ॥ ४८॥ तुझको किंचिन्मात्र आत्मज्ञान नहीं. क्योंकि पूर्वकी ओर जिनके अग्रभाग ऐसे कुशाओंको बिछाकर समस्त भूमण्डलपर अनेक यज्ञ किये, और महाअभिमानी बन अनेक पशुओंका वध किया और नहीं जाना, इसीलिये भगवान् तुझसे प्रसन्न नहीं हुए, जिस कर्मसे भगवान् प्रसन्न हों, वही सत्यकर्म है, और जिससे परमात्मामें मन लगे, वही सत्यविद्या है, वही वर्ण उत्तम है वही कुल श्रेष्ठ है, वही आश्रम शुभ है, जिसमें भगवद्भक्त होते हैं ॥ ४९ ॥ नारायणही सब देहधारियोंके आत्मा हैं, आपही प्रकृतिके ईश्वर हैं, इसलिये उनहीके चरणकमलकी शरणागति लेनेसे पुरुषोंको अनेक प्रकारके मंगल और सिद्धियां होती हैं ॥ ५० ॥ वह भगवान् सबके प्रियतम आत्मा हैं, और उनकी भक्तिमें किसी प्रकारका अणुमात्रभी भय नहीं होता जो लोग इस प्रकार परमेश्वरको जानते हैं, वेही जगत्में विद्वान् हैं, और जो पुरुष विद्वान् हैं, वेही गुरु हैं वेही भगवान् हैं ॥ ५१ ॥

यदा यमनगृह्णाति भगवानात्मभावितः ॥ स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥४६॥ तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ॥ माऽर्थदृष्टिं कृथाःश्रोत्रास्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥ ४७ ॥ स्वलोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः॥ आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥ ४८ ॥ आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमंडलम् ॥ स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि तत्परम् ॥ तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥ ४९ ॥ हरिर्देहभृतामात्मा स्वयंप्रकृतिरीश्वरः ॥ तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥ ५० ॥ स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ॥ इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥ ५१ ॥

नारदजी बोले कि, हे पुरुषश्रेष्ठ! तैंनें मेरे कहेहुए इतिहासका जो स्पष्टार्थ बूझा, वह मैंने भिन्न भिन्न कर तुझसे कहा, अब मैं वह गुह्य गोपनीय सुन्दरवार्ता तुझसे कहताहूँ जो इस विषयमें पूर्ण निश्चय की हुई है, तुम मन लगाकर सुनो ॥ ९२ ॥ "एक और प्रकारसे जीवका वर्णन करते हैं सो सुनो" तुच्छ पदार्थ था चलनेवाला मृग पुष्पोद्यानमें स्त्रीके साथ उसीमें मतवाला होरहाहै, और भ्रमरगणोंके गानसे उसके कान लुभा रहे हैं, सन्मुख भेडियोंके समान दिन, पक्ष, मासादिक कालके विभाग तेरी आयुके भक्षणके लिये उपस्थित हैं, और तू उनको कुछ नहीं समझता और बैठ आहार विहार कररहाहै. और पीछेव्याधरूप काल, धनुषबाण लिये तेरे हृदयको वेधन करनेके लिये बैठा है, अब तुझको अपने आत्माका विचार करना चाहिये ॥ ९२ ॥ पुष्पोंके समान जिनके धर्म ऐसी स्त्रियोंके शरणरूप पुष्पवाटिकामें पुष्पोंकी मधुगंधके सदृश अत्यन्त तुच्छ जो कामकर्मके फलसे उत्पन्न जोकामसुख लवमात्र जीभके स्वाद, शिश्नके विषयभोगादिकोंको ढूँढे, स्त्रीपुरुष दोनों उन विषयोंमें मन लगाकर भ्रमरगणके सुन्दर गीतिकी नाईं अति मनोहर वनिता आदि जनोंके सम्भाषण करनेमें अत्यंत लोभित जिसका मन, कर्ण ऐसा यह जीव आगे भेडियोंके यूथवत आपकी आयु हरनेवाले दिन रात कालके बलविषे उनको कुछ न समझकर घरमें विचरे विहारकरे, पीठकी ओरसे नहीं दीखपडे, ऐसे प्रवृत्त एक वधिकरूप यमधर्मराज वह हृदयमें बाणसे जीवको भेदन करता है ऐसे उस आत्मा जीवको हे राजन्! उसका हृदय

नारद उवाच ॥ प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ॥ अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥ ५२ ॥ क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडंघ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ॥ अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यांतं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥ ५३ ॥ सुमनस्सधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगंधवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्वयौपस्थ्यादि विचिन्वंतं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडंघ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रांतान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरंतं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतांतोन्तःशरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राज भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥ ५४ ॥

35/

भिन्नहुआ ऐसे देखनेको तुम योग्य हो ॥५४॥ सो तुम इसप्रकार अपनी चेष्टा उस मृगके सदृश विचारो और इस बातका विचार करके अपने मनको हृदयमें आकर्षण कर और सब बहिर्वृत्तियोंका रोध करो, परंतु इस गृहाश्रमको त्यागकर जिसमें नीचकामीपुरुषोंके यूथकी बातें हैं और जो कि, भगवान् प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, उनको प्रसन्न करो, इसप्रकार अनुक्रमण करके सबसे विरागकर ॥ ५५ ॥ प्राचीनबर्हि बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हे नारदजी ! ! जो आपने कहा वह मैंने सुना, और विचारा परंतु इस बातको यह जो उपाध्याय जो मुझको कर्मका उपदेश करते हैं क्या वह नहीं जानते थे ? औरजो जानते थे तो मुझसे क्यों नहीं कहा ? ॥ ५६ ॥ हे नारद ! इन विषयरूप उपाध्यायोंने जो असम्भावनारूप कहा (मैं ईश्वर हूँ वा नहीं) यह मेरे मनमें बडा भारी संशय था सो आपके अनुग्रहसे सब कटगया, इसी प्रकारका एक दूसरा सन्देह और है जहां

स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽतश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ॥ जह्यंगनाश्रममसत्तमयूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥ ५५ ॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत ॥ नैतज्जानंत्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥ ५६ ॥ संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् ॥ ऋषयोऽपि हि मुह्यंति यत्र नेंद्रियवृत्तयः ॥ ॥ ५७ ॥ कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ॥ अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥ ५८ ॥ इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्रतत्र ह ॥ कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाते ॥ ५९ ॥

इन्द्रियोंकी वृत्ति नहीं जासक्ती हैऔर ऋषिलोगभी उसमें मोहित होजाते हैं, वहां दूसरेकी क्या सामर्थ्य है ? ॥ ५७ ॥ जिस देहसे पुरुष इस जगत्में कर्मोंको करता है देहको यहाँ छोडकर परलोकको चला जाताहैऔर वहाँ जाकर दूसरे शरीरसे इन कर्मोंके फलोंको भोगता है,सो मुझको यह संदेह है कि, इस देहसे किये हुये कर्म दूसरे देहसे भोगे जाते हैं ॥ ५८॥ यह बात वेदवादी लोग सदा कहा करते हैं और आपभी पहिले कह चुकेहो कि पुरंजनने जो कर्म किये थे, उनका फल मरनेके पश्चात् उसको अगले जन्ममें मिला, सो आपका कहना सत्य है परन्तु इसमें मुझको बडा संशय है, क्योंकि कर्म करनेवालेको कर्मका फल मिलना चाहिये परन्तु दूसरे शरीरके किये कर्मोंको भोग दूसरा शरीर भोगे यह कहना आपका किसी प्रकार सम्भव नहीं.जो शरीरके किये कर्मोंको करे. उसी शरीरको उसका फल मिलना चाहिये और जिस शरीरने कर्म

नारद उवाच ॥ येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान्॥ भुंक्ते ह्यव्यवधानेन लिंगेन मनसा स्वयम्॥ ६० ॥ शयान
मिममुत्सृज्य श्वसंतं पुरुषो यथा ॥ कर्मात्मन्याहितं भुंक्ते तादृशेनेतरेण वा ॥ ६१ ॥ ममैते मनसा यद्यदसावहमिति
ब्रुवन् ॥ गृह्णीयात्तत्पुमान्राद्धं कर्म येन पुनर्भवः॥ ६२ ॥

कियेही नहीं, उसको उसका फल मिलना, यह महाअन्याय है, और धर्म विरुद्ध है. फिर मुझे एक संशय और बडा भारी है कि; पुरुष वेदविरुद्ध जो कर्म करताहै वह किञ्चित् कालमेंही अदृश्य होजाताहै. जैसे कोई अग्निमें हवन करे, और वहां जितनीही देरतक हवन करता रहेगा, वह उतनाही देरतक दृष्टि आता रहताहै, और हवन होनेके पश्चात् वहांके थोडेही कालमें अदृष्ट होजाताहै. जो कर्म छिपगया अथवा नष्ट होगया, उसका फल परलोकमें मिले यह बात किसीप्रकारसे मेरी समझमें नहीं आती, फिर संदेह किस प्रकार शमन हो सक्ता है? ॥५९॥ श्रीनारदजी बोले कि कर्तृत्व और भोक्तृत्व स्थूल देहको कुछ नहीं है, क्योंकि लिंगशरीर अर्थात् जिसमें मुख्यहै वह अंतःकरणहै, सो यह अंतःकरण स्थूलदेहके साथ नष्ट नहीं होता, बरन् एक स्थूलदेहका नाश होकर दूसरा जो स्थूलशरीर मिलताहै उसमें अंतःकरण वही रहताहै इसलिये जिस अंतःकरणने एकस्थूलशरीरमें कर्म किया था, वही अन्तःकरण दूसरे स्थूलशरीरकर्मका भोग पुरुष भोगता है ॥६०॥ अब हम लिंगशरीरको स्वप्नदृष्टांतसे स्पष्ट दिखलाते हैं परंतु उसमें वास्तविक रीतिसे भोक्तृत्व अन्तःकरणका है और वह अन्तःकरण जाग्रत् अवस्थाके शरीरमें जो था वही स्वप्नके शरीरमें है, इसलिये मैं तुम्हारे सन्मुख वर्णन करताहूँ कि, जैसे अपने जीतेजीही पृथक् शरीर प्राप्त होते हैं, परन्तु उस शरीरमें भोक्ता नहीं फिरता ऐसेही मरणपश्चात् शरीर बदल जानेपर भी उसमें भोक्ता जो अन्तःकरण है वह नहीं पलटता, जाग्रत अवस्थामें मनके अंतर संस्काररूपसे जो कर्म लगे हुए वेही स्वप्नअवस्थामें दूसरा शरीर प्राप्त होनेपर भोगने पड़ते हैं, इसी प्रकार एक जन्ममें अन्तःकरणके अन्तरसंस्काररूपसे जो कर्म लगेहुए हों, वेही कर्म दूसरे जन्ममें भोगने पड़तेहैं, सबकी जड तात्पर्य यह है कि स्थूलशरीरको कर्तृत्व नहींहै, क्योंकि अन्तःकरण जो कर्म करनेवालाहै, उसमें यह स्थूल शरीर केवल द्वाररूपहै॥ ६१ ॥यह अन्तःकरण अनेक पुत्रादिकोंके स्थूल शरीरमें स्नेह रखता है, कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा पौत्र है,

यथानुमीयते चित्तमुभयैरिंद्रियेहितैः ॥ एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥ ६३ ॥
नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् ॥ कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥ ६४ ॥
तेनास्य तादृशं राजँल्लिंगिनो देहसंभवम् ॥ श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥ ६५ ॥

और अपने स्थूल शरीरमेंही ब्राह्मणत्ववा क्षत्रियत्व आदिका घमंडकर बैठताहै,तो इससे यह भलेप्रकार विदित होताहै कि,अंतःकरणके केवल अभिमान करनेका जडस्थान स्थूल शरीरहै,परंतु इस बातसे स्थूलशरीरके कर्तापनका निश्चय नहीं होसक्ता, वास्तविक कर्ता अंतःकरणही है, और अंतःकरणने जिस शरीरमें अहंकार किया हो उसी शरीरमें रहकर कियेहुए कर्मसे अंतःकरणकेही कारण पुनर्जन्म होता है.इस बातसे यह निश्चय हुआ कि कर्ताभी अन्तःकरणहीहै,और भोक्ताभी अंतःकरणही है॥ ६२॥कर्मका नाश होजाना यह बात युक्तिसे विरुद्धहै और जन्मका कर्म किसी प्रकार नहीं मिटता यह बात युक्तिसे निश्चय होतीहै,सब इन्द्रियोंके अपने अपने विषयोंके संग एक कालमें:मेल होनेपरभी उन विषयोंका ज्ञान अपने आपको एक संग होसक्ताहै इससे यह अनुमान जान पड़ताहै कि इंद्रियोंका अधिष्ठाताभी कोई वस्तु अवश्यहै,उसीका नाम मन प्रसिद्धकर रक्खाहै मनका जबतक इन्द्रियोंके संग मेल नहीं होता तबतक इन्द्रियोंका विषयके संग मेल :होनेपरभी अपने आपको उस विषयका ज्ञान नहीं होसक्ता,यह बात सबमें प्रसिद्ध है,इसी भाँति चित्तकी वृत्तियांभी एकहीकालमें उत्पन्न नहींहोतीं,परंतु अनुक्रमसे होतीहैं,इसीबातसे अनुमान होताहै कि चित्तकी वृत्तियोंका उत्पन्न करनेवाला पूर्वशरीरका संबधकर्महै,जोजो कर्म जिस२ समय भोगनेके होतेहैं उस२समयमें वह कर्म:अपना भोगदेनेके अनुकूल चित्तकी वृत्तिको प्रगट करते हैं इससे पूर्वसंबन्धी कर्मका किसीप्रकार विनाश नहीं होसक्ता,परन्तु अवशेष रहताहै॥ ६३॥हे राजन्!इस वर्तमान शरीरसे किसी कालमें किसी स्थानमें जिसप्रकारका और स्वरूपका पदार्थ अनुभवमें नहीं आयाहो, तथा कभी देखनेमें नहीं आया हो.और सुननेमेंभी ना आयाहो उसी प्रकारका औरउसी स्वरूपका पदार्थ किसी कालमें स्वप्न और प्रयोजनमें अपने मनमें आताहै, यह तो उस बातसे अवश्य मानना पडताहै कि पूर्व जन्ममें उस पदार्थका वैसा अनुभव अवश्य हुआ होगा॥ ६४॥क्योंकि जिस वस्तुको कभी नहीं देखाहो.वहवस्तु चित्तमें कभी नहीं भासती;

इस बातसेभी उसका अनुभव करनेके योग्य पूर्वशरीर होनेका, अथवा पूर्वशरीरका और इस शरीरका चित्त एक होनेका और पूर्वशरीरके कर्मोंके संस्कार मनमें लगे रहनेका ठीकठीक निश्चय होताहै॥ ६५॥ वर्तमान समयमें होनेवाला प्राणी पूर्वजन्ममें उच्चयोनिमें अथवा नीचयोनिमें और अब अगला जन्म उच्चयोनिमें होगा अथवानीचयोनिमें यह बातभी भलीबुरी चित्तकी वृत्तियोंसे जानी जासक्तीहै इस बातसेभी जान पडता है कि पूर्व जन्म था, और आगेको जन्म लेना पड़ेगा. क्योंकि मनुष्यका मन जो है, उसीको पूर्वरूप कहतेहैं तुम्हारा कल्याण होगा, अथवा न होगा, ऐसे जान लेना॥ ६६॥ इस विषयमें मनुष्य अनेक२प्रकारके तर्क वितर्क करते हैं जो पूर्वजन्ममें देखीहुई वस्तु इस जन्ममें स्वप्नके देखनेमें आतीहो. तो वह वस्तु, किसी कालमें भी देखने के योग्य नहीं फिर वह वस्तु स्वप्नमें कैसे दीखसक्ती है, ? स्वप्नमें तो कभी पहाड़के शिखरपर समुद्र दिखाई देता है, दिनमें तारे दृष्टिआतेहैं और अपना, शीश भुजा कटीहुई देखपड़ती हैं, सो यह क्या कारण है ? उसका प्रत्युत्तर यह है कि समुद्र तो पृथ्वीपर है

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ॥ भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥ ६६ ॥
अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसिदृश्यते ॥ यथा तथाऽनुमंतव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥ ६७ ॥
सर्वे क्रमानुरोधेन मनसींद्रियगोचराः ॥ आयांति वर्गशो यांति सर्वे समनसो जनाः ॥ ६८ ॥

और तारा रात्रिमेंही हैं और अपनी कटीहुई भुजा शीशका प्रतिबिम्ब पानी वा तेलादिकमें देखना यह यथार्थहै, वहां पहाड़के शिखररूप स्थलका, दिवसरूप कालका; और संग्रामादिक क्रियाका जो भेद है, वह केवल निद्रा आदिक दोषहै, यह मानना अत्यन्त सुगम है, परंतु पूर्वजन्मको न मानकर इस जन्ममें न हुआहो, वही स्वप्नमें दिखाई देताहै, ऐसे माननेवालेकोभी देश, काल और क्रियामें भेद पड़नेके हेतु केवल निद्राहीके दोष मानने पडेंगे. इस विषयमें जिसकी प्राप्ति न हो वह दोनों पक्षोंमें समान हैं इसलिये प्रतिपक्षवालेका तर्क करना संपूर्ण अयोग्यहै॥ ६७॥ जो पुरुष महादरिद्री हो, वहभी कभी स्वप्नमें अपने आपको चक्रवर्ती राजाके समान देखताहै, परंतु इस बातमें कुछ असंभव नहींहै, क्योंकि सब इन्द्रिय गोचरक्रमके अनुसार मनमें समूहके समूह आतेहैं और भोगनेके पश्चात् चलेजातेहैं और सबप्राणी मनसहितही आतेजातेहैं, यदि कोई भी मनुष्य मनरहित होजाय, ऐसा नहीं होसक्ता परंतु सब प्राणी मनवालेहैं और जब मनवालेहैं, तो मनमें अनुक्रमानुसार पदार्थोंका प्रवेश होना निश्चयहै,

इसलिये जिस वस्तुका संपूर्ण अनुभव न हुआहो, ऐसी वस्तु कोईभी नहीं है, सबके पदार्थ अनुभवमें आते हैं केवल इतनाही कहनेसे पूर्ण नहीं होता क्योंकि किसी किसी समय सब पदार्थएकसंगही देखनेमें नहीं आते॥६८॥केवल एक सतोगुणमें निष्ठा पाया हुआ मन भगवान् वासुदेवके विराट्स्वरूपको मनमें समझता है उस समय सब विश्व मानो मनमें व्याप्त होजाताहै ऐसे विदित होताहै-यद्यपि राहु अदृश है, तोभी चंद्रमाके संबंधमें जब आताहै तो स्पष्ट दिखाई देता है,इसीभांति यद्यपि सब विश्वका दीखना आपने आपको असंभवित है;परंतु शुद्धचित्तमें:सब विश्वका संचित देखना योगीश्वरोंको प्रत्यक्ष है ॥ ६९ ॥ इसप्रकार स्थूल शरीर नष्ट होनेपरभी लिंगशरीरका नाश नहीं होता इसबातसे;यह दोष यहां किसी रीतिसे नहीं आता, कि, कर्ता और भोक्ता औरहै यदि किसीको यह शंकाहो कि;लिंगशरीरके कर्तृत्व औरभोक्तृत्व स्थूल शरीरके द्वारा है, परन्तु स्थूलशरीररहित केवल लिंगशरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व हैही नहीं इसलिये किसीसमय स्थूलशरीर नहो तब लिंगशरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व न रहनेसे मुक्ति अवश्य होनी चाहिये, परंतु सबका सिद्धान्त यह है कि बुद्धि, मन इंद्रियें और विषयोंका समूहरूप यह अनादि लिंगशरीर जब तक हैं; तबतक प्राणीके स्थूलशरीरका सम्बन्ध किसी भाँति नहीं मिटसक्ता ॥७०॥ सोना, मूर्च्छा, महाकष्ट, मृत्यु और ज्वरमें इंद्रियोंका विनाश होनेसे स्थूलशरीरमेंमृत्यु प्रज्वारकी समान मैं हूँ, ऐसा अहंकार सदा नहीं प्रकाशता परंतु सूक्ष्मरूपसे बना रहता है, मानो उस समय स्थूलशरीरका लिंगशरीरसे विधान होता है, यह बात कदापि न समझना॥७१॥गर्भमें और बाल्यावस्थामें इन्द्रियें पूर्ण न होनेसे तरुणअवस्थामें जिसप्रकार स्थूल शरीराभिमान एकादश इंद्रियोंसे स्पष्ट चिह्न नहीं प्रतीत:होता,जैसे अमावस्याके चंद्रमाका बिम्ब विद्यमान होनेपरभी चंद्रमा स्पष्ट दिखाई नहीं देता;ऐसेही गर्भ और बाल्यावस्थामें स्थूलशरीरका अभिमान विद्यमान होनेपरभी स्पष्ट दृष्टि नहीं आता, इसलिये जबतक स्थूलशरीरका

सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ॥ तमश्चंद्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥ ६९ ॥
नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते ॥ यावद्बुद्धिमनोऽक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥ ७० ॥
सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ॥ नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥ ७१ ॥
गर्भे बाल्येप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ॥ लिंगं न दृश्यते यूनः कुह्वां चंद्रमसो यथा ॥७२॥

कर्मोंके संबंधसे मन संसारका हेतु है, और आत्मा असंगहै तौभी अविद्याके कारण शरीरादिक जड पदार्थके संबंधीकर्ममें आत्माका बंधन नहीं होताहै॥७८॥इसलिये सब बंधन दूर करनेके लिये सर्वात्मभावसे सब विश्वको भगवत्‌रूप जानकर श्रीनारायणका भजन करो कि जिन नारायणसे इस जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है॥७९॥मैत्रेयजी बोले कि, भक्तोंमें मुख्य भक्त भगवान् नारदजी इसभाँति प्राचीनबर्हि राजाको जीव ईश्वरके स्वरूपका भेद दर्शाकर उस राजासे आज्ञालेकर वहांसे सिद्धलोकको चलेगये ॥ ८० ॥ प्राचीनबर्हि राजर्षि प्रजागणकी रक्षा करनेमें सब पुत्रोंको लगाकर आप तप करनेके लिये गंगासागरपर गया ,जहां कपिलमुनिका आश्रम था, और सबका संग त्याग दिया ॥ ८१ ॥

354

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ॥ पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ॥ ७९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम्॥ प्रदर्श्य ह्यमुमामंत्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥ ८० ॥ प्राचीनबर्हीं राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ॥ आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥ ८१ ॥ तत्रैकाग्रमना वीरो गोविंदचरणांबुजम् ॥ विमुक्तसंगोऽनुभजन्भक्त्या तत्साम्यतामगात् ॥ ८२ ॥ एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणानघ ॥ यःश्रावयेद्यः शृणुयात्स लिंगेन विमुच्यते ॥ ८३ ॥ एतन्मुकुंदयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिस्सृतमात्मशौचम् ॥ यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबंधः ॥ ८४ ॥

वहां जाकर वह महावीर एकाग्रचित्तकर, गोविंद भगवान्‌के पदाम्बुजका भक्तिभावसे भजनकर मुक्तसंग हो वह राजर्षि मोक्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे अनघ! जो इस अध्यात्म–परोक्षदेवर्षिसे वर्णित आत्मज्ञानसंबंधी आख्यानको सुने वा सुनावेंगे वे दोनों लिंगशरीरसे मुक्त होजायँगे ॥ ८३ ॥ श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके यशके प्रभावसे सब विश्वको पवित्र करनेवाला, देवर्षिवर्यके मुखसे निकला हुआ हृदयका शुद्ध करनेवाला और श्रेष्ठ श्रेष्ठ फलोंका देनेवाला यह इतिहास है, जो पुरुष इसका कीर्तन करते हैं, वे निस्संदेह ब्रह्मलोकको चलेजात हैं, और सब बंध

संबंध नहीं मिटता, तबतक संसारभी नहीं मिटसक्ता, यही सबका सिद्धांतहै ॥७२॥ अर्थके अविद्यमान होनेसे निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि
स्वप्नमें जैसे अनेक प्रकारका अनर्थ दीखता है, और जबतक स्वप्न दीखता रहता है तबतक अनर्थ दूर नहीं होता, ऐसेही जीवात्मा जबतक
विषयोंके ध्यानमें लगा रहता है, तबतक इस अपार संसारकी निवृत्ति किसीप्रकार नहीं होसक्ती ॥ ७३ ॥ ऐसेही पंचभूतात्मक, त्रिगुणमय,
एकादश इन्द्रिय, पंचतन्मात्रा रूपसे यह विस्तृत विकारात्मक लिंगशरीर चैतन्य परमात्माकी चैतन्यतासे युक्त होनेपर जीव इस नामसे कहा
जाता है, अर्थात् परमात्माका अंश यह आत्मा जब लिंगशरीरसे युक्त होता है, तब जीव कहलाता है, और जब लिंगशरीरको त्याग देता
है तब वह पूर्णब्रह्मरूप होजाताहै ॥७४॥ यह जीवात्मा इसी लिंगशरीरसे अनेक देह धारण करता, और इसी लिंगशरीरसे सबका त्याग करता

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नऽनर्थागमो यथा ॥ ७३ ॥ एवं पंचविधं लिंगं
त्रिवृत्षोडशविस्तृतम् ॥ एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥ अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुंचति ॥ हर्षं
शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विंदति ॥ ७५ ॥ यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ॥ न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि
प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥ ७६ ॥ यावदन्यं न विंदेत व्यवधानेन कर्मणाम् ॥ मन एव मनुष्येंद्र भूतानां भवभा
वनम् ॥ ७७ ॥ यदाऽक्षैश्चरितान्ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ॥ सति कर्मण्यविद्यायां बंधः कर्मण्यनात्मनः ॥ ७८ ॥

है, यह लिंगशरीर जिस स्थूलशरीरको त्यागदेताहै, उस स्थूलशरीरकी मृत्यु कहीजाती है, और जिस दूसरे स्थूलशरीरको ग्रहण करताहै उस
स्थूलशरीरका जन्म हुआ कहलाताहै. हर्ष, शोक, भय, दुःख, सुखभी जीवात्माको लिंगशरीरहीके कारण प्राप्त होतेहैं ॥७५॥ जैसे जोख पूर्वके
तृणको तबतक नहीं छोड़तीहै जबतक वह दूसरे तृणको नहीं पकड़लेती, ऐसेही मरणके समय जीव जबतक पूर्वदेहके अभिमानको नहीं छोड़ता,
तबतक प्रारब्ध समाप्त होकर दूसरा स्थूलशरीर नहीं मिलता, तबतक उसके पूर्वशरीरका अभिमान नहीं जाता, अर्थात् पहले शरीरकी स्थिति
नहीं भूलती॥७६॥जबतक कर्मोंके वियोगसे और दूसरी देहको यह जीव प्राप्त नहीं होता,तबतक हे नरेंद्र! सब जीवोंका मन जो है सोई केवल
इस संसारका हेतु है ॥ ७७ ॥ जिससमय इन्द्रियोंके आचरण कियेहुए विषयोंका चिंतवन कर करके जो यह पुरुष वारंवार कर्म करताहै, उनहीं

नोंसे मुक्त होते हैं इस संसारमें कहींभी भ्रमण नहीं करते ॥८४॥ यह अद्भुत अध्यात्म-परोक्षज्ञान मैंने तुमसे कहा इससे परलोकमें कोईभी कर्म भोगना नहीं पड़ता, और देहाभिमान और सब संशय मिटजाता है* ॥८५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां पुरंजनोपाख्याने अध्यात्मज्ञानसम्पूर्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ दोहा-भये तीस अध्यायमें, प्रसन्न श्रीभगवान ॥दई प्रचेतन तरुसुता, और राज्यवरदान ॥३०॥ विदुरजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! प्राचीनबर्हिके पुत्रोंका वृत्तान्त जो आपने कहाथा सो वह रुद्रगीतसे श्रीभगवान् वासुदेवको प्रसन्न

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥ एवं स्त्रियाऽऽश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥ ८५ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० चतुर्थ० कर्मनिन्दाध्यात्मज्ञानयोर्वर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ विदुर उवाच ॥ ये त्वयाऽभिहिताब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः ॥ ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥ १ ॥ किं बार्हस्पत्येह परत्र वाऽथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ॥ आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥ २ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसोंतरुदधौ पितुरादेशकारिणः ॥ जपयज्ञेन तपसा पुरंजनमतोषयन् ॥ ३ ॥ दशवर्षसहस्रांते पुरुषस्तु सनातनः ॥ तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शांतेन शमयन्रुचा ॥ ४ ॥

करके कौनसी सिद्धिको प्राप्तहुए ॥ १ ॥ हे बार्हस्पत्य ! श्रीबृहस्पतिजीके शिष्य मैत्रेयजी ! कैवल्यनाथके परमप्रिय, उनके समीपके वासी श्रीशिवशंकर महादेवजीको यदृच्छासे प्राप्तहोकर शिवजीकेकृपापात्र प्रचेताओंको मोक्षतोनिश्चय मिलाहोगा, परंतु मुक्ति होनेके पहिले इस लोकमें अथवा परलोकमें उनको क्या प्राप्त हुआ ? ॥२॥ मैत्रेयजी बोले कि, वह परम आज्ञाकारी प्रचेता, समुद्रके मध्यमें पिताकी आज्ञाको शिरपर धारणकरके रुद्रगीतसे जपरूप यज्ञसे त्रिलोकीके उत्पन्न करनेवाले श्रीनारायणको प्रसन्न करने लगे ॥ ३ ॥ जब तपस्या करते२ उनको दशसहस्र

---

* सवैया ॥ अतिदुर्लभ है तनमानसको यह पारसज्ञान निहारियेजी । गुरुमंत्र दियो जो दया करके सोई श्वासन श्वास उचारियेजी ॥ सतप्रेमकी ज्वाल प्रचण्ड करो नर पापके बीजको जारियेजी । दुखभंजन नाम निरंजनको कबहूँ मत भूल बिसारियेजी ॥

वर्ष बीत गये, तब सनातन पुरुषने उनको दर्शन देकर अपनी शांतरुचिसे उनके तपका सब कष्ट शमन किया ॥४॥ जैसे सुमेरु पर्वतके शिखरपर श्यामघटा शोभा देतीहै ऐसेही श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान् गरुडके कंधेपर विराजमान थे, पीतवसन धारण किये,कौस्तुभमणि कंठमें झलकाये दशों दिशाओंके अंधकारका नाश कर रहेथे॥५॥ कनकवर्ण सुन्दर प्रकाशमान भूषणोंसे कपोल और मुख प्रकाशित होरहाथा, किरीट शीशपर झलक रहाथा, अष्टायुध भुजाओंमें धारण कररहेथे.अनुचर,मुनि,सुरेंद्र और देवता सेवामें उपस्थित थे, गरुडजी किन्नरोंकी भाँति अपने पंखोंके शब्दसे उनका यश वर्णन कररहेथे ॥६ ॥ पुष्ट विशाल अष्टभुजाओंके मंडल मध्यवक्षःस्थलमें लक्ष्मीजी और वनमालासे आद्य पुरुष भगवान् सब ओरसे

सुपर्णस्कंधमारूढो मेरुशृंगमिवांबुदः ॥ पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥ ५ ॥ काशिष्णुना कनकवर्णवि
भूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ॥ अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेंद्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥ ६ ॥
पीनायताष्टभुजमंडलमध्यलक्ष्म्या स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्यः ॥ बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्य
नादरुतया सघृणावलोकः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनंदनाः ॥ सौहार्देनाऽपृथग्धर्मा
स्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥८॥ योनुस्मरति सन्ध्यायां युष्माननुदिनं नरः ॥ तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम्
॥ ९ ॥ ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः ॥ स्तुवंत्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥ १० ॥

शोभित थे, बर्हिष्मान् राजाके शरणागत पुत्रोंसे मेघनादसम वाणीसे दयायुक्त अवलोकनसे देख, अपना दास विचार यह कहा॥७॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नृपनंदनो! तुम मुझसे वर मांगो, तुम्हाराकल्याण होगा तुम अपनी सुहृदतामें एक हो एकही धर्मपालन करतेहो,तुम्हारी सुहृदता देख कर, मैं तुमसे अतीव प्रसन्न हूँ ॥८॥ जो पुरुष संध्याकालमें प्रतिदिन तुम्हारा ध्यान करेगा;उनके भ्राता बंधुजनोंमें सदा अत्यंत स्नेह बना रहेगा, जैसा तुम परस्पर स्नेह करतेहो. और सब जीवमात्रमें सुहृद्भाव होगा ॥९॥ जो पुरुष सावधान होकर संध्याकाल और प्रातःकाल रुद्रगीतके पाठसे मेरी स्तुति करेंगे, उनके सब मनोरथ मैं सिद्ध करूँगा,और सुन्दर बुद्धि दूंगा;और जो कुछ तुमको दूंगा उसका तो कहनाही क्याहै॥१०॥

जो तुमने आनंदित होकर पिताकी आज्ञा शिरपर धारण की है, इसलिये तुम्हारी महासुन्दर कीर्ति त्रिभुवनमें व्याप्त होगी ॥ ११ ॥ और गुणोंमें
ब्रह्माजीकी समान सर्वगुणनिधान परमज्ञानवान् महाविख्यात पुत्र तुम्हारे होगा, जो अपनी संतानसे सब त्रिलोकीको पूर्ण करेगा ॥ १२ ॥ हे
राजकुमारो! कण्डुऋषिके प्रम्लोचा नाम अप्सरामें कमललोचना कन्या उत्पन्न हुई. उस कन्याका जन्म होतेही वह अप्सरा उसको वनमें त्याग
कर स्वर्गको चलीगई, तब वृक्षोंने उस कन्याका ग्रहण करलिया * ॥ १३ ॥ वह कन्या क्षुधासे व्याकुल होकर रोने लगी, तो उस समय कन्याको

यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः ॥ अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ११ ॥ भविता विश्रुतः पुत्रो
ऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ॥ य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥ १२ ॥ कंडोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललो
चना ॥ तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहां नृपनंदनाः ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ॥ देशिनीं
रोदमानाया निदधे स दयाऽन्वितः ॥ १४ ॥ प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता ॥ तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत
मा चिरम् ॥ १५ ॥ अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ॥ अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ १६ ॥
दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ॥ भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥ १७ ॥

दुःखी देखकर वृक्षोंके राजा चन्द्रमाने उसपर दयालु होकर उसके मुखमें अपनी कनअंगुली देदी कि, जिसमेंसे सदा अमृत टपकता रहताहै ॥ १४ ॥
प्रजाके रचनेमें सृष्टि करनेके लिये पिताने मुझको आज्ञा करी, उस आज्ञाके सफल करनेके लिये, इस श्रेष्ठ कन्याका शीघ्र विवाह करो इसमें विलम्ब
करना उचित नहीं ॥ १५ ॥ तुम सब एकसेहि धर्मशील और एकही स्वभाववाले हो, तुम सबके बीचमें यह एकही स्त्री हो और तुम्हारेही
समान शीलवती हो और उसका मन सदा तुममें लगारहै, उस स्त्रीमें तुम मन लगाओ ॥ १६ ॥ मेरी कृपासे दिव्य सहस्रवर्ष पर्यंत महाबली

---

* उसकी कथा इस भाँति है "एकसमय कंडुऋषि वनमें तप करतेथे, उनका तपभंग करनेके लिये इन्द्रकी भेजी प्रम्लोचा नाम अप्सरा कंडुऋषिके समीप रहनेलगी, कुछ दिन पीछे उस अप्सराके कंडुऋषिसे एक कन्या उत्पन्न हुई, तब वह उस कन्याको वृक्षोंमें डालकर आप स्वर्गको चलीगई" ॥

अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः ॥ उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥ १८ ॥ गृहेष्वा
विशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ॥ मद्वार्तायातयामानां न बंधाय गृहा मताः ॥ १९ ॥ नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो
ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः ॥ न मुह्यन्ति न शोचंति न हृष्यंति यतो गताः ॥२०॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं
जनार्दनं प्रांजलयः प्रचेतसः ॥ तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥२१ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥
नमोनमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ॥ मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥ २२ ॥
शुद्धाय शांताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय॥ नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय॥२३॥

वनभूमिके भोगोंको भोगोगे, वह दिव्य भोग हैं॥ १७ ॥ पीछे वियोगरहित भक्ति मुझमें करना, शुण हृदय जब तुम्हारा पुष्ट होजायगा, तो मेरे धामको जाओगे और इस नरकरूप संसारके सुखोंमें वैराग्य उत्पन्न होगा, उस समय मेरी अखंडा भक्ति करनेसे सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता दूर होजायगी॥१८॥जो लोग घरमें घुसेरहकरभी कर्म करें, वह मुझमें समर्पण करें और मेरीही वार्तामें दिनरात व्यतीत करें ऐसे पुरुषोंको गृह बन्धनकारी कभी नहीं होता ॥ १९ ॥ जो मैं साक्षात् ब्रह्म ब्रह्मवादियोंके हृदयमें क्षणक्षणमें नवीन नवीन रूपसे प्रगट होताहूँ और ऐसा उत्तम स्थान उनको देता हूँ कि, जहांके गये न शोकको प्राप्त होते हैं जो तुम मेरी कथाका दिनरात कीर्तन करते रहोगे तो तुम्हारे घरका किंचिन्मात्रभी बन्धन नहीं रहेगा ॥२०॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार पुरुषार्थके पात्र और अत्यन्त सुहृत्तम, परमोपकारी, जनार्दनके वचन सुनकर प्रचेता कि जिनका रज, तम, मल श्रीनारायणके दर्शनसे शमन होगया है, वह प्रचेता हाथ जोड गद्गदवाणीसे श्रीहरिकी स्तुति करनेलगे ॥२१॥ प्रचेता सब बोले कि, हे क्लेशविनाशन ! गुणविभासन वेदने तुम्हारे उदारगुण नाम निरूपण किये हैं ऐसे जो तुम हो सो आपकेअर्थ नमस्कार है. मनवचनके वेगसे आगे जिनका वेग, सब इंद्रियोंके मार्गसे जिसका मार्ग नहीं जानाजाय, ऐसे जो भगवान् हैं उनके लिये बारम्बार नमस्कार है ॥ २२ ॥ अपनी निष्ठाकरके शुद्ध शांतमनमें व्यर्थ प्रकाशित हैं; ऐसे अद्वैतरूपके निमित्त हम प्रणाम करते हैं, विश्वकी उत्पत्ति, पालन

और संहारके लिये मायाके गुणोंसे जो ब्रह्मादिक मूर्ति धारण करतेहैं, उन भगवान्को बारम्बार हमारा प्रणामहै॥२३॥ विशेषकरके सत्त्वशुद्ध जिसका स्वरूप, सब दुःखोंको शमन करनेवाला और संसारके मोहको हरनेवाला जिसका ज्ञान वासुदेव श्रीकृष्ण सब यादवोंके उत्पन्नकर्ता भवभयहर्ता भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ २४ ॥ हे कमलाक्ष ! हे कमलनाभ ! कमलोंकी माला धारण करनेवाले, कमलपाद, भगवान् आपको बारम्बार हमारा नमस्कार है ॥ २५ ॥ कमलकी केशरके सदृश निर्मल पीतवस्त्रवाले बाँकेविहारीके अर्थ मेरा नमस्कार है, सब जीवमात्रके अंतर्यामी, सबके साक्षी आपको हमारा प्रणाम है ॥२६॥ हम सरीखे क्लेश पानेवालोंको जो आपने सब क्लेशका क्षय करनेवाला स्वरूप प्रगट करके दर्शन दिया, सो बडा अनुग्रह किया, इससे अधिक और कौनसा अनुग्रह होगा ॥२७॥ हे विश्वनायक! हे दीनदयालु!! समर्थ पुरुषोंको दीनोंपर ऐसेही अनुग्रह करना योग्य है, जो अपनी बुद्धिसे समयसमयपर स्मरण करना इतनाही दीनवत्सल कृपालुओंका होना बहुतहै॥ २८॥ क्योंकि जब कृपालु लोग स्मरण करते हैं तो दीन पुरुषोंके हृदयमें शांति होजाती है, जब आप तुच्छ जीवोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी रूपसे विराजतेहो तब हमलोग जो आपके उपासक हैं उनके मनोरथ कैसे न जानोगे ॥ २९ ॥ हे जगत्पते ! यही वर हम चाहते थे कि, मोक्षमार्गके दर्शनवाले परमपुरुषार्थरूप जो आप हमारे ऊपर प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ हे नाथ! परेसे परे जो आप हो और कारणकेभी कारण हो इससे बारंबार यह वर मांगतेहैं क्योंकि भक्तजनोंको

नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ॥ वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥ २४ ॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥ २५ ॥ नमः कमलकिंजल्कपिशंगामलवाससे ॥ सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुंक्ष्महि साक्षिणे ॥ २६ ॥ रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ॥ आविष्कृतं न क्लिष्टानां किमन्यदनुकंपितम् ॥ २७ ॥ एतावदेव प्रभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ॥ यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररंधन ॥२८॥ येनोपशांतिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ॥ अंतर्हितोंतर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥ २९ ॥ असावेव वरोस्माकमीप्सितो जगतः पते ॥ प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥ ३० ॥ वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ॥ न ह्यंतस्त्वद्विभूतीनां सोऽनंत इति गीयसे ॥ ३१ ॥

देनेयोग्य आपकी विभूतियोंका अन्त नहींहै,इसीकारण जगत्में आपका नाम अनंत ख्यातहै॥३१॥अनायाससे भ्रमरको जब कल्पद्रुम मिलजाता है,तब वह और किसीदूसरे वृक्षकी इच्छा नहीं रखता ऐसे ही अब हमको साक्षात् आपका पादमूल प्राप्त हो गयाहै अब हम आपसे कौनकौनसा वर मांगे?और मांगनेकी भी इच्छा हो तो क्या मांगे क्योंकि मनमें अनेक अनेक प्रकारकी कामना उत्पन्न होतीहै और कामनाओंका अन्त नहींहै॥३२॥ इसलिये हम इतनाही वरदान मांगतेहैं कि, आपकी मायासे और अपने कर्मोंसे जबतक हम इस संसारमें भ्रमण करें,तबतक हमको जन्मजन्ममें आपके प्रसंग करनेवाले श्रीवैष्णव लोगोंका सत्संग सदा बनारहे॥३३॥ आपके भक्तलोगोंके लवमात्र सत्संगके समान न तो हम स्वर्गको समझतेहैं

पारिजातेंऽजसा लब्धे सारंगोऽन्यं न सेवते ॥ त्वदंघ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किंकिं वृणीमहि॥३२॥ यावत्ते मायया स्पृष्टा
भ्रमाम इह कर्मभिः ॥ तावद्भवत्प्रसंगानां संगः स्यान्नो भवेभवे ॥ ३३ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ३४ ॥ यत्रेड्यंते कथामृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ॥ निर्वैरं यत्र भूतेषु
नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥३५॥ यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ॥ संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसंगैः पुनः पुनः ॥
॥३६॥ तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ॥ भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः॥३७॥ वयं तु साक्षा
द्भगवन्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसंगमेन॥ सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्मः ॥ ३८ ॥

न हम मोक्षको तोलते हैं और मनुष्योंके राज्यादि सुखकी तो गणनाही क्या है ? ॥३४॥ जिनके सत्संगसे सुन्दर कथाओंकी स्तुति करीजाती है, जिनसे सब तृष्णाओंका नाश होजाता है, जहां सब जीवमात्रमें वैर नहींहै,जहाँ किसी प्रकारका उद्वेग नहींहै,वही लोग वैकुण्ठगामीहैं॥३५॥ सब संन्यासियोंको गति देनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीमन्नारायणकी सत्कथाओंमें सब संग जिन्होंने त्याग दियेहैं,ऐसे मुक्तसंग पुरुष वारम्वार नारायणकी स्तुति किया करते हैं॥३६॥वह आपके भक्तजन तीर्थोंको पवित्र करनेकी इच्छासे सर्वत्र विश्वमें अपने चरणोंसे विचरते रहतेहैं,उनके सत्संगसे संसारसे भयभीत मनुष्यकी आपमें रुचि होतीहै, आपके भक्तोंका समागम ऐसा शुभहै ॥ ३७ ॥ हे आद्यपुरुष! श्रीकृष्णचन्द्रके प्यारे सखा सुन्दर

चिकित्सक शिवमृत्युके वैद्य भगवान् शिवजीके क्षणमात्रके सत्संगसे जन्म मरण असाध्यरोगके शमन करनेवाले महावैद्यरूप आपके हम चरण शरणको प्राप्त हुए हैं ॥३८॥ हे भगवन्! दूसरा वरदान हम आपसे यह मांगते हैं कि हमने जो वेद पढ़ा है गुरु, ब्राह्मण, वृद्ध पुरुषोंकी निरन्तर सेवा करके प्रसन्न किया है सज्जनों, मित्रों और भ्राताओंको नमस्कार किया है और किसी प्राणीमात्रसे वैर नहीं कियाहै,उसका यह उत्तम फल है॥३९॥हे ईश्वर! जो हमने अन्न तजकर चिरकालतक समुद्रके भीतर रहकर सुन्दर तप किया है,जलमें सोये सब यह भूमा पुरुषको संतुष्ट करनेके लिये हमने तप कियाहै ॥ ४० ॥ मनु, स्वायंभू, भगवान् पितामह, शिव तपसहित ज्ञानसे विशुद्धचित्तवाले सतोगुणकी महात्मा पुरुष आपकी

३५४

यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या॥आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव
॥ ३९ ॥ यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरंधसां कालमदभ्रमप्सु ॥ सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ॥
॥ ४० ॥ मनुः स्वयंभूर्भगवान्भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः॥ अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवंत्यथो त्वात्मसमं
गृणीमः ॥४१॥नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च ॥ वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः॥४२॥मैत्रेय उवाच॥
इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ॥ अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामाऽनपवर्ग
वीर्यः ॥४३॥ अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः ॥ वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥ ४४ ॥

महिमाका पार न पाकर सदा आपकी स्तुति करते हैं ऐसेही हमभी अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति करतेहैं॥४१॥सब जीवमात्रमें समरूप, शुद्ध, परपुरुष, वासुदेव, सत्त्वगुणमय जो भगवान् श्रीमन्नारायण हो आपको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ४२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार प्रचेताओंने जब भगवान् वासुदेवकी स्तुति करी तब शरणागतप्रणतपाल हरि भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि "एवमस्तु" ऐसा वचन कहा और दर्शन करते करते नेत्रोंकी तृप्ति न हुई, तो प्रचेताओंने चाहा कि भगवान् यहांसे किसी प्रकार जायँ नहीं तौ भी अकुण्ठित प्रभाववाले महावीर्यवान् श्रीवैकुण्ठनाथ अपने वैकुण्ठधामको चले गये ॥ ४३ ॥ तब प्रचेता समुद्रके जलसे बाहरनिकलकर चलदिये,और वृक्षोंसे ढकी

पृथ्वीको मानो सब ओरसे दाब देंगे ऐसे वृक्षोंको देखकर प्रचेता महाकोप करने लगे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! महाक्रोधित हो प्रचेता पृथ्वीको वृक्षविहीन करनेके लिये प्रलयकालकी कालाग्नि रुद्रके सदृश अपने अपने मुखोंसे आगसी उगलने लगे ॥ ४५ ॥ उस कालाग्निसे वृक्षोंको जलते हुए देखकर ब्रह्माजी वहां आये और बर्हिष्मान्‌को पुत्रोंके उन्होंने नीतिके वचनोंसे ढण्ढा किया * ॥ ४६ ॥ और उस कालाग्निके जलनेसे जो वृक्ष बचे उन्होंने प्रचेताओंसे डरकर और ब्रह्माजीके उपदेशसे अपनी पुत्री प्रचेताओंको देदी ॥ ४७ ॥ प्रचेताओंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृक्षोंकी कन्याके साथ विवाह किया; इस सुन्दर भार्यामें प्रचेताओंके दक्षनाम पुत्र उत्पन्न हुआ, " यह दक्ष पहले जन्ममें

ततोग्निमारुतौ राजन्नमुंचन्मुखतो रुषा ॥ महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥ ४५ ॥ भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमा
न्वीक्ष्य पितामहः ॥ आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥ ४६ ॥ तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा ॥
उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥ ४७ ॥ ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे ॥ यस्यां महदवज्ञानादजन्य
जनयोनिजः ॥ ४८ ॥ चाक्षुषे त्वंतरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ॥ यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥ ४९ ॥
यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ॥ स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥ ५० ॥

ब्रह्माजीका पुत्र था; परंतु शिवजीके निरादर करनेके कारण उसका दूसरा जन्म क्षत्रियकुलमें हुआ ॥ ४८ ॥ जो शरीर ब्रह्माजीका पुत्र था, वही कालकी गतिसे मृत्युको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें प्रचेताओंके घरमें उत्पन्न होकर यह दक्ष ईश्वरकी प्रेरणासे चाक्षुक नाम मन्वंतरमें जब प्रथम रचनामें प्राप्त हुआ, तब अपने मनके समान प्रजा रचनेलगा ॥ ४९ ॥ इस दक्षने सबसे तेजस्वियोंके मध्यमें अपनी कांतिसे सब पुरुषोंका तेज हरण किया और जो जन्मा उसको आपने ग्रहण किया. दक्षतासे, चतुरतासे, सब कर्मोंमें श्रेष्ठ था, इससे इसका नाम सब

---

* **शंका**–प्रचेताओंने भगवान्‌के बडे भक्त और महात्मा होकर दयाहीन प्राणियोंकी समान वृक्षोंको क्यों भस्म किया ? महात्मा पुरुषोंका यह कर्म नहीं है. यह नीच कर्म महाचाण्डालोंका है.:

उत्तर–तुम्हारा वाक्य सत्य है, निर्दयाकर्म चाण्डालोंका है परंतु जितना काम राजाओंका है, सो सब काज बिना दंड कभी नहीं सिद्ध होसकता. चाहे अनेक उपाय करे परंतु त्रास दिये बिना नहीं. इसीलिये प्रचेता वृक्षोंकी कन्याके साथ अपना विवाह करना चाहतेथे. इस कार्यको करनेके लिये वृक्षोंको भस्म किया. कुछ निर्दयपनसे भस्म नहीं किया.

दक्ष कहनेलगे ॥ ५० ॥ प्रजाकी रक्षा करनेमें ब्रह्माजीने इसका अभिषेक करके सबका पति नियत किया, इसलिये वह दक्ष मरीचि आदि प्रजापतियोंको अपने२कामममें सदा आज्ञा करता रहताथा * ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा--इकतिसवें अध्यायमें, सौंप दक्षको राज । गये प्रचेता विपिनको मोक्ष मार्गके काज ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब राज्यकाज करते करते और संसारके सुख भोगते सहस्रों वर्ष बीतगये तब प्रचेताओंके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न हुआ और भगवद्वचनका शीघ्र स्मरण कर पुत्रोंपर अपनी स्त्रीको छोड संन्यास ले दंड धारण कर घरसे वनको चलदिये ॥ १ ॥ सब प्राणीमात्रमें जिनका आत्मज्ञान है,

तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ॥ युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन्॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० म० चतुर्थ० त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ॥ स्मरंत आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन्गृहात् ॥ १ ॥ दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा ॥ प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥ २ ॥ तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो जितासनान्छांतसमानविग्रहान् ॥ परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥ ३ ॥ तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनंद्य च ॥ पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥

सो ब्रह्मयज्ञमें दीक्षित होकर पश्चिम दिशामें समुद्रके तीरपर जिस आश्रममें जाजलि नामक, ऋषि सिद्ध हुएथे वहां जाकर तप करना आरंभ किया ॥ २ ॥ प्राण, मन, वचन जीत दृष्टिको वशमें कर, दृढ आसन लगाय, शांतसमान विग्रह हो, निर्मल परब्रह्ममें आत्माको निश्चित कर, तहां कुछ काल व्यतीत किया, तो भ्रमण करते करते नारदजी वहां आये कि, जिनकी देवता और दैत्य नित्य स्तुति कियाकरते हैं ॥ ३ ॥ नारदजीको आता देखकर प्रचेताओंनें उठकर दंडवत् प्रणाम किया और आदर सत्कारसे यथायोग्य पूजन करके सुखसे बैठेहुए नारदजीसे

---

* **भजन**—सब तज भज हरिनाम पियारे ॥ दीनदयालु कृपालु दयानिधि, भक्तनके रखवारे ॥ पापी पतित गीध गणिकासे, कोटिन जन निस्तारे ॥ १ ॥ जहां कहूँ कष्ट परो भक्तन , सुनतहि तुरत सिधारे ॥ कनककशिपु रावणसे योधा, महायुद्ध कर मारे ॥ २ ॥ द्रुपदसुताके दुःशासनने, जबही वस्त्र उतारे ॥ जाय बढाय दिये पट लाखन, खैंचनहारे हारे ॥ ३ ॥ कृपानिधान ज्ञानगुणसागर, श्रीनंदनंद दुलारे ॥ गावत शालिग्राम रातदिन, अद्भुत चरित तुम्हारे ॥ ४ ॥

प्रचताओंने कहा॥४॥ प्रचेता बोले कि, हे देवर्षे! आज आपका आना बहुत अच्छा हुआ, धन्य है हमारा भाग्य जो आपने मंगलमय दर्शन हमको दिया हे ब्रह्मन्! जैसे सूर्यका आगमन अभयके लिये है, ऐसेही आपभी त्रिलोकीका भय दूर करनेके लिये विचरतेहो ॥ ५॥ हे प्रभो! शिवजीने और विष्णु भगवान्ने जो ज्ञान हमको दिया था, वह सब ज्ञान हम घरके प्रसंगमें आसक्त होकर भूल गये॥६॥ इस लिये वह अध्यात्मज्ञान हमसे कहो, जिससे तत्त्वअर्थका दर्शन होय, जिस ज्ञानसे इस महादुस्तर संसारसागरको सहजमें हम पार उतरजांय॥७॥ मैत्रेयजी बोले कि, प्रचेताओंने जब

प्रचेतस ऊचुः ॥ स्वागतं ते सुरर्षेद्य दिष्टया नो दर्शनं गतः ॥ तव चंक्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥ ५ ॥ यदादिष्टं
भगवता शिवेनाऽधोक्षजेन च ॥ तद्गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥ ६ ॥ तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थ
दर्शनम् ॥ येनांजसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः ॥
भगवत्युत्तमश्लोक अविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ॥
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः ॥ कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः
पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥ १० ॥

इसप्रकार भगवान्नारदमुनिकी स्तुति की तब महाकीर्तियान् नारदजी उत्तम श्लोकोंमें जिनकी आवेशित आत्मा, सो प्रचेताओंसे बोले॥८॥ नारद जी बोले कि, इस विश्वमें विश्वके आत्मा विश्वनाथभगवान् वासुदेवकी सेवा जिनसे बनसके उन्हीं पुरुषोंका जन्म, कर्म, आयु, मन, वचन सफल है. ॥९॥ अपने स्वरूपके उत्पन्न करनेवाले ईश्वरकी सेवा और उनका आत्मज्ञान होसकेतौ शौक्ल (शुद्धमाता पितासे प्रथम जन्म) सावित्र (यज्ञोपवीत होनेसे दूसरा जन्म) और याज्ञिक (यज्ञकी दीक्षालेनेसे तीसरा जन्म) इन तीन प्रकारके जन्म होनेसे क्या फल हुआ? क्या प्रयोजन निकला?

* **शंका**–सब प्रचेता शिवजीसे, भगवान् नारदसे ब्रह्मज्ञान सीखेथे, फिर नारदने प्रचेताओंको ज्ञान क्यों दिया?

उत्तर–प्रथम तो अभिमानसे नारदमुनि मायाको कुछभी नहीं जानते थे, जब मायाने नारदमुनिको बहुत दुःख दिया, उस दिनसे मायासे डरनेलगे, और अपने शिष्योंकोभी सिखाने लगे कि, मायासे सावधान रहियो. नारदजीने विचारा कि, भगवान्की माया बडी बलवान् है किसीसे जानी नहीं जाती, प्रचेता ज्ञानमें पक्के तो हैं परंतु और पुष्ट करदेवें जो माया कभी इनकी बुद्धिको भ्रष्ट न कर न देवे. इसलिये नारदजीने दूसरी वार प्रेचताओंको ज्ञान दिया.

और देवताओंकी समान आयु होनेसेभी क्या लाभ हुआ ?॥ १० ॥अनेक शास्त्र सुननेसे,तप करनेसे, वाणीके वाक्यविलाससे, चित्तकी वृत्तियोंके वश करनेसे, निपुण बुद्धिसे,जितेन्द्रियमनसे॥ ११ ॥प्राणायाम आदि योगसे; सांख्यशास्त्रके ज्ञानसे, संन्यासमतके लेनेसे, वेदपाठके करनेसे और श्रेय मांगलिक कृत्य करनेसे,क्या होताहै ? जो आत्माके प्रसन्न करनेवाले भगवान् वासुदेवही प्रसन्न न हुए तो इन साधनोंसे कुछ नहीं होता॥ १२॥ सबका सिद्धांत यह है कि, सब शुभाचरणोंसे भगवान् प्रसन्न होते हैं और जीवमात्रके हरिही आत्मा हैं और फलोंमें प्रधान और अंतिम फल केवल आत्माही है और सब पदार्थ आत्माहीके लिये हैं, सब जीवमात्रमें जो आत्मा है, वही परमात्मा है, जो परमात्मा अविद्याको विनाश करके निजके स्वरूपको प्रकाशित करता है,वही आनंदका दाता सबका प्रियहै,इसलिये परमात्माकीसेवा और आत्मज्ञान होवे तो सब सफलहै ॥ १३॥ जैसे वृक्षकी जडमें जल सींचनेसे उस वृक्षके गूदे, शाखा, उपशाखा, फूल, फल, पत्रादि सब तृप्त होजाते हैं ऐसे मुखद्वारा भोजन करनेसे प्राणरूप हो सब इन्द्रियोंकी तृप्तिको करताहै ऐसेही अच्युत भगवान्की पूजा करनेसे, सब देवतामात्रकी पूजा होजाती है ॥ १४ ॥ जैसे वर्षा ऋतुमें जल सूर्यसे उत्पन्न होताहै और ग्रीष्मऋतुमें समय पाकर, वह जल सूर्यहीमें लय होजाता है, ऐसेही भूमिमें जितने जीवमात्र हैं, वह और जो स्थावर जंगम हैं,सब संसार श्रीनारायणमें लीन होजाते हैं ॥ १५ ॥ यह जो विश्व है सो परमात्माका सर्व उपाधिरहित स्वरूप है,

श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः॥ बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेंद्रियराधसा ॥ ११ ॥किं वा योगेन सांख्येन
न्यासस्वाध्याययोरपि ॥ किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः॥ १२॥ श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ॥
सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥ १३ ॥ यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यंति तत्स्कंधभुजोपशाखाः ॥ प्राणो
पहाराच्च यथेंद्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ १४ ॥ यथैव सूर्यात्प्रभवंति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशंति काले ॥
भूतानि भूमौ स्थिरजंगमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥ १५ ॥ एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा
प्रभा ॥ यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाज्ञानभिदा भ्रमात्ययः ॥ १६ ॥

क्योंकि यह सब जगत् उसी परमात्मासे उत्पन्न हुआहै; इसलिये यह जगत् उससे भिन्न नहीं हैं, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यसे भिन्न नहीं है ऐसेही जमत् परमत्मासे भिन्न नही है,जैसे आकाशमें गंधर्वनगर किसी समय दृष्टि आजाता है, ऐसेही परमात्मामें जगत् किसीसमय स्वरूपाज्ञान रहनेसे दीखजाताहै, जैसे जग्रत् अवस्थामें सब प्राण इंद्रिय स्पष्ट दृष्टिमें आती हैं , परंतु सुषुप्ति अवस्थामें उन सबकी शक्ति निर्बल होजातीहै ऐसेही अज्ञानके समय जगत् दृष्टि आता है परंतु ज्ञान होनेसे उसका किंचिन्मात्रभी चिह्न नहीं रहता, पंचभूत इंद्रियें और उनके देवताओंके भेद,भ्रम, द्रव्य, क्रिया,ज्ञान वह सब भगवान्के स्वरूपमेंही उत्पन्न हुए हैं, इसीलिये भगवान्के स्वरूपका ज्ञान होनेसे ये सम्पूर्ण भ्रम दूर होजाते हैं ॥१६॥ हे प्रचेताओ ! आकाशमें जैसे मेघमंडल कभी तमरूप कभी प्रकाशरूप दिखाईदेतेहैं और फिर पीछे उसमें लय होजातेहैं,इसीप्रकार ब्रह्ममें अज्ञान

यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा भवंति भूपा न भवंत्यनुक्रमात् ॥ एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू रजस्तमस्सत्त्वमिति
प्रवाहः ॥१७॥ तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेन भज
ध्वमद्धा ॥ १८ ॥ दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन वा ॥ सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः॥१९॥ अपह
तसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः॥निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतांहि ॥ २० ॥

दृष्टिसे यह रज, तम, सत्त्व देखनेमें आते हैं.जब ज्ञानदृष्टिसे देखाजाय तो कुछभी दिखाई नहीं देता,इसीप्रकार इस संसारका प्रवाहहै,ज्ञानसे लीन और अज्ञानसे फिर भासने लगतेहैं ॥१७॥इसलिये जब जीवमात्रमें एक आत्मा सब देहधारियोंमें कालप्रधानपुरुष, परेश अपने तेजसे सबके कारण हैं, जिनके सत्यस्वरूपका ज्ञान होनेसे, संसारका प्रवाह कभी देखनेमें नहीं आता ऐसे परमात्माको दृढ़भावसे अपना आत्मा समझकर परोक्षरीतिसे साक्षात् उसका भजन करो ॥ १८॥ और संकल्प विकल्प अद्वय जिससे दूर होय,द्वय आत्मवाद जिसमें उपराम होय ऐसेअनादि मध्य,अन्त,निरंतर आनन्दमात्र ज्ञानघन परमात्माको इस दिव्यदृष्टिसे भजो सब जीवमात्र पर तो दया करो और जो कुछ मिले उसीमें सन्तोष रक्खो और इन्द्रियोंकोभी शांत रखनेसे, जनार्दन भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥१९॥ लोक, धन और पुत्रकी तृष्णा सब जिस शरीरमेंसे

दूर होगई ऐसे निर्मल अन्तःकरणमें निरंतर वार्द्धित भावनासे बुलाये हुए,निज जनोंके वशमें रहै जो व्यापक आत्मा छिद्रवत् अक्षर ब्रह्म भक्तोंके हृदयमेंसे कभी अलग नहीं होते ॥ २० ॥ जिनकी बुद्धि निंदित है उनकी करीहुई पूजाकोभी भगवान् ग्रहण नहीं करते वह तो निर्धनके धनदाता, श्रीकृष्णचन्द्र गिरिधारी भक्तहितकारी परम रसज्ञ हैं, श्रुत, धन, कुल, कर्मके मदसे जो महानिष्किंचन भगवद्भक्तोंका तिरस्कार

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ॥ श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापम
किञ्चनेषु सत्सु ॥ २१ ॥ श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन्विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ॥ न भजति निजभृत्य
वर्गतंत्रः कथमसुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः ॥
श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवो मुनिः ॥ २३॥

करते हैं और उनको त्यागदेते हैं २१ ॥ अपनी सेवा करनेवाली श्रीमहालक्ष्मीको और लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले ब्रह्मादिकोंको, अथवा देवताओंको, सबको त्यागतेहैं, अब अपनेहीसे पूर्ण हैं, निज भृत्यस्वरूपमें प्रसन्न रहते हैं, ऐसे परमेश्वरको कौन कृतज्ञ पुरुष त्यागसक्ता है अर्थात् कोई नहीं त्यागसक्ता ॥ २२ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार चतुराननके पुत्र देवर्षि प्रचेताओंको यह आख्यान और इसके

---

१ जैसे एकसमय दुर्योधन श्रीकृष्णचन्द्रको निमन्त्रण कर आये और घरपर आनकर रसोई बनानेवालोंसे बोले कि, ऐसा स्वादिष्ठ भोजन बनाना जो श्रीकृष्णने कभी न खाया होय,थोडी देरपीछे श्रीकृष्णको विदुरजी आकर निमन्त्रण करगये, तब श्रीकृष्ण दुर्योधनके घर तो न गये, परन्तु विदुरके घरपर पहुँचे, विदुराणी महारानीने घरमें बैठाकर बहुत आदर सन्मान किया और वृन्दावनबिहारीकी मनोहर छबि देखकर ऐसी मग्न हुई कि, कुछ सुधि न रही और भोजनभी कुछ न बनासकी, परन्तु केलेकी फली रक्खीथीं, उनहींको छील छील खिलाने लगी, बेसुधि तो थीही, केलोंकी फलियोंके छिलके छिलके तो श्रीकृष्णचन्द्रको खिलाती जातीथी, और सुन्दर सुन्दर गूदा बगेलती जातीथी, विदुरजी देखकर बोले कि हे प्रिये ! तुझे क्या होगया, जो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण हैं उनको फलियोंके छिलके खिलारही है और गूदा पृथ्वीपर डाल रहीहै तब भगवान् बोले कि, हे विदुर ! जो स्वाद छिलकोंमें है वह इन गहलोमें नहीं, क्योंकि तुम तो उपायांतर बुद्धिसे मुझको फली खिलाते हो और विदुराणीके उपायांतर बुद्धि नहीं है, यह कह आचमन कर वाहिर निकले सो देखें तो सन्मुखसे दुर्योधन आते हैं, और आनकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि हे पुण्डरीकाक्ष ! भीष्म, द्रोण अरु मुझको परित्याग करके विदुर शूद्र दासीपुत्रके घर जाकर फलाहार किया धन्य है आपको । श्लोकः—“भीष्मं द्रोणं परित्यज्य मां चैव मधुसूदन । किमथ पुण्डरीकाक्ष कृतं वृषलभोजनन्” यह सुनकर, श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि, भगवद्भक्त शूद्र नहीं होते, विप्र हैं, भागवत कहलाते हैं सबवर्णोंमें वह शूद्र हैं, जो जनार्दनके भक्त नहीं है, श्लोकः—“ न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः । सर्वबर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने ॥

अतिरिक्त औरभी अनेक कथा सुनाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चलेगये॥२३॥और प्रचेताभी नारदजीके मुखसे त्रिभुवनके पापनाशक श्रीनारायणका सुयश सुनकर उनके चरणारविन्दका ध्यान करते करते मोक्षको प्राप्त होगये ॥ २४ ॥ हे विदुरजी ! जिसमें श्रीनारायणका वर्णन है सो प्रचेता और नारदजीका संवादरूप आख्यान जो तुमने मुझसे बूझाथा, सो मैंने प्रीतिसहित तुमसेकहा ॥ २५ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार स्वायंभुवके मनु पुत्र राजा उत्तानपादका वंश तुमको मैंने सुनाया, अब हे नृपसत्तम ! राजा प्रियव्रतके वंशका वर्णन करताहूँ सो तुम सुनो॥ २६ ॥जो राजा प्रियव्रत नारदजीसेआत्मविद्या सीखकर फिर पृथ्वीपर आये और अन्तसमय सब पृथ्वीका राज्य अपने पुत्रोंको

तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ॥ हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायतस्तद्गतिं ययुः ॥ २४ ॥ एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ प्रचेतसां नारदस्य संवादं परिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः ॥ वंशं प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥ २६ ॥ यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम्॥ भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम्॥ २७॥ इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवाद सत्कथाम् ॥ प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥ २८ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना ॥ दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यानम्य तमामंत्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ॥ स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥ ३० ॥

विभागकर परमेश्वरके परमधामको प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ श्रीमैत्रेयजीसे वर्णित श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी यह सत्कथा विदुरजी सुनकर भक्तिकी वृद्धिके प्रभावसे अश्रुबिन्दु नेत्रोंसे बहानेलगे और मैत्रेयजीके चरणारविंदोंको शिरपर और श्रीकृष्णचन्द्रके पदांबुजोंको हृदयमें धारण किया ॥ २८ ॥ विदुरजी बोले कि, हे महायोगिन्! हे महामुने मैत्रेयजी महाराज ! हे दीनदयालु ! ! करुणाकर ! ! ! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले आपने अपना अनुग्रह करके आज यह अंधकारसे पार करनेवाला मार्ग मुझको दिखादिया, जहाँ किसी वस्तुकी कांक्षा नहीं, जिससे विरक्त पुरुषोंको जीवन्मूल भगवान वासुदेवके स्वरूपका मुझे ज्ञान हुआ २९ ॥ इतनी कथाकह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पांडु

कुलभूषण शांतचित्तवाले विदुरजी इस प्रकार महामुनि मैत्रयजीको नमस्कार कर, उनसे आज्ञा ले अपने सुहृज्जनोंके देखनेकी अभिलाषासे हस्तिनापुरको गये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दमें जिनका चित्त लगाहुआ है, ऐसे राजाओंके चारित्र जो सुनतेहैं वह आयु, धन, यश, कल्याणदायक गति और ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं, क्योंकि वह राजा परमभक्त थे और श्रीभगवान्‌के नामका निशिवासर

एतद्यः शृणुयाद्राजन्राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ॥ आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कंधे प्राचेतसोपाख्यानं नामैकत्रिंशो
ऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयं चतुर्थस्कन्धः ॥ ४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

362

ध्यान करतेथे और उसीको वेदका सार समझ, संसारको स्वप्नवत् मानते थे, इस लिये जो हरिके भक्त हैं वही इस संसारमें धन्य हैं. इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषाटीकायां प्राचेतसोपाख्यानवर्णनं नामएक त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थस्कन्धभाषाटीका समाप्ता ॥

---

* धन धन रामभक्त सुखदानी ॥ वाल्मीकि नारद घटजोनी, अम्बरीष विज्ञानी । विश्वामित्र व्यास सनकादिक, हरिश्चन्द्रसे दानी ॥ १ ॥ ध्रुव प्रह्लाद सुदामा द्विजने, पायो पद निर्वानी । जगतमाहिं विख्यात आजलों, जिनकी अकथ कहानी ॥ २ ॥ ब्रह्मा शेष गणेश अत्रि शुक, शंकर और भवानी । निशिदिन रटत पार नहिं पावत, थकित भई निजवानी ॥ ३ ॥ आदिब्रह्म अद्वैत निरंजन, श्रीधर शारँग पानी ॥ अपने मुख अपने भक्तनकी, महिमा आप बखानी ॥ ४ ॥ भक्तहेत अवतार धार हरि, हरे असुरअभिमानी । शालिग्राम भक्तजन महिमा, भक्तोंहीने जानी ॥ ५ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम् । शके १८४५ संवत् १९८०.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते चतुर्थस्कन्धसमाप्तिः ॥

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी।

363

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकासहिते पञ्चमस्कन्धप्रारम्भः ॥

पंचमस्कंध

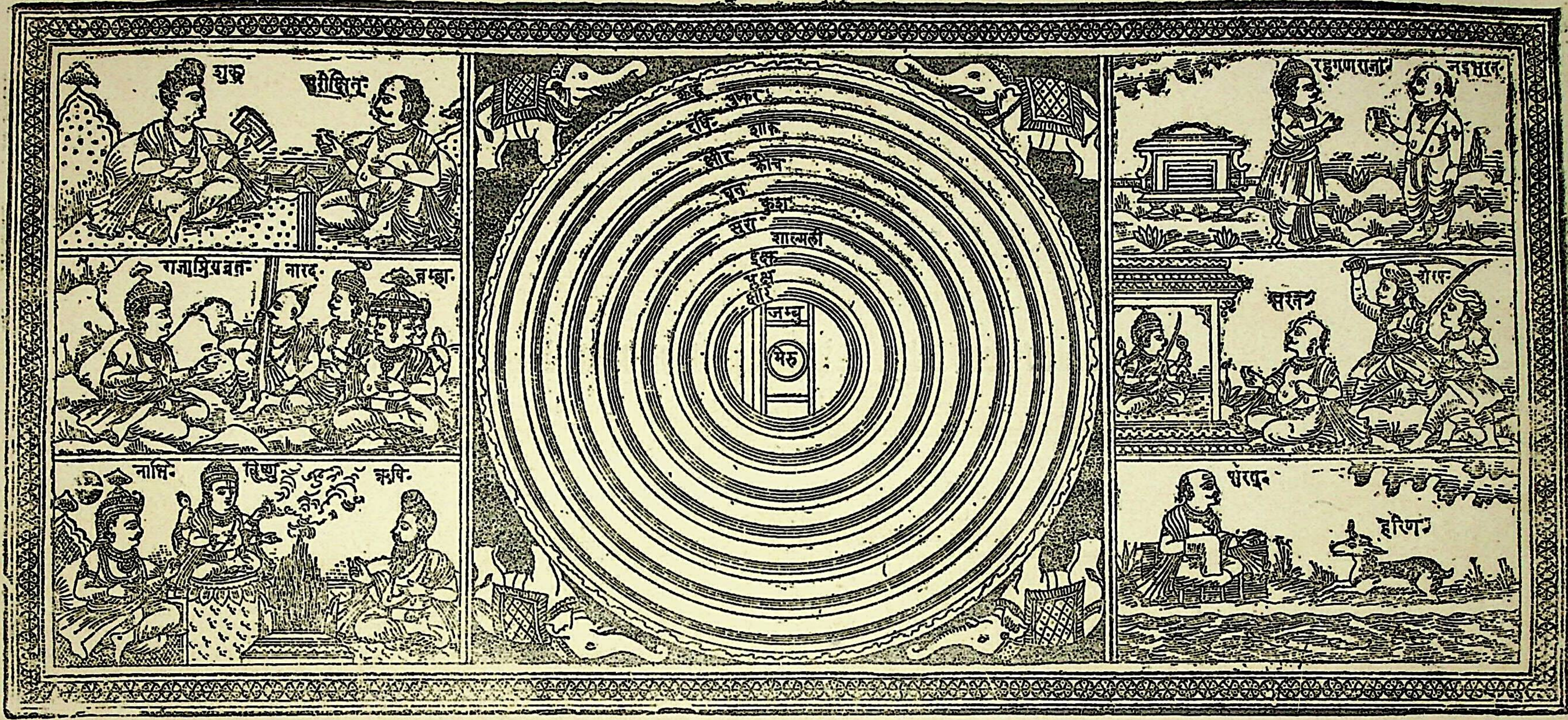
शुक
परीक्षित्
राजाप्रियव्रत
नारद
ब्रह्मा
नाभि
विष्णु
ऋषि
शुद्ध
पुष्कर
दधि
शाक
क्षीर
क्रौंच
घृत
कुश
सुरा
शाल्मली
इक्षु
प्लक्ष
क्षार
जम्बु
मेरु
रहूगणराजा
जड़भरत
भरत
चोर
भरत
हरिण

दोहा–अजर अमर अव्यक्त अज, अविनाशी अविकार। अलख अचिन्त्य अनादि अज, आर्त अनीहाधार ॥ १॥सोरठा--हे व्रजेश व्रजचन्द, नन्द नँदन वसुदेवसुत ॥ यशुमतिके सुखकन्द, हरहु मोर दुख द्वन्द्व सब ॥ १ ॥ श्रीगोविन्द गोपाल, गोपीवल्लभ गोपपति ॥ कीजे कृपा कृपाल, कंसारी कालीदमन ॥ २ ॥ हे प्रभु! सर्वाधार, कनअँगुलीपर धार गिरि ॥ ज्यों व्रज लियो उबार, ऐसेहिं मोहिं उबारिये॥३॥ज्यों वारनकी वार, वारन कीनी एक पल॥ ऐसेहिं मोहिं उबार बारबार विनती करौं ॥४॥ भाषहु पंचम स्कन्ध, षड्विंशति अध्यायको ॥ भाषावार्त्तिक बंध, स्थान भन्यो जहँ भेदसो ॥ ५ ॥ दोहा–तहां प्रथम अध्यायमें, प्रियव्रत कथा अनूप ।ज्ञानीके जिमि भोग है, ज्ञाननिष्ठ पुनि भूप ॥ १ ॥ राजा प्रियव्रतका प्रथम आत्मज्ञान, फिर गृहस्थ आश्रममें अनुराग तिसके पीछे सब संगको छोडछाँडकर मोक्षके पानेकी कथा सुनकर राजा परीक्षित विस्मयचित्त होकर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ॥ गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबंधः पराभवः ॥ १ ॥ न नूनं मुक्तसंगानां तादृशानां द्विजर्षभ ॥ गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥ २ ॥ महतां खलु विप्रर्ष उत्तमश्लोकपादयोः ॥ छायानिर्वृत्तचित्तानां न कुटुंबे स्पृहा मतिः ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु ॥ सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजीसे बोले–कि हे मुने ! महात्मा प्रियव्रत परमभागवत थे इससे तो उनकी रति आत्मामें ही होसक्तीहै, सो वह किसप्रकारसे गृहस्थाश्रममें रत हुयेथे ? यह आश्रम दोषरहित नहीं है क्योंकि यह कर्मसे बँधाहुआ है और अपने २ रूपके तिरस्कारका मूल है ॥ १ ॥ और गृहस्थाश्रममें रति उसके विषयमें अभिनिवेश करनेसे होती है। सो मुक्तसंगी भागवत पुरुषोंका तो कभी घरमें अभिनिवेश होही नहीं सक्ता ॥ २ ॥ कुटुंबकी लालसा करनेवाली बुद्धि होनेसे गृहस्थाश्रममें सत्य २ रति होती है; परन्तु जो पुरुष कि महत हैं, उनके चित्त सदाही भगवान्के चरणारविन्दोंकी छायामें लगे रहते हैं,फिर भला ऐसे पुरुषोंकी कुटुम्बकी ओर लालसा होनेवाली बुद्धि कैसे होसकत्ती है? ॥३॥और हे ब्रह्मन् ! राजा प्रियव्रतने पुत्र,कलत्र और गृहादिमें अनुरागी होकर जो सिद्धि पाई और भगवान्में उसकी अचल भक्ति हुई,इसका भी मुझे एक बड़ा भारी

संदेहहै, कि गृहस्थाश्रममें आसक्त पुरुषको किस प्रकारसे सिद्धि और भगवान्‌की अटल भक्ति मिल गई थी ? ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सत्य तो यह है कि, भगवान्‌के चरणारविन्दमकरन्दके रसमें जिन पुरुषोंका चित्त लगा हुआ है, वह भगवत्‌की कथाको ही अपनी परममंगलकी पदवी समझते हैं । और जो कदाचित् इसमें किसीप्रकारका विघ्न भी पड़जाय तों भी वह इसको परित्याग नहीं करते यह बात बहुतही यथार्थ है ॥ ५ ॥ तात्पर्य यह है कि, उन मनुजीने अपने पुत्र प्रियव्रतको राजनीतिमें कहेहुए सब प्रधान २ गुणोंका आश्रय जानकर इसको पृथ्वीका पालन करनेमें नियुक्त करना चाहाथा. परन्तु इस राजपुत्रने राज्य भारको ग्रहण नहीं किया. हे राजन् ! प्रियव्रतके राज्यभार न लेनेका कारण यह है कि, वह परमभागवत थे । और देवर्षि नारदजीके चरणोंका आराधन करनेसे उनको आत्मतत्त्व भली भाँति ज्ञात होगयाथा, उससे उन्होंने मनमें विचाराथा कि, आत्मध्यानरूप कार्यके द्वारा नियमं ग्रहण करेंगे और उन्होंने पहलेही चित्तको एकाग्र करके भगवान् वासुदेवको अपनी सब इन्द्रियोंका क्रियाकलाप अर्पण कर दिया था. महाराज ! यद्यपि पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करना बड़ा अनुचित है, तथापि प्रियव्रतने यह विचार कियाथा कि, राज्याधिकार मिथ्या है और राज्यके प्रपंचसे पराभव होनेंकी संभावना है. इसलिये इसकारणसे प्रथम उन्होंने राज्यका भार लेना नहीं चाहा था ॥ ६ ॥ परन्तु भगवान् आदिदेव ब्रह्माजी सब मूर्तिमान वेद और मरीचि आदि समस्त

श्रीशुक उवाच ॥ बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविंदमकरंदरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदतरायविहताः स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वंति ॥ ५ ॥ यर्हि वाव ह राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयांजसाऽवगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकांतभाजनतया स्वपित्रोपामंत्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनंदत् ॥ यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरणे आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥ ६ ॥ अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनाद्वततार ॥ ७ ॥

निज जनोंके साथ अपने भवन सत्यलोकसे उतरे हे राजन्! जैसे राजदूत लोगोंके द्वारा अपने अधीनस्थ मंडलेश्वर राजाओंके अभिप्रायको जानता है वैसेही गुणमय सृष्टिकी बढ़ानेवाली चिन्ताके द्वारा ब्रह्माजी समस्त जगत्का अभिप्राय निश्चय करतेहैं, सो वही ब्रह्माजी प्रियव्रतका वृत्तान्त जानकर नारदजीके निकट जानेको अपने लोकसे उतरकर आने लगे॥ ७॥ सत्यलोकसे उतरनेके समय स्थान२ में चंद्रमाकी समान उनकी ज्योति प्रकाशित हुई और मार्गही मार्गमें देवतालोग उनकी पूजा करतेहुए और सिद्ध, साधक, गंधर्व, चारण और मुनि इत्यादि यशका बखान करनेलगे. ब्रह्माजी इस प्रकार पूजा प्राप्त करते२ अपनी द्युतिसे गन्धमादनपर्वतकी गुफाओंको प्रकाशित करते प्रियव्रतके पास वहां पहुँचे ॥ ८॥ उसीसमय

३८५

स तत्रतत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथिपथि च वरूथशः सिद्धगंधर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गंधमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ ८ ॥ तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवंतं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहितांजलिरुपतस्थे ॥ ९ ॥ भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ॥ वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥

गन्धमादन पर्वतकी गुफामें नारदजी प्रियव्रतको आत्मविद्याका उपदेश करतेथे और मनुजी अपने पुत्र प्रियव्रतको लेनेके लिये वहां आये थे। हंसकी सवारीको देखतेही नारदजीने जानलिया कि, हमारे पिता भगवान् ब्रह्माजीका आगमन हुआ इसलिये मनु और प्रियव्रतके साथ हाथ जोड़कर उसीसमय उठ खडे हुए और पूजाकी सामग्री हाथमें लेकर ब्रह्माजीकी स्तुति करनेलगे॥९॥ हे भारत! उसके पीछे पूजाकी सामग्री उनके सामने रखकर फिर मीठे वचनोंसे उनके गुण व यश और सर्वोत्कृष्टताके विषयका वर्णन करते हुए इसलिये ब्रह्माजी दया प्रकाश करके कुछ एक हँसे और कृपादृष्टिसे प्रियव्रतकी ओर देखकर कहा॥ १०॥ भगवान् ब्रह्माजी स्नेहसहित बोले कि हे तात! जो मैं कहूँ सो सुनो, सत्यस्वरूप अप्रमेय

भगवान्में आरोपकरके दोष देखना उचित नहीं, क्योंकि हे वत्स! तुम, तुम्हारे पिता तुम्हारे गुरु यह महर्षि नारद और हम सब ही अवश होकर जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ ११ ॥ कोई देहधारी तपस्या अथवा विद्या वा योगसे अथवा समाधिके बढाये हुए बलसे अपने आप वा दूसरेके आश्रयसे बरन् किसी प्रकारभी उस परमेश्वरकी आज्ञाको नष्ट करनेमें समर्थ नहींहै और अर्थ व धर्मसे भी उसके किये कार्यको अन्यथा करनेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ १२ ॥ हे प्रियव्रत! सब लोकोंमें उत्पत्ति, नाश, शोक; मोह, भय, सुख; दुःख इन सबके निमित्त कर्मकरनेको परमेश्वरका दियाहुआ यह देह सबही जीव धारण करते हैं; उसके अन्यथा करनेमें किसीको कुछ सामर्थ्य नहीं है॥ १३ ॥ हे वत्स! कर्म करनेमें भी किसीको स्वाधीनता नहीं है, हम परमेश्वरकी वाणीरूप रस्सीमें सत्त्वादि गुणपूर्वक जो सब कर्म हैं, उनके निबन्धनसे ब्राह्मणादि शब्दद्वारा बन्धनकर सब उसको ही पमेश्वररकी पूजा करते हैं अर्थात् उनकी ही बलि देते हैं इस कारण बैल इत्यादि चौपायें जिस प्रकार नाथके नाकमें पडनेसे द्विपद मनुष्यों की इच्छासे उनके लिये कर्म करतेहैं, वैसेही हम सबभी परमेश्वरकी इच्छासे उनके लिये कर्म किया करतेहैं ॥ १४ ॥ वत्स! जैसे समाखा पुरुष अन्धेको छाया अथवा धूपमें जहां चाहै लेजाय वहांभी उस अंधेको जाना पडता है ऐसेही परमेश्वर हमारा प्रभुहै वह अपनी इच्छासे हमारे लिये पशु पक्षी, अथवा मनुष्यका जो कोई भी देह देदेता है हम लोग उसको ही अंगीकार करके सुख व दुःख भोग किया करतेहैं सुख दुःख गुण कर्मके संग हेतुसे वही ईश्वर देता है अर्थात् बैल इत्यादि जैसे किसानके देनेपरही घास आदि खानेको पाते हैं, अपनी इच्छासे खानेको नहीं पासक्ते वैसेही हम लोग भी परमेश्वरका दिया हुआ सुख व दुःख भोग करते हैं हमारी इच्छासे कुछभी नहीं वै होसक्ता ॥ १५ ॥

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा॥ नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहंतुं तनुभृद्विभूयात्
॥१२॥ भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय ॥ सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनतांग
धत्ते ॥ १३ ॥ यद्वाचि तंत्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ॥ सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव
द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥ ईशाभिसृष्टं ह्यवरुंध्महेंग दुःखं सुखंवा गुणकर्मसंगात् ॥ अस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्च
क्षुमतांधा इव नीयमानाः ॥ १५ ॥

निद्रासे उठेहुए पुरुषोंको स्वप्नमें देखे हुए पदार्थका केवल स्मरणमात्र रहनेसे, अभिमान शून्य होकर प्रारब्धके कर्मभोग करते हुए देह धारण करना पडता है परंतु उनको दूसरी देहके सम्बंधीगुण वा कर्म अथवा वासना नहीं रहती क्योंकि ईश्वरकी इच्छामें कर्मोंका भोगना केवल अज्ञानीके लिये हीनहीं बरन् ज्ञानीकोभी उसकी इच्छासे कर्मभोग भोगना पडता है, चाहे जीव मुक्तभी होजाय परंतु जबलों प्रारब्ध कर्म रहेगा तबलों निज शरीरको तो अवश्य धारण करना पड़ेगा ॥ १६ ॥ सो उस स्थलमें मनमें ऐसा मत समझ लेना कि, घरमें रहकर इस लोकका भोग करनेपर अभिमानका त्याग वा मोक्षकी संभावना नहीं रहती. अतएव घरका त्याग करनाही ठीक है। हे वत्स! जो पुरुष असावधान है और उसने अपनी इंद्रियें नहीं जीती हैं वह पुरुष यदि संगके भयसे एक बनसे दूसरे बनमें भागा २ फिरे तो उसको वनसेभी भय होसक्ता है. क्योंकि वह पुरुष

मुक्तोपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ॥ यथाऽनुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते
॥ १६ ॥ भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ॥ जितेंद्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु
करोत्यवद्यम् ॥ १७ ॥ यः षट् सपत्नान्विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ॥ अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारी
न्क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥ १८ ॥ त्वं त्वब्जनाभांघ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ॥ भुंक्ष्वेह भोगान्
पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसंगः प्रकृतिं भजस्व ॥ १९ ॥

बुद्धि और पांचों इन्द्रियें इन छै दुश्मनोंके साथ मिलाहुआहै, परन्तु जिसने इंद्रियोंको जीत लिया है और आत्मामेंही जिसको रति उत्पन्न हुई है, उसके लिये गृहाश्रम क्या अनभल करसक्ता है? ॥ १७ ॥ हेवत्स प्रियव्रत! जो पुरुष इन छैः शत्रुओंको जीतना चाहैं तो प्रथम उसको घरमें ही रहकर इनसबकी गति रोककर जयके लिये प्रयत्न करना चाहिये. जब रिपु दुर्बल होजावें तब पीछे घरमें वा और कहीं घूमे क्योंकि मनुष्य किलेका आश्रय करनेहीसे बलवान् वैरीको विजय करत हैं, पश्चात् जैसी इच्छासे दुर्गमें अथवा और कहीं निवासकरै ॥ १८ ॥ हे वत्स! यह गृहरूपी दुर्गका आश्रय प्राकृत लोगोंके लियेही जानना तुम सरीखोंके लिये नहीं है, तुमने भगवान् वासुदेवके चरणकमलरूपी दुर्गका आश्रय

कियाहै, तिससे यद्यपि तुमनें अपने छैः शत्रुओंको जीतलियाहै, तथापि जबतक देह रहै तबतक ईश्वरके दियेहुये सब भोगोंको भोगकर फिर संगपरित्याग करके अपने अपने रूपोंका भजन करना, अर्थात् आत्मनिष्ठ होजाना ॥ १९ ॥ महर्षि शुकदेवजी इतनी कथा वर्णन करके राजा परीक्षित् से बोले कि, हे महीपाल ! महाभगवद्भक्त प्रियव्रत ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर मनमें विचारने लगे कि, हम” एक क्षुद्र प्राणी हैं सो हमको त्रिभुवननाथ ब्रह्माजी ऐसा भला उपदेश देतेहैं उनको शिर झुकाकर बोला “जो आपकी आज्ञा है मैं वही करूंगा” यह कहकर ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी ॥ २० ॥ ऐसा होनेसे मनुजीको बहुतही संतोष प्राप्त हुआ.उन्होंने आनंदितचित्तसे यथाविधि ब्रह्माजीकी पूजा की, ब्रह्माजी उसको ग्रहण करके प्रियव्रत और नारदजीके सामनेही अपने लोकको जो मन और वाणीके अगोचर होनेसे व्यवहार शून्य हैं जानेके लिये अंतर्धान

श्रीशुक उवाच ॥ इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयाऽवनतशिरोधरो बाढमिति स बहुमानमुवाह ॥ २० ॥ भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसंक्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥ २१ ॥ मनुरपि परेणैवं प्रतिसंधितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामंडलस्थितिगुप्तये आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥२२॥ इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाऽधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बंधध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्यांघ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरंधितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥ २३ ॥

होतेहुये ब्रह्माजीने मनमें समझा था कि, प्रियव्रतका योगभ्रष्ट होने और नारदजीका एक शिष्य निकल जानेसे, यह दोनोंजन जानेके समय हमें क्रोधकी दृष्टि देखेंगे, परंतु ऐसा नहीं हुआ बरन् प्रियव्रत व नारदजी एकटक लोचनसे ब्रह्माजीको देखते रहे। प्रियव्रतको योगसे हटाकर ब्रह्माजीका कार्य जब सिद्ध हुआ तब ब्रह्माजीके हृदयमें निवृत्तको फिर संसारमें लगा देनेसे विषाद हुवा था॥२१॥ मनुजीने अपने मनमें यह अभिलाष किया था कि,पुत्रके हाथमें राज्यका भार सौंपकर वनको चले जांयगे सो भगवान् ब्रह्माजीसे उनका मनोरथ सिद्ध होनेपर वह नारदजीकी सम्मतिसे समस्त भूमंडलका पालन और रक्षा करनेके लिये अपने पुत्रको अभिषेकित करके विषम विषमय संसारकी भोगवासनासे विरत हुये ॥२२॥ प्रियव्रतने यद्यपि जिन भगवान् आदि पुरुषके प्रभावसे सब जगत्के बंधन कट जाते हैं उनके दोनों चरणोंका नित्य प्रति

ध्यान करनेसे सब रागादिक मलोंको जला डाला था और शुद्ध चित्त होगये थे, तथापि आज्ञाका पालन करनेसे ब्रह्माजीका मान बढानेके लिये उन्होंने पृथ्वीपति होकर पृथ्वीका पालन आरंभ किया. हे महाराज ! यद्यपि प्रियव्रत निवृत्तिमार्गका पथिक था तथापि ईश्वरकी इच्छासे फिर उसको कर्मका अधिकार प्राप्त हुवा॥२३॥जब कुछ समय प्रियव्रतको राज्य करते करते बीतगया तो उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी कन्या बर्हिष्मतीके साथ विवाह किया, इस स्त्रीके गर्भसे दश पुत्र हुए और ऊर्ज्जस्वती नाम एक कन्या उत्पन्नहुई और दशों पुत्र राजा प्रियव्रतकेही समान रूप गुण शील वीर्य और कर्म द्वारा उदार हुए, कन्या उन सबसे छोटीथी ॥ २४ ॥ हे राजन् ! प्रियव्रतकेही इन दश पुत्रोंके यह नाम

अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम ॥ तस्यामुह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयांबभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥ २४ ॥ आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सव एवाग्निनामानः ॥ २५ ॥ एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसः ॥ त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविंदाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितांतर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥ २७ ॥

हुये यथा–आग्नीध्र १ इध्मजिह्व २ यज्ञबाहु ३ महावीर ४ हिरण्यरेता ५ घृतपृष्ठ ६ सवन ७ मेधातिथि ८ वीतिहोत्र ९ और कवि १० अग्निके नाम परही इन सबके नाम थे॥२५॥इन दश पुत्रोंमेंसे कवि, महावीर और सवन, यह तीन पुत्र तो निष्ठावान् ब्रह्मचारी हुये, उन्होंनें बालकपनसे आत्मविद्यामें परिश्रम करके परमहंस आश्रममें प्रवेश किया था ॥२६ ॥ वह तीनों जन महाज्ञानी और शांतस्वभाव हुये. जो सब जीवसमूहके निवासभूत और भयभीत जनोंके रक्षा करनेवाले उन सच्चिदानंद मुकुन्दके चरणारविंदका स्मरण करके अखंडित भक्तियोगके प्रभावसे अपने

अंतःकरण भलीभाँतिसे शुद्ध करलियेथे, तब उनके उन अंतःकरणोंमें सब भूतोंके आत्मा भगवान्के प्रतिष्ठित होनेसे देहादि उपाधिसे
रहित होकर तादात्म्य (भगवद्रूपता) के प्राप्त हुये ॥ २७ ॥ हे राजन् । प्रियव्रतके एक और दूसरी रानी थी, उससेभी तीन पुत्र उत्पन्न
हुये, यथा–उत्तम, तामस और रैवत, यह तीनोंपुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुये ॥२८॥ इस प्रकार तीनों पुत्रोंने जिसके शांति पाई, इसीप्रकार
महात्मा प्रियव्रतने ग्यारह अर्बुद वर्षतक पृथ्वीका पालन किया, उस राजामें दोर्दण्ड अखंडनीय बल परिपूर्ण था, वह राजा पूर्णबलसे धनुषकी
टंकार करता तो विना युद्धकेही धर्मका विपक्ष करनेवाले सबही पुरुषोंका नाश करदेता, उसका भोग विलासभी थोड़ा नहीं था, परमप्यारी

अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन् ॥ उत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥ २८ ॥ एवमुपशमायनेषु
स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादशपरिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दंडयुगलापीडितमौ
र्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिर
क्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥ यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रम
न्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनंद
न्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद्द्वितीय इव पतंगः ॥ ३० ॥

। हिंष्मती नारीके साथ प्रतिदिन आमोद प्रमोदादि द्वारा मानो उसने विज्ञान और विवेकको पराजित कर दियाथा । इसकारण वह विषयमें
आसक्त करनेके लिये भोग विलास करनेके समय ऐसा प्रतीत होता है मानो आत्माको भूलगया हो ॥२९॥ एक समय भगवान् सूर्य जब कि,
सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश कररहे थे उसका आधे भूमण्डलमें प्रकाश था और आधी पृथ्वीपर अँधेरा छा रहा
था. तब उस समय इस राजाने सूर्यकी ओर दृष्टि करके विचार किया कि, भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वतकी: परिक्रमा करके लोकालोक पर्वततक
प्रकाश करते आधी पृथ्वीको प्रकाशित कर रहे हैं और आधी धरापर अन्धकार छा रहा है, यह बात तो कुछ भली नहीं इसलिये इस विषयमें अप्र

सन्नता प्रकाश करके प्रतिज्ञा की कि, हम अपने प्रभावसे रात्रिकोभी दिन करेंगे । यह विचार सूर्यकी समान वेगवान् अपने ज्योतिर्मय रथपर आरूढ होकर दूसरे सूर्यकी भांति सातबार सूर्यके चारों ओर घूमा । हे राजन् ! प्रियव्रतने जो ऐसा आचरण किया सो इसको कोई असम्भव न समझे, क्योंकि भगवान्की भक्ति करनेसे उनका अलौकिक प्रभाव वर्द्धित हुआ था । परन्तु जिस समय कि, राजा प्रियव्रत ऐसा कर रहे थे उसी समय चर्तुमुख ब्रह्माजीने उनके निकट आकर उनको इस कार्यसे निवारण किया और कहा कि, हे वत्स ! यह तुम्हारा अधिकार नहीं है

यवा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिंधव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥ ३१ ॥ जंबूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौंचशाकपुष्करसंज्ञाः ॥ तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्माद्युत्तरोत्तरं यथासंख्यं द्विगुणमनेन बहिः समंतत उपक्लृप्ताः ॥ ३२ ॥

॥ ३० ॥ पृथ्वीनाथ प्रियव्रतके रथके पहियोंसे जो सात गढे पडगये थे, वही सात समुद्र हुए और उन्हीं समुद्रोंसे पृथ्वीके सात द्वीप हुए * ॥ ॥ ३१ ॥ उन सात समुद्रोंसेही जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप; यह पृथ्वीके सात द्वीप बने. हे राजन् ! अब इन सब द्वीपोंका प्रमाण सुनो यह सातों द्वीप क्रमशः एक दूसरेके प्रमाणसे दूने हैं और समुद्रके बाहरी भागमें चारों ओर

* **शंका**—राजा प्रियव्रतका एक रथ, जिसमें बैठकर रात्रिके नाश करनेके लिये और आठ प्रहरका दिन करनेके लिये सूर्यके पीछे पीछे राजा प्रियव्रत क्यों घूमता फिरा? राजा प्रियव्रतने रात्रिका नाश किया तथा दिनका क्यों नहीं किया? फिर रात क्योंकी ? राजा प्रियव्रत रथमें बैठकर आकाशमें घूमा करता था, फिर रथके पहियोंसे पृथ्वीमें सात समुद्र कैसे होगये? जो पृथ्वीपर रथ घूमता तो निःसन्देह पहियोंके चिह्नसे समुद्र होजाते और कुछ शंका न होती परन्तु आकाशमें रथ चलानेसे पृथ्वीमें पहियोंसे सात समुद्र, सात द्वीप, होगये यह बडे आश्चर्यकी बात है, तथा रथ तो एक और चौडाई लम्बाई एक प्रकारकी फिर क्या कारण कि, एकसे दूना दूसरा, दूसरेसे दूना तीसरा, तीसरेसे दूना चौथा, चौथेसे दूना पांचवाँ, पांचवेंसे दूना छठा, छठेसे दूना सातवाँ समुद्र और सातवाँ द्वीप हुआ, यह वडी भारी शंका है ?

उत्तर—पहिले तो प्रियव्रतने अपने तपके अभिमानसे विचार किया कि, रात्रिका मैं नाश करदूंगा केवल अकेला दिनही रक्खूंगा, क्योंकि यह रात्रिका अन्धकार महादुःखदायक है, ऐसा मनमें विचार किया और अपने तपके तेजप्रकाशसे अन्धकार न होने दिया और सूर्यनारायणके रथके पीछे२ अपना रथ कर लिया, परंतु फिर पीछे राजाको ज्ञानहुवा और समझा कि, दिनरातकी मर्यादा भगवान्की की हुईहै जो रात्रिको नष्ट करूंगा तो भगवान् मेरे ऊपर अत्यन्त कोपकरके मुझको दण्ड देंगे, इसप्रकार अपने मनमें भय मान रात्रिका नाश नहीं किया ॥ दूसरी शंका—राजाप्रियव्रत तपके बलसे आकाशमें घूमता फिरता था, तथा कभी २भूमिपरभी घूमता था कुम्हारके चक्रकी समान रथको फिराताथा जब भूमिमें रथको फेरने लगा तब बडे वेगसे जो रथ घूमता था, उसके पहियोंके चिह्न पृथ्वीसे सात समुद्र होगये और सात द्वीप होगये-

बनाये गये हैं ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार सब समुद्रके बाहरी भागोंमें एक एक द्वीप है, इसी प्रकार सब द्वीपोंके बाहर एक एक समुद्र अर्थात् खारी जल, इक्षुरसजल, सुराजल, घृतजल, दधिजल, दुग्धजल और शुद्धजल; यह सात समुद्र सातों द्वीपोंकी मानो परिखा होगये हैं । यह सब द्वीप जो कि, समुद्रोंसे घिरेहुए हैं सो इनका प्रमाण ऐसा है कि, उसकेही तुल्य यथाक्रमसे पहिले एक समुद्र, फिर उस एक समुद्रके परे एक द्वीप

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमडोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यंतरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक् परित उपकल्पिताः॥ तेषु जंब्वादिषु बार्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३ ॥ दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानी नाम काव्यसुता ॥ ३४ ॥

समुद्रके परिमाणकी यह सब सागर अलग अलग असंकीर्णरूपसे बाहरी भागमें भी व्याप्त हो रहे हैं भीतर नहीं फैले हैं सो राजा प्रियव्रतने यह सात द्वीप अपने तुल्य चरित्रवान् सात पुत्रोंको अर्थात् आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि, वीतिहोत्र नामक सात पुत्रोंको एक एक द्वीपका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ इनके ऊर्ज्जस्वती नामक जो एक कन्या थी उसका विवाह शुक्रसे हुआ उसकेही गर्भसे

—सात चक्र पृथ्वीके राजाने दियेथे, श्रीलक्ष्मीपति भगवान्ने पृथ्वीपर अपनी बनाई सनातनकी जो मर्यादा सातसमुद्र, सातद्वीप एकसे एक दूना उनको नष्ट देखकर जो पृथ्वीपर सदासे चले आये हैं वह सात समुद्र और सात द्वीप पृथ्वीपर क्यों नहीं? मैं जानताहूँ कि, ब्रह्मा, स्वायम्भूमनुसे जब सृष्टिकी रचना कराई तब उन्होंने सात समुद्र और द्वीप नहीं बनाये, इस लिये अपनी मायाकरके वासुदेव भगवान् राजा प्रियव्रतके सारथी हुए और राजाने नहीं जाना कि, मेरे सारथीको उठाकर दूसरे स्थानपर बैठायदिया और आप सारथी बनाकर अपनी इच्छासे रथकी लम्बाई चौडाई तथा रथके पहियोंको जितना बडा करना चाहते थे उतनाही बडा करलेते थे और घोडोंको अपनी इच्छानुसार चलाकर एक बारमें दूना, दूसरी बारमें तिगुणा, तीसरी बारमें चौगुना इसीप्रकार समुद्र और द्वीप एकसे एक दुगुणा दुगुणा जैसे प्रथम थे वैसेही बनाकर वैकुण्ठ धामको चलेगये, इसीकारण समुद्र अथवा द्वीपं दूने दूने हुए।

देवयानी नामक शुक्रकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! जो सब पुरुष भगवान्के भक्त हैं और उन्होंने भगवान्के चरणकी रेणुद्वारा अपनी इंद्रियोंको जीत लियाहै, उनमें इस प्रकारका पौरुष होना असम्भव नहीं है,क्योंकि अन्त्यज चाण्डाल पुरुषभी भगवान्का नाम केवल एकवार उच्चारण करनेसे संसारके बन्धनसे छूट जाताहै॥३५॥जो कुछ हो, राजा प्रियव्रत देवर्षि नारदजीके श्रीचरण आश्रय करनेके समय जो राज्यादिकप्रपंच आ पडा, उसके सम्बन्धसे अपने आत्माको अनिवृत्त समान मनहीमन वैराग्य करता हुआ ग्लानि सहित यह बचन बोला॥३६॥

नैवंविधं पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदंघ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ॥ चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बंधम् ॥३५॥ स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसगणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥३६॥ अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिंद्रियैरविद्यारचितविषयमविषयांधकूपे ॥ तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयांचकार ॥ ३७ ॥ परदेवतायाः प्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सह महाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥ तस्य ह वा एते श्लोकाः ॥ प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ॥यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्त वारिधीन् ॥ ३९ ॥

कि,हाय!मैंने अच्छा नहीं किया,जो अविद्यारचित विषयरूप विषम अन्धकूपमें इंद्रियोंके वश होकर गिरा सबही वृथाहै,अहो! मैं अपनी स्त्रीका क्रीडामृग बना मुझे धिक्कार है यह कहकर राजा अपने आपही बहुतसी निन्दा करनेलगा ॥ ३७ ॥ हे राजन्! भगवान हरिके प्रसादसे राजा प्रियव्रतको ज्ञान प्राप्त होगया और वह अपने आज्ञाकारी पुत्रोंके मध्य पृथ्वीका विभाग कर धन सम्पत्ति सहित अपनी स्त्रीको मृत शरीरके समान परित्याग करके फिर देवर्षि नारदजीके उपदेश किये हुए मार्गके अनुसार बर्तने लगा॥३८॥हे राजन्!स्त्री और धन ऐश्वर्यकी बहुत दिनतक भोगनेसे

फिर उनका त्यागना कठिन होजाताहै। परन्तु प्रियव्रतका हृदय खेद रहित था और भगवान्‌के विहारकी चिन्तामें मग्न रहनेसे उसका प्रभाव बहुतही बढगया था, इसलिये उसको स्त्री और संपत्तिका त्यागना कुछ कठिन नहीं हुआ. उसकी महिमाके विषयमें पहला कहा हुआ एक श्लोक है सो मैं कहता हूँ, आप सुनो यथा प्रियव्रत जो कर्म करगया ईश्वरके विना कौन पुरुष उसके करनेको समर्थ होसक्ता है? उसके प्रभावकी कथाका कौन वर्णन करसक्ता है, उसने अन्धकारका नाश करनेके लिये घूमते घूमते अपने रथके पहियोंसे सात समुद्र खोदे थे॥३९॥ फिर जिसने विभागपूर्वक द्वीपोंकी रचना करके पृथ्वीकी शांति और सब प्राणियोंका विवाद निवारणेके लिये नदी, पर्वत, वनादि द्वारा प्रत्येकद्वीपकी सीमा नियत करदी ॥ ४० ॥ भगवद्भक्तोंके प्यारे जिस प्रियव्रतने भूमिका, स्वर्गका, मनुष्यका और योग व कर्मके विभवको नरककी समान समझा था, सो उस

भूसंस्थान कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ॥ सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपेद्वीपे विभागशः ॥ ४० ॥ भौमं दिव्य मानुष च महित्वं कर्मयोगजम् ॥ यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भुवनकोशे प्रियव्रतविजयो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जंबूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥ १ ॥ स कदाचित् पितृलोककामः सुर वरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवंतं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्वी आराधयांबभूव ॥२॥

परमभागवतकी समता कौन कर सक्ता और किसका सामर्थ्य है*॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतस्य प्रथमवैराग्य पश्चाद्गृहस्थाश्रम पुनर्वैराग्येण मोक्षप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा--या दूसर अध्यायमें, श्रीआग्नीध्र चरित्र। वर्णत भाषामें कछुक, सुखद विचित्र पवित्र ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार राजा प्रियव्रत परमार्थ साधन करनेके लिये चलागया, तब उसका पुत्र आग्नीध्र उसकी आज्ञाको धारणकर धर्मकी ओर दृष्टि रखकर जम्बूद्वीपनिवासी प्रजाको अपने पुत्रकी समान लालन पालन करने लगा॥१॥ उसने एक समय पुत्रकी कामना करके मंदराचल पर्वतकी गुफामें प्रस्थान किया और पुष्पादि विविधभाँतिकी सामग्री एकत्रकर एकाग्र

---

* कवित्त–आपहू तरे और जगत् सब तार दीनो, नगरके नित्राशिनको पुत्रवत् निहारो है। चोर और तस्करको नाम नाहीं राखो कहूँ, जाको निहारो सोई धर्म कर्म बारो हैं। मनुके वंशमें पूरण अवतंस भयो, जाके प्रकाशको त्रिलोकीमें उजारो है। शालिग्राम दीनबन्धु नाम सत्य करबेको, देखो कैसो प्रियव्रत प्रियव्रत धारो है॥ १ ॥

चित्तसे भगवान्की आराधना करने लगा * ॥२॥ उसके अभिप्राय व तपस्याका कारण जानकर बहुतही शीघ्र श्रीआदिपुरुष भगवान्जी देवताओंकी सभामें जो एक पूर्वचित्ति नामक अप्सरा गारही थी, उसको आग्नीध्रजीके साथ रमण करनेके लिये उन्होंने आग्नीध्रके निकट भेजा ॥ ३ ॥ पूर्वचित्ति अप्सरा आदिपुरुषकी आज्ञानुसार गमन करके आग्नीध्रके आश्रमके समीप जो वन था उसमें घूमने लगी यह उपवन अतिशय रमणीक था, वह सघन विविधवृक्षोंकी शाखाओंके समूहोंके ऊपर अनेक अनेक स्वर्णबल्लियें लिपट रहीं थीं उनके ऊपर मयूर, कीट, कोकिलादि बहुतसे

तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायंतीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ॥ ३ ॥ सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहंगममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारंडवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ ४ ॥ तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनाऽऽमीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥ ५ ॥

थलचारी पक्षी अपने अपने जोडोंके साथ षड्जादि मधुर स्वरसे गान कर रहेथे, उनके कण्ठका शब्द सुनकर हंस कारण्डवआदि जलचारी पक्षीभी कमलोंकी खानपर सावधान होकर विचित्र भाँतिके शब्द कर रहेथे, जिस्से बोध होता था कि, मानो वहांके सब तालाबही कोलाहल कर रहे हैं ॥ ४ ॥ यह अप्सरा सुललित गमन करनेके लिये ऐसे हावभाव बताकर पग धरने लगी कि, उससे अद्भुत गीत और विलास प्रगट हुआ और पग पगपर उसके मनोहर चरणोंके गहने खन खन ध्वनि करने लगे, यह नाद नरेश्वर कुमार आग्नीध्रजीने जब सुना तब उन्होंने अपने दोनों नेत्र

---

* **शंका**–बडे आश्चर्यकी बात है कि राजा आग्नीध्रने स्त्रीके लिये तप किया जो वह तप न करता तो उसका विवाह न होता ? राजा आग्नीध्र समस्त जम्बूद्वीपका अधिष्ठाता उसको, राजालोगोंने अपनी कन्या क्यों नहीं दी ? सब राजा लोग आग्नीध्रके अधीन थे, फिर विवाहके लिये क्यों तप किया ?

उत्तर–सृष्टिकी आदिमें कोईभी क्षत्रिय नहीं था, अकेले स्वायंभुवमनुके पुत्र क्षत्रिय थे, जब मैथुनी सृष्टि ब्रह्माने बनाई तब पीछे क्षत्रिय उत्पन्न हुए जो क्षत्रिय पृथ्वीपर नहीं थे तो आग्नीध्रको कन्या कौन देता इसीलये आग्नीध्रने विवाहके कारण तप किया ॥

(जोसमाधियोगमें सब भांतिसे लगे हुएथे) कुछ एक खोलकर देखा ॥ ५ ॥ तब यह अप्सरा दृष्टि आई उसके देखतेही राजकुमार कामदेवके वशीभूत हुए। हे राजन् ! पूर्वचित्ति अप्सराको देखकर आग्नीध्रका कामके वश होजाना कुछ विचित्र नहीं है। यह अप्सरा उनके बहुतही निकट मधुकरीकी समान पुष्पोंको सूंघ रही थी, उसकी गति विहार लजीली व विनययुक्त चितवन मनोहर वचन और नेत्रादि अंग बहुतही मनहरणकारी थे। इन नेत्रादिकोंके द्वारा मानो वह दर्शकगणोंके नसोंमें कामदेवके प्रवेश करनेका द्वाराकरे देती थी॥ ६ ॥ और दूसरे उसके मुखसे अमृतोपम स्वादवाले और आसवतुल्यगुण मादक जो हँसीके वचन झरते थे उनके साथ सुरभी पवनकी तुल्य श्वास निकलनेसे उसकी गंधसे मधुकरोंके झुंडके झुंड अन्धे होकर उसके वदनको घेररहेथे, उन भौंरोंके भयसे जो वह शीघ्र शीघ्र चरण उठाती थी, उससे उसके पयोधर और वेणी व किंकिणी मनोहर भाँतिसे डोल रही थीं। सो ऐसा हावभाव देखकर, किसको मोह नहीं उत्पन्न होता ? उससे आग्नीध्र मोहित होकर कामदेवके वश हुए और जड़की समानहो कभी स्त्री कभी पुरुष इस प्रकार उसको पुकार पुकारकर कहने लगे ॥ ७ ॥ आग्नीध्रजी बोले हे मुनिवर। तुम कौनहो? इस पर्वतपर क्या करनेकी वासना करते हो ? तुम क्या भगवान् परदेवताकी माया हो ? फिर उनकी दोनों भ्रुकुटियोंको देखकर कहा सखे। तुम यह दो प्रत्यंचा रहित धनुष क्या अपने निमित्त धारण करते हो? इन दोनोंसे क्या कुछ तुम्हारा अपना काम है अथवा मृगतुल्य अजितेन्द्रिय हमसरीखोंको खोजते हुये फिरते हो, इसलिये यह अपने साथ रक्खेहैं ? अर्थात् हमको वश करनेके लिये क्या यह दो धनुष धारण करते हो?॥ ८ ॥

तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनसः उपजिघ्रंतीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लादद्दुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवर ॥ ६ ॥ निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदांधमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पंदनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तावदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ ७ ॥ का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायासि कापि भगपत्परदेवतायाः ॥ विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोर्थे किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥ ८ ॥

फिर उसपर आक्षेप करके कहा कि,भाई! तुम्हारे यह दोनों कटाक्ष दो बाणरूप हुएहैं तुम्हारे दोनों कमल नयन इनके दो फलक हैं,अहो,दोनोंही विभ्रमके कारण शान्त हो रहे हैं यद्यपि उनमें पंख नहींहैं तथापि वह विनाही पंखोंके अतिशय कठिन दृष्टि आतेहैं, और फिर दोनोंकाही अगला भाग अतिशय तेज है क्या यह तुमसे विना चलाये शान्त न होंगे, अच्छा किसके ऊपर यह चलाना चाहते हो?हमारी समझमें कुछ भी नहीं आता और डरके मारे हम जडकी समान होरहे हैं इसलिये हम केवल तुम्हारी इतनीही प्रार्थना करते हैं कि, आपका यह पराक्रम (घूमना)हमारा मंगल करनेके लिये हो तो अच्छाहै॥९॥पीछे उसके शरीरकी सुगंधिसे जो अन्धेहो कुछ भौंरे उसके पीछे पीछे चले आते थे उसको देखकर बोले हे ईश! क्या तुम्हारे यहसब शिष्यहैं? और आपके चारों ओर फिरकर सरहस्य सामवेदका पाठ और गान कर रहे हैं तुम्हारे मस्तककी शिखासे

बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शांतावपुंखरुचिरावतितिग्मदंतौ॥कस्म युयुंक्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जड
धियां तव विक्रमोऽस्तु ॥९॥ शिष्या इमे भगवतः परितः पठंति गायंति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ॥ युष्मच्छिखा
विलुलिताः सुमनोभिवृष्टिः सर्वे भजंत्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥१०॥ वाचं परं चरणपंजरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां
शृणवाम तुभ्यम् ॥ लब्धा कदंबरुचिरंकविटंकबिंबे यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥ ११ ॥

जो यह सब फूल खसे पडते हैं सो यह सब भौंरे इस प्रकार उनका सेवन करते हैं कि,ऋषिलोग जैसे वेदकी शाखाओंका सेवन करते हैं ॥१०॥ फिर नूपुरध्वनि सुनकर कहा ब्रह्मन्! तुम्हारे दोनों चरणोंमें पहरे हुए, दोनों नूपुररूपी पींजरोंके अन्तर्गत सब रत्नरूपी तीतरियोंका अतीव मनोहर केवल शब्द तो मैं सुनताहूँ परन्तु यह वचन कौन कहता है, उस बोलनेवाली व्यक्तिका मुखारविंद मुझको नहीं दीखता फिर उसके पाले वर्णवाले पहरनेके वस्त्रकी नितम्बकी कांति समझकर बोले कि, तुमने अपने सुन्दर नितम्बमण्डलमें यह कदम्बके फूलोंकी दीप्ति कहांसे पाई, फिर पीछे मेखला देखकर बोले कि, यह जिसमें अंगारोंकी लंगारकी लंगार दृष्टि आती है और दीपमालिकाका चक्रसा जो बन रहायह क्या है

और तुम्हारा वल्कल कहां गया॥ ११॥फिर दोनों स्तन देखकर बोले कि,हे द्विज!इन दोनों स्तनोंके मध्यमें क्या कोई मनोहर पदार्थ आपने भर रक्खाहै,मैं इस कारण देखताहूँ कि तुम मध्यभागमें दुर्बल होकर अतिकष्टसे जिनको आप धारण करते हो,सो भाव देख कर हमको इस बातका अनुमान होताहै और देखो हमारी दृष्टि केवल इन्हीं दोनोंके ऊपर लगरही है. फिर दोनोंके ऊपर कुंकुम लगाहुवा देखकर बोले कि, तुम्हारे दोनों कुचोंके ऊपर यह अपूर्व अरुणरंगका कीचड कैसे लग गया जिससे कि तुम हमारे आश्रमको आमोदित कर रही हो॥ १२॥हे सुहृदश्रेष्ठ ! तुम कौनसे स्थानमें रहते हो सो हमको दिखाओ, हमको विदित होता है कि, आपके रहनेका स्थान बहुतही चमत्कृत होगा. अहो वहांके रहनेवाले लोग छातीपर ऐसा अपूर्व अवयव धारण करते हैं, तुम्हारी छातीके इन दो अवयवोंकी सजावट गढ़ावटका क्या वर्णन करूं इनको देखकर हमसरीखे लोगोंका मन अतिशय क्षोभित होजाता है. बंधो ! तुम्हारे स्थानके रहनेवाले केवल यह अपूर्व अवयवही धारण नहीं करते

किं संभृतं रुचिरयोर्द्विज शृंगयोस्ते मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ॥ पंकोरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्येना
श्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥१२॥ लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ ॥ अस्मद्वि
धस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति बह्वद्भुतं सरसराससुधादिवक्त्रे॥ १३॥का वात्मवृत्तिरदनाद्धविरंग वाति,विष्णोः कलास्यनि
मिषोन्मकरौ च कर्णौ ॥ उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपंक्तिशोचिरासन्नभृंगनिकरं सर इन्मुखं ते ॥ १४ ॥

बरन् उनके मुखमें मधुर आलाप और विलास सहित अद्भुत अधरामृत भी है ॥ १३॥ हे सखे ! तुमसे और एक बात पूछतेहैं कि, लोकके मध्यमें तुमने देह धारण करनेके लिये कौनसी वृत्तिका आश्रय लियाहै ? हमको जान पडताहै कि,भोजनसे तुम्हारी जीवनवृत्ति नहीं है, बिना भोजनही तुम प्राण धारण करतेहो,क्योंकि तुम विष्णुजीके अंशहो, विष्णुजी भोजन नहीं करते, सो तुम उनके वंशमें हो, फिर भला किस प्रकारसे तुम्हारा भोजन करना सम्भव है?सखे!हम कुछ अपने मनसेही गढके तुम्हें विष्णुजीका अंश नहीं बताते बरन् यह जो देखते हैं कि तुम्हारे दोनों कानोंमें विष्णुजीकी नाईं दो मकराकृति कुण्डल दीप्तिमान् होरहे हैं। फिर उनके निकटही निमेष शून्य दो नयन शोभा विस्तार कर रहेहैं। दूसरे तुम्हारा यह वदन मानो ठीक सरोवरकी समान है;क्योंकि इसमें यह दो नेत्र चञ्चल मीन युगलकी सदृश क्रीडा कर रहेहैं और मुखारविन्दके भीतर

यह दांतोंकी पंक्ति राजहंसोंकी कतारकी समान शोभा विस्तार कररहीहै और समीपमें यह केश कपाल अलिकुलकी नाईं शोभा फैला रहेहैं॥ १४॥ हे बन्धु !तुम अपने करकमलसे जो इस गेंदको वारंवार उछालती हो यह सब ओर घूमती २ हमारे नेत्रोंको चंचल करती है, अली ! तेरे यह वेणीबंधन खसे पडते हैं,सो क्या तुम्हैं इनकी सुधि नहीं है?अरी प्यारी! अत्याचारी यह धूर्त पवन तुम्हारी नीवीके बन्धनको हरण करता है, सो क्या इसका भी तुमको स्मरण नहीं है? ॥१५॥ हेतपोधन! तुम्हारा यह रूप रंग तपस्वी लोगोंके तपका नाश करनेवाला है तुमने किस प्रकार तीव्र तपस्या करके यह अपूर्वरूप प्राप्त किया ? हे मित्र!तुम अनुग्रह करके हमारे साथ तपस्या करो क्योंकि वह भवभावन ब्रह्माजी हमारे

योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतंगो दिक्षु भ्रमन्भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे॥ मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लंपट एष नीवीम्॥ १५ ॥ रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ॥ चर्तुं तपोर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥ १६ ॥ न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम्॥ मां चारुशृंग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरंतु शिवाः सचिव्यः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ललनाऽनुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयमास ॥ १८ ॥

ऊपर प्रसन्न होकर तुमको हमारी स्त्री करदें ॥ १६ ॥ हमको समझ पडता है कि, भगवान् ब्रह्माजीने तुमको हमारे ही लिये भेजा है,इसलिये हम तुमको नहीं छोडेंगे तुममें हमारे नेत्र और मन लगा हुवा है, सो अब यह किसी प्रकार नहीं छूट सक्ता. इसलिये हे शुभाननें ! चतुराननकी प्रदान की हुई तुमको मैं कभी नहीं विसार सक्ता. हे श्रेष्ठ शृंगवाली ! जहां तुम्हारा मन चाहै उसी स्थानमें हमको लेचलो,क्योंकि हम तुम्हारेही अधीन हैं और तुम्हारी यह सखियें भी अनुकूल होकर हमारे साथ२ रहैं॥ १७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! आग्नीध्र राजा देवताओंकी

समान बुद्धिमान् और स्त्रियोंके मनानेमेंभी वह अति विलक्षण और चतुर था इसप्रकार उस आग्नीध्रने ग्राम्यजनोंके भीतर चतुरतावाली परिपूर्ण भाषाके द्वारा उस अप्सरा पूर्वचित्तीका भलीभांति आदर, सन्मान करके उसको मनाया ॥ १८ ॥ उसको वीरसमूहका पति और उसकी उत्तम विद्या, बुद्धि, वयस, रूप, श्री, उदारता और शीलता देखकर पूर्वचित्तिका भी चित्त उससे लगा और दश करोड वर्षतक जम्बूद्वीपाधिपति इस पृथ्वीनाथके साथमें पृथ्वी और स्वर्गका दिव्यसुख भोगती रही॥ १९ ॥कालक्रमसे उसके गर्भमें राजा आग्नीध्रसे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरणमय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल ये नव पुत्र उत्पन्न हुये पूर्वचित्तिने प्रत्येक वर्षमें एकएक सन्तान उत्पन्न करी, इसप्रकार जब नौ पुत्र

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयःश्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जंबूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान्बुभुजे ॥ १९ ॥ तस्यामु ह वा आत्मजान्स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥ सा सूत्वाऽथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥२०॥ आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जंबूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥ २१ ॥ आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुंध यत्र पितरो मादयंते॥ २२ ॥

उत्पन्न हुए तब वह सबको घरके भीतर ही परित्याग करके फिर अपना मन भगवान् ब्रह्माजीकी उपासनामें लगा दिया ॥ २० ॥ हे राजन्! आग्नीध्रके यह नव पुत्र जो हुए सो सब माताकी कृपाके स्वभावसेही बडे हृष्ट पुष्ट बलवान् हुए, इसलिये आग्नीध्रने उनके मध्यमें पृथ्वीके विभाग करदिये वह उन विभागोंके अनुसार अपने अपने नामसे जम्बूद्वीपके नौखण्ड कर अपना राज्य भोगने लगे॥ २१ ॥आग्नीध्रराजा विषय भोगसे परितृप्त नहीं हुवा, वह सदा विषयके सुखसाधन करनेकोही बड़ा करके मानतारहा इसलिये वेदोक्त कर्म करनेसे जहां पितृलोग आमोद

प्रमोद करतेहैं और जहां कि,वह पूर्वचित्ति अप्सरा थी उसी लोकको राजा आग्नीध्र गया॥२२॥जब राजा आग्नीध्र परलोकवासी हुए तब उनके नौ पुत्रोंने मेरुदेवी,प्रतिरूपा.उग्रदंष्ट्री,लता,रम्या,श्यामा, नारी,भद्रा और देववीती आदि मेरुकी नौ कन्याओंका पाणिग्रहण यथाक्रम किया॥ २३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां आग्नीध्रचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥ दोहा-मंगलमय नृपनाभिको, कहिहौं चरित बखान। ह्वै प्रसन्न जेहि यज्ञमें, प्रगटभये भगवान॥१॥ ता पीछे करुणायतन, शोभासिन्धु खरार। ह्वै तावश ता भवनमें, लीन ऋषभ

संपरेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देवीमितिसंज्ञां नवो दवहन्॥ २३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे आग्नीध्रचरितवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

श्रीशुक उवाच॥ नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवंतं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत॥ १॥ तस्य ह बाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमंत्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानंदनावयवाभिराममाविश्चकार॥ २॥

अवतार॥ २॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! तदनंतर आग्नीध्रके पुत्र नाभिने पुत्रकी कामनाके लिये अपनी भार्या मेरुदेवीके साथ एकाग्रचित्तसे यज्ञानुष्ठान करके भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना की॥१॥ श्रद्धा सहित पवित्रभावसे पूजामें वर्तमान इस राजाके प्रवर्ग नामक यज्ञके कर्म होरहे थे उस समय यद्यपि भगवान् विष्णुजी द्रव्य,देश,काल,मन्त्र,ऋत्विक,दक्षिणा और विधि इन सात उपायोंकी संपत्तिसेभी नहींप्राप्त होते,तथापि भक्तजनके ऊपर दयाकरनेके लिये स्वयं सुन्दर शरीर धारण करके उसके सामने अपने रूपको प्रगट किया. हे महाराज! भगवान्का

---

[1] चौपाई-नाभिमेरुदेवीको व्याही। प्रतिरूपा किंपुरुष उछाही॥ उग्रदंष्ट्रि व्याही हरिवरषा। लता इलाव्रत लंइ सहरषा॥ रम्या रम्यक लई ललामा। गही हिरण्यक वामा श्यामा॥ नारी सँग कीन्हों कुरु काजा। भद्रा भद्र अश्व महराजा॥ केतुमाल लिये देववीतिको। दीन्ही सगरी रीतिं प्रीतिको॥ यहिविधि नव आग्नीध्रकुमारा। व्याही मेरुसुता सुख सारा॥ निज निज खंडन किये निवासा पालत परिजन सहित हुलासा॥ नीति रीति महिमहि चलाई। रूपनी फेरि दुहाई॥

स्वरूप धारणकर प्रगटहोनेका यह तात्पर्य्य है कि भक्त जनोंकी मनमानी होजावे, सो ऐसी वासना उनके भक्तने की, तबही उनका चित्त आकर्षित हो गया था, नारायणजीने नाभिके सम्मुख जो अपनी मूर्ति प्रगट की वह स्वतन्त्र थी उसके सब अंग मन और नेत्रोंके आनन्दवर्द्धनकारीथे, इससे वह मूर्ति अतिशय सुन्दर और सुखदायक थी॥२॥हे राजन्! भगवान्की जो मूर्ति नाभिके सामने प्रगट हुई वह अतिशय तेजवान् चारभुजा पीताम्बर पहिनें, छातीमें श्रीवत्सका चिह्न शोभित होरहाथा और शंख, चक्र, गदा पद्म वनमाला और कौस्तुभमणि इत्यादि आभूषणोंसे अत्यन्त शोभायमान लगती थी॥३॥अधिक श्रेष्ठमणि जटित मुकुट, कुण्डल, कटक; कटिमेखला, हार, केयूर; नूपुर इत्यादि सब भूषणोंकी मनोहर किरणोंकी झलकसे उस भूतका सब शरीर जगमगा रहा था उससमय ऋत्विक् सभासद और यजमान सबने ऐसा मनहरण अद्भुत शृंगार किये हुये विष्णुभगवान्के

अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयांबरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाऽच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितम् ॥ ३ ॥ स्फुटकिरणप्रवरमणिमयमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यंगभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥४॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमोनम इत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान्प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥ ५ ॥

सुन्दर स्वरूपको देखकर उसका बहुत आराधन कर मस्तक नवा विविध भाँतिके उपहार द्वारा उनकी पूजा करने लगे, जैसे दरिद्री संपदाको देख अति प्रसन्न हो उसका बहुत सन्मान करता है इसीप्रकार ऋत्विक् प्रभृतिलोग स्तुतिकरते करते बोले कि॥४॥हे पूज्यतम! तुम परिपूर्णहोनेसेभी हम सरीखे भृत्यजनोंकी पूजा वारम्वार स्वीकार करनेके योग्य होओ हे प्रभो ! हम लोगोंमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि, आपकी स्तुति करसकें. आपका स्वरूप जानना महादुर्लभ है, इसलिये हमने सत्यपुरुष साधुगणोंके निकट केवल "नमस्कार! नमस्कार" इतनीही स्तुति करनी सीखीहै *॥५॥

---

* **शंका**–राजा नाभिने अपने यज्ञमें प्रगट भगवान् वासुदेवको देखा, फिर उनको नमस्कार और स्तुति क्यों नहीं की ? इसका क्या कारण ? और जो यज्ञमें ऋषीश्वर मुनीश्वरथे उन्होंने भगवान्को अनेक अनेक प्रकारसे नमस्कार और स्तुति की और राजा नाभि दूसरे मनुष्यकी समान सम्मुख खडे रहे जैसे कुछ यज्ञमें इनका कुछभी नहीं यह बडी भारी शंका है.

हे भगवन् ! प्रकृति पुरुषसे परे जो ईश्वर हैं उनके जो जो नाम और रूप वह आकार लोग कल्पना किया करते हैं वह सब कभीभी आपको स्पर्श नहीं करसक्ते इसलिये उन सब कल्पित नाम रूप व आकारके द्वारा कौन पुरुष आपका स्वरूप निरूपण करनेमें समर्थ होवे ? इस मनुष्य की बुद्धि प्रकृतिके गुणसे प्रपंचमेंही आसक्त रहनेसे स्वयं अपने ऊपरभी उसका अधिकार नहीं, आपके जो सब शिवतम और श्रेष्ठ गुण अपने जनोंके अनन्त पापोंका नाश करते हैं सो उत्तम गुणगणोंके एक देशका अवश्य वर्णन करसक्ता है, इसके सिवाय इस मनुष्यको और किसी प्रकारकी क्षमता नहीं है अर्थात् ऐसे मनुष्य केवल आपके गुणगणोंका वर्णन करनेमेंही समर्थ हैं ॥५॥ हे परमेश ! परिजनगण अनुरागके वश होकर गद्गदवचन द्वारा जो आपकी स्तुति किया करते हैं और जल तुलसीदल पत्र दूर्वा पवित्र पल्लवसे आपकी सेवा किया करते हैं, तो आप उससेभी प्रसन्न होजाते हैं ॥ ६ ॥ विना प्रीति हम अनेक अंगोंसे परिपूर्ण जो यह यज्ञ करते हैं. सो इससे आपका कोई प्रयोजनभी दृष्टि नहीं आता ॥७॥ हे नाथ ! आप सदा स्वतंत्र साक्षात् स्वयं ही प्रगट हुयेहो सम्पूर्ण पराक्रमके स्वरूपभूत अर्थात् परमानंद ब्रह्मस्वरूप हो. परन्तु हम कामनावाले भक्तोंके निमित्त केवल आपकी उपासनामात्र बन सकती है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! मूर्ख पुरुष स्वयं आपकी श्रेष्ठताको नहीं जानते

सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥६॥ परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वांकुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परमं परितुष्यसि ॥७॥ अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥ ८ ॥ आत्मन एवानुसवनमंजसा व्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किंतु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥ ९ ॥ तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥ १० ॥

–उत्तर–राजा नाभि अपने यज्ञमें भगवान्को देखके स्त्री सहित अपने नेत्रोंमें जलभरलाया और भगवान्के दर्शन करके ध्यानमें मग्न होगये जब राजा नाभि स्त्री समेत बोल नहीं सके पृथ्वीपर गिर पडे प्रेमके वशीभूतहो शरीरके रोमांच खडे होगये, इसप्रकार राजाको प्रेमातुर देखकर ऋषियोंने राजा नाभिके ओरसे भगवान् वासुदेवकी स्तुति की, इसलिये नाभि राजाने भगवान्को नमस्कार तथा स्तुति नहीं की.

सो उनके निकट परात्यर्थ गुणवाली करुणाके द्वारा अपवर्ग(मोक्ष)नाम अपनी महिमा तथा उनकी अभिलाषासिद्ध करनेके लिये तुम पूजित न होकर भी और दूसरे सापेक्ष व्यक्तियोंकी समान दृष्टि पडे हो, इसलिये हमारी पूजासे आपका कोइ उपकार नहींहोगा; सो यह हमारेही उपयोगी होकर आपने अपना दास जान हमको दर्शन दिया ॥ १० ॥ हे पूज्यतम ! यद्यपि आप वर देनेके लिये प्रगट हुये हैं, तथापि हमारे राजाके इस यज्ञमें जब कि,वरदाता आप अपने भक्तजनोंके अर्थात् हम लोगोंके दृष्टिगोचार हुये, तब तौ बस यही हमारा वर होगया अब हम और क्या माँगे ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आपका दर्शन अतिदुर्लभ है. जिन सब आत्माराम मुनिलोगोंका वैराग्यद्वारा तीक्ष्णीभूत ज्ञानरूप अग्निमें अनन्त मल जलकर भस्म होगया है उन लोगोंके लिये भी केवल आपका गुणगण परममङ्गलदायी होता है. इससे वह सदाही आपके गुण

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भगवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥ ११ ॥ असंगनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगणपरममंगलायनगुणगणकथनोऽसि ॥ १२ ॥ अथ कथंचित्स्खलनक्षुत्पतनजृंभणदुरवस्थानादिषु विवशानां न स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवंतु ॥ १३ ॥ किं चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवंतमुपधावति प्रजायामर्थ प्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥ १४ ॥

समूहोंकी स्तुति किया करते हैं ॥१२॥ हे प्रभो ! यद्यपि आपके दर्शनसेही हमलोग कृतार्थ होगये, तथापि एक वर मांगते हैं कि, भूखलगने, गिरने, जँभाई लेने, अँगडाई और दुरवस्थाके समय जब कि हम आपको स्मरण करनेमें असमर्थ हों उसकालमें और ज्वर मृत्युके समयभी आपका गुणसहित नाम हमारी वाणीसे निरंतर निकला रहै, हे भगवन् ! आपके सब नामोंके प्रभावका हम क्या वर्णन करें जिनके उच्चारण करते ही सब कलिमल विध्वंस होजाते हैं, कलिकालमें हरिनामकी समान और कोई मोक्षका उत्तम उपाय नहीं है ॥ १३ ॥ हे देव ! हमारी और भी प्रार्थना है कि,आप स्वर्ग और अपवर्गके स्वामीहैं आपके निकट पुत्रका चाहनेवाला यह राजर्षि आपकी समान पुत्रकी इच्छा

करता है, जैसे कोई मनुष्य धनवान्से नाजके ऊपरकी भुस्सी मांगै, ऐसे इस लोकके फल आप समान पुत्रकी प्रार्थना करताहै. क्योंकि यह सन्तान होनेकोही पुरुषार्थ करके समझता है, इस कारण आपसे यह प्रार्थना कीहै॥ १४॥हे नाथ!दूसरे राजर्षिकी प्रार्थना कुछ असंगतभी नहीं है,क्योंकि आपकी माया अजेय है,उसकी पदवी कोईभी नहीं जानसक्ता उस आपकी अपराजित मायासे किसकी बुद्धि पराजित नहीं होती और महापुरुषोंके चरणोंकी उपासना नहीं करनेसे किसकी बुद्धि विषयरूप विषके वेगसे नहीं घिरजाती है ?॥ १५॥हे अनेक कार्य करनेवाले नाथ ! हमने अतिलघु कार्यके लिये आपको यहां बुलाया हम लोग बडे मूर्खहैं कुछ नहीं जानते;पुत्रकोही परमपुरुषार्थ मानतेहैं हे देवदेव! आपके प्रति हमारा जो यह अवहेला होता है, सो इसका आप सहन करनेके योग्य होवैं;हे नाथ!आप सबकोही एकसा समझते हैं इससे हम जो कुछ विरुद्ध

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषस्यानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥ १५ ॥ यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मंदानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान्प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवंदितचरणः सदयमिदमाह ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो यदमुष्य आत्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद् द्विजदेवकुलम् ॥ १८ ॥

वर्तावभी करैं तौभी उससे आपको असंतुष्ट नहीं होना चाहिये ॥१६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्!आग्नीध्रसुत नाभि राजाके ऋत्विजोंने इस प्रकार गद्यमय वाणीसे श्रीभगवान्की स्तुति करी उसके पीछे जम्बूद्वीपाधिपति इस नाभिराजाने जिन सब मनुष्योंको वंदना करनेके लिये नियतकिया था, जब वह लोग भगवान्के चरणारविन्द वंदन करनेमें नियुक्त हुये तब भगवान् वासुदेव दया प्रगट करके यह वचन बोले॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि. हे ऋषिगण! आप लोगोंके वचन कभी व्यर्थ नहीं होते,परन्तु आपने हमसे बडा कठिन वर माँगा कि.इस राजाके हमारी समान पुत्रहो यह आपकी प्रार्थना सरल नहीं है, बडी कठिन है, क्योंकि हमसा दूसरा नहीं है, अपने समान हमहीं हैं तौ फिर इस राजाके

किसप्रकारका हमसमान पुत्र होसक्ताहै? हम किसप्रकार तुम्हारी यह प्रार्थना परिपूर्ण करसक्तेहैं? और तुमने यह वर माँगाहै जो कुछभी हो, ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या होना उचित नहींहै, क्योंकि ब्राह्मणकुल देवताकी तुल्य है और ब्राह्मणकुल हमारा मुख है ऐसा वेदमें कहा है इसलिये हमारे समान दूसरा कोई न होनेसे हमकोही नाभिका पुत्र होकर अवतार लेना पडेगा ॥१७॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! श्रीभगवान्की यह वार्ता नाभिकी स्त्री मेरुदेवी सुन रही थी और राजा नाभिभी उस समय वहां खडे थे इसलिये श्रीभगवान्जीने ऋत्विजोंसे जो बात कही वह राजानेभी सुनी, ऐसी आज्ञा नाभिको कर भगवान् वासुदेव अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे विष्णुदत्त परीक्षित्! जब महर्षि लोगोंने इसप्रकारसे प्रसन्न किया, तब भगवान् विष्णुजी राजा नाभिको प्रिय करनेकी इच्छा करते हुए तिसके पीछे नग्न, तपस्वी, ज्ञानी, तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको उपदेश देनेके लिये राजा नाभिके अन्तःपुरमें उसकी रानी मेरुदेवीके गर्भमें शुक्ल शरीर धारणकर ऋषभदेवजीने अवतार लिया ❋ ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां नाभिनृपस्य मेरुदेव्यां ऋषभावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा—या चतुर्थ अध्यायमें, ऋषभदेव अवतार ॥ कीन्हों जस कछु राज्य सो, वरणौं मतिअनुसार ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! ऋषभदेवजीके उत्पन्न होतेही उनके अंगमें भगवान्के लक्षण सब थे, दाहिने चरणमें वज्र और दाहिने हाथमें चक्र और

तत आग्नीध्रीयेंशकलयाऽवतरिष्यामि आत्मतुल्यमनुपलभमानः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निशामयंत्या मरुदेव्याः पतिमभिधायांतर्दधे भगवान् ॥ २० ॥ बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमंथिनां शुक्लया तनुवाऽवततार ॥२१॥ इति श्रीमद्भा० म० पंचम० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥ १ ॥

❋ भजन—जन्मलियो ऋषभदेव महाराज॥ परम अनूप स्वरूप मनोहर सब छबि रही विराज ॥ १ ॥ जगतारण संकट निर्वारण सारण जनके काज ॥ प्रगटे ऋषभदेव आनँदनिधि देवनके शिरताज॥२॥ दियो पूर्ण उपदेश देश देशांतर में सुखसाज ॥ थामलियो झटपट दोउ करते बूडत भक्तजहाज ॥३॥ घर घर आनँद छयो जगतमें पाप ताप गयो भाज ॥ शालिग्राम भक्त लोगनके हैं अद्भुत अंदाज॥

अंकुशादिके चिह्न प्रगट दिखाई देते थे, और सर्वत्र समभाव, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और बडी२सम्पत्तियोंसे जिनका प्रभाव दिन दिन बढ़नेलगा. यह सब देखकर प्रजा, राजमन्त्री, ब्राह्मण और देवताओंके मनमें यही इच्छा थी कि, यही राजा होकर प्रजाका पालन करें ॥ १ ॥ हे महाराज ! ऋषभदेवजीका आकार कविलोगोंके वर्णन करनेके योग्य और अतिशय श्रेष्ठ हुआ और वह स्वयं तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कांति, यश इत्यादि गुणोंमें सर्वप्रधान हुए, इसलिये सर्वोपरिहोनेसे उनके पिता नाभि राजाने उनका नाम "ऋषभ" रक्खा * ॥ २ ॥ हे परीक्षित् !

तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन च ओजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ २ ॥ तस्य हींद्रः स्पर्धमानो भगवान्वर्षे न ववर्ष ॥ तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥ ३ ॥ नाभिस्तु यथाऽभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवंतं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः ॥ ४ ॥

ऋषभदेवजीके प्रभावका क्या वर्णन करें ? एक समय देवराज इन्द्रने उनकी उन्नति देखकर ईर्षासे उनके राज्यमें जल नहीं वर्षाया, यह योगेश्वर भगवान् इस वार्ताको जानकर कुछेक हँसे और अपनी आत्मयोग मायाके द्वारा अपने अजनाभ खण्डमें धूमधामसे जलकी वर्षा की ॥ ३ ॥जो कुछ हो अभिलाषानुरूप सन्तान प्राप्त होनेसे राजा नाभि अत्यन्त हर्षमें भरके अतिशय विह्वल हुये और भगवान् पुराण पुरुष जिन्होंने अपनी इच्छानुसार मनुष्यका अवतार स्वीकार किया, ऐसे भगवान् वासुदेवको पुलकायमान शरीर और गद्गद अक्षरोंवाली वाणीसे

---

* **शंका**–हमने शास्त्र और पुराणोंमे ऐसा लिखा देखाहै कि, क्षत्रिकुलमें जो बालक जन्म लेता है तो उसका नाम ब्राह्मण रखते हैं परन्तु वेदकी रीतिसे राजा नाभिने अपने पुत्रका नाम आप क्यों रक्खा? **उत्तर**–सतयुग, त्रेता, द्वापरमें सब प्राणी अपने बालकोंके दो नाम रखते थे, वेदकी रीतिसे तो ब्राह्मणोंसे नाम रखवाते थे और बालकोंके कर्म देखकर उनका नाम आप रखते थे. ब्राह्मणोकी आज्ञा लेकर पुत्रके कर्म देखकर दान करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके तब राजा नाभिने अपने पुत्रका नाम आप रक्खा कुछ अभिमान करके वेदकी रीति नहीं त्यागी ॥

विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवंतं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥५॥ यस्य ह पांडवेय श्लोकावुदाहरंति ॥ को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान्॥ अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मंगलपूजिताः ॥ यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥ ७ ॥ अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयंत्यामिंद्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमभियुंजन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

उनको, हे वत्स! हे तात! इस प्रकारके स्नेहयुक्त वचनसे पुकारकर बड़े अनुरागसे उनको लालन पालन करके अतिशय प्रीति करने लगे! हे राजन्! राजा नाभिका इस प्रकार आचरण करना असम्भव नहीं है, क्योंकि यद्यपि साक्षात् भगवान्ने उनके गृहमें अवतार लिया तथापि मायामें मोहनेके कारण "यह हमारे पुत्रहैं" ऐसे बुद्धि करके वह परम आनंदको प्राप्तहुये॥ ४॥ जब कुछ काल व्यतीत हुवा तब नाभिराजाने देखा कि, पुत्र अब सब भांतिसे योग्य होगया है, पुरवासी लोग और अमात्यवर्ग भी सब इसके अनुरागी होरहे हैं, यह समझ धर्मकी मर्यादा रक्षण करनेके लिये ऋषभ देवजीको राज्याभिषेक दे और उनको ब्राह्मणोंकी गोदमें रखकर अपनी स्त्री मेरुदेवीके सहित बद्रिकाश्रममें चलेगये और वहां जाकर निर्मल व तीव्र तपस्याके प्रभावसे चित्तको सावधानकर नर नारायण नामक भगवान् वासुदेवकी उपासना करते करते कुछ काल उपरांत समय पाकर योगकी समाधिके द्वारा जीवन्मुक्त होगये ॥ ५ ॥ हे पांडवेश ! उन नाभिराजाके विषयमें महर्षि लोग ऐसा कहते हैं कि, भगवान् नाभिके सदृश सुष्ठु कर्म करनेको और कौन पुरुष समर्थ होगा? वह क्या साधारण पुरुषथे? कि जिनके शुद्ध कर्मद्वारा भगवान् हरि स्वयं उनके यहां पुत्र होकर अवतरे थे॥ ६॥ और उन राजर्षि नाभिके सिवाय और कौन ब्रह्मण्य (ब्रह्मतेजसे युक्त) है ? उनके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षिणादिसे पूजित होकर मन्त्रके बलसे यज्ञेश्वर भगवान्के अर्चन करानेमें समर्थ हुये थे ॥ ७ ॥ जब राजा नाभि पुत्रको राज्यतिलक देकर चले गये तब भगवान् ऋषभदेवजीने

अपने अजनाभ नाम राज्यखण्डको कर्मक्षेत्र मानकर लोगोंके उपदेशार्थ कुछेक दिन विद्या पढनेके लिये गुरुकुलमें वास किया, फिर गुरुलोगोंकी आज्ञा लेकर घरको आये और लोगोंको धर्मशिक्षा देना और श्रुति स्मृति रूप दोनों प्रकारकी कर्मविधिका अनुष्ठान करनेलगे, फिर इन्द्रने उनको जयन्ती नामक एक कन्या दी थी, समय अनुसार उसी स्त्रीमें उनके एकसौ (१००) पुत्र उत्पन्न हुये ॥८॥ हे राजन्! उन सौ पुत्रोंमेंसे भरत सबसे बडे थे वह महायोगी और श्रेष्ठ गुण सम्पन्न थे,उनकेही नामसे लोकमें इस खण्डको भारतवर्ष कहतेहैं॥९॥हे महाराज!ऋषभ देवजीके और जो निन्यानवे (९९) पुत्र थे उनके मध्यमें कुशावर्त, इलावर्त्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट,

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशंति ॥९॥ तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इंद्रस्पृग् विदर्भः कीकट इति नवनवतिप्रधानाः ॥ १० ॥ कविर्हरिरंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥ ११ ॥ यवीयांस एकाशीतिर्जायंतेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः॥ १२ ॥ भगवानृषभसंज्ञ आत्मतंत्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरंपरः केवलानंदानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशांतो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशःप्रजानंदामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत्॥१३॥

यह नव नव्वेसे बडे थे, परंतु भरतजीके अनुगत थे ॥१०॥ हे राजन्! उन नव पुत्रोंसे छोटे और नव जन अर्थात् कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल चमस और करभाजन, यह सब भगवद्धर्मके बतलानेवाले परम भक्तजन थे, इनका चरित्र भगवान्की महिमामें बढाकर सबका चित्त शांत करनेके लिये पीछेसे (ग्यारहवें स्कन्धमें) वर्णन करेंगे । उसमें वासुदेव और नारदजीका संबाद रहेगा ॥ ११ ॥ इन सबमें छोटे जयन्तीके जो इक्यासी (८१) पुत्र थे वह पिताकी आज्ञाके पालनेवाले अतिशय विनीत वेदोंके जाननेवाले, यज्ञशील, विशुद्ध कर्म करनेसे ब्राह्मण होगये ॥ १२ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि हमारे प्रभु अनर्थकी परंपरासे दूर रहनेवाले

और शुद्ध आनंद व ज्ञानस्वरूप ईश्वर हैं, तथापि अनीश्वरवादियोंके तुल्य विविध कर्म करते थे.इसका कारण यह था कि,समयानुसार जो धर्म उत्पन्न हुवा है स्वयं आचरण करके उसको वह अज्ञानी लोगोंको शिक्षा देते थे और वह परम दयालु,समदृष्टि,शांतचित्त, और सबोंसे सुहृद्भाव रखनेवाले ऋषभदेवजी थे और कारुणिकताप्रयुक्त धर्म, अर्थ, यश, प्रजा, भोग, मोक्ष, संग्रहके द्वारा घरोंमें लोगोंको नियमित करते थे॥१३॥ संसारकी रीति है कि, जो बडे बडे महात्मा और राजा लोग जैसा जैसा आचरण करते हैं,वैसाही दूसरे लोगभी कर्म किया करते हैं, क्योंकि कहाभी है कि "यथा राजा तथा प्रजा" इसही कारणसे भगवान् ऋषभदेवजी इस प्रकारके कर्म करने लगे थे ॥१४॥ यद्यपि वह सर्व धर्मोंका बतलानेवाला वेदका रहस्य स्वयं जानते थे, तौभी ब्राह्मणोंके कहने पर जैसा कुछ वह कहते उसीके अनुसार साम, दान, दण्डादिक उपायोंसे

यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ १४ ॥ यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥१५॥ द्रव्यदेशकालवयःश्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥ १६ ॥ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृंभितस्नेहातिशयमंतरेण ॥ १७ ॥

सब समूहोंको शिक्षा करते थे ॥ १५ ॥ उन्होंने सब भांतिसे विधिपूर्वक सौ वार अश्वमेध यज्ञ किये । उनके वह सब यज्ञ साधारण नहीं हुये द्रव्य, देश, काल, यौवन, श्रद्धा; ऋत्विक्, अनेक देवताओंके अर्थ इत्यादि द्वारा अतिशय बढ़ चढ़ कर हुये थे ॥१६ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी इस भारतवर्षके स्वामी होकर सब प्रकारसे इस देशकी रक्षा करने लगे । उस समय किसी पुरुषकी दूसरे किसी पुरुषसे अपने लिये आकाशकुसुमकी नाईं कुछभी प्रार्थना करनेकी इच्छा नहीं हुई और कोई भी पुरुष दूसरेकी वस्तुपर दृष्टि नहीं करता था, अधिक क्या कहें? ऋषभदेवजीके राज्यके समय प्रजाओंकी अपने स्वामीके लिये क्षण क्षण वृद्धि, शील, स्नेह उद्रेकके सिवाय और कुछ चाहना नहीं थी ॥ १७ ॥

यह भगवान् ऋषभदेवजी एक समय सब देशोंमें घूमनेके लिये निकले, चलते चलते ब्रह्मावर्त वर्षमें पहुँचे वहां बडे बडे ब्रह्मर्षियोंकी सभामें प्रवेश करके देखा कि, हमारे पुत्रगण भी बैठेहैं, यद्यपि वह संमत चित्त थे और विनय नम्र व प्रणय द्वारा सुयंत्रित थे तौभी प्रजाके उपदेश करनेके लिये उनको सबके सामने शिक्षा प्रदान करके वक्ष्यमाण वचन बोले* ॥१९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां ऋषभदेवस्य शतसन्तानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा-पंचममें वर्णन कियो, निज पुत्रनसों ज्ञान। परमहंस अरु मोक्षपद, ऋषभदेवने जान ॥ ५ ॥ ऋषभदेवजी बोले कि, हे पुत्रगण! जो सब जीव मनुष्य लोकमें जन्मलेकर मनुष्य देहको प्राप्त हुये हैं, उनको यह देह

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयंतीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयंत्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ १८ ॥ इति श्रीमद्भागवते म०पंचमस्कंधे ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः॥४॥ ऋषभ उवाच ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये ॥ तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनंतम् ॥१॥ महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां संगिसंगम् ॥ महांतस्ते समचित्ताः प्रशांता विमन्यवः सुहृदां साधवो ये ॥ २ ॥

दुःखके देनेवाले समस्त विषयोंमें नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि यह सब विषयभोग तो विष्ठाभोगी वराह आदिकोंको भी मिलजाता है, इसलिये, हे सब पुत्रो! दिव्य तपस्या करो, तपस्या ही श्रेष्ठ वस्तु है. क्योंकि इससे अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और अन्तःकरण शुद्ध होनेसे परब्रह्मानंदकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ पंडितलोग महात्माजनोंकी सेवाको मुक्तिका द्वार और स्त्रीपरिवारादिके संगको संसारका कारण कहतेहैं। अर्थात् नरकका द्वार है, यह कहते हैं कि महात्मा जन किसको कहना चाहिये सो तुम सुनो।जो सबका सुहृद हो, शांतचित्त हो. क्रोधरहित हो, सदाचारी हो और जिसका चित्त सब प्राणियोंमें समानहै वही महात्माजन हैं ॥ २ ॥

---

* **कवित्त**-ब्रह्म तो वहीहै जो सच्चिदानन्दघन, निर्विकार निर्विकल्प स्वयं नित प्रकाशैहैं ॥ माया तो वही है जो रज तम सतगुणको धार, नानारूप नामोंमें उपजै और विनाशै है ॥. ईश्र तो वही है निजरूपको न भूले कभी, माया गहै मायासे पृथकही भासैहैं ॥ जीव तो वहीहैं जा अविद्या संयोग पाय, भूला निज रूप भ्रम फांस ना निकासैहैं ॥

और सब पुरुषोंमें मैं जो ईश्वर हूँ,मुझमें प्रीति करके जो पुरुष उसकोही पुरुषार्थ समझतेहैं. जिनकी विषयासक्ति सब पुरुषोंमें,तथा पुत्र कलत्र और मित्रादि युक्त गृहमें प्रीति नहीं है, और जो कि, लोकमें देहयात्रा निर्वाह करनेके व्यतिरिक्त अधिकधनमें जिनकी चाहना नहीं है, वही मनुष्य महात्माजन हैं ॥ ३ ॥ हे पुत्रो ! यह मनुष्य चतुर होकर जब कि, इन्द्रियोंकी लिये प्रीतिके परिश्रम करता है तब निःसंदेह मतवालासा होकर विरुद्ध कर्म (पाप) करता है. एक वारके विरुद्धकर्म करनेसे आत्माको दुःखदेनेवाला यह देह उत्पन्न हुआ है, भला फिरभी उस विरुद्ध कर्मका वारंवार करना अच्छा हैं ? सो हम तो इसको अच्छा नहीं समझ सक्ते ॥ ४ ॥ पुरुष जबतक आत्मतत्त्वके जाननेकी इच्छा नहीं करता तबतकही उसके निकट अज्ञानतासे आत्मस्वरूपका तिरस्कार होताहै ॥ - क्योंकि जबतक क्रिया रहती है तबतक यह मन कर्ममें लगा रहता

ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकेषु ॥ गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके॥३॥
नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिंद्रियप्रीतय आपृणोति॥न साधु मन्य यतआत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः॥४॥
पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्॥यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबंधः॥५॥
एवं मनः कर्मवशं प्रयुंक्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने ॥ प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥ ६ ॥
यदा न पश्यत्ययथागुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ॥ गतस्मृतिर्विंदति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः॥७॥

है और वह कर्म स्वभावही शरीरहीके बंधनका कारण है, उससे पहला किया हुवा कर्मही मनको अपने वशमें अर्थात् फिर भी कर्ममें लगाता है। जब तक अविद्यासे उपाधियुक्त आत्मस्वरूप जो मैं वासुदेव हूँ मुझमें प्रीति नहीं करता,तबतक देहके इस संबंधसे जीव नहीं छूटता॥ ६ ॥ हे वत्सगण ! केवल देहसे मुक्ति नहीं होती इतनाही नहीं बरन् और अर्थ भी वर्तमान रहते हैं. क्योंकि स्वार्थके विषयमें प्रमत्त रहनेसे पुरुषजन विवेक युक्त होकर सब इंद्रियोंकी चेष्टाको मिथ्या नहीं जानता, अर्थात् यह सब आत्मासे संबन्ध नहीं रखता, ऐसा नहीं निश्चय करता, तब आत्मस्वरूपके भूल जानेसे मैथुन सुख पाप गृहको प्राप्त होकर संताप पाता है ॥ ७ ॥

हे वत्सगणो ! इस संसारमें स्त्रीके साथ मिलनेसे सुख प्राप्त होता है संताप नहीं होता ऐसा जो कहते हैं वह महाभ्रममें पड़े हुएहैं । क्योंकि स्त्री और पुरुष इन प्रत्येकके जन्म लेते ही एक एक हृदयग्रंथि होती है, और फिर जब कि, पुरुष स्त्रीके साथ मिलजाता है, तब और एक एक हृदयग्रंथि होजाती है, वह बहुत बड़ी और दृढग्रंथि पडती है । प्रत्येक हृदयग्रंथिसे केवल देह और सब इंद्रियोंमें "हम, हमारा" इस प्रकारके ज्ञानसे मोह उत्पन्न होता है । इस दृढ हृदयग्रंथिसे गृह, क्षेत्र पुत्र, कुटुम्बी, धन इत्यादिके विषयमें महामोह जन्मता है, इस कारण संसार आश्रममें स्त्रीके साथ मिलना सुखका कारण नहीं है । बरन् महामोह उपजानेवाला और दुःख दिखानेवालाहै ॥ ८ ॥ परंतु ऐसा भी मत समझो कि, पुरुष स्त्रीके साथ मिलनेसे उसका यह भाव कभी नहीं छूटता. जब कि, पुरुषकी कर्मसे बँधीहुई दृढ़ मनरूपी हृदयकी गाँठ उस मिथुनीभावसे

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेनं तयोर्मिथो हृदयग्रंथिमाहुः ॥ अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहंममेति॥ ८ ॥
यदा मनो हृदयग्रंथिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ॥ तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥ ९ ॥
हंसे गुरौ मयि भक्त्याऽनुवृत्त्या वितृष्णया द्वंद्वतितिक्षया च ॥ सर्वत्र जंतोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसहानिवृत्त्या ॥ १० ॥ मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसंगाद्गुणकीर्तनान्मे ॥ निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्म बुद्धेः ॥ ११ ॥

निवृत्त होजाती है, सब संसारका हेतुभूत जो अहंकार है उसको छोडकर मुक्त और परमपदवीको वह पहुँच सकता है ॥ ९ ॥ हे पुत्रो ! कोई कहै अहंकार त्याग करना किसीप्रकारसे नहीं होसकता ऐसा नहीं. अहंकारके त्यागनेके चौवीस (२४) कारण हैं । परमहंस और शुक्लस्वरूप जो मैं हूँ मुझमें भक्ति करना, १ मुझमें अनुवृत्ति करना, २ तृष्णारहित होना, ३ सुख दुःखके भारको सहना, ४ इस लोक और परलोकमें सब प्राणियोंके दुःखका देखना, ५ तत्त्वजिज्ञासा, ६ तपस्या, ७ काम्यकर्मका छोडदेना, ८ ॥ १० ॥ मेरे निमित्त कर्म करना, ९ मेरीकथा कहना सुनना, १० जो सब पुरुष मेरे भक्तोंहीको परम आराधन करनेके योग्य, देवता जानते हो, उन मेरे भक्तोंका सत्संग करना, ११मेरे गुण कीर्तन करना, १२ वैर: रहित होना, १३ सबको समान समझना, १४ उपशम अर्थात् इन्द्रियोंको रोकना, १५ आत्मा शरीर और घरमें "यह

मेरा; यह अपना" ऐसी बुद्धिको छोड़नेकी वासना करना, १६॥११॥ अध्यात्म शास्त्र (वेदान्त शास्त्र) का विचारना, १७निर्जनमें वास करना, १८प्राण इन्द्रिय और मनको भली भांतिसे जीतना, १९शास्त्रमें श्रद्धा रखना, २० ब्रह्मचर्य्य धारण करना, २१ कर्तव्यकर्मका त्याग नहीं करना, २२ वचनोंको नियममें रखना २३॥१२॥ सर्वत्र हमारे अनुभव करनेका निपुण अनुभव तत्त्वज्ञान, २४और समाधि, इन सब साधनोंसे धीरज, यत्न और ज्ञानयुक्त होकर अहंकार नामक उपाधिका त्याग करै ॥ १३ ॥ हे पुत्रो! इस प्रकारसे अहंकार जब दूर होजाय, तब फिर सब कर्मोंका आधाररूप हृदयमें जो अविद्यासे ग्रंथिबंधन जो पडगया है, उसको सावधान होकर उपायसे जैसा कि, मैंने उपदेश कियाहै, वैसेही भलीभांतिसे त्याग कर पश्चात् इस उपायसे भी अलग हो जाना॥१४॥हे पुत्रगण ! जो हमारे लोकके जानेकी कामना करे, सो हमारा अनुग्रहरूप प्रयोजनका

अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेंद्रियात्माभिजयेन सम्यक् ॥ सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसंप्रमादेन यमेन
वाचाम् ॥ १२ ॥ सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ॥ योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिंगं
व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥ १३ ॥ कर्माशय हृदयग्रंथिबंधमविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः॥ अनेन योगेन यथोपदेशं
सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥१४॥ पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ॥इत्थं विमन्युरनुशि
ष्यादतज्ज्ञान्न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ॥ कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥ १५ ॥ लोकः
स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ॥ अन्योऽन्यवैरः सुखलेशहेतोरनंतदुःखं च नवेद मूढः॥ १६ ॥

जो आशय है वह पिता पुत्रोंको और गुरु चेलोंको, राजा प्रजाको ऐसी शिक्षा दें। परन्तु उपदेश किये जानेपर भी यदि कोई शिखाया हुआ विषय न करै तो उससे सिखानेवालोंको क्रोध न करना चाहिये। और वह अधिक करके जो पुरुष तत्त्व नहीं जानते और वह अच्छा समझके कर्मही करनेमें लगे हुए हैं। अब उनकोसकाम कर्मोंमें लगाना चाहिये। क्योंकि फिर सकाम कर्मोंमें लगाना अंधोंको कुएँमें डालनेके समान है. फिर उससे क्या परिश्रम हो सकता है ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष बहुत ही कामना करता है, और उसकी दृष्टि अच्छा बुरा देखनेमें अंधी है और धनकी चेष्टा करता है, किंचित् सुखके कारण परस्पर वैर करना चाहताहै वह मूर्ख इस बातको नहीं जानता कि, अंतमें मुझको दुःख प्राप्त होगा

वह दुःखकोही सुख समझताहै॥१६॥ऐसे कुबुद्धि व्यक्ति अविद्यामें पडे रहतेहैं उनको देखकर कौन सहृदय विद्वान् जानबूझकर इस विषयमें उनको प्रवृत्त करावेगा अर्थात् कोईभी उसमें प्रवृत्त नहीं करावेगा।जो अन्धा मनुष्य बुरे मार्गमें पडजाय तो उसको बुरे मार्गमें जाता हुवा देखकर,कोई विद्वान् और सावधान मनुष्य उस अंधेको उसी मार्गपर जानेका उपदेश देगा ?॥ १७॥ परन्तु इस प्रकारसे संसारको प्राप्त हुये जीवको भक्तिके मार्गका उपदेश देकरके मुक्त करना आवश्यकहै । जो इसको इस संसारसे नहीं छुडाता वह उसका गुरु नहीं,सगा नहीं,पिता नहीं,माता नहीं,देवता नहीं और पति भी नहीं है । बरन् शत्रु कहना चाहिये॥१८॥ हे पुत्रगण! हमारा यह मनुष्योंका शरीर अतर्क्य अर्थात् अपनी इच्छासे हमने धारण कियाहै, यह देह साधारण मनुष्योंके योग्य नहींहै और हमारा हृदय जिसमें सत्त्व वर्तमानहै,वैसा यह शुद्ध तत्त्व स्वरूपहै । क्योंकि हमने अधर्म

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिदविद्यायामन्तरे वर्तमानम्॥दृष्ट्वापुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथांधम्॥१७॥ गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्॥ दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ १८ ॥ इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ॥ पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥ १९ ॥ तस्माद्भवंतो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ॥ अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥ २० ॥ भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ॥ ततो मनुष्याः प्रथमास्ततोऽपि गंधर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥ २१ ॥

को पीठपर करके निकाल दिया है. इस कारण श्रेष्ठपुरुष मुझको ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥ १९ ॥तुम सब मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो इसलिये द्वेष त्यागकर सब मिलकर स्थिर बुद्धिसे अपने सहोदर इन बडे भ्राता भरतजीकी सेवा करो.हे पुत्रो!इनकी सेवा करनेसे तुम्हारा प्रजापालन और मेरी सेवा भी हो जायगी अर्थात् यह भरत तुम्हारे सबसे बडे सहोदर भाईहैं सो इनकी आज्ञामें रहना तुमको आवश्यक है । बस ऐसा करनेसे तुम्हारे सब ही कर्तव्य कर्म सफल होजाँयगे ॥२०॥ ऐसे ब्राह्मणोंकी सेवा करना भी तुम्हारा धर्म है । क्योंकि चेतन अचेतन सब प्राणियोंमें स्थावर श्रेष्ठ हैं स्थावरसे सर्पादि जंगम जीव श्रेष्ठ हैं, जंगमसे ज्ञानयुक्त पशु श्रेष्ठ हैं । पशुओंसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्योंसे भूत

प्रेतादि प्रमथ गण श्रेष्ठ हैं । प्रमथगणसे गंधर्वगण श्रेष्ठ हैं। गंधर्व गणोंसे सिद्धगण प्रधान हैं। सिद्धोंसे किन्नर गण श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ किन्नरोंसे असुर गण श्रेष्ठ हैं। असुरोंसे देवता लोग बडे हैं । देवताओंमें इंद्र बडे हैं । इन्द्रसे ब्रह्मपुत्र दक्षादि श्रेष्ठ हैं। दक्षादिकोंसे शंकर श्रेष्ठ हैं, यह शंकर ब्रह्माजीके बलसे बलवान् हैं, इस कारण उनसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माजी हमारी पूजा करते हैं, इसकारण उन ब्रह्माजीसे हम श्रेष्ठ हैं।हम इन ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, इससे ब्राह्मण गण हमसेभी श्रेष्ठ होनेके कारण सबके पूजनीय हैं, इस कारण तुम अवश्य विप्रोंके चरणोंकी सेवा करो ॥ २२ ॥ "फिर वहां बैठे हुए ब्राह्मणोंको पुकार कर बोले"कि,हे विप्रगण!हम किसी प्राणीको ब्राह्मणकी समान नहीं देखते और ऐसी आशाभी नहीं है कि,किसी प्राणीको ब्राह्मणसे अधिक श्रेष्ठ देखेंगे अर्थात् जब कि,हमारे मतके अनुसार ब्राह्मणकी समान कोई नहीं तब ब्राह्मणसे अधिक

देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ॥ भवःपरः सोऽथ विरिंचवीर्यः स मत्परोहं द्विजदेवदेवः
॥ २२ ॥ न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ॥ यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाऽहमश्नामि
कामं न तथाऽग्निहोत्रे ॥ २३ ॥ धृता तनूरुशती म पुराणी येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ॥ शमो दमः सत्यमनु
ग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्च यत्र ॥ २४ ॥ मत्तोप्यनंतात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किंचित् ॥ येषां किमु
स्यादितरेण तेषामकिंचनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ कोई कहांसे होगा? ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ क्यों हैं सो कहता हूँ तुम सुनो कि,मनुष्य लोग श्रद्धा सहित भली भांति जो ब्राह्मणके सुखमें अन्नादिका होम करते हैं(अर्थात् उनको भोजन कराते हैं) सो उससे हमारा भोजन होता है,अग्निमें होम करानेसे हमारा वैसा तृप्तिकर आहार नहीं होता ॥२३॥ और जो ब्राह्मण इस लोकमें हमारी वेदरूप प्राचीन मूर्ति धारण किये हुए हैं और जिनमें परम पवित्र सत्त्वगुण, शम (मनको वशमें रखना) दम(इंद्रियोंको रोकना)सत्य, दया, तपस्या, तितिक्षा (सहनशीलता) और प्रताप, यह आठ गुण बिराजमानहैं,उनसे अधिक श्रेष्ठ मैं किसको समझूँ ? ॥२४॥ हे विप्रगण ! ब्राह्मणोंके संतोषकी वार्ता क्या कहूँ। हम जो अनंत और परात्पर विष्णु स्वर्ग और अपवर्गके

अधिपति हैं सो हमसे भी तो वह कुछ प्रार्थना नहीं करते, इसलिये उनको अन्य राज्यादि लेनेंकी इच्छा कब हो सकती है? नहीं, कभी संभव नहीं हो सकती । बस वह लोग अकिंचन हैं, केवल मेरी भक्ति करते हैं । फिर भला वह और किसीसे किस पदार्थकी प्रार्थना करेंगे ॥ २५ ॥ हे पुत्रो ! स्थावर जंगम जितने भूत हैं उनमें सब हमारा निवास जानकर तुम क्षण क्षणमें उनका सन्मान करो । जिससे तुम्हारी दृष्टि मत्सरादि दोषोंसे रहित होजाय; हे वत्सगण ! सर्व जीवोंका सन्मान करना ही हमारी पूजा है ॥ २६ ॥ और हमारी पूजा करनाही मन, वचन, चक्षु व अन्यान्य इन्द्रियोंके व्यापारका साक्षात् फलहै।हमारी पूजाके विना पुरुष महा मोहमय यमकी फांसीसे किसी प्रकार नहीं छूट सकता॥२७॥

सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ॥ संभावितव्यानि पदेपदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणंमे ॥२६॥ मनोवचोदृक्करणे हि तस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ॥ विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतांतपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! महानुभाव भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि उनके पुत्रगण सब प्रकारसे स्वयंही शिक्षित थे तथापि संसारी लोगोंको उपदेश करनेके लिये पुत्रोंको इस प्रकारका उपदेश देकर आप शांतस्वभाव और कर्मबन्धनसे रहित प्रधान मुनियोंको भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, लक्षण और परमहंस धर्मशिखानेकी वासनासे अपने संमुख सब पुत्रोंमें बडा पुत्र महाभागवत और भागवतोंका दास भरत था, उसको पृथ्वीका पालन करनेके लिये राज्यका भार सौंपकर उनका शरीर मात्र परिग्रह बचरहा। सब संसारका माया मोह त्याग उन्मत्तकी नांई दिगम्बर वेष किये खुले बाल रहकर अग्निहोत्रकी अग्निको अपने रूपमें ही आरोपकर संन्यास धारण करनेके लिये ब्रह्मावर्तसे चल दिये ॥ २८ ॥

लोग उनसे बोलते तोभी वह उनके बीचमें जड, मूक, अन्ध,बहिरे, पिशाच, मतवालेकी समान बिना बोले खडे रहते। क्योंकि उन्होंने मौनव्रत ग्रहणकर लिया था और अवधूत अर्थात् संन्यासीके सदृश उनका वेष होरहा था ॥ २९ ॥ वह इस प्रकारसे इकले पुर, ग्राम, खान, किसानोंके ग्राम, पुष्पादि वाटिका, सेनानिवासके डेरे, गोशाला, गोपस्थान, यात्रियोंके मिलनेके स्थान,पर्वत,वन और मुनियोंके आश्रम इत्यादि जहां जाते, उस स्थानकेही मार्गमें मक्खियें जिसप्रकार वनैले हाथीको व्याकुल करना चाहती हैं,वैसेही दुष्ट दुरात्मा लोग इन्हें भय दिखलाते, ताडना करते, शरीर पर पेशाब करदेते, थूँक देते, पत्थर, विष्ठा और धूरि फेंकते,सन्मुख अधोवायु छोडते और दुर्वचन आदि अनेक प्रकारकी

जडांधमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥ २९ ॥ तत्रतत्र पुरग्रामाकरखेटखर्वटवाटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिववनगजैस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवाऽसत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखंडितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥ ३० ॥ अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुंदरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकंठनासो विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलंबमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥ ३१ ॥

दुष्टता करते थे,परन्तु ऋषभदेवजी इन सब बातोंको कुछभी नहीं गिनते थे, क्योंकि यह शरीर असत्य पदार्थोंका स्थानहै। मिथ्यामय जो यह सब संसार नाम मात्रका सत्य है, इसमें सत्य और असत्का अनुभवरूप जो अपनी ममता और अहंकारकी स्थिति है इसके द्वारा उनका अपना,मेरा इस बातका अभिमान दूर होगया था, इसलिये कोई बात भी उनके मनमें किसी प्रकारका विकार न उपजासकी,सदा अकेले पृथ्वीपर विचरते रहते थे॥ ३० ॥ यद्यपि उनके हाथ,पैर,वक्षस्थल, कन्धे और वदन इत्यादि अंग सब अतिशय कोमल थे और भलीभांति सुडौल होनेसे सबही मनोहर शोभा धारण कर रहे थे और वह आपही स्वभावसे सुन्दर थे और स्वाभाविक हँसनेसे उनका मुख अत्यन्त शोभा

यमान विदित होता था;दोनों नेत्र नवीन कमलदलकी समान चौड और लम्बे व अरुणवर्ण थे. उनमेंके तारे संताप नाश करनहारे झलक रहे थे और कपोल,कर्ण,कण्ठ,नासिका,यह सब अंग बराबर और सुशोभित थे,यद्यपि गूढ हास्ययुक्त वदनके महोत्सव निहारकर पुरनारियोंके मनमें मदन उत्पन्न होजाता था; तथापि अग्रभाग पर कपिशवर्ण, जटायुक्त कुटिल केशभार लम्बा होकर पडा रहनेसे ऐसा जान पडता, मानो उनका शरीर यत्न न करनेसे मलीन हो रहा है। इस कारण उस समय वह ऐसे जानपडते थे जैसे किसीको ग्रहने ग्रस लियाहो ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे जब उन्होंने विचारा कि,लोग बहुत तंग करतेहैं और ऐसे योगका सोधन नहीं होगा,क्योंकि संसारके लोगोंका संग दुःखका मूलहै,तब इन सबसे पीछा

यर्हि वाव स भगवाँल्लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥३२॥ तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगंध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समंतात्सुरभिंचकार ॥ ३३ ॥ एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकमृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥ ३४ ॥

छुड़ानेके लिये उन्होंने अजगर नामक व्रत धारण किया अर्थात् एकही स्थानमें रहकर शयन करना,भोजन करना,जल पीना, चर्वण करना,मल मूत्र त्यागकरना,इत्यादि क्रियायें करनी उन्होंने आरम्भ करदी और विष्ठाके ऊपर लोटने लगे,उससे शरीरके बहुत अंगोंमें विष्ठा लगगया॥ ३२॥ परन्तु आश्चर्यकी बात यहहै कि,उनके विष्ठामें दुर्गन्धिका नाम नहीं था,बरन् उसकी सुगंधिसे वहांकी पवन तक अतिशय सुरभि होगई.उस पवनसे उस स्थानके निकट दशयोजनलों सौरभ सुवासित होगया * ॥ ३३ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी सन्यासाश्रममें प्रविष्ट होकर इस प्रकार गौ,

---

* **शंका**–आजतक हमने शास्त्रऔर पुराण बहुत सुने परन्तु किसी मनुष्यके पुरीषकी प्रशंसाका वर्णन किसी कविने नहीं किया. भगवानके अनेक अवतारभी हुऐ उनकेभी पुरीषकी प्रशंसा किसीने नहीं की और यहां.लिखाहै कि ऋषभदेवजीके पुरीषकी सुगन्धि पवनके प्रसंगसे दशयोजन अर्थात् ४० चालीस कोसके घेरमें चारों ओर सदश सब दिशाओंको महकाती रहती थी यह आश्चर्यमें आश्चर्य होता है कि, मलमें सुगन्ध किस प्रकार हुई ? जैसे कि, कीडा अपनी पीठपर पर्वतको धरकर चलै मच्छर, माखी, डांस यह सब समुद्रके जलको सोखजाँय; यह आश्चर्यमय बातें हैं, परन्तु यह सबसे बढकर आश्चर्ययुक्त बात है कि पुरुषके पुरीषमें सुगन्धि कभी नहीं होसक्ती यह सब शंकाओंसे बढकर शंका है, ।

उत्तर–जैसे बालकोंके लिये रोग दूर करनेको,माता,पिता, माई,भौजाई प्रभृति अनेक उपाय करते हैं कि, किसी प्रकार औषधि खाले, परन्तु जब वह औषधि नहीं खाता तो उसको प्यार करके मीठी मीठी वस्तुका लोभ दिखाते हैं कि ये बेटा. यह अमृती हैं, यह बतासे हैं, यह अपने बेटेको पेडा देतेहैं,परन्तु वह कडवी दवाई ही होतीहै और मीठे पदार्थोंका नाम इसलिये लिया जाता है.कि,किसीप्रकार पुत्रका रोग

मृग, कागकी तुल्य आचरण करनेलगे, कभी चलते चलते, कभी खडे खडे, कभी बैठे बैठे भोजन, पान और मल मूत्र त्याग करदेते थे, इससे गौ, वा मृग, अथवा कागकी तुल्य उनके समस्त आचरण होगये थे ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! योगियोंमें श्रेष्ठ ऋषभदेवजी इसप्रकार लोगोंकी भीड निवारण करनेके लिये योगियोंको किस प्रकार वर्त्तना चाहिये । उसके दिखानेके लिये विविध भांतिकी योगचर्य्या करते थे, किन्तु वह स्वयं भगवान् और अपने स्वरूपभूत केवल परब्रह्ममें देहादिके अनुसंधान रहित और परम महत् अर्थात उत्तरोत्तर शतगुणरूपसे बढाहुवा जो आनन्द

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानंदानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानंतरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवांतर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नांजसा नृप हृदयेनाऽभ्यनंदत् ॥ ३५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे ऋषभदेवानुचरिते पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

है वह उनका स्वरूपहै और ऐसे सब प्राणियोंके आत्मा जो वासुदेवहैं इस कारण उपाधिभाव परित्याग करनेसे स्वतः सिद्ध व समस्त फलोंसे भरपूर थे । इसकारणसे आकाशगमन, मनकी समान शरीरका वेग होना, अन्तर्धान, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना और दूरकी वस्तुको ग्रहण करलेना, ये जो योगकी सिद्धियें हैं, यह यदृच्छासे प्राप्त होगई थीं । परन्तु ऋषभदेवजीने अपने मनसे उनका आदर नहीं किया ॥३५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीऋषभदेवानुचरित्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

–जाता रहै. तैसेही सब संसारके जीव भ्रष्ट होरहेहैं उन प्राणियोंको मोक्ष देनेके लिये भगवान् लोभ दिखातेहैं, ऋषभ भगवान्ने मोक्षमार्गको नष्ट देख कर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विचार किया कि, हमको तो बहुत दिन मृत्युलोकमें रहनाही नहीं और बिना बहुत दिनके सत्संगसे मोक्षमार्ग प्रकट नहीं होसक्ता, ऐसा विचारकर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विष्ठामें सुगन्धि उत्पत्ति करके जगत्को दिखाया कि, सत्संगमें ऐसा चमत्कार है ऐसा अद्भुत चमत्कारको देखकर सब संसारके लोग इस लोभमें फँसजायँगे और इससे अधिक और उत्तम उपाय नहीं है. यह लालच दिखाय लोगोंसे कहने लगे, कि, हे भाइयो ! मोक्ष मार्गका सेवन करो, देखो ! ऋषभदेव मोक्षमार्गका सेवन करते हैं तो जिनके मलमें चालीस कोसतक अत्तर फुलेलकेसी सुगन्धि आने लगीं तो उनको यमका भय क्यों होगा ? आप लोगभी मोक्षमार्गका सेवन करेंगे तो आपकी भी ऐसाही कीर्त्ति होगी ऐसा विचार सब लोग मोक्षमें आनन्द करने लगे ॥

१ **कवित्त** आयेको हर्ष नहीं गयेको शोक नहीं कैसो निर्द्वन्द्व भयो समझने की बात हैं । देह नेह नेरे नहीं लक्ष्मीको हेरे नहीं मनको कहूं फेरे नहीं पाहन समगात है । लोकनकी रीति नहीं काहूं से प्रीति नहीं हार नहीं जीत नहीं वर्ण है न जात है । ऐसो जब ज्ञान होत तबही कुछ ध्यान होत ब्रह्मकी समान होत ब्रह्ममे समातहैं ॥ १ ॥

दोहा—गर्व रहित तनु तज ऋषभ, षडध्यायके माहिं । जारे दावानलहि जो, देखत देखै नाहिं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! जिन पुरुषोंकी आत्मामें ही रति है, उनकी योगसे प्रदीप्त हुई ज्ञानरूप अग्निमें कर्मबीज राग द्वेषादिक दग्ध होजाते हैं. उसके पास यदृच्छासे सिद्धियां आवैं, तोभी उनको क्लेशकी देनेवाली तो हो नहीं सक्ती, फिर किसलिये भगवान् ऋषभदेवजीने यदृच्छासे आई हुई सिद्धियोंका अनादर किया ?॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे राजन्! जो तुमने कहा सो सत्य है, परंतु इस पृथ्वीपर कुछ एक बुद्धिमान् पुरुष जिसप्रकार शठ किरात मृग पकड लेनेपरभी उसका विश्वास नहीं करता, चंचलतायुक्त इस मनके सम्यक् रूपका विश्वास नहीं करते ॥ २ ॥ इस कारण तत्वोंके जाननेवालोंने कहा है कि, मन जो चंचल हो तो कहीं किसीके साथ मित्रता करनी न चाहिये । क्योंकि इस प्रकार मनका

राजोवाच ॥ न नूनं भगव आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हंति यदृच्छयोपगतानि ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ सत्यमुक्तं किंत्विह वा एकेन मनसोऽद्धा विश्रंभमनवस्थानस्य शठकिरात इव संगच्छंते ॥ २ ॥ तथा चोक्तम् ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ॥ यद्विश्रंभाच्चिराच्चीर्णं चस्कंद तप ऐश्वरम् ॥ ३ ॥ नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तमनु येऽरयः ॥ योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥४॥ कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ॥ कर्मबंधश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥५॥ अथैवमखिललोकपालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां सांपरायविधिमनुशिक्षयन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थांतरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥ ६ ॥

विश्वास करनेसे शिवजीकीभी बहुत कालसे संचित की हुई तपस्या विष्णुजीके मोहिनीरूपको देखकर क्षणमात्रमें क्षीण होगई थी ॥ ३ ॥ हे राजन्! इसका कारण यही है, कि जो योगी इस प्रकारके चंचल मनका विश्वास करता है, उसका मन जिस प्रकार विश्वासी पतिकी व्यभिचारिणी स्त्री अपने मित्रोंको अवकाश देकर पतिको मरवा डालतीहै वैसेही कामदेवको और उसके अनुचर क्रोधादिक रिपुगणोंको उनकी इच्छानुसार कर्म करने देना, अपने भ्रष्टकरनेको अवकाशदेना है ॥ ४ ॥ महाराज ! काम, क्रोध, लोभ मोह, शोक, मद और भयादि और कर्म बन्धन यह सब जिसके कारणसे होते हैं, उस मनको कौन ज्ञानी पुरुष अपने अधीनमें मानेंगे ?॥५॥ भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि लोकपालोंके

3012

शिरोमणि थे तथापि पीछेसे उनके संगमें कोई अनुचर भी न रहा सब संन्यासीकी समान अनेक वेष.अनेक भाषा और अनेक आचार व्यवहारका अवलम्बन करनेसे उनमें किसी रीतिसे भगवत्का प्रभाव नहीं दीखता था, वह इसप्रकारसे कुछ कालतक घूमते रहकर फिर यहभी दिखाया कि, किसप्रकारसे देह त्याग करना चाहिये. यह योगियोंको सिखलानेके लिये अपने शरीरको त्याग करनेकी इच्छा की, इसलिये आत्मामेंही साक्षात् ठहराये हुये परमात्माको अपने साथ भेद रहित स्वरूपसे देखकर देहाभिमानका त्याग कर दिया ॥ ६ ॥ यद्यपि उनका देहाभिमान इस प्रकारसे निवृत्त होगया था, तथापि योगमाया और वासनाद्वारा उनका देह जिस प्रकार कुम्भार चाक एक बार चलानेसे देरतक घूमा करता है, वैसेही संस्कारके वश होकर बार २ भ्रमण करते कोङ्क, वेङ्क, कुटक और दक्षिण कर्णाटक देशमें आपसे आपही पहुँचगया। वहां कुटकाचलके वनके निकट उन्होंने किसी वासनासे कुछ छोटे २ पत्थर लेकर अपने मुखमें डालदिये ॥ फिर बावलेकी समान

तस्य ह वा एवं मुक्तलिंगस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन चंक्रममाणः॥७॥ कोंकवेंककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार ॥ ८ ॥ अथ समीरवेगविधूतवेणुविघर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह ॥९॥ यस्य किलानुचरितमुपकर्ण्य कोंकवेंककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषंडमसमंजसं निजमनीषया मंदः संप्रवर्तयिष्यते ॥ १० ॥

बाल खोलकर नंगी देहसे इधर:उधर घूमने लगे ॥ ७ ॥८॥ दैवात् वायुके वेगसे उस वनमें (जहां कि, ऋषभदेवजी घूमते थे) बाँस बहुतही कम्पायमान हुये । उन सबके परस्पर रगडनेसे शीघ्रही भयानक दावानल प्रज्वलित होकर वनको सव भांतिसे ग्रास कर लिया, उन (ऋषभदेवजीकी) देहकोभी साथही भस्म कर दिया और वह अग्निमें ही प्रवेश होगये, क्योंकि अग्निके संस्कारसे शुभ गति प्राप्त होती है ॥ ९ ॥ हे राजन् । भगवान् ऋषभदेवजी पंडितोंकी वर्णन करीहुई अवस्थामें भ्रमण करते करते जिसप्रकारके आचरण कियेथे,उसको जानकर कोङ्क,वेङ्क कुटकादि देशके अर्हत नामक राजा स्वयं इस प्रकारकी शिक्षा करेंगे और निड़र हो अपना धर्म छोड़ छाँड़कर अपनी बुद्धिसे पाखण्डरूप कुमार्ग प्रवृत्त करावेंगे। क्योंकि कलियुगमें अधर्मही की बढ़वार होगी, इसलिये भवितव्य अर्थात् प्राणियोंके पूर्वसंचित किये हुये पापके

फलसे इन राजाओंकी बुद्धि विमोहित होजायगी ॥१०॥ इन अर्हत राजाओंसेही कलियुगी मनुष्यगण देवमायासे मोहित होकर अपने अपने शौच आचार परित्याग करके देवताओंका निरादर आचमन न करना, शौच न करना, केश नोचना इत्यादिक खोटे कर्म अपनी अपनी इच्छासे धारण करेंगे. उसीसे उन सब पुरुषोंकी बुद्धिका नाश होजायगा, जब बुद्धिका नाश होजायगा तो वह सब सदाही वेद, ब्राह्मण, विष्णु, व सज्जन पुरुषोंकी निन्दा किया करेंगे ॥ ११ ॥ यह सब लोग अंधपरम्पराके तुल्य अवेद मूलक इस प्रकारकी इच्छाअनुसार प्रवृत्तिका विश्वासकर अपने आपही घोर अन्धकार नरकमें गोते खायँगे ॥ १२ ॥ यद्यपि भगवान्का यह अवतार ही ऐसा अनर्थ करनेवाला हुवा । तथापि जो सब पुरुष

येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजनिजेच्छया गृह्णाना अस्नानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलिनाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यंति ॥ ११ ॥ ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयांधपरंपरयाऽऽश्वस्तास्तमस्यंधे स्वयमेव प्रपतिष्यंति ॥१२॥ अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥ तस्यानुगुणान् श्लोकान्गायंति ॥१३॥ अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ॥ गायंति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवंति ॥ १४ ॥ अहो नु वंशो यशसाऽवदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ॥ कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥१५॥ को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ॥ यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥ १६ ॥

३४७

रजोगुणमें व्याप्तहैं उनकी मोक्ष किस प्रकारसे हो यह सिखानेके लिये यह अतिप्रयोजनीय हुवा. इस कारण पंडित लोग उस अवतारका गुण वर्णन करते हुये अनेक श्लोकोंको गाया करतेहैं ॥१३॥ उन सब श्लोकोंका अर्थ यह है. यथा अहोसप्तसागरा पृथ्वीमें इन सब द्वीपोंमें यह भारतवर्ष अतिशय पुण्यवान् खंड है, क्योंकि यहांके जन्मे हुये लोग श्रीकृष्णचंद्र आनन्दकन्द भगवान्के और ऋषभावतार युक्त चौवीस अवतारोंके उत्तमोत्तम कर्म और पवित्र चरित्र गाया करते हैं ॥१४॥ अहो राजा प्रियव्रतका वंश यश करके आश्चर्य रूपसे पवित्र हुवा, क्योंकि पुराणपुरुष भगवान् उनके वंशमें अवतार लेकर मोक्षमूलक धर्मका आचरण करगये हैं ॥ १५ ॥ वह अज हैं जन्म नहीं ग्रहण करते और कोई योगी मनोरथ करके भी उन

ऋषभदेवजीके रीतियोंपर चल सकता है? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं होगा। क्योंकि उन्होंने अवस्तु समझकर जिस योगमायाका अर्थात् सिद्धियोंका अनादर किया था और योगीजन तो उनकोही प्राप्त करनेके लिये विविध भांतिके यत्न करते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! भगवान् ऋषभदेवजी लोक, वेद, देव, ब्राह्मण और गौओंके परमगुरु थे उनके विशुद्धचरितके मध्य जो कुछ कहागया है, वह पुरुषोंके सब पापोंका नाश करनेवाला और परममंगलदायक है। जो पुरुष वृद्धिगत श्रद्धापूर्वक इसको सुने वा सुनावै उन दोनों जनोंमें ही भगवान् वासुदेवजीकी एकांतभक्ति रहा करती है ॥ १७ ॥ जिससे कविगण अपने आत्माको जो अनेक प्रकारके पापरूप संसारके संतापसे निशि

इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामंगलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयाऽनुशृणोत्याश्रावयति वाऽवहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकांततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥ १७ ॥ यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयंतस्तयैव परया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यंतिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियंते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १८ ॥ राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः ॥ अस्त्वेवमंग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥ १९ ॥

दिन तपते रहते हैं और मनको बारंबार स्नान कराकर उसीके द्वारा परमनिवृत्तिको प्राप्त होते हैं और भगवद्भक्तिको मंगलमय समझकर अपने आपको कृतार्थ मानतेहैं। और वह महात्माजन उसीमें मग्न होकर फिर उससे परम पुरुषार्थरूप जो मुक्तिपदार्थ है उसको विना प्रार्थनाके श्रीभगवान्जीके प्रसादसे आप उपस्थित होनेपरभी उसका आदर नहीं करते। क्योंकि जो भगवान्के भक्तहैं उनका सब पदार्थ आपही मिलगयेहैं, परंतु वह सब प्रकारसे भगवत्की भक्तिको ही सुख मानते हैं ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भगवान्, हरि तुम्हारे और यादवोंके पति

अर्थात् पालन करनेवाले गुरु अर्थात् उपदेशक, दैव अर्थात उपासना करने योग्य प्रिय अर्थात् सुहृद् और कुलके नियन्ता और कभी कभी दौत्यादि कार्योंमें सेवक भी बन जातेथे, तोभी हे महाराज! भगवान् तुम्हारे प्रति अनुकूल थे और जो लोग उनका भजन करते हैं, उनको तो वह मुक्ति दे देते हैं। परन्तु वह भक्तियोग कभी किसीको नहीं देते, जिसको प्रेम लक्षण कहते हैं ॥१८॥ हम भगवान् ऋषभदेवजीको नमस्कार करते हैं *निरन्तर अनुभव किया हुवा जो स्वरूप है, इसके लाभ होतेही उनकी सब तृष्णा दूर होगई थी। देहादि निमित्त मनोरथ हेतु कल्याणके विषयमें जिन पुरुषोंकी बुद्धि सदा सोई रहती थी ऋषभदेवजीने उनके ऊपर करुणा करके अपने अभय लोकका उपदेश किया था,

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः॥लोकस्य यः करुणयाऽभयमात्मलोकमाख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ १ ॥ इति श्रीमद्भाग०म०पंचम०ऋषभदेवानुचरितंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच॥भरतस्तु:महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय संचिंतितः तदनुशासनपरः पंचजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे॥ १ ॥तस्यामुह वा आत्मजान्कात्स्न्र्येनानुरूपानात्मनः पंच जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥ २ ॥

ऐसे ऋषभदेवजीको वारंवार नमस्कार है[1] ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पचमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीऋषभदेवचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा-सप्तममें यागादिसों, हरिचरणनमें प्रीति। कीनी भूपति भरतने, वरणों सोई नीति ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाभागवत भरतजीने भगवान् ऋषभदेवजी अपने पिताकी आज्ञामान पृथ्वीकी रक्षा और प्रजाके पालनमें नियुक्त हुये और उनकी ही आज्ञानुसार उन्होंने विश्वरूपकी पुत्री पंचजनीका पाणिग्रहण किया ॥ १ ॥ अहंकारसे जिसप्रकार सूक्ष्मभुतोंकी उत्पत्ति होती है, वैसेही इस

---

*शंका-श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें भगवान्के सब अवतार वर्णनं किये परन्तु नमस्कार किसीको नहीं किया इनमें चतुर वैराग्यको पुञ्ज ज्ञान करनेमें सूर्यके समान शुकदेवजी महाराजने ऋषभदेवजीको नमस्कार क्यों किया ?

उत्तर-भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये, परन्तु जैसा संसारके मनुष्य कर्म करते हैं वैसाही भगवान्ने किया, और ऋषभदेवजीने जगत्को मोक्षका मार्ग सिखाया और अपने आप भी मोक्षहोनेके कर्म किये इसलिये परमज्ञानी. श्रीशुकदेवजी महाराजने ऋषभदेवजीको विषय हीन जानके और परमहंस मानके नमस्कार किया ॥

१ कविता-रामहीको नामरटे बुद्धि बल प्रबल होय, रामहीको नामरटे उत्तम कुल पावै है ॥ रामहीको नामरटे चक्रवर्ती राज्यमिले, रामहीको नाम परमधामको दिखावै है ॥ रामहीको नामरटे ऋद्धि और सिद्धि होत, रामहीको नाम इन्द्रासननै बिठावै है ॥ रामहीको नामरटे निर्मल नरदेह मिले, राम राम रटत निर्वाण होजात है ॥ १ ॥

स्त्रीके गर्भमें उनके पांच पुत्र उत्पन्न हुये वह पाँचों पुत्र संपूर्ण भावसे अपने पिता भरतजीकी समान हुये ॥ २ ॥ उनके नाम यह थे-सुमति, राष्ट्रभृत,सुदर्शन, आवरण, और धूम्रकेतु। हे राजन्! पृथ्वीके उस वर्षका नाम पहले अजनाभ था, परन्तु जबसे भरत राजा हुये तबसे इसका नाम भारतवर्ष होकर प्रसिद्ध हुआ। राजा भरत सर्वज्ञ थे पृथ्वीनाथ होकर अपने बाप एवं दादेके तुल्य प्रजाके ऊपर वत्सलता प्रकाश करते रहे अपने अपने कर्ममें रत प्रजागणको लालन पालन करते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ और श्रद्धासहित अनेक अनेक छोटे और बडे यज्ञ करके उनके द्वारा यज्ञमूर्त्ति,और क्रतुमूर्ति,विष्णुभगवान्जीकी पूजा करते रहे,अर्थात् उनको जिस जिस अग्निहोत्र दर्श पौर्णमास चातुर्मास्य पशुयाग और सोमयज्ञमें

सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति ॥ अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशंति ॥ ३ ॥ स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वेस्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥ ४ ॥ ईजे च भगवंतं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥ ५ ॥ संप्रचरत्सु नानायागेषु विरचितांगक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिंगानां मंत्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥ ६ ॥

अधिकार था, उन सबोंके द्वारा कभी सर्वाङ्गयुक्त,कभी विकलाङ्ग करके दोनों भाँतिसे भगवान् वासुदेवकी पूजा करतेथे और चातुर्होत्र विधिसे सदाही उपासना किया करते रहते थे॥५॥और जिनकी अंग क्रिया नित्य करनेमें आती ऐसे यज्ञ जहाँ होते थे और ऋत्विक् लोग अग्निमें छोडनेके लिये जब हवि ग्रहण करतेथे, तब यजमान यह राजा उसका अनुष्ठान करनेके लिये, अपूर्व जो इन सब क्रियाओंका फलहै, और जिसका नाम धर्म है। वह परब्रह्म परमात्मा यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवमेंही वर्तमान है। इस प्रकार विचार करके यज्ञका भाग लेनेवाले सूर्यादि देवताओंकोभी भगवान् वासुदेवको चक्षु इत्यादि अवयवमें विचारकर ध्यान करता था। हे महाराज! राजर्षि भरत यज्ञादि क्रियाओंके लिये अपूर्व भगवान्

वासुदेवका जो ध्यान करता इसका कारण यह है कि, इनहींसे सब देवताओंमें भगवान्ही मुख्य हैं ऐसा माना जाय,तोभी वेदके मन्त्रोंसे बोधित किये हुये इन्द्रादि देवताओंके नियंता होनेसे सबकेही कर्ता नहीं हुये।इसकारण उन्ही परम देवता यज्ञपुरुष भगवान्के अर्थ यज्ञका फल समर्पण करना उचितहै,भरतजी इसप्रकारका विचार करके आत्माकी चतुराईसे शीघ्रही रागद्वेषादिक मलसे निवृत्त होगये ॥६॥ और इन सब विशुद्ध कर्मोंके करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध होने लगा, उससे हृदयके बीचमें स्थित हुआ जो आकाशहै।वही है जिनका पहँचाना हुवा स्थान,वही परब्रह्म भगवान् वासुदेवका महापुरुष रूपसे दर्शन होता था, जो महापुरुषकार हैं और श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला,शंख,चक्र और गदा इत्यादि धारण करनेसे जो विराजमान होरहेहैं और अपने भक्त नारदादिकोंके हृदयमें विचित्र तुल्य पुरुषरूपसे अपने आपही देदीप्यामान हैं.सो उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवमें उन राजा भरतकी बडी भक्ति उत्पन्न हुई. और उस भक्तिका वेग दिन दिन अधिक बढने लगा ॥७॥ महात्मा भरतजीने अपने राज्य संबन्धी भोगके प्रारब्ध समयकी समाप्तका काल सहस्रों वर्षतकका नियत किया था, वह समय जब इस प्रकार व्यतीत होगया तब अन्तसमय आया जानकर उन्होंने अपनें पितामहपिताका राज्यबन्धन जिसको अपने अधिकारसे भोग रहे थे, उसको शास्त्रानुसार अपने पुत्रोंको यथायोग्य विभाग करके बांट दिया और सब ऐश्वर्य संपदाओंसे परिपूर्ण भवनको त्याग सन्यास धारणकर पुलस्त्यमुनिके आश्रममें तप करनेके लिये चलेगये. हरिक्षेत्रमें वह आश्रम है, वही विद्याधरकुण्ड है ॥ ८ ॥ वहांके वास करनेवाले सज्जन पुरुषोंको भगवान् वासुदेव प्रेमके वशीभूत

एवं कर्मविशुद्धचा विशुद्धसत्त्वस्यांतर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाऽजायत ॥ ७ ॥ एवं वर्षायुतसहस्रपर्यंतावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसंपन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥ यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥ ८ ॥ यत्राश्रमपदान्युभयतो नाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥ ९ ॥

हो आजतक भक्तोंकी इच्छानुसार वात्सल्यतासे दर्शन देते हैं उस आश्रममें गंडकी नाम परमोत्तम नदी है जिसको चक्र भी कहते हैं वही विद्याधरकुण्ड है जिसकी शिलाओंके ऊपर नीचे हिरण्यगर्भ नाभिवाले चक्र उत्पन्न होते हैं उनहींका नाम" शालिग्राम" है जो अपने चक्रोंसे आश्रमके ग्राम और प्रदेशको चारों ओरसे पवित्र करती है॥९॥इसप्रकार हरिक्षेत्रके उपवनमें राजर्षि भरत अकेले रहा करते और

तस्मिन्वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकांबुभिः कंदमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥ १० ॥ तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्ष वेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कंठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमण रुणचरणारविंदानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगंभीरहृदयहृदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥ ११ ॥

भाँतिभाँतिके कुसुम, कोंपल, तुलसी, जल, कन्द, फलादिक चढ़ाकर श्रीभगवान्की सदा शुद्ध मनसे आराधना करते रहते थे और विषयोंकी तृष्णाको त्याग शान्तिकी वृद्धि कर परमानन्दमें मग्न रहतेथे*॥१०॥इस प्रकार नित्यप्रति भगवान्का पूजन करनेसे उनका अनुराग

---

१ भजन ॥ राग भैरौ—शालिग्राम कृपापे सागर मन तू क्यों नहिं ध्यावतहैरे ॥ सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलिमें एकहि रूप पुजावतहैरे ॥ १ ॥ शुद्ध हिमाचल-पर्वत भीतर मुक्तिक्षेत्र कहावतहैरे ॥ एकबार चरणामृत ले जो सो फिर जन्म न पावतहैरे ॥ २ ॥ भक्त होयकर भोग लगावे अन्त स्वर्गमें जावतहैरे ॥ हरिप्रसाद देवनको दुर्लभ तनुके पाप नशावतहैरे ॥ ३ ॥ जन्म जन्मके पाप कटत है पार्षद हो सुख पावत हैरे ॥ हरिके निकट रहत निशिवासर हरि हरि हरि हेरि गावतहैरे ॥ ४ ॥ धूप दीप नैवेद्य आरती कर जो शंख बजावतहैरे ॥ पुरुषोंमें पुरुषोत्तम सो नर तुलसीपत्र चढावतहैरे ॥ ५ ॥

* **शंका**—पुलह मुनिके आश्रममें विश्राम करके भरतके तुलसीपत्र और पुष्पोंसे पूजन किया सो किसका पूजन किया ? क्योंकि वेदके जाननेवाले ऋषिमुनियोंने भगवान्के अनन्तरूप कहे हैं.

उत्तर—भरतने एकाग्रचित्त करके श्रीवैकुण्ठवासी जगत्पति श्रीभगवान्का ध्यान करके उन्हीं भगवान्के मन्त्रोंसे जो अपने मनमें वस्तु थी सो सब वस्तु उनहीं वैकुण्ठनाथके चरणोंमें समर्पण करके अत्यन्त प्रेमसे वैकुण्ठनाथका पूजन किया ॥

बढ़ा और अनुरागके बढ़नेसे उनका हृदय शिथिल होजाताथा और हर्षके प्रभावसे उनका शरीर पुलकायमान होगया और उत्कण्ठाके वश होनेसे प्रेमके आँसु निकलकर दोनों नेत्रोंके दृष्टिको रोकने लगे, तो दर्शन शक्ति बन्द होगई भरतजी जब इसप्रकारकी अवस्थाको प्राप्त हुये तब स्वयं भगवान्‌की आराधना करनेलगे, उसकोभी बराबर स्मरण नहीं रखते, क्योंकि अपने प्रीतमप्यारे भगवान्‌के अरुण चरणारविन्दका ध्यान करते करते भक्तियोगकी प्राप्ति होगई थी, उससे हृदयरूप ह्रदमें सर्वत्र परमानन्द उफनकर चारोंओरको फैल जानेसे उसमें भरतजीका मन निमग्न होगया था ॥११॥ वह मृगछाल पहरकर तीनों कालकी सन्ध्या करते नित्यप्रति स्नान करनेके कारण भीनी पिंगल वर्ण और कुटिल जटा समूह सदा गीला रहनेसे उनको (भरत) अतिशय शोभित होते थे, इसप्रकार भांति भांतिके भगवद्व्रत धारण करके उदय होते सूर्यमण्डलको

इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवंतं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमंडलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच ॥१२॥ परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥ सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिंगिरामिमः ॥ १३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे जडभरतोपाख्याने भगवत्परिचर्यायां सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

सूर्यप्रकाशक ऋक्मन्त्रविशेषसे भगवान् हिरण्मयपुरुषकी आराधना इस मन्त्रसे किया करते थे ॥ १२ ॥ "मंत्र-परोजपः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥ सुरेतसादः पुनराविश्यचष्टे हंसं गृध्राणं नृपद्रिगिरामिमः" सब जगत्‌का उत्पन्न करनेवाला प्रकाशात्मक परमेश्वर रजोगुणसे परे सब कर्मफलदायक जो तेजरूप हैं सो मनहीसे इसविश्वको उपत्न्नकिया, फिर इस विश्वमें अपनी चित्तशक्तिसे प्रवेश करके रक्षाकी इच्छावाले जीवको मनुष्योंमें रहनेवाली बुद्धिकी वृत्तिको उपजानेवाले उन सूर्यनारायणके आत्मरूपवाले तेंजकी हम शरण हैं ॥ १३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायांश्रीभरतकृतहरिक्षेत्रपूजनशालिग्रामोत्पत्तिगण्डकीमाहात्म्यादिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

---

* भजन–प्रभु टुक मेरी ओर निहारो ॥ बिपाति बिदारण नाम तुह्मारो हमारिहु बिपाति बिदारो ॥१॥ गणिका, गीध, व्याधसे तुमने, तारे पतित हजारो ॥ वाल्मीकिको भक्त बनयो, वेद पढाये चारो ॥ २ ॥ द्रुपदसुताकी लज्जा राखी, जलते गजहिं उबारो ॥ हिरनकशिपु रावण कंसासुर, केश पकरकर मारो ॥ ३ ॥ जब जब भीरपरी भक्तनपर, तब तब नरतनु धारो ॥ शालिग्राम नाम यदुपतिको, सब दुख मेटनहारो ॥४॥

दोहा–हरि सेवत नृप भरत नित, चितसे अष्टाध्याय:। अन्तरायसे मृग भये, मृगसुत सों मन लाय ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्!एक समय भरतजी महानदी गण्डकीमें स्नान और नित्य नैमित्तिक और सब आवश्यककर्म समाप्ति करके तीन मुहूर्तका नियम लेकर नदीके तीर बैठ ओंकारका जप:कर रहे थे हे राजन्! उस समय एक हरिणी जल पीनेकी इच्छासे अकेली उस नदीके निकट आई वह हरिणी अधिक प्यास लगनेसे जल पी रही थी कि, इतनेमें निकट एक सिंह गर्जे उठा. उसका गर्जना लोगोंको भय उपजानेवाला बडा तीक्ष्ण था॥१॥ हरिणीका हृदय एकतो स्वभावहीसे व्याकुल था और दूसरे सिंहकी गर्जना सुनकर उसके मनमें औरभी अधिक भय उत्पन्न हुआ और उसके हृदयको महाव्याकुल करने

श्रीशुक उवाच॥एकदा तु महानद्यां कृताभिषकनैयमिकावश्यतको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकांत उपविवेश॥ तत्र तदा राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥२॥ तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयंकर उदपतत् ॥ १ ॥ तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥ २ ॥ तस्या उत्पतंत्या अंतर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिगतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥५॥ तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्यांचिद्दयां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार ॥ ३ ॥ तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बंधुरिवानुकंपयाराजर्षिभरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥ ४ ॥

लगा इस कारण वह हरिणी इधर उधर घूमकर चकित हो देखने लगी, यद्यपि उसकी प्यास नहीं बुझी थी तो भी डरके मारे सहसा छलांग मारकर नदीके पार होनेको हुई ॥ २ ॥ हे राजन्! वह हरिणी गर्भवती थी,सो महाभयसे उसका गर्भ अपने स्थानसे विचलित होगया, इसकारण जैसेही उसने छलांग भरी कि उसका गर्भ योनिद्वारा निकलकर नदीकी धारमें गिर पडा एक तो हरिणीके अन्तःकरणमें महाभय उपस्थित हुआ था, दूसरे गर्भ गिरा और गर्भ किस समय गिरा कि,नदीके पार उछलनेमें छलांग मारती समय,तीसरे वह अपने झुण्डसे बिछुडी हुई थी,इस काण ऐसा पारिश्रम पडनेसे बहुत पीडित होकर एक पर्वतकी गुफामें जा पडी और पडतेही शीघ्र उसके प्राण शरीरसे निकल गये॥३॥यहां राजर्षि भरतजीने

८
३८६

नदीके तीर बैठे हुए देखा कि, दीन हरिणके बच्चेकी माता, बच्चेको छोडकर चलीगई और वह बच्चा नदीकी धारमेंबहने लगा. तब बन्धुकी समान दया करके मरी हुई हरिणीके बच्चेको उठाकर भरतजी अपने आश्रममें ले आये। उस हरिणीके बच्चेका क्रम क्रमसे यह हमारा अपनाहीं है ऐसा अभिमान और स्नेह भरतजीको उत्पन्न हुआ इसकारण वह दिनरात घासादि लाकर उसका पालन पोषण और भेडिया इत्यादि जन्तुओंसे रक्षण, प्रीणन

तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सह यमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥ ५ ॥ अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बंधुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविश्रब्धश्च ॥ अत एव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ॥ ६ ॥

और चुम्बनादिसे प्यार करनेमें लगे रहते थे. इन कार्योंके करनेसे दिनरात उस बच्चेमें अनुरागी रहनेंके कारण उनके नियम (स्नानादिक) यम (अहिंसादिक) और अर्चा (ईश्वरका आराधनादि करना) प्रतिदिन एक २ करके थोडे थोडे कम होनेलगे और कुछ दिनमें एक साथही सब छूट गये ❋॥ ४ ॥ ५ ॥ और वह सदा यही चिंता करते रहते कि अहो ! यह हरिणका बच्चा अति दीन है, कालकी गतिसे यह अपने संगके बन्धु

---

* शंका—राजा भरतने. जिन भगवान्की पूजा भक्ति करनेंके लिये अपने राज्यको त्याग दिया और वनको चलेगये, सो ऐसा श्रेष्ठपूजन और हरिभक्त और अपना क्रिया कर्म मृगीके बच्चेके लिये क्यों छोड दिया? कोई कहै कि, मृगीके बच्चेके मोहसे व्याकुल होकरके हीन पुरुषोंकी नाईं भगवान्का पूजन त्याग दिया, तोभी बडा भारी आश्चर्य होताहै. क्योंकि राज्य और कुटुम्बका मोह छोड दिया और पशुके मोहमें व्याकुल होना ऐसा जान पडताहै जैसे पंगु पुरुषका पर्वतपर चढजाना कदापि नहीं होसक्ता यह हमको बडा भारी आश्चर्य विदित होताहै ।

उत्तर—जब राजा भरत एक दिन वनको गये तो वनमें जाकर क्या देखते हैं कि, धवल मुनि संसारकी लज्जासे आप मृगस्वरूप धारण करके और अपनी सुन्दर स्त्रीको मृगी बनाकर रमण कर रहेहैं. उनको देखकर राजा भरत हँसे तब उसीसमय राजा भरतको धवल मुनिने शाप दिया कि, हे दुष्ट! मृगीके बालककी तू रक्षा करेगा' उस मृगीके बच्चेकी रक्षासे तेरी एक जन्ममें मोक्ष नहीं होगी तीन जन्म जब बीत जायँगे तब तेरी मुक्ति होगी, इस शापसे भरतने कौतूहल समान मृगछौनामें मनलगाकर उसीके मोहमें भगवान्का पूजन आदि त्याग दिया था ।

बान्धवोंसे छूट गया है,अब परमेश्वरने इसको हमारी शरण किया है, अब यह हमकोही माता, पिता, भ्राता, जातिवाला और यूथपति जानताहै, हमारे शिवाय यह किसीको नहीं जानता और हमाराही बडा विश्वास करताहै इसलिये हमको भी असूया त्याग करके अर्थात् इसके वास्ते हमारा स्वार्थ नष्ट होताहै यह दोषदृष्टि दूर करके अपना आश्रय लियेहुए इस हरिणके बच्चेको घासादिदें।भेडिये इत्यादि जीवोंसे रक्षाकर इसके शरीरको थमकोर और चुम्बनादिसे पालन करना चाहिये,क्योंकि शरणागतको निरादर करनेसे जो दोष होता है,उसको मैं भलीभांति जानता हूँ,सो इसके पालनेमें ध्यान न देना हमारा कर्तव्य नहीं है बड़े और महाशील स्वभाववालेही साधु और दीनबन्धु होते हैं,वह लोग ऐसे कार्यके लिये अपने बड़े

नूनं ह्यार्याः साधव उपशममनशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षंते ॥ ७ ॥ इति कृतानुषंग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत्॥ ८ ॥ कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥ ९ ॥ तदा पथिषु च मुग्धभावेन तत्रतत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कंधेनोद्वहति ॥ एवमुत्संग उरसि चाऽऽधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥ १० ॥

भारी स्वार्थपरभी ध्यान नहीं देते॥६॥७॥इस प्रकारसे उस मृग बालकके साथ बैठना,उठना,शयन करना,भ्रमण करना,स्नान करना, और भोजनादि कार्योंमेंही भरतजी आसक्त होगये,और उस मृगछौनाहीके स्नेहमें उनका हृदय फँसगया॥८॥अपने लिये कुश,कुसुम,समिधा,फल,मूल,जल लेनेके लिये जब बनमें जाते तब पीछे भेडिया,सिंह आदि आकर इस मृग बालकको खा न जाँय इसलिये उस बच्चेकोभी अपने साथही लेकर वनमें जाते थे॥९॥कोमल स्वभाव उस भोलेभाले बच्चेके लिये भरतजीका हृदय स्नेहके भारसे भरगया था, इसलिये मार्गमें जाते जाते मोहके भावसे आसक्त मति होकर स्नेहके मारे उसको कन्धेके ऊपर उठाकर ले चलते और कभी गोदीमें,कभी छातीसे लगा अत्यन्त लाड प्यार व पुचकारकर परम

हर्षको प्राप्त होते॥१०॥अपने कर्त्तव्य यज्ञ यज्ञादि क्रिया आरम्भ करके समाप्ति न होनेपर बीचहीमें उठ बैठते और जब उस बच्चेको देखें,तब उनका अन्तःकरण स्वस्थ हो और उसको पुकारकर आशीर्वाद प्रार्थना करके यह कहैं कि, हे वत्स ! तुम्हारा सब प्रकारसे मंगल हो ॥ ११ ॥ यदि कदाचित् यह बच्चा इधर उधर चला जाता तो कृपण पुरुष धनका नाश होनेसे जिसप्रकार. शोक करताहै, वैसेही भरतजी अति उद्विग्न चित्त होते और अत्यन्तही उत्सुकताके हेतु उस बच्चेके विरहमें उनका हृदय अतिशय विकल और संतापित होता इसलिये महामोहमें पडकर उसके लिये शोकसे विह्वल हो करुणा कर करके भरतजी यह वचन कहा करते ॥ १२ ॥ अहह ! यह क्षीण हरिणीका बच्चा मृत

क्रियायां निर्वर्त्यमानायामंतरालेषूत्थ।योत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वा व स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ॥ ११ ॥ अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः ३४ सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्तमेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरंभित इति होवाच॥१२॥ अपिबत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुत अहो ममानार्यस्य शठकिरात मतेरकृतसुकृतस्य कृतविश्रंभ आत्म प्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवागमिष्यति किम् ॥ १३ ॥ अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरंतं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥ १४ ॥ अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥ १५ ॥

जननीका बालक अतिदीन है यद्यपि मैं अनार्य भाग्यहीन और शठ हूँ और किरातकी समान मेरी मति छलनेवाली और अति टेढी है।तोभीउस हरिणीके बच्चेने मेरा विश्वास किया है इसलिये सुजनकी समान अपना चित्त निर्मल होनेसे वह हमारे अपराध (शाठ्यादि) न गिनकर क्या नहीं आवेगा ? ॥ १३ ॥ बोध होता है कि, मैं उसे इस आश्रमके स्थानमें निर्विघ्न कोमल तृण भक्षण करते हुए देखूंगा,भगवान् उसकी रक्षा करै ॥ १४ ॥ कोई भेडिया, व्याघ्र अथवा और कोई हिंसक जंतु उसको अकेला जानकर कहीं खा न जाय ! १५ ॥

जिनके उदय होनेसे सब संसारका मंगल होता है, वह वेदस्वरूप सूर्यदेव अस्ताचलको गमन करना चाहतेहैं। परंतु अबतक मृगवधूका धरोहर स्वरूप वह मृगशावक क्यों नहीं आया ? १६ ॥ अहो ? वह राजकुमार हरिणका शिशु देखने योग्य, मनोहर अनेक प्रकारकी बाललीला करके अपने स्नेहीजनोंके खेदको दूरकरनेवाला फिर क्या आकर मुझको सुखी करेगा ? ऐसा मैंने कोई सुकृत नहीं किया फिर किस प्रकारसे मेरे भाग्यमें यह सुख प्राप्त होगा ! ॥ १७ ॥ अहो ! खेलनेके समय मिथ्या स्नेहके कोपमें मिषके समाधिके छलसे जब मैं दोंनों नेत्र मूँदलेता तब वह मृगछौना मेरे चारों ओर फिरता और चकित होकर कोमभल सींगोंके अग्रभागसे मुझको स्पर्श करता ॥ १८ ॥ फिर कुशोंके ऊपर जो मैं

निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोद्रयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास अगच्छति ॥ १६ ॥ अपिस्विद कृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोषं स्वानामपनुदन् ॥ १७ ॥ क्ष्वेलिकायां मृषासमाधिनाऽमीलितदृशं प्रेमसंरंभेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥ १८ ॥ आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥ १९ ॥ किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्याऽनया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाऽखरखुरपदपंक्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयंत्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ॥ २० ॥

होम करनेकी सामग्री रख देता, तब हरिणसुत खेलते खेलेत चपलताके वश हो, दांतोंसे कुश पकड कर यद्यपि उस सामग्रीको दूषित कर देता, परंतु जैसेही मैं क्रोध प्रकाश करता, कि उस क्रोधके करनेसे वह अतिशय भयभीत होकर तत्क्षण ऋषिकुमारकी समान क्रीडा परित्याग करके निश्चल होकर, नीचेको मुख कर लेता ॥ १९॥ राजर्षि भरतजी इसप्रकार बहुविधि विलाप करके आश्रमसे चलते और आगे उन्हे खुरोंके चिह्नदृष्टि आते तब सम्भ्रांत चित्त होकर फिर आपही आप कहने लगते कि, अहह ? यह पृथ्वी अतिशय भाग्यवती है। न जाने इसने क्या तप किया था, जो स्थान स्थानमें अंकित उस हरिणछौनेके चरणाचिह्नोंकी पंक्तिसे हमारे निकट उसके धनका मार्ग बतलाती है और

अपनेको भी उन चरणचिह्नौंसे भूषित करके ब्राह्मणोंके यज्ञ करनेका स्थान बताती है हम उस मृगशावकके विरहमें अतिशय दुःखित हो रहेथे, सो अब इन खुरोंके चिह्नोंको पृथ्वीमें अंकित हुवा देख कुछ धैर्य आया ॥ २० ॥ उसके पीछे चंद्रोदय होनेपर चन्द्रमंडलमें मृगका चिह्न देखकर उसको ही अपना मृगशावक समझकर कहने लगे। हमारा यह छौना, जब आश्रमसे बाहर निकलकर कहीं चला गया होगा, तब दीनोंका प्यार करनेवाले तारापति भगवान् चन्द्रमाजी महाराजने यह समझकर कि कहीं सिंह इसको भक्षण न करजाय, क्योंकि यह अपने आश्रमका भूला भटका, मृतक जननीका बालक, बांधवोंके समूहसे बिछुडा हुवा भोलीभाली मनोहर छबि देखकर,दया करकै अपने निकट रखकर इसकी रक्षा करते हैं ॥ २१ ॥ फिर चन्द्रमाकी किरण जो उनकी देहपर पडी तो उसके स्पर्शका सुख पाकर कहनें लगे. अहह! उस मृगबालककै ढूँढनेसे जो उसकें वियोगकी तपती हुई दावाग्निकी शिखाकें समान जो हमारे हृदयरूप स्थलकमलको सन्तापित करती थी, इसको जानकर भगवान् चंद्रमाजीनें दयाकरकें सुशीतल शांत वदनके सलिलरूप अमृतमय किरणसे हमको सुख उपजाया. लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि, मुख कमलके जलसे तापको शांत करतें हैं ॥ २२ ॥ हे राजन्! वह योगधारी तपस्वी भरतजी इस प्रकारके असम्भव मनोरथसे व्याकुल हृदयहो

अपि स्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकंपया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥ २१ ॥ किं वात्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशांतानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२२॥ एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारंभणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यंतर एणकुणक आसंगः॥ साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमंतरायविहतयोगारंभणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषगेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥ २३ ॥

मृगशावककी नाईं प्रकाशमान अपने आराधक कर्मोंके द्वारा योगानुष्ठानसे और भगवान्‌जीके आराधनारूप कर्मसे नष्ट भ्रष्ट होगये. महाराज! अपने कर्मसे ही उनकी आराधना व योग नष्ट हुवा. यदि ऐसा न होता तो जिस पुरुषने पहले मुक्तिमें विघ्न जानकर अत्याज्य पुत्रोंको भी परित्याग कर दिया था, उसको फिर दूसरी जातके मृगशावकमें सहसा अपने पुत्रकी समान आसक्ति क्यों होती? जो हो, इस प्रकार विघ्नोंके पडजानेसे योगभ्रष्ट हुये, अपने आत्माकी चिन्ताको जलांजलि दिये हुये राजर्षि भरतजी उस मृगशावककेही लालन पालनमें नियुक्त होगये हैं तो इतनेमेंही सर्प जिस प्रकार मूषकके बिल अर्थात् भट्टकको प्राप्त होता है, वैसेही तीव्र वेगवाला जो टालनेसे न टले ऐसा मृत्युसमय उपस्थित होकर उनको प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ उस समय भी वह ध्यानयोगमें देख रहे थे कि, मानो वह मृगका बच्चा पुत्रकी नाईं बगलमें बैठकर शोक करता

तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचंतमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥ २४ ॥ तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥ २५ ॥ अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसंगस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमनन संकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुस्राव ॥ २६ ॥

है इस कारण मृगमें ही अनुरागी आसक्तचित्त होनेसे, उस मृगशावकको ही देखते हुये आत्मदेह परित्याग करक साधारण पुरुषोंकी समान मृगशरीरको प्राप्त हुये, परन्तु उनके पहले जन्मकी स्मृति देहके संग नाशको नहीं प्राप्त हुई ॥२४॥ इसलिये अपने मृग शरीर पानेका कारण स्मरण करके, भगवान्‌की आराधना करनेके कारण पहले जन्मकी स्मृति उनको बनी थी, सो इससे अत्यन्त अछता पछताकर मृगरूप भरतजी आपही आप कहने लगे ॥ २५ ॥ कि, बडा विघ्न हुआ, क्या कष्टहै? मैं उन वीर ज्ञानीजनोंके मार्गसे भ्रष्ट हुआ सब संगका परित्याग करके पुण्य वनमें रहता हुआ अति धीरभावसे श्रवण, मनन, संकीर्तन, आराधन और भगवान्‌जीका स्मरण आदि कार्योंमें लगा रहता था और क्षणमात्रभी

वृथा न खोकर बहुत समयमें सब भूतोंके आत्मा भगवान् वासुदेवमें जो मनको स्थापित और स्थिर किया था, सो अपनें अज्ञानपनसे उस मृग शावकके संगमें एक बारही उस विषयसे निकलगया । हा ! मैं कैसा मूर्खहूँ॥२६॥इस प्रकारसे उनके मनके बीच महावेदना उपस्थित हुई परन्तु उन्होंने उसको प्रकाश नहीं किया और अपनी मृगी जननीको परित्याग करकें जिस कालञ्जर पर्वतपर जन्मे थे, उस स्थानसे फिर हरिक्षेत्रमें पुलहाश्रमपर आये । हे राजन्! यह आश्रम शांत स्वभाववाले मुनिजनोंका प्यारा है उसके निकट ही जहाँ शालकें पेड बहुत थे, ऐसा एक ग्राम था उस ग्रामका नाम शालवृक्ष सहित होनेंसे शालग्राम था ॥ २७ ॥वहां जाकर संगकें भयसे कि,कहीं फिर किसीका संग न होजाय, इसलिये

इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीमातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालंजरात्प्रत्याजगाम ॥ २७॥ तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः संगाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागव० महा० पंचम० भरतोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथकस्यचिद्द्विजवरस्यांगिरःप्रवरस्य शमदमतपस्स्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रयविद्याऽनसूयात्मज्ञानानंदयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अंगजा बभूवुः ॥ मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥ १ ॥

भयभीत मनसे अकेला रहता और सूखी लता, पत्ते और तृणमात्र भोजन करके जीवन धारण करता हुआ जिस प्रारब्धसे मृगशरीर पायाहै वह निमित्त कब पूरा हो चुकेगा, केवल इतनी ही बाट देखता रहताथा । कुछ समय व्यतीत होनेपर जब काल आया तो वहां गंडकी नदीके प्रवाहके मध्य खडे होकर मृग शरीरको त्यागन कर दियां ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां भरतस्य मनुष्यदेहत्यागपूर्वकमृगशरीरप्राप्तिवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–नवध्याय जडभरतके, नहिं गुण दोष विचार । देवी ढिग मारन लगे, तबहूँ रहे अविकार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि राजा परीक्षित्से कहैहैं कि, हे राजन्! एक ब्राह्मणके नव पुत्र हुये । वह विप्र आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न

भजन–विनहि प्रयास भक्त तनु त्यागत ॥ देह गेह से नेह न करहीं, तजत शरीर बार नहिं लागत ॥ १ ॥ जबहि प्रसन्न होत हरि तिनपर, तब हरिसो वर माँगत ॥ हमाहें न कछु इच्छा है स्वामी, राखहु सदा चरण शरणागत ॥ २ ॥ इसी हेतु जप योग यज्ञ व्रत, करत नियम नित निशिदिन जागत ॥ अन्तसमय मुखसे हरि निकसत, शालिग्राम सकल भय भागत ॥ ३ ॥

हुआ; ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और शम; दम, तपस्या, वेद पढना, दान, सन्तोष, सहनशीलता, विनय, विद्या, नम्रता, आत्मज्ञान और आनंदमें सदा अनुरागी था. उसके जो पुत्र उत्पन्न हुये, वहभी सब अपने पिताकी समान विद्या, शीलता, आचार, उदारता इत्यादिक गुणोंसे भूषित हुए। नव पुत्र तो एक स्त्रीसे प्रगट हुए थे और छोटी दूसरी स्त्रीसे पुत्र कन्याका एक जोडा उत्पन्न हुआ था ॥ १ ॥ हे राजन्! उस जोडेमेंका पुत्र जो था, उसको सबही कहते हैं कि, यह पुत्र परम भागवत वही राजर्षि भरतजी थे उन्होंने अब मृग देहका त्यागकर उस देहमें फिर विप्रत्वको प्राप्त हुये ॥ २ ॥ हे राजन्! राजर्षि भरत विप्रकुलमें जन्म ग्रहण करके भी यह विचारा कि संगदोषसे फिर न कहीं अपना

यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः॥ २ ॥ तत्रापि स्वजनसंगाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबंधविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविंदयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशंकमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडांधबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥ तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयदनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥४॥

पतन होजाय इसलिये भगवान्के युगल चरणारविंदका स्मरण और गुणवर्णन करनेमें कर्मके बन्धनोंका नाश होजाता है, यह मनमें भलीभांतिसे विचार करते हुये सब लोगोंके निकट अपनेको पागल व मूर्ख अथवा अंधा, या बहरासा बतलाते थे, हे महाराज! उनके मनमें आत्मभ्रंश भय उत्पन्न होनेका कारण यह था कि, भगवान्के अनुग्रहसे और देह पाकरभी इनको अपने पूर्व जन्मोंकी याद आती थी ॥ ३ ॥ यद्यपि यह संतान जड हुवा तोभी उस ब्राह्मणका मन सन्तानके स्नेहमें बँधनेके कारण उसने उनके समावर्तनान्त सब संस्कार शास्त्रकी कहीहुइ विधिसे किये। और यज्ञोपवीत देकर, उमके सब नियम, शौच, आचमनादिक कर्मोंके नियम यद्यपि इस पुत्रको अच्छे नहीं लगते थे

तौभी पिताका कार्य पुत्रको शिखानेका है इस कारण उनको सब शिखाने लगा ॥ ४ ॥ परंतु यह जडभरतजी पिताके शिक्षा देनेपर उनके समीप आचारादिमें गडबडीका व्यवहार करनेलगे, इनके पिताने वेदव्रतादिके आदिमें श्रावणादि मासमें इसको प्रणव सहितत्रिपद गायत्री मन्त्र पढावेंगे, ऐसा विचार किया। परंतु वसंत और ग्रीष्म ऋतुमें भी अर्थात् चैत्रादि चारमासमें ओंकार और शिरसहित गायत्री मन्त्र शिखादेनेकी चेष्टा की, परंतु तो भी उस ब्राह्मणका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ, अर्थात् जडभरत चार महीनेमें भी ओंकार और शिरसहित गायत्री मन्त्र नहीं सीखे ॥५॥ यह ब्राह्मण इस जड पुत्रको अपने आत्माकी तुल्य समझते, इस कारण उनके चित्तका अनुराग जडभरतमें बहुत था. "और इससे

स चापि तदु ह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छंदांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासंतिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥ ५ ॥ एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥६॥ अथ यवीयसी द्विजसतीस्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्यामुपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥ पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बंधान्न्यवृत्संत ॥ ७ ॥

ही संतानको पढ़ाना सिखाना आवश्यकीय कार्यहै" इस असत् आग्रहमें व्यग्र होकर नियमित कालतक ब्रह्मचर्य धारण करनेवालोंको कर्तव्य कर्म शौच, पढ़ाना, व्रत नियम, गुरुकी सेवा इत्यादि करना यद्यपि उन सब कर्मोंके करनेमें पुत्रकी रुचि नहीं थी तो भी स्नेहके वश होकर सदाही यह ब्राह्मण पुत्रको उपदेश करता रहता था, कि पुत्र किसी प्रकारसे पंडित होजाय। उसके मनमें यह जो वासना थी, वह किसी प्रकारसे पूरी न हुई, आशामात्रही केवल काल व्यतीत करने लगी। यह विप्र इस प्रकारसे असावधान हो, जडभरतके पंडित बनानेकी चिन्तामें था इतनेमें सावधान कालने आकर उसको संहार कर डाला ॥ ६ ॥ जब उस ब्राह्मणकी मृत्यु होगई, तब उसकी छोटी स्त्री अपने उदरसे उत्पन्न हुये पुत्र

कन्याको सवतके हाथमें सौप आप पतिके साथ पतिलोकको प्राप्तहुई। पिताके मरजाने पर भरतके भाइयोंने उन भरतको जडमति समझकर उपदेश देना, व शिक्षा देनेका प्रबंध एकबारही त्याग करदिया। हे राजन्! भरतके भाइयोंकी बुद्धि वेदविद्यामें नहीं थी, केवल कर्मविद्याहीको पुरुषार्थ समझते थे और ब्रह्मविद्यामें उन्होंने कुछ परिश्रम नहीं किया था, इस कारणसे भरतजीकी महिमाके प्रभावको नहीं समझते थे॥ ७ ॥ पशुओंकी तुल्य पामर मनुष्य भरतको जड अथवा बहरा गूँगा समझकर उनके साथ जिस प्रकारसे वार्तालाप करते भरतजी भी उनको वैसाही उत्तर देते और जो कोई जो काम कहता तो उसकी इच्छनुसार वही कार्य करदेते। मनुष्य विना वेतनसे कार्यकरानेके लिये इनको पकडले जानेपर जो कुछ खानेकी सामग्री पाते अथवा वेतनसे वा प्रार्थना करनेसे अथवा आपसेही जो कुछ अच्छा बुरा अन्न मिलता, उसको भोजनमात्र करलेते, उससे इन्द्रियोंकी प्रसन्नता होगी ऐसा विचार नहीं करते क्योंकि उत्पादक शून्य जिसका कोई बनानेवाला नहीं और कोई उसका प्रगट करनेवाला नहीं ऐसा जो विशुद्ध अनुभव है और उसका स्वरूप जो आनन्दमय आत्मा है उसकी प्रीतिमेंही संतुष्ट रहते, अर्थात् आत्माका ऐसा रूप है, यह ज्ञान उनको प्राप्त होगया था दूसरे मान और अपमानादिका जो द्वन्द्व झगड़ा है और उससे होते हुये जो सुख दुःखहैं उसके विषयमेंभी उनको देहाभिमान नहीं था॥ ८ ॥ ९॥ इस कारण शीत, गरमी, वात वर्षादिमें वह नग्नशरीरसे अकेले बैलकी नांई घूमा करतेथे, उनका

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि स च कर्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेंद्रियप्रीतिनिमित्तम् ॥ ८ ॥ नित्यनिवृत्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानंदस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वंद्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः॥ ९ ॥ शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृतांगः पीनः संहननांगः स्थंडिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबंधुरिति संज्ञया अतज्ज्ञजनावमतो विचचार॥ १० ॥

शरीर बैलकी समान हृष्ट पुष्ट था और अंग प्रत्यंग सब कडे थे, पृथ्वीमें शयन करनेसे तेलके न मलनेसे, स्नान न करनेसे सदा उनके शरीरपर धूरि उडती रहती, इस कारण ब्रह्मतेज महामणिको समान मलीन रहकर अप्रकाशित रहताथा. दूसरे कमरमें मैले कुचैले फटे पुराने कपडे और छातीमें मलीन यज्ञोपवीत पडा रहनेसे कोई उनकी महिमा न जानताथा, कोई उनको " यह पुरुष नीच ब्राह्मण जातीहैं" कोई " ब्रह्मबंधु " अर्थात् ब्राह्मणोंमें अधम कहकर उनका अपमान करतेथे ॥ १० ॥ जब कि, वह किसीसे उसका कार्य करके वेतनस्वरूप आहारकी प्रार्थना करते हुये फिरने लगे, तब उनके भाइयोंने उन्हें आहारका लोभ दिखाकर चावलोंके खेतमें क्यारियोंके बनानेमें नियुक्त किया । तब जडभरतजी इस कार्यकोही करनेलगे । परन्तु यहां मिट्टी डालनेसे क्यारी बराबर होगी अधिक वा छोटी होजावेगी इस बातको जडभरतजी नहीं जानते थे । कभी घासके संगमें अन्नकोही काटते और जो कोई पशु खेतमें आता तो उसको अत्यन्त प्रेमसे

ऊ३।

यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानःस्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किंतु न समविषम न्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषदीन्यप्यमृवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥ अथ कदा चित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥ १२ ॥

चराते, कभी पक्षियोंको देखकर कहते "आओरे भाई चुग लो खेत, यहां छोड दो खाली रेत" उनके भ्राता उन्हें चावलोंकी किनकी, खली, तुष, घुने हुए उरद और बटलोईके नीचेका लगा हुआ अन्नादि जो कुछभी देते जड़भरतजी उसकोही अमृतके समान जानकर भोजन कर लेते ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जड़भरतजीके यह जो चरित्र वर्णन किये, इससे स्पष्टही जान पड़ता है कि, उनमें राग द्वेष व मनकी चंचलता कुछभी नहीं थी, उनके विषयमें एक और कथा वर्णन करताहूँ, आप चित्त लगाकर श्रवण कीजिये । एक समय किसी नगरमें एक सामंतक नाम शूद्रोंका राजा चोराधिपति भद्रकालीका परमभक्त था, उसके कोई पुत्र नहीं था, देवीसे प्रार्थना की कि, हे जगज्जननी ! हे आनंदवर्द्धिनी ! जो मेरे पुत्र होय तो मैं तुझको नरबलि दूँगा, यह कह उसने अपनी कोठरीमें एक मनुष्यको बंद कर रक्खा था, कुछ कालोपरान्त उसके पुत्र उत्पन्न हुआ राजाने पुत्रकी कामना पूरी होनेसे भद्रकालीजीकी प्रीतिके लिये मनुष्यका बलिदान

देनेंकी तय्यारी की ॥ १२ ॥ उसका वह मनुष्यपशु जो कि यज्ञमें बलिदान देनेके लिये रख छोडा था, दैवात् बंधनसे छूटकर भागगया, तब उस राजाके अनेक अनुचर उस मनुष्यपशुको ढूंढ़नेके लिये इधर उधर दौडे परंतु कहीं उसका पता नहीं लगा, तब यह अनुचर घूमते घूमते अंधियारी निशामें दो प्रहर रात्रिके समय खेतकी ओर गये तो वहां यह ब्राह्मणपुत्र जडभरतजी एक निराली भांतिसे खडे होकर अर्थात् वीरासनसे मृग शूकरादिकोंसे, खेत रखाते थे, ऐसा उन अनुचरोंने देखा॥ १३॥ और उसका देख सुलक्षण समझ, यज्ञमें बलिदान देनेके योग्य जान परस्पर कहनेलगे कि इससेही हमारे स्वामीका कार्य पूरा हो जायगा । इस कारण हर्षसे प्रफुल्लित बदन होकर उन जडभरतजीको पकड कर

तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावंतो निशि निशीथसमये तमसाऽऽवृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान्वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमंगिरःप्रवरसुतमपश्यन् ॥ १३ ॥ अथ त एतमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चंडिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः॥ १४॥ अथ पणयस्तं स्वविधिनाऽभिषिच्याऽहतवाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवंतं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयांकुरफलोपहारोपेतयाँ वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदंगपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥ १५ ॥ अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमंत्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥ १६ ॥

देवीके मंडपमें ले गये॥ १४॥ उसके पीछे चोरोंने अपने विधानके अनुसार जडभरतजीको स्नान कराके नयें कपडे पहराये और गहने, व सुगन्ध युक्त मालायें पहरा तिलक आदि लगा अच्छा सजाया, फिर भोजन कराके; धूप, दीप, फूल, हार, चावल, नवीन पत्तोंकी कोंपल और फलादि उपहार दे पूजा करके संगीत, स्तोत्र और मृदंग, व ढोल आदि बडे बडे बाजोंके साथ उनको भद्रकालीके समीप ला, शिर झुकाकर बिठलाया॥ १५॥ उसके पीछे तस्करराजका पुरोहित कर्मकरानेमें जो नियुक्त था, उसने इस पुरुषरूप पशुके रक्तासवसे भद्रकालीको प्रसन्न करनेके लिये देवीके

उनसे खेलने लगीं॥१७॥१८॥ श्रीशुकदेव मुनि बोले कि,हे राजा परीक्षित्! इनसब तस्करोंकी ऐसी दुर्गतिका होना कुछ विचित्र नहींहै। क्योंकि बडे पुरुषोंके साथ अत्याचार करनेसे वह इसी प्रकार बहुधा अपने आपही बुरे पुरुषोंका बुरा होजाया करताहै, यह निश्चय जानो ॥१९॥ हे विष्णुदत्त परीक्षित्! जो सब पुरुष भगवत्की उपासना करनेवाले परमहंसहैं,उनकी देह आदिमें आत्मभावरूप हृदयग्रंथि छूटजातीहै और वह सब प्राणियोंके मित्र आत्मस्वरूप होजाते हैं। उनका कोई शत्रु नहीं रहता स्वयं भगवान् सावधान होकर कालचक्ररूप प्रधान आयुधसे उन्हीं भावोंमें अर्थात् भद्रकाली इत्यादि रूपोंमें सदाही अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं इससे जहांपर किसी प्रकारके भयकी संभावना नहीं है उन

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति ॥ १९ ॥ न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रंथीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवता अनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे जडभरतोपाख्याने बलिदानवैपरीत्यं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच॥अथ सिंधुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननांगो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स ह महानुभावः ॥ १ ॥

भगवान्के चरणारविन्दोंकी जो कोई शरण आते हैं उनका यदि शिरभीं कटे तोभी वह बिनासंभ्रमके रहैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है और उनसे परमेश्वर भी प्रसन्न रहते हैं और यह कहते हैं * ॥२०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां जडभरतस्य बलिप्रदानान्मुक्तत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–भरतपालकी तर दिये, रहुगण दश अध्याय। सुन उत्तर निज वचन रहु, उतर गहे निजपाय ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! किसी समय एकदिन सिन्धु और सौवीर देशका राजा रहूगण पालकी पर चढ़ाहुआ कहींको जा रहा

---

*भजन–जो कोइ चित्तसे मोहिं न बिसारे, मैं न बिसारूं प्रण है यही मेरा ॥ धर्मप्रियहो धर्म बढाऊं सफल कार्य कर अर्थ जताऊं॥ मुक्ति चहै तो पार लगाऊं, छिन पल माँहिं न लागत बेरा ॥७॥ हरूँ,चिन्ताको टारूं, अभय करूं शत्रुनको मारूं ॥ निर्भयकर जन वेग उबारूं, सेवा करूं आप बन चेरा ॥ २ ॥ भक्तहेतु नर देह धरतहूं संकटमाहिं सहाय करतहूं ॥ असुरमार भूमार हरतहूं, भक्तन हृदय करत नित डेरा ॥ ३ बलिके द्वार रहूं नित ठाढो, द्रुपदसुताके अंबर बाढो ॥ बूडत गजको जलते काढो, भक्तनको नित करत निबेरा ॥ ४ ॥

मंत्रसे अभिमंत्रित की हुई तीक्ष्ण कराल करवाल ग्रहण की॥१६॥इन सब तस्करोंका स्वभाव रजोगुण और तमोगुणसे पूर्णथा और उनलोगोंका
धन मदके कारण मर्य्यादा रहित हो गया था,इसलिये वह लोग भगवान्की कलायुक्त ब्रह्मकुलका अपमानकर अपनी इच्छानुसार उलटे मार्गपर
चले, इस कारण यह लोग भयंकर कार्य करनेमें लगे, परन्तु भद्रकाली देवी क्या उनकी:पूजा ग्रहण कर सकतीहैं ? वह पहिलेही मूर्तिको परित्याग
करके बाहर निकल आईं ? समझो कि जो ब्रह्मर्षिकी संतान किसीसे वैरभाव न रखनेवाले, सब प्राणियोंके मित्र, आपत्काळके समय लौकिकी
हिंसामें भी जिनके मारडालनेकी आज्ञा नहीं होसकती, उनका शिर काटकर बलिदान होना, देवीजी सामने रहकर नहीं देख सक्तीं । सो इस
बातकी तय्यारी होते देखकरही देवीजीका शरीर असह्य ब्रह्म तेजसे बहुतही जलने लगा इस कारण उन्होंने प्रतिमाका त्याग किया अधिक करके

इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरंविहरतां
हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालंभनं
तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसा अतिदुर्विषहेण दंदह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥ १७ ॥ भृशममर्षरोषावे
शरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हंतुकामेवेदं महाऽट्टहासमतिसंरंभेण विमुंचंती
तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णां गलात्स्रवंतमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपा
नमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च ॥ विजहार च शिरः कंदुकलीलया ॥ १८ ॥

देवीजीकी शरीरमें दाह होनेके कारण उनमें अतिशय क्रोध और वेग आगया, इस वेगके कारण उनकी भ्रुकुटी और कराल डाढ़ें अरुण वण
नयन भयंकर होगये वह मानो जगत्का नाश कर डालेगी,इसप्रकारके भावसे क्रोधमें भरकर घोरतर शब्द:सहित ठठाय ठठाय हँसने लगीं ।
और उन पापात्मा दुष्ट तस्करादिकोंके ऊपर झपटकर उनकेही खड्गसे उन लोगोंका शिर काटलिया,शिर कट जानेसे उन सब तस्करोंके गलेसे
जो अतिगरम आसवतुल्य रुधिर निकलने लगा उसको अपनी योगिनी भूतनी पिशाचिनियोंसहित जगदम्बाजीने पानकिया ।इतना पिया कि
विह्वलहोकर अपने पार्षदों सहित ऊंचे स्वरसे गाकर नृत्य करने लगीं और उन मृतक तस्करोंके मस्तकोंको गेंदके समान उछालउछालकर

था । उनका बडा प्रधानबाहक इक्षुमती नदीके तीर उपस्थित होकर जब कि और कहारोंको ढूँढ़ताथा तब भाग्यने लाकर इन्हें आगे करदिया, इस प्रकारसे उस राजाके प्रधान कर्मचारी कहारोंके जमादारने द्विजवर जडभरतजीको वहां देखा । वह इनको देखकर मनहीमन कहने लगा कि, मनुष्य बडा लम्बा चौडा और हृष्ट पुष्ट दृष्टि आता है सो ऐसा जान पडताहै कि यह मनुष्य बैल, अथवा गधेके समान बोझ ले चलनेमें

यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां शिबिकां रहूगण
उपधार्य पुरुषानधिवहत आह ॥ हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुद्यत यानमिति ॥ २ ॥

समर्थ होगा, इस प्रकारसे विचार करके वह जिन सब कहारोंको बलात्कार पकडकर पालकी लिवाये जाता था उनके ही साथ, जडभरतजीको भी पकडकर पालकीमें लगा दिया, महात्मा भरतजी यद्यपि पालकी उठानेके अयोग्य थे, तथापि और दूसरे कहारोंके संग पालकीको उठाकर ले चले ❋ ॥ १ ॥ किसी जीवकी हिंसा न होवे इस निमित्त भरतजी आगेके बाण छोडनेसे वह जितनी दूर जाकर गिरता, उतना स्थान

---

* **शंका**– राजा रहूगणने पालकी चलनेवाले आठही कहार क्यों लिया क्या और पालकी लेचलनेवाले नहीं थे ? जो राजा होकर एक आदमी अधिक नहीं रक्खा. जो गूँगा कुछ बात कहै तो लोगोंको आश्चर्य ज्ञात होताहै, ऐसे यहभी आश्चर्य है, क्योंकि बडाही दरिद्री और जो लोभीभी राजा होगा उसके यहांभी पालकी ले चलनेवाले कहार बहुत होंगे, फिर क्या कारण जो रहूगणके यहां कहार एकभी अधिक नहीं था कि, जो एक कहारके हारजानेसे पालकी जंगलमें पडीरही । जब दूसरे मनुष्यको पकडकर मँगाया तो पालकी चली यह बडे आश्चर्यकी बात है !

उत्तर–राजा रहूगणके यहां सहस्रों कहार पालकी लेचलनेवाले थे. एक हारगया तो दूसरा उपस्थित था और वह भी हारा तो तीसरा उपस्थितथा; इसी प्रकार अनेक कहार पालकीमें लगाये परन्तु भरतके मुखारविन्दसे राजाको ज्ञान प्राप्त होना लिखा था इसलिये जिसके पालकी लेचलनेकी आज्ञादीजाय वही दुःखी होजाय सात आदमी तो अच्छे रहैं उनमेंसे एक मनुष्य दुःखी होय राजाने अनेक उपाय किये परन्तु सात कहार तो सुखी रहैं आठवां दुःखी होजाय, पालकीमें कन्धा दिया और कहारको रोगने ग्रसित किया और राजाको तीर्थके जानेकी अत्यन्त शीघ्रता थी इसलिये जब पालकी चलनेके लिये कोई कहार शेष नहीं रहा, तब और मनुष्यका अनुसरण किया. दैवयोगसे जिडभरतमिल गये इसीलिये विघ्न होताथा सो काम होगया इसीलिये दूसर पुरुषका अनुसरण किया था. राजा कुछ दरिद्री और कंगाल नहीं था ॥

देखकर तब आगेको चरण धरते थे, उनके इसप्रकार चलनेसे सब कहारोंकी एकप्रकारकी चाल न हो सकी और पालकी टढी होकर गिरनेको हुई तो रहूगण राजाने इसको देखकर वेगारी कहारोंसे तर्जगर्ज कर कहा कि अरे ! तुम पालकी बराबर क्यों नहीं चलाते हो ? टेढी क्यों हुई जाती है ॥ २ ॥ कहार लोग राजासे तर्जन सहित बचन सुनकर दंडके भयसे शंकित हुए और विनय करके सब वृत्तांत कहने लगे ॥ ३ ॥ कि हे नरदेव ! हमारी असावधानता नहीं है हम सब तो आपके आज्ञानुकारी होकर भली प्रकार पालकीको लेकर चलते हैं। यह मनुष्य जो इस मुहूर्तहीमें पकडकर लाया गया है यह शीघ्र नहीं चलता और इसके साथमें हमभी नहीं शीघ्र चल सकते । राजा रहूगण कहारोंके यह वचन सुनकर राजाको निश्चय हुवा कि सत्यही एक मनुष्यके संगसे संगी लोगभी दोषी हो सकते हैं। यद्यपि यह राजा वृद्धोंकी सेवा करने वाला था, तो भी स्वभावके बश होनेसे उसको कुछे एक क्रोध आगया रजोगुणसे आच्छन्नबुद्धि होकर राखसे ढकी हुई अग्निके समान जिसका ब्रह्मतेजका हुवा था, उन जडभरतजीको धिक्कार देकर उपहासके बचन बोला ॥ ४ ॥ ५ ॥ अहह ! भाई भरत ! हमको निश्चय बोध होता है कि तुम बहुत थकगये हो अकेले बहुत दूरसे पालकी उठाकर लाये हो तुम्हारी शरीर बडा दृढ नहीं है और तुम्हारे आगेभी पुष्ट नहीं है तुमको बुढ़ापा

अथ त ईश्वरवचः सोपालंभमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छंकितमनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥ ३ ॥ न वयं नरदेव प्रमत्ताभवन्नियमानुपथाः साध्वव वहामः ॥ अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढमु ह वयं पारयाम इति॥४॥ सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसाऽवृतमतिराह ॥ ५ ॥ अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रांतो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान् सुचिरं नातिपीवा न संहननांगो जरसा चोपद्रुतो भवान् सखे नो एवापर एते संघट्टिन इति बहुविप्रलब्धोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहंममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥ ६ ॥

तो नहीं आगया है? क्योंकि यहसब मनुष्य तेरे साथी नहीं हैं? रहूगण गर्वित होकर इसप्रकारसे तर्जन गर्जन करता हुवा हँसीके वचन कहने लगा सो भरतजीने उसको कुछ उत्तर न दिया । मौनी होकर पहलेकी समान पालकीको लेजाने लगे।हे राजन्! भरतजीके मौनी होनेका कारण यह है कि, वह ब्रह्मस्वरूप होनेसे अपने चरम कलेवर, जिसमें भूतइंद्रिय कर्म (पाप पुण्य) और अतःकरण अविद्याद्वारा रचित हुवा था, उसमें " मैं और मेरा " इस प्रकारके मिथ्या ज्ञानका भरतजीने त्यागकर दिया था ॥६ ॥ इस प्रकार जड भरतजी पालकीमें जुडे जाते थे, तब इतनेहींमें वह पालकी फिर टेढी हुई। तब रहूगण अत्यन्त क्रोध करके बोला कि, अरे यह क्या? क्या तू जीता हुवा मृतक तुल्य है तू मेरी आज्ञाका अपमान करता है? अरे? हमको तू अपना स्वामी नहीं समझता, तू बडा मतवाला रह है तो सही, यम जिस प्रकार प्राणिसमूहको शिक्षा देते हैं,

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः॥किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दंडपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥७॥ एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसाऽनुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पंडितमानिनं स भगवान्ब्राह्मणोब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिः स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह॥८॥

३९७

वैसेही हम तुझ इस मतवालेपनकी शिक्षा करेंगे ॥जिससे तू अपने आप अपने स्वभावको प्राप्त होगा ॥७॥ हे राजन्! इस प्रकार रहूगण राजा अपनेको नरदेव और पंडित समझता था और इस बातका उसको अभिमान भी था, इस कारण रजोगुण और तमोगुणके बढे हुए मदमें मत्त होकर इसप्रकार अनेक असंगत वचनोंसे भगवान् वासुदेवके प्रियभक्त भरतजीका तिरस्कार किया । वह भरतजी जो सब प्राणियोंके मित्र सुहृद् और आत्मा तथा परब्रह्मस्वरूप ब्राह्मण हुये थे, वह गर्वको त्यागे हुये कुछेक हँसे । हे परीक्षित् ! योगेश्वर लोगोंका आचार किस प्रकार होताहै ? इस बातको रहूगणकी बुद्धि नहीं जानती थी, इसी कारणसे भरतजीका उसने ऐसा तिरस्कार किया ? कुछेक हँसकर

भरतजी रहूगण राजासे बोले कि॥८॥ हे वीर ! तुमने उपहास करके जो कुछ कहा वह सब मिथ्या नहीं है। यदि जो वहनकर्ताका कोई भार होवे और वह भार यदि उठानेवाली देहको लगता होवे और उसके साथ मेराभी कोई सम्बन्ध होवे तो ऐसा होनेसेभी इस समय भार न रहनेके कारण तुम्हारे यह वचन विरुद्ध होसकते हैं, परंतु हमसे इस विषयका कुछ सम्बन्ध नहीं है। इस कारण जो जो कहा, वो मिथ्या व असंगत नहीं है परंतु तुमने हमको "स्थूल नहीं" यह जो वचन कहा, ऐसा वचन पंडित जन चेतनके लिये कभी नहीं कहते, मूर्ख लोगही कहा करते हैं। क्योंकि इस प्रकारका वचन शरीरके ही ऊपर लगसकता है, आत्माके ऊपर कभी नहीं लगसकता, इस कारण यह शरीर पुष्ट है, कुछ मैं पुष्ट नहीं हूँ ॥ ९ ॥ और दूसरे जो पुरुष देहके सहित उसके अभिमान द्वारा जन्मा होवे, उसको ही मोटापन, दुर्बलापन, आधि, व्याधि, क्षुधा, तृषा, भय, क्लेश, इच्छा, जरा, निद्रा, रति, क्रोध, शोक, भय और अहंकारजनक मद उत्पन्न होता है। सो हमको देहाभिमान नहीं इसलिये इनमेंसे हममें कुछ भी नहीं है ॥ १० ॥ हे राजन्! और तुमने जो हमको जीवित मृतक कहा, इसमें यह कहना है कि, कुछ हमही जीवन्मृत नहीं हैं, सब संसारही जीवन्मृतक है। विकारी अर्थात् परिणामशील पदार्थमात्र ही जीवन्मृतक दृष्टि आते हैं, और विकृत सब ही पदार्थोंका आदि और अंत है और तुमने जो हमसे कहा कि "स्वामीकी आज्ञाका निरादर करता है" सो इसके विषयमें यह कहना है कि, जिस स्थलमें आपका वह स्वामीभाव अविचल होवे, उस स्थानमेंही आदेश करना, और मेरा कर्म करना युक्त होसक्ता है ? नहीं तो तुम्हारा राजध्वंस होगया, और हमारा राज्य हुआ तो इसके वीपरीत होनेका संभव है। अर्थात् हम आज्ञा करें और आपको

ब्राह्मण उवाच ॥ त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ॥ गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥ ९ ॥ स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड् भयं कलिरिच्छा जरा च ॥ निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मे न संति ॥१० ॥ जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यंतवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ॥ स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥ ११ ॥

रहूगण राजा हृदयकी गांठको तुड़ानेवाले और अनेक अनेक योगके ग्रन्थोंके अनुसरण करने वाले, भरतजीके यह वचन सुनकर पालकीसे उतर पडा. उत्तम श्रद्धा उत्पन्न होनेसे तत्त्व जिज्ञासामें उसको अधिकार प्राप्त हुवा; इस कारण "मैं राजा हूँ" इस गर्वको त्यागकर, मुनिवर भरतजीके चरणकमलोंमें गिरकर अपना अपराध क्षमाकराकर कहने लगा॥१५॥हे ब्रह्मन्! आपके कन्धेमें यज्ञोपवीत देखताहूँ, क्या आप ब्राह्मणोंमेंसे कोई हैं? वा आप दत्तात्रेयादिकोंमें कोई अवधूत हैं? आप क्यों गुप्त भावसे फिरतेहैं? आप किसके पुत्रहैं? कहां आपका निवास स्थान है? आप यहांपर किस कारणके आयेथे? यदि हमारे मंगल करनेके लिये आनाहुवा हो तो, क्या आप शुक्लमुनि अर्थात् कपिलदेवजी तो नहीं हो?॥ १६ ॥ हे योगिन्! मैं देवराज इन्द्रके वज्रका भय नहीं खाता, महादेवजीके शूलसे भी शंका नहीं करता, और यमदण्ड देखकर भी मैं नहीं डरतां, अग्निके

कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ॥ कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥१६॥नाहं विशंके सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दंडात् ॥ नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छंके भृशं ब्रह्मकलावमानात् ॥ १७ ॥ तद् ब्रूह्यसंगो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ॥ वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमं ते मनसाऽपि भेत्तुम् ॥ १८ ॥ अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ॥ प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्साक्षाद्धरिं ज्ञानकलाऽवतीर्णम् ॥ १९ ॥

कोपसे, सूर्यके तापसे, पवनके वेगसे, कुबेरके पाशसे और सोमके अस्त्रसे; मैं इतना भय नहीं मानता. परन्तु ब्राह्मणजातिका अपमान होनेसे मैं बहुतही डरता हूँ ॥ १७ ॥ इस कारण आपसे जो प्रश्न किया, उसका उत्तर दीजिये?॥यद्यपि आप अपने विज्ञानरूपका प्रभाव छिपाकर संगको छोड जडकी समान फिरते हैं, तथापि मेरे निकट आपकी अनन्त महिमाका प्रकाश होताहै। क्योंकि आपने योगसे गुँथे हुये जो समस्त वचन कहे, सो मैं मनसे भी उन वाक्योंका अर्थ प्रकाश करनेको समर्थ नहीं हूँ॥१८॥हे ब्रह्मन्! आपके मुखसे यह वचन सुनकर ज्ञानके विषयमें कुछ प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा होती है इसलिये महायोगेश्वर और आत्मतत्त्वके जाननेवाले मुनियोंमें प्रधान और ज्ञानशक्तिसे अवतीर्ण. साक्षात् हरि कपिल मुनि

कार्य करना पडे ॥ ११ ॥ यद्यपि जबतक तुम राजा हो तबतका अपने आपको स्वामी कहसक्ते हो, तोभीएकमात्र व्यवहारके अतिरिक्त उसमें विशष बुद्धिका थोडा भी अवकाश दृष्टि नहीं आता, क्योंकि प्रभु कौन है ? प्रभुता क्या है ! सो जो कुछ हो यदि तुम अपने आपको प्रभु होनेका अभिमान रखते हो तो हे राजन् ! आज्ञादो कि तुम्हारा क्या कार्य कर ? हे राजन् ! तुमने जो हमको कहा कि " तू उन्मत्त है" तेरी दवा करते हैं तब फीरतू अपने स्वभावको प्राप्त होजायगा. इस बातमें हमको इतनाही कहना है कि हम उन्मत्त वा मत्त अथवा जडतुल्य हो तो रहेहैं, सत्य है परन्तु वास्तवमें हम ब्रह्मभावको प्राप्त होगये हैं, तुम उपाय करके दंडही दो, अथवा शिक्षाही दो: उससे हमारा कुछ नहीं बनता बिगडता, क्योंकि हम जीवन्मुक्त जीवन हैं युक्त हैं, हमारा अर्थ वा अनर्थ कुछ भी नहीं होसकता और यदि हमको तुम जीवनयुक्त नहीं जानते और बौरा, बावला, समझते हो यदि तुम्हारे मतके अनुसार हम वैसेहीहों, तोभी हमको दण्ड देना, शिक्षा करना, पिसे हुयेको दुबारा पीसना है क्योंकि वास्तवमें जड स्वभाववाले मनुष्य शिक्षा पाकर भी चतुर नहीं होसक्ते ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! शांत शील वह मुनिवर जडभरतजी इस प्रकारसे रहूगण राजाके वचनोंका उत्तर दे, पूर्व जन्मके कर्म जो प्राप्त हुए थे, उनको भोग कर, प्रारब्ध कर्मोंका क्षय कर चुकाथा पूर्ववत् इस राजाकी पालकीको लेकर चलने लगे। देहमें आत्मबुद्धिके कारण जो अविद्या है, उससे वह छूटगये थे, इसलिये पालकी उठानेमें उन्होंने कुछ क्लेश वा अपमान नहीं समझा ॥ १४ ॥ हे पाण्डवेय परीक्षित् ! सिंधु और सौवीर देशका अधिपति, यह

विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्यामि यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ॥ कईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते॥१२॥उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ॥ अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन्राजयानमपि तथोवाह ॥ १४ ॥ स चापि पांडवेय सिंधुसौवीरपतिरतत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाऽधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रंथिविमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रंथसंमतं त्वरयाऽवरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन्विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥ १५ ॥

जो आप हैं. सो आपको गुरु करके "इस संसारका निस्तार क्याहै" यह बूझनेको प्रवृत्त होता हूँ और हे नाथ! इसी कारण मैं आपके पास जाता था ॥१९॥ हे प्रभो! मैंने जिस प्रकारसे वर्णन किया, आप वैसेही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, सो कदाचित् लोगोंके देखनेके वास्ते अपने चिह्न गुप्त करके आप घूमते हैं! हाय! घरमें फँसे मन्दबुद्धि लोग किसप्रकार आपसे योगीश्वरोंकी गति देख सकतेहैं ॥२०॥ हे प्रभो! आपने पहले जो मेरे वचनोंके उत्तर दिये सो मुझको ठीक ठीक नहीं जान पडते, आपने कहा कि "हमको श्रम नहीं होता" यह बातभी मेरी समझमें नहीं आती, भला यह किस प्रकारसे हो सकता है? कि जो पुरुष किसी कार्यको करता है तो उसके करनेसे श्रम उसको अवश्यही होता है. जब कि मैं अपने राज्यकी और युद्धादिककी क्रिया करता हूँ तो उसका श्रम अवश्यही मुझको होता है। जब कि मैं अपने प्रभुत्व और युद्धादि क्रिया करनेके समय श्रम देखता

स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिंगो विचरत्यपि स्वित् ॥ योगेश्वराणां गतिमंधबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहा
नुबंधः ॥ २० ॥ दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै भर्तुर्गंतुर्भवतश्चानुमन्ये ॥ यथाऽसतोदानयनाद्यभावात्समूल इष्टो
व्यवहारमार्गः ॥ २१ ॥ स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तंडुलगर्भरंधिः ॥ देहेंद्रियास्वाशयसन्निकर्षात्त
त्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥ २२ ॥

हूँ, तब सहजसेही अनुमान होता है कि आपकोभी भार ले चलनेसे श्रम हुआहै। दूसरे आपने कहा कि "एक मात्र व्यवहारके सिवाय और कुछ दृष्टि नहीं आता" हे ब्रह्मन्! यह वार्ता भी संगत नहीं होसक्ती। इस कारण व्यवहार विषय(संसार) झूंठा है। ऐसा समझ नहीं पडता, बरन् सत्यसा समझ पडता है, क्योंकि जो घटादिपदार्थ मिथ्या हों तो उनसे किस प्रकार जलादि लानेके कार्य होसकें? ॥ २१ ॥ और आपने जो कहा कि "सुख दुःखादि केवल देहके धर्म हैं सो वास्तवमें हमारे नहीं हैं"। इस बातसे भी मेरे मनमें यह संशय होता है कि, यह सब शरीरका धर्म होनेपर भी सत्य क्यों न होगा? क्योंकि देखता हूँ कि, तौलीको आगेके ऊपर चढ़ा देनेसे, उस तौलीके तापसे उसके बीचमेंका दूध तप्त अर्थात् गरम होता

है। उस दुग्धादिके उत्तापसे उसमेंके पडे हुए चावलोंका बाहिरी भाग तप्त होताहै। फिर बाहिरीभागके उत्तापसे चावलका मध्यभाग पकजाता है। यह बात सब प्रकारसे यथार्थ है,किसी भांति मिथ्या नहीं, इस कारण परस्परके अग्निसम्बन्धसे जिस प्रकार चावल पकजाते हैं वैसेही देह, इंद्रिय, प्राण और मन यह सब शरीरधर्मकी अनुवृत्तिके द्वारा पुरुष संसारमें लग जायगा, इसमें क्या असम्भव है? बस गरमी आदि पडनेके हेतु शरीरको सन्ताप हुवा उससे सब इन्द्रियोंको, उससे प्राणोंको फिर उससे जब कि मनका सन्ताप पाना दृष्टि आता है,तब देह स्थूल होनेपर भी परस्परताके कारण आत्मा क्यों नहीं स्थूल होगी? ॥ २२ ॥ और आपने जो कहा कि स्वामीभाव नित्य नहीं है. यह सत्य है. परन्तु अनित्य होनेपर भी जब जो पुरुष राजा होता है तब उस समय तो वह प्रजाका शासन और पालन करताही है। दूसरे आपने कहा कि "असावधान लोगोंको शिक्षा देना, पिसेको पीसना" अर्थात् निष्फल श्रम करना है यह भी मुझको ठीक नहीं जँचता, क्योंकि जो पुरुष भग

शास्ताऽनुगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किंकरो वै न पिनष्टि पिष्टम् ॥ स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥ २३ ॥ तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ॥ कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबंधो यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥ २४ ॥

वान्के दास होते हैं वह कभी निष्फल कर्म नहीं करते अर्थात् जड पुरुषको शिक्षा देनेसे यद्यपि उसकी जडतासे दूर नहीं किया जा सक्ता, तथापि सबोंका शासन करनेवाले, परमेश्वरकी आज्ञा पालन करनेसे, उस जडके लिये यत्न करना विफल नहीं होता, परमेश्वरकी आराधना करना ही राजाका धर्म है। आज्ञा पालन करनेके द्वारा उसके लिये चेष्टा करनेसे पापोंके समूहसे छुटकारा होजाता है ॥ २३ ॥ हे प्रभो! इसप्रकारसे आपकी कहीहुई सभी बातें मुझको अनुचित जान पड़तीहैं। इससे आप अनुग्रह करके मुझपर स्नेह दृष्टि कीजिये! मैंने राजापनके अभिमानसे आप सरीखे साधुपुरुषोंका जो अपमान किया है, सो ऐसा अनुग्रह मेरे ऊपर कीजिये उससे साधुओंके अपमान करनेसे जो पातक

लगता है उससे मेरा निस्तार होजाय ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! आप विश्वसंसारके सगे और सखा हो इसलिये सबमेंही समदृष्टिके हेतु अपनी देहमें भी आपको देहाभिमान नहीं है इससे मैंने जो आपका अपमान किया है, इससे यद्यपि आपको कोई विकार नहीं हुआ है । तथापि मेरे समान पुरुष जो महादेवजीकी समान सामर्थ्य रखते हों, वहभी महात्मा पुरुषोंके अपमानसे शीघ्रही नष्ट होजाते हैं ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणजडभरतसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥ दोहा--बूझो जब जड़भरतसे, निपुण रहूगण राय। परम ज्ञान तब ताहि तिन, कहौं ग्यारहाध्याय ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! इसप्रकार रहूगण राजाके वचन सुनकर जडभरतजी कहने लगे, कि हे वीर ! तुम अविद्वान् होकरभी विद्वान् लोगोंकी बातोंकी समान बातें करते हो परंतु हमको जान पडता है कि, तुम श्रेष्ठ विद्वान् नहीं.

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ॥ महद्विमानात्स्वकृताद्धि मादृङ् नंक्ष्यत्यदूरादपि शूल
पाणिः ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवते महापु० पंचम० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अकोविदः कोविदवाद
357 वादान्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ॥ न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनंति ॥ १ ॥तथैव राजन्नुरुगार्हमेध
वितानविद्योरुविजृंभितेषु ॥ न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः॥ २ ॥

क्योंकि तुम स्वामी भृत्यादि लौकिक व्यवहारको अम्लाने मुखसे सत्य कहते हो, पंडित लोग तत्त्वविचार करके कभी इस प्रकारसे नहीं कहते, बस तत्त्वका विचार न करनेहीसे स्वामी भृत्यादिका व्यवहार प्रगट होता है, इससे वह सत्य नहीं है ॥ १ ॥ हे राजन् ! दूसरे संसारी स्वामी भृत्यादिके व्यवहारके समान वैदिक कर्मकाण्डका व्यवहार भी सत्य नहीं है, कि जिन सब वेदवचनोंमें अनेक अनेक गृहसंबंधी यज्ञोंको विस्तार विषयक विद्याओंके प्रतिपादक हैं, परंतु उनमें शुद्ध अर्थात् हिंसादि रहित और साधु रागादि रहित तत्त्ववाद प्रायः निश्चितरूपसे नहीं प्रकाशता, परंतु जो कर्म करै वह नारायणार्पण करदे तो अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और अन्तःकरण शुद्ध होनेसे परमार्थ फलरूप तत्त्वज्ञा

---

१ "क्योंकि जिसने परमेश्वरके भक्तोंको सताया उसने उसका फल तत्कालही पाया, देखो ! हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके संग अत्याचार किया भगवान्ने उसके बदलेमें उसके प्राण लिये, दुःशासनने द्रौपदीके साथ अधर्म किया, भीमसेनने उसके बदले रुधिर पिया, सब महात्मा पुरुषोंका यही वचन है कि, भक्तोंका सताना किसीप्रकार अच्छा नहीं है" ॥

नका हेतु होजाता है ॥ २ ॥ तथापि वेदांत सुनेहुए किसी किसी पुरुषोंकी कर्ममें प्रवृत्ति देखी जाती है। वह कुछ वैदिक धर्मकी सत्यता प्रमाण नहीं हो सक्ती, क्योंकि जिस प्रकार स्वप्नका सुख दिखाया और अनित्य होनेसे त्याग करनेके योग्य है ऐसेही गृहस्थीका सुखभी दृश्य और अनित्य होनेसे अग्रणीय है, ऐसा जिसनें मनमें निश्चय न किया उस पुरुषको वेदान्तके वाक्य यद्यपि वह तत्त्वज्ञानके अर्थ बहुत श्रेष्ठ हैं तोभी उसको तत्त्वज्ञान नहीं देसकते ॥३॥ हे राजा परीक्षित् ! रहूगण राजानें प्रपञ्चके जगत्को जो सत्य कहा था, विप्ररूप योगीवर जडभरतजीने इस प्रकार उसके वाक्योंको खण्डन किया और फिर उसकी कही हुई संसारकी नित्यता खंडन करनेके लिये बोले हे वीर ! जबतक पुरुषका मन रजोगुण सतोगुण और तमोगुणके वश रहता है तबतकही वह निरंकुश रहकर ज्ञानेंद्रियोंसे और कर्मेंद्रियोंसे धर्म अधर्मका विस्तार किया करता

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन् ॥ स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥ ३ ॥ यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम् ॥ चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरंकुशं कुशलं चेतरं वा ॥४॥ स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ॥ बिभ्रत्पृथङ् नामभी रूपभेदमंतर्बहिष्टं च पुरैस्तनोति ॥ ५ ॥ दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ॥ आलिंग्य मायारचितांतरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः॥ ६ ॥

है ॥ ४ ॥ और यह मनही पाप पुण्यकी वासना युक्त है। और वही आत्माके शरीर धारण करनेंका हेतु आत्मस्वरूप है, इससे यह सब विषयोंमें रंगजाता है, उससे विषयोंके द्वारा चलायमान और विकृत अर्थात् कामादि परिणामयुक्त होजाता हैं, परंतु यह मन पंचमहाभूत और इंद्रियोंकी सोलह कलाओंके बीचमें मुख्य है वहही अलग २ नामसहित पशु पक्षी आदि विशेष विशेष देह धारण करता है और उन देहोंके कारणोंसेही आत्माकी श्रेष्ठता वा नीचता प्रगट हो जाती है ॥ ५ ॥ दूसरे यह मन संसारचक्रके छलसे मायाद्वारा शरीरोंकी रचना करके अपनी आत्माको आलिंगन करता हुवा सुख, दुःख अथवा मोह जो अपने कर्मकी काल प्राप्तिका अनिवार्य समय है उसकोभी सर्वप्रकार सृजन करता है,

यह मनही जीवको अनेक प्रकारकी उपाधि करताहै,इससे यही जीवको अपने भीतर मिथ्या अध्यात्म कराकर"मैं ही मनहूँ"इसप्रकार दरशाकर भवसागरकी लहारोंमें ग्रामकंटककी नाईं छलकर इधर उधर घूमा करता है ॥६॥ इसलिये जबतक मन रहताहै,तबतक जाग्रत् स्वप्नरूप व्यवहार प्रकाशमान होकर सदा क्षेत्रज्ञ जीवका दृश्य होता है, इस कारण पंडित लोग इस मनकोही गुणोंके अभिमान करनेका रूप अधमता देनेवाला, यह मनही है । ऐसा भी विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ७ ॥ प्राणियोंका मन गुणमें अनुरागी रहनेहीके कारण वह व्यसनका निमित्त होताहै । अर्थात् जीवको जन्म मरणादिका कष्ट देता है । और जब वही गुणहीन हो जाता है, तब वही कल्याणको देताहै,जैसे दीप घृत और बत्तीको जलाता रहे, तबतक उसमेंसे धूमयुक्त शिखा निकलती रहती है, किन्तु दूसरे समय जब कि घृत निपट जाताहै तब वही दीपक बुझकर तेजरूप धारण करताहै

तावानयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ॥ तस्मान्मनो लिंगमदो वदंति गुणागुणत्वस्य परा वरस्य ॥ ७ ॥ गुणानुरक्तं व्यसनाय जंतोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ॥ यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नञ्छिखाःसधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ॥८॥ पदं तथा गुणकर्मानु बद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥ एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पंच धियोऽभिमानः॥९॥ मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदंति हैकादश वीर भूमीः॥ गंधाकृतिः स्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ॥ १० ॥

इसी प्रकार मनभी जब गुणकर्मोंमें लगा रहता है, तबही अनेक प्रकारकी वृत्तियोंका आश्रय करताहै और वही मन जो गुण कर्मोंसे अलग रहै, तो तत्त्वरूप हो जाताहै ॥ ८ ॥ हे राजन्!सब वृत्तियें एकादश प्रकारकी होतीहैं,उनमें पांच क्रियाकार,और पांच ज्ञानाकार, और एक अभिमान; पंडित लोग शब्दादि विषय ग्रहणादि कर्म, और पुरको (शरीरको) इन ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंका विषय कहते हैं॥९॥वह सब विषय यह हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह पांच ज्ञानेन्द्रियद्वारा ज्ञानाकार सबकी वृत्तियोंके विषय होते हैं, और कभी ग्रहण,गमन, मलत्याग करना और रमण करना, यह पांच विषय पांच कर्मेंद्रियद्वारा कर्माकार सब वृत्तियोंके विषय होते हैं, और शरीर ग्यारह वृत्तियोंकी भूमि है वह

'मेरा' इसप्रकार भोगायतनत्व रूपमें अभिमानका विषय हो जाता है. कोई कोई कहते हैं कि इसके सिवाय मूढ जनोंकी बारह वृत्तियेंहैं, उनमें भी यह शरीर है शय्या नामग्रहण करके विषय होजाता है. शरीरका नाम पुर है, उसमें जीव अहंकारद्वारा शयन करनेसे पुरुष कहा जाता है ॥ १० ॥ पांच ज्ञानेंद्रियोंके विषय रूप शब्द विसर्गादिक पंच कर्मेंद्रियोंके द्वारा कर्मोकार वृत्तियोंके विषयमें भोगगति करना. शिल्प ग्यारहवां स्वीकार करना कि यह ममकार है, और शय्या अहंकारको बारहवां आचार्योंने कहा है हे राजन् ! पहले कहीहुई ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंका विषय स्वभाव, संस्कार, अदृष्ट और काल इन सबके कारणसे प्रथम शतप्रकार, फिर सहस्र प्रकार, उसकें पीछे कोटानुकोटि प्रकार हो जाती है.

एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥ द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः ॥ सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥ ११ ॥ क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ॥ आविर्हिताःक्वापि तिरोहितांश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ॥ नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययात्मन्यवधीयमानः ॥ १३ ॥

परन्तु इन सबके इस भांतिसे कोटि प्रकार होने परभी यह क्षेत्रज्ञसे ही होतेहैं, और उसकी सत्तासेही सत्ता प्राप्त होती है; परस्परसे अथवा अपने आपसेही नहीं हो जाते मनु जो कि माया रचित जीव अर्थात् जीवोपाधि और अविशुद्ध करता यह सब वृत्तियें उसकी माया हैं, यह सब नित्य हैं। कभी कभी जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें आविर्भूत होती हैं। कभी सुषुप्ति दशामें तिरोहित हो जाती हैं, क्षेत्रज्ञ आत्मा साक्षी हो इन सबको सबही अवस्थामें देखता रहताहै * ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन्! क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है; एक जीव दूसरा ईश्वर, जीवका स्वरूप

---

* **शंका**—राजा रहूगणसे जडभरतने कहा कि मायासे जो बनाया हुवा जीव उसको जितने मनके पदार्थ हैं सो सब होते हैं, उनहीं पदार्थोंको जीव भोगता है, परन्तु भरतने जीवको मायासे बनाया क्यों कहा ? जीव माया रचित नहीं है जीव भगवान्का अंश है परन्तु मायाके वशीभूत हो रहा है, भरतने जीवको माया रचित क्यों कहा !

उत्तर—जो प्राणी जिससे भय मानता है प्राणी अपना त्राण देनेवाला छोटाभी होगा तोभी उसको सबसे बडा करके मानेगा, ज्ञानी पुरुषोंके सन्मुख माया सबसे छोटीहै, परंतु जडभरतको वारम्वार माया

पहले बतला चुके हैं, अब ईश्वरका स्वरूप कहते हैं सो सुनो--वह आत्मा अर्थात् सर्वव्यापी है, पुरुष अर्थात् पूर्ण स्वरूप है । पुराण अर्थात् जीवके कारणभूत है,साक्षात् अर्थात् अपरोक्ष है, परन्तु स्वयंप्रकाश दूसरे उसका जन्मादि नहीं और वहां पर जो ब्रह्मादि हैं उनकाभी प्रभु है, वह नारायण अर्थात् जीव समूह इनके अयन (वास स्थान) और वह भगवान् अर्थात् ऐश्वर्यादि संपन्न हैं । और वासुदेव हैं, अर्थात् सब भूतोंका आश्रय, और अपने अधीनमें जो माया है, उसके द्वारा आत्मामें अर्थात् जीवमें नियामकरूपसे वर्तमान रहते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार वायु प्राण स्वरूपसे देहमें प्रवेश करके सब चराचर प्राणियोंके ऊपर प्रभुताई करता है वैसेही क्षेत्रज्ञ, आत्मा परमपुरुष भगवान् वासुदेव सब जगत्में व्यापक होकर उसके ऊपर प्रभुता करते हैं ॥ १४ ॥ हे नरेन्द्र ! यह शरीर ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे जबतक

यथाऽनिलः स्थावरजंगमानामात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ॥ एवं परो भगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेदम
नुप्रविष्टः ॥ १४ ॥ न यावदेतां तनुभृन्नरेंद्र विधूय मायां वयुनोदयेन ॥ विमुक्तसंगो जितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वं
भ्रमतीह तावत् ॥ १५ ॥ न यावदेतन्मन आत्मलिंगं संसारतापावपनं जनस्य॥यच्छोकमोहामयरागलोभवैरानुबंधं
ममतां विधत्ते ॥ १६ ॥

मायाको नहीं छोडता और सब संगको और छैःशत्रुओंको नहीं जीतलेता और जबतक अपनी आत्माको नहीं जानलेता तबतक संसारमें इधर उधर घूमता फिरा करता है ॥ १५ ॥ दूसरे जबतक इस मनको आत्माकी उपाधिका कारण और संसारके सब तापोंका क्षेत्र जानकर निश्चय नहीं होता तबतक संसारसे छुटकारा नहीं मिलता । हे राजन् ! मनको संसारके तापका क्षेत्र क्यों कहते हैं ? सो सुनो । शोक, मोह, लोभ, रोग; राग, द्वेष इन सबमें संयुक्त होकर मनही ममताको जन्माता है और उससे ही संसारी ताप होता है । इससे मनही सब

–दुःखदेती है जब मायासें भरत डरगये तब सव पदार्थोंको भरतने बडा माना, जडभरतने अपने आपको मायासे दुःखी देखकर मायासे बहुत डरे इसी डरसे जीवको मायाकरके बनाया कहा है क्योंकि उस समय भरत ऐसे मायासे डरे थे कि, अपने मनमें विचारते थे कि, ब्रह्मा विष्णु और महादेव मायासे बडे नहीं हैं. माया सबसे बडी है ॥

संसारी तापोंका क्षेत्र है ॥ १६ ॥ इस कारण तुम अपनें गुरुरूप जो हरि हैं, उनके चरणोंकी उपासना रूप जो अस्त्र हैं, उनको चलाकर सावधान हो इस मनका विनाश करो। हे राजन्! यह मन महापराक्रमी अत्यंत प्रबल शत्रु है, उपेक्षा करनेसे इसकी अति बढोतरी होगी, और यद्यपि वास्तवमें यह स्वयं मिथ्या स्वरूप है, तौभी आत्माको ज्ञान कर सक्ता है। इसलिये इनकी उपेक्षा मत करो *॥ १७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणमनोविजयवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा–बूझो पुनि जड़भरतसों, रहु संशय मन लाय। मेटो सब सन्देह तिन, द्वादशवें अध्याय ॥ १२ ॥ रहूगण बोले कि हे योगीश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी

भ्रातृव्यमेनं तदद‍भ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः ॥ गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम्॥१७॥ इति श्रीमद्भागवते म०पंचम०जडभरतोपाख्यान एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ रहूगण उवाच ॥ नमोनमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ॥ नमोऽवधूतद्विजबंधुलिंगनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥ ज्वरामयार्तस्य यथाऽगदं सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमांभः ॥ कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥ २ ॥

यह देह परमेश्वरकी समान सब लोकोंकी रक्षा करनेहीके लिये है। वास्तवमें आप आत्मास्वरूप अर्थात् परमानंदका प्रकाश करके आपने अपनी देहको तुच्छ समझा है। हे प्रभो! इस द्विजबंधुके वेषसे आप अपने स्वतन्त्र अनुभवको छिपाकर रखनेवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! ज्वर रोगसे ग्रसित मनुष्यके लिये औषधि जैसे सुखदायक होतीहैं और ग्रीष्मकी लुओंसे दग्ध पुरुषके लिये शीतल जल जिस प्रकार शांत करता है सो ऐसेही मेरे लिये आपके यह सब वचन हुये हैं। इस निन्दनीय कार्यके मदरूप भुजंगने जो मेरी दृष्टिको डसलिया था,

---

* **भजन**–यह मन मायामें लिपटानो, कथा पुराण झूंठ सब समझत कुटुम सत्य कर मानो ॥ १ ॥ बारबार समझावत तूं मैं क्यों हूं भयो दिवानो, झूंठे घरको सत्य बतावत सांचों गेह भुलानो ॥२॥ अबहूं समझ नाहिं कछु बिगरो, ज्योंका त्यों सब जानों, जब उडजाय पींजराते शुक तब परिहै पछितानो ॥ ३ ॥ चौरासीमें फिरै भटकता कहुं नाहिं लगे ठिकानो, अन्तसमय कोउ होत न साथी यमपुर परिहै जानो ॥ ४ ॥ शालिग्राम काम नहिं आवत अपनो और बिरानो, सब संसार स्वप्नकी माया सांच रामगुण गानो ॥ ५ ॥

सो उस दृष्टिको अब आपके वचनरूपी अमृतकी औषधि मिली ॥२॥ इस कारण जिस जिस विषयमें मुझको संशय है वह तो मैं पीछे आपसे बूझलूँगा, अब पहले जो आपसे वेदान्त,अध्यात्मज्ञान योगमें सुनेहुये वचन कहे, वे सब अति कठिन हैं। मैं उनको कुछभी नहीं समझ सक्ता, सो जिस प्रकार मैं उनको भली भाँति समझसकूं इस रीतिसे आप उनकी व्याख्या कीजिये । इस विषयको जाननेके लिये मेरे चित्तमें अत्यन्त उत्साह होरहाहै॥३॥हे योगीश्वर! आपने जो कहा कि“वहनादि क्रिया और उसका फल श्रम होना इत्यादिक प्रत्यक्ष दीखनेपरभी कुछ नहीं है अर्थात् कारण होनेपर भी यथार्थरूपमें तत्त्व विमर्शनार्थ समर्थ नहीं है” सो इस बातसे मेरे मनमें अत्यन्त भ्रांति होरहीहै ॥४॥जड़भरतजी बोले कि,हे:पार्थिव ! यह सब पृथ्वीका विकारहै;जो पदार्थ पृथ्वीसे उत्पन्न हुआहै कि वह किसी कारणसे पृथ्वीपर चलने लगता है,उसको आपने जन अथवा कहारादि नामोंसे प्रसिद्ध कर रक्खा है और जो स्थिर वस्तु है उसको आपने मृत्तिका वा पत्थर अथवा काष्ठादिक समझ लियाहै,

तस्माद्भवंतं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ॥ अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो
मे ॥ ३ ॥ यदाह योगेश्वर दृश्यमानं क्रियाफलं सव्यवहारमूलम् ॥ न ह्यंजसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन्भ्रमते
मनो मे ॥ ४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अयं जनो नाम चलन्पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः॥ तस्यापि चांघ्र्यो
रधिगुल्फजंघाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥

परन्तु वास्तवमें विचार कर देखिये तो उस जनमें और पाषाणमें कुछ अन्तर नहीं । पाषाण जड होनेके हेतु किञ्चिन्मात्रभी परिश्रम वा भार आदि नहीं उठासक्ता और न उसमें उठानेकी सामर्थ्यहै इसीप्रकार कहारकाभी भार उठाना अथवा परिश्रमादिक कर्म समझाना वृथाहै,उसको भी जड समझना चाहिये,क्योंकि जिस वस्तुको परिश्रम होताहै उसका जो सत्य सत्य निरूपण होसक्ता हो तो निश्चय अपने आपको अथवा औरको परिश्रम होना सत्यभी मान लेना,परन्तु उसका सत्य होनाही असंभवहै,क्योंकि अंगोंके अतिरिक्त अंगोंका निरूपणही किसीप्रकार नहीं होसक्ता,प्रथम यह निश्चय कीजिये कि कहारकी देहमें क्या क्या अंगहैं, देखो! जो पृथ्वीसे उत्पन्न हुवा कहार है उसके पृथ्वीपरही पांवहैं, और पावोंपर गुल्फहै,गुल्फपर जंघाहै,जंघाओंपर जानु और जानुओं पर सांथल,सांथलोंपर मध्यदेश,मध्यदेशपर छाती,छातीपर ग्रीवा और शिरहै

और इधर उधर कन्धे हैं॥५॥कन्धोंके ऊपर कोई अवयव भी हो सो भी नहींहै,उसके ऊपर काठकी पालकी बनीहै, उस शिबिकामें भी कोई अंग नहींहै उसमें सौवीर नाम एक राजा पार्थिव विकार (मट्टीका हुआ) बैठा हुवा देखताहूँ, इस पार्थिव विकारमें ही तुम्हारा आत्माभिमानहै, कि मैं सिन्धदेशका नरेशहूँ और पालकीमें सवारहूँ बस इसीगर्वके मदसे तू अन्धाहोगया॥६॥यह सब बोझा ढोनेवाले मनुष्य अधिक कष्ट भोग करके अतिदीन मलीन तनुक्षीण होरहेहैं। जिनको देखकर चित्त महादुःखी होताहै, उनको तैंने बलात्कार बेगारमें पकड़कर पालकीमें जोताहै, इसकारण तू अतिनिर्दयी और महापापी है और इतनेपर निर्लज्जहो कहता है कि, मैं सबकी रक्षा करताहूँ। ऐसा कहकर जो तू अपनी बडाई करताहै,यह सब मिथ्याहै। तू अतिदुष्टहै,विवेकी जनोंकी सभामें तू शोभाको नहीं पासक्ता॥७॥हे राजन्! ऊपरके अंगोंका भार नीचेके अंगोंको लगताहोगा.

अंसेधि दार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ॥ यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो राजाऽस्मि सिंधुष्विति दुर्मदांधः ॥ ६ ॥ शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्या निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ॥ जनस्य गोप्ताऽस्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥ ७ ॥ यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ॥ तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रिययाऽनुमेयम् ॥ ८ ॥ एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात्परमाणवो ये ॥ अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥ ९ ॥

ऐसा भी निश्चय नहीं होता. क्योंकि जैसे अंगवाले एक पदार्थका निश्चय नहीं होसक्ता, जैसे अंगोंकाभी निरूपण नहीं होसक्ता, इसबातको मैं भले प्रकार जानताहूँ, जब कि पृथ्वीसेही चराचर सब पदार्थोंका नाशऔर उत्पत्ति होतीहै तब पृथ्वी भी अलगका विकार नहीं है, नाममात्रसे अलग है. और कोई वस्तु इन सब व्यवहारोंका मूलहै । और अर्थ क्रिया द्वारा यह ज्ञानमें आवे तो तूही इसको निश्चय कर ॥८॥ इसप्रकार जिसमें पृथ्वी शब्दका व्यवहारहै उसको भी मिथ्या समझना चाहिये । वहभी किसीप्रकार सत्य नहींहै,क्योंकि वहभी अपने कारणीभूत सूक्ष्म परमाणुओंमें लय होजातीहै । हे राजन् । इससे ऐसा मत समझो कि परमाणु सब नित्यहैं हे वीर ! मनसे कार्यकी उत्पत्तिके लिये समस्त परमाणु वादियोंने कल्पित कर लिये हैं । उनके समूहसेही अर्थात् पृथ्वी इत्यादिक समझनेके आश्रयमेंही विशेष विशेष पदार्थ रचेगयेहैं

हे महाराज ! यह प्रपंच भगवान्की मायामें मिला हुआहै इसकारण समस्त परमाणु भी अविद्यासे कल्पित हो सक्तेहैं, परन्तु किसी प्रकारसे यह परमाणु सत्य नहींहै ॥ ९ ॥ हे राजन् ! आत्मामें कभी छोटा कभी बडा कभी सूक्ष्म कभी स्थूल, कभी कार्य कभी कारण और कभी जडताका धर्म देखकर जो दूसरा (द्वैत) देख पडताहै, वह दूसराभी मिथ्या है । द्रव्य, स्वभाव, आशय, काल, कर्म इत्यादि यह सब मूल तत्त्व अविद्याप्रयुक्त हैं इनको तू जान, भला फिर सत्य क्या है ? * ॥ १० ॥ हे महाराज ! विशुद्ध जिसके बाहर भीतर दूसरा कुछभी नहीं है परिपूर्ण अपरिछिन्न और निर्विकार जो ज्ञानहै वही परमार्थ सत्य है । उसी ज्ञानका नाम भगवच्छब्द है उस ज्ञानकोही पंडित लोग वासुदेव कहते हैं ॥ ११ ॥

एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ॥ द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्नाऽजयाऽवेहि कृतं द्वितीयम् ॥ ॥ १० ॥ ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनंतरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ॥ प्रत्यक् प्रशांतं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ ११ ॥ रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ॥ न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥ ॥ १२ ॥ यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ॥ निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥ १३ ॥

हे रहूगण ! वह स्थान जहां परब्रह्म विराजमान है, महत्पुरुषोंकी चरणरजकी सेवा किये विना न तो तपस्यासे न वैदिक कर्म करनेसे, न अन्नादिकका विभाग करनेसे न गृहस्थ धर्ममें रहकर परोपकार करनेसे, न वेदाभ्याससे न जलसे, न अग्निसे, न सूर्यकी उपासना करनेसे किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता । इसकारण बड़े पुरुषोंके चरणरजकी सेवा करनेसेही परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! महान्पुरुषोंमें सदाही भगवान्के गुणानुवादोंकी चर्चा रहती है उनके निकट विषयवार्ताका किंचित्भी संबंध नहीं रहता, उस भगवत्केगुणानुवादकी सदा सेवा

---

* **शंका**—संसारमें जो वस्तु मोटी अथवा पतली, उत्तम वा मध्यम बडी तथा छोटी पाप वा पुण्य, रात वा दिन, हानि वा लाभ, जन्म. वा मरण आदि लेकर जिसको जोडी कहते हैं. वह दोका जोडे हैं वह सब मायाका बना हुआ है. ऐसा बचन रहूगण राजासे भरतने क्यों कहा क्योंकि यह तो सब भगवान्का बनाया है ?

उत्तर—बीज बिना कोईभी जीव जन्म नहीं ले सक्ता, इसीलिये ईश्वरकी आज्ञाको प्राप्त हुई माया, उसीको मुनीश्वर लोग शक्तिभी कहते हैं उस मायासे भ्रम यह है कि, विश्वास किसीका नहीं मानना सोई भ्रम करके यह संसार उत्पन्न होता है इसलिये बडे योगीजन जडभरतने मायासे किया हुआ कहा ॥

करनेसे वही भगवद्गुणानुवाद भगवान्के प्रति मुमुक्षुजनोंको श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करता है अर्थात् भगवत्संबंधी आत्मज्ञान देता है ॥ १२ ॥ हे रहूगण ! संसारका संग तो योगका विनाश करनेवाला है, इसको मैं भले प्रकार जानता हूँ क्योंकि मैं अपनी गति अपने नेत्रोंसे देख चुकाहूँ मैं पूर्व जन्ममें भरतनाम एक राजा था, प्रथमही अनेक दर्शन और श्रवण करनेसे संगके निमित्तका बंधन छूटगया था इस कारण मैं नित्यप्रति भगवान्की आराधना करता फिर दैवात् एक मृगके संग होनेसे मैं मृगत्वको प्राप्त हुआ और मेरा सब स्वार्थ नाशको प्राप्त होगया ॥१४॥ परन्तु हे वीर ! भगवदाराधना भ्रष्ट होजानेपरभी उद्धार करदेती है । मैंने पूर्वजन्ममें जो भगवान्की आराधना की थी उससे उत्पन्न हुई जो

अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसंगबंधः॥आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसंगाद्धतार्थः ॥ १४ ॥ सा मां स्मृतिर्मृगदेहेपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ॥ अथो ह्यहं जनसंगादसंगो विशंकमानोऽविवृतश्चरामि ॥ ॥ १५ ॥ तस्मान्नरोऽसंगसुसंगजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ॥ हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपार मध्वनः ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे ब्राह्मणरहूगणसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

स्मृति, उसने मुझको मृग देहमेंभी नहीं त्याग किया, अर्थात् पहले जन्मकी याद बनी रही ॥ इसकारण लोगोंका संग होजानेके डरसे मैं सबका संग छोडछाँडकर अकेले घूमा करताहूँ ॥ १५ ॥ इसी कारण मनुष्य लोग कुसंग त्याग महापुरुषोंके संगसे ज्ञानरूप खांडा उत्पन्नकर उससे अपने मोहको काट संसारमार्गके परे भगवान् हरिको प्राप्त होसकते हैं, क्योंकि सज्जनोंके सत्संगसे भगवान्के सब कर्म दृष्ट और श्रवणगोचर होजाते हैं ॥ और उसीसे अन्तसमय भगवान्के स्वरूपमें लयहोजाते हैं ॥१६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणाय जडभरतब्राह्मणेन श्रीभगवत्कथास्वरूपनिरूपणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यः ॥ १२ ॥

भजन–संतोंकी महिमा अपरम्पार । सत्संगति सम धर्म न दूजो कह रहे वेद पुकार ॥ १ ॥ जप, तप, नियम, ध्यान, व्रत, संयम, कीजे वर्ष हजार । कठिनाईसे मिलत परमपद, कोटिन विघ्न विकार ॥ २ ॥ सत्संगतिसे तुरत होत नर भवसागरके पार । संगतिकी गति, शेष, शंभु अज जानत भलीप्रकार ॥ ३ ॥ सत्संगतिसे वसिष्ठ, नारद, कीन्हों ब्रह्मविचार । लव निमेषकी सत्संगतिको, लग न सकत युग चार ॥ ४ ॥ सत्संगति प्रभावसे धारो, शेष धरणको भार । "शालिग्राम" भक्तिकी संगति, अधम उधारनहार ॥

दोहा–विषयीको वैराग्य दिय, यह तेरह अध्याय। बनकर वरणो जगतको, सुनिये चित्त लगाय॥ १ ॥ जडभरत ब्राह्मण फिर रहूगणं राजासे बोले कि, हे राजन्! संसारका मार्ग अति दुर्गमहै, उसमें प्रविष्ट होकर, रजोगुण तमोगुण और सतोगुणमें विभाग कीहुई जिसकी दृष्टिहै और कर्म हैं, उन सबकोही कार्य समझकर देखते हुए वेश्याकी समान धनके बटोरनेकी चाहनासे, चारोंओर घूमताहै। परन्तु उस चारों ओर घूमनेसे भवाटवी अर्थात् जंगलमें चला जाता है और किसी प्रकारसे सुखको प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥ हे नरदेव! इस जंगलमें बडे बडे छः चोर हैं वह सब बनियोंके झुण्डवाले नायकोंको अयोग्य देखकर बलात्कार उनका धन लूट लेते हैं और वहांपर बड़े २ शृगालभी हैं, जोकि वाणिकोंके बीचमें प्रवेश करके जिस प्रकार भेड़िया भेडको उठाकर लेजाता है वैसेही शृगाल उन बनियोंको खैंचकर लेजाते हैं ॥२॥ इस अटवीमें अनेक

ब्राह्मण उवाच ॥ दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजतमस्सत्त्वविभक्तकर्मदृक् ॥ स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्
भवाटवीं याति न शर्म विंदति ॥ १ ॥ यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुंपंति कुनायकं बलात् ॥ गोमायवो
यत्र हरंति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥२॥ प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ॥ क्वचिच्च
गंधर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥ ३ ॥ निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अट
व्याम् ॥ क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥४॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवा
ग्भिर्व्यथितांतरात्मा ॥ अपुण्यवृक्षाञ्छ्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥ ५ ॥

वृक्ष लता और गुच्छोंसे ढके हुए गहरे गढेहैं वणिक् लोग वहां बलात्कार विश्राम करके भयंकर डांस और मच्छरोंसे उपद्रव पाते हैं। कहीं पर यह वणिक् लोगआश्चर्य गंधर्वपुरीको देखते हैं ॥ किसी किसी स्थानमें अतिशय वेग उल्मुकाकार गृह(पिशाच विशेषका बवूला) देख उसको सुवर्ण आन देखते हैं और उसके लेनेका लालच करतेहैं॥ ३ ॥ वासस्थान, जल और धन इन सबमें इन वणिकोंकी आत्मबुद्धि होनेसे उनहीं वस्तुओंके लिये यह सदा उस अटवीमें इधर उधर दौडा करते हैं। कहीं आखोंमें धूल पडजानेसे पवनसे उडी हुई धूलके द्वारा नेत्रोंमें धुन्ध छा जाती हैं, तो उन धुंधली आंखोंसे छिपी हुई दिशा विदिशाओंको नहीं देख सकता, कही झींगार बोल रहेहैं परन्तु देखनेमें नहीं आते उन झींगरोंकी

झनकारसे उनके कानोंमें दर्द होताहै, कहीं उल्लुओंके शब्दसे उनका मन अत्यन्त व्याकुल होताहै। हे वीर! यह सब बणिक् इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छाया भी पापका कारण है, ऐसे अपुण्य वृक्षोंका आश्रय ग्रहण करते हैं कहीं कहीं सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौडते हैं, कभी मृग मरीचिकाके जलको दौडतेहैं ॥४॥५॥ और कभी वह लोग जलहीन जलाशयोंकी ओर आतेहैं, परंतु उंसमें गिरतेही अंगभंग हो जांयगे, इस कारण जितनी दुःख मिलनेकी संभावना है, उतनी जब मिलनेकी आशा नहीं। और कभी जब उनके पास अन्न नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे मांगते हैं, कभी दावानलके निकट पहुँचकर, अग्निसे संतापित हो विषाद करते हैं। कभी इसलिये

कचिद्वितोयाः सरितोभियाति परस्परं चाऽऽलषते निरंधः ॥ आसाद्य दावं कचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क च यक्षैर्हृतासुः॥ ॥ ६॥ शूरैर्हृतस्वः क च निर्विण्णचेतः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ॥ कचिच्च गंधर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृत वन्मुहूर्तम् ॥ ७ ॥ चलन्कचित्कंटकशर्करांघ्रिनंगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते ॥ पदेपदेऽभ्यंतरवह्निनाऽर्दितः कौटुंबिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥ ८ ॥ कचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्धः ॥ दष्टः स्म शेते क च दंदशूकैरंधोंधकूपे पतितस्तमिस्रे ॥ ९ ॥ कर्हि स्म चित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ॥ तत्राति कृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुंपंत्यथ तं ततोऽन्ये ॥ १० ॥

डरते हैं कि कहीं यक्षगण प्राण न लेलें ॥ ६ ॥ किसी किसी स्थानमें और दूसरे लोगोंसे सर्वस्व हरेजानेपर विषादको प्राप्त हो उस सर्वस्वके लिये शोक करते करते मूर्च्छित होजाते हैं ॥ कहीं गंधर्वपुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्त भर आह्लाद किया करते हैं ॥ ७ ॥ कहीं कहीं चलते चलते पांवोमें कांटा खोंबडादिके लगनेसे पर्वतपर चढनेकी वासना पूरी नहोनेसे कुछ उदास होते हैं। कहीं कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीडित होनेसे भूखकी ज्वालासे क्षणक्षणभरमें लोगोंके ऊपर क्रोध करते हैं ॥ ८ ॥ कभी इस भवाटवीमें अजगर सर्पसे ग्रसा पडासा हुआ जीव वनमें सोता है, कहीं हिंसक प्राणियोंके काटनेसे दुःख पाकर अन्धतामिस्रवत् कुएमें गिरपडता है ॥ ९ ॥ किसी स्थानमें कोई कोई वणिक्

क्षुद्ररस अर्थात् शहतके ढूँढनेको जाकर उनकी मक्खियोंके द्वारा काटनेसे अधिकदुःख पाते हैं,यदि कदाचित् बडे कष्टसे इस विषयमें मानभी पाया अर्थात् मधु मिलगया तो भी उसको भोग नहीं कर सकते, क्योंकि उनसे दूसरा बलवान् बलात्कारसे उसशहतको छीन लेतेहैं ॥१०॥ कहीं कोई लोग शीत, गरमी,वायु, वर्षाकी रोक नहीं कर सक्ते, बैठेहीहैं । कहीं कोई लोग लेन देन करके बहुत थोडा धन परस्परसे लेकर धनकी ठगाई करनेसे विद्वेषको प्राप्त होरहे हैं ॥ ११ ॥ किसी किसी स्थानपर कोई २ लोग धनहीन होनेके कारण इस अटवीमें शय्या, आसन, स्थान और विहारसे रहित होकर यही वस्तु दूसरेसे मांगते हैं । परन्तु औरसे कामना पूर्ण नहीं होती तब पराई वस्तुका अभिलाष करके उसके लिये अपमानको सहते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भवाटवीमें कोई व्यक्ति परस्पर धनसे, और पदार्थोंका अदला बदला करनेके कारण दूसरोंसे वैर बढाते हैं । और कोई

क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ॥ क्वचिन्मिथो विपणन्यच्च किंचिद्विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥११ ॥ क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिञ्छय्यासनस्थानविहारहीनः ॥ याचन्परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥ अन्योन्यवित्तव्यतिषंगवृद्धवैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः ॥ १३ ॥ तांस्तान्विपन्नान्स हि तत्रतत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ॥ आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥ १४ ॥ मनस्विनो निर्जितदिग्गजेंद्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ॥ मृधे शयीरन्न तु तद्व्रजंति यन्न्यस्तदंडो गतवैरोऽभियाति ॥ १५ ॥

उनके साथ परस्पर बडे बडे सम्बन्ध करते हैं । कोई २ लोग बडे बडे परिश्रम और धनका नाश व और और उपद्रवोंके कारण नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ १३ ॥ हे वीर ! उन सब नाशको प्राप्त हुए मनुष्योंको जहांपर कि; वह मरे वहीं छोडकर नये जो उत्पन्न हुये उनको साथ लेकर कोई भी अबतक वहाँसे नहीं लौटता अर्थात् जहाँसे इन्होंने चलनेका आरंभ किया है, वहांपर फिर लौटकर नहीं आते, सब बनियोंके झुण्डमेंसे कोई लोक अबतक इस मार्गके द्वारको प्राप्त नहीं हुवा अर्थात् इस संसारमार्गका पार जो योग है, उसको कोईभी नहीं पहुँच सक्ता ॥१४॥ हे वीर ! जो पुरुष कि शूर हैं और उन्होंने प्रधान प्रधान दिग्पाल हाथियोंतकको जीतलिया है वहभी इस भवाटवीमें " हमारी भूमि है. हमारी भूमि है"

इस प्रकार भूमिके कारण परस्पर वैर भाव करके संग्राम स्थलमें गिरकर शयन करते हैं। इस कारण निर्वैर संन्यासी लोग विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं। वह लोग इस गतिको कभी नहीं प्राप्त कर सक्के ॥ १५ ॥ हे राजन् भवाटवीमें भ्रमण करनेवालोंका और भी वृत्तांत कहता हूँ सो तुम सुनो, कभी कोई पुरुष लता शाखाओंकी आश्रयसे उनपर बैठेहुये पक्षियोंकै कलरवकी ध्वनि श्रवण करनेके लिये लालसा लगी, इसमें आसक्त होता है। कहीं कहींपर कोई कभी २ (हरि चक्र) (सिंह समूह) से भीतहोकर, बगले, कौवे और गिद्धोंसे मित्रता करता है ॥ १६ ॥ परंतु गिद्धादिकसे ठगे जाकर पीछे आपही हंसोंके कुलमें प्रवेश करता है, पीछे उनकाभी आचार व्यवहार प्रिय न समझ कर वानरोंमें मेल करता है और इस जातिके खेलकूदसे अपनी सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करताहै, परस्पर एक दूसरेका मुख देखनेंसे मोहित होकर अपनी अवधि कितनी है,

प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ॥ क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्ते बककंकगृध्रैः ॥ १६ ॥ तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविशन्न रोचयञ्शीलमुपैति वानरान् ॥ तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेंद्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥ १७ ॥ द्रुमेषु रंस्यन्सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबंधने ॥ क्वचित्प्रमादाद्गिरिकंदरे पतन्वल्लीं गृहीत्वा गजभीतआस्थितः ॥ १८ ॥ अतः कथंचित्स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिंदम ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमञ्जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥ १९ ॥ रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदंडः कृतभूतमैत्रः ॥ असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिमादय तरातिपारम् ॥ २० ॥

अर्थात जीवन समय कितना है उसको भूल जाता है ॥ १७ ॥ कहीं २ कोई २ पुरुष पुत्र, स्त्रीपर स्नेह करके उनके निमित्त सब वृक्षोंमें अर्थात् दृष्टार्थ विषयोंमें क्रीडा करनेके व्यवसायमें अति दीन है। इस कारण अपने बन्धनमें विवश अर्थात् परित्याग करनेंमें समर्थ होता है, कहीं वही पुरुष असावधानतासे पर्वतकी कन्दरामें गिर जाताहै। और वहांपर हाथियोंके भयसे लतापातोंको पकडकर लटका रहता है ॥ १८ ॥ और वह पुरुष इन विपदोंसे किसी प्रकार छूटकर अपने संगियोंके संगमें पहलेकी समान मिलसकता है, परन्तु संसारी मार्गमें मायासे पटका हुवा भ्रमणकारी कोई लोग अबतक यथार्थ तत्त्व नहीं जानसक्ता है ॥ १९ ॥ हे रहूगण! तू भी मायासे इस संसारी संगमें फँसा

हुवाहै, इसकारण अपना राज्य कार्य छोडछाडकर सबप्राणियोंके साथ मित्रताकर । विषयोंमेंसे चित्तकी आसक्तिको उठाकर हरिकी सेवाके द्वारा धारवाली तलवार हाथमें लेकर इस संसारके पार होजा ॥ २० ॥ राजा रहूगण बोला हे ब्रह्मन्! मनुष्यजन्म सब जन्मोंकी अपेक्षा सुशोभन है तो सत्य, परन्तु स्वर्गीय देवादिकोंकी अपेक्षा यह जन्म श्रेष्ठ नहीं है, परंतु स्वर्गमें भी यही आपकी समान महात्मा पुरुषोंके साथ समागम न हो तो वहांपर देवादिजन्म प्राप्त होनेसे भी क्या लाभ है ? हे प्रभो! आप क्या साधारण मनुष्य हैं ? भगवान्का यश श्रवण करने और कहनेसे आपकी आत्मा पवित्र होगई है ॥ २१ ॥ इस कारण आपके चरणरेणुकी निरन्तर उपासना करनेसे पुरुषकी पापराशि दूर होकर उसको

राजोवाच ॥ अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन्॥न यद्धृषीकेशयशःकृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥ २१ ॥ न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ॥ मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥ २२॥ नमो महद्भ्योस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आवटुभ्यः ॥ये ब्राह्मणा गामवधूतलिंगाश्चरंति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः सिंधुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवंदितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार॥ २४ ॥

भगवान्की निर्मल भक्ति प्राप्त होती है । इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है । इस बातमें मुझको अपनाही दृष्टांत दृष्टि आता है कि, एक मुहूर्त भर आपका समागम होनेसे मेरे कुतर्कोंका मूलभूत अविवेक विनाशको प्राप्त होगया ॥२२॥ न जानिये ब्रह्मवेत्ता लोग किस रूपसे घूमा करते हैं वह न जाननेके कारण सबकोही नमस्कार करके कहा कि,महत् पुरुषोंको नमस्कार ! बालकोंको नमस्कार ! युवा पुरुषोंको नमस्कार !! खेलमें मग्न विप्रकुमारोंसे लेकर सबही ब्राह्मणोंको नमस्कार करूं हूँऔर भी जो ब्राह्मण गण अवधूतोंका चिह्न सा धारण करके पृथ्वीमें भ्रमणकरते हैं उनके लिये भी बहुत बहुत नमस्कार ! उन लोगोंका अनुग्रह राजा लोगोंके कल्याणार्थ हो ॥ २३ ॥ शुकदेवजी बोले कि,हे उत्तराके पुत्र परीक्षित् !

सिंधु देशाधिपति रहूगण राजाने यद्यपि अपमान किया था तोभी ब्रह्मर्षितनय महानुभाव जडभरतजीने परमकरुणासे दयाकरके उसको ब्रह्मविज्ञानका उपदेश किया। इसके पीछे जब राजा रहूगणने उनब्रह्मर्षिके चरणोंकी वन्दना की, तब वह तरंगपूर्ण समुद्रकी तुल्य, आनन्दसे पूर्ण होगये परंतुउनका अन्तःकरण सदाही स्थिर था। जो हो इसके पीछे जडभरतजीने फिर पहलेकी समान घूमना आरम्भ किया ❀ ॥२४॥ सौवीरपति

सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसत्तत्त्व आत्मन्यांविद्याध्यारोपित च देहात्ममतिं विससर्ज ॥
एवं हि नृप भगवदाश्रिता नुभावः॥ २५॥

रहूगण राजा भी भरतजीसे तत्त्व सहित परात्मज्ञान प्राप्त करके तत्क्षणही देहमें आत्मबुद्धि (जो अविद्याके कारण देहमें आरोपित होगई थी) त्याग करदी। हे राजन्! भगवान्के आश्रयवाले महात्मा भरतजीका आश्रय ग्रहण करनेसे रहूगण राजाका अहंकार शीघ्रही विनाश होगया॥२६॥

❀ **शंका**—श्रीशुकदेवजी महाराजने श्रीमद्भागवतके चार स्कन्ध वर्णन किये तथा राजाभी चारों स्कन्धोंको सुनतागया, परन्तु शुकदेवजीने राजाको ऐसा दुलार वचन क्यों कहा ? और दुलारनाम लेकर चारों स्कन्धमें क्यों वर्णन किया. हे राजन्! हे राजशार्दूल! हे नृपशिरोमणे! हे कौरवोत्तम! हे कुरुकुलभूषण! ऐसा आदि लेकर अनेकप्रकारके सम्बन्धोंसे दुलार करके कथा कही परन्तु पञ्चमस्कन्धके १३ तेरहवें अध्याय और २४ चौवीसवें श्लोकमें परीक्षित्को उत्तरामात क्यों कहा ? उत्तरामातका अर्थ यह है कि, उत्तरा है तुम्हारी माता, ऐसे हे परीक्षित्! यह वही शंका होती है कि जो और कभी परीक्षित् की माताका नाम लेकर राजाका दुलार शुकदेवजी करते तो शंका नहीं होती ?

उत्तर—शुकदेवजीने परीक्षित्को भगवान्के कीर्तनमें अत्यन्त लोभी जानकर तथा देहनाश होवेकी चिन्ताको त्यागकर बारम्बार भगवान्के चरित्रोंको बूझरहे हैं, वासुदेव भगवान्में परीक्षित्को ऐसा प्रीतिमान् जानके श्रीशुकदेवजीने विचार किया कि, परीक्षित्की माता जो उत्तरा है उसको धन्य है, जिस उत्तराने परीक्षित्को उत्पन्न किया सो धन्य है, ऐसा हर्ष करके राजाको उत्तरामात इस पदसे दुलार करके श्रीशुकदेवजीने कथा वर्णन की थी।

१०८

राजा परीक्षित्ने पूँछा कि हे भागवतवर श्रीशुकदेवजी महाराज ! आप सब कुछ जाननेवाले हैं सो आपने अपरोक्ष वचनोंके द्वारा वणिक् सार्थ सहित रूपक करके जो इस संसार अटवी मार्गका वर्णन किया, विवेकी पुरुषोंकी बुद्धिसे इसका विषय कल्पित होसकता है, अर्थात् वह लोग बुद्धिके बलसे इंद्रियोंको दस्युतुल्य और पुत्र कलत्रादिकको शृगाल इत्यादिकी सदृश जान करके इस विषयको समझ सकते हैं, परन्तु अल्प बुद्धि मनुष्यको भलीभांतिसे इसे समझना कठिन है इस कारण जो कुछ मेरेप्रति आपने कहा है उस सबहीके अनुसार अर्थ कल्पना इस दुर्गम

राजोवाच ॥ यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाऽभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नांजसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः ॥ अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० पंचम० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ स होवाच ॥ य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिंद्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविंदमधुकरानुपदवीमवरुंधे ॥ यस्यामु ह वा एते षडिंद्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥ १ ॥

विषयको समझकर कहो, जो मेरी समझमें सुगम रीतिसे आजाय ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां रहूगणाय सूक्ष्मभवाटवी वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा—वनरूपक कर जगतको, कहों चौदहाध्याय। ताहीको अब खोल कर, कहौं प्रगट दरशाय ॥ १ ॥ जो राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे पूछा वही प्रश्न शौनकने सूतजीसे किया, शुकदेवजीने और सूतजीने दोनोंको

---

* रेखता—नहीं मैं कुछ समझाता हूं तुम्हारी ज्ञानकी बातें । मैं तो मतिमन्द अज्ञानी, समझोंमे है कठिन आनी, बखानी आपने जो जो मेरे सन्मानकी बातें ॥१॥ रहा नित मूर्खोंके संग, चढे क्यों साधुओंका रंग, सदा पी भंग गाफिल हो करी अभिमानकी बातें ॥ २ ॥ मेरा मन डूब जाता है, समझमें कुछ न आता है, आपने जो कही मुझसे महा उद्यानकी बातें ॥ ३ ॥ यान ऐसा निकालो अब समझमें मेरी आवे सब, लिखीहैं वेदमें जो सहजसी भगवान्‌की बातें ॥ ४ ॥ यह शालिग्राम कहदेंगे, जो सब कुछ जानते हैंगे, छुटै जिससे महाममता ऐसी हो कल्याणकी बातें ॥ ५ ॥

एकही प्रकारका उत्तर दिया 'स होवाच' इसका अर्थ यहहै कि राजपरीक्षित्ने जब इस प्रकार प्रार्थनाकी तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस संसारमें जीवगण धनको उपार्जित करनेमें तत्पर वणिकोंके तुल्यहैं; यह भगवान्की मायासे संसारी मार्गमें गिरे हैं इस कारण गुरु जो भगवान् हरि हैं, उनके चरणारविन्दके सेवकोंकी पदवी अर्थात् भगवज्जनों करके अनुष्ठित भक्तिका मार्ग अबतक प्राप्त नहीं होता। हे परीक्षित्! संसारीमार्ग सुगम नहीं है जो सब पुरुष देहमें आत्माभिमान करते हैं उनके सत्वादि विशेष विशेष गुणसे विभक्तसे सर्वकर्म मंगल अमंगल दोनोंही मिलजाते हैं, उनके द्वारा विविध देह श्रेणीरची जानेसे उनसे संयोग वियोगादि रूप अनादि संसार होता है, सब संसारके अनुभवके द्वार रूप छैः प्रकारकी इन्द्रियें हैं। उनकरके यह संसारमार्ग दुर्गम मार्गकी तुल्य अतिशय कठिन होगया है, हे राजन्! इसप्रकारके दुर्गम मार्गमें पग धरनेको किसीकीभी प्रवृत्ति नहीं होगी, ऐसा हम कह नहीं सकते भगवान् विष्णुकी मायासे अवश होकर सबही उसमें वास करते हैं और

तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किंचित्साक्षाद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु सांपराय उदाहरंति ॥ तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुंपंति ॥ २ ॥

अपनी अपनी देहसे रचेहुये सब कर्मोंका फल वहां (भवाटवीमें) भोगा करते हैं, उन प्राणियोंकी चेष्टा कभी सफल होती है, कभी अनेक अनेक विघ्नोंके कारण पूरी नहीं भी होती है। इसप्रकारकी संसार अटवी जो विविध भांतिके ताप हैं सो उनको भगवच्चरणारविन्द सेवकोंकी पदवी विनाश करनेको समर्थन है। परंतु भगवान्की मायाके वश होकर जीवगणोंको वह पदवी सहजमें प्राप्त होसक्ती, इस संसाररूप अटवीमें छैः इंद्रियें हैं। वही कर्मोंके द्वारा महाप्रबल चोरोंके तुल्य हैं ॥ १ ॥ क्योंकि संसारमें बडे कष्टसे बटोरा हुआ पुरुषका धन जो धर्मके उपयोगी जितना कुछ प्राप्त करता है और पंडित लोग जिसको धर्मका स्वरूप कहा करते हैं, सो जहां वह जीव असावधान हुआ कि, जिस प्रकार संगी लोग असावधानसंगीका धन हरण करलेते हैं, वैसेही यह सब इंद्रियें जो चोरहैं यह दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, सूंघना और संकल्प, विकल्प इत्यादि गृहसम्बन्धी तुच्छ पदार्थोंमें लगाकर उसका यह धन हरण करलेती हैं, वह मनुष्य अजितेन्द्रिय और घरमें

अथ च यत्र कौटुंबिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुंबिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपहरंति ॥ ३ ॥ यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवति ॥ एवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्नहि कर्माण्युत्सीदंति यदयं कामकरंड एष आवसथः ॥ ४ ॥ तत्र गतो दंशमशकसमापसदमनुजैः शलभशकुंततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गंधर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥ ५ ॥

ग्राम्य वस्तुओंके भोग करनेमें आसक्त रहता है, इससे अपने वह धन लेजानेवाली इंद्रियोंको कुछ भी नहीं जानता ॥ २ ॥ हे राजन्! इस अटवीमें अनेक भेड़िये और शृगाल हैं, परंतु वह नाममात्रकेही हैं। वास्तवमें संसारी परिवारमें जो कि स्त्री पुत्रादिक हैं वही कार्य करनेमें शृगाल और भेडियेकी तुल्य हैं क्योंकि अतिलोभी कुटुम्बी पुरुष अत्यन्त प्रयत्नसे रक्षा करें, मेढ़ेके समान सुन्दर धनको उसकी बिना इच्छा बडे छलबल और चतुराई कर, उसकी आंखोंमे धूल डाल, भेडियेकी समान, भेडवत् उसके संचय किये हुए धनको लेही जाता ॥ ३ ॥ दूसरे उस भवाटवीमें अनेक घास बेलोंसे ढके हुये दुर्गम गढे हैं। इत्यादि जो कहा है उसका तात्पर्य यह है कि; जिस प्रकार खेतमें प्रतिवर्ष जो हल चलाया जाय तो भी उस खेतका बीज जल नहीं जाता, परन्तु फिर वह अन्न बोनेके समय तृण गुल्म लता इत्यादिके उपजनेमें दुर्गम गढेकी समान हो जाता है। वैसे ही यह गृहस्थाश्रम सब कर्मोंका क्षेत्ररूप है। इसमें भी सब कर्म एक बार ही नाशको प्राप्त नहीं होते क्योंकि यह गृहस्थाश्रम कामनाओंका भण्डार है; देखो जिस प्रकार किसी वर्तनमें कपूर रक्खा हो और वह उडजावे, तो भी उसकी सुगन्धी उस पात्रसे नहीं जायगी वैसे ही कर्म चाहे सब नष्ट होजायँ परन्तु जबतक वासना क्षय नहीं होती तब तक वह उपजते ही रहते हैं॥ ४॥ इस गृहाश्रममें जो पुरुष रत होता है उसका प्राण अर्थात् धन संपत्ति डांस मच्छर तुल्य नीच मनुष्य और टीडी, पक्षी, चोर, चूहे इत्यादिकोंके तुल्य तस्कर लोग पीडा देकर छीन लेते हैं तथापि यह पुरुष गृहाश्रमके मार्गमें घूमनेसे शांत नहीं होता बरन् मिथ्यादृष्टि

होनेसे अविद्या काम और कर्मोंसे रँगेहुये मनके हेतु गन्धर्वनगर तुल्य अघटमान नरलोकको सत्यरूप देखताहै॥५॥दूसरे किसी किसी स्थानमें भोजन स्त्रीसंग इत्यादि व्यसनोंका लोलुप होकर मृगतृष्णाके जलकी तुल्य सब विषयोंकी ओर दौडताहै ॥६॥ और किसी किसी स्थानमें उल्सुकाकार गृह देखकर उनको श्रेष्ठ सुवर्ण समझ उनके लिये ललचाता है इत्यादि जो कहा है इसका अर्थ यह है कि; जिस प्रकार शीत-निवारण करनेके लिये अग्निकी चाहना करनेवाले लोग वनमें अग्निके समान चमकते हुये पिशाच विशेषको देखकर उस पिशाचके पीछे पीछे दौड़ा करतेहैं,वैसे ही पुरुष इस संसारमें कहीं सुवर्ण प्राप्त होगा,यह इच्छा करके दौडता फिरता है परंतु यह वस्तु अशेष दोषोंका स्थान है,पवित्र भी नहीं है. विष्ठा विशिष्ट है।क्योंकि ऐसा सुननेमें आयाहै कि,अग्निकी विष्ठासे सुवर्ण होताहै।पुरुषका उसके लिये बहुत इच्छाकरनेका कारण यह है कि,वह सुवर्णवत् लोहित वर्ण जो रजोगुण है, उससे ही पुरुषका चित्त घिरा हुआ है ॥७॥ हे वीर!“निवास, जल, धन, इत्यादि जो कहा” उसका अर्थ यह है कि निवास, जल, धन, इत्यादि जो समस्त वस्तु अपने निर्वाहके लियेहैं,उनके लिये अभिनिवेश होकर यह पुरुष इस गहन संसारमें इधर उधर भटकता फिरता है॥८॥ दूसरे कहीं आंखोंमें धूल पडजानेसे हवा करके उडीहुई धूलिके द्वारा धुंधुली दिशा विदिशाओंको नहीं देख सकता इत्यादि जो कह आये हैं इसका अर्थ यह है कि इस संसारके मध्यमें कभी२पवनकी तुल्य जो स्त्री है पुरुष उसकी गोदीमें चढ़ बैठता है, गोदीमें बैठनेसे उस समय जो अनुराग जन्मता है, उस रागसे धूल पडेहुये नेत्रोंकी समान होकर मर्यादाको छोडदेताहै और रात्रिकालके

तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥ ६ ॥ क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥ अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥ ८ ॥ क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूता इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षो दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥ ९ ॥

भूतकी समान दिशाओंके देवता जो कि अच्छे बुरे कर्मके साक्षी हैं उनको भी नहीं देखता और सब मर्यादाओंको त्याग कर देता है.जो मर्यादा छोड़नेके कारण साक्षिस्वरूप जो वर्तमान है, वह उसको नहीं जानता ॥९॥ और कहीं कहीं सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौडते हैं इत्यादि जो कहा है उसका तात्पर्य यह है कि, संसारमें पुरुष कभी कभी आपही आप एकबार ऐसा विचारता है कि, सब विषयोंको व्यर्थ निश्चय करता है परन्तु देहाभिमानके कारण शीघ्रही स्मृति भ्रष्ट होजाती है, इस कारण मृगतृष्णाके जलकी तुल्य. फिर उन सब विषयोंकी ओर दौडता है ॥ १० ॥ हे राजन् ! कहीं झिल्लीनामक अनेक दीखते हुये कीडोंकी झनकारसे उनके कानोंमें दर्द होता है यह जो कहा इसका अर्थ यह है कि, संसारमें कहीं कहीं झिल्ली झनकारकी तुल्य अतिकर्कश विषयोंमें उत्साहके लिये प्रत्यक्ष और अपरोक्ष शत्रुपक्षकी और

क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥ १० ॥ क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥ ११ ॥ स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुंडाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणाञ्जीवन्मृतान्स्वयंजीवन्म्रियमाण उपधावति ॥ १२ ॥ एकदाऽसत्प्रसंगान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखंडमभियाति ॥ १३ ॥

राजकुलकी फटकारसे पुरुषके कर्णशूल और हृदयमें व्यथा होती है ॥ ११ ॥ " यह सब वणिक् इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छाया भी पापका कारण है,ऐसे अपुण्य वृक्षोंका आश्रय ग्रहण करते हैं" इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि, संसारमें जब पुरुषके पहले कियेहुये सुकृत क्षीण होजाते हैं, तब विषतिन्दुक इत्यादि अपुण्य वृक्ष लता और विषकूप समान, इस लोक और परलोकके प्रयोजन हित धन खोकर स्वयं मृतकके तुल्य होजाते हैं और जीवन्मृत लोगोंके निकट दौड़ते फिरते हैं ॥ १२ ॥ हे वीर ! और कभी वह लोग जलहीन जलाशयोंकी तरफ जातें हैं इत्यादि कहे हुये वचनोंका अर्थ कहता हूँ सो श्रवण करो कि संसारमें कभी कभी असत्प्रसंगसे पुरुषकी

बुद्धि ठगी जाती है इससे निर्जल नदीमें गिरनेसे जिसप्रकार उसी समय शिर फटजाता है और क्लेश होताहै वैसे ही पुरुष पाखंडपथमें पड़ जानेके, कारण इसकाल और परकालमें दुःखपाताहै ॥ १३ ॥ और "कभी जब उनके पास अन्न नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे माँगते हैं" इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि जब संसारके मध्यमें पुरुष भूख प्याससे पीडित होनेके कारण बड़ा क्लेश पाकर अपने पास अन्न नहीं देखता, तब पिताको पुत्रको और जिनके पास पिता वा पुत्रका कुछ थोड़ाभी लेना देना है उनको दुःख देता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! "कभी दावानलके निकट पहुँचकर अग्निसे संतापित हो विषाद करते हैं" इत्यादि जो कहा इसका अर्थ यह है कि, यह जो गृह है यही दावानलके तुल्य है और प्रिय वस्तुके निमित्त सन्तप्त है अर्थात् घरमें कुछ भी प्रिय वस्तु नहीं है, और जिसमें सुखका लेशमात्रतक नहीं वरन् परिणाममें उसको

यदा तु परबाधयांध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान्वा स खलु भक्षयति ॥ १४ ॥ क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥ १५ ॥ क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसाऽपहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥ १६ ॥ कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥ १७ ॥ क्वचिद् गृहाश्रमकर्मचोदनाऽतिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्शितमनाः कंटकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥ १८ ॥

महाकष्ट है. पुरुष ऐसे दावानलके सन्तापको प्राप्त हो उस शोकानलमें दग्ध हो, महासंतापको पाता है ॥ १५ ॥ कभी इसलिये डरते हैं कि कहीं यक्षगण प्राण न लेलें, इस उक्तिका यह तात्पर्य है कि, इस संसारमें कभी कभी राजा लोग कालके वशमें पड़, प्रतिकूलहो राक्षसोंके समान व्यवहार करते हैं, प्रियतम धनरूप प्राण हरण करलेते हैं उससे पुरुषोंको मृतकके तुल्य जीवन-लक्षण-रहित होकर रहना पड़ता है ॥ १६ ॥ हे राजन्! "कहीं गंधर्वपुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्तभर आह्लाद किया करत हैं" इत्यादिका तात्पर्य यहहै कि पुरुष कभी बाप दादा इत्यादि बीते हुये पुरुषोंकी चिन्ताको प्राप्त होकर उनको और उनके असत् धनको सत् मानकर कि वह लोग मानो वर्तमान हैं इस प्रकारसे मनमें समझता हुआ, क्षणभरके लिये स्वप्नकासा सुख प्राप्त कर लेताहै ॥ १७ ॥ "कहीं २ चलतें चलते कांटा कंकड़ आदिके लगनेसे पर्वतपर चढ़नेकी वासना पूरी न होनेसे कुछ

उदाससा होता है" इस वचनका भाव यह है कि, गृहाश्रममें जिन सब कर्मोंकी विधि है वह बहुत हैं इस कारण वह समस्त पर्वत तुल्य अति दुर्गम है। उसका अंत प्राप्त करनेकी इच्छा होनेसे पुरुषका मन कभी कभी लौकिक व्यसनोंमें खिंच जाता है इससे कंटक और कंकडवाली भूमिमें प्रवेश करनेके समान वह दुःख पाता है॥१८॥ कहीं कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीडित होनेसे भूखकी ज्वालामें क्षणभरमें लोगोंके ऊपर क्रोध करता है ॥ यह जो कहा सो इसका भाव यह है कि, बडे परिवारवाला आदमी स्वच्छन्दतासे देहाभ्यन्तवर्ती दुःसह जठरानलसे पीडित होनेके कारण निःसार होकर कभी परिवारवाले लोगोंके ऊपर क्रोध प्रकाश किया करता है ॥१९॥ हे राजन्! कभी इस भवाटवीमें अजगर सर्पसे ग्रसा व डसाहुआ जीव वनमें सोता है, इत्यादि जो कहा इसका तात्पर्य भी कहता हूँ सो तुम सुनो कि

क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यंतरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुंबाय क्रुध्यति ॥ १९ ॥ स एव पुनानद्राऽजगरगृहीतोंधे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत् किंचन वेद शव इवापविद्धः ॥ २० ॥ कदाचिद् भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदंदशूकरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोंऽधकूपेंऽधवत् पतति ॥ २१ ॥ कर्हिस्मचित् काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारद्रव्याण्यवरुंधानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥ २२ ॥

संसारमें पुरुष निद्रारूप अजगरके वश होजाता है, निद्राके समय निर्जन वनमें सोनेके समान अंधकारमें मग्न होकर शयन करता रहता है और, कुछ भी नहीं जानता। इस कारण वह फेंकेहुये मुरदेकी समान जान पडता है। उसे किसी प्रकारका ज्ञान नहीं रहता ॥२०॥ "कहीं अंधे लोग अंधे कुएमें गिरकर डूब रहे हैं" इत्यादि वाक्यका अभिप्राय यह है कि, इस संसारके बीच कभी कभी पुरुषकी गर्वरूप डाढ टूट जाती है, और दुर्जनरूप हिंसक शूकर उसको निद्रा नहीं लेने देते इसकारण हृदय व्यथित होनेसे उसके ज्ञानका क्षय होजाता है और वह अज्ञानसे अंधा होकर अंधेके समान उस अंधे कूपमें गिर पडता है ॥ २१ ॥ हे राजन्! इस संसारमें काम शहदकी बूँदके समान है। पुरुष कभी कभी इस कामको खोज करता हुआ फिरता है परंतु जब पराई स्त्री और पराये धनके ऊपर झपट करता है तब उस स्त्रीके स्वामी अथवा राजासे मारा

जाकर अपार नरकमें गिर पडता है॥ २२ ॥ इस कारग पंडित कहते हैं कि, प्रवृत्तिमार्गमें अपना कर्महीं इस काल और पर कालमें संसारमें जन्म होनेका क्षेत्र है ॥ २३ ॥ बस संसार यदि एक जनकी झपटसे छूट जावे, तब दूसरा पुरुष देवदत्त उससे बलात्कार छीन लेता है और फिर तीसरा जन विष्णुमित्र हरलेता है इसी भाँति धारावाहिक होता रहता है । बस इस कारण उससे अव्यवस्था हो जाती है ॥२४॥संसारमें कभी कभी शीत वायु इत्यादि बहुत भाँतिके आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापोंकी दुर्दशा निवारण करनेको असमर्थ होनेसे पुरुष अपार दुःखी हो चिंता करके शोक किया करता है ॥२५॥ कहीं परस्परमें परस्परका धन व्यवहार करके दूसरेके निकटसे कुछेक अर्थात्

अथ च तस्मादुभयथाऽपि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरंति ॥२३॥ मुक्तस्ततो यदि बंधाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥ २४ ॥ क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरंतचिंतया विषण्ण आस्ते ॥ २५ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किंचिद् धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमपहरन् यत्किंचिद् वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥ २६ ॥ अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्याऽवमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः॥२७॥ क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारंभाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽधे तमसि प्रहिणोति ॥ २८ ॥

काकिणी मात्र (बीस कौडियें) यह इससे भी कम लेकर ठगता है फिर इस ठगाई करनेके कारण विद्वेषको प्राप्त होता है ॥२६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं कि, हे परीक्षित् ! इस संसारमार्गमें और बडे बडे कष्ट इत्यादि उपसग तो नित्य ही रहते हैं, इनके सिवाय सुख, दुःख, राग, द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह,लोभ, मात्सर्य, ईर्षा, अपमान, भूख, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, मृत्यु,जरा इत्यादि और भी अनेक बडे,बडे उपद्रव हैं ॥ २७ ॥ संसारमें कहीं देवमायारूप स्त्रीकी भुजलताओंसे आलिंगित होते ही पुरुष विवेक और विज्ञानसे रहित होजाता है. "ऐसी रची कठिन यह नारी । देवहुको मन मोहन हारी।शिव,अज,नारद,बिहँसि कवीको।क्षणमें मोह्यो मन सबहीको॥"ऐसी स्त्रीके

साथ विहार करनेके लियै, घरका आरम्भ करनेके लिये उसका हृदय व्याकुल होजाता है, इसलिये उसके आश्रयमें जो पुत्र कलत्र इत्यादि रहते हैं उनके देखने वा मृदुल वचन श्रवण करने और अनेक प्रकारकी चेष्टा अवलोकन करनेमें हृदय हरे जानेके कारण आत्माको अपार घोर अंधकारमें फेंक देता है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! हरिचक्रका अर्थ भुजावान् विष्णुजीका चक्र, वह परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्ध तक जो काल है, वह उसका स्वरूप है । वह चक्र निरन्तर परिवर्तित होकर अर्थात् भ्रमण करके बालादि अवस्थाओंके फेरफारसे तृण स्तम्बसे लेकर ब्रह्माजी आदिक समस्त भूतोंको अपने वेगसे हरण करता है, परंतु कोई भी उस चक्रका प्रतीकार करनेको समर्थ नहीं होता क्योंकि यह चक्र सर्व भांति से अप्रमत्त अर्थात् अतिशय सतर्क है, इसकारण पुरुष कालस्वरूप इस हरिके चक्रसे डरकर, यह कालचक्र ही जिनका आयुध है वह ईश्वर

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात् परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात् परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तंबादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रं निजायुधं साक्षाद् भगवंतं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखंडदेवताः कंकगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ॥ २९॥ यदा पाखंडिभिरात्मवंचितस्तैरुरुवंचितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्य आराधनमेव तदरोचयञ्छूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुंबभरणं यथा वानरजातेः ॥ ३० ॥

जो साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुष हैं, उनका अनादर करता हुआ जो कि पाखंडी देवता काक, गिद्ध, बक और बटेर पक्षीके समान श्रेष्ठजनोंके आचारोंसे बर्जित उनको ही पाखण्डशास्त्रकी रीतिके अनुसार भजने लगता है ॥२९॥ किन्तु पाखण्डी देवता वह तो स्वयं ही ठगे हुयें हैं, इस कारण यह पुरुष जब उनके निकट अतिशय ठगा जाता है, तब ब्राह्मणकुलमें जाकर वास करता है ॥ परन्तु उस अवस्थामें उसको ब्राह्मणोंके जो आचार व्यवहार और श्रुति स्मृतिके कहे कार्य जो भगवान् यज्ञ पुरुषजीके आराधना करनेके कर्म हैं, वह सब उसको अच्छे नहीं लगते और वेदान्त आचारोंको जो शूद्र लोग अशुद्ध होनेके कारण पाल नहीं सकते ॥ वह पुरुष उनमें ही अनुरागी होकर शूद्रतुल्य होजाता

है, शूद्रको अग्निहोत्रादि तो कुछ कर्म हैं नहीं, वानर जातिकी समान केवल स्त्रीसंग और कुटुम्बका पालन पोषण करना कर्म है * ॥ ३० ॥ यह पुरुष शूद्रतुल्य होजानेके कारण रोक-रहित इच्छानुसार विहार करता फिरता है, उसकी बुद्धि अतिशय मंद होजाती है ॥ इसकारण वह परस्पर एक दूसरेका मुख देखकर अपने मनमाने काम करता है और पशु-कर्मोंमें इस प्रकार लग जाता है कि, अपने मृत्युसमयतकको भूल जाता है। हे राजन्! संसारमें कभी कभी यह पुरुष जिस प्रकार बन्दर वृक्षोंपर चढ़कर उछल कूद करते हैं, वैसे ही गृहादि इस लोकके विषयमें क्रीडा करनेका अनुरागी होजाता है, और ऐसा होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंमें उसकी प्रीति होजाती है, और वह मैथुन करनेहीको परमउत्सव

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ क्वचिद् द्रुमवदैहिकार्थेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥ ३२ ॥ एवमध्वन्यवरुंधानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकंदरप्राये ॥ ३३ ॥ क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणे अकल्पो दुरंतविषयविषण्ण आस्ते ॥ ३४ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किंचिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥ ३५ ॥

जानता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस प्रकार संसारमार्गमें बंद होनेके कारण पुरुष मृत्युरूप हाथीके भयसे कभी गिरिगुफाओंके तुल्य घोर अन्धकारमें अर्थात् शोकादि विपत्तियोंमें गिर जाता है ॥ ३३ ॥ कभी शीत वात इत्यादि आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक, विविध भाँतिके दुःख निवारण करनेमें असमर्थ होकर क्लेश पाता है और अशेष विषयवासनाओंमें शोक किया करता है ॥ ३४ ॥ कभी कभी परस्पर एक दूसरेसे लेन

---

*शंका- चौरासी लाख योनिमें सब जीव मोहके वशीभूत होकर अपने अपने परिवारके पालन पोषण करनेमें रात दिन लगे रहते हैं ? परन्तु श्रीशुकदेवजीने सब जीवोंको त्यागकर परिवारके पालन करनेमें वानरकी उपमा क्यों दी, क्या वानर सब जीवोंसे अधिक परिवारका पालन करता है यह शंका है ॥

उत्तर-जगतमें सब जीव कुटुम्बके पालन पोषण करनेमें चतुर हैं, परन्तु नीतिशास्त्रमें लिखा है कि, वानरके समान परिवारका मोह तथा पालन पोषण कोई नहीं करसकता, इसलिये शुकदेवजीने बन्दरकी उपमा परिवारके पालन करनेमें दी ।

देन कर ठगाई करके कृपणतासे कुछेक धन इकट्ठा करते हैं, परन्तु उससे भी सुखी न होकर अपमानादिको प्राप्त होता है॥ ३५॥ कभी कभी धन न रहनेसे शय्या आसन इत्यादि उपभोग–पदार्थोंके न मिलनेसे मनोरथके द्वारा जो वांछित हैं सदुपायसे उनको न पाकर फिर उनको बुरे पापों करके लाभ करनेका मनमें विचार करता है, जिससे कि उसको लोगोंसे बहुत ही अपमान मिलता है॥ ३६॥ परंतु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि धनकी आसक्तिसे परस्पर वैर भी बढ़ाते हैं, और तो भी पुरुष एक दूसरेसे लेन देन करताही रहता है ॥ ३७॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे इस संसार मार्गमें अनेक अनेक क्लेश व अनेक अनेक उपद्रवोंसे बाधित होकर जो पुरुष आपदामें पड़ें अथवा नाशको प्राप्त होजावे तो दूसरे मनुष्य उसको उसी स्थानमें त्याग कर नये नये उत्पन्न मनुष्योंका साथ कर कभी शोर करते हैं, कभी मोह करते, कभी भय पाते हैं, कभी

क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ॥३६॥ एवं वित्तव्यतिषंगविवृद्धवैरानुबंधोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति॥ ३७॥ एतस्मिन्संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमुह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन्बिभ्यद् विवदन्क्रंदन्संहृष्यन्गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थोऽयमध्वनः पारमुपदिशंति॥ ३८॥ यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुंधे यन्न्यस्तदंडा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छंति ॥३९॥

सिंहनाद करते हैं, कभी विवाद करते हैं, कभी हर्षित होते हैं, कभी गाते हैं, कभी चिल्लाते हैं इस प्रकार संसारमें अधिक बँध जानेसे साधु पुरुषके सिवाय कोई अबतक इस संसारमार्गसे नहीं लौटा, जिस मार्गमें यह नरलोकसमूह बँधाहुआ है पंडित लोग उस मार्गसे पार होनेके लिये सदा ही उपदेश किया करते हैं ॥ ३८॥ हे राजन्! साधु लोगोंके सिवाय और पुरुषका इस संसारमार्गसे पीछे न लौटनेका कारण यह है कि, यह मार्ग योगानुष्ठानसे भी नहीं रुक सकता, शांतशील और मनको वश रखनेवाले जिन मुनियोंने दंडतक छोड दिया है वह इस मार्गको जानते हैं बरन् उन लोगोंमें भी अनेक इस मार्गके रोकनेमें असमर्थ हुए हैं॥ ३९॥

जो सब दिग्विजयी राजर्षि सदा योग यज्ञ किया करते हैं, वे लोग भी इस मार्गके रोक लेनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ नहीं हुए. वे केवल रणशायी और इसी बसुधाकी मोह ममतामें फँसकर प्रत्येक मनुष्योंसे अनेक अनेक प्रकारकी शत्रुता ठानी और यही कहानी गाते हैं कि, "यह भूमि हमारी" ऐसा समझकर, "सैन जोर नित करत लडाई ॥ धरणी हित जिय देत गँवाई" ॥ संग्रामस्थलमें प्राण दे, इस अपनी पृथ्वीको छोडकर अकेले चले गये ॥ ४० ॥ कोई कोई लोग अपने कर्मसे सूत्रको पकड करके जैसे तैसे संसारकी आपदासे छूट भी जावें, परन्तु फिर भी संसारी मार्गमें प्राप्त होनेसे नरलोक-समूहके ही निकट आजाते हैं. स्वर्गमें गये हुए लोगोंकी भी यही गति होती है ॥ ४१ ॥ योगीवर शुक-देवजी महाराज इसप्रकारसे जडभरतजीकी कही हुई भवाटवीकी वास्तविक व्याख्या करके राजा परीक्षितसे बोले कि, हे राजन्! उन राजर्षि भरतजीके

यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन् ॥ अस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबंधा यां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ॥ ४० ॥ कर्मवल्लीमवलंब्य तत आपदः कथंचिन्नरकाद् विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ॥ ४१ ॥ तस्येदमुपगायंति ॥ आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसाऽपि महात्मनः ॥ नानु वर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥ ४२ ॥ यो दुस्त्यजान्दारसुतान्सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ॥ जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ ४३ ॥ यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ॥ नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्सेवाऽनुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ ४४ ॥

पवित्र चरित्र इस प्रकारसे संक्षेपमें संग्रह करके लोग सदा गाया करते हैं । यथा-जिस प्रकार मक्खियें गरुड़के मार्गका अनुसरण नहीं कर सकतीं, वैसे ही और कोई राजा उन ऋषभपुत्र राजर्षि भरतके मार्गका अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥४२॥ उन भरतजीने भगवान्की भक्तिके हेतु युवा अवस्थामें ही स्त्री, पुत्र, मित्र, राजत्व इत्यादि विषय जो कि अत्यन्त मनोहर और त्यागनेको योग्य नहीं थे उन सब पदार्थोंका क्षणमात्रमें विष्ठाके समान त्याग कर दिया ॥ ४३ ॥ उनके चित्तकी वृत्ति भक्तिके निमित्त प्रबल थी, इससे उन्होंने जो अत्याज्य पुत्र कलत्र और धन जन इत्यादि और सुरवरोंकी प्रार्थनीया लक्ष्मी जो दयाभाजन होनेके निमित्त उनकी ओर दीन भावसे देखती थी उसमें भी अनिच्छा

प्रगट करते हुए, यह कर्म उनके योग्य ही हुआ, क्योंकि जिन समस्त महापुरुषोंका चित्त भगवान्‌की सेवामें अनुरागी होरहा है, उनके निकट परम पुरुषार्थवाली मुक्ति भी अति तुच्छ पदार्थ है ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! जिन्होंने मृगदेहका परित्याग करनेके समय "जो यज्ञरूप भगवान् इत्यादि फलदाता धर्मानुष्ठान करता अष्टांग योगरूपी ज्ञानही जिनका प्रधान कपाल ऐसे योगमूर्ति मायाके नियन्ता इस कारण नार (जीव समूह) जिनका अयन (आश्रय) अर्थात् जो सर्व जीवौंके अन्तर्यामी हैं, उन भगवान् हरिको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ" यह वचन बडे शब्दसे उच्चारण किया था उनके मार्गका अनुसरण करनेको और कौन पुरुष समर्थ होगा ? ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! राजर्षि भरतके गुण और

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ॥ नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन् मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥ ४५ ॥ य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुशृणोत्याख्यास्यति अभिनंदति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न कांचन परत इति॥४६॥ इति श्रीभागव०महा०पंचमस्कंधे जडभरतोपाख्याने ब्राह्मणरहूगणसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

कर्म अतिशय पवित्र हैं प्रत्येक भगवद्भक्त इन दोनोंका सन्मान किया करते हैं इसकारण महात्मा भरतजीका यह चरित्र अतिशय मंगलदायक, दीर्घायु करनेवाला तथा धन, यश, स्वर्ग और मोक्षका साधन करनेवाला है। जो पुरुष भक्तिसहित इस चरित्रको श्रवण करेंगे अथवा पढेंगे और सुनकर हर्षित होंगे वह आपही आप अपने सब कल्याणोंको प्राप्त होंगे। दूसरोंके निकटसे उनको कल्याण ग्रहण करनेकी अपेक्षा नहीं रहैगी ॥ ४६ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां भरतोपाख्याने भवाटवीपरोक्षविवरणवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

१ भजन—जो जन निशि दिन हरिगुण गावत ॥ निस्सन्देह अनन्दसहित सो, मुक्ति मुक्ति फल पावत ॥ १॥ काल व्याल दूरहितें काँपत, यम नेरे नहिं धावत ॥ सेवा करत पार्षद निशि दिन, ठाढ चँवर डोलावत ॥ २ ॥ सुन्दर सुभग विमान सजाकर, सब मिलि ताहि चढावत ॥ शंख मृदंग बजाय धूमसे, परमधाम पहुँचावत ॥ ३ ॥ विष्णुरूप हो जात विष्णुपुर, विष्णुदास कहलावत ॥ शालिग्राम भक्तिकी महिमा, शेष कहत सकुचावत ॥ ४ ॥

दोहा–भरत–चरित वर्णन कियो, पञ्चदशो अध्याय। अब मैं तिनके वंशके, सब नृप कहौं गिनाय ॥ १ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि भरतका पुत्र सुमति हुआ, कोई २ पाखण्डीलोग * इसको जीवन्मुक्त ऋषभदेवके मार्गका अनुसरण करता हुआ देखकर अपनी पापीयसी बुद्धिसे “साक्षात् बुद्धका अवतार हुआ” कह कलियुगमें उसकी कल्पना देवतारूपसे करेंगे, किन्तु वेदमें इसके देवता होनेका कहीं प्रसंग भी नहीं है, जो हो, इस सुमतिसे वृद्धसेनाके गर्भमें देवताजित् नामक एक पुत्र हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ देवताजितके आसुरी नाम स्त्रीमें देवद्युम्न नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके धेनुमतीके गर्भसे परमेष्ठी नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, परमेष्ठीकी स्त्री सुवर्चला थी उससे परमेष्ठीके प्रतीह नामक महात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ जिस प्रतीहने भूरि २ लोगोंके निकट आत्मविद्याका व्याख्यान करके उसके द्वारा आपभी पवित्र हो भगवान् विष्णुजीके साक्षात् दर्शन किये थे। इन प्रतीहके सुवर्चला नाम स्त्रीके गर्भमें प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, यह तीनों पुत्र यज्ञानुष्ठान करनेके विषयमें अत्यन्त पण्डित और चतुर थे। उनके बीच प्रतिहर्ताकी स्त्री स्तुतिमें अज और भूमा यह दो पुत्र हुए ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखंडिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यंति ॥ १ ॥ तस्माद् वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २ ॥ अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥ ३ ॥ य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः ॥ प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानौ अजनिषाताम् ॥ ४ ॥

---

* **शंका**– शास्त्रमें तथा लोकमें मुनियोंने शुकदेवजीको समदृष्टि कहा है कि, शुकदेवजी अच्छे बुरेको. एकसम देखते हैं ऐसे परमहंस होकर श्रीशुकदेवजीने दूसरे प्राणीको पाखण्डी क्यों कहा ?

उत्तर–शुकदेवजीने अपने मनमें विचार किया कि, सतयुग, त्रेता, द्वापरमें चारों वेदोंका राक्षस नाश करते हैं परन्तु कलियुगमें पाखण्डी लोग निश्चय चारों वेदोंका नाश करेंगे. कलियुगमें जो प्राणी उत्पन्न होंगे उन प्राणियोंको सिखानेके लिये तथा चतुर करनेके लिये कलिकालके प्राणी विद्वान् होंगे तो वेदकी रक्षा होगी इसलिये दूसरेको पाखंडी कहा, क्योंकि अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये थोडा भेद करते हैं।

भूमाके ऋषिकुल्यानाम स्त्रीमें उद्गीथ नामक पुत्र हुआ, उद्गीथके देवकुल्या नाम स्त्रीमें प्रस्ताव नाम पुत्र हुआ; प्रस्तावके नियुत्सा नाम स्त्रीमें विभु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, विभुके रति स्त्रीमें पृथुषेण,पृथुषेणके आकूति नाम स्त्रीमें नक्त और नक्तके द्रुतिनाम भार्यामें गय पुत्र जन्मा । यह गय राजा बड़ा यशवान् और राजर्षियोंमें परमोत्तम था और जिन्होंने कि, जगतकी रक्षा करनेकी वासनासे सत्त्वगुण धारण किया है, साक्षात् उन भगवान् विष्णुजीके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण यह राजा ज्ञानीपन आदि लक्षणोंसे महापुरुषताको प्राप्त हुआ था॥ ५ ॥ यह राजर्षि श्रेष्ठ राज्यमें अभिषेकित होकर राजधर्म कहकर प्रजागणोंका लालन पालन शासनादि धर्मके कार्य करता, गृहाश्रममें रहनेसे उसको याग यज्ञादि धर्म भी आचरण करने होते परन्तु उसके यह दोनों प्रकारके धर्म सब भांतिसे भगवान्में अर्पण होनेके कारण परमार्थरूप होगये थे. इस कारणसे इन दोनों धर्मोंसे और ब्रह्मज्ञानियोंकी चरणसेवासे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा उसकी बुद्धि संस्कारित और शुद्ध होगई थी और उसके चित्तसे देहाभिमान दूर हो गया था. इस कारण वह सदा ही स्वयं प्रकाशवान् ब्रह्मानन्दका अनुभव करता था । परन्तु इस प्रकारसे होकर भी वह अभिमानरहित होकर पृथ्वीका पालन करता था। हे पाण्डववंशावतंस परीक्षित् ! इस कारणसे इतिहासके जाननेवाले पुण्य पुरुष अनेक अनेक गाथायें रचकर उसका यश और पवित्र चरित्र गाया करते हैं ॥ ६॥

९/२

भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथः ॥ ततः प्रस्तावो देवकुल्यायाम् ॥ प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुः ॥ विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे ॥ नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः॥ ५ ॥ स वै स्वधर्मेण प्रजापालन पोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयाऽऽपादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्ये आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥ तस्येमां गाथां पांडवेय पुराविद उपगायंति ॥ ६ ॥

उन गाथाओंका अर्थ यह है कि, महात्मा गय यज्ञस्वरूप मनस्वी धर्मरक्षक श्रीमान् साधुजनोंकी सभाके पति और साधुओंका सेवक है इससे भगवान्के अंशके विना और कौन नृपति कर्मादिकसे उनकी बराबरी कर सकेगा ? अर्थात् वह भगवान्का अंश है, वह अपने आपही अपनी समता कर सकता है ॥ ७ ॥ (और भी) जिन साध्वी दक्षकी कन्याओंका आशीर्वाद अव्यर्थ है ऐसी उन कन्याओंने नदियोंके सहित परमहर्षसे जिनका अभिषेक किया था ॥ और जिसके कल्याणविषयमें निराकांक्षी होनेपर भी गुणरूप वत्स द्वारा स्तनपशा (पन्हाव) आनेसे धरणीने जिनकी प्रजागणोंके लिये अनेक अनेक कल्याण स्वयंही दोहन कर दिये थे, भला कर्मोंमें उसकी बराबरी करनेको कौन समर्थ होगा ? ॥ ८ ॥ (और भी) जिसके निष्काम होनेपर भी समस्त वेद अथवा वेदोक्त कर्म उसकी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण करते थे और राजा

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाऽभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ॥ समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥ ७ ॥ यमभ्यषिंचन्परया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ॥ यस्य प्रजानां दुदुहे धराऽऽशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥ ८ ॥ छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्दुदूहुराजहुरथो बलिं नृपाः ॥ प्रत्यंचिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥ ९ ॥ यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ॥ श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥ १० ॥ यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिंचात् ॥ प्रीयेत सद्यः सहविश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥ ११ ॥

लोग समरक्षेत्रमें शरोंसे पूजित होकर जिसको (कर) देते थे और ब्राह्मण लोग पालन और दक्षिणादिक पूजा पाकर अपने अपने धर्म और पुण्यके फलका छठवां भाग जिसको देते थे सो ऐसा कौन पुरुष उसके समान कार्य करनेको समर्थ होगा ? ॥ ९ ॥ और भी—जिसके यज्ञमें बहुत सोमपान करनेसे यज्ञमूर्ती भगवान् इन्द्र अतिशय मत्त होते थे और उससे श्रद्धासहित शुद्ध और अविचल भक्तियोगसे अर्पण किये हुए यज्ञकी पूजाको पूज्य द्रव्यके समान श्रीभगवान् प्रत्यक्षरूपसे स्वीकार करते थे, सो उस महाप्रतापी राजाकी बराबरी कौन कर सकता है ? ॥ १० ॥ (अथवा) जिन भगवान्के प्रसन्न होनेसे देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, तृण इत्यादिसे लेकर ब्रह्माजी और सब ब्रह्माण्ड प्रसन्न होजाता है

५/३

गयाद् गयंत्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुः ॥ वित्ररथाद् ऊर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥ १२ ॥ तत उत्कलायां मरीचिः ॥ मरीचेर्बिंदुमत्यां बिंदुमानुदपद्यत ॥ तस्मात् सरघायां मधुनामाऽभवत् ॥ मधोः सुमनसि वीरव्रतः ॥ ततो भोजायां मंथुप्रमंथू जज्ञाते ॥ मंथोः सत्यायां भौवनः ततो दूषणायां त्वष्टाऽजनिष्ट॥ त्वष्टुर्विरोचनायां विरजः ॥ विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम्॥ १३ ॥ तत्रायं श्लोकः॥ प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ॥ अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥ १४॥ इति श्रीभागव॰म॰पंचम॰ प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥

सो आप विश्वनाथ विश्वम्भर सर्वान्तर्यामी साक्षात् प्रीतिस्वरूप भगवान् विष्णुजी गय राजाके यज्ञमें "हम तुम्हारे यज्ञमें प्रसन्न हुए" यह कहकर स्वयं प्रसन्नता प्रकाश करते थे, इस कारण कौन पुरुष इस गय राजाकी समान होसकेगा ? ॥ १२ ॥ उक्त राजर्षि गयसे गयन्ती नाम स्त्रीके गर्भमें चित्ररथ, सुगति और अवरोधन नामक यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उन तीनों पुत्रोंमें चित्ररथकी भार्या ऊर्णा हुई, इसके गर्भसे सम्राट् नामक एक पुत्रने जन्म लिया ॥ १४ ॥ सम्राट्ने उत्कला नामक स्त्रीमें मरीचि नाम एक पुत्र उत्पन्न किया । मरीचिसे बिंदुमतीके गर्भमें बिंदुमान उत्पन्न हुआ, विंदुमानसे सरघा नाम स्त्रीमें मधु नामक राजर्षिने जन्म लिया, इन मधुकी स्त्री सुमनामें इनसे वीरव्रत उत्पन्न हुए । इन वीरव्रतने भोजा नामिका अपनी स्त्रीके गर्भसे मन्थु और प्रमन्थु यह दो पुत्र उत्पन्न किये । उन मन्थुकी स्त्री सत्या हुई, उससे भौवनका जन्म हुआ, इन भौवनसे दूषणानाम स्त्रीमें त्वष्टाने जन्म लिया । उन त्वष्टाकी स्त्री विरोचना हुई, इसके गर्भमें विरज जन्मे, विरज अति महात्मा थे, उनकी स्त्रीका नाम विषूची था, उसके गर्भसे विरजके सौ पुत्र (१००) और एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ इन विरजका गुण कीर्तन करनेके विषयमें एक श्लोक है । प्रियव्रतके बंशमें सबसे पीछे राजा विरजका जन्म हुआ, जिस प्रकार भगवान् विष्णुजी देवताओंको सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार विरजने अपनी कीर्ति और गुणोंसे इस वंशकी शोभाका विस्तार किया ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रियव्रतवंशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–रचना सकल सुमेरुकी, सोलहमें कहौं गाय। पृथ्वीरूपी कमलकी, जुदे कार्णिका प्राय ॥१॥ अनंतर श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् कहनेलगे कि, हे ब्रह्मन्! भगवान् सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे जहांतक प्रकाश करते हैं, और जहां जहां निशानाथ चंद्रमा, शुक्ल और कृष्णपक्षमें तारागणोंके सहित देख पड़ते हैं, वहांतक भूमण्डलके विस्तारका विशेष वर्णन आप करचुके ॥ १ ॥ उतने परिमाणमें भूमण्डलके मध्य राजा प्रियव्रतके रथके पहियेसे खुदकर सात समुद्र बने हैं, दूसरे हे भगवन्! आपने इन सात समुद्रसे ही इस भूमण्डलके मध्यका और सातों द्वीपोंका संक्षेपमात्र ही वणन किया है ॥ इन सब द्वीपोंका परिमाण और लक्षणयुक्त विशेष विस्तारसहित सब वृत्तांत सुननेकी हमारी अतिशय अभिलाषा

राजोवाच ॥ उक्तस्त्वया भूमंडलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चंद्रमा वा सह दृश्यते ॥ ॥ १ ॥ तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिंधवउपक्लृप्ताः ॥ यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचितः ॥ एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञास्यामि ॥ २ ॥ भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगंतुमलं विबुधायुषाऽपि पुरुषस्तस्मात् प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥

है ॥२॥ हे योगिन्! भगवान्‌के गुणमय स्थूलरूप (ब्रह्मांड) में लगाहुआ मन भी कदाचित् निर्गुण सूक्ष्मतम स्वयंप्रकाश परब्रह्म स्वरूप जो परमपुरुष वासुदेव हैं, उनमें निवेशित होनेको सामर्थ्यवान् होगा, इसलिये हे गुरो! अनुग्रह करके इस विषयको वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे महाराज! पुरुष यदि देवसमान परमायुको प्राप्त होवे तो भी विशेष २ रचनाके नाम और रूप भगवान्‌की मायाकी विभूतिका अन्त मन वचनसे जाननेको समर्थ नहीं होसकता। इसलिये प्रधान प्रधान द्वीपोंके नाम, स्थिरता और चिह्न वर्णन करकेही

तुम्हारे निकट भूगोलके सब स्थानोंकी व्याख्या करेंगे ॥४॥ हे राजन्! यह भूमण्डल एक वड़ेभारी कमलका स्वरूप है, सप्तद्वीप उसके कोष हैं, इस सप्तद्वीपरूप कोषके मध्यमें मध्यवर्ती कोश जम्बूद्वीप है। यह द्वीप पहला है, इसकी चौडाई और लम्बाई लक्ष योजनकी है, यह जम्बूद्वीप कमलपत्रके समान चारों ओरसे गोल है॥५॥ इस द्वीपमें नौ खंड हैं, इन नौ खण्डोंमें भद्राश्व और केतुमाल खण्डके सिवाय प्रत्येकका विस्तार नौ नौ सहस्र योजन है, यह नौखण्ड आठ सीमापर्वतोंसे सुन्दर भांतिसे विभक्त किये हैं ॥ ६ ॥ इन सब खण्डोंके मध्यमें इलावृत नामक खण्ड है, जो सबके अभ्यंतर है, उसके मध्यस्थलमें सब कुलाचल पर्वतोंका राजा और सर्व भावसे सुवर्णमय सुमेरु पर्वत स्थित है। इस सुमेरुपर्वतकी उँचाई और इस द्वीपका विस्तार परिमाणके बराबर लक्ष योजन है, यह पर्वत चोटीकी ओर (बत्तीस हजार योजन) और मूल (सोलह हजार योजन) फैला हुआ है और पृथ्वीमें भी सोलह हजार योजन गडा हुआ है और बाहरी भागमें चौरासी हजार योजन दिखाई देता है, जो हो, यह सुमेरु पर्वत इस प्रकारसे भूमण्डलरूप बडे भारी कमलकी कार्णिका(दण्डी) का रूप हुआहै॥७॥ हे राजन्! इलावृत वर्षके उत्तर भागकी उत्तरादि दिशाओंमें बराबर बराबर जो नीलगिरी, श्वेतगिरी, और शृङ्गवान गिरि हैं। यह तीनों पर्वत यथाक्रमसे रम्यक वर्ष, हिरण्यमय वर्ष और कुरु वर्षके सीमापर्वत स्वरूप होरहे हैं। यह तीनों पर्वत पूर्वकी ओर लम्बे हैं। तीनों पर्वतोंकी दोनों कक्षाओं(बगल)में क्षार समुद्र तक सीमा है

योऽवाऽयं जंबूद्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यंतरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥
यस्मिन् नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवंति ॥६ ॥ एषां मध्ये इलावृतं
नामाभ्यंतरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलय
कमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावतांतर्भूम्यां प्रविष्टः॥७॥ उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः
श्वेतःशृंगवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रं पृथ
व एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तरउत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्येण एव ह्रसंति ॥ ८ ॥

९/५

इनका विस्तार दो हजार योजन है। इन पर्वतोंमें प्रथम पर्वतकी अपेक्षा पिछला पर्वत लम्बाईमें दशांशसे कुछ अधिक भागमें कम है अर्थात् केवल एकादश अंश दीर्घताके परिमाणमें छोटे हैं ॥८॥ इस प्रकार इलावृत वर्षके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामक क्रमसे तीन पर्वत हैं।यह तीनों पर्वत पहले कहेहुए नीलादि पर्वतोंके समान पूर्व दिशाकी ओर लम्बायमान हैं और प्रत्येक दश दश हजार योजन ऊंचा है, हे राजन्! यह तीनों पर्वत यथाक्रमसे हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्षके सीमा-पर्वत हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकारसे इलावृत वर्षके पूर्व और पश्चिम दिशामें यथाक्रमसे माल्यवान और गन्धमादन नाम पर्वत हैं. यह दोनों पर्वत उत्तरमें नीलपर्वत और दक्षिणमें निषधाचलतक लम्बे हैं। और दो दो हजार योजन चौडे हैं ॥ यह दोनों पर्वत यथाक्रमसे केतुमाल और भद्राश्व वर्षकी सीमा होरहे हैं ॥ १० ॥ सुमेरुके चारोंओर

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा· नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षाकिंपुरुष भारतानां यथासंख्यम् ॥ ९ ॥ तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गंधमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः ॥ केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥ १० ॥ मंदरो मेरुमंदरः सुपार्श्वः कुमुदः इति अयुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टंभगिरय उपक्लृप्ताः ॥ ११ ॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजंबूकदंबन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥ १२ ॥

मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार पर्वतरूपी खंभ है। इन पर्वतोंमें प्रत्येकका विस्तार और उँचाई दश दश हजार योजन है. इन चारों पर्वतोंमें पूर्व और पश्चिम देशके पर्वत पूर्व पश्चिमको फैले हुए हैं ॥११॥ इन चारों पर्वतोंपर चार ही सुन्दर सुन्दर वृक्ष हैं, पूर्व दिशाकी ओर मंदर पर्वतपर तो आम, दक्षिण दिशामें मेरुमंदर गिरिके ऊपर जामुन, पश्चिम दिशाकी लतामें सुपार्श्व भूधरके ऊपर कदम्ब और उत्तर दिशाकी सीमामें कुमुद शैलपर बट, यह वृक्ष पर्वतोंकी ध्वजाके समान दृष्टि आते हैं और ग्यारह ग्यारह सौ योजन ऊँचे और ग्यारह ग्यारह सौ योजन उनकी शाखाओंका विस्तार है। और सौ सौ योजनकी मोटाई है ॥ १२ ॥

ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयंति ॥ ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवंति चत्वारि नंदनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥ १४ ॥ येष्वमरपरिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरंति ॥ १५ ॥ मंदरोत्संग एकादशशतयोजनोत्तुंगदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥१६॥ तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगंधिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मंदरगिरिशिखरान्निपतंती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥ १७॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! इन चार वृक्षोंके निकटही चार ह्रद हैं, उनमेंसे एकमें दुग्धजल, दूसरेमें मधुजल, तीसरेमें ईखके रसका जल और चौथेमें शुद्ध मीठा जल है। इन चारों ह्रदोंके जलमें अतिशयः चमत्कार है, उपदेवता लोग इन ह्रदोंके जलका सेवन करके स्वाभाविक योगैश्वर्य धारण करते हैं ॥१३॥ इस स्थानमें ऊपर कहे हुए चार ह्रदोंके व्यतिरिक्त चार श्रेष्ठ उद्यान भी हैं; इन सबकेनाम यथा—नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र है ॥ १४ ॥ इन सब उद्यानोंमें प्रधान प्रधान देवता जो देवांगनाओंमें रत्नस्वरूप स्त्रियोंके पति हैं वह अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ मिलकर विहार किया करते हैं। इस प्रकारसे विहार करनेके समय उपदेवतागण उनकी महिमा गाया करते हैं ॥ १५॥ मन्दर पर्वतके मध्यमें देवताओंका जो एक आमका वृक्षहै, वह ग्यारह योजन तो ऊँचा है, उस बृक्षके अग्रभागसे सदा अनेक अनेक अमृततुल्य बहु मधु फल गिरा करते हैं। यह सब फल पर्वतोंके शिखरकी समान बडे होते हैं* ॥ १६ ॥ इन सब बडे बडे फलोंकी अति मधुर सुगंधहै और जब यह गिरकर फटते हैं,

45

---

* **शंका**—कदम्ब, आम्र.जामुन और वट इन वृक्षोंका चरित्र.सुनके तथा इन वृक्षोंसे उत्पन्न हुए सब पदार्थोंके देनेवाले नदी तथा कुण्ड सुनिके हमारा चित्त अत्यन्त चकित हो रहा है. और काँपता है शंका करके शंकासे डरके—शंकाके.भयसे छिपगया.क्योंकि आजतक ऐसी बात सुननेमें नहीं आई कि नदीमें और कुण्डमें सब पदार्थ भर रहे है ?

उत्तर—जब ब्राह्मण. क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब अपने अपने धर्ममें और वेदके मार्गमें दृढ और स्थित थे तब नदियोंका कुण्डोंका वृक्षोंका जो जो प्रभाव श्रीमद्भागवतमें लिखा है सो सब सत्य था. जब चारों वर्णोंने कलियुगमें अपने अपने धर्मको और वेदमार्गको त्याग दिया और पाखण्डी बन पाखण्ड मतको ग्रहण किया तब भगवान्‌ने समझा कि यह दुष्ट इन स्थानोंको भी भ्रष्ट करेंगे यह विचार कर उन कुण्ड और वृक्षोंको गुप्त कर दिया और किसीका प्रभाव हर लिया।

तब सौरभ-सुवासित अरुण वर्णका रूप होनेसे धाराप्रवाह इनका रस ही जलस्वरूप होनेसे उनमें अरुणोदा नामक एक नदी हुई है, वह नदी मन्दर पर्वतके शिखरसे निकलकर पूर्वकी ओर इलावृत खण्डको धोतीहुई, पूर्वकी ओरको चली गई ॥ १७ ॥ इस जलके सेवन करनेसे ही भवानीजीकी अनुचरी यक्षाङ्गनाओंके अंगमें सुगन्ध होजाती है, उनके शरीरको छूकर पवनमें ऐसी सुगन्ध होजाती है कि, चारों ओर दश दशयोजन तक वह सुगन्धित पवन आमोदित करती रहती है ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे जम्बूवृक्षके समस्त फल हाथीके शरीरके समान बडे बडे और कृष्णवर्ण होते हैं और जिनकी गुठली अति छोटी होती है, जब वह ऊंचेसे गिरते हैं तो फट जाते हैं और उनके रससे जम्बूनाम एक नदी उत्पन्न हुई है, वह नदी मेरुमन्दरके शिखरसे दश हजार योजन ऊंचेंसे पृथ्वीपर गिरती है और जिस स्थानमें गिरती है उस स्थानसे अपने दक्षिणमें समस्त इलावृत वर्षमें व्यापकर बह रही हैं ॥ १९ ॥ इस नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी उसके जलके रससे भीग वायु और सूर्यके संयोगसे भलीभांति पकजानेपर जाम्बूनद नामक महामूल्यवान् सुवर्ण होजाता है, जिस सुवर्णको देवादि सब ही अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ मुकुट, कटक, कटिमेखला इत्यादि आभरण बनाकर पहना करते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ सुपार्श्व पर्वतकी कक्षामें महाकदम्बनामक जो बडा भारी कदम्बका पेड है उसके समस्त कोटरोंसे पांच मधुकी धारा उस पर्वतपरसे गिर अपने पश्चिमकी ओरमें इलावृत वर्षको अपनी सुगन्धसे

यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगंधवातो दशयोजनं समंतादनुवासयति ॥ १८ ॥ एवं जंबूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बूनाम नदी मेरुमंदरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतंती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यंदयति ॥ १९ ॥ तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जांबूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥ २० ॥ यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयंति ॥ २१ ॥ यस्तु महाकदंबः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिस्सृताः पंचायामपरिणाहाः पंच मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात् पतंत्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयंति ॥ २२ ॥

चारों ओर सौ सौ योजन तक सुवासित कर देतीहैं ॥ २२ ॥ जो प्रजागण इस पर्वतकी मधुधाराओंका सेवन करते हैं; उनके वदनकी सुगन्धिके
स्पर्शसे वायुसु गंधित होकर सौ सौ योजन तक चारों ओर महका देता है ॥ २३ ॥ इसी प्रकारसे कुमुद पर्वतपर शतवल्श नामक जो वटवृक्ष है
उसके स्कन्धोंसे नीचे नीचेको दही,दूध, घी, मधु, गुड, अन्न इत्यादि और वसन, भूषण, शयन आसनादि समस्त मनोवांछित:वस्तु दोहनकारी
जो नद इस पर्वतके अग्रभागसे निकलकर अपने उत्तर इलावृत देशको महोपकार करके उत्तरकी ओर समुद्रमें मिलगये हैं ॥ २४ ॥ इन नद
नदियोंमें स्नान करनेसे वहके रहनेवाले प्रजागणोंको कभी अंगकी विकलता, थकावट, स्वेद, जरा,रोग, अकालमृत्यु शीत वा गरमीके कारण

या ह्युपयुंजानानां मुखनिर्वासितो वायुः समंताच्छतयोजनमनुवासयति ॥ २३ ॥ एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो
नाम वटस्तस्य स्कंधेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यंबरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः
कुमुदाग्रात्पतंतस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयंति ॥ २४ ॥ याननुजुषषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौ
गंध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवंति ॥ यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥ २५ ॥ कुरंग कुरर
५/६ कुसुंभवैकंकत्रिकूटशिशिरपतंगरुचकनिषधशिनीवासकपिलशंखवैडूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालंजरनारदादयो विंशति
गिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥२६ ॥ जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसह
स्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुंगौ भवतः ॥ एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतौ ॥ एवमुत्तरत
स्त्रिशृंगमकरौ अष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति कांचनगिरिः ॥ २७ ॥

विलावन और विघ्न आदि जो सन्ताप विशेषहैं,वह सब कुछ भी नहीं होते, वह केवल महासुखभोगहीमें समय:बिताया करते हैं ॥ २७ ॥ हे
राजन् कुरंग, कुरर, कुसुम्भ,वैकंक, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनि, वास, कपिल,शंख,वैदूर्य,जारुधि,हंस,ऋषभ, नाग, कालञ्जर
और बीरद प्रभृति वीस पर्वत सुमेरुके मूलमें चारों ओर बने हुए हैं, जिससे कि यह पर्वत कर्णिका अर्थात् कमलपत्रके समान है और सुमेरु पर्वतके
केशरोंकी नाईं हैं ॥ २६ ॥ सुमेरु पर्वतकी पूर्व ओर जठर और देवकूट पर्वत है.यह दोनों पर्वत प्रत्येक उत्तर दिशाको अठारह २ हजार योजन

लम्बे और दो दो हजार योजन चौडे और ऊंचे हैं. इसी प्रकार सुमेरुकी पश्चिम दिशामें पवन और पारियात्र दो पर्वत हैं. दक्षिण दिशामें कैलास और करवीर गिरि हैं । यह दोनों पर्वत पूर्वकी दिशाको लम्बायमान हैं, उत्तरकी ओर त्रिशृंग और मकर नाम दो पर्वत हैं, ये पश्चिम ओर विस्तृत हैं, इस प्रकार मूलसे सहस्र योजन, परित्याग करके चारोंओर अग्निकी परिधिके समान इन आठ पर्वतोंसे घिराहुआ काञ्चन गिरि अर्थात् सुमेरु पर्वत चारों ओरसे प्रकाश कर रहा है॥२७॥ इसके जाननेवाले पंडित लोग कहते हैं कि, इस सुमेरुके मस्तकके ऊपर सबसे ऊंची मध्यस्थलमें भगवान् आत्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी निर्मित है उसका विस्तार दश हजार योजन है वह सुवर्णकी बनीहुई है और चारोंओर

मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौंभीं वदंति ॥ २८ ॥ तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयभागेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंच०भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिंगस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वांडकटाहविवरेणांतः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपंकजावनेजनारुणकिंजल्कोपरंजिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवततार ॥ १ ॥

समान चतुष्कोण है॥२८॥इस पुरीके ऊपरी भागमें पूर्वादि सब दिशांओंमें क्रमसे उत्तरादि अष्ट लौकपालोंकी[१] आठ पुरी बनीहुई हैं इन सब पुरियोंक वर्णन उनमें रहते हुए लोकपालोंके वर्णके समान हैं । और प्रत्येकका परिमाण ब्रह्मपुरीके परिमाणसे चतुर्थ अंश अर्थात् ढाईहजार योजन है॥२९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६

दोहा–सत्रहवें सब दिशनमें, श्रीगंगाकोगौन।
इलावृत्तमें शम्भुकृत, संकर्षण व्रत भौन ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस अध्यायमें कलिमलदलहारिणी; परमानन्दकारिणी, सर्व

---

१ श्लोक–"मेरौ नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ॥ तेजोवती संयमनी तथा कृष्णांगना परा ॥ १ ॥ श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया ॥ यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम्" इति॥२॥

सुखदायिनी, श्रीगंगामहारानीके माहात्म्यकी कथा वर्णन करते हैं,आप सावधान होकर श्रवण कीजिये. साक्षात् श्रीभगवान् विष्णुजीने जब बलि राजाके यज्ञमें जाकर अपना बिराट्रूप कर तीनों लोकोंको नापा उससमय दहिने चरणसे पृथ्वीको दबाकर जैसे जैसे ही बांया चरण ऊपरको उठारहेथे. तैसे ही वामचरणके अंगुष्ठनखसे ब्रह्माण्डके ऊपरका भाग कटनेसे जो छिद्र हुआथा,उस छिद्रमेंसे चरणविहारिणी, भवभयनिस्तारिणी,गङ्गाजीकी जो ब्रह्मधारा,ऊपर स्थित हुए ब्रह्माण्डके भीतर पैठी थी, यह वही धारा स्वर्गमस्तकसे उतरकर पृथ्वीमें उतरी है ! यह जलकी साधारण धारा नहीं है, इसकी धारासे धुलनेके कारण भगवान्के चरणकमलमें :लगा हुआ :जो कुमकुम अरुण वर्ण होगया था उसके नागकेशर सदृश रंग जानेसे इस धाराने अत्यन्त शोभा धारण की थी,यद्यपि इससे अखिल जगत्का मल विनाशको प्राप्त होजाताहै तौ भी यह वारिधारा आपही अत्यन्त निर्मल है,और भगवान्के चरणोंसे उत्पन्न हुई इसलिये इनके"जाह्नवी, भागीरथी"इत्यादि पद और नाम रक्खे गये हैं. हे राजन् !विष्णुभगवान्के चरणकमलसे

९।७

यत् तद् विष्णुपदमाहुः॥यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविंदोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगन दृढं क्लिद्यमानांतर्हृदय औत्कंठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाऽभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनाऽपि परमादरेण शिरसा बिभर्ति॥ २ ॥

निकली हुई,यह गंगाजी यद्यपि बलि राजाके यज्ञसमय उपस्थित ब्रह्माण्डके भीतर छिद्रमें प्रकाशित हुई थी तोभी वहांसे सहसा पृथ्वीपर नहीं उतर आईं । बहुत बडे काल अर्थात् दो सहस्र युगके पीछे स्वर्गमस्तकसे पृथ्वी पर गिरी हैं । हे राजन् स्वर्गका मस्तक किसे कहते हैं उसका वृत्तान्तभी संक्षेपसे वर्णन करता हूँ तुम श्रवण करो. पंडित लोग जिसको विष्णुपद कहते हैं वही स्वर्गका मस्तक है ॥१॥ उत्तानपादके पुत्र परम भागवत वीरव्रत, दृढ़संकल्प, ध्रुवजी विराजमान थे, उन्होंने श्रीगंगाजीको देख मनमें परमानन्द मान कहा कि, यह हमारे कुलदेवता भगवान् हरिके चरणका जल है, ऐसा मनमें समझ [प्रीतिसहित, अब तक प्रतिदिन परम आदर सन्मानसे अपने मस्तकपर उस वारिधारा (गंगा) को धारण कर रहे हैं, इन महात्मा ध्रुवजीके हृदयका मध्यभाग क्षण क्षणमें बढ़तीहुई भक्तिके योगसे अत्यन्त द्रवीभूत होता है, इसकारण उत्कण्ठासे विवश

उनके कुछेक बन्दहुए कमलरूपी युगल नेत्रोंसे अश्रुबिंदु गिरते हैं और सर्व शरीरमें रोमांच होआता है ॥२॥ राजन् ! गंगाका प्रभाव जाननेमें वाले महर्षिगण "यही गंगा तपस्याकी परमसिद्धि हैं इनसे पर और कोई सिद्धि नहीं है" इस प्रकारका निश्चय करके अपनी अपनी जटाके समूह इन गंगाजीको धारण करते हैं. हे भरतवंशावतंस ! सप्त ऋषियोंके इस प्रकारसे निश्चय होनेका हेतु यह है कि, सबके आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवमें ऐकान्तिक भक्तियोग प्राप्त करनेसे और दूसरे पुरुषार्थ व आत्मज्ञानमें जिनकी आस्थामात्र नहीं बरन् उससे दूर रहनेकी इच्छा करते हैं, इसलिये इस प्रकारके निर्लोभी मुमुक्षुजन जैसे मुक्तिको धारण करते हैं, उनहीके समान परम यत्न और आदर सत्कारसहित वह सप्तर्षि गंगाजीको

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यंतिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहंति ॥ ३ ॥ ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरंतींदुमंडलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥ ४ ॥ तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्यंदंती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति ॥ सीताऽलकनंदा चक्षुर्भद्रेति ॥ ५ ॥ सीता तु ब्रह्मसदनात् केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः :प्रस्रवंती गंधमादनमूर्धसु पतित्वा अंतरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥ ६ ॥

गं

धारण किया करते हैं ॥ ३ ॥ विष्णुजीके चरणसे उत्पन्न हुई यह गंगाजी सप्तऋषियोंके स्थानसे हजारों करोड़ों विमानोंके समूह जिसमें शोभित हैं, ऐसे आकाशमार्गसे उतरकर चंद्रमण्डलको आप्लावित करती हुई सुमेरु पर्वत पर स्थितहुए ब्रह्माके सदनमें गिरतीहै ॥ ४ ॥ वहांपर अलग अलग नामसे चार धाराओंमें विभाग होकर चारों ओरको सर्वभावसे बहती हुई सरितपति समुद्रमें मिली है। उन चारों धाराओंके नाम यह हैं—सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा ॥५॥ इन धाराओंमें प्रथम ही सीता ब्रह्म सदनसे प्रगट हो केसराचल आदि पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती प्रधान प्रधान शिखरोंपर गिरती है, तिसके पीछे इन सब शृङ्गोंसे क्रमसे नीचेको बहकर गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर

गिर फिर भद्राश्व खण्डके मध्यमें बहकर पूर्वकी ओर लवण समुद्रमें मिल गई है॥६॥इसी प्रकारसे चक्षु नामक धारा माल्यवान पर्वतके शिखरसे निकलकर महावेगवती केतुमालखण्डके सन्मुख होती हुईं पश्चिम दिशाके समुद्रमें जाय मिली ॥७॥ भद्रा नामक धारा उत्तरदिशामें सुमेरुके शिखरसे गिरकर एक शिखरसे और दूसरे पर्वतके शिखरपर होती हुई कुमुद पर्वतके शिखरसे चलकर नीलगिरी शिखरपर आई,वहांसे बहकर श्वेत पर्वतके शृंगपर, वहांसे शृंगवान पर्वतपर पहुँच, वहांसे नीचे गिरी, और उत्तर कुरुदेशमें होकर क्षार समुद्रमें मिलती है॥८॥अलकनन्दा

एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतंती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृंगवतः शृंगादवस्यंदमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥८॥ तथैवालकनंदा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धेमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठंती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥९॥ यस्यां स्नानार्थं पानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति॥अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे संति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥१०॥ तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशंति ॥११॥

नामक धारा भी इसी प्रकारसे पर्वतोंको तोड़ती फोड़ती ब्रह्मलोकसे गिरती, बहुतसे गिरिशृंगोंको उल्लंघन करती हुईं, बडे भारी तीव्रवेगसे लुंढकती हेमकूट और हेमकूटमें होती हुई, भारतवर्षमें व्याप्त होकर दक्षिणकी ओर लवण समुद्रमें जा मिली है । इस गंगामें स्नान करनेके लिये आये हुए मनुष्योंको एक एक पगपर अश्वमेध व राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है॥९॥हे राजन्! और भी बहुत भाँतिके नद नदी सुमेरु इत्यादि पर्वतोंसे उत्पन्न होकर प्रत्येक खण्डमें शत शत धाराओंसे बहती हैं ॥ ॥ १० ॥ परन्तु जितने खण्ड हैं, सबमें भारतवर्षको ही कर्मक्षेत्र कहते हैं

और जो आठ खण्ड हैं, वह स्वर्गवासियोंके शेष पुण्य भोगनेके स्थान हैं । वह स्वर्ग नामसे विदित भूमिके विकारही हैं॥ ११॥ इन आठ वर्षोंमें
जो पुरुष वास करते हैं; उनकी आयु दश सहस्र वर्षकी होती है, देवताओंकेसा रूप होता है और दश हजार हाथियोंके समान उनमें बल होता है
वज्रतुल्य दृढ़ शरीर होता है, उस शरीरमें ऐसा बल वयस व हर्ष होता है कि, उससे महासुरत संवंधीय मिथुन (स्त्री पुरुष) अतिशय प्रमुदित
होते हैं और संभोग करनेके अंतमें एक वर्षकी आयु जब रह जाती है, तब उन लोगोंकी स्त्रियें गर्भ धारण करती हैं। इस प्रकारसे विषयसुखकी
श्रेष्ठताके हेतु इन सब वर्षोंमें पुरुषोंका त्रेतायुगके समान परम सुखसे समय व्यतीत होता है ॥ १२॥ इसलिये इन सब खण्डोंके मनुष्य देवपति
हैं, वह अपने अपनें योग्य स्थानोंमें अपने अपने मुख्य सेवकोंसे पूजित होकर अपनी अपनी इच्छानुसार बडे बडे महात्मा पुरुष आश्रमोंमें,

एषु पुरुषाणामयुतं पुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥ १२ ॥ यत्र ह देवपतयः स्वैस्स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियाऽऽनम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुंभमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारंडवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुंदरीणां कामकलिलविलासहासलीलाऽवलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरंति ॥ १३ ॥

पर्वतोंमें, कन्दराओंमें और निर्मल जलाशयोंमें अनेक अनेक प्रकारसे जलविहार करते रहते हैं और छहों ऋतुओंमें वहांके वृक्षोंकी शाखाओंमें
फूलोंके गुच्छेके गुच्छे फूल रहे हैं, हरे हरे पत्तोंके समीप कोमल कोमल कोपलें पीली, लाल, हरित, ऐसी शोभा दे रही हैं, मानों मनको विना
मूल्य मोल लिये लेती हैं और डालीडाली पर फलोंकी छबि निरालीही समृद्धियोंसे भरी पृथ्वीकी ओरको झुकी पडती हैं, जैसे धनी पुरुष धन
पाकर नीचा होजाता है, उनपर भाँति भाँतिके पुष्पोंसे लदी लहलहाती चुहचुहाती हुई लताओंने जिन लम्बे लम्बे द्रुमोंका आश्रय ले रक्खा
है, तो भी पुष्पोंके अधिक भारसे और पवनके संचारसे नीचेको ऐसी झुक झुक जाती हैं, मानो पृथ्वीको अपनी जननी समझकर बारम्बार शिर

१५७

झुका झुका कर नमस्कार कर रहीं हैं और वायुके वेगसे जो सुमन गिरते हैं मानो झरझर अपनी माता वसुंधराको चढ़ाती ही हैं ऐसे सुन्दर शोभायमान वनके वृक्षोंसे आश्रमोंमें जहाँ तहाँ अद्भुत छबि छा रही है और वहां जो सुन्दर सुन्दर ताल और सरोवर हैं उनकी शोभा कहाँ तक वर्णन कीजाय ? उन नवीन नवीन भाँतिके विकसितकमल और कलियोंकी सुगन्धसे प्रसन्न हो होकर राजहंस, कलहंस, जल-मुर्गाबियां, कारण्डव, सारस और चकवे इत्यादि पक्षियोंके कलरवसे और भँवरोंके समुदायकी गुंजार जलाशयमें सुन्दर सुन्दर सुरसुन्दरी सुन सुनकर मनहीमन आनन्द हो, परमपवित्र जल देख देख अनेक अनक प्रकारकी जलक्रीडा कर कर कामदेवसे क्षुभित हास विलासादिकोंसे जिनके मन वशीभूत होरहे हैं और उनके हावभावको निहार निहार वहांके जलविहार करनेवाले देवताओंके मन और नेत्रोंकी मकनातीस (लोहचुंबक) पत्थरके समान परस्पर खैंचतान होरही थी ॥ १३ ॥ इन कहे हुए खण्डोंमें महापुरुष भगवान् नारायण भक्तोंके ऊपर परम अनुग्रह करनेके लिये अपनी मूर्तियोंके समूहमें आजतक सम्यक् प्रकारसे विराजमान होरहे हैं ॥ १४ ॥ इलावृत खण्डमें सदा सहस्र शिरवाले संकर्षणका ही पूजन होता है, और वही महादेवके हृदयमें वास करते हैं, इसलिये इलावृत खण्डमें भगवान् शिव ही एक पुरुष हैं, वहां और कोई पुरुष नहीं है; क्योंकि जो लोग श्रीभवानीके शापको जानते हैं वे लोग कभी उस स्थानमें भूल कर भी पाँव नहीं रखते और जो कोई पुरुष विना जाने बूझे उस खण्डमें चला भी जाता है तो वह तत्क्षण स्त्रीस्वरूप होजाता है, इसका विशेष वृत्तान्त पीछे नवमस्कन्धमें कहेंगे ॥ १५ ॥ इस इलावृत खण्डमें भवानीवल्लभ पार्वतीपति भूतनाथकी असंख्यात अर्बुद पार्वतीकी अनुचरी स्त्रीगण दिनरात शिवजीकी सेवा करती हैं,–शिवजी महाराज शेष भगवान्की आराधना किया करते हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस नामकी चार मूर्ति महापुरुषकी चौथी तामसी अपनी आत्माकी

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाऽद्यापि सन्निधीयते॥ १४॥ इलावृते तु भगवान्भव एक एव पुमान्न ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञः यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद् वक्ष्यामि॥ १५ ॥ भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः संकर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन्भव उपधावति ॥१६॥

प्रकृति संकर्षण भगवान्का रूप धारकर अपनी समाधि रूप जिससे स्वयं आप प्रगट हुए हैं, उसी प्रतिमासे अन्तर्वर्ति चैतन्य होकर भगवान् महादेवजी इस मंत्रका दिनरात जप करतें रहते हैं ॥ १६ ॥ "ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाऽव्यक्ताय नमः" अर्थ उत्पत्ति, पालन, संहारकरता षड्गुण ऐश्वर्यवान् महापुरुष सर्वगुणप्रकाशक:अनन्त, अव्यक्त, श्रीसंकर्षण भगवान्को मैं वारम्वार नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ हे: भजनीय भगवान् ! सम्पूर्ण ऐश्वर्य देनेवाले, भक्तिके परमस्थान, अपने भक्तोंके अत्यन्त आनन्ददायक, अपने जनोंको अपने मनोहर स्वरूपका दर्शन देनेवाले, संसारनाशक, सब जन जिनकी भावना करैं, ऐसे परमेश्वरके शरणागत–रक्षक चरणारविन्दोंका मैं भजन करता हूँ ॥ १८ ॥ मायाके गुण चित्तकी वृत्तिसे आप नित्यप्रति देखते हैं, तोभी अपनी दृष्टिको किंचिन्मात्र लिप्त नहीं होती,जैसे हम लोग

श्रीभगवानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानंतायाऽव्यक्ताय नम इति ॥१७॥ भजे भजन्या
रणपादपंकजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलंभावितभूतभावनं भवापहं त्वां भवभावमीश्वरम् ॥१८॥ न
यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरा
त्मनः ॥१९॥ असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पा
दयोः स्पर्शनधर्षितेंद्रियाः ॥ २० ॥

क्रोधके वेगको जीतनेका सामर्थ्य नहीं रखते इसलिये हमको इस संसारसागरसे बचना कठिन है, ऐसे आपही अपनी आत्माको जीतकर वशमें रखते हैं इसलिये जो अपनी आत्माको जीतनेकी इच्छा करै अर्थात् मोक्षपदको लिया चाहे, वह कौन सामर्थ्यवान है जो आपका भजन न करै ? ॥१९॥ अज्ञानी, कुबुद्धि मायासे विमोहित असत् दृष्टिवाले मनुष्यको आप मदभरे लाल लाल नेत्र मतवालेकी सदृश, भयानक रूप मायासे दृष्टि आते हो, देखो कि लज्जाकी मारी नागवधू विधानपूर्वक आपकी पूजा भी करती हुई डरती हैं और आपके चरणारविंदोंका स्पर्श भी नहीं कर सकतीं, क्योंकि मनोभवसे असी कामातुर होरही हैं, कदापि कोपदृष्टिसे देखकर हमें भस्म कर दें और दूसरे चंदन और पुष्पादिको कोई इसलिये भी नहीं चढ़ा सकतीं, कि आपके कोमल पदोंमें चंदनके कण और पुष्पोंकी पखुरी कहीं चुभ न जायँ ॥२०॥

इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहारके करनेवाले अनंत और संत और वेदमंत्र आपको उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयसे रहित कहते हैं, आपके दश सहस्र मस्तकोंमेंसे न जानिये कौनसे मस्तक पर यह अण्डकटाह सरसोंके दानेकी समान रक्खा है, इस बातकी आपको इतनी भी सुधि नहीं, ऐसे शेष भगवान्‌के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ जिनका आद्य महत्तत्त्व और सत्त्वगुण जिसका आश्रय है, वह आपके गुणसम्बन्धसे महाविज्ञानरूप सत्वप्रधान भगवान् वासुदेव हुए उनकी नाभिसे भगवान् ब्रह्माजी हुए जिनसे मैं रुद्र होकर त्रिगुणात्मक अपने तेज अहंकारसे देवता वर्ग, भूतवर्ग और इन्द्रिय वर्गको उत्पन्न करता हूँ ॥२२॥ जैसे कीट और विहंग रस्सीसे बँधकर पराये वशमें होजाते हैं, इसी प्रकार आपके वशमें होकर यह हम सब महत्तत्त्व देवता, भूत और इन्द्रिय गण हो रहेहैं, जिनके अनुग्रहसे हम सब ब्रह्माण्डको सृजते हैं, और आपको सृजनहार कहते हैं ॥ २३ ॥ जिनकी रची हुई माया कर्मोंकी पूर्व रूप धारिणी मायाको गुण सर्गोंसे मोहित होकर जो जन उसको सहज जानते हैं परन्तु इस बातका कुछ भी उपाय नहीं करसकते कि, किस रीतिसे हमारा निस्तार होगा, जिनकी ऐसी मनमोहिनी अद्भुत माया है ऐसे विश्वके उत्पन्न पालन नाशकर्ता भगवान्‌के अर्थ हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायामिलावृतखंडे भगवत्संकर्षणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनंतमृषयः॥न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित् स्थितं भूमंडलं मूर्धसहस्रधामसु॥२१॥यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान् विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल॥यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे॥२२॥एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुंता इव सूत्रयंत्रिताः ॥ महानहं वैकृततामसेंद्रियाः सृजाम सर्वं यदनुग्रहादिदम्॥२३॥यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः॥न वेद निस्तारणयोगमंजसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने॥२४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

---

१ भजन–तेरी महिमा अपरम्पार! किसीने पार न पाया रे ॥ योगी यती संसारसी अमर है जिनकी कायारे ॥ हरि हरि हरि रटतेही जिन्हें जन्म गँवा रे ॥ ३ ॥ शेष सहस मुख रटत पंचमुख शिवने गाया रे ॥ चार मुख ब्रह्माने चारों वेदोंको सुनायारे ॥२ ॥ किसीने घरमें बैठ जनकसम योग कमाया रे ॥ कोई बनके बैरागी त्यागी जगमें कहला रे ॥३॥ कोई बना तंतरी मंत्र मरघटमें जगाया रे ॥ किसीने वनके ध्यानी ध्यान रघुवरसे लगाया रे ॥ ४ ॥ हरिकी शालिग्राम जगत्में अद्भुत माया रे ॥ सबने खोजा पर खोज किसीके हाथ न आया रे ॥ ५ ॥

दोहा–छहों खण्डमें जो बसत, प्रभु अरु प्रभुके दास। अष्टादशमें सबनके, कहौं चरित्र विलास ॥ १ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि, हे राजन् !
भद्राश्वखण्डमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामक खण्डपति और उसके प्रधान प्रधान सेवक लोग वास करते हैं, वह साक्षात् भगवान् वासुदेवकी धर्ममयी
हयग्रीवजीकी परमप्रिय मूर्तिको उत्तम समाधिसे अपने अपने हृदयमें धारण करके वक्ष्यमाण मंत्रका जप करनेके समय यह स्तुति करते हैं॥१॥
मंत्रः "ओं नमो भागवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः" भद्रश्रवा बोले कि, उत्पत्ति,पालन, संहारकर्ता, षड्गुण ऐश्वर्यवान्, आत्माके शुद्ध करने
वाले, धर्मस्वरूप भगवान् आपको बारम्बार मेरा नमस्कार है ॥ २ ॥ अहो ! श्रीभगवान्की गति अति विचित्र है कि, लोक प्रत्यक्ष अपने
नेत्रोंसे देखते हैं, कि, दिन रात प्राणी कालके मुखमें चले जाते हैं तो भी प्राणहरण करनेवाली मृत्युकी चिंता नहीं करते बरन् और अधिक

श्रीशुक उवाच ॥ तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद् भगवतो वासुदेवस्य प्रियां
तनुं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणंत उपधावंति ॥ १ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥
ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नंतं जनोऽयं हि मिषन्न
पश्यति ॥ ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः ॥३॥ वदंति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यंति
चाध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथापि मुह्यंति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥

असत् कर्मोंके सेवन करनेका ध्यान करते हैं और जब बालक संतान व वृद्ध पिताके मरजानेसे उनकी दाहक्रिया करके जानते भी हैं कि,
कालकी यह करालगति है तोभी अपने आपको अजर अमर समझकर उस धनको सन्मान भावसे ग्रहण करके उससे अपना जीवन धारण
करनेकी इच्छा करते हैं सो यह भी नहीं कि उस धनसे धर्मका संचय करैं, बरन् किंचित् विषयसुखके भोगनेकी लालसासे केवल पापकर्महो
का विचार किया करते हैं॥३॥ हे प्रभो ! हम ऐसा नहीं कह सकते, कि विद्वान्लोग इस विश्वकी आलोचना नहीं करते. हम प्रगटही देखते हैं
कि पंडित लोग इस संसारको नाशवान् कहते हैं और आत्मतत्त्वके जाननेवाले योगीजन समाधि लगानेके समय जिसको नाशवान् होना
प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं तो भी हे अज ! वे लोग तुम्हारी मायासे मोहित होजाते हैं, आपकी यह चेष्टाभी साधारण चमत्कारक नहीं है,

यह कृत्य भी आपका अत्यन्त विस्मय करानेवाला है इससे अब हम शास्त्रादिक जाननेके लिये वृथा परिश्रम नहीं करेंगे, सब परिश्रमोंको त्यागकर केवल आपके चरणारविंदोंकोही प्रणामकरते रहेंगे ॥४॥ हे प्रभो ! तुम निरावरण और अकर्ता होनेपरभी वेदने इस विश्वका सृजन, पालन, प्रलयकर्ता आपहीको बनाया है; यही ठीक है,तुमसे कुछभी असंभव नहींहै. क्योंकि तुम मायासे सबके आत्मस्वरूप और कार्यमात्रके पालक हो, इसलिये आपहीकी सब करतूत है और आप सबसे भिन्नरूपहो इसीसे तुम्हारा अकर्तृत्व भी:ठीक होसकताहै ॥ ५ ॥ हे जनार्दन ! उन चारों वेदोंका तामसी शंखासुरने तिरस्कार किया तो विक्षिप्त हो प्रलयकालके समय जलमें डूब गये थे, तब युगांतके समय आपने

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ ५ ॥ वेदान्युगांते तमसा तिरस्कृतान्रसातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः ॥ प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथे हिताय ते इति ॥ ६ ॥ हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये ॥ तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते ॥ इदं चोदाहरति ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे ॥ आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान्रंधयरंधय तमो ग्रसग्रस ॐ स्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐक्ष्रौम् ॥८॥

हयग्रीव शरीर धारण करके पातालसे सब वेदोंका उद्धार किया और ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर आपने चारों वेद उनको प्रदान कर दिये तुम वही भगवान् सत्यसंकल्प जगत् हितकारी हो, इसलिये आपको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥६ ॥ हे राजन् ! हरिखण्डमें विष्णुभगवान् नरसिंहरूप धरकर विराजते हैं, हे भरतवंशावतंस ! भगवान्ने जो यह अद्भुत स्वरूप धारण किया इसका कारण सप्तमस्कंधमें कहेंगे. प्रियरूप महापुरुष,गुणभाजन परमभागवत प्रह्लाद जिनके शील और आचार दैत्य और दानव कुलके लिये तीर्थके समान हैं, वह प्रह्लाद इस खंडमें रहनेवाले पुरुषोंसमेत एकाग्र अत्यन्त भक्तियोगसे उस अद्भुत स्वरूपकी उपासना करके इस मंत्रका उच्चारण किया करते हैं॥७॥"ॐ नमो भगवते

नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐ क्ष्रौम् ॥” अर्थ–ओंकार सहित भगवान् नरसिंहको वारंवार नमस्कार करता हूँ। आप सब तेजोंके तेजस्वरूप होकर प्रगट हो और वज्र सामन नखोंसे और वज्रसमान डाढोंसे कर्मरूप वासनाओंको रांधो रांधो अर्थात् भस्म करो भस्म करो; अज्ञानरूप अन्धकारको ग्रसो २ अर्थात् नाश करो नाश करो। हे भगवन्! आत्मामें अभयरूप होओ अभयरूप होओ। ॐक्ष्रौं यह बीजमन्त्र है ॥ ८ ॥ हे विश्वरूप! सब संसारका मंगल होय। खल लोग अपनी क्रूरता छोडें सब प्राणीमात्र अपने २ अन्तःकरणमें परस्पर दूसरेके कल्याणकी चिन्ता करते रहैं और उनका मन उपशम आदिका आश्रय करे, हमारी और दूसरे प्राणियोंकी बुद्धि निष्काम होकर भगवान् वासुदेवमें लगी रहै ॥ ९ ॥ हे प्रभो! हमारा किसीका

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायंतु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥ माऽगारदारात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेंद्रियप्रियः ॥१०॥ यत्संगलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽगजं को वै न सेवेत मुकुंदविक्रमम् ॥ ११ ॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ १२ ॥

संग न हो और कदाचित् होगा तो भगवान्के भक्तोंका साथ हो, क्योंकि वेही भक्ति और मुक्तिका मार्ग दिखाते हैं; और घर, स्त्री, पुत्र, धन और बन्धुजनोंसे हमारा संग किसी प्रकार न हो, क्योंकि भोजनमात्रसे संतुष्ट होनेवाला जो प्राणी है, वह जैसा शीघ्र सिद्ध होजाता है, तैसेही इंद्रियोंको प्रसन्न रखनेवाले गृहमें आसक्त चित्त होनेवाला मनुष्य किसी प्रकार नहीं होसाका ॥ १० ॥ भगवद्भक्तोंके सत्संगसे पुरुष भगवान् मुकुन्दके विक्रमको जान जाता है। उस विक्रमके असाधारण प्रभावको श्रवण करके जो पुरुष उनकी सेवा करते हैं, विष्णुभगवान् श्रवणद्वारा उनके हृदयमें प्रवेश करके इनके मनके मल हरलेते हैं और गंगा यमुना तीर्थादिकमें वारंवार स्नान करनेसे केवल मनुष्योंके तनुकाही मल छूट जाता है, मनका मल वैसाही बना रहता है, इसलिये भगवद्भक्तोंकी संगति करनेकी किसकी इच्छा न होगी? और श्रीमुकुन्दके चरित्रका

कौन नहीं सुनेगा, भगवान्‌की ओर जिनकी निष्काम प्रीति होती है उनका मन आपही शुद्ध होजाता है, एवं मन शुद्ध होनेसे प्राणी आपही हरिभक्त होजाता है, फिर पीछे उनपर भगवान् वासुदेव भी प्रसन्न होजाते हैं. भगवान्‌के प्रसन्न होनेसे सब देवता धर्मज्ञानादिक सहित उस पुरुषके हृदयमें नित्यप्रति वास करते हैं परंतु जो पुरुष गृहादिके अनुरागी हैं और हरिभक्तिसे रहित हैं, फिर भला उनमें उत्तम गुण, ज्ञान वैराग्यादिकोंके होनेकी सम्भावना कहां ? वह सदा केवल विषयके सुखोंको देख मनोरथ बांधकर दौडते हैं ॥ ११॥ १२ ॥ जैसे जल मछलियोंकी आत्मा है और विना जल मछलियें कभी नहीं जी सकतीं, क्योंकि उनका जलही जीवन प्राण है, ऐसेही भगवान् वासुदेव सब शरीरधारियोंकी आत्मा हैं, इसलिये जो पुरुष महान् प्रसिद्ध है वह यदि हरिको त्यागकर गृहमें आसक्त होजाय तो जैसे शूद्रादिकजाति स्त्रीपुरुषोंको केवल

हरिर्हि साक्षाद् भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम् ॥ १३ ॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताऽकुतोभयमिति॥ १४ ॥ केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाऽहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरांते विनिपतंति ॥ १५ ॥

आयुसे बडप्पन प्रसिद्ध है वह उसी बडप्पनको धारण करते हैं, ज्ञानादिकोंसे पूजंनीय स्त्रीपुरुषके मध्यमें पुरुषका जो अधिक महत्त्व है, वैसा महत्व उसमें नहीं रहता ॥ १२ ॥ इसलिये इस भवनरूप गृहका परित्याग करके निज नृसिंहजीके चरणोंमें रहकर कहींसे किसी प्रकारका भय नहीं है. क्योंकि वहां तृष्णा, राग, विषाद, मृत्यु, मान, चाह, भय, दीनता और मनकी पीडाका मूल संसार है, सो सबका डुबानेवाला है और जन्म मरणका कारण है ॥ १४ ॥ केतुमालखण्डमें भगवान् नारायण कामदेवरूपसे विराजमान रहते हैं और सदा उनकी यही वासना रहती है कि, लक्ष्मीजी प्रसन्न रहैं, तथा संवत्सर और उनकी कन्या, रात्रिके अभिमानी देवता और उनके पुत्र दिनके अभिमानी देवतागण, जो कि इस खण्डके पति हैं, वे प्रजापतिके पुत्र हैं. सौ वर्षके जितने दिन रात्रि होते हैं उतनीही इन प्रजापतिके पुत्रोंकी संख्या है अर्थात् ३६००० सहस्र

हैं इनपर भी वह परमहित करते हैं. हे भरतवंशावतंस ! संवत्सरोंके विशेष हित करनेका हेतु यह है कि, महापुरुष भगवान्‌के चक्रके तेजके तापसे उन कन्याओंके अन्तःकरण अतिशय निर्बल और कम्पायमान होजाते हैं,और उनके गर्भ वर्षके अन्तमें पतित होकर निष्प्राण होजाते हैं. इसलिये उस खण्डमें पुरुषोंकी संख्या अधिक नहीं होनेपाती ॥ १९ ॥ और भगवान् कामदेवके रूपमें ललित गति विलास और मंद मुसकान सहित अवलोकनकी लीला प्रकाश करते और अपनी भ्रुकुटियोंको कुछ कुछ ऊंचा करते करते मुखारविन्दकी शोभासे रमाको रमण कराकर अपनी इंद्रियोंको तृप्त करते हैं ॥१६॥ वह रमा देवीजी भी संवत्सरके रात्रि समय उनकी कन्याओंके अर्थात् इन रात्रिकी अधिष्ठाता देवियोंके साथ और दिनमें इन कन्याओंके स्वामी अर्थात् दिनके अधिष्ठाता देवताओंके साथ, मिलकर भगवान्‌के इस मायामय रूपकी उपासना कर सदा इसी मन्त्रका जप किया करती हैं ॥१७॥(ॐ,ह्रां,ह्रीं,ह्रू,ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कांताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्) अर्थ–इन्द्रियोंके अधिपति, उन भगवान् हृषीकेशको हम नमस्कार करते हैं, जिनका स्वरूप सब श्रेष्ठ वस्तुओंसे जाना जाता है । जो ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय (संकल्प व अध्यवसायादि) और उनके सब विषयोंके अधिपति हैं, ग्यारह इद्रियें और पांच विषय यह सोलह पदार्थ उनके अंश हैं. वह वेदमय हैं अर्थात् वेदोक्त कर्मद्वारा उनको पाया जाता है,दूसरे उनका देह अन्नसे बढनेवाला है,इस कारणसे अन्नमय है, परमानन्द प्रकाशमय, इस कारणसे अमृत हैं। सबके विषय हैं, इस कारणसे सर्वमय हैं और सह, ओज और बल इन सबके कारण हैं

अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तंभितसुन्दरभ्रूमंडलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥१६ ॥ तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताऽहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते ॥ इदं चोदाहरति ॥१७॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छंदोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कांताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥

स्त्रियो व्रतैस्त्वां हृषिकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपांत्यपत्यं प्रियं धनायूंषि
यतोऽस्वतंत्राः॥१९॥ स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समंततः पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधिमन्यते परम् ॥ २० ॥ या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत् साऽखिलकामलंपटा ॥ तदेव राशी
प्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते ॥२१॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यंत उग्रं तप ऐंद्रिय
धियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विंदंत्यहं त्वद्धृदया यतोऽजितः ॥ २२ ॥

इन करके सहित होनेसे यह सब उनके स्वरूप हैं और कांति और काम उनकी मूर्ति है सो हम उनको नमस्कार करते हैं॥ वह हमारे लिये दोनों लोकमें (इस लोक और परलोकमें) अनुकूल होवें ॥ १८॥ फिर वह स्तुति करके कहते हैं कि, हे प्रभो! आप स्वयमेव सब इंद्रियोंके पति हैं, जो स्त्रियां अनेक प्रकारसे तुम्हारी आराधना करके तुम्हारे सिवाय और पतिकी इच्छा करती हैं, सो उनके वह पतिगण उनकी प्रिय संतान, संतति अथवा धन व आयुकी रक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि वह तो आपही परवश होते हैं ॥ १९ ॥ इसकारणसे वह सब पति पतिही नहीं; पति तो ऐसा होना चाहिये, जो कि स्वयं निर्भय है, और भयातुरकी सब भाँतिसे रक्षा कर सकता है वही पति है, हे प्रभो इसी कारणसे एक आपही सबके पति हैं आपके सिवाय और दूसरा पति नहीं होसकता, आप आत्मलाभके अतिरिक्त और किसी वस्तुको अधिक नहीं समझते; इस लिये आपका सुख किसीके भी अधीन नहीं है. हे प्रभो! हम जो कुछ कहते हैं सो सत्यही है, नहीं तो यदि आपकी पराधीनता और नानारूपकी विकारता स्वीकार की जाय तो मण्डलेश्वरोंके समान आपकोभी परस्परसे भयकी सम्भावना होसकती है ॥२० ॥ हे भगवन्! जो स्त्री केवल आपके चरणकमलोंकीही पूजा करनेकी कामना करती है और दूसरी वस्तुकी इच्छा नहीं करती वह अति चतुर है, क्योंकि उसको सब कामना प्राप्त होजाती हैं। परन्तु जो कोई अबला किसी एक फलकी कामना करके आपकी पूजा करती है उससे अधिक अनसमझ और कोई नहीं, क्योंकि तुम उसको उसका केवल मनोवांछितही फलदान करते हो, उससे अधिक नहीं देते. फिर जब भोगनेसे वह फल नष्ट होजाता है तब पीछेसे उस स्त्रीको अत्यन्त कष्ट भोगना पडता है॥ २१ ॥ हे अजित! मैं लक्ष्मी हूँ; इससे सुख सम्पत्तिकी

कामना करके कभी कभी सत्य सत्यही ब्रह्मा, शिव, और दूसरे सुर असुरगण भी मुझको प्राप्त करनेके लिये उग्र तप किया करते हैं, परन्तु आपके चरणारविंदोंकी शरण ग्रहण किये विना वह लोग मेरे विलसित ऐश्वर्यको प्राप्त नहीं हो सकते । इसका कारण यह है कि मेरा चित आपमें ही लगा हुआ है, और इसीसे मैं आपके अधीनमें हूँ, सो जो पुरुष आपको ध्याते हैं, मैं उनकी ही ओर अवलोकन करती हूँ * ॥२२॥ इस कारण हे प्रभो ! आप वही पुरुष हैं कि जिनकी सेवा विना किये हुये कोई कार्य ही सिद्ध नहीं होता, जिस आपके

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वंदितं करांबुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ॥
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः ॥ २३ ॥

हस्तकमलसे सब कामनाओंकी वर्षा होतीहै और इसीलिये सदा साधु लोग जिसकी स्तुति किया करते हैं और जो कि आप अपने भक्त जनोंके मस्तक पर धरा करते हैं, सो अनुग्रह करके वही हस्तकमल मेरे मस्तक परभी धरो । हे वरेण्य ! मैं ऐसा नहीं कह सकती कि मेरे प्रति आपका आदर नहीं है. मैं प्रगट देखती हूँ कि, लक्ष्मीके स्वरूपमें छातीके ऊपर आप मुझको अपने श्रीअंगमें धारण करते हैं, परन्तु हे प्रभो ! यह बडे आश्चर्यकी बात है कि मेरा तो केवल आप आदर ही करते हैं, परन्तु अपने भक्तोंपर आपका बडा अनुग्रह है, अथवा आप ईश्वर हैं

---

* **शंका**–लक्ष्मीजीने भगवान्से बूझा कि, हे भगवन् ! जो मनुष्य त्रिलोकीमें आपका पूजन, सेवन, भजन नहीं करते वे मनुष्य मुझको कभी भी प्राप्त नहीं होंगे, ऐसे वाक्य लक्ष्मीजीने क्यों कहे? क्योंकि दुष्टजीव जैसे कि दैत्य, दानव, अत्याचारी मनुष्य, यह सब चारों युगमें विष्णु भगवान्को नहीं जानते कि; विष्णु भगवान् क्या वस्तु है, और सेवन, पूजनका तो कहना ही क्या है ? परन्तु उनके घरमें लक्ष्मी अचल होकर रहती है. इस बातसे तो लक्ष्मीका वाक्य झूंठ हुआ तो फिर क्यों झूंठ हुआ ?

उत्तर–दैत्य, दानव, म्लेच्छादि और जो कोई दुष्ट मनुष्य भगवान्को नहीं जानते, और लक्ष्मीका सुख भोगते हैं वे मनुष्य पूर्वजन्ममें लक्ष्मीके सेवक थे, मृत्युलोकमें आनकर अपने अपने कर्मसे होगये हैं और भगवानूंको भूल गये हैं; तपसे भ्रष्ट होकर, दुष्टबुद्धि मनुष्य कोई सुन्दर योनिको प्राप्त होत्ता है कोई नीचयोनिको प्राप्त होता है परन्तु भगवान्के सेवनरूप तपस्याके द्वारा अचल लक्ष्मीका सुख भोगता रहता है, जबतक भगवान्की सेवाका पुण्य उनका बना रहैगा तबतक अचल लक्ष्मीका सुख भोगते रहेंगे, जब सेवाका पुण्य नष्ट होजायगा और इस जन्ममें भगवान्का पूजन जो पुरुष नहीं करते हैं वह बहुत दुःख पावेंगे खानेको अन्न भी पेट भरकर नहीं मिलेगा, इसलिये लक्ष्मीने भगवान्से कहा था कि जो मनुष्य आपको सेवन नहीं करते वह मुझको कभीभी प्राप्त नहीं होंगे ॥

सो आपकी मायाकी चेष्टा कौन जानसके, ऐसा किसको सामर्थ्य है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! और दूसरे खंडोंका विवरण सुनो । रम्यकखण्ड में विष्णु भगवान् अपने मत्स्यरूपसे विराजे हैं, कि जो स्वरूप इस खण्डके अधिपति मनुजीको पहले दिखाया गया था. श्राद्धदेव मनुजी आजतक अत्यन्त भक्तिभाव और प्रेम-रीतिसे भगवान्‌की उस मनोहर मूर्तिके पूजनेमें नियुक्त हैं, और यह मंत्र निरंतर उच्चारण करते हैं ॥ ॥२४॥ यथा मत्स्यमंत्रः (ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायोजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः) अर्थ—हम महामत्स्य रूपी उन भगवान्‌को नमस्कार करते हैं जो सत्त्वगुण प्रधान और सर्व मुख्य प्राणरूप और साहस, बल व सामर्थ्य इत्यादिके स्वरूप हैं ॥२५॥ और स्तुति करके कहते हैं कि हे प्रभो ! आप सब भूतोंके भीतर बाहरसे घूमते रहते हैं और इतनेपर भी लोकपालगण तुम्हारे रूपको नहीं देख सकते और शेषजी भी आपकी महिमाको नहीं कह सकते । परंतु आपका वेदरूप नाद अति बड़ा है, सो सत्य है, हे भगवन् ! लोग जिस प्रकार काठकी पुतलीको वश कर लेते हैं वैसे ही जिन्होंने विधिनिषेधरूप वचनोंसे सब जगत्‌को अपने वशमें कर रक्खा है, सो आप वही ईश्वर हैं ॥२६॥ हे ईश ! इन्द्रादि लोकपालगण मत्सररूप ज्वरमें ग्रसे रहनेके कारण आपको छोड़ करके अलग रूपसे और फिर मिलकर भी सहाय करनेका उपाय नहीं करसके परन्तु दोपाये, चौपाये अथवा स्थावर, जंगम, जो जो इस जगत्‌में दृष्टि आते हैं, उनमेंसे किसी वस्तुका भी पालन, करनेमें समर्थ न हुए इसलिये आप ही प्राणरूपसे सबके पालक और परम ईश्वर हैं ॥ २७ ॥

इति ।-रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक् प्रदर्शितम् ॥ स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयति इदं चोदाहरति ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय
१२५ महामत्स्याय नम इति ॥ २५ ॥ अंतर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ २६ ॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतंतोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! यह पृथ्वी सब ओषधि और लताओंका आश्रय है, इस कारणसे प्रलयकालकी बड़ी तरंगें उठते हुये सागरके जलमें डूबीहुई इस पृथ्वीको और हमको धारण करके रक्षा करनेके लिये आपने बड़ा उत्साह प्रगट किया था, सो हम आपको नमस्कार करते हैं हे प्रभो ! आप ही सब जगत्के रहनेवाले प्राणियोंके नियन्ता हैं,सो आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे राजन् । हिरण्मय खण्डमें भगवान् नारायण कूर्मशरीर धारण करके विराजते हैं, वहांपर पितृगणोंके अधिपति अर्यमा इसमें रहनेवाले पुरुषोंके साथ निरंतर उनकी उपासना करते रहते हैं, और क्षण क्षण इस मंत्रका जप किया करते हैं॥२९॥यथा (ॐनमो भगवते अकूपाराय सर्वतत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोनमोऽवस्थानाय नमस्ते)अर्थ–हम कूर्म भगवान्को नमस्कार करते हैं.हे प्रभो ! समस्त सद्गुण आपका विशेषण हैं; सो ऐसे

भवान्युगांतार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरुक्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणग
णात्मने नम इति ॥ २८ ॥ हिरण्मयेऽपि भगवान् निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्ष
पुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मंत्रमिमं चानुजपति ॥ २९ ॥ ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय
नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोनमोऽवस्थानाय नमस्ते॥३०॥ यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपं
बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्ययथोपलंभनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥

आपको नमस्कार है। हे भगवन्! जलमें रहनेके हेतु आपका स्थान कोई देख नहीं सकता है,सो आपको नमस्कार है. हे देव ! आप अतिशय वर्षीयान् हैं, अर्थात् कालसे आपका अवच्छेद नहीं होता सो आपको नमस्कार है। हे प्रभो! आप सर्वगत और सबके आधार हैं सो आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! आपने अपनी मायासे जो यह आकृति प्रकाश की है सो दृश्य पृथ्वीसे आदि लेकर सब पदार्थ इसी रूपमें हैं इसी कारण आपसे अलग कुछभी नहीं हैं. हे भगवन् ! आपका यह रूप अनेक अनेक रूपोंसे निरूपण किया जाता है, परन्तु यह मिथ्या है, तो भी दिखानेके कारण मृगतृष्णाके जलके समान इसकी संख्या नहीं की जा सकती, इसलिये हम आपको नमस्कार करते हैं.

हे आपके आकार विशेषको कोई नहीं बतला सकता ॥ ३१॥ हे भगवन् ! जरायुज (मनुष्यगवादि) अंडज (पक्षी इत्यादि) स्वेदज (ई इत्यादि) उद्भिज्ज (लता वृक्षादि) स्थावर, जंगम, देवता, ऋषि, पितृ, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र ये सब आपहीके नाम हैं। आप एक ही हैं ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! आपके नाम रूप और आकृतियोंके बहुत असंख्य भेद हैं, जिनकी संख्या नहीं की जाती तथापि कपिलादि विद्वानोंने उनकी चौबीस संख्या कल्पना की है। वही संख्या जो तत्त्वज्ञानसे मिट जाती है, सो आप ही उस तत्त्वज्ञानके नमूने हैं अर्थात् परमार्थ ध्यानरूपी आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ भगवन् ! उत्तरकुरुखण्डमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहरूप प्रकाश करके विराजते हैं, वहांपर यह पृथ्वी देवी कुरुगण सहित अविचल भक्ति प्रकाश करके उनकी सेवा करती है

जरायुजं स्वेदजमंडजौद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैंद्रियम्॥द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधय एकः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ॥ संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥ ३३ ॥ उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते। तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति ॥ इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥ ३४ ॥ ॐ नमो भगवते मंत्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाऽध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ३५ ॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ॥ मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥

और इन परमसिद्धान्त उपनिषद्के वाक्योंका उच्चारण करती है॥ ३४ ॥ तथा (ॐ नमो भगवते मंत्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्म्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते) अर्थ-हम भगवान्को नमस्कार करते हैं। हे प्रभो ! आप मन्त्रसे जाने जाते हैं सयूप यज्ञ, और अयूप क्रतु इत्यादि जो कुछ दिखलाई देता है, यह सब आपका ही स्वरूप है। हे प्रभो! आप कर्मोंसे शुद्ध अर्थात् यज्ञानुष्ठान करनेवाले, और तीन युगके स्वरूप हैं, सो आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥ ३५ ॥ अहो ! काष्ठके भीतर जिस प्रकार अग्नि गुप्त रहती है, उसी प्रकार अग्निके समान जिसका स्वरूप देह और इंद्रिय आदि पदार्थोंमें गुँथा हुआ है। निपुण विद्वान् लोग विवेकके

साधन मन और कर्म व उसके फलसे जिसको दर्शन करनेकी वासनासे सदा खोजते फिरते हैं और उसी ढूँढ भालसे जिसका आत्मा प्रगट होता है उन्हीं भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ ३६ ॥ जो कि मायाकार्यके विषय इन्द्रियादि-व्यापार, देवता, देह, काल और अहंकार इन सब उपलक्षणोंसे जिनका यथार्थ रूप देखनेमें आता है. और यम नियमादिकोंसे जो साधु लोग निश्चयात्मक बुद्धियुक्त हैं, उनके निकट जिसकी मायासे बनी हुई आकृति दूर हो जाती है, उन्हीं भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥३७॥ जिस प्रकार चुंबकके निकट रहनेसे लोहा स्वयमेव उसके चारों ओर फिरा करता है, वैसे ही माया द्रष्टा परमेश्वरके दर्शनके हेतु जीवके निमित्त वांछा न होनेपर भी जीवकी वांछित इस विश्वकी

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयांगातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः॥ ३७ ॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥३८॥ प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसातलाज्जगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणताऽस्मि तं विभुमिति ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सृष्टि स्थिति और प्रलय करती है, सो उस गुण कर्म और जीवोंके साक्षी स्वरूप भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ ३८ ॥ और जगत्के कारणरूप वराह स्वरूप धारण करके रसातलसे मुझ पृथ्वीको डाढ़के अग्रभागपर धारण करके हाथीके समान प्रलयसमुद्रमेंसे निकले थे और फिर दूसरे हाथीके समान दैत्य हिरण्याक्षको संग्राममें क्रीड़ा करते करते मारकर बाहर निकल आये, उन सर्वव्यापक परमात्माको वारंवार हमारा प्रणाम है ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां रम्यकोत्तरखण्डे सेव्यसेवकभुवनकोशवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

१ **भजन**–प्रभुकी महिमा अपरम्पार ॥ पढत बिरंचि वेद नित चारों, तऊ न पावत पार ॥ १ ॥ शेष महेश गणेश शारदा, निशिदिन करत विचार ॥ हार मान चुप रहत रटत फिर, उनमें धरज धार ॥ २ ॥ वाल्मीकि नारद वसिष्ठ भृगु, खोजत बारम्बार ॥ नेति २ कर कहत सकल मिल, धन्य धन्य करतार ॥ ३ ॥ बडे बडे सुर सिद्ध मुनीजन, तन मन धन सब वार ॥ शालिग्राम लेत शरणागत, समझ जगत आधार ॥ ४ ॥

दोहा–हरि–अनुचर द्वै खण्डके, कहे उनीसाध्याय । बहुरो भारतवर्षकी, कहौं अधिकता गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, किंपुरुषखण्डमें विष्णु भगवान् आदिपुरुष जानकीवल्लभ लक्ष्मणजीके भ्राता श्रीरामचन्द्र महाराजके चरणारविन्दको हृदयमें धारण कर उनके सन्मुख हाथ जोडे हुए भक्त अनुरागी परमभागवत महावीर हनुमान्‌जी किंपुरुषखण्डके निवासियोंके साथ अत्यन्त भक्तिसे उनकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥ और गन्धर्वगण जो दशरथनंदन श्रीरामचन्द्रजीका मंगलमय चरित्र गाते हैं चौपाई–“वाल्मीकिकृत श्रीरामायण । परम प्रेमसों राम–परायण ॥ मारुत सुत ढिग नित सो गावत । बीण मृदंग सप्रेम बजावत ॥ रामकथा कलि–कलुष–नशावन । आनँदनिधि भक्तन मन भावन” हनूमान्‌जी आर्ष्टिषेणके साथ एकाग्रचित्तसे अपने अधीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी उस कथाको सुना करते हैं। और इस मंत्रका निरन्तर जप करते रहते हैं * ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ किंपुरुषे वर्षे भगवंतमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताऽभिरामं श्रीरामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेणेन सह गंधर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥२॥ ॐ नमो भगवत उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति॥३॥ यत्तद् विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्॥प्रत्यक् प्रशांतं सुधियोपलंभनं ह्यनामरूपं निरहंप्रपद्ये॥४॥

(ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्य्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः) उत्पत्ति, पालन, प्रलयकर्ता, भगवान्, उत्तमश्लोकके लिये नमस्कार है । जितने कि श्रेष्ठानुश्रेष्ठ चिह्न और शील व्रत हैं वह सब उनमें विराजमान हैं, उनका चित्त सदा ही वशमें है, सब लोकोंका विषय उनको ज्ञात है, वह कसौटी पत्थरके समान सज्जनताकी प्रसिद्धिके निर्धारस्थान हैं, वह ब्रह्मण्यदेव, महापुरुष और महाराज हैं ,उनको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ॥३॥ मैं उन परमात्मा स्वरूप भगवान् रामचन्द्रजीकी शरण हूँ, जिनको वेदान्तके वचनोंसे एकरूप कहकर प्रसिद्ध करते हैं,यह वही हैं,शुद्ध अनुभव ही उनका स्वरूप

---

* कवित्त–जाको शुद्ध हियो ताको अनुभो तुम्हारो होते नाथ ।निजतेजहीसे माया गुण नासी है । जगतके व्यापी निजजाताको प्रतापी करो, नाम रूप आपके अनन्त दिव्य भासी है ॥ आपके समान नहीं अधिक कहाते होय अहंकार क्षार होत ध्याये मुदरारी है । कालत्रासनाशी तत्काल कर निहाल देत, राजे रघुराज जैसे अवधविलासी है ।

है, उस शांत स्वरूपके प्रकाश होनेसे गुणोंकी सब जाग्रत् आदि अवस्था मिट जाती हैं, वह दृश्य पदार्थोंसे पृथक् नाम रूप रहित और निरहंकार हैं, केवल शुद्ध चित्तसे परब्रह्मका रूप जाननेमें आता है ऐसे परब्रह्म श्रीरामचंद्र अवधेशपति रघुराजको मेरा वारंवार नमस्कार है ॥ ४॥ उनके सर्वव्यापी राजा दशरथजीके पुत्र होकर मनुज अवतार धारण करनेका तात्पर्य यह है कि, रावणादि राक्षसोंको वध करें, क्योंकि इस घोर राक्षसने मनुष्यके अतिरिक्त और किसीसे न मरूँ ऐसा वर पाया था,इस रामचंद्र अवतार लेनेका केवल इतना ही आश्रय न था, बरन् मनुष्योंकी शिक्षाके लिये था,स्त्रीके संगसे मैं ईश्वर हूँ, तो भी इतने क्लेश सहने पडे और मनुष्यका तो कहना ही क्या है? अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले विश्वके आत्मा उनको जानकीजीके विरहका कैसा दुःख ?॥५॥ वह धैर्यवान् धीर पुरुषोंके आत्मा भक्तवत्सल परमप्रिय श्रीरघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी महाराज त्रिलोकीमें किसीपर भी आसक्त नहीं हैं इसलिये उनको धीर पुरुपोंका आत्मा कहा, और उनको स्त्रीमें मोह

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः॥ कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि
व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥ न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नु
वीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥६॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः॥ तैर्यद्विसृष्टा
नपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥

किसी प्रकार नहीं होसकता और द्वारपर खडे हुए लक्ष्मणजीका दुर्वासाऋषिको आनेका संवाद देनेके लिये मंदिरमें प्रवेश करने पर देवपरामर्शसे प्राणसे मार डालनेके लिये, उपस्थित होकर भी वसिष्ठजीके वचनोंसे जो लक्ष्मणजीका त्याग किया था, सो यह युक्तिसंगत नहीं हो सकता, परन्तु वह सब कुछ किया, निदान उसका वास्तविक तात्पर्य यही है कि, सब संसारके लोगोंकी शिक्षाके लिये यह काम किये और वह तो आदिपुरुष अविनाशी कमलपत्रके समान सबसे अलग हैं ॥ ६ ॥ उच्च कुलमें जन्म, सुन्दर स्वरूप, मनोहर वाणी, गम्भीर बुद्धि, उज्ज्वल आकृतिसे श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रसन्न नहीं होते, वह केवल एकमात्र भक्तिहीके करनेसे संतुष्ट होते हैं, देखो नीच कुलमें हमारा जन्म, न हममें कोई सुन्दरता, न हममें कोई गुण, न कोई ऊंची बात और हमारी चंचलता सब संसारमें

प्रसिद्ध है तो भी केवल भक्तिके वश होकर इन लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीने हमको अपना सखा बनाया ॥ ७ ॥ इसलिये देवता व दानव अथवा नर वानर कोई क्यों न हो सबको चाहिये कि,अनेक प्रकारसे यत्न करके उन मानवरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आराधना अवश्य करैं,क्योंकि वह बडे कृतज्ञ हैं; थोडे भजन करनेको भी अधिक मानते हैं, उनकी उपासना करनेसे महाफल मिलनेकीआशा है, वह सब अयोध्यावासियोंको अपने संग लेगये थे ॥८॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि,हे राजन् ! भारतखण्डमें भगवान् नर नारायण बदरिकाश्रममें गुप्तरूपसे विराजते हैं,जिनकी गति जानी नहीं जाती, धीर लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये दुष्कर तपस्या करते हैं,तपस्याके समय उनका धर्म, ज्ञान और वैराग्य इस प्रकारसे अधिकताको प्राप्त होता है और वह इस प्रकार जितेन्द्रिय और निरहंकार होकर रहते हैं कि उससे ही आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जाता है ॥ महात्मा देवर्षि नारदजीके पंचरात्र शास्त्रमें जो भगवान्के अनुभवका वर्णन है वही पंचरात्र भगवान्के कहेहुए सांख्ययोग सहित सावर्णि मनुको उपदेश करनेवाले हैं, इस कारणसे भारतवर्षकी वर्णाश्रम धर्मवाली प्रजागणोंके साथ परम भक्तिभावसे नारदजी इन भगवान् नर नारायणकी उपसना करते हैं और इस मंत्रको जपते हैं ॥९॥१०॥ (ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय ॐ नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामायाधिपतये नमोनमः) नारदजी बोले कि, हम ऋषि--ऋषभ भगवान् नर नारयणको नमस्कार करते हैं । शांत स्वभाव निरहंकार वैराग्यवान् पुरुषोंके परमधन, परमहंसोंके परमगुरु, ज्ञानी पुरुषोंके

127

सुरोऽसुरो वाऽप्य थवानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तरानन यत्कोसलान् दिवमिति ॥ ८ ॥ भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पांतमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलंभनमनुग्रहायात्मवतामनुकंपया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥ ९ ॥ तं भगवान् नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति ॥ इदं चाभिगृणाति ॥ १० ॥ ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरव आत्मारामाधिपतये नमोनम इति ॥ ११ ॥

अधिपति उन नरनारायण भगवान्को वारम्वार नमस्कार है ॥ ११ ॥ और फिर यह गान करते हैं—जो इस विश्वके सृष्ट्यादिका कर्ता होकर भी "मैं कर्ता हूं" ऐसा कहकर अपने मनमें अहंकार नहीं करते, शरीरमें रहकर भी शरीरके धर्म भूख प्यास आदिसे पराभव नहीं पाते, द्रष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि दृश्य पदार्थोंसे विकृत नहीं होती उन भगवान्को हम नमस्कार करते हैं, वह किसीमें आसक्त नहीं हैं इससे उन शुद्धचैतन्यस्वरूप और सबके साक्षी नारायणको हम नमस्कार करते हैं ॥ १२ ॥ फिर कहते हैं कि हे योगेश्वर ! योगी पुरुष जन्मसे लेकर भक्तियोगसे अंतकालके समय देहाभिमानको छोड़कर तुममें जो मन लगाते हैं यही उनके योगकी चतुराई है. भगवान् हिरण्यगर्भजीने उसको ही

गायति चेदम् ॥ कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ १२ ॥ इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ॥ यदंतकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥ यथैहिकामुष्मिककामलंपटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिंतयन् ॥ शंकेत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ १४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्मायया ऽहंममतामधोक्षज ॥ भिंद्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावजमिति ॥ १५ ॥ भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः संति बहवो मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधारो विंध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इंद्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलाः ॥ तेषां नितंबप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंख्याताः ॥ १६ ॥

पुरुषयोग कहा है ॥ १३ ॥ परंतु इस लोक और परलोककी कामनाके विषयमें मूर्ख लोग जिस प्रकार स्त्री, पुत्र और धनकी चिंता करते हुये मृत्युके निकटसे भय पाते हैं, वैसे ही जो पुरुष विद्वान होकर भी पाते हैं, उनका शास्त्र पढा हुआ केवल परिश्रम मात्र है ॥ १४ ॥ हे अधोक्षज ! जिससे कि, विद्वान् पुरुषकी भी ऐसी अवस्था है इससे आप हमको सहज वासनारूप उस योगका उपदेश कीजिये। जिस आपकी मायासे हमारे इस विदित देहमें 'मैं' यह 'मेरा' ममता लगीहुई है; जो किसी भांति त्याग न होनेसे उपाय द्वारा भी नहीं भेदी जासकती, सो यह हमसे

छूट जाय. हे राजन् ! भारतवर्षमें भी बहुत नदियें और पर्वत हैं, अर्थात् मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कौल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कट, महेन्द्र,वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलाचल, गोकामुख, इन्द्रकील, कामगिरि व और भी सहस्रों पर्वत हैं और इनके तटसे उत्पन्न हुई नदिय व नद भी असंख्य हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ जिन नदियोंके नाममात्रके लेनेसे पुरुष पावन पवित्र होजाते हैं, भारतखण्डके वासी उन नदियोंके जलमें दिन रात स्नान और क्रीडा करते हैं, उन भारतवासियोंकी समता संसारमें आजदिन कौन कर सकता है ॥ १७ ॥ महानदियाँ ये हैं कि चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी,वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता तुंगभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमा रथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिंधु, अन्ध,शोणनद, महानदी वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मंदाकिनी,यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृद्धा, वितस्ता,असिक्नी, विश्वा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस वर्षमें जन्म प्राप्त करके पुरुषगण अपने अपने सात्त्विक; राजस और तामस कर्मोंके द्वारा यथाक्रमसे अपनी दिव्य मानुष और नारक गतिका विधान करता है, क्योंकि यहांपर सब पुरुषोंकी गति सब प्रकारसे कर्मानुसार ही होती है। जिस वर्णका जिस भांतिका मोक्ष

एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनंतीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥१७॥ चंद्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विंध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः अंधः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृद्धा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥१८॥ अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्वय आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयंते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥ १९ ॥

प्रकार अर्थात संन्यास वानप्रस्थादि कहा है। उसके करनेसे मोक्षकी प्राप्ति भी इसी वर्षमें होती है * ॥ १९ ॥ हे राजन्। मोक्ष जिस प्रकारसे होता है सो श्रवण करो। जब विष्णुभक्त पुरुषोंका श्रेष्ठ संग होता है तब भगवान् वासुदेव जो सब प्राणियोंके आत्मा, रागादि रहित, वाक्यके अगोचर, अनाधार और परमात्मा स्वरूप उनमें जो निष्काम भक्ति होती है वही मोक्षका स्वरूप है॥ क्योंकि शरीरकी अनेक प्रकारकी गति जो अविद्यारूपी ग्रन्थि है, सो इस भक्तिसे टूट जाती है ॥ २० ॥ इस कारणसे भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म सब पुरुषार्थोंका साधन

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागति निमित्ताऽविद्याग्रंथिरंधनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसंगः॥२०॥एतदेव हि देवा गायंति ॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २१ ॥

कहकर देवतालोग गान करते हैं, यथा–अहो! इन मनुष्यगणोंने क्या कोई अनिर्वचनीय पुण्य कार्य किया था अथवा भगवान् हरि स्वयं विना साधन किये ही इनके ऊपर प्रसन्न होगये हैं, इन सब पुरुषोंने भारतभूमिके मध्यमें मुकुन्द गोविन्दकी सेवा करनेके योग्य जन्म पाया है और हम तो भारतमें जन्म लेनेके लिये केवल लालसा ही लगाये रहते हैं ॥ २१ ॥

---

* शंका–मृत्यु लोकमें जो छोटी नदियें हैं, जिनका नाम भी कोई नहीं जानता, उनका तो वर्णन व्यासजीने, श्रीमद्भागवतमें किया और उज्जैनके सन्मुख बहनेवाली क्षिप्रानदी जिसका शास्त्रमें नाम विख्यात है और लोकमें और पुराणोंमें प्रजागण भी क्षिप्राको भलीभाँति जानते हैं ऐसी उत्तम क्षिप्रा नदीका भगवान् व्यासदेवजीने श्रीमद्भागवतमें वर्णम क्यों नहीं किया ?

उत्तर–एक दिन शिवरात्रीके समय बहुतसे मुनिजन शंकर महादेवको पूजन करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये उसी दिन दैवयोगसे क्षिप्रा नदी भी जलसे परिपूर्ण हो रही थी. मुनिजन उतरने लगे तो क्षिप्राने मार्ग नहीं दिया, मुनिलोग पश्चिम दिशाके तटपर बैठे ही रह गये; जब शिवरात्रिको शिवका पूजन न हुआ, सब रात्रि मुनियोंको नदीके निकट ही बैठे बीत गई, तब सबने मिलकर शाप दिया कि, हे दुष्टा नदी !भागवतमें जिसका वर्णन हुवा सो धन्य है, परन्तु तेरा आदर भागवत पुराणमें नहीं होगा. इसीलिये मुनियोंकी शापित जानकर व्यासजीने श्रीमद्भागवतमें क्षिप्राका वर्णन नहीं किया ॥

हाय! हमारे यज्ञ, दुष्कर तपस्या, कठिन कठिन व्रतानुष्ठान और दानादिकोंसे क्या हुआ ? और यह जो तुच्छ स्वर्गकी प्राप्ति हुई है, इससे ही क्या फल दीखता है ? यहांपर स्वच्छन्दमें भगवान् नारायणके चरणकमलका स्मरण नहीं होता, कदाचित् जो कुछ होता भी वह अधिक इन्द्रियोंकी सेवा करनेसे नष्ट होगया ॥ २२ ॥ हमने कल्पांत पर्यंत परमायु प्राप्त कर जो स्थानको जीत लिया है सो इसके पीछे भी जन्म लेना पडेगा, इसलिये हमारे स्थानके जय करनेकी अपेक्षा मनुष्यगण अल्पायु होकर जो भारतभूमिको जीत लेते हैं, वे अच्छे हैं, क्योंकि पुरुष मनुष्यदेहसे अपना अपना क्रिया कर्म संन्यास लेकर भगवान् श्रीहरिके अभयपदको भली भाँतिसे प्राप्त होजाते हैं ॥ २३ ॥ जिस स्थानमें भगवान् हरिकी कथामृतरूप नदी नहीं बहती, जहां हरिकथाश्रय भगवद्भक्त साधुगण नहीं हैं और जहांपर नृत्यादि उत्सवयुक्त हरिकी पूजा नहीं है वह स्थान यदि ब्रह्मलोकके समान हो तो भी उसकी सेवा नहीं करनी चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि जो पुरुष इस भारतभूमिमें ज्ञान और उसके अर्थ क्रिया व द्रव्यसमूहसे परिपूर्ण मनुष्यजन्मको प्राप्त होकर भी इस मोक्षके लिये यत्न न करे, तो वह पक्षियोंके समान फिर बन्धनमें बँध जाते हैं, अर्थात् जालसे बँधेहुये व्याधके हाथसे छूटकर भी फिर जिस प्रकार असावधान होकर वृक्षपर विहार करते हुये बँध जाते हैं, वैसे ही यह सब पुरुष भारतभूमिमें मोक्षार्थ जन्म प्राप्त करके भी अपने अपने कर्मके दोषसे फिर संसारी बंधनमें बँध जाते हैं ॥२५॥ परंतु भारतवासी मनुष्यगण अतिशय भाग्यवान् हैं, क्योंकि यह लोग श्रद्धा भक्ति सहित पुरोडाशादिभेदसे उन देवताओंके उद्देशसे जो

॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपंकजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेंद्रि
योत्सवात् ॥ २२ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयांत्यभयं पदं हरेः॥२३॥ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा
महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥ २४ ॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृ
ताम्॥न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यांति बंधनम्॥२५॥यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधि
मंत्रवस्तुतः॥एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २६॥

हवि छोडते हैं सो एक ही भगवान् इन्द्रादि पृथक् पृथक् नामोंसे आह्वान किये जाकर उस समस्तको ग्रहण करते हैं। यद्यपि वह सब कल्याणोंके प्रभु हैं और स्वयं भी परिपूर्णस्वरूप हैं तथापि उस हविको त्याग नहीं सकते ॥ २६ ॥ यद्यपि भगवान् याचना किये जानेपर याचक पुरुषोंका प्रार्थित विषय दे देते हैं,परन्तु तो भी उनको परमार्थ नहीं देते,क्योंकि इस प्रकार प्रार्थित विषय प्राप्त कर फिर भी उनको माँगनेकी संभावना है । परन्तु जोकि निष्काम हैं,उनको किसी विषयमें प्रार्थना न करनेपर भी भगवान् उन लोगोंको सब अभिलाषाओंके पूर्ण करनेमें वाले अपने चरणपल्लव स्वयं दान कर देते हैं ॥ २७ ॥ इसलिये हमने भली भाँतिसे जो यज्ञ किये हैं, वेदाध्ययन वा और कोई जो शुभ कर्म किये हैं; जिससे कि यह स्वर्गसुखका भोग कर रहे हैं, यदि उस पुण्यमेंसे कुछ बचा हो तो उससे भारतवर्षमें हमारा जन्म हो, जिससे कि

सत्यं दिशत्यर्थितमार्थितो नृणां नवाथदो यत्पुनरार्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २७ ॥ यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाऽजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्ष हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥२८॥ श्रीशुक उवाच ॥ जंबूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चंद्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मंदरहरिणः पांचजन्यः सिंहलो लंकेति ॥ ३० ॥ एवं तव भारतोत्तम जंबूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पंचम० जंबूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

भगवान् हरि ही एक सेवा करनेके लायक हैं, यह स्मरण रहेगा. अधिक करके श्रीभगवान् इस भारतवर्षमें भजनकारियोंका कल्याण विस्तार किया करते हैं और वहांके वासियोंको परमसुख देते हैं ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! कोई कोई ऋषि कहते हैं कि जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप हैं । सगर राजाके पुत्रोंने यज्ञीय घोड़ेको ढूँढनेके समय जब पृथ्वीको चारों ओरसे खोदा तब उन लोगोंने यह सब द्वीप बनाये थे ॥ २९॥ इन सब द्वीपोंके नाम, यथा-स्वर्णप्रस्थ १ चंद्रशुक्ल २ आवर्तन ३ रमणक ४ मन्दरहरिण ५ पाञ्चजन्य ६ सिंहल ७ और लंका ८ ॥३०॥ हे भरतवंशावतंस ! इस प्रकार जम्बूद्वीपके खण्डोंका विभाग यथायोग्य मैंने आपसे वर्णन किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे भाषाटीकायां जम्बूद्वीपे भरतखण्ड माहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा—प्लक्ष आदि छै द्वीपकी, स्थिति बीसे अध्याय । बहुरो लोकालोककी, कहूँ कथा समझाय ॥ १ ॥ मुनिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! अब प्लक्ष आदि छः द्वीपोंके प्रमाण लक्षण और आकारसे सब वर्षोंके विभागका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपके विस्तारका जितना परिमाण है, उतना ही अर्थात् लाख योजनके विस्तारवाले लवण सागरसे वह घिरा हुआ है इस कारणसे जिस प्रकार जम्बूनामक द्वीपसे सुमेरु पर्वत घिरा हुआ है ऐसा ही प्लक्षद्वीप भी लक्षयोजन विस्तारवाले लवणसागरसे घिरा हुआ है. यह प्लक्षद्वीप पहले कहेहुये जम्बूद्वीपसे दूना बडा है

श्रीशुक उवाच॥अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥१॥ जंबूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जंब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लाक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन प्लक्षो जंबूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्त वर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥ २ ॥

इस द्वीपसे लवण समुद्र घिरा हुआ है अर्थात् जिस प्रकार बाहिरी भागके उपवनसे खाई घिरी रहती है, वैसे ही प्लक्षद्वीपसे लवण समुद्र घिरा हुआ है, वहां पर एक बडा भारी प्लक्षका वृक्ष है ❋ उसकी ऊँचाईका परिमाण पहले कहे हुए जम्बू वृक्षके समान है, अर्थात् लक्ष योजन ऊँचा है, इस प्लक्ष वृक्षसे ही इस द्वीपका नाम " प्लक्षद्वीप " हुआ है. यह वृक्ष सुवर्णके समान रंगवाला है, इस द्वीपमें सात

❋ **शंका**—द्वीपान्तरोंमें आपसे कुशके वृक्षकी, सेमलके तरुकी, पाकरके पेडकी, शिरसके पादपकी, जामुनके रूखकी और कमलकी इस प्रकार लम्बाई चौडाई सुनके लोगोंके मनमें दिन दिन प्रति अत्यन्त शंका बढती है, क्योंकि यह वृक्ष हैं कि आश्चर्यका रूप हैं—

उत्तर—राजा प्रियव्रतके किये जो कर्म हैं; उन कर्मोंमें शंका कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जो आश्चर्य करने योग्य कर्म-राजा प्रियव्रतने किये हैं यह सब कर्म भगवान्ने किये हैं, राजा प्रियव्रतका तो एक नीमित्त नियत कर रक्खा है. क्योंकि पंचमस्कन्धके प्रथम अध्याय. १ श्लोक ३९ में व्यासजीने कहा है कि राजा प्रियव्रतके किये जो कर्म हैं उन कर्मोंको करने के लिये ईश्वरको सामर्थ्य है और दूसरे पुरुषको सामर्थ्य नहीं है ? ऐसा व्यासजीके वाक्यसे जान पडता है कि जो आश्चर्यरूप काम राजा प्रियव्रतने किये सो वह सब काम भगवान्के किये हैं इसलिये राजा प्रियव्रतके कियेहुए कर्मोंमें शंका करनी नहीं चाहिये ? क्योंकि भगवान् क्या नहीं कर सकते ॥

जीभवाला अग्नि रहता है. राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके अधिपतिने इस द्वीपको सात द्वीपोंमें विभाग करके अपने सात पुत्रोंको जिनके नाम इन वर्षोंके ऊपर ही थे, उनको समर्पण करके आप समाधि लगाकर आत्मयोगसे अपने शरीरको त्याग दिया ॥२॥ इध्मजिह्वके कियेहुए इन सात वर्षोंके नाम यथा--शिव, यवस, सुभद्र, शांत, क्षेम, अमृत, अभय; इन सात वर्षोंमें सात ही पर्वत अतिशय प्रसिद्ध हैं, और सात ही नदियां विख्यात हैं ॥ ३ ॥ उनमें सात प्रसिद्ध पर्वतोंके नाम यथा--मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल और प्रसिद्ध सात नदियोंके नाम ये हैं--अरुणा १, नृम्णा २, आंगिरसी ३, सावित्री ४, सुप्रभाता ५, ऋतम्भरा ६, और सत्यम्भरा ७, इन सब महा नदियोंका जल स्पर्श करनेसे पुरुषोंका राजस तामस नष्ट होजाता है। स्थानीय हंस, पतंग, उर्ध्वायन, और सत्यांग नामक चार वर्ण और

शिवं यवसं सुभद्रं शांतं क्षेममममृतमभयमिति वर्षाणि ॥ तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥ मणिकूटो वज्रकूट इंद्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः ॥ अरुणा नृम्णाऽऽगिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतंभरा सत्यंभरा इति महानद्यः ॥ यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतंगोर्ध्वायनसत्यांगसंज्ञाश्चात्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवंतं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजंते ॥ ४ ॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मण अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति॥ ५ ॥ प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिंद्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत[illegible]की सिद्धिरविशेषेण वर्तते॥६॥

यहांके मनुष्य सहस्रवर्षकी आयुवाले होते हैं, उनका दर्शन और स्वरूप देवताओंके समान होता है, इसलिये वे लोग वेदविद्यासे जो भगवान् वेदमय सूर्यान्तर्यामी आत्मस्वरूप हैं उनकी वेदत्रयीसे उपासना किया करतें हैं और इस मन्त्रका जप किया करते हैं ॥ ४ ॥ मंत्रः--"प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः। अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि" इति ॥हे राजन्! उस समय जो मन्त्र पढा जाता है, उसको अर्थसहित कहता हूँ सो तुम सुनो, यथा--पुराणपुरुष भगवान् विष्णुजीके मूर्तिस्वरूप उन सूर्यनारायणकी हम शरण ग्रहण करते हैं, वह अनुष्ठीयमान धर्म, प्रतीयमान धर्म, ब्रह्मबोध देव और शुभाशुभ फलके अधिष्ठाता हैं ॥ ५ ॥हे भारतश्रेष्ठ! प्लक्षप्रभृति पांच द्वीपोंमें पुरुषोंकी

आयु, इन्द्रिय, सामर्थ्य, साहस,बल, विक्रम, बुद्धि और स्वभावकी सिद्धि सबमें समानभावसे वर्त्तमान रहती है ॥६ ॥ प्लक्षद्वीप अपने समान परिमाणवाले ईखरसके समुद्रसे घिरा हुआ है ॥ वैसे ही शाल्मलिद्वीप जो प्लक्षद्वीपसे दुगुना बड़ा है वह भी अपने समान परिमाणवाले मदिराके समुद्रसे घिरा हुआ है ॥७॥ हे राजन् ! इस द्वीपमें भी प्लक्षवृक्षके तुल्य विस्तारवाला बडा भारी शाल्मलीका पेड है, लोक जिसको भगवान् वेद करके स्तुत पक्षियोंके राजा श्रीगरुडजीका स्थान बतलाते हैं।इसको शाल्मलिद्वीप कहते हैं,शाल्मलिका वृक्ष होनेहीके कारण इस द्वीपका नाम "शाल्मलि" हुआ ॥८॥ इस शाल्मलि द्वीपके अधिपति राजा प्रियव्रतके पुत्र महाराज यज्ञबाहुने इस द्वीपकोअपने सात पुत्रोंके मध्यमें जिनके नाम

प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृंक्ते ॥७॥यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छंदस्तुतः पतत्रिराजस्य ॥ सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥८॥ तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्त वर्षाणि व्यभजत् ॥ सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥९॥ तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ स्वरसः शतशृंगो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति ॥ अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नंदा राकेति ॥१०॥ तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुंधरेषंधरसंज्ञा भगवंतं देवमयं सोममात्मानं वेदेन यजंते॥ ११ ॥

सात वर्षोंके ऊपरही थे बांट दिये, उन सात खण्डोंके नाम यथा-१ सुरोचन, २ सौमनस्य, ३ रमणक,४ देववर्ष, ५ पारिभद्र, ६ आप्यायन और ७ अविज्ञात थे ॥ ९ ॥ उन सात खण्डोंमें सात नदियें और सात पर्वत अति प्रसिद्ध हैं.सात पर्वतोंके नाम-यथा स्वरस १,शतशृंग २, वामदेव ३, कुन्द ४, मुकुन्द ५, पुष्पवर्ष ६, और सहस्रश्रुति ७है. सात नदियोंके नाम-यथा-अनुमति १, सिनीवाली २, सरस्वती ३, कुहू ४. रजनी ५, नन्दा ६, और राका ७ है ॥ १० ॥ हे राजन् ! इन खण्डोंमें रहनेवाले पुरुषोंके श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषंधर इत्यादि चार वर्ण हैं,

वे लोग वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्द्रदेवको अपनी किरणोंसे कृष्ण और शुक्लपक्षमें यथाक्रमसे पितृ और देवताओंके अन्तका विभाग करते हुए हम सब प्रजाओंके राजा होवें ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! सुरोद सागरके बाहरी भागमें कुशद्वीप है, वह ऊपर वर्णन कियेहुए प्लक्ष द्वीपके परिमाणसे दूना है और पूर्वोक्त द्वीपकी नाईं समान परिमाणवाले घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें देवताओंका बनाया हुआ एक कुशका स्तम्ब है. इससे ही उसका नाम "कुशद्वीप" हुआ है । यह कुश स्तंब ऐसा विदित होता है, मानो साक्षात् दूसरा अग्नि है, अपनी कोमल शिखाकी दीप्तिसे समस्त दिशाओंको सदा ही प्रकाशमान करता रहता है ॥१३॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि, हे परीक्षित! उस कुशद्वीपका अधि

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः ॥ प्रजानां सर्वासां राजांऽधः सोमो न अस्त्विति ॥१२॥ एवं सुरोदाद्ब हिस्तद्द्विगुणस्वमानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तंबो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥१३॥ तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजा हिरण्यरेतो नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत ॥ १४ ॥ वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥ तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्तैव चक्रश्चतुश्शृंगः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति ॥ १५ ॥ रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा श्रुतविंदा वेदगर्भा घृतच्युता मंत्रमालेति यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलको विदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवंतं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजंते ॥ १६ ॥

ष्ठाता प्रियव्रतका पुत्र हिरण्यरेता अपने खण्डके नामवाले सात पुत्रोंको इस द्वीपके यथायोग्य विभाग करके आप तप करनेको चला गया॥१४॥ उसके सात पुत्र और सात खंडोंके नाम यथा—वसु १, वसुदान २, दृढरुचि ३, नाभिगुप्त ४, स्तुत्यव्रत ५, विविक्त ६, और वामदेव ७, यह हैं इन सात पुत्रोंके सात खण्डोंमें सात सीमापर्वत और सात नदियें प्रसिद्ध हैं, इन सात पर्वतोंके नाम यथा—चक्र १, चतुःशृंग २, कपिल ३, चित्रकूट ४, देवानीक ५, ऊर्ध्वरोमा ६ और द्रविण ७, सात नदियोंके नाम, यथा रसकुल्या १, मधुकुल्या २, मित्रविन्दा ३, श्रुतविन्दा ४, देवगर्भा ५, घृतच्युता ६, और मंत्रमाला ७ इन सब नदियोंका जल स्पर्श कर पवित्र हो कुशद्वीपनिवासी जनगण कुशल, कोविद, अभियुक्त,

और कुलक यह चार वर्ण कर्मकौशलसे अग्निस्वरूप भगवान्‌की अर्च्चना करते हैं और यह मन्त्र उच्चारण करते हैं ॥१५॥ १६॥ मंत्रः–“परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्॥ देवानां पुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषं यजेति”॥ अर्थ–हे जातवेदा! तुम परब्रह्मको हव्य साक्षात् पहुँचा देते हो, इसकारण देवताओंके यज्ञ द्वारा परमपुरुष भगवान्‌की अर्च्चना करते हुए उनके सब अंगोंके नामोंसे दिया हुआ हव्य अग्निमें समर्पण करते हैं॥ १७॥ हे राजन्! ऊपर कहेहुए कुशद्वीपके बाहिरी भागमें क्रौञ्चद्वीप है. यह द्वीप कुशद्वीपसे परिमाणमें दूना है. जिस प्रकार कुशद्वीप घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है उसी प्रकार यह द्वीप क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें क्रौञ्चनामक एक श्रेष्ठ पर्वत है इस कारणसे ही यह द्वीप “क्रौञ्चद्वीप” के नामसे प्रसिद्ध हुआ है॥ १८॥ यद्यपि स्वामिकार्त्तिकजीने शक्तिसे इस पर्वतके किनारे और कुंज तोड़ दिये थे, तथापि यह पर्वत चारों ओरवाले क्षीरसागरजलसे सींचे जाने और जलके देवता वरुणजी करके रक्षित होनेसे निर्भय होगया ॥ १९ ॥ इस क्रौंचद्वीपका अधिष्ठाता प्रियव्रतराजाका घृतपृष्ठ नामक पुत्र हुआ, उसने अपने द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामानुसार सात खण्डोंमें विभाग करके अपने सब खण्डोंमें अपने पुत्रोंको अधिपतिरूपसे स्थापन करके आप ज्ञानी बन जिन भगवान् हरिका परमकल्याण स्वरूप है और जो सबके आत्मा हैं उन वासुदेवके चरणारविन्दका आश्रय ले लिया ॥२० ॥ हे राजन् ! घृतपृष्ठके सात पुत्रोंके नाम यथा–आम १, मधुरुह२, मेघपृष्ठ३, सुधामा४, भ्राजिष्ठ५, लोहितार्ण६और वनस्पति७

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥ तथा च घृतोदाद् बहिः क्रौंचद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन ॥ यस्मिन् क्रौंचो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्त्तक आस्ते ॥ १८ ॥ योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितंबकुंजोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥ १९ ॥ तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान्वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान्भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविंदमुपजगाम ॥ २० ॥ आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुताः ॥ तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हणो नंदो नंदनः सर्वतोभद्र इति ॥ २१ ॥

इन सात खंडोंमें सात पर्वत और सात ही महानदियें अतिशय प्रसिद्ध हैं।शुक्ल,वर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द,नन्दन,सर्वतोभद्र,ये सात पर्वत हैं ॥२१॥उन सात महानदियोंके नाम यथा–अभया१,अमृतौघा २, आर्यका ३, तीर्थवती४,वृत्तिरूपवती ५,पवित्रवती६, और शुक्ला७इन सब नदियोंका जल अति पवित्र और निर्मल है,इन खण्डोंके रहनेवाले पुरुषगण इस जलको पीते हैं,और"पुरुष ऋषभ, द्रविण, देवक"इत्यादि इस खण्डके रहनेवाले चारों वर्ण जलपूर्ण अंजलिसे जलमय वरुण भगवान्‌की पूजा किया करते हैं और सदा यह मंत्र पढ़ा करते हैं॥२२॥मंत्रः—"आपः पुरुषवीर्य्याः स्थः पुनंतीर्भूर्भुवस्सुवः॥ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः"॥हे समस्त जलो!तुमने ईश्वरके निकट सामर्थ्य लाभ की है,इसलिये भूलोक,भुवर्लोक और स्वर्लोक रूप त्रिलोकीको तुम पवित्र करते हो,हम तुमको स्पर्श करते हैं,तुम हमारे शरीरको पवित्र करो।तुम अपने ही रूपसे पापका नाश करनेवाले हो,इसलिये सरलतासे हमको पवित्र करो ॥२३॥ हे राजन्! इस द्वीपसे आगे शाकद्वीप है, उसका विस्तार बत्तीस (३२०००००)लक्ष योजनका है। यह द्वीप भी अपने समान परिमाणवाले दधिसागरसे चारों ओर सब प्रकारसे घिरा हुआ है,इस द्वीपमें शाक नाम एक बड़ा भारी वृक्ष है,इस वृक्षके पत्ते भीतरसे कडे स्पर्शवाले और बाहरसे कोमल स्पर्शवाले हैं,इस वृक्षसे ही इस द्वीपका नाम"शाकद्वीप"हुआ है।इस वृक्षकी अतुल सुगंध है,जिससे कि यह द्वीप सर्वदा सुगन्धित रहता है॥२४॥इस द्वीपके अधिष्ठाता भी राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि नाम

अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति यासामंभः पवित्रममलमुपयुंजानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपांपूर्णेनांजलिना यजंते ॥ २२ ॥ आपः पुरुषवीर्याः स्थः पुनंतीर्भूर्भुवस्सुवः ॥ ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥ २३ ॥ एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमंडोदेन परीतः ॥ यस्मिञ्छाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रऽव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगंधस्तं द्वीपमनुवासयति ॥२४॥ तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान् निधायाधिपतीन्स्वयं भगवत्यनंत आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥ २५ ॥

राजा हुये। इस मेधातिथिने इन द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामसे सात खण्डोंमें विभाग करके उन सब खण्डोंमें यथाक्रमसे पुरोजव, मनौजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधार इन नामवाले सात पुत्रोंको सात वर्णोंमें अधिपतिरूपसे स्थापन किया, उसके पीछे आप भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तप करनेके लिये तपोवनमें चले गये॥२५॥ इन खण्डोंमें सात सीमापर्वत और सात ही महानदियें अतिशय प्रसिद्ध हैं। उन सात सीमापर्वतोंके नाम यथा–ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस। प्रसिद्ध सात नदियोंके नाम यथा–अनघा, आयुर्दा, उभयसृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रपदी और निजधृति है ॥२६॥२७॥ इन खण्डोंके रहनेवाले पुरुष "ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अनुव्रत" इत्यादि वर्णधारी होकर प्राणायामसे राजस, तामसको दूर करते हुये परमसमाधियोगसे वायुरूपी भगवान्‌की उपासना किया करते हैं। और यह मंत्र सर्वदा उच्चारण किया करते हैं॥२८॥ मंत्रः "अंतः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः॥ अंतर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम्॥ जो प्राणादिवृत्ति द्वारा सब प्राणियोंके अन्तरमें प्रवेशित होकर उनका प्रतिपालन करते हैं सो सबके अन्तर्यामी साक्षात् ईश्वर हैं, सब जगत् जिनके अन्तरमें विराजमान है, वह भगवान् वायु हमारी रक्षा करैं॥२९॥ इस प्रकार दधि जल सागरके आगे पुष्करद्वीप है, यह द्वीप शाकद्वीपसे विस्तारमें

एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ॥ ईशान उरुशृंगो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति ॥ २६ ॥ अनघाऽऽयुर्दा उभयसृष्टिरपराजिता पंचपदी सहस्रस्रुतिनिजधृतिरिति॥२७॥ तद्वर्षे पुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवंतं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजंते॥२८॥ अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ अंतर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २९ ॥ एवमेव दधिमंडोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समंतत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम्। तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिंद्रादीनां यदुपरिष्टात् सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति॥३०॥

दुगुना अर्थात (६४०००००) लक्ष योजन है। यह द्वीप चारों ओर अपने समान परिमाणवाले शुद्ध स्वादुजल समुद्रसे बाहरी भागमें सबभांतिसे घिरा हुआ है. इस द्वीपमें एक बड़ा भारी कमल है, उसमें अग्निकी शिखाके समान एक लक्ष निर्मल कनकमय पत्रोंसे, सदा दीप्यमान रहता है। वहीं भगवान् भुवनेश्वर ब्रह्माजीका आसन कल्पित किया गया है. इस द्वीपमें मानसोत्तर नामक एक पर्वत है। वह पूर्व और पश्चिम खण्डोंका सीमापर्वत है, इसका विस्तार व ऊँचाई (१००००) दश सहस्र योजन है। इस द्वीपमें इंद्रादि लोकपालोंकी चार पुरी हैं. इन सब पुरियोंके ऊपरी भागमें सूर्यका रथ, जो कि सुमेरु पर्वतकी सदा चारों ओरसे परिक्रमा किया करते हैं उसका चक्र देवताओंके अहोरात्र अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो अयनोंपर नियतकालमें भ्रमा करता है॥ ३० ॥ इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतवंशीय वीतिहोत्र नामक राजा हुये। इनके दो पुत्र रमणक और धातकी; वीतिहोत्र राजाने इस द्वीपको दो खण्डोंमें विभाग करके, उनमें अपने दोनों पुत्रोंको

तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वज वद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥ ३१ ॥ तद्वर्षपुरुषा भगवंतं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणाऽऽराधयंति इदं चोदाहरंति॥३२॥ एतत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽर्चयेत् ॥ एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नमः ॥ इति ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरंतराले परित उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥

खण्डोंका पति बनाकर, अपने चित्तको अपने बडे भ्राताओंके समान भगवान्‌की आराधनामें लगा दिया ॥ ३१ ॥ इन दोनों खण्डोंके पुरुषगण ब्रह्मसालोक्यादि साधनाओंसे पद्मासन ब्रह्मस्वरूपक भगवान्‌की आराधना किया करते हैं और इस मन्त्रका जप किया करते हैं॥ ३२॥ "एतत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽर्चयेत् ॥ एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नमः" जो कि प्रसिद्ध कर्मफलोंके चिह्नरूप हैं, जिनसे ब्रह्म प्रकाश पाता है और परमेश्वरमेंही जिनकी निष्ठा है इस कारणसे जो अद्वितीय हैं और सब ही लोग जिनकी भक्तियोगसे अर्चना किया करते हैं, सो शांत स्वभाववाले षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान्‌को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित! इस द्वीपके आगे लोकालोक नाम पर्वत लोक अलोकके मध्यमें रचा हुआ है। लोक नाम उसका है जहां सूर्यका प्रकाश रहता है और अलोक वह, जहां सूर्यका

प्रकाश नहीं होता॥३४॥मानसोत्तर और सुमेरु पर्वतके बीचमें जितने परिमाणवाली भूमि है,स्वादुजल समुद्रके आगे भी उतने ही परिमाणकी भूमि है (शिवतन्त्रमें कहा है कि,दो करोड़,त्रेपन लाख, पचास सहस्रके प्रमाणमें सब द्वीप और सातों समुद्रहैं) शिव कहैं हैं हे पार्वतीजी ! दशकोटिमें सुवर्णमय भूमि है । देवताओंके विहारार्थ लोकालोकपर्वत उससे आगे हैं, वहां पर बहुतसे प्राणी रहते हैं, फिर उनके पीछे स्वर्णमयी भूमि है, वह भूमि दर्पणतलके तुल्य अतिशयं निर्मल है ॥ यदि उसपर कोई पदार्थ रक्खा जाय, तो फिर वह अतिकष्टसे पाया जाता है इंसलिये इस भूमिमें देवताओंके सिवाय और प्राणी नहीं हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इन दो खण्डोंके बीचवाले पर्वतका लोकालोक नाम होनेका यही कारण है कि,इस

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरंतरं तावती भूमिः कांचन्यन्याऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृताऽऽसीत् ॥ ३५ ॥ लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यांतर्वर्तिनाऽवस्थाप्यते ॥ ३६ ॥ स लोकत्रयांते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनस्त्रींल्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहंते तावदुन्नहनाऽऽयामः ॥ ३७॥ एतावाँल्लोकविन्यासो मानांलक्षणसंस्थाभिर्विचिंतितः कविभिः॥स तु पंचाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः॥३८॥

१३।

पर्वतके मध्यस्थानमें रहकर लोक अर्थात् सूर्यादिक लोक विशिष्ट देश और अलोक अर्थात् उनके उजालेसे रहित देश इन दोनों खण्डोंको परस्पर अलग अलग स्थापित करता है इसीसे इसका नाम लोकालोक हुआ॥३६॥सो त्रिलोकीके अन्तमें सब ओरसे ईश्वरने रचा है;जिससे कि सूर्यादिक ध्रुव अपवर्ग ज्योतिर्गणोंकी किरणें कदाचित् पीछेकी ओर न पहुँच जावें इतने परिमाणकी इस पर्वतकी चौड़ाई और उँचाई है। ऐसा यह पर्वत त्रिलोकीका सीमास्वरूप है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे पंडित लोगोंने मान, लक्षण औरआकारसे इन सब लोकोंकी रचनाका वर्णन किया है । हे भारतवंशावतंस ! जिस लोकालोकपर्वतकी कथा पहले कही, सो पचास कोटियोजन भूगोलका चौथा भाग लोकालोक पर्वत है ।

अर्थात् मेरुसे चारों ओर साढे बारह करोड़ योजन दूर है॥ ३८॥ इस पर्वतके ऊपरी भागमें चारों ओर सब गजपति विश्वगुरु ब्रह्माजीने स्थापना किये हैं। इन चारों दिग्गजोंके नाम ये हैं:–ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित। इन्हीं चारोंसे सब लोकोंकी स्थिति हो रही है॥ ३९॥ दूसरे जो भगवान् महापुरुष ऐश्वर्य आदिकोंके पति और सब प्राणियोंके अंतयामी हैं, जो कि इन सब दिग्हस्तियोंका और अपने विभूतिस्वरूप इन्द्रादि लोकपालोंका विविध वीर्य बढ़ानेके लिये और सब लोकोंका मंगल करनेके लिये इस गिरिवर पर विराजमान रहते हैं, वहांपर वह निष्कर्म होकर नहीं विराजते, वह विशुद्ध सत्त्व जिससे कि, ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य इत्यादि अष्ट महासिद्धि लक्षित होती हैं उसको प्रकाशित करते हैं। उनको चारों ओरसे विष्वक्सेनादि प्रधान २ पार्षदगण घेरे रहते हैं. श्रीभगवान् इस पर्वतपर रहकर विशुद्ध सत्व प्रगट करते हैं उस समय भी उनके

तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाऽधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥ ३९ ॥ तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरंतर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदंडैः संधारयमाणस्तस्मिन्गिरिवरे समंतात्सकललोकस्वस्तय आस्ते॥ ४०॥ आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीथायेति॥ ४१॥ योंऽतर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातम् ॥ यद्बहिर्लोकालोकाचलात्ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरंति ॥ ४२ ॥

करकमल अस्त्ररहित नहीं रहते अर्थात् अपने अपने श्रेष्ठ हथियारोंसे युक्त भुजदण्ड सदा ही अतिशय शोभा पाया करते हैं ॥ ४० ॥ हे राजन्! ऊपर भगवान्के जिस प्रकार विराजमान होनेकी कथा कह आया, अब उसका तात्पर्य कहता हूँ सो आप श्रवण कीजिये। यह जो सब विविध भाँतिकी लोकयात्रा है ये सब भगवान्की योगमायासे रचीगई हैं, इन सबकी रक्षा करनेके लिये भगवान् अपनी लीलाओंसे इस प्रकारके वेषकी रचना स्वीकार किया करते हैं ॥ ४१ ॥ हे भरतश्रेष्ठ! पहले लोकालोकनामक दो खण्डोंके प्रसंगमें अलोक खण्डका जो मध्यभाग विस्तारवाला कहा है, सो उससे ही इसका परिमाण जान लेना, क्योंकि यह खण्ड लोकालोक पर्वतके बाहिरी भागमें है इसलिये उसका परिमाण सुमेरुके

एक पार्श्वमें साढेबारह करोड़ योजन है। इस अलोक खण्डके आगे योगेश्वर लोग जा सक्ते हैं ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। द्विजपुत्रके लानेके समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजीने यह स्थान अर्जुनको दिखाया था, इसी कारण वह अतिशय शुद्ध है और योगेश्वरोंकी गति वहां है ऐसा कहकर प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४२॥ हे राजन्! विस्तारसे ब्रह्माण्डका परिमाण कह चुका। अब तुमसे चारों दिशाओंका परिमाण कहता हूँ। ब्रह्माण्डके मध्य स्थलमें सूर्य भगवान् हैं, स्वर्ग और भूमिके बीचमें जितना अंतर है वही ब्रह्माण्डका मध्यस्थल है, सूर्य और अण्डकटाह इन दोनोंके मध्यस्थलका परिमाण पचीस पचीस करोड़ योजन है ॥४३॥ हे राजन्! सूर्यका नाम मार्तण्ड होनेका कारण यह है कि, मृत अर्थात् अचेतन अण्डमें वह वैराजरूपसे प्रवेशित हुए इसलिये उनका मार्तण्ड नाम हुआ और दूसरे वह हिरण्मयाण्डसे उत्पन्न हुए इसलिये हिरण्यगर्भ इस शब्दकाभी

अंडमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदंतरम् ॥ सूर्यांडगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पंचविंशतिः ॥४३॥ मृतेंऽड एष एतस्मिन् यद्भूत्ततो मार्तंड इति व्यपदेशः ॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्यांडसमुद्भवः ॥ ४४ ॥ सूर्येण हि विभज्यंते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥ ४५ ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ॥ सर्व जीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं समुद्रद्वीपवर्षसन्निवेशपरिमाणलक्षणं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

उनके लिये प्रयोग होता है ॥ ४४ ॥ हे भरतवंशावतंस! सूर्यसे ही दिशा, आकाश, पृथ्वी व और दूसरोंके विभाग हुये हैं और भोगस्थान मोक्षस्थान, व नरक और अतलादि सर्व प्रकारके लोकोंको सूर्य परस्परसे अलग करके विभाग करते हैं ॥ ४५ ॥ इसलिये सूर्यरूपी भगवान्कीही उपासना करना कर्तव्य है. वह देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पेटके बल चलनेवाले साँप बिच्छू आदि और लता व बीज–समूहके आत्मा और तेजके अधिष्ठाता हैं ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपखंडानां परिमाणलक्षण वर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

---

१ भजन–रवि ही सकल वस्तु उपजावै ॥ भांति भांतिके पुष्पादिकोंमें, शुभ सुगन्ध महकावै ॥१॥ जो जो वस्तु रचा ब्रह्माने सबमें झलक दिखावै ॥सबमें भासत तेज सूर्यको, पाळै और सुखावै ॥२॥ आठ मासमें जो जल सोखत, चार मास बरसावै ॥ उस ही जलसे अन्न अनेकन, वृक्ष लता प्रगटावै ॥३॥ जेठ मासमें तपत दशों दिश, अग्निरूप दरशावै ॥ शालिग्राम जगतसुखदायक, पूरण ब्रह्म कहावै ॥ ४ ॥

दोदा—कालचक्रपर भ्रमत नित, रवि एक्किस अध्याय। अपनी ही गतिसे बहुरि, सब राशिनमें जाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भूमण्डलकी रचना इतना परिमाण अर्थात् विस्तारमें पंचाशत कोटि योजनका प्रमाण और लक्षण दिखाकर वर्णन की, स्वर्गमण्लका वर्णन जाननेवाले शास्त्रकार लोग इस भूमंडलके परिमाणसे ही स्वर्गमण्डलका परिमाण भी कहा करते हैं ॥ १ ॥ इस कारणसे जिस प्रकार चने आदिकी दालि कीजाय तो एक दाल दूसरी दालके समान होसकती है उसके ही समान भूमण्डलका जितना परिमाण है, उतना ही स्वर्गमण्डलका

श्रीशुक उवाच ॥ एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥ एतेन हि दिवोमंडलमानं तद्विद उपदिशंति ॥ १ ॥ यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अंतरेणांतरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ २ ॥ तन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा ॥ स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥ यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवंति ॥ यदा वृषभादिषु पंचसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥ ४ ॥

परिमाण है, इन दोनोंके मध्यभागमें जो आकाश है वह दोनोंसे मिला हुआ है ॥ २ ॥ उस आकाशके मध्यस्थलमें भगवान् सूर्यनारायण त्रिलोकीको ताप (धूप) देते हैं और अपनी दीप्तिसे त्रिभुवनको दीप्तिमान करते हैं. सूर्य ही उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् नामक अपनी मंद, शीघ्र और समानगतिसे यथाकालमें ऊपर जाना, नीचे आना, समान स्थानमें चलनेको प्राप्त होकर नियतकालपर आकर मकरादि राशिमें रात दिनको बडा छोटा और समान कर देते हैं * ॥ ३ ॥ अर्थात् जब सूर्य मेष और तुला राशिमें गमन करते, है, तब दिन रात प्रायः

---

* **शंका**—सूर्यनारायण आकाशमें वास करते हैं, पृथ्वीके नीचे सूर्य नहीं रहते, फिर व्यासजी महाराजने कैसे कहा कि सूर्य तीन लोकोंमे प्रकाश करते हैं ?

उत्तर—भूमिके नीचे जो सात लोक हैं उन लोकोंकी कथा श्रीशुकदेवजीने नहीं कही थी, मृत्युलोकके ऊपर जो लोक हैं उन लोकोंके बीचमें जो लाक हैं उनको त्रिलोकी कहा था, उन ही तीन लोकोंमें सूर्यनारायण प्रकाश करते

समान हुआ करते हैं,और जब वृषादि पंच राशियोंमें गमन करते हैं,तब दिन बढ जाते हैं और महीने महीनेमें रात्रि एक एक घडी कमती होती जाती है ॥४॥ और जब सूर्य वृश्चिकादि पंच राशियोंमें वर्तमान होते हैं,तब दिन रात उलट पलट होजाते हैं–अर्थात् दिन छोटा और रात्रि बडी हो जाया करती है॥५॥वास्तवमें जबतक सूर्य दक्षिणायनमें रहते हैं तबतक दिन बडे रहते हैं और जबतक उत्तरायणमें रहते हैं तबतक रात्रियां बडी हुआ करती है॥६॥हे राजन्!इस प्रकारसे दिवाकरकी मंद शीघ्र और समान चालसे मानसोत्तर पर्वत और मेरुके मध्यमें भ्रमण करने का मार्ग नव करोड़ इक्यावन लाख योजन है; ऐसा ज्ञानी पण्डित और ऋषिगण कहा करते हैं, मानसोत्तरमें सुमेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी पुरी देवधानी है, दक्षिणकी ओर यमकी पुरी संयमनी है, पश्चिमकी ओर वरुणकी निम्लोचनी नाम पुरी है, उत्तरमें चंद्रमाकी विभावरी नामक पुरी है. इन सब पुरियोंमें सुमेरु पर्वतके चारों ओर विशेष विशेष समयमें उदय, मध्याह्न अस्त और अर्द्धरात्र हुआ करती है। यह चार

यदा वृश्चिकादिषु पंचसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवंति ॥ ५ ॥ यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धंते यावदुदगयनं रात्रयः ॥६॥ एवं नवकोटय एकपंचाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशंति॥ तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमिनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥७॥ तत्रत्यानां दिवसमध्यंगत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥

कालकी सब उदय अस्त इत्यादि प्राणियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके कारण हैं अर्थात् सूर्य भगवान्का उदय अस्त देखकर ही, प्राणीगणोंकी चेष्टादि हुआ करती हैं,वहां भी सुमेरुसे दक्षिणकी ओर बसनेवालोंको इन्द्रकी पुरीसे और जो पश्चिमके निवासी हैं उनको यमपुरीसे,जो उत्तरकी ओरके रहनेवाले हैं उनको वरुणकी पुरीसे और जो पूर्वके रहनेवाले हैं, उनको चंद्रमाकी पुरीसे उदयादिक होते हैं। महात्मा पुरुषोंने ऐसा कहा है ॥ ७ ॥ परंतु जो प्राणी सुमेरुपर बसते हैं, उनको सूर्य मध्याह्नकालीन ताप दिया करते हैं। यद्यपि सूर्यनारायण बांई ओरको चलते हैं अर्थात् नक्षत्रोंके सन्मुख होकर गमन करनेसे यद्यपि सुमेरुको बांई ओर रखकर गमन करते हैं तथापि प्रदक्षिणावर्तके प्रवर्तक प्रवह नामक वायु ज्योतिश्चक्रको भ्रमण करनेसे प्रतिदिन एक एक वार दक्षिण दिशाको जाया करते हैं, इसलिये चक्रगतिके कारण अतिदूरसे सूर्यको बनाय

भूमिके निकट ही लगा हुआ देखा जाय, इसका ही नाम उदय है, उनको आकाशमें चढा हुआ देखना इसका ही नाम मध्याह्न है, भूमिमें प्रविष्टसा देखना अस्त कहाता है, वहांसे अधिक दूरका चला जाना ही अर्द्धरात्रि है, वेदमें भी समुद्रके तीरकी दृष्टि क्रमसे कही हुई है कि, दिवाकर प्रातःकालके समय जलमेंसे उदय होते हैं और संध्याकालके समय जलमें ही प्रवेश हो जाया करते हैं । वास्तवमें यह बात कल्पित है, कुछ सत्य नहीं है ॥ ८ ॥ परंतु जिस स्थानमें दिवाकर उदित होते हैं उसके सूत्रपात–स्थानपर ही अस्त हो जाते हैं, मध्याह्न कालके समय, जहाँके प्राणियोंको पसीना उपजाते हुए धूप देते हैं, उसके सम–सूत्रपातस्थानमें अर्द्धरात्रि होनेसे वहांके प्राणियोंको उस समय निद्रित कर देते हैं । इस लिये

यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्पंदेनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यंति ये तं समनुपश्येरन् ॥९॥ यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पंचदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥ १० ॥ एवं ततो वारुणीं सौम्यामैंद्रीं च पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यंति सह वा निम्लोचंति ॥ ११ ॥ एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्ष योजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥ १२॥

जो लोग उनका अस्त देख सकते हैं वह इस स्थानमें आनेकी जगह (सन्मुख सूत्र पड़नेके स्थानपर) सूर्यनारायणको नहीं देख सकते ॥९॥ जब सूर्य भगवान् इन्द्रपुरीसे चलते हैं, तब पंद्रह घडीमें यमपुरीमें पहुँच जाते हैं, इतने कालान्तरमें सवा दो करोड, साढे बारह लाख और पचीस हजार अर्थात् दो करोड सैंतीस लाख पिछत्तर सहस्र (२३७७५०००) योजन मार्ग चलते हैं । फिर सूर्य यमकी पुरीको जाते हैं ॥ ॥ १० ॥ इसी भाँति वहांसे वरुणपुरी और चंद्रपुरीको जाते हैं और वहांसे फिर इंद्रपुरीमें आते हैं । इसी प्रकार दूसरे ग्रह चंद्रआदि भी ज्योतिश्चक्रसे नक्षत्रोंके साथ ही तो उदय होते हैं और नक्षत्रोंके साथ ही अस्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे सूर्य भगवान्का वेदमय

रथ एक मुहूर्तमें पहले कही हुई चारों पुरियोंके चारों ओर चौंतीस लक्ष आठसौ योजन मार्गको घूम जाते हैं ॥१२॥ इस रथका एक ही पहिया है (उसका नाम संवत्सर है) ऐसा कहते हैं कि उस पहियेके बारह आरे तो बारह मास हैं, और छः उसकी पुठ्ठी हैं और शीत, गरमी, वर्षा यह तीन उसकी नाभि हैं। उसकी धुरीका एक भाग सुमेरु पर्वतका मस्तक है और दूसरा भाग मानसोत्तरपर्वतपर स्थापित है। उस मानसोत्तरमें सूर्यका रथ स्थापित है, जिसमें पिरोया हुआ कोल्हूके पहियेके समान सूर्यके रथका चक्र मानसोत्तरपर बराबर घूमता रहता है ॥ १२ ॥ हे राजन्! सूर्यके रथमें दो धुरे हैं, प्रथम धुरा तो सुमेरु और मानसोत्तर तक फैला हुआ है, उसका परिमाण एक करोड सत्तावन लक्ष, पचास हजार (१५७५००००) योजन है, दूसरे धुरेका परिमाण इससे चौथाई है अर्थात् उन्तालीस लाख, साढे तेंतिस सहस्र ३९३३७५००

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनंति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतोत्तरभागो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयंत्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥ तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन संमितस्तैलयंत्राक्षवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥१४॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीय भागविशालस्तावान्रविरथयुगो यत्र हयाश्छंदोनामानः सप्तारुणयोजिता वहंति देवमादित्यम् ॥ १५ ॥ पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥ १६ ॥ यथा वालखिल्या ऋषयोऽगुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवंति ॥ १७ ॥

१३७

योजन है, पहला धुरा दूसरे धुरेके पूर्व भागमें बँधा हुआ है और कोल्हूके धुरेके समान ध्रुव लोकके वायुपाशसे उसका ऊपरका भाग बँधा हुआ है ॥ १४ ॥ इस रथमें बीड़ अर्थात् बैठनेका स्थान छत्तीस लक्ष (३६००००००) योजन बड़ा और उससे चौथाई अंश अर्थात् नव लाख (९०००००) योजन ऊंचा है और इस रथका जुआ भी नव लक्ष (९०००००) योजनका बड़ा है, इस रथमें गायत्रादि नामधारी सात अपूर्व तुरंग अरुण नाम सारथीके जोते हुए भगवान् मार्तण्डके रथको खैंचकर ले चलते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य महाराजके सारथि कर्ममें नियुक्त होकर अरुण यद्यपि आगे बैठे रहते हैं परन्तु उनका मुख सूर्यनारायणके सन्मुख ही रहता है ॥ १६ ॥ और वालखिल्य नामक ऋषिगण जिनके

शरीरका परिमाण अंगुष्ठपर्वमात्र है और जिनकी संख्या साठ हजार है वह सब इन सूर्यनारायणके सन्मुख संभाषण करनेके लिये नियुक्त होकर अनेक प्रकारसे सदा उनकी स्तुति किया करते हैं ॥ १७ ॥ इसीप्रकार और भी ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस, असुर, देवता इत्यादि कि, जिनकी संख्या एक एक करके चौदह है और जोड़की रीतिसे सात जोड़ हैं, वह प्रत्येक मासमें भिन्न भिन्न नामवाले सूर्य भगवान्‌की अलग अलग कार्य करनेके द्वारा उपासना किया करते हैं और इन सबके नाम भी पृथक्‌ पृथक्‌ हैं "दोहा–यह सातों गण संगमें, पृथक् पृथक्‌ कर नाम । सुस्तुति करत दिनेशकी, गाय गाय गुणग्राम" ॥१८॥ हे राजन् ! दिवाकर इस रीतिसे परिवृत होकर भूमण्डलमें नव करोड, एक लक्ष, पचास हजार (९०१५००००) योजन गमन करते हुये प्रत्येक क्षणमें दो सहस्र दो योजन मार्ग चलते हैं. सूर्य सबसे बडे देवता हैं, सूय ईश्वर हैं, दृष्टांत–"एक पीपलके वृक्षपर एक उल्लूका घोंसला था, उस पीपलको प्रातःकाल आन आनकर मनुष्य जल दिया करैं तब उल्लूके बच्चे अपनी मातासे बोले कि, माता सूर्य तो दीखता ही नहीं यह सब मूर्ख लोग किसको जल देते हैं ? उनकी माता बोली कि, बेटा सूर्य तेरे बापने न देखा न दादाने देखा, तू कहाँसे देखेगा, क्योंकि सूर्यके तेजके मारे उल्लूके नेत्र मिच जाते हैं, उनको सूर्य नहीं दीखता" ऐसे ही मूर्खोंको परमेश्वर नहीं दीखता और सूर्यनारायण तो नित्य उदय होते हैं ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे सूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा–बाइस शशि शुक्रादिको, उत्तरोत्तर स्थान । उन्हीं ग्रहोंकी चालसे, नर दुख सुख ले जान ॥ २२ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आपने जो यह वर्णन किया कि, भगवान् सूर्यनारायण सुमेरु और ध्रुवकी प्रदक्षिणा करके घूमते घूमते सब राशियोंके सन्मुखमें बिना प्रदक्षिणा किये हुये गमन

तथान्ये च ऋषयो गंधर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवंतं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वंद्वश उपासते ॥ १८॥ लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमंडलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुंक्ते ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भागव० म० पंचम० ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमंडलवर्णनं नामैकविंशतितमोध्यायः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति॥ १ ॥

करते हैं सो यह बात हमारे विचारमें परस्पर विरुद्ध मालूम होती है॥सो इस बातका किस प्रकारसे निर्णय किया जाय॥ १॥तब श्रीशुकदेवजी हर्ष सहित बोले कि,जिस प्रकार घूमतेहुयें कुम्हारके चाकके साथउसके ऊपर घूमती हुई चीटियें आदिकी गति दूसरे प्रकारकी जान पडती है, क्योंकि चक्रके एक एक भागको त्यागकर वह आते हुये ज्ञात होते हैं ऐसे ही नक्षत्र राशियोंके द्वारा उपलक्षित कालचक्रसे ध्रुव और मेरुकी प्रदक्षिणा करनेसे शीघ्रताके साथ चलनेके कारण उनके आश्रय सूर्यादि ग्रहोंकी गति औरही प्रकारसे नक्षत्रादिके मध्यमें ज्ञात होती है॥ २ ॥ हे राजन् ! साक्षात् नारायण वह भगवान् आदिपुरुष लोकोंका मंगल करनेके लिये कर्म शुद्धिकी निमित्त स्वरूप जो अपनी वेदमय आत्मा है उसको बारह

स होवाच यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशांतरेष्वप्युपलभ्यमानत्वाद् एवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रांतरे राश्यंतरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥ २ ॥ स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसंतादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान्विदधाति॥३॥ तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजंतोऽजसा श्रेयः समधिगच्छंति ॥४॥ अथ स एषआत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरंतरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादशमासान्भुक्त राशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशंति यावता षष्ठमंशं भुंजीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥ ५ ॥

प्रकारसे विभाग करते हुए वसन्त आदि छहों ऋतुओंमें सब कर्मोंके भोगानुसार उन उने ऋतुओंके गुण अर्थात् शीतल उष्णआदिका विभाग करते हैं । परम पुरुषके इस व्यापारमें आत्मतत्त्वके जाननेवाले विद्वान्लोग भी वेद शास्त्रकी आलोचना करके तर्क वितर्क किया करते हैं ॥ ३ ॥ इस लिये वह सबे पुरुष जो कि, वर्णाश्रम आचारपर चलनेवाले हैं वह लोग वेदमें कहे हुये कर्मोंसे इन्द्रादि रूपी और ध्यानादि योग विस्तार करके अन्तर्यामी उन सूर्य भगवान्की उपासना करके सब यथार्थ कल्याणको प्राप्त कर लेते हैं॥ ४॥यह सूर्य ही सब लोकोंके आत्मा हैं, स्वर्ग और पृथ्वीके

अथ च यावताऽर्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥ ६ ॥ अथ च यावन्नभोमंडलं सह द्यावापृथिव्योर्मंडलाभ्यां कात्स्न्येंन सह भुंजीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मांद्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनंति ॥ ७ ॥ एवं चंद्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्य मानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्ति पक्षाभ्यां मासभुक्ति सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुंक्ते ॥८॥

मध्यमें जो आकाशमण्डल है उसके मध्यमें कालचक्रमें स्थित होकर यही सूर्य वारह महीनोंकी (राशि,भोग करते हैं) मेषादि राशियोंके नाम ही इन सब मासोंके नाम हैं, यह सब मास संवत्सरके अङ्ग हैं।हे राजन्!सब महीने अलग अलग भांतिके होते हैं,यथा-चन्द्रमाकी गतिसे दोपक्षका महीना होता है। सूर्य गतिके हिसाबसे सूर्यके सवा दो नक्षत्र भोग करनेके कालको एक मास कहते हैं ।यह एक महीना पितरोंके महीनेका एक दिन रात होता है-अर्थात् इन दोनों कृष्णपक्ष और शुक्कपक्षमें एक मास होता है, वह यथा क्रमसे पितृलोकका दिन और रात्रि होती है॥५॥ हे राजन् ! सूर्यनारायण जितने कालमें संवत्सरका छठा भाग अर्थात् दो राशियोंको भोग करते हैं, वह काल ऋतु कहा जाता है, इसलिये यह ऋतु संवत्सरका एक अंग है। इस प्रकारसे सूर्यनारायण जितने समयमें पृथ्वीके आधे भागमें घूम जाते हैं, वह उतना काल अयन कहा जाता है ॥ ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे सूर्यनारायण जितने कालमें स्वर्गमण्डल और पृथ्वीमण्डल यह दो मण्डल आकाशमण्डल सहित सम्पूर्ण रूपसे भ्रमण कर भोग करते हैं, वही काल संवत्सर है । इन सूर्यकी ही मन्द, शीघ्र और समान गतिसे, संवत्सर,परिवत्सर, इडावत्सर,अनुवत्सर और वत्सर इन पांच नामोंमें पांच प्रकार होते हैं, ऐसा पण्डितलोग कहते हैं ॥७॥ हे राजन् ! सूर्यमंडलके ऊपर लक्ष योजनसे चन्द्रमा ग्रह दृष्टि आता है। यह चन्द्रमा दो पक्षमें जितना चलता है उतना सूर्य एक संवत्सरमें चलता है और चन्द्रमा सवादो दिनमें सूर्यके एक मासकी बराबर चलता है और चन्द्रमा एक दिनमें सूर्यके एक पक्षके चलनेकी बराबर चलता है कि, शुक्कपक्षकी पडवाको संक्रांति जब हो तो सौरमास और चान्द्रमास दोनोंका प्रारम्भ होता है, इस प्रकारके वर्षका नाम संवत्सर है फिर सूर्यकी गणनासे छे दिन बढते हैं और चन्द्रमाकी गणनासे छः दिन घटते हैं ।इस प्रकार बारह बारह दिनका अन्तराय होनेसे सौरमास और चान्द्रमास आगे पीछे होजाते हैं तो पांच वर्षके मध्यमें दो अधिक अर्थात्

लौंद पडजाते हैं। छठे वर्ष दोनोंका हिसाब एक होजाता है और फिर पडवाके दिनसे संक्रांति होनेसे वही छठा वर्ष संवत्सर कहलाता है। और उसी प्रकार प्रथम वर्षको संवत्सर, दूसरेको परिवत्सर, तीसरेको इडावत्सर, चौथेको अनुवत्सर और पांचवेंको वत्सर कहते हैं। कभी कभी चन्द्रमाकी गति अतिशीघ्र होनेके कारण यह ग्रह सूर्यकी बराबरीसे भी आगे होजाता है ॥ ८ ॥ चंद्रमण्डलकी सब कलायें जब बढती रहती हैं तब देवगणोंका दिन होता है और जब क्रम क्रमसे कलायें क्षीण होतीजाती हैं तब पितृलोगोंका दिन होता है। हे राजन् ! चन्द्र ग्रह इस प्रकारसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष द्वारा पितरोंका दिन रात करते हुए तीस तीस मुहूर्तमें एक २ नक्षत्रको भोग करते हैं। यह ग्रह अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण सब जीवोंका प्राण और सबके जीवनका हेतु है इसी कारण चन्द्रमाको जीव भी कहते हैं ॥ ९ ॥ इस लिये षोडशकलायुक्त चन्द्ररूपी भगवान् परमपुरुष मनोमय, अन्नमय, व अमृतमय हैं। अधिक करके वह देवता, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सर्प, लता, झाड़ इन सबके प्राणोंको तृप्त किया करते हैं और वृद्धिके देनेवाले हैं इस लिये ऋषि लोग उनको सर्वमय कहकर वर्णन करते हैं। हे राजन्! पहले कहे हुए चन्द्रमण्डलसे तीन लक्ष योजन ऊपर सब नक्षत्र सुमेरुकी दक्षिण ओर कालचक्रके साथ ईश्वर करके जोडे हुए होनेके कारण भ्रमण करते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे भारत ! नक्षत्रमण्डलके दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र ग्रह है। सन्मुख सूर्यके किसी नक्षत्रको भोग करते हों तैसे, यह ग्रह उनके पीछेकी दिशामें रहता है। और एक संग फिरनेके समय यह अति शीघ्रगामी होकर क्रमवाले

अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिशता मुहूर्तैर्भुंक्ते ॥ ९ ॥ य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान् मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयंति ॥ १० ॥ तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः ॥ ११ ॥ तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वार्कस्य शैघ्र्यमांद्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति ॥ लोकानां नित्यदाऽनुकलः एव प्रायेण वर्षयन् चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टंभग्रहोपशमनः ॥ १२ ॥

नक्षत्रोंको उल्लंघन करके फिरा करता है ॥ यह शुक्रग्रह भी सूर्यके, समान शीघ्र, मन्द और समान गतिवाला होजाता है। यह सदा लोकोंके अनुकूल रहता है। प्रायः यह वर्षता भी है और इस कारणसे जो ग्रह कि, वृष्टिके रोकनेवाले हैं, यह उनकी भी शांति कर देता है ॥ १२॥ हे राजन् ! शुक्रकी जिस प्रकारसे गति और स्थिति है इसी प्रकार बुधकी गति जानना अर्थात् बुधग्रह भी कभी कभी सूर्यके आगे और कभी कभी पीछे रहता है परन्तु शुक्र ग्रहसे दो लक्ष योजन ऊपर यह बुधका ग्रह दृष्टि आता है। यह ग्रह भी प्रायः लोकोंका शुभकारी है परन्तु जब सूर्यसे अलग हो जाता है, तब बहुधा अतिशय पवन, निर्जल मेघघटा, और अनावृष्टि इत्यादिका भय विस्तार किया करता है ॥१३॥

उशनसा बुधो व्याख्यातः ॥ तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदार्काद्व्यतिरिच्येत तदाऽतिवाताऽभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥ १३ ॥ अत ऊर्ध्वमंगारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन्द्वादशानुभुंक्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥ १४ ॥ तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनांतरगतो भगवान्बृहस्पतिरेकैकस्मिन्राशौ परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात् प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥ १५ ॥ तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन्राशौ त्रिंशन्मासान्विलंबमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशांतिकरः ॥ १६ ॥

बुध ग्रहके ऊपर मंगल ग्रह है, वह भी दो लक्ष योजनसे दृष्टि आता है। यह ग्रह भी तीन तीन पक्षोंमें क्रम क्रमसे बारह राशियोंको भोग करता है और यदि उसकी टेढी गति न होवे, और यह बहुत करके अमंगल सूचक अशुभ ग्रह होता है ॥१४॥ मंगल ग्रहके ऊपर दो लक्ष योजन पर भगवान् बृहस्पतिजी हैं, उनकी गति यदि टेढी न होवे तो यह एक वर्षमें एक एक राशिको भ्रमण करते हैं। यह बृहस्पतिजीका ग्रह ब्राह्मण कुलपर बहुधा अनुकूल ही रहा करता है ॥१५॥ बृहस्पतिजीके ऊपर दो लक्ष योजन पर शनैश्चरका ग्रह प्रकाश पाता है। उसको एक एक

राशिके घूमनेमें तीस तीस महीने लग जाते हैं और उतने ही संख्याके वषाम अर्थात् तीस वर्षमें उसका सब रशियोंपर घूमना समाप्त होता है, यह ग्रह लगभग सबही प्राणियोंको अशांतिका देनेवाला है ॥ १६ ॥ शनिग्रहसे उत्तरकी दिशामें ग्यारह लक्ष योजनके अन्तरमें ऋषिगण

तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनांतर उपलक्ष्यंते ॥ य एव लोकानां शमनुभावयंतो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमंति ॥१७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम० ज्योतिश्चक्रवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

दृष्टि आते हैं। वह ऋषि समस्त लोकोंको शांति देतेहुये भगवान् विष्णुके परमपदकी सदा प्रदक्षिणा करते घूमते रहते हैं ❋ ॥ १७ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां ज्योतिश्चक्रे नवग्रहाणां वर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

१ **दृष्टान्तः**—"एक समय रावणने सब ग्रहोंको कारागारमें बंद कर दिया, परन्तु शनैश्चर नहीं आया, जब रावणने शनैश्चर देवताको न देखा; तो मंत्रियोंको बुलाकर बोला कि, क्या कारण जो शनैश्चर हमारे बन्दीगृहमें नहीं है ? मंत्रियोंने कहा कृपानाथ! शनैश्चर क्रूर देवता है, और अत्यन्त दुःखदायक है इसलिये उसका नहा लाय क्योंकि दुष्टको घरमें रखना अच्छा नहीं, ऐसा कहा है "दुष्टसंग जनि देय विधाता" रावणके तो खोटे दिन आही गये थे, काल शिरपर गर्ज रहा था, बोला कि, उसको अभी पकड लाओ, सो सब मंत्री सेनाको लेकर शनैश्चरके पास गये और जाकर कहा तुमको रावणने बुलाया है, शनैश्चरजी बोले कि, अच्छा चलो, जब ही शनैश्चरने लंकाकी ओर आँख उठाकर देखा तो दृष्टिके पडते ही लंकाके कंगूरे गिरने लगे। रावण बोला यह क्या ? मंत्रियोंने कहा कि, शनैश्चर देवताने लंकाकी ओर दृष्टि उठाकर देखा है. इतनेमें शनैश्चर सन्मुख आनही पहुँचे, तब इनको देखते ही रावणने स्तुति की और कहा कि अब आप कृपापूर्वक अपने स्थानको चले जाइये. यह सुन शनैश्चर बोले कि, अब लौटना कैसा ? अब तो हम घरसे चल ही दिये। दुःखम् सुखम्, अब तो साढे सात बर्ष लंकापुरीमें ही निवास करेंगे। शनैश्चरके आते ही रावणकी बुद्धि बिगडी और जगज्जननी जानकी हरा, तब कौशलेन्द्र महाराजाधिराज रामचंद्रजीने कुटुम्बसहित उस रावणका विध्वंस कर दिया। इस कारण यह लिखा है कि "सर्वेषामशांतिकरः" ॥ १६ ॥

२ **कवित्त**—आदि है न अन्त है अगम अजय अनन्त है पावन असंग जो अलख अप्रमान हैं ॥ एक है प्रकाश हैं पूर्ण महाकाश हैं निर्गुण निरंजन हैं चिदानन्द ज्ञान हैं ॥
नित्य हैं अमर हैं अविनाशी अजर हैं अव्यक्त निर्विकल्प औ अवाच्य निर्वाण हैं ॥ विश्वकर्तार हैं शब्द ओंकार हैं वेद हैं पुराण हैं सर्वत्र भगवान हैं ॥ १ ॥

***शंका**—हमने सब शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा सुना है कि, सब ऋषि लोग भूमिमें तप करते हैं परन्तु जो मुनिजन फिर ऋषिलोकमें भी निवास करके तप करते हैं वे भूमिमें पृथ्वीपर तप करनेवाले हैं कि, और दूसरे कोई हैं ?

उत्तर—पृथ्वीपर तो तपस्या करनेवाले मुनि लोग हैं. वह अपने तपकी सिद्धिको समाप्त करके पृथ्वीको तजकर ऋषिलोकको चले जाते हैं और ऋषिलोकमें बैठे भगवान्का ध्यान करते रहते हैं, और कठिन कठिन तपोंको छोड देते हैं, परन्तु उनहीं ऋषियोंके शिष्य पृथ्वीपर निवास करते रहते हैं और अपने अपने गुरुओंके आश्रमों पर तप करते रहते हैं ॥

दोहा–बरणों ध्रुव स्थानको, तेइसवें अध्याय। पुनि शिशुमार स्वरूपको, हर्षित कहौं सुनाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे भरतवंशावतंस! देवर्षिलोगोंका जो स्थान हमने कहा, उससे तेरह लक्ष योजन ऊपर विष्णु भगवान्का प्रसिद्ध स्थान है। जहाँ उत्तानपादराजाके पुत्र महाभागवत ध्रुवजी अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म इन सबके द्वारा जब नक्षत्ररूपी हुये थे, इसी दिनसे आजतक प्रदक्षिणा किये जाते हैं और कल्पभर जीवित रहनेवालोंके आधार होकर भगवान्की आराधना करते हैं। इन ध्रुव महाराजकी महिमा

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनांतरतो यत्तद् विष्णोः परमं पदमभिवदंति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेंद्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते ॥ तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥ स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टंभ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ यथा मेढीस्तंभ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मंडलानि चरंति ॥२॥ एवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्रे आयोजिता ध्रुवमेवावलंब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पांतं परिचंक्रमंति ॥ नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तंते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतंति ॥ ३ ॥

प्रथम (चतुर्थस्कन्ध) में वणन की गई है ॥ १ ॥ छेकनेके अयोग्य, और महावेगयुक्त काल बारी बारीसे ग्रह नक्षत्रादि सब ज्योतिर्गणोंको निरंतर गगनमंडलमें घुमाया करता है, सो उसका भी अवलम्ब बनानेके लिये परमेश्वरने इन ध्रुवजीको एक खंभरूप बना दिया है, इसलिये उनका प्रकाश निरंतर ही होता रहता है ॥ २ ॥ जिस प्रकार अन्न आदिको गाहनेके लिये मेढीस्तम्भ (कीली) में बँधे हुए पशुगण

अपने अपने स्थानमें रहकर समय समय पर कीलीके आश्रयसे घूमा करते हैं, वैसे ही यह ग्रहादि नक्षत्रगण भी कालचक्रके भीतर और बाहरमें बँधकर इस ध्रुवका ही अवलम्बन किये हुए हैं और पवनके घुमाये हुए कल्पके अंततक चारों ओर घूमते रहते हैं, परन्तु जिस प्रकार मेघ और बाजादि पक्षीगण कर्मकी सहायतासे पवनके वश हो आकाशमंडलमें घूमा करते हैं और गिरते नहीं, वैसे ही ज्योतिर्गण भी जिनकी गति कर्मसे बनी हुई है वह सब उन परमपुरुषोंके अनुग्रहसे आकाशमें भ्रमण करते हैं, परन्तु पृथ्वीपर नहीं गिरते ॥ ३ ॥ कोई कोई कहते हैं यह ज्योतिषचक्र शिशुमाररूपमें भगवान् वासुदेवजीकी योगधारणासे टिका हुआ है इसलिये इसके गिरनेकी कोई शंका ही नहीं है ॥ ४ ॥ यह शिशुमार

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयंति ॥ ४ ॥ यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुंडलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितः ॥ तस्य लांगूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति ॥ पुच्छमूले धाता विधाता च। कट्यां सप्तर्षयः तस्य दक्षिणावर्तकुंडलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयंति दक्षिणायनानि तु सव्ये ॥ यथा शिशुमारस्य कुंडलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवंति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगंगा चोदरतः ॥ ५ ॥

नीचेको शिर किये और कुण्डलीभूत शरीर होरहा है। इसकी पूँछके अग्रभागमें तो ध्रुवजी हैं और पूँछके आगे अधोभागमें प्रजापति, इन्द्र और धर्म यह तीन देवता हैं और पूँछके मूलमें धाता, विधाता हैं और कमरमें सप्त ऋषिगण प्रतिष्ठित है. इस शिशुमारके दाहिनी ओर कुण्डलाकारवाले शरीरकी दक्षिण बगलमें अभिजित् इत्याहि पुनर्वसुतक चौदह नक्षत्र हैं और वाम बगलमें भी पुष्यादि उत्तराषाढातक चौदह नक्षत्र हैं, इसलिये कुण्डलके विस्तारानुसार इस शिशुमारके सब अवयव दोनों पार्श्वमें समसंख्यावाले हैं और इस शिशुमारके पृष्ठदेशमें अज

वीथी और उदरमें आकाशगंगा हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! ऊपर कहे हुए शिशुमारचक्रकी दक्षिण ओर वामबगलमें जो सब नक्षत्र हैं, उनके हम विशेष विशेष स्थान बताते हैं, सो तुम श्रवण करो । पुनर्वसु और पुष्य यह दोनों नक्षत्र यथाक्रमसे शिशुमारके दक्षिण और वाम नितम्ब पर हैं, आर्द्रा और आश्लेषा यथाक्रमसे उसके दक्षिण और वाम चरणमें हैं, अभिजित् और उत्तराषाढ यथाक्रमसे उसकी दक्षिण और वाम नासिकापर हैं, श्रवण और उत्तराषाढ यथाक्रमसे उसके दायें और बायें नेत्रमें हैं, धनिष्ठा और मूल यथाक्रमसे उसके दक्षिण और वाम कर्णमें हैं और मघा आदि अनुराधातक दक्षिणायन संबधीय आठ नक्षत्र उसके वामपार्श्वकी अस्थिमें लगे हुए हैं. इसी प्रकारसे

पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोःमघादीन्यष्टनक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववंक्रिषु युंजीत ॥ तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुंजीत ॥ शतभिषाज्येष्ठे स्कंधयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥ उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चांगारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चंद्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वांगेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७॥

मृगशिरादि उससे उलटे अर्थात् दक्षिणायनसंबधी जो आठ नक्षत्र हैं वह सब उसके दक्षिण पार्श्वकी अस्थियोंमें लगे हुए हैं और शतभिष व ज्येष्ठा यथाक्रमसे उसके दायें और बाँये कन्धोंमें स्थापित हैं ॥ ६ ॥ इस शिशुमारकी उत्तर ठोड़ीमे अगस्त्यजी, अधर ठोड़ीमें यम मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, शृङ्गमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण व अपानमें बुध, गलेमें राहु, सर्वांगमें केतु और रुओंमें तारागण लगे हुए हैं * ॥ ७ ॥

---

* शंका–शिशुमार चक्रके हृदयमें और नवग्रहोंके बीचमें नारायण भगवान् वास करते हैं ऐसा भागवतमें हम सबने सुना है, और यहभी कहिये कि, नारायण भगवान् कौन हैं ? यह बडी भारी शंका है क्योंकि जो श्रीवैकुण्ठनाथ श्रीनारायण हैं वह ग्रहोंके बीचमें निवास कैसे करते हैं ?

उत्तर–धर्मनन्दन जो श्रीनारायण हैं जिन्होंने बदरिकाश्रममें बहुत दिनतक तप किया वही नारायण शिशुमारचक्रमें सब देवताओंको सुन्दर धर्म सिखानेके लिये ग्रहोंके मध्यमें वास करते हैं ॥

हे राजन्! यह जो शिशुमारके चक्राकारका वर्णन हुआ यही भगवान् विष्णुजीका सर्व देवता मय रूप है,सब पुरुषोंको सदाही संध्याके समय सावधान हो मौन धारणकर इस चक्रका देखना अवश्य कर्तव्य है और उस समय यह मंत्र पढ़ना चाहिये । मंत्र–"नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषयाभिधीमहि" अहो ! ज्योतिर्गणोंके आश्रय और कालचक्ररूपी देवताधिपति, उन महापुरुषोंको वारम्वार हमारा नमस्कार है हम निरन्तर उनकी चिन्तना करते हैं ॥ ८ ॥ यह शिशुमार भगवान् ग्रह व नक्षत्रादिकोंके स्वरूप सर्व देवताओंके अधिपति हैं

एतदु ह वा भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत ॥ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ ८ ॥ ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मंत्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ ९ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० पंचम० शिशुमारसंस्थानं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इसलिये जो लोग त्रिकालमें उनका पहला कहा हुआ मंत्र जपा करते हैं,उनके पापोंको शिशुमाररूप भगवान् नष्ट कर देंगे,जो पुरुष तीन कालकी संध्यामें उनको प्रणाम करे, वा उनका स्मरण करेगा उस पुरुषके तत्काल ही सब पाप नाशको प्राप्त होजायँगे * ॥ ९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां शिशुमारचक्रवर्णन नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ११.२

---

* दृष्टान्त–एक बडे मालदार लाला थे, उन्होंने अपने पुत्रका विवाह किया,तो सब नगरकी ज्योनार की और अनेक२प्रकारके षट्रस भोजन जिमाये,और किसी समय युवा अवस्थामें उनकी किसी वेश्यासे भी रीति प्रीति थी, सेठजीने अपने मनमें विचारा कि. जो मैं उसको अपने घर बुलाऊँ तो लोग हँसी करेंगे,कि यह वृद्धावस्थामें भी वेश्याके वशीभूत होरहे हैं इन्हें बेटे पोतेकी कुछ लज्जा नहीं.यह बात विचार एक थालमें कुछ थोडेसे लड्डू, पेडे, बरफी, अमिरती, खुरमें, रजले, हलुवा, पूरी, खस्ता, कचौरी और अनेक प्रकारकी मिठाई धरकर,बेटोंसे किसी औरका नाम ले वेश्याके घर पहुँचे.वह एक बडे ऊँचेवाले खानेपर रहा करती थी, सेठजी सहज सहजमें ऊपरको चढे. जब आधादूर पहुँच गये तो उनके हाथ पाँव कांपने लगे । क्योंकि वृद्धावस्थामें सीढियोंपर चढना महाकठिन है, जब और ऊपरको न चढा गया तो यह पुकारे अरी ले!अरी ले!मेरा चित्त तो बहुत चाहता है परन्तु मैं तेरे निकट नहीं आसकता.तब इनके मुखसे घबराहटमें'अरी ले अरी ले'तो न निकला परन्तु'हरी ले हरी ले'निकला उसी समय इनका पाँव ज पटा तो जीनेसे नीचे गिरकर लालाजीकी इति श्री होगई अर्थात प्राण निकल गये.हरि हरि नाम सुनकर उसी समय भगवान् वासुदेव वैकुण्ठनाथने अपने पार्षदोंको बुलाकर कहा कि,मेरे भक्तका देहान्त हुआ है, तुम अभी विमान लेकर जाओ और उसको हमारे समीप ले आओ क्योंकि उसने अन्तसमय मेरा नाम लिया"जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं" यह सुन भगवान्के पार्षद उसी समय उसको विमानपर बैठाकर परमधामको लेगये. देखो धोखेमें नाम लेनेसे उस वैश्यकी मुक्ति होगई और हित चित्तसे परमेश्वरका नाम लेते हैं उनका तो कहना ही क्या है ॥

दोहा–रविके नीचे ग्रह जिते, ते सब कहूँ सुनाय। अनलादिक वर्णन करों, अब चौबिस अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! कोई कोई विद्वान् कहते हैं कि, सूर्यके नीचेके भागमें दश सहस्रयोजनके अंतरपर यह राहु नक्षत्रकी समान घूमता है. यह राहु सिंहिका राक्षसीका पुत्र, असुरोंमें नीच, किसी प्रकारसे देवभाव और ग्रहभावको प्राप्त होनेके योग्य नहीं था, केवल भगवान्की कृपासे इसने देवभाव और ग्रहभाव प्राप्त कर लिया है। इसके जन्म और कर्मका वृत्तान्त फिर (आठवें स्कन्धमें) कहेंगे ॥१॥ इस राहुके अधोभागमें रहकर सूर्यनारायण तपते हैं. कहते हैं, कि सूर्यमण्डलका विस्तार दश हजार योजन और चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है, परन्तु राहुमंडलका विस्तार इन दोनोंसे बड़ा अर्थात् तेरह हजार योजन है. इस राहुने अमृत पीनेके समय सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें बैठकर छल किया था तब सूर्य व

श्रीशुक उवाच ॥ अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके ॥ योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चाऽलभत भगवदनुकंपया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः तस्य तात जन्मकर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १ ॥ यददस्तरणेर्मंडलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबंधः सूर्याचंद्रमसावभिधावति ॥ २ ॥ तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदंति लोकाः ॥ ३ ॥

चंद्रमाने उस समय विष्णु भगवान्को बता दिया था कि, यह देवता नहीं है दैत्य है तब विष्णुभगवान्ने इसका शिर काटडाला था, परंतु अमृतके पान करनेसे वह मरा नहीं और देवभाव व ग्रहभावको प्राप्त हुआ। तबका वैर लेनेको सदा करके यह अबतक पौर्णमासी व अमावास्याके दिन जब सूर्य व चंद्रमाका पूर्ण प्रकाश होता है तब उस प्रकाशको न सहन करके यह इन दोनोंके पीछे दौड़ता है॥२॥ भगवान् विष्णुजीने इस बातको जानकर चंद्रमा और सूर्यकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शन नामक अपना प्रिय अस्त्र अथवा भागवत चक्र नियत किया, इस चक्रका तेज अति असहनीय है और वह सदा ही घूमता है इसलिये उस चक्रको घूमता हुआ देखकर राहु सूर्य अथवा चंद्रमाको पकडनेके लिये एक मुहूर्त मात्र

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥४॥ ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमंतरिक्षं यावद् वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यंते ॥ ५ ॥ ततोऽधस्ताच्छतयोजनांतर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतंतीति ॥ ६ ॥ उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात् सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतांतरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः ॥ अतलं १ वितलं २ सुतलं ३ तलातलं ४ महातलं ५ रसातलं ६ पातालम् ७ इति ॥ ७ ॥

तक खडा होता है और पीछेसे डरकर दूरसे ही. पीछेको लौट जाता है. इस प्रकार सूर्य और चंद्रमाके अंतरमें जितनी देर राहु खडा रहता है उसकोही लोग ग्रहण कहा करते हैं॥३॥ राहु ग्रहके इतने ही परिमाण योजन नीचे अर्थात् दशसहस्र योजन अधोभागमें सिद्ध, चारण और विद्याधरोंके रहनेका स्थान है॥४॥ उनके नीचे यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत और पिशाचगणोंके विहार करनेका स्थान अन्तरिक्ष है. यह स्थान शून्यमात्र, है वहांपर ग्रहादि कुछ नहीं हैं। इस स्थानका परिमाण कहते हैं सो तुम श्रवण करो। जहांतक मेघमाला दृष्टि आती है और जहांतक वायु तीव्र वेगसे बहता है इस स्थानका विस्तार भी वहींतक है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! यक्षोंके स्थानोंके नीचे शतयोजन दूर यह पृथ्वी है, इसके ऊपर भागवाले भूलोकादिकोंकी सीमा कहते हैं, सो तुम सुनो। जहांतक पृथ्वीके विकार हंस, भास, बाज, गरुड़ आदि पक्षिराज उडते रहते हैं, वहांतक इस भूलोककी सीमा है ॥ ६ ॥ हे कौरववंशप्रवीर ! पृथ्वीमें जैसी स्थिति और जैसे जैसे सब स्थान हैं, वह मैंने समस्त ही आपसे वर्णन किये। हे राजन् ! पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं, उनमेंसे एक एक दश दश हजार योजनके मध्यमें विस्तारसे रचा हुआ है। इन सात विवरोंके यह नाम हैं

---

* **शंका**– राहु और केतु, सूर्य चन्द्रमाको अत्यन्त पीडा देते हैं और इन दोनों सूर्य चन्द्रमाकी रक्षा करनेके लिये भगवान्का चक्र सुदर्शन आता है बारबारके आने जानेमें चक्र सुदर्शनको भी महाकष्ट होता है, फिर ऐसे दुःखदेनेवाले राहु केतुको भगवान् वासुदेव क्यों नहीं मारकर विध्वंस करते जो फिर किसीको दुःख न हो इसका उत्तर जो कोइ दे कि, राहु केतु अमृत पीगये थे इसलिये यह किसीके मारनेसे नहीं मरसक्ते तो सत्य है, परन्तु अमृतभी तो भगवान्हीका बनाया है जिसको भगवान् मारना चाहतेहैं तो उसकी रक्षा भगवान् भी नहीं करसक्ते ?

उत्तर–भगवान्ने सुदर्शन चक्रसे राहु केतुको मारा था, तबसे राहु केतु चक्रसुदर्शका स्पर्श करनेसे पवित्र होगया, इसलिये भगवान् सुदर्शन चक्रसे पवित्र राहु केतु हो नहीं, मारसक्ते दोनोंके शरीरमें दर्शन चक्रका जो चिह्न उपस्थित है उसको देखकर भगवान् राहु केतुके ऊपर प्रसन्न होगये ॥

यथा—अतल, वितल, सुतल, तलातल,महातल, रसातल और पाताल ॥ ७ ॥ इन सबके नीचे भुवनोंमें अर्थात् पातालोंमें फुलवाडियां, विहार करनेके स्थान, स्वर्गसे भी अधिक रमणीक कामभोग, ऐश्वर्य, आनन्द और विभूतियों करके सुन्दर समृद्धियोंसे पूर्ण मंदिर, प्रतिमंदिर वन, उपवन, उद्यान, विहारस्थल इन सब स्थानोंमें दैत्य दानव और सर्पगण घरोंके भाँति रहकर परमसुखसे बसते हैं. उनके स्त्री, पुत्र, सुहृद, मित्र और नौकर चाकर नित्य उनपर अनुरागी और सदा प्रफुल्लित रहा करते हैं। अधिकाईसे ईश्वर नारायणजीसे भी उनका कोई अभिलाष कभी अधूरा नहीं जाता, वह लोग सदा ही मायासे आनन्द उत्सव किया करते हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इन सब

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानंदविभूतिभिः सुसमृद्धवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबंधुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसंति ॥ ८ ॥ येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमः समलंकृताश्चकासति ॥ ९ ॥ उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानंदिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लतांगालिंगितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहंगमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लंघनक्षुभितनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिंद्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥ १० ॥

पातालोंमें मायासे मयदानवकी बनाई हुई अनेक पुरियें सदा दीप्यमान रहती हैं । वहांके भवन, प्राकार, गोपुर, चित्रसारी, अटारी, चत्यस्थान सभा (पाषाणादि बन्ध), चौराहे और आयतन इत्यादि बडे २ स्थान मणियोंसे बने हुये शोभित हो रहे हैं। वहां विवरेश्वर गणोंके बडे २ गृहोंके भूभाग नाग, असुर कपोतोंके जोडे, तोते, मैना आदि पक्षियोंसे भरपूर हैं; इसलिये यह सब पाताल इन सब वस्तुओंसे मानो सर्व प्रकार सजकर विराज रहे हैं ॥ ९ ॥ वहांकी वाटिका और बागोंमें मालती, मदनबाण,

गन्धराज इत्यादि अनेक प्रकारके पुष्प, लतायें पुष्पोंसे पूरित ऊंचे ऊंचे वृक्षोंसे आलिंगन कर रही हैं और उन वृक्षोंकी शाखायें कोमल कोमल हरी, लाल, कोंपलों और फूल फलोंके भारसे नीचेको झुकी जाती थीं। जैसे सज्जन पुरुष समृद्धि पाकर नीचेको झुक जाते हैं. उस अनुपम शोभाको देख देख मन इन्द्रियें आह्लादसे पुलकायमान होती थीं। वहांके सब सरोवर निर्मल जलसे परिपूर्ण, जिनमें मछलियोंके क्रीडा करनेसे वह जल चंचल होता था और उन जलाशयोंमें अनेक प्रकारके कमल खिल रहे थे। कुमुद, कह्लार, कुवलय, नीलकमल और लाल कमलके फूलोंके वनके वन खिले हुए थे, भांति भांतिके पक्षियोंके जोडे, उस स्वच्छ जलमें जहां तहां तैरते रहते थे. जब वह सब विहार करते थे, और बोलते थे तो ऐसा मनोहर शब्द निकलता था कि, जिसको सुनकर सुननेवालोंकी इन्द्रियें स्थिर नहीं रहती थीं और चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता था। यह नगर अमरनगरकी शोभासे भी अधिक शोभायमान है॥ १०॥ इन पातालोंमें सूर्यादिग्रहोंके न रहनेसे वहां दिन रात्रिके कालका

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ यत्र हि महाहिप्रवराशिरोमणयः सर्वेतमः प्रबाधंते ॥ १२॥ न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्य दौर्गंध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवंति ॥ १३॥ नहिं तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्च न मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात्॥ १४॥

भी विभाग नहीं है इसलिये कालसे जो भयकी संभावना है, वह भी वहां नहीं है ॥ ११॥ और यहां पर सब स्थानोंमें बडे २ सर्पराजोंके शिरकी मणियें अन्धकारका नाश करनेको सदा ही प्रकाशमान रहती हैं॥ १२॥ हे राजन्! इन सब स्थानोंमें जो लोग वास करते हैं, वह सदा ही दिव्य औषधियोंके रस, रसायन अन्न पान पिया खाया करते हैं, इस पीने खानेसे और स्नानसे उनको कभी आधि (मनका दुःख) व्याधि (शरीरमें कुष्ठादिरोग) अथवा जरा आदि अवस्था नहीं प्राप्त होती, उनकी देहमें विवर्णता होनेकी कुछ सम्भावना नहीं और दुर्गंधि अथवा पसीना, परिश्रम अथवा उत्साहरहित होना इत्यादि यह सब बातें भी वहां कभी किसीको प्राप्त नहीं होती ॥ १३ ॥ इसलिये तेजरूप भगवान् नारायणके चक्रविना उनके ऊपर मृत्यु भी अपनी प्रभुताई नहीं कर सकती ॥ १४ ॥

हे राजन्। भगवान्का चक्र सब कुछ करनेका सामर्थ्य रखता है, उसको कुछ भी असाध्य नहीं है. उसके पातालमें प्रवेश करनेसे दैत्योंकी स्त्रियोंके गर्भ पतित होजाते हैं ॥ १५ ॥ इस समय हम अतलादि नीचेके भुवनोंमें रहनेवालोंका वृत्तांत तुमको सुनाते हैं ॥ अतलनामक प्रथम पातालमें मयदानवका पुत्र बलनामा असुर वास करता है, इस बलासुरसे ही ९६ छियानबे माया उत्पन्न हुई, कोई२मायावी उन सब मायाओंके कुछ कुछ अंश अबतक धारण करते हैं, जब उस बलासुरने जँभाई ली, तब उसके मुखसे स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली यह तीन प्रकारकी स्त्रियें उत्पन्न हुई ॥ हे राजन् ! जो स्त्रियें अपनी जातिके पुरुषोंसे प्रीति करती हैं वह स्वैरिणी, जो अपनी जाति और पराई जातिके सब

यस्मिन् प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवंति पतंति च ॥ १५ ॥ अथाऽतले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयंति॥ यस्य च जृंभमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यंत स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति॥ या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयंति ॥ यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमिति अयुतमहागजबल आत्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदांध इव ॥ १६ ॥ ततोऽधस्ताद् वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण ॥ यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति ॥ तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेंद्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयंति ॥ १७ ॥

पुरुषोंसे प्रीति करती हैं, वह कामिनी और जो अनियमित हो व्यभिचार करनेवाली स्त्रियें हैं, वह पुंश्चली कहलाती हैं । यह सब स्त्रियें पहले कहे हुए पातालोंमें जो पुरुष आता है उसे हाटकनाम सुवर्णरसके पिलानेसे भोग करनेमें समर्थ कर अपने असाधारण विलास सहित अवलोकन, मन्दहास्य, अनुरागसहित मीठे बोल और आलिंगन आदिसे अपनी इच्छानुसार केलि कराती हैं. हे राजन् ! सुवर्णके रसका गुण बडा ही आश्चर्य देनेवाला है। उसके सेवन करनेसे पुरुष अपनेको 'हम ईश्वर हैं, हम सिद्ध हैं'' इस प्रकारसे समझता है, और दश हजार मतवाले हाथियोंके समान सामर्थ्यवान् होकर मदांधके समान किसीको कुछ न समझकर जहां तहां निर्द्वन्द्वसा फिरा करता है ॥ १६॥ अतलनामक

पातालके नीचे वितलनामक दूसरा पाताल है। यहां भगवान् हाटकेश्वर शिवजी अपने पार्षदगणोंसहित और प्रजापतिकी सृष्टिको बढानेके लिये भवानीसहित मिथुनभावसे विराजमान हैं। हे राजन्! इस वितलनामक भूविवरसे ही भव और भवानीके वीर्यद्वारा हाटकी नामक नदी उत्पन्न हुई है। हे कौरवकुमार! एक समय वायुकी उत्तेजनासे अग्नि और शिव पार्वतीजीकेवीर्यको पीते थे, जिसको पी फिर उन्होंने हाटक नाम सुवर्ण उगला, इस स्थानके रहनेवाले असुराधिपोंके रनवासमें पुरुषगण स्त्रियोंसहित उसी सुवर्णके भूषण धारण करते हैं॥ १७॥ हे राजन्! वितलके नीचे तीसरा पाताल सुतल है; वहांपर महायशस्वी पुण्यकीर्ति विरोचननन्दन महाराज बलिजी अबतक बसते हैं। हे महाराज! भगवान् विष्णुजीने देवराजका प्रिय करनेकी इच्छा करके दितिसे बटु वामनरूप शरीर धारण करके प्रथम इन बलिका त्रिलोकीका राज्य हरण कर लिया, परंतु पीछे फिर अपने आपही कृपा करके उनको अपने राज्यमें प्रवेश कराया; जिससे राजा बलिके इतनी समृद्धि लक्ष्मी हुई कि इन्द्रादि देवताओंके पास भी वैसी सम्पत्ति नहीं, इस कारण राजा बलि इस स्थानमें रहकर निरन्तर उन आराधना करने योग्य भगवान्की आराधना कर निर्भय रहते हैं॥ १८॥ हे राजन्! राजा बलिका सुतल पातालके मध्यमें जो इतना ऐश्वर्य हुआ यह उसको कुछ भूमिके दानका फल नहीं है। हे महाराज! भगवान् वासुदेव जो सब जीवोंके नियन्ता और आत्माराम हैं, इसलिये साक्षात परमात्मा स्वरूप जो तीर्थके समान पात्र मिले सो उनको श्रद्धासहित सावधान मनसे परमआदरपूर्वक बलिराजाने भूमिदान किया, वही साक्षात् स्वर्गका द्वार हुआ, उसका फल परमपुरुषार्थ मुक्ति पदार्थही होसकता है। यह अनित्य विभव किसी प्रकार उसका फल नहीं होसकता॥१९॥

ततोऽधस्तात्सुतल उदारश्रवाःपुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेंद्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा बटुवामनरूपेण पराक्षिप्तस्वलोकत्रयो भगवदनुकंपयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्ध्याश्रियाऽभिजुष्टः। स्वधर्मेणाराधयस्तमेव भगवंतमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि॥१८॥नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत् तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे सर्वजीवनियंतर्यात्मारामे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम्॥१९॥

दूसरे क्षुधा, छींक, जंभाई, गिरने आदिके समय भी जब पुरुष अवश होकर एक बार जिनके नामको उच्चारण करनेसे वास्तवमें कर्मकी फांसीसे छूट जाता है। हे राजन्! कर्मबंधन कुछ साधारण बन्धन नहीं है! मुमुक्षु पुरुष लोग इस बंधनकेही हटानेके लिये योगानुष्ठानादि बडे कठिन कठिन क्लेश सहा करते हैं ॥ २० ॥ इसलिये उन भगवान्‌में समर्पण किया हुआ भूमिदानका फल यह ऐश्वर्यमात्र है यह कभी संभव नहीं हो सकता। विशेष करके भगवान् भक्तलोगोंके प्रिय आत्मज्ञानियोंको ज्ञानके और अपने स्वरूपके देनेवाले वह क्या अपने परम भक्त बलिके लिये किसी और प्रकारका आचरण कर सकते हैं॥ २१ ॥ इसलिये राजा बलिके पास सुतललोकमें जो इतना विभव हुआ सो राजा बलिके प्रति यह भगवान्‌का अनुग्रह नहीं हुआ क्योंकि भोग विभव केवल मायामय है, इससे तो केवल परमेश्वरका स्मरण छूट जाता है ॥ २२ ॥ हे राजन्! राजा बलिकी एकांतिक भक्तिका वृत्तान्त कहता हूँ, सो तुम सुनो। भगवान्‌ने और उपाय न पाकर भिक्षाके छलसे राजा बलिके तीनों लोक हरण कर लिये थे। केवल राजाका शरीरमात्र शेष अर्थात् बच रहा था ऐसा करके भी उनको सन्तोष नहीं हुआ और फिर वरुणकी फांसीसे राजाको भली भांति बांधा और पर्वतकी गुहाके समान पातालमें डाल दिया। परन्तु राजा बलिने इतना दुःख पाकर भी केवल इतना कहा था ॥ २३ ॥ यह इंद्र जिनके बृहस्पतिजी बडे ही सहायक हैं और जिनको सम्मति करनेके लिये इन्द्रने वरण किया था, सो हमको ज्ञात होता है कि, यह भी पुरुषार्थके विषयका कुछ नहीं जानते। क्योंकि इन्होंने उन उपेंद्रको त्याग करके उनके द्वारा हमारे पाससे त्रिभुवन

यस्य ह वाव क्षुत्पतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमंजसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभंते ॥ २० ॥ तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥ २१ ॥ न वै भगवान् नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥ २२ ॥ यद्भगवताऽनधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च संप्रति मुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥ २३ ॥ नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविंद्रो यस्य सचिवो मंत्राय वृत एकांततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेंद्रेणात्मानमयाचत ॥ आत्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यामीति गंभीरवयसः कालस्य मन्वंतरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥ २४ ॥

मांगा और स्वयं उनके दास होनेकी प्रार्थना न की, इस लिये जब भगवान् प्रसन्न होवें, तो उनके निकट दासभावहीको प्रार्थना करना उचित है । गम्भीर वेगवान् कालके मन्वन्तरसे परिवर्तित यह त्रिलोकीका राज्य क्या पदार्थ है ॥ २४ ॥ इस कारण हमारे दादा (प्रह्लाद) ने भगवान्से दासपनकी ही भिक्षा मांगी थी. जब प्रह्लादके पिता हिरण्यकशिपु मरे तब भगवान् उनको उनके पिताका कण्टकहीन राज्य देनेको उपस्थित हुए थे और उस राज्यके ले लेनेसे कुछ भयकी भी संभावना नहीं थी, तो भी यह भगवान्से अलग है यह विचार करके हमारे दादा प्रह्लादजीने उस राज्यको ग्रहण नहीं किया । ॥ २५ ॥ परंतु हम सरीखे पुरुष कि, जिनके रागादि क्षीण नहीं हुए हैं इससे भला ऐसे लोग जिनपर भगवान्की कृपा न हो, कैसे प्रह्लादजीके मार्गानुसार चलनेकी इच्छा न करें ॥ २६ ॥ योगिश्रेष्ठ

यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥ २५ ॥ तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥ २६ ॥ अथ तस्यानुचरितमुपरिष्टाद् विस्तरिष्यते यस्य भगवान्स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनांगुष्ठेन पदा दशकंधरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥ ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेंद्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥ २८ ॥

शुकदेवजी इस प्रकारसे राजा बलिके कुछेक प्रभावका वर्णन करके बोले कि, हे राजन् ! बलिका चरित्रे हम आगे (आठवें स्कन्धमें) वर्णन करेंगे । हे भारत! राजा बलिकी महिमा क्या वर्णन करें ? कि, अखिल जगत्के गुरु भगवान् नारायणजी हाथमें गदा धारण किये उसके द्वारपर आठों पहर द्वारपालके समान पहरा दिया करते हैं । एक समय दशकन्धर रावण राजा बलिके द्वारपर दिग्विजय करनेके लिये आया, तब भगवान् वामनजीने अपने चरणके अँगूठेसे उसको उठाकर दशहजार योजनपर फेंक दिया, क्योंकि भगवान्का हृदय अपने भक्तजनोंपर सदाही दयासे पूर्ण है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सुतल लोकके नीचे तलातल नामक पाताल लोक है. जिस प्रकारसे सुतललोकमें

भगवान्का भक्त, राजा बलि भगवान् हरिका स्थापित किया हुआ सुखसे वास करता है वैसे ही मयनामक दानव मायावी दैत्योंका गुरु त्रिपुरका अधिपति जो महादेवजीसे रक्षित होनेके कारण तलातलमें पूजा जाता है। भगवान् त्रिपुरारिजीने जब त्रिलोकीका मंगल करनेकी कामनासे प्रथम तो इसके तीनों पुर दग्ध कर दिये पीछेसे उसके प्रति प्रसन्न होगये,उनके प्रसन्न होनेसे यह दानव फिर स्थान प्राप्त करके सुदर्शन चक्रसे निर्भय हो पूजा जाने लगा ॥ २८ ॥ तलातल लोकके नीचे महातल नामक पाताल है। वहांपर बहुतसे फण धारण करनेवाला कद्रूका पुत्र सरोष सर्पसंघ वास करता है; उन सब सर्पोंके मध्यमें कुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण इत्यादि मुख्य हैं, उनकी देह अतिशय दीर्घ है,

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवंतः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुंबसंगेन क्वचित्प्रमत्ता विहरंति ॥ २९ ॥ ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसति ये वै सरमयेंद्रदूत्या वाग्भिर्मंत्रवर्णाभिरिंद्राद्द बिभ्यति ॥ ३० ॥

वह सर्प भगवान्के वाहन गरुड़जीके भयसे सदा उद्विग्नचित्त होकर रहते हैं और कभी असावधान चित्त होकर स्त्री,पुत्र, सुहृद् और कुटुम्बियोंके संगमें कहीं कहीं विहार करने जाया करते हैं॥ २९ ॥ महातललोकके नीचे रसातल पाताललोक है। वहांपर दितिके पुत्र निवातकवच कालेय इत्यादि असुरकुल जो कि, हिरण्यपुरमें बसनेसे देवताओंके शत्रु विख्यात हुए हैं; वह लोग बिलेशय (सर्प)के समान वास करते हैं, यह सब यद्यपि जन्मसे ही महाबलवान् और महासाहसी होते हैं, परंतु जिन भगवान्के तेजसे सब लोक देदीप्यमान हैं उस तेजसे ही इनके बलका अभिमान टूटता रहता है। वह अबतक इन्द्रदूती सरमाके उच्चारण

कियेहुए मन्त्ररूप वाक्यसे देवराज इन्द्रसे भय पाते हैं॥३०॥महातलके नीचे पाताल लोक है वहांपर वासुकी इत्यादि नागलोगोंके अधिपतिगण अर्थात् शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त इत्यादि महाफणधारी और महाक्रोधी सर्प वास करते हैं।रसातलके नीचे पाताल नामक सातवां लोक है।उसमें बडे बडे महाकाय और महारोषवाले सर्प रहते हैं।उनका अधिष्ठाता राजा वासुकी नाम नाग है और महाकुलिश, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त, वासुकी सहित यह दश नाग इसमें

ततोऽधस्तात् पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शंखकुलिकमहाशंखश्वेतधनंजयधृतराष्ट्रशंखचूडकंबलाश्वतरदेवदत्ताद्रयो महाभोगिनो महामर्षा निवसंति॥ येषामु ह वै पंचसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमंति ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४ ॥

प्रतिष्ठित गिने जाते हैं। इन सब नागोंमें किसीके पांच मस्तक, किसीके सात, किसीके दश, किसीके शत और किसीके सहस्र शिर हैं, उनके फणोंमें दीप्तिशाली जो बडी बडी मणियें हैं, वह सब मणियें अपनी अपनी ज्योतिसे पातालके घोर तिमिरको दूर कर देती हैं॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां तलादिस्वर्गे बिले ये निवसंति तेषां वर्णनं मर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४ ॥

---

१ इस विषयका इतिहास वेदमें प्रसिद्ध है कि, एक समय असुरलोगोंने देवताओंकी गायें हर करके छिपा रक्खी थीं, देवराज इन्द्रने उनको खोजनेके लिये सरमा नामक देवताओंकी कुत्तियेंको भेजा, सरमाको देखकर दैत्यलोगोंके मनमें यह शंका हुई कि, कदाचित् देवराज इन्द्रको गायें छिपानेका वृत्तान्त ज्ञात होगया, यह समझ उन्होंने संधि करनेके लिये इस सरमासे कहा कि, तेरी क्या इच्छा है परंतु सरमाकी इच्छा संधि करनेकी नहीं थी वह इन्द्रकी स्तुति कर दैत्योंको क्रोधसहित वचन कहने लगी। अरे दैत्यो! तुम देवराजकरके मारे जाओगे, इसलिये शीघ्र भागो, तबसे यह सुनकर असुरगण सदा इंद्रसे डरा करते हैं॥

* **सवैया**–ज्ञानको भान प्रकाशत हो तम दूर भयो प्रकटो उजियारो॥तुम मेरे नहीं मैं तेरा हूं केशव बात यहो भलि भाँति विचारो॥ पानीकी लहर न लहरको पानी आंखन देख लियो भ्रमसारो ॥ निर्भय रामते भिन्न नहीं कछु या विधि रामको रूप निहारो ॥१ ॥

दोहा–शेष सात पाताल तल, थित पचीस अध्याय। जितते प्रगटे रुद्र जू, प्रलयकालको पाय ॥५९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! पातालकी जड़में तीस (३००००) सहस्र योजनकी दूरीपर भगवान्‌की तामसी नाम कला(अंश)जो है उसका नाम अनन्त है, सात्वत तन्त्र निष्ठावाले, अर्थात् भगवद्भक्त उनको संकर्षण कहा करते हैं,संकर्षण कहनेका यह हेतु है कि‘हम’‘हमारा’इत्यादि अभिमान जो मायाका चिह्न है,उस अहंकारके अधिष्ठान द्वारा वह द्रष्टा और दृश्यको खींचा करते हैं अर्थात् एकमें मिलादेते हैं॥ १॥ हे राजन्! सहस्र शिरवाले अनन्तमूर्ति जो भगवान् शेषजी हैं उनके एक शिरपर यह अवनिमण्डल सरसोंके दानेकी समान धरा हुआ है ॥२॥ जो प्रलयकाल में इस जगत्‌के संहार करनेकी वासनासे संकर्षण

श्रीशुक उवाच ॥ तस्य मूलदेहो त्रिंशद्योजनसहस्रांतर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनंत इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः संकर्षणमहामित्यभिमानलक्षणं यं संकर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥ यस्येदं क्षितिमंडलं भगवतोऽनंतमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ २ ॥ यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरंतरेण संकर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तंभयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥ यस्यांघ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमंडलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकांतभक्तियोगेनावनमंतः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुंडलप्रभामण्डलमंडितगंडस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयंति ॥ ४ ॥

नामक एकादशव्यूहमें रुद्र होते हैं और क्रोधके वश होनेके कारण भ्रमती हुई मनोहर दोनों भ्रुकुटियोंको टेढी करते तीन शिखावाला शूल हाथमें उठाते हैं॥३॥ जिनके युगल चरणकमलके अरुणवर्ण नखमणिमण्डलदर्पण स्वरूप होनेसे उनके मध्यमें नागपतिगण बडे बडे भक्तोंके साथ एकांत भक्तिके सहित नमस्कार करते करते हर्षित मनसे अपने २ वदनके प्रतिबिम्बको अवलोकन करते हैं. हे महराज ! नागपति गणोंका वदन वास्तवमें देखनेके योग्य है,उनके श्रवणमें अतिउज्ज्वल कुण्डल देदीप्यमान रहनेसे उन कुण्डलोंके प्रभामंडल द्वारा उनकी ग्रीवा अतिशय शोभित

होती हैं ॥ ४ ॥ नागराजोंकी कुमारियें अपने अपने कल्याणकी कामना कर लजीले नेत्रोंसे उनके मुखारविंदको अवलोकन करती हैं । इसलिये शेषभगवान्के वलयविलसित विपुल धवल सुभग और रुचिर भुजरूप जो दो चाँदीके समान स्तंभ हैं;उनमें नागराजकी कन्यायें, सदा अगर चन्दन और कुंकुमका लेप किया करती हैं,परंतु उन भुजाओंके स्पर्श करतेही उनके हृदय मथित होजाते हैं और मनोंमें मनोभव जाग उठता है। उस समयमें उनका मन्द मन्द हँसना अतिशय रुचिर और ललित हुआ करता है, हे भरत! नागराजकुमारियें भगवान्के जिस वदनको अवलोकन करती हैं, वह देखनेही योग्य है, क्योंकि वह अनुराग और मदसे सदा ही हर्षयुक्त रहता हैं और उसी वदनमेंके करुणावलोकनयुक्त, दोनों

यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चावंगवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तंभेष्वगुरुचन्दनकुंकुमपंकानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणाऽवलोकनयनवदनारविंदं सव्रीडं किल विलोकयंति ॥ ५ ॥ स एव भगवाननंतोऽनंतगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥ ६ ॥ ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगंधर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयंतीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुंदरभुजो भगवान् माहेंद्रो वारणेंद्र इव कांचनीं कक्षामुदारलीलो बिभार्ति ॥ ७ ॥

नेत्र सर्वदा मदसे चलायमान और कुछेक रतनारेसे रहते हैं ॥ ५ ॥ यह अनंत गुणसागर आदिदेव अनंतजी अपने क्रोधके वेगको रोककर सब लोगोंका मंगल करनेके लिये इस स्थानमें विराजमान हैं ॥ ६ ॥ वहांपर सुर, असुर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, उरग और मुनिगण,निरंतर उनका ध्यान करते हैं और दोनों नेत्र मदसे सदा मुदित, विकृत और विह्वल रहते हैं, वह सुललित वचनामृतसे अपने पार्षद देवतागणोंको सदा तृप्त किया करते हैं, नीलवर्ण वस्त्र धारण किये, कानमें एक कुंडल विराजमान, सुभग और सुन्दर दोनों भुजायें हलके ऊपर रक्खी हुई

११७

हैं,देवराज इन्द्रका हाथी जिस प्रकार कांचनमय जंजीर धारण करता है, वैसेही शेष भगवान् वैजयन्तीमाला धारण किये हुये हैं, उस मालाकी शोभा क्या कहैं उसमें विमल सुगंधियुक्त मधुरसमें भ्रमरगण मत्त होनेसे उनकी मधुर गीत श्री होजाती हैं। शेष भगवान् इस प्रकार पूजन करनेसे और ध्यान धरनेसे मुमुक्षु जनोंके हृदयमें प्रवेश करके उनके अनादिकाल कर्म वासनासे गुँथेहुये और उनका देहाभिमान जो कि त्रिगुणात्मक रचागया अविद्यासे पूर्ण है उस हृदयके विकारकी गाँठको शीघ्र खोल देते हैं. देवर्षि नारदजीने ब्रह्माजीकी सभामें तुम्बुरु गन्धर्वके साथ उन भगवान्‌की महिमा इस प्रकारसे वर्णन की थी॥ ७॥८॥ यथा-इस जगत्‌की उत्पत्ति इत्यादिका कारण सत्त्वादि तीन गुण,

य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रंथिं सत्त्वरजस्तमोमयमंतर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान्भगवान्स्वायंभुवो नारदः सह तुंबुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास॥८॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन्॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन् नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म॥९॥ मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥१०॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलंभनाद्वा॥ हंत्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥

जिनके कटाक्षसे अपने अपने कार्य करनेको समर्थ हुए हैं। जिनका स्वरूप अनादि और अनंत है,जिन्होंने एक मात्र वस्तुस्वरूप होकर आत्मामें अनेक प्रकारके प्रपंच लगा दिये हैं, उन शेष भगवान्‌का तत्त्व यह लोक किस प्रकार जान सकता है॥९॥जिनसे सत् असत् प्रगट होता है और जिन्होंने हमसे भक्तजनोंके ऊपर प्रसन्न होकर विशुद्ध सत्त्व मूर्त्ति धारण की है,अपने भक्तजनोंका मन वशकरनेके लिये जिनकी कारीई लीलाओंसे महाबलवान् पराक्रमीं सिंह शिक्षा पातेहैं, ऐसे परमोदार अनंत बलवान् सहस्रशिरवाले शेष भगवान्‌को त्यागकर और किसकी आशा करे॥१०॥ जिनका नाम औरके मुखसे सुनकर आर्त अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसीसे एकवार भी उच्चारण करलेता है उस पुरुषके व और

सुननेवाले पुरुषोंके अशेष पापोका नाश कर देता है,फिर इसके कहनेकी आश्यकता ही क्या है ? कि नाम शुद्ध है । इसलिये मुमुक्षुजन ऐसे भगवान्को छोड़कर और किसी पुरुषका क्यों आश्रय करेंगे ? ✻ ॥ ११ ॥ अहो जिनके यह सहस्र शिर हैं और उनमेंसे जिनके एक माथे पर नदियें समुद्र पर्वतसहित समस्त भूगोल परमाणुमात्रसा स्थिर होरहा है । जिनका विक्रम अनंत और अथोर है सो कौन पुरुष है जो सहस्र

मूर्धन्यर्पितमणुवत् सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ॥ आनंत्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ १२ ॥ एवंप्रभावो भगवाननंतो दुरंतवीर्योरुगुणानुभावः ॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतंत्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥ १३ ॥ एता ह्येवेह नृभिरुपगंतव्या गतयो यथाकर्मनिर्मिताः यथोपदेशमनुवर्णिता कामान् कामयमानैः ॥ १४ ॥

449

मस्तक प्राप्त करके,उन महाकाय, बहुरूप, महावीर्यवान्,परमेश्वरके वीर्यकी गिनती कर सकता है? ॥ १२ ॥ अहो ! भगवान् अनंतजीका ऐसा प्रभाव है,उनके बल और गुणानुभावका क्या ठिकाना है परंतु वह ऐसे होकर भी इस पृथ्वीके नीचे विराजमान हो लोकोंके हितार्थ लीलामात्र धरणीको धारण कर रहे हैं; उनका आधार कोई नहीं है,वह अपने आप ही अपने आधार हैं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा

✻ **शंका**-श्रीशुकदेवजी महाराजने कहा कि, मुक्ति होनेकी इच्छा चाहनेवाले जो प्राणी हैं सो शेष भगवान्के अतिरिक्त दूसरा कौन है?जिसका सेवन करैं ? संसारसे मुक्तिके देनेवाले: शेष भगवान्के अतिरिक्त दूसरा देवता और कोई नहीं है. ऐसा वाक्य कभी भी आजतक हम लोगोंने नहीं सुना कि मुक्तिदेनेवाले शेष भगवान् हैं, शुकदेवजीने बालकोंकी नाईं क्यों ऐसे वचन कहे ?

उत्तर-व्यास मुनिने शेष शब्दके दो अर्थ किये हैं, व्याकरणको जो मनुष्य नहीं जानते वह मनुष्य तो शेष उसीको कहते हैं जो अपने मस्तकपर पृथ्वीको धारण कर रहे हैं और जो मनुष्य व्याकरणको अच्छी रीतिसे जानते हैं वह सब शेष शब्दका अर्थ इस प्रकार करेंगे कि, तीन लोक चौदह भुवनमें सब चरअचरका नाश हुये पीछे जिस भगवान्का नाश नहीं होता उसको शेष कहते सोई हैं शेष. भगवान् मुक्तिकी इच्छा करनेवाले जीवोंको सुख देनेवाले हैं इसीलिये मुक्तिकी इच्छा करनेवाले जीव शेष भगवानको छोडके दूसरे किस देवताका पूजन करेंगे, ऐसा मुनि लोगोंने वर्णन किया है कि पृथ्वीको धारण करनेवाले जो शेष हैं उनका व्याज करके जो संसारके नष्ट हुये पीछे शेष भगवान् केवल आपही आप रह जाते हैं उनके लिये श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कहा है ॥

कह फिर राजा परीक्षितसे बोले कि, हे राजन् ! हमने जिस प्रकारका उपदेश पाया था वैसे ही यह सब वृत्तांत आपसे वर्णन किया, सब लोगोंकी उनके कर्मानुसार गति बनाई गई है । सो सब मनुष्यगण अपने अपने कर्मानुसार प्राप्त किया करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये पुरुषगण प्रवृत्तिलक्षण धर्म करनेसे उनके फलस्वरूपमें उनको यह बडी बडी और छोटी छोटी गति प्राप्त हुआ करती हैं.तुमने जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसके अनुसार ही सब वर्णन हमने आपसे किया, अब इस समय तुम क्या सुनना चाहते हो ? सो हमसे कहो । परंतु इस प्रवृत्ति मार्गमें लक्ष्मीके मदमें सब अन्धे होजाते हैं * ॥ १५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीशेषस्वरूपवर्णनं नाम पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

एतावतीर्हि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत् कथयाम इति ॥१५॥ इति श्रीमद्भागवते महा० पंचमस्कं० नागराजरूपादिवर्णनं नाम पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥
राजोवाच ॥ महर्षे एतद् वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥ऋषिरुवाच ॥ त्रिगुणत्वात् कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवंति ॥ २ ॥

दोहा—नरकनको वर्णन करूं,अब छब्बिस अध्याय । धर्मदूत जहँ पापियन, देत दण्ड धमकाय ॥२६॥

अनन्तर राजा परीक्षित् निकट बैठेहुए श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे महाराज! पुरुषकी ऐसी अलग अलग गति क्यों होती है ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! सत, रज, तम, इन तीन गुणोंके तारतम्यके हेतु जो कर्ता हैं उनके विचित्र होनेसे श्रद्धाकी विभिन्नतासे सब कर्म अलग अलग होजाते हैं—अर्थात् सात्विकी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको परमानन्द और अनेक प्रकारका सुख मिलता है,राजसी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको सुख दुःख दोनों प्राप्त होते हैं और तामसी श्रद्धासहित कर्म्म करनेवालेको केवल कष्ट ही भोगना

---

* दृष्टान्त—एक बनिया रसोई जीमनेके लिये बैठे; तब मूसा थालीके समीप आकर नित्य कूदै, तब बनिया बोला इसके बिलमें कुछ धन है इससे यह कूदै है, उसका बिल ऐक दिन खोदा तो बीस सहस्र रुपये २०००० निकले फिरतो मूसे का कूदना बन्द होगया, ऐसे ही धन पाकर सब संसार कूदता है, निर्धनसे चला भी नहीं जाता, यह बात प्रसिद्ध है ॥

पडता है, और यदि उन श्रद्धाओंमें भेद हो तब सब प्रकारकी गतियोंमें भेदभाव हो सकता है इस कारणसे अधर्म करनेवालेके तमो गुणमें भेदश्रद्धा का विपरीताचरण कर्मफल होता है। इसलिये अनादि अविद्याकृत सब कामनाओंको परिणामस्वरूप वह सहस्र सहस्र प्रकारकी नरककी गति होती है। सो इस समय उनमेंसे प्रधान प्रधान नरकका वर्णन करता हूँ, आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥२॥३॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि, हे भगवन्! क्या सब नरक पृथ्वीके मध्यमें हैं या कोई देश विशेष हैं? और या ब्रह्माण्डके बाहरी भागमें हैं, या ब्रह्माण्डके अभ्यन्तर पृथ्वीके व्यतिरिक्त कोई स्थान है? ॥ ४ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! कोई कोई ऋषि कहते हैं कि, त्रिलोकीके

अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात् कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदंतराल इति ॥ ४॥ ऋषिरुवाच ॥ अंतराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसंति ॥ ५ ॥ यत्र ह वाव भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जंतुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लंघितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ६ ॥

मध्यमें दक्षिण दिशामें भूमिके नीचे और जलके ऊपर जिस स्थानमें अग्निष्वात्तादि पितृलोग वास करके परम समाधिका आश्रय कर अपने अपने वर्णवाले पुरुषलोगोंकी मंगलकामना किया करते हैं ॥ ५॥ अपने अथवा जिस स्थानपर पितृपति यमराज अपने गणोंके साथ अपने स्थानमें आयेहुये मृतकगणोंके कर्मानुसार इनके दोषादोषका विचार कर उनको दंड देते हैं, वह सब विषयमें किसी अंशसे भगवान्के शासनका उल्लंघन नहीं करते हैं ॥ ६ ॥

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयंति ॥ अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामः ॥ तामिस्रोंऽधतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुंभीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमंधकूपः कृमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकंटकशाल्मलीवैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति ॥ किंच क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दंदशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिनरका विविधयातनाभूमयः ॥ ७ ॥ तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते ॥ अनशनानुदपानदंडताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जंतुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥ ८ ॥ एवमेवांधतामिस्रे यस्तु वंचयित्वा पुरुषं दारादीनुपभुंक्ते ॥ यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादंधतामिस्रं तमुपदिशंति ॥ ९ ॥

यहींपर तर्क है.कि उन्ही ऋषियोंके मतसे इनकी संख्या इक्कीस है. हे राजन् ! मैं तुमसे इन सब नरकोंका नाम, रूप, लक्षण और वृत्तान्तकहता हूँ, सो तुम श्रवण करो । हे महाराज ! इन इक्कीस नरकोंके यह नाम हैं, यथा–तामिस्र १, अंधतामिस्र २, रौरव ३, महारौरव ४, कुम्भीपाक ५, कालसूत्र ६, असिपत्रवन ७, शूकरमुख ८, अन्धकूप ९, कृमिभोजन १०, सन्दंश ११, तप्तसूर्मि १२, वज्रकण्टकशाल्मली १३, वैतरणी १४, पूयोद १५, प्राणरोध १६, विशसन १७, लालाभक्ष १८, सारमेयादन १९, अवीचि २० और अयःपान २१ हैं । इनके सिवाय १ क्षारकर्दम, २ रक्षोगणभोजन, ३ शूलप्रोत, ४ दंदशूक, ५ अवटनिरोधन, ६ पर्य्यावर्तन, और ७ सूचीमूख यह सात नरक और हैं,इस प्रकारसे अट्ठाईस नरक अनेक अनेक प्रकारके कष्टके मूल हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य पराया धन, पराई स्त्री और पराया पुत्र हरण करते हैं उनको भयंकर यमराजके गण घोर कालकी फाँसीसे बाँधकर बलात्कारसे तामिस्र नरकमें डाल देते हैं,इस नरकमें अंधकार ही अंधकार छा रहा है । उसमें गिरकर पापी भोजन व जल न पाकर और दंडके ताड़नसे और तर्जन इत्यादि विविध व्यथाओंसे पीडित होता है, इसलिये आर्त होकर शीघ्रही मूर्छाको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य किसीको छल करके उसकी स्त्री आदि लेकर

आप भोग करते हैं वह अंधतामिस्र नरकमें गिराये जातेहैं। जिस प्रकार वृक्षको गिरानेके लिये उसकी जड़को काटतेहैं, वैसे ही यमदूत इस प्रकारके पाप करनेवालोंको विविधभाँतिकी पीडा देकर इस नरकमें डाल देते हैं, जो कि इस नरकमें गिरनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, स्मृति, व्यथाके मारे भ्रष्ट और नष्ट होजाती है, इसलिये ऋषिलोगोंने इस नरकका नाम अन्धतामिस्र रक्खा है ॥ ९ ॥ हे राजन्! जो मनुष्य इस संसारमें "यह शरीर मैं हूँ और यह धनादि हमारा है" इस प्रकारके अज्ञानमें मोहित होकर प्राणियोंके ऊपर विद्रोहाचरण करके प्रतिदिन केवल अपना शरीर और स्त्री पुत्रादि कुटुम्बका भरण पोषण करता है वह मनुष्य इस देह और कुटुम्बको त्याग करके इस पापके कारण रौरव नरकमें गिराया जाता है॥ १० ॥ हे महाराज ! इस नरकका रौरव नाम क्यों हुआ, सो इसका भी कारण कहते हैं तुम सुनो। इस संसारमें लोग जिस

यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुंबमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥ १० ॥ ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जंतवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसंति तस्माद् रौरवमित्याहुः रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥ ११ ॥ एवमेव महारौरवो यत्र

५८। निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयंति यः केवलं देहंभरः ॥ १२ ॥ यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरंधयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुंभीपाके तप्ततैल उपरंधयंति ॥ १३ ॥

जिस प्रकारसे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वह अपने किये हुए कर्मके दोषसे यमकी यातनाको प्राप्त होते हैं तब वहसब प्राणी रुरु होकर अर्थात् उनके किये हुए सब हिंसाकर्म रुरुरूप परिणामको प्राप्त होकर उसी भाँतिसे उनको मारते हैं, इसलिये ऋषिलोगोंने इस नरकको रौरव कहा है। हे राजन् ! जानते हो कि, रुरु किसे कहते हैं, सर्पसेभी अधिक खलस्वभाववाला एक जीव है उसका नाम रुरुहै ॥ ११ ॥ महारौरव नरक भी इसी प्रकारका है. इस संसारमें जो मनुष्य केवल अपनी देहका ही भरण पोषण करते हैं, वह लोग इस महारौरव नरकमें गिरते हैं, वहांपर क्रव्याद नामक रुरुगण मांस ग्रहण करनेके लिये उसको विविध प्रकारकी पीड़ा देकर विनष्ट करदेते हैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें अतिशय उग्र मूर्ति होकर अपने प्राणोंके पोषणार्थ पशु पक्षियोंको जीवित ही पाक करते हैं जो कि, यह कर्म अति निर्दयीका

है, इसलिये राक्षस लोग भी इस कार्यकी निन्दा करते हैं. जो ऐसा पाप करते हैं उनको पर लोकमें यमदूत लोग कुम्भीपाक नरकमें डालकर तत्ते तेलमें भूनते हैं ॥ १३ ॥ जो पुरुष ब्राह्मण, पिता और वेदसे विद्रोहाचरण करता है वह कालसूत्र नामक नरकमें गिराया जाताहै. इस नरककी परिधि दश हजार योजन है उसमें तांबेके समान गरम भूमि है। ब्रह्मद्रोही इस नरकमें पड़कर ऊपरसे सूर्यकी किरणोंको और नीचेसे अग्निके उत्तापको पाकर संतापित होते हैं, क्षुधा और प्यासके मारे उनकी देह भीतर और बाहरसे दग्ध होती है, वह इस प्रकारकी पीडासे पीडित होकर, कभी गिर पडता है, कभी बैठता है, कभी खड़ा होजाता है, कभी चारों ओर भागता फिरता है, पशुओंकी देहमें जितने रुवें हैं, उतने ही सहस्र वर्षतक इस पापीको यह पीड़ा भोगनी पड़ती है. यह बात ठीकही है, कि "अहिंसा परमो धर्मः" कहा भी है कि, दोहा—"दुर्बलको न सताइये, जाकी मोटी हाय। मुई खालकी श्वाससे, सार भस्म ह्वै जाय"॥ इस कारण पशुओंका वध न करना चाहिये ॥ १४॥

यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरकेऽयुत योजनपरिमंडले ताम्रमये तप्तखल उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानांतर्बहिश्शरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावंति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥ १४ ॥ यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखंडं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरंति ॥ तत्र हाऽसावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वांगो हा हतोऽस्मीति तया परमया वेदनया मूर्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखंडानुगतं फलं भुंक्ते ॥ १५ ॥

जो मनुष्य विना विपत्ति आये, इच्छानुसार वेदमार्ग छोड़ देते हैं, और पाखण्डधर्म ग्रहण कर लेते हैं, यमके दूत उनको असिपत्रवन नामक नरकमें लेजाकर कोडोंकी मार लगाते हैं। यह पापी वहांपर प्रहारकी वेदनासे इधर उधर भागता फिरता है, सो भागनेके कारण तालवन और असिपत्र जिनके दोनों ओर तलवारकी धारके समान अनी बनी हैं इनके लगनेसे उस पापीके अंग छिन्नभिन्न होजाते हैं तब वह पापी हाय! मैं मारा गया, हाय! मैं मारा गया, कहकर अतिशय यन्त्रणा पाय तीव्र व्यथाके मारे मूर्छित होजाकर पग पगपर गिर पडता है। हे राजन्! अपने धर्मका त्याग करनेवाला इस प्रकारसे अपने धर्मको त्याग पाखंडी मत ग्रहण करनेका फल भोगता है। कहा भी है कि "स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्मो

भयावहः" ॥ १५ ॥ जो राजा अथवा राजपुरुष (नगरपाल, कोटपाल, इत्यादि दण्ड देनेवाले) विना दण्डके योग्य पुरुषको दण्ड देते हैं, व ब्राह्मणजातिको प्राणान्तक दण्ड देते हैं वह राजा और राजपुरुषादि अतिशय पापी होते हैं, वह लोग इस पापके करनेसे परलोकके मध्य शूकरमुखनामक नरकमें गिरते हैं,किसान लोग जिस प्रकार गन्नेको कोल्हूमें पेरते हैं,वैसे ही इस नरकमें अतिशय बलवान् यमकिंकरगण राजा अथवा राजपुरुषके अंगोंको इसी प्रकारसे पिच्ची करते हैं जिससे यह पापी चिल्ला चिल्लाकर आर्तनाद करते हैं,जिस प्रकार राजा अथवा राजपुरुष निर्दोषी पुरुषको दण्ड देते हैं और उस समय मोहको प्राप्त होकर मूर्छित होजाते हैं, वैसे ही नरकमें राजा और राजपुरुष मोहित और मूर्छित होजाते हैं ॥ १६ ॥ परमेश्वरने जिसका ब्राह्मणादि स्वभाव देखकर विधिनिषेधकी व्यवस्था कर दी है और परमेश्वरके दियेहुए विवेकके बलसे औरकी पीड़ा जाननेको जिनकी सामर्थ्य है, वह मनुष्य यदि उन प्राणियोंकी कि, जिनकी वृत्ति मनुष्यरक्त पीनेकी ईश्वरने बनाई है; उन खटमल आदि जीवोंको पीड़ा दे या मार डाले, तो इस पापके करनेसे परलोकके मध्य वह अंधकूपमें डाला जाता है । यह सब प्राणी अर्थात् पशु,पक्षी,मृग सरीसृप,मच्छर,जूं, खटमल और मक्खी आदि जिस किसी जीवको जो कोई प्राणी मारता है,वह जीव सब चारोंओरसे इस नरकमें उस पापीको मारते हैं,और अंधकारके मारे उस प्राणीको नींद नहीं आती, जीव जिस प्रकार पीडित शरीरमें रहकर अनेक दुःख भोगता है, वैसे ही यह मनुष्य अंधकारमें पडा तडफता रहता है और कहीं बैठनेका स्थान नहीं पाता,कीडे दिन रात काटते रहते हैं॥ १७ ॥

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदंड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदंडं स पापीयान् नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्त्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥ १६ ॥ यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रांधकूपे तदभिद्रोहेण निपतति॥ तत्र हाऽसौ तैर्जंतुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये केचाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य किसी प्रकारकी भोजन करने योग्य उत्तम वस्तु उपस्थित होनेपर किसीको न देकर अकेला आप खाजाता है और जो मनुष्य पंचयज्ञका अनुष्ठान करनेसे विमुख होता है। ऋषि लोग उसको कौवेके समान कहकर वर्णन करते हैं, वह मनुष्य कृमि भोजन नामक नरकमें पड़ता है, इस नरकमें एक लाख योजन विस्तारवाला कृमिकुण्ड है,यह मनुष्य उसी कुण्डमें पडकर स्वयं कृमि बन,इन कृमियोंको भक्षण करता है, इस प्रकारसे जबतक उनके काटने और पंचयज्ञ न करनेके प्रायश्चित्त न करनेवाले पापीका पाप क्षय नहीं होता, तबतक उसकी आत्माको वहाँ कष्ट होता रहता है ॥१८॥ जो मनुष्य चोरीसे अथवा बलसे ब्राह्मणका सुवर्ण या रत्नादि हरण कर लेते हैं अथवा

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनिर्मितपंचयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुंडे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥ १८॥ यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद् वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरति अन्यस्य वाऽनापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिंडैः संदंशैस्त्वचि निष्कुषंति ॥ १९ ॥यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तामुत्र कशया ताडयंतस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिंगयंति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या॥२०॥यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकंटकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षति॥२१॥

विना आपदा आये, किसी पुरुषकी वस्तु चुरा लेते हैं तो यमकिंकर उनका शरीर लोहके बने हुए तपाये चीमटोंसे तोडते हैं और सन्दंश नामक नरकमें डाल देते हैं,॥१९॥हे राजन्! इस लोकमें जो पुरुष अगम्या स्त्रीसे गमन करता है वा स्त्री अगम्य पुरुषको भजती है,यमके दूत इन दोनों जनोंको निर्दयी हो बराबर कोडोंकी मार दिया करते हैं और पुरुष लोहेकी बनी तपाई हुई स्त्रीकी मूर्तिसे और स्त्रीको लोहेकी बनी हुई तपाई पुरुषकी मूर्तिसे लिपटाते हैं॥ २० ॥ जो मनुष्य इस लोकमें पशु आदिकोंके संग मैथुन करता है,यमदूत उसको नरकमें डालकर वज्रकण्टकयुक्त

शाल्मलीवृक्षके ऊपर चढा छिन्न भिन्न कर डालते हैं॥२१॥ इस पृथ्वीमें जो राजालोग अथवा राजपुरुष अच्छेकुलमें उत्पन्न हो धर्मकी मर्यादाको तोड देते हैं, वह सब वैतरणीमें गिराये जाते हैं,वह वैतरणी सब नरकोंकी खाई स्वरूप है,वहाँ जलजन्तुगण इधर उधरसे इन पापियोंको भक्षण करते हैं,जिससे कि,उनकी आत्मा वियुक्त होकर प्राण निकल जाते हैं.वह पापी लोग अपने अपने अधर्मके कियेहुए कर्मोंको स्मरण कर करके विष्ठा, मूत्र, पूय, रुधिर, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस, वसा बहनेवाली उस नदीमें गिर कर सब प्रकारसे संतापित हुआ करते हैं॥२२॥जो मनुष्य

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखंडा धर्मसेतून् भिंदंति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतंति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्म पाकमनुस्मरंत उपतप्यंतो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यंते॥२२॥ये त्विह वै वृषली पतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरंति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलाऽऽपूर्णार्णवे निपतंति तदेवातिबीभत्सितमश्नंति॥ २३ ॥ ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थ च मृगा न्निघ्नंति तानपि संपरेताँल्लक्ष्यभूतान् यमपुरुषा इषुभिर्विध्यंति॥ २४ ॥

इस लोकमें शूद्रोंके पति होकर अपने अपने शौच, आचार और नियमोंको नाश कर देते हैं और निर्लज्ज होकर पशुकी समान इच्छाचारी होकर फिरते हैं वह परलोकमें पूय, विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मा और लारसे पूर्ण हुए एक समुद्रमें गिर पडते हैं और अतिघृणित इन सब वस्तुओंको भक्षण करते हैं२३॥ हे राजन्! इस संसारमें जो ब्राह्मणादि वर्ण कुत्ते और गधोंको पालकर उनके स्वामी बनते और शिकारद्वारा विहार करते हुए, शास्त्रके विना बताये समयमें मृगोंका वध करते हैं,जब ऐसे जनोंकी मृत्यु होती है,तब यमदूत लोग उनको लक्ष्य बनाबना कर बाणोंसेवेधा करते हैं❋॥२४॥

❋ शंका–हम सबने ऐसा कभी नहीं सुना कि:–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, श्वान, गर्दभ आदि लेकर और जो पशु हैं उनके पति होते हैं, शुकदेवजीने ऐसे बचन क्यों कहे ?

उत्तर–श्वानोंका पति होना तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके लिये प्रगट ही है, क्योंके उस श्वानको तीन वर्ण पालते हैं, और गर्दभका पति होना तीनों वर्णोंको नहीं चाहिये, किसी देशमें बकरेको भी गर्दभ कहते हैं और बकरेका पालना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका चारों युग चला आया है; कोई यज्ञके लिये कोई जीवकी दया मानके इन आदि कारणोंसे बकरेको पालते थे, इसलिये व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने तीनों वर्णोंको गर्दभका पति कहा. क्योंकि तीनवर्णोंको, कुत्ता, बकरा पालना धर्मशास्त्रमें अत्यन्त बुरा लिखा है, परन्तु जो प्राणी प्रमादमें उनका पालन करते हैं वे अत्यन्त दुःख भोगते हैं ॥

जो मनुष्य इस लोकमें दंभयुक्त होकर दंभके अर्थ कियेहुए यज्ञोंमें पशुगणोंको मारते हैं, वह परलोकके मध्य, वैशसन नामक नरकमें पड़ते हैं, यमदूत इस नरकमें ऐसे पापियोंको विविधभाँतिकी पीडा देकर उनके अंगोंको छिन्न भिन्न किया करते हैं ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण,- क्षत्रिय और वैश्य, इस लोकमें कामके वशीभूत होकर अपनेसे ब्याही स्वजातिकी स्त्रीके मुखमें वीर्य छोड़ता है तो मरे पीछे यमदूतलोग उस पापात्माको वीर्यकी नदीमें गिराकर वीर्य्य ही पिलाते हैं ॥ २६ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें चोरवृत्ति अवलम्बन करते हैं, अथवा गृहोंमें अग्नि लगाते हैं, अथवा प्राणनाश करनेके लिये विष पिलाते हैं और जो राजा अथवा राजसेना ग्राम व मेलेको लूट लेते हैं,ऐसे

ये त्विह वै दांभिका दंभयज्ञेषु पशून् विशसंति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान् निरयपतयो पातयित्वा विशसंति॥२५॥यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतःपाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतःकुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययंति॥२६॥ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुंपंति राजानो राजभटास्तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादंति॥ २७॥ यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित् स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधश्शिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रयाद् गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणःपुनरारोपितो निपतति॥२८॥

मनुष्योंके मरनेके पीछे सातसौ बीस (७२०) संख्यावाले यमदूत श्वानका रूप धरकर अपनी वज्रतुल्य डाढोंसे उनको फाड़ फाडकर हड्डियों समेत चबा जाते हैं ॥२७॥ जो मनुष्य इस लोकमें गवाही देनेके समय, अथवा लेने देनेके समय,वा दान देनेके समय किसी प्रकारसे मिथ्या बोलते हैं तो उन्हें यमके किंकर नीचेको शिर करके सौ योजन ऊँचे पर्वतके शिखरसे अवीचि नाम नरकमें डालेते हैं । हे राजन् ! अवीचि नाम नरकका बृत्तांत कहते हैं सो तुम सुनो कि जहाँपर पाषाणकी पृथ्वी भी जलके समान जान पड़ती है, इसलिये उस नरकका नाम अवीचि नियत किया है, यमदूत उन पापियोंको उस नरकमें डालते हैं तो उनके शरीरकी किरच किरच हो जाती हैं, तो भी

उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते और फिर उस पापीको पर्वतके ऊपर लेजाते हैं और वहांसे इसको इस नरकमें डालदेते हैं, इसी प्रकारसे अनेक भाँतिकी पीडा देते हैं ॥२८॥ हे राजन् ! इस लोकमें जो ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय सुरापान करे, वा और कोई मनुष्य जो कि नियमसे रहता हो और क्षत्रिय अथवा वैश्य यज्ञार्थ सोमपान करके फिर अज्ञानतासे मद्यको पीता है, यज्ञके देवता लोग ऐसे पापियोंको नरकमें ले जाते हैं और उनकी छातीपर लात मारते हैं और अग्निके संयोगसे पिघलाया हुआ कृष्णवर्णका लोहा उनके मुखमें पिलाकर सब शरीरमें छिडकते हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस लोकमें अधम पुरुष जो अपनेको बडा कहकर अहंकार करते हैं,तपस्या,विद्या,सदाचार,वर्ण और आश्रम

यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयं नीताना मुरसि पदाऽऽक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिंचंति ॥ २९ ॥ अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरंता यातना ह्यश्नुते ॥३०॥ ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजंते याश्च स्त्रियो नृपशून्खादंति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयंतो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबंति नृत्यंति च गायंति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषाः ॥ ३१ ॥ ९५१

आदि द्वारा श्रेष्ठपुरुषोंका आदर सन्मान नहीं करता, वह जीवित ही मृततुल्य रहता है और मरनेके पीछे परलोकमें वह “क्षारकर्दम” नामक नरकमें नीचेको शिर करके गिरता है और अशेष यातना पाता है ॥ ३० ॥ जो पुरुष इस लोकमें और दूसरे पुरुषको मार करके उसको भरवादि देवताके यज्ञमें होम देते हैं और जो स्त्री पुरुष उस बलि दिये मनुष्यके वा पशुके मांसको खाते हैं वह निहत मनुष्य और पशु परकालमें तमोरूप राक्षस हो जाते हैं, और जिस प्रकार इन सब मनुष्योंने पहले इनको भक्षण करके नृत्य किया था, वैसे ही यह यमसदनमें उन समस्त पुरुष स्त्रियोंको कसाइयोंकी समान इनका शरीर अस्त्रोंसे छिन्न भिन्न करते हैं और हर्षसहित उनका शोणित पान कर करके नृत्य

करते रहते हैं ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें विना अपराध प्राणियोंको ग्राममें अथवा वनमें विश्वासके उपायोंसे विश्वास दिलाकर शूल वा
डोरी आदिसे बाँधतें हैं, और जीवनकी रक्षा चाहनेवाले इन सब प्राणियोंको खिलौनेके समान समझकर उनके साथ निर्दयीपनेके खेल करके
अनेक प्रकारकी यातना उनको देते उनको मरनेके पीछे परलोकमें शूलादि यमयातनासे छिन्न भिन्न देह और क्षुधा तृषासे मरना पडता है
और कौए, बटेर इत्यादि भयंकर चोंचधारी पक्षिगण उसको इधर उधरसे आहत करते हैं, तब वह पापी जीव विषादित और आर्त होकर
अपने किये हुये पापोंको स्मरण करते हुए उसके लिये पछताते हैं ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य राक्षसोंके तुल्य उग्र स्वभाव हो इस लोकमें प्राणियोंको

ये त्विह वा अनागसोऽरण्य ग्रामे वा वैश्रंभिकैरुपसृतानुपविश्रंभय्य जिजीविषूञ्छूलसूत्रादिषूपप्रोतान्क्रीडनकतया
यातयति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां वाऽभिहताः कंकवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्म
तंडैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरंति ॥३२॥ ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयंति नरा उल्बणस्वभावा यथा दंदशूकास्तेऽपि
प्रेत्य नरके दंदशूकाख्ये निपतंति यत्र नृप दंदशूकाः पंचमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसंति यथा बिलेशयान् ॥ ३३ ॥
ये त्विह वा अंधावटकुशूलगुहादिषु भूतानि निरुंधंति तथामुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुंधंति ॥ ३४ ॥
यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य वाऽपि निरये
पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुंडा गृध्राः कंककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयंति ॥ ३५ ॥

व्याकुल करते हैं, वह परकालमें दन्दशूकनामक नरकमें गिरते हैं. हे राजन् ! वहाँ पञ्चमुख और सप्तमुखवाले राक्षस उनकी चूहेके समान धारण
करके निगल जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें अन्धकारमय गढे, कोठे और गुहादिकोंमें प्राणियोंको बन्द करके यातना देते हैं, वह
लोग परलोकमें इन ऊपर कहेहुए सब स्थानोंमें आप ही बन्द होजाते हैं और विषसहित अग्नि और धुवेंसे महापीडाको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥
जो मनुष्य इस लोकमें गृहस्वामी हो अतिथि और अभ्यागतको देखकर क्रोध करता है और रोषके वश हो, मानो टेढ़ी आँखसे उनको दग्ध

करता हुआ देखता है, वह मनुष्य परलोकके विषे नरकमें गिरता है और इस पापदृष्टिवाले मनुष्यकी दोनों आँखें वज्रतुल्य चोंचवाले कंक, बटेर, गीध इत्यादि पक्षिगण बलसे निकाल लेते हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें धनके गर्वसे "हम श्रेष्ठ हैं" इस प्रकारका अभिमान कर टेढ़ी दृष्टि करता है, और सबके ही प्रति यह शंका करनेवाला कि यह धन हर लेगा, धनको व्यय होनेके कारण नाश होनेकी चिन्तासे जिसका वदन सदा शुष्क रहता है इसलिये वह किसी प्रकारसे सावधान नहीं रह सकता है, बरन् वह पहरेदारके समान धनकी केवल रक्षा किया करता है, जो मनुष्य इस प्रकारसे धनके इकट्ठा करनेमें, बढानेमें और केवल उसकी रक्षा करनेमें ही अपने मनको लगाता है, सो ऐसा करनेसे वह

यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशंकी अर्थव्ययनाशचिंतया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृत्तिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽगेषु सूत्रैः परियंति ॥३६॥ एवंविधा नरका यमालये संति शतशः सहस्रशः ॥ तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशंति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र ॥ इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशंति॥३७॥ निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः ॥ एतावानेवांडकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद् भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥

पापी होकर परकालमें सूचीमुख नरकमें गिरता है, वहाँ उस धनके लालची पापी पुरुषको यमके दूत दरजियोंके समान सब भांतिसे सर्वांगको विद्ध करके डोरीमें पोहते हैं ॥ ३६ ॥ हे पृथ्वीपते ! यमालयमें इस प्रकारके सहस्रों नरक हैं, यहांपर जिन जिन पापियोंका वृत्तान्त कहा, वह सब ही इन सब नरकोंमें प्रवेश करते हैं; हे भूपाल ! जिस प्रकार पापकारी लोग इन ऊपर कहे हुये नरकोंमें गमन करते हैं, वैसे ही धर्मके आचरण करनेवाले अपने अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होते हैं, परंतु जिन सब पुरुषोंके भोग धर्मका अन्त होता है; वह लोग फिर जन्म ग्रहण करनेके लिये मृत्युलोकमें आकर प्रवेश करते हैं॥३७॥ हे राजन् ! निवृत्ति स्वरूप जो धर्मका मार्ग है वह पहले ही

"दूसरे स्कन्धमें" मैंने आपको सुना दिया है और सब पुराणोंने जो इस भुवनकोषको चौदह प्रकारसे कल्पना किया है वह सब इस प्रकारसे है कि, जैसे हम वर्णन कर आये हैं, यही महापुरुष भगवान् वासुदेवकी मायाके गुणोंका स्थूलरूप है, इसका विवरण जो पुरुष आदरसहित पढता और श्रवण करता है, श्रद्धा और भक्तिसे उसकी बुद्धि विशुद्ध होजाती है और वह भगवान् परमात्माके गूढ उपनिषद सम्बन्धीय विषय जान सकता है ॥ ३८ ॥ इसलिये यति लोग भी भगवान्के स्थूल सूक्ष्म रूप यथावत् श्रवण करके स्थूल विषयोंकी चिन्ता करते हुए आत्माको जीत करके

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ॥ स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥ ३९ ॥ भूद्वीप वर्षसरिदद्रिनभस्समुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ॥ गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥२६॥

॥ समाप्तोऽयं पञ्चमस्कन्धः ॥

फिर बुद्धिद्वारा क्रमक्रमसे सूक्ष्म विषयमें भी स्थापन कर लेते हैं ॥ ३९ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! पृथ्वीके मध्यमें द्वीप, वर्ष, पर्वत, नदी, समुद्र, आकाश, दिक्, नक्षत्र, पाताल, नरक इत्यादिकी लोकरचना जिस प्रकारसे हुई है, सो तुमसे सब ही हमने वर्णन की, यह समस्त लोकरचना भगवान् ईश्वरका वह स्थूलशरीर है जो सब जीवसमूहोंका आश्रय है। इस बात पर एक कबित्त है ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टाविंशतिनरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

१ **कबित्त**–भक्तजन निज निज भावनाके अनुसार सभी न्यारे न्यारे रूप रामको सँभारै हैं मुनिजन सचित आनंदरूप रामहीको प्रगट प्रलय चिन्त्य हृदैमें बिचारै हैं ॥ योगीजन प्राणनको स्थिर कर कपालमों रामको प्रकाशरूप त्रिकुटीमें धारै हैं ॥ ज्ञानी जन रामहीको रूप लखैं सर्वै ठोर नाना नाम रूपनकी कल्पना बिडारै हैं ॥ १ ॥ कोटि कोटि जतननते छूटै नाहिं जन्म मृत्यु एक रामनाम रट्यो बन्धन बिडारै हैं । कोटि कोटि मंत्रनसे अन्तस न शुद्ध होत रामहीको नाम एक कलिमल जारै है ॥ कोटिकोटि वस्तु पाय तृष्णा नाहिं दूर होत एक रामनाम सब तृष्णाको दिवारै है ॥ कोटि कोटि देवनके ध्याये नाहिं राम मिलैं रामहीके ध्याये मिलैं रामको निहारै है ॥ २ ॥

956

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन मुम्बय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्)
मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शक १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते पञ्चमस्कन्धसमाप्तिः ॥

श्री १०८ ईश्वर मठ पुस्तकालय, मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी

157

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते षष्ठस्कन्धप्रारम्भः ॥

श्री १०८ ईश्वर मठ पुस्तकालय, मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी

षष्ठस्कंधः

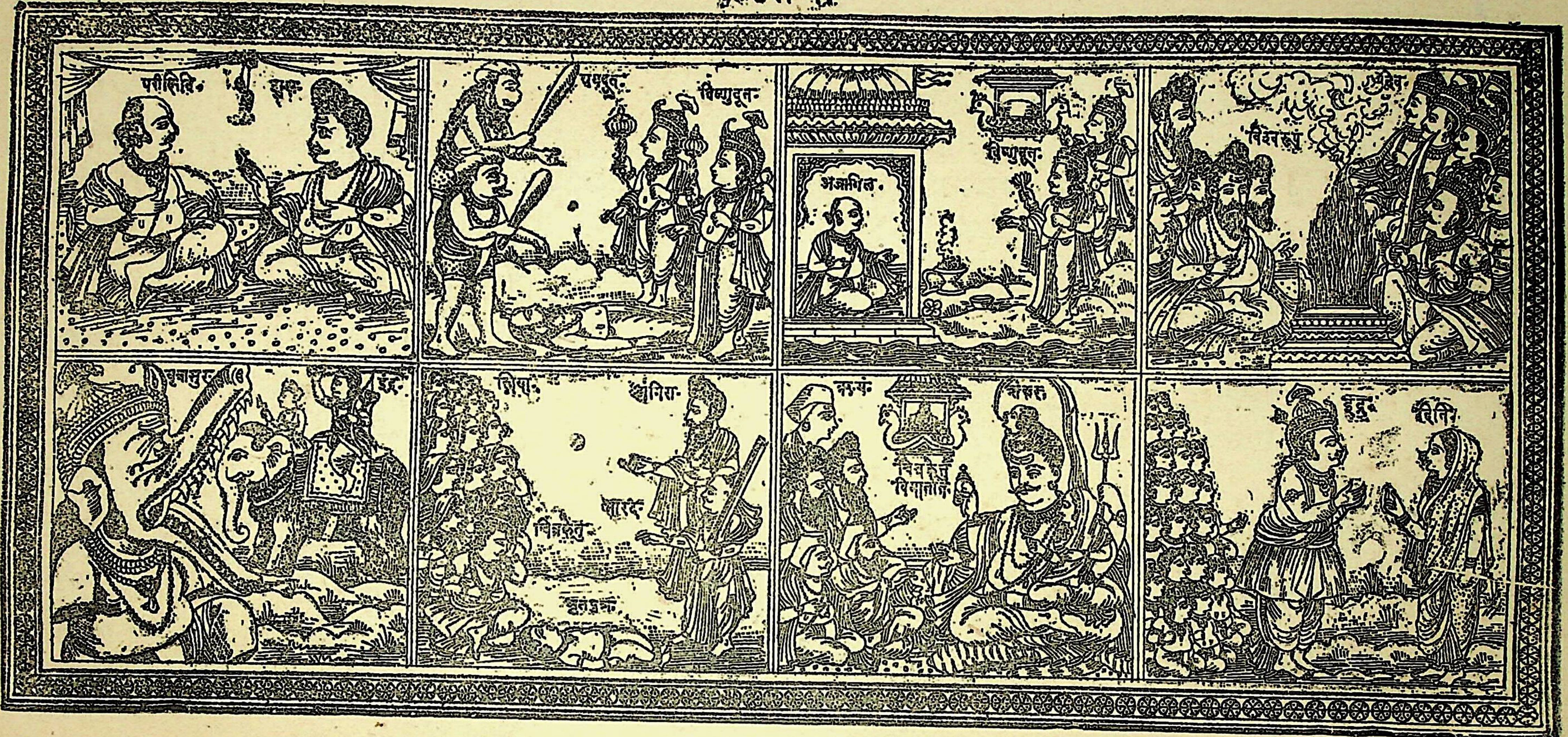
परीक्षित्
शुक
यमदूत
विष्णुदूत
अजामिल
विष्णुदूत
विश्वरूप
देव
वृत्रासुर
इन्द्र
स्त्रियः
अंगिरा
नारद
चित्रकेतु
मृतपुत्र
ऋषयः
चित्रकेतु
विमानोपरि
शंकर
इन्द्र
दिति

दोहा–विघ्न-हरण मंगलकरण, सोहत हाथ त्रिशूल। विद्यावरदायक सदा, [1]सिद्धिसदन सुख-मूल ॥ १ ॥ कृष्णचरण कोमल अमल, सकल सिद्धि-दातार। तिनकी रज अज शीशधर, रचत भुवन दश चार ॥ २ ॥ पहिलेमें हरि-भृतनने, पापी लीन छुडाय। यमदूतन यमराजसे, कही कथा सब जाय॥ ३॥ राजा परीक्षित् योगीवर श्रीशुकदेवजीसे विनय सहित वाणीसे पूँछने लगे कि, हे भगवन्! आप प्रथम (द्वितीय स्कन्धमें) निवृत्तिमार्ग यथावत् कह आये हैं, जिसमें क्रमसे अर्चिरादि लोककी प्राप्ति होकर फिर उससे ब्रह्माके लोककी प्राप्ति होती है और उसीसे ब्रह्माजीके संग मोक्ष हो जाता है॥ १॥ हे मुने! दूसरा प्रवृत्तिरूप जो मार्ग है, स्वर्गादिसुख ही जिसका साधन है और प्रकृतिके लय न होनेसे जो पुरुषक

958

श्रीगणेशाय नमः॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥ राजोवाच॥ निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा॥ क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥१॥ प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ॥ योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥ अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः॥ मन्वंतरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥ ३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ॥ द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४ ॥ धरामंडलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ॥ ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः॥ ५ ॥

बारंबार भोगार्थ देहारंभ स्वरूप है, वह भी आप पीछे (तीसरे स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं ॥२॥ और अधर्मस्वरूप जो अनेक प्रकारके नरक हैं उनका भी वर्णन आप कर ही चुके हैं और मन्वन्तरकी व्याख्या आपने कही ही है, जिसमें स्वायम्भुव मनु प्रथम हुए ॥ ३ ॥ इसके पीछे आपने प्रियव्रत और उत्तानपाद राजाका वंश और उनका चरित्र भी वर्णन किया और द्वीप, खण्ड, समुद्र, नदी, पहाड़, उद्यान, वृक्षादिकी भी स्थिति आपने कही ॥४॥ पृथ्वीमण्डलकी स्थिति, भाग, लक्षण, प्रमाण, ज्योतिषचक्र और भूमिके विवर जिस प्रकार ईश्वरने रचे, उनकी

---

[1] कवित्त–लसत अमंद मंद हँसत मुखारविन्द, सोहै पट पीत और उर वनमाल है। बायें हाथ बाँसुरिया दायेंमें लकुट लिये, पाँयनमें घुँघुरू और अलबेली चाल है ॥ अलकैं अमोल लोल कुण्डल कपोल गोल, मौरि मोर पंखनको शीशपै विशाल है। कोटि मनमथनके मनको मथनहारो, व्रज उतपन्न भयो नंदजीको लाल है ॥ १ ॥

आपने व्याख्या की ॥५॥ हे महाभाग ! अब वह मनुष्यगण जिस उपायसे घोर, कठोर विविधभाँतिकी पीडाओंके आधार नरकोंको प्राप्त न होसके सो इस समय अनुग्रह करके वही कथा आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जो पुरुष शरीर अथवा मन वचनसे कोई पाप करके,लोकमें उनका प्रायश्चित्त मनु आदि ऋषीश्वरोंके कहे अनुसार नहीं करते हैं, तो जिन नरकोंके नाम प्रथम कहे गये हैं और जिनमें घोर पीडा विद्यमान रहती है मरनेके पीछे वह पुरुष निःसंदेह उन नरकोंमें पडते हैं॥ ७॥इसलिये मरनेसे पहलेही जीतेपर जितनी विपत्तियोंसे बचा जाय तबतक मनको नियमित रखकर पापोंसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करनेको यत्न करना उचित है, नहीं तो अधिक समय बीत जानेसे दुगुना प्रायश्चित्त करना होगा । जैसे सब रोगोंके निदानका जाननेवाला वैद्य जिस प्रकार रोगका भारी और हलकापन विचार कर बात, पित्त, कफकी न्यूनाधिकता देखकर चिकित्सा करता है, वैसे ही छोटा बडा पाप विचारकर उसके समान ही प्रायश्चित्त करना ठीक है ॥ ८ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! पाप करनेसे राजा दंड देता है, यह तो प्रत्यक्ष ही है, इसके अतिरिक्त पाप करनेवाले नरकमें गिरते हैं यह शास्त्रोंमें सुना ही है, इससे जाना गया कि, स्पष्ट ही पाप अपना अहितकारी है, परंतु ऐसा जान बूझकर प्रायश्चित्त करनेके पीछे पुरुष विवश होकर फिर पाप करते हैं, इसलिये द्वादश वार्षिक व्रतादिकोंको किस प्रकार प्रायश्चित्त कहकर गिन सकैं, क्योंकि इनसे मूलसहित दोषकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ९ ॥ दूसरे कभी प्रायश्चित्त करके पापसे निवृत्ति पाता है, कभी फिर वैसा ही पाप करता है इसलिये यदि एकबारही पाप जडमूलसे न उखड गया तब तो अवश्य ही नरकमें गिरना होगा, जब यह प्रमाण पाया गया

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ॥ नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ न चेदिहैवापचितिं यथांहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः॥ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये:कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥७॥तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यतात्मना ॥ दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ॥ करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥ ९ ॥ क्वचिन्निवर्तते भद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः ॥ प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुंजरशौचवत् ॥१०॥

तब फिर प्रायश्चित्त करनेका प्रयोजन ही क्या है ? हम समझते हैं कि, ऐसा पाप हाथीके नहानेके समान व्यर्थ है. क्योंकि हाथी स्नान करनेके उपरान्त फिर अपने देहको धूरिसे जैसे मलिन कर लेता है, वैसे ही मनुष्य प्रायश्चित्त करके यदि फिर पाप करे तौ फिर भी उसको नरकमें पड़ना ही होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कर्मसे कर्मका विनाश नहीं होता और चान्द्रायणादि जो प्रायश्चित्त उनसे इस प्रकारकी वाञ्छा नहीं की जासकती कि,इनसे एकबारही पापका मूलसहित नाश होजायगा। क्योंकि, इन सब प्रायश्चितोंके अधिकारी अविद्वान् लोग हैं, उनकी अविद्याका नाश होनेपर प्रायश्चित्तसे एक बार पापका क्षय होनेपर भी संसारके वश फिर वह लोग दूसरे पाप करने लगते हैं. हे राजन् ! यदि तुम पूछो कि, मुख्य प्रायश्चित्त क्या है ? तो इसका उत्तर यह है कि, ज्ञान ही मुख्य प्रायश्चित्त है ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यंतिक इष्यते ॥ अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ ११ ॥ नाऽश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवंति हि ॥ एवं नियमकृद्राजञ्छनैः क्षेमाय कल्पते ॥ १२ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ॥ त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥ १३ ॥ देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धया न्विताः॥ क्षिपंत्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥ १४ ॥ केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ॥ अघं धुन्वंति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥ १५ ॥

९८९

॥ ११ ॥ परन्तु नित्य सावधान होकर यत्न करनेसे क्रमक्रमसे यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, यह नहीं कि एकबारही प्राप्त होजाय। जैसे कोई नित्य ही केवल पथ्यसे ही अन्न करै तो धीरे धीरे उसको सतानेके लिये सब व्याधि असमर्थ होजायँगी ऐसे ही नियम करनेवाला पुरुष भी क्रम२ से ब्रह्मज्ञानके जाननेको समर्थ होजाता है ॥ १२ ॥ इस कारण धर्मज्ञ धीर पुरुष श्रद्धायुक्त होकर तप (मन और सब इन्द्रियोंकी एकाग्रता), ब्रह्मचर्य, शम (मनको रोकना), दम (बाहरी इन्द्रियोंको रोकना), दान, सत्य, शौच, यम (अहिंसा आदि) अथवा नियम) जपादि) से मन, वचन, कायके किये हुए बडे बडे पापोंका भी सम्पूर्ण नाश कर देते हैं जैसे अग्नि बाँसोंके वनको जला डालता है ॥ १३ ॥ १४ ॥ इस लिये ऐसा ही प्रायश्चित्त मुख्य है, परंतु इसके अतिरिक्त और भी प्रायश्चित्त हैं अर्थात वासुदेव

परायण कोई कोई जन केवल भक्तिहीसे अपने समस्त पापोंको उखाड कर फेंक देते हैं,जैसे सूर्य भगवान्‌की किरणोंसे कुहरके अन्धकारका नाश
हो जाता है॥१५॥हे कौरवराज ! यह भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसे भी अधिक श्रेष्ठ है । क्योंकि, पापी पुरुष भगवांन्‌में मन समर्पण करके भगवद्भक्त
पुरुषोंकी सेवामें मन लगानेसे जिस प्रकार पवित्र हो सकता है, वह तपस्यादिक करनेसे ऐसा पवित्र कभी नहीं हो सकता॥ १६ ॥इस लिये इस
लोकमें भक्तिमार्ग ही सबसे उत्तम मार्ग है और परमकल्याणदायक है,इस मार्गमें किसी प्रकारके विघ्नादिकीभी सम्भावना नहीं है. सुशील,
दयालु, निष्काम और नारायणपरायण साधु लोग इस मार्गमें नित्य वर्तमान हैं; इसी कारण ज्ञानमार्गके समान दूसरा मार्ग नहीं, क्योंकि
इस मार्गमें किसी प्रकारका भय और खटका नहीं ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! एक भक्ति ही निरपेक्ष होकर पवित्र करनेको समर्थ है. कृच्छ्रादि

न तथा ह्यघवान्राजन्पूयेत तपआदिभिः ॥ यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥ १६ ॥ सध्रीचीनो ह्ययं
लोके पंथाः क्षेमोऽकुतोभयः ॥ सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥ १७ ॥ प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायण
पराङ्मुखम् ॥ न निष्पुनंति राजेंद्र सुराकुंभमिवापगाः ॥ १८ ॥ सकृन्मनः कृष्णपदारविंदयोर्निवेशितं तद्गुणरागि
यैरिह ॥ न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्स्वप्नेऽपि पश्यंति हि चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥ अत्र चोदाहरंतीममितिहासं
पुरातनम्॥ दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥ २० ॥

प्रायश्चित्त भक्तिके विना स्वयं पवित्र नहीं कर सकते । जिस प्रकार नदियां मदिराके घटोंको पवित्र नहीं कर सकतीं वैसे ही बडा भारी प्रायश्चित्त
किये जाने पर भी नारायणसे विमुख हुए पुरुषको कोई प्रायश्चित्त शुद्ध नहीं कर सकता॥१८॥ भक्ति चाहै बहुत थोडी भी हो, परंतु पवित्र करनेको
वह भी भलीभाँति समर्थ है । इसका प्रमाण देखो, जो पुरुष भगवान्‌के पादारविन्दोंमें एक बार किंचिन्मात्र भी अपना मन लगा देते हैं, इस
एक बारके मन लगानेसे उनका मन भगवान्‌में केवल अनुरागी होजाता है । कुछ ज्ञानयुक्त नहीं होता, तथापि यम अथवा फांसी हाथमें
लिये हुये यमदूत स्वप्नमें भी उस पुरुषको नहीं दिखाई देते । क्योंकि, भगवान्‌में केवल एकबारही मन लगानेसे उसकरके सब प्रायश्चित्त
आप ही होजाते हैं ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इस विषयमें अनेक लोग एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । विष्णुदूत अरु यमदूतोंके

संवादोंमें यह इतिहास बनाया गया है, सो हम उसको कहते हैं,तुम श्रवण करो ॥ २० ॥ हे राजन् ! कान्यकुब्ज देशमें: अजामिल नामक एक ब्राह्मण दासीका पति हुआ था, सर्वदा दासीकी संगतिसे दूषित होनेके कारण उसके सब सदाचार विनाश होगये थे ॥ २१ ॥ वह ब्राह्मण बन्धुओंके पकडने, जुआ खेलने, दांव लगानें, ठगाई और चोरी इत्यादि निंदनीय जीविका किया करता और उससे ही अपने कुटुम्बका पालन पोषण करता,इस कारण उस अजामिलसे सदा ही मनुष्योंको क्लेश पहुँचा करता था ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार निन्दित कर्मोंसे स्त्रीपुत्रादिकका भरण पोषण करता रहता, कालक्रमसे उस ब्राह्मणका परमायुसम्बंधी बड़ा भाग निकल गया अर्थात् उसकी अवस्था अट्ठासी वर्षकी होगई ॥ २३ ॥ इसलिये उसकी वृद्धावस्थातक उसके दश पुत्र उत्पन्न हुए,उन पुत्रोंमें सबसे छोटेका नाम नारायण था,सबसे छोटा बालक होनेके [illegible] वह पुत्र पिता माताका अतिप्यारा हुआ ॥ २४॥ वह जराअवस्थाको प्राप्त हुआ. अजामिल मधुर बोलनेवाले उस बालकमें ही प्रेम लगाकर सदा उसका खेल और कौतुक देखकर आनन्द पाता था ॥ २५ ॥ स्नेहके वश होकर भोजनके समय अथवा जल पीनेके समय उस बालकको संग लेकर भोजन पान करता और अनेक २ प्रकारके लाड़ लडाता. इस प्रकारसे सदा छोटे पुत्रमें ही मन लगा रहनेसे कालके वश हो काल जो अपने निकट आता जाता था,उसको वह अजामिल नहीं जान सका॥ २६ ॥ हे राजन् ! अज्ञानी अजामिल जीतेहुए इस प्रकारकी दशामें वर्त्तमान था. जब उसका मृत्युसमय उपस्थित हुआ तब भी उसने नारायणनामक अपने छोटे पुत्रहीमें

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ॥ नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥ २१ ॥ बंद्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः ॥ बिभ्रत्कुटुंबमशुचिर्यातयामास देहिनः॥२२॥एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ॥ कालोऽत्यगान्महान्राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥ २३ ॥ तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ॥ बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥ २४ ॥ स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ॥ निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥ २५ ॥ भुंजानः प्रपिबन्खादन्बालकस्नेहयंत्रितः ॥ भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमंतकम् ॥ २६ ॥ स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ॥ मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥ २७ ॥

मन लगाया और नारायण ही नारायण वारंवार मुखसे कहता ॥ २७ ॥ मृत्युके समय अजामिलने देखा कि, अतिशय भयानकरूप, महा भयंकर वदन, रोम जिनके उठेहुए ऐसे तीन यमदूत भूतके समान फांसी हाथमें लियेहुए सामनेसे आ रहे हैं. उनकी इच्छा यही थी कि, अजामिलको यमपुर ले जायँ ॥ २८ ॥ ऐसे यमदूतोंको देखकर अजामिल अतिशय व्याकुल हुआ और कुछ दूर अपना नारायण नामक जो परम प्यारा दुलारा अपने खिलौनेको लियेहुए खेल रहा था, उसको झीनी वाणीसे पुकारने लगा कि, हे नारायण ! हे नारायण ! ! इन यमदूतोंसे मुझे बचा ॥ २९ ॥ हे महाराज ! यह आश्चर्यका वृत्तान्त सुनो ! मृत्युके समय अजामिलके मुखसे नारायणनामका कीर्तन सुनते ही भगवान् विष्णुके पार्षद तुरन्त उसके निकट आकर उपस्थित हुए. विष्णुदूतोंके अचानक आनेका कारण यह हुआ कि, उन्होंने बिचारा कि, यह पुरुष अंत

स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान्भृशदारुणान् ॥ वक्रतुंडानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥ २८ ॥ दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ॥ प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेंद्रियः ॥ २९ ॥ निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ॥ भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽऽपतन् ॥ ३० ॥ विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् ॥ यमप्रेष्यान्विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥ ३१ ॥ ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरस्सराः ॥ के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥ ३२ ॥ कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ॥ किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥ ३३ ॥ सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुंडलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥

समयमें हमारे स्वामीका नाम ले रहा है ॥ ३० ॥ बस नारायण नाम पुकारते ही विष्णु भगवान्के पार्षद अजामिलकी आत्माको उसके हृदयसे खींचकर ग्रहण करते हुए और यमदूतोंको बलात्कार निवारण करके बोले कि, तुम लोग इसको मत छूना ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! धर्मराजके दूतोंको अजामिलके ग्रहण करनेसे जब रोका तब वे महा क्रोध करके उन सुन्दर विष्णुदूतोंसे बोले कि, तुम कौन हो, जो हमको धर्मराजकी आज्ञा पालन करनेसे रोकते हो ? ॥ ३२ ॥ तुम किसके दूत हो ? यहां कैसे आये और किसलिये इस दुराचारी पापीको यमपुरमें ले जानेसे रोकते हो ? तुम देवता हो ? या उपदेवता हो ? प्रधान हो ? वा सिद्ध हो ? ॥ ३३ ॥ हम लोगोंने तुम्हारा परिचय नहीं पाया, इसलिये तुम हमारे

इन वचनोंको सुनकर क्रोध न करना. हम तुम्हारे सबके ही लोचन कमलदलके समान देखते हैं, आप सब लोग रेशमी पीताम्बर धारण किये, कुण्डल पहिरे और गलेमें फूलोंकी माला विराजमान है ॥ ३४ ॥ सब ही नवीन अवस्थावाले, चतुर्भुज धारे, धनुष, तूणीर, कृपाण सम्भारे, शंख, चक्र, पद्म और गदा हाथमें लिये ॥ ३५ ॥ अपनी चमत्कारकी कांतिसे सब लोकोंकी दिशाओंका अन्धकार हरनेवाले और संसारमें अपने प्रभावका प्रकाश करनेवाले आप धर्मराजके अनुचर हमको क्यों निषेध करते हो और इस पापीको यमपुर क्यों नहीं जाने देते ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् । जब यमदूतोंने ऐसा कहा तब भगवान्के आज्ञाकारी पार्षद विचारने लगे कि, इन लोगोंको दंडादंडका ज्ञान नहीं है.निःसन्देह यह लोग तस्कर हैं,हमारे भयसे भीत होकर यह अपने आपको यमराजका किङ्कर बताते हैं,इसलिये

सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥ धनुर्निषंगासिगदाशंखचक्रांबुजश्रियः ॥ ३५ ॥ दिशो वितिमिराऽऽलोकाः
कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ॥ किमर्थं धर्मपालस्य किंकरान्नो निषेधथ ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वा
सुदेवोक्तकारिणः ॥ तान्प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ यूयं वै धर्मराजस्य यदि
१६। निर्देशकारिणः ॥ ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥ ३८ ॥ कथं स्विद् ध्रियते दंडः किं वास्य स्थानमी
प्सितम् ॥ दंड्याः किं कारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥३९॥ यमदूता ऊचुः॥ वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्त
द्विपर्ययः ॥ वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥ ४० ॥

विष्णुके दूत क्षणकालतक विस्मयमें रहे,फिर हँसकर मेघसम गम्भीर वचनोंसे उनको उत्तर देते हुए ॥ ३७ ॥ विष्णुके दूत बोले कि,हे पाशधारी पुरुषगण ! तुम लोग धर्मराजके कैसे दूत हो ? हम तुमसे धर्मविषयका प्रश्न करते हैं; बतलाओ तो कि धर्मका लक्षण और प्रमाण क्या है ? ॥ ३८ ॥ और दंड प्राणियोंको किस प्रकार दिया जाता है और दंडका वांछित विषय क्या है ? और जो लोग दंडनीय होते हैं उनके क्या कर्म हैं? क्योंकि,मनुष्य ही कर्म किया करते हैं,पशु आदि तो कर्म नहीं करते ।कर्म करनेवाले मनुष्योंमेंसे किस किसको दंड मिलता है॥३९॥ यमदूतोंने उत्तर दिया कि,जो वेदविहित है अर्थात् जिसका प्रमाण वेदमें पाया जाता है वही धर्म है औरजो उसमें अविहित है,अर्थात् वेदोंसे

निषिद्ध है, वही अधर्म है। इसलिये विधिनिषेध स्वरूपमें धर्माधर्मका प्रमाण वेद ही हुआ है. हे देवगण ! वेदका प्रमाण क्या है? ऐसी आशंका नहीं की जा सकती, क्योंकि, वेद नारायणसे उत्पन्न और साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और परमेश्वरके निश्वास मात्रसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये वह स्वयम्भू नामसे सुने जाते हैं ॥ ४० ॥ यदि कोई कहे कि, नारायण कौन है तो सुनो. जिन्होंने अपने स्वरूपमें सात्त्विक, राजस, तामस गुणमय सब प्राणियोंको शास्तृत्वादि गुण, ब्राह्मणादि नाम, अध्ययनादि क्रिया और वर्ण प्रमादिरूपसे यथावत् विभाग किया है, वही नारायण हैं॥ ४१॥ हे देवगण ! अधर्म भी नारायणका ही किया हुआ है, क्योंकि उन्होंने स्वयं, अग्नि, वायु, आकाश, देवता, चन्द्र, सूर्य, सन्ध्या, दिन, रात, दिग्, जल, पृथ्वी और धर्म इन सबको बनाया है। यह सब जीवोंके आचरणोंकी साक्षी देते हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये ऊपर

येन स्वधाम्न्यमी भावा रजस्सत्त्वतमोमयाः ॥ गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यंते यथातथम् ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः संध्याहनी दिशः ॥ क कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥ ४२ ॥ एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दंडस्य युज्यते ॥ सर्वे कर्मानुरोधेन दंडमर्हंति कारिणः ॥ ४३ ॥ संभवंति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ॥ कारिणां गुणसंगोऽस्ति देहवान्न ह्यकर्मकृत् ॥ ४४ ॥ येन यावान्यथा धर्मोऽधर्मो वेह समीहितः ॥ स एव तत्फलं भुंक्ते तथा तावदमुत्र वै ॥ ४५ ॥

कहेहुए सूर्यादिसे जिस प्रकार धर्म जाना जाता है, वैसे ही अधर्म भी जान लिया जाता है, वह अधर्म ही दण्डका स्थान है, परंतु दण्ड पानेके योग्य जीव जिसका जैसा जैसा अपराध होता है, उसको यथाक्रमसे वैसा ही दंड मिलता है ॥ ४३ ॥ हे पापरहित देवगण ! कर्मी पुरुषोंसे अच्छे बुरे दोनों ही कर्म होनेका संभव है, क्योंकि, उनको गुणोंका संग सदा बना रहता है. हाँ, यदि कोई शरीर सर्व भाँतिसे कर्मशून्य हो, तब ही उससे अशुभ कर्म नहीं बन सकता, परन्तु ऐसा प्राणी कहाँ, जो देहधारी होकर कर्म न करता हो, ऐसा प्राणी कहीं नहीं है. इसलिये समस्त कर्म करनेवालोंको पाप अवश्य ही होता है। इससे जाना गया कि, सब ही कर्म दंडके योग्य हैं ॥ ४४ ॥ फिर जो जीव इस लोकमें जितना धर्म अथवा

अधर्म बटोरता है वह स्वयं परलोकमें उस प्रकारसे ही उतना फल अवश्य ही भोग करता है, अर्थात् धर्मानुसार जिस प्रकार उसको सुख मिलता है वैसे ही अधर्म करनेसे दंडको प्राप्त होता है ॥४५॥ हे देवप्रवरगण ! इतना ही नहीं कि,केवल सूर्यादि ही धर्माधर्मके देखनेवाले और प्रकाशक हैं,नहीं,वह युक्तिसे भी जान लिया जाता है,अर्थात् इस जन्ममें शांतभावसे घोरभावसे, मूढ़पन अथवा सुखसे वा दुःखसे और सुख दुःखके मेल इत्यादिसे गुणकी भिन्नताके हेतु सब प्राणियोंको जिस प्रकार त्रिविधपना देखा जाता है और जन्ममें भी यह वैसे ही हो सकता है,परन्तु धर्म अधर्म विना इस प्रकारकी त्रिविधता सभव नहीं इसलिये यह अनुमानसे सिद्ध होता है॥४६॥ और भी वर्तमान वसंतादि काल जिस प्रकार अतीत, अनागत, वसंतादिकालके समस्त गुणोंके (फूल फलोंके) जतानेवाले होते हैं, वैसे ही विद्यमान जन्म भी भूत भविष्यत् जन्मके धर्माधर्मका बतलानेवाला होता है ॥४७॥ हे देवगण ! ऊपर लिखेहुए नियमके अनुसार धर्माधर्मका ज्ञान और सब जीवोंको होताहै परन्तु हमारे

यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ॥ भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथाऽन्यत्रानुमीयते ॥ ४६ ॥ वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ॥ एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥ ४७ ॥ मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ॥ अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥ ४८ ॥ यथाऽज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ॥ न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥ ४९ ॥ पंचभिः कुरुते स्वार्थान्पंच वेदाथ पंचभिः ॥ एकस्तु षोडशेन त्रीन्स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥ ५० ॥

स्वामी धर्मराज अपनी पुरीमें बैठे २ अपने मनसे ही सब जीवोंका पूर्वरूप अर्थात् धर्माधर्म विशेष रूपसे देख लेते हैं,फिर अपूर्व प्रकारसे अर्थात् जो जिसके योग्य होता है,उसका वैसे ही विचार किया करते हैं.वह भगवान् और अज हैं,इसलिये उनका इस प्रकारसे करना कुछ असंभव नहीं है ॥४८॥ हे महाशयो ! जीव अज्ञानी अविद्याओंसे ग्रसा हुआ है और भाग्याधीन कर्मोंसे लिप्त जो यह वर्त्तमान देह है यह इसकी ही उपासना करता है,अर्थात् इस देहको ही आत्मा समझता है,पूर्व अथवा अपरको कुछ भी नहीं मानता,इस कारण उसको पूर्व जन्मोंकी स्मृति भूलजाती है। जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नवाले शरीरको ही सत्य समझता है, जाग्रत् शरीरको वा स्वप्नसे प्रथम शरीरको कुछ भी नहीं समझता, वैसे ही जन्म होनेपर पिछले जन्मका वृत्तान्त यह प्राणी कुछ भी नहीं समझता ॥४९॥ यह जीव हस्तादि पाँच कर्मेन्द्रियोंसे पांच कर्म करता है,और श्रोत्र इत्यादि पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्दादि पाँच विषय जानता है, अधिक करके षोडश पदार्थ जो मन है उसके साथ मिलकर सत्रहवाँ स्वयं जीव

होता है, परन्तु यह जीव आप ही षोडश उपाधिके अंतरमें हो सब इंद्रियोंके विषयका खोज करनेसे अकेला ही कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मन इन तीनोंके सब विषयोंका भोग करता है ॥ ५० ॥ हे देवप्रवरनिकर ! सोलह कलायुक्त शरीर और सत, रज, तम इन तीन गुणोंके कार्यकी तीन शक्ति यह अनादि हैं, यह इस जीवको केवल वह स्मृति: उत्पन्न करा देती हैं। जिससे हर्ष, शोक, और भय पीड़ा ही विद्यमान हो जाती है ॥ ५१ ॥ हे देवश्रेष्ठ ! सकल यह जीव अज्ञानी है, और इसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्षा, यह (६) छः वर्ग नहीं जीते हैं, उसको यद्यपि कुछ करनेकी इच्छा नहीं होती तौ भी लिंगशरीर उसको कर्म कराता है, इसलिये "कोशकार नामक कीडेके समान (रेशमका कीडा) जो अपने पूरे हुए रेशममें आप ही लिपटकर मर जाता है, यह जीव भी अपने किये कर्मोंसे आप ही ग्रसकर मुग्ध

तदेतत्षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् ॥ धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥ ५१ ॥ देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते ॥ कोशकार इवात्मानं कर्मणाऽच्छाद्य मुह्यति ॥ ५२ ॥ नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥ कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥ ५३ ॥ लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ॥ यथा योनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥ ५४ ॥ एष प्रकृतिसंगेन पुरुषस्य विपर्ययः ॥ आसीत्स एव न चिरादीशसंगाद्विलीयते ॥ ५५ ॥

हो जाता है, अर्थात् अपने निकलनेका कुछ भी यत्न उससे नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥ यदि कहो कि, इसका प्रमाण क्या है कि, लिंगशरीर जीवको कर्म कराता है, तो इसका उत्तर यह है कि अनुभव ही इसका प्रमाण है. क्योंकि, प्रगट देखा जाता है कि कोई पुरुष एक क्षणभरके लिये भी निष्कर्म होकर नहीं रह सकता, सब ही विवश होकर पूर्वकृत कर्मके संस्कारसे उत्पन्न हुए गुणद्वारा अर्थात् गुणकार्य रागादिकसे कर्म करनेको बाध्य होते हैं और सब कर्म करा करते हैं ॥ ५३ ॥ उन सब कर्मोंके करनेसे जो भाग्य है, वही जीवके स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीरका कारण है, अर्थात् जिसका जैसा भाग्य है उसको वैसी ही वासना होती है. वह, वासना सबसे अधिक बलवती है, उसी वासनासे जीवका पिताके समान अथवा माताके समान देह प्राप्त होता है और वीर्य और रुधिर तो सबका एकसा ही है ॥ ५४ ॥ हे देवदूतगण !

प्रकृतिके संगवश होनेके कारण ही पुरुषकी इस प्रकारसे उलटपुलट बुद्धि होजाती है,परन्तु यदि पुरुष उसी बुद्धिसे परमेश्वरकी उपासनामें चित्त लगावे तो शीघ्र ही माया बिलाय जाती है ॥५५॥ हे महाशयो! यह ब्राह्मण प्रथम अवस्थामें शास्त्रसंपन्न, मृदुशील स्वभाव, सदाचारी, पूर्णव्रत धारी, कोमलचित्त, विविध गुणोंका आधार था,यह इन्द्रियोंको रोक कर सदा नियमानुसारईश्वरकी आराधना करनेवाला,इसके तुल्य सत्यवादी, मन्त्रका जाननेवाला व पवित्र पुरुष और कोई न था ॥ ५६ ॥ यह अहंकाररहित होकर गुरु, अग्नि, अतिथि, वृद्ध जनोंकी सेवा करता, सभी प्राणियोंके संग इसकी मित्रता थी. विशेष करके यह अतिसाधु,अल्पभाषी और किसीकी निंदा नहीं करता, पहिले यह ऐसा भोलभाला था ॥ ॥ ५७ ॥ एक समय यह ब्राह्मण पिताकी आज्ञा पाल के लिये वनमें गया; वहांसे फल, फूल, समिधा और कुशा ग्रहण करके चला ॥५८ ॥

अयं हि श्रुतसपन्नः शीलवृत्तगुणालयः ॥ धृतव्रतो मृदुर्दांतः सत्यवाङ् मंत्रविच्छुचिः ॥ ५६ ॥ गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां
शुश्रूषुर्निरहंकृतः ॥ सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥ ५७ ॥ एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद्द्विजः ॥
आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥ ५८॥ ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं सह भुजिष्यया॥ पीत्वा च मधु मैरेयं
मदाघूर्णितनेत्रया ॥ ५९ ॥ मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ॥ क्रीडंतमनुगायंतं हसंतमनयाऽन्तिके॥ ६० ॥
दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरंभिताम् ॥ जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥ ६१ ॥ स्तंभयन्नात्मनात्मानं
यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् ॥ न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥ ६२॥

जब यह मार्गमें लौटता हुआ आता था, तो इसने एक कामी शूद्रको एक दासीके संग रमण करते देखा; मधुर मद पीनेसे उस दासीके नेत्र घूम रहे थे ॥५९ ॥और उसके लहँगेका नारा (कमरबन्द)ढीला होनेके कारण खुला जाता था, वह कामी शूद्र सदाचारको त्याग इस ब्राह्मणके सन्मुख ही निर्लज्ज हो उस दासीको चिपटाकर उसके संग हास्य, परिहास और एकसंग गान व अनेक प्रकारके क्रीडाकौतुक आरंभ करता हुआ ॥ ६०॥ यह ब्राह्मण उस कामी पुरुषको चन्दनादि सुगंधियुक्त भुजाओंसे उस युवतीको लिपटाए देख उसी समय मोहित हो कामके वश होगया ॥६१॥ इस ब्राह्मणमें जितना धीरज और ज्ञान था, इसने उसके बलसे बहुत देरतक अपने मनको बहुतेरा रोका, परन्तु तो भी कामसे

कम्पायमान मनको यह न रोक सका ॥ ६२ ॥ इसलिए उस दासीके दर्शनके कारण कामरूप महाग्रहके बहानेसे दुष्ट ग्रहने इसको ग्रसलिया, जिससे इसकी स्मृति नष्ट होगई, यह उसी तरुणीकी नित्य चिन्तामें चिन्ता करता रहता और अपना धर्म कर्म सब छोडदिया ॥ ६३ ॥ वह दासी जिससे प्रसन्न हो, वही वस्तु लाकर उसके आगे धरै । इसी प्रकार अपने पिताका सब धन और मनोहर मनोहर अनेक अनेक भाँतिके पदार्थ देकर उसको सन्तोष उत्पन्न करानेकी चेष्टा करने लगा ॥ ६४ ॥ जो ब्राह्मणी उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई, परम सुशील, पतिव्रता, धर्मपरायण, देवीस्वरूप अजामिलकी युवा अवस्थावाली भोलीभाली विवाहितास्त्री थी उस सतीका इस पापात्माने उस स्वैरिणीके नेत्र बाणसे विद्ध हो शीघ्र ही परित्याग कर दिया ॥ ६५ ॥ चोरीसे, झूंठसे, ठगाईसे, जुएँसे, न्याय अन्याय करके जहाँ तहाँसे आप जितना धन लाता, वह सब दासीको देकर केवल उसके कुटुम्बका पालन पोषण करता ॥ ६६ ॥ इसलिये हे देवदूतगण ! यह अतिशय पापात्मा है. इसकी परमायु भी पापरूप थी. इसने जीवित अवस्थामें मलरूप दासीका जूंठा अन्न भोजन किया है, शास्त्रका उल्लंघन करके स्वेच्छाचारी हो चिरकाल बिताया है ॥ ६७ ॥ इस कारण इस पापीको हम दंडपाणि यमराजके निकट ले जायँगे. इस दुरात्माने अपने किये हुए पापोंसे छुटकारा पानेके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया है, इसलिये यह यमराजसे दंड पाकर शुद्ध होगा * ॥ ६८ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे भाषाटीकायामजामिलोपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ॥ तामेव मनसा ध्यायन्स्वधर्माद्विरराम ह ॥ ६३ ॥ तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ॥ ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥ ६४ ॥ विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लंभिताम् ॥ विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्याऽपांगविद्धधीः ॥ ६५ ॥ यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ॥ बभारास्याः कुटुबिन्याः कुटुंबं मंदधीरयम् ॥ ६६ ॥ यदसौ शास्त्रमुल्लंघ्य स्वैरचार्य्यगर्हितः ॥ अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥ ६७ ॥ तत एनं दंडपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ॥ नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दंडेन शुध्यति ॥ ६८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

* **शंका**–अजामिल बडा पण्डित था, और ज्ञानी भी था. गुरु, महात्मा और अग्निकी सेवा करनेवाला भी था. ऐसा अजामिल शूद्राको देखते ही क्षणमात्रमें अपने धर्म कर्मसे भ्रष्ट होगया ! यह बडे आश्चर्यकी बात है क्योंकि मूर्ख भी भ्रष्ट होता है तो भी एक क्षणमात्रमें नहीं होता, वह इतना चतुर होकर एक क्षणमात्रमें क्यों भ्रष्ट हुआ ?

दो०—इस द्वितीय अध्यायमें, हरिभृत्यन धर ध्यान । यमदूतनसों विष्णुको, कहो महात्म्य बखान ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यमदूतोंके वचन सुनके न्यायकारी महाविद्वान् विष्णुके दूतोंने विस्मयको प्राप्त होकर यमदूतोंसे कहा ॥ १ ॥ विष्णुदूत बोले, अहो क्या कष्ट है ? धर्मदर्शी साधुलोगोंकी सभाको अधर्मने स्पर्श किया. क्योंकि, इस सभामें धर्मदर्शी पुरुष लोग पापरहित पुरुषोंको वृथा दंड देते हैं ॥ २ ॥ अहो ! जो साधुपुरुष सर्वत्र समदर्शी होकर प्रजाको पिताके समान पालन करते और शिक्षा देते हैं,उनमें ही यदि अदंड्यदंडनादि

श्रीशुक उवाच ॥ एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ॥ उपधार्याथ तान्राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः॥१॥ विष्णुदूता
ऊचुः ॥ अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ॥ यत्रादंडचेष्वपापेषु दंडो यैर्ध्रियते वृथा ॥ २॥ प्रजानां पितरो ये
च शास्तारः साधवः समाः ॥ यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यांति शरणं प्रजाः ॥ ३ ॥ यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४ ॥ यस्यांके शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ॥ स्वयं धर्ममधर्मं वा
नहि वेद यथा पशुः ॥ ५ ॥

169

(निरपराधीको दंड) विषमभाव हो तो फिर प्रजा किसकी शरण जाय ? ॥ ३ ॥ जब ऐसे लोग ही अधर्माचरण करने लगेंगे तब और लोग भी वैसे ही होनेके अनुरागी होंगे क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जैसे जैसे आचरण करते हैं और लोग भी उनके ही करनेकी चेष्टा करते हैं और सब सज्जन पुरुष जिसको प्रमाण कर लेते हैं साधारण लोग भी उसके ही पीछे चलते हैं॥ ४ ॥ क्या आश्चर्य है ? लोग जिसकी गोदीमें शिर धरकर निश्चिन्त हो सो जाते हैं,आप पशुके समान हैं, धर्म अधर्मको कुछ भी नहीं जानते तो वह आप विश्वासघाती कहलावेगा ॥ ५ ॥

उत्तर—गंगाकी बीच धारामें पराशरमुनि कामकी पीडासे महादुःखी होगये, तब भीलकी कन्याके संग रमण किया उन पराशरँ मुनिको देखकर अजामिल बहुत हँसा.अजामिलको हँसता देखकर पराशरजीने शाप दिया कि, हे दुष्ट ! हमारी नाई तू भी किसी समय शूद्राको देखकर कामसे व्याकुल होकर ब्रह्मकर्मसे भ्रष्ट होजायगा. हम तो एक बार भ्रष्ट होकर अपने शरीरको शुद्ध कर लेंगे परन्तु तूं किसी प्रकार भी ब्राह्मण न रहेगा, एक क्षणमात्रेंम चाण्डाल होजायगा, इस शापके कारण अजामिल एकक्षणमात्रमें भ्रष्ट होगया ॥

सवैयां—दिवदीपक कोय बनी वनिता,जड जीव पतंग जहां परते । दुख यावत प्राण गमावत हैं,वरजे न रहैं हठसों जरते ॥ इसभाँति विचक्षण अक्षन के, वश होय अनीति नहीं करते । परती लख जे धरती निरखें, धन हैं धन हैं धन हैं नरते ॥ १ ॥

वह पुरुष सब प्राणियोंका वासस्थान है, उसको यदि दया हो तो वह किसी प्रकारसे इस लोकमें उसका बुरा करनेके योग्य होगा जिसने मित्रताके विश्वास हेतु उनमें अपना आत्मा समर्पण कर दिया है, उससे द्रोह करना कभी नहीं चाहिये ॥६॥ अरे यमके दूतो! यद्यपि इस पुरुष (अजामिल) नें जन्मसे लेकर कोटि कोटि पाप कर अपने और अपने परिजनोंका भरण पोषण किया था, तथापि जो नाम इसने पराधीन होकर भी उच्चारण किया है वह केवल प्रायश्चित्त ही नहीं, परम ही स्वस्त्ययन अर्थात् मोक्षका देनेवाला है ॥ ७ ॥ इस पुरुषने अपने प्रिय पुत्रको पुकारनेके मनसे " नारायण यहां आओ " इस प्रकार चिल्लाकर कुछ आभासमात्रसे "नारायण" यह चार अक्षरका नाम उच्चारण किया है, बस इस नामके लेते ही इस पापीके किये हुए सब पापोंका प्रायश्चित्त होगया ॥ ८ ॥ क्योंकि चोर, मद्य पीनेवाला,

स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ॥ विस्रंभणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥६॥अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ॥ यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥ ७ ॥ एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ॥ यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥ ८ ॥ स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ स्त्रीराजपितृगोहंता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥ सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ॥ नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥ न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्यत्यघवान्व्रतादिभिः॥यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलंभकम् ॥ ११ ॥

मित्रद्रोही, विप्रका घात करनेवाला, ब्रह्मद्रोही, वेदद्रोही, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, स्त्रीघातक, राजघातक, गौघातक व और दूसरे जो जितने महापातकी नर हैं ॥ ९ ॥ उन सब पापोंका (यह नारायणनाम ही) श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। इसका कारण यह है कि, नामका उच्चारण करते ही भगवन्मय हो जाता है, अर्थात् भगवान् आप विचार करते हैं कि, यह नामका उच्चारण करनेवाला पुरुष हमारा भक्त है, इसकी सब भाँतिसे रक्षा करना हमारा कर्तव्य है ॥ १० ॥ हे यमके अनुचरो! मन्वादि ब्रह्मवादि मुनियोंने पापसे छुटकारा पानेके लिये जो व्रतादि प्रायश्चित्त कहे हैं उनसे पापी पुरुष ऐसा शुद्ध नहीं होता, जैसा हरि भगवान्के नाममात्रका उच्चारण करनेसे शुद्ध होजाता है। दूसरे नामका उच्चारण केरनेसे पापनाशके सिवाय और फल भी मिलते हैं; क्योंकि, नामका उच्चारण उत्तमश्लोक भगवान्के

गुणोंको भी प्रगट कर देता है. नामका फल, कृच्छ्र चान्द्रायणादि प्रायश्चित्तके समान पापका क्षय करके ही नहीं जाता रहता, वरन् सदा बना रहता है ॥ ११ ॥ प्रायश्चित्त और व्रतादिकोंके करनेसे पापोंसे छुटकारा होता है, किन्तु यदि असत् पापोंमें अर्थात् पापमार्गमें फिर मन दौड़ जाता है, तो यह प्रायश्चित्त एकबार ही पापका शोधक नहीं होसकता, इसलिये जो पुरुष एकबार ही पापके क्षय करनेकी इच्छा करते हैं; उनके लिये भगवान् हरिका गुणकीर्तन करना ही एक उत्तम प्रायश्चित्त है. क्योंकि, एक श्रीभगवान् ही चित्तके शुद्ध करनेवाले हैं, जब चित्त शुद्ध होगया तो फिर पाप कहाँ ॥ १२ ॥ यह सब पापोंका प्रायश्चित्त कर चुका, इसलिये तुम लोग इस पुरुष (अजामिल) को पाप करने वालोंके मार्गपर न ले जाओ, इसके अत्यन्त पापोंका नाश होगया क्योंकि, इसने मृत्युके समय नारायणका नाम संपूर्णरूपसे ग्रहण किया

नैकांतिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ॥ तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्व भावनः॥ १२॥ अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ॥ यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥ १३ ॥ सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ॥ वैकुंठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १४ ॥ पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः॥ हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥ १५ ॥ गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ॥ प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥ १६ ॥

था ॥ १३ ॥ हे धर्मराजगण! पुत्रादिकोंके लार भरानेमें हो, हँसीमें हो, गीत आलापके पूर्ण करनेमें हो, अथवा पराधीनतामें लिया गया हो, जिस किसी प्रकारसे भी हो नारायणका नाम लेनेसे अनेक पापोंका नाश होजाता है ॥ १४ ॥ अधिक क्या कहैं, ऊंचे घर इत्यादिकों परसे गिरनेमें अथवा मार्गमें जाते २ गिर पडनेसे, शरीरका कोई अंग टूटनेसे, अथवा सर्पादिकोंके डसनेके समय अथवा ज्वरादिकसे संतापित होनेमें, दंडादिद्वारा मार पडनेके समय, अवश होकर भी जो कोई पुरुष यदि "हरि" यह नाम उच्चारण करैगा उसको नरककी पीडा स्पर्श नहीं कर सकेगी ॥ १५ ॥ मन्वादिक महर्षियोंने सब पापोंकी छोटाई बड़ाई विचार कर बडे पापका बडा प्रायश्चित्त और छोटे पापका छोटा प्रायश्चित्त जो कुछ कहा है, उसकी व्यवस्था वही है। परन्तु हरिनामकीसी अवस्था नहीं। इसका स्मरण करते ही सब पापोंका नाश होजाता

तैस्तान्यघानि पूयंते तपोदानजपादिभिः॥ नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशांघ्रिसेवया ॥ १७ ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ॥ संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥ १८॥ यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ॥ अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ॥ तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्र मृत्योरमूमुचन् ॥ २० ॥

है, जैसे वारुणीका एक बिन्दु पीनेसे महापापी होजाता है, ऐसे ही नारायणका नाम लेनेसे महापापका क्षय होजाता है ॥ १६ ॥ महर्षियोंके कहे हुए व्रत दान तपस्यादिसे पापोंका ही शोधन होजाता है परन्तु पाप करनेवालोंका जो अधर्म करनेके कारण मलिन हृदय, अथवा किये हुए पापका जो सूक्ष्मरूप संस्कार है वह शुद्ध नहीं होसकता और भगवान्के चरणकमलकी सेवासे पापकी वासनाका भी शोधन हो जाता है इसलिये और और प्रायश्चित्तादिकोंसे हरिनामका कीर्तन करना ही सबसे श्रेष्ठ प्रायश्चित है ॥ १७ ॥ यहां पर इस पुरुषने "पापका प्रायश्चित्त है" ऐसा समझकर भी कभी हरिनामका उच्चारण नहीं किया, यह आपत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि अज्ञानसे हो, अथवा ज्ञानसे हो, उत्तम श्लोक भगवान्का नामकीर्तन करनेसे पापके समूह भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि काष्ठके समूहको जलाती है ॥ १८ ॥ यदि तुम कहो कि इस अजामिलने भगवद्भक्त पुरुषोंके निकट उपदेश नहीं पाया, इसलिये इसका लिया हुआ हरिका नाम किस प्रकारसे प्रायश्चित्त हो पापका नाश करैगा ? इसका उत्तर यह है कि, जिस प्रकार कोई न जानकर भी दैव योगसे अतिशय वीर्यवान् औषध भक्षण कर ले तो वह औषध अपना गुण अर्थात् आरोग्य प्रगट कर देती है। वैसे ही हरिनामरूप मन्त्र अजनमें भी उच्चारण करनेसे अपना काय अवश्य करता है. इसका कारण यही है कि शक्तिवाली वस्तु श्रद्धादिकी बाट नहीं देखती॥ १९ ॥ हे दूतगण! इस धर्ममें जो सन्देह हो तो तुम अपने स्वामी यमराजसे पूँछ लेना, क्योंकि वह धर्मकी परमगुप्त वार्ताओंको भी भलीभांति जानते हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! उन विष्णुदूतोंने इस प्रकारसे भागवत धर्मको निर्णयपूर्वक कहकर उस ब्राह्मण (अजामिल) को यमकी फांसीसे

---

१ **कवित्त**—नामके प्रभाव वाल्मीकि आदि ऋषिभये, नामके प्रभाव नन्द कृष्णपुत्र पायो है। नामके प्रभाव टेक राखी प्रहलादजूकी, नामके प्रभाव द्रौपदीको पट बाढ्यो है। नामके प्रभाय अजामिलसे उधारे खल, नामके प्रताप वैकुंठमें पटायो है। सोई नाम पापनके काटिवेको शालिग्राम, वेदने भी तत्त्वरूप नामको बतायो है ॥ १ ॥

छुड़ाकर मृत्युकी पीडासे उद्धार किया ॥ २० ॥ यमदूत लौटकर अपने स्वामी यमराजके निकट आये और जो जो बात हुई थी वह आदिसे अन्ततक समस्त वृत्तांत यमराजको सुनाया ॥२१॥ इस ओर इस ब्राह्मणने (अजामिल) यमकी फांसीसे छूट भय त्याग सावधान हो मस्तक नवाकर उन विष्णुदूतोंको प्रणाम किया और उनके दर्शनसे परमानन्दको प्राप्त हुआ * ॥२२॥ फिर भगवान् विष्णुके दूतोंने अजामिलका भाव देखकर समझा कि यह हमसे कुछ कहना चाहता है,इसलिये वह उसके सामनेसे उसी समय अन्तर्धान होगये॥२३॥अजामिलने विष्णु और

इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमांतिके ॥ यमराज्ञे यथासर्वमाचचक्षुररिंदम ॥ २१ ॥ द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ॥ ववंदे शिरसा विष्णोः किंकरान्दर्शनोत्सवः ॥ २२ ॥ तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिंकराः ॥ सहसा पश्यतस्तस्य तत्रांतर्दधिरेऽनघ ॥ २३ ॥ अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥ २४ ॥ भक्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ॥ अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥ २५ ॥ अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ॥ येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायतात्मना ॥ २६ ॥

यमराजके दूतोंका कथोपकथन सगुण और निर्गुण धर्म सुना॥२४॥अर्थात् यमदूतोंके मुखसे तीनों वेदोंका प्रतिपादन किया हुआ सगुण धर्म और विष्णुदूतोंके मुखसे भगवत्प्रणीत निर्गुण धर्म जाननेसे भगवान्‌में अतिशय भक्तिमान् हुआ।अर्थात् भगवान्‌का माहात्म्य सुनकर परमेश्वरमें अजामिलकी शीघ्र ही भक्ति होगई इसलिये वह अपने पहिले किये हुए अशुभ कर्मोंको स्मरण करके बहुत ही पछिताने लगा॥२५॥वह खेद करते करते बोला कि,अहो अजितेंद्रिय होकर रहनेसे हमको बडा कष्ट हुआ,क्या घृणाकी बात है,मैने दुष्ट स्त्रीके गर्भमें सन्तानउत्पन्न करके अपनी ब्राह्मणजातिका

---

* शंका-नारायणका नाम मरते समय अजामिलने लिया तो उसका पातक सब नष्ट हो गया,अजामिल शुद्ध होगया तब भगवान्‌के दूतोंसे कुछ बात करनेकी इच्छा अजामिलने की तो दूतोंने विचार किया कि यह हमसे बोलेगा तो हम सबको पाप लगेगा ऐसा समझकर क्यों चले गये? क्योंकि अजामिल तो सब पापसे छूट गया था.

उत्तर-नारायणके नामको अजामिलने जब लिया तब उसी नामके प्रभावसे यमराजकी त्राससे अजामिल छूट गया, परंतु सब पापोंसे नहीं छूटा क्योंकि जो पापोंसे छूट गया होता तो भगवान्‌के दूत अजामिलको एक क्षणमात्रमें वैकुण्ठधामको ले जाते, पृथ्वीपर तपस्या करनेका फिर क्या काम था;दूतोंने अपने मनमें विचार किया कि पापीके साथ बात करनेवाले प्राणीको ब्रह्महत्याका पाप लगता है ऐसा समझकर भगवान्‌के पार्षद अजामिलको छोडकर चले गये तब अजामिल पापका नाश करनेके लिये तप करनेको गया ॥

१६८

नाश कर दिया॥२६॥ मैंने अत्यन्त कुकर्म किया, मैं अपने कुलका कलंक हूं, सज्जनोंमें निन्दाका पात्र हूं, मुझको धिक्कार है, धिक्कार है, क्या यह मेरा साधारण दुष्कर्म है, कि मैंने अपनी ब्याही तरुणी पतिव्रता स्त्रीको त्याग करके सुरापान करनेवाली स्त्रीसे भोग करके काल बिताया ॥२७॥ हाय! मैंने अपने पिता माता अत्यन्त वृद्ध तपस्वी और अनाथ अन्य पुत्रादि व बन्धु बांधवों करके विहीन होनेंसे सदा ही मैंने दुःख संतापमें रहते सो नीचके समान अकृतज्ञ होकर ऐसे समयमें उनको त्याग दिया, हाय ! उस समय मुझपर वज्र न टूटा ॥२८॥ जैसा मैं पापी हूं इससे तो यही स्पष्ट दृष्टि आता है कि मुझको उसी घोर नरकमें पडना होगा, जहां धर्मके शत्रु कामी पुरुष यमकी पीडाको प्राप्त हुआ करते हैं ॥ २९ ॥ अभी थोडी देर पहले यहां मैंने अद्भुत स्वप्न देखा था, क्या वह जागतेमें मुझको दिखाई दिया, या वह स्वप्न था ? नहीं नहीं स्वप्न किसी प्रकार ऐसा नहीं

धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ॥ हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥ २७ ॥ वृद्धावनाथौ पितरौनान्यबंधू तपस्विनौ ॥ अहो मयाऽधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥ २८ ॥ सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ॥ धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विंदंति यमयातनाः ॥ २९ ॥ किमिदं स्वप्न आहोस्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ क याता अद्य ते ये मा व्यकर्षन्पाशपाणयः ॥ ३० ॥ अथ ते क गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः॥ व्यमोचयन्नीयमानं बद्धा पाशैरधो भुवः ॥ ३१ ॥ अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ॥ भवितव्यं मंगलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥ ३२ ॥ अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ॥ वैकुंठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥ ३३ ॥

हो सकता, यह सब चरित्र जागतेमें प्रत्यक्ष मैंनें अपनी आँखोंसे देखा कि, कई पुरुष हाथमें फाँसी लिये मुझको पकड कर घसीटे लिये जाते थे इस समय वे लोग कहां चले गये ॥ ३० ॥ मैं फांसीसे बँधा हुआ पृथ्वीके बिचले भागमें जा हा था, उस समय एकाएक आनकर जिन्होंने मुझको इस फाँसीसे छुटाया वह चार सिद्ध पुरुष कहां गये ? जिनका अधिक मनोहर दर्शन करके दोनों नेत्र तृप्त हुये थे ॥ ३१ ॥ यद्यपि इस जन्ममें मैं बडा पापी हुआ तो भी उन देवताओंका दर्शन प्राप्त करनेसे मुझको अनुमान होता है कि, पहले जन्मका मेरा बड़ा पुण्य था जिससे उन देवताओंके दर्शनसे इस समय मेरा यह आत्मा प्रसन्न हो रहा है ॥ ३२ ॥ जो मेरे प्रथम जन्मका पुण्य न होता, तो भला मुझ अशुचि दासीके

पतिकी जीभ मरनेके समय नारायण नाम लेनेको कैसे समर्थ होती ? ॥३३॥ कहां तो मैं कपटी, निर्लज्ज, पापी, ब्रह्मद्रोही, ब्राह्मणधर्मका नाशक और कहां यह परम मंगलदायक भगवान् "नारायण" का नाम, जो पहला पुण्य न होता तो क्या यह नाम मेरे मुखसे निकल सकता था, कभी नहीं॥ ॥३४॥ अब इस समय प्राण, मन और इन्द्रियोंको रोककर ऐसा यत्न करूं कि जिससे घोर अन्धकारमें फिर कहीं न पड़ जाऊं॥३५॥ इस समय अविद्याकार्य कर्मके बन्धनको छोडकर प्राणीमात्रसे सुहृद्भाव, शान्त, दयावान् और आत्मवान् होकर अपनी आत्माको मुक्त करूं ॥ ३६ ॥ इस स्त्रीरूप भगवान्की मायाने इस मेरे आत्माको ग्रास कर लिया था. हाय! इस निंदनीय मायाने शाखामृगके समान हमको बहुत नचाया॥३७॥

क्व चाऽहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ॥ क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मंगलम्॥ ३४ ॥ सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेंद्रियानिलः॥ यथा न भूय आत्मानमंधे तमसि मज्जये॥३५॥ विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ३६ ॥ मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्याऽऽत्ममायया ॥ विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥३७॥ ममाऽहमिति देहादौ हित्वा मिथ्याऽर्थधीर्मतिम् ॥ धारये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥ ३८ ॥ इति जातसुनिर्वेदः क्षणसंगेन साधुषु ॥ गंगाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबंधनः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः॥ प्रत्याहृतेंद्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥४०॥ ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ॥ युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४१ ॥

अच्छा इस मायाने किया सो किया, परन्तु इस समय सत्यवस्तुमें मेरी बुद्धि उत्पन्न हुई, अब मैं देह इत्यादिमें "अहंता-ममता" इत्यादि बुद्धिको छोडकर भगवान्में अपना चित्त लगाऊंगा। उनके नामका कीर्त्तन इत्यादि करके मेरा चित्त शुद्ध होगया है इसलिये अवश्य उनमें मेरा मन लग जायगा ॥ ३८ ॥ हे राजन्! अजामिलको क्षणभरके लिये साधुसंग आया कि जिससे उसको इस प्रकारका सुन्दर ज्ञान उत्पन्न हुआ, तिसके पीछे वह अजामिल पुत्रादि स्नेहरूप समस्त बन्धन तोडकर गंगाकिनारे हरिद्वारको चला गया ॥ ३९ ॥ और वहांपर एक देवालयमें योगासन लगा कर योगमार्गमें स्थित हो समस्त इंद्रियोंको विषयसे खींचकर आत्मामें मनको लगा दिया ॥ ४० ॥ उसके पीछे देह, इन्द्रिय

यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः ॥ उपलभ्योपलब्धान्प्राग् ववंदे शिरसा द्विजः ॥ ४२ ॥ हित्वा कलेवरं तीर्थे
गंगायां दर्शनादनु ॥ सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥ ४३ ॥ साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिंकरैः ॥ हैमं
विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥ एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा॥ निपात्यमानो
निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥ ४५ ॥ नातः परं कर्मनिबन्धकृंतनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनम् ॥
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥ ४६ ॥ य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ॥
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्याऽनुकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥

इत्यादिसे आत्माको भलीभाँति शुद्ध कर चित्तकी एकाग्रतासे आत्माको ज्ञानमय निजस्वरूप परब्रह्ममें लगा दिया ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे परब्रह्ममें ही उसका चित्त निश्चल हो गया। उस समय उसने कई एक पुरुषोंको देखा, देखते ही पहँचान लिया कि ,पहले भी इन महात्माओंको कहीं देखा है, इसलिये देखते ही शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! उनके दर्शन करनेके पीछे अजामिलने इस तीर्थमें अपनी देह गंगाजीके मध्य त्यागकर भगवान्के पार्षदोंका स्वरूप ग्रहण कर लिया ॥ ४३ ॥ वह महापुरुष उन सब देवदूतोंके साथ सुवर्णमय विमानपर बैठकर जहां भगवान् श्रीपति विराजमान थे आकाशमार्गमें हो वहां पर पहुँचा ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अजामिल ब्राह्मण होकर दासीका पति होनेसे निंदित कर्मोंके द्वारा पतित होगया था, जिससे कि उसके सब धर्म व स्वदारनियमादि समस्त व्रत नष्ट हो गये थे, इसलिये यमदूत उसको नरकमें डालनेके लिये लिये जाते थे, परन्तु भगवन्नामकी महिमा देखो कि, अंतकालमें पुत्रको पुकारनेके मनसे "नारायण" नाम लेते ही सब पापोंसे छूट गया ॥ ४५॥ इसलिये परम पवित्र भक्तजनोंको मोक्षदायक भगवान्के कीर्तनके सिवाय और कोई पापोंका जडसे उखाडने वाला दूसरा उपाय नहीं है । इस कारण जितने प्रायश्चित्त हैं, उनमें रजोगुण व सतोगुणसे मन सदा मलिन ही रहता है परन्तु भगवत्कीर्तनसे मन निर्मल होजाता है और फिर कर्ममें आसक्त नहीं होता ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! यह इतिहास परम गुप्त और पापका नाशक है, जो पुरुष श्रद्धासहित इसको श्रवण करे अथवा भक्तिके साथ औरको सुनावे ॥ ४७ ॥

वह कभी नरकमें नहीं गिरता, अधिक क्या कहैं, यमके दूत उसकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकते, वह पुरुष यद्यपि कैसा ही दुराचारी अतिशय अमंगलरूप हो तो भी विष्णुलोकमें पूजित होता है ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! अजामिलने मृत्युके समय पुत्रके ही नामसे भगवान्का नाम उच्चारण किया था जब कि, वह इस नामके लेते ही समस्त पापोंसे छूट नारायणके धामको चला गया तब श्रद्धा सहित उनके नामको जो उच्चारण करैं उनके पाप छूट जायँ तो संशय क्या है।और जो मनुष्य नित्य हरे कृष्ण ! जय गोविन्द ! ! हे नारायण ! ! ! ऐसा ही कहते रहते हैं, उनकी तो महिमा ही क्या है वे तो परम प्रेमी हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामजामिलोपाख्याने

न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिंकरैः ॥ यद्यप्यमंगलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४८ ॥ म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ॥ अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० षष्ठस्कंधे ऽजामिलोपाख्याने भगवन्नाममाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः ॥ एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥ १ ॥ यमस्य देवस्य न दंडभंगः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ॥ एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं नहि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥ २ ॥

भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–तृतीयमें यमराजने, वैष्णव धर्म बखान । शांत कर दिये दूत सब, कहकर उत्तम ज्ञान ॥ ३ ॥ राजा परीक्षितने पूँछा कि, हे भगवन् ! धर्मराजके दूतोंको जब भगवान्के दूतोंने निकाल दिया, तब अपने स्वामीके निकट आकर अवश्य ही सब वृत्तान्त कहा होगा ! सो सब लोक जिनके वशमें हैं, उन्होंने दूतोंके मुखसे अपनी आज्ञाका भंग सुन उन लोगोंको क्या उत्तर दिया ॥ १ ॥ हे योगिवर ! यमके दंडका भी भंग हो जाता है, यह तो किसी कालमें हमने किसीके मुखसे नहीं सुना, सो इस बातसे सब ही

---

१ भजन– प्रेमी पूरण प्रेम निबाहैं, सोई धन्य प्रेमी जो निशिदिन निज प्रियतमको चाहैं॥ प्रियतम प्रेम रंग जो राते तिनको सकल सराहैं। जिस मनमें प्रेमाग्नी प्रगटी सफल कल्पना दाहैं। कहै रघुवीरदास प्रियतमको प्रेम करत उत्साहैं॥

लोगोंको बडा भारी संशय होगा, सो आपके सिवाय और कोई इस हमारे संशयको नहीं छुडा सकता, यह हमको निश्चय है इसलिये यह आप मुझे समझाकर कहिये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! विष्णुके दूतोंने जब यमदूतोंको निकाल दिया, तब वह लोग भग्नचित्त हो अपने स्वामी धर्मराजके निकट गये और समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३ ॥ यमदूतोंने यमराजसे कहा कि हे प्रभो ! जीवलोकके शासन करनेवाले कितने हैं, हम तो जानते हैं कि जीव तीन प्रकारके कर्म किया करते हैं, परन्तु उनके कर्मफलको प्रगट करनेके कितने कारण हैं ? ॥ ४ ॥ यदि बहुतसे शासन करनेवाले और दंडधारी हों, तब परस्पर उन सबमें विरोध करनेसे किसी प्राणीको सुख और किसीको दुःख दोनों ही हो सकते हैं और जो सबका एक मत हो तो किसीको सुख दुःख नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ कर्म करनेवाले पुरुष बहुत हैं, उनके कर्मफलोंके लिये यदि शिक्षा भी बहुतसी हों तो प्रभुत्व हो सकता है, परन्तु इससे सब शिक्षाओंमें मुख्य जो शासन करना है, वह मण्डलान्तर्वर्ती शासन करनेवालोंकी शिक्षाके समान एक देशमें केवल उपकारकी समान हो जाता है । अर्थात् जिस प्रकार चक्रवर्ती ही मुख्य शासन करनेवाला है, मण्डलेश्वर राजाओंकी प्रभुता तो केवल एक उपचार है वैसे ही सर्व शिक्षाओंका सिखावन और शासन-कर्ताओंके लिये उपचरित पडता है ॥ ६ ॥ यह समझकर कि शासन करनेवाले बहुतसे नहीं होते. हम यही जानते थे कि, एक आप ही ईश्वरके सहित प्राणियोंके अधीश्वर शासन करनेवाले और दंडधारी आप ही मनुष्योंके शुभाशुभका विचार करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ॥ पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमनीपतिम् ॥ ३ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ कति संतीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ॥ त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥ ४ ॥ यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ॥ कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥ ५ ॥ किंतु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ॥ शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मंडलवर्तिनाम् ॥ ६ ॥ अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ॥ शास्ता दंडधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥ ७ ॥

परन्तु आपका किया हुआ दण्ड इस समय लोगोंके मध्यमें नहीं चल सकता, क्योंकि चार अद्भुत सिद्ध पुरुषोंने लीलासे ही आपकी आज्ञाको भंग कर डाला ॥ ८ ॥ हम लोग आपकी आज्ञासे एक पापीको बाँधकर यातनागृहमें ला रहे थे, कि उन लोगोंनें अचानक आनकर आपकी फाँसी तोड़कर बलात्कार उस पापीको हमसे छुडा लिया ॥ ९ ॥ सो हे प्रभो! यदि आप हमारा हित चाहते हैं तो हमको यह बतला दीजिये कि, वह कौन हैं? हम आपके निकट उनके जाननेकी इच्छा करते हैं; क्योंकि यदि हम लोगोंने अज्ञानसे उनकी अवज्ञा की तो कहीं उलटा आपका ही बुरा न हो जावे ? हे देव ! उन पुरुषोंका बडा ही प्रभाव है. उस पातकीने "नारायण" इतना ही शब्द उच्चारण किया था कि वह लोग "भय नहीं, भय नहीं" ऐसा कहते शीघ्रतासे आगये ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! प्रजासंयमनकारी यमराज अपने दूतोंसे इस प्रकार पूँछ कर प्रसन्न हो भगवान हरिके चरणारविन्दोंको स्मरण करते करते उत्तर देने लगे ॥ ११ ॥ यमराज बोले हे दूतगण ! हमारे सिवाय एक और पुरुष इस जंगम स्थावर सबके ही सर्वप्रधान अधीश्वर हैं, हम तो उनके किंकर उनके बनानेसे ही जंगमपदार्थके ईश्वर हुए हैं। उनमें भी केवल पापी मनुष्योंके ऊपर ही प्रभुता करनेका हमें सामर्थ्य है। जिस प्रकार तागे (डोरे) में वस्त्र टँका हुआ रहता है, वैसे ही जिसमें यह विश्व टँका हुआ है, जिसके अंशस्वरूप ब्रह्मा, महेश्वरसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति, लय होती है, सो यह समस्त लोक ही नथे हुए बैलके समान उसके वशमें चलते हैं ॥ १२ ॥ जिस प्रकार रस्सीमें बैल बँधे रहते हैं, ऐसे ही भगवानने ब्राह्मणादि नामसे वेदवाक्यरूप अपने सूत्रमें सब लोकोंको बांध लिया है, अधिक करके यह

तस्य ते विहतो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ॥ चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलंभिता ॥ ८ ॥ नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ॥ व्यामोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥ ९ ॥ तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ॥ नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ॥ प्रीतस्स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ॥ यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥ १२ ॥ यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तंत्यामिव दामभिर्गाः ॥ यस्मै बलिं त इमे नामकर्मनिबंधबद्धाश्चकितं वहन्ति ॥ १३ ॥

सब जीव जो नाम और कर्मरूप बन्धनसे बँधे हुए हैं और यही जीव चकित होकर जिसके निमित्त बलि वहन करते हैं अर्थात् जिसके वश हो रहे हैं और कर्म करते हैं॥१३॥ जिसकी लीला अचिंतनीय है,इसलिये हम महेन्द्र,निर्ऋति,वरुण,अग्नि,वायु,चन्द्र,सूर्य,ब्रह्मा,महेश्वर,विश्वेदेवगण, वसुगण, साध्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण और सिद्धगण ॥ १४ ॥और प्रधान प्रधान देवता जो कि इस विश्वके रचनेवाले हैं और भृगु इत्यादि महर्षि जो लोग कदापि रजोगुण और तमोगुणको छूते भी नहीं हैं, वह सब सतोगुण प्रधान होकर भी जिनकी चेष्टाको नहीं जान सकते, हे दूतगण! इनके सिवाय दूसरे पुरुष जो कि मायामें लिपटे हुए हैं, वह लोग किस प्रकार उन्हें जान सकते हैं ॥ १५ ॥ मायामोहमें लगा हुआ कोई भी उनके जाननेको समर्थ नहीं होता और जो इन्द्रिय आदिकोंके भी विषय नहा हैं अर्थात् इन्द्रिय,मन,प्राण,चित्त और वाणी इत्यादि किसी

अहं महेंद्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिंचः॥आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणाः रुद्र
गणाः ससिद्धाः ॥ १४ ॥ अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ॥ यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमाया
सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥१५ ॥ यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते॥ आत्मानमंत
र्हृदि संतमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥१६ ॥ तस्यात्मतंत्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः॥
प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरंति तद्रूपगुणस्वभावाः॥१७॥भृतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिंगानि महाद्भुतानि॥
रक्षंति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥१८ ॥

प्रकारसे भी प्राणीगण जिसको नहीं देख सकते और जो कि,सब जीवोंके हृदयमें उनके अन्तर द्रष्टास्वरूप हो वर्तमान हैं इसलिये रूपादिकको जिस प्रकार नेत्र प्रकाश कर सकते हैं वैसे ही इन्द्रियादिक उनके प्रगट करनेको असमर्थ नहीं हैं,सो इस प्रकारके अधीश्वर केवल एकही हैं ॥१६॥आत्मतत्त्व,सबके प्रभु,पर,मायाधिपति अतिशय महात्मा हैं,तुम लोग जिनका वृत्तान्त कहते हो सो हमको निश्चय है कि,वह सब उनहीं भगवानके दूत होंगे क्योंकि,भगवानके दूत प्रायः उनकेही तुल्य रूप गुण प्रभाव और स्वभाव युक्त हो मनोहर मूर्ति धारण किये हुए घूमा करते हैं॥१७॥ हे दूतो! भगवानके भृत्यगण देवताओंसे पूजित हैं, जिनका दर्शन अति कठिनतासे प्राप्त होता है, इसलिये महाअद्भुत दूत विष्णुके भक्त

मनुष्योंकी शत्रुसे सर्वदा और अग्नि जल इत्यादि सर्व पदार्थसे सब भाँति रक्षा करते हैं ॥ १८ ॥ तुम लोग इस प्रकारकी शंका अपने मनमें मत लाओ कि, उन्होंने विष्णुभक्त हो किस प्रकारसे अजामिलको छुडाकर अधर्मका पक्षपात किया, क्योंकि साक्षात् भगवत्प्रणीत जो धर्म है उसको क्या भृगु इत्यादि ऋषि, क्या देवता, क्या सिद्धगण, क्या असुरनिकर, क्या विद्याधर, क्या चारण, कोई भी नहीं जानता, फिर उसको मनुष्य लोग किस प्रकार जान सकेंगे * ॥ १९ ॥ केवल स्वयम्भू[१], शंभु[२], नारद[३], सनत्कुमार[४], मनु[५], कपिल[६], प्रह्लाद[७], जनक[८], भीष्म[९], बलि[१०], शुकदेव[११] और हम[१२] ॥ २० ॥ हे दूतो ! बस यह केवल बारह जन ही भागवत धर्मको जानते हैं, वह धर्म अतिशय गुप्त है, अत्यन्त दुर्बोध्य है। परन्तु इसके जानते ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ २१ ॥ हे सेनागण ! नामकीर्तनादिसे भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोगका करना है, वही इस लोकमें पुरुषोंका परम धर्म है, उसको ही भागवत धर्म कहते हैं ॥ २२ ॥ हे सब पुत्रो ! भगवानके नाम उच्चारण करनेका माहात्म्य देखो कि, केवल नामका ही उच्चारण करके पापी अजामिल मृत्युकी फाँसीसे छूट गया ॥ २३ ॥

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ॥ न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः
॥ १९ ॥ स्वयंभूर्नारदः शंभुः कुमारः कपिलो मनुः ॥ प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशैते
विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ॥ गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २१ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः
परः स्मृतः ॥ भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ॥ अजामि
लोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३ ॥

---

* **शंका**–यमराजने अपने दूतोंसे कहा कि, हे दूतो! भागवत धर्मको ऋषि लोग भी नहीं जानते, प्रह्लाद और जनकजीको आदि लेकर हम बारह जन भागवत धर्मको जानते हैं, यह बडे आश्चर्यकी बात है कि, जिन मुनियोंको भगवान्के दास कहते हैं, सो मुनि जन भगवान्के धर्म जाननेमें प्रह्लादसे भी मूर्ख होगये यह भारी सन्देह है ?

उत्तर–मुनिजन भगवान्से भी बडे हैं, दूसरे प्राणीसे किसी काममें छोटे क्यों होंगे ? भक्त त्रिलोकीमें सबसे बडे हैं परन्तु तपस्याके अभिमानसे भागवतरूप धर्मको नहीं देखते और विचारते हैं, क्या हमारे तपसे भागवतधर्म बडा है ? ऋषिजन तपस्या करके अभिमानी हो रहे हैं इसलिये भागवत धर्मको नहीं जानते और प्रह्लाद जनक आदि सीधे साधु हैं इनको भगवान्के सिवाय और कोई दूसरा आधार ही नहीं, इसलिये भागवतधर्म जाननेको यमराज अपने दूतोंसे कहते थे ॥

इसलिये भगवान्के गुण कर्म और नाम इन सबको भलीप्रकार कीर्तन करना ही मुख्य है,वह सब पापोंको क्षय कर सकता है.क्योंकि महापापी अजामिलने अपवित्र व मरणावस्थामें नारायण कहा,अपने पुत्रके पुकारनेके बहानेसे इससे उसका पाप ही नहीं छूटा बरन् वह मुक्तिको भी प्राप्त हो गया॥२४॥यदि कहो कि भगवत-नामके स्मरण मात्रसे ही जो अशेष पापोंका क्षय हो जाता है, तब द्वादशवार्षिक प्रायश्चित्त इत्यादि क्यों है? (उत्तर) इन सब स्मृतिकार महापुरुषोंकी मति दैवी मायासे अत्यन्त मोहित हो रही थी इसलिये इस गुप्त नामके माहात्म्यको न जानकर उन्होंने द्वादशवार्षिक व्रतादि प्रायश्चित्त स्मरण किये हैं। अर्थवादसे मनोहर जो सब वेदकी विधि है उसमें ही उनका चित्त नष्ट हो गया था, इसलिये वह स्वयं श्रद्धासहित वेदोक्त अग्निष्टोमादि बडे २ यज्ञादि कर्म करनेमें लगे रहते थे, जो सब लोग नामके माहात्म्यको जान लेंगे,बारह ऋषियोंसे अधिक और जो स्मृतिकार थे वह सब दैवी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे थे,और पुष्पकी समान जिसकी सुगंधि

एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ॥ विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति
म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥ २४ ॥ प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ॥ त्रय्यां
जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥ २५ ॥

दशों दिशाको पवित्र कर रही है और चांदनीके तुल्य जगतमें छिटक रही है, ऐसी वेदत्रयीकी परमोत्तम वाणीमें जडबुद्धि बन रहे हैं और इस गुप्त नामके माहात्म्यको कुछ भी नहीं जानते और द्वादशवार्षिक व्रतादि बडे बडे प्रायश्चित्त बतलाते हैं और महाभारी यज्ञादिक कर्मोंमें लिपट रहते हैं और भगवानके नामको छोटा प्रायश्चित्त समझते हैं फिर छोटे लोगोंकी श्रद्धा उनमें कैसे हो सकती है, इसलिये उन लोगोंने बडे बडे प्रायश्चित्त बताकर संसारी पुरुषोंको भ्रमजालमें डाल रक्खा है। परन्तु वाल्मीकि नारदकी कथाको वह भी भलीभांतिसे जानते हैं और रामनामके प्रभावका जानना तो महाकठिन है परन्तु यह जानते हैं कि "रामनाम" मोक्षदायक है,इसलिये भी छोटे लोगोंको बडा प्रायश्चित्त बताते हैं, मूर्खोंका चित्त बडी वस्तु पर जमता है क्योंकि छोटी वस्तुको बहुत तुच्छ समझते हैं इसलिये रामनामका जो गूढ मंत्र है, उसकी महिमा मूर्खोंके सामने प्रगट नहीं करते कि, दो अक्षरोंपर उनकी श्रद्धा न होगी, इस कारण उन मुनिलोगोंने बडे २ प्रायश्चित्त बताये हैं

और यह भी समझा कि जो सभी मनुष्य नामके माहात्म्यको जान लेंगे तो जीवन्मुक्त हो जायँगे जैसे अमृतसञ्जीवनीको नहीं पहँचानते तब वह वैद्य रोगीकी शांतिके लिये सोंठ, मिर्च, जीरा, इलायची, हींग, पोदीना, सुहागा और सेंधानमकका चूर्ण बतलाते हैं अथवा निम्बादिक चूर्ण बताते हैं, प्रथम तो सञ्जीवनीका जानना कठिन और जिन्होंने जान रक्खी है वह अमूल्य समझकर किसीको देते नहीं, जैसे मृगराज सिंह अपने वशमें हो तो चतुर लोगोंको उचित है कि श्वान, गीदड़, हारिणादिक छोटे छोटे जन्तुओं पर उसको कौन छोडे ऐसे ही तुच्छ पापकी

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनंते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ॥
ते मे न दंडमर्हत्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हंत्युरुगायवादः ॥ २६ ॥

निवृत्तिके लिये सर्वानन्ददायक परममांगलिक रामनामका उपयोग करना ठीक नहीं, क्योंकि किञ्चिन्मात्र पापके लिये ऐसे अमूल्य रत्न रामनामसे प्रायश्चित्त करना नहीं, इस बात पर एक दृष्टांत है[1] ॥ २५ ॥ हे वत्सगण! जो बुद्धिमान् मनुष्य यह सब विचार करके भगवान् अनंतमें संपूर्ण अन्तःकरणसे भक्तियोगका विधान करते हैं वह कभी हमारे दण्डको प्राप्त होनेके योग्य नहीं हैं, उनमें पाप हो ही नहीं सकता, यदि कदाचित्

---

[1] दृष्टान्त—एक मुनीश्वर तप कर रहे थे, इतनेमें कोई कुष्ठी (कोढी) उनकी शरणमें आया और कहा कि, हे दीनदयाल ! मेरे कुष्ठका आप कुछ उपाय बताइये ! परंतु वह तो ध्यानमें थे, कुछे उन्होंने न सुना, उसने फिर कहा, फिर मुनिने न सुना, फिर उसने तीसरी वार कहा, फिर मुनिने ध्यान न किया, जब फिर वह चौंथी वार कहनेको उद्यत हुआ, तब मुनिके चेलेने अपने मनमें विचारा कि जो इसके गंभीर शब्दसे गुरुजीकी समाधि टूट गई तो मेरे ऊपर बडा भारी क्रोध करेंगे, इसलिये उसने गुरुसे भय मान कुष्ठीसे कहा कि, तीन वार रामका नाम ले, तेरा कुष्ठ सब जाता रहेगा और शरीर शुद्ध होजायगा। उसने जो तीन वार "राम राम" कहा तो कुष्ठ जाता रहा और शरीर कुन्दन लालके समान होगया। मुनीश्वर जब समाधिसे जागे तो चेलेकी ओरसे मुँह फेर लिया और न बोले, तब तो चेलेने अपने मनमें बडा दुःख माना और कहने लगा कि, ऐसा मुझसे क्या अपराध हुआ जो गुरुजी क्रोधित होगये, फिर चरणोंमें शिर झुका विनती कर बोला कि, हे स्वामिन्! मुझ दीनसे ऐसा क्या अपराध हुआ जो मेरी ओरसे आपने मुख फेर लिया, कृपा करके मुझसे कहिये जो मेरे मनका संदेह जाय. तब मुनि बोले कि, अरे मूर्ख ! तैंने रामनामकी महिमाको कुछ न जानी, जिस रामनामको एक वार कहनेसे करोडों कुष्ठी अच्छे हो सकते हैं ऐसे रामनामको तीन वार कहलाकर एक कुष्ठी तैंने अच्छा किया, रामनामके प्रभावको तुच्छ समझा? अच्छा जो किया सो किया अब फिर कभी ऐसा मत करना सो रामनामकी महिमाको शेष, शारदा और ब्रह्मा, नारद भी नहीं जानते।

हो भी जाय तो भगवानके नाम-कीर्तन करनेसे तत्क्षण उस पापका नाश हो जाता है॥२६॥इस समय तुम सब हमारी आज्ञा और वचन सुनकर मनमें स्मरण रक्खो कि,जो साधु नारायणके शरण हैं,सर्वत्र समदर्शी हैं,देवता और सिद्ध लोग जिनकी पवित्र कथाओंको रात दिन वर्णन किया करते हैं, ऐसे साधुओंके निकट तुम लोग कभी मत जाना,क्योंकि उनके निकट भगवानकी गदा सदा सर्वप्रकारसे रक्षा किया करती है, इसलिये उनको दण्ड देनेके लिये हमारा तो क्या सामर्थ्य है काल भी उनका कुछ नहीं कर सकता ॥२७॥ परन्तु जो मनुष्य असाधु हैं, जो कि निष्किंचन परमहंसोंके सङ्गसे हीन हो सदा उनकी निन्दा किया करते हैं, उन मुकुन्दके पादारविन्द मकरन्दका रस पान करनेमें विमुख नरकके मार्गस्वरूप जो अपने धर्मका शून्य गृह है उसमें ही तृष्णा बाँधे रहते हैं,उन लोगोंको हमारे निकट बेखटके ले आया करो ॥२८॥

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः॥तान्नोपसीदत हरेर्गदयाऽभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दंडे ॥ २७ ॥ तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुंदपादारविंदमकरंदरसादजस्रम् ॥ निष्किंचनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान्॥२८॥जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविंदम्॥ कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥२९॥तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुषः पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ॥ स्वानामहो न विदुषां रचितांजलीनां क्षांतिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥ ३० ॥

और जिनकी जीभ कभी भगवानका गुणवर्णन या नाम-उच्चारण नहीं करती और जिनका मस्तक कभी भगवानके चरणकमलमें नहीं झुका, जिन्होंने एकबार भी नारायणका व्रत नहीं किया, उन्हीं सब पुरुषोंको हमारे निकट लाना॥ २९ ॥ धर्मराज अपने दूतोंको इस प्रकार आज्ञा करके फिर भगवानसे अपना अपराध क्षमा कराने लगे और बोले कि, हे नाथ! इस समय हमारे पुरुष जो अन्याय कर्म कर आये हैं और आपके भक्तोंका तिरस्कार किया है, सो आप पुराणपुरुष भगवान् इस अपराधको क्षमा करैं। हम लोग तो आपके ही बनाये हैं। सो हम माहात्म्यको न जानकर अपराध करके हाथ जोड़ रहे हैं इसलिये हमारा अपराध क्षमा किया जाय॥ ३० ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे कौरव! भगवान् विष्णुजीके नाम-कीर्तन करना जगत्का मंगलरूप है. निश्चय जान लो कि, इस नामके कीर्तनसे बडे बडे पाप बिलाय जाते हैं॥३१॥३२॥हे राजन्! भगवान् हरिके उद्यम वीर्य पराक्रमके बार बार श्रवण करने और कहनेवाले पुरुषोंका चित्त उत्पन्न हुई भक्तिके द्वारा जिस प्रकार शुद्ध होता है, वैसे व्रतादिकोंसे शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ इसलिये जो पुरुष भगवानके चरणारविन्दका स्वाद एक बार प्राप्त कर लेता है,उसकी पापाचारमें फिर रति नहीं होती; परन्तु इस स्वादसे जो पुरुष वञ्चित हैं,वह कामसे हत हो अपने पापसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तरूप उस कर्मके ही करनेकी चेष्टा करते हैं,जिससे फिर पाप

तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मंगलमंहसाम् ॥ महतामपि कौरव्य विद्धयैकांतिकनिष्कृतिम् ॥ ३१ ॥ शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ॥ यथा सुजातया भक्त्या शुद्धयेन्नात्मा व्रतादिभिः ॥ ३२ ॥ कृष्णांघ्रिपद्ममधुलिण् न पुन विंसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु॥अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमाष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात्॥३३॥ इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिंकरास्ते ॥ नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशंकमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥ ३४ ॥इतिहासमिम गुह्यं भगवान्कुम्भसंभवः ॥ कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥ ३५ ॥इति श्रीमद्भा० षष्ठस्कंधेऽजामिलोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यमके दूत अपने स्वामी यमराजके मुखसे भगवन्नामका माहात्म्य श्रवण करके विस्मित चित्त हुए उस समयसे नारायणके भक्तको देखते ही "अरे यह पुरुष हम लोगोंका नाश कर देगा" ऐसी आशंका करते उसकी ओरको देखते हुए भी डरते हैं ॥३५॥ हे कौरव ! महर्षि अगस्त्यजीने मलयाचलपर बैठकर विश्वास होनेके लिये वारंवार भगवान् हरिके चरणारविन्दोंकी पूजा करते करते यह गुप्त इतिहास कहा था । इसपर एक पद है:– इति श्रीभाभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां अजामिलोपाख्याने स्वभटान्प्रति यमेन भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

९७२

---

१ ठुमरी–हरे राम कहो, हरे राम कहो, राम कहो हरे हरे ॥ टेर ॥ मीन वराह हरी औ कच्छप रामचंद्र अवतार धरे । परशुराम,नरसिंह,कृष्ण, बल, सनकादिक चारों विचरे ॥१॥नर, नारायण, यज्ञपुरुष हैं कपिलदेव, हयग्रीव तरे । दत्तात्रेय, ऋषभ, मन्वंतर, पृथू, मोहिनी अति सुघरे॥ २ ॥ नारद, वमन, हंस, व्यास, प्रभु बौद्ध होयकर ज्ञान करे । कल्की, कलियुग अंतमाहि भये, यह चौबीसों रूप धरे ॥ ३ ॥ रंगनाथजी जगन्नाथजी पुरी द्वारका नाथ बरे । गोवर्द्धनके नाथ नाथ जग बद्रीनाथ नरनाथ खरे ॥ ४ ॥ जगदीश्वर परमेश्वर स्वामी सर्वेश्वर सब ठौर सरे । कमजनयन कमलापति केशव कंसकेशकर काल करे ॥ ५ ॥ मनमोहन मथुरा मन मज्जन मन्मथ मुरली मुकुट मुरे ॥ ६ ॥

दोहा–चौथे माहिं प्रजान हित,तपे दक्ष परबीन । हंसगुह्य सु स्तोत्रसे, हरि–आराधन कीन ॥१॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सुर, असुर, नर, नाग, मृग और पक्षी इत्यादि सृष्टिकी कथा आपने जो संक्षेपसे प्रथम (तीसरे स्कन्धमें) कही है ॥ १ ॥ अब उसको ही विस्तारसे हम आपके मुखसे सुनना चाहते हैं और परमपुरुष भगवान् ब्रह्माजीने प्रत्येक सर्गमें जिस शक्तिके द्वारा जिस प्रकारकी सृष्टि रची है उस शक्ति सहित और जो पीछे सृष्टि रची गई उसके सुननेकी हमारी अभिलाषा है ॥ २ ॥ इतनी कथा कहनेके उपरान्त पुराणवक्ता सूतजी शौनकादि मुनिगणोंसे बोले कि, हे ऋषिवर्यवर्ग ! महायोगी व्यासपुत्र शुकदेवजी राजा परीक्षितकी इस प्रार्थनासे प्रसन्न हुए और आनन्द प्रकाश करके कहने लगे ॥ ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! प्राचीनबर्हिके पुत्र दश प्रचेताओंने समुद्रके भीतरसे निकल कर देखा कि, पृथ्वीमण्डल विविध वृक्ष लताओंसे युक्त हो रहा है । हे कुरुवंशावतंम ! वृक्ष लतादिकोंसे इस प्रकार पृथ्वीके छा जानेका कारण यह है कि, नारदजीके उपदेशसे प्रचेता लोगोंने निवृत्तिमार्ग अवलम्बन कर लिया जिससे कि, राजाके विना पृथ्वीपर खेती इत्यादि नहीं हुई ॥ ४ ॥ तपस्याके करनेसे प्रचेता लोगोंको क्रोध उत्पन्न हुआ था सो पृथ्वीको इस प्रकार लता वृक्षादिकोंसे छाई हुई देख वह लोग वृक्षोंके ऊपर महाकोपित हुए और इन सबको भस्म करके निर्मूल करनेके लिए तत्क्षण उन लोगोंने अपने मुखसे वायु और अग्नि उत्पन्न की ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जब वायु और अग्निसे सब वृक्ष भस्म होने लगे तब वृक्षादिकोंके राजा भगवान् चंद्रमा प्रचेता लोगोंका

राजोवाच ॥ देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ॥ सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेऽतरे ॥ १ ॥
तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्यथा ॥ अनुसर्गं यथा शक्त्या ससर्ज भग वान्परः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥
इति संप्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ॥ प्रतिनंद्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा
प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ॥ अंतस्समुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥ ४ ॥ द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपि
तमन्यवः ॥ मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥ ५ ॥ ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ॥ राजोवाच
महान्सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥ ६ ॥

कोप शांत करनेकी कामना कर उनसे बोले ॥ ६ ॥ हे महाभागो ! वृक्ष अतिदीन हैं, इनका द्रोह करना तुमको उचित नहीं, तुम तो प्रजापति हो इसलिये विशेषरूपसे प्रजाके बढानेकी तुम लोग इच्छा करनेवाले हो। इन वृक्षोंको इस प्रकारसे निर्मूल करना तुम्हारे लिये अति अयोग्य बात है ॥ ७ ॥ हे वत्सगण ! प्रजापतियोंके पति सर्वान्तर्यामी भगवान्‌ने पृथ्वीके वृक्ष व औषधियोंको भक्ष्य और अन्नको उत्पन्न किया है ॥ ॥ ८ ॥ इसलिये अचर पदार्थ चर पुरुषोंके खाद्य हैं, अपद पदार्थ पादचारियोंके भक्ष्य हैं, हस्तरहित प्राणी, हस्तयुक्त प्राणियोंके भोजन हैं और चौपाये जन्तु दुपाये जंतुओंके आहार हुए हैं। सो उन भक्ष्य, भोज्य, इत्यादिको भस्म करके निर्मूल करना प्रजापतिलोगोंको उचित

मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ॥ विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥७ ॥ अहो प्रजापतिपतिर्भ
गवान्हरिरव्ययः ॥ वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥ ८ ॥ अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ॥ अहस्ता
हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥ ९ ॥ यूयं च पित्राऽन्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ॥ प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्द
ग्धुमर्हथ ॥ १० ॥ आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ॥ पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥ ११ ॥

नहीं है * ॥९॥ हे पापरहित वत्सगण ! तुम लोगोंके पिता देवदेव प्राचीनबर्हिजीने तुम लोगोंको प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है और इन वृक्षोंसे प्रजाकी जीविका होती है फिर भला इन वृक्षोंको तुम किस प्रकार भस्म करना चाहते हो ॥ १० ॥ तुम लोग स्थिर होओ और साधु पुरुष जिस मार्गपर चलते हैं, उसीपर तुम भी चलो और यह महाकोप जो तुमको उत्पन्न हुआ है, इसको त्याग दो। हे वत्सगण! हम तुमसे जिस मार्गका अवलम्बन करनेको कहते हैं, उस मार्गका सेवन करो, क्योंकि तुम्हारे पिता पितामह और प्रपितामह जिस मार्गका सेवन

---

* **शंका**–चन्द्रमाने प्रचेताओंसे कहा कि, मनुष्यका आहार पशु है, यह बडे आश्चर्यकी बात है।

उत्तर–द्विपदानां चतुष्पदाः–इस श्लोकका अर्थ चन्द्रमाने चतुष्पद अर्थात् चार पदवाले पशुको नहीं कहा, यहां ऐसा अर्थ किया है कि, चार प्रकारके भोजन हैं, भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य इन चार प्रकारके भोजनोंको चतुष्पद कहा सो चार प्रकारके स्वाद हैं, सोई पुरुषोंको प्रसन्न करनेवाले आहार चार प्रकारके भोजन कहे. यहां चतुष्पदसे चार पाँववाले पशुको चन्द्रमाने नहीं कहा ॥

करते आये हैं और कुलमें आजतक ऐसा काम किसीने नहीं किया ॥ ॥ ११ ॥ और विचार करके देखो कि, जिस प्रकारसे बालकोंके पिता माता ही रक्षक हैं, आँखोंके पलक ही रक्षक हैं, स्त्रियोंके पति ही रक्षक हैं, भिक्षुकोंके गृहस्थ ही रक्षक हैं, अज्ञानियोंके ज्ञानी ही ज्ञानदायक हैं, वैसे ही प्रजाके प्रजापतिलोग बंधु हैं,सो तुम लोग प्रजापति हो, इसलिये प्रजाकी जीविका नष्ट करना तुमको किसी प्रकार उचित नहीं है ॥१२॥ और सब भूतोंकी देहके भीतर आत्मा स्वरूपमें परमेश्वर भगवान् हरि वर्तमान रहते हैं इसलिये सब जीवोंमें भगवान् हरिका स्थान समझना चाहिये। इस प्रकार करनेसे ही तुम लोग भगवान्को संतोष करा सकोगे ॥१३॥ हे वत्सगण ! जो पुरुष आत्मारूप आकाशसे अकस्मात् उत्पन्न हुये महातीव्र क्रोधको ब्रह्मज्ञानसे जीत लेता है, उसने मानो सब ही गुणोंको जीत लिया ॥ १४ ॥ इसलिये तुम अब इन दीन हीन

तोकानां पितरौ बंधुर्दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ॥ पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥ १२ ॥ अंतर्देहेषु
भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः ॥ सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥ यः समुत्पतितं देह आकाशान्म
न्युमुल्बणम् ॥ आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥ १४ ॥ अलं दग्धैर्दुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ॥
वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥ इत्यामंत्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ॥ सोमो राजा ययौ
दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥ १६ ॥ तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल ॥ यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरिता
स्त्रयः ॥ १७ ॥ यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥ १८ ॥

वृक्षोंको मत जलाओ, जो जल गये सो जल गये, बचे हुए इन सब वृक्षोंको रहने दो. तुम्हारा मंगल हो. इन सब वृक्षोंने एक कन्याको प्रतिपालन कर रक्खा है, सो तुमको वही यह कन्या दान करते हैं. कह कन्या अतिश्रेष्ठ है,तुम पाणिग्रहण करके इसको अपनी पत्नी बनाओ ॥१५॥ हे राजन् ! चन्द्रमाने इस प्रकार समझा बुझाकर आपही उद्योगी हो प्रम्लोचा अप्सराकी वह कन्या प्रचेता लोगोंको देदी. उन लोगोंने भी धर्मसहित उसका पाणिग्रहण किया॥१६॥उस कन्याके गर्भमें प्रचेताओंसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए जिनके उत्पन्न किये प्रजासमूहसे तीनों लोक परिपूर्ण होगये॥१७॥ हे राजन् ! वह दक्ष अपनी बेटियोंका बहुत प्यार करते थे, उन्होंने जिस प्रकार शुक्र और मनके द्वारा सब भूतोंकी

सृष्टि उत्पन्न की; अब सावधान होकर यह सब वृत्तांत तुम हमसे सुनो ॥ १८ ॥ हे कौरवश्रेष्ठ ! प्रजापति दक्षने प्रथम सुर, असुर, मनुष्य इत्यादि आकाशचारी, भूमिचारी, और जलचारी, सब प्रजाओंको मनसे उत्पन्न किया ॥१९॥ परंतु इससे प्रजाकी सृष्टि किसी प्रकारसे भी नहीं बढ़ी यह देखकर दक्षप्रजापतिने विन्ध्याचलके निकटवाले एक छोटे पर्वत पर जाय अति दुष्कर तपस्या करनी आरंभ की ॥ २० ॥ उस पर्वतके निकट ही अघमर्षण नामक एक पापका नाश करनेवाला तीर्थ था. चित्रकूटसे बारह (१२) कोश आग्नेय कोणकी ओरको और प्रयागसे बीस (२०) कोश नैर्ऋत्य दिशाकी ओर और रीवांसे बारह (१२) कोश वायव्य कोणकी ओरको, उसी तीर्थमें तीनों कालकी संध्यामें स्नान करके दक्ष भगवान् हरिको सन्तोषित करने लगे ॥ २१ ॥ और हंसगुह्य नामक प्रसिद्ध स्तोत्र पढकर भगवान् अधोक्षजकी स्तुति करने लगे । हे राजन् ! भगवान् हरि जिस प्रकार प्रजापति दक्षके ऊपर प्रसन्न हुए वह हम तुमसे कहते हैं सो तुम सुनो ॥२२॥ हंसगुह्य नामक स्तोत्रकी प्रजापति दक्षजीने इस प्रकार स्तुति की थी–उनकी चिर शक्ति सत्य है इसलिये वह जीव और माया दोनोंके नियामक हैं। परंतु इस प्रकार होनेसे भी जिन समस्त जीवोंके गुणोंमें ही तत्त्वबुद्धि है वह उनका स्वरूप नहीं देख सकते, क्योंकि उनका परिमाण और सीमा नहीं है और वह स्वयं प्रकाश पाते हैं. इसी कारण सिद्ध वस्तु हैं, ऐसे सर्वोत्तम देवको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ॥ २३ ॥ गुण अर्थात् विषय जिस प्रकार गुणीके अर्थात् इंद्रियादि विषयोंके सख्य अर्थात् प्रकाशत्वको नहीं जानता वैसे ही सखा जीव भी

मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ॥ देवासुरमनुष्यादीन्नभस्स्थलजलौकसः ॥१९ ॥ तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ॥ विंध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः ॥ २० ॥ तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ॥ उपस्पृश्यानुसवनं तपसाऽतोषयद्धरिम् ॥ २१ ॥ अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवंतमधोक्षजम् ॥ तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः ॥२२ ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबंधवे ॥ अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे ॥ २३ ॥ न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन्संवसतः पुरेऽस्मिन्॥ गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥ २४ ॥

इस देहरूप पुरमें वास करके इस स्थानमें वास करनेवाले जो सखा हैं उनके इंद्रियप्रवर्तकत्वादिरूप सख्यको नहीं जान सकता, क्योंकि उस जीवकी दृष्टि प्रपंचमें ही बँधी रहती है, ऐसे महा ऐश्वर्यवान् ईश्वरको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २४ ॥ अहो ! देह, प्राण, इंद्रिय, अन्तःकरण; पञ्चभूत पञ्चतन्मात्रा, यह सब आत्माको अर्थात् अपने स्वरूपको और इंद्रियवर्गको और इन दोनोंमें श्रेष्ठ देवतावर्गको नहीं जान सकते यद्यपि पुरुष अर्थात् जीव इन तीन और इन तीनके मूलीभूत समस्त गुणोंको भी जानते हैं, तो वह ऐसे ज्ञाता होकर भी सर्वज्ञ भगवानको नहीं जान सकते । ऐसे अनन्त भगवानकी मैं स्तुति करता हूँ ॥२५॥ जिनके द्वारा नाम रूपका निरूपण होता है वह मनकी दृष्टि, स्मृति, विनाशके हेतु जब उपरम अर्थात् समाधिस्थ हो जाते हैं उस समय केवल स्वरूपज्ञानसे जो प्रतीत होते हैं उन शुद्ध हंसको हम नमस्कार करते हैं. उनके प्रतीत

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ॥ सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनंतमीडे ॥ २५ ॥ यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात्॥ य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥२६॥ मनीषिणोंऽतर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ॥ वह्निं यथा दारुणि पांचदश्यं मनीषया निष्कर्षंति गूढम् ॥ २७ ॥ स वै ममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः॥ स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥ यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाऽक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य॥ मा भूत्स्वरूपं गुणरूपं बृंहितं स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥ २९ ॥

होनेका स्थान भी अतिशय पवित्र है ॥२६॥ जो प्रकृति पुरुष महत् अहंकार और पञ्चतन्मात्रा इन नव और तीन गुण और षोडश विकारस्वरूप अपनी शक्तिके द्वारा हृदयके मध्यमें निश्चल हो रहे हैं और यज्ञ करनेवाले पन्द्रह सामिधेनी मन्त्रोंसे प्रकाशित होनेवाले अलौकिक अग्निके समान अतिशय गूढ होनेके कारण विवेकी पुरुष बुद्धिसे विचार और खैंचकर जिनका ध्यान करते हैं ॥२७॥ वह परमात्मा हमपर प्रसन्न हों. जो ईश्वर सबसे बड़े हैं, जिनके अनंत विशेषण हैं और जिनके मोक्षसुखका अनुभव मायाके द्वारा निषेध नहीं होता, वही भगवान् सर्वनामधारी ईश्वर और विश्वरूप हैं जिनकी आत्मीय शक्तिका कोई वर्णन नहीं कर सकता है, वह परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥२८॥ अहो ! जो स्वयं

प्रकाश है, इसलिये जो वचनसे कहनेमें आता है, बुद्धिके द्वारा जिसका व्यवहार होता है, इन्द्रियोंसे जो निरूपित होता है, मनके द्वारा जो संकल्पित होता है और यह संपूर्ण भी जिसका स्वरूप नहीं होसकते. क्योंकि यह सब पदार्थ गुणोंसे बढ़ते हैं सो परमात्मा इन सबसे अलग हैं, क्योंकि वह सब गुणोंकी उत्पत्ति और प्रलयसे अलग दृष्टि आते हैं ॥२९॥ जिस अधिकरणमें, जिस अपादानसे जिस कारणसे, जिसके सम्प्रदानक, जिस कर्मके और जिस करके जिस प्रकारसे कौन कर्म कृत अथवा कारित होता है, वही सबका ब्रह्म है वही सबका कारण है क्योंकि वह सबके आगे अपने आपसे ही सिद्ध हो रहे हैं, वह पर और अपर सबका ही परमकारण हैं और विजातीय शून्य हैं ॥ ३० ॥ जिनकी शक्ति वाद विवाद करनेवाले वादियोंके विवादसंवादकी भूमि है और ब्रह्मको ही अपने अपनेमें सब कहते हैं, जब सब पदार्थोंमें ब्रह्मका ही स्वरूप

यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च॥ परावरेषां परमं प्राक्प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥
॥ ३० ॥ यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवंति ॥ कुर्वंति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनंतगुणाय
भूम्ने ॥ ३१ ॥अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः॥अवेक्षितं किंचन योगसांख्ययोः समं
परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥ ३२ ॥

है और सब पदार्थोंका कारण है फिर भी मीमांसक लोग परस्पर क्यों वाद विवाद करते हैं? कोई कहता है, यह जगत् सदा ऐसे ही चला आता है, और यह जगत् न कभी उत्पन्न होता है, न कभी नाश होता है और विवादी लोग लोकमें अनेक अनेक प्रकारके वाद विषाद किया करते हैं और मोह ममता जो ब्रह्मकी माया है, उस अविद्या आदिकी शक्तियोंसे मोहित हो चित्तमें भांति भांतिके संकल्प विकल्प उठाते रहते हैं और कहते हैं कि, ब्रह्मके स्वरूपमें इनमेंका कोई पदार्थ भी नहीं, वह परब्रह्म परमात्माका तो सबसे बिलग है. और ब्रह्मवादी लोग मीमांसा करके उनको समझते भी हैं, परन्तु तो भी वह सब अपनी अपनी गाते हैं जिसकी ऐसी अद्भुत माया है उस अनन्त गुणरूप भूमा भगवानको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ३१ ॥ कोई कहता है यह वस्तु है, कोई कहता है नहीं है, सबके मत मतान्तरोंमें अन्तर है और परस्पर

विरुद्ध हैं, अहो जो योगशास्त्रमें "पदादि है" कहकर जिसकी उपासनाविधि बतलाते हैं और सांख्यशास्त्रमें "पदादि नहीं है" कहकर जिसकी उपासनाका निषेध करते हैं, परस्पर विरुद्ध उन योग और सांख्य शास्त्रों के द्वारा जो कुछेक प्रतीत होते हैं वह बृहद्वस्तु ब्रह्म विवाद और अविवादके आस्पद है अर्थात् वही परब्रह्म है, योग और सांख्य शास्त्रोंमें यदि कोई "पदादि हैं" और कोई "पदादि नहीं है" ऐसा कहकर विवाद करनेसे इन दोनोंका धर्म अलग अलग हो तो इन दोनोंका विधिनिषेध एक वस्तुमें निष्ठ होनेसे उनका विषय एक ही हो गया है। जो कुछ हो वही वस्तु परम है, क्योंकि विधि और निषेधके विषयमें नहीं है और विना अधिष्ठानके पदादि कल्पना और विधि निषेध असंभव होनेसे वह वस्तु अनुकूल अर्थात् इन दोनोंके उपपादकरूपमें भी सिद्ध हैं ॥ ३२ ॥ अहो! जो प्राकृत नाम रूप रहित होकर भी पादमूलके उपासनाकारी पुरुषोंके निमित्त अवतारोंके द्वारा विशुद्धसत्व अनेक अनेक रूप और कर्मोंसे अनेक अनेक नाम ग्रहण करते हैं,

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननंतः ॥ नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥ यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ॥ यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे ॥ आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥ कृतपादः सुपर्णांसे प्रलंबाष्टमहाभुजः ॥ चक्रशंखासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ ३६ ॥

जिनका ऐश्वर्य अचिंतनीय है, वह अनन्त परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार वायु पद्मादि विशेष विशेष पदार्थकी विशेष विशेष गन्धका आश्रय करके अनेक गन्धयुक्त हो प्रकाश पाती है और पृथ्वीकी रेणुका आश्रय कर काली, पीली, धुँधली, इत्यादि अनेक रूपवाली होजाती हैं, वैसे ही जो भगवान् अर्व्वाचीन उपासनाके मार्गद्वारा मनुष्यगणोंकी वासनाके अनुसार उन उनही देवताओंके रूपमें विविध प्रकारसे प्रकाश पाते हैं, अर्थात् जो एक परमेश्वर ही उपासकोंकी वासनाके अनुसार उनकेही इष्टदेवरूप हो विशेष विशेष फल प्रदान किया करते हैं, वही परमेश्वर हमारे मनोरथ सफल करैं और किसी देवतासे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ! प्रजापति दक्षने जब इस प्रकार स्तुति करी तब भक्तवत्सल भगवान्ने उनके ऊपर संतुष्ट और प्रसन्न हो उस तीर्थमें ही प्रगट होकर अति चमत्कार रूपसे उनको दर्शन दिये ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् गरुड़पर बैठे थे, आठ विशाल बाहु जानुपर्यन्त

लंबित होरहे थे,आठों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, खड्ग, पाश यह आठ आयुधशोभायमान थे ॥ ३६ ॥ पीताम्बर पहिरे, श्यामवर्ण, प्रसन्न वदन,कमलवत् नेत्र,सर्वदा प्रसन्न, कंठसे लेकर चरणों तक वनमाला लटकाये, हृदयमें श्रीवत्सचिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि झलकाये ॥३७॥ मस्तक पर किरीट मुकुट सजाये, कानोंमें मकराकार कुण्डल झलकाये, चरणोंमें नूपुर पडे, वह कटिमें किंकिणी, कौंधनी इत्यादि भूषणोंमें हीरे रत्न जडे, अंगूठी, बाजूबन्द कडे हाथोंमें शोभायमान थे ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे सजे हुए पुरुषोत्तम नामक त्रैलोक्यमोहनरूप धारण करके वहाँ प्रगट हुये। हे राजन्! इस प्रकार वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो श्रीभगवान् अकेले ही नहीं प्रगटे बरन् नारद, नन्द इत्यादि पार्षद और समस्त लोकपाल उनको चारों ओरसे घेरे खडे थे ॥ ३९ ॥ और गान करते हुए सिद्ध, चारण व गन्धर्वगण दोनों ओर खडे होकर उनकी स्तुति कर रहे थे. हे राजन्! इस प्रकारसे अति आश्चर्यरूप देख करके प्रजापतिके अन्तःकरणमें परमानंद उत्पन्न हुआ ॥ ४० ॥ मनके द्वार सब पूर्ण होगये, अति हर्षितचित्त होकर भूमिपर शिर नवाय दंडवत् प्रणाम किया, परन्तु प्रेमके मारे कोई बात उनके मुखसे निकल न सकी ॥ ४१ ॥ झरनेवाली नदी जिस प्रकार जलसे भर जाती है, वैसे ही अतिभारी हर्षसे प्रजापतिके इंद्रियोंके द्वार परिपूर्ण होगये थे अर्थात् अति भारी आनन्दमें परिपूर्ण होनेके कारण उनकी वागादि इन्द्रियोंकी वृत्ति मानो शून्य हो गई इसलिये वे वचन कहनेको समर्थ नहीं हुये और पुरुषोत्तमकी केवल वन्दनाही की ॥ ४२ ॥ यद्यपि उन्होंने कुछ नहीं कहा, तो भी सर्व भूतोंके चित्तकी जाननेवाले श्रीभगवान्ने उसी भांति अपने प्रणत परमभक्त इन प्रजापति दक्षसे कहा ॥ ४३ ॥

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ वनमालानिवीतांगो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७॥ महाकिरीटकटकः स्फुर
न्मकरकुंडलः ॥ कांच्यंगुलीयवलयनूपुरांगदभूषितः ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः ॥ वृतो नारदनं
दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥ ३९ ॥ स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥ रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्याऽऽगतसा
ध्वसः॥४०॥ननाम दंडवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ॥ न किंचनोच्चारयितुमशकत्तीव्रया मुदा ॥ ४१ ॥ आपूरितमनो
द्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः॥४२॥तं तथाऽवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम्॥चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः॥४३॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे प्रचेतापुत्र महाभाग दक्ष ! मुझमें भावसहित परमश्रद्धा करके तुम तपसे सिद्ध हो गये॥॥४४॥हे प्रजानाथ ! तुम्हारी यह तपस्या विश्वकी बढानेवाली है इससे हम तुम्हारे ऊपर अतिशय प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि सब प्राणियोंकी विभूति भलीभांति बढ़े, यही हमारी कामना है। सो तुम्हारे द्वारा हमारी कामना पूर्ण हुई । इसलिये हम तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हैं॥४५॥हे वत्स ! तुम सब प्रजापति, ब्रह्मा, शिव, मनुगण और देवेश्वरगण यह सब हमारी विभूति और सब प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण हैं॥४६॥हे ब्रह्मन् ! तप अर्थात् यम और नियमादि सहित ध्यान हमारा हृदय है, विद्या अर्थात् साङ्गमन्त्र जप हमारा शरीर है, क्रिया अर्थात् भावना शब्दवाच्य पुरुषका व्यापार हमारा आकार है। यज्ञ

श्रीभगवानुवाच ॥ प्राचेतस महाभाग ससिद्धस्तपसा भवान् ॥ यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥ ४४॥ प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ॥ ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा भवो भवंतश्च मनवो विबुधेश्वराः ॥ विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥४६॥ तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाऽऽकृतिः ॥ अंगानि क्रतवो जाता धम आत्माऽसवः सुराः ॥ ४७ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किंचांतरं बहिः ॥ संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥ ४८ ॥ मय्यनंतगुणेऽनंते गुणतोगुणविग्रहः ॥ यदासीत्तत एवाद्यः स्वयंभूः समभूदजः ॥ ४९॥ स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ॥ मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥ ५० ॥

हमारा अंग है, धम अर्थात् यज्ञानुष्ठानजनित अपूर्व हमारा मन है, यज्ञभोक्ता देवगण हमारे प्राण हैं॥४७॥हे दक्ष! आगे केवल हम हीं थे, हमारे सिवाय कुछ भी बाहर भीतर नहीं था, अर्थात् केवल चैतन्यमात्र था, वह भी इन्द्रियवृत्तिसे जाना जाता इसलिये यह जगत् सर्वत्र सोते हुए के समान था ॥ ॥ ४८ ॥ उसके पीछे अनन्तगुण जो हम हैं, मायाद्वारा गुणमय विग्रह यह ब्रह्माण्ड जब प्रकाशित हुआ, तब उस समय ही आद्य स्वयम्भू अयोनिज होकर उत्पन्न हुए॥४९॥वह स्वयम्भू हमारे वीर्यसे वर्द्धित होनेंके कारण सृष्टि उत्पन्न करनेको उद्यत हुए थे. परन्तु जब कि, उन्होंने

अपनेको इस कार्यमें असमर्थ समझा,तब हमने उनको तपस्या करनेका उपदेश दिया जिसस कि उन्होंने दारुण तपस्या की और उसी तपस्याके प्रभावसे उन्होंने तुम नव विश्व उत्पन्न करनेवालोंको पहलेउत्पन्न किया॥५०॥५१॥इसलिये हे दक्ष ! प्रसिद्ध प्रजापति पञ्चजनकी यह कन्या यहां पर है, जिसका नाम असिक्नी है, तुम इसको अपनी स्त्री बनाओ ॥ ५२ ॥स्त्री पुरुषका रतिक्रीडारूप जो मैथुनधर्म है उसी मैथुनधर्मका आश्रय लेकर इस रूपवती और धर्मवती कन्यामें तुम अनेक प्रजा उत्पन्न करोगे ॥ ५३ ॥ हमारी मायाके वश होकर तुम्हारे पीछेकी सब प्रजा भी स्त्रीके साथ मैथुन धर्मसे पुत्रादिरूपमें उत्पन्न होगी और हमारे लिये भेंट देगी ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! विश्वभावन भगवान् इस प्रकार कह कर दर्शनकारी दक्षके सामने स्वप्नमें प्राप्त हुए पदार्थकी नाईं उस स्थानमें ही अन्तर्धान होगये तब दक्षजीने यह कबित्त

अथ मऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ॥ नव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥ ५१ ॥ एषा पंचजनस्यांग दुहिता वै प्रजापतेः॥ असिक्की नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५२॥ मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः॥ मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि॥५३॥त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया॥ मदीयया भविष्यति हरिष्यंति च मे बलिम् ॥ ५४॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा भिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः ॥ स्वप्नोपलब्धाथ इव तत्रैवांतर्दधे हरिः इति॥५५॥श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे दक्षोत्पत्त्यादिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां स पांच जन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ॥ हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद्विभुः ॥ १ ॥ अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप ॥ पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥ २॥

कहा:-“राग उदै भोग भाव लागत सुहावनेसे,विनाराग ऐसे लगैं जैसे नागकारे हैं॥रागहीसे पाग रहै तनुमें सदैव जीव,राग गये आवत गलानि होत न्यारे हैं ॥ रागहीसे जगरीति झूँठी सब सत्य जाने राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं ॥ रागी वीतरागीके विचारमें हैं बडो भेद, जैसे भटा पथ काहू काहू को बयारें हैं”इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां प्रचेतसां दक्षोपत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

दोहा-पञ्चममाहीं देवऋषि, कूट वचन कहे आप । दीने पुत्रनि मार सब, दक्ष दियो तब शाप॥१॥

श्रीकशुदेवजी बोले कि,प्रजापति दक्षने विष्णुभगवान्की मायासे बढ़कर उस पञ्चजनकी कन्या असिक्नीके गर्भमें हर्यश्व नामक दश पुत्र उत्पन्न किये॥ १॥ हे नरेन्द्र ! उन सब पुत्रोंक

एकसा आचार व्यवहार और एकही प्रकारका स्वभाव हुआ, जब प्रजापति दक्षने उनको सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी तो वह सब पश्चिम दिशाको चले गये ॥ २ ॥ पश्चिम दिशाके उस स्थानमें कि जहां सिन्धु नदी समुद्रके साथ मिली है, उसी स्थानमें नारायणसर नामक एक तीर्थ है, वह अतिशय पुण्यदायक है, बडे बडे महात्मा मुनि लोग और सिद्धगण सदा उसकी सेवा किया करते हैं ॥ ३ ॥ दक्षके पुत्र हर्यश्वगण उसी तीर्थमें पहुँचे और उसका जल स्पर्श करते ही उनके अन्तःकरणोंका अनन्त मल भलीभांति धुल गया और परमहंसधर्ममें उनकी बुद्धि उदित हुई ॥ ४ ॥ तथापि उनके पिताने जो उनको सृष्टिके रचनेकी आज्ञा दी थी, वह सब उसी काममें लगे हुए सृष्टिके उत्पन्न करनेकी कामनासे बडी घोर तपस्या करने लगे. एक दिन देवर्षि नारदजी उस स्थानपर होकर जा रहे थे, उन्होंने जाते जाते देखा कि यह सब हयश्व पवित्र और शुद्ध होकर भी अपने पिताकी आज्ञासे प्रजा उत्पन्न करनेके लिये उद्युक्त होरहे हैं ॥ ५ ॥ इसलिये देवर्षि नारदजी उनसे बोले कि, हे हर्यश्वगण ! तुम लोग बालक हो, कैसे खेदकी बात है कि तुम सब सृष्टि उत्पन्न करनेके लिये तपस्या करते हो यह बडी मूर्खता है. भला इस पृथ्वीका अन्त विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करोगे * ॥ ६ ॥ जहाँ इकला ही पुरुष हैं, वह देश और जिससे कभी किसीको निकलते न

तत्र नारायणसरस्तीर्थसिंधुसमुद्रयोः॥संगमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥३ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः॥धर्मेपारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥ तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यंत्रिताः॥प्रजाविवृद्धये यत्तान्देवर्षिस्तान्ददर्शह॥५॥उवाच चाथ हयश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ अदृष्ट्वांतं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥ ६ ॥ तथैक पुरुषं राष्ट्रबिलं चादृष्टनिर्गमम् ॥ बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥

---

* **शंका**–हर्यश्व जो दक्षके पुत्र हैं सो सब भाई मिलकर सृष्टि रचनेके लिये तपस्या करने लगे तब उन सबको नारदजीने सृष्टि बनानेके लिये निषेध करके योग करनेकी क्यों आज्ञा दी ? सृष्टिके उत्पन्न होनेमें नारदजीकी क्या हानि थी ?

उत्तर–दक्षके पुत्रोंकी इच्छा सृष्टि रचनेकी नहीं थी योग करनकी इच्छा थी परंतु पिताकी आज्ञा मानकर सृष्टि रचनेके मिष तप करनेके लिये गये, तब नारदजीने उनके हृदयकी बातको जानकर सृष्टि रचनेका निषेध किया और योग करनेका उपदेश दिया ॥

देखा जाय वह बिल, और जिसके बहुतरूप हों वह स्त्री, जो पुंश्चली स्त्रीका पति हो वह पुरुष ॥ ७ ॥ और वह नदी जो दोनोंओर बहती है और वह गृह जो पचीस(२५) पदार्थोंसे अति अद्भुत है और उसमें हीका वह चित्र विचित्र ध्वनियुक्त हंस और जो कठिन कठिन शब्दोंसे वज्रसे बना है. तथा स्वतन्त्र और अपने आप घूमता है ऐसा तीक्ष्ण चक्र ॥८॥ इन सबको विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करोगे? तुम्हारे पिता सर्वज्ञ थे, उनकी अनुरूप आज्ञा क्या है उसको भी भलीभांतिसे पहले जान लेना कर्तव्य है, इन सब बातोंको विना जाने सृष्टि उत्पन्न करनेकी शीघ्रतासे एका एकी उपस्थित हो जाना किसी प्रकारसे हमको ठीक नहीं जचता है ॥९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् । हर्यश्व गण इस बातको सुन अपनी स्वाभाविक बुद्धिसे नारदजीके कहे कूटवचनोंका उत्तर देनेको परस्पर विचार करते २ कहने लगे कि ॥ १० ॥

नदीमुभयतोवाहां पंचपंचाद्भुतं गृहम् ॥ कचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयंभ्रमिम् ॥८ ॥ कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो
विपश्चितः ॥ अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनी
षया ॥ वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥ १० ॥ भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् ॥ अदृष्ट्वा तस्य
निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ ११ ॥ एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान्स्वाश्रयः परः ॥ तमदृष्ट्वाऽभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भ
वेत् ॥ १२॥ पुमान्नैवैति यद्गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ॥ प्रत्यग्धामाऽविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १३ ॥

देवर्षि नारदजीने दश वाक्य कहे । "विना जाने" इत्यादि जो वाक्य कहे हैं, उनका अर्थ यही है कि, भूमि अर्थात् क्षेत्र जो जीवसंज्ञक यह लिंग शरीर जो आत्माके बन्धनका कारण है, इसलिये देवर्षि नारदजीके इस वाक्यका यही तात्पर्य होगा कि लिंगशरीरके अन्त अर्थात् विनाशका दर्शन करके मोक्षके विरुद्ध असत् कर्म करनेसे क्या फल होगा ॥ ११ ॥ और देवर्षि नारदजीने जो "जहां एकमात्र पुरुष है, वह देश" इत्यादि जो वचन कहे हैं, उनका भी यह अर्थ है कि एकमात्र ईश्वर ही सबके साक्षी हैं, उनका आश्रय और कोई नहीं है, वह अपने आप ही अपने आधार हैं, उन नित्ययुक्त ईश्वरको विना जाने और उनमें समर्पण विना किये वृथा कर्म करनेसे क्या फल होगा॥१२॥ और देवर्षि नारदजीने

नानारूपात्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता ॥ तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १४ ॥ तत्संगभ्रंशितैश्वर्यं संसरंतं कुभार्यवत् तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १५ ॥ सृष्टयप्ययकरीं मायां वेलाकूलांतवेगिताम् ॥ मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत्॥ १६ ॥ पंचविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ॥ अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १७ ॥

“जिससे कभी किसीको निकलते न देखा जाय वह बिल विना देखे ”इत्यादि जो वचन कहे हैं, उनका तात्पर्य यही है कि पुरुष जहां जाकर बिल स्वर्ग अर्थात् पातालमें गये हुए पुरुषके समान वहांसे फिर पीछेको न लौट सकै वह परमज्योतिस्वरूप परब्रह्म है, उस ब्रह्मको विना जाने निरर्थक नाशवान् स्वर्गके साधन करनें वाले कर्मोंके करनेसे क्या फल मिलैगा ? ॥ १३ ॥ और देवर्षिजीने “जिसके बहुरूप हों वह स्त्री” यह जो कहा इसका अर्थ यह जान पड़ता है कि अपनी बुद्धि स्वैरिणी, स्त्रीके समान मोहकी करनेवाली और रज इत्यादि अनेक गुणोंसे युक्त है। जो पुरुष उस बुद्धिके अन्तको प्राप्त नहीं होता, उसके अशांत कर्म करनेसे उसको क्या फल मिलेगा ? ॥१४॥ और नारदजीने“ पुंश्चली स्त्रीका पति हो वह पुरुष” इत्यादि जो कहा है, इसका आशय यह है कि इस मायासंगके वश जिसका ऐश्वर्य भ्रष्ट होगया है, इसलिये कुत्सित स्त्रीके स्वामीके समान जो उस मायाके सुख दुःखरूप गतिका पीछा करता है, उस जीवको जो पुरुष नहीं जानता उसके अविवेकसे किये हुए कर्मोंके करनेसे क्या फल होगा ? ॥ १५ ॥ और मुनिने “वह नदी जो दोनों ओरको बहती है” यह जो बात कही,उसका अर्थ यही है कि,संसारमें सृष्टि और प्रलय करनेवाली जो माया है वही नदी स्वरूप है, क्योंकि प्रलय और सृष्टि, यही दो इसके प्रवाह हैं, जो दोनों ओरको बहते हैं, यद्यपि तपस्या और विद्या इत्यादि इस नदीके कूल अर्थात् निर्गम स्थान हैं, तथापि निर्गमको रोकनेंके लिये जो पुरुष उस नदीके तेजको बिना विचारे कर्मोंको करे, उससे क्या फल होगा ? ॥ १६ ॥ और देवर्षिने“ वह गृह जो पचीस (२५) पदार्थोंसे अति अद्भुत है” जो कहा इसका तात्पर्य यह है कि अन्तर्यामी पुरुषके पचीस तत्त्वके अति आश्चर्य वाले आश्रय हैं. वह कार्य कारण और संघातके अधिष्ठाता हैं, उनको जो पुरुष नहीं जानता उसको मिथ्या और स्वतन्त्रतासे किये हुए कर्मोंसे क्या फल होगा ? ॥ १७ ॥

ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बंधमोक्षानुदर्शनम्॥ विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १८ ॥ कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् स्वतंत्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१९॥ शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ॥ कथं तदनुरूपाय गुणविश्रंभ्युपक्रमेत्॥ २० ॥ इति व्यवसिता राजन्हर्यश्वा एकचेतसः॥ प्रययुस्तं परिक्रम्य पंथानमनिवर्तनम् ॥ २१ ॥ स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदांबुजे॥ अखंडं चित्तमावेश्य लोकाननुचेरन्मुनिः ॥ २२ ॥

और देवर्षिने" विचित्र कथायुक्त हंस" इत्यादि जो कहा इसका आशय यह है कि ईश्वरके प्रतिपादक शास्त्रोंमें चित् और जड़रूप वस्तु विशेष रूपसे विचारी जाती है,इसलिये वह हंसस्वरूप है,हंस जैसे दूध और पानीको अलग अलग कर देता है, वैसे यह शास्त्र अचैतन्य और चैतन्य वस्तुको भिन्न भिन्न कर देता है, किस कर्ममें बंधन, और किस किस कार्यमें मुक्ति है,इसको दरशाया करता है,इसलिये उसकी सब कथा विचित्र हैं, इस शास्त्रको त्याग करके अर्थात् न जान करके केवल बहिर्मुख कर्ममात्रके करनेसे क्या फल होगा? ॥ १८ ॥ और देवर्षिने "शस्त्र और वज्रादिसे बना हुआ, स्वयं घूमता तीक्ष्ण चक्रका जो वर्णन किया" उसका अर्थ सुतीक्ष्ण कालचक्र है, वही अपने आप रात दिन घूमता रहता है, और यही सब संसारको संहार करता रहता है इसलिये वह स्वतंत्र है, उस कालचक्रकी गतिको विना जाने असत्कर्मोंके करनेसे क्या लाभ होगा? ॥ १९ ॥ और नारदजीने जो हमसे कहा कि "तुम्हारे पिताकी अनुरूप आज्ञा क्या है, उसको भलीभाँति विना जाने कैसे सृष्टि उत्पन्न करोगे" इसका तात्पर्य यही है कि शास्त्र ही हमारा पिता है,क्योंकि वह द्वितीय जन्मका कारण है, निवर्तक होना ही उसकी आज्ञा है उस निवर्त्तक आज्ञाको जो पुरुष नहीं जानता वह गुणयुक्त प्रवृत्तिमार्गमें विश्वासवान् हो सृष्टि इत्यादि कार्योंमें किस प्रकार लग सकता है? दशकूट, "मोक्षेशब्रह्मबुद्धीनां जीवमायांतरात्मनाम् ॥ शास्त्रकालोपदेशानामज्ञाने किमु कर्मभिरिति" ॥२०॥ हे राजन्! इस प्रकार निश्चय करनेके पीछे दक्षके पुत्र हर्यश्वगण एकमति करके नारदजीकी बातका प्रमाण और उनकी प्रदक्षिणा कर जिस मार्गसे फिर लौटना नहीं होता उस मार्गमें प्रस्थान करते हुए ॥ २१ ॥ देवर्षि नारदजी भी स्वरूप ब्रह्म भगवान् हृषीकेशके चरणकमलमें अपने मनको संपूर्ण रीतिसे लगाकर

अपनी इच्छानुसार भ्रमण करने लगे ॥ २२ ॥ और कुछ समय बीतनेके पीछे प्रजापति दक्षजीने देवर्षि नारदजीके मुखसे ही सुना कि सब पुत्रगण जो सुशीलतासे सदा शोभा पाते अब अदृश्य होगये हैं,यह जानकर दक्षजी शोकयुक्त हो अपने पुत्रोंके लिये शोक संताप करने लगे । अच्छे पुत्रवाला ही शोकका स्थान है, फिर भला सर्वश्रेष्ठ सन्तान हर्यश्वगणोंके लिये दक्षजीको शोक क्यों नहीं होगा ? ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जब दक्षजी शोकके मारे व्याकुल हुए तब भगवान् ब्रह्माजी उनके निकट आये और अनेक प्रकारके वचनोंसे उनको समझा बुझाकर चले गये । प्रजा उत्पन्न करनेकी दक्षके अन्तःकरणमें बडी इच्छा थी । जब ब्रह्माजीने उनको समझाया बुझाया तब दक्षजी फिर प्रजा उत्पन्न करनेके मनसे अपनी स्त्री उसी पाञ्चजनीके गर्भमें शबलाश्व नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये ॥२४॥ प्रजापति दक्षजीने शबलाश्व नामक

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम्॥अन्वतप्यत कःशोचन्सुप्रजास्त्वं शुचां पदम्॥२३॥स भूयःपांचजन्यायामजेन परिसांत्वितः ॥ पुत्रानजनयद्दक्षः शबलाश्वान्सहस्रशः ॥ २४ ॥ तेऽपि पित्रा समादिष्टा प्रजासर्गे धृतव्रताः ॥ नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥ २५ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ जपंतो ब्रह्म परमं तेपुस्तत्र महत्तपः॥ २६ ॥ अब्भक्षाः कतिचिन्मासान्कतिचिद्वायुभोजनाः ॥ आराधयन्मंत्रमिममभ्यस्यंत इडस्पतिम् ॥ २७॥ ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ॥ विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥ २८ ॥

इन पुत्रोंको भी प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी। यहभी व्रत धारण कर जहाँ इनके पहिले भ्राता तप करके सिद्ध हुए थे,यह भी उसी नारायण सरोवर पर गये ॥२५ ॥ हे राजन् ! नारायण सरोवरका पवित्र जल स्पर्श करते ही शबलाश्वगणोंका पाप धुल गया और चित्त शुद्ध होगया। परब्रह्म अर्थात् प्रणवका जप करके बड़ा भारी तप उन लोगोंने आरम्भ किया ॥ २६ ॥ कुछ महीने जल पीकर, कुछ महीने केवल वायु (हवा)भोजन कर इन्होंने बिताये और इस मन्त्रका अभ्यास करते इस मन्त्रपति भगवानकी आराधाना करते थे ॥२७॥ "ॐनमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ॥ विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि"यथा;—परम पुरुष महात्मा नारायण विशुद्ध सत्त्वगुणके आश्रय परमहंसरूपी

भगवानका ध्यान करने लगे ॥॥ २८ ॥ हे विदुर ! शबलाश्वगण प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे इस प्रकार तप करनेमें ध्यान लगा रहे थे, कि एक दिन देवर्षि नारदजी उनके निकट आये और जैसे इन्होंने हर्यश्वोंको कूट वचन कहे थे उन लोगोंको भी इसी प्रकार कूट वचन कहे ॥ ॥ २९ ॥ नारदजी बोले कि, हे दक्षनंदन शबलाश्वगण ! हमारे उपदेश किये वचनोंको तुम सुनो, तुम सब भाइयोंको प्यार करनेवाले अपने बडे भाइयोंकी पृथ्वीको देखो ॥ ३० ॥ जो धर्मज्ञ भ्राता अपने भाईकी गतिको जाता है, वही पुण्य बंधु है, भ्राताके चाहनेवाले देवतागण उनको लेकर आनंद मनाया करते हैं, ॥ ३१ ॥ हे आर्य राजवर्य ! देवर्षि नारदजी केवल इतना ही कहकर अपने स्थानको चले गये । उनका दर्शन

इति तानपि राजेंद्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ॥ उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥ २९ ॥ दाक्षायणाः
संशृणुत गदतो निगमं मम ॥ अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥ ३० ॥ भ्रातॄणां प्रायणं भ्रातायोऽनुति
ष्ठति धर्मवित् ॥ स पुण्यबंधुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥ ३१ ॥ एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ॥
तेऽपि चान्वगमन्मार्गं भ्रातॄणामेव मारिष ॥ ३२ ॥ सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ॥ नाद्यापि ते निवर्तंते
पश्चिमा यामिनीरिव ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्काल उत्पातान्बहून्पश्यन्प्रजापतिः ॥ पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत्
180 ॥ ३४॥ चुक्रोध नारदायाऽसौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः ॥ देवर्षिमुपलभ्याऽऽह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥ ३५ ॥

व्यर्थ नहीं जाता, इसलिये उनके इन वचनोंसे शबलाश्वगण भी अपने बडेभाइयोंके मार्गकी रीति पर चले॥ ३२॥वह लोग बहुत सुन्दर प्राचीन परमेश्वरके मार्गको गये जिस प्रकार गई रातें लौटकर नहीं आतीं वैसे ही आज वह भी लौटकर नहीं आये ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इस ओर प्रजापति दक्षको अनेक अनेक भाँतिके उत्पात दीखने लगे,उन्होंने थोडे ही दिन पीछे सुना कि नारदजीकी सम्मतिसे शबलाश्व नामक पीछे उत्पन्न हुए पुत्रगण भी विनाशको प्राप्त हुए ॥ ३४॥ इसलिये दक्षजी पुत्रशोकसे मूर्च्छित हो महर्षि नारदजीके ऊपर क्रोधित हुए । देवर्षि नारदजीने पहले ही जान लिया था कि, पुत्रोंकी पारमहंस्य धर्ममें निष्ठाकी कथा सुनकर प्रजापति दक्ष क्रोधित होंगे, इसलिये नारदजी अनुग्रह

प्रगट करनेके लिये उनके निकट गये। तब दक्षजी क्रोधके वेगके मारे अधरों(होठों)को फडकाय नारदजीका अपमान करने लगे ॥ ३५ ॥ दक्ष बोले कि,अरे असाधु! तेरा वेष ही साधुके तुल्य है,परन्तु वास्तवमें तू साधु नहीं,क्योंकि तैंने हमारे पुत्रोंके ऊपर अतिशय असाधुपनका व्यवहार किया है. हमारे पुत्र निजधर्ममें प्रवृत्त थे,तुमने उनको भिक्षुकमार्गका उपदेश किया, क्या यह साधुका कर्म है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण जन्म लेते ही तीन ऋणोंसे ऋणी होता है, सो तीनों ऋणोंसे विना छूटे कर्मोंकी मीमांसा करे विना हे पापरूप! अभी हमारे पुत्रोंका ऋषिऋण नहीं छूटा। पुत्र उत्पन्न करना और यज्ञानुष्ठान तो पीछे करना होता है, फिर भला इन दो कार्योंके ही करनेसे देवऋण और पितृऋणसे किस प्रकार मुक्ति हुई, जो हो, तू अतिशय पापी है, क्योंकि संसारी सुख छुडाकर तैंने हमारे पुत्रोंका यह लोक ही नहीं बरन् परलोक भी बिगाडा क्योंकि

दक्ष उवाच ॥अहो असाधो साधूनां साधुलिंगेन नस्त्वया ॥ असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥ ३६ ॥ ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ॥ विघातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥ ३७ ॥ एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ॥ पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥ ३८ ॥ ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ॥ ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरंकरमवैरिणाम् ॥ ३९ ॥ नेत्थं पुंसां विरागः स्यात्त्वया केवलिना मृषा ॥ मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृंतनम् ॥ ४० ॥

अब उनका मोक्षमें अधिकार नहीं रहा। मनुस्मृतिमें है कि,"ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः"। श्रुतिः"जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी वासीति" श्रुतेः ॥३७॥ तू बडा निर्दयी है,बालकोंकी पुत्रादि उत्पन्न करनेकी मति तैंने बिगाड दी। क्या आश्चर्य है, तू इस प्रकारसे भगवानका यश नाश करनेवाला होकर किस भाँतिसे उनके पार्षदगणोंके बीचमें फिरा करता है; क्या निर्लज्जता है ॥३८॥ अरे! हम देखते हैं कि तेरे सिवाय सब भगवद्भक्त सब प्राणियों पर अनुग्रह करनेमें उपस्थित रहते हैं, परंतु तू मित्रोंसे द्रोह करानेवाला है और जो वैरी न हो उसे तू वैरी बना देता है, इस प्रकारसे सब प्राणियोंका अप्रिय करनेमें तुझे लज्जा नहीं होती? ॥३९॥ यदि तैंने अपने

मनमें ऐसा समझा है कि,वैराग्यसे उपशम और उपशमसे स्नेहकी फाँसी टूट जाती है और विरक्त पुरुषोंके तीन ऋणोंका दूर करना अनावश्यक है, तो भी ज्ञानके विना मिथ्या इस प्रकारका वेष धारण कर इस प्रकार मति चलायमान करनेसे पुरुषोंको वैराग्य नहीं हो सकता, जब वैराग्य ही नहीं, तब उपशम कहांसे होगा, जब उपशम नहीं तब स्नेहपाश छूटनेकी क्या सम्भावना है? ॥ ४० ॥ जबतक यह किसी बातका अपने आप ही अनुभव करता है, तबतक विषयोंकी तीक्ष्णतासे जो आप वैराग्यवान होय तो ठीक है, औरोंके शिखाने बहकानेसे जो बुद्धि भिन्न होनेसे ज्ञान होता है, वह कुछ भी नहीं है ॥ ४१ ॥ जो हो ! हम लोग साधु हैं, कभी किसीका अप्रिय करना नहीं जानते; तैंने जो हमारा यह सहनेके अयोग्य अप्रिय कर्म किया, इसको हमने सहन कर लिया था ॥४२॥ परन्तु हे अधम! संतानके नाश करनेवाले तूने हमारा जो अभद्र अर्थात् पुत्रगणोंका स्थान भ्रष्ट करके अमंगल किया इसलिये लोकोंके मध्यमें तुझे कहीं स्थान प्राप्त नहीं हो सकेगा–अर्थात् एक स्थानपर बैठेगा तो तेरे मस्तकमें दर्द हो जायगा, तेरा जन्म भटकते ही भटकते कटैगा ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! साधुसम्मत देवर्षि नारदजीको जब पुत्रशोकसे व्याकुल हुए दक्षजीने शाप दिया तब नारदजीने कुछ न कहकर उस शापको अंगीकार कर लिया क्योंकि, प्रतिशाप देनेमें समर्थ होने पर भी उसका सह लेना ही साधुओंका मत है ॥४४॥ * इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां नारदशापवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

नानुभूय न जानाति पुमान्विषयतीक्ष्णताम् ॥ निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥ यन्नस्त्वं कर्मसंधानां
साधूनां गृहमेधिनाम्॥ कृतवानसि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम् ॥४२॥ तंतुकृंतन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ॥ तस्माल्लो-
केषु ते मूढ न भवेद्भ्रमतः पदम् ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधुसंमतः ॥ एतावान्साधुवादो
हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम्॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे नारदाय शापदानं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

---

* भजन–मेरा कछु नाहिं प्रभु तेरी प्रभुनाई है ॥ तैने ही विश्व रचा तूही विश्वरूप हुआ, तेरा ही तमाशा सब तूही तमाशाई है॥ ध्यान है हर आन तेरा, हरदम है बयान तेरा जबसे कुछ ज्ञान हुआ, तबसे समझ आई है ॥ तेरा ही दास सदा दर्शनकी आश सदा, कीजिये सहाय सदा संतन सुखदाई है ॥ १ ॥

दोहा–साठ सुता उत्पन्न की, दक्ष छठे अध्याय। भिन्न भिन्न वर्णन करौं, तिनके कुल समुदाय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसके पीछे दक्षप्रजापतिने ब्रह्माजीकी आज्ञासे असिक्नी अपनी स्त्रीमें अतिप्यारी (६०) साठ कन्या उत्पन्न करी, कारण कि, स्त्रियोंको एकाएकी ज्ञान नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥ उन साठ कन्याओंमेंसे दश धर्मको, तेरह कश्यपजीको, और सत्ताईस चंद्रमाको ब्याह दीं, भूतनाथ अंगिरा और कृशाश्व इन तीन मुनियोंको दो दो कन्या ब्याहीं और बाकी चार कश्यपजीको देदीं ॥ २ ॥ हे राजन्! प्रजापति दक्षजीकी सब कन्या पुत्रवती हुईं, उनके नाम अलग २ कहता हूँ, तुम सुनो। उनके ही पुत्र पौत्रादिकोंसे पृथ्वी परिपूण होगई ॥ ३ ॥ हे महाराज! भगवान् धर्मने जिन दश कन्याओंका पाणिग्रहण किया उनके यह नाम हैं, यथा–भानु१, लम्बा२, ककुभ३, जामि४, विश्वा ५, साध्या ६, मरुत्वती ७, वसु८, मुहूर्ता९ और संकल्पा१० ॥ अब इनमेंसे प्रत्येकके वंशका विवरण कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥ हे राजन्! भानुका पुत्र देवर्षभ, देवर्षभका पुत्र इन्द्रसेन। लम्बा नामक जो धर्मकी पत्नी हुई, उसके गर्भसे उत्पन्न विद्योतके स्तनयित्नु नाम पुत्र हुए ॥ ५ ॥ हे राजन्! ककुभ नामक धर्मकी स्त्रीके संकट नामक पुत्र हुआ, इस संकटका पुत्र कीकट हुआ, तिससे पृथ्वीके समस्त दुर्ग अर्थात् दुर्गाभिमानी देवतागण उत्पन्न हुए जामिका पुत्र स्वर्ग जिससे नन्दिकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥ हे राजन्! विश्वाके पुत्र विश्वेदेवगण हुए, इनके कोई संतान नहीं हुई, इसलिये नको लोकमें अप्रज कहाकरते हैं। इसी प्रकारसे साध्याके संतान साध्यगण और उनका पुत्र अर्थसिद्धि हुआ ॥ ७ ॥ मरुत्वतीके गर्भमें

श्रीशुक उवाच ॥ ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयंभुवा ॥ षष्टिं संजनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥ १ ॥ दश धर्माय कायेंदोर्द्विषट् त्रिनव दत्तवान् ॥ भूतांगिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥ २ ॥ नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ॥ यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥ ३ ॥ भानुर्लंबा ककुब् जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वती ॥ वसुर्मुहूर्ता संकल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्छृणु ॥ ४ ॥ भानोस्तु देवऋषभ इंद्रसेनस्ततो नृप ॥ विद्योत आसील्लंबायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥ ५ ॥ ककुभः संकटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ॥ भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नंदिस्ततोऽभवत् ॥ ६ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान्प्रचक्षते ॥ साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥ ७ ॥ मरुत्वांश्च जयंतश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः ॥ जयंतो वासुदेवांश उपेंद्र इति यं विदुः ॥ ८ ॥

दो पुत्र हुए। उनके नाम मरुत्वान् और जयन्त उनमें जयन्त वासुदेवके अंशसे उत्पन्न हुए इसलिये सब लोग उनको उपेन्द्र भी कहते हैं ॥ ८ ॥ हे राजन्! मुहूर्त्ताके गर्भमें मौहूर्तिक नामक देवगण उत्पन्न हुए, वह लोग प्राणियोंको अपने २ कालका उत्पन्न हुआ फल दान किया करते हैं ॥ ॥ ९ ॥ संकल्पाके पुत्र संकल्प और उनका पुत्र काम, हे राजन्! वसुके पुत्र आठ वसु हुए उनके नाम सुनो॥ १०॥ द्रोण १, प्राण २, ध्रुव ३, अर्क ४, अग्नि ५, दोष ६, वसु ७ और विभावसु ८ बस यही आठ वसु हैं. इनमें द्रोणकी स्त्री अभिमतिके गर्भसे हर्ष, शोक, भय इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ॥ ११ ॥ प्राणकी स्त्री ऊर्जस्वती भार्याके गर्भमें, सह, आयु और पुरोजव पुत्र हुए। ध्रुवकी स्त्री धरणीने विविध पुररूप पुत्र उत्पन्न किये॥ १२॥

मौहूर्त्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ॥ये वै फलं प्रयच्छंति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥ ९ ॥ संकल्पायाश्च संकल्पः
कामः संकल्पजः स्मृतः ॥ वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो
वसुर्विभावसुः ॥ द्रोणस्याभिमतेः पत्न्यां हर्षशोकभयादयः ॥ ११ ॥ प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ॥
ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥ १२ ॥ अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ॥ अग्नेर्भार्या
वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥ १३ ॥ स्कंदश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ॥ दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो
हरेः कला ॥ १४ ॥वसोरांगिरसीपुत्रो विश्वकर्माकृतीपतिः॥ ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद्विश्वे साध्या मनोस्सुताः ॥ १५ ॥
विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ॥ पंचयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥ १६ ॥

अर्ककी भार्या वासनासे तर्ष, भय आदि अनेक पुत्र उपजे। अग्निकी स्त्रीका नाम वसोर्धारा इसके गर्भमें द्रविणक इत्यादि अनेक पुत्र और स्कन्द जन्म ग्रहण करते हुए ॥ १३॥ यह स्कन्दजी लोकमें कृत्तिकाके पुत्र भी कहलाये जाते हैं सो जो कुछ हो उनसे ही विशाखादिककी उत्पत्ति हुई. हे राजन्! दोषनामक वसुकी स्त्री शर्वरीमें शिशुमार पुत्र उत्पन्न हुआ और यह भगवान् हरिके अंशसे हुआ ॥ १४ ॥ वसुकी भार्या अंगिरसीमें विश्वकर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुए जो देवता लोगोंके शिल्पाचार्य प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! विश्वकर्माजीसे चाक्षुष मनु पुत्र उत्पन्न हुए जिनके पुत्र विश्वेदेव और साध्यगण जन्मे। हे कौरवश्रेष्ठ! विभावसु नामक वसुकी स्त्री ऊषाने विभावसुसे व्युष्ट, रोचिष, आतप, यह तीन

पुत्र उत्पन्न किये। इन तीन पुत्रोंमें आतपसे पञ्चयाम अर्थात् दिवसकी उत्पत्ति हुई जिससे कि सब प्राणी अपने अपने सुकर्मोंमें लगे रहकर जागते रहते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! प्रजापति दक्षजीने जो अपनी दो कन्या भूतको दी थीं, इस समय हम उनके वंशको कहते हैं, तुम सुनो। भूतकी सरूपा नामक स्त्रीने रुद्रगणको प्रसव किया, उनके नाम यह हैं-रैवत १, अज २, भव ३, भीम ४, वाम ५, उग्र ६, वृषाकपि ७ ॥ १७ ॥ अजैकपाद ८, अहिर्बुध्न्य ९ बहुरूप १० और महान् ॥ ११ हे राजन्। इन ग्यारह रुद्रोंके पार्षद जो प्रेतादि हुए वे इस भूतकी दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥ हे राजन्! अंगिरा प्रजापतिके स्वधा व सतीनाम दो भार्या हुईं उनमें स्वधाने पितृगणको अपना पुत्र मानकर स्वीकार कर लिया और सतीने अथर्वाङ्गिरस नामक एक वेदको पुत्रकरके मान लिया ॥ १९ ॥ हे राजन्! कृशाश्व प्रजापतिकी दो भार्या अर्चि और धिषणा नामक

सरूपाऽसूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥ १७ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ॥ रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः ॥ १८ ॥ प्रजापतेरंगिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ ॥ अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत्सती ॥ १९ ॥ कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ॥ धिषणायां वेदशिरा देवलं वयुनं मनुम् ॥ २० ॥ तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतंगी यामिनी इति ॥ पतंग प्रसूत पतगान्यामिनीशलभानथ ॥ २१ ॥ सुपर्णाऽसूत गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम् ॥ सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥ २२ ॥ कृत्तिकादीनि नक्षत्राणींदोःपत्न्यस्तु भारत ॥ दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥ पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षये दिताः ॥ २३ ॥

थीं, कृशाश्वने इन दो स्त्रियोंमेंसे अर्चिके गर्भमें धूम्रकेशको उत्पन्न किया और धिषणाके गर्भमें वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु, यह चार पुत्र उत्पन्न किये, तार्क्ष्यकश्यप प्रजापतिकी चार स्त्रियें हुईं, विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी, इनमें पतंगीने पतंगोंको प्रसव किया, यामिनीने शलभ (टीडी) पुत्र, उत्पन्न किये ॥ २० ॥ २१ ॥ विनताने गरुड़ और अरुणनामक दो पुत्र उत्पन्न किये, उनमें गरुड़जी साक्षात् यज्ञेश भगवान् विष्णुजीके वाहन हुए और अरुण सूर्यनारायणके सारथी हुए, हे राजन्! कद्रूके गर्भमें अनेक अनेक नाग उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ हे भारत! चन्द्रमाकी पत्नी कृत्तिकादि नक्षत्र हुए, परन्तु प्रजापति चन्द्रमा सब स्त्रियोंका निरादर करके केवल रोहिणीसे ही अति प्रीति

किया करते थे, इसलिये और कन्याओंका दुःख देखकर दक्षजीने शाप दिया कि तुम्हें क्षय रोग होजाय, इसलिये चन्द्रमासे इनकी किसी स्त्रीके गर्भमें कुछ संतान नहीं हुई॥२३॥फिर प्रजापति चन्द्रमा क्षयरोग होजानेसे अपने मनमें महादुःखी रहने लगे तब अनेक विनयसे दक्षको प्रसन्न किया, पीछे दक्षने प्रसन्न होकर यह वर दिया कि, कृष्णपक्षमें जो तेरी कला क्षीण होजाती हैं वह कला शुक्लपक्षमें पूरी हो जाया करेंगी, इस प्रकार कला तो पूरी होने लगीं, परन्तु संतान तौ भी कुछ न पाई. हे राजन्! कश्यपजीकी जो स्त्रियें हुईं वे सब लोकोंकी जननी हैं,इसलिये उनके कल्याणकारी नाम सुनो ॥ २४ ॥ क्योंकि यह सब जगत् कश्यपजीकी स्त्रियोंसे ही उत्पन्न हुआ है । अदिति, दिति, दनु, काष्ठा,

शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शंकराणि च ॥ अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ॥ २४ ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥ मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥ २५ ॥ तिमेर्यादोगणा आसङ्श्वापदाः सरमासुताः ॥ सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ॥ २६ ॥ ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥ दंदशूकादयः सर्पा राजन्क्रोधवशात्मजाः ॥ २७ ॥

अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा,ताम्रा,सुरभी, सरमा और तिमि, ये सब कश्यपकी स्त्रियें हुईं ॥ २५ ॥ इनमेंसे तिमिके पुत्र यादोगण अर्थात् समस्त जलजंतु उत्पन्न हुए और सरमाके केवल जंगली जंतु हुए. हे नृपोत्तम ! सुरभीके पुत्र गौ, महिष और दो खुरवाले पशु हुए॥ ॥ २६ ॥ ताम्राके पुत्र श्येन (शिकरा) गीध इत्यादि विहंगमगण और मुनिकी सन्तान अप्सरायें हुईं. हे राजन ! क्रोधवशाके पुत्र दन्दशूक और सर्प इत्यादि पेटके बल चलनेवाले हुए ॥ २७ ॥

शंका–कश्यपमुनिकी तिमि,सरमा, इला, सुरसा, आदि स्त्रियें थीं, जिनके तृण, सर्प, गीध,जलचर,कुत्ते, इत्यादि ऐंसे ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए,जिनके ऐस ऐसे पुत्र हुए सो सब स्त्रीजातिकी ब्राह्मणी थीं उन्होंने श्वानादिक जो पुत्र उत्पन्न किये,सो उनका स्वरूप उनकी माताओंकासा था अथवा और किसी प्रकारका था? यह मुझको बडा भारी सन्देहहै कि,ब्राह्मणियोंके उदरसे ऐसी कुत्सित सन्तान क्यों उत्पन्न हुई

उत्तर–जैसे सीपमें मोती होते है, हाथीके मस्तकसे गजमोती होतां है,मृगकी नाभीमें कस्तूरी होती है, गायके कानमें गोरोचन होता है, बासेंम वंशलोचन होतां है वैसे ही ब्रह्माकी इच्छासे तिमि सुरसा, इला आदि लेकर कश्यप मुनिकी स्त्री थीं और जातिकी ब्राह्मण भी थीं.कुछ पशु,पक्षी,रूप नहीं थीं,परंतु विधाताकी गति बडी अपरम्पार है,इसलिये ब्राह्मणियोंके पेटसें सब जीव,जन्तु,पशु,पक्षी उत्पन्न हुए ॥

ईलाके पुत्र सर्व प्रकारके भूरुह (वृक्ष लतादि) जन्मे और सुरसाके पुत्र राक्षस हुए॥२८॥ हे राजन्! कश्यपप्रजापतिकी दनुनामक स्त्रीके ६१ इकसठ पुत्र हुए उनमें १८अठारह प्रधान प्रधान पुत्रोंके नाम सुनो द्विमूर्द्धा १,शम्बर२,अरिष्ट ३, हयग्रीव४, विभावसु ५, ॥ २९ ॥ अयोमुख६, शंकुशिरा७,स्वर्भानु८,कपिल९,अरुण १०, पुलोमा ११, वृषपर्वा १२एकचक्र १३,अनुतापन १४,॥३०॥ धूम्रकेश १५,विरूपाक्ष १६, विप्रचित्ति १७, और दुर्जय १८ हे राजन्! इन कहेहुए दानवोंके मध्यमें स्वर्भानुकी सुप्रभा नामक जो एक कन्या हुई, नमुचिने उसका पाणि ग्रहण किया॥३१॥ और वृषपर्वाको शर्मिष्ठा नामक जो एक कन्या हुई नहुषपुत्र बली ययातिने उसके साथ यथाविधिसे विवाह किया. हे राजन्! दनुके पुत्र जो

इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥अरिष्टायाश्च गंधर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ॥२८॥ सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां
प्राधानिकान् शृणु ॥ द्विमूर्धा शबरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ॥ २९ ॥ अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः कपिलो
ऽरुणः ॥ पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ॥३०॥ धूम्रकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥ स्वर्भानोः सुप्रभां
कन्यामुवाह नमुचिः किल ॥ ३१ ॥ वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥ वैश्वानरसुता याश्च चतस्रश्चारुद
र्शनाः ॥उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा॥ ३२ ॥ उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ॥ पुलोमां
कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥ ३३ ॥ उपयेमेऽथ भगवान्कश्यपो ब्रह्मचोदितः ॥ पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा
युद्धशालिनः ॥ ३४ ॥ तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता ॥ जघान स्वर्गतो राजन्नेक इंद्रप्रियंकरः ॥ ३५ ॥

वैश्वानर हुए उनके उपदानवी,हयशिरा,पुलोमा और कालका ये सुन्दर दर्शनवाली चार कन्यायें उत्पन्न हुईं॥३२॥उनमें उपदानवीके साथ हिरण्याक्षने विवाह किया और हयशिरा क्रतुकी स्त्री हुई और पुलोमा व कालका इन दोनों दानव-कन्याओंके साथ प्रजापति कश्यपजीने ब्रह्माजीके कहनेसे विवाह किया॥३३॥ उनके निवातकवच इत्यादि साठ(६०) हजार पुत्र हुए। यह सब पुत्र पौलोम और कालकेय नामसे प्रसिद्ध हुए थे, और वह अनंतवीर्यवान् होनेसे सदा युद्ध (विग्रह) करनेमें लगे रहते और ऋषि मुनि इत्यादिकोंके यज्ञमें सदा बाधा डाला करते हे राजन्! इसलिये तुम्हारे पितामह अर्जुनको स्वर्गमें इन्द्रने कहा कि,तुम मेरे परममित्र हो, इनको मारकर मेरा भय दूर करो.तब इन्द्रके कहनेसे अकेले ही

अर्जुनने इन सब दानवोंको मार डाला.हे राजन्! इस कर्मके करनेसे तुम्हारे पितामह अर्जुन देवराज इन्द्रके अतिशय प्यारे हुए थे ॥ ३५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! दितिके सुत हिरण्याक्ष,हिरण्यकशिपु हुए और एक सिंहिका नामक कन्या हुई॥३६॥हे महाराज ! विप्रचित्ति दानवकी भार्या इस सिंहिकाके गर्भमें एकशत एक (१०१) पुत्र उत्पन्न हुए, इन सबमें बड़ा पुत्र राहु हुआ,इसके सिवाय शतपुत्र केतु,यह सब ग्रहभावको प्राप्त हुए॥३७॥अब अदितिके वंशका वर्णन करते हैं सो प्रारंभसे सुनो, इस वंशमें भगवान् विभु अपने अंशसे स्वयं अवतीर्ण हुए थे॥३८॥ हे राजन्! विवस्वान् १,अर्यमा२,पूषा३,त्वष्टा ४,सविता ५, भग६,धाता७,विधाता ८,वरुण९,मित्र १०,शक्र ११ और उरुक्रम१२यह बारह सूर्य अदितिके

दितेः सुतो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ कन्या च सिंहिका नाम बभूव कुरुसत्तम ॥ ३६ ॥
विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ॥ राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागतः ॥ ३७ ॥ अथातः श्रूयतां वंशो
योऽदितेरनुपूर्वशः ॥ यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद् विभुः ॥३८॥ विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाऽथ सविता भगः ॥
धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः ॥ ३९ ॥ विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञासूयत वै मनुम् ॥ मिथुनं च महाभागा
यमं देवं यमीं तथा ॥ सा वै भूत्वाऽथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥ ४० ॥ छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णिं च मनुं ततः ॥
कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥ ४१ ॥ अर्य्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ॥ यत्र वै मानुषी
जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥ ४२ ॥ पूषाऽनपत्यः पिष्टादो भग्नदंतोऽभवत पुरा ॥ योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास
विवृतद्विजः ॥ ४३ ॥

पुत्र हुए॥३९॥उनमें विवस्वानसे भाग्यवती संज्ञा श्राद्ध देवनामक मनुको प्रसव करती हुई और इसीने यम यमुना यह दो पुत्र कन्या उत्पन्न किये. हे राजन्! इस संज्ञाने ही वड़वा होकर अर्थात् घोडीका रूप धारण करके अवनिमण्डलमें चरते चरते दो अश्विनीकुमारों उत्पन्न किया॥४०॥ और छायाने इन विवस्वान्से शनैश्चर और सावर्णि मनु दो पुत्र और तपती नामक एक कन्या प्रसव की. तपती कन्याने संवरणको पति किया॥४१॥अर्यमाकी मातृका स्त्रीके गर्भमें चर्षणी नामक अनेक पुत्र हुए,इन सब पुत्रोंके मध्यमें विशेष आत्मानुसंधानसे भगवान् ब्रह्माजीने मनुष्य जातिकी कल्पना की है॥४२॥पूषाके कोई संतान नहीं हुई;वह पुत्ररहित और दंतहीन होकर पीसी हुई सामग्रीको भक्षण करता रहा. पहिले

दक्षजीके ऊपर कुपित भगवान् शिवको निहारकर अपने सब दाँत निकाल कर यह पूषा ऊंचे शब्दसे हँसा था, इसी कारणसे इसके सब दाँत शिवजीके गणोंसे तोड़ डाले गये थे॥४३॥हे राजन् ! त्वष्टा प्रजापतिकी भार्या दैत्यकन्या रचना हुई,इसके गर्भमें इन प्रजापतिसे सन्निवेश और विश्वरूपकी उत्पत्ति हुई। यद्यपि यह विश्वरूप शत्रु लोगोंकी भगिनी (बहन) के तनय थे, तो भी जब अंगिरागोत्री बृहस्पतिजीने देवताओंका त्याग किया था,तब देवतालोगोंने इन्हीं विश्वरूपजीको अपना आचार्य बनाया था॥४४॥४५॥इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां दक्षकन्यावंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥दोहा-सप्तममाहीं देवगुरु,दियो इन्द्र बिसराय। विश्वरूपको इंद्र पुनि,कियो पुरोहित जाय॥१॥

त्वष्टुर्दैत्यानुजाभार्या रचना नाम कन्यका ॥ सन्निवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान्॥४४॥ तं वव्रिरे सुरगणा दौहित्रं द्विषतामपि ॥ विमतेन परित्यक्ता गुरुणांगिरसेन यत् ॥४५॥ इति श्रीभागव० म० षष्ठ०दक्षकन्यावंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ॥ एतदाचक्ष्व भगवञ्छिष्याणाम क्रमं गुरौ ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लंघितसत्पथः ॥ मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥ २॥ विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ॥ सिद्धचारणगंधर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे यह प्रसंग सुन शिर नवाय राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! देवतालोग तो बृहस्पतिजीके बडेभारी शिष्य थे, उनको देवगुरु बृहस्पतिजीने किस कारणसे त्यागा? बृहस्पतिजीके चेलोंने क्या अपराध किया सो अनुग्रह करके वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् देवराज इन्द्र त्रिभुवनके ऐश्वर्यको पाय एक समय मदोन्मत्त हो सन्मार्गको छोड़ मरुद्गण४९वसुगण ८रुद्रगण ११ आदित्यगण१२ऋभुगण विश्वेदेवगण साध्यगण और दोनों अश्विनीकुमारोंके साथ बैठे थे सभाके मध्यमें सिंहासनके समीप सिद्ध, चारण, गंधर्व,

ब्रह्मवादी मुनि॥२॥३॥विद्याधर, अप्सरा, किन्नर,पतंग,उरगादि खडे होकर इनकी सेवा और स्तुति करते थे॥४॥गंधर्वगण इन्द्रके प्रसन्न करनेको सुललित स्वरसे गीत गा रहे थे, मस्तकपर चन्द्रमण्डलके समान छत्र लगा हुआ था और दोनों बगलोंमें चामर व्यजन इत्यादि महाराजोंके समस्त चिह्न शोभायमान हो रहे थे. इन सबसे युक्त होकर देवराज इन्द्र अपने आधे आसनपर अपनी प्यारी शचीको बैठाये हुए इसके साथ बैठे थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी अवसरमें देवताओंके और इन्द्रके गुरु बृहस्पतिजी जो एक प्रधान मुनि हैं, वह वहांपर आ पहुँचे तब इन्द्रने न

विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः॥ निषेव्यमाणो भगवान्स्तूयमानश्च भारत ॥ ४ ॥ उपगीयमानो ललित
मास्थानाध्यासनास्थितः ॥ पांडुरेणातपत्रेण चंद्रमण्डलचारुणा ॥ ५ ॥ युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ॥
विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥ ६ ॥ स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ॥ नाभ्यनंदत संप्राप्तं
प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥ वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम्
॥ ८ ॥ ततो निर्गत्य सहसा कविरांगिरसः प्रभुः ॥ आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वाञ्छ्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥

तो इनको आसन दिया, न कुछ आदर सत्कार किया ॥ ७ ॥ वाणियोंके पति, सुर असुर जिनको देखते ही प्रणाम करते, ऐसे बृहस्पतिजीको देख इन्द्र अपने आसनसे नहीं उठा और न इनको बैठनेके लिये आसन ही दिया ❀ ॥८॥ हे राजन्! देवराज इन्द्रके इस व्यवहारको देखकर देवगुरु बृहस्पतिजी इनको ऐश्वर्यका मद जान उसी समय सभासे लौटे और किसीसे कुछ न कहा, मौन साधे अपने आश्रमको सिधार गये॥९॥

---

* **शंका**-तीन लोकका राज्य करते करते इन्द्रको बहुत युग बीत गये और बृहस्पति जो उनके गुरु थे सो नित्य प्रति इन्द्रकी सभामें आते थे,कभी भी गुरुका निरादर नहीं किया, परन्तु उस दिन इन्द्रने गुरुका निरादर क्यों किया; क्या बुद्धि भ्रष्ट होगयी ? यह बडी भारी शंका है.

उत्तर-राजा बलिको दुःखी देखकर शुक्राचार्यने शक्रको जीतनेके लिये राजा बलिसे यज्ञ कराया और उस यज्ञकी समाप्तिके लिये जो जो सामग्री इकट्ठी की थी उससे यह आनन्दपूर्वक यज्ञ समाप्त होगया.उसी दिन इन्द्रका पुण्य नष्ट होगया, तब बलिके यज्ञके पुण्यसे इन्द्र उन्मत्त अर्थात् पागल होगया, तब शुक्राचार्यने विचार किया कि, जब इन्द्र अपने गुरुका निरादर करेगा तब इन्द्रको राजा बलि पराजित करेंगे, सिवाय इस उपायके इन्द्रको जीतनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं पाया जाता.ऐसा विचार कर बलिके शत्रु इन्द्रको मोहित करके इन्द्रसे बृहस्पतिजीका निरादर कराया, इसलिये उस दिन इन्द्रने गुरु बृहस्पतिजीका निरादर किया ॥

हे कौरवश्रेष्ठ ! जब बृहस्पतिजी वहांसे चले आये, तबहीं देवराज इन्द्रको चेतनता आई, वह यह विचार कर अपने आपको बहुत धिक्कार देने लगा, कि मैंने गुरुजीका बड़ा निरादर किया, आप ही आप अपनी निन्दा करने लगा ॥ १० ॥ इन्द्र बोले कि मैंने जो कर्म किया वह अतिशय बुरा है- हाय ! कैसे खेदकी बात है, मैं कैसा मन्दपद्धि हूँ जो मेरे गुरुजी सभामें आये और मैंने ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर उनका कुछ भी आदर नहीं किया, बरन् और निरादर किया ॥ ११ ॥ मेरे ऐश्वर्य व सम्पत्तिको धिक्कार है । अब आगे कौन ज्ञानी पुरुष स्वर्गाधिपतिकी लक्ष्मीको चाहेगा ? मैं सात्विक देवतागणोंका ईश्वर हूँ, सो मुझको भी इस लक्ष्मीने इस प्रकारका आसुरीभाव प्राप्त कराया ॥ ॥ १२ ॥ जो प्राचीन पुरुष कहते हैं कि सिंहासनपर बैठा हुआ राजा किसीको देखकर न उठे मैं निश्चय कहता हूँ, वह श्रेष्ठ धर्मको नहीं जानते ॥ १३ ॥ यह सब पुरुष निन्दनीय मार्गका उपदेश करनेवाले स्वयं ही नरकके अंधकारमें गिरते हैं, और जो लोग उनके वचनोंका विश्वास करते हैं,वह लोग जैसे पत्थरकी नावसे पार जानेकी इच्छा करते हुए नावके डूब जाने पर आप भी डूब जाते हैं, वैसे ही अंधतामिस्र नरकमें अवश्य पड़ेंगे ॥ १४ ॥ जो हो ! अब मैं शठभाव छोड़कर गुरुजीके मनानेकी चेष्टा करता हूँ, वह सब देवताओंके आचार्य ब्राह्मण हैं, उनकी बुद्धि अतिगम्भीर है, मैं जाकर मस्तक झुका उनके चरणोंमें प्रणाम करूंगा ॥ १५ ॥ हे राजन्! देवराज इन्द्रका इस प्रकारसे अछताना पछताना बृहस्पतिजी जानकर अतिशीघ्रता कर गृहसे बाहर हो अदृश्य गतिको प्राप्त

तर्ह्येव प्रतिबुध्येंद्रो गुरुहेलनमात्मनः ॥ गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥ अहो बत मयाऽसाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ॥ यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥ ११ ॥ को गृध्येत्पंडितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ॥ ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥ ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कंचन ॥ प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥ १३ ॥ तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः ॥ ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जंत्यश्मप्लवा इव ॥ १४ ॥ अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ॥ प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥ १५ ॥ एवं चिंतयतस्तस्य मघोनो भगवान्गृहात् ॥ बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥

हुए । यह वृत्तान्त उन्हें अध्यात्मविद्यासे ज्ञात हुआ ॥ १६ ॥ अनन्तर महेन्द्र देववृन्दके साथ गुरुजीको ढूँढने लगे, परन्तु सर्व ज्ञानके उपाय द्वारा सब जगह देखने पर भी इन्द्रको उनका पता न लगा, इसलिये यह सब देवताओंके साथ अतिशय दुःखित हुआ और किसी प्रकारसे भी इन्द्रका मन सावधान न हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! देवराज इंद्रजीके विमर्शकी वह वार्ता सुनते ही असुरगण अपने आचार्य शुक्राचार्यका मत ग्रहण कर शस्त्र उठाय देवताओंके साथ संग्राम करनेको उपस्थित हुए और युद्ध होने लगा दैत्यलोगोंके तीक्ष्ण तीक्ष्ण बाणोंसे देवतालोगोंके मस्तक, बाहु, ऊरु इत्यादि अंग छिन्नभिन्न होने लगे, इसलिये देवतालोग कातर होकर देवराज इंद्रके साथ ब्रह्माजीके निकट गये और शिर नवाय शरणकी प्रार्थना करने लगे ॥१८ ॥ १९ ॥ स्वयम्भू ब्रह्माजी देवेन्द्रको इस प्रकार कातर हो आये देखकर अतिशय दयापरवश हुए और करुणासहित वचनोंसे समझाते बुझाते हुए बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे सुरवरगण ! तुमने बडा बुरा कार्य किया कि, जितेंद्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणका आदर सत्कार नहीं किया ॥ २१ ॥ उसी अन्यायके आचरणका फल यह हार है, जिस हारको कण्ठमें धारण कर तुम आये, नहीं तो तुम समृद्धिशाली हो, तुम लोगोंके वैरिवर्ग स्वयं ही अपने वैरी हैं अर्थात् हन्ता होकर क्षीण हो रहते थे, वह लोग क्या फिर तुम्हारे द्वेषी होकर तुम्हें जीत सकते ॥२२॥ हे इंद्र ! गुरुका तिरस्कार और सत्कार ही घटती बढ़तीका कारण है. इसका दृष्टान्त देखो । तुम लोगोंके विद्वेषी असुरगण एकबार अपने आचार्यका निरादर करके क्षीण होगये थे, इस समय भक्तिपूर्वक अपने उन

गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट्॥ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः॥१७॥ तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्वे आश्रित्यौशनसं मतम् ॥ देवान् प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः॥१८॥तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नांगोरुबाहवः॥ब्रह्माणं शरणंजग्मुः सहेंद्रा नतकंधराः॥१९॥तांस्तथाभ्यर्दितान्वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः॥कृपया परया देव उवाच परिसांत्वयन् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ॥ ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दांतमैश्वर्यान्नाभ्यनंदत ॥२१॥ तस्यायमनयस्यासीत्परेभ्यो वः पराभवः ॥ प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥ २२ ॥ मघवन्द्विषतः पश्य प्रक्षीणान्गुर्वतिक्रमात् ॥ संप्रत्युपचितान्भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः॥२३॥आददीरन्निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ २४ ॥

आचार्यकी आराधना करनेसे फिर वह कैसे वृद्धिशील होगये हैं ॥ शुक्राचार्यजीके देवता ज्ञान करनेसे इस समय उन दैत्योंका ऐसा प्रभाव है कि,उन्होंने हमारे वासका स्थान भी बलसे हरण कर लिया॥२३॥२४॥हे देवराज ! शुक्राचार्यके शिष्योंका इस समय मन्त्र अभेद क्यों नहीं होगा ? ब्राह्मण और भगवान् गोविंद यह जिन नरेशोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं, उनका कभी अकल्याण नहीं होता और जिनसे यह रूठे हुए हैं ऐसे पुरुषोंका तो पगपगपर अमंगल है ॥ २५ ॥ जो होगया सो होगया, इस समय तो उपाय ही नहीं. इस समय तुम लोग एक काम करो, त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप ब्राह्मणके पास जाय उसका आदर सत्कार करो, वह जितेन्द्रिय और तपस्वी है, आदर मान पाय अवश्य तुम

त्रिविष्टपं किं गणयंत्यभेद्यमंत्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ॥ न विप्रगोविंदगवीश्वराणां भवंत्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥ ॥२५॥ तद्विश्वरूपं भजताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवंतम् ॥ सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो यदि क्षमिष्यध्व मुतास्य कर्म ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ॥ ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥ २७॥ देवा ऊचुः ॥ वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ॥ कामः संपाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥ २८ ॥ पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ॥ अपि पुत्रवतां ब्रह्मन्किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥ २९ ॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ॥ भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥ ३० ॥

लोगोंकी कामना पूर्ण करेगा । परन्तु कब जब कि, तुम इसके असुरपक्षपाती कर्मको क्षमा करोगे ॥२६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! ब्रह्माजीसे इस प्रकारके वचन सुनकर देवतागण त्वष्टाके पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वरूप ऋषिके समीप गये और उसको भेंटकर कहने लगे कि, हम अतिथि हो तुम्हारे आश्रममें आये हैं,तुम्हारा मंगल हो.हे तात ! बड़े लोगोंकी समयानुसार प्रार्थनाको तुम पूर्ण करो॥२७॥२८॥हे ब्रह्मन् ! सत्पुरुषोंका बडोंकी सेवा करना ही परम धर्म है । जो पुत्र पुत्रवान् हैं उनको भी चाहिये कि,पितृसेवा अवश्य करें फिर इसमें ब्रह्मचारियोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २९ ॥ हे तात ! जो उपनयन कराकर वेद पढ़ाते हैं वह आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति, पिता प्रजापतिकी मूर्ति है, भ्राता मरुद्र

णोंकी मूर्ति है और माता साक्षात् पृथ्वीकी मूर्ति है ॥ ३० ॥ बहन दयाकी मूर्ति है, अतिथि साक्षात् धर्मकी मूर्ति है, अभ्यागत पुरुष अग्निकी मूर्ति और सब प्राणी ईश्वरकी मूर्ति हैं, अर्थात् सर्व प्राणियोंमें आत्मदृष्टि रखना उचित है ॥ ३१ ॥ इसलिये हे तात ! हम लोग तुम्हारे पितृगण दानवलोगोंकी उत्पत्तिसे अतिशय आर्त हो रहे हैं, हमारे वैरियोंसे पराभव रूप पीडा अपनी तपस्यासे निवारण करके तुम हमलोगोंका आदेश पालन करनेके योग्य होओ ॥ ३२ ॥ हे वत्स ! तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो, इसलिये गुरु हो, हमलोग तुमको अपना पुरोहित बनानेकी वासना करते हैं; क्योंकि, तुम्हारे तेजसे हम अपने वैरियोंको सहज ही जीत लेंगे ॥ ३३ ॥ हे वत्स ! तुम हमसे छोटे हो; इससे तुमको पुरोहित बनाने और हमारे प्रणाम करनेसे लोकमें निंदा होगी ऐसी शंका तुम मत करना; क्योंकि, लोकमें अपने प्रयोजनके लिये छोटेके

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम् ॥ अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३१ ॥ तस्मात्पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवम् ॥ तपसाऽपनयंस्तात संदेशं कर्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥ वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ॥ यथांजसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥ ३३ ॥ न गर्हयंति ह्यर्थेषु यविष्ठांघ्र्यभिवादनम् ॥ छंदोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥ ३४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ॥ स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥ ३५ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्चउपव्ययम् ॥ कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ॥ प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥ ३६ ॥

चरणोंमें प्रणाम करनेकी निंदा नहीं करते । दूसरे मंत्रभिन्न स्थान ही वयसमें बड़ाईका कारण है, इसलिये मंत्र देनेसे तुम ही हमारे बडे हो जाओगे ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् परीक्षित् ! महातपस्वी विश्वरूपने इस प्रकार देवताओंसे पुरोहिताईके लिये प्रार्थित होकर प्रसन्न हो कोमल वचनोंसे उनसे कहा ॥ ३५ ॥ विश्वरूप बोले कि, हे देवगण ! यद्यपि धर्मशील पुरुष लोग अधर्मका हेतु कहकर पुरोहिताईके कर्मकी निंदा करते हैं और यह कर्म पूर्वसिद्ध ब्रह्मतेजका क्षय करनेवाला है, तथापि आप लोगोंकी प्रार्थनाके भयसे यह हमको स्वीकार करना पडेगा । हे सुरगण ! आपलोग लोकोंके ईश्वर हैं, आप लोगोंकी चाहनाकी बात हम सरीखे पुरुष किस प्रकारसे न माननेमें समर्थ होंगे ?

हम आप लोगोंके शिष्य अर्थात् शिक्षाके योग्य हैं,सो शिक्षा देनेवालोंका वचन न लौटारना ही शिष्यका स्वार्थ है ॥३६॥ हे अधीश्वरगण ! जिन पुरुषोंको कुछ चाहना नहीं है, जिन लोगोंके शिल अर्थात् क्षेत्रमें स्वामीका उपेक्षित कणिश (बाल) ग्रहण और उञ्छ अर्थात् मार्गादिमें गिरे हुए धान्यादिका एक२कण बीनकर ग्रहण करना ही धन है, हम उन लोगोंकी वृत्तिके द्वारा ही गृहाश्रममें साधुलोगोंकी समस्त क्रियाओंका निर्वाह किया करते हैं, खोटी मतिवाले लोग पुरोहिताईके प्राप्त होनेसे हर्षित होते हैं,परंतु हमारे लिये यह तिरस्कार है इसलिये यद्यपि पुरोहिताईका कर्म करना हमको कर्तव्य नहीं है ॥ ३७ ॥ तथापि आप लोग हमारे गुरु हैं, और आप लोगोंकी यह प्रार्थना बहुत ही थोडी है, सो इस प्रार्थनाका अंगीकार न करना यह हमको उचित नहीं । हम आप लोगोंकी संपूर्ण बातें प्राण और धनकी आवश्यकता होनेपर भी

अकिंचनानां हि धनं शिलोंछनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः॥कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥३७॥ तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत्॥भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये॥३८॥श्रीशुक उवाच॥ तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः॥पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥ ३९॥ सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ॥ आच्छिद्यादान्महेंद्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥ ४० ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ॥ तां प्राह स महेंद्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे पौरोहित्यायेन्द्रादिकृतं विश्वरूपवरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पूरी करेंगे, यह तो बात ही क्या ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवतालोगोंको इस प्रकार वचन देकर महातपस्वी विश्वरूप देवतालोगों करके पुरोहिताईमें प्रवृत्त हो बड़े उद्योगके साथ पुरोहिताईका कार्य करने लगे ॥ ३९ ॥ शुक्राचार्यकी विद्यासे यद्यपि देवतालोगोंके द्वेषी दानवोंकी लक्ष्मी रक्षित होती थी तो भी इन महर्षिने नारायणकवच स्वरूप वैष्णवी विद्याके बलसे उन दैत्योंके निकटसे उस लक्ष्मीको तोड़कर इंद्रको अर्पण कर दी ॥ ४० ॥ हे कौरव ! देवराज इन्द्र जिस विद्यासे रक्षित असुरसेनाको जीत लेते हैं विश्वरूपने वही विद्या सहस्राक्ष इंद्रको दी ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामिंद्रादिदेवैः पौरोहित्याय विश्वरूपवरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

१ इन्द्रका सहस्राक्ष नाम ऐसे हुआ कि,महारूपवती गौतमकी स्त्री अहल्यासे विहार करनेको एक समय इन्द्रका मन चलयमान हुआ तब इन्होंने चन्द्रमाको अरुणशिख अर्थात् मुर्गा बनाय गौतमजीके आश्रमपर

दोहा–विश्वरूप जो इन्द्रको, दे नारायण वर्म । सब दैत्यनको जीतके, राखो अपनो धर्म॥१॥इसके उपरांत राजा परीक्षित् बोले कि,हे भगवन्! आपने कहा कि देवराज इंद्रने नारायणकवचसे रक्षित होकर वाहनसहित शत्रुकी सब सेना सरलतासे जीतकर त्रिलोकीके धन और सम्पत्तिको

राजोवाच॥ यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान्॥ क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥
॥ १ ॥ भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ॥ यथाततायिनः शत्रून्येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेंद्रायानुपृच्छते ॥ नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥

भोगा॥१॥हे ब्रह्मन्! यह कवच किस प्रकारका है, देवराज इन्द्रने उससे रक्षित होकर किस प्रकारसे अस्त्र उठायेहुए शत्रुओंको जीता सो कहिये ॥२॥यह सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! विश्वरूपको पुरोहिताईमें वरण करके देवराज इन्द्रने उनसे कवचको पूँछा था,तब विश्वरूपने

बुलवाया । जब गौतम प्रभात हुआ जान स्नान करनेको गये, तब इन्द्र गौतम मुनिका वेष धारणकर उनके स्थानपर आये । वहां गौतमजी जब–गंगाजीपर पहुँचे तब गंगाजीने कहा अभी तो आधी रात है, स्नान करनेका समय नहीं, तुम्हे किसीने छल तो नहीं लिया, जो अभीसे स्नान करने चले आये; यह सुन गौतमजीने घरपर आकर सब लीला देखी कि, चंद्र, इन्द्र विराजमान हैं, तब चन्द्रमाके धोताका छींटा मारा कि, जिसका उसके हृदयमें कलंक हुआ और इन्द्रको शाप दियाः–तुम तो एकही भगके लिये यहां आये अब तुम्हारे ही शरीरमें हजार१०००भग हो जायँगी कि, जिससे फिर तुम्हें आवश्यकता ही न पडे, जब इन्द्रने गौतमजीको बहुत मनाया तब इन्होंने कहा कि, जब रामावतारमें इक्ष्वाकुकुलतिलक दशरथअजिरविहारी दैत्यसंहारी असुरारी श्रीरामचन्द्र अवधविहारीके दर्शन करने जाओगे तब यही हजार भग तुम्हारे नेत्र होजायँगे, इसलिये जब रामावतार हुआ और इन्द्रने त्रिलोकीनाथ जानकीपति दशरथनन्दन जगवंदन दुष्टनिकन्दन श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दका दर्शन किया तब ही सहस्र भगोंके सहस्र नेत्र होगये और सहस्र नेत्र होनेसे इनका सहस्राक्ष नाम हुआ ॥

* **सवैया**–जो परनारि निहारि निलज्ज हँसैं विलसैं बुध होन बडेरे ॥ जूंठनकी जिमि पातल पेख, खुशी उर कूकर होत घनेरे ॥ जे जनकी यह टेव अहै,तिनकी जगमें अपकीरति है रे ॥ है परलोकविषै विजली, सु करै शतखण्ड सुखाचलके रे ॥

* **शंका**–राजा परीक्षित्की मृत्यु समीप आगई तब राजाने भगवान्की कथा तो बूझनी छोड दी,नारायणवर्म क्यों मुनिसे पूंछा? नारायणवर्म तो शरीरकी रक्षाके लिये है सो शरीर राजाका छूटनेवाला था फिर नारायणवर्मसे क्या प्रयोजन निकाला ?

उत्तर–सज्जन पुरुष अपने सुखके लिये कुछ भी कर्म नहीं करते,दूसरेके सुखके लिये अनेक कर्म करते हैं, नदीको,पर्वतको,वृक्षको,दूसरेका भला होना अच्छा जान पडता है, वही स्वभाव राजा परीक्षित्ने ग्रहण कर रक्खा है।जैसे नदी रात दिन जलसे भरी रहती है परन्तु अपने लिये नहीं भरी रहती दूसरे जीवोंके सुख देनेके लिये जलसे भरी रहती है । यथा–पर्वत चारा, लकडी, औषध इत्यादि अपने ऊपर रखता है परंतु अपने लिये नहीं दूसरे प्राणियोंको सुख देनेके लिये । जैसे वृक्ष दूसरेके लिये फल फूल पत्र आदि रखते हैं और दूसरेका कार्य सिद्ध करते हैं वैसे ही राजा परीक्षित् भी आप तो मरनेके योग्य होगया परन्तु और प्राणियोंके सुखके लिये 'नारायणवर्म' बूझा है ॥

उनको नारायणनामक कवचका उपदेश दिया। जिस प्रकारका यह कवच है और विश्वरूपने उसको जिस प्रकारसे उपदेश किया सो मैं वह सब प्रसंग कहता हूँ,तुम सावधान हो श्रवण करो ॥ ३ ॥ देवराज इंद्रके पूँछनेपर विश्वरूपने उनसे कहा था कि, हे महेन्द्र ! हाथ पाँव धो, आचमन करके पवित्र धारण कर उत्तरकी ओर मुख करके बैठ फिर अष्टाक्षर–"ॐनमो नारायणाय" बारह अक्षर"ॐनमो भगवते वासुदेवाय" इन दोनों मंत्रोंसे अंगन्यास और करन्यास कर पवित्र हो वाणीको जीतै ॥ ४ ॥ फिर नारायणकवचको बांधे परंतु जब किसी प्रकारका भय उपस्थित हो तभी इस कवचका बांधना कर्तव्य है. हे देवेंद्र ! पांव,जानु, ऊरु, उदर, आस्य,वक्षस्थल ॥५॥ मुख और मस्तक इन्हीं सब अंगोंमें प्रणवपुटित मंत्रके एक एक वर्णको आदिसे लेकर ॐकार आदिका विन्यास करे. "ॐ नमो नारायणाय"इस मंत्रका विपर्यय अर्थात् उलटा करै,अर्थात् पदादि मस्तकांतमें न्यास न करके मस्तकसे चरणपर्यंत न्यास करनेसे भी हो सकेगा ॥ ६ ॥ हे सुरराज!"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"इस मंत्रके प्रणवादि यकारांत अक्षरोंका अंगुली, अंगुठा और पोरोंमें न्यास करे॥७॥ इस मंत्रके अतिरिक्त और मंत्रोंसे भी न्यास हो सकता है'ॐ विष्णवे नमः'इस मंत्रके ॐकारको हृदयमें धारण करे, विकारको मस्तकमें,षकारको दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें, णकारको शिखा पर,वेकारको दोनों नेत्रोंमें,नकारको सब संधिस्थानोंमें न्यास करके फिर मकारको अस्त्ररूपमें ध्यान करनेसे विद्वान् स्वयं मंत्रमूर्ति हो जायगा, तिसके पीछे इसी मंत्रको विसर्गयुक्त और फट् शब्द अंतमें करके सब दिशाओंको निर्देश करे,अर्थात्"ॐ विष्णवे नमः अस्त्राय फट्"इस मंत्रका

विश्वरूप उवाच ॥ धौतांघ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ॥ कृतस्वांगकरन्यासो मंत्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥४॥
नारायणमयं वर्म सन्नह्येद्भय आगते ॥ पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥५॥ मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनि
विन्यसेत् ॥ ॐनमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥ करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ प्रणवादि
यकारांतमंगुल्यंगुष्ठपर्वसु ॥ ७ ॥ न्यसेद्धृदयमोंकारं विकारमनु मूर्धनि ॥ षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखयादिशेत्
॥ ८ ॥ वेकारं नेत्रयोर्युंज्यान्नकारं सर्वसंधिषु ॥ मकारमस्त्रमुद्दिश्य मंत्रमूर्तिर्भवेद् बुधः ॥ ९ ॥ सविसर्गं फडंतं तत्
सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥ ॐ विष्णवे नमः फट् इति ॥ १० ॥

पूर्वादिदिग्बन्धमें प्रयोग करै,इस प्रकार क्रिया करनेसे बुद्धिमान् मन्त्ररूप होजाय।हे देवेन्द्र! वह दूसरा मन्त्र यह है"ॐ विष्णवे नमः"॥८॥९॥१०॥ हे सुरराज ! इस प्रकार न्यास करनेके पीछे फिर ध्यान करनेके योग्य ईश्वररूप उस आत्माका ध्यान करै,जो ऐश्वर्य आदि छह शक्तियोंसे संयुक्त है, तिसके पीछे नारायणकवचका वक्ष्यमाण मंत्र जो आगे कहेंगे, विद्या तेज और तपस्या ही जिसकी मूर्ति है, उस मंत्रका उच्चारण करै॥११॥ वह मंत्र यह है कि, ॐ गरुड़जीकी पीठपर जिनके चरणकमल विराजमान हैं, जो अष्टबाहु युक्त हैं और उन आठ भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म,धनुष,बाण,ढाल और पाश धारण किये हुए अणिमादि अष्टगुणधारी वह भगवान् हरि सब प्रकारसे मेरी रक्षा करैं॥१२॥और भी मत्स्यमूर्ति

आत्मानं परमं ध्यायेद् ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ॥ विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मंत्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥ ॐ हरि
र्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेंद्रपृष्ठे ॥ दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान्दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥
जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्॥स्थलेषु मायाबटुवामनोऽव्यात्त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः
॥ १३ ॥ दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः॥ विमुंचतो यस्य महाऽट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यप
तंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥ रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ॥ रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्म
णोऽव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ॥ १५ ॥

वह भगवान् जलके मध्यमें जलजंतुसमूह तथा वरुणकी फाँसीसे मेरी रक्षा करैं-जो मायाके योग करके बटु वामन हुए थे, वह स्थलके मध्यमें मेरी रक्षा करैं । जो विश्वरूप त्रिविक्रम मूर्ति हैं, वह भगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करैं ॥ १३॥जिन्होंने असुरके यूथप हिरण्यकशिपुके मारनेके लिये नरसिंह मूर्ति धारण की और जिनके विकट अट्टहाससे सब दिशा प्रतिध्वनित होकर स्त्रियोंके गर्भ गिर गये थे, वह संग्राम व दुर्गम मार्ग इत्यादिमें मेरी रक्षा करैं ॥ १४ ॥ जो अवयवरूप यज्ञसे निरूपणीय होते हैं, और जिन्होंने अपनी कराल डाढसे इस पृथ्वीका उद्धार किया था, वह प्रसिद्ध वाराहजी मार्गमें हमारी रक्षा करैं और पर्वतोंके शिखरमें परशुराम भगवान् हमारी रक्षा करैं और भरतजीके बडे भाई

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रभु लक्ष्मणजीके साथ परदेशमें हमारी रक्षा करैं॥१९॥और भगवान् नारायणजी अभिचारादिस्वरूप समग्र उग्र धर्म और समस्त अनवधानोंसे हमारी रक्षा करैं, और नररूपी वह प्रभु उपहाससे हमारी रक्षा करैं और दत्तात्रेयरूपी वह भगवान् जो सब यज्ञोंके नाथ हैं वह योगभ्रंशसे हमारी रक्षा करैं, कपिलमूर्ति वह प्रभु जो सब गुणोंके ईश्वर हैं, वह कर्मबंधनसे हमारी रक्षा करैं ॥ १६ ॥ सनत्कुमाररूपी भगवान् कामदेवसे हमारी रक्षा करैं,हयग्रीवमूर्ति भगवान् मार्गमें देवहेलन अर्थात् देवतालोगोंको नमस्कार न करके गमनरूप अपराधसे हमारी रक्षा करैं। देवर्षिश्रेष्ठ अर्थात् नारदरूपी भगवान् बत्तीस अपराधरूप जो देवपूजाके छिद्र हैं, उनसे हमारी रक्षा करैं। कूर्मरूपी हरि अनंत नरकोंसे हमारी रक्षा करैं ॥ १७॥ और भी धन्वंतरिरूपी भगवान् अपथ्यसे हमारी रक्षा करैं। जितेन्द्रिय ऋषभमूर्ति भगवान्

मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात्॥ दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद्गुणेशः कपिलः कर्मबं
धात् ॥ १६॥सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ॥ देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनांतरात्कूर्मो हरिर्मां निर
यादशेषात् ॥ १७ ॥ धन्वंतरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्द्वंद्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा ॥ यज्ञश्च लोकादवताज्जनांताद्बलो गणा
त्क्रोधवशादहींद्रः ॥१८॥ द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखंडगणात्प्रमादात्॥ कल्किः कलेः कालमलात्प्रपातु
धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १९ ॥ मां केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविन्द आसंगवमात्तवेणुः ॥ नारायणः प्राह्ण उदार
शक्तिर्मध्यंदिने विष्णुररींद्रपाणिः ॥ २० ॥

सुखदुःखादि झगडोंके भयसे हमारी रक्षा करैं। यज्ञमूर्ति भगवान् लोकापवादसे हमको बचावैं । बलभद्ररूपी भगवान् लोकसम्बन्धी उपघातसे हमारी रक्षा करैं। शिवरूपी भगवान् क्रोधवश सर्पोंके गणसे हमारा उद्धार करैं ॥ १८ ॥ अज्ञानसे वेदव्यासजी हमारी रक्षा करैं, प्रमाद और पाखण्डगणसे बुद्ध भगवान् बचावैं और कल्किरूपी भगवान् जिन्होंने धर्मकी रक्षा करनेके लिये इस बडे अवतारका धारण करना स्वीकार किया है, वह कलिके मलस्वरूप कालसे हमारी रक्षा करैं॥१९॥हे सुरराज इंद्र! तिसके पीछे प्रातर्मध्याह्नादि दिनके छठवें भागमें और रात्रिमें प्रदोषादिके समय इस प्रकारसे प्रार्थना करे,यथा-भगवान् केशव प्रातःकालमें गदासे मेरी रक्षा करैं।भगवान् गोविंद वेणुधारी होकर आसंगव

कालतक सब प्रकारसे हमारी रक्षा करैं । भगवान् नारायण शक्ति ग्रहण करके पूर्वाह्णकालमें हमारी रक्षा करैं, विष्णु भगवान् चक्र हाथमें लेकर मध्याह्नके समय हमारी रक्षा करैं॥२०॥ भगवान् मधुसूदनजी उग्र धनुष ग्रहण करके अपराह्ण कालमें हमारी रक्षा करैं, त्रिधामा अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपी भगवान् सायंकालमें हमारी रक्षा करैं, भगवान् माधव प्रदोषके समय हमारी रक्षा करैं और वह एक पद्मनाभदेव जो विषय और इन्द्रियगणोंके ईश्वर हैं वह आधीरातके समयतक हमारी रक्षा करैं ॥ २१ ॥ और श्रीवत्स ही जिनका धाम है वह भगवान् ईश पिछली रात्रिमें हमारी रक्षा करैं । और भगवान् जनार्दन जो कि,खड्गधारी हैं,वह प्रत्यूषके समय हमारी रक्षा करैं । भगवान् दामोदर प्रभातके समय हमारी

देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायं त्रिधामाऽवतु माधवो माम् ॥ दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥श्रीवत्सधामापररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ॥ दामोदरोऽव्यादनुसंध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥ ॥२२ चक्रं युगांतानलतिग्मनेमि भ्रमत्समंताद्भगवत्प्रयुक्तम् ॥दंदग्धि दंदग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वात सखो हुताशः॥२३॥गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिंगे निष्पिंढि निष्पिंढ्यजितप्रियासि ॥ कूष्मांडवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन्॥२४॥ त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन्॥ दरेंद्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कंपयन् ॥ २५ ॥

रक्षा करैं,भगवान् विश्वेश्वर जो कालकी मूर्ति हैं,वह प्रति संध्यामें हमारी रक्षा करैं॥२२॥ अहो । भगवानके इस चक्रकी नेमी (धार) प्रलयकालके अग्निकी तुल्य अतिशय तीक्ष्ण है । हे चक्र ! तुम भगवान करके युक्त होकर जिस प्रकार पवनका सखा अग्नि सूखे हुए तृणोंको जला देता है, वैसे ही तुम हमारे शत्रुकी सेनाको बहुत शीघ्र भस्म करो ॥ २३ ॥ हे गदे । तुम्हारी चिनगारियोंका छूना वज्रके स्पर्शके समान है और तुम अजित भगवानके प्रिय हो और हम भी उन्हीं भगवानके दास हैं इसलिये विघ्न करनेवाले कूष्माण्ड, वैनायक, यक्ष, राक्षस और भूत, प्रेत व ग्रहगणको तुम पीस डालो,पीस डालो और समस्त शत्रुओंको चूर्ण करो, चूर्ण करो॥२४॥ हे पाञ्चजन्य शंख। तुम भगवान् विष्णुजीके मुखके

पवनसे पूरित होकर भयंकर शब्द करते हुए राक्षस, प्रमथ, भूत, पिशाच इत्यादिकोंको और ब्रह्मराक्षस व और दूसरे घोरदर्शन दुरात्मा लोगोंको भगादो, भगादो जिससे कि शत्रुगणोंका हृदय कांप जाय ॥२५॥ हे श्रेष्ठ खड्ग ! तुम्हारी धार अति तीक्ष्ण है, तुम भगवान् नारायणकरके चलाये जाकर समस्त शत्रुकी सेनाको काट डालो, काट डालो । हे चन्द्रमाकेसे शतमण्डलवाली ढाल ! तुझमें मण्डलाकार शत चन्द्रमा देदीप्यमान हैं, तुम पापी विद्वेषियोंकी आंखोंको ढक लो। ढक लो।। और उग्रदृष्टिवाले इन सब पुरुषोंकी दृष्टिको हरण करो। हरण करो।। ॥ २६ ॥ अहो ! समस्त ग्रह केतु, सर्प और कराल डाढवाले हिंसक जन्तु पापी भूत प्रेतादिसे हमको अभय करो ! अभय करो ! ! ॥२७॥ हे भगवन् ! आपके नामरूपी कीर्तनसे वह सब सदा ही क्षयको प्राप्त होवें जो कि, हमारे इष्ट आनन्दमें विघ्न करनेवाले हैं ॥ २८ ॥

त्वं तिग्मधाराऽसिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिंधि छिंधि॥चक्षूंषि चर्मन् शतचंद्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥ यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ॥ सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥ २७ ॥ सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ॥ प्रयांतु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥२८॥ गरुडो भगवान्स्तोत्रस्तोमश्छंदोमयः प्रभुः ॥ रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥ २९ ॥ सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ॥ बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान्पांतु पार्षदभूषणाः ॥ ३०॥ यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ॥ सत्येनानेन नः सर्वे यांतु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥ यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम्॥भूषणायुधलिंगाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया॥३२॥

और भगवान् गरुडजी जो बृहद्रथन्तरादि सामरूपी स्तोत्रोंसे स्तुति किये जाते हैं, वेद सब जिनकी मूर्ति हैं, जिनको विष्वक्सेन कहा जाता है वह अपने सब नामोंकरके अशेष पापोंसे हमारी रक्षा करैं । "स्तोत्रैःस्तोम्यत इति स्तोत्रस्तोमः" ॥२९॥ और भी भगवान्के नाम, रूप, यान (वाहन) और अस्त्र, शस्त्र तथा प्रधान प्रधान पार्षदलोग हमलोगोंकी बुद्धि, इंद्रिय, प्राण और मनको अनन्त विपदोंसे बचावैं ॥ ३० ॥ अहो ! मूर्त्त अमूर्त्त, यह सब ही जगत् वास्तवमें भगवान् का ही स्वरूप है, ऐसा हमारा निश्चय है । सो इसी सत्यसे हमारे सब उपद्रवोंका विनाश होवे ॥ ३१ ॥ और जो पुरुष ऐकात्म्यका ध्यान करते हैं उन लोगोंसे अभिन्न होकर भी जो भगवान् अपनी

मायाके छलसे भूषण, आयुध और लिंगादि विविध शक्ति धारण करते हैं ॥३२॥ और उनकी ही सत्यताका प्रमाण है, वह अपने शरीरके प्रमाण करनेको सर्वज्ञ भगवान् हरि अपने सब स्वरूपोंसे सदा हमारी सब स्थानोंमें रक्षा करते रहैं ॥ ३३ ॥ और भगवान् नृसिंहजी सब दिशा विदिशाओंमें ऊपर, नीचे, भीतर, बाहर, सर्वभावसे हमारी रक्षा करैं, जिनकी ध्वनिसे सब लोकोंका भय दूर होजाता है और जिनके निज प्रभावसे दिग्गज, बिष, शस्त्र, जल, वायु और अग्नि इत्यादिका तेज विनाशका प्राप्त होजाता है ॥ ३४ ॥ हे देवराज ! नारायणमय कवच इस प्रकारका है, सो हमने तुमसे कहा, इसको तुम पहनो तब अवश्य ही असुरयूथपति लोगोंको जीत सकोगे ॥ ३५॥ हे महेंद्र ! इस कवचका

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः ॥ पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३३ ॥ विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समंता
दंतर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ॥ प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३४॥ भगवन्निदमाख्यातं वर्म नारा
यणात्मकम् ॥ विजेष्यस्यंजसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥३५॥ एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ॥ पदा वासे
स्पृशत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥ ३६ ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ॥ राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रा
दिभ्यश्च कर्हिचित्॥ ३७ ॥ इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन्द्विजः ॥ योगधारणया स्वांगं जहौ स मरुध
न्वनि ॥ ३८ ॥ तस्योपरि विमानेन गंधर्वपतिरेकदा ॥ ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३९ ॥

धारण करनेवाला पुरुष जिसको नेत्रोंसे देखै अथवा चरणसे स्पर्श करै, उस पुरुषका भयसे छुटकारा होजाय । भला फिर इसके धारण करनेवाले पुरुषको कहांसे भयकी संभावना हो सकती है ॥३६॥ इसलिये जो पुरुष इस विद्याको धारण करता है उसको राजा, चोर, नवग्रह, व्याधि इत्यादि किसीसे भी कुछ भय नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! पूर्वकालमें कौशिकनामक किसी ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके विना जलवाले मरुदेश "मारवाड" में योगकी धारणासे अपने शरीरको छोड़ दिया था ॥ ३८ ॥ जहाँपर उस ब्राह्मणके शरीरका क्षय हुआ था उसके ऊपर होकर एक समय चित्ररथनामक गन्धर्वपति अपनी स्त्रियोंके साथ विमान पर चढ़ा हुआ जा रहा था ॥३९॥

जैसे ही वह गन्धर्वपति इस स्थानके ऊपर आया कि, उसकी गति रुक गई और वह उसी समय विमानके सहित उलट कर आकाशसे पृथ्वीमें गिरा, इस बातके होनेसे गन्धर्वपतिके मनमें बडी चिंता उत्पन्न हुई, तब उसने वालखिल्य मुनियोंके उपदेशसे वहांपर पडी हुई उस ब्राह्मणकी अस्थियोंको बीनकर प्राचीवाहिनी सरस्वतीके जलमें डाल दिया और फिर इस नदीमें स्नान करके अपने स्थानको चला गया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको सुअवसरमें सुनता है अथवा जो जन आदरपूर्वक इसको यंत्रमें धारण करता है उसको सभी प्राणी नमस्कार करते हैं और वह पुरुष सर्व प्रकारसे सब भाँतिके भयसे छूट

गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्छिराः ॥ स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥ ४० ॥ प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ॥ तं नमस्यंति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४२॥ एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठ० नारायणवर्मकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ॥ सोमपीथं सुरापीथमन्नादमितिशुश्रुम ॥ १ ॥

जाता है॥४२॥ अधिक क्या कहैं, देवराज इन्द्र महर्षि विश्वरूपजीसे इस विद्याको प्राप्त होकर समरमें असुरलोगोंका संहार कर त्रिलोकीकी लक्ष्मीका भोग करते हुए ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां नारायणकवचवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥ दोहा–इन्द्र नवममें कोपकर, विश्वरूप दियो मार । तब त्वष्टाने पुत्र इक, प्रगटो परम जुझार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! ऐसा सुना जाता है कि विश्वरूपजी जो देवतालोगोंके पुरोहित बने उनके तीन शिर थे, वह एक मस्तकसे सुरापान, एकसे सोमपान और एकसे

अन्नमात्र भोजन करते थे ॥ १ ॥ जो कुछ हो, विश्वरूप यज्ञके समय विनत भावसे देवतालोगोंको प्रगट हव्यका भाग देते, क्योंकि देवतालोग उनके पितृपक्षमें थे ॥ २ ॥ परन्तु माताके स्नेहके वश हो, यज्ञ करते करते आप असुरलोगोंको भी छिपाकर यज्ञका भाग दिया करते थे ॥ ३॥ उनके इस देवताओंके अनादररूप अन्यायके आचरणको एक दिन देवराज इन्द्रने देख लिया, इससे वह बहुत ही डरे और रोषके वेगको रोकनेमें असमर्थ होकर विश्वरूपके तीनों मस्तक काट डाले ॥४॥ हे राजन् ! विश्वरूपका जो मस्तक सोमपान करता था वह कटकर कपिञ्जल (चातक) हुआ, सुरा पीनेवाला मस्तक कटकर कलविङ्क (चटक) हुआ और अन्नवाले मस्तकसे तीतर पक्षी हुआ ॥ ५ ॥ हे कौरववंशावतंस! इन

स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः॥ अवदद्यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥२॥ स एव हि ददौ भागं परोक्षम
सुरान्प्रति ॥ यजमानोऽवहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥ ३ ॥ तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ॥ आलक्ष्य तरसा
भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥ ४ ॥ सोमपीथं तु यत्तस्य शिर आसीत्कपिंजलः ॥ कलविंकः सुरापीथमन्नादं यत्स
तित्तिरिः ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्यामंजलिना जग्राह यदपीश्वरः ॥ संवत्सरांते तदघं भूतानां स विशुद्धये ॥ भूम्यंबुद्रुमयोषि
द्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥ ६ ॥ भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ॥ ईरणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥ ७ ॥

विश्वरूपजीके शिर काटनेसे देवराज इन्द्रको जो ब्रह्महत्या लगी, यद्यपि वह इसके निवारण करनेमें समर्थ थे, तो भी उस ब्रह्महत्याको अंजली फैलाकर ग्रहण किया और एक वर्षतक इस पापसे कलुषित होकर रहे। एक वर्षके पीछे फिर लोकनिन्दासे भीत होकर सबके सन्मुख अपनी विशुद्धि अर्थात् कलंक मिटानेके लिये इस पापको चार भागोंमें बांटकर एक भाग भूमिको दिया, एक जलको दिया, एक वृक्षोंको दिया, एक स्त्रियोंको दिया, इस प्रकारसे चार भागोंमें यह ब्रह्महत्या इन्द्रने बांट दी ॥ ६ ॥ हे राजन् ! पृथ्वीने खातके पूर्ण होनेका वर पाय अर्थात् जो गढा होगा, वह अपने आप ही भर जायगा, इस वरसे मोहित होकर इन्द्रकी ब्रह्महत्याका चौथा भाग ग्रहण किया, वह पाप अब तक ऊषररूपसे

पृथ्वीपर दृष्टि आता है.इसी कारणसे ऋषिलोगोंने ऊषर भूमिपर बैठकर अध्ययनादिका निषेध किया है॥७॥और वृक्षोंने कट जाकर फिर उपजनेका वर पाय मोहित हो चार अंशोंमेंसे ब्रह्महत्याका एक अंश लिया। हे भूपाल! वृक्षोंमेंसे जो निर्यास (गोंद-रस) दिखलाई देता है यही ब्रह्महत्याके पापका अंश है॥८॥और स्त्रियोंने सदा संभोग करनेका वर पाय इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक अंश ग्रहण किया,स्त्रियोंको महीनेके महीने जो ऋतु (रज) होता है अर्थात् रजस्वला होती हैं,वही इस ब्रह्महत्याके पापका चिह्न दिखाई देता है,इस कारणसे यद्यपि इन्द्रके वरसे सब समय अर्थात् गर्भ धारण करनेपर प्रसवकाल जबतक कि,बालक उत्पन्न नहीं होता,स्त्रियोंसे मैथुन करना ठीक है तथापि ऋतुकालमें तीन दिन स्त्रीसंगका निषेध किया है॥९॥जो कुछ हो,देवराज इन्द्रकी हत्याका बचा हुआ चौथा अंश जलने ग्रहण करलिया,इन्द्रने जलको यह वर दिया कि दुग्धादि जिस वस्तुमें तुम मिल जाओगे, वह वस्तु बढ़ जायगी यह कह इन्द्रने जलको अपने पापका चौथा अंश समर्पण किया. हे राजन्! जलमें बबूले और फेन सिवारादि जो दीखते हैं यह उसी ब्रह्महत्याका चिह्न है॥१०॥ हे कौरववंशी! विश्वरूपके मारे जानेपर उनके पिता त्वष्टाने क्रोध करके इन्द्रको मार डालनेके लिये उसके शत्रुकी उत्पत्ति होनेकी कामनासे होम करना प्रारंभ किया किन्तु आहुति दे प्रार्थना करनेके समय जब कि, यह वचन कहने लगा कि, हे इन्द्रशत्रो! तू वृद्धिको प्राप्त हो और शीघ्र शत्रुका विनाश कर, तब भाग्यके वश “ इन्द्रशत्रो” इसका आदिशब्द उदात्त स्वरमें उच्चारण होनेसे इन्द्रका शत्रु इस प्रकारका अर्थ न होकर इन्द्र है शत्रु जिसका यह अर्थ निकलने लगा*॥११॥थोडीसी

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः ॥ तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८ ॥ शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः
स्त्रियः ॥ रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥ ९ ॥ द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ॥ तासु बुद्बुदफे
नाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥ १० ॥ हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेंद्राय शत्रवे ॥ इंद्रशत्रो विवर्धस्व मा चिरं जहि विद्वि
षम् ॥ ११ ॥ अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः ॥ कृतांत इव लोकानां युगांतसमये यथा ॥ १२ ॥ विष्व
ग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ॥ दग्धशैलप्रतीकाशं संध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥ १३ ॥

---

* ईश्वरकी इच्छासे इस प्रकरणमें प्रकृतिका पूर्वापर होना लिखा है.

आहुति डालनेपर यज्ञके दक्षिणाग्नि कुंडसे युगान्तकालीन कृतान्तके समान भयंकर आकार वाला एक असुर उत्पन्न हुआ॥ १२॥ ❋उसका शरीर चलाया हुआ बाण जितने हाथ दूर गिरै प्रति दिन सर्व भाँतिसे उतना बढ़ता था, उसका वर्ण जलेहुए पर्वतके समान मलिन था, उसकी दीप्ति संध्यासमयके बादलके समान अति भयंकर थी, उसकी शिखा व मूँछ तपे हुए ताँबेके समान रंगवाली थी, दोनों नेत्र दुपहरियाके सूर्यके समान अतिशय उग्र थे॥ १३॥ १४॥ और प्रकाशमान तीन अनीवाले त्रिशूलमें मानो पृथ्वी और अंतरिक्षको छेदे लेता है, सो वारंवार ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो यह असुर पैरोंके आघातसे पृथ्वीको कम्पायमान कर नाचनाचकर गर्ज रहा था ॥ १५ ॥ और पर्वतकी कन्दराके समान गम्भीर और अति कठिन कराल डाढोंवाले वदनको वारंवार फैलाकर जँभाई ले रहा था. हे राजन्! उसका यह वदन मानो पृथ्वीको खानेके लिये और समुद्रके पीनेके लिये उपस्थित था और जीभ मानो नक्षत्रोंको चाटनेके लिये लपलपा रही थी, इसलिये यह मानो त्रिलोकीके ग्रास करनेको खडा था ॥ ॥ १६ ॥ उसका वदन अतिशय बडा, उस वदनमेंके दाँत अत्यन्त भयंकर थे, उसको इस प्रकारके वदनसे वारंवार जँभाई त्याग करते देखकर सब लोक डर गये और आबाल वृद्धोंको जिस ओर अवसर मिला वह उसी ओर भाग खडे हुये॥ १७॥

तप्तताम्रशिखाश्मश्रु मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥ १४ ॥ देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ॥ नृत्यंतमुन्नदंतं च चालयंतं पदा महीम् ॥ १५ ॥ दरीगंभीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ॥ लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ महता रौद्रदंष्ट्रेण जृंभमाणं मुहुर्मुहुः ॥ वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥

---

* शंका–पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर इन चारों दिशाओंकी ओर नित्यप्रति चार चार हाथ अर्थात् सोलहहाथ चारों ओरको वृत्रासुरका शरीर दिन दिन बढता था, यह बात बडे आश्चर्यकी है, वरन् एक प्रकारका कौतुक है; क्योंकि वर्ष वर्ष, लेखा लगाया जाय तो कितना मोटा शरीर हो सकता है, और वृत्रासुर लाखों वर्षतक जीता रहा तब कैसा शरीर होगया होगा? उसकी लम्बाई चौडाईका जोड आपने लगाया हो तो मुझको बताओ जिससे मेरे मनका सन्देह जाय ।

उत्तर–इषुमात्र इस श्लोकमें विद्वान् लोग इषुको बाण नहीं कहते क्योंकि विश्वकोश, कमण्डलुकोश आदि कोशोंमें इषुको सींक भी कहते हैं; मात्रको मोटा भी कहते हैं इस प्रमाणसे इषुमात्र कहिये सींकसरीखा जानना; वृत्रासुरकी देह नित्य चारों ओर बढती थी, चार हाथ प्रमाण एक धनुषका है सो नित्य धनुषप्रमाण अर्थात् चार हाथ देह नहीं बढती थी ।

हे कौरवराज!इस त्वष्टाके पुत्ररूप अंधकारने कि जिसकी मूर्तिका वर्णनकिया कि,जिससे उसनें तपस्याके बलसे समस्त लोकोंको अंधकारसे ढकलियाथा,इसी कारण इस परमदारुण पापात्माका नाम"वृत्र"हुआ॥ १८॥जो कुछ हो,देवता लोग इस दानवको देखतेही अपने दल बलसहित अपने२ अस्त्रशस्त्र ले उस असुरको मारने लगे, परन्तु किसी प्रकारसे उस राक्षसका संहार न किया गया। बरन् वह देवता लोगोंके सब ही अस्त्र शस्त्रोंको लील अर्थात् निगल गया ॥१९॥ यह देखकर सब देवतालोग बहुत ही विस्मित और शोकाकुल हुए।और देवताओंका प्रभाव मानो अस्त होने पर हुआ, उसके पीछे सबने परामर्श करके भगवान् आदिपुरुष जो अन्तर्यामी और त्रिभुवनव्यापी हैं, सावधान होकर उसी स्थानमें एकाग्रचित्त हो उन भगवानकी स्तुति करने लगे—हे महाराज! भयके आ जानेपर नारायणके विना और किसीसे भी उद्धार होनेकी संभावना नहीं, यह

येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ॥ स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥ तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ॥ स्वैस्स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ॥ प्रत्यंचमादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ वाय्वंबराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजंतः ॥ हराम यस्मै बलिमंतकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततोऽस्तु नः ॥ २१ ॥ अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशांतम्॥ विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलांगुलेनातितितर्ति सिंधुम्॥ २२ ॥

विचार कर देवतालोग सावधान होकर भगवान् हरिकी शरणमें गये, "महाभये परित्राणमन्यतो न भवेदिति ॥ हरिमेव प्रपद्यंते सुराः शरणमातुराः" ॥ २० ॥ देवतालोग बोले कि पवन, गगन, अनल, जल और पृथ्वी यह पञ्चभूत और पञ्चभूतोंसे बने यह तीन भुवन और इन सबके स्वामी ब्रह्मादि देव और उनसे अर्वाचीन हम लोग सब ही सभय होकर जिस कालकी पूजा करते हैं, ऐसा काल भी जिनसे डरता है, उन्हीं परमेश्वरसे हमारी रक्षा की जावै ॥ २१ ॥ यह निरहंकार, शांत, रागादिशून्य, अपने स्वरूपलाभसे ही पूर्ण, नाम उपाधिकृत आडम्बरसे हीन, इन परमेश्वरको छोडकर जो पुरुष और दूसरेकी शरण लेता है, वह अति अज्ञानी है, योंकि, कुत्तेकी पूँछ पकड़ वह समुद्रके उतरनेकी

---

* मंत्रः—"यदब्रवीत्स्वाहेंद्रशत्रुर्वर्धस्वेति । तस्मादस्येंद्रः शत्रुरभवत्" शिक्षामें है कि, मंत्र स्वर वर्णसे बोलनेमें हीन होनेसे मिथ्या प्रयोग हो जाय हैं, उलटा यह वाणीरूप वज्र यजमानको मारता है जैसी इन्द्रशत्रुमें स्वरके अपराध उलटा हुआ। श्लोकः—मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेंद्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

इच्छा करता है.जिस प्रकार कुत्तेकी पूँछ पकड़कर समुद्रका उतरना असंभव है, वैसे ही ईश्वरके सिवाय और दूसरेका आश्रय लेनेसे संसारसागरसे निस्तार नहीं हो सकता॥२२॥अहो ! महाभयके समयमें हम लोगोंने उनको ही रक्षा करनेवाला देखा है, क्योंकि, महाप्रलयके समयमें सत्यव्रत मनु उनके ही विशाल शृङ्गमें पृथ्वीरूप अपनी नाव बाँधकर उस कालकी विपदसे बचे थे,इसलिये हम उन जलचर अर्थात् मत्स्यमूर्त्ति भगवानके शरणमें जाते हैं, वह आश्रित हुए हम लोगोंकी अवश्य ही रक्षा करेंगे ॥ २३ ॥ अहो ! प्रलयकालीन समुद्रके जलमें जब कि प्रचण्ड पवनसे भयंकर लहरें उठ रही थीं; उस समय उस तरंगमें नाभिकमलसे गिरनेपर पितामह ब्रह्माजी जिन करके भयसे छूटे वही इस विपदसे हम

यस्योरुशृंगे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम् ॥ स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद्दुरंतात्त्राताश्रितान्वारिचरोऽपि
नूनम्॥२३॥पुरा स्वयंभूरपि संयमांभस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले॥ एकोऽरविंदात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येन स नोऽस्तु
पारः॥२४॥य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ॥ वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिंगं
पृथगीशमानिनः ॥२५॥यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव॥कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वा
97—
त्मसात्पाति युगे युगे च॥२६॥ तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम्॥ व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां
स नो धास्यति शं महात्मा ॥ २७ ॥

लोगोंको विना किसीकी सहायताके पार करें॥ २४ ॥ जो ईश्वर हैं, जिन्होंने अपनी मायासे हम सबको बनाया और उन्हींके अनुग्रहसे हम विश्वसृष्टि रचते हैं,जो प्रभु हमारे आगे ही अंतर्यामीरूपसे चेष्टा करते रहते हैं,तो भी हम लोग उनका रूप नहीं देख सकते; क्योंकि हम "ईश्वर पृथक् है" इस प्रकारसे मानते हैं ॥ २५ ॥ अहो ! विपक्षी लोग जब हमारा निर्दयी होकर मर्दन करते हैं उस समय जो मायाका अवलम्बन करके देवता, ऋषि, पशु, पक्षी और मनुष्योंके मध्यमें अवतार लेकर इन सब लोकोंको अपने अधीनमें करते हुये युगयुगमें पालन करते हैं ॥ २६ ॥ उसी परमात्मारूपी देवताकी शरणमें हम सब प्राप्त हुए हैं.वह विश्वमूर्ति हैं, वह परम पुरुष हैं, वही प्रधान हैं, इसलिये चलो हम सब लोग उन्हीं

परमेश्वरकी शरण ले। उनसे अवश्य ही हम सबका कल्याण होगा॥२७॥श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे महाराज परीक्षित्! जब देवतालोग स्तुति कर रहे थे, कि कुछ देर पीछे प्रथम उनके हृदयमें और फिर पश्चिमदिशाकी ओरसे शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् प्रगट हुए ॥ २८ ॥ उसी समय देवतालोगोंने उनको सम्मुख देखा, अपने समान(१६)सोलह पार्षद साथ लिये श्रीवत्स कौस्तुभमणि धारे,शरदकालके कमलतुल्य नेत्रवाले ईश्वरकी उपासना करने लगे ॥२९॥ उन ईश्वरको देख सब देखनेवाले आनंदसे विह्वल हो दंडकी नाईं भूमिमें साष्टांग दंडवत करके, धीरे धीरे उठके स्तुति करने लगे॥३०॥हे राजन्! देवता लोग यह कहकर स्तुति करने लगे कि, हे भगवन्! यज्ञ ही जिनका वीर्य, अर्थात् स्वर्गादि अवस्थारूप सर्वं सामर्थ्यवान्, कालस्वरूप, दैत्योंके ऊपर चक्र चलानेवाले और अनेक नामवालेके लिये नमस्कार हो ॥३१॥ हे धातः! तुम

श्रीशुक उवाच ॥ इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम्॥प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शंखचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ॥पर्युपासितमुन्निद्रशरदंबुरुहेक्षणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तमवनौ सर्व ईक्षणाह्लादविक्लवाः ॥ दंडवत्पतिता राजञ्छनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥ ३० ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः॥ नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥ ३१ ॥ यत्ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ॥ नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥ ३२ ॥

तीनों गुणोंके ईश हो, तुम्हारी त्रिगुणात्मिका तीन गति जो पर अपर अर्थात् निर्गुणस्वरूप हैं उनको अर्वाचीन अर्थात् आजकलके पुरुष किसे प्रकार जाननेमें समर्थ होंगे, इसलिये हम तुमको नमस्कार करते हैं. हे भगवन्! हे नारायण! हे वासुदेव! हे आदिपुरुष! हे महापुरुष! हे महानुभाव! हे परममंगल! हे परमकल्याण! हे परमकारुणिक! हे केवल जगदाधार! हे गदाधर! हे लोकनाथ! हे सर्वेश्वर! हे लक्ष्मीनाथ! परमहंस परिव्राजक लोग अष्टांगयुक्त परमसमाधि आत्मयोगसे जो समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होते हैं उस समाधिका अनुष्ठान करके जो परिस्फुट परमहंस धर्मका अनुशीलन करते और उससे जब उनके चित्तके तमरूप किवाँड़ खुल जाते और प्रत्यक्षरूप

आत्मलोक प्रकाशमान होता है उस समय जो निजसुख स्वयं प्रत्यक्ष होजाता है. तुम उसके अनुभवस्वरूप हो,इसलिये हम सब देवता आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा विहारयोग अर्थात् क्रीडाका उपाय हमारी समझमें नहीं आता है. क्योंकि, आपका आश्रय नहीं और शरीर नहीं है और आप स्वयं सगुण हैं तथापि आपकी आत्मा करके इस सगुण विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती और आपकी आत्माको किसी प्रकारका विकार नहीं होता और उसपर आश्चर्य यह है कि आप सृष्टयादि कार्योंमें हम लोगोंकी कुछ सहायता नहीं चाहते हो ॥ ३४ ॥ इसलिये देवदत्त इस नामका कोई पुरुष जिस प्रकार गृहादि बनाकर उससे अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल पाता है, तुम ब्रह्मस्वरूप होकर भी गुणसृष्टिरूप संसारके वश पडते; या तद्रूप स्वकृत कुशलाकुशल भोग करते हो या स्वयं जो आत्माराम और उपमशशील तद्रूप ही रहकर अप्रचलित सदा रहनेवाली शक्तिके प्रभावसे उस विषयमें उदासीन रहते हो अर्थात् केवल या साक्षी स्वरूपसे ही वर्त्तमान रहते हो, इस बातका भेद हम नहीं जान सकते हैं ॥३५॥ परन्तु हे प्रभो ! आपमें यह दोनों ही अविरुद्ध हैं, इसलिये दूसरेका

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममंगल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगेन समाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमःकपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥३३॥ दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवायआत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसिपासि हरसि ॥ ३४ ॥ अथ तत्रभवान्किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतंत्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददाति आहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समंजसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥ ३५ ॥ नहि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगणईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये अर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलांतःकरणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसरे उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामंतर्धाय को नु अर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥ ३६ ॥

दृष्टान्त देखकर आपमें सन्देह करना ठीक नहीं। क्योंकि आप ईश्वर अर्थात् स्वतंत्र हैं, किसीके वश नहीं, आपमें अपारिमित गुणोंके समूह
प्रकाशमान हैं,आपका माहात्म्य तर्क करनेके योग्य नहीं है,इस कारण जिन शास्त्रोंमें विकल्प अर्थात् "ऐसा अथवा ऐसा?"इस प्रकारकी चिन्ता
वितर्क अर्थात् इस विषयमें क्या योग्य है" विचार अर्थात् " यह इसी प्रकारसे है" ऐसा निश्चय,विवाद और उसके अनुकूल प्रमाणा भास
अर्थात् कुतर्क यह समस्त देदीप्यमान हैं(परंतु यह सब किसी प्रकारसे भी वस्तुस्वरूपके स्पर्श करनेको समर्थ नहीं हैं)इन सब शास्त्रोंमें जिन
दुराग्रहियोंका अन्तःकरण व्याकुलित होता है, ऐसे दुराग्रहोंका आश्रय लेकर जो पुरुष विवाद करते हैं, आप उन लोगोंके विवादस्थानसे परे
हैं. आप समस्त मायामय संसारसे अलग और केवलस्वरूप वास्तविकमें हैं, मायाको मध्यमें रखकर आपमें कौनसा विषय दुर्घट है ? इस
कारण वास्तवमें यदि आपमें कर्तृत्वादि हों, तब हीं विरोधकी सम्भावना है, सो कदापि नहीं,क्योंकि आपके स्वरूप दो नहीं देखे जाते, अर्थात

समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखंडः सर्पादिधियाम्॥३७॥स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपःसर्वेश्वरः
सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥३८॥ अथ ह वाव तव
महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यंदमानानवरतसुखेनविस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः
परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरंतरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधु
मथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणांबुजानुसेवां विसृजंति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः॥३९॥

आपके स्वरूपमें कुछ भेद (द्वैत) नहीं ॥३६॥हे प्रभो ! यद्यपि आपको अनुग्रह निग्रहका पक्षपात नहीं है तो भी सब मनुष्योंकी मति इस प्रकारकी
नहीं, कुछ लोगोंकी बुद्धि समान है, और लोगोंकी मति अलग अलग है, इसलिये रस्सी आदिमें सर्पादिविषयक बुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये
जिस प्रकार सर्पभ्रम उत्पन्न होता है,वैसे ही आप भी इन समस्त सम विषम युक्त बुद्धिवाले लोगोंके अभिप्रायानुसार होकर अनेक रूप हो जाते
हो॥३७॥अहो ! जो सब वस्तुओंमें अनेकरूपसे प्रतीयमान हुआ करते हैं,वही समस्त वस्तु अर्थात् सत्स्वरूप सबके ईश्वर,अखिल जगत्कारणके
कारण और सर्व जीवोंके अन्तर्यामीपनके हेतु सर्वविषयोंके प्रकाशमें देखे जाते हुए अर्थात उनके विना कोई विषय प्रकाशित नहीं होता।परन्तु
उनका आकार किसी प्रकारका नहीं,श्रुतिमें "नेति नेति""यह नहीं"इस प्रकारकी युक्ति द्वारा कहकर जिनकी बखानते हैं॥३८॥हे मधुमथन !

कारण कि, आप ही इस प्रभावसे परमेश्वर हैं, इसलिये यह परमभागवत पुरुष आपके चरणकमलकी सेवा किस प्रकार त्याग सकते हैं ? यह सब पुरुष पुरुषार्थविषयमें अतिकुशल होनेके कारण आत्मा जो आप हैं, आपको ही प्रिय और अपना सुहृद समझे हुए हैं, इसलिये यह लोग साधु अर्थात् रागादि शून्य हैं, हे प्रभो ! आपकी महिमा ही अमृतका सागर है, उस सागरका एक बूँद जल भी एक बार पी लेनेसे फिर मनमें उससे जो सुख निरंतर प्राप्त किया करते हैं, उसको पाकर यह समस्त महापुरुष श्रुति दृष्टिविषयक छोटे सुखको भूल गये हैं, इस कारण आपमें ही इनका मन अत्यन्त अनुरागी होकर लगा हुआ है. हे प्रभो ! यह कोई नहीं कह सकता कि, आपकी सेवासे साधारण ही फल होता है भगवन् ! बडा फल होता है कि, संसारका आवागमन छूट जाता है ॥३९॥ हे भगवन् ! आप त्रिभुवनके आत्मा और भवन हैं, आप त्रिविक्रम

त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दंडं दंडधर दधर्थ ॥ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥ ४० ॥ अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिंगविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकंपानुरंजितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकलया चांतस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥ ४१ ॥

हैं, आपने ही इस त्रिलोकीको बनाया है, आपका प्रभाव तीनों लोकोंका मन हरण करनेवाला है. हे प्रभो ! दैत्य दानव इत्यादि सब ही आपकी विभूति हैं. हे दण्डधर ! आपने सब दैत्य दानवोंको "यह उद्योगका समय है" ऐसा विचार उनके ऊपर जब दण्ड धारण किया है, यदि इच्छा हो, तो इस समय भी वैसे ही दण्ड धारण करके इस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका संहार कीजिये ॥४०॥ हे तात ! हे हरे ! हम सब आपके ही जन हैं आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, और निरंतर ही आपके दोनों चरणकमलोंका ध्यान करते हैं, और उनमें ही हमारा हृदय अतिगाढ़रूपसे बध गया है, और आपने भी अपनी मूर्ति प्रकाश करके हम लोगोंको अपना भक्त कहकर माना है, इस कारण हे अनघ ! अनुग्रह प्रकाश करके सानुराग विशद रुचिवाली मन्द मुसकान सहित अवलोकन तथा मुखारविंदसे निकले हुए मधुर मनोहर वचनरूप कलासे हमारे अन्तः-

करणके तापको शांति देने योग्य होओ ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! हम जिस कार्यकी प्रार्थना करते हैं वह भी आपसे किस प्रकार कहैं ? आगकी चिनगारियें अग्निको प्रकाशित नहीं कर सकतीं वैसे ही हम भी आपके निकट अपनी अभिलाषा प्रगट नहीं कर सकते, जो विषय माया सब जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारणरूपसे प्रगट होती है उसी मायाके साथ आप विहार किया करते हैं, इस कारण समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें ब्रह्म और अन्तर्यामी स्वरूपमें और बाहरी प्रधानस्वरूपमें देश, काल, देह, अवस्था, विशेष अतिक्रमण करके इन सबके उपादान और उपलम्भकस्वरूपमें अनुभव किया करते हो, इस कारण आप स्वयं समस्त प्रयत्नके अर्थात् बुद्धि इत्यादिके साक्षी समस्त ही जानते हो, हे प्रभो!

अथ ह भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामंतर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलंभकतयाऽनुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिंगादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ ४२ ॥ अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥ ४३ ॥ अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसंतं भुवनत्रयम् ॥ ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥ ४४ ॥

साक्षी होनेका कारण यह है कि, आपका स्वरूप आकाशके समान किसीमें भी लिप्त नहीं है. हे भगवन् ! आपके शरीरके किसीमें लिप्त न होनेका कारण यह है कि, आप साक्षात् परब्रह्म अर्थात् निरुपाधि और परमात्मा अर्थात् सत्त्वमूर्ति हैं ॥ ४२ ॥ इस कारण हम जिस कार्यकी कामनासे आपके निकट आये हैं, सर्व तत्त्वोंके जाननेवाले गुणोंसे स्वयं उस कार्यको जानकर आप हमारे उस कायको पूर्ण करैं । हे भगवन् ! आप परमगुरु हैं, आपके चरणकमलोंकी छाया जो संसारके अनेक परिश्रमोंका नाश करनेवाली है, सो हम सबने उसी छायाका आश्रय लिया है ॥ ४३ ॥ हे ईश ! त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका आप संहार शीघ्र ही करें । इस असुरने त्रिलोकीका ग्रास कियां है. हे प्रभो ! इस दुष्टनें

हमारे अस्त्र शस्त्र और तेजको ग्रस लिया॥४४॥अहो ! शुद्ध और सब दुःखके हरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके अर्थ हम नमस्कार करते हैं, उनका हृदयके आकाशमें निवास है, वह बुद्धि इत्यादिके साक्षी हैं, सदा आनंदमय हैं, उनका यश रुचिर है,आदिरहित हैं, साधुलोग इसका संग्रह करते हैं, और वे संसाररूप मार्गमें सदा वर्तमान रहते हैं,जो पुरुष इनकी शरण लेता है वह उसके अर्थ संसारके अंतमें उत्तम गतिके स्वरूप होजाते हैं. इस कारण वह सब दुःखोंके हरण करनेवाले हैं । “कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते” इस प्रकार निरुक्ति है ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब देवता लोगोंने इस प्रकारसे भक्तिपूर्वक स्तुति की तब भगवान् हरि इसको सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो उनसे वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे सुरश्रेष्ठगण ! हमारे

हंसाय दह्वन्निलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय॥ सत्संग्रहाय भवपांथनिजाश्रमाप्तावंते परीष्टगतये हरये नमस्ते॥ ४५॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैवमीडितो राजन्सादरं त्रिदशैर्हरिः ॥ स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तान भिंनदितः ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ॥ आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥ ४७ ॥ किं दुरापं मयि प्रीते तथाऽपि विबुधर्षभाः ॥ मय्येकांतमतिर्नान्यन्मत्तो वांछति तत्त्ववित् ॥४८॥ न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ॥ तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥ ४९ ॥

स्तोत्रसे युक्त तुम्हारे ज्ञानसे हम अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस स्तोत्रके साथ ज्ञानसे पुरुषको आत्माके ऐश्वर्य अर्थात् संसारकी असारताका स्मरण होगा और मुझमें एकान्तकी भक्ति उत्पन्न हो जायगी ॥ ४७ ॥ हे विबुधश्रेष्ठ ! हमारे प्रसन्न हो जानेपर फिर भक्तोंको कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं होती ? अर्थात् सब ही वस्तु प्राप्त हो जाती हैं; शेष कुछ प्राप्त करनेको नहीं रहता. इस कारण तत्त्वज्ञानी पुरुष हमको ही एकान्तभावसे अपना चित्त समर्पण कर मतवाले हो जाते हैं, और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करते ॥ ४८ ॥ हे वत्सगण ! जो पुरुष विषयमें तत्त्वोंको देखता है, वह अति कृपण है,वह अपनी भलाईको नहीं जानता, इसलिये विषयमें जो उसकी इच्छा है,उसको

पूर्ण कर देना दयावान् पुरुषको उचित नहीं, बरन् उसके ही समान अज्ञानी पुरुष उसको पूर्ण कर दिया करते हैं ॥ ४९ ॥ जो विद्वान् हैं और अपने भले बुरेको जानते हैं, वह कभी अज्ञानीको प्रवृत्तिमार्गका उपदेश नहीं कर सकते, क्योंकि, रोगीके चाहनेपर भी भला वैद्य क्या उसको अपथ्य दे सकता है ? अर्थात् नहीं दे सकता ॥ ५० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तत्त्वकथनसे अनौचित्य हरण करके इन्द्रका अभिप्राय जानकर वह भगवान् कहने लगे कि, हे इन्द्र ! तुम इस समय अपने स्थानको जाओ, तुम्हारा मंगल होगा. दधीचि ऋषिका शरीर विद्या, व्रत

स्वयं निःश्रेयसं विद्वान् न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ॥ न राति रोगिणोऽपथ्यं वांछतो हि भिषक्तमः ॥ ५० ॥
मघवन्यात भद्रं वो दध्यंचमृषिसत्तमम् ॥ विद्याव्रततपस्सारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥ ५१ ॥ स वा अधिगतो
दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ॥ यद्वा अश्वशिरोनाम तयोरमरतां व्यधात् ॥ ५२ ॥

और तपस्या करनेसे अति दृढ़ होगया है, वहाँ जाकर तुम उनके शरीरको माँगो, अब विलंब करनेका अवसर नहीं है, शीघ्र ही जाओ ॥ ५१ ॥ हे देवेंद्र ! वह मुनि अध्यात्मविद्यामें अतिशय बलवान् हैं, वह शुद्ध ब्रह्मको जानकर दोनों अश्विनीकुमारोंको विद्यादान करते हुए. वह वेदभाग अश्वके शिरद्वारा कहा गया था, इस कारणसे अश्वशिरा नामसे प्रसिद्ध हुआ है, इसी विद्यासे अश्विनीकुमारोंको जीवन्मुक्तिका लाभ हुआ था ॥ ५२ ॥

---

१ इस विषयमें यह प्रसिद्ध इतिहास है कि, अश्विनीकुमार दधीचि मुनिको ब्रह्मविद्यामें निपुण व अर्थवक्ता श्रवण कर उनके निकट जाकर बोले कि, हे भगवन् ! आप जिस विद्यामें विशारद हुए हैं वह विद्या आप कृपापूर्वक हम लोगोंको भी पढाइये । जब अश्विनीकुमारोंने यह प्रार्थना की, तब इन मुनिने उत्तर दिया कि, इस समय हम भगवत् कर्म करनेमें स्थित हैं, अभी जाओ फिर आना, तब पढावेंगे, जैसे हां कि, अश्विनीकुमार आश्रमसे बाहर आये, वैसे ही इन्द्रने उस ऋषिके निकट पहुँचकर कहा कि, हे मुने ! अश्विनीकुमार वैद्य हैं, सो वैद्योंको ब्रह्मविद्याका उपदेश न देना चाहिये, इस कारणसे आप यह विद्या उन्हें न बतावें. यदि हमारे वचनोंका निरादर कर यह विद्या उन्हें बताइयेगा, तो निश्चय ही हम आपका शिर काट डालेंगे, यह कहकर इन्द्र चले गये । फिर बहुत शीघ्र अश्विनीकुमार विद्यार्थी होकर इन दधीचिके आश्रममें आये और इनके मुखसे इन्द्रकी कही वार्ता सुनकर बोले कि, हम पहले आपका यह शिर काट कर अश्वका मस्तक धरकर जोडे देते हैं तब आप इस मुखसे हमको ब्रह्मविद्याका उपदेश दीजिये, जब इन्द्र आकर आपका यह शिर काट डालेगा, तब फिर आकर हम आपका यह निजमस्तक आपके धडपर लगादेंगे और फिर आपको इस विद्याके पढानेकी गुरुदक्षिणा दीजायगी. दधीचि मुनिने यह वार्ता सुनकर अश्विनीकुमारको अश्वमस्तकसे प्रवर्ग्य और ब्रह्मविद्याका उपदेश किया था, इस कारणसे यह विद्या अश्वशिर नामसे प्रसिद्ध हुई ॥

हे इन्द्र ! दधीचि मुनिको मेरी आत्माका श्रीनारायणकवच प्राप्त हुआ और उन्होंने ही त्वष्टाको यह कवच पढ़ाया, त्वष्टासे वह कवच विश्वरूपको प्राप्त हुआ, और विश्वरूपने यह कवच तुमको दिया है। इस कारण दधीचिमुनिका गात्र नारायण कवचके प्रभावसे अति दृढ है, सो तुम लोग जाकर उनके अंगकी हड्डी मांगो, हे देवेंद्र ! यह देह सबको ही अत्यन्त प्रियहोती है फिर यह मुनि इस देहको क्यों देवेंगे ? श्रीभगवान् कहने लगे कि, इस प्रकारकी शंका तुम लोग मत करो, क्योंकि, वे परमधर्मज्ञ हैं, तुम्हारे ऊपर विशेष करके अश्विनीकुमारके मांगनेसे शिष्यकी प्रीतिके वश होकर उसी समय वह अपना शरीर दे देवेंगे, उस शरीरकी अस्थिसे विश्वकर्माजी जो आयुध बनावेंगे, वह श्रेष्ठ आयुध बन जायगा,

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यंमदात्मकम् ॥ विश्वरूपाय यत्प्रादात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥ ५३ ॥ युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोंऽगानि दास्यति ॥ ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥ ५४ ॥ येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥ तस्मिन्विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसंपदः ॥ भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसंति च मत्परान् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेषष्ठस्कंधे वृत्रवधार्थमिन्द्राद्युक्तभगवत्स्तोत्र नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

११८

अर्थात् वज्र हो जायगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तुम हमारे तेजसे बढकर इस शस्त्रसे वृत्रासुरका मस्तक काट डालना, हे देवगण ! जब वह दानव मर जायगा, तब तुम फिर अपने तेज अस्त्र और सम्पदाको प्राप्त होगे. बडे आकारवाला त्रिभुवनग्रासी वह असुर तुमको ग्रास कर जायगा ऐसी शंका तुम मत करना, क्योंकि, जो पुरुष हमारे भक्त हैं उनकी हिंसा करनेको कोई भी सामर्थ्य नहीं रखता, तुम बहुत ही शीघ्र अपना मंगल देख पाओगे ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामिन्द्रादिदेवकृतगद्यात्मकस्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

१ **भजन**–जो कोई चित्तसे मोहिं न बिसारे, मैं ना विसारूँ प्रण है यही मेरा ॥ १ ॥ धर्म प्रिय हो धर्म पढाऊँ, सफल काय कर अर्थ बताऊँ, मुक्ति चाहे तो पार लगाऊँ, छिन पलमाहिं न लागत बेरा ॥ २ ॥ रोग हरूं चिन्ता सब टारूं, अभयकरूं शत्रुनको मारूं, अचल भक्त जन वेग उबारूँ, सेवा करूँ आप बन चेरा ॥३॥ मेरा नाम भक्तसुखदायक, सदा बिपतिमें होत सहायक, जो कोई रटत कृष्ण यदुनायक ताके हृदय करत नित डेरा ॥ ४ ॥

दोहा–मुनि दधीचिकी अस्थिको, रचकर वज्र कठोर। वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अति घोर॥ १॥ श्री शुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! विश्वभावन भगवान् इन्द्रको इस प्रकारकी आज्ञा देकर दर्शन करनेवाले उन देवताओंके सामने ही अंतर्धान होगये॥ १ ॥ उसके पीछे देवतालोग महान् अथर्वण दधीचि मुनिके निकट जाकर उनके शरीरको मांगने लगे. हे भागवत! देवतालोगोंके मुखसे इन ऋषिको धर्म सुननेकी बड़ी अभिलाषा थी, इसलिये मनहीमन आनंदित हो हँसकर बोले ॥ २ ॥ हे वृन्दारकवृन्द! शरीरधारियोंको मरनेमें जो दुःख होता है उसको तुम नहीं जानते। हे सुरगण! मृत्युकी पीड़ा अत्यंत कठिन होती है, वह चेतनाका नाश कर देती है ॥३॥ जो जीव जीवित रहनेकी इच्छा करते हैं, उनको उनका शरीर अतिप्याग होता है, यदि तुम लोग कहो कि, हम तुम्हारा देह नहीं चाहते, बरन् हम लोगोंके मुखसे भगवान् तुम्हारे शरीरको माँगते हैं, इसका उत्तर यह है कि, अपनी प्यारी देहको भगवान् विष्णुके माँगनेपर भी कौन दे सकता है? ॥४ ॥ दधीचि मुनिके यह वचन सुनकर देवता लोग बोले कि, हे ब्रह्मन्! जो महापुरुष आपसरीखे दयावान् हैं, पुण्यवान् लोग सदा जिनके कर्मोंकी बड़ाई किया करते हैं, वे लोग परोपकारके लिये कौनसी वस्तुको नहीं दे सकते हैं? ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! यह ठीक है कि, स्वार्थपर लोग दूसरेके क्लेशको नहीं जानते, यदि पराया दुःख जानें तो मांगें नहीं वैसे ही दान देनेमें समर्थ पुरुष भी समझकर "ना" नहीं कह सकता, अर्थात् हम लोग जिस प्रकार स्वार्थपर होनेसे आपके कष्टकी ओर नहीं देखते, आप भी वैसे ही सूखा उत्तर देकर हम लोगोंकी इस विपदको नहीं समझते॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः ॥ पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ १ ॥ तथाऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ॥ मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥ अपि वृंदारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ॥ संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुस्सहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥ जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः ॥ क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे॥४॥ देवा ऊचुः॥ किं नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकंपिनाम् ॥ भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥५॥ ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् ॥ यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥

वे महात्मा ऋषि विनय करके बोले कि,हे देवगण ! आप लोगोंसे धर्म सुननेकी कामनासे हमने ऐसा कहा था, यद्यपि हमारा यह देह प्यारा है, तो भी एक दिन यह अवश्य ही हमको छोडकर चला जायगा. फिर जब कि आप लोग हमसे इस देहको मांगते हैं, तब तो अभी हम इसको आपके लिये त्याग किये देते हैं ॥ ७ ॥ हे नाथगण ! यह देह नित्य नहीं है, इस शरीरसे सब प्राणियोंके ऊपर दया करके जो पुरुष धर्म और यश बटोरनेकी चेष्टा नहीं करता, उसके लिये अचेतन स्थावर तक भी शोक किया करते हैं* ॥८॥ हे प्रभुवर्ग ! जो महात्मा स्वयं

ऋषिरुवाच ॥ धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ॥ एष वः प्रियमात्मानं त्यजंतं संत्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥ योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ॥ ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥ ८ ॥ एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ॥ यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥ ९ ॥ अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः ॥ यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥ १० ॥

प्राणियोंके शोकमें शोकाकुल और उनके हर्षमें हर्षित होते हैं, उसके वह सब अव्यय धर्म पुण्यवान् लोकोंमें उस धर्मी पुरुषकी सेवा किया करते हैं॥९॥अहो ! जो धन, पुत्र शरीरादि पदार्थ दृष्टि आते हैं यह सब कुत्ते और गीदडादिके भोजन हैं। यह स्वार्थके कुछ भी उपयोगी नहीं और स्थायी भी नहीं बरन् क्षणमें नष्ट हो जानेवाले हैं और क्षण क्षणमें नष्ट होते जाते हैं फिर इन सबसे परोपकार न करना क्या कष्ट और

---

* **शंका**–विश्वरूपने देवताओंसे कहा कि, ऐसे प्राणीको वृक्ष शोच करते हैं कि, इसकी सुन्दर गति किस प्रकारसे होगी, यह बडा दुष्ट है, तो इसमें मुझको यह बडी भारी शंका है कि, वृक्ष तो जड पदार्थ हैं उनको किस बातका शोक संताप ? वृक्षोंको तो किसी प्रकारका दुःख सुख हो ही नहीं सकता और जो हो भी तो वृक्ष मनुष्यका शोच क्यों करेंगे ?

उत्तर–"स शोच्यः स्थावरैरपि" इस श्लोकमें व्यासजीने वृक्षोंको स्थावर नहीं कहा था. भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंमें जो मुनिलोग नित्यप्रति मनको स्थित करते थे उनको व्यासजीने स्थावर कहा था. ऐसे मुनिजनोंने विश्वरूपसे कहा और वही मुनिलोग शोच करते थे ॥

कैसे कृपणपनका काम है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजन् ! मुनिवर दधीचिने ऐसा निश्चय करके परब्रह्मके साथ अपनी आत्माको मिलाय शरीरको छोड़ दिया ॥ ११॥ उनकी इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि यह सब वशमें थीं और वे आप ही तत्त्वोंको देखते थे इसलिये उनके सब बन्धन छूट गये थे, इस कारण परमयोगका अवलम्बनकरनेसे उन्होंने अपने शरीरका छूटना भी तो नहीं जाना ॥ १२॥ फिर पीछे इन मुनिके शरीरकी अस्थि लेकर विश्वकर्माने वज्र बना दिया, व भगवान्के तेजसे युक्त उस वज्रको धारण करके इन्द्र उठा ॥ १३ ॥ गजेन्द्र ऐरावत हाथीकी पीठपर शोभायमान होने लगा, देवतागण चारों ओरसे घेरकर खड़े होगये और सब ऋषिगण स्तुति करने लगे, जिससे कि,

श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ॥ परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥११॥ यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग्ध्वस्तबंधनः ॥ आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥१२॥ अथेंद्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा॥ मुनेः शुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसान्वितः॥१३॥वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेंद्रोपर्यशोभत ॥ स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥ १४ ॥ वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तु मसुरानीकयूथपैः ॥ पर्यस्तमोजसा राजन्क्रुद्धो रुद्र इवांतकम् ॥ ॥ १५ ॥ ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः ॥ त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥ १६ ॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ॥ मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वमायया ॥ नामृष्यन्नसुरा राजन्मृधे वृत्रपुरस्सराः ॥ १८ ॥

समस्त त्रिभुवन मानो हर्षयुक्त होगया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे देवराज इन्द्र वृत्रासुरके ऊपर दौडे, यद्यपि वह वृत्रासुर असुरसेनाके यूथपोंसे घिराहुआ था, तो भी क्रोधायमान रुद्रजीने जिस प्रकार अन्तकासुरके ऊपर चढ़ाई की थी, वैसे ही सुरराज इन्द्र बलपूर्वक इस असुपर, चढ़ ॥ १५ ॥ फिर असुरोंके साथ देवतालोगोंका परस्पर संग्राम होने लगा. हे राजन् ! सतयुगके अंत और त्रेताके आरंभमें नर्मदा नदीके किनारे यह संग्राम होता हुआ ॥१६॥ हे राजन्! इस युद्धमें ८ वसु, ११ रुद्र, १२ सूर्य, २ अश्विनीकुमार, ७ पितृ, ३ अग्नि, ४९ पवन, ऋभु, साध्य और विश्वेदेवादिके साथ ॥ १७ ॥ वज्रधारी इंद्र अपनी श्रीसे अधिक शोभायमान हुए कि, जिसको शत्रु लोग

वृत्र इत्यादि असुरगण न सहन कर सके॥१८॥और नमुचि, शम्बर, अनर्व्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख॥१९॥ पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल इत्यादि दैत्य और सहस्र सहस्र यक्ष दानव ॥२०॥ और इल्वल, बल्वल, दंदशूक, वृषध्वज, कालनाभ, महानाभ, भूतसन्तापन, वृक ॥ २१ ॥ सुमाली, माली इत्यादि असुरगण सुवर्णका बख्तर पहरे सिंहनाद करते करते इंद्रकी सेनाको जो कि, मृत्युसे भी दुरासद थी, उसको रोककर मार डालनेका विचार करते हुए ॥ २२ ॥ अतिशय मदोन्मत्त होनेके कारण, उन राक्षसोंको कुछ भी भय या भ्रम नहीं हुआ अनेक गदा, परिघ, बाण, फांस, मुद्गर, तोमर ॥ २३ ॥ शूल, फरसे, खड्ग, शतघ्नी, भुशुण्डी इत्यादि अस्त्र शस्त्र वर्षाकर

नमुचिः शंबरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोंऽबरः॥ हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेति
हेतिरुत्कलः॥ दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥ २० ॥ इल्वलो बल्वलश्चैव दन्दशूको वृषध्वजः ॥
कालनाभमहानाभौ भूतसंतापनो वृकः ॥ २१ ॥ सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ॥ प्रतिषिध्येंद्रसेनाग्र्यं
मृत्योरपि दुरासदम् ॥ २२ ॥ अभ्यर्दयन्नसंभ्रांताःसिंहनादेन दुर्मदाः ॥ गदाभिः परिघैर्बाणैःप्रासमुद्गरतोमरैः ॥ २३ ॥
शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुंडिभिः ॥ सर्वतोऽवाकिरञ्छस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥२४॥ न ते दृश्यंत संछन्नाः
शरजालैः समंततः ॥ पुंखानुपुंखपतितैर्ज्योतींषीव नभो घनैः ॥ २५ ॥ न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ॥
छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥ २६ ॥ अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृंगद्रुमोपलैः ॥ अभ्यवर्षन्सुरबलं
चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥ २७ ॥

देवता लोगोंको सब प्रकारसे और सब ओरसे घेरकर लड़ने लगे ॥२४॥ बाणजालसे सब ओरसे ढकेहुए देवता अदृश्य होगये, बाणोंपर बाण गिरने लगे. राक्षसोंके चलाये बाणोंसे देवता लोग ऐसे ढक गये, जैसे आकाशमण्डलमें बादलोंसे तारे छिप जाते हैं ॥ २५ ॥ परन्तु असुर लोगोंके अस्त्र शस्त्र देवसेनाके ऊपर गिर नहीं सके, क्योंकि लघुहस्तसे देवतालोगोंने आकाशमें ही उनके सहस्रों टुकड़े टुकड़े कर दिये॥२६॥ जब असुर लोगोंके सब ही अस्त्र शस्त्र चले गये, तब वह वृक्ष पर्वतोंके शिखर और पत्थरोंकी चट्टानें लेकर देवतालोगोंपर बर्षाने लगे. प्रथमकी

नाईं देवता लोगोंने इन सबको काटकूट डाला ॥ २७ ॥ इस प्रकार अनेक अनेक अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारसे भी देवसेनाको अच्छिन्न, सुखी और वृक्ष
पत्थर तथा विविध पर्वतोंके शिखर चलानेसे भी उनको घावरहित देख वृत्रासुरकी सेनाके असुरगण अत्यन्त भयभीत हुए ॥ २८ ॥ इसके
पीछे फिर भी उन्होंने देवतालोगोंके विरुद्ध जो जो कुछ करनेको यत्न किया॥सो देवता लोगोंके ऊपर होनेसे वह सब ही यत्न उनके निष्फल
हुए. जैसे छोटे लोगोंके कहे अकल्याणकर कठोर वचन बडे पुरुषको क्षोभदायक नहीं होते, वैसे ही दैत्य लोगोंकी चेष्टासे देवता लोगोंको
कुछ भी ग्लानि नहीं हुई ॥ २९ ॥ हे राजन् ! असुर लोगोंकी भक्ति भगवान्में नहीं थी इस कारणसे युद्धमें उनका समस्त दर्प बहुत शीघ्र टूट

तानक्षतान्स्वस्तिमतो निशम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः॥द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृंगैरविक्षतांस्तत्र सुरेंद्रसैनिकान्॥२८॥
सर्वे प्रयासा अभवन्विमोघाःकृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः॥कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रूक्षवाचः॥
॥२९॥ ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ॥ पलायनायाजिमुख विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः
॥३०॥वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ॥ पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य
वीरः ॥ ३१ ॥ कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाचवाचं पुरुषप्रवीरः । हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वञ्छंबर
मे शृणुध्वम् ॥ ३२ ॥ जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ॥ लोको यशश्चाथ ततो यदि
ह्यमुं मृत्युं वरं को न वृणीत युक्तम् ॥ ३३ ॥

गया और उनका धीरज देवतालोगों करके ग्रहण कर लिया गया इस कारण यद्यपि वह बडे भारी योद्धा थे,तो भी समरका प्रारंभ होते ही अपने
स्वामीको परित्याग कर वे अपने छुटकारेका मार्ग देखने लगे ॥ ३० ॥ वृत्रासुर स्वयं भी महावीर था, जब इसने देखा कि, हमारे अनुचर
असुर लोग भागनेका तयार हो रहे हैं और प्रथम ही अनेक अनेक सेनाको उसने तेज भयसे छिन्न भिन्न और समर त्याग करके भागते हुए देखा,तब
वृत्रासुर हँसकर कहने लगा ॥ ३१ ॥ उसके वह सबही वचन ठीक ठीक इस अवसरके योग्य और मनस्वी लोगोंके लिये मनोहर थे। उसने
कहा हे विप्रचित्त ! हे नमुचि ! हे पुलोमन् ! हे मय ! हे अनर्वन् ! हे शंबर ! हमारे वचन सुनो ॥३२॥ जन्म लेनेसे मृत्यु निश्चय ही होती है

किसी प्रकारसे भी वह मृत्यु टल नहीं सकती, इससे यदि उस मृत्युसे इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्ग होनेकी सम्भावना हो, कौन विद्वान् ऐसी मृत्युको न चाहैगा ? ॥३३॥ हे वीरगण ! इस लोकमें दो (२) प्रकारकी मृत्यु मिलनी अतिदुर्लभ है, ऐसी मृत्यु: हरेकके भाग्यमें कहां ? वह दो मृत्यु यह हैं-ब्रह्मकी धारणाके लियेप्राणादिका जय करके शरीरका छोड देना एक और दूसरी सेनाके आगे होकर संग्रामभूमिमें परमानंदसे प्राण त्याग कर देना * ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां वृत्रयुद्धे असुरपराजयवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १० ॥ दोहा–वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अतिघोर। भक्तिज्ञान-चर्चा करी, ग्यारहमें रणछोर ॥ १ ॥ इतनी कथा वर्णन

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणया जितासुः ॥ कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥ ३४॥
इति श्रीमद्भागव० षष्ठ० वृत्रेन्द्रयुद्धं नाम दशमोऽध्यायः॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचे
तसः ॥ नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥ विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ॥ कालानुकूलैस्त्रिदशैः
काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वाऽतप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ॥ तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥

कर योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! असुरोंके स्वामी वृत्रासुरने इस प्रकारके धर्मयुक्त वचन कहे, परन्तु असुर लोगोंने एक न सुना, बरन् त्रासित हो घबराय २ सब भागने ही लगे ॥ १ ॥ इसके पीछे देवता लोग उनको खदेड रहे थे कि जिससे असुर लोगोंकी सेना अनाथके समान छिन्न भिन्न हो रही थी, क्योंकि उस समय देवता लोगोंका काल अनुकूल था ॥ २ ॥ यह देखकर असुरश्रेष्ठ वृत्रासुरका अन्तःकरण अत्यन्त संतापित हुआ इन्द्रका शत्रु वृत्रासुर इन सब असुरोंके सामने इस अवस्थाको देख इसके सहन करनेको

---

* इसलिये धर्मशास्त्रमें भी कहा है कि योगयुक्त, परिव्राजक और सन्मुख युद्धमें शरीर देनेवाला वीर यह दोनों पुरुष सूर्यमंडलको भेदन करके गमन करते हैं, यथा स्मृतिः–"द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ । परिव्राड् योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हतः" ॥

* **सवैया**–इंद्रिन जीति कै योगविधान सौं, छोडत देह जो हरिगुण गावत ॥ कै रणमें तनुलोभको छोडिकै, प्राण तजै अरु सन्मुख धावत । जै रघुराज कहैं दोऊ भाँति सों, निज तनु त्यागत मोह वढावत। ते रविमंडल भेदि कै हरिपुर, जात चले जग फेरि न आवत ॥ १ ॥

समर्थ न हुआ, वह भयंकर क्रोध करके बलसे देवताओंको रोक और उनकी निंदा करके कहने लगा ॥ ३ ॥ हे देवगण ! तुमलोग माताके विष्ठाके तुल्य हो, वृथा क्यों दौडते हो, भागते हुए दैत्योंको मार डालनेसे क्या होगा? इसमें धर्म व यश किसीकी भी सम्भावना नहीं; क्योंकि, जो लोग अपने आपको शूर कहकर गर्व करते हैं और डरे हुएको मारने की अभिलाषा करें उनको स्वर्ग नहीं होगा ॥ ४ ॥ हे क्षुद्र देवगण ! यदि तुम लोगोंमें श्रद्धा हो, तुम्हारे हृदयमें धैर्य हो और यदि तुम लोगोंने इस लोकमें भोग करनेका लालच छोड दिया हो तो हमारे आगे रणमें

वृत्र उवाच ॥ किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ॥ नहि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥ ४ ॥
यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ॥ अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥५॥ एवं सुरगणान्क्रुद्धो
भीषयन्वपुषा रिपून्॥ व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः॥६॥तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ॥ निपेतुर्मू
र्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥

क्षणभर खडे होकर देखो ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे क्रोधित होकर अपने कराल शरीरसे वैरी देवतालोगोंको डराते हुए, इस महाबलवान् असुरने ऐसा घोर सिंहनाद किया कि जिससे त्रिलोकी अचेतसी होगई * ॥ ६ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुरके सिंहनादसे सब ही देवता वज्रसे मारेहुएके समान मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर पडे. महाअसुर वृत्रासुर संग्राममें दुर्म्मद होकर सुरसेनाको आतुरतासे गिरते और भयके

---

* शंका-श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कहा कि, हे राजन् ! वृत्रासुरके गम्भीर शब्दसे सब लोक व्याकुल होगये, यह बात सुनकर बडा सन्देह होता है, क्योंकि लोक तो बहुत हैं, वृत्रासुरने ऐसा कैसा शब्द किया कि, जिससे सब लोक व्याकुल होगये, यह बडी भारी शंका है, जो सब लोक शब्दसे व्याकुल होगये तो किसीमें विष्णु, किसीमें शिव, किसीमें ब्रह्मा, किसीमें सूर्य, किसीमें चन्द्रमा, किसीमें इन्द्रादिक देवता और बडे बडे ऋषि, मुनि महात्मा पुरुष रहते हैं, तो यह सब लोक व्याकुल होगये होंगे ?

उत्तर-लोक शब्द मुनियोंने लोकोंके लिये नहीं कहा है. प्रजा लोगोंको भी मुनि लोग लोक कहते हैं तब व्यासजी भी ऐसा कहते हैं कि, इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धके समय जो चारों ओरके लोक कहे सो प्रजाके लोग सब व्याकुल होगये, सब लोकोंके लिये व्याकुल होनेको व्यासजी महाराजने नहीं कहा है ॥

मारे उनके नेत्र बंद होते देखकर भी दयावान् नहीं हुआ,बरन् मदमाता यूथपति गज चरणसे जिस प्रकार कमलके वनको मसलता है, वैसे ही शूल उठाकर पृथ्वीको तेजसे कँपाता हुआ,दोनों चरणोंसे उस गिरी हुई देवसेनाको मसलने लगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस असुरका ऐसा आचरण देखकर वज्रधारी देवराज इन्द्रका क्रोध प्रज्वलित हुआ,फिर इन्द्रने इस अपने शत्रु असुरको अपनी ओर आता हुआ देखकर उसके ऊपर एक बडी भारी गदा चलाई ॥ ९ ॥ हे राजन् ! वृत्रासुरका बल साधारण नहीं था, कहीं गदासे उसको भय होता है ! इन्द्रकी गदाको गिरते गिरते उसने लीला करके अपने बांये हाथसे पकड लिया और महाक्रोध कर ऊंचा शिर उठाय गर्जकर उसी गदाको देवराजके वाहन ऐरावत महागजके

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षं रणरंगदुर्मदः॥गां कंपयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः
॥८॥विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम्॥चिक्षेप तामापततीं सुदुस्सहां जग्राह वामेन करेण
लीलया ॥ ९ ॥ स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेंद्रवाहं गदयोग्रविक्रमः॥ जघान कुंभस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे
समपूजयन्नृप ॥१०॥ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा॥ अपासरद्भिन्नमुखः सहेंद्रो वमन्नसृ
क्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥११॥ न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुंक्त भूयः स गदां महात्मा ॥ इंद्रोऽमृतस्यंदिकराभिमर्शवीत
62 व्यथः क्षतवाहोऽवतस्थे॥ १२ ॥ स तं नृपेंद्राहवकाम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ॥ स्मरंश्च तत्कर्म नृशं
समंहः शोकेन मोहेन हसञ्जगाद ॥ १३ ॥

मस्तकमें मारा । यह देखकर विपक्षके लोग भी वृत्रासुरके इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ देवराज इन्द्रका ऐरावत हाथी वृत्रासुरकी गदासे घायल होकर वज्रके मारे हुए पर्वतके समान घूमने लगा और अत्यन्त आर्तहो मुख टूट जानेसे रुधिर वमन करते करते इन्द्रसहित संग्राम भूमिसे सात धनुष पीछे हट गया॥ ११ ॥ वृत्रासुर अति महात्मा था,इस कारणसे इन्द्रका वाहन जब व्याकुल हो गया और चित्त भी उसका ठिकाने नहीं रहा,तब फिर वृत्रासुरने उसके ऊपर अस्त्र न चलाया, इसलिये देवराज इन्द्र अपने वाहनके घावका स्थान अमृत झरनेवाले अपने हाथसे छूकर उसकी व्यथा दूर करते क्षणकाल तक स्थिर रह गये॥१२॥हे महीश ! जब वृत्रासुरने देखा कि; इन्द्र समर त्याग करके नहीं जाते

और फिर समर करनेकी वासनासे खड़े हैं, इसलिये वज्रधारी और अपने भाईके मारनेवाले इस देवताके सब क्रूर कर्म जो कि, पापरूप थे, स्मरण करके शोक मोहसे युक्त हो,हँसते २ बोला ॥१३॥ वृत्रासुरनें कहा, अहो ! जो पुरुष ब्रह्मघाती और विशेष करके अपने गुरु और हमारे भ्राताका मारनेवाला, सो वही तुम हमारे शत्रु हमारे सन्मुख खड़े हो,यह बडे ही भाग्यकी बात है,हे प्रधान असत् ! तुम्हारा पाषाणतुल्य हृदय शूलसें भेदकर आज हम शीघ्र ही अपने भाईके ऋणसे छूटैंगे यह बडे ही भाग्यकी बात है ॥१४॥ अहो! हमारे बड़े भाई विश्वरूप ब्राह्मण आत्मज्ञानी पापरहित दीक्षित होकर यज्ञ कर रहे थे, वे तुम्हारे और कोई नहीं बरन् परम गुरु थे,करुणारहित होकर स्वर्गकी कामना किये यज्ञ

वृत्र उवाच ॥ दिष्ट्या भवान् मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ॥ दिष्ट्याऽनृणोऽद्याहमसत्तम त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाऽचिरात् ॥ १४ ॥ यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ॥ विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत् पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः॥१५॥ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ॥ कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदंति गृध्राः ॥ १६ ॥ अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरंति मह्यम् ॥ तैर्भूतनाथान् सगणान्निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥ १७ ॥ अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह॥तत्रानृणो भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरेजः प्रपत्स्ये ॥ १८ ॥

करनेवाला जिस प्रकार यज्ञके पशुओंका शिर काट डालता है, वैसे ही खड्गसे तुमनें उन महात्माका मस्तक काट डाला ॥१५॥ निश्चय जाना जाता है कि, दया, लाज, श्री,कीर्तिने तुम्हारा त्याग किया है, अपने कर्मके दोषसे तुम राक्षसोंके निकट भी तो निंदापात्र हुए हो, इसलिये हम इस शूलसे तुम्हारे इस हृदयको फाडैंगे, तुम्हारे इस पापमय शरीरको अग्नि स्पर्श नहीं करेंगे बस गीधगण इसका भक्षण करेंगे ॥ १६ ॥ वह और दूसरे अज्ञानी देवता जो कि, यहांपर आये हैं वह भी जो अधम तुम्हारा पक्ष लेकर शस्त्रसे हमारे ऊपर प्रहार करेंगे तो बडे तीखे शूलसे उनकी भी गर्दन उड़ाकर हम रुधिरकी धारा बहाय गणोंके सहित भूतनाथ शिवका यज्ञ करेंगे ॥ १७ ॥ हे इंद्र ! अथवा हठ करके जो

तुम ही इस वज्रसे हमारे शिरको काट डालोगे, तो भी कुछ हानि नहीं; हम कर्मबंधनसे छूटकर अपनी देहसे सब प्राणियोंको बलि दे धीर जनोंकी गतिको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ फिर ज्ञानके उदय होनेसे जीनेकी अपेक्षा मरनेकोही श्रेष्ठ जान वृत्रासुर बोला कि हे सुरेश ! हम तुम्हारे शत्रु तुम्हारे सामने खडे हैं,सो हमारे ऊपर तुम अपना वज्र क्यों नहीं चलाते हो ? हे देवेन्द्र ! यह वज्र अमोघ है, तुम ऐसा संशय

सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरःस्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ॥ मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥१९॥ न त्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ॥ तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयंत्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥ २० ॥

मत करो कि, गदाके समाने यह भी निष्फल हो जायगा कि, जैसे कृपणसे किसी प्रकारकी याचना करना निष्फल होता है * ॥ १९ ॥ हे शत्रु ! तुम्हारा यह वज्र भगवान् हरिके तेज और दधीचि मुनिकी तपस्यासे अत्यन्त तीक्ष्ण होगया है, तुम इस वज्रसे शत्रुका वध करो,

---

* एक कृपणकी नाव जब गंगाजीमें डूबने लगी तब उसने कहा कि हे जगदम्बा ! जो अब इस विपदसे छूटूं तो (१००) सौ ब्राह्मणोंको भलीभाँति भोजन कराय दक्षिणा दूँ. ईश्वरकी कृपा व गंगाजीकी महिमासे ज्यों ज्यों नाव भँवरसे निकल किनारे लगती गई, त्यों त्यों कृपणने संक्षेप करते करते केवल एक ब्राह्मणके भोजन करानेको स्वीकार किया ! जब घर आया तो ब्राह्मणोंसे पूँछने लगा कि महाराज ! आप कितना भोजन करते हैं? कोई पांच शेर, कोई ढाई शेर मोहनभोगकी क्षुधा बताने लगा । इन सब ब्राह्मणोंको उचित न जान यह कृपण एक महादुबले पतले दीन हीन ब्राह्मणके निकट पहुँचकर जिज्ञासा करने लगा कि हे विप्र ! आप कितना भोजन करते हैं? विप्रने कहा:—आध शेर आटा, आध पाव दाल, दो साँभरकी कंकडी बस और कुछ नहीं, यह सुनते ही प्रसन्नतापूर्वक कृपण इसको अपने घर लेजाय अपनी स्त्रीसे यह कहकर दूकानको चला गया कि, इस ब्राह्मणको इच्छानुसार भोजन, करा देना, उस स्त्रीने ब्राह्मणदेवतासे पूँछा कि, महाराज ! क्या भोजन बना दूं ? तब यह ब्राह्मण बोला कि १० दश सेर मोहनभोग कि, जिसमें एक ग्रासपर एक एक अशरफी दक्षिणाकी देनी होगी स्त्रीने कहा एक एक अशरफी क्या दो दो अशरफी लीजिये. इस प्रकार यह कोई दो सहस्र अशरफी दक्षिणाकी ले घर आया। अपनी स्त्रीसे कहा कि, कोई हमें पुकारने आवे तो कह देना कि, किसी ऐसे कुमार्गीके भोजन करने गये कि, जहाँ उसने भोजनमें विष भक्षण कराया जिससे शरीर छूट गया, कृपणने घर आय अपनी स्त्रीसे सब वृत्तांत सुना और बोला कि "बाहरे सेठानी ! घरको नाश करेछे" यह कह रोता, विलपता, कलपता, उठता उस ब्राह्मणके स्थानपर आया और वहांपर उसको रोदन करते देख डरके मारे और २०० रुपये उसको घरसे लेकर दे आया, सो कृपण बांछा करनेसे नहीं, परन्तु भगवान्के कोपसे देते हैं ॥

तुम विष्णुके भेजे हुए समरमें आये हो इसलिये तुम्हारे पराजित होनेकी शंका नहीं. क्योंकि जहां नारायण वहीं जयश्री और सकल गुण वर्त्तमान रहते हैं॥ २० ॥ हे इन्द्र। ऐसी भी शंका मत करो कि, तुम्हारे वज्रकी चोटसे हमें कुछ पीड़ा होगी, हमारे प्रभु शेषजीने हमको जिस प्रकारका उपदेश किया है, हम वैसे ही उनके चरणारविंदोंमें चित्त लगा कर देहको त्याग योगी पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होंगे. इस तुम्हारे वज्रसे हमारा अपकार न होगा बरन् विषयभोगरूप ग्राम्यसुखकी फाँसी टूट जायगी॥२१॥हे देवेन्द्र! तुम ऐसी शंका भी मत करना कि, हम जिनके भृत्य हैं वह भगवान् हमको स्वर्गादि संपत्ति देंगे, क्योंकि जो पुरुष एकान्तभावसे भगवान्में ही अपने चित्तको लगाते हैं और जिससे कि, वह उनके ही जन कहकर गिने जाते हैं, उनको श्रीनारायण स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोककी सम्पत्ति नहीं देते क्योंकि इन सम्पत्तियोंसे

अहं समाधाय मनो यथाह संकर्षणस्तच्चरणारविंदे ॥ त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥२१॥
पुंसां किलैकांतधियां स्वकानां याः संपदो दिवि भूमौ रसायाम् ॥ न राति यद् द्वेष उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसनं
संप्रयासः॥२२॥त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ॥ ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिंचनगो
चरोऽन्यैः ॥२३॥ अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः॥मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म
करोतु कायः ॥ २४ ॥

उद्वेग, मनोव्यथा, मतवालापन, झगड़ा, विपद और क्लेश हुआ करता है॥२२॥यदि कहो कि, फिर वह भक्तजनोंका क्या विधान करते हैं? सो म कहते हैं श्रवण करो–हमारे प्रभु उन भगवान् विष्णुने अपने भक्तके लिये धर्म, अर्थ, काम, इस त्रिवर्ग विषयके आयासका नाश किया है. हे इन्द्र। इस आयासकी शांतिसे ही भगवान्की प्रसन्नताका अनुमान कर लिया जाता है और किसी प्रकारसे भी वह प्राप्त नहीं हो सकता। अकिञ्चन भिक्षुजन सरलतासे इस प्रकारका भगवत्प्रसाद प्राप्त कर सकते हैं और दूसरे जन इस प्रसादको नहीं पा सकते, उनके लिये यह अतिशय दुर्लभ है ॥ ॥ २३ ॥ हे कौरवराज! वृत्रासुर इस प्रकार इन्द्रके निकट अपने अभिप्रायको प्रगट करके भगवान्को पुकारकर प्रार्थना करने लगा कि, हे भगवन्! तुम्हारे ही चरणकमलका जिनको आश्रय है, उन दासोंका भी मैं दास हूँ। मेरा मन आपके गुणोंका स्मरण करै। हमारे वाक्य तुम्हारा गुण

कीर्तन करूँ॥२४॥हे देव ! आपके बिना स्वर्गपृष्ठ क्या,सार्वभौम पृथ्वीका आधिपत्य क्या,योगसिद्धि क्या,अपुनर्भव अर्थात् मुक्ति क्या आपके वियोगमें किसीकी भी चाहना मैं नहीं रखता ॥२५ ॥ हे अरविन्दनेत्र ! जैसे कि, पंख न जमेहुए पक्षियोंके बच्चे क्षुधा इत्यादिसे पीडित होकर जननीके देखनेकी इच्छा करते हैं, जैसे भूखसे आर्त होकर बँधेहुए बछडे थनोंके देखनेके लिये व्यग्र होते हैं और जिस कारण कामबाणसे व्याकुल हुई प्यारी दूरदेशमें गयेहुए अपने प्यारेके देखनेकी इच्छा करती है, वैसे ही त्रिविध तापसे संतापित हुआ मेरा मन सब कार्योंमें बँधा हुआ कामादिसे पीडित होनेके कारण आपके ही देखनेका अभिलाष करता है ॥२६॥ इसलिये हे प्रभो ! मैं अपने कर्मोंमें बँधकर संसारचक्रमें

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठयं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समंजस त्वा विरहय्य
कांक्षे ॥ २५ ॥ अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ॥ प्रियं प्रियेव व्युषितं विषणा मनो
ऽरविंदाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ २६ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥ त्वन्माययात्मात्मज
दारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ० वृत्रकृतभगवत्स्तुतिर्नाम एकादशो
504
ऽध्यायः ॥ ११ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ॥ शूलं प्रगृह्याभ्यपतत् सुरेंद्रं
यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥

घूम रहा हूँ, सो इस क्लेशकी शान्तिके लिये तुम्हारे भक्त जनोंके साथ मेरी मित्रता हो जाय, हे भगवन् ! अपनी मायाके वश इस समय जो पुत्र, कलत्र, देह, गेह आदिमें मेरा चित्त आसक्त हुआ है, सो आप ऐसी कृपा कीजिये कि; जिससे फिर इन बातोंमें मेरा चित्त आसक्त न हो यह मेरी इच्छा है ❋ ॥ २७ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां वृत्रस्तोत्रवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
दोहा–वृत्रासुरसे हारकर, बहुरि भयो उत्साह । महायुद्ध कर इन्द्रने, मारो निशिचरनाह ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे परीक्षित् !

❋ **भजनराग कालिंगड़ा**–तुम विन कोई न मेरो प्रभुजी तुम विन कोई न मेरो रे ॥ कृपासिंधु सेवकसुखदायक मम उर करो बसेरो रे ॥ तात मात अरु भ्रात तुमहिं हो निजसेवकको हेरो रे । काम क्रोध मद लोभ मोहने आन कियो उर डेरो रे ॥ ऐसे प्रबल दुष्टगणहूसे को करसकै निबेरो रे ॥ २७ ॥

वृत्रासुर इस प्रकार समरक्षेत्रमें अपने देहके त्यागनेकी इच्छा करता हुआ, विजयसे मृत्यु होना श्रेष्ठ मान शूल ग्रहणकर इन्द्रके ऊपर ऐसे दौड़ा जैसे महाप्रलयके जलमें मधु कैटभ दैत्य भगवान् विष्णुजी पर दौड़े थे॥ १॥ फिर पीछे जिस शूलके अस्त्रकी अनी प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर थी उस शूलको अतिवेगसे घुमाकर वृत्रासुरने इंद्रके ऊपर चलाया, तत्पश्चात् सिंहनाद कर क्रोधमें भर कर बोला कि, अरे पापी! अब तू मेरे हाथसे किसी प्रकार नहीं बच सकता, आज तुझे अवश्य यमपुर भेजूँगा, इस प्रकारके कटु वचन कहने लगा॥ २॥ हे राजन्! वृत्रासुरका यह शूल उल्कापात, ग्रह और उल्काके समान देखनेमें अयोग्य घूमता हुआ चला आता था, तथापि उसको देखकर देवराज इन्द्र कुछ भी व्याकुल न हुए और उन्होंने शतधारवाले वज्रसे सरलतापूर्वक उसको काटडाला और उसके साथ एक भुजा इस असुरकी जो कि सर्पाकार थी काटकर गिरा दी ॥ ३ ॥ जब एक भुजा कट गई तब वृत्रासुरने महाक्रोध कर दूसरी भुजामें परिघ धारण कर वज्रधारी इन्द्रकी ओर झपटा, और वह परिघ जाकर गजेन्द्रकी और इंद्रकी ठोडीमें मारी इससे देवराज इंद्रका हाथी ताड़ित हुआ और इन्द्रके हाथसे भी वज्र छूटकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ४ ॥ हे महाराज! वृत्रासुरका यह महाअद्भुत कर्म देखकर सुर असुर सिद्ध चारण और गंधर्वगण अनेक प्रशंसा करने लगे परंतु इन्द्रके ऊपर बडी विपद पडी देख बहुत ही शीघ्र सब ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन्! हाथका वज्र गिर जानेसे इन्द्र लज्जित होकर अपने शत्रुके सम्मुख फिर उस वज्रको नहीं उठा सका, तब वृत्रासुरने हँसकर इन्द्रसे कहा कि, हे इन्द्र! वज्र उठाकर

ततो युगांताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसाऽसुरेंद्रः ॥ क्षिप्त्वा महेंद्राय विनद्य वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद
॥ २ ॥ ख आपतत्तद्विचलद्ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ॥ वज्रेण वज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजं च तस्योर
गराजभोगम् ॥ ३ ॥ छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ॥ हनौ तताडेंद्रमथाऽमरेभं वज्रं च
हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥ वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत् सुरासुराश्चारणसिद्धसंघाः ॥ अपूजयंस्तत् पुरुहूतसंकटं
निरीक्ष्य हाहेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥ ५ ॥ इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ॥ तमाह वृत्रो
हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥

अपने शत्रुका वध क्यों नहीं करते?यह विषाद करनेका समय नहीं है॥६॥हे पुरंदर ! उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके ईश्वर एक सर्वज्ञ सनातन आदि पुरुषके सिवाय और दूसरेके हाथ नहीं, सर्वज्ञ और सदा विजयी तो भगवान् हैं । पराधीनात्मा आततायी युयुत्सु पुरुषोंका सदा जय नहीं होता है, कभी जय होता है कभी पराजय होता है, फिर तुम शोक किसलिये करते हो ? ॥७॥ हे देवराज ! लोकपालों सहित यह समस्त लोक जिसके जालसे बँधे हुए पक्षियोंके समान अवश होकर अपने अपने व्यपारमें चेष्टा करते हैं, पर जय अजयका कारण वह कालरूप परमात्मा ही है ॥ ८ ॥ हे देवराज ! वह भगवान् ही सामर्थ्य, साहस, बल, प्राण, अमृत और मृत्युका स्वरूप है । परन्तु कैसा आश्चर्य है कि, लोग

युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां जयः सदैकत्र न वै परात्मनाम्॥विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥७॥लोकाः सपाला यस्येमे श्वसंति विवशा वशे॥द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम्॥८॥ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ॥ तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥९॥ यथा दारुमयी नारी यथा यंत्रमयो मृगः ॥ एवं भूतानि मघवन्नीशतंत्राणि विद्धि भोः ॥ १० ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेंद्रियाशयाः॥ शक्नुवंत्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात्॥११॥अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम्॥भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम्॥१२॥

उसको जयादिका कारण न जानकर जड़रूप वर्त्तमान जो यह देह है; इसको ही सबका कारण मानते हैं ॥ ९ ॥ परन्तु हे भगवन् ! जिस प्रकार काठकी बनी स्त्री, अथवा जिसप्रकार यंत्रमय मृग स्वाधीन हो स्वयं कोई चेष्टा नहीं कर सकते,जैसे कोई नचाता है वैसे ही नाचते हैं. वैसे ही यह सब भूत भगवान्के वशमें हैं,बिना भगवान्की इच्छाके कोई कार्य करनेको समर्थ नहीं॥१०॥ पुरुष,प्रकृति, अव्यक्त, आत्मा,पञ्चभूत, इन्द्रियें, अंतःकरण यह सब सृष्टिके आदिमें बिना उसकी कृपाके कुछ भी नहीं कर सकते हैं ॥ ११ ॥ हे देवराज ! कोई २ पुरुष यह कहा करते हैं कि, जीव अपने कर्मोंसे सृष्टयादिका हेतु है, यह बात नहीं. कारण कि, देह किसी प्रकारसे स्वतन्त्र नहीं है । अविद्वान् पुरुष ही देहको

ईश्वर अर्थात् स्वाधीन करके मानते हैं.यदि कहो कि,पित्रादिसे सृष्टि और व्याघ्रादिसे विनाश दृष्टि आता है, इसका उत्तर यह कि; यह भी पर
वश है,अर्थात् भगवान् ही स्वयम् पित्रादिभूत सबोंसे सब प्राणियोंकी सृष्टि किया करते हैं और वही व्याघ्रादि भृत्योंसे सब भूतोंको ग्रास करते
हैं ॥ १२ ॥ हे देवराज ! तुम हमसे पराजित हुए हो सो अब तुम ऐसा मत समझो कि, हमारी जय होगी ही नहीं, क्योंकि,पुरुषोंकी कीर्ति,
श्री, ऐश्वर्य, आयु और आशिष यह सब भयादि कालमें अवश्य ही होते हैं,परंतु इस तत्त्वविषयमें अनिच्छु होनेसे विपरीत अर्थात् अकीर्ति
इत्यादि हुआ करती है ॥ १३ ॥ इसलिये हे महेन्द्र ! जब कि, सब ही ईश्वरके अधीन हैं तब इसी कारणसे कीर्ति, अकीर्ति, जय, पराजय,
सुख, दुःख और जीवन, मरणमें समान अर्थात् हर्ष, विषादसे शून्य होना उचित है ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण

आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः॥भवंत्येव हि तत्काले यथाऽनिच्छोर्विपर्ययाः ॥ १३ ॥ तस्मादकीर्तिय
शसोर्जयापजययोरपि ॥ समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥ १४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो
गुणाः ॥ तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते॥१५॥ पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे॥घटमानं यथा
शक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥१६॥ प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ॥ अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य परा
जयः॥१७॥श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत्॥गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥ १८॥

यह तीन मायाके गुण हैं, कुछ आत्माके गुण नहीं । जो पुरुष आत्माको इन तीन गुणोंका साक्षीस्वरूप जानते हैं, वह हर्षादिकमें कभी नहीं
बँधते ॥१५॥ हे शक्र ! हर्ष शोक विषादको दूर करनेके लिये इस समय मैंही तुम्हारा गुरु होता हूँ,मुझको देखो कि, तुमसे मैं हार भी गया
हूँऔर मेरे अस्त्र:शस्त्र भी टूट गये हैं तो भी तुम्हारे प्राण संहार करनेकी वासनासे यथाशक्ति युद्ध करे ही जाता हूँ॥ १६ ॥ हे देवराज ! हमारा
यह समर द्यूतस्वरूप है । इसमें परस्परका प्राण लगाना ही दावँ है,बाण जो चलाते हैं यही पाशेरूप हैं, वाहनरूप इसकी नरदें(गोटें)हैं और
पृथ्वीरूप चौपड़, सो इस समय कोई नहीं जान सकता कि, इस द्यूतमें किसकी हार और किसकी जीत होगी ?॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

कि, हे राजन्! वृत्रासुरके निष्कपट वचन सुनकर देवराज इन्द्र विस्मित हुए और कपटरहित जानकर उसकी प्रशंसा करने लगे । फिर विस्मय त्याग और वज्र ग्रहण कर हँसकर बोले ॥ १८ ॥ हे दानव ! तुम सिद्ध होगये हो, अहो ! तुममें इस प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हुई है। जाना जाता है कि, सबके अन्तःकरणमें सबके आत्मा और सुहृद जो जगदीश्वर हैं उनकी सेवा तुमने बहुत की है ॥ १९ ॥ और सब जनोंको मोहनेवाली वैष्णवी मायाका भी तुमने पार पा लिया है, क्योंकि तुममें असुरभाव नहीं पाया जाता बरन् उसके बदले तुममें वह भाव है जो कि, महापुरुषोंके निकट होता है ॥ २० ॥ परन्तु यह अति आश्चर्यकी बात है कि, तुम स्वयं रजोगुणी होकर किस प्रकार सत्त्वसम्पन्न भगवान् वासुदेवमें तुम्हारी दृढ मति हुई ॥ २१ ॥ जो कुछ हो जब कि, सबके मोक्ष देनेवाले भगवान् हरिमें तुम्हारी मति

इन्द्र उवाच॥ अहो दानवसिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ॥ भक्तः सर्वात्मनात्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९ ॥ भवा
नतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ॥ यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः॥२०॥खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजःप्रकृते
स्तव॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः॥२१॥यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निश्श्रेयसेश्वरे॥ विक्रीडतोऽमृतांभोधौ
किं क्षुद्रैः खातकोदकैः॥२२॥ श्रीशुक उवाच॥ इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ॥ युयुधाते महावीर्याविंद्रवृत्रौ
युधांपती॥ २३ ॥ आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिंदमः ॥ इंद्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष ॥ २४ ॥
स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ॥ चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥ २५ ॥

लगी है और जब कि, तुमने अमृतसागरमें विहार किया है तब तुच्छ गर्त्तादितुल्य स्वर्गादि जो हैं, इनमें तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नहीं है, यह हमने निश्चय जाना है ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! धर्मज्ञानकी वासनासे इस प्रकार कहते कहते इन्द्र और वृत्रासुर दोनों जनोंमें घोर युद्ध होने लगा, दोनों ही महावीर और महायोद्धा थे; इसलिये किसी पक्षकी किसी भांतिकी हानि नहीं पाई गई ॥ २३ ॥ हे राजन् ! महाबलवान् पराक्रमी वृत्रासुर लोहेका बना घोर परिघ बायें हाथमें ग्रहण करके इंद्रके ऊपर चलाता हुआ॥ २४ ॥ परंतु उसका चलाया यह परिघ और उसकी यह परिघतुल्य भुजा दोनोंको ही देवराज इन्द्रने तेज धारवाले वज्रसे एक ही

806

बारमें काट डाला ॥ २५ ॥ जब दोनों भुजाओंकी जड़ कट गई तब उनसे अनिवारित रुधिरकी धारा बहने लगी तब यह असुर ऐसी शोभा धारण करता हुआ कि, मानो इन्द्रके वज्रसे पंख कटा हुआ पर्वत आकाशसे गिरा है ॥ २६ ॥ इसके पीछे वह वृत्रासुर अपनी नीचेकी ठोडी पृथ्वीमें लगाय ऊपरकी ठोडी आकाशमें छुवाय आकाशके समान गम्भीर मुख और सर्पके तुल्य जीभ निकाल ॥ २७ ॥ मृत्युके समान कराल दाढोंसे त्रिलोकी ग्रास करनेके लिये मानो वह असुर उपस्थित हुआ और फिर अपने बड़े भारी शरीरके वेगसे मानो पर्वतोंको चलायमान कर देगा, ऐसा प्रतीत होता था ॥२८॥ पर्वतराजके समान पादचारी हो पृथ्वीको चूर्ण करता हुआ वज्रधारी पुरन्दरके निकट आकर

दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः॥छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः॥२६॥कृत्वाधरां हनुं भूमौ दैत्यो
दिव्युत्तरां हनुम्॥नभोगभीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया॥२७॥दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम्॥अतिमात्रमहा
काय आक्षिपन् तरसा गिरीन्॥२८॥गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन् महीम्॥ जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवा
हनम् ॥ २९ ॥ महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ॥ वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ॥ ३० ॥ हा कष्टमिति
निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥ निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ॥ महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च॥ ३१॥
भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः ॥ उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृंगमिवौजसा ॥३२॥

वह ऐरावत सहित इन्द्रको निगल गया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! महा अजगर सर्प जिस प्रकार हाथीको निगल जाता है, वैसे ही यह महाबलशाली महाप्रतापी वृत्रासुर सुरपति इंद्रको निगल गया ॥३०॥ देवता लोग इंद्रको वृत्रासुरसे ग्रसा हुआ देख भय और वेदनाके मारे पीले पड़ गये और महर्षियोंके साथ " हाय क्या कष्ट है " ऐसा कह कहकर संताप करने लगे। हे राजन्! इंद्रको वृत्रासुरने निगल लिया और अपने पेटमें डाल लिया तो भी नारायणकवच बांधनेके प्रभावसे और योगमायाके बलसे देवराज इद्रकी मृत्यु न हुई ॥ ३१ ॥ एक क्षणभरमें वज्रसे इस असुरकी कोखको फाड़कर देवराज इंद्र निकल आये और अपने ओजसे पर्वतके शृगके समान वृत्रासुरका मस्तक इंद्रने काट डाला॥३२॥

हे राजन् । यद्यपि इंद्रका यह वज्र अतिशय वेगवान् था, तथापि इस असुरके कन्धे काटता यह वज्र सब ओर घूमने लगा और जिस समयको ज्योतिषियोंने वृत्रासुरके मारनेको निर्धारित किया था उतने ही अहर्गणमें अर्थात् एक वर्षमें वह उसका शिर कटकर गिरा * ॥ ३३ ॥ हे कौरवश्रेष्ठ ! घोर वृत्रासुरके मारे जानेपर आकाशमें नगाड़े बजने लगे और सिद्ध गंधर्वगण व महर्षियोंके समूह इंद्रके वीर्यका प्रकाश करनेवाले मन्त्रोंको पढ़ पढ़कर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रुनाशक राजन् ! उस समय वृत्रासुरके देहसे निकलकर उसकी आत्मज्योति निर्गत होकर दर्शनकारी देवगणोंके सामने ही भगवान्के लोकमें जाकर भगवान्में मिल गई, देखो राक्षस होनेपर भी उसने मोक्ष पाया । क्योंकि वैकुण्ठमें जानेको सबहीकी इच्छा हुआ करती है + ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां वृत्रासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वज्रस्तु तत्कंधरमाशुवेगैः कृंतन् समंतात् परिवर्तमानः ॥ न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥ ३३ ॥ तदा च खे दुन्दुभयो विनेदुर्गंधर्वसिद्धाः समहर्षिसंघाः ॥ वार्त्रघ्नलिंगैस्तमभिष्टुवाना मंत्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥ ३४ ॥ वृत्रस्य देहान्निष्क्रांतमात्मज्योतिररिंदम ॥ पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

* शंका–इन्द्रके वज्रने वृत्रासुरके मस्तकको बारह महीनेमें काटा यह बडे आश्चर्यकी बात है । सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगोंमें अनेक राक्षस हुए परन्तु किसीके मस्तक कटनेमें बारह महीने नहीं लगे, हमने किसी शास्त्रमें वा पुराणोंमें ऐसा आश्चर्यमय वचन नहीं सुना ?

उत्तर–(ज्योतिष) अपने इस श्लोकमें ज्योतिषका अर्थ ज्योतिषशास्त्र व्यासजीने नहीं किया, ज्योतिषका अर्थ व्यासजीने इस प्रकारका किया है कि ज्योतिष नेत्रोंकी दीप्ति अर्थात् आंखोंकी ज्योतिका अयन अर्थात् स्थान, भगवान्के कोमल कोमल कमलसे चरणारविन्द हैं, सो उन ही भगवान्के चरणारविन्दोंको मरनेके समय वृत्रासुर जबतक देखता रहा तबतक रात दिनके एक एक क्षणमें उस वृत्रासुरके मस्तकको वज्रसे काट डाला, ऐसा अर्थ व्यासजीने कहा है, बारह मास अर्थात् छै छै महीनेके दो अयन नहीं कहे ।

+ एक समय एक महाकृपण वणिक मृत्युके वश हो रहा था, उसने दानके भयसे तो कभी "द" अक्षरका उच्चारण भी अपने मुखसे नहीं निकाला था, परन्तु अन्तसमय लालाजीकी अनिच्छा रहते भी पुत्रोंने बलात्कार ५ पांच रुपयेकी गाय लाकर लालासे दान करादी थी, सो गाय ऐसी दुर्बल थी कि, एक ही घडी पीछे मर गई तब लालाजीकी भी इतिश्री होगई और वह यमपुरीको कृतार्थ करनेके लिये वहां पहुँचे, तब (–

दोहा–वृत्रासुरके वधनकी, हत्या मान अगाध । इन्द्र छिपे बरसों तलक,बहुरि हरी हरि ब्याध ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! वृत्रासुरके मारे जानेपर इन्द्रके विना लोक परलोकके साथ ब्रह्मादिक शीघ्र ही सब ज्वरोंसे मुक्त हुए ॥ १॥ देव, ऋषि, पितृ, भूत, दैत्य और देवानुचर, व ब्रह्मा,ईश इत्यादि सब ही हर्षसमुद्रमें मग्न होकर स्वयं अपने अपने आश्रमोंको चले गये ॥२॥ श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखारविन्दसे इतनी वार्ता श्रवण करके राजा परीक्षित् हाथ जोडकर बोले कि, हे भगवन् ! जब सबहीको अपूर्व सुख आह्लाद प्राप्त हुआ,तब इन्द्र

श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ॥ सपाला ह्यभवन् सद्यो विज्वरा निर्वृतेंद्रियाः ॥
॥ १ ॥ देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ॥ प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेंद्रादयस्ततः ॥ २ ॥
राजोवाच ॥ इंद्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ येनासन् सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥ ३ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥ इन्द्र
उवाच ॥ स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ॥ विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व माज्म्यहम् ॥ ५॥

किस लिये दुःखी हुए ? ॥ ३ ॥ यह सुन सन्देहोंके शमन करनेवाले योगिवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे राजन् ! महर्षियों सहित सब देवता जब वृत्रासुरके विक्रमसे घबराये तब उसका वध करनेके लिये सबने इन्द्रके निकट आकर प्रार्थना की, परन्तु वृत्रासुरके मारनेसे ब्रह्महत्या होगी,इसलिये प्रथम वृत्रासुरके मारनेको इन्द्रकी इच्छा नहीं थी ॥ ४ ॥ इन्द्र बोले कि, विश्वरूपका वध करके एक बार जो पाप किया था;स्त्री, भूमि, वृक्ष और जल, इन्होंने अनुग्रह करके यह पाप परस्पर बांटकर ग्रहण कर लिया, सो अब वृत्रासुरका संहार करके

–गायने कहा कि, दान किये पीछे एक घडी मैं जीवित रही हूं इसलिये घडीभर इच्छानुसार कार्य तुम मुझसे करालो; तब वणिकजी कहते क्या हैं कि, यमराजके पेटमें सींग भोंकदे । गौ यह सुन यमराजके पीछे दौडी.यमराज भागकर वैकुण्ठमें नारायणके पास जाकर बोले कृपानिधान ! इस गायसे हमें बचाइये.तब भगवान्के पार्षदोंने यमराजको बचाय बनियेको.धक्का दे दिया और स्वर्गसे निकालने लगे तब बनियेने कहा कि, भला कहीं नारायणके लोकमें आकर कोई संसारमें लौटकर गया भी है कि हम ही जायँ ? यह कहाँका न्याय है. यह कह वहीं धन्ना दे उस लोकका अधिकारी बन गया । धन्य है बनियाकी चतुरताको जो नीच कर्म करनेपर भी वैकुण्ठवासी हुआ ॥

यह पाप किसको दूंगा ? क्योंकि यह असुर भी तो ब्राह्मणसे ही उत्पन्न है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इंद्रके यह वचन सुनकर ऋषि लोगोंने कहा था कि, हम लोग तुमसे अश्वमेध यज्ञ करावेंगे कि,जिससे तुम्हारा मंगल होगा, तुम भय न करो ॥६॥ हे देवेन्द्र ! अश्वमेध यज्ञसे परमपुरुष परमात्मा नारायणदेवकी पूजा करनेपर एक ब्रह्महत्या क्या समस्त जगत्को वध करनेके पापसे भी छूटकर मोक्षको प्राप्त हो

श्रीशुक उवाच॥ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेंद्रमिदमब्रुवन् ॥ याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म मैः ॥६ ॥ हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ॥ इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥ ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाऽघवान् ॥श्वादः पुल्कसको वाऽपि शुध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥ ८ ॥

जाओगे ❋॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोघाती, मातृघाती, ऋषिघाती, आचार्यघाती और कुत्तेका खानेवाला चाण्डाल इत्यादि महापापकारी लोग भी जिनके नामका कीर्तन करके उन पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ८ ॥

---

* **शंका**–मुनियोंने इन्द्रसे बडे आश्चर्यकी बात कही है कि, हे इन्द्र ! तीन लोक चौदह भुवनमें जो चर, अचर जीव हैं उनको मार डाले फिर अश्वमेध यज्ञ करके जो भगवान्का पूजन करैगा तो पहिले मारे हुए जो जीव हैं उनकी हत्यासे छूट जायगा, और जो पिता, गुरु, माता, ब्राह्मणको मार डाले और कुत्ता आदि जीवोंका मांस भक्षण कर लेवे ऐसा चाण्डाल हो तो भी अश्वमेध यज्ञ करके पापसे छूट जायगा,ऐसा अनुचित वचन कहना मुनियोंको नहीं चाहिये,यह तो सुननेवालेको भी दूषित करता है. हरे ! हरे ! ऐसा अन्यायका वचन मुनियोंको कभी नहीं कहना चाहिये ?

उत्तर–देखो भाई! नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र,वेद,शास्त्र,पुराणमें ऐसा लिखा है, अपने शरीरका नाश होता हो तथा बालक मारा जाता हो वा गौ मारी जाती हो अथवा स्त्री मारी जाती हो और झूंठ बोलनेसे यह विघ्न जाय तो झूंठ बोलकर इन सब प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करै,उस झूंठ बोलनेका कुछ दोष नहीं गिना जाता,ऐसा कुछ ब्राह्मणोंने विचारके' इन्द्रको यज्ञका लोभ दिखाकर 'झूठ' बोलकर इन्द्रसे वृत्रासुरको मरवाया. क्योंकि वृत्रासुर तीनों लोकोंके चर अचरको दुःख दे रहा था, त्रिलोकीकी रक्षा करनेके लिये और गणनासे हीन जीवोंकी रक्षा करनेके लिये झूंठ बोलके इन्द्रसे वृत्रासुरका वध कराकर सबका दुःख मिटा दिया इसलिये अश्वमेधकी प्रशंसा मुनिलोगोंने इन्द्रसे करी थी ॥

हम महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठान करेंगे,तुम उसमें श्रद्धासहित श्रीभगवान् वासुदेवकी पूजा करना,तो उस पूजाके करनेसे यदि तुमने चराचर विश्वको भी संहार कर डाला हो तो उसका पाप तुम्हें न चढेगा,फिर भला खलके मारनेका पाप कहीं हो सकता है? एक नारायणका नाम लेनेसे सहस्रों पापोंका क्षय हो जाता है, एक दैत्यके मारनेका आपको इतना संताप है ॥९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यद्यपि ऋषि, लोगोंके इस प्रकार समझाने बुझाने विश्वासादि दिलानेसे वृत्रासुरका वध किया तों भी ब्राह्मण वृत्रासुरके मरते ही ब्रह्महत्या इंद्रके ऊपर आई ॥ १० ॥ जिससे कि इन्द्रको बडा शोक संताप हुआ और देवराज इन्द्र किसी प्रकार उस ब्रहह्मत्यासे छुटकारा न पा सके। हे राजन्! यद्यपि इंद्रमें

तमश्वमेधेन महामखेन श्रद्धाऽन्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन॥ हत्वापि सब्रह्म चराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण॥९॥
श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ॥ ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥ १० ॥
तयेंद्रः स्मासहत्तापं निर्वृतिर्नाऽमुमाविशत् ॥ ह्रीमंतं वाच्यतां प्राप्तं सुखयंत्यपि नो गुणाः ॥ ११ ॥ तां ददर्शानु
धावंतीं चांडालीमिव रूपिणीम् ॥ जरया वेपमानांगीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥ १२ ॥ विकीर्य पलितान् केशान्
तिष्ठतिष्ठेति भाषिणीम्॥ मीनगंध्यसुगंधेन कुर्वतीं मार्गदूषणम्॥ १३ ॥ नभोगतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशांपते॥
प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥१४॥

धैर्यादि अनेक शुभ गुण थे तो भी जो कि निन्दनीय कर्म करके लज्जायुक्त होता है उसको समस्त शुभ गुण भी सुखी नहीं कर सकते ॥ ११ ॥ तब इन्द्रने चाण्डालरूपधारिणी मूर्तिमती भागकर आती हुई वृद्ध अवस्थाके कारण कम्पायमान अंग,राजरोगसे ग्रसित, वस्त्रोंमें रुधिर लगाये ब्रह्महत्याको देखा ॥ १२ ॥ वह ब्रह्महत्या अपनी लटें(बाल) बिखराये "खाऊँ खाऊँ" शब्द ऊँचे स्वरसे उच्चारण कर रही थी. उसके श्वासकी पवन ऐसी दुर्गन्ध युक्त थी कि, मानो मछलियोंकी दुर्गंध है कि, जिससे मार्ग भी दूषित हो रहा था ॥१३॥ हे राजन्! इन्द्र देखते ही भीत हो उससे अपना पीछा छुटानेके लिये पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओंमें भागे फिरे परंतु कहीं अपने उद्धारका ठिकाना न पाया, फिर उत्तर

और पूर्व दिशामें जाकर वहांके मानससरोवरमें बड़ी शीघ्रतासे घुस गये ॥ १४ ॥ और वहांपर एक कमलनालमें घुस बैठे. अग्निदूत अर्थात् अग्नि ही उनको यज्ञभाग पहुँचा जाय, परंतु जलके मध्यमें अग्निका प्रवेश करना असंभव है इस कारणसे इन्द्र जबतक उस कमलनालमें बसते रहे, तबतक यज्ञभाग उनको न मिलें। हे राजन्! देवराज इंद्र सहस्र वर्ष तक यहां अलक्षितभावसे बसेहुए यही चिन्ता किया करते थे कि, किस प्रकार इस ब्रह्महत्याके महापातकसे छूटेंगे ॥ १५ ॥ जबतक इंद्र यहाँपर छिपे रहे, तबतक विद्या तप और योगबलके प्रभावसे नहुष

स आवसन् पुष्करनालतंतूनलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः॥वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽतः संचिंतयन्ब्रह्मवधाद्विमोक्षम्॥१५॥
तावत्त्रिनाकं नहुषः शशास विद्यातपोयोगबलानुभावः॥ स संपदैश्वर्यमदांधबुद्धिर्नीतस्तिरश्चां गतिमिंद्रपत्न्या॥१६॥
ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतंभरध्याननिवारिताघः॥पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या॥१७॥

राजाने स्वर्गलोकका पालन किया. हे राजन्! मनुष्योंको स्वर्गका राज्य किस प्रकारसे हो सकता है ऐसा मनमें समझ शंका मत करना, क्योंकि विदित तपस्या और योगके प्रभावसे नहुषको स्वर्गका राज्य पालन करनेका सामर्थ्य हुआ था, परन्तु कुछ ही काल पीछे यह राजा इस स्वर्गकी अतुल सम्पदाके मदसे ऐसा मतवाला हुआ कि इंद्राणीने उपाय करके इस राजाको सर्पयोनि प्राप्त कराई, इसलिये स्वर्गसे यह नहुष गिर गया[१] ॥ १६ ॥ उसके पीछे देवराज ब्राह्मणोंके बुलानेसे फिर स्वर्गमें चला गया। सत्यपालक भगवान् हरिका ध्यान कर .स इन्द्रकी

---

[१] इस विषयमें एक इतिहास है कि, नहुष राजाने स्वर्गमें राज्य करते २ एक दिन इन्द्राणीसे कहा था कि, इस समय हमीं इन्द्र हैं, इस कारणसे तुम हमको भजो। नहुषके यह वचन सुन धर्मलोप होनेके भयसे इन्द्राणी बहुत डरीं और उस समय कुछ न कहकर गुप्तभावसे यह वृत्तान्त सुरगुरु बृहस्पतिजीसे निवेदन किया. देवगुरु बृहस्पतिजी इस दुरात्माके स्वर्गसे गिरनेका उपाय विचारकर बोले कि, हे भद्रे! तुम इस दुरात्मासे यह कहना कि, ब्राह्मणोंको पालकीमें जोत, उसमें चढकर हमारे पास आओगे तो हम तुम्हारी भजना करैंगी। ब्राह्मणोंसे पालकी उठवानेके कारण अवश्य ही शापसे उसका नाश हो जायगा। तिसके पीछे नहुषने फिर इन्द्राणीसे कहा कि, तुम हमारी भार्या होओ। इन्द्राणीने कहा अच्छा ब्राह्मणशिबिकामें चढकर हमारे पास आना. क्योंकि इन्द्र इसी प्रकारसे हमारे पास आया करते थे, नहुष कामान्ध होकर अगस्त्यादि मुख्य ब्राह्मणोंको शिबिकामें लगाकर शीघ्रताके मारे इन सब ब्राह्मणोंसे सर्प सर्प (चल चल) कहकर अगस्त्यजीके चरणप्रहार करता हुआ इसलिये ब्राह्मणश्रेष्ठ अगस्त्यजीने "तू सर्प होजा" यह शाप दिया, शापके देते ही उसी समय नहुष अजगर सर्प होकर स्वर्गसे गिर पड़ा ॥

ब्रह्महत्याका पाप विध्वंस होगया था. हे राजन् ! पहले भी ब्रह्मत्या इन्द्रके पराजय करनेमें समर्थ नहीं हुई थी, क्योंकि पूर्वोत्तर दिशामें विराजमान दिग्देवता रुद्रने उनकी रक्षा की थी॥१७॥हे महाराज ! यद्यपि ध्यान करते ही देवराज इन्द्रका पाप छूट गया था, तो भी फिर उनके स्वर्गमें आनेपर ब्रह्मर्षिलोग उनके समीप जाय जिस अश्वमेध यज्ञमें भगवान् हरिकी आराधना करना ही प्रधान कर्म है, उस अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रको दीक्षित करके यथाविधिसे वह यज्ञ उनसे कराने लगे ॥ १८॥ हे राजन् ! ब्रह्मवादी मुनिलोगों करके जो यज्ञ कराया गया, महेन्द्र उसमें सब देवता ही जिनकी मूर्ति उस परम पुरुषकी जब अर्चना करने लगे ॥ १९ ॥ तब उनकी बहुत बड़ी ब्रह्महत्या जो कि वृत्रासुरके मार

तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ॥ यथावद्दीक्षयांचक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥ १८ ॥ अथेज्यमाने पुरुषे सर्वं
देवमयात्मनि॥अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः॥१९॥ स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ॥ नीतस्तेनैव
शून्याय नीहार इव भानुना ॥ २० ॥ स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ॥ इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराण
मिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥ २१ ॥ इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ॥ भक्त्युच्छ्रयं
भक्तजनानुवर्णनं महेंद्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥ २२ ॥

डालनेसे हुई थी, वह हत्या उन परम पुरुषसे सम्पूर्णतः इस प्रकार नाशको प्राप्त होगई कि, जैसे सूर्य भगवान्के उदय होनेसे तम (अंधकार) का नाश हो जाता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मरीचि इत्यादि महर्षियोंके कराये हुए अश्वमेध यज्ञसे यज्ञनाथ पुराण पुरुषकी आराधना कर पापक्षय होनेसे इन्द्र फिर पहलेके समान अपने उसी बड़प्पनको प्राप्त हुए ॥२१॥ हे महाराज ! यह आख्यान अति श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें तीर्थपद भगवान् हरिका कीर्तन, भक्तजनोंका वृत्तान्त और इन्द्रका पापसे छूटना और विशेष करके इन्द्रका ही जय, कहा गया है

इसलिये इससे अनंत पाप धुल जाते हैं और भक्तिका उदय होता है ॥ २२ ॥ इसलिये पंडितगण सदा इस आख्यानका पाठ करते और पर्व पर्वमें इसको श्रद्धासहित कहते हैं, इससे इन्द्रियें वशमें होती हैं, धन, यश होता है, अखिल पापका नाश हो जाता है और शत्रुओंको जीत लिया जाता है । अधिक करके यह आयुका बढ़ानेवाला है, इसलिये इस उपाख्यानका पाठ करना या श्रवण करना परम कल्याणकारी है ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामिंद्राश्वमेधयज्ञवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३॥ दोहा–अतिदुखसे इक सुत भयो, सोउ लीन विधि छीन । चित्रकेतु बिलखत परो, जैसे जल बिन मीन ॥ १ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् विनयपूर्वक श्रीशुक

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वंत्यथो पर्वणि पर्वणींद्रियम् ॥ धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुंजयं स्वस्त्ययनं तथायुषम् ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे इन्द्ररक्षणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ रजस्तमस्स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ॥ नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥ १ ॥ देवानां शुद्धसत्त्वाना मृषीणां चामलात्मनाम् ॥ भक्तिर्मुकुंदचरणे न प्रायेणोपजायते ॥ २ ॥ रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जंतवः ॥ तेषां ये केचनेहंते श्रेयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥ प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ॥ मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥ ४ ॥

देवजीसे पूँछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! महापापी वृत्रासुरका स्वभाव रजोगुण और तमोगुणसे परिपूर्ण था, फिर भगवान् वासुदेवमें किस प्रकार उसकी दृढ मति हुई ? ॥ १ ॥ शुद्ध सत्त्वगुणी देवतागण और निर्मल आत्मावाले ऋषि लोगोंके चित्तमें इस प्रकार मुकुन्द गोपालकी भक्ति नहीं उपजती, फिर पापी वृत्रासुरको किस प्रकारसे उनके चरणोंमें भक्ति उत्पन्न हुई ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीमें अनंत जीव हैं उनकी गिनती पृथ्वीके रजःकणोंके समान अनंत है, परन्तु इतनें अनंत जीवोंमेंसे कई एक मात्र मनुष्यादि अपने अपने कल्याणके लिये यत्न किया करते अर्थात् धर्माचरण किया करते हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! इन कई एक मनुष्योंमें भी सब ही मोक्षके अभिलाषी नहीं होते, बरन्

---

१ भजन ॥ राग पूर्वी–समय न आवत बारम्बार ॥ तू प्रमादनिद्रामें सोयो अब तो नयन उघार ॥ यह मनुष्य तनु उत्तम पायो, प्रभुको सुयश उचार ॥ वृथा गँवाई इतनी आयुष, क्यों नहीं करत विचार ॥ तब रघुवीर दास पछतावे, जब तुम तजे असार ॥

इनमेंसे भी कोई एक ही मोक्षको चाहते हैं, यह मोक्षार्थी सब ही जीव सिद्ध नहीं होते, बरन् सहस्रोंमें. कभी कोई एक ही पुरुष गृह इत्यादिका संग त्याग करके तत्त्वज्ञानी होता है। जो पुरुष मुक्त और इस प्रकारके तत्त्वज्ञानी होजाते हैं ऐसे करोड़ों जनोंके मध्यमें नारायणपरायण महाशान्त स्वभाववाले पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं और ढूँढनेसे भी नहीं मिलते, बहुत कठिनतासे देखनेमें आते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! वृत्रासुर साक्षात् पापका रूप होकर सब लोककी हिंसा करता फिरता था और सदा संग्राम करनेके लिये तैयार रहता, फिर उसकी मति किस लिये भगवानमें ऐसी दृढ हुई ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! इस बातमें हमको बडा संशय है और इसको सुननेके लिये चित्तमें परमोत्साह हो रहा है, सो कृपापूर्वक विस्तार सहित इसका वर्णन कीजिये। हे योगिन् ! वृत्रासुर इन्द्रके भयसे भगवानकी शरणमें आया था ऐसा तो हम नहीं कह सकते,

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ॥ सुदुर्लभः प्रशांतात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥५ ॥ वृत्रस्तु स कथं पापः सर्व
लोकोपतापनः॥इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत्संग्राम उल्बणे ॥ ६ ॥ अत्र नः संशयो भूयाञ्छ्रोतुं कौतूहलं प्रभो ॥
यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥७॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान् बादरायणिः ॥ निशम्य श्रद्द
धानस्य प्रतिनंद्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ॥ श्रुतं द्वैपायनमुखा
न्नारदाद्देवलादपि॥९॥आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ॥ चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुङ् मही ॥
॥१०॥ तस्य भार्यासहस्राणि सहस्राणि दशाभवन् ॥ सांतानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु संततिम् ॥ ११ ॥

क्योंकि उस समय वृत्रासुरने ऐसा विक्रम प्रगट किया कि, इन्द्र भी उससे प्रसन्न होगये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे मुनिगण ! श्रद्धावान् महाराज परीक्षितके यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक यह वचन बोले ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् इस विषयमें एक इतिहास महर्षि व्यासजीके मुखसे तथा नारदजीके व देवलके मुखसे भी सुना है सो हम तुम्हारे सन्मुख वर्णन करते हैं, सो सावधान होकर तुम श्रवण करो ॥९॥ हे महाराज ! पहले शूरसेन देशमें चित्रकेतु इस नामसे विख्यात एक राजा था, उसका ऐसा प्रताप था कि, पृथ्वी उसको मनोवांछित वस्तु दिया करती थी ॥ १० ॥ हे महाराज ! इस चित्रकेतुकी करोड रानियां थीं. यद्यपि वह राजा पुत्रके उत्पन्न करनेमें

समर्थ था तथापि उसके इन सब स्त्रियोंमें एक भी पुत्र कन्या नहीं अर्थात् कुभाग्यसे इसकी सब ही स्त्रियें वन्ध्या थीं * ॥११॥ स्वयं रूप, लावण्य; वयस, विद्या, कुलीनता, ऐश्वर्य, उदारता इत्यादिमें सम्पन्न और सर्वगुणोंसे अलंकृत होनेपर भी बांझ स्त्रियोंका स्वामी होनेसे चित्रकेतुके

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः॥ संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिंता वंध्यापतेरभूत् ॥ १२ ॥
न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ॥ सार्वभौमस्य भूश्चेयमभूवन्प्रीतिहेतवः॥ १३ ॥

अन्तःकरणमें क्रमक्रमसे चिन्ताका प्रवेश होता ही रहताथा॥१२॥ इसलिये समस्त सम्पदा सकल वामलोचना महिला और अखिल भूमि किसी वस्तु

---

* शंका–राजा चित्रकेतुके एक करोड १०००००००स्त्री थीं सोई शुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कहा था कि, राजा चित्रकेतुकी एक करोड भार्या थीं, उन स्त्रियोंको रति आदि लेकर पोषण भरण किसप्रकार होता था यह बडे आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर–राजा चित्रकेतु चित्र बनानेमें बडा चतुर था इसीलिये उसका नाम चित्रकेतु था. उसने एक करोड शयनभवन अत्यन्त मनोहर बना रक्खे थे और उन्हीं मन्दिरोंमें एक एक स्त्रीका चित्र भी बना रक्खा था. प्रत्येक मन्दिरमें एक स्त्रीका चित्र भी ऐसा मनोहर था मानो साक्षात् स्त्री विराजमान हैं. राजा चित्रविद्या तो जानता ही था, परन्तु उसमें एक बात और महाअद्भुत थी कि चित्रको सजीव करनेकी विद्या भी जानता था जब चित्रकेतुकी इच्छा होती थी कि इसको सजीव करना चाहिये उसी समय उसको सजीव कर लेता था, और उसके संग हास्यविलास करके फिर तुरन्त विसर्जन कर देता था. जब राजाका विवाह होता था उस समय उसी स्त्रीको चित्रकी मूर्ति बना देता था विवाहसे प्रथम चित्र नहीं बनता था. जब राजा चित्रकेतुके पुत्र नहीं हुआ तब तो नित्य स्त्रियोंको सजीव करता था.पुत्रके हुए पीछे पुत्रका सुख देखकर आनन्दमें मग्न होगया तब नित्य स्त्रियोंको सजीव नहीं करता था, जब कभी स्मरण होजाय तब पांचवें सातवें दिन किसी स्त्रीको सजीव कर लेता था. एकदिन चित्रकेतु सब स्त्रियोंको सजीव करके पहलेके सदृश सब काम करने लगा, परन्तु दैवयोगसे विसर्जन करना भूलगया तब तो सब स्त्रियोंसे उन्हें झारनेवाली जो दासी थी वह सब कहने लगीं कि जबसे राजाके पुत्र हुआ तबसे तुम्हारा आदर कर दिया निरादर क्या नित्य तुमको सजीव करता था सो अब पांचवें सातवें दिन सजीव करता है. हम तुम सबको नित्य झारती हैं, और शुद्र करती हैं. इस प्रकार दासियोंके वचन सुनकर सब स्त्रियोंने मिल उस बालकको विष देदिया बालक नष्ट होगया, तब राजाने शोक संतापसे दुःखी होकर उन स्त्रियोंको विसर्जन नहीं किया इसलिये वह सब जीती रह गईं और उन्होंने ब्राह्मणोंने बालहत्याको शांत करनेके लिये जो उपाय बताये सो किये, इस प्रकार चित्रकेतुकी करोड स्त्री थीं, परन्तु चित्ररूपी थीं ॥

511

से भी इस चक्रवर्ती राजाका मन प्रसन्न नहीं होता ॥ १३ ॥ एक समय भगवान् अंगिरा महर्षि अपनी इच्छानुसार समस्त भूमण्डलमें भ्रमण करते करते इस राजाके स्थान पर आ पहुँचे ॥ १४ ॥ महर्षिको देखते ही राजा हड़बड़ाकर उठा और दंडवत् साष्टांग कर उनको आसन दिया और अनेक भाँतिसे उनकी पूजा कर अतिथिके समान उनका आदर सत्कार किया, जब राजाके दियेहुए आसनपर यह महर्षि बैठ गये, तब राजा भी नियमसहित उनके निकट आसन बिछाकर बैठ गया ॥ १५ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! समीप बैठेहुए राजाको विनय करते पृथ्वीमें झुककर प्रणाम करते देख महर्षि अंगिरा सत्कार करके उनकी प्रशंसा करने लगे॥ १६॥ फिर अंगिराजीने पूँछा कि, हे महाराज ! कुशलसहित हो ? तुम्हारे राजांग और शरीरका मंगल तो है ? हे राजन्! जिस प्रकार महदादि सप्त प्रकृतिसे जीव नित्य रक्षित

तस्यैकदा तु भवनमंगिरा भगवानृषिः ॥ लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥ १४॥ तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ॥ कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥१५॥ महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ॥ प्रतिपूज्य महाराजं समाभाष्येदमब्रवीत्॥ १६ ॥ अंगिरा उवाच ॥ अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथात्मनः ॥ यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान्राजापि सप्तभिः ॥१७॥ आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात्॥राजा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥ १८ ॥ अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मंत्रिणः ॥ पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥ १९ ॥ यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे ॥ लोकास्सपाला यच्छंति सर्वे बलिमतंद्रिताः ॥ २० ॥

रहता है, उसके विना क्षणमात्रको भी नहीं रह सकता वैसे ही राजाको भी सप्त प्रकृति अर्थात् स्वामी (गुरु) अमात्य (कर्मसहायक) राज्य, दुर्ग, कोष,दण्ड और मित्र (सलाहका देनेवाला) इन सातोंमें गुप्त रहना पड़ता है,इस प्रकारका सुरक्षित राज्य ही उत्तम है. आप इन समस्त प्रकृतियोंका अनुवर्तन करके राज्यसुख भोग कर पाते हैं॥ १७॥ हे राजन्! राजाके सुखी होनेसे प्रकृति अर्थात् राज्यके समस्त अंगोंमें धनकी वृद्धि होती है ॥ १८ ॥ हे महाराज ! हम पूछते हैं कि स्त्री, पुत्र, मंत्री, अमात्य, भृत्य (नौकर चाकर) तो तुम्हारे वशमें हैं, जो समस्त वणिक् विशेष विशेष नियम कर दल बाँधके रहा करते हैं,वह लोग पुरवासी,देश परदेशके पति और प्रजा यह सब तो आपके वशमें रहत हैं ? ॥ १९ ॥ हे राजन् ! जिस पुरुषका मन अपने वशमें रहता है ऊपर कहेहुए यह सब पुरुष उसके वशमें रहते हैं और यही

5/2

समस्त लोग लोकपालोंके संग आलस्य रहित होकर राजाकी भेंट पूजा किया करते हैं, इसलिये तुमसे हम पूँछते हैं कि, तुम्हारा मन तो तुम्हारे वशमें है? ॥२०॥ परंतु हे राजन्! हम जानते हैं. कि, तुम आत्मासे सन्तुष्ट नहीं हो। तुम्हारा यह भाव क्या अपने आपसे हुआ है या किसी औरसे हुआ है? हम तुम्हारा वदन चिन्तासे गीला और मलिन देखते हैं इससे प्रगट दिखाई देता है कि, तुमने अपनी वांछित वस्तु नहीं पाई है॥२१॥इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज मुनिश्रेष्ठ अंगिरा यद्यपि सब जानते थे, तो भी इस प्रकारसे संशयप्रकाश करके जब उन मुनिने पूँछा तब पुत्रकी चाहनावाले राजा चित्रकेतुने हाथ जोड़कर मुनिसे निवेदन किया. ॥ २२ ॥ चित्रकेतुने कहा कि, हे भगवन्! शरीरधारियोंके भीतर और बाहर जो जो कुछ वर्तमान बातें हैं पापरहित योगिराज तपस्या, ज्ञान और समाधिके बलसे वह किस बातको नहीं जानते हैं, और उनसे कौनसी बात छिपी है? ॥ २३ ॥ तथा आप हमसे हमारी मानसिक चिन्ताके विषयमें पूँछते हो तो निवेदन करते हैं, आपकी आज्ञासे मैं सब कहता हूँ ॥२४॥ राज्य, ऐश्वर्य और संपत्ति, यद्यपि इसकी प्रार्थना लोकपालगण भी करते हैं, परंतु जिस प्रकार भूखेको पुष्पमाला चंदनादि सुख नहीं देते, ऐसे ही मुझको यह द्रव्यादिक सब प्रकार सुख नहीं देते ॥ २५ ॥ इसलिये हे महाभाग! इस दुष्कर नरकमें पित्रादि पूर्वपुरुषों सहित पडा हुआ हूँ, जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न हो और इस नरकके पार हो सकूं, कृपा करके आप कोई ऐसा उपाय बता दीजिये ॥ २६ ॥

आत्मनः प्रीतये नात्मा परतः स्वत एव वा॥ लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिंतया शबलं मुखम् ॥ २१ ॥ एवं विकल्पितो
राजन्विदुषा मुनिनाऽपि सः॥प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम्॥२२॥चित्रकेतुरुवाच ॥ भगवन्किं न विदितं
तपोज्ञानसमाधिभिः॥ योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरंतश्शरीरिषु॥२३ ॥तथापि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिंतितम्॥
भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया॥२४॥ लोकपालैरपि प्रार्थ्या साम्राज्यैश्वर्यसंपदः ॥ न नंदयंत्यप्रजं मां क्षुत्तृट्
काममिवापरे ॥२५॥ ततः पाहि महाभाग पूर्वैस्सह गतं तमः ॥ यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद्विधेहि नः ॥२६॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ॥श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्द्विजः ॥ २७॥ ज्येष्ठा
श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ॥ नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्द्विजः ॥ २८ ॥ अथाह नृपतिं राज
न्भवितैकस्तवात्मजः ॥ हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥ २९ ॥ सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत्॥
गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्मजम् ॥ ३० ॥तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ ववृधे शूरसेनेशतेजसा
शनकैर्नृप ॥ ३१ ॥ अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ॥ जनयञ्छूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥ ३२॥ हृष्टो
राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ वाचयित्वाशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब राजा चित्रकेतुने अंगिरा ऋषिकी इस भांति विनय की तब ब्रह्माके पुत्र परमदयालु अंगिराजीने उसी समय वह त्वाष्ट्र चरु ले सिद्ध कर त्वष्टाकी पुजा करवाई और यज्ञ किया ॥ २७ ॥ हे भारत! यज्ञ समाप्त होनेपर राजाकी करोड रानियोंके बीचमें जो सबसे बडी और सबसे श्रेष्ठ कृतद्युति स्त्री थी, ब्राह्मणश्रेष्ठ अंगिराजीने उसको यज्ञका शेष अन्न प्रदान किया ॥ २८ ॥ इसके पीछे वह राजासे बोले कि, इस प्रसादको भोजन करनेसे तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा, परन्तु उस पुत्रसे तुम्हारे हर्ष और विषाद दोनों होंगे अर्थात् वह जन्मसे तुम्हें सुख देगा और मरणसे तुमको शोक उत्पन्न करावेगा. हे राजन् ! ब्रह्मकुमार अंगिराजी यह कहकर वहांसे अपने स्थानको चले गये॥२९॥हे भारत! यज्ञशेष (चरु)भोजन करनेसे चित्रकेतुकी रानी कृतद्युतिने, कृत्तिकाने जिस प्रकार अग्निकी आत्माको धारण किया था वैसे गर्भ धारण किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! शूरसेन देशके अधिपति राजा चित्रकेतुके वीर्यसे रानी कृतद्युतिका यह गर्भ शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिन २ प्रकाश करने लगा॥३१॥ इसके पीछे जब गर्भमास पूर्ण होगये तब एक राजकुमार उत्पन्न हुआ। हे कौरवनाथ ! राजकुमारका जन्म होना सुनकर शूरसेन देशके निवासियोंको परमानंद प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा चित्रकेतु पुत्रका जन्म सुन, आनंदसागरमें मग्न होगया और स्नान ध्यान कर पवित्र हो सुन्दर २ वस्त्र पहनकर ब्राह्मणोंसे यथाविधि आशीर्वाद पाय अपने पुत्रका जातकर्म संस्कार विधिपूर्वक कराया ॥ ३३ ॥

फिर पीछे राजाने उन सब ब्राह्मणोंको सुवर्ण, चांदी, वसन, आभूषण, हाथी, घोडे, रथ, पालकी, पुर, ग्राम और साठ (६०) करोड गायें बच्चोंसहित दान करके दीं॥३४॥ और फिर अपने अतिबडे मनसे मेघ जिस प्रकार सब जीवोंके हितार्थ जल वर्षाता है, वैसे ही इस उदारचित्त राजाने पुत्रके यश और आयुके बढानेके लिये धन देदेकर सब देश परदेशके मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण कर दी ॥३५॥ अधिक करके जिस जिस वस्तुके दान करनेसे कुमारका सौभाग्य बने और दीर्घायु हो, उसके दान करनेमें भी राजाने किसी बातका संकोच नहीं किया। हे परीक्षित्! बहुत कालके पीछे महाकष्टसे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार किसी व्यक्तिको बडी कठिनाईसे धन मिले और वह उससे स्नेह करता है, ऐसे ही इस पुत्रके प्रति पिता चित्रकेतुका स्नेह उत्पन्न होकर दिन दिन बढ़ने लगा॥ ॥ ३६ ॥ और माता (कृतद्युतिका)

तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च॥ ग्रामान्हयान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥३४ ॥ ववर्ष काममन्येषां
पर्जन्य इव देहिनाम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥ कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ॥
यथा निस्स्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्द्धत ॥ ३६ ॥ मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः॥कृतद्युतेः सपत्नीनां
प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥ ३७॥ चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ॥ न तथान्येषु संजज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम्
॥ ३८ ॥ ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयंत्योऽभ्यसूयया ॥ आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनारदरणेन च॥ ३९॥ धिगप्रजां स्त्रियं
पापां पत्युश्चागृहसंमताम् ॥ सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥ ४० ॥

इस पुत्रमें ऐसा वात्सल्य उत्पन्न हुआ कि, जिससे मोह उत्पन्न होता है, परंतु उसकी जो समस्त सपत्नियें (सौतें) थीं, वह अपनी सौतको पुत्रवती देखकर अपनी अपनी संतानका अभिलाष होनेसे वह पुत्रकामनारूप संतापसे संतापित हुईं और सौतियाडाह करने लगीं ॥ ३७॥ अधिक करके महाराज चित्रकेतु दिन प्रतिदिन पुत्रका लालन पालन करनेवाली पुत्रवती स्त्रीमें ऐसी प्रीति दिखाने लगे कि, जिससे और इनकी रानियोंको संतोष न हुआ अर्थात् और रानियोंमें यह ऐसी प्रीति नहीं दिखाते थे ॥ ३८ ॥ इससे वह और सब रानियें ईर्षाके वश होकर आप ही आप अपनी निन्दा करने लगीं और निःसंतान होनेसे राजाके निकट अनादर पाय मनके दुःखसे बहुत ही संतापित हुईं ॥ ३९ ॥ वह रानियें बोलीं कि, जिस नारीके संतान नहीं, वह अति पापिनी, उसको धिक्कार है, वह अपने स्वामीके निकट भी भार्या कहकर नहीं

गिनी जाती, क्योंकि उसकी जो सौतें पुत्रवती होती हैं, वह सब दासीके समान उस निःसंतान नारीका निरादर करती हैं ॥ ४० ॥ दासियोंको संताप क्या है, स्वामीकी सेवासे ही उनको मान मिलता है, यह बात सत्य है परन्तु हम दासियोंकी दासियोंसे भी कुभागिनी हैं ॥ ॥ ४१ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! कृतद्युतिकी पुत्रसम्पत्ति देखकर उसकी सब सौतें एक एक करके ईर्षामें जल रही थीं, तिसपर निःसंतान होनेसे राजाकी भी प्रीति उनमें कम होगई, इसलिये उस राजकुमारके ऊपर रानियोंको बडा शत्रुभाव उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! वैरके मारे इन सब स्त्रियोंकी बुद्धि ऐसी नष्ट हुई और चित्त इस प्रकारका निर्दय हुआ कि, उन्होंने अपने पति नरपति राजा चित्रकेतुका सौभाग्य न सहकर प्राणसंहार करनेकी वासनासे इस राजकुमारको विष दे दिया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! अपनी सौतोंका यह पापकर्म कृतद्युति कुछ भी नहीं जानती थी, उसने नहीं जाना कि विष देनेसे राजकुमारका प्राणान्त होगया वह यही समझ रही थी कि, राजकुमार शयन कर रहे हैं. यद्यपि रानी घरमें आई तो भी इसने समझा कि, कुमार अबतक सो रहे हैं, इस कारण कुमारके निकट न गई और इधर उधर फिरती रही ॥ ४४ ॥ दूसरे घरमें जाकर कुछ देर पीछे रानीके मनमें यह बात आई कि आज राजकुमार बहुत देरसे सो रहे हैं इस कारण धाईको पुकारकर कहा कि, हे कल्याणकारिणी ! हमारे पुत्रको उठाकर यहाँपर ले आओ ॥ ४५ ॥ धाई उस घरमें गई, जहां राजकुमार सो रहाथा, देखा कि उस लडकेकी आँखोंकी पुतली

दासीनां को नु संतापः स्वामिनः परिचर्यया ॥ अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥ ४१ ॥ एवं संदह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसंपदा ॥ राज्ञोऽसंमतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥ ४२ ॥ विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ॥ गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥ ४३ ॥ कृतद्युतिरजानंती सपत्नीनामघं महत् ॥ सुप्त एवेति संचित्य निरीक्ष्य व्यचरद् गृहे ॥ ४४ ॥ शयानं रुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ॥ पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥ सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ॥ प्राणेंद्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ॥ ४६ ॥

ऊपरको चढ रही हैं, देहमें प्राण और इंद्रिय व आत्मा नहीं है वह यह देखते ही हाय मरी! हाय मरी!! कह बडे जोरसे आर्त्त नाद करती हुई मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिर पडी ॥ ४६ ॥ दूध पिलानेवालीकी यह आर्त्तवाणी रानी कृतद्युतिके कानमें पडी इसलिये वह भी अनिष्टकी शंका करती विलाप कर छाती पीटती २ उस घरमें आई और समीप आकर देखा कि, पुत्र अचानक मरा हुआ पडा है ॥ ४७ ॥ हे राजन्! देखते ही रानी कृतद्युति पृथ्वीमें गिर पडी और अत्यन्त शोकके कारण उसी समय उसको मोह उत्पन्न होगया, इसलिये मस्तकके केश खुलने और शरीरके कपडे खसकनेकी रानीको कुछ भी सुरति नहीं रही ॥ ४८ ॥ इसके पीछे राजाके अन्तःपुरचारी नर नारी गण यह बात सुन शीघ्र वहांपर आय अति दुःखित हो रानीके तुल्य खिन्न होकर रोने लगे। हे राजन्! कृतद्युति रानीकी जिन सौतोंने यह, दुष्कर्म किया था, वह भी सब आय कपटभाव ग्रहण कर रोदन करने लगीं ॥ ४९ ॥ फिर राजा चित्रकेतुने सुना कि पुत्र अचानक मर गया परन्तु उसके मरनेका कारण प्रकाशित नहीं हुआ, सुनते ही अकस्मात् शोकसे राजाकी दृष्टि जाती रही, अंधा होगया, वह मरेहुए पुत्रके देखनेके लिये उत्सुक हो शोकके मारे गिरता पडता हुआ आने लगा, अति स्नेहके कारण राजाका शोक बराबर बढता ही जाता था, राजा वारंवार मूर्च्छित होने लगे इसलिये मन्त्री इत्यादि राजपुरुषगण राजाके संग चले और ब्राह्मण लोग भी चारों ओरसे घेरकर राजाके संग चले ॥ ५० ॥ बस राजा वहां आकर उस मरे हुए बालकके चरणोंमें गिर पडे। उसके केश खुले और कपडे स्खलित हो रहे थे, आंसू भर आनेसे राजाका कण्ठ रुक रहा था, इसलिये वह केवल बडे बडे श्वास लेने लगा, वचन कहनेका सामर्थ्य राजामें न रहा ॥ ५१ ॥

तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नंत्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि॥ प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजांतिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥ ४७ ॥ पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहांबरा ॥ ४८ ॥ ततो नृपांतःपुरवर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ॥ आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितांतकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि॥ स्नेहानुबंधैधितया शुचाभृशं विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजवृतः ॥५०॥ पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहांबरः॥ दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकंठो न शशाक भाषितुम् ॥ ५१ ॥

S/9

पतिं निरीक्ष्योरुशुचाऽर्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसंततिम् ॥ जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥५२॥स्तनद्वयं कुंकुमगंधमंडितं निषिंचती सांजनबाष्पबिंदुभिः ॥ विकीर्य केशान्विगलत्स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥५३॥ अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ॥ परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥ ५४ ॥नहि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ॥ यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥ ५५ ॥

पतिको इस प्रकार शोकसे व्याकुल देखकर और अपने वंशकी आशा जो संतान थी उसको मृतक देखकर कृतद्युतिको बडा दुःख हुआ, वह सब पुरवासियों तथा विशेष करके मन्त्री इत्यादिकोंके शोक संतापको बढाती हुई विचित्र प्रकारसे विलाप करने लगी॥५२॥रानीके दोनों स्तन कुंकुमसे रंगेहुए थे, उनके ऊपर आंसुओंकी धारा पड़नेसे मानो उनका अभिषेक होने लगा और रानीने इस प्रकारसे अपने केश छिटकाये कि, जिससे समस्त मोतियोंकी मालायें खुल गईं। तिसके पीछे मृतक बालकको लिये कुररीके समान शब्द कर रानी आश्चर्यमय विलाप करने लगी ॥ ५३ ॥ फिर विधाताके ऊपर दोष लगा कर रानीने कहा, अरे विधाता ! तू अतिशय मूर्ख है, क्योंकि तू अपनी सृष्टिमें उलटी चाल चलता है, वृद्धके जीवित रहते बालकका मरना कैसा ? वृद्धमें सृष्टिका सामर्थ्य नहीं, उसके जीवित रहने और बालकके मृतक होनेसे सब सृष्टिका ही नाश हो जायगा:अरे विधि ! यदि तू इस समय अपनी सृष्टिके विपरीत हो रहा है तब तो तू सब ही प्राणियोंको दुःख देनेवाला है, इस कारण नित्यशत्रु तुझको कृपालु कौन कहता है?॥५४॥यदि इस लोकमें शरीरधारियोंके जन्म मरणका कोई क्रम न हो, अर्थात् जन्म मरणके कर्माधीन होनेसे पुत्रके जीतेजी पिताकी मृत्यु होजाय और पिताके जीवित रहते ही पुत्र जन्मे ऐसा नियम यदि न हो तब लोगोंके आत्मकर्मद्वारा ही जन्मादि हों, फिर तुझसे किसीका क्या कार्य है? यदि कहो कि,कर्म जड है केवल कर्मसे जन्म मृत्यु सिद्ध नहीं हो सकते (उत्तर) सिद्ध न हों तथापि इस आचरणमें तूने अपना मार्ग बढ़ानेके लिये स्नेहकी फांसी बना रक्खी थी उसको तूने आप ही तोड डाला अब ऐसे दुःख देखकर कोई भी पुरुष अपने पुत्रादिकमें स्नेह न करेगा और सृष्टिके रचनेमें तुझको बखेड़ा पड़ेगा ॥ ५५ ॥

फिर मृतक पुत्रको पुकार पुकार विलाप करती हुई रानी कहने लगी कि बेटा ! हम अति दीन और अनाथ हैं, सो हमको इस प्रकारसे छोड जाना तुमको उचित नहीं है । हे वत्स ! कुछ अपने पिताकी ओर तो निहार कर देखो कि, यह तुम्हारे शोकमें महासंताप पा रहे हैं. हे पुत्र ! हम तो सदा यही जानती और आशा करती थीं कि, निःसंतान पुरुषको जो नरक होता है उस नरकके पार हम सरलतासे होजायँगी । देखो पुत्र ! हमको त्यागकर तुम दयाहीन कालके संग दूर न जाओ । हाय ! हमने बहुत उपाय किये, परंतु तो भी इस निर्दयी यमराजने नहीं छोडा ॥ ५६ ॥ हे तात ! उठो यह तुम्हारे साथके खेलनेवाले तुमको खेलनेके लिये बुला रहे हैं. हे राजकुमार ! बहुत देरसे शयन कर रहे हो, तुम्हें भूख लगी होगी. हे लालन ! कुछ खाओ, दूध पियो. भइया ! इन सब अपने कुटुम्बियोंके और मइयाके शोकको दूर करो ॥५७॥ हे प्राणपुत्र ! हम बडी अभागिनी हैं कि, जो प्रथम ही हमने यहां आकर तुम्हारे मुखकमलका मनोहर हँसना नहीं देखा, हाय ! अबतक भी बेटेके मनोहर वचन हमको सुनाई नहीं आते, वत्स ! तुम्हारे दोनों नेत्र बंद होरहे हैं, क्या क्रूर काल तुमको लोकांतरमें (जहांसे फिर आना जाना नहीं होता) ले गया है ? ॥५८॥ इतनी कथा कह योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कौरववंशावतंस परीक्षित् ! जब कृतद्युति पुत्रके लिये इस प्रकारसे शोक कर रही थी, तब राजा चित्रकेतु रानीके अत्यन्त विलापसे महासन्तापित हो पुत्र पुत्र पुकार धाड मारकर रोने लगे ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! इन स्त्री पुरुष दोनोंका विलाप देखकर राजाके नौकर चाकर नर नारी सब ही रुदन करने लगे

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम्॥ अंजस्तरेम भवताप्रजदुस्तरं यद्धांतं न
याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥ ५६ ॥ उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयंति नृपनंदन संविहर्तुम् ॥
सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान्परीतो भुंक्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥ ५७ ॥ नाहं तनूज ददृशे हतमंगला
ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ॥ किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते
॥ ५८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलपंत्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ॥ चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकंठो रुरोद ह ॥५९॥
तयोर्विलपतोः सर्वे दंपत्योस्तदनुव्रताः ॥ रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥ ६० ॥

और फिर बडे भारी शोकके कारण मोहके वश हो सब ही अचेतन होगये ॥ ६० ॥ हे कौरव ! जब चित्रकेतु राजाके ऊपर इस प्रकारका दुःख पडा तबयह वृत्तान्त महर्षि अंगिराजी जानकर नारदजीके साथ वहां पर आये, उस समय राजभवनमें सब मूर्च्छित होकर गिरे पडे थे ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चित्रकेतुपुत्रमृत्युवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–देवऋषी अरु अंगिरा, दियो परम उपदेश । तत्त्वज्ञानसे भूपको, मेटो सकल कलेश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! चित्रकेतु राजाको मृतक शिशुके शवके समीप शवके समान पडा हुआ और शोकसे व्याकुल देखकर महर्षि अंगिरा और नारदजी बहुत समझा बुझा कर कहने लगे ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम जिसके लिये इस प्रकारसे शोक करते हो, यह पुरुष तुम्हारा कौन है? और तुम भी इस प्रजारूपी सृष्टिमें इसके बन्धुओंमें कौन हो? यदि तुम कहो कि, यह हमारा पुत्र है, हम इसके पिता हैं, तो इसमें यह कहना है कि, क्या पहले भी तुम्हारा परस्पर इसी प्रकारका संबन्ध था ? या अभी है ? इसके पीछे क्या होगा ? निदान जो पूर्वजन्ममें जिसके सहित पित्रादिरूपमें संयुक्त रहता है, वह मरणके द्वारा उससे वियुक्त होकर वर्तमान जन्ममें कदाचित् उसका, कदाचित् दूसरेका पुत्रादि हो सकता है और इस समय भी जो जिसके पुत्र कलत्रादि हैं वह भी दूसरे जन्ममें उसके या और दूसरेके पुत्र कलत्रादि वा शत्रुमित्रादि हो सकते हैं, इसलिये यह तुम्हारा पुत्र और तुम इसके पिता ऐसा क्या नियम है? कैसे इसको तुमनें अपना पुत्र जाना ? ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार जलप्रवाहके वेगसे बालू किसी स्थानसे बहकर किसी दूसरे स्थानमें जाती है, इसी प्रकारसे यह जीव भी कालके वेगसे कभी परस्पर मिल जाता और कभी अलग हो जाता है

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ॥ ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥६१॥ इति श्रीभागवते म० षष्ठ० चित्रकेतोर्मृतपुत्रशोको नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऊचतुर्मृतकोपांते पतितं मृतकोपमम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं बोधयंतौ सदुक्तिभिः ॥१॥ कोऽयं स्यात्तव राजेंद्र भवान्यमनुशोचति ॥ त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम्॥२॥ यथा प्रयांति संयांति स्रोतोवेगेन वालुकाः॥संयुज्यंते वियुज्यंते तथा कालेन देहिनः॥३॥

---

१ **कवित्त**–देवी शीतला बराहीकी जगावें रात, ऊत पित्र मीराको सो रेवडी चढावै हैं । क्षेत्रपाल गंगा देव भैरौं रु भूपाल आदि, जगतके जेते तेते देवता मनावै हैं ॥ कोई मप्रकोटको हू जावत है व्याहकाज, कोई कलकत्तेकी जु कालीजीको ध्यावै हैं ॥ पूजें नित भूत प्रेत सुमिरैं न राम राम, शालिग्राम ऐसे नर बहु पछितावें हैं ॥ १ ॥

॥३॥ हे महाराज ! बीजमें बीज होता तो है, परन्तु जिस प्रकार किसी किसी बीजमें बीज नहीं भी उत्पन्न होता है, अथवा जमकर नष्ट होजाता है, वैसे ही परमेश्वरकी मायाके वश पुत्रादिरूप सर्व प्राणी पित्रादिरूप सर्व प्राणियोंमें कभी नियोजित हो सकते हैं, कभी नियोजित नहीं हो सकते इस कारण बीजोंमें जनकत्व रहने पर भी जिस प्रकार पितृपुत्रभाव नहीं कहा जा सकता, वैसे ही इस स्थानमें भी पितृपुत्रभाव है, फिर इसमें शोककी कौनसी बात है ? ॥४॥ हे राजन् ! हम तुम और यह सब चराचर जगत् जो वर्तमान कालमें एकत्र हो रहा है, इम जिस प्रकार जन्मके पहले नहीं थे, ऐसे ही मृत्युके पीछे भी नहीं रहेंगे, तैसे ही इस समय भी नहीं हैं, इसलिये यह सब यदि प्रथममें और अन्तमें न रहा तो असत् (मिथ्या) और केवल स्वप्नतुल्य है ॥ ५ ॥ और जो कहो कि, यदि सब ही असत् (मिथ्या) है, तो फिर प्रतीत क्यों होता है और हम इसके पिता हैं ऐसा अभिमान क्यों होता है ? (उत्तर)–सब जीवोंके स्वामी मायाके योगसे प्राणियोंको सृजन, पालन और संहार किया करते हैं इसलिये परमेश्वरकी मायासे बननेके कारण सृष्टि प्रतीत होती है और प्राणियोंके इस विषयमें केवल निमित्त मात्र होनेसे उनको अभिमान उत्पन्न हुआ करता है. परन्तु हे राजन् ! परमेश्वरके सृष्टयादि वीर्य देखकर अपूर्ण कामनाकी आशंका मत करना, सर्वभूत आत्मसृष्ट हैं, परन्तु हैं सब पराधीनं. दूसरे उनका इन सबमें प्रयोजनमात्र भी नहीं है, वह अनपेक्ष होकर भी बालकके समान लीला करके सब जीवोंकी सृष्टयादि किया करते हैं॥ ६ ॥ हे राजन्! जिस प्रकार बीजसे बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही देही जो पित्रादि हैं उनके देहसे देहकी अर्थात् पुत्रादिक देह मात्रादिककी देहसे उत्पन्न होता है, परन्तु भूम्यादि पदार्थके समान जीव सदाकालवर्ती है ॥ ७॥ यदि कहो कि देही देहका प्रतियोगी है सो देहको जब नाशवान् देखते हैं, तब देही भी वैसा ही हो सकता है शाश्वत नहीं होसकता। (उत्तर) जिस प्रकार

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवंति च ॥ एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥४॥ वयं च त्वं च ये चेमे
तुल्यकालाश्चराचराः ॥ जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ् नैवमधुनापि भोः ॥५॥ भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हंत्यजः॥
आत्मसृष्टैरस्वतंत्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥६॥ देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ॥ बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थं इव
शाश्वतः ॥ ७ ॥ देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा॥जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥ ८ ॥

सामान्य और विशेष यह दो विभाग सन्मात्र वास्तवमें अज्ञानसे कल्पना कर लिये जाते हैं वैसे ही देह और देहीका परस्पर प्रतियोगी विभाग अनादिकालसे अविवेककृत चला आता है ॥ ८ ॥ नानाभाव, जन्म, नाश, क्षय, वृद्धि, क्रियाफल यह असत्यपनसे द्रष्टामें भासते हैं. जैसे अग्निकी विक्रिया काष्ठमें ॥ ९ ॥ असत्यपनसे यह देहके संयोगसे आत्मामें भासता हैं, जैसे स्वप्नमें सब भय अभय उपस्थित होता है ॥ १० ॥ सो इसका अहंकार न होनेसे घोर संसार भी प्रकाशमान नहीं होता, ऐसे ही जीवित निरहंकारी विमुक्तका जन्म नाश नहीं है ॥११॥ इस कारण मनका विलासमात्र अहंता ममतारूप अन्धकारका त्याग कर दीजिये और आत्मा ईश्वर भगवान् वासुदेवमें मन

नानात्वं जन्मनाशश्च क्षयो वृद्धिः क्रियाफलम्॥द्रष्टुश्च भन्त्यतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविक्रिया॥९॥तइमेदेहसंयोगादात्मन्या
भान्त्यसद्ग्रहात् ॥ स्वप्ने यथा तथानन्यद्धयायेत्सर्वं भायाभयम् ॥१०॥ प्रसुप्तस्यानहंमानान्न घोरा भाति संसृतिः ॥
जीवतोऽपि यथा तद्वत् विमुक्तस्यानहंकृतेः॥११॥ तस्मादन्यन्मनोमात्रं जह्यहंममतातमः॥वासुदेवे भगवति मनो धे
ह्यात्मनीश्वरे ॥१२॥ श्रीशुक उवाच॥ एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्ला
नमभाषत॥१३॥राजोवाच ॥कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ॥अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥१४॥
चरंति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः॥ मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिंगिनः ॥ १५ ॥

लगाइये ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं कि, हे राजन्! उन दोनों ब्राह्मणोंके ऐसे वचन सुनकर राजा चित्रकेतुको प्रबोध हुआ और उसने अस्वस्थ होकर अपने मुखको (जो मनकी पीडासे व्यथित होनेके कारण मलिन हो रहा था) हाथसे पोंछ कर तथा हाथ जोड कर कहा ॥ १३ ॥ राजा चित्रकेतु बोले कि, हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! आप दोनों जन कौन हो? हम देखते हैं कि आपलोग ज्ञानसंपन्न, बड़ोंसे भी बडे हो; ज्ञान होता है कि, आपलोग अवधूतका वेष धारण करके गुप्तभावसे यहांपर आये हो * ॥१४॥ क्योंकि भगवान्के प्यारे विप्रगण उन्मत्तके समान

---

* शंका-राजा चित्रकेतु अत्यन्त चतुर था और त्रिलोकीमें जितने ऋषि मुनि थे सबको जानता था, फिर नारद और अंगिरा उसके घर गये तो उसने नहीं पहँचाना जो उसने बूझा कि, तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है?

उत्तर-राजा चित्रकेतुको नारद और अंगिराने ज्ञान-उपदेश दिया तो भी पुत्रशोकमें राजा बहुत दुःखी हो रहा था, इसलिये पहँचान नहीं सका कि नारदजी और अंगिरा मुनि हैं ॥

वेषधारी होकर भूमण्डलपर ग्राम्यबुद्धिवाले हम सरीखे लोगोंको बोध देनेके लिये इच्छानुसार विचरते हैं ॥ १५ ॥ निदान सनत्कुमार, नारदा ऋभु, अंगिरा, देवल, असित, अपान्तरतम, वेदव्यास मार्कण्डेय, गौतम ॥ १६ ॥ वसिष्ठ, परशुराम, कपिल, शुक, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातू कर्ण्य, अरुणि ॥ १७ ॥ रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, वेदशिरा ऋषि धौम्य, पञ्चशिरा मुनि ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव और ऋतध्वज;यह सब और इनके सिवाय और दूसरे सिद्धश (जो लोग ज्ञानके कारण हैं) सदा ही ज्ञानका उपदेश करनेके लिये भ्रमण किया करते हैं ॥ १९ ॥ इसलिये हम ग्राम्य पशुकी तुल्य मूढ व्यक्ति हैं, सो

कुमारोनारद ऋभुरंगिरा देवलोऽसितः ॥ अपांतरतमो व्यासो मार्कंडेयोऽथ गौतमः ॥ १६ ॥ वसिष्ठो भगवान्रामः
कपिलो बादरायणिः ॥ दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽरुणिः ॥ १७ ॥ रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतं
जलिः ॥ ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पंचशिरास्तथा ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ॥ एतेऽपरे
च सिद्धेशाश्चरंतिज्ञानहेतवः ॥ १९ ॥ तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ॥ अंधे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदी
यंताम् ॥ २० ॥ अंगिरा उवाच ॥ अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यंगिरा नृप ॥ एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवा
नृषिः ॥ २१ ॥ इत्थंत्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे । अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥ २२ ॥ अनुग्रहाय
भवतः प्राप्तावावामिहप्रभो ॥ ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥ २३ ॥

आप दोनों ही हमारे रक्षक हो. हम घोर अन्धकारमें डूबे जाते हैं, अब अनुग्रह प्रकाश करके ज्ञानमय दीपका प्रकाश कीजिये ॥ २० ॥ चित्रकेतुके यह मधुर वचन सुनकर वह महाष अंगिराजी बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी कामना करनेपर हमनें ही तुमको संतान प्रदान किया था हम वही अंगिरा हैं और हमारे साथ जो यह दूसरे हैं, यह ऋषि भगवान् नारद साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं ॥ २१ ॥ हमको स्मरण हुआ कि तुम इस प्रकारसे पुत्रशोकमें पड़ घोर अन्धकारमें डूब रहे हो. तुम भगवान् हरिके भक्त हो, तुम्हारा इस प्रकारसे अन्धकारमें डूबना उचित नहीं. इसलिये तुम्हारे ऊपर अनुग्रह प्रगट करनेके लिये हम दोनों जन यहाँपर आये हैं. हे राजन् ! तुम ब्रह्मण्य

5/7

और भगवान्‌के भक्त हो, तुम्हारा इस प्रकारसे व्याकुल होना योग्य नहीं है * ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे महाराज ! जब कि प्रथम हम तुम्हारे घरपर आये थे,उसी समय तुमको ब्रह्मज्ञान देनेकी हमारी अभिलाषा थी, परन्तु उस समय तुम्हारा चित्त औरही विषयमें लगा हुआ था यह जानकर हम उस समय तुमको पुत्र दे गये ॥ २४ ॥ परन्तु पुत्रवान् लोगोंको कैसे कैसे संताप उत्पन्न होनेका डर रहता है, उसको तुम स्वयं ही अनुभव कर रहे हो । स्त्री, भवन, धन और विविध ऐश्वर्य, संपदा यह सब ही इसी प्रकार सन्तापकी देनेवाली हैं ॥ २५ ॥ शब्दादिक विषय, राज्य विभूतियां, पृथ्वीका राज्य, सेना, कोष, नौकर, चाकर, मन्त्री, सुहृद् यह सब चलाय

तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः॥ ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥ २४ ॥ अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते॥ एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसंपदः॥ २५॥ शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः॥ मही राज्यं बलं कोशा भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥ २६ ॥ सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ॥ गंधर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥ २७ ॥ दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यंते मनोभवाः ॥ कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥ २८ ॥

मान और अपने अपने प्रयोजनके साथी हैं ॥ २६ ॥ हे चित्रकेतु ! यह सब शोक, मोह, भय और पीडाके देनेवाले और गंधर्वनगरीके तुल्य अर्थात् कभी आपसे आप आकर उपस्थित हो जाते हैं और कभी आपसे आप ही चले जाते हैं. वास्तवमें स्वप्न,माया और मनोरथ इत्यादि जिस प्रकारसे कल्पित हैं,वैसे ही यह समस्त भी कल्पित ही हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सब ही पदार्थ मनसे गढ़े हुए हैं, क्योंकि, सात्त्विक स्वरूपके विना एक क्षणभर दृश्यमान होकर भी दूसरे ही क्षण अदृश्य होजाते हैं,जो यथार्थ होते तो क्षणभरमें उनका आना जाना

---

* एक ब्राह्मण भगवद्भक्त एक वैश्यके घरपर आया, कि उसी समय बनियाका साला भी आया. सो बनियानीने अपने भाईके अर्थ सुन्दर पकवान, पूरी, कचौरी, लड्डू इत्यादि नगद माल एक थालमें परोसे और दूसरे थालमें परमठे और साग परोस परास अपने स्वामीसे कहा कि, इस थालको अपने सालेके आगे और दूसरेको बाबाजीके आगे परोसना. तब उस भगवद्भक्तने सालेका थाल साधूके आगे और परामठोंका थाल सालेके आगे धरा, तब उस बनियेकी बहूने कहा कि, इस बातमें नाक कटैगी, यह सुन बनियेने कहा. यहांकी कटी तो जुड जायगी परन्तु जहांका यह बाबाजी भक्त है वहांकी कटी फिर न जुडेगी । वास्तवमें भक्तोंकी अधिक शुश्रूषा करनी उचित है ॥

किसी प्रकार सम्भव नहीं। इस कारण मनसे ही कल्पना किये यह सब ही पदार्थ स्वप्नादिके तुल्य मिथ्या हैं।हे राजन्! मीमांसक लोगोंके मतसे यद्यपि सब पुण्यपापोंके फल हैं, तो भी कर्मकी वासनाका अनुध्यान करनेहीसे पुरुषके मनसे कर्म हुआ करते हैं. इस कारण सब कर्म भी मनसे ही उत्पन्न हैं. इस कारण कर्मसाध्य विषय भी मनसेही उत्पन्न कहे जाते हैं ॥ २८ ॥ हे राजन्!प्राणीका यह देह जो द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक अर्थात् अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्मस्वरूप, यही देहीको अर्थात् "मैं देह" इस प्रकारसे समझनेवाले जीवको अनेक सन्ताप मिलते हैं ॥ २९ ॥ इस कारण एकाग्र मनसे ब्रह्मविद्याका विचार करके द्वैतवस्तुमें "यह वस्तु नित्य है" ऐसा जो तुम्हारा विश्वास है उसको छोड़ दो, और शान्तभावको प्राप्त होजाओ ॥ ३० ॥ महर्षि अंगिराजीने जो ब्रह्मविद्याका उपदेश किया, सो

अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ देहिनो विविधक्लेशसंतापकृदुदाहृतः ॥ २९॥ तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ॥ द्वैते ध्रुवार्थविश्रंभं त्यजोपशममाविश ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ एतां मंत्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ॥ यां धारयन्सप्तरात्राद्द्रष्टा संकर्षणं प्रभुम् ॥ ३१ ॥ यत्पादमूलमुपसृत्य नरेंद्र पूर्वे शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ॥ सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ० चित्रकेतोर्ज्ञानोपदेशो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

परमेश्वरकी प्रसन्नताके विना अतिदुर्गम है, यह विचारकर परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये अंगिराजीके कह चुकनेपर देवर्षि नारदजी चित्रकेतुके प्रति मंत्रविद्याका उपदेश करनेके लिये बोले कि, हे राजन्! जो मंत्र उपनिषद् अर्थात् जिससे परमश्रेष्ठ (उपनिषद्) की प्राप्ति होती है, उसको तुम सावधान होकर धारण करो। इसके धारण करनेसे निश्चय ही सात (७) रात्रिके मध्यमें संकर्षण प्रभुका तुम दर्शन पाओगे॥ ३१॥ हे नरेंद्र ! शर्वादि पूर्वतन देवगण जिनके चरणकमलके मूलमें शरणागत हो द्वैतभ्रम त्याग सद्यः जिनके समान और अधिक नहीं है उस महिमाको प्राप्त हुए हैं इसलिये तुम भी शीघ्र ही उसको प्राप्त होगे, परन्तु जिस समय इतनी बातको समझ लोगे ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पुत्रशोकातुरचित्रकेतोरंगिरोज्ञानवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

१ भजन—सबमें केवल प्रेम प्रधान ॥ प्रेम करत प्रीतमसों निशिदिन प्रेमी चतुर समान ॥ क्यों नर करत परिश्रम अधिकाँहि बहु व्रत तप कर दान ॥ प्रीति करो श्रीव्रजनन्दनसों यही परमप्रिय ज्ञान ॥ कह रघुवीर मिटै जब आपा तब हैं मिले भगवान ॥ १ ॥

दोहा–चित्रकेतु सुत वचन सुन, भये मग्न सुख मान। नारद पुनि भाषन लगे, शेषनागको ज्ञान॥ १॥ देवर्षि नारदजीने चित्रकेतुके पुत्रके मुखसे ही पिता पुत्रादिका सम्बन्ध मिथ्या कहलानेके लिये योगबलसे उस मृतक बालकके जीवात्माको उसके जातिवालोंको दिखाया॥ १॥ उसके पीछे फिर उस जीवात्माको पुकारकर नारदजी बोले कि, हे जीवात्मा ! तुम्हारा मंगल हो, अपने माता पिताको देखो । तुम्हारे यह सुहृद् बंधु तुम्हारे शोकमें अत्यन्त ही संतापित हो रहे हैं ॥ २ ॥ तुम अपने देहमें फिर प्रवेश करो । अकालमृत्युसे मरे हो, अब भी तुम्हारी परमायु शेष है, तुमको तुम्हारे पिता राज्य भोग करने देंगे । उठो । और बन्धुबान्धवोंके साथ पिताका दिया धन भोगो और राजसिंहासनपर बैठो ॥ ३ ॥ देवर्षि नारदजीके यह वचन सुनकर मृतक राज कुमारका जीव आकाशमें स्थित हो प्रेतशरीरमें रहकर उत्तर देता हुआ, कि किस जन्ममें हमारे

श्रीशुक उवाच॥ अथ देवऋषी राजन्संपरेतं नृपात्मजम्॥ दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥१॥ नारद उवाच॥ जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ॥ सुहृदो बांधवास्तप्ताञ्छुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥ कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ॥ भुंक्ष्व भोगान्पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥३॥ जीव उवाच॥ कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन्॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु॥४॥बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ॥ सर्व एव हि सर्वेषां भवंति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥ यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः ॥ पर्यटंति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु॥ ६ ॥ नित्यस्यार्थस्य संबंधो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ॥ यावद्यस्यहि संबंधो ममत्वं तावदेव हि ॥ ७॥

माता पिता हुए थे ? हम कर्मोंके द्वारा देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य इन योनियोंमें बार बार भ्रमण करते रहते हैं ॥ ४ ॥ मेरे मर जानेसे पुत्र कहकर यदि इन लोगोंको शोक हुआ हो तो यह मुझको शत्रु समझकर हर्ष क्यों नहीं करते ? क्योंकि, सम्बन्ध सदा एक प्रकारका नहीं है । सब ही पुरुष बारीबारीसे सबके बन्धु जाति (सपिंड) शत्रु (घातक) मध्यस्थ (न शत्रु न मित्र) मित्र (रक्षक) विद्वेषी (द्रव्यादिके लिये द्वेष करनेवाले अर्थात् ईर्षा करनेवाले, और उदासीन (तद्व्यतिरिक्त) हो सकते हैं ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मोल देने और बेचनेके योग्य सुवर्णादि वस्तु व्यवहार करनेवालोंमें घूमती हैं इसी प्रकार जीव अनेक योनियोंमें घूमता हुआ फिरा करता है ॥ ६ ॥ जन्मांतरका सम्बन्ध

सदा नहीं रहता, फ़िर भला यह तो अधिक बात है, एक जन्ममें ही उसका अनित्यत्त्व जान पड़ता है. देखो जीवित पश्वादिके सम्बन्धोंमें सदा नहीं रहता;विक्रयादिसे निवृत्ति पाया करता है और जबतक जिससे सम्बन्ध रहता है तबतक ही उसकी ममता रहती है॥७॥इस प्रकारसे जीव पित्रादि सम्बन्ध प्राप्त होनेपर भी आप नित्य ही रहता है,शरीरके जन्मादि द्वारा जीवके जन्मादि नहीं होते,इस कारण जीव वास्तवमें निरहंकृत अर्थात् "मैं इसका पुत्र हूं"इस प्रकारके अभिमानसे शून्य है,उसका पित्रादि सम्बन्धियोंमें अपने कर्मके वश हो जबतक सम्बन्ध बना रहाता है तबतक ही उसमें पित्रादिका अधिकार है ॥८॥ नित्य अविनाशी सूक्ष्म प्रभु अपनी मायाके गुणसे विश्वरूप आत्माकी सृष्टि किया करता है,इसलिये जन्मादि युक्त देहादिका आश्रय है. इसका कारण यह है कि, जीव स्वयं प्रकाशमान है,इसलिये वह जन्मादि शून्य है,

एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ॥ यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत्॥८॥एष नित्योऽव्ययःसूक्ष्म
एष सर्वाश्रयः स्वदृक् ॥ आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥९॥न ह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि
वा ॥ एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोषयोः ॥ १० ॥ नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ॥ उदासीन
वदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ ११ ॥

5/9

सूक्ष्मत्व प्रयुक्त अव्यय,अपक्षय रहित और नित्य है ॥९॥ और इस जीवको प्यारा कुप्यारा कोई भी नहीं है, अर्थात् अपना भी कोई नहीं और पराया भी कोई नहीं है,वह एक अर्थात् सुहृदादिके संगसे रहित है,गुण दोषकारी जो सब मित्रादि हैं यह जीव केवल उन लोगोंकी विचित्र बुद्धिका साक्षी मात्र है इसलिये हमारे सुहृद् न होकर संताप करें और सुहृद् बंधुओंके मनको दुःख देना यह बात असंभव है ॥ १० ॥ और ,राज्यादि भोगकर" यह युक्ति भी अयुक्ति है क्योंकि, गुण(सुख) दोष (दुःख)और क्रियाफल (राज्यादि) इन सबको जीव ग्रहण नहीं करता, वह सदा उदासीनके समान है । इस लिये जीव कारण और कार्यका साक्षीमात्र होकर इसका भोगनेवाला नहीं है, क्योंकि, यही ईश्वर अर्थात् देहादिकी परवशतासे रहित है, इसलिये मेरे और तुम्हारे सबके इसी प्रकार होनेसे किसीके साथ किसीका संबंध नहीं है। फिर इसमें

शोक मोह कैसा ? ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि; हे राजन् ! सबके सामने इस प्रकार कहकर वह राजकुमारका जीव वहांसे चलागया। उसकी जातिवाले जो शोकसे विलाप कर रहे थे, इस बातको सुनकर उन सबने अत्यन्त विस्मय किया, परन्तु उसके पीछे बहुत शीघ्र सबने प्रेमजंजीर तोड़कर समस्त शोक मोह छोड़ दिया ॥ १२ ॥ अनन्तर उन जातिसम्बंधियोंने मृतक देहको यथाविधि उठाकर अर्थात् उसका संस्कार करके और यथोचित उसके क्रिया कर्मोंका निर्वाह कर त्यागनेके अयोग्य स्नेहको जो शोक, मोह, भय और आर्त्तिका कारण था, एक बारही त्याग कर दिया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! कृतद्युति रानीकी जिन सपत्नियोंने विष देकर इस राजकुमारका प्राण विनाश किया था, लज्जित और बालक

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीर्य गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ॥ विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वात्मस्नेहशृंखलाम् ॥ १२ ॥
निर्हृत्य ज्ञातयो देहं तथा कृत्वोचिताः क्रियाः ॥ तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥ १३ ॥ बालघ्न्यो व्रीडि
तास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ॥ बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ॥ यमुनायां महाराज स्मरंत्यो द्विजभाषितम् ॥ १४ ॥
स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ गृहांधकूपान्निष्क्रांतः सरःपंकादिव द्विपः ॥ १५ ॥

की हत्या करनेसे दीप्तिरहित होकर और "पुत्रादि केवल दुःखके कारण हैं" महर्षि अंगिराजीके इन वचनोंको स्मरण करके पुत्रकामना छोडकर, निर्मत्सर हो यमुनाके तीरपर चली गईं और वहां पर बैठकर ब्राह्मणोंने जिस प्रकारसे विधि बताई वैसे ही वे सब रानियां बालहत्या व्रतका अनुष्ठान करने लगीं कि, जिससे यह पाप छूटे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! राजा चित्रकेतु भी ब्राह्मणोंके वचन सुन कर और इस प्रकारसे प्रबोध पाय जिस प्रकार हाथी तलैयाके दलदलसे निकल जाता है, वैसे ही गृहरूपी अंधकूपसे निकल आया ॥ १५ ॥

---

१ राजा चित्रकेतुकी यह रानियां पहले जन्ममें गिजाई होकर एक उपलेके नीचे बैठीं थीं और चित्रकेतुका पुत्र प्रथम जन्ममें हाथी था, दैवयोगसे उसका पैर पडनेसे यह सबकी सब मर गईं। इस जन्ममें उन्हीं सब गिजाइयोंने रानी होकर इस बालकको विष देकर मार डाला, इसलिये इन सबका बदला होगया. और काइ इस कथाको इसप्रकारसे कहते हैं कि, पूर्वजन्ममें भी राजा चित्रकेतु एक राजा था, वह दिग्विजय करता हुआ एक राजाके नगरमें आया, जब इन दोनोंमें युद्ध हुआ तो एक अपनी सेनाको छोड बनमें भाग गया और अत्यन्त ग्रीष्म पानेके कारण तृषाका मारा एक नदीमें स्नान करता हुआ. स्नान करके यह बाहर किनारेपर आया, तब उसने अपनी धोतीको निचोडा. उस धोतीका निचोडाहुआ पानी एक बिल (भांटे) में गया, कि जिसमें करोड चींटियाँ रहती थीं, उस पानीके पडनेसे वह सबकी सब मरगई इसकारण दूसरे जन्ममें यह पराजित हुआ राजा चित्रकेतुको दुःख देनेके लिये उसका पुत्र हुआ और इन सब रानियोंने अपना वैर साधनेके लिये इसको विषभक्षण करा दिया ॥

फिर यमुनाके निकट जाय वहाँ स्नान करके यथाशास्त्र तर्पणादि समाप्त कर मौनी और जितेन्द्रिय हो उन ब्रह्मपुत्र नारद व अंगिरा दोनोंकी वंदना करने लगा ॥ १६ ॥ भक्त जितेन्द्रिय राजा चित्रकेतु जब इस प्रकारसे शरणमें आया तब प्रसन्न हो अंगिराके सहित नारदजीने इस स्थानमें आकर उसको विद्याका उपदेश किया ॥ १७ ॥ वह विद्या यह है, हे प्रभो ! तुमको हम नमस्कार करते हैं और भगवान् वासुदेवको मनसे नमस्कार करते हैं और उन प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व संकर्षणके प्रति वारंवार प्रणाम करते हैं॥ १८ ॥जो भगवान् विज्ञानमात्र हैं, केवल आनंद ही जिनकी मूर्ति है, जो आत्माराम और शान्त और द्वैतदृष्टिसे रहित हैं, उन आपको हम नमस्कार करते हैं ॥१९॥ हे प्रभो ! तुम आत्मानंदके

कालिन्द्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ॥ मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववंदत ॥ १६ ॥ अथ तस्मै प्रपन्नाय
भक्ताय प्रयतात्मने ॥ भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥ १७॥ नारद उवाच॥ ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय
धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ १८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय परमानंदमूर्तये ॥ आत्मारामाय
शांताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ १९ ॥ आत्मानंदानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ॥ हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये॥
॥ २० ॥ वचस्युपरते प्राप्य य एको मनसा सह ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥ २१ ॥ यस्मिन्निदं
यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ॥ मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ २२ ॥ यं न स्पृशंति न विदुर्मनोबुद्धीं
द्रियासवः ॥ अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥

अनुभवसे मायाके निमित्त (कारण) रागद्वेषादिको भगा देते हो और स्वयं विषय इन्द्रियोंके ईश्वर हो अति बडे और अनंत मूर्ति आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २० ॥ अहो ! मनके सहित, वाणी, अथवा समस्त इन्द्रियें जिसको प्राप्त नहीं कर सकतीं, जो इकले ही प्रकाशित होते हैं; जिनका नाम रूप कुछ भी नहीं है और जो चिन्मात्रस्वरूप व कार्य और कारणके भी कारण हैं, वह संकर्षण हमारी रक्षा करें ॥२१॥ हे प्रभो ! जिनमें यह कार्यकारणरूप जगत् स्थिर रहता, लयको प्राप्त होता और जिनसे यह जगत् उत्पन्न होता है और मट्टीके समस्त पदार्थोंमें मट्टीके समान चराचर पदार्थोंमें जो दिखाई देते हैं, तुम ही वह ब्रह्म हो इसलिये हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ और आकाशके समान

बाहर भीतर फैले रहनेपर भी जिनको मन, बुद्धि, इन्द्रियें, प्राण इत्यादि क्रियाशक्तिसे स्पर्श करने और ज्ञानशक्तिसे जान नहीं सकते वही ब्रह्म हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ देह, इन्द्रियें, प्राण, मन, बुद्धि यह जिनके अंशसे बिंधे हुए कर्ममें जागते और स्वप्नमें विचरण करते हैं. सोते व मूर्छादिके समयमें चैतन्यका अंश रहने पर विना गर्म हुआ लोहा जिस प्रकार नहीं जला सकता, वैसे ही अपने अपने कार्य करनेको समर्थ नहीं होते, इसलिये जैसे लोहा अग्निकी शक्तिसे जलानेवाला होजाता है, परन्तु अग्निको जलानेकी शक्ति उसमें नहीं होती वैसे ही देहादि ब्रह्मगत ज्ञानकी क्रियाशक्तिसे यद्यपि क्रियाशान् और ज्ञानवान् होता है तो भी उसको(ईश्वरको) स्पर्श नहीं कर सकता और ज्ञान भी नहीं हो सकता. यद्यपि यह बात सत्य है कि,जीव द्रष्टा रहता है,तो जीवको भी जाननेकी संभावना नहीं.क्योंकि,जाग्रदादि अवस्थामें इस

देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरंति कर्मसु ॥ नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद्द्रष्टृपदशमेति॥२४॥
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालित चरणारविंदयुगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते॥२५॥ श्रीशुक उवाच ॥ भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ॥ ययावं गिरसा साकं धाम स्वायंभुवं प्रभोः ॥ २६ ॥ चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ॥ धारयामास सप्ताह मब्भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥ ततश्च सप्तरात्रांते विद्यया धार्यमाणया ॥ विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप ॥२८॥

जीवके निमित्त ही वह भगवान् "द्रष्टा" इस नामको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ अहो ! महापुरुष महानुभाव महाविभूतिपति उन भगवान्को हम नमस्कार करते हैं. हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्दयुगल प्रधान प्रधान भक्तसमूहके करकमलमुकुलद्वारा सदा उपलालित होते हैं. हे श्रेष्ठ परमेष्ठिन् ! हे सर्वेश्वर ! तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कौरवनाथ ! शरणागत भक्त चित्रकेतु राजाको इस प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश करके भगवान् नारदजी महर्षि अंगिराजीके साथ ब्रह्मधामको चले गये ॥ २६ ॥ देवर्षि नारदजी तो इस प्रकार कहकर चले गये, परंतु राजा चित्रकेतु वैसे ही सावधान होकर एक सप्ताहभर केवल जलपान कर उस विद्याको धारण करता हुआ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सात रात्रिके पीछे इस धारण की हुई विद्याके प्रभावसे चित्रकेतुको एक बड़ा भारी अवान्तर फल प्राप्त हुआ कि, उसने अचल

विद्याधरोंके राज्यको प्राप्त किया, इस राज्यमें किसी प्रकारका कोई कंटक नहीं था॥ २८ ॥ उसके पीछे कुछ दिन बीतनेपर इस विद्यासे ही उस राजाका मन दीप्तियुक्त हुआ; जिससे कि वह मनके द्वारा गतिशील होकर देवदेव भगवान् शेषजीके चरणसमीपमें पहुँच गया* ॥२९॥ और देखा कि, प्रभु शेषजी सिद्धेश्वरोंसे परिवेष्टित हो रहे हैं, उनका वर्ण मृणालके तुल्य गौर है, नीलाम्बर पहने हुए हैं, यथास्थानमें किरीट, केयूर और कंकणादि गहने सजे हुए अपनी शोभाका विस्तार कर रहे हैं, दूसरे उनका वदन प्रसन्न और लोचन अरुण वर्ण ॥ ३० ॥ ऐसे श्रीशेषजीका दर्शन करते ही राजा चित्रकेतुके समस्त पापोंका नाश होकर उसका अंतःकरण लिर्मल सावधान होगया और प्रेमके मारे आँखोंके कोये अश्रुजलसे परिपूर्ण होगये. गद्गद होकर सब शरीरमें रोमाञ्च होगया, बस राजा चित्रकेतु सब छोड छांड आदिपुरुषके शरण हुए और अतिभक्ति श्रद्धासे उनको प्रणाम किया ॥३१॥ परन्तु वह बहुत देरतक उनकी स्तुति न कर सके. क्योंकि, उत्तमश्लोक भगवान्के पादपद्मरूपी दो आसन प्रेमाश्रुबिंदुसे राजा चित्रकेतु वारंवार पखार रहा था, इस कारण शीघ्र ही प्रेमके वश होनेसे वाष्पसे कंठ रुद्ध होनेके कारण राजामें कुछ कहनेकी शक्ति न रही ॥३२॥ कुछ देर पीछे जब फिर राजाको बोलनेका सामर्थ्य प्राप्त हुआ, तब वह समस्त इन्द्रियोंकी बाहिरी

ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ॥ जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणांतिकम् ॥ २९ ॥ मृणालगौरं शितिवाससं
स्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकंकणम् ॥ प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं तं ददर्श सिद्धेश्वरमंडलैः प्रभुम् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलांतःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ॥ प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमानमदादिपूरुषम् ॥३१॥ स
उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्त प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥
ततःसमाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ॥ नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥३३॥

S21

---

* **शंका**–जब सब राजा जिस लोकको गये हैं, तब उन सब राजाओंकी स्त्री भी उनके साथ उसी लोकको गई हैं, ऐसा हमने सब शास्त्रोंमें सुना है, परन्तु चित्रकेतु तो विद्याधरोंका राजा हुआ तब उसकी स्त्रियें किस लोकको गईं ?

उत्तर–जैसे सबके देहकी छाया देहके संगको नहीं छोडती ऐसे ही पतिव्रता स्त्री अपने पतिके संगको नहीं छोडती, जहां पति जाता है उसी स्थानको वह भी जाती है, इस विचारसे चित्रकेतु विद्याधरोंका राजा हुआ तो वह विद्याधरोंकी रानी हुई. ग्रन्थ बहुत बडा हो जायगा इसलिये व्यासजीने रानियोंकी कथा वर्णन नहीं करी, विचार लिया कि, पंडित लोग आप ही जान जायँगे ॥

कृति रोक बुद्धिसे मनको सावधान करके और जिनकी मूर्त्ति श्रीनारदपंचरात्रमें अथवा भगवद्भक्तोंके शास्त्रका वर्णन करनेवाली जिनकी मूर्ति है, उन जगद्गुरु भगवान्के प्रति राजा चित्रकेतु निम्नलिखित प्रकारसे निवेदन करने लगा ॥३३॥ चित्रकेतु बोला कि, हे अजित ! हे भगवन् ! यद्यपि आप अजित हैं और किसीके जीतनेमें नहीं आते;तथापि समबुद्धि जितात्मा साधुगणोंने आपको जीत करके अपने अधीन किया है, क्योंकि अतिशय दयामय हैं, परन्तु यद्यपि वह सब साधु निष्काम हैं, तो वह लोग भी आपके निकट पराजित हुए हैं, आप महात्मा पुरुषोंको आत्मदान दिया करते हैं ॥३४॥ हे भगवन् ! भक्तके सिवाय किसीसे भी आपके पराजित होनेकी सम्भावना नहीं,क्योंकि, जगत्की सृष्टि,स्थिति, प्रलय,प्रवेश नियमादि जो कुछ दिखाई देते हैं,यह सब आपके विभव अर्थात् महिमामात्र हैं. हे प्रभो ! आप विश्व रचनेवाले

चित्रकेतुरुवाच॥ अजित जितःसममतिभिः साधुभिर्भवाञ्जितात्मभिभवता॥विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य
आत्मदोऽतिकरुणः ॥३४॥तव विभवः खलु भगवञ्जगदुदयस्थितिलयादीनि ॥ विश्वसृजस्तेंऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धते
पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥ परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यंतांतरवर्ती त्रयविधुरः ॥ आदावंतेऽपि च सत्त्वानां यद् ध्रुवं तदेवां
तरालेऽपि ॥ ३६ ॥ क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैरंडकोशः ॥ यत्र पतत्यणुकल्पः सहांडकोटिको
टिभिस्तदनंतः ॥ ३७ ॥

हैं,ब्रह्मादि देवता आपके ईश्वर नहीं हैं, किन्तु आपके अंश जो पुरुष हैं, यह उनके भी अंश हैं. हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो यह सब पुरुष "हम अलग अलग ईश्वर हैं" कहकर वृथा गर्व करते हैं ॥३५॥ हे राजन् ! सूक्ष्म मूलकारण जो परमाणु और अंतिम कार्य जो परम महत् हैं, इन दोनोंके ही आदि अन्त और मध्यमें आप ही वर्तमान रहते हैं, इस कारण आपका आदि, अन्त और मध्य नहीं है इसलिये आप ध्रुव हैं, जो समस्त कार्य सत्रूपके प्रतीत होते हैं और सबके ही आदि अन्त मध्यमें सुवर्णादिकी नाईं जो रहता है वही ध्रुव है, आप इन समस्तके सृष्टि कर्ता हैं, इस कारण यह समस्त किसी प्रकारसे भी ध्रुव नहीं हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! ध्रुव होनेसे आपके जिस प्रकार कालकृत परिच्छेद नहीं वैसे ही देशकृत परिच्छेद भी नहीं है, यह ब्रह्माण्डकोष यथाक्रम होकर प्रथम इसे ही दशगुण आधिक क्षिति इत्यादि सप्त पदार्थों करके ढक जानेसे

वास्तवमें सत्य ही सत्य अतिबडा हो रहा है, परंतु ऐसे कोटि २ ब्रह्माण्ड भी आपके निकट परमाणुतुल्य होकर घूमा करते हैं, इस कारण आप
अनन्त हैं ॥३७॥ हे भगवन् ! जिन लोगोंकी विषयमें ही तृष्णा लगी हुई है, वह लोग मनुष्योंके आकारवाले पशु हैं. क्योंकि वह लोग अपनी
तृष्णाको पूर्ण करनेके लिये आपकी विभूति जो इन्द्रादि देवता हैं, इनकी पूजा किया करते हैं, परंतु वह लोग परमपुरुष परमेश्वर आपकी
पूजा नहीं करते । परन्तु हे ईश्वर ! यह सब पुरुष अपनी अपनी कामना पूर्ण करनेके लिये इन देवताओंकी पूजा करके भी अपनी अपनी
अभिलषित वस्तुको बहुत समय तक भोग नहीं कर सकते हैं, जिस प्रकार राजकुलके नाश होजानेपर उसके सेवकोंकी भलाईका नाश
होजाता है वैसे ही इन लोगोंके पूजनीय देवताओंका नाश होनेपर इनकी कामनायें भी नष्ट होजाती हैं॥३८॥हे परमेश्वर ! जिनके चित्त काम
वासनामें आसक्त हैं वह लोग यदि अपनी २ कामनाकी रचना करें अर्थात उसको पूर्ण करनेका संकल्प करके यदि आपकी ही सेवा करनेमें

विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ॥ तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यंति यथा राजकुलम् ॥ ३८ ॥
कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहंति यथा करंभबीजानि॥ ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वंद्वजालानि॥३९॥
जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ॥ निष्किंचना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥४०॥
विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र॥विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः॥४१॥

रत हो जायँ तो भुनेहुए बीजके समान फिर वह कामना उत्पन्न नहीं हो सकती, इस कारण फिर देहान्तरोत्पत्तिका प्रभाव हो सकता है. क्योंकि,
जीवके जो गुणगण हैं, उनसे ही सुख दुःखादि द्वन्द्वोंके समूह उत्पन्न होते हैं, आप निर्गुण हैं, आपकी पूजा कामनाके सहित करनेसे धीरे २ निर्गुण
हो सकता है ॥ ३९ ॥ इस कारण हे प्रभो ! फलकी कामना करनेपर भी आपकी आराधना करनेसे जब कि मोक्षका हेतु हो जाता है, तब फिर
भागवतधर्मके माहात्म्यकी महिमाका तो वर्णन ही क्या करैं ? केवल आपकी स्तुति करते हैं. हे प्रभो ! जब कि आपने अनवद्य भागवतधर्म
कहा है तब सर्वश्रेष्ठमें आप वर्तमान हैं।हे भगवन्!कौन पुरुष इस धर्मका माहात्म्य कह सकेगा ? क्योंकि सनत्कुमारादि अकिञ्चन और आत्माराम
समस्त मुनि अपवर्गको प्राप्त करनेके लिये इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥४०॥हे प्रभो ! और काम्य धर्ममें जिस प्रकार"तुम हम, तुम्हारा

हमारा" इस भाँतिकी विषम बुद्धि है, भागवतधर्ममें ऐसी विषममति नहीं है. हे भगवन् । यद्यपि और सब काम्य धर्म भी वेदोक्त हैं, तो भी विषम बुद्धिसे शत्रु मारणादि कामनामें जो विधान है,राग,द्वेषकी मूलकता होनेसे वह अविशुद्ध है और उसका फल नाशवान् है,इसलिये इन सर्व धर्मोंका क्षय होजाता है और हिंसादिकी अधिकता होनेसे अधर्मका मूलक है ॥४१॥ इसलिये यह सब धर्म आपके और दूसरेके द्रोह करनेवाले हैं, इसलिये इन धर्मोंसे आपका व दूसरेका क्या मंगल ? और किस कार्यमें आ सकते हैं, किसी कार्यमें भी नहीं आते। बरन् काय क्लेशसे अपने द्रोहके हेतु आपको पीडा और परद्रोहसे अधर्म और आपको क्लेश यह सब ही होते हैं. गीतामें कहा है कि, दूसरेंको पीडा देना ही अधर्म है, "कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवांतःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्" ॥ ४२ ॥ इसलिये यद्यपि रागान्ध पुरुषोंको कुछ वेदमार्गमें प्रवृत्त करानेके लिये आपने ही काम्य धर्म कहा है, तो भी वह तत्त्वदृष्टिसे नहीं कहा गया है, इसलिये उस धर्मसे

कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ॥ स्वद्रोहात्तव कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः ॥ ४२ ॥ न
व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ॥ स्थिरचरसत्त्वकदंबेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥ ४३ ॥
नहि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः॥ यन्नाम सकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात्॥४४॥
अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः॥ सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥

अपना पराया धर्म हुआ करता है, परंतु भागवतधर्ममें किसी प्रकारसे भी द्रोहकी सम्भावना नहीं. क्योंकि आपकी दृष्टिका कभी व्यभिचार नहीं होता अर्थात् जो कभी परमार्थको त्याग नहीं करती, उसी दृष्टिके द्वारा यह धर्म रचा गया है,इस कारण समस्त भगवद्भक्त मानव, स्थावर जंगम प्राणीसमूहमें सम बुद्धि रखते हैं. वही लोग इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥४३॥ हे भगवन् ! आप ऐसे भागवतधर्मके प्रचार करनेवाले हैं फिर आपके दर्शनसे मनुष्योंके जो अखिल पाप नाशको प्राप्त होंगे इसमें विचित्रता ही क्या है? स्वामिन् ! आपका नाम केवल एकबारमात्र श्रवण करनेसे महानीचको भी संसारके बन्धनसे छुटकारा मिल जाता है ॥४४॥इस कारण केवल आपका दर्शन करनेसे ही हम लोगोंके अन्तःकरणका मल दूर होगया.हे भगवन् ! देवर्षि नारद आपके ही पुरुष हैं उन्होंने जो कुछ कहा है.वह क्या कभी अन्यथा होसकता

है ? बरन् देवर्षिके ही उपदेशसे हमने आपके दर्शनका लाभ किया ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! आप जगदात्मा, सर्वान्तर्यामी हैं, इस कारण कोई पुरुष कोई भी आचरण करे वह सब आपको विदित होजाता है, जैसे पटबीजनेके द्वारा सूर्यके निकट कोई पदार्थ प्रकाशनीय नहीं हो सकता, पटबीजनेका तो क्या सामर्थ्य है जो प्रकाश करै ? वैसे ही हे परमगुरु ! आपके निकट हम क्या प्रकाश कर सकते हैं, हम आपके निकट कुछ भी प्रकाशनीय नहीं हैं ॥ ४६ ॥ अहो ! हम उन भगवान् परमहंसको नमस्कार करते हैं, जो सब जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयके ईश्वर हैं; कुत्सित योगीगण भेददृष्टि होनेके कारण उनका निज तत्त्व नहीं जान सकते ॥ ४७ ॥ अहो ! जिनके श्वास लेनेसे विश्व रचनेवाले श्वास लेते हैं, जिनको दर्शनशील देखनेसे ज्ञानेंद्रियें स्वारूढ होकर देखती हैं. जिनके मस्तक पर यह बडा भारी भूमण्डल एक सरसोंके दानेके समान

विदितमनंत समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥ विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥
नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ॥ दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥
यं वै श्वसंतमनु विश्वसृजः श्वसंति यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकंति ॥ भूमंडलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो
भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तुतो भगवानेवमनंतस्तमभाषत ॥ विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्र
केतुं कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यन्नारदांगिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥ संसिद्धोऽसि तया राजन्वि
द्यया दर्शनाच्च मे ॥ ५० ॥ अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ॥ शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥ ५१ ॥

धरा हुआ है उन सहस्र शिरवाले भगवान् शेष अनन्तजीको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुभूषण परीक्षित् ! इस प्रकारकी स्तुति करनेसे भगवान् अनन्तजी अत्यन्त प्रसन्न होकर विद्याधरपति राजा चित्रकेतुपर प्रसन्न हुए और उसको सम्बोधित करके इस वक्ष्यमाण वाक्यका प्रयोग किया ॥ ४९ ॥ अनंत भगवान् बोले कि, हे राजन् ! देवर्षि नारद और अंगिराजीने तुमको हमारे विषयमें जो कुछ भी उपदेश किया था, उस उपदेश और उसी विद्याके प्रभावसे तुमको हमारे दर्शन हुए और हमारे दर्शन पाकर तुम सर्वप्रकारसे सिद्ध हुए ॥ ५० ॥ हे वत्स! कारण कि, हम ही भूतभावन अर्थात् सब जीवोंके प्रकाशक और कारण हैं, इससिये हम ही सब जीवरूप

और समस्त जीवके आत्मा अर्थात् भोक्ता हैं, इस कारण हमारे सिवाय भोक्ता और भोगात्मक विश्व नहीं है. हे राजन् ! कोई पुरुष "शब्दब्रह्म प्रकाशक और परब्रह्म कारण" जो कहा करते हैं यह भी सत्य है. परन्तु यह दो अर्थात् शब्दब्रह्म और परब्रह्म हमारे ही पुराने शरीर हैं ॥ ५१ ॥ इस कारण तुम लोकमें अर्थात् भोग्य प्रपञ्चोंमें आत्माको भोगत्वरूपमें वितत अर्थात् अनुगत और आत्मामें भोग्यत्वरूपसे व्याप्त देखकरके इन दोनोंके ही कारणात्मा जो हम हैं, हममें ही व्याप्त और हमसे ही यह दोनों कल्पित हैं ऐसा स्मरण करो ॥ ५२ ॥ जिस प्रकारसे सोया हुआ पुरुष गिरि वनादिरूप वृक्ष भिन्न भिन्न देहव्यापी होने पर भी आत्मामें ही सब देख पाता है, अर्थात् स्वप्नमें जिस प्रकार सोया हुआ पुरुष स्वप्न देखता है, और जैसे स्वप्नकी अवस्थामें ही उठकर अपनेको एक देशमें अर्थात् शयन किया हुआ समझ जाग्रत् अवस्थाका अनुभव करता है॥५३॥इसी प्रकारसे जीवोपाधि बुद्धिकी अवस्था जो समस्त जागरणादि हैं वह सृष्टि आत्माकी केवल

लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि संततम् ॥ उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥५२॥ यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि॥ आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥५३॥ एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः॥ मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत्॥५४॥येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा॥सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम्॥५५॥ उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः॥अन्वेति व्यतिरिच्येत यज्ज्ञानं ब्रह्म तत्परम् ॥ ५६ ॥

मायामात्र है. हे राजन् ! इस प्रकार विशेषरूपसे जानकर इन सब अवस्थाके देखनेवाले और इन सब सहित जो आत्मा है, इसका ही स्मरण करना कर्तव्य है॥५४॥हे राजन् ! तुम ऐसा मत जानना कि, स्वप्नावस्थामें दृश्य न रहनेपर द्रष्टा भी नहीं है, भलीभाँति सोया हुआ पुरुष अर्थात जीव जिससे अपनी निद्रा और इंद्रियोंके सुखको जान सकता है, वही वस्तु अर्थात् आत्मा उस समय भी वर्तमान रहता है, उस कालमें निद्रा और सुखका ज्ञान नहीं होता ऐसा भी हम नहीं कह सकते क्योंकि मैं सुखसे सोया था, यहांतक कि मुझे कुछ ज्ञान न रहा, इस प्रकारकी स्मृति सबको ही अनुभवसिद्ध है. इसकारण स्वप्नादि अवस्थामें भी जो वर्तमान रहता है, वही आत्मा ब्रह्म है और वही ब्रह्म जो है सोई हम हैं, ऐसा तुम जानो ॥५५॥यदि कहो कि, निद्रावस्थामें साक्षी जो वस्तु देखेगा, वह साक्षी उसका जाग्रत् अवस्थामें किस प्रकारसे स्मरण करेगा; एकके देखे हुएका

कभी दूसरा स्मरण कर सकता है ? (उत्तर) निद्रा और जागरण इन दोनों अवस्थाओंका खोज करनेसे निद्रा और जागरणके प्रकाशत्वमें जो कुछ अन्वित हो और एक दूसरेका अपायसे भी अपाय न होनेपर जो कुछ इन दोनोंसे अलग है, उसी ज्ञानके प्रभावसे ऐसा स्मरण हुआ करता है, वह ज्ञान नहीं परब्रह्म है इस कारण बाल्यावस्थामें दृष्टविषय जिस प्रकार यौवनमें दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही जागनेमें दूसरी अवस्थाके होने पर भी निद्रा और आनन्दका स्मरण करसकता है यह जो कुछ भी हो, फल यह है कि, ब्रह्मको ही आत्मा जानना ॥५६॥ हे राजन् ! जो हमारा यह स्वरूप अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ, यह भूलकर उस आत्माके निकटसे अलग होजाय तब तो फिर पुरुषको अपार ससारमें घूमना फिरना होता है उस संसारका स्वरूप यह है कि, इस देहसे दूसरी देह, अर्थात् जन्मान्तर, पुनर्जन्म और मृतकसे फिर मृतक अर्थात् मरणके पीछे फिर मरण होना ॥ ५७ ॥

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ॥ ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेमृतिः ॥ ५७ ॥ लब्ध्वेह मानुषीं योनिं
ज्ञानविज्ञानसंभवाम् ॥ आत्मानं यो न बुध्येत न कचिच्छममाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलवि
पर्ययम् ॥ अभयं चाप्यनीहायां संकल्पाद्विरमेत्कविः ॥ ५९ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दंपती क्रियाः ॥ ततो
ऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥ एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ॥ आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां
स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥ ६१ ॥

हे राजन् ! मनुष्यजन्ममें ही शास्त्रज्ञान और परोक्षज्ञान प्राप्त करनेकी बड़ी संभावना है, इस मनुष्यजन्मको प्राप्त करके जो पुरुष परमात्माको न जानकर उसके विषयमें ज्ञान नहीं करता उसका कल्याण किसी समय भी नहीं होता ॥५८॥ इस कारण प्रवृत्तिमार्गमें जैसे क्लेश और तिसके फल भी उलटे हो जाते हैं और निवृत्तिमार्गमें जिस प्रकारका फल जो कि अनिर्वचनीय फल (मोक्ष) प्राप्त होसकता है, उसको याद करके फलके संकल्पसे विमुख होना उचित है॥५९॥ हे महाराज ! सुख अथवा दुःखके छुड़ानेके लिये संकल्प करके मनुष्यगण स्त्री पुरुष दोनों अनेक प्रकारके क्रियाकलाप किया करते हैं, परन्तु उनके क्रियाकलाप करनेसे न तो दुःखसे छुटकारा ही होता और न कुछ सुखकी प्राप्ति ही होती है॥६०॥ जिन मनुष्योंको अपने ज्ञानका अभिमान है कि, "हम उद्यम करनेमें बडे प्रवीण हैं" वह इस उलटी बातको जानकर तीनों स्थानोंसे आत्माकी

विलक्षण सूक्ष्म गति है ऐसा जानते हैं ॥६१॥ अपने तेजसे देख सुन शब्दादि तन्मात्रसे छूटकर ज्ञान विज्ञानसे संतुष्ट होकर पुरुष मेरा भक्त होता है॥६२॥हे राजन् ! परमात्मा और जीवका जो केवल एक रूपसे दर्शन करता है, उसको ही योगमें निपुण हुए मनुष्यगण सर्वप्रकारसे स्वार्थ कहकर जानते हैं, इस कारण इससे अधिक और परमपुरुषार्थ नहीं है ॥६३॥ तुम यदि सावधान होकर हमारे यह वचन श्रद्धासहित श्रवण करके धारण करोगे तो बहुत ही शीघ्र ज्ञानयुक्त विज्ञानी होकर सिद्ध हो जाओगे ॥६४॥ इतनी कथा वर्णन कर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् हरि संकर्षण इस प्रकारसे चित्रकेतुको समझा बुझाकर फिर उसके सामने ही अन्तर्धान होगये॥६५॥

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ॥ ज्ञानविज्ञानसंतुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥ एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः ॥ स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥ ६३ ॥ त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ॥ पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चांतर्दधे हरिः ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चित्रकेतोस्तत्त्वोपदेशो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ छ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतश्चांतर्हितोऽनंतस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ॥ विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥१॥ स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेन्द्रियः ॥ स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चित्रकेतुकृतसंकर्षणस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६॥ दोहा-चित्रकेतु आकाशमें, घूमत सिद्धी पाय । हँसी करी जब शम्भुकी, गिरिजा दियो गिराय॥ १॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भगवान् अनन्तजी जिस दिशामें अन्तर्धान हुए विद्याधर चित्रकेतुने उसी ओरको प्रणाम किया और फिर आकाशचारी होकर वह इच्छानुसार विहार करने लगा ॥१॥ उसका बल नहीं घटा था, न उसकी इन्द्रियें क्षीण हुई थीं इस कारण लक्ष लक्ष वर्ष तक वह सरलतासे घूमता रहा और वह महायोगी था, इस कारण

---

१ भजन-श्यामसुंदरकी अद्भुत शोभा, बिसरत नाहिं बिसारी है रे॥शीशमुकुट मकराकृति कुण्डल, उर वनमाल सँवारी है रे॥नयन विशाल नासिकाकी छवि, मनकी मोहनहारी है रे॥पीतबसन अरु हँसन दशनकी शोभा परम पियारी है रे ॥ शालिग्राम छिपे क्यों हमसे, यह अचरज मोंहि भारी है रे ॥

मुनि व सिद्ध चारणं लोग उसकी स्तुति करते थे॥ २ ॥ कुलाचल पर्वतकी गुफामें जहाँ कि अनेक संकल्प सिद्ध होजाते हैं, वहांपर यह राजा चित्रकेतु श्रीहरिके गुण गाता हुआ विद्याधरोंकी स्त्रियोंके साथ रमण करने लगा ॥ ३ ॥ एक समय यह राजा चित्रकेतु भगवान् विष्णुजीके दियेहुए दीप्तिमान् विमानमें आरूढ होकर गमन करते २ देखता हुआ कि भगवान् भूतनाथ शिवजी सिद्ध चारण लोगोंसे सेवित होकर ॥४॥ मुनिजनोंकी सभामें भगवती पार्वतीजीको अंक(गोदी)में लिये भुजाओंसे चिपटाये बैठे हुए हैं. चित्रकेतु श्रीमहादेवजीको इस प्रकार बैठें देख क्षण भरतक खड़ा रहा और कुभाग्यके वश हो उनका उपहास करके यह वक्ष्यमाण वचन उनसे बोला. इन वचनोंको भगवती पार्वतीजीने भी

कुलाचलेंद्रद्रोणीषु नानासंकल्पसिद्धिषु ॥ रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन्हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥ एकदा स विमानेन विष्णु
दत्तेन भास्वता ॥ गिरिशं ददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥ आलिंग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि॥उवाच
देव्याः शृण्वंत्या जहासोच्चैस्तदंतिके ॥ ५ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ॥ आस्ते
मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥ जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादी सभापतिः ॥ अंकीकृत्य स्त्रियं चास्ते
गतह्रीः प्राकृतो यथा॥७॥ प्रायशः प्राकृतश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ॥ अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥८॥

S2S

सुना * ॥५॥चित्रकेतु बोला कि, जो समस्त लोकोंके गुरु साक्षात् धर्मके कहनेवाले और शरीरधारियोंमें प्रधान हैं,इनका आचरण देखो ! भरी सभाके बीच अपनी भार्याको गोदीमें चिपटाये हुए बैठे हैं ॥ ६ ॥ और फिर यही जटाधारी तीव्र तप करनेवाले, ब्रह्मवादी और इस सभाके पति हैं । कैसा आश्चर्य है कि,यह एक साधारण मनुष्यके समान एक बार ही लाजविहीन होगये हैं, कि सभाके बीचमें इस प्रकार स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं ॥ ७॥ अहो ! साधारण मनुष्य भी एकान्तमें ही स्त्रीको प्यार व आलिंगन करते हैं, परंतु यह बडा भारी व्रत

---

* शंका–राजा चित्रकेतु अनेक जन्मका ज्ञानी था, और सब देवताओंका पूजन करनेवाला था, नारदजीका चेला भी था, शेषजीकी कृपा चित्रकेतुके ऊपर बहुत थी, सो सर्व सुलक्षणयुक्त होकर राजा चित्रकेतु जगत्के माता पिता शिव पार्वतीको देखकर क्यों हँसा ?

उत्तर–जैसे राजा बलिने यज्ञ करके इन्द्रका राज्य छुडा लिया और आप इन्द्र हो गया तब जिस पुण्यके प्रभावसे इन्द्रासन पाया था वह पुण्य नष्ट नहीं हुआ था थोडा रह गया था इसलिये भगवान्ने वामनरूप धरके इन्द्रको राज्य दिया. वैसा हीं कर्म चित्रकेतुने भी किया, विद्याधरोंके राज्यका पुण्य नष्ट नहीं हुआ था,परन्तु चित्रकेतु मंत्र जपकर विद्याधरोंका राजा हुआ, इसी लिये भगवान्ने अपनी मायाको आज्ञा देकर मायासे चित्रकेतुको मोहित करके महादेवजीसे द्रोह कराके राजा चित्रकेतुको नष्ट किया ॥

धारण करके भी सभामें किस प्रकारसे स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! भगवान् भूतनाथ शिवजीका मन अत्यन्त गंभीर है.वह चित्रकेतुके यह वचन सुनकर कुछेक हँसकर चुप हो रहे. उस सभामें जितने सभ्य लोग बैठे थे, उनमेंसे कोई कुछ न बोला और सब ही महाराज भोलानाथके अनुगामी होकर चुप रहे॥ ९॥ परन्तु चित्रकेतुको ऐश्वर्यकी प्राप्ति होनेसे विजातीय गर्व उत्पन्न होगया था, "और मैंने इन्द्रियोंको जीत लिया है" इस बातका उसको अभिमान भी था,इसलिये भगवान् महादेवजीके प्रभावको न जानकर उसने इस प्रकारके अमंगल वचन वारंवार कहे कि, जिनको भगवती पार्वतीजी न सह सकीं और क्रोध प्रगट करके बोलीं ॥१०॥ पार्वतीजी बोलीं कि, यह पुरुष क्या इस समय लोकोंका शासन करनेवाला है या दण्डधारी प्रभु है? इसको हम अपने समान लोगोंका अत्यन्त ही

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप ॥ तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् ॥ रुषाह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥ १० ॥ पार्वत्युवाच ॥ अयं किमधुना लोके शास्ता दंडधरः प्रभुः ॥ अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥ ११ ॥ न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा न तु नारदाद्याः॥ न वै कुमारः कपिलो मनुश्च ये नो निषेधंत्यतिवर्तिनं हरम्॥ १२ ॥ एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मंगलमंगलं स्वयम् ॥ यः क्षत्रबंधुः परिभूय सूरीन्प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दंड्यः ॥ १३ ॥ नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् ॥ संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥ १४ ॥

विरोधी देखती हैं. यह तो कोई बड़ा दुष्ट और लाजरहित है ॥ ११ ॥ कैसा आश्चर्य है, कमलयोनि ब्रह्माजी धर्मको नहीं जानते हैं, ब्रह्माजीके पुत्र भृगु व नारदादिको धर्मका ज्ञान नहीं,सनत्कुमार और कपिल मुनि भी धर्मके जाननेवाले नहीं.महादेवजी महराज शास्त्रका उल्लंघन करके चलते हैं, और क्या यह समस्त मुनि आपको निवारण नहीं कर सकते, जिस कारण यह दुष्ट खोटे वचन कह रहा है? ॥ १२ ॥ अहो ! जिनके चरण कमल ब्रह्माजीके भी धोने योग्य हैं, जो समस्त मंगलोंके मंगल अर्थात् परमधर्ममूर्ति हैं,यह नीच क्षत्रिय विद्याधर समस्त देवताओंके स्वामी उन भगवान्को कुछ न समझकर शासन करता है. इस कारणसे यह दण्ड देनेके योग्य है ॥ १३ ॥ साधुलोग सदा जिस वैकुण्ठमें भगवान्के

चरणके निकट जानेकी इच्छा करते हैं, यह पुरुष उस वैकुण्ठके योग्य नहींहै. क्योंकि इसको "मैं बड़ा हूँ" इस प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ है, इसी कारणसे इसमें नम्रता भी नहीं है ॥ १४ ॥ इस प्रकार भगवती पार्वतीजी स्वयं चित्रकेतुके दंडको विचार उसे पुकारकर बोलीं कि, हे पुत्र ! तुझको दुर्मति उत्पन्न हुई है,जाओ और पापीयसी आसुरी योनिको प्राप्त होओ,ऐसा होनेसे बडे पुरुषोंका अपराध करनेमें फिर तुम्हारा साहस नहीं होगा ॥१५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! चित्रकेतुको जब इस प्रकारसे पार्वतीजीने शाप दिया तब वह उसी समय विमानसे उतरा और मस्तक झुकाकर सतीजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगा॥१६॥ चित्रकेतु बोला कि, हे अम्ब ! आपने जो शाप दिया उसको मैं दोनों हाथोंसे मस्तक पर चढ़ाता हूँ । हे माता ! देवता लोग मनुष्यके प्रति जो कुछ कहते हैं,वह प्राचीन कर्मके वश उस पुरुषको अवश्य ही

अतः पापायसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ॥ यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ॥ प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत॥१६॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ प्रतिगृह्णामि
ते शापमात्मनोऽजलिनांबिके ॥ देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥ १७ ॥ संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञान
मोहितः ॥ भ्राम्यन्सुखं च दुःखं च भुंक्ते सर्वत्र सर्वदा ॥ १८ ॥ नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुखदुःखयोः ॥ कर्तारं
मन्यते प्राज्ञ आत्मानं परमेव च॥१९॥गुणप्रवाह एतस्मिन्कः शापः को न्वनुग्रहः॥ कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं
दुःखमेव वा ॥२०॥एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया ॥ एषां बंधं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१ ॥

प्राप्त होता है॥ १७ ॥ यह संसारचक्रका स्वभाव ही है. इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं. जीव अज्ञानसे मोहित होकर संसाररूपी चक्रमें घूमताहुआ सदा सर्वत्र जो सुख और दुःख भोग करता है, स्वयं वा और उस सुखका कर्ता नहीं है. जो पुरुष अज्ञानी हैं, वही इस विषयमें अपनेको अथवा दूसरेको कर्त्ता कहकर मानते हैं, इस कारण आपने जो हमको शाप दिया, इस विषयमें आपका व हमारा कोई दोष नहीं ॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ परन्तु यह संसार समस्त मायामय गुणोंका प्रवाहस्वरूप है, इसमें शाप क्या अथवा अनुग्रह क्या है ? स्वर्ग क्या है बरन् सुख दुःख भी क्या है ? ॥२०॥ एक परमेश्वर ही निमित्तभूत मायासे प्राणियोंके और उनके बन्धन मोक्ष व सुख दुःखकी सृष्टि किया करते

हैं, परन्तु वह स्वयं निष्फल अर्थात् बंधनादि शून्य हैं ॥२१॥ यद्यपि भगवान्का प्यारा जाति अथवा बन्धु पराया या अपना कोई भी नहीं है,क्योंकि सर्वत्र समान हैं और संगरहित हैं इसलिये उनमें अनुराग भी नहीं है, फिर भला उनमें रोष किस प्रकारसे हो सकता है?॥२२॥ तोभी उनकी मायासे जो समस्त विसर्ग अर्थात पुण्यपापादिरूप कर्म होते हैं, वही शरीरधारियोंके सुख, दुःख, हित, अहित, बंधन, मोक्ष, जन्म, मृत्यु और संसारके निमित्त समर्थ हुआ करते हैं ॥२३॥ इस कारण हे माता पार्वती ! आप प्रसन्न हों; केवल यही प्रार्थना है, यह विनती मैं कुछ शाप छुडानेके लिये नहीं करता हूँ. मां ! मैंने तो साधु उक्ति ही की थी,परंतु उसे जो आप अपनको असाधु समझगईं हैं,सो यही मेरा अपराध क्षमा करें ॥२४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे शत्रुदमनकारी राजन् ! चित्रकेतुके इस प्रकारसे भवानी और महादेवजीको

न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबंधुर्न परो न च स्वः॥समस्य सर्वत्र निरंजनस्य सुखेन रागः कुतएव रोषः॥२२॥
तथापि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हिताहिताय॥बंधाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते
॥२३॥ अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि॥यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति॥२४॥ श्रीशुक उवाच॥
इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिंदम ॥ जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः॥२५॥ततस्तु भगवान्रुद्रो रुद्राणी
मिदमब्रवीत् ॥ देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम्॥२६॥ श्रीरुद्र उवाच॥दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः॥
माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निस्स्पृहाणां महात्मनाम्॥२७॥नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ॥ स्वर्गापवर्गनरकेष्व
पि तुल्यार्थदर्शिनः ॥ २८॥ देहिनां देहसंयोगाद् द्वंद्वानीश्वरलीलया॥सुखं दुःखं स्मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥ २९॥

प्रसन्न करनेके वचन सुन गौरी और गिरीश (महादेव) को अत्यन्त विस्मय उत्पन्न हुआ. इसके पीछे चित्रकेतु उन विस्मित देव देवीके सम्मुख ही अपने विमानपर बैठकर चला गया॥२५॥तिसके पीछे रुद्राणीसे श्रवणकारी देवर्षि दैत्य सिद्ध और पार्षद गणोंके सामने ही भगवान् रुद्र वचन बोले ॥ २६ ॥ श्रीरुद्रजी बोले कि, हे सुन्दर कटिपश्चाद्भागवाली ! अद्भुत कर्मकारी भगवान् हरिके भक्तगण कैसे महात्मा और कैसे श्रद्धारहित होते हैं, उनका माहात्म्य अब तुमने प्रत्यक्ष देखा ॥ २७ ॥ हे भार्ये ! जो पुरुष नारायणपरायण हैं वह किसीसे भी भय नहीं पाते. स्वर्ग, नरक, मुक्ति इन तीनोंमें ही वे समानता देखा करते हैं ॥२८॥ क्योंकि,परमेश्वरकी लीलासे प्राणियोंके देहसंयोग और उसके

द्वंद्व अर्थात् सुख, दुःख, जन्म, मरण और शाप अनुग्रह हुआ करते हैं ॥२९॥ इन सब सुखदुःखादिकोंके बीचमें गुणदोषविकल्प अर्थात् इष्टानिष्टभेद जो कुछ भी प्रकाश पाता है वह पुरुषके आत्मामें सुखादिभेद स्वप्नावस्थामें जिस प्रकार सर्पमालादिभेद अविवेककृत होते हैं, वैसे ही अज्ञानकृत जानना और मालामें जिस प्रकार सर्प मालादिभेद अज्ञानकृत होता है, वह ज्ञान अविवेककृत जानना ॥३०॥ हे देवी! जो पुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करते हैं, वह ज्ञान और वैराग्यके वीर्यसम्पन्न हैं. उनमें यह अच्छा है ऐसी बुद्धिमें आश्रय करनेवाला अर्थ नहीं है, अर्थात् उनको किसीके आश्रयकी इच्छा नहीं है ॥ ३१ ॥ यह पुरुष (चित्रकेतु) भगवान्का दास है, इस कारण इसमें ऐसी उदारताका होना विचित्र नहीं । हे देवी! भगवान् हरिके माहात्म्यका क्या वर्णन करें? हम (रुद्र), ब्रह्मा, सनत्कुमार, ब्रह्मसुत नारदादि ऋषि, प्रधान

अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ॥ गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥ ३० ॥ वासुदेवे भगवति भक्ति मुद्वहतां नृणाम् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः ॥ ३१ ॥ नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौन ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ॥ विदाम यस्येहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥ ३२ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥ ३३ ॥ तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ॥ सर्वत्र समदृक्छांतो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥ ३४ ॥ तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ॥ महापुरुष भक्तेषु शांतेषु समदर्शिषु ॥ ३५ ॥

प्रधान देवगण, हम सब लोग भी जब कि उनकी लीलाको नहीं जान सकते फिर भला देवता जो उनके अंश होनेपर भी अपनेको पृथक् २ ईश्वर कहकर मानते हैं, वह लोग किस प्रकारसे उनके स्वरूपको जान सकते हैं ॥ ३२ ॥ परंतु उन भगवान् हरिका न कोई प्यारा है, न कोई कुप्यारा है, न कोई अपना है, न कोई पराया है, यह सर्व प्राणियोंके आत्मा, इस कारण आप ही सब प्राणियोंके प्रिय हैं ॥३३॥ परंतु यह महाभाग चित्रकेतु उन्हीं हरिका प्यारा भक्त है, क्योंकि यह पुरुष शान्त और सबको बराबर देखनेवाला है। हे सती! हम भी उन्हीं अच्युतसे प्रेम किये हुए हैं, इस कारणसे इसके ऊपर हमको क्रोध नहीं हुआ ॥३४॥ इस कारण हे देवि! तुम विस्मयको छोड़ दो। यह सब महात्मा

पुरुष महापुरुषके भक्त, शान्त, औरोंको समदृष्टिसे देखनेवाले हैं इस कारण इनका स्वभाव एक ही रूपका है ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भगवान् महादेवजीके यह वचन सुनकर भगवती पार्वतीजीने विस्मय छोड़कर अपने चित्तको सावधान किया * ॥ ३६ ॥ हे महाराज परीक्षित्! यद्यपि वह परम भागवत चित्रकेतु भवानीजीको भी शाप दे सकता था, परन्तु उसने जो भगवती सतीजीका शाप अपने माथेपर चढ़ा लिया, यही उसकी साधुताका लक्षण था ॥ ३७ ॥ उसके पीछे चित्रकेतु दानवी योनिको प्राप्त होकर त्वष्टाके यज्ञमें उत्पन्न

श्रीशुक उवाच ॥ इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाभिभाषितम् ॥ बभूव शांतधी राजन्देवी विगतविस्मया ॥ ३६ ॥ इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलंतमः ॥ मूर्ध्ना संजगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥ ३७ ॥ जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ॥ वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥ ३९ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ॥ महात्म्यंविष्णुभक्तानां श्रुत्वा बंधाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥

हुए और पीछे ज्ञान विज्ञान सम्पन्न होकर "वृत्र" इस आख्यायिकाके नामसे विख्यात हुए ॥ ३८ ॥ हे राजन्! वृत्रकी असुरभावसे उत्पत्ति और भगवानमें मति होनेका कारण जो आपने पूँछा, वह हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ३९ ॥ हे कौरववंशभूषण! महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र चरित्र जो भागवत लोगोंके माहात्म्यसे परिपूर्ण है, उसके सुननेसे मनुष्य लोग बन्धनसे छूटकर मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥

---

* **शंका**–शिवजी ऐसे दयालु हैं कि, एक शिवालयमें किसीने ५००० पाँच हजार रुपयेके मूल्यवाली [illegible] चढाई, यह देख एक चोरने रात्रिमें उस घंटीके चुरानेका विचार किया, परन्तु जब वह चोर शिवालयमें गया, तब घंटी उसके हाथसे एक हाथ ऊंची निकली तब चोर पिंडीपर चढकर घंटीके [illegible] हुआ, कि " वरं ब्रूहि " यह शब्द हुआ, तब चार बोला कौन है? तब सदाशिव बोले कि, हम हैं, घंटा क्यों उतारै है? जा यहांसे थोडी दूरपर शिवका वट है, उसके नीचे २०००० [illegible] निकाल लेना, मैं तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, कारण कि और कोई तो मुझपर पुष्प और जल ही चढाता है परन्तु तूने तो मुझपर अपना सब शरीर ही चढा दिया है तुझे धन्य है! [illegible] भोलानाथ तुम्हारे कौडी नहीं खजानेमें । तीनलोक वस्तीमें बसाये आप बसे वीरानेमें ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवान् हरिका स्मरण करके वाणीको वशमें कर श्रद्धासहित इस इतिहासका पाठ करता है उसकी परमगति हो जाती है वह ऐसे कहने लगता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पर्वतीशापेन चित्रकेतोरसुरभाववर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–आदित सुतके वंशसे, विश्वरूप अख्यान। पुनि दितिके सुत मरुत गण, तिनको करहुँ बखान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं कि, परीक्षित् ! सविताकी स्त्री पृश्निने अपने स्वामीसे सावित्री, व्याहृति श्वेदत्रयी, अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य और पञ्चमहायज्ञ, इन सब संतानोंको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ हे सुव्रत ! भग नामवाले आदित्यकी स्त्री सिद्धिने महिमा, विभु, प्रभु यह तीन

य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ॥ इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भा० म० षष्ठस्कंधे चित्रकेतोः शापस्वीकरणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम्॥अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥ सिद्धिर्भगस्य भार्यांग महिमानं विभुं प्रभुम् ॥ आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥ धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ॥ सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ ३ ॥ अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनंतरः ॥ चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ॥ ४ ॥

पुत्र और आशीर्नामक एक उत्तम कन्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ धाताकी संतान कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति, यह चार जनी यथाक्रमसे सायं, दर्श, प्रातः और पूर्णमास नामक सन्तान उत्पन्न करती हुईं, विधाता नामक आदित्यकी स्त्री क्रिया, उसके गर्भमें इन आदित्यसे पुरीष्य नामक पाँच अग्नि उत्पन्न हुए ॥३॥ वरुणजीकी स्त्री चर्षणी, जिससे भृगुजी उत्पन्न हुए, जो पहले ब्रह्माजीके पुत्र थे अब फिर जन्म ग्रहण करते हुए हे राजन् ! महायोगी वाल्मीकिजी जो वल्मीकसे उत्पन्न हुए वह भी वरुणजीके पुत्र थे, इस कारण वरुणजीके भृगु और वाल्मीकि यह

---

१ भजन–कल न पडै पलभरको तुम विन, क्या जादू पढ डारा है ॥ अपना बिगाना कछु नाहिं सूझत, केवल ध्यान तुम्हारा है ॥ आठ प्रहर दिन रैन छिनक पल, दम् भरको नाहिं न्यारा है ॥ सुख सम्पति तन मन सुत दारा, सबको तुमपर वारा है ॥ जो कुछ हो तुम हीं हम नाहीं, अब तो यही विचारा है ॥ निर्भय कौन समझता उसको, जो कुछ हाल हमारा है ॥ ४१ ॥

दोनों ही पुत्र असाधारण थे ॥ ४ ॥ परन्तु अगस्त्य, वसिष्ठ, यह दोनों ऋषि वरुणजीके और मित्रके साधारण पुत्र हुए क्योंकि, वरुण और मित्र इन दोनों जनोंने ही उर्वशीको देख कामके वश हो उसके निकट एक घड़ेमें अपना वीर्य डाला, जिससे कि इन दोनों ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥५॥ हे राजन् ! मित्र नामक आदित्यके लिखे हुए सात पुत्रोंके सिवाय असाधारण पुत्र भी थे, अर्थात् उन्होंने अपनी रेवतीके गर्भमें उत्सर्ग अरिष्ट और पिप्पल यह तीन पुत्र उत्पन्न किये थे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इन्द्रकी स्त्री, पौलोमी ईडु, इन्द्रने उसके गर्भमें तीन पुत्र उत्पन्न किये थे, उनके नाम जयन्त, ऋषभ, मीढुष ॥ ७ ॥ उरुक्रमनामक आदित्य, जिन्होंने प्रथम अपनी मायासे वामनरूप बन बड़ा भारी विक्रम प्रकाश किया, उनके कीर्त्ति नामक स्त्रीमें बृहत्श्लोक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके पुत्र सौभग इत्यादि कश्यपवंशावतंस हुए ॥ ८ ॥

अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ ५ ॥ रेतः सिषिचतुः कुंभे उर्वश्याः सन्निधौ [illegible]तम् ॥ रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥ पौलोम्यामिंद्रं आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम् ॥ जयंतमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥ ७ ॥ उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ॥ कीर्तिपत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन्सौभगादयः ॥ ८ ॥ तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः ॥ पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवावततार ह ॥९॥ अथ कश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामि ते ॥ यत्र भागवतः श्रीमान्प्रह्लादो बलिरेव च ॥ १० ॥ दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववंदितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥

इन महात्माके गुण, कर्म और वीर्यादि पश्चात् (अष्टमस्कन्धमें कहैंगे) और जिस प्रकारसे अदितिमें अवतीर्ण हुए वह भी वहीं पर वर्णन करेंगे ॥ ९ ॥ हे कौरवेश ! कश्यपकी अदिति नामक स्त्रीमें जो (१२) बारह आदित्य उत्पन्न हुए हैं, उनकी सन्तानका वृत्तान्त यह हमने सब कहा. इस समय इन महात्माकी दिति नामक स्त्रीमें दैतेय कहकर प्रसिद्ध जो यह सब दायाद हैं, जिनके मध्यमें श्रीमान् महाभागवत प्रह्लाद और बलि भी थे, उनका विवरण हम कहते हैं, तुम सुनो ॥ १० ॥ हे राजन् ! दितिके दो पुत्र हुए हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष, यह दोनों ही दैत्य दानव लोगोंके वंदनीय हुए थे, इनका वृत्तांत (तीसरे स्कन्धमें) हम कह ही आये हैं ॥ ११ ॥

हिरण्यकशिपुकी स्त्री कयाधु नाम दानवी जंभकी बेटी थी, वह चार पुत्र उत्पन्न करती हुई ॥ १२ ॥ उनके नाम यथा—संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद; उनकी बहन जो सिंहिका थी, विप्रचित्ति दानवकी स्त्री हुई, वह अपने स्वामी विप्रचित्ति दानवसे राहुनामक पुत्रको उत्पन्न करती हुई ॥१३॥ देवता लोगोंके साथमें अमृतपान करनेसे भगवान् हरिने अपने चक्रसे जिसका शिर काट लिया था। संह्लादकी कृतिनामक स्त्री पञ्चजनको पैदा करती हुई ॥ १४ ॥ ह्लादकी धमनी भार्या इल्वल वातापीको उत्पन्न करती हुई, जिन इल्वल वातापीको अगस्त्यजी

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी॥जंभस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥ १२ ॥ संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च ॥ तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥ १३ ॥ शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ॥ संह्लादस्य कृतिर्भार्याऽसूत पंचजनं ततः ॥ १४ ॥ ह्लादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् ॥ योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलम्॥ १५ ॥ अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥ १६ ॥ बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ॥ तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥

अतिथि बन पचा गये थे ❋ ॥ १५ ॥ जो कुछ भी हो अनुह्लाद दानवकी भार्या सूर्म्या थी, उसके गर्भसे बाष्कल और महिष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ! प्रह्लादकी स्त्री देवी उससे विरोचनने जन्म ग्रहण किया, उसका पुत्र बलि हुआ ॥ १६ ॥ बलिकी स्त्री अशना इसके गर्भसे राजा बलिके (१००) शत पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें बाणासुर सबसे बड़ा हुआ, जिसका प्रताप कि महापुण्यरूप है, जिसका कि पीछे भली भाँति वर्णन करेंगे ॥ १७ ॥

❋ शंका—"श्रीवाल्मीकिजीने" लिखा था कि, यह इल्वल वातापी दोनों भाई थे, इनमेंसे इल्वलऋषि लोगोंको भोजन करानेके बहाने ले आवे और गुप्तभावसे अपने भाईको मार उस ऋषिको खवावे। पीछेसे यह पुकारता कि "वातापी भइया-निकल आओ" तब संजीवनी विद्याके प्रभावके कारण यह वातापी ऋषियोंका पेट फाडकर निकल आता. एक समय अगस्त्यजीके साथमें भी इन्होंने ऐसा ही किया, परन्तु अगस्त्यजी योगबलके प्रभावसे हजम कर गये, और वातापीकी संजीवनी विद्या एक काम न कर सकी. तब इस प्रकारसे श्लोक हुए " अगस्त्यं कुम्भकर्णञ्च शनिं च बडवानलम् । आहारपरिकार्थं स्मरेद्भीमं च पंचमम् ॥ आतापी मारितो येन वातापी येन भक्षितः ॥ समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु "॥

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ॥ यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥ मरुतश्च दितेः पुत्रा
श्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ॥ त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं त आसुरं भावमपो
ह्यौत्पत्तिकं गुरो ॥ इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं कि तत्साधु कृतं हि तैः ॥ २० ॥ इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ॥
परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ तद्विष्णुरातस्य स बादरायणिर्वचो निशम्यादृत
मल्पमर्थवत् ॥ सभाजयन्संनिभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हतपुत्रा दितिः
शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ॥ मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलंती पर्यचिंतयत् ॥ २३ ॥ कदा नु भ्रातृहंतारमिंद्रियाराम
मुल्बणम् ॥ अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥ २४ ॥

बलिका सबसे बड़ा पुत्र बाणासुर भगवान् महादेवजीकी आराधना करके शिवका मुख्य गण हुआ, उसके पार्श्वमें भगवान् पुरपालक अबतक वर्तमान हैं ॥ १८ ॥ हे राजन्! उनचास पवन भी इस दितिके पुत्र हैं, यह सब ही पुत्रहीन हुए, देवराज इन्द्र इन सबको साथ लेकर देवभावको प्राप्त करादेते हुए ॥ १९ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! दितिके गर्भमें उत्पन्न होनेसे मरुद्गण जन्मसे ही असुरभाव युक्त थे, इसमें किसी प्रकारका भी सन्देह नहीं है सो वे किस प्रकारसे असुरभाव परित्याग करके इन्द्रकरके सुरभावको प्राप्त हुए? उन्होंने ऐसा क्या श्रेष्ठ कर्म किया था? ॥ २० ॥ हे भगवन्! यह विषय जाननेके लिये यह ऋषिगण हमारे सहित श्रवण करनेको श्रद्धासहित बैठे हुए हैं, हमारे निकट इसकी व्याख्या कीजिये ॥ २१ ॥ सूतजी इतना वृत्तान्त वर्णन करके महर्षि शौनकजीसे बोले कि, हे सत्रायण! व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीने राजाके यह मिताक्षर और बहुयुक्त वचन श्रवण करके मनहीमनमें उसकी बड़ाई की और बोले ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! विष्णुकी सहायतासे इंद्रने सब पुत्रोंको मार डाला, तब दितिके चित्तमें शोक अत्यन्त प्रबल हुआ और वह मनहीं मनमें यह चिन्ता करने लगी ॥ २३ ॥ दुरात्मा इंद्र केवल [illegible] है उसका हृदय अतिकठिन है और उसमें दयाका नाम भी नहीं है, आः

इस क्रूर भाईके मारनेवाले पापीको नाश करके हम कब सुखसे सोवेंगी ॥ २४ ॥ अहो इस समय जो प्रभु कहकर विख्यात हैं, उन स्वामियोंका देह मरनेके पीछे दो या तीन दिन रहकर कृमि, विष्ठा और भस्मकी संज्ञाको प्राप्त होजाता है. कारण कि, मृत देहका संस्कार न होनेसे दो तीन दिन पीछे सडकर वह कृमियुक्त या श्वापदादिके भक्षण करनेसे विष्ठारूपको प्राप्त होता है, और दग्ध होनेसे केवल भस्म ही शेष अर्थात् बाकी रहती है, सो स्वदेहकी रक्षाके लिये जो पुरुष प्राणियोंसे द्रोह रखता है, वह क्या स्वार्थको जानता है ? कभी नहीं. क्योंकि प्राणियोंके साथ वैर करनेसे घोर नरक होता है ॥ २५ ॥ जो कुछ हो, इन्द्र देहादिको नित्य समझकर अतिशय उन्नद्ध होगया है, अब हमको ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे उसके गर्वका हरण करनेवाला पुत्र हो ॥ २६ ॥ इसकारण पतिका प्रियाचरण करना ही इस विषयमें सदुपाय है,

कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥ आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ॥ मदशोषक इंद्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥२६॥ इति भावेन सा भर्तुराचाचरासकृत्प्रियम् ॥ शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ २७ ॥ भक्त्या परमया राजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ॥ मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापांगवीक्षणैः॥२८॥ एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया॥ बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥ २९ ॥ विलोक्यैकांतभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ॥ स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥ ३० ॥

ऐसा निश्चय करके शुश्रूषा, अनुराग, विनय, इन्द्रियदमन और भक्ति प्रगट करना इत्यादि उपायोंसे दितिजी वारंवार कश्यपजीका प्रियाचरण करने लगीं ॥ २७ ॥ भावकी जाननेवाली दिति हावभावके सहित मनमाना प्रिय भाषण तिरछी चितवन व मन्द मुसकानसे अपने पतिको वशमें कर लेती हुई ॥ २८ ॥ हे राजन् ! विद्वान् पुरुष मनमानी स्त्रीसे ऐसे ही उसके वशीभूत होते हैं, उसके पीछे स्त्रीके वशमें होकर "तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे" ऐसा उनका कहना कुछ विचित्र नहीं है ॥ २९ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीने प्रथम सब प्राणियोंको संगरहित देखकर स्त्री पुरुषके संसर्गसे "सृष्टि होनेके निमित्त" अपनी आधी देहको स्त्री बनाया था जिस करके अन्ततक पुरुषोंकी मति हरी जाती

है ॥ ३० ॥ इसलिये हे तात ! दिति इस प्रकारसे जब शुश्रूषा करने लगी, तब भगवान् कश्यपजी शीघ्र ही प्रसन्न होगये और एक दिन आनंद प्रकाश करके हँसकर दितिके प्रति प्रसन्नताके वचन कहते हुए ॥ ३१ ॥ कश्यपजी बोले कि, हे वामोरु ! हम तुमसे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए हैं, अब जो तुम्हारी अभिलाषा हो वह वर तुम हमसे मांगो । हे सुन्दरि ! पतिके प्रसन्न होनेपर स्त्रियोंको क्या इस कालमें क्या परकालमें कोई अभिलाष अप्राप्त नहीं रहता ॥ ३२ ॥ हे साध्वी ! स्त्रियोंको पति ही परमदेवता है, देवताके प्रसन्न होनेसे सब ही कामना पूर्ण हो

एवं शुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यपः स्त्रिया ॥ प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनंद्य च ॥३१॥ कश्यप उवाच ॥वरं वरय
वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिंदिते ॥ स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥ ३२ ॥ पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं
स्मृतम् ॥ मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियःपतिः ॥३३॥ स एव देवतालिंगैर्नामरूपविकल्पितैः ॥ इज्यते भगवा
न्पुंभिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ॥ ३४ ॥ तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ॥ यजंतेऽनन्यभावेन पतिमा
त्मानमीश्वरम् ॥ ३५ ॥ सोऽहं त्वयाऽर्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ॥ तत्ते संपादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥ ३६ ॥

जाती हैं, "नारिनके पति देव, वेद नित यही बखाने । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारि पतिहीको जाने" हे सुन्दरि ! यद्यपि सर्व प्राणियोंके अंतःकरणवर्ती भगवान् वासुदेव ही लक्ष्मीपति अथवा परम देवता सत्य ही सत्य हैं॥ ३३॥ तथापि पुरुष लोग अनेक प्रकारसे उनके ही इन्द्रादि नाम और वज्रहस्तादि रूप कल्पना करके पूजा करते हैं और वही स्त्रियोंके निकटमें पतिरूपधारी होकर पूजे जाते हैं ॥ ३४ ॥ हे सुमध्यमे ! श्रेयस्कामा पतिव्रता स्त्रियें अनन्यभावसे पतिकी ही सेवा करती हैं. कारण कि, पति ही आत्मा और पति ही ईश्वर है * ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! हम तुम्हारे वही

---

* एक वृद्ध तपस्वीने अस्सी हजार वर्षकी तपस्या करके क्रोधमें मरकर जो ऊपरको दृष्टि उठाई तो इसकी दृष्टिके पडते ही एक पेडके ऊपर बैठी हुई समस्त चिडियें मरकर गिर पडीं. इन्होंने जाना कि, अब हमारा तप सिद्ध होगया यह सोच समझकर तपस्वी शहरमें भिक्षा माँगने एक पतिव्रता स्त्रीके घर गया और पुकारा कि, अलख ! परन्तु बहुत देरके पीछे एक स्त्री भिक्षा लेकर आई, तब तपस्वी कहते क्या हैं कि "इतनी देरमें भिक्षा लाई? हम इस भिक्षाको नहीं लेते" यह कह क्रोधकी दृष्टिसे उस स्त्रीको देखा, तब उसने कहा कि,महाराज ! मैं चिडिया नहीं हूं,जो आपकी दृष्टिसे भस्म होकर गिर पड़ूंगी; पतिव्रता स्त्रियोंका ऐसा ही माहात्म्य होता है ॥

स्वामी हैं, तुम करके भक्ति भावसे पूजे गये हैं,जो तुम्हारी कामना है सो हम पूर्ण करेंगे. वह असती स्त्रियोंको महादुर्लभ है ॥३६॥ दिति बोली कि हे ब्रह्मन् ! अनुग्रह करके यदि आप वर देनेको तैयार हुए हैं तो ऐसा वर दीजिये कि, जिससे हम आपके निकटसे इंद्रका मार डालनेवाला एक पुत्र चाहती हैं,सो आप मुझको दीजिये.प्रभो ! दुरात्मा इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर हमारे दो पुत्रोंको मार डाला है कि, जिससे हम निपूती हो गई हैं ॥ ३७ ॥ दितिके यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ कश्यपजी अति विमन हुए और अछताते पछताते कहने लगे कि, आज हमको बडा भारी अधर्म उपस्थित हुआ.कारण कि, भगवत्‌रूप इन्द्र और असुर यह सब ही मुझे एकसे हैं॥३८॥अहो ! विषय और इंद्रियोंके सुखमें रत हो जानेसे स्त्रीरूप मायाने मेरे मनको क्या ही अपने वशमें कर लिया है ? निःसंदेह हमको नरकमें गिरना पडेगा ॥

दितिरुवाच ॥ वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिंद्रहणं वृणे ॥ अमृत्युं मृतपुत्राऽहं येन मे घातितौ सुतौ ॥ ३७ ॥ निशम्य
तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ॥ अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥ अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह
मायया ॥ गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥ ३९ ॥ कोऽतिक्रमोऽनुवर्तंत्याः स्वभावमिह योषितः ॥ धिङ्मां
बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेंद्रियः ॥ ४० ॥ शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को
वेद चेष्टितम् ॥४१॥ नहि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामंजसा स्वाशिषात्मनाम् ॥ पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नंत्यर्थे घातयंति च ॥४२॥

॥ ३९ ॥ इस अबलाका क्या अपराध है ? यह तो अपने स्वभावहीके पीछे चली है,मैं जो अपने स्वार्थको नहीं जानता, इस कारण मुझे ही धिक्कार है। किस कारणसे हम जितेंद्रिय नहीं हुए ॥४०॥ स्त्रियोंका वदन शरत्कालके कमलके तुल्य खिला हुआ होता है, वचन इनके दोनों कानोंके लिये अमृत होते हैं, परन्तु हृदय छूरीकी धारका सहोदर भाई है इस कारण ऐसा किसका सामर्थ्य है जो इन स्त्रियोंके मनकी चेष्टा जान सके ? ॥ ४१ ॥ जो कि स्वार्थकी कामनासे आत्माके समान प्रियरूपमें प्रतीयमान होती तो हैं, परन्तु वास्तवमें उनको कोई प्रिय नहीं होता, वह स्वार्थके लिये पति, पुत्र और अपने भ्राताको भी नष्ट कर सकती हैं ॥ ४२ ॥

जो कुछ भी हो, हमने इस स्त्रीके (दितिके) निकट 'वर देता हूँ'ऐसा जो कहा है,यह मेरा कह देना और इंद्रका वध यह दोनों ही अनुचित हैं, सो इस विषयमें इस समय यही उचित है कि, पुत्रके लिये इसको वैष्णव व्रतका उपदेश करूं जिससे कि इसका चित्त शुद्ध हो जानेपर इन्द्रके प्रति क्रोध इसको उत्पन्न हुआ है वह कदाचित छूट भी सकता है और यह व्रत बहुत समयमें पूरा हो सकता है, जो कुछ भी इसमें खोट हुई तो इन्द्रका मारनेवाला पुत्र उत्पन्न न हो सकेगा ॥ ४३॥ हे कुरुनन्दन ! भगवान् कश्यपजी इस प्रकारसे चिन्ता करके कुछेक कोपायमानके समान हो फिर अपने आप ही अपनी निन्दा करते हुए ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे दितिसे बोले कि, हे भद्रे ! यदि तुम एक वर्षतक यथावत्

प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ॥ वधं नार्हति चेंद्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥ ४३ ॥ इति संचिंत्य भगवा
न्मारीचः कुरुनंदन ॥ उवाच किंचित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥ ४४ ॥ कश्यप उवाच ॥ पुत्रस्ते भविता भद्रे
इन्द्रहा देवबांधवः ॥ संवत्सरं व्रतमिदं यद्यंजो धारयिष्यसि ॥४५॥ दितिरुवाच ॥ धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि
यानि मे ॥ यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नंति यानि तु ॥ ४६ ॥ कश्यप उवाच ॥ न हिंस्याद्भूतजातानि न शपे
न्नानृतं वदेत् ॥ न च्छिंद्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमंगलम् ॥ ४७ ॥ नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः ॥
न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥ ४८ ॥

व्रत धारण कर सकोगी तो तुम्हारे गर्भमें इन्द्रका मारनेवाला और देवताओंका बन्धु एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४५॥ यह सुनकर दिति हर्षित होकर बोली कि,बहुत अच्छा मैं यह व्रत धारण करूंगी,उस व्रतमें जो जो आवश्यक हैं और जो जो विषय इस व्रतमें हानिके देनेवाले हैं और जो जो उसमें वर्जित नहीं हैं, बरन् अभ्यनुज्ञात हैं वह समस्त मुझे आप उपदेश कीजिये ॥४६॥ कश्यपजीने कहा कि,उस व्रतको करके किसी प्राणीकी हिंसा न करे, किसीके प्रति कोपके शाप न दे,झूठ न बोले, नाखून न कटवावे, रोम न काटे, अमंगल मृतकका कपाल या हड्डी आदि अपवित्र वस्तुका स्पर्श न करे॥४७॥नंगा हो जलमें खडे होकर स्नान न करे,किसी पर क्रोध न करे,दुष्टोंके साथमें बातचीत न करे,विना

नोच्छिष्टं चंडिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ॥ भुंजीतोदक्यया दृष्टं पिबेदंजलिना त्वपः ॥ ४९ ॥ नोच्छिष्टाऽस्पृष्टस
लिला संध्यायां मुक्तमूर्धजा ॥ अनर्चिता संयतवागसंवीता बहिश्चरेत् ॥ ५० ॥ नाधौतपादाऽप्रयता नार्द्रपान्नो
उदक्छिराः ॥ शयीत नापराङ्ग नान्यैर्न नग्ना न च संध्ययोः ॥ ५१ ॥ धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमंगलसंयुता ॥
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राञ्छ्रियमच्युतम् ॥ ५२ ॥ स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गंधबलिमंडनैः ॥ पतिं चार्च्योपतिष्ठेत
ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम्॥५३॥सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ॥ धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥

धुला वस्त्र न पहरे, एकबार धारण की हुई मालाको फिर दूसरी बार न पहरै ॥ ४८॥ जूंठा अन्न न खाय, जिस अन्नमें चींटियें पडी हों उसको भी न खाय, मांस मिला हुआ अन्न न खाय, शूद्रोंका लायाहुआ अन्न न खाय और रजस्वलाका छुआ हुआ न खाय और अंजली बाँधकर जल न पिये ॥४९॥ हे सुन्दरी ! जिस समय घरसे बाहर निकले उस समय जूंठा मुख न हो, विना कुल्ला किया हुआ मुख न हो, संध्याके समय केश खुले न हों, शरीरको विना शृंगार किया न रक्खे, वाणीको जीत ले और नंगा होकर भी इस व्रतमें घुमना न चाहिये ॥५०॥ हे दिति ! इस व्रत करनेवालेके शयनमें आठ विषय निषिद्ध हैं, यथा-इस व्रतमें दोनों पावोंको न धोकर अथवा अपवित्र वा गीले पाँव रखकर शयन नहीं करे, उत्तरको शिर करके या पश्चिमको शिर करके भी शयन करना कर्तव्य नहीं है और नंगा रहना या किसी दूसरेके साथ शयन करना और दोनों संध्या मिलनेके समय शयन करना यह सब बातें वार्जित हैं ॥ ५१ ॥ हे दिति ! इस व्रतमें जो जो कार्य करने होते हैं, वह भी मैं कहता हूँ,तुम श्रवण करो. धुले हुए कपडे पहरकर पवित्र और समस्त मंगलोंसे संयुक्त होकर प्रथम भोजनके पहले गौ, विप्र और लक्ष्मीनारायणकी पूजा करै ॥ ५२ ॥ सुहागन स्त्रियोंको सुगंध, माला, वस्त्र, भूषण, उपहार देकर पूजा करै और अपने पतिकी भी पूजा करके सेवा करे और उसको अपनी कोखमें बैठाकर रात दिन चिन्ता करे ॥ ५३ ॥ निर्विघ्न यह व्रत पूरा हो जानेपर अभिलषित पुत्रकी उत्पत्ति होती है, तुम यदि एक वर्ष भरतक इस व्रतको धारण कर सकती हो और जो किसी प्रकारसे तुम्हारा यह व्रत लोप न हुआ तो तुम्हारे इन्द्रका मारनेवाला

पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन्! जब कश्यपजी ऐसा कह चुके, तब मनस्विनी दितिजीने "इस प्रकारसे ही करूंगी" ऐसा कहकर इस व्रतको स्वीकार किया और कश्यपजीसे गर्भ धारणं करती हुई और कश्यपजीने जिस प्रकारसे व्रतका उपदेश किया था उसको यथार्थ समझ कर दिति उसका आचार करने लगी ॥५५॥ अपनी सौतेली माताका यह अभिप्राय जानकर देवेन्द्र इन्द्र अपने स्वार्थको विचार आश्रममें बैठी हुई दितिजीके समीप आये और अनेक प्रकारसे उसकी सेवा करने लगे * ॥ ५६ ॥ इन्द्र प्रतिदिन दितिजीके लिये फल, मूल, समिध,

बाढमित्याभिप्रेत्याथ दिती राजन्महामनाः ॥ काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चांजो दधार सा ॥ ५५ ॥ मातृष्वसुरभिप्राय मिंद्र आज्ञाय मानद ॥ शुश्रषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥५६॥ नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ॥ पत्रांकुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥ ५७ ॥ एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ॥ प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥ ५८ ॥ नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ॥ चिंतां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह॥ ५९ ॥

कुशा, पत्र, फूल, अंकुर, मिट्टी, जल, यह सब वस्तुयें समय समयपर लाने लगे ॥५७॥ हे राजन् ! व्याध जिस प्रकार मृगोंको धोखा देनेके लिये कभी २ स्वयं भी मृगका वेष धारण कर लेता है, वैसे ही व्रतमें छिद्र पानेकी कामनासे इंद्र कपटी साधुका वेष धारण कर व्रत करती हुई दितिके निकट आये ॥ ५८ ॥ यद्यपि इन्द्र बडे सावधान होकर सदा ही देखभाल करते रहे परन्तु शीघ्र उनके व्रतमें कोई भी छिद्र न मिल सका, तब तो इन इन्द्रको बहुत ही चिन्ता हुई कि, अब किस उपायसे हमारा मंगल होगा ॥ ५९ ॥

---

* **शंका**—दितिने इंद्रके नाश करनेके लिये गर्भको धारण किया, तब इन्द्र दितिके गर्भके नाश करनेके लिये कपट करके दितिका सेवन करने लगा, परन्तु दितिको क्यों नहीं जान पडा, कि यह इन्द्र कपट करता है, क्योंकि दिति कुछ मूर्ख नहीं थी, वह बडी चतुर थी, सन्देह है ?

उत्तर—जब दितिने इन्द्रके नाश करनेका उपाय किया तब भगवान्ने दितिसे निषेध किया कि, अम्बाजी ! अभी इंद्रका पुण्य बहुत है, अभी इन्द्रका नाश किसी प्रकार न होगा, वृथा परिश्रम मत करो, दितिने भगवान्की आज्ञाको नहीं माना, इन्द्रका नाश होनेके लिये गर्भ धारण किया, भगवान्के वचनोंको नहीं माना इस कारणसे इन्द्रके कपटको नहीं पहँचाना, मूर्ख होगई ।

इतनेहीमें कुभाग्यसे एक दिन दितिको मोह आया कि, वह संध्या समय जूठे मुख, व्रतसे कार्षित, विना कुल्ला किये और विना चरण धोये सो गई॥ ६० ॥ योगेश इंद्र यह अवसर पाकर योगमायाकी सहायतासे दितिके उदरमें प्रवेश करते हुए। दिति अचेत होकर नींद ले रही थी, उसने इस बातको कुछ न जाना॥ ६१ ॥ इसके पीछे इन्द्रने उदरमें प्रवेश करते ही अपने हाथमें लिये हुए वज्रसे दितिके गर्भको (जिसकी प्रभा कनकके तुल्य प्रकाशमान हो रही थी) सात खण्ड करके काट डाला, तिसके उपरान्त कट जानेपर यह गर्भके सातों खण्ड रोदन करने लगे, तब इंद्रने उनके प्रति "रोदन मंत करो" इस प्रकारका स्नेहयुक्त वचन कहकर फिर एक एक खण्डके सात सात खंड कर डाले॥ ६२ ॥ हे

एकदा सा तु संध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ॥ अस्पृष्टवार्यधौतांघ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥ ६० ॥ लब्ध्वा तदंतरं शक्रो निद्रापहृतचेतसः ॥ दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥ ६१ ॥ चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ॥ रुदंतं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः ॥६२॥ ते तमूचुः पाटचमानाः सर्वे प्रांजलयो नृप ॥ नो जिघांससि किम् इंद्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥ ६३ ॥ मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ॥ अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥ ६४ ॥ न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकंपया ॥ बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥ ॥ ६५ ॥ सकृदिष्ट्वादिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ॥ संवत्सरं किंचिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥ ६६ ॥

राजन्! जब इन्द्रने उस गर्भके ४९ खंड कर डाले तब वह समस्त खण्ड हाथ जोड़कर देवराज इन्द्रसे बोले कि, हे इन्द्र! क्यों हमारी जान लेनेके लिये तैयार होते हो? हम सब मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं, इस कारण हमें मत मारो॥ ६३ ॥ तब इन्द्र बोला कि, डरो मत, तुम लोगोंके साथ हमारा दूसरा भाव नहीं है; तुम लोग हमारे पार्षद होगे॥ ६४ ॥ हे राजन्! यद्यपि इन्द्रने वज्रसे काटकर दितिके गर्भके ४९ खण्ड कर डाले, परन्तु भगवान्‌की कृपासे वह गर्भ किसी प्रकार नष्ट नहीं हुआ कि, जिस प्रकार भगवान्‌की दयासे अश्वत्थामाके अस्त्रने तुम्हारा विनाश नहीं किया था॥ ६५ ॥ हे कौरवेश! जो भगवान् आदिपुरुषकी केवल एक बार ही पूजा करता है, वह भी उनका पार्षद होजाता है

और दितिनें तो प्रायः एक वर्षतक उन भगवान् वासुदेवकी पूजा की थी, वर्ष पूर्ण होनेमें कुछ थोड़े ही दिन शेष अर्थात् बाकी रहे थे, फिर भला उसके गर्भका एक ही बार नष्ट हो जाना कैसे संभव है ॥ ६६ ॥ भगवान्‌के प्रसादसे वह सर्व मरुद्गण अर्थात् गर्भ सब ही इन्द्रके साथ मिलकर (५०) पचास देवता हुए. इसके पीछे माताका दोष छुडा कर हरि करके उन लोगोंको सोमपान कराकर देवता कर लिया गया ॥ ६७ ॥ जो कुछ भी हो, दिति अबतक सो रही थी, जब उसकी निद्रा छूटी और उठ कर इसने देखा तो अनलके समान दीप्तिमान् इन्द्रके सहित (५०) पचास कुमार खडे हैं ॥ ॥ ६८ ॥ यद्यपि देखते ही दितिको सन्तोष उत्पन्न हुआ तथापि उन्होंने कुछ देर पीछे इन्द्रसे कहा कि, हे तात ! हमने आदित्यलोगोंके भय देनेवाले पुत्रकी कामना करके इस अति कठिन व्रतका आचरण किया था ॥ ६९ ॥ अदितिकी संतानका संहारकारी एक

सजूरिंद्रेण पंचाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ॥ व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥ ६७ ॥ दितिरुत्थाय ददृशे
कुमाराननलप्रभान् ॥ इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिंदिता ॥ ६८ ॥ अथेंद्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ॥
अपत्यमिच्छंत्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥६९॥एकः संकल्पितः पुत्रः सप्तसप्ताभवन्कथम् ॥ यदि ते विदितं पुत्र सत्यं
कथय मा मृषा ॥७० ॥ इन्द्र उवाच ॥ अंब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोंऽतिकम् ॥ लब्धांतरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न
धर्मवित्॥७१॥कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः ॥ तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥ ७२ ॥

पुत्र हो, यही हमारा संकल्प था, फिर (४९) उनचास पुत्र किस प्रकारसे हुए ? हे पुत्र ! इस भेदको यदि तुम कुछ जानते हो तो यथार्थ २ कहना, हमारे निकट झूंठ न बोलना ॥ ७० ॥ दितिके अकपट वचन सुनकर इन्द्रजी भी कपटरहित होकर बोले कि, हे अम्ब ! हम तुम्हारी यह कामना जानकर ही तुम्हारे निकट आये थे, इतने दिनोंसे केवल छिद्र ढूँढ रहे थे, आज अवसर पाकर उदरमें प्रवेश कर तुम्हारे इस गर्भको हमने काट डाला. हे अंब ! जिसकी बुद्धि स्वार्थमें ही लगी रहती है, ऐसे पुरुष बहुधा धर्मके प्रति दृष्टि नहीं दिया करते हैं ॥ ७१ ॥ हमने प्रथम तुम्हारे गर्भको सात खंड करके काट डाला सो वह सात पुत्र हुए, फिर हमने उन सात खण्डोंमेंसे एक एक खंडके सात सात खंड किये कि, जिससे यह (४९) उनचास पुत्र हुए परन्तु जब कि, हमने देखा, इससे भी कुछ कुमार नहीं मरे ॥ ७२ ॥

ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ॥ महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषंगिणी ॥ ७३ ॥ आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ॥ ये तु नेच्छंत्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥ ७४ ॥ आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ॥ को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥ ७५ ॥ तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ॥ क्षंतुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तयाभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ॥ मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ ७७ ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ मंगलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० षष्ठ० मरुद्गणजन्मानुकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

तब हमने परम आश्चर्य देखकर ऐसा निश्चय किया कि, तुमने आदिपुरुष भगवान्‌की आराधना करके कोई आनुषंगिक सिद्धि पाई है ॥ ७३ ॥ हे माता ! जो पुरुष निराकांक्षी होकर भगवान्‌की आराधना करनेकायत्न करते हैं और उस आराधनाके आगे मोक्ष पदार्थको भी कुछ नहीं समझते, वह अपने स्वार्थमें अत्यन्त कुशल हैं ॥ ७४ ॥ इस लिये जो भगवान् हरि जगदीश्वर हैं, वह आराधना किये जानेसे अध्यात्म दिया करते हैं, यह विचार करनेसे बुद्धिमान् कौन पुरुष विषय भोगका वर मांगेगा ? कारण कि, विषयभोग तो नरकमें भी प्राप्त होजाता है ॥ ७५ ॥ परन्तु हे महत्तमे मातः ! मुझ मूर्खने जो दुर्जनता तुम्हारे साथ प्रगट की है, उसको तुम क्षमा करो. यह भी बडे ही भाग्यकी बात है कि, तुम्हारा गर्भ मृतक होकर भी फिर जी उठा ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके पीछे दिति शुद्धभावसे प्रसन्न होकर इंद्रको अनुमति देती हुई, तबइन्द्र उसको वारंवार प्रणाम करके मरुद्गणोंके सहित सुरपुरको चले गये ॥ ७७ ॥ हे परीक्षित् ! मरुद्गणोंका जन्मवृत्तान्त जो कुछ तुमने पूँछा था वह हमने समस्त वर्णन किया, अब क्या श्रवण करनेकी इच्छा है, सो कहो, शीघ्र कहो, विलम्ब करनेका समय नहीं है ॥ ७८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनपंचाशन्मरुज्जन्मवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा–कश्यप जो दितिसों कह्यो, व्रत हरि करन प्रसन्न। सो भाषत विस्तारयुत, करत ज्ञान उत्पन्न॥ १॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि,हे ब्रह्मन्! आपने जो पुंसवनव्रतको कहा कि जिससे विष्णुभगवान्‌की प्रसन्नता होतीहै,उसका वृत्तान्त विस्तारसे जाननेकी हम वासना करते हैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! अगहनके महीनेमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे पतिकी आज्ञा लेकर स्त्रियें इस व्रतको जो कि आदिसे कामका दाता है; प्रारंभ करें ॥ २ ॥ ब्राह्मण लोगोंसे सम्मति लेकर दंतधावन कर, न्हाय धोय पवित्र हो मरुद्गणोंके जन्मका वृत्तान्त सुन, फिर शुक्ल वस्त्र पहरकर और शृंगार कर प्रातःकालीन भोजनके पहले लक्ष्मीके सहित भगवान् नारायणकी पूजा करे ॥३॥ राजन्! पूजन करनेके समय जिन मंत्रोंके द्वारा नमस्कार करना होता है, वह हम तुमसे कहते हैं सो श्रवण करो।“ हे भगवन्! आप ही सबमें व्याप

राजोवाच ॥ व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम्॥तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति॥१॥श्रीशुक उवाच ॥ शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ॥ आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥ निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमंत्र्य च ॥ स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालंकृतांबरे ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवंतं श्रिया सह ॥ ३ ॥ अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ॥महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥४॥ यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा ॥ जुष्ट ईशगुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान्प्रभुः ॥ ५ ॥ विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ॥ प्रीयतां मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

रहे हैं, आपको और किसीसे कोई कार्य नहीं इसलिये आपको हम नमस्कार करते हैं. हे प्रभो! आपको किसीकी चाहना नहीं है, आप पूर्ण काम हैं,महाविभूतिके अर्थात् लक्ष्मीजीके पति हैं, आपमें अणिमादि सर्व सिद्धियें विराजमान हैं. आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ हे ईश। आप दया, धैर्य, तेज, सामर्थ्य और महिमा इत्यादिमें व और दूसरे सर्व गुणोंमें यथावत् संतत सेवित हैं इस कारणसे आप सदा भगवान् कहलाये जाते हैं,सो हम आपको नमस्कार करते है” ॥ ५ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे भगवान्‌को नमस्कार करके फिर लक्ष्मीजीको नमस्कार करै. यथा–“हे मायामये! हे विष्णुपत्नी! परमेश्वरके जो समस्त निरपेक्षत्वादि लक्षण हैं वह तुममें वर्तमान हैं। हे महाभागे! हमारे

प्रति प्रसन्न हूजिये। हे लोकमातः! तुमको हम नमस्कार करते हैं॥६॥" तिसके पीछे सावधान होकर "महानुभाव भगवान् महापुरुषको नमस्कार करते हैं, महाविभूतिके सहित उन महाविभूतिपति भगवान्के लिये हम पूजोपहार देते हैं" इन मंत्रोंसे भगवान्का आवाहन करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, उपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीपादि विविध भांतिके उपहार देवे * ॥ ७ ॥ तिसके पीछे अग्नि स्थापना करके

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपाहराणीति ॥ अनेनाहरहर्मंत्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्धपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपहरेत्॥हविश्शेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥ श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ॥ भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसंपदः ॥ ८ ॥ प्रणमेद्दंडवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ दशवारं जपेन्मंत्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ९ ॥

उन सब उपहारोंके जो कुछ बचे हुए द्रव्य रहें, उनसे अग्निमें बारह आहुति दे। होमका मंत्र यह है "भगवान् महापुरुष महाविभूतिपतिको नमस्कार स्वाहा" हे राजन्! भगवान् विष्णु और महामाया श्री यह दोनों देवता ही वरके देनेवाले हैं. इनही समस्त आशिष वचनोंकी उत्पत्ति होती है, लोकमें यदि सर्वप्रकारसे संपत्तिका अभिलाष करे तो नित्य भक्तिभावसे इन लक्ष्मीनारायणकी ही पूजा करे ॥ ८ ॥ और भक्ति

585

---

* **शंका**–छठे स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायके सातवें श्लोकमें विष्णुके आवाहन आदिके पूजनका मन्त्र ओंकार सहित दितिसे कश्यपजीने कहा था और आठ और नौ श्लोकमें होम करनेकी विधि कही थी, परन्तु ओंकारको और वेदके मंत्रोंको स्त्री कैसे पढ़ सकती है? क्योंकि स्त्रियोंको वेद पढना और ओंकार मन्त्र पढना सुनना दोनोंका निषेध है. दितिको कश्यपजीने सुनाया तो ठीक है, महात्मा हैं परन्तु दितिने पठन कैसे किया होगा, यह शंका हमको बड़ी भारी है॥

उत्तर–दिति पतिव्रता स्त्री थी अपने पति जो कश्यपजी थे उनसे ओंकारका और वेदका मन्त्र पढवाके आप दूसरा जो अक्षर है जैसे स्तोत्रमें जसे 'नमो भगवते' इसको आदि लेकर उनको पढने लगी इसलिये उसको दोष नहीं हुआ, ओंकार और वेदमन्त्र आप पढती तब तो दोष होता अपने पतिसे पढवाकर सिद्ध कर लिया॥

द्वारा नम्रचित्त होकर पृथ्वीमें झुककर दंडवत् प्रणाम करे। तिसके पीछे दश बार मंत्र पढ़कर स्तोत्रका पाठ करे ॥ ९ ॥ वह स्तोत्र यह है "न भगवन्! हे भगवती। आप दोनों जन विश्वके विभु और जगत्के परमकारण हैं, हे भगवन्! यह प्रकृति जो कि, सूक्ष्म मायाकी महाकठिहे. शक्ति है ॥१०॥ आप हमारे भी अधीश्वर हैं, इसलिये आप ही साक्षात् परम पुरुष हैं। हे प्रभो! आप ही सर्व यज्ञ हैं, सब यज्ञोंमें यजन पूजारूप महालक्ष्मी हैं, सबके फलको भोगनेवाले एक आप ही हैं ॥ ११ ॥ और यह देवी लक्ष्मीजी सत्त्वादि गुणकी प्रकाशक और भोगनेवाली हैं हे प्रभो! आप हीं सर्व प्राणियोंके आत्मा हो. श्री, शरीर, इंद्रिय और प्राणस्वरूप हो, आप ही नाम और आप ही रूप हो और आप ही इन

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ॥ इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा माया शक्तिर्दुरत्यया ॥ १० ॥ तस्या अधीश्वरः
साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः ॥ त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥ ११ ॥ गुणव्यक्तिरियं देवी व्यंजको गुण
भुग्भवान् ॥ त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेंद्रियाशया ॥ नामरूपे भगवति प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥ १२ ॥ यथा युवां
त्रिलोकस्य दौ परमेष्ठिनौ॥तथा म उत्तमश्लोक संतु सत्या महाशिषः ॥ १३ ॥ इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया
सह ॥ तन्निस्सार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥ १४ ॥ ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ यज्ञोच्छिष्टमव
घ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥१५॥ पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ॥ प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ॥
बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ १६ ॥

दोनोंके प्रकाशक और आप ही इन दोनोंके आधार हो ॥१२॥ हे भगवन्! आप ही दोनों जन परमेष्ठी और त्रिलोकीके वर देनेवाले हो। हे उत्तमश्लोक! आपके प्रसादसे हमको नित्य महा महा आशिष मिलें, अर्थात् हमारे मनोरथ सिद्ध हों" ॥ १३ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे महालक्ष्मीजीके सहित वर देनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्का स्तोत्र करके निवेदन की हुई सब उपहारका वस्तुओंको वहांसे हटाले, और फिर आचमन कराय पूजा करावे ॥१४॥ तिसके पीछे भक्तिसे चित्तको नम्र करके फिर स्तोत्रसे स्तुति करे फिर यज्ञके उच्छिष्टको सूंघ और फिर पूजा करै ॥ १५ ॥ फिर व्रत ग्रहण करनेवाली स्त्री अपने पतिको ईश्वर समझकर उसको प्यारी प्यारी वस्तु देकर पतिकी सेवा करे

और पति भी प्रेमवान् होकर स्त्रीके किये हुए ऊँचे नीचे सब कर्मोंका पालन करे ॥ १६ ॥ हे राजन्! इस पुंसवन व्रतको स्त्री पुरुष दोनों जनोंमेंसे एक भी कोई करे तो भी यह दोनोंहीको फल देनेवाला होगा. हे राजन्। स्त्री यदि व्रत करनेके अयोग्य हो तो पति ही सावधान चित्त होकर इस व्रतका अनुष्ठान करे ॥ १७ ॥ श्रीविष्णु भगवान्का यह व्रत कभी नाश करनेके योग्य नहीं है हे राजन्! भगवान् विष्णुका यह व्रत धारण करनेसे किसी प्रकारसे संतानका वियोग नहीं रहता, अवश्य संतान होती है. इस व्रतमें ब्राह्मण और सुहागिन स्त्रियोंको माल्य, चन्दन, मिष्टान्न और गहने देकर पूजा करे और नियम धारण कर भक्तिसहित दिन रात श्रीविष्णु भगवान्के चरणकमलोंका

कृतमेकतरेणापि दंपत्योरुभयोरपि ॥ पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ १७ ॥ विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथंचन ॥ विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गंधबलिमंडनैः ॥ अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥ १८ ॥ उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ॥ अद्यादात्मनि शुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥ १९ ॥ एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादश हायनम् ॥ नीत्वाऽथोपचरेत्साध्वी कार्त्तिके चरमेऽहनि ॥२० ॥ श्वोभूतेऽप उपस्पृश्यकृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ पयःशृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥ पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥ २१ ॥

ध्यान करता रहे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे आराध्य देवताकोउनके निजधाममें वासार्थ विसर्ज्जन दे। उनके आगे निवेदन किये हुए मिष्टान्न वस्तुसे आत्माकी शुद्धि और सर्व काम समृद्धिके लिये कुछ एक भोजन करे ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे पूजाका अनुष्ठान बारह मास(एक वर्ष)बिताकर कार्त्तिक मासमें देव उठनी एकादशीसे पूर्णमासी तक ब्राह्मणादि जिमाय इस व्रतका विसर्जन करे। कार्त्तिक मासके शेष दिनको उपवास करना उचित है ॥ २० ॥ प्रभात होनेपर आचमन इत्यादि कर प्रथमहीके समान भगवान्की पूजा करके गरम दूधमें पकाये हुए चरुमें घृत मिष्टान्न मिलाय स्रुवेसे हवन करे पाकयज्ञके विधानसे अर्थात् पार्वणीय स्थालीपाकप्रकरणसे दुग्धपक्व घृतसहित चरु देकर अग्निमें बारह

आहुति प्रदान करनी चाहिये ॥ २१ ॥ फिर ब्राह्मणगण प्रसन्न होकर जो आशीर्वाद दें, शिर चढाय उनको ग्रहण करें और भक्तिपूर्वक मस्तक नवाय प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर फिर आप भोजन करे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे आचार्यको आगे कर वाणीको जीतता हुआ बन्धु बांधवोंके सहित स्त्रीके निकट जाय, उसको वह बचा हुआ चरु (जिससे शत पुत्र उत्पन्न होकर सौभाग्य होता है) दान करे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णुजीका यह व्रत यथाविधि पुरुषसे किये जानेपर यह मनोवांछित लाभ देता है और स्त्रियें इस व्रतको करनेसे सुहाग, सम्पत्ति, सन्तान, अवैधव्य, यश और गृहको प्राप्त होती हैं ॥ २४ ॥ कुमारी कन्या इस व्रतको करनेके प्रभावसे सर्व लक्षणसंपन्न पतिको

आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतः समीरिताः ॥ प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥ २२ ॥ आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ॥ दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभगम् ॥ २३ ॥ एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सिताथ लभते पुमानिह॥स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥ २४ ॥ कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ॥ मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ॥ २५ ॥ विंदेद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावींद्रियकल्पदेहम् ॥ एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्मण्यनंततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥ २६ ॥

प्राप्त करती हैं और विधवा स्त्री जो इस व्रतको करैं तो उनके पाप क्षय हो जाते और वह स्वगकी गति (मोक्ष) को प्राप्त होती हैं, जिसके बालक मर जाते हों, ऐसी स्त्री जो इस व्रतको करै तो उसके बालक जियें। जो कुभागिनी स्त्री इस व्रतको करें तो सुभगा होजायँ और जो कुरूप स्त्री इस व्रतको करें तो मनोहर रूपवाली हो जायँ ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इस व्रतके माहात्म्यसे रोगी जन बहुत कालके रोगसे छूट जाते हैं और इन्द्रियोंके सहित समर्थ देहको लाभ कर सकते हैं। हे राजन ! जो पुरुष शुभ कृत्यके समय इस व्रतका वृत्तान्त पढ़े या सुने, तो उसके पितरोंकी और देवताओंकी अत्यन्त तृप्ति हो जायगी ॥ २६ ॥

और होमके अन्तमें अग्नि, श्रीलक्ष्मीजी और श्रीहरि यह सन्तुष्ट होकर सब कामना पूर्ण करेंगे । हे महाराज ! जो कुछ आपने पूछा वह मरुद्ग

तुष्टाः प्रयच्छंति समस्तकामान्होमावसाने हुतभुक्छ्रीर्हरिश्च ॥ राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कंधे पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ समाप्तोऽयं षष्ठः स्कंधः ॥ ६ ॥

णोंका यह पुण्यजनक और दितिके इस महत व्रतका वृत्तान्त हमने आपके निकट वर्णन किया ॥ २७ ॥ अब भगवान्की कृपासे षष्ठ स्कन्ध, समाप्त होगया, इसलिये एक भजन लिखता हूँ ❋ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पुंसवनव्रतवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ इति षष्ठ स्कन्ध समाप्तः ॥ ६ ॥

❋ **भजन**—श्रीभगवान् भक्तसुखदायक, पूजत आश दासके मनकी ॥ दुष्ट मार भूमार उतारत, रक्षा करत रहत मुनिजनकी ॥ भक्त हेत करपर गिरिवर धर, की सहाय गोपी गोपनकी ॥ संतन हित तज अवध पुरीको, सैर करी वरसन लों बनकी । खर, दूषण, त्रिशिरादि मारिकर, भस्म करी लंका रावणकी ॥ हरि हरि हरि द्रौपदी पुकारी, राखो लाज आज निज जनकी ॥ कोटिन पट जु बढांये झटपट, चकित भई मति दुःशासनकी ॥ जब जम भीर परत भक्तनपर, आय सहाय करत त्रिभुवनकी ॥ शालिग्राम यही वर माँगत, चरणशरण रहुँ मनमोहनकी ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते षष्ठस्कन्धसमाप्तिः ॥

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते सप्तमस्कन्धप्रारम्भः ॥

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी।
MUMUKSHU BHAWAN
538

सप्तमस्कंधः

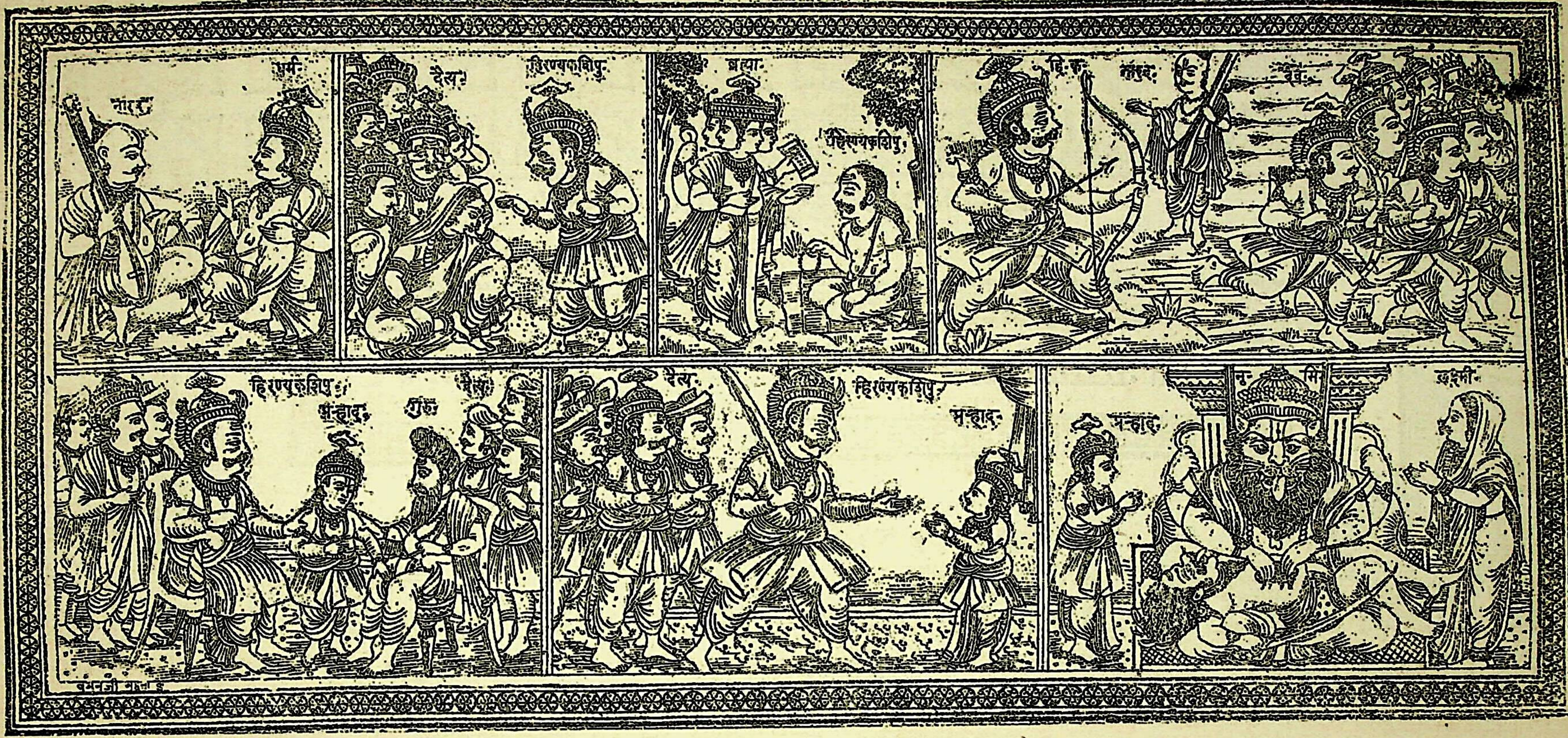
नारद
धर्म
दैत्य
हिरण्यकशिपु
ब्रह्मा
हिरण्यकशिपु
हि० क०
नारद
देव
हिरण्यकशिपु
प्रह्लाद
गुरु
दैत्य
दैत्य
हिरण्यकशिपु
प्रह्लाद
प्रह्लाद
नृ- सिं
लक्ष्मी

सोरठा–गिरिजानन्दे गणेश, आनँदनिधि ऋधि सिधि भवन ॥ मंगल करन इमेश, मंगलसुत मंगल करहु ॥ १ ॥ जय श्रीनन्दकिशोर, मोर मुकुट मुरली धरे ॥ मुरलीकी मृदु घोर, सुनो चहत मन मोर यह॥२॥जय ब्रजेश ब्रजचन्द, नन्दनँदन गोपनसखा ॥ सुखदीजै सुखकन्द, सुखासीन सुखके भवन ॥ ३ ॥ दोहा–जय जय जय श्रीराधिका, जय श्रीनन्दकुमार ॥ जय जय गोपी गोप सब, मम उर करहु विहार ॥ १ ॥ पहिले मैं द्विजशापसे, कनककशिपुकर क्रोध ॥ भक्त पुत्र प्रह्लादसे; राखन लग्यो विरोध ॥२॥ राजा परीक्षित् बोले, कि हे भगवन्! हे ब्रह्मन्! श्रीभगवान् सब जीवमात्रको समदृष्टिसे देखते हैं और सबके प्रिय और सुहृद्रूप हैं, फिर इंद्रके लिये दैत्योंको क्यों मारा? इस बातसे विषम

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम् ॥ इंद्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधी द्विषमो यथा ॥ १ ॥ न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः ॥ नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥ २ ॥ इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति ॥ संशयः सुमहान् जातस्तद्भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥ गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्ना रदादिभिः ॥ नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥ ५ ॥

भाव ईश्वरमें भी विदित होता है ॥ १ ॥ साक्षात् सच्चिदानन्दरूप विमल और दिव्य स्वरूप जिनकी आत्मा, उनको न तो कुछ देवताओंसे प्रीति, न कुछ असुरोंसे शत्रुता और कुछ उनसे उद्वेग भी नहीं है क्योंकि, वह तो निर्गुण हैं ॥२॥ हे सुमहाभाग! श्रीनारायणके गुण विचारकर हमको बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ है, इस मेरे संशयको दूर कर दीजिये. क्योंकि, आप सर्वज्ञ हैं ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज! भगवत्के अद्भुत चरित्रोंके विषयमें आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, जहाँ भागवतका माहात्म्य है वह वहाँ सदा भगवान्की भक्तिका बढानेवाला है ॥ ४ ॥ सो उस पावन पवित्र अद्भुत चरित्रको परमपुण्य श्रीनारदादि ऋषियोंने गाया है. सो श्रीवेदाचार्य, वेदप्रवर्तक महामुनि व्यास–

539

जीको नमस्कार करके श्रीभगवान् वासुदेवकी कथा वर्णन करता हूँ * ॥५॥ यद्यपि ईश्वर अपनी प्रकृतिसे परे, अजन्मा, निर्गुण, अज, अव्यक्त और सब संसारसे पृथक् भी हैं, तो भी अपनी मायाके गुणोंमें प्रवेश कर मित्र और शत्रुभावको प्रगट करमरनेवाला और मारनेवाला भलीभाँति विदित होता है ॥ ६ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह प्रकृतिके गुण हैं, कुछ आत्माके गुण नहीं हैं और जो यह गुण परमात्मामें हों तो प्रकृतिपुरुषकी नाईं परमात्मामें भी विषमता होनी चाहिये, परंतु ऐसा नहीं हो सकता है. हे राजन् ! उनमें कभी कोई गुण बढ़ जाता है,

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान् प्रकृतेः परः ॥ स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥ ६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥७॥ जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ॥ तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ८ ॥ ज्योतिरादिरिवाभाति संघातान्न विविच्यते ॥ विदंत्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥ ९ ॥

कभी कोई गुण घट जाता है ॥ ७ ॥ जयके समय सत्वगुण बढ़कर देवता और ऋषियोंको बढ़ाता है, पराजयके समय रजोगुण बढकर असुरोंकी वृद्धि करता है और जब तमोगुण बढ़ता है तब यक्ष राक्षस दोनोंकी अधिकता होती है, जिस २ समय जैसा २ होता है उस उस समयके अनुसार भगवान् वैसे ही हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जैसे पावक एक रूप है, परंतु काष्ठादिकमें अनेक रूपसे दृष्टि आता है, जैसे जलका एक ही रूप है परंतु रंगोंमें मिलकर अनेक प्रकारका भासने लगता है,

---

* **शंका**–राजा परीक्षित्‌से श्रीशुकदेवजीने कहा कि, व्यासजीको नमस्कार करके हरिकी कथा अब मैं कहूंगा, इस बातके कहनेसे यह विदित होता है कि, सात स्कन्धसे पहिले जो छ.६ स्कन्ध वर्णन किये उनमें हरि भगवान्‌की कथा नहीं है ?

उत्तर–श्रीशुकदेवजीने ऐसा विचार करके राजा परीक्षित्‌से नहीं कहा था कि, छः स्कन्धोंमें भगवान् हरिकी कथा नहीं है, अब हरि भगवान्‌की कथा मैं कहता हूं. श्रीशुकदेवजीने जान लिया कि, प्रह्लादकी रक्षा करनेके लिये हरि भगवान् नृसिंहका रूप धरके प्रगट होंगे. शास्त्रमें सिंहका नाम हरि है, इसलिये शुकदेवजीने कहा था कि, हे राजन् ! हरि जो सिंहरूप भगवान् हैं उन हरिभगवान्‌की कथा अब मैं कहता हूं, श्रीशुकदेवजी महाराजने ऐसा कहा था ॥

ऐसे ही भगवान् एकरूप हैं, परंतु ज्योति आदिकी नाईं प्रकाश करते हैं, किसीके संग पृथक् प्रतीत नहीं होते, परंतु देवता, दैत्य, असुरोंमें अलग अलग दिखाई देते हैं। आत्मामें स्थित हो आत्माको मथनकर महात्मा लोग हृदयमें भगवानका दर्शन करते हैं, विना मथन किये दारुसे अग्नि प्रगट नहीं होती, ऐसे ही विना आत्माका मथन किंये भगवान् प्रगट नहीं होते ॥ ९ ॥ आत्मा जीवके भोगके लिये जिस समय परमेश्वरकी इच्छा देह (प्रजा) के रचनेकी होती है, तब वह अपनी मायामें साम्य भावसे स्थित जो रजोगुण है उसे अलग रचते हैं। जब विचित्र पुरियोंमें रमण करनेकी इच्छा होती है तब सत्वगुणकी अधिकता करते हैं, जब शयनकी इच्छा होती है तब तमोगुणको अधिक करते

यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो रजः सृजत्येव पृथक् स्वमायया ॥ सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥१०॥ कालं चरंतं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुम्भ्यां नरदेव सत्यकृत्॥ य एष राजन्नपि कालई शिता सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यजः ॥ तत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥ ११ ॥ अत्रैवोदाहृतः पूर्व मितिहासः सुरर्षिणा ॥ प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥१२॥ दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ॥ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥ १३ ॥

हैं ॥ १०॥ हे नरदेव! प्रधान पुरुषसे सत्यकर्ता ईश्वर सबके आश्रय विचरतेहैं और कालको आप ही रचते हैं। हे राजन्! जब यह कालके ईश्वर सतोगुणकी वृद्धिके समय देवताओंको रचकर बढाते हैं तब देवता जिनको परमप्रिय सो महायश ईश्वर देवताओंके शत्रु होकर असुरोंको रजोगुणके समय बढ़ाकर मारते हैं, जो यह ईश्वर निश्चय करके तमोगुण बढाकर यक्ष और राक्षसोंको बढ़ाते हैं और संहार करते हैं॥११॥ हे राजन्! राजसूय यज्ञमें जिस राजा युधिष्ठिरका कोई शत्रु नहीं था, उस राजा युधिष्ठिरने ऐसा ही प्रश्न किया था तब युधिष्ठिरपर प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्वक श्रीनारदजीने यह इतिहास कहा था ॥ १२ ॥ राजसूय यज्ञमें महाअद्भुत चरित्र राजा युधिष्ठिरने देखा कि, चेदिदेशके नरेश शिशुपालको

भगवान्ने चक्रसे मारा और शिशुपाल भगवान् वासुदेवमें सायुज्य मोक्षको प्राप्त होगया ॥ १३ ॥ उसी समय उस यज्ञमें सब मुनिजनोंके सम्मुख पाण्डुसुत राजा युधिष्ठिरने अत्यंत विस्मित होकर बैठे हुए देवर्षि नारदजीसे बूझा ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर बोले कि, जो परमतत्त्वरूप भगवान् वासुदेवकी प्राप्ति परमएकांत महात्मा पुरुषोंको मिलनी अत्यंत दुर्लभ है सो निरन्तर विद्वेषी शिशुपालको प्राप्त हुई यह बडे आश्चर्य की बात है ? ॥ १५ ॥ हे मुने ! इस सब बातके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा है, देखो ! भगवान्की निन्दा करनेसे राजा वेनको ब्राह्मणोंने नरकमें डाल दिया था ॥ १६ ॥ उसी प्रकार इस दमघोषके पुत्र महादुर्बुद्धि शिशुपालको भी नरकमें डालना चाहिये था.देखो ! इस चाण्डाल शिशुपाल और दंतवक्रने जिस दिनसे जन्म लिया उस दिनसे दोनों ही आजतक श्रीगोविंदसे दुर्भाव ही रखते थे और

तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पांडुसुतः क्रतौ ॥ पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥ १४॥ युधिष्ठिर उवाच ॥
अहो अत्यद्भुतं ह्येतद्दुर्लभैकांतिनामपि ॥ वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥ १५ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः
सर्वं एव वयं मुने ॥ भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥ १६ ॥ दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् ॥
संप्रत्यमर्षी गोविंदे दंतवक्त्रश्च दुर्मतिः ॥१७॥ शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम् ॥ श्वित्रो न जातो जिह्वायां
नांधं विविशतुस्तमः ॥१८॥ कथं तस्मिन्भगवति दुरवग्राहधामनि ॥ पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरंजसा ॥१९॥
एतद्भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ॥ ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥ २० ॥

उनकी निन्दा करते रहते थे ॥ १७ ॥ और वारंवार साक्षात् अविनाशी परब्रह्म विष्णु भगवान्को गालियें देते रहते थे,फिर जब ऐसे क्रूरकर्मी थे तो उनकी जीभमें कोढ़ होकर क्यों न गलकर गिर गई ? और नरकमें भी नहीं गये, इसका क्या कारण ? ॥ १८ ॥ देखो जिनके स्वरूपकी प्राप्ति होनी योगीजनोंको भी महादुर्लभ है, उन भगवान्में विना प्रयत्न किये सबके देखते देखते कैसे लीन होगये ? भला, यह बात ध्यानमें आनेके योग्य है ? ॥ १९ ॥ इस आश्चर्यको देखकर हमारी बुद्धि अत्यन्त चकित हो रही है, जसे दीपककी शिखा पवनके लगनेसे स्थित नहीं रहती.इस बातका भेद मुझको निश्चय समझाकर कहो, जो मेरे चित्तको शांति हो; क्योकि,इस बातके जाननेमें

तुम ही मुख्य कारण हो ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,श्रीनारदजी राजा युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब सभाके सभासदोंके सुनते जो कुछ कथा कहने योग्य थी सो सुन्दर कथा कहने लगे ॥ २१ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, निन्दा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार इत्यादि बातोंके लिये परमात्माकी देहको जो मानना है वह प्रकृति पुरुषके अज्ञानसे कल्पित है ॥ २७॥ हे पार्थिव ! हिंसा, अभिमान, दण्ड,कठोर वचन कहने 'मेरा है,मैं हूँ' यह बातें तो अभिमानी संसारके जीवोंमें हैं, ऐसी बातें ईश्वरमें कभी नहीं हो सकतीं ॥ २८॥

श्रीशुक उवाच ॥ राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः ॥ तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वंत्यास्तत्सदः कथाः ॥ २१ ॥
नारद उवाच ॥ निंदनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् ॥ प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम् ॥ २२ ॥ हिंसा
तदभिमानेन दंडपारुष्ययोर्यथा ॥ वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥ २३ ॥ यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधा
त्प्राणिनां वधः ॥ तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ॥ परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥२४ ॥

जिस शरीरमें इसने अभिमान मान रक्खा है,उसी शरीरसे प्राणियोंका बंधन है,वैसे ही उसको जान पडता है, कि, मेरा वध हुआ, ऐसे परमेश्वरको नहीं होता.क्योंकि परमात्मा आप कैवल्यरूप सबका आत्मा है,इसलिये उसके देहाभिमान और विषमता नहीं है,भगवान् सदा दैत्योंको दण्ड देते हैंऔर उनका वध करते हैं; परंतु वह भी उनके ऊपर दया ही है,कुछ शत्रुभावसे उनका बुरा भला नहीं विचारते और कोई कल्पना करे कि,ईश्वरको पीडा होती है? नहीं,यह सम्पूर्ण भ्रम है. जब आत्मा ईश्वरमें हो तो मोक्ष होता है इस बातपर एक दृष्टांत है ❀ ॥ २४ ॥

❀ **दृष्टान्त**–कोई दीन ब्राह्मण महानिर्धन धनके लिये एक ठाकुरद्वारेमें बैठकर रामचन्द्रको रामायणकी कथा सुनाने लगा.वहाँ रामचन्द्र, लक्ष्मण, हनुमानकी तीन मूर्ति थीं और कोई मनुष्य कथा सुननेको वहां नहीं आवे, परन्तु कभी कभी अकस्मात् महाअभिमानी, अत्यन्त क्रोधी, मदान्ध एक वैश्य दर्शनके लिये चला आता था.जब ब्राह्मणको कथा कहते कहते बहुत दिन होगये,तब उस वैश्यके सामने रामचन्द्रने हनुमानसे कहा कि, कल उस ब्राह्मणकी कथा समाप्त होगी उसमें कितने रुपये चढेंगे ? तब हनुमान बोले कि, एक सहस्र. रामचन्द्रने कहा यहां कोई मनुष्य तो आता ही नहीं सहस्र रुपये कौन चढावेगा? हनुमान् बोले महाराज! जहाँ हम तुम हो वहाँ किस बातका टोटा है. हनुमानकी यह बात सुन वह वैश्य उसी समय ब्राह्मणके घर गया और कहा कि, मैं नित्य ठाकुरद्वारेमें जाता हूं, परन्तु अकेला ही आपको कथा कहता देखता हूं और कोई आपकी कथा सुनने नहीं आता, फिर वहां रुपैया पैसा कौन चढावेगा ? ब्राह्मण बोला कि सेठजी ! मनुष्यका क्या सामर्थ्य है,परमेश्वर सबका देनेवाला है. वैश्यने कहा कि तुम–

जो सबके दमन करनेवाले भगवान् हैं वह किसीकी निंदा नहीं करते और किसीको नहीं मारते. इसलिये वैरसे, भक्तिसे, भयसे, प्रीतिसे, कामसे मुक्तिके यह पाँच उपाय हैं, जैसे, हो सके वैसे ईश्वरमें मन लगाना, वह सच्चा न्यायकारी है, किसीको दुर्भावसे नहीं देखता, सबको एकसा देखता है;इसीसे उसका नाम समदर्शी है॥२६॥चाहे प्रेमसे, चाहे वैरसे, चाहे कामसे परमेश्वरको किसी प्रकारसे भजे, परंतु परमेश्वर शुभ गति

तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा॥ स्नेहात्कामेन वा युंज्यात्कथंचिन्नेक्षते पृथक्॥२५॥यथा वैरानुबंधेन मर्त्यस्तन्म
यतामियात्॥ न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः॥२६॥कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुडचायां तमनुस्मरन् ॥ संरंभ
भययोगेन विंदते तत्स्वरूपताम्॥ २७ ॥ एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ॥ वैरेण पूतपाप्मानस्तमीयुरनुचित
या॥ २८ ॥ कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ॥ आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥ २९ ॥

ही देता है.वैर करनेसे प्राणी जैसा परमेश्वरमें लीन होजाता है ऐसा भक्तियोगसे परमेश्वरमें तन्मय नहीं हो सकता, ऐसा हमारा निश्चित मत है॥ ॥२७॥भ्रमरी जिस कीडेको पकड़ कर अपने छिद्रके भीतर लेगई,वह कीड़ाक्रोधसे और भयसे भ्रमरीरूप ही हो जाता है॥२७॥ऐसे ही क्रोधसे भयसे उनहींके समान भावको जीव प्राप्त होजाता है.इसी लिये विष्णु भगवान्ने माया करके श्रीकृष्ण अवतार धारण किया॥२८॥उनसे वैर बाँध-

---

—अपनी कथाका ठेका करलो. ब्राह्मण बोला कि,मेरी इसमें भी कुछ हानि नहीं. कहो क्या दोगे? वैश्यने कहा कि, पांचसौ रुपये, ब्राह्मण बोला मैं प्रसन्न, मेरा परमेश्वर प्रसन्न I वैश्यने पांचसौ रुपये ब्राह्मणके घर पहुँचा दिये और कथा समाप्त होनेके दिन दुपहरहीसे सेठजी ठाकुरद्वारेमें जा बैठे और ब्राह्मण देवताने बहुतेरा शंख घडियाल बजाया, परन्तु एक मनुष्य भी कथामें नहीं आया और न एक कौडी चढी. जब रात होगई तो वैश्यको अत्यन्त सोच हुआ और महाक्रोध बढा, तब तो हनुमानसे चिल्लाकर बोला कि, बडे आश्चर्यकी बात है कि, देवता भी झूठ बोलने लगे. यह कह लाल नेत्र कर हनुमानजीके एक लात मारी,हनुमानजीने झट उसकी टांग पकड़ ली.उसने बहुतेरा हाय हाय की परन्तु हनुमानने उसकी टांग न छोड़ी. जब तीन पहर बीत गये तो रामचन्द्रजी बोले कि, कथा समाप्त होगई ? हनुमानजीने कहा होगई, पांचसौ रुपये तो ब्राह्मणके घरमें भिजवा दिये, पांचसौ जो बाकी रहे हैं उनमें वैश्यराजकी एक टांग गहने रख ली है,पांचसौ रुपया और देगा तो इसकी टांग छूटेगी. क्योंकि देवताओंको इसने झूठा बताया, इसलिये इसीसे पांचसौ रुपये और लेकर ब्राह्मणको हजार रुपये कर दिये जायँगे और नहीं देगा तो यह अभिमानी ऐसे ही पडा रहेगा. वैश्यने समझा कि, बिना पांचसौ रुपये दिये मैं किसी प्रकार नहीं छूट सकता.यह विचार उसने और पांचसौ रुपये ब्राह्मणकी भेंट किये तब छूटकर अपने घर गया, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि अभिमान न करे ॥

कर पापी पावन और पवित्र होकर मुक्त हुए और उन ही श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दमें शिशुपालादिकसे सहस्त्रों लय होगये. इसलिये कामसे, वैरसे, भयसे, स्नेहसे ईश्वरमें मन लगावे. श्रीकृष्णमें मन लगाकर अनेक मनुष्य उनकी गतिको प्राप्त हुए॥२९॥गोपी तो कामसे ईश्वरको प्राप्त हुईं,कंस भयसे मुक्त होगया,शिशुपाल आदिक नरेश वैर करनेसे वृन्दावनविहारी कृष्णमुरारीमें लय होगये सम्बन्ध विवाहादिकसे यादव भगवल्लोकको चले गये, स्नेहसे युधिष्ठिर अर्जुनादिक आप सब मुक्त होगये, विभुकी भक्तिसे हम मुक्त हुए ॥३०॥ इन पाँचोंमें राजा वेन तो कुछ भी नहीं था इसलिये वह नरकमें पड़ा. इसलिये किसी प्रकारसे श्रीकृष्ण बाँकेविहारीमें मन लगाना चाहिये ॥३१॥ हे पाण्डव ! तुम्हारी फूफीका पुत्र शिशुपाल और दन्तवक्र था. यह दोनों विष्णुके पार्षदोंमें श्रेष्ठ थे, वह विप्रोंके शापसे अपने स्थानसे गिर पडे ॥ ३२ ॥

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ॥ सम्बन्धाद् वृष्णयस्स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभोः ॥ ३० ॥ कतमोऽपि न वेनः स्यात्पंचानां पुरुषं प्रति ॥ तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥ मातृष्वस्रेयो वश्चैद्यो दंतवक्रश्च पांडव ॥ पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ॥ अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकांतिनां भवः ॥ ३३ ॥ देहेंद्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ॥ देहसंबन्धसंबद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ॥ सनंदनाद्यो जग्मुश्चरंतो भुवनत्रयम् ॥ ३५ ॥

सनकादयो

5/2

दोहा–ताते इनकी मुक्तिमें,कौन अहै सन्देह। पापिहु हरिसों वैर कर, पावहिं गति तज देह ॥ धर्मराज राजा युधिष्ठिर नारदजीकी वाणी सुन विस्मित होकर बोले–युधिष्ठिर बोले कि,भगवान्के दास तो एकांतके रहनेवाले हैं,उनको शाप किसने दिया और किस कारण दिया ?॥३३॥ यह बात किसी प्रकार हमारे ध्यानमें नहीं आती,कि हरिके एकांती भक्तोंका संसारमें जन्म लेना,क्योंकि वैकुण्ठके वासी तो देह इंद्रिय प्राणरहित और सब अप्राकृत हैं उनके शरीर मायाके नहीं हैं;तो वह मायाके संबंधी कैसे हुए ? यह वृत्तांत मुझे समझाकर कहो ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले कि, एक समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकने विष्णुलोकके जानेकी इच्छा की और त्रिलोकीमें भ्रमण करते करते वैकुण्ठलोकमें गये॥३५॥

सो मुनि कैसे थे ? देखनेमें तो पांच छः वर्षके बालक विदित होते थे,परंतु अवस्थामें मरीचि आदि ऋषियोंसे भी बडे थे उनका दिगम्बरवेष देख
और बालक जानकर भगवान्के द्वारपाल जय और विजयनें उनको भीतर नहीं जाने दिया, द्वारपर ही रोक लिया ॥ ३६ ॥ तब तो उन्होंने
महाक्रोध करके जय विजयको शाप दिया कि,तुम वैकुण्ठमें रहनेके योग्य नहीं हो क्योंकि,शुद्ध सत्त्व विष्णु भगवान्के चरणारविन्द रज तमसे
रहित हैं, फिर तुमको तमोगुण कैसे आया ? इसलिये हे मूर्खो ! अभी तुम असुरयोनिको प्राप्त हो मृत्युलोकमें विचरो ॥३७॥ जब सनकादिकने
उनको इस प्रकारका शाप दिया तो पार्षद वैकुण्ठसे नीचे गिरनेको हुए,उस समय उनपर दयालु हो, उन परमदयालु सनकादिकने कहा,कि हे
द्वारपालो ! दोहा—तीन जन्मभर पायहो,अरसुयोनि महिमाहिं । पुनि ऐहो वैकुण्ठपुर,यामें संशय नाहिं॥३८॥यह दोनों द्वारपाल पृथ्वीपर आकर

पंचषड्ढायनाभाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ दिग्वाससः शिशूमन्त्वा द्वाःस्थौ तान्प्रत्यषेधताम्॥३६॥ अशपन्कुपिता एवं
युवां वासं न चार्हथः॥रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥ पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥३७॥
एवं शप्तौ स्वभवनात्पतंतौ तैः कृपालुभिः ॥ प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥३८॥ जज्ञाते तौ दितेः
पुत्रौ दैत्यदानववंदितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः॥३९॥ हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा॥
हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः॥४०॥ हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ॥ जिघांसुरकरोन्नानायातना
मृत्युहेतवे ॥ ४१ ॥ सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशांतं समदर्शनम् ॥ भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धंतुमुद्यमैः ॥ ४२ ॥

दैत्य और दानवोंके परमपूज्य कश्यपमुनिकी स्त्री दितिके पुत्र हुए जिनमें ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकशिपु और छोटा हिरण्याक्ष यह दोनों महाबलवान्
और बडे पराक्रमी हुए और दैत्योंने अपना अध्यक्ष बनाया॥३९॥इनकी अनीति देख हरिने नृसिंह अवतार धारण कर हिरण्यकशिपुको मारा
और पृथ्वीको उद्धार करनेके समय वाराह अवतार धारण करके हिरण्याक्षका वध किया ॥४०॥ हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको जो कि,
श्रीनारायणका परम प्रिय भक्त था,उसके मारनेके लिये नाना प्रकारके कष्ट और त्रास दिखाये ॥ ४१ ॥ सर्वान्तर्यामी विश्वात्मा भगवान् जिसके
हृदयमें स्थित, प्रशान्त, समदर्शी और भगवत्के तेजसे स्पृष्ट हुए प्रह्लादको मारनेके लिये हिरण्यकशिपुने सहस्रों उपाय किये,

परन्तु परमेश्वरकी कृपासे प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुआ॥दोहा–सभामध्य प्रह्लादपर,करके कोप महान । मारनको ठाढ़ो भयो,काढि कराल कृपान॥ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके शूल दिखाये॥४२॥फिर उन दोनों पार्षदोंने विश्रवा ऋषिकी भार्या केशिनीमें जन्म लिया और रावण,कुम्भकर्ण नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुए और अपने बाहुबलसे त्रिलोकीको जीत देवताओंको भयभीत कर दिया ॥ ४३ ॥ उस समय भी श्रीनारायणने राजा दशरथकी पत्नी कौसल्यामें रामचन्द्र अवतार लेकर शापमोचन करनेके लिये लंकामें जाकर दोनोंका वध किया. हे प्रभो ! मार्कंडेयजीके मुखसे आप रामचरित सुनोगे॥४४॥उन दोनोंने अब तीसरे वार क्षत्रियवंशमें जन्म ले तुम्हारी माताकी भगिनीके सुत शिशुपाल और दन्तवक्र नामसे विख्यात हुए. उनको श्रीद्वारकानाथने चक्रसुदर्शनसे मार निष्पाप कर सनकादिकके शापसे मुक्त कर दिया ॥ ४५ ॥

ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवस्सुतौ ॥ रावणः कुंभकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ॥४३॥ तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ॥ रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कंडेयमुखात् प्रभो ॥४४॥तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव॥ अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥ ४५ ॥ वैरानुबंधतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ॥ नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिर उवाच॥ विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ॥ ब्रूहि मे भगवन् येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता॥४७॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे जयविजययोश्शापवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ नारद उवाच ॥ भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ॥ हिरण्यकशिपू राजन्पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥

तीव्र वैर करनेसे और रात दिन भगवान्के ध्यानमें रहनेसे श्रीनारायणकी समताको प्राप्त हुए और फिर यह दोनों पार्षद हरिके निकट पहुँचे॥४६॥युधिष्ठिर बोले कि, हे भगवन् ! दैत्यवंशमें भगवद्भक्त प्रह्लाद कैसे उत्पन्न हुए ? और ऐसे सुबुद्धि महात्मा अपने प्यारे पुत्रपर हिरण्यकशिपुने किसलिये विद्वेष किया और प्रह्लादको हरिकी भक्ति कैसे प्राप्त हुई ? सो प्रह्लादचरित्र कृपा करके मुझसे कहो ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां जयजयविजयत्रिजन्मकथावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, असुर कियो हरिद्रोह । भ्राताको सुत देखकर, उपजो मनमें मोह॥ १॥नारदजी बोले कि, हे राजन् ! वाराहरूपधारी भगवान्ने इन्द्रके सहायके लिये मेरे भाई हिरण्याक्षको मारा,

इसलिये हिरण्यकशिपुने अपने मनमें बड़ा शोक संताप किया॥ १॥और क्रोधसे जिसके नेत्रोंमेंसे अग्निकी लपटें निकलने लगीं,दांतोंसे होठोंको चाबने लगा, कोपसे जलते हुए नेत्रोंसे आकाश जो क्रोधाग्निसे धुयेंसे धुआँधाड हो रहा था उसको देख रहा था ॥ २ ॥ महाविकराल दाढें, भयानक वैसे दृष्टि और ही भयंकर बंक भ्रुकुटी कपालको चढीहुईके कारण उसके भयावने मुखकी ओरको किसीसे भयके मारे देखा नहीं जाता था.इस प्रकार क्रोधमें भराहुआ शूलको उठाय सभामें आय दैत्योंसे ललकार कर बोला ॥ ३ ॥ कि हे दानवो ! हे दैत्यो ! हे द्विमूर्द्धा ! हे त्र्यक्ष ! हे शंबर ! हे शतबाहु ! हे हयग्रीव ! हे नमुचे ! हे पाक ! हे इल्वल ! ॥४॥हे विप्रचित्ते ! हे पुलोमन् ! हे शकुनादिको ! मेरा वचन सुनो और

आह चेदं रुषा घूर्णः संदष्टदशनच्छदः ॥ कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन् धूम्रमबरम् ॥ २ ॥ करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ॥ शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ भो भो दानवदैतेया द्विमूर्धंस्त्र्यक्ष शंबर ॥ शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥४॥ विप्रचित्ते मम वचः पुलोमञ्छकुनादयः ॥ शृणुतानंतरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥ ५ ॥सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ॥ पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥ ६ ॥ तस्य त्यक्तस्वभावस्यघृणेर्मायावनौकसः ॥ भजंतं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः ॥ ७ ॥ मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै ॥ रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥ ८ ॥

जो मैं कहूँ शीघ्र करो, विलम्ब मत करो ॥ ५ ॥ देखो भाई ! विष्णु भगवान् सबको समान मानते हैं, परन्तु मेरे क्षुद्र शत्रु देवताओंने उनकी बहुत टहल टकोरी करके अपना पक्षपाती बनाया. तब उसने महानीच शूकरका रूप धरकर कपटसे मेरे भाई हिरण्याक्षको मार मुझसे शत्रुता ठानी ॥६॥ और अपने सुन्दर समदर्शी स्वभावको छोड मायासे निर्दयी वाराहरूप धारण किया और जो उसको भजते हैं उनको वह भी भजता है, बालकके सदृश उसका मन चंचल है ॥७॥ जबतक उस निर्दयी वनवासी शूकरवपुधारीकी गर्दन में अपने त्रिशूलसे निर्मूल कर बहुतसे उसके रुधिरसे अपने रुधिरप्रिय भ्राताको तर्प्पण करके तृप्त न कर लूंगा, तबतक मेरा मन सब व्यथाओंसे निश्चिन्त नहीं होगा।

और सब सन्ताप और परिताप नहीं मिटेगा ॥८॥ जब वह महाकपटी विष्णु नष्ट होजायगा तो जैसे वनस्पतिका मूल कटनेसे उसकी शाखा आपसे आप सूख जाती हैं, ऐसे ही विष्णु जिनके प्राण वह देवता भी आपसे आप नष्ट हो जायँगे क्योंकि, इनका जीवनमूल विष्णु ही है॥९॥जब तक मैं उसके मारनेका उपाय करूं तबतक तुम ब्राह्मण और क्षत्रिय जिस पृथ्वीपर बहुत बढ गये हैं, उस पृथ्वीपर जाकर तप, जप, यज्ञ, वेदपाठ, व्रत और दान करनेवालोंका वध करो ॥१०॥ क्योंकि यज्ञरूप, धर्म और ब्राह्मणोंकी क्रिया विष्णुका मूल है और देवता, ऋषि, पितृ, भूत और धर्म इनका परायण विष्णु ही है॥११॥और जहाँ जहाँ ब्राह्मण, गौ, वेद, वर्णाश्रमधर्मके कर्ता और कर्मकाण्डी हों, उन उन देशोंमें आग लगादो

तस्मिन् कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ॥विटपा इव शुष्यंति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥९ ॥ तावद्यात भुवं यूयं विप्र
क्षत्रसमेधितान्॥ सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥१०॥ विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान्॥ देवर्षि
पितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥ यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः॥तं तं जनपदं यात संदीपयत
वृश्चत॥१२॥ इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसादृताः॥ तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः॥१३॥पुरग्रामव्रजोद्या
5/1 नक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ॥ खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च॥ १४॥ केचित् खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् ॥
आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान् केचित् परशुपाणयः॥ प्रादहञ्छरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥ १५ ॥

और सबको मारडालो, क्योंकि वहलोग मुझको कुछ नहीं समझते और विष्णुका पूजन करते हैं, इस लिये उन सबकोमारना ही उचित है॥१२॥ उसी समय अपने नाथकी आज्ञा शिरपर धारण कर हिरण्यकशिपुसेआदर सत्कार पा, प्रजाका विध्वंसकरना जिनको अत्यन्त प्रिय था वह दानव दैत्य प्रजाका विध्वंस करने लगे ॥ १३ ॥ पुर, ग्राम, व्रज, उद्यान, क्षेत्र, वाटिका, आश्रम, खान; किसानोंके निवासस्थल; पर्वतकी कन्दरा, उनके नीचेके स्थान, घोष और राजधानी; इत्यादिसबमें आग लगाने लगे ॥१४॥ कोई कोई दैत्य कुदालोंसे सेतु, प्राकार, गोपुर द्वारोंको तोडने लगे, कोई कोई फरसे हाथोंमें लेकर उन वृक्षोंको काटने लगे कि जिनवृक्षोंसे आजीविका हो अर्थात् आम, जामुन, कदली, नासपाती इत्यादि,

कोई जलती हुई लकडियें हाथमें लिये प्रजागणोंके घरोंको ठोक ठोककर जलाने लगे.॥ १५ ॥ दैत्येन्द्रके भृत्योंने जब संसारमें इस प्रकारका उपद्रव मचाया तो देवतालोग अलक्षित हो स्वर्गको त्याग भूमिमें पर्यटन करने लगे ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुने भाईके मरनेसे महादुःखी हो उसकी दाहादिक क्रिया कर तिलांजलि दे भाईके पुत्रोंका सांत्वन किया, इस बातपर एक दृष्टान्त है * ॥ १७॥ फिर शकुनि,शंबरासुर, धृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच ॥ १८ ॥ नाम असुर;भ्रातृज और उनकी माता रुषाभानुको और अपनी माता

एवं विप्रकृते लोके दैत्येंद्रानुचरैर्मुहुः ॥ दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः ॥ कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसांत्वयत् ॥ १७ ॥ शकुनिं शंबरं धृष्टं भूतसंतापनं वृकम् ॥ कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥ १८ ॥ तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ॥ श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ अंबांब हे वधूः पुत्रा वीरं माऽर्हथ शोचितुम् ॥ रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥ २० ॥ भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ॥ दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥ २१ ॥

दितिको समझा बुझाकर देश कालका जाननेवाला सब असुरोंका अधिष्ठाता यह कहने लगा॥ १९॥ हिरण्यकशिपुबोला कि,हे जननी! हे वधू! हे पुत्रो! इस बलशाली महावीरका शोक मत करो,क्योंकि जिस वीरका शत्रुके सम्मुख मरण हो वह शूर सराहना करने योग्य है, इस बातको हम बहुत अच्छा समझते हैं ॥ २०॥ हे सुव्रते! भूतोंका जो इस संसारमें सम्बन्ध है सो कर्मों करके एकत्रित होजाते हैं और अपने कर्मोंसे ही बिछुड़

---

* दृष्टान्त– एक वैश्यने अपनी कुलवर्द्धिनी स्त्रीकी सांत्वना की. थोडे दिन पीछे उस वैश्यके एक कन्या उत्पन्न हुई तब उस वैश्यने बडे प्यारसे उसका नाम दुर्नामता रक्खा.समय पाकर दैवयोगसे वह कन्या मर गई, तब उस वैश्यकी स्त्री शिर पीटपीटकर अत्यन्त विलाप करने लगी, हाय दुर्नामता ! हाय दुर्नामता ! तू मुझे अकेली छोडकर कहां चली गई, अब मेरे दिन कैसे कटेंगे, तब वैश्यने अपनी स्त्रीके विलाप कलापोंको सुनकर कहा हे प्रिये! रोवे मत, हम तुम जीते हैं तो बहुतेरी दुर्नामता होजायंगी, ऐसा कह उस वैश्यने फिर अपनी स्त्रीका सांत्वन किया ॥

जाते हैं. इस संसारमें संग ऐसा है जैसे प्याऊपर पानी पीनेके लिये एकत्रित हो जाते हैं और पानी पीपीकर सब अपने अपने मार्गको चले जाते हैं ॥ २१ ॥ देखो ! इस आत्माका कभी नाश नहीं होता,यह अनेक योनियोंमें निवास करता है और देहादिकोंसे भिन्न है, इसलिये इसको किसी प्रकारका भय नहीं, क्योंकि,यह तो सदा शुद्ध; अविनाशी, अव्यय, सर्वगत, सबका आत्मा, परेसे परे जो परमात्मा उसकी माया करके गुणोंका त्याग कर सबके आत्माओंके स्वरूपोंको धारण करता है ॥२२॥ जैसे कोई पुरुष जलमें नौकापर बैठकर चले तो उसको नदीके तटके सब वृक्ष चलते हुए दिखाई देते हैं,जैसे मनुष्य गोल चक्र बाँधकर घूमे तो उसके नेत्र घूमने लगते हैं, परन्तु उसको भूमि घूमती प्रतीत होती है ॥२३॥ ऐसे ही गुणोंकी उपाधिसे लिंगशरीर विचरता रहता है, इसलिये यद्यपि आत्मा सदा शुद्धरूप है; तो भी अज्ञानी लोगोंने उसका

नित्यआत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः ॥ धत्तेऽसावात्मनो लिंगं मायया विसृजन्गुणान् ॥ २२ ॥ यथांभसा
प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥२३॥ एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः
पुमान् ॥ याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिंगो लिंगवानिव ॥ २४॥ एष आत्मविपर्यासो ह्यलिंगे लिंगभावना ॥ एष प्रिया
प्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥२५॥ संभवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः ॥ अविवेकश्च चिंता च विवे
कास्मृतिरेव च ॥ २६ ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥ २७ ॥

519

जीवन मरण मान रक्खा है. हे भद्रे ! आत्माका और लिंगशरीरका सम्बन्ध नहीं है, गुणोंके द्वारा मनके घूमनेसे अविकल पुमान् उसके समान भावको प्राप्त होता है, ऐसे ही ईश्वर शरीरसे रहित है ॥ २४ ॥ आत्माका उलट पलट होना जैसे शरीरसे आत्माका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, तो भी कहता है,मैं देह हूँ, यह देह मेरी है, ऐसे चित्तमें निश्चय कर लेना यही अज्ञानता है. प्रिय अप्रियपन अर्थात् प्रिय वस्तुका वियोग और अप्रिय वस्तुका संयोग यही है, इनहींके कारण अनेक योनियोंमें जन्म लेता है ॥ २५ ॥ उत्पन्न होना, नाश होना, अनेक प्रकारका शोक करना, अज्ञान, शोच विचार, स्वरूपकी चेष्टा; यह सब शरीरके अभिमानहीके विकार हैं॥२६॥इस प्रसंगके उदाहरणके लिये एक पुरातन

इतिहास यमका और मृतक शरीरके समीप बैठे हुए संबन्धियोंका है वह तुम सुनो ॥ २७ ॥ उशीनर देशमें सुयज्ञ नामक एक प्रसिद्ध नरेश था, शत्रुओंने उसको युद्धमें मार डाला, तब उसके सब संबन्धियोंने चारों ओरसे उसको घेर लिया और रोने पीटने लगे ॥ २८ ॥ उसका रत्नजडित कवच टूट गया था, अलंकार और मालाके मोती बिखर गये थे, बाणोंसे हृदय उसका बिंध रहा था, रुधिरमें सब शरीर डूबा पड़ा था ॥२९॥ बाल शिरके बिखर रहे थे, आँखें खुलीकी खुली रह गइं थीं, होठोंको दाँतोंसे चाबतेका चाबता रह गया था, मुखकमल धूलके उडनेसे मलिनसा हो रहा था और समरभूमिमें आयुध और भुजा उसकी कट गई थीं ॥३०॥ विधाताने जब उसकी यह दुर्दशा कर दी तब उसकी

उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ॥ सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥२८॥ विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् ॥ शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥२९॥ प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ॥ रजःकुंठमुखांभोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥३०॥ उशीनरेंद्रं विधिना तथाकृतं पति महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ॥ हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नंत्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥३१॥ रुदत्य उच्चैर्दयितांघ्रिपंकजं सिंचंत्य अस्रैः कुचकुंकुमारुणैः ॥ विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजंत्य आक्रंदनया विलेपिरे ॥ ३२ ॥ अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान्प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ॥ उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥३३ ॥ त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ॥ तत्रानुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि॥३४॥

रानियें अपने पतिकी यह दुर्गति देख, अत्यन्त दुःखित हो रोरोकर कहने लगीं कि, हे प्राणनाथ ! हम मरीं, फिर दोनों हाथोंसे छाती पीटती पीटती उसके पाँवोंमें जा पडीं ॥ ३१ ॥ और उच्चस्वरसे रुदन जो किया तो स्तनोंकी कुमकुम धुल धुलकर जले हुए रक्तके सदृश जो बिन्दु गिरते थे; उनहीं आँसुवोंसे अपने पतिके चरणारविन्दोंको सींच रही थीं, केश और आभूषण उनके बिखर रहे थे, उनके कठिन विलापोंको सुन सुनकर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें शोक उत्पन्न होता था॥ ३२॥ अरे निर्दयी विधाता! तैंने हमारे स्वामीको दृष्टिके अगोचर कर दिया, जो पहिले उशीनर देशके रहनेवालोंको जीविका देनेवाले थे, हाय! वह आज उन लोगोंको शोकके देनेवाले हो गये॥ ३३॥ हे महीपते! तुम सरीखे सुहृद् विना हम जीकर क्या

करेंगी।इसलिये हे प्राणपति! जहां आपके जानेकी इच्छा होवहाँ हमको भी अपने साथले चलो,क्योंकि,वहाँ आपके चरणोंकी सेवा कौन करेगा ॥३४॥ इस प्रकार सब रनिवासकी रानियें अपने मृतक पतिकागोदीमें शिर धरे रोरो कर विलाप कररहीं थीं और उसका संस्कार नहीं करने देंतीथीं,इसी रोवापीटीमें सूर्य अस्त होगया *॥३५॥तब उस राजाके शवके समीपके बैठनेवालोंकारोना सुन यमराज बालकका रूप धरकर वहाँ आये और उन लोगोंसे कहा॥३६॥ यमराज बोले कि,हे मनुष्यो ! तुम सब मुझसे बहुत बडे हो और सदासे संसारकेलोगोंका जीवन मरण

एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ॥ अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥ ३५॥ तत्र ह प्रेतबंधूनामाश्रुत्य परिदेवितम् ॥ आह तान् बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥ ३६ ॥ यम उवाच ॥ अहो अमीषां वयसाधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ॥ यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचंत्यपार्थम् ॥३७॥ अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिंतयामः ॥ अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥३८॥ य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुंपते च यः ॥ तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥३९॥

देखते आये हो;इतने पर भी तुम लोगोंको बड़ाभारी मोह है,यह पुरुष जहाँसे आया था वहाँ चला गया,अब तुम लोगोंका शोचविचार करना वृथा है ॥ ३७ ॥तुमसे तो हम ही बहुत अच्छे हैं, जो हमारे माता पिताने इस बाल्य अवस्थामें अकेला त्याग दिया,और हम वनमें मारे मारे फिर रहे हैं तो भी किसी बातका सन्देह नहीं और सिंह व्याघ्रादिक भी हमें कोई नहीं खाता,हमको निश्चय है कि, जिस परमेश्वरने गर्भमें हमारी रक्षा की है वहीसब ठिकाने हमारा रक्षक है॥३८॥जो अविनाशीपुरुष अपनी इच्छा करके इसजगतको रचता है वही इसकी रक्षा करता है, वही

---

* **शंका**—प्राणी दुःखी हो चाहे सुखी हो परन्तु तीन लोकोंमें प्राणियोंको सुख होनेके लिये मुनि लोग उपदेश किया करते थे,ऐसा शास्त्रमें सुना है,. परंतु यमराजने किसीको उपदेश नहीं किया ऐसा सुना है,सो यमराजने सुयज्ञकी स्त्रियोंको उपदेश क्यों किया ?

उत्तर—सुयज्ञ राजाकी स्त्री बाल्यावस्थामें यमराजका सेवन करती थीं इसलिये रानीको दुःखी देखकर यमराजने रानीके सम्मुख आकर ज्ञानदिया और सब शोक दूर किया,अन्तसमय पतिके लोकको भेज दिया रानी ज्ञानपाकर अपने पतिके पास गई इसलिये यमराजने उसको उपदेश किया ॥

संहार करताहै. हे स्त्रियो ! यह सब चराचर जीवात्मक संसार उस परमात्माका खिलौना है, इसलिये सबका मारने जिलानेवाला प्रभु ईश्वर हीहै॥३९॥ देखो ! जो मार्गमें पडेहुए हैं उनकी रक्षा परमात्मा करता है, उनको कोई नहीं मारसकता है और जिनकी आठों पहर अत्यन्त रक्षा होती है और घरहीमें बैठे रहते हैं वह मर जाते हैं. जिनका कोई पालन पोषग करनेवाला नहीं और अनाथ हैं, वनमें अकेले पडे हैं और परमात्माकी उनपर दृष्टि है तो वह सदा आनंद करते हैं, और जिसकी घरमें सब रक्षा करते हैं और परमात्माकी रक्षा नहीं, वह किसीप्रकार जी नहीं सकता ॥४०॥ इसी प्रकार जीव अपने कर्मोंके अनुसार समय पाकर जन्मते हैं और कर्मों हीं करके मरते हैं, यद्यपि आत्मा मायामें स्थित है परंतु तो भी मायाके गुणोंसे सम्बन्ध नहीं रखता, जीव ही बन्धनमें आकर नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥ यह देह अज्ञानसे परमात्मारूप दृष्टि

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥ ४० ॥ भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवंति काले न भवंति सर्वशः ॥ न तत्र हात्मा प्रकृतावपि स्थितस्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ॥४१॥ इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग् भौतिकमीयते गृहम् ॥ यथोदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः कालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥४२॥ यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः ॥ यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान्सर्वगुणाश्रयः परः ॥ ४३ ॥

आता है, परन्तु विचार करके देखो तो वह आत्मा सबसे भिन्न है, जैसे प्राणी मट्टीके घरमें रहता है और वह अज्ञानी उसको अपना मानता है परंतु वास्तविकमें वह घर उससे भिन्न है. ऐसे आत्मारूप अनुमान किया हुआ यह देह भी आत्मासे भिन्न है, जलसे उत्पन्न हुए जलके बबूलेकी नाईं और पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घटादिकके तुल्य और सुवर्णसे उत्पन्न हुए कडे कुंडल इत्यादिकके सदृश कोई समय पाकर बन जाते हैं, जब उनका विकारनहीं रहता तोफिर कुछ कालोपरान्त सब विनष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही जीवको जानो. कुछ शरीरके नाश होनेसे आत्माका नाश नहीं होता ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न प्रतीत होता है, और उसीमें व्याप्त रहता है, जैसे पवन देहसे विलग जान पडता है और देहहीमें स्थित

रहता है, जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु किसीमें आसक्त नहीं होता ऐसे ही यह आत्मा शरीरमें वास करनेपर भी शरीरादिकके जन्म मरणादिक गुणोंमें आसक्त नहीं होता ॥४३॥ हे मूर्खों ! यह सुयज्ञ तुम्हारा अधीश तुम्हारे सम्मुख सो रहा है, फिर तुम शोक किसप्रकार करते हो ? और जो तुमको यह सन्देह हो कि, अभी तो यह बोलता था और सुनता था और अब नहीं बोलता, इस बातका शोक करते हैं, सो इस बातका शोक करना तुम्हारा व्यर्थ है, क्योंकि, जो श्रोता और वक्ता इस देहमें है उसको तो तुमने देखा ही नहीं था, उसका शोच करना क्या ? ॥४४॥ न तो इस देहमें कोई सुननेवाला है न कोई बोलनेवाला है, केवल मुख्य इसमें एक महाप्राण है जो इन्द्रियोंके द्वारा वासनाका ग्राहक आत्मा है वह इस शरीरसे सम्बन्ध नहीं रखता ॥ ४५ ॥ भूत, इन्द्रिय, मन, लिंग, उच्च नीच देहोंको धारण करता है और त्यागता है और आत्मा

सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ॥ यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित्॥४४॥ यः श्रोता नानुवक्ताऽयं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ॥ यस्त्विहेंद्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥४५॥ भूतेंद्रियमनोलिंगान् देहानुच्चावचान् विभुः॥ भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥४६॥ यावल्लिंगान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्मनिबंधनम्॥ ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते॥४७॥ वितथोऽभिनिवेशोऽयं यद्गुणेष्वर्थदृग्वचः॥ यथा मनोरथः स्वाप्नः सर्वमैंद्रियकं मृषा ॥ ४८ ॥ अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचंति तद्विदः॥ नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥ ४९ ॥

सबसे पृथक् है, तो भी प्राण, इंद्रिय, मनके सम्बन्धसे भिन्न भिन्न देहोंको ऐसे मानता है कि, 'मैं हूँ, मेरा है' तबहींतक क्लेश सहता है और जब इसको ज्ञान हो जाता है तब सब अभिमान तज निष्कलंक हो जाता है ॥ ४६ ॥ जबतक लिंगशरीरके संग आत्मा है तबहीतक उसको कर्मोंका बन्धन है और विपर्यय आदि क्लेश मायायोग वर्तै है ॥ ४७ ॥ यह सब झूठा भाव है, गुणोंमें अर्थकी दृष्टिका वचन मानना और सुखदुःखको आत्माका धर्म मानना और उसमें ही लिप्त रहना, यह वृथा मन लगाना है और इंद्रियसंबंधी जो अनित्य पदार्थ आत्मामें प्रतीत होते हैं, वह सब मनोरथ स्वप्नवत् व्यर्थ हैं इसलिये महात्मा पुरुष आत्मा और शरीरादिकके सम्बन्धको अनित्य समझकर किसी बातकी चिन्ता नहीं करते ॥ ४८ ॥ जो लोग नित्य अनित्यका विचार करनेवाले हैं, वह नित्य अनित्यका शोच नहीं करते क्योंकि, जो भवित-

व्यता है वह किसी प्रकार मिट ही नहीं सकती, फिर शोक सन्ताप करनेसे क्या प्रयोजन ? इसलिये पुरुषको चाहिये कि, किसी प्रकारका उपाय न करे; क्योंकि, इसका कोई उपाय ही नहीं ॥ ४९ ॥ शोकग्रस्त मनुष्योंके चित्त शान्त करनेके लिये एक दृष्टांत कहते हैं; परमेश्वरका रचा हुआ पक्षियोंका मारनेवाला महाभयंकर लुब्धक नाम एक व्याध था, वह जहाँ तहाँ पक्षियोंके फांसनेके लिये जाल फैला तन्दुलोंका लोभ दिखाकर सदा जीवोंको मारा करता था ॥ ५० ॥ एक दिन उसने एक कुलिङ्ग पक्षीका जोडा वनमें विचरता देखा और उसकी कुलंजिनीको लुब्धकने उसी समय लुभाय लिया ॥ ५१ ॥ कालविवश वह कुलंजिनी उसके जालमें फँस गई. उसको फँसी देखकर वह

लुब्धको विपिने कश्चित् पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः ॥ वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥५०॥ कुलिंगमिथुनं तत्र विचरत् समदृश्यत ॥ तयोः कुलिंगी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥ ५१ ॥ सासज्जत शिचस्तंत्यां महिषी कालयंत्रिता ॥ कुलिंगस्तां तथापन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ॥ स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥ अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः ॥ कृपणं माऽनुशोचंत्या दीनया किं करिष्यति ॥ ५३ ॥ कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ॥ दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥ ५४ ॥ कथं त्वजातपक्षांस्तान् मातृहीनान् बिभर्म्यहम् ॥ मंदभाग्याः प्रतीक्षंते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥ ५५ ॥

कुलिङ्ग अत्यन्त व्याकुल हुआ और अनेक प्रकारके विलाप करने लगा ॥ ५२ ॥ स्नेहसे छुड़ानेमें असमर्थ कृपण उस अपनी पत्नीको दुःखित देख महाशोक करने लगा और बोला कि, अहो दैव ! तू बडा निर्दयी है, जो ऐसी दयावाली स्त्रीसे मेरा वियोग करा दिया ॥ ५३ ॥ मुझ कृपणका शोक करनेवाली इस दीनासे यह क्या काम निकालेगा ऐसे कठिन दुःखसे मुझे भी ईश्वर अब उठाले, क्योंकि आधे शरीरसे मेरा क्या प्रयोजन निकलेगा ? इससे वियुक्त दीन दुखिया मैं दुःखसे जीवन बिताकर क्या करूंगा ॥ ५४ ॥ देखो ! अभी इन छोटे छोटे बच्चोंके पंखतक भी नहीं निकले, हाय! आज वह विना जननीके होगये, उन माताविहीन बच्चोंको मैं कैसे रक्खूंगा और कौन उनका पालन करेगा ? अरे मंदबुद्धि

विधाता। वह कोमल पंखहीन बच्चे घोंसलेमें बैठे हुए अपनी माताकी बाट देख रहे होंगे कि, हमारे खानेके लिये कुछ भोजन लाती होगी सो वह अपनी जननीका मरण सुन क्या करेंगे और कैसे धैर्य धरेंगे ? और मैं विना प्राणप्यारीके कैसे जीऊंगा ? हाय ! आज मेरा सब गृहस्थाश्रम नष्ट होगया॥ ५५॥ इस प्रकार अपनी प्यारी पत्नीके वियोगसे आतुर हो विलाप करता और आँखोंसे आँसू बहाता जालके पास गया, तब काल प्रेरित बाणसे उस वधिकने झट उसको भी मारकर गिरा दिया ॥ ५६॥ हे मूर्खो ! ऐसेही तुम्हारी भी मृत्यु होगी, इस देहका क्या विचार करो हो ? ज्ञानी बनो. इसका सौ वर्षतक शोक करनेसे भी इसको नहीं पाओगे ॥५७॥ हिरण्यकशिपु बोला कि, यह बात उस बालककी सुन सब

एवं कुलिंग विलपंतमारात्प्रियावियोगातुरमश्रुकंठम् ॥ स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥ ॥ ५६ ॥ एवं यूयमपश्यंत्य आत्मापायमबुद्धयः ॥ नैनं प्राप्स्यथ शोचंत्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ॥ ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥५८॥ यम एतदुपाख्याय तत्रैवांतरधीयत ॥ ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्सांपरायिकम् ॥ ५९॥ ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ॥ क आत्मा कः परो वाऽत्र स्वीयः पारक्य एव वा ॥ ६० ॥

SB

स्त्रीपुरुष अत्यन्त विस्मित हुए और सब जातिके मनुष्योंने तथा राजमहिषियोंने माना कि, सब संबन्ध मिथ्या है ॥ ५८ ॥ इतनी कथा कह यमराज तो अन्तर्धान होगये और उस सुयज्ञके सजातीय सब मिलकर उस मृतकका संस्कार करने लगे ॥ ५९ ॥ इस लिये हे जननि ! तुम भी शोक मत करो, आत्मा सबसे परे है, अपना पराया कोई नहीं है. यह सब अज्ञानपनकी भूल है. यहाँ अपना कौन है ? और पराया कौन है ? तुम कौन हो और दूसरा कौन है ? ॥ ६० ॥

यह सब अज्ञानतासे अपना पराया मान रक्खा है,जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुषहैं वह ज्ञानसे आत्माका दर्शन करतेहैं॥६१॥श्रीनारदजी बोले कि, इस
प्रकार दिति और पुत्रवधूने दैत्यपतिका यहवाक्य सुन शोक सन्तापको क्षणभरमें त्याग अपनामन परमेश्वरके ध्यानमें लगादिया और यह
समझा कि,वही राम सबमें रम रह है॥६२॥इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामुशीनराख्याने कुलिञ्जकथाकथने दितिशोकापनयनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥दोहा–इस तृतीय अध्यायमें, कनककशिपु तप कीन्ह । ब्रह्माने सुप्रसन्न हो, ताहि महावर दीन्ह ॥१॥
नारदजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपुने अपने आपको अजर अमर समझकर कहां आजपृथ्वीपर मेरे समान कोई नहीं ऐसे अपने

स्वपराभिनिवेशेन विना ज्ञानेन देहिनाम् ॥ ज्ञानेनात्मानमीहन्ते ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥ ६१ ॥ नारद उवाच ॥ इति
दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा ॥ पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते
महापुराणे सप्तमस्कन्धे दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ॥
आत्मानमप्रतिद्वंद्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥ स तेपे मंदरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ॥ ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः
पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥ जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ॥ तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः
स्थानानि भेजिरे॥३॥तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतःसधूमोऽग्निस्तपोमयः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥

आत्माको एक बड़ा राजा मान सब पृथ्वीका राज्य करनेकी इच्छा की॥१॥ वह हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वतकी कन्दरामें जाकर महादारुण
तप करनेके लिये ऊपरको हाथ उठा, आकाशकी ओरको दृष्टि कर, एक पाँवके अँगूठेके सहारेसे खडा हुआ ॥२॥ जब तपस्या करते २ कुछ
समय व्यतीत हुआ तो धूम सहित तपकी अग्नि उसकी जटाओंमें कैसे चमक रही थी, जैसे प्रलयकालके सूर्यकी किरणोंकी कांति शोभायमान
होती है, जब वह इस प्रकार महाकठिन तप करने लगा तब सब देवता अपने २स्थानोंपर आये ॥३॥ उसके महाबलका उद्योग देखकर

---

*कवित्त-ऊखमें ज्यों मधुराई सेंधेमें है नमकाई, तिलनमें तेल जैसे शीतलता ओलेमें । नीममाहिं कडुवाइ मिर्चमें है तीक्षणता ज्यों, दूध माहिं घृत और सुगन्ध ज्यों बेलेमें ॥ आममें खटाई जैसे अग्निमें है उष्णताई, शोरमें है खारापन रुई ज्यों बिनोलेमें ॥ काष्ठमें है अग्नि जैसे बीजमाहिं वृक्ष छिपा, ऐसे ही राम छिपा प्राणियन चोलेमें ॥

और सुनकर सब देवता डरके मारे घबरा गये और जहाँ जिनके सींग समाये वहाँ चल दिये, उस समय हिरण्यकशिपुके शिरमेंसे उत्पन्न हुई तपोमय धूमसहित अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला तिरछी, बाँकी, ऊँची, नीची चारों ओरको फैलकर त्रिभुवनको तपाने लगी ॥ ४ ॥ नदी और समुद्र चलायमान होगये, सातों द्वीप पर्वतोंसमेत भूमि काँपने लगी, ग्रहोंसहित तारागण टूट २ कर गिरने लगे, दशों दिशा प्रज्वलित होगईं॥५॥ उस अग्निके तपनेसे देवतालोग स्वर्गको छोड़ ब्रह्मलोकमें गये और वहां जाकर विनयपूर्वक ब्रह्मासे कहा कि, देवदेव ! हे प्रजापते ! ॥ ६ ॥ हे दीनदयालु ! दैत्येंद्र हिरण्यकशिपुके तपके प्रभावसे तप्त हुए स्वर्गमें हम निवास नहीं कर सकते. हे समर्थ ! जो लोकका

चुक्षुभुर्नद्युदन्वंतः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ॥ निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥ तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा
ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ॥ धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥ दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ॥
तस्य चोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे ॥ लोका न यावन्नंक्ष्यंति बलिहारास्तवाभिभोः ॥ ७ ॥ तस्यायं किल
संकल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ॥ श्रयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितम्॥८॥ सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ॥
अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥९॥ तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ॥ कालात्मनोश्च
नित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥ १० ॥

कल्याण चाहो तो उसकी शीघ्र शांति करो क्योंकि, कहीं जबतक बलि देनेवाले भूमिवासी नष्ट न होजायँ, वह उपाय करो और जो आपके बलि देनेवाले ही नष्ट हो गये तो फिर क्या ?॥ ७ ॥ आपको यह भी प्रगट है कि नहीं ? कि महा विकराल तप करके उस दैत्याधीशने जो संकल्प किया है वह किसलिये कर रहा है ? यद्यपि आप सब जानते हैं और कोई बात आपसे छिपी नहीं है, परन्तु जैसा हमने सुना वैसा आपके सम्मुख कहते हैं, और हमने पहिले भी आपसे कहा था ॥ ८ ॥ दोहा–कनककशिपुने यह सुना, तप कर विधि पद लीन्ह । सो विचार विधि होनहित, दैत्य कठिन तप कीन्ह ॥ ९ ॥ केवल तप, योग, समाधिके बलसे ब्रह्माने सब विश्व और चराचरको रचा है और सब स्थानोंसे श्रेष्ठ स्थानमें जसे ब्रह्मा आप बैठता है उसी ढंगसे मैं भी कठिन तप करके अपने आत्माको वैसा ही प्रतापी बनाऊंगा, जैसा

प्रतापी चतुराननहैं॥१०॥कालात्मा नित्य होनेसे मुझको भी कालका भय नहीं रहेगा; मैं आप कालरूप होकर अपने पराक्रमसे उसको अन्यथा करूंगा ॥ और दैत्योंको देवता और देवताओंको दैत्योंकी पदवी दूंगा और पातालके लोकोंको आकाशमें, आकाशके लोकोंको पातालमें वसाऊंगा,पापको पुण्य और पुण्यको पाप बऊंगा. जो चाहे सो हो परंतु एकबार विश्वको लौटपोट करके दिखादेना और जिसवैकुण्ठको श्रेष्ठ समझ रक्खा है उसमें नीच लोगोंको बसा देना और नरकका तो नाम ही न रक्खूंगा और कल्पके अन्तमें वैष्णवादिक कालके कौर मेरा क्या कर सकते हैं.मेरा और तो किसी नाशवान् पदवीसे प्रयोजन ही नहीं केवल मुझको तो एक ब्रह्मपदवीकी अभिलाषा है,११ऐसी हठ उसकी हमने

अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा ॥ किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पांते वैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥ इति शुश्रुम
निर्बंधं तपः परममास्थितः ॥ विधत्स्वानंतरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥ १२॥ तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ॥
भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ ॥ १३ ॥ इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ॥ परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ
दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४ ॥

सुनी है, इसलिये वह महाकठिनतप कर रहा है हे त्रिभुवनेश्वर ! पहिले इस कामको कर लो और काम पीछे करना.॥ १२ ॥ हे जगत्पते ! गौ और ब्राह्मण आपके मुख्य स्थान हैं और आपही भक्तहितकारी हैं आप ही उत्पत्ति,कल्याण,लक्ष्मी, कुशल और विजयकेलिये हैं.इसलिये हे त्रिलोकीनाथ ! जब आपहीका स्थान छिन गया तो फिर हम क्या कर सकते हैं ?॥ १३ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! जब भगवान् स्वयंभूकी देवताओंने इस प्रकार प्रार्थना की तब भृगु दक्ष आदि प्रजापतियोंको संग लेकर ब्रह्माजी हिरण्यकशिपुके आश्रममें गये. *॥ १४ ॥

---

* **शंका**—जिस जिस प्राणीने ब्रह्माजीकी तपस्या की उन सबको ब्रह्माजीने अपनी इच्छानुसार वर दिया, परन्तु देवताओंने ब्रह्माजीकी प्रार्थना नहीं की कि, तुम इसको वर दो, परन्तु इस हिरण्यकशिपुको देवताओंके कहनेसे वर क्यों दिया ? यह बडा आश्चर्य है ।

उत्तर—हिरण्यकशिपुने अपने मनमें यह विचार कर तप किया था कि,पहिले वरदान लेकर पीछे भगवान्को बन्धनमें डालूंगा. हिरण्यकशिपुके मनकी बात जानकर ब्रह्माजीने हिरण्यकशिपुको वरदान नहीं दिया, परन्तु जब देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा,हम सब लोग दुष्टके तपके तेजसे जले जाते हैं, जब देवताओंको ऐसा दुःखी देखा तब ब्रह्माने हिरण्यकशिपुको वरदान दिया इसलिये देवताओंकी प्रार्थनासे वर दिया था ।

बाँबी, तृण और कीचकोंसे उस दैत्यको ढका हुआ देखकर ब्रह्माजीने समझा कि मिट्टीका ढेर है, फिर समीप जानेसे एक छिद्रमें कोई ऐसा प्रकाश दृष्टि आया, जैसे घटमें सूर्य चमकता है ऐसे उसके नेत्र चमके, देखा तो चींटी और कीडोंने उसकी सब त्वचा, मांस और रुधिरको चाट लिया था, केवल हड्डियें ही हड्डियें रह गईं थीं तो भी वह अपने तपके प्रतापसे त्रिलोकीको भस्म किये डालता था, मेघसे ढके हुए मार्तण्डकासा प्रचण्ड तेज था ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो हंसवाहन ब्रह्मा हँसकर बोले, कि हे कश्यपतनय! तेरा कल्याण हो, उठ उठ, तेरा तप सम्पूर्ण हुआ, तेरा सब काम सिद्ध होगा, हम तेरे समीप वर देनेको आये हैं, अब जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग ॥ १७ ॥

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ॥ पिपीलिकाभिराचीर्णं मेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥ १५ ॥ तपंतं तपसा लोकान्यथाऽभ्रपिहितं रविम् ॥ विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन्हंसवाहनः ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपस्सिद्धोऽसि काश्यप ॥ वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥ १७ ॥ अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् ॥ दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥ १८ ॥ नैतत् पूर्वर्षयश्चक्रुन करिष्यंति चापरे ॥ निरंबुर्धारयेत्प्राणान्को वै दिव्यसमाः शतम् ॥ १९ ॥ व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ॥ तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनंदन ॥ ॥ २० ॥ ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुंगव ॥ मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥ २१ ॥

तेरे हृदयका जो अद्भुत सार है वह हमने जान लिया और तेरे समान धैर्यवान् कौन होगा ? तेरे सब शरीरको डांसादिक कीड़ोंने खा लिया है, केवल तेरे प्राणमात्र हड्डियोंमें रहगये हैं ॥ १८ ॥ ऐसा कठिन तप अबतक न तो किसीने किया और न आगे कोई करेगा विना जलपान किये देवताओंके दिव्य सौ वर्ष तक कौन ऐसा प्राणी है जो शरीरमें अपने प्राणोंको धारण कर सकता है? ॥ १९ ॥ यह तेरा निश्चय और महाघोर तप बडे बडे धैर्यवानोंसे भी होना बहुत कठिन है. हे दितिनन्दन! तेरा निश्चय देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ, क्योंकि तैंने तपमें पूर्ण निष्ठा करके मुझको जीता है ॥ २० ॥ हे दैत्योंमें श्रेष्ठ! मैं तुझे सत्य आशीर्वाद देकर तेरा सब मनोरथ पूर्ण करूंगा तेरा जो देह मरनेसे मुक्त

नहीं हो सकता और मैं जो मरनेसे मुक्त हूँ, सो तुझको मेरा दर्शन निष्फल कभी नहीं होनेका ॥२१॥नारदजी बोले कि,सबसे प्रथम देहधारी ब्रह्माजीने इतनी बात कहकर हिरण्यकशिपुकी ओर फिर देखा,कि जिसका शरीर चींटियोंने चाट लिया था, अत्यन्त दिव्य अमोघ तेजवाले कमण्डलुके जलको छिड़का॥२२॥ उसके छिड़कते ही वह दैत्येन्द्र उस कीचक वल्मीकमेंसे साहस, तेज,बल सहित जैसे काष्ठमेंसे अग्नि उपत्न्न होता है ऐसे उठा. सब अवयवोंसे सम्पन्न,वज्र समान अंग,युवा अवस्था, चित्तका सामर्थ्य बढाहुआ, तपेहुए सुवर्णके समान कांतिकी झलझलाहट, अग्निके समूहकी नाईं उठकर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥ आकाशमें हंसपर विराजमान हंसवाहन देवनके देवको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ,

॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽदिभवो देवो भक्षितांगं पिपीलिकैः ॥ कमंडलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥ २२ ॥
स तत्कीचकवल्मीकात् सहओजोबलान्वितः ॥ सर्वावयवसंपन्नो वज्रसंहननो युवा उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरि
वैधसः ॥ २३ ॥ स निरीक्ष्यांबरे देवं हंसवाहमवस्थितम् ॥ ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ २४ ॥ उत्थाय
प्रांजलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ॥ हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरागद्गदयाऽगृणात्॥२५॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ कल्पांते
कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसा वृतम् ॥ अभिव्यनग् जगदिदं स्वयंज्योतिस्स्वरोचिषा ॥ २६ ॥ आत्मना त्रिवृता चेदं
सृजत्यवति लुंपति॥ रजस्सत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः॥२७॥ नम आद्याय बीजाय ज्ञान विज्ञानमूर्त्तये॥प्राणेंद्रि
यमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥ २८ ॥

उनको शिरसे पृथ्वीपर दंडवत्‌ प्रणाम कर दर्शन किया और मनमें परमानंद माना ॥२४॥ उस समय भृगु आदि प्रजापतियोंको ब्रह्माजीके साथ देख हिरण्यकशिपुके चित्तमें अत्यन्त हर्ष बढा, नेत्रोंसे आंसू निकलने लगे, शरीर पुलकायमान होगया, गद्गद वाणीसे ब्रह्माज़ीकी स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि, कल्पके अन्तमें कालसे रचे हुए अत्यन्त अन्धे तमसे ढके हुए इस विश्वको जिस परमात्माने आप अपनी ज्योतिसे प्रकाश किया है, उस स्वयंप्रकाश परमात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ २६ ॥ जो आप त्रिगुणात्मक स्वरूपसे इस सृष्टिको उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहारते हो, ऐसे रज,सत्त्व,तम,तेज रूपवाले परमात्माको वारंवार नमस्कार है ॥ २७ ॥ आद्यबीज ज्ञानविज्ञान-

मूर्ति, प्राण, इंद्रिय, मन, बुद्धि, रूप वैकारिक व्यक्तिको धारण करनेवाले परमात्मा आपको मैंवारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥ आप ही स्थावर, जंगम, जगत्के ईश हो, आप ही प्रजाओंके प्राण हो, आप ही मन इंद्रियोंके पति हो, आप ही चित्तके चित्त हो, आप ही आकाशादिक पंच महाभूतगणोंके और शब्दादिक पञ्च विषयवासनाओंके उत्पन्न करनेवाले हो ॥ २९ ॥ आप ही वेदत्रयीके चार होता करके सात यज्ञोंके कर्ता हो, आप ही प्राणियोंके आत्मा और आत्मज्ञानियोंके अनादि अनन्त अपार अखंडित पंडित सर्वान्तर्यामी हो ॥ ३० ॥ आप ही कालके प्रवाहरूप, लव, क्षण इत्यादि विभागोंसे जीवमात्रकी आयुका क्षय करते हो, आप ही कूटमें स्थित आत्मा, ब्रह्मान्तर्यामी, अजन्मा,

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम्॥ चित्तस्य चित्तैर्मन इन्द्रियाणां पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः॥
॥ २९ ॥ त्वं सप्ततंतून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ॥ त्वमेक आत्मात्मवतामनादिरनन्तपारः कविरंत
रात्मा ॥ ३० ॥ त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ॥ कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं
जीवलोकस्य च जीव आत्मा॥ ३१ ॥त्वत्तः परं नापरमप्यनेजदेजच्च किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति॥ विद्या कलास्ते तनवश्च
सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥ ३२॥ व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेंद्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ॥ भुंक्षे स्थितो
धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३३ ॥ अनंताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ॥ चिदचिच्छक्ति
युक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ३४ ॥

अविनाशी, सबसे बडे इस जीवलोकके जीवनमूल और आत्मा हो ॥ ३१ ॥ आपसे परे स्थावर जंगम कुछ भी चलायमान नहीं है, न आपसे ऊपर है और जो चलायमान है वह आपसे पृथक् नहीं है, चौदह विद्या, सोलह कला यह सब आपहीके रूप हैं, आपहीके उदरमें यह सब ब्रह्माण्ड वास करते हैं ऐसे परब्रह्म और त्रिगुणात्मक आप ही हो ॥ ३२ ॥ हे समर्थ ! यह भी भली प्रकार विदित है कि, यह स्थूल शरीर कि, जिससे इंद्रिय, प्राण, मनसे विषयोंको भोगते हो और अतिगुप्त आत्मा पुरुष पुराण ब्रह्मधाममें आप ही विराजमान हो ॥ ३३ ॥ हे अनंत ! अव्यक्तरूपसे जिसने यह सब विश्व विस्तृत किया है और विद्या अविद्या शक्तियुक्त जिन आपकी अद्भुत माया है, मन वचन कर्मसे

551

नहीं जाने जाते उस परब्रह्म परमेश्वरको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे वरदोत्तम ! जो आप मुझको वर देते हो तो मेरे मनोवांछित वर दो, तो मैं यह वर मांगता हूँ कि आपकी सृष्टिके रचे हुए किसी पदार्थ वा किसी जीवमात्रसे मेरी मृत्यु न हो ॥ ३५ ॥बाहर,भीतर, दिनमें, रातमें, आपके रचे हुए शस्त्रोंसे , भूमिमें, आकाशमें, मनुष्यसे, मृगसे ॥ ३६ ॥ प्राणधारी अथवा विना प्राणधारी, सुर, असुर, महासर्प इत्यादिकसे युद्धमें मेरी हार न हो और संसारमें एक राज्य मेरा ही हो ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार सब लोकपाल आपको मानते हैं वैसे ही मुझको मानें. तप, योग, प्रभाव मेरा कभी क्षीण न होने पावे और मेरा ऐश्वर्य कभी नष्ट न हो. हे नाथ ! जो देना है तो यह वर मुझको दीजिये॥ ३८॥

यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मे वरदोत्तम॥ भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥३५॥ नांतर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः॥ न भूमौ नांबरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि॥३६॥व्यसुभिर्वासुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः॥ अप्रतिद्वंद्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम्॥३७॥सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः॥तपोयोगप्रभावानां यन्न रिष्यति कर्हिचित्॥३८॥ इति श्रीमद्भा० म० सप्तमस्कंधे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥ नारद उवाच॥ एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ॥प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान्॥१॥ब्रह्मोवाच॥तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान्वृणीषे वरान्मम॥ तथापि वितराम्यंग वरान्यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥ ततो जगाम भगवानमोघाऽनुग्रहो विभुः ॥ पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥

इति श्रीम० महापु० सप्तमस्कन्धे भा० टी० हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥दोहा–इस चौथे अध्यायमें,कनककशिपु वर पाय। जीत चराचर देव सब,चढ़ो विष्णुपर धाय॥ १॥नारदजी बोले कि,जब हिरण्यकशिपुनें इस प्रकार ब्रह्माजीकी विनय की तब उसके तपसे प्रसन्न होकर वह वर ब्रह्माजीने उसको दिये, जो और पुरुषको मिलने महादुर्लभ हैं॥ १॥ब्रह्माजी बोले कि; हे तात ! ये वर मनुष्योंके लिये महाकठिन हैं, जिन्हें तू मुझसे माँगता है, परंतु तो भी मैंनें तुझको दिये, क्योंकि, तैंने बड़ा भारी तप किया है॥ २॥नारदजी बोले कि, हिरण्यकशिपुने मनो

वांछित वर पाकर परमेष्ठीका पूजन किया, तब अमोघअनुग्रही, समर्थ, सदा प्रजापति जिनकी स्तुति करते हैं, वह भगवान् ब्रह्माजी अपने ब्रह्मलोकको चले गये॥३॥इस प्रकार जब दैत्येन्द्रको वर मिले तो वह कञ्चनकासा तनु धारण करनेवाला कनककशिपु अपने भाई हिरण्याक्षके मरणका स्मरण कर विष्णुको अपना वैरी समझकर उनसे वैर करने लगा ॥४॥ और सब लोक,दशो दिशा,देवता,असुर, मनुष्य, इन्द्र, गंधर्व, गरुड, उरग ॥ ५ ॥ सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि,पितृपति; मनु, यक्षोंके राजा कुबेर, राक्षस, पिशाचेश, प्रेत,भूतेश्वर॥६॥इनके अतिरिक्त और सम्पूर्ण जीवमात्रको और उनके अधीश्वरोंको जीतकर अपने वशमें किया, फिर उस विश्वविजयी दैत्यराज हिरण्यकशिपुने लोकपालोंके स्थान तेजसहित हर लिये ॥ ७॥ देवताओंके उपवनोंसे सौंदर्ययुक्त देवलोकमें जाकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर

एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः ॥ भगवत्यकरोद्द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥४॥ स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च
त्रीन्महासुरः ॥ देवासुरमनुष्येंद्रान्गंधर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥ सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन्मनून्॥ यक्षरक्षःपिशा
चेशान्प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६॥ सर्वसत्त्वपतीञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् ॥ जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा
॥७॥देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ॥महेंद्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्यु
वासाखिलर्द्धिमत् ॥ ८॥ यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ॥ यत्र स्फाटिककुड्यानि वैडूर्यस्तंभपंक्तयः ॥ ९ ॥
यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च ॥ पयःफेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥ १० ॥

लिया और जो महेंद्रके राज्यभवन विश्वकर्माने अपने हाथोंसे निर्माण किये थे, वह सुंदर सुंदर मंदिर जो सदा सम्पदाओंसे पूरित, त्रिलोकीकी लक्ष्मी जहाँ सदा विराजमान उस सुरेन्द्रके स्थानमें हिरण्यकशिपुनामक महाबलवान् दैत्येन्द्र निवास करने लगा ॥ ८ ॥ जिस स्थानमें विद्रुमके सोपान, महामरकतमणिकी पृथ्वी, स्फटिक मणिकी भीतें, वैदूर्यमणिके खम्भोंकी मनभावनी सुहावनी अद्भुत कांति झलक रही थी ॥ ९ ॥ जहाँ चित्र विचित्र चंदोवे तन रहे थे, पद्मरागमणियोंके मनोहर आसन बिछ रहे थे, दूधके फेनसम श्वेतवर्ण और नाना प्रकारके रंगोंकी कोमल कोमल शय्या शोभा दे रही थीं, और उनमें चारोंओर मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं ॥ १० ॥

जिनके नूपुरोंकी झनकारसे सब संसारमें हित हो जाय, ऐसी ऐसी सहस्रों देवांगना कुन्दकलीसम दातोंवाली उस मनोहर रत्नस्थलीमें झन झन करती चारों ओर बिचरती फिरती थीं और अपने सुंदर चंद्रवदनके प्रतिबिम्बको उनहीमें निहार निहार प्रसन्न होती थीं ॥ ११ ॥ ऐसे शोभायमान, सुरेन्द्रके भवनमें महाबलशाली, पूर्णप्रतापी, उदारचित्त, विश्वविजयी, महाप्रचण्ड तेजस्वीके तपके तेजके प्रभावसे सब देवता जिसके चरणोंकी वारंवार वंदना करते थे ऐसा वह दैत्येन्द्र पूर्णप्रतापी अपने प्रतापसे चण्ड शासन करके दिन रात सुरपुरमें रमण करता था ॥ १२ ॥ हे राजन् ! महातीव्र सुगंधित वारुणीके मदसे विकराल लाल लाल नेत्र जिसके तप, योग, बल और पराक्रमसे सब स्थानोंके

कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयंत्य इतस्ततः ॥ रत्नस्थलीषु पश्यंति सुदतीः सुंदरं मुखम् ॥ ११ ॥ तस्मिन् महेंद्रभवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् ॥ रेमेऽभिवद्यांघ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचंडशासनः ॥ १२ ॥ तमंग मत्तं मधुनोरुगंधिना विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ॥ उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥१३॥ जगुर्महेंद्रासनमोजसा स्थितं विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ॥ गंधर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन् मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पांडव॥॥ १४ ॥ स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत् स्वेन तेजसा ॥ १५ ॥ अकृष्टपच्या तस्यासीत्सप्तद्वीपवती मही॥तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥ १६ ॥

अधिकारी और लोकपाल अनेक अनेक प्रकारकी भेटें लिये खड़े रहते थे. केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिवहीने उसकी सेवा नहीं की ॥ १३ ॥ हे पाण्डव ! इंद्रके आसनपर अपने पराक्रमसे बलात्कार बैठे हुए उस हिरण्यकशिपुके सम्मुख विश्वावसु, तुम्बुरु, अस्मदादिक सदा गाया करते थे और गंधर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सरा वारंवार उसकी स्तुति करते रहते थे ॥ १४ ॥ जो कोई वर्णाश्रमी जगत्में यज्ञ करता वह पहिले बहुतसी दक्षिणा देकर उसको पूजन कर लेता, पीछे और काम करता. यह अपने तेजके प्रतापसे यज्ञका हविर्भाग भी लेता था॥१५॥ सातो द्वीपोंकी पृथ्वी उसके भयकी मारी विना जोते बोये सब प्रकारके अन्न और फलादिकोंको उत्पन्न करती थी और आकाश सबके मनकी

आशा पूर्ण करता था और अनेक प्रकारकी आश्चर्यमयी सम्पदायें प्रगट होती थीं ॥ १६ ॥ रत्नाकर भाँतिभाँतिके रत्न अपनी लहरोंसे बाहर निकाल निकालकर डालने लगे, नदियां लवण, मद्य, मधु, घृत, क्षीररूप जलोंसे बहने लगीं ॥ १७ ॥ शैलोंकी कन्दराओंके भीतर महासुखदायक क्रीडास्थल आपसे आप बन गये. वृक्ष छहों ऋतुओंमें फूल फलोंसे फलने लगे. सब लोकपालोंके गुण पृथक् २ इकला हिरण्यकशिपु धारण करता था ॥ १८ ॥ इस प्रकार दिग्विजयी सम्राट् दानवराज दिग्वियज कर अपनी इच्छानुसार प्रिय

रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ॥ क्षारसिंधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १७ ॥ शैला द्रोणीभिराक्रीडं
सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः॥दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥ १८॥ स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान्प्रियान् ॥
यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेंद्रियः ॥ १९ ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ कालो महान्व्यतीयाय
ब्रह्मशापमुपेयुषः॥२०॥ तस्योग्रदंडसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥ अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥२१॥

विषयोंका आनन्दपूर्वक भोग भोगने लगा, परन्तु इन्द्रियोंको न जीतनेके कारण उसके मनको संतोष नहीं हुआ ॥ १९ ॥ इस भाँति ऐश्वर्यसे मदान्ध, अभिमानसे भराहुआ पाखण्डी वह हिरण्यकशिपु महा अनीति करनेवाला हुआ जिसके भयसे इंद्र इकहत्तर ७१ चौकडी तक राज्यसे भ्रष्ट रहा. ब्रह्मशापसे राक्षसतनु पानेवाले उस दैत्यको समस्त पृथ्वीका राज्य करते करते जब अनेक युग बीत गये ॥ २० ॥ उस हिरण्यकशिपुके प्रचण्ड दण्डसे भयभीत हुए सब देवता और लोकपाल सात द्वीप नौ खण्डोंमें भागे भागे फिरे. जब कहीं कोई

---

* दृष्टान्त—गंगाजीके किनारे एक ऋषीश्वर कथा कहा करते थे. वहाँ अनेक साधु संत कथा सुननेके लिये आते और एक राजा भी कथा सुननेको आता था. प्रसादके लालचसे वहाँ एक खाजभरी कुतिया भी आजाया करे और राजाके समीप ही बैठे. राजाने कथामें आना छोड दिया. बहुत दिनों पीछे वह राजा कोई पर्व समझकर गंगास्नानको आया और उन कथा कहनेवाले ऋषीश्वरको दण्डवत् प्रणाम किया. ऋषि आशीर्वाद देकर बोले कि, हे राजन् ! आप कथा सुनने क्यों नहीं आते ? राजाने कहा कि, यहां कुतिया खुजलीकी मारी खुरखुर करती रहती है इसलिये कथामें नहीं आता. ऋषि बोले कि कल आना. हम इस बातका भी प्रबन्ध करेंगे. ऋषिने अपने योगबलके प्रभावसे उस कुतियाको अप्सरा बना दिया. राजा ऋषिके कहनेसे कथामें आया और वह अप्सरारूप कुतिया फिर राजाहीके निकट बैठी तब तो राजा उसको देखकर अत्यन्त ही मोहित हुआ. सबसे पहिले आवे और उसीके पास बैठे. दिन रात उसीके ध्यानमें मतवाला रहे, सब घर बार छोड दिया, दिनमें चार फेरे वहांके करे और नित्यप्रति

रक्षक नहीं देखा तो सब देवता और लोकपाल मिलकर श्रीअच्युत भगवान् वासुदेवकी शरण गये ॥ २१ ॥ जहां सर्वात्मा जनार्दन भगवान् हैं, और निर्मलहृदय शान्तस्वभाव वाले संन्यासी जहां जाकर फिर संसारमें नहीं आते, उस दिशाको हम वारंवार नमस्कार

तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ॥ यद्गत्वा न निवर्तंते शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ २२ ॥ इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ॥ उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥ २३ ॥ तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिस्स्वना ॥ सन्नादयंती ककुभः साधूनामभयंकरी ॥ २४ ॥

करते हैं ॥२२॥ ऐसे कह मनको सावधान कर,बुद्धिको सुधार, निद्राको तज, इन्द्रियोंको जीत,समाधि लगाकर पवनके भोजनके आश्रयसे हृषीकेश भगवान्का भजन करने लगे ॥ २३ ॥ जिसका कोई स्वरूप नहीं,मेघके समान गम्भीर शब्दवाली,सब दिशाओंको गर्जित करती,

---

—परमात्मासे यही प्रार्थना करता था कि हे परमेश्वर! वह दिन कौनसा होगा, जिस दिन वह मृगनैनी पिकबैनी चन्द्रकांता मेरी कान्ता होगी ? कभी कुछ विचार करता, कभी कुछ विचार करता इसी सोचसागरमें डूबा रहता. एक दिन ऋषीश्वरने राजासे बूझा कि, हे राजन्! यह तुम्हारी क्या दशा होगई ? राजा नीचेको नेत्र कर बोला कि, इस मनमोहिनीने मेरे मनको मोह लिया है. जो मेरे संग इसका विवाह हो तो मेरे प्राण बचें और नहीं तो यह प्राण नहीं बचेंगे. उसके दीन वचन सुन ऋषीने उसी समय उस नवयौवनाको राजाके साथ कर दिया. वह सुन्दरी राजाके मंदिरमें रहने लगी; रातको जब राजा सो जाता तो वह कुतियारूपी स्त्री दीपकोंके तेलको चाटा करती. एक दिन सोतेसे राजाकी आंख खुल गई तो देखता क्या है कि, वह चन्द्रमुखी दीपकका तेल चाट रही है, तब तो राजा अत्यन्त घबराया. ऋषीश्वरके पासको भागा और आन अनुचरोंसे कह गया कि, इसको बांधकर अभी गङ्गातीरपर ऋषीश्वरके यहांको लाओ. राजाकी आज्ञानुसार भृत्य उसको बांधकर ले चले. राजाने ऋषीसे कहा कि, हे ऋषिराज! यह स्त्री तो डाकिनी निकली. इसको तो मैं अपने घरमें नहीं रखनेका. ऋषीश्वर बोले कि, हे भाग्यहीन कुतिया! अब क्या करूं ? मैंने तो तुझे राजमंदिर तक पहुँचा दिया परन्तु तैंने तो अपने स्वभावकी प्रकृतिको नहीं छोडा और दीपकका तेल चाटा, सत्य है प्राणी अपनी प्रकृतिको नहीं त्यागता. ऐसे ही तपके प्रभावसे हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीसे मिला परंतु अपने राक्षसी स्वभावको नहीं छोडा और उसने ऐसे ऐसे कुकर्म किये, पाखण्ड रचे, ग्रन्थके अधिक हो जानेके कारण सम्पूर्ण वृत्तांत नहीं लिख सकता।

साधु सन्तोंकी अभयदायक, आकाश वाणी उनको सुनाई दी ॥ २४ ॥ हे देवो ! तुम कुछ भय मत करो तुम्हारा कल्याण होगा, मेरी वाणी और मेरा दर्शन सब जगत्का मङ्गलदायक है ॥ २५ ॥ उस दुष्ट दैत्यकी दुष्टता मैं भले प्रकार जानता हूँ; इसकी शांति मैं बहुत शीघ्र करूंगा, अभी कुछ काल तुम धैर्य धरो * ॥२६॥ जो मनुष्य, देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण साधु, धर्म और मुझसे वैर करते हैं, वह शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं ॥ २७ ॥ दोहा—समदरशी अरु शान्तचित, मेरा भक्त उदार। नाम जासु प्रह्लाद है, धरा धर्म आधार ॥ ऐसे अपने

मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥ मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥ २५ ॥ ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य यत ॥ तस्य शांतिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥२६॥ यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ॥ धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥२७॥ निर्वैराय प्रशांताय स्वसुताय महात्मने ॥ प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥२८॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ॥ न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥ २९ ॥ तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ॥ प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥ ३० ॥

पुत्र महात्मासे वैर करेगा तो यद्यपि वर भी पा चुका है, तो भी उसको विना मारे कभी नहीं रहूंगा ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि, श्री लोकगुरु आदिपुरुष अविनाशीकी यह वाणी सुनकर देवताओंने अत्यन्त सुख माना और परत्माको प्रणाम कर सब अपने अपने स्थानोंको चले गये और उसी दिनसे असुरको मरा समझ लिया ॥ २९ ॥ उस दैत्यपतिने महाअद्भुत परम उदार चार कुमार उत्पन्न किये. उनमें प्रह्लाद

---

* **शंका**—हिरण्यकशिपुने जिस दिन ब्रह्मासे वरदान पाया उसी दिनसे धर्मसे, भगवान्से, देवताओंसे, गायोंसे, ब्राह्मणोंसे, वेदोंसे एकाएकी वैर करने लगा; तब भगवान्ने देवताओंसे क्यों कहा कि, देवता लोगो ! डरो मत, जब हमसे, धर्मसे, देवताओंसे, वेदसे, ब्राह्मणोंसे, साधुओंसे गायोंसे, वैर करैगा तब हम उसी ससय हिरण्यकशिपुको मार डालेंगे, यह बडी भारी शंका है ॥

उत्तर—इन सबसे पृथक् पृथक् वैर राक्षस करता था, राजनीति विचारके फेरफार करके वेदसे और भगवान्से तो बहुत शत्रुता करता था, परन्तु ब्राह्मणोंसे प्रीति भी करता और वैर भी करता था, ऐसी चतुराईसे वैर किया था और भगवान्ने कहा था कि जो सबसे एक बार वैर करैगा तो उसी समय मार डालेंगे ॥

सबसे छोटा, परन्तु गुणमें सबसे बड़ा और परमेश्वरका पूर्ण भक्त था ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंका रक्षक, शीलसंपन्न, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और सर्वत्र जीवमात्रको अपने आत्माके समान माननेवाला और सबका प्यारा सुहृद था ॥ ३१ ॥ सज्जन पुरुषोंके चरणोंका दासकी नाईं सेवन करता, पिताके समान दीन जनोंपर दयालुता करता, अपने सदृश जो नगरनिवासी थे उनको भ्राताकी तुल्य मानता और गुरुजनोंको ईश्वर समान जानकर पूजन करता था. विद्या, धन, रूप और कुलमें परिपूर्ण अर्थात् उत्तम होनेपर भी उसको इन बातोंका गर्व नहीं था ॥ ३२ ॥ कभी मनमें उद्विग्न नहीं होता, सब व्यसनोंसे दूर रहता, सुनता देखता सब कुछ, परन्तु इस लोकके और परलोकके पदार्थोंको अनित्य समझता, सदा

ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसंधो जितेंद्रियः ॥ आत्मवत् सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥ ३१ ॥ दासवत्संनतार्यांघ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ॥ भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ॥ विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तंभविवर्जितः ॥३२॥ नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ॥ दांतेंद्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशांतकामो रहितासुरोऽसुरः ॥ ३३ ॥ यस्मिन्महद्गुणा राजन्गृह्यंते कविभिर्मुहुः ॥ न तेऽधुनापिधीयंते यथा भगवतीश्वरे ॥३४॥ य साधुगाथा सदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ॥ प्रतिमानं प्रकुर्वंति किमुतान्ये भवादृशाः ॥३५॥ गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ॥ वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥ ३६ ॥

इंद्रिय, प्राण, शरीर, बुद्धिको दमन करता रहता, मनहीमें सब कामनाओंको शान्त करता रहता था. यद्यपि असुरके घरमें जन्मा था, परन्तु तो भी सुरोंको सुख देनेवाला था ॥ ३३ ॥ हे राजन्! जिसके गुणोंको कविलोग वारंवार ग्रहण करते हैं. ईश्वरके गुण जैसे छिपाये नहीं छिप सकते, ऐसे ही प्रह्लादके गुण भी आजतक जगत्में प्रगट हो रहे हैं ॥ ३४ ॥ हे नरेन्द्र! सुर असुर लोगोंके शत्रु हैं, परंतु जहां कहीं कथा वार्ता और बडे बडे महात्माओंकी गणना होती है वहाँ पहिले प्रह्लादहीकी उपमा देते हैं और आप सरीखे सज्जनोंका तो कहना ही क्या है? ॥ ३५ ॥ यह तो सब मैंने उसके गुणोंकी और यशकी बडाई की और उसके गुणोंकी तो गिनती ही नहीं, भला फिर उसके गुणोंकी महिमा कौन वर्णन

कर सकता है ? उसके असंख्य गुण समझने चाहिये, जिसकी वासुदेव भगवान्‌में स्वाभाविक प्रीति है ॥३६॥ बालपनका उसने कोई खेल न खेला और न कोई खिलौना हाथमें लिया, केवल शालिग्रामकी मूर्तिहीको खिलौना समझता रहा और सब संसारके खेलोंको छोड विष्णु भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें ही मनको लगा रक्खा था और भगवान्‌रूप ग्रहने उसकी आत्माका ग्रहण कर लिया था, केवल जड़की नाईं रहता था और संसारको कुछ नहीं समझता था कि, संसार क्या वस्तु है ? ॥३७॥ बैठते, चलते, खाते, पीते, सोते, जागते, बोलते, बतलाते, गोविन्दरूपमें लीन होनेके कारण उसको इन बातोंकी सुधि नहीं थी ॥३८॥ श्रीभगवान्‌के ध्यानमें ऐसा मतवाला रहता था कि कभी रोता, कभी हँसता, कभी उनकी लीलाओंका स्मरण कर पुकार पुकार मनहीमनमें मग्न होता था ॥ ३९ ॥ कभी उत्कण्ठित हो 'हरे हरे' पुकार उठता, कभी लाजको तज नाचने लगता, कभी भगवानकी भावना कर तन्मय हो अनेक प्रकारके विहार करता ॥ ४० ॥ कभी भगवानकी मनोहर छबिके ध्यानमें मग्न होकर मौन हो जाता, कभी आनन्दित हो आँखोंसे आंसू बहाता, कभी नेत्र बन्द कर हृदयमें उस मनोहरकी मनमोहनी छबिका दर्शन करता ॥ ४१ ॥ उत्तमश्लोकके चरणोंकी सेवा करनेवाला चाहे कुछ न चाहे, परन्तु सेवाका फल उसको अवश्य मिलता है। उस भगवच्चरणकी सेवाके प्रतापसे यह अपने मनमें परमानन्द मानता था और कुसंगसे आर्त हुए और लोगोंके मनको भी शान्त करता था ॥४२॥ हे राजन् ! ऐसे महाभागवत बडभागी अपने पुत्रसे वह दैत्यराज अकारण वैर करने लगा ॥ ४३ ॥

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत् तन्मनस्कया ॥ कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥ ३७ ॥ आसीनः पर्यटन्न
श्नञ्छयानः प्रपिबन् ब्रुवन् ॥ नानुसंधत्त एतानि गोविंदपरिरंभितः ॥ ३८॥ क्वचिद् रुदति वैकुंठचिंताशबलचेतनः ॥
क्वचिद्धसति तच्चिंताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥३९॥ नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ॥ क्वचित्तद्भावनायुक्त
स्तन्मयोऽनुचकार ह ॥४०॥ क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ॥ अस्पंदप्रणयानंदसलिलामीलितेक्षणः ॥४१॥
स उत्तमश्लोकपदारविंदयोर्निषेवयाऽकिंचनसंगलब्धया ॥ तन्वन्परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुस्संगदीनान्यमनश्शमं
व्यधात् ॥ ४२ ॥ तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिरने बूझा कि, हे सुव्रतधारी नारदजी ! इस बातके सुननेको मेरा मन बहुत चाहता है, कि उस शुद्धचित्त सत्पुत्रसे उसके पिता हिरण्यकशिपुने वैर क्यों किया ? (इस बातका मुझको अत्यन्त संदेह है) ॥४४॥ चाहे पुत्र अपने अनुकूल न हो तो भी पिता पुत्रपर प्रेम रखता ही है और शिक्षा देनेके लिये क्रुद्ध भी होजाय, परन्तु तो भी शत्रुके समान उसको कठिन दुःख नहीं देता ॥ ४५ ॥ और जो कुलमें सत्पात्र पुत्र हो, पिताकी सेवा करे,गुरुको अपना इष्टदेव माने, ऐसे साधु पुत्रसे तो कोई भी शत्रुता नहीं करता, फिर वैर करनेका क्या कारण? हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! यह बडे कौतुककी अद्भुत बात सुनकर मेरे मनमें बड़ा भ्रम है, सो विस्तार पूर्वक आप यह भ्रम मेरा दूर कीजिये. पितापुत्रका जो

युधिष्ठिर उवाच ॥ देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ॥ यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघम् ॥ ४४ ॥ पुत्रान्विप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः ॥ उपालभंते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥ ४५॥ किमुतानुवशान्साधूंस्तादृशान्गुरुदेवतान् ॥ एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥ पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरित्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः ॥ शंडामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहांतिके ॥ १ ॥ तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ॥ पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥ २ ॥

द्रोह हुआ और उसके पिताको भगवान्ने मारा,सो हे विद्वज्जन ! हे द्विज नारद ! इस बातसे मेरे मनमें बडा संदेह होता है, विस्तारपूर्वक आप इस इतिहासको वर्णन कर मेरा संशय दूर कीजिये ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां हिरण्यकशिपुदिग्विजयप्रह्लादसाधुभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ दोहा–गुरुकी शिक्षा छोड़कर, श्रीहरिकी स्तुति कीन्ह । दैत्य भक्त प्रह्लादको, महाकठिन दुख दीन्ह ॥१॥नारदजी बोले कि,एक समय दैत्योंने भगवान् शुक्राचार्यको अपना पुरोहित किया था,उन शुक्राचार्यके शण्ड और आमर्क नाम दो बेटे थे, उनका स्थानभी हिरण्यकशिपुके निकट हीथा ॥ १ ॥ यह दोनों दैत्यराजके भेजे हुए प्रह्लाद जो नीतिशास्त्रमें अत्यन्त कुशल थे उनको

और उनके अतिरिक्त और और जो असुरोंके बालक थे उनको दण्डनीति आदिके ग्रन्थ पढाते थे ॥ २ ॥ प्रह्लादको जो गुरुजी पढ़ाते उसको सुनकर और समझकर गुरुके आगे वैसे ही पढ़ लेता परंतु पीछे उसपर किञ्चिन्मात्र भी ध्यान न करता, क्योंकि यह अपने, पराये, असत् आश्रय, झूठे जगत्से क्या प्रयोजन रखता था ? इसलिये गुरुकीबात इसको अच्छी नहीं लगती थी॥ ३॥ हे पाण्डव! एक दिन हिरण्यकशिपुने अत्यन्त लालन पालन कर अपने सुत प्रह्लादको अपने निकट बुलाकर गोदीमें बैठाकर बूझा. हे पुत्र! जो वस्तु तुझको अच्छी लगती हो वह मुझसे कह, मैं अभी तुझको मँगादूँ ॥ ४ ॥ यह सुन प्रह्लाद बोला कि, हे असुरोत्तम पिता! सदा उद्विग्न बुद्धिवाले शरीरधारियोंके आत्माका नाश करनेवाला

यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठ च ॥ न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥ ३ ॥ एकदाऽसुरराट् पुत्रमंकमा
रोप्य पांडव ॥ पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥ ४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ॥ हित्वात्मपातं गृहमंधकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ५॥ नारद उवाच ॥ श्रुत्वा
पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ॥ जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥ सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे
द्विजातिभिः ॥ विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥ ७ ॥ गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः ॥
प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छंत सामभिः ॥ ८ ॥

SSG

व नरकमें डालनेवाला अंधकूप रूप गृह है, उसको तज वनमें जाकर हरिभजन करना और उसीकी शरणमें रहना यही साधु और अतीव उत्तम है ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, दैत्यराज शत्रुके पक्षका आश्रय लेनेवाली अपने पुत्रकी वाणी सुनकर, सभामें हँसकर बोला कि, बालककी बुद्धि शत्रुकी ओरको फिर गई क्योंकि बालकोंकी बुद्धि स्थिर नहीं होती, दूसरेके धोरे बैठनेसे वैसी ही होजाती है ॥ ६ ॥ इसलिये गुरुसे कहो कि, इस बालकको अपने घरमें बैठालकर अच्छी रीतिसे पढावें जिससे इसकी बुद्धि विष्णुके पक्षवाले छिपेहुए भागवत कहीं पाठशालामें जाकर न फेर लें. मुझको विष्णुका यह बडा भारी खटका है कि, वह मेरे घरमें कहीं बिखण्डा न डाल दे ॥ ७ ॥ शुक्राचार्यके दोनों लडके हिरण्यकशिपुके

घर आये और प्रह्लादको अपने धोरे बैठाल मधुरवाणीसे प्रशंसा और श्लाघा कर साम वाक्योंसे बूझा ॥ ८ ॥ हे वत्स प्रह्लाद ! हे असुरेश कुमार ! तेरा कल्याण हो, तू सत्य कह, झूठ मत कहना, सब बालकोंसे तेरी बुद्धि श्रेष्ठ है पर इन सब बालकोंकी बुद्धिमें अन्तर न पडा, फिर तेरी बुद्धिमें यह विपरीतभाव क्यों पडा? ॥९॥ हे दैत्यकुलनन्दन ! तुझे किसी औरने सिखाया कि,तेरी बुद्धि आपसे आप फिर गई ? इस बातके सुननेकी हमको अभिलाषा है, सो शीघ्र कहो ॥ १० ॥ प्रह्लाद बोले कि, जिस परमात्माकी मायाने अपना पराया यह भेद

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ॥ बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः॥ ९ ॥ बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ॥ भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनंदन ॥ १० ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ॥ विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥ ११ ॥ स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ॥ अन्य एष तथाऽन्योऽहमिति भेदगताऽसती ॥ १२ ॥ स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ॥ मुह्यंति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ॥ १३ ॥

मनुष्योंके मनमें डाल रक्खा है और असत् वस्तुका मोह उत्पन्न किया है,परंतु वह मोह उनहींके मनको मोहित करता है,जिनकी मतिको उसकी मायाने मोह लिया है, उस परमात्माको वारंवार नमस्कार है ॥ ११ ॥ वह परमेश्वर जब पुरुषोंके अनुकूल होता है,तब पशुवत् बुद्धिवालोंका भी बुद्धिभेद निवृत्त हो जाता है. यह और है, हम और हैं, यह द्विविधा सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है. इस बातपर एक श्लोक स्मरण हुआ।* ॥ १२ ॥ सो यह आत्मा अपना पराया जो समझे है यही मूर्खपन है.इसके दूर करनेका कोई उपाय करो.देखो,परमेश्वरकी गति कैसी अपरंपार

---

* श्लोकः—अन्धकः कुब्जकश्चैव त्रिस्तनी राजकन्यका ॥ त्रयोऽप्यन्यायतः सिद्धाः सन्मुखे च विधातरि ॥ १ ॥

* अर्थ—जब विधाता सम्मुख होता है तब अन्याय करनसे भी कार्य सिद्ध हो जाता है, जैसे अन्धे,कुब्डे, और तीन स्तनकी कन्याका कार्य सिद्ध हुआ। एक अन्धा क्षत्रिय,कुबडा ब्राह्मण, दोनोंने मालीकी विनती कर राजाके बागमें ठहरनेके लिये थोडासा ठौर मांग लिया.जब भूँख लगी तब दोनों परस्पर कहने लगे कि,भोजनका क्या प्रबन्ध है?अन्धा बोला कि,तू मेरे कन्धेपर चढकर फल तोड,हम तुम दोनों खा लेंगे. जब यह मता दोनोंने कर लिया तो नित्य अन्धा कुबडेको अपने कन्धेपर चढाकर फलोंसे दोनों जन अपना उदर पूर्ण कर लिया करें.एक दिन राजा बागमें आया तो उसने वृक्षोंपर फल कम देखे,मालीसे बूझा कि,

है, जिसके वादमें वेदवादी ब्रह्मादिक भी मोहको प्राप्त होते हैं. हाय ! ऐसे परमेश्वरके भजनको त्यागकर अज्ञानीलोग दूसरेको अपना समझते हैं उसी भगवान्ने मेरी मतिको फेर दिया है और मेरे हृदयमें वास कर वही मुझको सिखा रहा है ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे चुम्बक पत्थरकी आकर्षण शक्ति लोहेको अपनी ही ओर खींचती है, ऐसे ही मेरे मनको भगवान् चक्रपाणि अपनी ओरको खींचते हैं. परंतु इस बातको मैं कुछ नहीं

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन्स्वयमाकर्षसन्निधौ ॥ तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥
एतावद् ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ॥ तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥ १५ ॥

जानता कि, भगवान्का ऐसा अनुग्रह मुझपर क्यों हुआ ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि, गुरुसे यह बात कहकर महात्मा प्रह्लाद चुप हो रहा. तब वह कुपित हुआ ब्राह्मण राजाका सेवक÷महादीन हो प्रह्लादको धमकाकर कहने लगा ॥ १५ ॥

55

वृक्षोंपर फल थोडे क्यों हैं ? मालीने हाथ जोडकर निवेदन किया कि, महाराज ! यहां तो कोई आता ही नहीं फिर फल कौन तोडता. हां ! एक अन्धा और एक कुबडा तो यहां अवश्य रहते हैं, सो वह किसी प्रकार फल तोड नहीं सकते. यह सुन राजा बोला कि, निस्सन्देह वेही चोर हैं. मालीसे कहा कि, छिपकर देखो. मालीने छिपकर देखा तो निश्चय उन्होंने ही अपनी विद्या और चतुराईसे फल खाये औ छिलके गढा खोदकर दबा लिये. माली दोनोंको पकडकर राजाके पास लाया. राजाने कहा इन दोनोंको तो विधाताने पहिलेहींसे दण्ड दे रक्खा है हम इनको क्या दण्ड दें. राजाने उनसे बूझा कि, तुम कौन जाति हो ? वह बोले हममें अन्धा तो क्षत्रिय और मैं ब्राह्मण हूं. राजाने ब्राह्मण समझकर कुबडेका तो अपराध क्षमा कर दिया और अन्धेको क्षत्रिय जानकर और दुःखी देखकर तीन स्तनवाली अपनी कन्यां विवाह दी और अलग उनके रहनेके लिये बागमें एक स्थान दे दिया. अन्धा नित्यप्रति आनन्दसे आहार विहार करने लगा. कुबडा अन्धेको देख देख मनमें जलने लगा. एक दिन कुबडेने मरा हुआ सांप कहींसे लाकर उसको हांडीमें बंद करके पकाया. अन्धा बोला भाई ! आज कुछ साग भी बनाया है ? कुबडेने कहा हांडीमें रक्खा है ले ले । अन्धेने ज्यों हांडी उघाडी त्यों ही सांपकी बाफसे अन्धेके नेत्र खुल गये. देखा तो उस स्त्रीके संग कुबडा प्रसंग कर रहा है. अन्धेने क्रुद्ध होकर कुबडेके एक लात मारी, लातके लगते ही कुबडेका कूबड अच्छा होगया. उस अबलाको सबला समझ एक लात उसकी भी छातीमें मारी उसी समय उसका तीसरा स्तन अस्त होगया. प्रह्लादने कहा देखो भइया बालको ! हरिका प्रताप और सुखके दिन ऐसे होते हैं. तुम भी हरिका भजन करो जिससे तुम्हारे भी सब काम सिद्ध हों, देखो वह अन्धा तो राजा हुआ और वह स्त्री रानी हुई. कुबडा मन्त्री हुआ. तीनों आनन्द करने लगे ॥

* **शंका**–जिन शुक्राचार्यके भयसे इंद्रादिक देवता रात दिन थर थर कांपते थे, सो शुक्राचार्य कृपादृष्टिसे राक्षसोंको देखते हैं तब राक्षस आनंद करते हैं, जब राक्षसोंके ऊपर शुक्राचार्य कृपा नहीं करते तब

अरे लडको ! बेंत तो लाओ, यह सूधे स्वभाव नहीं मानेंगा, क्योंकि यह हमारे यशका नाशक, अपनी अपकीर्ति करानेवाला, राजवंशमें अंगारेकी नाईं उत्पन्न हुआ है, इस दुर्बुद्धिको उपायोंमें चौथे उपायका दमनरूप दंड देना चाहिये॥ १६॥ हमारे दैत्यवंश चन्दनवनमें यह महाकण्टक करीलकासा वृक्ष कहांसे प्रगट होगया ? हमको ऐसा जान पडता है कि, दैत्यवंशके वनका विध्वंस करनेवाले विष्णुरूप कुठारका यह दंड हुआ, जबतक यह

आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः ॥ कुलांगारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥ १६ ॥ दैतेयचंदनवने जातोऽयं कंटकद्रुमः ॥ यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥ १७ ॥ इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ॥ प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥ १८ ॥ तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् ॥ दैत्येंद्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥

हमारे घरका भेदी विष्णुसे न मिलेगा, तबतक कोई हमारा बाल बांका नहीं कर सकता * ॥१७॥ इस प्रकार उन ब्राह्मणोंने अनेक अनेक भांतिसे प्रह्लादको डराकर धर्म, अर्थ, कामके उपाय सम्बन्धी विद्या सिखाने लगे॥ १८॥ कुछ दिन उपरान्त गुरुने अपने मनमें जाना कि यह साम,

---

उसी समय राक्षस महादुःखी होजाते हैं इसका क्या कारण ? ऐसे प्रतापी जो शुक्राचार्य उनके पुत्रको नारदजीने राजाका सेवक क्यों कहा ? और जो कोई विद्वान् ऐसा अर्थ करते हैं कि शुक्राचार्यके पुत्रका सेवक राजा है इसलिये राजसेवक क्यों कहा ? तो फिर शुक्राचार्यका पुत्र दुःखी क्यों हुआ ?

उत्तर–धर्मशास्त्रका यह मत है कि, जिस मनुष्यका जो पुरोहित होता है वह उसका सेवक कहलाता है, पुरोहितमें और सेवकमें कुछ भेद नहीं है, इसलिये शुक्राचार्यके पुत्रको नारदजीने राजसेवक कहा इसमें कोई संशयकी बात नहीं ।

* इस बातपर दृष्टान्त है–पचीस गाडी कुहाडियोंसे भरी हुई एक वनम होकर निकली. पेड उनको देखते ही दूरसे चिल्लाकर बोले कि, आज हम सबकी मृत्यु आगयी क्योंकि एक कुहाडीसे सैकडों वृक्ष कट सकते हैं, और यह तो सहस्रों कुहाडी हैं फिर हमारा क्या ठीक है ? उनमेंसे एक वृक्ष बोला कि, इनमें कोई हमारे घरका भेदी तो नहीं है ? वृक्षोंने कहा कोई नहीं केवल गाड़ी ही गाडी हैं, अशोकने कहा तो फिर क्या सन्देह है ? अरे ज तक इनमें हमारी जातिका बेट न पडेगा, तबतक यह दीन कुहाडी हमारा कछ नहीं कर सकतीं अत्र तुम संशयको त्याग आनंद करे ॥

दान,दण्ड, भेद चारों बातें अच्छी सीख गया तब प्रह्लादको उसकी माताके द्वारा स्नान कराय, सब शृङ्गार सजाय दैत्यराजके समीप
ले गया ॥ १९ ॥ जाते ही प्रह्लाद हिरण्यकशिपुके चरणोंमें गिर गया, दैत्येन्द्र आशीश दे, आदर सन्मान कर, शिरपर हाथ फेर अत्यन्त
प्रसन्न हुआ ॥२०॥ हे युधिष्ठि ! उसको गोदमें बैठाय, शिर सूंघ, प्रेमके वशीभूत हो नेत्रोंके जलकी धारासे स्नान कराय उस दैत्यराजने अत्यन्त
प्रसन्न हो कोमलकमलसे मुखवाले प्रह्लादसे कहा ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि, हे प्रह्लाद ! हे पुत्र ! हे दीर्घायु ! इतने दिनोंमें जो कुछ तुमने
अपने गुरुसे भलीभाँति पढ़ा हो और जो अच्छा स्मरण हो,वह अपने मुखसे मुझ सुनाओ ॥२२॥ प्रह्लादजी बोले कि; नारायणकी कथा सुने,

पादयोः पतितं बालं प्रतिनंद्याशिषासुरः ॥ परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥ २० ॥ आरोप्यांकम
वघ्राय मूर्धन्यश्रुकलांबुभिः ॥ आसिंचन् विकसद्वक्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपु रुवाच ॥
प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किंचिदुत्तमम् ॥ कालेनैतावताऽऽयुष्मन्यदशिक्षद् गुरोर्भवान् ॥ २२ ॥ प्रह्लाद
उवाच ॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ॥ क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥ निशम्यैतत्सुतवचो
हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥ २५ ॥ ब्रह्मबंधो किमेतत्ते विपक्षं श्रयताऽसता ॥ असारं
ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥ २६ ॥

विष्णुका नाम ले,भगवान्का स्मरण करे, जनार्दनकी परिचर्या पूजन करे, चक्रपाणिका अर्चन करे, परमेश्वरकी वन्दना करे,वृन्दावनविहारीका
दास बने, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दसे सुहृद्भाव माने, अपनेको श्रीविश्वनाथ विश्वंभरकी भेट करे,यह नौ प्रकारकी भक्ति हैं ॥ २३ ॥
यह नौ प्रकारकी भक्ति भगवत्में करनी. यही उत्तम पढनेका सार है और इतने दिनोंमें जो कुछ मुझको गुरुने पढ़ाया उसमें ऐसा उत्तम
कोई भी विषय पढनेमें नहीं आया ॥२४॥ नारदजी बोले कि, इस प्रकार पुत्रके मुखसे जब यह वचन सुना तो हिरण्यकशिपुको अत्यन्त क्रोध
बढ़ा, होंठ फडकने लगे,उसी समय गुरुपुत्रको बुलाकर कहा ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणाधम ! हे दुर्मते ! तैंने यह क्या किया ? मेरे शत्रुके पक्षकी

असार बातें सिखा सिखाकर इस लडकेको बिगाड दिया और मेरा इस प्रकार अनादर किया ॥ २६ ॥ आजकल संसारमें शठ साधुओंका वेष बनाये अपना रूप छिपाये बहुत फिरते हैं. दोहा–अवशि खुलत कपटिन कपट, कछुक कालको पाय । जिमि पापिनको पाप हठि, रोगव्याज दरशाय ॥ १ ॥ गुरुपुत्र बोले कि, हे इन्द्रशत्रो ! इस तुम्हारे पुत्रको न तो मैंने पढ़ाया और न किसी औरने सिखाया क्योंकि आपके डरके मारे कोई इसके पास भी नहीं जाने पाता, यह अपने ही मनसे यह बातें करता है, इसकी स्वाभाविकी बुद्धि ही ऐसी है. हे राजन् ! हमारे ऊपर वृथा क्रोध करते हो, हमको दोषी मत बनाओ; इसमें आपका आगम वेदमान हुआ है ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि जब इतनी बातें गुरुने कहीं, तब दैत्येन्द्रने फिर प्रह्लादसे कहा कि, हे अभद्र ! जो यह बातें गुरुसे नहीं सीखीं तो फिर यह विपरीत बातें और खोटी बुद्धि तुझमें कहांसे आई ? ॥ २९ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, जिन्होंने अपनी इंद्रियोंको नहीं जीता और पापकी रीतिको नहीं छोडा, अंध नरकमें जानेवाले, कुटुम्बकी ममतामें वारंवार चाबे हुए चर्वणको चाबनेवाले अर्थात् भोगे हुएको भोगनेवाले हैं, ऐसे गृहस्थ पुरुषोंकी बुद्धि न अपने आपसे, न दूसरेके सिखानेसे और न शत्रु मित्रके कहनेसे, विष्णु भगवान्‌की ओरको प्राप्त होती है ॥ ३० ॥ महाअभिमानी दुष्ट हृदयवाले, विषयवासनामें लवलीन, न परमार्थको माने, न विष्णुको जाने, न अपने स्वार्थको पहिचानें, परमात्माकी वेदलक्षणा बाणी सकाम कर्म करानेवाली रस्सीमें बँधे हुए ऐसे ही पुरुषोंसे गुरुदीक्षा लेनेवाले

संति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः ॥ तेषामुदेत्यघं काले रोषः पातकिनामिव ॥ २७ ॥
गुरुपुत्र उवाच ॥ न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येष तवेंद्रशत्रो ॥ नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्नियच्छ
मन्युं कददाः स्म मा नः ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरस्सुतम् ॥ न चेद्
गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥ २९॥ प्रह्राद उवाच ॥ मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रता
नाम् ॥ अदांतगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनःपुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥ ३० ॥ न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये
बहिरर्थमानिनः ॥ अंधा यथांधैरुपनीयमाना वागीशतंत्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥ ३१ ॥

मनुष्य परमेश्वरको नहीं मानते; वह नरकमें जाते हैं जैसे अन्धा अन्धेको लेकर कुएमें गिर पडता है ॥ ३१ ॥ शठ दुर्मति विषयवासनाके मदमाते जबतक निस्पृह, महात्मापुरुषोंके चरणारविंदकी रजको अपने शीशपर धारण नहीं करते, तबतक उनका अनर्थ किसी प्रकार दूर नहीं होसकता और न कोई मनोरथ सिद्ध हो सकता है और न श्रीगोविंद भगवान्‌के पादारविंदमें मन ही लग सकता है॥३२॥नारदजी बोले कि, हे राजन् ! इतनी बात कह प्रह्लाद जब चुप हो रहा; तब हिरण्यकशिपुने अत्यन्त कुपित होकर उसे गोदमेंसे पृथ्वीपर पटक दिया ॥३३॥ फिर क्रोधसे रोषाविष्ट हो, विकराल नेत्र कर, महागम्भीर वाणीसे बोला कि, हे दैत्यो ! मेरे आगेसे इस दुष्टको ले जाओ और अभी मार डालो, क्योंकि, यह अधम वध करनेहीके योग्य है ॥३४॥ यही विष्णु मेरे भ्राता हिरण्याक्षका हनन करनेवाला है सो देखो ! अपने सुहृद सम्बन्धि

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ॥ महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किंचनानां न वृणीत यावत् ॥३२॥ इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ॥ अंधीकृतात्मा स्वोत्संगान्निरस्यत महीतले ॥ ३३ ॥ आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ॥ वध्यतामाश्वयं वध्यो निस्सारयत नैर्ऋताः ॥३४॥ अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान्सुहृदोऽधमः ॥ पितृव्यहंतुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥ ३५ ॥ विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमंजसः ॥ सौहृदं दुस्त्यज पित्रोरहाद् यः पंचहायनः ॥ ३६ ॥ परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ॥ छिंद्यात्तदंगं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥ ३७ ॥

योंको त्याग चाचाके मारनेवाले विष्णुके चरणोंको दासकी नाईं पुजता है ॥ ३५ ॥ देखो ! पुत्रको इस संसारमें अपने माता पिताकी प्रीतिका त्यागना महाकठिन है इस दुष्टने पांचही वर्षकी अवस्थामें माता पिताकी प्रीति क्षणमात्रमें त्याग दी और कुछ आगा पीछा न सोचा, फिर यह निर्मोही विष्णुके साथ क्या भला करेगा ?॥३६॥ अपना हो वा पराया,उसीको अपना पुत्र समझना चाहिये जो अपना हितकारी हो और अपने ही शरीरसे उत्पन्न हुआ तो क्या ? जो अपना भला न चाहे, उसको रोगकी नाईं दुःखदायी समझना चाहिये.इन दोनोंका काटना ही अच्छा है, ज्यों ज्यों यह बढ़ते हैं त्यों त्यों अधिक दुःख देते हैं.पुत्र जो शत्रु होजाय तो उसका कहना ही क्या ? क्योंकि दूसरा देह है, परन्तु

559

शरीरके अंग भी हाथ पाँव आदिक कष्टदायक हों तो निःसन्देह उसी समय काट डाले, क्योंकि, उनके काटनेसे और जो देह है उसको तो सुख होगा, ऐसे ही एक पुत्रके मारनेसे और परिवारको सुख होगा ॥ ३७ ॥ यह विश्वासघाती अपना होकर शत्रुका कार्य करता है इस लिये इसका मारना ही अच्छा है. खाते, पीते. सोते, जागते, उठते बैठते, अथवा विष देनेसे, जिस उपायसे बने उस उपायसे इसको मारो, जैसे मुनि दुष्ट इन्द्रियको मारते हैं ॥ ३८ ॥ हिरण्यकशिपुकी ऐसी कठोर वाणी सुनकर बहुतसे दैत्य त्रिशूल हाथमें लिये पैने दाँतवाले, विकराल मुख, ताम्रवर्ण दाढ़ी मूँछवाले ॥ ३९ ॥ भैरवकी नाईं भयंकर नाद करने लगे, मारो, मारो, काटो, काटो, पकडो, पकडो, न जाने दो, न जाने दो, ऐसे कह प्रह्लादके मर्मस्थलमें त्रिशूल मारने लगे ॥ ४० ॥ परब्रह्म परमात्मा जो किसीके देखनेमें नहीं आता वह वासुदेव

सर्वैरुपायैर्हंतव्यः संभोगशयनासनैः ॥ सुहृल्लिंगधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम् ॥ ३८ ॥ नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै
शूलपाणयः ॥ तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥ ३९ ॥ नदंतो भैरवान्नादांश्छिधि भिंधीति वादिनः ॥
आसीनं चाहनञ्छूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥ ४० ॥ परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ॥ युक्तात्मन्यफला आसन्नपु
ण्यस्येव सत्क्रियाः ॥ ४१ ॥ प्रयासेऽपहते तस्मिन्दैत्येंद्रः परिशंकितः ॥ चकार तद्वधोपायान्निर्बंधेन युधिष्ठिर ॥४२॥
दिग्गजैर्दंदशूकैश्च अभिचारावपातनैः ॥ मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥ ४३ ॥ हिमवाय्वग्निसलिलैः
पर्वताक्रमणैरपि ॥ न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ॥ चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥ ४४ ॥

भगवान् सर्व अगोचर सर्वान्तर्यामी जिसके हृदयमें रात दिन वास करे, ऐसे प्रह्लादपर सब दैत्योंके प्रहार वारंवार निष्फल होते थे। दोहा–जैसे उद्यम करें बहु, पुरुष भाग्यके हीन। मिलत न धन तिनको तनक, रहत दीनके दीन ॥ इस प्रकार सब असुर मन मार मार कर रह जाते थे ॥ ४१॥ हे युधिष्ठिर ! सब परिश्रम राक्षसोंके जब व्यर्थ होगये, तब दैत्येन्द्र अपने मनमें बड़ा शंकित हुआ और प्रह्लादके मारनेके लिये अनेक अनेक प्रकारके प्रयत्न करने लगा ॥ ४२ ॥ दिग्गज, सर्पेन्द्र, कृत्या, पर्वतसे गिराना, माया, गुफामें रोकना, विष देना, कुत्सित भोजन ॥ ४३ ॥ पाला, वायु, अग्नि, जल, पत्थरके नीचे दबाना; इन उपायोंसे पापरहित पुत्रके मारनेको जब असुर हिरण्यकशिपु समर्थ न होसका तब प्रह्लादजीके मारनेके लिये अतिचिंताको प्राप्त हुआ ॥ ४४ ॥

हिरण्यकशिपु बोला इस प्रह्लादके मारनेके लिये मैंने अनेक प्रयत्न किये अधर्म, निर्मोह, द्रोह, असद्धर्म, भ्रांति २ के प्रयोग किये तो भी यह चाण्डाल अपने तेजके प्रभावसे बच जाता है * ॥४५॥ देखो ! यह मायावी मेरे सम्मुख निःशंक बैठा है, अपने मनमें कुछ भी शंका नहीं मानता और अपनी हठको नहीं छोडता, जैसे श्वानकी पूँछको कितनी ही सीधी करो, परन्तु वह कभी सीधी नहीं होती. मैं जानता हूँ कि, यह दुष्ट बालक मेरे कर्तव्यको नहीं भूलता ॥ ४६ ॥ इस प्रह्लादका अप्रमेय प्रभाव है. मैं जानता हूँ कि, यह अमर है, इसी लिये किसीसे भय नहीं मानता. मुझको यह निश्चय होता है कि, इसीके विद्रोहसे मेरी मृत्यु होगी, और किसी प्रकार मेरा देहपात न होगा

एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ॥ तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥ ४५ ॥ वर्तमानोऽविदूरे वै बालोऽप्यजडधीरयम् ॥ न विस्मरति मेऽनार्यं शुनःशेप इव प्रभुः ॥ ४६ ॥ अप्रमेयाऽनुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः॥ नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥४७॥ इति तं चिंतया किंचिद्‌ ग्लानश्रियमधोमुखम् ॥ शंडामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः॥ ४८ ॥ जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृंभणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ॥ न तस्य चिंत्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥ ४९ ॥

॥ ४७ ॥ इस चिन्तासे किञ्चित् चित्तमें ग्लानि मान शोभाहीन मनमलीन नीचेको मुख किये हिरण्यकशिपु शोकाकुल बैठा था, उसी समय शुक्राचार्यके पुत्र शण्ड और आमर्कने एकान्तमें आकर यह कहा ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! आपने अकेले अपने महाप्रचण्ड तेजके प्रभावसे तीनो लोकोंका विजय किया और आपकी किंचिन्मात्र भ्रुकुटीके चढानेसे सब लोकपाल थरथर काँपने लगते हैं, फिर आप ऐसे पराक्रमी और त्रिलो

---

* इसका एक इतिहास है, ढुंढा राक्षसीने अग्निका एक मन्त्र ऐसा सिद्ध कर रक्खा था कि, चाहे जिसको अपनी गोदीमें लेकर अग्निमें बैठ जाय और लाखों मन ईंधन उसके ऊपर जला दो, परन्तु: वह न जले, यह उपाय उसने प्रह्लादजीपर भी किया, परन्तु उस हरिके प्यारेको कुछ भी नहीं हुआ, और आप ढुंढाही जलकर मर गई. प्रह्लादको किसी प्रकारकी आँच भी न आई. जब वह जलकर मर गई और प्रह्लादका बाल भी बाँका न हुआ; तब उसको श्रीनृसिंहजीने यह भी देखकर यह वरदान दिया कि, इसका सब संसारमें पूजन होगा क्योंकि, इसने मेरे भक्तके लिये अपना देह जलाया है, इसलिये इसका नाम आजसे होली होगा. हे युधिष्ठिर ! उसी दिनसे होलिका नाम जगत्में प्रसिद्ध हुआ ॥

कीनाथ होकर अनाथकी नाईं क्यों चिन्ता करते हो ! बालकोंके गुण दोषका कुछ ध्यान नहीं करना चाहिये; क्योंकि, उनकी बातका कुछ विश्वास नहीं ॥ ४९ ॥ अब इसको वरुणपाशसे बाँधकर एक अन्धेरी कोठरीमें बन्द कर रक्खो, जो कहीं भाग भी न सके, थोडी देरमें पिता शुक्राचार्य भी आनेही वाले हैं, कभी उनहींके समझाने बुझानेसे कुछ समझ जाय, क्योंकि, यह बात तो जगत्में विख्यात ही है कि, पुरुषोंकी बुद्धि अवस्थासे और वृद्धजनोंकी सेवासे बढती है ॥ ५० ॥ हिरण्यकशिपुने गुरुपुत्रोंका उपदेश मान, उनहीसे कहा कि तुम ही इसको अपने घर लेजाओ और जो गृहस्थ राजाओंके धर्म और भयानक कर्म हैं वह सब सिखाओ ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! शण्डामर्कने सूधे साधु प्रह्लादको अपने घर ले जाय, संक्षेपसे धर्म, कर्म, अर्थ, काम और असुरकुलके धर्म भयानक कर्मोंका विषय पढ़ाना आरम्भ किया ॥५२॥

इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्धा निधेहि भीतो न पलायते यथा ॥ बुद्धिश्च पुंसो वयसार्यसेवया यावद्गुरुर्भार्गव आगमिष्यति॥५०॥ तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ॥ धर्मो ह्यस्योपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम्॥५१॥धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ॥ प्रह्लादायोचतू राजन् प्रश्रयावनताय च॥५२॥ यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ॥ न साधु मेने तच्छिक्षां द्वंद्वारामोपवर्णिताम् ॥५३ ॥ यदाचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ॥ वयस्यैर्बालकस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥ ५४ ॥ अथ तान्श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ॥ उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥ ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ॥ बाला न दूषितधियो द्वंद्वारामेरितेहितः ॥ ५६ ॥

जो जो विषय गुरुने प्रह्लादको सिखाये उनमेंसे कोई विषय प्रह्लादके चित्तमें न जमा क्योंकि, संसारके दुःख सुखकी बातें विषयासक्त इत्यादि शिक्षासे भक्तजनोंका क्या प्रयोजन ? ॥ ५३ ॥ जब गुरु गृहस्थाश्रमके कामोंमें लग जाते तब उस अवकाशमें प्रह्लाद अपनी बराबरके बालकोंको अपने पास बुला लेते॥५४॥महाबुद्धिमान् प्रह्लाद मधुर वाणीसे उन बालकोंपर कृपा करके हँसते और उनको ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा करते ॥५५ ॥ वह बालक प्रह्लादके गौरवसे सब खेलकूदको त्याग देते थे, सुख दुःखकी शिक्षावाली बातोंसे किसी बालककी बुद्धि दूषित नहीं होती थी ॥ ५६ ॥

हे राजेन्द्र ! विद्वान् प्रह्लादजीमें सब बालक हृदय, दृष्टि लगाकर चारों ओरसे घेरकर बैठ जाते,तब वह परम कृपालु सबका सुहृद, महाभागवत प्रह्लाद उन बालकोंको इस प्रकार उपदेश करता, और यह भंजन सबको सिखाता ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेभाषाटीकायां प्रह्लादन नवधा भक्तिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–छठयेंमें प्रह्लाद नित,बालक सकल बुलाय । देत ज्ञान उपदेश शुभ, कथा प्रसंग सुनाय ॥ १ ॥ प्रह्लाद बोला कि,चतुर लोगोंको उचित है कि, बालकपनसे वैष्णवधर्मकी उपासना करैं क्योंकि, प्राणीको

पर्युपासत राजेंद्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ॥ तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे पंचमोऽध्यायः॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥ १ ॥ यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ॥ यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥ २ ॥ सुखमैंद्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ॥ सर्वत्र लभ्यते दैवाद् यथा दुःखमयत्नतः ॥ ३ ॥

मनुष्यजन्म मिलना महादुर्लभ है, सो भी स्थिर नहीं, परन्तु सब अर्थका देनेवाला यही जन्म है * ॥ १ ॥ पुरुषको इस जगत्में आकर श्रीभगवान् वासुदेवके-चरणारविन्दकी शरणागति रहना यही मुख्य है. क्योंकि, वह परमात्मा सब जीवमात्रका व्यापक और आत्मा है, इसीसे सबका प्रिय और सुहृद है ॥ २ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! संसारमें आकर पुरुषको विषयसुखके लिये कोई उपाय नहीं करना चाहिये क्योंकि, यह तो खग, मृग, मनुष्यको कर्मगतिसे आपही मिल जाता है, फिर इसमें परिश्रम करके वृथा अपनी आयुको व्यतीत करनेमें क्या

---

[१] **भजन**--भजो भाई हरिहर हरिहर॥ आदि ब्रह्म अद्वैत निरंजन, भयभंजन धरणीधर॥ १ ॥ जब भक्तनको असुर सतावत, प्रगट होत तेहि अवसर ॥ दुष्ट मार भूभार उतारत, विश्वनाथ विश्वंभर ॥ २ ॥ कबहुँ विहार करत भक्तनसँग, धर धर वेष मनोहर ॥ कबहुँ संहार करत सब जगको, धरकर वेष भयंकर ॥ ३ ॥ ऐसे प्रभुको भजन करो तुम, मन लगाय निशिवासर ॥ शालिग्राम वोही बोलत हैं, आठ पहर घट भीतर ॥ ४ ॥

* **शंका**-दैत्योंके बालकोंसे प्रह्लादने भगवान्का भजन त्यागके मनुष्यके जन्मकी प्रशंसा की,तब वह दैत्योंके बालक मनुष्य नहीं थे,वह तो राक्षसोंके पुत्र थे इसका क्या कारण ?

उत्तर–सब लोग जानते हैं कि,मनुष्यजन्म सबसे उत्तम है, उन मनुष्योंमें भगवान्का भक्त और भी उत्तम है;इसलिये दैत्योंके पुत्रोंको भय दिखलानेके लिये मनुष्यजन्मकी प्रशंसा की. प्रह्लादने विचार किया कि, यह लोग भी मनुष्योंके कर्म सुनके मनुष्योंकी नाई भगवान्में प्रीति करेंगे ।

९८/

प्रयोजन ? परंतु भगवान् वासुदेवकी भक्ति करनेसे जैसा आनन्द प्राप्त होता है ऐसा और किसी प्रकार नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ इसलिये और कामोंमें क्यों अपनी आयुको व्यर्थ क्षय करे उसीमें परिश्रम न करै जिससे श्रीमुकुंदके चरणारविन्दमें प्रीति बढ़े, सदा मंगल हो और आगेका खटका मिट जाय ॥ ४ ॥ जबतक देहमें अच्छा पुरुषार्थ बना रहै और कोई विपत्ति न आवे, मनुष्यको उचित है कि पहिले ही अपने मोक्षके लिये उपाय करे; क्योंकि, युवा ही अवस्थामें कोई भक्तिका उपाय न किया तो फिर बुढ़ापेमें क्या होसकता है? ॥५॥ महाकठिनतासे विषयानुरागी पुरुषकी अवस्था सौ वर्षकी होती है, उसमें पचास वर्ष तो वृथा ही जाते हैं, कुछ रात्रिके सोनैमें, कुछ महा मोहरूपी निद्रामें व्यतीत होते हैं ॥ ६ ॥ दश वर्ष तो बाल्यावस्थामें गये, दश युवावस्थामें गये, बीस बुढापेकी हाय हायमें, शरीरके रोगमें,

तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ॥ न तथा विंदते क्षेमं मुकुंदचरणांबुजम्॥४॥ ततो यतेत कुशलः क्षेमाय
भयमाश्रितः ॥ शरीरं पौरुषं यावन्नविपद्येत पुष्कलम् ॥५॥ पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः ॥ निष्फलं यदसौ
रात्र्यां शेतेऽधं प्रापितस्तमः॥६॥ मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ॥ जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य
विंशतिः ॥ ७ ॥ दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ॥ शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ ८ ॥ को गृहेषु
पुमान्सक्तमात्मानमजितेंद्रियः ॥ स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥ ९ ॥ को न्वर्थतृष्णां विसृजेत्प्राणेभ्योऽपि य
ईप्सितः ॥ यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ १० ॥

असमर्थपनमें समाप्त होगये ॥ ७ ॥ शेष दश रहे वह काम, क्रोध, मोह लोभादिकके आसक्त होनेमें और कुटुम्बकी तृष्णामें व्यतीत होते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे कौन अजितेन्द्रिय पुरुष हैं जो घरकी ममतामें फँसेहुए और कुटुम्बकी दृढ फांसीमें बँधेहुए संसारकी मायामें आसक्त हो अपने मनको अलग कर सकते हैं ॥ ९ ॥ जो धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है और जो तृष्णा किसीसे नहीं त्यागी जाती, जिस धनके लिये प्राणोंकी आशा छोडकर चोर चोरी करता है, जिस धनके कारण सेवक अपना तन मन बेंचकर सेवा करता है, जिस धनके निमित्त व्यापारी देश विदेशमें विचरता फिरता है और शरीरका खोना अंगीकार करके पुरुष धनको

प्राप्त करते हैं ऐसे धनके मोहको त्यागनेका किसको सामर्थ्य है ? ॥ १० ॥ फिर परमसुशीला नारी प्यारीके संग रहस्य और सुन्दर एकान्तका परामर्श, सुहृदोंका प्रेम, बालकोंकी मनोहर वाणीसे चित्त मोहित, ऐसे स्नेहमें फँसेहुए मनको क्योंकर निकाल सकते हैं ॥ ११ ॥ फिर पुत्र, पुत्री, भाई, बहनका स्मरण, अत्यन्त दीन माता पिताकी प्रीति, अति रमणीक मनोहर घर, उसके सुन्दर सुन्दर पदार्थ, कुलपरम्परासे जो चली आवे वह जीविका; अनेक प्रकारके पशु, सेवक, मित्रोंकी प्रीति, लोभकी तृष्णा जो नित्यप्रति अधिक होती रहती है, भला उसे कौन पुरुष त्याग सकता है ? ॥ १२ ॥ फिर जो पुरुष शिश्नेन्द्रिय और जिह्वाके विषयोंका बहुमान्य करनेवाला अधिक मोहसे निरन्तर दिन रात उसीमें मनको लगाये रखता जैसे रेशमका कीड़ा ऐसा घर बनाता है कि, निकलनेमात्रको भी मार्ग नहीं रखता ऐसा कर्मकारी पुरुष

कथं प्रियाया अनुकंपितायाः संगं रहस्यं रुचिरांश्च मंत्रान् ॥ सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः
॥ ११ ॥ पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या भ्रातॄन् स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ॥ गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तीस्तु कुल्याः
पशुभृत्यवर्गान् ॥ १२ ॥ त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ॥ औपस्थ्यजैह्व्यं बहु मन्यमानः
कथं विरज्येत दुरंतमोहः ॥ १३ ॥ कुटुंबपोषाय वियन्निजायुर्न बुध्यतेऽथ विहतं प्रमत्तः ॥ सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा
निर्विद्यते न स्वकुटुंबरामः ॥ १४ ॥ वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः ॥ प्रेत्येह चाथाप्यजितेंद्रि
यस्तदशांतकामो हरते कुटुंबी ॥ १५ ॥

संसारकी मायामें लवलीन होकर भला किसका सामर्थ्य है, जो ऐसे संसारका त्याग करे ॥ १३ ॥ देखो ! यह पुरुष परिवारके लालन पालनमें कैसा मतवाला होरहा है. यह भी जानता है कि, नित्य एक एक दिन घटता है, परन्तु इतने पर भी मदमें ऐसा उन्मत्त हो रहता है कि, आगे पीछेकी कुछ सुधि नहीं और यह नहीं जानता कि, घडी घडी मेरा पुरुषार्थ घटता जाता है. परिवारके स्नेह रखनेवालेको सदा तीन ताप दुःख देते हैं. परंतु यह दुःखको सुख समझता है ॥ १४ ॥ इंद्रियोंके वशीभूत हो मनको सदा धनहीमें लगाये रहता है और पराया चित्त हरनेवालोंके दोषोंको भी भलीभांति जानता है कि, इस लोकमें और परलोकमें कैसी बुरी गति होती है. परंतु तो भी वह कुटुम्बी पुरुष धनकी

तृष्णाको चित्तसे शांत नहीं करता और पराया द्रव्य हरनेकी इच्छा बनी ही रहती है ॥ १५ ॥ हे दनुजपुत्रो ! यह सब बातें जानते हैं तो भी परिवारका पालन पोषण करते ही रहते हैं, और वैकुण्ठके जानेकी भी इच्छा रखते हैं, परंतु अपने परायेके भेदभावको धारण कर वैकुण्ठके बदले नरकमें जाते हैं ॥ १६ ॥ स्त्रियोंके मोहमें ऐसे कामासक्त हो रहे हैं और कामदेव ही कामदेव आठ प्रहर जिनकी दृष्टिमें वास करता है, उन स्त्रियोंके विहारमें रात दिन मर्कटकी नाईं नाचा करते हैं, (लवलीन हो दीन बन) अपने तनकी रक्षा हो चाहे न हो, परंतु उनके कार्यमें असमर्थ नहीं होते और पुत्र पौत्रादिकोंकी मोहरूपी ऐसी कडी बेडी हथकडी हाथ पांवोंमें पडी हैं इस बंधनसे मनुष्य किसी समय अपने आत्माको छुटानेका सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १७ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये इन विषयासक्त दैत्योंका संग छोडो और सब देवोंके देव श्रीआदिपुरुष

विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ॥ यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥१६॥ यतो न कश्चित्क्व च कुत्रचिद् वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ॥ विमोचितुं कामदृशां विहारक्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः ॥ १७ ॥ ततो विदूरात्परिहृत्य दैत्या दैत्येषु संगं विषयात्मकेषु ॥ उपेत नारायणमादिदेवं विमुक्तसंगैरिषितोऽपवर्गः ॥ १८॥ न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ॥ आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥ १९॥ परावरेषु भूतेषु ब्रह्मांतस्थावरादिषु ॥ भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥२०॥ गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा ॥ एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ २१ ॥

अविनाशी वासुदेव भगवान्का भजन करो, क्योंकि कुसंगका त्यागना ही मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ हे दैत्योंके बालको ! अच्युत भगवान्के प्रसन्न करनेमें कुछ अधिक परिश्रम नहीं होता. क्योंकि भगवान् तो सब प्राणीमात्रका आत्मा है और सब प्रकारसे सिद्ध है ॥१९॥ पर अवर जीव मात्रमें ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका तक सब स्थावर जंगम जो पाञ्चभौतिकसे बने निर्जीव पदार्थमें पञ्चभौतिक विकारमें नारायणहीका वास है॥२०॥ गुणोंमें, गुणोंकी समतामें, गुणोंकी उलटपलटमें एक पर अवर आत्मा एक ही आदिपुरुष अविनाशी सच्चिदानंद भगवान् विराजमान है, उसी परमात्माका भजन करो, तीर्थ करो, दान करो, ब्राह्मणोंको भोजन कराओ, नवधा भक्ति करो, वेद पढो, पढाओ, विद्याका अभ्यास करो, ब्रह्म विद्या सीखो सिखाओ, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, निन्दा, छल, बुराई, मारना, दुष्टता, मान, मद, दर्प, हिंसा, चोरी, जुआ इत्यादिको त्यागो

यही मोक्षका उपाय है ॥ २१ ॥ यद्यपि वह सच्चिदानन्द जगदीश्वर आपरूप एकही है, तो भी आत्मा स्वरूप सबके देखनेके योग्य व्याप्य है और व्यापक निर्देशयोग्य कभी नहीं दिखाई देता और संकल्प विकल्प ब्रह्म है ॥ २२ ॥ केवल अनुभवसे आनन्दस्वरूप परमात्माने मायासे सब ऐश्वर्य छिपा रक्खे हैं, और गुणोंकी रचनेवाली मायाहीसे जाने जाते हैं ॥ २३ ॥ इसलिये सब जीवमात्रमें प्रीति करो,सबसे सुहृद्भाव वर्तो, और असुरभावको छोडो क्योंकि असुरभावके त्यागनेहीसे भगवान् प्रसन्न होतेहैं ॥ २४ ॥ अब आद्यदेव अनन्त भगवान् प्रसन्न होजायँ तो सब वस्तु प्राप्त होजाती हैं,जो अपने आप सिद्ध कर्मादिक हैं, उनको इस संसारमें गुणोंके उलटे भावसे निर्गुणको जैसे धर्म,अर्थ, कामसे कुछ

प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम् ॥ व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥ २२ ॥ केवलानुभवानंदस्वरूपः परमेश्वरः ॥ माययांतर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम्॥ आसुरं भावमुन्मुच्य यया तृप्यत्यधोक्षजः ॥ २४ ॥ तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनंत आद्य किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः॥धर्मादयः किमगुणेन च कांक्षितेन सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥ २५ ॥ धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता॥ मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥२६॥ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नरसखः किल नारदाय॥एकांतिनां भगवतस्तदकिंचनानां पादारविंदरजसाप्लुतदेहिनां स्यात्॥२७॥ श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात्॥२८॥

प्रयोजन नहीं, इसी प्रकार मोक्षकी इच्छासे हमको क्या प्रयोजन है ?॥ २५ ॥ धर्म, अर्थ, काम, जो यह त्रिवर्ग है, सो आत्मविद्यासे वेदत्रयी, नीति, दंड और अनेक प्रकारकी वार्त्ता, यह सब वेदके सार हैं,परन्तु इनका भी सार यह है कि, परमपुरुष परमात्माको अपना आत्मा समर्पण करना यह परमश्रेष्ठतप है ॥ २६ ॥ यह महाकठिन निर्मल ज्ञान नरके सखा श्रीमन्नारायणने नारदजीसे कहा था,जो पुरुष सच्चे भगवान्के भक्त और आनन्दरूप हैं उनके चरणकमलकी रजसे जो स्नान करनेवाले हैं उनहींकोयह निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है ॥२७॥ देवसमान दर्शनवाले

भगवान् नारदजीके मुखसे विज्ञानसहित यह ज्ञानरूप भागवत धर्म पहिले शुद्धचित्तसे मैंने सुना था ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्र बोले कि, हे प्रह्लाद ! हम और तुम इन गुरु शण्डामर्कके अतिरिक्त दूसरेको नहीं जानते और उनसे हमने तुमने एक संग ही पढा है, फिर यह निर्मल ज्ञान तुमको कैसे होगया ? और दूसरा गुरु तुमको मिला ही नहीं ॥ २९ ॥ हे प्रह्लाद ! तुम बालकपनसे तो रनिवासमें अपनी जननीके पास रहे, वहां सज्जन पुरुषोंका जाना महाकठिन था; हमारे मनमें यह बडा भारी संशय है सो संशय तुम हमारा दूर करो जिससे भगवान्की भक्तिमें हमारी श्रद्धा होय और हमारे मनमें विश्वास हो ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लादेन ब्रह्मज्ञानवर्णनं नाम

दैत्यपुत्रा ऊचुः ॥ प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम् ॥ एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥ २९ ॥ बालस्यांतःपुरस्थस्य महत्संगो दुरन्वयः ॥ छिंधि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद् विस्रंभकारणम् ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ॥ उवाच स्मयमानांस्तान् स्मरन्मदनुभाषितम् ॥ १ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मंदराचलम् ॥ युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥ २ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–सप्तममें प्रहलाद जो, सुनो गर्भमें ज्ञान । सो लड़कनके सामने, लागे करन बखान ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि, जब असुरोंके बालकोंने इस प्रकार दैत्यपुत्र प्रह्लादसे बूझा, तब मेरे ज्ञानोपदेश–भाषणका स्मरण कर प्रह्लाद मुसकाकर उन बालकोंसे यह कहने लगे ॥ १ ॥ प्रह्लाद बोले कि, हमारे पिता जब मन्दराचल पर्वतपर तप करनेके लिये चले गये तब इन्द्रादिक देवताओंने दैत्योंको विना नरेशके निर्बल समझ उनके ऊपर युद्धका आक्रमण किया ॥ २ ॥

---

१ **भजन**–बिन हरिभजन कौन सुख पायो ॥ हरि को नाम परम सुखदायक, सब भक्तनने गायो ॥ १ ॥ जिन घर बार मोह ममता तज, हरिसों ध्यान लगायो ॥ निःसन्देह यह देह त्यागकर, सुरपुर जाय बसायो ॥ २ ॥ सब भक्तनम भक्तशिरोमणि पूरण भक्त कहायो ॥ करत पुराण प्रशंसा निशिदिन, त्रिभुवनमें यश छायो ॥ ३ ॥ भक्तहेत भगवान जगतमें, मनुज रूप धर आयो ॥ दुष्ट मार भूभार उतारो, आनँद सबन दिखायो ॥ ४ ॥ भक्ति भावसे शेष शीशपर, भूको भार उठायो ॥ शालिग्राम प्रताप भक्तिको, दुरतो नाहिं दुरायो ॥ ५ ॥

परस्पर इन्द्र और देवता कहने लगे कि, जैसे चींटी सीपका भक्षण कर लेती है ऐसे ही मनुष्योंके सतानेवाले हिरण्यकशिपु पापीको उसके पापने ही भक्षण कर लिया, हम लोगोंके लिये यह बडा आनन्द हुआ ॥३॥ उनके बलका अत्यन्त उद्योग देखकर असुरोंके सेनापति देवताओंके भयके मारे भयभीत हो सब दिशाओंको भाग गये और कोई कोई दैत्य देवताओंके हाथसे मारे भी गये ॥४॥ तब नारदजी बोले कि, कुटुम्ब, पशु, सम्पत्ति और सब सामग्रियोंको छोड़ अपने २ प्राण लेकर देश विदेशको भाग निकले॥५॥तब विजयकी अभिलाषा करनेवाले देवताओंने सेनानिवासस्थानको लूट लिया और मेरी माता राजमहिषी कयाधु दानवीको इन्द्र पकडकर ले चला ॥६॥ जैसे व्याधके पकडनेसे

पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः॥ पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः ॥३॥ तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ॥ वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान् ॥ नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्व प्राणपरीप्सवः ॥ ५ ॥व्यलुंपन् राजशिबिरममरा जयकांक्षिणः॥ इंद्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥ ६ ॥ नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ॥ यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥ ७ ॥ प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ॥ मुंच मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम्॥८॥इन्द्र उवाच॥ आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ॥ आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥ ९ ॥

टिटिहरी चिल्लाने लगती है ऐसे ही मेरी माता कुररीकी नाईं चिल्लाने लगी और अनेक अनेक प्रकारके विलाप करके रोती थी, और इन्द्र बलात्कार उसे पकड़े लिये जाता था. अकस्मात् दैवइच्छासे उस मार्गमें कहींसे नारदजी भी चले आते थे और मेरी माताको रोती हुई उन्होंने देखा ॥ ७ ॥ तब नारदजी बोले कि, हे देवराज! इस अबला निरपराधिनीको क्यों लिये जाते हो? इसको कभी नहीं ले जाना चाहिये. हे महाभाग! इस दीन सती स्त्रीको छोडदे, यह तेरे योग्य नहीं है. यह पतिव्रता परस्त्री है जो इसका पति आवेगा तो क्षणमात्रमें तेरी सब पति खोदेगा और तू भागा भागा फिरेगा और इन्द्रलोकमें रहना कठिन हो जायगा ॥ ८ ॥ इंद्र बोला कि, इसके पेटमें हिरण्यकशिपुका गर्भ है सो वह महाभयानक और देवद्रोही होगा, इसलिये जबतक इसका गर्भ बाहर न आवेगा तबतक मैं इसको अपने

पास रक्खूंगा, और जबतक इसके पुत्र न होगा कभी इसको नहीं छोडूंगा, जब इसके पुत्र होगा उसको मारकर मैं इसको छोडूंगा ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि, इसके उदरमें जो स्थित है वह निष्पाप और भागवतोंमें उत्तम और परमश्रेष्ठ है, वह तुमसे किसी प्रकार नहीं मरेगा क्योंकि, वह परमात्माका परमभक्त है, तुम और जानते हो कि, ईश्वरके भक्त महाबली और पूर्णप्रतापी होते हैं, इसलिये क्यों वृथा कलंक लेते हो, छोड़ दो ॥ १० ॥ प्रह्लाद बोले कि, नारदजीके वचनोंको सत्य मान मेरी माताको उसने छोड़ दिया और उसके उदरमें भगवतका भक्त जान मेरी

नारद उवाच ॥ अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ॥ त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनंतानुचरो बली ॥ १० ॥ इत्युक्तस्तां विहायेंद्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ॥ अनंतप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥ ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ॥ आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुरागमः ॥ १२ ॥ तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरंति साऽप्यकुतोऽभया ॥ यावद् दैत्यपतिर्घोरात् तपसो न न्यवर्तत ॥ १३ ॥ ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती ॥ अंतर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥ १४ ॥

माताकी परिक्रमा की और प्रणाम कर इन्द्र अपने लोकको चला गया ॥ ११ ॥ तब नारदजी मेरी माताको अपने स्थानपर लाकर आशा भरोसा देकर बोले कि, हे वत्से! जबतक तेरा स्वामी न आवे तबलों तू यहां निवास कर * ॥ १२ ॥ मेरी माता मुनिके मनोहर वचनोंको मान सब भय त्याग निर्भय हो मुनिके आश्रमपर निवास करने लगी. जबतक मेरा पिता घोर तपसे निवृत्त हो लौटकर न आया तबतक ॥ १३ ॥ उस पतिव्रतागर्भवती मेरी माताने अपने गर्भकी कुशलता और इच्छा

---

* **शंका**–राक्षसोंके बालकोंसे प्रह्लादने कहा कि, नारदमुनि मेरी माताको अपने आश्रमपर ले गये, तब मेरी माता नारदजीके आश्रममें विश्राम करती रही, जबतक मेरा पिता हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीसे वरदान लेकर घरपर न आया. हम लोगोंने ऐसा सुना है शास्त्र और पुराणोंमें कि, नारदमुनिका कोई आश्रम नहीं था और नारद मुनि किसी स्थानपर दो चार घडीसे अधिक ठहरही नहीं सकते थे, फिर नारदजीके आश्रमपर प्रह्लादकी माता कैसे बहुत दिनतक ठहरी ? यह सन्देह है ॥

उत्तर–भगवान्के भजन करनेके लिये बदरिकाश्रममें नारदजीका गुप्त आश्रम है. तीनों लोकोंमें घूमघाम कर नारदजी अपने उसी गुप्त आश्रमपर आकर भगवान्का भजन करते हैं. नारदजीके आश्रमपर जो जीव बसते हैं, उनको किसीका भय नहीं होता इसलिये प्रह्लाद दैत्योंके बालकोंसे कहते थे ॥

पूर्वक पुत्रके जन्मनेके लिये परमभक्तिसे वह धर्मशीला ऋषिकी सेवा करने लगी ॥ १४ ॥ परमदयालु और सर्वसमर्थ मुनिने मुझको भक्त जान धर्मका तत्त्व और निर्मल ज्ञान दोनों मेरी जननीको दिये ॥१५॥ उस ज्ञानको बहुत काल पाकर अधिक दिन व्यतीत होनेसे और स्त्रीपनके स्वभावसे मेरी माता तो भूल गई परन्तु ऋषिकी कृपासे मुझको वह ज्ञान अबतक स्मरण है, मैं उसको किंचिन्मात्र भी नहीं भूला ॥ १६ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! जो तुम भी मेरे वचनोंको श्रद्धापूर्वक सुनोगे तो तुमको भी तत्त्वज्ञान उत्पन्न होगा और श्रद्धा होनेसे स्त्री और बालकोंको भी मेरे समान ब्रह्मज्ञान हो सकता है ॥१७॥ महासमर्थ कालके हेतु होते हैं, जन्मता है, है, बढता है, कुछका कुछ होता है, कभी क्षीण, कभी क्षय, यह

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ॥ धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥ १५ ॥ तत्तु कालस्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ॥ ऋषिणाऽनुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात्स्मृतिः ॥१६॥ भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ॥ वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥ १७ ॥ जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ॥ फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ १८ ॥ आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ॥ अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसंग्यनावृतः ॥ १९ ॥ एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ॥ अहंममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥ २० ॥

565

छः भाव देहको होते हैं, देहके व्यापक आत्माको नहींहोते, क्योंकि छः विकार शरीरहीके होते देखनेमें आते हैं. जैसे वृक्ष जब हो तभी उसके फलके यह विकार होते हैं, तैसे आत्माके होनेहीसे विकार देहके हो सकते हैं ॥ १८ ॥ आत्मा नित्य है और देह अनित्य है, आत्मा क्षीण नहीं होता और देह क्षीण हो जाता है. आत्मा शुद्ध है और देह अशुद्ध है. आत्मा एक है और देह अनेक है. आत्मा देहादिकको जानता है और शरीर जड है, आत्मा सबका आश्रय है और शरीर आत्माके आश्रय है, आत्मा निर्विकार है और शरीर सविकार है. आत्मा स्वयंप्रकाश है और शरीर परप्रकाश्य है. आत्मा सबका कारण है और देह कार्य पदार्थ है. आत्मा सर्वव्यापक है और देह व्याप्य है. आत्मा असंग है और देह संगी है तथा आत्मा किसीसे आवृत नहीं होता और देह वस्त्रादिकसे आच्छादित होजाता है॥१९॥आत्माके परसे परे इन

द्वादश लक्षणोंका ज्ञान होनेसे विद्वान्को अहं,मम यह असद्भाव देहादिकमें जो मोहसे लगा है उसका त्याग करना चाहिये॥२०॥जैसे सोनेको सब प्रकारसे जाननेवाला सुनार कसौटी आदि पत्थरोंमेंसे लगे हुए सोनेको निकालकर अलग कर लेता है, इसी प्रकार अध्यात्मको जाननेवाले शरीरमध्यवर्ती जीवके द्वारा होकर आत्मलक्ष्यरूप योग करके ब्रह्मकी गतिको जान लेते हैं ॥२१॥ माया, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह आठ प्रकृति सत, रज और तम यह तीन मायाके गुण हैं; यह पृथक् नहीं गिने जाते, ग्यारह इंद्रियें और पांच महाभूत मिलकर सोलह विकार हुए, इन षोडश विकारोंके न होनेसे कपिलाचार्यने जीव ब्रह्म एक कहा है और प्रकृतियां और सोलह विकार मिलकर चौवीस तत्त्व होते हैं, सबके साक्षीपनका सम्बन्धी आत्मा एक ही है ॥२२॥ इनहीं चौबीस तत्त्वोंका सम्बन्ध होनेसे शरीर कहलाता है। स्थावर और जंगम इस शरीरके दो प्रकारके भेद हैं सो मनुष्यको देहमें ही जीवद्वारा पुरुष परब्रह्मको खोज लेना चाहिये; इस बातमें कुछ कठिनता नहीं है, बहुत सहजमें हो सकती है, क्योंकि ऐसे समझे कि, यह भी आत्मा नहीं है यह भी आत्मा नहीं, इस प्रकार दृश्य वस्तुओंको अलग करते करते यह आत्मा अपने आप सबसे अलग हो जाता है ॥२३॥ देखो अक्षर मसीसे भिन्न नहीं है परन्तु मसी अक्षरोंसे भिन्न है, इसी प्रकार देहादिक आत्मासे पृथक् नहीं परन्तु आत्मा इनसे पृथक् है, जैसे मणियोंमें सूत पुहा हुआ है इसका नाम अन्वय है और मणियोंकी डोरीसे पृथक् है इसका नाम व्यतिरेक है, ऐसे शुद्ध ज्ञानके जाननेवाले मनसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, संहारका निश्चय करनेवाले वेदकी श्रुतियोंको धीरे २ विचारनेवाले धीर पुरुषोंके जाननेके योग्य ब्रह्म है ॥२४॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन वृत्तियां बुद्धिकी हैं, इनका जो

स्वर्ण यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ॥ क्षेत्रेषु देहेषु तथात्मयोगैरध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत ॥ ॥ २१ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ॥ विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥ २२ ॥ देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्थुरिति द्विधा ॥ अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥ २३॥ अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशतात्मना ॥ सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्त्वरैः ॥ २४ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ॥ ता येनैवानुभूयंते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥ २५ ॥

अनुभव नहीं करता है वह सबका साक्षी परपुरुष ईश्वर है ॥२५॥ इन तीन वर्णसे बुद्धिभेद करके क्रियासे आत्माके स्वरूपको जानै. सबमें व्यापक होनेसे गन्धके गुणसे वायु जानी जाती है, इसी प्रकार बुद्धिको धर्मरूप तीनों अवस्थाओंको जाननेवालेको आत्मा भिन्न प्रतीत होता है ॥२६॥ बुद्धिके गुण और कर्मों करके बन्धन होता है, यही संसारके द्वार हैं. इसका मूल कारण अज्ञान है, इसीसे यह मिथ्या है परन्तु मिथ्या होनेपर भी पुरुषको स्वप्नवत् दिखाई देता है ॥ २७ ॥ इसलिये त्रिगुणात्मक कर्मोंका बीज जो अज्ञान है उसके नाश करनेके लिये तुम सब योगका साधन करो जिससे तीनों अवस्थारूप संसारका प्रवाह दूर होजाय, यही श्रेष्ठ है ॥२८॥ सोई सहस्रों उपायोंसे बढ़कर यह उपाय भगवान्ने गीता आदि शास्त्र और पुराणोंमें अपने मुखसे वर्णन किया है कि, जिस धर्म कर्मसे भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंमें रुचि हो,

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ॥ स्वरूपमात्मनो बुध्येद् गन्धर्वायुमिवान्वयात् ॥२६ ॥ एतद्द्वारो हि संसारो
गुणकर्मनिबंधनः ॥ अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥ २७ ॥ तस्माद् भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्म
नाम् ॥ बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥२८॥ तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ॥ यदीश्वरे भगवति यथा
यैरंजसा रतिः ॥ २९ ॥ गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ॥ संगेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥ ३०॥ श्रद्धया
तत्काथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ॥ तत्पादांबुरुहध्यानात् तल्लिंगेक्षाऽर्हणादिभिः ॥३१॥ हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त
ईश्वरः ॥ इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥ ३२ ॥

हे बन्धुगणो ! उसी धर्म कर्मका करना मनुष्यको चाहिये ॥ २९॥ गुरुकी सेवा करनेवाली जो उत्तम भक्ति है वह सम्पूर्ण लाभोंकी देनेवाली है सो भगवान् वासुदेवके समर्पण करे, सत्संगतिसे, साधु महात्माजनोंकी भक्तिसे परमेश्वरका आराधन करे तो भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ ३० ॥ भगवानकी कथा श्रद्धापूर्वक सुनै, ईश्वरके सुन्दर सुन्दर गुण और कर्मोंका कीर्तन करे, उनके मनोरंजन भयभंजन पदांबुजोंका ध्यान करे और उनके परमसुखदायक अघघायक अत्यन्त सुहावन मनभावन सुन्दर स्वरूपका दर्शन व पूजन करे ॥ ३१॥ श्रीनारायण आदि पुरुष अविनाशी भगवान् सब जीवमात्रमें और जल थलमें विराजमान हैं; ऐसा निश्चय जान प्रत्येक प्राणीमात्रका तनमनसे पूजन करे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार काम क्रोधादिक छः शत्रुओंको जीतकर ईश्वरमें भक्ति करे, जिससे अधिक प्रीति होजाय ॥ ३३ ॥ भगवत्के अतुल गुण, कर्म, वीर्य और जो जो लीला अनेक अनेक प्रकारके अवतार धारण करके करी हैं उनको हित चित्तसे सुने, जब अत्यन्त हर्ष बढे और शरीर पुलकायमान होजाय, नेत्रोंमें आंसू भर आवें, गद्गदवाणी होजाय, उच्चस्वरसे कभी गाने लगे, कभी रोने लगे, कभी हँसने लगे, कभी नाचने लगे ॥ ३४ ॥ जब इस प्रकार प्रेमलक्षणा भक्ति होजाती है तब वह पुरुष ग्रहगृहीतकी नाईं, कभी हँसता है, कभी पुकारता है, कभी ध्यानमें आजाता है, कभी जीवोंको प्रणाम करता है, कभी वारंवार श्वास लेकर हे हरे ! हे जगत्पते ! हे मुकुन्द ! हे गोविंद ! हे नारायण ! कहता है. यह आत्माकी गति

एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ॥ वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥ ३३ ॥ निशम्य कर्माणि गुणान
तुल्यान्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ॥ यदातिहर्षात्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कंठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ ३४ ॥
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रन्दते ध्यायति वंदते जनम् ॥ मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्ममति
गतत्रपः ॥ ३५ ॥ तदा पुमान्मुक्तसमस्तबंधनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ॥ निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥ ३६ ॥ अधोक्षजालंभमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ॥ तद्ब्रह्मनिर्वा
णसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥ ३७ ॥ कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत्सतः ॥
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥ ३८ ॥

होजाती है और कुछ लज्जा नहीं रहती ॥ ३५ ॥ जब ऐसा प्रेम उत्पन्न होजाता है तब पुरुष सब बन्धनोंसे छूटकर मनमें भगवान्की भावनाको कर वैसे ही कर्म करने लगता है, महा भक्तिप्रयोग करके काम कर्मके बीजरूप अज्ञानकी वासनाओंको भस्म करके भगवान्को प्राप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ अधोक्षजभगवान्का जो स्पर्श होता है वही प्राणियोंके सब शरीरोंके अशुभ कर्मोंका नाशक है, वही संसारचक्रका विनाश करनेवाला है, वही ब्रह्मका महानन्द सुख उपजानेवाला है, उसीको बुध जन मोक्षरूप जानते हैं. हे भ्रातृगणो ! इसलिये तुम भी सब मिलकर अपने हृदयमें नारायणको भजो ॥ ३७ ॥ हे बांधवो ! श्रीनारायण तो हृदयछिद्रमें आकाशवत् सदा विराजमान हैं, इसलिये

फिर परमेश्वरकी उपासना करनेमें किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है. भगवान् अपनें आत्मामें स्वभावसे सब शरीरके मध्यमें सामान्यभावसे रहते हैं, तुच्छ प्राणियोंकी नाईं विषयोंके सेवन करनेसे क्या लाभ है? ॥ ३८॥ स्त्री, धन, पशु, पुत्रादिक, मंदिर, वसुधा, हाथी, कोष, विभूति और इनके अतिरिक्त और भी जो वस्तु और मनोभिलाषा जो अति चंचल है वह क्षणभंगुर आयुषवाले मनुष्यको कुछ प्यार नहीं कर सकती. क्योंकि, वह आप चलायमान है ॥३९॥ ऐसे यज्ञादिक करनेसे जो स्वर्गादिक लोक प्राप्त होते हैं वह भी अनित्य ही हैं. क्योंकि, यह भी सब नाशावन् हैं, पुण्यकी न्यूनता अधिकता है, निर्मल नहीं है, इसलिये जिनमें कभी दूषण देखनेमें और सुननेमें न आवे ऐसे भगवान्

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः ॥ सर्वेऽर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः कुर्वंति मर्त्यस्य कियत्
प्रियं चलाः ॥ ३९ ॥ एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ॥ तस्माददृष्टश्रुतदूषणं
परं भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥ ४० ॥ यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यः सकृन्नरः ॥ करोत्यतो विपर्यासममोघं
विंदते फलम् ॥ ४१ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय संकल्प इह कर्मिणः॥सदाप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥ ४२ ॥
कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः॥ स वै देहस्तु पारक्यो भंगुरो यात्युपैति च ॥ ४३ ॥ किमु व्यवहितापत्य
दारागारधनादयः ॥ राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः॥ ४४ ॥ किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः ॥
अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानंदमहोदधेः ॥ ४५ ॥

वासुदेवको अपने आत्माकी प्राप्तिके लिये तुम सब मिलकर भजन करो ॥ ४० ॥ जिसका संकल्प कर विद्वज्जन पुरुष अपनी विद्याके अभिमानसे फलकी इच्छासे कर्म करते हैं, उनको इच्छाके विपरीत फल प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ सब जानते हैं, कर्म करने वाले पुरुषका सकल्प दुःखके दूर करनेको और सुखकी प्राप्तिके लिये होता है, सोई दुःख प्राप्त होता है, और चेष्टा न करनेसे सुख प्राप्त होता है, अर्थात् सुख तो केवल कर्मोंके त्यागनेहीसे होता है ॥ ४२ ॥ सकाम कर्मसे पुरुष जिस सुखके लिये कामोंकी चाहना करता है सो वह देह तो पराया है, क्षणभंगुर है, कभी प्राप्त हो जाता है, कभी नाश हो जाता है ॥४३॥ स्त्री, पुत्र, घर, धनादिक, राज्य भण्डार, हाथी, मंत्री, भृत्य यह देहसे दूर और ममताके स्थान हैं, इनसे होनाही क्या है?॥४४॥ अत्मा जो कि अजय, अव्यक्त, अविनाशी, आनन्दका महासमुद्ररूप

है उसको तुच्छ समझना और जो सुख महाअनर्थकारी हैं और विनाशी है और देहसे होते हैं, और भूले मनसे सुखदायक दृष्टि आते हैं, परमेश्वरके सम्मुख वह सन्तान, स्त्री, वेश्यादिक वस्तु नहीं ॥ ॥ ४५ ॥ हे असुरपुत्रो ! देहधारियोंको यह क्या स्वार्थ है ? जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त जब अपने कर्मोंसे क्लिश्यमान हैं ॥४६॥ यह जीव अपने आत्माके अनुसार देहसे कर्मोंको आरम्भ करना चाहता है और कर्मोंसे देह होता है परन्तु सुख भोगनेका इसको कोई समय प्राप्त नहीं हो सकता और विचार करके देखते हैं तो कर्म और देह दोनों अज्ञानपनसे होते

निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान्देहभृतोऽसुराः ॥ निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥ ४६ ॥ कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना ॥ कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥ ४७ ॥ तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः ॥ भजतानीहयात्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥४८॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः ॥ भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥ ४९ ॥ देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गंधर्व एव च ॥ भजन्मुकुंदचरणं स्वस्तिमान् स्याद्यथा वयम् ॥ ५० ॥नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽसुरात्मजाः ॥ प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥ ५१ ॥ न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ॥ प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडंबनम् ॥ ५२ ॥

हैं ॥४७॥ सब जीवमात्रके आत्मा श्रीहरि परमप्रिय भगवान् हैं और पञ्चभूतोंके रचेहुए सब प्राणीमात्र हैं ॥ ४८ ॥ तुम अपने मनमें यह न समझना कि, हम दैत्यदेह हैं, हमको भगवत्के भजन करनेका अधिकार नहीं है, यह बात नहीं. देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व इत्यादि कोई प्राणी क्यों न हो, श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दके भजन करनेसे स्वस्तिमान् होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे सुहृद्गण ! ब्राह्मणपन, देवतापन, ऋषिभाववृत्त, सदाचार, बहुज्ञता, दान, तप, यज्ञ, शौच, व्रत कोईभी भगवान्का प्रसन्न करनेवाला नहीं दीखता और

---

१ इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ किसी समाजमे एक वेश्या नाच रही थी, और मनोहरतासे यह कवित्त गाय गाय रिझाय रिझाय हाथ उठाय उठाय सबकी ओरको बताय रहीथी वहां कोई बुद्धिमान् किसी चतुर पण्डितसे बूझने लगे कि, यह वेश्या हाथ उठा उठाकर किसको क्या बता रही है, ? पण्डितजी बोले कि, मित्र! तुम नहीं जानते इस बातपर आपको एक सवैया सुनातेहैं:-

सवैया-पट उज्ज्वल धारके बैठे सभा, मन काममें लाग रह्यो जिनको ॥ सो मृदंग कहै हरिभक्ति विना, धिक है त्रिक है धिक है तिनको ॥ मनजीरन बूझ लियो विधिसों किनको किनको किनको किनको॥ वह पातुर हाय उठाय कहै, इनको इनको इनको इनको ॥ १ ॥

जो कदाचित् प्रसन्न होते भी हैं तो बहुत कालमें होते हैं और भगवान् तो केवल निष्कपट प्रीति और भक्तिसे ही प्रसन्न होजाते हैं और शेष सब बातें कहनें मात्र हैं॥५१॥५२॥हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये श्रीभगवान्की भक्ति निष्कपट मनसे तुम सब मिलकर करो, सबको अपने समान जानकर सब जीवमात्रमें श्रीभगवान् वासुदेवहीको समझो ॥ ५३ ॥ दैत्य,यक्ष, राक्षस, स्त्रियें, शूद्र, व्रजवासी, खग, मृग और दूसरे भी पापी जीव भक्तिके प्रभावसे ही मुक्तिको प्राप्त हुए॥५४॥ बस इस लोकमें मनुष्यका परम स्वार्थ इतना ही है कि,भगवान्की निश्चल भक्ति हित चित्तसे

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः॥आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे॥५३॥दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ॥ खगा मृगाः पापजीवाः संति ह्यच्युततां गताः ॥५४॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः॥ एकांतभक्तिर्गोविंदे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराण सप्तमस्कंधे दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ नारद उवाच ॥अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ॥ जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम्॥ ॥१॥ अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकांतसंस्थिताम् ॥ आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥ २ ॥

करनी और सर्वत्र भगवान् हीका वास जानना,इससे अधिक और कोई उपाय मुक्ति होनेका नहीं है ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा–अष्टममें अति कोप कर, दियो पुत्रको त्रास । तब हरि नरहरिरूप किय, कनककशिपुकर नाश ॥१॥ नारदजी बोले कि,सब दैत्यपुत्रोंने प्रह्लादका वर्णन सुनकर निर्दोष होनेके लिये उनही बातोंको अंगीकार किया और गुरुकी शिक्षा नहीं मानी ❋॥१॥ जब सब बालकोंकी बुद्धि इस प्रकार नारायणमें लगी हुई देखी, तब शुक्राचार्यके पुत्र अपने मनमें बहुत डरे

❋ **शंका**–राक्षसोंके लडकोंने प्रह्लादसे ज्ञान सीखा,परन्तु ज्ञानियोंका नाम लोकमें और शास्त्रमें सब प्राणियोंको विदित हो जाता है,परन्तु उनका नाम शास्त्रमें और लोकमें हमने नहीं सुना कि, वह लडके किधर गये, छोटे तपस्वियोंका, बडे तपस्वियोंका, और जो जो तपस्वी हैं अथवा ब्रह्मज्ञानी हैं उन सबका नाम हमने सुना,परन्तु प्रह्लादके शिष्योंका नाम हमने कहीं नहीं सुना यह प्रश्न है कि, प्रह्लादसे ज्ञान सीखकर वह लडके किस लोकमें गये ? ॥

उत्तर–जब प्रह्लादका और हिरण्यकशिपुका, उत्पात होना आरम्भ हुआ तब शुक्राचार्य उसके पास नहीं थे,पीछे शुक्राचार्यने आकर सब उत्पात छाडे राक्षसोंके बालकोंको श्रेष्ठकर्म करता देखकर लडकोंसे

और अच्छी रीतिसे सोच समझकर सब वृत्तांत जैसेका तैसा हिरण्यकशिपुसे जाकर कहा. यह असह्य अप्रिय महाकठिन अत्याचार पुत्रका सुनकर क्रोधमें मतवाला हो लाल लाल नेत्र कर काँपने लगा और पुत्रके मारनेका विचार मनमें किया ॥३॥ जिस परमेश्वरके भक्तका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता उस प्रह्लादका कठोर वाणी और तिरछी आँखसे निरादर करने लगा ॥४॥ वह जितेंद्रिय प्रह्लाद नम्रतासे हाथ जोडे खडा था, उस दारुण प्रकृतिवाले हिरण्यकशिपुने पाँवसे मसलेहुए सांपके सदृश फुंकार कर प्रह्लादसे इस प्रकार बोला ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत! हे

श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुस्सहं तनयानयम् ॥ कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हंतुं मनो दधे ॥३॥ क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लाद मतदर्हणम् ॥ आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥४॥ प्रश्रयावनतं दांतं बद्धांजलिमवस्थितम् ॥ सर्पः पदाऽहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत मंदात्मन्कुलभेदकराधम ॥ स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाऽद्य यम क्षयम् ॥ ६ ॥ क्रुद्धस्य यस्य कंपंते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ॥ तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किंबलोऽत्यगाः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ न केवलं ये भवतश्च राजन्स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ॥ परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥ ८ ॥

मंदमति! हे कुलकलंक! कुलमें भेद डालनेवाले! हे अधम! गर्वी! तैंने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, मैं तुझको आज यमलोकमें भेजूंगा॥ ॥ ६ ॥ हे मूढ! जा मेरे आगेसे चला जा. अरे नीच! मेरे क्रोधसे दशों दिक्पाल और सब लोकप त्रिलोकी समेत ईश्वरतक काँप रहेहैं और तू निःशंक होकर मेरी आज्ञाका उल्लंघन करता है, ऐसा तुझको किसका बल है॥७॥ प्रह्लाद बोला कि, हे राजेन्द्र! सब चर अचर जीव जन्तु ब्रह्मादिकोंको जिसने अपने वशीभूत कर रक्खा है, उसी आदिपुरुष अविनाशीका मुझको और तुमको बल है. बरन् मुझमें और आपमें ही

–शुक्राचार्य बोले कि, यह कर्म तुम सब जन त्याग दो और जो नहीं त्यागोगे तो हम तुम सबको भस्म कर देंगे, ऐसा डर मानकर वह लडके फिर राक्षसकर्म सीखने लगे. वह लडके तपस्या करनेमें कच्चे थे इसलिये उन्होंने डरके मारे श्रेष्ठ कर्म करने छोड दिये और राक्षसकर्म करने लगे इस कारण वह लडके तपस्वी नहीं हुए; विना तप किये उनका नाम प्रसिद्ध कैसे होता ॥

नहीं, सब संसारके बलवानोंमें उसीका बल है ॥ ८ ॥ काल, उरुक्रम, ओज, सह, बल, इन्द्रिय, आत्मा और सत्त्व वही परमेश्वर अपनी शक्तियोंसे सृष्टिको रचै है, पालै है, संहार करै है और वही तीनों गुणोंका ईश है ॥ ९ ॥ अब आप इस अपने असुरस्वभावको छोडदो; मनमें सबसे समानभाव रक्खो, कोई किसीका शत्रु नहीं है, केवल अजित और पाखंड मतमें स्थित और खोटे मार्गमें चलनेवाले आत्माके, तुम श्रीअनन्त भगवान्में उसे अर्पण करो और उनका पुजन करो, इसीमें आपका भला है ॥ १० ॥ कोई २ पुरुष आपसरीखे ऐसे भी हुए कि, अपनी इन्द्रियोंको विना जीते दशों दिशाओंको जीता मान लिया; परन्तु कुछ न जीता. क्योंकि, जिसने अपने वैरियोंको ही नहीं जीता उसने क्या जीता ? खटका तो बना ही रहा. जिसके घरमें शत्रु घुस रहा, वह बाहरके शत्रुओंको जीतकर कैसे सुखकी नींद सो सकता है ?

स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजस्सहस्सत्त्वबलेंद्रियात्मा ॥ स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्र
येशः ॥९॥ जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न संति विद्विषः॥ ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि
ह्यनंतस्य महत्समर्हणम् ॥ १० ॥ दस्यून्पुरा षण्न विजित्य लुंपतो मन्यंत एके स्वजिता दिशो दश ॥ जितात्मनो
ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि
योऽतिमात्रं विकत्थसे ॥ मुमूर्षूणां हि मंदात्मन्ननु स्युर्विप्लवा गिरः ॥ १२ ॥ यस्त्वया मंदभाग्योक्तो मदन्यो जगदी
श्वरः ॥ क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तंभे न दृश्यते ॥ १३ ॥

और जिसने अपने आत्माको जीत रक्खा है, ऐसे ज्ञानी पुरुष सब देहधारी मात्रमें समानभाव बर्तैं हैं. ऐसे साधुजनोंको अपने मोहसे दुःख नहीं होते और औरोंका तो कहना ही क्या है ? ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि उसे प्रह्लादके नीतिभरे वचन बाणके समान लगे, तब तो क्रोधवान् होकर हिरण्यकशिपु बोला कि, अरे अधम ! मुझको भलीभाँति निश्चय हुआ कि, तू अपने मरनेकी इच्छा करता है, जो ऐसे निर्द्वन्द्व वाक्य बोलता है. हे मन्दआत्मन् ! जिनका काल शिरपर आ जाता है उनकी ऐसी ही अयोग्य वाणी निकलती है और सब ज्ञान जाता रहता है ॥ १२ ॥ अरे कुल ंक ! मेरे अतिरिक्त तैंने जो जगत्का कर्ता और कोई दूसरा बताया, अब बताव वह कहां है ? जो तू

कहता है कि, वह परमात्मा सर्वत्र है तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता? ॥ १३ ॥ जो अब खम्भमें नहीं दीखेगा तो मैं तेरे शिरको छेदन करूंगा इसलिये तैंने जो हरि अपना रक्षक समझ रक्खा है वह अब तेरी रक्षा करे, देखें कैसे कर सकता है? ॥ १४ ॥ इस प्रकार वह दुष्ट हिरण्यकशिपु, वचनोंसे और क्रोधसे महाभागवत प्रह्लाद अपने पुत्रको पीडा दे खड्ग हाथमें ले महाक्रोध कर ललकारता फटकारता गर्जता तर्जता झट झपट कर आसनसे उछल कर उठा, कवचकी कडियें तड़कने लगीं, भुजायें फड़कने लगीं, तेलके समान

सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ॥ गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १४ ॥ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ॥ खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात् स्तंभं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥ १५ ॥ तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूव येनांडकटाहमस्फुटत् ॥ यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामात्ययमंग मेनिरे ॥ १६ ॥ स विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ॥ अंतस्सभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १७ ॥ सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ॥ अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्स्तंभे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ १८ ॥ स सत्त्वमेवं परितो विपश्यन्स्तंभस्य मध्यादनुनिर्जिहानम् ॥ नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेंद्ररूपम् ॥ १९ ॥

आंसू आंखोंसे ढलकने लगे, योधा क्रोधानलसम रूप देख देख सरकने लगे, उस समय महागम्भीर नाद कर खम्भमें एक मुष्टिक मारा ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! उसीसमय उसमें महाभयंकर शब्द हुआ, जिसके होतेही पृथ्वी लोट पोट होने लगी, पहाड़ जड़से उखड कर गिरने लगे, दिग्गज चिंघाडने लगे, समुद्रोंने मर्यादा छोडदी, आज सब लोकोंका विध्वंस होजाय तो कुछ आश्चर्य नहीं, मैं जानता हूँ कि, आज महाप्रलयका समय आ गया ऐसा ब्रह्मादिकोंनें माना ॥ १६ ॥ पुत्रको मारनेकी इच्छावाला वह दैत्य सभाके बीचमें अद्भुतशब्द सुनकर वेगसे इधर उधर दौडता हुआ तिसके आश्रयको नहीं देखता भया और सम्पूर्ण दैत्य अतित्रासको प्राप्त होते भये ॥ १७ ॥ सब दैत्य खडे परस्पर

विचारही रहे थे कि,उसी काल सन्ध्याके समय खम्भको फाडकर राक्षसोंको मारनेवाले श्रीनृसिंह भगवान् प्रगट हुए. तब बिस्मित हुए राक्षस कहने लगे कि,अहो ! न तो यह सिंह है,न मनुष्य है,मनुष्य सिंह रूपवाला यह विचित्र सत्त्व क्या है ? ॥१८॥१९॥ हिरण्यकशिपुके ऐसे विचारते विचारते अगाड़ी उठे उए भयंकर नृसिंहजी दीखे कि; जिनके तप्त सुवर्णसे प्रचंड नेत्र, कंधवालके बाल कँपार हे, जँभाई लेते हुए॥२०॥ कराल डाढ़ें, तीक्ष्ण जिह्वा, भ्रुकुटीयुक्त भयंकर मुखवाले, खडे कानोंवाले, पर्वतकी गुफाकी तरइ मुख नासिका वाले, ठोडी भेंदसे भयंकर ॥ २१ ॥ आकाशको स्पर्श करत हुए, बडी और मोटी ग्रीवा उरु वक्षःस्थलवाले, कृश कटिभागवाले, चंद्रकिरण सदृश देदीप्यमान; भुजासदृश केशोंसे

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ॥ प्रतप्तचामीकरचंडलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृंभितान
नम् ॥ २० ॥ करालदंष्ट्रं करवालचंचलक्षुरांतजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ॥ स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकंदराद्भुतव्यात्तास्यनासं
हनुभेदभीषणम् ॥ २१ ॥ दिवि स्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यम् ॥ चंद्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्व
ग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥ २२॥ दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ॥प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना
वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥ एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ॥ अलक्षितोऽग्नौ
पतितः पतंगमो यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥ २४ ॥ न तद्विचित्रं खलु सत्त्वधामनि स्वतेजसा योऽनु पुराऽपिब
त्तमः ॥ ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥ २५ ॥

युक्त, नखरूप आयुधोंसे युक्त ॥२२॥ ऐसे भयंकर रूपको देखकर सब दैत्य दानव भाग गये और हिरण्यकशिपु कहनेलगा कि, अहो ! मालूम होता है कि,प्रायःकरके मयावी हरिने यह मेरे मारनेका उपाय किया है रहो,इससे क्या होनाहै ॥२३॥ हिरण्यकशिपु महाघोर शब्द कर बोला अरे पशु ! अरे मायावी!तैंने छल बल कर बहुत जनोंको छला है, परन्तु मैं तेरे वशका नहीं, ले अब सावधान हो!आज तुझको मारकर तेरे ही रुधिरसे अपने भ्राता हिरण्याक्षका तर्पण करूंगा. यह कह गदा लेकर नृसिंहजीके ऊपरको झपटा कि, जैसे अग्निपर पतंग झपटता है और वहां नृसिंहजीके तेजमें पड़तेही अलक्षित होगया ॥२४॥सो सत्त्वधामा भगवतमें यह बात विचित्र नहीं,क्योंकि पहले जिसने अपने तेजसे संपूर्ण

अन्धकार नष्ट कर दिया था फिर इस महाअसुर हिरण्यकशिपुने क्रोध करके अति तीव्र वेगवाली गदा नृसिंहजीपर डाली ॥२५॥ परंतु पराक्रम करते हुए गदासहित उस असुरको नृसिंहजीने ऐसे पकड़लिया कि,जैसे गरुड महान् सर्पको पकड लेता है परन्तु हिरण्यकशिपुभी नृसिंहजीके हाथसे ऐसे छूट गया कि; जैसे क्रीडा करते हुए गरुडके हाथसे सर्प छुडा जाता है ॥२६॥ परंतु यह छुडाना दुःखित हुए देवताओंको अच्छा नहीं दीखा, क्योंकि जिनके स्थान छीन बाहर निकाल दिये थे और यह महाअसुर छूटनेके कारण नृसिंहजीको अपने बीर्यसे शंकित मान खड्ग ढाल लेकर फिर नृसिंहजीके ऊपर वेगसे प्रहार करने लगा ॥ २७ ॥ महाभयानक अट्टहास शब्द करके अपने पूर्ण तेजसे उस सिकरेके समान

तं विक्रमंतं सगदं गदाधरो महोरगं ताक्ष्यर्यसुतो यथाऽग्रहीत्॥स तस्यहस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः॥२६॥ असाध्वमन्यंत हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ॥ तं मन्यमानो निजवीर्यशंकितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ॥ पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे॥२७॥ तं श्येनवेगं शतचंद्रवर्त्मभिश्चरंतमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ॥ कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥२८॥ विष्वक् स्फुरंतं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ॥ द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥ २९ ॥

वेगवाले अनेकशस्त्रधारी पृथ्वी आकाशके भ्रमण करनेवाले हिरण्यकशिपुके नेत्र बन्द कर अत्यन्त तीव्र वेगवाले नृसिंहजीने चपलाकी नाईं चमक कर उसको पकड़ लिया ॥ २८ ॥ जसे सर्प मूसेको विनाही प्रयास सहजमें पकड़ लेता है, उस समय दैत्येन्द्र आतुरतासे चारों ओरको तडफडाने लगा और छूटनेके लिये अनेक उपाय किये परन्तु श्रीनृसिंहजीके पजोंसे न छूट सका.उसकी खाल ऐसी कठोर थी जो वज्रसे भी कभी न कटी, उस हिरण्यकशिपुको अतिनिःशंक हो अंकमें भर जंघाओंपर धरकर सन्ध्याका समय विचार देहरी पर खडे होकर कहा, अरे प्रह्लादके दुःख देनेवाले। जो जो वचन तुझको दिये थे उनमेंसे तो कोई बात नहीं है।देख लो न दिन है,न रात है,न पृथ्वी है,न वज्र है, न आकाश है, न पशु

न मनुष्य है, न वन है, न शस्त्र है, न घर है, न द्वार है, सब प्रकारसे विचार ले, यह कह गरुड जैसे महाविषधर सांपको फाडकर बगेल देता है, ऐसे ही विना परिश्रम क्रीडामात्रसे नृसिंहजीने हिरण्यकशिपुका पेट फाड डाला. देखो ! भगवत्की अद्भुत गति सन्ध्याका तो समयथा न दिन था न रात थी जंघाओंपर धरकर मारा, न धरती थी न आकाश था: नखोंसे चीर डाला, न कोई अस्त्र था न कोई शस्त्र था और वह नख न जीवित थे, न मृतक थे और नृसिंह रूप जो धारण किया, न कोई पशु था, न पुरुष था ॥ २९ ॥ क्रोधसे भरा विशाल रूप महाविकराल लाल लाल प्रलयकालके कृशानुके समान नेत्र, अत्यन्त विस्तार वाला फटा हुआ मुख, मृत्युभवनके सदृश अपनी जिह्वासे अपने होठोंको चाट रहे और रुधिरके लगनेसे मुख लाल लाल हो रहा. दैत्यकी आँतोंका हार कण्ठमें पहिरे और जहाँ तहाँ रक्त के बुन्द जो शरीरमें लग रहे थे वह ऐसे विदित होते थे

संरंभदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननांतं विलिहन्स्वजिह्वया ॥ असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथांत्रमाली द्विपहत्यया
हरिः ॥ ३० ॥ नखांकुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ॥ अहन्समंतान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दण्ड
यूथोऽनुपथान्सहस्रशः ॥ ३१ ॥ सटावधूता जलदाः परापतन्ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ॥ अंभोधयः श्वासहता विचु
क्षुभुर्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥ ३२ ॥ द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदातिपीडिता ॥
शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥ ३३ ॥

मानो पर्वतपर वीरबहूटी फिर रही हैं और गलेमें आंतोंका हार ऐसी शोभा देता था जसे सिंह हाथीको मार कर उसकी अँतड़ियोंका हार अपने कण्ठमें डाल लेता है ॥ ३० ॥ श्रीनृसिंहजी महाराजने दैत्येन्द्रके हृदयकमलको नखोंके अंकुरोंसे विदीर्ण किया था, उसको तो बगेल दिया और उसके अनुचर और भृत्यगण जो कि, शस्त्र उठाये घूम रहे थे उन यूथपति और पक्षपातियोंको नखोंसे, भुजाओंसे, पावोंसे चीरफाड़ मसल मसल सहस्रोंको मारकर चौड़ा कर दिया. देखिये। वह तो सब शस्त्रधारी और नृसिंहजी केवल भुजाओंसे ही सब काम ले रहे थे ॥ ३१ ॥ नृसिंहजीकी सघन जटाओंसे कम्पित मेघ सब फट गये, ग्रह नृसिंहकी दृष्टिकी चमकसे छिन्न भिन्न हो नष्ट होगये, उनके श्वाससे मारे हुए समुद्र अपनी मर्य्यादाको छोड चलायमान हो गये और नृसिंहके दहाड़नेका शब्द सुनकर दशो दिशाओंके दिग्गज भयभीत हो चिंघाडने लगे ॥ ३२ ॥ जटाकी लपेटसे विमान

आकाशमें रह गये थे, उनसे सर्वत्र आकाश व्याप्त हो गया और उन पदोंके भारसे वसुधा पीडित हो डामाडोल होगई और उनके तेजके वेगसे पर्वत उखड़ २ कर गिरने लगे, उनके वेगके प्रभावसे आकाश और दिशायें छबिहीन हो गईं ॥ ३३॥ उस समय सभाके मध्यमें सर्वोत्तम राज्यसिंहासनपर श्रीनृसिंहजी महाराज विराजमान हुए,महातेज समूहोंसे पूरित जिनके सन्मुख कोई भी सामर्थ्यवान् शत्रु देखनेमें नहीं आता था. उन प्रचण्ड क्रोधी महाकराल वदनवाले श्रीनृसिंह भगवान्के समीप कोई भी नहीं जा सकता था॥ ३४॥ तीनों लोकोंका कष्टदायक मस्तकके शूलकी सदृश इस दैत्यनायक हिरण्यकशिपुको भगवान् वैकुण्ठनायकने मारा उस समय सब देवांगना उसका मरण सुनकर अत्यन्त हर्षके वेगसे

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे नृपासने संहृततेजसं विभुम्॥ अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं प्रचंडवक्रं न बभाज कश्चन ॥ ३४॥
निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः
॥३५॥तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां संकुलमास नाकिनाम् ॥ सुरानका दुंदुभयोऽथ जघ्निरे गंधर्वमुख्या नन्ट
तुर्जगुः स्त्रियः ॥ ३६ ॥ तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेंद्रगिरिशादयः ॥ ऋषयः पितरः सिद्धाविद्याधरमहोरगाः ॥ ३७ ॥
मनवः प्रजानां पतयो गंधर्वाप्सरचारणाः॥यक्षाः किंपुरुषास्तात वेतालाः सिद्धकिन्नराः ॥ ३८ ॥ ते विष्णुपार्षदास्सर्वे
सुनंदकुमुदादयः ॥ मूर्ध्नि बद्धांजलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ॥ ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥ ३९ ॥

प्रफुल्लित जिनके मुख हो रहे थे सो वारंवार जय जय शब्द पुकार पुकार और भगवान्के अद्भुत रूपको निहार निहार आनन्दसे पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं ॥ ३५ ॥ जब कि, नृसिंह भगवान्ने दैत्यराजको मारा उस समय नृसिंहजीके दर्शनके लिये सब पुरवासी और देवताओंके विमानोंकी पंक्तियोंसे सब आकाशमण्डल आच्छादित होगया,सब मिलकर दुंदुभी बजाने लगे और मुखिया मुखिया गन्धर्व गाने लगे,अप्सरायें मीठे मीठे स्वरोंसे मनोहर गान करके सबके मनोंको मोहित करने लगीं ॥ ३६ ॥ उस समय वहाँ ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिक देवता, ऋषि, मुनि, पितृ, सिंद्ध किन्नर, महोरग॥ ३७ ॥ मनु,प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किंपुरुष, वेताल, सिद्ध, किन्नर ॥ ३८ ॥ और सब वैकुण्ठ

नाथके पार्षद नन्द, सुनन्द, कुमुद, कुमुदाक्षादिक अंजलियोंके सम्पुट शिरपर धरकर जहां राजसिंहासन पर महातीव्र तेजवाले श्रीनृसिंह भगवान् विराजमान थे वहां सब देवता न तो अति दूर और न अति समीप खडे हो पृथक् पृथक् भावसे संसारी जीवोंके उपकारके लिये यंत्र, मंत्र, कवच, अष्टक, स्तोत्रोंसे श्रीनृसिंहजी महाराजकी स्तुति करने लगे ॥३९॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे अनन्त ! दुरन्तशक्तिधारी, विचित्रवीर्य, पवित्र चरित्रकारी, सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, संहार करनेहारे, अपने सत्त्वादि गुणोंसे अनेक प्रकारकी लीला रचनेवारे; अव्यक्त अविनाशी परमात्मा नृसिंहजी! आपको वारंवार मेरा नमस्कार है॥४०॥ महादेवजी बोले कि, संसारके अन्तकालके समय आपके कोप करनेका समय है.

ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्म्यनंताय दुरंतशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥ विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥ ४० ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ कोपकालो युगांतस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ॥ तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रांतं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ॥ कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां नहि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥४२॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ॥ तद्विप्रलुप्तमधुनाऽद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४३ ॥

S-2

अभी तो आपने इस तुच्छ असुरहीको मारा है. हे भक्तवत्सल ! अब आप अपने कोपको शान्त करके इस शरणागत आये अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करो ॥ ४१ ॥ इन्द्र बोले कि, हे परमेष्ठिन् नृसिंहजी महाराज ! हे दीननाथ ! हे जनरक्षक ! आपने महाप्रचण्ड दैत्यका वध करके हमारे भाग हमको दिलवाये और आपके वास करनेका स्थान जो हमारा हृदयकमल सो दुराचारी असुरके डरसे व्याप्त हो रहा था उसको अभय करके हमरा चित्त प्रफुल्लित किया, जो सदाकाल वशीभूत रहे ऐसा त्रिलोकीका राज्य आपके भक्तोंको क्या वस्तु है ? हे नाथ ! वह तो मुक्तिको भी आपके आगे कुछ वस्तु नहीं समझते, फिर और सुखोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥ ४२ ॥ सब ऋषि बोले कि, हे आदिपुरुष ! हे

शरणागत रक्षक ! आपके आत्मामें मिला हुआ जो यह विश्व है इसको रच उसी तेजरूप तप करनेकी आपने हमको आज्ञा दी. सो हे दीन
वत्सल ! वह तप अभीतक इस असुरने विनाश कर रक्खा था. सो आज हमारी रक्षाके लिये आपने नृसिंह रूप धरकर फिर तप करनेके लिये
हमको आज्ञा दी ॥ ४३ ॥ सब पितर बोले कि, हमारे पुत्र पौत्रादिकोंके दिये हुए श्राद्धके पिण्ड यह असभ्य दुष्ट बलात्कार हमसे छीनकर
खा जाया करता था और जो कभी किसी तीर्थमें जाकर वह तिलांजलि और जलदान दिया करते थे तो उन तिलोंको वह चाबकर जल पी
लिया करता था सो आज आपने उस असुरका पेट नखोंसे चीरकर जो हमारे पदाथ थे सो आपने आँतोंसे और रुधिरसे निकालकर हमको
दिये, इसलिये हे सर्वधर्मपालक ! आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ सब सिद्ध बोले कि, जो हमने अपने योगबलसे

पितर ऊचुः ॥ श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलांबु ॥ तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य
आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे॥४४॥सिद्धा ऊचुः॥ यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ॥
नानादर्पं तन्नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ४५ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां
न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ॥ स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ४६ ॥ नागा ऊचुः॥ येन
पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥ तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानंद नमोऽस्तुते ॥ ४७ ॥

अणिमा महिमादिक सिद्धियोंको प्राप्त किया था वह सब इस राक्षसने हरलीं, उस अनेक प्रकारके गर्ववाले गर्वित दैत्यका उदर नखोंसे विदीर्ण
किया, ऐसे आपके नृसिंहरूपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ विद्याधर बोले कि, पृथक् पृथक् ध्यानसे अनन्त ध्यानादिक
विद्या जो हमने सीख रक्खी थीं, उन विद्याओंको बलवीर्यसे गर्वित इस आत्मज्ञानीने नहीं करने दी थीं सो आज आपने उस दुष्टको रणमें
पशुवत् मारकर विध्वंस कर दिया; ऐसी माया करनेवाले श्रीनृसिंहजीको वारंवार हम नमस्कार करते हैं ॥ ४६ ॥ सब नाग बोले कि, जिस
दुष्टने हमारे सब स्त्रीरत्न और उमत्त उत्तम पदार्थोंको हर लिया था सो आपने हमारे उपकारके लिये नृसिंहरूप धार उस पापीका पेट फाड़कर
हमको और इन सब स्त्रियोंको प्रफुल्लित कर परमानन्द दिया ऐसे जो आप नृसिंहरूपधारी हैं उन आपको हम वारंवार नमस्कार

करते हैं ॥ ४७ ॥ सब मनु बोले कि, हम सब मनु आपकी आज्ञानुसार शास्त्रकी रीतिसे अपने धर्म कर्म जो कर रहे थे, हे नृसिंहदेव ! उन सब वर्णाश्रमोंकी मर्यादा दुष्ट हिरण्यकशिपुने विनष्ट कर दीं, उस महादुष्टका आपने नखोंसे वध किया, यह काम आपने बहुत ही अच्छा किया क्योंकि, वर्णाश्रमोंकी मर्यादायें बँधी रहीं. हे प्रभो ! हम जो आपके दास हैं सो हमारे लिये क्या आज्ञा है ? हम लोग अब क्या करें ? ॥४८॥ सब प्रजापति बोले कि;हे प्रजेश ! हमको आपने रचा और आपकी प्रेरणासे हम प्रजाको रचते थे, परन्तु उस दुष्टके प्रतिषेध करनेसे हम लोग उसको त्याग अपने अपने स्थानोंमें छिप छिपकर बैठ रहे थे, अब उस दुष्ट असुरका आज आपने उदर विदीर्ण कर वध किया, सो अब हम

मनव ऊचुः ॥ मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ॥ भवता खलस्स उपसंहृतः प्रभो कर
वाम ते किमनुशाधि किंकरान् ॥ ४८ ॥ प्रजापतय ऊचुः ॥ प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो
निषिद्धाः ॥ स एष त्वया भिन्नवक्षानुशेते जगन्मंगलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥४९॥ गंधर्वा ऊचुः॥ वयं विभो ते नटनाट्य
गायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसाकृताः ॥ स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ५० ॥
चारणा ऊचुः ॥ हरे तवांघ्रिपंकजं भवापवर्गमाश्रिताः ॥ यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ ५१ ॥

573

प्रसन्नतापूर्वक आपकी इच्छानुसार प्रजा रचेंगे. हे सत्त्वमूर्ते ! आपका अवतार संसारके मंगलके लिये है ॥ ४९ ॥ सब गन्धर्व बोले कि, हे समर्थ ! हम जो आपके नट नाटक बजाने और गानेवाले हैं,हमको जिस दैत्यने अपने बल वीर्य और पराक्रमसे अपने वशीभूत कर लिया था उस दुष्ट दानवको आपने इस गतिको पहुँचाया ऐसा ही करना चाहिये. कहीं पाखण्डमें स्थित होनेवालेकी भी कुशल हो सकती है ?:कभी नहीं ॥ ५० ॥ सब चारण बोले कि, हे नृसिंहजी महाराज ! भक्तजनोंके दुःख देनेवाले इस पापी दैत्य हृदयभेदीको आपने मारा यह बहुत अच्छा किया; इसलिये हे दीनबन्धु भगवन् ! संसारमें मोक्ष देनेवाले जो आपके मोक्षदायक चरणकमल हैं, उन चरणारविन्दोंकी हम सब

शरणागत हैं ॥ ५१ ॥ सब यक्ष बोले कि, हे नृसिंहजी महाराज! पचीस तत्त्वोंके अधीश हम लोग आपकी इच्छानुसार कर्म करनेमें आपके मुख्य सेवक थे, सो इस दुष्ट दितिपुत्रनें हमको अपना भार उठानेवाला अनुचर बनाकर रक्खा था सो आपने अपने भक्तोंका संताप देखकर इस परिताप देनेवाले दुष्ट राक्षसको आज मारकर हमारा ताप दूर किया ॥ ५२ ॥ किंपुरुष बोले कि, हम किंपुरुष हैं और आप आदिपुरुष पुरुषोत्तम हैं, हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? यह कुपुरुष नीच हिरण्यकशिपु तो उसी समय मरचुका था

॥ यक्षा ऊचुः ॥ वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ॥ स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पंचतां पंचविंश ॥ ५२ ॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥ अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५३ ॥ वैतालिका ऊचुः ॥ सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ॥ यस्तां व्यनैषीद्भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥ ५४ ॥

जब कि इसका साधु पुरुषोंने निरादर किया और धिक्कार दिया था ॥ ५३ ॥ वैतालिक लोग बोले कि, सभाओंमें और यज्ञोंमें आपका निर्मल यश गानेसे बडी पूजा हम लोगोंको प्राप्त होती थी और यह दुर्जन दुष्ट हमारी पूजाको ले लिया करता था और यशका विनाश करता रहता था, सो आपने इसको मारकर हमारे रोगका नाश कर दिया; आपका कल्याण हो,जो सब दिनका ताप आपने हमारा मिटा दिया. न जानिये अब कोई दुष्ट उत्पन्न होजाय इस लिये वारंवार हमारी यह सबकी विनय है कि, सब प्राणीमात्रको अपने परमधामको ले चलो ॥ ५४ ॥

---

१ नृसिंहजी बोले कि, लाओ कौन हमारे परमधामको चले हैं. तब एक वैताल प्राणियोंके बुलानेको बाहर निकला, देखा तो एक शूकरी कीचमें पडी लोट रही है. वेतालने कहा हे शूकरी ! तू नृसिंहजीके निकट चल.हम तुझको वैकुण्ठ भिजवावेंगे. वह बोली कि, वैकुण्ठमें क्या है ? वैताल बोला कि, अरी मूर्ख तू नहीं जानती कि, बैकुंठमें क्या है ? वैकुण्ठमें बडे बडे सुख हैं. सुन्दर षट्रस प्रकारके भोजन मिलते हैं, पानीको अमृतके समान स्वच्छ शीतल जल मिलता है. बैठनेके लिये उच्चासन, सोनेके लिये दूधफेनसम सुन्दर शय्या, नित्यप्रति श्रीनारायणके दर्शन, दिन रात भगवान्का गुणानुवाद, इसके अतिरिक्त और अनेक अनेक प्रकारके आनन्द भोगनेमें आते हैं. यह सुनकर वह शूकरी बोली कि, विष्टाका नाम तो लिया ही नहीं. यह तो कहो कि,विष्टा वहां खानेको मिलती है वा नहीं ? वेताल बोला अरी नीच ! वहां ऐसी निषिद्ध वस्तुका क्या काम?वहां तो मेवा मिष्टान्न सुन्दर सुन्दर पकान्न इच्छानुसार मिलते हैं. शूकरी बोली कि, तो क्या मैं आग लगाऊंगी,चूल्हेमें जाय मेवा मिष्टान्न. ऐसे वैकुण्ठ जानेकी मेरी—

सब किन्नर बोले कि, हे निरंजन! हे भक्तभयभंजन! हम सब किन्नरगण आपके अनुचर हैं. इस दुष्ट असुरने हमको भार उठानेवाला अपना किंकर बनाया और हमारी ताडना करता रहा, सो हे हरे! आपने महाकष्टरूप इस दुष्टका वध किया. हे नराकार शार्दूल! हे नाथ आप हमारा मंगल करो ॥ ५५ ॥ विष्णु भगवान्‌के पार्षद बोले कि, हे शरणागत-प्रतिपालक! यह नृसिंहरूप महाअद्भुत तो हमको आपने भला दिखाया, जो आजतक कभी नहीं देखा था. सो सब लोकोंका मंगलकारी आनन्ददायक यह स्वरूप है. हे विधिकर! यह तो वही हिरण्यकशिपु आपका दास था कि जिसको सनकादिकोंने शाप दिया था, इसका आपने विध्वंस किया, यह तो आपने इसपर बडा ही अनुग्रह किया, परंतु हमने

किन्नरा ऊचुः ॥ वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ॥ भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥ विष्णुपार्षदा ऊचुः ॥ अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ॥ सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते हिरण्यकशिपुदैत्यवधकृन्नृसिंहस्तोत्रनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरस्सराः ॥ नोपेतुमशकन्मन्युसंरंभं सुदुरासदम् ॥ १ ॥

अत्यन्त सुख माना जो इसके द्वारा हमको आपके इस अद्भुत रूपका दर्शन होगया ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लादचरित्रे हिरण्यकशिपुवधननृसिंहावतारसर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा-नव अध्यायमें हरिनिकट, भेजो अज प्रह्लाद। क्रोध शान्त कर विनय की, हरिकी सह आह्लाद॥ १॥ श्रीनारदजी बोले कि, क्रोधके वेगसे अत्यन्त भयंकर श्रीनरसिंहजीको देखकर ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि देवताओंमें कोई सन्मुख न जा सका, जो सदा समीप रहते थे वह सब देवता दूर ही खडे हुए स्तुति कर रहे थे ॥ १॥

-इच्छा नहीं, वहांसे तो म यहीं सुखी हूँ; भोजन भरपेट मिलता है, घरके कुटुम्बमें मिल जुलकर रहती हूं, दश बारह बेटे बेटी संग रहते हैं, इससे अधिक और कौनसा वैकुण्ठ है? सूकरीके रूखे वचन सुन वैताळने नृसिंहजीसे कहा कि, महाराज! सूकरतक भी वैकुण्ठका जाना स्वीकार नहीं करते. नृसिंहजी बोले कि, यह जीव जिस योनिमें जहाँ जन्म लेता है उसी स्थानको वैकुंठ समझता है ॥

निदान सब देवता मिलकर श्रीलक्ष्मीजीके निकट गये और हाथ जोडकर बोले कि, हे जननि! श्रीनृसिंहजीके तेजसे त्रिलोकी भस्म हुआ चाहती है, आप चल कर उनके क्रोधको शान्त कीजिये, यह कह साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीको नृसिंहजीके सम्मुख भेजा उस महाभयंकर रूपको देखकर लक्ष्मी भी पास न जा सकी * ॥ २ ॥ तब भागवत प्रह्लादको निकट बैठा हुआ देखकर ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र! तेरे ही कारण तेरे पिता अत्यन्त क्रुद्ध हो रहे हैं,उनके समीप तू ही जा और उनके क्रोधको शान्त कर ॥३॥ हे नरेन्द्र! ब्रह्माजीकी आज्ञाको शिरपर

साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्सा नोपेयाय शंकिता ॥ २ ॥ प्रह्रादं प्रेषयामास ब्रह्मा
वस्थितमंतिके ॥ तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥ ३ ॥ तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽर्भकः ॥ उपेत्य
भुवि कायेन ननाम विहितांजलिः ॥४॥ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ॥ उत्थाप्य तच्छी
र्ष्ण्यदधात्करांबुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥५॥ स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ॥
यत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६ ॥

धारण कर महाभागवत वह भोलाभाला प्रह्लाद हाथ जोड़ शिर नवाय सहज सहजमें नृसिंहजीके निकट जाकर दण्डवत प्रणाम करता भया ॥४॥ तब अपने चरणोंमें पडे हुए उस बालक प्रह्लादको देखकर श्रीनृसिंहजीने कृपासे परिपूर्ण होके उसको उठा लिया और उसके शीशपर कालरूप सर्पके भयसे डरनेवाले बुद्धिमानोंका अभयदायक अपना करकमल रक्खा ॥५॥ श्रीनृसिंहजीके हस्तकमलके स्पर्शसे उसकी सब अशुभ वासना दूर होगई और उसी समय उसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगया. हर्षितचित्त,रोमावलि खडी हो रहीं, अंग प्रफुल्लित होगया,आँखोंमें प्रेमके आंसू भर

---

* शंका–प्रह्लादके ऊपर तो नृसिंह भगवान्का परम अनुग्रह था, फिर शीघ्र क्रोधको त्यागकर वरदान क्यों नहीं दिया, ऐसी प्रीति करके फिर वर देनेमें विलम्ब क्यों किया ?

उत्तर–नृसिंहजीने शीघ्र क्रोध त्याग नहीं किया और प्रह्लादको शीघ्र वरदान भी नहीं दिया,इसका कारण यह है कि,लोकमें प्रह्लादकी भक्तिकी प्रशंसा करानेके लिये,क्रोध त्यागनेमें और वरदान देनेमें विलम्ब किया. लोकमें सब ऐसे वचन कहेंगे कि,सब देवताओंने नृसिंहजीकी स्तुति की परन्तु क्रोध शान्त नहीं हुआ, जब प्रह्लादने स्तुति की तब उसी समय क्रोधको त्याग दिया ऐसा नृसिंह भगवानको प्रह्लाद प्यारा था इसलिये क्रोधके त्यागनेमें विलम्ब किया और इसलिये तुरन्त वरदान भी नहीं दिया ॥

आये और अति आनन्दित हो भगवान्के चरणकमलका ध्यान करने लगा ॥ ६ ॥ एकाग्रमनसे स्वस्थ सावधान होकर प्रेमभरी गद्गद वाणीसे वह भक्त प्रह्लाद अपने लोचन और अन्तःकरणको श्रीनृसिंहजीके स्वरूपमें लगा भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करने लगा ॥ ७ ॥ प्रह्लाद बोला कि सत्त्वगुणमें एकाकार बुद्धिवाले ब्रह्मादिक देवताओंके गण, मुनि और सिद्धपुरुष गम्भीर वाणियों करके अनेक महागुणोंसे आजतक जिनकी आराधना और प्रार्थना करनेको समर्थ नहीं होते, वह उग्ररूपधारी श्रीनृसिंह भगवान् मुझ दानव जाति मन्दबुद्धिपर किस प्रकार संतुष्ट होंगे ? तो भी उनकी कृपासे उनकी स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥ धन, जाति, रूप, तप, पाण्डित्य, श्रुत, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि, योग इन सबमें कोई भी उपाय परमेश्वरकी आराधना करने योग्य नहीं. भगवान् तो केवल भक्तिभावके भूखे हैं. देखो ! सुदामाके तन्दुलोंपर ही प्रसन्न हो गये ॥ ९ ॥ चाहे चार वेदका विभागकर्ता, अनेक यज्ञोंका करनेवाला, द्वादशगुणसम्पन्न, धनमें कुबेरके समान और जातिका ब्राह्मण हो परन्तु भगवद्भक्तिसे विरुद्ध हो, वह ब्राह्मणोंकी गणनामें नहीं है. और जो जन जातिका चाण्डाल, महापापी और नित्य सुरापी भी हो, परन्तु अपने मन, वचन, कर्म, तन, धन और अपने प्राणोंको नारायणको समर्पण कर दे, वह महाश्रेष्ठ है और धन्य है. क्योंकि, वह श्वपच भी अपने सब परिवारको संसारसागरसे तार सकता है और अधिक अभिमानी और अज्ञानी ब्राह्मण भी आपके चरणकमलसे विमुख रहनेवाला किसी प्रकार अपने परिवारको पावन और पवित्र नहीं कर सकता और वह धन भी केवल तनका पालन करने वाला है, कुछ मंगलदायक नहीं है ॥ १० ॥

अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ॥ नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥८॥ मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ॥ नाराधनाय हि भवंति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥ ९ ॥ विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविंदनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ॥ मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थं प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ॥ १० ॥

प्रभो ! आपके अज्ञानी जीवोंसे अपने लिये आप कुछ पूजा भेंट नहीं माँगते, आपको तो किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि आप तो अपने ही स्वरूपके भागसे पारिपूर्ण हो और दयालु हो. मनुष्य जो जो पदार्थ भगवान्के अर्थ प्रदान करता है और आदर सन्मानसे भगवान्को चढ़ाता है वह सब अपना ही प्रयोजन सिद्ध करता है, जैसे अपने मुखके तिलकादिककी शोभा अपने ही प्रतिबिम्बकी कान्तिको झलकाती है, ऐसे ही जो प्राणी जिस वस्तुको भगवत् अर्पण करता है वह सब उसी प्राणीको मिल जाता है ॥ ११ ॥ इस लिये मैं जो अधमबुद्धि मायाके जालमें फँस रहा हूँ आपकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकता, परंतु अपनी मति अनुसार (जैसी मेरी बुद्धि है) आपकी स्तुति करता हूँ. आपके चरित्र गानेसे मनुष्य पवित्र होजाता हैं, इसलिये मैं आपकी स्तुति करता हूँ ॥ १२ ॥ हे ईश !

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ॥ यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः॥११॥ तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम्॥नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ १२ ॥ सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजंतः ॥ क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥ १३ ॥ तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ॥ लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियंति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरंति ॥ १४ ॥

हमारे समान इस स्वरूपसे डरते हुए यह सब ब्रह्मादिक देवता आपके दास हैं, सत्त्वगुणधाम अवतारोंकी जो मांगलिक क्रीडा है, उसको संसारके मंगलके अर्थ और अपने आत्माके सुखके लिये आप करते हो ॥ १३ ॥ इसलिये हे शान्तस्वरूप ! अब आप अपने क्रोधको शान्त करो क्योंकि, हम लोगोंके दुःख देनेवाले असुरको तो आपने मार ही लिया फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? वृश्चिक और सर्पको जब कोई मार डाले तो साधुलोगोंको बडा आनन्द होता है, ऐसे ही इस दुष्ट हिरण्यकशिपुके वध करनेसे साधु लोगोंको बडा आनन्द हुआ. अब सब लोग आपके समीप आये हैं, हे नृसिंह ! यह अपना भय दूर

करनेके लिये आपका स्मरण करते हैं सो आपके इस अद्भुत स्वरूपका ध्यान करनेसे ही भय दूर हो जायगा, फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ १४ ॥ हे अतीत ! यह आपका रूप जो महाभयंकर मुख, जीभ सिंहकीसी, सूर्यके समान लाल २ नेत्र मानो अग्निकी ज्वाला भड़क रही है. बंक भ्रुकुटियोंका चढ़ाना और अतिविकराल दाढ़ोंको देख देखकर भय दिखाई देता हैं, आँतोंकी माला पहिरनेसे और सटाके बाल रुधिरसे भीगे हुए, केलेके पत्रोंके समान कान ऊँचे २ खडे दिखाई देते हैं, नखोंके अग्रभाग वैरियोंके उदरके विदीर्ण करनेवाले, महागम्भीर शब्दसे सब दिशाओंके दिक्पाल भय मान कर कम्पायमान होते हैं, इनका तो मुझको कुछ भय नहीं ॥ १५ ॥ परंतु हे कृपावत्सल ! इस संसारचक्रके दुःसह दुःखसे मैं महादुःखी हूँ, सो आपके चरणारविन्दकी कृपासे साधारण संसारचक्रका मुझको कुछ भय नहीं परंतु अपने कर्मोंके बन्धनमें जो

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ॥ अंत्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ १५ ॥ त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः ॥ बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेंऽघ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥ १६ ॥ यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ॥ दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥ १७॥ सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ॥ अंजस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससंगः ॥ १८ ॥

मैं बँधा हिंसक जीवोंमें पडा हुआ हूँ इस बातसे मेरा मन बहुत डरता है. हे कृपालु ! मुझपर दयालु होकर आप अपने मोक्षरूप और शरणरूप चरणशरणमें मुझको कब बुलाओगे ? ॥ १६ ॥ हे भूमन् ! इस प्रिय अप्रिय पदार्थोंके वियोग सयोगसे जो प्रगट हुई शोकरूप अग्नि है उस अग्निसे सब योनियोंमें रात दिन जला करता हूँ और संसारमें दुःखे दूर होनेके लिये जो यत्न हैं वह भी सब दुःखरूप हैं, कभी पित्त अधिक हो जाता है, कभी वात बढ़ जाता है, कभी कफ घेर लेता है, यह देहाभिमान भटका रहा है, इस लिये हे सत्तम ! अब आप दासभाव सजीवन मूल औषध बताओ जिससे फिर यह दुःख मुझको न व्यापे ॥ १७ ॥ हे प्रभु ! संसारके बन्धनोंसे मोक्ष पाकर आपके चरणशरणमें रहनेवाले

महात्मा पुरुषोंके सत्संगसे परम सुहृद् और परमगूढ ब्रह्माजीके मुखसें पाये हुए आपके अद्भुत चरित्र सम्बन्धी कथाओंका अभ्यास करते करते इस संसारसागरके महाकठिन दुःखोंसे धीरे धीरे मैं भी पार उतर जाऊँगा अर्थात् आपकी नामरूप नौकापर चढ़कर पार उतरना क्या बडी बात है?॥१८॥हे नृसिंह बालककी रक्षा माता पिता कर भी सकते हैं और नहीं भी कर सकते, रोगीको ओषधी बचा भी सकती है और मार भी सकती है, समुद्रमें डूबते हुएको नाव निकाल भी सकती है और डुबो भी सकती है, परंतु सर्वोपरि आपकी रक्षा है. रोगियोंके कष्ट दूर करनेके लिये संसारमें अनेक उपाय और अनेक ओषधी हैं,परंतु आपकी इच्छा विना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता. सबका यही तात्पर्य है कि, शरीरधारी तुम्हारी उपेक्षा करे तो उसको दुःख है और तुम्हारी चाहना करे तो सुख है॥१९॥ भिन्न २ स्वभाववाले ब्रह्मादिक देवता अथवा उनसे

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ॥ तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहांजसेष्टस्ताव
द्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥ १९ ॥ यस्मिन्यतो यर्हि च येन यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो
वा ॥ भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥ २० ॥ माया मनः सृजति कर्म
मयं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ॥ छंदोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः
॥२१॥स त्वं निहत्य विजितात्मगुणः स्वधाम्नां कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ॥ चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे
निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ २२ ॥

पीछे जो उत्पन्न हुए पिता पितामहादिकजो कोई पुरुष, जिस कालमें, जिस हेतुसे, जिस सम्बन्धसे, जिसके लिये, जिस प्रकारसे, जिसकी प्रेरणासे जो कुछ होता है,सब आपका ही स्वरूप है ॥२०॥पुरुषको काल करके प्रेरित जिसके गुण हैं ऐसी यह माया अपने अनुसार काल करके कर्ममय,वेदमय, मनको रचती है और माया करके प्रेरित सोलह विकाररूप जिसमें आरे, ऐसे संसाररूप चक्रवाले मनको आपकी कृपा विना कौन तार सकता है? ॥२१॥ हे ईश्वर! हे जगदीश! अपनी चैतन्यशक्तिसे सदा बुद्धिके गुणोंको जीतनेवाले, अपनी गुणमयी मायाके प्रेरक, कार्य और साधनोंके साधक, सर्व शक्तियोंको अपने अधीन करनेवाले आप हैं और मैं जो इस मनमोहिनी मायासे सोलह आरेवाले

संसारचक्रमें पड़ा हुआ कोल्हूके भीतर गन्नेकी नाईं पिल रहा हूँ. अब हे शरणागत-वत्सल! मुझ शरणागत मन्दबुद्धिके मनको मारकर शीघ्र मुझे अपनी ओरको खींचो, क्योंकि रस निकल चुका है; कुछ सूक्ष्म रस शेष रहा है; जो यह भी निकल गया तो फिर किसी कामका न रहूँगा ॥२२॥ हे विभो! सब स्थानपालकोंकी आयु, लक्ष्मी, वैभव, स्वर्ग, जिनकी यह प्राणी सदा इच्छा करते हैं, उनको तो मैंने सब प्रकारसे देख लिया, क्योंकि वह सब मेरे पिताके कुपित हास्यसे और चढ़ी हुई भ्रूभंगमात्रसे ही एक क्षणभरमें नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया, उस सर्वसंहारी मेरे पिताको आपने विना शस्त्र नखोंसे विदीर्ण कर डाला ॥२३॥ इसलिये मैं अज्ञानी किसी बातका न जाननेवाला प्राणियोंके आशीर्वादको, ब्रह्मा पर्यन्तकी आयुको, लक्ष्मीको, इंद्रियोंसे भोगनेवाले सुखको और संसारके अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादिक भोगोंको भोगनेकी मेरी इच्छा नहीं और

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम् ॥ येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृं
भितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥२३॥तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोऽज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमा
विरिञ्चात् ॥ नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोऽपनय मां निजभृत्यपार्श्वम्॥२४॥कुत्राशिषः श्रुतिसुखा
मृगतृष्णिरूपाः केदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ॥ निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्कामानलं मधुलवैः शमयन्दु
रापैः ॥ २५ ॥ काहं रजःप्रभव ईश तमोधिकेऽस्मिञ्जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकंपा ॥ न ब्रह्मणो न तु भवस्य
न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥ २६ ॥

सिद्धियोंको भी मैं नहीं चाहता, क्योंकि वह भी आपके कालरूप प्रबल पराक्रमसे खंडित होनेवाली हैं, इसलिये हे प्रभो! मुझको तो आप अपने दासोंके दासोंकी चरणशरणमें रखना ॥ २४ ॥ कानोंको सुख देनेवाले अन्तमें मृगतृष्णारूप इस आशीर्वादसे क्या प्रयोजन है? अनेक रोग जिसमें उत्पन्न हों, ऐसे शरीरसे क्या प्रयोजन है? यद्यपि इस बातको सब जानते हैं, तो भी लवमात्र मधुर कामरूप अग्निके मुखमें लवलीन हैं, इसको दूर नहीं कर सकते और विद्वान् हैं उनको किसी प्रकार वैराग्य नहीं होता, वे पण्डित नहीं हैं मूर्ख हैं. हे प्रभो! आपकी माया बडी बलवान् है ॥ २५ ॥ हे नृसिंहजी महाराज! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ तो मेरा देह, तमोगुणकी खानवाले राक्षसवंशमें मेरा

जन्म और सदा दैत्योंके बालकोंका संग; फिर कहां तो मैं और कहां आपका अनुग्रह ! जिस अनुग्रहसे अभयदायक दुष्टदमन आपकी भुजाओंकी छाया, जो कि आजतक ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी अपनी परमप्यारी पत्नीके ऊपर भी नहीं करी थी, सो उन भुजाओंकी छाया आज आपने मेरे ऊपर करी ॥२६॥ हे प्रभो ! आप समदर्शी हैं, आपके यहां दुर्भाव नहीं है, ब्रह्मादिक देवता उत्तम हैं और यह दैत्य नीच हैं, यह बुद्धि अधम लोगोंकी है आपकी नहीं, क्योंकि आप तो सर्व जगदाधार और सबके सुहृद् हो, तो भी कल्पतरुके समान जो जैसी सेवा करता है उसको वैसा ही फल मिलता है, आपकी कृपा कल्पद्रुमके सदृश है और कल्पद्रुमको सब इकसार है, तो भी जो मनुष्य कल्पवृक्षके नीचे वास करते हैं वह मनवांछित फल पाते हैं, इसी प्रकार आपको सब एकसार हैं, परंतु सेवकोंको सेवाके अनुसार फल देते हो, आपके यहां कुछ दुर्भाव नहीं

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जंतोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि॥ संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो
न परावरत्वम्॥ २७ ॥ एवं जनं विपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रतपन्प्रसंगात् ॥ कृत्वात्मसात्सुरर्षिणा
भगवन्गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥ २८ ॥ मत्प्राणरक्षणमनंत पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवा
क्यमृतं विधातुम् ॥ खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥ २९ ॥

॥ २७ ॥ हे नाथ ! जिस प्रकार आपने मुझको संसाररूप कूपमें पडा देख अवतार धारण किया और मुझको अपनाया इसी प्रकार नारदजीने भी मुझे संसाररूप भयंकर सर्पवाले अँधियारे कूपमें पडा देखा और यह भी जाना कि, विषयानुरागी लोगोंके कुसंगसे अन्धा होकर इसमें गिर गया और इसके सब अंग भुजंगने डस लिये, उसीके विषसे यह ऐसा बेसुध होरहा है कि, उस कूपको ही अपना घर समझ रक्खा है; उस समय उन्होंने भी मेरे ऊपर दयादृष्टि करके मुझे उस कूपसे बाहर निकाला, सो मैं आपके भृत्य लोगोंकी सेवा कैसे त्याग दूँ ॥ २८ ॥ हे अनन्त ! मेरे प्राणोंकी रक्षा करी और मेरे पिताको मारा, अपने भृत्य नारदका वाक्य सत्य करनेके लिये यह अद्भुत अवतार लिया, क्या इस बातको मैं नहीं जानता ? खोटा कर्म करनेकी इच्छा करके मेरा पिता खड्ग हाथमें लेकर बोला कि, तू किसकी आराधना करता है ? मुझसे परे

कौन ईश्वर है जिसको तू अपना रक्षक बतलाता है? उसको मुझे दिखा, मैं अभी उसको मारूंगा और जो नहीं बतावेगा तो तेरा शिर काट
डालूंगा. आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये और अपने भक्तोंको अभय करनेके लिये और मेरा वचन सत्य करनेके लिये उसी समय
खम्भ फाडकर प्रगट हुए, क्या इस बातको मैं नहीं जानता ? ॥ २९ ॥ हे जगदाधार ! केवल एक आप ही जगदाधार और जगत्‌रूप हो,
क्योंकि इस जगतके आद्य और अन्तमें एक आप ही रक्षक हो और मध्यमें भी आप ही हो. अपनी मायाके गुणोंसे इस विश्वको रचके नाना
प्रकारसे उन गुणोंको दृष्टि आते हो और अन्तर्यामी रूपसे सब चर अचर रूपमें व्याप्त हो रहे हो, मायाके गुणोंसे भिन्न भिन्न रूप आपका
प्रतीत होता है. कोई शत्रु समझता है, कोई मित्र समझता है, आपके भेद अपार हैं, उन भेदोंको कोई समझ नहीं सकता ॥ ३० ॥ हे ईश !

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यंतयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ॥ सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव
तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ ३० ॥ त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ॥ यद्यस्य
जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥ ३१ ॥ न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयांबुमध्ये शेषा
त्मना निजसुखानुभवो निरीहः ॥ योगेन मीलितदृगात्मनि पीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युंक्षे ॥ ३२ ॥

सत असत् आप ही हो और यह सब मायाके गुण हैं, मायासे भिन्न नहीं हैं, आप जगत्‌से भिन्न भी हो तो भी जगत्‌रूप आपही हो और
यह सब मायाके गुण हैं. यह मेरा है, यह पराया है, ज्ञानदृष्टिसे देखो तो कुछ न अपना है, न पराया है, सब एकही रूप है. वृक्ष जैसे धरामय
बीजरूप है, बीज सूक्ष्म बीजरूप है और सूक्ष्मभूत ब्रह्मरूप हैं, इसी प्रकार यह जगत पञ्चमहाभूत रूप है, पञ्चमहाभूत अपने सूक्ष्मभूत
रूप हैं और सूक्ष्मभूत ब्रह्मरूप है, जो पदार्थ जिससे उत्पन्न हो वा जिससे प्रकाशित हो, अथवा जिसमें लय हो, वह तद्रूप होता है ॥ ३१ ॥
महाप्रलयके जलमें इस विश्वको रचकर आप अपने सुखका अनुभव करते समय अचेष्ट होकर योगसे दृष्टिको मीचकर स्वरूपके प्रकाशसे
निद्राका पराभव करके आत्माकी चतुर्थ तुर्या अवस्थामें स्थित होकर तम और सब गुणोंका संयोग त्यागकर शयन करते हो ॥ ३२ ॥

अपनी कालशक्तिसे प्रकृतिके गुणोंकी प्रेरणा करते हो, उन्हींका स्वरूप यह जगत् है, जब आपकी इच्छा होती है तब प्रलयसम्बन्धी जलमें शयन करते करते समाधिसे निवृत्त होकर आपके नाभिकमलके सूक्ष्म बीजमेंसे जैसे बडा बड़का वृक्ष उत्पन्न होता है उसी प्रकार प्रलयके जलमेंसे महाकमल उत्पन्न होता है. जिस समय शेषनागके शयनसे आप जागते हो ॥ ३३ ॥ उस कमलमेंसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए तो आँख खोलकर सब ओरको देखा परंतु सिवाय कमलके और कुछ देखनेमें नहीं आया, क्योंकि, स्वयं बीजरूप आप ही अपने आपमें व्याप्त होरहे थे फिर आप ही प्रगट हो, विचारकर सौ वर्षतक जलमें ढूँढते रहे तो भी आपका पता नहीं लगा, सत्य है, अंकुरके निकलनेसे बीज कहां रह सकता है। ॥ ३४ ॥ तब ब्रह्माजी अतिविस्मित हो पीछेको फिरे और उसी कमलपर बैठकर तपस्या करने लगे.

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या संचोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ॥ अंभस्यनंतशयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत्स्व
कर्णिकावटवन्महाब्जम् ॥ ३३ ॥ तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वां बीजमात्मनि ततः स्वबहिर्विचिंत्य ॥
नाविंददब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेऽकुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥ ३४ ॥ स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितो
ऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ॥ त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेंद्रियाशयमये विततं ददर्श ॥ ३५ ॥
एवं सहस्रवदनांघ्रिशिरःकरोरुनासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ॥ मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुष
मापमुदं विरिंचः ॥ ३६ ॥

जब तपस्या करते करते अनन्त काल व्यतीत होगया, तब उसी तीव्र तपके प्रभावसे मनका अति शुद्धभाव होगया. तब तो भूत, इंद्रिय और मायामय आत्मामें ही सन्मात्ररूपसे वर्तमान अतिसूक्ष्मरूपसे अपने अंतःकरणमें ही ईश्वरको देख पाया, जैसे पृथ्वीसे सूक्ष्म सुगंध निकलती है ॥ ३५ ॥ वह मायामय अद्भुत स्वरूप कैसा था कि, जिसमें सहस्र मुख, सहस्र चरण, सहस्र शिर, सहस्र, हाथ, सहस्र ऊरु, सहस्र नासिका, सहस्र कान और सहस्र नेत्र थे और सहस्र सहस्र आभूषण और सहस्र २ आयुधोंसे परिपूर्ण थे; परन्तु आपका यह रूप मायामय प्रधान है, क्योंकि, पातालादि प्रपंचसे चरणादि रचना हुई थी. हे महापुरुष ! आपके इस साधुओंके देखने योग्य स्वरूपको देखकर

ब्रह्माजीको बडा हर्ष हुआ ॥ ३६ ॥ हे भूमन् ! उस कालमें इस रूपसे आपने ब्रह्माजीको दर्शन दिया, यह उनके ऊपर बडा अनुग्रह किया. क्योंकि, हयग्रीवस्वरूप धारण करके वेदद्रोही महाबली वर पानेसे उन्मत्त मधु व कैटभ नामक दोनों असुरोंका वध करके ब्रह्माजीको श्रुतिगण लाकर रज, तम समर्पण किया. हे प्रभो ! ऋषि लोग कहते हैं कि, सत्त्वगुण आपका प्यारा शरीर है ॥ ३७ ॥ हे महापुरुष ! आप इस प्रकार मनुष्य, पशु, ऋषि, देवता और मत्स्यादि अवतार धारण कर सब लोकोंकी रक्षा करते हो और जो संसारके प्रतिकूल होते हैं उनका विध्वंस करते हो. यह युग युगमें आपका धर्म चला आया है, उसकी रक्षा करते हो और कलियुगमें आप गुप्तरूपसे रहते हो; इसलिये इस युगमें आप ऐसा नहीं कर सकते. आप तीन ही युगमें अवतार लेते हैं, इसीसे आपका नाम संसारमें त्रियुग प्रसिद्ध हुआ है ॥ ३८ ॥ हे बैकुण्ठ

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ॥ हत्वाऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनंति ॥ ३७ ॥ इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ॥ धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥ ३८ ॥ नैतन्मनस्तव कथासु विकुंठनाथ संप्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ॥ कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ ३९ ॥ जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक्क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति ॥ ४० ॥

नाथ ! यह मेरा मन अधर्मसे दूषित है, सदा बाहरी बातोंमें लगा रहता है, जीतनेमें नहीं आता, कामसे आतुर है, इसलिये हर्ष, शोक, भय, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तापोंके दुःखसे पीडित हो आपकी कथावार्त्तामें प्रीति नहीं करता. हे प्रभो ! ऐसा मन होनेपर मैं दीन पराधीन होकर फिर आपके तत्त्वका विचार कैसे जान सकता हूँ ॥ ३९ ॥ हे अच्युत ! जीभ अतृप्त होकर अनेक ओरको अर्थात् जिस ओर मधुरादि रस है उसी ओरको खींचता है. त्वचा स्पर्शकी ओरको खींचती है, पेटकी भेंट देनी ही कठिन है, क्षुधासे सन्तप्त होकर जिस प्रकारकी आहारकी वस्तु देखता है मार मारकर उसी ओरको खींचता है; जिस ओरसे सारंगी, मृदंगध्वनिकी और मधुर मधुर स्वरोंसे

कोकिलाकण्ठियोंके गानेका शब्द सुनाई आता है, यह कान अज्ञान बलात्कार उसी ओरकी खींचते हैं, नाक अनेक अनेक प्रकारके सुगंधित गंधराज, मालती, मदनबाणादिक पुष्पोंकी गंधकी ओरको खींचती है. यह चंचल नयन किसी प्रकार चैन ही नहीं लेने देते. सब इंद्रियें अपनी अपनी ओरको खींच रही हैं, जैसे एक पतिकी बहुत स्त्रियें होती हैं और वह अपनी अपनी ओरको खीचती हैं और घबरा लेती हैं, ऐसे ही यह मेरी इंद्रियें मुझको व्याकुल कर रही हैं ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! जिस प्रकार मेरी कुगति है इसी प्रकार सबकी कुगति है और इसी कुगतिमें संसाररूप वैतरणी नदीकी धारमें उछलते डूबते बहे चले जाते हैं. अनेक जन्म लेते· मरते खाते डरते डराते अपने परायेके साथ शत्रुता मित्रता करते रहते हैं. हे उद्धारकारक विश्वनाथ ! उन भयभीत जनोंको अपने नेत्रोंसे देख अनुग्रह प्रकाश करके आज ही यमद्वारवाली वैतरणी नदीसे पार उतार कर रक्षा कीजिये, क्योंकि, यह जन मूढ और दीन हैं ॥४१॥ हे भगवन् ! आप सब जगत्के गुरु हैं और इस संसारकी

एवं जनं निपतितं भववैतरण्यामन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ॥ पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हंतेति पारचर
पीपृहि मूढमद्य॥ ४१ ॥ को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसंभवलोपहेतोः ॥ मूढेषु वै महदनुग्रह
आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥ ४२ ॥ नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहाऽमृतमग्न
चित्तः॥ शोचे ततो विमुखचेतस इंद्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्॥४३॥ प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरंति विजने न परार्थनिष्ठाः॥ नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥४४॥

सृष्टि, स्थिति और विनाशके कारण आप ही हैं, फिर आपको सब भक्तोंके तार देनेका क्या परिश्रम है ? अर्थात् सब भक्तोंका तार देना कुछ आपको दुष्कर कर्म नहीं है. हे प्रभो ! आप आर्तजनोंके बंधु हैं. मूढ जनोंके ऊपर भी आपका कितना अनुग्रह है, जो विना भक्ति तार देते हो, इसलिये आपका नाम देवताओंने आर्तबन्धु रक्खा है, हम लोग आपके भक्तजनोंके सेवक हैं, हम लोगोंका उद्धार करोगे तो क्या कुछ बडी बात है ? यह भी एक आपका तुच्छ कार्य है ॥४२॥ हे सर्वोत्तम ! आपके गुणगानरूप महाअमृतधारामें जिनके मन मग्न हो रहे हैं, इसलिये वे तो इस दुष्पार संसाररूप वैतरणी नदीका भी कुछ भय नहीं करते, परन्तु जो मूर्खलोग इस महाअमृतनदीसे विमुख हो इन्द्रियोंके निमित्त जो मायाका सुख है उसके लिये कुटुम्बादिकका भार ढोते हैं, इनको देखकर मुझे अत्यन्त शोक होता है ॥४३॥ हे देव ! मुनिलोग

आप प्राकृतरूपादिसे शून्य हैं, इससे तत्त्वादिक रूपके समान आपका और रूप नहीं है, इसलिये योगिराज लोग भक्तियोगसे काष्ठमें अग्निके समान कार्य और कारण दोनोंमें ही आपको अनुगत देखते हैं. हे भगवन् ! यह (कार्य और कारण) प्रधान अथवा प्राण इत्यादिसे नहीं हो सकते हैं, इसलिये आप ही सबके कारण हैं, आप ही सब वस्तुओंमें दिखाई देते हैं, आपके सिवाय और किसी वस्तुसे कार्य और कारणकी उत्पत्ति होती नहीं जानी जाती ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! वायु, अग्नि, धरणी, आकाश, जल, मात्रा, प्राण, इंद्रियें, हृदय, चित्त, अहंकार, देवता, स्थूल और सूक्ष्म यह सब आपहीके रूप हैं. हे भूमन् ! सगुण निर्गुण आप ही हैं. मन वचनसे जो कुछ कहा जाता है वह सब आप ही हैं ॥ ४८ ॥ यह गुण, अवगुण, महत्तत्त्वादिक, मन आदिक देवता और मनुष्य जो भले प्रकार आदि अन्तके जाननेवाले हैं, उनमें कोई भी आदि अन्तके

त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदंबुमात्राः प्राणेंद्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च॥सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन् नान्यत्त्वदस्त्यपि
मनोवचसा निरुक्तम् ॥ ४८ ॥ नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनःप्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ॥ आद्यंतवंत
उरुगाय विदंति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमंति शब्दात्॥ ४९ ॥ तत्तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः कर्म स्मृति
श्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥ संसेवया त्वयि विनेंति षडंगया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ ५० ॥
नारद उवाच ॥ एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ॥ प्रह्रादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥ ५१ ॥

सिवाय आपके स्वरूपको नहीं जान सकता, सब आप ही हैं इससे हे उरुगाय ! बुद्धिमान् पुरुष सब पाठ पूजन छोड़ केवल समाधिसे आपका ही ध्यान किया करते हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये हे अत्यन्तपूजनीय ! नमस्कार, स्तुति, सब कर्म समर्पण, पूजन, चरणारविन्दकी स्मृति और कथाका सुनना, यह षडंग भक्तिकी सेवा, आप जो परमहंसोंके गतिरूप हो सो आपकी भक्ति विना मुक्ति कहां? इसलिये आप अनुग्रह करके मुझको अपने दासोंका दास बनालो ॥ ५० ॥ नारदजी बोले कि, भगवद्भक्त प्रह्लादने जब इस प्रकार भक्तिसे भगवानके गुण वणन किये, तब अलौकिक गुणविशिष्ट, नृसिंहजी क्रोध शान्त कर नम्र प्रह्लादपर प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ५१ ॥

बहुधा अपनी अपनी मोक्षकी कामनाके लिये एकान्त स्थानोंमें मौनी बनकर तप करते हैं और वन वन घूमते फिरते हैं, परन्तु और दूसरा यत्न हम उनका नहीं देखते. हे भगवन् ! यह हमारे संगी असुरोंके बालक अतिशय दीन हैं; इनको अकेला छोडकर मैं अपनी मुक्ति पानेकी इच्छा नहीं रखता. हे नित्यमुक्त ! मैं इन बालकोंके लिये और किसीके निकट प्रार्थना नहीं कर सकता. क्योंकि, आपके सिवाय और किसी पुरुषको इन भ्रान्तलोगोंका उद्धार करनेवाला नहीं देखता ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! ऐसा नहीं कहा जा सकता कि, यह लोग स्त्रीसंगसंभोगादिक द्वारा सुख भोग करते हैं, दीन नहीं हैं. हे भगवन्! स्त्रीसंगादि जो गृहस्थधर्म है सो बड़ा तुच्छ है. उससे दोनों हाथोंके खुजानेके समान दुःखपर दुःख ही दिखाई देता है. हे स्वामिन् ! गृहस्थीका सुख इस प्रकार अन्तमें दुःख देनेवाला है जैसे ओसका सोना; उसमें आसक्त पुरुष बहुतसा दुःख भोगकर भी खुजानेकी समान इस सुखसे तृप्त नहीं होते. एक दुःख बीतने नहीं पाता, दूसरा आकर उपस्थित हो जाता है. देहमें खुजाहटका रोकना ऐसे

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कंडूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ॥ तृप्यंति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कंडूति
वन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥ ४५ ॥ मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ॥ प्रायः परं
पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवंत्युत न वाऽत्र तु दांभिकानाम् ॥ ४६ ॥ रूपे इमे सदसती-तव वेदसृष्टे बीजांकुराविव
न चान्यदरूपकस्य ॥ युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥ ४७ ॥

वैसे पुरुषोंका काम नहीं, केवल कोई धीरपुरुष ही खुजलीके समान कामदेवके वेगको सहन कर सकता है, परन्तु कौन ? जो कोई आपका परम भक्त होगा ॥ ४५ ॥ हे अन्तर्यामिन् ! मौनव्रत, श्रुत, तप, अध्ययन, स्वधर्म, धर्मव्याख्या, एकान्तमें वास, जप और समाधि यह मोक्षके साधन प्रसिद्ध हैं. इनको मैं तो असत्य नहीं कह सकता, परन्तु यह बहुधा अजितेन्द्रिय पुरुषोंकी आजीविकाका उपाय हैं, इनके करनेवालोंको देखदेखकर कोई कोई अजितेन्द्रिय लोग हँसते भी हैं और कहते हैं कि, यह सब ठगविद्याके साधन हैं और दम्भका फल सदा एकसा नहीं रहता, इसलिये दम्भी लोगोंके लिये सब मौनादिक कर्म कभी आजीविकाका उपाय हो सकता है और कभी नहीं भी हो सकता है ॥ ४६ ॥ देखो ! बीज और अंकुरके समान यह सत् और असत् अर्थात् कारण और कार्य आपका रूप कहकर वेदने प्रकाशित किया है. वास्तवमें

भगवान् बोले कि, हे दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद ! हे भद्र ! हे असुरोत्तम ! तेरा कल्याण हो, मैं तुझपर अतिसंतुष्ट हूं. जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग. मैं सब मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला हूँ ॥ ५२ ॥ हे आयुष्मन् ! मुझको विना प्रसन्न किये मेरा दर्शन होना महाकठिन है और मेरा दर्शन करके फिर यह प्राणी किसी प्रकारका शोक सन्ताप नहीं सहता॥५३॥इसलिये महात्मा पुरुष कल्याणकी इच्छा करनेवाले भाग्यशाली पुरुषोंको सब प्रकारके आशीर्वाद देनेवाला मैं हूँ ॥ ५४ ॥ नारदजी बोले कि, सब लोकोंको लुभानेवाले वरदानोंसे यद्यपि प्रह्लादको अनेक प्रकारका लोभ दिखाया, परंतु तो भी उस प्रह्लाद भगवानके परमभक्तने किसी वरदानकी चाहना नहीं की ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लादकृतभगवत्स्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा–दशवेंमें प्रह्लादपर, कर हरि कृपा महान । शिव अजको समझायकर, हरि भये अन्तर्धान ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि, भक्तियोगमें यह सब कामनादिक विघ्नरूप जानकर प्रह्लादने हँसकर श्रीनृसिंहजीसे कहा ॥ १ ॥ प्रह्लाद बोले कि, मैं जन्मजन्मोंसे वरदानका फल जान रहा हूँ कि, यह विषयका मूल है और आजतक वरदानरूप

श्रीभगवानुवाच ॥ प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम ॥ वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥५२॥ मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे ॥ दृष्ट्वा मां न पुनर्जंतुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥ ५३ ॥ प्रीणंति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ॥ श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥ ५४ ॥ एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ॥ एकांतित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ नारद उवाच ॥ भक्तियोगस्य तत्सर्वमंतरायतयार्भकः ॥ मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥१॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मा मां प्रलोभयोत्पत्त्यासक्तं कामेषु तैर्वरैः ॥ तत्संगभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः॥२॥

---

[1] भजन ।. प्रभु मैं सब विधि दास तुम्हारो ॥ अपनी चरणशरणसे मोको, इक पल मत न बिसारो ॥ १ ॥ यह विशाल बिकराल रूप प्रभु, दुष्टदलदलनहारो ॥ बसो रहै दिन रात हृदयमें, यह अभिलाष हमारो ॥ २ ॥ जब गज गह्यो ग्राहने जलमें, कोटि यतन कर हारो ॥ जौ भर शुंड रही जलऊपर, तब हरिनाम पुकारो ॥३॥ धाये वेग गरुडपर चढकर, सब दुख द्वन्द्व निवारो ॥ शालिग्राम भक्तसे बढकर, और न कोई प्यारो ॥ ४ ॥

विषयोंमें आसक्त हूँ; अब मुझको वरदानोंका लोभ दिखाकर मत लुभाओ, विषयोंके संगसे तो मैं अत्यन्त डरा हुआ हूँ, मुक्तिकी कामना कर आपकी शरण आया हूँ॥ २ ॥ हे प्रभो ! दासके लक्षण जाननेकी इच्छा कर मेरी परीक्षा करते हो, संसारके बीजरूप और हृदयकी ग्रन्थिरूप विषयोंमें प्रेरणा करते हो और यह भी देखते हो कि, यह मेरा भक्त हितचित्त है, वा ऊपरके मनसे ? सो हे नाथ ! स्वामीको अवश्य चाहिये कि, दासकी परीक्षा करता रहे ॥३॥ मेरा मन यह साक्षी देता है कि, आप विषयरूप मृगतृष्णाके समान वरदान मुझको कभी न देंगे. क्योंकि, आप तो दयानिधान हैं, आपके हृदयमें दया भरी हुई है जो दास अपने स्वामीसे संसारी सुखकी इच्छा रक्खे और उसकी बात बातमें लोभ दिखाई देता हो, उसे दास कहना नहीं चाहिये वह कुदास है, क्योंकि जब उसकी बात बातमें लोभ भरा हुआ है फिर दासभाव कैसा ? वह तो

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ॥ भवान्संसारबीजेषु हृदयग्रंथिषु प्रभो ॥ ३ ॥ नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत
करुणात्मनः ॥ यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥ ४ ॥ आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष
आत्मनः ॥ न स्वामी भृत्यत :स्वाम्यमिच्छन्यो राति चाशिषः ॥५॥ अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः॥
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥ यदि रासीश मे कामान्वरांस्त्वं वरदर्षभ ॥ कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु
वृणे वरम्॥७॥इंद्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ॥ ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यंति जन्मना ॥
॥ ८ ॥ विमुंचति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ॥ तर्ह्येव पुंडरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ९ ॥

व्यापारी बनियां ठहरा और जो स्वामी दाससे सेवाकी आशा करके उसको अपने पास रक्खे और आशीर्वाद अथवा और कोई मनोवांछित वस्तु दे तो उसको किसी प्रकार स्वामी नहीं कहना, बरन् अनुगामी कहना चाहिये ॥ ४ ॥५॥ मैं तो निष्काम आपका भक्त हूँ और आप निष्काम मेरे स्वामी हैं और कुछ मेरा आपका प्रयोजन नहीं॥६॥हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ जो ! कामना आप मुझको देते हैं आपसे तो यही वरदान मांगता हूँ कि, मेरे हृदयमें किसी प्रकारकी कामनाका अंकुर न उत्पन्न हो॥७॥हे नाथ ! कामनाका अंकुर उत्पन्न होते ही इंद्रिय, मन, प्राण, आत्मा, धर्म, धैर्य, मति, लाज, श्री, तेज, स्मृति और सत्य यह सब मांगनेके नामसे ही नष्ट होजाते हैं॥८॥हे पुण्डरीकाक्ष ! जब मनुष्य मनसे कामनाओंका त्याग

करता है, तब वह प्राणी भगवत्के भावको प्राप्त हो जाता है ॥९॥ फिर हाथ जोडकर प्रार्थना करनें लगा-"ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने। हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने" जो कि, आप भगवान् महापुरुष परमात्मा परब्रह्म हरि और अद्भुत नृसिंह रूप हो, मैं ऐसे अद्भुत स्वरूपको वारंवार नमस्कार करता हूँ॥१०॥ श्रीनृसिंहजी बोले कि, हे प्रह्लाद ! तुझसरीखे जो मेरे एकान्ती भक्त हैं वे इस लोकमें वा परलोकमें सुखकी इच्छा कभी नहीं करते, तो भी तू मेरे कहनेसे एक मन्वन्तरतक दैत्यकुलमें रहकर आनंदसहित राज्य कर और सुख भोग ॥ ११ ॥ मेरे सुन्दर सुन्दर चरित्रोंकी कथाओंका सेवन करना, मैं जो ईश्वर सब पदार्थोंमें व्यापक हूँ और यज्ञोंका यज्ञेश हूँ, मुझको हृदयमें रखकर सदा मेरा ध्यान करना, यजन करना, योगसे कर्मोंका त्याग करना और जो कर्म करै वह मेरे अर्थ समर्पण करना और उन कर्मोंके

ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ॥हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १० ॥ नृसिंह उवाच ।नैकांतिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ॥ अथापि मन्वंतरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुंक्ष्व भोगान् ॥११॥ कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्वमावेश्य मामात्मनि संतमेकम् ॥ सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥ १२ ॥ भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ॥ कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबंधः॥१३॥य एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः ॥ त्वां च मां च स्मरंल्लोके कर्मबंधात्प्रमुच्यते॥१४॥ प्रह्लाद उवाच॥ वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर ॥ यदानिंदत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥ १५ ॥

फलकी कांक्षा न रखना॥ १२ ॥ और भोगसे पुण्यका भोग करना, कुशलसे पापका भोग करना, जिसको देवता सदा गाते रहें, ऐसी विशुद्ध कीर्ति विस्तार करके, बन्धनसे मुक्त होकर फिर मुझको प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ तेरा गाया मेरा जो स्तोत्र है, जो कोई मनुष्य पवित्र चित्तसे उसका कीर्तन करेगा अथवा मृत्युके समय तेरा वा मेरा स्मरण करेगा वह निःसन्देह कर्मोंके बन्धनसे छूट जायगा ॥ १४ ॥ प्रह्लाद बोला कि, हे महेश्वर ! हे वर देनेवालोंके स्वामी ! आपके आज्ञानुसार आपसे मैं यह वर मांगता हूँ कि; मेरे पिताने आपको जाना नहीं और न आपके तेज व ऐश्वर्यको पहँचाना इससे आपकी निन्दा की ॥ १५ ॥

और क्रोध अभिमानके मदमें आकर उन्मत्तकी नाईं बकवाद करता रहता था कि, "मेरे भ्राताका मारनेवाला विष्णु यही है और सब दैत्योंको इसीने मारा है"इस कुदृष्टिसे उसने साक्षात् सर्व लोकके गुरु भगवान् आपको तो दुर्वाक्य कहे और आपका भक्त जानकर मुझको भाँति भाँतिके दुःख दिखाये, परन्तु आपके प्रभावको न जाना, क्योंकि, सदासे क्रूरबुद्धि था ॥ १६ ॥ वह मेरा पिता महादुस्तर पापसे मुक्त होकर पावन और पवित्र होजाय ऐसा अनुग्रह करना चाहिये.हे भक्तवत्सल! यह कहना भी मेरा मूर्खपन है, क्योंकि, यह तो पवित्र उसी समय होगया

विद्धामर्षाशयः साक्षात्सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ॥ भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥१६॥ तस्मात्पिता मे पूयेत दुरंताद्दुस्तरादघात् ॥ पूतस्तेऽपांगसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १७ ॥श्रीभगवानुवाच॥ त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ॥ यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ १८ ॥ यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशांताः समदर्शिनः ॥ साधवः समुदाचारास्ते पूयंत्यपि कीकटाः ॥१९॥ सर्वात्मना न हिंसंति भूतग्रामेषु किंचन ॥ उच्चावचेषु दैत्येंद्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥ २० ॥

था, जब कि, आपने खम्भ फाड़कर दर्शन दिया था, परन्तु कठोर वाक्य जो आपको कहे हैं उनका अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे साधु! हे पापरहित! तेरा पिता इक्कीस *कुल सहित पवित्र होगया, क्योंकि, जब तुम सरीखे साधु कुलपावन उसके घर जन्मे ॥ १८ ॥ जिन जिन स्थानोंमें मेरे भक्त प्रशान्त, समदर्शी, साधु और श्रेष्ठाचार करनेवाले हैं, वह कीकट देशको भी पवित्र कर देते हैं ॥ १९ ॥ जो लोग किसी जीवकी हिंसा नहीं करते और छोटे मोटे जीवोंको मेरे भावसे चाहते हैं, हे दैत्येन्द्र! उनको किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती ॥ २० ॥

---

* शंका-प्रह्लादसे नृसिंहजीने कहा कि, तेरा बाप इक्कीस पीढीको संग लेकर वैकुण्ठधामको गया, यह बडे सन्देहकी बात है, क्योंकि, हिरण्यकशिपुसहित गिनो तो चार पीढी होती हैं-ब्रह्मा १ मरीचि २ कश्यप ३ हिरण्यकशिपु ४ फिर भगवान्ने इक्कीस पीढी क्यों कहा ?

उत्तर-चार पीढी तो बीती हुई और सत्रह पीढी अगाडीकी लेकर इस प्रकारसे इक्कीस पीढी भगवान्ने कही ॥

जो लोग इस लोकमें वा परलोकमें आपके अनुवर्ती होंगे, जैसे तू मेरे सब भक्तोंका प्यारा है वैसेही वह सब मेरे प्यारे होंगे ॥ २१ ॥ हे अंग ! सब भाँतिमे तेरा पिता परमपवित्र है, उसका तू मृतककर्म कर. एक तो इसका मेरे अंगसे स्पर्श होगया है, दूसरे इसके तेरे समान सुपुत्रका होना, फिर इसके स्वर्ग जानेमें क्या संदेह है ? हे तात ! ब्रह्मवादी लोग जिस प्रकार स्मृतियोंमें आज्ञा कर गये हैं वैसे ही मुझपर आसक्त होकर सब कर्म कर और मेरे चरणोंमें मन लगाकर पिताके सिंहासनपर बैठकर राज्य कर ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे महाराज ! जो जो पिताकी मृतकक्रिया थी सो सब प्रह्लादने करी, फिर जैसे भगवान्‌ने कहा वैसे ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक उसका अभिषेक किया ॥२४॥ अपने ऊपर

भवंति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ॥ भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥ २१ ॥ कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः ॥ मदंगस्पर्शनेनांग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥ २२ ॥ पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्सांपरायिकम् ॥यथाऽऽह भगवान्राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः॥२४॥ प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ॥ स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच॥ देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज॥दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसंतापनोऽसुरः ॥२६॥ योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ॥ तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन्॥२७॥ दिष्ट्यास्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ॥ त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥२८॥

प्रसन्न जानकर सुमुख श्रीनृसिंह भगवान्‌को पवित्रवाणीसे स्तुति कर सब देवताओंको साथ ले चतुरानन ब्रह्माजी कहने लगे ॥ ॥ २५ ॥ हे देवदेव ! हे अखिलाध्यक्ष ! हे भूतभावन ! हे पूर्वज ! सर्वलोकसंतापी पापी असुरका आपने वध किया यह बड़ा मङ्गल हुआ ॥ २६ ॥ एक तो इसने यह वर मुझसे मांग लिया था कि, आपकी (ब्रह्माकी) सृष्टिमें मैं किसीसे न मरूं, दूसरे तपयोगके प्रभावसे ऐसा उन्मत्त होगया था कि, सब वेदोंका नाश कर दिया था ॥ २७ ॥ सबसे उत्तम काम तो यह आपने किया कि, परमभागवत भगवद्भक्त महासाधु इसके छोटे

सुतको मृत्युके मुखसे आपने बचाया और यह बहुतही अच्छा किया कि, जो इसके पुत्र प्रह्लादको आपने अपनी शरणमें रख लिया ॥ २८ ॥ हे भगवन्! इस आपके नृसिंहअवतारका सावधान होकर जो ध्यान करे तो मृत्युके और सब प्रकारके त्राससे मुक्ति पावेगा ॥ २९ ॥ श्रीनृसिंहजी बोले कि, हे चतुरानन! ऐसा वर राक्षसोंको मत दिया करो, क्योंकि क्रूर स्वभाववालेको वर भी सब उलटे होजाते हैं, जैसे सर्पको दूध

एतद्वपुस्ते भगवन् ध्यायतः प्रयतात्मनः ॥ सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ २९॥ नृसिंह उवाच ॥ मैवं
वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव ॥ वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवा
न्राजंस्तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥ ततः संपूज्य शिरसा ववंदे परमेष्ठि
नम् ॥ भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥ ३२ ॥ ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ॥ दैत्यानां
दानवानां च प्रह्लादमकरोत्पतिम् ॥ ३३ ॥

पिलानेसे दूना विष बढ़ता है ॥ ३० ॥ नारदजी बोले कि, हे महाराज युधिष्ठिर! ब्रह्माजीसे यह बात कहकर और उनकी पूजा स्वीकार कर सब लोगोंके देखते देखते संपूर्ण भूतोंको अदृश्य, ब्रह्माके पूजे हुए श्रीनृसिंह भगवान् अन्तर्धान होगये * ॥ ३१ ॥ तब प्रह्लादने ब्रह्मा, शिव, प्रजापति और सब देवताओंकी वन्दना करके शिर झुका प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजीने उस समय शुक्राचार्यादिक बडे बडे मुनियोंके सामने सब दैत्यदानवोंका

---

* ब्रह्माने कहा कि, सबकी मोक्ष कर दो तो अच्छा है, नृसिंह बोले जो कोई अपनी मोक्ष न चाहे तो उसकी मोक्ष हम कैसे कर दें, जिसको मोक्षकी इच्छा हो उसको हमारे पास लाओ. ब्रह्माजी नगरमें गये और जाकर देखा कि, बड़ा भारी एक सेठ गद्दीपर बैठा है और चारों ओर असामी उसके हाथ जोडे बैठे हैं. ब्रह्माजीने कहा कि, सेठजी वैकुण्ठको चलनेका यह समय अच्छा है और इसकी बराबर और कोई दूसरा लाभ नहीं, क्योंकि अच्छेसे अच्छे तो भोजन जीमनेको मिलेंगे और दिन रात भगवान्के सन्मुख रहना होगा, सब देवताओंसे रीति प्रीति रहेगी. सेठ बोला कि, मैं वैकुण्ठको कभी नहीं जाऊंगा. क्योंकि एक तो वैकुण्ठ पराया गाँव, दूसरे दिन रात सामने खडे रहनेकी नोकरी, तीसरे नये लोगोंसे मेल करना. मुझको ऐसे वैकुंठ जानेकी आवश्यकता नहीं, मुझको तो यहीं वैकुंठ हो रहा है, जो सैकडों मनुष्य मेरे आगे हाथ जोडे खडे रहते हैं और अपने घर बैठा हूं, बाल बच्चे हाथ पांव दाबते हैं और दूधमें मिश्री डालकर पिलाते हैं, इससे अधिक कोई वैकुंठ और है ? सेठकी यह बातें सुन, ब्रह्माने सब कथा नृसिंहजीसे कही, तब भगवान् नृसिंहजी बोले कि, हे ब्रह्माजी ! जो पुरुष जहां बसता है वह वहीं सुख पाता है यह कह भगवान् नृसिंहजी वैकुंठको चले गये ॥

राजा प्रह्लादको बनाया ॥३३॥ महाराज! सब देवता प्रह्लादकी सराहना कर परमोत्तम आशीर्वाद दे सब पूजा भेंट ले लेकर ब्रह्मादिक देवता अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥३४॥ इस प्रकार यह दोनों विष्णुके पार्षद दितिके पुत्र हुए और दोनोंने भगवान्‌को हृदयमें धर फिर वैरभाव करके महाघोर युद्ध किया और विष्णु भगवान्‌के ही हाथसे मारे गये ॥ ३५ ॥ फिर यही दोनों सनक सनन्दनके शापसे पुनर्जन्ममें विश्रवाके घरमें रावण और कुम्भकर्ण नामक असुरयोनिमें उत्पन्न हुए और उनको दशरथनन्दन दुष्टनिकन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराजने अपने पराक्रमसे मारा ॥ ३६ ॥ जब रामचन्द्रके तीक्ष्ण बाणोंसे उन दोनोंका हृदय विदीर्ण होगया और युद्धस्थलमें शयन करने लगे तब पिछले जन्मके तुल्य श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दका स्मरण उनके चित्तमें बना रहा और उसी समय दोनोंने देह त्याग दिया ॥ ३७ ॥ फिर वही दोनों दन्तवक्र और शिशुपाल हुए और श्रीकृष्णचन्द्रसे वैर करत रहे और उसी समय दोनोंने सायुज्यमुक्ति पाई ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णसे वैर करनेवाले जो राजा थे और दिनरात भगवान्‌की निन्दा करते रहते थे, परन्तु हृदयसे ध्यान नहीं बिसारते थे, उसी ध्यानके प्रभावसे सब मुक्त होगये, जसे भृंगी कीडेके ध्यानसे और दूसरा कीडा भी भृंगीके समान हो जाता है ॥३९॥ भगवान्‌से अभेददृष्टि रखनेसे भक्तोंको जो जो परमपदवी मिलती है, ऐसे ही शिशुपालादिकोंने भगवान्‌का चिन्तवन करके परमगति पाई ॥ ४० ॥ जो जो इतिहास आपने मुझसे बूझे सो सब मैंने आपके सामने कहे, दमघोषके पुत्र शिशुपालादिकने जिस प्रकार श्रीकृष्णसे वैर करके मोक्ष पाई ॥ ४१ ॥

प्रतिनंद्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ॥ स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३४ ॥ एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ॥ हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥ ३५ ॥ पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ॥ कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमः ॥३६॥ शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ॥ तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥ ३७ ॥ ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ॥ हरौ वैरानुबंधेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥३८॥ एनः पूर्वंकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः ॥ जहुस्त्वंते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥ ३९ ॥ यथा यथा भगवतो भक्त्या परमया भिदा ॥ नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिंतया ययुः ॥ ४० ॥ आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥ ४१ ॥

एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ॥ अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥ ४२ ॥ प्रह्लादस्यानुचरितं
महाभागवतस्य च ॥ भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥४३॥ सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ॥
परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥ ४४ ॥ धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ॥ आख्यानेऽस्मि
न्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥ ४५ ॥ य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ॥ कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्म
पाशैर्विमुच्यते ॥ ४६ ॥ एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेंद्रलीलां दैत्येंद्रयूथपवधं प्रयतः पठेत् ॥ दैत्यात्मजस्य च सतां प्रव
रस्य पुण्यं श्रुत्वानुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥ ४७ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥
येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥ ४८ ॥

महात्मा ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के पुण्यरूप अवतारकी कथा कही कि,जिसमें आदिदैत्य हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके मारनेका वृत्तान्त है ॥ ४२ ॥ भगवद्भक्त प्रह्लादका चरित्र व हरिकी भक्ति,ज्ञान,वैराग्यका लक्षण व विरक्तभाव और त्रिगुणपति भगवान्का तत्त्व॥४३॥ सर्ग, स्थिति, संहारके स्वामीके गुण और कर्मोंका अनुवर्णन, पर अवर स्थानोंका कालसे महान् नाश होजाना ॥४४॥ भागवतोंका धर्म जिससे भगवान्का निरूपण हो और उनकी प्राप्ति हो, इस आख्यानमें हमने सम्पूर्णतासे अध्यात्मज्ञान पूर्ण रीतिसे दर्शा दिया है ॥ ४५ ॥ जो कोई इन पुण्यरूप कथाओंका कीर्तन करे और श्रद्धासे सुने कि जो विष्णु भगवान्के वीर्यसे संवर्द्धित हैं; वह पुरुष सब कर्मके बन्धनोंसे छूट जायगा ॥ ४६ ॥ जो पुरुष आदिपुरुष भगवान्की नृसिंहलीलाको और हिरण्यकशिपुवधके चरित्रको सावधान होकर पढेगा और महात्मा जनोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादके पवित्र चरित्रको सुनेगा वह निःसंदेह परमपदवीको प्राप्त होगा और किसी प्रकारका भय नहीं देखेगा॥४७॥इस मृत्युलोकमें आजकल तुम बडे बड़भागी हो कि,त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले मुनिजन आपके यहां आते हैं और आपके घरमें साक्षात् नराकाररूप धर श्रीकृष्ण परब्रह्म निवास करते हैं. श्रीकृष्ण परमतत्त्व हैं,ईश्वर हैं,परात्पर हैं,श्रीमन्नारायण हैं, यही सर्वेश्वर हैं, अविनाशी हैं निरंजन हैं, निराकार हैं, गोपीजनमनोमोहन हैं,भक्तवत्सल हैं,सर्वोपास्य हैं, जगदीश्वर हैं,प्रभु हैं, परब्रह्म हैं,निरीह हैं, निष्कलंक हैं,अदृश्य हैं, परन्तु भक्तोंको दृश्य हैं॥४८॥

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो
विधिकृद्गुरुश्च ॥ ४९ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः
प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥५०॥ स एष भगवान्राजन्व्यतनोद्विहतं यशः ॥ पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानंतमायिना
॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहञ्जगदीशितुः ॥ यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्य
ताम् ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ॥ मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः॥५३॥
स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ॥ दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥५४॥ ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो
लोकांस्त्रीन्सेश्वरान्नृप ॥ स्मरंतौ नाशयांचक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५५ ॥

नारदजी बोले कि, यह श्रीकृष्ण वही परब्रह्म हैं, जो महात्माजनोंके ढूँढनेयोग्य कैवल्य मोक्षसुखका अनुभव करनेंवाले प्यारे सुहृद् हैं, तुम्हारे मामाके पुत्र आत्मा पूजनीय आज्ञानुवर्ती गुरु श्रीकृष्ण हैं, तुम्हारे भाग्यकी बड़ाई कहांतक कोई कर सके ? ॥ ४९ ॥ जिनका रूप साक्षात् शिव और ब्रह्मादिक देवताओंसे भी नहीं कहा जाता, वह श्रीकृष्ण तुमपर आपसे आप प्रसन्न हैं और हम तो उनको मौनभक्तिसे इन्द्रियोंको जीतके शांत्यादिक अनेक साधनोंसे प्रसन्न करते हैं और वारंवार यह कहते हैं कि, हे भक्तभावन ! भगवन् ! हमपर सन्तुष्ट होओ ॥ ५० ॥ हे राजन् ! पहिले रुद्रदेवके यशको अनन्तमायावी मयदैत्यने नष्ट भ्रष्ट कर दिया था, तब इन ही श्रीकृष्णने सहाय करके महादेवके यशका विस्तार किया था ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर बोले कि कालमूर्ति त्रिकालज्ञ भूतेश्वर महादेवजीके यशको किस प्रकार मायावी मयदैत्यने नष्टभ्रष्ट कर दिया था और कैसे उनके यशका श्रीकृष्णने विस्तार किया सो हमसे कहो ॥५२॥ नारदजी बोले कि, एक समय देवताओंने विष्णुभगवान्की सहायतासे संग्राममें उत्तम उपाय करके सब असुरोंको जीता तब सब असुर मायावियोंका परम आचार्य मयदैत्य जो महाबलशाली और परमचतुर था उसकी शरण गये ॥५३॥ इस महापुरुषार्थी मयदैत्यने तीन पुर सोने, चांदी और लोहेके ऐसे कठिन बनाये कि, उनके आनेजानेका मार्ग कोई नहीं जान सकता था और उनकी ऐसी कठिन सामग्री थी कि, किसीका सामर्थ्य नहीं जो उनका उपाय कर सके ॥५४॥ हे नृपभूषण ! उन

पुरोंसे असुरसेनापतिने ईश्वरसहित त्रिलोकीके विनाश करनेकी इच्छा की और अलक्षित होकर पहले वैरका स्मरण किया ॥५५॥ तब सब लोकपाल और प्रजागण मिलकर शिवजीके समीप गये और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोले कि, हे विभो ! हे देव ! हमारी रक्षा करो. त्रिपुरासुरके पुरमें रहनेवाले दैत्य हम लोगोंका नाश किये डालते हैं ॥ ५६ ॥ तब सर्वसमर्थ शिवजीने लोकपालोंपर दया करके उनको धैर्य दिया और कहा डरो मत, हम तुमको अभय किये देते हैं, यह कह धनुषपर शर चढाय तीनों पुरोंपर अस्त्र चलाये ॥५७ ॥ तब अग्निके समान महातीक्ष्ण बाण धूर्जटी मंत्र पढ़पढ़कर चलाने लगे, जैसे प्रलयकालके मार्तण्डमण्डलसे कालरूप महाविकराल किरणजाल निकलते हैं, ऐसे इन बाणोंके समूहोंसे आच्छादित होकर त्रिपुरासुरके तीनों पुर छिप गये ॥ ५८ ॥ और उन तीक्ष्ण बाणोंके लगनेसे त्रिपुरके असुर घायल हो होकर पृथ्वीपर

ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो॥त्राहि नस्तावकान् देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥५६॥ अथानुगृह्य भगवान् मा
भैष्टेति सुरान्विभुः ॥ शरं धनुषि संधाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुंचत ॥ ५७॥ ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ॥
यथा मयूखसंदोहा नादृश्यंत पुरो यतः ॥ ५८ ॥ तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः॥ तानानीय महायोगी
मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥ ५९ ॥ सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ॥ उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ६० ॥
विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ॥ तदाऽयं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत्॥६१॥वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा
स्वयं विष्णुरयं हि गौः ॥ प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥ तेऽसुरा ह्यपि पश्यंतो न न्यषेधन्विमोहिताः ॥६२॥

गिरने लगे. जो दैत्य मरे वह मायावी दैत्य उस मृतक दैत्यको उसी समय अपने बनाये हुए सुधाकूपके रसमें डालता गया ॥ ५९ ॥ उस कूपका रस लगनेसे सबके सब एकसंग जी उठे. वज्रकासा अंग, महापराक्रमी, मेघमालाके समान गर्जनेवाले काल वर्ण, बीजलीके सदृश तेज कांतिवाले, मानो अग्निकी लपटेंसी जहां तहां निकलनें लगीं ॥ ६० ॥ इस आश्चर्यमयी कौतुकको देख शिवजी अपने मनमें बहुत उदास हुए कि, आज हमारा संकल्प भंग हुआ, अब क्या उपाय किया गया ? मनही मनमें यह कह भगवान्‌का ध्यान करने लगे. शिवको दुःखी देख उसी समय इन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने आकर सहायता की और एक अद्भुत उपाय किया ॥६१॥ ब्रह्माजीको वत्स बनाया, आपने

अपना गोरूप धारण किया, इधर उधर घूमघाम अवसर पाकर सहजमें त्रिपुरके भीतर घुस गये और अमृतमय कूपका रस पीना आरम्भ किया यद्यपि असुरोंने इनको अमृत पीता हुआ देख भी लिया, परंतु भगवान्‌की मनमोहनी मायासे मोहित हो ऐसे बेसुध हुए कि, किसीने उनको नहीं रोका ॥ ६२ ॥ जब सुधाकूपकी सुधा निवृत्त होगयी, तब रसकूपके रखवाले दैत्य अत्यन्त शोकाकुल हो घबराने लगे. तब धैर्यवान् सज्ञान मयदैत्यने इसको दैवगति जान उन दैत्योंसे कहा ॥६३॥ कि, क्यों वृथा शोक करते हो? हे शोकपीडितो! दैवगतिका स्मरण करो. देवता, असुर, नर, किन्नर कोई क्यों न हो, अपने आत्माको और दूसरेको दैवकी गतिसे कोई नहीं बचा सकता. जो भाग्यमें लिखा है उसका कोई मिटानेवाला नहीं ॥ ६४ ॥ इसके बाद विष्णु भगवानने अपनी शक्तियोंसे शिवजीकी सांग्रामिक सामग्री प्रस्तुत की उस समय विष्णु भगवान्‌ने अपनी

तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ॥स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ॥६३॥ देवोऽसुरो नरोऽन्यो
वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥ ६४ ॥ अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शंभोः
प्राधनिकं व्यधात् ॥ धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ॥ ६५ ॥ रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत्
॥ ६६ ॥ सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ॥ शरं धनुषि संधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥ ददाह तेन दुर्भेद्याहरोऽथ
त्रिपुरो नृप ॥ ६७ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ॥ देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ॥ अवाकिरञ्
गुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६८ ॥

धर्म, ज्ञान, विरक्ति, ऋद्धि, सिद्धि, तप, विद्या और क्रियादिक शक्तियोंसे ॥६५॥ शिवजीने संग्रामके लिये रथ, सूत, ध्वज, अश्व, धनुष, कवचऔर शर आदि जो जो संग्रामकी सामग्री चाहिये वह सब मँगाई. फिर महादेवजी कटिबद्ध हुए और धनुषबाण हाथमें लेकर रथपर बैठे हे नरेश! फिर तो शिवजीने धनुषपर शरसंधान उस बाणसे अभिजित् मुहूर्तमें उन दुर्भेद्य पुरोंको भस्म कर दिया ॥६६॥६७॥ जब तीनों पुर भस्म होगये तब सुरपुरमें दुंदुभी बाजे बजने लगे, सैकडों विमान आकाशमें आन आनकर छा गये. देवता, ऋषि, पितर और सिद्धेश जय जय शब्द पुकार पुकार पुष्पोंकी वर्षा करने लगे. गन्धर्व, किन्नर प्रसन्न हो होकर हरका यश गाने लगे और अप्सरायें अनेक अनेक प्रकारके नृत्य करने लगीं ॥६८॥

हे महाराज ! त्रिपुरारी इस प्रकार तीनों पुर जलाय ब्रह्मादिकोंकी स्तुति स्वीकार कर अपने आश्रमको चले गये ॥६९॥ भगवान् अपनी माया करके भाँतिभाँतिकी लीला करते हैं, कभी मनुष्यअवतार धरते हैं, कभी नरसिंहरूप धरकर दुष्टोंको मारते हैं, कभी मनुजदेह धरकर भूमिका भार उतारते हैं, इन विश्वरूप विश्वात्मा भगवान्के ऐसे ऐसे चरित्र संसारके पवित्र करनेवाले ऋषिवर्योंने गाये हैं॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजन्! दोहा–जो जो बूझो धम नृप, सो सो दियो सुनाय। कहा सुननकी लालसा, सो मोहिं देहु बताय ॥७०॥ इति श्रीम० महा० सप्त० भा० टी० त्रिपुरविजयवणनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा–ग्यारहमें वर्णन करौं, चार वर्णके धर्म । फिर कछु नारिनके धरम, वरणों सहित सुकर्म ॥१॥

एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ६९ ॥ एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया विडंबमानस्य नृलोकमात्मनः ॥ वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥७०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ॥ युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ॥ वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान्विदते परम् ॥२ ॥ भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ॥ सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥ ३ ॥ नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ॥ करुणाः साधवः शांतास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! साधुसभामें जिसने प्रशंसा पाई ऐसा चरित्र सुनके महात्माओंमें अग्रणी भगवत्में जिनकी आत्मा वह युधिष्ठिर प्रह्लादचरित्र सुनके अत्यन्त प्रसन्न हो फिर नारदजीसे पूँछने लगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन् ! मनुष्योंके सनातनसे जो धर्म चले आये हैं, उन धर्मोंके सुननेकी मेरी अभिलाषा है, वर्ण व आश्रमके आचारसे यह पुरुष परमेश्वरको प्राप्त होता है ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! साक्षात् प्रजापतिके सब पुत्रोंमें आप तप, योग, समाधि करके बडे प्यारे पुत्र हो ॥३॥ जो ब्राह्मण आपके समान नारायणपरायण हैं

और परमगुप्त धर्मको जानते हैं, वह दयालु साधु शान्तरूप तुम्हारे सदृश हैं वैसे और दूसरे नहीं हैं * ॥ ४ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, सब लोगोंके धर्मके लिये भगवान् श्रीमन्नारायणको नमस्कार करके जो श्रीमन्नारायणके मुखसे मैंने सुना है वह सनातनधर्म आपके आगे कहता हूँ ॥ ५ ॥ जो आप आत्माके अंशसे दक्षकी पुत्री मूर्तिसे जन्म लेकर धर्मसे सब लोकोंके कल्याणके लिये तप करनेको बदरिकाश्रममें विराज रहे हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! धर्मका मूल भगवान् हैं,सर्वदेवमय हरि हैं,वेदरूप भगवान् ही सब धर्मोंमें प्रमाण हैं,जैसे धर्मके विषयमें वेदोंका

नारद उवाच ॥ नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ॥ वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ५ ॥
योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्या तु धर्मतः ॥ लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ॥ ६॥ धर्ममूलं हि भग
वान्सर्ववेदमयो हरिः ॥ स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥ सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो
दमः ॥ अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥ ८ ॥

प्रमाण है ऐसे ही वेदविद् महात्माओंकी स्मृतियां प्रमाणित हैं,जिन हरिके स्मरण करनेसे आत्मा शुद्ध और प्रसन्न हो वही धर्म प्रमाणित है ॥७॥ अब सामान्य धर्म कहते हैं-सत्य बोलना १दया करनी २ एकादशी आदि व्रत३शौच करना४सहनशीलता५योग्यायोग्य यह काम करना यह न करना इसका ज्ञान करना ६ मनको जीतना ७बाह्यइन्द्रियोंको जीतना ८ हिंसा न करना ९ब्रह्मचर्य रखना१० दान करना ११ यथोचित वेद पाठ करना १२ सरलता-सबसे सीधा रहना १३ ॥ ८ ॥

---

* **शंका**—सतयुग, त्रेता,द्वापरमें सब ब्राह्मण भगवान्के गुणोंको जानते थे,जो कोई ब्राह्मण ज्ञानकी बातको थोडा समझता था वह भी धर्म कर्ममें सावधान और भगवान्के चरणकमलमें प्रीति रखता था, फिर नारदजीसे युधिष्ठिरने क्यों कहा था,कि, भगवान्के चरित्रोंको आप सरीखे ब्राह्मण जानते हैं, दूसरा नहीं जान सकता. यह बडी शंका है कि नारदजी तो ज्ञानी ठहरे और सब अज्ञानी ठहरे ?

उत्तर—युधिष्ठिरजीने किसी किसी ब्राह्मणको तपस्याहीन उन्मत्त जानकर तथा किन्हीं राजाओंको भी उन्मत्त जानकर नारदजीसे ऐसा वचन कहा ॥

१ याज्ञवल्क्यमें लिखा है "श्रुति स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥ सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्" ॥ और मनुस्मृतिमें यह लिखा है, "वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च" इति ॥

संतोष जो दैवसे मिलै उसमें संतोष करना १४ बडोंकी अर्थात् महात्मापुरुषोंकी सेवा करना १५ ग्राम्यधर्मकी चेष्टा त्यागे १६ धीरेधीरे निष्फल क्रियाओंको न करे १७ वृथा बकवाद न करे १८ परमेश्वरका चिन्तवन करे १९ ॥ ९ ॥ हे पाण्डव ! यथायोग्य अन्नादिक प्राणीमात्रको देता रहे २१ उन प्राणियोंमें परमात्मा व्यापक है, यह विचार; अन्न, वस्त्र, घर, हाथी, घोडा, शय्या, गौ, पात्र, पुस्तक, औषध, अभय, पृथ्वी इत्यादि दान करता रहे ॥ १० ॥ भगवान्की नवधा भक्ति करे. श्रवण–भगवान्की कथा सुने. कीर्तन–नारायणका यश गावे. स्मरण–हरिकी लीलाओंका ध्यान करे. सेवा–महात्मा पुरुषोंकी सेवा करे. अर्चा–देवताओंका पूजन करे. नमस्कार–सबको नारायणमय समझकर दण्डवत् करे. दास–सबसे दासभाव वर्ते. सख्य–परमात्माको अपना सखा समझे और स्वात्मसमर्पण–अपना तन मन, धन परमेश्वरके अर्पण

संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ॥ नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥ अन्नाद्यादेः संविभागो
भूतेभ्यश्च यथार्हतः ॥ तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पांडव ॥ १० ॥ श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ॥
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११ ॥ नृणामयंपरो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ॥ त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्मा
येन तुष्यति ॥ १२ ॥ संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम् ॥ इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम्
॥ जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥ १३ ॥ विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः ॥ राज्ञो
वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वा करादिभिः ॥ १४ ॥

करे ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सब मनुष्यमात्रका यह तीस लक्षणवाला, परम धर्म कहलाता है, जिसके करनेसे भगवान् सर्वात्मा सन्तुष्ट होते हैं ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीने कहा है कि, वेदमंत्रोंसे जिसका संस्कार किया जाय उसको द्विज कहते हैं और यह संस्कार वेदकी रीतिसे जिसके होने चाहिये उसीके होते हैं, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जन्मसे और कर्मसे शुद्ध हैं इज्या, अध्ययन, दान यह तीन कर्म द्विजन्माके लिये करनेकी आज्ञा है और उनहीको आश्रमसम्बन्धी क्रिया करनेकी आज्ञा है, उसका आश्रम जिसमें हो वह उनकी क्रियाओंको करे ॥ १३ ॥ विद्या पढ़नी, विद्या पढ़ानी, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मणके हैं, इसमें तीन कर्म पिछले

---

[1] श्रुतिश्च–गायत्र्या ब्राह्मणमसजत् त्रिष्टुभा राजन्यम् । जगत्या वैश्यं न केनचिच्छूद्रम् । तथाच स्मृतिः “ विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा । न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः ” इति ॥

वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥ १५ ॥ वार्त्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ॥ विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा॥१६॥जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः ॥ ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥ १७ ॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ॥ सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ १८ ॥ ऋतमुंछशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ॥ मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम्॥१९॥सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम्॥वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम्॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २० ॥

ब्राह्मणोंकी आजीविकाके लिये हैं. विद्या न पढ़ावे, दान न ले,यज्ञ न करावे. कोई प्रतिग्रह न ले, प्रजाकी रक्षा करे, ब्राह्मणसे दण्ड न ले, यह कर्म क्षत्रियके हैं ॥ १४ ॥ खेती करे और व्यापारादिसे अपनी आजीविका करे और सदा ब्राह्मणकुलकी सेवा करे, यह कर्म वैश्यके हैं; ब्राह्मणोंकी सेवा करे, अपने स्वामीसे कुछ धन लेकर अपना निर्वाह करे, यह कर्म शूद्रके हैं ॥ १५ ॥ खेतीसे, वृत्तिसे, विना मांगे प्राप्त हो उस धनसे, प्रतिदिन भिक्षा माँगकर लाना, और शिलोंछन अर्थात् खेत काटनेके समय जो अन्न खेतमें गिर पड़े उसको बीन कर लाना, बाजारमें बिखरा पड़ा हुआ अन्न उठालाना, यह चार वृत्ति ब्राह्मण करे और इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥ नीच वृत्ति, क्षत्रिय आपत्ति कालमें भी न करे, जब कोई महाविपत्ति ही आजाय तो भले ही क्षत्रिय नीचवृत्तिको करे ॥ १७ ॥ ऋतसे, अमृतसे, मृतसे, प्रमृतसे वा सत्यानृतसे अपना निर्वाह करना चाहिये, परन्तु श्वानवृत्तिसे आजीविका करनी अच्छी नहीं ॥ १८ ॥ खेतमें अथवा हाटमें स्वामी जो धन अपनी इच्छासे छोड दे इसको बीन लाना इसका नाम ऋत है, विना माँगे मिले उस धनका नाम अमृत है, नित्यप्रति भिक्षा मांगकर लाना इसका नाम मृत हैं, किसानी आदि वृत्ति करे उसका नाम प्रमृत है ॥ १९ ॥ व्यापारादिकका नाम सत्यानृत है, आपसे नीच वृत्तिकी सेवा करना यह श्वानवृत्ति है,ब्राह्मण और क्षत्रियको इस निन्दनीय श्वानवृत्तिका सदा त्याग करना चाहिये क्योंकि, ब्राह्मण तो सर्व–वेदमय हैं और क्षत्रिय सर्वदेवमय हैं ॥ २० ॥

शम, दम, तप, शौच, संतोष, शान्ति, कोमलता, ज्ञान, दया, भगवद्भक्ति और सत्य यह ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ शौर्य, वीर्य, धीरता, तेज, दान, मनोजय ,क्षमा, विप्रभक्ति, प्रसन्नता और रक्षा करनी यह क्षत्रियके लक्षण हैं ॥ २२ ॥ देवभक्ति,गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति, धर्मवृद्धि, धनवृद्धि, सुखवृद्धि, आस्तिक रहना, नित्य उद्यम करना और निपुणता यह वैश्यके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ अपने आपसे उत्तम वर्णको दण्डवत् करना, पवित्र रहना, निष्कपटभावसे अपने स्वामीकी सेवा करनी, विना मंत्र पढ़े वैश्वदेवादि पंचयज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना और गोब्राह्मणकी टहल करनी, यह शूद्रके लक्षण हैं ॥ २४ ॥ अपने पतिकी सेवा करनी, पतिके अनुकूल रहना, देवर जेठकी सेवा करना और उनकी आज्ञा मानना, यह चार धर्म पतिव्रता स्त्रियोंके हैं ॥ २५ ॥ घरके सब पदार्थोंको शुद्ध रखना अर्थात् लीपना, पोतना, बुहारी देना, आंगनमें चौक पूरना, अपना भी सुन्दर शृंगार बनाये रखना, सब घरकी सामग्री पवित्र रखना, बालकोंको नित्यप्रति स्नान कराके अच्छे अच्छे शृंगार कर वस्त्र आभूषण पहिनाना, अच्छी रीतिसे उनका लालन पालन करना, सास श्वशुरकी सेवा करना और उनकी आज्ञा मानना ॥ २६ ॥ साध्वी स्त्री छोटे मोटे ऊंचे नीचे घरके सब काम करे, नम्र रहे, इन्द्रियोंका पराजय करती रहे, प्रियवचनोंसे समय समय पर प्रेमपूर्वक अपने स्वामीकी सेवा करती रहे ॥ २७ ॥ जो कुछ भाग्यसे प्राप्त होजाय उसीपर सन्तोष रक्खे, भोगोंमें लोलुपता न करे,

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम्॥ ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम्॥२१॥शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा ॥ ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥ २२ ॥ देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ॥ आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुण्यं वैश्यलक्षणम् ॥ २३ ॥ शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ॥ अमंत्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता॥तद्बंधुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥ ॥२५ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमंडलवर्तनैः ॥ स्वयं च मंडिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥ २६ ॥ कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ॥ वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजत्पतिम् ॥ २७॥ संतुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ॥ अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥ २८ ॥

परन्तु नित्यनैमित्तिक कर्मोंको दिन दिन बढ़ाता रहे. देखो ! कर्म करते करते विषयोंमें दोष देखनेसे राजा ययाति और सौभरि ऋषिको धीरे धीरे आपसे आप वैराग्य हो गया. जैसे अग्निमें थोड़ा घृत डालनेसे शान्त नहीं होता, बरन् उसकी लपटें और अधिक निकलती हैं, ऐसे ही इस चित्तकी वृत्ति थोडा थोडा विषयों भोगनेसे शान्त नहीं होती, अधिक विषयोंके भोगनेसे आपसे आप शान्त हो जाती है ॥ ३४ ॥ जिस पुरुषके वर्णका जो लक्षण कहा है, वह लक्षण उसके सिवाय और दूसरे वर्णवाले पुरुषमें दिखाई दे तो उस पुरुषको भी उसी वर्णके

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकम् ॥ यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दांतो गुरोर्हितम् ॥ आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥ १ ॥ सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ॥ उभे संध्ये च यतवाग्जपन्ब्रह्मसमाहितः ॥ २ ॥

लक्षणवाला जानना चाहिये ❀ ॥३५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सदाचारनिर्णयो नाम एकादशोऽध्यायः॥ ११॥ दोहा–वर्णधर्म सब कह चुको, अब कछु आश्रमधर्म । कहत अहों सुनि लीजिये, धर्म कर्मको मर्म ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि ब्रह्मचारी गुरुके कुलमें जितेन्द्रिय बनकर वास करे और गुरुका हित आचरण करता रहे, दासकी नाईं नीच बना रहे, गुरुमें अत्यन्त दृढतासे सौहृद करे ॥ १ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य और सब देवताओंकी उपासना करे, साँझ सबेरे वाणीको जीत सावधानीके साथ गायत्री मन्त्रका

589

❀ इस बातपर एक दृष्टान्त है–एक कहार किसी तालके किनारे मछली पकड रहा था, मार्गकी ओरको देखा तो कोई राजा चतुरंगिनी सेना लिये धूमधामसे चला आता है. आगे आगे बिरदावल यश गान कर रहे थे, कडखेत राजाकी वीरता बखान कर रहे थे. कहारने अपने मनमें विचार किया कि जो मैं मछली मारता रहा तो अवश्य राजा मुझको दण्ड देगा. और जो प्राणोंका भी गाहक होजाय तो अनुचित नहीं और सेना निकट आगई, अब यहांसे भाग भी नहीं सकता; यह सोचा कि इस समय साधुका वेष बनानेसे पीछा छूटता है, झटपट तालसे मिट्टी निकाल उसीको माथे पर तिलक लगा और एक चितामेंसे राख लेकर शरीरमें मल ली, आसन मार तालके किनारे पर मौन साधन कर बैठ गया, इतनेमें कटक भी निकट आ पहुँचा. राजाने साधु समझकर उसको दण्डवत् प्रणाम किया और बहुतसा धन दिया, सिपाहियोंसे भी जो कुछ बसाया सो चढाया. थोडी देरमें रुपयोंका एक ढेर लग गया. उस समय जाति वर्गको किसीने न बूझा. बडी कहावत सत्य है–जाति पाँति बूझत नाहिं कोई । हरिको भजै सो हरिका होई ॥

आलस्य न रक्खे, सत्य बोले, मदान्ध न रहे, पवित्र रहे, मधुर वचन बोले, अपतित पतिकी सेवा करे, और उससे स्नेह रक्खे ॥ २८ ॥ जो स्त्री पतिको हरिभाव करके लक्ष्मीके समान तत्पर रहे और अपने पतिको परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करे, वह स्त्री विष्णुरूप अपने पतिके संग लक्ष्मीके सदृश विष्णुलोकमें आनन्दसहित अपने पतिके सम्मुख बठी पतिका मुख ताकती रहती है, कि न जानिये कि, किस समय क्या आज्ञा करें ॥ २९ ॥ चौर्य हिंसा आदिरहित रजकआदि अंत्यज (नीच) जातियें अपने २ कुलकी आजीविकासे अपना निर्वाह करें । हे राजन् ! बहुधा बहुत धर्म ऐसे हैं कि, युगयुगमें मनुष्योंके स्वभावके समान होते हैं. यह वेदपुरुष भगवान्ने कहा है. पराये धर्मके अनुसार अपना धर्म नीच भी हो तो भी वही धर्म अपने लिये सुखदायक है, जो जो धर्म धर्मशास्त्रके वेत्ताओंने कहा है वही धर्म इस लोक

या पतिं हरिभावेन भजच्छ्रीरिव तत्परा ॥ हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥ २९ ॥ वृत्तिः संकरजातीनां तत्त
त्कुलकृता भवेत् ॥ अचौराणामपापानामंत्यजांतेऽवसायिनाम् ॥ ३० ॥ प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ॥
वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ॥ ३१ ॥ वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ॥ हित्वा स्वभा
वजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥ ३२ ॥ उप्यमानं बहु क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ॥ न कल्पते पुनः सूत्यामुप्तं बीजं
च नश्यति ॥३३ ॥ एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ॥ विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत्कामबिंदुभिः ॥ ३४ ॥

और परलोकमें सुखका देनेवाला है ॥ ३० ॥ ३१॥ स्वभावसे करी हुई वृत्तिसे जो वर्तमान है वह स्वकर्मकर्ता स्वभावजन्य कर्मको त्याग धीरे २ निर्गुणताको प्राप्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ वारंवार जिस खेतमें बीज बोया जाता है वह खेत आपसे आप निर्वीर्य होजाता है, फिर उस खेतमें धान्य उत्पन्न नहीं हो सकता; बरन् जो बीज बोया जाता है वह भी सब नष्ट हो जाता है ॥ ३३॥ हे राजन् ! जब कामनाओंसे मन परिपूर्ण होकर तृप्त हो जाता है तब उसको किसी प्रकारके भोग भोगनेकी इच्छा नहीं रहती, फिर आपसे आप वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, जिस प्राणीकी कामना अधिक बढी हुई होती है फिर उससे एकाएकी वासनाओंका त्याग नहीं होसकता, इससे उस पुरुषको चाहिये कि, वेदोक्तरीतिसे विषयोंको भोगे,

जप करे ॥ २ ॥ जब गुरु पढ़नेको बुलावे तब वेद पढे और पाठके प्रारम्भमें और अन्तमें जब उठे तब गुरुके चरणारविन्दको शिरसे वन्दना करे ॥ ३ ॥ शास्त्रकी आज्ञानुसार मेखला, मृगछाला, जटा, वस्त्र, दण्ड और कमण्डलु धारण करे, कुशा हाथमें ले और यज्ञोपवीत धारण करे ॥ ४ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षा माँगकर लावे वह सब पदार्थ गुरुकी भेंट करे, और जो गुरु आज्ञा करे तो उस भिक्षाके अन्नको भोजन करे और जो गुरु आज्ञा न करे तो उपवास करे ॥ ५ ॥ शील स्वभाव रक्खे, थोड़ा भोजन करे, सावधान रहे, श्रद्धा रक्खे,

छंदांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयंत्रितः॥उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत्॥३॥मेखलाजिनवासांसि जटादंडकमंडलून् ॥ बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥ ४ ॥ सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ॥ भुंजीत यदनुज्ञातो नो चेदुपवसेत्क्वचित् ॥ ५ ॥ सुशीलो मितभुग्दक्षः श्रद्दधानो जितेंद्रियः ॥ यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥ ६ ॥ वर्जयेत्प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ ७ ॥ केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यंजनादिकम् ॥ गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा ॥ ८ ॥ नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान् ॥ सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥ ९ ॥

जितेंद्रिय रहे, स्त्रियोंमें और स्त्रीसंग करनेवाले पुरुषोंमें जितना प्रयोजन हो उतना ही रक्खे, अधिक व्योहार न रक्खे ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मुखसे कथा न सुने, ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे, भारी व्रत धारे, यह इंद्रियें बडी बलात्कार करनेवाली हैं, बडे बडे यतियोंको जीत लेती हैं ॥ ७ ॥ बाल बहुत मलमल कर न धोवे, उबटन अंगमें न लगावे, बहुत मलमल कर स्नान न करे; नेत्रोंमें अञ्जनादिक न लगावे, जो गुरुकी स्त्री तरुण हो तो उससे बात न करे * ॥ ८ ॥ निश्चय है कि, स्त्री अग्निरूप है और पुरुष घृतके कुम्भके समान है, इससे एकान्तमें अपनी पुत्रीके साथ भी

---

* **शंका**—यह बात हम लोगोंने शास्त्रमें भी नहीं सुनी और लोकमें भी नहीं देखी कि गुरुकी स्त्री शिष्यके शरीरमें तेल फुलेल मलकर स्नान करावे और अपने हाथसे उसके नेत्रोंमें अञ्जन लगाकर उसका श्रृंगार करे फिर नारदजीने क्यों कहा कि, शिष्यकी युवावस्था होजाय तो अपनी देहमें मज्जन आदि कर्म गुरुकी स्त्रीसे नहीं कराना और करावे तो भ्रष्ट होजायगा।

नहीं बैठे, केवल प्रयोजनमात्रकी बात करे ॥ ९ ॥ अपने आत्माका जबतक आभास कल्पना न करे तबतक भगवान् इसका द्वैतभाव और मिथ्याभाव दूर नहीं कर सकते, और जबतक द्वैतभाव दूर न हो तबतक विषयवासनाकी ओर मन चलायमान होजाय तो सन्देह नहीं;

कल्पयित्वात्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ॥ द्वैतं तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥ १० ॥
एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ॥ गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥ ११ ॥

इसलिये महात्मापुरुषोंका वचन है कि, जहाँतक हो सके वहाँतक स्त्रियोंसे अलग ही रहना अच्छा है ❋ ॥१०॥ यह धर्म ब्रह्मचारियोंके कहे, परंतु गृहस्थोंको भी मानना चाहिये. गृहस्थ ऋतुकालमें स्त्रीसंग करे, परन्तु गुरुकी वृत्ति विकल्प करके करे ॥११॥

उत्तर–जब नारद और युधिष्ठिरजीका संवाद हुआ उस समयसे थोडे ही दिन पीछे भूमिपर कलियुगका प्रवेश होनेवाला था, नारदजीने इस बातको जानकर यह बात राजा युधिष्ठिरसे कही थी, कि अब जो आगेको कलियुगमें मनुष्य जन्मेंगे उन मनुष्योंको सिखानेके लिये क्योंकि कलियुगमें ज्ञान रहना बहुत कठिन है ॥

❋इस बातपर एक दृष्टान्त है–एक साधु बडे जितेन्द्रिय थे, आठ प्रहर भगवान्के भजनमें लवलीन रहें, किसीकी ओरको दृष्टि उठाकर न देखें. कण्ठाग्र जिनको भगवद्गीताके अठारह अध्यायका पाठ, आठ आठ दिनतक भोजन न करें, जल ही पीपीकर रह जायँ. एक दिन उनके पास एक पाखण्डी पण्डित आये और गीताका गुटका उनके हाथमें जिसमें सुनहरी अक्षर धारा और रंगीन जर्द बेल खिचीहुई, अध्याय अध्यायपर कृष्ण भगवान् अर्जुनादिककी मनोहर मूर्ति बनी हुई, वह गुटका साधुको भेंट किया. साधु उस पुस्तकको देखकर मोहित होगये और अपने मनही मनमें कहने लगे कि, यह भली सुंदर पुस्तक मिली. बडे यत्नसे एक रेशमी वस्त्रमें बांधकर रक्खी. दैवयोगसे रातको मूसेने उसके तीन चार पंत्रे काट डाले, तब तो साधु पुस्तकको देखकर बड़े दुःखी हुए और क्रोध करके बोले कि, उस दुष्ट मूसेको मैं आज़ ही मार डालूंगा, यह कह वह उसी समय एक गांवमें गये और वहाँसे एक बिल्ली लाये, तब तो मूसेका निकलना बन्द होगया; परन्तु बिल्ली भूंखकी मारी म्याँव म्याँव करने लगी. साधुने कहा यह बडी भारी हत्या लगी, पाठके रहे न पूजनके. उसके लिये गांवमें नित्य जाते और दूध लाते, कभी मिलता कभी न मिलता, हारकर साधुने एक गाय पाली तब तो दूधकी एक नदी घरमें बहने लगी. आप पियें और उस बिल्लीको पिलावें, जो रहे वह औरोंको पिलादें. अब गायकी सानी पानी करनी भारी पड गई. वहां गांवमें एक. गोपकी कन्या बाल्यावस्थाकी रांड रहा करती थी. बाबाजीने उससे कहा तू हमारी गायकी सानी पानी कर जाया कर और गोबर पाथ जाया कर, बचाहुआ दूध तुझको दे दिया करेंगे. जब वह नवयौवना, चन्द्रमुखी, कोकिलकण्ठी, गजगामिनी बाबाजीके पास आने लगी तब तो बाबाजी कामान्ध होगये. उधर वह बाला मदान्ध थी ही. उसका घर जाना भी बंद कर दिया. निदान उस स्त्रीको आधान रहा. कुछ दिन पीछे उसके एक सन्तान हुई तब तो बाबाजीको ज्ञान हुआ. देखो, स्त्रीका संग भूलकर न करना. थोडे ही दिनमें एक साधुके दो साधु होगये ॥

आंखोंमें अञ्जन, शिर धोना, तेल लगाना, मर्दन करना, स्त्रीको वा स्त्रीके चित्रको भूलकर न देखना, मद्य, मांस, हार, चन्दन,लेप, अलंकार;
ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी लोगोंको नहीं चाहिये ॥ १२॥ द्विज गुरुके यहां रहकर इस प्रकार वेदत्रयी सांगोपनिषद अपनी शक्तिके
अनुसार जितना प्रयोजन हो उतना अभ्यास बढ़ावे ॥ १३ ॥ जो अधिक समर्थ हो तो गुरुको गुरुदक्षिणा देकर फिर गुरुसे आज्ञा लेकर
इच्छानुसार घरमें रहे अथवा वनमें वा संन्यास लेकर वा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करके गुरुके ही स्थानपर वास करे ॥१४॥ अग्नि, गुरु, आत्मा
सब जीवमात्रमें विष्णुभगवान्‌का चिन्तवन करे अर्थात् अग्नि आदि सब भगवान्‌रूप होनेसे फिर किसी वस्तुमें दोष नहीं आता ॥ १५ ॥

अंजनाभ्यंजनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु ॥ स्रग्गंधलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥ १२ ॥ उषित्वैवं गुरुकुले द्विजो
ऽधीत्यावबुध्य च ॥ त्रयीं सांगोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥ १३ ॥ दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ॥ गृहं
वनं वा प्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥ १४ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ॥ भूतैः स्वधामभिः पश्ये
दप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥ १५ ॥ एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ॥ चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥
वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंमतान् ॥ यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहांजसा ॥ १७ ॥ न कृष्टपच्यमश्नी
यादकृष्टं चाप्यकालतः ॥ अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥ १८ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत्कालनोदितान् ॥
लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥ १९ ॥

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी अथवा गृहस्थ इस प्रकार विचरनेसे विज्ञानपनमें होकर तब परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥१६॥ अब मुनियोंको
संमत वानप्रस्थके धर्म कहते हैं, इस संसारमें जिस वानप्रस्थ धर्ममें स्थित होनेंसे ऋषिलोकोंको विना प्रयास प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ जोतने
बोनेसे जो अन्न उत्पन्न हो उस अन्नको न खाना और जो विना समयका फल अथवा अन्न हो उसका खाना भी वर्जित है, जो फल वा अन्न
आपसे उत्पन्न हो अथवा सूर्यकी किरणोंके तेजसें पके उसको खाय ॥ १८ ॥ वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदि पदार्थोंसे शास्त्रने जिस समयमें

यज्ञादिक करनेको कहा है उस समयमें चरु व पुरोडाश कालप्रेरित करे और नवीन नवीन अन्नादिक प्राप्त हों तो पुरानी वस्तुका परित्याग करदे॥१९॥अग्निकी रक्षाके लिये पर्णशालामें रहे वा पर्वतकी कन्दरामें वास करे, हिम, वायु, अग्नि,वर्षा और ग्रीष्म यह सब आप सहे॥२०॥ बाल, रोम,नख, दाढ़ी,मूंछ, जटा,कमण्डलु, मृगचर्म, दंड, छालके वस्त्र, अग्नि और अग्निहोत्रकी सामग्री यह सब रक्खे ॥२१ ॥ इस प्रकार वनमें बारह वा आठ वा चार वा दो अथवा एक वर्षतक रहे,तपके कष्टसे बुद्धिका विनाश न होजाय तब तक वह पक्ष धारण करे जिसमें ज्ञान शीघ्र होजाय ॥ २२ ॥ जब शरीर वृद्ध होजाय और व्याधिके आजानेसे क्रिया कर्मका सामर्थ्य न रहे और वेदविद्यामें भी असमर्थ होजाय तब

अभ्यर्थमेव शरणमुटजं वाऽद्रिकंदराम् ॥ श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥२०॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत् ॥ कमंडल्वजिने दंडवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥२१॥ चरेद्वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ॥ द्वावेकं वा यथा बुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥२२॥ यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाऽथवा ॥आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम् ॥ २३ ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् ॥ कारणेषु न्यसेत्सम्यक् संघातं तु यथाऽर्हतः ॥ २४ ॥ खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ॥ अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥ २५ ॥ वाचमग्नौ सवक्तव्यामिंद्रे शिल्पं करावपि ॥ पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥ २६ ॥ मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् ॥दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥ २७ ॥

अनशनादि वृत्ति धारण करे ॥ २३ ॥ फिर अहंकार ममकारको त्यागकर आत्मामें अग्निको धारण कर उनके कारणोंमें रक्खे, जैसे २ उनके योग्य स्थान हैं तहां तहां अग्निको लगावे॥२४॥ उत्पत्तिके अनुसार शरीरके छिद्रोंको आकाशमें, श्वासको वायुमें, गर्मीको तेजमें,रुधिर, श्लेष्म, थूक, पीपादिको जलमें, अस्थि आदि जो विकार पृथ्वीसे उत्पन्न हुए हैं, उनको पृथ्वीमें लीन करे॥२५॥वाणी और उसके कर्मकारक वक्तृता सहितको अग्निमें लीन करे, कर और शिल्प सहित उसके कर्मरूपको इनमें, गतिसहित पद और उसके कर्मरूपको विष्णुमें, रति, उपस्थ और उसके कर्मरूपको प्रजापतिमें लीन करे ॥२६॥ गुह्यद्वार और उसके कर्मरूप मलोत्सर्गको मृत्युमें, नादसहित श्रोत्र इंद्रियको दिशा

ओंमें, स्पर्शसहित त्वचाको वायुमें लीन करे ॥ २७ ॥ चक्षुसहित रूपको ज्योतिमें, वरुणसहित जिह्वाको जलमें, नाक और अश्विनी कुमारोंको पृथ्वीमें लीन करें ॥२८॥ मनोरथसहित मनको चन्द्रमामें, ज्ञेयोंके साथ बुद्धिको ब्रह्मामें, अहंकार और उसके कर्मोंको जिनसे अहंकार ममतापूर्वक क्रिया होती है उनको रुद्रमें, अध्यात्मज्ञानसहित चित्तको क्षेत्रज्ञमें गुणोंसे वैकारिक देवताओंको परब्रह्ममें लीन करे॥२९॥ पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें; अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको मायामें, मायाको परब्रह्ममें लीन करे ॥३०॥ इस प्रकार अक्षरता करके आत्माका जो चिन्मात्र शेष रहे उसको अद्वितीय ब्रह्म समझकर विराम करे. जैसे सब काष्ठको

रूपाणि चक्षुषा राजञ्ज्योतींष्यभिनिवेशयेत् ॥ अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥ २८ ॥ मनो मनोरथैश्चंद्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे ॥ कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममता क्रिया ॥ सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥ ॥२९॥ अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ॥ ३० ॥ इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ॥ ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ॥ ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥१॥ बिभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दंडलिंगादेरन्यत्किञ्चिदनापदि ॥२॥

जलाकर अग्नि अपने स्वरूपमें लय होजाती है, वैंसे ही अग्निके समान अपने आप विरामको प्राप्त होना चाहिये ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामाश्रमधर्मवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–वानप्रस्थ असमर्थकी, देहत्यागविधि भाष । अब समरथकी विधि कहों, सुनहु सहित अभिलाष ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि, जो पुरुष ब्रह्मविचारमें प्रवृत्त हो, उसको चाहिये कि, संन्यास धारण करके शरीरमात्र शेष रक्खे और सब वस्तुका त्याग करदे और किसी प्रकारकी अपेक्षा न रक्खे, पृथ्वीपर विचरता रहा करे और नगरमें वा बस्तीमें एक रात्रिसे अधिक वास नहीं करे ॥ १ ॥ जो संन्यासीको वस्त्रधारण करनेकी इच्छा हो तो उतना वस्त्र धारण करे कि, जिससे

---

१ अग्नि साक्षात् ईश्वरका स्वरूप है ऐसा ऋग्देवमें लिखा है" अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्न धातमम्" अंगानि नयतीत्यग्निः" अग्नि ही सब अंगोंको बनाता है, सब अग्निमयहैं, अग्निके उपासक सब सुखोंको भोगते हैं "अग्न्युपासकः सर्वं सुखमोति" अग्निके हवन करनेसे सब देवताओंको भाग पहुँचता है॥

कोपीन देखनेमें न आवे और जटी, कमण्डलु, दंडादिक चिह्नको आपदामें भी न त्यागे, इनके सिवाय और कुछ वस्तु रखनी नहीं चाहिये॥२॥ जब भिक्षाकी इच्छा हो तो अकेला भिक्षा मांगे, अपने आत्मामें आप रमे, किसीका आश्रय न रक्खे, सब जीवमात्रसे सुहृद्भाव बर्ते, शान्तस्वभाव रहे, श्रीनारायणमें परायण रहे*॥३॥ पर पुरुष परमेश्वरमें इस विश्वको और अपने आत्माको देखे और कार्य कारणमय सब विश्व परब्रह्ममें विराजमान है, इस प्रकार विचार करता रहे ॥४॥ सुषुप्ति अवस्थामें तमोगुणका कारण आत्मस्वरूप ढका रहता है, जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें विक्षेप होनेके कारण उसका प्रकाश नहीं होता, परंतु यह बात है कि, जब अवस्थाओंकी संधि होती है तब तमोगुणका विक्षेप नहीं होता, ऐसे समयमें आत्मस्वरूपका लक्षण करके आत्माका अवलोकन करना ॥ ५ ॥ इस शरीरका नाश जो कि, अवश्य होनेवाला है उसके मृत्युकी चाहना न करे. ऐसे ही जो सदा जीवित न रहेगा उसके जीनेकी आशा न करे, जो सब प्राणीमात्रका नाशक पालक काल है, उसकी प्रतीक्षा करता रहे ॥६॥ यह संन्यासियोंका धर्म है, असत् शास्त्र अर्थात् अनात्मप्रतिपादक नाटकादि शास्त्रमें आसक्त न हो, किसी आजीविकाके ग्रन्थका

एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो नारायणपरायणः ॥ ३ ॥ पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सद सतोऽव्यये ॥ आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥४॥ सुप्तप्रबोधयोः संधावात्मनो गतिमात्मदृक् ॥ पश्यन्बंधं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥ ५ ॥ नाभिनंदेद् ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवितम्॥ कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभ वाप्ययम् ॥ ६ ॥ नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ॥ वा दवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कं च न संश्रयेत् ॥ ७ ॥

---

* शंका–अजगर मुनिने प्रह्लादसे कहा कि हमारे लिये कोई चीज अच्छी बुरी जो कोई मनुष्य देता है, तब उस वस्तुको हम ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु इच्छा किसी वस्तुकी हम नहीं रखते, संसारमें जीव अनेक प्रकारके होते हैं कोई मसखरापनसे स्त्री अथवा मदिरा आदि लेकर अजगर मुनिको देवेगा तो वह उसको ग्रहण करेंगे वा नहीं ? उस समय अजगर मुनि क्या करेंगे, ग्रहण करेंगे तो नरकवासी होंगे और त्याग करेंगे तो भेददृष्टि कहावेंगे फिर क्या होगा ?

उत्तर–अजगर मुनिने सत्य कहा है. सब वस्तुके भोगनेवाले अजगर मुनि थे, परन्तु जो कोई ऐसा दुष्ट कर्म करनेका विचार भी करेगा तब उसको उसी समय भगवान्का सुदर्शनचक्र भस्म कर देगा, क्योंकि अजगर मुनिकी रक्षा करनेके लिये चक्रसुदर्शनको भगवान्ने आज्ञा कर रक्खी है कि जो कोई इनको सतावे और दुःख दे, उसको उसी समय भस्म कर देना ॥

पक्षपात न करे, जैसे ज्योतिष,वैद्यक,इन्द्रजालादिक ग्रन्थ हैं. तर्क और अयोग्य वादविबादका परित्याग करे,किसी पक्षका आश्रय न ले ॥ ७ ॥ बहुतसे चेले न करे, बहुतसे ग्रन्थोंका अभ्यास न करे; सभा जोडकर किसी ग्रन्थकी व्याख्या न करे, अपने रहनेके लिये किसी स्थानके बनानेका आरम्भ न करे॥८॥ जबतक चित्तमें ज्ञान उत्पन्न न हो तबतक संन्यासीको चाहिये कि, संन्यस्तके चिह्न धारण करे, और आत्माकी शुद्धिके लिये संयम नियम करके ज्ञान प्राप्त करे, परंतु ज्ञान होनेके उपरान्त उन नियमोंके करनेका कुछ प्रयोजन नहीं,और संयम भी आपसे आप प्राप्त होजाते हैं, इसलिये उस समयके शांतचित्ती संन्यासधर्मके चिह्न धारण करें चाहै न करे, चिह्नोंके रखनेसे किसी प्रकारका धर्म नहीं होता और न रखनेमें कुछ हानि,उनको चिह्नोंका रखना और न रखना दोनों इकसार हैं॥९॥ऊपरके चिह्न रखनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलता,

न शिष्याननुबध्नीत ग्रंथान्नैवाभ्यसेद्बहून् ॥ न व्याख्यामुपयुंजीत नारंभानारभेत्कचित् ॥ ८ ॥ न यतेराश्रमः प्रायो
धर्महेतुर्महात्मनः ॥ शांतस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत्॥९॥ अव्यक्तलिंगो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ॥
कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥१०॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ प्रह्लादस्य च संवादं मुने
राजगरस्य च ॥ ११ ॥ तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ॥ रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥ १२ ॥
ददर्श लोकान्विचरँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ १३ ॥

५९३

भीतरसे अन्तःकरणको शुद्ध रखना अवश्य चाहिये. संन्यासीको चाहिये कि,विद्वान् होनेपर भी उन्मत्त और बालकोंकीसी वृत्ति रक्खे और कवि होनेपर भी मूकके समान बना रहे,अपनी बुद्धिको सावधान रक्खे और समदृष्टिसे सबको देखे ॥ १० ॥ परमहंसधर्मका एक इतिहास लिखते हैं. प्रह्लाद और अजगरवृत्तिवाले एक मुनि (दत्तात्रेय) का एक संवादरूप प्राचीन एक इतिहास कहते हैं ॥ ११ ॥ जब बहुत दिन राज्य करते करते व्यतीत होगये तब प्रह्लादजी एक दिन लोकोंकी रीति भाँति देखनेके लिये कुछ एक अमात्यगणोंको साथ लेकर देशांतरोंका पर्यटन करनेके लिये निकले ॥ १२ ॥ घूमते घामते दक्षिण दिशामें कावेरी नदीके निकट पहुँचे,देखा तो पृथ्वीपर सोयेहुए और शरीरके सब अवयव धूरिसे अट रहे

थे और उनका निर्मल तेज छिपा हुआ था, यह महायोगी न जान पडे ॥ १३ ॥ कर्मसे, आकृतिसे, वाणीसे, चिह्नोंसे, वर्णाश्रमके चिह्नोंसे किसीने पहिचाना नहीं कि यह दत्तात्रेय हैं॥१४॥ उस योगिराजको नमस्कार करके विधिवत्पूजन कर पश्चात् चरणोंपर शिर धरकर जाननेके लिये महाभागवत असुरवंशावतंस प्रह्लादजीने बूझा ॥ १५ ॥ प्रह्लाद बोले कि, जो उद्यम करनेवाले भोगी हैं उनके सदृश आपका शरीर पुष्ट है क्योंकि, उद्यम करनेवालोंको धन प्राप्त होता है और धनवालोंको सुखभोग प्राप्त होता है, भोगियोंका शरीर पुष्ट होता है; परन्तु विना सुखभोगके शरीर ऐसा पुष्ट नहीं हो सकता ॥१६॥ हे ब्रह्मन् ! आप तो निरुद्यमी हो, सदा शयन करते रहते हो और विना उद्यम किये धन कहाँ और धन विना भोग करनेकी कोई सम्भावना नहीं और विना धन शरीरका पुष्ट होना कठिन है इसलिये मैं आपसे विनयपूर्वक निवेदन करता हूँ कि, अभोगी यह आपका शरीर किस प्रकार पुष्ट है सो हे विप्रवर ! जो यह बात कहनेके योग्य हो तो कृपा करके कहिये, और न कहनेके योग्य हो तो मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ १७ ॥ धन उपार्जन करनेके लिये असमर्थ लोग भी अनेक उद्यम करते हैं, और आप समर्थ होनेपर कोई उद्यम नहीं करते, यह क्या कारण ? आप तो कवि, समर्थ, चतुर, विद्वान्, निपुण दृष्टिवाले, वार्तालापसे लोगोंका चित्त प्रसन्न करनेवाले, इतने पर भी सोते रहते हो और लोग अपने अपने काम करते हैं उनको देखते रहते हो, और किसीकी देखा देखी भी कोई काम नहीं करते, न किसीकी भलाई करनी न किसीकी बुराई करनी, आप तो कोई योगीजन जान पड़ते हो ? ॥ १८ ॥

कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिंगैर्वर्णाश्रमादिभिः ॥ न विंदंति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥ १४ ॥ तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत्पादयोः शिरसा स्पृशन् ॥ विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः॥१५॥बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा॥ वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ॥ भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥ १६ ॥ न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नु हार्थो यत एव भोगः ॥ अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥ ॥ १७ ॥ कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ॥ लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षिताऽपि वा ॥ १८ ॥

नारदजी बोले कि, दैत्यपति प्रह्लादने जब इस भाँतिका प्रश्न किया तब उसकी अमृतरूप वाणीसे वशीभूत हो योगिराज हँसकर बोले ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयजी बोले कि, हे असुरश्रेष्ठ ! जो बडोंकी सम्मति है, वह सब तुम जानते हो और ज्ञानियोंमें आप प्रशंसनीय हैं, प्रवृत्ति और निवृत्तिमें पुरुषोंको कैसा फल प्राप्त होता है; उसको तुम अन्तर्दृष्टिसे भलीभाँति जानते हो ॥२०॥ जिसके हृदयमें नारायणदेव भगवान् सदा वास करते हैं उसके हृदयसे सम्पूर्ण अज्ञानका नाश होजाता है,जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका नाश होजाता है॥२१॥ हे राजन् ! जो जो प्रश्न आपने हमसे किये उन उन प्रश्नोंका उत्तर हम आपको देंगे, क्योंकि,आत्माकी शुद्धि करनेवालोंसे आप प्रशंसनीय हैं; आपका अवश्य सत्कार करना चाहिये॥२२॥इस संसारमें भ्रमानेवाली और जन्म'मरणके प्रवाह चलानेवाली तृष्णा है,जो योग्य कर्म हैं उनको भी पूरा नहीं करने देती और

नारद उवाच ॥ स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ॥ स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयंत्रितः ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवानन्वार्यसंमतः ॥ ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥ २० ॥ यस्य नारायणो देवो भगवान् हृद्गतः सदा ॥ भक्त्या केवलयाऽज्ञानं धुनोति ध्वांतमर्कवत् ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतम् ॥ संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥ २२ ॥ तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ॥ कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥२३॥ यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥२४॥ अत्रापि दंपतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ॥ कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥२५॥

विषयकर्म कराकर मुझको अनेक योनियोंमें तृष्णा ही घुमाती है ॥ २३ ॥ अपने कर्मोंसे भ्रमता हुआ यदृच्छासे इस लोकमें जन्म लेता है,यह लोक स्वर्ग अपवर्गका द्वार है. कभी पशु बना, कभी पक्षी बना, इसी तृष्णा करके अब दैवगतिसे इस मनुष्ययोनिमें डाला गया हूँ. मनुष्यदेह पुण्यसे स्वर्गका, और पापसे नीच योनिका, पाप पुण्यके मिश्रित होनेके पीछे मनुष्यदेहका और निवृत्तिसे मोक्षका द्वार है॥२४॥इस संसारमें मनुष्यजन्म पाकर सुख पानेको और दुःख मिटानेके लिये अनेक प्रकारके कर्म लोग लुगाई किया करते हैं;परन्तु उनकी इच्छानुसार फल उनको नहीं मिलता,उनकी इच्छाके प्रतिकूल फल मिलता है,इस तृष्णाका कौतुक देखकर मैं सब कर्म करनेसे निवृत्त होकर यहां एकान्तमें आ बैठा हूँ॥२५॥

इस मनुष्यके आत्माके अनुरूप सुख जब हो कि, चेष्टाओंको यह देह त्याग दे और मनके स्पर्शजन्य भोगोंको देखकर चुपचाप होरहे, यह सुख इस जीवका स्वरूप है और जब उसकी सब क्रिया बन्द होजाती हैं, तब वह आपसे आप प्रकाशता है,अनेक प्रकार भोगोंको और मनकी कल्पनाओंको अवास्तविक समझकर सब उद्यमोंको छोड़ बैठा हूँ, और जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाता है उसीमें सन्तोष कर लेता हूँ ॥ २६ ॥ अपना सुखरूप पुरुषार्थ अपने आपमें ही है सो यह पुरुष भूलकर चित्र विचित्र असत् द्वैत पदार्थ अवास्तविक होनेपर भी घोर संसारके प्रवाहमें भटकता फिरता है ॥ २७ ॥ जैसे कोई प्राणी जलकी कामना करके काई आदिसे छिपे हुए जलको छोड़कर मृगतृष्णाको दौडता है, ऐसे अपने स्वरूपमें परमेश्वरको छोडकर विषयोंकी ओर दौडता है और परमात्माको नहीं भजता ॥ २८ ॥ परमेश्वरके आधीन देहादिक हैं इनसे आत्माके

सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ॥ मनःसंस्पर्शजान्दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥ २६ ॥ इत्येतदात्मनः स्वार्थं संतं विस्मृत्य वै पुमान् ॥ विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥२७॥ जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया॥ मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक् स्वतः ॥ २८ ॥ देहादिभिर्दैवतंत्रैरात्मनः सुखमीहतः ॥ दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृता कृताः ॥ २९ ॥ आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित्॥मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतै रर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥ ३० ॥

सुखकी इच्छा करनेवाला मूर्ख है, दुःखका नाश समझकर निष्फल क्रियाओंको करता रहता है, परमेश्वरका भजन करता नहीं, इसीसे सदा दुःख पाता है,इसलिये ईश्वरको भजो और सबका त्याग करो यही हमारी आज्ञा है. षड्विध शरणागति करे, परमहंसवृत्ति धारे, क्रोध,लोभ, मोह, निन्दा, छल, कपट, तृष्णा, निर्लज्जता, दुष्टता और क्लेश जो इनका त्याग करेगा वह निःसन्देह वैकुण्ठधामको जायगा ॥ २९ ॥ यह निश्चय जानो कि,आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे जो कभी मुक्त नहीं हुआ है और जिसके शिरपर सदा काल घूम रहा है, ऐसा पुरुष अत्यन्त कठिनतासे भी द्रव्य अथवा सुख प्राप्त भी कर लेवे फिर उससे उसको क्या ॥ ३० ॥

लोभी अजितेन्द्रिय, धनी मनुष्योंको नित्यक्लेश और चिन्तामें ही पडा देखते हैं, और इतने भयभीत रहते हैं कि,मारे भयके रातको नींदतक नहीं आती और सब ओरसे शंका बनी रहती है॥३१॥ राजासे,चोरोंसे, शत्रुओंसे, स्वजनोंसे, पशु पक्षियोंसे, भिखारियोंसे,कालसे और निजसे भी नित्य प्राणोंसे अधिक धनका भय बना रहता है ॥ ३२ ॥ शोक, मोह, भय, क्रोध, राग दीनता और परिश्रमादिक सब धनके मूल हैं, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि,प्राण और धनकी चाहना करे ॥ ३३ ॥ इस जगत्में दो हमारे परमगुरु हैं, मधुकी माखी और अजगर, जिनकी शिक्षा पाकर हम वैराग्य और परितोषको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४॥ मधुमक्षिकासे तो मैंने सब कामसे विराग होना सीखा है,

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ॥ भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशंकिनाम् ॥ ३१ ॥ राजत
श्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः ॥ अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥ ३२ ॥ शोकमोहभयक्रोध
रागक्लैब्यश्रमादयः ॥ यन्मूलास्स्युर्नृणां जह्यात्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥ ३३ ॥ मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरू
त्तमौ ॥ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥३४॥ विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ॥ कृच्छ्राप्तं
मधुवद्वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥ ३५ ॥ अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ॥ नो चेच्छये बह्वहानि महाहि
रिव सत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुंजेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ॥ क्वचिद्भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥३७॥

सहतकी नाईं महाकष्टसे धनवान् लोग धन इकट्ठा करते हैं, और चोर बटमार उनको मारकर उनका धन लूटकर ले जाते हैं, जैसे मुहाल की मक्खियोंको मारकर वधिक लोग सहत ले जाते ॥ ३५ ॥ सन्तोषमें मेरा गुरु अजगर सर्प है, बिना उद्यम किये भाग्यसे जो कुछ प्राप्त हो जाता है उसीमें सन्तोष कर लेता हूँ, कोई समय ऐसा भी हो जाता है कि, महीनोंतक कुछ नहीं मिलता, उस समय किसी प्रकारका उद्योग भी नहीं करता,अजगरके तुल्य धैर्य धारण किये विना खाये पिये पृथ्वीपर पड़ा लोटता रहता हूँ, न किसी बातकी चिन्ता की,न किसी बातका हर्ष किया ॥ ३६ ॥ कभी थोड़ा, कभी बहुत, कभी स्वाद, कभी बेस्वाद, कभी बहुगुणयुक्त, कभी गुणहीन, जो कुछ भोजन मिल जाता है

वही खा पीकर अपना उदर पूर्ण कर लेता हूँ ॥ ३७ ॥ कहीं कोई श्रद्धासे भोजन करा देता है तो कर लेता हूँ, अश्रद्धासे करा देता है तो करलेता हूँ, कभी दिनमें कुछ फल अन्नादि मिल जाता है, कभी रातको मिल जाता है; जिस समय मिल गया उसी समय खाकर अपना चित्त प्रसन्न कर लेना ॥ ३८ ॥ रेशमका वस्त्र वा सूतका वस्त्र, मृगचर्म वा चीर, वल्कल अथवा भोजपत्र, जैसा मुझको प्रारब्धसे मिल जाता है उसीको सन्तोष करके पहन लेता हूँ ॥ ३९ ॥ कभी धरणीपर सो रहता हूँ, कभी घासपर, कभी पत्तोंपर, कभी पाषाणकी शिलापर सो रहता हूँ, कभी राखमें ही लोटता रहता हूँ और कभी कोई आदर सत्कार करके अपने घर ले जाता है, उसकी प्रसन्नताके लिये ऊँचे ऊँचे अटा अटारियोंमें सुन्दर सुन्दर

श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ॥ भुंजे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद्दिवा नक्तं यदृच्छया ॥ ३८ ॥ क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा ॥ वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक्तुष्टधीरहम् ॥ ३९ ॥ क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ॥ क्वचित्प्रासादपर्यंके कशिपौ वा परेच्छया ॥ ४० ॥ क्वचित्स्नातोऽनुलिप्तांगः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो ॥ ४१ ॥ नाहं निंदे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ॥ एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥ ४२ ॥ विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ॥ मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायायां जुहोत्यनु ॥ ४३ ॥ आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ्मुनिः ॥ ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः ॥ ४४ ॥

शय्याओंपर सो रहता हूँ ॥ ४० ॥ हे राजन् ! कभी न्हाता हूँ, कभी शरीरपर मट्टी लगा लेता हूँ, कभी सुन्दर सुन्दर वस्त्र धारण कर लेता हूँ, कभी माला और कण्ठी समेत भाँतिभाँतिके गहने पहन लेता हूँ, कभी रथपर, कभी घोडेपर, कभी हाथीपर चढ जाता हूँ और कभी दिगम्बर होकर ग्रहकी नाईं घूमता फिरता हूँ ॥ ४१ ॥ न तो मैं किसीका निन्दक और न किसीकी स्तुति करनेवाला; यह जीव स्वभावसे विषम बनें है, परन्तु सब जगत्का कल्याण और भगवतमें लीन होना चाहता हूँ ॥ ४२ ॥ जातिभेदको मनकी वृत्तियोंमें, मनकी वृत्तियोंको पदार्थरूप चंचल मनमें होमे, मनको अहंकारमें होमे और अहंकारको महत्तत्त्वद्वारा मायामें होमे ॥ ४३ ॥ सत्यद्रष्टा मुनि मायाको आत्माके अनुभवमें

होमे तब निश्चेष्ट होकर मुनि अपने अनुभवमें स्थित होकर विचरे ॥ ४४ ॥ मेरा जो गुप्त सिद्धान्त था सो सब तुम्हारे सामने वर्णन किया कि तुम भगवान्के भक्त हो और मूर्ख लोग तो इन बातोंको शास्त्रके विरुद्ध समझते हैं ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले कि, श्रीप्रह्लादजी इस प्रकार दत्तात्रेयजीके मुखसे परमहंसधर्म सुनके अत्यन्त प्रसन्न हुए और दत्तात्रेयजीका पूजन कर मस्तक नवाय, आज्ञा ले अपने घरको चले॥ ४६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लाददत्तात्रेयैण पारमहंस्यधर्मवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥ दोहा–चौदहमें गृहधर्म

स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ॥ व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान्हि भगवत्प्रियः॥४५॥ नारद उवाच ॥ धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः ॥ पूजयित्वा ततः प्रीत आमंत्र्य प्रययौ गृहम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागव० महा० सप्तम० पारमहंस्यधर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चांजसा ॥ याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन्गृहोचिताः ॥ वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥ २ ॥ शृण्वन् भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथामृतम् ॥ श्रद्दधानो यथाकालमुपशांतजनावृतः ॥ ३ ॥

सब, सुखदायक आचार। भिन्न भिन्न वर्णन कहूं, सज्जन लेहिं विचार ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि, हे देवऋषि ! मुझसरीखा गृहस्थ मूढबुद्धिवाला पुरुष, संन्यासधर्मकी पदवी मोक्षको विना प्रयास जिस विधिसे प्राप्त हो सो कहो ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! गृहस्थ मनुष्यको चाहिये कि, घरमें बैठा हुआ जो कुछ वेदविहित कर्म हैं उनको करता रहे; परन्तु उन कर्मोंको भगवान् वासुदेवके अर्पण करता रहे, और साक्षात महामुनियोंकी उपासना करे ॥ २ ॥ भगवान्के अवतारसम्बन्धी कथामृतको वारंवार श्रद्धासहित सुने और नित्यप्रति महाशान्त महात्माजनोंका सत्संग करे ॥ ३ ॥

---

१. काबित्त–जैसे फल झरेपै विहंग छाँडि देत रूख, मुवा देख सुवा छोडे सेमरको डारको॥ सुमन सुगन्ध विन जैसे आलि छाँडि देत, मोती नर छाँडि देत विना आबदारको॥ जैसे सूख तालको कुरंग छाँडि देत पंथ, मन फाटे छाँडि देत मानसहू यारको ॥ जैसे चक्रवाक देश छाँडि देत पावसमें, ऐसे ज्ञानी छाँडि देत झूठे या संसारको ॥ १६ ॥

965

स्त्री और पुत्र आदि जिनसे एक दिन बिछोहा होनेवाला है उनकी संगति धीरे धीरे छोडे, जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नमें अपने सुहृद् पुत्रादिकोंसे अधिक स्नेह और लालन पालन करता है और जागनेपर सबको छोड देता है इसीप्रकार अपने आप उनसे रीति प्रीति और सब संबन्ध त्यागदे ॥ ४ ॥ ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि देह गेहमें उतना प्रयोजन रक्खे कि,जितनेमें कार्य सिद्ध हो, अधिक न रखना चाहिये. चित्तमें वैराग्य धारण करले, ऊपरके मनसे गृहस्थ पुरुषोंके समान पुरुषार्थ करता रहे ॥ ५ ॥ जातिके लोग, माता, पिता, पुत्र, भ्राता और मित्र जो कुछ कहें अथवा जो कुछ उनकी इच्छा हो वह काम करें, परन्तु ममता और मोहको त्याग दे ॥ ६॥ स्वर्गका, पृथ्वीका,आकाशका,

सत्संगाच्छनकैः सगमात्मजायात्मजादिषु ॥ विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥ यावदर्थमुदासीनो देहे गेहे च पंडितः ॥ विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५ ॥ ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ॥ यद् वदंति यदिच्छंति चानुमोदेत निर्ममः ॥६॥ दिव्यं भौमं चांतरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ॥ तत्सर्वमुपभुंजान एतत्कुर्यात्स्वतो बुधः ॥ ७॥ यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ॥ अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दंडमर्हति॥८॥ मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ॥ आत्मनः पुत्रवत् पश्येत्तैरेषामंतरं कियत् ॥ ९ ॥ त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ॥ यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥ १० ॥ आश्वाघांतेऽवसायिभ्यः कामान् संविभजेद्यथा ॥ अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥ ११ ॥

जो भगवत्का दिया हुआ धर्म है, उसको यह समझे कि, भगवान्ने मुझको सब कुछ दिया है, आनन्दसे उसे भोगे, परन्तु बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि भगवान्में दिन रात मन लगाये रहे ॥ ७ ॥ जितनेमें उदर पूर्ण हो उतना धन तो प्राणी अपना समझे और उससे अधिक जो धन हो, उस धनका अभिमान न करे और जो उसको अपना समझेगा वह चोरके समान दण्ड देनेके योग्य है ॥ ८ ॥ मृग, ऊँट,गर्दभ, बन्दर, मूसा, साँप, बिच्छू, पशु, पक्षी और मक्खी, इनमें और अपने पुत्रमें कुछ भेद न समझे ॥ ९ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि अर्थ,धर्म,काममें सदा लगा रहे, जैसा देश काल हो और जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय उसीमें अपना निर्वाह करे ॥ १० ॥ कुत्ते, बिल्ली और श्वपच इत्यादि पर्यन्त

सब जीवमात्रको भी अपनेमेंसे यथायोग्य अन्नादि देता रहे, जो कि मुख्य अपनी पत्नी है और अपनी सेवा करनेके लिये है, जिसमें लोगोंका यह 'स्त्री हमारी है,इसके स्वामी हम हैं' ऐसा ज्ञान है उस अपनी प्यारी नारीको भी धर्मशास्त्रकी आज्ञानुसार साधुसेवामें लगादे ॥ ११ ॥ जिस स्त्रीके लिये अपने प्राण भी तज देते हैं और अपने पिता और गुरुको भी मार डालते हैं, कुलकी लाज तज देते हैं,उस स्त्रीसे अपने स्नेह और ममताको जिसने छोड दिया, ऐसे अजित पुरुषोंको भगवान्का वश करना क्या बडी बात है ! * ॥ १२ ॥ कहाँ तो तुच्छ यह शरीर, जिसके

जह्याद् यदर्थ स्वप्राणान् हन्याद् वा पितरं गुरुम् ॥ तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः ॥१२॥ कृमिविड्भस्मनिष्ठांतं क्वेदं तुच्छं कलेवरम् ॥ क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥ १३ ॥ सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः ॥ शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात्॥१४॥ देवानृषीन्नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ॥ स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥ १५ ॥

अन्तकालमें विष्ठा राख और कीडे हो जाते हैं और कहाँ वह स्त्री, शरीरके सुखके लिये जिससे रीति प्रीति करते हैं, और कहाँ वह आदिपुरुष अविनाशी सर्वव्यापक परमात्माका स्वरूप ! इसलिये सबसे अनुराग त्याग भगवान्में मन लगावे ॥ १३ ॥ जो कुछ अन्न फलादि भाग्यसे मिल जाय उससे पञ्चमहायज्ञ करे,जो कुछ उसमेंसे बचे उससे अपना उदर पूर्ण करे और उदरपूरणसे जो कुछ अवशेष रहे वह साधु सन्तोंको बांटदे, संग्रह करना अच्छा नहीं ॥ १४ ॥ अपनी वृत्तिसे जो धन प्राप्त हो उस धनसे देवता, ऋषि,भूत,पितर और बहुतसे जीवोंका आदर सत्कार करे और अपना भी पालन करे, इस भाँति पूजा सत्कार करनेसे अन्तर्यामी परमात्माका ही पूजन होता है ॥ १५ ॥

---

* शंका - आजतक ऐसा हमने नहीं सुना और न लोकमें कहीं देखा,कि स्त्रीके लिये कोई अपना प्राण त्यागदे वा पिता गुरुको मार डाले और जो कोई ऐसा कहे कि जानकीजीके लिये रामचन्द्रने रावणको मार डाला,वह ब्राह्मण था और, द्रौपदीके लिये द्रोणाचार्य आदि गुरुओंको मार डाला तो ऐसा नहीं मानना चाहिये क्योंकि रामचन्द्र और श्रीकृष्णजी पूर्णब्रह्म थे, परमर्षियोंके लिये नारदजीने क्यों कहा ?

उत्तर–तृष्णारूप स्त्रीके लिये नारदजीने कहा है,संसारकी स्त्रियोंके लिये नहीं कहा, तृष्णारूपी स्त्रीके लिये मनुष्य अपना तनु त्याग देते हैं और पिता गुरुको भी मार डालते हैं ॥

जो आत्माके अधिकारादिक हैं,वह सब यज्ञ सम्पदा होते हैं, वैतानिक विधि करके अग्नि होत्रादिसे यजन करे ॥ १६ ॥ यज्ञपुरुष भगवान्
सब यज्ञोंके भोक्ता हैं, सो अग्निमुखसे भोगते हैं, परन्तु हे राजन्! ब्राह्मणके मुखद्वारा हवन करनेसे अर्थात् ब्राह्मणोंको अच्छे अच्छे मिष्टान्न
लुचई, मोहनभोग, लड्डू, अमृती, पेडे, वैकुण्ठी आदि भोजन करानेसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं, ऐसा घृतादि पदार्थोंका अग्निमें हवन
करनेसे कभी प्रसन्न नहीं होते ॥ १७ ॥ इससे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण देवता हैं, इनका यथायोग्य पूजन करे, यही सब कामनाओंके सिद्ध
करनेवाले हैं, यही परमपूजनीय हैं,यही सर्व जीवमात्रके क्षेत्रोंके जाननेवाले हैं. इनको ही अन्तर्यामी जान दान सन्मान देना चाहिये, क्योंकि,
अन्तर्यामी भगवान्का मुख्य मुख ब्राह्मण ही हैं ॥ १८ ॥ द्विजवर्णको चाहिये कि, भादों मासकी पूर्णमासीसे लेकर कुआँरकी अमावास्यातक

यद्ध्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसंपदः ॥ वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥ १६ ॥ न
ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक् ॥ इज्यते हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः ॥ १७ ॥ तस्माद् ब्राह्मणदेवेषु
मर्त्यादिषु यथार्हतः ॥ तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥१८॥ कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः ॥ श्राद्धं
पित्रोर्यथावित्तं तद्बंधूनां च वित्तवान् ॥१९॥ अयने विषुवे कुर्याद् व्यतीपाते दिनक्षये ॥ चंद्रादित्योपरागे च द्वादशी
श्रवणेषु च ॥ २० ॥ तृतीयायां मासि शुक्ले नवम्यामथ कार्तिके ॥ चतसृष्वप्यष्टकासु हेमंते शिशिरे तथा ॥ २१ ॥
माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ॥ राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥ २२ ॥

माता पिताका कुटुम्ब सहित श्राद्ध करें और जिस जिस तिथिमें जिन जिनका देहान्त हुआ हो, उन्हीं उन तिथियोंमें उनका श्राद्ध करे और
जिसके मरनेकी तिथिका स्मरण न हो उसका श्राद्ध अमावास्याके दिन करदे॥१९॥ दक्षिणायन अर्थात् कर्कके सूर्यमें, उत्तरायण अर्थात् मकरके
सूर्यमें, विषुवत् अर्थात् मेष और तुलाके सूर्यमें, व्यतीपातमें, क्षयतिथिमें, सूर्यग्रहणमें, चन्द्रग्रहणमें, श्रवणद्वादशीमें ॥ २० ॥ वैशाख शुक्ल
तृतीया अर्थात् अक्षय तीजमें, कार्त्तिक शुक्ला नवमी अर्थात् आमला नवमीमें, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें, चार अष्टका नाम तिथिमें ॥
माघ शुक्ल सप्तमीमें, मघायुक्त अमावास्यामें, माघ शुक्ल पूर्णमासीमें और दूसरे महीनोंकी अपने अपने नक्षत्रोंवाली राका और अनुमति नाम

पूर्णमासियाँ जैसे चैत चित्रा, वैशाख विशाखा, ज्येष्ठ ज्येष्ठा, आषाढ पूर्वाषाढ अथवा उत्तराषाढ, श्रावण श्रवण, भाद्रपद पूर्वाभाद्रपद
अथवा उत्तराभाद्रपद, आश्विन अश्विनी, कार्त्तिक कृत्तिका, मार्गशिर मृगशिर (इसका नाम अगहन भी है), पौष पुष्य और फाल्गुन
पूर्वाफाल्गुनी अथवा उत्तराफाल्गुनी ॥ २२ ॥ द्वादशी तिथिमें अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हो इन
तिथियोंमें जन्मनक्षत्रमें और वामनद्वादशीमें विधिपूर्वक श्राद्ध करे ॥ २३ ॥ यह श्रेष्ठ दिन केवल श्राद्ध करनेके ही लिये नहीं हैं, पुरुषके
कल्याणको भी बढानेवाले हैं, इसीलिये इन पुण्यकालकी तिथियोंमें शुभ कार्य करना, व्रत,देवद्विजकी पूजा लिखा है, क्योंकि, पुण्य करना
आयुकी वृद्धि करना है ॥ २४ ॥ इन श्रेष्ठ तिथियोंमें स्नान, जप, हवन, व्रत, देवद्विजपूजा, जो कुछ शुभ कार्य होता है वह सब अक्षय

द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः ॥ तिसृष्वेकादशी वाऽऽसु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥ २३ ॥ त एते श्रेयसः
काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ॥ कुर्यात्सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥ २४ ॥ एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्वि
जार्चनम् ॥ पितृदेवनृभूतेभ्यो यद्दत्तं तद्ध्यनश्वरम् ॥२५॥संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ॥ प्रेतसंस्था
मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥ २६ ॥ अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान् ॥ स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं
यत्र लभ्यते ॥ २७ ॥ बिंबं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ॥ यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥ २८ ॥ यत्र
यत्र हरेर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ॥ यत्र गंगादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥ २९ ॥

होजाता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! अपनी अर्द्धांगिनी भार्याके पुंसवनादि संस्कारके समय तथा अपने पुत्रपौत्रके अथवा अपने संस्कारके समय,
प्रेतकी दाहक्रियाके समय, संवत्सरके श्राद्धके समय और कल्याणकारी कार्य करनेका समय हो उस समय शुभ कार्य करना चाहिये ॥२६ ॥
धर्मादिक मङ्गलके देनेवाले पुण्यतम देशोंके नाम तुमसे कहता हूँ–जहाँ जहाँ चराचरके निवासस्थान वासुदेव भगवान्की मूर्ति विराजमान हैं
और सत्पात्रोंका समागम है ॥ २७ ॥ वह देश परमपुनीत जानना; जहाँ विद्यावान्,तपस्वी और दयावन्त ब्राह्मण लोग निवास करते हैं, जहाँ
जहाँ बाँकेबिहारी कृष्णमुरारीकी मोहनीमूर्ति विराजमान है वह देश, कल्याणका स्थान है. जहाँ पुराणोंमें प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियोंका प्रवाह

हो रहा है वह अत्यन्त पुण्यतम देश है ॥ २८ ॥ २९ ॥ पुष्करादि सरोवर, जहाँ महात्मापुरुषोंका निवासक्षेत्र है, कुरुक्षेत्र, गयाप्रयाग, पुलहऋषिका आश्रम ॥ ३० ॥ नैमिषारण्य, फल्गुतीर्थ, सेतुबन्धरामेश्वर, प्रभासक्षेत्र, द्वारकापुरी, काशी,मथुरा, पंपासर, बिन्दुसरोवर ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रम,नन्दा और सीतारामके आश्रमादिक हैं, हे राजन् ! सब कुलाचल,महेन्द्र, मलयगिरि आदि बडे बडे पर्वत हैं ॥ ३२ ॥ यह पुण्यतम देश हैं जहाँ श्रीहरिकी अर्चा विग्रहरूप होके वसे है.जो मनुष्य अपना मंगल चाहे वह वारंवार इन देशोंका सेवन करे. इन श्रेष्ठ देशोंमें जो पुण्यकर्म किया जाता है, वह सहस्र गुण फल देनेंवाला है ॥ ३३ ॥ हे महाराज युधिष्ठिर ! अच्छे पात्रवेत्ता पण्डितोंने पात्र यहाँ कहे हैं, परन्तु सबसे

सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ॥ कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥ ३० ॥ नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ॥ वाराणसी मधुपुरी पंपा बिंदुसरस्तथा ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रमो नंदा सीतारामाश्रमा दयः ॥ सर्वे कुलाचला राजन्महेंद्रमलयादयः ॥ ३२ ॥ एते पुण्यतमा देशा हरेर्चाश्रिताश्च ये ॥ एतान्देशान्निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥ धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥ ३३ ॥ हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥ पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ॥ ३४ ॥ देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ॥ राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥ ३५ ॥ जीवराशिभिराकीर्ण आंड कोशांघ्रिपो महान् ॥ तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥ पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ॥ शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥ ३७ ॥

अधिक श्रीनारायण ही एक परमपात्र हैं, क्योंकि, सब चराचरमय वासुदेव भगवान् हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! राजसूयमें अग्रपूजाके समय जब देवता ऋषि महात्मा ब्रह्माजीके पुत्रादिक सब थे परन्तु वहाँ अग्रपूजनीय श्रीकृष्णचन्द्र महाराजको समझकर पहिले पूजा द्वारकाधीशकी ही हुई थी ॥ ३५ ॥ सब जीवराशियोंसे भरा यह ब्रह्माण्ड एक बड़ा वृक्षरूप है और उसका मूल भगवान् हैं इसलिये भगवान्की पूजा करनेसे सब जीवात्माओंकी तृप्ति होजाती है जैसे वृक्षकी जड़को सींचनेसे सब शाखा और पत्ते हरे होजाते हैं ॥ ३६ ॥ सब पुर अर्थात् शरीर भगवान्नेही रचे हैं. मनुष्य, पशु,पक्षी, देवता और ऋषि, यही श्रीकृष्ण भगवान् जीवरूप घरघरके सब प्राणियोंके शरीररूप पुरमें शयन करते हैं,

इसलिये इनका नाम पुरुष रक्खा है ॥३७॥ हे राजन्! इन सबमें भगवान् न्यूनाधिकभावसे बर्ते हैं, इसलिये पात्र परमेश्वर हैं, जैसी जिसकी आत्मा है वैसे ही वर्तमान हैं. तपसे, पूजासे, प्रार्थनासे जिसमें भगवान्का अंश अधिक पाया जाता है उस मनुष्यको उत्तम पात्र जानना चाहिये ॥ ३८॥ जब मनुष्य पात्र और भगवद्भक्त थे मनुष्योंके तब शरीरमें ही भगवान्की पूजा किया करते थे, जब मनुष्योंके मनमें विकार आगया और परस्पर भेद समझने लगे और एक की एक अवज्ञा करने लगे तब त्रेतायुगके प्रारम्भमें कवियोंने भगवान्की अर्चा मूर्तियोंमें करनी आरम्भ कर दी ॥ ३९॥ बहुतेरे लोगोंने समझ रक्खा है कि, मूर्तिमें ही भगवान् हैं, यह समझकर जो मूर्तिका पूजन करते हैं उनके सब मनो

तेष्वेषु भगवान्राजंस्तारतम्येन वर्तते ॥ तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणा मवज्ञानात्मतां नृप ॥ त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥३९॥ ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया ॥ उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥ ४० ॥ पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥४१॥ नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः ॥ पुनंतः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत्॥४२॥ इति श्रीमद्भागवते म० सप्तमस्कंधे प्रतिमाद्यर्चनादिधर्म० नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच॥ कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठा नृपापरे ॥ स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥ १ ॥

रथ पूर्ण होते हैं और जो मनुष्य परस्पर द्रोह करते हैं उन लोगोंको वह प्रतिमा फल नहीं देती ॥ ४० ॥ हे राजन्! पुरुषोंमें वही ब्राह्मण सत्पात्र हैं जो तपसे, विद्यासे, सन्तोषसे, भगवान्के शरीररूप वेदको धारण करते हैं, उनको ही उत्तम पात्र महात्मा लोग बतलाते हैं ॥ ४१ ॥ यह ब्राह्मणोंका ही सामर्थ्य है जो अपने चरणोंकी रजसे त्रिलोकीको पवित्र कर सकते हैं, यह ब्राह्मण जगत्के आत्मा श्रीकृष्ण भगवान्के परमप्रिय देवता हैं जैसे सुदामा ॥ ४२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ दोहा–वर्णाश्रमकी रीति सब, मोक्षधर्मको सार। भिन्न भिन्न वर्णन करौं, पन्द्रहमाहिं विचार ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि, हे युधिष्ठिर! किसी ब्राह्मणकी तो

कर्मोंमें निष्ठा है, किसीकी तप करनेमें निष्ठा है, किसीकी वेद पढ़नेमें निष्ठा है, किसीकी वेद पढानेमें निष्ठा है, किसीकी ज्ञानमें निष्ठा है और किसीकी योगमें निष्ठा है ॥ १ ॥ जो मनुष्य देव पितृ सम्बन्धी कर्मोंमें अनन्त फलकी अभिलाष करे तो उसको चाहिये कि ज्ञाननिष्ठावाले ब्राह्मणको श्राद्धमें अन्न दे, जो ज्ञान निष्ठावाला कहीं नहीं मिले तो और जो कोई ब्राह्मण हो उसको यथायोग्य भोजन कराया जाय ॥ २ ॥ जिन ब्राह्मणोंका निमंत्रण श्राद्धमें किया जाय वह विप्रवर सब प्रकारसे श्रेष्ठ और शुद्ध होने चाहिये. विश्वेदेवोंके निमित्त दो ब्राह्मण जिमाने चाहिये

ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानंत्यमिच्छता ॥ दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्योयथाऽर्हतः ॥ २ ॥ द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥ ३ ॥ देशकालोचिता श्रद्धा द्रव्यपात्रार्हणानि च ॥ सम्यग्भवंति नैतानि विस्तरात् स्वजनार्पणात् ॥ ४ ॥ देशे काले च संप्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ॥ श्रद्धया विधिवत्पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥ ५ ॥

और पितृकर्ममें तीन ब्राह्मणोंको जिमावे, बरन् श्रद्धापूर्वक एक एक ब्राह्मणका जिमाना भी अच्छा है और जो अधिक धन हो तो भी श्राद्धमें विस्तार नहीं करना चाहिये ❀ ॥ ३ ॥ देशकालके योग्य श्रद्धा, द्रव्य, पात्र, पूजन यह सब बहुत विस्तार करनेसे श्राद्धमें स्वजनोंके जिमानेकी इच्छासे श्राद्ध श्रद्धापूर्वक नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ देश काल सुन्दर प्राप्त होजाय तो श्रीभगवान् वासुदेव जिनके देवता ऐसे मुनि-अन्न जौ, मूँग, भात, पूरी, कचौरी, अमृती इत्यादिसे श्रद्धा करके सुपात्रको जिमावे तो वह अन्न कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है और अक्षय फलका देनेवाला है ॥ ५ ॥

---

* शंका-नारदजीने युधिष्ठिरसे कहा कि दो ब्राह्मणोंको देवकार्यमें जिमाना चाहिये और पितृकर्ममें तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, सो देवकर्मसे और पितृकर्मसे बढकर और तीसरा कर्म कौनसा है जिसमें बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ?

उत्तर-देवकार्यका अर्थ यह है कि, श्राद्धमें विश्वेदेवपूजनके निमित्त दो उत्तम ब्राह्मणोंका बहुत प्रकारको भोजन करना चाहिये । उसी प्रकारसे चतुरप्राणीको पितृकर्ममें जो सर्व गुण संयुक्त हों, ऐसे तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये; अर्थात् श्राद्धमें उत्तम सुपात्र ब्राह्मणोंको निमंत्रित करनेकी शास्त्र आज्ञा देते हैं और सुपात्र ब्राह्मण अधिक मिलना कठिन है, श्राद्धमें यदि एक भी कुपात्र आजाय तो दूषित हो जाता है इसलिये अधिक ब्राह्मण जिमानेका निषेध है ।

देवता, ऋषि, पितर, जीवमात्र अपने देह और स्वजन लोगोंको वह अन्न विभाग करके दे तो ईश्वरहीके समान है ॥ ६ ॥ धर्मके तत्त्वको जाननेवाले तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको चाहिये कि,श्राद्धमें मांसको नहीं दें और न आप खायँ.मुनियोंके अन्नसे परमेश्वर प्रसन्न होते हैं,कुछ पशुओंकी हिंसासे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होते ॥ ७ ॥ सद्धर्मकी इच्छा करनेवाले पुरुषको इससे परे कोई और कठिन धर्म नहीं है कि; तन मन वचनसे किसी जीवको कष्ट न देना ॥८॥ आचार्य यज्ञवेत्ता ज्ञानी कर्ममय यज्ञोंको आत्माके संयम करनेवाले ज्ञानसे दीप्त मनमें सब चेष्टाओंको होम देते हैं ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञोंसे जब यज्ञ किया जाता है, उन यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको देखकर सब जीव थरथर कांपते हैं कि, यह निर्दयी

देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ॥ अन्नं संविभजन्पश्येत्सर्वं तत्पुरुषात्मकम्॥६॥न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्या द्धर्मतत्त्ववित् ॥ मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया॥७॥नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ॥ न्यासो दंडस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य सः ॥ ८ ॥ एके कर्ममयान्यज्ञाञ्ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ॥ आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति ॥ एष माऽकरुणो हन्याददतज्ज्ञो ह्यसुतृब्ध्रुवम् ॥ १० ॥ तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ॥ संतुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥ ११ ॥ विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ॥ अधर्मशाखाः पंचेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत् ॥ १२ ॥ धर्मबाधो विधर्मः स्यात्परधर्मोऽन्यचोदितः ॥ उपधर्मस्तु पाखंडो दंभो वा शब्दभिच्छलः ॥ १३ ॥

प्राणपोषक अज्ञानी इन सब जीवोंको मारेंगे ॥ १० ॥ इस लिये विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि देवअन्न जो ऋषियोंका सन्तुष्ट करनेवाला है, उस तन्दुलादिक अन्नसे अपनी नित्यप्रति नित्य नैमित्तिक क्रिया करें और सन्तुष्ट रहें ॥ ११ ॥ विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा, छल, यह पांच अधर्मकी शाखा हैं सो धर्मके जाननेवालोंको चाहिये कि, अधर्मकी नाईं उनको त्यागदें ॥ १२ ॥ धर्मकी बाधाको विधर्म कहे हैं, पराये धर्मको परधर्म कहे हैं, मनुष्यांने आश्रमकी पद्धति जो अलग धर्म अपनी इच्छासे चलाया हो उसको आभास कहते हैं, जो पाखंडका धम

हो उसको उपमा कहते हैं, दम्भ अथवा धर्मशास्त्रके वाक्योंका उलटा अर्थ करे उसको छल कहते हैं ॥ १३॥ धर्मशास्त्रके वाक्योंसे जो निश्चय हो और तत्त्ववेत्ताओंके स्वभावके अनुसार हो, वह धर्म मनुष्योंको शांति देनेवाला है॥ १४ ॥ निर्धनपुरुष धर्मके अर्थ अथवा यात्रा अर्थात् अपने निर्वाहके लिये धनकी कोईअपेक्षा न करे, क्योंकि अजगरवृत्तिवालेको घर बैठे ही सब मिल जाता है ॥ १५ ॥ सन्तोषी, अचेष्टावान्, आत्माराम और निरीह पुरुषको जो प्राप्त होताहै वह आनन्द लोभसे धनकी चेष्टा करनेवालेको और सब दिशाओंमें घूमनेवालेको कब मिल सकता है? ॥ १६ ॥ जो सदा सन्तुष्टचित्त है उसको सब दिशाओंमें परमानन्द है, जैसे कांटा कंकर आदि बचानेवाले जूतेका जोडा पांवमें

यस्त्विच्छया कृतः पुंभिराभासो ह्याश्रमात्पृथक् ॥ स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशांतये॥१४॥ धर्मार्थमपि नेहेत
यात्राऽर्थं वाऽधनो धनम्॥ अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा॥१५॥संतुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम् ॥
कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥ १६ ॥ सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ शर्कराकंटकादिभ्यो
यथोपानत्पदः शिवम्॥ १७ ॥ संतुष्टः को न वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा ॥ औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद्गृहपालायते
जनः ॥ १८ ॥ असंतुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ॥ स्रवंतींद्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥ १९ ॥
कामस्यांतं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ॥ जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥ २० ॥

सुखदायक है ॥ १७ ॥ हे राजन्! वह कौनसी वस्तु है, जिस वस्तुसे सन्तोषी पुरुष अपना कार्य सिद्धि नहीं कर सकता? और पदार्थोंका तो कहना ही क्या है? केवल जलका पात्र ही लेकर जो उसके सामने उपस्थित हो तो उसीसे अपना कार्य सिद्धि कर लेता है और असन्तोषी पुरुष उपस्थ इन्द्रिय और जिह्वाके भोगार्थ श्वानके समान घर घर अपना अपमान कराता फिरता है ॥ १८॥ जो ब्राह्मण सन्तोष नहीं करता उसका इन्द्रियोंकी चपलताके मारे तेज, विद्या, तप, यश सब नाश होजाता है और ज्ञान तो किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहता ॥ १९ ॥ कामका अन्त भूख प्यासके मरनेसे हो जाता है, क्रोधका अन्त शत्रुओंके जीतनेसे हो जाता है परन्तु लोभका अन्त किसी प्रकार नहीं हो

सकता. चाहे कुबेरका धन और उदय अस्त तक सब पृथ्वीका राज्य मिल जाय ॥ २० ॥ हे राजन् ! बडे २ ज्ञानी गूढ सन्देहोंके मिटानेवाले सभाओंके पति, षट्शास्त्री पंडित सन्तोष न करनेसे घोर नरकमें चले गये. ॥ २१ ॥ मनुष्यको चाहिये कि, संकल्प विकल्पको त्यागकर कामनाओंको जीते, कामनाओंका त्याग करके क्रोधको जीते, धनको अनर्थ समझकर लोभको जीते और तत्त्वविचारसे भयको जीते ॥ २२ ॥ ब्रह्मविद्यासे शोक मोहको जीते, महात्मा पुरुषोंकी उपासनासे दम्भको जीते, मौनवृत्ति धारण कर योगके विघ्नरूप मिथ्या वार्तालापको जीते, शरीरकी चेष्टाओंको त्यागकर हिंसाओंको जीते ॥ २३ ॥ जिन जीवोंसे भय उत्पन्न हुआ हो उनहीसे स्नेह करके भूतज दुःखोंको जीते, दैवकृत

पंडिता बहवो राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः ॥ सदसस्पतयोऽप्येके असंतोषात्पतंत्यधः ॥ २१ ॥ असंकल्पाज्जयेत्कामं
क्रोधं कामविवर्जनात् ॥ अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ २२ ॥ आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दंभं महदुपासया ॥
योगांतरायान्मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥ २३ ॥ कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना ॥ आत्मजं योगवीर्येण
निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥ २४ ॥ रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ॥ एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यंजसा जयेत् ॥
॥ २५ ॥ यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ॥ मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुंजरशौचवत् ॥ २६ ॥ एष वै भगवान्
साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ योगेश्वरैर्विमृग्यांघ्रिर्लोको वै मन्यते नरम् ॥ २७ ॥

क्लेशोंको समाधिसे जीते, योगबलसे जीवात्माके कष्टको जीते और सात्त्विक भोजनादिकी उपासनासे निद्राको जीते ॥ २४ ॥ सत्त्वगुणसे रज तमको जीते, शांतिसे सत्त्वगुणको जीते. यह तो प्रत्येक पदार्थके जीतनेके लिये भिन्न रीतिके साधन कहे, परन्तु संसारमें गुरुभक्ति ही ऐसी बलवान् है कि, पुरुष उससे विना प्रयास त्रिलोकीको जीत सकता है ॥ २५ ॥ हृदयमें ज्ञानरूप दीपकके प्रकाश करनेवाले साक्षात् गुरु भगवान्‌को जो मनुष्य अपने अज्ञानसे मनुष्यके समान जानकर उनसे जो जो ज्ञान सुनता है वह सब हाथीके स्नानके समान है ॥ २६ ॥ गुरुरूप साक्षात् भगवान् प्रधानपुरुष ईश्वर हैं और योगेश्वर जिनके अचल कोमल चरणकमलको खोजते रहते हैं उस गुरुको लोग संसारी मनुष्यके समान मानते हैं और परस्पर अज्ञानतासे कुतर्क करते हैं कि, गुरु भगवान् कैसे हैं ? इनके तो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, सुहृद्, बन्धु सब

हैं, जैसे हम हैं वैसे ही वह हैं परंतु एक विद्या ही अधिक समझलो ॥ २७ ॥ षड्वर्ग अर्थात छः इंद्रियोंके जीतनेके छः ही उद्देश तत्त्ववेत्ताओंने कहे हैं. इद्रियोंके जीतनेके पीछे भी जो उनसे ज्ञान, ध्यान, धारणा और समाधिका साधन न बन सका तो सब परिश्रम करना वृथा है और देहको दुःख देना है ॥ २८ ॥ जैसे वार्तादिक योगके अर्थको सिद्ध नहीं कर सकती वह सब वार्ता अनर्थ होजाती, है पूर्त, इष्ट इत्यादि जो अनर्थबुद्धि करे तो ॥ २९ ॥ जो पुरुष मनको जीतनेकी इच्छा करे तो सब परिग्रहसे संग त्यागे, एकांतमें बैठे, अकेला रहे और भिक्षा मांगनेसे जो कुछ थोडा बहुत अन्न मिल जाय उसीमें अपना निर्वाह करे ॥ ३० ॥ हे राजन्! पवित्र और सम भूमिमें आसन बिछावे और उसपर सरल अंग करके बैठे और ॐकारका जप करे ॥ ३१ ॥ प्राण, अपान वायुको जीते, पूरक, कुम्भक, रेचक करके जब तक मन सब कामनाओंको न त्यागे तबतक अपनी नाकके अग्रभागको देखता रहे ॥ ३२ ॥ महत् विषयोंके द्वारा घूमता हुआ मन जहां जहां जाय, उन उन स्थलोंसे उसको लौटाकर लावे और धीरे धीरे उसको रोकके फिर धीरे धीरे बुधजन मनको रोके ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अभ्यास करनेवाले यती पुरुषोंको थोडेमे कालमें निरन्तर सुख ही प्राप्त हो जाता है, जैसे बिना काष्ठ अग्नि शान्त होजाती है ॥ ३४ ॥ कामके बन्धनोंसे छूटकर, सब वृत्तियांसे शान्त होकर ब्रह्मानन्दको जो प्राप्त होगया, फिर ऐसा चित्त कभी ईश्वरसे पृथक् नहीं होता ॥ ३५ ॥ जो नर त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, कामको प्रथम तो त्यागकर संन्यासी

षड्वर्गसंयमैकांताः सर्वा नियमचोदनाः ॥ तदंता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥ २८ ॥ यथा
वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ॥ अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथाऽसतः ॥ २९ ॥ यश्चित्तविजये यत्तः
स्यान्निस्संगोऽपरिग्रहः ॥ एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥ ३० ॥ देशे शुचौ समे राजन् संस्थाप्यासनमा
त्मनः ॥ स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वंग ओमिति ॥ ३१ ॥ प्राणापानौ सन्निरुंध्यात् पूरकुंभकरेचकैः ॥ यावन्मन
स्त्यजेत्कामान्स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२ ॥ यतो यतो निस्सरति मनः कामहतं भ्रमत् ॥ ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुंध्या
च्छनैर्बुधः ॥ ३३ ॥ एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ॥ अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥ ३४ ॥
कामादिभिरनाविद्धं प्रशांताखिलवृत्ति यत् ॥ चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥ ३५ ॥ यः प्रव्रज्य गृहात्पूर्वं
त्रिवर्गावपनात् पुनः ॥ यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वांताश्यपत्रपः ॥ ३६ ॥

होजाय, फिर पीछे उसी त्रिवर्गका सेवन करे,उस संन्यासीको ऐसे समझो कि, पहिले उगलकर पीछे फिर खालेना, मानो थूकके चाटना ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने अपने देहमें आत्माका स्मरण नहीं किया और यह देह कृमि, विष्ठा, भस्म समझा और वही फिर पीछे अज्ञानी बनकर इस शरीरको अपना मान और अभिमानमें आन उसकी प्रशंसा करते हैं ॥३७॥ जो गृहस्थ अपने क्रिया कर्मको त्यागदें, ब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचर्य धर्मको छोडदें; वानप्रस्थ होकर नगरमें वास करें और संन्यासी होकर इन्द्रियोंके भोगको भोगें,वह लोग दोनों लोकोंसे जाते रहते हैं,वह कहींके नहीं रहते, उनको पाखण्डी समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ वह लोग सब आश्रमोंके नाशक हैं और सच्चे आश्रमोंका अनुकरण करते हैं और उनसे शत्रुता रखते हैं. नारदजी बोले कि, हे पांडुकुलमुकुटमणि ! देवमायासे मोहित इन मूर्खोंपर दया करके इनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥३९॥ जो जन अपने आपको परब्रह्म समझकर विषयवासनाओंसे निवृत्त होते हैं, फिर वह किसलिये लोलुप लम्पट बनकर शरीरका लालन पालन करते हैं? ॥ ४० ॥ मुनिलोग शरीरको रथरूप कहते हैं, उसमें इन्द्रियें घोडे हैं और चंचल मन उसकी बागडोर है, शब्दादिक मात्र उस रथके चलनेका मार्ग है, विषयवासना उसके पहुँचनेके देशदेशान्तर हैं,बुद्धि उसकी हांकनेवाली सारथी है और चित्त सबका बन्धन है, यह अद्भुत रथ ईश्वरका बनाया हुआ है ॥ ४१ ॥ दश प्राण अक्ष (धुरी) रूप हैं; धर्म और अधर्म दो पहिये हैं, जीव अभिमानी उसमें चढ़नेवाला है, प्रणव धनुष है, बाण शुद्ध जीव है, परमेश्वर लक्ष्य है ॥ ४२ ॥

यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् ॥ त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयंति ह्यसत्तमाः ॥ ३७ ॥
गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि ॥ तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिंद्रियलौल्यता ॥३८॥ आश्रमापसदा ह्येते
खल्वाश्रमविडंबकाः ॥ देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेताऽनुकंपया ॥ ३९ ॥ आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञानधुताशयः ॥
किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लंपटः ॥ ४० ॥ आहुः शरीरं रथमिंद्रियाणि हयानभीषून्मन इंद्रियेशम् ॥
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद्बंधुरमीशसृष्टम् ॥ ४१ ॥ अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च
जीवम् ॥ धनुर्हि तस्य प्रणवं पठंति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥ ४२ ॥

#1
602

राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, निंदा, माया, हिंसा, मत्सरता ॥ ४३ ॥ रजोगुण, प्रमाद, भूख और निद्रा आदि
रजोगुण तमोगुण प्रकृति तो इसके वैरी हैं ही, परन्तु किसी समयपर परोपकारी सत्त्वगुणकी प्रकृति भी वैरभाव करने लगी है ॥ ४४ ॥ जिस
समयतक इस नरशरीर रथके इन्द्रियादिक अंग और आत्मा अपने वशमें है, उस समय तक गुरुमहात्माके चरणारविन्दकी कृपासे तीक्ष्ण ज्ञान
रूप खड्ग लेकर और भगवान्का बल लेकर, सब वैरियोंको मारकर प्रसन्न और शान्त हो परमात्माकी शरण लेकर मोक्षरूप यशका प्रकाश
करे ॥ ४५ ॥ और जो परमात्माका आश्रय न लिया हो तो उस रथके इन्द्रिय रूप घोडे और मतिरूप सूत असावधान रथमें बैठनेवालेको

रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः ॥ मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥ ४३ ॥ रजः प्रमादः
क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः ॥ रजस्तमःप्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥४४॥ यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं धत्ते
गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ॥ ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः स्वाराज्यतुष्टउपशांत इदं विजह्यात् ॥ ४५ ॥ नो
चेत्प्रमत्तमसदिंद्रियवाजिसूता नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपंति ॥ ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोंऽधे संसारकूप
उरुमृत्युभये क्षिपंति ॥ ४६ ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ आवर्त्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम्
॥ ४७ ॥ हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशांतिदम् ॥ दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥ ४८ ॥ एतदिष्टं
प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ॥ पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम् ॥ ४९ ॥

कुपन्थमें अर्थात् प्रवृत्तिमार्गमें खींचकर लेजाते हैं और विषयरूप लुटेरोंकी सेवामें जा डालते हैं. जब इन तस्करोंके फन्देमें फँसा, फिर कब
निकलनें देते हैं. उसी समय घोडे और सारथी समेत उस पुरुषको महाअन्धतम जहाँ मृत्यु और भय मुख पसारे बैठे हैं, उस संसाररूप कूपमें
गिरा देते हैं ॥ ४६ ॥ वैदिक मतवालोंने दो प्रकारके धर्म कहे हैं, एक तो प्रवृत्तिमार्ग है और दूसरा निवृत्तिमार्ग है. प्रवृत्तिमार्गसे तो संसा
रमें आना जाना होता है और निवृत्तिमार्गसे मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ ४७ ॥ हिंसक यज्ञ, काम्य यज्ञ, द्रव्यमय यज्ञ, अग्निहोत्रादिक
यह सब अशान्तिके करनेवाले हैं. अमावस्या, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग, सोममयाग ॥ ४८ ॥ वैश्वदेव और बलिदानादिक जो कर्म हैं,

वह सब पदार्थोंके उपयोगसे होते हैं; उनहीको इष्टकर्म कहते हैं और देवालय, बाग, कूप, तड़ाग, आदि जो कर्म हैं, उनको पूर्त कहते हैं. यही कर्म वांछित होकर किये जायँ तो प्रवृत्ति कहलाते हैं ॥४९॥ द्रव्ययज्ञका सूक्ष्म फल होता है, द्रव्ययज्ञ करनेवाला मनुष्य ; चरु और पुरोडशादिकके किञ्चिन्मात्रसे उत्पन्न हुए शरीरको धारण करके धूमके देवके समीप जाता है, वहाँसे रात्रिके देवके सम्मुख जाता है, वहाँसे कृष्णपक्षके देवके निकट जाता है, वहाँसे दक्षिणायनके देवके पास जाता है, वहाँसे सोमके लोकमें जाता है ॥ ५० ॥ इन इन स्थानोंमें जाकर जब पुण्यका क्षय होता है, तब पुण्यके क्षय होनेसे शोकाग्नि उत्पन्न होती है, फिर अत्यन्त दुर्बल होकर वृष्टिरूप तथा चन्द्रमाकी किरणोंके द्वारा ओषधी, लता और अन्नमें आता है, फिर वीर्यमें क्रम क्रमसे आकर इस संसारमें आजाताहै यह पितृपान है॥५१॥जन्मसे लेकर मरणपर्यंत संस्कार जिसके हुए हों ऐसे विप्र, क्षत्रिय और वैश्यको प्रवृत्तिकर्म करनेका यह फल मिलता है. अब निवृत्ति कर्मकी गति कहते हैं—महात्मा लोग इन्द्रियोंके व्यापाररूप इष्टापूर्तादिक कर्मोंको विज्ञानसे दीप्तिवाली इन्द्रियोंमें हवन कर देते हैं, यह इष्टधर्म इन्द्रियोंसे भिन्न नहीं है, ऐसे समझते हैं ॥ ५२ ॥ मनके वेगमें इन्द्रियोंको लीन करते हैं, वेदवाली वाणीमें वैकारिक मनको लीन करते हैं, वाणीको वर्णोंके समूहमें लीन करते हैं और अक्षरवर्णोंके समूहोंको तीन अक्षर (अ, उ, म्) वाले ॐकारमें लीन करते हैं, ॐकारको बिन्दुमें, बिन्दुको नादमें, नादको प्राणमें और प्राणको ब्रह्ममें लीन करते हैं ॥ ५३ ॥ इस प्रकार निवृत्तकर्म करके ज्ञाननिष्ठावाला मनुष्य पहिले अग्निदेवके पास, फिर सूर्यदेवके पास वहाँसे दिवस–देवके समक्षा, वहाँसे दिनके अन्तमें होकर शुक्लपक्षदेवके निकट, वहाँसे शुक्लपक्षके अन्तमें हो उत्तरायणदेवके सम्मुख फिर वहांसे ब्रह्माजीके सामने जाता

द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ॥ अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः॥ ५० ॥अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृ
यानं पुनर्भवः ॥एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥ ५१ ॥ निषेकादिश्मशानांतैस्संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ॥
इंद्रियेषु क्रियायज्ञान्ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥५२॥ इंद्रियाणि मनस्यूमौं वाचि वैकारिकं मनः ॥ वाचं वर्णसमाम्नाये
तमोंकारे स्वरे न्यसेत् ॥५३॥ ओंकारं बिंदौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ॥ अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राको
त्तरं स्वराट् ॥ विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥ ५४ ॥

है. वहांपर कुछ दिन भोग भोगकर फिर स्थूलदेहके उपाधिवाले विश्वमें जाता है, उस स्थूल देहको सूक्ष्ममें लीन कर सूक्ष्म उपाधिवाले तैजसमें जाता है, फिर सूक्ष्मको कारणमें लय करके, कारणको शरीरकी उपाधिवाले प्राज्ञमें, कारण शरीरको तीनों शरीरोंमें व्यापक साक्षी स्वरूपमें लीन करके चौथा शरीर सबसे अलग हो जाता है. सब दृश्य पदार्थोंका लय होनेसे शुद्ध चित्त होकर मोक्ष होजाता है ॥ ५४ ॥ जिस मार्गमें पूर्वोक्त कर्मानुसार प्राप्त होता है, उस मार्गको ब्रह्मज्ञानी लोग देवयान कहते हैं. आत्माका ही यजन करनेवाला आत्मज्ञानी आत्माहीमें बसा हुआ और महाशांति पाया हुआ जो इस मार्गमें आगया वह फिर लौटकर नहीं जाता, क्योंकि परमात्मामें लय होजाता है ॥ ५५ ॥ वेदके कहेहुए देवयान और पितृयान यह दो मार्ग हैं, शास्त्ररूप नेत्रोंसे दृष्टि आते हैं. परंतु जबतक ज्ञानरूपी चन्द्रमाका हृदयमें प्रकाश नहीं होता, तबतक मार्गोंका कंकर काँटा देखनेमें नहीं आता. फिर वह आत्मज्ञानी पुरुष देहमें स्थित होनेपर मोहित नहीं होता ॥ ५६ ॥ जनोंके आदि अन्तमें वास करनेवाला भोग्य, भोक्ता, ऊँच, नीच, ज्ञान, ज्ञेय, शब्द, अर्थ, अन्धकार और प्रकाश इन सबको ज्ञानी पुरुष अपने आपसे भिन्न नहीं समझते कि जिससे मोह और ममता हो ॥ ५७ ॥ वृक्षकी छाया कुछ वृक्ष नहीं है, तर्क करनेसे आभासमें सब प्रकारसे अवास्तविकता पाई जाती है; तो भी जैसे कोई पदार्थ रूपसे माना जाता है ऐसे संसार भी किसी इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आता, जैसे वृक्षकी छाया देखनेमें आती है, परंतु वह कुछ वस्तु है नहीं, केवल मनका विकार है क्योंकि, कभी वृक्षके नीचे होती है और कभी वृक्षसे दूर होती है, ऐसे संसार भी किसी प्रकार निश्चित नहीं हो सकता, तो भी मानो कोई एक पदार्थ है ऐसे कल्पना की जायगी ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! पृथ्वी इत्यादि

देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वानुपूर्वशः ॥ आत्मयाज्युपशांतात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ॥ ५५ ॥ य एते पितृदेवाना मयने वेदनिर्मिते ॥ शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥ ५६ ॥ आदावंते जनानां सद्बहिरंतः परावरम् ॥ ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥ ५७ ॥ आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ॥ दुर्घटत्वादैंद्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥ ५८ ॥ क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि ॥ न संघातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥ ५९ ॥

पुरुषोंका अपमान करनेसे भगवान्‌की सेवा छूट जाती है और उनहीके अनुग्रहसे सब काम सिद्ध हो जाते हैं, पिछले जन्मका मुझको अच्छा स्मरण है कि गत महाकल्पमें मैं उपबर्हण नामक एक गन्धर्व था और सब गन्धर्व मेरा अत्यन्त आदर सम्मान करते थे ॥६९ ॥ रूप, सौंदर्य्य, माधुर्य और सुगंधिके कारणसे सब मनुष्योंको मेरे दर्शनकी अभिलाषा रहती थी और स्त्रियोंको परम प्रिय और कामोदीपन करनेवाला था ही, परंतु मुझसे बढ़कर संसारमें कोई लम्पट और लबार नहीं था ॥७०॥ एक समय देवताओंके समाजमें भगवान् वासुदेवकी गाथा गानेके लिये प्रजापतियोंने अनेक गन्धर्व और अप्सराओंके समूहके समूह बुलाये ॥७१ ॥ उस समय मैं भी सुन्दर सुन्दर स्त्रियोंको अपने संग लेकर गाता बजाता वहां पहुँचा. मुझको देखकर प्रजापति महाकुपित हुए और अपनी शक्तियोंसे मुझको शाप दिया और यह कहा कि, तैंने हमारी अवज्ञा करी, तू बड़ा निर्लज्ज है इसलिये तू नष्ट होकर अभी शूद्रयोनिमें जाकर जन्म ले ॥ ७२ ॥ शापके देते ही मैं तनु त्यागकर दासीपुत्र हुआ और जन्महीसे महात्माओंकी सेवा और उनकी सत्संगतिके प्रभावसे तीसरे जन्ममें आकर मैंने ब्रह्माजीके घरमें जन्म लिया ॥ ७३ ॥ पापका विनाश करनेवाला गृहस्थ लोगोंका धर्म मैंने आपके सामने वर्णन किया, जिस धर्मके करनेसे गृहस्थलोग विना परिश्रम परमपदवीको पहुँचें, जिस पदवीको संन्यासी लोग जाते हैं ॥७४॥ हे राजन् ! मृत्युलोकमें तुम बडे भाग्यशाली हो, क्योंकि तुम्हारे घर त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले महात्मालोग चारों ओरसे आते हैं और मनुष्य अवतार धरकर साक्षात् आदिपुरुष अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद विराजते

रूपपेशलमाधुर्यसौगंध्यप्रियदर्शनः ॥ स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलंपटः ॥७०॥ एकदा देवसत्रे तु गंधर्वाप्सरसां गणाः ॥ उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥ ७१ ॥ अहं च गायंस्तद्विद्वान्स्त्रीभिः परिवृतो गतः ॥ ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ॥ याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥ ७२ ॥ तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ॥ शुश्रूषयानुषंगेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥७३॥ धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ॥ गृहस्थो येन पदवीमंजसा न्यासिनामियात् ॥ ७४ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियंति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥ ७५ ॥

हैं॥७५॥सो यह आदिपुरुष अविनाशी जिनको मुनिजन समाधि लगाकर खोजते रहते हैं और उनके ध्यानमें नहीं आते,वह श्रीकृष्ण आपके परममित्र, ममेरे भाई, आत्माराम,परमपूज्य,जगद्गुरु, आपकी इच्छानुसार कार्य करनेवाले आपके साथ दिन रात रहते हैं,सो वह मोक्षसम्बन्धी आनंदके सुखका अनुभव करनेवाले यही हैं ॥७६॥ शिव ब्रह्मादिक देवता जिनका साक्षात् स्वरूप किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते कि, भगवान्का स्वरूप कैसा है,निदान मौन होकर इन्द्रियोंको शान्त करके भक्तिसे भगवान्का पूजन करते हैं, सो यह भक्तवत्सल परमकृपालु श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावनविहारी हम सबपर प्रसन्न होओ ॥ ७७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार राजा युधिष्ठिर देवऋषि नारदजीके वचन सुनकर

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥ ७६ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ७७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः ॥ पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥ ७८ ॥ कृष्णपार्थावुपामंत्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ॥ श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥ ७९ ॥ इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ॥ देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे युधिष्ठिरनारदसंवादे वर्णाश्रमधर्मनिरूपणं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ समाप्तोऽयं सप्तमः स्कंधः ॥ ७ ॥

अत्यंत प्रसन्न हुए और प्रेमसे विह्वल होकर नारदमुनिसहित श्रीकृष्ण महाराजकी सबने मिलकर पूजा की॥७८॥ पूजा सम्मान पाकर नारदजी महाराज श्रीकृष्ण भगवान् और युधिष्ठिरसे बिदा माँगकर वहांसे चल दिये और राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण देवकीनंदनको परब्रह्म परमात्मा सुनकर अत्यंत विस्मित हुए॥७९॥ यह सब दक्षप्रजापतिकी पुत्री दाक्षायणीके वंश पृथक् २ मैंने आपसे वर्णन किये, कि जिन वंशोंमें देवता, दैत्य और मनुष्य आदि सब चराचर लोक उत्पन्न हुए ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

भाषाटीकासमेत सप्तस्कंध समाप्त ॥

पञ्चमहाभूतोंकी छाया (ऐक्यावलम्बन) देहादिक संघात आरम्भ परिणाम इनमेंसे एक भी नहीं हो सकता, जैसे वृक्षोंके संघातसे वन होता है वैसे पञ्चभूतोंके संघातसे देह नहीं है, क्योंकि एक देशके आकर्षणसे सब देश आकर्षित नहीं होते, एक वृक्षके खिंचनेसे सब वन नहीं खिंचता, ऐसा विकार अर्थात आरब्ध अवयवी अथवा परिणाम भी नहीं है, क्योंकि, वह अवयवसे अत्यन्त अलग नहीं है और किसीसे मिलकर भी नहीं रहता है, इससे देहादिकके सब पदार्थ मिथ्या ही जानना ॥५९॥ हे राजन् ! देहादिक जिस प्रकार मिथ्या हैं, उन सबके हेतु स्वरूप पृथ्वी आदि भी वैसे ही मिथ्या हैं, क्योंकि समस्त पञ्चमहाभूत अवयवी पदार्थ हैं, इससे अवयवों विना उनका कुछ भिन्न निरूपण हो सके ऐसा भी नहीं हो सकता, इसलिये यह अवयवी कारणसे कुछ अलग पदार्थ नहीं है यही निश्चय हुआ. इस प्रकार अवयवीके असत् और मिथ्या होनेपर निदान अवयव भी असत् और मिथ्या होगये तो किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते. यद्यपि सत्यरीतिसे जो विचार किया जाय तो परमकारणरूप अतिरिक्त

धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ॥ न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोंऽततः ॥ ६० ॥ स्यात्सादृश्यभ्रमस्तावद्
विकल्पे सति वस्तुनः ॥ जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ॥ ६१ ॥ भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं यथा
त्मनः ॥ वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः ॥ ६२ ॥ कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतंतुवत् ॥ अवस्तुत्वाद्वि
कल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६३ ॥

परमात्माके और कोई पदार्थ सत्य नहीं है.जब सब पदार्थ असत् माने गये तो उनमें भेद मानना भी वृथा है; क्योंकि उसी समय तक भेद है जबतक अविद्याकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ६० ॥ यह कहो कि अवयवीकी सत्ता स्वीकार करनेपर आगमस्थायी बाल्यादि अवस्थामें "यह वही देवदत्त है" ऐसा प्रत्यभिमान किस प्रकार हो सकता है ? उत्तर अविद्याका किकल्प रहनेसे पहिले पहल आरोप सादृश्यके हेतु "यह वह नहीं है" इस प्रकार संभ्रम हो सकता है, परंतु जबतक अविद्या नहीं छूटती तबहींतक यह भ्रम रहता है फिर नहीं. हे राजन् ! जो सब ही मिथ्या हुआ तो शास्त्रकी विधिनिषेधिता किस प्रकारसे रह सकती है, ऐसी आशंका मत करना. स्वप्नमें जिस प्रकार कभी कभी जाग्रत् और निद्राकी व्यवस्था होती है, वैसे ही न्यायशास्त्रकी विधिनिषेधिता हो सकती है॥६१॥इसलिये मननशील योगी भावनाका अद्वैत, क्रियाका अद्वैत, द्रव्यका अद्वैत विचार करके आत्मतत्त्वके अनुभवसे जाग्रत् इत्यादि तीन अवस्थाओंका निवारण किया करता है॥६२॥भावनाका अद्वैत किसको कहते

हैं सो सुनो, जैसे वस्त्र कोई पदार्थ नहीं है, उसका मुख्य पदार्थ सूत है ऐसे ही जाग्रत् अवस्था कोई पदार्थ नहीं, परब्रह्म ही मुख्य पदार्थ है. इस वस्त्र और सूतके समान कार्य और कारणको जो एक वस्तुरूपसे विचारना है, उसको भावाद्वैत अर्थात् भावनाका अद्वैत कहते हैं॥ ६३॥ हे राजन्। मनसे, वाणीसे और शरीरसे साक्षात् परब्रह्ममें जो सब कर्मोंका समर्पण करना है उसका नाम क्रिया अद्वैत है, फल प्राप्त होनेकी इच्छासे जो फलोंका संकल्प करते हैं, उनकी भिन्नतासे क्रियाओंकी भिन्नता हो जाती है, परंतु परमात्माको समर्पण करनेसे फलोंकी भिन्नता नहीं रहती, इसीलिये इसका नाम क्रियाद्वैत है ॥ ६४ ॥ पुत्र, स्त्री, आप और सब देहधारियोंमें जो अपने हैं और पराये हैं वह सब पञ्चभूतात्मकतासे भोक्ता भी एक परब्रह्म परमेश्वर है, उन सबके अर्थ और कामको भी एकरूपताका जो एक देखना है उसको द्रव्याद्वैत कहते हैं ॥६५॥ हे राजन् । पहिले आश्रमसम्बन्धी

यद्ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकर्मसमर्पणम् ॥ मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६४ ॥ आत्मजायासुतादीना
मन्येषां सर्वदेहिनाम् ॥ यत्स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥ ६५ ॥ यद्यस्य वानिषिद्धं स्याद्येन यत्र यतो
नृप ॥ स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥ ६६ ॥ एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ॥ गृहेऽप्यस्य गतिं
यायाद् राजंस्तद्भक्तिभाङ् नरः ॥ ६७ ॥ यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजादापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ॥ यत्पादपंकेरु
हसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥ ६८ ॥ अहं पुराभवं कश्चिद् गंधर्व उपबर्हणः ॥ नाम्नाऽतीते महाकल्पे
गंधर्वाणां सुसंमतः ॥ ६९ ॥

धर्म संक्षेपतासे कहते हैं—जिस यत्नसे, जिसके पाससे, जिस स्थानपर, जिस द्रव्यका, जिस मनुष्यके लिये शास्त्रने निषेध नहीं किया उस यत्नसे, उसके पाससे, उस स्थानपर, उस द्रव्यसे वह मनुष्य वह कर्म करे और जबतक आपत्तिकाल न हो तबतक कर्मोंको न छोडे ॥६६॥ हे राजन् । पहिले कहे हुए कर्म और वेदोक्त कर्म अथवा भगवद्भक्ति करनेसे मनुष्य घरमें बैठाहुआ भी परमपदवीको पा सकता है ॥ ६७ ॥ हे नृपेन्द्र! यह बात सर्व साधारणके लिये है और भक्तजनोंके तो भक्ति ही सब काम सिद्ध करती है. देखो! आप कैसी २ महाकठिन विपत्तियोंके समुदायोंसे बचे, यह सब वैकुण्ठविहारी कृष्णमुरारीका ही अनुग्रह था और उनहीके चरणसरोरुहकी सेवाका प्रताप था जो आपने अनेक दिग्विजय किये और सब दिशाओंमें अपनी जीतका डंका बजा दिग्गजोंको जीत, बडे भारी भारी यज्ञ किये ॥ ६८ ॥ अभिमान और महात्मा

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन मुम्बय्यां स्वकीये “ श्रीवेङ्कटेश्वर ” (स्टीम्)
मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शकः १८४५.

606

इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते सप्तमस्कन्धसमाप्तिः ॥

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय

607

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते अष्टमस्कन्धप्रारम्भः ॥

अष्टमस्कंधः

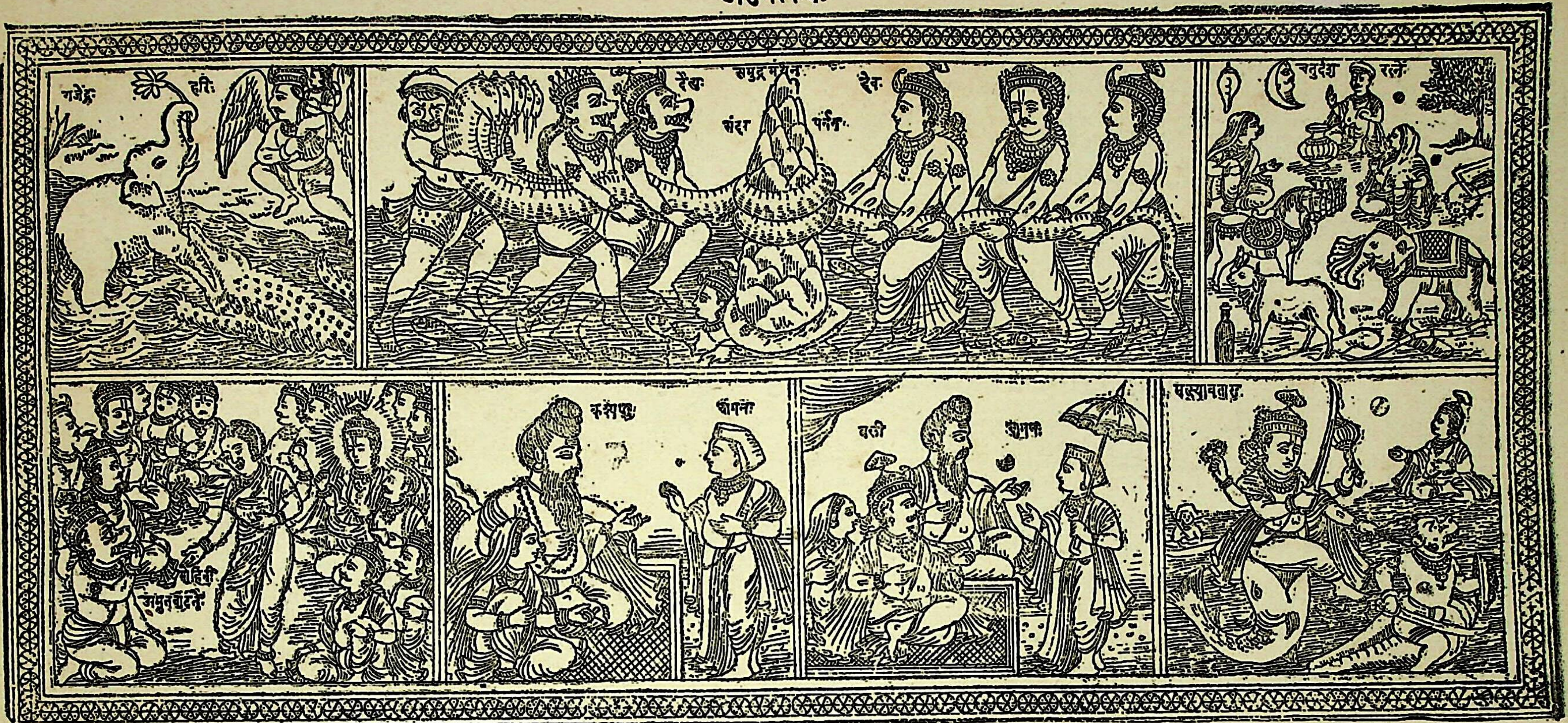
गजेंद्रः
हरिः
समुद्रमंथनम्
दैत्यः
मंदर पर्वतः
देवः
चतुर्दश रत्नं
मोहिनी
अमृतबांटनं
कश्यपः
वामनः
बली
शुक्रः
मत्स्यावतारः

सोरठा–अहो विहारीलाल,भयहारी आनँदभवन ॥ जयतिजयति नँदलाल,गोपेश्वर राधारमण ॥ १ ॥ हे व्रजेश व्रजराज,व्रजवल्लभ व्रजलाडिले ॥ राखी व्रजकी लाज, धर करपर गिरिवर अधर ॥ २ ॥ अहो लडैते लाल, कीजे कृपा कृपायतन ॥ गोपसखा गोपाल, गोपीवल्लभ गोपपति॥३॥ जटाजूट अर्द्धङ्ग,संग विराजत रात दिन ॥ कुन्द इन्दु सम अङ्ग, करहु दया दायासदन ॥ ४ ॥ दोहा–स्वायंभुव स्वारोचिष, उत्तम तामस चार । मनुओंका वर्णन करूं, प्रथमाध्याय विचार ॥ १ ॥ महाराज परीक्षित् योगीवर श्रीशुकदेवजीसे पूँछने लगे कि, हे भगवन् ! स्वायम्भुव मनुके वंशका वृत्तान्त तो हमने विस्तार सहित सुना, इस मन्वन्तरमें ही मनुकी कन्याओंमें विश्वके रचनेवाले मरीचि आदिके पुत्रपौत्रादिरूपसे उत्पन्न हुए थे, सो अब आप कृपा करके मनु लोगोंका वृत्तान्त कहना आरंभ कीजिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! उन सब मन्वन्तरोंमें हरिका महत्तर जन्म और कर्मका विवरण जो पंडित लोग कहा करते हैं, मैं उसके सुननेकी इच्छा करता हूँ, सो आप सब मुझसे कहिये ॥ २ ॥ भगवान् विश्वभावनने पिछले पिछले मन्वन्तरोंमें जो जो चरित्र किये और आगेको जो जो करेंगे और वर्तमान मन्वन्तरमें जो कुछ लीला करते हैं वह सब आप कहें ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस कल्पमें स्वायम्भुव मनु आदि छः मनु हैं, उनमेंसे स्वायम्भुव मनु कि जिसमें देवताओं आदिकी उत्पत्ति हुई; उसका वृत्तान्त तुमसे कह चुके हैं ॥ ४ ॥ भगवान् विष्णुजी धर्मज्ञानोपदेशके लिये स्वायम्भुव मनुकी आकूती और देवहूती नामक दो बेटियोंमें कपिल और यज्ञरूप जन्म ग्रहण करके उनके पुत्रत्वको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान्

ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच॥स्वायंभुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ॥ यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः॥ १ ॥ यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ॥गृणंति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥ यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः ॥ कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायंभुवादयः ॥ आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च संभवः ॥ ४ ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ॥ धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥ कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ॥ आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥ ६ ॥

कपिलजीका कार्य प्रथम वर्णन कर आये हैं और यज्ञ भगवान्‌ने जो कुछ किया उसे पीछे कहेंगे॥६॥ शतरूपाके पति यह प्रभु(मनु)कर्मयोगसे विरक्त हो, राज्यभोगको छोड़ तप करनेके लिये अपनी स्त्रीको साथ ले वनमें चले गये॥७॥उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे एक पांवसे खडे होकर सौ वर्षतक निरंतर अति कठोर तप करके विस्मितके समान हो यह वक्ष्यमाण वचन कहे थे॥८॥मनुजीने कहा था कि,स्वतः चित्स्वरूप और इसी करके प्रयुक्त जो चिदात्मा है; उससे विश्व चैतन्ययुक्त होता है,परन्तु यह विश्व उसको सचेतन करनेको समर्थ नहीं है और इस पुरुष (जीव) के शयन करनेपर जो जाग्रत अर्थात् साक्षिस्वरूप वर्तमान रहते हैं, क्या आश्चर्य है कि; यह जन उनको नहीं जानता परन्तु वह इसको जानते हैं॥९॥लोकमें जो कुछ प्राणियोंके सहित दिखाई देता है,वह सब ही ईश्वरकी सत्ता और चैतन्यसे व्याप्त है, इसलिये ईश्वरने जो कुछ

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ॥ विसृज्य राज्यंतपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥ ७ ॥ सुनंदायां वर्षशतं पदै
केन भुवं स्पृशन् ॥ तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ८॥ मनुरुवाच ॥ येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न
यम् ॥ यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नाय तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥ आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किंचिज्जगत्यां जगत् ॥ तेन
त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १० ॥ यं न पश्यति पश्यंतं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ॥ तं भूतिनिलयं
देवं सुपर्णमुपधावत॥११॥न यस्याद्यंतौ मध्यं च स्वः परो नांतरं बहिः॥विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत्॥१२॥

दान किया है,उससे ही सब भोगोंको भोगो और अपने लिये पराये दानकी वांछा न करो अथवा और किसीके पास है ही क्या धन, जो उसकी वाञ्छा करोगे ? ॥१०॥ इसके अतिरिक्त वह परमात्मा सबको देखता है परन्तु लोक अथवा किसीके भी नेत्र उसको नहीं देख सकते, क्योंकि वह नेत्रादिकका विषय नहीं है, परन्तु जैसे घटादिके नाशसे देवदत्तादिका तद्विषयक चाक्षुषज्ञान नाशको प्राप्त नहीं होता वैसे आकारोंकी उत्पन्न हुई वृत्ति ही नाशको प्राप्त होती है स्वतःसिद्ध ज्ञानका विनाश नहीं होता, क्योंकि प्रकाश्य वस्तुके विनाशसे सूर्यके प्रकाशका नाश कभी नहीं होता, इसलिये सर्व भूतोंके अन्तर्यामी असङ्ग उन ईश्वरका भजन करो ॥ ११ ॥ जिसका आदि, अन्त, मध्य,

अपना, पराया और भीतर, बाहर कुछ नहीं है परन्तु जिससे विश्वके यह सब आदि अंतप्रभृति होते हैं और यह विश्व जिसका स्वरूप है, वही सत्य और परिपूर्ण ब्रह्म है ॥ १२ ॥ वही ईश, अज, सत्य, स्वयंप्रकाश और निर्विकार है, यह विश्व उसीका शरीर है, उसके नाम बहुत हैं, वह अपनी मायासे विशेष जन्मादि विधान करते और नित्यसिद्ध विद्याके हेतु इस मायाको त्यागकर निष्क्रिय हो रहे हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे ईश्वर कर्म करके फिर उनको छोड कर्मरहित होनेसे ऋषिलोग भी अकर्म्मार्थ अर्थात मुक्तिके लिये पहले यत्न करते हैं क्योंकि जो पुरुष चेष्टा करते हैं, वह प्रायः निश्चेष्टताको पाते हैं ॥ १४ ॥ चेष्टाकारी पुरुष कर्मोंके द्वारा घिर जाते हैं, वा वह कोषकार कीडेके समान बंधनसे बँध जाते हैं इस प्रकारकी शंका नहीं की जा सकती, क्योंकि, भगवान् ईश्वर चेष्टा करते हैं और उसमें आसक्त नहीं होते, इसलिये जो

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ॥ धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह
आस्ते ॥ १३ ॥ अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहंतेऽकर्महेतवे॥ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते॥१४॥ईहते भगवानीशो
नहि तत्र विषज्जते ॥ आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदंति येऽनु तम् ॥ १५ ॥ तमीहमानं निरहंकृतं बुधं निराशिषं
पूर्णमनन्यचोदितम् ॥ नृन् शिक्षयंतं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति
मंत्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ॥ दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन् क्षुधा ॥ १७ ॥ तांस्तथावसितान् वीक्ष्य
यज्ञः सर्वगतो हरिः ॥ यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासत्त्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥

पुरुष उनकी अनुवृत्ति करते हैं वह भी आत्मलाभ होनेसे चारितार्थ हो जाते हैं और कभी उसमें आसक्त नहीं होते ॥ १५ ॥ इसलिये जो राम कृष्णादि नाना अवताररूप निजमार्गमें भलीभाँति अवस्थित हो वेदोक्त कर्माचरण करते हैं और स्वयं पूर्ण, निराशी, अहंकाररहित, स्वयं प्रभु हैं, इस कारण किसी दूसरेसे वह नियुक्त नहीं होते और जो अखिलधर्मका प्रचार करनेके लिये अपने आचारसे मनुष्योंको सिखावन देते हैं, हम उन्ही ईश्वरकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! शतरूपाके पति यज्ञमें समाधि लगाय उपनिषद्के मंत्र उच्चारण करते थे, असुर और राक्षसगण उनको देखकर अवशके समान समझ भूख लगनेसे उनके खानेको दौडे ॥ १७ ॥ वह यज्ञ

स्वयं सर्वगत हरि उन असुर और राक्षसोंका ऐसा कर्म जानते ही अपने पुत्र याम नामक देवताओंके साथ उनको मारकर आप स्वयं इन्द्र हो, स्वर्गका पालन करने लगे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अग्निका पुत्र स्वारोचिष दूसरा मनु हुआ. उसके द्युमत्, सुषेण और रोचिष्मान् प्रभृति पुत्र हुए । इस मन्वन्तरमें रोचन नाम इन्द्र और तुषितादिक देवता हुए और ऊर्जस्तम्भादि ब्रह्मवादी सप्त ऋषि हुए ॥ १९ ॥ २० ॥ इस मन्वन्तरमें वेदशिरा ऋषिके तुषिता नाम जो पत्नी थी, उसके गर्भमें इस ऋषिके विभु नाम विख्यात भगवान् उत्पन्न हुए ॥२१॥ इन विभुका चरित्र कहते हैं तुम सुनो । जब इन विभुने कौमार ब्रह्मचारी व्रत ग्रहण किया, तब अट्ठासी सहस्र (८८०००) व्रतधारी मुनियोंने उनके निकट व्रतकी शिक्षा पाई ॥ २२ ॥ प्रियव्रतका पुत्र तीसरा उत्तम नाम मनु हुआ. उसके पुत्र पवन, सृञ्जय और यज्ञहोत्रादि हुए ॥ २३ ॥ इस मन्वन्तरमें प्रमदादि सप्त ऋषि हुए वह वसिष्ठजीके पुत्र हैं. सत्य, वेदश्रुत और भद्र यह देवता हुए और सत्य जित इन्द्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी मन्वंतरमें धर्मकी सूनृता नामक भार्यासे भगवान् पुरुषोत्तम सत्यव्रतगणोंके साथ उत्पन्न हो सत्यसेनके

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ॥ द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥ तत्रेंद्रो रोचन
स्त्वासीद्देवाश्च तुषितादयः ॥ ऊर्जस्तंभादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥ ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्य
भूत् ॥ तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥२१॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ॥ अन्वशिक्षन्व्रतं
तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥ २२ ॥ तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ पवनः सृंजयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता
नृप ॥ २३ ॥ वसिष्ठतनयाः सप्तऋषयः प्रमदादयः ॥ सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥ धर्मस्य
सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥

---

* **शंका**–स्वायम्भुव मनुके खानेके लिये जो राक्षस दौडे, उसको मारकर त्रिविष्टपको भगवान्ने शिक्षा दी. सो वह त्रिविष्टप कौन था ? **उत्तर**--चोरी, जारी, जुआ इन तीन दुष्टोंसे जो तीनों लोकोंकी रक्षा करे उसका नाम त्रिविष्टप है. त्रिविष्टप नाम शास्त्रमें इन्द्रका है और दूसरा अर्थ यह है कि काम, क्रोध, लोभ इन तीन शत्रुओंसे जो त्रिलोकीकी रक्षा करे उसका नाम भी त्रिविष्टप है और सन्तोषका नाम त्रिविष्टप है, क्योंकि काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंका नाश सन्तोषके सिवाय और दूसरा कोई नहीं कर सकता. इन्द्र तो अभिमानके समुद्रमें डूबा हुआ था. यह किसीकी भी शिखावन नहीं मानता था इसलिये यज्ञभगवान्ने सन्तोषको शिक्षा दी कि, भाई ! तुम काम, क्रोध, लोभ इन दुष्टोंसे तीनों लोकोंकी रक्षा करो. यहां त्रिविष्टप नाम सन्तोषका है ।

नामसे विख्यात हुए ॥२५॥ इन्हीं सत्यसेनने इन्द्रके मित्र होकर झूँठ बोलनेवाले, दुःशील, असत्, यक्ष,राक्षसोंको और भूतद्रोही प्राणियोंको मार डाला ॥ २६ ॥ तीसरे मनु उत्तमके भ्राता तामस चौथे मनु हुए । उनके पृथु, ख्याति,नर,केतु प्रभृति दश पुत्र हुए ॥ २७ ॥ इस मन्वंतरमें सत्यक,हरि और वीर नामक देवगण व त्रिशिख नाम इन्द्र और ज्योतिर्धामादि सप्त ऋषि हुए ॥ २८ ॥ हे राजन्! तामस मन्वंतरमें ऊपर कहे हुए सत्यकादिके अतिरिक्त अतिपराक्रमी वैधृतिगण भी देवता हुए थे, जो कि विधृतिके पुत्र थे. हे महाराज! जब कालके वश होकर वेद नष्ट

सोऽनृतव्रतदुश्शीलानसतो यक्षराक्षसान् ॥ भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥२६॥ चतुर्थ उत्तमभ्राता मनु
र्नाम्ना च तामसः ॥ पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥ २७॥ सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ॥
ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेंऽतरे ॥ २८ ॥ देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ॥ नष्टाः कालेन यैर्वेदा
विधृता स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥ तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ॥ हरिरित्याहृतो येन गजेंद्रो मोचितो
ग्रहात्॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत्॥ ३१ ॥
तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥ ३२ ॥

6/10

हो रहे थे, तब इन्हीं सब देवताओंने अपने अपने तेजसे उन सबको धारण किया था ॥ २९ ॥ जिन्होंने ग्राहके मुखसे गजेंद्रको छुडाया था, उन भगवान् विष्णुनेभी हरिमेधाकी हरिणी नाम स्त्रीके उदरसे इसी मन्वंतरमें जन्म लिया और वह हरि नामसे विख्यात हुए थे॥३०॥राजा परीक्षित बोले कि, हे व्यासनन्दन! ग्राहसे पकडे हुए गजेंद्रको भगवान् हरिने किस प्रकारसे छुडाया था, उस कथाको मैं आपके मुखसे विस्तारसहित सुना चाहता हूँ ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! जिसमें उत्तमश्लोक भगवान् हरि गाये जाते हैं, वह कथा अतिशय पवित्र, धन्य, शुभदायक और मंगलकारी

है ॥ ३२ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणगण । जब इस प्रकार प्रायोपविष्ट व्रत धारण कर राजा परीक्षित्‌ने योगिश्रेष्ठ शुकदेवजीसे भगवत्कथा
कहनेके लिये प्रार्थना की, तब उन व्यासपुत्रने श्रवण करनेवाले मुनियोंकी सभामें राजा परीक्षित्‌के वचनोंपर आनन्द प्रगट करके कथाका
आरम्भ किया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–दूजेमें करि कारिनियुत,जलमें करत
विहार । जब पकडो गज ग्राहने,तब गज करी पुकार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवमुनि बोले कि,हे राजन् ! त्रिकूट नामक एक प्रधान पर्वत है, वह पर्वत
अतिशय श्रीमान् और चारों ओर क्षीरसागरसे घिरा हुआ है और दश सहस्र योजन ऊँचा है ॥१॥ और चारो ओरको उसका विस्तार भी दशसे
सहस्र योजनका है,वह पर्वत अपने चाँदी सोने और लोहेके तीन बडे२ शृंगोंसे समुद्र और सब दिशाओंको शोभायमान कर रहा है,इसीलिये उसका
नाम त्रिकूट हुआ है॥२॥त्रिकूट पर्वतके और दूसरे शिखर अनेक भाँतिके रत्न और धातुओंसे चित्रित हैं। उन शिखरोंसे और विविध भाँतिकी
लता, बेळ, झाडी और वृक्षोंसे झरनोंके गिरते हुए जलके शब्दसे सब दिशाओंकी शोभा होरही है॥३॥और जलकी तरंगसे इस पर्वतका मूलभाग
धुलनेसे पलाशके समान रंगवाली मरकत मणिसे निकटकी भूमि मानो श्यामवर्ण होरही है ॥ ४॥ इस पर्वतकी कन्दरायें क्रीडा करते हुए सिद्ध,
चारण, गंधर्व, विद्याधर, बड़े २ नाग,किन्नर और अप्सराओंसे सदा ही परिपूर्ण रहती हैं ॥ ५ ॥ इस पर्वतकी जो कंदरायें ऊपर कहे हुए किन्नर

सूत उवाच॥ परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः॥उवाच विप्राः प्रतिनंद्य पार्थिवं मुदा मुनीनां
सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० अष्ट० मन्वंतरानुचरितादिप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः॥क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥ तावता
विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृंगैः पयोनिधिम् ॥ दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥ अन्यैश्च ककुभः सर्वा
रत्नधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झरांभसाम् ॥ ३ ॥ स चावनिज्यमानांघ्रिः समंतात् पयऊर्मिभिः ॥
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥४॥ सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरमहोरगैः ॥ किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकंदरः ॥ ५ ॥ यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ॥ अभिगर्जंति हरयः श्लाघिनः परशंकया ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥

इत्यादिके संगीतशब्दसे शब्दायमान हैं उनमें इसी स्थानके रहनेवाले मदगर्वित सिंहोंके झुण्ड दूसरे सिंहोंकी आशंकासे उस शब्दको न सहकर गर्जन करते हैं ॥६॥ और इस पर्वतकी सब गुफायें विविध भाँतिके बनैले पशुओंके समूहसे सदा भरपूर और उनके व्याप्त रहनेसे मानो स्वयं (आपही) सज रही हैं । त्रिकूट पर्वतके ऊपर जो देवता लोगोंकी फुलवाड़ियें हैं, उनके भाँतिभाँतिके चित्र विचित्र पुष्पोंके वृक्ष लग रहे हैं, उनपर बैठे हुए रंग रंगके विहंग निरन्तर मधुर२ बोलियें बोल रहे हैं ॥ ७॥ यह पर्वत अनेक निर्मल नदी और सरोवरोंसे भूषित है, उन सब नदी और सरोवरोंके किनारे मणिमय बालू बिछा हुआहै- देवताओंकी स्त्रियें जब उन नदी और सरोवरोंमें स्नान करती हैं तब वहां अति सुगंध फैल जाती है कि, जिससे वहांके जलमें और पवनमें सुगंध होजाती है॥८॥हे राजन् ! उस पर्वतकी गुफामें महात्मा वरुणजीका एक उपवन है,

नानारण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः ॥ चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकंठविहंगमः ॥ ७ ॥ सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणि
वालुकैः॥ देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभांब्वनिलैर्युतः ॥ ८ ॥ तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥ उद्यानमृतुमन्नाम
आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ॥ ९ ॥ मंदारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचंपकैः ॥
चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ॥ १० ॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ मधूकैः सालतालैश्च तमालै
रसनार्जुनैः ॥ ११ ॥ अरिष्टोदुंबरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥ पिचुमंदैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ॥१२॥द्राक्षेक्षुरं
भाजंबूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ बिल्वैः कपित्थैर्जंबीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ॥ १३ ॥

उसका नाम ऋतुमत् है और वहां देवता लोगोंकी स्त्रियें क्रीडा करती हैं और वहांके वृक्षोंमें सब दिन फलफूल लगे रहते हैं कि, जिससे यह उद्यान (बाग) सदा सब प्रकारसे शोभायमान रहता है ॥ ९ ॥ हे महाराज ! इस त्रिकूटपर्वतके ऊपर कितने वृक्ष हैं,उन सबका वर्णन मैं नहीं कर सकता,मन्दार, पारिजात, पाटल, अशोक, चम्पा, आम, चिरौंजी, कटहर, आम्र, आम्रातक॥ १० ॥सुपारी, नारियल, खजूर, दाड़िम, महुआ, साल, ताल, तमाल, पीतसाल, अर्जुन ॥ ११ ॥ रीठा, गूलर, पिलखन, बड, ढाक,चन्दन,नीम,कचनार, पिचुमन्द, कोविदार स्वरूपा, देवदारु ॥ १२ ॥ दाख, किसमिस,ईख, केला, जामुन, बेरी, बहेडा, हड,आमला, कपित्थ, बेल,जंभीरी और भिलावे आदि असंख्य वृक्षोंसे यह

पर्वत शोभायमान है ॥ १३ ॥ इस त्रिकूट पर्वतपर एक बडा भारी सरोवर है, उसमें सुवर्णके कमल सदा प्रकाशमान रहते हैं और अगणित कुमुद (बबूले), कह्वार, कमल और शतपत्रकी शोभासे यह अति उद्दीप्त है और यह सरोवर मतवाले भौंरोंके शब्दसे शब्दायमान है ॥ १४ ॥ और मधुर बोली बोलनेवाले विशेष करके हंस,कारंडव,चक्रवाक और सारसोंसे व्याप्त था,व जलमुर्गबी, पपीहे,दादुर इनके समूह भी वहां गूँज रहे हैं॥१५॥और मच्छ व कछुए इस प्रकारसे पैरते हैं कि,जिनसे कमलके फूल हिल जाते हैं और उनके परागसे सरोवरका जल विभूषित हो जाता है.उसके चारों ओर कदम्ब,बेंत,नरसल,लोटन,कदम्ब,धूलिकदम्ब,दाडिम,बेल ॥ १६ ॥ कुन्द,कुरबक,अशोक, शिरस, कुटज, गोन्दी,अर्जक,

तस्मिन्सरस्सुविपुलं लसत्कांचनपंकजम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ॥ मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ १४ ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १५ ॥ मत्स्यकच्छपसंचारचलत्पद्मरजःपयः ॥ कदंबवेतसनलनीपवंजुलकैर्वृतम् ॥ १६ ॥ कुंदैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेंगुदैः ॥ कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १७ ॥ मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ॥ शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलंद्रुमैः ॥ १८ ॥ तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ॥ सकंटकान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मंप्ररुजन्वनस्पतीन् ॥ १९ ॥

स्वर्णजुही, नागकेशर, पुन्नाग इस जातिके॥१७॥जाही, जुही, चमेली,कमल,माधवी, मालती, गन्धराज,मदनबाण, चाँदनी,कनेर,सेवती,गुलाब, मोतिया, गेंदा, हारसिंगार,ऐचक,पेचक,मौलसिरी,जालक अनेक अनेक लताओंके रहनेसे वह सरोवर चारो ओरसे घिरा हुआ है. इनके अतिरिक्त और जो पेड किनारे पर हैं, उन सब पर सदा फल फूलोंके रहनेसे वहां सब ऋतुयं नित्य वर्त्तमान हैं, इस कारण इन वृक्षोंके लगे रहनेसे वह सरोवर अत्यन्त ही शोभायमान है ॥ १८॥ वहांपर एक दिन पर्वतके वनमें रहनेवाला हाथियोंके यूथका पालन करनेवाला बडे बलवाला हाथी हथिनियोंके सहित विचरण करता हुआ प्याससे पीडित अपने यूथको साथ ले जल पीनेको सरोवरके निकट आया. वह कांटोंके

सहित कीचक, ठोस बांस और बैंतोंसे युक्त बडी बडी लताओंके समूह और बडे २ वृक्षोंको तोडता चला आता था ॥ १९ ॥ उसका ऐसा प्रताप था कि, उसकी गंध पाते ही सिंह, गजेन्द्र, व्याघ्रादि और गैंड, कृष्ण सांप, शलभ, कूल और चमरगाय भयके मारे भागने लगे *॥२०॥ परंतु भेडिया, सुअर, भैंसे, रीछ, मेह लंगूर, कुत्ता, बंदर, हरिण, खरगोश आदि जो क्षुद्र जीव हैं यह उसकी दृष्टि बचाकर उसके अनुग्रहसे निर्भय होकर विचरण करते हैं ॥ २१ ॥ यह गजेन्द्र ग्रीष्मसे संतापित हो प्यासका मारा अपने यूथको साथ लिये अतिवेगसे इस सरोवरके निकट आया। उसके साथमें बहुत हथिनियें थीं और मद चुआते हुए बहुत सारे बच्चे भी दौडकर पीछेसे आ रहे थे. वह गजेन्द्र ऐसे बडे भारी दलको साथ लेकर निकला कि उसके भारसे त्रिकूट पर्वत सब प्रकारसे कम्पायमान होगया. इसके गण्डस्थलसे जो मद चू रहा था, उसमें मदका जल पीनेवाले भौंरे उसकी सेवा कर रहे थे ॥ २२ ॥ इस सरोवरकी वायु जो कमलके परागसे सुवासित होकर आती थी, उसकी सुगंधको पाकर उस गजेंद्रके दोनों नेत्र मदके मारे विह्वल हो रहे थे॥२३॥यूथपति सरोवरपर जा स्नान कर अपने ऊपर जल छिडक २

यद्गंधमात्राद्धरयो गजेंद्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाश्च खड्गाः ॥ महोरगाश्चापि भयाद्द्रवंति सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥ २० ॥ वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छसालावृकमर्कटाश्च ॥ अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरंत्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २१ ॥ स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः। गिरिं गरिम्णा परितः प्रकंपयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २२ ॥ सरोऽनिलं पंकजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ॥ वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम्॥२३॥विगाह्य तस्मिन्नमृतांबु निर्मलं हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ॥ पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥ २४ ॥

6/2

---

* शंका—हाथियोंका अभिमान भंग करनेवाले जो सिंह हैं सो सब उस गजके देहकी सुगंधको सूँघकर बनको छोड इधर उधर भाग गये, बडे आश्चर्यकी बात है, एक सिंहको देखकर हाथियोंके यूथके यूथ भाग जाते हैं फिर एक हाथीकी गंधको सूँघकर सब वनके सिंह क्यों भाग गये?

उत्तर—आपका कहना बहुत सत्य है, सिंहके सामने हाथी नहीं ठहर सकते, बरन् सिंहके वनमें हाथी जाते भी नहीं यह बात जो प्राकृत हाथी होता है उसकी है और यह हाथी तो तपस्वी था, शापसे हाथी होगया था परन्तु इसको रात दिन इसका पूर्वजन्मका तप रक्षा करता था उस तपकी अग्निके गन्धसे सब सिंह भाग गये ॥

थकावटको मिटाकर फिर काञ्चन कमल और उत्पलरेणुसे सुगंधित निर्मल और मीठा जल शुण्डमें भरकर पीने लगा ॥२४॥ इसके उपरांत शुण्डमें भरे शीतल जलसे वह दयावान् गृही पुरुषोंकी नाईं अपनी हथिनियों और बच्चोंको स्नान कराने लगा और जल भी पिलाया. वह गजेन्द्र अतिशय दुर्मद और परमेश्वरकी मायासे मोहित था, इस कारण इस कार्यके करनेसे दूसरे किसीको जो बडाभारी कष्ट होता था उसको वह नहीं जान सका ॥२५॥ परन्तु हे राजन्! इसी सरोवरमें एक बलवान् ग्राह (नाका) रहता था, थोडी ही देरके पीछे उसने देवप्रेरितके समान आय विजातीय क्रोधसे इस गजेन्द्र (हाथी) के पैरको झपटकर पकड लिया. यह यूथपति भी अतिबलवान् था. जब यह इस प्रकारकी विपदमें पडा, तब अपने छुटकारेके लिये यथासाध्य विक्रम प्रकाश करने लगा ॥ २६ ॥ ग्राहमें भी थोडा बल नहीं था, इसने भी उत्तेजित हो महावेगसे गजेन्द्रके चरणको खैंचना आरम्भ कर दिया, यह देखकर हथिनियें हीनमन हो केवल हाहाकार करने लगीं व और:जो हाथी थे वह इस गजेन्द्रको पकड रहे थे, परन्तु उस ग्राहके बलसे इसको छुडानेके लिये समर्थ न हुए ॥ २७ ॥ हे राजन्! इस प्रकार गजेन्द्र और ग्राह दोनोंका महाघोर युद्ध हुआ। वह दोनों एक दूसरेको जलके बाहर भीतरको खींचते थे, इस प्रकारसे एक सहस्र वर्ष बीत गये परन्तु इस बीचमें किसीके भी प्राण न गये, हाथी भी जीवित रहा और ग्राहके प्राण भी न निकले, तब देवतालोग यह बात देखकर अति आश्चर्य करने लगे ॥ २८ ॥ इसके उपरांत बहुत कालके पीछे गजेन्द्रका उत्साह, शारीरिक बल, शक्ति और इंद्रियोंका वीर्य घटने लगा इससे ग्राहसे

स पुष्करेणोद्धृतशीकरांबुभिर्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ॥ घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽज
मायया ॥ २५ ॥ तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् ॥ यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथा
बलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥२६ ॥ तथातुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ॥ विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे
गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २७॥ नियुध्यतोरेवमिभेंद्रनक्रयोर्विकर्षतोरंतरतो बहिर्मिथः ॥ समाः सहस्रं
व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २८ ॥ ततो गजेंद्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः ॥
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥ २९ ॥

जलमें खींचे जानेपर वह गजेन्द्र व्याकुल होने लगा, परन्तु उस नाकेकी उत्साहशक्ति क्रम २ से बढती ही जाती थी ॥ २९ ॥ यह यूथपति देहधारी इस हेतुसे जब इस प्रकार प्राणोंके संकटको प्राप्त हुआ और किसी प्रकारसे अपनेको नहीं छुडा सका तब बहुत देरतक चिंता करता रहा, इसके पीछे उसके मनमें यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥ ३० ॥ कि मैं अत्यंत व्याकुल होगया हूँ और मेरी जातिवाले हाथी भी मुझको छुडानेको समर्थ नहीं हैं और मैं स्वयं भी समर्थ नहीं हूँ फिर इसकी क्या आशा कीजाय कि, यह हथिनियें मुझे छुडावेंगी १ मैं ग्राहरूप विधाताकी फाँसीसे बँध गया हूँ, इस फाँसीसे यद्यपि मुझको कोई नहीं छुडा सका; तथापि जो ब्रह्मादिक देवगणोंके आश्रय हैं, उन शुद्ध सच्चिदानंद परब्रह्म परमेश्वरकी मैं शरण होता हूँ ॥ ३१ ॥ वह अनिर्वचनीय ईश हैं, अत्यंत प्रचण्ड वेगसे दौडते हुए बलवान् मृत्युरूप सर्पसे डरकर जो उनकी शरणमें आते हैं, वह उनकी रक्षा करते हैं, उनके भयसे मृत्यु भी भागती है. मैं उनकी ही शरणमें जाता हूँ ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां गजेन्द्रोपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–जिन हरिकी सुस्तुति करी, जब गजेन्द्र बहु बार । तिसरेमें गजराजको, उन हरि लियो उबार ॥ १ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजा परीक्षित ! उस गजेन्द्रने बुद्धिसे इस प्रकार

इत्थं गजेंद्रः स यदाप संकटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ॥ अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३० ॥ न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवंति मोचितुम् ॥ ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३१ ॥ यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचंडवेगादभिधावतो भृशम् ॥ भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० अष्टमस्कंधे मन्वंतरानुवर्णने गजेंद्रोपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ॥ जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

---

१ सवैया–जो अति आरत मैं विनती बहु बार करी करुणा रसभीनी । कृष्ण कृपानिधि दीनके बंधु सुनी असुनी तुम काहेको कीनी ॥ रीझते रंचकही गुणसों वह, बानि बिसारि मनो अब दीनी । जानि परी तुमहूँ प्रभुजी कलिकालके दानिनकी गति लीनी ॥ १ ॥

निश्चय करके हृदयमें अपने मनको सावधान किया और पूर्वजन्ममें जो इन्द्रद्युम्न नामक राजा था और यह स्तोत्र अपना सीखा हुआ था, उसका उसने जप करना आरंभ किया ॥ १ ॥ गजने कहा कि, मुझको ग्राहने पकडा है, इस कारण ऐसी शक्ति नहीं कि मैं कायिक प्रणाम कर सकूं इस लिये उन भगवान्के प्रति केवल प्रशांतिका ध्यान करता हूँ। मैं उनके विषयमें अनजान नहीं हूँ। उनसे ही यह समस्त देहादि सचेतन हुए हैं, क्योंकि वह पुरुष अर्थात् देहरूप पुरमें कारणत्वरूपसे प्रविष्ट हैं और वही प्रकृति पुरुषरूपी और

गजेंद्र उवाच ॥ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ॥ पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥ यस्मिन्निदं
यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ॥ योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥ ३ ॥ यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ॥ अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥ कालेन
पंचत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ॥ तमस्तदासीद्गहनं गभीरे यस्यास्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥

परम ईश्वर हैं॥ २॥ और जिसमें यह विश्व अधिष्ठित है और जिससे यह उत्पन्न है और जिस करके यह स्पष्ट और जो स्वयं इस विश्वके रूप हैं, कार्य और कारणसे भिन्न हैं, उन स्वतःसिद्ध विभुकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ जिसकी निजमाया उसमें ही (ईश्वर) अर्पित है, यह विश्व कभी लीन होता है, कभी प्रकाशमान होता है, जो साक्षी होकर कार्य और कारण दोनोंहीको सदा देखते हैं, क्योंकि उनकी सृष्टि अद्भुत है, वह स्वयंप्रकाश परात्पर अर्थात् प्रकाशक जो चक्षुरादि हैं, उनके भी प्रकाशक हैं, वह परमेश्वर मेरी रक्षा करें * ॥ ४ ॥ कालके वश समस्त लोक और सबके कारण लोकपाल संपूर्णरूपमें विनाशको प्राप्त होनेपर उस समय जो दुर्भेद्य

---

* **शंका**-थोडासा काम था जिसके लिये भगवान् आप दौडकर आये और गजेंद्रको छुडाया, यह बडे आश्चर्यकी बात है? इतना काम तो किसी देवताको भी भेज करा देते तो हो जाता, ऐसा क्या ग्राह दूसरा रावण था ?

उत्तर-ज्ञान, वैराग्य, यज्ञ, तप, दान आदि जो सुन्दर कर्म, उन कर्मों करके पुकारे ए जो भगवान् सो शीघ्र प्रगट नहीं होते, परंतु भगवान्का नाम लेकर जो कोई प्राणी पुकारता है तो भगवान् ऐसे दौडते हैं जैसे वत्सका शब्द सुनके गाय दौडती है, इसलिये गजेंद्रने भगवान्का नाम लेकर पुकारा, तब अपने भगवान् नामको सुनकर शीघ्र दौडे ।

अनन्त अन्धकारमात्र थे, विभु उस अन्धकारराशिके पार रहकर विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥ देवगण और ऋषिगण भी जिसके स्वरूपको नहीं जानते, फिर आज कलका और कौन प्राणी उसके जानने वा कहनेको समर्थ होगा ? वह नटके समान अनेक आकार धारण कर चेष्टा किया करता है, उसका चरित्र जानना अति दुर्लभ है, वह मेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ सब प्राणियोंके सुहृद् साधुगण चित्तके मंगलकारी चरणोंका दर्शन करनेकी वासनासे सब प्राणियोंमें समान दृष्टि कर बलमें अक्षत ब्रह्मचर्य व्रतका आचरण करते हैं वही परमात्मा हमारी गति होवें ॥ ७ ॥ और जिसका जन्म कर्म नहीं, नाम रूप नहीं, गुण दोष नहीं, तथापि लोककी उत्पत्ति और विनाशार्थ जो अपनी मायासे समय समयमें यह समस्त (जन्मादि) स्वीकार करते हैं, मैं उन भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ॥८॥ वह अरूप ब्रह्म हैं, और वही बहुरूपी व अनन्त शक्तिमान् हैं, क्योंकि उसके सब कर्म अति आश्चर्यकारी हैं इसलिये मैं उस परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ ॥९॥ वह सबका प्रकाशक है, इसलिये वह आप दूसरे प्रकाशका विषय नहीं है और वह परमात्मा अर्थात् जीवका नियन्ता है. उसको मेरा नमस्कार है. वह वाणी मन और चित्तकी वृत्तिमें आनेके योग्य नहीं है, उनको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ परंतु वह इस प्रकारके होकर भी निर्गुण और शुद्ध संन्यासयोगसे प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ करते हैं, उस कैवल्यनाथको मैं नमस्कार करता हूँ. उसका स्वरूप मोक्षके आनंदका अनुभव करनेवाला है ॥ ११ ॥ और वह शांत, घोर, मूढ़ और

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जंतुः पुनः कोऽर्हति गंतुमीरितुम् ॥ यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स माऽवतु ॥६॥ दिदृक्षवो यस्य पदं सुमंगलं विमुक्तसंगा मुनयः सुसाधवः ॥ चरंत्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥ न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ॥ तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥ तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥ नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ॥ नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥ सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ॥ नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥ नमः शांताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ॥ निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥

6/4.

सत्त्वादि धर्मानुकारी हैं,उनका विशेष नहीं है, वह समस्तरूपी और ज्ञानघन हैं,मैं उनको नमस्कार करता हूँ॥ १२ ॥ भगवन् ! आप क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सर्वाध्यक्ष और सर्वसाक्षी हैं,मैं आपको नमस्कार करता हूं. हे प्रभो ! आप क्षेत्रज्ञ सबके मूल हैं और मूलके भी(प्रधानके भी)उत्पन्न होनेके हेतु हैं क्योंकि आप पूर्णस्वरूप हैं,इससे मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! आप सब इंद्रियोंके विषय देखनेवाले हैं और सब इंद्रियोंके वृत्ति आप जानते हैं, असत् जो अहंकार प्रपंच है, उस करके असत्‌रूप छायाद्वारा आप कहलाये जाते हैं अर्थात् प्रतिबिम्बद्वारा बिम्बके समान सुकड जाते हैं क्योंकि विषयमें आपका सद्रूप आभास विद्यमान रहता है, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आप सर्व कारणरूपी हैं इसलिये स्वयं निष्कारण हैं । परंतु कारण होनेपर भी मृत्तिकादिके समान आपको विकार नहीं होता,अर्थात् आप

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ॥ पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥ सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्य
यहेतवे ॥ असता छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमोनमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ॥
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥ गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ॥
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥ मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिक
रुणाय नमोऽलयाय ॥ स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥

अद्भुत कारण हैं और जो पंचरात्रादि आगम और वेद हैं,उन सबके महासागर अर्थात् सोते हैं, सबके समान पर्यवसानस्थान और मोक्षरूपी हैं, इसलिये उत्तम साधुजनोंके आश्रय आपको मैं मनस्कार करता हूँ ॥१५॥ हे भगवन् ! आप गुणरूप अरणिसे ढके हुए हैं, ज्ञानाग्निस्वरूप हैं, परन्तु उन सब गुणोंका कार्य आपके मनकी वृत्तिमात्र नहीं है । जो लोग आत्मतत्त्वके विचारसे विधिनिषेधरूप आगम छोडते हैं उनके बीचमें आप स्वयं प्रकाश पाते हैं, सो आपको मेरा नमस्कार है ॥ १६॥ प्रभो ! मेरे समान शरण आये पशुकी त्रास (अविद्या) आपके संमुख छूट जाती है क्योंकि आप मुक्त और आपकी करुणा अपार है, अधिक करके करुणा बांटनेके विषयमें आपको आलस्य नहीं है,इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो ! समस्त देहधारियोंके अंतरमें प्रस्थित जो ज्ञान है, आप अंतर्यामी रूपसे उसके स्वरूप हैं, और सब प्राणियोंके

प्रतीत करानेको समर्थ हैं और शरीरधारियोंके अन्तःकरणमें जो स्थित हो रहे हैं इससे परिच्छिन्न नहीं हैं, सो आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! आप अंतर्यामी हैं, तथापि देह, पुत्र, गृह, वित्त सेवक इत्यादिमें आसक्त पुरुष आपको नहीं पा सकते, क्योंकि आप गुणसंगवर्जित हैं इसलिये देहादिमें अनासक्त मनुष्यलोग ही आपकी चिंता किया करते हैं, आप ज्ञानात्मा ईश्वर हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ अहो ! धर्म, अर्थ, काम व मुक्तिके कामी पुरुष जिनका भजन करके केवल अपने २ अभिलाष किये धर्मादिकोंको ही प्राप्त नहीं किंतु होते उनके अकामना किये हुए उनके अतिरिक्त और आशिष और अव्यय देह भी जो स्वयंप्रदान किया करते हैं, वह भगवान् महाशय दयावान्

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसंगविवार्जिताय ॥ मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने
भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥ यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजंत इष्टां गतिमाप्नुवंति ॥ किंत्वाशिषो रात्यपि देह
मव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥ एकांतिनो यस्य न कंचनार्थं वांछंति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ॥
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायंत आनंदसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥ तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगग
म्यम् ॥ अतींद्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनंतमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ॥
नामरूपविभेदेन फल्गव्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥

6/5

जो हैं वह केवल मुझको इस ग्राहसे छुड़ावें और मैं कुछ कामना नहीं करता॥ १९ ॥ मैं भक्तिके सुखको नहीं जानता इसलिये मैंने केवल इतनी ही प्रार्थना की और जो लोग उसके एकांत भक्त हैं, मुक्त पुरुषोंकी सेवा करके कामना रहित हो गये हैं, इसलिये केवल उसका सुमंगल चरित्र गान करके आनंदके समुद्रमें मग्न रहते हैं, वह किसी अर्थकी वांछा नहीं करते ॥ २० ॥ वह परेश, अक्षर, अव्यक्त, परब्रह्म, आध्यात्मिक योगसे गम्य, सूक्ष्म पदार्थके समान इन्द्रियोंकी दृष्टिमें न आनेवाले, बाहिरी दृष्टिमें सबसे अति दूर, अनंत, आद्य और परिपूर्णस्वरूप जो हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ॥ २१ ॥ जिसके अति छोटे अंशमें समस्त वेद, ब्रह्मादि देव और चराचर लोक पृथक् २ नामवाले होकर बने हुए हैं॥ २२ ॥

और जिस प्रकार अग्निसे लपट और सूर्यके किरणसमूह उत्पन्न होते हैं और उसमें ही लीन होजाते हैं वैसे ही जिससे गुणप्रवाह अर्थात् बुद्धि, मन और शरीर उत्पन्न होते हैं और उसीमें लीन होजाते हैं॥२३॥वह देव नहीं, दानव नहीं,मनुष्य नहीं,पशु नहीं, पक्षी नहीं, स्त्री नहीं,पुरुष नहीं, नपुंसक नहीं और लिंगत्रयशून्य प्राणिमात्र भी नहीं है और गुण नहीं, कर्म नहीं, सत् नहीं, असत् नहीं, सब पदार्थोंके निषेधके अवधित्वरूपमें जो बचा रहता है, परंतु वह मायासे अशेषात्मा है, वह भगवान् मेरे छुडानेके लिये शीघ्र प्रगट हो ॥ २४ ॥ मैं इस ग्राहसे शरीरके छुडाने और इसके बचानेकी इच्छा नहीं करता क्योंकि भीतर बाहरमें घिरे इस गजजन्मसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है, आत्माके प्रकाशका ढकना जो अज्ञान है; मैं उस अज्ञानसे मोक्षकी इच्छा करता हूँ क्योंकि कालसे मोक्षका नाश कभी नहीं हो सकता,

यथाऽर्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यांति संयांत्यसकृत्स्वरोचिषः॥तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीर सर्गः॥२३॥स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्‌ न स्त्री न षंढो न पुमान्न जंतुः॥ नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयता दशेषः ॥ २४ ॥ जिजीविषे नाहमिहाऽमुया किमंतर्बहिश्चावृतयेभयोन्या॥ इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्म लोकावरणस्य मोक्षम्॥२५॥सोऽहं विश्वसृजां विश्वमविश्वं विश्ववेदसम्॥विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम्॥ ॥ २६ ॥ योगरंधितकर्माणो हृदि योगविभाविते ॥ योगिनो यं प्रपश्यंति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥

अथवा देहके नाशसे देहका बंधन अवश्य ही नष्ट होगा, फिर मोक्षकी प्रार्थनाका क्या प्रयोजन है? आत्मप्रकाशका ढकना जो कालसे भी नष्ट नहीं होता, जो केवल ज्ञानको नाश करनेवाला है, उससे ही छुटकारा हो ॥ २५ ॥ जिसके निकट यह प्रार्थना करता हूँ उसको मैं नहीं जानता.वह संसारको रचनेवाला विश्वरूप और विश्वके अतिरिक्त है। विश्व उसका उपकरण है, वह विश्वका आत्मा है और अज ब्रह्म और परमपद स्वरूप है, मैं केवल उस योगेश्वर भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ भगवद्धर्म रूप योगसे जिनके समस्त कर्म भस्म होगये हैं; ऐसे योगी मनुष्य योगसे शुद्ध हुए हृदयमें जिनको देखते हैं मैं उन योगेशको प्रणाम करता हूँ ॥ २७॥

हे भगवन्! आपको नमस्कार! नमस्कार ! ! आपकी तीन शक्तियोंका वेग अर्थात् रागादि अतिशय असह्य हैं. आप सब इन्द्रियोंमें शब्दादि विषय स्वरूपसे प्रतीयमान होते हैं, इस कारण जिनकी इन्द्रियें कुत्सित हैं, वह आपके मार्गको नहीं पा सकते हैं ॥ २८॥ अहो! जिनकी मायाके वश अहंबुद्धिसे आवृत अपनी मायाको यह पुरुष नहीं जानता है,उनका माहात्म्य अति दुरंत हैं, उन्हीं भगवानकोमैं प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! वह गजेन्द्र इस प्रकारसे मूर्तिभेद न करके परम तत्त्वका वर्णन करता रहा. ब्रह्मादि देव गण पृथक् २ मूर्तिके अभिमानी हैं इस कारण उसके छुडानेको जब वहां न गये, तब अखिलके आत्मा, अकारण, सर्वदेवमय भगवान् हरि

नमोनमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ॥ प्रपन्नपालाय दुरंतशक्तये कदिंद्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥
नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याऽहंधिया हतम् ॥ तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवंतमितोऽस्म्यहम् ॥२९॥ श्रीशुक उवाच ॥
एवं गजेंद्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिंगभिदाभिमानाः ॥ नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्रा
खिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥ तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ॥
छंदोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेंद्रः ॥ ३१ ॥ सोंऽतःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा
गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ॥ उत्क्षिप्य सांबुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥

6/8

स्वयं प्रगट हुए ॥ ३० ॥ जगन्निवास भगवान् उस गजेंद्रको इस प्रकार आर्त देखकर और स्तुति करनेवाले देवता लोगोंके समूहके साथ उसकी कीहुई स्तुति सुनकर चक्रायुध धारण किये और गरुडपर सवार हुए जहां वह गजेंद्र व्याकुल होरहा था वहांको अतिशीघ्रतासे चले ॥ ३१ ॥ गजेंद्र सरोवरके भीतर महाबलवान् ग्राह (नाका) से अतिशय आर्त होरहा था, वह आकाशमें गरुडके ऊपर चक्रधारी भगवान्को देखकर कमलके फूलके साथ अपनी शुण्डाको उठाता हुआ और अतिकष्टसे "हे नारायण! हे अखिलगुरो ! ! हे भगवन्! ! ! आपको मेरा नमस्कार है" यह वाक्य कहने लगा ॥ ३२ ॥

भगवान् उसको अत्यन्त पीडित देखकर दयाके कारण अपने मनहीं मन कहने लगे कि "गरुड तो धीमी चालवाला है" इस कारण ऊपरसे सहसा उतर पडे और वहाँ वेगसे गजेंद्रके निकट जाय नाके सहित उसको सरोवरसे निकाल लिया. उसके पीछे दर्शनकारी देवता लोगोंके सामने चक्रसे उस ग्राहका वदन विदारण कर गजेंद्रको छुड़ा दिया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां गजेन्द्रमोक्षवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–चौथेमें गंधर्व बन, ग्राह गयो निजधाम । गजको अपने संग ले, परम धाम गये सम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उस समय ब्रह्मा, महेश इत्यादि देवगण, ऋषिगण, गंधर्वगण भगवानके इस कार्यकी प्रशंसा

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ॥ ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेंद्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥३३॥ इति श्रीमद्भाग० म० अष्टमस्कंधे गजेंद्रोपाख्याने गजेंद्रमोक्षणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदा देवर्षिगंधर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥ मुमुचुः कुसुमासारं शंसंतः कर्म तद्धरेः ॥१॥ नेदुर्दुंदुभयो दिव्या गंधर्वा नन्नृतुर्जगुः ॥ ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ॥ मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥३॥ प्रणम्य शिरसाऽधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ॥ अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥

करते करते फूल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ स्वर्गमें नगाडे बजने लगे, गन्धर्व नाचने गाने लगे, ऋषि और चारण व सिद्धगण उन पुरुषोत्तम भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ हे राजन् ! हूहू नामक जो गन्धर्व था, वह देवल मुनिके शापसे यह ग्राह हुआ । जैसे ही भगवान्ने चक्रसे उसका हृदय विदारण किया वैसे ही वह आयुरहितहो अतिशीघ्र पापसे छूटकर अपना परम आश्चर्यमय गंधर्वरूप धारण करता हुआ ❋ ॥ ३ ॥ और उत्तमश्लोक अव्यय अधीश्वर भगवान्को मस्तक झुका प्रणाम करके उनके गुण गान करने लगा. हे राजन् ! भगवान्

❋ एक समय यह गन्धर्व अपनी स्त्रियोंको साथ लिये हुए सरोवरमें क्रीडा करता था, उसी समय उस सरोवरमें देवल ऋषि स्नान करने लगे तब गन्धर्वने जलमें गोता लगाय इन मुनिको चरण पकडकर

विष्णु परमयशके आश्रय हैं,इसलिय उनका गुण कीर्तन करनेके योग्य व उनकी सब कथायें भी श्रेष्ठ और कहनेके योग्य हैं ॥४॥ इसके उपरान्त भगवान्के कृपा करनेपर उस गंधर्वने उनको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा करके निष्पाप होगया और दर्शनकारी सब लोगोंके सम्मुख अपने गंधर्वलोकको चला गया ॥ ५ ॥ और यह गजेंद्र श्रीनारायणके स्पर्श करनेसे अज्ञान स्वरूप बन्धनसे छूट पीतवसन और चार भुजा धारण करके भगवान्के स्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ ❋ ॥ हे राजन् ! यह गजेंद्र पूर्वजन्ममें इंद्रद्युम्ननामक विख्यात पांडुदेशका राजा था. यह

सोऽनुकंपित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥ लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥ गजेंद्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबंधनात् ॥ प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः॥६॥ स वै पूर्व मभूद्राजा पांड्यो द्रविडसत्तमः ॥ इंद्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥ स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान्गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ॥ जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥ यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ॥ तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥

6/7

नरनाथ विष्णुव्रतपरायण होकर अपना समय व्यतीत करता था ॥ ७ ॥ एक समय जितेंद्रिय, मौनवृत्ती, जटा धारण किये, तपस्वी हो मलयाचलमें जाय वहां आश्रम बनाय वास करने लगा और उपासनाके सहित यत्नसे भगवान् हरिकी पूजा करने लगा ॥ ८ ॥ उसी समय महायशवान् अगस्त्यजी शिष्योंके सहित उसके आश्रममें आकर उपस्थित हुए, परंतु राजा इस प्रकारसे आराधनामें मग्न था कि, उसने

–खींचा. मुनिने क्रोध कर शाप दिया कि, अरे दुष्टात्मा ! कुमति ! तैंने विना अपराध मुझको खींचा,इसलिये ग्राह होजा.जब उस गन्धर्वने बडी स्तुति करी,तब देवलऋषिने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि, जब तू गजराजका चरणें पकडेगा और उसे छुडाने [illegible] विष्णु भगवान् आवेंगे तो सुदर्शन चक्रसे वह तुझे मारगे और तेरा उद्धार हो जायगा ॥

❋ **शंका**–अनेक तपस्वी जिनसे भगवान् वार वा[illegible]ते थे, परन्तु वह तपस्वी तो भगवान्के रूपमें प्राप्त नहीं हुए,और गजेन्द्र क्षुद्रकर्म करके भगवान्के रूपमें प्राप्त होगया, यह बडे आश्चर्यकी बात है ? वह क्षुद्रकर्म क्या भगवान्के देहका स्पर्श होना !

उत्तर–गजेन्द्रको तप करते करते अनेक युग वीत गये परतु गजेन्द्रकी तपस्याका वृत्तान्त व्यासजीने अधिक वर्णन नहीं किया. तपके बलसे गजेन्द्र भगवान्के रूपको प्राप्त हुआ ॥

अगस्त्यजीका कुछ भी आदर सन्मान न किया, न कुछ पूजा ही करी। निर्जनमें जिस प्रकार बैठा था, वैसे ही बैठा रहा। यह देखकर अगस्त्य जीने इस राजर्षिके ऊपर महाकोप किया ॥ ९ ॥ और उसी समय यह कहकर शाप दिया कि, यह दुरात्मा अतिशय असाधु है, इसकी बुद्धि सुशील नहीं; यह ब्राह्मणका अपमान करता है, यह इसी समय तामिस्रमें प्रवेश करे. जैसे हाथी बैठा रहता है, यह दुष्ट भी वैसे ही बैठा रहा इस कारण यह हाथीका जन्म ग्रहण करे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! महर्षि अगस्त्यजी इस प्रकार शाप दे अपने शिष्योंके साथ चले गये. राजा इंद्रद्युम्न इस घटनाको होनहार जान हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ, जो आत्मविस्मृतिका कारण है परंतु उसने

तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य ॥ विप्रावमंता विशतां तमोंधं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥
॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः ॥ इंद्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥
आपन्नः कौंजरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ॥ हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥ १२ ॥ एवं विमोक्ष्य गज
यूथपमब्जनाभस्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः॥गंधर्वसिद्धविबुधरुपगीयमानकर्माऽद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥
॥१३॥एतन्महाराज तवेरितो मया कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुस्स्वप्ननाशं
कुरुवर्य शृण्वताम्॥१४॥ यथाऽनुकीर्तयंत्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः ॥ शुचयः प्रातरुत्थाय दुस्स्वप्नाद्युपशांतये ॥१५॥

बहुत कालतक भगवान् हरिकी पूजा की थी, इस कारण हाथीकी योनि प्राप्त होनेपर भी उसकी स्मृति ठीक थी ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन्! भगवान् पद्मनाभने इस प्रकारसे गजयूथपतिको छुड़ाय, पार्षद बनाय अपने साथ ले लिया. मुरलीधरके इस कर्मसे गन्धर्व, सिद्ध और देवता लोग गान करने लगे, तिसके पीछे भगवान् अपने अद्भुत लोकको चले गये ॥ १३ ॥ हे महाराज! यह गजेन्द्रमोक्षरूप श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदका प्रभाव मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया। हे कुरुश्रेष्ठ! जो इस वृत्तान्तको श्रवण करते हैं, उनको स्वर्ग और यश होता है और कलिमल नष्ट होकर दुःस्वप्न बन्द हो जाते हैं ॥ १४ ॥ इस कारण श्रेष्ठ कामनावाले द्विजातिगण

प्रातःकाल ही उठ पवित्र हो बुरे स्वप्नोंकी शान्तिके लिये यथाविधिसे इस स्तोत्रका पाठ करते हैं ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! सर्वभूतात्मा भगवान् हरिने प्रसन्न होकर श्रवणकारी सब प्राणियोंके सामने शापसे छूटे उस गजेन्द्रसे ऐसे वचन कहे थे, श्रीभगवान् बोले कि, हे अंग ! जो पुरुष हमको और तुमको स्मरण करेंगे और इस सरोवर, गिरिकन्दर, वन, बेत कीचक¹ रेसा झोपड़ियोंको और कल्पवृक्ष इन सबका ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ और जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवका स्थान है उन तीनों शृंगोंका और हमारे प्रियधाम क्षीरसमुद्र और दीप्तिमान श्वेतद्वीपका स्मरण

इदमाह हरिः प्रीतो गजेंद्रं कुरुसत्तम ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकंदरकाननम् ॥ वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥ १७ ॥ शृंगाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ॥ क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥ १८ ॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ॥ सुदर्शनं पांचजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९ ॥ शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं ममाश्रयाम् ॥ ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २० ॥ मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ॥ कर्माण्यनंतपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१ ॥ प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम् ॥ दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२ ॥ गंगां सरस्वतीं नंदां कालिंदीं सितवारणम् ॥ ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३ ॥

करेंगे वह सब पापोंसे छूट जायँगे ॥ १८ ॥ और हमारे श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि, वनमाला, कौमोदकी गदा, सुदर्शनचक्र, पाञ्चजन्य शंख, पक्षिराज गरुड ॥ १९ ॥ शेषनाग और हमारी सूक्ष्मकलारूपिणी और हृदयमें रहनेवाली श्रीदेवी, महेश, देवर्षि नारद, प्रह्लाद ॥ २० ॥ और मत्स्य, कूर्मादि अवतारद्वारा हमारे किये कर्म, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि ॥ २१ ॥ प्रणव (ॐकार), सत्य, माया, गौ, ब्राह्मण, भक्तिलक्षण, धर्म, धर्मपत्नी, सोम और कश्यपकी स्त्रियें (जो कि हमारी बेटी) हैं ॥ २२ ॥ गंगा, सरस्वती, नन्दा और कालिन्दी यह पुण्यमयी नदी, ऐरावत

---

१ खुखलबाँस ।जिसमें बाँसुरीकासा शब्द हुवा करता है।

उत्थायापररात्रांते प्रयताः सुसमाहिताः ॥ स्मरंति मम रूपाणि मुच्यंते ह्येनसोऽखिलात् ॥२४॥ ये मां स्तुवंत्यनेनांग प्रतिबुध्य निशात्यये ॥ तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ॥ हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० अष्टमस्कंधे गजेन्द्रोपाख्याने गजेंद्रस्य वैकुण्ठगमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ॥ गजेंद्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वंतरं शृणु ॥१॥ पंचमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ॥ बलिविंध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥

हाथी, ध्रुव, सप्तर्षि और पुण्यश्लोक मानवगण, यह सब हमारी विभूतियें हैं ॥ २३ ॥ इसलिये जो लोग रातके पिछले प्रहर उठकर नियमसहित एकाग्रचित्त हो इन सबका स्मरण करेंगे वह भी सब पापोंसे छुटकारा पावेंगे ॥ २४ ॥ हे अंग ! जो पुरुष रात्रिके पिछले प्रहर जागकर इस वृत्तान्तको पढ़ेंगे अथवा हमारा स्मरण करेंगे उनको हम मृत्युके समय निर्मलचित्त कर श्रेष्ठगति देंगे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! भगवान् हृषीकेश उस गजेन्द्रको इस प्रकारसे आज्ञा दे और शङ्खध्वनि करते हुए अपने स्थानको जानेके लिये देवता लोगोंके साथ हर्ष करते हुए अपने वाहन (सवारी गरुडजी)पर आरूढ़ हुए और यह कहते हुए चले गये ॥ २६ ॥ इतिश्रीभाषाभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा-पँचयेमें पँचयें छठे, मनुको कहूँ बखान । विप्रशापसे श्रीहत,सुरन कियो हरिध्यान॥१॥ इतनी कथा राजा परीक्षितको सुनाय श्रीव्यासपुत्र शुकदेवजी कहने लगे कि हे कौरवंशावतंस! भगवान् हरिके चरित्र गजेन्द्रमोक्ष नामक पापोंका नाश करनेवाला है, सो आपने कहा। अब रैवत मनुका वृत्तान्त कहते हैं सो सुनो ॥ १ ॥ पञ्चम रैवत मनु

---

१ कबित्त-पाइ प्रभुताई कछु कीजिये भलाई यहाँ, ना है थिरताई बैन मानिये कविनके । यश अपयश रहिजात बीज पुहुमीके, मुलक खजाना रूप साथ गये किनके ॥ और महिपालनकी गिनती गिनावे कौन, रावणसे है गये त्रिलोकी वश जिनके । चोवदार चाकर चमूपति चँवरदार, मन्दिर मतंग ये तमाशे चारि दिनके ॥ १ ॥

चौथे मनु तामसका सगा भाई था. रैवत मनुके पुत्र अर्जुन, बली और विंध्यादि हुए ॥ २ ॥ हे राजन् ! इस मन्वन्तरमें विभुनाम इन्द्र और भूतरयादि देवता हुए और हिरण्यरोमा, वेदशिरा और ऊर्ध्वबाहु इत्यादि सप्त ऋषि हुए ॥ ३ ॥ और सुभ्रकी विकुण्ठा नामक जो पत्नी थी, उसके गर्भमें सुभ्रके औरससे भगवान् वैकुण्ठनाथ स्वयं वैकुण्ठवासीने देवता लोगोंके साथ अपने अंशसे जन्म ग्रहण किया ॥ ४ ॥ इन्हीं वैकुण्ठनाथने लक्ष्मीजीकी प्रार्थनासे उनका प्रिय कार्य करनेकी वासनासे लोकनमस्कृत वैकुण्ठलोक बनाया ॥ ५ ॥ उनका प्रभाव, ब्रह्मण्यतादि गुण और बड़ी भारी ऋद्धियोंका विवरण (तीसरे स्कन्धमें) कुछेक वर्णन किया गया है. हे राजन् ! भगवान् विष्णुजीके

विभुरिंद्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः॥ हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः॥३॥पत्नी विकुंठा शुभ्रस्य वैकुंठैः
सुरसत्तमैः ॥ तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुंठो भगवान्स्वयम् ॥ ४॥ वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः॥रमया
प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥ तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ॥ भौमान्रेणून्स विममे यो
विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥ ६ ॥ षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ॥ पूरुः पुरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥
इंद्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ॥ मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥ तत्रापि देवः संभूत्यां
वैराजस्याभवत्सुतः ॥ अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥ पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ॥
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मंदरः॥ १० ॥

6/9

सब गुणोंका वर्णन करनेका किसमें सामर्थ्य है जो पुरुष उनके सब गुणोंका वर्णन कर सके, वह पृथ्वीपरके धूरिकणोंकी भी गणना (गिनती) कर लेगा ॥ ६ ॥ अब छठे मनुका वृत्तान्त सुनो । चाक्षुष नामक छठा मनु हुआ. पुरु, पूरुष, सुद्युम्न आदि उसके पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस मन्वन्तरमें मन्त्रद्रुम इंद्र, आप्यादिगण देवता, हविष्मत् और वीरकादि ऋषि हुए ॥ ८ ॥ उक्त (ऊपर कहे हुए) मन्वन्तरमें वैराजके औरससे और देवसम्भूतिके गर्भसे जगत्पति भगवान् विष्णुजी अपने अंशसे जन्म ग्रहण करके अजित नामसे विख्यात हुए ॥ ९ ॥ जिन्होंने समुद्र मथ करके देवतालोगोंके लिये अमृत निकाला और कूर्मरूप धारण करके जलके बीच भ्रमण करके

मन्दराचल पर्वतको धारण किया ॥ १० ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! भगवान् विष्णुने किस प्रकार क्षीरसमुद्रको मथा ? और किस कारण उन्होंने कूर्मरूप होकर मन्दराचलको धारण किया था ? सो सब आप मुझसे कृपा करके वर्णन कीजिये और देवता लोगोंने जिस प्रकार अमृतको प्राप्त किया और उनसे और भी जो जो कार्य हुए वह समस्त कार्य अवश्य ही अद्भुत होंगे इसलिये उनको आप विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥ हे योगिन् ! आप भक्तवत्सल भगवान्‌की जितनी महिमा कहते हैं, उससे मेरा चित्त किसी प्रकार सन्तुष्ट नहीं होता बरन् निरन्तर सुननेको चित्त चाहता है, क्योंकि मेरा हृदय अत्यन्त सन्तापित हो रहा है ॥ १२ ॥ यादवपति भगवान्‌की त्रिविध तापकी नाश करनेवाली जो महिमा है उन भगवान्‌की कथा सुननेसे मेरा मन तृप्त ही नहीं होता ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजगण ! द्वैपायनतनय शुकदेवजीसे

राजोवाच ॥ यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ॥ यदर्थं वा यत श्चाद्रिं दधारांबुचरात्मना ॥ ११ ॥ यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किं चान्यदभवत्ततः ॥ एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥ त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ॥ नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजः ॥ अभिनंद्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ॥ गता सवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥ १५ ॥ यदा दुर्वाससः शापात्सेंद्रा लोकास्त्रयो नृप ॥ निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥ १६ ॥

जब इसी प्रकार राजा परीक्षितने पूँछा तब राजाकी प्रशंसा और आनन्द प्रगट करके श्रीशुकदेवजी भगवान् हरिके सामर्थ्यका वर्णन करने लगे ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जिस समय दानवलोग समरमें अस्त्र शस्त्र चलाय देवता लोगोंका वध करने लगे तब बहुत देवतालोग निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और फिर जीवित नहीं हुए ॥ १५ ॥ और जब दुर्वासा मुनिके शापसे "किसी समय दुर्वासा ऋषि मार्गमें चले जाते थे, उन्होंने मार्गमें इन्द्रको देखकर अपने कण्ठकी माला उन्हें देदी, इन्द्रने लक्ष्मीके मदसे गर्वित हो उस मालाको कुछ न समझ ऐरावत हाथीके मस्तकपर डाल दी तब उस उन्मत्त हाथीने शुण्डासे उठाय उस मालाको पैरोंसे मसल डाला, तब दुर्वासा ऋषिने शाप दिया

कि, तुम तीनों लोकों सहित सम्पत्तिहीन होजाओ" इन्द्रसहित त्रिभुवनकी श्री नष्ट हो गई और यज्ञ यागादि भी लुप्त हो गये * ॥ १६ ॥ और महेन्द्र व वरुण इत्यादि देवगण यह देखकर जब स्वयं मन्त्रसे कोई उपाय न पाते हुए ॥ १७ ॥ तब इकट्ठे हो परस्पर अर्थात् आपसमें सम्मति कर सुमेरु पर्वतके ऊपर ब्रह्माजीकी सभामें गये और शिर नवाय विनीत भावसे पितामहके निकट सब वृत्तांत निवेदन किया॥ १८॥ इन्द्र, चन्द्र, वायु इत्यादि निःसत्त्व और प्रभारहित सब लोकोंका अमंगल और असुरोंको बलवान् देख ब्रह्माजीको अतिविस्मय प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ कितनी एक देरके पीछे सावधान मन हो भगवान् पुरुषोत्तमको स्मरण कर प्रफुल्लितमुख हो ब्रह्माजी सब देवताओंसे कहने लगे

निशम्यैतत्सुरगणा महेंद्रवरुणादयः ॥ नाध्यगच्छन्स्वयं मंत्रैर्मंत्रयंतो विनिश्चयम् ॥ १७ ॥ ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरो मूर्धनि सर्वशः ॥ सर्वं विज्ञापयांचक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८ ॥ स विलोक्येंद्रवाय्वादीन्निस्सत्त्वान्विगतप्रभान् ॥ लोकानमंगलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १९ ॥ समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ॥ उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥२०॥ अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमधर्मजातयः ॥ यस्यावतारांशकलाविसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१ ॥ न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयाऽऽदरणीयपक्षः ॥ अथापि सर्गस्थितिसंयमाथ धत्ते रजस्सत्त्वतमांसि काले ॥ २२ ॥

॥२०॥ हे देववृंद ! मैं (ब्रह्मा), महेश (महादेव), तुम, असुर और मनुष्य, तिर्यक् (पशु पक्षी), द्रुम इत्यादिक कर्मज जाति अर्थात् जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज यह सब ही जिसके अवताररूप पुरुषके अंश जो ब्रह्मा हैं उसकी कलासे सृष्टि अर्थात् पुत्र पौत्रादि द्वारा उत्पन्न हुए हैं, चलो हम उसी अव्यय परब्रह्म परमेश्वरकी शरणमें चलें ॥ २१ ॥ उसको कोई वध्य नहीं, रक्षणीय नहीं, त्यागनेके योग्य नहीं और आदरणीय पक्ष भी नहीं. तथापि सृष्टि, स्थिति, प्रलयके निमित्त उसी २ कालमें सत्त्वगुण, तमोगुण और रजोगुणको धारण करता है ॥ २२॥

---

* **शंका**-दुर्वासा मुनिने अकेले इन्द्रको शाप दिया, कि हे इन्द्र ! इससेरी सब लक्ष्मीका नाश होजावेगा, परन्तु तीनों लोकोंको शाप नहीं दिया था फिर त्रिलोकी लक्ष्मीसे हीन क्यों होगई ? **उत्तर**-मुनिका शाप इन्द्रको हुआ तब तीन लोकोंका राज्य राजा बलिको हुआ इस कारण तीन लोकोंको यज्ञ करके तथा लक्ष्मी करके राक्षसोंने हीन कर दिया इसलिये तीन लोक यज्ञसे और लक्ष्मीसे हीन होगये॥

वह शरीरधारियोंके पालन करनेको सत्त्वगुणको धारण करते हैं, यह उनकी स्थिति और पालनका काल है इसलिये इस समय उन जगत्‌गुरुकी शरण लेनेसे वह आत्मीय जो अस्मदादि हैं अवश्य हमारा कल्याण करेंगे ॥ २३ ॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्माजी देवता लोगोंसे इस प्रकार सम्मति कर उन सबके साथ जिस क्षीरसागरमें अजित भगवान् हरि वास करते हैं, उसी परमस्थानको गये ॥२४॥ वहांपर पहुँच सावधान हो एकाग्रचित्त कर वेदवाक्योंसे नहीं देखा है स्वरूप जिनका परन्तु पहले श्रवण किया है,उन भगवान् हरिकी सब देवगण स्तुति करने लगे ॥ २५॥ब्रह्माजीने कहा कि हे देव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं. आपको नमस्कार करता हूँ. भगवन् ! आपको विकार नहीं है. आप सत्य, अनन्त, सर्वान्तर्यामी हैं,

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम्॥तस्माद्व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति
शं सुरप्रियः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिंदम॥अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः
परम् ॥ २४ ॥ तत्र दृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो॥स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
अविक्रियं सत्यमनंतमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ॥ मनोऽग्रयानं वचसाऽनिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥
विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ॥ छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं स्वं त्रियुगं व्रजामहे॥
॥२७॥अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पंचदशारमाशु॥त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये॥२८॥

निरुपाधि हैं और तर्क करनेके अयोग्य हैं.आप मनके भी आगे चलते हैं. वचनद्वारा आपको निर्गतचित्त नहीं किया जा सकता, ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ अहो ! जो प्राण, मन,बुद्धि और आत्माको जानता है और विषय व इंद्रियें इन दोनों रूपोंमें प्रकाश पाता है और स्वप्न देखनेवालेके समान अज्ञानरहित है और जिसके देह नहीं है, जो अक्षर और आकाशवत् सर्वव्यापी है और जिसमें जीवोंका पक्ष करनेवाली अविद्या अथवा उनमें लीन करनेवाली कुछ भी नहीं रहती, जो तीनों युगोंमें प्रगट होता है, हम उसीकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ और इस जीवका चक्र अर्थात् चक्रवत् घूमतेहुए देहादि जो मायाकरके प्रेरित होते हैं उसके जो अक्ष अर्थात् अधिष्ठान हैं हम उन्हीं सत्यस्वरूप

परमेश्वरकी शरण जाते हैं, जीवका जो मनोमय चक्र है, दश इंद्रिय और पञ्चप्राण यह पंद्रह उसके अक्ष (आरा) सत्त्वादि तीन गुणोंके समान उसमें वर्तमान हैं, वह बिजलीके समान चञ्चल है और यथार्थ धुरीके समान उसका आवरण है ॥ २८ ॥ जो भक्तलोगोंकी रक्षा करनेको गरुडपर आरूढ (सवार) है, परन्तु ज्ञानके स्वरूप और प्रकृतिसे परे है. अदृश्य, अव्यक्त, देश, कालसे जिसका परिच्छेद नहीं होता और धीर पुरुष योगरूप उपायसे जिसका भजन किया करते हैं, हम उसी परमेश्वरको प्रणाम करते हैं ॥ २९ ॥ जिसकी मायाका कोई पुरुष उल्लंघन नहीं कर सकता वह माया साधारण नहीं है, उससे पुरुष मोहित होता है और अपने स्वरूपको नहीं जान सकता, हम उन्हीं परमेश्वरको प्रणाम करते हैं, उन्होंने माया और मायाके गुण दोनोंको जीत लिया है और सब प्राणियोंमें समानरूपसे वर्तमान हैं, ऐसे

य एकवर्णं तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनंतपारम् ॥ आसां चकारोपसुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥
न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ॥ तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरंतम् ॥
॥ ३० ॥ इमे वयं तत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिरंतराविः ॥ गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतर
प्रधानाः ॥ ३१॥ पादौ महीय स्वकृतेव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ॥ स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म
महाविभूतिः ॥ ३२ ॥ अंभस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यंति जीवंत्युत वर्धमानाः ॥ लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः प्रसी
दतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३३ ॥

जो परमेश्वर हैं उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ हम देवता और ऋषि जिसके प्रियमूर्ति स्वरूप हैं, सत्त्वगुणके द्वारा उत्पन्न हुए हैं, बाहर अन्तरकी सत्ता और प्रकाशसे जिसकी सूक्ष्म गति अर्थात् निरुपाधि स्वरूप नहीं जान सके, उसे रजोगुण, तमोगुण, प्रधान असुरादि किस प्रकारसे जान सकते हैं, इसलिये हम उसको प्रणाम करते हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! जिस पृथ्वीपर जरायुजादि चार प्रकारके प्राणी उत्पन्न होते हैं यह पृथ्वी जिसके दो चरणरूप है, वैराजरूपी वही महापुरुष हमारे ऊपर प्रसन्न हो, यद्यपि उसके चरणादि हैं तथापि वह किसीके वश नहीं है, क्योंकि उसका स्वरूप कभी विच्युत नहीं होता और महदाश्चर्यशाली है ॥ ३२ ॥ उसके जिस जलसे समस्त लोक और लोकपाल उत्पन्न होते हैं, जीते रहते हैं और वृद्धि पाते हैं, वह उदारशक्तियुक्त जल जिसका वीर्य है, वह महाऐश्वर्य

शाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ जो उदार चंद्रमा देवता लोगोंके अन्न, बल, आयुस्वरूप हैं और जो सब वृक्षोंके अधिकतासे बढानेका कारण है, पण्डित लोग इसी सोमको जिसका मन कहते हैं, वह महाविभूतिशाली महेश हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३४ ॥ जिनसे वेदरूप धन उत्पन्न होता है और वेदोंके प्रतिपाद्य कर्मोंके लिये जिसका जन्म है और जो अन्तःसमुद्र अर्थात् उदरमें जठराग्निरूपसे भोजन और अन्नादि पाक किया करते हैं, वही अग्नि जिसका मुख है, वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ जो सूर्य देवयान अर्थात् अर्चिरादि मार्गके देवता वेदत्रयीमय ब्रह्मके उपासनाका स्थान हैं और देवयान तत्त्वके हेतु मुक्तिके द्वार हैं और पुण्यलोकोंके हेतु हैं, अमृतस्वरूप

सोमं मनो यस्य समामनंति दिवौकसां वै बलमंध आयुः ॥ ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महा
विभूतिः ॥३४॥ अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकांडनिमित्तजन्मा ॥ अंतस्समुद्रेऽनुपचन्स्वधातूंन्प्रसीदतां
नः स महाविभूतिः ॥ ३५ ॥ यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ॥ द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३६ ॥ प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ॥ अन्वास्म सम्राज
मिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३७ ॥ श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ॥
प्राणेंद्रियात्मासुशरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥ बलान्महेंद्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणा
द्विरिंचः ॥ खेभ्यश्च छंदांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९ ॥

और परकालरूपत्व होनेसे मृत्युरूप हैं, वह सूर्य जिनकी आँख हैं वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ जिनके प्राणसे वह वायु उत्पन्न हुई है, जो चर अचर सब प्राणियोंका तेज, बल व सामर्थ्यादि धर्मयुक्त प्राण है, सेवक लोग जिसप्रकार महाराजाधिराजके पीछे २ चलते हैं, वैसे ही हम लोग बुद्धि इत्यादिके अधिष्ठाता देवता जिनका अनुसरण किया करते हैं वह महाऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ जिनके श्रवणोंसे दिशा, जिनके हृदयसे इंद्रियें और नाभिसे आकाश उत्पन्न हुआ, जो पञ्चप्राण, इंद्रियें, मन, नाग, कूर्मादि वायु और शरीरका आश्रय हैं, वह महासंपन्न विभु हमारें ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ बलसे जिनके महेन्द्र, प्रसन्नतासे सुरगण, क्रोध

छिद्रसे समस्त वेद, मेढ्रसेऋषि और प्रजापतिगण उत्पन्न हुए हैं, वह महाऐश्वर्यशाली पूर्ण ब्रह्म भगवान् हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिनकी छातीसे लक्ष्मी, छायासे पितृगण, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म, मस्तकसे स्वर्ग और विहारसे अप्सरागण उत्पन्न हुईं, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥४०॥ जिसके मुखसे ब्राह्मण और परमगुप्त वेद, दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य एवं चतुरता और चरणोंसे शूद्र और सेवा उत्पन्न हुई है, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके अधरसे लोभ, (नीचेके) ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कांति उत्पन्न हुई है और स्पर्शसे पशुओंका हितकारी काम और दोनों भौंहोंसे यम, पलकोंसे कालका जन्म हुआ है; वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥४२॥ और पञ्चभूत, काल, कर्म, गुण, लौकिक प्रपञ्च इन

श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययाऽऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ॥ द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥४०॥विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ॥ ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥ लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ॥ भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥ द्रव्यं वयः कर्मगुणान्विशेषं यद्योगमायाविहितान्वदंति ॥ यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥ नमोऽस्तु तस्मा उपशांतशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ॥ गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४ ॥ स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ॥ प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखांबुजम् ॥ ४५ ॥

सबको ज्ञानीलोग जिनकी योगमायासे विहित कहा करते हैं और उसी मायासे द्रव्य, काल, कर्म, गुण, भौतिक प्रपञ्च यह उत्पन्न हुए हैं, ऐसा कहते हैं और फिर पृथक् २ विद्वान् लोग इन सबका खण्डन किया करते हैं, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ४३ ॥ अहो ! हम लोग उन परमेश्वरको नमस्कार करते हैं, उनकी शक्ति उपशांति है; स्वर्गका राज्यलाभ करनेके लिये वह आत्माको परिपूर्ण करते हैं, परन्तु दर्शनादिद्वारा मायारचित गुणोंमें आसक्त नहीं होते। उनकी लीला पवनके समान है, हम उनको नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! हम शरणापन्न होकर आपके स्मितमुखारविन्दका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं, सो तुम हमारी इन्द्रियोंके गोचर

हो अपना स्वरूप दिखाओ ॥ ४५ ॥ हे प्रभो। आप भक्तजनोंकी इच्छाके अनुसार रहा करते हैं, इसके भूरि प्रमाण हैं, जिन कर्मोंके करनेमें हम अशक्त्य होते हैं, आप काल कालमें इच्छानुसार अवतार लेकरके उनसे स्वय उन कर्मोंको सम्पन्न किया करते हैं॥ ४६ ॥ हे भगवन्। जो शरीरधारी समान हैं, विषयके लिये आर्त हैं,उनके कर्म जैसे अनेक क्लेश और अति थोडे फलके देनेवाले हैं, सो आपके भक्तोंके अर्पित हुए कर्म ऐसे नहीं हैं ॥ ४७ ॥ अति थोडा जो कर्माभास है, वह भी परमेश्वरमें अर्पण कियेजानेपर विफल नहीं होता क्योंकि ईश्वर पुरुषोंका आत्मा है, दयावान् और हितकारी है सो प्रिय और हितकारी आत्मामें जो कुछ अर्पण किया जाता है, वह क्या निष्फल हो सकता है॥४८॥ जैसे पेडकी जडमें जल देनेसे शाखा, चोटी सबका सींचना हो जाता है, वैसे ही विष्णु भगवान्‌की आराधना करनेसे सबकी आराधना हो

तस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ॥ कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥ ४६ ॥ क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ॥ देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७ ॥ नावमः कर्म कल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः॥ कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥ यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ॥ एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यमनंताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ॥ निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च सांप्रतम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागव० म० अष्टमस्कंधेऽमृतमथने पंचमोऽध्यायः॥ ५॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥

जाती है ।।४९।। हे प्रभो ! हम आपके भक्त हैं,जो कोई भी कर्म करते हैं. सो आपको समर्पण कर देते हैं. हम लोगोंको यह क्लेश जिस कारणसे हुआ है, आप स्वयं ही जानते हैं, क्या निवेदन करें? आप अनन्त, निर्गुण, गुणेश और सत्त्वस्थ हैं, आपका स्वभाव और चेष्टा तर्क करनेके योग्य नहीं है, सो हम लोग केवल आपको नस्कार करते हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायाममृतमथन नाम पंचमोऽध्यायः॥५॥दोहा–छठवेंमें प्रगटे हरी, असुर प्रार्थना कीन्ह । दैत्यनको धोखा दिया; देवन अमृत जु दीन्ह ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् । जब सब देवता लोगोंने इस प्रकारसे स्तुति की तब श्रीभगवान् हरि उनके सामने ही प्रगट हुए । सहस्र

4

1223

सूर्यके उदय होनेसे जिस प्रकार दीप्ति होती है उस समय श्रीनारायणजीकी भी वैसे ही दीप्ति प्रकाशित होने लगी ॥ १ ॥ उस द्युतिसे सब देवताओंकी दृष्टि तिलमिला गई कि, जिससे देवता लोग आकाश, दिशा, पृथ्वी और अपने आपको भी नहीं देख सके फिर उन विभुको किस प्रकार देख सकें ॥ २ ॥ बहुत देरतक ब्रह्माजीने भली भाँति देखकर महादेवजीके सहित उनकी स्तुति करनी आरम्भ की। श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! भगवान्की मूर्ति मरकतमणिके समान श्यामवर्ण और स्वच्छ थी तिससे पद्मगर्भके समान अरुणवर्ण उनके दोनों नेत्र शोभायमान हो रहे थे ॥ ३ ॥ और वह मूर्ति तपायेहुए सुवर्णके समान पीतवर्ण पीताम्बर धारण किये हुए थी, श्रीभगवान्के समस्त अंग प्रसन्न और अतिशय मनोहर थे और भ्रुकुटीकी शोभा भी अत्यन्त सुन्दर थी ॥ ४ ॥ मस्तकपर महामणियोंसे जड़ाहुआ मुकुट था, दोनों भुजाओंमें भुजबन्द और नौरतन विराजमान थे, कानोंमें कुण्डलोंका हिलना अतिमनोहर था, उन कुण्डलोंके द्वारा कपोलोंकी दीप्ति होनेसे मुखारविन्दपर अनिर्वचनीय ज्योति प्रकाशित हो रही थी ॥ ५ ॥ और काञ्चीकलाप, कंकण, हार, नूपुरसे वह मूर्ति विशेष शोभायमान हो रही थी, * वह कण्ठमें कौस्तुभ-मणि और वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजीको धारण कियेहुए थे और उनका हृदय वनमालासे शोभायमान हो रहा

तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ॥ नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥ विरिंचो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ॥ स्वच्छां मरकतश्यामां कंजगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥ तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ॥ प्रसन्नचारुसर्वांगीं सुमुखीं सुंदरभ्रुवम् ॥ ४ ॥ महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ॥ कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखांबुजाम् ॥ ५ ॥ कांचीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ॥ कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६ ॥

---

* **शंका**—भगवान्ने हार, नूपुर, कंकण, कुण्डल, भुजबन्द आदिक गहने बालक और स्त्रीके क्यों पहिने ?

उत्तर—ब्रह्मादि देवताओंको बालक रूप भगवानकी उपासना बडी प्यारी है, इसलिये शीघ्र बालकरूप बनकर अथवा बालकके सब गहना धारण करके ब्रह्मादिकको दर्शन देते हैं, इसलिये बालकके गहना धारण करते हैं ।

था॥ ६॥ अधिक करके सुदर्शनादि अपने अस्त्रोंसे भी वह शोभायमान हो रहें थे,यह सुदर्शनादि उनके अस्त्र अपनी अपनी मूर्तियाँ धारण कर चारों ओर खडे उनकी उपासना कर रहे थे, यह मूर्ति देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, शिव और सब देवता लोग उनको प्रणाम करने लगे॥७॥ ब्रह्माजी बोले कि, भगवन् ! श्रीमूर्तिका आविर्भावमात्र हम लोगोंके समान आपके जन्मादि नहीं हैं, क्योंकि आपको जन्म स्थिति संयम यह तीनों उत्पन्न नहीं होते, इसका कारण यह है कि, आप निर्गुण हैं इसीलिये ज्ञानी लोग आपको निर्वाणसुखका समुद्र कहा करते हैं, परंतु आप इस प्रकार जाननेके योग्य न होनेसे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, वास्तवमें तुम्हारी मूर्तिकी सीमा नहीं है. हे प्रभो ! हमसे जो कुछ भी कहा यह कुछ भी असंभव नहीं है, क्योंकि आपका स्वभाव अचिन्तनीय है, इसलिये आपको नमस्कार। नमस्कार। ! नमस्कार!!! है ॥ ८ ॥

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासितम् ॥ तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ॥ सर्वामरगणैः साकं सर्वांगैरवनि गतैः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ॥ अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमोनमस्ते ॥ ८ ॥ रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोर्थिभिर्वैदिकतांत्रिकेण ॥ योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥ त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यंत आसीदिदमात्मतंत्रे ॥ त्वमादिरंतो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥ त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनु प्रविष्टः ॥ पश्यंति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! हे धातः ! कल्याणके चाहनेवाले पुरुष लोग वैदिक और तान्त्रिक उपायसे आपकी इस मूर्तिको सदा पूजा करते हैं. हे भगवन् ! हम देवतालोग पूज्यरूपसे प्रसिद्ध हुए तो हैं, परन्तु आपमें त्रिभुवनसहित हम सब कुछ देखते हैं, आपकी यह मूर्ति ब्रह्माण्डका आधार है इसलिये आपका यह रूप परिच्छिन्न नहीं है ॥९॥ हे भगवन् ! आप स्वतंत्र हैं, यह जगत् प्रथम आपमें ही था, मध्यमें भी आपमें ही रहा है और अंतसमय भी आपमें ही रहेगा । मट्टी जैसे घडेकी आदि अन्त और मध्य है, वैसे ही आप इस जगत्के आदि, मध्य और अवसान हैं क्योंकि, आप प्रधानसे भी पर (श्रेष्ठ) हैं ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आप निजाश्रित स्वाधीन मायाद्वारा इस विश्वकी सृष्टि करके पीछे इसमें

प्रविशे हैं इसलिये शास्त्रके जाननेवाले विवेकी योगीलोग सबके परिणाममें भी आपको निर्गुण देखते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! जैसे काष्ठमें अग्नि, गौमें घृत, पृथ्वीमें अन्न और पुरुषार्थमें जीविका वर्तमान है, मनुष्यगण उपायसे इन सबको प्राप्त होते हैं, अर्थात् मथे जानेपर काष्ठसे अग्नि, दुहे जानेसे गौमें घृत और खोदनेपर पृथ्वीमें अन्न और जल, वाणिज्य इत्यादि करने पर पुरुषार्थसे जीविका प्राप्त होती है. सो ज्ञानीलोग कहते हैं कि, आप भी वैसे ही गुणमें वर्तमान हैं और वह बुद्धिके योगसे आपको उससे प्राप्त कर लेते हैं ॥ १२ ॥ हे नाथ ! हे पद्मनाभ ! आप हमारे बहुत दिनोंके वांछा किये हुए अर्थ हैं; आप योगगम्य होकर भी स्वयं प्रगट हुए, दावानलसे पीडित हुए हाथी गंगाजलको देखकर जैसे आनन्द पाते हैं, वैसे ही हम लोग आज आपका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुए हैं ॥ १३ ॥ इस समय इन सब लोकपालोंके सहित हम जो

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु भुव्यन्नमंबूद्यमने च वृत्तिम् ॥ योगैर्मनुष्या अधियंति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदंति ॥ १२ ॥ तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभाऽतिचिरेप्सितार्थम् ॥ दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गांगमंभः ॥ ॥ १३ ॥ स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ॥ समागतास्ते बहिरंतरात्मन्किं वान्यविज्ञाप्यमशेष साक्षिणः ॥ १४ ॥ अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ॥ किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमंत्रम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विरिंचादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं यथैव ॥ जगाद जीमूतगभीरया गिरा बद्धांजलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६ ॥

मानसकरके आपके चरणकमल कोमल अमलकी शरण आये हैं, उस कार्यको आप पूर्ण कीजिये । हे अन्तरात्मन् ! आप अनन्त पदार्थोंके साक्षी हैं, फिर भला हम क्या बतावें ? आप सभी कुछ जानते हैं ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! मैं (ब्रह्मा), महादेव व और देवता, दक्षप्रजापति हम सब ही अग्निकी चिनगारीके समान आपसे अलग प्रकाशमान होते हैं. हम नहीं जानते कि, आपमें क्या श्रेष्ठता है ? इसलिये आप ही द्विज और देवता लोगोंकी मंत्रणा कहिये अर्थात् "यह करो" ऐसी आज्ञा कर उपाय बताइये ॥ १५ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी मुनि कहने लगे कि, हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! जब ब्रह्मादिक देवतालोगोंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति करी तब श्रीभगवान् उनके मनके अभिप्रायको जान

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ॥ विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हंत ब्रह्मन्नहो शंभो हे देवा मम भाषितम् ॥ शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥ १८ ॥ यात दानवदैतेयैस्तावत्संधिर्विधीयताम् ॥ कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥ १९ ॥ अरयोऽपि हि संधेयाः सति कार्यार्थगौरवे ॥ अहिमूषकवद्देवा अर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २० ॥ अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलंबितम् ॥ यस्य पीतस्य वै जंतुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ॥ मंथानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२ ॥ सहायेन मया देवा निर्मंथध्वमतंद्रिताः ॥ क्लेशभाजो भविष्यंति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३ ॥

मेघसमान गम्भीर वाणीसे बोले, हे राजन्! उस समय सब देवता लोगोंने अपनी इंद्रियोंको अपने वशमें कर लिया था ॥ १६ ॥ यद्यपि भगवान् देवताओंके कायको अकेले कर सकते थे, तो भी समुद्रमथनादि विहार करनेकी इच्छा कर उनसे यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् कहने लगे कि, कैसे खेदकी बात है, अहो ब्रह्मन्! अहो शम्भो! हे देवगण! हे गंधर्वगण! तुम सब सावधान होकर हमारे वचन सुनो। देवसमूह! जिस प्रकारसे तुम्हारा भला हो वही हम कहते हैं, तुम सुनो ॥ १८ ॥ दैत्य, दानव सबहीपर शुक्राचार्यजीने अनुग्रह किया है, तुमलोग उनके पास जाकर उनसे तबतक संधि (मेल) करलो जबतक अपने आपसे तुम्हारी वृद्धि न होजाय ॥ १९ ॥ हे देवगण! कार्य और अर्थके गौरवसे अर्थ साधनेमें तत्पर पुरुष कभी सांप और चूहेके समान शत्रुके साथ भी संधि अर्थात् मेल कर लेते हैं, जैसे पिटारीमें रुका हुआ सर्प उनमेंसे निकलनेके लिये चूहेसे मेल करता है और जब वह चूहा छेद कर देता है, तब वह सर्प बाहर निकलकर चूहेको भक्षण कर लेता है, इसीभांतिसे तुम दैत्योंसे मिलाप कर लो ॥ २० ॥ तुम दैत्योंके साथ संधि करके शीघ्र अमृत निकाल लेनेका यत्न करो क्योंकि, अमृत पीनेके प्रभावसे मृत्युसे ग्रसाहुआ भी मनुष्य अमर हो जाता है ॥ २१ ॥ जाओ! क्षीरसमुद्रमें शीघ्र तृण लता और ओषधियोंको डालो फिर उसमें मंदराचलकी रई और वासुकी नागकी डोरी करके ॥ २२ ॥ मेरी सहायता लेकर आलस्यरहित हो समुद्रको मथो. हे देवगण! यद्यपि दैत्यलोग तुम्हारे साथ मिलकर समुद्र मथेंगे, तो भी उन लोगोंको क्लेश ही मिलेगा और मथनेका फल

तुम्हीं पाओगे ॥ २३ ॥ हे सुरगण ! बलवान् साथीके द्वारा जो कोई कार्य सिद्ध करना हो तो उसकी इच्छानुसार कार्य करना चाहिये. इस लिये असुरलोग जो कुछ भी इच्छा करें, तुम उसमें ही प्रसन्न होना । जिस प्रकार शांतिके मार्गसे शीघ्र अर्थकी सिद्धि होती है, वैसी क्रोधके मार्गसे नहीं होती ॥ २४ ॥ हे देवगग ! समुद्रकेमथनेसे कालकूट उत्पन्न होगा, उससे कुछ भय न करना और मथते २ और जो कुछ श्रेष्ठ वस्तु निकलेगी, उसके लिये लोभ न करना और इस लोभके वश होकर क्रोध भी मत करना ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भगवान् पुरुषोत्तम देवता लोगोंको इस प्रकार आज्ञा करके उनके सामने ही अंतर्धान होगये । हे राजन् ! वह ईश्वर हैं, उनकी गति स्वाधीन है ॥ २६ ॥ श्रीभगवान्के अंतर्धान होनेपर ब्रह्मा औरमहादेवजी इन आदिपुरुषको प्रणाम करके अपने स्थानको चले गये, फिर देवता लोग संधि करनेका विचार कर राजा बलिके स्थानपर गये ॥२७॥ दैत्यराज बलि संधि(मेल) और विग्रह (लड़ाई)का अवसर भलीभाँति जानते थे, इसी कारण वह यशस्वी थे, इस लिये शत्रु होनेपर भी इंद्रादि देवताओंको असज्जित देखकर क्षोभको प्राप्त हुए अपने सेनापतियोंको युद्ध करनेसे रोका ॥ २८ ॥ और देवता लोग वहां जाय पहुँचे कि, जहां विरोचनका पुत्र त्रिलोकीको जीत असुरयूथपोंकरके रक्षित हो सुन्दरी रमणियोंसे सेवित हो विराजमान थे ॥२९ ॥उनमें महामतिवाले इन्द्र मनोहर वचनोंसे समझाते हुए राजा बलिके निकट भगवान् पुरुषोत्त

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छंत्यसुराः सुराः ॥ न संरंभेण सिध्यंति सर्वेऽर्थाः सांत्वया यथा ॥ २४ ॥ न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसंभवात् ॥ लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ तेषामंतर्दधे राजन्स्वच्छंदगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥ अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ॥ भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वारीनप्यसंयत्तान्जातक्षोभान्स्वनायकान् ॥ न्यषेधद्दैत्यराट्श्लोक्यः संधिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥ ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ॥ श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥ महेंद्रः श्लक्ष्णया वाचा सांत्वयित्वा महामतिः ॥ अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥

मजीने समुद्रमथनके विषयमें जो कुछ सिखा दिया था वह सब ही बतलाने लगे ॥ ३० ॥ इन्द्रके वचन राजा बलिको बहुत प्यारे लगे और वहाँपर शम्बर, अरिष्टनेमि इत्यादि और जो असुर त्रिपुरवासी जो जो दानव थे, उन सबने भी इन वचनोंको माना ॥३१॥ हे परंतप! इसके पीछे दानव और देवतालोगोंने परस्पर मिलाप किया और अमृतके निकालनेकी शपथ कर उसके लिये अत्यन्त यत्न करने लगे॥३२॥ दानव लोग बल-पूर्वक मन्दराचलको उखाड़कर लाये और सिंहनाद करते २ उस पर्वतको क्षीरसमुद्रकी ओर ले चले ॥ ३३॥ यद्यपि इंद्रादिक देवगण और बलि इत्यादि दानव अतिशय शक्तिमान् थे,उनकी भुजायें परिघके समान थीं, तो भी दूरसे बडा भारी बोझ लानेके कारण देवता

तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ॥ शंबरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥ ततो देवाऽसुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ॥ उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परंतप ॥ ३२ ॥ ततस्ते मंदरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ॥ नदंत उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥ दूरभारोद्वहश्रांताः शक्रवैरोचनादयः ॥ अपारयंतस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥ ३४ ॥ निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ॥ चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५ ॥ तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकंधरान् ॥ विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥ ३६ ॥ गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ॥ ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥ ३७ ॥ गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ॥ आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८ ॥

और दैत्य दोनों शीघ्र ही थक गये और इस पर्वतके बोझको जब न सँभाल सकें तो मार्गमें ही रख दिया ॥ ३४ ॥ इन्द्र और बलि आदि देवता व असुरोंने जब उसको लाते २ मार्गमें छोड दिया तब वह पर्वत भारी बोझसे अनेक देवता व असुरोंको चूर्ण करके पृथ्वीपर गिरा ॥ ३५ ॥ देवता और दानवोंकी जब इस पर्वतके लानेमें बाँहें टूट गईं, जाँघें कट गईं और उनके मन मलिन होगये तब भगवान् गरुडध्वज यह बात जानते ही उसी समय वहां आकर उपस्थित हुए ॥ ३६ ॥ और पर्वतके गिरनेसे देव दानवोंको पिसा हुआ देख उन्हें अपनी दृष्टिसे सावधान करके फिर जिला दिया ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे लीलापूर्वक एक हाथसे उस पर्वतको अपने वाहन गरुडजीपर रख और

स्वयं उसके ऊपर चढ समुद्रकी ओर चले और सुर असुर भी चारो ओरसे घेरकर उनके पीछे २ चले॥३८॥समुद्रके निकट पहुँच गरुडजीने अपने कन्धेपरसे आप ही उस पर्वतको उतार दिया, तब श्रीभगवान्‌ने जलके समीप भेज दिया. तात्पर्य यह है कि, जहां गरुडजी हों वहांपर वासुकी नाग नहीं आ सकता ॥२९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायाममृतमंथने मंदराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः * ॥ ६ ॥ दोहा–सप्तममें सागर मथ्यो, प्रगट्यो गरल कराल। डरकर सब शिवपहँ गये, कीजै दया दयाल ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुवंशावतंस परीक्षित्! "समुद्रके मथनेसे जो अमृत निकलेगा, उसमें तुम्हारा भी भाग रहेगा" यह कह देवता व असुर

अवरोप्य गिरिं स्कंधात्सुपर्णः पततां वरः ॥ ययौ जलांत उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टमस्कंधेऽमृतमथने मदराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ ते नागराजमामंत्र्य फलभागेन वासुकिम् ॥ परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥ आरेभिरेसुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ॥ हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥ तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ॥ न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरंगममंगलम् ॥ ३ ॥

लोगोंने वासुकी नागको मथानीकी डोरी बनाकर उनको मन्दराचल पर्वतसे लपेटा; फिर आनन्दपूर्वक समुद्रका मथन करने लगे ॥ १ ॥ वासुकी नागका मुख विषके दांत रहनेसे अत्यन्त तीव्र था, इसलिये चतुरतासे भगवान् हरिने प्रथम मथनेकी डोरीका वासुकीके मुखकी ओरका सिरा थामा, व और देवता लोग भी उसी ओर गये। दैत्यपति लोग यह देखकर समझे कि मुखकी ओर पकडना विक्रमका कार्य है; इसलिये उन्होंने इच्छा की कि, देवतालोग मुखकी ओर नहीं पकडें ॥ २ ॥ इसलिये उन्होंने उसमें बाधा देकर कहा कि, हम

---

* कवित्त–तारे प्रह्लाद रु निषादको सुखाद कियो, सादर अहल्या करी पादरज लायकै। कहै जगन्नाथ हाथ धारि गिरि ब्रजनाथ, पाळी ब्रज पाथते पुरन्दरै लजायकै॥तार न करी है नेक वारनके तारनमें कारन कहा है जगतारन कहाय कै ॥ जोवत इतै ही नहीं सोवत कितै हो प्रभु ऐसे ही ।बितैहौ कि बितैहौ चित्त लायकै ॥

वेदपाठ करते हैं और शास्त्र सुने हुए हैं, जन्म और कर्म द्वारा सर्वत्र विख्यात हैं,सर्पकी पूँछका भाग अमंगल है,हम उसको ग्रहण नहीं करेंगे॥
॥ ३ ॥ दैत्य लोगोंके यह वचन सुन भगवान् हरि मनमें मुसकाये और उन्होंने उसी समय वासुकी नागके शरीरका अग्रभाग छोड़ देवतालोगोंके
सहित पुच्छभाग ग्रहण किया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! कश्यपनंदन दानवगण इस प्रकार स्थानका विभाग करके मथनेकी डोरी पकड परमयत्नसे
अमृत प्राप्त करनेके लिये समुद्रको मथने लगे ॥ ५ ॥ यद्यपि महाबलवान् और पराक्रमी देवता असुरों करके मन्थानदण्ड मंदर पर्वत पकडा
गया था, तो भी मथन करते २ यह मन्दर आधारशून्य हो समुद्रके जलमें डूबने लगा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! बलवान् भाग्यके वश इस प्रकारसे

स्वाध्यायश्रुतसपन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ॥ इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ स्मयमानो
विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनंदनाः ॥ ममंथुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनि
धिम् ॥ ५ ॥ मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पांडुनंदन ॥ ६ ॥ ते
सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ॥ आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥ विलोक्य विघ्नेशविधिं तदे
श्वरो दुरंतवीर्यो वितथाभिसंधिः ॥ कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥ तमुत्थितं
वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ॥ दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो
महान् ॥ ९ ॥

अपने २ पौरुषका नाश देखकर उन देवता व असुर लोगोंके अंतःकरण अतिशय क्षुभित हुए और मुख अत्यन्त मलिन हो गये ॥ ७ ॥
नारायणका वीर्य अत्यन्त दुरंत और उनका संकल्प अत्यन्त सत्य है; उन्होंने उस समय अमृत निकालनेमें यह विघ्न हुआ देख उसी समय
बड़ा भारी अद्भुत कच्छपरूप धारण किया और समुद्रमें प्रवेश करके पीठमें भलीभाँति उस पर्वतको उठाय अपने ऊपर धारण कर
लिया ॥ ८ ॥ कुलाचल मन्दरके फिर उठने पर देवता और दानवलोग महाहर्षित हुए और फिर सबने समुद्र मथनेका उद्यम किया. कूर्म
शरीरधारी भगवान् हरिने अपनी पीठका विस्तार लाख योजनका कर लिया तिसमें एक भले द्वीपके समान वह मन्थानदंड मंदर

गिरिको धारण करे रहे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! देव दानवोंके भुजवीर्यसे कम्पायमान यह पर्वत सब प्रकारसे भ्रमण करने लगा, अप्रमेय आदिकूर्म प्रशस्त पीठपर धारण करके उस पर्वतके घूमनेको खुजलीके समान समझते हुए कि, मानो कोई पीठपर खुजा रहा है॥ १०॥फिर श्रीनारायणने असुराकारसे असुरोंमें प्रवेश कर उनके बल वीर्यको बढ़ा दिया और देवाकारसे देवता लोगोंमें प्रवेश कर उनको चैतन्य किया और अबोधरूपसे नागेन्द्र (वासुकी) में प्रवेश कर उसको सबल किया ॥ ११ ॥ तिसके पीछे हजार भुजा धारण करके दूसरे पर्वतके समान अपने हाथके द्वारा ऊपरसे मंदराचलको दाबकर स्थित रहे, यह आश्चर्य देख देवतालोकमें ब्रह्मा,इंद्रादि देववृन्द फूल वर्षाय वर्षाय

सुरासुरेंद्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमंतं गिरिमंग पृष्ठतः ॥ बिभ्रत्तदावर्त्तनमादिकच्छपो मेनेंऽगकंडूयनमप्रमेयः ॥ १० ॥
तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ॥ उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णुर्दैवेन नागेंद्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥
उपर्यगेंद्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः॥तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेंद्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः॥१२॥
उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ॥ ममंथुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रच
क्रम् ॥१३॥ अहींद्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखश्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ॥ पौलोमकालेयबलील्वलादयो दावाग्निदग्धाः
सरला इवाभवन् ॥ १४ ॥ देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्रांबरस्रग्वरकंचुकाननान् ॥ समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना
बभुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥ १५ ॥

श्रीनारायणकी स्तुति करने लगे॥ १२ ॥ हे राजन्! भगवान् हरिके ऊपर नीचे और आत्मामें अर्थात् देव दानवोंमें और पर्वत मन्थान रज्जु वासुकीमें प्रवेश कर जानेपर मदोत्कट देव दानवगण उत्कण्ठित हो मन्थानरूपी मंदराचलसे ऐसे वेगसे मथने लगे कि, एक क्षणमें समुद्रके वास करनेवाले सब ग्राह क्षुभित होगये ॥ १३ ॥ और वासुकी नागके सहस्रों विकराल फण और श्वासोंसे अग्नि और धुआँ निकलने लगा कि,जिससे पौलोम, कालेय,बलि, इल्वल आदि असुर लोगोंका तेजरहित होगया,इसलिये वह अतिशीघ्र दावानलसे भस्म हुए सरकण्डेके समान प्रभाहीन होगये ॥ १४॥ देवतागण भी वासुकीके श्वाससे निकली हुई अग्निकी शिखासे प्रभाहीन होते थे और उनके वदन, वसन,

भूषण, कंचुकादि धूम्रवर्ण होरहे थे, परंतु भगवान्‌के वश हुए मेघोंने उनके ऊपर जल वर्षाया और समुद्रकी तरंगोंके संयोगसे आयाहुआ शीतल वायु उनके ऊपर चलने लगा, इसलिये वह असुर लोगोंके समान व्याकुल न हुए * ॥ १५ ॥ देवता असुर लोगोंके समूह करके मथे हुए समुद्रसे जब अमृत न निकला तब भगवान् हरि अजित अपने आपसे समुद्रको मथने लगे ॥ १६ ॥ मेघसमान श्यामवर्ण श्रीनारायण सुवर्णके समान पीताम्बर धारण किये बिजलीकी दमकके समान चमकीले कुण्डल पहिरे, जिनके मस्तकपर अलकें छिटक रहीं, माला पहिरे लाल २ नेत्र किये अपने अभय देनेवाले हस्तकमलोंसे मंदराचलद्वारा समुद्रको मथने लगे. उस समय ऐसी शोभा होरही थी कि, मानो एक पर्वत दूसरे

मथ्यमाने तदा सिंधौ देवासुरवरूथपैः ॥ यदा सुधा न जायेत निर्ममंथाजितः स्वयम् ॥ १६ ॥ मेघश्यामः कनकपरिधिःकर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचःस्रग्धरो रक्तनेत्रः॥जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दंदशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥ १७ ॥ निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ॥ संभ्रांतमीनोन्मकरादिकच्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमिंगिलाकुलात् ॥ १८ ॥ तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यवीर्यम् ॥ भीताः प्रजा दुद्रुवुरंग सेश्वरा अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥ १९ ॥ विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्याऽभिमतं मुनीनाम् ॥ आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥ २० ॥

पर्वतको मथ रहा है ॥ १७ ॥ जब इस प्रकारसे समुद्र मथा गया तब उसमेंके मत्स्य, मकर, कछुए, सर्पादि अतिशय व्याकुल हुए और तिमि, जलहस्ती, नाके और तिमिंगल सब घबरा गये, तिसके पीछे उस समुद्रसे प्रथम हलाहल नाम महोल्बण विष निकला ॥ १८ ॥ अति उग्र वेगवाले, दशों दिशाओंमें ऊपर नीचे उफनकर आनेवाले प्रतिकाररहित विषको देखकर देवता लोग विष्णु भगवान्‌से भी रक्षा न पाकर अत्यन्त भीत हो वह सब भूतनाथ भगवान्‌की शरणमें गये ॥ १९ ॥ उस कालमें देवदेव महादेवजी त्रिलोकीके उद्भवार्थ भगवती पार्वतीजीके

---

* **शंका**–सर्पके मुखकी श्वाससे निकला जो विष, उस विषकी अग्निसे जो देवता मूर्च्छित होगये उन देवताओंको देखकर भगवान्‌की आज्ञा माननेवाले मेघोंने किस लिये वर्षा की ?

उत्तर–विषके वीर्यको नाश करनेवाला रस अश्विनीकुमार वैद्यने मेघोंको दिया, उसी रसको मेघोंने जलमें मिलाकर अकेले देवताओंके ऊपर उस जलकी वर्षा करी

सहित कैलासपर्वतपर विराजमान थे और जो मुनिलोगोंको मोक्षकी देनेवाली है, उस तपस्याको श्रीभोलानाथ कर रहे थे. प्रजापतिलोग समीप जा प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ हे देवदेव ! हे महादेव ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन ! हम लोग आपकी शरणमें आये हैं, समुद्रसे निकलाहुआ यह कालकूट विष त्रिलोकीको दग्ध किये डालता है,इससे हम लोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आप सब जगत्के बन्धन करनेके और मोक्ष देनेके ईश्वर हैं,निपुण ज्ञानीलोग आपहीकी पूजा किया करते हैं,आप परमगुरु और जो शरण आये उनकी आर्तिके हरनेंवाले हैं ॥ २२ ॥ हे विभो ! आप गुणमयी अपनी शक्तिसे जब कि,इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं तब हे भूमन् ! आपका ज्ञान स्वयं सिद्ध है, आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर यह तीन संज्ञा धारण करते हैं ॥ २३ ॥ आप ही परम गुह्य ब्रह्म हैं,आपसे ही

प्रजापतय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ॥ त्राहि नः शरणपन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥ २१ ॥ त्वमेकः
सर्वजगत ईश्वरो बंधमोक्षयोः ॥ तं त्वामर्चंति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥ २२ ॥ गुणमय्या स्वशक्त्याऽस्य सर्गस्थि
त्यप्ययान्विभो ॥ धत्से यदा स्वदृक् भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३ ॥ त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः॥
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४ ॥ त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेंद्रियद्रव्यगुणस्वभावः ॥
कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्वय्यक्षरं यत्त्रिवृदामनंति ॥ २५ ॥ अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षिति विदुर्लोकभवांघ्रि
पंकजम् ॥ कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥

देव तिर्यगादि सत् और असत् समस्त पदार्थ प्रकाशित होते हैं, बस आपके अतिरिक्त और उत्पन्न करनेवाली वस्तु नहीं है, आत्मरूपी आप ही अनेक शक्तियोंसे जगद्रूप हुए हो,इसलिये आप ही ईश्वर हैं॥२४॥हे भगवन् ! आप ही वेदकी योनि हैं, अर्थात् समस्त वेद आपसे ही उत्पन्न हुए हैं इस कारण आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है, आप जगत्के आदि अर्थात् महत्तत्त्व हैं और जिनके गुण, प्राण, इंद्रिय और द्रव्यके कारणीभूत हैं,वह राजसादि त्रिविध अहंकार भी आप ही हैं और आप ही स्वभाव,काल, संकल्प और सत्य व ऋत जो धर्म है, यह भी सब आप ही हैं क्योंकि त्रिगुणात्मक जो प्रधान उसे ज्ञानी लोग वह आपके आश्रय कहा करते हैं ॥ २५ ॥ हे लोकभावन ! समस्त देवतास्वरूप अग्नि आपके मुख हैं,पृथ्वी आपकी चरण है,काल आपका चलना है, सब दिशायें आपके कान हैं, वरुण आपकी रसना (जीभ)

है, सो हम आपकी शरण हैं ॥ २६ ॥ आकाश आपकी नाभि है, पवन आपका श्वास है, सूर्य आपके नेत्र हैं, जल आपका वीर्य है, ज्ञानी लोग
आपके अहंकारको पर और अपर जीवोंका आश्रय कहा करते हैं इसलिये हे भगवन् ! चन्द्रमा आपका मन और स्वर्ग आपका मस्तक है ॥
॥ २७ ॥ हे प्रभो ! तीनों वेद आपकी मूर्ति हैं, समस्त समुद्र आपकी कोख हैं, समस्त पर्वत आपकी हड्डियें हैं, सब प्रकारकी ओषधि और लतायें
आपके शरीरके रोम हैं, छंद वेद तुम्हारे सात धातु हैं और प्रसिद्ध धर्म आपका हृदय है ॥ २८ ॥ हे ईश ! पञ्च उपनिषद् अर्थात् तत्पुरुष,
अघोर, सद्योजात, वामदेव, ईशान यह पाँच मंत्र आपके मुख हैं, इन मुखोंसे (३८) अड़तीस मन्त्रवर्ग होते हैं अर्थात् प्रथम कहे हुए पाँच

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ॥ परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवञ्छिरस्ते
॥ २७ ॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघा रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ॥ छंदांसि साक्षात्तव सप्त धातवस्त्रयीमयात्मन्
हृदयं सर्वधर्मः ॥ २८ ॥ मुखानि पंचोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमंत्रवर्गः ॥ यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देवः स्वयं
ज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥ छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ साक्षान्मनुः शास्त्रकृतस्तवेक्षा
छंदोमयो देवऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥ न ते गिरित्राखिललोकपालविरिंचवैकुंठसुरेंद्रगम्यम् ॥ ज्योतिः परं यत्र रजस्त
मश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥ कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ॥ यस्त्वं
तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्रवह्निस्फुलिंगशिखया भसितं न वेद ॥ ३२ ॥

मन्त्रोंके पदच्छेदसे अड़तीस शकलात्मक मंत्र होते हैं. हे देव ! शिवनामसे प्रसिद्ध जो परमात्मतत्त्व है, वह आप ही हैं आपकी उपरतावस्था
स्वयंज्योति है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आपकी छाया अधर्मकी ऊर्मियों(लहरों)में अर्थात् दंभ लोभादिमें वर्तमान है, जिन लहरोंसे संहार हुआ करता
है और सत्त्व, रज व तम, यह तीन गुण आपके तीन नेत्र हैं. हे प्रभो ! आप शास्त्रकर्ता हैं, सांख्यज्ञान आपकी आत्मा है. हे देव ! छंदमय पुराण
ऋषि अर्थात् वेद आपकी दृष्टि हैं ॥ ३० ॥ हे गिरीश ! आप परमज्योति अखिललोकपाल ब्रह्मा, विष्णु और सुरेन्द्र इंद्रके गम्य नहीं हैं, इस
ज्योतिमें रज अथवा तम वा सत्त्व कुछ भी नहीं है; वह निरस्त भेद परब्रह्मस्वरूप है ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! आपने कन्दर्प (कामदेव), दक्ष, यज्ञ,

त्रिपुर, कालकूट इत्यादि बहुतेरे प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले प्राणियोंका विनाश किया तो है, परन्तु वह सब कर्म तुम्हारे स्तुत्यर्थ नहीं हो सकते। आपके लिये तो यह कार्य अति छोटे हैं, क्योंकि प्रलयकालमें आपके नेत्रकी चिनगारीसे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान यह बडा भारी ब्रह्माण्ड जो भस्म हो जाता है, उसको भी तो आप अनदेखा करते हैं ॥३२॥ हे भगवन्! आत्माराम और विश्वके हितोपदेशक ज्ञानीलोग अपने अपने हृदयमें आपके दोनों चरणोंका ध्यान किया करते हैं. आप ऐसे ही हैं और सदा तप करनेमें लगे रहते हैं, जो लोग पार्वतीके साथ घूमता हुआ देखकर उनपर नितांत अनुरागी जान आपको कामी कहा करते हैं और श्मशानमें फिरते देखकर आपको कठोर और हिंसक कहकर प्रलाप करते हैं, वह क्या आपकी लीलाको जानते हैं? हम निश्चय कहते हैं कि, वह कुछ भी नहीं जानते, इस कारणसे निर्लज्ज हो विचार न करके ऐसा

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिंतितांघ्रिद्वंद्वं चरंतमुमया तपसाभितप्तम् ॥ कत्थंत उग्रपुरुषं निरतं श्मशाने ते नूनमूतिम
विदंस्तव हातलज्जाः ॥ ३३ ॥ तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नांजः स्वरूपगमने प्रभवंति भूम्नः ॥ ब्रह्मादयः
किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥ एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ॥ मृडनाय
हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥३५॥ श्रीशुक उवाच॥ तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ॥ सर्वभूत
सुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥

प्रलाप करते हैं. अहो! जिनके चरणोंकी आत्माराम लोग सेवा करते हैं, क्या उनको कामदेव उत्पन्न हो सकता है? जो सदा तप किया करते हैं वह शांत मूर्ति ही हो सकते हैं, उनमें हत्यापन वा कठोरपन किस प्रकार सम्भव हो सकता है ॥३३॥ इसलिये हे देव! सत् और असत्से परे और परमपुरुष जो आप हैं आपका उन यथार्थ स्वरूप ब्रह्मादि भी जाननेको समर्थ नहीं हैं फिर भला वह आपकी स्तुति करनेको कैसे समर्थ होंगे? हे प्रभो! हम इन ब्रह्माजीकी सृष्टिमें अत्यन्त नये हैं, फिर हम भी आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? तथापि यह स्तुति जो कि; यह केवल आत्मशक्तिका परिमाण है ॥ ३४ ॥ सो हे महेश्वर! यद्यपि हम सबनें आपके अतिरिक्त और जो श्रेष्ठ रूप है, उसे नहीं देख पाया, तथापि इसहीको देखकर कृतार्थ होगये क्योंकि आप अव्यक्त कर्मकारी हैं, आपका इस रूपसे प्रगट होना लोककी रक्षा ही करनेके लिये है ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे परीक्षित्! भगवान् भूतनाथ (शिव) सब प्राणियोंके सुहृद हैं, प्रजागणोंका दुःख

शिव उवाच ॥ अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७॥ आसां
प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ॥ एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥३८॥ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पांति साधवः
क्षणभंगुरैः ॥ बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥३९॥ पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ॥ प्रीते हरौ भगवति
प्रीयेऽहं सचराचरः ॥४०॥ तस्मादिदं गरं भुंजे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमामंत्र्य भगवान्भवानीं
विश्वभावनः ॥ ४१ ॥ तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत ॥ ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ॥
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥ तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ॥ ४३ ॥

देखकर करुणानिधान करुणाके वश हो अत्यन्त दुःखित हुए और निकट बैठी हुई अपनी प्रिया सतीजीसे बोले ॥ ३६ ॥ कि, हे प्यारी ! देखो ! देखो ! क्षीरसागरके मथे जानेसे उसके मध्यसे यह कालकूट निकला और फिर इससे प्रजा लोगोंको कैसा दुःख उपस्थित हुआ है ॥ ३७ ॥ यह सब प्रजा प्राणोंकी रक्षा करनेको अत्यन्त व्याकुल हुई हैं, इनको अभय देना हमारा कर्तव्य है क्योंकि दीन जनोंका पालन करना ही सामर्थ्यवान् पुरुषोंका कर्तव्य है इसलिये साधुलोग क्षणभंगुर विचारकर अपने प्राणोंसे भी दूसरेकी रक्षा करते हैं ॥३८॥ हे भद्रे ! जो पुरुष परमात्माकी मायासे मोहित होकर परस्पर वैर बांध हिंसा करते हैं, उनके ऊपर जो पुरुष दया दिखाते हैं उनके प्रति सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं ॥३९॥ हे देवि ! भगवान् हरिके प्रसन्न होनेसे चराचरसहित हम भी प्रसन्नताको प्राप्त होते हैं, इसलिये हम यह विष भक्षण करते हैं, हमारे द्वारा प्रजापुञ्ज सुखसे जीवन धारण करे ॥ ४० ॥ हे परीक्षित् ! भवानीसे इस प्रकार कह भगवान् वृषवाहन (महादेवजी) उस विषको भक्षण करनेके लिये प्रस्तुत हुए. भगवती पार्वतीजी महादेवजीके प्रभावको जानती थीं इसलिये वह हर्षित हुईं ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे करुणाहेतु भूतभावन महादेवजी सब दिशाओंमें व्यापेहुए उस हलाहल विषको ग्रहण कर हथेलीपर रखके भक्षण कर गये ॥ ४२ ॥ परन्तु हे राजन् ! उस कालकूटने महादेवजीको भी अपना पराक्रम दिखाया, क्योंकि उससे श्रीमहादेवजीका कण्ठ इसी समय नीलवर्ण होगया, परंतु वह करुणामय ईश्वरका भूषणस्वरूप हुआ ॥ ४३ ॥

हे महाराज ! साधु पुरुषगण और दूसरेके सन्तापसे संतापित हुआ करते हैं, इसलिये अखिलात्मा परमपुरुषकी आराधना करना ही श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ देव देव महादेवजीका यह आश्चर्यमय कार्य देखकर व सुनकर प्रजागण व दाक्षायणी, ब्रह्मा, वैकुण्ठनाथ सबही बड़ाई करने लगे ॥ ४५ ॥ महाराज ! उसी हलाहलके पीनेके समयमें जो महादेवजीकी हथेलीसे खसककर विष गिर पडा था, वह बिच्छू, साँप, विषमय ओषधि और दन्दशूक गणोंने ग्रहण किया था, इसलिये यह सब तीव्र हुए हैं. जब यह इतने अधिक तीव्र हुए तब इसका विचार भी सहजसे ही किया जा सकता है कि, वह कालकूट कितना तीव्र विष होगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमो

यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ तप्यंते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ॥ परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥ निशम्य कर्म तच्छंभोर्देवदेवस्य मीढुषः ॥ प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुंठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥ प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किंचिज्जगृहुः स्म तत ॥ वृश्चिकाहिविषौषध्यो दंदशूकाश्च ये परे ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भाग०म० अष्टम० अमृतमथने गरपानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पीते गरे वृषांकेण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ॥ ममंथुस्तरसा सिंधुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥ तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥ तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चंद्रपांडुरः ॥ तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेंद्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥ तत ऐरावतो नाम वारणेंद्रो विनिर्गतः ॥ दंतैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥

ऽध्यायः ॥ ७ ॥ दोहा–अष्टम प्रगटी लक्ष्मी, वरे विष्णु भगवान । सुधा लिये धन्वन्तरी, पुनि प्रगटे सज्ञान ॥ १ ॥ अनन्तर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहने लगे कि, हे परीक्षित ! जब भगवान् वृषवाहनजीने कालकूट पान किया, तब देव और दानवगण अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर अतिशीघ्रतासे समुद्रको मथने लगे, तब समुद्रमेंसे सुरभी गाय निकली ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी ऋषि लोगोंने ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाले जो यज्ञ हैं, उनके पवित्र हविके लिये इस गायको ग्रहण किया ॥२॥ इसके पीछे उच्चैःश्रवानामक चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण एक घोडा निकला. उसके लेनेकी इच्छा दैत्यराज बलिने की, इसलिये ईश्वरकी शिक्षासे देवराज इन्द्रने उसके लेनेका अभिलाष न किया ॥ ३ ॥ तिसके पीछे ऐरावत

नामक गजेन्द्र निकला. इस हाथीके चार दाँत पर्वतके शिखरके तुल्य और वह चन्द्रमाके तुल्य श्वेतवर्ण था और वह अपनेही समान श्वेतवर्णवाले चार दातोंसे कैलास पर्वतकी महिमाको हरण कर रहा था. हे राजन् ! तिसके पीछे ऐरावतादि आठ दिग्हस्ती और अभ्रमादि आठ दिग्हस्तिनी निकलीं ॥ ४ ॥ तिसके पीछे समुद्रसे कौस्तुभनामक महामणि निकला. भगवान् हरिने उसकी दमक देखकर उससे अपनी छातीके सजानेका अभिलाष किया ॥ ५ ॥ तिसके पीछे पारिजात(कल्पवृक्ष) निकला. यह वृक्ष देवलोकका भूषण हुआ. हे परीक्षित् नृपोत्तम ! जैसे आप अर्थ देदेकर याचकोंकी प्रार्थना पूर्ण करते हो, वैसे ही वह वृक्ष निरन्तर समस्त काम देकर याचनेवालोंकी प्रार्थनाको पूर्ण

कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः ॥ तस्मिन्हरिःस्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ ॥ ५ ॥ ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ॥ पूरयत्याथनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान् ॥ ६ ॥ ततश्चाप्सरसो जातानिष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७ ॥ ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्रीरमा भगवत्परा ॥ रंजयंती दिशः कांत्या विद्युत् सौदामनी यथा ॥ ८ ॥

करता है * ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब अप्सरायें निकलीं, कण्ठमें मणियें धारण किये हुए और अत्यन्त शोभायमान वस्त्राभूषण पहर रही थीं, वह मनोहर चालढाल और कटाक्षके अवलोकनसे स्वर्गवासियोंको रमण कराती थीं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे साक्षात् लक्ष्मीजी मूर्ति धारण कर प्रगट हुई. यह भगवत्परायण समुद्रसे प्रगट हो स्फटिकादि मणिमय पर्वतके शिखरपर चमकती हुई बिजलीके समान अपनी कांतिसे सब दिशाओंको रँगने लगीं ॥ ८ ॥

---

* शंका—सतयुग, त्रेता, द्वापरमें बडे बडे दानी राजा हुए और उनकी बडी बडी आयुष थी, परन्तु सब प्राणियोंकी आशा पूर्ण करनेमें उनकी मुनि लोगोंने ऐसी उपमा नहीं की कि, जैसी उपमा याचकोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिये शुकदेवजीने कल्पवृक्षकी उपमा परीक्षित्की की ऐसी उपमा किसी राजाकी नहीं की यह बडे सन्देहकी बात है ?

[illegible], उत्तर—संसारके सुखके जो याचनेवाले प्राणी हैं उनकी आशा पूर्ण करनेमें यह उपमा मुनियोंने परीक्षित्का नहीं की. यह उपमा तो भागवतकी याचना पूर्ण करनेमें परीक्षित्को शुकदेवजी कल्पवृक्षके तुल्य कहते हैं. क्योंकि राजा परीक्षित् भागवतको सुनके बूझ बूझकर बहुत कथाका विस्तार किया इसालये कल्पवृक्षकी उपमा राजा परीक्षित्को श्रीशुकदेवजीने दी ॥

उनका रूप, उदारपन, वयस रंग और महिमाको देखकर सुर, असुर सबहीका हृदय खिंचा, इसलिये सबने ही उनके प्राप्त करनेकी अभिलाषा की ॥ ९ ॥ लक्ष्मीजीको देखते ही देवराज इन्द्रने अभिषेकके लिये उनके अर्थ बड़ा भारी अद्भुत आसन लादियाँ और बड़ी बड़ी नदियें मूर्तिमान् होकर सुवर्णके कलशोंमें पवित्र जल भर लाईं ॥ १० ॥ अभिषेक करनेमें जिन ओषधियोंकी आवश्यकता होती है, उन सबको पृथ्वीने लादिया और गायें पवित्र पञ्चगन्ध और वसन्तऋतुके चैत महीनेका उत्पन्न हुआ मधु (शहद) ले आईं ॥ ११ ॥ फिर ऋषि लोगोंने शास्त्रके अनुसार अभिषेकके लिये विधिका विचार किया, तिसके पीछे गन्धर्व लोगोंने मीठे मीठे स्वरोंसे गाना आरम्भ किया

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ॥ रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥ तस्या आसनमानिन्ये महेंद्रो
महदद्भुतम् ॥ मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुंभैर्जलं शुचि ॥ १० ॥ आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ॥ गावः
पंच पवित्राणि वसंतो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥ ऋषयः कल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि ॥ जगुर्भद्राणि गंधर्वा नट्यश्च
ननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥ मेघा मृदंगपणवमुरजानकगोमुखान् ॥ व्यनादयन् शंखवेणुवीणास्तुमुलनिस्स्वनान् ॥ १३ ॥ ततो
ऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियंपद्मकरां सतीम् ॥ दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥ १४ ॥ समुद्रः पीतकौशेयवा
ससी समुपाहरत् ॥ वरुणः स्रजं वैजयंतीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥ १५ ॥ भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजा
पतिः ॥ हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुंडले ॥ १६ ॥

और समस्त नदी नृत्य करने लगीं ॥ १२ ॥ और मेघोंके समूह मृदंग, ढोल, मुरज, नगाडे, सहनाई, शंख, अलगोजे आदि जिन बाजोंकी बडी ध्वनि होती है उन सबको बजाने लगे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे दिग्गजोंने पूर्ण कलश और ब्राह्मणोंके उच्चारण किये वेदमन्त्रोंसे कमल हाथमें लिये उन लक्ष्मीजीका अभिषेक किया ॥ १४ ॥ तिसके पीछे समुद्रने लक्ष्मीजीके पहिरनेको पीतवर्णके दो रेशमी वस्त्र दिये, वरुणजीने मतवाले भौंरे जिसके चारों ओर घूमते हैं, ऐसी वैजयन्ती माला दी ॥ १५ ॥ विश्वकर्माने विविध विचित्र भूषण, सरस्वतीजीने हार, ब्रह्माजीने पद्म और सब सागरोंने कुण्डल लाकर दिये ॥ १६ ॥

तिसके पीछे स्वस्तिवाचन कीहुई लक्ष्मीजी, नाद कर रहे हैं भौंरे जिसमें ऐसी कमलकी माला हाथमें लेकर चलनेकी इच्छा करती हुई. उनका वदन कपोलोंपर लटकते हुए दो कुण्डलोंसे और सलज्ज हास्यसे अतिशय शोभायमान होरहा था ॥ १७ ॥ और दोनों उरोजोंपर चन्दन और कुंकुम लगा हुआ था. वह कृशोदरी रमा मनोहर नूपुरोंकी झनकार करती हुई इधर उधर चरण धरती हुई चञ्चल हेमलताकी नाईं महाशोभाको पा रही थीं ॥ १८ ॥ हे राजन्! तिसके पीछे वह अपने दोषरहित आश्रयके लिये चारों ओर देखने लगी परन्तु जिसमें नित्य सद्गुण विराजते हों ऐसा आश्रय गन्धर्व, सिद्ध, असुर, यक्ष, चारण वा स्वर्गके रहनेवाले देवता इन सबमें किसीको न पाया. इन सबोंमें एक न एक दोष लक्ष्मीजीको

ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ॥ चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥ १७ ॥ स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरंतरं चन्दनकुंकुमोक्षितम् ॥ ततस्ततो नूपुरवल्गुशिंजितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १८ ॥ विलोकयंती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम् ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रिविष्टपेयादिषु नान्वविंदत ॥ १९ ॥ नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं क्वचित्तच्च न संगवर्जितम् ॥ कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ॥ २० ॥ धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ॥ वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं नहि द्वितीयो गुणसंगवर्जितः ॥ २१ ॥

जान पडने लगा ॥ १९ ॥ बस उन्होंने विचार कर देखा कि, किसी किसी पुरुषमें (दुर्वासादिमें) तपस्या तो है, परंतु क्रोधका जीतना नहीं है, किसी किसी पुरुषमें (शुकादिमें) ज्ञान तो है, परंतु संगका त्याग नहीं है, कोई कोई पुरुष (ब्रह्मासोमादि) महान् तो हैं, परन्तु कामजयी नहीं हैं, व और जो पुरुष (इन्द्रादिक) हैं, वे पराई राह तकनेवाले हैं, फिर भला वे ईश्वर कैसे हैं ?॥ २० ॥ और किसी किसी पुरुषमें (परशुरामादिमें) धर्म तो है, परन्तु सब प्राणियोंके ऊपर दया नहीं है, किसी राजामें (शिबिप्रभृतिमें) त्याग है तो सही, परन्तु मोक्षार्थका त्याग नहीं है. किसी किसी पुरुषमें (कार्तवीर्य्यार्जुनादिमें) वीर्य तो है, परन्तु कालका वेग उनसे नहीं रुक सकता, जो लोग (सनकादि) गुणसंगसे रहित हैं वे :समाधिपरायण हैं,

इसलिये वे भी विवाहने योग्य नहीं हैं ॥२१॥ कोई पुरुष (मार्कण्डेयादि) चिरञ्जीवी तो हैं, परन्तु उनमें मंगलशील नहीं है, किसी किसी पुरुषमें (हिरण्यकशिपु आदिमें) मंगल शील तो है, परन्तु उन लोगोंकी आयुकी स्थिरता नहीं जानी जाती, एक पुरुषमें (रुद्रमें) शील, मंगल और आयुका स्थिरपन दोनों बाते हैं और कोई दोष भी नहीं है,परंतु तो भी वह स्वयं अमंगल हैं. उनका मशानमें सदा वासादि करना अमंगलहीकी चेष्टा है। लक्ष्मीजी यह विचार करके फिर श्रीमुकुन्दजीको निहारकर बोलीं कि, यहाँपर कोई पुरुष सब भाँतिसे सुमंगल हैं, परन्तु वे आत्माराम हैं, इसलिये जी नहीं चाहता कि, हम इनको वरैं और अपना प्राणेश्वर बनावें ॥ २२ ॥ हे राजन् ! लक्ष्मीनें इस प्रकारसे विचार करके देखा कि, भगवान् मुकुन्द अव्यभिचारी धर्मज्ञानादि सद्गुणशाली और अपने ही नित्य आश्रित हैं, इसलिये सर्वापेक्ष उत्तम:जाननेपर यद्यपि उन्होंने (लक्ष्मीजीने) इनको (श्रीनारायणजीको) दृष्टि उठाकर नहीं देखा, तो भी इनको प्राणेश्वर बनानेकी

कचिच्चिरायुर्नहि शीलमंगलं कच्चित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ॥ यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमंगलः सुमंगलः कश्च न
कांक्षते हि माम् ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयतां गुणाश्रयम् ॥ वव्रे
वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥ २३ ॥ तस्यांसदेश उशतीं नवकंजमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथ
गिरोपघुष्टाम् ॥ तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥ २४ ॥

अभिलाषा की. अधिक करके भगवान् मुकुन्द प्रकृतिके गुणसे परे हैं, विशेष करके अणिमादि गुण सब उनमें वर्त्तमान हैं, यह देखकर लक्ष्मीजीने इनके वरनेकी दृढ प्रतिज्ञा की–"अर्थात् लक्ष्मीजीने कहा कि, यद्यपि भगवान् स्वयं आत्माराम होनेके कारण औरकी कुछ अपेक्षा नहीं करते तथापि इनका आश्रय जो अणिमादि सिद्धि किये हुए हैं और उन सबकी भी यह जैसे उपेक्षा नहीं करते वैसे ही जब मैं इनका आश्रय लूंगी, तब ये मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे तिससे मैं इनकी सेवा कर कृतार्थ हो सकूंगी फिर और प्राकृत देवादिकोंसे क्या होगा ? " यह विचार कर श्रीनारायणजीको ही वरण किया ॥ २३ ॥ इन लक्ष्मीजीके हाथमें जो कमलफूलोंकी कमनीय माला थी जो कि, मतवाले भौंरोंके गुंजार करनेसे शब्दायमान हो रही थी, लक्ष्मीजीने प्रथम वह माला श्रीवैंकुण्ठनाथके गलेमें डालदी और उनके

अनुग्रहकी बाट देखती हुई चुपचाप हो अलग खडी होगईं परन्तु उनका भाव देखकर भलीभाँति जाना गया कि, सलज्ज हास्यसे विकासमान नमन योगसे मानो भगवान्का वक्षस्थल जो निजधाम है, उस अपने धामको लक्ष्मीजी प्राप्त हुई हैं. बस वह लजीले नेत्रोंसे भगवान्के वक्षस्थलकी प्रतीक्षा करने लगीं ॥ २४ ॥ फिर शीघ्र ही रमानाथने अपने वक्षस्थलको जगज्जननी अतिविपुल विभवशालिनी उन लक्ष्मीजीका वासस्थान निश्चय कर दिया । हे राजन्! भगवान्के वक्षस्थलमें स्थान प्राप्त होकर लक्ष्मीजी करुणासहित चितवनद्वारा अपनी प्रजा और लोकपालों सहित त्रिलोकीको वर्द्धित करने लगीं ॥ २५ ॥ यह देखकर देवतागगणोंके सेवक लोग अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ नाचने लगे और शंख, तुरही, मृदंगादि सबका पृथक् पृथक् शब्द हुआ ॥ २६ ॥ और ब्रह्मा, रुद्र, अंगिरादि यह सब विश्वके उत्पन्न करनेवाले फूल वर्षाय वर्षाय विष्णुप्रतिपादक यथार्थ मन्त्र उच्चारण करके श्रीभगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवतागण और प्रजापतिसमूह लक्ष्मीजीकी दृष्टिसे देखे जानेपर शीलादिगुणसम्पन्न हुए और उन सबको परम आनन्द हुआ ॥ २८ ॥ परन्तु लोलुप दैत्य व दानवगण लक्ष्मीजीसे उपेक्षित होनेपर सत्त्वरहित और निरुद्यम होने लगे ॥ २९ ॥ तिसके पीछे कमललोचना कुमारीरूपसे वारुणी देवी अर्थात् अन्नमयी सुरा उस समुद्रसे निकली. भगवान् हरिकी अनुमति (सलाह) से असुर लोगोंने इस कन्याको ग्रहण किया ॥ ३० ॥ तिसके पीछे फिर देवता व दैत्यगण समुद्रको मथन करने लगे । हे राजन्! तब समुद्रसे एक परम आश्चर्यमय पुरुष निकला ॥ ३१ ॥

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः ॥ श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र
स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५ ॥शंखतूर्यमृदंगानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ॥ देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां
गायतामभूत् ॥ २६ ॥ ब्रह्मरुद्रांगिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ॥ ईडिरेऽवितथैर्मंत्रैस्तल्लिंगैः पुष्पवर्षिणः ॥
॥ २७ ॥ श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ॥ शीलादिगुणसंपन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥२८॥ निस्सत्त्वा
लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः ॥ यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥ अथासीद्वारुणी देवी कन्या
कमललोचना ॥ असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥ अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ॥
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥

उसकी भुजाऐं लम्बी और पुष्ट थीं, गर्दन शखकी नाभिके समान तीन रेखाओंसे अंकित और सुन्दर गोल थी. उसका रंग श्याम था और अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर रहा था ॥ ३२ ॥ उसके सब वस्त्र पीले थे, छाती चौड़ी थी और दोनों कानोंमें मणिजटित कुण्डल पहरे हुए था, उसके केश अति सुंदर प्रांतभागतक चिकने और घूँघरवाले दृष्टि आते थे और उसका विक्रम सिंहके समान था ॥ ३३ ॥ वह भुजाओंमें कंकण पहरकर अमृतका पूर्ण कलश धारण किये हुए था. हे राजा परीक्षित्! वह पुरुष कोई और था. वह साक्षात् श्रीभगवान् वैकुंठनाथके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥३४॥ इनका नाम धन्वन्तरि था; आयुर्वेदके पारदर्शी और यह यज्ञभागके पानेवाले थे. इन धन्वन्तरिजीके हाथमें अमृतका भरा हुआ कलश देखकर असुर लोगोंने सब अमृत पानेकी वासना करके बलपूर्वक उस कलशको छीन लिया ॥ ॥३५॥ जब अमृतका कलश लेकर असुर भागनेको उपस्थित हुए तब देवतालोग अत्यन्त शोकाकुल हो श्रीभगवान् हरिकी शरणमें गये ॥३६॥ अपने सेवक लोगोंकी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले श्रीभगवान् देवता लोगोंकी ऐसी दीनता देखकर उनको समझाकर बोले कि, हे देवगण! हम योगमायासे तुम्हारे अर्थकी सिद्धि करेंगे. तुमलोग शोक मत करो ॥३७॥ हे राजन्! तिसके पीछे असुर लोगोंमें परस्पर क्लेशका आरंभ हुआ। अमृतके लिये सबही अभिलाषी होकर कहने लगे कि, "प्रथम हम" "प्रथम हम", "तुम नहीं", "तुम नहीं" ॥ ३८ ॥

दीर्घपीवरदोर्दंडः कंबुग्रीवोऽरुणेक्षणः ॥ श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥ ३२ ॥ पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुंडलः ॥ स्निग्धकुंचितकेशांतः सुभगः सिंहविक्रमः ॥३३॥ अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः ॥ स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ॥३४॥ धन्वंतरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् ॥ तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ॥ ३५ ॥ लिप्संतः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽहरन् ॥ नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥३६॥ विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ॥ मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥ ३७ ॥ मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥ ३८ ॥

और जो दानव लोग बल नहीं दिखा सके, वे लोग मत्सरयुक्त होकर कलशधारियोंको वारंवार रोकने लगे कि, देवता लोगोंने भी अमृत निकालनेमें बराबर श्रम किया है, इसलिये सचाईसे जो उनका अंश हो सो उस अंशको देवता लोग भी पावें. जिसको जो भाग लेना है उसको वह देनाही सनातन धर्म है॥३९॥४०॥ हे परीक्षित् ! इस समयमें सब उपायोंके जाननेवाले भगवान् विष्णुने परम आश्चर्यमय अनिर्वचनीय स्त्रीका रूप धारण किया ॥४१॥ यह रूप देखनेमें नील कमलके फूलके समान श्यामवर्ण, दोनों कर्ण समान और मनोहर कर्णफूलोंसे भूषित, कमलकेसे नेत्र और सुन्दर नासिका ॥४२॥ और नये यौवनके वेगसे जो उरोजोंका भार हुआ था इसलिये उदर अतिकृश हो रहा था । हे राजन् ! उसके मुखकी सुगन्धसे भ्रमरगण अनुरागी होरहे थे कि, जिससे उसके दोनों नेत्र चकित होरहे थे ॥ ४३ ॥ उसके केशोंमें चमेलीके फूल गुँथे हुए थे, सुन्दर कंठपर मनोहर भूषण लटक कर चटक रहे थे, दोनों भुजाओंमें भुजबन्द देवता दैत्योंके बन्द बन्द ढीले कर रहे थे ॥४४॥ उसके नितम्बस्वरूप द्वीप निर्मल वसनसे ढके हुए थे,उनमें कमनीय काञ्ची (तगडी) पडी थी, चलनशील चरणोंमें नूपुर झनकारते थे॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे महाराज ! वह कामिनी लजीले शरमीले हास्यसहित जो कटाक्ष कर रही थी, उसके विलाससहित अवलोकनसे वारंवार दैत्यलोगोंके मनमें मार मार कर रहा था ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायाममृतमथने भगवन्मायोपालंभो नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

देवाः स्वं भागमर्हंति ये तुल्यायासहेतवः ॥ सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥ ३९ ॥ इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ॥ दुर्बलाः प्रबलान्राजन्गृहीतकलशान्मुहुः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नंतरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥ योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥४१॥ प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुंदरम् ॥ समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥ नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ॥ मुखामोदानुरक्तालिझंकारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥ बिभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम्॥सुग्रीवकंठाभरणं सुभुजांगदभूषितम् ॥ ४४ ॥ विरजांबरसंवीतनितंबद्वीपशोभया ॥ कांच्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥ सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ॥ दैत्ययूथपचेतस्सु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भा० म० अष्टम० अमृतमथने मोहिनीरूपधारणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—मोहित होकर दैत्य सब, सुधाकलश दे दीन्ह । सब असुरोंको मोहनी, नवमें वंचन कीन्ह ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! असुर लोग परस्पर सुहृदपन त्याग उस अमृतपूर्ण कलशको छीन चोरोंके समान आचरण कर धक्कमधक्का करने लगे कि, इतनेहीमें उन्होंने देखा कि एक मनमोहिनी सोहिनी तरुणी स्त्री उनके निकट चली आती है॥ १॥ यह दैत्यलोग उसके देखते ही कामदेवके वश होकर कहने लगे कि, अहो ! यह क्या मनोहर सुन्दरता है? कैसी अद्भुत कांति है,कैसा अनुपम बाला यौवन है.इस प्रकारसे कहते कहते उन कामातुर दैत्योंने उसके निकट जाकर पूछा कि ॥२॥ हे कमलदलनयनी ! तुम कौन हो ? और कहाँसे आई हो ? क्या करनेकी इच्छा है ? तुम किसीकी वधू अथवा सुता हो ? सो कहो। हे सुंदर जंघाओंवाली ! तुमको देखकर हमारा मन मोहित होगया है ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! हमलोगोंको

श्रीशुक उवाच ॥ तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरंतस्त्यक्तसौहृदाः॥ क्षिपंतो दस्युधर्माण आयांतीं ददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥
अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ॥ इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥२॥ का त्वं कंजपलाशाक्षि
कुतो वा किं चिकीर्षसि ॥ कस्यासि वद वामोरु मथ्नंतीव मनांसि नः ॥ ३ ॥ न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगंधर्व
चारणैः ॥ नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥४॥ नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषितासि शरीरिणाम् ॥ सर्वेन्द्रि
यमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥ ५ ॥ सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि ॥ ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं
विधत्स्व सुमध्यमे ॥६॥ वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः ॥ विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥७॥

निश्चय जान पड़ता है कि—देव, दानव,सिद्ध, गंधर्व, चारण अथवा लोकपाल इनमेंसे किसीने भी अभीतक तुमको नहीं छुआ है फिर इसकी क्या संभावना है कि, मनुष्यगण तुम्हें स्पर्श कर सकें ? ॥ ४ ॥ हे सुभ्रु ! हम जानना चाहते हैं कि, शरीरधारियोंकी सबइंद्रियें और अन्तःकरणमें प्रीति उपजानेके लिये दयावान् होकर क्या विधाताने तुमको यहाँ भेज दिया है? या अपनी इच्छानुसार यहाँ आई हो ? हम तो जानते हैं कि, विधाताने तुमको भेजा होगा ॥ ॥५॥ हे भामिनि ! हमारी यह सब जाति एक वस्तुकी चाहना कर परस्पर झगडा कर वैर बांधे हुए है, सो तुम हमारा सबका झगडा निबटाय हम लोगोंका मंगल करो ॥६॥ हम कश्यपजीकी सन्तान हैं, परस्पर भाई भाई हैं, सबहीने

पौरुष प्रकाश किया है, यह अमृतका कलश लेकर तुम न्यायानुसार हम सबको बाँट दो कि, जिसमें हम लोगोंके बीच परस्पर फूट न पडे ॥ ॥७॥ हे राजन् ! मायाके द्वारा स्त्रीका रूप धारण किये हुए भगवान् विभु इस प्रकार दैत्य लोगोंकी प्रार्थना सुनकर हँसे और मनोहर कटाक्षसे देखते देखते वक्ष्यमाण वचन कहने लगे ॥ ॥८॥ श्रीभगवान्ने कहा कि, हे कश्यपपुत्रगण ! हम व्यभिचारिणी हैं, सो तुमने किस प्रकारसे हमारा विश्वास किया ? पण्डित लोग कदापि स्त्रियोंका विश्वास नहीं करते *॥९॥ हे देवारिपुगण ! शालावृक (कुत्ता)और व्यभिचारिणी

इत्युपामंत्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ॥ प्रहस्य रुचिरापांगैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथं कश्यप दायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः ॥ विश्वासं पंडितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥ ९ ॥ सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ॥ सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ॥ जहसुर्भावगंभीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥ ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ॥ यद्यभ्युपेत क्व च साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥ १२ ॥ इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुंगवाः ॥ अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥

स्त्री इनकी मित्रता अनित्य है, यह दिनदिन नये ढूँढते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! असुरलोग इस मोहिनी नारीके ऐसे परिहासवचनोंको सुन उसका विश्वास कर किसी अभिप्रायसे गम्भीरतापूर्वक हँसने लगे और पीछे वह अमृतका कलश उसको सौंप दिया ॥ ११ ॥ मोहिनीरूप हरि अमृतका कलश हाथमें लेकर मन्द मुसकानसे मुखको शोभायमान कर कहने लगे कि हम जो कुछ करें,वह भला हो चाहे बुरा हो,उसको जो तुम अंगीकार करलो तो हम इस अमृतको बांट सकती हैं, उनके यह वचन सुन प्रधान प्रधान

---

* **शंका**–दैत्योंके छलनेके लिये भगवान्ने सब रूपोंको त्यागकर संसारमें अत्यन्त निन्दायोग्य वेश्याका रूप क्यों किया ? जो कोई कहे कि,राक्षसोंको मोहनेके लिये माया करके वेश्याका रूप धारण किया तो भी अन्याय है,क्योंकि क्या और किसी दूसरे रूपसे राक्षसोंको नहीं मोह सकते थे ? भगवान् बडे बडे महात्माओंको मोह उत्पन्न कर देते हैं तो राक्षसोंको मोह उत्पन्न कर देना क्या बडी बात थी ?

उत्तर–सतयुगमें भगवान् नारदमुनिको माया करके स्त्री बना दिया. देवीभागवतमें लिखा है कि,जब नारदजीको स्त्री बने सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये, तब नारद मायासे छूट पुरुषरूप हुए तब भगवान्को शाप दिया कि, हे भगवन् ! तुम भी कभी हम सरीखे स्त्रीरूप हो जाओगे इसलिये भगवान्ने वेश्याका रूप धारण किया ॥

असुर लोग " अच्छा ऐसा ही होगा " यह कहकर सम्मत हुए और उन मोहिनीरूप श्रीनारायणकी इच्छाको नहीं जाना ॥ १२ ॥ १३ ॥ तिसके उपरान्त असुरोंने उपवास करके स्नान किया और हव्यसे अग्निमें होम कर गौ, ब्राह्मण और सब प्राणियोंको नमस्कार करने लगे, फिर ब्राह्मणलोगोंनें उनके मंगलके लिये स्वस्तिवाचन किया ॥ १४ ॥ फिर वह असुरलोग अपने अपने मनमाने नये नये वस्त्र पहरकर सबही सुन्दर रूपसे विभूषित हो पूर्वकी ओरको बिछेहुए कुशोंपर जाकर बैठ गये ॥ १५ ॥ हे राजन्! जिस गृहमें अमृत बांटना नियत हुआ था, वह गृह धूप दीपसे सुगंधित और मालाओंसे सज़ाया गया था. देव दानवलोग उसमें पूर्वकी ओरको मुख करके बैठे ॥ १६ ॥ फिर वह मनमोहिनी नारी लचक मचक अमृतका कलश हाथमें ले उनके बीचमें गई, उसकी दोनों जांघें केलेके समान चिकनी, श्रोणीतट रेशमसे ढका हुआ है,

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् ॥ दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥ १४ ॥ यथोपजोषं
वासांसि परिधायाऽहतानि ते ॥ कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥ १५ ॥ प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु
च ॥ धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥ तस्यां नरेंद्र करभोरुरुशद्दुकूलश्रोणीतटालसगतिर्मदवि
ह्वलाक्षी ॥ सा कूजती कनकनूपुरसिंजितेन ॥ कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥ १७ ॥ तां श्रीसखीं कनककुंडल
चारुकर्णनासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ॥ संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकांताम् ॥
॥ १८ ॥ असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ॥ मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥ १९ ॥

नितम्बोंके भारसे चाल मन्द मन्द है, दोनों नेत्र मदसे मतवाले हैं, दोनों कुच अनारके समान हैं, वह कनकमय नूपुरोंकी ध्वनि व झनकारसे मानो अव्यक्त ध्वनि कर रही थी ॥ १७ ॥ कानोंमें रत्नजटित कुण्डल धारण किये, मनोहर कपोल, चन्द्रमासा मुखारविंद, मनहरण नासिका, परदेवता नाम लक्ष्मीजीकी सखी, जिसके स्तनोंपरका झीना वस्त्र वारंवार पवनकी झकोरसे गिर गिर पडता था और वह सँभालती जाती थी इसलिये उस मोहिनी सोहिनी प्यारी नारीको देखकर देवता व असुर सबको ही मोह उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हे महाराज! जब इस प्रकार देव दानव दोनों दल मोहित होगये तब मोहिनीरूप श्रीभगवान्ने विचारा कि, सर्पोंको दूध पिलानेके समान असुर लोगोंको अमृतका पिलाना

अन्याय है,दैत्य लोगोंने हमारे किये बुरे भले कर्म सब स्वीकार कर लिये हैं इससे हम देवतालोगोंको ही अमृत पिलावें,अधिक करके दैत्योंने न्यायानुसार बांट लेनेको कहा और इन दैत्योंकी सब ही जाति क्रूर है,इसलिये इनको अमृतका अंश देना ठीक नहीं यह विचारकर मोहिनीने दैत्योंको अमृतका भाग देनेकी इच्छा नहीं की॥१९॥तिसके पीछे उस मनमोहनीने देवता व दैत्योंकी पृथक्र २ पंक्ति करके उनको अलग अलग अपनी अपनी पांतिमें बैठाया ॥ २० ॥ तिसके पीछे कलश ग्रहण करके बहुत मान और प्रिय भाषणादिसे धोखा दे, दैत्योंको उल्लंघन कर देवता लोगोंके दूर रहनेपर भी उनको ही जाकर अमृत पिलाने लगी कि,जिस सुधा (अमृत) से न कभी मृत्यु आवे न बुढ़ापा सतावे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! असुर लोगोंने स्वयं मोहिनीका करना धरना सब स्वीकार कर लिया था, इसलिये अपने किये समयको चुपचाप पालन करते रहे.कभी २ मोहिनी भगवान् कनखियोंसे दैत्यलोगोंके ऊपर कटाक्ष करते जाते थे,इसलिये वह असुर यह विचार करते थे कि,स्त्रीके

कल्पयित्वा पृथक्र् पंक्तीरुभयेषां जगत्पतिः ॥ तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पंक्तिषु॥ २० ॥ दैत्यान्गृहीतकलशो वंचयन्नुपसंचरैः ॥ दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥ ते पालयंतः समयमसुराः स्वकृतं नृप ॥ तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥ २२ ॥ तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ॥ बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम् ॥ २३ ॥ देवलिंगप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ॥ प्रविष्टः सोममपिबच्चंद्रार्काभ्यां च सूचितः ॥ २४ ॥

साथ विवाद करना ठीक नहीं, यह समझ चुपचाप रहे ॥२२॥ अधिक करके मोहिनीमें दैत्योंका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया था, सो वह प्रेम कहीं छूट न जाय,इसलिये वे दैत्यलोग कुछ अप्रिय वचन भी न कह सके और मोहिनीसे मान पाय फिर अप्रिय वचन कहनेकी उनकी सामर्थ्य भी न हुई,इसलिये चुपचाप रहे ॥ धन्य है प्रेम ! हजारों लक्षों अभागे तेरी कुहुकिनी मायामें पडकर अपना तन, मन,धन खो बैठते हैं, प्रेमके ही वश होकर कितने ही विद्वानोंने ठोकरें खाई हैं,यह प्रेम क्या मोहिनीशक्ति रखता है।इसको आजतक कोई भी न समझ सके। जो लोग शत्रुके बाण, खड्ग,कटारी आदि अस्त्र शस्त्रोंसे नहीं मरते,वही लोग अपने प्यारेके क्रोधित होनेसे और उसके अपमान करनेसे बहुत ही डरते हैं; डरना ही क्या बरन् उनको लोक परलोकका भी कुछ ज्ञान नहीं रहता ॥२३॥ हे राजन् ! दानवगणोंमेंसे राहु देवताओंका वेष बनाय देवताओंकी पंक्तिमें चन्द्रमा और सूर्यके मध्यमें बैठा हुआ अमृत पी रहा था कि,उसी समय चन्द्रमा और सूर्यने उसको जानकर श्रीभगवान्से कहा कि,महाराज !

यह राहु दैत्य है,इसे अमृत न पिलाइये॥२४॥ तब छुरेके समान तेज धारवाले सुदर्शनचक्रसे भगवान् हरिने उसका शिर काट डाला,उसके शरीर में अमृत नहीं छुआ गया था इसलिये वह कट गया ॥ २५ ॥ और शिरसे अमृत छुवा गया था, इस कारण वह अमरताको प्राप्त हुआ. इसलिये ब्रह्माजीने सूर्यादिकी तुल्य उसको भी ग्रहपदका अधिकार दिया. राहु इसी वैरके कारण अबतक पौर्णमासी और अमावास्याके दिन सूर्य चन्द्रमाको ग्रहण कर लेता है ॥ २६ ॥ जब देवता लोगोंने सब अमृत पी लिया. तब लोकभावन श्रीभगवान् हरि दर्शनकारी उन प्रधान प्रधान असुर लोगोंके सामने ही मोहिनीरूप छोड़ फिर अपना वही रूप धारण कर लिया॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! देव दानवोंका समुद्र मथना देश, काल, हेतु,अर्थ,कर्म और बुद्धिमें यद्यपि समान था, तथापि फल विचित्र हुआ,अर्थात् किसीको सम्पूर्ण फल हुआ, किसीको कुछ न मिला, इसलिये देवगणोंने जिसके चरणपृष्ठ परागका आश्रय लिया था इससे वह यथार्थ अद्भुतरूप फलको प्राप्त हुए और दैत्यलोग जिन करके ठगे गये वही सेवनीय हैं ॥२८॥ हे महाराज! मनुष्य लोग धन, प्राण,कर्म,मन और राज्यसे देह और स्त्री पुत्रादिके लिये जो कुछ करते हैं, सो भेदाश्रयसे मूल त्याग करके शाखाके सींचनेके समान वह व्यर्थ होता है,परन्तु इन्हीं धनादि द्वारा ईश्वरके लिये जो कोई कर्म करें तो भेदभाव छोड़ देनेके कारणसे जड़के सींचनेके समान वह फलदायक होता है, क्योंकि ईश्वर सबमें ही अनुगत है, जैसे जड़क सींचनेसे फूल व शाखा सबका सींचना होजाता है, वैसे ही ईश्वरके अर्थ कर्म करनेसे और भी सब प्रसन्न होजाते हैं ॥ २९ ॥

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ॥ हरिस्तस्य कबंधस्तु सुधयाऽऽप्लावितोऽपतत् ॥२५॥ शिरस्त्वमरतां नीतमजो
ग्रहमचीक्लृपत् ॥ यस्तु पर्वणि चंद्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६ ॥ पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः ॥ पश्यता
मसुरेंद्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥ २७ ॥ एवं सुराऽसुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ॥
तत्राऽमृतं सुरगणाः फलमंजसाऽऽपुर्यत्पादपंकजरजःश्रयणान्न दैत्याः ॥ २८ ॥ यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्दे
हात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ॥ तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतमथने अमृतविभागो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायाममृतमथने देवाऽमृतपानकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९॥

दोहा—दशवेंमें लडने लगे, दैत्य महाबलवान । तब घबराये देव सब, प्रगट भये भगवान ॥ १ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यद्यपि दैत्य, दानवगण कर्ममें योग्य और सावधान थे तो भी श्रीभगवान्से विमुख होनेके कारण उनको अमृत न मिला *॥ १ ॥ श्रीभगवान् विष्णु अमृतको सिद्ध कर और वह अपने भक्त देवता लोगोंको पिलाय दर्शन करनेवाले सब प्राणियोंके सामने ही अपने स्थानको चले गये ॥ २ ॥ उसके पीछे अदितिके पुत्र ईर्षाोक मारे अपने शत्रु देवता लोगोंका कार्य सिद्ध देखकर न सह सके और अस्त्र शस्त्र उठाय देवता लोगोंके साथ युद्ध करनेको उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ अमृतके पीनेसे देवतालोग सब प्रकारसे समृद्ध हुए थे; वे लोग भी श्रीभगवान्के

श्रीशुक उवाच ॥ इति दानवदैतेया नाविंदन्नमृतं नृप ॥ युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥ साधयित्वाऽमृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥ सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनंदनाः ॥ अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥ ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ॥ प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयः ॥ ४ ॥ तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ॥ रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥ तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ॥ समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥ शंखतूर्यमृदंगानां भेरीडमरुणां महान् ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥

चरणोंका आश्रय करके अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर संग्राम करने लगे ॥ ४ ॥ उस समुद्रके तीर सुर असुर लोगोंका महाघोर कठोर दारुण संग्राम हुआ कि, जिसका वृत्तान्त सुननेसे रोयें खडे होते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! देव दानवगण संग्राम करनेमें अपना मन लगाय परस्पर एक दूसरेको ताक कर खड्ग, बाण व और दूसरे विविध आयुधोंसे मारने लगे ॥ ६ ॥ वहांपर शंख, तुरही, मृदंग, भेरी, डमरू और हाथी, घोडे, रथ, पैदल इन सबका महाघोर शब्द होने लगा ॥ ७ ॥

---

* शंका—राक्षस तो भगवान्के शत्रु थे इसलिये उन्होंने अमृतको नहीं पाया, परन्तु राजा बलि ता भगवान्का भक्त था उसको अमृत क्यों नहीं मिला ? यह बडे संशयकी बात है ?

उत्तर—अमृत लेनेकी इच्छा राजा बलिको नहीं थी; अच्छा जो अमृत लेनेकी इच्छा नहीं थी तो यह काम क्यों किया ? (समाधान) राजाका धर्म देखनेके लिये कि, राजाको सब कामकी परीक्षा लेना चाहिये तथा जातिधर्म देखकर, जातिकी आज्ञा बलि न मानता तो जातिगण विद्रोही हो जाते इसलिये यह काम राजा बलिने किया और राजा बलिको अमृत नहीं प्रात हुआ ॥

रथी रथियोंसे,पैदल पैदलोंसे,घोडोंके समूह घोड़ोंसे और हाथियोंके यूथ हाथियोंसे संग्राम करने लगे॥८॥और कितने ही योद्धा ऊँटों पर चढ़के, किनने ही वीर हाथियों पर सवार हो और कितने ही सैनिक गधोंपर आरोहण कर अपने अपने शत्रुओंके सम्मुख युद्ध करने लगे।हे राजन्!कोई कोई वीर गौरमुख (वानर विशेष) को ले, कोई २ अनुचर रीछोंको ले, कोई २ व्याघ्र ले और कोई २ सिंहको ले लडनेके लिये रणस्थलमें आकर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ कोई२ वीर गिद्धोंपर, काकोंपर, बगलोंपर, सिकरोंपर और कोई भैंसोंपर चढ़कर झपटे । कोई मछलियोंपर,कोई शरभोंपर, कोई गैंडोंपर, कोई बैलोंपर, कोई २ गवयों (लीलगायों) पर चढ़कर आये॥१०॥ कोई २ गीदडोंपर, कोई२ चूहोंपर, कोई २ खरगोशोंपर, कोई मनुष्योंपर, कोई बकरोंपर, कोई २ काले हरिणोंपर, कोई २ हंसोंपर और कोई २ शूकरोंपर चढकर आये॥ ११ ॥ और कुछेक

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ॥ हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जंत संयुगे ॥ ८ ॥ उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ॥ केचिद्गौरमृगैरृक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥ गृध्रैः कंकैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिंगिलैः ॥ शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥ १० ॥ शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः ॥ बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥११॥ अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ॥ सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२ ॥ चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः॥ महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥ १३ ॥ वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिभिर्वर्मभूषणैः ॥ स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥१४॥देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पांडुनंदन ॥ रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥१५॥ वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ॥ यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥१६॥

योद्धालोग जलचारी व थलचारी पक्षी व विकटाकार और दूसरे प्राणियोंपर चढकर आये। हे राजा परीक्षित्! इस प्रकारके वीरगण दोनों ओरकी सेनाओंके आगे २ आकर रणभूमिमें विराजमान हुए॥१२॥हे राजन्! चित्र विचित्र ध्वजा पताका; स्वच्छ निर्मल और बडे मोलके रत्नोंसे जडी हैं डंडियें जिनकी, ऐसे चमर और व्यजन ॥१३॥ पवनसे कम्पायमान उपरने,पगडी,जामा,पटका,कवच इनसे व तेजसे प्रकाशित और सूर्यकी किरणोंसे अतिशय प्रकाशमान निर्मल शस्त्र और वीरश्रेणी॥१४॥इन सबसे देवदानवोंका बल अर्थात् दोनों ओरकी सेना इस प्रकारसे प्रकाशित होने लगीं कि, जैसे दो समुद्रोंमें जलजन्तु शोभायमान होते हैं ॥ १५॥ हे महाराज ! विरोचनका पुत्र बलि इस संग्राममें सेनापति हुआ,

वह वैहायस नामक विमानमें आरूढ (सवार) हो, उदयगिरिके शिखरपर विराजमान हुए चन्द्रमाके समान दीप्तिमान् होने लगा. यह वैहायस नामक विमान मय दानवने बनाया था ॥ १६ ॥ यह विमान इच्छानुसार चलने वाला था और इसमें युद्धकी सब सामग्री भरी हुई थी, यह विमान आश्चर्ययुक्त था और तर्कसे भी निश्चय नहीं किया जा सकता था. यह कभी दिखलाई देता था और कभी छिप जाता था ॥ १७ ॥ हे महाराज ! जब उस सर्वश्रेष्ठ विमानपर राजा बलि सवार हुआ; तब समस्त सेनापतियोंने उसको चारो ओरसे घेर लिया और इधर उधर चामर व्यजन और मस्तकपर छत्र लगाया गया, तब उदयाचलपर विराजमान हुए चन्द्रमाके समान उसकी शोभा होने लगी ॥१८॥ पृथक् २ यूथके अध्यक्ष असुर लोग अपने विमानोंके सहित सेनापति राजा बलिके साथ गमन करने लगे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति,

सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम्॥१७॥ आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ॥ बालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चंद्र इवोदये ॥ १८ ॥ तस्यासन् सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः । नमुचिः शंबरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ॥ शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २० ॥ हयग्रीवः शंकुशिराः कपिलो मेघदुंदुभिः ॥ तारकश्चक्रदृक् शुंभो निशुंभो जंभ उत्कलः ॥ २१ ॥ अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ॥ अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥ २२ ॥ अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ॥ सर्वे एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥२३॥ सिंहनादान् विमुंचंतः शंखान्दध्मुर्महास्वनान् ॥ दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान् बलभित्कुपितो भृशम् ॥ २४ ॥

अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन ॥ २० ॥ हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्रदृक्, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल ॥ २१ ॥ अरिष्ट, अरिष्टनेमि, मय, त्रिपुराधिप व और पौलोम, कालेय, निवातकवच इत्यादि लेकर ॥२२॥ जिन असुर लोगोंने अमृतके न मिलनेसे क्लेश पाया था, वह सब ही क्रोधित हो सिंहनाद करते २ महाशब्दसे शंखकी ध्वनि करने लगे कि, जिसकी ध्वनिसे सब दिशायें परिपूर्ण होगई ॥२३॥ हे राजन् ! असुरलोगोंको इस प्रकार बलसे उन्मत्त देखकर स्वर्ग नाथ राजा इन्द्रको बडा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥

वह देवराज इन्द्र गगनमण्डलमें मदजल झरण करते हुए ऐरावत हाथीपर इस प्रकार चढ बैठे कि,जैसे झरना झरते हुए उदयाचल पर्वतपर सूर्य भगवान् आरोहण करते हैं,इस समय ऐसी ही शोभा देवराज इंद्रकी हुई॥२५॥हे महाराज ! जब इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ हुए तब देवता लोग विविध भाँतिके वाहन,आयुध और ध्वजाओं सहित वायु,अग्नि,वरुणादि लोकपाल अपने२गणोंको साथ ले इन्द्रके चारो ओर आ मिले॥२६॥ इसके पीछे द्वंद्वयुद्ध करनेवाले वह देवता और दैत्यगण परस्पर एक दूसरेके साथ हो अपना २ नाम सुनाय एक दूसरेकी भर्त्सना करके पुकारने लगे और आगे बढ़कर युद्धारम्भ करते हुए॥२७॥महाराज इन्द्रके सम्मुख राजा बलि आ भिड़ा,तारकासुरके संगमें स्वामिकार्त्तिकजीका संग्राम हुआ,हेतिके संग वरुणजीने युद्ध किया,प्रहेतिके साथ मित्रका संग्राम होने लगा ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहते हैं कि, हे पाण्डुनन्दन ! इसी प्रकार कालनाभके साथ यमराज,मयदानवसे विश्वकर्मा,त्वष्टाके साथ शम्बर और विरोचनके साथ सूर्यभगवान् जा भिडे॥२९॥ अपराजितके सङ्ग नमुचि,वृषपर्व्वाके साथ अश्विनीकुमार,राजा बलिके बाण इत्यादि शत पुत्रोंके साथ एक सूर्यदेवका संग्राम हुआ ॥ ३० ॥ और राहुके साथ भगवान् चन्द्रमाने युद्ध किया, पुलोमाके साथ वायुका समर हुआ. हे अरिन्दम ! निशुम्भ और शुम्भके साथ वेगवती भद्रकाली देवीका संग्राम हुआ ॥ ३१ ॥ जम्भासुरके साथ वृषाकपि शिव, महिषके साथ विभावसु (अग्नि), वातापि और इल्वलके साथ ब्रह्मपुत्र ॥ ३२ ॥ कामदेवके साथ दुर्मर्ष, मातृगणोंके साथ उत्कल, शुक्रके साथ बृहस्पति, नरकासुरके साथ शनिने युद्ध किया ॥ ३३ ॥

ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभ स्वराट्॥यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः॥२५॥तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ॥ लोकपालाः सहगणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ २६ ॥ तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपंतो मर्मभिर्मिथः ॥ आह्वयंतो विशंतोऽग्रे युयुधुर्द्वंद्वयोधिनः ॥ २७ ॥ युयोध बलिरिंद्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ॥ वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥ २८ ॥ यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ॥ शंबरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः॥ २९ ॥अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ॥ सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैश्शतेन च ॥ ३० ॥ राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ॥ निशुंभशुंभयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥३१॥वृषाकपिस्तु जंभेन महिषेण विभावसुः ॥ इल्वलः सह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिंदम ॥ ३२ ॥ कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ॥ बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥ ३३ ॥

कालेय नामक असुर लोगोंके साथ वसुगण संग्राम करनें लगे । पौलोम असुरोंके साथ विश्वेदेवगण जाय जुटे और क्रोधवश असुरोंके साथ रुद्रगणोंनें संग्राम किया ॥३४॥ राजन् ! इस प्रकारसे दानव औ दैत्यवृन्द प्रत्यैक पृथक् पृथक् पुरुषके विरुद्ध हो युद्ध करते करते परस्पर जीतनेकी इच्छा किये तीक्ष्ण बाण,खड्ग और तोमरादिक अस्त्र शस्त्रोंको उठाय महावेगसे चोट चलाने लगे ॥३५॥ और भुशुण्डी,चक्र, गदा, ऋष्टि,पट्टे,लूहर,पाश,फरसा,खड्ग,भाले,गदा,मुद्गर, भिंदिपाल (गोफन)से बराबर शत्रुओंके शिरोंको काटते थे॥३६॥और हाथी, घोडे,रथ,पैदल व सवारोंसहित विविध वाहन,विविध भाँतिके शस्त्रोंके प्रहारसे खण्ड खण्ड होगये. उनकी भुजायें,जांघ,कंधे, चरण कट गये और ध्वजा, धनुष,

मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ॥ विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥ ३४ ॥ त एवमाजावसुराः
सुरेन्द्रा द्वंद्वेन संहत्य च युध्यमानाः ॥ अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥ ३५ ॥
भुशुंडिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ॥ निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिंदिपालैश्च शिरांसि
चिच्छिदुः ॥ ३६ ॥ गजास्तुरंगाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखंडिताः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोधरांघ्रयश्छि
न्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥ ३७ ॥ तेषां पदाघातरथांगचूर्णितादायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ॥ रेणुर्दिशः खं द्युमणिं
च छादयन्न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥ ३८ ॥ शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः संरंभदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ॥
महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥३९॥ कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पश्यंतः स्वशिरोक्षिभिः॥
उद्यतायुधदोर्दंडैराधावंतो भटान्मृधे ॥ ४० ॥

कवच,भूषणादि छिन्नभिन्न होगगये॥३७॥हे राजन् ! इन दैत्यलोगोंके चरणाघातसे और रथके पहियोंसे रणभूमिमें बडी धूल उडी कि, जिसने प्रथम गगनमण्डल और सूर्य भगवान्‌को ढक लिया,तिसके पीछे वह धूरि रुधिरके गिरनेसे गीली हो इस कायसे निवृत्त हुई–अर्थात् फिर आकाशको न उडी॥३८॥हे राजन् ! वह रणभूमि अनेक योद्धाओंके भूषणभूषित छिन्नभिन्न भुजाओंसे शुण्डोंके समान जांघोंसे और बडे २ मस्तकोंसे ढककर बडी शोभाको प्राप्त हुई, संग्रामस्थलमें जो मस्तक कटे हुए पडे थे,उन सबके किरीट और कुण्डल गिर पडे थे, उन शिरोंके नेत्र मारे क्रोधके लाल लाल होरहे थे और दाँतोंसे ओठोंको चबा रहे थे ॥ ३९॥ तिसके पीछे गिरे हुए अपने अपने शिरोंकी आँखोंसे देखते

देखते अनेक अनेक कबन्ध उठने लगे । वह कबन्ध अपने अपने हाथोंमें विविध भाँतिके आयुध उठाय उठाय सेनाके ऊपर धावमान होने लगे॥ ४०॥ तिसके पीछे महाअसुर राजा बलिने दश बाणोंसे इन्द्रको, तीन बाणोंसे उसके वाहन ऐरावतको, चार बाणोंसे ऐरावतके चार रखवालोंको और एक बाणसे हाथीके महावतको मारा ॥ ४१ ॥ परंतु राजा इन्द्रने हँसकर इन वेगवान् बाणोंको अपने ऊपर गिरनेसे पहले ही उतने ही अपने तेज भालोंसे काट डाला॥ ४२॥ हे महाराज ! देवराज इन्द्रका यह प्रशंसा करने योग्य कर्म देख राजा बलि ईर्षाके मारे इसको न सह सका और उसने महाक्रोध कर अतिवेगवान् शक्ति ग्रहण की परंतु वह शक्ति राजा बलिके ही हाथमें रहकर जब उल्काके समान प्रज्वलित हो रही थी, उसी समय देवराज इंद्रने अपने अस्त्रसे उसको काट डाला ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे दैत्यराज बलिने शूल ग्रहण किया, फिर प्रास (अस्त्रविशेष) लिया, फिर तोमर (अस्त्रविशेष) और इसके पीछे ऋष्टि ली, परंतु राजा बलि जिस अस्त्रको ग्रहण करता था, शचीनाथ इन्द्र उसको ही काट डालते थे ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे यह असुर राजा बलि अचानक अन्तर्धान होगया और आसुरी माया प्रगट की कि; जिससे अकस्मात् देवताओंकी सेनाके ऊपर एक बड़ा भारी पर्वत गिरा ॥ ४५ ॥ तिसके पीछे बहुतसे वृक्ष दावानलसे भस्म होकर गिरने लगे और टाँकीके समान पैनी अनीवाली बहुतसी शिलायें गिरकर शत्रुकी सेनाको चूर्ण करने लगीं ॥ ४६ ॥ और दंदशूक बडे बडे सर्प, बिच्छू और सिंह, व्याघ्र, वाराह व भागते हुए बडे बडे हाथी गिरने लगे और नंग धडंगी शूल धारण किये सैकडों सहस्रों निशाचरी और बहुतेरे राक्षस

बलिर्महेंद्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमाच्छंयत् ॥ ४१ ॥ स तानापततः शक्रस्तावद्भिः
शीघ्रविक्रमः ॥ चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव॥४२॥तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ॥ तां ज्वलंतीं
महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥ ४३ ॥ ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ॥ यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं
तदच्छिनद्विभुः ॥ ४४ ॥ ससर्जाथासुरीं मायामंतर्धानं गतोऽसुरः ॥ ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥४५ ॥
ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना ॥ शिलाः सटंकशिखराश्चूर्णयंत्यो द्विषद्बलम् ॥ ४६ ॥ महोरगाः समुत्पे
तुर्दंदशूकाः सवृश्चिकाः॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयंतो महागजान्॥४७॥ यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः ॥
छिंधि भिंधीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥ ४८ ॥

प्रकाशमान हो "मार मार, काट काट" कहकर भयंकर कोलाहल करने लगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके पीछे आकाशमण्डलमें बडा भारी मेघ
उदय हो गम्भीर और कठोर ध्वनि करने लगा व और दूसरे बादल पवनसे टकराय अंगारोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४९ ॥ महाअसुर बलिने
जो मायासे अग्नि उपजाई थी; प्रलयकी आगके समान भयंकर हो देवता लोगोंकी सेनाको भस्म करने लगी ॥ ५० ॥ फिर चारो ओरसे
समुद्र उफनना हुआ दिखाई दिया. प्रचण्ड पवनके चलनेसे जो तरंगें उछलने लगीं और भवँर पडने लगे तिससे रणभूमि अत्यन्त ही भयंकर
दिखाई देनेलगी ॥ ५१ ॥ व और मायावी दानवगण अदृश्य रहकर इस प्रकारसे जब रणभूमिमें विविध भाँतिकी माया उत्पन्न करने लगे,

ततो महाघना व्योम्नि गंभीरपरुषस्वनाः ॥ अंगारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥ सृष्टो दैत्येन सुमहान् वह्निः
श्वसनसारथिः ॥ सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥५०॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ प्रचण्डवाते
रुद्धूततरंगावर्तभीषणः ॥५१॥ एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ॥ सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥
न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिंद्रादयो नृप ॥ ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥५३॥ ततः सुपर्णांसकृतांघ्रिपल्लवः
पिशंगवासा नवकंजलोचनः ॥ अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुंडलः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेऽसुर
कूटकर्मजा माया विनेशुर्महिना महीयसः ॥ स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥ ५५ ॥

तब देवता लोगोंकी बहुतसी सेना नाशको प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! जब इन्द्रादि देवता लोगोंने इस मायाका कोई उपाय न देखा तब
श्रीभगवान्का ध्यान किया, जैसे ही ध्यान किया कि, उसी स्थानमें भगवान् विश्वभावन प्रगट हो गये ॥ ५३ ॥ उस समय पीतवसनधारी
नवीन कमलके समान नेत्रवाले भगवान् गरुडके कन्धेपर चरणपल्लव धरें, आठ भुजाओंमें आयुध धारण किये सबको दिखाई दिये। अपने
वाहन गरुडजीके दोनों कन्धोंपर उनके दोनों चरण रक्खे हुए थे और श्री-कौस्तुभ, बडे मोलका किरीट और दोनों मनोहर कुण्डल यथायोग्य
अंगोंपर धारण कियेजानेसे अत्यन्त शोभा विस्तार कर रहे थे ॥५४॥ जैसे जाग्रद्दशाके आनेसे स्वप्नावस्था भाग जाती है, वैसे ही मुरलीमनोहरके
रणक्षेत्रमें आते ही असुर लोगोंके मन्त्रोंसे उत्पन्न हुई माया शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगई. हे राजन् ! श्रीभगवान् हरिकी महिमा ऐसी ही है

कि उनके स्मरण करते ही सब दुःख नाशको प्राप्त होजाते हैं, फिर उनके आनेसे देवता लोगोंका दुःख दूर होनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ५५ ॥ कालनेमिनामक जो असुर सिंहपर चढ़ा हुआ शूरवीरता प्रगट कर रहा था,वह रणभूमिमें गरुडजीपर चढ़े हुए भगवान् नारायणको घायल करनेकी इच्छासे शूल चलाने लगा.उस शूलको गरुडजीके मस्तकपर गिरता हुआ देखकर त्रिगुणाधीश भगवान् हरिने लीलासे ही पकड लिया और उस शूलसे ही वाहनसहित उस कालनेमिका शिर काट लिया॥५६॥तिसके पीछे अतिबलशाली सुमाली युद्धमें आया,तब श्रीभगवान्ने चक्र चलाय दोनोंके शिर काट लिये तब माल्यवान् अति पैनी गदा लेकर गरुड़जीके संहार करनेको दौड़ा कि, तुरन्त ही भगवान्ने चक्र

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ॥ तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद् गृहीत्वा तेना हनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः ॥ ५६ ॥ माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ॥ आहत्य तिग्मगद्याऽहनदंडजेंद्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥५७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे अमृतदाने देवासुरयुद्धं नाम दशमोऽध्यायः ॥१० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसा परयानुकंपया ॥ जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तांस्तान्रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥ वैरोचनाय संरब्धो भगवा न्पाकशासनः ॥ उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः॥२॥वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरः स्थितम् ॥ मनस्विनं सुसंपन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३ ॥

चलाकर उसका भी मस्तक काट लिया ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां देवासुरसंग्रामवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥ दोहा—ग्यारहमें सब देवतन,हने असुर बलवान । मरे परे लख शुक्रने,सबहि दीन्ह जिवदान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! तिसके पीछे इन्द्र, वायु आदि देवता लोग परमपुरुष भगवान्की कृपासे सावधान हो उन असुर लोगोंके ऊपर अतिवेगसे आघात करने लगे कि जिन राक्षसोंने पहले उनको मारा था॥ १ ॥ जब देवराज इन्द्र क्रोधित होकर विरोचनके पुत्र,राजा बलिके मारनेको वज्र उठाकर दौडे, तब सब प्रजा हाहाकार करने लगी ॥२॥ मनस्वी राजा बलि प्रस्तुत हुआ महारणमें घूम रहा था कि, इतनेमें वज्र हाथमें लिये देवराज

इन्द्रने सन्मुख खडे हुए उस दानवका तिरस्कार करके कहा ॥ ३ ॥ कि, अरे मूढ ! कपटवृत्तिवाले चोर लोग जैसे बालकोंके नेत्र बंद करके उनके धन हर लेते हैं, वैसे ही तू भी माया कर हम लोगोंके जीतनेकी वासना करता है, परंतु यहां तेरी कामना पूरी नहीं होगी, क्योंकि हम मायाके ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ अरे ! तू हमारा प्रभाव सुन, जो लोग मायासे स्वर्गमें चढ़नेकी वान्छा करते हैं वा जो लोग स्वर्गका उल्लंघन करना चाहते हैं, हम उन सब चोरोंको उनके पदसे भी नीचे पटक देते हैं ॥ ५ ॥ अरे मंदात्मन् ! हम इस शतधारावाले वज्रसे अभी तेरा शिर काटे डालते हैं, तू अपनी जातिवालोंके साथ युद्ध करनेका यत्न कर ॥ ६ ॥ राजा बलिने कहा कि, हे इन्द्र ! इतना गर्व क्यों करते

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि ॥ जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥ आरुरुक्षंति मायाभिरुत्सिसृप्संति ये दिवम् ॥ तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥५॥ सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ॥ शिरो हरिष्ये मंदात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह॥६॥ बलिरुवाच॥ संग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ॥ कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात्॥७॥ तदिमं कालरशनं जनाः पश्यंति सूरयः ॥ न हृष्यंति न शोचंति तत्र यूयमपंडिताः ॥८॥ न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ॥ गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥

हो [१] जो सब पुरुष कालसे प्रेरित होकर संग्राम करते हैं उन सबको क्रमसे कीर्ति, जय, पराजय और मृत्यु प्राप्त हुआ करती है ॥ ७ ॥ इस कारण पंडित लोग इस जगत्को कालसे बँधाहुआ समझते हैं, बस इससे इन सब बातोंके लिये हर्ष अथवा शोक कुछ नहीं करते, परन्तु तुमने यह विचार नहीं किया, क्योंकि तुम इस विषयमें चतुर नहीं हो ॥ ८ ॥ इसलिये इन सब कीर्ति जयादिकोंमें अपनेको कारण समझकर तुम मर्मके पीडा देनेवाले वचन कहते हो परन्तु हम तुम्हारे इन वचनोंपर कान नहीं देंगे, क्योंकि तुमको कुछ भी बोध नहीं है,

---

[१] कबित्त–वैर प्रीति कारिबेकी मनमें न राखै शंक, राजा रंक देखके न छाती धकधाकरी । आपकी उमंगकी निवाहिबेकी चाह जिन्हैं, एकसो दिखात तिन्हैं बाघ और बाकरी ॥ ठाकुर कहत मैं विचारके विचार देखो, यहै मरदाननकी टेवं बात आकरी । गही तौन गही जौन छोडी तौन छाँडि दई, करी तौन करी जौन ना करी सो ना करी ॥

अम्बुदपटल (मेघगण) जिस प्रकार शरद् कालके सूर्य भगवान्‌को ढक लेते हैं,वैसे ही असुर लोगोंने बाणोंके समूहसे रथ और सारथीके साथ इंद्रको ढक लिया॥२४॥तब देवता लोग इंद्रको न देखकर अपने अनुचरोंके साथ विह्वल हो इस प्रकारसे चिल्लाने लगे कि, जैसे समुद्रमें जहाज के फटजानेसे बनियें व्याकुल हो हाय हाय करते हैं. उन सब देवता लोगोंने जाना कि, आज हम स्वामीरहित हुए ॥ २५ ॥ तिसके पीछे देवराज इन्द्र असुर लोगोंके द्वारा बाणोंसे बाँधे पिञ्जरेमें ध्वजा, अश्व, रथ और सारथी सहित निकल कर रात्रि बीत जानेपर सूर्य भगवान्‌के समान अपने तेजसे पृथ्वी,आकाश व समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उदित हुए ॥ २६ ॥ और सेनापति लोगोंको समरमें शत्रु लोगोंसे

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम्॥ छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवांबुदाः ॥ २४ ॥ अलक्षयंतस्तमतीव विह्वला
विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः ॥ अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे ॥ २५ ॥ ततस्तु
राषाडिषुबद्धपंजराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ॥ बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्वतेजसा सूर्य इव क्षपा
त्यये ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ॥ उदयच्छद्रिपुं हंतुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥ २७ ॥ स तेनैवाष्ट
धारेण शिरसी बलपाकयोः ॥ ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥ २८ ॥ नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्ष
रुषान्वितः॥ जिघांसुरिंद्रं नृपते चकार परमोद्यमम्॥ २९ ॥ अश्मसारमयं शूलं घंटावद्धेमभूषणम् ॥ प्रगृह्याभ्यद्रवत्
क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ॥ प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥

पीडित देख वज्र धारण कर वैरियोंका नाश करनेके लिये क्रोधके मारे अपना शस्त्र (वज्र) उठाने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन्! देवराज इन्द्रने अपने अष्टधातुवाले वज्रसे एक ही समयमें बल और पाक दो असुरोंका मस्तक काट लिया. यह देखकर इन दोनों दानवोंके जातिवाले भयसे अत्यन्त व्याकुल होगये ॥ २८ ॥ परंतु बल और पाकका नाश देख दानवश्रेष्ठ नमुचि शोक और अमर्षयुक्त हो क्रोधसे परिपूर्ण हुआ और इंद्रका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा करके अनेक यत्न करने लगा॥ २९ ॥ वह घंटायुक्त और सुवर्णसे भूषित लोहेका शूल ग्रहण कर महाक्रोधसे "मार लिया""मार लिया" कह गर्जता हुआ देवराज इन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥

और सिंहके समान गंभीर गर्जन करते करते देवराज इन्द्रके ऊपर इस राक्ष सने यह शूल चलायाहे राजन् । इस महाशूलको आकाशमार्गमें उछ लता देखतेही स्वर्गाधिपति इंद्रने अपने बाणोंसे काट हजार टुकडे कर डाल और फिरक्रोध कर नमुचिका शिर काटनेके लिये उस दानवकी गर्दनमें बड जोरसे वज्र मारा ॥ ३१ ॥ यद्यपि इन्द्रने महावेगसे तेजस्वी वज्र चलाया, तथापि वह उस दानवकी खालको भी तो न काट सका। जिस वज्रने अतिवीर्यवान् वृत्रासुरको भी छिन्नभिन्न कर डाला था, वही वज्र नमुचिकी गर्दनपर लगकर खुटला होगया। सत्य है "समयके फेरसे सुमेरु होत माटीको" यह बडे ही आश्चर्यकी बात हुई ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जिससे इंद्रके वज्रका अति तिरस्कार होता था देवराज उससे महा भय करते थे, इसलिये इस व्यापारको देखकर देवराज इन्द्र विस्मित हो आप ही आप कहने लगे कि, दैवयोगसे यह क्या विमोहन हुआ॥ ३३॥

तदापतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ॥ तमाहनन्नृप कुलिशेन कंधरे रुषान्वितस्त्रिदशपतिः
शिरो हरन्॥ ३१ ॥ न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपति नौजसेरितः॥ तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्
तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥ तस्मादिंद्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ किमिदं दैवयोगेन भूतं लोक
विमोहनम् ॥ ३३ ॥ येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ॥ कृतो निविशतां भारैः पतत्रैः पततां भुवि ॥ ३४ ॥
तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ॥ अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥ ३५ ॥ सोऽयं प्रतिहतो वज्रो
मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ॥ नाहं तदाददे दंडं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥ ३६ ॥ इति शक्रं विषीदंतमाह वागशरीरिणी ॥
नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥ ३७ ॥

अहो! जब जब प्रजालोगोंपर दुःख हुआ है कि, पर्वत बोझसे भारी हुए पंखोंसे उडते उडते प्रजालोगोंके ऊपर गिर पडते; तब जिस वज्रसे हमने उनके पंख काटे हैं ॥ ३४ ॥ और त्वष्टाके तपके सारसे जो उत्पन्न हुआ वह वृत्रासुर जिससे मारा गया है, वह और बलवान् शूर कि, जिनकी खाल किसी अस्त्रसे नहीं कटी, वे लोग भी जिससे मारे गये, सो वही वज्र इस क्षुद्र असुरपर चलाया और लगा भी, परन्तु इसके घाव भी न आया ॥ ३५ ॥ आः डंडेके समान इस वृथा वज्रको हम अब धारण नहीं करेंगे, कैसे खेदकी बात है कि, द्विजश्रेष्ठ दधीचिका सामर्थ्य भी व्यर्थ होगया ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! जब देवराज इन्द्र इस प्रकार शोक कर रहे थे कि, अशरीरिणी वाणी (आकाशवाणी) नेउनसे कहा कि,

श्रीशुक उवाच ॥ इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ॥ आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥ १० ॥ एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ॥ नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥ प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ॥ सयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥ सखायं पतितं दृष्ट्वा जंभो बलिसखः सुहृत् ॥ अभ्ययात् सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥ स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ॥ जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४ ॥ गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ॥ जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥ ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ॥ आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६ ॥

वरन् तुम्हारे लिये हम शोक करते हैं ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, वीरमर्दनकारी राजा बलिने इस प्रकार इंद्रका निरादर कर कानतक धनुष खींच देवराजके बाण मारे। हे राजन्! एक तो शचीनाथ राजा बलिसे तिरस्कार पाय घायल हुए ही थे और दूसरे बाणोंके लगनेसे फिर घायल हुए ॥१०॥ यद्यपि इन्द्र इस प्रकारसे यथार्थ कहनेवाले अपने शत्रुसे तिरस्कृत किये गयैं तो भी अंकुश खाये हुए हाथीके समान इन्होंने राजा बलिके तिरस्कारको नहीं सहा * ॥११॥ और उसी समय अमोघ (जो कभी व्यर्थ ही न हो) वज्र हाथमें लेकर राजा बलिपर चलाया कि, जिसके लगनेसे दानव राजा बलि पंख कटे पर्वतके समान विमानसहित गिरकर भूतलमें पतित हुआ अर्थात् पृथ्वीपर गिरा॥१२॥राजा बलिका मित्र जम्भासुर अपने सखाको संग्रामस्थलमें गिरता हुआ देखकर आहत सुहृदके साथ सुहृदपनका आचरण करनेके लिये धावमान हुआ ॥ ॥१३॥ और सिंहवाहन वह समीप जा वेगसे गदा उठाय इंद्रके और उनके वाहन ऐरावत हाथीके कन्धेमें जहां जोड़ होता है वहाँ मारी ॥ १४ ॥ देवराजका हाथी गदाके प्रहारसे अत्यन्त व्यथित होगया, उसने आगेके दोनों घुटने पृथ्वीमें टेक दिये और बडे मोहको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ हे पाण्डुकुलभूषण परीक्षित! यह देखकर इसका सारथी मातलि ऐसा रथ लेकर आ पहुँचा कि, जिसमें एक सहस्र घोडे जुडेहुए थे तब देवराज इन्द्र

---

* **शंका**-शुक्राचार्य तो मरे हुए राक्षसोंको अपनी सञ्जीवनी विद्यासे जिला देते थे फिर राक्षसोंका नाश कैसे होगया ?

उत्तर-शुक्राचार्य राक्षसोंको जीवित कर सकते थे परंतु जब राक्षसोंके स्वामीका ही तेज नष्ट होगया तब शुक्राचार्य राक्षसोंको कभी नहीं जिला सकते थे, क्योंकि समयके प्रतापको भगवान् भी मानते हैं तो शुक्रकी क्या बात है ?॥

हाथीको छोडकर उस रथमें बैठ गये ॥१६॥ जंभासुर देवराज इन्द्रके सारथीका यह कार्य देखकर प्रशंसा करने लगा, परंतु दूसरे क्षणमें ही गर्व प्रगट करके संग्रामके बीच उसने प्रदीप्त शूल चलाय मातलिको मारा ॥ १७ ॥ देवराज इंद्रके सारथी मातलिने अपने बलका आश्रय करके उस शूलके प्रहारकी दुःसह व्यथाको सहन किया तब स्वर्गनाथ इंद्रने क्रोधित होकर वज्र चलाय जंभासुरका मस्तक काट डाला ॥ १८ ॥ हे राजन्! जंभासुरके मारे जानेका समाचार देवर्षि नारदजीके मुखसे सुन उसकी जातिवाले नमुचि,बल और पाक ये तीन दानव बडी शीघ्रताके साथ वहाँ आये ॥ १९ ॥ और विविध भाँतिके कठोर वचनोंसे इन्द्रका मर्म भेदन करने लगे; जैसे मेघ जलकी धार वर्षा कर पर्वतको

तस्य तत् पूजयन् कर्म यंतुर्दानवसत्तमः॥शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे॥१७॥सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालंब्य मातलिः॥ इंद्रो जंभस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः॥१८॥जंभं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ॥ नमुचिश्च बलः पाकस्तत्र पेतुस्त्वरान्विताः ॥ १९ ॥ वचोभिः परुषैरिंद्रमर्दयंतोऽस्य मर्मसु ॥ शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ ० ॥ हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ॥ तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥ शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ॥ सकृत्संधानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥ २२ ॥ नमुचिः पंचदशभिः स्वर्णपुंखैर्महेषुभिः ॥ आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥

ढक लेते हैं, वैसे ही बाण वर्षाय इन तीन राक्षसोंने देवराज इन्द्रको रूंध लिया ॥ २० ॥ बलनामक असुर बडी शीघ्रताके साथ बाण छोडता था उसने रणक्षेत्रमें दशसौ बाण चलाय देवराज इन्द्रके एक हजार (१०००) घोडोंको मारा ॥ २१ ॥ पाकनामक असुरने दो सौ बाण देवेन्द्रके सारथिके और रथके मारे। केवल एक बारहीके चढानेसे और छूनेसे अर्थात् इन दोनों क्रियाओंके साथ प्रकाशित होनेसे समरभूमिमें यह अद्भुत जान पडने लगी ॥ २२ ॥ तिसके पीछे नमुचिने सुवर्णकी फोंक लगे हुए बडे भारी पन्द्रह बाणोंसे देवराज इंद्रको बींध डाला और रणक्षेत्रमें जलभरे बादलके समान भयंकर गर्जना करने लगा ॥ २३ ॥

हे देवेन्द्र ! यह दानव सूखी व गीली वस्तुसे नहीं मारा जायगा॥३७॥क्योंकि मैंने इसको वर दिया है कि,सुखी व गीली वस्तुसे तेरी मृत्यु नहीं होगी, इसलिये इसके मारनेका कोई दूसरा उपायग सोचिये॥३८॥आकाशवाणीको सुन देवराज इन्द्रने सावधान रीतिसे ध्यान कर गीला और सूखा उभयात्मक उपाय देख लिया॥३९॥कि जलका फेन यह न सूखा है न गीला है, यह विचार उसीको वज्रमें लपेटकर नमुचिका मस्तक काट लिया। हे राजन् ! नमुचिके मारे जानेपर मुनिलोग इन्द्रकी भलीभाँति स्तुति करनें लगे और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥४०॥ गन्धर्वोंमें मुख्य विश्वावसु और परावसु गाने लगे,देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सरायें आनंदके मारे नृत्य करने लगीं॥४१॥हे महाराज! इन्द्रने जिस प्रकार नमुचिका शिर काट डाला–वायु, अग्नि, वरुणादि देवतालोगोंने भी उसी प्रकार असुर लोगोंका प्राणसंहार किया कि,

673

मयास्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ॥ अतोऽन्यश्चिंतनीयस्ते उपायो मघवन् रिपोः॥३८॥तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः॥ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम्॥३९॥न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेःशिरः॥तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥४०॥ गंधर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू॥देवदुंदुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा॥४१॥ अन्येऽप्येवं प्रतिद्वंद्वान्वाय्वग्निवरुणादयः॥सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा॥४२॥ ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ॥ वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंक्षयम्॥४३॥नारद उवाच॥ भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः॥ श्रिया समेधिताः सर्वे उपारमत विग्रहात् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संयम्य मन्युसंरंभं मानयंतो मुनेर्वचः ॥ गीयमाना अनुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥ येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते ॥ बलिं विपन्नमादाय अस्तंगिरिमुपागमन् ॥४६॥

जैसे केसरी (सिंह) मृगोंका वध करते हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु उसी समय ब्रह्माजीके भेजे हुए देवर्षि नारद देवतालोगोंके निकट आगये और दानवोंका नाश देखकर उनको निवारण करने लगे ॥ ४३ ॥ श्रीनारदजी कहने लगे कि, हे देववृन्द ! तुम लोगोंने श्रीभगवान्‌की भुजाओंके बलसे अमृत प्राप्त किया है और सर्व सम्पत्तियोंसे युक्त हुए हो, अब फिर युद्ध क्यों करते हो, इस युद्धसे अलग होजाओ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, नारदजीके वचनको मानकर देवता लोगोंने उसी समय अपना अपना क्रोध छोड दिया और अपने अनुचरोंके साथ स्वर्गको चले गये ॥ ४५ ॥ रणभूमिमें दानव लोगोंके जो बचे बचाये वीर थे वह नारदजीकी सम्मतिसे मरे हुए राजा बलिको साथ ले अस्ताचल पर्वत

पर चले गये ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! रणभूमिमें मरकर गिरेहुये जिन दानवोंके अंग सम्पूर्णतः नष्ट नहीं हुए थे और जिनकी गर्दनें विद्यमान थीं उनको दैत्यगुरु शुक्राचार्यने सञ्जीविनी विद्याके बलसे फिर जिला दिया ॥ ४७ ॥ दैत्यराज बलि शुक्राचार्यके हाथका स्पर्श पाय फिर इन्द्रिय और स्मरणशक्तिको प्राप्त होगया. यह राजा बलि लोकतत्त्वको भली भाँति जानता था, इसलिये पराजित होकर भी उसने खेद नहीं किया * ॥४८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां देवविजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः॥ ११॥ दोहा–द्वादशमें भगवाननने, धरो मोहिनी रूप । मोहित कर शिवको बहुरि, दीन्हों ज्ञान अनूप ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! श्रीभगवान्ने स्त्रीरूप धारण करके दानवोंको मोहित कर देवता लोगोंको अमृत पिलाया था ॥ १ ॥ यह सुन उस रूपको देखनेके लिये

तत्राऽविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् ॥ उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ॥४७॥ बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेंद्रियस्मृतिः ॥ पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० अष्टमस्कंधे देवासुरसंग्रामविश्रांतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ॥ मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥ वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥ सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ॥ सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ॥ सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥

वृषभध्वज गिरीश महादेवजी अपने वाहन नंदी गणपर चढकर समस्त भूतगण और पार्वतीजीके साथ उस स्थानमें गये कि जहाँ भगवान् मधुसूदन विराजमान थे ॥ २ ॥ श्रीपार्वतीजीके साथ महेश्वर महादेवजीको आया हुआ देखकर श्रीभगवान्ने उनका यथोचित आदर सत्कार किया और यथायोग्य पूजा करके बैठनेके लिये आसन दिया । महादेव भी आनंदपूर्वक बैठ और श्रीभगवान्की पूजा कर विस्मययुक्त वचन उनसे कहने लगे ॥३॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवदेव ! जगद्व्यापिन् ! हे जगन्मय ! हे जगदीश ! आप सब पदार्थोंके हेतु होनेसे ईश्वर हैं ॥४॥

---

* क. बित्त–हेम हय हाथी हथियार हू न भये साथी, सुन्दरा न मुन्दरी जडाऊ [illegible] ॥ गाड धन गाड धरे मोहरे मंडारनमें, घराघूरी छयबेने वर्ष गय छारा ॥ की देव:त काहू::खायो न खवायो अरु, खायो तीन पाव चून पहिरे तीन कारा ॥ हो नहीं अचेत भये रेत खन परे रहे, देखो दुष्ट लोगनकी खारगको खारा ॥

66/4

हे भगवन् ! जिससे इस जगत्का आदि, अन्त और मध्य होता है और अव्यक्त होनेसे जिसमें यह आदि, अन्त और मध्य नहीं है और जो "यह" शब्दके आस्पद दृश्य पदार्थ और "हम" इस शब्दके आस्पद द्रष्टा और "बहिः" इस पदके वाच्य भोज्य और भोक्ता हैं, वही सत्यस्वरूप, चित्रूप ब्रह्म आप हैं, इससे यद्यपि आपको जगन्मय कहकर सम्बोधन किया तो भी आपमें विकारादिकी शंका नहीं है ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! आप जो ऐसे हैं, इसमें मुमुक्षुजनोंका आचार ही प्रमाण है, क्योंकि श्रेयस्काम निराशी मुनि लोग इस कालमें और परकालमें संग छोड़ आपके चरणकमलकी बंदना किया करते हैं ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आप साक्षात् ब्रह्म हैं, तथापि उदासीन नहीं हैं, आप इस जगत् प्रपंचके सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं और प्रपंचोपाधि सब जीवोंके ईश्वर हैं अर्थात् वैसे ही फलके दाता हैं, किन्तु आप राजा लोगोंके समान कुछ अपेक्षा करके सेवकोंको फल नहीं देते अर्थात् दूसरेमें तत् तत् (उन उन) आत्माके द्वारा तत्तत्फल पदार्थ जैसी अपेक्षा कीजाती है, सो फल देनेके विषयमें आपको वैसी अपेक्षा नहीं है. फलतः आप पूर्ण सुखस्वरूप, नित्य, आनंदमय, अगुण और अशोक हैं. आपसे अलग दूसरा पदार्थ नहीं और आप सब पदार्थोंसे भिन्न हैं. हे भगवन् ! आप ऐसे सुखात्मक ब्रह्म स्वरूप हैं, इसलिये आपको किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, आपका ऐश्वर्य केवल भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये है, आत्मार्थ नहीं है ॥ ७ ॥ हे देव ! जैसे कुण्डलादिरूप सुवर्ण और केवल सुवर्ण, यह दोनों एक ही वस्तु हैं, वैसे ही सत् और असत् अर्थात् कार्यकारणरूप रूपद्वय (दो) हैं और परमकारणरूप अद्वय एक आप ही हैं. अज्ञानके वश होकर लोग आपमें भेद कल्पना किया करते हैं. वास्तवमें आप निरुपाधि हैं. गुणद्वारा ही आपका भेद होता है, स्वयं कोई भेद नहीं है ॥ ८ ॥

आद्यंतावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ॥ यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥ ५ ॥ तवैव चरणांभोजं
श्रेयस्कामा निराशिषः ॥ विसृज्योभयतः संगं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥ त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानं
दमात्रमविकारमनन्यमन्यत् ॥ विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥ ७ ॥ एकस्त्व
मेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ॥ अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद्गुणैर्व्य
तिकरो निरुपाधिकस्य ॥ ८ ॥

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेक एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम्॥ अन्येऽवयंति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्महापुरुष
मव्ययमात्मतंत्रम् ॥ ९ ॥ नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानंति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ॥ यन्मायया
मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १० ॥ स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेर्हितं च
जगतो भवबन्धमोक्षौ ॥ वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥ अवतारा
मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ॥ सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्त योषिद्वपुर्धृतम्॥ १२॥ येन संमोहिता दैत्याः पायिता
श्चामृतं सुराः ॥ तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३ ॥

हे भगवन्! अज्ञानके वश होकर लोग अनेक भाँतिसे आपका वर्णन किया करते हैं, परन्तु कोई भी तत्त्व नहीं जानता. कोई पुरुष(वेदान्ती लोग) आपको ब्रह्म मानते हैं, कोई कोई (मीमांसक) आपको धर्म कहते हैं, कुछ लोग (सांख्यके जाननेवाले) प्रकृति पुरुषसे परे आपका वर्णन करते हैं और दूसरे (पंचरात्रज्ञ पुरुष) नवशक्तियुक्त परमपुरुष कहकर आपको बताते हैं और कुछ (पातंजल दर्शन जाननेवाले) अव्यय स्वतंत्र महापुरुष आपको कहते हैं ॥ ९ ॥ हे ईश ! ब्रह्मा, मैं (महेश्वर) और मरीचि प्रभृति मुनि जोकि सत्वगुणसे उत्पन्न हुए हैं सो आपकी माया करके चित्त हरे जानेपर जब यह भी आपके रचित ब्रह्माण्डके तत्त्वको नहीं जानते तब दैत्य मनुष्य कि जिनकी उत्पत्ति और वृत्ति राजस,तामससे हुई हैं,वह आपको क्या जानेंगे? अर्थात् वह आपको नहीं जानते॥ १० ॥परन्तु आप जगत्का जन्म, स्थिति, नाश, सब प्राणियोंकी चेष्टा,जगत्के भवबन्धन और मोक्ष सबहीको जानते हो, वायु जिस प्रकार चर अचर देवसमूह और आकाशमें व्याप रहे हैं, वैसे ही आप भी आत्मस्वरूपसे सब चराचरमें व्याप रहे हैं, आप ज्ञानस्वरूप हैं, इसकारण सबके आत्मा हैं ॥ ११ ॥ हे भगवन्! आप गुणद्वारा क्रीडा करके जो जो अवतार धारण करते हैं मैं उन सबको देखता हूँ; इसलिये अब जो आपने मोहिनीरूप धारण किया है, मैं उसे देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १२ ॥ जिस मोहिनीरूपसे आपने दुर्मद दानवोंको मोहित किया और देवताओंको अमृत पिलाया मैं वही मोहिनीरूप देखनेके लिये यहां आया हूँ,क्योंकि

इसके लिये मुझे बडा कौतूहल हुआ है॥१३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब शूलपाणि महादेवजीने ऐसी प्रार्थना की तब श्रीभगवान् मुसकाकर गम्भीर वाणीसे महादेवजीके प्रति कहने लगे॥१४॥श्रीभगवान् कहते हैं कि,हे देवदेव ! जब अमृतका पात्र देवता लोगोंके हाथसे छीनकर असुर लोगोंके पास गया तब मैंने विचारा कि“स्त्रीका रूप ही धारण करनेसे देवतालोगोंका कार्य सिद्धहोगा”अर्थात् उन्मत्त दैत्योंको ठगकर देवताओंको अमृत पिलाया जायगा परंतु बिना दूसरा रूप धारण किये यह कार्य नहीं हो सकता इसलिये दानव लोगोंके कौतूहलार्थ ठगाई और मोहनादिका सारस्वरूप यह कामिनीरूप हमने धारण किया ॥ १५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! आप हमारे उस मोहिनीरूपके देखनेकी इच्छा करते हैं, अच्छा आपको दिखाया जायगा; उस रूपको कामीपुरुष बहुत ही मानते हैं. उससे मीनकेतु (कामदेव) का उदय हो जाता है ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवाञ्छूलपाणिना ॥ प्रहस्य भावगंभीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ॥ पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५ ॥ तत्तेऽहं,
दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ॥ कामिनां बहु मंतव्यं संकल्पप्रभवोदयम्॥१६॥श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणो भग
वांस्तत्रवांतरधीयत ॥ सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया॥ १७ ॥ ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लव
द्रुमे ॥ विक्रीडतीं कंदुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितंबमेखलाम्॥ १८ ॥ आवर्तनोद्वर्तनकंपितस्तनप्रकृष्टहारोरुभरैः
पदे पदे ॥ प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः॥ १९ ॥

675

कि, भगवान् इस प्रकार कहते कहते वहां ही अन्तधान हो गये. उस समय महादेवजी अपनी भार्या पार्वती सहित चारों ओरको नेत्र चलाय उस रूपके देखनेको उत्कण्ठित रहे ॥ १७ ॥ कुछ देरके पीछे उपवनमें कि जहांपर वृक्षोंमें चित्रविचित्र कुसुम और अरुण वर्णके पल्लव शोभायमान हो रहे थे; वहांपर परम सुन्दर एक स्त्री श्रीमहादेवजीने देखी; उसके नितम्ब उज्ज्वल रेशमी वसनसे ढक रहे थे. उसमें मेखला (जञ्जीर) की लडियें ऐसी दीप्तिमान् होरही थीं कि, मनुष्यका मन उसकी ही कडियोंमें उलझा रहे, वह स्त्री गेंद उछालकर देखनेवालोंके मन भी इसके साथ ही उछालती थी ॥ १८ ॥ गेंदके ऊपर नीचे उछालनेके कारण उसके शरीरके झुकने और ऊंचे होनेसे उसकी दोनों छातियें (स्तन) व मनोहर हार बार बार कम्पायमान होता था, उस समय ऐसा जान पडता था कि, मानो उनके भारी भारसे उसकी कमर

लचकती थी कि, जिससे वह अपने मूंगेके तुल्य लाल कोमल चरण इधर उधर धरती थी ॥ १९ ॥ सब दिशाओंमें गेंदके उछलनेसे उसके चंचलभावसे उद्विग्न हुए तारेके समान विशाल नेत्र,अपने कानोंमें प्रकाशित होते हुए कुण्डलोंसे उसके कपोल शोभायमान हो रहे थे और इधर मुखपर छिटकी हुई अलकें अलग ही अपना जाल फैलाय रही थीं कि जिससे आश्चर्यमय शोभा हुई कि; मानो अमृतके लोभसे अमृत पीनेको चन्द्रमाके पास छोटे २ नागोंके बच्चे आये हैं ॥ २० ॥ शरीरसे खसके हुए दुपट्टेको और मस्तकसे खुली हुई वेणीको अपने बायें हाथसे जो इन दोनों बन्धनोंको संभाल दाहिने हाथसे गेंद उछाल रही थी,इस भावसे ऐसी शोभा हो रही थी कि,मानों यह अपनी मायासे जगत्को मोहित कर लेगी। अहो! इसके रूप लावण्यका क्या ठिकाना? मानो जगत् जीतनेके लिये कामदेवने यह पताका प्रस्तुत अर्थात् तैयार

दिक्षु भ्रमत्कंदुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ॥ स्वकर्णविभ्राजितकुंडलोल्लसत्कपोलनीलालकमंडिता
ननाम् ॥२०॥ श्लथद्दुकूलां कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ॥ विनिघ्नतीमन्यकरेण कंदुकं विमोहयंतीं
जगदात्ममायया ॥ २१ ॥ तां वीक्ष्य देव इति कंदुकलीलयेषद्व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ॥ स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमी
क्षणविह्वलात्मा नात्मानमंतिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥ २२ ॥ तस्याः कराग्रात् स तु कंदुको यदा गतो विदूरं तमनु
व्रजत्स्त्रियाः ॥ वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥ २३ ॥

करी है ॥२१॥ हे राजन्! इस मोहिनीके रूपको निहारते ही महादेवजी अपने आपको भूल गये. गेंदको उछालते हुए जो वह कामिनी कुछेक लाज प्रगट कर रही थी,तिससे मन्द मुसकान सहित उसके छोडे हुए कटाक्षसें यह महादेवजी एकही बारमें मोहित होगये, इसकारण उसको देखनेसे और उस करके देखे जानेसे इन दो क्रियाओं करके विभुका मन अत्यन्त विह्वल हुआ, इसलिये उन्होंने अपने निकट अपने सेवकोंको और पार्वतीजीको न जाना ॥ २२ ॥ वह मोहिनी जिस गेंदको उछाल रही थी, वह गेंद एक बार उसके हाथसे उछलकर दूर गिर पडा, उस गेंदके लेनेको जब वह बाला दौडी तब वायुके वेगसे काञ्चीसहित उसका कटिवसन उड़ गया सो देवदेव महादेवजी खडे होकर एकटक उसको देखने लगे ॥ २३ ॥

इस प्रकारसे जैसे ही महादेवजीने उस मनोरमा रामाको देखा कि, वैसे ही वह भामिनी कुञ्चित कटाक्ष चलाकर उनको देखने लगी, तब महादेवजीका मन उसपर अनुरागी होगया ॥ २४ ॥ मोहिनीके भावसे देवदेव महादेवजीका ज्ञान शून्य होगया और वह उस कामिनीके किये हुए कामविलाससे ऐसे विह्वल हुए कि, पार्वती सामने खडी होकर देखती रहीं और वह निर्लज्ज होकर उस सुन्दरीके समीप चले गये ॥२५॥ यह मोहिनी कामिनी वस्त्ररहित थी, सो महादेवजीको निकट आते हुए देखकर लजाई और हँसती हँसती वृक्षोंकी आडमें जाने लगी, वहाँ

एवं तां रुचिरापांगीं दर्शनीयां मनोरमाम् ॥ दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जंत्यां भवः किल ॥ २४ ॥ तयाऽपहृतविज्ञान
स्तत्कृतस्मरविह्वलः ॥ भवान्या अपि पश्यंत्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥ २५ ॥ सा तमायांतमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता
भृशम् ॥ निलीयमाना वृक्षेषु हसंती नान्वतिष्ठत ॥ २६ ॥ तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेंद्रियः ॥ कामस्य च वशं
नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ २७ ॥ सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् ॥ केशबंध उपानीय बाहुभ्यां
परिषस्वजे ॥ २८ ॥ सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ॥ इतस्ततः प्रसर्पंती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९ ॥

खडी न हुई ॥ २६ ॥ भगवान् महादेवजीकी इंद्रियें प्रबल होगईं कि, वह पंचबाणके वश हो उस स्त्रीके पीछे दौड़ने लगे कि, जैसे यूथपति हाथी हथिनियोंके पीछे पीछे दौडता है * ॥ २७ ॥जब वह साधारण चालसे महादेवजीके हाथ नहीं आई, तब यह अतिवेगसे दौडे और उस स्त्रीको अपने संगकी इच्छा न करते देख केश पकड दोनों भुजाओंसे उसको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ २८ ॥ हाथी जिस प्रकार हथिनीका आलिंगन करता है,वैसे ही वह मनमोहिनी बाला, भूतेश्वर भगवान् भवानीपतिके हृदयसे लिपटी हुई इधर उधर दौडने लगी कि

616

---

* **शंका**–महादेवजी कामके नाश करने बाले हैं फिर भगवान्का स्त्रीरूप देखकर कामके वशीभूत भूतनाथ क्यों होगये ? यह बडे आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर–अनेक युग "नमः शिवाय । नमः शिवाय" इस मन्त्रको जपके माया तप करने लगी तब एक दिन शिवजी बोले कि,हे माये ! जिस वरकी तुझको इच्छा है वह वर मांग । माया बोली कि,हे शंभो ! तीन लोकमें जो देहधारी प्राणी ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मनुष्य, असुरादिक हैं, सो सब मेरे वश हों एक आपको छोडकर परन्तु आधी घडीके लिये आप भी मेरे वशमें हों, शिवजीने मायासे कहा कि, हम एक क्षणमात्रको ही तेरे वश होंगे सो इसलिये महादेव कामके वश हुए,कुछ कामी होकर कामके वश नहीं हुए ।

जिससे उसके केश छूट गये ॥ २९ ॥ हेराजन् ! तिसके पीछे देवमायाकी बनाई बडे बडे नितम्बोंवाली वह स्त्री अतिकष्ट करके महादेवजी की भुजासे अपनेको छुडाकर दौडी ॥ ३० ॥ हे राजन् ! अद्भुत कथा श्रवण करो. श्रीभगवान् विष्णु ही माया विस्तार करके यह स्त्री हुए थे. जब श्रीभगवान् स्त्री बनकर दौडे, तब भूतनाथ (शिव) अपने सदाके वैरी कामदेवसे पराजित हो फिर उसकी पदवीका अनुसरण करने लगे ॥ ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! वासिताके (ऋतुमती हथिनीके) पीछे पीछे दौडते हुए कामी हाथीका वीय जिस प्रकार गिर जाता है, वैसे ही उस मोहिनीके पीछे पडे हुए अमोघ वीर्यवान् भगवान् शिवजीका वीर्य गिरगया ॥ ३२ ॥ हे कुरुवर ! देवश्रेष्ठ महादेवजीका वह वीर्य पृथ्वीके

आत्मानं मोचयित्वांग सुरर्षभभुजांतरात् ॥ प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३० ॥ तस्याऽसौ पदवीं रुद्रो
विष्णोरद्भुतकर्मणः ॥ प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्यानुधावतो रेतश्चस्कंदामोघरेतसः ॥ शुष्मिणो
यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ३२ ॥ यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः॥ तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते
॥३३॥ सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ॥ यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः॥३४॥ स्कन्ने रेतसि
सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ॥ जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५ ॥ अथावगतमाहात्म्य आत्मनो
जगदात्मनः ॥ अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥ ३६ ॥ तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः॥उवाच परमप्रीतो
बिभ्रत् स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७ ॥

जिस जिस स्थानमें गिरा उन उन सब स्थानोंमें सुवर्ण और चांदीकी खानें होगईं ॥ ३३ ॥ देवदेव महादेवजी इस प्रकारसे मोहिनीके पीछे दौड़ते दौडते नद, नदी, सरोवर,गिरि,वन, उपवन और जहाँ जहाँ ऋषिलोग रहते थे, उन सब ही स्थानोंमें पहुँचे ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जब वीर्य गिर गया,तब भगवान् भवने जान लिया कि,हम देवमायासे मोहित हुए हैं तब वह इस व्यापारसे निवृत्त हुए॥ ३५ ॥ जिस जगदात्माका वीर्य जाननेके योग्य नहीं है, इसके माहात्म्यका महादेवजीने स्मरण किया और उनकी माया करके अपनेको मोहित होजानेका भी कुछ आश्चर्य नहीं माना ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् मधुसूदन अपना पुरुषरूप धारण करके फिर प्रगट हुए और

उन देवदेव महादेवजीको क्षोभरहित व लज्जारहित देखकर प्रसन्न हो यह वचन कहने लगे ॥ ३७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे देवश्रेष्ठ! आप हमारी स्त्रीरूप मायासे मोहित होकर भी जो फिर अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए यह बडे भाग्यकी बात है. आप निःसन्देह अपनी आत्मामें स्थित हैं ॥ ३८ ॥ हे देव। आपके विना ऐसा कौन पुरुष है, जो अनुरागी होकर फिर हमारी मायासे पार पा सके? हमारी माया अनिर्वचनीय भाव प्रकाश किया करती है, कच्ची बुद्धिवाले पुरुषका क्या सामर्थ्य है जो इससे पार पावें ॥ ३९ ॥ भला, जो हुआ सो हुआ, अब यह गुणमयी माया सृष्ट्यादि निमित्त कालके वश होनेसे कालरूपी हमारे साक्षात् रजोगुण प्रभृति अंशसे मिलीहुई है अर्थात् मेरे अधीनमें है, अब यह कभी आपको न सता सकेगी ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्। श्रीवत्सांक भगवान् विष्णुने जब इस प्रकार कहा

श्रीभगवानुवाच॥ दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः॥ यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यंग मायया॥ ३८॥ को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ॥ तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥ सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ॥ मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन् श्रीवत्सांकेन सत्कृतः ॥ आमंत्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ ४१ ॥ आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ॥ शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत॥ ४२ ॥ अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः ॥ अहं कलानामृषभो विमुह्ये यया वशोऽन्ये किमुतास्वतंत्राः ॥ ४३ ॥ यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रांत उपारतं वै॥ स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥

और नमस्कार किया, तब देवदेव महादेवजीने सम्भाषण कर उनकी प्रतिष्ठा की और फिर श्रीभगवान्की अनेक प्रकार स्तुति कर और उनसे बिदा हो अपने भूतगणोंके साथ कैलासको चले गये॥ ४१॥ फिर अपनी अंशरूपिणी उन मायारूपी भवानीसे, जिनको प्रधान प्रधान मुनि लोग मानते हैं, उनसे प्रीति प्रकाश करके भगवान् महादेवजी प्रिय वचन कहने लगे ॥ ४२ ॥ हे प्यारी। परदेवता परपुरुष भगवान्की मायाको देखनेसे मोहित होजाते हैं, मैं भी उसके वशमें पड़कर मोहित होगया था, फिर पराधीनको मोहित होना क्या आश्चर्य है? ॥ ४३ ॥ हे सती। सहस्र वर्षके पीछे योगसे निवृत्त होनेपर तुमने जिनकी कथा हमसे पूँछी थी यह वही साक्षात् पुराणपुरुष हैं, उनमें काल भी प्रवेश

नहीं कर सकता और दैवका भी उनपर वश नहीं चल सकता ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! भगवान् शारंगधारी जिन्होंने समुद्र
मथनेके समय अपनी पीठपर महापर्वत मन्दराचलको धारण किया था, उनके विक्रमका वृत्तांत तो तुमसे कहा ॥४५॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस
कथाको कहेंगे अथवा सुनेंगे,उनका उद्योग कभी निष्फल नहीं होगा क्योंकि उत्तमश्लोक भगवान्के गुणानुवाद कीर्त्तन करनेसे समस्त क्लेशों
और पापोंका नाश हो जाता है॥ ४६ ॥ जिन्होंने कपटपूर्वकमोहिनीरूप धारण कर दानवलोगोंको मोहित कर समुद्रमथन करनेसे उत्पन्न हुआ
अमृत, अपने चरणोंकी शरण आये हुए देवतालोगोंको पिलाया था जिनके चरणकमल असज्जन लोगोंके ध्यानमें नहीं आते, केवल उपासनासे

श्रीशुक उवाच ॥ इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ॥ सिंधोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥ ४५ ॥
एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित्॥यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम्॥
॥ ४६ ॥ असदविषयमंघ्रिं भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिंधुमथ्यम् ॥ कपटयुवतिवेषो मोहनं यः सुरारीस्त
महमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे शंकराय मोहिनीरूपप्रदर्शनं
नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच॥ मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः॥ सप्तमो वर्तमानो यस्तद
पत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ नरिष्यंतोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥
करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परंतप ॥ ३ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा
मरुद्गणाः॥ अश्विनावृभवो राजन्निंद्रस्तेषां पुरंदरः ॥ ४ ॥

प्राप्त होते हैं,वह आश्रित जनोंका अभिलाष पूर्ण करनेवाले जो विष्णु भगवान् हैं,हम भक्तिसहित उनको नमस्कार करते हैं॥४७॥इति श्रीम० म०
अष्टमस्कन्धे भा० टी० शंकरमोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥दोहा–तेरहवें अध्यायमें,सप्तम मनु विस्तार । षडविध मन्वंतरकथा,कहिहौं सहित
विचार॥१॥इतनी कथा सुनाय महामुनि श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि,हे नृपश्रेष्ठ ! विवस्वानके पुत्र श्राद्धदेव नामक सप्तम मनु
हुए जो वर्त्तमान हैं,इनकी संतानका वृत्तांत कहता हूँ तुम सुनो॥१॥हे परंतप ! इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥२॥
करूष, पृषध्र और वसुमान यह दश वैवस्वत मनुके पुत्र हुए॥३॥हे राजन् ! इस मन्वन्तरमें आदित्य,वसु,रुद्र,विश्वेदेवा,मरुद्गण,दो अश्विनीकुमार

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥ अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ॥ आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥ संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वंतराणि ते ॥ भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च ॥ ७ ॥ विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ॥ संज्ञा छाया च राजेंद्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ८ ॥ तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ॥ यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुताञ्छृणु ॥ ९ ॥ सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ॥ शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥ १० ॥ अष्टमेंऽतर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः ॥ निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥ ११ ॥

और भृगु देवता हुए, पुरंदर इन सब देवताओंका इंद्र हुआ ॥४॥ कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज, यह सप्त ऋषि हुए ॥ ५ ॥ इस मन्वन्तरमें भी प्रजापति कश्यपजीसे अदितिके गर्भमें भगवान् विष्णुका अवतार हुआ. विवस्वान्, अर्यमा, पूषा इत्यादि जो द्वादश(१२)आदित्य हैं, सबके पीछे उनके बीच जन्म लेकर यह विष्णु भगवान् वामनरूप हुए थे ॥६॥ सो सात मन्वन्तरोंकी कथा तो मैं तुम्हारे निकट वर्णन कर चुका हूँ. अब भगवान्के अवतारोंसे युक्त जो मन्वंतर आगेको होंगे, उनकी कथा कहता हूँ, सो आप सावधान होकर सुनिये॥७॥हे राजन् ! विवस्वान् (सूर्य) की दो स्त्रियें हुईं, वे दोनों विश्वकर्माकी कन्या थीं, संज्ञा और छाया उनके नाम थे कि जिनका वृत्तांत पहले कह चुका हूँ॥८॥कोई ऋषि कहते हैं कि, विवस्वानके तीसरी स्त्री भी थी कि, जिसका नाम वडवा था. परंतु हमारे मतसे तो संज्ञाहीका नाम पीछे वडवा हुआ।जो कुछ भी हो, इन स्त्रियोंमें संज्ञाके तीन सन्तान हुए यथा–यम, यमी(यमुना)और श्राद्धदेव ।अब छायाकी सन्तानका वृत्तांत कहते हैं; सो तुम सुनो॥९॥छायाके एक पुत्रका नाम सावर्णि हुआ और तपती नामक एक कन्या जो कि, संवरणकी स्त्री हुई. इस छायाके शनैश्चर नामक एक तीसरा पुत्र हुआ. विवस्वानके वडवा नामक जो तीसरी स्त्री थी उससे ही दोनों अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ *॥१०॥श्रीशुकदेवजी बोले

610

---

* **शंका**–शनैश्चर सूर्यनारायणके तो पुत्र तथा सावर्णि मनुके छोटे भाई, ऐसे उत्तम कुलमें जन्म लेकर फिर नित्यप्रति संसारके लोगोंको क्यों दुःख देते हैं ?

उत्तर–त्रिलोकीको उन्मत्त देखकर शनैश्चरने विचार किया कि, सब प्राणी अभिमान करके परमात्माको भूल गये तब शनैश्चरने ब्रह्मासे वरदान माँग संसारमें जो उन्मत्त हैं, अभिमान नष्ट करनेके लिये उन दुष्ट जीवोंको दुःख देते हैं और जो सज्जन पुरुष हैं उनको किसी प्रकार दुःख नहीं देते ॥

हे परीक्षित्! आठवें मन्वंतरके आनेपर सावार्णि नामक मनु होंगे, निर्मोक, विरजस्क इत्यादि इस सावर्णि मनुके पुत्र होंगे ॥११॥ उसके समयमें सुतपा, विरजा और अमृतप्रभा यह देवता और विरोचनका पुत्र बलि इन्द्र होगा॥१२॥यह राजा बलि कोई साधारण पुरुष नहीं है, स्वयं भगवान् विष्णुने इसके द्वारपर जाकर तीन चरण पृथ्वी माँगी थी, तब राजा बलिने समस्त पृथ्वी दान करदी और सतावें मन्वन्तरमें भगवान्के प्रसादसे पाये हुए इन्द्रपदको त्याग यह सिद्धिको प्राप्त होंगे॥१३॥हे राजन्! प्रथम तो वामनजीने राजा बलिको बांधा, फिर प्रसन्न होकर सुतलनामक पाताल में स्थापित किया, सो राजा बलि वहां स्वर्गसे भी श्रेष्ठ उस स्थानमें इन्द्रके समान वास करता है ॥१४॥ इस मन्वंतरमें गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यशृंग और हमारे पिता भगवान् बादरायण(व्यास)जी महाराज॥१५॥यह सप्तऋषि होंगे. यह लोग इस समय योगावलम्बन करके अपने अपने आश्रमोंमें वास करते हैं ॥१६॥ हे राजन्! इस आठवें मन्वन्तरमें देवगुह्यसे सरस्वतीके गर्भमें भगवान् उत्पन्न होकर सार्वभौम नामसे विख्यात होंगे. वह ईश्वर पुरंदरसे स्वर्ग छीनकर फिर राजा बलिको देदेंगे ॥ १७॥ अब नवम मनुका वृत्तांत कहते हैं—दक्षसावर्णि नवमें मनु होंगे। वरुणसे इनकी उत्पत्ति होगी। इनके पुत्र भूतकेतु, दीप्तिकेतु इत्यादि होंगे॥१८॥ इस मन्वंतरमें पार, मरीचिगर्भ इत्यादि देवता होंगे। अद्भुत इनके इन्द्र और द्युतिमान् प्रभृति ऋषि होंगे॥ १९॥ और आयुष्मानसे अम्बुधाराके गर्भमें साक्षात् भगवान् विष्णु जन्म लेकर

तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ॥ तेषां विरोचनसुतो बलिरिंद्रो भविष्यति॥१२॥दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे
यः पदत्रयम्॥ राद्धमिंद्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥१३॥योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतल पुनः॥निवेशितो
ऽधिके स्वर्गादधुनाऽऽस्ते स्वराडिव ॥ १४ ॥ गालवो दीप्तिमान्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ॥ ऋष्यशृंगः पितास्माकं
भगवान्बादरायणः ॥१५॥ इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यंति स्म योगतः ॥ इदानीमासते राजन्स्वे स्व आश्रममंडले ॥१६॥
देवगुह्यात् सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ॥ स्थानं पुरंदराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥१७॥ नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुण
संभवः॥ भूतकेतुर्दीप्तिकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप॥१८॥पारामरीचिगर्भाद्या देवा इंद्रोऽद्भुतः स्मृतः ॥ द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र
भविष्यंत्यृषयस्ततः॥१९॥आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला॥भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः॥२०॥

ऋषभदेवजीके नामसे विख्यात होंगे और तत्कालीन अद्भुत नामक इन्द्रको सर्वसंपत्ति और समृद्धिमान् त्रिलोकीका भोग करावेंगे॥२०॥हे नृप! दशवाँ मनु उपश्लोकका पुत्र ब्रह्मसावर्णि होगा। भूरिषेणप्रभृति इस मनुके पुत्र होंगे। इस मन्वंन्तरमें हविष्मान् प्रभृति ब्राह्मण होंगे अर्थात् हविष्मान्, सुकृत,सत्य,जय,मूर्ति इत्यादि ऋषि और सुवासन विरुद्धादि देव और शंभु देवराज होंगे॥ २१ ॥ २२ ॥ दशवें मन्वन्तरमें भगवान् विभु विषूचीके गर्भमें अंशांशसे जन्म ग्रहण कर विष्वक्सेनके नामसे प्रसिद्ध होंगे और उसी समयके देवराज शंभुके साथ उनकी मित्रता होगी ॥ २३ ॥ ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा उसके सत्य धर्मादि दश पुत्र होंगे॥२४॥ इस मन्वतरमें विहंगम, कालगम और निर्वाणरुचि

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ॥तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः॥ २१ ॥ हविष्मान्सुकृतः सत्यो
जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः॥सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शंभुः सुरेश्वरः ॥ २२ ॥ विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शंभोः सख्यं
करिष्यति ॥ जातः स्वांशेन भगवान् गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २३ ॥ मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ॥ अना
गतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४ ॥ विहंगमाः कामगमा निर्वाणरुचयो सुराः ॥ इंद्रश्च वैधृतिस्तेषामृषय
श्चारुणादयः ॥ २५ ॥ आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ॥ वधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥ २६ ॥
भविता रुद्रसावर्णी राजन् द्वादशमो मनुः॥ देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥ २७ ॥ ऋतुधामा च तन्नेंद्रो देवाश्च
हरितादयः॥ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥ २८॥ स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ॥
अंतरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९ ॥

प्रभृति देवता होंगे, वैधृति उनका इन्द्र होगा, अरुणादि ऋषि होंगे॥२५॥ और भगवान् हरि एकांशसे वैधृताके गर्भसे जन्म ले आर्यकके पुत्र हो धर्मसेतु नामसे प्रसिद्ध होंगे. हे राजन्! उस समय भगवान् हरिका यही अंश त्रिलोकीको धारण करेगा ॥ २६ ॥ फिर बारहवें रुद्रसावर्णि मनु होंगे कि, जिनके पुत्र देववान् उपदेव और देवश्रेष्ठादि होंगे ॥२७॥ उस मन्वतंरमें ऋतधामा इंद्र और हरित आदि देवता होंगे तथा तपोमूर्ति, तपस्वी व आग्नीध्रक आदि ऋषि होंगे ॥ २९ ॥ और भगवान् हरिका अंश सत्यसह विप्रकी सूनृता नामक कन्यामें उत्पन्न होगा,वह भगवान्

स्वधामा नामसे विख्यात होंगे,जिनके कारण इस मनुका समय अत्यन्त प्रसिद्ध होगा ॥ २९ ॥ तेरहवाँ मनु देवसावर्णि होगा। चित्रसेन,
विचित्रादि उसके पुत्र होंगे ॥ ३० ॥ इस मन्वतरमें सुकर्मा सुत्रामादि देवता, दिवस्पति देवराज और निर्मोक तत्त्वदर्शादि ऋषि होंगे ॥ ३१ ॥
इस मन्वंतरके समय भगवान् हरि बृहतीके गर्भमें एक अंशसे अवतार लेकर देवहोत्रके पुत्र होंगे और योगेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो तत्कालिक दिव
स्पति नामक इंद्रका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३२ ॥ फिर इन्द्रसावर्णिनाम चौदहवाँ मनु होगा. उरु, गम्भीर, ब्रध्न प्रभृति उसके पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥
इस मन्वन्तरमें पवित्र चाक्षुष प्रभृति देवता, शुचिनायक देवराज और अग्निबाहु, शुचि, शुद्ध, मागध प्रभृति ऋषि होंगे ॥ ३४ ॥ हे महा

मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ॥ चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३० ॥ देवाः सुकर्मसुत्रा
मसंज्ञा इंद्रो दिवस्पतिः ॥ निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यंत्यृषयस्तदा ॥ ३१ ॥ देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिव
स्पतेः ॥ योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥ ३२ ॥ मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ॥ उरुगंभीरबुद्ध्या
द्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥ ३३ ॥ पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिंद्रो भविष्यति ॥ अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधा
द्यास्तपस्विनः ॥ ३४ ॥ सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः ॥ वितानायां महाराज क्रियातंतून्वितायिता ॥ ३५ ॥
राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ॥ प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते
महापुराणेऽष्टमस्कंधे मन्वंतरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

राज ! इस कालमें भगवान् हरि विनताके गर्भसे अवतार धारण करके सत्रायणके पुत्र होंगे और बृहद्भानु नामसे प्रसिद्ध हो क्रियाकलापका
विस्तार करेंगे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! वर्तमान,भूत, भविष्य इन तीनों कालोंके अनुगत चौदह (१४) मनुओंका वृत्तांत
हमने आपके सामने वर्णन किया. इन चौदह मन्वन्तरोंके समयका प्रमाण एक सहस्र युगका है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराण अष्टम
स्कन्धे भाषाटीकायां मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–पृथक् पृथक् मनुकी कथा,यह चौदह अध्याय । वर्णन करिहौं यथामति, भिन्न भिन्न समझाय॥ १॥ श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे इतनी कथा श्रवण कर राजा परीक्षित् हाथ जोड बोले कि,हे भगवन्! इन मन्वन्तरोंके लोग जिस प्रकारसे जिसकरके जिस कर्ममें नियुक्त होते हैं, सो अनुग्रह करके आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग! समस्त मनु,मनुके पुत्र,मुनि, इंद्र और सब देवता यह परमपुरुष ईश्वर करके यज्ञादि अवतारद्वारा नियोजित हुआ करते हैं ॥ २ ॥ इन सब मन्वन्तरोंमें यज्ञादि जो पौरुषी मूर्त्ति अर्थात् ईश्वरके अवतार लेनेकी वर्णन की गई हैं उन समस्त मूर्त्तियों करके नियोजित हो मनु आदि लोग जगत्का कार्य निर्वाह किया करते हैं ॥ ३ ॥ हे महाराज ! चौयुगीके अन्तमें श्रुतिगण काल ग्रस्त हुए थे, सो इन मन्वन्तरोंमें ऋषिलोग अपने अपने तपसे उन सबका दर्शन किया करते हैं. उन श्रुतियोंके ही द्वारा सनातन धर्म फिर प्रकट होता है * ॥४॥ भगवान् हरिसे प्रेरित किये हुए मुनिलोग चार पावोंवाले धर्मको साक्षात् अपने अपने समयके बीच पृथ्वीपर फैलाते हैं ॥५॥ प्रजापाल अर्थात् मनुके पुत्रगण जबतक कि मन्वन्तरका अन्त नहीं होता; तबतक पुत्र पौत्रादिके कर्मसे उस धर्मको पालन करते हैं और देवतालोग यज्ञभाग ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥ भगवान्की दीहुई त्रिलोकीकी बडी

राजोवाच ॥ मन्वंतरेषु भगवान् यथा मन्वादयस्त्विमे ॥ यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ ऋषि
रुवाच ॥ मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ॥ इंद्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥ यज्ञादयो याः कथिताः
पौरुष्यस्तनवो नृप ॥ मन्वादयो जगद्यात्रां नयंत्याभिः प्रचोदिताः ॥३॥ चतुर्युगांते कालेन ग्रस्ताञ्श्रुतिगणान्यथा ॥
तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४॥ ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः ॥ युक्ताः संचारयंत्यद्धा स्वे
स्वे काले महीं नृपाः॥ ५ ॥ पालयंति प्रजापाला यावदंतं विभागशः ॥ यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥
॥ ६ ॥ इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ॥ भुंजानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥

---

* शंका–चार युगके अन्तमें कालसे ग्रसित हुए जो वेद उनको ऋषिलोग देखते हैं, परन्तु उन ऋषियोंके देखनेसे क्या फल हुआ?

उत्तर–जबतक चारों वेदोंका प्राकट्य फिर होगा,तबतक वेदमेंसे चारों युगोंके धर्मको देखकर मनुष्योंसे कहते हैं,मनुष्य लोग सुनकर धर्मका नाश नहीं करते,जब ऋषियोंसे मानुष्यधर्म नहीं सुने तब वेद तो उस कालमें होते ही नहीं लुप्त होजाते हैं, इसलिये ग्रसित हुए वेदोंको ऋषिलोग देखते हैं और उनका प्रचार करते हैं.

सम्पत्तियोंको भोगतेहुए इन्द्रदेवता तीनों लोकोंका पालन करतेहुए जलकी वर्षा करते हैं ॥ ७॥ हे राजन् ! भगवान् हरि प्रत्येक युगमें सनकादिक सिद्धरूप धारण करके ज्ञानोपदेश करते हैं, याज्ञवल्क्यादि ऋषिरूप धारण करके योगोपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ मरीच्यादि प्रजापतिरूपी होकर प्रजासृष्टि, राजमूर्ति होकर चोरोंका वध और कालरूपी होकर समस्तका संहार किया करते हैं, उस कालमें उनके शीतोष्णादि गुण अलग अलग होजाते हैं ॥ ९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! लोग अनेक शास्त्रोंके साथ उन हरिके तत्त्व निरूपण करनेका यत्न करते हैं, परंतु नामरूपात्मिका माया करके उनके आत्माके मोह जानेके कारण बहुत यत्न करके भी उनको नहीं देख पाते ॥ १० ॥

ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ॥ ऋषिरूपधरः कर्मयोगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥ सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः ॥ कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥ स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया ॥ विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥ १० ॥ एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ यत्र मन्वंतराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्ट० सप्तमादिमन्वन्तराद्यनुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद् हरिरयाचत ॥ भूतेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबंध तम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः ॥ यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बंधनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥

हे महाराज! कल्प और अवान्तरकल्पका प्रमाण यह आपके सामने मैंने कहा कि, जिसमें पुरावृत्तके जाननेंवाले चौदह मन्वन्तर वर्णन किया करते हैं ॥ ११ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां मन्वन्तरानुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–कियो यज्ञ बलि नृपति जिमि, जय कीन्हों सुरलोक । सो पन्द्रह अध्यायमें, सुनकर होहु विशोक ॥ १ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्राह्मण! भगवान् वासुदेव सब प्राणियोंके ईश्वर हैं, उन्होंने दीनके समान बन तीन चरण पृथ्वी राजा बलिसे किसलिये मांगी थी ? और मुहमांगी वस्तु पाकर फिर राजा बलिको किसलिये बांधा ?॥ १ ॥ हे योगिन् ! हम इस वृत्तांतके सुननेकी अभिलाषा करते हैं. इस बातको जाननेके लिये हमको बड़ा कौतूहल हुआ है, क्योंकि पूर्णस्वरूप ईश्वरकी याचना और निरपराधी राजा

बलिको बांधना, यह दोनों बड़े ही आश्चर्यकी बातें हैं॥२॥श्रीशुकदेवजी बोले कि;हे राजन् ! युद्धमें राजा बलिका पराजय और इंद्रसे प्राणनाश हुआ तो था, परंतु शुक्राचार्यके अनुग्रहसे यह दानव (बलि) उस युद्धके पीछे उन (शुक्राचार्य) का चेला हो सब तन, मन, धन अपना उनके अर्पण कर सब यत्नों करके शुक्रादिकी उपासना करता था ॥३॥ राजा बलिकी सेवासे शीघ्र ही भृगुवंशी ब्राह्मण: प्रसन्न होगये, वह महान् ब्राह्मण यह जानकर कि राजा बलि स्वर्गके जीतनेकी इच्छा करता है,संतुष्ट हुए और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंमेंके प्रसिद्ध महाभिषेकद्वारा यथाविधिसे राजा बलिका अभिषेक कर उसको विश्वजित् यज्ञकी विधिसे यज्ञ कराने लगे ॥ ४ ॥ जब उस यज्ञकी अग्निमें उचित हवि होम दी गई

श्रीशुक उवाच ॥ पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो हींद्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः॥सर्वात्मना तानभजद् भृगून् बलिः
शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन॥ ३ ॥ तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ॥ जिगीषमाणं
विधिनाऽभिषिच्य महाभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥ ततो रथः कांचनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरंगवर्णाः ॥ ध्वजश्च
सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥५॥ धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ॥
पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः॥ ६ ॥ एवं स विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्य
यनोऽथ विप्रान् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामंत्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

651

तब अतिशीघ्र उस अग्निमेंसे सुवर्णके पटसे बँधाहुआ एक इंद्रके रथके घोडोंके समान हरे वर्णके कुछ घोड़े और सिंहकी मूर्ति जिसपर विराजमान ऐसी एक ध्वजा ॥५॥ सुवर्णके बंदोंसे बँधाहुआ दिव्य धनुष, अक्षय बाणोंसे परिपूर्ण दो तूण (तरकस) और दिव्य कवच यह वस्तु निकलीं तब राजा बलिने यज्ञाग्निसे इन सब सामग्रियोंको पाया, तब उनके दादा परमभक्त प्रह्लादजीने उनको एक फूलोंकी माला दी कि, जिसके गुँथे हुए फूल कभी नहीं कुँभलाते थे और शुक्राचार्यने एक शंख दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! भृगुवंशीय ब्राह्मणोंने राजा बलिको इस प्रकारसे रणकी सामग्रियें दिलवाईं और फिर उसका स्वस्त्ययन करते हुए, तब राजा बलिने प्रणाम कर उन सबकी प्रदक्षिणा की, फिर

चरण छूकर अपने दादा प्रह्लादको प्रणाम किया ॥७॥ फिर भृगुजीके दिये हुए दिव्य रथपर सवार हो शोभायमान माला पहन कवच धारण किया, फिर धनुष और कवच ग्रहण करके पीठमें तरकस कसा ॥८॥ हे राजन् ! सुवर्णके भुजबंदोंसे राजा बलिकी दोनों भुजायें दीप्यिमान हो रही थीं, दोनों कानोंमें मकराकार कुण्डल दमक रहे थे, इस प्रकार राजा बलि रथारूढ़ हो कुण्डमें विराजमान अग्निके समान शोभायमान होने लगा ॥ ९ ॥ जिनका बल और ऐश्वर्य राजा बलिहीके समान था और जो गगनमण्डलको अपनी दृष्टिसे पान कर और दिशाओंको मानों भस्म ही कर देते थे ॥ १० ॥ ऐसे दैत्ययूथपतिगण अपने अपने यूथोंके साथ जाकर राजा बलिके साथ मिल गये । राजा बलि उन सब असुरोंकी बडी भारी सेनाको संग ले सब सम्पत्तियोंसे भरी पूरी अमरावतीकी ओर चला. राजा बलिके चलनेके समय मानों पृथ्वी स्वर्ग दोनों

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ॥ सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥ हेमांगदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुंडलः ॥ रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥९॥ तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ॥ पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥ वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ॥ ययाविंद्रपुरीं स्वृद्धां कंपयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥ रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नंदनादिभिः ॥ कूजद्विहंगमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥१२ ॥ प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ॥ हंससारसचक्राह्वकारंडवकुलाकुलाः ॥ नलिन्यो यत्र क्रीडंति प्रमदाः सुरसेविताः ॥ १३ ॥ आकाशगंगया देव्या वृतां परिखभूतया ॥ प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४ ॥

कम्पायमान होरहे थे ॥११॥ हे राजन् ! इंद्रपुरीके विभवका क्या वर्णन किया जाय ? यह पुरी शोभायमान नन्दनादि उपवन व उद्यानसमूहोंसे युक्त होकर अतिशय रमणीय हो रही थी, उन उपवनों व उद्यानोंमें पक्षियोंके जोडे कलरव कर रहे थे और मतवाले भौंरे मीठी गुंजारसे अपूर्व ही गान कर रहे थे ॥१२॥ वहां जो देवताओंके वृक्ष हैं उन सबकी शाखायें प्रवाल और फलफूलोंके भारी बोझसे झुक रही थीं और वहांके सब सरोवरोंमें सुरसेवित स्त्रियें परमकौतूहलसे विहार कर रही थीं, उन सरोवरोंमें जो कमलिनी खिल रही थीं, वह हंस, सारस, चक्रवाक और कारंडव आदि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त थीं ॥१३॥ हे राजन् ! उस इन्द्रपुरीके चारों ओर आकाशगंगा हैं, मानो यही अमरावतीकी खाई है. इस इन्द्रपुरीके

चारों ओर अतिंऊची चहारदिवारी है उस चहारदिवारीके ऊपर सामरिक अड्डे (बुर्ज) बने हुए हैं॥१४॥यह पुरी विश्वकर्माजीकी बनाई हुई थी,वहांके द्वारोंके कपाटोंपर सुवर्णके पत्ते जडे हुए थे,वहांके गोपुर फाटक) स्फटिक मणिके बने हुए थे और उस पुरीमें बडे २ सुन्दर राज मार्ग बने हुए थे ॥१५॥ वह पुरी, सभा, चौक, गली इनसे सम्पन्न थी, दश करोड गंधर्व और अप्सरा वहांपर रहते थे, अनंत विमान वहांपर धरे थे;हीरा, मूँगा,मोती भी वहां ढेरके ढेर थे,बाजार समस्त सम्पत्तियोंसे भरे हुए थे ॥ १६ ॥ हे राजन् । इन्द्रपुरीकी सब स्त्रियें रूपवती थीं, जिनका यौवन और सुकुमारता कभी नष्ट न होता, जिनके श्याम वर्ण थे और वसन भी निर्मल थे. वह इस प्रकार शौभायमान होती थीं कि, जैसे शिखासहित अग्नि प्रकाशमान होती है ॥१७॥ उस अमरावती पुरीमें देवता लोगोंकी स्त्रियोंके केशोंसे गिरी हुई सुगन्धित मालाओंकी सुगध ग्रहण किये हुए पवन प्रत्येक मार्गमें बह रहा है ॥ १८ ॥ सुवर्णके झरोखोंसे निकले हुए श्वेत अगरके धुएँसे ढके हुए राजमार्गमें देवताओंकी प्यारी अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड उस पुरीके राजमार्गमें चले जाते थे ॥ १९ ॥ यह पुरी मुक्तामय वितान (चंदोवा), सुवर्ण मय ध्वजा और विविध पताकाओंसे सजे धजे हुए विमानोंके अग्रभागसे (छज्जासे) व्याप्त थी और मोर, कबूतर, भौंरे आदिके शब्दसे शब्दायमान थी और विमानमें बैठीहुई स्त्रियोंके मनोहर गीतोंसे मंगलस्वरूप होरही थी ॥२०॥ अधिक करके यह पुरी मृदंग, शंख, ढोल, दुन्दुभी इत्यादिकी ध्वनि और ताल सहित वीणा, मुरज, वंशीके नाद, गन्धर्वोंके गीत, नृत्य आदिकोंसे अतिमनोहर होरही

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः॥ जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम्॥१५॥सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानै
र्न्यर्बुदैर्युताम् ॥ शृंगाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः॥१६॥ यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ॥ भ्राजंते रूप
वन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥१७॥ सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगंधिकस्रजाम् ॥ यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः
॥ १८ ॥ हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगंधिना ॥ पांडुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यांति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥ मुक्तावितानैर्मणि
हेमकेतुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम् ॥ शिखंडिपारावतभृंगनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमंगलाम् ॥२०॥ मृदंग
शंखानकदुंदुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ॥ नृत्यैः सवाद्यैरुतदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥२१॥

थी, उसमें ऐसी प्रभा प्रकाशित होती थी कि, मानों इसने सबकी कान्तिको जीत लिया है॥२१॥ हे राजन्! इस पुरीमें अधार्मिक, भूतद्रोही, खल, अभिमानी, कामी, लोभीजन नहीं जा सकते, जिनमें यह दोष नहीं होते वही लोग वहाँपर जाते हैं ॥ २२ ॥ सेनापति बलिने इस देवपुरीमें जाकर सेनाके द्वारा उस पुरीका बाहरी भाग चारों ओरसे घेर लिया और देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भय दिलानेके लिये शुक्राचार्यका दिया हुआ शंख बजाने लगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजा बलिका उद्यम जान देवराज सब देवता लोगोंको साथ ले अपने गुरु बृहस्पतिजीसे जाकर कहने लगे ॥ २४ ॥ कि हे भगवन्! हम अपने वैरी राजा बलिका फिर बड़ा भारी उद्यम देखते हैं. हम अनुमान करते हैं कि उसका यह उद्यम हम लोग नहीं सह सकेंगे। हे गुरो! किसलिये राजा बलिका ऐसा तेज बढ गया ॥ २५ ॥ हमको जान पडता है कि, कोई किसी उपायसे

यां न व्रजंत्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ॥ मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजंति यत् ॥ २२ ॥ तां देवधानीं
स वरूथिनीपतिर्बहिः समंताद्रुरुधे पृतन्यया ॥ आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुंजन् भयमिंद्रयोषिताम् ॥
॥ २३ ॥ मघवांस्तदभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ॥ सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥२४॥ भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः
पूर्ववैरिणः ॥ अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः ॥ २५ ॥ नैनं कश्चित्कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ॥ पिब
न्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ॥ दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥ २६ ॥ ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्व
स्य मद्रिपोः॥ ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः॥२७॥ गुरुरुवाच ॥ जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ॥
शिष्यायोपभृत तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८ ॥

इस दैत्यराज बलिको यहाँसे दूर नहीं कर सकेगा, क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि, यह बलि मुखसे मानो सब जगतको पिये लेता है और जीभसे दशों दिशाओंको चाटता है, नेत्रोंसे दशों दिशाओंको भस्म किये देता है. निःसन्देह ऐसा ज्ञात होता है कि, यह दानव प्रलयके अग्निके समान उठा है. हे गुरो! यह हमारा शत्रु इस प्रकार दुर्द्धर्ष कैसे हुआ? इस शत्रुमें इस प्रकारका सामर्थ्य कैसे हुआ? और ऐसा तेज व साहस किस प्रकार हुआ? क्योंकि सामर्थ्यादिके होनेसे युद्धकी सामग्रियें हो रही हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ यह सुनकर श्रीबृहस्पतिजी महाराज कहने लगे कि, हे देवराज इन्द्र! तुम्हारे इस वैरीकी उन्नति होनेके कारणको हम जानते हैं. यह दानव ब्रह्मवादी

भृगुवंशियोंका शिष्य (चेला) है, उन ब्राह्मणोंने स्नेहके वश होकर अपने शिष्यका तेज बढा दिया है ॥ २८ ॥ इसलिये स्वयं हरिके अतिरिक्त तुम अथवा तुम्हारे ही समान कोई पुरुष तेजस्वी राजा बलिके जीतनेको समर्थ नहीं होगा. अब ब्रह्मतेज सम्मुख आया है, उसको कौन जीत सकता है. जिस प्रकार लोग कालके सामने खड़े नहीं हो सकते उसी प्रकार कोई उस ब्रह्म तेजके आगे खडे होनेको समर्थ नही होगा ॥ २९ ॥ बस अब हम आपको यही सम्मति देते हैं कि, जबतक शत्रुका विनाश हो तबतक कालकी प्रतीक्षा कर स्वर्गको छोड़ तुम अदृश्य होजाओ ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंके ही बलसे बलिका बल बराबर बढ गया है कि, जिससे यह अब महाविक्रमशाली होगया है, ब्राह्मणोंका

भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ॥ नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतांतस्य यथा जनाः ॥ २९ ॥ तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ यात कालं प्रतीक्षंतो यतः शत्रोर्विपर्ययः॥ ३० ॥ एष विप्रबलोदर्कः संप्रत्यूर्जितविक्रमः ॥ एषामेवापमानेन सानुबंधो विनंक्ष्यति॥ ३१॥ एवं सुमंत्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ॥ हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥ ३२ ॥देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ॥ देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥ तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ॥ शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ ३४ ॥

अपमान करनेसे यह स्वयं अपने वंशके साथ नाशको प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ३१ ॥ अर्थ और कामके जाननेवाले गुरु बृहस्पतिजीने जब इस प्रकारसे करने योग्य कार्य बताय श्रेष्ठ सम्मति दी, तब सब कामरूपी देवतालोग स्वर्गको छोडकर अन्तर्धान होगये ॥ ३२ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब सब देवतालोग अदृश्य होगये तब विरोचनका पुत्र राजा बलि स्वर्गमें विराजमान हुआ और तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया ❀ ३३ ॥ हे राजन् ! शिष्योंपर स्नेह करनेवाले भृगु लोगोंने अपने आज्ञाकारी शिष्य

653

❀ शंका—जो मनुष्य और दैत्य अश्वमेध यज्ञ नहीं करते सो प्राणी कभी इन्द्र नहीं होते, फिर विना इन्द्र हुए इन्द्रासनपर नहीं बैठ सकता। ऐसा हमने सब शास्त्रोंमें सुना है और ऐसा भी हमने सुना है कि, अनेक बार राक्षसोंको अपने अधीन कर लिया है, परन्तु यह बडी भारी शंका है कि, एक शुक्रको ही पूजकर राजा बलिने इन्द्रका राज्य छीन लिया और बिना ही अश्वमेध यज्ञ किये इन्द्रासनपर जा बैठा ! —

विश्वविजयी बलिका इन्द्रत्व स्थिर करनेके लिये उससे शत अश्वमेध यज्ञ कराये ॥ ३४ ॥ शत अश्वमेध यज्ञ करनेके प्रभावसे राजा बलिकी कीर्ति दशों दिशाओंमें फैल गई और वह नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान विराजमान हुआ ॥ ३५ ॥ और ब्राह्मण लोगोंने जो बडी सम्पत्ति प्राप्त करादी, इस लिये राजा बलि अपनेको कृतार्थ मानकर उस सम्पत्तिको भोगने लगा ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ दोहा–सोलहमें सुतदुर्दशा, देख अदिति भय मान । कश्यपकी विनती करी, कश्यप दीन्हों

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ॥ कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेजे उडुराडिव ॥ ३५ ॥ बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलंभिताम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टम० बलिकृत स्वर्गाक्रमणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ॥ हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥ एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ॥ निरुत्सवं निरानंदं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥ स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ॥ सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥ अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनाऽऽगतम् ॥ न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छंदानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

ज्ञान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जब देवता लोग इस प्रकारसे छिप गये और दैत्योंने स्वर्गपुरीको छीन लिया, तब इन्द्रकी माता अदिति अनाथके समान हो परितापको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ इनके पति कश्यपजी बहुत कालके पीछे समाधि बिसार एक दिन उत्सवहीन व आनन्दरहित अदितिके आश्रममें आये ॥ २ ॥ और यथाविधि पूजित हो आसनपर बैठ अपनी स्त्रीका मलिन मुख देखकर वह पूँछने लगे कि ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! लोकमें ब्राह्मण लोगोंका तो कोई अमंगल नहीं हुआ ? अधर्म तो प्राप्त नहीं हुआ ? और मृत्युके वशमें पडे

उत्तर–जिस दिन अहल्याके संग इन्द्रने खोटा कर्म किया,उसी समय ६० साठ अश्वमेध यज्ञका पुण्य नष्ट होगया केवल ४० चालीस अश्वमेध यज्ञका पुण्य शेष रह गया,तब हिरण्यकशिपु इन्द्रासनपर बैठा था, उसके पीछे राजा बलि इन्द्रासनपर बैठा, फिर जितना पुण्य इन्द्रका अवशेष रह गया था उतनी ही भगवान्ने इन्द्रकी रक्षा की इसलिये विना अश्वमेध यज्ञ किये राजा बलिने इन्द्रका इन्द्रासन छीन लिया. ॥

लोकोंका तो कोई अशुभ नहीं हुआ ॥ ४ ॥ अथवा तुम्हारे गृहमें धर्म, अर्थ, कामकी तो कोई अकुशल नहीं हुई ? हे गृहिणी ! गृहस्थाश्रम साधारण नहीं है, इस गृहस्थाश्रमसे अयोगी लोग भी स्वधर्मादि करके योगके फलको पालते हैं ॥ ५ ॥ हे सति ! इतनी मलिन क्यों हो ? अथवा तुम्हारे कुटुम्बके विषय अनुरागी रहनेपर कोई अतिथि विना पूजा और आदर पाये तुम्हारे घरसेतो नहीं उठ गया ? ॥ ६ ॥ गृहसे अतिथिका विमुख होकर चला जाना वास्तवमें क्षोभकी बात है. जिस घरमें केवल जलसे भी अतिथिका सत्कार नहीं होता, वह गृह शृगालराजके भट्ठेके समान है ॥ ७ ॥ हे साध्वि ! तुम्हारे अनमने होनेका क्या कारण है? हमारे परदेशमें चले जाने पर उद्विग्नचित्त हो क्या किसी दिन

अपि वा कुशलं किंचिद् गृहेषु गृहमेधिनि ॥ धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥५॥ अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ॥ गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥६॥ गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ॥ यदि निर्यांति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥७॥ अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ॥ त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥ यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ॥ ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥ अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ॥ लक्षयेऽस्वस्थयात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥१०॥

यथासमयपर तीनों अग्नियोंमें हवि देना तो नहीं भूल गई ? ॥ ८ ॥ गृहस्थ पुरुषको तीनों अग्नियोंमें अवश्य होम करना उचित है, क्योंकि ब्राह्मण और अग्नि सर्ददेवमय विष्णु भगवान्‌का मुख हैं, अग्निकी पूजा करनेसे पुरुषगण कामनाओंके पूर्ण करनेवाले लोकोंको प्राप्त होते हैं ❀ ॥ ९ ॥ हे मनस्विनि ! तुम्हारे पुत्र तो सब मंगलसे हैं ? मुखमलिनतादि लक्षणोंको देखकर जान पड़ता है कि, तुम्हारा अंतःकरण

654

❀ **शंका**—अदितिसे कश्यपजीने कहा था कि, हे प्रिये ! हम किसी दूसरे ग्रामको गये थे तब तुमने अग्निमें होम नहीं किया इसलिये उदासीन बैठी हो, बिना वेदमन्त्रोंसे तो होम होता नहीं और वेदमन्त्र पढन का स्त्रियोंको अधिकार नहीं तो फिर ऐसा अनुचित वाक्य कश्यपजीने क्यों कहा ? यह शंका हमारे मनमें बडी भारी है !

उत्तर--प्रायश्चित्तकदम्बश्लोक एक लक्ष १००००० तथा विधानपारिजातक एक लक्ष १००००० श्लोक. अथवा दशस्मृति बावन सहस्र ५२००० श्लोक, इत्यादिक और बडे बडे धर्मशास्त्र हैं, उन धर्मशास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि, जो स्त्रीका पति एक महीने के लिये दूसरे ग्रामको चला जाय, अथवा अपने अग्निहोत्रकी अग्नि आदिकी सामग्री न ला सके तब स्त्रीको उचित है कि, अपने पतिके नामसे मन्त्र पढकर होम करदे, पतिके होमका विघ्न किसी प्रकार न होने पावे, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर कश्यपजीने अदितिसे बूझा था ॥

सावधान नहीं है. बताओ तो सही, ऐसी अनमनी किसलिये हो रही हो ? ॥ १० ॥ यह सुनकर अदितिने कहा कि, हे स्वामिन् ! गो, ब्राह्मण,
धर्मादि सबका ही मंगल है. हे गृहमेधिन् ! जो गृह धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंका उद्भवस्थान है वह भी कुशलसे है-अर्थात् धर्मादि त्रिवर्ग
भी यथारीतिसे निर्वाह होते हैं ॥ ११ ॥ और मैं जो आपका ध्यान करती हूँ, उसके प्रभावसे अग्नि, अतिथि, भिक्षु प्रभृति जो कोई भी हैं,
वह सबही बलि (भोजन) की वासना करते हैं और अघाये हुए हैं ॥ १२ ॥ आप हमारे प्रजाध्यक्ष हैं और ऐसा ही धर्मोपदेश करते हैं,
फिर भला हमारे मनकी कामना पूर्ण क्यों नहीं होगी ? ॥१३॥ हे प्रजेश ! सब प्रजा आपके ही मन और शरीरसे उत्पन्न हो सत, रज अथवा

अदितिरुवाच ॥भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ॥ त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥ अग्नयोऽ
तिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ॥ सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥ १२ ॥ को नु मे भगवन्कामो न
संपद्येत मानसः ॥ यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥ १३ ॥ तवैव मारीच मनश्शरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्व
रजस्तमोजुषः ॥ समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥१४॥ तस्मादीश भजंत्या मे श्रेयश्चिंतय
सुव्रत ॥ हृतश्रियो हृतस्थाना सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥१५॥ परैर्विवासिता साऽहं मग्ना व्यसनसागरे ॥ ऐश्वर्यं श्रीर्यशः
स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥१६॥ यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ॥ तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्या
णकृत्तम ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ॥ अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं
जगत् ॥ १८ ॥

तमोगुणका अवलम्बन करती हैं. सुरादि सब प्रजाओंमें यद्यपि समानभावहै तो भी महेश्वरगण भक्त पुरुषके प्रति विशेष अनुग्रह करते हैं॥ १४॥
इसलिये मैं भक्ति करके आपको भजती हूँ, सो आप मेरी भलाईका विचार करें. हे प्रभो! मेरी सौतके पुत्र दैत्य लोगोंने हमारे पुत्रोंकी लक्ष्मीको
हरण किया और स्थान भी छीन लिया सो आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा करें और दितिके पुत्रोंने हमको निकाल दिया है, इसी कारण मैं दुःखके
समुद्रमें डूब रही हूँ। हे ब्रह्मन्! दानवोंने प्रबल होकर हमारे पुत्रोंका ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और स्थान जो जो वस्तु थीं वह सब हरण कर ली हैं॥ १५॥ १६॥
सो हे कल्याणकारिन्! हमारे पुत्र उन सबको जिस प्रकार फिर प्राप्त हों, वैसा ही कल्याण आप अपनी बुद्धिसे विचारें॥ १७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,

हे राजन् ! जब अदितिने इस प्रकारसे कश्यपजीकी प्रार्थना की, तब महर्षि कश्यपजी विस्मित होकर बोले कि, अहा ! भगवान् विष्णुकी
माया कैसी बलवान् है ! कैसा आश्चर्य है, यह जगत् स्नेहकी फाँसीमें बँध रहा है ॥ १८ ॥ हे भद्रे ! कहाँ तो पंचभूतका बना हुआ देह और
प्रकृतिसे परवर्ती आत्मा और कौन किसका पति है और कौन किसका पुत्र है ? केवल मोह ही इन सबका कारण है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! महर्षि
कश्यपजीने जब इस प्रकारसे तत्त्वज्ञानका उपदेश कर देखा कि, इससे अदितिको सन्तोष न हुआ तब फिर बोले कि, हे भद्रे ! सब प्राणि
योंके अन्तर्यामी, जगत्के गुरु, आदिपुरुष, वासुदेव भगवान्की तुम पूजा करो ॥ २० ॥ वह दीनदयालु दीनपर दया करनेवाले अवश्य ही
तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे. हम भलीभाँति जानते हैं कि, भगवत्सेवा ही अमोघ है,इसके सिवाय और कुछ अमोघ नहीं है ॥ २१ ॥ यह

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ॥ कस्य के पतिपुत्राद्या मोह:एव हि कारणम्॥१९॥उपतिष्ठस्व पुरुषं
भगवंतं जनार्दनम् ॥ सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥२०॥ स विधास्यति ते कामान् हरिर्दीनानुकंपनः ॥ अमो
घा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥२१॥ अदितिरुवाच ॥ केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम्॥यथा मे सत्यसं
कल्पो विदध्याच्च मनोरथम् ॥२२॥ आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ॥ आशु तुष्यति मे देवः सीदंत्याः सह
पुत्रकैः॥२३॥कश्यप उवाच ॥ एतन्मे भगवान् पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः॥ यथाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥
॥ २४ ॥फाल्गुनस्याऽमले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ अर्चयेदरविंदाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥ २५ ॥ सिनीवा
ल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ॥ यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मंत्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥

सुन अदिति प्रसन्नमन हो कहने लगी कि, हे ब्रह्मन् ! मैं किस विधानसे जगद्गुरु भगवान्की उपासना करूं जिस प्रकारसे वह सत्य-संकल्प
हमारा मनोरथ पूर्ण करें ॥२२॥ और पुत्रोंसहित दुःखी हुई मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जावें,सो आप मुझको वैसेही पूजा करनेकी विधि बतला
दीजिये ॥२३॥ यह सुनकर कश्यपजीने कहा कि, हे भद्रे ! हमने पहले पुत्रकी इच्छा करके पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह बात पूँछी थी, तो उन्होंने
मुझको केशवतोषण नामक जिस व्रतका उपदेश किया था वही व्रत हम तुमसे कहते हैं,सो तुम सचेत हो मन लगाय सुनो॥२४॥फाल्गुन मासके
शुक्लपक्षमें बारह दिनका पयोव्रत करे,तिस व्रतमें भक्तियुक्त होकर कमललोचन भगवान्की पूजा करे ॥ २५ ॥ हे सति ! जो मिल सके तो जंगली

शूकरकी खोदी मट्टी शरीरमें लगाकर नदीके जलमें स्नान करे और स्नान करनेके समय इस मंत्रको पढे ॥ २६ ॥ हे देवी ! स्थानकी इच्छा करके आदिवराहजीने तुमको रसातलसे उद्धार किया था, सो हे पृथ्वी ! तुमको नमस्कार है। तुम हमारा पाप दूर करो ॥ २७ ॥ "तिसके पीछे नित्य नैमित्तिक नियमोंका पालन कर सावधान चित्तसे मूर्त्तिमें, पृथ्वीमें, सूर्यमें, जलमें अथवा अग्निमें वा गुरुमें, जहाँ इच्छा हो वहां भगवान्की पूजा करे ॥ २८ ॥ " पूजाके समय नव मंत्रोंको पढ़कर भगवान्का आवाहनादि करना होता है, वे नव मंत्र यह हैं–हे भगवन् वासुदेव ! आप बडेसे बडे पुरुष हैं, सर्व प्राणियोंके निवासस्थान हैं. सबके साक्षी हैं सो आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ आप चौबीस तत्त्वोंके जाननेवाले हैं, सांख्ययोगका विस्तार करनेवाले हैं सो ऐसे अव्यक्त सूक्ष्म प्रधान पुरुषको नमस्कार है ॥ ३० ॥ वह विष्णु भगवान् यज्ञके फलका विस्तार करनेवाले हैं और यज्ञरूपी हैं. जिनके दो शिर (प्रायणीय और उदयनीय) हैं, तीन चरण (सवनत्रय) हैं, चार शृंग (चारों वेद) हैं, सात हस्त (सात छेद) हैं, त्रयी विद्या आत्मा है, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ शिव और रुद्ररूपी उन भगवान्को नमस्कार है, वह शक्तिधर हैं, सर्वविद्याओंके पति हैं और प्राणियोंके अधिपति हैं, उनको नमस्कार है ॥३२॥ उन हिरण्यगर्भको नमस्कार है, वह जगत्के आत्मा योगेश्वर हैं. जिनका शरीर योगका कारण है, उनको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! आप आदिदेव हैं, सबके साक्षीरूप हैं, नारायण. नर और हरि हैं; सो आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! आप केशव हैं, आपका शरीर मरकत मणिके समान श्यामवर्ण है, आप पीतांबर

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ॥ उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥ निर्वर्तितात्मनियमो
देवमर्चेत्समाहितः ॥ अर्चायां स्थंडिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ॥ सर्व
भूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९॥ नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ॥ चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यान
हेतवे । ३० ॥ नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुश्शृंगाय तंतवे ॥ सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥ नमः
शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ॥ सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः॥३२॥ नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जग
दात्मने ॥ योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥३३॥ नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ॥ नारायणाय ऋषये
नराय हरये नमः॥ ३४ ॥ नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रियै ॥ केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥

धारण किये हुए हैं ,आप श्रीको प्राप्त हुए हैं सो आपको नमस्कार है ॥ ३५॥ हे वरेण्य ! हे वरदश्रेष्ठ !! आप पुरुषोंको सब वर देते हैं,इस कारण वीरलोग कल्याणके लिये आपकी चरणरजको पूजते हैं ॥ ३६ ॥ अहो ! देवता लोग और लक्ष्मीजी जिनके चरणकमलके सौरभकी चाहना करती हैं, वह भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ इन मन्त्रोंसे आवाहन कर सन्मान करे,इंद्रियोंके ईश्वर भगवान्को श्रद्धायुक्त हो पाद्य व आचमनादिसे तथा गंध मालादिकसे पूजकर स्नान करावे और "ॐनमो भगवते वासुदेवाय" इस बारह अक्षरके मन्त्रसे विद्याद्वारा पूजन करे ॥ ३८ ॥ गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर भगवान्को दूधसे स्नान करावे. फिर वस्त्र,यज्ञोपवीत,आभूषण, पाद्य, आचमन, गन्ध,धूप,नैवेद्यादि

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ॥ अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥ अन्ववर्तंत यं देवाः श्रीश्च तत्पा
दपद्मयोः॥ स्पृहयंत इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥ एतैर्मंत्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ॥ अर्चयेच्छ्रद्धया
युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥ अर्चित्वा गंधमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ॥ वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्श
नैस्ततः ॥ गंधधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥ शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ॥ ससर्पिः सगुडं
दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥ निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुंजीत वा स्वयम् ॥ दत्त्वाचमनमर्चित्वा तांबूलं च निवेद
येत् ॥ ४१ ॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दंडवन्मुदा ॥ ४२ ॥

उपचारोंसे द्वादशाक्षर मन्त्रको पढ पढकर हितचित्तसे पूजन करे॥३९॥ हे सति ! जो आपसे बसाय तो दूधमें खीर बनाय उसका श्रीनारायणको भोग लगावे. फिर घृत और गुडके सहित उस खीरको निवेदन करके मूलविद्या अर्थात् बारह अक्षरके मन्त्रसे होम करे ॥४०॥ फिर निवेदन कियेहुए पदार्थ भगवद्भक्तको भोजन करावे,अथवा स्वयं भोजन करले । हे भद्रे ! पूजा करनेके पीछे आचमन कराय फिर ताम्बूल निवेदन करें ॥ ४१ ॥ फिर एकशत आठ (१०८) वार द्वादशाक्षर मन्त्र जप करके पहले कहे व और दूसरे मन्त्रोंसे भगवान्की स्तुति करे. उसके पीछे भूपरिक्रमा करके भूमिपर गिर साष्टांग दंडवत् प्रणाम करे और निर्माल्य ग्रहण करके फिर देवताका विसर्जन करे ॥ ४२ ॥

फिर खीरसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे कि,जिनकी गिनती दोसे कम न हो ॥ ४३ ॥ फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले बन्धुबांधवों सहित अपने आप भी भोजन करें, फिर रात्रिमें ब्रह्मचारी रहकर प्रभातको प्रथम दिन ॥ ४४ ॥ प्रातःकाल स्नान कर पवित्र होजाय; फिर गायके दूधसे भगवानको स्नान करावे और पूजा करे,जबतक व्रत समाप्त न हो तबतक ऐसे ही करना चाहिये॥४५॥हे देवि ! केवल दूध ही पान करके विष्णु भगवान्का पूजन करनेसे आदर पाता हुआ इस प्रकारसे व्रत करे और पहलेके ही समान अग्निमें होम करे और ब्राह्मणभोजन करावे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार बारह दिनका पयोव्रत करे अर्थात् पडवा तिथिसे शुक्का त्रयोदशी तक होम,पूजन और ब्राह्मण भोजनादिसे भगवान् वासु

कृत्वा शिरसि तच्छेषं देवमुद्वासयेत्ततः ॥ द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥ ४३ ॥ भुंजीत तैरनुज्ञातः
शेषं सेष्टः सभाजितैः ॥ ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥ ४४ ॥ स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः॥
पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५ ॥ पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ॥ पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणां
श्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥ एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ॥ ब्रह्मचर्यमधः स्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥ वर्जयेदसदालापं भोगानु
च्चावचांस्तथा ॥ अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥ त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पंचकैर्विभोः ॥ कारये
च्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥ पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ चरुं निरूप्य पयसि
शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥

देवकी आराधना करे॥ ४७ ॥ इन बारह दिन तक ब्रह्मचर्यका पालन करना, पृथ्वीमें शयन करना और तीनों संध्याओंमें स्नान करना आवश्यक है ॥ ४८ ॥ असाधु लोगोंसे संभाषण न करे,सर्व प्राणियोंमें हिंसा, ईर्षा न करे, सबको वासुदेवपरायण देखे, त्रयोदशीके दिन पञ्चामृतसे विष्णु भगवानको विधिके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी बताई विधिसे शास्त्रानुसार स्नान करावे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर त्रयोदशीमें विधिसे जाननेवाले विद्वानोंसे शास्त्रदृष्ट विधि करके विष्णुभगवान्का पंचामृतसे स्नान करावे ॥ ५० ॥ और धनादिकी कांक्षा छोडकर विधिके बडी भारी पूजा करे फिर दूधसे चरु तैयार कर भगवान् विष्णुको निवेदन करे ॥ ५१ ॥

और अच्छे प्रकार सावधान हो उस परिपक्ष चरुके द्वारा मंत्रोंसे पूजा करे, जिससे परमपुरुष प्रसन्न होजायँ, वैसे ही गुणयुक्त नैवेद्यका भोग लगावे ॥ ५२ ॥ फिर वस्त्र, भूषण और गोदान करके ज्ञानसंपन्न आचार्य और पुरोहित लोगोंको सन्तुष्ट करे. हे सति ! इन सबके प्रसन्न करनेसे भगवान्की आराधना अपने आप होजाती है ॥ ॥ ५३॥ इन सब पुरुषोंको व और जो ब्राह्मण वहांपर उस समय आजायँ, उन सबको अपने सामर्थ्यके अनुसार उत्तम भोजन भक्षण करावे. फिर ऋत्विज् और गुरुको यथायोग्य देकर और जो पुरुष आगये हों उनको अन्नादि देकर तृप्त करे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ दीन, अन्धे, कृपण इन लोगोंको भोजन करानेसे भगवान् हरिका प्रसन्न होना जानकर इनको

शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ॥ नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥ आचार्यं ज्ञानसपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥ भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ॥ अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥ ५४ ॥ दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ अन्नाद्येनाऽऽश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥ ५५ ॥ भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनांधकृपणेषु च ॥ विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुंजीत सह बंधुभिः ॥५६॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ॥ कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥ ५७ ॥ एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ॥ पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥ ५८ ॥ त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ॥ आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥५९ ॥ अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ॥ तपस्सारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥

भोजन करावे और फिर आप जातिभाइयों सहित भोजन करे ॥ ५६ ॥ हे भद्रे ! व्रतके समय प्रतिदिन गाना, बजाना, नाचना, स्तुतिपठन, स्वस्तिवाचन और भगवत्कथा इत्यादिसे भगवान्की पूजा करे ॥ ५७ ॥ हे महाभागे ! इसका नाम पयोव्रत है, इससे ही परमपुरुषका आराधन होता है, पितामह ब्रह्माजीने हमको यह व्रत बताया था, सो हमने प्रीतिके वश हो तुम्हारे आगे वर्णन किया ॥५८॥ श्रीकश्यपजी बोले कि, हे महाभागे ! तुम इस व्रतको भली भाँति करके इससे जितेंद्रिय होकर भजनेके योग्य अव्यय भगवान्की आराधना करो ॥५९॥ इस व्रतका नाम सर्वयज्ञ, यही सर्वव्रत यही तपका सार है, यही बडा भारी दान और यही ईश्वरका तर्प्पण है ॥ ६० ॥

हे भद्रे ! जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं वही नियम, वही उत्तम संयम, वही तप, वही दान, वही व्रत आर वही यज्ञ हैं ॥ ६१ ॥ इसलिये तुम नियमसहित और श्रद्धा पूर्वक इस व्रतको करो, इससे भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होकर तुमको मनोवांछित वरदान देंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा–व्रत करनेसे अदितिपर, है प्रसन्न भगवान । सो सत्रह अध्यायमें, धारो तन सुखदान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे परीक्षित् ! अपने स्वामी महर्षि कश्यपजीके इस प्रकार कहनेपर अदितिने श्रद्धापूर्वक आलस्य त्याग इस बारह दिनके व्रतको आरंभ किया ॥ १ ॥ वह अपनी बुद्धिको सारथी बनाय इन्द्रियरूप दुष्ट

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ॥ तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥ तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ॥ भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टमस्कन्धेऽदित्यै पयोव्रतोपदेशो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता साऽदिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥ अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतंद्रिता ॥ १ ॥ चिंतयंत्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ॥ प्रगृह्येंद्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्मात्प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ॥ ननाम भुवि कायेन दंडवत्प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥ सोत्थाय बद्धांजलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनंदजलाकुलेक्षणा ॥ बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

घोडोंको वशमें कर एकाग्रचित्तसे परमपुरुष ईश्वरकी चिन्तामें मग्न हुई ॥ २ ॥ और एकाग्रबुद्धिसे अखिलात्मा वासुदेव भगवानमें मन लगाय बराबर पयोव्रतको करने लगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! व्रतके करनेसे भगवान् आदिपुरुष शीघ्र ही पीताम्बर धारण किये हुए हाथमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये अदितिके सामने आकर प्रगट हुए ॥ ४ ॥ उनको निहारते ही अदिति आदरपूर्वक शीघ्रतासे उठी और प्रीतिसे विह्वल हो पृथ्वीमें गिरकर दण्डकीसी नाईं प्रणाम करती हुई ॥ ५ ॥ हे राजन् ! फिर प्रीतिसे विह्वल होनेके कारण अदिति हाथ जोडे हुए उठी और केवल स्तुति करनेको ही समर्थ न हुई, बरन् उसके मुखसे babतक न निकली. उसके दोनों नेत्रोंमें

आनन्दके आँसू भर आये,शरीर पुलकायमान होगया और उत्सवरूपी भगवान्का दर्शन पाय सब शरीर कम्पायमान होने लगा ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उन यज्ञपति, जगत्पति, रमापतिको देखकर कश्यपजीकी स्त्री अदिति नेत्रोंसे मानों पान करते बहुत देरके पीछे प्रीतिके भरे गद्गद वचनोंसे श्रीभगवान्की स्तुति करने लगी॥७॥ अदितिने कहा कि, हे यज्ञेश ! हे यज्ञपुरुष ! हे अद्भुत ! हे तीर्थपाद ! हे तीर्थकीर्ति! आपका नाम श्रवणगोचर होते ही मंगलकारी है. आपका उदय शरणमें आये भक्त लोगोंके पापोंका नाश करनेवाला है. हे आद्य ! हे भगवन् ! आप हमारा कल्याण करनेमें मन लगावें । हे प्रभो ! आप दीनानाथ हैं ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! यद्यपि आप विश्वस्वरूप हैं और विश्वकी सृष्टि, स्थिति और

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ॥ उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्प
तिम् ॥ ७ ॥ अदितिरुवाच ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय ॥ आपन्नलोकवृजिनो
पशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥८॥ विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय
भूम्ने ॥ स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥ आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्यौ
र्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ॥ ज्ञानं च केवलमनंत भवंति तुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ १० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ॥ क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥ ११ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकांक्षितम् ॥ यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥ १२ ॥

658

प्रलयके कारण हैं, इच्छानुसार मायाके गुणको ग्रहण करते हैं, तथापि आप स्वस्थ हैं अर्थात् आपका स्वरूप अप्रच्युत है, नित्य बढ़ता हुआ जो पूर्ण बोध है उससे आपने परमात्मामें मायारूप तम नित्य निरस्त किया है, सो मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ९ ॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेसे मनुष्योंको ब्रह्माकीसी आयु, सुन्दर रूप, अतुल लक्ष्मी, स्वर्ग, पृथ्वी, सर्वयोगके गुण, धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान यह सब प्राप्त होजाते हैं; फिर वैरियोंपर विजय पानेका आशीर्वाद जो आपसे मिलेगा, इसमें कुछ बडी बात थोडे ही है ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! जब अदितिने इस प्रकारसे स्तुति की तब सब प्राणियोंके अंतर्यामी कमललोचन भगवान् उनसे यह वचन कहने लगे॥११॥ श्रीभगवान् बोले

कि, हे देवजननि! तुम्हारी सौतके पुत्रोंने जो तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पत्ति हरण करली है और स्थान भी छीन लिया है, उन अपने पुत्रोंके लिये अनेक दिनसे तुम जो चिन्ता करती हो, वह हम जानते हैं ॥ १२ ॥ तुम्हारी वासना यह है कि दुर्मद दानव लोगोंको समरमें पराजित कर तुम्हारे पुत्रगण विजयको प्राप्त हों और तुम उनके सहित एक जगह रहो ॥ १३ ॥ और इन्द्रादि तुम्हारे पुत्रगण विद्वेषियोंको जब संग्राममें मार डालें तब उन शत्रुओंकी स्त्रियें जो दुःखसे रोदन करें उन्हें तुम देखो ॥१४॥ और तुम्हारा अभिलाष यह भी है कि, तुम्हारे पुत्रगण अपनी जयलक्ष्मीको पाकर भली भाँति वृद्धिको प्राप्त हो और पहलेके समान स्वर्गमें विहार करें कि, जिनको देखकर तुम प्रसन्न होओ॥१५॥ परन्तु हे देवि! हमको जान पड़ता है कि, असुरयूथप लोगोंके ऊपर सहसा आक्रमण नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि सामर्थ्यवान् ब्राह्मणलोग

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ॥ प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥ इंद्रज्येष्ठैः
स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ॥ स्त्रियो रुदंतीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिता ॥ १४ ॥ आत्मजान्सुस
मृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः ॥ नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥ प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपा
रणीया इति देवि मे मतिः ॥ यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥ अथाप्युपायो मम देवि
चिंत्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते ॥ ममार्चनं नार्हति गंतुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥ त्वयार्चितश्चा
हमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ॥ स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्गोप्ताऽस्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥
उपाधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ॥ मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥

अनुकूल होकर उनकी रक्षा करते हैं, फिर जहाँपर ऐसी बात है वहाँपर विक्रम प्रकाश करनेसे सुख नहीं मिलेगा॥१६॥ किन्तु हे देवि! तुमने पयोव्रत करके हमको बहुत संतोषित किया है सो अब हम अवश्य इस विषयका उपाय करेंगे. हमारी पूजा करनेसे निश्चय इच्छानुसार फल मिलता है, हमारी पूजाका विफल होना उचित नहीं है ॥१७॥ हे देवि! तुमने सन्तानकी रक्षा करनेके लिये जो पूजा की और पयोव्रत करके हमारी स्तुति की, इससे हम परम प्रसन्न हुए हैं. मैं स्वयं अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र होकर कश्यपजीके तपमें स्थित हो तुम्हारे पुत्रोंका पालन करूंगा ॥ १८ ॥ इसलिये तुम इस समय अपने पापरहित पति प्रजापति कश्यपजीके समीप जा उनकी सेवा करो और हमको भी इसी

प्रकारसे अपने पतिमें अवस्थित हुआ चिन्ता करना ॥ १९ ॥ हे देवि ! यह बात किसी औरके निकट किसी प्रकारसे भी प्रकाश मत करना क्योंकि, देवता लोगोंका रहस्य भली भाँति छिपाये रहनेसे ही सिद्ध होता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अदितिसे यह सब वचन कहकर भगवान् वासुदेव उसी स्थानमें अंतर्धान होगये, उसके पीछे अदिति अपने गर्भमें दुर्लभ भगवान्का वास होना सुन मनमें कृतार्थ होगई और परमभक्तिके साथ पतिके निकट गई ॥ २१ ॥ महर्षि कश्यपजीकी अव्यर्थ दृष्टि थी. उन्होंने भी योगकी समाधिमें देख लिया

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयाऽपि कथंचन ॥ सर्वं संपद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥ अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥ २१ ॥ उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुद्ध्यत ॥२२॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ॥ समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथानिलः॥२३॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवंतं सनातनम् ॥ हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥ २४ ॥

कि भगवान् हरिका अंश हममें प्रविष्ट है ॥ २२ ॥ सावधान मनवाले वह मुनि यद्यपि सब पुत्रोंको समान देखते थे, तो भी जैसे 'सब कहीं रहनेवाला वायु काष्ठकी रगडसे वनकी जलानेवाली अग्निको उत्पन्न करता है' वैसे ही अदितिजीके गर्भमें दैत्योंका क्षय करनेवाला, बहुत कालसे संचय किया हुआ वीर्य धारण किया ❋ ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भगवान् सनातन विष्णुको अदितिके गर्भमें विराजमान हुआ जानते

❋ **शंका**–भगवान्के जन्म होनेके लिये कश्यपजीने अदितिके शरीरमें वीर्य्यस्थापन किया, यह बडी भारी शंका है कि विना वीर्यस्थापन किये क्या भगवान्का जन्म नहीं होगा ? क्योंकि वीर्यका जन्म तो चौरासी लक्ष योनिका होता है और भगवान् तो सर्वव्यापी हैं, उनके जन्म होनेके लिये वीर्यस्थापनका क्या काम था ?

उत्तर–भगवान् अनेक प्रकारका दुःख सहकर अपनी बनाई मर्यादाकी रक्षा करते हैं, यह बात शास्त्रमें और लोकमें सबको प्रगट है, कि विना वीर्य संसारकी उत्पत्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती इसलिये वीर्य्यकी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये वीर्यसे आप प्रगट होते हैं, जो वीर्य्यकी मर्यादा तथा अपनी बनाई लोककी मर्यादा तथा अपनी और भी मर्यादा न रक्खें तो परमेश्वर सब वस्तुमें विराजमान हैं फिर जन्म लेनेकी क्या अवश्यकता थी. परमेश्वरको सब बातका अधिकार है. वैकुण्ठमें बैठे बैठे जो चाहें सो करें इसलिये कश्यपजीने आदितिमें वीर्यस्थापन किया ॥

ही हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी गुह्यनामसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि, उरुगाय भगवन् ! आपकी जय हो ! हे उरुक्रम ! आपको नमस्कार है । प्रभो ! आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपको नमस्कार है। हे त्रियुग ! आपको वारंवार नमस्कार है,नमस्कार है॥२५॥ हे भगवन् ! पूर्व जन्ममें इन अदितिका नाम पृश्नि था, आप उनके गर्भमें भी अर्भक होकर जन्मे थे,सो आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप विधाता हैं, सब देवताओंमें प्रकाशमान हैं, सो आपको नमस्कार है। हे भगवन् ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल यह तीनों लोक आपकी नाभिमें वर्त्तमान हैं और आप त्रिलोकीके ऊपर स्थित हैं, सब जीवोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविशे हुए हैं सो हे सर्वव्यापी ! मैं आपको नमस्कार करता हूं॥ २६ ॥ हे ईश ! आप इस भुवनके आदि, अन्त और मध्य हो, आप ही अनन्तशक्ति पुरुष कहे जाते हैं, जैसे गंभीर प्रवाह जलमें गिरे हुए तृणादिको आकर्षण करता है, वैसे ही कालरूपी जो आप हैं सो प्रलयकालमें इस विश्वको आकर्षित किया करते हैं ॥२७॥ हे भगवन् ! आप स्थावर जंगम सब प्रजा और प्रजापति लोगोंके उत्पन्न करनेवाले हैं. आपके जन्मादि नहीं हैं, हे देव ! जलमें डूबते हुए मनुष्यके लिये जैसे नाव प्राण बचानेका अवलम्बन है, वैसे ही आप स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंके परम आश्रय हैं, इसलिये निःसंदेह आपका यह अवतार देवतालोगोंका कार्य साधन करनेके कारण हुआ है सो आप बहुत शीघ्र स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंको फिर स्वर्गमें स्थापित कीजिये ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदंशप्रवेशो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमोनमः ॥ २५ ॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे॥ त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥ त्वमादिरंतो भुवनस्य मध्यमनंतशक्तिं पुरुषं यमाहुः ॥ कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथांतः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥ त्वं वै प्रजानां स्थिरजंगमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ॥ दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अदितिवरदानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा—अष्टादश अध्यायमें, बलिके यज्ञ मँझार ॥ श्रीवामनजी जिमि गये, सो संवाद उदार ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्के कार्य और वीर्यकी स्तुति की तब जन्ममृत्युहीन वह भगवान् अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए. उनके नेत्र कमलदलके समान बडे बडे थे; चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म आयुध देदीप्यमान होरहे थे और कमरमें पीताम्बर पडा हुआ था ॥ १ ॥ उनका शरीर श्याम और गौर वर्ण था, मकराकार कुण्डलोंकी श्री उनके वदनारविंदको प्रकाशमान कर रही थी; वक्षस्थलमें श्रीवत्स विराजमान था और वलय व अंगद (बाजू) सहित उनके किरीट और काञ्ची व मनोहर नूपुर यथास्थानमें शोभायमान हो रहे थे ॥ २ ॥ और अत्यन्त सुन्दर वनमाला जो कि बहुतसे भ्रमरगणोंकी गुञ्जारसे शब्दायमान होरही थी, श्रीनारायण इससे विराजमान हो अपने शरीरसे प्रजापतिजी (कश्यपजी) के गृहके अन्धकारको दूर कर रहे थे; और उनकी गर्दनमें प्रसिद्ध कौस्तुभमणि पडी हुई थी ॥ ३ ॥ जैसे ही श्रीभगवान् इस प्रकारसे उत्पन्न हुए कि, वैसे ही सब दिशायें और जलाशयोंने निर्मल रूप धारण किया, प्रजा हर्षित हुई और समस्त ऋतु अपने अपने गुणसे (फलपुष्पादिसे) शोभायमान हुईं। स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी और सब पर्वतोंपर मनोहर शोभा हुई । देव, द्विज, गायें, इन सबके ही मनमें परमहर्ष हुआ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भगवान् किस समयमें उत्पन्न हुए सो तुम सुनो । भादों महीनेकी शुक्ला द्वादशी जो कि श्रवणद्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है, उसी तिथिको श्रवण नक्षत्रमें प्रथमांशके मध्य अभिजित् मुहूर्त्तमें श्रीभगवान्ने जन्म लिया, उस कालमें अश्विनी आदि सब नक्षत्र और गुरु शुक्रादिक सब ग्रहोंने अनुकूल रहकर

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं विरिंचस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥ चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः पिशंगवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातो झषराजकुंडलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनांबुजः पुमान् ॥ श्रीवत्सवक्षा वलयांगदोल्लसत्किरीटकांचीगुणचारुनूपुरः ॥२॥ मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितश्रीवनमालया हरिः ॥ प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन्कंठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ॥ द्यौरंतरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ॥ सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥

उनका जन्म उदार किया था, अर्थात् उनके जन्मनक्षत्रमें ग्रह नक्षत्रादि सब ही शुभ पडे थे ॥ ५ ॥ हे महाराज ! जिस द्वादशीमें भगवान् वामन जीने जन्म लिया सो प्राचीन कविलोग कहते हैं कि, उस द्वादशीके दिवाभागमें ही श्रीनारायणका जन्म हुआ था, उस समय सूर्यभगवान् मध्याह्नमें स्थित थे, अर्थात् भलीभांति दुपहर होगया था, इस द्वादशीका नाम विजया है ॥ ६ ॥ जिस समय श्रीभगवान्ने जन्म लिया, उस समय शंख, नगाडे, भेरी, ढोल, आनक, तुरही व और अनेक बाजोंका बडा भारी शब्द होने लगा ॥७॥ अप्सरायें प्रसन्न होकर नाचने लगीं और गंधर्वलोग गाना आरंभ करने लगे, मुनि लोगोंने स्तुति करनी आरंभ की, फिर देववृन्द, मुनिवर्ग, पितृगण, सब अग्नियें ॥ ८ ॥ सिद्ध, विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, देवतालोगोंके सेवक व आदित्यगण नाच नाच कर गुण गाने लगे ॥ ९॥ और प्रशंसा

द्वादश्यां सविता तिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप॥ विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥६॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्मृ
दंगपणवानकाः ॥ चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गंधर्वप्रवरा जगुः ॥ तुष्टुवुर्मु
नयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥८॥ सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः॥चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः
॥ ९ ॥ गायंतोऽतिप्रशंसंतो नृत्यंतो विबुधानुगाः ॥ अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥१०॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं
निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ॥ गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥
यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः॥ बभूव तेनैव स वामनो वटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः
॥१२ ॥ तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ॥ कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥

कर कर फूल वर्षाय वर्षाय कश्यपजीके आश्रमको छाय लिया ॥१०॥ हे राजन् ! अपने गर्भसे उन परमपुरुषको उत्पन्न हुआ देखकर अदितिको विस्मय और हर्ष एकसाथ हुआ। प्रजापति कश्यपजी योगमायासे अवतार लिये हुए उन श्रीभगवान् हरिको देखकर विस्मययुक्त हो यही वचन बोले कि, हे भगवन्! तुम्हारी जय हो ॥११॥ हे राजन्! भगवान् हरिने जो यह अवतार मनुष्यका धारण किया कि, जिससे चित्त अव्यक्त था. अपनी द्युति, भूषण व आयुधसहित उस शरीरमें नटकी नाईं दर्शनकारी मातापिताके सामने ही वामन बटुकरूप हो गये, उनकी गति दिव्य थी, ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है ॥ १२ ॥ इन वामनजीका दर्शन करके महर्षि लोग आनन्द प्रकाश करते करते कश्यपजीके स्थानपर गये और

उनको आगे कर नारायणका जातकर्म संस्कार कराने लगे ॥ १३ ॥ तिसके उपरान्त जब इन वामनजीका यज्ञोपवीत हुआ, तब सूर्यनारायणने स्वयं इनको गायत्री सिखाई, बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) दिया और कश्यपजीने मेखला पहराई॥ १४॥ भूमिने मृगचर्म दिया, सब वनोंके पति चन्द्रमाने दण्ड दिया, माताने कौपीन दी और उन जगत्पतिको स्वर्गने छत्रदान किया ॥ १५ ॥ अधिक करके वेदगर्भ ब्रह्माजीने कमण्डलु, सप्तर्षियोंनें कुशा और सरस्वतीने अक्षमाला लेकर उन अविनाशीको उपहार दी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जब वामनजीका जनेऊ होगया, तब कुबेरने उनको भिक्षापात्र दिया और साक्षात् सती अम्बिकाजीने उनको भिक्षा दी ॥ १७ ॥ यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी वामनजी इस प्रकार

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥ ददौ
कृष्णाजिनं भूमिर्दंडं सोमो वनस्पतिः ॥ कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमंडलुं वेदगर्भः
कुशान्सप्तर्षयो ददुः ॥ अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥१६॥ तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ॥
भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादंबिका सती ॥ १७॥ स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो वटुः ॥ ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरो
चत मारिषः॥१८॥ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ॥ परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः॥१९॥ श्रुत्वाऽ
श्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः॥जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे॥२०॥तं
नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके॥प्रवर्तयंतो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम्॥२१॥

66/

आदर सत्कार पा अपने तेजसे ब्रह्मर्षियोंकी सभाको भी अतिक्रमण करके शोभायमान होने लगे ॥ १८ ॥ अग्निके पारिसमूहनके द्वारा कुशोंको बराबर कर समाधान करके होम करने लगे ॥ १९ ॥ तिसके उपरान्त वामनजीने सुना कि, भृगुवंशियोंके प्रवर्तित किये हुए अनेक अश्वमेध यज्ञोंसे राजा बलि कर रहा है, इसलिये अखिल बलसे पूर्ण हो अपने भारसे पग पगपर पृथ्वीमण्डलको कम्पायमान करते हुए राजा बलिके यज्ञस्थानमें वामनजीने गमन किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर्मदाके उत्तर किनारेपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें बलिके श्रेष्ठ ऋत्विज जो यज्ञको करा रहे थे; उन्होंने अपने समीप उदय हुए सूर्यनारायणके समान इन वामनजीको देखा ॥ २१ ॥

श्रीवामनजीके तेजसे सब ऋत्विज्, सभासद्गण और यजमान असुरश्रेष्ठ राजा बलि यह सब तेजरहित होगये और यह कहकर परस्पर तर्क वितर्क करने लगे कि, "क्या यज्ञ देखनेकी इच्छासे सूय भगवान् आ रहे हैं ? वा अग्नि है वा सनकादिक ऋषियोंका आगमन हुआ ?" ॥ २२॥ शिष्योंके सहित भृगुगण करके इस प्रकार विविध भाँतिसे वितर्कित हो भगवान् वामनजी छत्र, दण्ड, जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए राजा बलिके अश्वमेधमण्डपमें आये ॥ २३ ॥ मुञ्जकी मेखला पहिरे मृगके चर्मकी उत्तरीय जो जनेऊके समान बायें कन्धेपर पडा था, ऐसे जटिल विप्र मायारूपी वामन उन हरिको ॥ २४ ॥ यज्ञशालामें प्रवेश करता हुआ देखते ही उनके तेजसे व्याकुल हो शिष्यों सहित भृगुलोग उठ खडे

ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या हतत्विषो वामनतेजसा नृप ॥ सूर्यः किलाऽऽयात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ॥ सदंडछत्रं सजलं कमंडलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥२३॥ मौंज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥ २४ ॥ प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ॥ प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ॥ रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६ ॥ स्वागतेनाभिनंद्याथ पादौ भगवतो बलिः ॥ अवनिज्यार्चयामास मुक्तसंगं मनोरमम् ॥२७॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविद् मूर्ध्न्यदधात्सुमंगलम् ॥ यद्देवदेवो गिरिशश्चंद्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥

हुए और उनका आदर सन्मान करने लगे ॥ २५ ॥ दर्शन करने योग्य मनोहर रूपवाले अनुकूल अंग युक्त श्रीवामनजी महाराजको देखकर सन्न हो राजा बलिने अपने हाथसे आसन दिया और कहा कि "भले आये महाराज। विराजिये" यह कह चरणकमल कोमल अमलको स्वार उन सुकुमार मनोहर हरिकी पूजा करने लगा ॥ २६ ॥ २७॥ हे राजन्। भगवान्के मंगलकारी चरणोदकको जो कि, कलिमलका नाश करनेवाला है, राजा बलिने अपने मस्तकपर चढ़ाया. हे महाराज । आप इस बातको कुछ विचित्र न समझो क्योंकि चन्द्रमौलि देवदेव गिराश भूतेश्वर महादेवजीने भी परमभक्तिसे इस चरणामृतको अपने मस्तकपर चढाया था ॥ २८ ॥

तब राजा बलि भक्तिके प्रकाशित होनेसे कुतूहलके मारे कहने लगा कि, हे ब्रह्मन् ! आप सुखसे तो आये ? मैं आपको नमस्कार करता हूँ, मैं आपका कौनसा कार्य करूं सो आज्ञा कीजिये ? हे श्रेष्ठ ! हमको जान पड़ता है कि, आप ब्रह्मर्षिलोगोंके मूर्तिमान् तप हैं. आज मैं कृतार्थ हुआ ॥ २९ ॥ आप जो मेरे स्थानपर आकर सुशोभित हुए इस कारण आज हमारे पितृगण तृप्त हुए, आज मेरा कुल पवित्र हुआ और आज मेरा यह यज्ञ भलीभाँतिसे पूर्ण हुआ॥३०॥आज हमारा अग्नियोंमें भलीभांति होम करना सफल हुआ. हे ब्राह्मणकुमार ! आपके चरणोदकसे हमारा सब पाप धुल गया और आपके छोटे छोटे चरणोंके पडनेसे यह भूमि पवित्र होगई ॥ ३१ ॥ हे विप्रनन्दन ! हम अनुमान करते हैं

बलिरुवाच ॥ स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ॥ ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्यवपुर्धरम् ॥ २९ ॥ अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ॥ अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ॥ ३० ॥ अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ॥ हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥ ३१ ॥ यद्यद्बटो वांछसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥ गां कांचनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् ॥ ग्रामान्समृद्धान् तुरगान् गजान् वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टम० बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं ससूनृतम् ॥ निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनंद्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

कि, आप कुछ माँगनेके लिये आये हैं,सो जो इच्छा हो आप मुझसे लीजिये । हे पूज्यतम ! गौ, सुवर्ण, श्रेष्ठ गृह,मीठा तथा उज्ज्वल अन्न और पान, कन्या, ऋद्धि सिद्धिसे भरे हुए ग्राम, अश्व, हाथी वा रथ जिसकी आपको आवश्यकता हो सो मुझसे मांगो, मैं प्रस्तुत हूँ * ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिवामनसंवादो नाम अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ दोहा–ऊनविंशमें तीन पग, धरणी मांगी ईश । कियो शुक्रने मने जिमि, कहों सुमिरि जगदीश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! ऐसे धर्मयुक्त सुन्दर राजा बलिके वचन सुन

662

---

* शंका–सतयुग, त्रेता, द्वापरमें ब्राह्मण राजाओंसे दान मांगते थे तब राजालोग गुरुसे अनेक बार बूझकर सुपात्र कुपात्र विचारके दान देते थे, जब ऐसे विचारके दान देते थे तब वामन भगवान्ने तो बलिसे दान मांगा नहीं विना मांगे दान देनेको बलि क्यों उपस्थित हुआ ?

श्रीभगवान् प्रसन्न होकर और सम्मान करके राजा बलिसे यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नरदेव ! तुम्हारे यह वचनने अत्यन्त सुन्दर, धर्मयुक्त, यशके देनेवाले और कुलके योग्य हैं, क्यों न हों भृगुगण और अपने दादा कुलके बढानेवाले प्रशान्त प्रह्लादजीको तुम पारलौकिक धर्ममें प्रमाण पाया है॥२॥ हे राजन् ! तुम्हारे इस कुलमें ऐसा निःसत्त्व अथवा कृपण पुरुष कोई नहीं हुआ कि, जिसने प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंका कार्य न किया हो, अथवा कुछ देनेको कहकर न दिया हो॥३॥हे नृप ! दानके अवसरमें वा युद्धके कालमें याचकके मांगनेपर न देनेवाला अमनस्वी (अधीर) स्त्रीपुरुष तुम्हारे कुलमें नहीं है. इसका प्रमाण देखो, आकाशमें जिस प्रकार नक्षत्रनाथ चन्द्रमा दीप्तिमान् होते हैं वैसे

श्रीभगवानुवाच ॥ वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ॥ यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशांतः॥२॥न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निस्सत्त्वः कृपणः पुमान् ॥ प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये॥३॥न संति तीर्थे युधि चार्थिनाऽर्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृप ॥ युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे॥४॥ यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ॥ प्रतिवीरं दिग्विजये नाविंदत गदायुधः॥५॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ॥ नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा॥हंतुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥

ही तुम्हारे कुलमें निर्मल यशसे युक्त होकर प्रह्लादजी प्रकाशमान हैं॥ ४ ॥ और तुम्हारे इस विख्यात वंशमें महावीर हिरण्याक्षने जन्म ग्रहण किया जो कि गदा धारण किये दिग्विजय करनेको अकेले ही समस्त पृथ्वीमें घूमे, परन्तु उन्हें कहीं भी कोई युद्ध करनेवाला बली न मिला॥५॥श्रीभगवान् विष्णुने जब पृथ्वीका उद्धार किया था, उस समय यह महावीर हिरण्याक्ष वहाँ आया था. अतिकठिनाईसे उस हिरण्याक्षको हराय व उसके पुरुषार्थको दमन कर भगवान्ने अपने आपको विजयी नहीं माना॥६॥और इस हिरण्याक्षके सगे भाई हिरण्यकशिपुने जब उसके (हिरण्याक्षके)

उत्तर-धर्मशास्त्रका यह मत है कि, गृहस्थ ब्राह्मण दान मांगे तब राजा दान दे पर विरक्त ब्राह्मण दान न मांगे तो भी राजा दान दे ऐसे धर्मशास्त्रके मतको जानकर राजा बलि वामन विरक्त थे इससे उनके कुछ न मांगनेपर भी दान देनेको उपस्थित हुआ ॥

वधका वृत्तान्त सुना, तब यह भ्राताके मारनेवालेका प्राण संहार करनेको क्रोध कर भगवान् विष्णुके स्थानको गया॥७॥ माया जाननेवालोंमे श्रेष्ठ व कालको पहँचाननेवाले इस दानवको शूल धारण किये कालके समान आता हुआ देखकर भगवान् विष्णुने यह चिन्ता की॥८॥ कि, जहाँ जहाँ पर हम जाते हैं, वहीं वहीं पर प्राणियोंकी मृत्युके समान हम इस दानवको अपने साथ ही देखते हैं,इसकी दृष्टि बहिर्भागमें ही है, इससे मैं इसके हृदयमें प्रवेश करता हूँ ॥ ९ ॥ हे राजन् ! भगवान् वासुदेव इस प्रकारसे विचार करके दौडते हुए उस शत्रुकी नासिकाके छेदसे उसके हृदयमें घुस गये, तथापि उनका चित्त विशेष उद्विग्न और श्वासकी अग्निसे अन्तर्हित हो रहा था ॥ १० ॥ हे राजा बलि ! जब हिरण्यकशिपुने विष्णु भगवान्को न देखा, तब उनके सूने स्थानमें घूम घामकर सिंहनाद करने लगा और पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, विवर,

तमायांतं समालोक्य शूलपाणिं कृतांतवत् ॥ चिंतयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥ यतो यतोऽहं
तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ॥ अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥ एवं स निश्चित्य रिपोः शरीर
माधावतो निर्विविशेऽसुरेंद्र ॥ श्वासानिलांतर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरंध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥ स तन्निकेतं
परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद ॥ क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥
॥ ११ ॥ अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत् ॥ भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥ १२ ॥
वरानुबंध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥ पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वा
न्द्विजवत्सलः ॥ स्वमायुर्द्विजलिंगेभ्यो देवेभ्योऽदात्स याचितः ॥ १४ ॥

समुद्र सबमें उसने खोज किया, परंतु विष्णु भगवान् तो उसके अंतरमें ही पैठ गये थे, इससे कहीं नहीं देख पडे ॥ ११ ॥ विष्णुके दर्शन न पाकर हिरण्यकशिपुने यह कहा था कि मैंने सब संसारको ढूँढा, परन्तु अपने भाईके मारनेवालेका कहीं पता न पाया, हमको जान पड़ता है कि हमारा भ्रातृघाती उस स्थानमें चला गया है कि,जहाँसे पुरुष फिर नहीं लौटता॥ १२॥हे राजन्! देहाभिमानी पुरुषोंका मरनेतक वैरभाव और अहंकार अभिमानसे बढा हुआ क्रोध इसी प्रकारसे हुआ करता है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति अज्ञानसे है. बस अज्ञानसे निवृत्ति होनेके पहिले पौरुषका छोडना केवल मूर्खता है इसीलिये हिरण्यकशिपुने अपने शत्रुकी खोज नहीं छोडी ॥ १३ ॥ हे असुरराज ! तुम्हारे

पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन ऐसे ब्राह्मणवत्सल थे कि, अपना वैरी जान लेनेपर भी माँगनेपर द्विजवेषधारी देवता लोगोंको उन्होंने अपनी परमायु देदी थी ॥ १४ ॥ तुमने भी गृहमेधी ब्राह्मण और पूर्वज शूरगण और उद्यमयुक्त यशवान् महात्माओंके धर्मका आचरण किया है ॥ १५ ॥ इसलिये हम तुमसे कुछ भूमिकी भिक्षा माँगते हैं। हे दैत्येन्द्र ! हम इस अपने चरणके परिमाणकी तीन पग पृथ्वी चाहते हैं * ॥१६॥ हे राजन् ! तुम वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हो और इस जगत्के सत्य सत्य ईश्वर भी हो, परन्तु हम आपसे इसके अतिरिक्त और अधिक

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ॥ ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात ॥ पदानि त्रीणि दैत्येंद्र संमितानि पदा मम ॥ १६ ॥ नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ॥ नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥१७॥ बलिरुवाच ॥ अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ॥ त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १८ ॥

कुछ नहीं माँगते, क्योंकि विद्वान् पुरुष उतना ही लेते हैं जितनेका कि, उनको प्रयोजन होता है और उतनेके ग्रहण करनेसे किसी प्रकारका पाप भी नहीं होता ॥ १७ ॥ राजा बलि यह सुनकर अतिविस्मित होकर बोले कि, बड़ा आश्चर्य है, अजी विप्रकुमार ! तुम्हारी यह बातें वृद्ध लोगोंकी बातोंके समान हैं, पर तुम बालक हो और तुम्हारी बुद्धि अनजानके समान है, तुम अपने स्वार्थको कुछ नहीं जानते "राजा बलिकी इस बातका यह तात्पर्य है कि तुम बालकके समान हो, वास्तवमें बालक नहीं हो । तुम्हारी बुद्धि पण्डितोंकी बुद्धिके समान है, तुम अपना स्वार्थ

---

*शंका–वामनजी भगवान् होकर और ब्रह्मचारी होकर थोडेसे कामके लिये इतना झूंठ क्यों बोले ! क्या बलिको दण्ड देनेका कोई दूसरा उपाय नहीं था ?

उत्तर–धर्मशास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, दुष्टके संग जो दुष्टता करते हैं उनको किसी प्रकारका दोष नहीं होता, राजा बलि कैसा दुष्ट था कि वह अपने मनमें जानता था कि, इन्द्रका पुण्य अभी है हम किसी प्रभावसे राज्य लेलेंगे तब भगवान्‌को दुःख भोगना पडेगा ऐसा जानता था तोभी शुक्राचार्यका पूजन करके इन्द्रका राज्य लेलिया, तब राज्यसे भ्रष्ट इन्द्र भगवान्‌से कहने लगा कि, महाराज मैंने १०० सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब आपने मुझको इन्द्र बनाया है, कुछ ले देकर इन्द्र नहीं बना दिया है. सौ १०० यज्ञमें मैंने राज्य किया सो तो भोग लिया अब जो मेरा शेष पुण्य हो, उस पुण्यसे मेरा राज्य दो और राज्य नें दो तो मेरा पुण्य दो, इस प्रकार इंद्रके वचन सुन भगवान् लज्जित हुए और दुःखको प्राप्त होकर. विचार किया कि विना छल किये हुए बलिसे इंद्रको राज्य नहीं मिलेगा ऐसा विचारकर झूंठ बोलकर भगवान्‌ने इंद्रको इंद्रासन दिया ॥

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ॥ खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥ ३४ ॥ निष्ठां ते
नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ॥ प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥ न तद्दानं प्रशंसंति
येन वृत्तिर्विपद्यते ॥ दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥ ३६ ॥ धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय
च ॥ पंचधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ३७ ॥ अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ॥ सत्यमोमिति
यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥ ३८ ॥ सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमा
त्मनः ॥ ३९ ॥ तद्यथा वृक्ष उन्मूलश्शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात ॥ एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥

स्वीकार तो कर लिया है, परंतु यह तीन चरणमें ही सब लोकोंको नाप लेंगे क्योंकि यह विश्वमूर्ति हैं फिर क्रोध करके कहने लगे कि अरे मूढ ! विष्णुको सर्वस्व देकर फिर तू कहां रहेगा ? ॥ ३३ ॥ यह एक पैर (चरण) से सब पृथ्वीको नाप लेंगे, दूसरे चरणसे स्वर्गको नाप लेंगे, इनका विशाल शरीर आकाशमण्डलमें व्याप्त होजायगा, फिर तीसरे चरणकी गति कहांसे होगी, सो बता ? ॥ ३४ ॥ जब तू वचन देकर फिर न देगा तब हमको जान पडता है कि, तेरा नरकमें वास होगा क्योंकि, तू अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सकेगा ॥ ३५ ॥ अरे मूढ ! जिससे अपनी जीविका जाती रहे वह दान प्रशंसाके योग्य नहीं होता, क्योंकि संसारमें जीविकावाले पुरुषके यहां ही यज्ञ, दान, तप और कर्म हुआ करते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष धर्म, यश, अर्थ, काम और सुजन इन पांचोंके लिये अपने धनका विभाग कर देता है, वह इस लोक और परलोक दोनोंसे सुखी होता है ॥ ३७ ॥ अरे ! अब तू इस विचारको छोड दे कि "वचन देकर अब किस प्रकारसे मिथ्या बोलूँ" सत्य मिथ्याकी व्यवस्थाके लिये बह्वृच श्रुतिमें जो कहा है, उसको तू हमसे सुन, "हां" बोल स्वीकार करके जो कहा जाता है, उसका नाम सत्य है और "ना" जो वचन है सो मिथ्या है ॥ ३८ ॥ यह सत्य देहरूप वृक्षका पुष्प फल है क्योंकि श्रुतिमें भी ऐसा ही कहा है, परन्तु जब यह देहरूप वृक्ष ही जीवित न रहेगा, तब यह पुष्प फल कैसे होंगे ? इसलिये अनृत देहका मूल है, बस अनृतसे ही देहकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ अतएव जिस प्रकार जडके उखडनेसे वृक्ष सूख जाता है और शीघ्र गिर जाता है, वैसे ही झूंठके नष्ट होनेसे देह शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥

664

और सदा सत्य कहनेसे देहकी यात्राका निर्वाह होना असम्भव है इस कारण सत्यके दोष और मिथ्याके गुण तुम हमसे श्रवण करो॥"हां" अक्षर जो है,यह सम्पत्तिको दूर लेजाता है और पुरुषको धनशून्य कर देता है,अथवा अपूर्ण किये रहता है अर्थात् याचककी आशाका अन्त नहीं है, क्योंकि किसीने कहा भी है कि,"याचक कहा न मांगहीं, दाता कहा न देहिं"इसलिये वह पूर्ण नहीं होसकती। बस याचकसे "हां" कह स्वीकार कर लेना अच्छा नहीं। देनेसे पुरुष धनमें न्यून होजाता है. अधिक करके जो पुरुष याचकसे "सब दूंगा" अंगीकार कर उसको देभी देता है उस दाताका अपना कार्य भी सिद्ध नहीं होता अर्थात् उसको अपने भोगका भी उपाय नष्ट हो जाता है परन्तु"ना" यह जो अनृत वाक्य है धनका व्यय न करानेके हेतु पूर्णस्वरूप है और अपनी ओरको दूसरेका खींचनेवाला है, क्योंकि जो पुरुष नित्य कहता है कि, हमारे पास कुछ नहीं है,वह अपने अनृतसे दूसरेके धनको खींच सकता है॥ ४१ ॥४२॥ हे दैत्यराज। हमारी इस बातसे तुम यह न समझ लेना कि,

पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति ॥ यत्किंचिदोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ॥ ४१ ॥ भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ अथैतत्पूर्णमध्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः॥४२॥ सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥ स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ॥ गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भा० म० अष्टम० वामनावतारे बलियाचनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥ तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

अमृतके समान सदा ही अनृत सेवन करनेके योग्य है,क्योंकि जो सब ही समय "ना" कहकर झूंठ बोलता है वह अत्यन्त अकीर्तिका भागी होता है और जीवित रहते भी मृतकके समान रहता है॥ ४३ ॥ केवल इन सब बातोंमें अर्थात् स्त्रियोंके वश करनेमें, परिहासमें, विवाहके समय, वरादिकी प्रशंसा करनेमें, जीविकाकी रक्षा करनेमें, प्राणके संकटमें; इन अवसरोंमें और गौ, ब्राह्मणके हितार्थ किसीकी हिंसा उपस्थित होनेपर झूंठ कभी दोषका देनेवाला नहीं है॥४४॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां वामनचरित्रे एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

दोहा–बलिसे जिमि संकल्प ले, बडे भये भगवान। कथा बिंशअध्यायकी, सो बरणों सुखदान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, हे श्रेष्ठ। दैत्यगुरु शुक्राचार्यके इस प्रकारसे कहनेपर गृहपति राजा बलि कुछ देरतक चुपचाप रहे और फिर सावधान

नहीं जानते अर्थात् भक्तोंके अर्थको ही समझते हो, क्योंकि स्वयं परिपूर्ण हो, भक्तका अर्थ पूर्ण करनेके अतिरिक्त स्वयं आपका स्वार्थ अप्रसिद्ध है"॥१८॥कैसे खेदकी बात है ! हम सब लोकोंके ईश्वर हैं,एक द्वीपको भी दान कर.सकते हैं, बहुत वचनोंसे आराधना करके फिर तुम हमारे पाससे अज्ञानीके सम।न केवल तीन पग भूमिका दान माँगते हो ॥१९॥ हमसे प्रार्थना करके फिर किसीको दूसरेका याचक नहीं बनना चाहिये इसलिये आप हमसे बहुतसी भूमी ले लीजिये । राजा बलिके वचन सुनकर श्रीभगवान् वामनजी कहने लगे, कि॥२०॥जो पुरुष अजितेन्द्रिय है जिसने अपनी तृष्णाको नहीं जीता है उसको त्रिलोकीमें जो कुछ भी श्रेष्ठ वस्तुयें हैं वह सब भी तृप्त नहीं कर सकतीं ॥ २१ ॥ जो

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ॥ पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥ न पुमान्
मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ॥ तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं वटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
यावंतो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेंद्रियम् ॥ न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप॥२१॥ त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपे
नापि न पूर्यते ॥ नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ॥ अर्थैः कामैर्गता
नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥ २३ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ॥ नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोप
सादितैः॥ २४ ॥पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः॥ २५ ॥ यदृच्छा
लाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्द्धते ॥ तत्प्रशाम्यत्यसंतोषादंभसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥

पुरुष तीन चरण भूमिसे असंतुष्ट है,उसकी तृष्णा एक द्वीप पानेपर भी नहीं छूटेगी,जब ऐसे पुरुषको एक द्वीप मिल जायगा तब वह सात द्वीपोंके पानेका अभिलाष करेगा॥२२॥और ऐसा सुना भी है कि, राजा वेन और गयादि नृपगणने सप्त द्वीपोंके अधिपति होकर भी अर्थ और कामके द्वारा तृष्णाका अन्त नहीं पाया॥२३॥यदृच्छा करके मिले हुए द्रव्यसे जो संतुष्ट हैं,वही सुखी हैं, असन्तुष्ट और जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है, वह तीनों लोक पाकर भी सुखी नहीं हो सकता॥२४॥इसलिये कविलोगोंने कहा है कि, अर्थ और कामके लिये जो असन्तोष है यही पुरुषके संसारका कारण है और दैवेच्छानुसार पाये हुएसे संतोष करना ही मुक्तिका हेतु है॥२५॥हे राजन् । दैवेच्छानुसार वस्तुको पाकर संतोष कर

लेनेसे ब्राह्मणोंका तेज बढ जाता है, नहीं तो जलके पडनेसे जिस प्रकार अग्नि बुझ जाती है वैसे ही असंतोषी ब्राह्मणका तेज शांत होकर नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे वरदश्रेष्ठ ! हम तुमसे केवल तीन चरण भूमिकी ही प्रार्थना करते हैं और इससे ही हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा, क्योंकि प्रयोजनानुसार वित्त ही सुखका देनेवाला है; शेष धन क्लेशका कारण होता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! जब वामनजीने इस प्रकार कहा, तब राजाबलि हँसकर बोला कि, "तब जो आपकी इच्छा है सो ग्रहण कीजिये" यह कहकर भूमिदान करनेके लिये राजाबलिने जलका पात्र हाथमें लिया ॥ २८ ॥ कि, इतनेमें ही दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यजी विष्णुके कपटको जान गये इस कारण उनको

तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ॥ एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तः स हसन्नाह वांछातः प्रतिगृह्यताम् ॥ वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८ ॥ विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यंतमुशना त्वसुरेश्वरम् ॥ जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदांवरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य उवाच ॥ एष वैरोचने साक्षाद्भगवान् विष्णुरव्ययः ॥ कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ॥ न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥ एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ॥ दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान् विश्वकायः क्रमिष्यति ॥ सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥

भूमिदान करनेके लिये उद्यत देख अपने शिष्य राजाबलिपर क्रुद्ध होकर शुक्राचार्यजी यह वचन कहने लगे ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य बोले कि, हे विरोचननन्द ! यह साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् हैं, कश्यपजीके आदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए औरस पुत्र हैं और यह अवश्य ही देवता लोगोंका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३० ॥ यह तुमने किया क्या? कि विना अर्थके विचारे इनको भूमिदान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली । हम जान गये कि अब मंगल नहीं, दैत्यलोगोंके लिये बडा अनर्थ आ पहुँचा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! यह तुम्हारा स्थान लक्ष्मी, ऐश्वर्य, तेज, यश और विद्या सब छीनकर इन्द्रको देदेंगे. यह मनुष्य नहीं हैं. यह भगवान् विष्णु मायाके योगसे वामनरूप हुए हैं ॥ ३२ ॥ वास्तवमें तीन चरण भूमिका देना

होकर अपने गुरुजीसे यह वचन कहने लगे * ॥ १ ॥ राजा बलिने कहा कि, हे गुरो! आपने जो कुछ भी आज्ञा की, वह सब सत्य है, जिससे किसी कालमें भी अर्थ, काम, यश और जीविकाका व्याघात न हो गृहस्थोंका वही धर्म है ॥ २ ॥ परन्तु मैं महात्मा प्रह्लादका पोता "दूंगा" कह सब अंगीकार कर फिर साधारण बनियेके समान धनके लोभसे ब्राह्मणसे किस प्रकार कहूँ कि "अब मैं नहीं दूगा" ॥ ३॥ असत्यके समान बडा अधर्म और कोई नहीं है, क्योंकि इस पृथ्वीने कहा है कि जान पड़ता है कि झूठ कहनेके सिवाय और सबका भार मैं अपने ऊपर सम्हार सकती हूँ ॥ ४ ॥ हे गुरुजी महाराज! जितना मैं ब्राह्मणोंके वचनोंसे डरता हूँ, उतना तर्कसे, दुःखके समुद्रसे, दरिद्रसे, स्थानके

बलिरुवाच ॥ सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥ स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ॥ प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा॥ ३ ॥ न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ॥ सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ॥ न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलंभनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ॥ तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

भ्रष्ट होनेसे और मृत्युसे भी नहीं डरता ॥५ ॥ और इस लोकमें पृथ्वी आदि जो कुछ वस्तुयें जिखाई देती हैं, यह सब मृत पुरुषको अवश्य ही त्याग करेंगी, फिर जीते ही क्यों न दान किया जाय? यदि कहो कि, सर्वस्व दान करनेसे जीविकाके विषयमें संकट होगा; तब जीविकाका संकट दूर करनेके लिये आधा दो, पर इसमें यह कहना है कि, जो आधेमें उस दानसे ब्राह्मणको सन्तोष न हो तो फिर उस दानके देनेका फल ही क्या हुआ? बस इसी कारणसे जितना माँगा है, उससे थोडा देनेपर इन ब्राह्मणकुमारको सन्तोष न होगा जिससे हमारा दान व्यर्थ

---

* **शंका**–राजा बलिको श्रीशुकदेवजीने घरका पति करके वर्णन किया है सो घर किसका नाम है? राजा बलि इन्द्रकी गद्दीपर बैठकर त्रिलोकीका राजा बनकर फिर घरका पति कहाया ऐसा उत्तम घर क्या पदार्थ है?

उत्तर–जो प्राणी भगवान्‌का नाम अत्यन्त आदर सत्कार और प्रेम प्रीतिसे जपते हैं, जप करनेका ग्रहण करना भी नाम है, उन प्राणियोंका गृह नाम है, उनका पति बलि है, क्योंकि रात दिन राजा बलिके समान भगवान्‌का भजन करनेवाला संसारमें कोई भी नहीं है इसलिये श्रीशुकदेवजीने राजा बलिको गृहपति कहा। वास्तवमें गृहपति शब्दका अर्थ गृहस्थ है।

जायगा,इसलिये जो कुछ भी इन्होंने मांगा है, हम वही सब देंगे ॥ ६ ॥ हे गुरो! दधीचि, शिबि आदि साधु पुरुषोंने त्यागके अयोग्य प्राण देकर भी साधु लोगोंका उपकार किया है, फिर भला भूमि आदि साधारण वस्तुका क्या विचार किया जाय? ॥ ७ ॥ युद्धमें विमुख न होकर जिन दैत्येन्द्रोंने इस पृथ्वीको भोग किया था, सो कराल कालने इनका इस लोक व परलोक दोनोंमें संहार किया, परंतु जो कुछ यश वे इस पृथ्वी पर इकट्ठा कर गये हैं, उसका काल भी नहीं संहार कर सकता इसलिये यशका इकट्ठा करना ही ठीक है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! देह त्याग करनेसे धनके त्याग करनेमें अधिक यश मिल सकता है क्योंकि, युद्धमें जिस प्रकार देहत्यागी अनेक पुरुष साधारण ही देखे जाते हैं परन्तु ऐसे पुरुष बहुत थोडे देखनेमें आते है कि, जो सत्पात्रके आनेपर उसको श्रद्धासहित धन देवें ॥ ९ ॥ हे महाराज! साधारण

श्रयः कुर्वंति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ॥ दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येंद्रैरनिवर्तिभिः ॥ तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥ सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनुवृत्तास्तनुत्यजः ॥ न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥९॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ॥ कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो वटोरस्य ददामि वांछितम् ॥ १० ॥ यजंति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवंत आम्नायविधानकोविदाः ॥ स एष विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥११॥ यद्प्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ॥ तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥१२॥ एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ॥ हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥

याचककी अभिलाषा पूर्ण करनेमें जो दरिद्रता आजाय तो मनस्वी दयावान् पुरुषका इससे भी कल्याण है, इससे आपके समान ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणका अभिलाष पूर्ण करनेमें जो हमें हरिद्रता आजाय तो यह दारिद्रता भलाई क्यों नहीं गिनी जायगी? अतएव जो कुछ इन ब्राह्मणने माँगा है वह हम अवश्य इनको दान देंगे ॥ ॥ १० ॥ हे मुने! आप लोग वेदविद्यामें चतुर हैं, आप आदरपूर्वक योग यज्ञद्वारा जिनकी पूजा किया करते हैं, यह ब्राह्मण वही वरदानी विष्णुजी हों, या हमारे शत्रु ही हों, हम इनकी मांगी हुई भूमि अवश्य इनको दान करेंगे ॥ ११ ॥ हम निरपराध हैं, जो यह अधर्म करके हमको बांध भी लें, तो भी हम इन भीत ब्राह्मणरूपी शत्रुकी हिंसा न करेंगे ॥ १२ ॥ जो यह उत्तमश्लोक विष्णु

भगवान् हैं और अपने यशको त्यागनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तब तो यह युद्धमें हमारा नाश कर इस सब भूमिको लेलेंगे, अथवा हम करके मारे जायँ तो पृथ्वीमें शयन करेंगे ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! अपने शिष्य राजा बलिको श्रद्धारहित हो अपनी आज्ञाके प्रतिपालन करनेसे विमुख देखकर भाग्यके भेजे हुएके समान दैत्यगुरु श्रीशुक्राचार्यने क्रोध करके सत्यप्रतिज्ञ, इस असुरश्रेष्ठ राजा बलिको यह शाप दिया ॥ १४ ॥ श्रीशुक्राचार्य बोले कि, अरे अज्ञानी ! तू अपनेको पण्डित मानता है, हमारी उपेक्षा करके तैंने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया इसलिये तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महात्मा बलि अपने गुरुजीसे इस प्रकार शापित होकर भी अपने सत्यसे विचलित नहीं हुआ. उसने वामनजीको पूज जलका स्पर्श कर पृथ्वी दान दी ॥ १६ ॥ तिसके पीछे राजा बलिकी रानी विंध्यावली मोती जडेहुए आभूषण पहर और मालायें धारण कर एक जलसे भरा हुआ कलश लाकर अपने स्वामीके निकट स्थापित किया ॥ १७ ॥ यज्ञ करनेवाले राजा बलिने स्वयं इस जलसे परम हर्षके साथ श्रीवामनजीके दोनों चरण पखारे. फिर संसारके पवित्र करनेवाले उस जलको अपने मस्तक पर धारण किया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस समय स्वर्गमें देवता लोग और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर व चारणादि सब ही राजा बलिके इस कर्मकी प्रशंसा कर परमहर्षके साथ उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे और वारंवार हजारों नगाडे बजने लगे ॥ १९ ॥ और गन्धर्व, किन्नर,

श्रीशुक उवाच ॥ एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ॥ शशाप दैवप्रहितः सत्यसंधं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पंडितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ॥ मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५ ॥ एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ॥ वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ विंध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ॥ आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥ यजमानस्स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ॥ अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥ तदासुरेंद्रं दिवि देवतागणा गंधर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ तत्कर्म सर्वेऽपि गृणंत आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुंदुभयः सहस्रशो गंधर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ॥ मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥

किंपुरुषगण यह कहकर गाने लगे कि,राजा बलिने अतिदुष्कर कर्म किया कि,सब जानबूझकर भी अपने शत्रुको त्रिभुवनका दान कर दिया. हे परीक्षित्! राजा बलिने पहले "जो इच्छा हो सो ग्रहण कीजिये" यह जो कहा तब भगवान्का वह वामनरूप आश्चर्यरूपसे बढ़ा। इस मूर्तिकी आत्मामें त्रिगुणके रहनेसे पृथ्वी, आकाश, दिक्, विवर, समुद्र, पशु, पक्षी, देव और ऋषि सम्पूर्ण उसमें अवस्थित थे ॥ ॥ २० ॥ २१ ॥ ऋत्विक्, आचार्य और सभासदोंके सहित असुरराज बलि महाऐश्वर्यशाली हरिके त्रिगुणात्मक कलेवरमें पञ्चभूत सब इद्रियें, गन्धादि आशय, चित्त और जीवोंके सहित त्रिगुण विश्व देखने लगे ॥ २२ ॥ अर्थात् इन्द्रकी सेना ही जिसकी सेना थी उस राजा बलिने

तद् वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम्॥ भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदा
सत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ॥ ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेंद्रियार्था
शंयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥ रसामचष्टांघ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जंघयोः ॥ पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते
रूर्वोर्गणं मारुतमिंद्रसेनः ॥ २३ ॥ संध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान्॥ नाभ्यां नभः कुक्षिषु
सप्त सिन्धूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यंग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेंदुम् ॥ श्रियं च
वक्षस्यरविंदहस्तां कंठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥ इंद्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ॥
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६ ॥

इन विश्वमूर्ति हरिके चरणोंके नीचे रसातल,दोनों चरणोंमें धरणी,दोनों जंघाओंमें पर्वत, घुटुओंमें सब पक्षी और दोनों ऊरुओंमें मरुद्गणोंको देखा ॥ २३ ॥ भगवान् विभुके नेत्रोंमें संध्या, गुह्यमें प्रजापति, जंघाओंमें आप जिनके पति हैं ऐसे बहुतेरे असुर, नाभिमें आकाश, कोखमें सातो समुद्र और छातीमें नक्षत्रमाला विराजमान देखी ॥ २४ ॥ और धीरजवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलिने उन मुरारीके हृदयमें धर्म,दोनों स्तनामें ऋतु और सत्य,मनमें चंद्रमा, वक्षस्थलमें कमलका फूल हाथमें लिये कमला (लक्ष्मी),कण्ठमें सामवेद और समस्त वेद ॥ २५ ॥ चारो भुजाओंमें इन्द्रादि देवता लोग, कानोंमें सब दिशायें, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नाकमें पवन, दोनों नेत्रोंमें सूर्य,शरीरमें अग्नि॥२६ ॥

वाणीमें चारो वेद,रसनामें वरुण, दोनों भौंहोंमें विधि और निषेध, दोनों नेत्रोंकी पलकोंमें दिन और रात्रि, माथेमें क्रोध, अधरोंमें लोभ ॥ ॥ २७ ॥ स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, चरण धरनेमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसनेमें माया, सब रोमावलीमें ओषधियें ॥ २८ ॥ सब नाडियोंमें नदियें, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा, सब इन्द्रियोंमें देवता और ऋषिगण और गातमें स्थावर,जंगम, सब प्राणी राजा बलिने देखे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सर्वात्मा वामनजीके शरीरमें इस प्रकार त्रिभुवनको देखकर सारे असुरलोग विस्मयको प्राप्त हुए परन्तु असह्य तेजवाला सुदर्शनचक्र, मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त शार्ङ्ग धनुष ॥ ३० ॥ बादलके समान शब्दायमान पाञ्चजन्य शंख, कौमोदकी

वाण्यां च च्छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ॥ अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव
लोभम् ॥ २७॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ॥ छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वो
षधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ॥ प्राणेषु गात्रे स्थिरजंगमानि सर्वाणि
भूतानि ददर्श वीरः॥ २९ ॥ सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरंग ॥ सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च
शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ॥ विद्याधरोऽसिः
शतचद्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ ३१ ॥ सुनंदमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सह लोकपालाः ॥ स्फुर
त्किरीटांगदमीनकुण्डलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलांबरैः ॥ मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः॥३२॥

गदा, विद्याधर नामक शतचन्द्रयुक्त असि, उत्तम दो तरकस कि, जिनमें अक्षय सायक थे ॥ ३१ ॥ इन सबके ईश्वर उन ईश्वरको घेरकर सुनन्दादि बडे २ पार्षदगण लोकपालोंके सहित इस विराट् रूपकी स्तुति करने लगे और श्रीभगवान् किरीट,बाजू व मकराकार कुण्डलोंसे अलंकृत और रत्नोत्तम श्रीवत्स, मेखला और वस्त्रोंसे शोभित हो भँवर जिस प्रकार गुंजार करें ऐसी वनमालासे व्याप्त हो अत्यन्त दीप्तिमान् हुए ॥ ३२ ॥

तिसके उपरान्त वामनजीने एक चरणसे राजा बलिकी समस्त भूमि, शरीरसे आकाश और दोनों भुजाओंसे सब दिशाओंको रोक लिया। श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इन वामनरूपी भगवान्ने जब दूसरा चरण धरा तब स्वर्ग उनके लिये कुछ थोडासा स्थान हुआ, परन्तु उस तीसरे चरणके लिये कुछ भी शेष न बचा इसलिये यह चरण स्वर्गके ऊपर गमन करता हुआ, महलोक, जनलोक, तपलोकके ऊपर सत्यलोकमें जा पहुँचा ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां विश्वरूपदर्शनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा-जिमि बाँधो प्रभु नृपतिको, एक चरणके काज। सो इक्किस अध्यायमें, कहौं सुमिरि यदुराज ॥ १ ॥ अनन्तर योगीवर श्रीशुकदेवजी

क्षितिं पदैन बलेर्विचक्रमे नभश्शरीरेण दिशश्च बाहुभिः पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥ उरुक्रमस्यांघ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टम० विश्वरूपदर्शन नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेदुभिहतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनंदनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥ वेदोपवेदा नियमान्विता यमास्तर्केतिहासांगपुराणसंहिताः ॥ ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रंधितकर्मकल्मषाः ॥ ववंदिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २॥ अथांघ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ॥ समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपंकेरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥

राजा परीक्षित्से कहै हैं कि, हे नरदेव! वामनजीका तीसरा चरण सत्यलोकमें पहुँचाहुआ देख पद्मयोनि ब्रह्माजी व मरीचि प्रभृति व्रतधारी बडे बडे ऋषि और सनन्दनादि योगीगण उस चरणके निकट गये. हे राजन्! उनके नखरूप निशाकरकी किरणसे ब्रह्माजीकी द्युति भी क्षीण होगई और वह उस तेजसे ढक गये ॥ १ ॥ तिसके उपरान्त वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, शिक्षादि वेदाङ्ग, पुराण संहिताके जाननेवाले आये कि-जिनकी योगरूपी पवनमें ज्ञानाग्नि उद्दीप्त और उससे कर्मके मल भस्म होगये थे, वह भी वहाँ आये ॥ २ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! यह सब भगवान्के चरणारविन्दोंका स्मरण करनेके लिये ब्रह्माजीके स्थानपर आये थे इसलिये सब ही इस चरणकमलकी वंदना करने लगे। यह

चरण अत्यन्त दुर्लभ है, समस्त कर्मोंके द्वारा भी प्राप्त नहीं होता ॥३॥ तिसके उपरान्त पद्मयोनि ब्रह्माजी जो कि,स्वयं नारायणकी नाभिके उत्पन्न हुए कमलसे जन्मे थे, उन्होंने हर्षित होकर उन वामनजीके चरणको धोया और भक्तिपूर्वक पूजा करके इनकी स्तुति करने लगे। हे नरेन्द्र ! ब्रह्माजीके कमण्डलुका जल इन वामनजीके चरण धोनेसे पवित्र स्वर्गकी नदी हुई; वह नदी अबतक भगवान्की अमलकीर्ति स्वरूप होकर आकाशसे गिरती हुई त्रिभुवनको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ तिसके पीछे ब्रह्माजीसे आदि लेकर समस्त लोकपाल अपने अपने सेवकगणोंके साथ आदरपूर्वक अपने स्वामी उन विष्णु भगवानके लिये जिन्होंनेअपने विस्तारको सिकोड वामनरूप धारण किया था, भेंट

धातुः कमंडलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेंद्र॥ स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो
विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ॥ सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये॥ ५ ॥
तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगंधानुलेपनैः॥ धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलांकुरैः ॥ ६ ॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीय
महिमांकितैः ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च शंखदुंदुभिनिस्स्वनैः॥७ ॥ जांबवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ॥ विजयं दिक्षु
सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ॥ ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्य
मर्षिताः ॥ ९ ॥ न वा अयं ब्रह्मबंधुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १० ॥

देने लगे ॥ ५ ॥ अर्थात् सुशीतल जल, सुन्दर माला, सुगंधित चंदन व उबटन, सुवासित धूप, दीप, खीलें, अक्षत, फल, अंकुर इनसे भगवान्की पूजा करने लगे ॥ ६ ॥ और स्तुति, भगवान्के पुरुषार्थकी महिमा,जयध्वनि, अधिक करके नृत्य, गीत, वाद्य और शंख दुन्दुभी का शब्द इन सबसे वह देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! फिर ऋक्षराज जाम्बवान् भेरी बजाकर सब दिशाओंमें इस विजय महोत्सवको पुकारने लगा॥ ८॥हे राजन् ! इस ओर असुरलोग तीन चरण भूमि मांगनेके मिषसे अपने प्रभु यज्ञदीक्षित राजा बलिकी समस्त पृथ्वी हरी हुई देख महाक्रोधसे कहने लगे ॥ ९ ॥ कि, अरे ! यह ब्रह्मबन्धु नहीं है, यह तो बडी भारी मायाका जाननेवाला विष्णु है

यह दुष्ट ब्राह्मणरूपसे अपनेको ठग देवताओंका कार्य करनेको आया है ॥ ॥ १० ॥ बटुकरूपी इस शत्रुने भिक्षुक होकर हम लोगोंका सर्वस्व
हरण कर लिया, हमारे स्वामी सदा सत्यव्रतवाले हैं, विशेषकरके इस समय यज्ञमें दीक्षित हुए हैं ॥ ११ ॥ सदा सत्य बोलते हैं, ब्राह्मण
हितैषी हैं, दयावान् हैं और कभी मिथ्या नहीं बोल सकते हैं॥ १२ ॥ इसको हमलोग यदि मार डालें तो ऐसा करनेसे हमें धर्म होगा और स्वामीकी
सेवा भी होजायगी, इस प्रकारसे कह राजा बलिके अनुचर लोगोंने अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये॥ १३॥ यह लोग शूल पटा हाथमें लेकर श्रीभगवान्

अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा ॥ सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदंडस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥ सत्यव्रतस्य
सततं दीक्षितस्य विशेषतः ॥ नानृतं भवितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य वधो धर्मो
भर्तुः शुश्रूषणं च नः ॥ इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचराऽसुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हंतुं शूलपट्टिशपाणयः ॥ अनि
च्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृपान् ॥ प्रहस्यानुचरा विष्णोः
प्रत्यषेधन्नुदायुधाः॥ १५ ॥ नन्दः सुनंदोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट्
॥ १६ ॥ जयंतः श्रुतदेवश्च पुष्पदंतोऽथ सात्वतः ॥ सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७ ॥ हन्यमानान्स्वका
न्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ॥ वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां
वचः ॥ मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥

वामनजीके मार डालनेको क्रोधसहित दौडे, परन्तु राजा बलिकी ऐसी इच्छा नहीं थी ॥ १४ ॥ हे महाराज ! इन दानवसेनापतिलोगोंको आता
हुआ देखकर विष्णु भगवान्के सेवक हँसे और अपने अपने शस्त्र उठाय उन लोगोंको रोकने लगे॥ १५ ॥ हे राजन् ! नन्द, सुनन्द, जय, विजय,
प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन और गरुड॥ १६ ॥ जयंत, श्रुतदेव, पुष्पदंत, सात्वत यह विष्णुके अनुचर जिनमें एक एकका बल दश दश
हजार हाथियोंके समान था, यह लोग अतिवेगसे असुरकी सेनाका नाश करने लगे॥ १७ ॥ राजा बलिने देखा कि, इन महापुरुषके सेवक हमारी सब
सेनाका नाश किये डालते हैं, इसलिये शुक्राचार्यके शापकी बात स्मरण कर अपने सब सेनापतियोंको रोका॥ १८ ॥ और यह कहा हे विप्रचित्ति !

हे राहु ! ! हे निमि ! ! ! हमारी बात सुनो और युद्ध मत करो. इस समय प्रवृत्त न हो,क्योंकि यह समय हम लोगोंके लिये अनुकूल नहीं है ॥ १९॥ जो सब प्राणियोंको सुख देनेके स्वामी हैं, हे दैत्यगण ! पौरुषसे उनका अतिक्रमण करनेका किसीमें सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥ हे भाइयो ! जो भगवान् पहले हमारा मंगल और देवता लोगोंका अमंगल करते थे, वही भगवान् इस समय हमसे प्रतिकूल हो गये हैं ॥ २१ ॥ और सुनो ! मन्त्री, सेना, बुद्धि, दुर्ग, मंत्र,औषधादि और सामादि उपायसे कैसे भी कोई कालका उल्लंघन नहीं कर सकता॥२२॥इन हरिके सेवक देवतालोगोंको तुमने बार बार रणभूमिमें पराजित किया है, परन्तु इस समय यह भाग्यके बलसे बलवान् होगये हैं, इसलिये हमको युद्धमें

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ॥ तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥ यो नो भवाय
प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ॥ स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मं
त्रौषधादिभिः ॥ सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः॥२२॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः॥दैवेनर्द्धैस्त
एवाद्य युधि जित्वा नदंति नः॥२३॥एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति॥तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय
कल्पते ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्ष
दताडिताः ॥२५॥ अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभुचिकीर्षितम्॥बबंध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥२६॥
हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम् ॥ गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ तं बद्धं वारुणैः
पाशैर्भगवानाह वामनः ॥ नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८ ॥

जीतकर गर्ज रहे हैं ॥ २३ ॥ हम लोगोंके ऊपर जब काल फिर प्रसन्न होगा, तब फिर हम इन लोगोंको जीत लेंगे, इससे जो काल हमको जितावेगा,अब तुम लोग उसी समयकी राह देखो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अपने स्वामीकी यह बात सुनकर दैत्य दानव लोग विष्णुजीके सेवकोंसे मार खानेके डरसे पातालमें घुसनेको प्रस्तुत हुए॥२५॥तिसके पीछे पक्षिराज गरुडजी श्रीभगवान्के अभिप्रायको जान यज्ञमें सोमाभिषेकके दिन वरुणकी फांसीसे राजा बलिको बांधने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! प्रभावशाली भगवान् विष्णुजीने जब इस प्रकारसे राजा बलिको बँधवाया, तब पृथ्वीकी सब दिशाओंमें महा हाहाकार मचने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार वरुणपाशमें बँधनेसे जब राजा

670

बलि श्रीभ्रष्ट हुआ, तब स्थिरबुद्धि और महाशयस्वी उस महात्मा राजा बलिसे विष्णु भगवान् यह वचन कहने लगे कि ॥ २८ ॥ हे असुरश्रेष्ठ! तैंने हमको तीन चरण पृथ्वी दान दी है सो हमारे दोही चरणोंमें सब पृथ्वी नप गई, अब तीसरे चरणकी भूमि कहां है? सो शीघ्र बता ॥ २९ ॥ हे राजन्! सूर्यनारायणकी किरणें जहाँतक पडती हैं, जहाँतक निशानाथ चंद्रमा तारागणोंके सहित अपनी चांदनी फैलाते हैं और जहाँ तक मेघ जल बर्षाते हैं, तहाँतक तुम्हारी सम्पूर्ण पृथ्वी है ॥ ३० ॥ हमने एक चरणसे समस्त भूलोकको नाप लिया, मेरे शरीरसे

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ॥ द्वाभ्यां क्रांता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिंदुः सहोडुभिः ॥ यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥ पदैकेन मया क्रांतो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ॥ स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥ प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ॥ विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥ वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ॥ प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलंभते ॥ ३३ ॥

आकाश और सब दिशायें व्याप्त होगईं। देखता नहीं कि, तेरे सामने ही दूसरे चरणसे स्वर्गलोकको नाप लिया इस प्रकारसे हमने तेरा सर्वस्व नापा ॥ ३१ ॥ परन्तु यह सब लेनेसे भी तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई इसलिये तुझको नरकमें वास करना चाहिये। अब तू अपने गुरु शुक्राचार्यजीकी आज्ञा लेकर नरकमें प्रवेश कर * ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मणसे यह कहकर कि "दूंगा" और फिर नहीं देता, उस याचकके संग ठगाई करता है, उसका मनोरथ वृथा, उसको स्वर्ग अतिदूर है और वह नीचे गिरता है ॥ ३३ ॥

---

* **शंका**—वामन भगवान्ने प्रथम वो बलिसे कहा था कि, तू नरकमें वास कर, तू एसा महापापी है फिर पीछे सुतल लोक बलिको दिया, नरकको क्यों न भेजा? पामर जीवके समान यह कौतुक किया, जैसे कोई क्रोधी मनुष्य क्रोध आने पर जो चाहे सो मुखसे बक दे।

उत्तर—वामन भगवान्ने जो लोक बलिको देनेके लिय कहा था वही लोक उसको दिया, क्योंकि निरयका अर्थ नरक नहीं है, तथा जो ले अयस जो लोहा तिस करके 'नि' कहिये रहित हो अर्थात् जिस लोकमें लोहा न हो उस लोकको भी मुनिलोग निरय कहते हैं. भगवान्ने भी निरयका अर्थ ऐसा करके बलिसे कहा कि, निरयमें वास करोगे, इसलिये निरय जो सुतल है तहाँ बलिको भेज दिया. क्योंकि सुतल लोकमें मणियोंके सिवाय दूसरी धातु कोई नहीं है और लोहेकी कौन गिनती है. निरयका अर्थ विचारके वामनजीने कहा था, नरकमें जानेको बलिको नहीं कहा ॥

तैंने देनेको कहकर फिर हमको नहीं दिया और कपट किया, इसलिये झूठका फल यही है कि, आप कुछ दिन नरकका भोग कीजिये॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिनिग्रहणं नाम एकविंशोऽध्यायः॥२१॥दोहा–सुतल लोक पठयो बलिहि, प्रभु दीनो वरदान। सो बाइस अध्यायकी, कथा सकल जग जान॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस प्रकार अंगीकार किये हुए राजा बलिको इस प्रकार भगवान्‌ने चलायमान भी किया तथापि अविचलित चित्तसे यह राजा बलि वक्ष्यमाण अविक्लव वचन बोला ॥ १ ॥ राजा बलिने कहा कि, हे उत्तमश्लोक भगवन्! मेरी कही हुई प्रतिज्ञा असत्य नहीं है, आपने ही पहले कपटका आश्रय ले वामनरूप बनाय मुझसे भिक्षा माँगी और इस समय दूसरा रूप धारण किया, अच्छा जो इस प्रकारसे भी आप मेरी (प्रतिज्ञा) बातको झूठ मानें, तो भी मैं अपना वचन

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ॥ तद्व्यलीकफलं भुंक्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० अष्टम० बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ॥ भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥१॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ॥ करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलंभनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबंधाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ॥ न वार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥ पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दंडमर्हत्तमार्पितम् ॥ यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशंति हि ॥ ४ ॥

पूर्ण करता हूँ, हमारा वचन ठगाईका वचन नहीं हो सकता, आपने दो चरण तो नाप ही लिये, तीसरे चरणका स्थान नहीं पाया सो मैं अपना मस्तक झुकाता हूँ, इसपर यह अपना चरणकमल रखिये, क्योंकि मैं सब लोकोंका राजा हूँ, तब क्या मेरा शरीर एक चरणकी बराबर भी न होगा ? ॥ २ ॥ हे महाराज! जिस प्रकार मैं अपकीर्तिसे डरता हूँ वैसा नरकसे, वरुणकी फाँसीसे अत्यन्त भयंकर विपत्तिसे नहीं डरता और धनके कष्टसे अथवा राज्यभ्रष्ट होनेसे भी मैं वैसा नहीं डरता॥३॥हे भगवन्! आपका किया हुआ यह दण्ड अपकीर्तिका कारण नहीं है, क्योंकि माननीय पुरुष जो दण्ड देते हैं, वह तो वाञ्छनीय है; क्योंकि माता अथवा पिता वा भ्राता किंवा सुहृद लोग ऐसा दण्ड नहीं दे

सकते। इस कारण आप हमारे हितैषी हैं, सो दण्ड जो दिया, इससे तो मैं बडाईके ही योग्य हुआ ॥४॥ हे भगवन् ! आप वास्तवमें शत्रुके रूपसे प्रगटे हैं, परन्तु यथार्थमें आप शत्रु नहीं हैं, किंतु हम असुरलोगोंके भी आप ही परमगुरु हैं, क्योंकि हम लोग महामदसे अंधे हो रहे थे, सो आपने हमारी ममताका नाश करनेके लिये हमारे ज्ञानके नेत्र खोल दिये ॥ ५ ॥ अहो ! जिनसे वैर बाँधकर अनेक असुरगण सिद्धिको प्राप्त होगये और जिनको केवल एकान्तयोगी लोग ही प्राप्त होते हैं॥६॥अनेक कर्मकारी उन्हीं परमगुरु करके हमको दंड मिला और वरुणकी फाँसीसे बँधे फिर इससे हमको लाज अथवा दुःख क्या हो सकता है ? बस इस बंधनसे न मैं दुःखी हूँ,न लज्जित हूँ ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! मेरे ऊपर जो आपने दण्डरूप यह अनुग्रह किया सो मैं इसका अधिकारी नहीं था, आपने अपने भक्तका पोता जानकर

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः॥यो नोऽनेकमदांधानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत्॥५॥यस्मिन्वैरानुबंधेन रूढेन विबुधेतराः ॥ बहवो लेभिरे सिद्धिं यामुहैकांतयोगिनः॥६॥ तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा॥ बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥ पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ॥ भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेन जहाति योऽततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ॥ किं जायया संसृतिहेतुभूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥ इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ॥ ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥

मुझपर यह अनुग्रह किया, हमारे पितामह प्रह्लादजी आपके परमप्रीतिपात्र हैं उनके साधुपनको सब ही जानते हैं, आप उनके पराश्रय थे। यद्यपि वह आपके शत्रु अपने पिता हिरण्यकशिपु करके अद्भुत पीडाको प्राप्त हुए थे॥ ८ ॥ तो भी यह विचार करके कि, आयुके शेषमें आत्मीय नामधारी चोररूपी जो पुत्रादि हैं, वह जो देहको छोड़कर आजायँगे, सो उस देहसे क्या फल और स्त्री संसारकी हेतुभूत हैं, इससे भी कुछ फल नहीं और घरसे भी क्या प्रयोजन है ? इससे केवल आयुका क्षय होता है, सुख कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे सत्तम ! अगाध बोधसम्पन्न हमारे पितामह, प्रह्लादजी ऐसा निश्चय करके, यद्यपि आप उनके पक्ष (पितादि निशिचरों) के क्षयकारी थे

तथापि स्वजनसे भीत होते हुए जहाँ पर कि, किसी ओरसे भयकी सम्भावना नहीं और जो ध्रुव हैं, ऐसे आपके चरणकमलकी शरणको प्राप्त हुए थे ॥१०॥ हे भगवन् ! इस समय दैव करके मैं भी अपने शत्रु आपकी शरण आया हूँ; यह दैव हमसे अति अनुकूल है, क्योंकि बलात्कार इसने हमसे उस सम्पत्तिका त्याग कराया है, जिस सम्पत्तिसे पुरुष स्तब्धमति हो मृत्युके निकट हुए इस जीवनको अनित्य नहीं समझता है॥ ११॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हेकुरुश्रेष्ठ ! असुरश्रेष्ठ राजा बलि इस प्रकार कह रहा था कि, इतनेमें ही भगवद्भक्त प्रह्लादजी पूर्ण चंद्रमाके समान आकाशसे उदय हो दैत्यराज बलिके निकट आकर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ श्रीप्रह्लादजीके दोनों नेत्र कमलदलके समान बडे बडे थे, श्यामवस्त्र धारण किये हुए थे, दोनों भुजायें अत्यन्त लम्बायमान थीं, वह अति ऊंचे थे, रंग श्याम था, अपनी कांतिसे विराजमान हो रहे थे, इस प्रकारसे

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवांतिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ॥ इदं कृतांतांतिकवर्ति जीवितं ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ तमिंद्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ॥ प्रांशुं पिशंगांबरमंजनत्विषं प्रलंबबाहुं सुभगं समैक्षत ॥ १३ ॥ तस्मै बलिर्वारुणपाशयंत्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ॥ ननाम मूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह॥ १४ ॥ स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनंदनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ॥ उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविह्वलः ॥ १५ ॥

62

पितामह महात्मा प्रह्लादजीको राजा बलिने देखा ॥ १३ ॥ परंतु वरुणजीकी फाँसीमें बँधनेके कारण पहिलेके समान भेंट देकर राजाबलि उनकी पूजा नहीं कर सका, आँखोंमें आँसू भरकर और शिर झुका केवल प्रणाम करने लगा. हे राजन् ! उस समय ऐसा जान पड़ा कि, राजा बलिको अपने कियेहुए अहंकारादि अपराधका स्मरण हुआ कि, जिससे वह लाजके मारे चुपचाप मस्तक नवाकर रह गया ॥१४॥ हे राजन्! सुनन्दादि पार्षदोंसे पूजित जगत्पति भगवान् हरिको राजा बलिके निकट बैठा हुआ देखकर प्रह्लादजीने विचारा कि, इसके ऊपर निःसंदेह भगवान्का अनुग्रह हुआ है, इसलिये यह महात्मा पुलकावलीसे पूर्ण व अश्रुजलसे पूर्ण हो मस्तक झुकाकर बारम्बार नमस्कार करते करते भगवान्के निकट

गये और निकट जाय शिर झुकाय प्रणाम कर बैठ गये ॥ १५ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि, हे भगवन् ! आपने ही बलिको इन्द्रपदवी दी और आपने ही लेली, सो आपने इसके इन्द्रपदको हरण नहीं किया, बरन् अपना पद फिर ग्रहण कर लिया, सो यह अच्छा नहीं हुआ. मैं अनुमान करता हूँ कि, इसपर आपका बडा ही अनुग्रह हुआ है, क्योंकि ऐश्वर्य और सम्पत्ति आत्माको मोह करनेवाली है; सो यह इनसे छूट गया ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! ऐश्वर्य व सम्पत्तिके मोहकी वार्ता क्या कहूँ ? इससे विद्यावान पुरुष भी मोहित हो जाते है, इसलिये सम्पत्ति रहते कोई पुरुष भली भाँति आत्मतत्त्वको नहीं देख सकता, सो आपने बलिकी सम्पत्ति लेकर इसपर बडा अनुग्रह प्रकाश किया. आप महाकरुणाकर हैं, जगदीश्वर अखिल लोकके साक्षी नारायण हैं, सो मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ. श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इसके पीछे हिरण्यगर्भ

प्रह्लाद उवाच ॥ त्वयैव दत्तं पदमैंद्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ॥ मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥ यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ॥ तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृतांजलेः ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥ १८ ॥ बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ॥ प्रांजलिः प्रणतोपेंद्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विंध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडाऽर्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ॥ कर्त्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहंति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥

ब्रह्माजी हाथ जोडकर खडे हुए उन प्रह्लादजीके सामने ही उन वामनरूपी मधुसूदनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगे ॥१७॥ १८ ॥ हे राजन् ! उसी समय राजा बलिकी स्त्री विंध्यावली भगवानसे कुछ कहनेके लिये आई, इस कारण ब्रह्माजी उसका सम्मान करनेके लिये कुछ देर चुपचाप रहे. बलिकी स्त्री विंध्यावली पतिको बँधा हुआ देखकर भयके मारे व्याकुल होगई, फिर हाथ जोड नीचेको मुख कर यह वचन कहने लगी ॥ १९ ॥ विंध्यावली बोली कि, हे ईश ! आपने अपनी क्रीडाके लिये यह त्रिजगत् बनाया है, परन्तु दुर्बुद्धि लोग इसमें अपना अपना स्वामीपन कल्पित किया करते हैं. हे भगवन् ! आप त्रिजगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके करनेवाले हैं, सो कोई दूसरा आपको इस जगत्में क्या देगा?

जो लोग कहते हैं कि "हमने आपको समर्पण किया" उनको लज्जा नहीं है, "हम स्वतंत्र हैं" उनमें केवल यही वाद आपने अवरोपित किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विंध्यावलीके इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि, इस हमारे स्वामीने आपसे जो यह कहा कि, हमने आपको तीनों लोक अर्पण कर दिये हैं और तीसरे चरणके पूरे करनेको अपनी देहका देना कहा, सो इन्होंने देहादिमें अपना स्वामीपन जानकर जो कुछ कहा, तिससे निर्लज्जता ही प्रकाशित होती है क्योंकि, आप सर्वव्यापी हैं, इसलिये मन्दबुद्धिवाले इस राजाको आप कृपा करके छोड दीजिये ॥ २१ ॥ यद्यपि भगवान् प्रह्लाद और रानी विंध्यावलीके दीन वचनोंसे प्रसन्न होगये, तथापि ब्रह्माजीने लोभ दिखानेके लिये बहुत सारी विनती और प्रार्थना करके कहा कि, हे भूतभावन ! हे भूतेश ! देवदेव ! हे जगन्मय ! आपने राजा बलिका सर्वस्व हरण कर लिया, अब इसको दण्ड न देकर छोड़ दीजिये ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह असुरवर श्रेष्ठबुद्धिवाला है और इसने अपने कर्मसे प्राप्त किये सब लोकोंको दान कर दिया है,

ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ॥ मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥ कृत्स्ना तेऽनेन
दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ॥ निवेदितं च सर्वस्वमात्माऽविक्लवया धिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः सलिलं
प्रदाय दूर्वांकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ॥ अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्
॥२३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ॥ यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते
॥ २४ ॥ यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ॥ नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५ ॥

जिसने अकातर होकर प्रथम सर्वस्व और पीछे अपना देहतक अर्पण कर दिया वह फिर दण्ड पानेके योग्य नहीं हो सकता । हे भगवन् ! लोकोंमें शठताको छोड़ जो आपके चरणामृतको पान करता है और दूबके अंकुरोंके दान करनेसे भी उत्तम गतिको पाता है, फिर यह राजा बलि कि, जिसने क्लेशरहित होकर आपको त्रिलोकीका दान करदिया फिर भी क्या यह दण्ड पानेके योग्य हो सकता है॥२३॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हम जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं, प्रथम उसके धनका नाश कर देते हैं, क्योंकि, धनसे ममता उत्पन्न होती है, तिससे पुरुष नम्रतारहित हो सब लोकोंको और मुझको भी कुछ नहीं समझता, इस कारण मदके दूर करनेके लिये सब धनका हरण करना ही अनुग्रह है ॥ २४ ॥ और जीवात्मा सदा परवश होकर अपने कर्मों करके कृमिकीटादि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ फिर पौरुषी गतिको

प्राप्त होता है अर्थात् पुरुष होकर जन्मता है ॥ २५ ॥ जो उस पुरुषजन्ममें जन्म, कर्म, वयस, सत्य, विद्या, ऐश्वर्य और धनादिसे उसको स्तंभ (गर्व) न हुआ तो मेरा बड़ा ही अनुग्रह है॥२६॥हमने ध्रुवादिकोंको जो सम्पत्ति दान की है, उसमें एक कारण है, जो हमारे भक्त हैं वह अनब्रतादिके लिये मूल भूत और सर्वप्रकार भलाईके प्रतिकूल जन्मादिके होनेपर भी कभी मोहित नहीं होते, इसलिये हम भक्तकी इच्छासे सम्पदा देते हैं, अभक्त सम्पदासे मोहित होजाता है, इसलिये उसपर अनुग्रह हम सब सम्पदा हरण करके करते हैं॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! यह दानव (बलि) दैत्यलोगोंका अगुआ और कीर्तिका बढ़ानेवाला है, इसने दुर्जय मायाको जीत लिया है, इसलिये यह खेदको प्राप्त होकर भी मोहित नहीं

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ॥ यद्यस्य न भवेत्स्तंभस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तंभनिमित्तानां जन्मादीनां समंततः ॥ सर्वश्रेयःप्रतीपानां हंत मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ॥ अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति॥२८॥ क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः॥ ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः॥ २९ ॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ॥ छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक्॥३०॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ॥ सावर्णेरंतरस्यायं भवितेंद्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥ तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिमितम् ॥ यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तंद्रा पराभवः ॥ नोपसर्गा निवसतां संभवंति ममेक्षया ॥ ३२ ॥

होता है ॥ २८ ॥ यह निर्धन होगया, स्थानसे भ्रष्ट होगया, शत्रुसे बाँधा गया, झिझकारा गया और इसके जातिवालोंने इसको छोड़ दिया व इसने अनेक प्रकारकी यातना भी पाई; अधिक करके इसके गुरु शुक्राचार्यजीने भी इसको बहुत धमकाया, शाप भी दिया, तो भी इसने अप संकल्पको नहीं छोडा ॥ २९ ॥ मैंने छल करके जो धर्म उसको बताया इसको भी यह नहीं छोडता, इससे यह पुरुष अतिशय भक्तिमान् और सत्यवादी है ॥३०॥ ऐसी निष्ठा रखनेके लिये मैंने भी इसको ऐसा स्थान दिया है कि, जो देवतालोगोंको भी नहीं मिल सकता, अब हमने इस बलिको आश्रय दिया, यह बलि सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होगा ॥ ३१ ॥ जबतक वह सावर्णि मन्वन्तर न आवे, तबतक यह विश्वकर्मा

जीके बनाये सुतल लोकमें जाकर वास करे। यह स्थान साधारण नहीं है, जो लोग यहाँपर वास करते हैं, हमारी दृष्टिके पड़नेसे उनको आधि, व्याधि और थकावटकी अवाई कभी नहीं होती है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! ब्रह्माजीको इस प्रकारसे उत्तर देकर भगवान् फिर करुणापरायण होकर राजा बलिसे बोले कि, हे इन्द्रसेन ! हे महाराज! तुम्हारा मंगल हो! तुम अपने सब जातिवालोंके साथ सुतललोकको चले जाओ कि, जिसे स्वर्गके रहनेवाले भी चाहते हैं ॥ ३३ ॥ इस स्थानमें लोकपालगण भी तुम्हारा पराभव नहीं कर सकेंगे, फिर दूसरेंकी तो बात ही क्या है ? जो दैत्य लोग तुम्हारी आज्ञाको न मानेंगे, उनका संहार हमारे चक्रसे हो जायगा ॥ ३४ ॥ सब सामग्रीके साथ और सब सेवकोंके साथ हम तुम्हारी रक्षा करेंगे. हे वीर ! क्या हमारे वियोगके मारे तुम वहाँ नहीं जानेकी इच्छा करते ? हम सत्य ही सत्य कहते हैं कि हमको तुम सदा उस स्थानमें देखोगे ॥ ३५ ॥ वहां दैत्यदानवोंके संग रहनेसे हुआ जो तुम्हारा असुरभाव वह मेरे प्रभावको देखकर उसी समय नष्ट हो जायगा * ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां बलिमोक्षणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा–सुतललोकको बलि गये, इन्द्र मिल्यो सुरलोक । सो तेइस अध्यायमें, पढ़कर होहु विशोक ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम ! पुरातनपुरुष भगवान्‌ने जब इस प्रकारसे कहा, तब समस्त साधुसम्मत महानुभाव राजा बलिके दोनों नेत्र आसुँओंकी कलाओंसे आकुल होगये. वह भक्तिसे उत्कंठित हो हाथ जोड

इंद्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ॥ सुतलं स्वार्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥ ३३ ॥ न त्वामभिभविष्यंति लोकेशाः किमुतापरे ॥ त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४ ॥ रक्षिष्ये सर्वतोहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ॥ सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥ तत्र दानवदैत्यानां संगात्ते भाव आसुरः ॥ दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुंठो विनंक्ष्यति ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवंतं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥ बद्धांजलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥

---

* शंका–ऐसा कौन लोक है कि, जिसमें देवता भी बडे क्लेशसे जा सकते हैं? और उसी लोकको एक क्षणमें राजा बलि चला गया, जो कभी स्वर्ग लोकको बलि गया तो स्वर्गलोक देवताओंका है और जो सुतल लोकको गया तो सुतल लोक नागोंका है ?

गद्गद स्वरसे श्रीभगवान्‌से कहने लगा ॥ १ ॥ राजा बलि बोला कि, अहो ! आपके प्रति नमस्कार करनेकी कैसी आश्चर्यमय महिमा है। इसके लिये उद्यम करते ही भक्तजनोंके कार्य सिद्ध होजाते हैं, आपको नमस्कार करनेके उद्यमने इस अधम असुरको भी उस अनुग्रहका दान किया कि, जो लोकपालोंको भी नहीं मिल सकता. हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं, मैं अति अवस्तु हूँ, सो मैं भला क्या आपको त्रिलोकीका दान दूंगा ? बरन् मैंने तो आपको भलीभाँति प्रणाम भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेको उद्यम किया है, सो इतने ही उद्यमका ऐसा माहात्म्य है कि, करोडों तप और दान करनेसे जो अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता, वह मुझको मिल गया। हे महाराज ! आपके प्रणाम करनेका माहात्म्य अतिआश्चर्यमय है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित् ! असुरश्रेष्ठ राजा बलिने इस प्रकार कहकर भगवान् वामनजीको और महेश्वरके साथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया, तिसके पीछे प्रीतिमें भर प्रफुल्लितचित्त हो असुरसमूहके साथ सुतललोकको चला गया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भगवान् हरिने इन्द्रको फिर त्रिलोकी समर्पण कर अदितिकी कामनाको साध स्वयं इन्द्र व सब जगत् का पालन किया था ॥ ४ ॥ इधर अपने वंशधर पोते बलिको छूटते हुए और भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करते हुए देख प्रह्लादजीने भक्तिसे गद्गद हो यह वचन कहे ॥ ५ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि, हे भगवन् ! जिन लोगोंकी वन्दना सम्पूर्ण विश्व करता है, वह समस्त लोग आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं, आप "सर्वप्रकारसे रक्षा करेंगे" यह कहकर जो हमारे दुर्गपाल

बलिरुवाच ॥ अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थ विधौ समाहितः ॥ यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ॥ विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥ एवमिंद्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ॥ पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥ लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ॥ निशम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नेमं विरिंचो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ॥ यन्नो सुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवंद्यैरपि वंदितांघ्रिः ॥ ६ ॥

उत्तर—वामन भगवान्ने जिस समय राजा बलिसे दान लिया उसी समय बलि जीता था तो भी संसारसे मुक्त कर दिया था, चाहे तो संसारमें रहे चाहे योगियोंके लोकको जाय, ऐसे लोकको देवता लोग बडे दुःखसे भी नहीं जा सके, इसलिये शुकदेवजीने कहा कि जिस लोकको बलि गया वह लोक देवताओंको भी प्राप्त नहीं होता ॥

यत्पादपद्ममकरंदनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाऽश्नुवते विभूतीः ॥ कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टि
पदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ॥ सर्वात्मनस्सम
दृशो विषमः स्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुत
लालयम् ॥ मोदमानस्स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ॥ मद्दर्शनम
हाह्लादध्वस्तकर्मनिबंधनः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्लादो बलिना सह ॥ बाढमित्यमलप्रज्ञो
मूर्ध्न्याधाय कृतांजलिः ॥ ११ ॥ परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ॥ प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥
अथाहोशनसं राजन्हरिर्नारायणोंऽतिके आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥

हुए आपका यह प्रसाद अतिदुर्लभ है.ब्रह्मा,महेश्वर और लक्ष्मी कोई भी इस प्रसादको प्राप्त नहीं हुए; फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ?॥६॥ हे आश्रयप्रद ! आपके पदारविन्दमकरन्दका सेवन करके ब्रह्मादि देववृन्द विभूतियोंका भोग करते हैं, सो हम खलयोनि किस प्रकारसे आपकी कृपादृष्टिकी पदवीको प्राप्त हों ? ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! आपकी चेष्टा अतिशय आश्चर्यकी है, यह तो कुछ बात ही नहीं है, आप अचिन्त्य योगमायासे लीलापूर्वक त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं और सर्वात्मा व सर्वज्ञ होनेके कारण आप सबको समभावसे देखते हैं, आपका ऐसा विषम स्वभाव है परन्तु भक्तके ऊपर स्नेहवश हो आपका ऐसा कल्पतरुस्वभाव हुआ है॥८॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो तुम भी सुतललोकमें चले जाओ और अपने पोते बलिके साथ आनन्द करते हुए अपने जातिवालोंको सुख दो ॥ ९ ॥ हम वहांपर गदा हाथमें लिये खडे रहेंगे और वहां तुम नित्य हमको देखोगे, हमारे दर्शन करनेसे आनन्द पाओगे और तुम्हारा ज्ञान भी नष्ट नहीं होगा ॥ ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! निर्मलमतिवाला प्रह्लाद अपने पोते राजा बलिके साथ "यही करता हूँ" कह भगवान्की आज्ञाको स्वीकार करता हुआ । फिर सब असुर सेनाका पति हाथ जोडकर महात्मा आदिपुरुषकी परिक्रमा दे और प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले उसी समय सुतललोकको चले गये कि, जो बड़ा भारी पाताल था ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके पीछे भगवान् वामनजी अति घोरे ब्रह्मवादियोंकी सभामें

ऋत्विक् लोगोंके बीच आसीन महर्षि शुक्राचार्यजीसे बोले ॥ १३ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! आपके शिष्य राजा बलिके यज्ञमें जो कुछ त्रुटि रह गई है, उसको आप स्वयं पूर्ण कीजिये. यदि तुम कहो कि, यजमानके विना यज्ञ किस प्रकार पूरा हो सकता है ? सो बात नहीं, क्योंकि, ब्राह्मण करके देखेजाते ही सब कर्मोंकी विषमता समताको प्राप्त होती है, सो आपके करनेसे इस यज्ञके पूर्ण हो जानेमें क्या सन्देह है ? ॥ १४॥ श्रीभगवान् वामनजीके ऐसे वचन सुनकर शुक्राचार्यजी बोले कि, हे भगवन् ! आप कर्मके प्रवर्तक, यज्ञफलदाता और यज्ञपुरुष हैं, आप जिस करके सर्व प्रकार पूजित हुए फिर उसके कर्मोंकी विषमता कहां रही ? ॥ १५॥ मन्त्रसे स्वरादिभ्रंश--द्वारा तन्त्रसे क्रमकी विपरीतता द्वारा और

ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ॥ यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ शुक्र उवाच ॥ कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ॥ यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥ मंत्रतस्तंत्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ॥ सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥ १६॥ तथाऽपि वदतो भूमन्करिष्याम्यनुशासनम् ॥ एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अभिनंद्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ॥ यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥ १८ ॥ एवं बलेर्महीं राजन्भिक्षित्वा वामनो हरिः ॥ ददौ भ्रात्रे महेंद्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ ॥ १९ ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ॥ दक्षभृग्वंगिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥ २० ॥ कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ॥ लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥

देश, काल, पात्र, वस्तुसे दक्षिणादि द्वारा जो जो न्यूनता होती हैं, आपका नाम लेते ही उन सब छिद्रोंको दूर करता है ॥ १६ ॥ तथापि आप जो कुछ आज्ञा करते हैं, उसको मैं अवश्य पालन करूंगा, क्योंकि आपकी आज्ञा पालन करनेसे ही पुरुषोंका कल्याण होता है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शुक्राचार्यजीने इस प्रकारसे भगवान्की आज्ञा पर हर्ष प्रगट कर सब ब्राह्मणों सहित राजा बलिके छिद्रको अच्छिद्र किया अर्थात् यज्ञ पूर्ण कर दिया॥ १८ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीभगवान् वासुदेवने वामन अवतार ले इस प्रकार राजा बलिके सम्मुख भूमिकी भिक्षा मांग दानव लोगोंने जिसको हरण कर लिया था वह स्वर्ग फिर अपने भ्राता इन्द्रको दे दिया॥ १९॥ तिसके उपरान्त कश्यप अदितिजीको प्रसन्न करनेके

लिये और सर्व प्राणियोंके हितार्थ देव,ऋषि,पितृगण,मनुवर्ग, दक्ष, भृगु, अंगिरादि मुनिगण और कुमार व भोलानाथ शिवके साथ प्रजापति ब्रह्माजीने उन वामनजीको लोक व लोकपालोंका अधीश्वर किया * ॥ २० ॥ २१ ॥ यद्यपि इन्द्र सब लोकोंके पति हैं, तो भी समस्त वेद, सर्वदेव, धर्म,यश और सब प्रकारसे मंगल व्रतादिके पालन करनेमें निपुण वह वामनजी सर्व प्राणियोंका ऐश्वर्य बढ़ानेको इन्द्रके सहायक उपेंद्र बनाये गये,इसलिये उस समय सब प्राणियोंको बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तिसके पीछे इन्द्र विमानपर चढ़ाय आगे कर उन वामनजीको स्वर्गमें लेगये . यह देखकर लोकपालोंके और ब्रह्माजीके मनमें परमानन्द हुआ ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार इन्द्र त्रिलोकीको प्राप्त हो उपेंद्रजीके बाहुबलसे उसको पालन करने लगा और परमश्रीसम्पन्न व निर्भय होकर सुखसम्भोगमें निमग्न हुआ ॥२५॥ इस ओर ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार, आदि मुनि, पितृलोग और सर्व प्राणी सिद्ध व वैमानिक सबही भगवान्के इस अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते करते अपने अपने स्थानोंको चले गये और सब स्थानोंमें कश्यपजीकी स्त्री अदितिजीकी बडी प्रतिष्ठा हुई ॥ २६ ॥ २७ ॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ मंगलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥ उपेन्द्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये ॥ तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥ ततस्त्विंद्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ॥ लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४ ॥ प्राप्य त्रिभुवनं चेंद्र उपेंद्रभुजपालितः ॥ श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५॥ ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ॥ पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये २६ ॥ सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायंतः परमाद्भुतम् ॥ धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥ २७ ॥

---

* **शंका**–जगत्को उत्पन्न करनेवाले, जगत्के स्वामी, जगत्का पालन करनेवाले जो भगवान् हैं उन भगवान्को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माजीने राज्य दिया, अधीश इंद्रको ब्रह्माने किया, यह बडी शंका है ?

उत्तर–भगवान्की आज्ञा मानकर ब्रह्माने बहुत प्रकारसे विचार किया और इन्द्रको, त्रास देनेके लिये. भगवान्को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने अधीश्वर किया क्योंकि लोकमें भी अपने बराबर पुत्रको भाईको देखकर लोग कुकर्म नहीं करते इस प्रकारसे भगवान् इन्द्रके छोटे भाई हैं अतः वामन भगवानके सम्मुख इन्द्र खोटा कर्म नहीं करेगा, इसलिये त्रिलोकीके नाथको इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने स्वामी किया ॥

हे कुरुनन्दन परीक्षित ! श्रीभगवान्के यह पवित्र चरित्र श्रोता लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, सो हमने आपके सम्मुख सब वर्णन किये ॥ ॥ २८ ॥ जिस पुरुषने बलसे अनेक भाँतिके विक्रम करनेवाले भगवान् विष्णुकी महिमाका पार देख लिया है, वह पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या भी कर सकता है-अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या नहीं हो सकती, वैसे ही भगवान्के चरित्रोंको गाते गाते कोई पार नहीं पा सकता; इसलिये मन्त्र और मन्त्रदर्शी पुरुष लोगोंने स्पष्ट कहा है कि, उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंकी जातिमें कोई पुरुष पूर्णस्वरूप पुरुषकी महिमाको प्राप्त हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं हुआ और न आगेको होगा॥२९॥हे राजन् ! अद्भुतकर्मकारी देवदेव भगवान् वासुदेवके वमनावतारविषयक चरित्र जो मनुष्य गावेंगे वा सुनेंगे अथवा सुनावेंगे व लिखेंगे उनको परमश्रेष्ठ गति प्राप्त होजायगी,इसमें कुछ

सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनंदन ॥उरुक्रमस्य चरितं श्रोतॄणामघमोचनम् ॥ २८ ॥ पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः ॥ किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मंत्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥ य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारानुचरितं शृण्वन्याति परां गतिम् ॥ ३० ॥ क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥ यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडंबनम् ॥ १ ॥

सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि,हे परीक्षित् ! देवता अथवा पितरोंमें अथवा लौकिक कर्म करनेके समय जिस जिस कार्यमें इस चरित्रका गान होगा, वह समस्त कार्य यथावत् पूर्ण होंगे, इस बातको पंडितगण भलेप्रकार जानते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां वामनावतारानुचरित्रवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा-कथा मत्स्य अवतारकी, चौबिसवें अध्याय । सत्यव्रतरक्षा करी, सो कहिहौं समुझाय ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे भगवन् ! आपने जो अनुग्रह करके वामन अवतारकी कथा मुझे सुनाई सो मुझे अत्यन्त प्रिय लगी, अब कृपापूर्वक मुझे वह कथा सुनाइये कि, जिसमें अद्भुत कर्मकारी

भगवान्के प्रथमावतारकी माया जिसमें उन्होंने मायाके द्वारा मत्स्यरूप धारण किया था, मैं श्रवण करनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ क्योंकि, मत्स्यरूप लोकमें निंदित हैं और तमोगुणी स्वभाववाला होनेके कारण सहनेके अयोग्य है, सो ईश्वरने कर्मग्रसितके समान होकर इस रूपको किस कारण धारण किया था? ॥ २ ॥ यह सब वृत्तांत आप मुझसे यथार्थ २ कहिये । हे योगिन्! भगवान् उत्तमश्लोकके चरित्र सबको ही सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकारसे प्रार्थना की, तब व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी वह सब लीला कहने लगे जो कि, विष्णुभगवान्ने मत्स्यरूप धारण करके की थी॥४॥श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् !

यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ॥ तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ॥ २ ॥ एतन्नो भगवन् सर्वं यथा
वद्दक्तुमर्हसि ॥ उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावह ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरा
यणिः ॥ उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ गोविप्रसुरसाधूनां छंदसामपि चेश्वरः ॥
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः ॥ नोच्चावचत्वं भजते निर्गुण
त्वाद्धियो गुणैः ॥६॥ आसीदतीतकल्पांते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥७॥
कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ॥ मुखतो निस्सृतान्वेदान्हयग्रीवोऽतिकेऽहरत् ॥८ ॥ ज्ञात्वा तद्दानवेंद्रस्य
हयग्रीवस्य चेष्टितम् ॥ दधार शफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु, धर्म और अर्थकी रक्षा करनेको समय समयपर विष्णु भगवान् अवतार लिया करते हैं ॥ ५ ॥ बुद्धिके गुण करके ऊंचे नीचे प्राणियोंमें पवनके समान आदिपुरुष भगवान् विचरण करते हैं, परंतु निर्गुण होनेके कारण ऊंच नीचको नहीं भजते और मत्स्यावतारका जो प्रयोजन है वह भी सुनो ॥ ६ ॥ अतीत कल्पके अन्तमें जब ब्रह्माजीकी निद्राके लिये प्रलय हुआ; तब भूरादि सब लोक समुद्रके जलमें डूब गये ॥ ७ ॥ तब समयके वश होकर ब्रह्माजी सो रहे थे, उस समय उनके वदनमेंसे सब वेद निकले कि, जिनको दानवेन्द्र हयग्रीवने हरण कर लिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जब दानवश्रेष्ठ हयग्रीवका यह कर्म भगवान् वासुदेवने जाना; तब वह इस

दैत्यको दमन करनेके लिये शफरीरूप(मत्स्यरूप)धारण करते हुए॥९॥उसी समय कोई सत्यव्रत नामक नारायणपरायण राजर्षि केवल जलका आहार कर तप करते थे॥१०॥वही राजर्षि इस महाकल्पमें विवस्वान्(सूर्य) के पुत्र हो श्राद्धदेवके नामसे विख्यात और भगवान् हरिकरनृकेमन्वन्तरके पदपर अभिषिक्त हुए॥११॥एक दिन यह राजर्षि सत्यव्रत कृतमाला नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे कि,इतनेमें ही उनकी अञ्जलीके जलमें एक मछली दिखाई दी॥१२॥हे भारत! यह देखकर दयावान् द्रविडराज सत्यव्रत अंजलिके जलसहित इस मछलीको नदीके जलमें डालनेको प्रस्तुत हुए॥१३॥राजर्षि सत्यव्रतको महाकरुणाकर देखकर वह मछली करुणाके वचन कहने लगी कि,हे महाराज! आप दीनवत्सल हैं और

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ॥ नारायणपरोऽतप्यत्तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥ योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ॥ श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणाऽर्पितः ॥ ११ ॥ एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥ तस्यांजल्युदके काचिच्छफर्येकाऽभ्यपद्यत ॥ १२ ॥ सत्यव्रतोंऽजलिगतां सह तोयेन भारत ॥ उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥ तमाह साऽतिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ॥ यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ॥ कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन्सरिज्जले ॥ १४ ॥ तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ॥ अजानन्रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥ १५ ॥ तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ॥ कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥ सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमंडलौ ॥ अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥

मैं दीन हीन क्षीण मीन हूं, नदीके जलमें जातिका घात करनेवाले अनेक जन्तु हैं;सो उनके हाथमें हमको आप किस प्रकार छोडते हैं? हे महाराज! हम भीत होकर शरण आई हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये ॥१४॥ राजर्षि सत्यव्रत यद्यपि यह नहीं जानते थे कि,हमारे ही ऊपर अनुग्रह करनेको स्वयं भगवान्ने यह मत्स्यरूप धारण किया है,तो भी प्रीतिपूर्वक उस मछलीकी रक्षा करनेको मन स्थिर कर लिया॥१५॥दीन वचन सुनते ही राजर्षिके मनमें दया उत्पन्न होगई और वह जलपूर्ण कलशमें रखकर मछलीको अपने आश्रममें ले आये॥१६॥हे राजा परीक्षित्!कलशमें रह एकही

रातके बीच वह मछली इतनी बढी कि, वह फिर उसमें न समा सकी इसलिये अपने सुभीतेके लिये उन राजर्षिसे कहने लगी ॥१७॥ कि, हे राजन् ! इस गगरीमें मेरा शरीर नहीं समाता, इसमें कष्टके मारे मैं वास नहीं कर सकती सो आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिये कि,जहाँ मैं सुखसे रह सकूं ॥१८॥ यह सुनकर राजा सत्यव्रतने उस मछलीको जलसे निकाल एक बडे भारी कमण्डलुमें डाल दिया । हे राजन्! उस कमण्डलुमें गिरते ही एक क्षणके बीचमें वह मछली तीन हाथ बढ़ गई ॥१९॥ तब वह मछली कहने लगी कि, इस कमण्डलुके बीच भी मैं सुखसे नहीं रह सकती, अनुग्रह करके मुझको आप किसी बडे भारी स्थानमें रखवा दें, क्योंकि मैं आपकी शरण आई हूँ इसलिये सब प्रकार आपको मेरी रक्षा करना उचित है ॥ २० ॥ तब राजर्षिने इस मछलीको कमण्डलुसे उठाकर एक सरोवरमें डाल दिया परन्तु डालते ही वह मछली अपने शरीरसे उस सरोवरको छाय बडी मछलीके समान बढ़ गई और फिर राजर्षि सत्यव्रतसे निवेदन करने लगी कि, हे महाराज ! मैं जलवासी हूँ सो मुझको नहीं जान पडता कि, सरोवरका जल मेरे मंगलार्थ होगा ॥२१॥ महाह्रदको पानेके प्रथम विना जलके जिससे मेरा नाश न हो जाय ऐसा उपाय करके तुम मुझको किसी ह्रदमें स्थापित करो, क्योंकि ह्रद स्वभावसे ही गंभीर नीरवाले होते हैं,उनका जल शीघ्र नहीं घटता ॥२२॥ हे राजन्! जब उस मत्स्यने इस प्रकारसे कहा तब राजर्षि सत्यव्रतने उसको लेकर जिसका जल कभी क्षीण न हो ऐसे अगाध जलाशयमें डाल दिया, परन्तु एक दिनमें ही वह मछली इतनी बढी कि, वह जलाशय भर गया, राजा सत्यव्रतने जब देखा कि इस मछलीका शरीर जलाशयमें भी नहीं आता, तो उसको समुद्रमें डालनेके लिये चला ॥ २३ ॥

नाहं कमंडलावस्मिन्कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ॥ कल्पयौकस्सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥ स एनां तत आदाय
न्यधादौदंचनोदके ॥ तत्र क्षिप्ता मुहूर्त्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥ न म एतदलं राजन्सुखं वस्तुमुदंचनम् ॥ पृथु देहि
पदं मह्यं यत्त्वाहं शरणं गता ॥ २० ॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन्सरोवरे ॥ तदावृत्यात्मना तोयं महामीनोऽ
न्ववर्धत ॥ २१ ॥ नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ॥ निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः
सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ॥ जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥

जब उस मीनने दीन भावसे राजर्षिके प्रति कहा कि, हे राजन्! यहांपर अति बलवान् मकरादि जन्तु हैं, सो वह हमको भक्षण कर लेंगे इस लिये आप हमको इस स्थानमें न छोडिये ॥२४॥ तब उस मत्स्यके ऐसे वचन सुनकर राजर्षि सत्यव्रत अतिशय मोहित होगये और मत्स्यसे बोले कि "आप कौन हैं?" और मत्स्यके रूपसे हमको क्यों मोहित करते हैं ॥ २५ ॥ हमने कभी इस प्रकारका जलचर देखा न सुना. आपने एक दिनमें अपना शरीर बढाकर शत योजनके विस्तारवाले समुद्रको ढक दिया ॥ २६ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि, आप नारायण अथवा हरि हैं, प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जलचररूप धारण किया है ॥२७॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। आप सृष्टि, स्थिति और प्रलयके अधीश्वर हैं। हे प्रभो! हम आपके भक्त हैं और शरणागत हैं। आप हमारे आत्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ आपके समस्त लीला अवतार प्राणियोंकी विभूतिके अर्थ हैं तो सही, पर इस रूपके धारण करनेका क्या कारण है सो मैं जानना चाहता हूँ ॥२९॥ हे अरविन्दलोचन! देहाभिमानी पुरुषोंकी उपासना जिस प्रकार व्यर्थ होती है, वैसे ही सर्व सुहृद् और: प्रिय आत्मा आपके चरणोंकी उपासना व्यर्थ नहीं हो सकती, क्योंकि हम लोग केवल आपके भक्त हैं तो भी आपने ऐसी अनिर्वचनीय दया प्रकाश करके हमको यह अद्भुत मूर्ति दर्शन कराया ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब राजा सत्यव्रतने इस प्रकारसे कहा तब जगत्पालक मत्स्यरूपी भगवान्

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ॥ अदंत्यतिबला वीरा मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ॥ तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥ नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ॥ यो भवान्योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥२६॥ नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥२७॥ नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ॥ भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥२८॥ सर्वे लीलाऽवतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥ न तेऽरविंदाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ॥ यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ॥ विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकांतजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

प्रलयके समुद्रमें विहार करनेकी इच्छासे अपने मनकी बात उस राजासे कहने लगे, क्योंकि भक्तजन उनको अत्यन्त प्यारे होते हैं ॥ ३१ ॥ मत्स्यरूपी भगवान् बोले कि, हे अरिन्दम ! आजसे सातवें दिन प्रलय होगा और उस प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूब जायगी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जब प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबने लगेगी, तब उस समय हमारी भेजी हुई एक बडी नाव तुम्हारे निकट आवेगी ॥ ३३ ॥ तुम उसको देखते ही सब प्रकारकी ओषधियें और छोटे बडे समस्त बीज ग्रहण करके सप्तऋषियोंको लेकर सब प्राणियोंके साथ ॥ ३४ ॥ उस नावपर अतिशीघ्रताके साथ चढ़ जाना । उस नावमें चढ़कर विना खेदके तुम सब जगह घूम सकोगे । हे राजन् ! जब सब जलही जल होगा, तब उजेला नहीं रहेगा, परन्तु तुम ऋषिलोगोंके तेजसे सब कुछ देखनेको समर्थ होगे ॥३५॥ फिर प्रलयपवनके लगनेसे जब वह नाव कम्पायमान होने लगेगी; तब हम भी तुम्हारे समीप आजायँगे, तब तुम बृहत् सर्परूप रस्सीसे हमारें सींगमें नावको बाँध देना ॥ ३६ ॥ जबतक ब्रह्माजीकी रात रहेगी तबतक हम उस नावको ऋषिलोगोंके सहित प्रलयके समुद्रमें खींचते फिरेंगे ॥३७॥ हे राजन् ! परब्रह्मपदवाच्य जो हमारी महिमा है वह उसी समय तुम्हारे प्रश्न करनेपर कहेंगे । तुम हमारी प्रसन्नतासें उस महिमाको अपनें हृदयमें जान सकोगे॥३८॥श्रीभगवान् इस प्रकार सत्यव्रतको आज्ञा दे उसी स्थलमें अन्तर्धान होगये. इसके उपरान्त यह जर्षि सावधान हो भगवान्के आज्ञा दिये हुए कालकी राह देखने लगे॥३९॥

श्रीभगवानुवाच ॥ सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिंदम ॥ निमंक्ष्यत्यप्ययांभोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ ३२ ॥
त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्तांभसि वै तदा ॥ उपस्थास्यति नौः काचिद् विशाला त्वां मयेरिता ॥३३॥ त्वं तावदो
षधीः सर्वाबीजान्युच्चावचानि च ॥ सप्तर्षिभिः परिवृतस्सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥ आरुह्य महतीं नावं विचरिष्य
स्यविक्लवः ॥ एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥३५॥ दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ॥ उपस्थितस्य
मे शृंगे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ॥ विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी
निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ॥ वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३८ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरंतरधीयत ॥ सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥

अर्थात् सत्यव्रत राजा मत्स्यरूपी भगवानके चरित्रका स्मरण करता हुआ पूर्वकी ओरको हैं अग्रभाग जिनके ऐसे कुशोंको बिछाय पूर्व उत्तरकी ओरको मुख कर बैठ गया ॥ ४० ॥ कुछ कालके पीछे दिखाई दिया कि, समुद्रका नीर तीरको तोड सर्व प्रकारसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढने लगा और भयंकर मेघ अनिवारित जलधारा वर्षाने लगे ॥४१॥ राजा सत्यव्रतने भगवान्‌की आज्ञाका विचार करते करते देखा कि, एक नाव निकट आ पहुँची। मत्स्यमूर्ति भगवानकी आज्ञाका स्मरण कर वह सत्यव्रत सब प्रकारकी ओषधि व लतादि लेके सप्तऋषियोंके

आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ॥ निषसाद हरेः पादौ चिंतयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्र
उद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम् ॥ वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत॥४१॥ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागतम्॥
तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ॥ स वै नः संकटादस्मा
दविता शं विधास्यति ॥४३॥ सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ॥ एकशृंगधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः
॥४४॥निबद्ध्य नावं तच्छृंगे यथोक्तो हरिणा पुरा ॥ वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥ राजोवाच॥अनाद्य
विद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ॥ यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥४६॥

साथ उस नावपर आरूढ होगया ॥ ४२ ॥ जब यह सत्यव्रत राजर्षि नौकापर चढ़े तब मुनिलोग बोले कि, हे राजन् ! भगवान् केशवका ध्यान करो, वहीं हम लोगोंको इस संकटसे बचाय मंगल करेंगे*॥४३॥ हे राजन् ! जब राजा सत्यव्रतने ध्यान किया तब एक शृंग धारण किये मत्स्य भगवान् साक्षात् समुद्रमें प्रगट हुए। इनका यह शृंग सुवर्णका था और देहकी लम्बाई एक लाख योजनकी थी॥४४॥राजर्षि सत्यव्रत भगवान्‌की आज्ञानुसार अहिडोरसे इस मत्स्यके शृंगमें नौका बाँध प्रसन्नचित हो भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगे॥४५॥राजर्षि सत्यव्रतन

---

* शंका–मुनियोंने भगवान्‌का ध्यान करनेके लिये राजासे कहा था कि महाराज ! भगवानका ध्यान करो परन्तु मुनियोंने भगवान्‌का ध्यान क्यों नहीं किया ?

उत्तर–मुनिलोग शरीरको सुख होनेके लिये भगवान्‌का ध्यान नहीं करते, मोक्षके लिये भगवान्‌का ध्यान करते हैं, उस समय शरीरकी रक्षाका काम था इसलिये मुनियोंने भगवान्‌का ध्यान नहीं किया ।

कहा कि, हे भगवन् ! जिन पुरुषोंका अंतःकरण अनादि अविद्यासे ढका हुआ है, इस कारण जो अविद्यारूप संसारके परिश्रमसे आतुर हैं वह लोग भी इस संसारमें जिसकेअनुग्रहके लिये आश्रित हो जिसको प्राप्त होते हैं आप वही पुरुष हैं, हम लोगोंको मुक्तिके देनेवाले आप परम गुरु हैं ॥४६॥ हे भगवन् ! यह जन अत्यन्त अबोध है, अपने कर्मोंसे ही इसका बन्धन हुआ है,यह सुखकी इच्छासे असुरोंकेसे कर्म करनेकी चेष्टा करता फिरता है, परन्तु जिनकी सेवा करनेसे वह सुखकी इच्छा छूट जाती है वह हमारे हृदयकी गांठको खोल दें,वही भगवान् हमारे परम गुरु हैं ॥४७॥ अहो ! चाँदी जिस प्रकार अग्निकी सेवा करके अपनी मलिनताको छोड अपने पहले रूपको प्राप्त होजाती है यों ही जिन आपकी सेवासे मनुष्य अज्ञानको छोड अपने स्वरूपको प्राप्त होजाता है वही अव्यय ईश हमारे गुरु हों, क्योंकि वही गुरुके भी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबंधनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ॥ यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रंथिं स भिंद्याद्धृदयं
स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ॥ भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो
भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥ न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ॥ कर्तुं समेताः
प्रभवंति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥ अचक्षुरंधस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ॥
त्वमर्कदृक्सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नस्स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत
दुरत्ययं तमः ॥ त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमंजसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥

अहो ! देवता, गुरु व सब श्रेष्ठ जन एकत्रहोकर भी जिसके प्रसादके दश हजार भागके एक किनकेको भी प्राप्त करनेके लिये समर्थ नहीं हो सकते, हे भगवन् ! आप वही ईश्वर हैं, हम आपकी शरण हैं॥४९॥ हे प्रभो ! अंधा जिस प्रकार अन्धेको आगे करके चले, वैसे ही अविद्वान् पुरुष अबोधको अपना गुरु बनाता है, हम वैसे नहीं हैं । आपके जाननेकी इच्छा करते हैं, इसलिये आपको ही गुरु बनाते हैं, आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाशके समान स्वयंसिद्ध है और आप ही सब इंद्रियोंके प्रकाशक हैं ॥५० ॥ हे भगवन् ! प्राकृत गुरु केवल अनर्थके हेतु हैं, वह पुरुषको कामादिककी मतिका उपदेश करते हैं तिससे मनुष्य तरनेके अयोग्य संसारको प्राप्त होजाता है, सो आप इस प्रकारके नहीं हैं,

आप यथार्थमें अव्यय और अव्यर्थ ज्ञानका उपदेश दिया करेते हैं,तिससे सर्वसाधारण अर्थात् सब कोई आपके पदको प्राप्त हो जातेहैं ॥५१॥ हे देव ! यद्यपि आप सब पुरुषोंके सुहृद, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान और अष्टसिद्धिस्वरूप हैं, तो भी अनेक दूसरी बुद्धि और कामके वश होकर अपने हृदयमें स्थित हुए आपको नहीं जान सकते ॥५२॥ परन्तु हम ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी शरणमें आये हैं, आप देवताओंमें श्रेष्ठ, वरेण्य और ईश्वर हैं । हे भगवन् ! आप परमार्थप्रकाशक वचनोंसे हमारे हृदयमें उत्पन्न हुई अहंकारादिकी गांठ खोलिये और आज्ञास्वरूप प्रकाश करनेकी आज्ञा हो ॥५३॥ शुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब राजर्षि सत्यव्रतने इस प्रकारसे स्तुति की तब मत्स्यरूपी भगवान् आदिपुरुषने प्रलयके महासमुद्रमें विहार करते करते उस राजर्षिको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया था ॥५४॥ और सांख्ययोग व क्रियाविशिष्ट दिव्य पुराणसंहिता अर्थात् मत्स्यपुराण और अतिगुप्त करने योग्य आत्मतत्त्वको भी बडी भारी व्याख्याके सहित कहा था ॥५५॥ ऋषिगणोंके सहित सत्यव्रत राजर्षि नावमें बैठकर ब्रह्म और श्रीभगवानके कहे हुए उस समस्त आत्मतत्त्वको विशेष करके सनातन धर्मकी कथाको श्रवण करने लगा और उसे कथाके श्रवण करनेमें कुछ संदेह भी नहीं हुआ ॥ ५६ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, हे भारत ! पहले प्रलयके अंतमें जब ब्रह्माजी सोकर उठे, तो उन मत्स्यरूपी भगवानने हयग्रीव असुरका संहार कर फिर सब वेद ब्रह्माजीको दे दिये ॥५७॥ और यह सत्यव्रत राजा भगवानके प्रसादसे ज्ञानविज्ञानसम्पन्न हो इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुआ

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ॥ तथापि लोको न भवंतमंधधीर्जानाति
संतं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ॥ छिंध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रंथीन्
हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच॥इत्युक्तवंतं नृपतिं भगवानादिपूरुषः॥ मत्स्यरूपी महांभोधौ विहरं
स्तत्त्वमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥
अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ॥ नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५६ ॥ अतीतप्रलयापाय
उत्थिताय स वेधसे ॥ हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥ ५७ ॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥
विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥५८॥

है ॥५८॥ हे राजन् परीक्षित् ! सत्यव्रत राजर्षिके और मायामत्स्यरूपी भगवान् विष्णुके इस अवतारका बड़ा पवित्र आख्यान श्रवण करनेसे सब पाप छूट जाते हैं ॥ ५९ ॥ श्रीभगवान् वासुदेवके इस अवतारको जो मनुष्य दिनप्रतिदिन कहते सुनते हैं उनके सब कार्य सिद्ध होजाते हैं और अन्तमें परमगतिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६० ॥ अहो ! प्रलयसमुद्रके जलमें शयन करते हुए और शक्तिरहित विधाताके वदनसे

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ॥ संवादं महदाख्यान श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ५९ ॥ अवतारो हरे र्योऽयं कीर्तयेदन्वह नरः ॥ संकल्पास्तस्य सिध्यंति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमुपनीत प्रत्युपादत्त हत्वा ॥ दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥६१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्ध मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥

॥ समाप्तोऽयमष्टमस्कन्धः ॥ ८ ॥

निकले हुए सब वेदोंको जिस दानवने हरण कर लिया और जिन्होंने मत्स्यरूपी होकर उस हयग्रीव राक्षसको मार सब वेद सत्यव्रत और सप्तर्षियोंसे कहे थे, उन अखिलकारण मायामत्स्यरूपी भगवानको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां मत्स्यावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

१ छप्पय–जय जय नटवर वेष तरणितनयातट लम्पट । जय जय अट पट लटक चटक भूषित वंशीवट । जय जय जाटित सुघटक घटित मुकुट धर ॥ जय जय उत्कट शकट विपाटक वेणु लकुट कर ॥ जयति चटुल तर पीतपट धर अघटित-घटनाचरण ॥ जय जयति निपट पटु करण प्रभु मम इच्छा पूरण करण ॥ १ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते अष्टमः स्कन्धः समाप्तः ॥

मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी।
पुस्तकालय,
६०२

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कन्धप्रारम्भः ॥

MUMUKSHU BHAWAN
अस्सी, काशी

नवमस्कंधः

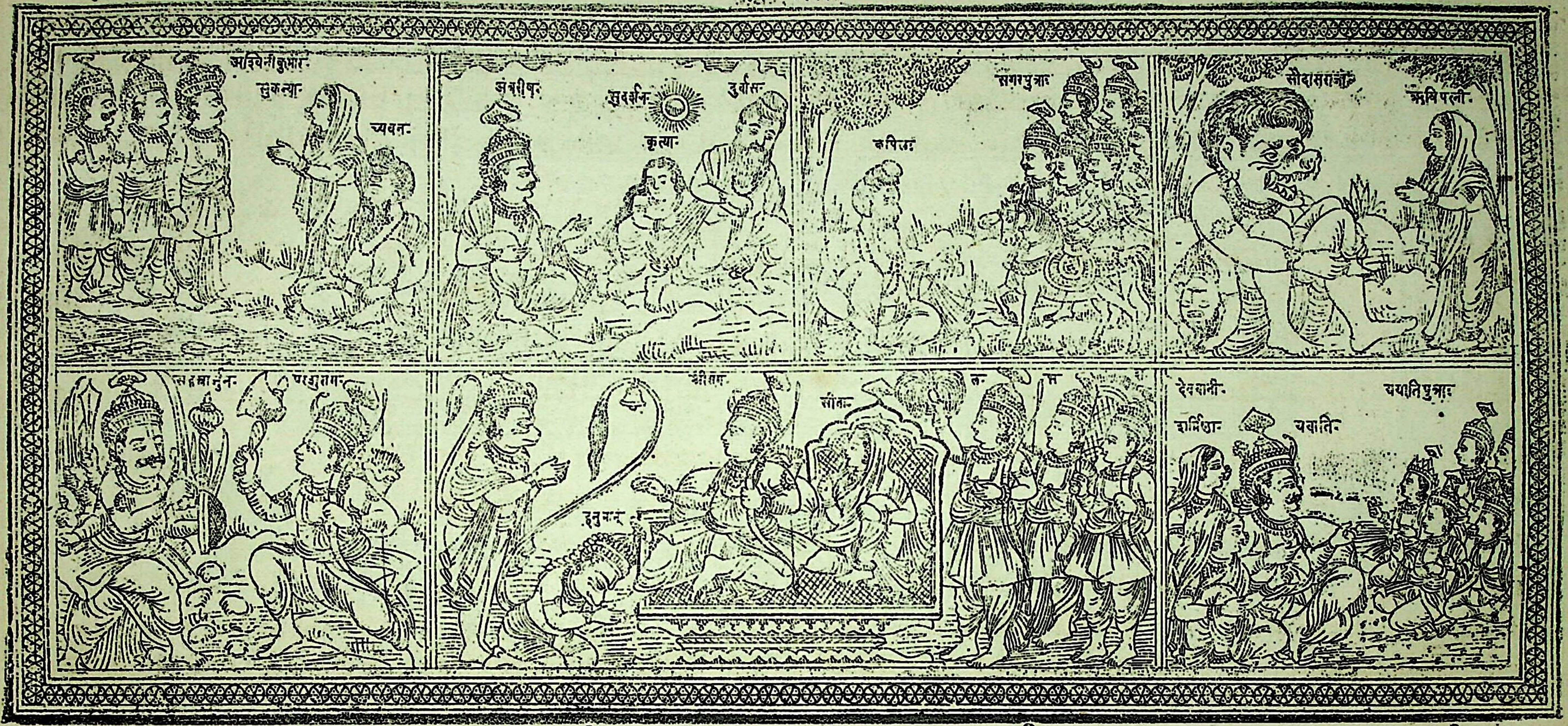
अश्विनीकुमाराः
सुकन्या
च्यवनः
अंबरीषः
सुदर्शनः
दुर्वासाः
कृत्या
सगरपुत्राः
कपिलः
सौदासराजा
ऋषिपत्नी
सहस्रार्जुनः
परशुरामः
श्रीरामः
हनुमान्
सीता
लः
भ
देवयानी
ययातिपुत्राः
शर्मिष्ठा
ययातिः

सोरठा–जय वृन्दावन चन्द,जय मुकुन्द गोविन्द हरि॥जय प्रभु आनँदकन्द, जगवन्दन दुष्टनदलन ॥ १ ॥ जय त्रिभुवनआधार,जय जय जीवन जगतपति ॥ मम उर करहु विहार, कर मुरली शिर मुकुट धर ॥२॥ हे वृन्दावनचन्द, यह वर दीजे दया कर ॥ श्रीव्रजको आनन्द,नित्यप्रति निरखत रहौं ॥ ३ ॥ शीश मुकुट उर माल, सँग राधा बाधाहरण ॥ इहि छबिसौं नँदलाल,बसहु सदा मेरे हिये॥४॥श्रीयमुनाके तीर,गाय चरावत सखन सँग ॥ ता छबिसों यदुवीर,वास करहु मेरे हृदय ॥५॥ अहो मदन गोपाल, रासरसिक राधारमण॥ हरहु जगतजंजाल,करहु दया जन जान कर ॥६॥ कर त्रिशूल शशिभाल,शीश गंग मन्मथदहन ॥ गलमें गरल कराल,आठ पहर झलकत रहत॥७॥दोहा–स्कन्ध नवममें वंश द्वै, सूर्य सोम विस्तारि ॥ तेरहग्यारहसों भने, क्रम अध्याय विचारि ॥ १॥तहां प्रथम अध्यायमें, वैवस्वतसुत वंश॥मध्य भन्यो सुद्युम्नके,स्त्रीत्व जासु विधुवंश॥२॥

ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥राजोवाच॥ मन्वंतराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ॥ ज्ञानं योऽतीतकल्पांते लेभे पुरुषसेवया ॥ २॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥ त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथग्ब्रह्मन्वंश्यानुचरितानि च ॥ कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवंत्यद्यतनाश्च ये ॥ तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥

693

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि,हे भगवन् ! सब मन्वन्तरोंका वृत्तान्त और मन्वन्तरोंमें अनन्तवीर्यवान् भगवान् हरिने जो वीर्य प्रकाश किया; वह सम्पूर्ण आपके अनुग्रहसे मैंने सुना ॥१॥ हे योगिन् ! अतीतकल्पके अन्तमें द्रविड़ाधिपति सत्यव्रत नामक राजर्षिने भगवान्की सेवा करके जो ज्ञान प्राप्त किया ॥ २ ॥ और वह वैवस्वतके पुत्र मनु हुए थे इसको भी मैंने सुना और उन वैवस्वत मनुके पुत्र जो इक्ष्वाकु आदि राजा हुए, उनका वृत्तान्त भी आप कह ही चुके हैं ॥ ३ ॥ हे महाभाग ! इन इक्ष्वाकु आदिका पृथक् २ वंश और वंशोंके चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ, सो कृपापूर्वक आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! इस वंशमें जो पुरुष होगये हैं और जो आगेको होंगे,

जो अब वर्तमान हैं, पुण्य कीर्तिवाले उन सब मनुष्योंका विक्रम आप यथार्थ यथार्थ मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंकी सभामें राजा परीक्षित्‌ने जब इस प्रकारसे पूछा; तब परमधर्मज्ञ श्रीशुकदेवजी कथाका आरंभ करने लगे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! मनुके वंशका वृत्तांत हम कहते हैं, तुम श्रवण करो परन्तु इसका विस्तारसे वृत्तान्त तो हम सहस्रों वर्षतक नहीं कह सकते ॥ ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जो परम पुरुष पर अपर भूतोंके आत्मा हैं, आगे केवल वही थे, कल्पके अन्तमें उनके अतिरिक्त विश्वमें और कुछ वस्तु नहीं थी ॥ ८ ॥ उन परमपुरुषकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ । हे महाराज ! उस कमलसे चतुर्मुख ब्रह्माजीका जन्म हुआ ॥ ९ ॥

सूत उवाच ॥ एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम्॥ पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित्॥६॥श्रीशुक उवाच॥
श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ॥ न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि॥७॥ परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः
परः॥ स एवासीदिदं विश्वं कल्पांतेऽन्यन्न किंचन॥८॥तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोशो हिरण्मयः॥ तस्मिञ्जज्ञे महाराज
स्वयंभूश्चतुराननः॥९॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ॥ दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः॥१०॥
ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत॥श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान्॥११॥इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्ट
करूषकान्॥नरिष्यंतं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः॥१२॥अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ॥ मित्रावरुणयो
रिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः॥१३॥तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत॥दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता॥१४॥

इन ब्रह्माजीके मनसे मरीचि जन्मे, उनके पुत्र कश्यपजी हुए, इन कश्यपजीकी भार्या दक्षकी बेटी अदितिके गर्भ और कश्यपजीसे सूर्यका जन्म हुआ ॥ १० ॥ हे भारत ! इन सूर्यनारायणसे संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव मनु उत्पन्न हुए । इन श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धा हुई कि, जिसके गर्भसे इन महात्माके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ उनके नाम यह हैं यथा– इक्ष्वाकु,नृग,शर्य्याति, दिष्ट, धृष्ट,,करूष,नरिष्यन्त,पृषध्र;नभग और कवि ॥ ॥१२॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंकी उत्पत्तिके पहले मनुजी निःसन्तान थे इसलिये महर्षि वसिष्ठजीने उनको मित्रावरुणका यज्ञ कराया ॥ ॥ १२ ॥ हे राजन्! मनुकी भार्या श्रद्धा उस यज्ञमें केवल दूध ही पीकर नियमसहित होताके निकट गई और उसने प्रणाम करके यह प्रार्थना करी

कि, आप ऐसा होम करें कि, जिससे मेरे कन्या उत्पन्न हो ॥ १४ ॥ श्रद्धाकी प्रार्थनासे "यज्ञ करो" इस प्रकार अध्वर्य्युसे प्रेरित हो, होताने हविके ग्रहण हो जानेपर मनमें इस प्रकारका ध्यान और मुखसे "वषट्" शब्द उच्चारण करके मनुभार्याकी प्रार्थनाको पूर्ण किया ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जब होताने इस प्रकारसे आचरण किया तब मनुके इलानाम एक कन्या उत्पन्न हुई पुत्रकी चाहना होनेके कारण पुत्रीके होनेसे मनुको संतोष नहीं हुआ इसलिये असंतुष्ट हो वशिष्ठजीसे बोले कि ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! आप ब्रह्मवादी हैं । आप लोगोंका यह विपरीत कर्म कैसे हुआ ? हा कैसा कष्ट है ? इस प्रकारसे मंत्रका उलटा होना उचित नहीं है ॥ १७ ॥ आपलोग ब्रह्मज्ञ और योगी हैं, तपकी अग्निसे आपके

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः ॥ हविषि व्यचरत्तेनव षट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५ ॥ होतुस्तद्व्यभिचारेण
कन्येला नाम साऽभवत् ॥ तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥ भगवन्किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्म
वादिनाम् ॥ विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥ यूयं मंत्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ कुतः
संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ॥ होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे
रविनंदनम् ॥ १९ ॥ एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ॥ तथाऽपि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥
एवं व्यवसितो राजन्भगवान्सुमहायशाः ॥ अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥ तस्मै कामवरं तुष्टो
भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन्मृगयां वने ॥
वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैंधवम् ॥ २३ ॥

अनन्त पाप भस्म होगये हैं, देवता लोगोंमें अनृत (झूठ) के समान आप सब लोगोंमें इस प्रकार संकल्पकी विषमता कैसे हुई ? ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मनुके यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठजी होताके व्यभिचारको समझ गये और मनुसे बोले कि ॥ १९ ॥ हे वत्स ! यद्यपि तुम्हारे होताने अन्यथाचरण किया है, तो भी हम तुमको सुन्दर पुत्र ही देंगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! वसिष्ठजी इस प्रकारसे कह मनुकी कन्या इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे भगवान् आदिपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ वसिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होगये और संतुष्ट हो वसिष्ठजीको मनमाना वरदान दिया, उस वरके प्रभावसे मनुकी कन्या इला सुद्युम्ननामक श्रेष्ठ पुत्र होगई ॥ २२ ॥ हे महाराज ! यह सुद्युम्न एक दिन

सिंधु देशके उत्पन्न हुए घोडे पर चढकर और कुछेक मंत्रियोंको साथ ले आखेटके लिये वनमें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ उसके हाथमें रुचिर धनुष और विचित्र बाण था और शरीरमें दृढ बख्तर पहरे हुए था, इसलिये वह मृगोंके पीछे निर्भय दौडता हुआ उत्तर दिशामें पहुँचा ॥२४॥ यहाँ सुमेरुपर्वतकी तलैटीमें सुकुमार वन है, जहां भगवान् भूतनाथ भूतेश्वर सदा पार्वतीजीके साथ रहकर विहार किया करते हैं, मनुका पुत्र सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ उसी वनमें पहुँचा । उसने वहाँ पहुँचते ही अपने आपको स्त्री देखा और अपने घोडेको घोडी रूप पाया ॥ २५ ॥ २६ ॥ और उसके सब सेवक अकस्मात् अपने अपने पुरुषपनमें विकार हुआ देख परस्पर एक दूसरेको निहार विस्मित हुए ॥ २७ ॥ यह सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! यह स्थान ऐसे गुणवाला कैसे हुआ ? और किस पुरुषने इस स्थानको ऐसा कर दिया ? इस बातको सुनकर हमको बड़ा कौतूहल हुआ है, सो आप कृपा करके इस प्रश्नकी व्याख्या कीजिये ॥ २८॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे नृपश्रेष्ठ ! एक समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले ऋषिलोग भगवान् गिरीश (महादेव) जीका दर्शन करनेकी वासनासे सब दिशाओंका अंधकार दूर करते और प्रकाशको रहित करते केवल अपना प्रभाव प्रकाशित करते हुए इस वनमें गये थे ॥ २९॥ उस समय भगवती अम्बिका देवी विवसना अर्थात् वस्त्ररहित थीं, इसलिये मुनि लोगोंको देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और उन्होंने घबराय पतिकी गोदीसे उतर झटपट कटिवसन पहर लिये ॥ ३० ॥ हर गौरीका विहार देखकर उन सब ऋषिगणोंका मन भी स्त्रीप्रसङ्गसे कलुषित हुआ और वह उसी समय

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ॥ दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥२४॥ स कुमारो वनं मेरोरध
स्तात्प्रविवेश ह ॥ यत्रास्ते भगवान्रुद्रो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥ तस्मिन्प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ॥ अप
श्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥ तथा तदनुगास्सर्वे आत्मलिंगविपर्ययम् ॥ दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन्वीक्ष
माणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन्कृतः ॥ प्रश्नमेनंसमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि
नः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ॥ दिशो वितिमिराभासाः कुर्वंतः समुपागमन्
॥ २९ ॥ तान्विलोक्यांबिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ॥ भर्तुरंकात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥ ३० ॥
ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः ॥ निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥

वहाँसे लौटकर नरनारायणके आश्रमको चलेगये ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे भगवान् भूतनाथ अपनी प्राणप्यारीका प्रिय कार्य करनेको समझाते बुझाते हुए बोले कि, आजसे जो कोई इस स्थानमें आवेगा, वह उसी समय स्त्री हो जायगा * हे राजन्! तबसे सब पुरुषोंने इस वनको छोड़ दिया, कोई उस दिशाको भी तो नहीं जाता था ॥ ३२ ॥ राजकुमार सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ इस वनमें प्रवेश करनेके पीछे वन वनमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥ सखी सहेली नारियोंके साथ उस सुद्युम्नको अपने आश्रमके समीप भ्रमण करता हुआ भगवान् बुधजीने

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ॥ स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ तत ऊर्ध्वं वनं तद् वै पुरुषा वर्जयंति हि ॥ सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥३३॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरंतीं प्रमदोत्तमाम् ॥ स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः ॥ ३४ ॥ सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५ ॥ एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६ ॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वाकृपया भृशपीडितः ॥ सुद्युम्नस्या शयन्पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥ ३७ ॥

देखा ॥ ३४ ॥ देखते ही बुधके मनमें कामदेवका संचार हुआ और वह सुद्युम्न जो कि, मनोहर स्त्रीके रूपमें थे, चन्द्रमाके पुत्र बुधको देख उनको पति बनानेकी अभिलाषा की ॥३५॥ इसलिये बुधने उसका पाणिग्रहण किया और उसके गर्भसे बुधको पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ हे राजन्! ऐसा सुना गया है कि, मनुके पुत्र सुद्युम्नने इस प्रकार स्त्रीपनको प्राप्त हो अपने कुलाचार्य महर्षि वसिष्ठजी

---

* **शंका**–महादेवजी तो बडे शीलवान् और दयानिधि थे, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा कि हमारे स्थानके सामने जो कोई पुरुषमात्र आवेगा वह उसी समय स्त्री हो जावेगा ? चौरासी लाख योनियोंमें किसी योनिका पुरुष क्यों न हो और तीन लोकमें जो चराचर प्राणी हैं वह सब अपने अपने कामकी सिद्धिके लिये शिवके समीप कैलासको जाते हैं और वह लोग स्त्री नहीं होते, क्या कारण ?

उत्तर–जब शिवजी शाप दे चुके तो पीछे अपने मनमें विचारा कि, अब क्या उपाय करना चाहिये उसी दिनसे कैलासके चारों ओर अपने गण बैठाले; जो कोई प्राणी कैलासको आता है तो शिवगण एक कोस आगे उसको रोक लेते हैं, और शिवजीसे बूझते हैं कि हे महाराज! अमुक पुरुष आपके दर्शनके लिये आये हैं, तब महादेव आज्ञा देते हैं कि, आने दो, तब वह मनुष्यको कैलासकी सीमाके भीतर ले जाते हैं, इसलिये वह लोग स्त्री नहीं होते. कोसभरपर खडा होनेका कारण यही है, कि जिस सीमाके भीतर आनेमें स्त्री होते हैं, उस सीमाके दूर वह एक कोश भरपर खडा करते हैं ॥

का स्मरण किया था ॥ ३७ ॥ स्मरण करते ही महर्षि वसिष्ठजी इनके समीप आये और इनकी यह दशा देख दयासिंधु दयाके मारे अतिदुःखित हुए और फिर उनको पुरुष करनेकी इच्छासे श्रीमहादेवजीके निकट जाय उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वसिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् उनके प्यारे कार्यको और अपने वचनको सत्य करनेके लिये यह बोले कि तुम्हारे गोत्रमें उत्पन्न हुआ सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा। इस व्यवस्थासे यह सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे कुलाचार्य वसिष्ठजीकी कृपासे यद्यपि सुद्युम्न पुरुषत्व पाय व्यवस्थापूर्वक पृथ्वीका पालन करता था परन्तु महीनेके महीने स्त्री हो जानेसे छिपकर सभामें न आता, इसलिये प्रजा उससे असंतुष्ट थीं ॥ ४० ॥ इस राजा सुद्युम्नके तीन पुत्र थे, उत्कल, गय और विमल। यह तीनों जन धर्मपरायण थे

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ॥ स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥ ३८ ॥ मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ॥ इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ॥ पालयामास जगतीं नाभ्यनंदन्स्म तं प्रजाः ॥४०॥ तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः ॥ दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥ ततः परिगते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥ पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे इलोपाख्याने सुद्युम्नस्य स्त्रीपुंस्त्वयोः प्राप्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥ पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥

और दक्षिण देशका राज्य करते थे ॥ ४१ ॥ प्रतिष्ठानपुरीका (जो अब प्रयागमें गंगाजीके पार झूंसी नामसे प्रसिद्ध है) पति सुद्युम्न वृद्धावस्थाको प्राप्त हुई देख अपने पुत्र पुरूरवाके हाथमें राज्यका भार सौंप वनको चला गया ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–मनु ह्व सुत वैराग्यसे, रहे असुत वन जाय। करुषादिक पँचसुतनकी, कथा द्वितिय अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे नृपोत्तम ! जब सुद्युम्नकी इस प्रकारसे अवस्था हुई तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामना करके शतवर्षतक यमुनामें तप किया था ॥ १ ॥

तिसके पीछे सन्तानके अर्थ भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया, तिस यज्ञके करनेसे उन्होंने अपने योग्य दश पुत्र पाये। इन दश पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बडे थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! मनुके पृषध्रनामक जो पुत्र हुआ था, उसको मनुजीने गोपालक बनाया इसलिये वह पुत्र वीरासन व्रत धारण करके रात्रिके समय सावधान होकर गायोंकी रक्षा करता था ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिके समय जल वर्ष रहा था कि उसी समय एक सिंह आकर गोठमें घुस गया। उसके घुसते ही गोठमें जितनी गायें सो रही थीं सब डकराकर इधर उधर दौड़ने लगीं ॥ ४ ॥ गोठमें घुसा हुआ सिंह अतिशय बलवान् था, वह एक गायको जब पकडकर भागने लगा तब वह एक गाय अतिआर्त होकर पुकारी,

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ॥ इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश ॥ २ ॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो
गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥ एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि
वर्षति ॥ शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ॥ तस्यास्तत्क्रं
दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५ ॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ॥ अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशं
कया ॥ ६ ॥ व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाऽग्राहतस्ततः ॥ निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥ ७ ॥
मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ॥ अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥ तं शशाप कुलाचार्यः
कृतागसमकामतः ॥ न क्षत्रबंधुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥ ९ ॥

उस गायका डकराना सुनकर पृषध्र उस शार्दूलके पीछे दौडा ॥ ५ ॥ एक तो रात ऐसी अँधियारी थी कि, अपना देह भी नहीं दिखाई देता था, दूसरे घनघोर घटासे और भी अंधकार हो रहा था; कि जिससे कुछ नहीं दीखता था इसलिये पृषध्रने खड्ग ग्रहण करके समीप व्याघ्र समझ अज्ञानतासे एक गायका शिर काट डाला ॥ ६ ॥ इस खड्गके चलानेसे सिंहका भी कान कट गया वह अत्यन्त भीत हो मार्गमें रुधिर गिराता हुआ भाग गया ॥ ७ ॥ पृषध्रने मनमें समझा था कि सिंह मर गया, परन्तु जब प्रभात हुआ तो देखा कि, कपिला मारी गई, तब बहुत ही दुःखित हुआ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! यद्यपि राजकुमार पृषध्रने यह अपराध अनजानमें किया था, तो भी कुलपुरोहितने गायके

शोकसे व्याकुल हो उसको यह शाप दिया कि, रे पापिष्ठ! तू क्षत्रियोंका बंधु भी नहीं हो सकेगा बरन इसी जन्ममें क्रमसे शूद्र होगा * ॥९॥ जब इस प्रकारसे आचार्यने शाप दिया, तब पृषध्रने हाथ जोडकर उसको अंगीकार किया फिर ब्रह्मचर्य धारण कर मुनियोंके प्यारे व्रतको ग्रहण किया ॥ १० ॥ तिसके पीछे सर्वात्मा निर्मल परमपुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करके एकान्तताको प्राप्त, सर्व प्राणियोंका सुहृद् और सबको

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः ॥ अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥ १० ॥ वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ॥ एकांतित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥ विमुक्तसंगः शांतात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥ १२॥ आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः ॥ विचचार महीमेतां जडांधबधिराकृतिः ॥ १३ ॥

समान अर्थात् बराबर देखनेवाला हुआ। उसने संग छोड़ दिया, उसकी आत्मा शान्त होगई, इंद्रियें उसके वशमें होगयीं, संग्रहको त्याग अपने आपसे जो कुछ मिल जाता था, उसीसे अपनी जीविका करता था ॥११॥१२॥ और परमात्मामें आत्माको लगाकर ज्ञानसे तृप्त हो जड़, अंध

---

* **शंका**–गौका वध करनेवाला राजा पृषध्र जो था, उसको वसिष्ठजीने यह शाप दिया कि, तू गायका मारनेवाला इस दुष्ट कर्मके करनेसे शूद्रयोनिको प्राप्त होगा ऐसा शाप उसको क्यों दिया? क्योंकि गायका वध करना शूद्रका कर्म नहीं है, चाण्डालका कर्म है।

उत्तर–सतयुगमें त्रिदण्डीनाम मुनि किसीसमय बाज पक्षीका रूप धरकर संसारमें भ्रमण करते थे, एक दिन यमपुरीको अपनी इच्छासे कौतुक देखनेके लिये चले गये, यमपुरी मुनिका चरित्र जानकर कौतूहल करनेके लिये गौका रूप धरकर पक्षीरूप जो मुनि थे उनको अपने शृंगोंसे मारनेके लिये दौडी तब मुनिने शाप दिया कि, बारह १२ वर्ष तू गायरूप रहेगी इसलिये वह यमपुरकी स्त्री गाय बनकर अयोध्याके राजाकी गायोंमें रहा करती थी. उसी गोरूप स्त्रीको पृषध्रने दैवयोगसे मार डाला, तब मुनिका शाप छूटकर पृषध्रका मोक्ष होनेके लिये आशीर्वाद देकर अपने पतिके पास गई. वशिष्ठजीने ध्यान करके सब चरित्र जान लिया और दो काम विचारकर गायोंका माहात्म्य बढानेके लिये, कि आगेको कोई ऐसा काम न करे और पृषध्रका मोक्ष होनेके लिये शाप दिया, कि जा तू शूद्र होजा, कोई बूझे कि शूद्र होनेका शाप क्यों दिया? तो शूद्र होनेका कारण यह है कि, शूद्र अभिमानरहित होते हैं और श्रीगंगाजीका भाइ भी शूद्र है क्योंकि यह सबको विदित है कि, भगवान्के चरणसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं और गंगाजी भी भगवान्के चरणोंसे निकली हैं, इसलिये दो गुण करके शूद्रकी मुक्ति शीघ्र होती है इसलिये वशिष्ठजीने पृषध्रको शूद्र होनेको कहा था॥

अथवा बहरेके समान पृथ्वीपर घूमने लगा ॥१३॥ हे राजन् ! इस प्रकार आचार व्यवहार युक्त हो पृषध्रने वनमें प्रवेश करके अपने शरीरको
भस्म कर दिया और परब्रह्मके पदको प्राप्त हुआ॥१४॥ हे महाराज! मनुका छोटा पुत्र कवि विषयका लालच छोड़ बन्धु बांधवों सहित राज्यको
छोड़नेके पीछे परमपुरुषको हृदयमें धारण करकें किशोर अवस्थाके समयमें ही वनकोचला गया इसलिये उसका भी वंश आगेको न चला ॥
॥१५॥ परन्तु मनुके करूष नामक जो पुत्र था, उससे कारूष आख्यासे विख्यात क्षत्रिय जातिकी उत्पत्ति हुई; वह जाति ब्रह्मनिष्ठ, धर्मरक्षक
और उत्तर मार्गके देशकी राजा हुई ॥ १६ ॥ इस प्रकार धृष्टनामक मनुके पुत्रसे धाष्टर्य नामसे प्रसिद्ध क्षत्रियोंकी जाति उत्पन्न हुई, वह

एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ॥ तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४ ॥ कविः कनीयान् विषयेषु
निस्स्पृहो विसृज्य राज्यं सह बंधुभिर्वनम् ॥ निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥ १५ ॥
करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः ॥ उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टाद्धाष्टर्यमभूत्क्षत्रं
ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥ नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानौघव
त्पिता ॥ कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यंतादृक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ तस्य
मीढ्वांस्ततः कूर्च इंद्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९ ॥ वीतिहोत्रस्त्विंद्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत् ॥ उरुश्रवाः सुतस्तस्य
देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २० ॥

इस पृथ्वीमण्डलपर ब्राह्मणपनको प्राप्त हुई है । हे राजन् ! नृगनामक जो मनुका पुत्र था, उसका पुत्र सुमति, उसका पुत्र भूतज्योति और
उसका संतान वसु हुआ ॥ १७ ॥ वसुका पुत्र प्रतीक, उसका पुत्र ओघवान हुआ, इस ओघवानके औघवाननामक एक पुत्र और
औघवती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई । उस औघवती कन्याके साथ राजा सुदर्शनने विवाह किया ॥१८॥ हे राजन् ! नरिष्यन्त नामक जो
मनुका पुत्र था उसका पुत्र चित्रसेन, उस चित्रसेनका पुत्र ऋक्ष, उसका पुत्र मीढ्वान् और मीढ्वान्से पूर्ण उत्पन्न हुआ, उस पूर्णसे इंद्रसेन नामक
पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ इंद्रसेनका पुत्र वीतिहोत्र और वीतिहोत्रसे सत्यश्रवाने जन्म ग्रहण किया । इस सत्यश्रवाका पुत्र उरुश्रवा और

उरुश्रवासे देवदत्तकी उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥ देवदत्तके पुत्र अग्निवेश्य हुए । यह स्वयं भगवान् अग्नि उत्पन्न हुए थे; यह अग्निवेश्य ही कानीन और जातूकर्ण्य नामसे विख्यात महान् ऋषि हुए थे और उनसे ही अग्निवेश्यायन नाम प्रसिद्ध ब्रह्मकुलकी उत्पत्ति हुई है ॥ २१ ॥ हे नृप ! नरिष्यंतके वंशका वर्णन हुआ. अब दिष्टवंशका वर्णन करता हूँ सो आप मन लगाय एकाग्रचित्त हो सुनिये ॥२२॥ दिष्टका पुत्र नाभाग, पीछे जिस नाभागकी कथा कहेंगे वह यह नाभाग नहीं है, यह और जो कर्मद्वारा वैश्यपनको प्राप्त हुआ था. इसका पुत्र भलन्दन और भलन्दनसे वत्सप्रीतिकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति, प्रमतिका पुत्र खनित्र, तिससे चाक्षुषने जन्म ग्रहण किया, चाक्षुषका पुत्र विविंशति ॥ २४ ॥ तिसका पुत्र रम्भ,रम्भका पुत्र खनिनेत्र, जो कि परमधार्मिक हुआ, इस खनिनेत्रके पुत्र करन्धम राजा हुए ॥२५॥ करन्धमके पुत्र आवेक्षित,अविक्षितके मरुत्त जो कि, चक्रवर्ती हुए, जिनको अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्तनें यज्ञ कराया था ॥ २६ ॥ इस मरुत्तके यज्ञके समान किसीका यज्ञ प्रसिद्ध नहीं है। उनके यज्ञके मध्य सब पात्र सुवर्णके बने हुए शोभायमान थे ॥ २७ ॥ जिनके यज्ञमें सोमपान करके सुरेन्द्र प्रसन्न हुए, बहुतसारी दक्षिणा पाय ब्राह्मणोंको हर्ष होता था, इस यज्ञमें मरुद्गण परोसनेवाले और

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः ॥ कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः॥२१॥ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ॥ नरिष्यंतान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥भलंदनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलंदनात् ॥ २३ ॥वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ॥ खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४ ॥ विविंशतिसुतो रंभः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ॥ करंधमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृपः ॥ २५ ॥ तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ संवर्त्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यंगिरस्सुतः ॥ २६ ॥ मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन ॥ सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम् ॥ २७ ॥ अमाद्यदिंद्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विताजयः ॥ मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥२८॥

विश्वेदेवागण सभासद् हुए थे ॥ २८ ॥ इन मरुत्तके पुत्र दम, तिनके पुत्र राजवर्द्धन, तिनके सुत सुधृति, सुधृतिका पुत्र नर ॥ २९ ॥ तिनका पुत्र केवल, तिससे धुन्धुमान उत्पन्न हुए. धुन्धुमानके पुत्र वेगवान्, तिनके पुत्र बुध, तिनके संतान तृणबिन्दु राजा हुए ॥ ३० ॥ यह राजा अति उत्तमोत्तम गुणविभूषित था, श्रेष्ठ अप्सरा अलम्बुषा देवी उन गुणोंपर मोहित हो पुत्रके संग हुई. इस अलम्बुषा अप्सराके तृणबिन्दुसे कई एक पुत्र और इलविलानामक एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ हे राजन्! योगीश्वर विश्रवाजी ऋषिने अपने पिताजीसे परमविद्याको प्राप्त होकर इस इलविलाके

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ॥ सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९ ॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद्धु
धुमान्वेगवांस्ततः ॥ बंधुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिंदुर्महीपतिः ॥ ३० ॥ तं भेजेऽलंबुषा देवी भजनीयगुणालयम् ॥
वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत् ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ॥ प्रादाय विद्यां पर
मामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२ ॥ विशालश्शून्यबंधुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ॥ विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे
पुरीम् ॥ ३३ ॥ हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ॥ तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवलः ॥ ३४ ॥
कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ॥ इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥ ३५ ॥

गर्भमें कुबेरको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ अब तृणबिन्दुके पुत्रोंका वृत्तान्त सुनो । विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु, यह तीन जन तृणबिंदुके पुत्र हुए । उनमें विशाल ही वंशकारी राजा हुआ और उसने वैशाली नामक एक पुरी भी बनाई ॥ ३३ ॥ इस विशालका पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्रका पुत्र धूम्राक्ष और इसका पुत्र संयम हुआ. संयमके देवल और कृशाश्व यह दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ उनमें कृशाश्वका पुत्र सोमदत्त हुआ, कि, जिसने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपति परमपुरुषकी पूजा कर योगीश्वर लोगोंकी आश्रित उत्तम गति प्राप्त की ॥ ३४ ॥

सोमदत्तका पुत्र सुमति, सुमतिका पुत्र जन्मेजय हुआ। श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे महाराज परीक्षित! विशालवंशमें यह राजागण उत्पन्न हुए. यह सबराजा,तृणबिन्दुका यश धारण करनेवाले थे॥ ३६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥ दोहा–मनुसुत नृप शर्यातिके, भई सुकन्या एक। तिसरेमें रेवत कथा, वरणौं सहित विवेक ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! मनुका पुत्र शर्य्याति अति ब्रह्मनिष्ठ राजा हुआ। उसने अंगिरागणोंके यक्षमें दूसरे दिवसका कतव्य कर्म उपदेश किया ॥१॥ इस राजाके कमलके समान नेत्रवाली सुकन्या नाम एक कन्या हुई। एक समय राजा उसको साथ ले वनमें गया, जहां कि च्यवन मुनिका आश्रम था ॥२॥ उस वनमें

सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥ एते वैशालभूपालास्तृणबिंदोर्यशोधराः॥३६॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे कारूषकादिवंशानुकीर्त्तनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥ यो वा अंगिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान्॥ १ ॥ सुकन्या नाम तस्यासीत्कन्या कमललोचना ॥ तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २ ॥ सा सखीभिः परिवृता विचिन्वंत्यंघ्रिपान्वने ॥ वल्मीकरंध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥ ३ ॥ सा दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ॥ अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात् ॥ राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥ व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥

यह राजकुमारी अपनी सुकुमारी सखियोंके साथ फूलपत्तोंको एकत्र करते करते एक स्थानमें गई और उसने इसी वनके मध्य बँबईकी मट्टीके छेदमें पटबीजनेके समान दो प्रकाशवान् वस्तु देखीं ॥३॥ यह देखकर राजकुमारी सुकन्याको अतिकौतूकहल उत्पन्न हुआ.उसने भाग्यप्रेरितके समान हो उसी समय एक कांटा ग्रहण कर मोहसे उन प्रकाशित छिद्रोंको फोड़ दिया। हे राजन्! विद्ध होते ही उस बँबईके छिद्रोंमेंसे बराबर रुधिरकी धार निकलने लगी ॥४॥ राजा शर्यातिके साथ जो सेना थी,उन सब वीरोंका मल मूत्र रुक गया.यह देखकर राजा शर्याति विस्मित हुआ और अपने साथी पुरुषोंसे पूंछने लगा ॥ ५ ॥ क्या तुममेंसे किसीने महर्षि च्यवन ऋषिका कुछ अपराध किया है? हमको भलीभाँति

जान पड़ता है कि,हम लोगोंमेंसे किसीने महर्षिके आश्रमको दूषित किया होगा ॥६॥ यह सुनकर सुकन्याने भीत हो अपने पितासे निवेदन किया कि,हे पितः ! मुझसे कुछ अपराध हुआ है। मैंने न जानकर एक कांटेसे दो प्रकाशित पदार्थोंको वेध डाला है॥ ७ ॥ बेटीके यह वचन सुनकर राजा शर्यातिको बडा भय हुआ। बँबईमें मुनि अंतर्हित हुए हैं, उनके निकट जा विविध भाँतिकी स्तुतिसे प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त महर्षिका अभिप्राय जान राजाने अपनी कन्या उनको देदी। हे राजन्! इस प्रकार राजा शर्याति विपदसे छूट मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीसे सम्भाषण करनेके पीछे सावधान चित्तसे अपने स्थानको लौट गया ॥ ९ ॥ इस ओर अपने पति परमक्रोधी च्यवन ऋषिके योग्य चित्तकी

सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित्कृतं मया ॥ द्वे ज्योतिषी अजानंत्या निर्भिन्ने कंटकेन वै॥७॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः॥ मुनिं प्रसादयामास वल्मीकांतर्गतं शनैः॥८॥ तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः॥ कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामंत्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥ सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ॥ प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ॥ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ॥ ११ ॥ ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ॥ क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥१२॥ बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनंद्य भिषक्तमौ ॥ निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥

जाननेवाली सुकन्या सावधान होकर सदा चित्तको देकर उनकी सेवा करती थी॥१०॥कुछ कालके बीतनेपर एक दिन दोनों अश्विनीकुमार उनके आश्रममें आये।मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीने भलीभांति उनकी पूजा करके कहा कि,आप दोनों जन बडे वैद्य हैं,सो कृपा करके हमको आप युवा कर दीजिये॥ ११ ॥ स्त्रियें जिस रूप और जिस वयसको चाहती हैं वही तुम हमको देदो । तुम सोमपानरहित हो, कभी सोमपान नहीं किया है सो हम सोमयज्ञ करके तुमको सोमपूर्ण पात्र देवेंगे ॥ १२ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनजीके यह वचन सुनकर दोनों अश्विनीकुमारोंने कहा कि "यही करते हैं" यह कह फिर आनन्द प्रकाश कर बोले कि,अच्छा तो पहले सिद्धोंके बनाये इस सरोवरमें स्नान करनेको चलिये ॥१३॥

हे राजन् ! इस प्रकार कहनेसे जरासे ग्रसित है देह जिनका, नसें दिखाई देती हैं, कुप्यारे पकेहुए केशवाले महर्षि च्यवनजी इन दोनों देववैद्योंके साथ सरोवरमें घुसे अर्थात् दोनों अश्विनीकुमार इनको लेकर सरोवरमें घुसे॥ १४ ॥ कुछ देर पीछे उस सरोवरसे सुडौल शरीरवाले,रमणीप्रिय तीन पुरुष निकले. तीनों जनोंके गलोंमें कमलकी मालायें पडी हुई थीं,कानोंमें कनक (सुवर्ण) कुण्डल विराजमान थे,तीनोंका स्वरूप अनुपम था और वस्त्रोंकी शोभा एक अपूर्व ही भावको धारण किये हुई थी॥ १५॥तीनों जने सूर्यके समान तेजस्वी,समान रूप और समान अवस्थावाले देख पतिव्रता सुकन्याको अतिविस्मय प्राप्त हुआ और वह नहीं पहिचान सकी कि, हमारे पति कौनसे हैं इसलिये दोनों अश्विनीकुमारोंकी

इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसंततः ॥ ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः॥ १४ ॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ॥ पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५ ॥ तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः ॥ अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥१६॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥ ऋषिमामंत्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम्॥१७॥यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः॥ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥१८॥

शरण गई अर्थात् उसने यह प्रार्थना करी कि, आपलोग पृथक् होकर हमारे पतिको हमें दिखादें ❋ ॥ १६॥ सुकन्याका पतिव्रत देख अश्विनीकुमारोंको सन्तोष हुआ और अपने आप अलग हो उसे उसके पति च्यवन ऋषिको दे दिया तिसके पीछे महर्षि च्यवनजीसे संभाषण कर वह दोनों अश्विनीकुमार विमानपर बैठ स्वर्गको चले गये॥ १७ ॥हे राजन् ! कुछेक कालके पीछे शर्याति राजाने यज्ञ करनेके लिये च्यवन ऋषिके आश्रममें जाकर देखा कि,कन्याके धोरे सूर्यके समान एक तेजस्वी पुरुष बैठे हुए हैं ॥ १८ ॥

❋ **शंका**–सुकन्या अपने सम्मुख एक सरीखे तीन पुरुष खडे देखके अश्विनीकुमारकी शरणमें कैसे गई ? क्योंकि वह तो तीनों एक ठौर रहे थे, दीपक दीपकसे जलाव तो यह कैसे जान पडेगा कि, यह तिलके तेलका है यह अलसीके तेलका है,यह घीका दीपक है, ऐसे ही वह तीनों एक रूप थे फिर उसने अश्विनीकुमारोंको कैसे पहँचाना ?

उत्तर–सुकन्याने अपने मनमें अश्विनी,कुमारोंका ध्यान किया था और उन दोनों देवताओंके सम्मुख वह नहीं गई थी,उसने अश्विनीकुमारोंका ध्यान करके बारम्बार उन्हीं की प्रार्थनाकी कि,हे महाराज ! हे दीनवत्सल ! ! हे कृपासिन्धो !!! आप दोना जन मेरे पिताके समान हो. किसी प्रकार कृपा करके मेरे पतिको मुझे दिखा दो. जब अश्विनीकुमारोंकी इस प्रकार विनय की तो उसको पति उसको मिल गया ॥

सुकन्या पिताको देखकर शीघ्रतासे उठीं और उनके चरण छुए। राजा शर्यातिने आशीर्वाद दिया, परन्तु यह विचार वह प्रसन्न न हुए कि, हम जरार्जीर्ण च्यवन ऋषिको अपनी कन्या देगये थे, वह आश्रममें नहीं हैं बरन् उनके बदलेमें स्वरूपवान् एक और युवा पुरुष बैठा हुआ है यह सोच कर उनको बडी शंका हुई तब वह अप्रसन्न होकर अपनी बेटीसे बोले ॥ १९ ॥ कि, यह क्या करनेकी वासना की है ? अरी असत्यन ! तेरे पति लोकोंके नमस्कार करने योग्य हैं, उनको तैंने क्यों ठगा ? जराग्रसित होनेके कारण तू उनसे प्रसन्न न हुई इससे ही इस पथिकको उपपति बनाय तू भजती है ॥ २० ॥ अरे कुलकलंकिनि ! तू अति उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है, ऐसी बुद्धि करनेका किस प्रकारसे साहस किया ? हा ! हमारे कुलको दूषित किया. निर्लज्ज होकर उपपतिकी पूजा करती है। पिता और पतिके कुलको तैंने एकवार ही डुबो दिया ॥

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवंदनाम् ॥ आशिषश्चाप्रयुंजानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥ चिकीर्षितं ते
किमिदं पतिस्त्वया प्रलंभितो लोकनमस्कृतो मुनिः ॥ त्वं यज्जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुम
ध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ॥ बिभर्षि जारं यदपत्रपाकुलं पितुश्च
भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१ ॥ एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ॥ उवाच तात जामाता तवैष भृगुनंदनः॥
॥ २२ ॥ शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलंभनम् ॥ विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ ॥ सोमेन याज
यन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ॥ असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युर
मर्षितः ॥ सवज्रं स्तंभयामास भुजमिंद्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥

॥२१॥ पिताजीके यह वचन सुन मन्द मुसकानवाली सुकन्या विस्मित हो कहने लगी कि, हे पिताजी ! यही आपके जमाई हैं, यही भृगुनन्दन च्यवनजी हैं ॥ २२ ॥ फिर जिस प्रकारसे इनको रूपयौवनकी प्राप्ति हुई थी, वह भी सब वृत्तान्त पिताजीको कह सुनाया। यह सुन राजा शर्यातिने विस्मित और प्रसन्न होकर अपनी सुकन्याको हृदयसे लगाया ॥ २३ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे महर्षि च्यवनजीने शर्याति राजासे सोमयज्ञ कराय सोम पीनेके योग्य न होने पर भी अश्विनीकुमारोंको सोम पीनेको दिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन्द्रको तत्काल ही क्रोध हो आता है. उसने यह देख. च्यवन ऋषिका विनाश करनेके लिये वज्र हाथमें लिया था परंतु भृगुनन्दनने अपने ब्रह्मतेजसे वज्रसहित इन्द्रका

हाथ स्तंभित कर दिया ॥ २५ ॥ यद्यपि पहले चिकित्सक होनेके कारण अश्विनीकुमार सोमयज्ञसे बाहर थे तथापि तबसे सब देवताओंने उनको यज्ञसोम देनेके लिये अंगीकार किया ॥ २६ ॥ इन शर्यातिके तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण । इन तीनोंमें आनर्तके रेवतनाम एक पुत्र हुआ ॥२७॥ हे अरिन्दम ! यह रेवत सागरके बीचमें कुशस्थली नामक एक नगरी बसाय उसमें विराजमान हो, आनर्त्तादि देशोंका पालन करता था ॥ २८ ॥ उसके शत पुत्र जन्मे, उनमें ककुद्मी बड़ा और गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था । यह ककुद्मी रेवती नामक अपनी कन्याको साथ ले उसके लिये वर ढूँढनेको ब्रह्माजीके पास गया ॥ २९ ॥ उस समय ब्रह्माजीकी सभामें गन्धर्वोंका गाना हो

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः॥ भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ॥२६॥उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ॥ शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत्॥२७॥सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुंक्त विषयानानर्तादीनरिंदम॥२८॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥ कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ आवर्त्तमाने गांधर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३० ॥ तदंत आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥ अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥कालोऽभियातस्त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः॥ तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥ कन्यारत्नमिदं राजन्नररत्नाय देहि भोः ॥ भुवो भारावताराय भगवान्भूतभावनः ॥ ३४ ॥ अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ इत्यादिष्टोऽभिवंद्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥

रहा था, इसलिये अवसर न पाकर ककुद्मी वहां क्षण कालतक ठहरा और फिर अवकाश पाय प्रणाम करके अपना सब अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यह सुन ब्रह्माजी हँसकर बोले कि,हे राजन् ! तुमने जिन पुरुषोंको विचारा है, उन सबको कालने संहार कर डाला, इस समय इनके बेटे पोते और नातियोंका गोत्र व नाममात्र भी नहीं सुना जाता ॥ ३२ ॥ मूल बात यह है कि, तुमको यहाँ सत्ताईस चौकडी युग बीत गये इसलिये जाओ ! देवदेवके अंशसे जो महाबलवान् बलदेव हैं ॥ ३३ ॥ उन नररत्नको तुम यह अपनी कन्यारत्न समर्पण करो

हे राजन्! जिनके कहने सुननेसे पुण्य होता वह भूतभावन भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतार ले चुके हैं। इस प्रकारसे आज्ञा पाय ककुद्मी ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने पुरमें आया॥३४॥३५॥इनके भ्राता लोग यक्षोंके भयसे इस पुरीको छोडकर सब दिशामें भाग गये थे, इसके पीछे दूषणरहित अंगवाली अपनी बेटीको बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदेवको इस राजाने देदिया और आप तप करनेके लिये नारायणके स्थान बदरिकाश्रमको चला गया॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः॥ ३ ॥ दोहा—चतुर्थ मनुसुत नभगको,कहौं सहित विस्तार। अम्बरीष ताके तनय,भये भक्त आधार ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,नभगका पुत्र नाभाग हुआ. इस नाभागने जब बहुत कालतक गुरुकुलमें वास किया तब नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भ्रातालोगोंने बांट करनेके समय इनके लिये पिताके धनका अंश नहीं रक्खा ॥ १ ॥ जब नाभाग ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके गुरुकुलसे अपने घरपर आया, तब उसके भाइयोंने पिताको ही उसके भागमें रक्खा, अर्थात् जब नाभागने आकर भाइयोंसे पूछा कि, तुमने हमारे लिये क्या रक्खा है ? तब भाइयोंने कहा कि, हमने तुम्हारे अर्थ पिताको ही अंशस्वरूप कर रक्खा है इसलिये तुम पिताको ग्रहण करो। यह सुन नाभागने पिताजीके निकट जाकर कहा कि, हे पितः! हमारे बडे भाइयोंने आपको किसलिये हमारा भाग बनाया है ? तब पिताजी बोले कि, हे वत्स! तुम उनकी बातका विश्वास मत करो,क्योंकि हम भागके समान भोगने योग्य वस्तु नहीं हैं ॥२॥ परन्तु तुम्हारे भ्राताओंने जो हमको तुम्हारा भाग बताया है इसलिये हम तुम्हारी जीविकाका उपाय बतलाये देते हैं.हे विद्वन्! अंगिरागोत्री मुनिलोग यज्ञ कर रहे हैं,वह लोग यद्यपि सुबुद्धिमान् हैं, तो भी वह विहित षड्यज्ञ उपस्थित

त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ सुतां दत्त्वाऽनवद्यांगीं बलाय बलशालिने ॥ बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे शर्यात्यन्वयनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् ॥ यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥ भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ॥ त्वां म आर्यास्तताऽभाक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥ इमे अंगिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ॥ षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यति कर्मणि ॥ ३ ॥

होनेपर प्रत्येक षष्ठ दिवसमें कर्मको प्राप्त होकर ज्ञानके अभावसे उनके अनुष्ठानमें मोहित होते हैं ॥ ३ ॥ तुम जाकर उन महात्माओंको विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्त पढाओ । कर्मके समाप्त होनेपर जब वह स्वर्गमें गमन करेंगे, तब यज्ञका बचा हुआ धन अवश्य तुमको देदेंगे, जाओ विम्लब न करो, इसी समय उनके निकट चले जाओ । हे राजन् ! जब इस प्रकार नाभागने अपने पितासे सुना तो उन्होंने ऐसा ही किया और वह सब अंगिरा भी अपने यज्ञका बचा हुआ धन इस नाभागको देकर स्वर्गलोकमें चले गये ॥४॥५॥ जब नाभाग वह धन अंगीकार करनेके लिये प्रस्तुत हुआ, तब इतनेहीमें श्यामवर्ण शरीरवाले एक पुरुष (रुद्र) ने उत्तरकी ओरसे आकर कहा कि यज्ञभूमिमें रक्खा हुआ यह सब धन हमारा है ॥ ६ ॥ तब नाभाग बोले कि, यह कैसे ? यह धन तो हमको अभी अभी ही ऋषिलोग देगये हैं । नाभागके यह वचन

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ॥ ते स्वर्यंतो धन सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥४॥ दास्यंत्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान्यथा ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥५॥ तं कश्चित्स्वीकरिष्यंतं पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६ ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ॥ स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान्पितरं तथा ॥७॥ यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ॥ चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥८॥ नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ॥ इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्छिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९ ॥ यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे ॥ ददामि ते मंत्रदृशो ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥

सुन उस पुरुषने कहाः—"भाई झगडा क्यों करते हो" तुम जाकर अपने पितासे तो पूछो. उस पुरुषके यह वचन सुनकर नाभागने अपने पिताके निकट जाय यथाविधिसे पूछा ॥ ७ ॥ यह सुन उसके पिता मनुने कहा कि, वत्स ! दक्षके यज्ञमें जो वस्तु बची थी, ऋषि लोगोंने उस सबको भगवान् रुद्रका भाग बताया था, अधिक करके वह ईश्वर सब ही कुछ पाने योग्य हैं, फिर यज्ञमें बचे हुएकी तो बात ही क्या है ? ॥ ८ ॥ यह सुनकर नाभाग फिर उस पुरुष (रुद्र) के निकट आय शिर नवाकर बोले कि, हे ईश्वर ! यज्ञभूमिमें पडे हुए सब धनके आप अधिकारी हैं यह बात हमसे हमारे पिताने कही है इसलिये प्रसन्न होकर आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये. हम मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥ नाभागकी विनती सुनकर रुद्रजीने कहा "तुम्हारे पिताने धर्मवाक्य कहा है और तुम भी धर्मवाक्य कहते हो इस

लिये तुम मन्त्रके जाननेवालेको हम ज्ञानरूप सनातन ब्रह्म देते हैं ॥ १० ॥ और यज्ञका बचा हुआ जो धन है इसको भी तुम ग्रहण करो क्योंकि हमने यह तुमको दिया" हे राजन्! धर्मवत्सल भगवान् रुद्रजी इस प्रकारसे कहकर वहीं अन्तर्धान होगये ॥ ११ ॥ जो पुरुष भली भांतिसे सावधान हो सन्ध्या और प्रातःकालके समय इस उपाख्यानको सुनेगा वह इसके प्रभावसे विद्वान् और मन्त्रका जाननेवाला हो अभिलाषा किया हुआ धन पावेगा ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित्! इसी नाभागसे अम्बरीषकी उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मशाप कहीं भी निष्फल नहीं होता; वह भी अर्थात् ब्राह्मण (दुर्वासा) की बनाई कृत्यारूप अग्नि भी जिनको स्पर्श न कर सकी; इसलिये वह परमभक्त और अतिशय बुद्धिमान् हुए ॥ १३ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! बुद्धिमान् राजा अम्बरीषके चरित्र सुननेकी मुझे बडी अभिलाषा है. बडे आश्चर्यकी बात है कि, ब्रह्मनिर्मित कृत्यानल जो अति दुरत्यय है, वह भी राजा अम्बरीषको डहरानेके लिये सामर्थ्यवान् न हुई ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग! राजा अम्बरीष सप्त द्वीप पृथ्वी, अक्षय सम्पद् और पृथ्वीके अतुल ऐश्वर्यको पाकर यद्यपि यह सब पदार्थ और पुरुषोंको अति दुर्लभ हैं, स्वप्नके समान झूंठे समझने लगा; क्योंकि विभवके नाशका न जाननेवाला पुरुष ही विभवमें अथवा उसके अंशसे मोहको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ और यह राजा भगवान् वासुदेवमें और उनके भक्त सब साधुओंमें उस परमभाव (भक्ति) को प्राप्त

गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ॥ इत्युक्त्वांतर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥ य एतत्संस्मरेत् प्रातस्सायं च सुसमाहितः ॥ कविर्भवति मंत्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥ १२ ॥ नाभागादंबरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ॥ नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ॥ न प्राभूद् यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदंडो दुरत्ययः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंबरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥ मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ॥ विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥ १६ ॥ वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ प्राप्तो भाव परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम् ॥ १७ ॥

हुआ था, जिससे यह विश्व अति तुच्छ जान पडता है ॥ १७ ॥ अधिक करके उन्होंने श्यामसुन्दर श्रीकृष्णजीके पादारविन्दमें अपने चित्तको अर्पण कर दिया था और अपने वचनोंको वैकुण्ठके गुणवर्णनमें लगाया था; अपने दोनों हाथ हरिमंदिरके मार्जनादिमें लगा दिये थे, अपने कानोंको अच्युतसत्कथाओंके श्रवण करनेमें लगा दिया था ॥ १८ ॥ नेत्रोंको मुकुन्दके रूप देखनेमें लगा रक्खा था, अंगसंगको भगवत् सेवकोंके शरीरस्पर्शमें, नासिकाको भगवच्चरणकमलके संयोगसे श्रेष्ठ तुलसीका जो सौरभ है उसके ग्रहणमें और रसनाको भगवान्के प्रति निवेदित अन्नादिके स्वाद चखनेमें तत्पर कर रक्खा था ॥ १९ ॥ और चरण हरिके क्षेत्रमें जानेके लिये नियत कर रक्खे थे. इन्होंने अपना मस्तक

स वै मनःकृष्णपदारविंदयोर्वचांसि वैकुंठगुणानुवर्णने ॥ करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥
मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेंऽगसंगमम् ॥ घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते
॥ १९ ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवंदने ॥ कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकज
नाश्रया रतिः ॥ २० ॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठ
विप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचितांगदक्षिणैः ॥ ततैर्वसिष्ठासितगौतमादि
भिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२ ॥

हृषीकेशके चरणोंमें लगा दिया था. कामादिकी सेवा दासभावसे करता था, कुछ विषयकी इच्छासे नहीं। उत्तमश्लोक भगवान्के जन जिस प्रकार इन वस्तुओंमें प्रीति रखते थे ॥ २० ॥ इस प्रकारसे सब कर्मकलापोंको राजाने यज्ञपति भगवान्के अर्पण कर दिया था और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार राज्यका पालन करता था ॥ २१ ॥ और अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्की आराधनामें सदा लगा रहता था. इन यज्ञोंके अंग और दक्षिणामें बहुत धन लगाता था और यह सब यज्ञ वसिष्ठ, असित, गौतमादि ऋषियोंके कारणसे विस्तारित होते थे. हे राजन् । धन्वदेश (मारवाड़) में जहाँ सरस्वतीजी बहती थीं वहाँपर राजा अम्बरीषने इन यज्ञोंको किया था ॥ २२ ॥

उनके यज्ञमें सदस्य और ऋत्विजादि वसन भूषणादि द्वारा सज धजकर देवतालोगोंके समान रूपवाले दिखाई देते थे. आश्चर्य देखनेकी उत्कण्ठासे उन सभासदोंके पलक तलक भी नहीं लगते थे इसलिये वह सब प्रकारसे देवता लोगोंके समान हों जाते थे ॥ २३ ॥ और राजा अंबरीषकी प्रजा भी देवताओंके प्यारे स्वर्गलोककी चाहना नहीं रखती थी. केवल भगवच्चरित्र श्रवण और कीर्तन करनेमें लगी रहती थी फिर इनसे उसके संबंधमें क्या कहा जाय? बस जो पुरुष अपने हृदयमें भगवान् मुकुन्दको देखता है और स्वरूपसुखके द्वारा जो अतिशय आनन्द पाता है इससे सिद्धलोगोंको भी दुर्लभ जो समस्त विषय हैं वह सब इस पुरुषको आनन्द नहीं उपजा सकते वा हर्षित करा सकते

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ॥ तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यंत सुवाससः॥२३॥ स्वर्गो न प्रार्थितो
यस्य मनुजैरमरप्रियः॥ शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम्॥२४॥ समर्द्धयंति तान्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः ॥
दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुंदं हृदि पश्यतः ॥ २५ ॥ स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ॥ स्वधर्मेण हरिं प्रीण
न्संगान्सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥२६॥ गृहेषु दारेषु सुतेषु बंधुषु द्विपोत्तमस्यंदनवाजिपत्तिषु ॥ अक्षय्यरत्नाऽभरणायुधादिष्व
नंतकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥२७॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ॥ एकांतभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्ष
णम् ॥ २८ ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ॥ युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥
व्रतांते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ॥ स्नातः कदाचित्कालिंद्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३०

६९३

हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ अधिक करके इस प्रकार राजा अंबरीषने स्त्री, पुत्र, मित्र, हाथी, घोडे, रथादि व अक्षय रत्न भूषणादि व अनंत कोषको भी वृथा समझा ॥२६॥२७॥ हे राजन्! यद्यपि राजा अंबरीष इस प्रकार विरागी हो गया था तो भी अपने शत्रुओंके जीतनेको असमर्थ नहीं हुआ. भगवान् वासुदेवने इस राजर्षिके भक्तिभावसे प्रसन्न हो जिससे शत्रुकी सेनाको भय हो और भक्तोंकी रक्षा हो ऐसा सुदर्शनचक्र उनको दे दिया था॥२८॥हे राजन्! यह राजा अंबरीष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी पुजा करनेकी इच्छासे अपनी भार्या जो कि, शीलतामें अपने ही समान थी, उसके साथ मिलकर एक वर्षतक अखंड एकादशीके व्रतको धारण करने लगे ॥ २९ ॥ एक समय मथुरामें जाय व्रतक

अंतमें कि, जब कार्त्तिक महीनेके तीन दिन उपवास किया था: कालिंदीमें स्नान कर मधुवनमें श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करी ॥ ३० ॥ महाभिषेककी विधिसे सब सामग्रियोंकी संपत्तिसे वस्त्र, आभूषण, गंध, फूल, मालाके द्वारा एकाग्रचित्तसे मुरलीमनोहरकी पूजा करने लगे. तिसके उपरांत पडे भाग्यवाले सिद्धकाम ब्राह्मणोंकी भक्तिभावसे पूजा करने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जिनके सींग और खुर चांदीसे मढे थे, शरीरमें शोभायमान वस्त्र बहर रही थीं, दुधारी थीं, सुशीलता, वयस, रूप और वत्सादि श्रेष्ठ सम्पत्तियोंसे भूषित थीं, ऐसी साठ करोड़ (६००००००००) गायें राजा

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसंपदा ॥ अभिषिच्यांबराकल्पैर्गंधमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ तद्गतांतरभावेन पूजयामास केशवम् ॥ ब्राह्मणांश्च महाभागान्सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥ ३२ ॥ गवां रुक्मविषाणीनां रूप्यांघ्रीणां सुवाससाम् ॥ पयश्शीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥ ३३ ॥ प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ॥ भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥ लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ॥ तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ॥ ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥

अम्बरीषने साधु ब्राह्मणोंको दक्षिणामें देदीं ॥ ३३ ॥ इसके पीछे ब्राह्मण लोगोंको षड्रस भोजन कराय * उनकी आज्ञा ले आप भी व्रतपारणा करनेको तत्पर हुआ ॥ ३४ ॥ हे राजन्! राजा अम्बरीष व्रतपारणा करनेको जाता ही था कि, इसी अवसरमें दुर्वासा मुनि अतिथिकी भाँति उन राजा अम्बरीषके स्थानमें आये ॥ ३५ ॥ दुर्वासा मुनिको देखते ही राजा अम्बरीषने व्रतपारणा नहीं किया और उसी समय आकर प्रणाम व पूजा करके उनका भलीभाँतिसे आदर सन्मान किया. फिर विनीतभावसे चरणोंके निकट खड़ा होकर भोजन करनेके लिये उनसे प्रार्थना की ॥ ३६ ॥

शंका–राजा अम्बरीषने (६००००००००) सा करोड गायका दान किया है, सो हमको बडा सन्देह है कि, साठ करोड गायें और साठ करोड बछडे और बछिया और साठ करोड दानके लेनेवाले ब्राह्मण क्यों कर इकट्ठे होगये?

उत्तर– ज्योतिषशास्त्रमें अर्बुदकी पांच सहस्रकी संज्ञा लिखी है और एक अर्बुदको दश कोटि लिखा है " प्रायश्चित्तकदम्ब" तथा 'विधानपारिजातक' जिनमें एक एक लाख श्लोक हैं इनके सिवाय और भी जो धर्मशास्त्रके ग्रन्थ हैं उनमें भी एक अर्बुद ५००० सहस्रकी ही कहा है इस प्रमाणसे जानाजाता है कि, पांच हजार गौयें राजा अम्बरीषने दान की थीं ॥

राजाकी इस प्रार्थनासे दुर्वासा ऋषि हर्षित हो भोजन करना स्वीकार कर बोले कि,अभी नियमित मध्याह्नके नित्यकर्म हमने समाप्त नहीं किये हैं, यह कहकर नित्यकर्म करनेको यमुनाके तटपर गये। तिसके पीछे ब्रह्मचिन्ता करते करते यमुनाके पवित्र जलमें स्नान किया॥३७॥हे राजन्! जब दुर्वासा मुनि मध्याह्न कालकी क्रिया करने गये तो वह बहुतविलम्ब होनेपर भी वहाँ नहीं गये। इस ओर द्वादशीका केवल अर्द्ध मुहूर्त्त शेष रह गया। इस मुहूर्त्तमें पारणा न करनेसे व्रतमें विकार हो जायगा.धर्मज्ञ अम्बरीष राजा धर्मसंकटमें पड ब्राह्मणोंसहित विचार करने लगे॥३८॥ राजाने कहा कि, जो दोष ब्राह्मणके अतिक्रममें है,द्वादशीमें पारणा न करनेसे भी वही दोष है, अब क्या करें, क्या करनेसे मेरा भला होगा? और अधर्म मुझको न स्पर्श कर सकेगा?॥३९॥ब्राह्मणोंके सहित इस प्रकार विचार करके राजाने फिर यह निश्चय किया कि,केवल चरणामृत पीकर व्रत समाप्त किया जायगा क्योंकि केवल जलपान करनेको मुनि लोगोंने भोजन अभोजन दोनों कहा है॥४०॥हे कुरुश्रेष्ठ राजा अम्बरीषने इस प्रकार मनमें भगवान् वासुदेवका स्मरण कर जैसे ही चरणामृत पिया वैसे ही द्विजागमन देखा॥ ४१ ॥ अर्थात् उसी समय दुर्वासाजी नित्यकर्म समाप्त करके यमुनाके किनारेसे राजा अम्बरीषके स्थानपर आ पहुँचे।यद्यपि राजाने उन मुनिको देखकर आनन्द प्रकाशित किया और हाथ जोड़ उनके सम्मुख खडे हुए तो भी इस राजा अम्बरीषके आचरणको दुर्वासा ऋषिने ध्यान धरकर जानलिया॥४२॥इसलिये क्रोधसे कम्पितशरीर हो भौंहैं टेढी कर हाथ जोडे खड़े हुए राजा अम्बरीषसे कहने लगे कि॥४३॥अहो! यह पुरुष कैसा निर्लज्ज है, धन सम्पत्तिके

प्रतिनंद्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ॥ निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिंदीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्त्तार्धावशिष्टायां
द्वादश्यां पारणं प्रति ॥ चिंतयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ॥
यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अंभसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ॥ प्राहुरब्भक्षणं
विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥ इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिंतयन्मनसाऽच्युतम् ॥ प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमन
मेव सः ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ॥ राज्ञाऽभिनंदितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥
मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ बुभुक्षितश्च सुतरां कृतांजलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो अस्य नृशंसस्य
श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ॥ धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥

69

मदसे अत्यन्त मतवाला होरहा है, अपने आपको ईश्वर मानता है, इसके धर्मव्यतिक्रमको तो देखो ॥४४॥ हम इसके आश्रममें अतिथि आये हैं; इसने आप ही पहुनाई करनेके लिये हमको निमंत्रण दिया परन्तु हमारा भोजन होनेसे प्रथम ही यह इच्छानुसार भोजन करके बैठ गया। इसका फल इसको अभी दिखाता हूँ ॥४५॥ इस प्रकार कहते कहते क्रोधायमान हो मस्तकसे एक जटा उखाड उस राजाके सामने कालाग्निके समान एक कृत्या बनाई ॥ ४६ ॥ हे राजन्! वह कृत्या खड्ग हाथमें ले अपने चरण धरनेसे पृथ्वीको कम्पायमान करती हुई प्रकाशपूर्वक आई. राजा अम्बरीष उसको अपने सन्मुख आती हुई देखकर भी अपने स्थानसे चलायमान नहीं हुए ॥४७॥ राजाअम्बरीष विष्णु भगवान्के परम भक्त थे. उन्होंने अपने भक्तपर यह भीर पडी देख अपने चक्रको आज्ञा दी परमपुरुष भगवान्की आज्ञा पातेही वह अपने तेजसे इस कृत्याको

योो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमंत्र्य च ॥ अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥४५॥ एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ॥ तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतंतीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ॥ वेपयंतीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ॥ ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ॥ दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥ तमन्वधावद्भगवद्रथांगं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम् ॥ तथानुषक्तं स निरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान्समुद्राल्लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ॥ यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥

भस्म करने लगा जिस प्रकार दावानल वनमें रहते हुए क्रोधित सर्पोंको दग्ध करे ॥४८॥ जब दुर्वासा ऋषिने देखा कि, हमारा किया यत्न विफल हुआ और अब यह चक्र हमारी ही ओरको चला आता है इसलिये भीत हो प्राणोंकी रक्षा करनेको त्रासके मारे सब दिशाओंमें भागने लगे ॥४९॥ हे राजन्! जैसे लपटयुक्त उठी हुई दावानल बनैले सर्पोंके पीछे दौडती है, वैसे ही भगवान्का चक्र इन ऋषिके पीछे पीछे दौडा। दुर्वासा मुनि इस चक्रको इस प्रकारसे अपने पीछे आता हुआ देखकर सुमेरुकी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छा कर महावेगसे दौडने लगे ॥५०॥ दौडते दौडते दिक्, आकाश, भूमि, विवर, सागर और लोकपालसहित सब लोकोंमें और स्वर्गमें भी दुर्वासा गये परन्तु जहाँ वह जाते थे, उस

उस स्थानमें दुर्धर्ष चक्र भी उनके पीछे लगा ही चला जाता था॥५१॥इस प्रकार शरण ढूंढ़ते सब जगहमें भ्रमण करके यह कहीं भी अपने किसी रक्षकको नहीं पा सके.तब त्रासित हो पद्मयोनि ब्रह्माजीके निकट गये और कातरता प्रकाश करके बोले कि, हे भगवन्! हे आत्मयोने!! इस दुःसह हरिके चक्रसे आप मेरी रक्षा करें॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, परार्द्धनामक कालक्रीडाके अन्तमें काल स्वरूप जो विष्णु भगवान् हैं, वह जब सबके दग्ध करनेंकी वासना करते हैं, तब उनकी भ्रुकुटी टेढ़ी होजाती हैं, ब्रह्माण्डसमेत हमारा यह स्थान भी भस्म हो जायगा और हम (ब्रह्मा); शिव दक्ष, भृगु आदि और प्रजापति, भूतपति,सुरपति इत्यादि जिनकी आज्ञाको प्राप्त होकर जिस प्रकारसे लोकहित हो उसी प्रकार

अलब्धनाथस्य यदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ॥ देवं विरिंचं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ॥ भ्रूभंगमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरो भविष्यति ॥५३॥ अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ॥ सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ ५४ ॥ प्रत्याख्यातो विरिंचेन विष्णुचक्रोपतापितः ॥ दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ॥ भवंति कालेन भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥ अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ॥ कपिलोऽपांतरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥

अपने मस्तकपर सब नियमोंको रखते हैं सो तुमने उनके ही भक्तसे द्रोह किया है इसलिये तुम्हारी रक्षा करनेंका सामर्थ्य हममें नहीं है॥ ५३॥ ॥५४॥हे राजन्! जब ब्रह्माजीने भी शरण नहीं दी,तब दुर्वासा कैलासके शिखरपर गये और विष्णुचक्रसे अतिसन्तापित होनेके कारण कातरता प्रगट कर भगवान् महादेवजीकी शरणहुए ॥ ५५ ॥ महादेवजी बोले कि,हे तात! उन महान् परमेश्वरके सन्मुख हमारीप्रभुता कुछ नहीं चलेगी. उनसे ब्रह्मादि रूपका उपाधिभूत यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और इस प्रकारसे दृश्यमान ब्रह्माण्डका प्रमाण व और पदार्थ भी जिनमें कल्पित हैं; लोकपालाभिमानी हम हजार हजार वार भ्रान्त हुआ करते हैं. हे वत्स ! सनत्कुमार, नारद भगवान् ब्रह्मा, कपिल अपांतरतम

देवल, धर्म, आसुरि ॥५६॥५७॥ और मरीचि आदि और भी सिद्धगण सर्वज्ञ होकर भी जिनकी मायाको नहीं जान सकते वरन् स्वयं उनकी मायासे घिरे हुए हैं ॥ ५८ ॥ उन्हीं विश्वेश्वरका यह शस्त्र (चक्र) है; सो हमलोग किसीभाँति इसे नहीं सह सकते इसलिये तुम उन्हीं विष्णु भगवान्‌की शरण जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेंगें ॥५९॥ हे राजन् ! जब इस प्रकारसे दुर्वासाजीको महादेवजीने भी शरणमें न रक्खा और कोरा जवाब दिया तब वह भगवान्‌के धाम वैकुण्ठको गये कि, जहाँ भगवान् श्रीनिवास लक्ष्मीजीके साथ विराजमान थे ॥ ६० ॥ यह ऋषि कम्पायमान होकर श्रीभगवान्‌के चरणोंपर गिर पडे और कहने लगे कि, हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे साधुजनोंके

मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ॥ विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययाऽऽवृताः॥५८॥तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ॥ तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥५९॥ ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ॥ वैकुंठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ॥ आहाच्युतानंत सदीप्सितप्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ ६१ ॥ अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ॥ विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ॥ श्रियं चात्यंतिकीं ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा ६४ ॥

भय हरनेवाले ! हे प्रभो ! मैंने बडा भारी अपराध किया है. हे विश्वभावन ! मेरी रक्षा करो ॥ ६१ ॥ हे प्रभो ! आपके परमप्रभावको न जानकर मैंने आपके प्रिय भक्तका अपराध किया है. सो हे प्रभो ! अब इस अपराधका आप प्रायश्चित्त बताइये कि, जिससे मेरा छुटकारा हो. हे भगवन् ! जो आपके भक्तका द्रोह करता है उसका छुटकारा नहीं हो सकता यह बात ठीक नहीं. क्योंकि जिनका नाम लेते ही नरकमें पडा हुआ पुरुष मुक्तिको प्राप्त होजाता है, उसके लिये असाध्य क्या ? ॥६२॥ यह वचन सुनकर श्रीभगवान् बोले कि, हम भक्तके वश हैं, इसलिये परवश के समान हैं भक्तजन हमारे प्रिय हैं, इससे भक्त साधुगण हमारे हृदयको ग्रसे हुए हैं ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिन मनुष्योंकी गति एक मुझसे ही

होती है उन सब साधुपुरुषोंके सिवाय अपनी आत्माको और अत्यन्त लक्ष्मीको भी हम प्यार नहीं करते॥६४॥जो पुरुषगण स्त्री, पुत्र, गृह, स्वजन, धन, प्राण और इसलोक व परलोक सबको छोडकर हमारी शरणमें आये हैं, हम उनको त्याग करके किस प्रकार उत्साहित हो सकते हैं?॥६५॥ हे मुनिमहाराज! सर्वत्र समदर्शी साधुपुरुष लोग हममें अपने अपने हृदयको बांध हमको अपने वश किय हुए हैं कि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको अपने वश करलेती है ॥ ६६ और वह भक्तगण साधुसेवाद्वारा सालोक्यादि चारों पदार्थोंके सम्मुख आनेपर भी उनके ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, वह साधुसेवासे ही परितृप्त होजाते हैं, इसलिये कालसे नाश होनेवाली और किसी वस्तुमें उनकी अभिलाषा होनेकी

ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमं परम् ॥ हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥मयि निर्बद्धहृदयाः
साधवः समदर्शनाः ॥ वशे कुर्वंति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६६ ॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतु
ष्टयम् ॥ नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥ ६७ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ॥ मदन्य
त्ते न जानंति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८ ॥ उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ॥ अयं ह्यात्माभिचारस्ते
यतस्तं यातु वै भवान् ॥६९॥ साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ॥
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥

696

क्या सम्भावना है? ॥६७॥ और जिन २ पुरुषोंने हमको अपना हृदय अर्पण कर दिया है, हम उनके हृदयको जानते हैं, वह हमारे अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते और हम भी उनके अतिरिक्त और किसीको नहीं समझते ॥ ६८ ॥ इसलिये हे मुने! जिससे कि, यह तुम्हें हिंसा उत्पन्न हुई है उसके ही निकट तुम बिना विलम्ब किये चले जाओ. हे मुने! क्या तुम यह नहीं जानते हो कि, साधु लोगोंके ऊपर चलाया हुआ तेज प्रहार करनेवालेका ही अमंगल करता है ॥६९॥ ब्राह्मणोंकी तपस्या और विद्या यह दोनों भला करनेवाली तो हैं परंतु दुर्विनीत स्वामीके

लिये यह दोनों विपरीत फल देनेवाली , परंतु इस समय अपनी तपोविद्याको मनमें लाय इस अनर्थ घटनापर विस्मय करना आपको योग्य नहीं है ॥ ७० ॥ इस समय तुम महाभाग नाभागपुत्र राजा अम्बरीषके निकट जाओ जिससे तुम्हारा मंगल हो, उसी पृथ्वीपतिसे क्षमा मांगनेका यत्न करो तब इस उत्पातकी शांति होगी ॥ ७१॥ इतिश्रीभाषाभागवतते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामम्बरीषोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–अम्बरीष हरिचक्रकी, विनय करी शिर नाय। ब्राह्मणकी रक्षा करी, इस पञ्चम अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,

ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥ क्षमापय महाभागं ततः शांतिर्भविष्यति ॥७१॥इति श्रीमद्भागवते म०नवमस्कंधे अम्बरीषोपाख्याने दुर्वासोऽनुतापशमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥श्रीशुक उवाच॥एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥ अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत्॥१॥तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः॥ अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥२॥ अम्बरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः॥ त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेंद्रियाणि च ॥ ३ ॥

हे कुरुकुलभूषण ! चक्रकी अग्निसे संतापित हुए दुर्वासा ऋषि विष्णुभगवान्की आज्ञासे उसी समय राजा अम्बरीषके यहां गये और दुःखित हो इस राजर्षिके चरण पकडनेको झपटे ❋ ॥ १ ॥ जब यह चरण छूने लगे, तब राजर्षि अम्बरीष अत्यन्त लज्जित और दुर्वासाजीको ऐसा व्याकुल देख व्यथा पाय भगवान्के चक्रकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ राजा अम्बरीष बोले कि,हे सुदर्शन! तुम ही भगवान् सूर्य हो और तुम ही सब नक्षत्रोंके स्वामी चंद्रमा हो, तुम ही जल, तुम ही भूमि,तुम ही आकाश, तुम ही पवन,तुम ही मात्रा और तुम ही सब इंद्रिय हो अर्थात्

शंका–दुर्वासामुनि भगवान्के चक्रके तेजसे भस्म होनेको प्रस्तुत थे, तो फिर उन्होंने अम्बरीषके चरण कैसे ग्रहण किये ? यह तो बडा अयोग्य कर्म है,दुर्वासाऋषि कुछ कलियुगी ब्राह्मण तो थे नहीं जो कि, देहके सुखके लिये नीच कर्म करने लगते,वह तो महाप्रतापी और परम तेजस्वी ब्राह्मण थे, फिर इन्होंने नीच कर्म क्यों किया ?

उत्तर–दशसहस्र(१००००)ब्राह्मणोंको साथ लिये दुर्वासाऋषि बडे अभिमान सहित त्रिलोकीमें घूमते फिरा करते थे और त्रिलोकीके मनुष्योंको शाप देदेकर बहुत दुःखी कर दिया,करते,जो कोई किंचिन्मात्र भी अपराध करता उसको ऐसा भारी शाप देते कि वह बहुत कालतक कष्ट पाता,तीनों लोकोंको कम्पायमान देखकर भगवान् महादेवने दुर्वासा ऋषिका अभिमान भञ्जन करनेके लिये यह धर्म करके त्रिलोकीको सुखी किया, क्योंकि दुर्वासा ऋषिके चित्तमें अम्बरीषका चरित्र खटकने लगा,वह विचारके क्रोध करने लगे,इस लिये मोहको प्राप्तहुए दुर्वासा ऋषिने अम्बरीषके चरणोंको ग्रहण किया ॥

तुम्हारी ही शक्तिसे अग्नि आदि अपना अपना कार्य करते हैं ॥३॥ इसलिये तुम्हें नमस्कार है. हे अच्युतप्रिय! तुम्हारी हजार धार हैं. हे सर्वघातिन्! हे पृथ्वीनाथ! इस ब्राह्मणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे सुदर्शन ! ब्राह्मणकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य कर्म है, क्योंकि तुम साक्षात् धर्म, अमृत, सत्य, यज्ञमूर्ति और सब यज्ञोंके भोगनेवाले हो, अधिक क्याके तुमही लोकपाल और ईश्वरका परम सामर्थ्य हो । हे चक्र ! तुम्हारा नाम सुदर्शन है, इसका अर्थ भगवान्के शोभायमान दर्शन, भगवान्के दर्शनसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुमही सर्वात्मा हो ॥ ५ ॥ और तुम अद्भुतकर्मकारी हो; क्योंकि अखिल धर्मके सेतुस्वरूप हो, इसलिये तुम ही अधर्म करते हुए असुर लोगोंको धूमकेतु अर्थात् दाहक हो,

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय॥सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥ त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं
त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ॥ त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥५॥ नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशी
लासुरधूमकेतवे॥ त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः
प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ॥ दुरत्ययस्ते महिमा गिरांपते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७ ॥ यदा विसृष्टस्त्वमनं
जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ॥ बाहूदरोर्वंघ्रिशिरोधराणि वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं
जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ॥ विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥९ ॥

तुम्हारा तेजसमूह अतिउज्ज्वल है. तुम त्रिलोकीके रक्षक हो, तुम मनके समान वेगवान् हो, तुम्हारी स्तुति करनेका सामर्थ्य किसमें है ? इसलिये मैं तुम्हारे प्रति केवल नमः शब्दका प्रयोग करता हूँ ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्ममय तेजसे अंधकार दूर होता है और महात्मा लोगोंकी दृष्टि प्रकाशित होती है । हे वाणीनाथ ! तुम्हारी महिमा अपरंपार है । सत्, असत्, पर, अपर इत्यादि समस्त पदार्थ तुम्हारे ही स्वरूप हैं, क्योंकि सुर्यादिका प्रकाश भी तुमसे ही होता है॥७॥ हे अनंत ! अनञ्जन भगवानके करसे जब तुम छोडे जाते हो, तब दैत्य दानवोंके बीचमें प्रवेश कर उनकी भुजायें, पेट, जाँघें, चरण और कन्धोंको काटतेहुए समरमें विराजमान होते हो ॥ ८॥ हे जगत्त्रातः! तुम ऐसे गुणोंसे युक्त

हो कि, भगवान् गदाधरने खल पुरुषोंके मारनेको तुम्हें नियुक्त किया है इसलिये हमारे कुलका सौभाग्य करनेको तुम इस विपदमें पडे हुए ब्राह्मणका मंगल करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा बडा भारी अनुग्रह मेरे ऊपर होगा ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन ! यदि हमारे किसी दान करनेसे वा किसी यज्ञ करनेसे कुछ पुण्य हुआ हो, यदि मैंने अपने धर्मका भलीभांतिसे अनुष्ठान किया हो, यदि मेरे कुलदेवता ब्राह्मण हों तो मेरी यही प्रार्थना है कि,इस धर्मके प्रभावसे यह मुनिजी शीघ्र निष्कण्टक होजायँ ॥ १० ॥ और अनुपम वह सब प्राणियोंके प्रति आत्मभावके हेतु सर्वगुणोंके आश्रय भगवान् यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो उनके प्रसादसे यह ब्राह्मण शीघ्र संतापरहित हों॥ ११॥हे राजन्!जबराजा अम्बरीषने इस प्रकार

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥१०॥ यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ॥ सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया॥१२॥स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः॥ प्रशशंस तमुर्वीशं युंजानः परमाशिषः॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनंतदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे॥ कृतागसोऽपि यद्राजन्मंगलानि समीहसे ॥१४॥दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम्॥ यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः॥ १५॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः॥ तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥ १६ ॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिकरुणात्मना ॥ मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७ ॥

स्तुति की तब भगवान्का सुदर्शन चक्र जो ब्राह्मणश्रेष्ठ दुर्वासाजीको जलाये देता था; इन राजर्षिकी प्रार्थनासे शांत होगया ॥ १२ ॥ इसलिये दुर्वासाजी अस्त्राग्निके तापसे छुटकारा पाय कल्याणवान् हुए । फिर दुर्वासा मुनि राजाको आशीर्वाद दे अनेक अनेक प्रशंसा करने लगे॥१३॥ दुर्वासाजी बोले,अहो ! भगवद्भक्तोंकी अद्भुत महिमा आज हमने देखी. हे राजन्!यद्यपि हमने अपराध किया तो भी तुमने हमारी भलाईहीचाही ॥१४॥ अथवा जिन पुरुषोंने सात्वतपति भगवान्को अपने वश किया है उन महात्माको साधुपुरुषोंके लिये कौन बात दुस्त्यज वा दुर्लभ है? ॥१५॥ जिनका नाम श्रवण करते ही पुरुष निर्मल होजाता है; तीर्थपद भगवान्के उन दासोंसे कौनसा कार्य बच रहा है?॥१६॥ हे राजन् ! तुम

अतिकरुणात्मा हो, हमपर आपने बडा भारी अनुग्रह किया. क्योंकि हमारे अपराधकी ओर न निहारकर हमारे प्राणोंकी रक्षा की ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे परीक्षित् ! अबतक राजा अंबरीषने भोजन नहीं किया था. इस राजाने फिर कभी इनके आनेको प्रार्थना की और वारवार इनके चरणकमलोंकी वन्दना करके भोजन कराया ॥ १८ ॥ आदरसहित आये हुए सर्वाभिलाषकी पूर्णकरनेवाली पड्डुनईको मानकर महर्षि दुर्वासाजीको अतिसन्तोष उत्पन्न हुआ.दुर्वासाजी आहार करनेके उपरांत राजासे बोले कि, हे महाराज ! तुम भी भोजन करो॥ १९ ॥हे महिपाल ! तुम परमभागवत हो ! हमारे ऊपर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह हुआ, तुम्हारे दर्शन कर और तुम्हारे संभाषण करनेसे जिससे कि, आत्मामें

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकांक्षया ॥ चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥ सोऽशित्वाऽऽहृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ॥ तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ॥ दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २० ॥ कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ॥ कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः । ययौ विहायसाऽऽमंत्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ॥ मुनिस्तद्दर्शनाकांक्षी राजाब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोंऽबरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत्॥ ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्धा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम्॥ २४ ॥

बुद्धि होती है ऐसा आतिथ्य जो तुमने किया इससे हमको बहुत ही प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ २० ॥ स्वर्गवासी देवता लोगोंकी स्त्रियें इस निर्मलकर्मको सदा गावेंगी और पृथ्वीके रहनेवाले सदा तुम्हारी परमपवित्र कीर्तिको गावेंगे ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजा परीक्षित् ! महर्षि दुर्वासाजी संतुष्टमनसे इस प्रकार कहकर राजर्षि अम्बरीषके साथ वार्त्तालाप करके आकाशमार्गसे हो ब्रह्मलोकको चले गये ॥२२॥परंतु वह गमन करके जबतक न आये थे, तबलों एक वर्ष समयतकके बीतनेपर भी राजा अंबरीष उनके दर्शनकी इच्छासे केवल जलही पीकर रहे थे ॥ २३ ॥ इसके उपरांत एक वर्ष पीछे जब वह ऋषि आये तब राजा अंबरीषने ब्राह्मणभोजनसे जो पवित्र हुआ आहार सो भोजन किया और

ऋषिकी विपद व उद्धारकी बात स्मरण करके अपने धैर्यादिरूप वीर्य और भगवान्‌के प्रभावको आधार मानने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! अंबरीष राजामें इस प्रकारके अनेक गुण हैं, वह अपने क्रियाकर्मसे परमात्मा भगवान् वासुदेवके प्रति परमभक्ति दिखलाते थे,उसी भक्तिके प्रभावसे ब्रह्मपदके सहित सब प्रकारके भोग इनके सन्मुख सदा प्राप्त रहते थे, परन्तु यह सब उनको नरकके समान जानते थे ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! तिसके उपरांत यह वीर अपने समान वीर्यवान् पुत्रको राज्यभार सौंप वनमें चला गया । जब कि इस राजर्षिने अपना मन व अत्मा भगवानमें लगा दिया था, इसलिये उनका गुणप्रवाह विध्वंस हो गया अर्थात् आवागमनसे इनका छुटकारा होगया॥२६॥हे राजन्!

एवंविधाऽनेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिंचान्निरयांश्चकार
॥ २५ ॥ अथांबरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः ॥ वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद् ध्वस्तगुण
प्रवाहः ॥ २६ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानमंबरीषस्य भूपतेः ॥ संकीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७ ॥ इति
श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे अबरीषोपाख्याने दुर्वासउपचरणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
विरूपः केतुमान् शंभुरंबरीषसुतास्त्रयः ॥ विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां
तंतवेऽर्थितः ॥ अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥

राजा अंबरीषके इस पवित्र चरित्रको जो मनुष्य सुनेंगे और ध्यान करेंगे,सो भगवान्‌के भक्त होंगे और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन महाराज अम्बरीषके चारित्रको गान करेंगे वह समस्त भगवान्‌विष्णुके प्रसादसे सरलतापुर्वक मुक्तिपदवीको प्राप्त होंगे॥२७॥इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामंबरीषचारित्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–अम्बरीष अध्याय षट, अरु शशाद इतिहास । मान्धात इक्ष्वाकुकुल, सौभरि-ऋषी-विलास ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! राजा अम्बरीषके विरूप, केतुमान् और शंभु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए. तिनमें विरूपका पुत्र पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर हुआ ॥१॥रथीतरके पुत्र वा कन्या कुछ नहीं हुआ. वह निःसंतान था.जब इसने संतानके

लिये महर्षि अंगिराजीसे प्रार्थना की तब महर्षि अंगिराजीने उनकी भार्यामें ब्रह्मतेजसे युक्त कई पुत्र उत्पन्न कर दिये ॥ २ ॥ हे राजन् ! अंगिराजीसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, वह रथीतरके क्षेत्रमें उलटा होनेके कारण यद्यपि रथीतर गोत्री हुए थे, तो भी अंगिराजीके वीर्यसे उनकी उत्पत्ति होनेके कारण आंगिरस नामसे विख्यात हुए । अधिक करके इनके क्षत्रोपेत ब्राह्मण होनेपर रथीतरकी दूसरी सतानमें मुख्य थे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! मनुके दश पुत्रोंमें पृषध्र और कवि संसारत्यागी हुए थे, इसलिये उनका वंश नहीं हुआ। करूषादि सप्त पुत्रोंका वंश प्रथम कहा गया है. इक्ष्वाकुका वंश बहुत बड़ा है इसलिये पहले नहीं कहा, अब कहते हैं, छींकें लेते हुए मनुकी नासिकासे मनु पुत्र इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई । इन इक्ष्वाकुके शत पुत्र हुए । तिनमें विकुक्षि, निमि और दण्डकादि श्रेष्ठ थे ॥ ४ ॥ इन शतपुत्रोंमें पचीस जन विंध्याचल और हिमालय पर्वतके मध्यमें पूर्वकी ओर आर्यावर्त्तके सम्मुख समुद्रतक एक एक मण्डलके राजा हुए. इसी प्रकार पश्चिममें भी इनमेंसे पचीस पुत्र एक एक मण्डलके राजा हुए, परन्तु मध्यस्थलमें ज्येष्ठ तीन पुत्र और दक्षिण उत्तरादि भागमें और पुत्रगण राजसिंहासनपर बैठे ॥ ५ ॥ एक दिन राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके लिये विकुक्षिको निकट बुलाकर कहा, हे वत्स ! शीघ्र वनमें जाय श्राद्धके लिये पवित्र मांस लाओ ॥ ६ ॥ विकुक्षि "बहुत अच्छा" कह वनमें चला गया और श्राद्धके योग्य अनेक पशुओंको मारने लगा । तिसके उपरांत जब विकुक्षि थककर भूखा हो गया तब इसने भूलकर मारे हुए पशुओंमेंसे ऐक खरहे (खरगोश) का मांस भूनकर खा लिया ॥ ७ ॥ फिर अवशिष्ट मांस लेकर पिताके निकट आया और सब उनको देदिया । इक्ष्वाकु राजाने उस मांसका श्राद्धोचित संस्कार करनेके लिये कुलगुरु वसिष्ठजीको बुलाया तब वसिष्ठजीने कहा कि, यह मांस दूषित होगया, इसलिये श्राद्धकर्मके योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरसाः स्मृताः ॥ रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥ क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वा
कुर्घ्राणतः सुतः ॥ तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदंडकाः ॥ ४ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ॥ पंचविंशतिः
पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥ स एकदाऽष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ॥ मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ
मा चिरम् ॥ ६ ॥ तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् ॥ श्रांतो बुभुक्षितो वीरः शशं चाऽऽददपस्मृतिः ॥ ७ ॥
शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ॥ चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥

6915

जब महर्षि वसिष्ठजीने सब ब्योरा भलीभाँति कह सुनाया तब राजानें अपनें पुत्रके कर्मको जानकर उसको अपने देशसे निकाल दिया, क्योंकि श्राद्धके योग्य मांसका प्रथम भाग ग्रहण करलेनेसे उसका सदाचार छूट गया था ॥ ९ ॥ तिसके पीछे राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठजीके साथ ब्रह्म ज्ञानका विचार करने लगे. फिर राज्यभोगसे विरागी हो गये और योगके द्वारा शरीरको छोड़ परमतत्त्वको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ जब पिता वनको चले गये तब विकुक्षि अपने देशमें आय शशाद नामसे विख्यात हो पिताके राज्यको ग्रहण कर उसको पालने लगा. इस शशादने यज्ञोंको करके भगवान् वासुदेवकी पूजा की. राजाने शशाका मांस जो खा लिया था इसलिये इसका नाम शशाद प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ शशादका पुत्र पुरञ्जय हुआ. यह पुत्र इन्द्रवाह नामसे भी विख्यात था और कोई२ इसको ककुत्स्थ भी कहते हैं. जिन कर्मोंके करनेसे इनके यह कई नाम हुए,

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः ॥ देशान्निस्सारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥ स तु विप्रेण संवादं
जापकेन समाचरन् ॥ त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ॥
शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥ पुरंजयस्तस्य सुत इंद्रवाह इतीरितः ॥ ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु
नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥ कृतांत आसीत्समरो देवानां सह दानवैः ॥ पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥
वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभो ॥ वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४ ॥ स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय
विशिखाञ्छितान् ॥ स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥

हम उनको कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ १२ ॥ पहले समयमें जब दानवोंके साथ देवता लोगोंका विश्वविनाशन संग्राम हो रहा था, उस समय देवताओंने दैत्योंसे पराजित हो इस वीरको अपना सहायक बनाया ॥ १२ ॥ इसने कहा कि जब इन्द्र हमारे वाहन बनें तो हम अवश्य दैत्योंका वध करेंगे. यह कहकर इन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था । पहले तो इन्द्रने लाजके मारे इस बातको नहीं माना, फिर विश्वात्मा देवदेव विष्णुके कहनेसे पुरंजयका वाहन होनेके लिये महावृषभ हुए। "जब इस प्रकारसे इन्द्र इनके वाहन हुए तब इन पुरञ्जयका नाम इन्द्रवाह हुआ " ॥ १४ ॥ तिसके पीछे राजा पुरञ्जय बख्तर पहर दिव्य धनुष और बहुत सारे तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके उस बैलकी पीठपर जाय

विराजे। यह देखकर देवतालोग उनकी पूजा करनेलगे ॥१५॥ फिर महात्मा पुरञ्जयने परमपुरुष विष्णुजीके तेजसे बढकर देवतालोगोंके द्वारा पश्चिम दिशासे दैत्योंकी पुरीको घेरा ॥ १६ ॥ तिसके उपरांत इन पुरञ्जयके साथ दैत्यलोगोंका घोर संग्राम हुआ. जो दैत्य संग्राममें इनके सम्मुख आया, सबकोही इन नरनाथने यमराजके भवनको भेज दिया ॥ १७ ॥ प्रलयाग्निके समान इन महाराजके उल्बण बाणोंका उत्पात देख सब बचे बचाये दैत्य पातालको भाग गये ॥ १८ ॥ दैत्योंके भागनेपर इस राजर्षिने स्त्रियोंके सहित समस्त धन और पुर जीतकर देवराज इन्द्रको दे दिया। इन कार्योंके करनेसे इन महाराजका पुरञ्जय नाम हुआ ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! राजा परीक्षित! इस पुरञ्जयका पुत्र अनेना

तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः॥प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्रिदशैः पुरम् ॥१६ ॥ तस्तस्य चाभू
त्प्रधनं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे॥१७॥ तस्येषुपाताभिमुखं युगांताग्निमिवोल्बणम् ॥
विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानास्स्वमालयम् ॥ १८ ॥ जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ॥ प्रत्ययच्छत्स राजर्षि
रिति नामभिराहृतः ॥१९॥ पुरंजयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः॥ विश्वरंधिस्ततश्चंद्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २० ॥
शाबस्तस्तत्सुतो येन शाबस्ती निर्ममे पुरी ॥ बृहदश्वस्तु शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१॥ यः प्रियार्थमुतंकस्य
धुंधुनामाऽसुरं बली ॥ सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद् वृतः ॥ २२ ॥ धुंधुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ॥
धुंधोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ॥ दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो
निकुंभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥

था, इसका पुत्र पृथु, तिससे विश्वगन्धिने जन्म ग्रहण किया. तिसका पुत्र चन्द्र, तिसका युवनाश्व हुआ ॥ २० ॥ युवनाश्वका पुत्र शाबस्त हुआ, जिसने शाबस्तीपुरी बसाई. इस शाबस्तका पुत्र बृहदश्व; उसका पुत्र कुवलयाश्व हुआ ॥२१॥इस महाबलवान् राजाने उत्तङ्कऋषिका प्रिय कार्य करनेको अपने इक्कीस सहस्र (२१०००) पुत्रोंको साथ ले धुन्धुनामक असुरको मार डाला था ॥ २२ ॥ इससे इसका नाम धुन्धुमार हुआ; परन्तु इसके समस्त पुत्र धुन्धुकी मुखाग्निसे भस्म हो गये. केवल तीन बचे थे अर्थात् दृढाश्व,कपिलाश्व और भद्राश्व, इन

111

तीनोंमें दृढाश्वका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ ॥ २३ ॥ २४ ॥ निकुम्भका पुत्र बहुलाश्व कि, जिससे कृशाश्व उत्पन्न हुआ. इस कृशाश्वका पुत्र सेनजित् नामक हुआ । उसका पुत्र युवनाश्व हुआ । यह युवनाश्व सन्तानरहित था, इसलिये वनको चला गया॥२५॥ इसके सौ १०० स्त्री थीं, संतानके न होनेसे वनमें जाकर यह अपनी सब भार्याओंके साथ सदा शोकाकुल रहा करता था, यह देख वनवासी ऋषि लोगोंने राजापर दया की और पुत्रके लिये सावधान हो उस राजासे इन्द्रदैवत्य यज्ञ कराने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! अब आश्चर्यकी बात सुनो, जब कि यज्ञ हो रहा ही था, तभी युवनाश्व एक दिन रात्रिके समय प्यासा हो जलके लिये यज्ञशालामें गया उस समय यज्ञ करानेवाले

बर्हणाश्वो निकुंभस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित्॥ युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः॥२५॥भार्याशतेन निर्विण्ण
ऋषयोऽस्य कृपालवः ॥ इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैंद्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६ ॥ राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ॥
दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मंत्रजलं स्वयम् ॥२७॥ उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ॥ पप्रच्छुः कस्य
कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम्॥२८॥राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते ॥ ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥२९॥

ब्राह्मण सो रहे थे, तब राजाने उस जलको उठाकर पी लिया कि जो राजाकी स्त्रीको देनेके लिये मंत्रसे पढ़कर रक्खा गया था* ॥२७॥ जब पुरोहित लोग जागे तो उन्होंने देखा कि, कलशमें जल नहीं इसलिये विस्मित होकर पूँछा कि "यह कर्म किसका है ? पुत्रके उत्पन्न करने वाले जलको कौन पी गया" ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त जब ज्ञात हुआ कि, ईश्वरप्रेरित होकर राजाने यह जल स्वयं पान कर लिया है तब "अहो ! भाग्य बड़ा बली है, पुरुषका बल किसी कामका नहीं" वाक्य उच्चारण करते हुए ईश्वरको वारंवार नमस्कार करने लगे ॥२९॥

---

* **शंका**–राजा युवनाश्वने आप उठकर चोरके तुल्य ब्राह्मणोंको सोता देखकर यज्ञका जल पीलिया, अनुचरोंके होते यह बालकोंके समान कर्म राजाने क्यों किया ?

उत्तर–पुष्करजीमें राजा युवनाश्व गंगाजीके राजा–शन्तनुके वीर्यसे गर्भ देखकर बहुत हँसा, परन्तु गंगाजीने युवनाश्वके अपराधका कुछ ध्यान न किया और क्षमा किया, परन्तु राजाके अपराधको भगवान्ने क्षमा नहीं किया, इसलिये राजाओंमें श्रेष्ठ जो युवनाश्व राजा था उसको माया करके मूर्ख बना दिया और वह जल पिलाकर उसको गर्भ धारण करा दिया कि, जैसे तू गर्भ देखकर हसाँ था ऐसेही तेरा गर्भ देखकर लोग हँसेंगे ।

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ॥ युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं
स्तन्यं रोरूयते भृशम् ॥ मां धाता वत्स मा रोदीरितींद्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥ न ममार पिता तस्य विप्रदेव
प्रसादतः ॥ युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितींद्रोंऽग विदधे नाम तस्य वै ॥ यस्मात्रसंति
ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥ यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ॥ सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा
॥ ३४ ॥ ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद् भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतींद्रियम् ॥ ३५ ॥
द्रव्यं मंत्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथार्त्विजः ॥ धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥ यावत्सूर्य उदेति स्म
यावच्च प्रतितिष्ठति ॥ सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७ ॥ शशबिंदोर्दुहितरि बिंदुमत्यामधान्नृपः ॥
पुरुकुत्समंबरीषं मुचुकुंदं च योगिनम् ॥ ३८ ॥

इसके पीछे जब समय पूर्ण हो गया, तब युवनाश्वरकी दाहिनी कोख फाडकर चक्रवर्तिलक्षणोंसे युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ यह देखकर ब्राह्मणलोग दुःखित हो यह कहकर चिल्लाने लगे कि हा ! यह कुमार दूध पीनेको बहुत रो रहा है; सो अब क्या पियेगा ? तब देवराज इन्द्र वत्स ! रोवे मत "मां धाता अर्थात् मुझे पान कर" यह कहा और अपनी अंगुली पीनेको दी इसी लिये इनका नाम मान्धाता हुआ ॥ ३१ ॥ मान्धाताके पिता युवनाश्व देव ब्राह्मणोंके प्रसादसे मरे नहीं बरन् उन्होंने तप करके कुछ दिनों पीछे उसी स्थानमें सिद्धि प्राप्त की ॥ ३२ ॥ रावणादि चोरगण इस मांधाताके प्रतापसे कम्पायमान हो त्रासित होते थे, इस लिये इन्द्रने मान्धाताका दूसरा नाम 'त्रसद्दस्यु' रक्खा था, तिसके उपरान्त युवनाश्वका पुत्र सम्राट् हो भगवान् वासुदेवके तेजसे अकेला ही सप्तद्वीपोंको पालता था ॥ ३४ ॥ ३३ ॥ आत्मवान् होकर भी अनेक अनेक दक्षिणा दे अनेक यज्ञ करने लगा, उनसे यज्ञरूपी सर्व देवमय सर्वात्मक सब इन्द्रियोंसे परे उन देवताकी पूजा करने लगा ॥ ३५ ॥ कि द्रव्य, मंत्र, बलि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विक्, धर्मोपदेश और काल यह सब जिसके स्वरूप हैं ॥ ३६ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जहाँसे सूर्य भगवान् उदय होते हैं और जहाँ अस्त हुआ करते हैं, इतनी दूरतक सब स्थान युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके क्षेत्र कहे जाते थे ॥ ३७ ॥ इस राजा मान्धाताके शशबिन्दुकी पुत्री इन्दुमतीके गर्भसे पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द यह तीन पुत्र हुए ॥ ३८ ॥

इन तीन पुत्रोंकी ५० पचास बहनेंथीं अर्थात् तीन पुत्रोंके अतिरिक्त मान्धाताके पचास ५०कन्या हुई थीं और वह सब सौभरि ऋषिको ब्याही गई ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! सौभरि यमुनाके जलमें बैठे तप कर रहे थे, तब उन्होंने मीनराजके मैथुनका आनन्द देखा कि; जिससे इनका भी विवाह करनेमें बड़ा भारी अनुराग हुआ, इसलिये तप करना छोड़ मान्धाताके निकट जाय अपनी स्त्री बनानेको एक कन्या माँगी ॥ ४० ॥ मान्धाताने इन ऋषीश्वरकी प्रार्थना सुनकर कहा कि, हमारी कन्याका स्वयंवर होगा सो जो कन्या तुम्हें वरे उसको तुम लेना यह सुनकर सौभरिने मनमें समझा कि, हम जरा(बुढापा)से जीर्ण होगये हैं और हमारे केश श्वेत हो गये हैं, बडी अवस्था होजानेसे मस्तक कम्पायमान होता है, तिसपर हम तपस्वी हैं यही जानकर राजा हमें कन्या देनेको सम्मत न हुए । इन्होंने हमें स्त्रियोंका कुप्यारा जान छलसे

तेषां स्वसारः पंचाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ यमुनांतर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ॥३९॥ निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य
मैथुनधर्मिणः ॥ जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥ ४० ॥ सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ॥
स विचिंत्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ॥ ४१ ॥ वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ साधयिष्ये तथात्मानं
सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ॥ किं पुनर्मनुजेंद्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥४२॥ मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्यांतःपुरमृद्धिमत्॥
वृतश्च राजकन्याभिरेकः पंचाशता वरः॥ ४३ ॥ तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ॥ ममानुरूपो नायं वा
इति तद्गतचेतसाम् ॥ ४४ ॥

हमको लौटाय दिया. अच्छा, अब हम अपनी चेष्टा ऐसी बनाते हैं कि, जिससे मनुष्य स्त्रियोंकी तो बात ही क्या ? सुरसुन्दरी भी देखकर चाहना कर बैठें।यह सोच विचार इस कार्यके करनेको निश्चय किया इसके उपरान्त तपःप्रभावसे इनका रूप वैसे ही हो गया जैसा कि,इन्होंने सोचा था ॥४१॥४२॥उसी समय राजपुत्रीप्रतिहारी इनको राजकन्याओंके अन्तःपुरमें ले गयी।तिससे पचासो कन्याओंने एक इनको अपना पति वरण किया ॥ ४३ ॥ हे राजन्। मान्धाताकी कन्याओंमें प्रथम परस्पर बडा प्रेम था,परन्तु सौभद्रि ऋषिसे ब्याह करनेके लिये उनमें चित्त लगाय सबकी सब परस्पर क्लेश करने लगीं और बोलीं कि “यह हमारे योग्य वर हैं,तुम्हारे योग्य नहीं हैं”बस इन ऋषिके लिये उनमें बडा

क्लेश मचने लगा तब सौभारि ऋषि बोले कि,तुम सबही हमसे विवाह करलो ॥ ४४ ॥ सौभरि ऋषि तपःसामर्थ्यसम्पन्न थे.उनके कठिन तपःप्रभावसे उसी समय प्रत्येक भवनमें अनमोल सामग्री प्रस्तुत हुई और अनेक प्रकारके वन उपवन शोभायमान होने लगे,सरोवरोंमें सुगन्धित कुमुद, कह्लारके वन फूल उठे. जितनें गृह थे, सब दास दासियोंसे भलीभाँति शोभायमान होगये और सब कहीं भ्रमर गुंजार करने लगे, बन्दियोंने मधुर स्वरसे गाना आरम्भ किया, वे ऋषि महामोलकी शय्या, आसन, वसन, भूषण, स्नान व उबटनादिसे सम्पन्न हो सब गृह व उपवनादिमें अपनी सब स्त्रियोंसहित सदा विहार करनें लगे ॥४५॥ ४६ ॥ हे राजन् ! सौभरिका गृहस्थाश्रम देखकर सात द्वीप पृथ्वीके राजा मान्धाताजी अतिविस्मित होगये। इन्होंनें अपने राज्य और सम्पत्तिका गर्व छोड़ दिया ॥ ४७ ॥ सौभारि ऋषि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें रहकर भोगविलासके सुख भोगने लगे, परन्तु तो भी उनको किसी प्रकारसे तृप्ति नहीं हुई कि, जिस प्रकार घीकी बूँदें गिरनेसे अग्नि बढ़ती ही है, घटती नहीं ॥ ४८ ॥ किसी समय ऋग्वेदाचार्य यह सौभारि ऋषि एकान्तमें बैठ अपने आपकी चिन्ता करने लगे तब वह उस तपस्याकी हानिको समझे, जो उनको मत्स्यके संसर्गसे प्राप्त हुई थी ॥ ४९ ॥ इसलिये अछता पछताकर आप ही आप बोले कि, हाय ! हम साधुचरित्रव्रत और तपस्वी थे; हमारा यह नाश देखो । जलमें जलचरके संगमें रहनेसे सदाका इकट्ठा किया तपस्यारत्न खोदिया ॥ ५० ॥मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि, दाम्पत्य धर्मवान् पुरुषोंका संग त्याग करें और इन्द्रियोंकी अग्नि उत्पन्न करनेको रोकना भी उनका

स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपश्श्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ॥ गृहेषु नानोपवनामलांभस्सरस्सु सौगंधिककाननेषु ॥ ४५ ॥
महाऽर्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ॥ स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृंगबंदिषु
॥ ४६ ॥ यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ॥ विस्मितः स्तंभमजहात्सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥ ४७ ॥ एवं गृहे
ष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ॥ सेवमानो न चाऽतुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥ स कदाचिदुपासीन आत्माप
ह्नवमात्मनः ॥ ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसंगसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रत
स्य॥अतर्जले वारिचरप्रसंगात्प्रच्यावित ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥ संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना
न विसृजेद्बहिरिंद्रियाणि ॥ एकश्चरन्रहसि चित्तमनंत ईशे युंजीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसंगः ॥ ५१ ॥

आवश्यकीय कार्य है। अकेले निर्जन वनमें भ्रमण करके अनन्त परमेश्वरमें चित्त लगाना उचित है। जो कहीं प्रसंग आजाय तो ईश्वरके लिये केवल धर्मवान् साधुका संग करना चाहिये ॥ ५१॥ हम अकेले जलमें तप कर रहे थे, वहाँ मत्स्यसंसर्गवश भार्या ग्रहण करनेकी हमारी अभिलाषा हुई और एकके बदले (५०) पचास करी और एक एक स्त्रीके गर्भसे सौ सौ पुत्र उत्पन्न हुए कि जिससे सब पाँच हजार हुए तो भी हम इस लोक व परलोकके मनोरथका अंत नहीं पाते, क्योंकि मायाके गुणसे मेरी मति हरी गई इसलिये मैं विषयमें ही पुरुषार्थ समझता हूँ॥५२॥हे राजन्! जब सौभरि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें वास करते करते विरक्त हुए तब संग छोडनेको वानप्रस्थधर्म धारण कर वनको चले गये। उनकी पतिपरायण सब स्त्रियें उनके संग संग चलीं॥५३॥आत्मज्ञानके जाननेवाले यह मुनि जिससे परमात्मा मिल जाय

एकस्तपस्व्यहमथांभसि मत्स्यसंगात्पञ्चाशदासमुतपञ्चसहस्रसर्गः॥ नांतं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृत
मतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२॥ एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ॥ वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥
॥ ५३ ॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् ॥ सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥५४॥ ताः स्वपत्युर्म
हाराज निरीक्ष्याऽऽध्यात्मिकीं गतिम् ॥ अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शांतमिवार्चिषः ॥५५॥ इति श्रीभागव०म०नवम०
इक्ष्वाकुवंशवर्णने सौभर्याख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मांधातुः पुत्रप्रवरो योंऽबरीषः प्रकी
र्तितः ॥ पितामहेन प्रवृत्तो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १ ॥

ऐसी तीक्ष्ण तपस्या करके तीनों अग्नियोंके साथ आत्माको परमात्मामें मिला देते हुए ॥ ५२ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! अपने पतिकी ऐसी आध्यात्मिक गति अर्थात् परब्रह्ममें लीन देख उनकी सब स्त्रियें उनके प्रभावसे उनके पीछे गईं, जैसे अग्निके शान्त होजानेपर उसकी लपट उसके संग ही बुझ जाती है॥५३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भा०टी० सौभर्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा-सप्तम मान्धाताकुलहि, पुरुकुत्स हरिचन्द । भये सत्यव्रत जगतमें, पूरण परमानन्द॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! मान्धाताके श्रेष्ठ पुत्र अम्बरीषको युवनाश्वने पुत्रभावसे गोद लिया ॥ १ ॥

अम्बरीषका बेटा हारीत हुआ सो मान्धाताके गोत्रमें श्रेष्ठ हुआ। हे राजन्! उरगोंने अपनी बहन नर्मदाको पुरुकुत्ससे विवाह दिया, ॥ २ ॥ शेषजीके कहनेसे यह नर्मदा अपने स्वामी पुरुकुत्सको पातालमें ले गई। विष्णुशक्ति धारण करके वध करनेके योग्य अनेक गन्धर्वोंको निहत किया और पीछे आपने नागराजसे अनुपम वर प्राप्त किया, वह वर यह था कि, नर्मदाका यह समस्त रसातलके आनेका व्यापार जो पुरुष स्मरण करेंगे, उनको सर्पसे भय नहीं होगा। पुरुकुत्सका पुत्र त्रसद्दस्यु, इनके अनरण्य ॥३॥४॥ तिनके हर्यश्व, जिनसे अरुणजीने जन्म ग्रहण किया। अरुणका पुत्र निबंधन हुआ. त्रिबंधनका पुत्र सत्यव्रत; जो कि दुःखके हेतु तीनें दोषोंके रहनेसे त्रिशंकु नामक हुआ॥५॥इनके पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि,तू चाण्डाल होजा इसलिये यह चाण्डालपनको प्राप्त हुए थे, फिर विश्वामित्र मुनिके प्रभावसे शरीरके सहित स्वर्गको गये और अबतक आकाशमें टिके हुए हैं.देवतालोगोंने इनको अवाक्शिरा होकर स्वर्गसे गिराना चाहा था, परन्तु महर्षि विश्वामित्रने इनको अपने बलसे वहीं थाम दिया।इन त्रिशंकुके पुत्र सत्यव्रतधारी महात्मा हरिश्चंद्र हुए.इनही राजर्षिके निमित्त वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी परस्पर शाप देकर आडी और बक (बगला) पक्षी हुए और इन दोनोंने एक वर्ष तक घोर युद्ध किया था ॥ ६ ॥ ७ ॥

हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे॥नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः॥२॥ तया रसातलं नीतो भुजगेंद्रप्रयुक्तया॥गंधर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक्॥३॥नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम्॥त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ॥४ ॥ हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ निबंधनः ॥ तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशंकुरिति विश्रुतः ॥५॥ प्राप्तश्चांडालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥ ६ ॥ पातितोऽवांक्छिरा देवैस्तेनैव स्तंभितो बलात् ॥ त्रैशंकवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७॥

---

१ हरिवंशमें यह तीन दोष प्रगट हैं, यथा—“पिताको असन्तुष्ट रखना, गुरुकी दुधारी गायका वध करना, विना प्रोक्षी वस्तुका सेवन करना” यहांपर एक इतिहास है कि, विश्वामित्र मुनिसे राजसूय यज्ञ करांय इस त्रिशंकुने ब्राह्मणकी कुमारी कन्याको हरण कर लिया था ॥

२ यहांपर एक इतिहास प्रसिद्ध है कि “विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ कराय उसी दीक्षणामें सर्वस्व हरणकर राजा हरिश्चन्द्रको आर्त किया यह सुन महर्षि वसिष्ठजी क्रोधित हो विश्वामित्रके पास आय शाप दिया कि, यह जम्वायांचरण करनेके हेतु तुम आडि पक्षी होजाओ. विश्वामित्रने बदलेमें यह शाप दिया कि “तुम बगला होजाओ” फिर इन दोनोंने परस्पर आडी बगला हो घोर युद्ध कियाथा” ॥

इन हरिश्चन्द्रके प्रथम कोई पुत्र न था, इसलिये सदा अनमने रहते थे. एक समय देवर्षि नारदजीके उपदेशसे जलाधिपति वरुणजीकी शरण जाकर प्रार्थना की कि, हे देव ! आप हमें यह वर दें कि; हमारे एक पुत्र हो हे प्रभो ! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न हो तो हम उसी पुरुषपशुसे आपका यज्ञ करें । वरुणजीने कहा कि, ऐसा ही होगा । तब राजा हरिश्चन्द्रके रोहित नामक एक पुत्र हुआ ॥८॥९॥ पुत्रके उत्पन्न होनेपर वरुणजी राजाके निकट आकर बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र हो गया, अब कहनेके अनुसार तुम हमारा यज्ञ करो कि, जिसमें यह

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ॥ वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥८॥ यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ॥ तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥९॥ जातस्सुतो ह्यनेनांग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥१०॥ निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ दंताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥११॥ जाता दंता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ यदा पतंत्यस्य दंता अथ मेध्यो भवेदिति ॥१२॥

तुम्हारा पुत्र ही पशु बने । तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि, हे देव! दश दिनकी आयु न होनेसे पशु पवित्र और यज्ञके योग्य नहीं होता, इसलिये मैं दश दिन बीतनेपर आपका यज्ञ करूंगा ❋ ॥८॥ हे राजा परीक्षित् ! दश दिनके बीतते ही वरुणजी फिर आकर बोले कि, अब यज्ञ करो. तब महाराज हरिश्चन्द्रने कहा कि दाँत निकलनेपर यज्ञ किया जायगा ॥ ९ ॥ दाँत निकलनेपर वरुणजीने आकर कहा कि, दाँत भी निकल आये अब तो यज्ञ करो । तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि, दाँत गिरनेपर यह महापवित्र यज्ञ भलीभाँति सम्पूर्ण होगा ॥ १२॥

❋ शंका–राजा हरिश्चंद्रने सब यज्ञोंको त्यागकर पुत्रके मांस करके वरुणका जो यज्ञ उसके करनेको क्यों विचार किया और वरुण भी ऐसे उत्तम देव उससे बालहत्या ग्रहण करनेको, क्यों अंगीकार किया ? इस बातसे जान पडता है कि, वरुण भी महापापी हैं इससे तो कलियुग ही अच्छा है, क्योंकि इसमें ऐसे अन्याय तो नहीं होते ।

उत्तर–राजा हरिश्चन्द्र अपने आपको पुत्रहीन जानके मनमें राजनीति विचारकर पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचार किया कि, अभी मेरे पुत्र नहीं है, वरुणको कोप देके जो पुत्र मुझको होजावेगा तो नहीं मारूंगा, पुत्रके लिये झूठ बोलनेका पाप भी नहीं होगा, इसलिये हरिश्चन्द्रने पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचार किया ॥

कुछ दिन पीछे रोहितके दाँत गिर गये तब वरुणजी फिर राजाके निकट आकर बोले कि, हे राजन् ! हमारे पशुके दाँत गये, अब तो यज्ञ अवश्य ही करना चाहिये । हरि श्चन्द्रने कहा कि. दाँत गिरकर जब तक फिर न उपजें तबतक पशु पवित्र नहीं होता, यह सुनकर वरुणजी अपने स्थानको चले गये ॥ १३ ॥ और कुछ समय उपरान्त फिर आकर बोले कि, तुम्हारे पुत्रके दाँत दूसरी बार उत्पन्न हो आये, अब तो यज्ञ करो। तब राजर्षि हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया कि हे वरुणदेव ! जब क्षत्रिय पशु कवच बख्तर पहरने योग्य होता है,तब वह पवित्र कहा जाता है सो हमारा पुत्र अभी इस योग्य हुआ नहीं सो भला हम कैसे यज्ञ करदें ? ॥ १४ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! राजा हरिश्चन्द्रका चित्त स्नेहके वश होगया था, उन्होंने पुत्रानुरागकेवश यज्ञ करनेके लिये वरुणजीको जो जो समय बताये, वह वरुणजी उसी समयकी राह देखने लगे ॥ १५ ॥

पशोर्निपतिता दंता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशोः पुनर्दंता जायंतेऽथ पशुः शुचिः ॥१३॥ पुनर्जाता यजस्वेति
स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४ ॥ इति पुत्रानुरागेण स्नेहयं
त्रितचेतसा ॥ कालं वंचयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥१५॥ रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम्॥प्राणप्रेप्सुर्धनु
ष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत॥१६॥पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ॥ रोहितो ग्राममेयाय तमिंद्रः प्रत्यषेधत ॥१७॥
भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषवणैः ॥ रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥ १८ ॥ एवं द्वितीये तृतीये
चतुर्थे पंचमे तथा ॥ अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा ॥ १९ ॥

इतनेमें रोहित पिताका अभिप्राय अर्थात् अपनेको पशु बनाकर वरुणजीके यज्ञ करनेकी इच्छाको जान गया इसलिये वह अपने प्राण बचानेको धनुष ग्रहण कर वनको चला गया ॥ १६ ॥ इससे वरुणजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको सताया,इसलिये राजा हरिश्चन्द्रका पेट अति बडा हो गया. इसके पीछे रोहितने सुना कि, पिताजीको वरुण देवताने पीडा दी है इसलिये अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा की, परंतु देवराज इंद्रने वहाँ आय रोहितको जानेसे रोका ॥ १७ ॥ और कहा कि,तीर्थोंकी सेवा करते हुए पृथ्वीपर विचरण करना अत्यन्त पुण्यदायक है, सो तुम ऐसा ही करो। यहाँ रोहिताश्वने एक वर्षतक वनमें वास किया था ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दूसरे, तीसरे,चौथे और पांचवें

वर्षमें जब रोहितने पिताजीके पास जानेकी इच्छा की, उसी समय देवराज इंद्र ब्राह्मणरूपसे उनके निकट आय इस प्रकारसे कहते थे कि "पुण्य तीर्थोंमें विचरण करो" ॥ १९ ॥ इसलिये रोहित राजकुमारने छः(६)वर्ष तक, वनमें विचरण किया. इस प्रकार जब रोहितको छठा वर्ष वनमें रहते बीत गया और पुरीमें आने लगा,तब यह रोहित अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको उसके पितासे मोल ले आये ॥२०॥ और इस शुनःशेपको अपने पिता राजा हरिश्चन्द्रको देकर प्रणाम किया। तिसके पीछे महायशस्वी प्रसिद्ध महात्मा महाराज हरिश्चन्द्रजीने नरमेधयज्ञकी विधिसे वरुणदेवताका यज्ञ प्रारंभ किया॥२१॥ तब वरुणजीने राजा हरिश्चन्द्रकी उदरपीडा शांत कर दी। इस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता,

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ॥ उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥२०॥ शुनश्शेपं पशुं पित्रे प्रदाय
समवंदत॥ततः पुरुषमेधेन हरिश्चंद्रो महायशाः ॥२१॥ मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः॥विश्वामित्रोऽभवत्तस्मि
न्होता चाध्वर्युरात्मवान्॥२२॥जमदग्निरभूद्ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः॥तस्मै तुष्टो ददाविंद्रश्शातकौंभमयं रथम्॥२३॥
शुनश्शेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्षते ॥ सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो
ददावविहतां गतिम् ॥ मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽऽपोऽनिलेन तत् ॥ २५ ॥ खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं
महात्मनि॥ तस्मिञ्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन् ॥ २६ ॥

जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और अयास्य मुनि सामग हुए. हे राजा परीक्षित् ! इस व्यापारसे देवराज इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके ऊपर प्रसन्न हो उनको एक सुवर्णका रथ दिया ॥२२॥२३॥ हे महाराज ! शुनःशेपका माहात्म्य (विश्वामित्र-उपाख्यानके प्रसंगमें) आगे वर्णन करेंगे. हे महाराज ! भार्यासहित राजा हरिश्चन्द्रका सत्य, सामर्थ्य और धैर्य देखकर ॥२४॥ महामुनि विश्वामित्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे, इसलिये उन्होंने महाराज हरिश्चन्द्रको अविहत अर्थात् परमज्ञान दिया था तब इन राजर्षि हरिश्चन्द्रजीने अन्नमय मनको अन्नशब्दवाच्य पृथ्वीमें धारण अर्थात् पृथ्वीके साथ मिला कर फिर उसको जलके साथ मिलाया, इसके उपरांत उस जलको तेजके साथ एक करके उस तेजको वायुके

साथ मिलाया तिसके पीछे पवनको आकाशमें धारण करके इस आकाशको अहंकारमें मिला दिया, फिर उस अहंकारको महत्तत्त्वमें मिलाय विषयाकार हटाय ज्ञानांशका आत्मस्वरूपमें ध्यान कर तिससे आत्माके आवरण अज्ञानको भस्म कर डाला ॥२५ ॥२६ ॥ फिर निर्वाणसुख संपत्तिसे ज्ञानांशको छोड मुक्त हो बन्ध रहित अनिर्देश्य और अप्रत्यक्ष स्वरूपमें स्थित हुआ॥२७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां हरिश्चन्द्रोपाख्यनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥ दोहा–अष्टम रोहितवंशमें, प्रगटे सगर भुवाल । तिनके सुत ऋषिशापसे, भस्म भये तत्काल ॥१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! रोहितका पुत्र हारित हुआ.इस हारितसे चंपने जन्म लिया कि,जिसने चंपापुरी

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥ अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥२७॥ इति श्रीमद्भागव॰
म॰ नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हरितो रोहितसुतश्चंपस्तस्मा
द्विनिर्मिता ॥ चंपापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥ भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तस्यापि बाहुकः ॥ सो
ऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पंचतां प्राप्तं महिष्यनु मरिष्यती ॥ और्वेण जानतात्मानं
प्रजावंतं निवारिता ॥३॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोंऽधसा सह ॥ सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥४॥

बसाई. चंपका पुत्र वासुदेव और वासुदेवका पुत्र विजय हुआ ॥ १ ॥ विजयका पुत्र भरुक, उसका पुत्र वृक और वृकसे बाहुकने जन्म लिया. जब शत्रुओंने इस बाहुकका राज्य छीन लिया तब यह अपनी स्त्रियोंको साथ ले वनमें चला गया॥२॥उसी स्थानमें वृद्ध होकर वह मृत्युको प्राप्त हुआ। उसकी स्त्री उसके साथ सती होनेको जाती थी कि, महर्षि और्वने उसको गर्भवती जानकर मरनेसे निवारण किया ❋ ॥ ३ ॥ रानीकी सौतोंने इसको गर्भवती जानकर हिंसाके वश हो उसके गर्भका नाश करनेको अन्नके संहित गरल(विष) मिलाकर उसे खानेको दे

---

* **शंका**–और्वऋषिने राजाकी स्त्री भस्म होती हुईको क्यों रोका ? अपने आपको पुत्रवान् क्यों माना कि यह स्त्री भस्म नहीं होगी तो हमारे पुत्र होगा, यह बडा सन्देह है.

उत्तर–भूत, भविष्य, वर्तमानकी बात जाननेवाले जो और्वऋषि थे वह ऐसा जानके कि, राजा सगर बडा बलवान् होगा और हमारा शिष्य होगा, संसारमें हमारी कीर्ति होगी, लोकमें और शास्त्रमें ज्ञानी लोगोंका यह विचार है कि, पुत्रमें और शिष्यमें कुछ भेद नहीं समझना चाहिये. यह दोनों बराबर हैं ऐसा विचारके सगरको पुत्र मानकर अपने आपको पुत्रवान् मानने लगे ॥

दिया, परंतु वह गर्भ विष देनेसे विनष्ट नहीं हुआ. तब इस गरके संग उत्पन्न होनेसे उस गर्भसे उपजे पुत्रका नाम सगर हुआ ॥ ४ ॥ हे महाराज परीक्षित्! यह सगर बडा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ. इस राजाने अपने गुरु और्वऋषीश्वरके कहनेसे तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर ॥५॥ इन जातियोंको मार नहीं डाला बरन् राजा सगरने प्रत्येक जातिको पृथक् २ प्रकारसे विकृत किया था अर्थात् किसी जातिके केश सम्पूर्ण मुँडवा दिये, किसीके डाढी मूछ रखवा दीं, किसी जातिको खुले केश किया और किसीको अर्धमुण्डित॥६॥ किसी जातिको अन्तर्वासविहीन करके केवल बहिर्वासधारी किया और किसी जातिको बहिर्वासहीन करके केवल कौपीनधारी किया। हे राजन्! महाराज सगरने महर्षि औवंके बताये हुए उपायसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्व देव और सर्वदेवमय परमात्मा परमेश्वर भगवान्

सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ यस्तालजंघान्यवनाञ्छकान्हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥ नावधीद् गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ॥ मुंडाञ्श्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुंडितान् ॥ ६ ॥ अनंतर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ॥ सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ॥ तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरंदरः ॥ ८ ॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ॥ हयमन्वेषमाणास्ते समंतान्न्यखनन्महीम् ॥९॥ प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलांतिके ॥ एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्त्रिणः ॥ उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११ ॥

हरिकी पूजा की. जब उसने पृथ्वीपर भ्रमण करनेको घोडा छोड़ा तब उसको देवराज इन्द्रने हरण कर लिया ॥ ७॥८॥ हे कुरुप्रवीर! सगर राजाके दो स्त्री सुमति और केशिनी थीं. राजाने यज्ञका घोडा ढूँढनेके लिये सुमतिके साठ हजार ६०००० पुत्रोंको आज्ञा दी. इस आज्ञाको पाय सुमतिके पुत्र अहंकार करके यज्ञके घोडेको खोजनेके लिये सारी पृथ्वी खोजने लगे ॥९॥ जब पृथ्वीपर घोडा नहीं मिला तो चारों ओरसे पृथ्वीको खोद डाला. कुछ दिन पीछे यह सगरके पुत्र उत्तर पूर्वके कोनेमें जहाँ महर्षि कपिलदेवजीका आश्रम था वहां पहुचे और वहाँपर उस घोडेको बँधा हुआ देख"इसने हमारे घोडेको चुराया है, यही चोर है,देखो कैसी आँखें बन्द कर लीहैं॥१०॥इस दुराचारी पापीको

अभी मार डालो" इस प्रकारसे कहकर यह साठ हजार सहोदर भाई अस्त्रशस्त्र उठाय महात्मा कपिलदेवजी पर दौडे. भगवान् कपिलदेवजी उस समय समाधिमें स्थित थे. उन्होंने कोलाहल सुनकर समाधि त्याग दी और नेत्र खोले ॥ ११ ॥ हे राजन्! देवराज इन्द्रकी मायासे सगरके पुत्रोंकी बुद्धि नाशको प्राप्त हो रही थी, इसलिये वह महर्षि कपिलदेवजीपर ऐसा अत्याचार करनेको प्रस्तुत हुए, परंतु इस महा कुकार्य करनेके हेतु अतिमहान् अग्नि जो कि, महर्षि कपिलदेवजीके शरीरसे निकलती थी उससे यह सबके सब क्षणमात्रमें भस्म होगये ॥ ॥ १२ ॥ हे परीक्षित् ! कोई २ यह कहते हैं कि, कपिलदेवजीकी क्रोधाग्निसे सगरके पुत्र भस्म हुए, यह साधुवाद नहीं, क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी शुद्ध तत्त्वमूर्ति हैं, उनका आत्मा जगत्को पवित्र करनेवाला है, सो आकाशमें पार्थिव धूरके समान उन कपिलदेवमें

स्वशरीराग्निना तावन्महेंद्रहृतचेतसः ॥ महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ॥ १२ ॥ न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेंद्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ॥ कथं तमो रोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजोभुवः ॥ १३ ॥ यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौयया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ॥ भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ ॥ १४ ॥ योऽसमंजस इत्युक्तः स केशिन्यां नृपात्मजः ॥ तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम पितामहहितेरतः॥ १५ ॥ असमंजस आत्मानं दर्शयन्नसमंजसम् ॥ जातिस्मरः पुरा संगाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥ आचरन्गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ॥ सरय्वां क्रीडतो बालान्प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १७ ॥

किस प्रकारसे क्रोधरूपी तमोगुणका उदय हो सकता है ॥ १३ ॥ और जिन कपिलदेवजीने इस संसारमें सांख्य शास्त्रकी अति दृढ नौका चलाई है, जिस नौकापर चढकर मुमुक्षुलोग तुरंत मृत्युके पंथरूप संसारके पार होते हैं, उन सर्वज्ञ सर्वात्मा स्वरूप महामुनिमें शत्रु मित्रादि भेददृष्टिका होना किस प्रकारसे संभव है ? ॥ १४ ॥ सगर राजाके एक पुत्रका नाम असमंजस था. "केवल अज्ञानी लोग ही इनको असमंजस कहते थे, पर वास्तवमें यह समंजस ही थे" जो केशिनी रानीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे. उन असमंजसका पुत्र अंशुमान सदा अपने दादाके हितकारी कार्य करता था॥ १५॥ हे राजन् ! यह असमंजस पहले जन्ममें योगी था. संग करनेके हेतु योगसे भ्रष्ट हुआ इसलिये अपनी जातिका स्मरण कर दूसरे जन्ममें भी संगके छोडनेको निन्दनीय कार्य करनेवाली जातिकी भांति निंदनीय कर्म करता था अर्थात् लोगोंको उद्वेग जन्माय

लोकनिंदित आचार और अपनी जातिके अथ विप्रिय कम करता हुआ खेल ही खेलमें बालकोंको सरयूके जलमें डाल देता था ॥ १६ ॥ १७॥ इस प्रकारके कर्म देख इनके पिता राजा सगरने पुत्रपनका स्नेह छोड इनको त्याग दिया. तब यह अपने योगके प्रभावसे मृतक बालकोंको फिर जिलाकर सबको दिखाय उस पुरीसे निकलकर चले गये ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अयोध्यावासी प्रजाके लोग असमञ्जसके मारे हुए अपने अपने बालकोंको सजीव देखकर महाविस्मित हुए और राजा सगरने फिर असमञ्जसके लिये महासंताप किया ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि, हे कुरुकुलभूषण ! अब इंधरकी कथा सुनिये कि, जब सुमतिके सब पुत्र मारे गये तब राजा सगरने यज्ञके घोडेको खोजनेके लिये असमञ्जसके पुत्र अंशुमानको भेज दिया,तब अंशुमान उसी मार्गसे चले; जो कि,उनके चाचा लोगोंने खोदकर बनाया था और फिर बहुत दूर जाकर भस्मके ढेरके समीप ही घोडेको बँधा हुआ देखा ॥ २० ॥ हे राजन् ! उस स्थानमें कपिल मुनि साक्षात् भगवान्‌रूप बैठे थे, उनको बैठा हुआ देख महात्मा अंशुमान् सावधानचित्तसे हाथ जोडकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ हे देव ! जो ब्रह्मा जन्मसे रहित हैं, उन्होंने भी अबतक आपसे परे जो परमेश्वर आप हैं, आपको समाधि लगाकर भी नहीं देख पाया, न वह युक्तिसे आपको जान सके। फिर दूसरे अवार्चीन पुरुष आपको कैसे देख सकते हैं? ब्रह्माजीके मन,शरीर और बुद्धिसे जो विविध देव तिर्यक् नर सृष्टि होती है;वह लोग उससे ही उत्पन्न हुए हैं,फिर तिसपर हम उनसे भी मूर्ख हैं;इसलिये हमको आपके दर्शन पानेकी कुछ भी संभावना नहीं है ॥ २२ ॥ हे देव ! जो पुरुष देहधारी हैं, यद्यपि आप उनकी आत्मामें भलीभांति विराजमान हैं तो भी आपको वे नहीं जानते, केवल

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ॥ योगैश्वर्येण बालांस्तान्दर्शयित्वा ततो ययौ॥ १८ ॥ अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान्पुनरागतान् ॥ दृष्ट्वा विसिष्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९ ॥ अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरंगान्वेषणे ययौ ॥ पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ॥ अस्तौत्समाहितमनाः प्रांजलिः प्रणतो महान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच ॥ न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ॥ कुतोऽपरे तस्य मनः शरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥ ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान्विपश्यंत्युत वा तमश्च ॥ यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३ ॥

सब गुणोंको देखते हैं,अथवा गुण भी उनको दिखाई नहीं देते,.केवल तमकोही देखते हैं, क्योंकि, उनमें त्रिगुणबुद्धिही प्रधान है अर्थात् वह बुद्धिके वश हैं, इसलिये जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें विषय देखते हैं और सुषुप्ति अवस्थामें केवल तम ही देखते हैं. आप निर्गुण हैं, इससे आपको किसी अवस्थामें नहीं देख पाते क्योंकि, उनका चित्त आपकी मायासे मोहित हो रहा है ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! आप ज्ञानघन स्वभाव अर्थात् शुद्ध सत्त्वमूर्ति हैं,इसलिये जिन पुरुषोंका माया-गुण-निमित्त भेद विध्वंसको प्राप्त होगया है,ऐसे सनक सनन्दनादि मुनि जनोंके भी आप विचारने योग्य हैं,मैं मूढ विचार करके भी किस प्रकार आपको जान सकता हूँ ? फलतः आप ज्ञानघनस्वरूप हैं, इसलिये ज्ञानगम्य नहीं हैं, यद्यपि आप विचारके विषय हो तो भी मैं मायाके गुणोंमें लिपटा हुआ हूँ, इससे विचार करनेको समर्थ नहीं हूँ ॥ २४ ॥

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ॥ सनंदनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि
॥ २४ ॥ प्रशांतमायागुणकर्मलिंगमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ॥ ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम्
॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ॥ भ्रमंति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रांतचेतसः ॥ २६ ॥ अद्य नः
सर्वभूतात्मन्कामकर्मेन्द्रियाशयः ॥ मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं
गीतानुभावस्तं भगवान्कपिलो मुनिः ॥ अंशुमंतमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥ २८ ॥

हे प्रशान्त ! मायाके गुणसे ही आपके विश्वसृष्ट्यादि कर्म हैं, आपका लिंग ब्रह्मादि रूप हैं, आप कार्यकारणसे परे हैं, आपने केवल ज्ञानका उपदेश देनेके लिये इस शुद्धसत्त्वमूर्तिको प्रगट किया है, इसलिये आप पुराणपुरुष हैं, सो मैं आपको केवल नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥ हे विभो ! यह लोक आपकी मायासे बना हुआ है. इसमें वस्तुबुद्धि करके काम, लोभ,ईर्षा और मोहसे जिन मनुष्योंका चित्त भ्रान्त है, वह सब ही गृहादिमें भ्रमण करते हैं ॥ २६ ॥ हे सर्वात्मन् ! परंतु आपकी कृपासे और आपका दर्शन होनेसे आज हमारा काम, कर्म और इंद्रियों का आश्रयरूप अतिदृढ मोहपाश छिन्न होगया अर्थात् आपके प्रसादसे हम कृतार्थ होगये ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे महाराज ! इस प्रकारसे स्तुति करके कपिलदेवजीका प्रभाव गाया, तब वह कपिल भगवान् अनुग्रह कर सगरपौत्र अंशुमान्से यह

वचन बोले ॥ २८ ॥ भगवान् कपिलदेवजी बोले कि, हे वत्स । अपने दादाके यज्ञपशु इस घोडेको ले जाओ, जब अश्व पाकर भी अशुंमान् आकांक्षाके साथ,खडे रहे तब महर्षि कपिलदेवजी इनके मनका अभिप्राय जानकर बोले, तुम्हारे चचालोग जो कि, भस्म होगये हैं, गंगाजल पानेके योग्य हैं, और जलसे इनकी गति नहीं होगी ॥ २९ ॥ यह सुनकर अंशुमान्ने मुनिको शिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके यज्ञका घोडा ले राजा सगरके पास आया. सगर राजाने उस घोडेको पाय यज्ञका शेष कार्य समाप्त किया॥३०॥ फिर राजा सगर निस्पृह होगये और अंशुमानके हाथमें राज्यका भार सौंप बन्धनोंसे छूट और मुनिके बताये योगमार्गमें उत्तम गतिको

श्रीभगवानुवाच ॥ अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव॥ इमे च पितरो दग्धा गंगाम्भोऽर्हन्ति नेतरत्॥२९॥ तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ॥ सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥राज्यमंशुमति न्यस्य निस्स्पृहो मुक्तबंधनः ॥ और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥३१॥ इति श्रीभा०म० नवमस्कन्धे सगरोपाख्याने अश्वमेधाश्वानयनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंशुमांश्च तपस्तेपे गंगानयनकाम्यया ॥ कालं महांतं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत्तपः॥२॥

प्राप्त हुए॥३१॥इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–अंशुमानका वंश सब,कहों खट्वांगसमेत । गंगा लाये नवममें, भागीरथ श्रुतिसेत ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! जिस प्रकार राजा सगर अपने पोतेको राज्यभार दे तपस्या करनेको चले गये,अंशुमान् भी उसी प्रकार अपने पुत्रको राज्य दे गंगाजीके लानेकी कामनासे बहुत दिनों तक तपस्या करते रहे,परन्तु उनके मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई । कुछ समय पीछे राजा अंशुमान् कालवश हो मृत्युको प्राप्त हुए॥१॥अंशुमान्के दिलीप नाम पुत्र भी गंगाजीके लानेमें असमर्थ होकर कालकवलमें गिरे. इनके पुत्र भगीरथने गंगाके लानेके लिये बडी तपस्या की ❀ ॥ २ ॥

❀ शंका–राजा सगरके वंशवाले सब राजा तपस्या करते करते मर गये परन्तु संसारके पापनाश करनेवाली और अनेक विघ्नोंको हरनेवाली श्रीगङ्गा महारानी जगत्सुखदानी वैकुण्ठकी निशानीको कोई भी भूपाल भूमिपर नहीं ला सका परन्तु राजा भगीरथने ऐसा क्या तप किया, जिस तपके करनेसे गङ्गाजीको पृथ्वीपर भगीरथजी ले आये ?

तब गंगाजी इनको दर्शन देकर बोलीं कि, वत्स! हम तुमपर प्रसन्न हो वर देनेके लिये आई हैं, यह सुनकर भगीरथजीने अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३ ॥ तब श्रीगंगाजीने कहा कि, हे राजन्! जब हम आकाशसे गिरेंगी तब किसी पुरुषको हमारा वेग अवश्य धारण करना पडेगा, नहीं तो हम पृथ्वीको फोडकर पातालको चली जायँगी सो कहो कि, कौन हमारा वेग धारण करेगा ? ॥ ४ ॥ हम पृथ्वीपर नहीं जा सकेंगी, क्योंकि मनुष्य लोग हममें अपवित्र पदार्थ धोवेंगे सो उस अपवित्रताको हम कहां धोवेंगी सो बताओ ॥ ५ ॥ तब श्रीभगीरथजी

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते ॥ इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥ कोऽपि धारयिता वेगं पतंत्या मे महीतले ॥ अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४ ॥ किंचाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजं त्यघम् ॥ मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिंत्यताम् ॥ ५ ॥ भगीरथ उवाच ॥ साधवो न्यासिनः शांता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ॥ हरंत्यघं तेंऽगसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥ धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ॥ यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तंतुषु ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥ कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥ ८ ॥

708

बोले कि, हे जननि! संसारत्यागी ब्रह्मनिष्ठ साधुलोग अपने लोकपावन अंगोंसे आपकी अपवित्रता हर लेंगे, क्योंकि उनके हृदयोंमें सर्व अघहारी भगवान् नित्य विराजमान रहते हैं, इसलिये वे लोग पापका विनाश करनेको समर्थ हैं ॥ ६ ॥ और भगवान् रुद्र जो कि, सब शरीरधारियोंके आत्मा हैं और जिस प्रकार साडी सूतमें पोही हुई रहती है, वैसे ही जो शिवजी इस संसारमें ओतप्रोत होरहे हैं, वही तुम्हारे इस प्रबल वेगको धारण करेंगे ॥ ७ ॥ हे राजा परीक्षित्! राजा भगीरथ गंगाजीसे इस प्रकार कहकर तपस्या करके देवदेव महादेवजीको

उत्तर–जब राजा भगीरथकी अवस्था पांच वर्षकी हुई तब अपने पितरोंका चरित्र सुना कि, गङ्गाके लानेके लिये हमारे कुलमें दादा परदादा आदिक अनेक तप करकरके मर गये परन्तु गङ्गा पृथ्वीपर न आई. पांच वर्षकी अवस्थासे गङ्गासहस्रनामका पाठ करना आरम्भ किया, परंतु जिस दिनसे पाठ करना आरम्भ किया उस दिनसे जबतक गङ्गाजी नहीं आई तबतक एक दिनको भी नहीं छोडा, राजा वृद्ध भी होगये परंतु तो भी अपना प्रण नहीं छोडा. उनका पूरा प्रण देखकर थोडे ही तप करनेसे श्रीगङ्गाजी बालकपनसे अपना भक्त समझकर अत्यन्त प्रसन्न हो भगीरथजीके संग भूमिपर चली आई ॥

प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगे। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी इस राजर्षिपर बहुत शीघ्र प्रसन्न हो गये ॥८॥ महात्मा भगीरथजीने जो कुछ प्रार्थना की उसको लोकहितषी भगवान् महादेवजीने तथास्तु कहा और सावधान होकर गंगाजीको धारण किया. हे राजन्! गंगाजीके माहात्म्यका वर्णन कैसे करें? उनका जल भगवान् वासुदेवके चरणस्पर्शसे पवित्र हुआ है ॥९॥ राजर्षि भगीरथजी भुवनपावनी गंगाजीको उस स्थानपर ले आये कि, जहां उनके पितृलोगोंकी भस्मका ढेर पडा था. भगीरथजी पवनके समान वेगगामी रथपर सवार हो आगे आगे चलने लगे और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाजी उनके पीछेर बहती हुई सब लोकोंको पवित्र कर भस्म हुए सगरके पुत्रोंपर अपना पवित्र जल डालने लगीं ॥ १० ॥११॥ हे राजन्! सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपराध करके भस्म हुए थे, जब कि उनकी राखके ऊपर गंगाजीका

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ॥ दधारावहितो गंगां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥ भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये
भुवनपावनीम् ॥ यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते॥१०॥ रथेन वायुवेगेन प्रयांतमनुधावती ॥ देशान्पुनंती
निर्दग्धानासिंचत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदंडहता अपि ॥ सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं
देहभस्मभिः ॥ १२ ॥ भस्मीभूतांगसंगेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवंते धृतव्रताः ॥१३॥
नह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ॥ अनंतचरणांभोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥ संनिवेश्य मनो यस्मि
ञ्छ्रद्धया मुनयोऽमलाः ॥ त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो :यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥

जल पडा और वह स्वर्गको चले गये, तब उन लोगोंको कैसा फल मिलेगा, जो कि श्रद्धापूर्वक श्रीगंगामहारानी जगत्सुखदायिनीकी सेवा करते हैं॥१२॥सगरके पुत्र अपनी राखपर गंगाजीका जल पडनेसे जब पवित्र होगये और स्वर्गको सिधारे तब जो पुरुष गंगाजीका व्रत धारण करेंगे और श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा करेंगे, उनका स्वर्गमें जाना कुछ विचित्र बात नहीं है ॥ १३ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! यहांपर यह गंगाजीकी महिमा जो हमने वर्णन की, यह कुछे बडे आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि यह भगवान्के चरणसे उत्पन्न हुई हैं और संसारका नाश करनेवाली हैं अर्थात् इनकी सेवा करनेसे संसारका आना जाना छूट जाता है ॥ १४ ॥ हे परीक्षित्! अमल मुनिलोग श्रद्धासहित जिनमें

मन लगाय छोडनेके अयोग्य देहका सम्बन्ध त्याग शीघ्र ही उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवके रूपको प्राप्त हो जाते हैं, उनके चरणसे उत्पन्न हुई गंगाजीका प्रभाव अवश्य ही अनिर्वचनीय है ॥१५॥ इन राजा भगीरथके पुत्र श्रुत, तिनके पुत्र नाभ, तिनसे सिंधुद्वीप उत्पन्न हुए और तिनके आयुतायु जन्मे ॥ १६॥ तिन आयुतायुके ऋतुपर्ण हुए, जो कि नलके सखा थे. इन ऋतुपर्णने राजा नलको चौपडकी विद्या सिखाय उनसे अश्वविद्या सीखी थी. इन ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥१७॥ तिसका पुत्र सुदास, तिसका बेटा सौदास हुआ जो मदयन्तीका पति था, जिसको कोई २ मित्रसह और कोई २ कल्माषपाद कहते हैं इनके कोई संतान नहीं हुई । यह अपने कर्मदोष और वसिष्ठजीके शापसे राक्षसयोनिको प्राप्त हुए ॥१८॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! महात्मा सौदासको वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया था ? इस कथाके श्रवण करनेकी मेरी

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ॥ सिंधुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो
योऽश्वविद्यामयान्नलात् ॥ दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयंतीपतिर्नृपः ॥
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषांघ्रिमुत क्वचित् ॥ वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यस्स्वकर्मणा॥ १८ ॥ राजोवाच॥ किंनिमित्तो
गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥१९॥ श्रीशुक उवाच ॥ सौदासो
मृगयां किंचिच्चरन्रक्षो जघानह ॥ मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥२०॥ स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो
गृहे ॥ गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमंजसा ॥ राजानमश
पत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥

डी अभिलाषा है, सो कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥१९॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! एक समय राजा सौदासने मृगयाके लिये वनमें जाय घूमते घूमते एक राक्षसको मार डाला और उसके भाईको छोड दिया इसलिये यह निशाचर राजासे बदला लेनेकी खोजमें रहा. यह निशाचर इस राजाका बुरा चाहने लगा, रसोइयेका रूप बनाय घरमें रहने लगा. एक दिन राजपुरोहित वसिष्ठजीने आकर भोजनकी इच्छा प्रकाश की, तब इसी कपटवेषधारी राक्षसने भोजन बनाया और उस भोजनमें मनुष्यका मांस भी मिला दिया ॥२०॥२१ ॥ जब वह भोजन परोसा गया तब उस समय भगवान् वसिष्ठजीने दिव्य नेत्रोंसे देख लिया कि, भोजनमें अभक्ष्य वस्तु मिलाई गई है, इसलिये महाक्रोधित

709

होकर राजाको शाप दिया कि "मनुष्यका मांस व्यवहार करनेसे तुम राक्षसयोनि पाओगे" ॥ २२ ॥ परंतु तिसके पीछे महर्षि वसिष्ठजीने जाना कि, यह कर्म राक्षसका किया हुआ है, तब वसिष्ठजीने शापका क्षय करनेको बारह वर्षका व्रत किया ॥ २३ ॥ राजा भी विना अपराध शाप पाकर क्रोधित हो हाथमें जल लेकर गुरुजीको शाप देनेके लिये प्रस्तुत हुआ, परन्तु उसकी स्त्री मदयन्तीने उसको निवारण किया, तब राजाने रोषसे तीव्र हो वह जल अपने पैरोंपर डाल लिया. इस राजर्षिने यह जल इसलिये अपने पैरोंपर डाला कि, दिग्, आकाश, पृथ्वी यह सब ही जीवमय हैं॥२४॥ यह राजा कल्माषपाद राक्षसभावको प्राप्त हो एक समय वनमें विचरण कर रहा था । हे राजन् ! इस प्रकार वनमें घूमते हुए उसने एक ब्राह्मणको ब्राह्मणीके साथ रति करता हुआ देखा ॥२५॥ इस समय इस राजाको बडी भारी भूख लगी थी, तब इसने

रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ॥ सोऽप्यपोंऽजलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितो मदयंत्यापो
रुशतीः पादयोर्जहौ ॥ दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४॥ राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ॥
व्यवायकाले ददृशे वनौको दंपती द्विजौ ॥ २५ ॥ क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ॥ न भवान्राक्षसस्साक्षा
दिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥ मदयंत्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ॥ देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम्
॥ २७ ॥ देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ॥ तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते॥२८॥ एष हि ब्राह्मणो
विद्वांस्तपश्शीलगुणान्वितः ॥ आरिराधयिषुर्ब्रह्मा महापुरुषसंज्ञितम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वंतर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥

क्षुधासे पीडित हो उसमेंसे ब्राह्मणको भक्षण करनेके लिये पकड लिया । ब्राह्मणके पकड लेनेसे ब्राह्मणी अत्यन्त दीन तनु छीन मन मलीन होकर बोली कि ॥२६॥ हे राजन् ! तुम राक्षस नहीं हो, इक्ष्वाकुवंशियोंमेंसे एक महारथी वीर हो । मदयन्तीके पति हो । आपको अधर्म करना उचित नहीं है । यह ब्राह्मण हमारा पति है.हम सन्तानकी इच्छा करके इनकी सेवा कर रही थीं. अबतक इनकी रति समाप्त नहीं हुई है, इसलिये आप अनुग्रह करके हमारे पतिको छोड दीजिये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इस मनुष्यदेहसे अखिल पुरुषार्थ होते हैं, इसलिये देहके नाशको सब अर्थोंका नाश कहा जाता है ॥२८॥ अधिक करके यह ब्राह्मण विद्वान् तप, शील और गुणयुक्त है और महापुरुष नामवाले जो

परब्रह्म गुणयोगसे सब प्राणियोंमें अंतर्हित हैं "सर्वं भूतोंके आत्मा" इस प्रकारकी चिन्तासे यह उनकी आराधना करना चाहते हैं ॥२९॥
हे प्रभो ! हे धर्मज्ञ ! तुम राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये पितासे पुत्रके समान तुम्हारे हाथसे यह ब्राह्मण मारे जानेके योग्य नहीं है. हे राजन्!
कर्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके प्रति जो सुहृदाचरण करता है उसको ही विद्याविवेकसम्पन्न पंडित लोग शील कहा करते हैं ॥ ३० ॥
हे धर्मज्ञ ! आप साधुजनोंके सम्मत हैं, सो आज आप किस प्रकार गोवधके समान इस निष्पाप और तीन वेदोंके वक्ता ब्राह्मणका वध
सम्मत समझते हैं ? ॥३१॥ हे राजन् ! हम इनके विना एक क्षणको भी नहीं जी सकेंगी सो इन हमारे पतिको यदि तुमने अवश्य ही अपना

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ॥ कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितु रिवात्मजः ॥३०॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य
ब्रह्मवादिनः ॥ कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ॥ न
जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२ ॥ एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ॥ व्याघ्रः पशुमिवाखा
दत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ॥ शोचंत्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता
सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ॥ तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥ एवं
मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ॥ तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥ विशापो द्वादशाब्दांते
मैथुनाय समुद्यतः ॥ विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥

भोजन करना विचारा है, तो मृतकतुल्य हमको भी तुम पहले भक्षण करलो ॥३२॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्राह्मणकी भार्याने इस प्रकार अनाथके समान
हो करुणाके वचन कहे, परन्तु तो भी शापमोहित सौदासने उस ब्राह्मणको भक्षण कर ही लिया कि, जैसे व्याघ्र पशुको भक्षण कर जाता
है ॥३३॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि गर्भाधानकारी ब्राह्मणको राक्षसने भक्षण कर ही लिया, इसलिये अपने निमित्त शोक करते करते क्रोधित
हो इसने उस राजाको यह शाप दिया कि ॥३४॥ अरे पापात्मा ! तैंने हमारे पतिको रतिसे अलग करके भक्षण कर लिया है, इसलिये
तेरी मृत्यु भी रति ही करते होगी ॥३५॥ हे राजन् ! पतिलोकपरायणा वह ब्राह्मणी इस प्रकार इस सौदास राजाको शाप दे पतिकी अस्थि

जलती हुई अग्निमें डाल और स्वयं भी उसी चितामें बैठ स्वामीकी गतिको प्राप्त हुई और इस और जब बारह वर्ष बीत गये तब राजा सौदास शापसे छूटा. तिसके पीछे जब यह राजा एक दिन मैथुन करनेको प्रस्तुत हुआ, तब इस राजाकी भार्याने ब्राह्मणीका शाप कहकर राजाको निवारण किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! तबसे राजा सौदास स्त्रीके सुखसे अलग हुआ और अपने कर्मदोषसे निःसन्तान रहा. कुछ कालके पीछे वसिष्ठ मुनिने राजाकी अनुमतिसे उसकी स्त्री मदयन्तीको गर्भाधान किया॥३८॥ परंतु यह अबला सात वर्षतक इस गर्भको धारण किये रही, किसी प्रकारसे इसको प्रसव नहीं किया । तब वसिष्ठजीने आकर अश्म (पत्थर) रानीके पेटमें मारा, इसलिये इस गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम अश्मक हुआ ॥ ३९ ॥ इस अश्मकसे मूलक राजाकी उत्पत्ति हुई. जब परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया उस समय उसको स्त्रियोंने चारों ओरसे घेरकर परशुरामजीके कोपसे रक्षा की थी, इसलिये इसका एक नाम नारीकवच हुआ और पृथ्वी जब क्षत्रियहीन हुई तब यही क्षत्रियवंशके मूल हुए थे, इससे मूलक भी कहलाते थे ॥ ४० ॥ इन अश्मकसे राजा दशरथका जन्म हुआ. दशरथका पुत्र ऐड़विड, तिसका पुत्र राजा विश्वसह, तिसके पुत्र चक्रवर्ती महाराज खट्वांग हुए. यह राजा खट्वांग अतिअजित थे. जब देवतालोगोंने प्रार्थना की तब इन्होंने युद्धमें राक्षस लोगोंका वध किया फिर जब प्रसन्न होकर देवतालोगोंने इनसे वरदान माँगनेको कहा तब इन्होंने कहा कि, प्रथम तो यह बताओ "हमारी परमायु कितनी है" तब देवतालोगोंने कहा कि, आपकी परमायु दो घडी शेष है, यह जानकर खट्वांग राजा देवतालोगोंके दिये हुए विमानमें बैठकर अतिशीघ्र अपने नगरमें आये और परमेश्वरमें मन लगाया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ फिर पीछे उनको यह निश्चय हुआ कि कुलदेव जो ब्रह्मकुल हैं, उनसे अधिक प्राण, पुत्र, धन, संपत्ति, पृथ्वी, राज्य और स्त्री भी प्यारी नहीं है॥४३॥

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ॥ वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयंत्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥ सा वै सप्त समा गर्भम
बिभ्रन्न व्यजायत ॥ जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परि
रक्षितः ॥ नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत्॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडस्ततः ॥ राजा विश्वस
हो यस्य खट्वांगश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ॥ मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे
मनः ॥ ४२ ॥ न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ॥ न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥

और हमारी मति कदाचित् थोडे अधर्ममें भी रत नहीं हो और उत्तमश्लोक भगवान्के अतिरिक्त और किसी वस्तुको हम नहीं देख सकें॥४४॥ इसलिये त्रिभुवनेश्वर देवतालोग प्रसन्न होकर जो हमसे कहते हैं कि " अभिलषित वर मांगो" परंतु भूतभावन हरिमें अपनी भावना रहनेसे हम उनसे भी कुछ वर नहीं चाहते ॥४५॥ जिन पुरुषोंकी इंद्रियें चलायमान और बुद्धि विक्षिप्त है वह देवता होकर भी अपने हृदयमें स्थित प्रिय आत्माको नित्य नहीं देख पाते, फिर और किसीके देखनेकी क्या संभावना है ॥ ४६ ॥ इसलिये गन्धर्वपुरके समान ईश्वरकी मायासे रचे हुए जो गुण हैं, तिनमें वह संग जो कि, स्वभावसे ही आत्मामें आरूढ हो रहा है; विश्वकर्ताके भावसे छोडकर हम केवल उनकी ही शरण

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ॥ न पश्याम्युत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम्॥४४॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ॥ न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥ ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ॥ विंदंति न प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥ अथेशमायारचितेषु संगं गुणेषु गंधर्वपुरोपमेषु ॥ रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वभर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ॥ हित्वाऽन्यभवमज्ञानं ततस्स्वं भावमाश्रितः ॥ ४८ ॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ॥ भगवान्वासुदेवेति यं गृणंति हि सात्त्वताः ॥ ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे सूर्यवंशानुवर्णने गंगावतरणादि नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ खट्वांगाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥ अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

जाते हैं ॥४७॥ हे राजन् ! राजा खट्वांग नारायणसंबंधिनी बुद्धिके योगसे इस प्रकार निश्चय कर देहादिके अभिमानरूप अज्ञानको छोड फिर अपने भावमें स्थित हुआ ॥४८॥ जो सूक्ष्म परब्रह्म और रागादिसे परे हैं, इसलिये शून्यके समान कल्पित होते हैं और अशून्यस्वरूप हैं और जिनके प्रति भक्तजन भगवान् वासुदेव शब्दका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि परब्रह्म ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये शक्ति प्रकाशित करके वासुदेव होते हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सूर्यवंशवर्णने खट्वांगचरितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

दोहा—दसवेंमें खट्वांगकुल, लीन राम अवतार। रावणवध घर आवनो, राजकाज व्यवहार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् परीक्षित् !

खट्वांग राजाका पुत्र दीर्घबाहु हुआ, तिससे रघुने जन्म लिया, रघुके पुत्र महायशस्वी अज हुए। हे महाराज परीक्षित्! इन्हीं अजसे महात्मा दशरथजी उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ ब्रह्ममय हरि साक्षात् भगवान् देवतालोगोंकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त हो इन्हीं दशरथजीके पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ हे राजन्! वाल्मीकादि तत्त्वदर्शी ऋषि लोगोंने इनही सीतापति रामचन्द्रजीका वर्णन किया है; यद्यपि यह चरित्र आपने बारंबार सुना है, तो भी हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं, तुम सुनो ॥३॥ जो पिताजीका सत्य पालन करनेको राज्य छोड प्यारी सीताजीका स्पर्श भी जो नहीं सह सकते थे, ऐसे कमलके समान सुकुमार दोनों चरणोंसे वन वनमें घूमे थे, वानरेन्द्र हनुमान् अथवा सुग्रीव और अनुज लक्ष्मण जिनके मार्गकी थकावट दूर करते थे, शूर्पणखाके कान नाक कटानेसे विरूप करनेके कारण उसनें रावणके

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ॥ अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ २ ॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना
इति संज्ञया ॥ तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥
गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ॥
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोषितभ्रूविजृंभत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेंद्रोऽवतान्नः ॥४॥ विश्वामि
त्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ॥ पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुंगवाः ॥ ५ ॥ यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ॥ आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभंज मध्ये ॥ ६ ॥

निकट जाय उसको स्त्रीका लोभ दिखाया, तब रावण आकर जिनकी प्यारी सीताजीको हरके लेगया था, प्रियाका विरह होनेसे जिनकी भ्रुकुटीसे समुद्र त्रसित होगया इसके उपरान्त उस ही समुद्रके कहनेसे जो समुद्रपर सेतु बांध रावणादि खलगणरूप गहनवनका दहन किया वही कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा कर ॥ ४ ॥ उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें मारीचादि प्रधान २ राक्षसोंको अकेले ही मार डाला था, घोरे खडे होकर देखते हुए लक्ष्मणकी कुछ सहायता नहीं चाही ॥ ५ ॥ उन्होंने सीताजीके स्वयंवरगृहमें वीर पुरुषसमूहके बीचमें महादेवजीके धनुषको गन्नेके समान उठाके लिया था और ज्या चढ़ा लेनेके उपरांत खींचकर बीचमेंसे तोड दिया. हे राजन्!

वह धनुष अतिभारी था कि, जिसे तीनसौ वाहक खींचकर लाये थे, परंतु श्रीरामचन्द्रजीकी लीला बालगजतुल्य अद्भुत है कि, जिन्होंने एक खेलमें ही उस धनुषको तोड डाला ॥ ६ ॥ तिसके उपरांत जिन सीताजीने उनके हृदयमें वास किया था, जिन सीताजीमें गुण, शील, वयस और अंगोंका गठन सब गुण श्रीरामचन्द्रजीके ही समान थे, धनुष तोड उन सीताजीको लेजानेके समय धनुष टूटनेकी महाध्वनि सुनकर क्षुभित हुए परशुरामजीने जब धमकाया तब श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें गमन करते करते ही उनका गर्व चूर्ण कर दिया. हे महाराज ! आप तो परशुरामजीको जानते हैं यह वही महात्मा परशुरामजी हैं कि, जिनके बाहुबलसे यह पृथ्वी इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन होगई थी ॥ ७ ॥ किसी समय रानी कैकेयी पर प्रसन्न होकर राजा दशरथजीने यह वचन दिया था कि, जब कोई वरदान तुम मांगोगी, हम तुम्हें अवश्य देंगे. जब

जित्वानुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां सीताऽभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्॥मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीम
कृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥ ७ ॥ यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ॥ राज्यं श्रियं
प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसंगः ॥८॥रक्षस्स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिर
दूषणमुख्यबन्धून्॥जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदंडपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥९॥सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छ
येन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकंधरेण ॥ जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः॥१०॥

2/12

श्रीरामचन्द्रका अभिषेक होनेकी तैयारियां हुई, तब इस कैकेयीने भरतजीका युवराज होना और श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना यह दो वरदान मांगे. यद्यपि महाराज दशरथजी स्त्रैण थे, तोभी यह जानकर कि, वचनभंग होनेसे इनको महापाप होगा. श्रीरामचन्द्रजीने अपने पिताकी आज्ञाको मस्तकपर चढ़ाकर ग्रहण किया. कहा भी है कि " रघुकुलरीति सदा चलि आई । प्राण जाहिं बरु वचन न जाई " फिर जिस प्रकार योगीलोग त्यागनेके अयोग्य प्राणोंको छोड़ देते हैं वैसेही राज्य, श्री, प्रणय, सुहृद् और रहनेका स्थान भी छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये ॥८॥ वनके बीच कामातुरा शूर्पणखाके नाक, कान काट खरदूषण, त्रिशिरादि उस शूर्पणखाके मुख्य बांधवोंसहित चौदह हजार राक्षसोंका संहार

कर डाला, फिर महाकठिन धनुष हाथमें लेकर बराबर ही विचरण करते हुए अतिकष्टसे वनमें बास करने लगे. इसी बीचमें जनककुमारी जानकीजीकी सुन्दरता सुनकर राक्षस रावणके हृदयमें कामाग्नि बलने लगी और सीताजीका हरण करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे दूर करनेके लिये उस दुरात्मा रावणने मारीच नाम राक्षसको नियुक्त किया. तब मारीच अद्भुत मृगका रूप धारण करके श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे बहुत दूरतक भागता हुआ लेगया " प्रगटत दुरत करत छल भूरी । यहि विधि प्रभुहि गयउ ले दूरी" जब श्रीरामचन्द्रजी उस कपटमृगके पीछे बहुत दूरतक चले गये, तब उन्होंने हरिणरूपी निशाचरको अतितीक्ष्ण बाण चलाकर मार डाला कि, जैसे भगवान् रुद्रजीने मृगरूप धारण करके दौडते हुए ब्रह्माजीको बाण मारा था ॥ ९ ॥१०॥ इसी समयमें राक्षसोंमें नीच रावणने भेडिया जैसे चुपचाप भेंड़को उठाकर लेजाता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके पीछे उनकी भार्या सीताजीका हरण कर लिया, तब श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राणप्यारीसे अलग हो स्त्री रखवालों

रक्षोधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥ भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गति मिति प्रथयंश्चकार ॥ ११ ॥ दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबंधं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागति तैः ॥ बुद्धाथ वालिनि हते प्लवगेंद्रसैन्यैर्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चितांघ्रिः ॥ १२ ॥ यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः॥सिंधुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविंदमुपगम्यबभाष एतत् ॥ १३ ॥

का परिणाम अतिदुःखितरूपी गतिको प्रकाशित करते हुए दीनके समान अपने परमप्रिय भाई लक्ष्मणको संग लिये वन वनमें घूमने लगे ॥ ११ ॥ और घूमते २ देखा कि, उनके ही लिये धर्म करके अर्थात् रावणके साथ संग्राम करके जटायु गिद्ध मर गया है, उसका देह पडा है, शास्त्रोक्त संस्कार अर्थात् दहनादि संस्कार कुछ भी नहीं हुए थे, इसलिये इस पक्षीके मृतक देहको जला दिया और आगे चले। फिर उनके ग्रहण करनेको जो एक कबन्ध बाँहें फैलाये मुख बाये हुए आ रहा था, उसका प्राणसंहार किया, फिर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मित्रता करके वालिनामक वानरका वध कर उनकी सेनासे अपनी भार्याका खोज कराया, फिर उनका पता जानकर समुद्रके तटपर गये. इन श्रीरामचन्द्रजीने यद्यपि मनुष्यावतार धारण किया था, परंतु महेश्वर और ब्रह्माजी भी उनके चरणोंकी वन्दना करते थे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके तटपर पहुँच तीन रात उपवास कर समुद्रके आनेकी बाट देखी, जब ऐसा करनेपर भी समुद्र न आया तब श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त

2/3

कुपित हुए। क्रोधके कारण श्रीरामचन्द्रजीकी भ्रुकुटियें ऐसी टेढी होरही थीं कि, उनकी दृष्टि समुद्रमें पडते ही जलधिके रहनेवाले नाके आदि जलजन्तु अत्यन्त व्याकुल होगये. तब समुद्र अपने शब्दको निवारण करके मूर्ति धार और मस्तकपर अर्घ्यादि पूजा उपहार लिये हुए श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके निकट आकर कहने लगा ॥ १३ ॥ हे भूमन्! हम जडमति हैं। इसलिये अबतक आपको नहीं जान सके, आप निर्विकार आदिपुरुष और जगत्के अधीश्वर हैं, अधिक करके जिनके वश हुए सत्त्वगुणसे देवतालोग, रजोगुणसे प्रजापतिगण और तमोगुणसे भूतपति उत्पन्न होते हैं, सो आप ही गुणेश्वर हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो! जो आपकी इच्छा है। तो हमारे जलको लँघकर चले जाओ, विश्रवाके विष्ठाके तुल्य दुरात्मा रावण त्रिभुवनको क्लेशका देनेवाला है, उसका शीघ्र वध करके अपनी भार्या सीताजीको ग्रहण कीजिये. हे प्रभो!

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम्॥ यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मंन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥१४॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीरपत्नीम् ॥ बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायंति दिंग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥१५॥ बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकंपितभूरुहांगैः॥ सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लंकां विभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥१६॥ सा वानरेंद्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटंका॥ निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृंगाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा॥१७॥

यद्यपि हमारा जल आपके गमन करनेमें बाधा नहीं दे सकता, तो भी इसमें पुल बाँध दीजिये। सेतुके बाँधनेसे सदा ही आपकी कीर्ति स्थिर रहेगी क्योंकि इस सेतुके समीप आकर यह दुष्कर कार्य देख निःसन्देह राजालोग आपके यशको गावेंगे ॥ १८ ॥ हे राजन्! समुद्रके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने विविध भाँतिके पर्वतशिखर और वृक्षोंसे उनके ऊपर सेतु बाँधा. उन पर्वतोंके शिखरों पर बहुतसे पेड़ भी लगे हुए थे, उन वृक्षोंकी शाखा वानरेन्द्रोंकी भुजाओंसे अत्यन्त कम्पायमान हुई थीं, जब सेतु बाँध लिया गया, तब विभीषणके परामर्शसे सुग्रीव, नील, हनुमानादि सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने लंकापुरीमें प्रवेश किया. श्रीरामचन्द्रजीके प्रवेश करनेसे प्रथम ही सीताजीके खोजनेके समय हनुमान्जीने लंकापुरीको जला दिया था ॥ ॥ १६ ॥ जैसे ही श्रीरामचन्द्रजी सेनाके साथ लंका पुरीमें पहुँचे, वैसे

ही लंकापुरी घूमनेसी लगी जिस प्रकार हाथियोंके समूहसे नदी चलायमान हो जाती है, क्योंकि वानरेन्द्रोंकी सेनाने वहाँके विहारस्थान, खजाने, कोषगृहादिके द्वार, पुरद्वार, सभा, वलभी–महलकी अग्रभागाच्छादनी (छज्जा) और कपोतपालिकादि स्थान घेर लिये और इस सेनाने वेदी (चबूतरे), पताका, स्वर्णकलश और चौराहे आदि सब तोड फोड दिये ॥ १७ ॥ राक्षसराज रावणने यह देखकर निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, सम्पूर्ण अनुचर और इन्द्रजीत, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पादि पुत्रोंको और पीछेसे अपने भाई कुम्भकर्णको भेजा ॥ १८ ॥ हे महाराज परीक्षित ! यद्यपि सब राक्षसोंकी सेना असि, शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, शर, तोमर, खड्गादि विविध भाँतिके शस्त्रोंसे अतिशय दुर्द्धर्ष थी, तो भी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने माला पहिरे हुए लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, गधन्मादन, नील, अंगद,

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुंभकुंभधूम्राक्षदुर्मुखसुरांतनरांतकादीन् ॥ पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकंपनादीन्सर्वानुगान्सम
हिनोदथ कुंभकर्णम् ॥ १८ ॥ तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणमरु
त्सुतगंधमादनीलांगदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९ ॥ तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वंद्वं वरूथमिभपत्तिरथा
श्वयोधैः ॥ जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरंगदाद्याः सीताऽभिमर्शहतमंगलरावणेशान् ॥ २० ॥ रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ॥ स्वस्स्यंदने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥

जाम्बवान् और पनसादि सेनापतियोंके साथ उनके ऊपर चढाई की थी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजीके इन सेनापतियोंने रावणके हाथी घोडोंसे युक्त जितनी सेना आई थी उनमें जिस प्रकारसे द्वन्द्वयुद्ध हो वैसा ही कार्य करने लगे अर्थात् उनके ऊपर झपटने लगे और पर्वत, गदा, बाण चला चलाकर उन राक्षसोंका संहार करने लगे । हे महाराज ! राक्षसोंकी सेनाका संहार क्यों न हो ? जब कि, बलात्कार जगज्जननी जानकीजीका अंगस्पर्श करनेवाला रावण जिनका स्वामी था कि, जिसका सब मंगल नाशको प्राप्त होगया था ॥ २० ॥ इस प्रकारसे अपनी सेनाका नाश होता हुआ देखकर दुरात्मा रावण सहसा पुष्पक विमानपर आरूढ होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दौडा. इसी समय इन्द्रका सारथी मातलि दीप्तिमान् देवराज इन्द्रका रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट

7/2

आया–श्रीरामचन्द्रजीको रथारूढ़ देखकर दुरात्मा रावण तीक्ष्ण २ छुरेवाले बाण श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाने लगा ॥२१॥ तब सीतापति पाखण्डी रावणको ललकारकर बोले कि, अरे दुष्ट ! तू राक्षसोंमें भी विष्ठाके समान है, कुत्ता जैसे गृहस्वामीके पीछे घरमें प्रवेश करके किसी सामग्रीको चुराकर लेजाता है, वैसे ही हमारे पीछे हमारी भार्याको तू हरण कर ले आया है; तू अतिनिर्लज्ज है, क्योंकि नीच कर्म किया है, हमारा वीर्य अमोघ है । देख,हम कृतान्तके समान अभी तेरे किये इस नीच कर्मका फल देते हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार रावणको धिक्कार देकर वह बाण जो कि, धनुषपर चढाहुआ था, श्रीरामचन्द्रजीने छोडा. इस बाणने निशाचरराज रावणके ऊपर गिरकर उसके हृदयको फाड डाला–हे राजन् ! इस प्रकार रावण पुष्पकविमानसे नीचे गिर पडा कि,जैसे पुण्य क्षीण होकर पुण्यवान् स्वर्गसे नीचे गिरता है.रावणको गिरता हुआ देखकर सब लोक हाहाकार करने लगे ॥२३॥ तिसके पीछे सहस्रों राक्षसियें लंकाके बाहर आय मन्दोदरी नामक रावणकी स्त्रीसहित रोती हुई रणभूमिमें घूमने लगीं ॥ २४॥ इन राक्षसियोंके बन्धुबांधव वीर्यवान् लक्ष्मणजीके बाणोंसे मारे गये थे. यह राक्षसियें उनको अपने हृदयसे लगाय लगाय शिर पीट पीट और छाती कूट कूट आर्त वाणीसे रोने लगीं॥२५॥राक्षसियें कहने लगीं कि, हा नाथ ! हम मर मिटीं.हे रावण ! तुम लोकोंके रुलानेवाले थे. हमारी लंकापुरी तुमसे विहीन हो शत्रुसे पीडित हो रही है,सो इस समय हम किसकी शरण जायँ॥२६॥ हे महाभाग ! तुम कामके वश हो एकबार ही बुद्धिहीन हो गये थे;जनकनंदनीके प्रभाव और तेजको नहीं जाना इससे ही तुम्हारी यह दशा हुई॥२७॥

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः कांताऽसमक्षमसतापहृता श्ववत्ते ॥ त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल
इव कर्तुरलंघ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवं क्षिपन्धनुषि संधितमुत्ससर्ज बाणं सवज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ॥ सोऽसृग्वमन्दशमुखै
र्न्यपतद्विमानाद्धाहेति जल्पति जने सुकृतीवरिक्तः ॥ २३ ॥ ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः ॥ मंदोदर्या
समं तस्मिन्प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥ स्वान्स्वान्बंधून्परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ॥ रुरुदुस्सुस्वरं दीना घ्नंत्य
आत्मानमात्मना ॥ २५॥ हा हता स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ॥ कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता॥२६॥
नैवं वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः ॥ तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥

कृतैषा विधवा लंका वयं च कुलनन्दन ॥ देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वानां
विभीषणश्चक्रे कोसलेंद्रानुमोदितः ॥ पितृमेधविधानेन यदुक्तं सांपरायिकम् ॥ २९ ॥ ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ॥
क्षामां स्वविरहव्याधि शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकंपत ॥
आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ॥ विभीषणाय भगवान्दत्त्वा
रक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लंकामायुश्च कल्पांतं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितः
पथि ॥ ३३ ॥ उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥ ३४ ॥

हे रावण! तुम्हारे मारे जानेसे हम और यह लंकापुरी दोनों पतिहीन हुईं। तुमने अपने ही दोषसे अपनी देहको शृगालोंका भक्ष्य किया और आत्माको नरकभोगी बनाया ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित्! इसके उपरान्त राक्षसेन्द्र विभीषणने महात्मा रामचन्द्रजीकी आज्ञा पाय अपने ज्येष्ठ भ्राता रावणके मृतककर्म किये ॥ २९ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी अशोकवनमें गये. वहीं शीशमके नीचे बैठी हुई अति क्षीण विरहके दुःखसे दुःखी जानकीजीको महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥ ३० ॥ प्रियतमा जानकीजीको अत्यन्त दीन हीन देखकर श्रीरामचन्द्रजीके कोमल हृदयमें दया आ गई परन्तु पतिके दर्शनसे आनन्द पाय जनकनन्दिनी जानकीजीका वदनारविन्द भी विकसित होने लगा, फिर महात्मा लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीको विमानपर बैठाय फिर हनुमानजीके साथ आप भी उसपर बैठे. इसके उपरान्त विभीषणको राक्षसोंका राज्य दे लंकाका स्वामी बनाया॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और एक कल्पभरकी आयु देदी. फिर चौदह वर्षका वनवास समाप्त करके विभीषणके साथ अयोध्यापुरीको चले. मार्गमें जाते हुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर लोकपालगणोंके हाथोंसे छूटी हुई फूलोंकी मालाओंकी वर्षा होने लगी और ब्रह्मा आदि परमानन्दसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र गाने लगे. श्रीरामचंद्रजीने मार्गमें जाते हुए सुना कि, भ्राता भरत अयोध्यासे बाहर भदरसामें आय अपना डेरा किये हुए हैं, वह कुशोंपर सोते और वल्कल पहरते हैं, प्राण धारण करनेके लिये गोमूत्रमें पका केवल यवान्न खाते हैं. यह सुन रामचन्द्रजीका हृदय भर आया, रोवें खडे हो गये और विलापकलाप करते

हुए विभीषणसे बोले ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ महात्मा रामचन्द्रजी इस प्रकार विभीषणसे कहते विलाप करते चले जाते थे. हे महाराज परीक्षित् ! जबसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये, तबसे भरतजी अयोध्यामें न जाय नंदिग्राम (भद्रसा) हीमें रहते थे. जब भरतजीने सुना कि श्रीरघुनाथजी रणमें शत्रुको जीत,सीता और लक्ष्मण सहित कुशलपूर्वक आगये तब भरतजी मंत्री,पुरोहित और पुरवासियोंके साथ उनको लिवालानेके लिये श्रीरामचंद्रजीके निकट चले ॥ ३५ ॥ उस समय अनेक बाजे बजने लगे, गीत सुनाई आये और वेदपाठी ब्राह्मणोंके वेद पढनेका शब्द अति जोरसे होने लगा और सुवर्णमय अनेक पताकायें और चित्रमय ध्वजाओंसे शोभायमान असंख्य सुवर्णमय रथ, बख्तर पहिरे हुए बहुतसी

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थंडिलेशयम् ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः॥ पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥३५॥ नंदिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिस्स्वनैः ॥ ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३६ ॥ स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥३७॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥ पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ पादुके न्यस्य पुरतः प्रांजलिर्बाष्पलोचनः ॥ ३९ ॥ तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ॥ ४० ॥

सेना और पदाति सेवक भी बहुत सारे संग गये ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार राजाके योग्य चवँर छत्र और सब सामग्री लेकर जब भरतजी अपने बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंपर गिर पडे,तब उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी कि, जिससे उनके नेत्र व हृदय भीग गये ! तब हाथ जोड दोनों करसे खडाऊँ आगे रखदीं और फिर नेत्रजलसे स्नान कराते २ बहुत देरतक भुजाओंसे पकड श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदयसे लगाये रहे । तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रसे सीता और लक्ष्मणजीके साथ मिलकर ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको नमस्कार किया तिसके उपरान्त सब प्रजाने श्रीरामचंद्रजीको नमस्कार किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

और उत्तरकौशलाके सब रहनेवाले बहुत कालके पीछे अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको आया हुआ देखकर आनन्दके समुद्रमें स्नान करने लगे और अपने २ दुपट्टे कँपाते हुए हर्षित हो फूलोंकी मालायें वर्षा कर नाचे । हे महाराज परीक्षित्! जब महाराजाधिराज श्रीरामचंद्रजी अयोध्या पुरीमें आये उस कालमें भरतजीने उनकी खडाऊँ धारण कर ली थीं. विभीषण, सुग्रीवने चामर और व्यजन लिया था. पवनकुमार हनुमान्जी श्वेत छत्र धारण किये हुए थे। शत्रुघ्नजीने धनुष और तरकश लिया और जगज्जननी जानकीजीने तीर्थोंके जलसे भरा हुआ कमण्डलु ग्रहण किया था और युवराज अंगदजी खड्ग और ऋक्षराज जांबवान् सुवर्णमय ढाल ले आये. पुष्पक विमानमें जब वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी विराजमान

तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ धुन्वंतमुत्तरासंगान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥ ४१ ॥ उत्तराः कोशला माल्यैः किरंतो ननृतुर्मुदा ॥ पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ॥ ४२॥ विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ धनुर्निषंगाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमंडलुम् ॥ ४३ ॥ अबिभ्रदंगदः खङ्गं हैमं चर्मर्क्षराण् नृप ॥ पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ ४४ ॥ विरेजे भगवान्राजन्ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ भ्रातृभिर्नंदितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ॥ ४५ ॥ प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥

हुए, तब नारियोंने उनकी प्रशंसा की, बन्दीजनोंने यश बखाना ॥ ४१ ॥ ४२ ॥४३॥४४॥ उस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे कि, जैसे तारागणोंके साथ निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है। अपने भ्राताओंसे सम्मानित होकर श्रीरामचंद्रजीने उत्सवयुक्त पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ तिसके उपरांत राजभवनके भीतर जाय कैकेयी इत्यादि गुरुपत्नी, अपनी माता और गुरुजनोंकी पूजा श्रीरामचंद्रजीने की. फिर अपने सखा और छोटे जनोंसे पूजित हो सत्कार यथोचित सम्मान किया ॥ ४६ ॥

7/6

इसके पीछे सीता और लक्ष्मणजी भी जाकर यथानियम इन सब गुरुजनोंसे मिले. प्राणोंको पाकर जिस प्रकार देह उठ खड़ा होता है उसी प्रकार अपने२पुत्रोंको पाय सब मातायें सहसा उठ खडी हुईं और उनको गोदीमें बिठाय नेत्रजलसे उनका अभिषेक कर अपना शोकसंताप दूर करने लगीं।।४७।।इसके उपरांत ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकी जटा छुडवाय कुलवृद्ध पुरुषोंके साथ मिलकर समुद्रके व और सब तीर्थोंके जलसे उनका अभिषेक किया।।४८।।हे महाराज परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार शिरसे स्नान कर प्रथम शोभायमान वस्त्र धारण किये फिर हार और अलंकारोंसे सजकर वसन भूषण पहरे, भाइयों और सीताजीके साथ दीप्तिमान् हो विराजमान होने लगे ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे महात्मा भरतजीने प्रणाम कर जब श्रीरामचंद्रजीको प्रसन्न किया, तब उन्होंने राज्यसिंहासन ग्रहण किया स्वधर्मनिरत और वर्णाश्रमगुणोंसे युक्त प्रजापुञ्जको पिताके समान पालन करने लगे. हे राजा परीक्षित् ! सब प्राणियोंको सुखके देनेंवाले धर्मज्ञ श्रीरामचंद्रजी जब राजा हुए उस समय यद्यपि त्रेतायुग वर्त्तमान था,तो भी वह काल सतयुगके समान जान पडने लगा. समुद्र, नद, नदी,पर्वत, वन, द्वीप,खण्ड सब ही प्रजाका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हुए ॥ कमलनयन श्रीरामचंद्रजीके राजत्वमें राज्यके बीच आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि अथवा थकावट कुछ भी न रही ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ पुत्रान्स्वमातरस्तांस्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ॥ आरोप्यांकेऽभिषिंचंत्यो
बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४७ ॥ जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिंचद्यथैवेन्द्रं चतुस्सिंधुजला
दिभिः ॥ ४८ ॥ एवं कृतशिरस्स्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ४९ ॥
अग्रहीदासनं भ्राता प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ ५० ॥ जुगोप पितृवद्रामो
मेनिरे पितरं च तम् ॥ त्रेतायां वर्त्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥ ५१ ॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूत
सुखावहे ॥ ५२ ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिंधवः ॥ सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥ नाधिव्या
धिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥ ५३ ॥

जबतक इच्छा न होती तबतक मृत्यु किसीको नहीं दबा सकती थी. श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! श्रीरामचंद्रजी पवित्र और एकपत्नीव्रत धारी होकर सब लोगोंको राजर्षियोंका अनुष्ठान किये हुए गृहमेधीय धर्मका उपदेश करके उसका स्वयं भी पालन करने लगे ❀ और भावकी जाननेवाली देवी सीताजी अपने स्वामीका आश्रय ले प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लाजसे इनके चित्तको हर लेती थीं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां रामचरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा–ग्यारहमें श्रीरामने, अवधपुरीमें आन । यज्ञ

मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥५४॥ स्वधर्मं गृहमेधीयंशिक्षयन्स्वयमाचरन् ॥ प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताऽहरन्मनः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभाग० म० नवमस्कंध इक्ष्वा० सगरोपाख्याने श्रीरामचरितं नाम दशमोऽध्यायः॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनात्मान राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मण दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदंतरा॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निस्स्पृहः ॥ ३ ॥

किये भाइन सहित, सो सब कहौं बखान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! तिसके पीछे भगवान् श्रीरामचंद्रजी अपने आचार्य लोगोंके साथ उत्तमोत्तम याग यज्ञ करके सर्वदेवमय परमदेव जो आप हैं, सो अपनी ही पूजा करने लगे ॥ १ ॥ यज्ञके अन्तमें पश्चिमदिशा होता और ब्रह्माजीको दक्षिणदिशा, अध्वर्युको पूर्वदिशा और सामगान करनेवालोंको उत्तरदिशा श्रीरामचन्द्रजीने देदी. इन दिशाओंके बीचकी जितनी भूमि थी, "इसको ब्राह्मण ही पानेके योग्य है" यह विचार निस्पृह श्रीरामचन्द्रजीने अवशेष पृथ्वी आचार्यको देदी ॥ २ ॥ ३ ॥

❀ शंका–रामचन्द्रके राज्यमें जो प्राणी मरनेकी इच्छा आप करता था उसीका मरण होता था और जो अपना मरना नहीं चाहता था, उसका मरण कभी नहीं होता था, क्योंकि मृत्यु तो सब लोकमें है किसी लोकमें जल्दी, किसी लोकमें देरसे परन्तु ऐसा लोक कोई भी नहीं है कि जिस लोकमें मृत्यु न हो ?

उत्तर–"अनिच्छताम्" इस शब्दका अर्थ मरणकी इच्छा करना नहीं होगा, इसका यह अर्थ है कि, जो प्राणी रामचन्द्रके चरणारविन्दके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते थे दिनरात उन्हीं चरणोंमें उन्मत्त रहते थे उन प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती ॥

इस प्रकारसे दानिशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने जब सब दान कर दिया तब केवल उनके पास वसन भूषण बच रहे और राजराजेश्वरी श्रीमती जानकीजीके पास भी केवल वसन भूषण ही रहे अर्थात् इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्रजीने सब कुछ दान कर दिया ॥ ४ ॥ परन्तु ब्राह्मणदेवता श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी वत्सलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करके सब वस्तु श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दी * और बोले ॥५॥ हे भगवन्! हे भुवनेश्वर! आपने हमको क्या नहीं दिया है? अर्थात् आपने हमको सब कुछ दिया, क्योंकि आपने हम लोगोंके हृदयमें प्रवेश

इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता ॥ ४ ॥
ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥
अप्रत्तं नस्त्वया किन्तु भगवन्भुवनेश्वर ॥ यन्नोंऽतर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुंठमेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदंडार्पितांघ्रये ॥ ७ ॥
कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन्वाचोऽशृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥

करके अपनी प्रभा विस्तार कर हमारे अंधकारको दूर किया है ॥६॥ हे प्रभो! आप ब्रह्मदेव अकुण्ठ बुद्धिमान् हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं। हे भगवन्! आप उत्तमश्लोकोंमें आगे गिने जाने योग्य हैं, मुनिलोग भी अपने अपने चित्तमें आपके दोनों चरणकमलोंकी सदा चिंता करते हैं ॥ ७ ॥ बहुत दिन गये पीछे किसी समय श्रीरामचंद्रजी गूढ वेष धारण कर यह जाननेके लिये कि, हमारे राज्यमें लोग हमारी निंदा करते हैं वा स्तुति, रात्रिकालमें गुप्तभावसे घूमने लगे. एक दिन अकेले घूम रहे थे कि, एक पुरुषने अपनी स्त्रीसे कुछ कटुवचन कहे कि,

7/7

---

* शंका–जो कुछ वस्तु रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान करके दी थी, वह वस्तु ब्राह्मणोंने दान लेकर कुछ घडी अथवा कुछ दिन पीछे उसी दानवाली वस्तुको फिर पीछे प्रीतिसहित रामचन्द्रजीको देदी, तब रामचन्द्रने अपनी दान की हुई वस्तु ब्राह्मणोंसे क्यों ली? क्या कारण, यह बडे सन्देहकी बात है।

उत्तर–ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर अपना प्रसाद तुलसदिलपत्र आदि लेकर तथा तीन लोकका सुखपर्यंत जब क्षत्रियोंको देते हैं, तब उसी समय क्षत्रियलोग ब्राह्मणोंका दियाहुआ प्रसाद प्रीतिपूर्वक ले लेते हैं, जब कोई राजा नहीं ले तो शीघ्र ही ब्राह्मणलोग उस राजाको शाप दे देते हैं, ऐसा रामचन्द्रने मनमें विचारकर अपनी दी हुई वस्तु प्रसाद समझकर ग्रहण की, कुछ लोभ समझकर नहीं की ॥

जिनको वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीने सुना ॥८॥ वह पुरुष अपनी स्त्रीसे कह रहा था कि,तू पराये घर जाया करती है,तू अतिदुष्टा असती है,मैं अब तुझे खाने पहननेको नहीं दूंगा. रामचन्द्रजीका ही स्त्रियोंपर अनुराग है कि, पराये घरमें बहुत दिनोंतक रही सीताको फिर अपने घर रख पालन करते हैं। मैं रामचंद्र नहीं हूँ। चली जा ।तेरा मुख नहीं देखनेका ॥ ९ ॥ अज्ञानी, दुराराध्य, बहुमुख लोकके मुहँसे यह वचन सुनते ही श्रीरामचंद्रजीको अत्यन्त भय हुआ और उन्होंने स्थानपर आय अपनी प्रियतमा जनकनंदिनी जानकीजीको त्याग दिया.भीत पतिसे त्यागी हुई जानकीजी गर्भावस्थामें महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें आईं ॥ १० ॥ कुछ दिनोंमें जानकीजीके समय पूर्ण होनेपर दो पुत्र

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥ इति लोकाद्बहुमुखा
दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अंतर्वत्न्यागते काले यमौ सा
सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥ अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुश्श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गंधर्वान्कोटिशो जघ्ने
भरतो विजये दिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥
॥ १४ ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥ १५ ॥

उत्पन्न हुए. यह दोनों कुश, लव नामसे विख्यात हुए. महर्षि बाल्मीकिजीने उन दोनों पुत्रोंका जातकर्म आदि संस्कार किया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! इधर अयोध्यापुरीमें वीर्यवान् लक्ष्मणजीके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ। महात्मा भरतजीके भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुए और शत्रुहनजीके पुत्रोंका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ ॥ १२ ॥ उसी समय भरतजी दिग्विजय करनेके लिये गये और करोडों गन्धर्वोंका सहार किया और उनका सब धन लाकर राजाको दे दिया। शत्रुहनजीने मधुके पुत्र लवणासुरका प्राणसंहार करके मधुवनमें मथुरापुरी बसाई । जनकनंदिनी जानकीजीका

ध्यायंती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रामो रुंधन्नपि धिया शुचः ॥१६ ॥स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्ता
न्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः ॥ १७ ॥ अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥
तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखंडितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य
विद्धं दंडककंटकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥ १९ ॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीला
तनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षोवधो जलधिबंधनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥
यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायंत्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ॥ तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टा
पदांबुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

जब रामचन्द्रजीने त्याग कर दिया ॥१३॥१४॥१५॥ तब कुछ दिन पीछे अपने पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीको सौंप अपने पति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई पृथ्वीके विवरम समा गई. यह बात श्रीरामचन्द्रजीने भी सुनी। यद्यपि इन महाराज स्वयं ईश्वरने अपनी बुद्धिके बलसे शोक निवारण किया॥१६॥ तो भी प्राणप्यारीके गुणगण वारंवार याद आने लगे कि, जिनके याद आनेको यह किसी प्रकार न रोक सके. हे राजा परीक्षित्! स्त्री पुरुषोंका अनुराग सब कालमें इसी प्रकार भयका देनेवाला है ॥ १७॥ जब कि, यह अनुराग अवतारोंको भी भयदाई हुआ तब गृहस्थीमें चित्त लगाये ग्राम्य पुरुषोंकी तो क्या बात है ? तिसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजी अखंडित ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अग्निहोत्र करते रहे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे दण्डकवनके कांटोंसे जिनके चरणकमल बिध गये थे उन्हीं चरणोंको स्मरणकारी भक्तजनोंके हृदयमें स्थापित करके अपने धामको चले गये ॥ १९ ॥ हे राजन्! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रमें पुल बांधना और अस्त्रसमूहसे राक्षसादिका वधकार्य यद्यपि कविलोगोंने आश्चर्यमय वर्णन किया है तो भी इन कार्योंसे उनका कुछ यश नहीं हो सकता, क्योंकि उनका यश बहुत है, साम्यसे छूटा है, सो वैरीको मारनेके समय बन्दर बिचारे क्या उनकी सहायता कर सकते हैं, इस लिये जिस प्रकार सुग्रीवादिके निकट इन श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय लेना केवल लीला मात्र है, वैसा ही राक्षसोंका वधादि कार्य भी लीला ही है हे महाराज! आप ऐसा न समझ लेना कि, हमारे यह वचन अयुक्त हैं। देवतालोगोंकी प्रार्थनासे लीला करनेके लिये ही भगवान्ने यह अवतार धारण किया था। अहो! जिनका

निर्मल यश दिग् दिगन्तरमें व्याप्त होकर दिक्पाल हस्तियोंका आच्छादन पटस्वरूप हुआ है, इसलिये अबतक जिसको युधिष्ठिरादि नृपतियों की सभामें ऋषिलोग निरन्तर गान करते हैं और जिनके चरणकमल देवता और नृपति लोगोंसे सेवित हैं, हम उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें जाते हैं ॥२०॥२१॥ अयोध्या निवासियोंने जिन पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीको स्पर्श किया, वा दर्शन किया अथवा जिन्होंने उनको बैठाला था, किंवा जो लोग उनके अनुमत हुए थे, वह सब पुण्यात्मालोग उस स्थानमें गये जहां कि, योगीलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ हे परीक्षित! जो पुरुष श्रवणोंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके इस आख्यानको धारण करेंगे, वह उपशमनिष्ठ हो निःसन्देह कर्मबंधनसे छूट जायँगे ॥२३॥ तिसके उपरांत राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे कहने लगे कि, हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं किस प्रकार वर्तमान थे ? उन्होंने अपने

यैः संस्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा॥कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छंति योगिनः ॥ २२ ॥ पुरुषो राम
चरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबंधैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स भगवान्रामो
भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशद्दि
ग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गंधोदैः करिणां
मदशीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥

भ्राताओंसे जो कि, उनके अंशरूपी थे कैसा व्यवहार किया था और साक्षात् परमेश्वरस्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी थे, उनसे उनके भ्राता और प्रजा लोग कैसा व्यवहार करते थे ?॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षित्का प्रश्न सुनकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित् ! त्रिभुवनके ईश्वर श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्यामें आय राजसिंहासनपर बैठनेके पीछे अपने भ्राताओंको दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा दी, फिर अपनी जातिवाले 'लोगोंके साथ बन्धुत्व प्रकाशित कर अपने मित्रोंके साथ निरन्तरीकी देखभाल करने लगे ॥ २५ ॥ जबसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ, तबसे अयोध्यापुरीके सब मार्गोंपर बराबर सुगन्धका जल पुऔर हाथियोंके मदका जल छिडका जाता था. यह अयोध्यापुरी अपने स्वामीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे समृद्धिसंपन्न हुई थी ॥ २६ ॥

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु॥विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मंडिताम्॥२७॥पूगैः सवृन्दै रंभाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ॥ आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम्॥२८॥तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः॥आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविंदलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन्॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वजादिभिः ॥ अनंताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥ विद्रुमोदुंबरद्वारैर्वैडूर्यस्तंभपंक्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भातं स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कांतकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥

वहांके महल, पुरके द्वार पत्थर बने हुए थे और द्वार द्वारपर जलसे भरे हुए सुवर्णके कलश सदा रक्खे रहते थे, सर्व स्थानोंमें सदा ही पताका फहराती थीं, गुच्छोंके साथ सुपारियें, केला और शोभायमान बसन, पाट और कौतुक बनानेके योग्य वस्त्र, माला, इत्यादिसे स्थान स्थानमें मंगलके तोरण बनाये गये थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ और जहां जहांपर श्रीरामचन्द्रजी गमन करते थे उसी उसी स्थानमें पुरवासी लोग भेंट साथ लेकर आते थे और यह कहकर आशीर्वाद देते थे कि, हे देव ! आपने प्रथम वराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था, अब इसका आप प्रतिपालन कीजिये ॥ २९ ॥ राज्यकी प्रजा बहुत समयके पीछे अपने राजाके आनेका समाचार पाकर उनके दर्शन करनेकी वासनासे स्त्री पुरुष सब ही अपने अपने घर छोडकर महलोंकी छतपर चढ़े हुए थे और अपरितृप्त लोचनसे राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीको अवलोकन करके उनके ऊपर फूल बर्षाय रहे थे ॥ ३०॥ जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने अपने गृहमें प्रवेश किया उस समय श्रीरामचन्द्रजीका घनागार अत्यन्त अखिल रत्नादिसे पारिपूर्ण और अनेकानेक महामोलकी सामग्रियोंसे सुशोभित था. यद्यपि इस घनागारको पहले श्रीरामचंद्रजीके सम्बन्धीलोग भोग कर चुके थे तो भी यह पूर्ण था ॥ ३१ ॥ वहांके द्वारोंकी देहलियें मूँगोंकी बनीहुई थीं, थम्भ वैदूर्य्यमणिके बने हुए थे,गृहोंके आंगन मरकतमय होनेके कारण अतिस्वच्छ थे और स्फटिक मणिकी बनी हुई भीतें अत्यन्त दीप्तिमान् होर ही थीं॥३२॥ विचित्र पुष्पोंके हारोंसे श्रेष्ठ पट्टिकाओंसे और वस्त्र व रत्नोंकी किरणोंसे यह भवन दीप्तिमान् हो रहा था और चैतन्यतुल्य

उज्ज्वल मुक्ताफलोंसे व कमनीय भोगसाधन द्रव्यसमूहोंसे यह भवन सब प्रकार सुसज्जित था. सुगंधित धूपसे सुगंधित पुष्पमण्डलसे मण्डित और सब अलंकारोंके अलंकारस्वरूप देवताओंके समान स्त्री पुरुषोंसे यह भवन सेवित हो रहा था ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि आत्माराम मुनिलोगोंके अग्रगण्य थे, तो भी उस भवनमें अपनी प्राणप्यारी श्रीजानकीजीके साथ विहार करते थे. इन रामचन्द्रजीने बहुत वर्षोंतक यथाकालमें सब अभिलाषित भोगोंका भोग किया था. उस समय सब मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका ध्यान करते थे आत्माराम और धैर्यवानोंमे श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कालानुसार धर्मको विना पीडा दिये रमण किया था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीरामचरितवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ दोहा—द्वादशमें कुरुवंशकी, कहूँ कथा समझाय । पुनि

धूपदीपैः सुरभिभिर्मंडितं पुष्पमण्डितैः ॥ स्त्रीपुंभिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वाराममधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥ बुभुजे च यथाकामं कामान्धर्ममपीडयन् ॥ वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० म० नव० इक्ष्वा० सगरचरिते श्रीरामोपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ॥ पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत्ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ॥ ततो बलः स्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥ स्वगणस्तत्सुतस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकुसुतवंशकी, सकल कथा कहौं गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशजीके तिथि नामक जो पुत्र उत्पन्न हुए थे; उनसे निषध उत्पन्न हुए । निषधका पुत्र नभ, तिसका पुत्र पुण्डरीक और तिसका सुत क्षेमधन्वा हुआ ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, तिसका पुत्र अनीह, अनीहके पारियात्र, पारियात्रका पुत्र बलस्थल, तिसका पुत्र वज्रनाभ, यह सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ वज्रनाभका बेटा स्वगण और तिसका पुत्र विधृति जन्मा विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई । यह हिरण्यनाभमहर्षि जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था ॥ ३ ॥

इसके ही निकट याज्ञवल्क्य ऋषिने उस अध्यात्मयोगको सीखा जिससे महान् सिद्ध होकर हृदयकी गांठ खुल जाती है ॥ ४ ॥ इस हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य और इस पुष्यसे ध्रुवसंधिकी उत्पत्ति हुई. तिसका पुत्र सुदर्शन, तिसका सुत अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र उत्पन्न हुआ। इस शीघ्रसे राजा मरु जन्मे ॥ ५ ॥ यह मरु योगमें सिद्धि प्राप्त करके कलापनामक ग्राममें विराजमान हैं। जब यह कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशका नाश होता हुआ देखेंगे तब यह अपने वंशको फिर उत्पन्न करेंगे ❀ ॥ ६ ॥ इनके पुत्र प्रसुश्रुत, तिनके संतान संधि, तिनका पुत्र

शिष्यः कौसल्य अध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रंथिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् ॥ सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ॥ कलेरंते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य संधिस्तस्याप्यमर्षणः ॥ सहस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ततः प्रसेनजित् तस्मात्तक्षको भविता पुनः ॥ ७ ॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥ ८ ॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥

720

अमर्षण, अमर्षणका पुत्र सहस्वान् और सहस्वानके विश्वबाहु हुआ विश्वबाहुके प्रसेनजित्, प्रसेनजित्से तक्षक ॥ ७ ॥ तक्षकसे युत, तिसके बृहद्बल उत्पन्न हुआ कि, जिसका तुम्हारे पिता अभिमन्युने संग्राममें संहार किया था. हे परीक्षित्! ऊपर कहेहुए राजा इक्ष्वाकुवंशमें होगये हैं. अब इनका वृत्तांत सुनो. जो किआगेको होंगे ॥८॥ इसके पीछे बृहद्बलसे बृहद्रणनामक पुत्र होगा, तिसका पुत्र वत्सवृद्ध ॥ ९ ॥

❀ शंका—त्रिलोकीमें जो प्राणी जन्म लेता है उसको काल खा लेता है, परंतु राजा मरुको कालने क्यों नहीं खाया? जो राजा मरु कलियुगके नाश हुए पीछे सूर्यवंशको फिर उत्पन्न करेगा?

उत्तर—राजा मरु बाल्यावस्थासे परमेश्वरका भजन करने लगा था और भजन करते करते बडा योगी भया और योगियोंको काल किसी प्रकार नहीं खा सकता क्योंकि काल तो योगियोंका रूप देखकर दूरसे ही डरता है, इसलिये राजा मरुको कालने नहीं खाया ॥

इस वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम, तिसके भानु और इस भानुसे सेनापति दिवकका जन्म होगा. तिसका पुत्र सहदेव, तिसका पुत्र वीर बृहदृश्व, तिसका पुत्र भानुमान् होगा ॥ १० ॥ इस भानुका पुत्र प्रतीकाश्व, तिससे सुप्रतीक जन्म ग्रहण करेंगे. तिसके मरुदेव, तिसके 'सुनक्षत्र और सुनक्षत्रसे पुष्करनामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ११ ॥ तिसके अन्तरिक्ष, तिसका पुत्र सुतपा, तिसके पुत्र अमित्रजित्, तिसका पुत्र बृहद्राज,बृहद्राजके बर्हि और बर्हिसे कृतञ्जयका जन्म होगा ॥ १२ ॥ कृतञ्जयका पुत्र रणञ्जय और तिससे संजयकी उत्पत्ति होगी. संजयका पुत्र शाक्य, तिसका पुत्र शुद्धोद और तिसका पुत्र लांगल होगा ॥ १३ ॥ लांगलसे प्रसेनजित्, तिससे क्षुद्रक और क्षुद्रकसे कनक और कनकसे

प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥१०॥ प्रतीकाश्वो भानुमतः
सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥११॥ तस्यांतरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित्
बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥ १२ ॥ रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ तस्माच्छाक्योऽथ
शुद्धोदो लांगलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १३ ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथ
स्तनयस्ततः ॥ १४ ॥ सुमित्रो नाम निष्ठांत एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रांतो भविष्यति ॥ यतस्तं
प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुचरिते कुशान्व
यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥ आरभ्य सत्रं
सोऽप्याह शक्रेण प्राग् वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥

सुरथ जन्म लेगा ॥ १४ ॥ हे महाराज परीक्षित्। तिसके यहां सुमित्र जन्म ग्रहण करेगा और यह सब राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे हे राजन्।इक्ष्वाकुके वंशमें सुमित्र तक यह सब राजा होंगे और सबसे पीछे सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश ध्वंस होजायगा ॥ १५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां कुशान्वयवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा–तेरहमें इक्ष्वाकुसुत, निमिका वंश बखान। तिसमें प्रगटे जनकसे, ज्ञानी परम सुजान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्। इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ आरंभ करके महर्षि वसिष्ठजीको अपना ऋत्विज वरण किया, तब वसिष्ठजी बोले कि, यज्ञ करनेके लिये देवराज इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं॥ १ ॥

इस कारणविना इन्द्रका यज्ञ समाप्त किये हुए हम तुम्हारा यज्ञ नहीं करा सकते हैं, जबतक इंद्रका यज्ञ समाप्त हो तबतक ठहरे रहो । यह सुनकर महाराज निमि कुछ न बोले, चुपचाप रहे और महर्षि वसिष्ठजी देवराज इंद्रका यज्ञ कराने लगे ॥ २ ॥ वसिष्ठजीके जाने पर महाराज निमिने विचारा कि, इस जीवनका क्या ठिकाना है ? यदि इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेके प्रथम ही हमारी मृत्यु हो जाय, तो फिर यज्ञ न हुआ, इसलिये जबतक कुलगुरु वशिष्ठजी न आवें तबतक किसी औरही ऋत्विजोंसे यज्ञ आरम्भ कराऊं । यह विचार निमिराजाने यज्ञारंभ किया ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त महर्षि वशिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ समाप्त कराय राजा निमिके स्थानपर आये, शिष्यका अन्याय देखकर मुनिको क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोध करके यह शाप दिया कि, पण्डिताभिमानी इस निमिका देह शीघ्र छूट जाय * ॥ ४ ॥ जब कुलगुरु वसिष्ठजीने इस प्रकार अधर्मवर्ती होकर शाप दिया, तब राजा निमि भी इनको यह शाप देने लगा कि, "तुमने लोभके वशःहोकर धर्मकी ओरको नहीं देखा इसलिये तुम्हारा देह भी छूट जाय" ॥ ५ ॥

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥ तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोऽपींद्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥
निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥
शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत्पतताद्देहो निमेः पंडितमानिनः ॥ ४ ॥
निमिः प्रति ददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ॥ तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥

---

* **शंका**–राजा निमि बडा ज्ञानी और ध्यानी था वसिष्ठमुनि मुनियोंमें पूजन करने योग्य बडे महात्मा पुरुष थे उन दोनोंने फिर मूर्खोंके समान काम क्यों किया ? राजाने मुनिको शाप दिया, मुनिने राजाको शाप दिया, इसका क्या कारण ?

उत्तर–जब नारदमुनि स्त्रीके लिये मोहित हो गये और विवाह करनेकी इच्छा की, बडे कामियोंके समान संसारमें भ्रमण करते फिरे तब राजा निमि और वसिष्ठ यह दोनों उनको देखकर बहुत हँसे. दोनों जनोंको नारद मुनिने शाप दिया कि, हे वसिष्ठमुनि ! हे राजा निमि ! हम स्त्रीके लिये दुःखी हो रहे हैं, हमारे मनमें विवाह करनेकी इच्छा नहीं है परंतु भगवान्‌की मायाने हमको मोहित कर लिया इसपर भी तुम दोनों जन हमारी हँसी करते हो, इसलिये तुम दोनों जने बहुत शीघ्र मायाके फन्दमें फँसकर हमारे समान बडी दुर्गतिको प्राप्त होओगे इसालय दोनों जनोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी ॥

यह कहकर राजा निमिने अपनी देहको छोड़ दिया। उसी समय वशिष्ठजी का भी देह छूट गया, परंतु कुछ कालके पीछे मित्रावरुणके उर्वशीके गर्भसे वसिष्ठजीने फिर जन्म लिया अर्थात् यज्ञ करते करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुणजीका जो वीर्य गिरा, उस वीर्यको उन्होंने कलशमें रक्खा था, तिससे ही फिर वसिष्ठजी उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ इधर जब यज्ञ करते करते राजा निमिका देह छूट गया, तब मुनि लोगोंने सुगंधित वस्तुमें (उत्तम तलमें) उनके शरीरको रख दिया; इसके उपरान्त जब यज्ञ समाप्त हो गया तो आये हुए देवतालोगोंसे बोले कि, "आप लोग यदि प्रसन्न हों और सामर्थ्य रखते हों तो राजाका यह देह सजीव हो उठे" देवतालोगोंने कहा ऐसा ही हो। तब राजा निमिका शरीर गन्धवस्तुमेंसे ही बोला कि, हे प्रिय! हमें कभी देहका बन्धन न होवे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनिलोग वियोगके भयसे

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गंधवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथदेवानूचुः समागतान् ॥७॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबंधनम् ॥ ८ ॥ यस्य योगं न वांछति वियोगभयकातराः ॥ भजंति चरणांभोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् ॥ सर्वत्रास्ययतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥ उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥

कातर हो कदापि देह धारण करनेकी वाञ्छा नहीं करते। वह केवल मुक्तिके लिये भगवान्‌के चरणकमलकी सदा वन्दना किया करते हैं ॥ ॥ ९ ॥ और दुःख, शोक, भयके देनेवाले मनुष्यके शरीरकी मैं इच्छा नहीं करता, क्योंकि इस देहकी सर्वत्र मृत्यु है, जैसे मछलियोंकी जलमें सर्वत्र मृत्यु है ॥१०॥ तब देवतालोगोंने कहा कि, यह निमि विना ही देहके सब प्राणियोंके नेत्रों पर इच्छानुसार वास करे। इसका तात्पर्य यह है कि, ऐसा होनेसे मुनिलोग जिसलिये राजाके जीवनकी प्रार्थना करते हैं, वह प्रार्थना सिद्ध हो जायगी और राजाको देहका संबन्ध भी नहीं होगा. हे राजन्! इसी वाक्यके अनुसार निमि जीवित हुए थे. नेत्रोंपर पलकका उघडना और पडना इन्हीं राजा

निमिके कियेसे होता है ॥ ११ ॥ परंतु तिसके पीछे महर्षियोंने विचारा कि, विना राजाके राज्य सदा प्रजाका भय दिलानेवाला है इसलिये सबने राजकुमारकी कामना करके इन निमिके देहको मथा, मथन करनेसे राजा निमिके मृतक देहसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२॥ उस निमिके पुत्रका असामान्य जन्म होनेके कारण जनक नाम हुआ । इस शब्दका अर्थ उत्पादक है और विदेहसे जन्मये ग्रहण करनेके कारण इनका एक नाम विदेह हुआ और मथनेसे जन्म होनेके कारण एक नाम मिथिल हुआ । अथवा मिथिलापुरीके निर्माणकर्ता होनेके कारण मिथिलाधिपति कहलाते थे ॥१३॥ इन जनकके पुत्र उदावसु,इनके पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए. नन्दिवर्द्धनका पुत्र सुकेतु और सुकेतुका पुत्र देवरात हुआ ॥१४॥ देवरातसे बृहद्रथका जन्म हुआ, तिसका पुत्र महावीर्य,महावीर्यका पुत्र सुधृति, तिसका सुत धृष्टकेतु, तिसका पुत्र हर्यश्व और

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ॥ देहं ममंथुः स्म निमेः कुमारस्समजायत ॥१२॥ जन्मना जनकः सोऽभू
द्वैदेहस्तु विदेहजः ॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥१३॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नंदिवर्धनः ॥
ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥ तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यस्सुधृत्पिता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्य
श्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥ मरोः प्रदीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः
॥ १६ ॥ कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीर
ध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः॥१८॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो
धर्मध्वजोनृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥

722

तिससे मरुकी उत्पत्ति हुई ॥ १५ ॥ मरुका बेटा प्रताप, तिससे कृतिरथने जन्म लिया. तिसका पुत्र देवमीढ और तिससे विश्रुत उत्पन्न हुआ और उससे महाधृतिने जन्म लिया ॥१६ ॥ महाधृतिका पुत्र कृतिरात, तिसका पुत्र महारोमा और महारोमाका बेटा स्वर्णरोमा हुआ,तिससे ह्रस्वरोमाने जन्म ग्रहण किया ॥१७॥ तिसके सीरध्वज जन्मा. ह्रस्वरोमा राजा यज्ञके लिये भूमि जोत रहे थे,उसी समय उसकी सीर अर्थात् हलके अग्रभागसे इस सीता जन्म हुआ, इस कारणसे यह सीरध्वज कहलाता था॥१८॥सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज, तिसका पुत्र धर्मध्वज, धर्मध्वजके कृतध्वज और मित्रध्वज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥१९॥

तिनमें कृतध्वजसे केशिध्वजने जन्म लिया और मितध्वजसे खाण्डिक्य जन्मा हे राजन्। कृतध्वजका पुत्र आत्मविद्यामें विशारद हुआ ॥ २० ॥ और कर्मोंका भलीभांति जाननेवाला था.एक समय यह किसी कारणवश केशिध्वजके डरसे भाग गया इस केशिध्वजका पुत्र भानुमान् हुआ, तिसका पुत्र शतद्युम्न ॥ २१ ॥ तिसका पुत्र शुचि और इस शुचिसे सनद्वाज हुए सनद्वाजका पुत्र ऊर्ध्वकेतु, तिसका पुत्र पुरुजित्॥ २२ ॥पुरुजिकत् पुत्र अरिष्टनेमि,उसका पुत्र श्रुतायु,तिसका सुपार्श्व सुपार्श्वसेचित्ररथ,इससे क्षेमार्द्ध ॥ २३ ॥ क्षेर्द्धिका पुत्र समरथ, तिसका पुत्र सत्यरथ उत्पन्न हुआ सत्यरथका पुत्र उपगुरु और तिससे अग्निके अंशसे उपगुप्तने॥ २४ ॥ जन्म ग्रहण किया उपगुप्तका पुत्र

कृतध्वजात्केशिध्वजः खांडिक्यस्तु मितध्वजात् ॥ कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥२०॥ खांडिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ॥ भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत ॥ ऊर्ध्वकेतुस्सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२॥ अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ॥ ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमार्द्धिर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥ तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ॥ आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥ २४ ॥ वस्वनंतोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः ॥ श्रुतस्ततो जयस्तस्माद्विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ ॥ २५ ॥ शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ॥ बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६ ॥ एते वै मिथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ॥ योगेश्वरप्रसादेन द्वंद्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० नवमस्कंधे इक्ष्वाकुचरिते निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वस्वनन्त, वस्वनन्तका पुत्र युयुधान और तिसके सुभाषणने जन्म ग्रहण किया सुभाषणका बेटा श्रुत, तिसका पुत्र जय, तिसका पुत्र विजय और तिसके ऋत उत्पन्न हुआ ॥२५॥ऋतका पुत्र शुनक, तिसके वीतहव्य,तिसके धृति, धृतिका पुत्र बहुलाश्व और तिसका पुत्र कृति हुआ। यह बडा ही जितेन्द्रिय था ॥२६॥ हे राजा परीक्षित्। यह सब भूपाल मिथिलवंशके कहे गये. यह सब आत्मविद्यामें पण्डित और याज्ञवल्क्यादि योगेश्वरोंकी कृपासे घरमें रहते हुए भी सुखदुःखादिके द्वंद्वसे छूटे हुऐ थे ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां निमिवंशानुकीर्त्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–चौदहमें गुरुनारिसे, चंद्र प्रगट कियो बुद्ध । छः सुत प्रगटे बुद्धसे, आयु आदि चित शुद्ध ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! अब अनन्तपावन सोमवंशका वर्णन करते हैं सो आप सचेत हो चित्त लगाकर सुनिये ॥ १ ॥ इस वंशके ही पुण्यकीर्ति ऐलप्रभृति राजा विख्यात हैं। हे महाराज ! सहस्रशीर्षा परमपुरुष भगवान्के नाभिकमलसे जगत्पिता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । तिसके पुत्र अत्रि, यह अत्रिजी गुणोंमें अपने

श्रीशुक उवाच ॥ अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः ॥ यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यंते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥ सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ॥ जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥ तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ॥ विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥ सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ॥ पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४ ॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ॥ नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥

पिताके समान थे ॥ २ ॥ इन अत्रिजीके नेत्रोंसे अमृतमय सोम (चन्द्रमा) नामक पुत्र उत्पन्न हुए । भगवान् ब्रह्माजीने इन चंद्रमाको विप्र ओषधि और सब नक्षत्रोंका अधिपति किया था ॥ ३ ॥ इन चन्द्रमाने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था, इन्हीं चन्द्रमाने गर्व करके बृहस्पतिजीकी स्त्री ताराको हर लिया था ❀ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! देवदानवोंके बीच संग्राम होनेका कारण तुम जानते हो, जब चन्द्रमाने ताराको

❀ शंका–गुरुकी स्त्री तारा, उसको चन्द्रमाने क्यों ग्रहण किया ? गुरुकी स्त्री तो माताके समान होती है उसके संग कैसे रमण किया. अधर्मसे किञ्चिन्मात्र भी नहीं डरा ? और भगवान्ने भी ऐसे दुष्टको भी दण्ड नहीं दिया और ताराने भी चन्द्रमाको शाप नहीं दिया बडे आश्चर्यकी बात है, ऐसा कर्म तो राक्षस भी नहीं करते ?

उत्तर–बृहस्पतिसंहिता आदि और भी धर्मशास्त्रके प्रमाणसे बृहस्पतिजीने चन्द्रमाको शिक्षा दी थी कि, अपनी इच्छासे स्त्री पुरुषसंग भोग करनेके लिये चाहती हो, अथवा पुरुष स्त्रीकी प्रार्थना कर उसके संग भोग करनेकी इच्छा करता है तो पाप नहीं होता और जो प्रार्थना नहीं माने तो पुरुषको महापाप लगता है और ताराको भी बृहस्पतिजीने यही सिखाया था कि, जो परपुरुषके संग स्त्री क्रीडा करे तो जबतक स्त्री मासिक धर्मसे न होगी तबतक तो अशुद्ध रहेगी और रजस्वला हुई तो उसी तीन दिनमें शुद्ध हो जायगी पाप किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहेगा. इस प्रकार बृहस्पतिजीने जो तारा और चन्द्रमाको उपदेश किया मेरी समझमें यही बडा अन्याय है यह दोनों गुरु और पतिके बचनपर आरूढ रहे उनका कुछ दोष नहीं ।

हर लिया, तब देवगुरु बृहस्पतिजी अनेक वार चन्द्रमाके निकट गये और उनसे अपनी भार्याको माँगा, परन्तु मदमत्तताके कारण चन्द्रमाने अपनी गुरुभार्याको नहीं त्यागा। बस,इसीलिये दैत्य व सुरोंमें महासंग्राम हुआ था ॥ ५ ॥ बृहस्पतिजीसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य डाह रखते थे इसीलिये उन्होंने अपने शिष्य असुरलोगोंके साथ चन्द्रमाको ग्रहण किया अर्थात् चन्द्रमाका पक्ष लिया और भूतेश्वर (महादेव) अंगिराजीके निकट विद्या पानेसे सब भूतोंको साथ ले अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिजीकी ओर हुए ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्र भी अपने सब देवताओंके संग मिल अपने गुरु बृहस्पतिजीकी ओर गये। तिसके पीछे ताराके लिये सुर और असुरोंका नाशकारी महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ७ ॥ हे राजन्! जब कुछ दिनोंतक युद्ध हुआ, तब देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा। यह सुन महात्मा ब्रह्माजीने चन्द्रमाको

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेंद्रो गुरुमन्वयात् ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथांगिरसा सोम निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदंतर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥ त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सांतानिकः सति ॥ ९ ॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ॥ स्पृहामांगिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥१०॥

बुलाकर बहुत डाटा और तारा बृहस्पतिजीको दिला दी ॥ ८ ॥ बृहस्पतिजी अपनी भार्या ताराको पाकर जान गये कि, यह अबला अन्तर्वत्नी अथात् गर्भवती हुई है इसलिये ताराके ऊपर घृणा प्रकाश कर कहने लगे अरे दुर्म्मति रमणि! हमारे क्षेत्रमें औरका गर्भ धारण किया। इसे शीघ्र गिरादे अरे असति! तू ऐसा समझकर न डरना कि,गर्भ गिरानेके पीछे हम तुझे मार डालेंगे,यद्यपि हमारे क्रोधकी अग्नि बहुत भड़क रही है तो भी तुझ स्त्रीजातिको हम क्या भस्म करेंगे? और अधिक करके हम संतानकी इच्छा करते हैं ॥ ९ ॥ पतिके यह वचन सुनकर तारा अति लज्जित हुई और अपने गर्भसे तत्काल ही कनकप्रभ सुकुमारको छोड दिया। हे राजन्! इस कुमारको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंने लेना चाहा ॥ १० ॥

721

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ॥ पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह
कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किं नावोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाऽऽशु मे ॥ १२ ॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सांत्व
यन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥१३॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ॥ बुद्ध्या गंभीरया
येन पुत्रेणाऽऽपोडुराण्मुदम् ॥१४॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान्
॥ १५ ॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा ॥ तदंतिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥ मित्रावरुणयोः
शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कंदर्पमिव रूपिणम् ॥ १७ ॥

और दोनों परस्पर कहने लगे कि, यह बालक तुम्हारा नहीं है हमारा है, इसलिये इन दोनों जनोंमें बहुत झगड़ा हुआ. पुत्रके लिये इन दोनोंमें झगडा होता हुआ देखकर ऋषि और देवतालोगोंने तारासे कहा कि, यह वास्तवमें किसका पुत्र है? परन्तु तारा लाजके मारे कुछ भी न कह सकी और चुप हो रही ॥ ११ ॥ इसलिये वह बालक अलीक लाजसे कोपायमान हो अपनी मातासे बोला "अरी अशुभे! बोलती क्यों नहीं? शीघ्र मेरे सामने अपना दोष वर्णन कर" ॥ १२ ॥ तिसके पीछे ब्रह्माजीने एकान्तमें ताराको बुलाय समझाया बुझाया और कहा हे वत्से ! बतलाओ यह किसका पुत्र है? तब तारा नीचेको शिर झुकाय लाजसहित धीरेसे बोली कि "पुत्र तो यह चन्द्रमाजी का है" ताराके मुखसे यह वचन निकलते ही चन्द्रमाने उस पुत्रको लेलिया ॥ १३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इस बालककी गंभीर बुद्धि देखकर इसका नाम "बुध" रक्खा है. हे राजन्! चन्द्रमा पुत्रको पाकर परम हर्षित हुआ ॥१४॥ इस बुधसे इलाके गर्भमें पुरूरवाका जन्म हुआ. यह पुरूरवा अत्यन्त विख्यात हुआ ॥१५॥ एक समय देवर्षि नारदजी देवराज इंद्रकी सभामें पुरूरवाके रूप, गुण, धन, उदारता, शीलता और विक्रमका गान कर रहे थे। देववेश्या उर्वशी यह गुण सुनकर कामके वश हो गइ और राजाके निकट स्वयंही आई ॥ १६ ॥ हे परीक्षित्! तुम ऐसी शंका मत करना कि, उर्वशी स्वर्गकी अप्सरा होकर मनुष्यके निकट क्यों गई? यह अप्सरा मित्रावरुणके शापसे इस समय मनुष्यभावको प्राप्त हुई थी, इसलिये पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामदेवके समान स्वरूपवान् सुनकर यह अधीर हो उनके निकट जाकर

खडी होगई॥ १७ ॥ हे राजन् । उस उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र आनन्दके मारे खिल गये । राजाने पुलकित हो मधुर वचनसे कहा ॥ १८ ॥ हे सुन्दरि ! हमारे साथ विहार करो । बहुत वर्षोंतक हमारा दोनोंका परम सुखसे रमण होगा और मैं यही चाहता हूँ कि, मेरा तुम्हारा स्नेह ऐसा ही बना रहे ॥ १९ ॥ उर्वशी बोली कि, हे सुन्दर ! तुम्हारे प्रति किसके नेत्र और मन अनुरागी न होंगे ! तुम्हारे हृदयको प्राप्त हो रमण करनेकी इच्छासे कोई इस हृदयसे दूर होनेकी इच्छा न करेगी ॥ २० ॥ तिसके उपरान्त शापके अंतमें प्रतिज्ञाभंग करनेके छलसे जानेके लिये कहने लगी कि, हे प्रियवर ! मैं प्रथम ही आपसे यह वचन मांगे लेती हूँ कि, मेरे यह दोनों भेडोंके बच्चे तुमको धरोहरके समान रखने पडेंगे और हमारे साथ तुम रमण करो, क्योंकि जो पुरुष बड़ाईके योग्य है उसको ही स्त्रियें

धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदंतिके॥स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः॥उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः॥१८॥ राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥१९॥ उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुंदर ॥ यंदगांतरमासाद्य च्यवते न रिरंसया ॥२०॥ एतावुरणकौ राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद ॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥२१॥ घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात्॥विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः॥२२॥अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम्॥को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम्॥२३॥तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयंत्या यथार्हतः॥ रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु॥२४॥

वरण करती हैं इसलिये विजातीय होनेपर भी तुम्हारे वरण करनेमें हमें कोई दोष नहीं है ॥ २१ ॥ हे वीर ! परंतु मैं तुम्हारे निकट रहकर घृत भक्षण करूँगी और मैथुनके अतिरिक्त किसी समय तुमको वस्त्ररहित न देखूं, जबतक इतनी बातें आप मेरी स्वीकार न कर लेंगे तबतक मैं आपके सङ्ग कदापि प्रसंग न करूंगी. राजा पुरूरवाने उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर यह सब बातें अंगीकार कर लीं ॥ २२ ॥ और कहा कि, हे सुन्दरि ! तुम्हारा आश्चर्यमय रूप और आश्चर्यमय भाव देखते ही मनुष्यका हृदय मोहित होजाता है । तुम स्वर्गवासिनी देवी अपने आप यहाँ आई हो फिर कौन मनुष्य तुम्हारी सेवा न करेगा ? ॥२३॥ हे राजन् ! यह कहकर पुरुषप्रधान पुरूरवा उर्वशीके साथ देवतालोगोंके विहारस्थल चैत्ररथादि वनोंमें विहार करने लगे और उर्वशी भी यथायोग्य उस नृपालको आनन्द देने लगी ॥ २४ ॥

इस देवी उर्वशीके शरीरमें कमलके परागके समान सुगंध निकलती थी। उर्वशीके साथ विहार करके राजा इसके वदनकी सुगन्धसे बहुत दिनतक हर्ष पाते रहे ॥ २५ ॥ इस ओर पुरमें देवराज इंद्रने उर्वशीका दर्शन न पाकर गन्धर्वोंको आज्ञा दी कि, वह उर्वशी जहाँपर हो वहाँसे शीघ्र ले आओ क्योंकि, बिना उर्वशीके हमारे स्थानकी शोभा नहीं होती ॥ २६ ॥ आधी रातके समय जब महा अन्धकार हुआ उस समय वह इंद्रके भेजे गन्धर्व मृत्युलोकमें आये और उन मेढोंको हरण करके चल दिये, जिनको धरोहरकी भाँति उर्वशीने पुरूरवाके निकट सौंपा था ॥ २७ ॥ उन दोनों मेढोंको उर्वशी पुत्रके समान मानती थी. जब उन मेढोंको गन्धर्वगण हरण करके ले जाने लगे तब वह अति आर्त वाणीसे चिल्लाये । उस चिल्लानेके शब्दको सुन उर्वशी देवलोकमें जानेकी वासनासे खेदसहित

7:29

रममाणस्तया देव्या पद्मकिंजल्कगंधया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥ अपश्यन्नुर्वशी
मिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६ ॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युप
स्थिते ॥ उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया॥ २७ ॥ निशम्याक्रंदितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ॥ हतास्म्यहं
कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥२८॥ यद्विस्रंभादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ॥ यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी
दिवा पुमान्॥२९॥इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुंजरः ॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥
ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतंत स्म विद्युतः ॥ आदाय मेषावायांतं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥

राजा पुरूरवासे कहने लगी "हा! मैं इस कुत्सित स्वामीसे मारी गई. इस नपुंसकमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है. यह अपने आपको वृथा ही वीर जानकर अभिमान करता है॥२८॥ इसके ऊपर विश्वास करनेसे मेरा नाश होगया. हाय! मेरे पुत्रसमान मेढोंको चोर हरण करके लिये चले जाते हैं. अरे! यह पुरुष कैसा ? कि, जो नारीके समान भीत रहकर दिनरात घरमें पडा रहता है ॥२९॥ हे राजन्! जिस प्रकार हाथी अंकुशसे विद्ध होता है उसी प्रकार उर्वशीके वचन बाणके समान राजाके हृदयमें बिंध गये और उसी समय खड्ग ग्रहण करके क्रोधके मारे वस्त्र रहित मेढोंके हरनेवालोंपर झपटा ॥ ३० ॥ गंधर्वोंने देखा कि, राजा हमारे पीछे आता है, तब गन्धर्वगणोंने मेढोंको छोड दिया और बिजलीसे द्युतिमान् होकर वहां प्रकाश करने लगे. तब राजा उन मेढोंके बच्चोंको लेकर वहां आया, परंतु उस समय उर्वशीने उनको नग्न देख लिया.

हे कुरुश्रेष्ठ ! "मैथुनके अतिरिक्त नंगा न देख सकूगी" इस बातको विचार वह अप्सरा वहांसे चली गई. इसके उपरांत राजा पुरूरवा सेजपर उर्वशीको न पाकर अत्यन्त विमन हुआ. और उसीमें चित्त लगाय कातरता प्रगट करके शोकके वेगसे उन्मत्तकी नाई पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कुछ दिनों पीछे कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तीर वह अप्सरा पांच सखियोंके साथ राजा पुरूरवाको दिखाई दी; तब राजाने सिटपिटाकर हर्षित हो यह वचन कहे ॥ ३३ ॥ हे प्यारी ! हे निर्दय बाले ! रहो रहो. हे सुमुखि ! मैं अबतक सावधान नहीं हूं. प्राणेश्वरी ! आवो तो दोनों एक स्थानपर बैठकर बातचीत करें ॥३४॥ हे देवि ! हमारा यह कमनीय शरीर तुमसे दूर किया हुआ जो यहां आया है अभी यहां गिरताहै और देखो तुम्हारी प्रसन्नताका पात्र न होनेसे भेडिये और गिद्ध इसको भक्षण कर जायँगे ॥३५॥

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम्॥३२॥स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे
सरस्वत्यां च तत्सखीः ॥ पंच प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३ ॥ अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥
मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥ सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादंत्येनं वृका गृध्रास्त्व
त्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां
वृकाणां हृदयं यथा॥३६॥स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुमर्षाः प्रियसाहसाः॥ घ्नंत्यल्पार्थेऽपि विस्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥
॥ ३७ ॥ विधायालीकविस्रंभमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवं नवमभीप्संत्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥

राजाके यह वचन सुनकर उर्वशी बोली कि, हे राजन् ! मरो नहीं, तुम पुरुष हो. धैर्य धारण करो यह भेडिये अथवा प्रसिद्ध इंद्रियें तुमको भक्षण न करें-अर्थात् तुम इंद्रियोंके वश मत होओ हे राजन् ! कहीं भी स्त्रियोंकी मित्रता नहीं स्थिर होती, क्योंकि इनका हृदय भेडियेके समान होता है ॥३६॥ स्त्रियोंको स्वभावसे ही करुणा नहीं होती. यह क्रूर और शांतिरहित कहलाती हैं, अपने प्रीतमके लियें साहस करती हैं,थोडीसी बातके लिये वह विश्वासघातिनी पति अथवा भ्राताको प्राणोंसे मार डालती हैं ॥ ३७ ॥ अधिक करके जो पुँश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी हैं, इच्छानुसार घूमती हैं, वह तो सौहार्दको एक साथ ही छोड देती हैं, वह अज्ञानी पुरुषके सामने बाहरी और अलीक

प्रेम प्रकट करती हैं ॥ ३८ ॥ जब राजाने बहुत विनती की, तब उर्वशी बोली कि, वर्षके अन्तमें तुम मेरे साथ एक दिन विहरा कर सकोगे और उससे ही तुम्हारे और पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ३९ ॥ उसके उपरांत राजा पुरूरवा देवी उर्वशीको गर्भवती देख उसके वचन मान अपने नगरको चला आया परंतु वर्षके व्यतीत होने पर फिर वहां पर आया; जहां कि पहले उर्वशीसे भेंट हुई थी. वीरप्रसविनी उर्वशीको देखकर राजाको परम हर्ष हुआ और प्रमुदित चित्तसे उर्वशीके पास एकरात वास किया ॥ ॥ फिर वियोगके भयसे राजाका चित्त व्याकुल हुआ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उर्वशी दीन राजाको विरहातुर देखकर कृपा करके बोली, हे राजन् ! हमारे लिये शोक क्यों करते हो ? गन्धर्वलोगोंकी विनय करो । वह गन्धर्वगण प्रसन्न होकर हमको सदाके लिये तुम्हें देदेंगे हे परीक्षित् ! उर्वशीके यह वचन सुनकर राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी बडी स्तुति की कि, जिससे गंधर्वगण बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो गये. उन्होंने प्रसन्न होकर राजाको अग्निस्थाली (टोकनी) दी । उसके देनेका तात्पर्य यह था कि, जब इससे अग्निकर्म किया जायगा, तब हीं उर्वशी प्राप्त हो जायगी; परन्तु राजा पुरूरवाने उस अग्निस्थालीको ही उर्वशी समझा और उसको कांखमें दबाये वन वनमें घूमता फिरा परन्तु फिर राजाका भ्रम दूर हो गया अर्थात् यह समझ लिया कि, यह उर्वशी नहीं किन्तु अग्निस्थाली है ॥ ४२ ॥ उसके उपरांत अग्निस्थालीको वनमें डालकर घर आया और घरमें आय नित्य रात्रिके समय उर्वशीका ध्यान करने लगा । तिससे त्रेतायुगके आरंभके समय राजाके हृदयमें कर्मबोधक तीन वेद उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ उसके पीछे राजा फिर वहींपर गया कि, जहां अग्निस्थाली पडी थी और देखा कि, शमी वृक्षके गर्भमें अथवा शमी जिसके गर्भमें थी ऐसा एक

संवत्सरांते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यंत्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
अंतर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दांते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्य मुदा युक्तः
समुवास तयाऽनिशम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥ गंधर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यंति मामिति ॥
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥ स्थालीं न्यस्य वने
गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं
विलक्ष्य सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥

उर्वशीं मंत्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्मंथनाज्जातो
जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेनायजत यज्ञेशं भगवंतमधोक्षजम् ॥
उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य
एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गांधर्वमेयिवान् ॥
॥४९॥ इति श्रीमद्भागवते महा० नवमस्कंधे सोमवंशचरिते ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच ॥
ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥

पीपलका पेड जमा है, उसमें अग्निका होना भलीभांतिसे देख उर्वशीलो की कामनासे राजाने उस पेडसे दो अरणी बनाईं और उस अग्निको मथा. हे राजन्! राजा पुरूरवाने किस प्रकारसे अरणियोंसे अग्नि निकाली, सो तुम सुनो. मंत्रके अनुसार नीचेकी अरणीको और उत्तरकी अरणीको आत्मा समझकर और इन दोनोंमें जो काठका टुकडा था, उसका यह राजा पुत्रकी भांति ध्यान करने लगे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ जैसे ही वह अरणी मथी गई कि, इनमेंसे अग्नि निकली. यह अग्नि साधारण नहीं. इससे ही भोज्यधन जन्म लेता है. उसके पीछे वह अग्नि त्रयी विद्याकी विधिके अनुसार कहे हुए संस्कारसे त्रिवृत अर्थात आहवनीयादि त्रिरूप हुई फिर राजाने उस त्रिवृत अग्निको अपना पुत्र कहकर माना॥४६॥ और उर्वशीलोककी कामना करके उस अग्निसे सर्वदेवमय यज्ञेश भगवान् वासुदेवका यज्ञ इस राजाने किया ॥४७॥ हे राजन्! पहले सतयुगमें सब प्रकारके वाक्योंका बीजभूत ओंकार ही एकमात्र वेद था, नारायण ही अकेले देवता थे, अग्नि अकेला लौकिक ही था, वर्ण भी एक ही था ॥ ४८ ॥ फिर त्रेतायुगके आरंभमें पुरूरवासे तीन वेद उत्पन्न हुए, इसलिये इस युगमें यह राजा अग्निरूप प्रजाद्वारा गंधर्वलोकको प्राप्त होकर उर्वशीके साथ विहार करने लगा. सत्ययुगमें सब ही पुरुष सत्वगुणप्रधान थे, इसलिये सब ही ध्याननिष्ठ हुआ करते थे. उसके पीछे रजोगुणप्रधान त्रेतायुगमें वेदादिके विभागसे कर्ममार्ग प्रकाशित हुआ है ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायाम् ऐलोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा–पुरूरवाके वंशमें, भये गाधि गम्भीर । ता दौहित्रके पुत्र भये, परशुराम रणधीर ॥ १ ॥

इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! राजा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम यह हैं. आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥

इनमें श्रुतायुके वसुमान्, सत्यायुके श्रुतञ्जय हुआ, रयका पुत्र एकनामा हुआ. जयकी संतान अमित और विजयका पुत्र भीम हुआ. भीमका पुत्र कांचन और कांचनके होत्रक जन्मा. इस होत्रकके उन जह्नुका जन्म हुआ कि, जिन्होंने एक ही घूँटमें सब गंगाजीका जल पान कर लिया। जह्नुके पुरु जन्मा, उसका बलाक, तिसका बेटा अजक ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ और अजकके यहां कुशने जन्म लिया. कुशके कुशाम्बु, मूर्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र हुए. इनमेंसे कुशाम्बुके महात्मा गाधिने जन्म ग्रहण किया ❀ ॥ ४ ॥ इन गाधिके सत्यवती नामक एक

श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ कांचनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य जह्नुः सुतो गंगां गंडूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पुरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापि कुशांबुर्मूर्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशांबुजः ॥ ॥ ४ ॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥५॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चंद्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥

कन्या उत्पन्न हुई। ब्राह्मण ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको माँग लिया था। राजा गाधिने कन्याके योग्य यह वर न विचारकर निवेदन किया ॥ ॥ ५ ॥ हे महाराज! जिनका बायाँ अथवा बायी ओरका एक कान श्यामवर्ण हो और जिनके सब अंगोंमें चन्द्रमाके समान ज्योति हो ऐसे एक सहस्र घोडे तुम हमें इस कन्याके शुल्क (भेंट) स्वरूप दो तब हम तुम्हें यह कन्या दें। कुछ इन हजार घोडोंको आप अधिक

❀ शंका–पुत्र होनेके लिये सब राजा लोग यज्ञ किया करते थे परंतु राजा गाधिने पुत्र होनेके लिये यज्ञ क्यों नहीं किया? क्योंकि राजा गाधिकी स्त्रीने पुत्र होनेके लिये अपने जामातासे याचना की थी, यह सन्देह हमारा निवारण करो!

उत्तर–राजा गाधि नित्यप्रति यही चिन्ता करते थे कि, किसी समय पुत्र होनेके लिये यज्ञ करेंगे, यही विचार करते २ बहुत दिन बीत गये तबतक ऋचीक नाम, भृगुवंशमें तपस्वी था. उसके संग राजा गाधिने अपनी सत्यवती कन्याका विवाह कर दिया, तब रानी अपने जामाता (जमाई) को सिद्ध समझकर और अधिक अवस्था समझकर पुत्रकी याचना करने लगी. रानीने अपने मनमें विचारा कि, यज्ञके करनेके लिये अभी विचार ही रहा है परंतु अभी यज्ञ करता नहीं, इसलिये रानीने जामातासे पुत्र होनेकी याचना की, कि यज्ञ करें वा न करें.

न समझें, क्योंकि हम कुशिकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥६॥ हे राजन् ! ऋचीक मुनि राजाके ऐसे वचन सुनकर सब अभिप्राय जान वरुण जीके निकट उसी समय चले गये और वहांसे एक हजार घोडोंको लाकर उस श्रेष्ठ मुखवाली कन्यासे विवाह किया ॥ ७ ॥ कुछ कालके पीछे ऋचीक मुनिकी भार्या और सासने पुत्रकी कामना करके इन ऋचीकसे प्रार्थना की, तब यह ऋषि अपनी भार्याके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रिय मन्त्रसे चरु पकाय स्नान करनेको गये ॥ ८ ॥ उसी सत्यवतीकी माताने मनमें विचारा कि, भार्याके ऊपर पतिका अधिक स्नेह हुआ करता है. हे जामाता ! मेरी कन्याके लिये जो चरु बनाकर गये हैं, वह अवश्य ही हमारे चरुसे श्रेष्ठ होगा यह सोच विचार इसने अपनी कन्यासे चरु वह माँगा जो कि ऋषि इस अपनी भार्याके लिये बना गये थे। सत्यवतीने माताकी प्रार्थनासे ब्रह्ममन्त्रयुक्त अपना

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणांतिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः
पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वोभयैर्मंत्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥८॥ तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता
सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम् ॥९॥ तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥ घोरो दंडधरः
पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽ
भवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥

चरु उसको देदिया और आपने क्षत्रियमन्त्रका पढ़ा हुआ चरु भक्षण किया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त जब मुनिने आकर यह बात जान ली तब अपनी स्त्रीसे बोले "बडा नीच कर्म किया, चरुका अदल बदल करनेसे तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधारी होगा और तुम्हारा भ्राता ब्रह्मचारी होगा" ॥ १० ॥ यह सुन सत्यवती अत्यंत भीत हो अनेक भाँतिकी अनुनय विनय कर ऋषिसे बोली कि "महाराज ! ऐसा न हो". तब भार्गव प्रसन्न होकर बोले कि, तुम्हारा पौत्र भयंकर होगा। हे राजन् ! तिसके पीछे सत्यवतीके जमदग्निनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ हे राजन् ! उसके वह सत्यवती अबला लोकपावनी महापुण्यमय कौशिकी नदी होकर बही. हे परीक्षित् ! इन महर्षि जमदग्निने रेणुका कन्या रेणुकासे विवाह किया ॥ १२ ॥

उस रेणुकाके गर्भसे इन ऋषिके वसुमानादि बहुत पुत्र उत्पन्न हुए. इनके सब पुत्रोंमें छोटे परशुराम हुए ॥ १३ ॥ प्राचीन कविलोग इनको भगवान् वासुदेवका अंश और हैहय नाम क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाला कहते हैं। इन परशुरामजीने पृथ्वीको इकीस बार क्षत्रियहीन किया था ॥ १४ ॥ पहिले क्षत्रियजातिके लोग रजोगुणसे व तमोगुणसे परिपूर्ण हो गर्वकारी और वेदविरुद्धाचारी हुए इसलिये यह पृथ्वीपर भारकी नाईं होगये थे, यद्यपि अपराध इनका थोड़ा था तो भी परशुरामजीने इनको मार ही डाला ॥१५॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! अजितेन्द्रिय क्षत्रियजातिने भगवान् परशुरामजीका ऐसा क्या अपराध किया था,कि जिससे उनका क्रोधानल

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥१३॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां
कुलांतकम् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत्॥ रज
स्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन
कुलं नष्टं क्षत्त्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्त्रियर्षभः ॥ दत्तं नाराण
स्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेंद्रियौजश्श्रीस्तेजोवीर्यं यशो
बलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः॥ चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नैरा
वृतः क्रीडन्नेवांभसि मदोत्कटः ॥वैजयंतीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥

बारबार क्षत्रियकुलके ऊपर पडा था ॥१६॥ सूतजी बोले कि हे शौनक! इस प्रकार राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर सहर्ष श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! हैहयोंके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनने सेवाके कर्म्मसे नारायणके अंश भगवान् दत्तात्रेयकी पूजा करके सहस्र भुजा प्राप्त कीं और इनके ही बलसे यह शत्रुओंपर दुर्द्धर्ष हुए थे. दत्तात्रेयकी सेवासे राजाको अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य, सम्पदा, प्रभाव, वीर्य, बल ॥१७॥ १८॥ योगेश्वरत्व और जिससे अणिमादि गुण विराजमान रहें ऐसा ऐश्वर्य भी उन्होंने पाया था इसलिये यह राजा पवनके समान अव्यर्थगतिवाला हो सब लोकोंमें विना बाधाके भ्रमण करने लगा ॥ १९ ॥ एक समय यह सहस्राज्र्जुन वैजयन्ती माला धारण कर

720

बहुतसी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीके जलमें क्रीडा करने लगा। मदोन्मत्तताके कारण केलि करते करते इसकी हजार बांहोंसे अचानक नर्मदा की धार रुकगई ॥ २० ॥ उसी समय राक्षसराज रावण दिग्विजय करनेके लिये बाहर हो माहिष्मती पुरीके समीप डेरा डाल शिवलिंग स्थापित कर, इस नदीके किनारे उनकी पूजा करता था. जब कार्तवीर्यार्जुनकी भुजाओंसे जलकी धार रुक गई तब नदीकी धार प्रतिकूल हो नदीके किनारेको डुबाती हुई दूसरी ओरको लौटी। नदीकी धारके जलसे अपने डेरेको डूबता हुआ देखकर अर्जुनके वीर्यको वीर्याभिमानी रावण नहीं सह सका तब रावणने विहार करतेहुए सहस्रार्जुनको पराजित करनेका उद्योग किया। हे राजन्! जब स्त्रियोंके सामने रावणने इस प्रकारका ढीठपन किया तब सहस्रार्जुनने क्रोधित हो उसको पकड़ लिया और अपने नगरमें बाँधकर ले आया और बंदरके समान कुछ दिन अपने

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतस्सरिज्जलः ॥ नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२ ॥ स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने ॥ यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥२३॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥२४॥ स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाऽऽद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥ २५ ॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रंदतीं बलात् ॥ २६ ॥

घरमें बाँधा और फिर अवज्ञा कर छोड दिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ जिस प्रकार कार्तवीर्यार्जुन अपराधी होकर परशुरामजीके हाथसे मारा गया उसका भी वर्णन हम करते हैं। तुम सुनो। एक समय सहस्रार्जुन मृगयाके लिये विजन वनमें घूमता घूमता अकस्मात् जमदग्निजीके आश्रममें आ पहुँचा ॥ २३ ॥ मंत्री, सेना, सामन्त और अश्वादि वाहनसहित इस राजाको अपने आश्रममें आया हुआ देखकर जमदग्निऋषिने अपनी कामधेनु गायके द्वारा भलीभाँति इनका अतिथिसत्कार किया ॥ २४ ॥ मुनिकी इस धेनुरत्नको अपने ऐश्वर्यमें श्रेष्ठ देखकर इस पहुनईसे सहस्रार्जुनको सन्तोष न हुआ. उसने हैहय लोगोंके साथ परामर्श करके इस गायके लेजानेका अभिलाष किया ॥२५॥ इसलिये दर्प करके

अपने पुरुषोंको आज्ञा दी कि, ऋषिके अग्निहोत्रकी गाय लेलो. यह आज्ञा पाय सहस्रार्जुनके सेवक रोती और डकराती हुई बच्चे सहित गायको बलात्कार (जबरदस्ती) पकडकर माहिष्मती नगरीको ले गये ॥२६॥ जब राजा गायको लेकर माहिष्मती पुरीको चला आया तब जमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी आश्रममें आये। वह इस राजाकी यह दुष्टता सुनकर चोट खायेहुए सर्पके समान क्रोधाग्निसे जल उठे ॥ २७ ॥ उसी समय परशुरामजी घोर परशा हाथमें ले तूण सहित धनुषबाण ले बख्तर पहरकर महाक्रोधित हो उस राजाके पीछे दौडे, जैसे सिंह यूथपति हाथीके ऊपर झपटता है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! कार्तवीर्यार्जुन जब अग्निहोत्रकी गाय लेकर अपनी माहिष्मतीपुरीमें प्रवेश करना ही चाहता था कि इतनेमेंही उसने देखा कि, भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी मृगचर्म पहरे बाणादि आयुधसहित धनुष धारण किये महावेगसे आ रहे हैं और सूर्यके

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाऽऽहतः ॥ २७ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेंद्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतंतं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ॥ ऐणेयचर्माम्बरकर्मधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥२९ ॥ अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणार्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत्॥३०॥यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥

समान प्रकाशमान इनकी जटा इधर उधर छिटक रही हैं ॥ २९ ॥ यह देखकर सहस्रार्जुनने भीत हो अपने बचनेके लिये हाथी, घोडे, रथ, पैदल और गदा, असि, बाण, ऋष्टि (अस्त्रविशेष), शतघ्नी और शक्तिसहित सत्रह अक्षौहिणी भयंकर सेना भेजदी परन्तु परशुरामजीने अकेले ही उस सब सेनाका संहार कर डाला ॥३०॥ महात्मा परशुरामजीका वीर्य और वेग मन व पवनके तुल्य, इस कारण शत्रुसेनाको नाश करनेके लिये वह अग्निके समान थे. वह अपना परशा चलाते हुए जहाँ जहाँ गये उसी उस स्थानमें शत्रुसेनाके वीरगण छिन्नबाहु, छिन्नजंघ और छिन्नमुण्ड होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और उनके अश्व सारथि सब ही मारे गये॥ ३१ ॥

हैहयपति अर्जुन रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीच उठी देख और परशुरामजीके कुठार व बाण प्रहारसे वर्म, ध्वजा,धनुष,बाण और शरीर छिन्न भिन्न होनेसे प्रायः सब ही सेना युद्धमें गिर पडी यह देख क्रोधित हो सहस्रबाहु आप ही संग्राममें चला आया॥ ३२ ॥ और परशुरामजीका संहार करनेको अपनी सब भुजाओंसे एकबार ही पाँचसौ (५००) धनुष ग्रहण कर पाँचसौ पर पाँचसौ तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर चलाने लगा । हे राजन् ! महातेजस्वी परशुरामजी अस्त्रधारियोंमें आगे गिनने योग्य हैं । यद्यपि वह एक धनुष चढ़ा रहे थे तो भी उसी धनुषसे अगणित बाण चलाकर एक साथ अर्जुनके पांचसौ धनुष काट डाले ॥ ३३ ॥ धनुषोंके कट जानेपर अपनी भुजाओंसे समर करनेके योग्य अनेक अनेक पर्वत और वृक्ष लेकर महावेगसे रणभूमिमें खडे हुए परशुरामजीके ऊपर दौडा ॥ ३४ ॥ यह देख परशु

दृष्ट्वा स सैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आ
पतद्रुषा ॥३२॥अथार्जुनः पंचशतेषु बाहुभिर्धनुष्षु बाणान्युगपत्स संदधे ॥ रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकध
न्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण
कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृंगमिवाहरत्॥हते पितरि तत्पुत्रा
अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६॥
स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो
भवान्पापमकारषीत् ॥ अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥

रामजीने अति पैनी धारवाले कुठारसे सर्पके फणोंके समान उसकी सब भुजायें काट डालीं और पीछेसे पर्वतके शिखरके समान सहस्रबाहुका मस्तक भी काट दिया । हे राजन् ! सहस्रबाहुके मारे जानेपर उसके दश सहस्र पुत्र भयके मारे भाग गये ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त परशुरामजी बच्चेसहित उस गायको लेकर आश्रममें आये और शत्रुके हाथमें जानेसे क्लेशित हुई उस गायको लाकर अपने पिताजीको सौंप दिया ॥ ३६ ॥ परंतु जिस समय परशुरामजीनें अपना कियाहुआ कर्म पिता और भ्राताओंसे वर्णन किया, तब मुनिश्रेष्ठ जमदग्निको संतोष नहीं हुआ और सम्बोधित विराग दिखाकर बोले ॥ ३७ ॥ हे राम ! हे महाबाहु ! तुम पापकर आये । कैसे खेदकी बात है !

नरदेव राजा सर्वदेवमयस्वरूप है.उसको तुमने वृथा ही मार डाला ॥ ३८ ॥ हे तात ! हम ब्राह्मण क्षमागुणसे ही पूजित हुए हैं । यह गुण साधारण नहीं है । इसी गुणसे ब्रह्माजी लोकगुरु हो परमेष्ठी पदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! जमदग्नि फिर बोले कि, हे वत्स ! क्षमासे ही सूर्य सम्बंधिनी प्रभाके समान ब्रह्मसम्बंधिनी श्री शोभायमान होती है और क्षमाशील पुरुषके ऊपर भगवान् वासुदेव शीघ्र ही प्रसन्न होजाते हैं ॥ ॥ ४० ॥ हे अंग ! चक्रवर्ती राजाका वध ब्रह्मवधसे भी भारी है इसलिये तुम भगवान् हरिमें मन लगाये तीर्थसेवा और यमनियमादि द्वारा अपने पापोंका नाश करो ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां परशुरामचरिते हैहयार्ज्जुनवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मी ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४० ॥ राज्ञो मूर्धाऽवसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यंगाऽच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० नवमस्कंधे सोमवंशचरिते कार्त्तवीर्यार्जुनवधो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनंदन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गंगायां पद्ममालिनम् ॥ गन्धर्वराजं क्रीडंतमप्सरोभिर पश्यत ॥ २ ॥ विलोकयंती क्रीडंतमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथे स्पृहा ॥ ३ ॥

730

दोहा– सोलहमें जमदग्निवध, युत सुत कियो हजार । परशुराम तासों करत, क्षत्रिनको संहार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! पिताके उपदेशसे परशुरामजी "बहुत अच्छा" कह वनको चले गये और एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके आश्रममें लौट आये ॥ १ ॥ किसी समय जमदग्निकी स्त्री रेणुकाने गंगाजीपर जाय वहां पद्ममाली चित्ररथनाम गन्धर्वराजको अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ देखा ॥ ॥ २ ॥रेणुका जल लानेके लिये गंगाजीपर गई थी, विहार करते हुए गन्धर्वराजके देखनेसे रेणुकाने उनकी चाहना की और होमका समय

व्यतीत होगया इसको भी रेणुकाने न जाना * ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कालको बीता जाता हुआ देख मुनिसे शापकी आशंका कर वह अत्यन्त भीत हुई और शीघ्र आ जलकलशको मुनिके आगे रख खडी होगई ॥ ४ ॥ इधर अपनी भार्याके मानसिक व्यभिचारको जान महर्षि जमदग्निको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ.उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तीक्ष्ण हो अपने पुत्रोंको पुकारकर यह आज्ञा दी कि, तुम इसी समय अपनी पापिनी माताको मार डालो. इन पुत्रोंने पिताका वचन नहीं सुना ॥ ५ ॥ परंतु परशुराम अपने पिताकी समाधि और तपस्याके प्रभावको जानते थे.जब इनसे मुनिने कहा कि, तुम अपने इन भाइयोंको और अपनी माताको मार डालो तब उन्होंने विचारा कि,

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशंकिता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृतांजलिः ॥ ४ ॥
व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत्॥घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥
रामः संबोधितः पित्रा भ्रातॄन्मात्रा सहावधीत् ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक्समाधेस्तपसश्च यः ॥ ६ ॥
वरेंण छंदयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७ ॥

जो पिताकी आज्ञा उल्लंघन कर इनको नहीं मारता,तो पिताजी क्रोधित होकर हमको शाप देदेंगे और जो हम इनको मार डालेंगे तो कदाचित् हमारे ऊपर प्रसन्न हो यह हमारी माता और भ्राताओंको जिला भी सकते हैं ॥ इसलिये जैसे ही पिताने आज्ञा दी वैसे ही महात्मा परशुरामजीने माताके सहित अपने भ्राताओंका संहार किया ॥६॥ यह देखकर सत्यवतीके पुत्र जमदग्निमुनि परशुरामजीपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और परशुरामजीसे बोले कि,इच्छानुसार वर मांगो । तब परशुरामजीने यह वरदान चाहा कि,हमारे भ्राता और माता फिर जी जायँ और यह इस बातको

---

* **शंका**–रेणुकाकी वृद्धावस्था थी तो भी स्त्रीपुरुषके रतिका आनन्द देखती थी यह बात संदेह योग्य है। वृद्धावस्थामें विषयकर्मका आनन्द क्यों देखा ?

उत्तर–बाल्यावस्थामें रेणुका अत्यन्त चञ्चल थी. और अपने पिताके भवनमें रहती थी तो भी प्रत्येक कार्य चञ्चलपनेके साथ करती थी.एक दिन बहुतसी सखियाको संग लेकर स्नान करनेके लिये एक नदीपर गई. एक वृद्ध चिडिया अपने प्रिय पति पक्षीके संग विहार कर रही थी उसको देखकर रेणुका बहुत हँसी,तब चिडियाने अत्यन्त कुपित होकर शाप दिया कि,हे दुष्टिनी! मैं तो अपने पतिके साथ रमण करती हूं परन्तु तू वृद्धावस्थामें और दूसरे पुरुषके संग क्रीडा करेगी.सब क्रीडाओंका मूल आंखोंसे देखना है सो क्रीडा तू करेगी इसलिये रेणुकाने वृद्धा वस्थामें पाप किया कुछ दूसरा अन्याय नहीं किया ॥

भी भूल जायँ कि, हमने इनको मारा है ॥ ७ ॥ वैसे ही जमदग्निमुनिने वर देकर कहा कि "ऐसा ही हो" वैसे ही इन मरे हुओंमें प्राण आगया और जैसे सोया हुआ पुरुष नींदसे उठ बैठता है वैसे ही यह सब उठ बैठे। हे राजन्! यह शंका मत करना कि, परशुरामने ऐसा निंदित कर्म क्यों किया ? यह परशुरामजी अपने पिताके तपोबलको भलीभांति जानते थे, इसीलिये उन्होंने अपने सुहृदोंको मार डाला था ॥ ८ ॥ हे महाराज! इधर कार्त्तवीर्यार्जुनके दश हजार पुत्र परशुरामजीके वीर्यसे पराभव पाय अपने पिताके वधको याद करके कहीं भी सुख स्वच्छन्दता पानेके लिये समर्थ नहीं हुए ॥ ९ ॥ एक समय परशुरामजी भ्राताओंसहित वनको गये थे तब कार्तवीर्यार्जुनके यह सब पुत्र अवसर पाय

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवांजसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥८॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्म
रंतः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे न शर्म क्वचित् ॥ ९ ॥ एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं
सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके
जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ॥ प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबं
धवः ॥ १२ ॥ रेणुका शोकदुःखार्ता निघ्नंत्यात्मानमात्मना ॥ रामरामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥

पिछला वैर लेनेकी इच्छासे परशुरामजीके आश्रममें आये ॥ १० ॥ इन सबने वहाँ आकर देखा कि, परशुरामजीके पिता जमदग्निमुनि भगवान्में चित्त लगाये हुए अग्निशालामें बैठे हुए हैं। यह अवसर पाय इन पापात्माओंने उसी समय इन मुनिको मार डाला ॥ ११ ॥ परशुरामजीकी माता रेणुका अपने पतिको मरा हुआ देख अतिदीन हो अपने पतिके प्राणोंकी भिक्षा चाहने लगी परंतु तो भी इन निठुर क्षत्रियोंको दया न आई और बलपूर्वक रेणुकाके केश पकड़कर ले गये ॥ १२ ॥ तब परशुरामजीकी माता पतिशोकसे आर्त हो अपनी छाती पीटती हुई "हा राम! ! हा राम! ! हा! तात! हा तात! !" कह बडे जोरसे रोने और विलाप करने लगी ॥ १३ ॥

दूरसे "हा राम !" की पुकार और आर्त वाणी सुनकर वीर्यवान् परशुरामजी भ्राताओंसहित अतिशीघ्र अपने आश्रममें आये और वहां देखा कि, पिता मृतक हुए पडे हैं ॥ १४ ॥ पिताको मृतक देख सब भाइयोंको ऐसा दुःख, शोक, क्रोध, झुँझलाहट और पीडा उत्पन्न हुई कि,इन सबके वेगसे सब मोहितसे होगये ॥ १५ ॥इसके उपरांत महात्मा परशुरामजी "हा तात ! हा साधो ! हा धार्मिक ! हमको छोड़कर आप स्वर्गको चलेगये" इस प्रकार विलाप करने लगे और पिताके मृतक देहको अपने भाइयोंके निकट रखकर भयंकर परशा लिये मनमें विचारने लगे कि, अब हम क्षत्रियोंके वंशका ध्वंस कर देंगे॥ १६॥हे राजन् ! परशुरामजीने अति शीघ्र माहिष्मती पुरीमें जाय उसके बीचमें अर्जुनपुत्रोंके मस्तक काट काटकर एक बडा भारी पर्वत बनाया । जब वह सहस्राज्र्जुनके पुत्र ब्रह्महत्या कर आये थे तब ही इस माहिष्मती पुरीकी शोभा जाती रही थी । मध्यस्थानमें मुण्डमय पर्वतके होनेसे वह पुरी और भी भयानक हो गई फिर तेजस्वी परशुरामजीने उस कार्तवीर्याज्र्जुनके पुत्रोंके रुधिरसे एक नदी उत्पन्न की,वह नदी ब्रह्मद्वेषियोंको अत्यन्त भयकी देनेवाली हुई॥ १७॥ १८॥इसके उपरान्त क्षत्रियजातिको अन्यायके वश हुआ देख पिताके वधका हेतु कर परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया और स्यमन्तपञ्चक स्थानमें रुधिरके नौ कुण्ड भर दिये॥ १९॥उसके पीछे परशुरामजीने अपने पिताका शिर उनकी देहसे लगाय,कुशोंके ऊपर रख विविध

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वनम्॥त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम्॥ १४॥तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः॥हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान्स्वर्गतो भवान्॥ १५॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम्॥प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रांताय मनो दधे॥ १६ ॥ गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नं विहतश्रियम्॥तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥ तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमंगलकारिणि ॥ १८ ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥ स्यमंतपंचके चक्रे शोणितोदान्ह्रदान्नव ॥ १९ ॥ पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥

---

* प्रश्न–परशुरामजीने इक्कीसबार क्षत्रियोंको क्यों मारा था ? । उत्तर–रेणुकाने सहस्राज्र्जुनके पुत्रोंकी दुष्टता देख दुःखके मारे इक्कीस बार अपनी छातीको कूटा था इसलिये महात्मा परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंका नाश किया ॥

यज्ञोंसे सर्वदेवमय आत्मा ईश्वरकी पूजा की ॥ २० ॥ उस यज्ञमें होताको पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिणदिशा, अध्वर्य्युको पश्चिमदिशा और उद्गाताको उत्तरदिशा दक्षिणामें देदी॥२१॥अवान्तर दिशायें और दूसरे ऋत्विक् लोगोंको देदीं । मध्यस्थल कश्यपजीको दान कर दिया । फिर उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर सभासदोंको भी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें दी ॥ २२ ॥ उसके पीछे महानदी सरस्वतीमें जाकर यज्ञान्तका स्नान कर अनन्त पापोंको दूरकर बादल रहित सूर्यके समान आकाशमें विराजमान होने लगे॥२३॥ इस ओर महामुनि जमदग्नि परशुरामजीसे जित होनेके कारण स्मृतिही जिसका शरीर है ऐसे अपने शरीरको प्राप्त कर सप्तर्षिमण्डलमें जाय सप्तऋषि हुए॥२४॥ हे राजन् !

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम्॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥२१॥ अन्येभ्योऽवांतरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् ॥ आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥ स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मंडले सो ऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ॥ आगामिन्यंतरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेंद्राद्रौ न्यस्तदंडः प्रशांतधीः ॥ उपगीयमानचरितः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥ २६ ॥ एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥

732

कमललोचन जमदग्निके सुत भगवान् परशुरामजी भी आगामी मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करेंगे अर्थात् वह भी वेदका प्रचार करनेवाले सप्तर्षियोंमेंसे एक होंगे ॥ २५ ॥ वह परशुरामजी दण्ड छोड शान्त चित्तसे अबतक महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं। सिद्ध, चारण और गंधर्वगण सदा उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे भगवान् विश्वात्मा ईश्वर हरिने भृगुकुलमें अवतार ले अनेकवार क्षत्रियोंका संहार कर भूमिका भार उतार दिया ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! अब आगे सुनो । गाधिके प्रकाशमान अग्नितुल्य

महातेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए । हे राजन् ! यह तपके प्रभावसे क्षत्रियपन छोड़ ब्राह्मण हो गये ॥ २८ ॥ हे महराज ! इन तेजस्वी विश्वामित्रजीके एक शत पुत्र उत्पन्न हुए । तिनमें यद्यपि केवल मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छन्द था, तो भी सब पुत्र ही मधुच्छन्द कहे जाते थे ॥ ॥ २९ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीने अजीगर्त्तके पुत्र शुनःशेपको भृगुवंशीय देवरात नामक पुत्र करके अपने सब पुत्रोंसे कहा था कि, तुम सब इनको अपना बड़ा भाई समझना ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस शुनःशेपके पिता अजीगर्त्तने महाराज हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनानेके लिये मध्यम समझ ममता छोड बेच दिया था परंतु यह पुरुषपशु (शुनःशेप) प्रजेशादि वरुणादि देवतालोगोंकी स्तुति करके पाशबन्धनसे छूट गया ॥

विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ॥ मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छंदस एव ते ॥ २९ ॥ पुत्रं कृत्वा
शुनश्शेपं देवरातं च भार्गवम् ॥ आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चंद्रमखे
विक्रीतः पुरुषः पशुः ॥ स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबंधनात् ॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ॥
देवरात इति ख्यातः शुनश्शेपः स भार्गवः ॥ ३२ ॥ ये मधुच्छंदसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत्तान्मुनिः
क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥ स होवाच मधुच्छंदाः सार्धं पंचाशता ततः ॥ यन्नो भवान्संजानीते तस्मिंस्ति
ष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठं मंत्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ॥ विश्वामित्रः सुतानाह वीरवंतो भविष्यथ ॥
ये मानं मेऽनुगृह्णंतो वीरवंतमकर्त माम् ॥ ३५ ॥

॥ ३१ ॥ वह देवतालोगोंसे रात (प्रदत्त) होनेसे गाधिवंशमें देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ, परंतु भृगुवशंमें इसका नाम शुनःशेप था ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रके मधुच्छन्द नामक जो पचास पुत्र बडे थे, उन्होंने शुनःशेपको बड़ा माननेमें अपना भला न समझा, इसलिये क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोंको यह शाप दिया कि, तुम अतिदुर्जन हो, आजसे म्लेच्छ हो जाओगे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त मध्यम पुत्र मधुच्छन्दने अपने पचास छोटे भाइयोंके साथ पिताके पास आकर कहा कि " आप हमारे पिता हैं " हमको बड़ाई अथवा छुटाई जिसकी भी आज्ञा देंगे हम वही स्वीकार करेंगे ॥ ३४ ॥ यह कहकर इन्होंने मंत्रदर्शी शुनःशेपको अपना बड़ा भ्राता बनाया और सब एकवचन होकर

बोले कि "हम सबही तुम्हारे अनुगामी अर्थात् छोटें भाई हुए" यह सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्न हो अपने इन पुत्रोंसे बोले कि, तुमने हमारे मानको रखकर हमको पुत्रवान् किया इससे हमको बहुत सन्तोष हुआ और हम सन्तुष्ट होकर तुमको यह वर देते हैं कि,तुम लोग पुत्रवान् होगे ॥ ३५ ॥ हे कुशिकगण। यह देवरात भी तुम्हारा कौशिक गोत्री है, क्योंकि यह हमारा पुत्र हुआ है इसलिये तुम इसके अनुगामी होओ। हे राजन्। इन पुत्रोंके अतिरिक्त विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय, क्रतु, मानादि और भी अनेक पुत्र हुए थे ॥ ३६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन। इस प्रकार अनुगृहीत हुए और एक पुरुषको पुत्र मान लेनेसे विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक अनेक प्रकारका होगया अर्थात् कुछ अभिशप्त और कुछेक प्रवरांतरको प्राप्त हुए। बस देवरातको सबसे बड़ा माननेका ही यह बीज हुआ ॥३७॥

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ॥ अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रं तु वैश्वामित्रैः पृथग्विधम्॥प्रवरांतरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे परशुरामकृतक्षत्रवधविश्वामित्रान्वययोर्वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६॥ श्रीशुक उवाच॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः॥ नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रंभश्च वीर्यवान् ॥१॥ अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ॥ क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥२॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ॥ शुनकश्शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता ॥ धन्वंतरिर्दैर्घ्यतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥४॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां परशुरामचरितवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा–सत्रहमें पुरूरवाको,ज्येष्ठ पुत्र भयो आय। ताके पांचों सुतनको, सकल वंश कहों गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्। पुरूरवाके * आयु नामक जो पुत्र हुआ था उसके पाँच पुत्र हुए–नहुष,क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेना इनके नाम थे। उनमें क्षत्रवृद्धके वंशका वृत्तांत अब कहता हूँ। तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ २ ॥ क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्र,सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए. तिनमेंसे गृत्समदके शुनक उत्पन्न हुआ। उस शुनकसे ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ शौनकमुनि हुए ॥ ३ ॥ काश्यका पुत्र काशि, उसका पुत्र राष्ट्र और तिसका बेटा दीर्घतमा,

---

* इस स्थानमें श्रीकृष्णावतारका प्रस्ताव करनेके लिये संक्षेपसे वंशका वर्णन किया जाता है। जिसके वंशमें स्वयं भगवान् अवतार लेंगे। इस वंशका वर्णन पीछेसे बिस्तारसहित किया जायगा इसलिये पुरूरवाके पांच पुत्रोंमेंसे छोटे पुत्रका वर्णन करके अब ज्येष्ठके वंशका वर्णन करते हैं।

दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरि हुए कि, जिन्होंने आयुर्वेदक प्रचार किया. यह धन्वंतरि यज्ञभोगी भगवान्के अंश स्मरण करते ही रोग क्लेशका भय नष्ट करते हैं.इन धन्वंतरिजीका पुत्र केतुमान, केतुमानका पुत्र भीमरथ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उससे दिवोदासकी उत्पत्ति हुई, इनके पुत्र द्युमान जो कि, प्रतर्दन भी कहे जाते थे और शत्रुजित्, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी यही कहाते थे ॥ इस द्युमानके अलर्कादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ उनमेंसे अलर्कने साठ सहस्र साठसौ अर्थात् छासठ (६६०००) सहस्रवर्षतक युवा अवस्था रखकर राज्य भोग किया था । हे राजन्! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने कालतक पृथ्वीका भोग नहीं किया ॥ ७ ॥ इस अलर्कसे संतति

यज्ञभुग्वासुदेवांशस्स्मृतमात्रार्तिनाशनः ॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मा
त्प्रतर्दन इति स्मृतः ॥ स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥ अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनी
थोऽथ सुकेतनः ॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ॥ वीति
होत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्त्रवृद्धान्वयायिनः ॥ रंभस्य रभसः पुत्रो गंभी
रश्चाक्रियस्ततः ॥१०॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ॥शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥

नामवाले राजाकी उत्पत्ति हुई. उसका पुत्र सुनीथ, सुनीथका पुत्र निकेतन, निकेतनका पुत्र धर्मकेतु और धर्मकेतुसे सत्यकेतुने जन्म ग्रहण किया ॥ ८ ॥ सत्यकेतुके पुत्र धृष्टकेतु, उसके कुमार उत्पन्न हुए । उनका पुत्र वीतिहोत्र, इनके सुत भर्ग और इनके पुत्र भार्गभूमि हुए ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! यह सब नरेश काशिवंशीय हुए. यह काशिके परदादा क्षत्रवृद्धवंशके अनुगामी थे. हे परीक्षित्! अब रम्भके वंशका वर्णन करते हैं, आप सावधान हो चित्त लगाय सुनिये। रम्भका पुत्र रभस,उसका पुत्र गम्भीर, उससे अक्रियकी उत्पत्ति हुई ॥ १० ॥ अक्रियका पुत्र ब्रह्मवित् हुआ। अब अनेनाके वंशका वर्णन करते हैं.अनेनाका पुत्र शुद्ध हुआ उसके शुचि उत्पन्न हुआ.

शुचिके धर्मके सारथि त्रिककुद उत्पन्न हुए. त्रिककुदके पुत्र शांतरय जो कि बडे जितेन्द्रिय और ज्ञानी थे इसलिये उन्होंने कोई पुत्र भी उत्पन्न नहीं किया ॥ ११॥ हे महाराज ! रजिके अत्यन्त बलशाली पांचसौ ५०० पुत्र हुए. एक समय जब देवता लोगोंनें प्रार्थना की तब इस रजिने दैंत्योंका संहार करके इंद्रपुरी देवता लोगोंको देदी ॥ १२ ॥ १३॥ राजा रजिकी मृत्यु होने पर देवराज इंद्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गपुरी मांगी, तब उनके पुत्रोंने नहीं दी और आप ही स्वर्गपति होकर यज्ञका भाग लेने लगे ॥ १४ ॥ इसलिये देवगुरु बृहस्पति

ततश्शांतरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ॥ रजेः पंचशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेंद्रायाददाद्दिवम् ॥ इंद्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥ १३ ॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशंकितः ॥ पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥१४॥ त्रिविष्टपं महेंद्राय यज्ञभागान्समाददुः ॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः ॥ १५ ॥ अवधीद् भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ॥ कुशात्प्रतिः क्षात्त्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ ॥ १६ ॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ॥ सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥

जीने रजिक पुत्रोंकी बुद्धिका नाश करनेके लिये अभिचारविधानसे अग्निमें होम किया. उससे शीघ्र ही रजिके सब पुत्र नीतिमार्गसे भ्रष्ट होगये और फिर देवराज इंद्रनें सरलतासे उन सबको मार डाला, कोई शेष नहीं रहा * ॥ १५ ॥ हे राजन् ! क्षत्रवृद्धका पोता कुश, उसका पुत्र प्रति, प्रतिका पुत्र, संजय, संजयका पुत्र जय, जयका पुत्र कृत और उसका पुत्र हर्यवन राजा हुआ ॥ १६ ॥ हर्यवन राजाका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र अहीन और अहीनका पुत्र जयसेन हुआ ॥ १७॥

---

* शंका-बृहस्पतिजी अग्निमें किस वस्तुका होम करते थे? जिस बीजके होमके प्रतापसे रजिराजाके पुत्रोंको इन्द्रने मार डाला ?

उत्तर-रक्षा करनेवाले जो परमरक्षक बृहस्पतिजी थे, सो राजा रजिके पुत्रोंको तेजोवधकारी मंत्रसे अग्निमें होम करते थे, इसी कारण राजा रजिके पुत्र तेजहीन हो गये; तब राजा रजिके पुत्रोंको इन्द्रने मार डाला।

जयसेनका पुत्र संस्कृति, उनका पुत्र जय, जयके क्षत्रधर्म और क्षत्रधर्मके महारथ हुआ. यह सब भूपाल क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुए थे. अब आगे नहुषके वंशका वृत्तांत हम तुमसे वर्णन करते हैं तुम चित्त लगाय सावधान होकर श्रवण करो ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां क्षत्रवृद्धवंशानुवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा–अट्ठारहमें नहुषसुत, भयो ययाति जुझार । षट् पुत्र तिनके भये, तिनमें छोट उदार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! जैसे शरीरमें छः इंद्रियें होती हैं, इसी प्रकारसे नहुष राजाके यति–ययाति–संयाति–आयाति–वियाति और कृत नामक छः (६) पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इनमेंसे यति राज्यका परिणाम अर्थात् राज्यको अनर्थका हेतु जान गया था इसलिये पिताके राज्य देनेपर इसने राज्यग्रहण नहीं किया; क्योंकि राज्यकार्यमें लगा हुआ पुरुष अपनी म-ताको नहीं जानता था ॥२॥ इससे इंद्राणीके ऊपर ढिठाईका व्यवहार करनेके हेतु पिता (नहुष) के स्वर्गभ्रष्ट और अगस्त्यादि विप्रोंके शापसे अजगर होनेपर मध्यम पुत्र ययातिही राजा हुआ था॥ ३ ॥ राजा ययातिने राजगद्दीपर बैठ अपने चार छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंमें राज्य करनेकी आज्ञा देदी.व आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी दो कन्याओंसे विवाह कर पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ ४ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि और नहुषपुत्र ययाति क्षत्रिय था सो यह ब्राह्मण क्षत्रियका प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ था ? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! ईश्वरकी इच्छासे प्रतिलोम विवाह दोषदायी नहीं है। एक समय दानवराज वृषपर्वाकी शामष्ठा

संकृतिस्तस्य च जयः क्षत्त्रधर्मा महारथः ॥ क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥१८॥ इति श्रीमद्भा० म० नव० चंद्रवं० क्षत्रवृद्धवंशा० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायातिर्वियतिः कृतिः ॥ षडिमे नहुषस्यासन्निंद्रियाणीव देहिनाम्॥१॥राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित्॥यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते॥२॥पितरि भ्रंशिते स्थानादिंद्राण्या धर्षणाद्द्विजैः॥प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः॥३॥चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन्भ्राता यवीयसः॥ कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः॥४॥राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबंधुश्च नाहुषः॥ राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच॥ एकदा दानवेंद्रस्य शर्मिष्ठा नाम सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥

नामक कन्या सहस्र सखी और गुरुकी कन्या देवयानीके साथ पुरके समीप ही एक उद्यानमें विहार करनेको गई. यह उपवन अत्यंत मनोहर था। वृक्ष फूलोंके भारसे झुके हुए थे और वहां निकट ही एक नलिनीकी रेतीमें भ्रमरगण कलवाणीसे गान कर रहे थे ॥६॥७॥ शर्मिष्ठाने सखियोंके साथ घूमते घूमते बागमें एक सरोवर देखा. यह सब कन्यायें किनारेपर अपने वस्त्र उतार परस्पर जलको उड़ाकर एक दूसरेके ऊपर जल डाल खेल करने लगीं ॥ ८ ॥ उसी समय अचानक देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजी पार्वतीके साथ नंदीश्वरपर चढे इस ओरको आये. इनको देखकर यह सब कन्यायें अत्यंत लज्जित हो झटपट सरोवरसे बाहर निकलकर अपने वस्त्र पहरने लगीं ॥ ९ ॥ घबड़ाहटके मारे भूलमें

देवायान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥ व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः
कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य दुकूलानि विजहुः सिंचतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजतं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम्
सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकु
पिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥ अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हवि
रध्वरे ॥११॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पंथाश्च दर्शितः॥ १२ ॥ यान्वंदं
त्युपतिष्ठंते लोकनाथाः सुरेश्वराः ॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्यो
स्यानः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥

गुरुकन्याके वस्त्र शर्मिष्ठाने अपने समझकर पहर लिये. यह देख देवयानी अतिक्रोधित होकर बोली ॥ १० ॥ अरे! इस दासीका अन्याय कर्म तो देखो जिस प्रकार कुतिया यज्ञके हविको खा जाती है, वैसे ही इस दुष्टाने मेरे पहरनेके कपड़े पहर लिये ॥११॥ देखो, जिन ब्राह्मणोंने तपस्या करके इस जगत्‌की उत्पत्ति की है, जो लोग परमपुरुषके मुख अर्थात् ब्रह्ममुखसे उत्पत्तिके हेतु सर्वश्रेष्ठ हैं, जोकि ब्रह्मको धारण किये हुए हैं. जिन्होंने वेदका शुभ मार्ग बताया है और सब लोगोंके नाथ सुरेश्वर गण भी और भगवान् विश्वात्मा पावन श्रीनिवास भी जिन की पूजा किया करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ वह ब्राह्मणजाति सहजसे ही माननीय है, और उनमें फिर हम महाप्रभावशाली भृगुवंशमें उत्पन्न

हुई हैं. इस दासीका पिता जो असुर है, वह भी हमारे पिताका शिष्य है. इस असत्यनकी चाल तो देखो कि, इसनेहमारे पहरनेके वस्त्र पहर लिये हैं, जैसे शूद्रजाति वेदोंको धारण करे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जब गुरुकन्या देवयानीनें इस प्रकार तिरस्कार किया, तब शर्मिष्ठा घर्षित हुई सर्पिणीके समान बारंबार लम्बे लम्बे श्वास लेने लगी और क्रोधके मारे होंठ चबा चबाकर कहने लगी कि ॥ १५॥ अरी भिखमंगी! अपने आचरणको विना जाने ही कटु वचन कहने लगी ! काकके समान क्या तुम हमारे गृहका मुख नहीं देखती रहतीं हो ?॥ १६ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकारके कठोर वचन भी गुरुकन्या देवयानीको कहकर शर्मिष्ठाका क्रोध शांत नहीं हुआ, बरन् इसके वस्त्र उतार नंगी कर एक कुएमें धक्का दे ढकेल दिया ॥१७॥ देवयानीको कुएमें ढकेलकर शरमिंष्ठा अपने घर पर चली आई. भाग्यसे शिकार खेलकर घूमते२ राजा ययाति भी उस वनमें आ पहुँचे और प्यासके मारे जल भरनेके लिये जैसे ही इस कुएँके समीप गये कि, वैसे ही उन्होंने देवयानीको कुएँमें देखा ॥ १८।। शुक्राचार्यकी कन्याको कुएँमें नंगी गिरी हुई देखकर राजाको अत्यन्त दया आई और तत्काल अपना दुपट्टा राजाने उसे पहरनेको देदिया और अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर उस दयावान् राजाने उसको कुएँसे बाहर निकाल लिया ॥ १९ ॥ देवयानी कुएँसे निकलकर प्रेम भरे वचन राजा ययातिसे बोली–हे महाराज ! आपने अनुग्रह करके हमारा हाथ पकडा है ॥ २० ॥ अब यही प्रार्थना

एवं शपंतीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ॥ रुषा श्वसंत्युरंगीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५ ॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे
बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्वलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः शप्त्वाचार्यसुतां सतीम् ॥
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥ प्राप्तो यदृच्छया
कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ ॥ दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार
दयापरः ॥ १९ ॥ तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥ २० ॥
हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे ॥ एष ईशकृतो वीर संबंधो नौ न पौरुषः॥ २१ ॥

कि जिस हाथको एकबार आपने ग्रहण किया उसको कोई दूसरा ग्रहण न करने पावै ॥ २१ ॥ हे वीर यद्यपि प्रतिलोम विवाह ठीक नहीं तो भी मैं कुएँमें डूबकर मरतीथी इसी अवसरपर आपका दशन हुआ तब हमारा दोनों जनोंका यह बानक परमेश्वरने बनाया है, यह किसी पुरुषका बनाया नहीं है और हे नरेश ! ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नहीं होगा क्योंकि पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दिया था तब उन्होंने भी हमको शाप दिया था ॥ २२ ॥ शास्त्रके प्रतिकूल और इच्छानुसार न होने पर भी भाग्यसे प्राप्त हुआ जान और अपने अन्तःकरणको भी उसके प्रति सकाम देख यह निश्चय करके कि, मेरा मन अधर्ममें नहीं प्रवेश करता; देवयानीके वाक्यको

यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्यमशपं पुरा॥२२॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥२३॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥२४॥ दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ॥ स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥ गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥

राजा ययातिने अंगीकार किया ॥२३॥ इसके उपरान्त जब राजा ययाति चले गये तब देवयानी उस स्थानसे रोती रोती पिताके निकट गई और सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया अर्थात् शर्मिष्ठाने जो भिखमंगिनी कहा था और कुएमें डालकर जो कुकर्म किया था, वह सब विस्तारपूर्वक इसने अपने पितासे कहा ॥ २४ ॥ यह सुनकर शुक्राचार्यके मनमें बड़ा दुःख हुआ । पुरोहिताईकी निन्दा करते और भिक्षावृत्तिकी प्रशंसा करते यह दैत्यराजकी पुरीसे अपनी कन्यासहित बाहर चले ॥ २५ ॥ यह सुनकर राजा वृषपर्वाने जाना कि, गुरुजी अप्रसन्न होकर देवताओंकी जीत करेंगे इसलिये शीघ्र ही मार्गमें जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा और शिर नवाकर प्रसन्न करने लगा ॥२६॥

---

१ इसमें यह दृष्टान्त है कि बृहस्पतिके पुत्र कच जब शुक्राचार्य मुनिके निकट मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करते थे उस समय एक दिन शुक्रकी पुत्री देवयानीने उनके साथ विवाह करना चाहाथा तब कच बोले कि "तुम हमारी गुरुकन्या होनेसे पूजने योग्य हो" फिर हम किस प्रकारसे तुम्हारा पाणिग्रहण करैं ? तब देवयानीने कुपित हो यह शाप दिया कि तुम्हारी विद्या प्रभाहीन होगी, तब कचने भी यह शाप दिया कि "तुम्हारा ब्राह्मणके साथ विवाह नहीं होगा" इसलिये ब्राह्मण हमसे विवाह नहीं कर सकेगा ।

एक क्षणभरमें शुक्राचार्यका आधा क्रोध शान्त हो गया और वह शिष्यसे बोले कि, हे राजन्! हमारी कन्या जो कुछ कहे सो इसकी अभिलाषाको तुम पूर्ण करो क्योंकि हम इस अपनी कन्याको छोड़कर रह नहीं सकते ॥ २७ ॥ गुरुजीके यह वचन सुनकर गुरुकन्याकी प्रसन्नता चाहता हुआ राजा वृषपर्व्वा खडा रहा, तब देवयानी अपने मनकी बात प्रकाशित करके बोली कि,हमारे पिता जहाँ हमारा विवाह करें, यह शर्मिष्ठा तुम्हारी कन्या उसी स्थानमें अपनी सब सखियोंके साथ जाकर हमारी दासी हो ॥ २८ ॥ वृषपर्व्वाने विचारा कि गुरुजीके चले जानेसे हमारे ऊपर घोर संकट आ पडेगा और यहां रहनेसे हमारे कार्य सिद्ध होंगे यह सोच विचार राजा वृषपर्वाने गुरुकन्या देवयानीके हाथमें सखियों सहित शर्मिष्ठाको सौंप दिया। जब पिताने शर्मिष्ठाको देदिया तब यह हजार सखियोंके साथ देवयानीकी सेवा करने लगी ॥२९॥ इसके पीछे दैत्यगुरु शुक्राचार्यजीने शर्मिष्ठासहित देवयानीका राजा ययातिके साथ विवाह कर दिया और भली भाँतिसे कह दिया कि,यद्यपि हम अपनी कन्याके साथ शर्मिष्ठाको भी तुम्हें देते हैं तो भी तुम किसी समय इसको अपनी शय्यापर न ग्रहण कर सकोगे ॥ ३० ॥ हे महाराज परीक्षित्! किसी समय शर्मिष्ठाने देखा कि देवयानीने स्वामीके सहवाससे परमसुंदर पुत्र उत्पन्न किया है इसलिये ऋतुकाल आ पहुँचनेपर अपनी सखीके पति ययाति राजाको एकान्तमें बुलाय पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ राजा ययाति अत्यन्त धर्मात्मा थे, ऋतुकालमें राजकुमारी शर्मिष्ठासे सन्तानके लिये प्रार्थित होकर विचारने लगे कि, इसकी कामना पूरी करनेसे धर्म है इसलिये

क्षणार्धमन्युर्भगवाञ्छिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥२७॥ तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥ स्वानां तत्संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः ॥ तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पं न कर्हिचित् ॥ ३० ॥ विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित्॥तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥

यक्राचार्यजीका वचन स्मरण आनेपर भी उन्होंने दैवप्राप्त पितृयज्ञसे शर्मिष्ठाके साथ विहार किया. राजा ययातिने धर्म समझकर ही
शर्मिष्ठाकी प्राथना पूर्ण की थी, कुछ कामके वश होकर नहीं की. उसके उपरांत देवयानीने यदु और तुर्व्वसु दो पुत्र उत्पन्न किये शर्मिष्ठाके
शर्भसे द्रुह्यु, अनु और पूरु; इन तीन पुत्रोंनें जन्म ग्रहण किया ॥३२॥३३॥ महाराज ! अपने स्वामीसे शर्मिष्ठाके गर्भकी उत्पत्ति जानकर
गवयानी अभिमानसे परिपूर्ण हो गई और क्रोधके मारे मूर्च्छितसी हो तत्काल पिताके घरको चली गई ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! राजा ययाति
देअत्यन्त कामी थे । वह प्यारीका क्रोध देखकर विनती करके प्रसन्न करते करते अपनी प्रियभार्याके पीछे पीछे चले गये परंतु चरण दाबनेसे
भी वह देवयानीको प्रसन्न न कर सके ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! इस ओरका कन्याके मुखसे सब वृत्तांत जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी महाक्रोधित
हो घृणायुक्त वचनोंसे जामाताको पुकारने लगे । तू स्त्रीकामी होकर अन्यायके कर्म करता है । अरे मतिमन्द ! इस अपराधसे मनुष्योंको

गर्भसभवमासुर्यां भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचो
भिरुपमंत्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामाऽनृतपूरुष ॥ त्वां
जरा विशतां मंद विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच ॥ अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्य
स्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥३७॥ इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां
जरां देहि निजं वयः॥३८॥मातामहकृतं वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः॥३९॥

विरूप करनेवाली जरा (बुढापा) तेरे शरीरमें प्रवेश करे ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिका चित्त अत्यंत दुःखित हुआ और निवेदन
किया; ब्रह्मन् ! आपकी बेटीके कामभोगसे हम अबतक भी सब प्रकारसे तृप्त नहीं हुए हैं। तब शुक्राचार्यजी बोले कि,हाँ जो कोई पुरुषतुम्हारी
जरा ग्रहण कर ले तो उसकी वयस (अवस्था) से तुम इच्छानुसार कामभोग कर सकोगे ॥३७॥ हे राजन् ! इस प्रकार राजा ययाति जराके उतरने
की व्यवस्था पाकर पहले अपने बडे पुत्र यदुको बुलाकर बोले,हे तात यदो! हमारी यह जरा अवस्था ग्रहण करके अपनी वयस हमको दो।
बेटा ! तुम्हारे नाना शुक्राचार्यने हमको जराग्रस्त किया है परंतु हम अबतक विषयभोगसे तृप्त नहीं हुए हैं इसलिये यह जरा तुम लो
और तुम्हारी युवा अवस्था लेकर कुछ वर्षतक मैं विहार करूंगा॥३८॥ क्योंकि तेरे नानाकी दीहुई इस वृद्धावस्थाको मैं सह नहीं सकता इसलिये

तुम्हारी दी हुई अवस्थासे मैं विषयोंको भोगकर तृप्त होजाऊँगा ॥ ३९ ॥ यह सुनकर यदु बोले कि; पिता ! आप मध्यम समयमें जराको प्राप्त हुए हैं. आपकी इस जराके लेनेको हमारा चित्त नहीं चाहता क्योंकि, विना ग्राम्यसुखोंके भोगे कौन पुरुष उससे (कामभोगसे) तृष्णारहित हो जाता है ॥३९॥ हे भारत ! तिसके पीछे तुर्वसु और द्रुह्यु इन दो पुत्रोंसे राजाने युवा अवस्था मांगी, परंतु उन्होंने भी कोरा जबाब दिया । हे राजन् ! इन लोगोंको धर्मज्ञान नहीं था । यह अनित्य पदार्थको ही नित्य मानते थे । फिर भला इन लोगोंसे पिताकी आज्ञा मानी जानेकी क्या सम्भावना ? ॥ ४१ ॥ परंतु राजा ययातिका सबसे छोटा पुत्र यद्यपि वयसमें छोटा, तथापि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था; सबसे पीछे उसको बुलाकर राजा ययाति जरा लेनेके लिये बोले कि,हे वत्स ! तुम अपने बडे भ्राताओंके समान हमसे "नहीं" कहने योग्य नहीं हो ॥

यदुरुवाच ॥ नोत्सहे जरसा स्थातुमंतरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येंद्र पितुरात्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विंदते परम् ॥४३ ॥ उत्तमश्चिंतितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥ अधमोऽश्रद्धयाकुर्यादकर्तोच्चारितं पितुः ॥ ४४ ॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५ ॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक्पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेंद्रियः ॥ ४६ ॥

॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार राजा ययातिने कहा; तब पूरुने कहा कि,हे मनुष्येंद्र ! इस लोकमें कोई पुरुष भी पिताका प्रत्युपकार नहीं कर सकता है । पिता क्या साधारण पुरुष हैं? क्योंकि उनसे देहका सम्बंध है और उनकी प्रसन्नतासे पुरुष परमगतिको प्राप्त होजाता है ॥ ४३ ॥ तो भी जो पुत्र पिताका विचारा हुआ कार्य अपने आप ही कर देता है,वह उत्तम कहलाता है और जो आज्ञा पाकर कार्य करता है,वह मध्यम है जो आज्ञा पाकर भी अश्रद्धासे करता है वह अधम है और जो उस कार्यको नहीं करता है, वह पुत्र नहीं किंतुपिताका विष्ठामात्र है ॥४४॥ प्रकार कह हर्ष प्रकाश करके उसने पिताकी जरा अवस्था ग्रहण करली । राजा ययाति भीअपने पुत्रकी युवा अवस्था पाकर भलीभाँति सुख भोगने लगा ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! राजा ययाति सप्तद्वीपका राजा था । वह भलीभाँति पुत्रके समान प्रजाका पालन करने लगा

और इच्छानुसार विषयभोग भोगने लगा, पुत्रकी युवा अवस्था पानेसे इस राजाययातिकी सब इन्द्रिय प्रबल और अनिवारित हो गईं * ॥४६॥ और देवयानी भी मन, वचन, कायसे व और भी सब भाँति एकान्तमें दिनपर दिन अपने प्राणेश्वरको अत्यंत प्रसन्न करती रहती थी ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! राजा ययाति भी अनेक अनेक दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ कर सर्ववेदमय सर्वदेवस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवका भजन करने लगे ॥ ४८ ॥ आकाशमण्डलमें जलदावलि (बादलोंकी पंक्ति) के समान जिससे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् विरचित होकर यावत् इंद्रियवृत्ति तावत् विचित्ररूपसे प्रकाश पाती है और इसी इन्द्रियवृत्तिके उपरममें स्वप्न और मायासहित मनोरथ पाय प्रकाशहीन होते हैं॥४९॥ राजा ययातिने विरागी होकर उन्हीं अंतर्यामी परमसूक्ष्मरूप भगवान् वासुदेवके अनेक यज्ञ किये॥ ५० ॥

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥
अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥
यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥
तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥

739

---

* **शंका**–राजा ययाति छोटे पुत्रकी अवस्था लेकरके उसी छोटे पुत्रकी माताके संग विहार करता था, इस बातसे जान पडता है कि, पुत्रने ही अपनी माताके संग रमण किया, क्योंकि राजामें रमण करनेका सामर्थ्य होता तो पुत्रकी युवावस्था क्यों लेता ? इसने यह दो महापाप क्यो किये ? जो कोई ऐसा कहे कि, पुत्रको पिताकी आज्ञा करनी चाहिये, यह भगवान्की बनाई मर्यादा है और धर्मशास्त्रका भी यही वाक्य है, सो सत्य है. निःसन्देह वह मर्यादा पूरी करनी चाहिये; परन्तु न्याय्य विचारकर कार्य करना चाहिये, क्योंकि जो पिताकी बुद्धि मलिन होजाय और पिता आज्ञा करे कि, मेरे लिये वेश्या अथवा वारुणी अथवा बुरीवस्तुको लादे और वह अनेक प्रकारकी कुत्सितवस्तुपर दृष्टि करे तो पुत्रको ऐसे पिताकी आज्ञा कभी नहीं मानना चाहिये, फिर पुत्रने ऐसे पिताके वचन क्यों माना ?

उत्तर–शर्मिष्ठाके ओष्ठ पान करके ययातिकी बुद्धि भ्रष्ट होगइ और दैत्यकी कन्याका पुत्र राजा है इसलिये वह दोनों पापी मिल गये इस कारण महापाप किया ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् । इस प्रकार सहस्र वर्षतक अपराङ्मुख पञ्च इन्द्रिय और छठे मनसे सदा विषयभोग करके भी सर्वभूमीश्वर राजा ययाति सब भाँतिसे तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायांअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा–नृप ययाति निजप्रियाको, अजसम चरित सुनाय । बहुरि मोक्षभागी भया, उन्निसवें अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित् । राजा ययाति इस प्रकार विषयभोग करतेकरत अकस्मात एक दिन अपने आपको स्त्रैण समझकर अपनी आत्माका विकार जान वैराग्ययुक्त हो अपनी परम प्यारी देवयानीसे यह वर्णन करने लगे ॥ १ ॥ कि, हे भार्गवि । हमारे समान कोई कामी एक गाँवमें

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ॥ विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिंद्रियैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंध ययातिचरितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन्कामांस्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः ॥ बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥ शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचंति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥ बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥ तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिंतयन् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल ॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कांतकामिनीः ॥ पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥ ५ ॥

रहता था । वनवासी धीरगण उसके आचरणोंपर अबतकभी कभी शोक किया करते हैं । उस पुरुषकी अनुष्ठान की हुई गाथा मैं तुमसे वर्णन करता हूँ. श्रवण करो ॥ २ ॥ "एक छाग (पुरुष) ने वन (संसार) में अपने प्रिय विषयको ढूँढते ढूँढते अचानक एक छागीको कर्मके वश कुएमेंगिरी हुई देखा ॥ ३ ॥ इस अत्यन्त कामी छागने उस बकरीके निकालनेका उपाय सोचा और कुएके किनारे अपने सींगोंसे मट्टी खोदकर उसके निकालनेका मार्ग कर दिया ॥ ४ ॥ इस मार्गसे वह कांतियुक्त छागी कुएसे निकल उसी छागका अभिलाष करने लगी. जब इस बकरीने इस बकरेको वरण कर लिया तो और बहुत सारी छागी भी मोटे ताजे रति करनेमें समर्थ, वीर्यके सींचनेवाले

और मैथुन करनेमें चतुर समझकर इन छागको चाहने लगीं ॥ ५ ॥ इसलिये वह एक ही बकरा इन बहुतसी बकरियोंकी रति बढ़ाता हुआ इनके साथ केलि करने लगा वह छाग कामरूप ग्रहमें ऐसा फँस गया कि, अपनी आत्माको भी न जान सका ॥ ६ ॥ परन्तु जो छागी कुएमें गिरी थी, वह और छागियोंको अपनेसे अधिक प्यारी और उनके साथ अपने प्रियतमको सदा रमण करता हुआ देख अत्यन्त क्रोधित हुई और उस छागका यह कर्म बहुत नहीं सह सकी ॥ ७ ॥ इसलिये वह सुहृद्रूपी वास्तवमें दुर्हृद क्षणसौहृद इंद्रियासक्त और कामुक उस छागको छोड़ दुःखित हो अपने स्वामीके पास चलीगई ॥ ८ ॥ यह छाग तो बहुत ही स्त्रैण था, इसलिये कातर हो शब्द करता

स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजाऽन्यया ॥ विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद्बस्तकर्म तत् ॥७॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ॥ इंद्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥८॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि साधितुम् ॥९॥ तस्य तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ॥ लंबंतं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥१०॥ संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥ तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्या प्रेमयंत्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥

हुआ उसको मनानेके लिये उसके पीछे २ जाने लगा, परन्तु मार्गमें वह उस बकरीको किसी प्रकारसे भी प्रसन्न न कर सका ॥९॥ उस स्थानमें इस छागीके स्वामी एक ब्राह्मणने क्रोध करके इस छागके दोनों लम्बायमान अण्डकोश काट डाले अर्थात् उसको भोग करने योग्य न रक्खा परंतु. वह ब्राह्मण उपाय भी जानता था इसलिये अपनी बकरीके कामभोगार्थ फिर इस छागके अण्ड जोड़ दिये, अर्थात् फिर उस छागको मैथुन करनेकी सामर्थ्य दे दी ॥ १० ॥ हे भद्रे ! इस प्रकारसे यह छाग संबद्धवृषण अर्थात रतिशक्तियुक्त हो कुएसे निकाली उस छागीकेसाथ बहुत कालतक विषयभोग करता रहा परन्तु कामकी सेवासे अबतक उस बकरेको सन्तोष नहीं हुआ" ॥११॥ हे सुभ्रु ! इस छागके समान हम भी तुम्हारे प्रेममें बँधकर अत्यन्त दीन हो गये हैं । तुम्हारी मायासे मोहित होनेके कारण हम अपने आपको

भी भूल गये हैं ॥ १२ ॥ हे भद्रे ! पृथ्वीमें जितना धान्य, सुवर्ण, जितने पशु, जितनी स्त्री और जो जो वस्तु हैं सो यह सब भी कामसे हत
हुए पुरुषके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सकती हैं॥ १३ ॥ भोगविलासके द्वारा कामकी किसी प्रकार शांति नहीं होती बरन् घृतद्वारा
अग्निके समान विषयभोग बढ़ता ही जाता है, जैसे घृत डालनेसे अग्नि ॥ १४ ॥ परन्तु जिस समय पुरुष सब प्राणियोंसे अमंगलभाव
अर्थात् रागद्वेषादिकी विषमताका त्याग कर देता है और सबमें समदृष्टि कर लेता है, तब उसको सब दिशा सुखदायिनी होजाती हैं ॥ १५ ॥
इसलिये दुर्म्मति पुरुष जिसको नहीं छोड सकते और प्राचीन पुरुषके पास भी जो पुरानी नहीं होती और जो दुःखकी राशिके लिये

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः॥ न दुह्यंति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामा
नामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम्॥ सम
दृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुःखनिवहां
शमकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति
॥१७॥ पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् ॥ तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥१८॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा
ब्रह्मण्याधाय मानसम् ॥ निर्द्वंद्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ दृष्टश्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत ॥
संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥ २० ॥

रहती है, सुख चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि, उस तृष्णाको शीघ्र छोड़दे ॥ १६ ॥ और स्त्रीका संग तो सब प्रकारसे त्यागना आवश्यक है,
क्योंकि, माता, बहन अथवा कन्याके संग इकलेमें एक आसनपर बैठना ठीक नहीं क्योंकि इंद्रियें अतिशय बलवान् हैं, विद्वान पुरुषको भी खींच
लेती हैं ॥ १७ ॥ हे भद्रे ! विचार करके देखो बारम्बार विषयकी सेवा करते हुए इसको पूरे एक सहस्र वर्ष बीत गये तो भी दिन दिन तृष्णा
बढ़ती ही जाती है ॥१८॥ इसलिये मैं पहले तृष्णाको छोडकर फिर ब्रह्ममें मन लगाऊंगा फिर सुखदुःखादि द्वन्द्वरहित और निरहंकार
हो मृगगणोंके साथ घूमूंगा ॥१९॥ हे प्रिये ! जो पुरुष देखे सुने संसारको भी आत्मनाशक और असत् जानकर उसका अनुध्यान वा भोग

छोंड देते हैं, वही देखे सुने विषयके अनुध्यानादिमें पण्डित और आत्मदर्शी हैं ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! राजा ययातिने इस प्रकार अपनी स्त्रीको समझाय छोटे पुत्र पूरुको उसकी युवा अवस्था लौटाय उससे अपनी जरा अवस्था ग्रहण करली । फिर पीछे राजा ययातिको कुछ चाहना न रही ॥ २१ ॥ पूर्वदिशा द्रुह्युको, दक्षिण दिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्वसुको दी और उत्तर दिशाका अनुको राजा बनाया ॥ २२ ॥ फिर सब भूमण्डलका राज्य क्षत्रियोत्तम प्यारे पुत्र पूरुको ❋ देकर और बडे बेटोंको इस पूरुकी आज्ञामें रखकर आप

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥२१॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥२२॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान्षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥ स तत्र निर्मुक्तसमस्तसंग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिंगः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥

वनको चले गये ॥ २३ ॥ हे राजन्! राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषयसमूहमें छे इन्द्रियोंके द्वारका सुख भोगा था परन्तु उसने इस प्रकारसे स्पृहा छोड एक क्षणभरमें इंद्रियोंके सुखको छोड दिया; जैसे पंख जम आनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड जाते हैं ॥ २४ ॥ राजा ययाति संगको छोडकर आत्मानुभवसे जिसका त्रिगुणात्मकरूप लिंग निरस्त होगया और भलीभाँति विख्यात हो निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें

❋ **शंका**–राजा ययाति बडे बुद्धिमान् और गुणनिधान थे; तो भी ऐसा बडा अन्याय क्यों किया? कि, बडे पुत्रोंको छोडकर छोटे पुत्रको राज्य दिया, क्या कारण?

उत्तर– कामी लोभी क्रोधी ऐसे ऐसे जीव पृथ्वीपर हैं, परन्तु न्याय अन्यायका विचार नहीं करते, नित्य अपने शरीरका सुख चाहते हैं न्यायमें दुःख देखेंगे तब न्यायको त्याग देंगे, अन्यायमें सुख देखेंगे तब अन्याय करेंगे. जिसमें शरीरका सुख हो, उसीको पुण्य जानते हैं और जिसमें शरीरको कष्ट हो उसको पाप समझते हैं, सुकर्म कुछ नहीं देखते इस पापके प्रतापसे ययाति राजाने छोटे बडेका विचार नहीं किया जिसकी देहसे सुखपाया उसीको राज्य दिया ॥

शीघ्रही भगवद्गतिको प्राप्त होगया ॥ २५ ॥ हे महाराज ! स्त्री पुरुषका परस्पर स्नेहहेतु परिहासके समान जो इतिहास कहा गया, देवयानी
इसको सुनकर अपने प्रस्तोभ अर्थात् निवृत्तिमार्गमें उत्साहित हुई ॥ २६ ॥ और वह अबला प्याऊपर जानेवालोंके समान ईश्वरपरतंत्र
सुहृद्गणोंका वास मायाविरचित समझी, स्वप्नके समान उपमा देकर सबको मिथ्या जान सर्वत्र संग छोडकर भगवान्में मन लगाय अपने
शरीरको भी छोड दिया ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अब यह बतलाते हैं कि, देवयानीने किस प्रकारसे भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाया था
सो तुम सुनो । भगवन् ! आप विधाता, वासुदेव, सर्वभूतोंके निवासस्थान, परमशान्त और अतिबृहत् हो इसलिये मैं आपको नमस्कार

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ सा सन्निवासं सुहृदां
प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतंत्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥२७ ॥ सर्वत्र संगमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥
कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिंगमात्मनः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय
शांताय बृहते नमः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापु०नव० ययातिविरक्तिवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥ जन्मे
जयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥ तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्मा
द्बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥

करती हूँ ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां ययात्युपाख्याने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा-ययातिसुत
पुरुवंशमें, भये नृपति दुष्यंत ।भरत पुत्र तिनके भये, भक्तशिरोमणि संत ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! अब पूरुके वंशका वर्णन
करते हैं, सो तुम सुनो।इसी वंशमें तुमने जन्म लिया है । अनेक राजर्षि इस पूरुवंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पूरुसे जन्मेजय उत्पन्न हुए ।
जन्मेजयका पुत्र प्राचिन्वान् और उससे प्रवीरने जन्म ग्रहण किया. उसके पुत्र नमस्यु और उससे चारुपदका जन्म हुआ. चारुपदके यहां
सुद्युने जन्म ग्रहण किया.उससे बहुगव उत्पन्न हुआ.उसका पुत्र संयाति, संयातिका पुत्र अहंयाति और अहंयातिके यहाँ रौद्राश्व जन्मा॥ २ ॥ ३ ॥

इस रौद्राश्वने घृताची अप्सरासे दश पुत्र उत्पन्न किये. इनके नाम यह हैं ऋतेयु,कुक्षेयुं, स्थडिलेयु, कृतेयु, जलेयुं,सन्नतयु, धर्म्मेयुँ, सत्येयुं, व्रतेयुं और सबसे छोयवेंनेयु हुआ। हे राजन् ! जिस प्रकार इंद्रियगण जगत्के आत्मभूत मुख्य प्राणकेवश रहते हैं, वैसे ही यह दशपुत्र रौद्राश्वके वशमें रहते थे॥ ४ ॥ ५ ॥ इन रौद्राश्वके दश पुत्रोंमेंसे ऋते युका रंतिभार नामक एक पुत्र हुआ। इसके तीन पुत्र हुए. यथा-सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथइन तीनोंमेंसे अप्रतिरथके पुत्र कण्व हुए ॥ ६ ॥ कण्वके मेधातिथि और तिनसे प्रस्कण्वादि द्विजातिगण उत्पन्न हुए. हे राजन् ! रंतिभार नामका बड़ा बेटा सुमति और उसका पुत्र रैभ्य और इन रैभ्यके ही पुत्र राजा दुष्यन्त हुए ॥ ७ ॥ एक समय यह राजा

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थंडिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चा वमः स्मृतः ॥ घृताच्यामिंद्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रंतिभारोऽभूत्त्रयस्तस्यात्मजा नृप॥ सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥ तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः॥पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यंतस्तत्सुतो मतः ॥७॥ दुष्यंतो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मंडयंतीं रमामिव ॥ विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥८॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तः परिश्रमः ॥ ९ ॥ पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ॥ १० ॥

दुष्यन्त आखेट करते करते वनमें प्रवेश कर महर्षि कण्वके आश्रममें आ पहुँचे. वहांपर एक स्त्री बैठी हुई लक्ष्मीके समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको शोभायमान कर रही थी। देवमायाके समान उस तरुणीको देखते ही राजा दुष्यन्त मोहित होगया॥ ८ ॥ इसक उपरान्त कुछ सेनाके सिपाही लेकर निकट जाय उस वरारोहाके साथ राजाने सम्भाषण किया. हे राजा परीक्षित ! उस सुन्दरीको देखते ही राजा दुष्यंतको अनिर्व्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ था और मानो उसको देखकर जंगलमें घूमनेसे जो थकावट हुई थी वह भी सब जाती रही ॥ ९ ॥ कामपीडित हो हँसते हँसते मधुर वचनसे राजाने पूँछा कि, हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ?॥ १० ॥

और इस निर्जन वनमें क्या करनेकी वासना किये हुए हो? हे सुमध्यमे! पूरुवंशीय लोगोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं लगता है इसलिये स्पष्ट जान पडता है कि, तुम किसी क्षत्रियवंशकी बेटी हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर शकुन्तलाने उत्तर दिया कि, हे राजन्! मैं विश्वामित्रकी पुत्री हूँ. मेनका नामक अप्सरा मेरी माता है। स्वर्गमें जानेके समय माता मुझको इस निर्जन वनमें अकेली छोडकर चली गई इसलिये वास्तवमें क्षत्रियकी कन्या हूँ, इस बातको भगवान् कण्व ऋषि भलीभांति जानते हैं. हे वीर! हम आपका कौनसा कार्य करें? सो आज्ञा कीजिये ॥ १२ ॥ हे महागज! आसन ग्रहण कीजिये और हमारी पूजा भी आप अंगीकार करें, यहाँ नीवारोंके चावल हैं, भोजन कीजिये और यदि

किं वाचिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ नहि चेतः पौरवाणाम
धर्मे रमते क्वचित् ॥ ११ ॥ शकुंतलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं
करवाम ते॥ १२ ॥ आस्यतां ह्यरविंदाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां संति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १३ ॥
दुष्यंत उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यका सदृशं वरम् ॥ १४ ॥
ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुंतलाम् ॥ गांधर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १५ ॥ अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां
वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १६ ॥

रुचि हो तो रात्रिको यहाँ ही रहिये ॥ १३ ॥ राजा दुष्यन्त बोले कि, हे सुन्दरी! तुमने कुशिकके वंशमें जन्म लिया है, वास्तवमें तुम्हारा आचरण ठीक है, क्यों कि राजकन्यायें समान वरको स्वयं वरण करलेती हैं ॥ १४ ॥ शकुन्तलाने राजाकी यह बात सुनकर कहा कि, हाँ' तब देशकालके जाननेवाले इस राजाने शकुन्तलासे गान्धर्व विवाह किया ॥ १५ ॥ हे भारत! अमोघवीर्यवान् राजा दुष्यंत भार्या शकुन्तलामें वीर्याधान करके दूसरे दिन इसके उपरांत राजा अपने नगरको चले गये। तब यथायोग्य समयमें शकुन्तलाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥

महर्षि कण्वऋषीश्वरने वनमें ही यथायोग्य उस बालककी संस्कारादि क्रिया करादी । हे राजन् ! यह कुमार बालकपनसे ही अपने बलसे सिंह पकड करके उनके साथ खेला करता था ॥ १७ ॥ इसलिये महाविक्रमशाली देखकर प्रमदोत्तमा शकुन्तला भगवान् हरिके अंशसे उस पुत्रको ले अपने स्वामीके निकट गई ॥ १८ ॥ परन्तु राजा दुष्यंतने अनिन्दित स्त्री और पुत्रको ग्रहण नहीं किया पर जिस समय राजा दुष्यंतनें शकुन्तलाका निरादर किया तब श्रवणकारी सब प्राणियोंके सम्मुख आकाशसे अशरीरिणी वाणी प्रगट हो राजाको पुकारकर बोली कि ॥ १९ ॥ हे राजा दुष्यंत ! माता भस्त्रा अर्थात् चर्मपात्रवत् आधारमात्र है पिताका ही पुत्र है, क्योंकि आत्मा ही पुत्ररूपसे

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुदिताः क्रियाः ॥ बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १७ ॥ तं दुरत्ययवि
क्रांतमादाय प्रमदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरंतिकमागमत् ॥ १८ ॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिंदितौ ॥
शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ १९ ॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त
माऽवमंस्थाः शकुंतलाम् ॥ २० ॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह
शकुंतला ॥ २१ ॥ पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २२ ॥

उत्पन्न होता है. इसलिये अपने पुत्रको ग्रहण करके पालो और शकुन्तलाका अपमान न करो * ॥ २० ॥ हे नरदेव ! जो पुरुष वीर्य डालता है पुत्र उसका ही यमालयसे निस्तार करता है और शकुंतला यह सत्य कहती है. तुमने ही इस पुत्रको गर्भमें धारण किया था ॥ २१ ॥ हे भारत ! आकाशवाणीको सुनते ही राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुंतलाको अंगीकार किया । कुछ कालके पीछे महाराज दुष्यन्तके स्वर्गवासी होनेपर राजाके महायशस्वी पुत्र यही भरतजी सिंहासनपर बैठकर चक्रवर्ती राजा हुए थे. महाराज भरत श्रीभगवान् हरिके

---

* **शंका**—थोडे ही दिनोंमें राजा दुष्यन्त अपने चरितको भूल गया और शकुन्तलाको व अपने पुत्रको भी भूल गयी, यह बडे आश्चर्यकी बात है ; क्या पहले पुरुष भोले होते थे ?

उत्तर—वडा बुद्धिमान् राजा दुष्यन्त था और यह भले प्रकार जानता था कि, यह हमारा ही पुत्र है और शकुन्तला हमारी ही स्त्री परन्तु लोकापवादसे डरकर उसको ग्रहण नहीं करता था, आकाशवाणीसे सबको विदित होगया तो राजाने ग्रहण किया ॥

अंशसे उत्पन्न हुए थे इसलिये उनकी महिमा समस्त भूमण्डलमें गाई जाती है॥२२॥उनके दाहिने हाथमें चक्र और दोनों चरणोंमें पद्मकोशका चिह्न विराजमान था। उन्होंने महाभिषेक कराय राजाधिराज हो गंगाजीके किनारेपर पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की। इन राजा भरतने ममताके पुत्र मामतेय ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर यमुनाके तीरपर अश्वमेघ यज्ञके अठत्तर (७८) पवित्र अश्व (घोडे) यथाक्रमसे बाँधे। इन यज्ञोंके समय राजर्षि भरतजीने बहुतसा धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दिया था ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन्! श्रेष्ठगुणवाले देशमें महाराज भरतजीकी अग्नि प्रणीत थी। उस अग्निप्रचयन कालमें हजारों ब्राह्मणलोग उन महाराज भरतजीकी दी हुई गायोंको एक एक बद्धमें भाग करके लेगये थे. एक बद्ध तेरह सहस्र चौरासी १३०८४ का होता है ॥ २५ ॥ और महाराज भरतजीने एकबारमें ही एकसौ तेंतीस १३३ यज्ञीय घोडे बाँध राजा लोगोंके विभवको भी विस्मित कर देवतालोगोंका अतिक्रमण किया था. उनका ऐसा कर्म करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि वह भगवान् हरिको प्राप्त हुए थे ॥२६॥ इन महाराज भरतने मष्णारनामक कर्ममें श्वेतदन्त और कृष्ण रंगके चौदह लाख १४००००० हाथी सुवर्णसे सजे हुए दान किये ॥२७॥ महाराज भरतजीने जो कर्म किये, उन कर्मोंको पहिले हुए नृपतिगण भी प्राप्त नहीं कर सके और आगेको जो राजा होंगे वह भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे, जैसे भुजाओंके बलसे स्वर्ग प्राप्त नहीं होसकता॥२८॥

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः ॥ २३ ॥ पंचपंचाशता मेध्यैर्गंगायामनु वाजिभिः ॥ मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबंध प्रददद्वसु ॥ २४ ॥ भरतस्य हि दौष्यंतेरग्निः साचीगुणे चितः ॥ सहस्रं वद्वशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥ २५ ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बद्ध्वा विस्मापयन्नृपान् ॥ दौष्यंतिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २६ ॥ मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णान्हिरण्येन परीवृतान् ॥ अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥ भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यंति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २८ ॥

इन महाराज भरतजीने दिग्विजय करनेको जाकर किरात, हूण, यवन, आंध्र, कंक, खश, शक और दूसरे अब्रह्मण्य राजाओंको और सब म्लेच्छजातिका संहार कर डाला ॥ २९ ॥ ॥ पूर्वसमयमें जिन दानवोंने देवतालोगोंको जीतकर जिन रसातलादि स्थानोंमें वास किया था और बली दानव लोग देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भी पातालमें लेगये थे महात्मा भरतजीने उन सब देवांगनाओंका उद्धार किया था ॥ ३० ॥ हे महाराज ! महाराज भरतजीके समयमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजालोगोंकी सब अभिलाषा पूरी होती थी। इस राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्षतक राज्य करके सब दिशाओंमें अपनी सेना भेजी थी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार राज्यभोग करके पीछे महाराज भरतजीने लोकपालोंका

किरातहूणान्यवनानंध्रान्कंकान्खशाञ्छकान ॥ अब्रह्मण्यान्नृपांश्चाहन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ॥ २९ ॥
जित्वा पुराऽसुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिःपुनराहरत् ॥ ३० ॥ सर्वकामान्दुदुहतुः
प्रजानां तस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्त्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३१ ॥ स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्
श्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३२ ॥ तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ॥
जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥३३ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्स्तोमेन मरुतो
भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३४ ॥

विभव, अधिराज्यकी सम्पत्ति, अस्खलित सेना और आत्मप्राणादि मिथ्या विचार कर विषयसे मुँह मोडा ॥ ३२ ॥ इन भरतजीके विदर्भदेशके राजाकी बेटी सुसम्मत तीन स्त्रियें थीं। एक समय राजाने कहा कि "यह पुत्र हमारे अनुसार नहीं है" इसलिये यह तीनों ऐसा करने लगीं कि, वारंवार अनुहारका विचार कर कहीं यह राजा हमपर व्यभिचारकी शंका न कर बैठे और हमको त्यागदे इसलिये अपनी अपनी संतानको मार डाला ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वंशके व्यर्थ होनेसे महाराज भरतजीने पुत्रार्थ वायु और सोमका यज्ञ किया। इस यज्ञके

मरुद्गणोंने प्रसन्न हो राजाके हाथमें भरद्वाजनामक एक पुत्र समर्पण किया ॥३४॥ हे परीक्षित्! अब भरद्वाजके जन्मका वृत्तान्त और समर्प्पण की कथा कहते हैं। अपने भ्राता उतथ्यकी स्त्री ममतासे एक दिन छिपकर बृहस्पतिजीने भोग करना चाहा था। परन्तु उस समय गर्भके बीच एक और बालक था, फिर उस समय गर्भके मध्य दूसरे गर्भका स्थान कैसे हो ? इसलिये गर्भके बालकने बृहस्पतिजीको वीर्य डालनेके अर्थ निवारण किया परंतु बृहस्पतिजी कामान्ध होरहे थे। उन्होंने क्रोधित होकर बालकको यह शाप दिया कि "तू अंधा होजा" और अपना वीर्य ममताके पेटमें डाला ॥ ३५ ॥ बृहस्पतिके शापसे उतथ्यतनय दीर्घतमा हुए थे, परंतु उन्होंने अपनी एडीके प्रहारसे बृहस्पतिजीके वीर्यको योनिके बाहर निकाल दिया. उस भूमिपर गिरे हुए वीर्यसे उसी समय एक कुमार उत्पन्न हुआ। पीछे स्वामी हमको व्यभिचारिणी जानकर छोड़ न दें इस भयसे भीत होकर जब उतथ्यकी स्त्री ममताने उस कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की, तब उस समय देवता लोगोंने

अंतर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ॥ प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३५ ॥
तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३६ ॥
मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३७ ॥

बृहस्पति और ममताके विवादरूप इस कुमारका नाम धरनेके लिये यह वचन कहे ॥ ३६ ॥ यथा–पुत्रको त्याग करके जाती हुई देख देवताओंने ममतासे कहा अरी मूढस्त्री ! यह बालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे होनेके कारण इसका दो जनोंसे जन्म हुआ इसलिये यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्र है। स्वामीसे कुछ भयकी शंका नहीं, तुम इस बालकको पालो. बृहस्पतिसे कहा कि तुम भी इसका पालन पोषण करो। तुम दोनों जनोंसे अन्यायके द्वारा यह बालक उत्पन्न हुआ है। पर पिता माता अर्थात् बृहस्पति और ममता झगडा करते करते इस बालकको छोडकर चले गये इसलिये इसका नाम भरद्वाज हुआ. क्योंकि भर (पोषण) और द्वाज (दोनोंसे उत्पन्न) इन दोनों शब्दोंके मिलानेमें भर द्वाज नाम हुआ ॥ ३७ ॥

हे राजा परीक्षित् ! देवता लोगोंके इस प्रकार कहते रहने पर भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुए उस बालकको व्यर्थ समझकर उतथ्यकी भार्याने इस बालकको त्याग दिया। तब उस बालकको मरुद्गणोंने लेकर पालन किया था। जब भरतवंशके वितथ होनेका उपक्रम हुआ, तब मरुद्गणोंने इस पुत्रको लेकर महाराजाधिराज भरतजीको दे दिया ॥३८॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे भाषाटीकायां नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा–भरतवंश इक्कीसमें, रंतिदेव अजमीढ । तिनके कुलकी कीर्ति सब, वरणों सहित सपीढ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित्। वंशके वितथ होनेपर भरतजीको मरुद्गणोंने यह बालक दिया इसलिये इन भरद्वाजका नाम वितथ हुआ। इन वितथका पुत्र मन्यु उनसे बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ उनमें नरका पुत्र संकृति हुआ । तिसका पुत्र गुरु

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते
महापुराणे नवमस्कंधे शकुन्तलोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो
जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गस्संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥ गुरुश्च रंतिदेवश्च संकृतेः पांडुनंदन॥ रंतिदेवस्य हि यश
इहामुत्र च गीयते ॥२॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ॥ निष्किंचनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥३॥
व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि गतः किल ॥ घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥४॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृ
ड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥

और रंतिदेव हुआ। हे राजन् ! इन रंतिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक दोनोंमें गाई जाती है ॥२॥ इस राजाका चित्त निरन्तर व्ययमें नियुक्त था। वह आप भूखे रहकर भी जो कुछ मिलता तत्काल दान कर देते। यह धीर नरपति सब कुछ दान करके निष्किञ्चन हो सपरिवार क्षुधाके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥३॥ और बिना जलपान किये राजाको अड़तालीस दिन व्यतीत होगये। सब परिवार बिना आहारके कष्ट पा रहा था और आप भी भूख प्यासके मारे कम्पायमान हो रहे थे। उसी समय प्रातः घृत, खीर और हलुआ भोजन करनेके लिये राजाको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ उसको पाय राजा प्रातःकाल भोजन करनेको चले जाते थे उसी समय कोई ब्राह्मण अतिथि आ गया ॥ ५ ॥

तो राजाने श्रद्धापूर्वक सर्वदेवमय भगवान् हरिको देखते हुए आदरपूर्वक उस ब्राह्मणको भी उस सब अन्नमेंसे विभाग करके दिया और वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया ॥ ६ ॥ तिसके पीछे उस बचे हुए अन्नादिको अपने सब परिवारको बांटचूंट आप स्वयं भोजन करने जा रहे थे कि उस अवसरपर एक और कोई शूद्र अपनेको अतिथि बताकर आया तो इन रन्तिदेवने भगवान् हरिका स्मरण करके उस बचे हुए अन्नमेंसे उस शूद्रको भी भाग दिया ॥७॥ एक शूद्र अतिथि आकर बिदा हो चला गया कि, इतनेमें ही और एक जन बहुत सारे कुत्तोंको साथ लिये अतिथि बनकर वहाँ आया और आकर बोला कि "मैं इनसब कुत्तोंके साथ बहुत ही भूंखा हूँ" सो इस यूथके सहित मुझको तुम आहार दो ॥ ८ ॥

तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥ अथान्यो भोक्ष्य
माणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७ ॥ याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभि
रावृतः ॥ राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥ स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे
श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥
॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं
गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामंतःस्थितो येन भवंत्यदुःखाः ॥ १२ ॥

राजाने उसका बहुत ही आदर किया और सम्मान करके वह बचा हुआ अन्न कुत्तोंके यूथको और उनके स्वामीको खानेके लिये देकर उनको नमस्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पीछे सब कुछ देकर एक जनकी तृप्तिके योग्य जो जल वहाँ बचा था, उसके ही पीनेका राजाने उद्योग किया कि, इतनेमें ही एक पुल्कस (चाण्डाल) आया और करुणासहित यह वचन बोला कि, हे महाराज! मैं बहुत थक गया हूँ, सो मुझ अशुभ पुरुषको कुछ जल दीजिये ॥ १० ॥ इस चाण्डालके ऐसे करुणायुक्त वचन सुनकर राजा रन्तिदेवको अत्यन्त दया हुई और दुःखित हो यह अमृतमय वचन बोले कि ॥ ११ ॥ हम परमेश्वरसे अणिमादि अष्ट सिद्धि युक्त गति अथवा मुक्तिकी भी कामना नहीं

करते। हमारी प्रार्थाना है कि, हम सम्पूर्ण देहधारियोंके दुःखको भोक्तारूपसे भीतर स्थित होकर प्राप्त हों और हमसे सब प्राणियोंका दुःख दूर हो जावे ॥ १२ ॥ यह दीन जन जीवन धारण करनेकी वासना करता है, इसके जीवनके लिये जल अर्पण करते ही हमारी क्षुधा, तृष्णा, थकावट, अंगोंका घूमना, कातरता, क्लान्ति, खेद, विषाद, मोह सब ही निवृत्त हो गये ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहकर स्वभावसे ही दयालु महाराज रन्तिदेवने स्वयं प्यासके मारे म्रियमाण होनेपर भी उस चाण्डालको अपने पीनेका जल देदिया ॥१४॥ हे राजन् ! त्रिभुवनाधीश जो ब्रह्मादि देवता फलाकांक्षी पुरुषोंको फलदान किया करते हैं. यह सब महाराज रन्तिदेवके धैर्य्य और धर्मकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुकी बनाई हुई

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः॥सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे
॥ १३ ॥ एवं प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ॥ पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य
त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ॥ आत्मानं दर्शयांचक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥ स वै तेभ्यो नम
स्कृत्य निस्संगो विगतस्पृहः॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥ १६॥ ईश्वरालंबनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यरा
धसः ॥ माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसंगानुभावेन रंतिदेवानुवर्तिनः ॥ अभवन्योगिनः सर्वे
नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥

796

मायासे अपने अपने स्वरूपको दिखाते हुए ॥ १५ ॥ महाराज रन्तिदेवने इन सब देवताओंको नमस्कार किया और निःसंग व स्पृहारहित होकर केवल भगवान् वासुदेवको अर्पण कर दिया इसलिये उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कुछ भी नहीं चाहा ॥१६॥ हे राजन् ! रंतिदेवके ईश्वरातिरिक्त और किसी फलकी इच्छा न करनेपर अपने चित्तको ईश्वरावलम्बित करनेसे उनके निकट गुणमयी माया स्वप्नके समान आत्मामें ही विलीन हुई थी. उसके अनुगामी जनगण इन राजा रन्तिदेवके संसर्गप्रभावसे सब ही नारायणपरायण योगी हो गये ॥ १८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! मन्युके पुत्र नरका वंश कहा गया. अब गर्गके वंशका वृत्तान्त कहते हैं, सो तुम सुनो ! गर्गसे शिनि उत्पन्न हुए. शिनिसे गार्ग्य, यह ब्रह्मकुलके प्रवर्तक हुए। अब महावीर्यके वंशका विवरण सुनो. महावीर्यसे दुरितक्षय उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र त्रय्यारुणि कवि और पुष्करारुणि यह तीनों जने क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए थे। अब मन्युके पाँच पुत्रोंमेंसे सबसे बडेका वंश सुनो। बृहत्क्षत्रका पुत्र हस्ती हुआ कि, जिसने हस्तिनापुर बनाया ॥ १९ ॥ २० ॥ इस + हस्तीके ❋ अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ यह तीन

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥ तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित्समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत ॥ २४ ॥ स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५ ॥

पुत्र उत्पन्न हुए. इनमें अजमीढके वंशसे प्रियमेधादि ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ और इस अजमीढसे बृहदिषु नाम और एक पुत्र जन्मा। उसका पुत्र बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनुकी सन्तान बृहत्काय, इसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥ २२ ॥ जयद्रथका पुत्र विपद्, उसका पुत्र सेनजित्, सेनजितके पुत्र रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स यह चार पुत्र हुए ॥ २३ ॥ उनमें रुचिराश्वका पार हुआ। उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। हे राजन् ! पारका दूसरा पुत्र नीप और नीपके सौ (१००) पुत्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी नीपने शुककी कन्या कृत्वीके गर्भसे ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया. इस योगी ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेननामक एक पुत्र उत्पन्न

× इसी राजा हस्तीने 'हस्तिनापुर' बसाया था जो अबतक गंगा भागीरथीके किनारे पर उपस्थित है.

❋ इसी अजमीढने 'अजमेर' बसाया था जो आजकल पुष्करजीके निकट वर्तमान है और वास्तवमें इसका नाम 'अजमेढ' था जो आजकल अजमेरनामसे विख्यात है।

किया *॥ २५ ॥ जिसने जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्र प्रणयन किया था। इस विष्वक्सेनसे उदक्सेनने जन्म लिया, जिसके भल्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ. हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित्। यह सब महीपाल बृहदिषुके वंशमें उत्पन्न हुए थे ॥ २६ ॥ द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतिमान्, उसके यहाँ सत्यधृति नामक पुत्र जन्मा। सत्यधृतिका पुत्र दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥ २७ ॥ सुपार्श्वसे सुमतिने जन्म लिया. उसका पुत्र सन्नति नाम, उसका पुत्र कृति, जिसने हिरण्यनाभसे योगविद्या सीखकर प्राच्य

जैगीषव्योपदेशेन योगतंत्रं चकार ह ॥ उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लादो बार्हदीषवः ॥ २६ ॥ यवीनरो द्विमीढस्य
कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमां
स्ततः॥ कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥२८॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ॥ तस्य
क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुंजयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः
शांतिस्सुतस्ततः ॥३०॥ शांतेः सुशांतिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत्॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पंचाऽऽसन्मुद्गलादयः ॥
॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः कांपिल्यः संजयः सुताः॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पंचानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥

सामकी छः संहिताओंका विभाग करके उनको पढाया. इस कृतीके नीप हुआ और नीपसे उग्रायुधकी उत्पत्ति हुई. उग्रायुधके क्षेम्य, उसका पुत्र सुवीर; सुवीरका पुत्र रिपुञ्जय॥ २८॥ २९॥ उसका पुत्र बहुरथ हुआ. हे राजन्! हस्तीका पुत्र पुरुमीढ निःसन्तान रहा. अजमीढकी नलिनी नाम जो भार्या थी उससे नीलनाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ और नीलका पुत्र शान्ति जन्मा॥ ३०॥ शान्तिका बेटा सुशान्ति, सुशान्तिका पुत्र पुरुज और उसके अर्कने जन्म ग्रहण किया. अर्कका पुत्र भर्म्याश्व और उसके मुद्गलादि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ अर्थात् मुद्गल, यवी

712

---

* **शंका**—राजा नीपने क्षत्रिय होकर शुकदेवजी ब्राह्मणकी कन्याके साथ अपना विवाह क्यों किया ? क्षत्रियकी पुत्रीको तो ब्राह्मण सदैव बिवाहते रहे परन्तु ब्राह्मणकी कन्याके साथ क्षत्रियका बिवाह हमने आज ही सुना है, देवयानीकी बात तो शापसे हो गई, परंतु यह अबकी हमको बडी शंका है।

उत्तर—तीनो लोकोंमें शुकदेवजीकी कन्या सब ब्रह्मज्ञानियोंमें परम-ब्रह्मज्ञानिनी थी और ब्रह्मज्ञानी ही पुरुषको अपना पति करना चाहती थी, किसी दूसरे पुरुषको नहीं चाहती थी और राजा नीप बड़ा ब्रह्मज्ञानी था ऐसा बिचारके अपनी इच्छासे राजा नीपको उसने अपना पति बनाया, कुछ संसारकी रीतिसे यह विवाह नहीं हुआ था ॥

नर, बृहदिषु, काम्पिल्य और संजय यह पाँच पुत्र जन्मे। भर्म्याश्वने इन पुत्रोंको देखकर एक समय कहा था कि, हमारे यह पाँच पुत्र पाँच विषयों
(देशों)की रक्षा करनेमें समर्थ हैं। वह पाँच देशोंका पालन कर सकते हैं इसी कारण इन पुत्रोंकी पाञ्चाल संज्ञा हुई और पाञ्चाल देश इनके ही नामसे
प्रसिद्ध हुआ और मुद्गलसे मौद्गल्यगोत्री ब्रह्मकुल हुआ ॥३२॥३३॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे शुभ नरमिथुनने जन्म लिया। इनमें दिवोदास
नर और अहल्या नाम नारी थी. उसी अहल्यामें गौतमजीसे शतानन्दकी उत्पत्ति हुई ॥ ३४ ॥ शतानन्दका पुत्र सत्यधृति हुआ. यह
धनुर्वेदको भलीभाँतिसे जानता था। उसका पुत्र शरद्वान् कि, जिसका वीर्य उर्वशीके दर्शनसे शरकण्डेके समूहमें गिरा था। और फिर

विषयाणामलमिमे इति पांचालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद्ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्या
द्दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानंदस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेद
विशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥ ३५ ॥ शरस्तंबेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ तद्दृष्ट्वा
कृपयाऽगृह्णाच्छंतनुर्मृगयां चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा॰
न॰ भरतरन्तिदेवाजमीढादिचरितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मित्रायुश्च दिवोदासाच्च्यवन
स्तत्सुतो नृप ॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जंतुजन्मकृत् ॥१॥तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो
द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २ ॥

इसी वीर्यसे एक शुभ जोड़ा उत्पन्न हुआ. जब शन्तनु राजा मृगया करनेको गया तब उसने दैवात् इस जोडेको देखा और
दयाके वश हो अपने घरपर ले आया. उस नरमिथुनमेंसे बालकका नाम कृप और बालिकाका नाम कृपी हुआ जो कि, द्रोणाचार्यकी स्त्री
हुई॥३५॥३६ ॥इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ दोहा–दिवोदासको वंश कह, ऋक्षवंश बाईस।
जरासन्ध औ धर्मसुत, दुर्योधन धनईस ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ! दिवोदासका पुत्र मित्रायु, उसका पुत्र
च्यवन, च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका सुत सहदेव और उसकी संतान सोमक हुआ. इस सोमकके सौ १०० पुत्र थे. उनमें जन्तु बड़ा
था और पृषत छोटा हुआ। इस पृषतके सर्व सम्पद्युक्त राजा द्रुपदने जन्म लिया। इन्हीं राजा द्रुपदसे द्रौपदीका जन्म हुआ

और इनके पुत्र धृष्टद्युम्नादि हुए ॥१॥२॥ धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु हुआ। यह सब भर्म्याश्वके पांचाल वंशमें हुए और पञ्चाबके राजा थे। हे राजा परीक्षित् ! अजमीढका दूसरा पुत्र जो ऋक्ष था, उसका पुत्र संवरण हुआ ॥ ३॥ इस संवरणसे सूर्यकी कन्या तपतीके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया. इन कुरुके परीक्षित्, सुधनु, जह्नु और निषधाश्व यह चार पुत्र उत्पन्न हुए॥४॥ इनमें सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रक पुत्र च्यवन और इनके कृती हुआ. कृतीका पुत्र उपरिचर नामक वसु हुआ. उससे बृहद्रथ प्रभृति उत्पन्न हुए ॥५॥ और पुत्रोंके यह नाम हैं, यथा–कुशाम्ब; मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि। यह सब ही चेदिप अर्थात् चंदेलीके राजा थे. बृहद्रथसे कुशाग्रका जन्म हुआ.

धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पांचालका इमे ॥ योऽजमीढसुतो ह्यन्यऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां
कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ॥ परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोस्सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ॥
वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥ कुशांबमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभ
स्तस्य तत्सुतः ॥ ६ ॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः ॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात्
॥ ७॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते ॥ जीवजीवेति क्रीडंत्या जरासंधोऽभवत्सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवो
ऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९ ॥ ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततो
ऽभवत् ॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥

उसका पुत्र ऋषभ, उसका सुत ॥६॥ सत्यहित, सत्यहितका पुत्र पुष्पवान्, तिसका बेटा जह्नु हुआ। हे राजन् ! बृहद्रथकी दूसरी भार्यासे एक पुत्र दो खण्ड होकर जन्मा था ॥७॥ उसकी माताने उस बालकको ऐसा देखकर बाहर फेंकवा दिया। फिर जरा राक्षसीने उसको देख "जीवित हो जीवित हो" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक क्रीडा करते २ उन दोनों खण्डोंको जोड़ दिया था, उससे ही यह बालक सर्वावयवसम्पन्न हो जरासन्ध नामक हुआ ॥ ८ ॥ इस जरासंधका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि, उससे श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई. हे राजन् ! कुरुपुत्र परीक्षित्के सन्तान नहीं थी। जह्नुका पुत्र सुरथ ॥९॥ इस सुरथसे विदूरथका जन्म हुआ। उसका पुत्र सार्वभौम, उसका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र राधिक,

राधिकसे अयुतने जन्म लिया ॥ १० ॥ अयुतके क्रोधन, क्रोधनके देवातिथि, उनके ऋक्ष और ऋक्षसे दिलीपने जन्म ग्रहण किया और दिलीपके प्रतीप नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ इन प्रतीपके देवापि, शंतनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए. तिनमें बडा पुत्र देवापि पितृराज्यको छोडकर वनमें चला गया था ॥१२॥ इसलिये मध्यम पुत्र शंतनु राजा हुए. पूर्वमें इनका नाम महाभिष था. यह शन्तनु अपनें हाथसे जिस किसी वृद्ध पुरुषको स्पर्श करते वही युवा हो जाता ॥१३॥ और शांति प्राप्त कर लेता था, इस कर्मके ही करनेसे इनका शन्तनु नाम हुआ । इन शंतनुजीके राजा होनेपर देवराज इंद्रने बारह वर्षतक पानी न वर्षाया ॥१४॥ तब राजाने उद्विग्न होकर ब्राह्मणोंसे इसका कारण पूछा, ब्राह्मणोंने इस विषयमें केवल इतना ही कहा कि, महाराज । बडे भाईके रहते जो पुरुष राजसिंहासनपर बैठता है वह परिवेत्ता ही होजाता है, आप परिवेदन दोषसे दूषित हुए हैं. इस दोषको दूर करनेके लिये शीघ्र अपने बडे भाईको बुलाकर उनको राज्यभार देदो तब देवता जल वर्षावेंगे और राष्ट्रोंकी वृद्धि होगी ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजा शन्तनु उसी समय वनको चले गये और "प्रजापालन करना ही राजाका परमधर्म है. आप राज्यको स्वीकार कीजिये" यह कहकर अपने बडे भ्रातासे राज्य ग्रहण करनेके लिये विनय करने लगे. परंतु इससे पहिले शन्तनुके मन्त्री अश्ववारने देवापिको पाखण्ड करके राज्यके अयोग्य करनेके लिये उनके पास कुछेक ब्राह्मणोंको भेज दिया था. ब्राह्मणलोगोंकी पाखण्डमतानुयायिनी कथाके द्वारा जब

ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च॥ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥११॥ देवापिश्शंतनुस्तस्य
बाह्लीक इति चात्मजाः ॥पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः॥१२॥ अभवच्छंतनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः॥
यं यंकराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः॥१३ ॥ शांतिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शंतनुः॥ समा द्वादश तद्राज्ये
न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥शंतनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ताऽयमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥
एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छंदयामास सोऽब्रवीत् ॥ तन्मंत्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥१६ ॥ वेदवादातिवादान्वै तदा
देवो ववर्ष ह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥१७ ॥

देवापि वेदमार्गसे परिभ्रष्ट हुए तब उन्होंने शंतनुकी प्रार्थना न मानी और वेदशास्त्रकी निंदा करने लगे. वेदोंकी निंदा करनेसे नीचता पानेके कारण राज्यके योग्य देवापि न रहे. फिर उसके उपरांत शंतनुके राज्य भोग करनेमें और कोई दोष नहीं रहा. फिर यथाकालमें वर्षा होने लगी. तबसे देवापि योगमार्गका अवलम्बन कर कलाप ग्राममें रहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ जब कलियुगमें चन्द्रवंशका नाश हो जायगा, तब सतयुगके पहिले वह देवापि फिर चंद्रवंशको स्थापित करेंगे. शंतनुके पुत्र बाह्लीकसे सोमदत्तकी उत्पत्ति हुई। इस सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ बाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८ ॥ शलश्च शंतनोरासीद्गंगायां भीष्म आत्मवान् ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ शंतनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥ २० ॥ विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥

और शल यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए हे परीक्षित्। इन शंतनुके गंगाजीके गर्भसे भीष्मजीका जन्म हुआ था। यह भीष्मजी धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाभागवत विद्वान् और वीरगणोंके अग्रगण्य थे. उन्होंने संग्राममें * परशुरामजीको भी प्रसन्न किया था। हे राजन्! इन शंतनुसे दाश(धीवर)कन्यामें चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र जन्मे× ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ इनमें छोटाविचित्रवीर्य हुआ, बडा पुत्र चित्रांगद, जिसको किसी गंधर्वने मार डाला. शंतनु राजाके ग्रहण करनेसे पहले इन दाशकन्या (सत्यवती) में महर्षि पराशरसे साक्षात् भगवान् हरिके अंशसे कृष्णद्वैपायन मुनि (श्रीव्यासजी) का अवतार हुआ. ॥ २१ ॥

---

* शंका—रामचंद्रके सामने त्रेतायुगमें परशुरामजी अपना धनुषबाण रखके उत्तर दिशामें तप करने चले गये थे, रामायणमें ऐसा लिखा है, फिर द्वापरयुगमें भीष्मजीके संग युद्ध कैसे किया, उस समय परशुरामजीके पास धनुष बाण कहाँसे आया ?

उत्तर—जब परशुरामजीने रामचंद्रजीके सामने अस्त्रोंका त्याग किया, उससमय कुछ उन्होंने ऐसी शपथ नहीं की थी कि, आजसे हम कभी अस्त्र ग्रहण न करेंगे, इसलिये अंबिकाको अत्यन्त दुःखी देखकर और अपनी शरण आई जानकर तपके प्रभावसे दूसरा धनुषबाण बनाकर भीष्मके संग युद्ध करने लगे ॥

+ उपरिचरवसुके वीर्यद्वारा मत्स्यगर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी और केवट लोगोंने उसका पालन पोषण किया था। इसीसे यह दाश कन्या नामसे विख्यात हुई. वास्तवमें इसका नाम सत्यवती था ॥

हे परीक्षित् ! उनके जन्म होनेसे पहिले समस्त वेद गुप्त हो गये थे और उनसे ही हमने भी श्रीमद्भागवत शास्त्र पढा था जो कि, इस समय आपको सुना रहे हैं । इन भगवान् बादरायणके पैलादि अनेक शिष्य थे, परंतु इन्होंने उनका स्वभाव जानकर सब शिष्योंको छोडकर हमारे प्रति परमगुह्य श्रीमद्भागवत शास्त्रकी व्यख्या की क्योंकि, मैं उनका शांत पुत्र था । इन विचित्रवीर्यने काशिराजकी दो कन्या अंबिका, अंबालिकासे विवाह किया, इन दोनों कन्याओंको महाबलवान् भीष्म स्वयंवरमेंसे लड कर छीन लाये थे। इन दोनों स्त्रियोंमें विचित्रवीर्य अत्यन्त अनुराग करते थे इसीलिये अल्प कालमें यक्ष्मारोगसे ग्रसित हो मृत्युको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ इनके कोई संतान नहीं

वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥ हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥ मह्यं पुत्राय शांताय परं गुह्यमिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥ २३ ॥ स्वयंवरादुपानीते अंबिकांबालिके उभे ॥ तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः॥२४॥ क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ॥ धृतराष्ट्रं च पांडुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥२५॥ गांधार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप॥तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥ २६ ॥ शापान्मैथुनरुद्धस्य पांडोः कुंत्यां महारथाः ॥ जाता धर्मानिलेंद्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७ ॥

हुई तब इनके सहोदर भगवान् वेदव्यासजीने अपनी सत्यवती माताके कहनेसे अपने भाई विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर यह तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २५ ॥ इनमें धृतराष्ट्रकी स्त्री गांधारी हुई. इस धृतराष्ट्रके गांधारीसे सौ(१००)पुत्र जन्मे. इन पुत्रोंमें दुर्योधन सबसे बडा था और दुःशला नाम एक कन्या हुइ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! पाण्डु राजा एक वनमें शिकार खेलनेको गये थे, वहां इन्होंने मैथुन करते हुए एक मृगका वध किया. मृगने इनको शाप दिया कि जब तुम मैथुन करोगे तब ही तुम्हारी मृत्यु होजायगी । इन राजा पाण्डुकी

स्त्री कुन्तीमें धर्म, पवन और इन्द्रके वीर्यसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन, यह तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुए और इन्हीं राजाकी माद्री नामक दूसरी भार्यामें अश्विनीकुमारसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ. इन पाँचों पाण्डवोंकी भार्या द्रौपदी हुई। द्रौपदीके गर्भमें युधिष्ठिरादि पाँच पांडवोंसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो कि तुम्हारे पितृव्य थे॥२७॥२८॥ अर्थात् युधिष्ठिरसे प्रतिबन्ध्य, भीमसेनसे विश्रुतसेन और अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा उत्पन्न हुआ। हे राजन्! इन पाँच पाण्डवोंसे इनकी दूसरी भार्याओंमें इन पुत्रोंके अतिरिक्त (सिवाय) और भी पुत्र उत्पन्न हुए थे युधिष्ठिरकी पौरवी नामक जो दूसरी भार्या थी उससे देवक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ॥ द्रौपद्यां पंच पंचभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८॥ युधिष्ठिरात्प्रतिविंध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजञ्छ्रुतकर्मा तथाऽपरे ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिंबायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥ सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥३१ ॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ॥ इरावतमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥

भीमसेनकी हिडिम्बा नामक वनितामें घटोत्कचनेजन्म ग्रहण किया। इन भीमसेनके कालीनामक एक और भी भार्या थी, जिससे सर्वगत नामक एक सन्तानने जन्म लिया सहदेवकी विजया नामक दूसरी भार्या पर्वतकी बेटीने सुहोत्र नाम एक पुत्र उत्पन्न किया॥२९॥३०॥३१॥ नकुलकी करेणुमती नामक वनितामें निरमित्र नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ. हे राजन्! अर्जुनने नागराजकी कन्या उलूपीके गर्भसे इरावन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न किया और मणिपूराधीशकी बेटीमें अर्जुनने बभ्रुवाहन नाम पुत्र उत्पन्न किया था। परन्तु यह पुत्र अर्जुनका बेटा था पर नानाके गोद लेनेसे मणिपुरपतिका पुत्र कहाया था ॥ ३२ ॥ इन फाल्गुनकी सुभद्रा नामक और एक भार्या थी, उससे तुम्हारे पिता अभिमन्युने जन्म लिया। यह अभिमन्यु समस्त अतिरथी वीरोंके जयकारी और महावीर थे। हे महाराज परीक्षित्! उनके

ही औरससे उत्तराके गर्भमें आपने जन्म लिया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामाके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंशका जब नाश हो रहा था, तब तुम भी उससे नष्ट होते परंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरके प्रभावसे मृत्युके. हाथसे तुम छूट गये ॥ ३४ ॥ हे तात ! तुम्हारे इस समय जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन यह चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! तुम्हारे इन पुत्रोंमेंसे जनमेजय तक्षक (सर्प) से तुम्हारी मृत्युका होना सुनकर रोषके मारे सर्पसत्र यज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञाग्निमें सब सर्पोंको होम देगा ॥ ३६ ॥ और तुम्हारे यह पुत्र समस्त पृथ्वीको जीत अश्वमेध यज्ञ करेंगे और कावषेय वंशके "तुर" नामक ऋषिको पुरोहित बनाकर और भी बहुतसे

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽतकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ॥ श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ॥ सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट्॥ समंतात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रश्शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधकः ॥ असीमकृष्णस्तस्यापि निमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या कौशांब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥

अश्वमेध यज्ञ करेंगे ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित् ! तुम्हारे पुत्र जन्मेजयके शतानीक नाम ऐक पुत्र होगा. यह शतानीक याज्ञवल्क्य मुनिसे, तीन वेद पढेगा और शौनक मुनिसे ब्रह्मविद्या और आत्मज्ञान सीखेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेगा ॥ ३८ ॥ शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होगा। उससे अश्वमेधजकी उत्पत्ति होगी। उनका पुत्र असीमकृष्ण और उनका पुत्र निमिचक्र होगा ॥ ३९ ॥ इस निमिचक्रके राजकालमें हस्तिनापुर गंगाजीमें डूबेगा तब यह राजा कौशांबी नगरीमें वास करेगा। इस निमिचक्रके सन्तान चित्ररथ और

उसके कविरथ जन्मेगा ॥ ४० ॥ कविरथका पुत्र वृष्टिमान् और उनका पुत्र सुषेण नामक राजा होगा । सुषेणके सुनीथ नामक पुत्र जन्मेगा. उसका पुत्र नृचक्षु होगा और उससे सुखीनल जन्म लेगा ॥४१॥ सुखीनलका पुत्र पारिप्लव होगा.उससे सुनय जन्म धारण करेगा. उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय और उससे दूर्व्व जन्म लेगा और उसका पुत्र तिमि होगा. तिमिसे बृहद्रथकी उत्पत्ति होगी । इसका पुत्र सुदास और सुदाससे शतानीक जन्म धारण करेगा॥४२॥शतानीकका पुत्र दुर्दमन, इनका पुत्र बहीनर, बहीनरका पुत्र दंडपाणि, इस दंडपाणिका पुत्र निमि और इस निमिसे क्षेमक नाम पुत्र उत्पन्न होगा॥४३॥हे महाराज परीक्षित् । देवर्षिसत्कृत ब्रह्मक्षत्रियवंश इस क्षेमक राजाको पाकर कलियुगमें

तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥४१॥ पारिप्लवः सुतस्तस्मा
न्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥
॥ ४२ ॥ शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ दंडपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्ष
त्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ ४४ ॥ अथ मागधराजानो
भवितारो वदामि ते ॥ भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥४५॥ ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥
सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ॥ ४६ ॥ ततः सृतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ क्षेमोऽथ सुव्रतस्त
स्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥४७ ॥

समाप्तिको प्राप्त हो जायगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा सुनाकर नृपश्रेष्ठ परीक्षित्से बोले कि, हे कुरुवंशावतंस । अब मगधवंशमें जो राजा होंगे उनका वृत्तान्त कहता हूँ । आप सचेत हो मन लगाकर सुनिये–बृहद्रथके पुत्र जरासन्धके सहदेव नामक पुत्र होगा । सहदेवके मार्ज्जारि और इस मार्ज्जारिसे श्रुतश्रवा जन्म ग्रहण करेगा॥४५॥इसका पुत्र अयुतायु, उसकी सन्तान निरमित्र, इसका पुत्र सुनक्षत्र,इस सुनक्षत्रसे बृहत्सेनकी उत्पत्ति होगी. इस बृहत्सेनका पुत्र कर्मजित्,उसके सृतञ्जय,उससे विप्र नाम एक नरेश उत्पन्न होगा । उसका पुत्र शुचि, शुचिका

पुत्र क्षेम, उससे सुव्रत जन्मेगा। सुव्रतका पुत्र धर्मसूत्र और धर्मसूत्रके शम नामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस शमसे द्युमत्सेनकी उत्पत्ति होगी, द्युमत्सेनका पुत्र सुमति होगा। इस सुमतिका पुत्र सुबल उत्पन्न होगा। सुबलका सुनीथ, सुनीथका पुत्र सत्यजित, सत्यजितका पुत्र विश्वजित और विश्वजितका पुत्र रिपुञ्जय उत्पन्न होगा॥४८॥ हे राजा परीक्षित्! हजार वर्षतक यह सब राजा उत्पन्न होंगे और इनके उपरान्त जो समस्त राजा होंगे वह पीछे (द्वादशस्कन्धमें) कहे जायँगे ॥४९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥ दोहा–ययातिसुत अनु द्रुह्यु पुनि, वरणों तुर्वसु वंश। पीछे ज्यामघ राज्य तक, यदुकुल कहौं प्रशंस ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरु

द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः॥सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः॥४८॥बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः
साहस्रवत्सरम् ॥४९॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे दिवोदासर्क्षयोर्वंशवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥
श्रीशुक उवाच॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः ॥ सभानरात्कालनरः सृंजयस्तत्सुतस्ततः॥ १ ॥ जनमेजय
स्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरा
त्मजाः॥ २ ॥ वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ॥ ३ ॥ ततो
हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ ४ ॥ अंगवंगकलिंगाद्याः सुह्मपुंड्रांध्रसंज्ञिताः ॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे
महीक्षितः ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ॥५ ॥

कुलभूषण ! पूरुका वंश तो आपसे कहा, अब राजा ययातिके चौथे पुत्र अनुके वंशका वर्णन करते हैं। अनुके सभानर, चक्षु और परोक्ष यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें सभानरका पुत्र कालनर, इसका पुत्र सृंजय ॥ १ ॥ और इसका पुत्र जन्मेजय हुआ. जन्मेजयका पुत्र महाशील महामना नाम हुआ. महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र उत्पन्न हुए. इन दोनोंमें उशीनरके शिबि, बल, शमि और दक्ष यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥२॥ इनमें शिबिसे वृषादर्भ, सुवीर, मद्र, कैकेय यह चार पुत्र जन्मे। तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ॥३॥इसका पुत्र हेम, उसका पुत्र सुतप

और सुतपसे बलि नाम पुत्र. हुआ इस बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमासे अंग, वंग, कलिङ्गादि और शुह्म, पुंड्र और अन्ध्र नामक छः पुंत्र उत्पन्न हुए. सबोंनें अपने अपने नामसे छः जनपद प्राच्य देशोंमें अंग, वंग, कलिङ्ग, शुह्म और पुण्डरीक और अन्ध्र आदि बसाये ॥ ४ ॥ ५ ॥ अंगसे खनपान नामक जो पुत्र जन्मा था उसका पुत्र दिविरथ, उसकी सन्तान धर्मरथ और उससे चित्ररथ जन्मा. चित्ररथकेकोई सन्तान नहीं हुई ॥ ६॥ रोमपाद नाम करके यह राजा विख्यात था.उसके सखा दशरथ राजाने उसको पुत्रार्थ शान्तानामक अपनी कन्या दान करदी थी. इस कन्याका पाणिग्रहण ऋष्यशृङ्ग मुनिने किया ॥७॥ हे राजन् । रोमपाद राजाके राज्यमें किसी कारणसे कुछ कालतक देवता लोगोंने जल नहीं वर्षाया

खनपानोंऽगतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ॥६॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै
दशरथः सखा ॥ शांतां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृंग उवाह ताम् ॥ ७॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥
नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः ॥ ८ ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन
लेभेऽप्रजाः प्रजाः ॥ ९ ॥ चतुरंगो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुतः ॥१० ॥
आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥ ११ ॥

तब राजाकी अनुमतिसे वाराङ्गनागण तपोवनमें जाय गीत गाय बाजे बजाय बजाय नाचने लगीं और हावभाव कटाक्ष आलिंगन और अर्हण योगसे इन ऋष्यशृङ्गको ले आईं ॥८॥ ऋष्यशृंगके आते ही जल वर्षा. इसके उपरान्त इन मुनिने राजाको निःसन्तान देख यज्ञ कराय पुत्रका मुख दिखाया ॥९॥इन रोमपादसे चतुरंग उत्पन्न हुआ। उसकी सन्तान पृथुलाक्ष, पृथुलाक्षसे बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए॥ १०॥इनमें बृहद्रथसे बृहन्मना जन्मा. उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथका पुत्र विजय हुआ। इस विजयकी सम्भूति नामक भार्यासे धृतिने

जन्म ग्रहण किया ॥ ११ ॥ धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्कर्मा, उससे अधिरथ उत्पन्न हुआ. इस अधिरथने श्रीगंगाजीके किनारेपर क्रीडा करते हुए कुन्तीजीके बहाये संदूकमें एक बालक पाया और यह अधिरथ सन्तानहीन था इसी लिये इसने संदूकसे पाये हुए बालकको अपना पुत्र बनालिया । हे राजन् ! बालकका नाम कर्ण था और इससे ही वृषसेनकी उत्पत्ति हुई ॥ १२ ॥ १३ ॥ ययातिसुत द्रुह्युका पुत्र बभ्रु हुआ. बभ्रुका पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरब्ध, उसका पुत्र गान्धार, उसका बेटा धर्म और उससे धृत जन्मा ॥ १४ ॥ धृतका पुत्र दुर्मना और उससे प्रचेताकी उत्पत्ति हुई । इस प्रचेताके सौ १०० पुत्र हुए जो कि, उत्तर दिशामें विराजमान होकर म्लेच्छाधिपति हुए हैं ॥ १५ ॥ तुर्व्वसुका

ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ योऽसौ गंगातटे क्रीडन्मंजूषांतर्गतं शिशुम् ॥ १२ ॥ कुंत्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपते ॥ १३ ॥ द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ आरब्धस्तस्य गांधारस्तस्य धर्मसुतो धृतः ॥ १४ ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसाः शतम् ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ १५ ॥ तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करंधम उदारधीः ॥ १६ ॥ मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ दुष्यंतः स पुनर्भेजे स्ववंशं राज्यकामुकः ॥ १७ ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ १८ ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः ॥ १९ ॥

पुत्र वह्नि, उसका सुत भर्ग, उससे भानुमान्का जन्म हुआ । भानुमान्का पुत्र त्रिभानु, उसका पुत्र उदारमति करंधम जन्मा ॥ १६ ॥ करन्धमका पुत्र मरुत्त, इन्होंने पुत्ररहित होनेसे कुरुवंशीय राजा दुष्यन्तको गोद लिया. यह दुष्यंत राज्याभिलाषी होकर फिर अपने कुरुवंशको प्राप्त हुए थे ॥ १७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब राजा ययातिके बडे पुत्र यदुके वंशका वर्णन करते हैं । यह अतिपवित्र वंश मानवमण्डलीके अनंत पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १८ ॥ इस यदुवंशका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्यमात्र पापोंसे छुटकारा पाते हैं, क्योंकि इसी वंशमें भगवान् वासुदेव

नराकारसे अवतीर्ण हुए थे ॥ १९ ॥ यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु यह चार पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें सहस्रजितका पुत्र शतजित् हुआ ॥ २० ॥ इसके महाहय, वेणुहय और हैहय यह तीन पुत्र हुए॥ १९ ॥ इनमें हैहयका पुत्र धर्म, उसका पुत्र नेत्र और नेत्रका पुत्र कुन्ति हुआ । कुन्तिसे सोहञ्जि जन्मा इसका पुत्र महिष्मान् और महिष्मान्का पुत्र भद्रसेन हुआ ॥ २१ ॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुए. इनमें धनकके कृतवीर्य,कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा, यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ इनमें कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ,जो कि, सप्तद्वीपका अधीश्वर था और जिसने श्रीभगवान्के अंश दत्तात्रेयजीसे योगगुण प्राप्त किया था ॥ २३॥ ऐसा जान पड़ता है कि, कोई राजा यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन और शूरता, वीरता व दयादिसे इन महात्मा अर्जुनकी गतिको नहीं प्राप्त हो सकता ॥ २४ ॥ इस राजाने अव्याहत पराक्रमसे पचासी ८५०००हजार वर्षतक अक्षय छः इन्द्रियोंके सुखको भोगा था। इस राजाकी स्मरणशक्ति आश्चर्यमय थी कि जिससे कदापि वित्तका नाश नहीं होता था ॥२५॥ इस अर्जुनके हजार पुत्र थे, इनमेंसे केवल पाँच परशुरामके संग्राममें मर

यदोः सहस्रजित्क्रोष्टाऽनलो रिपुरिति श्रुताः ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः॥ २०॥ महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुंतेः पिता ततः ॥ सोहंजिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥ २१ ॥ दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ॥ कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥ २२ ॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः ॥ २३ ॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति पार्थिवाः॥ यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥२४॥ पंचाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पंचैवोर्वरिता मृधे॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २६ ॥

283

नेसे शेष बचे थे। जिनके नाम यह हैं। जयध्वज,शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित॥२६॥इनमें जयध्वजका पुत्र तालजंघ और इस तालजंघकेशत पुत्र. हुए तालजंघ नामवाले इन सबको क्षत्रियोंके संग्राममें सगरने संहार किया था॥२७॥जो कुछ भी हो–तालजंघके इन सब पुत्रोंमें बड़ा वीतिहोत्र था। हे राजन्! महात्मा वृष्णि तो मधुका पुत्र था। इस मधुके शत १०० पुत्र उत्पन्न हुए थे,यद्यपि वृष्णि और यदुके कारणसे मधुका कुल माधव, वृष्णि और यादव इन तीन नामोंको प्राप्त हुआ था, परन्तु तो भी वृष्णि ही इस कुलमें श्रेष्ठ था। यदुका पुत्र

जयध्वजात्तालजंघस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ क्षत्रं यत्तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥ २७ ॥ तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २८ ॥ माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥२९ ॥ श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः॥ शशबिंदुर्महायोगी महाभोजो महानभूत्॥ ३० ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३१॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत्॥ तेषांतु षट् प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३२ ॥

क्रोष्टु, उसका पुत्र व्रजिनवान् ॥ २८ ॥ २९ ॥व्रजिनवान्का पुत्र श्वाहि,उसका पुत्र रुशेकु, उसका सुत चित्ररथ,उससे महायोगी महाभाग शशविन्दुकी उत्पत्ति हुई ॥३०॥ यह प्रत्येक जातिके श्रेष्ठ चौदह महारत्नोंका (हाथी,घोडे,रथ,स्त्री,बाण,निधि,माला, वस्त्र,वृक्ष,शक्ति,माल्य, मणि,छत्र और विमानादिका) स्वामी और अपराजित चक्रवर्ती था। परीक्षित्! इसके दश हजार(१००००)स्त्रियें थीं ॥३१॥इनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके लक्ष लक्ष १०००००पुत्र उत्पन्न हुए। जिससे सब मिलकर दशलाख हजार पुत्र जन्मे अर्थात् एक अर्ब १००००००००००) इन सब

पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा इत्यादि छः पुत्र विख्यात हुए * ॥३२ ॥ इन छः पुत्रोंमें पृथुश्रवाका पुत्र धर्म हुआ कि,जिस धर्मके उशना पुत्रने सौ १०० अश्वमेघ यज्ञ किये उशनाका पुत्र रुचक हुआ । इस रुचकके पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु,पृथु और ज्यामघ यह पाँच पुत्र उत्पन्न हुए॥३३॥इनमें ज्यामघकी भार्या शैब्या थी । इस ज्यामघके कोई सन्तान नहीं थी. भार्याके डरसे और विवाह नहीं किया.यह एक समय इंद्रभवनसे भोजा नामक कन्याको हरण करके ला रहा था॥३४॥कि, इस कन्याको रथपर वैठे देखकर शैब्या अत्यन्त क्रोधित हुई और

धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट्॥तत्सुतो रुचकस्तस्य पंचासन्नात्मजाः शृणु ॥पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्या
मघसञ्ज्ञिताः ॥ ३३ ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ ३५ ॥ नाविंदच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्याम
हारषीत् ॥३४॥ रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्यापतिममर्षिता ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ ॥३५ ॥स्नु
षा तवेत्यभिहिते स्मयती पतिमब्रवीत् ॥ अहं बंध्याऽसपत्नी च स्नुषा मेयुज्यते कथम् ॥ ३६ ॥

अपने पतिसे बोली कि, कौन है ? जिसको मेरे बैठनेके रथपर चढाकरला रहे हो ॥ ३५ ॥ तब ज्यामघने भयके मारे उत्तर दिया कि, यहतेरी पतोहू है । शैब्या विस्मित होकर बोली कि, मैं तो बाँझ हूँ और मेरे कोई सौत भी नहीं कि, यह कन्या जिसके बेटेकी बहू हो फिर यह हमारी पतोहू कैसे हुई ?॥ ३६ ॥

---

* शंका–राजा शशबिन्दुके दशसहस्र १०००० स्त्रियोंमें एक अर्ब १०००००००००पुत्र हुए, यहकैसी कौतूहलकी बात है ! कहनेवाले तो महात्मा हैं परन्तु सुननेवालोंको भी लज्जा आती है, भला यह बात सत्य हो सकती है ?

उत्तर–शशबिन्दुके दशसहस्र १००००स्त्री थीं,सो मनुष्यका स्वरूप धारण करनेवाली नहीं थीं.वह तो राजा बडा योगी था सो दश इन्द्रियोंकी प्रकृति सहस्र कहिये गिन्तीसे रहित सोई राजाकी स्त्री थीं, उन स्त्रियोंसे सौ कोटि पुत्र हुए सो वह भी मनुष्य नहीं हुए,वह तो ।गोंम प्रेम सुख आदि असंख्य गुणवान् यह पुत्र हुए, व्यासजीने वर्णन किया परन्तु गुप्तरीतिसे किया क्योंकि संसारके प्राणियोंकी समझमें ऐसी बात नहीं आती और आती भी है तो देरसे आती है शीघ्र नहीं आती. इसलिये संसारपर घटाकर यह वही किया है ।

ज्यामघने कहा कि, प्राणेश्वरी! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी ही बहू होगी। हे राजन्! विश्वदेव और पितृलोगोंने ज्यामघके इस दीन वचनपर आनन्द प्रकाश किया, क्योंकि ज्यामघने पहिले उनकी बहुतदिनोंतक पुजा की थी तो उन्होंने कृपा करके वरदान दिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरांत शैब्याको गर्भाधान हुआ और यथायोग्य कालमें इस रानीने एक श्रेष्ठ कुमार उत्पन्न किया. इसकुमारका नाम विदर्भोहुआ फिर कुमार विदर्भने इस पतिव्रता कन्याका पाणिग्रहण किया कि, जिसको पिता हरण कर लाये थे और इसी राजा विदर्भने अपने नामसे विदर्भदेश

जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ अन्वमोदंतत द्विश्वदेवाः पितर एव च ॥ ३७ ॥ शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्तमुपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधेऽनुद्धह्युतुर्वसुयदुवंशानुवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनंदनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ॥ कुशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्वृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ॥ ततो दशार्हो नाम्नाऽभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥

बसाया ॥३८॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां यदुवंशानुकथनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ दोहा—चौबिसमाहिं विदर्भके, भये तीन सुत वीर। राम कृष्ण तक वंश सब, कहौं सहित विस्तीर ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! कुमार विदर्भने अपनी स्त्रीके गर्भसे कुश और क्रथ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, इसका तीसरा पुत्र रोमपाद हुआ ॥१॥ इस रोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुसे कृतिने जन्म ग्रहण किया. कृतिका पुत्र उशिक, इससे चेदि और चेदिसे दमघोष राजाकी उत्पत्ति हुई ॥ २ ॥ हे राजन्! विदर्भात्मज क्रथका पुत्र कुंति

हुआ. उसका धृष्टि,धृष्टिका पुत्र निर्वृति,उससे दशार्हनाम पुत्र हुआ.दशार्हके व्योम॥३॥व्योमका पुत्र जीमूत,जीमूतके भीमरथ. इनसे नवरथने जन्म ग्रहण किया. इसके पुत्र दशरथ हुए ॥ ४॥ इनके शकुनि,शकुनिके करंभि,करंभिके देवरात, देवरातके देवक्षत्र,उनके मधु,मधुसे कुरुवंश उत्पन्न हुआ. कुरुवंशका पुत्र अनु ॥ ५ ॥अनुकापुत्र पुरुहोत्र. उसका पुत्र आयु और उससे सात्वतकी उत्पत्ति हुई । हे आर्य ! सात्वतके भजमान, भजिक, दिव्य, वृष्णि,देवावृध, अन्धक और महाभोज, यह सात पुत्र उत्पन्न हुए इनमें भजमानके दो स्त्रियें हुई । एक स्त्रीसे

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ॥ ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करंभिः शकुनेः पुत्रो
देवरातस्तदात्मजः ॥ देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ॥
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽधकः॥६॥सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष॥ भजमानस्य निम्लोचिः
किंकिणो धृष्टिरेव च ॥ ७॥ एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति
प्रभो ॥ ८ ॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठंत्यमू ॥ यथैव शृणुमो दूरात्संपश्यामस्तथांतिकात् ॥ ९ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो
मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्दे
वावृधादपि ॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये॥ ११ ॥

निम्लोचि, किंकिण, धृष्टि यह तीन और दूसरी स्त्रीमें भी शताजित्, सहस्राजित् और अयुताजित् यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥७॥८॥ राजन् ! देवावृधकी संतान बभ्रु हुआ. इन पिता पुत्रके प्रसंगमें कविलोग श्लोक गाया करते हैं । तिन श्लोकोंका अर्थ यह हैः—" हम दूरसेजैसा सुनते हैं, निकटसे वैसा देखते भी हैं॥९॥महात्मा बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध राजा देवताके समान है। इस वंशमें पंचम

षंष्टिषट्संहस्र और आठ जो य ६०७३पुरुष हुए, यह सब बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मोक्षकोप्राप्त हुए थे” सात्वतके महाभोज अति धर्मात्मा थे। इनके वंशमें भोजगणोंकी उत्पत्ति हुई ॥१०॥११॥ हे परन्तप ! सात्वतके चौथे पुत्र वृष्णिके सुमित्र और युधाजित् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए. युधाजित्के पुत्र शिनि और अनमित्र हुए। उनमें अनमित्रका पुत्र निम्न हुआ ॥ १२ ॥ इस निम्नके सत्राजित् और प्रसेन दो पुत्र हुए। हे राजन् ! अनमित्रके शिनि नामक एक दूसरा पुत्र जो था उसके यहां सत्यक जन्मा ॥१३॥ सत्यकका पुत्र युयुधान (सात्यकि), युयुधानका पुत्र जय, जयका पुत्र कुणि, इस कुणिसे युगंधरका जन्म हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! अनमित्रके वृष्णि नामक दूसरे पुत्रसे ॥ १४ ॥

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद् युधाजिच्च परंतप ॥ शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितः प्रसेनश्च
निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥ अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥१३॥ युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणि
स्ततः ॥ युगंधरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च गांदिन्यां च श्वफल्कतः ॥ अक्रूरप्र
मुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसंगः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ॥ धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षो
ऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गंधमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥ तेषांस्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥
देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनंदनाः ॥ १८ ॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः
कंबलबर्हिषः ॥ कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥

श्वफल्क और चित्ररथने जन्म लिया। श्वफल्कसे गांदिनीके गर्भमें अक्रूरजीके सिवाय और भी बारह पुत्र जन्मे जो कि बडे विख्यात हुए॥१५॥ यथा–आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुवित, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा; क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन ॥ १६॥ शत्रुघ्न, गन्धमाद और प्रतिबाहु-यह बारह अक्रूर मिलकर तेरह पुत्र हुए और इनके सुचीरा नामक एक बहन भी हुई थी । अक्रूरजीके देववान् और उपदेव दो पुत्र हुए। चित्ररथका पुत्र पृथु, इसके अतिरिक्त विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुए ॥ १७॥ १८ ॥ दूसरे कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हिष यह चार अंधकके पुत्र हुए; उनमें

कुकुरका पुत्र वह्नि और वह्निका पुत्र विलोमा ॥ १९ ॥ उसका पुत्र कपोतरोमा । उसकी सन्तान वह अनु हुआ कि, जिसका तुम्बुरु गन्धर्व सखा था। इस अनुका पुत्र अन्धक, उससे दुन्दुभि उत्पन्न हुआ. उसका पुत्र अरिद्योत और तिसका पुत्र पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक पुत्र और आहुकी कन्या हुई. आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुए। देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव, देववर्द्धन यह चार पुत्र उत्पन्न हुए । इन चार पुत्रोंके धृतदेवादि सात बहनें थीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ यथा–धृतदेवा, शांतिदेवा उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी इन सात

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुंबुरुः ॥ अंधको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥२०॥ तस्याहुकश्चाऽऽहुकी च कन्या चैवाऽऽहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ॥ तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥ शांतिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कंकः शंकुः सुहुस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४॥ कंसा कंसवती कंका शूरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथादासीद् भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात्स्वयंभोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥

कन्याओंके साथ वसुदेवजीने विवाह किया ॥२३ ॥ हे परीक्षित् । उग्रसेनके पुत्र कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहु, राष्ट्रपाल, धृष्टि और तुष्टिमान्,यह नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥२४॥ और कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू, राष्ट्रपालिका यह पांच कन्यायें वसुदेवजीके छोटे भाई जो देवभागादि थे इनकी भार्या हुईं॥२५॥ हेराजन् । पहले चित्ररथके बेटे विदूरथका जो वर्णन कर आये हैं, उन विदूरथसे शूर उत्पन्न हुए, उनका पुत्र भजमान,उससे शिनिका जन्म हुआ । शिनिका पुत्र स्वयंभोज और उसका हृदीक नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२६॥ उससे देवबाहु, शतधनु

और कृतवर्मा,यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें देवमीढका पुत्र शूर हुआ.उसकी मारिषा नामक एक पत्नी थी। मारिषाके गर्भसे शूरने दश पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम यह हैं, यथा–वसुदेव, देवभागो, देवश्रवं, आनकं ॥ २७ ॥ २८ ॥ सृञ्जय, श्यामकं, कंक, शमीकं, वत्सक आर वृकं. हे राजन्! जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ उस समय स्वर्गसे देवता लोगोंने नगाड़े और ढोल बजाये थे* ॥ २९ ॥ इसी लिये इन वसुदेवजीका एक नाम आनकदुन्दुभि है क्योंकि यह भगवान् हरिकी उत्पत्तिका स्थान थे। शूरसेनके इन पुत्रोंके

सृजयं श्यामकं कंकं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुंदुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदं त्यानकदुंदुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥३०॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पंच कन्यकाः ॥ कुंतेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥ साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतिं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२ ॥

अतिरिक्त पृथा,श्रुतकीर्ति, श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥ ३० ॥ और राजाधिदेवी नामक पांच कन्या हुईं। यह इन दश पुत्रोंकी बहनें थीं। राजा शूरसेनने अपने सखा कुंतिराजको निःसंतान देखकर अपनी पृथा कन्या उसको दे दी ॥ ३१ ॥ हे परीक्षित्! किसी समय दुर्वासा ऋषिके गृहमें आनेपर पृथाने भली भांति सेवा कर उनको संतुष्ट किया और दुर्वासा मुनिने प्रसन्न होकर पृथाको

---

* **शंका**–मृत्युलोकमें मनुष्य जन्म तो लेते हैं परंतु किसीके जन्म होनेपर देवता दुन्दुभी नहीं बजाते और हमने आजतक कभी सुना भी नहीं कि,मनुष्योंके जन्म लेनेपर देवता दुन्दुभी बजाते हैं, परन्तु वसुदेवके जन्म होनेपर देवताओंने दुन्दुभी क्यों बजाया? जो कोई कहे कि,भगवान् वसुदेवके घर जन्म लेंगे इसलिये देवताओंने आगे ही हर्ष मानकर बजाये हैं तो दशरथ आदि लेकर बहुत जनोंके भगवान् पुत्र हुए तो दशरथ आदिके जन्मसमय देवताओंने दुंदुभी क्यों नहीं बजाया?

उत्तर–जो मथुरामें वसुदेवने जन्म लिया तो उस समय दुंदुभीके निकट चंद्रमा खडाथा.चन्द्रमाने जान लिया कि इस लडकेके पुत्र भगवान् होंगे मेरे वंशका प्रकाश करनेवाला यह बालक होगा ऐसा जानकर चंद्रमाने दुंभी बजाया.कुछ देवताओंने दुंदुभी नहीं बजाया और दशरथके जन्मके समय सूर्य दुन्दुभीके समीप नहीं थे और जो होते तो सूर्य भी निश्चय दुदुभी बजाते अपने अपने वंशकी वृद्धि देखकर सबको हर्ष होता है॥

देवाह्वानविद्या सिखा दी । इसके उपरांत पृथाने उस विद्याके बलकी परीक्षा करनेके लिये सूर्य भगवान्को बुलाया ॥ ३२ ॥ परंतु इन सूर्य भगवान्को तत्काल आता हुआ देखकर पृथा अतिविस्मित हुई और विनयसहित यह वचन कहने लगी—हे देव ! हमने केवल परीक्षाके लिये मंत्र पढ़ा था । इस समय आपसे कोई विशेष काम नहीं है इसलिये आप क्षमा करें ॥३३॥ यह सुनकर सूर्य भगवान् बोले कि, देवदर्शन व्यर्थ नहीं होता, हम तुममें गर्भाधान करेंगे. पृथा बोली कि, मैं कन्या हूँ. संसारमें दूषित हूँगी. सूर्यनारायणने कहा कि, तुम कन्या समझकर अपने मनमें कुछ संकोच मत करो । हम ऐसा करेंगे कि जिस प्रकारसे तुम्हारी योनि दुष्ट नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मयमानसा ॥ प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ अमोघं दर्शनं देवि
आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यांस आधाय गर्भं सूर्यो
दिवं गतः ॥सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं साऽत्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ॥ प्रपि
तामहस्तामुवाह पांडुः सत्यविक्रमः ॥३६॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ॥यस्यामभूद्दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो
दितेःसुतः ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविंदत ॥ संतर्दनादयस्तस्यां पंचासन्कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥
राजाधिदेव्यामावंत्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ॥ दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९ ॥

गर्भाधान करके सूर्य भगवान् स्वर्गको चले गये । उसी समय दूसरे दिवाकरके समान पृथाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ तो पृथाने लोकापवादसे डरकर उस पुत्रको संदूकमें रखकर नदीमें बहादिया । इसके उपरांत पृथाको देखकर तुम्हारे परदादा महाराज सत्यविक्रम पाण्डु विवाह करनेके लिये ले गये ॥३६॥ श्रीशुकदेवजी बोले, हे राजा परीक्षित् ! शूरसेनकी कन्या श्रुतदेवा कुरुवंशीय वृद्धशर्माकी भार्या हुई । उसमें दितिसुत दन्तवक्रने सप्तऋषि सनकादिके शापसे जन्म लिया और केकयवंशीय धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया। उससे सन्तर्दनादि पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ अवन्तीके राजा जयसेनने राजाधिदेवीका पाणिग्रहण करके उससे विंद, अनुविंद नामक दो पुत्र उत्पन्न

किये। हे राजा! चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥३९॥ इसका पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ कि, जिसका वृत्तान्त पहले वर्णन कर चुके हैं। अब वसुदेवजीके भ्राताओंका वृत्तांत कहते हैं। देवभागकी भार्या कंसाके चित्रकेतु और बृहद्बल यह दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ देवश्रवसकी भार्या कंसावतीके गर्भसे सुवीर और इषुमानने जन्म ग्रहण किया.आनकाकी वनिता कंकासे सत्यजित और पुरुजित यह दो पुत्र उत्पन्नहुए॥४१॥सृंजयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे वृष,दुर्म्मर्षणादि उत्पन्न हुए। श्यामककी स्त्री शूरभूमिसे हरिकेश और हिरण्याक्षने

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः ॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥ कंसवत्यां
देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ॥ कंकायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥ सृंजयो राष्ट्रपाल्यां
च वृषदुर्मर्षणादिकान् ॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्स
कस्तथा ॥ तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥ सुमित्राऽर्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी ॥ कंकश्च
कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४ ॥

जन्म लिया॥४२॥वत्सकने मिश्रकेशी नामक अप्सरासे वृकादि पुत्र उत्पन्न किये। वृककी पत्नी दुर्व्वाक्षींसे तक्ष, पुष्कर, शाल प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए ॥४३॥ शमीककी वनिता सुदामिनीने शमीकसे सुमित्र, अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये ।कंकने अपनी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतधामा और जयनामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४४॥

हे महाराज परीक्षित ! वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकीआदि अनेक पत्नियें थीं ॥ ४५ ॥ इन स्त्रियोंमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादि बारह पुत्र जन्मे ॥४७॥ मदिराके गर्भसे नन्द, उपनंद, कृतक और शूरादि पुत्र उत्पन्न हुए । भद्राने कुलका आनंद देनेवाला केवल केशी

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ॥ देवकीप्रमुखा आसन्पन्त्य आनकदुंदुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विमलं ध्रुवम् ॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६ ॥ सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७ ॥ नंदोपनंदकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ॥ कौसल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनंदनम् ॥ ४८ ॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमांगदादयः ॥ इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥ विपृष्टो धृतदेवायामेक आनकदुंदुभेः ॥ शांतिदेवात्मजा राजञ्श्रमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५० ॥ राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥

नामनक एक ही पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४८ ॥ रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद प्रभृति जन्मे और इलामें उरुवल्कसे आदि लेके यदु जिनमें मुख्य ऐसे पुत्र हुए ॥४९ ॥ धृतदेवाके वसुदेवसे विपृष्टने जन्म ग्रहण किया. शांतिदेवामें श्रम, प्रतिश्रुत प्रभृति पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५० ॥ इसी प्रकार उपदेवासे राजा कल्प, वर्षादि दश पुत्र उत्पन्न हुए. श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंशादि छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥

देवरक्षिताके गदप्रभृति नव पुत्र उत्पन्न हुए । जैसे साक्षात् धर्मने आठ वसु उपजाये वैसे ही वसुदेवजीने सहदेवामें, पुरु विश्रुत प्रभृति आठ पुत्र उत्पन्न किये । इस प्रकार उनके देवकीमें आठ पुत्र उत्पन्न हुए. यथा-कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र, संकर्षण, और अहीश्वर यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥५२॥॥ ५३ ॥५४॥ हे परीक्षित् । वसुदेव देवकीके अष्टम पुत्र स्वयं विष्णु भगवान् हुए और तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्राजी भी उनसे ही उत्पन्न हुई ॥५५॥ अधिक क्या कहें ? जिस२ समय धर्मका क्षय और अधर्मकी वृद्धि होती है, उसी समयमें भगवान् वासुदेव

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कीर्तिमंतं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४ ॥ अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥ ॥ ५५ ॥ यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥

अपना अवतार लिया करते हैं ॥५६॥ नहीं तो जो लोग मायाके नियंता, संगविहीन, सर्वसाक्षी और सर्वगत हैं उनका मायाविनोदके अतिरिक्त (सिवाय) जन्म अथवा कर्मका और क्या हेतु हो सकता है ॥५७॥ जिसकी मायाचेष्टा जीवके लिये अनुग्रहस्वरूप है, क्योंकि यह माया ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी निदान है इसलिये जो सर्व जीवोंके अनुग्रह हैं फिर उनको कर्मादिके वश पड़कर जन्मादि सम्बंधकी क्या सम्भावना ? इनके मायाचेष्टित श्रूयमाण होनेपर उसके द्वारा सृष्टिप्रभृतिकी निवृत्ति होनेपर वही जीवके मोक्ष होनेका कारण होते हैं ॥ ५८ ॥

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलांछनैः ॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥५९॥कर्माण्यपरिमेयानि मनसा
ऽपि सुरेश्वरैः ॥ सह संकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥६०॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥अनुग्रहाय
भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ॥ श्रोत्रांजलिरुपस्पृश्य धुनुते
कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकैः ॥ श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृंजयपांडुभिः ॥ ६३ ॥
स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वांगरम्यया ॥ ६४ ॥

हे परीक्षित् ! बहुतसी अक्षौहिणीके राजा नृपरूपी असुरगण जब पृथ्वीको आक्रमण करते हैं और अपने बोझसे पृथ्वीको दबा लेते हैं तब भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान्का यह अवतार होता है क्योंकि जिन कर्मोंको सुरेश्वर लोग भी मनके द्वारा तर्क करके नहीं कर सकते भगवान् मधुसूदन संकर्षणके साथ उन सब कर्मोंको लीलासे ही कर डालते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, यद्यपि वह संकल्प ही करके पृथ्वीके भारको हरण करनेमें समर्थ थे परंतु तो भी कलियुगमें जो भक्त होंगे, उनके प्रति अनुग्रह प्रगट करनेके लिये दुःख,शोक और तमोगुणका नाशक यह पुण्ययश भगवान्ने विस्तारित किया है । यह श्रेष्ठ यश साधुपुरुषोंके लिये कर्णामृत और श्रेष्ठ तीर्थस्वरूप है. केवल एक बार कर्णरूप अञ्जलिसे पान करनेपर पुरुष कर्म वासनाके त्याग देनेको समर्थ होता है ॥ ६१॥ ६२ ॥इस लिये भोज, वृष्णि,अंधक,मधु,शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पण्डुवंशीय सब मनुष्यगण भगवान्के चरित्रकी बड़ाई किया करते हैं॥ ६३ ॥ उन्हीं भगवान्ने सुन्दर मनोहर मुसकानके दर्शन,उदारवचन,विक्रमलीला, सर्वांग रमणीक मूर्तिके द्वारा सब मनुष्यलोकको प्रमुदित किया था ॥ ६४ ॥

मकराकार कुण्डल, मनोहर कर्ण, चमकते दमकते हुए कपोल, इन सबसे श्रीभगवान्का वदन अनुपम शोभायमान था । विलासयुक्त मुसकान मानो उसमें लगी हुई थीं इसलिये मानो सदा ही उत्सव होता. उस वदनको दृष्टिके द्वारा पान करके नर नारी परितृप्त नहीं हुए. वह सब आनंदित तो हुए थे परंतु नेत्रोंके वारंवार पलक मारनेको न सहकर निमेषके बनानेवाले राजा निमिके ऊपर वारंवार कोप करते थे॥ ६५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि,हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदने अपने रूपसे जन्म ग्रहण किया । उसके पीछे मनुष्याकार हो पिताजीके घरसे व्रजको चले गये. यहांपर शत्रुओंका नाश कर व्रजवासियोंकी अभिलाषा पूर्ण कर धन सम्पत्तिको बढ़ाया, फिर बहुतसी सुन्दरियोंसे विवाह कर उनसे सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये, फिर लोकसमाजमें स्वकृत वेदमार्गका विस्तार करके अनेक यज्ञोंको करआपने अपनी ही पूजा की ॥ ६६ ॥ फिर उन्होंने कौरव और पाण्डवोंमें द्वेष उपजाय पृथ्वीका भारी भार उतार दिया और दृष्टिसेही युद्धभूमिमें खडे हुए राजाओंको कम्पायमान कर दिया फिर जब अर्ज्जुनने रणमें जय पाई तब उसकी कीर्तिका विकास कर उद्धवजीको परमतत्त्वका उपदेश किया और अन्तसमय अपने उसी स्वरूपसे परम धामको चले गये ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां विभिवंशवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४ ॥

इति नवमः स्कन्धः समाप्त ॥ ९ ॥

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सुविलासहासम्॥नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबंत्योनार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥६५॥ जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीज आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामंतस्समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम॥ ६७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कंधे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशविदर्भान्वयानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ समाप्तोऽयं नवमःस्कन्धः ॥ ९ ॥

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन मुम्बय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्)
मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शके १८४५.

760

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कन्धसमाप्तिः ॥

पुस्तकालय
मुमुक्षु भवन, वाराणसी

761

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशस्कन्धप्रारम्भः ॥

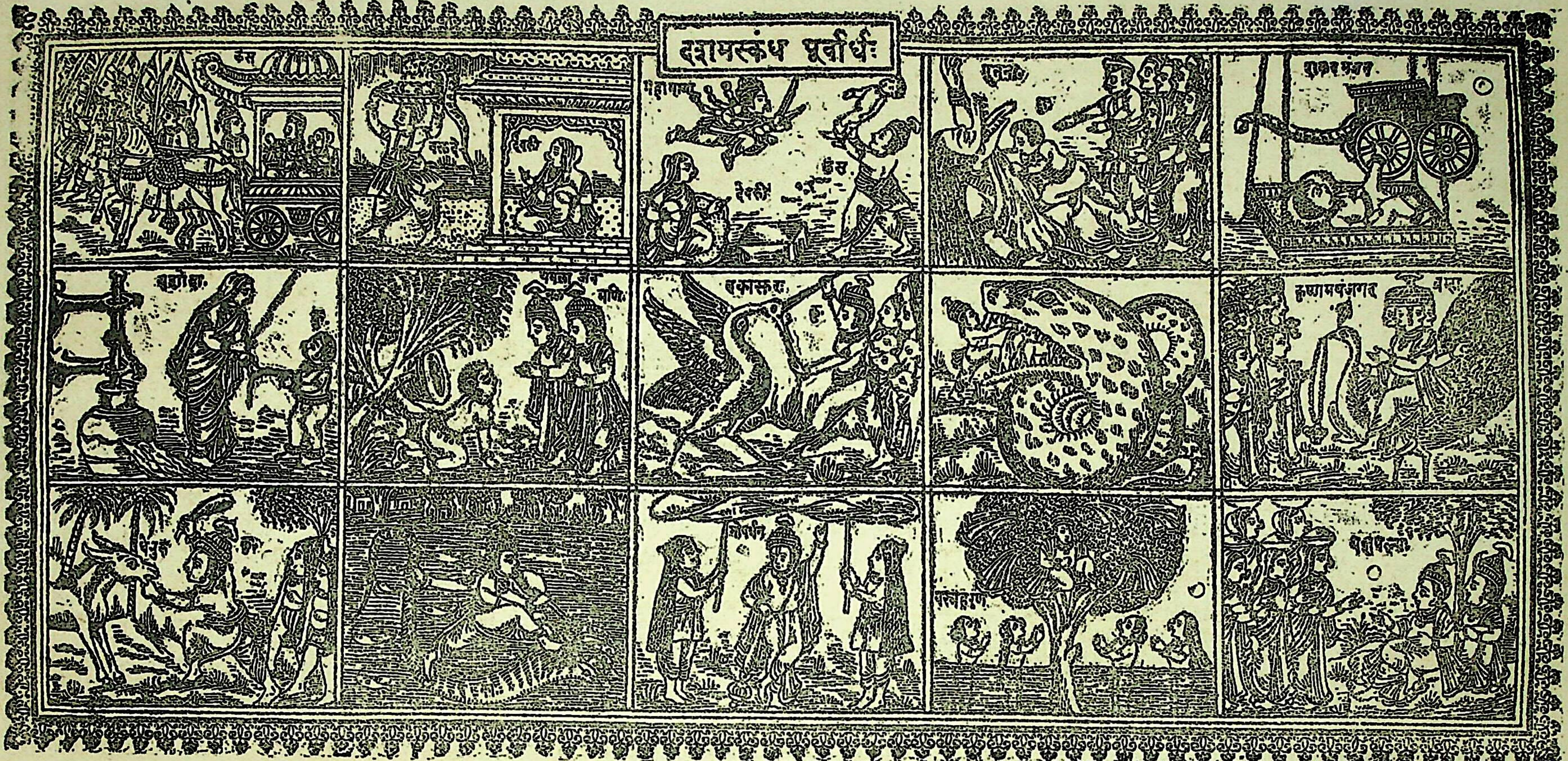
दशमस्कंध पूर्वार्धः
कंस
महामाया
देवकी
बकासुर
ब्रह्मा

सवैया–जाकी कृपा शुक ज्ञानी भये, अतिदानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ॥ जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी॥जाकी कृपाते त्रिलोकधनी,सुकहावत श्रीव्रजचन्द विहारी ॥ मेरेहू काजकरैगी सोई, श्रीकृष्णप्रिया वृषभानुदुलारी॥ १॥कबित्त–काहूको भरोसो है गणेश शेष शारदाको,काहूको भरोसोहै कालिका मशानीको ॥काहूको भरोसो उमा रमा सिया लक्ष्मीको,काहूको भरोसो महादेव ब्रह्मज्ञानीको॥काहूको भरोसो गंग यमुना हनुमानजीको,काहूको भरोसो सिंहवाहिनी भवानीको॥तनसे औ मनसे कहै बार बार,शालिग्राम,मोको तो भरोसो एक राधा महरानीको ॥ १ ॥ दोहा–हे मुकुन्द गोविंद हरि,नन्दनँदन घनश्याम ।चरणशरण मोहिं राखिये, कृपासिन्धु सुखधाम ॥ १॥ पूरण दशमस्कधमें

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥ राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥

कियो कृष्णयशगान ॥ सो नब्बे अध्याय करि, कीन्हचो सकल बखान ॥२॥ तहां प्रथम अध्यायमें,कंस आपनो काल ।सुन देवकिसंभूत तब, हने तासु षट बाल॥ १॥श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि,हे दीनदयालु ! आपने प्रथम नवमस्कन्धमें चन्द्रवंश औरसूर्यवंशमें जो जो नामी राजा हुए उन दोनों वंशोंके सब राजाओंका अति विचित्र चारित्र विस्तारसहित वर्णन किया* ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! धर्मशील महाराज यदुका वंशभी विस्तार पूर्वक आपने अच्छी रीतिसे कहा,परंतु अब दया करके वह कथा कहो,जो महाराज यदुके वंशमें बलरामजीकेसाथ परिपूर्णरूपसे अवतार धारण करके संसारके सुख देनेको जो जो अद्भुत लीला भगवान् वासुदेवने कीं,उनको विस्तार सहित हमारे सामने वर्णनकीजिये ॥२॥

762

---

* शंका–सूर्यवंशसे चन्द्रवंश हुआ है और राजा परीक्षित्के प्रश्नवाले श्लोकमें प्रथम सोमवंशका नाम है,सो पीछे सूर्यवंश क्यों वर्णन किया? सूर्यवंश तो प्रथम वर्णन करना चाहिये?यह बडे सन्देहकी बात है, प्रथमवालेको पीछे वर्णन करना और पीछे वालेको प्रथम इसका क्या कारण है ? यहां कोई छन्दोभंगभी नहीं जो आगे पीछे छन्दभ्रष्ट हो जानेके कारण लिख दिया.

उत्तर–राजा परीक्षित्ने चन्द्रवंशमें श्रीकृष्णका जन्म सुनकर और अपने भी कुलका सम्मान करनेके लिये श्लोकमें प्रथमचंद्रमाका कीर्त्तन किया ॥

सब प्राणियोंके प्रतिपालक भगवान् भूतभावनने यदुकुलमें जन्म लेकर जो जो आश्चर्ययुक्त चरित्र किये वह भी सब यथावत् हमारे आगे कथन करो
॥ ३॥ इस संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं—एक तो ज्ञानी, दूसरे मुमुक्षु, तीसरे विषयी, इन तीनोंप्रकारके मनुष्योंको उत्तमश्लोक भगवान्के चरित्र
परमप्रिय हैं सो दिन रात उनको गाते रहतेहैं और ज्ञानी लोगोंको परमेश्वरके चरित्र सुननेसे संसारकी सब वासना छूटनेका उत्तम उपाय दिखाई
देता है और जिन मुमुक्षु जनोंको मोक्षकी इच्छा है ऐसे नारद,उद्धवादिकोंको संसाररूपी रोगोंके दूर करनेको सजीवनमूल औषध है और विषयमें
जिनका मन है ऐसे मनुष्योंके मनको और कानोंको परमानन्दका देनेवाला यही विषय है. सिवाय आत्मघातीके और पशुघातीकेऐसा कौनसा
मनुष्य है जो परमेश्वरके गुणानुवादको सुनकर आनन्दित न होगा ? ॥ ४॥ चाहे कुछ हो, परंतु हमको तो वृन्दावनविहारी भक्तहितकारीका गुण

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ॥ कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमा
नाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे
समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिंगिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥
द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदंगं सतानबीजं कुरुपांडवानाम् ॥ जुगोप कुक्षिगत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥

दिन रात गाना और उनके,उत्तम उत्तम चरित्रोंकी कथा नित्यप्रति सुननी है क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र तो हमारे कुलपूज्य ही थे,संग्राममें देवताओंकोभी
पराजित करनेवाले पितामह भीष्म और दुर्योधन आदि महारथीरूप जिसमें वडवानल, सौबल और दुःशासनरूप महागम्भीर नीर, भारी भीड़
वीर और योद्धाओंकी जहाँ तहाँ घूम रही थी वही उसमें तरंगें, शल्य,द्रोण, कर्ण आदिक महारथीरूप ग्राह थे, मर्यादारूप राजाओंकी कतार थी।
उस कौरवरूपी अत्यन्त गम्भीर समुद्रमें जो द्रौपदीकाचीर हरा वही उस समुद्रका विस्तार था, ऐसे दुस्तर महासागरको मेरे पितामह
युधिष्ठिर आदिक भक्तिरूप नौकाका आश्रय लेके बछडेके खुरके सदृश समझकर बेखटके पार उतर गये ॥ ५ ॥ इतना ही मत समझना
कि, भगवान्ने कृष्ण अवतार केवल पाण्डवोंकी सहायताके लिये धारण किया था, मेरे भी प्राणोंकीरक्षा श्रीकृष्णजीने ही की थी, कौरव और

पाण्डवोंकी सन्तानका बीजरूप जो मेरा यह देह अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध होनेको था उसी समय मेरी माता उत्तराने महादुःखी हो श्रीकृष्णकी शरणागत ली. उत्तराको दुःखी जानकर भगवान्ने चक्र ग्रहण कर मेरी माताकी कुक्षिमें प्रवेश करके मेरे तनकी रक्षा करी॥६॥हे विद्वन् सब सब जगतके प्रकाश करनेवाले प्राणियोंमें परमपुरुष कालरूप, संसारको मोक्ष देनेवाले और उसीरूपसे दुरात्मा लोगोंको मृत्युके देनेवाले, जिन्होंने भक्तोंके ऊपर दया करके नरशरीर धारण किया,उन श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला हमारे आगे कहो। हमको उनके पराक्रमोंके सुननेकी बडी लालसा है ॥७॥ बलदेव संकर्षणको आपने पहिले तो देवकीका पुत्र कहा था,अब दूसरी बार रोहिणीका पुत्र कहा यह बड आश्चर्यकी बात है कि, दो माताओंसे एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ॥८॥भक्तभावन भगवान् अपने माता पिता वसुदेव देवकीको छोड़कर व्रजमें नन्द यशोदाके घर

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामंतर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुताऽमृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसंबंधः कुतो देहांतरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत् कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देह मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥

क्यों गये ? और भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी जातिवालोंको संग लेकर कहाँ निवासकिया ? ॥ ९ ॥ गोपसखाओंके संग नन्दकुमार भगवान्ने व्रजमें नन्द यशोदाके घर रहकरकौन कौनसे उदार चरित्र किये ? और मथुरामें जाकर अपने मामा कंसको अपने हाथसे कैसे मारा ? मामाको मारना किसी प्रकार योग्य नहीं,फिर उसका वध क्यों किया ?॥ १० ॥हे प्रभो!मनुष्यदेह धारण करके भगवान् वासुदेवने यादवोंके साथ मथुरापुरीमें कितने दिनतक वास किया और श्रीकृष्ण महाराजके कितनी स्त्री थीं ? ॥११॥ हे सर्वज्ञ!जो जो प्रथम मैंने आपसे बूझा उसके सिवाय और जो कुछ चरित्र मेरे बूझनेसे शेष रह गये हैं वह सब मेरे सामनेवर्णन करने चाहिये, क्योंकि मेरा चित्त श्रीकृष्णके गुणानुवाद

सुननेको अधिक चाहता है और इस विषयमें मेरी बडी श्रद्धा है॥१२॥हे मुनिवर।यद्यपि यह क्षुधा पियास जगत्‌में परम दुःसह हैं तोभी मैंने उनको त्याग दिया, परन्तु आपके मुखारविन्दसे जो भगवान्‌की अमृतरूपी कथाका अमृत टपकता है उसको पीता हूँ.उसके पीनेसे मुझको भूख प्यासकी कुछ बाधा नहीं॥१३॥सूतजी बोले कि,हे भृगुनन्दन शौनकजी! इस प्रकार भागवतोंमें मुख्य श्रीशुकदेवजी महाराजने यह उत्तम प्रश्न सुनके राजपरीक्षितकी प्रशंसा करके कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र कहना आरम्भ किया॥ १४॥श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजऋषियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित ! आपकी बुद्धिने अच्छा निश्चय किया है कि,जिस बुद्धिसे आपकी कृष्णकथामें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रीति हुई है ॥१५॥

नैषातिदुस्सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबंतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथाऽमृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनंदन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ॥ प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रांता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दंती करुणं विभोः॥ उपस्थितांतिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत॥१८॥ब्रह्मा तदुपाधार्याऽथ सह देवैस्तया सह॥जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

भगवान्‌वासुदेवकी कथा तीन जनोंको पवित्र करती है-श्रोताको,वक्ताको और प्रश्नकर्ताको. जैसे श्रीगंगाजीका जल तीन जनोंको पावन करता है दर्शन,स्पर्श और पान करने वाले अथवा पुरोहितको, यजमानको और ग्रहण करनेवालेको ॥१६॥ हे राजन् ! अभिमानी राजा जिनका सदा दैत्योंकासा स्वभाव उनकी अधिक सेनाओंके भारसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी होकर गायका रूप धर ब्रह्माजीके निकट गई ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शरीर जिसका क्षीण, मन मलीन, जिसको देखकर सबके मनमें दया उपजे,इस प्रकार रांभती डकराती हुई ब्रह्माजीके समीप जाकर खडी हुई, अपना सब दुःख उनसे कहा ॥ १८ ॥ब्रह्माजी पृथ्वीका दुःख सुनकर सब देवताओंको और शिवजीको अपने संग लेकर क्षीरसागरके समीप गये

वहाँ विष्णु भगवान् शेषशय्यापर शयन कर रहे थे॥ १९॥ वहाँ जाय समाधि लगाय, जगदीश्वर भगवान् सम्पूर्ण अर्थियोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले देवोंके देव विष्णु भगवान्की पुरुषसूक्तके इन षोडश "सहस्रशीर्षा पुरुषः" मन्त्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ समाधिमें ही ब्रह्माजीको आकाश वाणी हुई । उस वाणीको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि, हे देवताओ ! मुझको श्रीनारायणकी आज्ञा हुई है उसको तुम सब लोग सुनो और सुनकर विलम्ब मत करो । शीघ्र वैसे ही करो ॥ २१ ॥ हमारी प्रार्थनासे पहिले ही भगवान्ने इस पृथ्वीका दुःख दूर करनेका विचार कर लिया है, अब जबतक सर्वदेवपति भगवान् अपनी कालशक्तिसे वसुंधराका भार उतारनेके लिये धरणीपर मनुज अवतार धारण न करें, तबतक तुम सब अपने अपने अंशोंसे यदुकुलमें जाकर जन्म लो ॥ २२ ॥ वसुदेव देवकीके भवनमें साक्षात् आदिपुरुष भगवान् आनकर प्रगट होंगे.

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥ गिरं समाधौ गगने समी
रितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव माचिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव
पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥ स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥
वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवंतु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलाऽनंतः सहस्रवदनः
स्वराट् ॥ अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् ॥ आदिष्टा
प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ आश्वास्य
च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

769

उनके संग विहार करनेके लिये और हितके हेतु देवपत्नी भी ब्रजमें जन्म धारण करें ॥ २३ ॥ और सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश विष्णु भगवान्की अनंत कलासे शेषनागजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रके संग लीला करनेके लिये बलभद्रनामसे प्रथम ही वसुदेवजीके घर जन्म धारण करेंगे ॥ २४ ॥ फिर देवकीके गर्भको खींचनेके लिये और यशोदाको मोह करनेके लिये परमेश्वरकी माया सब संसारके मनको मोहनेवाली, वह भी भगवान्की आज्ञाको मानकर अपने अंशों सहित यशोदाके भवनमें उत्पन्न होगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने देवताओंको आज्ञा दी और पृथ्वीको समझाय बुझाय आप अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २६ ॥

यदुपति शूरसेन पहले मथुरापुरीमें बसता हुआ माथुर शूरसेन आदि देशोंको भोगता भया ॥२७॥ यह मथुरापुरी सदासेयदुवंशियोंकी राजधानी थी और इसी मथुरापुरीमें श्रीकृष्णभगवान् सदा विराजमान रहते हैं॥२८॥ कंसकी अनीतिसे उग्रसेन अत्यन्त दुःखी रहते थे और उग्रसेनका भ्राता जो देवक था उसकी कन्या देवकी जब विवाहने योग्य हुई,तब उसने उग्रसेन और कंससे बूझा कि इस लड़कीका विवाह किसके साथ करें ? कंस बोला आजकल यदुवंशियोंमें शूरसेन बड़ा तेजस्वी और प्रतापीराजा है उनके पुत्र वसुदेवके साथ इसका विवाह कर दो तो अच्छा है. देवकने उसी समयएक ब्राह्मणको बुलाय शुभ लग्न ठहराय राजा शूरसेनके घर टीका भेज दिया । शूरसेन बडीधूमधामसे बरात सजाय सब देशके नरेश संग ले सब यदुवंशी मिल मथुरापुरीमें वसुदेवजीको विवाहनेके लिये गये।जब बरात मथुराके समीप आई तब उग्रसेन,देवक और कंस अपनी सेनासंग ले आगे बढ़े,आदरसत्कारसे अगौनी कर बरातको नगरमें लाये और सुन्दर जनवासा दिया फिर सब जनोंको अच्छे २ भोजन जिमाय मण्डपमें बैठाय वेदविधिसे देवकने वसुदेवको कन्यादान दिया और बरातको बिदा किया।शूरसेनका पुत्र वसुदेव अपनी विवाहिता स्त्री देवकीके साथ अपने घर जानेको रथपर बैठे॥२९॥ और उग्रसेनका पुत्र कंस अपनीभगिनीदेवकीके प्रसन्न करनेके लिये घोडोंकी राश पकड़कर रथ हांकनेको बैठा। उसके संग सैकडोंरथ रत्नजटित स्वर्णके और भी थे॥३०॥ अपनी कन्यापर अत्यन्त प्रीति करनेवाले देवकने देवकीको बिदाके समय स्वर्णकी माला और रत्नजटित अम्बारीवाले चारसौ ४००हाथी,दशसहस्र १०००० घोडे, अठारहसौ १८०० रथ ॥ ३१ ॥

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ॥ माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साऽभूत्स
र्वयादवभूभुजाम् ॥ मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिवसुदेवः कृतोद्वहः ॥
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥२९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ रश्मीन्हयानां जग्राह
रौक्मै यश तवृतः॥३०॥ चतुश्शतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम्॥ अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम्॥३१॥

और शृंगारसहित सुन्दर सुकुमार दोसौदास दासी वर कन्याकी सेवाके लिये दीं॥३२॥दूलह दुलहनकी यात्राके समय मंगलके लिये शंख,भेरी, मृदंग,दुन्दुभी आदि सब बाजे बरातके बजने लगे और उग्रसेन देवक आदि सब बरातके पहुँचानेको संग चले ॥३३ ॥ जब मथुरासे थोडी दूर बाहर बरातनिकली और देवकीके रथके घोडोंकी बागडोर पकडे जो कंस हांक रहा था उस समय कंसकोआकाशवाणी हुई—अरे मूर्ख ! जिसको हर्षसहित तू पहुँचाने जाता है इसी देवकीके आठवें गर्भमें तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार आकाशवाणीको सुन वह अधम पापी भोजवंशियोंके कुलको कलंक लगानेवाला कंस बहनकोमारनेके लिये,उपस्थितहुआऔर खड्ग हाथमें ले केश पकड़ देवकीको रथसे नीचे खींच लिया और क्रोधसे दांत चबा २होठोंको काट काट कहने लगा कि,जिस वृक्षको जड़से ही उखाड़ डाले तो फिर उसमें फलफूल क्यों

दासीनांसुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ॥ दुहित्रेदेवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शखतूर्यमृदंगाश्च नेदुर्दुंदुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमंगलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाऽशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हंता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हंतुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत्॥३५॥तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम्। । वसुदेवो महाभाग उवाच परिसांत्वयन्॥३६॥
वसुदेव उवाच ॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ॥ अद्य वाऽब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥

765

लगेगा ! इसलिये इसीको न मारूं जो पुत्र होनेका संशय ही न रहे फिर निर्भय होकर अपना निष्कंटक राज्य करूं ॥ ३५ ॥ यह गति देख,उस निन्दनीय कर्म करनेवाले महामूर्ख निर्लज्ज कंसको बड़े ऐश्वर्यवान् वसुदेवजी स्तुति और युक्तियोंसे और करुणाभरे मधुर वचनोंसे शांत करके बोले कि, हे कंस ! तुम बडे शूरवीर और योद्धाओंमें प्रशंसनीय, गुणज्ञ और भोजवंशका सुयश फैलानेवाले हो. देखो ! इस समय एक तो विवाहकाउत्साह, दूसरे यह साध्वी जाति स्त्री अबला, तीसरे तुम्हारी प्यारी बहन,फिर इस बिचारीदीन अबलाको मारना कौन धर्म है? बली कभी अबलापर हाथ नहीं डालते क्योंकि स्त्रियोंकेमारनेका शास्त्रमें महापाप लिखा है ॥३६॥३७॥ जो मृत्युके भयसे इस बिचारी

दीनको मारोहो तो मृत्यु तो किसी प्रकार मिटती ही नहीं, क्योंकि मृत्यु तो जन्मधारी मनुष्योंके संग ही लग रही है; जिस दिन मनुष्यका जन्म होता है, उसी दिन मृत्यु भी संग जन्मती है औरजो अधिक जीवनके लिये इसको मारते हो तो आज अथवा सौ १०० वर्षके अनंतर देह धारीका मरण निःसंदेह होगा ॥ ३८ ॥ और मनुष्यको उस समय पाप करना भी उचित है,जो यह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना न पडे,सो यह कदापि होना नहीं, क्योंकि मरणसमय भी यह प्राणी अपनें वशमें नहीं होता, वहां भी कर्मोंके अनुसार प्रथम दूसरे शरीरको प्राप्त कर लेता है तब पीछे इस शरीरको त्यागता है ॥ ३९ ॥ जैसे चलनेके समय मनुष्य अपना अगला पांव सँभालकर रख लेता है तब पिछले पांवको उठाता है,जसे जोंक चलते समय पहिले अगले तृणको पकड़ लेती है तब पिछले तृणको छोड़ती है ऐसे ही यह देही जिसमें अनेकप्रकारसे संस्कार लग रहे हैं जीवात्मा दूसरे शरीरको प्रथम ग्रहण कर लेता है पीछे पिछली देहको छोड़ता है ॥ ४० ॥ स्वप्नमें

देहे पंचत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहांतरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन
गच्छति ॥ यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः॥
दृष्टश्रुताभ्यां मनसाऽनुचिंतयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारा
त्मकमाप पंचसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

मनुष्य जैसे देखेहुएऔर सुने हुए देहजिसमें अनेक प्रकारके संस्कार लग रहे हैं और मन उनके वशमें है वह मन उसीमें बस देहका चिन्तवन करता रहताहै और वह मनुष्य स्वप्नमें भी वैसा नही देखता है और उसी देहको अपनी समझकर कहता है 'मैं हूँ, यह मेरा देह दुःखी है, ऐसे अपने आपको राजा और इंद्रादिकके समान मानकर अभिमान करता है और जाग्रत् देहकी सम्पूर्ण स्मृति भूल जाता है, फिरउसी संस्कार वाले मनसे मनोरथ करते २ देहको भूलकर जाग्रत्में भी उसी प्रकारके मनोरथदेहको देखता है और थोडी देरमें कहने लगता है 'यहमैं हूँ,यहशरीर मेरा है'ऐसा मानता है और स्वप्नके देहकी स्मृति कुछ भी नहीं रहती,इसीप्रकार कर्मोंके अधीन होकर पूर्वदेहको छोड़ देता हैऔरवैसा ही और देह प्राप्त कर लेता है॥४१॥फलके देनेवाले कर्मोंसे प्रेरित विकारोंसे भरा हुआ जो मनहै,सो मायारचित पञ्चमहाभूतोंके बने हुए मनुष्य,पशु,पक्षी इत्यादि

जो शरीर हैं,जिस जिसकी ओरको दौडता है और अभिमानको बांधता है, उसी उस शरीरमें जीवको संग लेकर जन्मलेता है, यह मन ही सब बातका कर्ता हर्ता ठहरा तो मनकोही जन्म लेना चाहिये. परंतु अकर्ता आत्मा क्यों जन्मता है ? आत्मा इस मनको यह करके मानता है कि, 'मैं हूँ' इस कारण आत्मा उस मनके साथ जन्म लेता है॥४२॥जैसे सूर्य चंद्रमादिकोंकी ज्योतिमय पदार्थ जलके भरे घटादिक पात्रोंमें प्रतिबिम्बरूप होकर पवनके वेगसे कम्पायमान प्रतीत होते हैं,ऐसे ही पुरुष अपनी अविद्यारचित देहमें रागके कारण प्रविष्ट आत्माभिमान करके मोहको प्राप्त होता है,आत्मामें देहादिककी भ्रान्ति होनेसे जैसे सूक्ष्म और स्थूल देहादिकके धर्म आत्मामें दिखाई देते हैं, वैसे ही देहादिकमें आत्माकी भ्रांति होनेसे प्रेमपात्रत्व आदि आत्माके धर्म देहादिकमें प्रतीत होते हैं,इसलिये इन्द्र और गर्दभादिके तनुमें प्रीति समान होनेसे

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३ ॥तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४ ॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ॥ हंतुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः॥४५॥श्रीशुक उवाच॥ एवंस सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः॥न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६ ॥ निर्बंधं तस्य तं ज्ञात्वा विचिंत्यानकदुंदुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

मृत्युसे बचनेका प्रयत्न करना वृथा है ॥ ४३ ॥ इसलिये अपने आत्माका कल्याण करनेवाले प्राणीको चाहिये कि, किसीसे शत्रुभाव न रक्खे, क्योंकि शत्रुता करनेवाले पुरुषोंको दूसरे शत्रु और यमसे भी भय होता है ॥ ४४ ॥ इसी लिये हे राजन् ! यह तुम्हारी छोटी बहिन है और अभी बालक है, दीन है, अबला है, देखो काठकी पुतलीकी नाईं तुम्हारे आगे खडी है और तुमको परमेश्वरने दीनहितकारी और स्वजन भयहारी बनाया है, यह मंगलरूपिणी आपके मारने योग्य नहीं,क्योंकि दीनको और पराधीनको मारनेका बडा दोष है ॥४५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशी राजा परीक्षित् ! ऐसे प्रिय वचन कहकर वसुदेवजीने साम और भेदसे समझाया, तो भी एक तो आप ही दुष्ट, दूसरे राक्षसोंका साथी, तीसरे आकाशवाणीका भय उस महाक्रूरकंसने वसुदेवजीकी बात एक भी न मानी ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने समझा कि

यह हठीलाअपनी हठको कभी नहीं छोडेगा,ऐसा विचार और देवकीकी मृत्यु निकट आई जानकर समय बितानेके लिये अपने मनमें यह विचार किया ॥ ४७ ॥ चतुर लोगोंको उचितहै कि जहांतक अपना बल, विद्या, बुद्धि पहुँचे वहांतक मृत्यु दूर करनेका उपाय करें, जब इतने प्रयत्नोंसे भी मृत्युसे न बचे तो फिर पुरुषका कुछ दोष नहीं है ॥ ४८ ॥ इसलिये इस मृत्युरूप कंसको देवकीके जो पुत्र होंगे उनके देनेका वचन बद्ध कर किसी प्रकार पहिलेतो इस दीन देवकीके प्राण बचाऊँ. कदाचित् कोई कहे कि, पुत्र देके देवकीके प्राण बचायेयह तो बडी अनीति है, नहीं समयका टाल देना बड़े चतुरोंका काम है, जब देवकीके पुत्र होगा उस समय देखा जायगा, अभी तो किसी प्रकार यह जीती बचे, न जानिये बालकके जन्मनेसे पहिले यह दुष्ट कंस ही मर जाय तो फिर कुछ किसी बातका खटका ही

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद् बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥ प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ॥ सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियतचेत् ॥ ४९ ॥ विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ॥ उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ॥ एवं हि जंतोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५२ ॥

न रहे,कदाचित् इसके पुत्र ही न हो और जो पुत्र हो और कंस दया करके उसको न मारे, तो अवश्यही मेरा पुत्र कंसको मारेगा! और जो यह उलटी बात न हो और कोई कहे कि, तुम्हारा पुत्र बालक इस तरुण कंसको कैसे मार सकता है ? तो आप ही वसुदेवजी अपने वचनका समाधान करते हैं कि, विधाताकी गति किसीके जाननेमें नहीं आती, जो प्राणी मरनेके योग्यहैं वह नहीं मरते और जो मरनेके योग्य नहीं है वह मर जाते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ देखो जब वनमें आग लगती है तो जो वृक्ष जलनहार नहीं हैं वह समीपके बच जाते हैं और जो जलनहार दूरके होते हैं वह जल जाते हैं;जैसे गाँवमें अग्निके पासके घर जलनेसे रह जाते हैं और दूरके जल जाते हैं

प्रसार्य वदनांभोजं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साऽऽहाऽशरीरवाक् ॥ पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ॥ वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद् गृहम् ॥५५॥

* श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जहांतक अपनी बुद्धि पहुँचीवहाँतक वसुदेवजीने विचार करके बडे प्यारसे कंसका आदर सत्कार किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ कंसको विश्वास दिलानेके लिये वसुदेवजी लोकरीतिके सदृश प्रफुल्लित मुखकमलसे महाक्रूर निर्लज्ज कंसके सामने मुसकाकर बोले, परंतु मन तो अत्यंत ही दुःखी था ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले कि हे सौम्य ! जो भय आपके चित्तमें आकाशवाणीने उत्पन्न किया है वहभय तुम किञ्चिन्मात्र भी मत मानो; क्योंकि देवकीसे आपको कुछ भय है ही नहीं, इसके पुत्रोंसे कुछ भय है सो वह भय मैं आपका दूर करे देता हूँ, जो पुत्र इसके होगा उसको मैं उसी समय आपको समर्पण कर दूंगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वसुदेवजीके वचनको सत्य मानकर कंसनें अपनी बहिनको मारनेसे छोड़ दिया और वसुदेवजी भी प्रसन्न हो कंसकी बड़ाई करके बरात

---

* इस बातपर एक मनोहर दृष्टांत है। एक सेठजी मंदिरमें बैठे हनुमानजीकी पूजा कर रहे थे, उसी समय नगरमें आग लगी और लेकडोंघरोंको फूंकती फांकती सेठजीके निकट पहुंच गई, तब तो सब लोगोंने सेठजीसे जाकर कहा कि, आग आपके घरके समीप आ गई. शीघ्र पूजा छोड छाडके चलो. कुएंसे पानीके दस बीस घडे भरकर रखो, जब घरपर आग आ गई तो पानी कहां ? सेठजी बोले कि जिसकी हम पूजा करते हैं क्या आग वह नहीं बुझा सकता ? और वह हमारे घरको नहीं बचा सकता ? हमको कुछ प्रयोजन नहीं, जिसकाघर होगा वह आप बुझावेगा, जब उसका नाम पवनपुत्र है तो क्या अपने पिताको नहीं समझा सकता. ? जिसके लिये हम बरसोंसे तनमन लगा रहे हैं क्या वह एक घडीको भी हमारा काम नहीं कर सकता ? मुझको पूर्ण विश्वास है कि, वह मेरा कार्य सिद्ध करेगा–

कवित्त–लंकको जरायो और सीताको बचाय दियो आंच नाहिं आई विभीषणके मकानको ॥ लगते ही शक्तिके लखन गिरे पृथिवी पै ओषधिको भेजो राम वीर बलवानको ॥ मिली ना सजीवन तो पर्वत उठाय लाये लखन जिवायो शिर नायो भगवानको ॥ दुष्टनके भक्षक रक्षक हरिभक्तनके मोको तो भरोसो उन्न वीर हनुमानको ॥

उसी समय पुरवाई पवनसे पछाहियां पवन होगई और सेठजीका घर छोडकर पवन पीछेको लौटी और सैकडों घर फूक दिये, देखो किस किसकी आशा थी और कौन कौनसें घर जल गये, ऐसे हो प्राणियोंके जन्म मरणका कारण भी विचारमें नहीं आता ॥

समेत देवकीको लेकर अपने घर आये ॥ ५५ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवानको पूजनेवाली देवकीने समय पाकर आठ पुत्र और एक कन्या एक एक वर्षके उपरांत उत्पन्न किये ॥ ५६ ॥ प्रथम कीर्तिमान् पुत्र हुआ, उसको वसुदेवजी बडे कष्टसे कंसके पास ले गये, क्योंकि मिथ्या बोलनेसे वसुदेवजी बहुत डरते थे ॥ ५७ ॥ अपने वचनोंका निर्वाह करनेवाले पुरुष ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका सहन नहीं कर सकते ? देखो वसुदेवजीने अपने पुत्रको अपने हाथसे मृत्युके मुखमें दे दिया. एक परमेश्वरके सिवाय कोई पदार्थ सत्य नहीं है, ऐसे समझनेवाले मनुष्योंको किसी बातकी अभिलाषा नहीं रहती, इसलिये वसुदेवजीने पुत्रके लाड़ प्यारको पहिले ही त्यागः दिया, क्योंकि विद्वानपुरुषोंको सिवाय सत्यके और किस वस्तुकी अपेक्षा है ? और वसुदेवजीने यह भी नहीं समझा था

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता॥पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमंतं प्रथमजं
कंसायानकदुंदु भिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥५७॥ किं दुस्सहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ॥
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥५८॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ॥ कंसस्तुष्टमना
राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥५९॥ प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ॥ अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः
किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुंदुभिः ॥ नाभ्यनंदत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥

कि, मैं पुत्रको आप ले जाऊंगा तो कंस दया करके न मारेगा, यह बात वसुदेवजीके मनमें सैकडों कोसतक भी नहीं थी, क्योंकि दुष्टजन कौनसी बात नहीं कर सकता ? कंससे दुष्टके मनमें दया कब आ सकती है, कोई कहे पहिले पहिल तुरतके जन्मे पुत्रको देवकीने कैसे दे दिय ? देवकीने समझा कि, जिसका काल नहीं उसको मारनेवाला कोई नहीं और जो मार भी डाले तो ऐसे पुत्र बहुत होंगे. मेरे सच्चे पुत्र तो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंद वैंकुठविहारी भक्तहितकारी हैं, यह समझ कंसको दे दिया ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! वसुदेवजीकी समता और सत्यता देखकर अत्यंत प्रसन्नतासे कंस बोला कि ॥ ५९ ॥ इस बालकको अपने घर फेरकर ले जाओ, क्योंकि इससे मुझको कुछ भय नहीं है, तुम्हारे आठवें पुत्रसे मेरी मृत्यु निश्चित रची है ॥ ६० ॥ ऐसा ही होगा यह कह वसुदेवजी पुत्रको लेकर

अपने घरको चल दिये, परन्तु कंसके वचनका कुछ विश्वास नहीं किया, क्योंकि कंस क्षणिकबुद्धि है, उसका मन उसके वशमें नहीं है, अभी फेर दिया है, थोडी देरमें फिर मँगाले. जब यह बात नारदजीने सुनी कि वसुदेवजीका पुत्रकंसने फेर दिया, उसी समय कंससे आकर कह ॥ ६१ ॥ व्रजमें नन्दजीसे आदि लेकर जो गोप ग्वाल हैं और वसुदेवजी आदि लेकर वृष्णि यादव और देवकीसे आदि लेकर यादवोंकी स्त्री ॥ ६२ ॥ यह जो तुम्हारे समीपवर्ती हैं सो हे कंस! यह सम्पूर्ण वसुदेवजी और नंदजीके वशमें जाति, बन्धु, सुहृद् यह सब देवता हीं आकर प्रगट हुए हैं ॥ ६३ ॥ पृथ्वीपर जो दैत्यलोगोंका भार बढ़ा है, उसके उद्धारके लिये भगवान्ने अवतार लेनेके लिये यह उपाय रचा है, सो तुम जान लेना, फिर आठ लकीरें पृथ्वीपर खींचकर दिखाईं, इधरसे गिनी तो आठ आईं और उधरसे गिनी तो आठ आईं और बीचमें से गिनी तो भी आठ ही आईं तब नारदजीबोले कि, आठवा गर्भ इनमें कौनसा समझना चाहिये॥६४ ॥ इस प्रकार समझा बुझाकर नारदजी तो चले गये, तब कंसने यादवोंको देवता समझकर और देवकीके आठवें गर्भमें विष्णु भगवान् अवतार धारण करके मुझको मारेंगे यह निश्चय समझके ॥ ६५ ॥ देवकी और वसुदेवको बन्दीघरमें बन्द कर पांवोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकडी डाल दीं और जो २ इनके पुत्र हुए विष्णु भगवान्की शंका मान मँगवाकर मारता रहा ॥ ६६ ॥ संसारमें अपने प्राणोंकी रक्षा करनेवाले अभिमानी घातकी और लोभी राजा माता, पिता, भ्राता और मित्रोंको भी मार डालते हैं ॥ ६७ ॥ और कंस यह भी जानता था कि, मैं पहिले जन्ममें कालनेमि नाम एक बड़ा राक्षस था और विष्णुने मुझेको अपने हाथसे मारा था, सो अब मैं इस जन्ममें कंस हुआ हूँ, यही समझकर उसने यादवोंसे वैर

नंदाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया
उभयोरपि भारत ॥ ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसाय भगवाञ्शशंसाभ्येत्य नारदः ॥
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्या गर्भसंभूतं
विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥ देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ॥ जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशंकया ॥ ६६ ॥
मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ घ्नंति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥
आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं कालनेमिं यदुभिः सव्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

769

किया ॥६८॥ यदुवंशी, भोजवंशी, अन्धकवंशियोंके राजा उग्रसेन अपने पिताको कारागारमें डालकर महाबली कंस आप ही शूरसेन देशका राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कंसजन्मचरित्रवर्वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, कंस हतनहित देव । गर्भान्तर्गत देवकी, बिनवत विष्णु अभेव ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! प्रलम्बासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुकासुर ॥ १ ॥ असुरोंके राजा बाणासुर और भौमासुरको संगलेकर मगध देशके राजा जरासंध आदि अपने सम्बन्धियोंकी सहायतासे महाबली कंस यादवोंको अत्यन्त दुःख देने

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजांधकाधिपम् ॥ स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥६९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे श्रीकृष्णावतारहेत्वादिनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रलंबबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपांचालकेकयान् ॥ शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥ ३ ॥ एके तमनुरुंधाना ज्ञातयः पर्युपासत ॥ हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनंतं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

लगा ॥ २ ॥ यादवलोग कंसके भयसे दुःखित होकर कुरुदेश, पांचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह, कौशलादि देशमें जा जाकर वास करनेलगे ॥ ३ ॥ और बहुतसे अक्रूरादिक यादव कंसके आज्ञाकारी बन दिन रात उसकी सेवा करने लगे. जब कंसने देवकी के छः बालक मार डाले ॥ ४ ॥ तब विष्णु भगवान्की कलाशेषजी जिनका नाम कहते हैं, देवकीके गर्भमें स्थित हुए। यह गर्भ देवकीको हर्ष और शोकका बढानेवाला हुआ, क्योंकि आनन्दरूप भगवान्का अवतार होगा, इस बातका तो हर्ष और पहिलेके बालकोंके समान इस बालकको भी कंस मार डालेगा इस बातका शोक दिनरात रहता था ॥ ५ ॥ तब विश्वभावन भगवान्ने जाना

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नंदगोकुले॥अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु
वसंति हि ॥ ७ ॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥८॥ अथा
हमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नंदपत्न्यां भविष्यसि॥ ९ ॥ अर्चिष्यंति मनुष्यास्त्वां
सर्वकामवरेश्वरीम् ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥१०॥ नामधेयानि कुर्वंति स्थानानि च नरा भुवि ॥ दुर्गेति
भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च॥११॥कुमुदा चंडिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च॥ माया नारायणीशानी शारदे
त्यंबिकेति च ॥ १२ ॥ गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ॥ रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥
श्रीशुक उवाच॥ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥ १४ ॥

कि, मेरे प्रिय यादवोंको कंस बहुत दुःख देता है उस समय अपने नेत्रोंसे योगमायाको प्रगट करके उसको आज्ञा की ॥ ६ ॥ कि हे भद्रे ! हे देवि ! हे कल्याणरूपिणि ! जो ग्वाल और गौवोंसे शोभित व्रजभूमि है, तू वहां जाकर वसुदेवजीकी स्त्री रोहिणी नन्दरायजीके घर गोकुलमें है ॥ ७ ॥ और दूसरी वसुदेवजीकी स्त्रियें कंसके भयसे गुप्त स्थानमें वास करती हैं और देवकीके उदरमें मेरी कलारूप शेषनागजीने प्रवेश किया है, उनको वहांसे निकालकर रोहिणीके उदरमें पहुँचादे कि, इस बातको कोई दूसरा न जाने और सब लोग तेरा यश बखानें ॥ ८ ॥ हे मंगलरूपिणि ! जब तू गर्भको खींचेगी तो पीछे मैं परिपूर्ण रूपसे देवकीके पुत्रभावको प्राप्त हूंगा और तू नन्दरायजीकी भार्या यशोदाके उदरमें उत्पन्न होगी ॥ ९ ॥ हे कल्याणि ! तू पुत्रादिकोंकी कामना करनेवाले मनुष्योंकी:सब मनोकामना पूर्ण करनेवाली है और सब संसारके मनुष्य धूप, दीप, फल, फूलादिसामग्री और बलिदान भेंट कर कलियुगमें तेरा पूजन करेंगे और तू उनके सम्पुर्ण मनोरथ पूर्ण करेगी ॥ १० ॥ पृथ्वीपर मनुष्य तेरे स्थान, भवन और सुन्दर २ मन्दिर बनावेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी ॥ ११ ॥ कुमुदा, चंडिका, कृष्णा, माधवी-कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका यह नाम धरेंगे ॥ १२ ॥ गर्भके खींचनेसे संसारके लोग उस बालकका नाम 'संकर्षण' कहेंगे और जगत्को रमानेसे उनको 'राम' कहेंगे और महाबलशाली होनेसे उनको 'बलभद्र' कहेंगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान्

की आज्ञा पातेही उनकी परिक्रमा दे, वचनोंको स्वीकार करके पृथ्वीपर आकर वही कार्य किया और मोहिनी रूप बन मथुरामें वसुदेवके घर आई और जो गर्भ छिपाकर लाई थी उसे रोहिणीके उदरमें प्रविष्ट किया" और सब गोकुलवासियोंने यही जाना कि, पहिला ही आधान है, योगमायाका भेद किसीको प्रगट न हुआ, जब पूरे दिन हुए तो श्रावण सुदी चौदस बुधवारको बलदेवजीने गोकुलमें जन्म लिया और योगमायाने वसुदेव देवकीको स्वप्न दिया कि, मैंने तुम्हारे पुत्रको गर्भसे ले जाकर रोहिणीको दे दिया है, अब तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना. यह बात सुनते ही अचानक वसुदेव देवकी चौंककर सोतेसे जाग उठे और देवकी अपने पतिसे कहने लगी कि, यहकाम तो भगवान्ने बहुत अच्छा कर दिया. परन्तु कंसको इसी समय जाकर जता देना चाहिये, न जानिये कि, पीछे वह दुष्ट क्या उपद्रव मचावे। यह सोच समझकर

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया॥अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥
भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ॥ आविवेशांशभावेन मन आनकदुंदुभेः ॥ १६ ॥

रखवालोंको बुला सब वृत्तान्त कह दिया; उन्होंने ज्योंका त्यों कंसको जा सुनायाकि, हे महाराज ! आज देवकीका गर्भ पतित होगया. बालक पूरा नहीं हुआ. यह बात सुनते ही कंस अकुलाकर बोला कि; जो कुछ हुआ सो हुआ परन्तु अब आगेको तुम आठवें गर्भकी अच्छी चौकसी रखना, क्योंकि मुझको आठवें गर्भका हीबड़ा खटका है ॥ १४ ॥ और वह योगमाया देवकीके उदरसे बालकको ले रोहिणीकेउदरमें रख आई, तबसब पुरवासी मनुष्य पुकारकर कहने लगे कि, अबकी बार कंसने अपनी बहिन देवकीको ऐसा धमकाया कि, उसका गर्भ अधूरा ही गिर गया, बालक पूरा नहीं होने पाया ❀॥ १५ ॥ अपने भक्तोंको अभयदान देनेवाले विश्वात्मा

❀ **शंका**–रोहिणी और वसुदेवजीकी रीति प्रीति कुछ बहुत दिनोंसे नहीं थी और बलभद्र रोहिणीके गर्भसे जन्मे, तब लोकमें निन्दा और दुर्नाम्ता वसुदेव और रोहिणीकी क्यों नहीं हुई? और जो कोई कहा कि, योगमायाने सब काम किया, वह बात बहुत ठीक है परंतु संसारमें तो भगवान्के चरित्रको कोई नहीं जानता और योगमायाकी बातको तो करोडों मनुष्योंमें एक दो जानते हैं, फिर संसारके लोगोंके सन्देह कैसे दूर हो ?

उत्तर–एक समय पुष्करजीके स्नान करनेके लिये सब संसारके मनुष्य गये, तब कंस भी सब यदुवंशियोंको संग लेकर पुष्करजीको गया, कंसके संग वसुदेवजीभी पुष्करको गये और नंदादिक गोपोंकी रक्षासहित रोहिणी भी गई. वहाँ सबकी रीति प्रीति सबसे हुई. वसुदेव और रोहिणीकी भेट कंसके भयसे नहीं हुई, परंतु संसारके सब लोगोंने जान लिया कि, पुष्करमें वसुदेवजीसे रोहिणीकी भेंट होगई, इसलिये बलदेवजीके जन्मनेपर कोई भी वसुदेव और रोहिणीकी निंदा नहीं कर सका ॥

भक्तभावन भगवान् अपने परिपूर्णरूपसे वसुदेव देवकीके मनमें आकर प्रगट हुए॥ १६॥ वसुदेवजीके मनमें भगवान् आकर उपस्थित हुए, तब सूर्यके तेजके समान वसुदेवजीमें तेज होगया, उससमय कोई मनुष्य तेजके प्रकाशके मारे वसुदेवजीके सम्मुख न आवे, ऐसे तेजवान् वसुदेवजी होगये ॥ १७ ॥ फिर विश्वके कर्ता सर्वात्मा मूर्तिमान् जो कि देवकीमें पहिलेहीसे विराजमान थे, उनको वसुदेवजीने अपने मनसे देवकीके मनमें विराजमान किया, तब देवकीने भगवान्को भले प्रकार अपने मनसे अपने शरीरमें धारण कर लिया. जैसे पूर्वदिशा सर्वसुखदादायक चन्द्रमाको परमप्रेमसे अपने हृदयमें धारण करती है ॥ १८॥ जैसे घटके भीतर छिपे हुए दीपकका प्रकाश नहीं होता और ज्ञानवंचक पुरुषोंमें छिपी हुई विद्या दूसरे लोगोंको आनन्द नहीं दे सकती वैसेही सारे जगतके निवासस्थानरूप भगवानका निवासस्थानरूप होनेपरभी कंसके कैदखानेमें बंद

स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मंगलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनंदकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ॥ भोजेंद्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाऽजितांतरां विरोचयंतीं भवनं शुचिस्मिताम् ॥ आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ ॥२०॥ किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतंत्रो न विहंति विक्रमम् ॥ स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हंत्यनुकालमायुः ॥ २१॥

२३

होनेके कारण देवकी अधिक शोभाको प्राप्त न होती थी ॥ १९ ॥ अजितभगवान्के देवकीके उदरमें रहनेसे कुछ २ कांति झलकी, उस कांतिने बन्दीगृहको प्रकाशवान्कर दिया और सुन्दर रूपवाली देवकी मन्द मन्द मुसकाकर वसुदेवजीसे कुछ कह रही थी, उसी समय वहां कंस आ पहुँचा और गर्भका प्रकाश देखकर कंस अपने मनमें कहने लगाकि, मेरे प्राणोंका हरनेवाला हरिरूप सिंह निश्चय इसी उदररूप यमगुफामें आकर बैठा है, क्योंकि पहिले इस देवकीका इतना तेज नहीं था ॥ २० ॥ फिर तो कंस अपने मनमें अनेक प्रकारके विचार करने लगा कि, अब मैं शीघ्र इसके लिये क्या उपाय करूं ? यह तो देवताओंका कार्य करनेको आही पहुँचा, अब सब प्रकारसे मुझको निश्चय

होता है कि,यह अवश्य मुझको मारेगा, अब जो इस समय देवकीको मैं मारता हूँ तो संसारमें बड़ा अपयश होगा, क्योंकि एक तो स्त्रीकी जाति,दूसरे मेरी बहिन और उसपर भी फिर गर्भिणी, जो मैंने इसको मार डाला तो सब संसारमें मेरी अपकीर्ति होगी, दूसरे लक्ष्मी और आयुका नाशहो जायगा, महात्माओंके मुखसे मैंने ऐसा सुना है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य संसारमें दुष्टता करता है, वह जीते ही जी मृतकके समान है और उसके सम्मुखही लोग बुरा कहते हैं और बारम्बार धिक्कार देते हैं, निश्चय वह मनुष्य घोर नरकमें जाता है ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवसे बैर बांधकर पापरूप कंस आप मारनेको समर्थ(स्वतंत्र) था तो भी इस घोरतमभावसे आप ही निवृत्त हो भगवान्के जन्मकी बाट देखता रहा ॥ २३ ॥ जब बैंठते, उठते,सोते, जागते, भोजन करते और पृथ्वीपर विचरते, इंद्रियोंके ईश्वर भगवान्की ही चिन्तामें रहे और सब जगत्को भगवत्रूप ही देखता था ॥ २४ ॥ इतनेमें ब्रह्मा, महादेव, नारदादिक मुनि और ऋषियों समेत देवता और गन्धर्व लोग वहां आकर गर्भमें ही सर्व कामनाओंके पूर्ण करनेवाले भगवान् वासुदेवकी मधुर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ आप सत्यसंकल्प और सत्यपरायण हो.भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें पृथ्वी, जल, पवन; तेज, आकाश इन पञ्चभूतोंके कारणरूप हो और पञ्चभूतोंके विनाश होनेके समय आप ही अवशिष्ट रहते हो, समदृष्टि और मनोहर वाणीप्रवर्तक और ज्ञानियोंके प्रेरणा करनेवाले सत्यरूप आपही हो, हे नाथ ! सब हमआपकी शरण आये हैं ॥ २६ ॥ यह देह ब्रह्माण्डरूप आदिवृक्ष आपकी मायासे उत्पन्न होकर आपके ही आश्रय रहता है और आप इसकी रक्षाके लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं उस वृक्षका आधार एक माया है । उसमें दो फल हैं

स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यंतनृशंसितेन॥देहे मृते तं मनुजाःशपंतिगंता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥
इति घोरतमाद्भावात्संनिवृत्तः स्वयं प्रभुः ॥आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबंधकृत् ॥२३॥आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुंजानः
पर्यटन्महीम् ॥ चिंतयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥२४॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ॥ देवैः
सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥देवा ऊचुः॥सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनि निहितं च सत्ये॥सत्यस्य
सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पंचविधः षडात्मा ॥सप्तत्व
गष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

सुख और दुःख। उसकी तीन जड़ें है, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुग। उसमें चार रस हैं–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। उसमें पाँच अंकुर हैं, जिनसे ज्ञान होता है नेत्र, रसना, नाक, कान, त्वचा। उसके छः स्वभाव हैं क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह, उसमें सात प्रकारकी छाल हैं वसा, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा, रेत. उसीकी आठ शाखा हैं. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार. उसमें नौ खखोडल अर्थात् छिद्र हैं. नेत्र दो, मुख, कान दो नाकके दो, छेद, उपस्थ और गुदा. उसमें दश पत्ते हैं प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय. उसपर दो पक्षी रहते हैं. जीव और ईश्वर. यह देहरूप वृक्ष है. कभी यह उपजता है, कभीकटता है, ऐसे ही यह देह कभी जन्म लेता है, कभी मरताहै ॥२७॥ इस संसारके उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले आप ही हो। यह जगत् आपसे भिन्न नहीं है, आपकी मायाके वशीभूत हो जिनके चित्त भूल रहे हैं, वह लोग जगत्को आपसे भिन्न देखते हैं और आपको नानाप्रकारका जानते हैं और जो ज्ञानी

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं संनिधानं त्वमनुग्रहश्च। त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यंति नाना न विपश्चितो ये
॥ २८॥ बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य। सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः
खलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यंबुजाक्षाखिलसत्त्वधामनि समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वंति
गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥ स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ॥ भवत्पदांभोरुहनावमत्र
ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥

पुरुष हैं वह आपको एक ही रूप मानते हैं ॥ २८॥ हे प्रभो! एक रूप जो आप हो, सो ब्रह्मा बनकर जगत्को उत्पन्न करते हो, विष्णु बनकर रक्षा करते हो और शिव बनकर संहार करते हो. सत्त्वगुणसे संयुक्त सत्पुरुषोंको सुख देते हो और अधार्मियोंको दण्ड देनेवाले जो रूप हैं उनके लिये उनको धारण करते हो ॥ २९ ॥ हे कमलदललोचन! समस्त जीवोंके जीवन आधार आप ही हो, इसीसे आपके विषे ज्ञानी पुरुष समाधि द्वारा चित्तको लगाकर. महत्पुरुषोंकी सिद्ध करी हुई आपके चरणकमलरूप नौकाके आश्रयसे इस संसाररूप महासागरको अवगाहन करके बछडेंके खुरके समान समझकर पार उतर जाते हैं ॥ ३०॥ हे स्वयंप्रकाश! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस महाभयंकर दुस्तर संसार समुद्रको पार उतरनेकेलिये भजन, भावना और सम्प्रदाय यह जो आपके चरणकमलरूपी नौका हैं, उसको और दूसरे महात्माओंकेपार उतरनेको छोडगये

और आप भी पार उतर गये. हे प्रभो ! आप अपने भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले हो ॥ ३१ ॥ हे कमलनयन ! जो ज्ञानीपुरुष अपने आपको जीवन्मुक्त मानते हैं वह आपके चरणारविन्दके विषे भावना नहीं रखते. इसीसे अशुद्धबुद्धि बने रहते हैं और बडे बडे कष्ट सहकर उच्च पदको प्राप्त होते हैं. सो वह उच्चपद किसको समझते हैं, उत्तम कुलमें जन्म होना और परिश्रम करके शास्त्रोंका पढ़ना, इनको ही उच्चपद जानते हैं, आपके चरणारविन्दकी भक्तिका निरादर करते हैं और फिर पीछे विघ्नोंसे पराभव पाकर नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं ॥ हे माधव! जो पुरुष आपके ही चरणोंमें प्रीति रखते हैं और आपके दास कहलाते हैं वे अपने मार्गसे कभी भ्रष्ट नहीं अर्थात् इन लोगोंको उन मिथ्याज्ञानियोंकी नाईं किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता, वरन् हे प्रभु ! आपके भक्त आपसे रक्षित होनेके कारण निर्भय होकर बडे २ भारी भयंकर विघ्नोंके माथेपर पाँव धरकर सदा संसारमें घूमते रहते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे प्रभु ! आप विश्वकी रक्षा करनेके समय सब प्राणियोंके पालनके लिये और शुभकर्मोंके फल देनेके लिये शुद्ध सत्त्वगुण स्वरूप धारण करते हो. जिस स्वरूपसे ब्रह्मचारी वेदपाठसे, गृहस्थ कर्मयोगसे, वानप्रस्थ तपस्यासे, संन्यासी समाधिसे, सब अपनी अपनी प्रीतिसे आपका पूजन करते हैं. हे प्रभु ! जो आप संसारमें अवतार न लेते तो आपका पूजन बनना भी कठिन था, क्योंकि आपके सुन्दर स्वरूपकी मूर्तिमें भक्तोंका मन लगा रहता है ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! आपका सत्त्वगुण मूर्तिमान् सुन्दर स्वरूप प्रगट न होता तो अज्ञानका नाशक विज्ञान जो आपका प्रेरण किया हुआ बुद्ध्यादिक गुणोंको प्रकाशना है वह कैसे होता और आपही सब प्रकारसे उन गुणोंके साक्षी हैं और ऐसे ही इन्द्रियोंके प्रकाश

येऽन्येऽरविंदाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतंत्यधोऽनादृतयुष्मदं
घ्रयः ॥३२॥ तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यंति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाभिगुप्ता विचरंति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥३३॥ सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान्स्थितौ शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः ॥ वेदक्रियायो
गतपस्समाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदाऽपमार्ज
नम् ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥

---

१ कवित्त–बनेहैं आचारी कोई कमधुरधारी ध्रुव कोई उपकारी बड कोई निर्विकारी हैं ॥ काई वडे पण्डित विरागसे न खण्डित अदण्डित अवनिमें उदण्डित उचारी हैं ॥ कोई षट शास्त्र पढै वाद औ विवाद बढै कोई कुकाव्य गडे दया मढे मारी हैं ॥ छाके नाहिं सीके पदि प्रमरस पीके नकि फ्या फिरे जांके जीके फीके सुखकारी हैं ॥

से आपके स्वरूपका अनुमान होता है, परन्तु आपका स्वरूप नेत्रोंके द्वारा प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान ! इस विश्वके परिपूर्ण साक्षी आप ही हो और आपके नाम, गुण, कर्म, जन्म वर्णन करनेमें नहीं आते, मन वाणीके निरूपणसे आपके स्वरूपका वर्णन नहीं होता, हे प्रभु ! तो भी जो आपके भक्तजन हैं सो ध्यान और उपासनामें आपके मनोहर स्वरूपका साक्षात् दर्शन करते हैं॥ ३६॥ हे मंगलरूप ! आपके जो मंगलरूप नाम हैं उनको कानोंसे सुनते हैं, जिह्वासे उच्चारण करते हैं और दूसरे मनुष्योंको सुन्दर सुन्दर आपकी कथा सुनाते हैं, स्मरण करते हैं और पूजनादिक क्रियाओंमें और आपके चरणारविन्दोंमें जिन मनुष्योंका मन लग रहा है फिर संसारमें उनका जन्म मरण नहीं होता॥ ३७ ॥ हे ईश ! आपके अवतार लेनेसे और आपके चरणारविन्द पृथ्वीपर रखनेसे भूमिका भार सब एक बार ही दूर हो जायगा यह बडे आनन्दकी बात है कि, आपके छोटे छोटे चरणारविन्द पृथ्वीपर जब पडेंगे और उनका हम दर्शन करेंगे तो आप अपने वैकुण्ठधामको जानकर पृथ्वी और स्वर्गपर कृपादृष्टि करोगे और उसकोहम अपने नेत्रोंसे देखेंगे उस समय महामंगल होगा॥ ३८॥ हे भगवन् ! आप जो जन्मरहित हो सो आपके जन्म लेनेका कारण सिवाय क्रीडा और विनोदके दूसरा और कोई हमारी समझमें नहीं आता. हे नित्यमुक्त ! प्राणियोंका भी जन्म मरण और पालन केवल आपके स्वरूपको न जाननेसे होता है, यह अविद्या ही जन्म मरणका मुख्य कारण है॥ ३९॥ हे भक्तवत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वाराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम, वामनादि रूपधरकर आपने जिस प्रकार त्रिलोकीकी और हम लोगोंकी पहिले रक्षा की थी, उसी प्रकार

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियंत्यथापि हि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिंतयन्नामानि रूपाणि च मंगलानि ते ॥ क्रियासु यस्त्वच्चरणारविंदयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्यांकितां त्वत्पदकैस्सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकंपिताम् ॥ ३८ ॥ न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोद बत तर्कयामहे॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयाऽऽत्मनि ॥३९॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वंदनं ते ॥ ४० ॥

अब सब पृथ्वीका भार उतारो. हे वैकुण्ठविहारी ! हमारा आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ अब सब देव देवकीसे कहते हैं कि, हे माता ! हमारा कल्याण करनेके लिये साक्षात् परम पुरुषभगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे तुम्हारी कोखमें आये हैं, यह बडा आनन्द हुआ. अब कंसभी इनके ही हाथसे मारा जायगा. हमको निश्चय है. तुम किसी प्रकार मत डरो. तुम्हारा पुत्र सब यादववंशकी रक्षा करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जिनका स्वरूप कहनेमें नहीं आवे ऐसे जो परमपुरुष भगवान् हैं, उनकी इस प्रकार यथावत् स्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजीको आगे करके सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां गर्भस्तुतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दिष्ट्यांब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ॥ मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे ब्रह्मादिकृतगर्भगतविष्णुस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शांतर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ मही मंगलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥

दोहा—इस तृतीय अध्यायमें, प्रगट भये व्रज चन्द । हरिको ले वसुदेवजी, गे गोकुल गृह नन्द ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके प्रगट होनेका समय आया वह समय सर्वगुणसम्पन्न परमशोभायमान होगया और सुधाकर रोहिणी नक्षत्रपर आगया । शान्तियुक्त शुभ ग्रह तारागण हो गये ॥ १ ॥ दशों दिशा प्रसन्नचित्त होगईं, आकाश निर्मल होगया, समस्ततारागण उज्ज्वल उदित हुए, पृथ्वी परममंगलरूपिणी होगई. पुर, नगर, ग्राम, व्रज, आकर, वन, वाटिका अत्यन्त रमणीक शोभायमान दृष्टि आनेलगे ॥ २ ॥

---

* कवित्त—फेर देवकीसे सब देव अस बोले बैन, आदिपुरुष विश्वात्मा धाम है अशोकको ॥ जगत्को निवास सो निवास तेरी कुक्षीमाहिं, त्रास न राखेको सब देवनके शोकको ॥ जननी जगत मातु धैर्य धरो धैर्य धरो, कंसकाल आय गयो काम नाहीं शोकको ॥ यदुवंशपालक व दुष्टकुलघालकसो, है तुव बालक जो मालिक त्रिलोकको ॥

नद नदियोंका जल स्वच्छ और शीतल हो गया, तालोंमें कमल कमलिनी खिलने लगे, भ्रमर उन सुन्दर सुन्दर सुगंधित पुष्पोंकी सुगंधि सूँघ सूँघकर उन्मत्त हो गुंजारने लगे, वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलने लगे ॥३ ॥ सुखदायक शीतल, मन्द, सुगंध सनी पवन बहने लगी, ब्राह्मणोंके होमकी अग्नि शान्त प्रज्वलित होगई॥४॥ सिवाय कंसादिक राक्षसोंके सब महात्माओंके मन प्रसन्न हो गये, स्वर्गमें भगवान्‌के अवतारसूचक दुन्दुभी बजने लगे ॥ ५ ॥ किन्नर, गन्धर्व भगवान्‌का यश गान करने लगे. सिद्ध, चारण स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियें और अप्सरा नृत्य करनें लगीं ॥६ ॥ मुनि और देवता व्रजपर पुष्पोंकी वर्षा करनें लगे, समुद्र आनन्दमें भरकर

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगंधवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शांतास्तत्र सामिंधत ॥४॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुंदुभयो दिवि ॥ ५ ॥ जगुः किन्नरगंधर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥६॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ॥ मंदं मंदं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशींदुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतं बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीतांबरं सांद्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुंडलं त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुंतलम् ॥ उद्दामकांच्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥

लहरें लेने लगा. मेघ मन्दमन्द शब्दसे गर्जने लगे, चपला क्षण क्षणमात्रमें चमकने लगी ॥ ७ ॥ इस प्रकार भादों वदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें आधी रातके समय देवतारूपिणी देवकीकी कोखमें सर्वान्तर्यामी भक्तभावन भगवान् साक्षात् अपने रूपसे प्रगट हुए जैसे आधी रातके समय पूर्वदिशामें पूर्णमासीका चन्द्रमा उदित होता है ॥ ८ ॥ कमलसदृश नेत्रोंवाले, चार भुजाधारण किये; शंख; चक्र, गदा, आयुध उठाये; श्रीवत्सचिह्न धारण किये; गलेमें शोभावाली कौस्तुभ मणि धारण किये; पीताम्बर धारण किये, सघन श्याम मेघके सदृश॥ ९ ॥ महँगे मूल्यकी

वैदूर्यमणिसे जटित मुकुट कुंडलोंकी कांतिकरके देदीप्यमान केश धारण किये, सुन्दर कांची बजूबन्द कंकण आदिकों करके शोभायमान, ऐसे अद्भुत बालक श्रीकृष्णको वसुदेवजी देखते भये ॥ १० ॥ विष्णु भगवान्‌को अपना पुत्र जान आश्चर्यसे वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित हो गये और मनमें धैर्य धर इसी समय दशसहस्र गोदानका मानसिक संकल्प ब्राह्मणोंको देनेके लिये किया ॥ ११ ॥ हे भारत ! हे अभिमन्युकुमार ! उस बालककी कांतिसे प्रसूतिकागार ऐसा प्रकाशमान हो रहा था कि किञ्चिन्मात्र भी अन्धकार नहीं रहा. वसुदेवजी पुत्रको परब्रह्म परमात्मा समझकर इनके प्रभावको देख शुद्ध बुद्धिसे हाथ जोड़, शिर झुकाय, निर्भय होकर इनकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! आपको मैंने भलीभाँति जाना, आप मायासे परे साक्षात् परमपुरुष हो, केवल अनुभव और आंनद ही आपका स्वरूप है और सम्पूर्ण जनोंकी

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोकयानकदुंदुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥ अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नतांगः कृतधीः कृतांजलिः ॥ स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयंतं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानंदस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ॥ तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥ नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयंति हि ॥ १५ ॥ सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यंतेऽनुगता इव ॥ प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ १६ ॥

बुद्धिके द्रष्टा हो ॥ १३ ॥ मैं भलीभाँति जानता हूँ कि, आप वही हैं जिन्होंने पहले अपनी मायासे सत्त्वगुण, रजोगुण तमोगुण, रूप यह विश्व रचा है, आप इसमें प्रविष्ट नहीं होते और सद्रूपसे प्रविष्टसदृश देखनेमें आते हो ॥ १४ ॥ जैसे महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह सातो पदार्थ; पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेंद्रिय और ग्यारहवाँ मन, पञ्च महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन सोलह विकारोंके संग मिलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचते हैं और पृथक् पृथक् ब्रह्माण्डके उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १५ ॥ और उत्पन्न होनेके उपरांत ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट होकर जैसे जाननेमें आते हैं, यथार्थ रीतिसे प्रथम कारण रूपसे प्रविष्ट ही थे, इसकारण उत्पन्न

हुए कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश होना सम्भव नहीं हो सकता, तैसे ही आपका प्रवेश पीछेसे सम्भव नहीं॥१६॥ ऐसे ही आपके रूप बुद्ध्यादिक इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आते, विषयोंमें अपार हो परंतु विषयोंके साथ आप ग्रहण करनेमें नहीं आते, जैसे एक दूधमें शब्द, स्पर्शादि पांचो वस्तु हैं परन्तु नेत्रोंसे रूप ही देखनेमें आता है, रसका ज्ञान नेत्रोंसे किसी प्रकार नहीं हो सकता, ऐसे विषयोंके ग्रहणमें आपका ग्रहण नहीं हो सकता. परिछिन्न पक्षीका घोसलेमें प्रवेश होता है, आप अपरिछिन्न हैं इसलिये आपके स्वरूपमें बाहिर भीतरका भेद नहीं है. गर्भमें आप कब रह सकते हो, आवरण करके रहित हो, सर्वस्वरूप हो, सर्वात्मा हो, सर्वव्यापक हो और परमार्थ वस्तुरूप हो ॥ १७ ॥ आत्माके जो दृश्य गुण देहादिक हैं उनको आत्माके विना जो पुरुष सत्य मानते हैं वह निरे अज्ञानी हैं. विचारके देखो तो कथनमात्र विना देहादिक सब

एवंभवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैस्सन्नपि तद्गुणग्रहः॥अनावृतत्वाद्बहिरंतरं न ते सर्वस्यसर्वात्मनआत्मवस्तुनः ॥१७॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ॥ विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥१८॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदंत्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यंते गुणैः ॥१९॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य विश्वस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाऽखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥

झूंठे ही हैं इसलिये झूंठे देहादिकोंको जो पुरुष सत्य मानते हैं वह अज्ञानी हैं ॥१८॥ हे विभो ! निरीह, निर्गुण, निर्विकार आप ही हो.आपसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति,पालन, संहार होता है, आप ही ईश्वर और ब्रह्मस्वरूप हो,इसी लिये आपमें कुछ विरोध नहीं है, आपका आश्रय लेकर तीनों गुण ही विश्वको रचते हैं इसी लिये आपका नाम कर्त्ता है॥ १९॥आप अपनी मायासे सृष्टिके पालनके लिये सत्त्वगुणी शुक्लवर्ण विष्णुरूप धारण करते हो और जगत्की उत्पत्तिके समय रजोगुणी रक्तवर्ण ब्रह्मादिरूप धारण करते हो और विश्वके संहारके समय तमोगुणी कृष्णवर्ण रुद्ररूप धारण करते हो ॥ २० ॥ हे सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण ! हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! आप इस विश्वका पालन करनेके लिये मेरे घरमें उत्पन्न हुए हो

और क्षत्रिय जिनका नाम, ऐसे करोडों असुरोंके समूह जहाँ तहाँ चलायमान हो रहे हैं उनका विध्वंस करोगे ॥२१॥ हे देवेश ! उस दुष्ट कंसने तुम्हारे जन्मका वृत्तान्त हमारे घरमें सुनके आपके बहुत भ्राता मार डाले हैं, अभी जो कोई मनुष्य उस दुष्टसे कहदेगा कि, आपका अवतार हुआ तो वह सुनते ही शस्त्र हाथमें लेकर यहाँ चला आवेगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब इस प्रकार वसुदेवजी स्तुति कर चुके तब पीछे देवकी पुत्रमें महापुरुष भगवान्‌के सब लक्षण जानकर और मधुर मुसकान देख कंसके भयसे धीरे धीरे पुत्रकी स्तुति करने लगी ॥ ॥२३॥ अनादि व्यापक ज्योतिस्वरूप निर्गुण निर्विकार सत्तामात्र दिव्यगुणराशि निर्विशेष और चेष्टारहित जो तुम हो सो वह स्वरूप किसीके जाननेमें नहीं आता, वेद आपके स्वरूपका वर्णन करते हैं, सो तुम ज्ञानके प्रकाश करनेवाले साक्षात् विष्णु भगवान् हो ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माजीकी सौ १०० वर्षकी अवस्था होती है उस समय प्रलयकालमें सब लोक नष्ट होजाते हैं. पंचमहाभूत अपनी अपनी तन्मात्राओंमें मिल जाते हैं और तन्मात्रा प्रधानमें लीन हो जाती है, प्रधानके जाननेवाले उस समय केवल एक आप ही अजन्मा अवशिष्ट रह जाते हो ॥२५॥ हे मायाप्रेरक ! यह जो काल है इसको आपकी माया वर्णन करती है. इसी कालसे विश्व होता है; पलसे आदि लेके जिसकी वर्षतक गणना है यह परार्द्धरूपसे बड़ा है, ऐसे आप निर्भयरूप हो, सो मैं आपकी शरणागत हूँ ॥ २६ ॥ हे आदिपुरुष ! सब मनुष्य मृत्युरूपी सर्पके भयसे

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहेश्रुत्वाग्रजांस्तेन्यवधीत्सुरेश्वर॥स तेऽवतारं पुरुषैःसमार्पितंश्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥
॥२२॥श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥२३॥
देवक्युउवाच ॥ रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ॥ सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षा
द्विष्णुरध्यात्मदीपः॥ २४ ॥ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवा
नेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥ योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबंधो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वत्सरांतो
महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्सर्वाँल्लोकान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ॥ त्वत्पा
दाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥

सब लोकोंमें भागे भागे फिरते हैं और उनको बैठनेके लिये निर्भय स्थान कहीं नहीं मिलता, जब किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे आपके चरणारविन्दका आश्रय मिल जाता है तब उस निर्भय स्थानको प्राप्त करके निर्भय होकर सो रहता है, फिर मृत्यु भी उसके निकट नहीं आती, दूरसे दूर भागती है ॥२७॥ महाभयानक स्वरूपवाला उग्रसेनका पुत्र जो कंस है उससे हम अत्यन्त भयभीत हैं, सो उस दुष्टसे आप हमारी रक्षा करो. भक्तोंके भय दूर करनेवाले और जाननेवाले ध्यान करनेके योग्य आप भगवान् स्वरूप हो, अब आप अपने इस श्यामसुन्दर स्वरूपको चर्मचक्षुवालोंको मत दिखाओ॥२८॥ हे मधुसूदन ! आपका जन्म जो मेरे यहां हुआ है इस बातको यह पापी कंस न जानने पावे, क्योंकि अधीरचित्तवाली स्त्री जाति जो मैं हूँ सो आपके कारण उस कंसके भयसे अत्यन्त भयभीत हूँ॥२९॥ हे विश्वात्मक ! शंख, चक्र, गदा,

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान्भृत्यवित्रासहाऽसि॥रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडंबनं हि तत्॥ ३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ॥ सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥

पद्मसे शोभायमान जो यह आपका चतुर्भुज और अद्भुत स्वरूप है इसको छिपा लो॥३०॥ यह जो जगत् प्रत्यक्ष कालमें दृष्टि आता है प्रलयकालके समय विना परिश्रम ही उस सब सृष्टिको आप अपने उदरमें धारण कर लेते हो. सो आप मेरे गर्भमें प्राप्त हुए हो, यह बडे हास्यकी बात है ॥३१॥ यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुसकाकर बोले कि, अहो मातः ! तुमको अपने पूर्वजन्मकी सुधि नहीं है, सो सुनो. स्वायंभुव मन्वन्तरमें पहिले तुम पृश्नि नाम थीं और वसुदेवजी उस समय पापरहित सुतपा प्रजापति थे॥ ३२ ॥ तब तुम दोनोंको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी, तब आपने इन्द्रियोंको रोककर बड़ा भारी तप किया ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, धूप, गर्मी, शीत इन सब कालोंके गुणोंका

ग्रहण किया और श्वास रोककर मनके मैलको दूर कर दिया ॥ ३४ ॥ सूखे पत्र और पवनका भोजन करके वर्षोंतक रहे और मुझसे वरदान प्राप्त करनेंके मनोरथसे आप दोनों जन शान्तचित्त हो मेरी आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥ हे मातः! तुम दोनों जोनोंने मुझमें चित्त लगाकर बड़ा भारी तप किया. तप करते करते देवताओंके बारह सहस्र वर्ष बीत गये ॥ ३६ ॥ हे निष्पाप! जब तुमने तप करनेके समय श्रद्धा भक्तिसे हृदयमें मेरा ध्यान किया, उसी समय इस देहसे तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तुम दोनोंके मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये मैं उसी समय इसी शरीरसे आपके सम्मुख आकर प्रगट हुआ और आपसे कहा कि, 'वर मांगो' 'वर मांगो' 'मर मांगो' तब आपने यह वरामांगा

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशांतेन चेतसा ॥ मत्तः कामानभीप्संतौ मदोराधनमीहतुः॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषाऽनघे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दंपती ॥ न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया॥ ३९॥ गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान्भोगानभुंजाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥ उपेंद्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥

हे भगवन्! जो आपके मनमें वर देनेकी इच्छा है और हमपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि, आपके समांन हमारे पुत्र हो ॥ ३८ ॥ संसारके विषयसुख आपने नहीं भोगे थे और कोई सन्तान भी नहीं थी सो आपने मेरी मायासे मोहित होकर मुक्ति नहीं माँगी ॥ ३९ ॥ उस समय मैंने तुमको मनोवांछित वर दिया कि, तुम्हारे मेरेही समान पुत्र होगा. तुमको यह वर देकर मैं अन्तर्धान होगया और तुम अपने मनोरथ प्राप्त करके विषयोंका सुखभोग भोगेने लगे ॥ ४० ॥ जब मैंने शील, उदारता इन गुणोंयुक्त अपने सदृश दूसरा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा, तब पृश्निगर्भ नामसे विख्यात होकर मैं ही आपका पुत्र हुआ ॥ ४१ ॥ फिर पीछे दूसरे जन्ममें आप कश्यप और अदिति हुए वहां भी मैंने

'उपेन्द्र' नामसे आपहीके घर आकर फिर जन्म लिया. हे जननि ! उस अवतारमें मेरा शरीर बहुत छोटा था, इसलिये मेरा नाम 'वामन' विख्यात हुआ ॥ ४२ ॥ फिर अब तीसरी बार उसी रूपसे आपके घर जन्म लिया है.हे मातः । मेरा वचन सत्य मानो. देखो तुमने एकबार वर मांगा. मैंने तुम्हारे घर तीन बार जन्म लिया ॥ ४३ ॥ पहिले जन्मका स्मरण करानेके लिये मैंने तुमको यहरूप दिखाया है, जो और प्रकारसे मनुष्यके बालकका रूप धरकर प्रगट होता तो तुम क्या जानते ? और तुमको कैसे विदित होता कि, परमेश्वरने हमारे घर आकर अवतार लिया ॥४४॥ अब आपकी इच्छा है, चाहे पुत्रभावसे मेरा सम्मान करो, चाहे ईश्वर जानकर मेरा ध्यान करो, मुझसे स्नेह करोगे तो परम भक्तिको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ (और जो तुमको कंसका यह भय है कि, मेरे इस पुत्रको भी वह दुष्ट मार डालेगा, तो तुम मुझको गोकुलमें

तृतीयेऽस्मिन्भवेऽहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगेन जायते ॥४४॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ॥ चिंतयंतौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥४५॥ (यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥१॥) ॥४६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥४७॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गंतुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नंदजायया ॥ ४८ ॥ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ॥ द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृंखलैः ॥ ४९ ॥

नन्दरायजीके घर पहुँचा दो और यशोदाके गर्भसे प्रगट हुई मेरी योगमाया है उसको इसी समय अपने घरको लेआओ ॥ १ ॥) ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह सब बातें समझा बुझाकर भगवान् चुप होगये और अपनी मायासे माता पिताके देखते साधारण बालक होगये ॥४७॥ भगवत्की प्रेरणासे वसुदेवजीने प्रसूतिकाघरमेंसे पुत्रको लेकर बाहिर निकलनेकी इच्छा की. उसी समय गोकुलमें नन्दरायजीकी स्त्री यशोदाके उदरसे योगमायाने जन्म लिया ॥ ४८ ॥ उस समय योगमायाने सब पुरवासी और द्वारपालोंका ज्ञान हर लिया, उसी समय सब निद्राके वशीभूत होगये, पावोंकी बेडी गिर पडीं । जब श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी चले तब द्वारोंके बेड बडे जो किवाँड थे

उनमें जो लोहेकी भारी भारी संकलें पडी थीं औंर ताले लग रहे थे, वह सब आपसे आप खुल गये, जैसे सूर्यनारायणके उदय होनेसे सर्वत्र अन्धकार दूर हो जाता हैऔर मन्द मन्द शब्दसे मेघ गर्ज गर्जकर बरसने लगे,आधीरात सायँ सायँ कर रही थी, अँधेरी झुक रही थी, मार्ग देखनेमें नहीं आता था,कभी कभी बीच बीचमें बिजली चमक जाती थी,उसके आश्रयसे धीरे धीरे चले जाते थे,परन्तु वर्षा इनके ऊपर नहीं होती थी,क्योंकि पीछे पीछे शेषजी महाराज फणरूप छत्रछायासे जलका निवारण करते थे॥४९॥५०॥उस समय मेघोंके वर्षनेसे यमुना ऐसी

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यंत यथा तमोरवेः ॥ ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ५० ॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गभीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ॥ भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिंधुरिव श्रियः पतेः ॥५१॥ नंदव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ॥ सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५२ ॥

चढ रही थी कि,कोसोंतक जल ही जल दिखाई देता था,पवनके वेगसे जलमें ऊंची ऊंची तरंगें उठती थीं और जलके घरघराहटका शब्द दूरतक सुनाई आता था.उस गम्भीरनीरमें महाभयानक सैकडों भँवर पडते थे,जैसे लंकाकी चढाइके समय श्रीरामचन्द्र महाराजको समुद्रने मार्ग दिया था,उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको मार्ग दिया ❋॥५१॥जैसे तैसे कर वसुदेवजी गोकुलमें पहुँचे और नन्दजीके द्वारपर जाकर देखा तो किवाँड

शंका-श्रीशुकदेवजी मुनिने राजा परीक्षितसे कहा कि, श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी जब गोकुलको चले तब भगवान्को समुद्रने सुखसे मार्ग दिया था उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको बडे सुखसे मार्ग दिया, हम बूझते हैं भला किस स्थानपर भगवान्को समुद्रने सुखसे मार्ग दिया ? यह बडी शंका है. जो कोई कहै कि, लंकाको जानेके समय रामचन्द्रको मार्ग दिया तो यह बात व्यर्थ है क्योंकि रामचन्द्रने बहुत दुःख सहकर समुद्रके शोषनेके लिये अग्निबाण धनुषपर चढाया तो त्रास मानकर आ मिला तो भी रामचन्द्र पुल बांधकर समुद्रके पार गये. सुखसे रामचन्द्रको समुद्रने नहीं जाने दिया ।

उत्तर-इस स्थानपर भगवान्को सुखसे मार्ग देता है कि.जब राजाबलिको दर्शन देनेके लिये वामनजी नित्यप्राति सुतल लोकको जातेहैं तब पातालके जानेका एक ही मार्ग है,दूसरा और कोई मार्ग नहीं । सो नित्य भगवान् वामनजीको समुद्र सुखकर मार्ग देता है इसवास्ते भगवान् व्यासजीने सुखसे समुद्रको पंथ देनेके लिये कहा ॥

खुले पडे हैं, भीतर घुसकर देखा तो सब नींदमें मतवाले पडे हैं और यशोदा मायाके मोहसे ऐसी बेसुध पडी थी कि, उसको कन्याके उत्पन्न होनेका भी ध्यान नहीं था. उसको सोती देखकर वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुला दिया और उसकी कन्याको उठाकर अपनी राह ली ॥५२॥ और उसी बन्दीगृहमें आकर कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और आपने उसी प्रकार पांवोंमें बेडी और हाथोंमें हथकडी पहन लीं और उसी भांति बैठ गये वसुदेवजीको देख देवकी बूझने लगी कि, स्वामी ! कुशलपूर्वक गोकुलमें पहुँचे ? पुत्र तो आनंदसे है ? वसुदेवजीने कहा सब नारायणकी कृपा है॥ ५३॥ उसी समय यहां गोकुलमें नन्दरायके घर यशोदाजीके मनसे जब माया हटी तो जाना कि, मेरे कुछ बालक हुआ, परंतु कुछ परिश्रम और कष्ट न पडा, क्योंकि योगमायाने पहिले ही स्मृति भुलाकर नींदके वश कर दिया था

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः॥५३॥ यशोदा नंदपत्नी च जातं परमबुध्यत॥न तल्लिंगं परिश्रांता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥५४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेदशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ श्रीशुकउवाच ॥ बहिरंतः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः॥ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः॥१॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते॥ २॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥

और यह भी कुछ ज्ञान नहीं रहा कि, मेरे पुत्र हुआ या कन्या५४॥ इतिश्रीभाषाभागवते महापुराणेउपनाम-शुकसागरेदशमस्कन्धेतृतीयोऽध्यायः॥३॥

दोहा-चौथे चण्डीवचन सुन, अतिसभीत भयो कंस । मंत्रिनसहित विचार कर, कियो बालविध्वंस ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! बाहिर भीतरके द्वार उसी प्रकार बन्द होगये, कन्या रो उठी बालकका रोना सुन सब रखवाले सावधान हो तोपें बंदूकें छोडने लगे, हाथी चिंघाडने लगे, सिंह दहाडने लगे, भादोंकी अँधेरी झुकरही, मेघ बरस रहा था॥ १॥ सब चौकीदार और द्वारपाल पुकारते हुए उसी समय कंसके पास दौडे गये और जाते ही देवकीके बालक होनेक समाचार सुनाया जो कंस उद्विग्न मनसे आठवें गर्भका मार्ग जोह रहा था॥ २ ॥ सुनते ही कंस घबराकर यह कहता उठखडा हुआ, क्या मेरा कालरूप बालक उत्पन्न हो गया ? खुलेबाल, गिरता पडता; ठोकरें खाता, कांपता हुआ

खड्ग हाथमें ले प्रसूतिकाभवनकी ओरको दौडता आ बहनके पास गया ॥ ३ ॥ देवकी कंसको देख दीन होकर करुणावचन बोली कि,
जिसके सुननेसे सबके मनमें अत्यन्त दया उत्पन्न हो; हे भ्राता ! हे कल्याणरूप ! यह पुत्र नहीं है, यह देवीरूप कन्या है, इसको मत
मार, क्योंकि यह तेरी भानजी है और जो कदाचित् यह जीती रहेगी तो मैं तेरे ही पुत्रके संग इसका विवाह कर दूँगी ॥ ४ ॥ हे भ्राता !
अग्निके समान तेजवाले मेरे सात पुत्र जो तैंने मारे हैं, वह ताप मेरे हृदयसे अभी नहीं गया. परंतु उसमें तेरा भी क्या दोष है, देवने तेरी बुद्धि भी
वैसी ही करदी. अब यह कन्या तो मेरा हृदय ठण्डा करनेको मुझे छोडदे ॥ ५ ॥ हे सामर्थ्यवान् ! तैंने बहुत पुत्र मेरे मारे, अब दया कर, मैं
तेरी छोटी बहन हूँ, महादीन हूँ, मन्दभागिनी हूँ, यह मेरी अन्तकी पेटपोछनी कन्या है, इसको तू मुझे अपनी करके देदे, जो मेरा थोड़ा बहुत
धैर्य बँधा रहे॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! देवकी इस प्रकार कंसकी विनती करकन्याको छातीसे लगाकर अति दीनकी नाईं रुदन

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती॥स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हंतुमर्हसि ॥४॥बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः
पावकोपमाः ॥ त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥५॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥दातुमर्हसि
मंदाया अंगेमां चरमां प्रजाम् ॥६॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपगुह्यात्मजामेवं रुदंत्या दीनहीनवत् ॥याचितस्तां विनिर्भ
र्त्स्य हस्तादाचिच्छिदेखलः ॥७॥ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलित
सौहृदः ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यंबरं गता ॥ अदृश्यताऽनुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥
दिव्यस्रगंबरालेपरत्ना भरणभूषिता ॥ धनुश्शूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥

करने लगी. देवकी दीन तो नहीं थी, क्योंकि मनमें अत्यन्त प्रसन्न थी कि, मेरा पुत्र तो और स्थानपर पहुँच ही गया और यह कन्या योगमाया
है, यह इस दुष्टसे किसी प्रकार मर ही नहीं सकती, तो भी देवकीके हाथसे उस दुष्टने कन्याको छीन ही लिया. देवकीने नम्र होकर बहुतेरी
प्रार्थना की, परन्तु उस दुष्टने न माना और कहा कि, इस कन्याको मैं कभी जीती न छोडूंगा क्योंकि जो इस कन्याके साथ विवाह करेगा
वह मुझको मारेगा॥ ७॥ यह कह अपने स्वार्थके सिद्ध करनेके लिये तुरन्तकी उत्पन्न हुई अपनी भगिनीकी कन्याका चरण पकड घुमाकर
शिलापर ज्यों ही पटकनेको हुआ॥ ८ ॥ उसी समय वह कन्या कंसके हाथसे छूट उसके माथेपर पाँव धर उछलकर आकाशको चली गई और
वहां प्रत्यक्ष देवीका दिव्य रूप देखनेमें आया अतिविशाल लाल लाल नेत्र, ललाटपर चन्दनका तिलक, कण्ठमें

पुष्पोंकी माला, सुन्दर शोभायमान वस्त्र, रत्नजटित आभूषण, आठ भुजा जिनमें, धनुष, त्रिशूल, ढाल, कृपाण, गदा, पद्म, शंख, चक्र आयुध लिये ॥९॥१०॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग यह बारम्बार बलिदान देते थे और प्रार्थना करते थे॥ ११॥ अरे अधम कंस! मेरे मारनेसे तेरे हाथ क्या आया? तेरे पूर्व जन्मका वैरी जो कि, तेरा मारनेवाला है वह पहिले ही और कहीं दूसरे स्थानमें जन्म ले चुका. अरे मूर्ख! बालकोंको मारकर और मुझको पटककर वृथा तैंने अपने शिरपर पापका भार धरा, तेरा मारनेवाला सर्पके समान है और तू दादुरके सदृश है, दादुरको इतना सामर्थ्य कहां है जो सर्पको निगलनेकी इच्छा करे. अब तू सावधान रहना. अब वह बहुत शीघ्र तुझको मारकर भूमिका भार उतरेगा॥ १२ ॥ इस प्रकार भगवान्की देवी योगमाया कंससे कहकर बहुत स्थानोंमें दुर्गा, भद्रकाली, भगवती, भवानी, महामाया नामसे संसारमें विख्यात हुई

सिद्धचारणगंधर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किं मया हतया मंद जातः खलु तवांतकृत् ॥ यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा॥१२॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ॥ बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥ तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥ सत्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ॥ काँल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ॥ यद्विस्रंभादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्शिशून् ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ इस प्रकार योगमायाका वचन सुनकर कंस अत्यंत विस्मित हुआ और वसुदेव देवकीको कारागारसे उसी समय छोड़ दिया और बेडी हथकडी उनके हाथपांवोंसे निकलवा दीं और विनय करके बहन बहनोईसे बोला कि॥ १४ ॥ अहो भगिनी! अहो भाम! मैं आपका बडा अपराधी हूँ, मुझ पापी अधर्मीने तुम्हारे संग बडा अनर्थ किया और अपने शरीरके सुखके लिये तुम्हारे छः बालक मारे जैसे कोई राक्षस अपने पुत्रोंको अपने हाथसे मारे और मेरा मनोरथ भी पूरा नहीं हुआ ॥ १५ ॥ देखो! मैं कैसा निर्दय और हत्यारा हूँ, अपने जातिवाले हितकारी और सम्बन्धियोंका संग मैंने छोड दिया. हाय! मैं महापापी नीच बुद्धि न जानिये कौनसे नरकमें जाऊँगा? ब्रह्मघातीकी नाईं मैं जीताही मृतकके समान हूँ, यह कलंक मेरा कैसे छूटेगा और मैं किस जन्ममें उद्धरूंगा॥ १६॥ कोई कहे कि, मनुष्य ही झूठ बोलते हैं, परंतु देवता भी झूठ बोलते

हैं, जिन्होंने कहा था कि देवकीके आठवें गर्भमें पुत्र होगा सो कन्या उत्पन्न हुई. हाय!मैंने झूठी आकाशवाणीके कहनेसे अपनी बहनके बालक मारे, मेरी क्या गति होगी ? ॥ १७ ॥ हे महाभागियो ! तुम अपने पुत्रोंके मरनेका शोक मत करो, यह प्राणी अपने कियेहुए कर्मोंका भोग भोगता है और दवाधीन है,सर्वदा एकत्र नहीं रह सकता.तुम समझना कि,हमारे पुत्रोंकी आयु इतनीही थी॥१८॥जैसे पृथ्वीके विकार घट पट इत्यादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और फूट फट जाते हैं.इनके होनेमें पृथ्वीको विकार नहीं आता,ऐसे ही यह देह जन्मता और मरता है.कुछ इसके संग आत्मा नहीं मरता जीता ॥१९॥ मूर्ख लोग ऐसे नहीं जानते, वह देहको ही आत्मा मानते हैं और देहको आत्मा माननेसे "मैं हूँ" "तू है" यह अनेक प्रकारसे बुद्धिभेद उत्पन्न होते हैं,इस भेदसे पुत्रादिकके देहसे योग वियोग होता है, इसीसे उनके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं

मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतं भुजः ॥ जतवो न सदैकत्र दैवाधीनाः सहासते ॥१८॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यांत्यपयांति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ॥ देहयोगवियोगौ च संसृति[illegible]निवर्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ॥ माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विंदतेऽवशः ॥ २१ ॥ यावद्धतोऽस्मि हतास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुमुखः पादौ श्यालस्स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विस्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥

होती ॥ २० ॥ हे मङ्गलरूपिणी ! मैंने तेरे पुत्रोंको मारा है तो भी तू उनका शोक सन्ताप मत कर,क्योंकि सब प्राणियोंको परतंत्रतासे अपने अपने कियेहुए कर्मोंका भोग भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ जबतक प्राणी अपने स्वरूपको नहीं जानता यह कहता है कि, मैं मारता हूँ और मैं मरता हूँ तबतक वह देहाभिमानी अज्ञानी पुरुष मरता है और मारता है ॥ २२ ॥ हे दीनदयालु ! हे सत्यवक्ताओ ! अब आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये,क्योंकि साधुजन दीनोंपर सदा दया ही करते हैं. यह कह आंखोंमें आंसू भरकर कंस वसुदेव देवकीके चरणोंमें गिर पड़ ॥२३॥और योगमायाने जो यह वचन कहा था कि तेरा मारनेवाला कहीं उत्पन्न हो गया, इस वाणीपर विश्वास आकर वसुदेव और देवकीके

पाँवोंकी बेडी कटवादी और सुहृदता और मित्रता अपनी जताने लगा ॥२४॥ हे देवकी ! अब मेरा अपराध क्षमा कर, देवकी अपने भ्राता कंसको अत्यंत व्याकुल देखकर बोली कि, हे भय्या। मैंने तेरा सब अपराध क्षमा किया. तू मत डर यह कह उसकी आंखोंसे आंसू पोछने लगी और वसुदेवजी भी उससे शत्रुता तजकर मुसकराकर बोले ॥२५॥ हे महाभाग कंस ! जैसे तुम कहते हो वैसे ही है. देहधारियोंको अज्ञानसे अहंकार होता है, इसी अहंकारने मेरा तुम्हारा परस्पर भेद कर दिया ॥ २६ ॥ शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह जिनको लग रहे हैं वह मनुष्य इन छवोंसे आप ही मरते हैं उनको कौन मारता है? वह उन्मत्त पुरुष यह नहीं जानते कि, परमेश्वर ही पदार्थोंसे पदार्थोंका परस्पर नाश करता है और उस परमात्माको नहीं देखते और अज्ञानी पुरुष मैं मरता हूँ, मैं मारता हूँ, ऐसे मानते हैं॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् !

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षांत्वा रोषं च देवकी ॥ व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा
वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेतिभिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो
घ्नंतं न पश्यंति भावैर्भावं पृथग्दृशः॥ २७॥श्रीशुक उवाच ॥ कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ॥ देवकीवसुदे
वाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥ रात्र्यां तस्यां व्यतीतायां कंस आहूय मंत्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं
योगनिद्रया ॥ २९ ॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ॥ देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥३०॥एवं
चेत्तर्हि भोजेंद्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार प्रसन्न हो शुद्ध अन्तःकरणवाले वसुदेव देवकीसे आज्ञा लेकर कंस अपने राजभवनको गया ॥२८ ॥ और जैसे तैसे करके रात काटी प्रातःकाल होते ही कंसने अपने सब मंत्रियोंको बुलाया और जो कुछ योगमायाने कहा था कि 'तेरा मारनेवाला उत्पन्न हो गया है' वह सब वृत्तांत मंत्रियोंके सामने ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥२९॥ कंसके वचन सुनकर देवताओंके शत्रु, अविवेकी, देवताओंपर क्रुद्ध होनेवाले जो अघासुर, तृणावर्त्त आदिक मंत्री थे वह कंससे बोले कि ॥ ३० ॥ हे यादवेन्द्र ! जो ऐसा हो तोभी क्या चिन्ता है? आप कुछ सन्देह न कीजिये केवल इतना काम करो कि–पुर, ग्राम, खिरक इत्यादि जितने स्थान हैं, उनमें दश पांच दिनके भीतर जो बालक उत्पन्न हुए हैं उनको

779

मारनेकी हमको आज्ञा देदीजिये,हम आज ही सब बालकोंको बीन बीनकर मार आवेंगे,उनमें जो आपका शत्रु होगा वह भी मारा जायगा ॥३१॥ और जो देवता संग्रामके नामसे थरथर कांपते हैं वह आपके सामने क्या पराक्रम करेंगे ? आपके धनुषकी टंकार ही सुनकर निरन्तर व्याकुल रहते हैं ॥३२॥ जिस समय आप धनुषपर बाण चढ़ाकर चारो ओरको प्रहार करते हो,उस समय देवता अपने अपने प्राणोंको लेकर रणस्थलसे भाग जाते हैं और भाग जाना हीउनके लिये अच्छा है॥३३॥उनमें कोई कोई तो शस्त्र त्याग दीन बन हाथ जोडकर खडहो जाता है और कोई निकच्छ होकर शरणमें आता है और कहता है'हम हारगये, हम हारगये,हमको मत मारो ॥ ३४ ॥ आपके सामने रथ जिनके टूट गये, शस्त्र हाथोंमेंसे छूटगये, भयभीत हो भाग गये, युद्धसे विमुख, धनुष जिनके हाथोंसे गिर गये और जो संग्राम छोडकर बैठ रहे उनको तो आप मारते ही नहीं हो ॥३५॥ जहां कोई शूरवीर और युद्ध करनेवालेयोद्धा नहीं होते उस निर्भय स्थानमें बैठकर झूठा बकवाद करनेवाले देवताओंसे और जो क्षीरसागरमें शेषशय्यापर पडा दिन रात लक्ष्मीसे भोगविलास करता रहता है उसीके ध्यानमें नित्य मतवाला हो आलस्यके मारे कोई काम नहीं करता, उससे युद्ध कब हो सकता है जो आपके डरसे क्षीरसमुद्रमें छिपा हुआ पडा है उस लक्ष्मीकी आशा करनेवाले विष्णुसे, इलावृतखण्डकारहनेवाला जहां जाते ही पुरुष स्त्री होजाय,दिन रात पार्वतीके संग क्रीडा करनी और उसीके मोहजालमें मग्न रहनेवाला, विषके पीनेसे जिसका चित्त नित्य उद्विग्न रहता है ऐसे बावले बहुरंगे शिवसे क्या?॥३६॥तुच्छ पराक्रमी,किञ्चिन्मात्र विपत्ति पडनेसे देवताओंको साथ ले भगवान्के पास जाकर पुकार मचावै.आपने सुना ही होगा कि,हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु और रावणादिकअनेक असुरोंने उसकीकैसीरदुर्दशा की और बताओ आजतक किसको जीता,सदा घरबैठें ही वज्र घुमाता रहता है ऐसे असमर्थ इन्द्रसे क्या?रहा ब्रह्मा,वह दिन

किमुद्यमैः करिष्यंति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्य
मानाः समंततः ॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ कचित्प्रांजलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ॥
मुक्तकच्छशिखाः केचिद् केचिद्भीताः स्म वादिनः ॥ ३४ ॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ॥ हंस्य
न्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुग विकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शंभुना
वा वनौकसा ॥ ३६ ॥ किमिंद्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥
ततस्तन्मूलखनने नियुंक्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥

रात पूजा पाठमें लगा रहताहै. उसको अपने ही कामोंसे पलभरको सावकाश नहीं, फिर बताओ कि, इन लोगोंसे हमकोक्या भय है और कौन इनमें हमसे युद्ध कर सकता है ? परंतु तो भी वैरी ही हैं, न जानिये कलको क्या उपद्रव कर उठावें, क्योंकि शत्रुको और सर्पको छोटा न समझे, इसी लिये इन लोगोंको छोड़ना अच्छा नहीं. इस समय तो इनकी जड उखाडनेको हम उपस्थित हैं हम लोगोंको आज्ञा दीजिये ॥३७॥ जैसे बिना उपाय किये शरीरका रोग जड पकड जाता है, फिर पीछे उपाय करनेसे कुछ नहीं हो सकता, जैसे योगीजन पहिले इंद्रियोंसे विषय भोग करके फिर पीछे उनको रोकना चाहें तो फिर वह नहीं रुक सकतीं, ऐसे ही शत्रुको छोटा समझकर जो छोड देते हैं, फिर पीछे प्रबल होकर वह शत्रु जीतनेमें नहीं आता और जो कदाचित् जीत भी लिया तो बडी विपत्ति उठानी पडती है और बहुत दांत खट्टे होते हैं ॥ ३८ ॥ सब

यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेंद्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो
न चाल्यते ॥ ३८॥ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥
तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रा
गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः॥श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुर
द्विड् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ॥ अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मंत्रिभिः कंसः सह संमंत्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

देवताओंकी जड विष्णु है और विष्णुकी जड सनातन धर्म है और सनातनधर्मकी मूल गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा है ॥३९॥ हे राजन् कंस ! इसलिये वेदपाठी, तपस्वी, याज्ञिक, ब्राह्मण, यज्ञके उपयोगी और दूध देनेवाली गायोंको हम अवश्य मारेंगे ॥ ४०॥ गौ, ब्राह्मण, वेद, तप, सत्य, दम, शम; श्रद्धा, दया, क्षमा और यज्ञ सब विष्णु भगवान्के अंग हैं ॥४१ ॥ वह विष्णु सब देवताओंमें मुख्य, दैत्योंका द्रोही और सबके हृदयमें वास करनेवाला और ब्रह्मा, महादेवजी सबदेवता और ऋषियोंके मूल भी वही हैं, इसलिये ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंका मारना, यही विष्णुके मारनेका ठीक उपाय है ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! दुष्टबुद्धि कंस कालके फन्दमें

फसे हुएने इस प्रकार दुष्ट मंत्रियोंके साथ सम्मति करके ब्राह्मणोंको मारकर अपना कल्याण चाहा ॥ ४३॥ ※महापुरुषोंका कष्ट जिनको प्रिय, इच्छापूर्वक रूप धारण करनेवाले ऐसे असुरोंको सब देश विदेशोंमें साधुसंतोंके मारनेके लिये आज्ञा देकर भेज दिया और आप अपने राजमन्दिरको चला गया ॥ ४४ ॥ राजस, तामस स्वभाववाले दुर्बुद्धि अज्ञानसे जिनका अन्तःकरण आच्छादित हो रहा, मृत्यु जिनके शिरपर खेल रही, ऐसे ऐसे दैत्य साधुओंके विद्रोही होकर उनसे वैर करने लगे ॥ ४५ ॥ सत्पुरुषोंसे द्वेष रखनेवाले पुरुषकी आयु, धन, यश, धर्म,

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ॥ कामरूपधरान्दिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥ हंति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० कंसाज्ञप्तकृतबालादिहिंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥ आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ॥ कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥

परलोक, सुख, महात्माओंका आशीर्वाद और मंगल इन सबका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां कंसस्यानीति वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–पंचममें उत्सव अधिक, भयो नन्दकेभौन । मथुराको वसुदेवने, किये मिलनहित गौन ॥ १ ॥ हे राजन् ! पुत्रका जन्म होनेसे आनन्द सहित उदारचित्त नंदरायजीने उसी समय स्नान कर पवित्र हो पीतांबर पहन शृङ्गार करआसनपर जा विराजे ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुलाय स्वस्तिवाचन कराय, मोतियोंसे

※ शंका–कंसने राक्षसोंसे जिस ब्रह्मका बन्धन कराकर अपना कल्याण माना वह ब्रह्म कौन है ? क्योंकि सर्वव्यापी अजर अमर चैतन्यकारक ऐसा जो ब्रह्म है वह कभी भी किसीके किसीभी बन्धनमें नहीं आ सकता. और किसीके मारनेसे नहीं मर सकता, वह ब्रह्म किसीके मारनेसे मरनेवाला नहीं है, जो राक्षसोंके मारनेसे मर गया ?

उत्तर–अजर, अमर सर्वव्यापी ब्रह्म है सो "ब्रह्महत्यां हितं मेने" इस श्लोकका अर्थ नहीं किया. इस श्लोकका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि यज्ञादि, दानादि, स्नानादि, नारायणके पूजनादि, अनुराग, अपने हृदयमें कोमलता, दया इनको आदि लेकर और अनेक प्रकारके कर्म सोई ब्रह्म है, उनका नाश कराकर कंस अपना हित मानता था, ऐसा अर्थ व्यासजीने किया है ॥

चौक पुराय, उसपै सुवर्णका कलशस्थापन कर गणेश, गौरी, वरुण इत्यादि देवता, पितृ, लोकपाल, दिक्पाल इन सबका संस्थापन करके जातकर्म संस्कार कराय ॥ १ ॥ २ ॥ उसी समय भूषित करी दो लाख गौवें और तिलोंके सात पर्वत बनाय ऊपरसे सुनहरी रंगका वस्त्र उढ़ाय उनके भीतर मणि, माणिक, मोती, हीरे और अनेक अनेक प्रकारके रत्न भर भरके ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥३॥ कालसे तो पृथ्वी पदार्थ शुद्ध होता है, स्नान करनेसे शरीरशुद्धि होती है, धोनेसे वस्त्रादिक शुद्ध होता है, संस्कारसे गर्भादिक शुद्ध होता है, तप करनेसे इंद्रियोंकी शुद्धि होती है, यज्ञ करनेसै ब्राह्मणोंकी शुद्धि होती है, दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है, संतोषसे मनकी शुद्धि होती है और आत्मविद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है. यह विचार नन्दरायजीने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ४ ॥ ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढनेलगे, पुराणवक्ता पुराण बांचने लगे, गायक वंशावली बखानने लगे, भाट बन्दीजन यश वर्णन करने लगे, गायक गुण गाने लगे और भेरी नागाड़े जहां तहां बजने लगे ॥५॥ व्रजमें द्वार द्वार आंगन आंगन घर २ सब झाड बुहार रहे हैं और बजारोंमें, गलियोंमें; घाटोंमें, बाटोंमें, रजवाडोंमें, चौराहोंमें बुहारी लगाकर गुलाबके जलसे, केवडेके जलसे, सेवतीके जलसे, खसके जलसे, चंदनके जलसे छिरकने लगे. सब गोकुल और महावन नंदगाँव सुगन्धसे सुगंधित कर दिया. सब अपने अपने भवनोंकी शोभा निराले ही निराले ढंगकी बनादी. सुन्दर स्फटिक मणिके द्वार, सुवर्णके किवाँड, वैदूर्यकी देहरी, मूंगोंकी चौखट, जिनमें पुष्प बिखर रहे, आमके पत्ते और फूलोंकी बन्दनवारें जहां तहां लटक रहीं; सुवर्णके कलश कलशियें द्वारद्वार पर बिज्जुछटासी चमक रहीं, ध्वजा स्तम्भ गड रहे हैं, जिनमें चित्रविचित्ररंग ध्वजापताका फहरा रही हैं, मोतियोंकी माला जहां तहां लटक रही हैं, मानो भवन भवनमें पुत्रजन्मोत्सव होरहा है ॥ ६ ॥

धेनूनां नियुतं प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ॥ तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौंभांबरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नान
शौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ॥ शुध्यंति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥ ४ ॥ सौमंगल्यगिरो विप्र
सूतमागधबंदिनः ॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहांतरः ॥ चित्रध्वज
पताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥

जबहीं ग्वालिये गाय बछडोंको लेलेकर वनको चले; इसी समय एक गोप वृक्षपर चढकर पिछौरिया घुमाकर बोला अरे भैया! आज कोई व्रज वासीवनको मत जाना हमारे नंदरायजीके पुत्रका जन्म हुआ है.यह बात सुनके सब ग्वालबाल आनंदमें मग्न होगये और सब अपनी अपनी गायोंका शृङ्गार बनाने लगे. पहिले तो छोटी छोटी गाय, बछडे, बछियाओंको हलदी तेल लगाकर उबटन किया. फिर गेरू, मेंहदी, लाख,हरतालसे रंगा और बीच बीचमें हलदी और रोलीके थापे लगाये. जंगाल और सिंगरफसे उनके सींग रंगे और मोरछल जिनमें लटक रहे ऐसी शोभायमान झूलें उढा दीं, मोरछलकी कलँगी न्यारी ही पहिरा दीं, गलेमें घण्टोंकी मालाका शब्द निराल ही सुनाई आता था और कोई २ गोप अपने अपने घरोंसे सुनहरी आभूषणोंके डिब्बे और उत्तम २ वस्त्रोंकी गठरी उठा लाये, मोहनमाला,चन्दनहार,हमेल, पचलडी, चम्पाकली, धुकधुकी, बछडे बछियाओंके गलेमें डाल दिये. पांवोंमें पावटे, घुँघुरू, कडे, झांझन पहराय दीं और ऊपरसे शाल दुशाले जरीकी ओढनी उढाय दीं.इस प्रकार सबने अपनी अपनी गायोंका शृंगार किया ॥७॥

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकांचनमालिनः ॥ ७ ॥
महार्हवस्त्राभरणाः कंचुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

सब गोप ग्वाल सुन्दर सुन्दर सूही बैजनी ऐंठदार पागें बांध बांध और दोचार पेंच गलेमें डाल सुन्दर सुन्दर जामें पहर लिये,किसी किसीने काछ बांध लिये, किसीने लटकवां धोती, रेशमी दुपट्टे ओढ लिये और भांति भांतिके आभुषण सज सुन्दर शृंगार बनाये यमुनाकी रज मस्तक पर चढ़ाये, कन्धोंपर तलवारें धरे, कानोंमें फूलोंके तुरें घुरसे हुए, (शिरमें मोरके पंखोंकी कलँगी धरे, भारी भारी लट्ठ लिये,पानसे मुख लाल किये, थालोंमें भेंटें लिये, गायोंको आगे आगे नचाते कुदाते गाते बजाते हँसते हँसाते नन्दरायजीको बधाई देनेके लिये चले.उस समय नन्दजीके द्वारपर बडी भारी भीर हुई, उस छबिको देख छबि भी लज्जाकी मारी एक कोनेमें छिपी हुई इस आनन्दको देख रही थीं. इस उत्सवको देखनेके लिये स्वर्गसे ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक अनेक देवता अपनी अपनी स्त्रियोंको संग लिये मनुष्यरूप धारण किये गोप ग्वालोंमें आ मिले और सब नन्दके द्वारपर पुकार २ बार बार यह कहते थे कि, आज नन्दघर बधाई है.उस समय नन्दजी ऐसे मग्न थे कि, अंगमें फूले नहीं समाते थे और सबके हाथ पकड पकड अत्यन्त आदर सत्कारसे कुशलक्षेम पूछपूछ मखमलके बिछौनों पर बिठाते जाते थे और बार बार सबको पान मिठाई

दे देकर यह कहते थे कि, यह सब आपहीका प्रताप है. दूसरे दिन यह शुभ संवाद समीप समीपके सब ग्रामोंमें भी पहुँच गया कि, नन्दजीके पुत्रका जन्म हुआ.यह शुभ समाचार सुन सब ब्रजवासी परमानन्द हो होकर इन ग्रामोंमें हाथौरा, रीठा, कारब, सबल, लौहवन, महावन, धाराकुण्ड, बरसाना, गोपालपुर, बिसौली,जसौलीं, बिजौली, रसौली, मांठ, आंट, आढस, सुनर, वसई, छटीकरा, नरी,सेमरी, परासौली, कोठवन, मधुवन, वठैन, कामहैला, नन्दीश्वर, नन्दगांव, बनेई, ऊँचागांव, चिकसौली, सुमहरा, कामवन, वृन्दावन, दीघम, होली इत्यादि और अनेक गांवोंसे भेंट ले लेकर चले तो वृद्ध वृद्ध जो गोप थे उन्होंने भी अपना अपना शृंगार किया और युवा बालकोंका तो कहना ही क्या है. सुवर्णके थालोंमें हीरे, मणि, रत्न; पन्ना,पोखराज,हंसली, खडुवे, कण्ठी, माला, कुरते, टोपी, रोली, चन्दन, पान, मिठाई, मेवा, श्रीफल धर धर कर सब ब्रजवासी ढफ, ढोल, झांझ, मृदंग, चंग, मुहचंग, उपंग बजाते और गीत गाते धूमधाम मचाते नन्दरायजीके द्वारपर आये और उनको दण्डवत् प्रणाम कर करके भेंटें उनके आगे धरीं. उस समय नन्दराय उनको देख २ प्रसन्न हो हो बडे बडे गोपोंसे

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ॥ आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राऽऽकल्पांजनादिभिः ॥ ९ ॥
नवकुंकुमकिंजल्कमुखपंकजभूतयः ॥बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥

मिल मिल सबको आदर सन्मानसे आसन दे देकर बैठालते थे सब गोप बोले कि, नन्दरायजी ! हम आपके भाग्यकी बडाई नहीं कर सकते आज आपका पूर्वपुण्य उदय हुआ,तुम बडे धन्यभागी हो,तुमने हमारे मनके मनोरथ सिद्ध किये और आज हमारे मनकासा समाज सजा है. नन्दरायजी बोले कि, भैया। यह सब तुम लोगोंके ही पुण्यका प्रभाव है,नहीं तो बुढापेमें मेरा ऐसा भाग्य कहां था जो यह परमानन्द प्राप्त हुआ? कोई केवडा छिडक रहा है, कोई गुलाब छिडक रहा है, कोई पुष्पोंकी माला पहिराता है, कोई केशर और चन्दन लगाता है, मानों त्रिलोकीका आनन्द नंदके ही घर छा रहा है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्। जब ब्रजबालाओंने सुना कि हमारी ब्रजेश्वरीके पुत्र उत्पन्न हुआ है,तब सब गोपियोंने सुन्दर सुन्दर शृंगार बनाय मेहँदी महावर रचाय, नवीन नवीन केशर कस्तूरी मिलाय मस्तकपर तिलक लगाये फिर पीछे रेशमी वस्त्र आभूषण पहन, नेत्रोंमें अंजन आंज नखशिखसे अलंकृत हुईं॥ ९ ॥ केशर मुखारविन्दपर मली हुई है, कटि लचक रही हैं,नितम्ब जिनके पुष्ट हैं, कुच चलायमान हैं, भेंटें लेलेकर नन्दरायजीके मन्दिरको चलनेकी सब सुन्दरी अभिलाषा

कर रही थीं ॥ १० ॥ उज्ज्वल मणियोंके जडाऊ कुण्डल कानोंमें शोभायमान हैं, अतिसुन्दर मुक्ताओंके हार कुचोंके बीचमें लटक रहे हैं, मानों दो पर्वतोंके बीचमें गंगाकी धार बह रही है. हाथोंमें कंकण, चित्रविचित्र वस्त्र धारण किये, कमलसे भी कोमल जिनके चरण उनमें अनवठ, बिछुवे, नूपुर, पगपान पहिन रहीं; जब एक संग सब मिलकर पग उठावें उस समय पायल और नूपुरोंकी झनकार इस प्रकार हो मानों आनन्दमय घन गर्जता है. उस शब्दसे दशों दिशाओंका अमंगल दूर होता चला जाता है और क्षीण कटिकी लचकसे जो शरीर कम्पायमान होता था तो जूडेसे मालती और मदनबाणके फूलोंके हार खिस खिसकर उनके चरणोंमें गिरते थे सो वह हार आपसे आप नहीं गिरते थे, केश उन चरणोंकी अद्भुत शोभा देख देखकर रीझते थे और बार बार प्रसन्न हो होकर पुष्पोंके हार उनपर चढ़ाते थे और दूसरा प्रयोजन यह भी था कि, हमारे ऐसे भाग्य कहां थे, यही हमको श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करानेके लिये चलते हैं, ऐसी २ गोपियोंके झुण्डके झुण्ड

गोप्यः सुमृष्टमणिकुंडलनिष्ककंठ्यश्चित्रांबराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नंदालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुंडलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥ ता आशिषः प्रयुंजानाश्चिरं पाहीति बालके ॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिंचंत्यो जनमुज्जगुः ॥ १२ ॥ अवाद्यंत विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनंते नंदस्य व्रजमागते ॥ १३ ॥

नन्दजीके घरको चले जाते हैं, उस समयकी शोभाको कौन कवि वर्णन कर सकता है ॥ ११ ॥ तब सब गोपिका नन्दरायजीके आंगनमें आकर श्रीकृष्णचन्द्रको आशीर्वाद देने लगीं, हे कृष्ण! तुम चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो और हमारी बहुत दिनों तक रक्षा करो, इस प्रकार बालकको आशीश देकर हलदीके चूर्णमें तैल और पानी मिलाय परस्पर छिडकती छिडकाती गीत गाती आंगनमें केशर और चन्दनकी झारी और पिचकारी लिये धूमधाम मचा रही थीं ॥ १२ ॥ विश्वेश्वर विश्वभावन भगवान्‌के व्रजमें आते ही मनुष्योंके मनमें परमोत्सव बढ़ा और मन्दिर मन्दिरमें भांति भांतिके बाजे बजने लगे, सब गोपिका श्यामसुन्दरका मुखारविन्द देख देख आनन्द हो हो न्योछावर कर नन्दरानीसे कह रही थीं कि, हे यशोदा! तेरे पुत्रके तो चक्रवर्तीकेसे लक्षण हैं, चक्रादिक चिह्नोंके छिपानेके लिये अपने हाथोंकी मुट्ठी बांध ली है; तैंने पूर्वजन्ममें भगवान्‌की बडी सेवा करी है, जो ऐसा मनोहर पुत्र पाया है. यशोदा सबके पाओं पड पड कहती थी कि, इसमें मेरा क्या

है यह सब तुम्हारा ही पुण्य है सब गोपी अशीश देती हैं कि, सदा सुहागन रहु और तेरा पुत्र युग युग जिये ॥ १३॥ ब्रजवासियोंने उस दिन अत्यन्त प्रसन्न हो होकर घी, दूध, दही, माखन, जल, हलदी मिला कर दधिकांदोका प्रबन्ध किया प्रथम नन्दरायको बुलाकर उनके ऊपर छिडका फिर परस्पर ऐसा खेल मचा कि, जहां देखो तहां दधिमाखनहीकी रेलपेल हो रही थी इस आनन्दको देवता बिमानोंपर बैठे देख देखकर कह रहे थेकि, गोकुलवासियोंका धन्य भाग्य है, जिन परमपुरुष परमात्माका दर्शन शिव सनकादिकके ध्यानमें महाकठिनतासे आता है वह नन्दके घर जन्म लेकर ब्रजवासियोंको आनन्द दिखा रहे हैं और देवांगना पछिताय पछिताय कह रहीं थीं कि, हाय आज हम नन्दरायके घरकी दासी भी न हुईं जो इस उत्सवके सुखको समीपसे देखकर अपने मनको प्रसन्न करतीं, इस प्रकार दधिकांदोके उत्सवमें सब ब्रजवासी विह्वल होरहे थे ॥ १४॥ अति उदारचित्त नन्दरायजीने सूत, मागध, वन्दीजन और जो जो गुणी जन गाने बजानेवाले थे सबको

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृतांबुभिः ॥ आसिंचंतो विलिंपंतो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥
नंदो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ॥ सूतमागधबंदिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६ ॥

वस्त्र, आभूषण, गाय, द्रव्य दान दिया और नन्दरायसे सब बृद्धवृद्ध जनोंने कहा हे मित्र नन्द! आज तो नाचनेका दिन है हमारे संग नाचलो, सो सबने नन्दजीका हाथ पकड इनको उठाया और सब ब्रजवासी मग्न होहोकर नन्दके संग नाचने लगे और सब गोपियें बाजे बजाय बजाय गीत गानेलगीं. उस समयकी शोभाको देखकर सरस्वती हकीजकीसी हो चित्रके समान हो गई; फिर और कवियोंका क्या सामर्थ्य है जो उस मनभावनी सुहावनी शोभाका वर्णन कर सकें? ॥ १५ ॥ नन्दरायजी उदारचित्त पुत्रके कल्याणके लिये विष्णुभगवान्‌की आराधना करते थे और वारंवार यह वरदान मांगते थे कि, हे नाथ! मुझपर प्रसन्न होओ और यह मेरा बालकचिरंजीव रहै, इसीलिये नन्दजीके समीप जो जो गुणीजन आ आकर जिस जिस वस्तुकी कामना करते थे, उनको वही वस्तु देदेकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते थे और यथायोग्य उनका पूजन भी करते थे ॥ १६ ॥

नन्दरायजीके घर सब ब्रजकी बहू और बेटी आईं परंतु रोहिणीजी नहीं आईं, क्योंकि इनके पति मथुरामें थे. लिखा है कि, जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो उसको शृङ्गार नहीं करना चाहिये और पराये घर न जाय इसलिये नंदजीके घर न गईं, तब नन्दजीने रोहिणीसे जाकर कहा कि, तुमही तो बडभागिनी ठहरीं, सोई हमारे घर न आईं, हमारे घर बधाई होरही है तुमको अवश्य चलना पडेगा वह घर तो आपहीका है, तुम हमको ऊपरी मत समझो, वह तो सोवरमें बैठीहै, केवल एक सुनन्दा है उसको ऊपरहीके काम बहुत हैं, आई गोपियोंका आदर सत्कार करो. रोहिणी बोली कि, इतने तुम चलो तुम्हारे भतीजेको दूध पिलाकर मैं भी आऊँ हूँ तब नंदराय बोले कि, मेरे संग ही तुमको चलना पडेगा क्योंकि कामका कारोबारी सिवाय आपके कोई दृष्टि नहीं आता. नंदजीके आज्ञानुसार सुन्दर सुन्दर वस्त्र, आभूषण, मुक्तामाला; कण्ठाभरण पहन बलदेवजीको गोदमें ले प्रसन्न होती हुई नन्दजीके संग चलीं और दासीके हाथमें पान फूल मेवा मिठाईकी थाली

रोहिणी च महाभागा नंदगोपाभिनंदिता ॥ व्यचरद्दिव्यवासस्स्रक्कंठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥
तत आरभ्य नंदस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥
गोपान्गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥ नंदः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥

देदी और यशोदाके समीप आय कृष्णका मुख देख नौछावर कर नाइनको दी और आंगनमें जो जो गोपी कुरता टोपी लिये बैठी थीं उनके हाथसे लेकर मंदिरमें धरने लगीं और यथायोग्य उनका आदर सन्मान करने लगीं और सब गोपी यह आशीश देती थीं कि, सदा नन्दालयमें ऐसा ही उत्सव बना रहे॥ १७ ॥ जिस दिनसे ब्रजमें कृष्णजन्म हुआ उस दिनसे सम्पूर्ण संपत्तियोंसे नन्दजी परिपूर्ण होगये, नन्दरायजी नित खजानेको लुटाते थे, परंतु फिर भाण्डागारको जैसेका तैसा ही भरा पाते थे, क्योंकि वैकुण्ठनाथकी भार्या लक्ष्मी सो ब्रजमें आय मालिनीका वेष बनाय द्वारद्वार वंदनवार बाँधती फिरती थीं तहां और संपत्तियोंकी क्या गिनती है? ॥१८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलदीपक! एक दिन नंदरायजीने गोकुलकी रक्षा करनेके लिये बहुतसे गोपोंको सब प्रकार नियुक्त किया और आप कुछ ग्वालोंको संग ले और दूध, दही, माखन मटकियोंमें भर भरकर गाडियोंमें लाद और वार्षिक कर लेकर मथुराको भेंटके लिये लेगये ॥ १९ ॥

अपने परम हितकारी नन्दरायजीका आगमन सुनकर वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए कि, आज हमारे मित्र नन्दजी कंसकी बरसौडी देनेके लिये आये हैं, जब नन्दजी कंसको कर देचुके और किसी स्थानपर आकर विश्राम किया, उस समय वसुदेवजी कुछ भोजनादिक लेकर नंदजीसे मिलनेको गये ॥२०॥ जैसे मृतक देहमें प्राण आनेसे देह उठ खडा होता है ऐसे ही वसुदेवजीको आये देख नंदजी अकुलाकर शीघ्र खडे होगये और अपने प्यारे सुहृदका हाथ पकडकर प्रेममें विह्वल हो हृदयसे लगाकर मिलने लगे॥२१॥हे राजन्! नन्दजीने वसुदेवका

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नंदमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम्॥२०॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राण
मिवागतम् ॥ प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः॥२१॥पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥ प्रसक्तधीः
स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा
यत्समपद्यत ॥ २३॥ दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥

पूजन कर सुखपूर्वक आसनपर बैठाय कुशलक्षेम बूझने लगे और परमपियारे पुत्रोंमें जिनका मन अत्यन्त लग रहा था सो वसुदेवजी आदर सत्कार कर बोले ॥२२॥ अहो भ्राता नंदजी! तुम्हारे सन्तान नहीं होती थी और आपने पुत्र होनेकी आशा भी छोड़ दी थी, क्योंकि बहुत वृद्धावस्था होगई थी,सो परमेश्वरकी कृपासे अब आपके पुत्र हुआ, यह सुनकर, हम बहुत प्रसन्न हुए ❋ ॥२३॥ इस संसारमें रहकर पुनर्जन्मकी नाईं आपका मिलना हुआ यह बडे आनन्दका दिन है.सब मिलते हैं परंतु संसारमें मित्रका मिलना बहुत दुर्लभ है॥२४॥

***शंका–** वसुदेवजी ऐसे महात्मा होकर फिर उन्होंने अपने परममित्र नन्दजीके संग कपट क्यों किया? जो सत्य बोलते कि,हमारे दो पुत्र आपके पास हैं आप रक्षा करो, क्योंकि विपत्तिमें सिवाय मित्रके दूसरा सहाय नहीं कर सकता, ऐसा कहनेपर क्या श्रीकृष्णकी रक्षा नंदजी न करते कपटका क्या काम था ?

उत्तर–त्रिलोकीमें जो प्राणी हैं सो मायासें उन्मत्त होरहेहैं,उसीप्रकार वसुदेवजी भी उन्मत्त होगये, जो कोई यह कहै कि,विना कारण माया किसीको नहीं मोह करती, यह सब सत्य है, परन्तु वसुदेवजीको मोह होनेका क्या कारण था? पहिले किसी समय नंद और यशोदाको भगवान्ने यह बरदान दिया था कि,हम जन्म तो दूसरेके यहां लेंगे परन्तु बाललीला तुम्हारे यहां करेंगे,इसलिये भगवान्ने वसुदेवको मायासे मोहित करके कपट कराया जो वसुदेवजी सत्य बोलते तो नंदजी कृष्णकी पालना करते तो सही परन्तु कुछ भेददृष्टि रहती कि, दूसरेके पुत्र हैं इसलिये नन्दसे वसुदेवजीने कपट किया, कुछ कपटभावसे कपट नहीं किया ॥

अहो प्यारें ! नदीके प्रवाहसे काष्ठ और तृणादिक बहते हैं, कभी स्थिर होते हैं परन्तु एक स्थानपर संगम नहीं होता. ऐसे ही जो अपने प्यारे सुहृद हैं उनका एक स्थान पर रहना नहीं होता ॥ २५ ॥ हे नंदजी ! बहुत जल, तृण और गुल्मलतायुक्त पशुओंका हितकारी जो अत्यन्त रमणीक महावन है जहां अपने संबन्धियों सहित आप निवास करते हो, वह महावन निरोग तो है ? इस वचनसे यह ध्वनि निकली कि, हमारे पुत्र जो आपके निवासस्थानपर वास करते हैं वह तो अच्छे हैं ? जहां जल, तृण अधिक होगा तो वहां गायोंकी अच्छी उदरपूर्णता होगी और दूध भी अधिक होगा और निरोग होगा तो उस दूधको हमारे पुत्र पियेंगे तो वह भी निरोग रहेंगे ॥ २६ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे मित्र ! मेरा पुत्र अपनी जननीके संग आपके ब्रजमें रहता है और आपहीको अपना पिता

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥२५॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यंबुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः॥ २६ ॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ॥ तातं भवंतं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ॥ न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥२८॥ नंद उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २९ ॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥ अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥

समझता है और आप ही उस बालकके प्रतिपालक हैं, सो वह अपनी मातासहित प्रसन्न है ? ॥ २७ ॥ सत् पुरुष अपने प्रियतम प्यारोंको संग लेकर ही धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पदार्थोंको करते हैं और जो अपने प्यारे स्नेहियोंको छोडकर अकेले धर्म करते हैं, वा द्रव्यका भोग भोगते हैं, अथवा कामविषयका भोग करते हैं तो यह त्रिवर्ग उनको सुखदायक नहीं होते ॥ २८ ॥ वसुदेवजीके मधुर वचन सुनकर नन्दजी बोले कि अहो मित्र ! सब ब्रजमें परमेश्वरकी कृपा है और आपके पुत्र बलरामजी भी अच्छे हैं, उनके उत्पन्न होनेके पीछे मेरे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ है वह भी आपकी कृपासे अच्छा है, परंतु आपकी ओरका हमको बडा दुःख बना रहता है ॥२९॥ हे मित्र ! ारब्ध ही सर्वोपरि है, जिस समय पुत्रादिकोंका देनेवाला भाग्य हीन होजाता है उस समय वह पुत्रादिक भी नहीं होते हैं,सब बिछुड जाते हैं

और जब प्रारब्ध अच्छा होता है तो फिर सब आ मिलतें हैं. हे भ्राता ! प्रारब्ध ही सुखका देनेवाला है और प्रारब्ध ही दुःखका देनेवाला है. जो पुरुष इस प्रकार जानतें हैं वह कभी मोहको प्राप्त नहीं होते. इस वचनसे यह सूचित किया कि, अहो वसुदेव ! अपने मनमें पुत्रोंका सोच संकोच मत करो. किसी समय आपके पुत्रोंका भी संयोग होजायगा, हमसे वियोग हो जायगा ॥ ३० ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे नन्दरायजी! विधाताने जो हमारे भाग्यमें लिखा है उसको कोई नहीं मेट सकता और इस संसारमें आकर ऐसा कौन है जो कष्ट नहीं भोगता ? और आपके समान अपना मित्र हम किसीको नहीं देखते. देखों, हमने कंसके भयसे अपनी गर्भवती स्त्रीको आपके यहां निःसंदेह भेज दिया और जब उसके पुत्र हुआ तो आपने अपने पुत्रके समान उसका लालन पालन किया यह परमोपकार आपका मैं कैसे भूल सकता हूँ? जन्मजन्मांतर भी आपकी सेवा करूं तो भी उऋण नहीं हो सकता. जब सुना कि, आपके यहां पुत्रोंका जन्म हुआ तो मैंने परमसुख माना,

वसुदेव उवाच॥ करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं संत्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥
श्रीशुक उवाच॥ इति नंदादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० नंदवसुदेवसंगमो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदः
पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिंतयन् ॥ हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशंकितः ॥ १ ॥

हे मित्र ! मैं अपने पुत्रोंमें और आपके पुत्रोंमें कुछ भेद नहीं समझता, परंतु इन दिनों कंसने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा है, छोटे २ बालकोंको मारनेकी आज्ञा दे रक्खी है और आज एक पूतना राक्षसीको गोकुलमें भी भेजा है, अब तुम वार्षिक कर कंसको देचुके और हमसे भी मिल चुके, अब यहां रहना तुम्हारा बहुत दिन तक अच्छा नहीं, न जानिये गोकुलमें पूतनाने क्या उत्पात मचाया होगा ? ॥ ३१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीसे वचन सुन नंदरायने सब गोपोंको आज्ञा दी कि, शीघ्र गाडी जोतो । यह कह वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर नन्दजी मथुरापुरीसे गोकुलको चल दिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां कृष्णजन्मोत्सववर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–छठयेंमें नँदरायजी, शोच करत मन जाहिं । मरी परी इक राक्षसी, देखी मारगमाहिं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! नंदरायजी मार्गमें यह विचार करते हुए जारहे थे कि, वसुदेवका वचन

तो मिथ्या होही नहीं सकता उत्पातके भयसे भगवान्‌का स्मरण करने लगे कि, हे जनप्रतिपालक ! जो यह दो बालक आपने दिये हैं तो इनकी रक्षा भी आप हीको करनी पडेगी ॥१॥ महाघोर रूपवाली बालघातिनी पूतना नाम राक्षसी कंसकी पठाई हुई जितने व्रजमें पुर, ग्रामादिक थे सबमें बालकोंको मारती फिरती थी ॥२॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्‌के मनमें शंका हुई तो श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, वह पूतना नंदजीके मंदिरमें गई वा नहीं गई ? और गई, तो क्या किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! चिंता मत करो. जहां परमेश्वरका यश और यज्ञादिक कर्म नहीं होते वहीं राक्षसी जा सकती हैं और अपना पुरुषार्थ करती हैं, और जिन स्थानोंमें भगवान्‌का स्मरण होता रहता है वहां राक्षस लोग क्या कर सकते हैं ? और नंदजीके भवनमें तो साक्षात् अनंत भगवान् विराजमान हैं फिर वहां पूतना बिचारी क्या कर सकती है ? आप ही मारी जायगी ॥ ३ ॥ हे राजन्! अनेक राक्षस गांव गांवमें बालकोंको मारनेके लिये फिरते थे. परंतु तो भी कंसके मनमें

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ॥ शिशूंश्चचार निघ्नंती पुरग्रामव्रजादिषु॥२॥न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि
स्वकर्मसु ॥ कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नंदगोकुलम् ॥ योषित्त्वा
मायाऽऽत्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तां केशबंधव्यतिषिक्तमल्लिकां बृहन्नितंबस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ॥ सुवाससं
कंपितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलभूषिताननाम् ॥ ५ ॥

धैर्य नहीं था और आठो पहर इसी सोचमें व्याकुल रहता था कि, उसी अवसरमें पूतना नाम राक्षसीको बुलाकर अपना सब वृत्तांत कहा कि और किसीसे तो हमारा कार्य पूरा न हुआ परंतु मुझको विश्वास है कि, तुझसे हमारा काम सिद्ध होगा. और बालकोंका तो मुझको थोडा ही खटका है, परंतु गोकुलमें नन्दके जो पुत्र हुआ है उसका मुझको बड़ा भय है, सो तू गोकुलमें जा और उसको किसी प्रकारसे मारके आ, मैं तुझको पूरा पारितोषिक दूंगा. यह बात सुनते ही पूतना कंसकी आज्ञा शिरपर धारण कर गोकुलको चलदी और मार्गमें यह विचार करती जाती थी कि, किस प्रकार नन्दकुमारको मारना चाहिये ? फिर सोचा कि और किसी प्रकार नहीं होगा. गोपीका वेष बनाकर बधाई देनेके मिष नन्दके घर जाऊं और छलबल कर उस बालकको मार आऊँः—इस प्रकार बन ठन गोकुलमें पहुँची ॥ ४ ॥ उसकी चोटीमें मालतीके फूल गुंथे

हुए थे, बडे बडे नितम्ब और छोटे २ स्तनोंके भारसे कटि जिसकी नीचेको झुकी जाती थी, सुन्दर सुन्दर वस्त्र धारण कर रही थी, कानोंमें कर्णफूल, कुण्डलोंकी छबि शशिको लज्जित कर रही थी और केशोंसे जिसका मुख शोभायमान हो रहा था ॥ ५ ॥ मन्द २ मुसकान और बाँकी चितवन ब्रजवासियोंके मनको मोहित करनेवाली, बेखटके राजभवनमें चली गई और द्वार पालोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि, किसीने उसको नहीं रोका और उसके हाथमें एक कमलका फूल था उसको देखकर सब गोपियोंने कहा कि, यह लक्ष्मी अपने पति नारायणके दर्शनके लिये आई हैं और यशोदा रोहिणीने भी यही जाना ॥६॥ बालकोंको ग्रहरूप जो पूतना है सो छोटे २ बालकोंको खोजती हुई नन्दजीके मंदिरमें आई. जहां दुष्टोंके मारनेवाले भगवान् भस्ममें दबी हुई अग्निके समान बालकरूपमें अपने तेजको छिपाये शय्यापर पडे सो रहे थे उनको

वल्गुस्मितापांगविसर्गवीक्षितैर्मनो हरंतीं वनितां व्रजौकसाम्॥अमंसतांभोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६ ॥बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नंदगृहेऽसदंतकम्॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥७॥ विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः॥अनंतमारोपयदंकमंतकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यांतरा कोशपरिच्छदासिवत्॥वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षितेनिरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम्॥९॥तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ॥ गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥

देखा ॥ ७ ॥ स्थावर जंगम प्राणियोंके अंतर्यामी श्रीकृष्णचंद्रने इस बालघातिनी पूतनाको देखकर आंखें मीच लीं और हँसकर चुप होरहे, उस दुष्टाने आते ही कालरूप भगवान्को गोदीमें उठा लिया, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष रस्सी समझकर सोतेहुए सांपको उठा लेता है ॥ ८ ॥ जैसे मखमलके म्यानकी तलवार ऊपरसे मनोहर और भीतरसे महातीव्र तीक्ष्णधारवाली होती है, ऐसी पूतनाको देख चकित होकर रोहिणी और कोमल यशोदा देखती रहीं मुखसे कुछ न कहा, तब एक गोपी बोली कि, तू कौन है ? तब उस कपटिन पूतनाने कहा कि, मैं देवांगना हूँ, तुम्हारे यहां बधाई देने आई हूँ इस मनोहर बालकको देखकर जी खिलानेको चाहा इसलिये गोदमें लेलिया, परमेश्वर करै यह बालक करोड़ वर्ष जीता रहे ॥ ९ ॥ ऐसी रीति प्रीति भरी बातचीत कर उस कपटरूप पूतनाने चुमकारके कृष्णको गोदमें ले लिया और भयानक

विष लगा हुआ अपना स्तन उनके मुखकमलमें देदिया, तब तो कुपित होकर कृष्णचन्द्रने दोनों हाथोंसे उसके स्तन पकड़के प्राण सहित स्तनको ओषधि समझकर पीगये ॥ १० ॥ तब पूतना बोली,अरे लाल! छोडदे २ मेरे प्राण चले.बस रहनेदे.मेरा अपराध क्षमा कर, मेरे शरीरमें अत्यन्त पीड़ा होती है, जब नेत्र फटने लगे तो पुकारा अरी यशोदा! अपने लालासे मुझको छुटा,मैं मरी,यह तेरा बालक मनुष्य नहीं है.यह तेरी कोखमें कोऊ महाबलवान् देवता उत्पन्न हुआ है यह कहती ही कहती हाथ पावं पीटकर मर गई ॥ ११ ॥ महागम्भीर पूतनाके शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पायमान होगई, ग्रह तारागणसहित सब आकाशमण्डल चलायमान होगया;रसातल और दिशाओंमें घोर शब्द पूरित होगया.इन्द्रके वज्रपात होनेकी शंकासे मनुष्य पछाड खा खाकर पृथ्वीपर गिरगये ❋ ॥ १२ ॥ स्तनोंकी व्यथासे प्राण जिसके निकल गये

सा मुंचमुंचालमिति प्रभाषिणी निष्पीडयमानाऽखिलजीवमर्मणि॥विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा॥ रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥१२॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि॥ प्रसार्य गोष्ठे निज रूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥१३॥ पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यंतरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेंद्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकंदरनासिकम् ॥ गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥

और मरते समय अपना कपटरूप जिसने त्याग दिया, राक्षसीरूप प्रगट कर लिया, जैसे मरनेके समय वृत्रासुर कपट तजकर भूतलपर गिरा था, इसी प्रकार पूतना भी हाथ पांव पसारके पृथ्वीपर गिरी ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जिस समय पूतना मरकर पृथ्वीपर गिरी उस समय छे कोशके बीचमें जो वृक्ष थे उनका चूर्ण होगया ॥ १४ ॥ उस महाभयानक रूपवाली पूतनाके मुखमें हलके समान दाढ़ें

❋**शंका-** कंसकी भेजी हुई पूतनाने मरते समय ऐसा गम्भीर शब्द किया कि, तीन लोक कम्पायमान होगये.बडा आश्चर्य मालूम पडता है,हम लोगोंने तो कभी नहीं सुना, राक्षसीके शब्दसे तीनों लोक कांप उठे ?

उत्तर-जब पूतनाने मरते समय शब्द किया उस समय गुप्त होकर तीन लोकोंमें स्थित जो प्रजा थीं सो सब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये व्रजमें आई थीं सो सब प्रजागण पूतनाके शब्दको सुनके शीघ्र काँपने लगीं इसलिये तीन लोकका नाम व्यासजीने कहा था क्योंकि लोक प्रजाका भी नाम है. लोकमें और प्रजामें कुछ भेद शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता.

और पहाडकी कन्दराके समान जिसकी नाक,पर्वतके शृंगके सदृश जिसके स्तन और महाभयंकर लोहित रंगके जिसके बिखरे हुए केश थे॥ ॥ १५ ॥ अन्धकूपकी नाईं गम्भीर २ जिसके नेत्र, जैसे पुल बँधा हो तैसे हाथ पांव जंघा जिसके, सूखे सरोवरके समान जिसका उदर है ॥ १६ ॥ ऐसा महाभयानक पूतनाका देह देखकर गोप गोपी अत्यन्त भयभीत हुए क्योंकि उसके गम्भीर शब्दसे पहिले ही उनके हृदय, कान, मस्तक फट गये थे ॥ १७ ॥ उस पूतनाकी छातीपर निःशंक श्रीकृष्णचन्द्र क्रीड़ा कर रहे थे, सब गोपी जो हडबडाई हुई व्याकुल फिरती थीं झटपट उस राक्षसीके ऊपरसे उठाकर हृदयसे लगालिया ॥१८॥सब गोपी और यशोदा रोहिणी व्रजनन्दनको गायकी पूँछसे झाड

अंधकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ बद्धसेतुभुजोर्वंघ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निस्स्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥बालं च तस्या उरसि क्रीडंतमकुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥१८॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः ॥ २० ॥ गोप्यः संस्पृष्टसलिला अंगेषु करयोः पृथक् ॥ न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥ अव्यादजोऽघ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कंठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥

देकर फूंक मारने लगीं और अनेक विधियोंसे रक्षा कर उतारे उतारे ॥ १९ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेको गोमूत्रसे स्नान कराय गोरजमें लुटाय गोबर लगाय द्वादश अंगोंमें केशवादिक द्वादश नामोंसे रक्षा करने लगीं ॥ २० ॥ सब गोपियोंका मन जो व्याकुल हो रहा था इसलिये पहिले कुछ श्रेष्ठ उपाय न कर सकीं. फिर सावधान हो स्वस्थ चित्त कर सब गोपी स्नान कर आचमन ले अपने अंगोंमें तथा करनमें पृथक्२ अंगन्यास और करन्यास करके फिर नन्दनन्दनके शरीरमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥ हे यशोदानन्दन। अजन्मा भगवान् तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करें, अणिमान् भगवान् तुम्हारे उरुओंकी रक्षा करें,यज्ञ भगवान् तुम्हारी जंघाओंकी रक्षा करें, अच्युत भगवान् तुम्हारी

कटिकी रक्षा करें,हयग्रीव भगवान् तुम्हारे उदरकी रक्षा करें,केशव भगवान् तुम्हारे हृदयकी रक्षा करें,विष्णु भगवान् तुम्हारी भुजाओंकी रक्षा करें, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे मुखारविन्दकी रक्षा करें, ईश्वर भगवान् तुम्हारे माथेकी रक्षा करें॥२२॥ चक्रधारी भगवान् तुम्हारे अग्रभागकी रक्षा करें, गदाधर भगवान् तुम्हारे पश्चाद्भागकी रक्षा करें,धनुषधारी मधुनाम दैत्यकेहन्ता भगवान् और खड्गधारी अजन्मा भगवान् यह दोनों तुम्हारेदाहिने और बायें पार्श्वकी रक्षा करें शंखधारी उरुगाय भगवान् चारो कोनोंकी रक्षा करें, उपेन्द्र भगवान् तुम्हारे ऊपरकी रक्षा करें, तार्क्ष्य भगवान् नीचे पृथ्वीमें रक्षा करें,हलधर भगवान् सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें ॥२३ ॥ हृषीकेश भगवान् तुम्हारी इन्द्रियोंकी रक्षा करें, नारायण भगवान् तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा करें, श्वेतद्वीपाधिपति भगवान् तुम्हारे चित्तकी रक्षा करें,योगेश्वर भगवान् तुम्हारे मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ पृश्नि

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ॥ कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेंद्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ
हलधरः पुरुषः समंतात्॥२३॥ इंद्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥
॥ २४॥ पृश्निगर्भश्च ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः॥क्रीडंतं पातु गोविंदः शयानं पातु माधवः॥२५॥ व्रजंतमव्याद्वैकुंठ
आसीनं त्वां श्रियःपतिः ॥ भुंजानं यज्ञभुक्पातु सर्वग्रहभयंकरः ॥ २६ ॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कुष्मांडा येऽर्भक
ग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥२७॥ कोटरारेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः ॥ उन्मादा ये ह्यपस्मारा
देहप्राणेंद्रियद्रुहः ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ॥ सर्वे नश्यंतु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९॥
श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥

गर्भ भगवान् तुम्हारी बुद्धिकी रक्षा करें, परम भगवान् तुम्हारी आत्माकी रक्षा करें,विहारके समय गोविन्द भगवान् तुम्हारी रक्षा करें,शयनके समय माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥२५॥ वैकुण्ठनाथ भगवान् चलने फिरनेके समय तुम्हारी रक्षा करें,लक्ष्मीपति भगवान् बैठनेके समय तुम्हारी रक्षा करें और सर्व ग्रहोंके भयके दूर करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ २६ ॥डाकिनी, शाकिनी, यातुधानी, कूष्माण्ड,बालग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच यक्ष, राक्षस, विनायकगण ॥२७॥ कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकादिक जो राक्षसी हैं सो और उन्माद,अपस्मारादिक जो जो रोगके करनेवाले देह प्राण इंद्रियोंके द्रोही हैं ॥ २८ ॥ और जो जो स्वप्नमें देखनेके उत्पात हैं वृद्धग्रह, बालग्रह, योगिनी, वैताल, जो समस्त विष्णु भगवान्के नाम लेनेसे डरते हैं सो सब नष्ट होजायँ ॥ २९ ॥ इसप्रकार हाथ जोड़ गोपियोंने

विष्णु भगवान्की प्रार्थनासे रक्षा करके श्रीयशोदानन्दनको यशोदाको सौंपदिया तब यशोदाजीने मनमोहन प्यारेको दूध पियाय घरमें छिपाके शय्यापर सुलादिया ॥ ३० ॥ इसी अवसरमें नन्दादिक व्रजवासी भी मथुरासे आगये, तब मार्गमें मरी हुई पूतनाको पडी देख बडा आश्चर्य मान ॥ ३१ ॥ नन्दजी कहने लगे कि, वसुदेवजी तो निश्चय कोई ऋषि वा योगेश्वर जान पड़ते हैं, क्योंकि जो कुछ उन्होंने हमसे कहा था वही हुआ. हमसे कहा था कि, तुम शीघ्र मथुरासे गोकुलको जाओ. वहां कोई नया उत्पात होनेवाला है. सो आते ही नेत्रोंसे देख लिया ॥ ३२ ॥ पीछे सब गोकुलवासियोंने पूतनाके देहको कुल्हाडोंसे काटकाटकर घरोंसे दूर ले जाकर चितामें धर उसको फूँक दिया ॥ ३३ ॥ जिस समय

780

तावन्नंदादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो
वा समास सः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे
क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्मुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ॥ जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥ पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वंद्याभ्यां लोकवंदितैः ॥ अंगं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ॥ ३७ ॥ यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥

पूतनाका शरीर जलने लगा तो उसकी चितामेंसे अगरकीसी सुगंधिका धुवाँ निकलने लगा. श्रीकृष्णचन्द्रने उसके स्तन जो पान किये थे इससे सब पाप उसके दूर हो गये ॥ ३४ ॥ जगत्के बालकोंको मारनेवाली और रुधिरकी प्यासी पूतनाने भगवान्को स्तन पिलाकर मारनेकी इच्छा की परन्तु भगवान्ने तो भी उसको मोक्ष दिया ॥ ३५ ॥ फिर श्रद्धा और भक्ति करके श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्की माता अत्यन्त प्रिय पदार्थोंकी देनेवाली मुक्तिको पावे तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥ ३६ ॥ अपने जनोंके हृदयमें वास करनेवाले और लोकवंदित देवताओंके भी पूजनीय ऐसे देवताधिपति ब्रह्मा जिनको प्रणाम करें ऐसे चरणारविन्दोंसे पूतनाका अंग दाबकर श्रीकृष्णचन्द्रने स्तन पान किया ॥ ३७ ॥ माताकी गति स्वर्ग है उस गतिको पूतना राक्षसीनें प्राप्त किया और जिन गायों, गोपियोंका दूध श्रीकृष्णचन्द्रनें पिया है जो वह सुन्दर गतिको प्राप्त हों

तो क्या आश्चर्य है? ॥ ३८ ॥ मोक्षको आदि लेकर समस्त पदार्थोंके देनेवाले देवकीके पुत्र भगवान्‌ने पुत्रके स्नेहसे गाय और गोपियोंका दूध
परिपूर्ण होकर पिया ॥ ३९ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रमें पुत्रभाव माननेवाली इन माता और गोपियोंको अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसार
न होगा ॥४०॥ व्रजवासी लोग पूतनाकी चिताके धुएँकी सुगन्ध सूँघकर परस्पर कहने लगे, यह आज क्या है? और यह सुगन्ध कहांसे आती
है? यह कहते हुए नन्दादिक गोकुलमें आये ॥ ४१ ॥ तब ग्वालबालोंके मुखसे पूतनाका आना और उसका मरना और कुशलपूर्वक
बालकका बचना सुनकर नन्दादिक व्रजवासी बड़ा आश्चर्य मानने लगे ॥४२॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! उदा
रबुद्धि नन्दजी मथुरासे आकर पुत्रको गोदमें लेकर परमानन्दको प्राप्त हुए और बारंबार उसके शिरको सूँघ सूँघ मनही मनमें प्रसन्न होते थे

पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ॥ भगवान्देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥ तासामविरतं कृष्णे
कुर्वंतीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः ॥ ४० ॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥
किमिदं कुत एवेति वदंतो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति
शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नंदः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह
॥ ४३ ॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥ इति
श्रीमहापुराणे दशमस्कंधे पूतनामोक्षो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

और चूम चूमकर प्यार करते थे ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्‌ने बूझा कि, हे भगवन्! यह पूर्वजन्ममें पूतना कौन थी, जिसको
श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने ऐसी उत्तम गति दी? श्रीशुकदेवजी बोले कि, प्रथम जन्ममें यह राजा बलिकी कन्या थी और रत्नमाला इसका
नाम था. वामनजीके स्वरूपको इसने देखा तो मनही मनमें यह कामना करी कि, जो ऐसा सुन्दर पुत्र मैं पाऊं तो हृदयपर रखकर स्तन
पान कराऊं. श्रीभगवान् वासुदेव सर्व घट घटके वासी उन्होंने उसके हृदयकी गति जानकर कहा कि, कृष्णअवतारमें तेरी मनकामना पूर्ण
करूँगा. दैत्यकुलमें इसका जन्म था इस लिये तामसी देहके कारण राक्षसके ही घरमें जन्म लिया और पूताना नाम हुआ ॥ ४४ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–इस सप्तम अध्यायमें, शकटासुरहि गिराय। माताको मुखमें दिये, तीनों लोक दिखाय ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे प्रभो! छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सब प्राणियोंके दुःखोंके दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌ने जिन जिन अवतारोंको धारण करके जो जो लीला करी हैं वह सब मेरे कानोंको और मुझे प्रिय लगती हैं॥१॥जो मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्रोंकी कथा दिन रात सुनते हैं उनके मनकी ग्लानि जाती रहती है और अनेक प्रकारकी तृष्णा भी दूर हो जाती है,शीघ्र ही सम्पूर्ण अन्तःकरणकी शुद्धि होजाती है, भगवान्‌में भक्ति और प्रेम बढ़ता है और हरिभक्तोंसे मित्रता होती है, इस लिये अनुग्रह करके श्रीकृष्णके मनोहर चरित्र मुझको सुनाओ ॥ २ ॥ और

राजोवाच ॥ येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥ करोति क[illegible]रम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः ॥ भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुंधतः ॥३॥श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ॥ वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती॥ ४॥ नंदस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ॥अन्नाद्यवासस्स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः॥ ॥ ५ ॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः ॥ नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

791-

मनुष्यदेह धारण कर मनुष्योंकीसी लीला करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रका और भी मनोहर अद्भुत बालचरित्र हमारे सामने वर्णन करो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! जब बहुत दिन व्यतीत हुए तो श्रीकृष्णकी वर्षगाँठके उत्सवका दिन आया और उसी दिन जन्मनक्षत्रका योग भी आगया, तो उस दिन महामंगल हुआ और सब गोपिका भी बधाई लेलेकर आईं.नन्दरानी यशोदाजीने बाजे बजवाये,गीत गवाये ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन पढ़वाया और श्रीकृष्णचन्द्रको अभिषेक स्नान कराने लगी ॥ ४ ॥ जब स्नान करवाया तो बालमुकुन्दके नेत्रोंमें निद्रा आ गई, तब सहजसे श्रीकृष्णको गाडेके नीचे पालनेमें व्रजरानीने थपकोरके सुलादिया ॥५॥ भगवान्‌की बधाई लेनेसे जिनके मनमें

अत्यन्त हर्ष बढ़ रहा था, वह यशोदारानी उदारचित्त घर आईहुई गोपियोंका आदर सम्मान कर रही थी और ऐसी मग्न हो रही थी कि, अपने पुत्रके रोनेका शब्द भी नहीं सुन सकी, कृष्णको भूख लगी तो दूध पीनेकी इच्छा हुई तब रोते २ पाँव ऊपरको उठा लिये ॥ ६ ॥ गाडेके नीचे पालनेमें श्रीकृष्णके अति छोटे २ कोमल कमलसे चरणारविन्द लाल लाल मूंगोंके रंग उन चरणोंकी ठोकरसे गाडा गिर पड़ा और अनेक प्रकारके रसोंसे भरे तांबे, पीतलके बासन गिरपडे, पहिये न्यारे २ उखडकर गिर गये, धुरी निकल गई, जुआ टूट गया ॥७॥ यशोदा आदि लेकर जो ब्रजकी स्त्रियें थीं और जो जो भेंट लेकर नन्दके घर उत्सवमें आई थीं, वह और नन्दजीसे आदि लेकर जोजो ब्रजवासी थे, सो सब उस आश्चर्यको देखके व्याकुल हो गये कि, आपसे आप गाडा किस प्रकार टूट पड़ा ॥८॥ कोई कुछ कोई कुछ परस्पर विवाद

अधश्शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वंघ्रिहतं व्यवर्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्न कूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ॥ नंदादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥ (इति ब्रुवंतोऽतिविवादमोहिता जनाः समंतात्परिवव्रुशार्तवत्) ॥ ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ॥ रुदताऽनेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बाल भाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥ रुदंतं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ॥ कृतस्व स्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥

करके कहने लगे और मनही मनमें व्याकुल थे, परंतु किसीको कुछ निश्चय नहीं हुआ तब नन्द यशोदासे समीपके खेलनेवाले बालकों कहा कि, तुम किसी बातका संदेह क्यों करते हो, हमने अपनी आंखसे देखा कि, रोते रोते श्रीकृष्णने पांवकी ठोकर मारी इससे य शकट उलटकर गिर पड़ा, इसमें किञ्चिन्मात्र भी संदेह नहीं ॥९॥ बालक समझकर श्रीकृष्णके अनन्त बलको किसीने नहीं जाना, इसलिये उन बालकोंकी बातका किसीने विश्वास नहीं माना और कहने लगे कि कहां श्रीकृष्णके कोमलकमलसे चरण और कहां यह महाकठोर शकट, छोटेसे बालककी ठोकरसे कैसे टूट सकता है ? भाई हमको तो किसी प्रकार विश्वास नहीं आता ॥ १० ॥ यशोदाने रोते हुए अपने

पुत्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया और कहने लगी आज कोई बडा खोटा ग्रह हमारे ऊपर आगया था, परंतु तुम पञ्चोंके प्रतापसे मेरा बालक बचा. उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाय बहुतसा दान पुण्य कर स्वस्तिवाचन पढ़वाय ब्रजभूषण प्यारेको दूध पिलाया और बारबार यही विचार करती रही कि, कहीं डर न गया हो ॥ ११ ॥ परंतु श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको न जाना और ब्राह्मणोंके कहनेसे आठों दिशाओंमें बलिदान करके और सपूण वस्तु घरके गाडा रखदिया और ब्राह्मणोंने नवग्रहादिकोंका पूजन होम कराय दधि, अक्षत, फल, फूल, कुश, चदन मँगाय जलसे गाडेका पूजन किया. देखो! प्रेमी ब्रजवासियोंका धान्य खाखाकर ब्रजके ब्राह्मण भी प्रेमी हो गये जो गाडेका पूजन किया ॥ १२ ॥ निंदा, झूंठ, पाखण्ड, ईर्षा, हिंसा, अभिमान नहीं है जिन पुरुषोंके उन सत्यवादी ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी निष्फल

पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्राहुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशांबुभिः ॥ १२ ॥ येऽसूयानृतदंभेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नंदगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्नि द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥ गावः सर्वगुणोपेता वासस्स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्तचान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥ विप्रा मंत्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ॥ ता निष्फला भविष्यंति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७ ॥ एकदाऽऽरोहमारूढं लालयंती सुतं सती ॥ गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥

नहीं होता ॥ १३ ॥ यह बात मनमें विचार कर नंदरायजी श्रीकृष्णको गोदमें लेकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मन्त्रोंसे शुद्ध और पवित्र ओषधियोंके पानीसे पुत्रका अभिषेक कराया ॥ १४ ॥ फिर स्वस्तिवाचन और अग्निमें होम कराय नन्दरायजीने और सब गोप गोपियोंने सावधान हो श्रेष्ठ गुणकारी अन्नका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १५ ॥ सर्वगुणवाली गायोंको सुन्दर सुन्दर वस्त्रोंकी झूलें उढ़ाय स्वण, चांदी और पुष्पोंकी माला आभूषण पहिराय, काञ्चनसे सींग मढ़ा पुत्रके कल्याणके लिये दीं और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लिया ॥ १६ ॥ वेदमन्त्रोंके जानने वाले योग्य ब्राह्मणोंने जो जो आशीर्वाद दिये सो उसी प्रकार होंगे, क्योंकि ब्रह्मवाक्य किसी समय निष्फल नहीं होता यह बात शास्त्र और पुराणोंसे प्रगट है ॥ १७ ॥ एक दिन नंदरानी श्रीकृष्णको लाड़ लड़ा लडाकर प्यार कर रही थी, उसी समय श्रीकृष्णचन्द्रने

पर्वतके समान अपने शरीरका भार बढाया कि, वह भारी भार यशोदाजीसे सम्हारा न गया. बोझ बढानेका कारण यह है कि, श्रीकृष्णने जाना कि, जो मैं माताकी गोदमें रहा तो यह जो मेरे सन्मुख तृणावर्त्त उपस्थित है सो यह मेरी माता सहित मुझको उठाकर ले जायगा इस लियें मुझको कष्ट हो तो होय परंतु मेरे कारण मेरी माताको कष्ट न हो ॥१८॥ यशोदाने श्रीकृष्णमें भारी भार समझकर बडा आश्चर्य माना और बोझसे अति पीडित होकर त्रिलोकीनाथको पृथ्वीपर बैठालकर परमेश्वरका ध्यान करने लगी और मनही मनमें विचार करने लगी कि आज मेरे कन्हैयामें इस प्रकार बोझ क्यों हो गया ? इसी शोच विचारमें घरके कार्यमें लगगयी ॥ १९ ॥ कंसका अनुचर जो तृणावर्त्त महाबलशाली था, कंसने कृष्णके मारनेके लिये उसको भेजा, वह पवनके बबूलेका रूप धरकर आया और पृथ्वीपर खेलते हुए कृष्णको उड़ाकर ले गया ॥२०॥ सब गोकुल धूरिसे आच्छादित होगया और ऐसी धूरि उडी कि, सबकी आँखे मिच गयीं और अंधकार होगया,

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥१९॥ दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः
कंसभृत्यः प्रणोदितः ॥ चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥
ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥ मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसा वृतम् ॥ सुतं यशोदा नापश्य
त्तस्मिन्न्यस्तवती यतः॥ २२॥ नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः॥ तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥
॥ २३ ॥ इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरंत्यशोचद्भुवि पतिता
मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥

उसके घोर शब्दसे दिशा विदिशाओंमें सन्नाटा होने लगा ॥२१॥ दो घडी तक गोकुलमें अन्धकार छाय रहा, यशोदा व्रजभूषणके उठानेको आंगनमें दौडी आयी, देखा तो वहां कृष्णका पता भी नहीं ॥२२॥ तृणावर्तने कंकरी, ठीकरियोंकी बडी भारी वर्षा करी जिससे सब गोकुलवासी मोहको प्राप्त होकर अपने ही आपको न देख सके, फिर दूसरेका देखना तो महाकठिन था॥२३॥इस प्रकार महाकठिन धूरीकी वर्षा होनेसे और आँधीके चलनेसे यशोदाने ढूँढते ढूँढ़ते कहीं भी व्रजभूषण प्यारेको नहीं पाया, तब अत्यन्त व्याकुल हो मरेहुए बछडेवाली गायकी नाईं निर्बल होकर पृथ्वीपर गिरपडी और करुणाभरे वचन कह कहकर शोच करने लगी ॥ २४ ॥

उस समय यशोदाका रुदन सुन सुनकर पशुपक्षियोंका भी हृदय विदीर्ण होता था, अत्यन्त पीडित और महाव्याकुल हुई नेत्रोंमें आंसू भरे गोपियें श्रीकृष्णके विना देखे रोरोकर प्राण त्यागनेको प्रस्तुत थीं इतनेमें धूरिवर्षा आंधी तो थम गयी ॥२५॥ और बबूलेका रूप धरनेवाले तृणावर्त्त दैत्यका वेग, सब धरणीके धारण करनेवाले विश्वनाथ भगवान्के उठा ले जानेसे आकाशको न उडा गया तो उसका वेग शांत होगया, इसी कारण उस दैत्यसे अधिक भारी भार लेकर ऊपरको न उडा गया * ॥२६॥ जब तृणावर्त्तको बहुत बोझ ज्ञात होने लगा तब यह जाना कि, मैं किसी बडे पत्थरको उठा लाया हूँ, या कोई वज्र मेरे हाथमें है? यह कह श्रीकृष्णसे छूटनेकी इच्छा करने लगा, परंतु

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नंदसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥ ॥२५॥ तृणावर्तः शांतरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभो गतोगंतुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥२६॥ तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥ तमंतरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदंत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥

79/

श्रीकृष्णने उसका कण्ठ ऐसा गहकर पकडा था कि, वह किसी प्रकार न छूट सका ॥ २७ ॥ कण्ठके घुटनेसे उसकी चेष्टा हत हो गयी, नेत्र निकल पड़े, मुखसे शब्द न निकल सका, प्राणहीन होकर वह तृणावर्त दैत्य श्रीकृष्णसमेत गोकुलमें गिरा ॥ २८ ॥ जैसे महादेवके बाणका मारा त्रिपुरासुर पृथ्वीपर गिरा था, ऐसे ही आकाशसे वह विकराल दैत्य शिलाके ऊपर गिरा जिसके सब अंग टूटकर चूर होगये. वह महा

---

* शंका-श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद मुनिमनरञ्जन भक्तभयभंजने भगवान्का नाम है, फिर कृष्णचन्द्रने अपनी माताको और व्रजवासियोंको दुःखी करके और अपनी माताको रुलाके अपनी देहमें भारको बढाया तो जब तृणावर्त्त हरिको हरके ले चला तब भगवान्ने अपनी देहमें भार क्यों नहीं बढाया, जो राक्षसके उठानेसे न उठते तो सबको कष्ट क्यों होता ?

उत्तर-ब्रह्माने पहिले तृणावर्त्तको वरदान दिया था कि तेरे लिये दुःख करके यशोदाकी आंखोंसे आंसू गिरेंगे तब तेरी मृत्यु होगी। इसलिये श्री कृष्णने अपनी देहमें भार नहीं बढाया।

भयानक रूप उस तृणावर्त्तका रोती हुई व्रजबालाओंने देखा ॥ २९ ॥ उस तृणावर्त्तकी छातीके ऊपर निर्भय खेलता हुआ श्रीकृष्णको भी देखा, सो तुरन्त गोपियोंने दौडकर श्रीकृष्णको उठा यशोदाकी गोदमें दे दिया और बडा आश्चर्य मानकर सब गोपी यह कहने लगीं कि, बालकको उठाकर यह राक्षस आकाशमें लेगया था, सो यह बालक मृत्युके मुखमेंसे फिर निकलकर आया है नन्दादिक गोप और गोपिका श्रीकृष्णको पाकर परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ और परस्पर कहने लगे कि बडे आश्चर्यकी बात है कि, देखो इस राक्षसने इस बालकके मारनेमें कुछ भी कसर नहीं रक्खी, परंतु भगवान्ने इसको बचाया और यह दुष्ट अपने पापसे आप ही मर गया और यह बालक साधुके समान है, इसलिये इस दुष्टके हाथसे छूट आया. साधु पुरुष अपनी समतासे भयसे छूट जाते हैं ॥ ३१ ॥ देखो हमने ऐसा कौनसा भारी तप

आदाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लंबमानम्॥ तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखा
त्प्रमुक्तम्॥ गोप्यश्च गोपाः किल नंदमुख्या लब्ध्वाशिषः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो
निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किं नस्त
पश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ॥ यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबंधून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नंदगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥ एकदार्भकमादाय स्वांक
मारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥

किया है ? क्या भगवान् वासुदेवका पूजन किया है ? क्या कुआँ, बावडी, ताल खुदवाये हैं ? क्या पंचयज्ञ किये हैं ? क्या कोई बडा भारी दान किया है ? अथवा भूखे नंगे प्राणियोंपर दया करी है ? जिन पुण्योंके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हुआ हमारा बालक अपने माता पिता बन्धुओंके सुख देनेके लिये लौटकर आगया ? ॥ ३२ ॥ नन्दजीने गोकुलमें बहुतसे उत्पातोंको देखकर अपने मनमें बड़ा आश्चर्य माना, हमसे मथुरामें वसुदेजीने पहिले ही कह दिया कि, गोकुलमें बड़ा भारी उत्पात होगा, सो आज हमको वसुदेवजीके वचनका पूरा विश्वास हुआ ॥ ३३ ॥ एक समय यशोदाजी मनमोहन प्यारेको अपनी गोदमें बैठाकर मोहमें अति निमग्न होकर जिन स्तनोंसे दूध टपकता था

सो स्तन पिलाने लगी, देखो यशोदाके कैसे उत्तम भाग्य हैं ॥३४॥ कुछ एक स्तन पिया पीछे यशोदाजी अपनी मन्दमुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दके ऊपर अँगुली धरकर दूध पिलाने लगीं इतनेहीमें हे राजन्! श्रीकृष्णने जँभाई ली उस समय यशोदाने उनके मुखमें यह सब संसार देखा ॥३५॥ आकश,स्वर्ग,पृथ्वी,तारागण, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पवत, नदी, वन, स्थावर, जंगम, जीव इन सबको देखा ॥३६॥ हे राजन् ! सब विश्वको तत्काल यशोदा श्रीकृष्णके मुखमें देखकर डरके मारे कम्पायमान होकर अपने

पीतप्रायस्यजननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुख लालयती राजञ्जृंभतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येंदुवह्निश्वसनांबुधींश्च ॥ द्वीपान्नगांस्तद्दुहितृर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजंगमानि ॥ ३६ ॥ सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥ संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कंधे पू० शकटतृणावर्तभंजनविश्वप्रदर्शनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितोराजन्यदूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नंदस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

मृगकेसे नेत्र बंद कर लिये और बडा आश्चय माना कि, इस बालकके मुखम मैंने क्या जाल जञ्जाल देखा ❋ ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा–अष्टममें श्रीगर्गमुनि, नंदरायगृह आय । नामकरण उत्सव कियो, मुखमें विश्व दिखाय ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! बडे तपस्वी और यादवोंके पुरोहित श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीके

792

❋ राजा परीक्षित् बोले कि हे प्रभो ! पूर्वजन्ममें यह तृणावर्त्त कौन था, जो इसने राक्षसका शरीर पाया? यह सब कथा मुझको समझाकर कहो ! श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह तृणावर्त्त पाण्डुदेशका राजा था और विश्वविजयी इसका नाम था. दुर्वासा ऋषिके शापसे यह राक्षस होगया. परीक्षित्ने बूझा कि, क्या ऐसा खोटा कर्म उसने किया जो यह शाप दुर्वासाने दिया? श्रीशुकदेवजी बोले कि, पाण्डुदेशका नरेश विश्वविजयी था और एक सहस्र इसकी स्त्री थीं. एक दिन उन सब स्त्रियों समत वनविहारके हेतु वनको गया. वहां ऊंचे ऊंचे वृक्ष आकाशसे बातें कर रहे थे, सुन्दर सुन्दर फल फूल खिल रहे, मोर, कीर, कोकिला, बोल रहे, एक ओरको गंधमादन पर्वत निराला ही शोभा दे रहा, उसके नीचे पुष्पभद्रा नदी न्यारीही लहरें लेती चली जाती थी ऐसा शोभायमान निर्जन वन देखकर उसी नदीमें स्त्री और आप नंगा होकर जलक्रीडा करनेलगा. मद पीपीकर स्त्री और राजा ऐसा मतवाला होगया कि, संपूर्ण लज्जा त्याग निर्लज्ज बन जलविहार करने लगा, उसी समय एक लाख शिष्योंको साथ लिये दुर्वासाऋषि भी उसी आश्रममें आगये. देखा तो सब स्त्रियोंके संग राजा नंगा क्रीडा कर रहा है,मुनिने कोप करके शाप दे दिया कि रे दुष्ट ! मेरे वचनके प्रतापसे तू असुर होजा.भारतखण्डमें एक लाख वर्षतक भ्रमता फिरेगा जब व्रजमें श्रीकृष्णचन्द्र अवतार लेंगे तू उनके हाथसे मृत्यु पावेगा तब तेरी मोक्ष होगी. राजाने यह शाप सुन बहुत उदासहो अग्निकुण्ड बनाय सब स्त्रियोंसहित अपना शरीर भस्म कर दिया॥

भेजे हुए मथुरापुरीसे गोकुलमें नन्दरायजीके घर आये ॥ १ ॥ गर्गाचार्यको देखकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुए और उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और भगवान्के समान जानकर पूजन किया ॥ २ ॥ गर्गाचार्यजीको सुन्दर आसनपर बैठालकर षट्रस भोजन कराया और मधुर वाणीसे नन्दरायजी बोले कि,अहो ब्रह्मन् ! आप तो परिपूर्ण हो आपका पूजन हम किस प्रकार कर सकते हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! दीन गृहस्थ लोगोंके कल्याण करनेके लिये आपसरीखे महात्मा अपने आश्रमसे गृहस्थोंके घर जाते हैं और उनसे अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखते ॥ ४ ॥ और जो देखने और सुननेमें नहीं आता उस ज्ञानका प्रगट करनेवाला और सूर्य चन्द्र नक्षत्रादिकोंका प्रतिपादन करनेवाला ज्योतिषशास्त्र

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृतांजलिः ॥ आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ २ ॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं
गिरा सूनृतया मुनिम् ॥ नंदयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥
निश्श्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनंसाक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतींद्रियम् ॥ प्रणीतं भवता
येन पुमान्वेद परावरम्॥५॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ बालयोरनयोर्नॄणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः
॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ॥ सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

साक्षात् आपने कथन किया है,जिसके पढनेसे पुरुष भूत,भविष्य, वर्तमान कालका वृत्तांत जान सकता है ॥ ५ ॥ ज्योतिषशास्त्रके कर्त्ता और वेदवादियोंमें भी आप परिपूर्ण हो, इसलिये तुम हमारे दोनों पुत्रोंका नामकरण संस्कार करो. तब गर्गाचार्यजीने कहा कि,जो तुम्हारे गुरु आचार्य हों उनसे नामकरण क्यों नहीं करा लेते. तब नन्दजी बोले कि,हे महाराज! आपके सम्मुख और कौन है ? क्योंकि ब्राह्मण जन्मसे ही सबके गुरु हैं ॥ ६ ॥ फिर गर्गाचार्यने कहा कि, मैं यादवोंका पुरोहित हूँ और सब जगत्में विख्यात हूँ, जो मैं तुम्हारे पुत्रोंका नामकरण संस्कार करूंगा तो वह दुष्टात्मा कंस इन बालकोंको देवकीके पुत्र समझेगा * ॥ ७ ॥

---

* शंका–गर्गाचार्यने नन्दजीके संग कपट क्यों किया ? हम श्रीकृष्णका नाम नहीं धरेंगे यह क्यों कहा ? इसलिये तो गये ही थे,झूंठ वचन एक क्षणमें ब्राह्मणोंके सब तपका नाश कर देता है,जान बूझकर क्यों झूंठ बोले ?

और आपकी और वसुदेवजीकी परम मित्रता है यह बात भी कंस भले प्रकार जानता है और दूसरे कंसको यह भी संदेह है कि, देवकीके गर्भमें कन्या न होनी चाहिये, कहीं अपने पुत्रको पहुँचा न दिया हो यह समझे, क्योंकि कंस दिन रात सैंकडों विचार किया करता है॥८॥ और अब तो उसने देवकीके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई समझ ही रक्खी है और जो दूसरी यह बात सुनेगा कि, गर्गाचार्यने नन्दजीके घर जाकर बालकोंका नाम रक्खा है, इससे निश्चय वह जानेगा कि यह वसुदेवजीके पुत्र हैं और कंस तो बिना ही जाने इन बालकोंके मारनेका उपाय कर रहा है और जो सत्य समझकर इन बालकोंको मरवा दिया तो बड़ा अनर्थ होगा ॥ ९ ॥ नन्दजी बोले कि, हे गर्गाचार्यजी ! वह

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ॥ देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवि तुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचिंतयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ॥ अपि हंताऽऽगताशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥ नंद उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥१०॥श्रीशुक उवाच ॥ एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥ गर्ग उवाच॥अथं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ॥ यदूनाम पृथक्भावात्संकर्षणमुशंत्युत ॥ १२ ॥

उपाय करो जो हमारे साथी ब्रजवासी भी नहीं जानें, इस प्रकार एकांत स्थान जहां गायोंका खिरक था वहां बैठकर स्वस्तिवाचन पढ़कर दोनों बालकोंका संस्कार किया.जोकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको करना योग्य है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार नन्दरायजीने जब प्रार्थना करी तो एकांतमें गर्गाचार्यजीने छिपकर नामकरण किया, क्योंकि नामकरण करनेकी इच्छासे तो गर्गाचार्यजी आये ही थे ॥ ११ ॥ गर्गमुनि बोले कि,यह रोहिणीका पुत्र अपनें गुणोंसे सुहृदोंको रमण करावेगा इसलिये इसका नाम ‘ राम ’ रखना

उत्तर—गर्ग मुनिने अपने मनमें विचारा कि जो हम नन्दसे सत्य बोलेंगे और प्रत्यक्ष कृष्णका नाम धरेंगे तो बडे उत्साहसे बाजे बजा यके अनेक हर्षसे आनन्द करेंगे तब कंसादिक दैत्य जान जायँगे कि,यह बालक किसी यदुवंशीका है तो बडाभारी उत्पात होगा, इसलिये झूंठ बोले कि, विना कपट किये नन्दजी गुप्त नाम न धराते बडा उत्साह करते और शास्त्रमें ऐसा भी लिखा है, पराये उपकारके किये झूंठ बोलनेका कुछ दोष नहीं होता ॥

चाहिये और बल अधिक होगा इसलिये इसका नाम 'बलदेव' रखना चाहिये और बिछुरे यादवोंको मिलावेगा इससे इसका नाम, संकर्षण' होगा ॥ १२ ॥ और यह जो तुम्हारा दूसरा पुत्र है सो यह युग युगमें अवतार धारण करता है और इसके तीन रंग हुए श्वेत, लाल, पीला सो सतयुगमें शुक्लवर्ण हुआ, त्रेतामें लाल वर्ण हुआ और द्वापरमें पीतवर्ण हुआ. अब इन्द्रनीलमणिके सदृश श्यामसुंदर रूप धारण किया है, इसलिये इसका 'कृष्ण' नाम रखना चाहिये ॥ १३ ॥ किसी समय यह तुम्हारा महाभाग पुत्र वसुदेवजीके घर जन्मा था, इसलिये ज्ञानी पुरुष इसका नाम वासुदेव भी कहेंगे ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रके गुणकर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं और रूप भी अनेक हैं, इनको मैं नहीं जानता और कोई दूसरा पुरुष भी नहीं जानता, क्योंकि यह बालक परब्र परमेश्वरका अवतार है, इसलिये इसका भेद ब्रह्मा, शिव, सनकादिक भी

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमान भिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोप गोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यूसर्मेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्त्याऽनुभावेन गोपासमहितः ॥ १९ ॥

नहीं जान सकते ॥ १५ ॥ गाय, गोप, गोपी और तुमको आनन्द देनेवाला यह तुम्हारा पुत्र होगा और नंदरायजी! तुम्हारे ऊपर बडे बडे कष्ट आकर प्राप्त होंगे, उन कष्टोंको इनकी कृपासे सहजमें तर जाओगे ॥ १६ ॥ हे व्रजराज! पहिले जब कोई राजा नहीं था, तब इस बालकने पृथ्वीपर सब दुष्ट चोरोंको पीडित कर महात्माओंकी रक्षा करी और चोरोंका पराजय किया ॥ १७ ॥ और जो महात्मा पुरुष इस तुम्हारे पुत्रसे स्नेह रखते हैं इनका शत्रु लोग कुछ तिरस्कार नहीं कर सकते. जिसप्रकार विष्णुके सहायक रहनेसे देवताओंका दैत्यलोग कुछ नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ हे नन्दरायजी! यह तुम्हारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रतापमें विष्णु भगवान्के समान जान पड़ता है, सावधान होकर तुम इसकी रक्षा करना ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे व्रजनाथ!इसी राधाके साथ आपके पुत्रका विवाह होगा और यही राधा तुम्हारे कुलकी बाधा हरनेवाली होगी यह कह सबको आशीर्वाद दे गर्गाचार्य विदा होकर चल दिये,पीछे नन्दजीने परमानन्दित हो अपने मनोरथको सब प्रकार परिपूर्ण समझा॥२०॥जब कुछ और थोड़े दिन व्यतीत हुए तब बलदेवजी और श्रीकृष्ण दोनों भैया हाथ टेक२का घुटनों चलने लगे ॥२१॥ जिस समय कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई व्रजकी कीचमें विचरते थे उस समय उनके पावोंकी पैंजनी और कटिकी किंकिणीकी झनकारका सुन्दर शब्द सुनकर यशोदा और रोहिणी मनही मनमें आनन्दित होती थीं और जो पथिक मार्गमें जाते उनहीके पीछे घुटनों२थोडी दूर चले जाते,जब वह पुरुष इनकी ओरको देखते तब डरकर अपनी माताके पासको भागते॥२२॥तब माता यशोदा और रोहिणी अपने२पुत्रको उठाय हृदयसे लगाय उनके अंगोंको देखैं हैं,कहीं तो व्रजकी

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते॥नंदः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥
कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ ॥ जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिंगमाणौ विजह्रतुः ॥२१॥ तावंघ्रियुग्ममनुकृष्य
सरीसृपंतौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरंति मात्रोः ॥ २२ ॥
तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवंत्यौ पंकांगरागरुचिरावुपगृह्य दोर्भ्याम् ॥ दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मितालपदशनं ययतुः प्रमोदम्॥२३॥ यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीलावंतर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ॥ वत्सैरित
स्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षंत्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसंत्यः ॥ २४ ॥ शृंग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकंटकेभ्यः क्रीडापरा
वतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

कीचमें लिपटरहेहैं और कहीं प्रमादकी केशर अंगमें लगीहुईहै,जिनके स्तन दूधसे खसि आये हैं उनको खिलाय खिलाय दूध पिलाय पिलाय उनकी ओरको देख२प्रेममें मग्न हो रहीहैं और उनके मुखकी भोलीभोली मुसक्यान और छोटी२दँतुरियोंकी छबि निहार निहार वारंवार प्रसन्न होती थीं ॥२३॥ जिस समय व्रजमें गोपियोंके देखनेके योग्य श्रीकृष्ण और बलराम बाललीलाओंको करने लगें और दौड दौडकर बछरोंकी पूँछ पकड पकड कर खींचें, जब बछडे भागते तो यह उनके पीछेपीछे खिंचे चले जाते थे,इस प्रकारकी लीला वह गोपी देख घरोंके कामको छोड छोड हँस हँसकर हर्षको प्राप्त होती थीं ॥ २४ ॥ माता यशोदा और रोहिणी अतिचंचल खेलमें लगे हुए श्रीकृष्ण बलदेवको देखकर गाय,बैल,

डाढवाले जीव, बन्दर अग्नि, जल, सांप, पक्षी, कांटोंसे रोकरोक बचाती फिरा करती थीं और घरके काम धन्धे सब छोड दिये थे,जब रोहिणी और यशोदा फिरती फिरती हार जातीं तब श्रीकृष्ण बलभद्र माताओंके मनकी गति जानकर आँगनमें खेलने लगते ॥ २५ ॥ हे राजन् ! व्रजमें राम कृष्ण दोनों भाई थोडे ही दिनों पीछे घुटनोंहीके बल नहीं बरन् चरणोंसे अनायास पूर्वक चलने लगे। कभी घरमें जाते, कभी बाहर आते, कभी भुजा उठा उठाकर बालकोंको बुलाते,कभी धौरी, धूमरी,गोरी,काली नाम ले लेकर गायोंको गुहराते, कभी माखन मिश्री मातासे मांग मांगके खाते,कभी मुकुरमें जो अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता तो उससे कहते,भैया ! तू भी माखन खाले, जब वह प्रतिबिम्ब न लेता तो दोनों हाथोंसे आधा आधा कर एक भाग उसको देते जब माखन पृथ्वीपर गिर जाता तो कहते कि,भैय्या अब क्यों नहीं लेते वह बात भी बताओ. इन अद्भुत चारित्रोंको यशोदा मैया छिप छिपकर देखती और अपने मनही मनमें प्रसन्न होती और झट आनकर गोदमें उठाय मुख चूम लेती. उस परमानन्दके सुखको कौन वर्णन कर सकता है ॥ २६ ॥ एक दिन मदनमोहन व्रजवासियोंके बालकोंके संग अपनी सिंहपौर पर खेल रहे थे, सबकी एक अवस्था, भोली भोली सूरत, कृष्णकी प्रीतिमें मतवाले अनेक अनेक प्रकारकी लीला कर रहे थे. कभी गाते, कभी हँसते, कभी किलकारी मारते, कभी अपनी माताको पुकारते, धन्य यशोदाके भाग्यको, मदनमोहनकी उस मनोहर छबिको देख २ व्रजवासी लोग स्त्री पुरुष मनहीं मनमें कहते थे कि,कोटि कामदेव भी इस शोभाकी समताको नहीं पा सकते. देखो बलराम और घनश्याम अपने समान अवस्थावाले व्रजवासियोंके बालकोंको संग लेकर नई नई क्रीड़ा कर हमलोगोंको कैसा कैसा आनन्द देते हैं ॥ २७ ॥ गोपी श्रीकृष्णचन्द्रकी बाललीलाकी चपलता देखकर सब जुड मिलकर आईं और श्रीकृष्णचन्द्रकी माता यशोदाको सुनाकर यह कहने लगीं ॥२८॥ अहो यशोदा !

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ॥ अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरंजसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥ २७ ॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ॥ शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान्मुंचन्क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भांडं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥

तुम अपने पुत्रको बर्ज लेना. हमारे घरोंमें आकर द्वन्द्व मचाता है, हम तो गायोंको दुहने नहीं पातीं वह पहिलेसे पहिले बछडोंको खोल देताहै बछडे दूध पीजाते हैं, दुहनेवाले ग्वालिये शिर मार मारकर चले जाते हैं. यशोदा बोली अरी ! तुम्हारे घर जब जाय तो इसको डाट दिया करो. यशोदाजीका वचन सुनकर गोपिका कहने लगीं कि; जब हम इसको डाटती हैं तब यह हँस देता है. इसकी हँसी देखकर हमको भी हँसी आ जाती है और यह चोरीके उपाय करके दूध दही और जो कुछ मीठे मीठे पदार्थ हमारे घरोंमें रक्खे होते हैं उनको स्वादसे चुरा चुराकर खा जाता है और जो कुछ बचा रहता है उसको बन्दरोंको खिला देता है और जो बन्दर भी नहीं खाते तो जान बूझकर दूध दही घीके चिकने बासनोंको फोड डालता और जो कदाचित् माखन दूध इसके हाथ नहीं लगता तो क्रोध करके गालियें देता है और यह कहता है कि, इनके घरोंमें आग लगजाओ फिर पालनेमें सोते हुए हमारे बालकोंको रुलाकर भाग जाता है ॥ २९ ॥ और ऊंचे २ छींकोंपर धरती हैं कि, इसके हाथ न आवै तब पीढा, पट्टा, ऊखली इत्यादि धरकर चोरीका उपाय करता है और किसी किसी छींकेके बासनमें छेद कर देता है और नीचे सब बालक मुख लगाकर सब गोरस पीजाते हैं और जो मीठा दही होता है तब तो खा जाते हैं और जो खट्टा होता है तो गिरा देते हैं और जो मेवा मिष्टान्न होता है उसको बालकोंके कन्धेपर चढकर खा लेता है और जो हम अन्धेरे घरमें दही माखन कहीं छिपाकर भी धरती हैं, तो उसके आभूषणोंमें जो रत्न, मणि, माणिक, हीरे जडे हैं उनका प्रकाश हो जाता है, दूसरे इसका जो चन्द्रमासा मुख है उसकी उजियालीका चांदना हो जाता है तब हमारा धरा ढका सब निकाल लाता है, जब तक हम घरमें बैठी रहती हैं उस समय आता है तो हमको देखकर भाग जाता है और जब हम अपने घरके काम धन्धेमें लग जाती हैं उस समय घरमें आन घुसता है ॥ ३० ॥ और जब कभी हम आकर इसको देख पाती हैं और कहती हैं कि, अरे चोर ! तो यह लौटकर कहता है कि, तुमहीं चोर हो मैं घरका स्वामी हूं ऐसे

हस्ताऽग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभांडेषु तद्वित् ॥ ध्वांतागारे
धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥ एवं धाष्ट्यान्युशति कुरुते मेहना
दीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था
प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥

हँसीकी बातोंमें बातको टाल देता है हमारे लिपे पुते घरोंको बिगाड देता है, सब दिन सखाओंको संग लिये चोरीकी चिंतामें फिरता रहता है यह कन्हैया तुम्हारा बडा ढीठ है और पेटमें इसके सैकडों छल भरे हैं, परंतु मुहका मीठा है, जो तुमको विश्वास न आवे तो हम पकडके दिखा दें. कभी किसीके कपडे फाडता है, कभी किसीको मारता है, सब व्रजमें धूम धाम मचा रक्खी है॥ अब देखो! तुम्हारे आगे कैसा भोला भाला बना खडा है मानो कुछ जानता ही नहीं. इस प्रकार जब गोपियोंने डराया तो उस समय भयसंयुक्त नेत्र उसमें श्रीमुखकी शोभा देखनेके लिये श्रीयशोदाजीसे आके गोपियोंने उलाहना दिया, तब श्रीयशोदाजीने हँसके मनमोहन प्यारेको गोदीमें उठ लिया और पुत्रसे कुछ कहा नहीं ॥ ३१॥ एक समय बलभद्रादिक गोपियोंके बालकोंमें क्रीडा कर रहे थे, वहां श्रीकृष्णचन्द्र मट्टी खाने लगे, तब सब बालकोंने कहा आज कृष्णको कृष्णकी मातासे पिटवावेंगे और जाकर यह कहेंगे कि, आज श्यामसुन्दरने मट्टी खाई है,तब यह विचार कर सब बालक और श्रीदामा यशोदाजीके पास गये और जाकर कहा कि, आज श्रीकृष्णने मट्टी खाई है ॥ ३२ ॥ तब

एकदा क्रीडमाणास्ते रामाद्या गोपदारकाः ॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥ सा गृहीत्वा करे
कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ॥ यशोदा भयसंभ्रांतप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥ कस्मान्मृदमदांतात्मन्भवान्भक्षितवान्रहः ॥
वदंति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजो ऽप्ययम् ॥३४॥ नाहं भक्षितवानंब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ॥ यदि सत्यगिरस्तर्हि
समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

परमहितकी करनेवाली श्रीकृष्णकी माता यशोदाने क्रोधित हो श्रीकृष्णका हाथ पकडकर धमकाया और भययुक्त चञ्चल नेत्र मोहनप्यारेसे यह कहा ॥ ३३ ॥ हे चपलगात चञ्चल! तैंने अकले जाकर मट्टी क्यों खाई? अरे अन्याई! जो यह बात गांवके लोग सुनेंगे तो घर २ यह जवाब होगा कि,नन्दरानी ऐसी जड (कंजूस) हुई है कि,अपने बालकको पेटभर रोटी भी नहीं देती, इसलिये वह मट्टी खाखाकर दिन पूरे करे है. यह बात सुनकर श्यामसुन्दर डरते कांपते बोले कि, हे माता! यह झूंठ बात तुझसे किसने कही? कदाचित् कोई बालक तेरे पास आकर मुझको झूंठा कलंक लगा दे तो उसमें मेरा क्या अपराध है? तब यशोदाने कहा कि. तेरे मित्र श्रीदामाने मुझसे कही है और तेरे ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊने कही है॥ ३४ ॥ हे मैया! मैंने मट्टी नहीं खाई और श्रीदामाकी ओरको कडी दृष्टिसे देखकर बोले क्योंरे श्रीदामा! मैंने तेरे सामने मट्टी कब खाई थी? श्रीदामा बोला मैंने तेरी मातासे कुछ नहीं कहा, तब यशोदाने छडी लेकर कहा सच्ची बता?

श्रीकृष्ण बोले कि, मैय्या ! जो तुझको विश्वास नहीं हो तो मेरा मुख देखले॥३५॥यह बात सुनकर यशोदा बोली, मुझको तेरी झूंठी बातोंका किसी प्रकार विश्वास नहीं आता, जो तू सच्चा है तो अपना मुख फैलाकर दिखलादे । यशोंदाकी यह बात सुन अनेक दुःखोंके दूर करनेवाले अखण्ड ऐश्वर्यवान् भगवान् क्रीडा करनेके लिये मनुजतनुधारी बालकरूप श्रीकृष्णचन्द्रने अपना मुखारविन्द फैलाकर यशोदाको दिखला दिया ॥३६॥ तब यशोदाजीने श्रीकृष्णके मुखमें स्थावर, जंगम, विश्व, अन्तरिक्ष, दिशा पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूगोल, प्रवाह, वायु, अग्नि, चंद्रमा, तारागण ॥३७॥ ज्योतिश्चक्र, जल, तेज, आकाश, इन्द्रियोंके देवता, इन्द्रिय, मन, शब्दादिकऔर इनके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यहपां चो. सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ॥ ३८ ॥ जीव, काल, स्वभाव, कर्म, अंतःकरण और उसके होनेवाले चराचर और सम्पूर्ण प्राणियोंके भेद सहित चित्र

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ॥ व्यादत्ताऽव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥३६॥ सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः॥साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नींदुतारकम्॥३७॥ज्योतिश्चक्रं लं तेजो नभस्वान्वियदेव च॥ वैकारिकाणींद्रियाणि मनोमात्रा गुणास्त्रयः ॥३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम्॥३९॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥

विचित्र संसारको श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें देखा और उसमें ही ब्रजभूमि और अपने देहको देख यशोदाके मनमें भ्रम उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ और अपने मनही मनमें कहने लगी किमैं जो देख रही हूँ क्या यह स्वप्न है ? नहीं, यह स्वप्न नहीं है, क्योंकि स्वप्न तो सोतेमें दिखाईदेता है, तो क्या फिर परमेश्वरको माया है ? नहीं नहीं, यह माया भी नहीं है, क्योंकि माया होती तो और लोग भी देखते, क्या जैसे मुकुरमें मुख दीखता है ऐसे ही दिखाई दिया ? क्या यह मेरी बुद्धिका ही भ्रमजाल है ? नहीं नहीं, ऐसा भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होता तो दर्पणमें जैसे दर्पण दृष्टि नहीं आता तैसे इस पुत्रके मुखमें यह पुत्र भी दीखना अनुचित हैऔर बाहर तथा भीतर एकरूपसे जगत्की प्रतीति किसी प्रकार न होनी

चाहिये, अथवा मेरे पुत्र श्रीकृष्णका यह स्वाभाविक ऐश्वर्य है ॥ ४० ॥ जो ध्यान करके देखा जायं तो यह अंतिम पक्षही बलवान् जान पड़ता है, क्योंकि यह संसार जो किंचित् मन वाणी और वचनसे अनायासपूर्वक भले प्रकार विचारमें नहीं आ सकता, वह किसके आश्रय है और किस रीतिसे प्रतीत होसकता है, उस अचिन्तनीय स्वरूपको मैं बारम्बार नमस्कार करती हूँ ॥ ४१ ॥ इन ब्रजराजके सम्पूर्ण धनकी अधिष्ठाता मैं हूँ. यह व्रजनाथ नन्दजी मेरे स्वामी हैं यह श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है और यह सब गोप गोपिका तथा गाय बछडे मेरे हैं, मायासे जिसकी ऐसी कुबुद्धि होर ही है सो अब हे भगवन् ! तुम्हारी शरण हूँ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यशोदजीको कृष्णमें ईश्वरकी बुद्धि होगई तब

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरंजसा ॥ यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥४१ ॥ अहंममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपाः सह गोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्याऽऽरोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथा पुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम्॥४५॥ राजोवाच ॥ नंदः किमकरोद्ब्रह्मञ्श्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्णने विचार किया कि, माता तो परमगतिको पहुची, अब मेरा लालन पालन कौन करेगा. तब पुत्रने स्नेहरूपा अपनी वैष्णवी माया यशोदा पर फैलादी ॥ ४३ ॥ उस समय यशोदाजीके मनसे श्रीकृष्णचन्द्रकी ईश्वरबुद्धि अलग कर दी और पुत्रत्वभाव मानके श्रीकृष्णको गोदमें बैठाल प्रेममें मग्न होकर पहिलेके समान वात्सल्यभाव करने लगी ॥ ४४ ॥ ऋग्, यजु, साम यह तीनों वेद, सांख्य योगसमस्त निरन्तर जिन वासुदेव भगवान्की महिमाको रातदिन गते हैं उन श्रीकृष्णको यशोदा पुत्रभावसे मानतीहै ॥ ४५ ॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, हे ब्रह्मन् ! नन्दरायजीने ऐसा क्या पुण्य किया था जिसके प्रभावसे उनका ऐसा भाग्य उदय हुआ ! और

यशोदाजीने ऐसा कौनसा श्रेष्ठ पुण्य किया था जिससे श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द्रने उनका स्तन पान किया ॥ ४६ ॥ और सब लोकोंके
पापका दूर करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका बालचरित्र आजतक जिसे कवीश्वरलोग वर्णन करते हैं सो इस बाललीलाका सुख देवकी और वसुदेव
को प्राप्त नहीं हुआ और नन्द यशोदाको प्राप्त हुआ इसका क्या कारण ? ॥ ४७ ॥ यह गूढ वचन राजापरीक्षित्का सुनकर श्रीशुकदेवजी
बोले कि, हे राजन्! आठ वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण नाम वसुने अपनी धरा नाम स्त्रीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी आज्ञा शीशपर धारण कर परमेश्वरका
तप किया, तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर चतुराननसे कहा कि, मेरे भक्त जो वर मांगें सो देना. ब्रह्माने इन दोनोंके सन्मुख आनकर कहा कि,

पितरौ नान्वविंदेतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ॥ गायंत्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे
भुवि विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिः स्यात्परमा लोके ययांजो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान्व्रजे द्रोणो
महायशाः ॥ जज्ञे नंद इति ख्यातोयशोदा सा धराऽभवत् ॥ ५० ॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दंप
त्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

वर माँगो. तब वह स्त्री पुरुष बोले कि, हे प्रभो ! जो हमपर प्रसन्न हो तो यह वर दो ॥ ४८ ॥ हमारे जन्म मृत्युलोकमें होयँ परंतु विश्वे
श्वर देवोंके देव हरि भगवान्में हमारी भक्ति बनी रहै, जिससे अनायास इस संसार सागरसे पार उतर जायँ ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने वर दियाकि,
जाओ पृथ्वीहीमें तुम्हारा जन्म होगा और तुमको भगवान्की भक्तिभी होगी, तब तो बडे यशस्वी और तेजस्वी द्रोण वसु व्रजमें जन्म धारण
कर नन्दनामसे प्रसिद्ध हुए और वह धरा यशोदा नामसे विख्यात हुई ॥ ५० ॥ हे भारत ! जितने गोप गोपी थे सबमें भगवान्की भक्तिथी,
परंतु नन्द यशोदामें अधिकही भक्ति थी, जिनके घर पुत्र होकर वास किया. यह ब्रह्माके वरदानका प्रभाव था ॥ ५१ ॥

परमात्मा विष्णुभगवान् ब्रह्माजीकी आज्ञा करनेके लिये बलदेवजीके साथ नन्द यशोदाकै घर वास कर अपनी लीला करके गोप गोपियोंको आनन्द दिया ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां विश्वदर्शनो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा नवमेंमें खट्वांग तक, अंशुमान कुल सर्व । कहौं भगीरथ कथा पुनि, लाये गंग अगर्व ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण एक दिन घरकी सब दासी तो काम धन्धेमें लग रही थीं, इसलिये यशोदा ही प्रातःकाल उठकर अपने हाथसे दही मथने लगी, उस समय दही मथनेका ऐसा गम्भीर शब्द होनेलगा जैसे मेघ गर्जता है ॥ १ ॥ दधि मथनेके समय जो जो लीला बाल चरित्रकी इस संसारमें श्री कृष्णने की है उनको स्मरण कर करके गाने लगी ॥ २ ॥ सूत्रसे बँधी रेशमी सारी कटि मेखलासे लपेट पुत्रकी प्रीतिसे स्तनोंमें दूध भररहा था

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥ सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया॥५२॥इति श्रीमद्भा॰म॰दश॰
पूर्वा॰ विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गृहदासीषु यशोदा नंदगेहिनी ॥ कर्मांतरनियुक्ता
सु निर्ममंथ स्वयं दधि ॥१॥ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ॥ दधिनिर्मंथने काले स्मरंती तान्यगायत॥२॥
क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकंपं च सुभ्रूः ॥ रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कंकणौ
कुण्डले च स्विन्नं वक्रं कबरविगलन्मालती निर्ममंथ ॥३॥ तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नंतीं जननीं हरिः ॥ गृहीत्वा
दधिमंथानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥

और नेती खींचनेके अतिश्रमसे हाथोंमें चूडियोंका शब्द होता था और भुजाओंमें कंकणमें और कानोंमें कुण्डल कर्णफूलबिजलीसे चमक चमक जाते थे मुखारविन्द पर पसीनेके कण आ रहे थे गुथी हुई कर्णफूल जूहीके पुष्प गिर रहे थे, और भ्रुकुटी ऐसी शोभायमान थी मानो इन्द्रने धनुष तान रक्खा है, इस अद्भुतछबिसे यशोदाजी दही विलोड़ रही थी ॥३॥ इतनेमें श्रीकृष्णकी आंख खुली तो रोरोकर माँ ! माँ ! पुकारनेलगे. जब उनके रोनेका शब्द किसीने न सुना तब आपही माताके समीप आये और सुसक सुसक ठिनक ठिनक आँखें मलमल तुतला तुतलाकर कहने लगे कि माँ! तुझे सैकडों पुकारें दीं और तू मुझे दूध पिलाने न आई यह कह मथनिया पकड़ली कि, पहिले मुझको दूध

पिलादे ॥४॥ यशोदा दूधसे भरा स्तन श्यामसुन्दरको गोदमें लिटाय आंचलकी ओट करके पिलाने लगी और हरिकी मन्द मन्दमुसकान देख यशोदा मनही मन आनन्द होती थी इतनेमे चूल्हेपर जो औटानेको दूध धरा था उसको उफनता देख ब्रजभूषणको भूखा ही गोदसे उतार दूध उतारनेको दौर्डी ॥ ५ ॥ उस समय श्रीकृष्णको बड़ा क्रोध आया और लाल २ बिम्बाफलसे होठोंको दांतोंसे काट सब दही महीके बासन फोड़ डाले, झूठे आंसू बहाय, माखनकी कमोरी उठाय अपने सखाओंमें जा बैठे और परस्पर बाँट बाँटकर खाने लगे ॥ ६ ॥ उफनते हुए दूधको यशोदाने चूल्हेसे नीचे उतारके दही मथनेको आई, देखा तो सब घरमें दही मही बह रहा है और सब बासन फूटे टूटे पडे और माखनके बासनका कहीं पता ही नहीं, जब मनमें विचारा, तो समझा कि, यह सब कौतुक सुन्दरहीके हैं उसके विनां ऐसा और कौन

तमंकमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ॥ अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥ संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमंथभाजनम् ॥ भित्त्वा मृषाऽश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयंगवमंतरं गतः ॥ ६ ॥ उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ॥ भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥ उलूखलांघ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ॥ हैयंगवं चौर्यविशंकितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥ तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततो ऽवरुह्यापससार भीतवत् ॥ गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुंतपसेरितं मनः ॥ ९ ॥

है और वह छलिया यहां है भी नहीं. तब यशोदा हँसके कहने लगी कि, देखो कामका काम बिगाड़ा और माखनकी मटकी लेकर कहींको सटक भी गया ॥७॥ बाहर निकलकर देखा तो घरके पिछवारे उलूखलको औंधाकरे उसके ऊपर बैठे और चारों ओर सखामण्डलीको बैठाये माखन बाँट बाँट कर खारहे हैं और कहीं माता न आजाय इस भयसे इधर उधरको देख २ लेते हैं, इतनेमें ढूँढती ढूँढती जसोदा भी वहां जा पहुँची॥८॥छड़ी हाथमें लिये माताको आती देख उसी समय उलूखसे कूदे डरके मारे घबराकर भाग निकले यशोदा भी उनके पीछे हुई और चिल्लाकर बोली खड़ा तो रहु तैंने बड़ा शिर उठाया है, परन्तु यशोदाके हाथ न आये, देखरे एकाग्रचित्तक-

अन्वंचमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रांतगतिस्सुमध्यमा॥ जवेन विस्रंसितकेशबंधनच्युतप्रसूनाऽनुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदंतमक्षिणी कर्षंतमंजन्मषिणी स्वपाणिना ॥ उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयंत्यवागुरत ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ॥ इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ न चांतर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चांतर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबंध प्राकृतं यथा ॥१४॥ तद्दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ॥ द्व्यंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥

योगिराज उनका ध्यान करनेवाले भी उनकी गतिको नहीं पहुँचसकते और तप करके तपस्वियोंका मन जिनकी गतिको नहीं जान सकता, फिर यशोदा उनको कैसे पकड सकती थीं॥ ९ ॥मनमोहनकेपीछे यशोदाजीकी गति नितम्बके भारसे शिथिल होगई, दौड़नेसे शीशके केशोंके बन्धन खुलगये और चोटीमें जो मालतीके फूल गुँथे रहे थे वह पुष्प आगे आगे गिरते जाते थे और जसोदा उनपर पांव धरती चली जाती थी, क्योंकि पुष्पोंकी सुगन्धसे चित्त व्याकुल नहीं होता, इसप्रकार यशोदाने महाकठिनतासे श्यामसुन्दरको पकडा ॥ १० ॥ अपराधी तो थे ही पकडतेही विह्वल होगये, रोरोकर काजल लगेहुए नेत्रोंको मलने लगे और हाहा कार कर यशोदासे कहने लगे कि, मैया! मुझेछोडदे, मैं नहीं जानता दही मही किसने गिराया तो भी कृष्णका हाथ पकड छडी उठाकर यशोदाने धमकाया और कहा कि, सिवाय तेरे और दधि माखनका चोर मेरे घर कौन आगया ॥ ११ ॥ पुत्रपर हित करनेवाली और भगवत्की गति न जाननेवाली यशोदाने मनमोहन प्यारेको व्याकुल समझकर छडी हाथमेंसे डालदी और पुत्रके पराक्रमको न समझकर रस्सीसे बांधनेको प्रस्तुत हुई॥ १२॥ जिस आदि पुरुष अविनाशीके बाहर, भीतर, आगे, पीछे कुछ भी नहीं है और जो पूर्ण अवतार है, जगत्के अन्तर, बाहर, तथा आगे, पीछे रहता और जो जगत्रूप है ॥ १३ ॥ इंद्रियोंकी जिनमें गति नहीं ऐसे अव्यक्त भगवान्को पुत्र मानकर यशोदाजी रस्सी लेकर उलूखलमें बांधने लगी, जैसे कोई साधारण बालकको बांधता है ॥ १४ ॥ अपराधी समझकर जब यशोदा अपने मनमोहन प्यारेको बांधने लगी, उस समय वह रस्सी दो अंगुल ओछी रहगई, तब यशोदाने उसमें दूसरी रस्सी

और जोडी ॥ १५ ॥ जो उसमें रस्सी जोडी थी वह भी दो अंगुल ओछी रहगई, तब तीसरी और जोडी तो वह भी दो अंगुल ओछी होगई इस प्रकार कितनी रस्सी जोड़ी परन्तु पूरा न पड़ सका ॥ १६ ॥ तब तो यशोदाने सब घरभरकी रस्सी इकट्ठी करके जोडीऔर श्यामसुन्दर न बँधे, तब तो सब गोपी आश्चर्य मान हँसने लगीं और मुसकराकरजसोदा भी विस्मित होने लगी॥ १७॥सबशरीर पसीनेमें डूब गया, माला कण्ठसे टूटपडी, शिखासे शीशफूल खिसक गया तब यशोदाको श्रमित देखकर करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र आपही कृपाकरके बन्धनमें बंधगये

यदासीत्तदपि न्यूनंतेनान्यदपि संदधे ॥तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद्यदादत्त बंधनम् ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा
संदधत्यपि ॥ गोपीनामुत्स्मयंतीनां स्मयंती विस्मिताऽभवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ॥
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबंधने ॥ १८ ॥ एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भक्तवश्यता ॥ स्ववशेनापि कृष्णेन
यस्येदं सेश्वरं वशे ॥१९॥ नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया॥प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ २०॥

॥ १८ ॥ हे राजन् ! ऐसे कष्ट हरनेवाले भगवान् ब्रह्मासहित सर्व विश्व जिनके अधीन है उन श्रीकृष्णचन्द्रने अपने भक्तोंको भक्त वश होना दिखाया कि, जो मेरे भक्त मुझको बांधना चाहैं तो बँध भी जाता हूँ, मैं इस प्रकार भक्तोंके वशमें हूँ ❋ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! भक्तिके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवानसे पुत्रके सम्बन्धसे जो प्रसाद गोपियोंने पाया सो प्रसाद ब्रह्माको न मिला और शिवजी जो भगवान्की आत्मा हैं उनको भी प्राप्त न हुआ और लक्ष्मी सदा हृदयमें विराजमान और भार्या है, तो भी उनको यह प्रसाद हाथ न आया,

---

❋ शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने यशोदा माताको पहिले तो बहुत दुःखी किया फिर पीछे रस्सीसे बँधगये और पहिले अनेक उपायोंसे नहीं बँधे इसका क्या कारण ?

उत्तर–जब श्रीकृष्ण भक्तभयहारी, जगत् हितकारीने मृत्युलोकके आनेकी इच्छा की, तबसब गोलोककी गायें श्रीकृष्णके संग ब्रजको आनेलगीं, तब गोलोककी सेवा करनेवाली दासी रस्सीबनकर गायोंके चरणोंमें और कण्ठमें बँध कर चली आईं, भगवान्ने विचारा कि, गोलोककी गायोंकी सेवा करनेवाली तो नन्दबाबाके घर आगईं अब नन्दकी गायोंकी दासी जो यहांपर रस्सी बनगई हैं इनको गोलोकमें भेजना चाहिये, ऐसा विचारके उन गायोंकी दासियोंको संसारसे मुक्त करनेके लिये फिर गोलोकको भेजनेके लिये एक रस्सीसे नहीं बँधे, एक रस्सीसे बंधे जाते तो यशोदा सबघरभरकी रस्सी क्यों इकट्ठी करके ले आती॥

जो प्रसाद यशोदाने ले रक्खा है ॥ २० ॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जैसे भक्तोंको सहजमें प्राप्त होतेहैं, ऐसे देहाभिमानी तपस्वी आदिकोंको और देहाभिमानरहित आत्मज्ञानियोंको सहज नहीं मिल सकते ॥२१॥ इनको बांध यशोदा तो घरके काम धन्धेमें लग गई इतनेमें सर्वसामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्, कुबेरके पुत्र जो प्रथम जन्ममें गुह्यक थे और अब आनकर यमलार्जुन वृक्ष हुए, उनका समय जान भगवान्ने उनकी ओरको देखा ॥ २२ ॥ प्रथम यह दोनों अत्यन्त शोभायमान नलकूबर, मणिग्रीव नामसे विख्यात थे, कुबेरके पुत्र प्रथम जन्मके मदसे नारदके शापसे वृक्षयोनिको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा—यमला अर्जुन वृक्ष दोउ, दीन्हें कृष्ण गिराय। प्रगटे देवशरीर धर, परे चरणमें जाय ॥ १ ॥

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥ नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥ इति श्रीभागव०म०दशम०पू० दामबन्धने कृष्णप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मंदाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अंतः प्रविश्य गंगायामंभोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! नलकूबर, मणिग्रीवके शापकी कथा वर्णन कीजिये कि, उन दोनोंने ऐसा क्या निन्दित कर्म किया था कि, जिससे नारदजीके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ और उन दोनोंको ऐसा कठिन शाप दिया? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, शिवजीके अनुचर यह दोनों अत्यन्त अभिमानी मद्य पीनेसे मतवाले कुबेरके पुत्र, मन्दाकिनीके तटपर कैलासकी पुष्पवाटिकामें घूम रहे थे ॥ २ ॥ वारुणी मदिराको पान करनेसे उनके नेत्र मदसे चलायमान होरहे थे और उपवनमें विचर रहे थे, उनके पीछे २ परमसुन्दरी स्त्रियें भी फिर रही थीं ॥ ३ ॥ और कमलोंके समूहोंसे सुशोभित श्रीगंगाजीके मध्यमें जाकर स्त्रियोंको संग लेकर विहार

करने लगे, जैसे हथिनियोंके संग हाथी विहार कर रहे थे * ॥ ४ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! अनायासपूर्वक देवर्षि भगवान् नारदजी भी वहां आगये और उनको अत्यन्त क्रीड़ा करता देखकर मतवाला समझा ॥ ५ ॥ नंगी स्त्रियोंने नारदजीको देखकर लज्जा मानी और शापके भयसे कांपने लगीं, इसी समय शीघ्रतासे अपने अपने वस्त्रोंके समीपको झपटीं परन्तु नलकूबर, मणिग्रीवने वस्त्र नहीं पहिरे नंगे ही खडे रहे ॥ ६ ॥ तब नारदजी कुबेरके पुत्रोंको मतवाला देखकर मद उनका दूर करनेके लिये और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके दर्शनके निमित्त शाप देते हुए गान करने लगे ॥ ७ ॥ तब नारदजीने कहा कि, प्रिय विषयोंकेभोग करनेवाले पुरुषकी बुद्धिको धनमदके बिना

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव॥ अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशंकिताः ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रा नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदांधौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥७॥ नारद उवाच ॥ न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यंते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यंते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः॥ १० ॥

802

इस्य हर्षणादिक कुलीनता पण्डिताई आदिसे हुआ मद अथवा रजोगुण नाश नहीं कर सकता; परंतु धनका मद ही बुद्धि भ्रष्ट कर देता है, क्योंकि लक्ष्मीका मद जिसको होता है तो वह स्त्रीप्रसंग करता है अथवा जुआ खेलता है और वारुणीका पान करता है ॥ ८ ॥ इस क्षणभंगुर शरीरको लक्ष्मीके मदसे अजरऔर अमर माननेवाले अजितेंद्रिय मनुष्य निर्दयी होकर पशुओंको मारते हैं॥ ९ ॥ राजा देहकी भी मरनेके पीछे तीन गति होती हैं, गाड़नेसे अथवा पृथ्वीपर डालनेसे कृमि होजाते हैं,जो पशु आदिक खाजाते हैं तो विष्ठा हो जाती है और अग्निमें जलानेसे भस्म होजाती है,इस कारण इस तुच्छ शरीरके लिये प्राणियोंसे विरोध करना अच्छा नहीं है, क्योंकि जीवोंके द्रोहसे तो नरक ही

---

* शंका—किसी नदीमें भी कमलोंका वन होता है ? हमने शास्त्रोंमें ऐसा कहीं नहीं सुना और न आजतक किसी नदीमें हमने अपनी आंखसे कमलका वन देखा ? फिर दोनों यक्षोंने नदीके जलमें प्रवेश करके कमलके वनमें स्त्रियोंके संग विहार कैसे किया ?

उत्तर—''अम्भोजवनराजिनि''इस श्लोकमें अम्भोजवनराजिनिका अर्थ व्यासजीने कमलका वन नहीं किया.इसका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि,अम्भोज जो कमल है उसके वनको राजि कहिये प्रकाश करनेवाला जो सूर्य है तिसको साक्षी करके नदीमें स्त्रियोंके संग क्रीडा यक्षलोग कर रहे थे, साँझ या दिनमें क्रीडा करी यह अर्थ व्यासजीने किया है,कमल वनका नहीं किया ॥

प्राप्त होता है ॥ १० ॥ फिर यह देह किसका कहना चाहिये ? क्योंकि जो अन्न देकर इसका पालन पोषण करता है वह पुरुष कहता है कि, यह मेरा है उसका कहना भी सत्य है. माता पिता कहते हैं कि,हमारा है हमारें वीर्यसे और हमारें उदरसे उत्पन्न हुआ है,उनका कहना भी सत्य है:नाना कहता है कि,यह मेरा दौहित्र है मेरी कन्याके पेटसे उत्पन्न हुआ है इसका दिया पानी और इसका किया श्राद्ध मुझको प्राप्त हो सकता है,मेरा पुत्र न होनेके पीछे मेरे धनका अधिकारी यही है. इस रीतिसे नानाका कहना भी सत्य है. मोल लेनेवाला कहता है कि, मेरा है उसका कहना भी किसी प्रकार असत्य नहीं है. कोई बलवान् पुरुष अपना दास व चाकर बनाकर रक्खै और यह कहै कि, मेरा है तो इसका कहना भी वृथानहीं. अग्नि कहै है कि, यह मेरा है क्योंकि मेरें ही तेजसे यह सब काम करता है, उसका कहना भी सत्य है. पृथ्वी आदिक कहते हैं कि, हमारा है अन्त समय हमारे सिवाय और कहीं जाही नहीं सकता, उनके कहनेमें भी कुछ संशय नहीं और श्वानादिक

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा हंति जंतूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदांधस्य दारिद्र्यं परमांजनम् ॥ आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥ यथा कंटकविद्धांगो जंतोर्नेच्छति तां व्यथाम् ॥ जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाऽविद्धकंटकः ॥ १४ ॥

कहते हैं हमारा है, एक दिन हम इसको खायँगे, उनका कहना भी झूठ नहीं॥ ११ ॥ इस प्रकार यह तुच्छ शरीर मायासे ही उत्पन्न होता है और मायामें ही लय होजाता है और पांच सात विवादी उसमें विवाद करैं कि, यह हमारा है, ऐसे झगडेके देहको पाकर केवल अज्ञानियोंके सिवाय ऐसा कौन ज्ञानीपुरुष है जो जीवोंकी हिंसा करै ? ॥ १२ ॥ जो अज्ञानी पुरुष धनके मदसे अन्धे हो जाते हैं उनके लिये दारिद्र ही श्रेष्ठ अञ्जन है, दरिद्री पुरुष सब प्राणियोंको: दुःख सुखमें अपने समान देखता है, क्योंकि अपने मनमें निर्धन बिचार लेता है कि, मुझको दुःखने इसप्रकार बाधा करी थी, ऐसे ही औरोंको भी बाधा करता होगा, जैसे मुझको सुख होता है ऐसे औरको भी सुख होता है॥ १३ ॥ जिस पुरुषके पांवमें कांटा लगै है वह पुरुष दूसरेके पांवमें भी कांट लगना नहीं चाहता, वह अपने मनमें विचार करता है कि, जैसे मुझको

कांटा लगनेसे पीडा हुई है ऐसे ही सबको होती होगी और जिसके कांटा लगा नहीं वह कांटकी पीडाको कैसे जान सकता है कि, कांटा लगनेसे इतना कष्ट होता है॥ १४ ॥ इस बातपर एक दृष्टान्त है * दरिद्री पुरुषका अहंकार, मद और सम्पूर्ण प्रकारका अभिमान नष्ट

दरिद्रो निरहंस्तंभो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥

हो जाता है और जो कष्ट आनकर प्राप्त होता है तो वह कष्ट ही उसको तपस्याके समान होजाता है, तपमें व्रत होजाता है, क्योंकि दरिद्री अन्नके बिना भूखा प्यासा रहता है, जब दरिद्रीको अन्न न मिले तो निःसंदेह वह भूखा प्यासा रहेगा तो वही व्रत होगया ॥ १५ ॥

---

* एक राजा था उसका पुत्र गुरुके पास विद्या पढता था.जब राजाकी अवस्था आधिक हुई तो राजाने विचार किया,अब इस मोह ममताको त्यागकर तप करना चाहिये और मंत्रियोंको बुलाकर सब राज्यका प्रबन्ध कर दिया और राज्यसिंहासनका आधिकार पुत्रको देना चाहा यह चर्चा उन गुरुके कानमें भी पडी जो उनके पुत्रको पढाते थे. गुरुने अपने मनमें विचार किया कि,मैंने राजकुमारको सब विद्या पढादी, परन्तु अभीतक इसको दुःख सुखका ज्ञान नहीं हुआ,दुःख किसे कहते हैं और सुख किसे कहते हैं,ऐसी विद्या इसको अभी नहीं सिखाई. अभी तो यह मेरे वशमें है मैं सब कुछ कर सकता हूँ और जब यह अपने वशमें होगया तो मैं कुछ नहीं कर सकता और जो यह ऐसाही रहा तो न जानिये किसको दुःख दे,यह शोच समझ उसको अपने पास बुलाकर पाँच सात साँटी ऐसी शक्तिसे मारी कि, शरीरकी सब खाल उडगई और रुधिर बहने लगा,इतनेपर भी एक कोठरीमें बन्द कर दिया जो तत्काल उपाय भी न हो सके और जब वह रोया तो रोनेतक भी न दिया. दो पहरतक बन्द रहा तब उसको खोल दिया और चार लडकोंके साथ राजकुमारको राजभवनमें राजाके पास भेज दिया. राजकुमारने अपने पितासे सब वृत्तान्त कहा कि, बिना अपराध गुरुने मुझको मारा और अपना सब शरीर दिखाया.राजाने देखा तो सांटी जहाँकी तहां उछड रही है,रक्त बह रहा है.राजकुमारकी यह दशा देखकर उसके पिताको बडा क्रोध आया और कोतवालको आज्ञा दी कि, उस ब्राह्मणको अभी पकडकर शूली देदो, उस निर्दयीने बिना अपराध राजकुमारको मारा है. राजाके आज्ञानुसार कोतवालने पकडकर बधिकोंको सौंप दिया कि इसको शूली देदो. वधिक जिस समय उस ब्राह्मणको शूली देनेको लेचले,तब उस ब्राह्मणने कहा कि, मैं कुछ बात राजासे कहना चाहता हूँ. बधिक बोले चल. ब्राह्मणने राजासे कहा कि, मुझको शूलीकी आज्ञा किसलिये हुई, आपने मुझको राजकुमारके पढानेके लिये नियत किया था या शूली देनेके लिये ? राजाने कहा कि, क्या हमने बिना अपराध मारनेके लिये कह दिया था?ब्राह्मण बोला कि, मैंने नहीं मारा,राजाने राजकुमारका सब शरीर दिखाया और कहा यह क्या है ?ब्राह्मणने कहा कि यह भी एक प्रकारकी विद्या है.राजा बोला कि,यह कैसी विद्या है ? ब्राह्मण बोला कि, मैंने सुना कि,प्रातः काल राजकुमार राज्यसिंहासनपर बैठेंगे और अभीतक वह नहीं जानते दुःख कैसा होता है और जो मैंने इनको दुःख न दिखाया तो यह हजारों मनुष्योंको दुःख देंगे.अब इन्होंने दुःखका भेद जान लिया तो अब किसीको विना अपराध दुःख न देंगे.अब इनको भले प्रकार दुःखका रूप दरशा दिया.राजा ब्राह्मणकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और दश गाँव और अनेक प्रकारके आभूषण उसको पारितोषिकमें दे हाथ जोडकर कहा कि,मेरा अपराध क्षमा करना. मैंने आपकी गुप्त विद्याको नहीं समझा था. ब्राह्मण राजाको और कुँवरको आशीर्वाद देकर चला गया । देखो,पहिले ब्राह्मण कैसे चतुर होते थे ।

अन्नकी आकांक्षा करनेवाले दरिद्रीके घर नित्य कडाके होते हैं, इससे उसका शरीर सूख जाता है, इंद्रियें शिथिल होजाती हैं, फिर उससे हिंसा भी नहीं होती, जो आप ही मरता है वह दूसरेको कैसे मार सकता है? ॥१६॥ दरिद्री मनुष्य सबको समान देखता है और दरिद्रीको साधु महात्मा पुरुष भी मिल जाते हैं- जिस समय दरिद्री क्षुधित होकर अन्न अन्न पुकारता है, तब साधु महात्मा उससे कहते हैं कि, अरे! कृष्ण कृष्ण पुकार जो सब संसारका पालन पोषण करनहार है, इसप्रकार वह साधु महात्मा लोग उसके अन्नकी तृष्णाको दूर कर देते हैं,तब शीघ्र उसका सन्ताप छूट जाता है ॥ ॥ १७ ॥समचित्त और परमेश्वरके चरणानुरागी साधु महात्मा पुरुषोंको दरिद्री ही प्यारा होता है, उनको लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त दुष्ट लोगोंसे प्रयोजन ही क्या? ॥ १८ ॥ इसलिये मैं इन दोनोंको जो कि वारुणीके मदसे मतवाले,

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ॥ इंद्रियाण्यनुशुष्यंति हिंसापि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यंते
साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुंदचरणैषि
णाम् ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तंभैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदांधयोः ॥ तमोमदं
हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥ १९ ॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ॥ न विवाससमात्मानं विजा
नीतःसुदुर्मदौ ॥ २० ॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात्
॥ २१ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥ वृत्ते स्वलोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥

लक्ष्मीके मदसे अन्धे, स्त्रियोंके लंपट और अजितेन्द्रिय हैं, इनके अज्ञानसे हुए मदको मैं दूर करूंगा, क्योंकि इससमय यह अन्धे हो रहे हैं ॥ ॥ १९ ॥ देखो! यह कुबेरके पुत्र होकर अज्ञानमें डूब रहे हैं, यह नहीं जानते कि,हम नंगे हैं, इनको कुछ भी अपने तनकी सुधि नहीं अत्यन्त मतवाले हो रहे हैं॥ २० ॥इसलिये यह दोनों स्थावर होनेके योग्य हैं जो फिर आगेको इन्हें ऐसा मद न होय और वृक्षयोनिमें भी मेरी कृपासे इनको सुधि बनी रहै ॥ २१ ॥ और भगवान् वासुदेवका दर्शन पाकर पीछे फिर स्वर्गमें जाकर देवता हों, परन्तु पहिले देवताओंके सौ १०० वर्ष वृक्षयोनि भोगनी पडेगी,तदनन्तर इनको भक्ति प्राप्त होगी ॥ २२ ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! देवर्षि नारदजी इसप्रकार कहकर नारायणके आश्रमको चले गये. अब नलकूबर, मणिग्रीव दोनों यमलार्जुनवृक्ष हुए ॥ २३ ॥ अपने भक्तोंमें मुख्य श्रीनारदजीके वचन सत्य करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज यमलार्जुनवृक्षोंके निकट हौले हौले चलेगये ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें विचार किया कि, श्रीनारदजी मेरे प्रिय भक्त हैं और यह कुबेरके दोनों पुत्र हैं. सो नारद महात्माने इनके विषयमें जो कुछ कहा है सो सब सत्य करूंगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार विचार करके यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें होकर निकले और वृक्षोंके बीचमें आकर उलूखलको तिरछा करदिया ॥ २६ ॥ रस्सीसे उदरमें बँधे हुए उलूखलको बालकरूप श्री

श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ॥ नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भा
गवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ
धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥ इत्यंतरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ॥ आत्म
निर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलितांघ्रिबंधौ ॥
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कंधप्रवालविटपौ कृतचंडशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरंतौ सिद्धा
वुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धांजली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥
कृष्णकृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥

कृष्णदामोदरने झटका मारकर खींचा. उस समय दोनों वृक्ष जडसे उखड़कर पृथ्वीपर गिर पडे. श्रीकृष्णके पराक्रमसे गुद्दे, शाखा, डाली और पत्ते सब काँपने लगे, बडाभारी शब्द हुआ ॥ २७ ॥ जैसे संघर्षणके उत्पन्न होनेसे अग्नि निकले, ऐसे ही अतिशोभायमान दशोदिशाओंको प्रकाशमान करते दोनों पुरुष निकले और भगवान् त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको शिरझुकाकर प्रणाम किया तथा मदको त्याग हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करने लगे॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! तुम बालक नहीं हो, परमकारणरूप हो और स्थूलसूक्ष्मरूप जो आपही

इस रूपको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥ २९ ॥ सब प्राणियोंके देह, प्राण, इन्द्रिय, अहंकारके आप ही एक ईश्वर हो और सम्पूर्णमें व्यापक भगवान् कालरूप आप ही हो ॥ ३० ॥ आप ही महान् रूप हो रजोगुण,सत्त्वगुण,तमोगुण और सूक्ष्म मायारूप सब तुम ही हो, देहोंके विकारके जाननेवाले साक्षीपुरुष आप ही हो ॥ ३१ ॥ आप प्रकृतिके गुण, बुद्धि, अहंकार,इन्द्रियादिकसे ग्रहण करनेमें नहीं आते हो उत्पत्तिसे पहिले ही स्वयंप्रकाश जो आप हो तिनको कारण गुण आच्छादित जीव कैसे जान सकता है ॥ ३२ ॥ वासुदेव, सर्वके कर्ता और स्वयंप्रकाशित कियेहुए गुणोंसे जिनकी महिमा ढक रही है ऐसे जो आप ज्ञानस्वरूप हैं सो हम आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥

त्वमेकः सर्वभूतानां देहाऽस्वात्मेंद्रियेश्वरः॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरऽव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥ त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजस्सत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ॥ कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥ यस्यावतारा ज्ञायंते शरीरेष्वशरीरिणः ॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ॥ ३४ ॥ स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोऽशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परम कल्याण नमः परममंगल ॥ वासुदेवाय शांताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥ अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥

हे भगवन्! आप सबके शरीरमें रहकर भी शरीरके सम्बन्धसे रहित हो और यद्यपि आपका शरीर भी नहीं है परन्तु जब आप अवतार धारण करतेहो तब और प्राणियोंसे न होनेवाले जिनके तुल्य वा अधिक कोईनहीं कर सकता ऐसे ऐसे चारित्रोंसे आपके अवतार जानेजाते हैं॥३४॥ सब लोकोंके ऐश्वर्य और मोक्षके लिये निरन्तर परिपूर्णरूप होकर अपने अंशोंसहित प्रगट हुए हो॥३५॥हे परमकल्याणरूप!हे मंगलरूप!भगवन्! आपको नमस्कारहै.आपके शान्तरूपकोनमस्कारहै.हेवासुदेव!यदुकुलकीरक्षाकरनेवाले आपको वारंवार नमस्कार है॥ ३६॥हेपरिपूर्ण!हम आपकेदासोंके दास हैं,हमने भगवान् नारदजी महाराजकी कृपासे आपका दर्शन पायाहै और आपको परिपूर्णरीतिसे जाना.अब हमकोआप आज्ञादीजिये ॥ ३७ ॥

४०३

हमारी वाणी आपके गुणानुवादोंको निरन्तर गाया करे; कान आपकी कथाओंको सदा सुनते रहें, हाथ आपकी सेवा और पूजनमें लगे रहें, हमारा मन सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगा रहे, हमारा मस्तक आपके निवासरूप जगत्को प्रणाम करता रहे और हमारी दृष्टि तुम्हारी साधु मूर्तियोंका नित्यप्रति दर्शन किया करे. हे दीनबन्धु ! हम वारंवार आपसे यह वर माँगते हैं॥ ३८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि. हे राजन्! जब इस प्रकार नलकूबर, मणिग्रीवने गोकुलनाथ भगवान्की स्तुति करी तब रस्सीसे उलूखल जिनके उदरमें बँध रहा ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्द मुसकाकर बोले ॥ ३९॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे यक्षो! करुणामय श्रीनारदजीने लक्ष्मीके मदसे तुमको अन्धा देखकर शाप दिया और तुमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, इस सब इतिहासको मैं पहिलेसे ही जानता था॥ ४०॥ समानचित्त ब्रह्मज्ञानी सनातनधर्ममें तत्पर, उनमें भी मुझमें निरन्तर मन लगानेवाले महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे ऐसे पुरुषोंका बन्धन कट जाता है जैसे सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार दूर हो जाता है ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरे भक्त होकर अपने स्थानको जाओ, तुम्हारी मेरे विषे सर्वदा भावना रहेगी और तुम्हारा जन्ममरणरूप संसार मुझमें प्रेम करनेसे छूट गया॥ ४२॥ तइनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के वचन सुनकर नलकूबर, मणिग्रीव वारंवार परिक्रमा करके प्रणाम करने लगे और उलूखलसे बँधे हुए श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशाको चले गये॥ ४३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० भाषाटीकायां यमलाऽर्जुनयोर्नारदशापमोचनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ॥ स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थ स कीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदांधयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ॥ दर्शनान्नो भवेद्बंधः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् ॥ संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनःपुनः ॥ बद्धोलूखलमामंत्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे यमलार्जुनयोर्नारदशापमोचनं नाम दशमोध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–ग्यारहमें बछरन सहित, वृन्दावन हरि आय । वत्सासुर अरु बकासुर, हने कहूँ सो गाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, हे कुरुकुलभूषण ! वृक्षोंके गिरानेका शब्द सुन यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौडी और जिस उलूखलसे कृष्णको बाँधा था वहां न तो कृष्णको पाया और न उलूखलको देखा,तब तो एकाएकी घबराकर हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! हा मोहनप्यारे ! कह कहकर चिल्ला २ रोने लगी; यशोदाकी चिल्लाहट सुनकर नन्दादिक समस्त गोप कहने लगे कि, यह कोई वज्र गिरा वा कोई और नया उत्पात हुआ ? इस भयसे भयभीत हो सब गोप वहाँ आये जहां वृक्ष गिरे थे ॥ १ ॥ देखा तो पृथ्वीपर यमलार्जुन वृक्ष उखाड़ा हुआ पड़ा है, गिरनेका कारण विद्यमान है, परन्तु गोपोंके मनमें भ्रम हुआ कि,आंधी भी नहीं आई वज्र भी नहीं टूटा, फिर यह वृक्ष आपसेआप कैसे उखड़पडे ॥ २ ॥ रस्सीसे बँधे बालक श्रीकृष्णको उलूखल खैंचते देखा तो भी व्रजवासियोंने न जाना और परस्पर कहने लगे कि, यह किस राक्षसका काम है ? कहांसे यह आश्चर्यरूप उत्पात हुआ ऐसे कहे

श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नंदादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥ तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यां
निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ॥ बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं च
बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्य
गेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचे
तसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ॥ विलोक्य नंदः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥

व्रजवासी डरने लगे ॥ ३ ॥ वहां जो छोटे छोटे बालक खेल रहे थे उन्होंने कहा कि, यह श्रीकृष्ण उलूखलको खींच वृक्षोंके बीचमें आगया, तब यह उलूखल तिरछा होकर इन दोनों वृक्षोंके बीचमें अड़ गया, तब इसने झटका मारकर खींचा, इससे यह दोनों वृक्ष गिर पड़े, इनमेंसे दिव्यरूप दो पुरुष निकले उनको भी हमने देखा ॥ ४ ॥ बालकोंकी बातका तो व्रजवासियोंने विश्वास न माना और परस्पर कहने लगे कि, तनकसे बालकने इतने इतने बड़े वृक्षोंको कैसे उखाड़ डाला ? और कोई कोई व्रजवासी कहने लगे कि, इस बालकने जन्मसे ही ऐसे औटपाय किये हैं जब बहुतही छोटासा था तो पूतनाको मारा, तृणावर्त्तको मारा और गाड़ा पटक दिया फिर ह दो वृक्ष उखाड़डाले तो क्या अचम्भा है ? ॥ ५ ॥ उलूखलको उदरमें बँधा देखकर नन्दरायजी बोले कि, तुझको उलूखलसे किसने बाँधा

है ! तब श्यामसुन्दरने कहा कि, मेरी प्यारी मैयाने. कृष्णके तुतलाते मधुर वचन सुन नन्दरायने उलूखलसे खोल हृदयसे लगा लिया और हँसके बोले कि, चल बेटा तेरी मैयाको मारेंगे. श्रीकृष्ण बोले पिताजी ! मेरी मातासे कुछ मत कहना क्योंकि उसका कुछ दोष नहीं. सब अपराध मेरा है * ॥ ६ ॥ तब गोपियें बोलीं कि, हे मनमोहन प्यारे ! हम तो ताली बजावें और तुम नाचो हम तुमको बहुतसा माखन खिलावेंगी. यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कभी बालककीनाईं नाचते थे और कभी भोले बनकर गाते थे, जैसे काठकी पुतली बाजीगरके हाथमें होती है और जिधरको फेरता है उधरको फिरती है, ऐसे ही गोपियोंके प्रेमके वशमें परब्रह्म परमेश्वर हो रहे हैं ॥ ७ ॥ कभी यशोदाजी कहती

गोपीभिःस्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयंत्रवत् ॥७॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन्॥ ८॥ दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम्॥ व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः॥९॥ क्रीणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १० ॥

७०५

हैं कि, हे बेटा ! पीढ़ा ले आव, कभी कहती बाबाकी खड़ाऊं ले आव तब तुरंत ही पीढ़ा ले आवें और तुरंत ही खड़ाऊं ले आवें. और जब कोई वस्तु नहीं उठती तब माता २ पुकारते हैं इस प्रकार ब्रजवासियोंको लीला करके आनन्द देते हैं ॥ ८ ॥ संसारमें पंडित लोगोंके दिखानेको कि, "मैं इस प्रकार भक्त लोगोंके वशमें हूँ, जैसे नचाते हैं वैसे नाचता हूँ" इस प्रकार बाललीला करके ब्रजवासियोंको प्रसन्न करते हैं और ब्रजवासी आनंदित होते हैं ॥ ९ ॥ एक समय फल लो ! ऐसा मालिनीका शब्द सुनकर, सम्पूर्ण फलोंके देनेवाले श्रीकृष्णभगवान् धान्य

---

* शंका—अपने पुत्र श्रीकृष्णको बहुत रोता देखकर और कमरमें बहुत कसके रस्सीमें बँधा देखकर और वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर, कभी श्रीकृष्णके ऊपर न गिर गया हो, परन्तु श्रीकृष्णकी देहमें कहीं चोट नहीं लगी परमेश्वरने शरीरकी रक्षा की, ऐसे अपने पुत्रको देखकर नन्दजी क्यों हँसे ? बालकको दुःखी देखकर तो ऊपरी लोग भी शोच करने लगते हैं और श्रीकृष्ण नन्दजीके पुत्र ठहरे फिर नन्दजीने शोक किस लिये नहीं किया ?

उत्तर—नन्दजी गर्गाचार्यके वचनोंका स्मरण करके हँसे, क्योंकि गर्गाचार्य नन्दजीसे पहलेही कह गये थे श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् नारायणका स्वरूप है. श्रीकृष्णके जन्मसे नन्दजी अपने भाग्यको लक्ष्मीके प्राणपति, जगत्के स्वामी ऐसे श्रीकृष्णको वारंवार नमस्कार करके और अपने आपको धन्य जानकर मनमें परमानन्दित होकर नन्दजी हँसते थे कि, देखो ! आज मेरे भाग्यकी बडाई शिव, सनकादिक भी नहीं कर सक्ते ॥

लेकर फल लेनेको चले ॥ १० ॥ मालिनीने उनके धान्य डाल देनेके उपरान्त मनमोहन प्यारेकी परमप्यारी छबि देख उनके दोनों हाथ फलोंसे भर दिये तब ब्रजरत्नने उसकी डलिया रत्नोंसे भर दी॥ ११॥ यमलार्जुन वृक्षोंको उखाडके श्रीकृष्णयमुनाके तीरपर बालकोंके संग बलभद्रसहित खेल रहे थे.उनको रोहिणीजीने पुकारा दोनों भाई खेलमें ऐसे मग्न हो रहे थे कि,रोहिणीके बुलानेसे भी न आये,तब पुत्रसे प्रेम करनेवालीयशोदाजीकोरोहिणीनेबुलानेके लिये भेजा॥ १२॥ १३॥ १४॥बालकोंके संग कृष्णबलदेवखेलते२जबबहुत दिन चढगया तब यशोदाके पुत्रके स्नेहसे स्तनोंसे दूध टपकने लगा,तब यशोदाजी श्रीमनमोहन प्यारेको बुलाने लगीं॥ १५॥ १६॥हे कृष्ण!हे कमलदललोचन!हे पुत्र प्यारे!स्तन पान करले.तू खेलते२

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभांडमपूरि च ॥ ११ ॥ सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत्॥(रामं च रोहिणी देवी क्रीडंतं बालकैर्भृशम्)॥जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाःशुचिः॥ १२॥ पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १३ ॥ नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासंगेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ १४ ॥ इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ १५ ॥ क्रीडंतं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम्॥यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी॥ १६॥कृष्ण कृष्णारविंदाक्ष तात एहि स्तनंपिब॥ अलं विहारैः क्षुत्क्षांतः क्रीडाश्रांतोऽसि पुत्रक॥ १७॥हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनंदन॥ प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान्भोक्तुमर्हति॥ १८॥प्रतीक्षते त्वां दाशार्हो भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः॥एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यात बालकाः॥ १९॥

थक गया होगा हे तात! तुझको भूख बहुत लगी होगी, अब खेलको रहने दे, संध्याको फिर खेलना ॥ १७॥ हे राम! हे मोहन! हे नन्दलाल! हे कुलभूषण! शीघ्र छोटे भाईको अपने साथ लेकर घरको आओ. प्रातःकाल ही कलेऊ कर लिया है, अब आकर भोजन करलो ॥ १८ ॥ अरे खेलके मतवाले! ब्रजनाथ तुझ बिना भोजन करनेको बैठे हैं, तेरे आनेकी बाट देख रहे हैं, तुझको बूढे बाबाकी दया नहीं आती, आकर हमको प्रसन्न कर. इस बातको सुनकर कृष्ण आये तब बालक बोले कि, जैसे तैसे करके तो खेल जमा है.अब श्रीकृष्ण जाते हैं, इसको

कभी नहीं खिलानेके, यह बात सुनकर श्रीकृष्ण फिर खेलने लगे, तब यशोदा बोली कि, अरे बालको । तुम्हारे घरबार हैं कि नहीं क्यों नहीं अपने घरोंको जाते? ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब ब्रजमें बडे २ उत्पात होने लगे तब नन्दादिक वृद्ध २ ब्रजवासियोंने विचार किया कि, महावनमें तो नित नये उत्पात होते हैं. अब गोकुलके हितका कोई विचार करना चाहिये ॥ २० ॥ उनमें जो कि; ज्ञान और अवस्था करके अधिक देशकालके तत्त्वको जाननेवाले और बलभद्र और कृष्णचन्द्रसे अतिहित करनेवाले उपनन्द नाम गोप थे वे बोले ॥ २१ ॥ गोकुलके हितकी इच्छा करके उपनन्द कहने लगे कि, हम यहांसे हटके और स्थानपर वास करेंगे यहां बालकोंके विघ्न करनेवाले बहुतसे उत्पात होते हैं ॥ २२ ॥ बालकोंकी घातिका पूतना राक्षसीके हाथसे जैसे तैसे कर यह बालक बचा और एक समय शकट इसके ऊपर गिरा, उस विपत्तिसे भी भगवान्की कृपासे बचा ॥ २३ ॥ एक समय तृणावर्त बबूलेका रूप धरके इस बालकको आकाशमें उडाकर लेगया और वहाँसे उसने शिलाके ऊपर पटक दिया वहां भी देवताओंने इसकी रक्षा करी ॥ २४ ॥ यह बालक उलूखलमें बँधा हुआ दोनों वृक्षोंके बीचमें फँस गया और मरनेसे बचा। वहां उस समय और बालक भी कोई नहीं था । वहां भी इस बालककी परमात्माने रक्षा करी ॥ २५ ॥ अब परमेश्वर और कोई दूसरा उत्पात ब्रजमें न खड़ा करदें इससे पहिले ही बालकोंको यहांसे लेकर और दूसरी ठौर कहीं चल बसें ॥ २६ ॥ पशुओंका हितकारी और नये बाग बगीचे और पुष्पवाटिकावाला श्रीवृन्दावन नाम वन है और वही अतीव उत्तम गोप गोपी गायोंके रहने योग्य स्थान

श्रीशुकउवाच ॥ गोपवृद्धा महोत्पातानतुभूय बृहद्वने ॥ नंदादयः समागम्य व्रजकार्यममंत्रयन् ॥ २० ॥ तत्रोपनंद
नामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ॥ देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २१ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य
हितैषिभिः ॥ आयांत्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २२ ॥ मुक्तः कथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको
ह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २३ ॥ चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ॥ शिलायां पतितस्तत्र
परित्रातः सुरेश्वरैः ॥ २४ ॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरंतरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २५ ॥
यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २६ ॥ वनं वृंदावनं नाम
पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २७ ॥

है और महापवित्र जहां गोवर्द्धन पर्वत है, यमुनाजीका किनारा है, वहां तृण, जल, लता और उत्तम २ सब प्रकारके वृक्ष हैं ॥ २७ ॥ इस वृन्दावनका वास सदैव अच्छा है, आपकी इच्छा हो तो गाडोंको जोतो और गायोंको आगे हांकलो । अब विलम्ब करनेका समय नहीं है इस प्रकार उपनंद गोपने नन्दजीसे कहा ॥ २८ ॥ उपनन्द गोपके वचन सुनकर सब वृद्धजनोंने कहा—धन्य है आपकी बुद्धिको, आपने बहुत अच्छा कहा । हे ब्रजराज ! उपनंदका कहना बहुत ठीक है, हमारी भी सम्मति यही है, वृन्दावनमें वास कीजिये । नन्दजीने कहा हमारी भी यही इच्छा थी परन्तु आपके कहनेसे और पक्की बात हो गई । नन्दजीकी बात सुन सब अपनी अपनी गाडियोंको जोत

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युंक्त माचिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यांतु भवतां यदि रोचते ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधुसाध्विति वादिनः ॥ व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥ २९ ॥ वृद्धान्बालान्स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ३० ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३१ ॥ गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुंकुमकांतयः ॥ कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ ३२ ॥ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ॥ रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३३ ॥

घरकी सब सामग्री लादकर चल दिये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! प्रथम सब सामानको गाडियोंमें भरकर ऊपर वृद्ध, बालक, स्त्रियोंको बैठालकर धनुष बाण हाथोंमें लेलेकर ॥ ३० ॥ सब ब्रजवासी सावधान हो गायोंको आगे कर चारों ओर बड़े बडे रणसिंगा बजाते और तुरहीका शब्द करते पुरोहितको संग लेकर सब गोकुलवासी वृन्दावनको चल दिये ॥ ३१ ॥ गाडियोंमें बैठी गोपी नवीन केशर कुचोंमें लगायें कठला, धुकधुकी कण्ठमें पहिरे, रथ और गाडियोंमें बैठी कृष्णकी लीला गाती जाती थीं ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार रोहिणी और यशोदा भी एक गाडीमें श्रीकृष्ण और बलदेवजीको साथ लिये बैठी थीं और इनकी लीला और चरित्रोंको सुन सुनकर आनन्दको प्राप्त

होती थीं ॥ ३३ ॥ सर्वानन्दको देनेवाले वृन्दावनमें आकर गाडियोंको बराबर खडी करके अर्द्धचन्द्रमाके समान गायोंके रहनेके लिये एक खिरक बनाया ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! वृन्दावन, गोवर्द्धन और यमुनाजीका अत्यन्त रमणीक तट देखकर श्रीकृष्ण और बलराम बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ इस प्रकार बाललीला और तोतली मधुरवाणीसे ब्रजवासियोंको आनन्द देने लगे और जब दोनों भाई बछरे चरावने योग्य हुए तब वत्सपालक कहलाये ॥ ३६ ॥ ब्रजभूमिके निकट ही गोपालोंके बालकोंको संग लेके श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई बछरोंको चराने लगे और भाँति भाँतिकी क्रीडा नित्यप्रति करने लगे ॥ ३७ ॥ कभी बाँसुरी बजाते थे और कभी आमलोंको गोफनमें घरघर कर चलाते थे, कभी पावोंमें घुँघुरू बाँधकर ऐसा नाच नाचते थे कि, अप्सराओंको लजाते थे, कभी परस्पर युद्ध करते थे, कभी कम्बल उढाय कृष्ण बलदेव दोनों भैया ग्वालोंको बैल बनाते थे और उनके संग आप भी बैल बनकर गम्भीर शब्द करते थे ॥ ३८ ॥ कभी पक्षियोंकी बोली बोल बोलकर कहते हैं कि, हम हंस हैं, कोई कहते हम मोर हैं, जैसे प्राकृत बालक खेल खेलते हैं वैसे ही दोनों भाई वनमें जाकर नये नये खेल खेलते थे ॥ ३९ ॥ एक समय यमुनाजीके तीरपर श्रीकृष्ण और बलराम बछरे चरानेको गये और वहाँ कंसने सुना कि, नन्दादिक गोप गोकुल छोड़कर वृन्दावनमें जा बसे हैं, तब कंसने अपने साथी वत्सासुरको बुलाकर विनयपूर्वक अपने दुःखका सब वृत्तान्त कहा कि, भाई ! नन्दके पुत्रने मुझको बड़ा दुःख दे रक्खा है, कोई ऐसा उपाय करो जो वह बालक मारा जाय. कंसकी यह

वृंदावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजाऽऽवासं शकटैरर्धचंद्रवत् ॥ ३४ ॥ वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ॥ वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥ ३५ ॥ एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छंतौ बालचेष्टितैः ॥ कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३६ ॥ अविदूरे व्रजभुवः सहगोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३७ ॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित्पादैः किंकिणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३८ ॥ वृषायमाणौ नर्दंतौ युयुधाते परस्परम् ॥ अनुकृत्य रुतैर्जंतूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ ३९ ॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४० ॥

बात सुन वत्सासुर बछरेका रूप बनाकर वृन्दावनमें गया ॥ ४० ॥ और जो बछरे कृष्ण और बलराम चराते थ उनहीं बछरोंमें मिलकर यह भी चरने लगा और उसका भयानक रूप देख सब बछरे डरकर जहाँ तहाँको भाग गये. तब श्यामसुन्दर उस राक्षसको पहँचानकर आँखकी सैनसे बलदेवजीको जताया कि देखो भाई ! यह दुष्ट राक्षस कंसका भेजा हुआ बछरेका रूप धारण कर मेरे मारनेके लिये यहां आया है, तुमभी इसका ध्यान रखना ॥ ४१ ॥ वत्सासुर भी घूमता घामता अपनी घात लगाता हुआ धीरे धीरे वृन्दावनविहारीके समीप आ पहुँचा. श्रीकृष्णचन्द्रने उसका पिछला पैर पकड़कर एक कैथके पेड़की जड़में घुमाकर ऐसा मारा कि, उसका प्राण निकलकर परमधामको सिधारा. बड़े भारी शरीरवाला वत्सासुर दैत्य कैथके वृक्षसहित पृथ्वीपर गिरा ॥ ४२ ॥ उसको गिरा देखकर सब बालक अत्यन्त विस्मित हो

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४२ ॥
तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४३ ॥ तौ वत्सपालकौ
भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयंतौ विचेरतुः ॥ ४४ ॥ स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यंत एकदा ॥
गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४५ ॥

धन्य धन्य कहने लगे और अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंनें आकाशसे फूल बरसाये ॥ ४३ ॥ समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भ्राता बछरोंके वत्सपाल होकर प्रातःकालका कलेवा लेकर वनमें जाय बछरोंको चराते और अनेक २ प्रकारकी लीला विहार करते थे ॥ ४४ ॥ जब कंसनें वत्सासुरके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तो बडा शोच किया और उसके भाई बकासुरसे जाकर कहा कि, तू अपने भाईका बदला ले और इस दुष्ट कृष्णको मारकर मेरी छाती ठण्ढी कर. यह बात सुनकर बकासुर बगलेका रूप धारण कर वृन्दावनमें आया और कालिन्दीके किनारे पर्वताकार हो, मुँह फैलाकर इस घातमें जा बैठा कि, श्यामसुन्दर यहाँ आवे तो निगल जाऊँ उस दिन सब बालक अपने अपने बछरोंके समूहोंको यमुनाजीके निकट जल पिलानेके लिये गये वहाँ जाय बछरोंको जल पिलाय।

और आप भी पिया ॥ ४५ ॥ और वहाँ इन बालकोंने वज्रसे टूटे गिरे पर्वतके शिखरके तुल्य बडे मुखवाला एक पक्षी देखा और उसको देखकर अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ४६ ॥ यह महाबली तीक्ष्णचोंचवाला बगलेका रूप धारण किये बकासुर नाम दैत्य था वह बलवान् बकासुर आकर श्रीकृष्णको शीघ्र ही निगल गया और बोला कि मैंने आज अपने वत्सासुरका बदला लेलिया ॥ ४७ ॥ जब श्रीकृष्ण को बकासुर लील गया तब बलदेवादिक सब बालक बिना प्राणोंकी इन्द्रियोंके समान अचेत होगये और रोरोकर कहने लगे कि,हाय ! हम यशोदाको जाकर क्या उत्तर देंगे ? जिसने अपना प्यारा पुत्र हमको सौंप दिया था, सब दौडे हुए बलदेवजीके पास आये और वृत्तान्त सुनायो कि, हमने बहुतेरा बरजा परन्तु श्यामसुन्दरने हमारा कहना एक न माना अब हम क्या करें और क्या न करें ? बलदेवजी

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम्॥ तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृंगमिव च्युतम् ॥ ४६ ॥ स वै बको नाम महान सुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुंडोऽग्रसद्बली ॥ ४७ ॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोर्भकाः ॥ बभूवुरिंद्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४८ ॥ तं तालुमूलं प्रदहंतमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चच्छर्द सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुंडेन हंतु पुनरभ्यपद्यत॥ ४९ ॥ तमापतंतं स निगृह्य तुडयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥५०॥ तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन्नंदनमल्लिकादिभिः ॥ समीडिरे चानकशंखसंस्तवस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५१ ॥

बोले कि,तुम घबराओ मत,इस दैत्यको मारकर मनमोहन प्यारे अभी आते हैं॥४८॥ इसी समय गायनके पालन करनेहारे,नन्दके दुलारे,ग्वालबालोंके प्यारे, यशोदाके नेत्रोंके तारे, जगतके गुरु, ब्रह्माके पिता, श्रीकृष्णचन्द्र अग्निके अंगारके समान उसके तालूको जलाना आरम्भ किया इस बकासुरने श्रीकृष्णको तुरन्तही उगल दिया और इनके शरीरमें कुछ भी कष्ट न हुआ तब तो अत्यन्त क्रोध करके फिर बकासुर ब्रजबिहारीके ऊपरको धाया ॥ ४९ ॥ सज्जनोंके सहायक, देवताओंके आनन्ददायक, श्रीकृष्ण यदुनायक, कंसके सखा बकासुरको फिर आता देख दोनों हाथसे उसकी चोंच पकडके सब बालकोंके देखते देखते ही तृणके समान चीरकर बगेल दिया ॥ ५० ॥ इस समय सुरपुरनिवासी देवता बकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके ऊपर नन्दन वनके मालतीके पुष्पोंकी वर्षा करके दुंदुभी और शंख

बजाय बजाय उनकी स्तुतिकरने लगे. इस कौतुकको देख देखकर ग्वालबाल आश्चर्य मानते थे॥ ५१ ॥ जैसे इन्द्रियें प्राण आनेसे आनन्दित होतीहैं, तैसे बलभद्रादिक सब बालक बकासुरके मुखसे निकले हुए श्यामसुन्दर प्यारेको देखकर आनन्दित हुए और छातीसे लगाकर सब बालक उनसे मिले और बछरोंको इकट्ठा करके बारम्बार प्रशंसा करने लगे ॥ ५२ ॥ यह सुनते ही गोप और गोपी बहुत संशय करने लगे और गोप गोपी बडे आदर सत्कारसे श्रीकृष्णको देखने लगे जैसे कोई मृतक होकर घर आजाता है और सब कुटुम्बियोंका चित्त उनको देखते२ तृप्त नहीं होता ॥ ५३ ॥ सब गोप कहने लगे कि,इस बालकके ऊपर बडी बडी विपत्तियें पडीं, परंतु जो मारनेको आया वह आप ही मारा गया,क्योंकि पहिले उन्होंने औरोंको भय दिखाया ॥ ५४ ॥ महाभयंकर रूप धर धरकर अनेक असुर और राक्षस कृष्णके मारनेको आये,

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेंद्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान्व्रज
मेत्य तज्जगुः ॥५२॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ॥ प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षंत तृषितेक्षणाः॥५३॥
अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन्॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ४४ ॥ अथाप्यभिभवं
त्येनं नैवते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यंत्यग्नौ पतंगवत् ॥ ५५ ॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः संति
कर्हिचित्॥गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत्॥५६॥ इति नंदादयो गोपाः कृष्णरामकथा मुदा ॥ कुर्वंतो रममा
णाश्च नाविंदन्भववेदनाम्॥५७॥एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे॥निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥५८॥

इति श्रीभागव० महापुराणे दशमस्कंधे पू०वत्सबकवधोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

परन्तु परमेश्वरकी दयासे इसका कुछ न कर सके, आप ही मरनेके लिये इसके पास आये, जैसे अग्निमें आकर पतंग जल जाते हैं तैसे आप ही आकर मरजाते हैं ॥ ५५॥ अहो । वेदवादियोंकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती । जो जो बात गर्गाचार्य कह गये थे, वह सब बातें अबसत्य होती जाती हैं॥५६॥ इस प्रकार कृष्ण बलरामकी रसभरी बातें कह कहकर नन्दादिक आनंद होते और सुख पाते जिन्होंने भवसागरकी वेदनाको कुछ न समझा ॥५७॥ इस प्रकार आँखमिचौनी, पुलबांधने, बंदरोंके समान कूदना, यह कौमार अवस्थाके खेल कर करके श्रीकृष्ण बलराम कौमार अवस्था व्यतीत करते थे ॥५८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० भाषाटीकायां वत्सबकवधो नामएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

808

दोहा–द्वादशमें घर सर्पवपु, निगल ग्वाल अरु बाल । तासु अघासुरको हनो, कृपासिंधु गोपाल॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! श्रीकृष्णने एक दिन वनमें भोजन करनेके विचारसे प्रातःकाल उठकर सुन्दर शृंगी बजाकर अपने प्यारे ग्वालबालोंको जगाया और कलेवा बांध बछरोंको आगेकर श्रीकृष्णचन्द्र घरसे निकले ॥ १ ॥ उन श्रीकृष्णके संग स्नेही ग्वालोंके सहस्रों बालक उत्तम २ छींके, बेत, शृंगी और बाँसुरी लेलेकर सहस्रसे भी अधिक संख्यावाले अपने अपने समूहोंको आगे करके आनन्द सहित घरसे चले ॥ २ ॥ असंख्यात श्रीकृष्णके बछरोंमें मिलाकर चराते २ बाललीला करकरके यह बालक जहां तहां विहार करते थे ॥ ३ ॥ मणियोंसे जडाऊ सुवर्णके गहने पहने हुए थे, तोभी बनमें लाकर फलोंके कोंपलोंके, चौंटलियोंके, गुच्छोंके, फूलोंके, मोरपुच्छके और खडिया मट्टी गेरूके तिलक लगाकर अपना अपना शृंगार कर रहे थे ॥ ४ ॥ परस्पर छीकाबेत आदि चुराते, जब जान लेते तो दूसरे बालकके पासको फैंक देते थे, वह बालक फिर औरके पासको फैंक देते थे, जब वह छींकेवाले बालक रोने लगते, तब श्रीकृष्णचंन्द्र हँसकर उनके छींके बेत दिला देते थें ॥५॥ सुन्दर वनकी शोभा देखनेके लिये जब श्रीकृष्ण दूर चले जाते तब बालक परस्पर होड बदबदकर दौडते थे कि, पहिले मैं छुऊं, इसप्रकार श्रीकृष्णको छूते थे और आनन्दित हो होकर खेलते थे. कोई बालक बाँसुरी बजाते थे, कोई शृंगीका शब्द सुनाते थे, कोई२ बालक भौंरोंके संग गाते थे, और कोई कोई कोकिलाकी बाणीमें

श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयञ्छृंगरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरस्सरो हरिः ॥१॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः॥ स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययाऽन्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान्॥ चारयंतोर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्रतत्र ह ॥३॥ फलप्रवालस्तवकसुमनःपिच्छधातुभिः ॥ काचगुंजामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥ मुष्णंतोऽन्योन्यशिक्यादीञ्ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ॥ तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसंतश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥ केचिद्वेणून्वादयतो ध्मांतः शृंगाणि केचन ॥ केचिद्भृंगैः प्रगायंतः कूजंतः कोकिलैः परे॥ ७ ॥

वाणी मिलाते थे ॥ ७ ॥ और कोई आकाशमें उडते हुए पक्षियोंकी छायाके संग दौडते, कोई बालक हंसोंके संग धीरे धीरे चलते, कोई बालक बगलोंकी पाँतिके पास चुपके चुपके जा बैठते और कोई बालक मोरोंके संग नाचते थे ॥८॥ कोई बालक बन्दरोंकी पूँछ पकड पकडकर खींचते थे और कोई पूँछ पकडे ही पकडे उनके संग कूदकर वृक्षोंपर चढ़ जाते थे और कोई बालक अपने कान दबाकर आंखें फैलाकर बन्दरोंके सम्मुख खडे हो घुडकी बताते थे। कोई वृक्षोंपर चढ़ चढ़ नीचेको कूदते थे ॥ ९ ॥ कोई कोई मेंढकोंके संग फुफकते थे, जब वह पानीमें डुबकी मारें तब आप भी उनके संग डुबकी (गोता) मारते हैं। कोई बालक अपनी परछाईं पानीमें देखकर उसकी हँसी करते थे, कोई बालक कुएँ बावडीमें अपनी प्रतिध्वनिको सुन उनको गाली देते थे॥ १०॥ ब्रह्मज्ञानियोंको ब्रह्मस्वरूप करके जाननेमें आते

विच्छायाभिः प्रधावंतो गच्छंतः साधु हंसकैः ॥ बकैरुपविशंतश्च नृत्यंतश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥ विकर्षंतः कीशबालानारोहंतश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वंतश्च तैः साकं प्लवंतश्चपलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलंघंतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः ॥ विहसंतः प्रतिच्छायाः शपंतश्च प्रतिस्वनान् ॥ १० ॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुंजाः ॥११॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतोव्रजौकसाम् ॥ १२ ॥

हैं, दासभावके करनेवाले भक्त जिनको परम दैवतरूप स्वामी जानते हैं और मायासे मोहित हुए पुरुष उनको मनुष्यका बालक मानते हैं, जिनकी जैसी भावना है उनको वैसे ही दिखाई देते हैं. धन्य भाग्य है ग्वालबालोंका ! देखो ब्रह्मज्ञानियोंको केवल भगवान्का अनुभव ही होताहै, भक्तोंके केवल भजन ही सर्वानन्द है, परन्तु ग्वालबालोंकी ओरको देखिये कि इन्होंने कैसे उग्र तप किये हैं कि दिनरात भगवान् वासुदेवजिनके संग आहार विहार करते हैं, देखो यह सखाभावका प्रभाव है ॥ ११ ॥ योगीजनोंको भी अनेक जन्म महाकष्ट सहकर तप करनेसे जिनके चरणारविन्दकी धूरि मिलनी अत्यन्तदुर्लभ है, सो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी वासुदेव भगवान् जिनके

सन्मुख प्रत्यक्ष विराजमान रहैं उन ब्रजवासियोंके भाग्यकी कहांतक बडाई करैं ॥ १२ ॥ इन ग्वालबालोंकी सुखपूर्वक लीलाको न सहन करके अघासुरनाम दैत्य इस वनमें आया, अमृतपान करनेवाले देवता भी अपने जीनेकी इच्छासे नित्यप्रति जिसके मरनेकी राह देखते थे ॥१३॥ वह अघासुर कंसका भेजा हुआ, पूतना और बकासुरका छोटा भ्राता, कृष्णादिक छोटे छोटे बालकोंको देखकर मनमें विचार करने लगा कि, इसी कृष्णने मेरे भाई और बहिनको मारा है, उन दोनोंके बदले आज ग्वालबाल बछडे और बलदेव समेत इस कृष्णको मारूंगा ॥ १४ ॥ और अपने भैया बहनको भी इन बालकोंके संग ही तिलांजलि दूंगा, तब सब ब्रजवासी मृतक समान हो जायँगे, प्राण गये पीछे देहोंकी क्या चिन्ता है ? क्योंकि प्राणधारी पुरुषोंके तो पुत्र ही जीवनप्राण है ॥१५॥ ऐसा विचारकर चार कोश लम्बा पर्वतके समान मोटा अजगर साँपका अद्भुत रूप धारण कर गुफाके सदृश मुख पसार बछरे और बालकोंके निगलनेके लिये मार्गमें बैठ गया॥१६ ॥ नीचेका होठ तो पृथ्वीपर और ऊपरका होठ बादलतक फैला रक्खा था, पर्वतकी गुफाके समान जिसका मुख, पहाडके शिखरके सदृश जिसकी दाढैं, गूढ कन्दराके तुल्य मुखमें अन्धकार, बडे लम्बे चौडे मार्गकी नाईं जिसकी जीभ, कठोर पवनके समान जिसका श्वास और अग्निके तुल्य जिसकी दृष्टि थी * ॥ १७ ॥

अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ॥ नित्यं यदंतर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये॥ १४ ॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापःकृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः॥ प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिंता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ॥ धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः॥१६॥धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननांतो गिरिशृंगदंष्ट्रः॥ध्वांतांतरास्यो वितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥

809

---

* शंका–अघासुर राक्षसके दोनों होठोंकी लम्बाई सुनकर हमारे सबके मनको बडा संदेह है और हमारा हृदय कापता है, क्योंकि ऐसी होठोंकी लम्बाई रावणकी तारककी और अनेक राक्षसोंकी भी न थी यह महिमा हमने आज तक कहीं नहीं सुनीं, होठ थे वा कोट थे ?

सब बालक उस अजगरको देखकर वृन्दावनकी शोभा समझकर खेलते खेलते फैले हुए उस अजगरके मुखकी लीलासे ही उत्प्रेक्षा करने लगे ॥१८॥ और परस्पर कहते थे कि, अहो मित्रो ! यह तो कहो कि,यह जो हमारे सन्मुख दिखाई देता है कोई पक्षी है वा मनुष्य है ? हमारे निगलनेके लिये सर्पके समान मुख पसार रहा है कि नहीं ॥१९॥ सूर्यके किरणोंसे लाल २ बादल ऐसे दृष्टि आते हैं मानो सर्पका ऊपरवाला होठ है और सूर्यकी परछाईंसे सब पृथ्वी ऐसी लाल २ दिखाई देती है मानो सर्पके नीचेकी ठोडी है ॥ २० ॥ इधर उधर पर्वतकी कंदरासी महागम्भीर अंधियारी ऐसी जान पडती है मानो सर्पके मुखका अन्त है, ऊंचे २ पर्वतके शिखरसे हमको ऐसे दिखाई देते हैं मानो साक्षात

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ॥ व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षंते स्म लीलया ॥ १८ ॥
अहो मित्राणि गदत सत्वकूटं पुरः स्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुंडायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्त-
मुत्तराहनुवद्घनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छायया‌ऽरुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥
तुङ्गशृङ्गाऽऽलयोप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृताऽऽयाममार्गोऽयं रसनां प्रति गर्जति ॥ एषामंतर्गतं ध्वांत-
मेतदप्यंतराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गंधोऽप्यंतरामिषगंधवत् ॥ २३ ॥

सर्प अजगरकी डाढैं हैं, तुम ध्यान करके देखो ॥ २१ ॥ यह लम्बा चौडा मार्ग हमको ऐसा दृष्टि आता है मानो सांपकी जिह्वा है और इन शिखरोंके भीतर हमको ऐसा अन्धकार दीखता है मानो सर्पके मुखके भीतरका भाग है ॥ २२ ॥ दावानलसे उष्ण उष्ण महातीक्ष्ण पवन ऐसा लगता मानो महा विषवाले सर्पका श्वास है और यह विचारकर देखो कि, अग्निमें जैसे जीव जलैं हैं ऐसी दुर्गंधि आती है, यह सर्पके डसेहुए मानो मांसकी दुर्गंधि है ? ॥ २३ ॥

उत्तर—अघासुरका पूर्वजन्मका पुण्य था,सो श्रीकृष्णका दर्शन करके बडे मुखसे अपने सन्मुख वार्द्धित होकर स्वर्गको चलागया, परन्तु अपने तेजसे ऊपरके होठको संगही लेतागया और इस जन्ममें जो पाप किया था वह श्रीकृष्णको देखकर डरकर भागा और पातालमें जानेकी इच्छा की भूमिको भेद अघासुरका पाप रसातलको चला गया,परन्तु अघासुर नीचेके होठको खींचकर अपने संग लेतागया, पहिले अघासुरने श्रीकृष्णमहाराजके शरीरको स्पर्श किया उसके पुण्य पाप दोनों नष्ट होगये,तब अघासुर कृष्णकी देहमें मिलगया,पाप पुण्य नाश होनेका कारण यह है; जबतक प्राणीके पुण्य रहेंगे तबतक वह प्राणी स्वर्ग भोगेगा और पाप रहेगा तौ नरक भोगेगा,जब दोनों नष्ट होजायँगे तब ईश्वरमें मिलेगा इसलिये आकाश और भूमिमें अघासुरके होठोंकी वृद्धि हुई ॥

इस सर्पके मुखमें जो हम घुस भी गये तो क्या यह हमको निगल जायगा ? और जो यह हमको निगल भी गया तो श्रीकृष्ण इसको बकासुरकी नाईं क्षणभरमें मार सकते हैं वा नहीं ? इस प्रकार परस्पर कहते सुनते बकासुरके विध्वंस करनेहारे श्रीकृष्णका सुन्दर मुखारविन्द देख हँसते हँसाते ताली बजाते सब ग्वालबाल आगेको चले; "ताली बजानेका कारण यह था कि, जो सर्प होगा तो सरक जायगा और वृन्दावनकी यह अद्भुत शोभा होगी तो खेलैंगे" ॥ २४ ॥ श्रीवृन्दावनविहारी भक्त हितकारीने विचारा कि, वास्तवमें तो यह सर्प ही है और सर्पका देह धारण किये हुए कोई दैत्य है और हमारे साथी बालकोंने इसे वृन्दावनकी शोभा समझकर फिर सर्पके भी सब लक्षण वर्णन किये यह अजान हैं और परस्पर भूलसे बात कर रहे हैं, ऐसा समझ सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले भगवानने उन भोले बालकोंके वचन सुनकर जबतक उनके निषेध करनेको चाहा कि, इसमें मत घुसो कि ॥२५॥ इतनेमें वह सब बालक बछरों समेत उस अघासुर दैत्यके मुखमें घुसगये परन्तु अघासुरने अपने मरे हुए भाई बहनकी सुधि करके उन बालकोंको निगला नहीं, क्योंकि मनमें विचार किया कि, बकासुरका मारनेवाला मेरा वैरी कृष्ण तो अभी आया ही नहीं ॥ २६ ॥ सबके अभयदाता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अनाथके समान दीन बालकोंको अपने हाथसे छूटे हुए जान और अघासुरके उदरमें घासके सदृश देखकर दयासे पीडित हुए और आश्चर्यसे कहने लगे कि, दैवकी कैसी अद्भुत गति है ॥२७॥ कि, अब इस समय क्या उपाय करना चाहिये ? कि, यह दुष्ट तो मारा जाय और मेरे जीवनप्राण परम प्रिय

अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनंक्ष्यति ॥ क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसंतः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिंत्येत्यमृषा मृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरांतरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकांतस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ॥ दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ॥ द्वयं कथंस्यादिति संविचिंत्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुंडमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥

ग्वालबाल बच जायँ यहदोनों बातें एक बारमें कैसे होयँ ? यह विचार करके उन दोनोंको जानकर सब संसारके द्रष्टा भगवान्‌ने अघासुरके मुखमें प्रवेश किया, क्योंकि मित्रताका यह धर्म नहीं है कि, मित्र तो अघासुरके मुखमें चले गये और आप बाहर खडे २ कौतुक देखें, यह नहीं । जो कुछ मित्रोंकी गति होगी वह हमारी भी होगी, यह समझ आप भी घुसगये ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटमें देवता खडे होकर हाहाकार करने लगे और नैर्ऋतवंशी अघासुरके भाई बन्धु कंसादिक राक्षसोंको परमानन्द हुआ ॥ २९ ॥ अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् देवताओंका हाहाकार शब्द सुनकर, ग्वालबाल बछरों समेत अपने आत्माको चूर्ण करनेकी इच्छा करता था उस अघासुरके कण्ठमें बढे ॥

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबांधवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवा
न्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो
ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ॥ पूर्णोऽन्तरंगे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥ तेनैव सर्वेषु
बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुंदो भगवान्विनिर्ययौ ॥३२ ॥
पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश॥प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मि
न्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ॥ गीतैः सुगा वाद्यध
राश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिस्स्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥

॥ ३० ॥ तब उस बडे शरीरवाले राक्षसका घट घिर गया आंखें बाहरको निकल आईं इधर उधर चटपटाने लगा, देहमें श्वास रुक गया, बाहर निकलनेको मार्ग नहीं मिला, पवन उसके ब्रह्मरन्ध्रको छेदन करके बाहर निकलगया ॥३१॥ अघासुरके श्वासके संग ही प्राण बाहर सटक गये, तब सब बालक और बछरोंको मरा देखकर अपनी संजीवनी दृष्टिसे अमृतकी वृष्टि करके जिलादिया और उनको साथ लेकर फिर श्रीमुकुन्द भगवान् अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ उस दुष्ट अघासुरके देहमेंसे बडी अद्भुत ज्योति निकलके अपने तेजसे दशो दिशाओंको प्रकाशित करके आकाशमें स्थित हो श्रीकृष्णचन्द्रके बाहर निकलनेका पन्थ जोहती रही, जब श्रीकृष्ण उसके मुखसे बाहर निकले तब सब देवताओंके देखते ही देखते श्रीकृष्णके शरीरमें प्रविष्ट होगयी ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंने प्रसन्न होकर आकाशसे फूल वर्षाकर

श्रीकृष्णकी पूजा करी अप्सराओंने नृत्य किया, गन्धर्व गाने लगे, बाजेवाले बाजे बजाने लगे, ब्राह्मण जय जय शब्द करके स्तुति करने लगे ॥ ॥ ३४ ॥ वह अद्भुत स्तोत्र और गीत, वाद्य, जय आदिक अनेक उत्सव मंगल शब्दोंको सुनकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे शीघ्रही चले आये और श्रीकृष्णकी महिमा देखकर आश्चर्यमय हुए ॥ ३५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! उस अजगरका सूखा हुआ अद्भुत खखोडल वृन्दावनमें बहुत दिनतक व्रजवासियोंके बालकोंके खेलनेके लिये एक गुफा होगई, मुखके मार्गको घुसे और नेत्रके मार्गसे निकल आवें, नेत्रोंके मार्गसे घुसें तो मुखके मार्गसे निकल आवें; इस प्रकार दिनरात विहार करते रहे ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण भगवानने बालकोंको और अपने आपको मृत्युसे छुड़ाना और अघासुरके मोक्षका करना यह सब काम पांच वर्षकी अवस्थामें किये, परन्तु इसको आश्चर्य मानके

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य
जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृंदावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाऽऽक्रीडगह्वरम् ॥
॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ॥ मृत्योः पौगंडके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥
नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः पापात्मसात्म्यं त्वसतां
सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद्यदंगप्रतिमांतराहिता मनोमयीं भागवतीं ददौ गतिम् ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युद
स्तमायोन्तर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥

8 सब बालक व्रजमें श्रीकृष्णकी पौगंड अवस्था अर्थात् पांचवर्षके व्यतीत होने उपरान्त छठे वर्षके मध्यमें, कहते भये ॥ ॥ ३७ ॥ मायासे मनुष्य बालकरूप धारण किये हुए सम्पूर्ण स्थावर जंगमके आदिकारण परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान्के स्पर्शसे महापापी अघासुर पवित्र होगया जो बात असत्पुरुषोंको महादुर्लभ है, ऐसे भगवद्रूपमें वह लय हो गया, यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है ॥ ३८ ॥ क्योंकि, जिसकी मनोहर मूर्ति प्रह्लादादिक भक्तोंने एक बार ही बलात्कार मनमें धारण की और उसीके प्रभावसे उन लोगोंने मोक्ष पाई तो सदैव अपने आत्मानन्दके अनुभवसे और माया करके रहित श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के शरीरमें अघासुर का प्रवेश होनेसे उसकी मुक्ति हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३९ ॥

शौनकादिक ऋषीश्वरोंसे सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार अपनी माताके गर्भमें यदुकुलके देव श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित हुए राजा परीक्षित अपनी रक्षा करनेवाले श्रीकृणचन्द्रके विचित्र पवित्र चरित्र सुनकर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीसे फिर वही प्रसंगसम्बन्धी प्रश्न किया, क्योंकि उन चरित्रोंके सुननेसे राजा परीक्षित्का मन परीक्षित्के वशमें होगया ॥४०॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण महाराजने कुमार अवस्थामें जो लीला करी वह बालकोंने पौगंड अवस्थामें गाई, यह एक वर्षका अन्तर बीचमें कैसे पड़ गया !॥४१॥ हे बडे योगिराज! गुरु ! यह बात मुझको समझाकर कहो, मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य है ! क्योंकि यह निश्चय भगवान्की ही माया है और कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥

सूत उवाच ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ॥ पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कालांतरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगंडकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद् ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥ वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबंधवः ॥ यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानंतहृताखिलेंद्रियः ॥ कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० दशम० पू० अघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

हे गुरो ! हैं तो हम क्षत्रियवंशी परन्तु तो भी हम संसारमें अतिशय धन्य हैं क्योंकि जिस दिन ब्राह्मणका शाप हुआ उस दिनसे और भी धन्य हैं जब तुम्हारे दर्शन किये तबसे धन्यतर हुए और अब जो तुमसे वांरवार कृष्णकथारूप अमृत पान करते हैं इसलिये अतिशय करके आज हम धन्य हैं ॥४३॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे हरिभक्तो ! इस प्रकार राजाने प्रश्न करके अपनी श्रद्धा दिखाई, दूसरे हरिका स्मरण करते ही प्रथम तो श्रीशुकदेवजीकी समस्त इन्द्रियें नारायणमें लय हो गईं, तब व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने बडे कष्टसे फिर नेत्र खोलकर भक्तोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित्से कहा ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायाम् अघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—तेरहमें अज मोहवश, हरे ग्वाल अरु बाल। उसी रूपके कृष्णने, रचे बहुरि ततकाल॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् !

9/2

हे बड़भागी ! हे भक्तिभूषण ! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया,क्योंकि ईश्वरकी कथाको श्रद्धासहित वारंवार सुनते हो इससे तुम परम श्रेष्ठ हो ॥ १ ॥ सार वस्तुके ग्रहण करनेवाले सज्जनोंका यही स्वभाव है क्योंकि जिन पुरुषोंकी वाणी,कान और मन,यह सब भगवान्‌की कथामें लगे रहते हैं उस वाणीसे कृष्णचन्द्रके गुणवर्णन करते हैं, कानोंसे नित्य नयी कथा सुनते रहते हैं, मनसे श्यामसुन्दरके स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं ॥ इस प्रकार भगवान्‌की वार्त्तामें क्षण क्षण प्रति ध्यान लगाये रहते हैं और वह कथायें ऐसी प्रिय लगती हैं मानो कभी नहीं सुनी हैं, जैसे विषयी पुरुषोंको स्त्रियोंकी बातें प्यारी लगती हैं ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यह कथा परमगूढ है तो भी मैं आपसे कहता हूँ,क्योंकि कैसीही गुप्त वार्त्ता हो गुरुको चाहिये कि, अपने प्यारे शिष्यके सामने सब कहे, सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥ अघासुरके मुखमेंसे मृतक बालक और बछरोंको जिवायकर यमुनाके किनारे अत्यन्त रमणीक रेतीमें उनको लायकर श्रीकृष्ण भगवान् यह कहनेलगे ॥ ४ ॥

सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता
॥ २ ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ३ ॥ तथाऽघवदना
न्मृत्यो रक्षित्वा वत्सबालकान् ॥ सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वके
लिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगंधहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्मा
भिर्दिवाऽऽरूढं क्षुधार्दितैः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरंतु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेति पाययित्वांभो वत्सानारुध्य
शाद्वले ॥ मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥

हे परमप्यारे मित्रो ! यह अत्यन्त रमणीक रेती है और विहार करनेके लिये परम श्रेष्ठ और शोभायमान स्थान है, देखो कैसे सुन्दर और स्वच्छ बालूके कोमलकोमल बिछौने बिछ रहे हैं, रंग रंगके कमल फूल रहे हैं, उनपर सुगन्धके लोभसे भौंरे गुञ्जार रहे हैं और जलपक्षियोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे चारों ओरके वृक्ष शब्दायमान होरहे हैं ॥ ५ ॥ यहाँ बैठकर कलेवा करलो, दिन भी बहुत चढ़ गया है और भूख भी अधिक लग रही है, बछरोंको भी जल पिलाकर यहीं चरनेके लिये छोड़ दो, सहज सहजमें घास चरते रहेंगे ॥ ६ ॥ सब बालकोंने श्रीकृष्णके वचनोंको मान बछरोंको पानी पिला हरी हरी घासमें चरनेको छोड़ दिया और अपने अपने छीकोंको खोल खोल छाक परोस परोस

श्रीकृष्णके संग सब भोजन करनेको बैठे॥७॥व्रजवासियोंके बालक श्रीकृष्णचन्द्रके चारो ओर अनेक पंक्तियोंकी मण्डली बनाकर एकसाथ बैठ यदुनाथके सन्मुख मुख करनेसे जिनकी दृष्टि प्रफुल्लित हो रही थी, जैसे कमलकी कलीके चारो ओर पखुरियोंकी छबि दिखाई देती है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र तो कलीके समान थे ओर ग्वालबाल पखुरीके समान, इसप्रकार यमुनाकी रेतीमें शोभायमान जान पड़ते थे ॥८॥ किसी बालकने फूलोंकी पत्तल बनाई, किसीने पखुरियोंकी पत्तल बनाई, किसीने पत्तोंकी पत्तल बनाई, किसीने अंकुरोंकी पत्तल बनाई और किसीने फलोंकी पत्तल बनाई और किसीने वृक्षोंकी छाल छीलकर पत्तलैं बनाई और उनपर भांति भांतिके भोजन परोसे, किसी किसीने छींकेमें ही भोजन करनेकी ठहरादी. कोई शिलापर ही अपना भोजन परोसकर खानेको बैठगया॥९॥ सब बालक अपने अपने भोजन पृथक् पृथक् प्रकारके

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमंडलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथांभोरुहकर्णिकायाः ॥८॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥ सर्वे मिथो दर्शयंतः स्वस्वभोज्यरुचि पृथक् ॥ हसंतो हासयंतश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥

आप खाते अरु औरोंको स्वाद दिखाते और चखाते परस्पर हँसते हँसाते ठट्ठे उडाते श्रीकृष्णके साथ भोजन कर रहे थे॥१०॥ फेंटमें बांसुरी उरस रहे थे, शृंगी बेतकी छडियोंको कांखमें दाब रहे थे, दही भातसे लिपटा हुआ ग्रास बांयें हाथमें ले रहे थे और बेर, आमले, नींबू, आम, जामुनादि फल अँगुलियोंमें धर लिये थे, यज्ञभोक्ता भगवान् चारों ओर अपनी मित्रमण्डलीमें बैठ उनसे हँसीकी बातें कह कहकर उनको हँसाते जाते थे और धीरे २ भोजन खाते जाते थे। इस बालचरित्रको स्वर्गमें देवता देख देखकर आश्चर्यमय हो मनही मन कहते थे कि, देखो यज्ञभोक्ता भगवान् किसप्रकार आनन्द हो होकर ब्रजवासियोंके बालकोंकी जूठन छीन छीनकर खा रहे हैं, पूर्वजन्ममें इन्होंने पूर्ण पुण्य किये हैं ॥ ११ ॥

भारतैवं वत्सपेषु भुंजानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वंतर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ॥ मित्राण्याशान्मा विरमतेहाऽऽनेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाद्रिदरीकुंजगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन्भगवान्कृष्णः स पाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अंभोजन्मजनिस्तदंतरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मंजु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वान्यत्र कुरूद्वहांतरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥ ततो वत्सानदृष्ट्वेत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ॥ उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समंततः ॥ १६ ॥

हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णमें मन लगाये ग्वालबाल भोजन कर रहे थे और बछरे हरी हरी घासके लोभसे बहुत दूर वनके भीतर चले गये ॥ १२ ॥ जब बछरे दूर चले गये तब सब बालक अपने मनमें घबराये, स समय उनकी घबराहट दूर करनेके लिये भगवान् भयहारी; उनसे बोले कि, हे मित्रो ! तुम भोजन करते रहो उठो मत क्योंकि ऐसी सुन्दर मण्डली फिर न बँधेगी, मैं अभी बछरोंको लिये आता हूँ ॥ १३ ॥ इस प्रकार सबका धैर्य बँधाय दही भातका ग्रास हाथमें लिये श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफाओंमें, वनमें, कुञ्जोंमें, गह्वर स्थानोंमें अपने बछरोंको ढूँढ़ते ढूँढ़ते दूर चले गये ॥ १४ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! इसी अवसरमें कमलोद्भव ब्रह्माजी जो कि, प्रथम मायासे बालकरूप श्रीकृष्णका किया अघासुरका मोक्ष होना देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो आकाशमें खडे २ देख रहे थे अब वह फिर श्रीकृष्णकी यह दूसरी माया देखनेके लिये यहांसे तो बालकोंको और वनमेंसे बछरोंको चुराकर दूसरे स्थानमें ले जाय अन्तर्धान हो गये * ॥ १५ ॥ जब वनमें बछरोंको न देखा तब लौटकर फिर यमुनातीरपर आये तो यहां बालकोंको भी न पाया, उस समय बालकोंको और बछरोंको वनमें

8/3

---

* शंका–भगवान्के अनेक अवतार हुए परन्तु किसी अवतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न नहीं हुआ; यह बात शास्त्र और पुराणोंके वक्ता और आचार्य लोगोंसे सुन रक्खी है, परन्तु कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह क्यों उत्पन्न हुआ ?

उत्तर–ब्रह्माने नारदजीको मायामें ग्रसित हुआ देखकर उनकी हँसी करी; तब नारदने ब्रह्माको शाप दिया कि, हे पिताजी ! आपको भी माया ग्रसित करेगी, किसी दिन श्रीकृष्णको भोजन करते देखकर उनकी मायामें ग्रसित होओगे, हे पिताजी ! श्रीनारायणकी माया सर्वोपरि बलवान् है, इस नारदके शापसे कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न हुआ,

चारो ओर ढूँढते फिरे ॥ १६॥ जब वनमें कहीं बछरों और बालकोंको न पाया तब विश्वभावन भगवान् सब विश्वकी गतिके जाननेवाले श्रीकृष्णचंद्रने अपने मनमें जान लिया यह सब ब्रह्माका कौतुक है ॥ १७ ॥ यह समझ जगदीश्वर भगवान्ने विचार किया कि जो मैं चुप होकर बैठ रहा तो बालकोंकी माता रोवेंगी और जो ब्रह्माके पाससे छीनकर ले आऊंगा तो ब्रह्मा अपने मनमें लज्जित होगा और उसके मनका मोह दूर न होगा, बालकोंकी माताओंको आनन्द देनेके लिये और ब्रह्माका मोह बढ़ानेके लिये विश्वके सृजनहार श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने अपने ही अनेक रूप बनाये, बछरे भी आप ही बने और ग्वालबाल भी आपही बने ॥ १८॥ जैसा जिसके बछरोंका और बालकोंका छोटा अथवा बड़ा और जैसे जिनके हाथ पांव थे, किसीके छै अंगुली थीं, जैसी जैसी उनके पास छडी, शृङ्गी, बाँसुरी, छींके थे; जैसे जिसके आभूषण, वस्त्र कुसुम्भी, हरी, पीली, गुलाबी पगडी थी, जैसा जिसका स्वभाव था वैसा ही स्वभाव, रूप, गुण, नाम, अवस्था, आहार, व्यवहार और लक्षण थे उसी प्रकारके सर्वात्मा भगवान् आप बने ॥ १९ ॥ सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् आपही बछरे बने, आप ही उनको घेर घेरकर अपने खेलोंसे खेलने लगे, उसी प्रकारका विहार करते हुए आप ही व्रजमें पधारे॥ २० ॥ हे राजन् ! जिन जिन व्रजवासियोंके बछेरे थे समूहमेंसे अलग अलग होकर उन उनके खिरकोंमें घुसगये और व्रजवासियोंके बालक थे वह अपने अपने घरोंको चले गये॥ २१ ॥ उन बालकोंकी माता बाँसुरियोंका शब्द सुनकर शीघ्रतासे उठकर अपने अपने घरोंसे बाहर निकलकर बालकोंके हाथ पकड़ पकड़कर हृदयसे ऐसा लगाने

काप्यदृष्ट्वांतर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ १७ ॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ॥ उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥१८॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषांबरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽगवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥ स्वयमात्मोत्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥ तत्तद्वत्सान्पृथङ् नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयस्सुधाऽऽसवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥

लगीं. स्नेहसे स्तनोंमें दूध भर आया, वही अमृतकी तुल्य स्वादका दूध परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रको अपने पुत्र मानकर पिलाने लगीं ॥२२ ॥ फिर पीछे उबटन करके मज्जन (स्नान) कराय चन्दन केशर लगाय गहने पहराने लगीं, फिर मस्तकपर तिलक लगाय भोजन कराय इस प्रकार सब गोपी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ातीथीं और वृन्दावनविहारी अपने सुन्दर सुन्दर चरित्र दिखाकर उनको आनन्ददेतेथे। उस समय खेलका नियम साधकर सन्ध्याकाल ब्रजमें आते थे ॥ २३ ॥ इस प्रकार गोपियोंका मोह कहकर अब गौओंका मोह कहते हैं. गायें दौड दौडकर रम्भाय ब्रजमें आती हैं और अपने अपने बछरोंको बुलाती हैं: जब बछरे आते हैं तब अपने अपने बछरोंको प्रेमसे आयनमें संचित हुए दूधको उन्हें पिलावैं हैं, वारंवार हित मानकर उनको चाटती जाती हैं॥२४॥ इस कृष्णचन्द्रमें सब गोप गोपियोंका मैत्रीभाव पहिलेकीसी नाईं होगया. परन्तु पहिले इतना हित नहीं था, अब पहिलेसे अधिक स्नेह बढ़ गया । गाय गोपियोंमें भी श्रीकृष्णकी बालभावना पहिलेके समान रीति प्रीति होगई, परंतु मैं इसका पुत्र हूँ और यह मेरी माता है यह मोह नहीं रहा ॥ २५ ॥ ब्रजवासियोंकी अपने बालकोंमें स्नेहरूपी लता एक वर्षतक धीरे धीरे ऐसी बढी जिसकी वृद्धिका पारावार नहीं, जैसे पहिले देवकीनन्दनमें बढी थी ॥ २६ ॥ इस प्रकार सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बछरे और बालकोंके बहानेसे आपरूप बछरोंको आपरूप ग्वालोंको बनाय बछरे चराकर वनमें ब्रजमें एक वर्षतक क्रीड़ा करते रहे॥२७॥ जब कि, एक वर्ष पूरा होनेमें पांच सात दिन शेष रह गये तब एक दिन भगवान् बलभद्र भैयाको संग लेकर

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः ॥ २३ ॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ॥ स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहंत्यः स्रवदौधस पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृतास्मिन्सर्वा स्नेहार्धिकां विना ॥ पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना॥ २५ ॥ ब्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याऽब्दमन्वहम् ॥ शनैर्निस्सीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत्॥२६॥ इत्थमात्मात्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ॥ पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् ॥ पंचषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥

वनमें बछरें चरानेको गये थे, वहां बलभद्रजीको ऐसा कुछ देखनेमें आया ॥ २८ ॥ बहुत दूर जो गायें गोवर्धन पर्वतके ऊपर चर रही थीं, उन्होंने ब्रजके निकट अपने बछरोंको चरता देखा ॥ २९ ॥ बछरोंको देखतेही प्रेमके वश हो अपने तन मनकी सब सुधि भूल गईं और उनके थनोंसे दूध टपकने लगा, गोपोंके निवारण करने और विषम मार्गका कुछ भी ध्यान नहीं किया और ऐसी भागीं :मानो दोही पाओंसे चल रही हैं, मुख और पूँछ ऊपरको उठाये बडे वेगसे हुंकार शब्द करती बछरोंके समीप पहुँचीं ॥ ३० ॥ यद्यपि इन गायोंके और छोट छोटे दूसरे बछरे भी थे तो भी वह गायें गोवर्द्धन पर्वतसे नीचे आय इन बछरोंसे मिल; उन बछरोंको दूध पिलाने लगीं और ऐसे उनके

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरंत्यो ददृशुस्तृणम् । २९ ॥ दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमागः ॥ द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ॥ गिलंत्य इव चांगानि लिहंत्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणप्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते॥३३॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥

शरीरको चाटने लगीं मानो निगल जायँगी ॥ ३१ ॥ अब गोपोंका मोह कहते हैं; जब गोपोंने गायोंको घेरा और गायें नहीं घिरीं तब लज्जित हो अपने मनहीं मनमें कहने लगे कि, हम बानेत गोप कहलाते हैं, परन्तु आज हमसे गायें भी नहीं रुकीं, तब अपनें मनमें बडा क्रोध करने लगे और उन कठिन २ मार्गोंमें बडी कठिनतासे नीचे आये, वहां बलदेवजीके संग बछरोंको लिये अपने पुत्रोंको देखा॥३१॥ उनको देखतेही वह गोप अत्यन्त ही प्रेमरसमें मग्न होगये, इससे सब क्रोध शान्त हुआ और प्रेम बढा. तब तो बालकोंको हाथ उठा उठाकर हृयसे लगा लिया और उनके माथेको सूँघकर ब्रजवासी बडे आनन्दित हुए ॥ ३२ ॥ फिर पीछे वृद्ध वृद्ध गोप बालकोंको हृदयसे लगाकर बडे

व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धेर्वीक्ष्यौत्कंठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिंतयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युताऽऽसुरी ॥ प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचिंत्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥ नेते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाऽऽश्रयेऽपि ॥ सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥

8/5

प्रसन्न हुए और महाकठिनतासे सहज सहजमें बालकोंको छोडके बाहर निकले, बालकोंकी सुधिसे उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥ यद्यपि उन बालकोंने दूध पीना छोड़ दिया था और बडे भी होगये थे,तो भी उन बालकोंमें ब्रजवासियोंके प्रेमकी ऐसी वृद्धि देख और इसके कारणको न समझकर बलरामजी अपने मनमें विचार करने लगे ॥ ३५ ॥ कि, सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर जैसा प्रेम प्रथम था वैसा ही अपूर्व प्रेम अब बालकोंपर भी बढता जाता है और यही नहीं,मेरे हृदयमें भी वत्स और बालकोंपर क्षण क्षणमें अधिक प्रेमकी वृद्धि होती चली जाती है; यह बडी अद्भुत बात है,न जानिये यह क्या कारण है ? ॥ ३६ ॥ यह क्या है ? देवताओंकी माया है, वा मनुष्योंकी माया है अथवा राक्षसी माया है ? मैं नहीं जान सकता, यह कहांसे आई और कैसी अलौकिक माया है? क्योंकि इसने मुझको भी मोहित करलिया,इससे मुझको यह जान पडता है कि,यह माया मेरे स्वामी श्रीकृष्णचंद्र आनन्दकन्दकी हो तो आश्चर्य नहीं क्योंकि और दूसरेकी माया मेरे मनको मोहित नहीं कर सकती॥ ३७॥इसप्रकार शोच विचारकर दाशार्हवंशोद्भव बलदेवजीनें अपनी ज्ञानदृष्टिसे देखा तो सब बछरे और बालक सर्वात्मा श्रीकृष्णरूपमें दिखाई दिये ॥ ३८ ॥ सब देवता ग्वालबाल बने हैं और ऋषि मुनियोंने बछरोंका रूप धारण किया है, यह मैं जानता हूँ परन्तु यह बालक अब तो देवता नहीं हैं और यह बछर ऋषि भी नहीं हैं,अब तो मुझको सबमें श्रीकृष्ण दृष्टि आते हैं,जब यह भ्रम हुआ तो श्रीकृष्ण से बूझा कि, हे प्रभु ! इस भेदको प्रकाशो यह क्या भेद है ? सो तुम सम्पूर्ण भेद भिन्न भिन्न संक्षेपसे समझाकर कहो, जो मेरे मनका सन्देह दूर हो. जब इस प्रकार बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा तब श्रीकृष्णने सब वृत्तान्त समझाकर कहा कि, हे भैया ! तुमको आज सुधि हुई है ? जब ब्रह्माको मोह हुआ और बछरे और बालकोंको चुराकर ले गया तब मैंने बालक और छरोंका वैसा ही रूप

धारण किया और उनके कुटुम्बियोंको क्लेश न होने दिया. इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेसे बलदेवजीने सब भेद जाना ॥ ३९ ॥ देखो यहां तो एक वर्ष बीत गया, परन्तु ब्रह्माका एक पलही बीता था तब ब्रह्माने फिर आनकर देखा तो पहिलेकीसी नाईं बछरे और बालकोंको संग लिये श्रीवृन्दावनविहारी नये नये ढंगके खेल खेल रहे हैं ॥ ४० ॥ यह अद्भुत कौतुक देख ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करने लगे कि, गोकुलमें जितने बछरे और बालक हैं वह सब मेरी मायारूपी शयनमें पडे सो रहे हैं और अभीतक उठे नहीं ॥ ४१ ॥ फिर यह मेरी मायासे अलग जो यह ग्वालबाल और बछरे चर रहे हैं और अनेक प्रकारके विहार कर रहे हैं, सो यह यहां कैसे आ गये ? जितने मैं हरकर ले गया हूँ उतनेही उसी स्थानपर यहाँ वर्षदिनसे भगवान्के संग विहार कर रहे हैं ॥ ४२ ॥ आप ही मोहित हो ब्रह्माजी बहुत देरतक विचार करते रहे

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडंतं ददृशे सकलं हरिम्॥४०॥ यावंतो गोकुले बालाः सवत्साः
सर्व एव हि ॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः॥४१॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावंत एव
तत्राब्दं क्रीडंतो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मनि ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे
कथंचन ॥ ४३ ॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥
तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ॥ महतीतरमायैश्यं निहंत्यात्मनि युंजतः ॥ ४५ ॥

कि, इनमें कौनसे बालक और बछरे सत्य हैं और कौनसे असत्य हैं ? मैं जो हरकर ले गया वे सत्य हैं वा यह जो ब्रजविहारीके संग विहार कर रहे हैं ये सत्य हैं, दोनों एकसे दिखाई देते हैं, क्या कहूं ? मैं किसी प्रकार इस भेदको नहीं जान सकता ॥ ४३ ॥ "श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कभी वनमें कभी ब्रह्मलोकमें एक वर्ष तक चकईके समान ब्रह्मा दिन रात घूमते फिरे. देखो ! इसप्रकार ब्रह्माजी विश्वके मोह करनेवाले और आप मोहरहित विष्णुभगवान्को अपनी मायासे मोहित करना चाहते थे, परन्तु आप ही मोहित होगये ॥४४॥ जैसे अँधेरी रातमें कुहर अन्धकारसे अपना पृथक् आवरण नहीं कर सकता, क्योंकि उसी अन्धकारमें आप भी लय हो जाता है. जैसे दिनमें खद्योत

(पटबीजना) अपना प्रकाश पृथक् नहीं कर सकता, ऐसे ही ऐश्वर्यवान् पुरुषोंपर कोई साधारण पुरुष अपनी माया करना चाहै तो उस अधमकी माया उत्तम पुरुषका कुछ भी नहीं कर सकती, बरन् चलानेवालेहीके सामर्थ्यका विनाश करती है ॥४५॥ देखो ! ब्रह्माके देखते ही देखते क्षणमात्रमें और एक अद्भुत आश्चर्य हुआ. सब बछरे और बालक मेघवत् श्यामवर्ण पीताम्बर पहिरे ॥ ४६ ॥ चतुर्भुज रूप धारे, हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये; मस्तकपर किरीट, मुकुट धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, कण्ठमें मोतियोंके हार और वनमाला पहिरे ॥४७॥ श्रीवत्सकी कांतिसे शोभायमान, भुजाओंमें भुजबंद पहिरे, रत्नजटित शंखके समान तीन रेखावाले, कंकण करमें धारण किये, नूपुर, कटक, कमरमें तगडी और मुंदरियोंके धारण करनेसे शोभायमान ॥४८॥ बडे पुण्यवान् सज्जनोंसे समर्पण की हुई तुलसीकी नवीन

तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यंत घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रग
दाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥४७॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकंबुकंकणपाणयः ॥ नूपुरैः
कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ आंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्य
वदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः ॥ स्वकार्थानामिव रजस्सत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥ ५० ॥
आत्मादिस्तंबपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यैर्महिमभिरजा
द्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥ ५२ ॥ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥

और कोमल मालाओंसे शिरसे पांवोंतक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाके सदृश स्वच्छ, मन्दहास्यसे मानो अपने दासोंको सतोगुणसे पालन करते और अरुणाईयुक्त कटाक्षभरी चितवनसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको मानो रजोगुणसे उत्पन्न करते विदित होते थे ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे आदि लेके तृणपर्यंत स्थावर जंगम समस्त प्राणी मूर्तिमान् होकर एक २ बछरेके सन्मुख नाच और गान आदिक अनेक २ प्रकारसे उनकी पूजा और शिष्टाचार करते थे॥५१॥ और अणिमादिक अष्टसिद्धि मायासे लेकर महदादिक विभूति, चौबीस तत्त्व चारों ओर देदीप्यमान थे ॥ ५२ ॥ काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह रूप धारण कर प्रत्येककी सेवा करते थे. इन सबकी स्वतंत्रता श्रीकृष्णच

न्द्रकी महिमाके आगे नष्ट होगई थी ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानरूप आनन्दमात्र एकरस जो ब्रह्ममूर्तिवाले तथा जिनके चक्षु आत्मज्ञान हैं ऐसे महात्मा पुरुष भी जिनकी महिमाके माहात्म्यको नहीं जान सकते, ऐसा रूप ब्रह्माजीने सबका देखा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ समस्त बछरे और बालकोंको परब्रह्ममय देखा, जिसपर ब्रह्मकी कांतिसे संपूर्ण स्थावर, जंगम और यह विश्व प्रकाशमान हो रहा है ॥ ५५ ॥ उसके पीछे फिर बडे आश्चर्यसे ब्रह्माजीकी सब इंद्रियें शिथिल हो गईं और उनके तेजसे ब्रह्माजी चुप होगये जैसे ग्रामकी रक्षा करनेवाली पुतलीके आगे चार मुखकी सुवर्णकी प्रतिमा खडी होय इस प्रकार खड़ा हुआ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सरस्वतीके स्वामी तर्कना रहित स्वप्रकाश सुखनिधान प्रकृतिसे परे और ब्रह्मसे पृथक् वस्तुके मिथ्या जिनका ज्ञान प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदोंसे हो सकता है उस अलौकिकरूपको देखकर और उस महिमाको विचार कर यह क्या है ऐसे शोचते हुए ब्रह्माजी मोहित होगये और उनकी अवलोकन करनेकी शक्ति भी जाती रही. तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने ब्रह्माजीकी यह दशा देखकर मायाका आवरण उनके हृदयसे दूर कर दिया ॥ ५७ ॥ तब तो ब्रह्माजीकी सब इंद्रियें चैतन्य होगईं जैसे मृतक पुरुष जी उठे हैं ऐसे बडे कष्टसे नेत्रोंको खोलकर अपने आत्मासहित ब्रह्माजीने जगत्को देखा ॥ ५८ ॥ जब ब्रह्माजीने चारों ओरको दृष्टि उठाकर देखा तो सन्मुख ही चारो ओर प्रिय पदार्थोंसे परिपूर्ण और मनुष्योंकी जीविकाके लिये वृक्षोंसे भरापुरा वृन्दावन है ॥ ५९ ॥ जिस वृन्दावनमें स्वाभाविक वैर करनेवाले सिंह, मृग और मनुष्य परस्पर परममित्रके समान रहते हैं. श्रीवृन्दावनविहारीके संग रहनेसे सब प्राणियोंका क्रोध और तृष्णा दूर होगई है ॥ ६० ॥

सत्यज्ञानानंतानंदमात्रैकरसमूर्तयः ॥ अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मा
त्मनोऽखिलान् ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्यस्तिमितैकादशेंद्रियः ॥
तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यंतीव पुत्तिका ॥ ५६ ॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसन
मुखब्रह्मकमितौ ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम्
॥ ५७ ॥ ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं महात्मना ॥ ५८ ॥ सपद्येवा
भितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥ वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥ ५९ ॥ यत्र नैसर्गदुर्वैराः
सहासन्नृमृगादयः ॥ मित्राणीवाऽजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥

उस वृन्दावनमें गोपालवंशके बालकपनका आचरण करनेवाले अनन्त अगाध ज्ञानस्वरूप बछरे और ग्वालबालोंको पहिलेके समान ढूँढते फिरते थे और हाथमें दहीभातका ग्रास लिये अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरका दर्शन ब्रह्माको हुआ ॥ ६१ ॥ इस प्रकार वृन्दावन विहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको देख उसी समय ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे नीचे उतर कञ्चनके दण्डके तुल्य अपनी देहसे साष्टांग कर चारो मुकुटोंका अग्रभाग चरणारविंदोंसे लगाय दण्डवत् कर आनन्दरूप आंसुओंके जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया ॥ ६२ ॥ प्रथम जो भगवान्की अद्भुत महिमा देखी थी उसको वारंवार स्मरण कर करके श्रीगोविंद भगवान्के चरणारविंदोंमेंसे उठ और फिर गिर पडे इस प्रकार

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनंतमगाधबोधम् ॥ वत्सान्सखीनिव पुरः परितो विचिन्वदेकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदंडमिवातिपात्य॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरंघ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥ आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वास्मृत्वा पुनःपुनः ॥६३॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुंदमुद्वीक्ष्य विनम्रकंधरः ॥ कृतांजलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥६४॥ इति श्रीभाग०म०दशम० पू० ब्रह्ममोहनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदंबराय गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥ १ ॥

8/7

बडी देरतक ब्रह्मा पाओंमें पडे रहे ॥६३ ॥ फिर पीछे कुछ कालोपरांत सहज सहजमें उठ आंसू पोंछ भगवान्की ओर निहार लज्जाके मारे नीची नार कर हाथ जोड शरीर कम्पायमान, मुखसे कुछ कुछ अक्षर निकले इस प्रकार गद्गद वाणीसे ब्रह्माजी स्तुति करने लगे कि, हे नाथ ! ॥ ६४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां ब्रह्ममोहवर्णनं नाम त्रयोऽदशोध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-चौदहमें हरिके चरित, अद्भुत अलख लखाय। हरिअस्तुति अज ज्यों करी, कहौं कथा सो गाय ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे स्तुति करने योग्य ! श्यामघटाके समान तुम्हारा शरीर, बिजली सम पीतांबर धारण किये, गुञ्जाओंके कर्णभूषण, मयूरपिच्छके मुकुटसे शोभायमान मस्तक, कण्ठमें वनमाला पहिरे, दहीभातका ग्रास; बेतकी छडी, शृंग, बांसुरीके चिह्नोंसे सुशोभित अतिसुन्दर कोमल चरणारविन्दोंसे विचरते

हो. हे गोपाल नन्दलाल! आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ हे देव सच्चिदानन्द! मेरे ऊपर कृपा करनेवाली और भक्तोंकी इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाली पञ्चभूत रहित यह आपकी मनोहर मूर्ति शुद्ध सत्त्वयुक्त है, इस आपके अवतारकी भी महिमाको मैं (ब्रह्मा) क्या किसीमें भी जाननेका सामर्थ्य नहीं है. आप जो साक्षात् आत्मसुखके अनुभवरूप अवतारधारी हो, तुम्हारी महिमाको समाधि लगाकर भी कौन जान सकता है? अथवा पञ्चभूतमय विराट्रूपकी महिमा जाननेको कोई समर्थ नहीं होता, मेरे ऊपर आपने अनुग्रह करके दर्शन दिया ॥ २ ॥ हे अजित! आप किसीके जीतनेमें नहीं आते परंतु जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करनेके परिश्रमको त्यागकर महात्मा पुरुषोंके मुखसे निकली हुई आपकी कथाको श्रवणद्वारा पान करके अपने घर बैठे २ मनसे, वाणीसे, देहसे आपका अर्चन, वन्दन करके तुमको जीते हैं उन

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य नतु भूतमयस्य कोऽपि॥ नेशे महि त्ववसितं मनसांतरेण साक्षात्तवैव
किमुताऽऽत्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥ ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमंत एव जीवंति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ॥ स्थाने स्थिताः
श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयस्स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यंति ये केवलबोधलब्धये ॥ तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥ पुरेह भूमन्बह
वोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ॥ विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेंऽजोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

लोगोंको त्रिभुवनमें कोई नहीं जीत सकता और वह लोग आपको अपने वशमें कर लेते हैं ॥ ३ ॥ हे विभो! भुक्ति मुक्ति देनेवाला आपकी भक्तिको त्यागकर जो लोग केवल ब्रह्मज्ञानी होनेके लिये अधिक क्लेश और खेद करते हैं, उन लोगोंको केवल क्लेश और खेद ही शेष रह जाता है और कुछ नहीं मिलता. जैसे जो मनुष्य थोथे तुषोंको कूटता है उसको दुःखके सिवाय अन्न किसी प्रकार नहीं मिल सकता ॥ ४ ॥ हे व्यापक! भूमन्! इस संसारमें पहिले बहुतसे योगीश्वरोंको जब योगसे ज्ञान नहीं मिला तो अपनी सब क्रिया और कर्म आपको समर्पण करनेसे और कथा सुननेसे भक्तिको प्राप्त हो उससे आत्मज्ञानकी प्राप्ति कर फिर अनायास ही आपके पदको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥

हे परिच्छेदरहित ! इस प्रकार आपके सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंका ज्ञान होना कठिन है और किसे ही आप जाननेमें आते हैं, तो भी निर्मल अन्तःकरणवाले जितेन्द्रिय महात्मा पुरुष आत्माका अन्तःकरणके साक्षात्कारसे निर्विकारतासे अरूपतासे अनन्यबोधसे कुछ कुछ आपकी महिमाको जान सकते हैं परन्तु और किसी प्रकारसे आप जाननेमें नहीं आते ॥ ६ ॥ हे गुणात्मन् ! आप गुणोंके आधार हो, इस विश्वका मंगल करनेके लिये आपने इस संसारमें अवतार लिया है. सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन गुणोंके तुम साक्षी हो, आपके इतने गुण हैं जिनके गिननेके लिये कौन पुरुष सामर्थ्यवान् हो सकता है ? कोई चतुर पुरुष बहुत दिनोंमें बहुतसे जन्म धारण करके पृथ्वीकी रेणुकी गिन्ती कर ले, आकाशके हिमकणकी गिन्ती कर ले और स्वर्गके नक्षत्रादि किरणोंके परमाणुओंको भी गिन सकता हो परन्तु आपके

तथापि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलांतरात्मभिः ॥ अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया
न चान्यथा ॥ ६ ॥ गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ॥ कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपां
सवः खे मिहिका द्युभासः ॥ ७ ॥ तत्तेऽनुकंपां सुसमीक्षमाणो भुंजान एवात्मकृतं विपाकम्॥ हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥ पश्येश मेऽनार्यमनंत आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ॥ मायां वितत्ये
क्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥

8/8

गुणोंका पार कोई किसी प्रकार नहीं पा सकता ॥ ७ ॥ बहुतेरे भक्त जगत्में ऐसे भी हैं, और रात दिन यही कहते रहते हैं, आप किस समय कृपा करेंगे? इसकी बाट देखते आसक्तिरहित हो अपने किये कर्मफल दुःख सुखको सहते शरीर मन, वाणीसे जो पुरुष आपको प्रणाम करते हैं, वह प्राणी भी मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! मेरी दुष्टता तो देखो, कि आप जो समस्त मायावियोंके मोहित करनेवाले अनंतरूप परमात्मा हो, आपपर भी मैंने अपनी माया फैलाकर अपना वैभव दिखानेकी इच्छा की सो इससे क्या हो सकता है, जैसे अग्निके सामने स्फुलिंग (चिनगारी) तुच्छ है कुछ नहीं कर सकता ऐसे ही आपके सन्मुख मैं तुच्छ हूँ कुछ नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

हे अच्युत ! हे अखंडरूप ! मैंने रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण आपके स्वरूपको नहीं जाना, आपसे भिन्न ही भगवान्‌को जाना. मैं अजन्मा जगत्‌का कर्ता हूँ इस अभिमानसे अंधा हो रहा हूँ आप मेरे स्वामी हो मुझे अपना दास जानकर कृपा करिये क्योंकि मैं आपकी कृपाके योग्य हूँ ॥ १० ॥ यदि आप मुझको ब्रह्मांडका नाथ कहो तो हे भगवन् ! माया, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वीसे बने ब्रह्मांडमें सात बित्ताकी देहवाला मैं कहां और आपके रोमकूपरूप झरोखोंमें ऐसे अनंत ब्रह्मांडरूप परमाणु घूमते फिरते हैं, ऐसी आपकी अद्भुत महिमा कहां ? मुझमें और आपमें बड़ा अन्तर है, इसलिये मुझको अत्यन्त तुच्छ जानकर मुझपर अनुग्रह कीजिये और यह भी समझना चाहिये कि यह ब्रह्मा यद्यपि और लोकका अधिष्ठाता है तो भी हमारा अनुचर ही है ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज ! (इन्द्रियोंसे जाननेमें न आवे) जो अनजान बालक अपनी माताकी गोदमें बैठकर पाँव उछाले अथवा लात मारे तो क्या माता उसको अपराधी माने ? "कोई कहै कि ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता कैसे कहा ? ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता इस प्रकार कहा " कि स्थूल सूक्ष्म कार्य कारण रूप सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें विद्यमान है जो शब्दसे कहनेमें नहीं आता, जब सब विश्व आपके उदरमें ठहरा, तो विश्वमें रहनेसे मैं भी आपके उदरमें हुआ, इसलिये मुझे अपना पुत्र समझकर मेरा अपराध क्षमा करो ॥ १२ ॥ हे नारायण ! प्रलयकालमें जब भूलोंक, भुवर्लोक, स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका नाश हो जाता है तब चारो ओरसे समुद्रका जल उमडै है, उस जलके भीतर नारायणकी नाभिमे एक कमल उपजै है, उस कमल नालसे ब्रह्मा उत्पन्न होता है, क्या यह बात झूंठ है ? क्या यह देववाणी नहीं है ? क्या मैं आपसे उत्पन्न नहीं हुँ ? या तो कह दो य

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजो भुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजावलेपांधतमोऽधचक्षुष एषोऽनुकंप्यो मयि नाथ
वानिति ॥ १० ॥ क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टितांडघटसप्तवितस्तिकायः ॥ केदृग्विधाऽविगणितांडपराणुचर्या
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥ उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ॥ किमस्ति
नास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनंतः ॥ १२ ॥ जगत्त्रयांतोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा किंत्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥

नारायणस्त्वं नहि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥ तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५॥ अत्रैव मायाधमनाऽवतारे ह्यस्य प्रपंचस्य बहिः स्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चांतर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदंमायया विना ॥ १७॥ अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावंतोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावंत्येव जगंत्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८ ॥

बात झूंठ है. और जो कहो कि झूंठ नहीं है तो मैं आपका पुत्रही हूं तो मेरा अपराध सब प्रकारसे क्षमा करना चाहिये क्योंकि ॥ चौपाई॥ "बडे दया छोटनपर करहीं । गिरि निज शिरन सदा तृण धरहीं" ॥ १३॥ क्या तुम नारायण नहीं हो? नहीं, तुम ही नारायण हो और तुम ही सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा हो. हे अधीश ! सबके प्रेरणा करनेवाले समस्त लोकोंको साक्षात् देखो हो. नार जो जीवसमूह और जल जो आपका अयन (वास, आश्रय) है, इस लिये नारायण नाम आपका प्रसिद्ध है सो आपकी मूर्ति है और जो विचार करके देखिये तो यह भी सत्य नहीं है क्योंकि मुझको सब माय रूप ही जान पड़ते हो ॥ १४ ॥ हे जगदीश्वर ! जगत्का आश्रयभूत आपका रूप जलके भीतर सत्य है तो जिस समय मैंने कमलनालके भीतर बैठकर सौ (१००) वर्षतक आपको ढूँढ़ा तब आप क्यों नहीं दिखाई दिये और हृदयमें भी क्यों नहीं प्रगट हुए? फिर तप करनेसे तुरन्त ही क्यों आपका रूप दिखाई दिया इसलिये यह सब आपकी माया ही है, तुम्हारी मूर्तिमें किसी देशकालका परिच्छेद नहीं बन सकता ॥१५॥ हे मायाके करनहारे ! बाहरभीतर समस्त विश्वके प्रकाश करनेवाले ! यदि यह जलादि प्रपञ्च तुमसे पृथक् होय तो इससे तुम्हारा परिच्छेद होना सम्भव है परन्तु यह मायासे उत्पन्न है यह बात आपने इस अवतारमें यशोदा मैयाको अपने उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्मांडको दिखाकर प्रत्यक्ष कर दिया इससे यह प्रपञ्च मायाका ही किया हुआ है ॥ १६॥ जिस प्रकार आपके उदरके भीतर आप समेत यह विश्व प्रकाशमान है वैसा ही बाहर प्रकाशमान है और तुम्हारे साथ इसका प्रकाश होना मायाके विना ही बन सकता है जो बाहरके जगत्का तुममें प्रतिबिम्ब पडे तो वह बाहरकी वस्तु उलटी दीखनी चाहिये और यदि आपको दर्पणस्थानमें माना जाय तो आपका दर्शन उसमें नहीं होना चाहिये, इस कारण यह सब माया ही है ॥ १७ ॥ केवल आपके विना यह सब संसार मायारूप है,

क्या यह माया ही दिखाई है ? क्योंकि, प्रथम आप अकेले थे, पीछे सम्पूर्ण ब्रजके बछरे और ग्वालरूप हो गये, फिर कुछ कालोपरान्त सबके सब चतुर्भुजरूप हो गये, फिर एक एक रूपके आगे मैं (ब्रह्मा), शिव, इन्द्र सहस्रों दृष्टि आये और एक एकनें एक एक रूपकी स्तुति करी फिर आप ब्रह्मरूप हो गये, फिर पीछे प्रणाम करनेमें भी नहीं आये, इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्मरूप अवशेष रह गये ॥१८॥ सर्वव्यापक आपके स्वरूपको मायामें स्थित हुए जो प्राणी नहीं जानते हैं उन पुरुषोंके ऊपर मायाको फैलाकर स्वतंत्रतासे आप प्रकाशते हो, जगत्के उत्पन्न करनेके समय ब्रह्माका रूप धारण कर लेते हो, पालनके समय विष्णुरूप धारण कर लेते हो और संहारके समय तीन नेत्रवाले रुद्ररूप बनजाते हो ॥ १९ ॥ हे ईश ! हे प्रभु ! हे जन्मरहित विधाता ! देवता, ऋषीश्वर, मनुष्य; पशु, पक्षी और जलके जीवोंमें आप साधुलोगोंपर कृपा करनेके लिये और दुष्टोंके अभिमान हरनेके लिये जन्म लेते हो ॥२० ॥ हे व्यापक ! हे भगवन् ! हे परात्मन् ! हे योगेश्वर ! आप जो अपनी योगमायाको विस्तार करके जिस समय विहार करते हो उन लीलाओंको त्रिलोकीमें कौन जाननेवाला है ? कि कहाँ हैं, कैसी हैं, कौन हैं और कितनी हैं ॥ २१ ॥ इसलिये यह मिथ्या स्वरूप स्वप्नके समान प्रकाशमान दुःखरूप यह सब संसार केवल आपके नित्य सुख चैतन्यमय अनन्तस्वरूपमें मायासे उत्पन्न होनेके कारण नित्यसुख और चैतन्यस्वरूपके समान भासते हैं, परन्तु वास्तविकतासे असत्स्वरूप, स्वप्नतुल्य, प्रतिभासरहित, कष्टसे भी अधिक कष्टद मानो कष्टमय ही हैं ॥ २२ ॥ केवल सत्यस्वरूप तो एक आप ही हो, क्योंकि आत्मा हो, जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, जहांतक मन जाता है वह सब माया है, आत्मा दृश्य नहीं इसलिये सत्य है, आपमें कोई विकार नहीं

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम्॥सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोंऽत इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य॥जन्माऽसतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ २० ॥ को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम्॥ त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनंते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनंत आद्यः॥नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरंजनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥

इसलिये सत्यस्वरूप हो, आप सबके कारणस्वरूप हो, सबके व्यापक होनेसे पुरुष कहलाते हो, तुम सदा पूर्ण हो, नित्यसुखस्वरूप हो, अक्षर हो, अमृत हो, इस लिये आपका कभी विनाश नहीं होता, तुम अनंत और अद्वैत हो इसलिये आपके देश कालका परिच्छेद नहीं, आप स्वयं प्रकाश उपाधिरहित असंग हो, इसलिये ज्ञानके साधनसे आपकी प्राप्ति नहीं होती, आप निरञ्जन हो इसलिये आपके स्वरूपमें किसी प्रकारका संस्कार भी नहीं है, आप नित्यमुक्तरूप हो, अमृत हो॥२३॥इसलिये आप सदा आत्मारूप हो और समस्त जीवोंके आत्मा हो, जिन पुरुषोंने सूर्यरूप गुरुसे उपनिषद्के ज्ञानरूप नेत्र प्राप्त किये हैं वह महात्मा आत्मासे ही आपका दर्शन करके संसारसागरके पार होजाते हैं ॥ २४ ॥ जबतक प्राणी आपके आत्मस्वरूपको आत्मरूप नहीं जानते तबतक उनको अज्ञानसे यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रगट भासता रहता है और वही

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते॥गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा ये ते तरंतीव भवानृतांबुधिम् ॥ २४ ॥ आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम् ॥ ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥२५॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबंधमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ॥ अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥ त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ॥ आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥ २७ ॥

प्रपञ्च आत्मरूपको जाननेसें लय हो जाता है. जबतक अज्ञान है तबतक रज्जु सर्परूप भासती है; जब ज्ञान हो जाता है तब रज्जु रज्जु ही जाननेमें आता है, अज्ञानसे रज्जुमें सर्प जानना अध्यास है और ज्ञानसे रज्जु ही जानना अपवाद है॥ २५ ॥ संसारमें बंधन और आत्मामें मोक्ष केवल अज्ञानसे है, सत्य ज्ञानरूप आत्मासे भिन्न नहीं है । निरन्तर चैतन्यरूप आत्मा परमेश्वर आप ही हो ऐसा विचार करनेसे अज्ञान वा बन्धन कुछ भी नहीं है. जैसे सूर्यके सन्मुख रात दिन नहीं है, सदा प्रकाश ही रहता है ॥ २६ ॥ आत्मस्वरूप परब्रह्म आपको देह मानकर और देहादिकको आत्मा मानकर यहीं खोये हुए आत्मरूपी [पदार्थको

बाहर खोजना, देखो ! यह मूर्खोंकी कैसी मूर्खता है क्योंकि घरकी खोई वस्तु कोई वनमें खोजने नहीं जाता॥ २७॥ बिना जाने झूठभी सत्यहीके समान विदित होता है इस बातपर एक दृष्टान्त है॥ *हे अनन्त ! ज्ञानीपुरुष तो इस देहमें ही आपको खोजते हैं, "यहां भी आत्मा नहीं,

अंतर्भवेऽनंत भवंतमेव ह्यतत्त्यजंतो मृगयंति संतः ॥ असंतमप्यंत्यहिमंतरेण संतं गुणं तं किमु यंति संतः॥ २८ ॥

यह भी आत्मा नहीं" ऐसे जड़ पदार्थोंका त्याग करतेहैं क्योंकि अपने निकट यद्यपि सर्प नहीं भी है परन्तु उसका निषेध किये विना सत्य रज्जु जाननेका ज्ञान नहीं होता, सर्पके निषेध होनेके उपरान्त रज्जु जाननेमें आती है ॥ २८ ॥

---

* दृष्टांत—किसी राजाके यहां एक कुपठ्य (बे पढा) पुरोहित था परन्तु बोलचालमें महाधूर्त और पाखण्डा था, उसने राजाको "शुक्लाम्बरधरं विष्णु शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये" इस श्लोकके अर्थ दहीबडेके बतला रक्खे थे कि, दही सफेद उसमें लिपटा होय है वही शुक्ल वस्त्र है और वेष्टीयतीति विष्णुः विशेष लिपटा होनेसे विष्णु हैं, गोल गोल चन्द्रमाके समान मुख है और चतुर्भुजम् अर्थात् चतुर पुरुषोंके भोजन योग्य है ध्यान करतेही प्रसन्न मुख होजाताहै और भोजन करनेसे सब विघ्न शांत हो जातेहैं राजाने इस श्लोकके यह अर्थ सत्य समझकर और उसको महात्मा जानकर उसका बडा आदर सन्मान करता था, जो विद्वान् आवै, राजा उसीसे उस श्लोकका अर्थ बूझै, सब पंडित लोक विष्णुभगवानहीका अर्थ करैं, राजा कहै. यह अर्थ इस श्लोकका नहीं. इसी प्रकार अनेक पंडितोंका तिरस्कार होता था, तब एक पंडित और आये उन्होंने रुपयेका अर्थ किया, देखो ! यह रुपया श्वेतवर्ण है और चार चौअन्नी जो हैं यही उसकी चार भुजा हैं देखतेहीं मुख प्रसन्न होजाता है और सब विघ्नोंका शांत करनेवाला है, इस अर्थको सुनकर राजाने कहा और पंडितोंसे तुम अच्छे हो दशांश पारितोषिकके योग्य हो, परन्तु सत्य अर्थ इसका आपभी नहीं जानते, एक महात्मा पंडितने विचारा कि, यह राजा किसी मूर्खका बहँकाया हुवा है और यह राजा भी मूर्ख है, यह महात्मा पंडित राजाके पुरोहितके घर जाने लगे और उनसे बडी मित्रता करली और मिसरानीकोभी एक बडी चिकनपटकी तीयल बनादी और आभूषण भी अनेक अनेक प्रकारके बनादिये और अत्यन्त प्रेमसे उनकी सेवा करने लगे और दिन रात माताही माता कहते मुख सूखै. एक दिन उस ब्राह्मणीने कहा कि, इतने दिनोंसे तू हमारे यहां रहता है तैंने कुछ अपना अभिप्राय नहीं कहा कि, तेरा क्या मनोरथ है? ब्राह्मण बोला कि, हे माता ! मेरा तो नाम न लेना परन्तु (शुक्लांबर) इस श्लोकका अर्थ अपने पतिसे बूझ दो तो बहुत अच्छा है, वह बोली आजही लो, जैसे पुरोहितजी घर आये उसी समय बूझा कि, हे स्वामिन् (शुक्लांबर) इस श्लोकका क्या अर्थ है ? परन्तु पुरोहितजीने बहुतेरी तीन पांच की, " नारि विवश नर सकल गुसाईं । नाचहिं नट मर्कटकी नाईं" मिसराणीने एक न मानी निदान बतानाही पडा, मिसरानीने अगले दिन उन महात्माजीको बतादिया, महात्माजीने अच्छे वस्त्र पहन कांखमें पोथी दबा, राजाकी सभामें गये और बडी धूमधामके साथ राजाको उस श्लोकका वही दहीबडेवाला अर्थ सुनाया, राजा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा तुम बडे विद्वान् हो, हमारे पास रहा करो और बहुत कुछ धन भी उनको दिया, पुरोहितजी इस बातको सुनकर शून्य होगये और अपने मनमें कहनेलगे कि, परमेश्वरने आज हमारी आजीविका यहांसे बन्द करदी और महात्माजीने कहा यह राजा मूर्ख है और मूर्खके समीप रहना किसी प्रकार अच्छा नहीं, या तो इसको पढाना चाहिये और जो वह न पढै तो यहांसे सिधारना अच्छा है, पंडितजीने राजासे कहा आप कुछ पढा करैं तो अच्छा है, राजाने स्वीकार किया और पंडितजीने राजाको पढाना आरम्भ किया, व्याकरणके पढनेसे राजाको पदपदार्थका बोध होगया तो एकदिन उस श्लोकको विचारने लगा तो कहीं भी दहीबडेका अर्थ न पाया, तब राजा चकित हो पंडित जी-

अथापि ते देव पदांबुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ॥ जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् ॥ येनाऽहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥

हे देव ! जब ज्ञानसे ही मुक्ति हो जाती है तो भुक्तिकी क्यों बड़ाई की. ब्रह्मा कहे हैं, यद्यपि ज्ञान प्राप्त होना बहुत सुगम है तो भी आपके चरणारविन्दोंके प्रसादकी कणिकाके कणिकेका अनुग्रह जिसपर होगया वही तुम्हारी महिमाके स्वरूपको जानता है. और जिसपर तुम्हारे चरणारविन्दोंकी कृपा ही नहीं है चाहे वह कितना ही विचार किया करे और वर्षोंतक ढूँढा करे तो भी आपकी महिमाको नहीं जान सकता. शुद्ध भक्तिसे ही आपकी महिमा जानी जाती है ॥ २९ ॥ इस बातपर एक दृष्टान्त है * हे नाथ ! इस ब्रह्माके जन्ममें, अथवा और कोई जन्म होय उसमें अथवा पशुपक्षियोंमें जन्म हो तो मैं अपना बड़ा भाग्य मानूंगा, जब तुम्हारे ब्रजवासियोंमेंसे किसीके

और पुरोहितजीको बुला भेजा और आतेंही राजाने उससे क्रोध करके कहा कि, पुरोहितजी ! तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया, बताओ इसमें दहीबडेका अर्थ कहां है ? पुरोहितजीके तो छक्के छूट गये पंडितोंने कहा मैंनेही क्या सबही पंडितोंने शुद्ध अर्थ किया था, तब आपने क्यों न माना ? तब राजा बोला उस समय मैं अज्ञानी था, पंडित बोले बिना पढे यह ज्ञान कभी नहीं होता अब ज्ञान होनेसे आप मझे, ऐसेही यह प्राणी मायाके वशमें हो उलटाही समझे हैं ॥

* दृष्टांत—एक राजाने अपने मन्त्रीसे कहा कोई ऐसी औषधि भी है कि, जिसके खानेसे परमेश्वरका दर्शन होजाय ? मन्त्रीने कहा हमारे दादा परदेशसे साढेतीनलाख रुपये देकर एक ऐसीही पुडिया लाये हैं सो धर धरी है, राजा बोला मुझको लादो मैं खाऊंगा. मन्त्रीने अपने घर आकर चूल्हेके राखकी पुडिया बांध लाये और राजासे कहा इलायची, वंशलोचन इसमें मिलाकर शहतमें चाटो, परन्तु इसका पथ्य अवश्य करना और जो पथ्य न करोगे तो औषधि क्या गुण करेगी, बिना पथ्य साढेतीन लाख रुपयेकी औषधि वृथा जायगी. विचार देखो जो रोगी पथ्यको करे तो रोगको जीत ले है और कुपथ्य करे तो रोग औषधिको जीत ले है इससे पथ्यकी पुडिया खाओ तो मनमें झूँठ मत लाना और झूँठ मनमें लाओगे तो परमेश्वरका दर्शन न होगा, यह कह मन्त्री तो अपने घरको चले गये और प्रातःकाल होतेही राजाने पुडिया खाई सो औषधि मनमें झूँठ जानपडी सो औषधि धर चित्तको सावधान कर दोघडी पीछे फिर वह औषधि खाई सो झूठ फिर आंखों आगे आगया औषधि फिर रखदी, ऐसेही शोच विचारमें तीन पहर बीत गये, कहा अब कल खाएँगे संध्याको मन्त्री आया उसने पूछा औषधी खाई कि नहीं खाई ? राजा बोला झूँठ तो मनसे हटताही नहीं खायं कैसे ? मन्त्री बोला कि, यही उपाय भगवान्के मिलनेका है जो मनसे सब दुर्वासना निकलगई और मन शुद्ध होगया तब भगवान्का दर्शन होगया और तनक भी अन्तर रहगया तो भगवान् नहीं मिलते ॥

821

चरणारविन्दकी सेवा करूंगा ॥ ३० ॥ देवताके जन्मसे अथवा और किसीके जन्मसे जिसमें आपकी भक्ति होय वही जन्म श्रेष्ठ है, इस प्रकार उत्कण्ठापूर्वक सात श्लोकसे स्तुति करते हैं अहो आश्चर्य ! व्रजकी गाय गोपी धन्य हैं. हे प्रभु ! जिन गौ गोपियोंके स्तनोंका दूधरूप अमृत ग्वाल बछरे बन आपने आनन्दसे पेट भरकर पिया, आपकी तृप्तिके लिये अबतक यज्ञ भी पूर्ण नहीं हुए क्या यज्ञोंमें आपका पेट नहीं भरता है; भगवान्के सखाओंकी महिमा किसीके कहनेमें और जाननेमें नहीं आती ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, नन्दरायजीके व्रजवासियोंका आश्चर्य रूप अहोभाग्य है.परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातन जिन व्रजवासियोंका सर्वदा मित्र हो रहा है ॥ ३२ ॥ इन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कहनेको किसका सामर्थ्य है, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता यज्ञदेवता महादेव बुद्धिके अधिष्ठाता मैं (ब्रह्मा)ऐसे ग्यारह देवता महादेवसे आदि

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥ अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम् ॥ यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२ ॥ एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ॥ एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोंऽघ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥३३॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोभिषेकम्॥यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुंदस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥ ३४ ॥

लेकर हम सब बड़े भागी हैं, कोई व्रजवासी इंद्रियरूप दोनोंसे आपके चरणारविन्दका मकरन्द अमृतकी तुल्य मधुर पीते हैं, जिस समय व्रजवासी तुम्हारा दर्शन नेत्रोंसे करते हैं, उस समय नेत्रोंका अधिष्ठाता सूर्य कृतार्थ हो जाता है और कानोंसे तुम्हारी बात सुनते हैं, तब कानोंके देवता दिशा कृतार्थ होजाती हैं, नाकसे तुम्हारा प्रसाद तुलसीपत्र सूँघे हैं, तब नासिकाके देवता अश्विनीकुमार कृतार्थ हो जाते हैं, जब हाथोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं तब हाथोंके देवता कृतार्थ हो जाते हैं, इसी प्रकार सब इन्द्रियोंके सब देवता कृतार्थ हो जाते हैं, सम्पूर्ण पदार्थोंके सेवा करनेवाले व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कैसे कही जाय ॥ ३३ ॥ इस लोकमें कदाचित् मेरा जन्म होय तो वृन्दावनमें होय उसपर भी गोकुलमें, यह मैं नहीं कहता मनुष्य योनिमें ही, चाहे जिस योनिमें हो, परंतु गोकुलमें हो तो मैं पूर्ण भाग्यशाली होऊँ और

मेरे धन्य भाग्य होयँ. तब श्रीकृष्ण बोले कि, हे ब्रह्माजी ! सत्यलोकको छोड़कर यहां जन्म लेनेंसे तुमको क्या लाभ होगा ?तब ब्रह्मा बोले, जिस जन्ममें ब्रजवासियोंके चरणारविंदकी रज मेरे मस्तकपर पडेगी वही मुझको परम लाभ होगा, तब श्रीकृष्ण बोले कि, ब्रजवासी लोग काहेसे धन्य हैं ? तब ब्रह्मा बोले कि, इन ब्रजवासियोंका पूर्ण जीवन ब्रज है, क्योंकि जहां श्रीमुकुन्दपरायण हैं, जिनके चरणारविन्दकी रजको नित्यप्रति देव खोजते हैं, उस वृन्दावनकी रजका मिलना अहोभाग्य है ॥ ३४ ॥ इन ब्रजवासियोंकी कृतार्थताका क्या वर्णन करूं ? जिनकी भक्तिसे तुम भी ऋणीसे हो रहे हो। तब श्रीकृष्णचंद्र कहै हैं कि, मैं किस वस्तुके देनेमें असमर्थ हूँ जो ऋणी रहूँ, तहां ब्रह्माजी बोले कि, हे देव! जगत्में प्रकाशमान् समस्त फलरूप तुम हो इस लिये और फल ब्रजवासियोंको क्या दोगे ? यह जब विचार करता हूँ तब मेरा मन मोहित हो जाता है, तब श्रीकृष्ण बोले मैं अपने आपका ऋणी हो जाऊंगा. तब ब्रह्माजी बोले कि, नहीं माताका स्वरूप धरकर पापिनी पुतना

एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देवरातेति नश्चैतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ॥ ३४ ॥
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवाऽऽपिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥
तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् ॥ तावन्मोहोंऽघ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥

आई थी इसको आपने सर्वस्व अपनपौ दिया, तब श्रीकृष्ण बोले, ब्रजवासियोंको परिवार सहित सर्वस्व और अपनपौ दूंगा, तब ब्रह्माजी बोले कि, पूतनाका कुटुम्ब अघासुर बकासुरको आपने सर्वस्व और अपनपौ दिया.तब श्रीकृष्ण बोले कि, मेरे पास तो यही पदार्थ देनेको है. तब ब्रह्माजी बोले कि, जिन ब्रजवासियोंने धाम, धन, सुहृद्, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण आपमें समर्पण कर रक्खे हैं, फिर क्या ऐसे ब्रजवासियोंको और वैरियोंको क्या बराबर ही रक्खोगे ? आप परमेश्वर हैं तो क्या है ? परन्तु आपके यहां न्याय नहीं, कहां बपुरी पूतना और कहां परमहितकारी ब्रजवासी ? आपको अपने ही मनमें न्याय करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण ! जबतक रागादिक चोर इस शरीरमें उपस्थित हैं तबतक घर कारागार (बन्दीखाना) रूप है,मोह भी तबतक ही पाओंकी बेडी है जबतक प्राणी तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण नहीं आता.आपकी शरण लिये पीछे रागादिक जो चोर हैं वह भी चोरसे साह हो जाते हैं और जो घर हैं वह भी सुंदर मंदिर होजाते

हैं और सम्पूर्ण मोह दूर होजाता है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! तुम संसाररहित हो, तो भी संसारमें शरणागत भक्तोंको आनन्द देनेके लिये संसारमें वारंवार अवतार धारण करो हो ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! हे प्रभो ! जो पुरुष आपको जानते हैं वह जानते होंगे, परन्तु मैं बहुत क्या कहूँ ? मनसे, वचनसे, देहसे आपका वैभव मेरे जाननेमें किसी प्रकारसे नहीं आ सकता ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! अब मुझपै अनुग्रह करके मुझको सत्यलोकके जानेकी आज्ञा दीजे, आप सब जानते हो, अर्थात् अपनी अपार महिमा, मेरा ज्ञान, बल, पराक्रम, सबके देखनेवाले हो, आप ही इस जगत्के अधिष्ठाता हो, मैंने ऐसा ब्रह्मापना छोड़ा, यह जगत् आपहीकी भेंट है ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! यदुकुलकमलपर स्नेह करनेवाले (दिवाकरके सदृश) इसमें सूर्यकी उपमा दी है, हे पृथ्वीके देवता, ब्राह्मण, पशु, समुद्र इनकी वृद्धि करनेवाले ! इन (सुधाकरके समान) इसमें चन्द्रमाकी उपमा

प्रपंचं निष्प्रपंचोऽपि विडंबयसि भूतले ॥ प्रपन्नजनताऽऽनंदसंदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥ जानंत एव जानंतु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ॥ वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥

दी है. पाखण्डरूप अन्धकारके विनाश करनेवाले, इसमें सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी उपमा आई, पृथवीपर कंसादिक राक्षसोंके मारनेवाले, इसमें फिर सूर्यकी उपमा आई. हे सूर्य ! हे अर्हन् ! सबके पूज्य भगवान् ! अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण तुमको मेरा दण्डवत् है और नमस्कार है ॥ ४० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सर्वव्यापक श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति कर, कल्पपर्यंत तीन प्रदक्षिणा दे, चरणारविन्दोंको नमस्कार कर जगत्के विधाता ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोकको चले गये * ॥ ॥ ४१ ॥ तब पीछे श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार बछरे और बालकोंको ले आये. प्रथमके समान ग्वालमण्डलीको उसी यमुनाकी

---

* शंका—जब श्रीकृष्णकी स्तुति करके ब्रह्माजी अपने लोकको गये तो श्रीकृष्ण भगवान् ब्रह्मासे क्यों नहीं बोले ? सब स्थलोंपर देवताओंसे भगवान् बोलते हैं और आदर सत्कार करते हैं, फिर यहां भगवानने ब्रह्माका निरादर क्यों किया?

रेतीमें ले आये जहां पहिले बैठे भोजन कर रहे थे और इस भेदको किसीने न जाना. यह बात सुनकर राजा परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि; इतने दिनतक बालक कैसे यमुनाके किनारेपर बैठे रहे और भोजन पान कुछ न किया ? ॥ ४२ ॥ हे राजन्! जब अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णचंद्र विना एक वर्ष बीत गया, तो भी भगवान्‌की मायासे मोहित हुए उन बालकोंको वह समय आधे पलके समान जान पड़ा ॥ ॥ ४३ ॥ भगवान्‌की मायासे मोहित चित्तवाला पुरुष इस संसारमें क्या क्या नहीं भूल सकता ? सो सम्पूर्ण जगत् भगवत्‌की मायासे मोहित

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चांतरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥ किंकिं न विस्मरंतीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ॥ नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥ ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माऽऽजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः प्रोद्दामवेणुदलशृंगरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानंदसूनुना ॥ हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं
823 भवेत् ॥ योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥

होकर बारम्बार अपने आत्माको भूल रहा है ॥ ४४ ॥ सब ग्वालबालोंने श्रीकृष्णचंद्रसे कहा कि, भैया ! तुम तो बहुत शीघ्र आये, हमने तो तुम विना एक ग्रास भी अभी नहीं खाया, अब आओ पहिले शीघ्रतासे भोजन कर लो ॥ ४५ ॥ सब इंद्रियोंके प्रेरणा करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान्‌ बालकोंकी बात सुनकर हँसे और बालकोंके संग भोजन करके मार्गमें जो सूखा हुआ अघासुरका देह पड़ा था उसको दिखाते वनसे लौटकर व्रजमें आये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वनसे आकर सब बालक अपनी माताओंसे कहने लगे कि, आज यशोदानंदनने वनमें एक बड़ा भारी सर्प मारा और उससे हमारी रक्षा करी ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! व्रजवासियोंका इतना प्रेम श्रीकृष्णमें कैसे हुआ ?

उत्तर—अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना मूर्खोंका काम है । कि मैं ऐसा सज्जन हूँ इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र . पूर्णब्रह्म विश्वके नाथ ब्रह्मासे की हुई स्तुतिको सुनकर लज्जायमान हुए ब्रह्मासे कुछ भी नहीं बोले और विचारकिया कि हमने वृथा ब्रह्माके किये हुए चरित्रको नहीं माना क्योंकि जब ब्रह्मा बालकोंको हरकर लेगया था तो हमको ब्रह्माकी स्तुति करके लेआना चाहिये था. ऐसे दयालु भगवान् लज्जासे नहीं बोले ॥

जो कि पराय पुत्र या अपने पुत्रोंमें इतना प्रेम पहिले नहीं था. यह बात मुझे समझाकर कहो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्णका नाम सर्वात्मा है, इस लिये श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके साक्षात् आत्मा ठहरे, फिर सब प्राणियोंको अपना आत्मा ही

श्रीशुक उवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥

परमप्रिय है, इसलिये श्रीकृष्णमें सन्तानसे बढ़कर अधिक प्रेम था, स्त्री पुत्र, धन आदिक और जो पदार्थ हैं सो सब आत्माकेही सुखके लिये हैं ❀॥ ५० ॥

❀ दृष्टान्त–किसी नगरमें एक ब्राह्मण था, उसके सन्तान नहीं होती थी, प्रथम तो उसने यन्त्रमन्त्रादिकके बहुतसे उपाय किये, परतु कुछ न हुआ। फिर वैद्यलोगोंकी भी बहुतसी औषधिय कीं और ज्योतिषियोंने भी अनेक प्रकारके दान पुण्य कराये, परन्तु किसी प्रयत्नसे भी उसने पुत्रका मुख नहीं देखा. एक दिन वह वनमें पूजाके लिये फल फूल लेनेको गया, वहां उसको उदास देखकर एक महात्मा पुरुष उससे बूझने लगे। कि, हे ब्राह्मण ! तू क्यों इतना उदास है ? ब्राह्मण बोला कि, हे स्वामिन् ! मेरे सन्तान नहीं, इस बातका मुझको बडा क्लेश है, महात्माने कहा तू सन्तानगोपालका पाठ कर तेरे पुत्र होगा. ब्राह्मणने वैसाही किया और भगवत्की कृपासे उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ. जब वह बडा होगया तो साधुसन्तोंके धोरे बहुत बैठता औ इकलौता बेटा समझकर उसके माता पिता भी उसपर लाड प्यार करते थे और वह भी अपने माता पितासे अत्यन्त प्रेम रखता था, एक दिन कोई साधु गीताका पाठ कर रहे थे उसमें यह श्लोक आयाः–

श्लोक-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥

श्लोकार्थ–माता पिता सुहृद् बन्धु कोई किसीका नहीं, यह सब केशवी माया है, इन लोगोंके लिये कभी शोच करना नहीं चाहिये. तुम बुद्धिहीनोंकी नाईं उनके लिये शोक करते हो और कभी बुद्धिमानोंकी नाईं बात करते हो परंतु ज्ञानी लोग मरने जीनेका कुछ शोक नहीं करते. वह लडका बोला, महाराज ! मेरे माता पिता तो मेरे ऊपर प्राण खोनेको उपस्थित हैं और मुझको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं साधु बोले, यह बात सब झूठ है, लडकेने कहा मेरी बात झूठ क्या हो सकती है! साधु बोले कि, अच्छा आज तू घर जाकर बीमार बनकर पड रहु फिर तू सबकी परीक्षा कर लेना और तुझको झूठ सत्य सब प्रत्यक्ष दिखादेंगे. उस द्विजपुत्रने वैसाही किया, तब तो वैद्योंके उपाय और अनेक प्रकारके यन्त्र मन्त्र बडे बडे दान पुण्य होनेलगे, तब तो ब्राह्मणके बेटेने कहा कि, अब उन महात्मा पुरुषको बुलाना चाहिये जो कहते थे कि, न कोई माता है, न पिता है तब उसेन उन महात्माको बुलाया और जैसे रुपैयोंको कंकरी कर दिया था वह सब दिखाया कि देखो मेरे माता पिता कितना रुपया खर्च कर रहे हैं. साधु बोले कि, यह लडका मरजायगा तब उसके माता पिता बोले कि, किसी प्रकार यह अच्छा भी होगा ? साधु बोला कि, एक उपाय है, तीनबार इसके ऊपर दूध उतारा जाय जो उसको पियेगा वह तो मरजायगा परंतु यह अच्छा होजायगा। तुम आपसमें सम्मत कर लो कि, उस दूधको कौन पियेगा, तब तो सबको दिनमें तारे दीखने लगे और एककी ओरको एक देखने लगा, परन्तु किसीने इस बातको अंगीकार न किया कि दूध मैं पिऊंगा और सबने अपने अपने प्राणोंकी रक्षा करनी चाही तब बाबाजीने कहा कि. बच्चा! देख कोई नहीं पीता तो इस दूधको हम पियेंगे संसारमें कोई किसीका नहीं सब अपने अपने प्राणोंके रक्षक हैं॥

इसलिये हे राजा परीक्षित् ! देहधारियोंको जितना अपने आत्मामें प्यार है उतना ममताके स्थान अपने पुत्र, धन, घर आदि लेकर जो वस्तु हैं उनमें नहीं ॥ ५१ ॥ हे क्षत्रियवंशोत्तम राजा परीक्षित्! जो पुरुष देहको आत्मा कहते हैं उनको भी देह अत्यन्त प्रिय है और जो देहके अनुवर्त्ती स्त्री, पुत्र, धन आदिक हैं वह देहके समान प्यारे नहीं लगते ॥ ॥ ५२ ॥ और देहको भी इस प्रकार मान लें कि, यह मेरा देह है, अर्थात् यह जब ममताका स्थान हो जाता है तब यह देह आत्माके समान प्यारा नहीं रहता. क्योंकि जिस समय यह देह जीर्ण हो जाता है अर्थात् अब यह देह किसी प्रकार स्थिर न रहैगा तो भी जीनेकी आशा बलवान् रहती है कि, किसी उपायसे दो चार दिन और बच रहूँ ॥ ५३ ॥ इस बातसे यह निश्चय होता है कि, सब देहधारियोंको अपना आत्मा ही अधिक प्यारा है. उस आत्माके ही लिये सब स्थावर जंगम आदि संसारपर जो प्रीति होती है सो सब आत्माका ही कारण है॥५४॥हे राजन् ! सब प्राणियोंके आत्मा जगत्के कल्याण करनेके लिये मनुष्यदेह धारण कर अपनी मायासे प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन ही हैं. इस कारण उनपर प्रेम होना सम्भव है ॥ ५५ ॥ यही न समझना कि, श्रीकृष्णचन्द्र केवल देहधारियोंके ही आत्मा हैं, नहीं वह सब जड पदार्थोंके भी आत्मा हैं, वास्तवमें इस सब विश्वके आदिकारण श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं. इस प्रकार माननेवाले पुरुषोंको सब स्थावर जंगममें भगवान्का ही रूप

तद्राजेंद्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ॥ न तथा ममतालंबिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥५१॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि
राजन्यसत्तम ॥ यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः ॥
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिञ्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव
सकलं जगच्चैतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति
मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥

927

भासै है कोई वस्तु इस संसारमें भगवान् से भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥ समस्त पदार्थोंको परमार्थरूपसे विचार कर देखिये तो कोई भी वस्तु अपने अपने कारणोंसे पृथक् नहीं है और जो जो कारण हैं॥ वह भगवान्से पृथक् नहीं. इससे सिद्ध हुआ कि, कारणोंके भी मुख्य कारण श्रीकृष्ण भगवान् हैं फिर कौनसी वस्तु श्रीकृष्णसे पृथक् रही तुम ही बताओ ? ॥ ५७ ॥ पवित्र वंश निर्मल कीर्तिवाले श्रीकृष्ण भगवान्के चरण कमलरूप नौका जो परम प्रेमी सज्जनोंका आश्रय है जो पुरुष उन चरणारविन्दरूपी नौकाका आश्रय करते हैं, उनको संसाररूपी समुद्र बछरेके खुरके जलके समान है और परमधामका उनको वास मिलता है कभी कोई विपत्ति नहीं होती ॥ ५८ ॥ जो जो लीला भगवान्

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवांबुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत्कौमारे हरिकृतं पौगंडे परिकीर्त्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च ॥ व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन्गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥

ब्रजविहारीने पांच वर्षकी अवस्थामें की, सो बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें अपने अपने घर आय कही. उसका कारण जो तुमने हमसे बूझा सो सम्पूर्ण हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ५९ ॥ मुर नाम दैत्यके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रने मित्रोंके संग यह चरित्र किया अघासुरको मारा, यमुनाकी रेतीमें ग्वालबालोंके साथ भोजन किया, जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सतोगुणी रूप ब्रह्माको दिखाया, बछरे और ग्वालबालोंका तद्वत रूप धारण किया, ब्रह्माने प्रेममय हो बडी स्तुति की. इस अद्भुत चरित्रको जो कोई मनुष्य कहेगा अथवा सुनेगा उस पुरुषके सब पुरुषार्थ सफल होंगे और श्रीकृष्णचन्द्रमें पूर्ण भक्ति होगी ॥ ६० ॥

इस प्रकार आँखमिचौनीके खेलमें ठौर ठौर छिपना, नदियोंके पुल बाँधने, बन्दरके समान वृक्षोंपर चढ़ना और कूदना और अनेक अनेक प्रकारके बाल्यावस्थाके और कौमार अवस्थाके श्रीकृष्ण और बलदेवजीने विहार करके कौमार अवस्था पूर्ण करी ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा–पन्द्रहमें धेनुक हनो, लीनी गाय बचाय । मित्रनको आनंद दियो, धन धन श्रीयदुराय ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब कुमार अवस्था व्यतीत हुई और पौगण्ड अवस्थाका आरम्भ हुआ जब व्रजमें गाय चरानेके योग्य कृष्ण बलदेव दोनों भाई हुए. तब ग्वाल बालोंको साथ ले श्रीव्रजनाथने वृन्दावनको अपने कोमल चरणकमलसे अत्यन्त पवित्र किया ॥१॥ मधुवंशके प्रगट होनेवाले श्रीश्यामसुन्दर बाँकेविहारी कृष्णचन्द्र अपने यश गानेवाले

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥६१॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे
दशमस्कंधे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥श्रीशुक उवाच॥ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ
पशुपालसंमतौ॥ गाश्चारयंतौ सखिभिः समं पदैर्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपै
र्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥२॥ तन्मञ्जुघोषालिमृग
द्विजाकुलं महन्मनःप्रख्यपयस्सरस्वता ॥ वातेन जुष्टं शतपत्रगंधिना निरीक्ष्य रंतुं भगवान्मनो दधे ॥ ३ ॥ स तत्रत
8|25 त्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ॥ स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥४॥

ग्वालबालोंको संग लेकर बलदेव भ्राता सहित बाँसुरी बजाते, बछरोंको कुदाते गायोंकों आगे आगे कर क्रीड़ा करनेके मनोरथसे पशुहितकारी अनेकप्रकारकी फुलवारी जहां फूल रहीं उस वृन्दावनमें विहार करनेके लिये गये सो वृन्दावन कैसा है ॥ २ ॥ मधुर मधुर वाणीवाले भौंरे, मृग, अनेक प्रकारके पक्षी जहां वास करैं, महत्पुरुषोंके मनके सदृश गिर्मल जलसे सुन्दर सरोवर भरे हुए, जिनका स्पर्श करके कमल कमलिनी नित्य प्रफुल्लित रहते हैं, उनकी सुगन्धयुक्त पवन दिन रात चलती रहती हैं, ऐसे मनोहर वृन्दावनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान्ने विहार करनेकी इच्छा की ॥ ३ ॥ तहां जहां अरुण वर्णके पल्लव निकल रहे हैं उनकी अद्भुत शोभा हो रही है, फलफूलोंके भारसे झुकके जिनकी शाखाओंके अग्रभाग

चरणोंमें लग रहे थे ऐसे ऐसे सुन्दर वृक्षोंको देखकर परमानंदित हो मुसकायके आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बडे भ्राता बलदेवजीसे कहा ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे देवताओंमें श्रेष्ठ बलदेवजी ! देखो यह बड़ा आश्चर्य है । यह वृन्दावनके देवताओंके पूजनयोग्य, अपने पापोंके नाश करनेके लिये मौन साध आपके चरणारविन्दोंको फल फूल भेंट ले लेकर अपनी शाखाओंसे झुक झुक कर प्रणाम करते हैं, किसलिये कि, जिस अज्ञानसे हमारा वृक्षजन्म हुआ है वह अज्ञान दूर हो जाय, इसलिये झुके हैं ॥ ५ ॥ हे आदि पुरुष ! सब लोकोंका पवित्र करनेवाला आपका यश है उसको निरन्तर यह भौंरे गान कर करके आपका भजन करते हैं. ऐसा जान पड़ता है कि यह भौंरे आपके मुख्य भक्त मुनिजन हैं । हे पापरहित ! आप अपने देवतरूपको छिपाये मनुजवेष बनाये इन ग्वालबालोंमें क्रीडा कर रहे हो तो यह मुनि भी

श्रीभगवानुवाच ॥ अहो अमी देववरामरार्चितं पदांबुजं ते सुमनः फलार्हणम् ॥ नमंत्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायंत आदिपुरुषानुपदं भजंते ॥ प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥ नृत्यंत्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ॥ सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान्हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥ धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योंऽतरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥

भौंरेके रूपसे गुप्त होकर आपकी सेवा और भजन करते हैं. हे सर्वात्मन् ! इन्होंने यहां भी आपका पीछा नहीं छोडा ॥ ६ ॥ हे स्तुति करने योग्य ! देखो ! यह मोर आपके समीप कैसा सुन्दर नृत्य कर रहे हैं और यह हरिणी गोपियोंकी नाईं चितवनसे भोली भोली सूरत बनाये आपके ऊपर कैसा प्यार कर रही हैं और देखो ! यह कोकिलाओंके समूह कैसी मधुरवाणीसे शुश्रूषा कर रहे हैं, यह वनवासी भी धन्य हैं क्योंकि अच्छे पुरुषोंका यही स्वभाव है जो कोई अतिथि अपने घर आवे तो जो कुछ अपने पास फल फूल होय सो उनकी भेंट करें ॥ ७ ॥ आज यह भूमि, तृण, लता आपके चरणारविन्दोंको स्पर्श करके आनन्द पावे हैं. धन्य हैं नदी, पर्वत, पक्षी. वनके पशु भी धन्य हैं जो आप दयापूर्वक

चितवन करै है, जिस वक्षस्थलकी लक्ष्मी इच्छा करती हैं उसका स्पर्श गोपियोंको होता है, इसलिये यह भी धन्य हैं ॥ ८ ॥इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलमुकुटमणि ! ऐसी अद्भुत वृन्दावनकी शोभा देख प्रसन्नमन श्रीकृष्णचंद्र पर्वतके समीप यमुना नदीके तीरपर गायनको चराते ग्वाल बालोंके संग विहार करते थे ॥ ९ ॥ मदोन्मत्त भौंरे जिस समय गुञ्जार करते थे, तब श्रीकृष्ण और बलराम आप भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाते थे,वनमाला पहिरे बलदेवजीके साथ ग्वालबाल जिनके चरित्रोंको गाते थे ॥ १० ॥ कभी राजहंसोंकी मधुर वाणी सुन उनके संग वैसी ही मधुरवाणी बोलते थे कभी अपने साथी मित्रोंको हँसानेके लिये मोरोंको नाचता देखकर उनके सन्मुख आप भी जामा फैलायके नाचते थे॥११॥कभी जो कोई गाय चरती २ दूर निकल जाय तो मेघके समान गम्भीर शब्दसे प्रसन्न हो उनके नाम लेलेकर बुलाते थे ॥१२॥ कभी चकई, चकोर, क्रौंच, चकवा, भारद्वाज, चातक, कीर, कपोत, सारिका, मोर इनके शब्द सुन आप भी उसी प्रकारका शब्द उच्चारण करते थे. कभी व्याघ्र सिंहको देख डरकर और पशु भागते, वैसे ही गायोंको देख भयभीत हो आप भी भागते थे ॥ १३ ॥ किसी समय खेलते खेलते बलदेवजीको परिश्रम हो जाता तब किसी मित्रकी गोदीमें शिर धर उसकी जंघाका तकिया बनाकर सो जाते, तब श्रीकृष्णचंद्र आप उनके चरण दबाय पंखा करके उनकी थकावट दूर करते थे * ॥ १४ ॥ किसी समय कृष्ण बलदेव

श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृंदावनं श्रीमत्प्रीतः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥ क्वचि
द्गायति गायत्सु मदांधालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः॥ १० ॥क्वचिच्च कलहंसानामनु
कूजति कूजितम् ॥ अभिनृत्यति नृत्यंतं बर्हिणं हासयन्क्वचित् ॥ ११ ॥ मेघगंभीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ॥
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः॥ अनुरौति स्म सत्त्वानां
भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित्क्रीडापरिश्रांतं गोपोत्संगोपबर्हणम् ॥ स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहना
दिभिः ॥ १४ ॥नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान्हसंतौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥

---

* शंका–श्रीकृष्ण विष्णु भगवान् होकर अपने अंश शेषजीको अपनेसे बडा क्यों किया ? उलटा श्रीकृष्णको बलदेवजीका सेवन करना पडा ।

परस्पर अद्भुत रीतिसे नृत्य करते, गाते, कूदते, लडते भिडते और फिर ग्वालबालोंकी भुजा पकड हँसकर कृष्ण बलदेव दोनों भाई कहते देखो कैसा नाच नाचा, कैसा गाना गाया, इस प्रकार अपनी अपनी बडाई करते थे ॥ १५ ॥ किसी समय मल्लयुद्ध करते करते जब हार जाते तब श्रीकृष्ण वृक्षकी जडके सहारेसे पत्तोंकी शय्यापर गोपोंकी गोदीकी तकिया बनाकर सो जाते थे ॥१६॥ हे राजन् ! कोई ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दाबते, कोई पापरहित ग्वालबाल पत्तोंके और पुष्पोंके पंखे बनाकर श्यामसुन्दरको बयार करते थे ॥ १७ ॥ कोई ग्वाल स्नेहभरी बुद्धिसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी नींद किसी प्रकार न उचट जाय इससे ऐसे ऐसे मनोहर मलारोंके पद सहज सहजमें गाते थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार अपनी मायासे अपना ईश्वररूप छिपाये नई २ लीला करके गोपोंके बालकोंका अनुकरण करते, लक्ष्मी जिनके चरणोंमें लोटें वह श्रीकृष्ण सुखधाम ग्रामके रहनेवाले व्रजवासियोंके संग उनकी इच्छानुसार खेल खेलते थे. बीच बीचमें कभी ईश्वरपनकी भी लीला दिखला देते थे ॥ १९ ॥ बलराम श्यामसुन्दरके मित्र श्रीदामा नाम गोप, सुबल, स्तोक, कृष्णादिक गोप प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे॥२०॥हे राम! हे राम ! हे दीर्घबाहो दुष्टोंके दलनहारे श्रीकृष्ण ! यहांसे थोडीसी दूरपर तालके वृक्षोंका एक बड़ा गम्भीर वन है॥२१॥

क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपबर्हणः ॥१६॥ पादसंवाहनं चक्रुः क्वचित्तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ॥ गायंति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडंबयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ॥ सुबल स्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ रामराम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥ २१ ॥

उत्तर-त्रेतामें लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत सेवा की थी और बिना रामचन्द्रजी आज्ञा लक्ष्मणजीने कोई कार्य नहीं किया, तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मणको वरदान दिया कि, हे भैया लक्ष्मण ! द्वारपरमें तुमको अपना बडा भाई बनाकर हम तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम्हारा नाम बलदेव होगा और हमारा नाम विपिनबिहारी होगा, इसलिये शेषजी विष्णुसे बडे हुए ॥

इस तालवनमें बहुतसे तालनके फल वृक्षोंके नीचे टूटे पडे हैं,और भी टूट टूटकर बहुतसे गिरते हैं, परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां रहता है उसने वह फल वहां रोक रक्खे हैं, न वह आप खाता है और न किसी दूसरेको खाने देता है ॥ २२ ॥ हे राम ! कृष्ण ! वह दैत्य बड़ा पराक्रमी और बलशाली है, सदा गधेका रूप धारण किये रहता है और इसीके समान बडे २ योद्धा इसीकी जातिके बहुतसे असुर इसके संग रहते हैं और उनके बीचमें वह मण्डली बनाये बैठा रहता है ॥ २३ ॥ हे दुष्टदमन ! वह दुष्ट जहां कहीं मनुष्यको देखता है उसको खा जाता है, इस डरसे कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता और पशु पक्षियोंने भी उसके भयके मारे वह वन छोड दिया है ॥ २४ ॥ आजतक किसीने नहीं

फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतंति च ॥ संति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥ २२ ॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम
हे कृष्ण खररूपधृक् ॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न
सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यंतेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गंधो विषू
चीनोऽवगृह्यते॥२५॥प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गंधलोभितचेतसाम् ॥ वांछास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते॥२६॥
एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू॥ २७ ॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां
तालान्संपरिकंपयन्॥ फलानि पातयामास मतंगज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः ॥
अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकंपयन् ॥ २९ ॥

खाये वह ऐसे सुगन्धित और मधुर फल हैं,न मानो तो चारो ओर इनकी सुगन्ध फैल रही है सूंघके देखलो ॥ २५ ॥ हे कृष्णचन्द्र ! उनकी सुगन्धसे हमारे मन लुभाय गये हैं तुम वह फल लाकर हमको दो उन फलोंके खानेको हमारी बडी इच्छा है, जो आपकी भी इच्छा हो तो उस वनको चलें ॥ २६ ॥ इस प्रकार मित्रोंके वचन सुन उनको प्रसन्न करनेके लिये सब मित्रोंको अपने संग ले दोनों भाई हँसकर ताल वनको चलदिये ॥ २७ ॥ वहां जाकर बलदेवजीने हाथसे तालके वृक्षोंको हिलाया तो फलोंके ढेरके ढेर पृथ्वीपर होगये,जैसे मत वाला हाथी वृक्षोंको हिलाकर फलोंके ढेरके ढेर नीचे डाल देता है ॥२८॥ पृथ्वीपर फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर वह गर्दभरूप धेनुकासुर

पर्वतोंसमेत पृथ्वीको कम्पायमान करता दौडकर बलरामजीके सन्मुख आया ॥ २९ ॥ उस महाबलवान् धेनुकासुरने शीघ्रतासे आनकर दोनों पिछले पावोंसे बलदेवजीके हृदयमें एक दुलत्ती मारी और गम्भीर शब्दसे रेकने लगा॥ ३० ॥हे राजन्! क्रोधमें भरकर धेनुकासुरने फिर आनकर मुख फेर बलदेवजीके पिछले पावोंकी एक दुलत्ती और मारी॥ ३१॥ तब तो बलदेवजीने उसकी दोनों टांगें एक हाथसे पकड़कर ऐसे घुमाया जैसे लड़के गोफन घुमाते हैं जब उसके प्राण निकल गये तो फिर फिराकर एक तालके वृक्षके ऊपर फेंक दिया ॥ ३२ ॥ हे राजन्! जब धेनुकासुरको वृक्षपर फेका तो उसके फेकनेसे वह अत्यन्त भारी तालका वृक्ष टूटकर पृथ्वीपर गिरगया; उसके गिरनेसे चारो ओरके वृक्ष

समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरसि काशब्दं मुंचन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्य संरब्ध
उपक्रोष्टा पराक्स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥ स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाऽऽहतो महातालो वेपमानो महाशिराः ॥ पार्श्वस्थं कंपय
न्भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः॥ तालाश्चकंपिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥
॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनंते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तंतुष्वंग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च
रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबांधवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप
लीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥

टूट २ कर पृथ्वीपर गिर गये, एककी चपेटसे एक, इस प्रकार अनेक वृक्षोंका चूरा होगया ॥ ३३ ॥ बलदेवजीने लीला करके जो धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उस गर्दभ देहकी चपेटसे सर्वत्र तालवनके वृक्ष कांपने लगे, जैसे महावेगकी आंधीसे सब पृथ्वीतलके वृक्ष कम्पायमान हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ बलदेवजीके इस पराक्रम करनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि वह अनन्त और जगदीश्वर हैं और यह विश्व उनमें ओतप्रोत होता रहता है, जैसे वस्त्र तानेबानेमें ओतप्रोत होता रहता है ॥ ३५ ॥ जब धेनुकासुर मरगया, तब उसके भाई बन्धु जातिवाले सब गधे क्रोधित होकर श्रीकृष्ण बलदेवके ऊपरको झपटे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाइयोंके सामने जो २ गधे आये, उनकी

टांगें पकड़ पकड़ घुमाय घुमाय वृक्षोंके ऊपर फेंक दिये ॥ ३७ ॥ इस कालमें लाल लाल तालके फलोंके समूहसे, श्वेत श्वेत मरेहुए गधोंकी लाथोंसे, हरी हरी तालके वृक्षोंकी शाखाओंसे और काली काली उन वृक्षोंकी जडोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पडती थी, जैसे लाल, श्वेत, हरी, काली घटाओंसे आकाश शोभायमान दिखाई देता है ॥ ३८ ॥ ऐसे अद्भुत चरित्र कृष्ण बलदेवके देख २ देवतालोग प्रसन्न हो होकर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करते थे और अनेक प्रकारके बाजे बजाय बजाय स्तोत्र पढ़ते थे ॥ ३९ ॥ जब धेनुकासुर मारागया तो फिर मनुष्य निःसन्देह होकर उन तालवृक्षोंके फलोंको खाने लगे और गायें भी निर्भय होकर घास चरने लगीं ॥ ४० ॥ और अनुचर गोप जिनकी स्तुति करते, कमलपत्रसे जिनके विशाल नेत्रोंको देखते और परमपवित्र जिनकी कथा और चरित्रोंको सुनते सब ग्वाल श्रीकृष्ण बलदेव

फलप्रकरसंकीर्णा दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥ तं गोरजश्छुरितकुंतलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ॥ वेणुं क्वणंतमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृंगैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ॥ तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम् ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥

सहित व्रजमें आये ॥ ४१ ॥ गायोंके खुरोंकी जो धूरि उडती थी उसके पडनेसे जिनके केश धूसर वर्ण हो रहे हैं, मोरपुच्छोंके मुकुट शीशपर धारण कर रहे हैं, वनके पुष्पोंके तुर्रे कानोंमें लटक रहे हैं, तिरछी चितवनसे, मनोहर मुसकानसे इधर उधरको देखते बाँसुरी बजाते ग्वालबाल जिनका यश गाते, उन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दके देखनेके लिये सब गोपी जुड मिलकर आईं ॥ ४२ ॥ व्रजबालाओंने नेत्ररूपी भौंरों की श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलके रससे दिन दिनकी तृष्णा और श्यामसुन्दरके विरहके तापको शान्त करके लाजभरी मुसकानसे और कटाक्षभरी चितवनसे जो आदर सन्मान किया उसको स्वीकार करके व्रजमें आये ॥ ४३ ॥ पुत्रोंमें जिनका परमस्नेह वह यशोदा और रोहिणी अपने

पुत्रोंकी इच्छानुसार सब पदार्थ उपस्थित रखती थीं ॥ ४४ ॥ ब्रजविहारीने ब्रजमें आकर उबटन स्नान किया तो मार्गका सब श्रम दूर हों गया. उस समय दोनों भाइयोंने सुन्दर सुन्दर पीताम्बर पहिन सुगन्धित पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण कर चन्दन चोवा लगाकर ॥४५॥ जो निश्चित हुए तो बडे प्रेमप्रीतिसे माता माखन, मिश्री, मिष्टान्न और षड्रस भोजन परोस कर लाईं, उसको बडी प्रीतिसे भोग लगाया और आनन्दपूर्वक सुन्दर शय्यापर जाकर शयन करने लगे ॥४६॥ हे राजन्! इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्ण भगवान् नित्यप्रति वृंदावनमें विहार किया करते थे. एक दिन विना बलरामको संग लिये अकेले ही ग्वालबालोंको साथ ले यमुनाके तीरपर धेनु चरानें गये ॥४७॥ मार्गमें ग्रीष्मकी धूपसे अत्यन्त व्याकुल होकर गाय और ग्वालबाल बहुत तृषित हुए तब सब प्यासके मारे कालीदहमें जाय विषसे दूषित यमुनाजीका जल पिया ॥ ४८ ॥ हे राजन्! उस जहरीले जलके पीनेसे ऐसे अचेत हुए कि, तन मनकी कुछ सुधि बुधि न रही, मृतकके समान निष्प्राण हो मुरझाकर यमुनाके किनारेपर गिरगये ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णभगवान् अपने मित्र ग्वालबाल और गायोंको मूर्छित देख अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर सबको जिला दिया ॥ ५० ॥ जब सब गायें और ग्वालबाल जी उठे और श्रीकृष्णको अपने सन्मुख खड़ा देखा और बडे आश्चर्यसे परस्पर देखने लगे ॥ ५१ ॥

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गंधमंडितौ ॥ ४५ ॥ जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवं स भगवान्कृष्णो वृंदावनचरः क्वचित् ॥ ययौ राममृते राजन्कालिंदीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषांभस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलांते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलांतिकात् ॥ आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥

और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी पूर्णानुकंपासे फिर जीवित हुए जान परमानन्द मानने लगे॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां धेनुकासुरवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ दोहा–इस सोरह अध्यायमें,कालीदहमें जाय। नाथो कालीनागको, पीछे करी सहाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कालिन्दीको कालियसर्पके विषसे बिगड़ा देखकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके जलको शुद्ध करनेके लिये उस कालिय सर्पको वहाँसे निकाल दिया॥ १॥ राजा परीक्षित्ने बूझा कि हे ब्रह्मन् ! भगवान्ने महागंभीर जलके भीतर कैसे कालियनागको दण्ड दिया और वह किस कारण कालिन्दीके महागम्भीर जलमें वास करता था सो कृपा कर विस्तार सहित वर्णन

अन्वमंसत तद्राजन्गोविंदानुग्रहेक्षितम्॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः॥५२॥ इति श्रीमद्भा० म० दशमस्कंधे पू०धेनुकासुरवधो नाम पंचदशोऽध्यायः॥१५॥ श्रीशुक उवाच॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः॥ तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ कथमंतर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम्॥ स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छंदवर्तिनः ॥ गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३॥ श्रीशुक उवाच॥ कालिंद्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना ॥ श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतंत्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥ विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रियते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ५ ॥

कीजिये ? ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी जो अपने भक्तोंको दिखानेके लिये अनेक अनेक प्रकारके चारित्र करते हैं, सो उन भक्तभावन भगवान्के गोपालनादिक परमोदार प्राणाधार चारित्रामृतके श्रवणद्वारा पान करनेसे कौन पुरुष तृप्त हो सकता है ? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,कालिन्दी (यमुना) में कालीनागका एक कुण्ड था, जिसमें विषकी अग्निसे नित्य जल औटता रहता था और आकाशके उड़नेवाले पक्षी उस गरलके तापसे जलकर उस जलमें गिर पड़ते थे॥ ४ ॥ और उस विषैले जलकी लहरोंके जलकणोंसे मिली पवन जो चलती थी उसके लगनेसे किनारेके वृक्ष और घास सूख जाते थे और जो जीव उस कुण्डके तटपर

भूलसे चले जातें तो उसी समय उस जलकी झलसे जलकर तड़फ तड़फ मरजाते थे ॥५॥ श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें कहा कि, इस कुण्डमें ऐसे विषशाली सर्पका रहना अत्यन्त दुःखदायक है, क्योंकि जो कोई पशु पक्षी वा पुरुष इस जलको पीता है वह एक क्षणभर भी नहीं जीता, उसी समय अकुलाकर मर जाता है और दूसरे यमुनाके जलको दोष लगता है; इसलिये ऐसे दुष्टका यहाँसे निकालना ही अच्छा है, कारण जो यहां रहा तो लाखों जीवोंकी हत्या करेगा, जिसके विषकी लपटसे चार कोशतक जल भदकता रहता है, ऐसा कोई सामर्थ्यवान नहीं जो उस कुण्डके पास जा सके, इस प्रकार श्रीकृष्णने विचार विषसे बिगडी हुई यमुनाको देखकर दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये जिन्होंने अवतार लिया है, उन श्रीकृष्णमहाराजने काछ बांध पीताम्बरसे कमर कस उस महाऊँचे कदम्बके रूखसे ताल ठोंककर कालियकुण्डमें कूद पडे॥

तं चंडवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥ कृष्णः कदंबमधिरुह्य ततोऽतितुंगमास्फोटच गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसितांबुराशिः ॥ पर्यक्प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन्धनुश्शतमनंतबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदंडघूर्णवार्घोषमंग वरवारणविक्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुश्श्रवः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुंदरास्यम् ॥ क्रीडंतमप्रतिभयं कमलोदरांघ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चच्छाद ॥ ९॥

॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम भगवान् जिस समय जलमें कूदे उस समय उनके मारके झटकेसे और सर्पके गरलकी गर्मीसे कालियदहका जल बहुत ऊपरको उछला और विषकी लपटोंके प्रभावसे अत्यन्त खारी और महाभयानक तरल तरंगें जलमें उठनेलगीं और चारो ओरसे यमुनाका जल सौ सौ धनुष तक फैल गया, भगवान्का अनन्त बल है, इस कार्यमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥७॥ हे राजन्। महा बलवान् हाथीके समान जिनका पुरुषार्थ जिस समय कालियदहमें जाकर गिरे, उस समय बलशाली भगवान्के भुजदंडसे ताडित जलशब्दको सुनकर और श्रीकृष्णसे अपने घरका विनाश समझकर कालीनाग अपने मनमें कहने लगा कि, ऐसा कौन बलवान् है जो मेरे घरमें आनकर धूम मचा रहा है, जब उससे न सहा गया तब झट झपट श्रीकृष्णके सन्मुख धाया ॥८॥ दर्शन करनेके योग्य सुन्दरस्वरूप, सुकुमार अवस्था, मेघवर्ण, हृदयमें

भृगुलताका चिह्न विराजमान, पीत वसन धारण किये, मन्दहास्य सहित जिनका मुखारविन्द, निर्मल खिले हुए कमलसे जिनके पदपंकज ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्को निःशंक उस विषैले जलमें विहार करता देख, अत्यन्त क्रोधित हो वक्षस्थलमें डसनेको दौडा, परन्तु उस मोहनी मूर्तिको निहारकर मोहित हो गया ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके देहमें सर्प लिपटा हुआ देखकर प्यारे मित्र ग्वालबाल सब दुःखित हु तथा श्रीकृष्णचन्द्रमें देह, मित्र, धन, स्त्री समस्त कामना जिनने अर्पण करदी और दुःख शोक भयसे सुधि बुद्धि बिसार वे गोप पृथ्वीमें पछार खायके गिरते भये ॥ १० ॥ गाय, बैल, वत्स, छोटी छोटी बछियें महा दुःखी होकर रंभाने लगीं और टकटकी बाँधकर मनमोहन प्यारेकी

तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥ गावो वृषा वत्सतयः क्रंदमानाः सुदुःखिताः ॥ कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदंत्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नंदपुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ॥ तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेंऽग पशुवृत्तयः ॥ निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥

ओर देखने लगीं और डरके मारे ऐसे सुस्त हो रही थीं मानों रो रही हैं॥ ११॥ अनन्तर व्रजमें बडे २ तीन प्रकारके उत्पात हुए, जैसे: धरती काँपने लगी, आकाशसे तारे छूटने लगे, पुरुषोंकी बाईं भुजा और बाईं आँख फडकने लगीं ऐसे शीघ्र भय जतानेवाले उत्पात होनेलगे ॥ १२ ॥ नन्दप्रभृति उन उत्पातोंको देखकर अत्यन्त भयभीत हुए कि, आज विना बलदेवको संग लिये कृष्ण अकेले गायें चरानेको गये हैं ॥ १३॥ उन खोटे उत्पातोंसे श्रीकृष्णका निधन मानकर और उनके प्रभावको कुछ न जानकर श्रीकृष्णमें जिनका तन, मन, धन लग रहा था, वह इन कठिन उत्पातोंके भयसे अत्यन्त पीडित हो कहने लगे ॥ १४ ॥ उस समय नंद यशोदादिक सब ब्रजवासी बाल, वृद्ध, स्त्री अत्यन्त

व्याकुल हो रोते पीटते पशुकी नाईं रामकृष्णके खोजनेको गोकुलसे बाहर निकले क्योंकि पूर्णप्रेमसे जिनके मन श्रीकृष्णमें लग-रहे थे॥ १५॥ मधुवंशी भगवान् बलदेवजी किसी वनमें बालकोंके संग विहार कर रहे थे, उनसे भी किसीने कहा कि, आज श्रीकृष्ण खोय गये हैं, उनके ढूँढनेके लिये नन्द यशोदादिक सब व्रजवासी अति अधीर रोते चिल्लाते फिरते हैं और तुम्हारा भी नाम लेलेकर पुकारते हैं. बलदेवजी उनको अधीर व्याकुल समझ कर हँसे परंतु कुछ मुखसे न कहा क्योंकि वह तो अपने छोटे भ्राता श्रीकृष्णकी महिमाको अच्छी रीतिसे जानते थे कि, वह किसीके वशके नहीं ॥ १६ ॥ वह सब व्रजवासी श्रीकृष्ण प्यारेको ढूँढ़ते ढूँड़ते मार्गमें कृष्णचंद्रके चरणचिह्न देखे, उन चरण चिह्नोंको देखकर सब पुकारकर कहने लगे कि, देखो भाई। और ग्वालबालोंके भी चरणचिह्न पृथ्वीपर लग रहे हैं और गाय बछडे भी

तांस्तथाकातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः ॥ प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेऽन्वेषमाणा
दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ ते तत्रतत्राब्जयवांकुशाशनिध्वजो
पपन्नानि पदानि विश्पतेः ॥ मार्गे गवामन्यपदांतरांतरे निरीक्षमाणा ययुरंग सत्वराः ॥ १८ ॥ अंतर्ह्रदे भुजगभोग
परीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयांते ॥ गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च संक्रंदतः परमकश्मलमापुरार्ताः
॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनंते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरंत्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुः
खतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥

उनके संग हैं, विदित होता है कि, यमुनाकी ओरको गये हैं, यह कह सब व्रजवासियोंने कुछ कुछ धैर्य धारण किया ॥ १७ ॥ हे राजन्! वह लोग गायोंके मार्गमें और ग्वालबालोंके पदोंके बीचमें श्रीकृष्णचंद्र भगवान् जगदीश्वरके चरणोंके चिह्नकमल, यव, अंकुश, वज्र, ध्वजाकी रेखा देखते देखते बहुत शीघ्र चले ॥१८॥ सब स्त्री,पुरुष कालीदहके किनारे पहुँचे, जाकर देखा तो दहके भीतर कालीनाग श्यामसुन्दरके शरीरमें लिपट रहा है और उनकी चेष्टा विहीन हो रही है, किनारेपर जडबुद्धि हुए ग्वालबाल पछाड़ खाये पडे हैं,चारो ओर गाय बछडे रंभाते फिरै हैं, उन सबकी यह दशा देखकर सब महादुःखी हुए ॥ १९ ॥ जिन गोपियोंका मन अनन्त भगवान्में लय हो रहा है वह गोपी

मनमोहनमें मन लगानेवाली श्रीकृष्णचन्द्रका प्यार, मन्दमुसकान, तिरछी चितवन, मधुर वचनोंकी सुधि करके अतिशय प्यारे श्याम सुन्दरको सर्पसे ग्रसित हुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल होगई और तीनों लोक सूने दिखाई देने लगे ॥ २० ॥ पुत्र श्रीकृष्णको दहमें देख यशोदा माता जलमें गिरने चली, तब गोपियां इन्हें पकड़ अति दुःखित होके आँखोंमें आँसू बहातीं यशोदाके समान दुःख करतीं, व्रजमें करी हुई भगवान्की प्यारी लीला उनका वर्णन करतीं भगवान्के मुखकी ओर दृष्टि देकर गोपियां मृतकके समान होगईं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रमें प्राण लगाये कालिंदीके दहमें पुत्रशोकसे नन्द आदि व्रजवासियोंकी दहमें गिरता देख श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले भगवान् बलदेवजी रोकते भये ॥ २२ ॥ इस प्रकार गोकुलवासियोंको अनन्य गति देख और उनको कोई छुडानेंवाला नहीं यह समझके तथा स्त्री

ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवंत्यः ॥ तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयंत्य आसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशंतो नंदादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् ॥ प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥२२॥ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरंगबंधात् ॥२३॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितःस्वफणान्भुजंगः॥तस्थौ श्वसञ्श्वसनरंध्रविषांबरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः॥२४॥तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम्॥क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेंद्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः॥२५॥

बालकों सहित गोकुलवासी मेरे लिये बहुत दुःखित हैं यह विचारके मनुष्यके तुल्य लीला करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र दो घडीतक उस सर्पकी कुंडलीमें रहके फिर उसके बाहर निकलते भये॥ २३ ॥ तब श्रीकृष्णने अपना इतना देह बढाया कि, उसके अंगके सब बन्द बन्द ढीले होगये, नस नस दुखने लगीं, हड्डियोंकेजोड जोड टूटने लगे, तब तो वह नाग कृष्णचन्द्रको छोड़ महाक्रोध कर फणोंको उठा उठाकर लम्बे लम्बे श्वास लेनेलगाऔर नथनोंमेंसे विषकी झलैं निकलने लगीं. आँखोंके पलक खुलेके खुले रहगये और मुखसे विषानलकी ज्वाला भड़कने लगी, विषैली लकडीकीनाईं कृष्णकी ओरको देख रहा था॥२४॥दो दो फाँकवाली जिह्वाओंसे अधरोंको क्षणक्षणमें चाट चाटकर क्रोध करता था, उस विकराल

विषानलभरी चितवनवाले कालीनागके चारों ओर फिर फिरकर ब्रजविहारी विहार करते फिरते थे, जैसे गरुड सर्पके चारों ओर फिरता है और वह काली भी अपना अवसर देखता हुआ भगवान्के चारो ओर घूमता फिरता था. श्रीकृष्ण अपना दाँव विचारते थे, काली अपना दाँव विचारता था, श्रीकृष्णकी इच्छा तो यह कि, मेरा दाँव लगे तो कालीके फणोंपर चढकर नृत्य करूं और कालीके मनमें यह विचार कि, किसी प्रकार एक बार तो वनमालीको फिर लिपट जाऊँ. दोनों अपना २ दाँव तक रहे थे ॥ २५ ॥ जब फिरते फिरते कालीका पराक्रम घट गयातब कालीके ऊपरको उठे हुए फणोंको नीचे नवाय श्रीकृष्णने झट झपटकर उसका फण पकडकर चरणतले दाब उसकी नाकमें नाथ डाल दी और उसके शीशपर जा चढे और नाचने लगे ॥ २६॥ जिस समय नटनागर नटवरवेष धरकर कालीके फणोंपर नाचनेको खडे हुए, उसको देखनेके लिये गन्धर्व, सिद्ध, सुरगण, चारण, देवांगना यह सब अत्यन्त प्रसन्न होकर मृदंग, ढोल, नगाडे आदि अनेक प्रकारके बाजे

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरस्स्वधिरूढ आद्यः ॥ तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥ तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगंधर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ॥ प्रीत्या मृदंगपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥ यद्यच्छिरो न नमतेंऽग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खलदंडधरोंऽघ्रिपातैः ॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृग्नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निश्श्वसतोरुषोच्चैः ॥ नृत्यन्पदाऽनुनमयन्दमयांबभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः॥२९॥

बजाते गीत गाते, पुष्प वर्षाते भेट ले लेकर आये और भगवान्की स्तुति करनेलगे ॥२७॥ हे राजन्! जिस कालीके एक सौ एक मस्तक थे, उसने जो मस्तक ऊपरको उठाया उसको दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय पाँवकी ठोकरसे नीचेको दबा दिया और जब वह क्षीण अवस्थावाला इधर उधर घूमने लगा तब मुखसे नासिकासे रुधिरकी धारा निकलने लगीं, शरीरके बन्द ढीले होगये, इस प्रकार कालीका दुष्टदमन भगवान्ने मर्दन किया ॥ २८ ॥ तो भी उस कालीनागने महाक्रोध करके लम्बे लम्बे श्वास लिये और मुखसे विष उगला और फिर शिर ऊपरको उठाये, परन्तु भगवान् शत्रुदमनने नृत्य कर करके चरणोंकी ठोकरोंसे उसके मस्तकोंको नीचेको झुका दिया; उस समय गन्धर्व

और देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले नारायणके समान जानकर यशोदानन्दन भगवान्‌की पुष्पोंसे पूजा करी. उस समय ब्रजवासियोंको आदिपुरुषकासा दर्शन हुआ ॥ २९ ॥ हे राजन् ! नटनागर भगवान्‌ने जो चित्र विचित्र ताण्डव नृत्य किया उससे कालीके फणरूपी छत्र टूट गये और सब शरीरकी नस नस ढीली होगई, मुखसे रुधिर बहने लगा, तब श्रीकृष्णको स्थावर जंगमका गुरु पुराणपुरुष नारायण समझकर मनसे उनकी शरण ली ॥३०॥ समस्त ब्रह्मांड जिनके उदरमें विराजमान हैं ऐसे विश्वभावन भगवान् मुरलीधरने त्रिलोकीका भार अपने देहमें धारण कर कालीके मस्तकपर मुरली बजाय बजाय उछल उछल ताण्डव नृत्य किया, उस समय मुरलीमनोहरका कौतुक देखनेके लिये देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरादिक अपने अपने विमानोंपर बैठकर आये और अनेक प्रकारके बाजे बजा बजाकर श्रीवैकुण्ठविहारीके उत्तम उत्तम चारित्र गाने लगे, अप्सरायें भांति भांतिके नृत्य करनेलगीं, देवता आकाशसे पुष्प वर्षानेलगे, उस समय देवता, गंधर्व, जो ताल स्वर सहित गाते थे, उसीमें मुरलीमनोहर अपनी मुरलीकी तान मिलाते थे और जब कालीके शिरोंपर ठुमक ठुमक पग धरते थे और नूपुरोंका शब्द सब बाजोंमें मिल रहा था, उन नूपुरोंकी झनकारकी ध्वनि सुनकर पवन पानी भी बहनेसे बन्द होगये, उस समयका आनन्द वर्णन करनेमें ब्रह्मादिक देवता भी चकित होते हैं, फिर और किसी दूसरेकी क्या सामर्थ्य है, जो उस आनन्दका वर्णन कर सके, जब त्रिभुवनपतिने त्रिभुवनका भार कालीके शिरपर रक्खा तब उसके सब अंग शिथिल हो गये, मुखोंसे रक्तकी फुहारें निकलने लगीं, देह थककर जब मृतकसमान हो गया और सब अभिमान जाता रहा, उस समय अपने जीवनकी आशा छोड फणोंको पृथ्वीपर पटकने लगा, मस्तकपर चरणारविन्दोंके चिह्न होगये, उस समय कालीकी दुर्दशा देखकर वस्त्र आभूषण जिनके अस्तव्यस्त होगये, केश खुल गये, ऐसी कालीकी पत्नी पतिके शीशोंको छत्रके समान टूटते देखकर हृदयमें कराघात करती नारायणकी शरण आईं। अत्यन्त व्याकुल जिनके मन अपने अपने छोटे छोटे बच्चोंको आगे करके नागकी पतिव्रता स्त्रियें अत्यन्त पीडित हो प्रथम पृथ्वीपर पडकर

तच्चित्रतांडवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥ कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ॥ दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबंधाः ॥ ३१ ॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः कृतांजलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥

साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया और अपने पतिके पाप छुटानेके लिये श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरणशरणमें आईं ॥ ३१ ॥ ३२॥ नागपत्नियें बोलीं, कि हे नाथ! इस अपराधीको आपने दण्ड दिया सो अच्छा किया क्योंकि आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये है, शत्रु और मित्रको आप एकसा समझते हो, इस लिये आपका नाम समदर्शी है, दुष्टको विचारकर दण्ड देते हो और मित्रसमझ कर उनपर अनुग्रह करते हो, दुष्टोंको दण्ड देते हो यह आपकी कुछ विषमता नहीं है ॥३३॥ इस सर्पको आपने दण्ड दिया सो इसके ऊपर बड़ा अनुग्रह किया. क्योंकि, आपके दण्ड देनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं. जिस अपराधसे इसकी सर्पयोनि हुई वह अपराध दूर हो गया, इसलिये आपका क्रोध भी कृपारूप

नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दंडः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से
दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवता कृतो हि नो दंडोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद्दंदशूकत्व
ममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ॥
धर्मोऽथवा सर्वजनानुकंपया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवांघ्रिरेणु
स्पर्शाधिकारः ॥ यद्वांछया श्रीर्ललनाऽचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥३६ ॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वांछंति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

ही है॥३४॥इस हमारे पतिने पूर्वजन्ममें ऐसा क्या किया है जिससे सबके प्राणदान देनेवाले आप इसपर संतुष्ट हुए, इस मानरहित हमारे पतिने अपना मान तजकर औरोंका मान किया और सब लोगोंपर दया ही करता रहा, नहीं तो ऐसे क्रूरबुद्धि सर्पपर आप क्यों अनुग्रह करते॥३५॥ हे प्रकाशवान्! यह सर्प आपके चरणारविन्दकी रजके स्पर्श करनेका अधिकारी हुआ, सो कौनसी तपस्याका ऐसा श्रेष्ठ फल है? यह हम नहीं जानतीं, जिन चरणारविन्दके स्पर्शके लिये लक्ष्मीजीसी उत्तम स्त्रीने सब कामनाओंको तजकर व्रतको धारण करके बहुत बरसों तक तप किया ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने आपके चरणारविन्दकी रजकी शरण ली है वह पुरुष न तो स्वर्गकी, न चक्रवर्ती राज्यकी, न शिवलोककी,

न इन्द्रलोककी, न ब्रह्मलोककी, न पातालकी, न योगकी, न सिद्धियोंकी और न मोक्षकी चाहना करते हैं ॥३७॥ हे नाथ ! लक्ष्मीसे आदि लेकर बडे बडे ऋषि मुनियोंको आपके चरणारविन्दकी रज महादुर्लभ है, उस रजको क्रोधके वश तमोगुणसे उत्पन्न विषवाले सर्पोंका राजा काली विना उपायही प्राप्त होगया क्योंकि अपने कर्मोंके वशसे संसारचक्रमें भ्रमते तुम्हारे चरणारविन्दके रजकी शरण चाहनेवाले शरीरधारियोंको मनमानी सम्पत्ति मिलती है ॥३८॥ छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त सर्व देहोंमें अन्तर्यामी रूप करके रहित उनमें विराजमान रहते हो तो भी उनमें छिप नहीं जाते हो. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पञ्च भूतोंके आश्रयरूप, सबके आदिकारण, आप कारणसे रहित ऐसे परमकारण परमात्माको हम बारम्बार नमस्कार करती हैं ॥३९॥ आप ज्ञान विज्ञान कहिये चैतन्यशक्ति करिके परिपूर्ण हो, व्यापक हो, अनन्त शक्तिमान्,

तदेष नाथाऽऽप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ॥ संसारचक्रं भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥३८॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥३९॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥ ४० ॥ कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेंद्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥४२॥ नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥४३॥

४३५

निर्गुण, निर्विकार, मायाके प्रवर्त्तक आपको हम वारंवार नमस्कार करती हैं ॥ ४० ॥ आप कालरूप हो, कालशक्तिके आश्रय हो, कालके अंगोंके देखनेवाले हो, विश्वरूप हो, विश्वके देखनेवाले हो और विश्वके कर्त्ता हो और विश्वके कारण हो, तुमको वारंवार नमस्कार है ॥ ४१ ॥ पृथ्वी, जल, वायु, शब्द, आकाश, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और दश इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त इनके रूप हो, त्रिगुण अहंकारसे अपने अंशरूप जीवोंके स्वरूपका आच्छदन करनेवाले आपको वारंवार नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आप अहंकारसे आच्छादित नहीं, इससे अनन्त हो; दृष्टिगोचर नहीं इससे सूक्ष्म हो, उपाधियों का विकार नहीं, इससे निर्विकार हो, कोई कहता है सर्वज्ञ हो, कोई कहता है सर्वज्ञ

नहीं हो, कोई कहता है चिन्तनीय हो, कोई कहता है अचिन्तनीय हो, कोई कहता है बद्ध हो कोई कहता है मुक्त हो, कोई कहता है एक हो कोई कहता है अनेक हो इत्यादिक जो अनेक प्रकारके झगडे हैं तिनमें मायासे जो जैसे कहे हैं उस समय वैसे ही हो जाते हो, नाम नामी, यह जो शक्तिका भेद इससे अनेक रूप करके प्रतीक्षा करने योग्य जो तुम हो ऐसे आपको वारंवार हमारा नमस्कार है ॥ ४३ ॥ आप नेत्रोंसे आदिलेकर सब इंद्रियोंके प्रकाश करनेवाले हो, स्वतः सिद्ध ज्ञानके विषयी हो, वेदके कारण हो, वेद आपके श्वासोंसे हुए हैं, प्रवृत्तिके प्रतिपादक वेदरूप आपको हम नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥ शुद्ध अन्तःकरणके प्रकाश करनेवाले भक्तोंके रक्षक रामकृष्णरूप वसुदेव

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमोनमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥४५॥ नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ॥ गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

तनय प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्ध रूप आपको हमारा नमस्कार है ॥४५॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणके प्रकाशक, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके प्रकाश करनेवाले अर्थात् इनके अधिष्ठाता हो, इसीसे चार रूप हो, तीन गुणोंसे उपासकको चित्र विचित्र फल देनेके लिये अपने आत्माको ढककर अनेक रूपसे भासो हो. मन बुद्धि, चित्त अहंकारसे चैतन्य निश्चयको आदि लेकर वृत्तिसे जाननेमें आओ हो, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके साक्षी व अगोचर आपको नमस्कार करती हैं ❋ ॥ ४६ ॥

❋ दृष्टान्त–एक धनाढ्य ब्राह्मण कृष्णके बडे भक्त थे, परंतु भोलेभाले भी बहुत थे, लोगोंने धोखा दे दिलाकर और कुछ धन लेकर उनका एक चाण्डालकी कन्याके साथ विवाह कर दिया, एक दिन वह कन्या खिडकीमें बैठी थी अकस्मात् उसके देशके चांडाल वहां आ निकले, वह देखकर बोले कि, अरी नत्थनकी बेटी ! तू यहां कैसे आगई ? लोगोंने बूझा कि, तुम इसको क्या जानो ? वह बोले कि, हमारे गांवकी जाई जन्मी, हमारे सामने छोटीसे बडी हुई, नत्थन भंगीकी बेटी है, तब तो वह ब्राह्मण बहुत घबराये पंडितको बुलाकर बूझा कि, हमको क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ! ब्राह्मणोंने कहा कि, सूखे हुए पीपलके वृक्षके खखोडलमें जलो तो पाप छूटे, ब्राह्मण पीपलका खखोडल मँगाय उसमें माला लेकर बैठगये और लोगोंने उसमें आग लगा दी, जब सब पीपलकी लकडी जलकर भस्म होगई ब्राह्मण बैठे माला फेरते रहे तब सब लोग उन ब्राह्मण देवताको दण्डवत् प्रणाम कर बोले कि, उठो अब प्रायश्चित्त होचुका, ब्राह्मण बोले कि, अब वह स्त्री क्या करै ! लोग बोले कि, उसकी बिरादरीको देदो, ब्राह्मणने चाण्डालोंसे कहा कि, इस स्त्रीको तुम ले जाओ चाण्डाल बोले कि, जब यह ब्राह्मणके घरमें रही तो अब हमारे किस कामकी है ? लोगोंने कहा तुमहा रहने दो ब्राह्मण–

आपकी महिमा विचारनेमें नहीं आती, परन्तु सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति प्रकाश करनेके कारण जाननेमें आते हो, इन्द्रियोंके प्रेरक आत्मामें रमण करनेवाले सत्स्वभाव आपको हम वारंवार नमस्कार करती हैं ॥ ४७ ॥ स्थूल सूक्ष्म सबकी गतिके जाननेवाले हो; सम्पूर्ण विश्वके साक्षी हो, विश्व आपके स्वरूपमें नहीं और विश्वके स्वरूपमें आप नहीं, आप विश्वके निषेधकी अवधि हो,जैसे सर्पके प्रकाशका आश्रय रस्सी है वैसे आप विश्व प्रकाशनेके आश्रय हो ,आरोप और निषेधके साक्षी आप हो, विश्वका आरोप और निषेधके ज्ञान अज्ञानके कारण हो, जहांतक विश्वज्ञान है वहांतक माननेमें आवैहै अर्थात् विद्यासे और अविद्यासे अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक्॥ तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥४९॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शांता अशांता उत मूढयोनयः ॥ शांताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥

हे प्रभो ! आप चेष्टासे रहित हो; कालशक्तिको धारण करके सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन, संहार करो हो, हे अमोघविहार ! अर्थात् सफल विहार क्रीड़ावाले अपनी इच्छासे उन संस्काररूपसे रहे स्वभावोंको प्रतिबोधन करते हुए क्रीडा करते हो॥४९॥ त्रिलोकीमें शांतस्वभाव, अशान्तस्वभाव,घोरस्वभाव, मूढ़स्वभाव इसप्रकार सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुणकी प्रधानतासे तीन स्वभावके प्राणी आपके खेलनेके लिये खिलौना हैं साधुओंकी रक्षा करनेके लिये कटिबद्ध होकर अवतार धारण करते हो,इसलिये आपको शांतस्वभावही

—बोले कि,तुम मुझसे फिर प्रायश्चित्त कराओगे, लोग बोले नहीं अलग एक कोठरीमें रखदेना दो रोटी दूरसे देदिया करना, दैवयोगसे चांण्डालीका देह छूट गया. तब वह ब्राह्मण चाण्डालोंसे बोले कि, इसको उठावो. चाण्डाल बोले इसे उठानेसे हमको बिरादरीमें रोटी देनी पडेगी, हम इसको नहीं उठानेके तुमही उठाओ. ब्राह्मण बोला मुझे प्रायश्चित्त करना पडैगा, ऐसेही शोचविचार करते दो घडी दिन रह गया, तब ब्राह्मणही उसको उठाने चले, उसका वस्त्र उघाडकर देखा तो उसके समीप फूल बहुतसे पडे हैं और पार्षदोंके पदोंके चिह्न लगरहे हैं, वहां न कोई चांडालिनि न कोई मृतक है, वह सदेह परमधामको चली गई, सत्संगतिकी ऐसी उत्तम महिमा है ॥

प्राणी प्रिय हैं. क्योंकि सज्जनोंके धर्म पालनकी इच्छासे प्रवृत्ति करते आपने अभी उनकी रक्षाके लिये अवतार लिया है ॥५०॥ हे भगवन् ! अब हम अबलाओंपर कृपा कीजिये नहीं तो यह काली सर्प प्राण छोडे देता है सत्पुरुषोंके शोचनीय हम दीन अबलाओंपर अनुग्रह करके पतिरूप प्राणदान दीजिये॥५१। स्वामीका यही धर्म है कि, एक बार जो अपनी प्रजासे अपराध हो जाय उस अपराधको क्षमा करदें. हे

अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५१ ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षंतुमर्हसि शांतात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५२ ॥ विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः ॥ मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जांघ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥

शान्तस्वरूप ! अनजान इस अज्ञान कालीके अपराध अब क्षमा करो ❋ ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं कुछ आज्ञा करनी हो सो आज्ञा कीजिये, हम आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक करेंगी. हे नाथ ! जो आपकी आज्ञाको हितचित्तसे करते हैं उनके सम्पूर्ण भय छूट जाते हैं ॥५३॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जब इसप्रकार नागपत्नियोंने श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी स्तुति की, तब भगवान्ने

❋ **दृष्टान्त**–जैसे एक राजाने किया, कैसे ? आधी रातके समय वेष बदलकर नगरकी सैरको निकला कि देखें कोतवाल और चौकीदार रात पहरा देते हैं वा नहीं देते. चौकीदारने बूझा कौन ? राजाने कुछ उत्तर न दिया, तब चौकीदारने पकडलिया और उनकी पगडी उतारकर उसीसे उनके हाथ बांध लिये और बहुत मारा, परन्तु राजा तो मा न बोले, चौकीदारने और मारा और कहा कि, अरे दुष्ट ! तूही रोज चोरी करके लेजाता था. आज बहुत दिनोंमें पकडा है, राजा तोभी न बोले चौकीदारने हवालातमें पकडकर बैठाल दिया. जब दिन निकला और लोग इधर उधरसे आनेजाने लगे देखें तो राजा हवालातमें बैठे हैं, तब तो लोगोंने बडा आश्चर्य माना कि यह क्या बात है ? चौकीदारने सब वृत्तान्त सुनाया और राजाके चरणोंमें गिर गया कि, मेरा अपराध क्षमा कीजे और राजाके हाथ पाव खोल दिये परन्तु मनमें डरता रहा, न जाने राजा मुझको क्या दण्ड दें. राजा चुपचाप उठकर मंदिरमें चले गये और स्नान पूजा कर राज दरबारमें आये और चोबदारसे कहा कि, जो चौकीदार रात गोपालगंजमें पहरा देता था उसको इसी समय हमारे पास लाओ, वह चौकीदार डरता कांपता राजाके सम्मुख आया राजाने प्रसन्न होकर सौ १००अशरफी पारितोषिकमें उसे दीं और एक गांव उसके सन्तानके वास्ते दिया. मन्त्रीने हाथ जोडकर बूझा कि, इसका क्या वीरता लिखी जायगी, राजाने अपना देह उघाडकर दिखाया और रातका सब वृत्तान्त सुनाया. मन्त्रीने कहा कि इसको शूली देनी चाहिये थी, राजा बोला आप नहीं समझे यह अपने काममें बहुत सावधान है क्योंकि जो मुझसे ही न चूका फिर यह औरसे कभी न चूकेगा अपने काममें सावधान रहनेवालेको सदा परमानंद प्राप्त होता है ।

मूर्छित पडे हुए उस भग्नमस्तक कालीनागको चरणकी ठोकरसे प्रहार कर छोड़दिया ॥ ५४ ॥ सहजसहजमें वह दीन काली सचेत होकर लम्बे लम्बे श्वास लेने लगा और हाथ जोड़कर भगवान्‌से निवेदन करने लगा ॥ ५५ ॥ हे नाथ! जबसे हम उत्पन्न हुए हैं तबसे ही हम दुष्ट हैं, तामसी हमारा स्वभाव है, बडाभारी हमारा क्रोध है, लोगोंका खोटा आग्रहरूप स्वभाव नहीं छूटता ॥ ५६ ॥ हे संपूर्ण जगत्‌के रचनेवाले! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे अनेक प्रकारका विश्व आपने रचा है और जिसके स्वभाव, शक्ति, बल, योनि, बीज, संस्कार और आवृत्तियें, यह सब ही पृथक् पृथक् प्रकारके हैं, यह विश्व आपका ही रचा हुआ है ॥ ५७ ॥ हे भगवन्! उस विश्वमें हमें सर्प बनाये.

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृतांजलिः ॥ ५५ ॥ कालिय उवाच ॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥ वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवाः ॥ कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान्हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥५९॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः ॥ नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥६०॥

जन्मसे ही हमारे हृदयमें अधिक क्रोध बढ़ा और हम आपकी ही मायासे मोहित हो रहे हैं सो आपसे मोहित हुए हम आपकी मायाको कैसे छोड़ सकते हैं ॥ ५८ ॥ सम्पूर्ण भेदोंको जाननेवाले जगत्‌के ईश्वर आप ही हो. सो आप ही मायाके छुटानेके कारण हो, जो काम आपने हमको सौंपा, उसपै हम ऐसे दुष्ट रहे सो आपसे भी न चूके यह मानकर चाहै हमारे ऊपर कृपा करो, चाहे दण्ड दो. आप परमेश्वर हो, सब काम करने योग्य हो हे राजन्! जब दीनदयालु दीनानाथने अत्यन्त व्यालको बेहाल देखा, तब उसका श्रम दूर कर चतुर्भुज रूप दर्शन दिया ॥ ५९ ॥ और भगवान्‌ने कहा कि, मैंने तेरे मस्तकसे अपने चरणसरोज छुवादिये अब तुझको किसी प्रकारका शोक सन्ताप न होगा

परन्तु अब तू इस कुण्डका वास छोडकर रमणकद्वीपको चला जा ॥ ६० ॥ और अपनी जातिके सर्प और बालबच्चे स्त्रियोंको भी साथ लेजा, क्योंकि अब मैं यहां जलक्रीडा किया करूंगा और गाय बछडे और ग्वालबाल यहांका जल पिया करेंगे, आजसे इसका नाम कालीकुण्ड हुआ ॥ ६१ ॥जो पुरुष प्रातःकाल उठकर अथवा सन्ध्या समय इस चरित्रका पाठ करेगा उसको सर्पका भय न होगा. यह कालीदह स्थान मेरे विहार करनेका है. जो पुरुष इसमें स्नान कर इस जलसे पितृ, देवताका तर्पण करेगा ॥ ६२ ॥ वा व्रत और मेरा पूजन करेगा उसको अश्वमेधयज्ञका पुण्य होगा और अन्तसमय परमधामको जायगा, फिर इस असार संसारमें जन्म न लेगा, जिस गरुडके भयसे रमणकद्वीपको

स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोन्रृभिर्भुज्यतां नदी ॥ य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ ६१ ॥ कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥६२॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलांछितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥६४॥ दिव्यांबरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ॥ दिव्यगंधानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥ ६५ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तम् ॥ ६६ ॥

छोडके तूने इस दहमें आयके वास किया है गरुड तुझको अब न खायगा, क्योंकि तेरे मस्तकपर मेरा चरणचिह्न है ॥ ६३ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि,अद्भुत लीलावाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब यह बात कही, तब नाग और नागकी स्त्रियें अत्यन्त आनन्द सहित श्रीकृष्ण भगवान्की पूजा करने लगीं॥६४॥दिव्य वस्त्र, माला, मणि, अमूल्य आभूषण और दिव्य सुगन्ध, केशर, कस्तूरी, चन्दन आदिका लेपन और बडीरकमलकी मालाओंसे ॥६५॥गरुडध्वज भगवान्की पूजा करी और काली सर्पने भगवान्की आज्ञा मान उसी समय परिक्रमा दे दण्डवत प्रणाम कर ॥ ६६ ॥

अपने कुटुम्ब समेत अपने रमणकद्वीपको चलागया, उस समय सब देवता आकाशमें जय जयध्वनि कर कहने लगे कि, “हे शरणागतवत्सल! धन्य है आपको, जो कालीको अपने चरणशरणमें रख लिया और उसके फणपर चरणचिह्न लगाय गरुडकी कठिन त्राससे बचा दिया वृन्दावनविहारी, विहारार्थ मनुजरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे यमुनाजीका जल अमृतके समान निर्मल हो गया. लेशमात्र भी विष न रहा ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कालियमर्दनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ दोहा–सत्रह काली नागको, भजो रमणक द्वीप ॥ बंधु बचाये अग्निते सो तुम सुनहु महीप ॥ १ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित्ने पूँछा कि, हे भगवन्! ऐसे परमोत्तम रमणकद्वीपको छोडकर, कालीनाग यमुनामें क्यों आया? और अकेले कालीहीने गरुडका क्या अपराध किया? इसका सब वृत्तांत विस्तार सहित वर्णन कीजिये॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाबाहु राजा परीक्षित्!

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह॥ तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥६७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० कालियदमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमंजसम् ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपहार्यैः सर्पजनैर्मासिमासीह यो बलिः ॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥२॥ स्वं स्वं भागं प्रयच्छंति नागाः पर्वणि पर्वणि ॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ॥ कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः ॥ विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

गरुड़ नित्यप्रति रमणकद्वीपमें सर्पोंको भक्षण करनेको आता था तब सम्पूर्ण सर्पोंने आपसमें बिचार कर मासमासको अपना दुःख निवृत्त करनेके लिये वृक्षकी जडमें एकांत गरुडकी भेंट रखनेका निश्चय कर दिया ॥ २ ॥ सब सर्प अपनी अपनी पारीसे पीपलके वृक्षपर गरुडजीकी भेंट रख दिया करते थे, कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये ॥ ३ ॥ अपने विषके और पराक्रमके घमण्डमें अभिमानी कद्रूका पुत्र काली, गरुडको कुछ वस्तु न समझकर गरुडके भागको एक दिन आप ही खा गया ॥ ४ ॥ हे राजन्! भगवान्के प्यारे भाग्यवान् गरुडजीने जब यह बात सुनी कि हमारे भागका भोजन कालीनाग खा गया, उसी समय क्षुद्धित होकर कालीके मारनेके लिये अत्यन्त

वेगसे कालीके पीछे झपटे॥५॥विष ही जिसके शस्त्र वह कालीनाग ऊपरको फण उठा दौडकर गरुड़जीके सन्मुख आया,दन्तआयुध भयानक जीभ पलक जिनमें लगे नहीं ऐसे भयंकर नेत्रवाला काली दाँतोंसे गरुडको काटनें लगा॥६॥तब तो वासुदेव भगवान्के वाहन तार्क्ष्यके पुत्र गरुडजीने बडे क्रोधसे सुवर्णकेसे प्रकाशवाले अपनें पंखोंसे और चोंचसे कद्रूके पुत्र कालीको मारकर गिरा दिया ॥ ७ ॥ गरुडजी जिस समय पंखप्रहार करते थे तब पंखोंमेंसे वेदोंके स्वरोंकी ध्वनी निकलती थी, उनके प्रहारसे और स्वरोंकी गुंजारसे सर्प व्याकुल होते चले जाते थे और काली भी अत्यन्त व्याकुल हो गया तो मनमें विचार करने लगा कि,अब गरुडसे मैं किसी प्रकार न जीतूंगा. हारकर यह शोचा कि,अब वहाँ चलना चाहिये जहाँ सौभरिऋषिने गरुडको शाप दे रक्खा है कि यहाँ गरुड न आ सके,दूसरे जलमें गरुडका पराक्रम भी न चल सकै, इस प्रकार अपना बचाव समझ वृन्दावनके निकट यमुनाके कुण्डमें जाकर निवास किया ॥ ८ ॥ क्योंकि उस दहमें एक समय गरुड़जी मछलियाँ खानेकी इच्छासे आये,तब सौभरि ऋषिने गरुडको रोंका कि भाई। यह हमारे तपस्या करनेका स्थान है,यहाँ मछली मत मारो, परन्तु क्षुधार्थी गरुडने ऋषीश्वरका वचन न माना ॥ ९ ॥ जब मछलियोंका पति एक बड़ा मत्स्य गरुडजीने मारा तब मछलियोंको दीन और व्याकुल देखकर उनके बचानेके लिये सौभरिऋषिने महा क्रुद्ध होकर यह शाप गरुडको दिया ॥ १० ॥ “इस दहमें गरुड आकर जो मछलियोंको खायगा तो उसी समय गरुडका देहान्त हो जायगा. यह बात मैं सत्य कहुँ हूँ” इस प्रकार प्राणी मात्रकी रक्षा करनेवाले सौभरि ऋषिने गरुडको यह शाप दिया ॥ ११ ॥ यह बात काली भलीभाँति जानता था और किसीको यह सुध नहीं थी कि,

तमापतंतं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ॥ दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितो
ग्रलोचनः ॥६॥ तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्प्रचंडवेगो मधुसूदनासनः ॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान
कद्रूसुतग्रविक्रमः ॥७॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ॥ ह्रदं विवेश कालिंद्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥
तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत्॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा
दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति॥
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ॥ अवात्सीद्गरुडाद्भीतः
कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥

गरुडको सौभरिऋषिका शाप है, इस भयसे उस कुण्डमें काली वास करता था, सो श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुण्डसे निकालकर उसके प्राचीन स्थान रमणकद्वीपको भेज दिया * ॥ १२ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन कण्ठमें सुन्दर माला पहिरे केशर चन्दन चर्चित वस्त्र धारण किये, मणि रत्नोंसे दीप्त सुवर्णके गहने पहनें दहमेंसे निकले॥ १३॥ तब ब्रजविहारीको देखकर सब ब्रजवासी खडे हो गये, जैसे मृतक शरीरमें प्राण आनेसे सब इन्द्रियें चैतन्य हो जाती है उस प्रकार आनन्दसे पूर्णचित्त हो दौडकर सब ब्रजवासी हृदयसे लगा लगा कर मिले और विरहानलका जो ताप हृदयमें भडक रहा था वह शान्त हो गया ॥ १४॥ हे कुरुवंशावतंस राजा परीक्षित्! यशोदाजी,

कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रांतं दिव्यस्रग्गंधवाससम् ॥ महामणिगणाकीर्णं जांबूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे॥ १४॥ यशोदा रोहिणी नंदो गोप्यो गोपाश्च कौरव ॥ कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसल्लँब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिंग्य जहासास्यानुभाववित् ॥ नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥ नंद विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः॥ १७॥

रोहिणीजी,नन्दजी तथा गोप गोपियोंको श्रीकृष्णचन्द्रको आये हुए देखिके ऐसा अनन्द हुआ किमानो गये हुए प्राण फिर चले आये॥ १५॥ श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलरामजी घनश्यामको छातीसे लगाकर हँसकर मिले और गाय, बछरे, बैलोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए. जो और वृक्ष सुख गये थे वह सब हरे हो गये तब सब ब्रजवासी बोले कि,भाई बलराम! तुम भी अपने वचनके पूरे ही निकले, जो तुमने कहा थां वैसे ही हुआ अब घर चलनेकी क्या इच्छा है ? ॥ १६ ॥ उसी समय गुरु, पुरोहित, ब्राह्मण अपनी अपनी पत्नियों सहित

शंका--क्या उस कुण्डको कालीही नाग जानता था और कोई दूसरा सर्प उस कुण्डको क्यों नहीं जानता था इसका क्या कारण ?

उत्तर--कालीनाग नारदजीका चेला था,इसलिये नारदजीने कालीको कुण्ड बताया था कि,तुझको कभी विपत्ति काल पडे तो तू यमुनाके कुण्डमें चला जाना, उस कुण्डमें गरुडका बल नहीं चल सकेगा इसलिये केवल कालीकोही उस कुंडका वृत्तान्त विदित था ॥

नन्दरायजीसे आकर कहने लगे कि, परमेश्वरने बड़ा अनुग्रह किया जो कालीनागका डसा हुआ तुम्हारा पुत्र बच गया, यह बडे मंगलका समय है ॥ १७॥ इनके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको मणि रत्न आभूषण सहित गोदान दीजिये, उस समयकी बधाईमें नन्दरायजीने प्रसन्न होकर हे राजन् ! गायें और सुवर्णका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥१८॥ धर्मशीला यशोदा भी बडी भाग्यवान् है, जिसका पुत्र कालके गालमें जाकर लौट आया, वह अपने पुत्रको पाय हृदयसे लगाय गोदमें बैठाय वारंवार नेत्रोंसे आंसू बहाने लगी ॥ १९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! भूख प्यास करके पीडित ब्रजवासी नष्ट भये पुत्रको पायके गौवों समेत संपूर्ण रात यमुनाके किनारे वास करते भये ॥ २० ॥ गरमीकी ऋतु थी, आधीरातका समय था, ठण्ढी ठण्ढी पवन जो लगी तो सब ब्रजवासी पडके सोगये, तब सूखे वनको उस दावानल दैत्यने अग्निरूप बनकर जलाना आरम्भ कर दिया और महाक्रोध करके सब ब्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया उस समय पवनके वेगसे अनलकी

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नंदः प्रीतमना राजन्गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥१८॥ यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९ ॥ तां रात्रि तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिंद्या उपकूलतः ॥२०॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥ तत उत्थाय संभ्रांता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान्ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ॥ न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥२४॥

ऐसी ज्वाला भडकने लगी मानो चारो ओर सुमेरु पर्वत दिखाई दे रहा है ॥ २१ ॥ सब पृथ्वी और आकाश लाल लाल दीखने लगा, पशु पक्षी व्याकुल होकर भागने लगे. जब महाकोलाहल पडा तो सब ब्रजवासी घबराकर जाग उठे और पुकार पुकारकर कहने लगे ॥२२॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभाग ! हे राम ! हे अत्यन्त पराक्रमी! आप शीघ्र हमारी सहाय कीजे, यह महाभयानक कृशानु हमको भस्म करे डालता है ॥२३॥ हे संकटमोचन ! शीघ्र हमारी सहाय कीजे, जब २ हमलोगोंपर भारी भीर पडती है, तब तब तुमहीं सहाय किया करते हो तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर, अघासुरको मार हमारी रक्षा करी वैसे ही अब भी हमारी रक्षा करो, हम सब आपके ही हैं. हे प्रभो ! इस महाघोर कालरूप अग्निसे हमलोगोंको बचाओ. हे मित्र ! हम इस भयंकर अग्निमें जलनेसे भी नहीं डरते, केवल आपके चरणारविन्दके

वियोगसे डरते हैं, सो आपके निर्भयपदको हम नहीं त्याग सकते ॥ २४ ॥ इस प्रकार विश्वके ईश्वर और अनंतशक्तियोंके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रजवासियोंको व्याकुल देख उस भयानक अग्निको पान करते भये ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां दावानलमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ दोहा–अष्टादशमें ग्रीष्मसे, लक्षित सुखद वसंत। हरिकी पाय सहाय कछु, हत्यो प्रलम्ब अनंत ॥ १ ॥श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नरेन्द्र।फिर श्रीवृन्दावनविहारी मनमें प्रसन्न होकर अपनी जातिके सब ब्रजवासियोंको साथ लिये अग्निकापान किये पीछे २ ब्रजवासी जिनके चरित्र गाते चले आते थे, ऐसे श्यामसुन्दर गायोंके समूहोंसे शोभित ब्रजकी ओरको पधारे ॥ १ ॥ गायोंके चरानेके बहानेसे अनेक प्रकारकी माया करके दोनों भाई ब्रजमें विहार करते थे, उसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आई, वह समय देहधारियोंके लिये सुखदायक नहीं है ॥ २ ॥ परंतु वह ग्रीष्म ऋतु भी वृन्दावनके गुणोंसे वसंतऋतुके समान जान पडती थी, क्योंकि जहां साक्षात् श्रीवृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बलरामजीके साथ विराजते थे फिर भी वहां वसन्त न रहे ? बडे आश्चर्यकी बात है? वहां तो सदा वसन्त रहना चाहिये,वृक्षोंपर बारहो मास फल फूल खिलते रहें,त्रिविध बयारि झकोलती रहें, आमोंकी डालियोंपर कोकिला कूकती रहें, भांति भांतिके पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलते रहें, मोर शोर कर २ चारों ओर झिंगारते रहें और अनेक २ प्रकारकी शोभा नित्यप्रति बनी रहे तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि, जहाँ त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी विहार करें वहां भी यह शोभा न हो तो फिर कहां हो? ॥ ३॥ जहां जलके झरनोंका ऐसा गम्भीर शब्द हो रहा था उस शब्दके सामने झींगरोंका शब्द सुनाई नहीं

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत्तीव्रमनंतोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० दशमस्कंधे पू० कालियनिर्यापणदावाग्निपानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः॥ अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमंडितम् ॥ १ ॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥स च वृन्दावनगुणैर्वसंत इव लक्षितः ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम्॥ शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममंडलमंडितम्॥४॥

देता था और सदा झरनोंकी छीटोंसे हरे२ वृक्षोंके समूहोंसे वृन्दावन अत्यन्त शोभायमान होरहा था ॥ ४ ॥ वहां हरी २ घास ऐसी शोभायमान जान पडती थी मानो हरे मखमलका बिछौना बिछ रहा है, इस वृन्दावनमें कह्लार, कञ्ज और उत्पल यह जो भांति भांतिके कमल हैं उनकी सुगन्धयुक्त नदी, सरोवर, झरनोंसे स्पर्श करके जो ठण्डी २ पवन आती थी, उससे वृन्दावनवासियोंको ग्रीष्मकी अग्नि और मार्त्तण्डका प्रचण्ड ताप नहीं सताता था ॥५॥ जहां अनेक नदियें हैं, जिनके तटपर पहुँचते ही जलकी तरंगोंसे टापुओंकी और किनारोंकी भूमिमें सजलता आती है, उस पृथ्वीकी सजलता और हरियालीको विषके समान भयंकर सूर्यकी किरणें नहीं सुखा सकतीं ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके

सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकंजोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले
॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समंततः ॥ न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्वणा भुवो रसं शाद्व
लितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥
क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन्गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥ प्रवालबर्हस्तबक
स्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥
वेणुपाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा
इव नटं नृप ॥ ११ ॥

फूल जहाँ तहाँ फूल रहे हैं, नानाप्रकारके जीव जन्तु, पक्षी मीठी २ बोलियें बोल रहे हैं ॥ ७ ॥ इस अनुपम वनमें श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बलदेवजीको और ग्वालबालोंको साथ लेकर बाँसुरी बजाते विहार करनेके लिये गाय बछड़ों सहित वृन्दावनको चले ॥ ८ ॥ बलराम श्रीकृष्णादिक ग्वालबाल, पत्र, मोरपुच्छ, गुच्छक, माला, धातु अर्थात् गेरू, खडिया, मनशिल, हरतालसे शृंगार करके कभी नाचते थे, कभी गाते थे और कभी परस्पर युद्ध मचाते थे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र जब नृत्य करतेथे, उस समय कितने बाँसुरी, करताल और शृंगी बजाते थे और कितने नई २ राग रागिनी गाते थे, कितने उनके नाचकी बडाई करते थे ॥ १०॥ हे राजन् ! देवता लोग गुप्त हो गोपोंका

रूप धारण कर कर श्रीकृष्ण और बलरामकी वारंवार इस प्रकार प्रशंसा करते थे जैसे नट नटकी बडाई करते हैं ॥११॥ सब शिरपर बाल धारण किये श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई कभी चाईमाईं खेलते, कभी कूदते, कभी धक्का मुक्की करते, कभी खम्भ ठोंकते, कभी खैंचातानी करते और कभी मल्लयुद्ध करते, इस प्रकार एकसे एक अद्भुत लीला करते थे ॥ १२ ॥ हे राजन्! कभी और दूसरे ग्वालबाल नाचते थे तो कृष्ण बलदेव दोनों भाई आप गाते थे और बांसुरी बजाते थे और फिर उनकी प्रशंसा करते थे कि, तुमने भला नृत्य किया ॥ १३ ॥ कभी बेलके फल हाथमें लेकर दो दो चार चार एक साथ ही उछालते, कभी कुंभीवृक्षके फलोंको फेंकते थे, कभी आंवलेके फल मुरलीनमें रख रखके बगेलते थे, कभी छोटे २ फल हाथमें लेकर बूझते थे, जो बतला देते तो फल लेलेते और जो नहीं बतला सकते थे, तो वह फल हार जाते थे ॥ पहिले तो बलरामने श्यामसुन्दरके नेत्र बन्द किये, सब सखा भागकर चारो ओर छिप गये. तब बलदेवजीने कृष्णको छोड दिया

भ्रांमणैर्लंघनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः॥चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित्॥१२॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ
वादकौ स्वयम् ॥ शशंसतुर्महाराज साधुसाध्वितिवादिनौ॥१३॥क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुंभैः क्वचामलकमुष्टिभिः॥ अस्पृ
0/0
श्यनेत्रबंधाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित्स्पंदोलिकया कर्हि
चिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुंजेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥

और उनकी आंखैं खोलदीं, जिसको कृष्ण पकडकर लाते थे, बलदेवजी उनकी ही आँखैं मीचते थे, कभी कुरंगके संग दौडते, कभी विहंगके ढंगपर चलते ॥ १४ ॥ कभी सरिताओंके सोतेमें मेंढककी नाईं कूदते और जो कोई कूदनेके समय पानीमें रपटकर गिर पडता तो सब सखा मिलके उसका हास्य करते थे-कभी वृक्षोंकी शाखाओंको पकड पकडकर झूलतेथे और सुन्दर सुन्दर पुष्पोंके आभूषण बना बनाकर पहनते थे, कोई २ सखा कहते भाई! हमारी तो यह इच्छा है कि, बलरामको तो राजा बनावें और घनश्यामको मन्त्री बनावें और हम सब प्रजागण बनैं और श्रीदामादिक ग्वालबालोंको सिपाही बनावें और जो ग्वालिनी इस मार्गको दधि लेकर निकलैं उनसे दान लें ॥१५॥ इस प्रकार राम कृष्ण दोनों भाई जगतमें जो २ खेल विख्यात हैं उन खेलोंको खेलकर प्रसन्न होते थे, कभी यमुनाजी न्हाते, कभी गोवर्द्धनकी कन्दरा

ओंमें घुस जाते, कभी कुञ्जोंमें विचरते फिरते, कभी काननमें आन ढक ढककर विचरते, कभी सरोवरोंमें जलविहार करते और कभी कमल कुमोदिनीके फूल तोड २ कानोंमें धरते थे ॥ १६ ॥ इसप्रकार दोनों भाई ग्वालबालोंके संग वृन्दावनमें गायें चराते थे. तहां कृष्ण बलदेवके हरनेके लिये कंसने प्रलम्बासुरको भेजा, उसने इनको सखाओंके साथ खेलता हुआ देख अपना रूप भी गोपका ही बनाकर उन ग्वालोंमें आन मिला ॥ १७ ॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जान लिया कि, यह असुर आया और अपने मनमें उसके मारनेका विचार

पशूंश्चारयतो गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलंबोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः ॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिंतयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरिष्यामो द्वंद्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ॥ यत्रारोहंति जेतारो वहंति च पराजिताः ॥ २१ ॥

भी किया परन्तु तो भी उसको मित्र बनाकर उसकी प्रशंसा की और कहा कि, मित्र ! आप भले खेलके समय आ गये ❋ ॥ १८ ॥ आप तो सब खेल जानते ही हो. फिर सब सखाओंको बुलाकर कहा कि, हे मित्रो ! हम बराबरकी दो टोली बनाकर खेल खेलेंगे ॥१९॥ बलराम और घनश्यामको दोनों टोलियोंका मुखिया बनाया और सबको यह वचन पुकारकर सुना दिया ॥२०॥ कि, जो जीते सो हारेकी पीठपर चढे और हारा हुआ उसको अपनी पीठपर चढाकर भाण्डीरवनतक उसी समय पहुँचा दे इस प्रकार चढने चढानेवाले कई खेलोंका प्रारम्भ किया

❋ **शंका**—रावणादिक अनेक राक्षसोंको भगवान्ने मारा, परन्तु किसी राक्षसके मारनेमें ऐसी चिन्ता नहीं की जैसे छोटेसे प्रलम्बासुरके मारनेमें चिन्ता की सो क्या कारण जो उसके मारनेमें इतनी चिन्ता की? उत्तर—प्रलम्बासुरकी मृत्यु ब्रह्माने शेषजीके हाथसे लिखी थी कि, तू शेषके हाथसे मरेगा और किसी दूसरेके हाथसे नहीं मरेगा, इस बातको भगवान् भले प्रकार जानते थे और यह भी जानते थे कि, शेषके मनमें बडी दया है और उनके हृदयमें नम्रता है कभी दया करके शेषजी उसको न मारें और इस दुष्टका मारना अवश्य है. क्योंकि जो यह बचगया तो ग्वालबालोंको बहुत दुःख देगा, इसलिये अधिक चिन्ता की ॥

और परस्पर दोनोंने स्वीकार कर लिया ॥ २१ ॥ इसप्रकार चढते चढाते गायोंको चराते श्रीकृष्ण अपने थोकको लेकर भाण्डीरवन पहुँचे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब बलरामजीकी ओर श्रीदामा और वृषभादिक जीतगये तब श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरके उनको अपनी पीठपर चढाकर ले गये॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब हारे तब श्रीदामाको अपनी पीठपर चढाया, भद्रसेनने वृषभको चढाया और प्रलम्बासुरने रोहिणी नन्दन बलरामजीको अपनी पीठपर चढा लिया॥२४॥जब कि, उस प्रलम्बासुरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बलवान्‌सम झा तो बलदेवहीको भाण्डीरक वनकी ओरको लेकर अत्यन्त शीघ्रता सहित झपटा चला गया ॥ २५ ॥ जब उस असुरसे पर्वतके समान बलदेवजीका भारी

वहंतो वाह्यमानाश्च चारयंतश्च गोधनम् ॥ भांडीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्री
दामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥२३॥ उवाह कृष्णो भगवाञ्छ्रीदामानं पराजितः ॥
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलंबो रोहिणीसुतम्॥२४॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः ॥ वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः
परम् ॥ २५ ॥ तमुद्वहन्धरणिधरेंद्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडि
द्द्युमानुडुपतिवाडिवांबुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमंबरे चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कट
ककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७ ॥

भार न उठ सका और पराक्रम उसका शिथिल हो गया तब इसने अपना असुरदेह धारण कर लिया,उस समय वह दैत्य सुवर्णके गहने पहने ऐसा शोभायमान दिखाई देता था जैसे चन्द्रमासहित बादलमें बिजली दमक जाती है और बलदेवजी उस दैत्यके काले शरीरपर कैसे दिखाई देते थे जैसे कालीघटामें चन्द्रमा, बलदेवजीके कानोंके कुण्डल कभी कभी दामिनीके समान दमक जाते थे, गलेका दुपट्टा जो झटका खाकर नीचेको लटक गया था वह ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रका धनुष तन रहा है, गरमीके मारे उसकी देहसे प्रस्वेद जो टपकता था वह ऐसा ज्ञात होता था मानो आकाशसे बुन्दधारा पड़ रही है ॥ २६ ॥ आकाशतक प्रकाशमान ऊंचा जिसका महाविकराल शरीर, लाल २ नेत्र

मानो तत्काल ही ज्वालाको उगलेंगे, महाभयंकर दाढें मानो बाढें धरी हुई बरछी, बाल तांबेके सदृश लाल २ भयकारी, दोनों भुजदण्ड मानो ब्राह्मणके तोड़नेवाले हैं, कानोंमें कनककुण्डल, मस्तकपर मुकुटकी अद्भुत शोभा और उस असुरकी मनोहर कांति देखकर हल, मूसलके धारण करनेवाले बलदेवजी अपने मनमें कहने लगे कि, यह कैसा गोप ? मेरा जी डरता है॥२७॥ पहिले तो कुछ भय माना परन्तु पीछे सुधि आ गई कि, यह तो असुर है, फिर तो भय त्याग बलदेवजीने जाना कि, हमारे गोपोंको छुटाकर बलात्कार हमको लिये जाता है तब तो अविनाशीने महाक्रोध करके इसके शीशमें एक मुष्टिक मारा; जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतको मारता है ॥२८॥ मुष्टिकके लगते ही उसका शिर फूटकी नाईं फूट गया, दांत टूट गये, मुखसे रक्तका वमन होने लगा, मानो रुधिरकी धारा बह रही है. जिह्वा और नयन निकलकर बाहर आ पडे,

अथाऽऽगतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहायसाऽर्थमिव हरंतमात्मनः ॥ रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरि
मिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत्स
मीरयन्गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलंबं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता
आसन्साधुसाध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभिगृणंतस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवालिंग्य प्रेम
विह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥

हाथ पांव पसार दिये और बडा घोर शब्द कर मुख फैलाय पृथ्वीपर गिरा, जैसे इन्द्रके वज्रके मारे पहाड पृथ्वीपर गिरते हैं॥२९॥ महाबलवान् बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर विस्मित हो ग्वालबाल कहने लगे कि, भाई ! तुम दोनों बडे वीर हो, हमसे तुम्हारी बडाई नहीं हो सकती, जहां २ हमपर विपत्ति पडती है वहीं वहीं आप सहाय करते हैं. जो भाई ! तुम इस समय न होते तो यह एक न एक लडकेको पकडकर अवश्य ले जाता ॥ ३० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, उस समय सब ग्वालबाल और नंदलाल मिलकर बलदेवजीको आशीर्वाद देने लगे कि चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो, फिर प्रशंसायोग्य बलदेवजीकी प्रशंसा करने

लगे और जैसे कोई मरकर लौट आता है ऐसे बलदेवजीसे मिलकर प्रेममें मग्न हो गये ॥ ३१ ॥ पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ- बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और धन्यवाद देने लगे ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां प्रलम्बासुरवधो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, मुञ्जविपिनमें जाय। गोप गाय सब अग्निसे, क्षणमें लियो बचाय ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! जब सब ग्वालबाल खेलमें लग गये तब उनकी गायें बछरे अपनी इच्छासे चरते चरते हरी२ घासकी लालचमें आकर सघन वनमें चले गये ॥१॥ वह अजा अर्थात् ओसर गायें भैंसें उस वनसे चरती २ आगे धेनुक

पापे प्रलंबे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥ अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भाग० म० द० पू० प्रलंबासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥ स्वैरं चरंत्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम्॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशंत्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटवीं विविशुः क्रंदंत्यो दावतर्षिताः॥ २॥ तेऽपश्यंतः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वंतो गवां गतिम् ॥ ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरंकितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाऽऽजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥

वनमें चली गईं उसके आगे महाघोर मुञ्जवन है तहाँ चली गईं क्योंकि, वनमें चारों ओर दव जो लग रही थी उसकी गर्मीसे प्यासकी मारी घबरा रही थीं * ॥ २ ॥ जब बलराम कृष्णादिक ग्वालबालोंने पशुओंको नहीं देखा तो मनमें अत्यन्त दुःखी हुए और जहाँ तहाँ खोजने लगे, परन्तु पता कहीं नहीं लगा ॥३॥ फिर परस्पर विचार सब ग्वालबाल गायोंके खुरोंके चिह्नको और जो गायोंके दाँतोंसे कटा हुआ घास था, उसको देखते देखते जहाँ जहाँ होकर गायें गई थीं वहाँ पहुँचे ॥ ४ ॥

---

* शंका–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको बकरीका पालना तथा भैंसका पालना अयोग्य है और शास्त्रमें भी इनका पालना अनुचित है, फिर श्रीकृष्णने बकरी और भैंसें क्यों पालीं?

उत्तर–पण्डित लोग बकरीका नाम अजा कहते हैं, परन्तु अजा गायंकी बछियोंको भी कहते हैं और ओसरभी कहते हैं और मुनियोंने अजाका ऐसा अर्थ किया है कि, बालक जिसमें न हों उसका नाम अजा है और महिषी नाम वृद्ध गायका है और जो युवा गाय हो उसका नाम गाय है, श्रीकृष्ण भगवान् सब बछिया और वृद्ध युवा गायोंका पालन किया करते थे बकरी भैंसोंका पालन करना तो गडरियोंका काम है श्रीकृष्णचन्द्रने बकरी भैंसें नहीं पालीं ॥

मुञ्जवनमें घुस गये वहां जाकर मार्ग भूलगये, सीधा मार्ग अग्निसे रुकगया था, तब दुःखित हुई कुछ थोडीसी गायोंके समूहको देखा, भूखे और प्यासे ढूँढ़नेके खेदसे और भी घबरा रहे, हारे वे थके अपनी गायोंको घेरकर पीछेको लौटे ॥ ५ ॥ जो गायें इधर उधर रह गईं और दूर दूर चरती थीं उनको मेघके समान गंभीर वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनका नाम लेलेकर बुलाईं ॥६॥ तब सब गायें अपने अपने नाम सुनकर हर्षित होकर रम्भाईं, इससे यह सूचित किया कि,हम तुम्हारी मनोहर वाणीको सुनती तो हैं,परन्तु मार्गमें आग जो लगी है इसलिये तुम्हारे समीप आ नहीं सकतीं, मार्ग बड़ा बिकट है ॥७॥ वहाँ बडी धूमधामसे धूमध्वजावाला अग्नि चारो ओर वनवासी जीवोंका जलाने वाला लग रहा था और पवनके वेगसे प्रचण्ड हो रहा था और महाप्रबल लपटोंसे चराचरको भस्म करता चला जाता था और धुएँके धुन्धकारस

मुंजाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रंदमानं स्वगोधनम्॥संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥ ता आहूता भगवता मेघगंभीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समंताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षय कृद्वनौकसाम् ॥ समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजंगमान्महान् ॥ ७ ॥ तमापतंतं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥ ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥ कृष्णकृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम ॥ दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बान्धवाःकृष्ण न चार्हंत्यव सीदितुम ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बंधूनां भगवान्हरिः ॥ निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥

सर्वत्र वनमें महाघोर अन्धकार छा गया ॥ जीव जन्तु,पशु, पक्षी धुएँसे अन्धे हो २ जहाँके तहाँ जल जलकर रह जाते थे, कोई किसीको बूझता नहीं था । तब सब ग्वाल मृत्युके भयसे दुःखित हो बलदेवजी सहित श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर विनय करने लगे ॥८॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबलवान् ! हे राम ! हे अनन्तपराक्रमवाले ! यह वनकी अग्नि हमको भस्म करे डालती है, अब शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हम तुम्हारे मित्र हैं, हमको ऐसा कठिन कष्ट दिखाना नहीं चाहिये क्योंकि, हम इतने कष्ट सहने योग्य नहीं हैं, आप ही हमारे अधिष्ठाता हो और आपहीका हमको आश्रय है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब दुःख

दूर करनेवाले भगवान् ! श्रीकृष्ण मित्रोंके दीन वचन सुनकर कहने लगे कि, हे मित्रो ! भयभीत मत हो; अपनी अपनी आँखें मीचलो ॥११॥ उसी समय श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार सबने अपने अपने नेत्र मूँद लिये तब योगेश्वर भगवानने उस महाभयंकर अग्निको पान कर अपने प्यारे मित्रोंको महा कष्टसे बचाया ॥१२॥ जब उन्होंने नेत्र खोले तो फिर भाण्डीरवनमें आगये और अपने आपको और गायोंको अग्निसे छुटा देखकर बहुत विस्मित हुए कि, यह क्षणमात्रमें ही क्या अचम्भा हो गया ॥ १३ ॥ योगमायाका प्रभा वप्रगट दिखानेवाली अग्निके बचानेसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको देखकर सब गोप कहने लगे कि, श्रीकृष्ण हमारे समान मनुष्य नहीं हैं, देवता जान पडते हैं ॥१४॥ जब जाना कि, संध्या समय हुआ तब बलरामजीसहित श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद यशोदानंदन मंद मंद चालसे गायोंको लिये बाँसुरी बजाते गोपोंसे

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो ऽयमोचयत्॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षी
ण्युन्मील्य पुनर्भांडीरमापिताः ॥ निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्यो
गमायाऽनुभावितम् ॥ दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥१४॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः॥
वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानंद आसीद्गोविंददर्शने ॥ क्षणं युगशतमिव यासां येन
विनाऽभवत् ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भाग० महापुराणे दशम० पूर्वार्धे श्रीकृष्णकृतदावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥
843 ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच॥ तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥ गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलंबवधमेव च ॥१॥

स्तुति कराते ब्रजमें आये ॥ १५ ॥ जब ग्रामके समीप आगये तब मुरलीधरने मुरली बजाई; मुरलीकी ध्वनि सुनते ही सब ब्रजनारी अपने अपने घरोंका काम तजकर मार्गमें आन खडी हुईं और गोपीवल्लभका दर्शन करते ही गोपियोंको परमानंद प्राप्त हुआ और हृदयमें ठंण्ढक होगई क्योंकि, विना श्यामसुन्दरके देखे एक एक क्षण सौ सौ युगके समान व्यतीत होता था ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० भाषाटीकायां दावाग्निपानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९ ॥ दोहा--कहौं वीस अध्यायमें, पावस शरदानन्द । जो जो कछु लीला करी, गम गोप नँदनन्द ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र बलरामने अग्निसे जो सब ग्वालबालोंको बचाया और प्रलंबासुरको

मारा; यह अद्भुत कर्म गोपोंने स्त्रियोंसे कहा ॥ १ ॥ औरबडे बडे वृद्ध गोप, गोपी यह बात सुनकर आश्चर्य करने लगे और श्रीकृष्णको मुख्य देवता समझा ॥ २ ॥ जब ग्रीष्मऋतुने संसारके जीवोंको अधिक सताया, तब संसारीजीवोंको दुःखी देख पावस प्रचण्ड अपने बलके घमंडमें भरा, मार्तण्डके प्रकाशको दबाता, चारो ओर धूमधाम मचाता, मेघोंका धौंसा बजाता, बादलका दल संग लिये, युद्धका सामान किये चढि आया. गड़गडाहट शब्द होने लगा ॥ ३ ॥ दामिनी दमकने लगी, बादल गर्जने लगे, घनमें श्याम घटा छा गई, सूर्य चन्द्रमा तारागणोंका प्रकाश आच्छादित होगया. इस समय आकाश ऐसा शोभायमान जान पडता था, जैसे सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जीव आच्छादित हो रहा है. यह त्यागनेके योग्य दृष्टान्त है, प्राणीको ऐसा नहीं चाहिये कि, गुणोंसे आवृत हो जाय ॥ ४ ॥ जैसे आठ

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ॥ विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥ सांद्रनीलांबुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥ तडित्वंतो महामेघाश्चंडश्वसनवेपिताः ॥ प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥ तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥

महीनेतक पृथ्वीका जलरूप द्रव्य सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे सोखते हैं और वर्षाऋतु आनेपर बरसावै हैं, ऐसे ही राजाको भी चाहिये कि, सुकालमें प्रजासे कर लेवै और अकालमें उनको अन्न धन देकर पालन करै. यह ग्रहण करने योग्य दृष्टान्त है, राजाको ऐसा ही करना योग्य है ॥ ५ ॥ प्रबल पवनकी झकोरसे बडे बडे मेघ बिजली जिनमें चमकें, विश्वको तप्त देख पुष्टि करनेवाले जीवन (जल) बरसानेलगे. जैसे दयावान पुरुष दुःखी जनोंको देखकर उनको सुखी करनेके लिये दया करके अपने प्राणतक दे देते हैं, तैसे ही बडे मेघ अपने बिजली रूप नेत्रोंसे संतप्त विश्वको देखकर पवनसे चलायमान हो जल बरसाते हैं, यह ग्रहण करने योग्य दृष्टांत है, महात्मा पुरुषोंको ऐसा ही करना चाहिये ॥ ६ ॥ पृथ्वी ग्रीष्मऋतुकी धूपसे अत्यन्त तप्त होकर जो सूख गई थी, इन्द्रने जल वर्षाकर जब उसको सींचा तो फिर

वर्षाऋतुमें फूली और वृक्षोंपर भाँति भाँतिके फूल खिले और फल लगे, ऐसे ही सकाम पुरुष धनकी अथवा पुत्रकी इच्छा करके तप करता है, तब पहिले तो उसका देह दुर्बल होजाता है फिर तपका फल मिलनेंसे उसका शरीर जैसेका तैसा हो जाता है. यह त्यागने योग्य दृष्टान्त है. पुरुषको उचित है कि, सकाम तप न करै ॥ ७ ॥ वर्षाऋतुमें सन्ध्या समय खद्योत (पटवीजने) प्रकाश करते हैं, तारागण प्रकाश नहीं करते । जैसे कलियुगमें पापके प्रभावसे पाखण्डमार्ग चमकते रहते हैं और वेदमार्ग अस्त हो जाते हैं,यह त्याज्य दृष्टान्त है, चतुर पुरुषोंको ऐसा नहीं चाहिये जो पाखण्डमार्गमें प्रवृत्त हों ॥ ८ ॥ वर्षाऋतुमें मेघका गर्जना सुनकर मेंढ़क बोलने लगते हैं, जैसे विद्यार्थी गुरुके सम्मुख मुख बन्द किये चुप बैठे रहते हैं. जब नित्य नैमित्तिक कर्मसे निश्चिंत होकर बोलते हैं, तब आप भी शिष्य अपना पाठ लेकर बैठते हैं. यह ग्राह्य दृष्टांत है कि, विद्यार्थियोंको यही चाहिये कि, गुरु जब अपने कार्यसे निश्चिन्त हो जाय और वह कहै तब आप अपना पाठ पढैं ॥ ९ ॥ क्षुद्रनदी जिनका जल थोडे ही दिनोंमें सुख जाता है, वर्षाऋतुमें जब अधिक जल वर्षता है तब अपनी मर्यादाको छोड छोडकर चारों ओरको उफनने लगती हैं जैसे अजितेन्द्रिय पुरुषका मनधन और ऐश्वर्य पाकर खोटे मार्गोंकी ओरको चलता है और सब ठौरको पांव फैलाता है. यह त्याज्य दृष्टान्त है, ऐसा नहीं चाहिये जो कुमार्गमें अपने मनको चलावै ॥ १० ॥ वर्षाऋतुमें हरी हरी घास उत्पन्न होनेसे लाल लाल वीरबहूटियोंके फिरनेसे उच्छिलीन्ध्र(छत्रिका,जो चौमासेमें छत्रके आकार पृथ्वीमें उत्पन्न होती है, बालक उनको साँपका क्षत्र कहा करते हैं उन)के फूलनेसे और सुंदर सुंदर वृक्षोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी जैसे राजाकी सेना चित्र विचित्र रंगसे सजी हुई छत्रछायावाली दिखाई देती है,यह ग्राह्य दृष्टांत है. राजाओंको ऐसा ही चाहिये; जो हरे लाल मखमलके नये नये बिछौने बिछावैं और

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति न ग्रहाः ॥ यथा पापेन पाखंडा नहि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं
मंडूका व्यसृजन्गिरः ॥ तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्यो
ऽनुशुष्यतीः ॥ पुंसो यथाऽस्वतंत्रस्य देहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिता ॥ उच्छिली
न्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभृत् ॥ ११ ॥

श्वेत श्वेत डेरे तम्बू तान दें ॥ ११ ॥ वर्षाऋतुमें हरे हरे धानोंके खेतोंको देख देखकर किसानोंका चित्त आनन्दित होता था और लाभ हानि दैवाधीन है, इस बातको असत्य समझकर जिन लोगोंने अन्नसंग्रह किया था, उनको क्लेश हुआ: यह त्याज्य दृष्टांत है. ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये जिसमें सबका बुरा चिन्तवन करना पडे ॥ १२ ॥ और जल स्थलके रहनेवाले सब जीव नये जलके सेवन करनेसे सुंदर स्वरूपवान् हो जाते हैं, जैसे हरि भगवान्का सेवन करनेसे हरिजन सुन्दर स्वरूपको पाते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मनुष्यको ऐसा ही चाहिये॥ ॥ १३ ॥ वर्षाऋतुमें समुद्रमें नदी आनकर मिलीं और पवनके चलनेसे तरंगें उठने लगीं, उस समय समुद्रका जल चलायमान हो गया, जैसे चित्त विषयवासनामें और काममें चलायमान हो जाता है. यह त्याज्य दृष्टांत है, योगियोंको ऐसा नहीं चाहिये, जो विषयवासनामें चलायमान हो जायँ॥ ॥१४॥ वर्षाऋतुमें मेघोंकी बुन्दधार पडनेसे पर्वत किञ्चिन्मात्र भी दुःख नहीं मानते, वरन् धुलधुल कर उनकी शिलायें स्वच्छ और

क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम्॥१२॥जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया॥ अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया॥१३॥सरिद्भिः संगतः सिंधुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान्॥ अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥१५॥ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव॥ १६ ॥

उज्ज्वल हो जाती हैं, जैसे जिन मनुष्योंके मन भगवान्में लग रहे हैं, उनके ऊपर कैसा भी कष्ट पड़ें अर्थात् पुत्र मर जाय, धन लुटाय जाय, तनु दुर्बल हो जाय, परन्तु वह कष्टको कुछ नहीं मानते, वरन् यह कहते हैं कि, विपक्षियोंसे पीछा छुटा, यह ग्राह्य दृष्टांत है, मनुष्यको चाहिये कि, विपत्तिमें व्याकुल न होय ॥१५॥ वर्षाऋतुमें तृण और घासके बढ़ जानेसे मार्ग ढक गये और सन्दिग्ध (संदेहयुक्त) हो गये. यह न जान पडता था कि, किस ग्रामका कौनसा मार्ग है, जैसे ब्राह्मण एक वार वेद पढ़के पुस्तक बांधकर रख देते हैं और अभ्यास छोड देते हैं, फिर बहुत दिन उपरान्त पुस्तकको खोलकर देखते हैं तो उनको अनेक प्रकारके संदेह उत्पन्न होते हैं, यह त्याज्य दृष्टांत है, ब्राह्मणोंको ऐसा नहीं चाहिये, जो पढ़नेका अभ्यास छोड़ दें, नहीं प्रातःकाल उठकर अपना नित्यकर्म करें॥ १६ ॥

लोगोंके परमहितकारी मेघ हैं उनमें चलायमान चपला क्षणमात्रको स्थिर नहीं रहती, कभी किसी बादलमें जा चमके है, कभी किसी बादलमें जा चमके है, जैसे ज्ञानी पुरुषोंमें व्यभिचारिणी स्त्री स्थिर होकर नहीं बैठती, कभी किसीके घर कभी किसीके घर, एक पुरुषके घर नहीं ठहरती, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, कभी भूलकर भी व्यभिचारिणी स्त्रीका विश्वास न करे ॥ १७ ॥ वर्षाऋतुमें आकाशमें प्रत्यञ्चा (रोदा) बिना इन्द्रका धनुष शोभायमान दिखाई देता है; जैसे गुणोंके प्रपञ्चमें आत्मा निर्गुण है तो भी अत्यन्त शोभायमान जान पड़े है, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, कि पुरुषको चाहिये कि, ऐसे सुन्दर निर्गुण पुरुषका ध्यान करे ॥ १८ ॥ वर्षाऋतुमें

लोकबंधुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियति माहेंद्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥१९॥ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनंदञ्शिखंडिनः ॥ गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनाऽऽगमे ॥ २० ॥

४४३

अपनी चांदनीसे प्रकाशमान जो मेघ हैं, उनसे आवृत होकर चन्द्रमा शोभायमान नहीं दीखता, मलिनसा दिखाइ देता है, जैसे आत्मासे प्रकाशमान अभिमानसे आच्छादित पुरुष अपने मनमें कहता है कि, मैं हीं ज्ञानी हूँ, मैं ही दानी हूँ, मैं ही शूरवीर हूँ, मैं ही रणधीर हूँ, मैंही पण्डित हूँ, मैं ही सर्वज्ञ हूँ, वही उसमें मलिनता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है, पुरुषको चाहिये कि, अहंकार न करे॥ १९॥ वर्षाऋतुमें ग्रीष्मके तपे हुए मोर मेघोंका शुभागमन देख उनकी प्रशंसामें मनोहर शब्द करते थे, जैसे घरमें सन्तप्त हुए वैराग्यवान् पुरुष महात्मा पुरुषोंके आनेसे हर्षित हो मनोहर वाणीसे उनका आदर सत्कार करते हैं. यह नहीं कि, हम ही भूखे मरे हैं, इनके लिये कहाँसे लावैं ॥ २०[*]॥

---

[*] **शंका**–संसारमें जो गुणी जन हैं, सो सब अपनी स्त्रीके संग दुःखसुख गृहस्थीमें भोगते हैं परन्तु ऐसा किसी गुणीको नहीं सुना कि, उसकी स्त्रीने उसको त्याग दिया हो ! फिर शुकदेवजीने क्यों कहा कि, गुणी प्राणीमें स्त्री बहुत समयतक नहीं ठहरती, जैसे आकाशमें बिजुली अधिक कालतक नहीं ठहरती यह शंका है।

उत्तर–"स्थैर्यन चक्रुः कामिन्यः" इस श्लोकमें शास्त्रके जाननेवाले मुनियोंने कामिनीका स्त्री अर्थ नहीं किया, संसारके सुखकी तृष्णाकी जो अधिक प्रीति है सोई कामिनी है सो तृष्णाकी बहुत प्रतिरूप कामिनी गुणी पुरुषोंमें बहुत कालतक नहीं ठहरती, बहुत काल तक मूर्खोंमें ठहरती है, ऐसा अर्थ श्रीशुकदेवजीने किया है ॥

वर्षाऋतुमें गरमीसे तपे हुए देवतालोग वृक्षरूप धारण किये अपनी मूलसे जल पीपीकर प्रफुल्लित हो हरे हरे लाल लाल नवीन पल्लवोंसे समृद्धिमान् हो रहे हैं. जैसे तपस्या करनेसे मनुष्योंका देह प्रथम तो दुर्बल हो जाता है फिर सुन्दर सुन्दर सुख भोग करनेसे और पुष्टिकारक भोजन मिलनेसे उनका शरीर लाल हो जाता है; यह त्याज्य दृष्टान्त है. मनुष्योंको चाहिये कि, खाने पीनेके लिये तप न करें ॥२१॥ वर्षा ऋतुमें कांटे और कीचसे संयुक्त किनारेवाले सरोवरोंमें चकवी चकवे वास करते थे,जैसे अनेक प्रकारके कर्म करनेकी पीडासे घरोंमें विषयी पुरुष वास करते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्त है. मनुष्यको ऐसा नहीं चाहिये कि, जो सदा घरहीमें शिर दिये पड़ा रहे. नहीं,कुछ कुछ भगवान् वासुदेवका भी भजन करे, जिसमें लोक और परलोक दोनों सुधरें ॥ २२ ॥ वर्षा ऋतुमें जैसे इन्द्रके जल बरसानेसे नदियोंके जलका प्रवाह पुलोंको तोड़ता फोड़ता चला जाता है ओर खेतोंकी मर्य्यादा भी टूट गई, जैसे पाखण्डियोंके शब्द सुनकर कलियुगमें वेदमार्ग टूट जाते हैं. और धर्म कर्म दूर हो जाते हैं यह त्याज्य दृष्टान्त है, मनुष्य पाखण्डियोंके शब्द सुनकर वेदमार्गको न त्याग दे ॥ २३ ॥ वर्षाऋतुमें मेघगण पवनकी प्रेरणासे प्राणियोंपर अमृतकी तुल्य जल वरष रहे थे,जैसे समय समयपर राजा पुरोहितकी प्रेरणासे दान पुण्य करते रहते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है. पुरोहित गुरुजनोंको ऐसा ही चाहिये कि जो प्रेरणा करके यजमान और शिष्योंसे दान करावें और दीन पुरुषोंको दिलावें ॥ २४ ॥ इस प्रकार जहाँ चारो ओर आम,जामुन, खजूर जिस वृन्दावनमें पक रहे थे और इनकी शाखायें पृथ्वीकी ओर ऐसी झुक रही थीं जैसे परोपकारी पुरुष धन पाकर नीचेको झुकते हैं और फूल जो टपक टपककर सुधासम वसुधापर गिरते थे, ऐसा जान पडता था मानो दानी द्रव्यका दान कर रहे हैं और खजूरके वृक्ष ऊँचे ऊँचे ऐसे विदित होते थे जैसे रणभूमिमें शूर खडे हैं,ऐसे शोभायमान

पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ॥ प्राक्क्षामास्तपसा श्रांता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥ सरस्स्वशांतरो
धस्सु न्यूषुरंगापि सारसाः ॥ गृहेष्वशांतकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यंत सेतवो वर्षतीश्वरे ॥
पाखंडिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा॥२३॥ व्यमुंचन्वायुनिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ॥ यथाऽऽशिषो विश्पतयः
कालेकाले द्विजेरिताः॥ २ ४ ॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत्॥ गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः॥२५॥

वनकी शोभा देखकर श्रीकृष्ण बलरामसमेत ग्वालबालोंको संग ले उस वनमें गायें चरानेके लिये गये ॥ २५ ॥ बडे बडे अयनोंके भारी भारी भारसे हौले हौले चलनेवाली गायें जब श्रीकृष्णचन्द्रने नाम लेलेकर प्रीतिसे बुलाईं, तब स्तनोंसे जिनके दूध टपक रहा वह सब गायें दौड दौडकर वृन्दावनविहारीके सन्मुख आनकर खडी होगईं ॥२६॥ वनवासियोंको श्रीकृष्णने देखा, मधु और मकरन्द टपकनेवाली वृक्षोंकी लताओंसे रस टपकता था, गोवर्धन पर्वतसे जलकी धारायें बहती थीं, कहीं कहीं झरनोंसे पानी जो गिरता था उस पानीके शब्दसे ऐसा ज्ञात होता था मानो वृक्ष परस्पर बातें कर रहे हैं, निकट ही गुफायें थीं उनको देख देख ग्वालबाल और नन्दलाल प्रसन्न होते थे ॥२७॥ कहीं कहीं ऐसी वृक्षोंकी खखोडल और पर्वतकी कन्दरा थीं कि, जिनमें पानीकी बूँद भी नहीं जाती थी, जब भारी वर्षा होती थी तो उनहीमें घुसकर बैठ जाते थे और वनके फल फूल खा खाकर प्रसन्न होते थे ॥२८॥ इतनेमें यशोदाने दुपहरका समय देख अपने मनमें समझा कि, मोहन प्यारेको भूख लगी होगी, यह विचार कई एक ग्वालिनियोंके हाथ दही, भात, माखन, मिश्री और अनेक प्रकारके व्यञ्जन थालोंमें धर धरकर श्रीकृष्ण बलरामके पास भेज दिये, सो श्रीकृष्ण सखाओंसमेत यमुनाके निकट ऐसे रमणीक घाटपर गये जहां शिलाके ऊपर ही भात धरकर भोजन करनेयोग्य गोपोंको और बलदेवजीको संग लेकर भोजन करने लगे और उसके स्वादकी सराहना कर करके कभी सखाओंको देते थे और कभी उनके हाथमेंसे लेलेते थे ॥२९॥ उस समय बैल बछरे पेट भर जानेसे हरी हरी घासपर बैठे आंखें मीचे जुगाल कर रहे थे और गायें भी दूधके भारसे थककर बैठी जुगाल कर रही थीं. रामकृष्ण उन गायोंको देख देखकर प्रसन्न होते थे और भोजन करते जाते थे और वारंवार परस्पर कहते थे कि, पावसके समान संसारमें सुख देनेवाली और दूसरी ऋतु नहीं है ॥ ३० ॥

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥२६॥ वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७॥ क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति॥ निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८ ॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलांतिके ॥ संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ॥ २९ ॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥

सब प्राणियोंकी आनन्दकारी और प्रेम प्रीतिकी बढ़ानेहारी पावसमें वृन्दावनकी शोभा और अपनी शक्तिसे युक्त वर्षा ऋतुको देखकर वृन्दावनविहारी वृन्दावनकी प्रशंसा करने लगे कि देखो! वृन्दावनमें वर्षाऋतु कैसी अनुपम शोभा दे रही है ॥३१॥ इस प्रकार ब्रजमें श्याम सुन्दर और बलरामके वास करते करते बादलोंसे रहित निर्मल जल बहानेवाली और मन्द २ त्रिविध पवन चलानेवाली परम सुखदाई शरद ऋतु आई ॥ ३२॥ शरदऋतुमें कमल उत्पन्न होनेसे जल निर्मल और शीतल होगया, जैसे योगीजनोंके चित्त भ्रष्ट होकर योगका अभ्यास करनेसे शुद्ध होजाते हैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त है. योगियोंको यही चाहिये कि, चित्तको शुद्ध करके योगाभ्यास करें ॥ ३३ ॥ वर्षाऋतुमें आकाशमें मेघ रात दिन गर्जते रहते हैं, शरदऋतुमें सब उनका गर्जना बन्द हो गया, वर्षाऋतुमें बहुतसे मनुष्य मिलकर एक स्थानमें रहते हैं, शरहतुमें सब अलग २ हो गये वर्षाऋतुमें ठौर २ कीच होती है, शरदऋतुमें सब भूमि सुहावनी होगई. वर्शाऋतुमें जल गँदला और मैला हो

प्रावृट्छ्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ॥ भगवान्पूजयांचक्र आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतो स्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छांब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३॥ व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पंकमपां मलम् ॥ शरज्जहाराऽऽश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम्॥ ३४ ॥

जाता है, शरदऋतुमें जल स्वच्छ और शीतल होगया. जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वान प्रस्थ और संन्यासी इन चारों आश्रमोंके भगवान्की भक्ति होनेसे सब क्लेश दूर हो जाते हैं. ब्रह्मचारियोंके लिये शिष्य तबहीं लों जल भरा करते हैं, जबलों भक्ति प्राप्त नहीं होती. भक्ति होनेके पीछे जल भरनेका परिश्रम नहीं रहता. जब शिष्यको भक्ति प्राप्त हो जाती है तब उससे गुरु भी सेवा नहीं कराते. इस प्रकार बादलका गर्जना शरऋतुमें बन्द होगया. गृहस्थके हृदयमें जबतक भक्ति उदय नहीं होती तबलों अपनी सन्तानादिकमें मोह ममता रखता है. भक्ति होनेके पीछे एकान्त वास करनेकी इच्छा करता है और सबका संग छोड़ देता है. ऐसे ही प्राणियोंका एक स्थानपर वास है, सो छूट गया. वानप्रस्थको जबतक भक्ती प्रगट नहीं होती तबलों उसका मन मलीन रहता है. भक्ति होनेके पीछे जैसे उसकी मलीनता दूर हो जाती है ऐसे पृथ्वीकी कीच सूख गई और सुहावनी होगई. संन्यासीका कामवासनारूप मल श्रीकृष्ण वासुदेवमें भक्ति होनेसे दूर हो जाता है, ऐसे ही शरदमें जलका

मल दूर हो गया ॥३४॥ शरदृतुमें मेघ अपना सर्वस्व त्याग श्वेत श्वेत रुईके पहलसे दिखाई देते हैं, जैसे धन, दारा, पुत्र और विषयवासनाके दूर होनेसे शान्तस्वभाव मुनीश्वरलोग शोभायमान जान पड़ते हैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मुनिलोगोंको यही चाहिये कि, सब वासनाओंको दूर करें ॥ ३५ ॥ पर्वत अपना कल्याणरूप निर्मल जल कहीं २ को तो झरनोंसे बहाते हैं और कहीं २ को नहीं भी बहाते, जैसे ज्ञानी पुरुष समय समयपर अपना ज्ञानरूप अमृत सुपात्रको देखकर देते हैं और कुपात्रको नहीं देते. यह ग्राह्य दृष्टान्त है, विवेकी पुरुषको यही चाहिये कि, सुपात्र कुपात्रको देखकर उपदेश करे ॥३६॥ शरदृतुमें सरोवरोंमें थोडे जलके रहनेवाले जीव जन्तु नित्य२ घटतें जलको नहीं जान सके जैसे अज्ञानी कुटुम्बी पुरुष घरोंमें रहकर अपनी नित्य क्षीण होतीहुई आयुर्बलको नहीं जानते. यह त्याज्य दृष्टान्त है, कुटुम्बी लोगोंको चाहिये

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥ यथा त्यक्तैषणाः शांता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥३५॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं
कचिन्न मुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥३६॥ नैवाविदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः॥
यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविंदञ्शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः
कुटुम्ब्यविजितेंद्रियः ॥ ३८ ॥ शनैश्शनैर्जहुः पंकं स्थलान्यामं च वीरुधः ॥ यथाऽहंममतां धीराः शरीरादिष्वना
त्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलांबुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥४० ॥

कि, अचेत न हो कुछ परमेश्वरकी ओरका भी चिन्तवन करे ॥ ३७॥ शरदृतुमें थोडे जलके रहनेवाले जलचर सूर्यके तेजसे जल गरम होनेसे दुःखी होगये जैसे कुटुम्बी पुरुष इन्द्रियोंको वशमें न करनेसे दारिद्रता और कृपणतामें रहकर कष्ट भोगते हैं. यह त्याज्य दृष्टान्त है, जो घरमें क्लेश होय तो उस घरको त्याग दे ॥ ३८ ॥ शरदृतुमें सहज सहजमें सब स्थानोंकी कीच सूख गई, लताओंका सब कच्चापन जाता रहा, जैसे मिथ्या देह गेहमें सज्जनपुरुष सहज सहजमें मायाकृत अहंता ममताको त्याग देते हैं, ग्राह्य दृष्टान्त है. ज्ञानी पुरुषको यही चाहिये कि, अभिमानका त्याग कर दे ॥ ३९ ॥ शरदृतुके आनेसे समुद्रका जल निर्मल हो गया जैसे आत्मज्ञान होनेसे महात्मा मुनियोंका पढ़ना लिखना सब छूट जाता है. यह ग्राह्य दृष्टांत है, आत्माके जाननेके पीछे लिखने पढ़नेका क्या प्रयोजन ? ॥ ४० ॥

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापा
न्भूतानामुडुपोऽहरत् ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुंदो व्रजयोषिताम् ॥४२॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥४३॥ अखंडमंडलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो
वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः
॥ ४५ ॥ गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥

शरद्दतुमें खेतवाले किसान लोंगोंने जहां तहां भारी २ मेंडे बांध बांधकर पानी रोकलिया, जैसे योगीराज इन्द्रियरूप द्वारसे जाते हुए ज्ञानको रोक लेते हैं, इंद्रियोंको रोककर फिर मनको रोकते हैं. यह ग्राह्य दृष्टांत है; योगियोंको यही चाहिये कि, ज्ञानको हृदयसे निकलने नहीं दें, इन्द्रियोंको रोककर रखैं ॥ ४१ ॥ शरद्दतुमें सूर्यकी किरणोंके तापको रात्रिके समय चन्द्रमाने उदय होकर दूर कर दिया, जैसे ज्ञान होनेके पीछे देहके अभिमानरूप तापको शांतिरूप चन्द्रमा उदय होकर हर लेता है, ऐसे ही व्रजवासियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र मुकुन्दने दूर कर दिया ॥४२॥ शरद्दतुमें मेघ दूर हो गये, आकाश निर्मल हो गया, तारागणोंके प्रकाशसे आकाश शोभा पाने लगा, जैसे वेदके अर्थको दिखानेवाले सत्त्वगुणी चित्त शोभायमान जान पड़ते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, वही चित्त सुन्दर और शोभायमान है जिसमें वेदके अर्थका ज्ञान है ॥४३॥ शरद्दतुमें समस्त मण्डलसे चन्द्रमा आकाशमें तारागणसहित शोभा देता है, जैसे पृथ्वीमें यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र यादवों समेत शोभायमान जान पड़ते हैं, यह ग्राह्य दृष्टांत है. मनुष्यको चाहिये कि, जैसे चन्द्रमा आकाशमण्डलको प्रकाशित करता है ऐसे ही शांतिरूप चन्द्रमासे हृदयको प्रकाशित करै ॥ ४४ ॥ शरद्दतुमें पुष्पवाटिकाओंके पुष्पोंका स्पर्श करके जो पवन चलता है उसके स्पर्श करनेसे सब प्राणियोंके तनुका ताप दूर हो जाता है, जैसे गोपिकाओंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके स्पर्शसे दूर हो जाता है, यह ग्राह्य दृष्टांत है. मनुष्यको यही चाहिये कि, भगवान्का स्पर्श करके सांसारिक तापोंको त्याग दे ॥४५॥ शरद्दतुमें गायें, हरिणी, पक्षिणी और स्त्रियें पुष्पवती हुईं, इनके

पति उनके पीछे २ कामातुर हो फिर रहे थे. जैसे ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये पुरुष योग, यज्ञ, जप, तप करते हैं, उनके पीछे फल आपसे आप लगे फिरते हैं ॥ ४६ ॥ शरदृतुमें कुमुदिनीके सिवाय और सब प्रकारके कमल सरोवरोंमें फूलते हैं, जैसे चोरोंके सिवाय सब प्रजागण राजाके उदय होनेसे प्रफुल्लित रहते हैं, यह ग्राह्य दृष्टांत है. ऐसा कौनसा मनुष्य है, जो अपने स्वामीको देखकर प्रसन्न न हो ? ॥ ४७ ॥ शरदृतुमें ग्राम और नगरोंमें नवीन अन्नके भोजनका वैदिक उत्सवसे और इंद्रियोंके पुष्टताकारक विवाहादिक लौकिक उत्सवसे और अन्न पकनेसे और श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके क्रीड़ा करनेसे पृथ्वी अत्यन्त शोभायमान दृष्टि आती थी ॥४८॥ वर्षाऋतुके थँभनेसे वणिक, मुनीश्वर, राजा, ब्रह्मचारी यह शरदृतुमें अपने २ कार्यमें लगा गये, बनिये अपने २ व्यवहारके लिये देश देशांतरोंको जाने लगे. साधु संन्यासी तीर्थयात्राओंके जाने का प्रबन्ध करने लगे, राजा लोग अपनी चतुरंगिणी सेना ले शत्रुओंके विजय करनेको चल दिये, ब्रह्मचारी विद्या पढ़नेके लिये पाठशालओंको चलने लगे, जैसे मंत्र और योगादिसे सिद्ध महात्मा आयुके बन्धनसे रुक रहे हों; वह समय आनेपर दिव्य देह पाते हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां प्रावृट्शरदृतुवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—इकिसमें वृन्दाविपिन, गये श्याम सुखधाम । वेणुगीत गोपीनको, वर्णत शालिग्राम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! शरदऋतुमें निर्मल कमलोंकी सुगन्धयुक्त पवनवाले वृन्दावनमें गाय बछडे और ग्वालबालोंको संग ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनमें गये ॥ १ ॥ फूली हुई वनकी पंक्तियोंके

उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामे त्वाग्र
यणैरैंद्रियैश्च महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पक्कसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्या
र्थान्प्रपेदिरे ॥ वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिंडान्काल आगते ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० म० दश०पू० प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम
विंशोऽध्यायः ॥२०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥ न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपाल
कोऽच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरस्सरिन्महीध्रम् ॥ मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशु
पालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

सौरभसे मतवाले भौंरे और पक्षियोंके समूहके शब्दसे सरोवर, नदी, पर्वत गूँज रहे थे, ऐसे सुन्दर मनोहर वृन्दावनमें बलराम और ग्वालबालोंसहित जाकर मुरली बजाने लगे और गायें बछरे चरनेको छोड दिये॥ २॥प्रमदात्मक कामका प्रकाश करनेवाला वंशीका शब्द सुनके कई एक ब्रजबाला श्रीकृष्णके पीछे अपनी सखियोंके सामने उनकी प्रशंसा करने लगीं ॥ ३ ॥ हे महराज ! जिस समय कुछ कहनेका प्रारम्भ किया, उसी समय मनमोहनी मनमोहनकी छबिका स्मरण हो गया. उस छबिका स्मरण होते ही कामदेवने उनके मन व्याकुल कर दिये, इसलिये उनसे श्यामसुन्दरकी कांतिका कुछ वर्णन नहीं हो सका ॥ ४ ॥ मोरपुच्छोंका मुकुटशीशपर धरके काछनी काछके कानोंमें कनेरके पुष्प धारण करके सुवर्णके सदृश पीतपट ओढ़कर कण्ठमें वैजयन्ती और बनमाल धारण कर नटवररूप बनाकर बाँसुरीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करते गोपोंके समूह जिनकी कीर्ति वर्णन करें, वह श्रीवृन्दावनविहारी अपने चरणारविन्दोंके चिह्नसे रमणीक वृन्दावनमें

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥ तद्वर्णयितुमा
रब्धाः स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णि
कारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयंतीं च मालाम् ॥ रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दैर्वृंदारण्यं स्वपदरमणं
प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥५ ॥ इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयंत्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥

गये. नटवर वेष बनानेका आशय यह है कि,तुमको नृत्य दिखानेके लिये मैंने यह वेष बनाया है और कनेर पुष्प कानमें धरनेका कारण यह है कि, जब गोपियोंकी बात कानमें सुनाई न आवे तो कानोंमें अत्यन्त सन्ताप होगा तब कानोंको शीतल करनेके लिये पुष्प धारण किये हैं; और पीताम्बर धारण करनेका कारण यह है कि,राधा प्यारीका शरीर ऐसा ही पीतवर्णहै इसको देखकर प्रीतमप्यारीके शरीरकी सुधि आती रहेगी, दूसरे प्यारीकासा पीतरंग मेरे हृदयसे लगा रहेगा और वैजयन्ती और वनमाला हृदयपर पडे रहनेका अभिप्राय यह है कि प्यारीके वियोगका जो विरहानल है उसे शान्त करती रहैं, गोपियोंने चरणचिह्नयुक्त मनोहर वृन्दावन जानकर वृन्दावनमें प्रवेश किया. ऐसा सुन्दर मनमोहनका मनमोहन रूप देख धैर्य्य धर जैसे तैसे कर एकसे एक कहने लगीं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सब जीवोंके मनकी मोहने

वाली मनमोहनकी बाँसुरीकी टेर सुनकर व्रजबाला परस्पर इसकी प्रशंसा करने लगीं. प्रशंसा करती ही करती परमानन्द रूपके सागरमें मग्न हो मुरलीमनोहरका मनसे आलिंगन करती थीं ॥ ६ ॥ गोपी कहने लगीं हे सखियो ! उनहीं नेत्रवान् पुरुषोंके नेत्र संसारमें धन्य हैं और हम दूसरेको धन्यवाद नहीं दे सकतीं, जिन्होंने सखाओंसमेत गायोंको चराते मुरली बजाते प्रेम भरे कटाक्ष चलाते श्रीकृष्ण बलदेवका मुखारविन्द देखा है वही धन्य हैं ॥ ७ ॥ दूसरी सखी बोली कि, आमके पल्लव मोरपुच्छ फूलोंके गुच्छे (उत्पल) कमलोंकी मालाऔंसे देदीप्यमान नीलांबर पीतांबरोंसे चित्र विचित्र वेष धारण किये, श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्वालमण्डलीमें गाते हुए ऐसे शोभायमान जान पडते थे जैसे रंगभूमिमें दो नर नाटक कर रहे हैं ॥ ८ ॥ तीसरी गोपी बोली कि,हे सखियो ! इस बाँसुरीने ऐसा कौनसा तप किया है

गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये
विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदरा
धरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः॥९॥ वृंदावनं
सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदांबुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविंदवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यस
मस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥

कि, जिसके पुण्यके प्रभावसे हमारे पीने योग्य अधरामृतके रसको यह आप ही अपनी इच्छापूर्वक पी रही है. जिन सरोवरोंके जलसे इस बाँसुरीके बाँसोंको सींचा है उन सरोवरोंमें कमल नहीं फूलते मानो आनन्दसे रोमांच हो आये हैं और जिन वृक्षोंके वंशमें इस बाँसुरीके बाँस उत्पन्न हुए हैं उन वृक्षोंमें मद नहीं टपकता, मानो आनन्दके आंसू बहाते हैं. क्यों ? वह अपने आपको धन्यवाद देते हैं कि, धन्य हमारे भाग्य जो हमारे वंशके बाँसोंमें ऐसी बाँसुरी उत्पन्न हुई कि, जो आठो पहर श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दके मुखारविन्दसे लगी रहती है,जैसे श्रेष्ठ मनुष्य अपने कुलमें सुपुत्रको भगवान्का भक्त देखकर आनन्द मान नेत्रोंसे आँसू बहाते हैं॥९॥चौथी सखी बोली कि,

हे आली ! यह वृन्दावन सुरपुरसे भी अधिक पृथ्वीका यश विस्तारकर रहा है. धन्य है यह पृथ्वी जिसपर ऐसा परमानन्दवृन्दावन परमायक धाम है, जिसमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्द धरनेसे जिसको और भी अधिक शोभा प्राप्त हुई. और इस वृन्दावनमें जिस समय मुरलीमनोहरकी मुरलीका शब्द होता है, उसको मन्द गर्जनेवाली श्यामघटा जानके मोर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, उनका अनुपम नाच देखकर सब जीव जन्तु निश्चल होकर बैठ जाते हैं, ऐसा परमानन्द किसी और दूसरे लोकमें भी सुना है ? कहीं नहीं, यह पूर्णानन्द वृन्दावनमें ही है ॥१०॥ पांचवीं सखी बोली कि, हे सजनी ! यह पशु जाति मूर्ख हरिणी भी धन्य हैं कि जो मुरलीका शब्द सुन अपने पतिके संग विचित्र वेष किये वृन्दावनविहारीका स्नेहकी चितवनसे सन्मान करै हैं और हमारे पति तो ऐसे निर्दयी हो गये, हमको उनका दर्शन भी नहीं करने देते ॥ ११ ॥ छठी सखी बोली कि, हे प्यारी ! यह तो अद्भुत बात सुनो ! स्त्रियोंके आनन्दका देनेवाला श्यामसुन्दरका

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नंदनंदनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां
दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥११॥ कृष्णं निरीक्ष्य विनितोत्सवरूपवेषं श्रुत्वा च तत्कणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो
विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्त
भितकर्णपुटैः पिबंत्यः ॥ शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशंत्यः ॥१३ ॥
प्रायो बतांब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालाञ्शृण्वं
त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

मनोहर रूप देखकर और उनकी बजाई बाँसुरीकी मनोहर ध्वनि सुनकर विमानोंमें बैठ गमन करती हुई देवताओंकी स्त्रियें यद्यपि अपने पतियोंकी गोदीमें बैठी हैं, तो भी कामदेवके बाणोंके लगनेसे ऐसी व्याकुल हो गईं कि, उनके शिरके बालोंमेंसे पुष्प गिर जाते हैं और नीवी खुली जाती हैं, जब देवांगना ही मनमोहनके स्वरूपको देखकर मोहित हो गईं तो फिर हम मोहित हो गईं तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥१२॥ श्रीकृष्णप्यारेके मुखमे निकलते हुए बाँसुरीके गीतरूप अमृतको गायें बछडे कानरूप पात्रोंसे ऊपरको उठा उठाकर पीते हैं और श्रीकृष्णचन्द्रको दृष्टिसे आलिंगन करते प्रेमके आंसू बहाते चित्रके समान लिखेसे खड हैं, बछडोंके मुखमें दूधके थन और गायोंके मुखमें घासके तृण मुखके मुखमें ही रह जाते हैं ॥ १३ ॥ हे माता ! इस वनमें जो पक्षी हैं सो सब मुनीश्वर हैं, जो मनोहर पत्रवाले वृक्षकी शाखाओंपर

८५०

ठकर नेत्रोंको मूँद मौन साध श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेका दर्शन करै हैं और बाँसुरीके मनोहर गीतोंको सुनै हैं, क्योंकि मुनि लोग भी भगवान्के दर्शनके लिये काम कर्मको त्याग वेदकी शाखाओंके आश्रित हो उनके विशालरूप कर्मोंका गुण ग्रहण कर सुखी हो मौन साध भगवान्के गुणानुवाद सुना करते हैं,इससे उसकी समतावाले यह पक्षीभी मुनिजन ही जान पड़तेहैं॥१४॥चैतन्य जीवोंकी दशा जो कुछ थी सो तो थी ही,परन्तु मुकुन्द भगवान्की बाँसुरीकी टेर सुनकर नदियोंमें भी भ्रमर पडते हैं.उनसे यह सूचित होता है कि,यह भ्रमर नहीं पडते, हमारे

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णंति
पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह रामगोपैः संचारयंतमनुवेणुमुदीरयंतम् ॥
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्ववपुषांबुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥

हृदयमें कामदेवके गढे पडते हैं,मानो जल स्तम्भित हो आलिंगन करके आच्छादन करता है.ऐसे ही लहररूप हाथोंसे कमलके पुष्प भेंट लेले के मुरारी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दको समर्पण करैहैं *॥१५॥ बलदेवजीको और ग्वालबालोंको संग लेकर धूपमें व्रजकी गायोंको चराते मुरली बजाते अपने प्यारे मित्र घनश्यामको देख श्यामघन उनपर छत्र छायाकर नन्ही नन्ही बूँदोंकी वर्षा करनै लगे.क्योंकि,सच्चा मित्र श्यामसुन्दरका

---

* दृष्टांत-चार भंगेडी नशेमें चूर होकर आपसमें कहने लगे कि,राजाके आदमी कितने होंगे?एक रणधीरसिंह बोला फलाने परगनेमें राजाके आदमी एक लाख हैं, दूसरा व्रजपालसिंह बोला,फलाने परगनेमें पन्द्रह लाख आदमी हैं,तीसरा सरदारसिंह बोला कि, फलाने परगनेमें राजाके पचीस लाख आदमी हैं.चौथा बलवन्तसिंह बोला फलाने परगनेमें पचास लाख आदमी हैं और नौ लाख यहां हैं,सब एक करोड १००००००० हुए अब इनका खर्च विचारो कि,सालभरमें कुछ खजानेमें बचता है वा नहीं.एक बोला पचास लाख तो फौजका खर्च है,दूसरा बोला पचीस लाख महलमें उठै है. तीसरा बोला दशलाख इमारतमें उठै है,चौथा बोला पन्द्रहलाख वस्त्र आभूषणम उठै है,इस हिसाबसे खजानेमें कुछ नहीं पडता।यह बात राजाके दूत सुनरहे थे,राजकाजकी बातें सुन राजाको परचा लिख दिया.राजाने मन्त्रीको बुलाकर खर्चका हिसाब बूझा तो सब उन्हीके कहनेके अनुसार ठीक निकला.राजाने उन चारों भंगेडियोंको बुलाकर बूझा कि, हमारे घरकी बात तुमने कैसे जानी? हमको ऐसा मालूम पडता है कि तुम हमारे खजाञ्चीसे मिले हुए हो! भंगेडी बोले कि न हम चोर न आपके भंडारीसे मिले हुए हम तो भंगके नशेमें अपनी बातें कर रहे थे सो आपही.विधि मिलगई होगी,देखो चार कौडीकी भंगके नशेमें राजाके घरका बन्दोबस्त बांध दिया॥और गोपी तो अपोक श्रीकृष्णका प्रेमामृत पी रही थीं जो कृष्णरूपका प्रबंध बाँध दिया तो क्या बडी बात है।

मेघ ही है देखो कृष्णका भी श्याम रंग और मेघोंका भी श्याम रंग, कृष्णके भी पीत वस्त्र और मेघोंके भी पीत बिजली, कृष्णके मुक्तामाल और मेघोंके बगपाँति, कृष्णकी मुरली गर्जै और मेघ आप ही गर्जै, कृष्ण अमृतकी वर्षा करैं और मेघ जलकी वर्षा करैं, कृष्ण वनमें घूमैं और मेघ आकाशमें घूमैं, कृष्णपर भौंहोंके धनुष हैं मेघोंपर इन्द्रका धनुष है, कृष्णके और मेघके सब लक्षण एकसे मिलते हैं॥ १६ ॥ और सखी बोली आली ! हमसे तो यह बनकी भीलनी भी धन्य हैं, क्योंकि प्रियाके स्तनोंमें जो कि, चर्चित केशर, कस्तूरी जब रतिके समय कृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगी और वह चरण अरुणाई लिये जब बनमें विहार करते समय घासमें लगे हैं, उनको देख कामातुर भीलनी उस केशर और कस्तूरीको घासपरसे लेलेकर अपने मुख और स्तनोंपर लगा लगाकर कामाग्निके तापको शान्त करती हैं, हे सखी ! हमारे भाग्यमें तो

पूर्णाः पुलिंद्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुकुमेन दयितास्तनमडितेन॥तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आनन कुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७॥ हंतायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ॥ मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकंदमूलैः ॥ १८ ॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥ अस्पंदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

इतना भी नहीं जो किसी प्रकार अपनी कामाग्निको शान्त करें ॥ १७ ॥ एक गोपी और बोली कि, हे अबलाओ ! हे सहेलियो ! यह गोवर्द्धन पर्वत भगवान्‌के भक्तोंमें कोई परमभक्त जान पड़ता है, क्योंकि इसके ऊपर बलराम और घनश्यामके चरणारविन्द लगनेसे तृणादिक जो उपजते हैं वह तृणादिक नहीं होते, मेरी समझमें ऐसा आता है, कि इसके रोम खडे हो रहे हैं और अपने आनन्दमें मग्न है, कृष्ण बलरामको अपने ऊपर आता देख, उनको शीतल जल, हरी घास, कन्द मूल फल भेंट करके उनका आदर सत्कार करता है ॥ १८ ॥ एक और बोली, हे सखियो ! ग्वालबालोंको संग लेकर कृष्णचन्द्र बलराम जब वृन्दावनमें गायें चराते हैं और सब त्रिलोकीके मोहनेवालीको

मधुर ध्वनिसे बजाते हैं, तब इस मनोहर बाँसुरीका शब्द सुनके सब जंगम स्थावरकी नाईं स्थिर हो जाते हैं अर्थात् जहाँके तहाँ खडेके खडे रह जाते हैं, अपने आनन्दमें मग्न हैं और वृक्षोंकी जंगमोंकीसी गति है, अर्थात् इनके रोमांच हो जाते हैं। हे सखी ! यह अद्भुत आश्चर्य है, न आजतक कहीं आँखोंसे देखा और न कानोंसे सुना, परंतु इतनेपर भी बलराम और नन्दलाल अपना ग्वालपन दर्शा रहे हैं, कैसे ? गायदोहनके समय गायोंके बाँधनेकी रस्सी शिरसे बाँध रहे हैं और पांशी कन्धेपर धर रहे हैं,उस समयकी कुंजविहारीलालकी शोभा वर्णन करनेको किसका सामर्थ्य है ?॥ १९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! इस प्रकार वृंदावनमें विहार करनेवाले वृन्दावनविहारीके चरित्रोंको गोपी परस्पर वर्णन करती करती कृष्णमय हो गईं ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे

एवंविधा भगवतो या वृंदावनचारिणः ॥ वर्णयंत्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः॥ २० ॥ इति श्रीभाग० महा० दशमस्कन्धे पू० श्रीकृष्णवेणुगीतवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हेमंते प्रथमे मासि नंदव्रजकुमारिकाः ॥चेरुर्हविष्यं भुंजानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्यांभसि कालिंद्या जलांते चोदितेऽरुणे ॥ कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥ गंधैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतंडुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नंदगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ ४ ॥

पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां वेणुगीतवर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ दोहा--बाइसवें अध्यायमें, वरणौं वीरचरित्र । गोपिनको वरदान दे कीन्हो यज्ञ पवित्र ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! हेमन्तऋतुमें पहिला जो अगहन है उसमें सोलह सहस्र गोपकुमारी कन्याओंने मूंगभातका भोजन करके कात्यायनी देवीका व्रत करना आरम्भ किया ॥१॥ और व्रत करके सूर्योदयके समय यमुनाजलमें स्नान कर तटपर बैठ बालूकी कल्याणी देवीकी प्रतिमा बनाकर ॥ २ ॥ चन्दन, सुगन्ध, फूल, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत और छोटी बड़ी सामग्रियोंसे देवीकी पूजा करती थीं॥ ३ ॥ हे कात्यायनी देवी ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरी ! हे देवी ! नन्दरायगोपके सुतको हमारा पति बना, हम वारंवार तुमको नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥

वह सब गोपकुमारिका इस मंत्रका जप करके पूजा किया करतीं. इसी प्रकार उनको पूजन करते करते एक महीना व्यतीत हो गया, श्रीमन मोहनमें उनका मन दिन रात लगा रहता था ॥५॥ और नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर यही वर माँगती थीं कि, हमको नन्दकुमार श्यामसुन्दर वर मिले, इस प्रकार एक एकका नाम ले पुकार पुकारकर परस्पर हाथ पकड़ पकड़कर ॥ ६ ॥ उच्चस्वरसे अपने प्राण प्यारे यशोदानन्दनका नाम लेती और गुणानुवाद गाती यमुनाजी पर स्नान करनेको जाया करतीं ॥ ७ ॥ एक दिन पहिलकीसी नाईं यमुनाके किनारेपर अपने अपने वस्त्र उतारकर सबने धर दिये और श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गान कर करके यमुनाजलमें विहार करने लगीं. तब योगे

इति मंत्रं जपंत्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः॥५॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नंदसुतः पतिः ॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ॥६॥ कृष्णमुच्चैर्जगुर्यांत्यः कालिंद्यां स्नातुमन्वहम् ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ ७ ॥वासांसि कृष्णं गायंत्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ८ ॥ वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ ९ ॥ हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम्॥१०॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ ११ ॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ १२ ॥

श्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके मनोरथ जानकर ॥ ८ ॥ अपनी मण्डलीके सखाओंको संग लेकर उनकी मनोकामना सिद्ध करनेके लिये यमुनाके किनारेपर पहुँचे और उन कन्याओंके वस्त्र लेकर झटपट कदंबपर चढ गये ॥ ९ ॥ और बालकों समेत आप ठट्ठे मार मारकर हँसने लगे और अनेक प्रकारकी मसखरीकी बातें करने लगे कि, हे अबलाओ । हमारे समीप आओ और अपने वस्त्र ले जाओ ॥ १० ॥ इस समय मैं ठठोलीसे नहीं कहता, सत्य कहता हूं. इस बातको मेरे सखा सब प्रकारसे जानते हैं तुम व्रत करनेसे बहुत दुर्बल हो गई हो॥ ११॥ मुझे कुछ दुर्भाव और आग्रह नहीं है, तुम एक एक मेरे सन्मुख आती जाओ और अपने अपने वस्त्र लेती जाओ, चाहे सब मिलकर

श्रीकृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी भगवान् दामोदरने उन अबलाओंके व्रतका संकल्प जान लिया कि, इन गोपिकाओंने मेरे चरणस्पर्शकी चाहनासे यह व्रत किया है ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे सुशीलाओ ! जिसलिये तुमने मेरा व्रत किया है उस मनोरथको लाजकी मारी तुम नहीं कहतीं, परन्तु तो भी मैंने तुम्हारे मनोरथको जानलिया और मैंने तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन किया, इसलिये तुम्हारा मनोरथ सत्य होगा ॥ २५ ॥ हे मनोरंजिनी ! अपने अपने घर जाओ, मुझमें मन लगानेवालोंकी कामना विषयभोगके लिये नहीं होती, जैसे भुना हुआ अन्न दूसरी बार उपजनेके योग्य नहीं रहता ॥ २६ ॥ हे पूर्णव्रत करनेवालियो ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा. हे पतिव्रताओ ! जिस प्रयोजनके लिये तुमने यह व्रत किया और कात्यायनीदेवीकी आराधना की सो मैंने जाना, अब जब शरदृतुकी रात्रि आवैगी तब तुम सब

तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः
साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ न मय्यावेशितधियां कामः
कामाय कल्पते ॥ भर्जिता कथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ २६ ॥ याताऽबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ॥
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥
ध्यायंत्यस्तत्पदांभोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः ॥ वृन्दावनाद्गतो दूरं
चारयन् गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥ आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह
व्रजौकसः ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण हे अंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ॥ विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥

मेरे संग विहार कीजियो, अब तुम इस समय अपने २ घरको जाओ ॥ २७ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, जिन गोपियोंकी मनोकामना पूर्ण हो गई वह गोपी भगवान्‌की आज्ञा मान और उनके चरणकमलका ध्यान करती हुई अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने अपने घरोंको चली गईं और उसी दिनसे आठो पहर यही मनाती थीं कि, वनमालीके संग परमसुख देनेवाली शरदृतु कब आवेगी ॥ २८ ॥ तब देवकीनन्दन श्रीकृष्ण भी ग्वालबालोंको संग ले गायें चराते बलदेवजी सहित वृन्दावनसे भी और आगे बढ़गये ॥ २९ ॥ बडी तीक्ष्ण ग्रीष्मकी धूपमें अपनी छायासे छाया करनेवाले सघनवृक्षोंको देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मित्रोंसे कहा कि ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण ! अंशो ! हे श्रीदामन् !

हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेजस्विन् ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ॥ ३१ ॥ इन बड़भागी वृक्षोंको देखो तो यह कैसे भाग्यशाली हैं और सदा परोपकारके लिये एकान्तमें वास करते हैं, पवन, वर्षा, शीत, घाम आप सहते हैं और हमको इनसे बचाते हैं ॥ ३२ ॥ अहो इन वृक्षोंका जन्म धन्य है, जिनसे हम सब लोग सुख पाते हैं और इनसे प्राणियोंकी जीविका है. जैसे किसी मनुष्यके पाससे याचक विमुख नहीं जाता ऐसे ही इन वृक्षोंके समीप आकर प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ इस संसारमें यह पत्र, फल, फूल, छाया, जड़, वल्कल, लकड़ी, सुगन्ध, गोंद, भस्म, कोयला, कोंपल आदिसे सब प्राणियोंकी मनोकामना पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इस संसारमें इन्हीं देहधारियोंका जन्म सफल

पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकांतजीवितान् ॥ वातवर्षातपहिमान्सहंतो वारयंति नः ॥ ३२ ॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्येव येषां वै विमुखा यांति नार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ॥ गंधनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ॥ ३४ ॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥ ३६ ॥ तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ॥ ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्या उपवने कामं चारयंतः पशून्नृप ॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णकृतगोपीवस्त्रापहरणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

है, जोकि प्राण, धन बुद्धि, और वाणीसे परायेका भला ही करते हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार हरे हरे पात, गुच्छे, फल, फूल, कोंपलोंके समूहोंसे जिनकी शाखा झुक रही हैं, उन वृक्षोंके बीचमें होकर श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाकी ओरको गये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! उस यमुनाके तीर ग्वालबालोंने निर्मल जल मंगलरूप गायोंको पिलाया और आप भी पिया ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! उस यमुना महारानीके किनारेपर गायोंको चराते हुए ग्वालोंको जब क्षुधा लगी तब घनश्याम बलरामजीके पास आनकर यह बात कहने लगे ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां चीरहरणलीलावर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

एकबार ले जाओ और जबतक तुम ऐसा न करोगी, मुझे अपने बाबा नन्दकी सौगन्ध है तुम्हारे वस्त्र कभी न दूंगा ॥ १२ ॥ मनमोहनप्यारेकी मीठी मीठी बातें सुनकर गोपियें प्रेममें मग्न हो गईं और लज्जित हो परस्पर देख देखकर हँसने लगीं कि, विना वस्त्र नंगी किस प्रकार जलसे बाहर निकलें ? यह शोच विचार कण्ठतक शीतल जलमें जाडेकी मारी खडी खडी काँप रही थीं। जब बहुत देर गई तब गोपिका बोलीं ॥१३॥ हे कृष्णचन्द्र ! अन्यायकी वार्ता न करो तुम नंदजीके प्यारे पुत्र हो यह हम जानती हैं, हे प्यारे ! शीतसे दुःखित हम सब कांपरही हैं इसलिये हमारे वस्त्र देओ ॥ १४॥ हे श्यामसुन्दर प्यारे ! हम तुम्हारी दासी हैं, जो तुम कहोगे सोई करेंगी, परन्तु हमारी

व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः॥एवं ब्रुवति गोविंदे नर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः॥आकंठमग्नाः शीतोदे वेपमाना स्तमब्रुवन्॥१३॥माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नंदगोपसुतं प्रियम्॥ जानीमोऽग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः॥१४॥ श्यामसुंदर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवत्यो यदि मे दास्यो ममोक्तं वा करिष्यथ ॥ अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छंतु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥

९८३

लाजके ग्राहक मत बनो, जब लाज ही जाती रही तो फिर शेष क्या रहा ? हम आपके सामने निर्लज्ज होना नहीं चाहतीं, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, वस्त्र हमारे देदो नहीं हम नन्दरायसे अथवा राजा कंससे जाकर कहेंगी ॥१५॥ गोपियोंकी रोषभरी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि, जो तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना तुमको अंगीकार है तो हे मन्दमुसकानवालियो ! तुम यहाँ आनकर अपने वस्त्र ले जाओ ॥ ॥ १६ ॥ जब कुछ उपाय न चल सका तब हारकर शरदीकी मारी काँपती हुई संकोच करती सम्पूर्ण गोपिका दोनों हाथोंसे अपने कुच औ

भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ॥ स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ॥ बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्वा विवस्त्राऽऽप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥ तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः॥२१॥दृढं प्रलब्धा त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ॥ वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन् प्रियसंगनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥

योनिको ढक,जलसे बाहरको आईं, तब श्यामसुन्दर बोले कि, "दोनों हाथ जोडकर सूर्यनारायणको प्रणाम करो" ॥ १७ ॥ उनके शुद्धभावको देखकर श्रीकृष्णमहाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको शुद्ध कन्या कुमारी देखकर उनके वस्त्र कन्धोंपर धर मन्दमन्द मुसकान प्रीतिपूर्वक बोले ॥ १८ ॥ कि, हे शशिवदनियो ! तुमने जो व्रत करके नंगी हो यमुनाजलमें स्नान किया यह वरुणदेवताका अपराध हुआ, उस पापके दूर करनेके लिये हाथ जोड़ माथेसे लगाय पृथ्वीमें प्रणाम करके अपने अपने वस्त्र पहन लो ॥ १९ ॥ व्रजबालाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी यह बातें सुन वस्त्र त्यागके नग्न स्नान करनेका व्रत खण्ड करनेवाला मानके उसके पुर्ण करनेके लिये व्रतके और सब कर्मोंके फलदायक श्रीकृष्णभगवान्‌को नमस्कार किया, क्योंकि वही सर्व पापोंके दूर करनेवाले हैं ॥ २० ॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अधीनता करनेवाली गोपियोंको देखकर उनके वस्त्र दे दिये ॥ २१ ॥ उनके संग बहुत छल किया, लाज उनकी छुटाई,हँसी उनकी करी, खिलौनेकी नाईं उन्हें खिलाया, वस्त्र उनके चुरा लिये,तो भी उन गोपियोंने कृष्णको दोष नहीं दिया,क्योंकि उनको अपना प्राणनाथ समझकर उनके संग परमानंद मान रहीं थीं ॥ २२॥ अपने अपने वस्त्र पहिर प्यारेके संग ऐसी वशीभूत हो गईं और उनके चित्त हर गये, श्रीकृष्णकी ओर खडी खडी देखती ही देखती ऐसी विकल हो गईं कि, वहांसे चलने तककी सामर्थ्य न रही ॥ २३ ॥

दोहा–तेइसवें अध्यायमें, माँगो हारि जस अन्न। विप्रनने दीनों नहीं, दियो नारि ते धन्न ॥ १ ॥

हे राम! हे राम! हे महापराक्रमी! हे कृष्ण! हे दुष्टोंके संहार करनेवाले! अब भूख हमको बहुत सताती है आप इसके शान्त करनेका कोई उपाय करो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! गोपोंने जब श्रीकृष्णसे इसप्रकारकी प्रार्थना की तब देवकीनन्दन भगवान्ने अपनी भक्तिवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके ऊपर प्रसन्न होकर यह कहा ॥२॥ हे सखाओ! वेदके पढ़नेवाले मथुरावासी ब्राह्मण स्वर्गकी इच्छा करके आंगिरस नाम यज्ञ कर रहे हैं, देवताओंका पूजन जहाँ हो रहा है वहाँ जाओ ॥३॥ हे गोपो! वहाँ उस यज्ञमें जाकर भात माँग लाओ और जो तुमको भात माँगते लज्जा लगती हो तो तुम मेरा और मेरे भाई बलरामका नाम लेना कि, उनके भेजे हुए हम तुम्हारे पास भोजन माँगने आये हैं ॥ ४ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णभगवान्की आज्ञा मानकर वह गोपलोग वैसे ही भोजन माँगनेलगे और ब्राह्मणोंको हाथ जोड पृथ्वीमें पडकर दण्डवत् कर कहा ॥ ५ ॥ हे भूमिदेव! हमारी बात सुनो, श्रीकृष्णमहाराजकी कृपासे सदा आपके यहां ऐसा ही मङ्गल होता रहै; हम श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं और जातिके गोप (अहीर) हैं, श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार बलदेवजीके भेजे हुए हम आपके पास आये हैं सो आप उनको जानते ही होंगे ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गायें चरानेको आपके निकट ही आये हैं और इस समय उनको भोजनकी इच्छा है और अधिक भूखे हैं, इसलिये आपसे भातकी

गोपा ऊचुः ॥ राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्ति कर्तुमर्हथः ॥ १ श्रीशुक उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्रमांगिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ॥ कीर्तयंतो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचंत ते तथा ॥ कृतांजलिपुटा विप्रान् दंडवत् पतिता भुवि ॥ ५ ॥ हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ॥ प्राप्ताञ्जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयंतावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमार्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥

यहां भात है, यदि आपकी श्रद्धा हो तो मांगनेवाले कृष्ण बलरामको भोजन दे
चाहना है. हे ब्राह्मणो। हे धर्मके जाननेवालोंमें उत्तम ! तुम्हारे
दीजे ॥७॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणो ! तुम चुप क्यों हो रहे? जो तुम कहो कि, हम यज्ञके करनेवाले दीक्षित हैं, उनको हमारा भोजन करना नहीं चाहिये
तो वहां यह विचार है कि, दीक्षाके आरम्भसे लेकर पशुके हिंसनसे पहिले सौत्रामण्य यज्ञसे और ठौर दीक्षावालेके अन्न खानेसे कुछ दोष नहीं
लगता. सो पशुका हिंसन तुम्हारे यहां हो चुका है, सौत्रामण्य यज्ञ आपके है ही नहीं, सो आपके अन्न भोजनमें हमको किसी प्रकार दोष
नहीं है ॥८॥ इस प्रकार गोपोंने उनको शास्त्रानुसार समझाया भी, परन्तु तो भी वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी बातको सुनी अनसुनी
कर गये, क्योंकि वह ब्राह्मण, क्षुद्रफलवाले स्वर्गके जानेकी इच्छा कर रहे थे, वह क्लेशकारी कर्ममें अपनी मूर्खतासे लग रहे थे और अपने
आपको बड़ा ज्ञानी और महात्मा जानते थे ॥ ९ ॥ देश, काल, अलग २ चरु पुरोडाशादिक सामाग्री, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता,

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भग
वद्याच्ञां शृण्वंतोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥९॥ देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्रतंत्र
र्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवंतमधोक्षजम् ॥ मनुष्यदृष्ट्या
दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥११॥ न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्ण
रामयोः ॥ १२ ॥ तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥

यजमान, यज्ञ, धर्मफल यह सब कृष्णमय हैं ॥ १० ॥ सो इंद्रियोंसे परे साक्षात् परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको उन कुत्सितबुद्धिवाले
मूर्ख देहाभिमानी देहको ही आत्मा माननेवाले ब्राह्मणोंने अज्ञानवश हो उनको कुछ भी नहीं पहिचाना, मनुष्य ही जानके अवज्ञा करी ॥ ११ ॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परंतप ! उन ब्राह्मणोंने चुप साध ली, न तो अपने मुखसे हां की और ना न की. तब गोप निराश होकर
लौट आये और श्रीकृष्ण, बलरामके पास आकर कहा कि, भले ब्राह्मणोंके पास भेजा, उन्होंने कुछ भी नहीं दिया, देखो हमारा अपमान
भी हुआ और भोजन भी नहीं मिला, अब क्या उपाय करें ? भूखके मारे तो प्राण निकले जाते हैं ॥ १२ ॥ जगदीश्वर श्रीकृष्णभगवान्
इस बातको सुनकर हँसे और फिर गोपोंसे कहा कि, कार्यवालेको निराश होना नहीं चाहिये और मांगनेवालेको मान कहां ? क्योंकि उसका

मान तो सदैव ही भंग रहता है । लौकिकरीति दिखलानेके लिये फिर श्रीकृष्णचन्द्रने गोपोंसे कहा कि ॥१३॥ अब तुम फिर जाओ और उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे कहो कि, कृष्ण बलदेव दोनों भाई गायें चराते २ यहां आगये हैं और भूखे हैं, वह तुमको मुंहमांगा भोजन देकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी, क्योंकि वह शरीरसे तो घरमें वास करे हैं, परन्तु उनका मन मुझमें ही लगा रहे है, इसीसे मुझमें उनका बडा प्यार है ॥१४॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर ग्वाल फिर गये, देखा तो पत्नीशालामें सब ब्राह्मणी शृंगार किये बैठी थीं । उनके पास जाकर गोपोंने नमस्कार कर अधीनतासे यह वचन कहा ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणकी भार्याओ ! तुमको नमस्कार है, तुम हमारी एक बात सुनो. श्रीकृष्णचन्द्र आपके समीप ही आगये हैं, उन्होंने हमको तुम्हारे पास भेजा ॥१६॥ ग्वालबाल और बलदेवजीको संग लेके गायें चराते चराते इतनी दूर

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यंति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नी
शालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः ॥ नत्वा द्विजसतीर्गोपा प्रश्रिता इदमब्रुवन्॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबो
धत वचांसि नः ॥ इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिताः वयम् ॥१६॥ गाश्चारयन् सगोपालैः सरामो दूरमागतः ॥ बुभु
क्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ ॥ १७ ॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायांतं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो
बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥१९॥

चले आये हैं, इस समय भूखे हैं और उनके मित्र हम भी भूखे हैं, सो कुछ भोजन चाहते हैं तुम कृपा करके हमको दो॥१७॥ नित्य श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहनावाली और कृष्णचंद्रकी कथामें तन, मन, धन लगानेवाली वह ब्राह्मणोंकी स्त्रियें व्रजभूषणका आना सुनकर अत्यन्त हर्षवती हुईं, क्योंकि उनका मन तो पहिले ही श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लग रहा था ॥ १८ ॥ बडे बडे थालोंमें सुन्दर सुगंधयुक्त चार प्रकारका भोजन-भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य (चने चबेना, रोटी, पुरी यह भक्ष्य) (दाल, भात इत्यादि भोज्य) (कढी, क्षीर इत्यादि लेह्य (ऊख, आम, नींबू इत्यादि चोष्य) सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियें अपने मनमोहन प्यारेके लिये भोजन लेलेकर ऐसे धाईं जैसे नदियें समुद्रमें

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बंधुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकन
वपल्लवमंडिते ॥ विचरंतं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥२१॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवे
षमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रायः श्रुतप्रियतमो
दयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरंध्रैः ॥ अंतः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेंद्र
॥२३॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो
महाभागा आस्यतां करवाम किम् ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥

जाती हैं ॥ १९ ॥ उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्रोंने बहुतेरा रोका परन्तु वह न रुकीं, क्योंकि उनके मन तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें बरसोंसे लग रहे थे तब उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने ॥२०॥ उसी अशोकवृक्षके नवपल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके निकट उपवनमें ग्वालबालोंको संग लिये भाई बलराम समेत मनमोहनप्यारेको फिरते देखा ॥२१॥ श्यामस्वरूप, पीतवसन धारण किये,वनमाला पहिरे, मोरपिच्छका मुकुट शीशपर धरे,खरियागेरूके छाप लगाये, धातु मूँगा पहिरे, नटवर वेष बनाये,सखाके कण्ठमें भुजा डाले, दूसरे हाथमें कमलके फूलको घुमाते, कानोंमें कमलके फूल लटकाये, कपोलोंपर अलकें छिटकाये, मन्द मन्द मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे २ गुण कृष्ण प्यारेके अपने कानोंसे सुनके देखनेकी अत्यन्त अभिलाषा थी वैसे ही प्रत्यक्ष जाकर अपने नेत्रोंसे देखे और अपने आपको परम बडभागी समझकर उस ब्रजराजके अनूप स्वरूपको नेत्रोंके द्वारा हृदयमें ले जाकर बहुत देरतक आलिंगन किया और मनमोहनप्यारेको वहीं रहनेको स्थान दे सर्व तापको त्याग दिया, जैसे अहंकारवृत्तियां सुषुप्ति अवस्थाके साक्षी प्राज्ञको आलिंगन करके और उनमें हीं लीन होकर सब तापको त्याग देती हैं ॥ २३ ॥ पुत्रादि गृहादिककी सब आशा छोड़कर मेरा दर्शन करनेके लिये आई हैं, उन ब्रह्मपत्नियोंको देखकर सबकी बुद्धिकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र मुसकराके बोले ॥ २४ ॥ कि, हे बडभागिनियो ! तुमने बहुत अच्छा किया जो यहां आईं, आओ हमारे समीप बैठो, इस समय हम तुम्हारी क्या शुश्रूषा करें ? हमारे लिये क्या आज्ञा है ? हमारा दर्शन करनेके लिये

आई हो सो तुमको योग्य है, तुम हमको भूखा समझकर इस महानिर्जन वनमें भोजन लेकर आई, इससे अधिक और कुछ दया है ? इसके बदलेमें हम तुम्हे क्या दें ? जो इस समय हमारा घर भी धोरे होता तो कुछ पान फूल तुम्हारे आगे धरते सो वृन्दावन भी हमारा यहांसे बहुत दूर है, हमसे आपकी कुछ भी सेवा न बन पड़ी, इस बातका बड़ा पछतावा है और हमारा मुख नहीं जो आपके प्रेमकी और परिश्रमकी प्रशंसा कर सके, इस समय हम सब प्रकारसे लाचार हैं ॥ २५ ॥ अपने स्वार्थके देखनेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मारूप प्रिय जो मैं हूँ, सो मुझमें फलकी अनिच्छा करके निरन्तर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥२६॥ परन्तु आत्मा सबसे अधिक प्रिय है. विचार लो-प्राण, बुद्धि, मन, तनु, धन' स्त्री, पुत्र आदिक सब वस्तु जिस आत्माके सम्बन्धसे प्रिय लगते हैं फिर भला उस आत्मासे बढ़कर और कौनसी वस्तु प्रिय है ? ॥ २७ ॥

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ॥ अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥२६॥ प्राणबुद्धिमनस्स्वा
त्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद् यात देवयजनं पतयो वो द्विजा
तयः ॥ स्वसत्रं पारयिष्यंति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं सत्यं
कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदामपदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलंघ्य समस्तबंधून् ॥ २९ ॥

856

इसलिये सुशीलाओ! अब तुम अपनी यज्ञशालामें जाओ तुम कृतार्थ होगईं, पति तुम्हारे गृहस्थ हैं, जबतक तुम न जाओगी तबतक यज्ञ पूर्ण न होगा, क्योंकि विना स्त्रीके यज्ञ पूरा नहीं होता इसलिये वह लोग यज्ञको तुम्हारे साथ ही पूरा करेंगे ॥ २८ ॥ विप्रपत्नियोंने कहा कि, हे नाथ! आपको अपने कोमल मुखारविन्दसे ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये, क्योंकि आपने ही गीतामें कहा है, "न मे भक्तः प्रणश्यति" अर्थात् मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता "न स पुनरावर्तते" अर्थात् मुझमें प्राप्त होकर फिर लौट नहीं आता, यह आपकी ही आज्ञा है, फिर अपनी प्रतिज्ञाको सत्य क्यों नहीं करते? इधर उधर क्या देख रहे हो? तुमने अपने चरणसे जो तुलसीकी माला ठुकरा दी है उसको बडे आदर सत्कारसे शिरपर चढ़ानेके लिये अर्थात् आपके चरणारविन्दकी सेवा करनेके लिये आपकी शरण आई हैं, अब सब बंधुजनोंको त्यागकर आपके चरण

शरण हैं ॥ २९ ॥ हे दीनदयालु ! हम यही चाहती हैं कि आपके ही चरणारविन्दमें हमारे देह पडे रहें, स्वर्गादिकका सुखभोग हम नहीं चाहतीं, हमको तो अपना दासभाव ही अच्छा है ॥३०॥ द्विजपत्नियोंकी प्रेम प्रीति भरी मधुर वाणी सुनकर मनहरण प्यारे स्नेहयुक्त मनोहर वचन बोले कि तुम निःसन्देह अपने घर जाओ, तुम्हारे पति, पिता, तात, माता, भ्राता, पुत्र तुम्हारी कुछ निंदा न करेंगे और संसारमें भी कोई मनुष्य तुमको दोष न लगावेगा, देवताओंको साक्षात् दिखलाकर कहा कि, सब देवता और मनुष्योंको मेरा कहना स्वीकार है ॥ ॥ ३१ ॥ इस संसारमें शरीरके स्पर्श होनेसे प्रीति नहीं रहती और अनुराग भी नहीं बढ़ता, इसलिये तुम घरमें रहकर मुझमें मन लगाओ तो बहुत शीघ्र मुझको पाओगी ॥ ३२ ॥ (मेरा स्मरण, दर्शन, ध्यान, कीर्त्तन करनेसे जैसा भाव मुझमें होता है वैसा समीप रहनेसे नहीं

गृह्णंति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबंधुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिंदम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यंगसंगो नृणामिह ॥ तन्मनो मयि युंजाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ (स्मरणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ १ ॥) श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवंतं यथाश्रुतम् ॥ हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबंधनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविंदस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाऽऽशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥

होता, इसलिये तुमको उचित है कि, शीघ्र अपने मखभवनको जाओ ॥ १ ॥) श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार जब श्रीकृष्णने द्विजपत्नियोंको समझाया तब वह द्विजांगना यज्ञशालामें पहुँचीं और उन ब्राह्मणोंने कुछ अपराध उनको न लगाया, निर्दोष समझकर अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दपूर्वक यज्ञ समाप्त किया ॥ ३३ ॥ जिस समय सब स्त्रियें श्रीकृष्णके पास भोजन लेकर चलीं उस समय एक स्त्रीके पतिने अपनी स्त्रीको आनेसे रोक लिया था, उसने जैसा श्रीकृष्णका रूप, रंग, स्वभाव कानोंसे सुन रक्खा था उसी रूपका ध्यान कर हृदयमें आलिंगन करके कर्मों के अधीन जो देह था उसको त्यागकर चैतन्यस्वरूप भगवद्रूपमें लय हो गई ॥ ३४ ॥ और जो जो पक्वान्न मिठाई द्विजपत्नियें लाई थीं

इन चार प्रकारके व्यञ्जनोंको यमुनाके निकट कुञ्जोंकी छायामें बैठ, अतिप्रसन्न हो श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी अपने हाथसे भोजन कराते थे और सब सखा इन भोजनोंकी प्रशंसा कर करके प्रेमसे भोग लगा रहे थे। जब सब सखा भोजन कर चुके तो पीछे अपने आप भी भोजन करके ब्राह्मणियोंकी बडी सराहना की॥ ३५ ॥ इस प्रकार मनुष्यरूप धारण कर लीला करके लोगोंके सदृश गोप गोपियोंको आनन्द देके आप भी इनके साथ रमण करते भये॥ ३६॥ इसके उपरांत वह ब्राह्मण अपने भोजन न देनेके अपराधको स्मरण करके दुःख पाते भये क्योंकि श्रीकृष्ण और बलदेवको सामान्य मनुष्य समझके अन्न नहीं दिया ॥ ३७ ॥ इन अपनी पत्नियोंकी श्रीकृष्ण भगवान्में अलौकिक प्रीति

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन्रूपवाक्कृतैः॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन् कृतागसः ॥ यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडंबयोः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥ आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन्॥ ३८ ॥ धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिक् बहुज्ञताम् ॥ धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ॥ दुरंतभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥

957

देखकर और अपने आपको भक्तिहीन समझकर अत्यन्त दुःखी हो वारंवार अपने आपको धिक्कार दे देकर अपनी निन्दा करते थे॥ ३८॥ शुद्ध माता पितासे, सावित्री यज्ञोपवीत हुएसे, यज्ञकी दीक्षा लियेसे यह तीन प्रकारका हमारा जन्म है इसको, हमारी विद्याको, हमारे कर्मको और हमारी चतुराईको बारम्बार धिक्कार है, हमारे व्रत करनेंको धिक्कार हैं, हमारे अनेक शास्त्रके पढ़नेको धिक्कार है, हमारे कुलको धिक्कार है, क्योंकि हम जगदीश्वर भगवान्से विमुख हुए. धिक्कार है, धिक्कार है इस हमारी अधम बुद्धिको ॥ ३९ ॥ निश्चय है कि, भगवान् वासुदेवकी माया योगियोंको मोह उपजानेवाली है, इस मायासे मनुष्योंके गुरु ब्राह्मण जो हम हैं सो स्वार्थमें मोहित हो रहे हैं. हाय ! अहो ! बड़े आश्च

र्यकी बात है, देखो ! जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रम स्त्रियोंकी कैसी अलौकिक भक्ति है, देखो ! जिस भक्तिने गृहरूप मृत्युकी फांसियोंको काट दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ विचार तो करो, यह स्त्रीकी जाति कैसी अशुद्ध है, न तो इनके उपवीतसंसकार है, न गुरुके समीप वास है, न तप है, न जप है, न आत्माका विचार है, न पवित्रता है, न सुकर्म हैं ॥ ४२ ॥ तो भी योगेश्वरोंके ईश्वर पर पुरुष श्रीकृष्ण भगवान्में जैसी इन अबलाओंकी अचल भक्ति है ऐसी हम स्नान, सन्ध्या, जप, तप, करनेवालोंकी भी नहीं तो धिक्कार है हमारे इस संस्कार और यज्ञव्यवहारका ॥ ४३ ॥ हम लोग कुछ भी अपने अर्थको नहीं पहिचानते, घरके व्यवहारमें भूल रहे हैं और ऐसे अचेत हैं कि आगे पीछेकी कुछ भी सुधि नहीं, महात्माओंके आनंद देनेवाले श्रीकृष्णभगवान्ने गोपोंके वचनोंसे हमें सचेत किया, हाय ! तो भी हम मूर्ख न चेते, इसमें किसीका

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः॥४२॥अथापि उत्तम
श्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे॥भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि॥४३॥ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया॥
अहो वः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४४ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः ॥ ईशितव्यैः
किमस्माभिरीशस्यैतद्विडंबनम् ॥ ४५ ॥ हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत्॥आत्मदोषापवर्गेण यद्या
च्ञा जनमोहिनी ॥ ४६॥देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्रतंत्रार्त्विजोऽग्नयः॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः॥४७॥
स एष भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥ जातो यदुष्वित्यशृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४८ ॥

कुछ दोष नहीं यह सब हमारे कर्मोंका फल है ॥ ४४ ॥ पूर्ण जिनका मनोरथ, मोक्षादिक सब मनोरथोंके अधीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं, उनको हमसे मायाके वशीभूत पामर जीवोंसे क्या प्रयोजन था ? केवल भातका मांगना तो ईश्वरका कौतुक था ॥ ४५ ॥ देखो ! त्रिभुवनेश्वरी लक्ष्मी, ब्रह्मादिक देवता और सब संसारको छोडकर चरणारविन्दके स्पर्शकी चाहना करके अपना चंचलपना और दोष दूर करनेके लिये जिनका दिन रात भजन करती हैं उन श्रीकृष्णका माँगना केवल हम लोगोंको मोहका उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४६ ॥ देश, काल, अलग अलग चरु पुरोडाशादिक द्रव्य, मंत्र, तंत्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान यज्ञ, धर्म यह सब श्रीकृष्णका रूप है ॥ ४७ ॥ सो साक्षात् श्रीकृष्ण

१८१

परम्परासे चली आई है वा आज किसीने नई बताई है, यह आपसे मेरा निवेदन हैं कि,आप कृपा कर मुझसे कहो ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके गम्भीर वचन सुनकर नन्दरायजी बोले कि, बेटा! क्या यह वृत्तात तुमने आजतक नहीं सुना? मेघरूप भगवान् इन्द्र हैं और मेघ ही उनकी प्यारी मूर्ति है वही प्राणियोंके प्राणकी रक्षा करनेवाला है और सन्तोष देनेवाले जलकी वर्षा करता है ॥ ८ ॥ मेघोंका राजा भगवान् इन्द्र है, उसको हम भी और संसारके दूसरे पुरुष भी उसी मेघपतिके वरसाये जलसे उत्पन्न हुआ जो अन्न है उसीसे यह यजन करते हैं, उसके करनेसे देवता,पितृ, प्रसन्न होते हैं, अनेक प्रकारकी ऋद्धि सिद्धि उत्पन्न होती हैं, वन फूलते हैं, तृण, घास उत्पन्न होता है, उससे सब पशु, पक्षी, जीव जन्तु आनन्द पाते हैं, और उस यजन करनेके उपरांत जो शेषान्न रह जाता है उसीकी प्राप्तिके लिये अपनी जीविका करके धर्म करते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ हे पुत्र! यह इन्द्रयज्ञकी रीति हमारे यहां परम्परासे चली आई है, कुछ आज ही किसी पण्डितने नई नहीं बताई. जो धर्म परम्परासे चला आया है और जो मनुष्य काम, लोभ; भय,द्रोहसे उसको छोड़ देते हैं उन पुरुषोंका कभी कल्याण नहीं होता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! नंदराय और वृद्ध वृद्ध व्रजवासियोंके ऐसे वचन सुनकर इन्द्रके ऊपर अत्यन्त क्रोध करके उसका मान घटानेके लिये श्रीकृष्णभगवान्‌ने अपने पिता नन्दादिकसे कहा ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि,हे पिताजी! कर्मसेही प्राणी जन्म लेता है और कर्मसे ही देहका त्याग करता है, सुख,दुःख,भय, कल्याण, कुशल यह सब कर्मके ही अधीन हैं ॥ १३ ॥

नंद उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिंद्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ॥ तेऽभिवर्षंति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ य एव विसृजेद्धर्मं पारंपर्यागतं नरः ॥ कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नन्दस्य तथाऽन्येषां व्रजौकसाम् ॥ इन्द्राय मन्युं जनयन्पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव विलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोऽपि नह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥ किमिंद्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतंत्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चावचाञ्जंतुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥ तस्मात्संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ॥ अंजसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥ आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ॥ न तस्माद्विंदते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥

कोई कोई मतवाले ऐसा कहते हैं कि, ईश्वर प्राणियोंके किये हुए कर्मोंके फलका देनेवाला है, इससे तो यह सिद्ध हुआ कि,ईश्वर कर्मोंके वशीभूत है,जैसा कर्म जिसने किया वैसा ही फल मिला ईश्वर अपनी ओरसे कुछ नहीं कर सकता,इस बातसे यह निश्चय हुआ कि,फलकी सिद्धि देनेवाला कर्म ही प्रधान रहा,इसलिये कर्म ही जब मुख्य ठहरा तो फिर ईश्वर क्या वस्तु है ? उसे तो ऐसा समझो कि, जैसे बकरीके कण्ठके स्तन ॥ १४ ॥ जब कर्म ही प्रधान ठहरा तो इन्द्रसे क्या प्रयोजन ? जब सब प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसार भोग भोगते हैं,पूर्वजन्मके संस्कारजन्य जो कर्म हैं उनको इन्द्र भी किसी प्रकार नहीं घटा बढ़ा सकता ॥ १५ ॥ प्राणी स्वभावके ही वशीभूत हैं और स्वभावको ही वर्तें हैं. देवता, असुर, मनुष्य,यह सब स्वभावके ही वशमें हैं और कर्मकी प्रवृत्ति भी स्वभावके अधीन है, तो फिर उस प्रवृत्तिमें ईश्वरकी कुछ आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ यह जीव कर्मसे ही छोटे बडे देहको पाता है और त्यागता है. कर्म ही शत्रु है, कर्म ही मित्र है, कर्म ही गुरु है, कर्म ही ईश्वर है ॥ १७ ॥ इसलिये स्वभावमें स्थित होकर अपने कर्मोंका अनुष्ठान करे, यही मुख्य है. यद्यपि देवताके नामसे यज्ञ, व्रत, पूजन,हवन, क्रिया सब उस करनेका ही नाम कर्म है, यद्यपि तुमको यह सन्देह हो कि,विना देवताके हमारा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता,देवताही हमारा कार्य करता है, तो भी देवता कर्मके ही अधीन ठहरा,देखो ! तुम किसी देवताका नाम लेकर अग्निपर दूधका पात्र रखदो,वह दूध औट जायगा और देवताका नाम नहीं भी लो तो भी औट जायगा,परंतु बिना अग्निपर धरे किसी प्रकार नहीं औट सकता, तो मुख्य कर्म ही ठहरा, क्योंकि विना कर्म कुछ नहीं हो सकता. अनायासपूर्वक कर्मकी पूजा करै और जिस जिससे पुरुषका निर्वाह हो वही उसका देवता है ॥ १८ ॥ जो पुरुष एक पदार्थका सेवन करके दूसरे पदार्थका सेवन करते हैं, वह पुरुष कभी कल्याणको नहीं पाते.

भगवान् विष्णु योगेश्वरोंके ईश्वरने यदुकुलमें आकर जन्म लिया है, यह बात हमने पण्डितलोगोंके मुखसे सुनी थी, परन्तु तो भी हम जान बूझकर मूर्ख अज्ञानी हो गये ॥ ४८ ॥ कोई कोई ब्राह्मण कहने लगे कि, अहो हम बडे धन्य हैं क्योंकि, हमारी ऐसी भक्तिमती स्त्री हुईं कि, जिनकी भक्तिके प्रभावसे कृष्ण भगवान्में हमारी भी दृढ़ भक्ति हुई ॥४९॥ अकुण्ठबुद्धि जो आप श्रीकृष्ण भगवान् हैं, सो आपके लिये वारंवार नमस्कार है, जिसकी मायासे मोहितबुद्धि हो हम कर्ममार्गमें भटकते फिरते हैं ॥५०॥ संसारकी मायासे जो हमारा चित्त मोहित हो रहा है और आपकी महिमाको नहीं जानते, ऐसे जो हम अज्ञानी लोग हैं सो हे दीनदयालु ! हमारा अपराध क्षमा कीजै ॥ ५१ ॥ हे

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता ह्यस्माकं निश्चला हरौ ॥ ४९ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥ स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ॥ अविज्ञातानुभावानां क्षंतुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाऽचलन् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भाग० म० द० पू० यज्ञपत्न्युद्धरणदीक्षितानुतापनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥ अपश्यन्निवसन्गोपानिंद्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपि भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ प्रश्रयावनतोऽपृच्छद् वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र भगवन् ! हम जो आपके अपराधी ब्राह्मण हैं, अपने अपराधको स्मरण करके हमारी कृष्ण बलदेवके दर्शनकी इच्छा हुई परन्तु कंसके भयके मारे नहीं जा सके ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धेपूर्वार्धे भाषाटीकायां यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ दोहा–चौबिसवें अध्यायमें, इन्द्र यज्ञको त्याग । गोवर्द्धन पूजन कियो, सबन सहित अनुराग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान् अपने बड़ेभाई बलदेवजी सहित सुखसे रहते थे कि, इन्द्रके यज्ञकी तैयारी होती देखते भये ॥१॥ सब प्राणियोंके आत्मा भगवान् सर्वव्यापक सब बातोंके जाननेवाले, जानते भी थे, इन्द्रके यज्ञका प्रबंध हो रहा है, तो भी नंदरानीसे बूझने लगे कि, माताजी !

आज क्या है? जो घरघर पकवान मिठाई बन रही है और तुम भी बडी धूमधाममें हो? मुझे समझाकर कहो कि, यह क्या भेद है? जो मेरे मनका संशय मिटे? यशोदा बोली कि,पुत्र! इस समय मुझको सावकाश नहीं, यह सब वृत्तान्त तुम अपने पितासे जाकर बूझो वह तुम्हारा सब सन्देह दूर कर देंगे. यह सुन नन्दजीके पास जाकर श्रीकृष्ण बोले ॥ २ ॥ कि, पिता! आज क्या है जो सब ब्रजमें कड़ाही खटक रही हैं और अनेक अनेक प्रकारके व्यञ्जन बन रहे हैं,सब ठौर ठौर कोलाहल मच रहा है और ग्वालबाल चारों ओर भागे भागे फिरते हैं,क्या उत्सव है? किस देवताके नामका यज्ञ है? क्या इसका फल है? कौनसे देवताका पूजन है? क्या क्या उसमें गुण हैं? कौन इसका अधिकारी है? किस किस वस्तुसे यज्ञ होता है ॥३॥ हे पिता! मुझे इस बातके सुननेकी बडी अभिलाषा है सज्जनपुरुष सब प्राणियोंमें और

श्रीभगवानुवाच॥ कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः॥३॥
एतद् ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः॥ नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्त्यस्वपरदृष्टी
नाममित्रोदास्तविद्विषाम्॥ उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनु
तिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥६॥ तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किं विचारितः॥ अथवा
लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम्॥ ७ ॥

स्थानोंमें आत्माको देखते हैं उनसे कोई कर्म छिपा नहीं है और छिपानेके योग्य भी नहीं है ॥४॥ साधु पुरुष अपना बिराना कुछ नहीं समझते, उनकी सम दृष्टि है,मित्र उदासीन वा वैरी भी उनका कोई नहीं होता, उदासीन तो शत्रुके सदृश वर्जित है, सुहृद आत्माके समान मानना चाहिये,इससे उसको अवश्य सम्मतिमें साथ करले ॥५॥ यह प्राणी जानकर भी कर्म करता है और बिना जाने भी कर्म करता है,परन्तु जानकर जो करता है उसका फल तत्काल मिलता है और जो विना जाने कर्म करता है उसका कार्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता ॥६॥ आपने जो यह यज्ञका अनुष्ठान कर रक्खा है सो शास्त्रकी रीतिसे किया है अथवा लोकरीतिसे किया है और यह रीति आपके यहाँ

जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषका सेवन करके कल्याणको नहीं पाती ॥ १९ ॥ हे पिता ! चारों वर्णोंको चाहिये कि, अपने अपने धर्मपर आरूढ़ रहैं. ब्राह्मणको चाहिये वेद पढ़े और उसीसे अपनी आजीविका करै. क्षत्रियको चाहिये कि, पृथ्वीकी रक्षा करै. वैश्य व्यापारादिकसे अपना उदर पूर्ण करै और शूद्रको चाहिये कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा करके अपना प्रतिपालन करै ॥ २० ॥ खेती, वाणिज्य, गोरक्षा और व्याज लेना यह चार प्रकारकी वैश्यकी जीविका है ॥ २१ ॥ हे पिता ! ऐसा कभी मत समझना कि, हमारी गायोंकी वृद्धि और आजीविका इन्द्रके ही अधीन है. क्योंकि सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन्हीं तीन गुणोंसे विश्वका पालन उत्पत्ति नाश होता है. इस रजोगुणसे

वर्त्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥२०॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाः कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥ रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत ॥२२॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षंत्यंबूनि सर्वतः ॥ प्रजास्तैरेव सिद्ध्यंति महेंद्रः किं करिष्यति ॥२३॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥२४॥ तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इंद्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यंतां विविधाः पाकाः सूपांताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥

स्त्री पुरुष मिलके त्रिविध जगत् उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ सर्वत्र स्थानोंपर जल वर्षाते हैं, उसी जलसे प्रजाका जीवन होता है, इन्द्र इसमें क्या कर सकता है ? ॥२३॥ हमारे तो पुर, देश, नगर, ग्राम, घर कुछ भी नहीं है. हे तात ! केवल वन ही हमारा घर है और सदा वन और पर्वतोंमें हमारा वास है॥ २४ ॥ इसलिये गौ, ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है और पर्वतोंका पूजन करना चाहिये जिससे हमारी गायोंका और हमारा पालन पोषण हो सो हमारे समीप सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोवर्द्धन पर्वत है, उसीके यज्ञका आरम्भ करो. जो इन्द्रके यज्ञके लिये सामग्री इकट्ठी करी है उसी सामग्रीसे गोवर्द्धनके यज्ञका प्रारम्भ करो ॥ २५ ॥ खीरसे आदि लेकर दालतक अनेक अनेक

प्रकारके व्यञ्जन बनाओ, गेहूँकी पूरी, कचौरी, उडद मूंगकी दाल, कढ़ी, पकौरी, रायता, चुनौरी, शाक, वासमतीके चावलोंका भात, दूध, दही, रबडी, मलाई और सब गायोंका दूध इकट्ठा करो ॥ २६ ॥ वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर हवनकी सामग्री मँगाकर अग्निमें होम कराओ और उन ब्राह्मणोंको भाँति भाँतिके अन्न गोदान दक्षिणा दो और अलंकार पहिराओ ॥ २७ ॥ और दीन भिखारी कुत्ते चांडालसे आदि लेकर पतिततक सबको यथायोग्य भोजन कराओ, गायोंको घास दो, गोवर्द्धन पर्वतको बलिदान दो ॥ २८॥ अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहिर चन्दनका तिलक लगाय नये नये वस्त्र धारण करके शृंगार बनाओ. गौ, ब्राह्मण, अग्नि, पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ हे पिता ! मेरा तो यह मत है, आगे आपकी इच्छा हो सो कीजे. यह गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धन पर्वतका यज्ञ मुझको तो अत्यन्त प्रिय है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इन्द्रका गर्व दूर करनेके लिये कालरूप भगवान्‌का वचन सुनकर नन्दादिक गोपोंने और सब ब्रजवासियोंने परस्पर कहा कि, हे पुत्र! मैं तेरा वचन किसीप्रकार नहीं फेर सकता और न कोई और फेर सके, जो बात तुझको अच्छी लगै हम सब उसीमें प्रसन्न हैं. इस बातको सुनकर बडे बडे जो वृद्ध गोप थे, वह कहने लगे कि, कृष्ण सत्य कहता है, हमारा इन्द्रसे क्या प्रयोजन है ? हमको तो नदी, पहाड, वन सदा बने रहैं ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा उसीप्रकार सब ब्रजवासी स्वस्तिवाचन वचायके संपूर्ण इन्द्रके यज्ञकी सामग्री करते भये ॥ ३२ ॥ पर्वत और द्विजोंको आदर युक्त यथाविधि सन्मान करके सब ब्रजवासी गौवोंको आगे करके

हूयंतामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाऽऽश्वचां
डालपतितेभ्यो यथार्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृता भुक्तवंतः स्वनुलिप्ताः सुवा
ससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्राऽनलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणा
द्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पजिघांसया ॥ प्रोक्तं निशम्य नंदा
द्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥३१॥ तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान्
॥ ३२ ॥ उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥

॥ ९९ ॥

गोवर्द्धन पवतराजकी परिक्रमा करते भये ॥ ३३ ॥ फिर धूप, दीप, नेवैद्य, चन्दन, अक्षत, पान, सुपारी गिरिराजके आगे धर आरती कर मिष्टान्नके ढेरके ढेर चढाने लगे, इतनी मिठाई चढ़ी कि, संपूर्ण पर्वत ढक गया और दूध, दही, घृत इतना चढ़ाया कि, नदियें बहने लगीं और जहाँ तहाँ अनेक रंगके थानके थान तान दिये. उस समय गिरिराज ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे मानो भगवान् विराट् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलनेको आये हैं, उस अद्भुत शोभाको देखकर ब्रजवासी प्रसन्न हो होकर ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंका आशीश लेते भये वहां ब्रजवासियोंके प्रतीति करानेके लिये श्रीकृष्णने नया कौतुक एक और किया, अपना दूसरा रूप और प्रगट किया कि, मैं ही हूँ गोवर्द्धन पर्वत, अतिशय बृहत् शरीर बडी लम्बी लम्बी भुजायें, बडा चौडा लम्बा मुख, अखण्ड प्रकाश, महास्थूल जंघा और जानू और शैलके शिखरके समान शीश, रत्न

96/

अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः ॥ गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायंत्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं
रूपं गोपविश्रंभणं गतः ॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥ तस्मै नमो व्रजजनैः स चक्रे आत्मना
ऽऽत्मने ॥ अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात॥ ३६ ॥ एषोऽवजानतो मर्त्यान्कामरूपी वनौकसः ॥ हंति
ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥ ३७ ॥

जटित मुकुट धरे, आभूषण पहिरे, कण्ठमें वनमाला पीताम्बर धारण किये गिरिराजकी कन्दरामेंसे निकलकर बोले ॥ ३९ ॥ फिर तो सब गोप गोपी भोजनके थाल और परातें उठा उठा गिरिराजको पकडाते जाते थे और वह प्रसन्न हो हो खाते थे और प्रत्येक भोजनकी प्रशंसा भी करते थे, निदान जो कुछ पकवान मिठाई नंदादिक ब्रजवासी ले गये थे, उस सबको निर्वार प्रसादमात्र छोड दिया, तब तो श्रीकृष्णचन्द्र सबसे कारकर कहनेलगे कि, हे पिता ! भ्रातृगण ! देखो गिरिराजने आज कैसा प्रत्यक्षरूपसे दर्शन दिया और तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया. देखा आपने गिरिराजका कौतुक ? कभी इन्द्रने भी इस प्रकार प्रगट होकर दर्शन दिया था और अपने हाथसे इसप्रकार भोजन किया था ? सबने उस गिरिराजको नमस्कार किया ॥ ३६ ॥ यह गोवर्द्धननाथ अपने पूजनेवालोंपर सदा दयादृष्टि रखते हैं और जो कोई वनवासी

इनका तिरस्कार करनेवाले हैं उनको सिंह सर्पादिक रूपसे कालकौर कर लेते हैं, इसलिये अपने और गायोंके मंगलार्थ इनको वारंवार
नमस्कार और दण्डवत् करो॥ ३७॥इसप्रकार सम्पूर्ण गोप वासुदेव भगवान्की आज्ञासे भलेप्रकार यज्ञ करके श्रीकृष्णचन्द्रको सङ्ग लेके गोव
र्धनसे ब्रजको आवते भये ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां इन्द्रमखभंगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४ ॥
दोहा–पच्चिसमें ब्रजपर चढो, इन्द्र खायकर खार । हरि ब्रजकी रक्षा करी, करपर गिरिवर धार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः॥३८॥ इति श्रीमद्भागवते महापु०
दशमस्कंधे पू० इन्द्रमखभंगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां
नृप ॥ गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥१॥ गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चांतकारिणाम् ॥ इन्द्रः प्राचो
दयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये
चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥

परीक्षित् ! इन्द्रने ब्रजमें अपनी पूजाका लोप देखकर श्रीकृष्ण भगवान् ही जिनके नाथ हैं उन नन्दादिक ब्रजवासियोंको अपना शत्रु समझ
अत्यन्त कोप किया कि, क्या कारण मेरी पूजा छोड़कर गोवर्द्धनकी पूजा की * ॥ १ ॥ उसी समय प्रलय करनेवालोंमें मुख्य सांवर्तक
नाम गणको बुलाकर आज्ञा दी "मैंही इन्द्र हूँ" ऐसे अभिमानी इन्द्रने महाक्रोध करके अत्यन्त कठोर वचन कहा ॥ २ ॥ "अहो ! बडे आश्चर्यकी
बात है, वनके रहनेवाले गँवार गायोंके चरानेवाले, जातिके ग्वालियोंको लक्ष्मीका कैसा मद हुआ है, जिन्होंने मनुष्य कृष्णका आश्रय लेकर (मैं
सुराधीश इन्द्र हूं) मेरा अपराध किया और कुछ आगापीछा न विचारा, सत्य है मूर्ख कहीं ज्ञान सिखानेसे ज्ञानी हो सकता है। ॥ ३ ॥

---

* शंका–इन्द्रकी विनयसे भगवान्ने पृथ्वीमें अवतार लिया, था सो इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों की ?
उत्तर–भगवान्की प्रिया जो देवी थी उसका अनादर इन्द्र अपने अभिमान और अज्ञानसे नित्य किया करता था, उस अपने इन्द्रके किये अनादरको स्मरण करके और अपना पक्षपाती श्रीकृष्णको
समझकर प्रथम इन्द्रका उपद्रव देवीने नहीं किया, उस समय तो सहन कर लिया फिर पीछे श्रीकृष्णका पक्षपात कर देवीने इन्द्रको मोहित कर लिया, मोहको प्राप्त होकर इन्द्र उन्मत्त हो भगवान्को भूल
गया और ब्रजके ऊपर प्रलयके करनेवाले मेघोंको भेजकर मूसलधार जल वर्षाया यह कारण था ॥

जो दृढ़नाम करके नौकाके सदृश यह कर्ममय यज्ञ है, इससे आत्माका कल्याण होता है, उस आत्मविद्याको छोड़कर हठकी तरनीपर बैठ इस संसारसमुद्रके पार होना सहजमें ही चाहता है ॥४॥ वह वाचाल, मूर्ख, अज्ञानी किसीकी बातको नहीं मानता और अपने आपको बड़ा पंडित और ज्ञानी जानता है, और ऊंच नीचको कुछ नहीं पहिचानता. ऐसे छोटी अवस्थावाले मूर्ख मनुष्य श्रीकृष्णका आश्रय ले उन गँवार ग्वालियोंने सब संसारमें मेरी अवज्ञा की ॥ ५ ॥ लक्ष्मीके मदके मतवाले गोप कृष्णके सिखाने बुझानेसे हमें इन गँवारोंने कुछ न समझा और हमारा तिरस्कार करके यज्ञभाग पर्वतको दिया, उस नाचनेवाले कृष्णका भरोसा करके अपने प्राणोंका कुशल चाहैं तो तुम उन सबके गर्वका और गायोंका नाश करो ॥ ६ ॥ और ठौर वर्षनेका कुछ काम नहीं केवल चौरासीकोस ब्रजपर ही ऐसी वर्षा करो कि, गोवर्धन पहाड़का खोजमात्र भी न रहै, अरु गाय बछडोंका तो ऐसा विनाश करना कि, उनका कोई नाम लेवा और पानीदेवा भी न रहै, लाख वह हाय

यथाऽदृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षंति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं
बालिशं स्तब्धमज्ञं पंडितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ येषां श्रियाऽवलिप्तानां
कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ॥ धुनत श्रीमदस्तंभं पशून्नयत संक्षयम् ॥६॥ अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्ग
णमहावीर्यैर्नंदगोष्ठजिघांसया ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबंधनाः ॥ नन्दगोकुलमासारैः
पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनंतः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥९॥

हाय करें परन्तु तुम कुछ दया चित्तमें मत लाना, क्योंकि जैसा उन्होंने किया है उस अपनी करणीका फल तो भोगैं, तुम किसी प्रकारका संदेह मत करना, मैं भी तुम्हारे पीछे२ ऐरावत हाथीपर चढ देवताओंकी सेना समेत और सब प्रलय करनेवाले मेघोंको और उनचास ४९ मरुद्गण पवनोंको भी साथ लाऊंगा, ब्रज तो क्या वहांकी भूमितक बहा दूंगा फिर देखूं जगत्में किसका सामर्थ्य है जो ब्रजवासियोंकी रक्षा करै ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! मेघोंने इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाय मुक्तबंधन हो नंदरायके गोकुलपर बलसे बड़ी वर्षा करनेलगे ॥८॥ चारो ओरसे घटा घिर आई, बिजली चमकने लगी, बादलोंके गर्जनेका गम्भीर शब्द होने लगा, तीव्र मरुद्गणोंने मेघोंको चलायमान कर ओलोंकी झडी लगा दी और मूशलधार वर्षा होने लगी ॥ ९ ॥

वर्षाकी धारा खंभके समान मोटी बादलोंमेंसे अखण्ड गिरती थी, जिससे समस्त व्रजमण्डल जलमें डूब गया और चारो ओरसे बादलोंके समूहके समूह उमडते चले आते थे, ऊंचे नीचे गाढ़ गढोले और पृथ्वी कहीं नहीं दिखाई देती थी ॥ १० ॥ बडे वेगकी वर्षासे और महाप्रचण्ड पवनसे पशु सब थर थर कांपने लगे और गोप गोपी जाड़ेके मारे अत्यंत दुःखी हो हाय हाय ! करते थर थर काँपते श्रीगोविन्द कृष्णकी शरणमें जाती भई ॥११॥ मूसलधार जो जल वर्षा तो उससे पीडित होकर गायें अपना शिर नीचे किये, बछड़ोंको नीचे लिये, थर थर काँपती थीं और गोपियें गिरती पड़ती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट जाकर बोलीं ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे सामर्थ्यवान् ! हे भक्तहितकारी ! हे गोकुलनाथ ! इस महाक्रोधी इन्द्रसे इस अपने गोकुलकी और हमारी रक्षा करो ॥१३॥

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुंचत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥ अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविंदं शरणं ययुः॥११॥शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ॥ वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेंद्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयागे निहतेऽस्माभिरिंद्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ नहि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ॥ मत्तोऽसतां मानभंगः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥

जब बडी बडी शिलायें ओलोंकी आकाशसे गिरने लगीं;उनसे बेसुध और व्याकुल गोकुलवासियोंको देखा, तब सबके दुःख दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जाना कि, यह सब कौतुक उसी महाक्रोधी इन्द्रके हैं ॥१४॥ विना वर्षाऋतुके जो यह महाभयानक शिलाओंकी वर्षा हो रही है और महाप्रलयकीसी प्रचण्ड पवन चल रही है, केवल इसका यही कारण है कि, मैंने जो इसके यज्ञका भंग कर दिया और इसकी पूजा व्रजसे उठा दी, इसीसे इंद्र हमारे विनाशके लिये मूसलधार पानी वर्षा रहा है॥ १५ ॥ इस कारण अब मैं अपने सामर्थ्यसे इस महाघोर वर्षाका उपाय करूंगा और उन अज्ञानी लोकपाल और अभिमानी इन्द्रादिक देवताओंको जो लक्ष्मीका मद हो गया है उस मदको हरूंगा ॥१६॥ मेरी भक्ति अथवा सत्त्वगुण जिन देवताओंके हृदयमें व्याप रहा है और मैं ही उनका ईश्वर हूँ इसलिये उन देवताओंको

अपने पराक्रम और बलका गर्व किसी प्रकार होना नहीं चाहिये, क्योंकि अभिमानमें भक्ति और प्रेम कहाँ ? इसलिये जबतक इन अभिमानियोंका मानखण्डन न होगा तबतक वह मेरा मान न करेंगे और मेरा मान किये विना उनका कल्याण कहाँ ? ॥१७॥ इससे वह उपाय करूं जो वह मेरी शरण आवें क्योंकि, मेरा नाम गोकुलनाथ है,जब मैं ही गोकुलका नाथ होकर गोकुलकी रक्षा न करूंगा तो और कौन रक्षा करने आवेगा ? योंकि सब गोकुलवासी मुझको ही अपना प्राणअधार समझते हैं. मुझको ही अपना तन, मन, धन जानते हैं. यह सब मेरे ही दर्शनकी अभिलाषा करते रहते हैं- मेरे समान और किसी दूसरेको नहीं मानते ॥ १८ ॥ यह कह नटवर रूप धर लीलामात्र एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड बायें करकी कनअँगुलीपर धर, ऊपरको उठा व्रजमण्डलपर छत्रके समान तान दिया, जैसे कोई बालक छत्राकको उखाड़कर ऊपरको उठा लेता है (यह वह छत्राक है जिसको बालक साँपकी छत्री कहते हैं) ॥ १९ ॥ जब भगवान्ने पर्वतको उठा लिया तब पीछे गोपोंसे कहा कि, हे मैया ! हे पिता ! हे व्रजवासियो ! अपनी अपनी गाय बछेड बाल बच्चों समेत सुखसे इस पर्वतके नीचे आ जाओ ॥ २० ॥ हे व्रजवासियो ! अपने मनमें यह मत समझना कि,कृष्णके हाथसे गिरि गिर जायगा; यह सब बाबा नन्दका प्रभाव है, इसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं है, यहाँ पवन पानीका कुछ खटका नहीं, अपने मनमें पूर्ण विश्वास करके गिरिकी छायामें चले आओ, मैंने तुम लोगोंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्द्धनको हाथपर उठा लिया है; जबलों बहुत वर्षा होय तबलों इसके नीचे सुखसे वास करो ॥२१॥ जिन लोगोंको श्रीकृष्णके बलवीर्यका पूरा भरोसा था उन्होंने गाय बछडे गाडी पुरोहितादिक जिसको पाया उसको नन्द उपनन्द अपने संग ले आनन्दपूर्वक

यस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ॥ गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वैकेन
हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ॥ दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥ १९ ॥ अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब
तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वा
तवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथावकाशं सधनाः स
व्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥

पर्वतके नीचे गढेलेमें घुस गये; उस समय सब श्रीकृष्णके मुखकी ओरको निहार रहे थे, न किसीको भूख थी न प्यास थी ॥२२ ॥ उस दिन व्रजवासियोंने भूख प्यास तज चकोरकी नाईं श्रीकृष्णचन्द्रके चन्द्रमुखको ही देखते रहे और श्यामसुन्दर भी सात दिन तक पर्वतको धारण किये एक ही ठौर जहाँके तहां खडे रहे, एक तिलभर भी चरणको नहीं सरकाया ॥ २३ ॥ और मेघ उसी प्रकार मूशलधार जल बरसाता रहा, ओले पडते रहे, चपला चमकती रही परन्तु व्रजका कुछ नाश नहीं हुआ, यह बात सुन इन्द्र चकित हो गया और कृष्णके योगबलका प्रभाव देख अपने मनमें बड़ा आश्चर्य मानने लगा और अपनी प्रतिज्ञाकी अवज्ञा देख अत्यन्त व्याकुल हुआ और सब अज्ञान अभिमान धूलमें मिल गया, मेघोंको वर्जने लगा कि, अब तुम्हारा बल यहां नहीं चलेगा ॥ २४ ॥ जब आकाशमें बादल छिन्न भिन्न हो गये, सूर्यनारायण उदय हुए, भयानक वर्षा और पवन चलनेसे बंद हो गई, तब गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णमुरारीने गोपोंसे कहा कि ॥ २५ ॥ हे गोपो ! स्त्री, बालक, गाय, बछडोंको लेकर तुम इस पर्वतके नीचेसे बाहर निकलो.डरो मत. अब पवन, वर्षा थम गई, नदियोंका जल भी उतर गया ॥२६ ॥ तब बांकेविहारीकी मधुरवाणी सुन सब गोप अपने अपने बाल बच्चे और गायोंके समूहोंको लेलेकर और गाडियोंमें सब वस्तु घर धरकर स्त्री, बालक, वृद्ध सब सहज सहजमें निकले ॥ २७ ॥ सर्वसामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सब व्रजवासियोंके सम्मुख पर्वतको जहांका तहां सहज ही रख दिया ॥ २८ ॥

क्षुत्तड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ॥ वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येंद्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्तंभो भ्रष्टसंकल्पः स्वान्मेघान्स न्यवारयत् ॥२४ ॥ खं व्यभ्रमुदितादित्य वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥२५॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ॥ उपारत वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम्॥ शकटोढोपकरणस्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८ ॥

प्रममें प्रफुल्लित हो सब ब्रजवासी परस्पर आकर यथायोग्य मिलने लगे और स्नेहभरी गोपियें आनन्दपूर्वक दही, अक्षत, जलसे पूजन कर मांगलिक आशीषें देने लगीं ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी, नन्दराय और बलियोंमें बलवान् श्रीबलदेवजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर स्नेहमें मग्न होकर वारंवार आशीर्वाद देते थे ॥ ३० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! अन्तरिक्षमें देवताओंके समूह, साध्यगण, सिद्ध, गंधर्व, चारण सन्तुष्ट हो हो स्तुति पढ २ फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन्! स्वर्गमें देवता शंख और दुन्दुभी बजानेलगे. तुम्बुरु आदि गंधर्वपति श्रीमुकुन्द भगवान्के गुणानुवाद गानेलगे ॥३२॥ नन्द उपनन्द बलराम सहित

तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरंभणादिभिः॥ गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नदो रामश्च बलिनां वरः ॥कृष्णमालिंग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥३०॥ दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगंधर्वचारणाः॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ॥ जगुर्गंधर्वपतयस्तुंबुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥ तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायंत्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम० पू० गोवर्द्धनोद्धरणं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥ अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥२॥ यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव॥ ३ ॥

064

मनमोहनप्यारे मित्रोंको संग ले ब्रजमें आये और गोपी परमानन्द देनेवाली वनमाली श्रीकृष्णकी मनोहर लीला गाती चली आती थीं इस प्रकार आनंद सहित सब अपने २ घर आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां गोवर्द्धनोद्धरणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ दोहा—छब्बिसमें हरिके चरित, विस्मय युक्त निहार । नन्द गर्गके वचन कह, वरणों यश विस्तार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! गोपोंने गोवर्द्धन उठाना और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक कर्म और प्रभाव देख बड़ा आश्चर्यमान नन्दरायजीके पास आकर कहा ॥१॥ कि, इस बालकके बडे अद्भुत चरित्र हैं, इन्हें देखकर हमको संदेह होता है कि, अपने स्वरूपके अयोग्य इस ग्रामके रहनेवाले पुरुषोंमें इनका जन्म होना कैसे सम्भव है? ॥२॥ क्योंकि जो सात वर्षके बालकने एक हाथसे लीलापूर्वक जिस

प्रकार हाथी कमलको उठा लेता है, उसी प्रकार पर्वतको उठा लिया ॥ ३ ॥ और नेत्र मूँदे हुए अति छोटी अवस्थामें इस बालकने बडे वेगवाली पूतनाके स्तनोंको प्राण सहित पान किया था, जैसे काल जीवन अथवा आयुर्बलको पीता है ॥ ४ ॥ देखो ! तीन महीनेके गाड़ीके नीचे पालनेमें सोते हुए रोते २ जो इस बालकने ऊपरको पाँव उछाले तो चरणकी ठोकर लगकर गाडी उलटकर कैसी गिरी थी ? ॥ ५ ॥ और देखो ! जब एक ही वर्षका कृष्ण आंगनमें बैठा खेल रहा था, तब आकाशमें दैत्य तृणावर्त्त इसे हरकर ले गया, उस दैत्यका गला घोटकर इसने कैसा मारा ? ॥ ६ ॥ और देखो कभी जब कृष्णने माखन चुराया था, तब यशोदाजीने इसे ऊखलसे बाँध दिया तिसके उपरांत

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ॥ पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥४॥ हिन्वतोऽधः शयानस्य
मास्यस्य चरणावुदक् ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥
दैत्येन यस्तृणावर्तमहन्कंठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ क्वचिद्धैयंगवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां
तावपातयत् ॥ ७ ॥ वने संचारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः ॥ हंतुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥
वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशंतं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया॥ ९॥हत्वा रासभदैतेयं तद्बंधूंश्च
बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रबलं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोच
यद्व्रजपशून्गोपांश्चाऽरण्यवह्नितः ॥ ११ ॥

इसने वृक्षके बीचमें आय हाथोंसे उनको कैसा उखाड़ डाला? ॥७॥ और देखो ! जब वनमें बलदेवजी सहित बछरे चराते थे उस समय बकासुर इनके मारनेको आया, उसको दोनों हाथोंसे चोंच पकड़ कैसे चीर डाला? ॥ ८ ॥ देखो बछडोंमें बछडेका रूप धरकर मारनेकी इच्छासे आये हुए वत्सासुरको मार उसकी देहको लीलापूर्वक कैथके वृक्षपर कैसा पटका था ? और लीलासे ही वह वृक्ष भी गिर गया ॥ ९ ॥ इसके उपरांत बलदेवजीसहित धेनुकासुरको मार और उसके संगियोंको भी मार फल जिनमें पक रहे, उस तालवनको निर्भय कर दिया॥ १० ॥ फिर महाबलवान् बलदेवजीसे अत्यन्त भयानक प्रलम्बासुर दैत्यको मरवाया और व्रजमें जो अग्नि लगी थी, उससे पशु तथा गोपोंको छुड़ा दिया ॥ ११ ॥

फिर देखो इसी कृष्णने अति भयानक विषवाले कालीनागको दण्ड दे उसके मदको दूर कर बलात्कार दहमेंसे निकाल यमुनाको निर्विष
कर दिया॥१२॥ हे नन्द! हम सब व्रजवासियोंका इनमें बड़ा अनुराग है, अर्थात् इतना प्यार हो गया है कि, छुटायेसे छूटना अत्यन्त कठिन
है और इन श्रीकृष्णका भी हममें स्वाभाविक प्यार है, अर्थात् यह श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं, यह शंका होती है ॥ १३ ॥ क्योंकि सात
वर्षका बालक इतना बड़ाभारी पर्वत उठावै ! इसलिये व्रजनाथ! तुम्हारे पुत्रमें हमको शंका उत्पन्न होती है कि, कदाचित परमेश्वर न हो?
इस कारण हम इसका विचार करेंगे कि तुम्हारे कैसा पुत्र हुआ है ॥१४॥ इसप्रकार गोपोंकी बातें सुनकर नन्दजी बोले कि सन्देहकरनेकी

आशीविषतमाहींद्रं दमित्वा विमदं हृदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥१२॥ दुस्त्यजश्चानुरागो
ऽस्मिन्सर्वेषां नो व्रजौकसाम्॥ नंद ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥१३ ॥ क्व सप्तहायनो बालः क्व महा
द्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शंका व्रजनाथ तवात्मजे॥१४॥नंद उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शंका च
वोऽर्भके ॥एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह॥१५॥वर्णास्त्रयः किलास्यासन्गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा
पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१६॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते
॥ १७ ॥ बहूनि संति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥

865

कुछ बात नहीं है, मैं इस बालककी जन्मपत्री लाता हूँ, जो कि गर्गाचार्यने बनाई है, यह कहकर जन्मपत्री ले आये और बोले कि, हे
गोपो! मेरी बात सुनो जिससे इस बालकमेंसे तुम्हारी शंका मिट जायगी, गर्गाचार्यने इस बालकका नाम धरकर मुझे जो२ गुण बताये हैं
सो श्रवण करो ॥ १५ ॥ इस बालकके तीन वर्ण हैं और युग युगमें देह धारण करता है, प्रथम इसका श्वेत वर्ण था; फिर रक्त और श्याम
वर्ण हुआ और अब इसने कृष्णरूप धारण किया है॥१६॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहिले कभी वसुदेवके यहां जन्म लिया है इस लिये जाननेवाले
इसको श्रीमान् वासुदेव कहते हैं ॥१७॥ तुम्हारे पुत्रके नाम और रूप बहुत हैं,इस लिये जैसे २ इसमें गुण होंगे वैसे २ कर्म करेगा और उन्हींके

अनुसार नाम होंगे ॥ १८ ॥ यह तुम्हारा कल्याण करेंगे और गोप तथा गायोंको आनन्द देंगे, अधिक क्या कहें ? इस श्रीकृष्णकी सहायतासे तुम सम्पूर्ण कष्टोंसे सहजमें ही छूट जाओगे ❋ ॥१९॥ हे व्रजराज ! पहले तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्णने राजा सहित पृथ्वीमें चोरोंसे पीडित साधुओंकी रक्षा की थी, तब साधुओंने वृद्धिको प्राप्त हो चोरोंको जीत लिया था ॥२०॥ जो बड़भागी पुरुष इन श्रीकृष्णसे प्रीति करते हैं, उनको

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनंदनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः॥ २० ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥

वैरी नहीं सन्ताप देते, जिस प्रकार विष्णुभगवान्से रक्षित देवताओंको असुर नहीं सता सकते॥२१॥ इस कारण हे नन्द ! तुम्हारा यह पुत्र गुण' शोभा, कीर्त्ति, प्रभाव इत्यादिमें नारायणके समान है.इसके कर्मोंमें आश्चर्य मत मानना ॥२२॥ इस प्रकार साक्षात् गर्गाचार्य मुझसे कहकर अपने घरको चले गये, उसी दिनसे बडे २ कार्य करनेवालोंमें श्रीकृष्णको मैं नारायणका अंश मानता हूँ ॥ २३ ॥

---

* **शंका**–नन्दजीसे गर्गमुनिने कहा कि,श्रीकृष्णके कर्मको हम जानते " संसारमें और कोई भी नहीं जानता,यह बड सन्देहकी बात इससे यह ज्ञात होता है कि,गर्गमुनि तो परमज्ञानी थे इनके सिवाय और जो ऋषि मुनि थे,वह सब ब्राह्मण नहीं थे, गर्गमुनिकी बातसे ऐसा जान पडता है ।

उत्तर–सब ऋषि मुनियोंका निरादर करके गर्गमुनि ऐसी बात कभी नहीं कह सकते गर्गमुनिने (अहं) पदका यह अर्थ किया कि,हमारी जाति जितनी है संसारमें मुनि, ऋषि, गृहस्थ, किसान सब श्रीकृष्ण भगवान्के कर्मको जानते हैं यह अर्थ अहंपदका किया, कुछ अपने अकेलेके किये नहीं कहा ॥

इस प्रकार व्रजवासियोंने गर्गाचार्यका वचन नंदरायजीसे सुन प्रसन्न हो नंदजीकी पूजा करी और श्रीकृष्णचंद्रमेंसे उनकी शंका दूर हो गई॥२४॥ यज्ञके नाशसे क्रोधित हो इंद्रने सात दिनरात जब व्रजपर मूशलधार वर्षा की उस समय व्रजमें पत्थर पवनसे पीडित ग्वालबालपशु और स्त्रियोंको अपनी शरण आये देख जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दया आगई और मुसकाकर जिस प्रकार बालक सर्पकी छत्रीको उखाड डालता है उसी

इति नंदवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः॥दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः॥मुदिता नंदमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः॥२४॥देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकंप्युत्स्मयन्॥ उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलींध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेंद्रमदभित्प्रीयान्न इंद्रो गवाम्॥२५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गर्गगीतनिरूपणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥२६

प्रकार एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़ धारण कर व्रजकी रक्षा की, वही इन्द्रके मदको दूर करनेवाले गौवोंके इंद्र भगवान् वासुदेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों * ॥२५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गर्गगीतनिरूपणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥२६॥

---

* शंका--सौ १०० यज्ञ करनेवाले राजा इन्द्रका तिरस्कार करके सुरभी जो गायें हैं उन्होंने अपना इन्द्र श्रीकृष्णको क्यों किया, इन्द्र तो तीनलोकमें एक ही है हमने आजतक दूसरा इन्द्र सुना नहीं फि उन्होंने दूसरा इन्द्र क्यों किया ?

उत्तर--इन्द्रने गायोंका नाश करनेके लिये गोकुलमें बडी वर्षा की, गायोंको मारना विचारा, इसलिये इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका विनाश होगया, इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका नाश होनेसे सुरभियोंने अपना इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बनाया, क्योंकि गायोंने विचारा कि, इन्द्र ऐसा चाण्डाल है कि, जिसने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये अधर्म नहीं देखा और गोहत्यासे भी नहीं डरा तो और दूसरे कामसे क्या डरेगा, अबकी बार तो श्रीकृष्णचन्द्रने बचालिया यह दुष्ट ऐसा कर्म फिर कभी करेगा तो हमारी बछिया बछरे सब विध्वंस हो जाएँगे और वंशका नाश हो जायगा इसलिये श्रीकृष्णभगवान्को अपना इन्द्र बनाया॥

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, लख श्रीकृष्ण प्रभाव । गाय इन्द्र अभिषेक पुनि, वरणों सहज स्वभाव ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्धन पर्वत उठाकर जो व्रजकी रक्षा की थी, सो देवराज इंद्रने जाकर सब बात कमलयोनि ब्रह्माजीको सुनाई. तब ब्रह्माजी बोले कि इंद्र ! तैंने बड़ा अपराध किया, पहले मैं भी इनके गोप, ग्वाल, बछडे इत्यादि हरकर अपनी बूढी दाढीपर धूल डार चुका हूं, इसके उपरांत स्वर्गलोकसे सुरभी गौ और इन्द्रलोकसे इन्द्र आये ॥ १ ॥ और अपराध करनेके कारण अत्यंत लज्जित हो इंद्रने एकांतमें आय सूर्यके समान तेजवाले किरीटको भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंसे लगाया ॥ २ ॥ अमिततेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव जिस प्रकार कानोंसे श्रवण किया था, उसी प्रकार नेत्रोंसे देखा और उस समय "त्रिलोकीका ईश्वर मैं हूँ" यह मद भी जाता रहा, तब देवराज इन्द्र हाथ जोडकर बोले ॥ ३ ॥ इंद्रने कहा, तुम्हारा स्वरूप शुद्ध सत्त्वगुणी है, अर्थात् एकरूप है, शांत सर्वज्ञ है, रजोगुण तमोगुणसे रहित है और मायाका जो कार्य अज्ञानसे जीवोंको लग रहा है, सो संसार है यह तुम्हारे स्वरूपमें नहीं है ॥ ४ ॥ हे ईश ! देहसम्बन्ध तुमको नहीं है तो उस देहसम्बन्धसे करे हुए और अन्य देहके कारण जो काम लोभादिक हैं सो कहांसे होंगे ? बहुधा ऐसे काम लोभादिक तो अज्ञानी पुरुषोंको होते हैं, तुम्हारे काम लोभादिकके तो नहीं हैं, परंतु तो भी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका मद दूर करनेके लिये तुम दंड देते हो ॥ ५ ॥ तुम जगतके पिता, गुरु और ईश्वर हो, नाशरहित दंडके ग्रहण करनेवाले कालरूप हो, जीवोंका हित करनेके लिये और अपनेको ईश्वर माननेवालोंका मान दूर करनेके लिये अपनी इच्छापूर्वक रूप धरकर लीला करते हो, तुम्हारी लीलामें ही हमारे मान दूर हो जाते हैं, लोकोंकी वाहवाहमें

श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्धने धृते शैले आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥
विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥२॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्या
मिततेजसः॥ नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृतांजलिः॥३॥इंद्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शांतं तपोमयं ध्वस्त
रजस्तमस्कम् ॥ मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतो न तद्धेतव ईश तत्कृता लोभा
दयो येऽबुधलिंगभावाः ॥ तथापि दंडं भगवान्बिभर्त्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पिता गुरुस्त्वं जगता
मधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदंडः ॥ हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वङ्जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥

जीवोंका सत्यानाश हो जाता है ॥ ६ ॥ जो मुझ सरीखे अज्ञानी भी आपको जगत्का ईश्वर मानते हैं,वे भयके समय भी निर्भय आपका दर्शन कर शीघ्र ही ईश्वरत्वका मद त्याग कर देते हैं और गर्वको छोड कर सत्पुरुषोंकी ओर तुम्हारी भक्तिको करते हैं,तुम्हारी सहजकी चेष्टा है, सोई दुष्टोंको दंडरूप है ॥ ७ ॥ हे समर्थ ! ऐश्वर्यके मदमें डूबे हुए तुम्हारे प्रभावको न जान तुम्हारा अपराध करनेवाले मूढचित्त मेरे ऊपर क्षमा करो, हे ईश्वर ! फिर मेरी ऐसी बुद्धि न हो; यही मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज ! इस संसारमें तुम्हारा अवतार बड़ा भार जिनसे हो ऐसे सैन्यपालन करनेवाले मुख्य सेनापतियोंको मारनेके कारण और तुम्हारे चरणोंका सेवन करनेवाले भक्तोंका कल्याण

ये मद्विधाऽज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम्॥हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजंत्यपस्मया ईहा खलानाम
पि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षंतुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो
मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय
देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये
नमः ॥ १० ॥ स्वच्छंदोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥११॥ मयेदं भगवन्
गोष्ठनाशायाऽऽसारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तंभो
हतोद्यमः ॥ ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥

करनेके लिये है ॥ ९ ॥ ऐसे जो तुम भगवान् महात्मा पुरुष हो सो तुम्हारे लिये नमस्कार है, शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक भक्तोंके रक्षक वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १० ॥ अपने भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये देह धरनेवाले और शुद्ध ज्ञानमूर्ति सर्वरूप सबके कारण सब प्राणियोंके आत्मा तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जब मेरा यज्ञ नाशको प्राप्त हुआ तब बडा क्रोध कर मुझ अज्ञानी अभिमानीने ब्रजका नाश करनेके लिये वर्षा और पवन चलाकर करनेके अयोग्य कार्य किये ॥ १२ ॥ यह आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया जो मेरा गर्व दूर कर दिया, उद्यम भी वृथा गया, तुम सबके ईश्वर आत्मा हो, इसलिये मैं तुम्हारी शरण प्राप्त

867

हुआ हूँ ॥ १३ ॥ इसप्रकार जब देवराज इंद्रने स्तुति करी तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर मेघके समान गम्भीरवाणीसे इंद्रसे बोले ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे इंद्र। मैंने तेरे ऊपर अनुग्रह करनेहीके लिये यज्ञका विध्वंस किया है, क्योंकि तुम देवताओंका राज्य पाकर अचेत हो गये थे, सो अपना स्मरण करानेके लिये यह मैंने किया ॥ १५ ॥ क्योंकि ऐश्वर्यमद और धनमदसे अंधे हुए पुरुष दंड हाथमें लिये मुझे नहीं देखते और जिसके ऊपर मैं कृपा करनेकी इच्छा करता हूँ, उस पुरुषकी प्रथम संपत्ति हर लेता हूँ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, अहंकार त्यागकर मेरी आज्ञाका पालन करना और सावधान होकर अपने अधिकारपर रहना ॥ १७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम्॥मेघगंभीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥१४॥श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन् मखभगोऽनुगृह्णता ॥ मदनुस्मृतये नित्य मत्तस्येंद्रश्रिया भृशम् ॥ १५ ॥ मामैश्वर्यश्रीमदांधो दंडपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तंभवर्जितैः ॥ १७ ॥ अथाह सुरभिः कृष्णमभिवंद्य मनस्विनी ॥ स्वसंतानैरुपामंत्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्णकृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसंभव ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इंद्रो जगत्पते ॥ भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इंद्रं नस्त्वाऽभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥

इसके उपरांत जब इन्द्र स्तुति कर चुका तब उदारचित्त सुरभी गौने अपनी सन्तान सहित आकर गोपरूपी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार और सम्बोधन देकर कहा कि ॥ १८ ॥ हे कृष्ण। हे महायोगिन्। हे विश्वात्मन्। हे विश्वके उत्पन्न करनेवाले ! हे अच्युत। हे अखण्डरूप! इन्द्रनें तो हमें मारा ही था परंतु हे लोकोंके नाथ। आपने बचाया ॥१९॥ हे जगत्पति ! तुम हमारे श्रेष्ठ देवता हो और तुम्हीं गौ ब्राह्मणके देवता हो और जो साधु हैं, उनके कल्याणार्थ हमारे इंद्र होओ ॥ २० ॥ ब्रह्माजीकी हमें आज्ञा हुई है, इस कारण इन्द्रपदवी देनेके लिये

हम तुम्हारा अभिषेक करेंगी। हे विश्वके आत्मा! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तुमने अवतार लिया है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! इसप्रकार कहकर श्रीकृष्णचन्द्रका यह कामधेनु अपने दुग्धसे अभिषेक करने लगी और ऐरावत हाथीकी सूँडसे लाये आकाशगंगाके जलसे अभिषेक किया ॥ २२ ॥ और इन्द्रने भी देवमाताओंकी प्रेरणासे देवर्षियोंके सहित भगवान्का अभिषेक किया और गोविन्द नाम धरा ॥२३॥ और दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उस समय तुंबुरु, नारदादिक, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण आकर लोकोंके पापोंको दूर करनेके लिये भगवान्का यश गाने लगे और अति आनंदित होकर देवांगनायें नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ इसके उपरांत

श्रीशुक उवाच॥एवं कृष्णमुपामंत्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः॥जलैराकाशगंगाया ऐरावतकरोद्धृतैः॥२२॥इंद्रः सुरर्षिभिः
साकं नोदितो देवमातृभिः॥ अभ्यषिंचत दाशार्हं गोविंद इति चाभ्यधात्॥२३॥(अहमिन्द्रो हि देवानां त्वं गवामिंद्र
तां गतः॥गोविंद इति लोके त्वां गास्यंति भुविमानवाः॥१॥)तत्रागतास्तुंबुरुनारदादयो गंधर्वविद्याधरसिद्धचारणाः॥
जगुर्यशो लोकमलापहं हरेःसुरांगनाःसंननृतुर्मुदान्विताः॥२४॥तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो ह्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः॥
९६० लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन्पयोद्रुताम् ॥२५॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन्मधुस्रवाः॥
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनंदन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात
क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥

देवताओंमें मुख्य देवता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति और अद्भुत फूलोंकी वर्षा करनेलगे, उस समय तीनों लोक परम आनन्दको प्राप्त हो गये। फिर गौ दुग्धसे पृथ्वीको भिजोने लगी॥२५॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक किया, उस समय नदियें अनेक प्रकारके रसोंकी बहनेवाली हो गईं और वृक्षोंमेंसे मदकी धारा चूने लगी, बिना जोते खेत भी आप ही पकने लगे और पर्वतोंने अपनी गुफाओंमेंसे मणियोंको बाहर निकालकर धर दिया ॥ २६ ॥ हे कुरुकुलके आनन्ददाता परीक्षित्! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

गोविंदाभिषेक हुआ, उस समय क्रूरस्वभाववाले सिंहादिक जीवोंका भी वैरभाव दूर हो गया ॥ २७ ॥ इस प्रकार गोकुलकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको गोविंदाभिषेक कर वह इन्द्र देवताओंको संग ले स्वर्गको चला गया ॥२८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां गोविंदाभिषेको नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ दोहा—अट्ठाइसमें नन्दको, लाये कृष्ण छुटाय । गोपोंको वैकुण्ठ सब, हितकारि दियो दिखाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! नन्दजीने एकादशीको निराहार व्रत करके भगवान्का पूजन किया, दूसरे दिन द्वादशी दो घडी थी उस समय पारण करनेके लिये अरुणोदयसे पहले रात्रिमें धर्मसङ्के बलसे स्नान करनेके कारण यमुनाको गये, तब

इति गोगोकुलपतिं मोविंदमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥२८॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे दशमस्कंधे पू० इंद्रस्तुतिगोविन्दाभिषेको नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नंदस्तु कालिंद्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोंऽतिकम् ॥ अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥२॥ चुक्रुशुस्तमपश्यंतः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ ३ ॥ तदंतिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः ॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयित्वाऽथ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥

नंदरायजीने आसुरीवेलाको न जानकर यमुनाजीमें प्रवेश किया ❋ ॥ १ ॥ इसलिये वरुणका एक दैत्य सेवक उन्हें पकड़ वरुणके पास ले गया ॥ २ ॥ नंदरायजीको न देख जो गोप संग गये थे वह हे कृष्ण ! हे राम ! इस प्रकार पुकारने लगे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, पिताको वरुण ले गया यह बात सुन अपने भक्तको अभयके देनेवाले वरुणके पास गये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे बडा आनंद पाय लोकोंके पालन करनेवाले वरुणजीने इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आये देख बड़ी पूजाकी सामग्रियोंसे पूजा करके

❋ शंका-भागवतमें लिखा है कि नन्दजीने एकादशीका व्रत करके जब चार घडी पिछली रात रही तब भगवान्की पूजा करके यमुनामें स्नान करने गये, इसमें यह शंका होती है कि विना स्नान किये भगवान्का पूजन कैसे किया क्योंकि, जो प्राणी विना स्नान किये भगवान्का पूजन करता है तो महादोष होता है ?

उत्तर-महात्मा पुरुष भगवान्का पूजन ऐसे नहीं करते मानसिक पूजन करते हैं मानसिक पूजनमें भगवान् प्रसन्न भी होतेहैं, इसलिये नन्दजी मानसिक पूजन भगवान्का करके पीछे स्नानको गये ॥

कहा ॥४॥ वरुणजी बोले कि आज तुम्हारे दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ और आज ही मेरे मनोरथ भी सफल हुए, हे भगवन् ! तुम्हारे
चरणारविन्दोंका जो भजन करते हैं, वह संसारके पार हो मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ परिपूर्णरूप, संपूर्ण जीवोंके साक्षी, जिनके समान
किसीका ऐश्वर्य नहीं, ऐसे भगवान्को नमस्कार है और जिनके स्वरूपमें लोकोंकी रचना करनेवाली माया नहीं सुनी जाती ॥६॥धर्मकी
महिमा और कार्यको नहीं जाननेवाला मूढ़ मेरा अनुचर तुम्हारे पिताको ले आया,सो अपराध क्षमा करो ॥७॥ हे श्रीकृष्ण ! मेरे ऊपर तुम
अनुग्रह करनेके योग्य हो, हे गोविंद ! हे पितृवत्सल ! अपने पिताको तुम ले जाओ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित !

वरुण उवाच ॥ अद्य मे निभृतो देह अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥
नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानता मामकेन मूढेना
कार्यवेदिना ॥ आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥ गोविंद
नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागा
त्स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नंदस्त्वतींद्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो
विस्मितोऽब्रवीत ॥ १० ॥ ते त्वौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधा
स्यदधीश्वरः ॥११॥ इति स्वानां स भगवान्विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिंतयत् ॥१२॥

इस प्रकार ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जब वरुणजीने प्रसन्न किया, तब अपने पिता और बधु बांधवोंको आनंद देते वहाँसे
चले॥ ९ ॥जो प्रथम कभी देखनेमें न आया,ऐसा वरुणका ऐश्वर्य और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी प्रीति देख नन्दरायजी अतिआश्चर्य मान अपनी
जातिके गोपोंसे कहने लगे कि प्रथम मुझे ले जाकर एक कोनेमें बैठाय दिया,इसके उपरान्त यह कृष्ण गया, तब इसे देख वरुणने नमस्कार
करके पूजा की॥ १० ॥हे राजन् ! उत्कण्ठायुक्त बुद्धिसे व्रजवासी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ईश्वर मान विचार कर कहने लगे कि,हे श्रीकृष्णचन्द्र !
क्या हमको वैकुण्ठधाम प्राप्त करोगे ? ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करावेंगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार सबके देखनेवाले

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रजवासियोंका मनोरथ जान उसे पूर्ण करनेके लिये कृपा करके यह विचार करने लगे ॥१२॥ कि, इस संसार में प्राणी देहमें अहंकार, काम, कर्म इत्यादिसे देवता, पशु, पक्षी आदि जो २ योनि हैं, उनमें भटकता फिरता है और अपना स्वरूप नहीं जानता ॥१३॥ इस प्रकार करुणानिधान भगवान्ने विचारकर गोपादिक सब ब्रजवासियोंको ब्रह्मरूप दिखाया और इसके उपरान्त मायासे परे जो वैकुण्ठधाम है उसका दर्शन कराया ॥ १४ ॥ अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करते हैं, सत्य अर्थात् बाधारहित ज्ञानस्वरूप है, अनन्त अर्थात् देखनेमें न आवै, ज्योति अर्थात् स्वयंप्रकाश है, गुणोंके निषेधमें सावधान मुनीश्वररूप इस रूपको देखते हैं ॥ १५ ॥ वह सम्पूर्ण ब्रजवासी ब्रह्मस्वरूप देहमें प्राप्त होते ही मग्न हो गये, फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कृपा कर वहांसे निकाल वैकुण्ठलोक दिखाया, जहां प्रथम महात्मा

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः॥उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन्॥१३॥इति संचिन्त्य भगवान्म
हाकारुणिको हरिः॥दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्॥१४॥सत्यं ज्ञानमनंतं यद्ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्॥यद्धि
पश्यंति मुनयो गुणापाये समाहिताः॥१५॥ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः॥ ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राऽक्रूरो
ऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नंदादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानंदनिर्वृताः॥ कृष्णं च तत्र च्छंदोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः॥१७॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दानयनवैकुण्ठप्रदर्शनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥
श्रीशुक उवाच॥ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः॥ वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ १॥

अक्रूरजी गये थे, यहां शंका है कि, ब्रह्ममें डूबेको वैकुण्ठलोकका दर्शन नहीं बनता तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे पहले अक्रूरजीने दर्शन किया था, उन्हीं श्रीकृष्णकी कृपासे इन लोगोंने दर्शन किया, क्योंकि अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें कुछ यह बात अनुचित नहीं है ॥१६॥ हे नृप ! वहां वेदोंसे होती भगवान् श्रीकृष्णन्द्रजीकी स्तुति देख और नन्दादि सब व्रजवासियोंने वैकुण्ठधामका दर्शन कर परमानन्दसे सुखी हो बड़ा आनन्द प्राप्त किया ॥ १७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां नन्दानयनवैकुण्ठप्रदर्शनं नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥२८॥ दोहा–इनतिसमें हरिने कियो, रास विलास बनाय। अन्तर्धान भये तुरत, सबन वहीं छिटकाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! गोपकन्याओंसे जिन रात्रियोंकी प्रतिज्ञा की थी जब वही

शरद्ऋतु आकर उपस्थित हुई कि, जहां तहां चमेली खिल रही थीं उन रात्रियोंको देख योगमायाका आश्रय ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रमण करनेका मनोरथ करने लगे ॥१॥ और उसी समय सुखदायक किरणोंसे पूर्वदिशाके मुखको अरुण करते भगवान् चन्द्रमा उदय हुए, जैसे परदेशसे बहुत दिनोंमें पुरुष आकर अपनी प्यारीके मुखको केशर लगाकर लाल करता है ॥२॥ परिपूर्ण मण्डल और लक्ष्मीके मुखके समान कांति, नवीन केशरकी तुल्य अरुण चन्द्रमाको देख और राकाकी कोमल किरणोंसे रँगे वृन्दावनको देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्त्रियोंके मन हरण करनेवाले कलरवसे गीत गाने लगे,इस कलरवमेंसे ही बीजमंत्र 'क्लीं' निकलता है ॥ ३ ॥ प्रेमात्मक कामके बढानेवाले गीतको श्रवण कर श्रीकृष्णचन्द्रने जिनके मन हर लिये हैं वह स्त्रियें जहां पति श्रीकृष्णचंद्र थे वहां आईं और "अरी किशोरी'। चलैगी ?'

९२८

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिंपन्नरुणेन शंतमैः॥स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वंतमखंडमंडलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ॥ वनं च तत्कोमलगोभिरंजितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनंगवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥ आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कांतो जवलोलकुंडलाः ॥ ४ ॥ दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः ॥ पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययंत्यः शिशून्पयः ॥ शुश्रूषंत्यः पतीन् काश्चिदश्नंत्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥ लिंपंत्यः प्रमृजंत्योऽन्या अंजंत्यः काश्च लोचने॥व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णांतिकं ययुः ॥७॥

इस प्रकार परस्पर कह अत्यन्त शीघ्रतासे चलीं,चलते समय उनके कानोंके कुंड हिलते जाते थे॥४॥कितनी हीं गोपियें उत्कण्ठाके मारे दुहती हुई गायोंको छोडकर चली आईं और दूसरी चूल्हेपर चढेहुए दूधको वैसा ही छोडकर चलीं, बहुत गोपियें गेहूँका पकाहुआ पदार्थ चूल्हेपर ही छोडकर चलदीं ॥ ५॥ कितनी ही एक पत्तल परोसती थीं सो वंशीकी ध्वनि सुनते ही छोडकर चली आईं और कितनी एक गोपी अपने देवर जेठके बालकोंको दूध पिलाती थीं, उनको छोड आईं. कोई कोई गोपी अपने पतिकी सेवा करतेसे ही और कोई २ भोजन करतेसे ही चली आईं ॥ ६ ॥ कोई २ गोपी घरोंको लीपती, कोई नेत्रोंमें अञ्जन लगाती, कोई पांवोंके गहने हाथोंमें पहर और हाथोंके पावोंमें पहर

लहँगा ओढ, ओढनी पहर, भगवान् मुरलीमनोहरके पास आईं ॥७॥ "यद्यपि गोपियोंके शृंगार उलटे पुलटे थे, परंतु तो भी योगमायाने सुधार दिये थे" ❋ यद्यपि पति, पिता, माता, भ्राता और जातियोंने मने भी किया परंतु तो भी भगवान् केशवमूर्तिने जिनके मन हर लिये थे, उन गोपियोंने किसीका कहना नहीं माना ॥८॥ किसी गोपीको उनके पुरुषोंने घरमें बन्द कर दिया, जब निकलनेका मार्ग न मिला, तब उनने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इच्छा कर आँखें मूँद उनका ध्यान किया ॥ ९ ॥ सहन न किया जाय ऐसे प्यारेके विरहरूप तापसे पाप

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥ गोविंदापहृतात्मानो न न्यवर्तंत मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ॥ कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥ दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ॥ ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमंगलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ॥ जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कांतं न तु ब्रह्मतया मुने ॥ गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥

जिनके दूर होगये और ध्यानमें प्राप्त हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करके, सुखके पुण्यसे बन्धन जिनके दूर होगये, ऐसे अत्यन्त विरहके दुःख और श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्राप्तिके भोगसे एक संग ही सब प्रारब्धकर्म क्षीण हो जानेसे मुक्त हुईं॥१०॥ जारबुद्धिसे परमात्मा श्रीकृष्णचंद्रको पाय बन्धन जिनके कट गये, ऐसी गोपियोंने गुणोंके बने देहको तत्काल ही त्याग दिया और दिव्य देह धारण कर सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे मिलीं ॥११॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे महाराज! वह गोपियां भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको केवल जार मानती थीं, ब्रह्म

❋ दृष्टान्त-जैसे आठ छैल सैर करनेको निकले, बागमें जाकर कहा कि, भांग बनाओ, सो मीठीही छानी और मिठाईके लालचसे तीन २ लोटे गडगप्प कर गये अर्थात् पीगये, एक मित्र उनमें चतुर था, तो इसने मनमें विचार किया कि, अभ्यास तो है नहीं और तीन तीन लोटे चढागये हैं, जब यह बेसुधि हो जायँगे तो इन्हें कौन सँभालेगा ? उसने एक चुल्लूभरही पी थी. अब चढा जो नशा तो किसीकी तो पाग गिरगई किसीका पटका खुल गया. किसीकी धोती खुलगई और जिसको नशा नहीं था उसने सबको सँभाल लिया, इसी प्रकार योगमायाने सबको सुधार दिया ॥

पनसे उनको किञ्चित् भी भाव नहीं था, फिर गुणमय बुद्धिवाली उन गोपियोंके गुणोंका प्रभाव संसारसे कैसे छूट गया? ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यह बात मैंनें आपसे प्रथम ही वर्णन की थी कि जब शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे शत्रुभाव रखता हुआ भी मुक्तिको प्राप्त हुआ, तब प्रीति करनेवाली गोपियोंके तरनेमें क्या आश्चर्य है? ॥ १३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियंता श्रीकृष्णचन्द्रका जो प्रगट होना है, सो पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये है इस कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जीवके समान कहना सम्भव नहीं ॥ १४ ॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकभाव, सौहृद जो पुरुष नित्य भगवान् वासुदेवमें करते हैं, वह पुरुष तन्मय हो

श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यांति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वांतिकमायाता भगवान्व्रजयोषितः ॥ अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥

जाते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! अजन्मा योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें तुम आश्चर्य मत करो, क्योंकि उनमें प्रेम करनेसे स्थावर भी संसारसे छूट जाते हैं ॥ १६ ॥ *बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रजकी स्त्रियोंको अपने पास आयी देख वाणियोंके विलाससे मोहित करके कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे बड़भागिनियो! भली आईं, आओ मैं तुम्हारा क्या आदर करूं? ब्रजमें तो कुशल है और यहां कैसे आइ इसका कारण कहो ॥ १८ ॥

---

*दृष्टान्त—प्रेमसे भावसहित श्रीनारायणकी कथा सुन के, कहीं श्रीमद्भागवतकी कथा बैठी थी, किसीने कहा लालाजी सुननेको चलो. लालाजीने उत्तर दिया कि, जब दशमस्कन्ध प्रारंभ होगा तब चलेंगे, फिर जब दशम होने लगा, तो लालाने कहा कि, पंचाध्यायीमें चलेंगे जहां श्रीकृष्णने लाखों गोपी बुलाकर उनके संग विहार किया, हमभी वैसाही करें, जैसे वीर पुरुष कडखे सुनकर आगे बढते हैं, उसी प्रकार विषयी विषयसे. और जगह जो भाव बिगडे तो ठिकाना लग जाय और जो साक्षात् कृष्णकांता त्रैलोक्यजननीमें भाव बिगडा तो उसका सत्यानाश ही हो जाता है ॥

क्योंकि यह भयानक रात्रि है, सिंह व्याघ्रादि घोर प्राणी यहां फिरते हैं, इसकारण तुम अपने घरको जाओ, हे सुमध्यमे ! स्त्रीजाति होकर
यहां मत रहो ॥१९॥ देखो तुम्हारे माता, पिता,पुत्र,भ्राता,पति तुमको विना देखे ढूँढते होंगे इसलिये बन्धुओंको घबराहट मत करो ॥२०॥
क्योंकि फुलवारी जिसमें फूल रही चन्द्रमाकी किरणोंसे रंगा हुआ यमुनासे लग मन्द पवनसे हिलनेवाले वृक्षोंके पातसे शोभायमान वन तुमने
भली भांति देख लिया ॥२१॥ इस कारण तुम ब्रजमें जाओ, अब विलम्ब मत करो, तुम पतिव्रता हो; पतियोंकी सेवा करो,क्योंकि वहां बछडे
रम्भाते होंगे,बालक रोते होंगे. जाओ बालकोंको दूध पिला और गायोंको दुहो॥२२॥ अथवा मेरे स्नेहसे वशीभूत अन्तःकरणसे तुम आई,

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरः पितरः पुत्रा
भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वंति ह्यपश्यंतो मा कृध्वं बंधुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररंजितम् ॥
यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः ॥ क्रंदंति वत्सा
बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥ अथवा मदभिस्नेहाद् भवत्यो यंत्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयंते मयि
जंतवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बंधूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥
दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमय
शस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥

सो तुमको योग्य ही है क्योंकि, सब जीव मुझमें प्यार करते हैं ॥ २३ ॥ हे मंगलरूपिणियो ! निष्कपट होकर पतियोंकी सेवा करो, देवरोंकी
सेवा करो और पुत्रोंका पोषण करो, यही स्त्रियोंका परमधर्म है ॥२४॥ यदि कदाचित् अपना पति खोटे स्वभावयुक्त हो, दुर्भाग्य हो अथवा
वृद्ध हो, मूर्ख हो, रोगी हो, दरिद्र हो हो तो भी स्वर्गकी जिनको चाहना है, ऐसी स्त्रियोंके त्यागने योग्य नहीं है और पतित हो तो त्यागने
योग्य है ॥ २५ ॥ स्त्रियोंको उपपतिके सेवन करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता बरन् यश जाता है, इसलिये उपपतिका सेवन तुच्छ

है, दुःखका देनेवाला है और सर्वत्र निन्दाके योग्य है ॥२६॥ जिस प्रकार भाव मुझमें श्रवण दर्शन ध्यान कीर्त्तनसे रहता है, वैसा पास रहनेसे नहीं होता, इसलिये अपने घरको जाओ ❋ श्रीकृष्णचन्द्रने इस कारण गोपियोंसे जाओ जाओ कहा कि, जो मैं इनसे कहूँगा तुम मेरे साथ विहार करो तो यह गालियें देंगी और निकट भी न आवेंगी इससे प्रथम ही इनके मानखण्डन करूं तो फिर यह आप ही मेरा पल्ला पकडेंगी × ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियें गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अत्यन्त दुःखित हुईं

श्रवणाद्दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥
इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविंदभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यव
शुचः श्वसनेन शुष्यद्बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखंत्यः ॥ अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजंत्य उरुदुः
खभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदि
तोपहते स्म किंचित्संरंभगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

और मनोरथके सिद्ध न होनेसे बडी चिन्ता करने लगीं ॥ २८ ॥ चिन्ताके श्वाससे कुन्दरूके फलके समान उनके अरुण होठ सूख गये और अपने मुखोंको नीचा कर चरणके अँगूठेसे धरतीपै लिखने लगीं और रुदनके कारण नेत्रोंसे कज्जलसहित जो आंसू निकल रहे थे उनसे कुचोंकी केशर धुल गई, तब अति दुःखके बोझसे गोपी चुपचाप होकर खडी होगईं ॥ २९ ॥ जिनके लिये गोपियोंने सब घरबार छोड़

---

* दृष्टांत—देखो स्त्रियोंको पतिव्रतधर्म पालन करना चाहिये । पतिव्रताओंकी बडी महिमा है । एक स्त्रीकी गोदमें उसका पति शिर धरे सो रहा था, उसका बालक खेलते खेलते अग्निमें जा पडा, स्त्रीने यह देखा पतिकी निद्रा भंग न हो, यह विचार अपना घुटुआ न उठाया और अग्नि पतिव्रताके शापके भयसे शीतल हो गये.

श्लोक—सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता ॥ अभूत्तदानीं व्रतभंगशंकया हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः ॥ १ ॥ इस कारण हे सखियो ! अपने पतियोंपर जाओ ॥

÷ दृष्टांत-श्रीकृष्णने वंशी बजाते तो बजादी और जब लाखों गोपियोंने आनकर घेर लिया, तब बुद्धि विहारी होगई, जैसे किसीके बालक घरमें रुईका फोहा जलाते है और फिर प्रसन्न होते हैं, सो बाजारमें किसी साहूकारकी दूकानमें लाख रुपयेकी रुईका ढेर लगा देखे उन्होंने मनमें विचार किया कि, इसमें बडा तमाशा होगा सो ढेर में आग लगा दी जब यह ढेर थोडा २ जला तबतक तो ताली बजाते रहे और जिस समय आग भडकर ऊंची ऊंची लपटें निकली तब घबरा गये, इसी प्रकार श्रीकृष्णकी दशा हुई, जब एकाध गोपीको देखपाते, तब तो प्रसन्न होते अब लाखों गोपियोंको देख घबराकर घर जानेको कहा ।

दिये, उन अपने परमप्रीतम श्रीकृष्णचन्द्रके कठोर वचन सुन प्रेमभरी गोपियें रोनेके कारण आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंको पोंछ कुछेक क्रोधित हो गद्गद कण्ठसे बोलीं ॥ ३० ॥ कि, हे समर्थ। "जाओ जाओ" ऐसे कठोर वचन मत कहो, क्योंकि हम सब विषयोंको त्यागकर केवल तुम्हारे ही चरणोंका सेवन करतीं हैं. हे दुराग्रही। हमको मत त्यागो, जैसे आदिपुरुष भगवान्की शरण सर्व त्याग कर मुमुक्षुलोग जाते हैं, तो मुमुक्षु पुरुषोंको वह भजते हैं, इसी प्रकार तुम्हारे लिये सर्वस्व तजकर हम आई हैं, इसलिये हमारा सेवन करो, त्यागो मत ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण धर्मवेत्ता! तुमने कहा, पति पुत्र सुतोंकी सेवा करो, यह स्त्रियोंका परमधर्म है. जो कहा सो हमारी धर्म सुननेकी इच्छा नहीं है, क्योंकि हमें चाहना नहीं है, तुम धर्मके उपदेश करनेवाले नहीं हो किन्तु देहधारियोंके प्यारे हो, आपने कहा पति आदिकोंकी सेवा करना

गोप्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्व विषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बंधुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वंति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिंद्याआशां भृतां त्वयि चिरादरविंदनेत्र ॥ ३३ ॥

धर्म है, सो आत्मासहित पति आदिक प्रिय लगते हैं, स्त्रीको पति प्यारा लगता है, आत्मासे लगता है सो आत्मा जब निकल जाता है, पीछे इस देहको बांधकर ले जाते हैं और जला देते हैं, सो सबके आत्मा तुम हो, तुम्हारे सेवन करनेसे ही हमें सब धर्म स्वयं प्राप्त हो जायँगे, क्योंकि सब उपदेशवाक्य ईश्वरकी सेवा करना ही परमधर्म बताते हैं, इस कारण तुम सब जीवोंके आत्मा होनेसे परमबन्धु ईश्वर हो तुमसे जो जीव बहिर्मुख हैं सो दग्ध होनेके योग्य हैं ॥ ३२ ॥ अपने आत्मा नित्य प्यारे तुम हो तिनमें विवेकी पुरुष प्रीति करते हैं, दुःखके देनेवाले पति पुत्रादिकोंसे क्या प्रयोजन है? इसकारण तुम हमपर प्रसन्न हो. हे ईश्वर कमलदललोचन! बहुत दिनोंसे तुममें आशारूपी लता लगाई है, उसे "जाओ जाओ" ऐसे कुठारी रूप वचनसे कैसे काटते हो देखो! विषके वृक्षको भी आप बढाकर विवेकी नहीं काटते हैं॥ ३३॥

तुमने कहा, जाओ सो हम कैसे जायँ ? क्योंकि जो चित्त सुखपूर्वक घरमें लग रहा था सो तुमने हर लिया और जिन हाथोंसे घरका काम करती थीं, सो तुमने हर लिये, तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे गोपियो ! अब तुम जाओ, परसोंके दिन तुम सबके चित्त विचार कर देंगे तो गोपियोंने कहा कि तुम्हारे चरण छोड़कर हमारे पाँव एक पग भी नहीं चल सकते ब्रजमें कैसे जांय? और जाकर हम क्या करें ? ॥ ३४॥ हे सखे ! आपके हास्य, दर्शन और मधुर गानसे उत्पन्न हुई हमारी कामाग्निको तुम अपने अधरामृतरूप पिचकारीसे शांत करो नहीं तो हम एक तो कामकी अग्नि और दूसरी विरहकी अग्नि इन दोनोंसे दग्धशरीर हो योगी जनोंकी नाईं तुम्हारे ध्यानसे ही तुम्हारे चरणोंके

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रज
मथो करवाम किंवा॥३४॥ सिंचांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्॥ नो चेद्वयं विरहजाग्न्यु
पयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते॥३५॥यर्ह्यंबुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदांबुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजःप्रपन्नाः ॥३७॥

निकट पहुँच जायँगी * ॥ ३५ ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, तुम अपने पतियोंके पास जाओ, वही तुम्हारी कामाग्नि बुझावेंगे, इसके उत्तरमें गोपी कहती हैं कि, हे कमलदललोचन ! वनवासी जिन्हें प्रिय हैं, ऐसे तुम हो और लक्ष्मीजीको किसी समय ही जिनकी सेवा प्राप्त होती हैं, ऐसे तुम्हारे चरणोंके तलुए हमने जबसे स्पर्श किये, उसी दिनसे उनका सुख अनुभव किया और उसी दिनसे औरके सम्मुख भी खडी नहीं हो सकतीं ॥ ३६ ॥ यद्यपि लक्ष्मीजी सदा वक्षस्थलमें रहती हैं परन्तु तो भी जिसका भक्तलोग सेवन करते हैं, ऐसी तुम्हारे चरणकी

873

---

* शंका—जैसे कामदेवसे पीडित होकर मनुष्योंकी स्त्री ओष्ठ चुम्बन करनेकेलिये मनुष्योंकी विनती करती हैं और गोपी तो मोक्षका रूप थीं परन्तु कामकी शांति करनेके लिये पूर्णब्रह्म सरीखे जो श्रीकृष्ण हैं, उनसे ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये याचना क्यों की ?

उत्तर—गोपियोंने विचार किया कि, हम कुछ पढी नहीं और श्रीकृष्णकी जैसे विद्वान् लोग स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति हम भी किया चाहती हैं, परन्तु विना विद्या हम कैसे स्तोत्रोंसे स्तुति करें ? परन्तु हमने ऐसा भी सुना है कि, श्रीकृष्णके ओष्ठोंमें सरस्वतीका वास है, जो हमारे सबके ओष्ठोंसे श्रीकृष्णके ओष्ठ छुइ जायँ तो हम सब विद्यावान् हो जाँयगी, तब अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भगवान्की स्तुति हम भी विद्वानोंके सदृश किया करेंगी, कामदेवकी पीडासे कृष्णके ओष्ठोंका चुम्बन करना नहीं चाहती थीं॥

रेणुको तुलसीने सौत सहित चाहना की,जिस लक्ष्मीजीकी चितवनके लिये और देवता तप करके परिश्रम करते हैं उन्हीं लक्ष्मीके समान हम भी तुम्हारे चरणकी रजको प्राप्त हुई हैं, अर्थात् शरण ली है ॥ ३७ ॥ हे दुःखके काटनेवाले ! तुम्हारे भजनमें आशा लगाये हम घर छोड़कर तुम्हारे चरणोंके पास आई हैं तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होओ,तुम्हारी सुन्दर मुसकान चितवनसे बढे कामदेवसे तपित देह हमको अपनी दासी करके स्थान दीजिये ॥ ३८ ॥ अलकावली जिसपर छूट रहीं और कुण्डलोंकी कांतिसे युक्त कपोल अमृतभरे ओष्ठमें हास्यसहित चितवनवाले तुम्हारे मुखको देख और भक्तोंको अभयदान देनेवाले तुम्हारे दोनों भुजदण्डोंको देखकर लक्ष्मीको एक ही प्रीतिके उपजानेवाले तुम्हारे वक्षस्थलको देख हम तुम्हारी दासी होती हैं, हे कृष्ण ! मनोहर पदवाले बडे बाँसुरीके गीतसे मोहित होकर त्रिलोकीमें ऐसी

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ॥ त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्ता
त्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥ वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥ का स्त्र्यंग ते कलपदायतवेणुगीत
संमोहिताऽऽर्य चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबि
भ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥ तन्नो निधेहि करपंकजमार्त
बन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥

कौन स्त्री है जो अपने धर्मसे चलायमान न हो, त्रिलोकीमें सुन्दर इस तुम्हारे रूपको देख गौ, पक्षी, मृग यह भी रोमांचित होजाते हैं, फिर हम इस मनमोहन रूपसे मोहित होगईं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? तुम्हारा प्रकाशक शब्द सुनकर भी अपना धर्म त्यागना उचित है और तुम्हारे रूपके अनुभवसे त्याग करनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥३९॥४०॥ और आपने निश्चय व्रजके भय पीडा दूर करनेके लिये अवतार लिया है जैसे आदिपुरुष श्रीनारायण स्वर्गकी रक्षा करते हैं इस कारण हे दीनबन्धु ! हम तुम्हारी दासी हैं; हमारे कामदेवसे तप्त स्तन और शिरोंपर अपने हस्तकमलको धरो ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! इसप्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंका विलाप सुन हँसकर दया प्राप्त हो आत्माराम भी हैं तो भी गोपियोंके संग रमण करने लगे ॥ ४२ ॥ प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवनसे प्रफुल्लितमुखवाली इकट्ठी हुई गोपियोंके सहित उदार जिनकी चेष्टा और उदार जिनकी हँसन दाँतोंमें कुन्दकलीके समान कांतिवाले श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे शोभायमान लगने लगे, जैसे तारागण सहित चन्द्रमा शोभायमान लगता है ॥ ४३ ॥ गोपियें जिनका गान करें और स्त्रियोंके सैकडों यूथका पालन करें; ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं गान करते वैजयन्ती माला पहरे वनको शोभायमान करते विहार करने लगे ॥ ४४ ॥ शीतल बालूके बिछानेवाले यमुनाजीके पुलिनमें गोपियों सहित आकर रमण करने लगे, वहां यमुनाजीकी लहरका आनंद और कमलोंकी सुगन्धसनी वायुसे अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ भुजाओंका पसारना, आलिंगन करना, कर, अलक, ऊरू, नीवी, स्तन इनका स्पर्श करना, परिहासके वचन कहना, नखोंके चिह्न, क्रीडा, चितवन और हँसियोंसे ब्रजसुन्दरियोंको भगवान् काम उद्दीपन कराय रमण करने लगे ॥४६॥ इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रसे मान जिन्होंने प्राप्त किया, ऐसी गोपियें मानवती होकर पृथ्वीकी स्त्रियोंमें अपनेको अधिक मानने लगीं ॥ ४७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥
ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणांक इवोडु
भिर्वृतः ॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयंतीं व्यचरन्मंडयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः
पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ॥ रेमे तत्तरलानंदकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनी
वीस्तनाऽऽलभननर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणामुत्तंभयन्रतिपति रमयांचकार ॥ ४६ ॥ एवं
भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥

८२७

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवांतरधीयत ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णांतर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंतर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगनाः ॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥१॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥२॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ॥ असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

ब्रह्मा और महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंको सौभाग्यमदके अधीन देख उनका गर्व दूर और कृपा करनेके लिये उस रासमंडलमें ही अंतर्धान होगये, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि, अभी तो कुछ रासका प्रारंभ ही हुआ है सेरमें पौन भी नहीं और इन्हें मान हुआ, जो ऐसे लाखों गोपियोंके पांव पड़ता फिरूँ तो वर्षों लग जायँ, फिर रास कैसे होगा ? इस कारण उनका मानभंग करनेको अंतर्धान हो गये. अथवा जो प्यारी थीं, उनका मान घटने लगा कि, देखो हमको भी कृष्ण सबकी बराबर देखते हैं और साधारणको मान बढ़ा कि, प्यारी गोपी हमारे अधीन हैं, सो दोनोंका मान समान करनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अंतर्धान हो गये ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ दोहा-तीसमाहिं सब ग्वालिनी, भई हाल बेहाल। वन वन फिरत विरहदही, कहां गये नँदलाल॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रासमंडलमेंसे अंतर्धान होगये, उस समय तत्काल ही ब्रजकी स्त्रियें तथा गोपियें उनके देखे विना अत्यन्त व्याकुल हो गईं जिस प्रकार हाथीके देखे विना हथिनियें व्याकुल हो जाती हैं ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रकी चलन, स्नेहभरी मुसकान, विलासपूर्वक चितवन, मधुर बोलनेकी क्रीड़ाओंमें मन जिनके पकडे गये, ऐसी गोपियें तन्मय होगईं, उनकी लीलाका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका गमन, हास्यभरी चितवन और मधुर वाणियोंके विहार कर प्यारेमें आरूढ़ हो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप बनकर कहने लगीं कि

"मैं कृष्ण हूँ, मैं कृष्ण हूँ" इस प्रकार चेष्टा करने लगीं ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपियें मिल श्रीकृष्णचन्द्रका ऊंचे स्वरसे गान करती मतवालेके समान वन वनमें ढूँढ़ने लगीं सब प्राणियोंमें आकाशके तुल्य व्यापक जो श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनको वृक्षोंसे पूँछने लगीं ॥ ॥ ४ ॥ हे पीपलके वृक्ष ! हे वटके वृक्ष ! नंदका पुत्र श्रीकृष्ण प्रेमभरी चितवन और हँसी करके हमारा चित्त चुराकर ले गया है, यदि आपने देखा हो तो हमको अत्यन्त दुःखी जान कृपापूर्वक बता दो. कोई बोली, अरी ! यह क्या बतावेंगे, यह तो अश्वत्थ हैं इनकी जो जड़ थोडीसी ऊपर रही है; सो यह ऐसी चिन्ता किया करते हैं, कि कहीं ऐसी पवन न आ जाय जो हमें उखाड़कर फेंकदे. कोई बोली अरी ! यही पीपल

गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ॥ पप्रच्छुराकाशवदंतरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ॥ ४ ॥ दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ॥ नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥ कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ॥ रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये ॥ सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

नारायणका रूप है, नारायण भक्तोंके कार्यमें मग्न रहते हैं, सो हमें क्या बतावेंगे ? न्यग्रोध शिवका रूप है सो यह योगमें मग्न रहते हैं हमको क्या बतावेंगे * ॥ ५ ॥ हे कुरबक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे केशर ! हे चम्पे ! हे मालती ! गर्व हरनेवाली जिसकी मुसकान ऐसा बलरामका छोटा भाई (कृष्ण) कहीं तुमने देखा ? फिर रामानुजियोंसे कहा कि, कहीं बडे भाईका प्रसाद भाँगके चुल्लूमें तो न पी गये ? जो हमारी यह रक्षा करते फिरते, कोई बोली अशोकसे क्या पूँछती हो यह तो आप अशोच है, सो पराये शोचको क्या जाने ॥ ६ ॥ कोई वनमें कहती हैं कि, हे तुलसी ! कल्याणरूपिणी ! गोविंदके चरणोंकी अत्यन्त प्यारी और भौंरे जिसमें गुञ्जार करें, सो तुम्हारी मालाको

---

* शंका–वृक्षोंसे गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रजीको बूझा और वृक्ष जानते थे कि, इसी मार्ग होकर श्रीकृष्णचन्द्र गये हैं, फिर वृक्षोंने गोपियोंसे क्यों नहीं कहा कि, हमने श्रीकृष्णको देखा अथवा नहीं देखा, चुप क्यों हो गये?

उत्तर–जैसे कृष्णके प्रेममें गोपी उन्मत्त हो रही थीं. ऐसेही कृष्णके ध्यानमें वृक्षभी मतवाले होरहे थे वृक्षोंको तो अपनी देहका अथवा और किसी दूसरी वस्तुका ध्यान भी नहीं था और कुछ स्मरण भी नहीं था भगवान्में मन लगा रहे थे, इसलिये उत्तर नहीं दिया, दूसरे वृक्षोंमें बोलनेकी शक्ति भी नहीं होती ॥

पहरे, तुमने अपने अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको कहीं देखा होय तो बता दो ॥७॥ हे मालती ! हे मल्लिके ! हे यूथिका ! हे जाति ! क्या
आपने कहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ? क्या हाथके छूनेसे तुम्हारी प्रीति उत्पन्न करते इसी मार्गसे गये हैं ॥८॥ हे आम ! हे चिरौंजी !
हे कटहर ! हे विजयसार ! हे कचनार ! हे जामन ! हे बेल ! हे मौलसिरी ! हे सफरी ! और हे लोटन कदम्ब ? तुम परोपकारी यमुनातीरवासी हो
इसकारण हमें बता दो कि, तुमने कहीं श्रीकृष्णचंद्रको जाते देखा ? ॥ ९ ॥ जब किसीने उत्तर न दिया तो एक गोपी बोली कि, पृथ्वीसे
बूझो कि, हे पृथ्वी ! ऐसा तैंने क्या तप किया, जो केशव भगवान्का चरण स्पर्श हुआ जिससे तुझे आनन्द सहित रोमांच हुए हैं, जिसके
कारण तू सुन्दर लगती है, यह आनन्द प्यारेका चरण लगनेके कारण हुआ है, अथवा, वामनजीने तुझे तीन पैग नापी है अथवा उससे

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके॥ प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥८ ॥ चूतप्रियालपनसा
ऽसनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्ववकुलाम्रकदंबनीपाः॥येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां
नः ॥९॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवांघ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकितांगरुहैर्विभासि॥ अप्यंघ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा
आहो वराहवपुषः परिरंभणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ॥
कांतांगसंगकुचकुंकुमरंजितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः॥११ ॥बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामा
नुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदांधैः ॥ अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किंवाऽभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥

पहले वाराहजी तुझे दाढ़पर रखकर ले आये हैं तबका आनन्द है,परन्तु वह आनन्द तो पुराने पड़गये, अभी प्यारेका चरणारविन्द तैंने
स्पर्श किया है और तैंने निश्चय देखा है सो हमें बता दे ॥ १०॥ हे सखी! हरिणकी स्त्री ! अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीको संग लिये अपने
अंगोंसे तुम्हारी दृष्टिको आनंद देते यहाँ आये हैं क्योंकि, श्रीकृष्णचन्द्रकी प्यारी जो अंगके संग है, इसी कारण कुचोंकी केशरसे ॥ ११ ॥
रँगी हुई कुन्दकी मालाकी सुगन्ध यहाँ आती है, "हे मृगनयनी ? हमारी बातका ऐसा अनादर कि, इस ओरसे दृष्टि भी फेर ली ? फिर बोली
कि, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं, जब विधाता वाम होता है तो सब ठौर अपमान ही अपमान होता है" ॥११॥ आगे बढकर वृक्षोंसे कहने

लगीं कि, हे वृक्षो ! प्यारीके कन्धेपर भुजाको धारण किये और दूसरे हाथमें कमल लिये यहाँ फिरते, तुलसीसंबधी मदोन्मत्त भौंरे जिनके पीछे जाया करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेहभरी चितवनसे क्या तुम्हारी दण्डवत् यहाँ आकर करली है ? ॥ १२ ॥ कोई बोली कि, वीर ! यह लतायें श्रीकृष्णचन्द्रसे अवश्य मिली होंगी, क्योंकि यह अपने पति वृक्षकी शाखारूप बाँहोंका आश्रय कर रही हैं इससे ज्ञात होता है कि, अवश्य हमारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रके नख इनमें लगे हैं, इसी कारण रोमांच हो आये हैं । वृक्षोंके समागममें एसे रोमांच नहीं होते ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार मतवालेकी भांति पूँछती श्रीकृष्णमें तन्मय और उनके ढूँढ़नेसे

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥१४॥ कस्याश्चित्पूतनायंत्याः कृष्णायंत्यपिबत्स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेकां कृष्णार्भभावनाम् ॥ रिंगयामास काऽप्यंघ्री कर्षंती घोषनिस्स्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायंत्यश्च काश्चन ॥ वत्सायंतीं हंति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥

विह्वल होकर गोपियां भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ ❁ इसके उपरान्त कोई गोपी पूतना बनी, कोई गोपी कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी और कोई गोपी बालक बन रोती हुई शकटासुर बनी जो कोई गोपी है उसके पांवकी ठोकर मारने लगी ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त्त दैत्य बनकर कृष्णके बालकरूपको धरे जो और गोपी है उसे हरकर लेगई और एक गोपी घुँघुरू बांध पांवोंको घसीटती घुटुओं चलने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियां कृष्ण बलदेव बनीं और कोई गोपी गोप बनी और कोई वत्सासुर

❁ दृष्टान्त–एक बड़ा गवैया था, सो वह अपनी खुशीसे गाता और किसीके कहनेसे नहीं गाता था, एक भले आदमीका मन उसका गाना सुननेको चाहा, तो उसने क्या चतुराई करी कि, उसीकी तानमें गाऊं क्योंकि मुझसे ठीक बनेगी नहीं, इस कारण यह अपनी तान सुधारनेको आपही गावेगा, सो गाने लगा तो तान वैसी न आई, तब गवैयेने अपने मनमें कहा कि, यह मेरी तान गा रहा है, परन्तु बिगड़ जाती है, तब आप भी गाने लगा और उससे कहा कि ऐसे गाओ, इसी प्रकार गोपियोंने विचारा कि, हम श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला करें सो मस ठीक बनेगी तो है ही नहीं, इसकारण उसके बतानेको श्रीकृष्ण स्वयं ही आजायँगे ॥

बनी उसको कोई कृष्ण बन उसको मारने लगी. एक गोपी बकासुर बनी, उसे और गोपीने मारदिया॥ १७॥ जैसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूर चरती हुई गायोंकोबुलाते थे, उसी प्रकार एक गोपी गायोंका बुलाकर श्रीकृष्णका अनुकरण करने लगी; एक बांसुरीको बजाकर क्रीडा करती थी, औरगोपियें धन्यवाद देती थीं ॥ १८ ॥ एक गोपी गोपीके कंधपर हाथ धरकर कहने लगी कि, मेरी मनोहर नृत्यलीलाको तुम देखो, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें जाकर उनका मन लग गया ॥ १९ ॥ कोई गोपी " पवन वर्षासे भय मत करो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा" इस प्रकार कह एक हाथसे यत्न कर जैसे गोवर्द्धन पर्वत भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उठाया था, उसी प्रकार अपनी ओढनीको ऊंची उठा लिया ॥ २० ॥ हे नृप ! एक गोपी और गोपीके ऊपर चढ पांव शिरऊपर धर एक गोपीसे कहने लगी कि, हे दुष्ट सर्प ! तू यहांसे निकल जा, क्योंकि मैं दुष्टोंका दण्ड देनेवाला

आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ॥ वेणुं क्वणंतीं क्रीडन्तीमन्याः शंसंति साध्विति ॥१८॥ कस्यांचित्स्वभुजं
न्यस्य चलंत्याहापरा ननु ॥ कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं
विहितं मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतंत्युन्निदधेंऽबरम् ॥२०॥ आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहाऽपरां नृप ॥ दुष्टाहे
गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दंडधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्व
वो विधास्ये क्षेममंजसा ॥२२॥ बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीति
विडंबनम् ॥२३॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥
पदानि व्यक्तमेतानि नंदसूनोर्महात्मनः ॥ लक्ष्यंतं हि ध्वजांभोजवज्रांकुशयवादिभिः ॥ २५ ॥

उत्पन्न हुआ हूँ ॥ २१ ॥ उस समय एक गोपी बोली कि, हे गोपियो ! इस वनमें अत्यन्त भयानक अग्नि लगी है, इसे देखो और शीघ्र नेत्र बंद करलो, मैं इस अग्निको बुझाऊंगा तथा अनायास देखे विना कल्याण करूँगा ॥२२॥ कोई एक दुर्बल अंगकी गोपी मालासे ऊखलमें बांध दी; तब वह डरकर सुन्दरनेत्रवाले मुखको ढँक डरनेका अनुकरण करनेलगी, जब लीला करते करत रासलीला करने लगीं, तब ज्योंही श्रीकृष्णचंद्रके अंतर्धान होनेकी लीला आई, तभी श्रीकृष्णचंद्रका स्मरण कर व्याकुलहृदय हो ढूँढने लगीं ॥ २३ ॥ इस प्रकार वृन्दावनकी लता और वृक्षोंसे पूँछती २ आगे वनमें जाकर परमात्मा श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंका खोज देखा ॥२४॥ ध्वजा, कमल, वज्र; अंकुश आदि इन चिह्नोंसे महात्मा नंदजीके बेटेका यह चरण निश्चय है, इस प्रकार खोज लगता है ॥ २५ ॥

इस प्रकार अबला गोपी चरणोंके खोजसे श्रीकृष्णचन्द्रके जानेका मार्ग ढूँढने लगीं, आगे जाय श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके खोजमें प्यारीके चरणोंका खोज देख दुःखी हो यह कहने लगीं॥२६॥ कि, श्रीकृष्णचन्द्रके संग यह कौन गई है; किसके चरण है जिसके श्रीकृष्णने कंधेपर अपना हाथ धरा है, जिस प्रकार हाथी हथिनियोंके ऊपर सूंड धर लेता है॥२७॥निश्चय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका इसने आराधन किया है जिस कारण हम सबको त्याग प्रसन्न हो श्रीगोविंद इसे एकान्तमें लेगये ॥ २८ ॥ हे सखियो। इस गोविंदकी चरणरेणुको ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी संपूर्ण अपने पाप दूर करनेके लिये माथेपर चढाते हैं, यह बडी धन्य है जो इसे शिरपर धारण करोगी तो भगवान् मिल जायँगे ॥ २९ ॥ उस

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छंत्योऽग्रतोऽबलाः ॥ वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रवन् ॥२६॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नंदसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा॥ २७ ॥ अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः॥२८॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दांघ्र्यब्जरेणवः ॥ यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये॥२९॥तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वंत्युच्चैः पदानि यत्॥ यैकाऽपहृत्य गोपीनां रहो भुंक्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यंते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ॥ खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः॥३१॥(इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः॥ अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना॥)अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसकले पदे॥३२॥

87

प्यारीके पांवके खोज हमको अत्यन्त व्याकुल करते हैं। देखो! हम सबको त्याग अकेली एकान्तमें लेजाय श्रीकृष्णचन्द्रका अधरामृत भोग करती हैं ॥ ३० ॥ आगे बढकर बोलीं कि, यहां तो इसके चरण नहीं दिखाई देते, परन्तु इसका कारण यह विदित है कि, जब तृणके अंकुरोंसे इसका कोमल चरणतल पीडित हो गया है तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी प्रियतमाको कंधेपर चढाया ॥ ३१ ॥ (हे वीर। जिस समय श्रीकृष्णने प्यारीको उठाया, तो इन कामके रसिया श्रीकृष्णचंद्रके चरण पृथ्वीमें धस गये, देखो। यह फूलोंके लिये अवश्य सखीको उतारा है) हे सखी! यह देखो। प्यारेने प्यारीके कारण फूल तोडे हैं, इस स्थानमें चरणोंको उचकाकर खडे होनेसे थोडा चिह्न दिखाई देता है ॥३२॥

कामासक्त श्रीकृष्णचन्द्रने कामिनीके इस स्थानमें केश बाँध कर सुधारे हैं, प्यारीको बैठाय केश गुहते, प्यारा इस स्थानमें निश्चय बैठा
होगा ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्। यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र आत्मरत आत्माराम स्त्रियोंके विलासोंसे अखण्डित हैं, परन्तु तो
भी उन्होंने कामी मनुष्योंकी दीनता और स्त्रियोंका दुष्टपन दिखलानेके लिये उनके साथ रमण किया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वह सब गोपियें
अचेत हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ढूँढ़नेका विचार करने लगीं, अब श्रीकृष्णचन्द्र और स्त्रियोंको वनमें त्यागजिस स्त्रीको संग ले गये थे॥३५॥
वह गोपी सब स्त्रियोंमें अपने आपको श्रेष्ठ मानने लगी कि, देखो चाहना करनेवाली गोपियोंको छोड़ श्रीकृष्णचन्द्र मेरा संग सेवन करते हैं
॥३६॥इसके उपरान्त वह गोपी गर्वित होकर केशव श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी कि,मुझपै चला नहीं जाता,जहां तुम्हारा मन हो वहां चलो,तब

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कांतामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया
चात्मरत आत्मारामोऽप्यखंडितः ॥ कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयंत्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने॥३५॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥३६॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत्॥न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कंधमारुह्यतामिति॥ततश्चांतर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ अन्विच्छंत्यो भगवतो मार्गं गोप्यो विदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥४०॥

श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि,प्यारी! दश पैग और चलो, किशोरीजी बोलीं, हांजी जैसे तुम चार पहर गायोंके पीछे फिरते हो उसी प्रकार सबको
जानते हो, हम तो कभी महलके बाहर भी नहीं निकलीं, सो कैसे चलूं ॥३७॥ इसप्रकार जब प्यारीने कहा तब श्रीकृष्णचन्द्रने अपने कन्धेपर
चढनेको कहा । यह सुनकर ज्योंही राधिका चढने लगीं कि,भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अंतर्धान होगये, तब तो यह अत्यन्त घबराई ॥ ३८॥
और कहने लगीं कि,हा नाथ।हे रमण करनेवाले। हे महाभुज। तुम कहाँ हो ? कहां हो? हे सखे। तुम्हारी ऐसी कृपण दासी मैं हूँ,उसको समीप
आकर अपना दर्शन दो॥३९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उन सब इकट्ठी गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मार्ग दूसेर ढूँढ़ते ढूँढ़ते

प्यारेके वियोगमें मोहित और अति दुःखित इस स्त्रीको देखा ॥४०॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रथम मान मिला फिर गर्व होनेसे अपमान मिला, यह बात इस स्त्रीके मुखसे श्रवण कर सब गोपियाँ बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥४१॥ और निशानाथ चन्द्रमाकी चाँदनीका प्रकाश जहां तक था, वहाँ तक तो गोपियोंने ढूँढ़ा, आगे वृक्षोंकी छायाका अँधेरा देखकर लौट आईं ॥४२॥ वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये कृष्ण संबन्धी बातें और उन्हींकी लीला करती तन्मय हो उन्हींके गुणगान कर रही थीं कि, कृष्णवियोगमें उन्हें अपने घरकी भी सुध न रही ॥ ॥४३॥ इसके उपरान्त सब लौट यमुनाजीके पुलिनमें आय भगवान्में जिनकी भावना लग रही उनके आनेका पैंडा देख सम्पूर्ण गोपियाँ मिलकर श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गाने लगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां भगवदन्वेषणं

त्वया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अपमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनं चंद्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायंत्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४३॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिंद्याः कृष्णभावनाः॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः॥४४॥ इति श्रीमद्भाग॰ महापु॰ दशम॰ पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशय साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा-इकतिसमाहिं निराश हो, बहुरि यमुनतट आय । करत प्रार्थना प्रेमसों, प्रगट होहु यदुराय ॥ १ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपी कहने लगीं कि प्रीतम! तुम्हारे जन्म लेनेसे यह ब्रज अत्यन्त शोभायमान लगता है और आपके प्रगट होनेके कारण यहां लक्ष्मीजी सदा वास करती हैं, इस प्रकार सब ब्रजमें आनन्द हो रहा है. हे प्यारे! तुम्हारे ही लिये प्राण धारण किये, तुम्हारी दासियाँ तुम्हें ढूँढती फिरती हैं ॥१॥ हे सुरतनाथ! शरदृतुके सरोवरोंमें भले प्रकार उपजे श्रेष्ठ कमलके भीतरकी शोभाको चुरानेवाली तुम्हारी दृष्टिकी विना मोलकी हम दासी हैं सो उनको तुम क्यों मारते हो? यदि तुम कहो कि, हम क्या मारते हैं? तो क्या शस्त्रसे ही मारते हैं दृष्टिसे नहीं मारते ?

क्या इसीसे तुमने दृष्टिसे हमारे प्राण हर लिये हैं, उनके देनेके कारण शीघ्र हमे दर्शन दो ॥ २ ॥ इसी प्रकार हमारे नेत्रचोर तेरी रूपमाधुरीकी लूटमें पडे हैं, पैर आप ही बँध गये, कपालोंको देख उससे भी सुन्दर नासिकामें लगे, फिर अधर चिबुकमें गये, सब अंग एकसे एक सुन्दर हैं, हम भले प्रकार देखने भी न पाईं, अब तो हमारे नेत्र तुम्हारे रूपसे बँध गये हैं. इस कारण छूट नहीं सकते. हे लाल ! आपने बारंबार मृत्युसे रक्षा करी, अब क्यों कामदेवको भेजकर दृष्टिसे मारते हो. क्योंकि बिषके जलमे मृत्यु थी, उससे रक्षा करी, फिर अघासुरसे बचाया, इन्द्रने महाघोर वर्षा और पवन चलाया उससे रक्षा की, बिजलीकी आग तथा वृषासुरसे बचाया, मयके पुत्र व्योमासुरसे और समस्त भयसे बचाया, फिर अब किसलिये हमको छोड़ते हो ॥ ३ ॥ तुम यशोदाके पुत्र नहीं हो क्योंकि यशोदाके पुत्र होते तो 'मापर पूत पिता पर घोडा, बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा' कुछ तो अपनी जातिका पक्ष आता। सब देहधारियोंकी बुद्धिके साक्षी हो। ब्रह्माने विश्वरचनेको जब

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥ वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता
मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानंदनो भवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक् ॥ विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयि
वान्सात्त्वतां कुले ॥ ४ ॥ विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात ॥ करसरोरुहं कांत कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥ व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किंकरीः
स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदां
बुजं कृणु कुचेषु नः कृंधि हृच्छयम् ॥ ७ ॥

प्रार्थना करी तब हे कृष्ण ! तुम यादवोंके कुलमें प्रगट हुए और जब ब्रह्माजीने आपको रक्षा करनेके लिये कहा तब आपने यह कह दिया होगा कि, सबकी तो रक्षा करनी और गोपियोंको जला जलाकर मारना सो ब्रह्मा तो ब्राह्मण है इस कारण वह ऐसा अधर्म क्यों बतावेगा ? ॥ ४ ॥ हे यादवश्रेष्ठ कान्त ! संसारके भयसे तुम्हारे चरणसेवन करनेवाले जो पुरुष हैं उनको अभयदाता, कामनाओंके देनेवाले और लक्ष्मीका हाथ पकडनेवाला जो तुम्हारा हस्तकमल है सो हमारे माथेपर धरो ॥ ५ ॥ हे सखे ! हे वीर ! हे व्रजवासियोंका दुःख हरनेवाले ! अपने जनों का गर्व दूर करनेवाली तुम्हारी मुसकानकी हम दासी हैं, उनका सेवन करो, क्योंकि पहिली स्त्रियां हम हैं, उनको अपना मुखकमल दिखाओ ॥ ६ ॥ प्रणत अर्थात् नम्र देहधारियोंके पापोंको दूर करनेवाले, गायोंके पीछे पीछे चलनेवाले, शोभाके स्थान, कालीके फणापर

नृत्य करनेवाले आपके चरणकमल हैं, उनको कृपापूर्वक हमारे कुचोंपर धरकर कामकी व्यथा दूर करो * ॥ ७ ॥ हे कमलदललोचन ! हे वीर ! सुन्दर वाक्यवाली गम्भीर वाणीसे मोहित हुई हम दासियोंको अधरामृत पिलाकर जीवदान दो ॥ ८ ॥ आपके विरहमें हमारे प्राण जाचुके हैं परन्तु तुम्हारे कथामृतको पान करते हुए सुकृतीजनोंने हमें बचालिया, क्योंकि संसारमें तप्त पुरुषको जिलानेवाले ब्रह्मादिक जिसकी स्तुति करैं, ऐसे पापोंको दूर करनेवाले मंगलरूप शान्त तुम्हारी कथारूप अमृतको जो पुरुष पृथ्वीमें कहते हैं वह बडे दाता हैं. जब तुम्हारी कथा

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥ ८ ॥
तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥ श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणंति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥
प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ॥ रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयंति हि
॥ १० ॥ चलसि यद् व्रजाच्चारयन्पशून् नलिनसुंदरं नाथ ते पदम् ॥ शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां
मनः कांत गच्छति ॥ ११ ॥

कहनेवाले धन्य हैं, तो जो तुम्हारा दर्शन करते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? हमसे अब दया करके दर्शन दो ॥ ९ ॥ हे सौम्य ! हे कपटी तेरा मुसकानसहित मुख प्रेमभरी चितवन और ध्यानमें मंगलरूप तुम्हारा विहार हृदयको स्पर्श करनेवाली एकान्तकी बातें हमारे मनको क्षोभ करती हैं ॥ १० ॥ हे नाथ ! जिस समय गौ चरानेको आप ब्रजसे जाते हो, तब तुम्हारे कमलके तुल्य सुन्दर चरण काँकरी तृण अंकुर लगकर

---

* शंका–स्त्रियोंके स्तनोंको पुरुष हाथसे स्पर्श करता है तो स्त्रीको सुख होता है कुछ पुरुषके चरणस्पर्शसे सुख नहीं होता ? तब गोपियोंने कृष्णके चरण अपने स्तनपर स्पर्श होनेकी क्यों याचना की ? महाराज ! आप अपने चरण हमारे सबके स्तनोंपर अर्पण करो जो कोई कह गोपी कामसे आतुर थीं उनको पदका और हाथका स्मरण न रहा इसलिये चरणकी याचना की थी तो फिर कृष्णके दूसरे अंगकी याचना क्यों नहीं की ? अकेले चरणोंहीकी सब देहमें याचना क्यों की ?

उत्तर–गोपियोंने सुना था और देखा भी था कि, श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे काली नागका जहर नष्ट होगया. कालीनाग निर्विष होगया जो इससे हमारे सबके स्तनोंपर श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श होजाय तो हम सबके कामदेवका नाश हो जाय. क्योंकि कालीके गरलसे काम बडा नहीं है, कामदेवका नाश होनेसे सब संसारकी बाधासे छूटजांयगी इसलिये गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंको अपने स्तनोंसे स्पर्श करनेकी याचनाकी थी, क्योंकि गोपी तो वेदोंकी ऋचा है ॥

कष्ट पाते हैं, इसलिये हे कान्त ! हमारा मन चंचल होता है, सो इस प्रकार प्रेम रखनेवाली दासियोंपर भी आप दया नहीं करते ! ॥ ११ ॥ संध्यासमय नील केशसे ढके गोरजसे धूसरित कमलके समान मुखको धारण कर बेर बेर दिखाके, हे वीर ! हमारे मनमें कामदेव को उत्पन्न करते हो परन्तु संग नहीं देते यही तुम्हारा निश्चय कपट है ॥ १२ ॥ नम्र देहधारिओंको कामनाओंके देनेवाले, जिनका ब्रह्माजीने पूजन किया पृथ्वीको शोभायमान करनेवाले आपत्तिमें ध्यानसे ही पीडा दूर करनेवाले, सेवामें सुखरूप, ऐसे अपने चरणकमलोंको, हे कामकी पीडाको दूर करनेवाले ! हमारे कुचों पर धरो ॥ १३ ॥ हे वीर ! कामको बढानेवाला ,शोकको दूर करनेवाला, स्वरभरी बजती हुई बाँसुरीसे भले प्रकार

दिनपरिक्षये नीलकुंतलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ॥ घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमंडनं ध्येयमापदि ॥ चरणपंकजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाऽऽधिहन् ॥१३॥
सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुंबितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४॥
अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्॥कुटिलकुंतलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥१५

चुम्बित, मनुष्योंके चक्रवर्ती आदि सुखका भुलानेवाला, सुखदायक तुम्हारा अधरामृत है सो हमारे रोग शांत करनेको दीजिये. हे कृष्ण! यह औषधि मिलनेसे हम भली हो जावेंगी और जो तुम दवाका मोल माँगो तो दमडीकी बांसकी बंशी, जिसे दिन रात मुखपर धरे रहते हो, वह तुम्हें क्या मोल देती है ? और जो तुम कहो कि, तुम कुपथ्य करो हो कुपथ्यको दवा न देनी चाहिये, तुम अभी गैया, मैया, भाई और पत्यादिकोंकी वासनाका कुपथ्य करती हो सो प्यारे ! तुम्हारी औषधि यह सब दूर कर देगी, तुम हमें पिलाओ तो सही ॥ १४ ॥ जब तुम दिनके समय वनमें जाते हो तब तुम्हारे देखे विना आधा क्षण युगके समान व्यतीत होता है यह तो विना देखेका

दुःख कहा और जब घूमघुमारे केशोंसे युक्त तुम्हारे मुखकमलका दर्शन करती हैं, उस समय पलकोंका बनानेवाला ब्रह्मा हमें मूर्ख विदित होता है, क्योंकि पलकोंसे दर्शनमें बाधा होती है, यह दर्शनमें दुःख है और छः वर्षकी हमारी ननँद जब अपनी मासे जाकर कहती है कि, देख री मा। भावी उस नंदके पुत्रको देखने गई है,तब सास त्रास दिखाती है, दूसरे ब्रह्मा वेर पडा है, अपनी आठ आँखें बनाईं, हमारी दो ही और उसपर भी पलक लगा दिये हैं ॥ १५ ॥ पति, पुत्र और वंशके बंधु बांधवोंको त्याग, तुम्हारे गीतसे मोहित होकर हम तुम्हारे पास आई थीं और गानेकी गतोंको और हमारे आगमनको जाननेवाले हे अच्युत । हम तुम्हारे निकट आई हैं,सो हे कपटी । रात्रिमें आई स्त्रियोंको

पतिसुतान्वयभ्रातृबांधवानतिविलंघ्य तेऽत्यच्युताऽऽगताः॥गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताःकितव योषितः कस्त्यजेन्निशि॥ ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरश्श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहंत्र्यलं विश्वमंगलम् ॥ त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

तुम बिना ऐसा कौन है जो त्यागेगा ? ॥ १६ ॥ कामदेवका प्रगटकरनेवाला एकांत का संकेत देख और हँसी सहित मुख तथा प्रेमकी चितवन देख और लक्ष्मीके रहनेका स्थान तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हमको बडी चाहना हुई है, एवं हमारा मन भी मोहित हो गया है ॥ १७ ॥ अंग अर्थात् हे श्रीकृष्ण । तुम्हारा प्रगट होना ब्रजवासी और वनवासियोंके दुःखका दूर करनेवाला है तथा अतिशय करके विश्वका मंगलरूप है इस कारण तुम्हारे दर्शन विना व्याकुल हमैं अपने भक्त जनोंके मनकी पीड़ा दूर करनेवाली गुप्त औषधि दो,कृपणता मत करो. यह हम जानती हैं कि, इस औषधिको तुम ही जानते हो ॥ १८ ॥

कठोर स्तनोंपर तुम्हारे चरणकमलोंको हम भयसे धीरे २ धारण करती हैं, क्योंकि कहीं कोमल चरणोंमें गढे न पड़ जायँ और तुम उन चरणोंको वनमें उठार कर फिरते हो क्या चरणोंमें काँटे कंकडी लगकर खेद नहीं होता ? जब यह विचार करती हैं,तो तुम्हैं अपना जीवन धन माननेवाली हमारी बुद्धि मोहित हो जाती है,परन्तु अब पुकारकर इतना तो कहदो कि,अरी गोपियो ! तुम कहां हो मैं तो पुलिनमें लताओंके नीचे सुखपूर्वक बैठा हूँ ॥१९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायामेकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥दोहा–बत्तिस विरह वियोगते, द्रवीभूत भयो हीय । प्रगट भये तुरतहि हरी, अति प्रसन्न भईं तीय ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ राजा परीक्षित् !

यत् ते सुजातचरणांबुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किं स्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥१९॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गोपिकागीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥श्रीशुक उवाच॥इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः॥ पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥२॥तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः॥ उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम्॥ ३॥ काचित् करांबुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा॥ काचिद्द् दधार तद्बाहुमंसे चंदनभूषितम्॥ ४॥

इस प्रकार गान और चित्रविचित्र विलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी इच्छासे वह गोपियें बडे स्वरसे रोदन करने लगीं॥१॥ उसी समय मुसकानयुक्त मुखकमल,पीतांबर धारण किये,वनमाला पहरे, साक्षात् कामदेवका मन मोहित करनेवाले, दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके बीचमें प्रगट होगये ॥२॥ तब प्रीतिपूर्वक प्रसन्न और प्रफुल्लित सम्पूर्ण अबलाएँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया देखकर इस प्रकार उठकर खडी होगई कि, जैसे देहमें प्राण आनेसे हाथ पाँव एक संग उठते हैं ॥३॥ और किसी गोपीने तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका बडे आनन्दपूर्वक हस्तकमल पकड लिया और कोई चन्दनसे शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको कन्धेपर ही

धरने लगी * ॥ ४ ॥ और किसी कृश अंगवाली गोपीने कृष्णचन्द्रके मुखमेंसे तांबूलका बीडा अपने हाथमें ले लिया और कामसे कम्पायमान कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमल अपने स्तनोंपर धरने लगी॥५॥ एक गोपी अपनी भौंहैं चढ़ाय कोपके आवेशसे

काचिदंजलिनाऽगृह्णात्तन्वी तांबूलचर्वितम् ॥ एका तदंघ्रिकमल सतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥
एका भृकुटिमाबध्य प्रेमसंरंभविह्वला ॥ घ्नंतीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥
अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखांबुजम् ॥ आपीतमपि नातृप्यत्संतस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥

विकल हो अपने होठोंको दाँतोंसे दाब कटाक्षरूपी बाणोंसे मारतीसी देखेने लगी ॥ ६॥ हे राजन् ! और गोपियें निमेषरहित दृष्टिसे श्रीकृष्ण

---

* "काचित् करांबुजं" यहां शुकदेवजीने "काचित्" कहा, नाम नहीं लिया, इसका कारण यह है कि, नाम श्रीशुकदेवजीका परम इष्ट है, दो अक्षर मंत्ररूप हैं, सो जपमंत्रका प्रकाश करना भला नहीं, अथवा भगवान् महादेवजीने शुकदेवजीसे तत्त्वज्ञान कहा, परन्तु नामके दो अक्षर प्रकाश नहीं किये, रा रा कहा करते हैं, दूसरा अक्षर नहीं कहते, कदाचित् कोई चुराकर लेजाय ? एकवार तो तत्त्वज्ञान खोया जिसकी कथा वर्णन करते हैं । एकसमय नारदजीने कैलासपर आनकर विचारा कि, यहां कुछ आग लगानी चाहिये, सो पार्वतीजीसे कहा तुम्हें महादेवजी कुछ प्यार भी करते हैं ? पार्वती बोलीं कि, कुछ अंतर नहीं रखते, तब नारदजी बोले तो तुम पूछियो कि, आपके गलेमें मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है यह कह नारदजी चलेगये, जब वर्ष दिन पीछे महादेवजी समाधिसे जागे तो पार्वती बोलीं कि, महाराज यह मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है ? बताओ, यह सुनकर शिवजी बोले कि, जब तुम्हारा शरीर छूट जाता है, तब धारण कर लेता हूँ पार्वती बोलीं—मेरे तो सैकडों जन्म हुए, और तुमने ऐसी क्या अमरौती खाई है, जो तुम अमर हो ! शिवजीने अपने मनमें कहा कि, किसीने भली आग लगाई, फिर बोले मुझे तत्त्वज्ञान है, पार्वतीने कहा, वह तत्त्वज्ञान मुझे बताओ । तब शिवजीने स्नेह हटाय एक चुटकी बजाई, कि उस स्थानके सब पक्षी उडगये, फिर एक चुटकी बजाई बच्चोंके पंख जमि आये, फिर बजाई, सब बच्चे उडादिये, उसी समय शुकीके गर्भमें शुकदेवजी आये थे, सो एक चुटकीसे बाहर आये दूसरीसे अंडा फूटा और तीसरीसे पर निकले, सो एक वृक्षकी डालीपर जा बैठे, तब महादेवजी पार्वतीने तत्त्वज्ञान कहने लगे, पार्वती हुंकार देती सो गई यह तोता हूंहूं करने लगा, और महादेवजी ब्रह्मानन्दमें मग्न नेत्र मीचे संपूर्ण कथा कहगये, जब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती सो गई और हूंहूं तोतेने करी. यह जान झट उसके मारनेको त्रिशूल चलाया, और पीछे दौडे, तोता भागा सो व्यासजी की स्त्री कोठेपर खडी थी उसने जो जंभाई ली, सो शुकदेवजी उसके उदरमें प्रवेश कर गये, शिवजीने व्यासजीसे कहा कि, तुम्हारी स्त्रीमें हमारा चोर है, उसे निकालो, व्यासजी बोले कि आपके पास है क्या ? जो इसने चुराया है शिवजी बोले कि, तत्त्वज्ञान, जिससे अमर होते हैं, वह इसने चुराया है. व्यासजी बोले कि इसीसे आप भोलानाथ कहलाते हो. भला विचारो तो सही कि, जिसने तत्त्वज्ञान सुना, वह त्रिशूलसे कैसे मरैगा ! महादेवजी हँसकर कैलासको चले गये, और उसीदिनसे रा रा कहते हैं, पूरा नाम नहीं लेते, शुकदेवजी संपूर्णही गुप्त रखते हैं, इसी कारण राधिकाका कहीं नाम नहीं लिया ॥

चन्द्रका मुखकमल भले प्रकार देखती भी हैं, परंतु तो भी बेर बेर देखकर तृप्त नहीं हुई, जिस प्रकार साधुपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका दशन करनेसे तृप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ और कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयमें ले जाय नेत्र मूँद उन्हें आलिंगन कर रोमांचितशरीर हो योगीजनोंके समान महान् आनन्दमें मग्न होगई ॥ ८ ॥ और केशवमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करके आनन्दसे सुखी हो सम्पूर्ण गोपियोंने विरहके तापको त्यागदिया, जैसे ईश्वरको पाकर मुमुक्षुजन ताप छोड़ देते हैं अथवा सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीको पाकर जाग्रतरूप अवस्थावान् जीव जैसे तापको छोड़ देते हैं ॥ ९ ॥ हे परीक्षित ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन दुःखरहित गोपियोंके मध्यमें इस प्रकार शोभायमान लगने लगे जैसे परमात्मा सब शक्तियोंसे और उपासक पुरुष ज्ञान बल वीर्यादि

तं काचिन्नेत्ररंध्रेण हृदि कृत्य निमील्य च ॥ पुलकांग्युपगुह्यास्ते योगीवानंदसंप्लुता ॥ ८ ॥ सर्वास्ताः केशवालो
कपरमोत्सवनिर्वृताः॥जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः॥९॥ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः॥व्यरोचता
धिकं तात पुरुषश्शक्तिभिर्यथा॥ १० ॥ ताः समादाय कालिंद्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुंदमंदारसुरभ्यनिल
षट्पदम् ॥११॥ शरच्चंद्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥१२॥ तद्दर्श
नाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथांतं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुंकुमांकितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबंधवे ॥ १३ ॥

जो शक्ति हैं, उनसे शोभायमान लगता है ॥ १० ॥ इसके उपरांत उन गोपियोंको संग ले फूलेहुए कुन्द और मंदारकी सुगन्धयुक्त पवनके कारण जहां भौंरे गुञ्जार कर रहे थे. ऐसे यमुनाके पुलिनमें सबको ले गये ॥ ११ ॥ कैसे पुलिन हैं कि, शरदृतुके चन्द्रमाकी किरणोंके समूहसे रात्रिका अंधकार जिनमेंसे दूर हो गया है और यमुनाजीका भी उसीके समान तरंगोंसे कोमल बालूके बिछौने जिसमें बिछ रहे हैं ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण आनंदपूर्वक हृदयके रोग दूर कर गोपियोंने अपने मनोरथोंके अन्तको प्राप्त किया अर्थात् उनके मनोरथ पूर्ण हुए, जैसे ज्ञानकाण्डमें श्रुति परमेश्वरको देख आनंदसे परिपूर्ण हो कामके सम्पूर्ण बन्धनोंका त्याग करती हैं और कुचोंकी

केशरयुक्त अपनी ओढनियोंको उतार उतारकर गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके बैठनेका आसन बनाने लगीं * ॥ १३ ॥ योगेश्वरोंके भीतर जिनका कल्पित आसन है, वह ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तीनलोककी शोभाका एक ही स्थान क्या तीनों लोकोंकी शोभा जिसमें आ रही. उसी प्रकार रूप धारण कर उस आसनपर बैठ गोपियोंसे पूजित हो उनकी सभामें शोभायमान लगने लगे ॥१४॥ कामदेवके बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी हास लीलापूर्वक चितवनसे चलायमान भ्रुकुटीसे सत्कार कर गोदमें धरे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंको हाथोंसे दाबती और स्तुति करती कुछेक क्रोधसे गोपियां बोलीं ॥ १५ ॥ सब गोपी बोलीं कि, महाराज ! एक पुरुष तो भजते हुएको भजता है, वह कौन है ?

तत्रोपविष्टो भगवान्स ईश्वरो योगेश्वरांतर्हृदिकल्पितासनः ॥ चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्द
धत्॥१४॥ समाजयित्वा तमनंगदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमद्भ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनांककृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कु
पिता बभाषिरे॥१५॥गोप्य ऊचुः ॥ भजतोऽनुभजंत्येक एक एतद्विपर्ययम् ॥ नोभयांश्च भजंत्यन्य एतन्नो ब्रूहि साधु
भोः ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मिथो भजंति ये सख्यः स्वार्थैकांतोद्यमा हि ते ॥ न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि
नान्यथा ॥ १७ ॥ भजंत्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ॥ धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

एक ऐसे हैं कि, जो नहीं भजता उसको भजते हैं, वह कौन हैं ? एक भजतोंको और न भजतोंको दोनोंको नहीं भजता है वह कौन है ? सो हे कृष्ण ! यह हमारे आगे भलेप्रकार समझाकर कहो ॥ १६ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे सखियो ! जो पुरुष परस्पर भजते हैं अर्थात् जितना वह उनको चाहै, उतना ही वह उनको चाहैं, वह पुरुष तो अपस्वार्थी हैं, उस भजनमें स्नेह, सुख, धर्म कुछ भी नहीं है, वह तो केवल अपना ही भजन है ॥ १७ ॥ और जो नहीं भजतोंको भजते हैं, वह पुरुष दो प्रकारके हैं, एक तो करुणावान् दूसरे स्नेही

---

*शंका–जिन गोपियोंके मित्र श्रीकृष्ण सो सब गोपी अपने पहिरेहुए वस्त्रोंका आसन श्रीकृष्णके बैठनेको क्यों देतीं थीं?क्या गोपियाँ दरिद्रिनी थीं?नया वस्त्र मँगाकर भगवान्के बैठनेको आसन क्यों नहीं दिया?
उत्तर–जो प्राणी अपने काममें उन्मत्त होंजाता है, उसको कुछ नहीं जान पडता कि, यह काम अच्छा है, यह काम बुरा है,इसीप्रकारसे कृष्णके चरणोंमें गोपी उन्मत्त होरही थीं, उनको ज्ञात न हुआ कि, वस्त्र हमारा पहिरा हुआ है वा विना पहिरा है इसलिये गोपी भगवान्को अपने पहिरे वस्त्रका बैठनेकोआसन देने लगीं ।

जैसे माता पिताको पुत्र नहीं चाहता है परंतु वह उसके ऊपर कृपा करते हैं और इस भजनमें निर्दोष धर्म है, हे सुमध्यमाओ ! दयालु होकर भजनेमें सत्यधर्म है और स्नेहसे भजनेमें सत्य प्रेम है ॥ १८ ॥ ॥ "पर भजन विश्वाससे ही करना योग्य है" इसमें एक दृष्टांत* कहतेहैं कि, विश्वासमें ही भगवान् हैं और कहीं नहीं और जो पुरुष भजतोंहीको नहीं भजते तो अभजतोंको कहाँसे भजेंगे ! वे चा प्रकारके हैं एक तो आत्मामें ही रमण कर रहे हैं और एक पूर्णमनोरथ हैं जिनको किसी बातकी चाहना नहीं है और एक अकृतज्ञ हैं जो उपकारको नहीं समझते और एक गुरुद्रोही हैं, अर्थात् जो उपकार करे उसीसे द्रोह करते हैं ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे सखियो ! मैं

भजतोऽपि न वै केचिद्भजंत्यभजतः कुतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जंतून्भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिंतयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

इनमेंसे कोई नहीं, केवल दयालु और स्नेही हूँ, जो कोई प्राणी मेरा भजन करता है, उसको अपनी ओर ध्यान लगानेके लिये मैं नहीं भजता हूँ, जैसे दरिद्री पुरुषको धन मिले और वह धन जाता रहे, तब वह उसी चिन्ताका मारा भूख प्यास नहीं जानता ॥ २० ॥ हे बालाओ ! मेरे लिये ही लोकमर्यादा, वेदमर्यादा, पति पुत्रादिक तुमने त्याग दिये, सो तुम्हारी चित्तवृत्ति लगानेके लिये तुमको देखनेके लिये नही आया, तुम्हारे पास ही छिप रहा था, कुछ दूर नहीं गया था. हे प्रियाओ ! यह कृष्ण बुरा है ऐसे मुझमें दोष मन लगाओ ॥ २१ ॥

---

* दृष्टान्त—एक मनुष्य किसी कार्यवश भगवान्का पूजन करता था, परन्तु मनमें यही विचारता कि, यह पत्थरकी मूर्ति हमारा कार्य कैसे साधन कर सकेगी ? इसप्रकार चल विश्वास होनेसे उसका कार्य नहीं हुआ, तब किसीने उससे कहा कि, तू श्रीभगवती दुर्गादेवीका पूजन कर तुरन्त काम सिद्ध होगा, वह मनुष्य ऊपरके आलेमें श्रीठाकुरजीकी मूर्ति रख नीचे दुर्गादेवीका पूजन करने लगा, एक दिन धूप देतेसमय मनमें विचारा कि, धूप सीधी ऊपरहीको जाती है सो नारायणको पहुँचती है इसकारण दुर्गादेवीको पीछे मिलनेसे वह प्रसन्न नहीं होती, इसका यत्न करूं, यह विचार रुई ढूँढ भगवत् मूर्तिकी नाकमें भरने लगा जिससे कि, सुगन्ध न जाय, भगवान् तत्कालही मूर्तिमें प्रसन्न होकर और हँसकर बोले कि, भाई रुई मत ठूंसे, वर मांग क्या चाहिये ? वह बोला कि महाराज ! मुझे क्या खबर थी कि, रुई ठूंसनेसे प्रसन्न होते " यह विधि किसी पद्धतिमें भी नहीं लिखी. भगवान् बोले पहलेसे विश्वास नहीं था, मूर्तिको पाषाण अर्थात् पत्थर जानता था. आज वह बात जाती रही, आज मूर्ति ईश्वरही जानी. नहीं तो पत्थरमें सूंघनेकी शक्ति कहां ? आज तेरा विश्वास ईश्वररूपका था ॥

तुम निर्दूषित तुम्हारे संग उपकारका बदला मुझपर यदि देवताओंके समान अवस्था हो, तो भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो छोड़ी न जायँ ऐसी घररूप बेडियोंको काटकर तुमने मेरी सेवा की, इसलिये तुम्हीं कह दो कि कृष्ण हमारा ऋणियाँ नहीं है, तो मेरा छुटकारा है, मुझपे तुम्हारे उपकारका बदला नहीं हो सकता॥२२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

दोहा--नारिमण्डलीके विषे, ठाडे श्रीयदुराय। करत विहार प्रियान सँग, तेंतिसवें अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्। इस प्रकार उन श्रीकृष्णचन्द्रके हस्त चरण आदि अंग स्पर्श कर मनोरथ पाय गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अति कोमल वचन श्रवण कर विरहके तापको छोड दिया ॥ १ ॥ और इसके उपरान्त गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँ अपनी आज्ञा करनेवाली, प्रसन्नमन, परस्पर

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः॥ या माऽभजन्दुर्जयगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु
साधुना ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दश० पूर्वार्द्धे हरिकृतविरहितगोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः
॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः॥ जहुर्विरहजं तापं तदंगोपचिताशिषः॥१॥
तत्रारभत गोविंदो रासक्रीडामनुव्रतैः ॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥ रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपी
मण्डलमण्डितः ॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥ प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥३॥ य
मन्येरन्नभस्तावद् विमानशतसंकुलम् ॥ दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥

हाथ पकड खडी हुई स्त्रियोंमें रत्न गोपियोंको संग ले रासक्रीडाका आरंभ करने लगे॥ २ ॥ फिर गोपियोंके समूहसे शोभायमान रासक्रा उत्सव योगके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र रचने लगे और मण्डलाकार खडी हुई दो दो गोपियोंके बीचमें अपने अनेक रूप धारण कर कण्ठमें गलबाहीं डाल गान करते श्रीकृष्ण आप भी खडे हुए ॥३॥ हे राजन्। जिन श्रीकृष्णचन्द्रको सब गोपियें प्यारा मेरे पास है, कोई बोली मेरे पास है इसप्रकार अपने अपने पास जानने लगीं और रास देखनेकी इच्छासे देवतालोग भी अपनी अपनी स्त्रियोंको लेकर आये, उनके विमानोंसे आकाश छा रहा था ॥ ४ ॥

देवताओंके आने उपरान्त नगाडे बजने लगे,फूलोंकी वर्षा होने लगी और मुख्य मुख्य गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियोंको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका निर्मल यश गाने लगे ॥५॥और प्यारे श्रीकृष्णचंद्रके संग जो स्त्रियें थीं,उनके कंकण, नूपुर तथा किंकिणियोंका रासमण्डलमें बडा झनकार शब्द होने लगा ॥६॥ जैसे दो दो मणियोंके बीचमें एक एक नीलमणि सुन्दर लगती है, उसी प्रकार उस रासमंडलमें दो दो गोपियोंके बीचमें एक एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ७ ॥ पावोंका धरना, भुजाओंका हलाना, मुसकान सहित भ्रुकुटियोंका चढ़ाना, कमरका लचकाना, कुचों और वस्त्रोंका हिलना, कपोलोंपर कुण्डलोंकी हलन,उनसे जिनके मुखपर पसीना आ गया, चोटियोंके नारोंकी गाँठ जिनकी खुल गई,ऐसी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी वधू गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रके गुणानुवाद गान करती,जैसे मेघमंडलमें

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ जगुर्गंधर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्॥५॥ वलयानां नूपुराणां किंकिणीनां च योषिताम् ॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ॥ मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥७॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटः कुण्डलैर्गंडलोलैः ॥ स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥८॥ उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकंठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ॥ उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधुसाध्विति ॥ तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ १० ॥

बिजली शोभायमान लगती हैं,उसी प्रकार शोभायमान लगने लगीं॥८॥अनेक प्रकारके अनुरागोंसे कंठ जिनके रँग रहे,रति ही जिनको प्यारी और श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श जिनको हो उससे बड़ा आनन्द जिनको; वह गोपियें नृत्य करते ऊँचे स्वरसे गाने लगीं,जिनका गीत इस विश्वमें छा रहा है ॥ ९ ॥और कोई गोपी मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रके संग उच्चस्वरोंके आलापोंकी गतिको उठाने लगीं, कैसे स्वरोंकी जाति ली कि, श्रीकृष्णचन्द्रने जो स्वर उठाया,उसमें मिलती थी. तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो धन्य है,धन्य है इस प्रकार बड़ाई करने लगे.इसलिये जिन स्वरोंकी जातें ली थीं उनको ध्रुवतालमें बाँधकर गातीहुई गोपियें प्रशंसा करनेलगीं तब गोपियोंको श्रीकृष्णचंद्रने बहुत मानदिया॥१०॥

कोई गोपी रासमें श्रमित हो गदा धारण करनेवाले पासमें खडे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके कंधेको हाथसे पकडने लगी, चूरी तथा फूलोंके हार जिनके शिथिल हो गये. यहां गदा वंशीको ही जानना, क्योंकि गोपियोंके हृदयको चूर करती है ॥ ११ ॥ इसके उपरांत एक गोपीने रोमांच जिसके हो आये, कमलोंके समान सुगंधवाली चन्दनसे चर्चित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको अपने कन्धेपर धरकर चुम्बन किया ॥१२॥ और फिर नृत्यसे चलायमान कपोलोंको श्रीकृष्णके कपोलोंपर लगाती हुई गोपीको श्रीकृष्णचन्द्रने बीरीकी जूठन दिया॥१३॥ और किसी गोपीने

काचिद्रासपरिश्रांता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ॥ जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतं
बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ॥ चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ १२ ॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तं
कुण्डलत्विषमंडितम् ॥ गण्डे गण्डे सन्दधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ १३ ॥ नृत्यन्ती गायती कापि कूजन्नूपुरमेखला ॥
पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रांताऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कांतं श्रिय एकांतवल्लभम् ॥
गृहीतकंठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटंककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥

884

नूपुर करधनी जिसके बजें नृत्य व गान करते हुए श्रम पाय पास खडे हुए मंगलरूप भगवान श्रीकृष्णचन्द्रका हस्तकमल अपने स्तनोंपर धारण किया ✻ ॥ १४ ॥ लक्ष्मीके अत्यंत प्यारे अच्युत श्रीकृष्णको सुन्दर पति पाय उनकी भुजाओंसे कंठमें गलबाहीं डाल गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रको गाती विहार करने लगीं ॥ १५ ॥ उस रासमण्डलमें स्त्रियों सहित गन्धर्व और किन्नरादिक जो बाजे बजा रहे थे, तथा गवैये बनकर गा रहे थे, वह सब रासरसमें मोहित होकर नृत्य करने लगे, उस समय कंकण और नूपुर बाजेका कार्य और भौंरे गवैयोंका काम कर

✻ **शंका**—गोपीने श्रीकृष्णका हाथ अपने हाथसे पकडकर अपने स्तनोंपर क्यों रक्खा ? जैसे मनुष्यकी स्त्री कर्म करती हैं, ऐसा कर्म क्यों किया ?

उत्तर—गोपीने विचार किया कि, इन्हीं श्रीकृष्णभगवान्ने अपने हस्तकमलोंको प्रह्लादके और ध्रुवके मस्तकपर रक्खा था तब प्रह्लाद और ध्रुव संसारके दुःखसे छूटकर भगवान्के भजनमें मग्न हो गये इसलिये मैं भी अपने कुचोंपर भगवान्का हाथ धरके इन दोनोंको भक्तजन बनाऊंगी क्योंकि कामदेव जब कुपित होकर पुष्पधनुष संधान कर मेरे ऊपरको चढता है, तो स्तनोंमें अधिक बाधा होती है. अब जो यह भक्त होजायँ तो संसारके सब दुःखोंसे निवृत्त होजाऊँगी और कामदेव भी मुझको नहीं सतावेगा, उसकी बाधासे मैं छूट जाऊँगी, पुरुषकी ममता शिरपर बहुत होती है और स्त्रीकी ममता स्तनोंपर अधिक रहती है ऐसा विचार करके गोपीने कृष्णका हाथ अपने कुचपर रक्खा।

रहे थे. रासमण्डलमें व्रजवनिता कृष्णके संग नृत्य करती हुई अत्यन्त शोभा पा रही थीं, उनके कानोंके कमल, अलकोंसे युत कपोल और पसीनके बूँदोंकी शोभा मुखपर छा रही थी और नृत्यसमयमें जो फूलोंकी माला गिरती थीं उनसे ऐसी शोभा हो रही थी कि मानो तालोंकी गतिसे प्रसन्न होकर केश शिर हिलाय चरणोंपर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आलिंगन, हाथोंका स्पर्श, स्नेहभरी चितवन और बडे विलास हास्यसे जैसे बालक अपनी परछाहींसे खेलता है, उसी प्रकार व्रज सुंदरियोंके संग रमण करने लगे ॥ १७ ॥ हे कुरुकुलको आनन्द देनेवाले राजा परीक्षित् ! उस समय श्रीकृष्णके अंगमें जो आनन्द उससे जिनकी इन्द्रियें विवश हो रहीं और जिन व्रजकी स्त्रियोंके माला गहने खिसक रहे थे, वह अपने केश, शरीर, कुच और वस्त्रोंके सम्हारनेको

एवं परिष्वंगकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुंदरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमैः॥१७॥ तदंगसंगप्रमुदाकुलेंद्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा॥नांजः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥१८॥कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः॥ कामार्दिताः शशांकश्च सगणो विस्मितोऽभवत्॥१९॥कृत्वा तावंतमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥तासामतिविहारेण श्रांतानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनांग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुंडलकुंतलत्विड्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः॥ २२ ॥

भी समर्थ न हुईं ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी रासक्रीडा देख आकाशमें देवांगनायें भी कामसे पीडित होकर मोहित हो गईं और तारागणसहित निशानाथ चन्द्रमा भी आश्चर्य मानकर चलना भूल गया, तब और ग्रह भी जहाँके तहाँ रह गये, उससे रात जो बढ़ गई उससे सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ १९ ॥ जितनी गोपोंकी स्त्रियें थीं उतने ही अपने रूप धर आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंके संग लीला करने लगे ॥ २० ॥ फिर अत्यंत विहारसे जिनको श्रम प्राप्त हुआ ऐसी गोपियोंके मुखका पसीना दूर करनेको प्राप्त हो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपने हाथसे उनका मुख पोंछने लगे ॥ २१ ॥ वे मानवती गोपियें भगवान्

श्रीकृष्णचंद्रके हस्तकमल नखस्पर्शसे महासुख पाय प्रकाशमान सुवर्णके कुण्डलसे कांतिमान् कपोल तथा रसभरी चितवन और मुसकान युक्त श्रेष्ठ गुणभरे श्रीकृष्णचंद्रकी पूजा करके सुंदर चरित्र गाने लगीं ॥ २२ ॥मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्र जब रास विलास करते करते थक गये, तब उन गोपियोंको संग ले श्रम दूर करनेके लिये जलमें घुसे, कुचोंकी केशर जिसमें लगी अंग अंगसे रगडी मालाकी सुगंधिसे गंधर्वोंके समान भौंरे गाते हुए उनके पीछे चले जाते थे, जैसे हथिनियोंको संग लेकर हाथी जल विहार करनेको जाते हैं ॥ २३ ॥ हे अंग ! इधर उधरसे जलमें स्त्रियोंको छींटे देते हैं,जिस समय जलविहार करते समय व्यंग्य वचन बोले और प्रेमपूर्वक कृष्णको देखकर हँसती हैं और भगवान्को जलसे भिजोती हैं विमानोंपर बैठे देवता स्तुति और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं, हाथीके समान जिनकी लीला,

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरंजितायाः ॥ गंधर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः श्रांतो गजी
भिरिभराडिव भिन्नसेतुः॥२३॥सोऽमस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽंग ॥ वैमानिकैः
कुसुमवर्षिभिरीडचमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेंद्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगंधानिलजुष्ट
दिक्तटे ॥ चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजिता निशाः स
सत्यकामोऽनुरताबलागणः ॥ सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥
संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

685

ऐसे आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तहां जलमें अथवा गोपियोंके मण्डलमें क्रीडा करने लगे ॥ २४ ॥ जलक्रीडा करनेके उपरांत जल स्थलके पुष्पोंकी सुगन्धभरी पवन जिसके सब दिशाओंमें व्याप्त हो रही है, ऐसे यमुनाजीके बागमें भौंरेरूप गोपियोंके संग श्रीकृष्णचन्द्र विहार करने लगे, जैसे मदस्रावी हाथी हथिनियोंके संग विहार करता है ॥ २५ ॥ इस प्रकार सत्यसंकल्प भगवान् चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान उस शरदकी रात्रिमें साहित्यकाव्योंमें जो करनेकी विधि लिखी है,उसी प्रकार वह स्नेहभरी गोपियोंके संग वीर्यको धारण करने लगे और जितनी गोपी उतने ही श्याम उतनी ही कुञ्जोंमें फूलोंकी शय्यापर लेटे हँसते हँसाते कोमल बातें करते थे ॥२६॥ राजा परीक्षित् बोले कि,

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिंधि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन्मौढ्याद् यथाऽरुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत्स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३२ ॥

हे श्रीशुकदेवजी ! धर्मके स्थापन और अधर्मका नाश करनेके लिये जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने परिपूर्ण रूपसे अवतार लिया ॥ २७॥ फिर धर्मकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने पराई स्त्रीका स्पर्श करना यह अधर्म क्यों किया?॥२८ ॥ पूर्णकाम यादवोंके पति श्रीकृष्णने यह निन्दित कर्म कैसे किया इसका क्या अभिप्राय है ? हे सुन्दरव्रतवाले शुकदेवजी ! यह हमारा सन्देह शमन करो ॥२९॥ यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! सामर्थ्यवानोंका धर्मका उल्लंघना और साहस भी देखा है, जैसे अग्निमें भली बुरी वस्तु डाल दो, उसको भस्म कर दे और उसे दोष नहीं लगता, उसी प्रकार सामर्थ्यवान् तेजस्वी पुरुषोंको भी दोष नहीं लगता, कहा भी है–"समरथको नहिं दोष गुसाईं" ॥ ३० ॥ बडोंकी रीति न करे उसमें पीछे पछताना पडता है * सामर्थ्यवान् पुरुषोंके करे कर्मको मनसे भी न करे और जो कदाचित् अज्ञानसे करे तो मारा जाय,जैसे रुद्र (शिव) के विना और कोई समुद्रके विषको पान नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ ईश्वरके वचनोंको ही सत्य मानै और उनके आचरणोंको भी सत्य मानै जैसा उन्होंने कहा है, उसीके अनुसार बुद्धिमान् पुरुष करे. राम–कृष्ण दोनों अवतार हुए हैं, श्रीरामचंद्रजीने जैसा कहा वैसा ही किया.इसलिये उनका कहना करना दोनों करे और श्रीकृष्णचंद्रने

---

* दृष्टान्त–एक राजा रानीने सम्मति करी कि हमारे यहाँ भी अनेक युद्ध हुए हैं.इसकारण ऐसा महाभारत बनाना चाहिये, यह विचार पंडितोंको बुलाकर कहा कि,एक हमारे नामका भी महाभारत बनाओ परन्तु वह व्यासजीके महाभारतसे किसीप्रकार न्यून न हो चाहे बढती हो,नहीं तो तुम्हें देशसे निकाल दूंगा.ब्राह्मण आपसमें सम्मति कर राजाके पास आनकर कहने लगे कि,महाराज! महाभारत बननेके सामग्री सब प्रस्तुत है सब बातें अधिकही करेंगे पर एक बात आप बताइये राजाने कहा क्या?ब्राह्मण बोले महाभारतमें द्रौपदीके पांच पति थे,आपकी रानीके उतने अथवा कितने हैं सो बताइये. और उनके नाम वर्णन कीजिये?सुनते ही राजाकी बुद्धि ठौर होगई बोला ,महाराज क्षमा करो,मुझे महाभारत लिखानेकी सामर्थ्य नहीं.इसलिये बडोंके चरित्र शंका नहीं करना चाहिये ॥

जो गीतामें कहा है, उसे करै और जो उन्होंने लीला करी हैं उनको न करै किन्तु ध्यान करै ॥३२॥ हे प्रभो ! इस संसारमें जिनको अहंकार नहीं है, ऐसे सामर्थ्यवान् पुरुष जो अच्छा कर्म करें, उससे उनको पुण्य और निकृष्ट कर्म करनेसे पाप नहीं होता है, क्योंकि पुण्य पाप तो देहमें अहंकारके वशसे लगेहैं, इस कारण अहंकाररहित पुरुषको कुछ दोष नहीं है॥३३॥जब और महात्माओंको भी पाप पुण्य नहीं लगता तब समस्त प्राणी, पशु पक्षी, मनुष्य, देवता, जीव इनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पाप पुण्य नहीं लगता है, इसमें कहना ही क्या है ? ॥३४॥ जिनके चरणारविंदका पराग अर्थात् मकरंदको सेवन करनेसे तृप्त होकर भक्तजन और योगप्रभावसे सम्पूर्ण कर्मबंधन दूर कर मुनीश्वर ज्ञानी बन्धनोंसे रहित हो अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं, तो इच्छासे शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको बन्धन कहांसे हो ?

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो॥३३॥किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ॥ ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥ यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ॥ स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बंधः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ योंऽतश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडाः याः स्मृत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥३८॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥

॥ ३५ ॥ गोपी और उनके पतियोंके व सम्पूर्ण देहधारियोंके साक्षीरूप होकर जो देहके भीतर रहते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रनें क्रीड़ा करनेके लिये देह धारण किया है, इस कारण उनमें कुछ दोष नहीं हो सकता, क्योंकि सर्वत्र वही रमण करते हैं और बाहर भीतर व्याप्त हैं॥३६॥सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्यदेह धारण करके ऐसी मनुष्यलीला करी है कि, जिन लीलाओंको श्रवण करनेसे मनुष्य कृष्णपरायण हो जाता है ॥३७॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित ब्रजवासियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको कुछ दोष नहीं लगाया और अपनी२स्त्रियोंको अपने अपने पास जाना ॥३८॥ इसके उपरांत ब्राह्ममुहूर्त्त अर्थात् चार घडी रात रहे श्रीकृष्णचद्रंकी आज्ञानुसार घर आनेकी जिनकी इच्छा

४४६

नहीं,ऐसी प्यारी गोपियें अपने अपने घर आईं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका परमकौतुक जो ब्रजवधू गोपियोंके संग रासलीला है इसे जो पुरुष श्रद्धासहित श्रवण और कथन करेंगे,वह पुरुष भगवान्में परमभक्ति प्राप्त कर थोडे ही दिनोंमें धीर होकर शीघ्र ही हृदयके कामरूप रोगोंका त्याग कर देते हैं। परमेश्वरके चरित्र बडे भाग्यसे सुननेको मिलते हैं ॥४० ॥ ❀ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ दोहा–चौंतिसमें नँदरायको, निगल गयो इक नाग। शंखासुरको बध कियो, कृष्ण सकल भय त्याग ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! एक समय अत्यन्त उत्साहसे सब ब्रजवासी देवीकी यात्रा करनेके लिये

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहि नोत्यचिरेण धीरः ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेंऽबिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेंऽबिकाम् ॥ २ ॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः॥ रजनीं तां महाभागा नन्दसुनंदकादयः ॥४॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः ॥ यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत ॥ ५ ॥

बैलोंको जोत गाडियोंपर बैठकर देवीके वनमें गये ॥ १ ॥ हे राजन्! वहां पहुँच सरस्वती नदीमें स्नान कर फिर महादेवजीका भली भाँति पूजन कर अंबिका देवीका पूजन किया ॥२॥ सम्पूर्ण ब्रजवासी, महादेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों,इसलिये मधुयुक्त मधुर अन्न और गौ, ब्राह्मणोंको दान किया ॥ ३ ॥ और बड़े भाग्यवान् नन्दादिकों और सब ब्रज-वासियोंने उस दिन रात्रिको जलका आचमन कर तथा तीर्थ व्रत करके सरस्वतीके किनारे ही वास किया ॥४॥ हे नृप! उस बनमें कोई अत्यंत भूखा सर्प रहता था, उसने अकस्मात आनकर नंदरायजीको

❀ दृष्टान्त–एक बुढिया बडी कहा सुनास कथा सुनने गई पांछेस कटोरा जाता रहा दूसरे दिन कथामें न आई,लुगाइयोंने कहा बुढिया तू कथा सुनने क्यों न आई? बोली कि,मेरा खर्च बहुत पडता है,पहिले दिन तो कटोरा गया,अबकी सुनूंगी तो थाली लोटे परात सब खो बैठूंगी इस कारण मेरी तो कथाको दूसरे ही दंडवत् है॥

ग्रसा * ॥५॥ सर्पसे ग्रसित होकर नन्दजी पुकारने लगे कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ! यह अत्यन्त भयानक सर्प मुझको निगले जाता है, हे पुत्र ! मैं तेरी शरण हूँ, तू मुझे छुड़ा ॥६॥ इस प्रकार नंदजीकी पुकार सुन घबराहटसे ब्रजवासी शीघ्र ही उठे, देखा कि, नंदजीको सर्प निगले जाता है तो सुलगती लकड़ियोंसे उसको मारने लगे ॥७॥ यद्यपि ब्रजवासियोंने सुलगती लकड़ियोंसे उसे मारा परन्तु तो भी उस सर्पने नंदजीको न छोडा तब भक्तोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीष्णचन्द्रने उस सर्पको अपने चरणकी ठोकर मारी ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्णकृष्ण महानयम् ॥ सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रंदितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्हन्यमानोऽपि नामुंचत्तमुरंगमः ॥ तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥११॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरन्दिशः ॥१२॥

892

ठोकर लगते ही उसके सब पाप दूर हो गये और उस सर्पने सर्पदेहको त्यागकर विद्याधर जिसका पूजन करें, ऐसे स्वरूपको धारण किया ॥९॥ इसके उपरांत प्रकाशमान् रूप धारण किये सुवर्णकी माला पहरे उस खड़े हुए पुरुषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूछने लगे कि ॥१०॥ परम शोभायमान अद्भुतदर्शन तुम कौन हो ? और विवश होकर यह सर्पकी योनि तुमको कैसे मिली ? ॥ ११ ॥ यह सुनकर वह सर्प बोला कि, महाराज ! मैं सुदर्शन नाम करके विख्यात कोई गंधर्व था, संपत्ति और शरीरकी सुन्दरताके गर्वित हो विमानमें बैठकर दिशाओंमें विचरता था ॥ १२ ॥

---

* शंका—सब सर्प प्राणियोंको काटते हैं परन्तु अपनी भूखकी शांतिके लिये नहीं काटते केवल प्राणियोंको सन (काटना) उनका स्वभाव है. भागवतमें लिखा है कि, भूखे सर्पने नन्दजीको ग्रस लिया ऐसा क्यों लिखा ?

उत्तर—जिस सर्पका भागवतमें इतिहास है, वह सर्प पूर्वजन्मका देवता था. जब मुनीश्वरने उसको शाप दिया था तब इससे कहा था कि, जिस समय श्रीकृष्णको चरण तेरी देहसे छू जायगा तब तेरी मोक्ष होगी, उस सर्पको बड़ी आशारूपी क्षुधा थी, उसीसे दुःखी होकर सर्पने नन्दजीको ग्रसा ॥

तब एक समय मैंने रूपके मदसे मत्त होकर कुरूप अंगिरादि ऋषियोंकी हँसी करी, तब उन्होंने शाप दिया, जिससे मेरी सर्पयोनि होगई ॥
॥ १३ ॥ करुणावान् ऋषीश्वरोंनें कृपा करनेके ही लिये मुझे शाप दिया था जिस कारण त्रिलोकीके गुरु आपके चरणारविन्दका स्पर्श करनेसे
सब पाप छूट गये, और यदि वे शाप न देते तो तुम्हारे चरण मेरे कैसे लगते ? ॥ १४ ॥ संसारसे डरकर शरण आये पुरुषका भय दूर करनेवाले
आप हैं सो मुझसे क्या पूछते हो, हे पापनाशक ! तुम्हारे चरणस्पर्शसे मेरे सब पाप दूर होगये ॥ १५ ॥ हे महायोगिन् ! हे महापुरुष !
हे महासाधुओंके पति ! हे प्रकाशमान् ! हे सब लोकोंके ईश्वर ! हे ईश्वरके ईश्वर ! तुम्हारी मैं शरण आया हूँ सो मुझे आज्ञा दो ॥ ॥ १६ ॥ हे

ऋषीन्विरूपानंगिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥ शापो मे
ऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥ तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां
भयापहम् ॥ आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते ॥ अनुजा
नीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥ ब्रह्मदंडाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄना
त्मानमेव च ॥ १७ ॥ सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवंद्य च ॥
सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतस
स्ततः ॥ समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपाऽऽययुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथ गोविंदो रामश्चाद्भुत
विक्रमः ॥ विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥

अच्युत ! तुम्हारा दर्शन करके मैं शीघ्र ही ब्राह्मणोंके शापोंसे छूट गया, क्योंकि जिनका नाम ही उच्चारण करके वक्ता और श्रोता अपनेको
पवित्र करते हैं ॥ १७ ॥ फिर तुम्हारे चरणोंसे मैं पवित्र हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्रकी आज्ञा ले, परिक्रमा दे, प्रणाम कर वह सुदर्शन स्वर्गको चलागया और नंदजी कष्ट से छूट गये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचं
द्रका वैभव देख आश्चर्यको प्राप्त हो व्रजवासी तीर्थमें नेमको पूर्ण कर बडे आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र कहते हुए व्रजमें आये ॥ १९॥
किसी एक समय यात्राके उपरान्त गोविंद और अद्भुत पराक्रमवाले बलराम दोनों भाई वनके बीच रात्रिमें व्रजस्त्रियोंके मध्यमें विहार

करते थे॥२०॥ स्नेहसे बद्ध होनेके कारण ललित स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णके चरित्र गा रही थीं और भाई दोनों सुन्दर आभूषण धारण किये, केशर चन्दन लगाये, वनमाला और निर्मल वस्त्र पहरे॥ २१ ॥ रात्रिके प्रारंभ होनेसे तारागण और चन्द्रमाका उदय हो रहा था, चमेलीकी सुगंधसे मत्त होकर भौंरे गुंजार कर रहे थे, फूली कुमोदिनीसे लगकर पवन चल रहाथा ॥२२॥ इसकी सराहना करते सब प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्ददायक स्वरके संग मण्डलोंकी मूर्च्छना करते गाने लगे॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्ण बलदेवका गाना सुनकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गोपियोंके वस्त्र ढीले पड़ गये और चोटियोंकी गांठें खुल गईं कि, जिनसे फूलोंकी माला गिर गई, अधिक क्या कहें इन्हें

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः॥ स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरौ॥२१॥ निशामुखं मानयंतावुदितोडुपतारकम् मल्लिकागंधमत्तालिजु[illegible] कुमुदवायुना॥ २२ ॥ जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमंगलम्॥ तौ कल्पयंतौ युगपत् स्वरमंडलमूर्छितम् ॥ २३ ॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्छिता नाविदन् नृप॥ स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥२४॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत्॥ शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥२५॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम्॥ क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशंकितः॥ २६ ॥ क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम्॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम्॥ २७ ॥ मा भैष्टेत्यभयाऽऽरावौ शालहस्तौ तरस्विनौ॥ आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम्॥ २८ ॥

अपने २ आपेकी भी सुध न रही ॥२४॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार कृष्ण बलदेव दोनों भाई मतवालेके समान क्रीडा और गान कररहे थे कि, इतनेमें ही शंखचूड नाम कुबेरका टहलुआ आया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कृष्णबलदेवके देखते निर्भय हो शंखचूड जब उन गोपियोंके समूहको जिसके स्वामी कृष्ण बलदेव हैं, लेकर उत्तरकी ओर चला, उस समय वह गोपियें पुकारने लगीं ॥ २६ ॥ जैसे सिंहकी पकडी गौ पुकारती है उसी प्रकार हे कृष्ण बलदेव ! इस प्रकार पुकार करती गोपियोंको देख कृष्ण बलदेव दोनों भाई शंखचूड़के पीछे दौड़े ॥ ॥२७॥ मत डरो ऐसे भयके दूर करनेवाले वचन कह शालका वृक्ष हाथमें लिये शीघ्रतासे कृष्ण बलदेव दौड गुह्यकगणमें अधम शंखचूडके

पीछे गये ॥ २८ ॥ काल मृत्युके समान पीछे दौडे चले आते श्रीकृष्ण बलदेवको देख स्त्रियोंको छोड़ मूढ़ शंखचूड़ अपने प्राण बचानेके लिये भागा ॥ २९ ॥ जहाँ जहाँ शंखचूड भागकर गया, वहाँ वहाँ गोविंद श्रीकृष्णचन्द्र उसके शिरकी मणि लेनेके लिये उसके पीछे दौडे और बलदेवजी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये वहीं रहे ॥ ३० ॥ हे राजा परीक्षित् ! थोडी दूरपर जाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रनें दुष्टमनवाले शंखचूडके मुष्टिक मार शिर सहित उसके माथेकी मणि लेली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार शंखचूडदैत्यको मार प्रकाशमान मणि लेकर संपूर्ण स्त्रियोंके देखते प्रसन्नतापूर्वक अपने बडे भाई बलदेवजीको देदी ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां शंखचूणवधो नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ दोहा–पैंतिसमें हरि वन गये, पीछे गोकुलनारि । वेणुगीतही गायकर, दियो कष्ट सब टारि ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र वनमें गये तब श्रीकृष्णचंद्रमें मन लगाये गोपियें विरहमें उनकी लीलाको गाय गाय अत्यंत कष्टसे दिन व्यतीत करने लगीं * ॥ १ ॥

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥ विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद् गोविंदो यत्र यत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥ अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ॥ जहार मुष्टिनैवांग सह चूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शंखचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥ अग्रजायाददत् प्रीत्या पश्यंतीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

---

* शंका–श्रीशुकदेवजीने परीक्षितसे कहा कि, हे राजन् ! श्रीकृष्ण जिस दिन गौवें चराने जाते थे, तब विना कृष्णको देखे अलग होकर गोपी बहुत दुःखसे दिन काटती थीं, इस वचनसे जान पडता है कि सब गोपी गोकुलमें रात्रिके समय श्रीकृष्णके पास सभा बनाकर रहती होंगी ! प्रातःकाल होतेही व्रजविहारी फिर गाय चराने चले जाते होंगे, तब फिर सब गोपी उसीप्रकार व्याकुल होजाती होगी !

गोप्य ऊचुः ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र
मुकुन्दः ॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं
ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥ हंत चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ॥ नंदसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो
यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥ वृंदशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥ दंतदष्टकवला धृकतर्णा निद्रिता
लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडंबः ॥ कर्हिचित्सबल आलि सगोपैर्गाः समा-
ह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥ तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदांबुजरजोऽनिलनीतम् ॥ स्पृहयतीर्वयमिवाऽबहुपुण्याः
प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

गोपियें परस्पर बोलीं कि, हे सखियो ! बाईं भुजापर बायें कपोलको धर भ्रकुटियोंको चढाय मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी अधरके ऊपर बाँसुरीको धर और अपनी कोमल अँगुलियोंसे उसके छिद्रोंको दाब जिस समय बजाते हैं ॥२॥ उस समय आकाशमें गमन करनेवाली देवताओंकी स्त्रियें अपने पतियों सहित बांसुरीको सुन प्रथम आश्चर्य मान लाज सहित कामके बाणोंसे परवश हो मन हरजानेके कारण नारोंकी भी जिनको सुध न रही इस प्रकार मोहको प्राप्त होगईं ॥ ३ ॥ हे अबलाओ ! यह आश्चर्य सुनो, हारके समान निर्मल जिसकी हँसन, बांसुरी बजाते समय नीचा मुख करके जो हँसते हैं,तो उसकी हारोंमें प्रकाशित हँसन होती है. अथवा हारके तुल्य छातीमें शोभायमान जिसकी हँसन है और छातीमें बिजलीके तुल्य प्रकाशमान स्थिर लक्ष्मी जिसके हृदयमें वास करती है, पीडितजनोंको सुख देनेवाला यह नंदका पुत्र जिस समय बांसुरी बजाता है ॥४॥ तब दूरसे बाँसुरीका शब्द सुन हर गये हैं मन जिनके ऐसे गौ, बैल और हिरणोंके समूहके समूह दांतोंसे कौर काटकर उसे पकडने लगे,कानोंको ऊंचा कर सोतेसे चित्र लिखेके समान खडे होगये,बड़ा आश्चर्य है कि,पशु,पक्षियोंकी यह दशाहै॥५॥ हे सखी ! मोरपुच्छ, खडिया, गेरू, मनसिल, पात,इनसे मल्लोंके समान स्वरूपसे कभी बलदेव भाई सहित और गोपियों सहित जो मुकुन्द

उत्तर—व्याकरणके पढनेवाले जो विद्वान् पुरुष हैं वह (निन्युर्दुःखेन वासरान्) इस श्लोकमें वासरका अर्थ दिनका नहीं करते. वास, सब वस्तुके प्रमाणका नाम है उसी वासको जो, ग्रहण करे उसका नाम वासर है, व्याकरणके पढनेवाले विद्वानोंने वासरका अर्थ निमेष किया है इसी निमेषको गोपी बडे दुःखसे बिताती थीं, आँखोंके पलके उघडनेका नाम निमेष है ॥

जिस समय बांसुरी बजाकर गौओंको बुलाते हैं, उस समय बांसुरीका शब्द सुनकर नदियोंका प्रवाह बहनेसे रुक जाता है, और पवनसे उडकर गई उनके चरणोंकी रजको हमारे तुल्य आकांक्षा करते हैं और हमारे तुल्य उनके भी उत्कृष्ट पुण्य नहीं हैं, इसलिये वह नदियोंको नहीं मिलती, प्रेमसे जिनकी लहर कांपती है, जल जिनके निश्चल हो जाते हैं ॥६॥७॥ गोप, ग्वाल और देवता जिनके निर्मल यशको गाते हैं, नारायणके तुल्य सदा स्थिर लक्ष्मीवाले वनके विचरनेवाले कृष्ण जिस समय गोवर्द्धन पर्वतके शिखर परसे चरती हुई गौओंको बांसुरी बजाकर बुलाते हैं उस समय फूल, फल, जिनमें लगे उनके बोझसे शाखा जिनकी झुक रहीं, प्रेमसे हर्षितचित्त वनके लता, वृक्ष अपनेमें विष्णुको प्रगट करते मकरन्दकी धारा बहाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुन्दरोंमें अति सुन्दर अथवा सुंदर देखने योग्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्याम ललाटमें

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः॥वनचरो गिरितटेषु चरंतीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि॥८॥वन
लतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यंजयंत्य इव पुष्पफलाढ्याः॥ प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः सस्रृजुः स्म॥९॥
दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगंधतुलसीमधुमत्तैः ॥ अलिकुलैरलघु गीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि संधितवेणुः ॥ १० ॥
सरसि सारसहंसविहंगाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ताः हंत मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥
सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥ हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरंभति विश्वम् ॥ १२ ॥
महदतिक्रमणशंकितचेता मंदमंदमनुगर्जति मेघः ॥ सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥

केशरका तिलक लगाये, वनमाला पहरे, जिसकी दिव्य गन्ध और तुलसीके मकरंदसे मत्त हो भौंरे उनके उच्च और अनुकूल गानको मान देते हैं, ऐसे भगवान् जब अधरके ऊपर बाँसुरीको धरके बजाते हैं उस समय सरोवरोंमें सारस, हंस और पक्षी गानसे मोहितचित्त हो उस स्थानमें आंखें मूँदे मौन धारण करे चित्त रोके कृष्णके निकट बैठे रहते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे गोपियो ! मालाओंके कानोंमें कुण्डलसे शोभायमान, आनन्दको प्राप्त बलदेव भाई सहित कृष्ण जब सब विश्वको आनन्द दे बांसुरीके शब्दसे पूर्ण करते हैं, उस समय इस महान् कृष्णका अपराध न हो, इस प्रकार मेघ मनमें शंका मान मुरलीके शब्दके पीछे मन्द मन्द गर्जते हैं और अपने मित्र श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर

फूलोंकी वर्षा करते हैं, छत्रसे छाया करते हैं, सो वह मेघ इसका सच्चा मित्र है, क्योंकि यह भी साँवरा और वह भी साँवरा ॥ १२ ॥ १३॥ हे यशोदा! अनेक प्रकारके गोपोंके खेलोंमें निपुण तुम्हारा पुत्र अधरके ऊपर बांसुरी धरकर अपने आप ही सीख गये, क्योंकि षड्ज, निषाद, ऋषभ, गांधारादि स्वरोंके आलापनेके भेद वह स्वयं ही उठा लेता है ॥ १४ ॥ उस समय इंद्र, शिव, ब्रह्मा यह जिनमें मुख्य हैं, ऐसे बुद्धिमान् देवता मंद मध्य तारसे बाँसुरीको सुनकर मोहित हो गये और नीचेको मुख करके कौन स्वरको गाते हैं यह भी निश्चय नहीं कर सके॥ १५॥ ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल इनके चित्र विचित्र चिह्नवाले अपने चरणकमलसे ब्रजभूमिको गायोंके खुर पड़नेसे जो खेद है उसको शांत किया।

विविधगोपरसेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥ तव सुतस्सति यदाऽधरबिंबे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ १४ ॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ॥ कवय आनतकंधरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥
निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजांकुशविचित्रललामैः ॥ व्रजभुवश्शमयन्खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः॥ १६॥ व्रजति
तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ॥ कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन- कबरं वसनं वा ॥ १७ ॥ मणि
धरः क्वचिदागणयन्गा मालया दयितगंधतुलस्याः ॥ प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत तत्र ॥ १८ ॥
क्वणितवेणुरववंचितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः॥ गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥
॥ १९ ॥ कुंददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नंदसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥
॥ २० ॥ मंदवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन्मलयजस्पर्शेन ॥ वंदिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥

और मतवाले हाथीके समान चलनेवाले श्रीकृष्ण बाँसुरीको बजाकर जिस समय चलते हैं उस समय विलासपूर्वक चितवनसे कामदेवके वेगमें भरी हमे वृक्षोंके तुल्य जड होकर चोटी और वस्त्रोंकी भी सुध नहीं रहती है ॥१६॥१७॥ प्यारी सुगन्धिवाली तुलसीकी मालाको पहरे मणियोंकी सुमिरणी हाथमें लेकर गायोंको गिनते हुए, प्यारे मित्रके कन्धेपर हाथ रखकर जिस समय गाते हैं उस समय बजती हुई बांसुरीका शब्द सुन चित्त हर जानेसे हिरणोंकी स्त्रियें हिरणी गुणोंके समुद्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर गोपियोंके समान घरकी आशाओंको त्याग सेवन करने लगीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदे ! गोपियोंको आनंद देनेके लिये कुंदकी मालाओंसे आनंद पूर्वक शृङ्गार किये,

स्नेहियोंको आनंद देनेवाला यह तेरा पुत्र नंदकुमार गोप गौओंको संग लिये जिस समय यमुनामें विहार करता है, उस समय चन्दनकीसी सुगंधवाला शीतलस्पर्श पवन श्रीकृष्णका सम्मान करता अनुकूल मंद मंद चलता है और गन्धर्वादिक तथा बन्दीजनोंका नाईं बाजे बजाता गाता फूलोंकी वर्षा करके सेवा करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ देखो व्रजमें गायोंका हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, जब इन्द्रने वर्षा की थी, तब गोवर्द्धन उठाकर रक्षा करी और बडे बडे ब्रह्मादिक आकर उनके. चरणोंमें प्रणाम करते हैं और संध्यासमय जब गायोंको इकट्ठी कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बाँसुरी बजाते और मित्रोंसे अपनी कीर्ति श्रवण करते श्रमभरी शोभासे आनंद देते गायोंकी रज मालामें लग रही चन्द्रमाके समान प्रकाशमान देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए श्रीकृष्णचन्द्र जो हैं सो हमारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वंद्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥ कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनांते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥
उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ॥ दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥
मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ॥ बदरपांडुवदनो मृदुगंडं मंडयन्कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४ ॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनांते ॥ मुदितवक्त्र उपयाति दुरंतं मोचयन्व्रजगवां दिनतापम्
॥२५॥ श्रीशुक उवाच॥एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीला नु गायतीः॥ रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः॥
॥२६॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे वृन्दावनक्रीडायां गोपिकागीतं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

कुछेक मंदमंद नेत्र जिनके घूम रहे, अपने स्नेहियोंको मान देनेवाले वनमाला पहरे पके बेरके समान श्याममुख और कुण्डलोंकी कांतिसे कोमल कपोलोंको शोभायमान करते,मतवाले हाथीके समान जिनका विहार,प्रसन्न मुख,इस प्रकार यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने संध्यासमय जिस प्रकार चन्द्रमा उदय होता है उसी प्रकार उदय होकर व्रजकी गायरूप हमारा बहुत दिनोंका ताप दूर कर दिया ॥२४॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें ही जिनका जीवन और वृद्धिको प्राप्त हुआ उत्सव, ऐसी व्रजबालायें श्रीकृष्णचंद्रकी लीला गा गाकर दिन व्यतीत करने लगीं ॥२६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां गोपिकागीतं

नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ दोहा-कंस सुनो छत्तीसमें, मरो अरिष्ट बिसूर । रामकृष्णके लेनको, भेजो जन अक्रूर॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार देवता गंधर्वादिक जिनका गान और नृत्य करें, बाजे बजाकर फूलोंकी वर्षा करें ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर परमउत्सन्न हुआ, इसके उपरांत उसी समय व्रजमें बैलका रूप बनाकर अत्यन्त विशाल देह और खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण और कम्पायमान करता हुआ अरिष्टासुर आया ॥ १॥ अत्यन्त रंभाता, खुरोंसे धरती खोदता, पूंछ उठाता, खेतोंकी मेडोंको तोडता ॥ २ ॥ बीच

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महीं महाककुत्कायः कंपयन्खुरविक्षताम् ॥१॥ रंभमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम्॥उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥ २ ॥ किंचित्किंचिच्छकृन्मुंचन्मूत्रयंस्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्हादितेनांग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतंत्यकालतो गर्भाः स्रवंति स्म भयेन वै ॥ निर्विशंति घना यस्य ककुद्यचलशंकया ॥ ४ ॥ तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम्॥५॥कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविंदं शरणं ययुः॥भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम्॥६॥

89

बीचमें गोबर और मूत्र करता अत्यन्त भयानक आँखवाला इसप्रकार अरिष्टासुरके रंभानेका शब्द सुनकर गाय और स्त्रियोंके विना समय ही गर्भ गिर गये, जैसे टांटके ऊपर पर्वत जानकर मेघ आ बैठते हैं ॥३॥४॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार अत्यन्त पैने सींगवाले अरिष्टासुरको देखकर सब गोप और गोपी अत्यन्त भयभीत होगये, पशु खिरकोंको छोडकर डरके मारे भाग गये, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! इसप्रकार पुकारने लगे और सम्पूर्ण व्रजवासी गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें आये, इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने डरके मारे गोकुलवासियोंको भागता

॰ शंका-वृषभासुरके शब्दसे गायोंका और स्त्रियोंका गर्भ गिर जाता था, ऐसा भागवतमें लिखा है, तब वह दुष्ट वृषभासुर तो नित्य शब्द करता रहता होगा तब गायोंकी और स्त्रियोंकी सृष्टिका नाश क्यों नहीं हुआ ? गायोंका और मनुष्योंका वंश नष्ट होना चाहिये था सो क्यों नहीं हुआ ? ऐसी बात न तो हमने आंखसे देखी न कानोंसे सुना ॥

उत्तर-वृषभासुरके प्रभावको जानकर भगवान्ने सुवीर्य और सुपाक्क दोनों देवताओंको आज्ञा दी कि, जब दुष्ट शब्द करने लगे तब तुम दोनों उसका कण्ठ रोक लो, ऐसी भगवान्की आज्ञा पाकर वे वृषभासुरके पास रहने लगे. जब वृषभासुर गर्जनशब्द करता, तब दोनों देवता उसके कण्ठको रोक लेते थे. इसी प्रकार सब अवस्था व्यतीत होगई, वृषभासुरको शब्द नहीं करने दिया, जिसदिन मरनेका समय आया उसदिन महागम्भीर शब्द करके भगवान्के हाथसे मारा गया, इसलिये नित्य शब्द करने नहीं पाया ॥

देखकर "भय मत करो" इस प्रकार कह अरिष्टासुरको निकट बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मूर्ख ! हे असाधो ! ग्वाल गायोंके डरानेसे तुझे क्या मिलेगा ? मेरे सम्मुख आ, क्योंकि तुझ सरीखे मतवाले दुष्टोंका बल और मद दूर करनेको मैंने अवतार लिया है ॥ ७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्र कह, खम्भ ठोक और अरिष्टासुरको क्रोध उत्पन्न कराय, मित्रके कंधेपर सर्पाकार भुजा पसारकर खडे होगये ॥ ८ ॥ इस प्रकार क्रोधको प्राप्त हुआ अरिष्टासुर पूछ उठाय खुरोंसे धरती खोदता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके सन्मुख आया ॥ ९ ॥ सींगोंका अग्रभाग आगे किये, पलक बिसारे, लाल लाल आँखें किये अरिष्टासुरको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र देवराज इन्द्रके छोडे वज्रसे भी

मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्मंद त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥ बलदर्पहाऽहं दुष्टानां
त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ इत्यास्फोटयाच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो
हरिः ॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्त
विषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याऽद्रवत्तूर्णमिंद्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वा शृंगयोस्तं च
अष्टादश पदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान्गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ॥
आपतत्स्विन्नसर्वांगो निश्श्वसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥ तमापतंतं स निगृह्य शृंगयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ॥
निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमंबरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग् वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन्क्षिपंश्च पादा
ननवस्थितेक्षणः ॥ जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरंतो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥

शीघ्र उसके सम्मुख आकर उपस्थित हुए ॥ १० ॥ और आतेही उसकेसींग पकड़ जैसे हाथीको हाथी धक्का देताहै, उसीप्रकार उलटे पांव करके उसे धकियाने लगे और १८ कदम पीछे हटालेगये ॥ ११ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने अरिष्टासुरको ढकेल दिया, तब फिर वह उठकर पसीनेचुचाता अत्यंत क्रोधित हो बडे २ श्वास लेता हुआ दौड़कर आया ॥ १२ ॥ आतेही भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उसके सींग पकड़कर पृथ्वीमें दे मारा और पांवसे छाती दाबकर जैसे गीले कपड़ेको निचोड़ते हैं, उसी प्रकार उमेठ दे सींग उखाड़ उसका प्राण संहार किया ॥ १३ ॥ उस समय उसके नेत्र चलायमान हो गये, रुधिरकी वमन और गोबर करता पांवोंको पटकता अरिष्टासुर मर गया; तब देवतालोगोंने फूल वर्षाकर भगवान्

श्रीकृष्णचंद्रकी स्तुति की ॥ १४॥ इस प्रकार आरिष्टासुरको मार, मित्रोंसे सन्मानित हो गोपियोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्र व्रजमें आये ॥ १५॥ अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जब अरिष्टसुरको मार दिया, तब देवताओंकेसमान देवर्षि नारदजीने यह वृत्तांत कंससे जाकर कहा ॥ १६ ॥ कि, हे राजन् । यशोदाके कन्या हुई और देवकीके कृष्ण हुआ था, बलदेव रोहिणीके पुत्र हैं, तुम्हारे भयके मारे वसुदेवजी अपने मित्र नन्दजीके घर रातों रात पहुँचा आये थे और प्रत्यक्ष देखलो कि, जितने दैत्य आपने भेजे वह सब कृष्ण बलदेवने मार डाले॥ यह वचन नारदजीका श्रवण कर क्रोधके मारे कंस विकलेन्द्रिय हो गया ॥ १७॥ १८ ॥ तब वसुदेवजीके मारनेके

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ॥ विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥१५॥ अरिष्टे निहते दैत्ये
कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः॥१६॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥१७॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नंदे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ निशम्यैतद् भोजपतिः
कोपात्प्रचलितेंद्रियः ॥१८॥ निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः॥१९॥
ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबंध सह भार्यया ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामास हन्येतां
भवता रामकेशवौ ॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥ अमात्यान्हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट्॥
भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥

लिये कंसने अत्यन्त पैनी तलवार ग्रहण की, परंतु नारदजीने निवारण कर दिया, इसके उपरांत कृष्णबलदेवसे अपनी मृत्यु जान ॥ १९ ॥ देवकीसहित वसुदेवके पैरोंमें बेडी डाल दी, नारदजीके चले जानेपर फिर कंसने केशी नाम राक्षसको बुलाकर॥२०॥कहा कि, तुमही रामकृष्णको मार आओ और फिर मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि जो मल्ल थे, उन्हें बुलाया ॥ २१ ॥ इसके उपरांत मंत्रियों और हाथियोंके महावतोंको बुलाकर भोजवंशियोंका राजा कंस बोला कि, हे वीर । हे चाणूर । हे मुष्टिक । मेरी बात सुनो ॥ २२ ॥

नन्दजीके गोकुलमें वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण, बलराम रहते हैं उनके ही हाथसे निश्चय नारदजीने मेरी मृत्यु बताई है ॥ २३ ॥ इसलिये वह
जिस समय आवें इसी समय पांवोंसे दाब मल्ललीला करके मार डालना और मल्लोंकी जो रंगभूमि है उसमें अनेक प्रकारके मञ्चान बनाओ ॥
॥ २४ ॥ क्योंकि पुरवासी और देशवासी संपूर्ण उनपर बैठकर मल्लोंकी कुस्ती देखेंगे. इसके उपरांत मंगलरूप कुवलयापीड हाथीको
रंगभूमिके द्वारपर खड़ा करदो ॥२५॥ बस ज्योंही कृष्ण बलदेव आवें त्योंही इन्हें हाथीसे मरवा डालना और चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक
धनुषयज्ञकी तैयारी करो और संपूर्ण कामनाओंके देनेवाले महादेवजीका पूजन करनेके लिये पवित्र २ पशु लाओ ॥२६॥ हे राजन् ! अपने

नंदव्रजे किलासाते सुतावानकदुंदुभेः॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ
हन्येतां मल्ललीलया ॥ मंचाः क्रियंतां विविधा मल्लरंगपरिश्रिताः ॥२४॥ पौरा जानपदाः सर्व पश्यंतु स्वैरसंयुगम् ॥
महामात्र त्वया भद्र रंगद्वार्युपनीयताम् ॥ २५ ॥ द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ आरभ्यतां धनुर्याग
श्चतुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसंतु पशून्मेध्यान्भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतंत्रज्ञ आहूय यदुपुंगवम् ॥
गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो
हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ॥ यथेंद्रो विष्णुमाश्रित्य
स्वार्थमध्यगमद् विभुः ॥ २९ ॥ गच्छ नंदव्रजं तत्र सुतावानकदुंदुभेः ॥ आसाते ताविहानेन रथेनानय माचिरम्
॥ ३० ॥ निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुंठसंश्रयः ॥ तावानय समं गोपैर्नंदाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥

अर्थके तत्त्वको जाननेवाले राजा कंसने अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा दी. इसके उपरांत यादवश्रेष्ठ अक्रूरको बुला हाथ पकडकर कहा ॥
॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूर ! तुम एक हमारी मित्रताका कार्य करो, क्योंकि इस समय भोजवंशियोंमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अतिशय हित
कारी कोई नहीं है ॥ २८ ॥ हे साधो ! हे सौम्य ! जैसे इन्द्रने विष्णु भगवान्का आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त किया था, उसी प्रकार
अब मैं तुम्हारा आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त हूँगा, इस लिये मैंने तुम्हारा, आश्रय लिया है ॥ २९ ॥ अब तुम ब्रजमें जाकर वसुदे
वात्मज कृष्ण और बलदेवको शीघ्र ही रथमें बैठालकर ले आओ ॥३०॥ क्योंकि, विष्णुका आश्रय लेकर देवता लोगोंने मेरे मारनेके कारण

कृष्ण बलदेवको उत्पन्न किया है, इसलिये तुम नन्दादिक संपूर्ण व्रजवासियों सहित कृष्ण बलदेवको यहां ले आओ और मेरी ओरसे कहना कि, चलकर राजा कंसको भेंट दो ॥ ३१ ॥ बस जहां कृष्ण बलदेव आये कि, तहां कालके समान कुवलयापीड हाथी उन्हे मार डालेगा और यदि हाथीसे भी छूट जायँगे तो बिजलीके समान मेरे मल्ल मार डालेंगे ॥ ३२ ॥ फिर जहां कृष्णबलदेव मारे गये, तब उसी समय उनके शोकसे व्याकुल वसुदेवादि बन्धु बांधवोंको भी मार डालूंगा और इसके उपरांत वृष्णि, भोज, दाशार्हवंशमें उत्पन्न हुए यादवोंको भी मारूंगा ॥ ३३ ॥ यद्यपि उग्रसेन मेरे वृद्ध पिता हैं, परंतु तो भी उनको राज्यकी चाहना विद्यमान है, इसलिये इनको भी मारूंगा. अधिक कहनेसे क्या, जितने मेरे वैरी हैं, सबको ही मारूंगा ॥ ३४ ॥ हे अक्रूर ! इसके उपरांत यह सब पृथ्वी कंटकरहित हो जायगी, फिर जरासंध है

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान्
वसुदेवपुरोगमान् ॥ तद्बंधून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥
तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकंटका ॥ जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो
दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शंबरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान्हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥३६॥
एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥
राजन् मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥ सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥

सो मेरा श्वशुर है और द्विविद मेरा प्यारा मित्र है॥३५॥ शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर इत्यादिकोंने मुझमें स्नेह बढ़ा ही रक्खा है, बस इनको संग लेकर जितने देवताओंकी ओरके राजा हैं, सबको मारकर आनन्दपूर्वक पृथ्वीका राज्य करूंगा ॥ ३६ ॥ यह बात अपने मनमें गुप्त रखकर कृष्णबलदेवको शीघ्र ही लिवा लाओ और मेरी ओरसे कहना कि, तुम्हारे मामाने धनुषयज्ञ किया है उसको चलकर देख आओ, इसमें तुम्हे यादवोंकी पुरी मथुराकी शोभा भी देखनेको मिल जायगी॥३७॥ यह सुनकर अक्रूरजी बोले कि, हे राजन् ! तुमने भला विचारा, तुम्हारी मृत्युका दूर करनेवाला यही उपाय है परन्तु होने और न होनेमें मनुष्य समता करे, क्योंकि जो प्रारब्ध है सो ही फलका दाता है॥३८॥

यह पुरुष बडे बडे मनोरथ करता है परन्तु जब दैव हत कर देता है तो दुःखी होता है; जो मनोरथ पूर्ण होजाय तब तो मनमें हर्ष माने और न हो तो शोक करै। इससे क्या ध्वनि निकली कि,तुम कहते हो कि,कृष्ण बलदेवको मरवाऊँगा-क्या जानें वे ही तुम्हें मार डालें,पर तो भी तुम्हारी आज्ञा करूंगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार राजा कंस अक्रूरजीको आज्ञा दे मंत्रियोंको बिदा कर अपने महलमें चला गया और अक्रूरजी भी अपने घरको चले गये ॥ ४० ॥ * इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि॥युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते॥३९॥एवमादिश्य चाक्रूरं मंत्रिणश्च विसृज्य सः॥ प्रविवेश गृहं कंसस्तथाऽक्रूरः स्वमालयम् ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन्मनोजवः ॥ सटावधूताऽभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ (विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः॥ दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नंदस्य जगाम कंपयन्)॥

दोहा—सैंतिस केशीमरणको, नारद कियो बखान। व्योमासुर मारो यथा, सो सब सुनो सुजान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण राजा परीक्षित् । मनसे भी अधिक वेगवान् कंसका भेजा केशी दैत्य बड़े घोडेका रूप धर टापोंसे पृथ्वीको खोदता फुरहरी लेता अपने कन्धोंसे इधर उधर विमानको चलायमान करता और हींसनेसे सम्पूर्ण विश्वको डराता हुआ आया॥ १ ॥ (बड़ी आंखों वाला, विकट मुखविवरवाला, बड़ी लंबी गर्दनवाला, महान् काले बादलके समान, दुष्ट हृदय वाला और कंसका हित करनेकी इच्छा वाला वह (केशी) नंदजीके व्रजको कँपाता हुआ आया) ॥

---

* दृष्टान्त—यदि कोई कहे कि, अक्रूरजी कंसके पास रहनेसे महात्मा कैसे रहे? उसपर यह दृष्टान्त है कि,महात्मा कुसंगतसे भी महात्मापन नहीं त्यागते. एक बाबाजी आधी रातको कहीं जा रहे थे, मार्गमें चोर मिले। चोर बोले कौन? बाबाजी बोले जो तुम सो हम। चोर बोले कहाँ जाते हो? बाबाजीने कहा जहांको तुम जाते हो। चोरोंने जाना यह चोर है, संग ले लिया. बाबाजीने भी जाना कि, यह चोर हैं। चोरोंने किसीके घरमें सेंध दिया और चोरी करने लगे,बाबाजी भी घुसे। एक बर्तन जो उघाड़ा तो इमरती रक्खी थीं। बाबाजी चार दिनके भूंखे झट ठाकुरजीका बटुआ निकाल ठाकुरजीके सामने भोग रख शंख बजाया,शंख बजतेही घरके लोग जाग गये और चोरोंके संग बाबाजी भी पकडे गये. बाबाजी तो वृत्तान्त सुनाकर छूट गये।चोरोंको दंड हुआ सो साधु पुरुषोंको कुसंगतिका फल नहीं व्यापता,इसीप्रकार अक्रूरजीको कुसंगत अर्थात् कंसकी संगतिका फल न व्यापा। चोरोंकी नाईं मरवाया ॥

कठोर हींसनेसे गौओंके समूहको बिड़राता, पुच्छ हिलाता, बादर चलायमान करता युद्ध करनेकी इच्छासे श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढता हुआ आया, तब केशी दैत्यको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आगे निकलकर अपने पास बुलाया, तब वह दैत्य इनको देख सिंहके समान गर्जने लगा ॥ ॥ २ ॥ केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर मुखसे मानो आकाशको पी जायगा, इस प्रकार मुख फाड़ता और दौडता हुआ सम्मुख आया, जो किसीके जीतनेमें न आवे, अत्यन्त वेगवान् ऐसा केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पिछले पांवोंकी दुलत्ती मारने लगा ॥ ॥ ३ ॥ जिनमें इन्द्रियोंकी पहुँच नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उस दैत्यकी दुलत्ती बचाय अत्यन्त क्रोधित हो अपने हाथोंसे सके

तं त्रासयंतं भगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्वालविघूर्णितांबुदम्॥आत्मानमाजौ मृगयंतमग्रणीरुपाह्वयत्स व्यनदन्मृगेंद्रवत्
॥२॥स तं निशाम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः॥जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चंडजवो दुर
त्ययः ॥ ३ ॥ तद्वंचयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुश्शतांतरे यथोरगं
तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥४॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽऽपतद्धरिम्॥सोऽप्यस्य वक्रे भुज
मुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥५॥ दंता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयः स्पृशो यथा ॥ बाहुश्च
तद्देहगतो महात्मनो यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

४९५

दोनों पाँव पकड़ घन्न फिराकर जैसे गरुड़ सर्पको फेंकदेता है, उसी प्रकार अवज्ञा करके सौ (१००) धनुषपर फेंककर आप खड़े रहे ॥ ४ ॥ इसके उपरांत जब चेत हुआ तब केशी दैत्य फिर उठकर मुख फाड़ता क्रोधयुक्त दौड़कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रनें हँसकर उस दैत्यके मुखमें अपना बायाँ हाथ जैसे सर्प बिलमें घुसता है उसी प्रकार डाल दिया ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगते ही केशीके दांत ऐसे गिर गये, जैसे तपे हुए लोहेके लगनेसे गिर जाते हैं और ओषधी न करनेसे जैसे जलंधर रोग उदरसे

बढ़ता है उसी प्रकार केशी दैत्यके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजा बढने लगी * ॥ ६ ॥ बढती हुई कृष्णचन्द्रकी भुजासे उसका श्वास रुक गया, अंगमें पसीना आ गया, नेत्रोंके तारे निकल आये, इस प्रकार केशी दैत्य पांओंको पटकता, लीद करता प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ७ ॥ प्राणमुक्त उस दैत्यके पककर फटी हुई ककडीके समान शरीरसे महाभुज श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बाँह निकाली, यद्यपि इन्होंने शत्रुको अनायास मारा, परन्तु तो भी भगवान्ने कुछ गर्व न किया, तब आश्चर्य मान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूल वर्षाकर देवतालोग स्तुति करने लगे ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् । इसके उपरान्त भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजीने क्लेशरहित

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लैंडं विसृजन्क्षितौ
व्यसुः ॥ ७ ॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ॥ अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसून
वर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ८ ॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥ कृष्ण
कृष्णाप्रमेयात्मन्योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावास सात्त्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको
ज्योतिरिवैधसाम् ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥११॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ॥
तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥

कर्मवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास आनकर कहा कि॥९॥हे कृष्ण । हे कृष्ण । हे अप्रमेयात्मन् । हे योगके ईश । हे जगत्के ईश्वर । हे वासुदेव । हे जगदीश्वर । हे विश्वके साक्षी । हे अखिलावास । हे सात्वतां प्रवर । हे प्रभो । ॥ १० ॥ तुम जैसे काष्ठमें ज्योति रहती है, उसी प्रकार सब प्राणियोंमें व्यापक गूढ अर्थात् सबमें रहते हो परन्तु उनको दिखाई नहीं देते, क्योंकि बुद्धिके परे हो, साक्षी हो और आपका स्वरूप देखनेमें नहीं आता, महापुरुष ईश्वर हो इस कारण जीव आपके स्वरूपको नहीं जान सकते ॥११॥ तुम स्वतन्त्र हो, इसलिये तुम्हें साधनकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि तुम तो अपनी मायाशक्तिसे ही गुणोंको सृजते हो, व उन्हींसे सत्यसंकल्प ईश्वर आप इस जगत्को रचते हो,

---

* शंका–शत्रुके मारनेके लिये शास्त्रमें और लोकमें अनेक उपाय लिखे हैं, परन्तु केशीको मारनेके लिये सब उपाय त्यागकर श्रीकृष्णने अपनी भुजा केशीके मुखमें क्यों दे दी ?

उत्तर–केशीको ब्रह्माने यह वरदान दिया था कि, हमारे हाथकी बनाई सृष्टिसे तेरी मृत्यु न होगी, जब श्रीकृष्ण अपनी बाहु तेरे मुखमें प्रवेश करेंगे तब तेरी मृत्यु होगी इसलिये केशीके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजा प्रवेश करदी थी ॥

६

895

पालते हो और फिर संहार भी कर देते हो॥१२॥सो तुमने राजारूप दैत्य और राक्षसोंका नाश करनेके लिये और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके लिये अवतार लिया है ॥१३॥ यह बहुत ही उत्तम हुआ जो इस घोडेरूप दैत्यको लीलापूर्वक ही आपने मार डाला,जिसके हींसनेका शब्दा सुनते ही भयके मारे देवता क्षणमें स्वर्ग त्यागकर भागे जाते थे॥१४॥हे विभो ! परसोंको तुम्हारे हाथोंसे चाणूर,मुष्टिक और मल्लोंको तथ कुवलयापीड हाथी व राजा कंसको मरा हुआ देखूंगा ॥ १५॥ कंसके मारनेके उपरांत शंखासुर, कालयवन, मुरदैत्य, नरकासुर इनका वध और स्वर्गसे देवराज इन्द्रको जीतकर जो कल्पवृक्ष लाओगे उसे देखूंगा ॥ १६ ॥ जिनका पुरुषार्थ ही मूल्य है ऐसी राज कन्याओंका

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥ दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम्॥१४॥चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च नि[illegible] द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो॥१५॥तस्यानु शंखयवनमुराणां नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम्॥१६॥उद्वाहं वीरकन्यानां वीरशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य मोक्षणं शापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥१७॥ स्यमंतकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१८॥ पौंड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् ॥ दंतवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ १९ ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान्॥ कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥ अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै॥अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥

विवाह और हे जगत्पति ! द्वारकामें जाकर जो नृग राजाको पापसे छुडाओगे सो देखूंगा ॥ १७॥ जांबवतीके साथ स्यमंतकमणिका पीछा लाना और सांदीपन गुरुके महाकालपुरसे मरे पुत्र सजीव लाकर दोगे सो देखूंगा ॥ १८ ॥ फिर मिथ्यावासुदेवका मारना, काशीपुरीको जलाना, दंतवक्रका मारना और राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें शिशुपालका मारना देखूंगा ॥ १९ ॥ और भी द्वारकामें वास करके तुम जो जो लीला करोगे,उन लीलाओंका कवि लोग पृथ्वीपर गान करेंगे ॥२०॥ इसके उपरान्त कालरूप तुम इस पृथ्वीका बोझ उतारनेके

लिये अर्जुनके रथवान् होकर सेनाओंका संहार करोगे सो सब हम देखेंगे ॥२१॥ केवल ज्ञानमूर्ति अपनी पूर्णानन्द स्थितिसे पूर्णकाम सत्य
संकल्प और अपनी चैतन्य शक्ति अपने तेजसे नित्य मायासे निवृत्त और छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त हम तुम्हारी शरण प्राप्त होते हैं ॥ २२॥
ईश्वर स्वतन्त्र अपनी मायासे सब प्रकारके विशेषोंकी कल्पना करनेवाले क्रीड़ाके लिये अभी मनुष्यदेह धारण करनेवाले यदु,वृष्णि,सात्वतोंमें
अग्रणी आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भक्तोंमें श्रेष्ठ मननशील भगवान् श्रीकृष्ण
चन्द्रके दर्शनसे प्रसन्न हो नारदजी इस प्रकार यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर और आज्ञा ले चले गये ॥ २४ ॥ व्रजवासियोंको

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम् ॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवाहं भगवंतमीमहि
॥ २२ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि
धुर्यं यदुवृष्णिसात्त्वताम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो
ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥ भगवानपि गोविंदो हत्वा केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः
॥ २५ ॥ एकदा ते पशून्पालाश्चारयंतोऽद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन्कतिचि
च्चौराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥२७॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपाल
वेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून्॥२८॥गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतंनीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे
द्वारं चतुःपंचावशेषिताः ॥ २९ ॥

सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र युद्धमें केशीको मारकर ग्वालबालोंसहित पशुओंका पालन करनेलगे ॥ २५ ॥ एक समय गायोंके
पालनकर्त्ता ग्वालबाल गोवर्द्धनपर्वतके शिखरपर गायोंको चराते चौर पालनका मिसकर छिपाछिपी खेल करने लगे॥२६॥हे राजन् ! इस खेलमें
कितने ही बालक चोर बने और कितने ही रखवाले बने कितने ही भेड़ बने, इस प्रकार निर्भय होकर खेलने लगे ॥२७॥ इतनेमें ही मयदैत्यका
पुत्र अत्यन्त मायावी व्योमासुरनामक दैत्य ग्वालका रूप धारण कर,चोर बन जो बालक चोर बने थे,इनको चुराकर ले जाने लगा ॥२८॥
वह बड़ा दैत्य उनको लेले जाकर पहाडकी गुफामें डाल शिलासे गुफाका मुँह बन्द कर देता,जब केवल चार पाँच ग्वाल शेष रह गये ॥ २९॥

तब साधु पुरुषको शरण देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें विचार किया कि,हमने तो खेल किया है,यह सच्चा ही चोर आन पहुँचा, इस प्रकार इस दुष्टका छल जान गोपोंको ले जाते व्योमासुरको, जैसे सिंह बलपूर्वक व्याधको पकड लेता है, उसी प्रकार पकड़ लिया ॥ ३० ॥ उस बलवान् दैत्यने अपना शरीर पर्वतके समान धारण किया और अपने छुड़ानेके लिये बहुतेरा यत्न किया, परन्तु पकडनेसे आतुर हो गया, इसलिये कृतकार्य न हुआ ॥ ३१ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्योमासुरकी दोनों भुजा पकड पृथ्वीमें पटककर देवताओंके देखते देखते श्वास घोटकर मार डाला ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त गुफाका ढकना तोड गोपोंको कष्टसे बाहर निकाल देवता और गोप जिनकी स्तुति

तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ॥ गोपान्नयंतं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥ स निजं रूपमास्थाय गिरींद्रसदृशं बली ॥ इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद् ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निस्सार्य कृच्छ्रतः ॥ स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे केशिव्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यंबुजेक्षणे ॥ भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिंतयत् ॥ २ ॥

896

किं मया चरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ॥ किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥

करें, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलमें आये ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां केशिव्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ दोहा–अडतिसमें अक्रूर मन, जैसो कियो विचार । तैसो ही अक्रूरको, कियो कृष्ण सत्कार ॥ १ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! बड़े बुद्धिमान् अक्रूरजी भी उस रात मधुपुरीमें वास कर प्रात होते ही रथमें चढ़कर नंदजीके गोकुलको चले ॥१॥ महाभाग अक्रूरजी मार्गमें जाते कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त हो यह विचार करने लगे ॥२॥ कि, मैंने ऐसा कौन मंगलकर्म, अथवा तप वा सत्पात्रोंको दान किया था, जिसके प्रभावसे ब्रह्मा,महादेवके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका

आज दर्शन करूंगा॥ ३ ॥ मैं जानता हूँ कि,भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होना अत्यन्त दुर्लभ है, जैसे विषयोंमें मन, शूद्रकुलमें जन्म, ऐसे पुरुषको वेदका उच्चारण दुर्लभ है ❋॥४॥ अथवा ऐसे नहीं, मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होजाँय कारण कि, जिस प्रकार नदीमें बहते हुए तृणसे कदाचित् कोई तीरपर भी पहुँच जाय तैसे ही कर्मवशसे कालसे ले गये हुए जीवोंमेंसे भी कभी कोई तिर जाय ॥ ५ ॥ मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिवानेको चला हूँ, इसलिये अब मेरा मंगल हुआ,जन्म सफल हुआ, क्योंकि योगी जन जिनका

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ॥ ४ ॥ मैवं ममाधमस्यापि
स्यादेवाच्युतदर्शनम् ॥ ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ॥
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयांघ्रिपंकजम् ॥ ६ ॥ कंसो बताद्याऽकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येंऽघ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥
कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन् यन्नखमंडलत्विषा॥७॥यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः
ससात्वतैः ॥ गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुंकुमांकितम् ॥ ८ ॥

ध्यान धरते हैं उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें आज नमस्कार करूंगा ॥ ६ ॥ अहो ! बड़ा आश्चर्य है, दुष्ट कंसने आज मेरे ऊपर बडा अनुग्रह किया, जिसके भेजनेसे मुझको अवतार धरे हुए हरि भगवान्का दर्शन होगा, जिनके नखमंडलकी कांतिसे अंबरीष आदि सब दुरत्यय सागरको तरगये॥ ७ ॥ जो चरणारविंद ब्रह्मा महादेवादि देवता लोगोंने प्रकाशमान लक्ष्मी तथा मुनीश्वरोंने और भक्तोंने पूजे हैं और गाय चरानेके लिये जो चरणारविन्द ग्वालबालोंके संग वनमें फिरे हैं और जिन चरणारविन्दोंमें गोपियोंके कुचोंकी केशर लगी है

❋ शंका-वेदका कीर्त्तन करना, श्रवण करना और पढना शूद्रके लिये वर्जित है, चाहे विरक्त होवै चाहे गृहस्थी होवै,तो फिर अक्रूरने क्यों कहा कि विषयमें रमित शूद्र उसको वेदका कीर्त्तन आदि महादुर्लभ है. इस वाक्यसे विदित होता है कि गृहस्थ शूद्रके लिये वेदका कीर्त्तन आदि दुर्लभ है तो भी विरक्त शूद्रको दुर्लभ नहीं है पुण्य है यह भ्रम है ॥

उत्तर-(शूद्रजन्मा) इस शब्दका शूद्र अर्थ कभी भी मत समझना. शूद्रजन्मा इसका अर्थ यह है कि,शूद्र सरीखे जिसका जन्म होय उसको शूद्रजन्मा जानना चाहिये. जन्म तो हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके कुलमें परन्तु भ्रष्ट लोगोंके सदृश काम करे,सज्जनो ! जान लेना इस अर्थको मैं गुप्त लिखू हूं एक भ्रष्ट दूसरे विषयसे निन्दनीय लक्षणों करके संयुक्त जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य उनको वेदका कीर्त्तन आदि महादुर्लभ है ऐसा अक्रूरजीने कहा था, शूद्रको नहीं कहा था ॥

इन्हीं चरणारविन्दोंका आज दर्शन करूंगा ॥ ८ ॥ सुन्दर कपोल, नासिका और मुसकानयुक्त चितवन, लाल डोरे जिनमें आ रहे, घूम घुमारी अलकोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका आज निश्चय दर्शन करूंगा. क्योंकि हिरण भी मेरे दाहिनी ओर आये हैं ॥ ९ ॥ पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपनी इच्छासे अब मनुष्यरूप धारण करनेवाले, शोभाके धाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमान रूपका जब दर्शन करूंगा, तब मेरे नेत्र सफल होंगे ॥ १० ॥ तीन लोकके कार्यरूप जगत् और कारणरूप महदादिक तत्त्वको यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चितवनसे ही करते हैं, परन्तु तो भी इनको अहंकार नहीं है, अपने तेजसे अज्ञानके भेद भ्रमसे रहित हैं, अपने अधीन मायाकी ओर चितवन करके अपने रचे जीव वृन्दावनके वृक्षोंके नीचे और गोपियोंके घरोंमें लीलापूर्वक बुद्धिसे दिखाई देते हैं ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकंजलोचनम् ॥ मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरंति
वै मृगाः ॥ ९ ॥ अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ॥ लावण्यधाम्नो भवितोपलंभनं मह्यं
न न स्यात्फलमंजसा दृशः ॥ १० ॥ य ईक्षिताऽहं रहितोऽप्यसत्सतः स्वतेजसाऽपा स्ततमोभिदा भ्रमः॥ स्वमायया
ऽऽत्मन्रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥११॥ यस्याखिलाऽमीवहभिः सुमंगलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्म
जन्मभिः ॥ प्राणंति शुंभंति पुनंति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥ स चावतीर्णः किल सात्वता
न्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ॥ यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायंति देवा यदशेषमंगलम् ॥ १३ ॥

अहंकार नहीं, जो आत्माराम हैं, इन्हें लीला करना कैसे संभव है ? तो कहते हैं कि, भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये लीला करते हैं, सबके पापोंको दूर करनेवाले सुन्दर, मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गुण, जन्म, कर्मसे मिली वाणी जगत्को जिलानेवाली है और शोभायमान करती है, पवित्र करती है और जिन वाणियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला, गुण, जन्म, कर्म नहीं गाये गये हैं, इनको जो कहते हैं और श्रवण करते हैं सो अपवित्र हैं, जैसे मृत्युको प्राप्त हुआ शरीर अपवित्र है ॥ १२ ॥ यादवोंके कुलमें जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार लिया है, वह अपनी मर्यादाओंका पालन करनेवाले लोकपालोंको सुख देनेवाले लीलापूर्वक यश विस्तार करते व्रजमें रहते हैं और सबको मंगल

कारी, उनके यशको देवता लोग गाते हैं ॥१३॥ महत्व पुरुषोंको सुन्दर गति देनेवाले, गुरु, त्रिलोकीमें सुन्दर नेत्रवाले पुरुषोंको आनंद देनेवाले, लक्ष्मीके निवासस्थान, सुन्दररूप धारण किये श्रीकृष्णचन्द्रका आज मैं निश्चय ही दर्शन करूंगा, क्योंकि आज प्रातःकालके समय मुझे श्रेष्ठ शकुन हुए हैं ॥ १४॥ दर्शन करनेके उपरान्त इसी समय रथसे उतर इन प्रधान पुरुष कृष्ण बलरामके चरण कि,जिनका योगी पुरुष भी स्वरूपकी प्राप्तिके लिये केवल बुद्धिसे ही ध्यान करते हैं उनको मैं साक्षात् प्रणाम करूंगा और फिर इन सहित व्रजवासी सखाओंको भी प्रणाम करूंगा ॥ १५ ॥ चरणोंमें पडे हुए मस्तकपर सामर्थ्यवान् भगवान् अपना हाथ धरेंगे, जो हाथ कालरूप सर्पके वेगसे डरे हुए

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकांतं दृशिमन्महोत्सवम् ॥ रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये
ममाऽऽसन्नुषसः सुदर्शनाः॥१४॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिर
प्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः॥१५॥अप्यंघ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपंकजम् ॥
दत्ताभयं कालभुजंगरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप
जगत्त्रयेंद्रताम् ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगंधिकगंध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ योऽतर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥

व शरण चाहनेवाले मनुष्योंको अभयका देनेवाला है ॥ १६ ॥ जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके इन्द्रने इन्द्रता पाई और ऐसे ही राजा बलिने संकल्प करके त्रिलोकीकी इन्द्रता प्राप्त करी और रासक्रीडामें व्रजकी स्त्री गोपियोंके श्रमके पसीनेको श्रीकृष्णने जिस हाथसे पोंछा था और जिन हाथोंमें कमलके समान सुगंधि आती है, वही हाथ मेरे मस्तकपर धरेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं राजा कंसका भेजा हुआ दूत हूँ, परन्तु तो भी श्रीकृष्णचन्द्र मुझपर यह शत्रुका दूत है, ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि वह अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरे चित्तकी बाहर भीतरके चेष्टाका नित्य ज्ञानसे देखते हैं, मैं ऊपरसे तो कंसका भेजा हुआ जाता हूँ, परन्तु भीतरसे भगवान्

भली भांति श्रीकृष्णचन्द्र जानते हैं ❋ ॥ १८ ॥ चरणारविंदमें गिरा,
श्रीकृष्णचन्द्रका ही ध्यान लग रहा है इस बातको नित्य ज्ञानसे
हाथ जोडे मुझे मुसकाकर करुणाभरी दृष्टिसे जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र देखेंगे, उसी समय और भय दूर हो जानेसे आशंका
ओंसे रहित हो मैं परमानन्दको प्राप्त हूँगा ॥ १९ ॥ जिनके अत्यन्त हितकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं,
वह भगवान् जिस समय अपनी जाति और कुटुम्बी जान मुझे भुजा पसार छातीसे लगावेंगे उसी मकस यह देह पवित्र हो जायगा
और कर्मरूप बन्धन भी इस देहके छूट जायगे ॥ २० ॥ जब मैं भगवान श्रीकृष्णसे मिल, मस्तक झुका, हाथ जोड़ खड़ा हूँगा तब हे

अप्यंघ्रिमूलेऽवहितं कृतांजलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ॥ सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीत
विशंक ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥ सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते
तदैव मे बंधश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥ लब्धांगसंगं प्रणतं कृतांजलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः॥तदा
वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो
द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथाऽपि भक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥२२॥ किं चाऽग्रजो माऽवनतं
यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमंजलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥

काका अक्रूर। इस प्रकार बडे यशस्वी श्रीकृष्ण मुझसे कहेंगे; उस समय हमारा जन्म सफल होगा. भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस पुरुषका
आदर सन्मान नहीं करते, उस पुरुषको धिक्कार है ॥२१॥ यद्यपि उनको न तो कोई प्रिय है न सुहृद है, न कुप्यारा है और न उदासीन
है परंतु तो भी भगवान् भक्तको भजते हैं जैसे कल्पवृक्षकी जो सेवा करै, वह उसीको फल देता है ॥२२॥ जब मैं नमस्कार कर हाथ जोड़ूंगा,
तब मेरी भुजा पकड, हास्यपूर्वक छातीसे लगा, गृहमें ले जाय भलीभांति आदर सत्कार कर फिर बड़े भ्राता बलरामजी अपने बन्धु यादवोंमें

❋ दृष्टान्त--कृष्ण अन्तर्यामी हैं, इसकारण कपटप्रीति सबकी जानते हैं। एक बडे भारी ठग थे, सो एकदिन बडी ऐंठमा पाग बांधकर चले लोग बोले कहां चले ? तो उत्तर दियां कि, सब को तो हमने ठगा परन्तु जो परमेश्वरको ठगकर लावें तो हमारा नाम ठग है ऐसा कह चले, परन्तु थोडीही दूर जाय लौट आये. लोग बोले क्यों भाई ! लौट कैसे आये? यह बोले कि, भाई क्या कहैं ठगते तो सही परन्तु वह तो अन्तर्यामी हैं हमारे मनका कपट जान जायंगे उनपर हमारा छापा नहीं लग सकता ॥

कंसके कर्त्तव्यको पूछैंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! इस प्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूर मार्गमें श्रीकृष्णकी चिन्ता करते रथमें बैठे हुए गोकुलमें पहुँचे कि,इतनेमें ही भगवान् सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुए ॥२४॥ समस्त लोकोंका पालन करनेवाले ब्रह्मादिक देवता अपने मुकुटोंके ऊपर जिनके चरणोंकी रेणुकाको धारण करते हैं,ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके चिह्न महात्मा अक्रूरजीने ब्रजमें देखे, जो पृथ्वीके गहनेरूप थे और जिनमें कमल, यव,अंकुश आदि चिह्न प्रतीत होते थे ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणचिह्नके दर्शनके आनंदसे संभ्रम और प्रेमसे रोमांच हो आये, नेत्रोंमें आंसु भरि आये,सो अक्रूरजी रथसे उतर, अहो ! यह मेरे प्रभुके चरणोंकी रज है

श्रीशुक उवाच ॥ इति संचितयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥
पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥
॥ २५ ॥ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादवस्कंद्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजां
स्यहो इति ॥ २६ ॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वा दंभं भियं शुचम् ॥ संदेशाद्यो हरेर्लिंगदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥
ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ॥ पीतनीलांबरधरौ शरदंबुरुहेक्षणौ ॥२८॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनि
केतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥ ध्वजवज्रांकुशांभोजैश्चिह्नितैरंघ्रिभिर्व्रजम् ॥ शोभयंतौ
महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥

इस प्रकार कहते कहते चरणोंके चिह्नोंमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ देहधारियोंका इतना ही पुरुषार्थ है,जो कंसका संदेशा ले दंभ, भय,शोच त्याग श्रीकृष्णचन्द्रके चिह्न दर्शन व श्रवणादिकसे अक्रूरको प्रेम उत्पन्न हुआ ॥२७॥ इसके उपरांत ब्रजकी गोशालामें गाय दुहनेको जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीको महात्मा अक्रूरजीने देखा, जो पीताम्बर और नीलाम्बर धारण कर रहे हैं और जिनके शरदृतुके कमलसे नेत्र हैं ॥२८॥ किशोर अवस्था, श्याम और गौर स्वरूप, लक्ष्मीके शोभाके स्थान, लम्बी भुजा,सुन्दर मुख, स्वरूपवानोंमें अत्यन्त शोभायमान, हाथीके बालकके समान पराक्रमवाले ॥ २९ ॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुशके चिह्नवाले चरणोंसे भूमिको शोभायमान करते महात्मा

899

अनुकंपाजन्य जो मन्द मुसकान व चितवन ॥ ३० ॥ उदार रुचिर जिनकी क्रीडा हैं, मोतियोंके हार और वनमाला पहरे, पवित्र चन्दन और केशर लगाये, स्नान किये, निर्मल वस्त्र पहरे ॥ ३१ ॥ प्रकृतिपुरुषरूप आदिकारण जगत्के पालन करनेवाले पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलरामकेशवमूर्ति दो रूप धरके अवतार लिये हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन्! अपने तेजसे दिशाओंका अन्धकार दूर करते हुए, जैसे सुवर्णसे नीलमणिका पर्वत अथवा रूपेका पर्वत जगमगाता है, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीके रूपको निहार ॥ ३३ ॥ स्नेहमें विह्वल हो महात्मा अक्रूरजीने शीघ्र रथसे उतर रामकृष्णके चरणोंमें दंडवत् करी ॥ ३४ ॥ हे महाराज परीक्षित्! श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनके आनन्दसे आँखोंमें आंसू आगये, उत्कण्ठासे अंगमें रोमांच होगये और प्रेमके मारे अपना नाम बतानेको भी समर्थ न हुए ॥ ३५ ॥ हित करनेवाले

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ॥ पुण्यगंधानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ
जगद्धेतू जगत्पती ॥ अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशो वितिमिरा राजन्कुर्वाणौ प्रभया स्वया ॥
यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ॥ पपात चरणोपांते
दंडवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ पुलकाचितांग औत्कंठ्यात्स्वाख्याने नाशक
न्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकितपाणिना ॥ परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ संकर्षणश्च
प्रणतमुपगुह्य महामनाः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च
वरासनम् ॥ प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रांतमादृतः ॥ अन्नं
बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरका अभिप्राय जान चक्रकी रेखावाले अपने हाथसे पकड प्रसन्न हो छातीसे लगाकर मिले. यहां मिलनेका तात्पर्य्य यह है कि, श्रीकृष्णने कंसके मारनेकी सामर्थ्य जताई ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत उदारमन बलरामजी दंडवत् करते हुए अक्रूरजीको छातीसे लगाय, अपने हाथोंसे उनके दोनों हाथ पकड श्रीकृष्ण सहित घरमें लिवाकर ले गये ॥ ३७ ॥ और "भले आये" इस प्रकार कुशल पूँछ अक्रूरजीके लिये आसन बिछाय, विधिपूर्वक चरण पखार मधुपर्क (दधि, घृत, मधु) दे पूजा करने लगे ॥ ३८ ॥ विधिपूर्वक पूजा कर गोदान अक्रूरजीको दिया, फिर मार्गमें परिश्रम पाये अक्रूरजीके चरणारविंद आदरसहित दाबके गुणभरी पवित्र अन्नकी सामग्री भोजनार्थ

अतिश्रद्धासे अक्रूरजीके आगे निवेदन करी ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत जब अक्रूरजी भोजन कर चुके तब परमधर्मके जाननेवाले बलदेवजी
बीरी, चंदन, केशर, अतर और फूलोंके हार इत्यादिकोंसे उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥४०॥ सन्मान करनेके पीछे अक्रूरजीसे नंदरायजी कहने
लगे कि निर्दयी कंसके जीते हे अक्रूर ! तुम्हारा जीवन किस प्रकार होता है, कसाईके घर रहती भेडके समान तुम कैसे रहते हो ? ॥ ४१॥
प्राणोंका पोषण करनेवाले दुष्ट कंसने विलाप करती जब अपनी बहिनके ही पुत्र मार डाले, उस दुष्टकी प्रजा तुम हो सो तुम्हारी क्या कुशल
पूछें ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब मधुर वचनसे पूंछ नन्दरायजीने सत्कार किया तब महात्मा अक्रूरजीने मार्गके श्रमको त्याग दिया ॥ ४३ ॥

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गंधमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥४०॥ पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः
कथं स्थ निरनुग्रहे ॥ कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥४१॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान्क्रोशंत्या असुतृप्
खलः॥ किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥४२॥ इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परि
पृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दशम० पू० अक्रूरागमनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥
श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यंके रामकृष्णोरुमानितः ॥ लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥
किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ॥ तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किंचन ॥ २ ॥ सायंतनाशनं कृत्वा
भगवान्देवकीसुतः ॥ सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां अक्रूरागमनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ दोहा—उनतालिसमें नन्दसुत, मथुरा
कियो पयान । यमुनामें अक्रूरने, लखो भवन भगवान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! शय्याके ऊपर आनन्दपूर्वक विराजमान
श्रीकृष्ण बलदेवसे बड़ा सत्कार पाय अक्रूजीने मार्गमें जो २ मनोरथ किये थे सो-सो सब पूर्ण हुए ॥ १ ॥ क्योंकि छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त
परिपूर्ण शोभाके स्थान भगवान् श्रीकृष्ण ही जब प्रसन्न होगये तब किस वस्तुकी प्राप्ति न हुई ? हे राजा परीक्षित् ! कृष्णपरायण भक्त किसी
वस्तुकी चाहना नहीं करते ॥ २ ॥ इसके उपरांत देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संध्यासमयका भोजन कर अपने यादवोंसे जैसा कंसका

वर्त्ताव है, सो अक्रूरजीसे पूछने लगे और जो कुछ करनेका विचार है, इसको भी पूँछा ॥३॥ श्रीभगवान् बोले कि,हे सौम्य ! भला तुम्हारा आगमन कुशल क्षेमसे तो हुआ है ? तुम्हारा कल्याण हो,जातिके बन्धु बांधव तो सुखसे और आरोग्य हैं ? किसीको कुछ दुःख तो नहीं है? ॥ ४ ॥ हे अक्रूरजी ! कंस मामा तो हमारे कुलका रोग बढ़ा है, फिर अपने बंधु बांधव और प्रजाकी क्या कुशल पूछैं ? ॥ ५ ॥ देखो हमारे निरपराध माता पिताको अत्यन्त कष्ट हुआ,हमारे लिये इनके पुत्र मारे गये और हमारे ही लिये वह बन्दी हुए ॥६॥ हे साधु! बहुत दिनोंसे

श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्यागतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः ॥ अपि स्वज्ञातिबंधूनामनमीवमनामयम् ॥४॥ किं
नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये॥ कंसे मातुलनाम्न्यंग स्वानां नस्तत्प्रजासु च॥५॥अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रो
र्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बंधनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य कांक्षितम्॥
सजातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः॥ वैरानुबन्धं
यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुंदुभेः॥
॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नंदं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥

900

तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषा लगरही थी सो आपने आकर हमको दर्शन दिया,यह बड़ा ही अनुग्रह किया. अब यह बताइये कि,आपका आना कैसे हुआ ? ॥७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा अक्रूरजीने सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया कि, कंस यादवोंसे शत्रुभाव रखता है औ वसुदेवजीके मारनेका भी उद्योग उसने किया था॥८॥और जो संदेशा लाये थे,व जिसलिये स्वयं उनको दूत बनाकर भेजा था और देवर्षि नारदजीने जो कहा कि, श्रीकृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं सो सब कह सुनाया * ॥९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

---

* शंका–व्रजमें नन्दादिकोंने अक्रूरसे बूझा कि, आप किस कामके लिये व्रजमें आये हो ? तब अक्रूरने कृष्णचन्द्रसे कहा कि आपको और बलदेवजीको मारनेके लिये यज्ञ देखनेके बहानेसे कंसने बुलाया है, ऐसा कहा तब स्वामीके विश्वासघातकपनका पाप अक्रूरको लगैगा. क्योंकि, यह बात गुप्त करके कंसने अक्रूरका विश्वास मानके कही थी कि,अक्रूर किसीसे नहीं कहेगा और जो कंस सरीखे कपट करके कहैं कि, महाराज आपका मामा है और कंस राजा भी है, सो यज्ञका कौतुक देखनेको बुलाया है, तब भगवान्की ओर कपटका पाप भोगैंगे ॥

और बड़े२शत्रुओंको पराजय करनेवाले बलरामजीने महात्मा अक्रूरजीका वचन श्रवण कर कुछेक मुसकाते हुए नन्दजीसे राजा कंसका संदेशा कहा ॥ १० ॥ यह सुनते ही उन्होंने गोप लोगोंको आज्ञा दी कि, दही दूध संग लेके हमारे साथ आनेके वास्ते गाडियें जोडो ॥ ११ ॥ कल मथुराको चलकर राजा कंसको गोरस देंगे और बडा भारी उत्सव देखेंगे. देखो । यह सब देशवासी जाते हैं, इस प्रकार नन्दजीने

गोपान्समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यांति जानपदाः किल ॥ एवमाघोषयत्क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ॥ नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥

गोकुलमें ढंढोरा पिटवा दिया ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त संपूण गोपियें जिस समय अपने जीवन श्रीकृष्ण बलरामको मथुराको ले जानेको व्रजमें अक्रूर आये हैं, यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुईं ॥ १३ ॥ बहुत गोपियोंकी तो यह दशा हुई कि, इसके सुननेसे जो हृदयमें ताप हुआ उससे गोपियोंके मुख कुम्हला गये और वस्त्र, चूरी, कंकण, केशोंकी ग्रंथि यह सब शिथिल हो गईं ॥१४॥ और बहुत स्त्रियोंकी

उत्तर–जब श्रीकृष्णने अक्रूरसे बूझा कि, आपका आना व्रजमें कैसे हुआ ? तब अक्रूरने अपने मनमें बडा दुःख माना कैसा दुःख माना ? जैसे एक लकडी दोनों ओरसे जलती हो उस लकडीको कोई पुरुष हाथसे नहीं छू सकता, क्योंकि जो उस लकडीको पकडता है तो दोनों हाथ जलते हैं और हाथोंके बचानेका उपाय करता है तो लकडी हाथसे जाती है, ऐसे ही अक्रूर होगये-कंसका पक्ष करते हैं तो भगवान्‌का द्रोही होना पडता है और भगवान्‌का पक्ष करते हैं तो कंसका द्रोही होना पडता है, तब प्राण त्यागनेका विचार किया. फिर श्रीकृष्णभगवान्‌का ध्यान किया उस ध्यानमें श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरको आज्ञा दी कि, तुम क्यों इतना कष्ट सहते हो, कंसका कपट हो सो आप प्रगट मत करो, हमारी ओरसे कपटमें तुमको कुछ दोष नहीं होगा, फिर भगवान्‌ने कहा हमारी ओरसे कपटकी त्रास त्यागदो, क्योंकि हम सब संसारका कर्म जानते हैं, मनुष्योंकी नाईं हम नहीं " इसप्रकार भगवान्‌की आज्ञा पाकर अक्रूरने कंसके कपटरूप वचन कृष्णसे कहे भगवान् तो सब जानते ही हैं फिर क्यों गुप्त रखकर दोषका भागी बनूं, इसलिये कह दिया कि, तुम दोनों जनोंको यज्ञ देखनेके लिये कंसने बुलाया है ॥

यह दुर्दशा हुई कि, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानसे सब इन्द्रियोंकी बृत्तियें जाती रहीं, वे मुक्त होनेपर जैसे देहका भान जाता रहता है, वैसे ही देहका भान भूलगईं॥१५॥बहुतसी गोपियें स्नेहसे मुसकाय हृदयको आनन्ददायक चित्रविचित्र बोलनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंका स्मरण कर मोहित हो गईं॥१६॥बहुतसी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मनोहर चलन, स्नेह भरी चितवन, शोककी दूर करनेवाली बोलन इत्यादि चेष्टा और बडेबडे चरित्रोंको स्मरण करनेलगीं॥१७॥यह अवश्य ही जायँगे इस भयसे विरहमें कतार आँसू बहाती भगवान श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हजारों गोपियोंके झुण्डके झुण्ड मिलक संपूर्ण परस्पर यह कहने लगीं॥१८॥ गोपियें कहने लगीं कि, हे विधाता! तुझे कुछ भी दया नहीं है, क्योंकि जीवोंका परस्पर मिलाप व प्रेम बँधाय उनके पूरे सुख न भोगने पर भी वृथा वियोग कर देता है,

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः॥हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरःसंमुमुहुः स्त्रियः॥१६॥गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्ध
हासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥१७॥ चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य लीला विरहकातराः ॥
समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः॥१८॥गोप्य ऊचुः॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणये
न देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान्वियुनंक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं
90/ मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम्॥२०॥क्रूरस्त्वमक्रूरसमा
ख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत्॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥

इसीसे तेरी क्रीडा बालकोंके समान है, अर्थात् तू मूर्ख है ॥ १९ ॥ जो तू श्याम अलकोंसे आच्छादित सुन्दर कपोल, ऊँची नासिका वाला, शोच मिटानेवाले मंद हास्यके लेशमात्रसे भी शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका एक वार दर्शन कराय पीछे छिपा लेता है, हमने तेरा क्या अपराध किया है? ॥ २० ॥ दान करके लेता है, इसलिये तू बडा कठोर है, (अक्रूर लिये जाता है मैं तो नहीं ले जाता यदि विधाता यह कहै तो इसके उत्तरम गोपियें कहती हैं कि) अरे विधाता ! निर्दयी अक्रूर नाम धरकर तू ही आया है सो अपने दिये हुए कृष्णरूप नेत्र अज्ञानीके समान करके लिये जाता है, जिस तेरी दी हुई आँखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके एक एक अंगमें तेरी संपूर्ण सृष्टिकी

सुन्दरता हम देखती हैं ॥२१॥ अरे ! रे ! ! क्षणभंग स्नेहवाले नंदके पुत्रकी मुसकानसे मोहित हुई घरमें बन्धु और पुत्र पतियोंको छोड हम साक्षात् उनकी दासी हुई परंतु बडे आश्चर्यकी बात है कि, वह हमारी ओरको दृष्टि उठाकर देखता भी नहीं, जान पडता है कि, उसे नित्यप्रति नये नये प्यारे लगते हैं ॥ २२॥ मथुराकी स्त्रियोंको इस रातका सबेरा अच्छा होगा, क्योंकि उनके मनोरथ निश्चय सच्चे होंगे,देखो जो स्त्रियें मथुरामें पधारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मुख जो कि,कटाक्षसे वृद्धिगत और मुसकानरूप जिसमें रस ऐसे सुन्दर रसका पान करेंगी ॥ २३ ॥ हे बालाओ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि माता, पिता आदिके पराधीन हैं और धीर हैं, परंतु तोभी उन स्त्रियोंके

न नन्दसूनुः क्षणभंगसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत॥विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नव प्रियः॥२२॥सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ॥ याः सम्प्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यं त्यपांगोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासां मुकुन्दो मधुमंजुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ॥ कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥ अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजांधकवृष्णि सात्वताम् ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यंति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूद क्रूर इत्येतदतीव दारुणः॥ योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः॥२६॥अनार्द्रधीरेष समा स्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥

मधुके समान मीठे भाषणोंसे इनका चित्त हरण हो जायगा, व उन स्त्रियोंके लजीले मंद हास्य व विलासोंसे भ्रम जायँगे. इसलिये जो अपने गांवकी रहनेवाली हैं,उनके निकट पीछे किस प्रकार आवेंगे॥२४॥आज तौ मथुरामें दाशार्हवंशी भोजवंशी और अंधवंशी यादवोंकी आंखोंको निश्चय आनन्द होगा, क्योंकि लक्ष्मीके संग रमण करनेवाले संपूर्ण गुणयुक्त देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जो पुरुष मार्गमें देखेंगे उनके नेत्रोंको निश्चय ही बडा आनन्द होगा ॥२५॥ ऐसे क्रूर कर्म करनेवाले निर्दयीका अक्रूर नाम किसने रक्खा है, जो यह निर्दयी बहुत दुःखित हमारे विना पूछे प्राणोंसे प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हमारी आंखोंसे दूर लिये जाता है ॥ २६ ॥ देखो ! यह कठोरबुद्धि कृष्ण

रथमें जा बैठे, तिसपर यह अभागे ग्वाल गाडीको शीघ्र ही हांकनेकी चेष्टा करते हैं,ऐसी अनीतिको होती हुई देखकर कोई बडा बूढ़ा भी मने नहीं करता, इस समय किसी गोपको विघ्न हो जाता तो बुरा शकुन विचारकर श्रीकृष्ण नहीं जाते, हाय। हाय।। आज दैव ही हमा प्रतिकूल चेष्टा करता है ॥२७॥ फिर गोपियें बोलीं कि,सखी! हम सब चलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मने करेंगी और उनके रथके आगे जाय आडी पडकर कहेंगी कि, यदि आप जाते ही हैं तो हमारी छातीपर रथका पहिया उतारकर चले जाओ और हमारे कुलके बडे बूढे भी क्या करेंगे!क्योंकि जो अर्धक्षणको भी नहीं छूट सकते, उन्हीं मुकुन्दका वियोग कर दैवने हमारे चित्त दीन कर दिये हैं ॥ २८ ॥ हे गोपियो! और देखो सखी। उन्हीं कृष्णकी स्नेहभरी मनोहर मुसकान मनोहर लीलापूर्वक चितवन आलिंगनसे रासकी सभामें अत्यन्त बडी रात्रियें

निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबांधवाः॥ मुकुंदसंगान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम्॥२८॥यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरंभणरासगोष्ठ्याम्॥नीताःस्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरंतम् ॥ २९ ॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्रक् ॥ वेणुं क्वणन्स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥३०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः॥विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ॥३१॥ स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२॥

एक क्षणके समान बीत गईं थीं,अब विना श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके विरहरूपी दुःखके समुद्रको कैसे तरेंगी !॥२९॥संध्या समय बलदेवजीके संग ग्वालबालोंसे वेष्टित हो बाँसुरी बजाते, जिनके बाल और माला गायोंके खुरोंकी धूरिसे परिपूर्ण रहते थे, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें आनेके समय कुछेक हँसते हुए कटाक्ष सहित दृष्टिसे हमारे चित्तको हर लेते थे,उन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके विना अब हम किस प्रकार जीवन धारण करेंगी ! ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपोत्तम परीक्षित। इस प्रकार अत्यन्त विरहमें व्याकुल भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें मन लगाये गोपियें लज्जा त्याग हे गोविंद। हे दामोदर। हे माधव। इस भाँति पुकार पुकारकर रोने लगीं ॥३१॥ हे राजन्। इस प्रकार गोपियें विलाप

कर रही थीं. कि, इतनेमें ही भगवान् सूर्य उदय होगये, इसके उपरांत महात्मा अक्रूरजीने संध्योपासन कर रथ हाँका तब गोपियें हाहाकार कर रोने लगीं ॥ ३२ ॥ केशवमूर्तिके वियोगमें यशोदा व गोपियें इस प्रकार व्याकुल हो हाहाकार करने लगीं, इसके उपरांत नंदादिक संपूर्ण व्रजवासी ग्वालबाल दूध दही माखनसे भरे कलशोंको ले गाडियोंमें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके संग चले ॥ ३३ ॥ और श्रीकृष्णमें आसक्तमन गोपियें श्रीकृष्णके पीछे जाय कदाचित् श्रीकृष्ण लौट आवें, इस प्रकार पैंड़ा देखने लगीं॥ ३४॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चलनेके समय उन गोपियोंको व्याकुल देख “शीघ्र ही आऊंगा” ऐसे प्रेमसहित वचन दूतसे कहलाकर शान्त किया ॥ ३५॥ हे परीक्षित् । जहांतक रथकी ध्वजा देखी, तहां तक तो रथकी धूल उडती देखी और तबतक गोपियें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये

गोपास्तमन्वसज्जंत नंदाद्याः शकटैस्ततः ॥ आदायोपायनं भूरि कुंभान्गोरससंभृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च
दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरंजिताः ॥ प्रत्यादेशं भगवता कांक्षंत्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यती
वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सांत्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू
रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपतस्थिरे ॥ ३६ ॥ ता निराशा निववृतुर्गोविंदविनिवर्तने ॥
विशोका अहनी निन्युर्गायंत्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिं
दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्ट मणिप्रभम् ॥ वृक्षखंडमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥
॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामंत्र्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिंद्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥

चित्रकी नाईं लखीसी खडी रहीं ॥ ३६ ॥ परंतु जब जाना कि, अब मुरलीमनोहर नहीं आवेंगे, तब वह गोपियें अत्यन्त व्याकुल हो लौटीं और शोक प्रकाश कर परस्पर कहने लगीं ॥ ३७ ॥ हे राजन् । इस भाँति वह गोपियें विलाप करती हुई व्रजमें लौट आईं और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंको गाय गाय शोक त्यागती दिनोंको बिताने लगीं. उधर पवनके तुल्य वेगवाले रथमें बैठ बलदेव अक्रूरसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाली यमुनाके निकट पहुंचे ॥ ३८ ॥ वहां पहुँच हाथ पांव धो आचमन कर, निर्मल मीठा जल पा, फिर बगीचेमें आकर बलराम सहित रथमें बैठ गये ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत महात्मा अक्रूरजी भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजीको

रथमें बैठाल और उनसे आज्ञा मांग कालिंदीमें विधिपूर्वक स्नान करने लगे॥४०॥और जलमें गोता मारकार गायत्रीका जप करते २ महात्मा अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको देखा॥४१॥ फिर अक्रूरजीको भ्रम हुआ कि. राम कृष्णको तो मैं रथमें बैठालकर आया था सो यहां कैसे आये ? कदाचित् रथमेंसे उतर न आये हों इसलिये निकलकर देखूं इस प्रकार विचार करने लगे ॥४२॥ फिर अक्रूरजीने निकलकर देखा कि,पहलेके समान कृष्ण बलदेव रथमें विराजमान हैं, उस समय अक्रूरजी महाविस्मयको प्राप्त होकर कहने लगे कि,जलके भीतर जो मुझे दर्शन हुआ, सो मिथ्या है॥४३॥इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर फिर गोता मारा तो सिद्ध,चारण,गन्धर्व,देवता,नर्त्तक स्तुति कर रहे हैं और भगवान् शेषजी विराजमान हैं ऐसा देखा ॥ ४४ ॥ जिनके सहस्र शिर मुकुटोंसहित सहस्र ही फण नीले वस्त्र धारण किये कमलनालके तुल्य श्वेतवर्ण कैलासके समान प्रकाशमान शेषजीको देखा ॥ ४५ ॥ कुण्डलसे विराजान उनके ऊपर श्याम और पीत वस्त्रोंको धारण किये चार भुजा शांतस्वरूप पुरुष कमलके पत्तोंके समान अरुण नेत्र ॥४६॥ सुन्दर प्रसन्न मुख सुन्दर हास्यभरी चितवन, सुन्दर भ्रुकुटी और शोभायमान नासिका, सुन्दर कर्ण, सुन्दर कपोल और अरुण ओष्ठ॥४७॥ लम्बी मोटी भुजा, विशाल हृदयमें लक्ष्मी विराजमान, गोल शखसी ग्रीवा, तीन वली जिसमें पड रहीं ऐसी शोभायमान जिनकी नाभि, पीपलके पत्तेके समान चिकना उदर ॥ ४८ ॥ पतली कमर और बृहत् श्रोणीसे शोभायमान

निमज्ज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् ॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ॥४१॥तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुंदुभेः ॥ तर्हि स्वित्स्यंदने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् ॥ सिद्धचारणगधर्वैरसुरैर्नतकंधरैः॥४४॥सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम्॥ नीलांबरं बिसश्वेतं शृंगैः श्वेतमिव स्थितम्॥४५॥ तस्योत्संगे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शांतं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥ प्रलंबपीवरभुजं तुंगांसोरःस्थलश्रियम्॥ कंबुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम्॥४८॥बृहत्कटितटश्रोणि करभोरुद्वयान्वितम् ॥ चारुजानुयुगं चारुजंघायुगलसंयुतम्॥४९॥

दोनों जंघा ॥ ४९ ॥ लंबायमान दोनों गुल्फ, लाल नखोंके समूहकी 'कांतिसे वेष्टित कोमल अंगुली, सुन्दर चरणकमल ॥ ५० ॥ बहुत मोलके मणियोंसे जटित किरीट, कडे, बाजूबन्द और कमरकर्धनी, यज्ञोपवीत, मोतियोंके हार, चरणोंमें नूपुर तथा कानोंमें कुण्डल जो पहर रहे हैं, उनसे अत्यन्त ही प्रकाशमान हैं ॥ ५१ ॥ कमल और शंख, चक्र, गदाको धारण किये भृगुलताका चिह्न जिनकी छातीमें प्रकाशमान, कौस्तुभमणिकी जिनके धुकधुकी॥५२॥सुनन्द नन्द जिनमें मुखिया ऐसे पार्षद, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और ब्रह्मा महादेवादि देवता, मरीच्यादि जो ब्राह्मण, प्रह्लाद, नारद, वसु जिनमें मुख्य इस प्रकार उत्तम भक्त अलग अलग भावसे उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥५३॥५४॥

तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ॥ नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम् ॥५०॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः॥५१॥ भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरम्॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥५२॥ सुनंदनंदप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥५४॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कांत्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ॥ विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत्सत्त्वमालंब्य सात्वतः ॥ प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृतांजलिपुटः शनैः॥५७॥इति श्रीमद्भाग०म०द०पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

और श्री, पुष्टि, वाणी, कांति, कीर्त्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, माया जिनका निरन्तर सेवन करती हैं ॥५५॥ ऐसे परिपूर्ण रूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो परमभक्तिको प्राप्त हो देहमें रोमांच होगये और भक्तिके कारण नेत्रोंमें आंसू भरि आये ऐसे महात्मा अक्रूरजी मस्तक नवाय प्रणाम कर, सावधान हो, हाथ जोड, धीरेसे सत्त्वगुणका आश्रय ले गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे॥५६॥५७॥इति श्रीभागवते महापु०दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां अक्रूरप्रतियानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

दोहा–चालिसमें अक्रूरने, लख हरिचरित अपार। सगुण निर्गुणकी भक्तिसे, विनवत वारंवार ॥१॥

अक्रूरजी बोले कि, हे कृष्ण! सम्पूर्ण कारणोंके कारण नारायण आदिपुरुष अविनाशी जिनकी नाभिमें उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्मा हुए और उस ब्रह्मासे यह लोक उत्पन्न हुआ, तुमको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्व, पुरुष, मन, इन्द्रिय, समस्त इंद्रियोंके लिये विषयसे संपूर्ण देवता यह जो जगत्के कारण हैं सो तुम्हारे ही अंगसे हुए हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मासे आदि लेकर जड जो संपूर्ण तत्त्व हैं, सो अपने स्वरूपको नहीं जानते और जीव हैं सो तत्त्वोंको जानते हैं, अपने स्वरूपको नहीं जानते, मायाके गुणोंसे बँधे हुए जीव गुणोंसे अलग तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते ॥ ३ ॥ ब्रह्माके उपासक महापुरुष ईश्वर तुम हो, तुम्हारी ही पूजा करते हैं और इन्द्रिय, पञ्चभूत, देवता इनके साक्षी अन्तर्यामी तुम हो, इसीलिये तुम्हारी साधु लोग पूजा करते हैं ॥ ४ ॥ और कोई एक कर्मोंमें निष्ठावाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदसे यज्ञोंका विस्तार करके अनेक रूप देवताओंका नाम लेलेकर पूजा करते हैं॥५॥ और कोई कोई ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको त्याग समाधिमें आनकर ज्ञानरूप तुम्हारा पूजन करते हैं * ॥ ६ ॥

अक्रूर उवाच॥ नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥ यन्नाभिजातादरविंदकोशाद्ब्रह्माऽऽविरासीद्यत एष लोकः ॥१॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि॥सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोंऽगभूताः ॥२॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ॥ अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥ त्वां योगिनो यजंत्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ॥ साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥४॥ त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजंते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥ एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ॥ ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

901

---

* शंका–योगमें बडे चतुर, ऐसे योगीजन सब संसारके सुखको त्यागकर जिस ब्रह्ममें मिल जाते हैं सो श्रीकृष्णचन्द्र हैं, यह शंका हमको वारम्वार होती है ?

उत्तर–जिस ब्रह्मको मुमुक्षु लोग जाते हैं, उस ब्रह्मको योगीजन नहीं जा सकते, वह ब्रह्म बडा कठिन है, परन्तु संसारमें अपने अपने इष्टको ब्रह्मके स्वरूपकी नाईं बडाई करके सब प्राणी वर्णन करते हैं, इसलिये अक्रूर भी कृष्णको ब्रह्मस्वरूप करके वर्णन करते हैं ॥

और दूसरे पुरुष विष्णुकी दीक्षा लेकर नारदपञ्चरात्रमें कही पूजाकी विधिसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन भेदोंसे बहुत रूप और नारायणरूपसे एकरूप आपकी ही पूजा करते हैं ॥ ७॥ और कोई कोई पुरुष शिवजीके कहे शैवमार्गसे और पाशुपतमार्गसे शिवरूप तुमको हे भगवन्! अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं॥८॥ हे सर्वदेवतारूप! हे समर्थ! जो पुरुष और देवताओंके भक्त हैं, और देवताओंमें उनके मन लग रहे हैं, वह सबके ईश्वर तुम्हारी ही पूजा करते हैं, क्योंकि आप सब देवताओंके रूप हैं ॥९॥ हे प्रभो! जैसे पर्वतोंसे निकली मेघके जलसे परिपूर्ण हो नदियें चारों ओरसे बह बहकर समुद्रमें जा मिलती हैं, उसी प्रकार सब देवताओंके मार्ग अन्तमें तुममें ही आनकर

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते ॥ यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वामेवान्ये शिवो
केन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥८॥ सर्व एव यजंति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्य
न्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्याऽऽपूरिताः प्रभो ॥ विशंति सर्वतः सिंधुं
तद्वत्त्वां गतयोंऽततः॥१०॥सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः॥ तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः॥११॥
तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे॥ गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु॥
॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरंघ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेंद्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षि
र्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं
रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥

मिल जाते हैं ॥१०॥ सत, रज, तम, यह तुम्हारी प्रकृतिके गुण हैं, इन गुणोंमें ब्रह्मा आदि स्थावरतक सब जीव पोये हुए हैं, वे गुण प्रकृतिमें और प्रकृति तुममें ॥ ११ ॥ संसारमें अलिप्तबुद्धि जिसके आत्मा सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी तुम हो, सो मैं आपको नमस्कार करताहूँ। अविद्यासे हुआ गुणका प्रभाववाला संसार देवता, मनुष्य,पशु,पक्षी इनकी देहमें ही प्रवृत्त होता है, इसलिये इनमें और आपमें बड़ा अन्तर है ॥ १२ ॥ अग्नि तुम्हारा मुख है, पृथ्वी तुम्हारा चरण है,सूर्य नेत्र,आकाश नाभि, दिशा कान,स्वर्ग मस्तक, देवता भुजा और समुद्र कोख है, पवन प्राणरूप तथा बलरूप कल्पना किया है ॥ १३ ॥ वृक्ष औषधि देहमें रोम, मेघ तुम्हारे केश, पर्वत तुम्हारे हाड़ और नख हैं, रात्रि

दिन पलकोंका खोलना तथा बन्द करना है, प्रजापति तुम्हारा मेढ्र है और वर्षाको तुम्हारा वीर्य कहते हैं ॥१४॥ तुम अविनाशी पुरुषमें ही लोकपालों सहित लोक स्थित हैं और वह बहुत जीवोंसे व्याप्त है, जैसे जलमें छोटे कीडे चलते हैं, गूलरमें भुनगे उड़ते हैं, उसी प्रकार मनकी वृत्तिसे जाननेमें आते जो तुम हो तिनमें अनन्त ब्रह्मांड फिरते हैं ॥ १५॥ इस संसारमें लीला करनेके लिये आप जो जो रूप धारण करते हो उनसे शोक दूर कर लोग आनन्दसे तुम्हारे यशको गाते हैं ॥ १६ ॥ सत्यव्रतको माया दिखानेके लिये मत्स्यरूप धरकर प्रलयके समुद्रमें विचरनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, मधुकैटभ दैत्यको मारनेके लिये हयग्रीवरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है ॥१७॥ मंदराचल

त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहु जीवसंकुलाः॥ यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुंबरे वा मशका मनोमये ॥१५॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ॥ तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायंति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥१८॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रांतत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणांतकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहंत्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥

पर्वतके धारण करनेवाले बडे कच्छपरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, पृथ्वी लानेके लिये वाराहरूप आपको नमस्कार है॥ १८ ॥ साधुपुरुषोंका भय दूर करनेवाले अद्भुत नृसिंहरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है, वामनरूप होकर तीनों लोक नापनेवाले तुम्हें नमस्कार है ॥ १९ ॥ गर्वीले क्षत्रियरूप वनको काटनेवाले भृगुवंशियोंके पति परशुराम तुमको नमस्कार है, रावणके मारनेवाले रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्ररूप आपको नमस्कार है॥ २० ॥ वासुदेवरूप तुमको नमस्कार है,संकर्षणरूप तुमको नमस्कार है, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुमको नमस्कार है, भक्तोंके पति तुमको नमस्कार है ॥२१॥ दैत्य दानवोंके मोहित करनेवाले शुद्ध बुद्ध रूप तुमको नमस्कार है; म्लेच्छ क्षत्रियोंको मारनेवाले

भगवञ्जीवलो कोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ॥ द्वंद्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वाऽऽत्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ॥ अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाऽहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ॥ रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहं तवांघ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं यच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्यक्षहेतवे ॥ पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ २९ ॥

कल्कीरूप तुमको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह जीव तुम्हारी मायासे मोहित हो अहंता ममतारूप दुराग्रहसे कर्ममार्गोंमें भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! मैं भी स्वप्नके समान आत्मा, पुत्र, घर, स्त्री, धन; भाई बन्धु इत्यादि हैं, उनमें मूर्खतासे सत्यबुद्धि कर भ्रमण करता हूँ ॥ २४ ॥ अनित्य आत्मा दुःखरूप हैं, उनको नित्य आत्मा सुखरूप जानता हूँ और सुख दुःखमें क्रीडा करनेवाले अज्ञानसे भरा मैं अपने प्रिय तुमको नहीं जानता ॥२५॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सिवारसे ढके जलको छोड़ सूर्यकी किरणोंसे बालू चमकते जलके लिये जाते हैं उसी प्रकार मायासे ढके तुमको त्याग देहादिकोंमें मेरा मन लग रहा है ॥ २६ ॥ कृपणबुद्धि अर्थात् विषयोंमें बुद्धि लगनेसे काम्य कर्मसे क्षुभित हुए मनको रोकनेमें असमर्थ नहीं हूँ, परन्तु बलवान् इन्द्रियें मनको इधर उधर चलायमान कर देती हैं ॥२७॥ हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! विषयी पुरुषोंको दुर्लभ मैं आपके चरणारविंदोंकी शरण आया हूँ और तुम्हारी शरण आना यह भी आपके ही अनुग्रहसे हुआ है ऐसे मानता हूँ, क्योंकि जब पुरुषका संसार छूटनहार होता है,तब हे कमलनाभ ! साधुओंकी सेवा करते हैं, उस सेवासे तुममें आनकर बुद्धि लगती है, परंतु तुम्हारी कृपा विना साधुओंकी सेवा भी नहीं बनती और तुममें बुद्धि भी नहीं लग सकती है ॥ २८ ॥ विज्ञानमूर्ति समस्त ज्ञानके कारण पुरुष काल माया इनरूप ब्रह्म तुम हो इसलिये हे अनंतशक्ति ! मैं आपको नमस्कार

करता हूँ॥ २९ ॥ हे समर्थ । हे इंद्रियोंके प्रेरणेवाले । चित्तके अधिष्ठाता सब प्राणियोंके आश्रय तुमको मैं नमस्कार करता हूँ. तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुए मेरी रक्षा करो॥३०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४०॥

दोहा–इकतालिस अध्यायमें, मथुरा कियो प्रवेश। रजक वधो माली दियो, शुभ वरदान व्रजेश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्तुति करते हुए अक्रूरजीको जलके भीतर अपना स्वरूप दिखलाकर फिर जैसे नट अपने स्वांगको दिखलाकर समेट लेता है, उसी प्रकार समेट लिया ॥ १॥ अक्रूरजी भी श्रीकृष्णचन्द्रको जलमेंसे अन्तर्धान हुआ देख अत्यन्त

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥ सोऽपि चांतर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूर उवाच ॥ अद्भुतानीह यावंति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ॥ तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन्किं मे दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ ५ ॥

906

शीघ्रता सहित जलमेंसे निकल सम्पूण संध्योपासन कर आश्चर्य मान रथके निकट आये ॥२॥ इनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अक्रूर ! पृथ्वीमें, जलमें, आकाशमें तुमने ऐसी आश्चर्य वस्तु क्या देखी है, क्योंकि तुम आश्चर्यरूप चकितसे दिखाई देते हो ॥३॥ तब अक्रूरजी बोले कि, इस संसारमें, पृथ्वीमें,जलमें जितने आश्चर्य हैं वह सब आश्चर्य विश्वरूप आपमें विद्यमान है, सो तुम्हारा मैंने दर्शन किया ॥ ४॥ जो तुममें सब आश्चर्य भरे हैं जब तुम्हारा दर्शन मैंने कर लिया फिर हे परमेश्वर ! पृथ्वी, आकाश और इस संसारमें क्या आश्चर्य देखना शेष रह गया ! ॥ ५ ॥

ऐसे कह गांदिनीके पुत्र महात्मा अक्रूरजीने रथ हांका और तीसरे ही पहरतक मथुरापुरीमें राम-कृष्णको पहुँचा दिया॥६॥ हे राजन्! मार्गोंमें
ग्रामोंके मनुष्य जहाँ तहाँ इकट्ठे हो कृष्ण बलदेवका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके रूपसे अपनी दृष्टिके हटानेको भी समर्थ न हुए
॥७॥ हे महाराज! इसी बीचमें नन्दादिक समस्त व्रजवासी आगे आकर मथुराके बागमें कृष्ण बलदेवके आनेका पैंडा देखने लगे ॥ ८ ॥
इसके उपरांत जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन व्रजवासियोंके पास आय नम्र हो कुछेक मुसकान सहित अक्रूरसे कहा कि ॥
॥ ९ ॥ हे अक्रूर! तुम आगे रथको लेजाय पुरीमें प्रवेश करो और अपने घर जाओ; हम यहां कुछ देर विश्राम लेकर मथुरा पुरीको देखेंगे

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यंदनं गांदिनीसुतः ॥ मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥६॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र
तत्रोपसंगताः ॥ वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाऽऽददुः ॥ ७ ॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरो
पवनमासाद्य प्रतीक्षंतोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं
प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान्प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥ वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥
अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो॥त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल॥ ११॥आगच्छ
याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो
गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यंति पितरः साग्नयः सुराः ॥१३॥ अवनिज्यांघ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् ॥
ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकांतिनां तु या ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ तब अक्रूरजी बोले कि, हे प्रभो! तुम विना अकेला मैं मथुरापुरीमें नहीं जाऊँगा. हे नाथ! हे भक्तोंपर हित करनेवाले! मैं तुम्हारा भक्त
हूँ,इसलिये मुझे मत त्यागो ॥ ११ ॥ तुम आवो हम तुम घर चलें, हे अधोक्षज! हे सुहृदुत्तम! आज अपने बडे भाई बलदेवजी और
ग्वालबालों सहित मेरे घर चलकर मुझे सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणोंकी रजसे मुझ गृहस्थके घरको पवित्र करो और तुम्हारे चरणोंकी
धोवनसे ही पितृ, अग्नि, देवता तृप्त हो जायँगे॥१३॥देखो! तुम्हारे युगल चरण धोनेसे राजा बलिका कैसा पवित्र यश हुआ कि जिससे

अत्यन्त दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ और अनन्य भक्तोंको जो गति मिलती है, वही गति इसने पाई ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर त्रिलोकीको पवित्र करता है. इसी जलको शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया है और इसी जलके स्पर्शसे साठ हजार सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये॥ १५॥ हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! तुम्हारी कथा श्रवण और गुण कथनसे भक्त पवित्र हो जाते हैं, ऐसे तुम पवित्र गुणयुक्त हो, सो हे नारायण ! आपको नमस्कार है ॥१६॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, यादवोंसे द्रोह करनेवाले कंसको मार सुहृदोंका प्रिय करूंगा, इसके उपरांत बडे भाई बलदेवजीको संग ले मैं तुम्हारे घर आऊंगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अक्रूरजी विमन हो पुरीमें जा कंससे "राम कृष्णको ले आया" ऐसे कह अपने घरको चले गये॥ १८॥ इसके उपरांत तीसरे

आपस्तेंघ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् ॥ शिरसाऽधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥१५॥ देवदेव जगन्नाथ
पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्य
समन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम्॥ १७॥ श्रीशुक उवाच॥ एवमुक्तो भगवता सोक्रूऽरो विमना इव ॥
पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्माऽऽवेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्ने भगवान्कृष्णः संकर्षणान्वितः ॥ मथुरां प्राविशद्गोपै
र्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥ ददर्श तां स्फाटिकतुंगगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्राऽऽरकोष्ठां परिखादुरास
दामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णश्रृंगाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम्॥ वैदूर्यवज्राऽम
लनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु॥ २१ ॥

पहरके समय बडे भाई बलराम सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप ग्वालोंको संग ले मथुरापुरी देखनेके लिये चले ॥ १९॥ उस पुरीकी कैसी शोभा है कि, स्फटिक मणियोंके ऊँचे शहरपनाहके और घरोंके द्वार बन रहे हैं, उनमें बडे २ सोनेके किंवाड चढ रहे हैं और ठौर २ बन्दनवारें टँग रही हैं, अन्न भरनेके लिये तांबे तथा पीतलके कोठे बन रहे हैं, चारों ओर चौडी खाइं बन रही हैं, उद्यान और उपवन आदिसे यह पुरी अत्यन्त शोभायमान हो रही है ॥ २० ॥ सुवर्णके चारों ओर मार्ग, साहूकारोंके महल और बडे २ कारीगर मनुष्योंके मकानोंसे यह पुरी शोभायमान हो रही है, वैदूर्य मणि, हीरे, निर्मल नीलमणि, मूँगे, मोती इनके काम ज़िनमें हो रहे, ऐसे शोभायमान छज्जे हैं ॥ २१ ॥

जाली झरोखोंमें बैठे हुए मोर जहां तहां शोर कर रहे हैं, राजमार्ग व गलियोंमें छिडकाव हो रहा है, उनमें पुष्पोंकी माला अंकुर धानकी खीलें और चावल यह मंगल द्रव्य फैल रहे हैं ॥ २२ ॥ चंदन दहीसे छिडके फूल जिनपर धरे, ऊपर दीपकोंकी पंक्ति धरी, आमकी डाल जिनपर धरी, ध्वजा जिनपर फहरा रही हैं, दरियाईके कपडे जिनकी नारिसे बँधे गहिर सहित केले व सुपारीके वृक्ष जिनके निकट लग रहे ऐसे जलके भरे कलश दरवाजोंपर रक्खे हैं, जिनसे वह पुरी बहुत ही शोभायमान हो रही है ॥ २३ ॥ बराबरके मित्रोंको संग ले मथुरापुरीके बीच बाजारमें हो जिस समय वसुदेवनन्दन कृष्ण बलदेव निकले, उस समय इनको देखनेके लिये पुरीकी बहुत स्त्रियें दौड आईं और बहुत

जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतंडुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचंदनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृंदरंभाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तां संप्रविष्टौ वसुदेवनंदनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः परस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥ कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नांक्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥२५॥ अश्नंत्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ॥ स्वपंत्य उत्थाय निशम्य निस्स्वनं प्रपाययंत्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविंदलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ॥ जहार मत्तद्विरदेंद्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥

सारी स्त्रियें देखनेकी इच्छासे महलोंपर चढ गईं ॥२४॥ कोई २ स्त्री उतावलके मारे ओढनियोंको पहर लहँगेको ओढ हाथोंके गहने पांवोंमें पहरकर चली आई, कोई एक स्त्री एक हाथ और एक पांवोंमें ही गहना पहरकर चली आई और कोई एक स्त्री एक कानमें कर्णफूल व एक पाँवमें पायजेब पहरकर चली आई, कोई स्त्री एक ही आँखमें काजल लगाकर आई ॥ २५ ॥ कोई कोई स्त्री भोजन करतेहीसे चली आई और कोई कोई स्त्री अंगमें तेल मल रही थीं वह विना ही स्नान किये चली आईं, कोई सोतेसे ही चली आईं, कोई स्त्री अपने बालकोंको दूध पिला रही थीं सो सुना कि, कृष्ण बलदेव आये हैं सो बालकोंको रोता ही छोडकर चली आईं ॥२६॥ मतवाले हाथीके समान पराक्रमवाले

कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही हँसन चितवनसे उन स्त्रियोंका मन चुरा लिया और लक्ष्मीको रमण करानेवाले अपने रूपसे उन स्त्रियोंकी आँखोंको आनन्द देने लगे ॥ २७ ॥ बारम्बार बातें सुनकर उन कृष्णमें लगे हैं चित्त जिनके और उनकी चितवन मुसकानरूपी अमृतका जो सींचना है उससे सत्कार पानेसे रोमाञ्च हो आये, ऐसी स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख नेत्रद्वारा हृदयमें ले जाय आनंदरूप श्रीकृष्णको आलिंगन कर हे काम लोभादिकोंके दंड देनेवाले राजा परीक्षित् । श्रीकृष्णके विना मिले ही कामकी पीड़ाको त्याग दिया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त प्रफुल्लित नेत्रवाली स्त्रियें महलोंके शिखरपर चढ़ी कृष्ण बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर कर कहने लगीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार परस्पर कहने लगीं, फिर दही, अक्षत, जलके भरे पात्र और माला चंदन भेंट लेकर ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य प्रसन्न होकर कृष्ण बलदेवका पूजन करने लगे॥ ३०॥ और संपूर्ण मथुरावासी अत्यन्त आश्चर्य मान यह कहने लगे कि,गोपियोंने ऐसा क्या उत्कृष्ट तप किया है, जो गोपी मनुष्यलोकके बडे उत्सवरूप श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करती हैं ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्रोंको धोनेवाला और रँगनेवाला मार्गमें आता हुआ एक धोबी देखा और अतिनम्रता सहित उससे अति उत्तम धुले हुए वस्त्र माँगे ॥ ॥ ३२ ॥ और कहा कि, हे धोबी । हमको हमारे योग्य वस्त्र दे कारण कि, हम इन वस्त्रोंके योग्य हैं और हमें वस्त्र देनेसे तेरा कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं है ॥३३॥ हे राजन् । जब इस प्रकार सब ओरसे पारिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धोबीसे वस्त्र माँगे तब अत्यन्त

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः॥ आनंदमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो
जहुरनंतमरिदमाधिम्॥२८॥प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखांबुजाः॥ अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ॥२९॥
दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गंधैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्य
स्तपः किमचरन्महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यंति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कंचिदायांतं रंगकारं गदाग्रजः॥ दृष्ट्वा
ऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥ ३२ ॥ देह्यावयोः समुचितान्यंग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो
दातुस्ते नात्र संशयः॥३३॥स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

क्रोधित हो, कंसका सेवक अतिघमण्डी डाटकर बोला कि ॥ ३४ ॥ नित्य पर्वत और वनके फिरनेवाले ऐसे ही कपडे पहरते हो हे उद्धत ! तुम राजाके वस्त्रों पर क्यों मन ललचाते हो ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो ! यदि अपना जीना चाहो तो तुम शीघ्र ही यहांसे निकल जाओ, फिर मत मांगना क्योंकि राजा कंसके बहुत सेवक फिरते हैं और जो धूम मचाता है, उसे वह मारते हैं, लूटते हैं, बांधते हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार बकवाद करते हुए उस धोबीका शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने महाक्रोधित हो अपने हाथके थापसे काट डाला ॥ ३७ ॥ जब मुख्य धोबी

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद् वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा॥बध्नंति घ्नंति लुंपंति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६ ॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान्विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ॥ शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥

मारा गया, तब उसके टहलुए धोबी वस्त्रोंको पटक पटक चारों ओरको भाग गये, उस समय श्रीकृष्ण और बलरामजी मनमानते वस्त्रोंको पहिर बाकी जो रहे सो गोप ग्वालोंको दे दिये, और जो रहे सो वहीं छोड़ दिये ❀ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और ग्वालबाल सब वस्त्र पहरकर चले उसी समय प्रसन्नमन एक दर्जी आया, उसने आते ही रामकृष्णके लाल, हरे, पीले जो वस्त्र थे, उनके माला, चपकली, बाजूबन्द और अनेक प्रकारके आभूषण बनाकर शोभायमान पोशाक बनाई ॥ ४० ॥

❀ **शंका**–तीन लोकके पति भगवान् दूसरे दुष्ट जीवोंका उच्छिष्ट अर्थात् पहिरा कपडा आप क्यों पहिरते हुए, यह बडी शंका है !

उत्तर–धर्मशास्त्रमें यह लिखा है कि, मामाका पहिरा वस्त्र तथा कुमारी लडकीका पहिरा वस्त्र तथा ब्रह्मचारीका पहिरा वस्त्र, इन वस्त्रोंको पहिरने को दोष नहीं और कटिभागसे पहिरा वस्त्र मामा, कन्या, ब्रह्मचारीका भी धारण न करना और दूसरे पुरुषकी तो क्या बात है ! श्रीकृष्णने अपने मामाका वस्त्र जानकर उच्छिष्ट वस्त्र धारण किया ।

इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी दोनों भाई अनेक प्रकारसे दर्जीके बनाये वस्त्रोंके आभूषणोंसे ऐसे शोभायमान लगने लगे, जैसे पर्वमें सांवरे, गोरे शृंगार किये हाथीके छौना शोभायमान लगते हैं ॥ ४१ ॥ फिर उस दर्जीके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी सारूप्य मुक्ति दी और इस लोकमें सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य, स्मरण तथा हाथ, पांव, नाक, कान, आंख अच्छे बने रहें, इनकी चतुराई दी ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम सुदामा मालीके घर गये, इनको देखते ही उसने पृथ्वीमें शिर लगाय प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और आसन दिया, पाद्यार्घ्य इत्यादि पूजाकी सामग्रियोंसे दोनों भाइयोंका पूजन किया, फिर पीछे पानकी बीडी और चन्दन

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ॥ स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥ तस्य प्रसन्नो भगवान्प्रादात्सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतींद्रियम् ॥ ४२ ॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ॥ ४५ ॥ भवंतौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ॥ अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥ ४६ ॥ नहि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सर्वभूतेषु भजंतं भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्य राजेंद्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैस्सुगंधैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ ॥ ४९ ॥

इत्यादि अर्पण किया ॥ ४४ ॥ फिर माली बोला कि, हे प्रभो ! आज तुम्हारे आनेसे हमारा जन्म सफल तथा कुल पवित्र हुआ और हमारे पितृ, देवता, ऋषि भी संतुष्ट हो गये ॥ ४५ ॥ तुम निश्चय इस संसारके परमकारण हो और जगत्के कल्याण और वृद्धिके लिये ही आपने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ जगत्के हितकारी आत्मा तुम ही हो, तुम्हारी विषम दृष्टि नहीं है, सब प्राणियोंमें समवर्ती हो और जो तुम्हारा भजन करता है उसको तुम भी भजते हो ॥ ४७ ॥ अब तुम दासको आज्ञा करो, मैं तुम्हारी क्या पूजा करूं ? क्योंकि, पुरुषोंको जो तुम्हारी आज्ञा होतीहै, यही बडा अनुग्रह है ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्नमन सुदामा मालीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शोभायमान

सुगंधित फूलोंकी माला समर्प्पण करी ॥४९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस मालाको पहर मित्रों सहित प्रसन्न हो सुदामा मालीको वरदान दिया ॥ ५० ॥ और सुदामा मालीने भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यही वर मांगा कि, सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति रहे और तुम्हारे भक्तोंमें स्नेह और जीवमात्रमें दया रहे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उस मालीको मनोवांछित वरदान दे और उसके वंशमें सदा रहनेवाली सम्पत्ति दे तथा बल, आयु, यश, शोभा दे बलदेवजीको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके घरमेंसे निकले ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां मथुरापुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ दोहा—कुब्जाको सीधी कियो, कियो शरासन भंग। देखो परमोत्सव तहां, बयालीस भू रंग ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! इसके उपरान्त सुख देनेवाले भगवान्

ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥ सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरान्दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥ बलमायुर्यशः कांतिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० मथुरापुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ व्रजन्राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यांतीं प्रहसन्रतिप्रदः ॥ १ ॥ का त्वं वरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्यांगने वा कथयस्व साधु नः ॥ देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते न चिराद्भविष्यति ॥ २ ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ॥ मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ॥ धर्षितात्मा ददौ सांद्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्ग बाजारमें आकर चंदनका पात्र ग्रहण किये, शोभायमान मुखवाली, सामने तरुण कुबरी स्त्रीको देख हँसकर पूंछा ॥ १ ॥ कि, हे सुन्दरजंघावाली! तू कौन है? और यह चन्दन किसका है, यह हमारे सन्मुख भले प्रकार समझाकर कहो, क्योंकि जो यह उत्तम चन्दन हमको दो तो तुम्हारा अभी कल्याण होगा ॥ २ ॥ यह सुनकर कुबरी बोली कि, हे सुन्दर! मेरा नाम कुबरी है और कंसकी दासी हूँ और नित्यप्रति चन्दन घिसना यही मेरा काम है, क्यों कि मेरा घिसा चन्दन राजा कंसको अच्छा लगता है, परन्तु अब तुम्हारे विना इस चन्दनके लगानेका कोई पात्र नहीं है ॥ ३ ॥ इस प्रकार सुन्दररूप सुकुमारी और रसिकता, हँसन, बोलन तथा चितवनसे मोहित हो कुबरीने

श्रीकृष्ण बलदेवको चन्दनलगाया ॥४॥ केशर मिला हुआ चन्दन साँवरे अंगमें जिस समय भगवान् श्रीकृष्णजीने लगाया और कस्तूरी मिला हुआ चन्दन गोरे अंगमें जिस समय बलदेवजीने लगाया, उस समय दोनों भाई अत्यन्त शोभायमान लगनेलगे ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये सुन्दरमुखी तीन स्थानसे टेढी कुबरीको सूधी करनेका विचार किया ॥ ॥ ६ ॥ और फिर कुबरीके पांवोंको अपने चरणोंसे दाब दो अँगुली जिसमें ऊंची करी, ऐसे हाथको ठोडीके नीचे लगाय श्रीकृष्णने कुब्जाके देहको सूधा कर दिया॥ ७ ॥ उस समय सूधे बराबर हैं अंग जिसके, बडे नितम्ब और स्तनवाली, ऐसी कुब्जा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथका

ततस्तावंगरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ॥ संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरंजितौ ॥५॥ प्रसन्नो भगवान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचि
राननाम् ॥ ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥६॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना ॥ प्रगृह्य चिबुके
ऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥ सा तदर्जुसमानांगी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ॥ मुकुंदस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा
॥ ८ ॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ॥ उत्तरीयांतमाकृष्य स्मयंती जातहृच्छया ॥९॥ एहि वीर गृहं
यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो
रामस्य पश्यतः ॥ मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥ एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ॥
साधितार्थोऽगृहाणां नः पांथानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥

स्पर्श होनेसे एक सुन्दर स्त्री हो गयी ॥ ८ ॥ इसके उपरांत आप ही रूप, गुण, उदारता यह सब कुब्जामें आ गये, तब कामदेवसे पीडित हो वह कुब्जा दुपट्टे का छोर पकड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी ॥ ९ ॥ कि, हे वीर ! हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम मेरे संग चलकर मेरा भवन पवित्र करो, क्योंकि अब मैं तुम्हें छोड नहीं सकती है और तुमने मेरा मन चलायमान किया इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ १० ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार जब कुब्जाने कहा, तब उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी और अपने मित्रोंका मुख देख कुछेक मुसकाते हुए कुब्जासे बोले ॥११॥ कि, हे सुन्दरभ्रुकुटियोंवाली ! तुम्हारी भ्रुकुटी हमारे मनको खींचती हैं, तुम हमारा दुपट्टा क्यों खींचती हो ? मैं कंसको मार

अपने सुहृदोंका कार्य सिद्ध कर मनका दुःख दूर करनेवाले तुम्हारे घर आऊंगा । क्योंकि मैं तो बालब्रह्मचारी हूँ, किसीसे जान पहिचान नहीं और हमारा यहाँ घर नहीं, हमें तो केवल तुम्हारा ही आश्रय है, जब तुम्हारे ही यहाँ न आवेंगे तो और जायँगे कहां? ॥ १२ ॥ इस प्रकार मीठे मीठे वचन कह और कुब्जाको वहीं छोड़ आगे चले. तब बनियोंने पान, माला, चन्दन इत्यादि भेंट ले बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ १३ ॥ हे महाराज! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके कारण उत्पन्न हुए कामदेवके क्षोभसे इस स्त्रीने अपनेको भी नहीं जाना, वस्त्र खुलगये, चोटी खुल गई, चूडी खिसक आई और जैसे कोई चित्र खैंचकर खड़ा कर देता है, इसी प्रकार खड़ी रह गई*

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः ॥ नानोपायनतांबूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः॥ १३ ॥तद्दर्शनस्मरक्षो
भादात्मानं नाविदन्स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः॥ १४॥ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः॥
तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः
प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ॥ नृणां विकृष्य प्रबभंज
मध्यतो यथेक्षुदंडं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥

॥ १४ ॥ इसके उपरान्त अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मथुरावासियोंसे पूँछते पूँछते धनुषशालामें गये और वहां जाकर इन्द्रके धनुषके समान धरा हुवा धनुष देखा ॥ १५ ॥ हे महाराज! यद्यपि बडे बडे बलवान् पुरुष उसकी रक्षा कर रहे थे, पूजा हो रही थी, अत्यन्त जिसकी शोभा थी, परन्तु तो भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लोगोंके मने करनेपर भी इसे उठाया ॥ १६ ॥ और लीलापूर्वक एक ही हाथसे उठाय पल भरमें मनुष्योंके देखते देखते बीचमेंसे खैंच जैसे मतवाला हाथी गन्नेको तोड़ डालता है इसी प्रकार तोड़ डाला ॥ १७ ॥

---

* शंका—बडे आश्चर्यकी बात है कि, मथुराकी स्त्रियें कृष्णको देखकर कामदेवसे विह्वल होगईं और ऐसी विह्वल होगईं कि, तन मनकी कुछ भी सुधि न रही, परन्तु परपुरुषको देखकर विह्वल होजाना यह गृहस्थस्त्रियोंका धर्म नहीं, यह धर्म तो व्यभिचारणी स्त्रियोंका है ।

उत्तर—ब्रजमें कृष्णने गोवर्धनको उठाया उस सरीखे और बहुत काम किये उन सब कर्मोंको सुनकर स्मरण करके त्रास मानकर विह्वल हुई कामदेव करके विह्वल नहीं हुई मथुराकी स्त्रियाँ ऐसी नहीं जो पर पुरुषको देखकर कामदेवसे विह्वल हो जातीं ॥

हे राजन्! जिस समय धनुष टूटा, उससमय महागम्भीर शब्द हुआ, उस शब्दसे पृथ्वी आकाश और स्वर्ग सब दिशायें व्याप्त हो गईं और उस शब्दको सुन कर कंसका हृदय भी अत्यन्त भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ इसके पीछे उस धनुषके रक्षकोंने अत्यन्त क्रोधित हो अपने अपने अनुचरों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको "पकड लो पकड लो" इस प्रकार कहते चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी इन असुरोंको अपने मारनेके लिये आया देख क्रोधित हो धनुषका एक एक टुकडा हाथमें ले इन पुरुषोंको मारने लगे ॥ २० ॥ फिर कंसकी भेजी हुई संपूर्ण सेना मार धनुषशालासे बाहर निकल मथुरापुरीकी सम्पदा देख हर्षित होकर घूमनेलगे ॥ २१ ॥ मथुरावासी नरनारियोंने भगवान् कृष्णबलदेवका अद्भुत कर्म धृष्टता और पराक्रम देख अपने मनमें जाना कि, यह कोई उत्तम देवता हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित! इस प्रकार कृष्ण बलदेव विचर रहे थे कि, इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्त होगये और संध्या हो गई, तब भगवान् श्रीकृष्ण बलदेव गोपों सहित मथुरापुरीसे बाहर निकले और जहां गाडियें छूटी थीं वहां पहुँचे ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ब्रजसे चलते समय गोपियोंने विरहमें व्याकुल होकर जो जो बातें कही थीं वह सब ही श्रीकृष्णचन्द्रके अंगकी शोभा देख मथुरावासियोंने सत्य जानी, क्योंकि लक्ष्मीजी भी अपने भजनवाले ब्रह्मादिकोंको छोड इसी रूपकी चाहना करती हैं ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त चरण धो रामकृष्ण दूध भातका भोजन कर

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणः सानु
चराः कुपिता आततायिनः ॥ ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथ तान्दुरभिप्रायान्विलोक्य बलके
शवौ ॥ क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ॥ निष्क्रम्य
चेरतुर्हृष्टा निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥ २१ ॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशम्य पुरवासिनः ॥ तेजःप्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधो
त्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥ २३ ॥
गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ॥ संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेत
रान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४ ॥ अवनिक्तांघ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा
कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥

कंसस्तु धनुषो भगं रक्षिणां स्वबलस्य च॥वधं निशम्य गोविंदरामविक्रीडितं परम्॥२६ ॥दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः॥बहून्याचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥ २७ ॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि॥असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥ २८ ॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥स्वप्ने प्रेतपरिष्वंगः खरयानं विषादनम् ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानिच ॥ पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिंतया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ॥ कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥ आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मंचाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥

कंसका विचार जान उस रात्रिको सुखपूर्वक वहीं रहे॥२५॥ कंस धनुषका टूटना, रक्षकोंका मरना और अपनी सेनाका वध सुनकर कि, यह कृष्णका केवल खेल है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥२६॥ ऐसा विचार कर मारे भयके उसे नींद नहीं आई, महाभयभीत हुआ, तब वह दुष्टबुद्धि कंस मृत्युके जतानेवाले जागतेमें सोनेमें बहुतसे खोटे स्वप्न देखने लगा ॥ २७ ॥ दर्पण और जलमें मुख देखनेपर उसको अपना शिर नहीं दीखे, चन्द्रमा सूर्य दो २ रूप नहीं हैं, परन्तु उसे दो दो दिखाई दिये ॥ २८ ॥ अपनी परछाई में छिद्र दिखे, अंगुली देकर कानमें देखा तो घूँ घूँ शब्द भी सुनाई नहीं आया, वृक्ष सोनेके दिखाई देने लगे और कीच व रेतमें अपने पांवके चिह्न भी न देखे ॥ २९ ॥ इसके [illegible] यह स्वप्न देखा कि, भूत प्रेत छातीसे लगा लगाकर मिलते हैं और गधेपर चढ़ा, गड़हरके फूलोंकी माला पहरे, अकेला तेलमें भीगा जहर खाता, नग्न वेष किये मैं दक्षिण दिशाको चला जा रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार स्वप्नमें और जागतेमें खोटे २ शकुन देख मृत्युसे डरे कंसको रातभर चिंताके मारे नींद न आई ॥ ३१ ॥ हे कुरुवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् । इस भाँति ज्यों त्यों कर वह रात्रि व्यतीत हुई, प्रातःकाल हुआ, जलमेंसे सूर्य निकला, उस समय राजा कंसने मल्लोंकी कुश्ती लड़वानेके लिये बड़ा उत्सव कराया ॥ ३२ ॥ पुरुष रङ्गभूमिकी पूजा करने लगे, उसी समय भेरी बजने लगीं, माला, पताका, और वस्त्रोंकी बन्दनवारीसे मंचान सजाये गये ॥ ३३ ॥ और उन मंचानोंके ऊपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जिनमें मुख्य मुख्य पुरवासी तथा देशवासी थे, सुखपूर्वक आनकर बैठ गये ॥ ३४ ॥

इसके उपरान्त राजा कंस भी अपने प्रधान मंत्रीको संग ले अखण्ड मण्डलवाले राजाओंके बीचमें एक राजमंचान था उसके ऊपर आ बैठा, परंतु भयके मारे हृदय काँप रहा था ॥३५॥ नगारोंके बजते ही झटपट मल्ल खम्भ ठोक जांघिये पहर सिंदूरकी बिंदी लगा धूरी मल छोटी छोटी चुटियें बडे गर्व भरे अपने अपने उस्तादोंको संग लेकर रंगभूमिमें आये ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल यह अखाड़ेमें आये और मनोहर बाजोंका शब्द सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त कंसके बुलाये नंद आदिक संपूर्ण गोप भी राजा कंसको भेंट दे एक मंचान पर आकर बैठ गये ॥३८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भाषाटीकायां मल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ दोहा–मार कुवलयापीड गज, रंगभूमि हरि जाय ॥ वचन कहे चाणूरसों, तेंतालिस अध्याय ॥१॥ श्रीशुकदेवजी

कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमंच उपाविशत् ॥ मंडलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु
मल्लतालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समागताः ॥ ३६ ॥ चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल
एव च ॥ त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नंदगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥ निवेदितोपा
यनास्ते एकस्मिन्मंच आविशन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० कुब्जोन्नमनादिवर्णनं
नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥ मल्लदुंदुभिनिर्घोषं
श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥१॥ रंगद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥
॥ २ ॥ बद्धा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥

बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् । श्रीकृष्ण भगवान्‌ने विचार किया कि, यद्यपि हमने धोबीको मार धनुष तोड अपना ऐश्वर्य जताया, परन्तु तो भी हमारे मातपिताको नहीं छोडता और हमको मारना चाहता है, इसलिये इस मामाके मारनेमें हमें कुछ दोष नहीं है, इस प्रकार दोषके दूर करनेका विचार कर कृष्ण बलदेव दोनों भाई जहां मल्ल खम्भ ठोक रहे थे, नगाडे बज रहे थे, उनका शब्द सुन देखनेको गये॥ १ ॥फिर श्रीकृष्णने रंगभूमिके द्वारपर जाकर देखा कि, कुवलयापीड हाथी खडा है और महावत उसे आगेको पेल रहा है ॥ २ ॥ यह देखते ही शूरवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र फेंट बाँध मुखपर छुटीहुई कुटिल अलकोंको सँभाल गलेकी लम्बी

912

मालाको जनेऊके समान कंधेपर डाल मेघके तुल्य गर्जकर अत्यन्त गंभीर वाणीसे बोले ॥३॥ कि हे महावत !हे महावत । हाथीको हटाकर हमको शीघ्र मार्ग दे और जो नहीं हटावेगा तो अभी हाथी सहित तुझको मार यमलोकको भेज दूंगा॥४॥ हे महाराज । यह सुनते ही क्रोधित हो काल मृत्युके समान महावतने हाथीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर हूल दिया ॥ ५ ॥ हाथीने अत्यन्त शीघ्रतासे आते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी सूँडमें पकड़ लिया, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्र भी उसकी सूँडमेंसे फिसल और उसके मस्तकमें मुष्टिक मार पिछले पाँवोंमें छिप गये ॥ ६ ॥ और फिर जिस समय श्रीकृष्णको देख क्रोधित हो सूँघा साँघीकी दृष्टि वाले हाथीने इनके पकड़नेको सूँड चलाई, उस समय सूँड पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके पिछले पाँवोंमेंसे निकल गये ॥७॥ अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हाथीकी पूछ पकड जैसे गरुड सर्पको घसीटता है, उसी प्रकार पच्चीस धनुष तक लीलापूर्वक हीं घसीटा ॥८॥ पूछ पकडे श्रीकृष्णचन्द्रको पकडनेके लिये जब दाहिनी ओर हाथी आता, तब श्रीकृष्ण उसे बांई ओर लेजाते और बांई ओर आता तो दाहिनी ओर ले जाते, अधिक क्या कहें, जैसे गायोंके बछडोंके संग बालक फिरते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हाथीके पीछे फिर रहे थे॥९॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सम्मुख आय थप्पड़ मार दौडकर उस हाथीको पटक दिया ॥ १० ॥ जब उसे गिरा दिया, श्रीकृष्णचन्द्र भी लीलापूर्वक पृथ्वीपर गिरके अत्यन्त

अंबष्ठांबष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ॥ नो चेत् सकुंजरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥४॥ एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम्॥ चोदयामास कृष्णाय कालांतकयमोपमम् ॥५॥ करींद्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ॥ करादू विगलितः सोऽमुं निहत्यांघ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम्॥ परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥७ ॥ पुच्छे प्रगृह्याऽतिबलं धनुषः पंचविंशतिम्॥ विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥ स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ॥ बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ॥ प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दंताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम् ॥ ११ ॥

शीघ्रतासे खडे होगये, तब श्रीकृष्णचन्द्रको गिरा जान वह हाथी दांतोंसे पृथ्वीको खोदने लगा ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जब हाथीका बल घट गया तब हाथीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और महावतने जिस समय उसके अंकुश मारा तब वह हाथी श्रीकृष्णचन्द्रपर झपटा ॥ १२ ॥ मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सम्मुख आते हाथीकी सूँड़ पकड पृथ्वीमें पटक दिया ॥ १३ ॥ और सिंहके समान गर्जते हुए हाथीको पांवोंके नीचे दाब लीलापूर्वक उसके दांत उखाड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन दांतोंसे महावतको मारा ॥ १४ ॥ जब हाथी मर गया,

9/3

स्वविक्रमे प्रतिहते कुंजरेंद्रोऽत्यमर्षितः ॥ चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतंतमासाद्य भगवान्मधुसूदनः ॥ निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥१३॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेंद्र इव लीलया॥दंतमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दंतपाणिः समाविशत् ॥ अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिंदुभिरंकितः ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनांबुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रंगं विविशतू राजन्गजदंतवरायुधौ॥१६॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥१७॥

तब श्रीकृष्ण बलदेव उसे वहीं छोड़ हाथमें हाथीके दांत ले कन्धेपर धारण कर वहांसे आगे चले, उस समय रुधिर और मदकी बूँदें उनके लग रही थीं *॥१५॥ और कुछेक पसीना भी उनके मुखकमलपर आ रहा था, इस प्रकार शोभायमान भनवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप ग्वालोंको संग लिये हथीदांतके शोभायमान शस्त्र धारण किये कृष्ण बलदेव दोनों भाई हे राजन् ! रंगभूमिमें पहुंचे ॥ १६ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मल्लोंको मल्लोंके समान दृष्टि आये, मनुष्योंको अत्यन्त सुन्दर जान पडे और स्त्रियोंने साक्षात कामदेवस्वरूप समझा, दुष्ट राजा

---

* शंका—जो कोई दरिद्री भी राजाकी सभामें जाता है, तब अपने वित्तानुसार वस्त्राभूषण पहिर जाता है और शास्त्रमें तथा लोकमें इसको भी बहुत निन्दित कर्म कहते हैं कि, रक्त देहमें लगाकर राजाकी सभामें जाना, सो श्रीकृष्ण जगत्के ईश्वर होकर अपने देहमें रक्तके बिन्दु लगाकर कंसकी सभामें क्यों आये ?

उत्तर—सत्य है जिसके शरीरमें रक्त लगा रहता है, उस पुरुषको लोकमें, शास्त्रमें और वेदमें भ्रष्ट कहते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण कंसका नाश करनेके लिये विचारके उन्मत्त प्रमत्तकी नाईं मथुराको चलेगये और शूरवीरोंका शरीरमें रक्त लगाकर सभामें जाना कुछ दोष नहीं है इसलिये जगदीश्वर शरीरमें रक्त लगाकर सभामें गये ॥

ओंको कालके समान दिखाई दिये, वसुदेव देवकीने पुत्रके समान देखा, भोजपति कंसने तो यही देखा कि, साक्षात् मेरी मृत्यु चली आती है, अज्ञानियोंको भयंकर रूप दृष्टि पडे और ज्ञानियोंको परमतत्त्वरूप दृष्टि आये, यादवोंको परम देवतारूप जान पडे, अधिक क्या कहें जैसी जिसकी भावना थी, उसे उसी प्रकार दिखाई दिये। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीको संग लेकर रंगभूमिमें पहुँचे॥१७॥ हे राजा परीक्षित्! कुवलयापीड़ हाथीको मरा देख जो किसीके जीतनेमें न आवें ऐसे कृष्णबलदेवको देख अत्यन्त धैर्यवान् राजा कंस भी डर गया ॥ १८ ॥ बडी भुजा, विचित्र वेष आभूषण माला इत्यादि वस्त्रोंको धारण किये भगवान् कृष्ण बलदेव रंगभूमिमें जाकर ऐसे शोभायमान लगने लगे जैसे उत्तम रूप धारण करनेवाला नट शोभायमान लगता है. इस प्रकार अपनी कांतिसे देखनेवाले पुरुषोंके मनको

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥ १८॥ तौ रेजतू रंगगतौ
महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगंबरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपंतौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥
निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मंचस्थिता नागरराष्ट्रका नृप॥प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम्
॥ २० ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां श्लिष्यंत इव बाहुभिः ॥२१॥ ऊचुः परस्परं
ते वै यथादृष्ट यथाश्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥२२॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ॥
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥

चुराते थे॥ १९ ॥ हे राजन! मञ्चानोंके ऊपर बैठे पुरवासी देशवासी जन पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवको देख आनन्दके वेगसे प्रफुल्लितमुख होगये और अपने नेत्रोंसे उनके मुखकी शोभा देखकर तृप्त न हुए ॥ २० ॥ इस प्रकार नेत्र चलाने लगे कि, मानो रूपको पी जायँगे, जीभ ऐसी चलाते मानो चाट जायंगे, नासिका ऐसी चलावें मानो सूँघ लेंगे, भुजा ऐसी चलावें मानो लिपट जायँगे जैसा श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कानोंसे सुना था, उसी प्रकार आंखोंसे देखकर उनके रूप, गुण, माधुर्य्य, ढिठाईसे बुद्धि जिनके होगई, ऐसे पुरुष जैसा सुने, वैसा ही आपसमें कहने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ कि, यह जो कृष्ण बलदेव हैं सो साक्षात् भगवान् हरि नारायण हैं और अपने अंशसहित इस संसारमें वसुदेवके

घर अवतार लिया है ॥२३॥ देखो यह जो सांवरा बालक है,इसने देवकीसे जन्म लिया था. अबतक छिपा रहा, क्योंकि पिताने गोकुलमें पहुँचा दिया था, इसलिये नन्दजीके घर वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इसी कृष्णने पूतना मारी और बगलेका स्वरूप धरे हुए बकासुर दैत्यको मारा, यमलार्जुन वृक्ष उखाड़े और केशी, अघासुर इत्यादिक बहुतसे दानव मारे ॥ २५॥ देखो जब वनमें अग्नि लगी थी, तब इसी कृष्णने गौ, ग्वाल बचाये थे, काली सर्पको दंड दिया और इंद्रका मद दूर किया ॥ २६ ॥ यही सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको हाथमें लिये रहा, वर्षा, पवन, वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा करी॥२७॥ गोपियें इस कृष्णका नित्य प्रसन्न हँसन चितवनयुक्त श्रमरहित मुख देखकर

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम्॥कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नंदवेश्मनि ॥२४॥ पूतनाऽनेन नीतांतं चक्र
वातश्च दानवः ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः॥
कालियो दमितः सर्प इंद्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च
परित्रातं च गोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ॥ पश्यंत्यो विविधांस्तापांस्तरंति स्मा
ऽश्रमं मुदा ॥ २८॥ वदंत्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ॥ श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥
अयं चास्याग्रजः श्रीमान्रामः कमललोचनः ॥ प्रलंबो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु
तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

9/4

अनेक तापोंको दूर करती थीं ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहें, इस कृष्णसे यह यदुवंश बहुत विख्यात हो सम्पत्ति, यश, बडाई पावेगा और इसी कृष्णसे रक्षा होगी इस प्रकार वे मनुष्य परस्पर बातचीत करने लगे ॥ ॥ २९ ॥ कमलके समान नेत्र स्वरूपवान् इस कृष्णके बडे भाई बलरामजीने प्रलम्बासुर, वत्सासुर मारे । क्योंजी ! मारे तो कृष्णने,बलदेवका नाम क्यों लेते हो ? देखी सुनी बातोंमें भी भेद होजाता है॥ ॥३०॥ हे महाराज ! सब मनुष्य इस प्रकार कह रहे ही थे और नगाडे बज ही रहे थे कि,इतनेमें चाणूर नामक बलवान् श्रीकृष्ण बलदेवको

संबोधन देकर बोला ॥ ३१ ॥ कि,हे नन्दके पुत्र ! हे राम ! तुममें बल अधिक है और कुस्ती लड़नी भी भले प्रकार जानते हो, यही सुनकर राजा कंसने तुम्हें बुलाया है ॥३२॥ क्योंकि, प्रजा मन, कर्म,वचनसे राजाका प्रिय करे तो कल्याण प्राप्त होता है और जो विपरीत करते हैं उनका कल्याण नहीं होता ॥ ३३ ॥ और यह बात भी प्रगट है कि, प्रतिदिन बछडोंके चरानेवाले गोप प्रसन्न होकर व्रजमें कुस्तीका खेल करके गाय चराते हैं ॥३४॥ इस कारण हम तुम कुस्ती लडकर राजा कंसका प्रिय करें तो राजा कंस प्रसन्न होंगे और फिर सब प्राणी हमारे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्र चाणूरका वचन सुनकर और कुस्ती लड़ना अपने योग्य जान

हे नंदसूनो हे राम भवंतौ वीरसंमतौ ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः
प्रकुर्वन्त्यः श्रेयो विंदंति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यं प्रमुदिता
गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडंतश्चारयंति गाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं
वयं च करवामहे ॥ भूतानि नः प्रसीदंति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः ॥
नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनंद्य च॥३६॥प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्नः
परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ॥ भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥
॥३८॥ चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ॥लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत्॥३९॥

बड़ाई करके उस समयके उचित वाक्य कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि,जिस कंसकी तुम प्रजा हो, उसी कंसकी हम वनमें रहनेवाली प्रजा हैं इसलिये राजा कंसका नित्य प्रिय करें इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ परन्तु देखो हम बालक हैं इसलिये हम अपने समानके बालकोंसे कुस्ती लडेंगे, जैसा उचित हो उसी रीतिसे कुस्ती लडो; क्योंकि मल्लोंकी सभामें अधर्म न हो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चाणूर बोला कि,तुम बालक नहीं हो और बलियोंमें बलवान् बलदेव भी बालक नहीं हैं,किशोर नहीं हो क्योंकि हजार हाथियोंका बल रखनेवाला कुवलयापीड हाथी तुमने लीलापूर्वक ही मार डाला ॥ ३९ ॥

इसलिये हमारे संग तुम कुस्ती लडो, यह अनीति नहीं है, हे वृष्णिवंशमें जन्मे कृष्ण ! मेरी तुम्हारी और बलराम मुष्टिककी कुस्ती हो ॥४०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥ दोहा–कंसादिकको वध कियो, माहन ज्ञान बताय । दर्श कियो पितु मातुको, चौवालिस अध्याय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशातंस राजा परीक्षित् ! इस प्रकार निश्चय संकल्प कर नीलाम्बर पीतांबरके कच्छे बाँध खंमें ठोंककर खडे होगये. इसके उपरांत मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण तो चाणूरके सम्मुख हुए और रोहिणीनंदन बलरामजी मुष्टिकसे जुटे ॥ १ ॥ हाथोंसे हाथ, पांवसे पांव मिलाय परस्पर जीतनेकी इच्छासे एक

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराण दशमस्कंधे पू० कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः ॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्धा पद्भ्यामेव च पादयोः ॥ विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥३॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरंभावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुंधताम् ॥४॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ॥ परस्परं जिगीषंतावपचक्रतुरात्मनः ॥५॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन्सानुकंपा वरूथशः ॥ ६ ॥

एकको बलात्कार खींचने लगे ॥२॥ अरत्निमें[1] अरत्नि मिलाय, घुटुएँ मिलाय, शिरसे शिर, छातीसे छाती मिलाकर कृष्ण और चाणूर दोनों परस्पर कुस्ती लड़ने लगे ॥ ३ ॥ चारों ओर घूमना, धक्का देना, परिरम्भण अर्थात हाथसे बिडारना, अवपातन अर्थात् नीचे पटक देना, उत्सर्पण अर्थात् छोडकर पीछेसे आगे जाना, अपसर्पण अर्थात् पीछे जाकर खड़ा होना इस प्रकार दाव पेंच कर करके लडने लगे ॥ ४ ॥ उत्थापन अर्थात् पाँव और घुटुएँ मिलाकर गिरते हैं, उनका उखाड देना, चालन अर्थात् बँधे दांवको दूर करना, स्थापन अर्थात् हाथ पाँव पकडकर मिला देना, इस प्रकार परस्पर देहको पीडा देने लगे ॥५॥ इस प्रकार इनका युद्ध देखकर वहांकी बैठी हुई स्त्रियें परस्पर कहने

---

[1] अरत्नि–समुष्टि हस्त अर्थात् कोहनीसे बीचकी अंगुलतक ।

लगीं कि, देखो! यह कृष्ण तो निर्बल है और चाणूर सबल है, यह विचार वह स्त्रियें अत्यन्त दयाको प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ इन राजसभामें बैठनेवालोंको भी महाअधर्म होगा क्योंकि राजाके देखनेको कहीं निर्बल सबलकी कुस्ती कराई जाती है? ॥ ७ ॥ भला विचारो तो सही कि, कहां तो वज्रसे कठोर अंगवाले पर्वतके समान ऊँचे ऊँचे सब मल्ल और कहाँ अतिसुकुमार कोमल अंग जिनकी यौवन अवस्था भी अभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र॥८॥इस सभामें इस समय निश्चय धर्मनाश हो रहा है इस कारण इस सभामें बैठना उचित नहीं, क्योंकि जहाँ धर्मका

महानयं बताऽधर्म एषां राजसभासदाम् ॥ ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छंति पश्यतः॥ ७ ॥ क वज्रसारसर्वांगौ मल्लौ शैलेंद्रसन्निभौ ॥ क चाति सुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ॥ यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥९॥ न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनांबुजम् ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवांबुभिः॥ ११॥

अपिनाज्ञ

नाश हो वहां कभी न बैठे॥९॥विवेकी पुरुषको ऐसी सभामें जाना योग्य नहीं है क्योंकि, दोषोंको स्मरणकर बातको जानकर जो चुप बैठा रहे तो दोष लगै और किसीकी झूंठी सच्ची कहे तो दोष लगै, अथवा हम किसीकी भली जानें न बुरी ऐसे कहे तो भी दोषका भागी हो इस कारण सभामें जाना योग्य नहीं है॥ १०॥सत्यबोलनेवालेको दुःख नहीं होता, सत्ययुक्त पुरुषको कोई विघ्न दोष नहीं सता सकते*शत्रुके चारों ओर

---

* दृष्टांत–एक राजाने एक बाजार बनवाया और कहा कि, जो वस्तु यहां बेचनेको लावेगा और संध्यातक न विकेगी, उसे मैं स्वंय ले लूंगा. इस प्रकार वह बाजार विख्यात होगया. एक दिन एक लुहार लोहेकी शनैश्चरकी मूर्ति बनाकर लाया, एक लाख रुपया उसका मोल मांगा और कहा कि, जिसके यहां यह मूर्ति रहेगी उसके यहां द्रव्यादि कुछ न रहेगा. अब उस अनिष्टकारक मूर्तिको किसीने न लिया. सन्ध्यासमय राजाने देखा कि बडी भीड हो रही है, कारण पूँछते ही राजाने विचारकर उस मूर्तिको ले लिया और लाख रुपये देदिये. जब राजाने घरमें मूर्ति रक्खी तो पहले लक्ष्मी राजासे बोली महाराज! मैं जाती हूँ। राजा बोला क्यों? लक्ष्मीजी बोली जहां शनैश्चरदेव रहें वहां हमारा क्या काम? राजाने कहा जाओ. इसीप्रकार नीति, साम, दाम, दण्ड, भेद, सब रूप धरकर आये और राजाने जाने दिया. पीछेसे जब सत्यदेव आये तो राजासे कहकर जब जाने लगे तब राजाने हाथ पकडकर कहा कि, आपके रखनेको तो हम शनैश्चर देवको लाये हैं, तुम कैसे जाते हो? सत्यदेवसे कुछ उत्तर न बन पडा और रह गये। सत्यके रहनेसे नीति, लक्ष्मी आदि सब लौट आये और सत्यके प्रभावसे शनैश्चर राजाका कुछ न कर सके॥

दौड धूप करते श्रीकृष्णके मुखकी शोभा देखो, कुस्तीमें जोर करनेसे इनके मुखपर पसीनेकी बूँदें आ रही हैं, जैसे कमलकोशके ऊपर ओसकी बूँद पड़ती हैं॥ ११॥ अरुणनेत्र बलदेवजीके मुखकी शोभा देखो, मुष्टिकके ऊपर क्रोध आ रहा है तो भी मुसकान सहित हैं, इसलिये सुन्दर लगते हैं ॥ १२॥ भूमिमें व्रजभूमि परमपवित्र है, क्योंकि जिसके वनके चित्र विचित्र फूलोंको धारण किये पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित मनुष्य रूपमें छिपकर गौओंको चराते समय बांसुरी बजाते खेलते फिरते हैं, जिनके चरणोंका महादेव और लक्ष्मीजीभी पूजन करती हैं॥ १३॥ बडा आश्चर्य है, गोपियोंने ऐसा क्या तप किया है, जिस कारण जिससे श्रेष्ठ कोई नहीं और जिसके समान कोई नहीं जिससे अधिक कोई नहीं, जो आभूषण वस्त्र विना ही सुन्दर लगता है, यश लक्ष्मी ऐश्वर्य इनका एकान्त स्थान, अर्थात् सर्वदा जिसमें वास करें ऐसे प्यारेके स्वरूपको

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम्॥ मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरंभशोभितम्॥ १२॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिंग गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः॥ गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयांचति गिरित्ररमार्चितांघ्रिः॥ १३॥ गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्॥ दृग्भिः पिबंत्यनुसवाभिनवं दुरापमेकांतधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥ १४॥ या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ॥ गायंति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकंठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५॥ प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिस्समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ॥ निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यंति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥

दृष्टिसे देखती हैं ॥ १४ ॥ हे सखियो ! व्रजबालायें धन्य हैं, जो गोपी गाय दुहानेके समय धान्य छरते समय, दूध विलोते समय, बालकोंको झुलाते समय और चुपाते समय, घरोंका काम काज करते समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त होकर उनके गुण गाती हैं, उस समय उनका मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें ही लग जाता है और प्रेमानंदसे उनके नेत्रोंमें आंसु आ जाते हैं ॥ १५ ॥ प्रातःकाल जब व्रजसे गौ चरानेको जाते हैं और सन्ध्यासमय जब गायोंको ले बांसुरी बजाते हुए आते हैं, उस समय वह महाभाग गोपियें बांसुरीका शब्द सुन शीघ्र अपने घरसे निकल मार्गमें आय, सुन्दर मुसकान दयापूर्वक चितवनयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका दर्शन करती हैं ॥ १६ ॥

हे भरतवंशावतंस परीक्षित् । इधर तो स्त्रियें परस्पर इस प्रकार बातें कर रही थीं और उधर योगके ईश्वर सबका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शत्रुओंके मारनेका विचार करने लगे ॥ १७ ॥ भयसहित स्त्रियोंकी बातें सुनकर पुत्रोंमें स्नेहके शोकसे व्याकुल और पुत्रोंके बलको नहीं जाननेवाले माता पिता वसुदेव देवकी अत्यन्त दुःखित हुए * ॥१८॥ अनेक प्रकार कुस्तीके दावँ पेंचोंसे जैसे श्रीकृष्ण और चाणूर लड़ते थे उसी प्रकार महात्मा बलदेव और मुष्टिक लड़ने लगे ॥ १९ ॥ वज्रपातके समान कठोर भगवान्के अंगके प्रहारसे चाणूरका अंग चुरकुट हो गया, जिससे वह बहुत दुःखित हुआ ॥ २० ॥ इसके उपरान्त शिकरेके वेगके समान चाणूरने दोनों हाथकी मुष्टि बाँध, क्रोधमें भर, ऊपरको उछल भगवान् वासुदेवकी छातीमें एक घूँसा मारा ॥ २१ ॥ हे राजन् । जिस प्रकार हाथी फूलोंकी मालाके लगनेसे नहीं चलायमान होता, वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्र उसकी मुष्टिसे चलायमान न हुए इसके उपरान्त अत्यन्त क्रोधित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चाणूरके दोनों हाथ पकड़ बहुत घुमाय बडे वेगसे पृथ्वीमें पटक दिया, गिरते ही उसके प्राण निकल गये और गहने, केश,

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ॥ शत्रुं हंतुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ॥ युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥१९॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानांगो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २० ॥ स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ॥ भगवंतं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥ नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ बाहोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ॥ २२ ॥ भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ॥ विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिंद्रध्वज इवापतत् ॥ २३ ॥

---

* शंका–जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुए उसी समय वसुदेव देवकीको ज्ञान दिया और वसुदेव देवकी श्रीकृष्णके समुद्र सरीखे चरित्र और कर्मोंको जानते थे और सुन भी रक्खा था, फिर वसुदेव देवकी जानबूझकर क्यों अज्ञानी हो गये ?

उत्तर–श्रीकृष्णके माता पिता अज्ञानी नहीं हुए, पुत्रके मोहमें व्याकुल होगये, पुत्रकी मोहरूप अग्निसे भस्म होगये, इसलिये अज्ञानियोंकी नाईं होगये, क्योंकि संसारमें पुत्रका मोह बडा भारी है, पुत्रके मोहमें बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ॥

माला इत्यादि सब बिखर गये. गिरते समय ऐसा शब्द हुआ कि, मानो इन्द्रध्वज गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिक कि, जिसने पहले बलदेवजीके मुष्टिप्रहार किया था, उसे बलदेवजीने थाप मारकर गिरा दिया ॥ २४ ॥ मुष्टिक कंपित हो मुखसे रुधिरको वमन करता पीडित हो प्राण निकल जानेसे, जैसे पवनका मारा वृक्ष उखडकर गिर पडता है, इसी प्रकार गिर गया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरान्त दौडते हुए कूट मल्लको मारनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने लीलापूर्वक तिरस्कार कर बाईं मुष्टिसे मार डाला ॥ २६ ॥ शल, तोशलने अपने मनमें विचार किया कि, दण्डवत्के बहाने चरण पकडकर पटक देंगे, परंतु भगवान् तो सबके बाहर भीतरकी जाननेवाले हैं, यह जिस समय दण्डवत् करनेको आये, उस समय बलवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एक लात ऐसी मारी जिसके लगनेसे शिर फट गया, इस प्रकार शल, तोशल दो खण्ड विदीर्ण होकर दोनों पृथ्वीपर गिर गये ॥ २७ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल इत्यादि मुख्य मल्ल जब मारे गये, तब वहां और जो मल्ल उपस्थित थे, वह अपना प्राण बचानेके लिये भाग गये ॥ २८ ॥ बराबरके गोपोंको अखाडेमें खैंच श्रीकृष्ण बलदेव उनके संग विहार करने लगे, उस समय बाजे बज रहे थे और श्रीकृष्णचन्द्रके नुपुर नृत्य करनेसे परम सुहावन बज रहे थे ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजीके चरित्र देख कंसके विना सब मथुरावासी प्रसन्न होगये, मुख्य २ ब्राह्मण तथा सज्जन पुरुष " साधु २ " ऐसे कहकर स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ जब बडे मल्ल मर गये, कितने ही भाग गये तब भोजवंशियोंके राजा कंसने नगारे थमा दिये और बोला कि ॥ ३१ ॥

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवांघ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तो रामः प्रहरतां वरः ॥ अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गंतौ धृतनूपुरौ ॥ २९ ॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ॥ न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥

9/7

कि, कुटिलकर्मा वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे बाहर निकाल दो और गोपोंका धन छीन लो, कुटिलबुद्धि नंदको बांध लो ॥ ३२ ॥ खोटी बुद्धि वाले वसुदेवको जल्दी मारो और इसके उपरांत शत्रुसे मिलनेवाले पिता उग्रसेनको भी अनुचरों सहित मारो ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जब राजा कंस बकने लगा,तब अत्यन्त क्रोधित हो अव्यय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जल्दीसे उछल ऊंच मञ्चानपर चढ गये ॥ ३४॥ तब धीरजवान् अत्यन्त अभिमानी राजा कंसने अपने मृत्युको आता हुआ देख आसनसे उठकर ढाल तलवार ग्रहण की ॥३५॥ तलवार हाथमें ले आकाशमें जैसे शिकरा पक्षी फिरता है,उसीप्रकार दाईं बाईं ओर जल्दी जल्दी फिरनेवाले कंसको असह्य और उग्रतेजवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने,तार्क्ष्यका

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नंदं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥ लघिम्नोत्पत्य तरसा मंचमुत्तुंगमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशंतमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तं खड्गपाणिं विचरंतमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमंबरे ॥ समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुंगमंचात् ॥ तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतंत्रः ॥ ३७ ॥ (कंसोऽपि कृष्णेन जगत्त्रयैकनिवासभूतेन निपात्य सोऽधः ॥ तेनात्मतन्त्रेण निपीडितोऽसुं तत्याज राजन्निमिषान्तरेण ॥) तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ॥ हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥

पुत्र गरुड़ जैसे सर्पको हठात् पकड लेता है,उसी प्रकार पकड लिया॥३६॥फिर उसकी फेंट तथा केश पकड़ ऊंचे मंचानपरसे रंगभूमिमें पटक दिया और इसके ऊपर सब जगतके आश्रय और स्वतंत्र कमलनाभ भगवान् स्वयं कूद पडे. केश पकडनेका कारण यह है कि, कंसने देवकीके केश पकडे थे, इसलिये उसका बदला लिया ॥ (हे राजा परीक्षित् । तीनों लोकोंका एक मात्र निवासस्थान और स्वाधीन श्रीकृष्णजीके द्वारा नीचे गिरा कर दवाये जानेपर कंसने भी निमेषमात्रमें प्राण त्याग दिये ॥) इसके उपरान्त सिंह जैसे हाथीको खींचता है, उसी प्रकार सब जगत्के देखते भगवान् मृतकहुए कंसको पृथ्वीमें घसीटने लगे.हे नरेंद्र । उस समय समस्त प्रजामें बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ३७॥३८॥

कंस प्रतिदिन चलायमान चित्तसे जल पीते, बात कहते, चलते, सोते और श्वास लेते चक्र आयुधवाले भगवान्‌का ही शत्रुभावसे ध्यान करता था इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त उस कंसके कंक, न्यग्रोधसे आदि लेकर छोटे आठ भाई अत्यन्त क्रोधित हो कंसका बदला लेनेके लिये दौडकर आये॥४०॥ उसी समय रोहिणीके सुत बलरामजीने क्रोधित हुए हाथोंमें शस्त्र लेकर आये हुए कंसके भाइयोंको सिंह जैसे पशुओंको मारता है उसीप्रकार परिघ उठाकर मार डाला ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें नगारे बजने लगे और भगवान्‌की विभूति जो ब्रह्मा महादेवादिक देवता हैं, सो प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे; स्त्रियें नृत्य

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतो तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कंकन्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥ तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः ॥ अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥४१॥ नेदुर्दुंदुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरंतस्तं प्रीत्या शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥ तत्राभीयुर्विनिघ्नंत्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजंत्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृह प्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमंगला ॥ ४६ ॥

करने लगीं ॥४२॥ हे महाराज ! इसके उपरांत पतिके मरणसे अत्यन्त दुःखित हो नेत्रोंमें आंसू भर कंसआदिकी स्त्रियें शिर पीटती जहां उसकी लोथ पड़ी थी, वहां आईं ॥४३॥ वीरशय्यामें पडे पतिका आलिंगन कर शोकातुर स्त्रियें बारंबार नेत्रोंसे आंसु बहाय बहाय पुकार पुकारकर विलाप करने लगीं॥४४॥ हा नाथ ! हे प्राणपति ! हे धर्मके जाननेवाले ! हे करुणानाथ ! हा दीनवत्सल ! तुम आप मरकर घरबार सहित और बालकों सहित हमको क्यों मार गये ? ॥ ४५ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम विना हम विधवा होकर शोभायमान नहीं लगतीं उसी प्रकार

तुम्हारे विना मथुरापुरी भी शोभा नहीं पाती, क्योंकि सम्पूर्ण मंगल उत्सव इसमेंसे दूर होगये ॥ ४६॥ निरपराध प्राणियोंसे तुमने बडा द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई जो मरे पडे हो. प्राणियोंसे वैर करके कौन पुरुष सुख पाता है ॥ ४७ ॥ क्योंकि इस संसारमें समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति, पालन और नाशकर्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं, इसलिये जो इनकी अवज्ञा करता है, वह कभी सुख नहीं पाता ॥४८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा कंसकी स्त्रियोंको समाधान कर कंसकी दाहादिक क्रिया कराई ॥४९॥ इसके उपरांत माता पिता देवकी वसुदेवको कंसके बन्दीखानेसे छुडाया और राम कृष्ण दोनों भाइयोंने

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम् ॥ ४७ ॥
सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४८ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यमाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥
मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बंधनात् ॥ कृष्णरामौ ववंदाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥ देवकी वसुदेवश्च
विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवंदनौ पुत्रौ सस्वजाते न शंकितौ ॥५१ ॥ इति श्रीमद्भा०महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे
कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥ मा
भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥१ ॥ उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्त्वतर्षभः ॥ प्रश्रयावनतः प्रीणन्नंब
तातेति सादरम् ॥ २ ॥

माता पिताके चरणोंमें शिर लगाकर प्रणाम किया ॥ ५० ॥ माता पिता, देवकी वसुदेव प्रणाम करते पुत्रोंको जगत्के ईश्वर जान भयभीत होकर उनसे नहीं मिले ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भाषाटीकायां कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ दोहा-पितु नंदादिक शान्त कर, उग्रसेन दियो राज । बहुरि गये गुरुके भवन, पैंतालिस सुखसाज ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने माता पिताको ज्ञान प्राप्त हुआ जान विचारा कि, यह ज्ञान अभी ठीक नहीं इसलिये सब लोगोंको मोहित करनेवाली अपनी माया फैलाई ॥ १ ॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीको संग लेकर माता, पिताके पास आये

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कंठितयोरपि ॥ बाल्यपौगंडकैशोराः पुत्राभ्यामभवन्कचित् ॥ ३ ॥ न लब्धो दैवहतयो र्वासो नौ भवदंतिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्था विंदंते लालिता मुदम् ॥४॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्पमात्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयंति हि ॥ ६ ॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रांता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

और विनयपूर्वक नम्र हो, हे मातः ! हे पिता ! इस प्रकार आदरपूर्वक प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २ ॥ हे पिता ! सर्वदा तुम्हें चाहना ही बनी रही और हम पुत्रोंसे बाल्य अवस्था, पौगण्ड अवस्था तथा किशोर अवस्थाका सुख कभी तुमको न हुआ ॥३॥ दैवके मारे तुम्हारे निकट वास भी न कर सके, पिताके घर बालक रहते हैं और उनका लालन पालन होता है, आनन्द पाते हैं, हमको कुछ भी प्राप्त न हुआ ॥ ४ ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सर्व पदार्थ जिससे हों ऐसा यह देह जिन माता पिताने उत्पन्न किया उनकी यह मरणधर्मा मनुष्य सौवर्ष तक सेवा करे, परन्तु तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता ॥५॥ जो पुत्र समर्थ होकर देहसे अथवा धनसे माता, पिताको जीविका नहीं देता, उसे परलोकमें यमके दूत उसका मांस उसे ही काट काटकर भक्षण कराते हैं ॥ ६ ॥ माता, पिता, वृद्ध, सुशीला स्त्री, पुत्र, बालक, गुरु, ब्राह्मण अथवा और कोई शरण आवे इनका जो मनुष्य भरण पोषण न करे, तो वह मृतकके समान है * ॥ ७ ॥ असमर्थ और कंसके भयके मारे नित्य चंचल मन होनेके कारण तुम्हारी सेवा विना किये हमारे दिन व्यर्थ बीत गये ॥ ८ ॥

---

* शंका–श्रीकृष्णने कहा कि, वृद्ध पिताका सेवा करना चाहिये, परन्तु शास्त्रमें ऐसा कहीं नियम नहीं है कि, वृद्ध पिताकी सेवा करना और युवा पिताकी सेवा न करना, श्रीकृष्णके वचनसे ऐसा जान पडता है कि, समर्थ भी हो तोभी युवा पिताकी सेवा न करना, समर्थ हो वा असमर्थ हो वृद्ध पिताका सेवन करना. ऐसा भगवान्के वचनसे विदित होता है, फिर भगवान्ने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर–"मातरं पितरं वृद्धम्" इस श्लोकमें वृद्धका अर्थ बूढेपनका नहीं है, वृद्ध बूढेका नाम है. वृद्धका अर्थ श्रीकृष्णने ऐसा किया है कि, सर्वधर्मसे पिता वृद्ध कहिये श्रेष्ठ अथवा पंडित और धर्मशास्त्र भी धर्मोंसे पिताको बडा कहते हैं, पितासे माता बडी है, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर श्रीकृष्णचन्द्रने वृद्ध पिताका पूजन करनेके लिये कहा था, यह नहीं कहा था कि, बूढे पिताका सेवन करना और युवा पिताको सेवन न करना ॥

हे पिता ! हे मातः ! पराये अधीन होनेके कारण हमसे तुम्हारी सेवा न बनी और दुष्टहृदय कंससे अत्यन्त दुःखित रहे, इसलिये अब हमपर तुम क्षमा करनेके योग्य हो सो क्षमा कीजिये ॥९॥ इस प्रकार मायासे मनुष्यरूपधारी विश्वके आत्मा हरिके वचनसे मोहित होकर देवकी, वसुदेव पुत्रोंको गोदमें बैठाय लिपटाय परमानन्दको प्राप्त हुए॥१०॥हे राजा परीक्षित्!स्नेहके पाशसे बँधे मोहित देवकी वसुदेव आंसूकी धारोंसे कृष्ण बलदेवको भिजोते कुछ भी न बोले॥११॥देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार मातापिताको सावधान कर नाना उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया॥१२॥श्रीकृष्ण बोले कि हे महाराज ! हम तुम्हारी प्रजा हैं,सो हमें तुम आज्ञा करनेके योग्य हो और यदुवंशियोंको

तत्क्षंतुमर्हथस्तात मातर्नौ परतंत्रयोः ॥अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम्॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति माया
मनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा॥ मोहितावंकमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिंचंतावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन
चावृतौ ॥ न किंचिदूचतू राजन्बाष्पकंठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः ॥ मातामहं
तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ॥ ययातिशापाद्यदुभिर्नाऽऽसितव्यं
नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरंत्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥
सर्वान्स्वज्ञातिसंबंधान्दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ॥ यदुवृष्ण्यंधकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान्स
माश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ॥ न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥

ययातिका शाप है इसकारण यादवोंका सिंहासनपर बैठना और राज्य करना योग्य नहीं है॥१३॥मैं सेवकके समान तुम्हारे निकट सदा उपस्थित रहूँगा, बडे बडे देवादिक तुमको भेंट देंगे और राजा भेंट देंगे,इसमें कहना ही क्या है॥१४॥और कंसके डरके मारे जो अपनी जातिके यदु, वृष्णि, अंधक,मधु, दाशार्ह, कुकुरादिक भाग गये थे ॥ १५ ॥ उनको बुलाकर और विदेशमें वसनेके कारण जो यादव कृश हो रहे थे, उनका सत्कार कर बहुतसा धन दे तृप्त कर सब विश्वके कर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने २ घरोंमें बसाया॥ १६ ॥

कृष्ण बलदेवकी भुजासे रक्षित हो पूर्ण मनोरथ पाय तापोंको दूर कर वह यादव घरोंमें रमण करने लगे ॥ १७ ॥ और नित्य आनन्दसे पूर्ण शोभायुक्त दयासहित मंदहास्यपूर्वक चितवन युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलका दर्शन करके परमानन्दित होते थे ॥ १८ ॥ भगवान् मुकुन्दके मुखकमलके अमृतको पीकर उस समय वृद्ध भी तरुणावस्थाको प्राप्त हो अत्यन्त बलवान् हो गये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी नंदरायके पास आय मिल यह वचन बोले ॥ २० ॥ हे पिता ! तुम स्नेहियोंने हमारा पोषण किया बहुत लाड लडाया, अधिक क्या कहें, माता पिताकी अपने पुत्रोंमें अधिक प्रीति होती है, सो

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषुरेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः॥१७॥ वीक्षंतोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवद
नांबुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम्॥१८॥तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः॥ पिबंतोऽक्षैर्मुकु
न्दस्य मुखांबुजसुधां मुहुः॥१९॥अथ नंदं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः ॥ संकर्षणश्च राजेंद्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥२०॥
पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥ स पिता
सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ॥ शिशून्बंधुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च
स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सांत्वय्य भगवान्नंदं सव्रजमच्युतः ॥
वासोऽलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नंदः प्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह
गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥

तुमने उनसे भी अधिक प्रीति करी ॥२१॥ वही पिता है, वही माता है, जो पराये पुत्रको अपने पुत्रके समान पोषण करे और पोषण करनेमें जिनकी सामर्थ्य न हुई ऐसे हमारे मात पिताने हमको बालकपनसे ही छोड दिया ॥ २२ ॥ हे पिता ! अब तुम व्रजको जाओ । हम भी बंधु बांधवोंका प्रिय करके स्नेहसे दुःखी जातिवाले और तुम्हारे देखनेको पीछेसे आवेंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार अच्युत भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजवासियों सहित नंदरायजीको समझाकर और अनेक भाँतिके वस्त्र आभूषण तथा सोने, चांदीके बर्त्तन देकर बडे आदर पूर्वक उनका पूजन किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुन नंदरायजी कृष्ण बलदेवको छातीसे लगा, प्रेमसे व्याकुल हो, नेत्रोंमें आंसू भर,

संपूर्ण व्रजवासियोंको संग ले व्रजको चले ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त हे राजन् ! शूरसेनके पुत्र वसुदेवजीने ब्राह्मण पुरोहितको बुलाय पुत्रोंका यथायोग्य द्विजन्मा संस्कार कराया ॥२६॥ इसके उपरांत शृंगार करी हुई रेशमी झूल व सुवर्णकी माला पहरे अनेक गायें बछडों सहित ब्राह्मणोंको दान कीं ॥२७॥ अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने राम कृष्णके जन्मनक्षत्रके समय जिन गायोंका मनमें संकल्प किया था और कंसने अधर्मसे हर ली थीं, उतनी ही गौ स्मरण करके ब्राह्मणोंको दान करीं ॥२८॥इसके उपरांत सुव्रती कृष्ण बलदेव द्विजन्मा संस्कार पाय यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसे गायत्रीका उपदेश ले ब्रह्मचर्य व्रतमें रहने लगे ॥ २९ ॥ यद्यपि संपूर्ण विद्या जाननेवाले सर्वज्ञ अर्थात्

अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः ॥ स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ॥ ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छंतावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवंतिपुरवासिनम् ॥ ॥ ३१ ॥ यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिंदिताम् ॥ ग्राहयंतावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान्सांगोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपर्थांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥

सब बातके जाननेवाले कृष्ण बलदेव सब जगतके ईश्वर थे परंतु तो भी स्वतःसिद्ध निर्मल ज्ञानको मनुष्योंके समान चेष्टा करनेके कारण गुप्त रखते थे ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कृष्ण बलदेव गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छासे उज्जैनपुरीके वासी सांदीपनि गुरुके पास गये जो काश्य नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रिय कृष्ण बलदेव भले प्रकार गुरुके पास आय बडे आदरसत्कारसे भक्तिपूर्वक जैसे नारायणकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार गुरुकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ शुद्ध भक्तिपूर्वक सेवासे संतुष्ट हुए द्विजन्माओंमें श्रेष्ठ गुरुजीने श्रीकृष्ण बलदेवको शिक्षादिक छः अंग और उपनिषदों सहित समस्त वेद पढ़ाये ॥ ३३॥ इसके उपरान्त मंत्र और देवताके ज्ञान सहित शस्त्र

क्यों कि जब मैंने उनसे कह दिय था कि, मैं शीघ्र ही आऊंगा, इस कारणसे उसी प्रकार वे गोपियें प्राण धारण किये रहीं सो भी महाकष्टसे यदि उनका आत्मा उनके शरीरमें रहता तो दग्ध हो जाता, वह तो मुझमें लीन है इसी लिये वह प्राण धारण कर रही हैं ॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब उद्धवजी बडे आदरपूर्वक स्वामीके संदेशको ले रथमें बैठ नंदरायजीके गोकुलको चले ॥७॥ और सूर्यके छिपते ही शोभायमान नंदरायजीके गोकुलमें पहुँचे, तब संध्यासमय आती हुई गायोंके खुरोंकी रेणुसे उद्धव

धारयंत्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन ॥ प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुराहृतः ॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तो नंदव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ॥ धावंती भिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडितं सितैः ॥ गोदोहशब्दाभिरवैर्वेणूनां निस्स्वनेन च॥१०॥गायंतीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ॥ स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम्॥११॥

जीका रथ ढक गया॥८॥ पुष्पवती गायोंके लिये चारों ओरसे मतवाले बैलोंके युद्धका शब्द वहाँ हो रहा था और ऐनके भारसे ब्याई हुई गायें दौड़ दौड़कर अपने बछडोंके पास आती थीं ॥ ९ ॥ जहाँ तहाँ सफेद गायें, गायोंके बछडे कूदते फाँदते फिरते हैं, गायोंके दुहनेका शब्द जहाँ तहाँ हो रहा है, कोई कहता था "लाओ" कोई कहता था "देओ" ऐसा कोलाहल जहाँ तहाँ मच रहा था और बाँसुरी बजानेका भी शोर हो रहा था ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके मंगलरूप कर्मोंको बनी ठनी गोपियें गाती हुई अत्यन्त

ऐसी परममित्रता थी फिर चार कोशके अन्तर मिल भेंटे क्यों नहीं ? इसका क्या कारण ? इधर तो कृष्णके मनमें मोहकी ज्वाला भडक रही थी और उधर गोपियोंके हृदयमें मोहकी ज्वाला भडक रही थी, फिर क्या कारण जो कोई न तो मथुरासे गया, न कोई गोकुलसे आया ? यह बडा सन्देह है ?

उत्तर–श्रीकृष्ण लोकनिन्दासे डरे । व्रजमें जो लीला हमने करी तब हम बालकथे। अब हमारी युवा अवस्था हुई जो गोपी व्रजसे हमारे पास आवेंगी अथवा व्रजको हम जायँगे तो पहिलेके समान चरित्र मथुरामें तथा व्रजमें करने पडेंगे और वह चरित्र हम यहाँ करें तो संसारमें निन्दा होगी, इस बातका डर करके मायासे गोपियोंको मोहित कर दिया । जब गोपी मोहको प्राप्त होगईं तो मनहीं मनमें विना कृष्ण प्यारेके मनमें परितार तो किया पर मथुराकी ओरको पांव न रक्खा और भगवान् लोकलाजसे गोकुलको नहीं गये.

बहुत दिनोंसे नहीं देखनेके कारण राम कृष्णका दर्शन कर प्रजा बडे आनन्दको प्राप्त हुई, जैसे गया हुआ धन मिलनेसे आनन्द होता है ॥ ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां गुरुकुलवासो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ दोहा–छियालीस अध्यायमें, उद्धव ब्रजहि पठाय। शोक यशोदा नन्दको, मेटो ज्ञान सिखाय ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके प्रिय मंत्री सखा अर्थात् बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ जो उद्धवजी थे ॥ १ ॥ इन्हे शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एकान्तमें बुला हाथ पकडकर कहा ॥ २ ॥ हे उद्धव! हे साधु! तुम ब्रजको जाओ, हमारे माता पिताको प्रसन्न

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ अपश्यंत्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥ इति श्रीमद्भाग०म०द० पू० नन्दादिसान्त्वनोग्रसेनाभिषेकगुरुकुलवासकरणं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृष्णीनां प्रवरो मंत्री कृष्णस्य दयितः सखा॥शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥१ ॥ तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकांतिनं क्वचित् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिरो हरिः॥२॥गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय॥३॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥४॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ॥ स्मरंत्योऽङ्ग विमुह्यंति विरहौत्कंठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥

करो और गोपियोंको जो मेरे बिछुडनेमें कष्ट हुआ है सो इसे मेरा संदेशा ले जाकर दूर करो ॥ ३ ॥ मुझमें जिनके मन और प्राण लग रहे हैं; मेरे लिये पति पुत्रादिक त्याग दिये हैं, मैं ही प्यारा जिनका आत्मा हूँ, सो मुझमें मन लगा कर रहती हैं, मेरे लिये जिन्होंने इस लोक तथा परलोकके जितने सुखके उपाय हैं, सब त्याग दिये हैं, सो इनको मैं सुख देता हूँ ॥४॥ हे उद्धव! इनका प्यारा मैं जबसे दूर आया हूँ तबसे वह गोकुलकी स्त्रियें मेरी सुध करके विरहसे मेरी चाहके कारण विवश हो मोहित हो जाती हैं * ॥ ५ ॥

---

*शंका–ब्रजसे गोकुलसे मथुरापुरीका चार कोशका अन्तर है और मथुरासे ब्रजभी चारही कोश है, परन्तु ब्रजको श्रीकृष्ण कभी नहीं गये और गोपीभी मथुराको कभी नहीं गईं गोरियें दही, छाँछ, माखन बेचनके भी मथुरापुरीको कभी नहीं गईं। छाँछ बेचनेको आती तो भी मोहन प्यारेकी मुलाकात हो जाती, हे स्वामिन्! परस्पर मित्रसे मिलनेके लिये स्त्री या पुरुष हजारों कोश चले जाते हैं और कृष्ण और गोपियोंकी

चलाना, धनुर्वेद और धर्मशास्त्र, राजनीति, मीमांसादिक तर्कविद्या तथा शत्रुसे मिलाप करना, युद्ध करना, उसके ऊपर चढ जाना, निकट जाकर रहना, अपनी ओर तोड लेना, मेल करना, यह छः प्रकारकी राजनीति पढाई॥३४॥ सब मनुष्योंमें तथा उत्तमोंमें उत्तम सब विद्याओंके चलानेवाले सावधान कृष्ण बलदेवने हे राजन् ! गुरुके विना बताये ही संपूर्ण विद्या सीख लीं ॥३५॥ चौंसठ रात्रियोंमें गाना, बजाना, नृत्य करना आदि चौंसठ कला सीखीं । जब विद्या पढ चुके तब हे राजन् ! कृष्ण बलदेव दोनों भाई गुरुजीसे 'गुरुदक्षिणाकी आज्ञा करो' इस प्रकार कहने लगे ॥ ३६॥ तब सांदीपनिने कृष्ण बलदेवकी अद्भुत महिमा देखके, मनुष्योंमें ऐसी चमत्कारी कहा ! स्त्रीसे परामर्श कर प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें डूबकर जो पुत्र मर गया था सो स्त्रीके कहनेसे उसको ही मांगा ॥ ३७ ॥ तथास्तु, इस प्रकार कह अत्यन्त पराक्रमी, बडे रथी कृष्ण

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥३५॥ अहोरात्रैश्चतुष्षष्ट्या संयतौ तावतीः कलाः ॥ गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छंदयामासतुर्नृप ॥३६॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ॥ समंत्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिंधुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रं प्रदीयताम् ॥ योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा॥३९॥समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पंचजनो महान् ॥ अंतर्जलचरः कृष्ण शंखरूपधरोऽसुरः॥४०॥आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥ जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदंगप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ॥ ततः संयमिनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥४२॥

922

बलदेव रथमें बैठ प्रभासक्षेत्रमें पहुँच समुद्रके किनारे जाय एक क्षण बैठगये, तब समुद्र कृष्ण बलदेवको जान उनकी पूजा लेकर आया ॥३८॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस समुद्रसे कहने लगे कि, जो हमारे गुरुके बालकको तैंने यहां बडी लहरोंसे डुबा लिया है, उस गुरुके पुत्रको ला दे ॥ ३९ ॥ तब समुद्र बोला कि हे देव ! मैंने तो तुम्हारे गुरुके पुत्रको नहीं डुबोया, बरन् मेरे भीतर रहनेवाला शंखरूप धारण किये एक बडा दैत्य है ॥४०॥ वह हर लेगया है और निश्चय उसके पास है यह सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शीघ्रतासे जलमें घुस पंचजन दैत्यको मार डाला परंतु उसके पेटमें बालक नहीं देखा ॥ ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त उस दैत्यके अंगमेंसे शंख ले श्रीकृष्णचन्द्र रथपर आये

और वहाँसे यमराजकी अति प्यारी संयमनीपुरीमें आये ॥४२॥ और वहाँ जाकर बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शंख बजाया, तब प्रजाका दण्ड देनेवाला धर्मराज शंखका शब्द सुन॥४३॥कृष्ण बलदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करने लगा और सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे हाथ जोडकर बोला कि,हे विष्णु भगवन्! लीलापूर्वक आपने मनुष्यका रूप धारण किया है, सो तुम्हारी क्या सेवा करूं ? ॥ ४४ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे महाराज ! यहाँ जो आप गुरुपुत्र ले आये हैं सो ला दीजिये. तब यमराजने कहा कि, वह अपने कर्मोंसे बँधा पडा है कैसे लाऊँ ? तब श्रीकृष्ण बोले कि, इसे मेरी आज्ञा हुई है, कुछ मेरी आज्ञासे कर्म बलवान् नहीं है ॥ ४५ ॥ तब "जो

गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥ तयोः सपर्यां महतीं
चक्रे भक्त्युपबृंहिताम्॥उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ॥ लीलामनुष्ययोर्विष्णवोर्युवयोः करवाम किम् ॥४४॥
श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबंधनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥
तथेति तेनोपनीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ॥ दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥ सम्यक् संपादितो वत्स
भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥ ४७ ॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु
पावनी ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं
तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥

आज्ञा" ऐसा कहकर यमराजने गुरुपुत्रको ला दिया, इसके पीछे यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्ण बलदेव इसे ले अपने गुरुको देकर बोले कि,और वर मांगो ॥४६॥ तब गुरु कहने लगे कि, पुत्र ! तुमने गुरुसेवा भलीभांति करी और तुम सरीखोंका जब मैं गुरु हुआ तब मेरे कौन बातकी चाहना शेष रही ? ॥४७॥ हे वीर ! अब तुम अपने घरको जाओ । इस लोक और परलोकमें तुम्हारी पवित्र कीर्त्ति हो । तुम्हारे वेद नवीन पढे हुए स्मरणमें बने रहैं ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार गुरुसे आज्ञा पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भाई पवनके समान शीघ्रगामी मेघके तुल्य गर्जनेवाले रथमें बैठ अपने घरको आये ॥ ४९ ॥

शोभायमान लगती थीं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, अभ्यागत, गौ, ब्राह्मण, पितर, देवता इनके पूजनकी सामग्री जहाँ तहाँ धरी थी, धूप हो रही थी, दीपक बल रहे थे, फूल धरे थे, गोपोंके घरोंमें पूजा होनेसे यह ब्रज मनोहर हो रहा था ॥ १२ ॥ सब ओरसे फुलवारी फूल रही थी, पक्षी बोल रहे थे, भौंरे गुञ्जार रहे थे, राजहंस और कारण्डव पक्षी जहाँ बैठे थे, ऐसे कमलोंके समूहसे वह ब्रज शोभायमान हो रहा था ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रिय मित्र उद्धवजीको आया जान नंदरायजी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मिले और श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे आये हैं यह जानकर ईश्वरबुद्धिसे पूजन किया ॥ १४ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त श्रेष्ठ सामग्रियोंका भोजन कराय शय्यापर सुखपूर्वक पौढ़ाय चरण दाब मार्गका खेद मिटाय उद्धवजीसे नंदरायजी बोले ॥ १५॥ हे बड़भागी उद्धव! कहो शूरसेनके पुत्र हमारे सखा वसुदेवजी

अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ॥ धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवनोर्द्दिजालिकुलनादितम्॥ हंसकारंडवाकीर्णैः पद्मखंडैश्च मंडितम् ॥ १३ ॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम्॥ नंदः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽऽर्चयत् ॥१४॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥ १५॥ कच्चिदंग महाभाग सखा नः शूरनंदनः ॥ आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥१६॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान्व्रजं चात्मनाथं गावो वृंदावनं गिरिम् ॥१८॥ अप्यायास्यति गोविंदः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥

पुत्रों सहित कुशलपूर्वक हैं? कंसके बन्दीखानेसे छूटे हैं? भाई बन्धु हितकारियों सहित प्रसन्न हैं? ॥ १६ ॥ और पापी कंस समस्त सेवकों सहित मारा गया यह बड़ा ही मंगल हुआ, क्योंकि वह कंस धर्मस्वभाववाले यादवोंसे सदा वैर करता था ॥ १७ ॥ हे उद्धवजी! औ यह भी कहो कि, वह कृष्ण भी कभी हमारी और अपनी माताकी सुध करते हैं, तथा सुहृद सखा गोपियोंकी सुध करते हैं और जिसके आप ही रक्षक हैं ऐसे ब्रजकी भी कभी सुध करते हैं? और गौ, ब्राह्मण, गोवर्द्धनपर्वतकी भी कभी सुध करते हैं? ॥ १८ ॥ गायोंके हित करनेवाले श्रीकृष्ण जब कभी अपने भाई बन्धुके देखनेके लिये अवेंगे तब सुन्दर नासिका सुन्दर मुसकान चितवनयुक्त उनके मुखका

दर्शन करेंगे ॥ १९ ॥ दावाग्निसे, पवनसे, इन्द्रकी वर्षासे, विषयुक्त सर्पसे, अघासुरसे, बडे २ मृत्युओंसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने हमारी रक्षा करी ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रम और लीलापूर्वक कटाक्षभरी चितवन, हँसन और बोलनेकी सुध करते हैं, तब हमारी सम्पूर्ण क्रिया शिथिल हो जाती हैं ॥ २१ ॥ मुकुन्दके चरणोंके चिह्न युक्त पर्वत, नदी, वन और उनके खेलनेके स्थानोंको जब देखते हैं तब हमारा मन कृष्णमय होजाता है ॥ २२ ॥ देवताओंका कार्य करनेके लिये इस संसारमें कृष्ण अवतार लेकर आये हैं, उन्हें मैं देवताओंमें उत्तम मानता हुँ और मैंने बड़ा गम्भीर गर्गाचार्यका वचन भी ऐसे ही सुना है ॥२३॥ दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाले कंस

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि
लीलापांगनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चांग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुंदपदभूषितान् ॥ अक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥ मन्ये कृष्णं च रामंच प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥
सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥ अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव
मृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ॥ बभंजैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलंबो
धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्मृत्य
संस्मृत्य नंदः कृष्णानुरक्तधीः ॥ अत्युकंठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७

और मल्लोंको, वैसे ही कुवलयापीड हाथीको सिंह जैसे पशुओंको मारता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही मार डाला ॥ २४ ॥ फिर बड़ा भारी तीन तालके समान धनुष एक हाथसे उठा कर जैसे हाथी लठियाको तोडता है उसी प्रकार तोड डाला और सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको बायें हाथकी अँगुलीपर धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, तृणावर्त्त, बकासुर आदि और भी जो जो सुर असुरोंके जीतनेवाले दैत्य थे, सो सो श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही मार डाले ॥२६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कृष्णमें प्रेमबुद्धिवाले नन्दरायजी इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सुध करके आंखोंमें आँसू भर गद्गदकण्ठ प्रेमके भावमें व्याकुल होकर

चुप हो गये॥२७॥यशोदाने जो ऐसे वर्णन किये जाते श्रीकृष्णके सुंदर चरित्र श्रवण किये, तो स्नेहसे स्तनोंमें दूध उमड आया और नेत्रोंसे आँसू बहने लगे ॥ २८ ॥ इस प्रकार नन्दराय और यशोदाका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमअनुराग देख उद्धव नन्दजीसे बोले ॥ २९ ॥ उद्धवजी बोले कि,हे मान देनेवाले नन्दजी!इस संसारमें देहधारियोंके मध्यमें निश्चय तुम प्रशंसाके योग्य हो,क्योंकि जो सबके गुरु नारायण हैं, उनमें ऐसी बुद्धि लगाई है ॥३०॥ यह जो कृष्ण बलदेव हैं,सो विश्वके लिये उपादान कारण हैं; इसीसे पुरुष प्रकृतिरूप हैं, सब प्राणियोंमें प्रवेश करके अनेक प्राणियोंके अनेक प्रकारके ज्ञानके साक्षी और अनादि हैं॥३१॥प्राण छूटते समय यह पुरुष क्षणभर शुद्ध मनको जिन भगवान्

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च॥शृण्वंत्यश्रूण्यवस्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा॥२८॥ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ॥वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥२९॥ उद्धव उवाच ॥ युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुंदः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम्॥निर्हृत्य कामाशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः॥३२॥ तस्मिन्भवंतावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन्किं वाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥३४॥ हत्वा कंसं रंगमध्ये प्रतीपं सर्वसात्त्वताम् ॥ यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रमें लगा' शीघ्र ही कर्मोंकी वासनाओंको छोड सूर्यके समान प्रकाशवान् ब्रह्मरूप होकर परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥ जब सबके आत्मा कार्य और कारणसे मनुष्यरूप धरे परिपूर्ण नारायणमें अतिशय करके तुम भक्ति करते हो, तो फिर तुमको क्या करना शेष रहा ॥ ३३ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रही व्रजको आवेंगे, क्योंकि वह भक्तोंका पालन करनेवाले हैं इसलिये तुम्हें और यशोदाको वह थोडे ही दिनोंमें आनकर आनन्द देंगे ॥ ३४॥ सब यादवोंके वैरी कंसको रंगभूमिमें मार तुम्हारे पास आनकर श्रीकृष्णचंद्रने जो वचन

कहा था, उसे अवश्य सत्य करेंगे॥३५॥ हे बड़भागियो ! अब तुम कुछ खेद मत करो, कृष्णको अपने पास ही देखोगे, क्योंकि जैसे लकडीमें ज्योति रहती है उसी प्रकार सब प्राणियोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रहते हैं ॥३६॥ श्रीकृष्णचन्द्रको न कोई प्यारा है, न कोई कुप्यारा है, न कोई, उत्तम है, न कोई अधम है, न कोइ समान है, न विषम है और न उन्हे अभिमान है। वह तो समदृष्टि हैं ॥३७॥ न उनके माता है, न पिता है, न स्त्री है, न पुत्रादिक हैं, न उनके देह है और उनका जन्म भी नहीं है ॥ ३८ ॥ इन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके कर्म भी नहीं हैं क्योंकि वह तो संसारमें देव, मनुष्य, नृसिंहादिकोंकी जो योनि हैं, उनमें खेलनेके लिये और साधुपुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये प्रगट होते

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमंतिके ॥ अंतर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वाऽपि समो नास्यासमोऽपि वां ॥ ३७ ॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥३८॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते॥३९॥ सत्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान्॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हंत्यजः ॥४०॥ यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥

हैं ॥ ३९॥ निर्गुण भगवान् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीन मायाके गुणोंको अंगीकार करते हैं और निर्गुणसे अलग अजन्मा भगवान् क्रीडा करके विश्वको उत्पन्न, पालन तथा संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे बालक चाईं माईं फिरता है, तब उसकी दृष्टि फिरती है और उससे पृथ्वी फिरतीसी दिखलाई देती है, इसी प्रकार चित्त जो कर्त्ता है उसमें अहंकारसे आत्मा भी कर्त्तासा दिखाई देता है॥ ४१॥ यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे ही पुत्र नहीं हैं, वरन् सबके पुत्र हैं, आत्मा है, पिता हैं, माता हैं और ईश्वरोंके ईश्वर हैं॥४२॥जो कुछ दीखता है और

जो कुछ हो चुका और जो होता है और जो होगा और जो स्थावर जंगम हैं, जो कुछ बडा छोटा है सो सब श्रीकृष्णचन्द्रके विना अतिशय करके कहनेके योग्य नहीं है. परमार्थरूप श्रीकृष्णहैं,सोई सर्वरूप हैं ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! इसी प्रकार वार्ता करते २ सब रात्रि बीत गई और गोपियें प्रातःकालको उठ, दीवे बाल, देहलियोंका पूजन कर, दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ दीवोंसे प्रकाशमान मणियोंके जडाऊ गहनोंसे उस समय वह गोपियें अत्यन्त शोभायमान लगने लगीं, नेतियोंके खैंचनेसे भुजाओंके चूडी कंकण हिल रहे हैं,नितम्ब हिलते जाते हैं,स्तनों पर हार भी हिलता है,कुण्डलोंसे प्रकाशमान कपोल और अरुण केशरकी खौर मुखपर लगी है॥४५॥

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यंतीता नंदस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ॥ गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्वास्तून्समभ्यर्च्य
दधीन्यमंथन् ॥ ४४ ॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकंकणस्रजः ॥ चलन्नितंबस्तनहारकुंडलत्विषत्कपो
लारुणकुंकुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनं व्रजांगनानां दिव मस्पृश निः ॥ दध्नश्च निर्मंथनशब्दमि
श्रितो निरस्यते येन दिशाममंगलम्॥ ४६॥ भगवत्युदिते सूर्ये नंदद्वारि व्रजौकसः॥दृष्ट्वा रथं शातकौंभं कस्यायमिति
चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥ अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥

कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र जब व्रजबालाओंने गाया, तब वह गीत स्वर्ग तक पहुँचा और दहीके मथनेका शब्द भी उस गीतमें मिल रहा था, उन गोपियोंके गीतोंसे दिशाओंके सब अमंगल दूर हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदय होने पर नन्दरायजीके दरवाजे पर सुनहरी साजका रथ खडा देखकर “यह किसका रथ है” इस प्रकार कहते व्रजवासी नर नारी कहने लगे ॥४७॥ कि क्या कंसके कार्यका साधक अक्रूर आया है ? जो कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको मथुरा ले गया है, फिर अपने स्वामीको मरवाकर अब

क्यों आया ? अब क्या हमें ले जाकर हमारे मांसके पिंड बनाकर देगा ? इस प्रकार गोपियें आपसमें बातें कर ही रही थीं कि,इतनेहीमें उद्धवजी संध्योपासनादि नित्यकर्म करके आये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ दोहा–उद्धव सैंतालीसमें, पाय कृष्ण आदेश । गोपिनको जाके दियो,तत्त्वज्ञान उपदेश ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! लम्बी भुजा,नवीन कमलसे नेत्र, पीतांबर पहरे,कमलकी माला धारण किये, प्रकाशमान मुखारविन्द, स्वच्छ कानोंमें कुण्डल पहरे, कृष्णके अनुचर उद्धवजीको देख व्रजकी स्त्रियोंको आश्चर्य प्राप्त हुआ और परस्पर कहने लगीं ॥ १ ॥ कि, सुंदर रूप यह कौन है?कहांसे

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम्॥ इति स्त्रीणां वदंतीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे नंदशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ श्रीशुक उवाच॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलंबबाहुं नवकंजलोचनम् ॥ पीतांबरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविंदं परिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥ शुचिस्मितः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः॥इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदांबुजाश्रयम् ॥ २ ॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः॥ रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ॥ भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान्प्रियचिकीर्षया ॥४॥अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबंधो बंधूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

आया है ? भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकासा वेष है, वैसे ही गहने पहर रहा है, इस प्रकार सब गोपियोंने श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविन्दका भक्त जान उद्धवजीको चारो ओरसे घेर लिया ॥ २ ॥ और अत्यन्त अधीनतासे नम्र हो लाजभरी हँसन, चितवन तथा मीठी वाणीसे सत्कार कर एकांत आसनपर बैठे उद्धवजीको श्रीकृष्णचंद्रके पाससे संदेशा लेकर आये जान वह गोपियें पूँछने लगीं॥३॥ कि,हमें जान पडता है तुम श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक हो और माता पिताके प्रसन्न करनेको तुम्हे श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है ॥ ४ ॥ क्योंकि इस व्रजमें और कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हे स्मरण

आवे और मातापिताका तो स्नेह बडे वैराग्यवान् पुरुषपर भी नहीं छूट सकता॥५॥इसीकारण औरोंसे यहां अपने कार्यके लिये मित्रता जनाई. जब तक काम पडा तबतक मित्रता रक्खी, जैसे पुरुष स्त्रियोंसे प्यार करता है और भौंरा फूलोंसे प्यार रखता है, यह स्वार्थकी ही प्रीति है ॥ ॥ ६ ॥ यद्यपि उन श्रीकृष्णचन्द्रने हमसे प्रीति करी थी, परन्तु तो भी दरिद्री पुरुषको जैसे वेश्या त्याग देती है, प्रजा असमर्थ राजाको त्याग देती है और दक्षिणा पाकर पुरोहित जैसे यजमानको त्याग देता है ॥ ७ ॥ पक्षी जैसे फलरहित वृक्षको छोड देते हैं,अभ्यागत भोजन करके जैसे गृहको त्याग देते हैं, जार पुरुष भोग करके जैसे स्त्रीको त्याग देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमको त्यागकर चले गये ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दूत उद्धवजी जिस समय ब्रजमें आये उसी समय गोपियोंकी

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडंबनम् ॥ पुंभिः स्त्रीषु कृतां यद्वत्सुमनस्स्विव षट्पदैः॥६॥ निस्स्वं त्यजंति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम्॥ ७ ॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ॥ दग्धं मृगास्तथाऽरण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम्॥ ८ ॥ इति गोप्यो हि गोविंदे गतवाक्कायमानसाः॥ कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥ गायंत्यः प्रियकर्माणि रुदंत्यश्च गतह्रियः ॥ तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥१०॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायंती कृष्णसंगमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत्॥११॥ गोप्युवाच ॥ मधुप कितवबंधो मा स्पृशांघ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः ॥ वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडंब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

वाणी, देह, मन इत्यादि गोविन्दमें जाय लगे, अधिक क्या कहें, लौकिक व्यवहार खानपानादिक भी सब छूट गये ॥ ९ ॥ अपने प्यारेके कर्मोंको गाने लगीं और भगवान् केशवमूर्तिकी बाल अवस्था तथा तरुण अवस्थाके जो चरित्र थे, उनको याद कर, लाज त्याग, रोती हुई उद्धवजीसे पूछने लगीं॥ १०॥और कोई एक गोपी उद्धवजीका स्वरूप देख, श्रीकृष्णके संगका ध्यान कर भौंरेको देख, उसे प्यारेका भेजा हुआ दूत जान यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगी, अर्थात् भौंरेके बहाने उद्धवजीसे कहने लगी॥११॥ गोपी बोलीं कि, हे मधुप ! हे कपटी मित्र ! हमारे चरणोंका स्पर्श मत कर, क्योंकि भौंरोंका देह तो काला और मुख पीला होता है और तेरे तो सौतके कुचोंसे लगी पुष्पोंकी

मालाकी केशर डाढी मूछोंमें लगी है, जो तू स्पर्श करेगा तो हमें स्नान करना पड़ेगा- यदि कहो कि मुझे तो तुम्हारें प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है, सो तुम जाकर मथुराकी ही स्त्रियोंको प्रसन्न करो। जैसे तू हमारे पास आया है, इसी प्रकार यादवोंकी स्त्रियोंके पास भी गया होगा, परंतु यादवोंकी सभामें इस बातकी हँसी हुई होगी कि, कृष्णका दूत ऐसा निर्लज्ज है ॥ १२ ॥ जैसा तू है, वैसा ही तेरा स्वामी है, जसे तू फूलोंकी सुगंध ले उसी समय उनको छोड़ देता है; उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी मोहित करनेवाला अपने अधरोंका अमृत एकबार पिलाय हमको त्याग दिया परंतु बडे आश्चर्यकी बातहै कि लक्ष्मी उनके चरणकमलका कैसे सेवन करती हैं? अनुमान होता है कि, श्रीकृष्णके मीठे २ वचनोंसे उनका चित्त हर गया होगा, इसलिये वह पड़ी रहती हैं॥ १३॥ हे भ्रमर। तू हमारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचरित्र क्यों गाता है,

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक्॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपिबत हतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडंघ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयंतीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृंभस्य यास्स्युः ॥ चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ॥ स्वकृत इव विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका: व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥ १६ ॥

क्योंकि हमने तो घर इत्यादि भी त्याग दिया है, श्रीकृष्णकी सखी मथुराकी जो स्त्रियें हैं उनके आगे उनका प्रसंग गा, जिनकी कामाग्नि वह शान्त करते हैं, वह प्यारी सखियें तुझे रीझकर कुछ देंगी ॥ १४ ॥ हे कपटी ! कपटभरी रुचिर हाँसीवाले श्रीकृष्णचन्द्रकी भ्रुकुटीकी मरोर ऐसी है कि, स्वर्ग, पृथ्वी और पातालकी स्त्रियें भी उन्हें दुर्लभ नहीं हैं लक्ष्मीजी जिनके चरणकी सेवा करती हैं, वहां हमारी क्या चल सकती है, परंतु तो भी हमने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उत्तमश्लोक नाम सुना है, सो जब हम गरीबिनियोंकी सुध लेंगे तब वह नाम रहेगा; नहीं तो जाता रहेगा ॥ १५ ॥ अपने शिरको मेरे पांवोमेंसे उठा ले, क्योंकि मैं तेरी सम्पूर्ण घातें जानती हूँ, तू मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे

दूतकर्म सीखकर चतुर हो गया है, देखो हमने इस संसारमें श्रीकृष्णचन्द्रके लिये पति, पुत्र, लोक, परलोक सब छोड़ दिया और वह हमें छोड़कर चले गये. अब उनसे हमें क्या मेल मिलाप करना ! इस प्रकार गोपियें कहने लगीं ॥ १६ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पहले कर्मोंकी सुध करके कहने लगीं कि, हमको श्रीकृष्णसे भय लगता है, क्योंकि पहले अयोध्यामें राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्र हुए तो सुग्रीवकी ओर होकर वधिकके समान वालिको मारा, व्याध तो मांस खानेके लिये मारै है परन्तु इन्होंने तो व्यर्थ ही मारा, बन्दरका कोई मांस नहीं खाता है, दूर्वादलश्यामके सुन्दर रूपपर रीझकर रावणकी बहन शूर्पणखा आई तो लक्ष्मणको सिखा स्त्रीके वश हो उसके नाक कान कटवा लिये. फिर वामन अवतार लेकर काकके समान आचरण कर राजा बलिकी भेंट पूजा ले उसीको बांध दिया. इस कारण हम इस कालेकी

मृगयुरिव कपींद्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्॥ बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टयद्ध्वांक्षवद्य
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथाऽर्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वंद्वधर्माविनष्टाः ॥
सपदि गृहकुटुम्बं दीन मुत्सृज्य दीना बहव इह विहंगा भिक्षुचर्यां चरंति ॥ १८ ॥ वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं
श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमंत्रिन्भण्यता
मन्यवार्ता ॥ १९ ॥

मित्रतासे अघाय गईं, अब कभी भूलकर भी कालोंसे मित्रता न करेंगी. तब उद्धवजी बोले कि, मैं जिस समयसे आया हूँ तुम उनकीही बातें कर रही हो, तो गोपी बोलीं कि, जैसे उनमें और गुण हैं उसी प्रकार यह अवगुण है, यद्यपि उनको दुःखदायी जानती हैं, परन्तु तौ भी उनकी बातोंका छूटना तो हमसे महाकठिन है ॥ १७ ॥ जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लीलाचरित्ररूपी अमृतका कानोंमें एक कणका भी स्वाद ले लिया है, वह राग, द्वेष त्याग असत्यके तुल्य हो दुःखरूप पुत्र पौत्रादिकोंको त्याग भोगोंको छोड़ पक्षीके समान घर घर भीख माँगते फिरते हैं ॥ १८ ॥ जैसे अज्ञानी कृष्णसार हरिणकी स्त्री हरिणी बधिकके गीतसे मोहित होकर घायल हो जाती है, उसी प्रकार हमने कपटी श्रीकृष्णका वचन सत्य मानकर यह देखा, जिनके नखोंके स्पर्शसे हमें भी कामदेवकी पीड़ा उत्पन्न हुई, इसलिये हे दूत ! उस कपटीकी बात

जाने दे और बात कह ॥ १९ ॥ हे प्यारेके सखा ! क्या तू फिर आया ? तुझे प्यारे कृष्णने भेजा है,इस कारण हे दूत ! तू पूजा करनेके योग्य है और जो तुझे इच्छा हो सो वर मांग,क्या लक्ष्मीका संग न छोड़नेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास हमें ले चलना चाहता है ? परंतु कैसे ले जायगा, क्योंकि उनके वक्षस्थलमें तो लक्ष्मीजी संग ही रहती हैं,इसलिये हमारा क्या प्रयोजन है॥२०॥हे सौम्य ! भला श्रीकृष्णचन्द्र तो अभी मथुरामें वास करते हैं, कभी उन्हें अपने माता पिता नन्द यशोदा आदिकका भी स्मरण आता है और कभी अपने बन्धु बांधवोंकी भी याद करते हैं, कभी गोपियोंका भी स्मरण करते हैं और कभी हमारी बात भी चलाते हैं, अगरके समान सुगंधवाली भुजा कभी हमारे शिरपर भी आकर

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुंधे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ॥ नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वंद्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बंधूश्च गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते भुजमगुरुसुगंधं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सांत्वयन्प्रियसंदेशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥ उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥२३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥

धरेंगे ? ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहना गोपियोंकी सुन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके सन्देशेको समझाने लगे ॥२२॥ उद्धवजी बोले कि, हे गोपियो ! तुमने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाया है इसलिये तुम निश्चय कृतार्थ हो गयीं और सम्पूर्ण लोकोंमें तुम्हारा यश होगा ॥ २३ ॥ क्योंकि दान, व्रत, तप, होम, जप, यज्ञ, वेदपाठ, इन्द्रियोंका रोकना और अनेक प्रकारके कल्याणके उपाय सब करनेका फल यही है, जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें भक्ति हो ॥ २४ ॥ बडे मुनीश्वरोंको

दुर्लभ भक्ति तुमने उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें करी, यह बड़ा मंगल है * ॥ २५ ॥ पति, पुत्र, देह, भाई बन्धु और अपने घरोंको त्याग परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको तुमने अपना पति करा, यह बहुत बड़ा मंगल हुआ ॥ ॥ २६ ॥ हे बडभागियो ! इन्द्रियोंकी जिनमें गम नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें विरहसे एकान्तभक्ति तुम्हें उत्पन्न हुई, यह तुमने मेरे ऊपर बडा अनुग्रह किया॥ २७॥ हे मंगलरूपिणियो ! तुमको सुख देनेवाले प्यारेका संदेशा कहता हूँ सो सुनो, श्रीकृष्णचन्द्रके रहस्यकार्यके करनेवाले संदेशेको लेकर मैं आया हूँ ॥ २८ ॥ उद्धवजी गोपियोंसे भगवान्ने श्रीमुखसे जो वचन कहे थे सो कहने लगे. श्रीभगवान्ने

दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च ॥ हित्वाऽवृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वात्म
भावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥ विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां
सुखावहः ॥ यामादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वा
त्मना क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥ तथाऽहं च मनःप्राणभूतेंद्रियगुणात्मना ॥ २९ ॥
आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥ आत्ममायानुभावेन भूतेंद्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥

उपदेश किया है कि,सबका उपादानकारण मैं हूँ सो मुझसे तुम कभी दूर नहीं हो, जैसे आकाश, पवन, जल, पृथ्वी, तेज ये पञ्चतत्त्व समस्त प्राणियोंकी देहमें रहते हैं उसी प्रकार मन, बुद्धि,प्राण,इन्द्रिय और गुण इनका आश्रय हूँ अ॥ २९ ॥ पनेमें अपनेसे अपनेको उत्पन्न करता हूँ और अपनी मायाके प्रभावसे पञ्चभूत इन्द्रियें,तीनों गुण इनरूप जो अपनपो है, इसी लिये सृष्टिको उत्पन्न,पालन और नाश करता हूँ ॥ ३० ॥

---

* शंका–गोपियोंने क्या बडी भक्ति कृष्णमें की थी कि,जिस भक्तिकी प्रशंसा उद्धवजीने करी,क्या ऐसी भक्ति योगीलोग नहीं कर सकते? यद्यपि कोई कहे कि, पति आदि सब परिवारसे कपट करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रीति गोपियोंने करी, तो कुटुम्बसे कपट करना यह कौनसा उत्तम कर्म है ? कपटको तो मुनिलोग क्या सबही लोग बुरा कहते हैं ?

उत्तर–कपट करके जो ऊपरसे नवधा भक्ति भी करै सो भक्ति नहीं,वह तो धर्मके काटनेके लिये कतरनी है. मनुष्यके ऊपर तो भक्तिका लक्षण एक भी नहीं दीख पडै और मनमें सब भक्तिके लक्षण होंय वह भक्ति मुक्तिकी देनेवाली है,गोपियोंने ऊपरसे तो निन्दारूप कर्म किये और मनमें भक्तिका सब लक्षण करती थीं, इसलिये उद्धवने कहा कि, गोपियोंने जो भक्ति भगवान्की की है सो भक्ति मुनिजनोंको दुर्लभ है।

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ॥ सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥ येनेंद्रियार्थान्ध्यायेत मृषास्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुंध्यादिंद्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥एतदंतः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम्॥त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रांता इवापगाः॥३३॥यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम्॥मनसःसन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥३४॥यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥३५॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरंत्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥३६॥ या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिंतया ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशाऽऽगतस्मृतीः ॥ ३८ ॥

यहां यह शंका है कि, आत्मा पञ्चभूतरूप हो तो उसे पञ्चभूतोंके संग दोष लगता है. इसका उत्तर देते हैं कि, आत्मा तो शुद्ध है, क्योंकि मायाके गुणोंमें जाता है,सबसे अलग और ज्ञानरूप है,अहंकारके कारण जाननेमें नहीं आता, आत्माकी न्यारी अवस्था है,शुद्धता कैसे ? तो कहते हैं सुषुप्ति,स्वप्न, जाग्रत् यह जो मनकी वृत्ति हैं, उनसे प्रतीत होता है॥३१॥जैसे जागता हुआ मनुष्य स्वप्नको झूंठा ही जानता है, उसी प्रकार पंडितजन जिनको झूंठा मानते हैं ऐसे विषयोंका जिनसे चिन्तवन किया जाता है और चिंतवन करते इन्द्रियोंपर असर होता है, उस मनको आलस्य त्यागकर रोकना चाहिये॥३२॥जब जिस मनुष्यका मन रुक जाता है तब वह पुरुष कृतार्थ होता है और यह कहते हैं कि,वेद पढ़नेका,अष्टांगयोग करनेका, अनात्माके विचार करनेका त्याग, सब इंद्रियोंका जीतना,सत्य बोलना इत्यादि कर्मोंसे विवेकी पुरुषोंसे मन रुकता है, यही फल है, जैसे नदियोंका अंत समुद्रमें होता है ॥३३॥३४॥ जैसे दूर रहे प्यारेमें स्त्रीका मन लगा रहता है और जो सदा नेत्रोंके आगे रहै उसमें चित्त नहीं रहता ॥ ३५ ॥ यदि संपूर्ण वृत्ति त्याग मनको मुझ (कृष्ण) में लगाये नित्य मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझे प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥ हे मंगलरूपिणियो ! जिस समय मैंने रात्रिके समय वृन्दावनमें रासक्रीड़ा करी थी, उस समय जिन गोपियोंको उनके स्वामियोंने रोक लिया था इसी कारण वह रासक्रीड़ामें न आ सकीं तब वह मेरी लीलाओंका ध्यान करके मुझे ही प्राप्त हुईं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार अपने प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उपदेशको सुनकर व्रजकी गोपियें प्रसन्न हो उनका स्मरण कर उद्धवजीसे बोलीं ॥ ३८ ॥

अब गोपियें कहने लगीं कि, यादवोंका दुःख देनेवाला अपने भृत्यों सहित राजा कंस मारा गया, यह बड़ा मंगल हुआ और पूर्ण मनोरथको प्राप्त हो अपना हित करनेवालोंसहित श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हैं, यह भी बड़ा मंगल है ॥ ३९ ॥ हे साधु उद्धव! रामका छोटा भाई कृष्ण हमसे जो प्रीति करता था सो प्रीति क्या अब मथुराकी स्त्रियोंसे करता है? वह लाजभरी हँसनि और उदार चितवनिसे उनका सत्कार करते हैं? ॥ ४० ॥ रतिविशेषके जाननेवाले प्यारे कृष्ण मथुराकी स्त्रियें वचनोंसे विलासोंसे सब सत्कार करेंगी तब, कैसे बँधेंगे ॥ ४१ ॥ हे साधु उद्धव! भगवान् गोविंद प्रसंग पाय मथुराकी स्त्रियाकी सभामें बैठ जब कभी बातें करते हैं, तब हमारा भी कभी स्मरण करते हैं? ॥ ४२ ॥

गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत ॥ दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ॥ ३९ ॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविंदः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथांतरे ॥ ४२ ॥ ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृंदावने कुमुदकुन्दशशांकरम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेंद्रो वनमंबुदैः ॥ ४४ ॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताऽहितः ॥ नरेंद्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥

हे उद्धवजी! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कभी उन रात्रियोंका स्मरण आता है कि, जिनमें कुमोदिनी कुन्द फूल रहे थे और चन्द्रमाकी चाँदनीसे रमणीय वृन्दावनमें पाँवोंमें नूपुर बजते जाते थे और हमारे संग रमण करते थे और हमने उनकी स्तुति की थी अब वह कभी हमें याद करते हैं या नहीं? ॥ ४३ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतुसे दग्ध वनके सींचनेको इन्द्र आता है, उसी प्रकार कृष्णके दिये शोकसे जली हुई हमको हाथके स्पर्शसे जीवन देते दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र कभी यहां आवेंगे कि नहीं? ॥ ४३ ॥ अब श्रीकृष्णचन्द्र यहां क्यों आवेंगे, क्योंकि

अब उन्हें राज्य मिल गया, शत्रु मारे गये, राजाओंकी कन्या ब्याह लीं, सब मित्र उनके पास हैं इसलिये वह वहाँ ही प्रसन्न हैं यहाँ आनकर क्या करेंगे ॥४५॥ लक्ष्मीके पति पूर्णकाम श्रीकृष्णको वनकी रहनेवाली हमसे और राजाओंकी कन्याओंसे क्या प्रयोजन है॥४६॥ आशाका त्याग ही बडा सुख है, यह पिंगला वेश्याने (एकादश स्कन्धमें) कहा है कि, निराशाके समान सुख नहीं है, यद्यपि यह जानती हैं, परन्तु तो भी हमारी आशा छूटनो अत्यन्त कठिन है॥४७॥ भगवान श्रीकृष्णचन्द्रकी एकान्तकी बातें त्यागनेको कौन समर्थ है? यद्यपि उनके रखनेकी इच्छा नहीं, परन्तु तो भी लक्ष्मी अंगसे अलग नहीं होती है॥४८॥ हे उद्धव! बलदेवजीके संग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिसमें विचरन

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः॥श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेताऽर्थः कृतात्मनः॥४६॥परं सौख्यं हि नैराश्यं
स्वैरिण्यप्याह पिंगला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोक
संविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते क्वचित् ॥ ४८ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ संकर्ष
णसहायेन कृष्णेनाऽऽचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥ पुनःपुनः स्मारयंति नंदगोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव
शक्नुमः॥ ५० ॥ गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ॥ माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तद्विस्मरामहे ॥ ५१ ॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविंद गोकुलं वृजिनार्णवे ॥ ५२ ॥

करते थे वह नदियें, पर्वत, वनके प्रदेश, गौ, बांसुरीका शब्द ॥ ४९ ॥ यह सब बार २ श्रीकृष्णके चरित्रोंको याद दिलाते रहे हैं, लक्ष्मीके आस्पद उनके चरणचिह्न देख हम भी विस्मरण नहीं कर सकतीं॥५०॥ मनोहर चलन, उदार हँसनि, लीलापूर्वक चितवनि मनोहर वचन इनसे जिन्होंने हमारी बुद्धि हर ली, उन श्रीकृष्णचन्द्रको हम कैसे भूल सकती हैं॥५१॥ इसके उपरान्त वे सब गोपियें मथुराकी ओरको हाथ उठाय पुकारने लगीं कि, हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे दुःख हरनेवाले! हे गोविन्द! यह नाम तो गायोंका पालन करोगे तभी रहेगा, नहीं तो इस नामसे हाथ धो बैठो और आपको स्मरण होगा कि, इन्द्रने जब वर्षा करी थी तो तुमने संकल्प किया था कि, मैं अपने व्रजकी रक्षा करूंगा।

९३०

सो अब तो तुम्हारे ही विरहरूपी समुद्रमें संपूर्ण गोकुल डूबा जाता है, इसका शीघ्र आनकर उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! श्रीकृष्णके संदेशेसे विरह ताप मिटाय इन गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको परमेश्वर जान और परमेश्वरको अपना आत्मा निश्चय कर उद्धवजीकीपूजा करी ॥ ५३ ॥ गोपियोंका शोक दूर करनेके लिये कितने ही मास उद्धवजीने ब्रजमें वास किया और श्रीकृष्णकी लीला कथाओंको गाय गाय ब्रजवासियोंको परमानंद दिया ॥ ५४ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजीने ब्रजमें वास किया वह दिन ब्रजवासियोंको श्रीकृष्णकी लीलागानसे क्षणके समान बीत गये ॥ ५५ ॥ नदी, पर्वत, वन, गुफा, पुष्पित वृक्ष इत्यादिकोंको देख हरिदास उद्धवजी ब्रजवासियोंको श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण करानेलगे ॥५६॥ गोपियोंके चित्तको इस प्रकार श्रीकृष्णमें लीन होनेसे व्याकुल देख परमप्रसन्न हो गोपियोंको दण्डवत् करके कहने लगे ॥ ५७ ॥ इन गोपोंकी स्त्रियोंका पृथ्वीपर जन्म सफल है क्योंकि सबके आत्मा गोविन्दमें इनका अत्यन्त प्रेम हुआ है जिस प्रेमका संसारसे, भयभीत मुमुक्षु पुरुष और मुक्त और हम भक्त इच्छा करते हैं. अनन्त श्रीकृष्णचंद्रकी कथामें जिसका अनुराग है उसे ब्रह्म जन्मसे क्या प्रयोजन है. अथवा एक तो शुद्ध माता पितासे, द्वितीय गायत्री उपदेशसे, तृतीय यज्ञदीक्षासे जो ब्राह्मणके तीन जन्म हैं, उनसे क्या प्रयोजन है॥५८॥ वृन्दावनकी विचरनेवाली व्यभिचारदृष्टिसे दूषित गोपी स्त्रियें कहां और परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें आरूढ

श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयांचक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥
उवास कतिचिन्मासान्गोपीनां विनुदञ्छुचः ॥ कृष्णलीलाकथां गायन्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ या
वंत्यहानि नंदस्य ब्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ॥ ब्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रो
णीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन्रेमे हरिदासो ब्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णाऽऽवे
शात्मविक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविंद एव
निखिलात्मनि रूढभावाः ॥ वांछंति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनंतकथारसस्य ॥ ५८ ॥ क्वेमाः
स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः॥ नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्त
नोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥

भाववाले मन कहां ? क्योंकि निरंतर भगवान्‌को स्मरण कर अज्ञानी पुरुष भी कल्याण प्राप्त करता है, जैसे अमृतका सेवन करनेवाला पुरुष अमर हो जाता है ॥५९॥ सर्वकाल अंगमें रहनेवाली लक्ष्मीपर भी यह प्रसन्नता न हुई और कमलके गन्धकीसी कान्तिवाली देवांगनाओंको भी जो प्रसाद नहीं मिला सो रासके उत्सवमें श्रीकृष्णचन्द्रके भुजदंडोंमें गलबाहीं डाल ब्रजसुन्दरियोंको मिला॥६०॥ इन गोपियोंके चरणरजका सेवन करनेवाले वृन्दावनमें गुल्म, लता,औषधियोंमें कुछ भी मेरा जन्म हो जो गोपियें दुस्त्यज अपनेभाई बंधु,बडोंके मार्गको त्याग वेदगम्य मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रके मार्गका सेवन करती हैं॥६१॥ जो लक्ष्मीसे पूजित पूर्णकाम,ब्रह्मादिक देवता और योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्याः॥रासोत्सवेऽस्य भुजदंडगृहीतकंठलब्धा
शिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥
यादुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥६१॥ या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥
॥ ६२॥ वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः॥यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नंदमेव च ॥ गोपानामंत्र्यदाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥ तं निर्गतं समासाद्य
नानोपायनपाणयः ॥ नंदादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥

चिंतवन करते, इन श्रीकृष्णके चरणविन्दोंको राससभामें स्तनोंके ऊपर धर आलिंगन कर जिन गोपियोंने तापको दूर किया ॥ ६२॥ नंदके ब्रजकी स्त्रियोंके चरणकी रजको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ, जिन गोपियोंकी गाई हरिकथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरान्त उद्धवजी गोपियोंसे,यशोदासे और नन्द आदिक सब ब्रजवासियोंसे आज्ञा मांग गमनसमय अपने रथमें जा बैठे ॥ ६४ ॥ उद्धवजीके बिदा होनेके समय नंद आदिक सब ब्रजवासी अनेक प्रकारकी भेंट हाथमें ले

उद्धवजीके पास आय स्नेहसे नेत्रोंमें आँसु भर कहने लगे ॥६५॥ कि, हमारे मनकी वृत्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लगी रहै और हमारी वाणी उनका नाम जप करती रहै और हमारा शरीर उन श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करता रहै ॥६६॥ अपने कर्मानुसार ईश्वरेच्छासे जिस किसी योनिमें हम जायँ, तो जो कुछ हमने मंगलरूप कर्मकरे हैं अथवा दान करे हैं उनका फल यही मांगती कि, श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति बनी रहै ॥ ६७ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार गोपियोंने श्रीकृष्णकी भक्तिसे उद्धवजीका सत्कार किया, तब उद्धवजी उनसे बिदा हो कृष्णपालित

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ॥ मंगलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ॥उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥६८॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात्॥६९॥ इति श्रीमद्भा० महा० दश० पूर्वा० उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरंध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

931

मथुरापुरीमें आये ॥ ६८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम कर व्रजवासियोंकी भक्तिकी अधिकता वर्णन करी,इसके उपरांत वसुदेव और बलदेवजीको प्रणाम करके राजा उग्रसेनको भेंट दी ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायामुद्धवप्रतियानवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥ दोहा-अडतालिस अध्याय हरि, कुबरी रमण कराय* । हस्तिनपुर अक्रूरको, दीन्हो कृष्ण पठाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरांत सबके आत्मा और सबके देखनेवाले छः प्रकारके ऐश्वर्य युक्त भगवान्

---

* शंका-कुबरी और कृष्णका रमण सुन हमारे मनमें बडा भ्रम हुआ,क्या कारण जो जगत्के ईश्वर होकर कुब्जाके संग रमण किया ?

उत्तर-चाहे संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ हो चाहे गृहस्थ हो,चाहे ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य हो चाहे स्त्रीपातित हो, चाहे नपुंसक हो चाहे सब कर्ममें भ्रष्ट हो, चाहे पुरुष हो परन्तु भगवान्की सेवा करे वही भगवान्को प्यारा है,सब कर्ममें नीच हो तो कुछ भगवान् बुरा नहीं मानते और बडा उत्तम हो और भगवान्की प्रीति न करे तो उसको भगवान् शत्रुसमान मानते हैं,भगवान् भक्तजनोंकी प्रेमरूप रस्सीमें बँधेहुए हैं जैसा भक्तजन भगवान्को नाच नचाते हैं,वैसा आप भगवान् नाचते हैं,जैसे काष्ठकी पुतली नचानेवाले पुरुषके अधीन है,ऐसेही भगवान्भी भक्तोंके अधीनहै और जैसे बैलकी नाकमें नाथ डालके मनुष्य जहांको चाहे वहांको लेजाताहै और वेदरूपकृष्ण वेदकी ऋचारूप कुब्जा भगवान्की दासी,इसलिये जैसी कुब्जाने इच्छा करी वैसी ही भगवान्ने उसकी अभिलाषा पूर्ण करी ॥ कहीं ऐसा भी लिखा है कि,पुष्पांगी नाम-

श्रीकृष्णचन्द्र कामसे पीडित कुब्जाका प्रिय करनेके लिये उसके घर गये ॥ १ ॥ कैसा वह घर है कि, जहाँ अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें धरी हैं, कामके उद्दीपन करनेवाले जिसमें चित्र लिखे हैं, मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं, पताकायें फहरा रही हैं, चंदोबे तन रहे हैं, शय्या तथा शोभायमान आसन बिछे रहे हैं, सुगन्धकी धूप लग रही हैं, दीपक प्रज्वलित हो रहे हैं, और माला, अतर, अरगजा आदिसे वह घर अत्यन्त शोभाय मान हो रहा है ॥ २॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने घरमें आया देख कुब्जा अति शीघ्रतासे आसनपरसे उठ, घबराहट

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनादिभिः ॥ धूपैः सुरभिभिर्दीपैः
स्रग्गंधैरपि मंडितम् ॥ २ ॥ गृहं तमायांतमवेक्ष्य साऽऽसनात्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा ॥ यथोपसंगम्य सखी
भिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधु तयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ॥
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गंधतांबूलसुधास
वादिभिः ॥ प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥

को प्राप्त हो सखियोंको संग लिय श्रीकृष्णचन्द्रके पास आय सुंदर आसन बिछाय चरण धो सत्कार करने लगी ॥ ३ ॥ उसी प्रकार भलीभाँति पूजित हो, उद्धवजी आसन स्पर्श कर पृथ्वीमें बैठ गये और लौकिक लीलाओंके करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रतासे सुन्दर बिछी हुई शय्यापर पहुँचे ॥ ४ ॥ इसके उपरांत कुब्जा भी स्नान कर, चंदन लगाय, वस्त्र पहर, गहने, माला, अतर, अरगजा, तांबूल और

—एक वेश्या थी परन्तु भगवान्की बडी भगतिनि थी, उसने यह सुना कि, रामचन्द्र वनको गये पीछे वह भी चलदी, वनमें जाकर उसको भगवान्का दर्शन हुआ और देखकर मोहित होगई और यह चाहा कि, रामचन्द्रके साथ रमणकरूं, एकसमय रामचन्द्रको अकेला पाकर उनकी कुटीमें जा बैठी, पीछेसे सीता भी वहां आगई और उस वेश्याको वहांपरबैठी देखा तो बडा क्रोधकर सीताने शाप दिया कि, अगले जन्ममें तेरे सब अंग भंग होंगे, और तू कुवरी होगी और राक्षसकी दासी होगी । तब श्रीरामचन्द्रजीने वेश्यासे कहा कि, जब मैं कृष्णावतार लूंगा तो तेरा मनोरथ पूर्ण करूंगा, अब तू जा तब तो उस पुष्पांगी वेश्याने शापके भयसे बडी स्तुति की, तब भगवान्ने वर दिया कि, जिस समय मेरा दर्शन तुझको होगा, उसी समय तेरा देह परमोत्तम हो जायगा और एक दिन तेरे घरमें वास करूंगा, उस समय तेरी सब मनोकामना पूरी होगी ॥

अमृतके समान मादक वस्तुसे अपनेको बनाय ठनाय, लाजभरी लीलापूर्वक मुसकान, कटाक्षभरी चितवनसे मोहित हुई श्रीकृष्णचन्द्रके पास आई ॥५॥ नवीन समागमकी लज्जासे शंकासहित कुब्जाको बुलाकर कंकणसे शोभायमान हाथको पकड़ शय्यापर बैठाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके साथ रमण करने लगे, अहो ! कुब्जाका भाग्य जिसने चंदन लगानेके अतिरिक्त दूसरा कोई पुण्य नहीं किया था ॥६॥ कामदेवसे पीडित कुच और छाती तथा नेत्रोंके तापको अनन्त श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें लगाय और उन चरणारविन्दको सूँघ स्तनोंके मध्यमें प्राप्त हुए सुन्दर आनन्दमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको भुजाओंसे आलिंगन कर बहुत दिनोंसे बढ़े तापको त्याग दिया ॥ ७ ॥ चन्दनके अर्पण

आहूय कांतां नवसंगमह्रिया विशंकितां कंकणभूषिते करे ॥ प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पण पुण्यलेशया ॥ ६ ॥ सानंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रंत्यनंतचरणेन रुजो मृजंती ॥ दोर्भ्यां स्तनांतरगतं परिरभ्य कांतमानंदमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम्॥ अंगरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत॥८॥आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं तेऽम्बुरुहेक्षण॥९॥तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः॥ सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदार्चितः॥१०॥दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्॥ यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ॥ किंचिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया॥१२॥स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबांधवान्॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनंद्य च॥१३॥

करनेसे मोक्षके देनेवाले दुर्लभ श्रीकृष्णचन्द्रको पाय अभागिनी कुब्जाने यह मांगा ॥८॥ अहो प्यारे ! कुछे दिनों रहकर मेरे संग रमण करो. हे कमलनेत्र ! मैं तुम्हें त्याग नहीं सकती॥९॥ "एकबार तुम्हारे यहाँ नित्य आया करूंगा" इस प्रकार कुब्जाको कामवर दे उसका सन्मान कर मानदेनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये॥१०॥सम्पूर्ण ईश्वरोंके ईश्वर,दुःखसे आराधनकरनेमें आवें ऐसे विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न करके जो पुरुष विषयोंका वर मांगे वह बड़ा कुबुद्धि है, क्योंकि विषय तुच्छ हैं ॥११॥ बलदेव उद्धवजीको संग लेकर समर्थ श्रीकृष्णचन्द्र कुछ कार्य करानेके लिये और अक्रूरका भला करनेके लिये उनके घर आये ॥१२॥ अक्रूरजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ

अपने बन्धु श्रीकृष्ण बलदेवको दूरसे देख प्रसन्न हो मिलकर अत्यानंदको प्राप्त हुए ॥ १३॥ तब कृष्ण बलदेव और उद्धवजीने उन्हें नमस्कार किया. इसके उपरांत अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको प्रणाम कर और आसनपर बैठाय उनकी पुजा करी ॥ १४॥ हे राजन्! फिर कृष्ण बलदेवके चरणोंको धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढ़ाया और दिव्य चंदन, माला,वस्त्राभूषण इत्यादि भेंट दे नमस्कार किया और गोदमें चरणोंको धरके दाबने लगे. इसके उपरांत अधीनतापूर्वक नम्र हो अक्रूरजी कृष्ण बलदेवसे कहने लगे ॥ १५॥ १६॥ कि, मंत्रियोंसहित पापी कंसको

ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धारयञ्छिरसा नृप ॥ अर्हणेनांबरैर्दिव्यैर्गंधस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ आर्चित्वा शिरसाऽऽनम्य पादावंकगतौ मृजन् ॥ प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत॥ १६ ॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ॥ भवद्भ्यामुद्धतं कृच्छ्राद्दुरंताच्च समेधितम् ॥१७॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किंचित्परमस्ति न चापरम् ॥ ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मञ्छ्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भांति नाना ॥ एवं भवान्केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतंत्रो बहुधा विभाति ॥२०॥ सृजस्यथो लुंपसि पासि विश्वं रजस्तमस्सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बंधहेतुः ॥ २१ ॥

मार बडे कष्टसे तुमने इस अपने कुलका उद्धार किया और कुलकी वृद्धिका यह बड़ाही मंगल हुआ ॥ १७ ॥ तुम प्रकृतिरूप हो, जगत्के कारण हो, जगन्मय हो तुमसे पृथक् कुछ कार्य कारण नहीं है ॥१८॥ तुम अपने विश्वमें अपनी शक्तियों सहित प्रवेश करके हे ब्रह्मन्! श्रवण करनेमें देखनेमें बहुत प्रकारके प्रतीत होते हो॥ १९॥ जैसे स्थावर,जंगम देहमें पृथ्वी आदि पञ्चभूत हैं,उनमें अनेक प्रकारसे प्रकाशते हो,उसी प्रकार अपने अधीन अकेले तुम आप ही अपने कार्य पञ्चभूत और पञ्चभूतोंके बने देहमें बहुत रूपसे प्रकाशते हो॥२०॥ रजोगुण, तमोगुण और सत्त्व

गुण तुम्हारी शक्ति है, उनके ही द्वारा विश्वको उत्पन्न,पालन और संहार करते हो, गुण और उत्पत्त्यादिक कर्मोंसे बँधे नहीं हो, ज्ञानरूप हो,तुम्हैं बाँधनेंवाली कोई अविद्या नहीं है ॥ २१ ॥ तुम्हारे तो बंधनकी शंका संभवही कहाँ ? पर विद्योपाधि जीवात्माके भी वस्तुतः जन्म तथा जन्ममूलक भेद नहींहै,क्योंकि देहादि उपायका किसीप्रकार निरूपण होना सम्भवही नहीं,अविद्या रहित होनेसे न तो आपके बंधन है और न मोक्ष है,जो हमें बंध मोक्ष दिखाई देते हैं,वह केवल हमारे अज्ञानसे ही हैं॥२२॥जगत्का कल्याण करनेके लिये तुम्हारा कहा सनातन वेदमार्ग जिससमय असाधुओंके पाखण्डमार्गसे बाधित होता है, उस समय सगुणरूपको धारण करते हो ॥२३॥ हे प्रभो ! तुमने इस संसारमें

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ॥ अतो न बंधस्तव नैव मोक्षः स्यातां
निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदायदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखण्डपथैरस
द्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्ति॥ २३ ॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥अक्षौ
हिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन्॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्व
देवपितृभूतनृवेदमूर्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः
पंडितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ॥ सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामाना
त्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६

पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंश बलदेव सहित वसुदेवजीके घर जन्म लिया है, जिससे दैत्योंके अंशरूप राजाओंकी अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करोगे और यदुकुलके यशको बढ़ाओगे ॥ २४ ॥ हे ईश ! आज हमारा घर निश्चय बडभागी है. सब देवता, पितृ, मनुष्य, प्राणी देवरूप तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर तीनों लोकोंको पवित्र करता है, सो तुम जगतके गुरु अधोक्षज भगवान् हमारे घरमें आयेहो इसलिये हमारा घर बड़भागी है॥२५ ॥ हे प्रभो ! आप भक्तवत्सल, सत्यवक्ता, सबके हितकारी, कृतके जाननेवाले उनको त्यागकर कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो औरकी शरण ले, भजन करनेवालेको तुम संपूर्ण कामना देते हो और अपना आत्मा तक भी

देते हो और तुम्हारे यह उत्तम है, यह नीच है यह भेद नहीं है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! आपने मेरे घर आनकर दर्शन दिया यह बड़ा मंगल हुआ, योगेश्वर और देवता भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं. पुत्र, स्त्री, धन, हितकारी और देहादिकोंमें मोहकी रस्सीरूप जो तुम्हारी माया है सो हमें लिपट रही है, इसे शीघ्र ही काटो ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरने इस प्रकार जब पूजन और स्तुति करी तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वाणीसे मोहित करते हुए मुसकराकर बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, आप हमारे गुरु हो, इसकारण नित्य स्तुति करने योग्य हो, बन्धु हो, हम तुम्हारे लड़के बाले हैं, हमारी रक्षा करो, पोषण करो और हमपर कृपा करो ॥२९॥ हे पूज्योंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारे समान बड़भागी कल्याणकी इच्छा

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥ छिंध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः ॥ अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच॥ त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बंधुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकंप्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ॥ ३० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥३१॥ स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पांडवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम्॥३२॥ पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसंत इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥

करनेवाले मनुष्योंसे नित्य सेवा करने योग्य हैं, देवता स्वार्थी हैं, साधु महात्मा स्वार्थी नहीं होतें ॥ ३० ॥ क्या कहीं जलमय तीर्थ नहीं हैं ? और मृत्तिका शिलाओंके देवता नहीं हैं ? किंतु वह सब बहुत दिनतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और साधुपुरुष तो दर्शनसे ही पवित्र करते हैं ॥ ३१ ॥ हे अक्रूरजी ! तुम हमारे सुहृदोंमें उत्तम हो इस कारण पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिये हस्तिनापुरको जाओ ॥ ३२ ॥ पिता पाण्डुके मरनेके पीछे माता कुन्ती सहित दुःखित पाण्डव बालकोंको धृतराष्ट्र अपने पुरमें ले आया है वह उसके पास रहते हैं॥ ३३ ॥

लुब्ध बुद्धि अम्बिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र भाईके पुत्र पाण्डवोंमें समता नहीं रखता और दुष्ट दुर्योधनादिके वशमें हो रहा है और उसकी दृष्टि भी अंधेरी हो रही है ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम अब हस्तिनापुरको जाओ और बुरी भली उनकी सब खबर लाओ, जब हमें वहांका भेद विदित हो जायगा, तो जिसमें पाण्डवोंको सुख होगा, वही उपाय करेंगे ॥३५॥ इस प्रकार अक्रूरजीसे कह छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव और उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे भाषाटीकाया

तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः॥समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक्॥३४॥गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ॥ विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥ संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुब्जारमणादिनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेंद्रयशोंकितम् ॥ ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम्॥ १ ॥ सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पांडवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंगम्य बंधुभिर्गांदिनीसुतः ॥ संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छंदानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

१३९

मक्रूरप्रेषणं नामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ दोहा–उनञ्चास अक्रूरजी, हस्तिनपुरमें जाय ॥ विषमदृष्टि लखि भ्रातृसुत फिरो घरो नहिं पाय॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! पुरुवंशी राजाओंके यशसे शोभायमान हस्तिनापुरमें जाकर अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको अक्रूरजीने देखा और भीष्मपितामह,विदुर, कुन्ती तथा सोमदत्त,पुत्रसहित बाह्लीक,द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाँचो पाण्डव, और भी जो सुहृद थे उन सबको देखा ॥ १ ॥ २॥ गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी बन्धु बांधवोंके संग यथायोग्य मिलकर, वे बन्धु सुहृदोंकी वार्त्ता अक्रूरजीसे पूँछनेलगे और अक्रूरजी भी उनसे कुशलक्षेम पूँछने लगे ॥ ३ ॥ दुष्ट पुत्र और अल्पबुद्धि दुष्ट कर्णादिकोंके कहनेमें

रहनेवाले धीरता रहित राजा धृतराष्ट्रका वृत्तान्त जाननेके लिये कितने एक महीनेतक अक्रूरजीने वहां वासकिया॥४॥ तेज अर्थात् प्रभाव, ओजोबल अर्थात् शस्त्र चलानेकी निपुणता, वीर्य अर्थात् शूरता पाण्डवोंमें प्रजाका स्नेह वीरता आदि जो अच्छे गुण हैं उन्हें न सहकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी और जो कुछ आगे करनेकी इच्छा है उसे ॥५॥ और धृतराष्ट्रके पुत्रोंने विष देना आदि जो कुछ अन्याय किया था, सो सम्पूर्ण

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतं च धार्तराष्ट्रैर्य
द्गरदानाद्यपेशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ॥ उवाच
जन्मनिलयं स्मरंत्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥ अपि स्मरंति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः
सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वस्रेयान्स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥

वार्त्ता विदुरजीने अक्रूरजीसे कह दी॥ ६ ॥ कुन्ती भाई अक्रूरको आया सुन मिलकर और अपने जन्मस्थानका स्मरण कर नेत्रोंसे आँसू बहाती अक्रूरजीसे बोली ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! मेरे माता पिता कभी मेरा स्मरण करते हैं ? और मेरे भाई, बहन, भतीजे, कुल स्त्री, सखी यह सब कभी मेरी सुध करते हैं ? ❀ ॥८॥ शरणागतोंके पालक, भक्तोंके हितकारी, भाईके पुत्र श्रीकृष्ण कभी अपनी फूफीके पुत्रोंकी भी सुध करते हैं ? कम

❀ शंका–बडे आश्चर्यकी बात है, वसुदेवजी वन्दीगृहसे छूटगये और अनेक प्रकारके मंगल वसुदेवजीके घर हुए, तो भी कुन्तीको न बुलाया, लोकशक्की रीति है बहिन अथवा लडकीको माता, पिता, भाई अपने घर वर्ष दो वर्षमें बुलाते रहते है, परन्तु अपने घर उत्सवमें अथवा उसके दुःखमें तो अवश्यही बुलातेहैं वा आप जाकर ले आतेहैं क्योंकि पिताके घर आनेसे बेटीका चित्तसावधान होजाताहै फिर वसुदेवजीके घर उत्सव भी हुआ और पुत्र भी हुआ और बन्दीसे भी छूटे, फिर वसुदेवजीने कुन्तीको अपने घर क्यों नहीं बुलाया इसका क्या कारण

उत्तर–कुंती सातद्वीपके राजा पाण्डुकी स्त्री थी और पतिके वियोगसे महादुःखी थी तो भी कुंतीको वसुदेवजी अपने घर ले आनेको समर्थ न हुए, क्योंकि वसुदेवजी दीन और द्रव्यहीन थे और वह कुंती दुःखी भी थी तो भी सातद्वीपके नरेशकी रानी थी, इसलिये वसुदेव कुन्तीको अपने घर न लाये. क्योंकि हजारों तो दासी उसके संग आतीं और सेनाका तो ठिकानाही क्या था, फिर कुंतीको अपने घर रखने की वसुदेवकी सामर्थ्य ही क्या है?

लके समान नेत्रवाले बलरामजी भी कभी हमारा स्मरण (याद) करते हैं । ॥९॥ मैं तो जैसे व्याघ्रोंके बीचमें हरिणी घिर जाती है, इसी
प्रकार वैरियोंके बीचमें घिरकर शोच करती हूँ सो क्या मुझे और पिताहीन मेरे बालकोंको श्रीकृष्ण तुम्हारे वचनोंसे समझावेंगे । ॥१०॥ हे
कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वके आत्मा ! हे सबके अंतर्यामी ! हे विश्वके पालनकर्त्ता ! हे गोविन्द ! बालकोंके सहित दुःखित
होकर मैं तुम्हारी शरण आई हूँ, सो मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ ॥ मृत्युरूपी संसारसे भयभीत मनुष्योंके ईश्वर तुम हो और मोक्षके देनेवाले
तुम्हारे चरणकमलके विना मुझे और कोई शरण देनेवाला नहीं दीखता ॥१२॥ शुद्ध अर्थात् धर्मात्मा ब्रह्म अपरिछिन्न अर्थात् ढकनेमें

सपत्नमध्ये शोचंतीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सांत्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्णकृष्ण
महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविंद शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥११॥ नान्यत्तव पदांभोजात्पश्यामि
शरणं नृणाम् ॥ बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्याऽऽपवर्गिकात् ॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगे
श्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुद
दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही॥१४॥समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ॥ सांत्वयामासतुः कुंतीं तत्पुत्रोत्पत्ति
हेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत्सुहृदां मध्ये बंधुभिः सौहृदोदितम् ॥१६॥

नहीं आवे, परमात्मा अर्थात् जीवक सखा, योगेश्वर अर्थात् अणिमादिक शक्तियुक्त योग अर्थात् ज्ञानरूप ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र तुम हो
सो तुम्हैं नमस्कार है और तुम्हारी ही मैंने शरण ली है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार जगत्के ईश्वर अपने
भतीजे श्रीकृष्णकी याद करके तुम्हारी परदादी कुन्ती दुःखित होकर रोनेलगी ॥१४॥ अक्रूर और बडे यशवान् विदुर कुन्तीको समझाने
लगे कि, तुम्हारे पुत्र धर्म, पवन, इन्द्र इत्यादिकोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, तुम इतना शोच क्यों करती हो, इस प्रकार समझाने लगे ॥
॥ १५ ॥ चलते समय अपने पुत्रोंमें स्नेह और भतीजोंमें विषमता करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर सुहृदोंके बीचमें जो रामकृष्णने

वचन कहे थे वह अक्रूरजी कहने लगे ॥ १६ ॥ अक्रूरजी बोले कि, हे धृतराष्ट्र ! कौरवोंकी कीर्तिके बढानेवाले भाई पांडुके मरनेके उपरान्त अब तुम राजसिंहासनपर बैठे हो, ॥ १७ ॥ बहुत उत्तम राज्य करो, धर्मसे पृथ्वीका पालन करो, क्योंकि अपनी प्रजाको सुखपूर्वक आनंद रक्खोगे, अपने बांधवोंमें समान दृष्टि रक्खोगे तो तुम्हारा कल्याण और जगत्‌में यश होगा ॥ १८ ॥ और जो विषमता रक्खोगे तो संसारमें निन्दा होगी और अंतमें नरकको जाओगे, इस कारण पांडवोंमें और अपने पुत्रोंमें समता रक्खो ॥ १९ ॥ हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस संसारमें सदा किसीका सत्संग नहीं रहता है और अपना देह भी सदा नहीं रहता, विचार करके देखो कि स्त्री पुत्र यह सदा नहीं रहेंगे ॥ २० ॥ जीव

अक्रूर उवाच ॥ भोभो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ॥ भ्रातर्युपरते पांडावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रंजयन् ॥ वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात्समत्वे वर्तस्व पांडवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥ नेह चात्यंतसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह ॥ राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥ २० ॥ एकः प्रसूयते जंतुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरंत्यन्येऽल्पमेधसः ॥ संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपंडितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिण्वंति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यंधं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥

अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्युको प्राप्त होता है, अकेला ही पुण्यके फल सुखको भोगता है और अकेला ही पापका फल दुःख भोग करता है ॥ २१ ॥ अज्ञानी पुरुषोंने जो पाप करके धन संचय किया है उसे स्त्री पुरुष भाई बंधु होकर लेते हैं, जैसे जलकी रहनेवाली मछलियोंका जीवन जल है और जब उसको उसके पुत्र पी लेते हैं तब उसे कष्ट होता है ॥ २२ ॥ पाप करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है और जिन्हें अपना समझ अधर्मसे पोषण करता है, वह प्राण, धन और पुत्रादिक उस पोषण करनेवाले मूर्ख पुरुषको भोगका सुख प्राप्त न हुआ हो, तब उसे पहिले ही त्याग देते हैं ॥ २३ ॥ जब स्त्री पुत्रादिक इसको त्याग

तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम्॥ वीक्ष्याऽऽयम्यात्मनात्मानं समः शांतो भव प्रभो॥२५॥धृतराष्ट्र उवाच॥
यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ॥ तथाऽनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम्॥ २६ ॥ तथापि
सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनो
त्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं दृष्ट्वा गुणान्वि
भजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतंत्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय॥२९॥श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य
नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥

देते हैं तब यह सच्चे स्वार्थको न जानकर और प्रयोजन नष्ट होनेसे निज धर्मसे विमुख हो सबके पापको अपने शिरपर धर वही पूर्ण नरकमें गिरता है ॥ २४ ॥ इस कारण हे समर्थ राजा धृतराष्ट्र ! स्वप्न और बाजीगरकी माया तथा मनका विचार यह सब तुमको मिथ्याभूत दिखाई देता है, उसी प्रकार इस संसारको मिथ्याभूत समझ आप भी अपने मनको रोककर समता रक्खो और शान्त हो ॥ २५ ॥ तब राजा धृतराष्ट्र बोले कि, हे अक्रूर ! यह जो तुमने कल्याणकारक श्रेष्ठ वचन कहे, उनको श्रवण करते करते मेरा मन तृप्त नहीं हुआ, जैसे मनुष्य अमृत पीनेसे तृप्त नहीं होता ॥२६॥ परन्तु तो भी हे अक्रूर ! मेरा चंचल पुरुषोंमें स्नेह है इसलिये विषमहृदयमें तुम्हारी प्यारी बात नहीं ठहरती, जैसे स्फटिकमणिके सुदामापर्वतपर बिजली चमककर स्थिर नहीं रहती ॥ २७ ॥ भगवान्की इच्छाको कौन पुरुष खंडन कर सकता है, अर्थात् उसकी इच्छाके प्रतिकूल कुछ नहीं होता, सब उसकी इच्छानुसार ही होता है. जिस ईश्वरने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण यदुकुलमें आनकर अवतार लिया है ॥ २८ ॥ जो ईश्वर विचारनेमें न आवे, ऐसी अपनी मायासे इस विश्वको उत्पन्न कर और उसमें प्रवेश कर कर्म तथा कर्मोंके फलको अलग अलग कर जीवोंको देते हैं. जाननेमें न आवें ऐसी लीलाओंसे रचे हुए संसारचक्रके घुमानेवाले उस परमेश्वरको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार यदुवंशोत्पन्न

अक्रूरजी धृतराष्ट्रका अभिप्राय जान सुहृदोंसे आज्ञा ले मथुरापुरीमें आये ॥ ३० ॥ हे परीक्षित ! बलदेव श्रीकृष्णने आप जिस कारण अक्रूरजीको पाण्डवोंके पास भेजा था सो अक्रूरजीने सब धृतराष्ट्रजीकी कही वार्त्ताका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पांडवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पाण्डववृत्तनिरूपण नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

॥ ❋ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ समाप्तोऽयं दशमस्कंधपूर्वार्धः ॥ ❋ ॥

बलदेवजीसे कह दिया ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भाषाटीकायामेकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥
समाप्तोऽयं भाषाटीकासहितः दशमस्कन्धपूर्वार्धः ॥

१३८

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन मुम्बय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्)
मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । संवत् १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धपूर्वार्धः समाप्तः ॥

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
मुमुक्षु भवन, अस्सी, वाराणसी

MUMUKSHU BHAWAN

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकासहिते दशमस्कन्धोत्तरार्धप्रारम्भः ॥

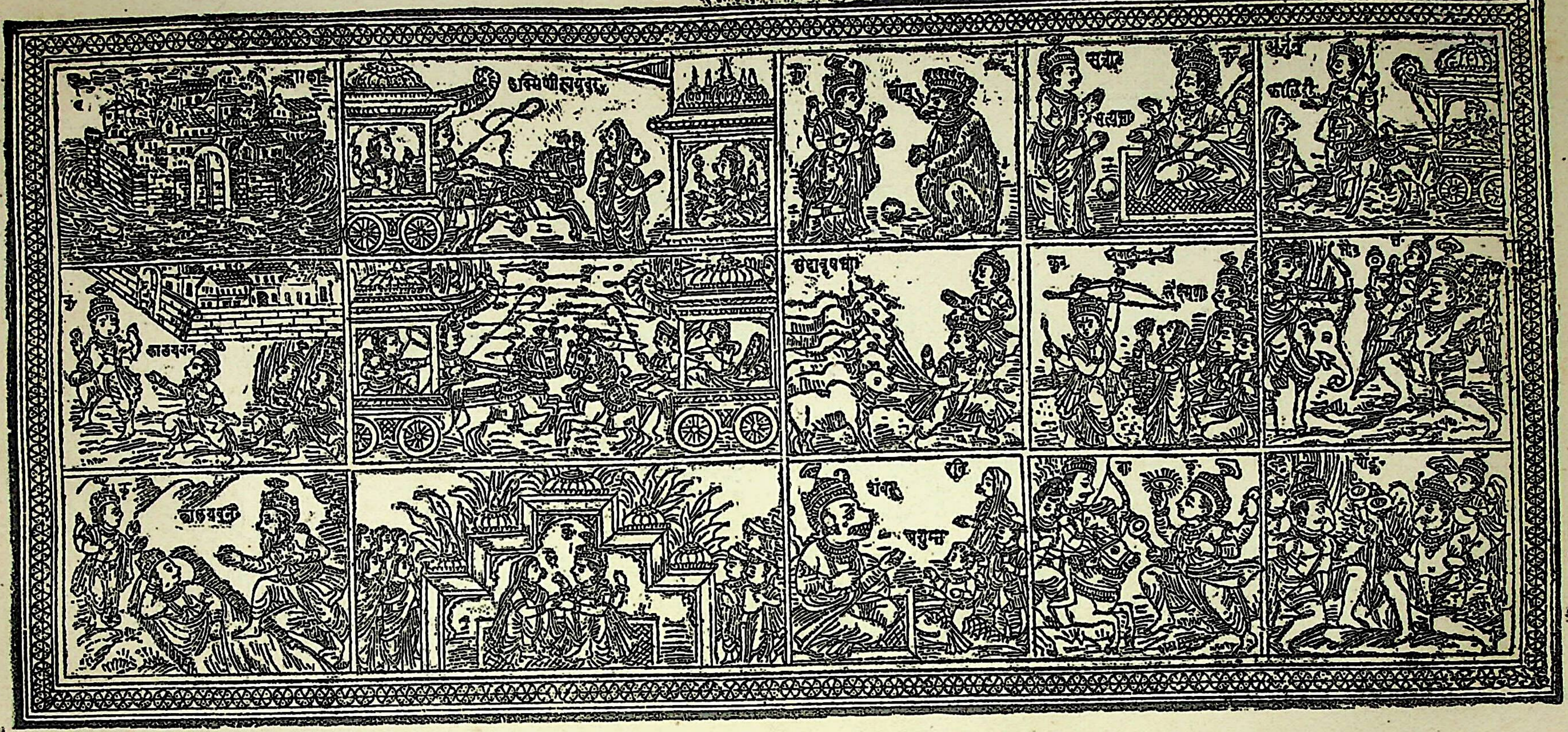
रुक्मिणीहरण
कालयवन
कृ
जांब
सत्रा
सत्यभा
अर्जुन
कालिंदी
कृ
कालयवन
रति
शंबर
प्रद्युम्न

939

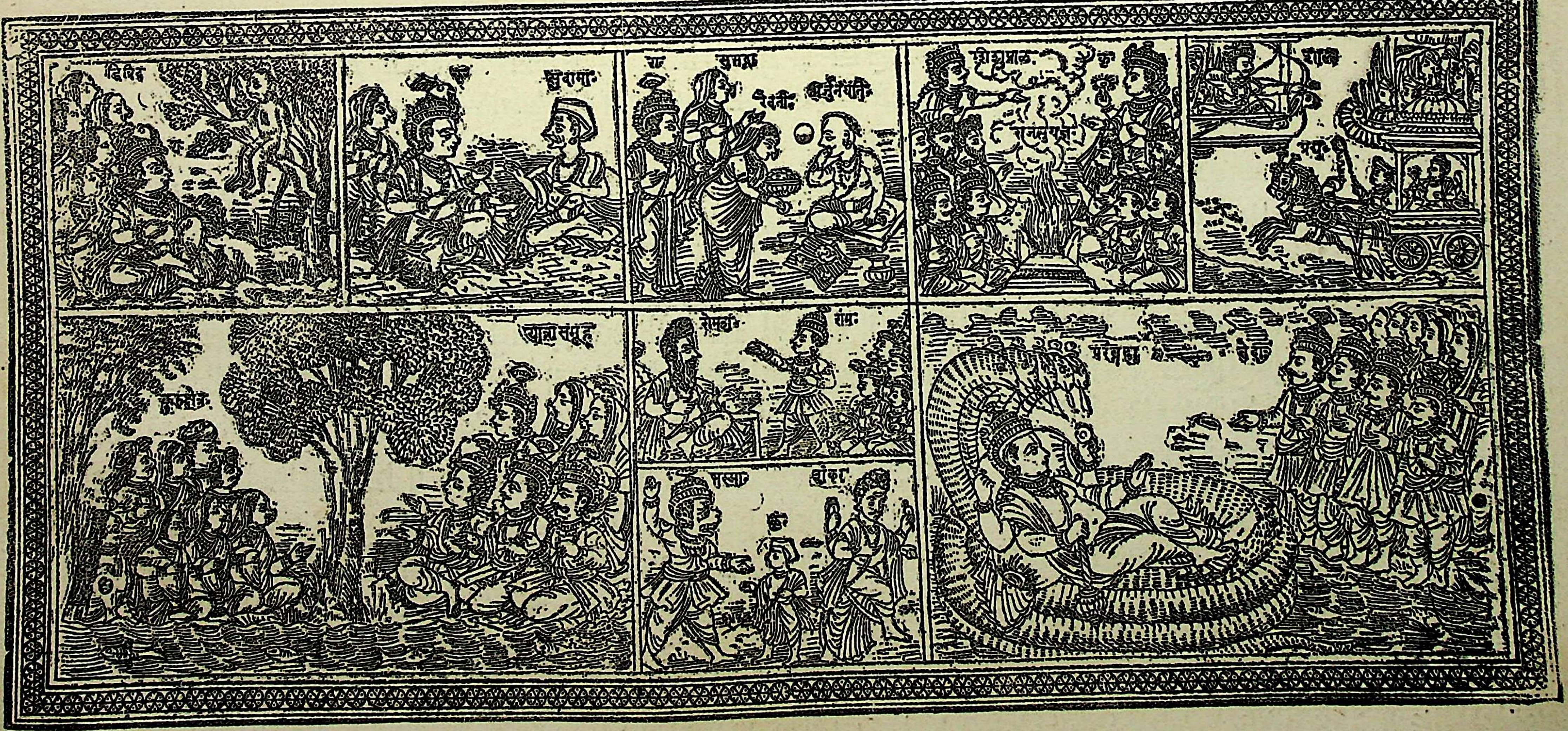
द्विविद
सुदामा
रा
सुभद्रा
रेवती
अर्जुनपति
शिशुपाल
कृ
राजसूय यज्ञ
शाल्व
प्रद्यु
कुरुक्षेत्र
यात्रा समूह
परब्रह्म
शंकर

श्रीः ॥ दशमस्कन्धोत्तरार्द्धम् ॥ दोहा–उत्तरार्द्ध प्रारंभमें, व्रजपतिचरित ललाम । कह्यो पचाशअध्यायमें, जरासन्ध संग्राम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अब पूर्वार्द्धके उपरान्त इकतालीस (४१) अध्यायमें जो कथा है, सो हम वर्णन करते हैं कि, जरासन्धके भयसे ही मानो समुद्रमें किला बनाकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको उसमें लेगये. व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! अस्ति और प्राप्ति यह दोनों कंसकी रानियां अपने पति कंसके मरनेसे अत्यन्त दुःखी होकर अपने पिताके घर चली आईं ॥१॥ अपने स्वामीके मरनेसे शोकाकुल अस्ति, प्राप्ति दोनों बहनोंनें अपने पिता मगधदेशके राजा जरासन्धसे जाकर सब वृत्तान्त कहा ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित ! यह बात सुनते ही जरासन्ध अतिक्रोध कर अपने जामाताका शोक न सह पृथ्वीको यादवरहित करनेका उपाय करने लगा ॥ ३ ॥ और तेईस अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर जरासन्धने यादवोंकी राजधानी मथुरापुरीको चारों ओरसे घेरलिया ॥४॥ जिस प्रकार अपनी मर्यादा त्यागकर समुद्र उमडता चला आता है उसी प्रकार जरासन्धकी सेनाको आती हुई देखकर और सेनासे मथुरापुरीको ग्रसित जान, अपने सुहृद् यादवोंको व्याकुल देख ॥ ५ ॥ दुःखोंके नाशक भूभार उतारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस समय देशकालके योग्य अपने अवतारका कारण देखकर विचार करने लगे ॥ ६ ॥ कि,पहले इस समस्त सेनाका संहार करूं, या जरासन्धको वधकर इसकी सब सेना अपने आधीनमें करूं अथवा सैन्य सहित जरासन्धका प्राण संहार करूं ऐसे तीन प्रकारके मनमें संकल्प विकल्प कर प्रथमविचार

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते ॥ वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥३॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिंतयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः ॥ तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ॥ मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥७॥

सैन्य वधका निश्चय किया, क्योंकि पृथ्वीका भाररूप यह सेना ही है, इसलिये प्रथम इसका ही मारना उचित है और इस समय यह सम्पूर्ण राजाओंकी सेनाओंको इक ।२। , फिर बारम्बार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा ॥७॥ पहिले पैदल, अश्व, हस्ती और चतुरंगिणी अनेक अक्षौहिणी * सेनाको ही मारना योग्य है, जरासन्धका मारना योग्य नहीं, क्योंकि इससे अभी बहुत कार्य सिद्ध होगा, यह सम्पूर्ण राक्षसोंको समेटकर ले आवेगा, मैं कहां कहां ढूँढ़ता फिरूंगा ॥ ८ ॥ भूमिका भार उतार साधु पुरुषोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही मैंने अवतार लिया है ॥ ९ ॥ जब जब पृथ्वीपर अधर्म बढता है, तब तब ही उस अधर्मके नष्ट करने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुंजरैः ॥ मागधस्तु न हंतव्यो भूयः कर्त्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥ एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ॥ विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति गोविंद आकाशात्सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुदस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥११॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ॥ एवं संमंत्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिना पुरात् ॥ १५ ॥

मैं अवतार लेता हूँ ॥१०॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विचार कर ही रहे थे कि, उसी समय सूर्यके समान ध्वजा कवचसे सुसज्जित सारथिसहित दो रथ शीघ्र ही आकाशसे उतरे ॥ ११ ॥ तब अकस्मात् आये दिव्य शस्त्र देखकर हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदेवजीसे बोले कि ॥ १२ ॥ हे आर्य ! हे श्रेष्ठ ! तुम जिनकी रक्षा करते हो, आज उन्हीं यादवोंको आनकर दुःख उपस्थित हुआ है और इसीलिये यह रथ और वीरघाती शस्त्र आये हैं ॥ १३ ॥ रथमें बैठ सब सेनाका संहार कर अपने यादवोंका कष्ट दूर करो, हे ईश ! साधुलोगोंके कल्याणार्थ ही संसारमें आपका जन्म हुआ है ॥ १४ ॥ तेईस अक्षौहिणी सेना आनकर उपस्थित हुई है और इसीका पृथ्वीपर

---

* अक्षौहिणीका प्रमाण । इकीससहस्र आठसौ सत्तर २१८७० रथ इक्कीससहस्र आठसौ सत्तर २१८७० गजपति, पैंसठ सहस्र छःसौ दश ६५६१० अश्वपति, एक लाख नौसहस्र तीनसौ पचास १०९३५० पैदल इसका नाम एक "अक्षौहिणी" है ॥

बोझ है, इसको दूर करो. इस प्रकार दाशाहर्वंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीने विचार कर, कवच पहर, सुन्दर शस्त्रोंको ले और कुछ थोडीसी सेनाके साथ पुरके बाहर निकल दारुक सारथीको लिये शंखध्वनि करी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त जरासन्धकी सेनाके हृदय भयभीत हो कम्पायमान होने लगे, तब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीको रणभूमिमें खड़ा देख जरासन्ध कहने लगा हे अधम! ॥ १७ ॥ मुझे तेरे साथ युद्ध करनेमें अत्यन्त लाज आती है, क्योंकि तू बालक है इस लिये तेरे संग युद्ध नहीं करूंगा. हे मूर्ख ! तू गुप्त रहनेवाला अत्यन्त छली है, इस कारण तेरे साथ युद्ध करना उचित नहीं ॥१८॥ हे राम ! जो

निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽऽवृतौ ॥ शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत्पर
सैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥१७॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन
लज्जया ॥ गुप्तेन हि त्वया मंद न योत्स्ये याहि बंधुहन् ॥१८॥ तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा वा
मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि॥१९॥श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयंत्येव पौरुषम् ॥ न गृह्णीमो
वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः॥२०॥श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽऽवृणोत् ॥
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयंत्यो
हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥

तुझमें सामर्थ्य होय तो धीरज धरके युद्ध कर और मेरे बाणोंसे कटे हुए देहको त्याग स्वर्गको जा, या संग्रामके बीचमें मेरा प्राण ले॥१९॥ हे परीक्षित् ! ऐसे जरासन्धके वचन सुनकर श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, हे जरासन्ध! शूरवीर व्यर्थ बकवाद न कर अपने पुरुषार्थको दिखाते और तुम्हारी मृत्यु निकट आ गई है, इसलिये मैं तुम्हारे वचनोंपर अधिक ध्यान नहीं देता हूँ॥२०॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जैसे पवन, बादल, धूरि यह सूर्य और अग्निको घेर लेते हैं; इसी प्रकार श्रीकृष्णचंद्र व बलदेवजीके निकट जाकर जरासन्धने उनको अपनी बलवान् सेना, प्यादे, रथ, ध्वजा, घोडे और रथवानों सहित घेर लिया॥२१॥जब गरुड़ और तालकी ध्वजाके चिह्नवाले राम कृष्णके रथ युद्धमें नहीं दीखे, तब पुरीकी

नारियाँ अटारी, महल और द्वारोंपर खडी हुई शोकसे व्याकुल हो मोह करने लगीं ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनारूप बादलोंमेंसे बारम्बार बाणोंकी भयंकर वर्षासे अपनी सेनाको पीडित देखकर श्रीकृष्णचंद्र देवता व असुरोंसे पूजित उत्तम शार्ङ्गधनुषमें टंकार करने लगे ॥ २३ ॥ तरकससे निकालकर शीघ्र प्रत्यंचामें लगाय प्रत्यंचाको खैंचकर तीक्ष्णबाणोंके समूहोंसे रथ, घोड़े, हाथी, पैदल मारकर जैसे सुलगती लकडीके घुमानेसे चक्र बँध जाता है, उसी प्रकार बाणोंके पीछे बाण मारने लगे॥२४॥ मस्तक कटनेसे हजारों हाथी, गर्दन कटनेसे घोडे पृथ्वीपर गिरने लगे, रथोंकी ध्वजा कट गई और रथवान् गिर गये, भुजा, छाती गर्दन कटनेसे पैदल गिर गये॥२५॥ युद्धमें पैदल, हाथी कटकर गिरने लगे तब

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २३ ॥ गृह्णन्निषंगादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुंचञ्छितबाणपूगान् ॥ निघ्नन्रथान्कुंजरवाजिपत्तीन्निरंतरं यद्वदलातचक्रम् ॥२४॥ निर्भिन्नकुंभाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकंधराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकंधराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामंगप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरंगायुधगुल्मसंकुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिताभीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ॥ विनिघ्नताऽरीन्मुसलेन दुर्मदान्संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥

इनके शरीरसे लोहूकी नदियें बहने लगीं, जिनमें भुजाएँ सर्पके सदृश दृष्टि आती थीं, मनुष्योंके शिर कच्छपसे जान पडते थे, मृत्युको प्राप्त हुए हाथी टापूके समान दीखते थे और रुधिरकी नदीमें घोडे ग्राहसे पडे थे॥२६॥ भुजा व ऊरू मछलीके समान, मनुष्योंके केश सिवारके समान थे और नदीमें जो तरंगें उठती हैं, वही रुधिरकी नदीमें धनुषोंके समान हैं. नदीमें झाड़ झंकाड़ होते हैं, रुधिरकी नदियोंमें शस्त्र हैं सोई झाड़ झंकाड़के समान हैं, नदीमें भँवर पडते हैं, तिनसे अतिभयंकर होकर रुधिरकी नदियोंमें ढालें मानो भयंकर भँवर पडते हैं, नदियोंमें कंकर पत्थर इत्यादि होते हैं, रुधिरकी नदियोंमें मणि गहने कंकर पत्थरके तुल्य हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! महातेजस्वी बलदेवजीने संग्रामके बीच

मत्तवाले शत्रुओंको मुसलायुधसे मार मारकर रुधिरकी नदियें बहाईं,जो कि कायर पुरुषोंको भयकी देनेवाली और वीर पुरुषोंको आनन्दकी देनेवाली हैं ॥२८॥ हे परीक्षित् ! दुर्मद वैरियोंको मूसलसे मार सागरके समान दुस्तर और भयंकर उस जरासन्धपालित सेनाको महापराक्रमी श्रीकृष्ण बलदेवने मार मारकर नाश करदी. वसुदेवके पुत्र जगत्के ईश्वर कृष्ण बलदेवको सेनाका नाश करना एक साधारण बात है, कुछ पराक्रम नहीं हैं ॥ २९ ॥ अनन्तगुण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीलासे ही तीनों लोकोंको उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं,उन श्रीकृष्णचन्द्रको जरासन्धकी सेनाका मारना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं हैं, तो भी मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म आश्चर्यमय तुमसे वर्णन करता हूँ॥३०॥सेनाके नष्ट होने और रथ टूट जानेसे जब प्राणमात्र ही अवशेष रहा,तब बलवान् जरासन्धको जैसे सिंह

बलं तदंगार्णवदुर्गभैरवं दुरंतपारं मगधेंद्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥२९॥
स्थित्युद्भवांतं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनंतगुणः स्वलीलया ॥ न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य
वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥
बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामास गोविंदस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां
व्रीडितो वीरसंमतः ॥ तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ॥
स्वकर्मबंधप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ ॥

सिंहको पकडता है उसी प्रकार बलपूर्वक बलदेवजीने पकड़कर ॥ ३१ ॥ शत्रुओंके मारनेवाले जरासन्धको वरुणपाश और मनुष्यपाशसे जब बलदेवजी बांधने लगे तब श्रीकृष्णचन्द्रजीने उसको छुड़ा दिया और कहा कि,अभी जरासन्धसे और कुछ काम लेना है ॥ ३२ ॥ शूरवीरों में माननीय जरासन्धको त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण बलदेवने जिस समय छोड़ दिया,तब वह मनमें लज्जित होकर विचार करने लगा कि, वनमें जाकर तप करना उचित है,घर जाकर क्या करूंगा ? तब मार्गमें जाते हुए राजाओंने निवारण किया ॥ ३३ ॥ धर्मके उपदेश करनेवाले पदयुक्त नीतिके तुष्टिकारक वचन कहकर जरासन्धको समझाने लगे कि, हे राजन् ! कोई तुम्हारा बड़ा ही दुष्कर्म आकर प्राप्त हुआ जो तुच्छ

यादवोंने तुम्हें परास्त किया; अब तुम कुछ लाज मत करो ॥ ३४ ॥ जिस समय समस्त सेना नष्ट हो गयी और श्रीकृष्णचन्द्रने छोड दिया, तब वह बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध अत्यन्त उदास होकर मगधदेशको चला गया ॥ ३५ ॥ शत्रुकी सेनारूप सागरसे तरकर और अपनी अक्षत सेना संग लिये जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरापुरीमें प्रवेश किया, तब देवताओंने आकाशसे फूल वर्षाये और प्रशंसापूर्वक उनकी स्तुति करी ॥ ३६ ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मथुरापुरीमें आकर खेदरहित प्रसन्नमन पुरवासियोंसे मिले. सूत, मागध, बन्दीजन जिनके विजयके यश गान करने लगे ॥३७॥ हे राजन्! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरीमें आये तब शंख, नगारे, अनेक भेरी, तुरही

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ३५ ॥ मुकुंदोऽप्यक्षतबलो निस्ती
र्णारिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगीय
मानविजयः सूतमागधबंदिभिः॥ ३७ ॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदंगानि पुरं प्रविशति प्रभौ
॥ ३८ ॥ सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥३९॥ निचीयमानो
नारीभिर्माल्यदध्यक्षतांकुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनंतं वीर
भूषणम्॥ यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ॥ युयुधे मागधो
राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥

942

वीणा, बांसुरी और मृदंग यह सब बाजे बजने लगे ॥ ३८ ॥ मार्गमें छिडकाव हो रहा है, पताकायें लगाई गयी हैं और वेदध्वनिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके शुभागमनसे घर घर बन्दनवारोंसे परिपूर्ण इस प्रकार मथुरापुरीकी शोभा हुई ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर स्त्री, पुरुष, पुष्प, दधि, अक्षत और अंकुरोंकी वर्षा करने लगे, स्त्रियें स्नेहसे प्रफुल्लित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखने लगीं ॥ ४० ॥ शूरवीर राजाओंकी शोभा करनेवाले रणभूमिमें पड़े बहुत धन लाकर श्रीकृष्णचन्द्रने यादवराज उग्रसेनको दे दिया ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार जरासन्ध उतनी ही अक्षौहिणी

साथ लेलेकर सत्रह बार चढ आया और श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित यादवोंसे उसने युद्ध किया ॥४२॥ हे राजा परीक्षित ! यादवगण श्रीकृष्णचन्द्रके तेजसे जरासन्धकी समस्त सेनाका संहार करने लगे, सम्पूर्ण सेना जब कट गयी और शत्रुने छोड़ दिया,तब जरासन्ध फिर अपने देशको चला गया * ॥ ४३ ॥ अठारहवीं बार जरासन्ध तो आनेवाला था ही,उसके बीचमें ही देवर्षि नारदजीका भेजा वीर कालयवन आकर

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥
अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदंतरा ॥ नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥
रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ॥ नृलोके चाप्रतिद्वंद्वो वृष्णीञ्छ्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥

दिखाई दिया ॥ ४४ ॥ संसारमें जिसके समान कोई योद्धा नहीं,ऐसा कालयवन यादवोंको अपने समान जान, उसने तीन करोड़ म्लेच्छ अतिभयावने इकट्ठे किये जिनकी मोटी भुजा, बड़े गले,मैले दांत, भूरे केश, घुंघचीसे नयन लाल तिन्हें साथ ले डंका दे मथुरापुरीपर चढ आया और चारों ओरसे घेरलिया,क्योंकि देवर्षि नारदजीने इससे कहा था कि,यादव लोग तुम्हारे समान हैं इसलिये उनसे युद्ध करो ॥४५॥

---

* शंका–तेईस अक्षौहिणी सेनाको जरासन्ध अपने संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चढ आया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनाको मार डाला, बडे आश्चर्यकी बात है कि,इतनी सेना जरासन्ध कहांसे ले आया? पृथ्वीपर सेना तो बहुत थीं परन्तु दुष्ट सेना इतनी किधर थी, जिसको जरासन्ध सत्रह १७ बार बटोर २ कर ले आया और तेईस २ अक्षौहिणी सेना सत्रह बार श्रीकृष्णने मार डाली,सब जोडकर तीन सहस्र आठसौ ग्यारह ३८११ अक्षौहिणी हुईं.बडे अचम्भेकी बात है,कि इतनी सेनामें कोई भी शूरवीर नहीं था? जब श्रीकृष्णने मारा तो क्या जान पडा क्योंकि श्रीकृष्णके सामने शूरवीरकी क्या सामर्थ्य थी और मर्यादापालन करनेवाले श्रीकृष्णका अवतार भी हुआ फिर वीरोंकी मर्यादा क्यों विनाश करी ?

उत्तर–जरानामक राक्षसीने जरासन्धको वरदान दिया था कि,तू जितनी सेना बनाया चाहेगा, उतनी सेना बना लेगा इसलिये जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना बनाके श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये ले आया। मर्यादापुरुषोत्तम मर्यादाके पालन करनेवाले श्रीकृष्णने विचार किया कि,इस सेनामें शूरवीर नहीं है,इसलिये जरासन्धकी सेनाका विनाश किया, मर्यादाका नाश नहीं किया ॥

उस समय श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित इस दुरात्मा कालयवनको आया हुआ देखकर विचार करने लगे कि, यादवोंको दोनों ओरसे
कष्ट आकर उपस्थित हुआ है,बड़े ही आश्चर्यकी बात है॥४६॥ क्योंकि अब तो यह महाबली कालयवन हमको घेर रहा है और फिर जरासन्ध
आज या कल अथवा परसोंतक अवश्य ही आवेगा ॥ ४७ ॥ यदि इस समय हम इससे युद्ध करें और बीचमें जरासन्ध आ गया तो अवश्य ही
हमारे बांधवोंका प्राणसंहार करेगा और जो न मारेगा तो बांधकर अपने पुरमें ही ले जायगा,क्योंकि वह बलवान् है ॥४८॥ इसलिये जहां
मनुष्य न प्रवेश कर सकें ऐसा एक किला बनाय,उसमें अपने जातिके यादवोंको रख फिर कालयवनका वध करूं ॥ ४९ ॥ हे राजन्! भगवान्

तं दृष्ट्वाऽचिंतयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४६ ॥ यवनोऽयं निरुन्धे
ऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागंता
जरासुतः ॥ बंधून्वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४८ ॥ तस्माद्द्य विधास्यामो दुर्गं द्विपदद्दुर्गमम् ॥ तत्र
ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमंत्र्य भगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अंतस्समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भु
तमचीकरत् ॥ ५० ॥ दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ॥ रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम्॥५१॥
सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ॥ हेमश्रृंगैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजताऽऽरकुटैः कोष्ठै
र्हेमकुम्भैरलंकृतैः ॥ रत्नकूटगृहैर्हेमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार मनमें विचारकर अड़तालीस कोश (बारह योजनका) समुद्रके बीचमें एक दुर्ग (किला) और उस किलेके बीचमें
एक महाअद्भुत आश्चर्यमय नगर बनाया ॥ ५० ॥ इस नगरीमें सब विश्वकर्माकी कारीगरी दिखाई देती हैं, राजाओंके जाने योग्य बड़े बड़े
बाजार,गली और चौक बन रहे हैं ॥ ५१ ॥ बीच बीचमें स्थान बनानेके लिये जगह छोड़ दी गई हैं, कल्पवृक्ष और लतावाले फूलोंके
बगीचे, चित्र विचित्र फुलवारी, सुवर्णशिखरसे आकाशको स्पर्श करनेवाले ऊँचें ऊँचे स्फटिकमणिके अटा बन रहे हैं और ऊँचे २ किलेके
द्वार बन रहे हैं ॥५२॥ घोडोंके बांधने और अन्न भरनेके लिये लोहे और पीतलके स्थान बने हैं; तिनके ऊपर सुवर्णके कलश विराजमान हैं,

जिनसे इस नगरकी अत्यन्त ही मनोहर शोभा हो रही है. जिनके पद्मरागमणिके शिखर और ‘महामरकतमणिकी जिसमें पृथिवी, इस प्रकार शोभायमान सुवर्णके गृह जहां तहां बन रहे हैं ॥ ५३ ॥ देवताओंके मन्दिर और चित्रविचित्र चित्रसारी बन रही हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह वर्ण जिसमें वास करते हैं, यादव और देवराज उग्रसेनके महल तो अत्यन्त ही शोभायमान हैं ॥ ५४ ॥ देवराज इंद्रने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष भेजे, जो मनुष्य इस सभामें वास करता है, उसको भूख, प्यास, शीत, गरमी, शोक और मोह इत्यादि कुछ नहीं सताते ॥५५॥ श्यामकर्ण श्वेतवर्ण मनके समान वेगवान् वरुणजी घोडे भेजे, पालन करनेवाले कुबेरजीने पद्म, महापद्मं, मत्स्यं, कूर्मं, कुन्दं, नील कुमुद, शंख, खर्व यह आठ विभूति भेजीं ॥ ५६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ परीक्षित् !

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेंद्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोवजान्॥ अष्टौ निधिपतिः कोशाँल्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६ ॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वे प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमंत्रितः॥निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं विलोक्य विनिष्क्रांतमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥

भगवान् वासुदेवने इन देवता लोगोंको अपने अपने अधिकारकी सिद्धिके लिये जो कुछ सम्पदायें दी थीं, वह सब वस्तु जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीपर आये, उन्होंने लाकर अर्पण कर दीं ॥५५॥ उस द्वारका पुरीमें योगके प्रभावसे सब यदुवंशियोंको पहुँचाकर श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीसे कहने लगे कि, हे वीर! तुम यहां मथुरापुरीमें रहकर शेष प्रजाकी रक्षा करो. इस प्रकार बलदेवजीसे आज्ञा कर कमलनयन भगवान् कमलोंकी माला धाण किये शस्त्ररहित मथुरापुरीके दरवाजेसे बाहर निकले ॥ ५८ ॥ इति श्रीभा० महापु० दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ दोहा–कालयवन मुचुकुन्दकी, दृष्टि परत भो छार। जब हरिकी विनती करी, फिर इक्यावन बार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी रेशमी वस्त्र पहरे पुरसे बाहर निकले तो उनकी

ऐसी शोभा हुई कि, मानो निशानाथ चन्द्रमा उदय हुए ॥१॥ छातीमें भृगुलताका चिह्न, कण्ठमें कौस्तुभमणि धारण किये, चतुर्भुज, नवीन कमलके समान अरुण नेत्र ॥ २ ॥ नित्य प्रसन्न, शोभायमान और सुन्दर मुसकान, मकराकृति कुण्डलोंसे देदीप्यमान मुखारविन्द ॥ ३ ॥ इस प्रकार मनोहर मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रकी देखकर कालयवन अपने मनमें विचार करने लगा कि, ठीक कृष्ण यही है ॥४॥ क्योंकि, देवर्षि नारदजीने जो जो लक्षण बताये थे सो सब इसमें पाये जाते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई वासुदेव नहीं है और यह अकेला शस्त्ररहित चला

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभाऽऽमुक्तकंधरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकंजारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुक
पोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविंदं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्श्रीवत्सलांछनः ॥चतु
र्भुजोऽरविंदाक्षो वनमाल्यतिसुंदरः॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन
निरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवंतं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥ हस्त
प्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकंदरम् ॥ ७ ॥

जाता है, इसलिये मैं भी शस्त्ररहित पैदल होकर इसके संग युद्ध करूं ॥५॥ हे महाराज ! इस प्रकार कालयवन मनमें निश्चय करके पराङ्मुख होकर भागते हुए योगी जनोंके भी हाथ न आवें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रके पकड़नेको पीछे दौडा * ॥६॥ पग पगपर "अब पकडा, अब पकडा" ऐसे अपने आपको दिखाते दिखाते म्लेच्छराज कालयवनको श्रीकृष्णचन्द्र बडी दूर पर्वतकी गुफामें लेगये ॥ ७ ॥

---

* शंका—यवनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान् क्यों भाग गये, इसका क्या कारण ?

उत्तर—एक समय यदुवंशी अपनी सभामें अपने कुलकी कन्याके वचनोंको स्मरण कर गर्गाचार्यको हँसने लगे, गर्गाचार्य तो श्रीभगवानके पूजनमें रात दिन रहते थे और स्त्रीसे प्रीति कम रखते थे इससे कन्याने अपने यादवोंसे कहा कि गर्गमुनि नपुंसक हैं । इससे यदुवंशी उक्त मुनिकी हँसी किया करते थे इसलिये गर्गने यादवोंका नाश करनेके लिये एक पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्रको वरदान दिया कि हे पुत्र ! युद्धमें यदुवंशी तेरे कुलके सामने अथवा तेरे सामने जो खडे होंगे तो उसी समय भाग जायँगे। श्रीकृष्ण इस बातको जानकर भाग गये ।

यादवोंके कुलमें तू जन्मा है इस लिये तेरा भागना उचित नहीं है, इस प्रकार आक्षेप करता हुआ महावेगसे दौडने लगा, परंतु पापी होनेके कारण श्रीकृष्णको न पकड सका, क्योंकि विना पाप नष्ट हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति नहीं होती है॥८॥ हे परीक्षित्! जब म्लेच्छराज कालयवनने श्रीकृष्णचन्द्रपर दुर्वाक्यरूपी बाणोंका आक्षेप किया,तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफामें घुस गये,कालयवन भी दौड़ता हांफता इनके पीछे पीछे उस गुफामें घुस गया, वहां एक पुरुष और सो रहा था, उसे देख कालयवन विचार करने लगा ॥ ९ ॥ कि, यह दुष्ट मुझे इतनी दूर लाकर यहाँसाधुकी नाईं शयन कर रहा है, इस प्रकार कालयवनने निश्चय कर उस सोते हुए पुरुषको कृष्ण जानकर एक

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ॥ इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥८ ॥ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकंदरम्॥ सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ॥ इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत्॥१०॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम्॥११॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ ॥१२॥राजोवाच ॥ को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्य एव च ॥ कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः॥१३॥

लात मारी ॥ १० ॥ वह पुरुष बहुत दिनोंका सोया हुआ था, इसलिये धीरे धीरे नेत्र खोल चारों ओर देख उसने कालयवनको देखा॥ ११॥ हे भारतवंशी राजा परीक्षित्! उसी समय क्रोधी मुचुकुंदके देखनेसे कालयवनके शरीरसे ऐसी अग्नि प्रकट हुई कि, जिससे उसका शरीर क्षणभरमें जल भुनकर भस्म हो गया॥१२॥ यह सुन राजा परीक्षित् पूछने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! जिसने अपनी क्रोधाग्निसे कालयवनका प्राण संहार किया, उसका क्या नाम और वह कौन पुरुष है?उसने किसके वंशमें जन्म ग्रहण किया है?क्या उनका प्रभाव है?किनके पुत्र हैं ? और किसलिये इस गुफामें सोते थे ? सो सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझे सुनाइये ॥ १३ ॥

तब श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित्! इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न मान्धाताका पुत्र गुणवान् ब्राह्मणोंका भक्त मुचुकुन्द नाम राजा था॥ १४॥ एक समय असुरोंसे भयभीत होकर इन्द्रादिक देवताओंने अपनी रक्षा करनेके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की तो इन्होंने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा की ॥ १५ ॥ इसके उपरांत स्वर्गके पालन करनेवाले स्वामिकार्तिकजीको आया हुआ देखकर सब देवता इनसे कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द! हमारी रक्षा करनेमें जो कुछ कष्ट आपको हुआ है इससे निवृत्त होकर आराम करो ॥ १६ ॥ हे वीर! तुमने मनुष्य लोकके निष्कंटक राज्यको त्याग कर हमारी रक्षा की है, इससे तुम्हारे विषयके भोग छूटे ॥ १७ ॥ और तुम्हारे पुत्र, रानी, जातिके बन्धु बांधव, प्रधान दीवान, मन्त्री, राज्यकी प्रजा, इनमेंसे अब कोई शेष नहीं है, सबका कालने संहार कर दिया ॥ १८ ॥ काल बलवान्से बलवान् है, भगवान्की शक्ति है, समर्थ, अविनाशी है और जिस प्रकार पशुओंका पालन करनेवाला ग्वालिया पशुओंको चराता है, उसी प्रकार आप क्रीडा करके सब प्रजाको इधर उधर चलाता है ॥ १९ ॥ सब देवता कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द! तुम्हारा कल्याण हो, मोक्षके अतिरिक्त और जो इच्छा हो सो वर मांगो, क्योंकि मोक्षके दाता तो केवल एक विष्णु भगवान् ही हैं ॥२०॥ हे परीक्षित्! जब इस प्रकार देवता लोगोंने कहा तब महायशस्वी राजा मुचुकुन्दने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा करनेसे श्रमित होनेके कारण यह वर मांगा कि, मैं

९५

श्रीशुक उवाच॥ स इक्ष्वाकुकुले जातो मांधातृतनयो महान्॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः॥१४॥ स
याचितः सुरगणैरिंद्राद्यैरात्मरक्षणम्॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम्॥१५॥लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचु
कुन्दमथाब्रुवन्॥ राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात्॥ १६ ॥ नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकंटकम्॥
अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमंत्रिणः॥ प्रजाश्च
तुल्यकालीया नाऽधुना संति कालिताः ॥ १८॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः॥ प्रजाः कालयते
क्रीडन्पशुपालो यथा पशून्॥१९॥वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः॥
॥ २० ॥ एवमुक्तः स वै देवानभिवाद्य महायशाः॥ निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्शितः ॥२१॥ यः कश्चिन्मम
निद्राया भंगं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥ २२ ॥

सोता ही रहूँ औरजो कोई मेरी निद्रा भंग करे,वहउसी समय भस्म हो जाय, यह वर मांगा- देवताओंने कहा कि, ऐसा ही होगा ॥२१॥
॥ २२ ॥ तब राजा मुचुकुन्द देवताओंकी आज्ञा पाय पर्वतकी गुफामें जाकर सो रहा । इससे देवताओंने कह दिया था कि, जो तुम्हारी
निद्रा भंग करेगा, वह तत्काल ही जलके भस्म हो जायगा ॥२३॥ जब कालयवन जलके भस्म हो गया, तब चतुर्भुजरूप होकर भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्रने राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया ॥ २४ ॥ मेघके समान श्यामवर्ण,पीतवस्त्र धारण किये, हृदयमें प्रकाशमान भृगुलताका
चिह्न और कौस्तुभमणि धारण करनेसे अत्यन्त ही देदीप्मान हो रहे थे ॥ २५ ॥ चतुर्भुज, वैजयन्ती मालासे सुशोभित और दमकते हुए

अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ॥ स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मी
भवतु तत्क्षणात् ॥२३॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२४॥
तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥२५॥ चतुर्भुजं रोचमानं
वैजयंत्या च मालया ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम्॥२६॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपी
च्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥२७॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शंकितः शनकै राजा दुर्धर्षमि
व तेजसा ॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरु
कंटके ॥ २९ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेंद्रो वा लोकपालोऽपरोऽपि वा॥३०॥

मकराकृति कुण्डलोंसे शोभायमान हो रहे ॥ २६ ॥ देखने योग्य प्रेमभरी मुसक्यान सहित विलक्षण और नवीन अवस्थायुक्त, मतवाले
सिंहके समान पराक्रमी ॥२७॥ इस प्रकार श्रीकृष्णका तेज देखते ही भयभीत होकर राजा मुचुकुन्द धीरे धीरे पूछने लगा ॥ २८ ॥ राजा
मुचुकुन्द बोला कि, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो ? कमलके समान कोमल आपके चरण हैं और इस पर्वतकी गुफामें किस लिये आये हो ?
जो कांटोंके वनमें बिचरते फिरते हो ॥२९॥क्या आप तेजवान् भगवान् अग्नि हैं वा सूर्य हैं अथवा चन्द्रमा हैं या इन्द्र हैं किंवा समस्त
लोकपालोंके कर्त्ता या देवता हैं ?॥ ३० ॥

अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हो ! मुझे जान पडता है कि, आप विष्णु भगवान् हैं, क्योंकि जैसे दीपक अपने प्रकाशसे अंधकारका नाश कर देता है; वैसे ही आपने अपने तेजसे इस गुफाका अंधकार नष्ट कर दिया ॥ ३१ ॥ यह सुन श्रीभगवान् बोले कि, हे वीर ! हमें आपका जन्म, कर्म व गोत्र सुननेकी अत्यन्त अभिलाषा है,सो प्रसन्नतापूर्वक हमें सुनाइये ॥३२॥ तब मुचुकुन्दने कहा कि, हे पुरुषसिंह ! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मान्धाताका पुत्र और मुचुकुन्द मेरा नाम है ॥ ३३ ॥ मैं बहुत दिनोंमें जागा हूँ, इसलिये मुझे खेद प्राप्त हुआ है और नींदके मारे मेरी इन्द्रियें चलायमान हो रही हैं, क्योंकि मैं इच्छानुसार इस वनमें सो रहा था और अभी

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वातं प्रदीपः प्रभया यथा॥३१॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं
नरपुंगव ॥ स्वजन्मकर्मगोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३२॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबंधवः ॥ मुचुकुंद इति
प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥३३॥ चिरप्रजागरश्रांतो निद्रयापहृतेंद्रियः ॥ शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितो
ऽधुना ॥ ३४ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनंतरं भवाञ्श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥
तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ ३६ ॥ एवं संभाषितो राज्ञा
भगवान्भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि
संति मेंऽग सहस्रशः ॥ न शक्यंतेऽनुसंख्यातुमनंतत्वान्मयापि हि ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुज
न्मभिः ॥ गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि काहचित् ॥ ३९ ॥

किसीने आकर जगा दिया ॥ ३४ ॥ और जिसने मुझे आकर जगाया, वह पुरुष उसी समय जलकर भस्म हो गया उसके पीछे आपके दर्शन हुए ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा असह्य तेज बहुत कालतक हम नहीं देख सकते, क्योंकि आप देहधारियोंके माननीय हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जब राजा मुचुकुन्दने प्रार्थना करी तब संपूर्ण प्राणियोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहने लगे ॥ ३७ ॥ कि, हे मुचुकुन्द! मेरे जन्म कर्म और नामका अंत नहीं है,इसलिये मैं भी उनकी गणना नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ अनेक जन्म धारण करके कदाचित् मनुष्य पृथ्वीके रजःकणोंकी तो गणना कर सकता है परन्तु मेरे गुण,कर्म,जन्म, नामकी गिनती नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥

हे राजा मुचुकुन्द ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान मेरे जन्मोंकी गणना करते करते बडे बडे ऋषि, मुनि भी पार न पा सके ॥ ४० ॥ तो भी हे अंग ! अभीके जो मेरे नाम कर्म हैं सो मैं कहता हूँ, तुम श्रवण करो. पृथ्वीका भार उतारने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने मेरी प्रार्थना की थी ॥ ४१ ॥ इस कारण यदुवंशमें वसुदेवके गृह मैंने जन्म लिया इसलिये मेरा नाम वासुदेव प्रसिद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ हे मुचुकुन्द ! साधुद्वेषी कालनेमि कंस इत्यादिका मैंने वध किया और यह जो कालयवन है, सो तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टिसे भस्म हो गया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! पहले तुमने मेरी प्रार्थना की थी, इसलिये मैं तुमपर अनुग्रह करनेके लिये इस गुफामें आया हूँ ॥ ४४ ॥ हे मुचुकुन्द !

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमंतो नैवांतं गच्छंति परमर्षयः ॥ ४० ॥ तथाप्यद्यतनान्यंग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिंचेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ४१ ॥ अवतीर्णो यदुकुल गृह आनकदुंदुभेः ॥ वदंति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलंबाद्याश्च सद्द्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥ प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाऽहं भक्तवत्सलः ॥ ४४ ॥ वरान्वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ॥ मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुंदो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ॥ ४६ ॥ मुचुकुंद उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजंत्यनर्थदृक् ॥ सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४७ ॥

मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर मांगो, क्योंकि मेरी शरण आनेसे मनुष्यको फिर किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इस प्रकार श्रीकृष्णचंद्रने कहा, तब प्रसन्न हो गर्गाचार्यके वचन स्मरण कर उन्हें साक्षात् परिपूर्ण भगवान् जान प्रणाम करके राजा मुचुकुन्दने कहा ॥ ४६ ॥ कि हे ईश ! तुम्हारी मायासे यह लोग मोहित होकर अनर्थ (जगत्) की ओर दृष्टि लगाय सुखके लिये दुःखमूल घरोंमें रहकर क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी ठगकर मोहित हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

इस मृत्युलोकमें जन्म लेकर जो मनुष्य आपके चरणोंका ध्यान नहीं करता है सो पशु समझना. ऐसा है तों भी इस शरीरका मैंने इतना अभिमान किया है कि रथ, घोडे, हाथी, पैदल, सेना और मुख्य मुख्य सेनाध्यक्षको साथ लेकर पृथ्वीपर विचरता रहा परंतु कालरूप तुम्हारा स्मरण कभी न किया इस लिये मेरा इतना समय व्यर्थ गया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अमुक अमुक कार्य इस रीतिसे करना, ऐसे संदेहोंमें प्रमत्त रहनेवाले, मनोरथ पूर्ण होनेसे भी इच्छावाले और इच्छानुसार कार्य पुरा होनेपर भी लोभ और लालच जिसका बढ़ जाता है, ऐसे मनुष्यको मुखसे जिस प्रकार गलाफू चाटता सर्प उन्दर (मूसा) को पकड लेता है, उसी प्रकार अप्रमत्त (सावधान) कालस्वरूप

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथंचिदव्यंगम यत्नतोऽनघ ॥ पादारविंदं न भजत्यसन्मतिर्गृहांधकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४८ ॥ ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरंतचिंतया ॥ ४९ ॥ कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन्सुदुर्मदः ॥५०॥ प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ॥ ५१ ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥५२॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवंदितः ॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते॥ ५३ ॥

आप झपट लेते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मनुष्यदेव अर्थात् राजा यह नाम धरकर जो सुवर्णके बने रथोंपर बैठकर चलते हैं, सो देह दुरत्यय काल करके मरे पीछे कुत्ते सियार यदि भक्षण करें तो विष्ठा हो जाय,पडा रहे तो कृमि पड़ जायँ और अग्निसे जला दिया सो भस्म हो जाय, इस प्रकार तीन नामोंको धारण करते हैं ॥५२॥ हे भगवन् ! जिस पुरुषने सम्पूर्ण दिशाओंको जीत लिया है, जिसको संग्राममें कोई शत्रु शेष नहीं रहा और जिसे सब बराबरके राजा प्रणाम करते हैं, ऐसे उत्तम सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्ती राजा भी मैथुन करनेके लिये

घरोंमें क्रीड़ामृगके समान स्त्रियोंसे नाच नचाये जाते हैं, जैसे बाजीगर बन्दरको नचाता है ॥ ५३ ॥ प्रथम यह पुरुष सब विषयोंको त्यागके तपमें बडी श्रद्धा कर पृथ्वीमें शयन करता है और ब्रह्मचर्य रहकर विषय भोगनेके लिये दान पुण्य करता है और फिर विचार करता है कि, इस जन्ममें तप कर चक्रवर्ती राजा हो तपस्याके प्रभावसे फिर इन्द्र हो जाऊंगा, इस प्रकार तृष्णाके बढ़नेसे उस पुरुषको कभी सुख नहीं होता ॥ ५४ ॥ हे भगवन्! इस संसारमें जन्म मरण प्राप्त हुए जीवको जिस समय तुम्हारे अनुग्रहसे संसारका अंत होता है, उस समय तुम्हारे भक्तोंका सत्संग हो तो सब संगको त्यागकर कार्य कारणके नियन्ता आपमें जो भक्ति करते हैं, वह संसारके बंधनोंसे छूट जाते हैं ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर! यह आपने बडा ही अनुग्रह किया, जो मैं अकस्मात् राज्यबंधनोंसे छूट गया. यह मैं मानता हूं. राज्य छूटनेके लिये अकेला

करोति कर्माणि तपस्सुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय
कल्पते ॥ ५४॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत तत्समागमः ॥ सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे
त्वयि जायते मतिः ॥ ५५ ॥ मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबंधापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरे
कचर्यया वनं विविक्षद्भिरखंडभूमिपैः ॥ ५६ ॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्य
कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥ ५७ ॥ तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमस्सत्त्वगुणानुबं
धनाः॥ निरंजनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृ
षषडमित्रोऽलब्धशांतिः कथंचित् ॥ शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश ॥५९॥

होकर वनमें जानेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्ती राजा भी प्रार्थना करते हैं कि, हमारा किसी प्रकार राज्यबंधन छूट जाय, जिससे स्वाधीन होकर वनमें जा बैठें ॥ ५६ ॥ हे समर्थ! निष्किंचन साधुसे पूजित तुम्हारे चरणारविन्दोंका सेवन करनेसे मैं और किसी वरकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि साक्षात् मोक्षके देनेवाले तुम्हारा आराधन करके ऐसा कौन विवेकी पुरुष है, जो आत्माका बंधनरूप वर मांगेगा? ॥५७॥ हे ईश! इसी लिये सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इनके बंधन और ऐश्वर्य, अथवा शत्रुका विनाश और धर्मादिक मनोरथ त्याग ज्ञानघन, निरंजन, उपाधिरहित, निर्गुण, अद्वैत ईश्वर आपकी मैं शरण आया हूँ ॥ ५८ ॥ हे अच्युत! मैं इस संसारमें बहुत दिनोंसे कर्मफलोंके

कारण दुःखी हूँ और कर्मोंकी वासनाओंसे पीडित हूँ और तृष्णासहित जो यह छः इन्द्रियरूप शत्रु मेरे पीछे पड़ रहे हैं, इसलिये मुझे किसी प्रकारसे शांति नहीं है, अब मैं जैसे तैसे शोकरहित भयके दूर करनेवाले तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण आ गया हूँ, सो मेरी रक्षा करो ॥५९॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि बडी निर्मल और उदार है, क्योंकि मैंने वर देनेके लिये कहकर तुम्हे लोभ उत्पन्न किया, तो भी कामना करके तुम्हारी बुद्धि चलायमान न हुई ॥६०॥ मैंने वर देनेके लिये कहकर जो लोभ उत्पन्न किया, सो तुझे सचेत किया है और हे राजन्! यह निश्चय जान कि, मेरे भक्तोंको कदाचित दुःख आकर प्राप्त हो तो भी उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है॥

श्रीभगवानुवाच ॥ सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥६०॥
प्रलोभितो वरैर्यस्त्वमप्रमादाय विद्धि तत ॥ न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते कचित् ॥६१॥ युंजानानामभक्तानां
प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥६२॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ॥
अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्मे स्थितो जंतून्न्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा
जह्यघं मदुपाश्रितः ॥६४ ॥ जन्मन्यनंतरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥६५॥
इति श्रीमद्भा०महापु०दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

९१८

॥ ६१ ॥ हे मुचुकुन्द ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वह प्राणायामादि साधनोंसे मनको वश करते हैं, तो भी उनका मन विषयोंके लोभमें जाता हुआ दीखता है, क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६२ ॥ हे वीर! मुझमें मन लगाकर जहाँ आपकी इच्छा हो वहाँ विचरण करो और तुम्हारी भक्ति नित्यप्रति मुझमें हो ॥ ६३ ॥ क्षत्रियवंशमें रह शिकार खेलकर जो तैंने जीवोंकी हिंसा की है सो अब सावधान होकर मेरा आश्रय लेकर तप कर जिससे तेरे सब पाप छूट जायँ ॥६४॥ हे राजा मुचुकुन्द ! दूसरे जन्ममें सब प्राणियोंके हित करनेवाले द्विजरूप तुम मुझे प्राप्त होगे ॥ ॥६५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दोहा-बावनवें अध्यायमें, रुक्मिणिको सन्देश । द्विजवर ले गयो द्वारका, जहँ श्रीकृष्ण व्रजश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण
परीक्षित। इस प्रकार कृष्णसे अनुगृहीत होकर इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुन्द श्रीकृष्णकी परिक्रमा दे नमस्कार कर गुफासे बाहर निकल आये
॥ १ ॥ राजा मुचुकुन्द मनुष्य,पशु,लतादिक और छोटे छोटे वृक्षोंको देखकर"अब कलियुग आ गया" इस प्रकार निश्चय कर उत्तर दिशाको
चले गये * ॥ २ ॥ वहांसे फिर श्रद्धापूर्वक सब संग त्याग सन्देहरहित हो राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाय गंधमादन पर्वतपर

॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनंदनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥१॥ स
वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो
निस्संगो मुक्तसंशयः॥समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गंधमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्व
द्वंद्वसहः शांतस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं
द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥

चले गये ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम। फिर नरनारायणके स्थान बदिरिकाश्रममें जाकर समस्त द्वन्द्व अर्थात् सुख,दुःख, भूख, प्यास, शीत, उष्णादि
सहकर शांतस्वरूप मुचुकुंद तप करके भगवान् वासुदेवकी आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरांत श्रीकृष्णचंद्रने म्लेच्छोंसे घिरी
मथुरापुरीमें आकर म्लेच्छोंकी सब सेनाका संहार किया और उनका सब धन लेकर द्वारकापुरीको भेज दिया ॥ ५ ॥

---

* **शंका**-श्रीकृष्णजी मर्त्यलोकमें विराजते थे, फिर उनके सामने पृथ्वीपर मनुष्य, पशु, वृक्ष, पर्वत आदि लेके जो सब वस्तु प्रथम बडी बडी थीं, सो वस्तु छोटी छोटी क्यों होगईं ? यह बडा आश्चर्य है ! क्योंकि कृष्ण भगवान् मृत्युलोकसे,वैकुंठको चले जाते तब बडी वस्तु छोटीछोटी हो जातीं तो शंका न होती, श्रीकृष्णके सामने विपरीत होनेका क्या कारण ?

उत्तर-द्वापरयुगमें जैसी प्रजा ब्रह्माने बनाई थी, वैसेही प्रजा मर्त्यलोकमें उसी समय थी,न तो तिलसमान कम और न तिलसमान अधिक, परन्तु राजा मुचुकुन्दने श्रीकृष्णके दर्शनकी प्रीतिसे प्रसन्न होकर पर्वतको भी छोटा समझा और पदार्थोंकी तो क्या बात है. इसका यह अर्थ कि, कृष्णके दर्शनसे सब वस्तुको राजाने छोटा समझा, एक कृष्णके स्नेहहीको बडा समझा ॥

श्रीकृष्णचंद्रकी आज्ञा पाते ही मनुष्य बैलोंके ऊपर धन लादकर जब ले चले तब जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर चढ आया ॥६॥ श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी शत्रुकी सेनाको देख मनुष्यावतारके कारण शीघ्र ही उठकर भागे ॥ ७ ॥ यद्यपि इ हें किसीका डर नहीं था, तो भी बहुत भयभीत हो गये, इसलिये बहुतसे धनको मार्गमें छोड़ कमलसे कोमल चरणोंसे बहुत दूरतक कोसों भागे चले गये ॥ ८ ॥ मगधदेशका राजा जरासन्ध कृष्ण बलदेवको भागता हुआ देख हँसकर आप भी उनके पीछे दौड़ने लगा ॥९॥ बहुत दूरतक भागनेके कारण श्रमित होकर श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजी प्रवर्षणनाम पर्वतपर चढ़ गये, जिसपर देवराज इंद्र नित्य जल वर्षाते रहते थे ॥ १० ॥ हे राजा

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ॥ आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रांतौ तुंगमारुहतां गिरिम् ॥ प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥ गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ॥ ददाह गिरिमेधोभिः समंतादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ॥ दशैकयोजनोत्तुंगान्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥

परीक्षित् । जरासन्धने कृष्ण बलरामको पर्वतपर चढ़ा जान उनको बहुत ढूंढा परंतु कहीं पता न लगा तब उस पर्वतके चारो ओर आग लगा दी ॥ ११ ॥ हे राजन् । जब पर्वत जलने लगा तब श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव दोनों भ्राता उस ४४ चवालीस कोस ऊँचे पर्वतके शिखरसे उछलकर पृथ्वीपर कूद पडे ॥१२॥ हे महाराज । सेवकों सहित जरासन्धसे अलक्षित यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण बलराम समुद्रकी खाईसे युक्त द्वारकापुरीमें आये ॥ १३ ॥

हे राजन्! जब समस्त पर्वत जलकर भस्म हो गया तब मगधदेशके राजा जरासन्धने विचारा कि,कृष्ण बलदेव भी इसीके संग ही भस्म हो गये, इसलिये अपनी सब सेना साथ लेकर मगधदेशको चला गया॥ १४॥यद्यपि अब श्रीकृष्णचन्द्रके विवाहकी कथा कहनेके लिये प्रथम (नवमस्कन्धमें) बलदेवजीके विवाहकी कथा वर्णन कर आये हैं, तो भी फिर एक श्लोकमें वर्णन करते हैं. हे परीक्षित्! आनर्त्तदेशके राजा रेवतने कमलयोनि ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री रेवतीका बलदेवजीसे विवाह कर दिया, यह पहिले कह चुके हैं ॥ १५ ॥ हे भरतवंशावतंस परीक्षित! भगवान् वासुदेव भी स्वयंवरमें जाकर लक्ष्मीजीके अंशसे विदर्भ देशमें उत्पन्न हुई भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको विवाह लाये ॥ १६ ॥

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ॥१४॥आनर्ताधिपतिः श्रीमा
न्रैवतो रेवतीं सुताम् ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविंद उपयेमे कुरूद्वह ॥
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां
तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम
इति श्रुतम् ॥ १८ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत ॥
॥ १९॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥

शाल्व और शिशुपालादिक राजाओंकी सेनाको जीत सब लोकोंके देखते हुए जैसे देवताओंको जीतकर गरुड़जी अमृत लेआते हैं इसी प्रकार श्रीकृष्णचंद्र रुक्मिणीजीको ले आये॥ १७॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! अत्यन्त स्वरूपवान् राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको युद्धमेंसे हरके श्रीकृष्णचन्द्रने ब्याहा, यह वार्त्ता हमने आपके ही मुखसे सुनी है ॥१८॥ हे व्यासनंदन! जरासन्ध शाल्व इत्यादि राजाओंको जीतकर जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीको लाये वह चारित्र सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये॥१९॥ हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्णचद्रकी कथा अत्यन्त पवित्र और मनोहर समस्त लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली है, नित्य

नवीन सुननेके सारको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है जो ऐसी कथायें सुनकर तृप्त हो ! ॥२०॥ जब राजाने यह वचन कहे तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! विदर्भदेशका पालन करनेवाला महायशस्वी भीष्मक नाम राजा था, इसके पाँच पुत्र और परम स्वरूपवान् एक कन्या उत्पन्न हुई ॥२१॥ इन पुत्रोंमें सबसे बड़ा रुक्मी, इससे छोटा रुक्मरथ, इससे छोटा रुक्मबाहु, इससे छोटा रुक्मकेश और रुक्मकेशसे छोटा रुक्ममाली, यह पाँच पुत्र उत्पन्न हुए और पांचोकी बहन परम सुशीला पतिव्रता रुक्मिणी हुई ॥२२॥ घरमें आये हुए देवर्षि नारदजीके मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रका गुणानुवाद सुनकर श्रीरुक्मिणीजीने अपने समान जान विवाह करनेके लिये मनमें प्रतिज्ञा की ॥ २३ ॥ और इधर सुन्दर बुद्धि, उदारता, रूप, पराक्रम, शोभायुक्त रुक्मिणीके गुण सुनकर श्रीकृष्णचंद्रने अपने समान स्त्रीके व्याहनेका

श्रीशुक उवाच ॥ राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पंचाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥
रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनंतरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥ सोपश्रुत्य मुकुंदस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ॥
कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥२४॥ बंधूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगनीं नृप॥ ततो निवार्य कृष्णद्विड्
रुक्मी चैद्यममन्यत ॥२५॥ तदवेत्यासितापांगी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिंत्याऽऽप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणो
द्द्रुतम् ॥२६॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कांचनासने ॥ २७ ॥

अभिलाष किया ॥ २३ ॥ हे राजन् ! माता, पिता, भ्राता आदि सबकी यही इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णचंद्रसे करेंगे, परन्तु श्रीकृष्णचंद्रका शत्रु रुक्म "हम अपनी बहनका विवाह कृष्णके साथ नहीं करेंगे" इस प्रकार निषेधकर "रुक्मिणीके योग्य वर शिशुपाल है" यह मनमें निश्चय किया ॥२५॥ सुन्दर नील कटाक्षवाली विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीने सुना कि, श्रीकृष्णके साथ मेरा भाई व्याहनेको निषेध करता है, यह जान बहुत उदास होकर उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाय श्रीकृष्णचंद्रके लिवा लानेके लिये भेजा ॥२६॥ हे राजन् ! यह ब्राह्मण जिस समय द्वारकापुरीमें पहुँचा उसी समय द्वारपालोंने इसे भीतर पहुँचाया, वहां इसने सुवर्णके सिंहासनपर

विराजमान आदिपुरुष भगवान् वासुदेवके दर्शन किये ॥२७॥ गौ ब्राह्मणोंका पालन करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र उस ब्राह्मणको देखतेही सिंहासन परसे उतर पडे और ब्राह्मणको सिंहासनपर बिठाय, जिस प्रकार कोई अपने देवताकी पूजा करता है उसी प्रकार पूजा करने लगे ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् । जब ब्राह्मण भोजन कर चुका और मार्गकी थकावट दूर हो गयी तब सत्पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उसके निकट जा अपने हाथोंसे उसके चरण दाबते दाबते यह पूँछा॥२९॥ कि, हे द्विजश्रेष्ठ । वृद्धसंमत तुम्हारा धर्म बहुत कठिनतापूर्वक तो नहीं चलता है ? सदा

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ॥ उपवेश्यार्हयांचक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥२८॥ तं भुक्तवंतं विश्रांतमुपगम्य सतां गतिः ॥ पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ कच्चिद्द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ॥ वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा॥ ३० ॥ संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥ असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वांगविज्वरः ॥३२॥

तुम्हारे मनमें संतोष तो वर्त्तमान है ? ॥ ३० ॥ जिस किसी प्रकारसे ब्राह्मण संतुष्ट होकर वर्त्ते अर्थात् जो वस्तु मिले उसीमें संतोष रक्खे, स्वधर्मसे च्युत न हो तो यही उसको समस्त फलके देनेवाले हैं ॥ ३१ ॥ और जिसके मनमें संतोष नहीं है वह ब्राह्मण यद्यपि इन्द्र होजाय तो भी सब लोकोंमें घूमता फिरता है,तृष्णाके मारे एक स्थानपर स्थिर नहीं रहता. हे ब्राह्मण ! प्रारब्धही तो मनुष्यको राजा रंक करता है * और जिसके पास कुछ भी नहीं है और मनमें सन्तोष है,वह ब्राह्मण सब खेदको त्यागकर आनन्द पूर्वक सोता है ॥ ३२ ॥

---

* दृष्टान्त—एक घोडोंके व्यापारीके घोडेसे राजाके पुत्रका कोई रोग जाता रहा राजाने व्यापारीसे कहा कि, इस घोडेकी कीमत लेओ व्यापारीने कहा महाराज! यह घोडा कुमारके चढनेको मैने वैसेही दिया और मुझ द्रव्यकी इच्छा नहीं. जब उसने ऐसा कहा, तब राजाने उसका बहुत आदर सन्मान कर बिदा किया और कहा कि यहां आते जाते रहियो तब कुछ वर्ष उपरान्त व्यापारीका प्रारब्ध बिगडा धन सब चोरी होगया, घोडे मर गये और जब कुछ उपाय न चला तो राजाके पास आया राजाने यह समाचार सुन, उसे एक मकानमें टिका दिया और कुछ दिन पीछे उससे भेट कर पूछा कि, तुमको क्या बनाना आता है? व्यापारी बोला कि मैं चाबुक बनाना जानता हूँ राजाने उस समय पांच रुपये देकर कहा कि इसके चाबुक बनाओ और बेचो, रहनेके लिये मकान तुम्हें देही दिया है तो व्यापारी चाबुक बनानेलगा, कुछ दिन उपरान्त उसमें भी घाटा हुआ और पांचों रुपये व्यय होगये, तो राजाने फिर पांच रुपये देदिये और फिर घट गये इसी प्रकार पांच पांच रुपये, सात वर्ष तक राजाने दिये परन्तु जमा

जो द्विज आपही मिली वस्तुमें सन्तोष करता है, अपने धर्ममें निष्ठ है और समस्त जीवोंकी रक्षा करता है, शान्तस्वभाव अहंकाररहित है उसको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस राजाके देशमें तुम वास करते हो, वह राजा तो तुमपर प्रसन्न है ? क्योंकि, जिस राजाके देशमें भलीभाँति गौ ब्राह्मणका पालन होता है, वह राजा मुझे अत्यन्त प्यारे लगते हैं ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तम ! समुद्रको उल्लंघन कर

95 1

विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहंकारिणः शांतान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३ ॥ कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः । सुखं वसंति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान्भुवनसुंदर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥

जिस कार्य करनेकी इच्छासे आप यहाँपर आये हैं, जो कहने योग्य वार्त्ता हो तो हमारे सम्मुख कहो, जिससे उस कार्यके करनेका उपाय किया जाय ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! श्रेष्ठ आसनपर विराजमान, लीलासेही जिन्होंने मनुष्यदेह धारण किया है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके पूछनेपर वह ब्राह्मण बोला कि ॥ ३६ ॥ हे मधुसूदन ! रुक्मिणीने आपको एकान्तमें यह पत्री दी है ।

–घटती ही गई जब आठवाँ वर्ष प्रारंभ हुआ तो एक रुपया बढा अर्थात पांच रुपयेके छः रुपये होगये तब यह देखकर राजाने दश रुपये दिये, फिर अधिक उन्नति हुई और द्रव्य बढनेही लगा । राजाने फिर घोडे लिवादिये उसमें बहुत द्रव्य उपार्जन किया, जब पहलेके समान द्रव्य होगया, तब व्यपारीने विचारा कि, जितना कुछ राजाका द्रव्य हमने लिया है, सो देदेना चाहिये, यह अपने मनमें निश्चय कर राजासे मिलने गया. उस दिन राजाने उसका बहुत सत्कार किया और कहा कि, मेरा आधा राज्य तू लेले, तब व्यापारी क्रोध करके बोला कि, जब मेरे पास कुछ नहीं था तो पांच रुपयेसे अधिक नहीं दिये, न मुझसे अच्छी प्रकार मिले और अब आधा राज्य देते हो. तब राजा बोले, कि उस समय तेरा प्रारब्ध बिगडरहा था। यदि मैं अपना सारा राज्य भी तुझको देदेता परंतु तोभी तेरे पास कुछ नहीं रहता, इसलिये थोडे द्रव्यसे तेरा ग्रह टाल दिया, प्रारब्धके बली होनेसे और बलहीन होजाते हैं ॥

तब श्रीकृष्णचन्द्रजीकी आज्ञासे उस प्रेमके चिह्नवाली पत्रीको खोलकर वह ब्राह्मण सुनानेलगा, रुक्मिणीने लिखा है कि, हे त्रिलोकीमेंसुंदर ! हे अच्युत अर्थात् अखण्डरूप ! जबसे श्रवण करनेवाले पुरुषोंके कर्णोंके छिद्रों द्वारा हृदयमें प्रवेश कर शोकसंताप दूर करनेवाले आपके गुण और दृष्टिवालोकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभरूप श्रीमान्‌का रूप सुना है, तभसे मेरा मन आपमें लग रहा है॥३७॥ हे मुकुंद ! हे पुरुषशार्दूल ! कौन बलवान् उदारगुणयुक्त धैर्यवान् कन्या तुम्हे जो कि, मनुष्यलोकके अतिप्रिय कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, धन, घर इन सबमें तुम्हारे ही समान हो, तिसे विवाहके समयमें पति स्वीकार न करे ?॥३८॥ हे समर्थ ! इस कारण मैंने अपना पति आपको

का त्वा मुकुन्द महतीकुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम्॥३८॥ तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरंग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपते बलिमम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥ अंतःपुरांतरचरीमनिहत्य बंधूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥

वरण किया है और अपनी देह अर्पण कर दी है, मुझे अपनी दासी अर्थात् भार्या बनाओ. हे कमलदललोचन ! मैं आपका भाग हूँ, उसे जैसे सिंहके भागको सियार ग्रहण नहीं कर सकता, इसी प्रकार शिशुपाल आकर मुझे स्पर्श न करे ॥ ३९ ॥ बावली; कुआँ, तालाब, बाग; यज्ञ, दान, नियम, तीर्थ, देवता, ब्राह्मण, गुरु इनकी पूजा करनेसे भगवान् वासुदेव प्रसन्न होते हों तो श्रीकृष्णचन्द्र मेरा हाथ पकडके ले जायँ और शिशुपालादि कोई राजा न आने पावें॥४०॥ हे अजित ! कल्ह ही विवाहका दिन है इसलिये तुम गुप्तवेषसे विदर्भदेशमें आवो; परंन्तु अकेले मत आना, पीछे सेना भी साथमें लेते आना. शिशुपाल और मगधदेशके राजा जरासन्धकी सब सेनाको मथन कर उस पराक्रमके मोलमें मुझ अपनी दासीकेसंग आसुरविधिसे विवाह कर लो॥४१॥ कदाचित् कहा कि, तुम तो रनवासके भीतर रहती हो, तुम्हारे बंधु बांधवोंको

मारे विना कैसे विवाह करूं, यह सन्देह मनमें कभी मत करो, क्योंकि हमारे कुलमें विवाहसे प्रथम दिन बडी कुलदेवी अम्बिकाकी यात्रा होती है, सो यात्रा करनेके लिये और देवीकी पूजा करनेको नववधू कन्या बाहर जाती हैं. वहाँसे मेरा ले जाना अतिसहज है, जैसे पार्वतीको महादेवजी लेगये॥४२॥ जिनके चरणारविन्दोंकी रजसे स्नान करनेको बडे२ साधु महात्मा अपना महान् अज्ञान दूर करनेकेलिये शिवजीके समान इच्छा करते हैं, हे कमलदललोचन ! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न न होंगे, तो व्रत कर करके प्राण त्याग कर दूँगी. यदि कहो कि, प्राण त्यागनेसे क्या होगा ? तो उत्तर यह है कि वारंवार त्याग करूंगी तो सौ जन्ममें तो प्रसन्न होंगे ? ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि, हे द्वारकानाथ । यह जो मैं गुप्त संदेशा लेकर आया हूँ, यदि यह करने योग्य कार्य हो तो शीघ्रता करनी चाहिये, विलम्ब करना उचित नहीं॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे

यस्यांघ्रिपंकजरजस्स्नपनं महांतो वांछंत्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यंबुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसू
न्व्रतकृशाञ्शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं
यच्चात्र क्रियतां तदनंतरम् ॥४४॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दश० उत्तरा० कृष्णं प्रति रुक्मिणीसंदेशप्रेषणं नाम
952 द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनंदनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं
प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्मम
मोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ॥ मत्परामनवद्यांगीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥३॥

दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिण्युद्वाहे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ दोहा–तिरपनमें निजप्रियाहित, हरि विदभ पग दीन । छीन लीन वैरीनसों, अपनी प्रिया प्रवीन ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित । यदुवंशियोंको आनन्दके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र विदर्भ देशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीका इस प्रकार संदेशा सुनकर ब्राह्मणका हाथ हाथमें पकडकर कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, जैसा रुक्मिणीका चित्त मुझमें लगा है, ऐसा ही मेरा चित्त भी रुक्मिणीमें लग रहा है और चिंताके मारे रातको नींद भी नहीं आती, मैं जानता हूं कि; रुक्मने द्वेष करके मेरे विवाहको मना कर दिया है ॥ २ ॥ दुष्ट राजाओंको जीतकर दोषरहित अंगवाली अनन्यगति रुक्मिणीको

जिस प्रकार काष्ठके मथनेसे मनुष्य अग्नि निकाल लेते हैं, वैसे ही ले आऊंगा ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे परीक्षित् ! मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् रुक्मिणीके विवाहका नक्षत्र जान रथवान्से बोले कि, रथवान् ! शीघ्र ही रथ जोतकर लाओ ॥४॥ शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प ,बलाहक नामक घोडोंको रथमें जीत कृष्णचंद्रके सन्मुख ला सारथी हाथ जोडकर कहने लगा, रथ उपस्थित है ॥ ५ ॥ रथको देखतेही शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने प्रथम ब्राह्मणको चढाय पीछे आप चढ शीघ्रगामी घोडोंके द्वारा आनर्त्तदेशसे चलकर एक ही रातमें विदर्भ देश पहुँचे ॥ ॥६॥ अपने पुत्र रुक्मके स्नेहवश होकर और उसकी आज्ञानुसार चलनेवाला कुंडिनपुरका राजा भीष्मक शिशुपालको अपनी कन्या देनेके

श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स
चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः॥ युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्रांजलिरग्रतः॥५॥आरुह्य स्यंदनं शौरिर्द्विजमारोप्य
तूर्णगैः॥ आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः॥६॥राजा स कुंडिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां
दास्यन्कर्माण्यकारयत ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥
॥ ८ ॥ स्रग्गंधमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः ॥जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः॥९॥पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रां
श्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मंगलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमंग
लाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥

लिये पुरकी शोभा और पितृ, देवताओंके पूजनादि कर्म कराने लगा ॥७॥ इसके उपरांत राजा भीष्मकने अपने पुरको शोभायमान करनेके लिये राजमार्गमें झाडू बुहारी दिलवाकर छिडकाव कराया. चित्र विचित्र ध्वजा पताका और बन्दनवारोंसे अपने पुरको अत्यन्त शोभायमान किया ॥ ८ ॥ माला, चन्दन, फूलोंके गहने और स्वच्छ वस्त्रोंसे शोभायमान स्त्री, पुरुष धाराप्रवाहकी भांति इधर उधर फिर रहे थे और सब मन्दिर अगरको सुगन्धसे सुगंधित थे ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! पितृ, देवताओंका पूजन करके और विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय राजा भीष्मकने रुक्मिणीका यथावत् स्वस्तिवाचन कराया ॥ १० ॥ फिर कन्याको भली प्रकार स्नान कराया, कौतुकसे

उसके हाथमें विवाहका कंकण बांध उत्तम नवीन वस्त्र पहराय अनेक अलंकारोंसे सुशोभित किया ॥ ११ ॥ तब द्विजोत्तम ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंको पढकर श्रीरुक्मिणीकी रक्षा करने लगे और अथर्ववेदके मंत्रोंको जाननेवाले पुरोहितने सूर्यादि ग्रहोंकी शांति करनेके लिये होम किया ॥१२॥ हे राजन्। विधि जाननेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको सुवर्णरूपी वस्त्र और तिल मिलाकर गुड व दूधवाली बहुतसी गायोंका दान किया ॥१३॥ जिस प्रकार राजा भीष्मकने अपनी कन्याका मंगल कराया उसी प्रकार चन्देलीके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके सब मंगलकर्म मंत्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कराये ॥ १४ ॥ मतवाले हाथियोंका समूह, रथ, पैदल, घोडे

चक्रुः सामर्ग्यजुर्मंत्रैर्बद्ध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशांतये ॥१२॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥ एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ॥ कारयामास मंत्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४॥ मदच्युद्भिर्गजानीकः स्यंदनैर्हेममालिभिः॥ पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुंडिनं ययौ ॥ १५ ॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ॥ निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने॥ १६ ॥ तत्र शाल्वो जरासंधो दंतवक्त्रो विदूरथः ॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौंड्रकाद्याः सहस्रशः॥१७॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ॥ यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥

इत्यादि चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर राजा दमघोष कुंडिनपुरमें पहुँचा ॥ १५ ॥ समाचार सुनते ही विदभदेशके राजा भीष्मकने अगौनी कर एक सजे हुए स्थानमें उन्हें जनवांसा दिया ॥ १६ ॥ तहां शाल्व, जरासन्ध, दंतवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल और पौंड्रक आदि सहस्रों राजा शिशुपालकी ओरके आये ॥१७॥ यह समस्त कृष्ण बलदेवके शत्रु सजकर शिशुपालको कन्या दिलानेके लिय आये थे और मनमें प्रथम ही निश्चयकर लिया था कि, कदाचित् बलदेव व समस्त यदुवंशियोंको साथ ले कृष्ण आकर रुक्मिणीको हरेगा तो उसके संग सब मिलकर युद्ध करेंगे. इस प्रकार मनमें विचार अच्छे २ बलवान् सिपाही घोडे हाथियोंको संग लेकर सम्पूर्ण राजा आये ॥ १८ ॥ १९ ॥

भगवान् बलदेवजी भी शत्रु शिशुपालकी ओरके राजाओंका साहस सुनकर कहने लगे कि, "रुक्मिणीके लेनेके लिये भाई श्रीकृष्ण अकेला गया है, इस कारण लडाई अवश्य होगी" यह मनमें निश्चय कर श्रीकृष्णके स्नेहसे हाथी, घोडे, रथ, प्यादे इत्यादि समस्त चतुरंगिणी सेनाको लेकर कुंडिनपुर पहुँचे ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ जंघाओंवाली भीष्मकी कन्या रुक्मिणी श्रीमोहनप्यारेका पौंडा देख देख "ब्राह्मण पत्री लेकर गया है वह अभी लौटकर नहीं आया" इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥ २२ ॥ मुझ मन्दभागिनीके विवाहमें अब एकही रात्रि शेष रही है और कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अभीतक न आये और ब्राह्मण जो मेरा सन्देशा लेगया है, वह भी अभीतक लौट नहीं आया

श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशंकितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं
भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः कुंडिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥ भीष्मकन्या वरारोहा कांक्षंत्यागमनं हरेः॥
प्रत्यापत्तिमपश्यंती द्विजस्याचिंतयत्तदा॥२२॥ अहो त्रियामांतरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ॥ नागच्छत्यरविंदाक्षो नाहं
वेद्म्यत्र कारणम् ॥२३॥ सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः॥अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम्॥
मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः॥ २४ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥ देवी वा विमुखा गौरी
रुद्राणी गिरिजा सती ॥२५॥ एवं चिंतयती बाला गोविंदहृतमानसा॥न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले॥२६॥

नहीं जान पडता कि इसका क्या कारण है॥२३॥ फिर कहने लगी कि, निर्दोष श्रीकृष्णचन्द्रनें मेरे पाणिग्रहणका उपाय तो निश्चय किया होगा, परन्तु कन्या "अभीसे पत्री लिख लिखकर भेजती है" यह दोष विचार कर नहीं आये ॥ २४ ॥ मुझ अभागिनीके विधाता ईश्वर और देवी पार्वती अनुकूल नहीं हैं ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके न आनेसे दुःखी मन समयकी जाननेवाली रुक्मिणी आँसुओंसे व्याकुल हुए नेत्रोंको बन्द करक बठ गयी ॥ २६ ॥

हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके आनेका मार्ग जोहती जोहती रुक्मिणीके बायें अंग ऊरू, भुजा और नेत्र यह अंग फडकने लगे, क्योंकि स्त्रियोंके बाय अंग फड़कनेसे शुभदायक और प्यारी बातके जनानेवाले हैं ॥ २७ ॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे द्विजोत्तम ! तुम आगे जाकर खबर करो श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे ब्राह्मणने अन्तःपुरमें व्याकुलतासे दौडती हुई राजकुमारी रुक्मिणीको देखा ॥ २८ ॥ पतिव्रता रुक्मिणी प्रसन्नवदन और स्वस्थरीतिसे ब्राह्मणको आता हुआ देखकर अपने मनमें "यह कार्य कर

एवं वध्वाः प्रतीक्षंत्या गोविंदागमनं नृप ॥ वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अंतःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनंदनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यंती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्यायात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥

154

आया है" ऐसा निश्चय कर और उसके लक्षणोंसे पहँचान पूँछने लगी ॥ २९ ॥ हे राजन् ! तब रुक्मिणीजीसे "श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं" यह ब्राह्मणने कहा और श्रीकृष्णचन्द्रने जो कहा था कि "राजाओंको जीतकर रुक्मिणीको लेआऊंगा" यह भी सब वृत्तांत उनको सुनाया ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ जान हर्षित मनसे राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी विचार करने लगी कि इस समय ब्राह्मणको सर्वस्व दूँ तो भी थोडा है, जब ब्राह्मणके देनेयोग्य कोई वस्तु न देखी, तब केवल प्रणाम करके बहुतसा धन्यवाद किया ❁ ॥ ३१ ॥ कन्याका विवाह देखनेके लिये

❁ शंका–ब्राह्मणोंको देनेके योग्य कोई वस्तु त्रिलोकमें रुक्मिणीने नहीं देखी कि, यह वस्तु ब्राह्मणको देनी चाहिये, इसलिये हार मानकर केवल नमस्कारही किया यह बडी शंका है, क्योंकि वह ब्राह्मण ने तो चाही नहीं, उसको तो जो वस्तु देती सो लेलेता क्यों नहीं दी ? उस ब्राह्मणको तो धन आदिक लेके जो वस्तु संसारमें है; सब वस्तुके लेनकी इच्छा थी फिर रुक्मिणीने धनादिक वस्तु क्यों नहीं दी कोरा नमस्कार क्यों किया ?

श्रीकृष्ण बलदेवको आया सुन नगाड बजाता हुआ और बहुतसी पूजाकी सामग्री लेकर राजा भीष्मक श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख गया
॥ ३२ ॥ मधुपर्क लाकर आगे धर सुन्दर वस्त्र और अनेकप्रकारकी भेंट देकर विधिपूर्वक राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवका पूजन करने लगा॥
॥ ३३ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवको उत्तम स्थानमें टिकाय सेना सेवकों सहित यथायोग्य आतिथ्य करने लगा
॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो राजा इकट्ठे हुए थे उनमें जैसा जिसका पराक्रम, अवस्था, बल और धन था उसके अनुसार सब राजाओंका सत्कार

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुप
कल्प्यमहामतिः॥ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥
यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य नेत्रांजलिभिः
पपुस्तन्मुखपंकजम् ॥ ३६ ॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः
पतिः ॥३७॥ किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ॥ अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥३८॥ एवं प्रेम
कलाबद्धा वदंति स्म पुरौकसः ॥ कन्या चांतःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्तांबिकालयम् ॥ ३९ ॥

किया ॥ ३५ ॥ विदर्भनगरके पुरवासी श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुनकर नेत्ररूप अंजलियोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलको पान करने लगे॥
॥ ३६ ॥ और सब नर नारी विचार करने लगे कि, दोषरहित रुक्मिणी श्रीकृष्णचंद्रके ही योग्य हैं, एवं श्रीकृष्णचंद्र भी रुक्मिणीके पति होने
योग्य हैं, इस प्रकार परस्पर कहने लगे ॥३७॥ कि, जो कुछ हमने पुण्य किये हैं, उसके प्रभावसे प्रसन्न होकर ईश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह
करें कि, जिससे श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥३८॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर जिस समय सब पुरवासी कहने

उत्तर-लक्ष्मीको पिता जो समुद्र था उसको ब्राह्मणने पानकर लिया(पी लिया) और लक्ष्मीके पति जो भगवान् उनको ब्राह्मणनेलातसे मारा, और लक्ष्मीका रहनेका स्थान कमल उसको ब्राह्मणोंने देवताओंके पूजनके लिये तोड लिया–ब्राह्मणोंका ऐसा कुकर्म देखके लक्ष्मी ब्राह्मणोंसे रुष्ट होगयी, ब्राह्मणोंको धनादिक वस्तु नहीं देती है इसलिये लक्ष्मीका रूप रुक्मिणीने ब्राह्मणको धन नहीं दिया, कोरा नमस्कार किया॥

लगे, उसी समय बहुतसी सखियोंके साथ श्रीरुक्मिणीजी पुरसे बाहर अम्बिकादेवीका पूजन करनेके लिये चलीं ॥३९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका भले प्रकार ध्यान करते करते श्रीरुक्मिणीजी अंबिकादेवीका दर्शन करनेके लिये पैरों ही गईं ॥ ४० ॥ हे परीक्षित्! श्रीरुक्मिणीजीके संग मौन धारण किये पुरोहितानी और सखी सहेली जिस समय चलीं, उसी समय कवच पहर पहर और अस्त्र हाथोंमें ले महाबलवान् राजाके सिपाही उसकी रक्षाके लिये संग हो लिये और उस समय मृदंग, शंख, ढोल, तुरही, भेरी, रणसिंहादिक अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे ॥४१॥ संगीतविद्यामें अतिनिपुण सहस्रों वेश्या संगमें नाचती हुई चली जाती थीं और माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषणोंसे शृंगार

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ॥ सा चानुध्यायती सम्यङ्मुकुंदचरणांबुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः
सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ मृदंगशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१ ॥
नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ॥ स्रग्गंधवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥४२॥ गायन्तश्च स्तुवंतश्च गायका
वाद्यवादकाः ॥ परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवंदिनः ॥४३॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकरांबुजा ॥ उपस्पृश्य शुचिः
शांता प्रविवेशांबिकांतिकम् ॥४४॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ॥ भवानीं वंदयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्वि
ताम् ॥४५॥ नमस्ये त्वांबिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम् ॥ भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥

करके और अनेक प्रकारकी सामग्री भेंट लेके ब्राह्मणोंकी स्त्रियें संग गयीं ॥४२॥ गाने और बजानेवाले सूत, बन्दीजन श्रीरुक्मिणीजीको बीचमें करके चले जा रहे थे ॥ ४३ ॥ हाथ पाँव धोय, आचमन कर, पवित्र हो, देवीके मन्दिरमें जाय रुक्मिणी अंबिकादेवीके निकट गयी ॥४४॥ विधिपूर्वक वृद्ध ब्राह्मणोंकी स्त्रियें रुक्मिणीजीसे महादेवजी सहित भवानीकी पूजा कराने लगीं ॥ ४५ ॥ जब पूजा कर चुकीं तब रुक्मिणीजीने मनमें कहा कि हे अंबिका पार्वती! तुम्हारे सन्तानसमेत मंगलरूपिणी मैं तुम्हें वारंवार प्रणाम करके यही वर माँगती

हूँ कि, श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों, इस प्रकार मस्तक नवाकर रुक्मिणीजीने प्रार्थना की ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, फल, आभूषण और अनेक प्रकारकी भेंटसे अलग अलग दीपकोंकी पंक्तियोंसे देवीकी पूजा करने लगी ॥ ४७ ॥ इसके पीछे उसी प्रकार रुक्मिणी नमकीन पूए, पान, लावा, सुपारी, गन्ने आदिसे सौभाग्यवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका पूजन करने लगीं ॥ ४८॥ फिर श्रीरुक्मिणीजीने अंबिकादेवी और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको नमस्कार कर उनसे प्रसाद और आशीर्वाद लिया ॥ ४९ ॥ फिर मौन व्रतको त्याग जडाऊ मुँदरीसे शोभायमान श्रीरुक्मिणीजी अपनी दासीका हाथ पकड़ मंदिरसे बाहर निकलीं ॥ ५० ॥ ईश्वरकी

अद्भिर्गंधाक्षतैर्धूपैर्वासस्स्रङ्माल्यभूषणैः ॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ४७ ॥ विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ॥ लवणापूपतांबूलकंठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ॥ ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामांबिकागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुंडलमंडिताननाम् ॥ श्यामां नितंबार्पितरत्नमेखलां व्यंजत्स्तनीं कुंतलशंकितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितां बिंबफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुंदकुड्मलाम् ॥ पदा चलंतीं कलहंसगामिनीं शिंजत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५३ ॥ यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५४ ॥

मायाके तुल्य बडे बडे शूरवीर राजाओंको मोहित करनेवाली, सुन्दर कटिवाली, कुण्डलोंसे शोभायमान मुखवाली रुक्मिणी रत्नजडित जडाऊ करधनी नितंबोंमें पहरे, स्तनोंकी प्रकटता और केशोंकी शंकासे चलायमान नेत्रवाली ॥ ५१ ॥ सुन्दर मुसकान, कुन्दरूके फलके तुल्य होठोंकी कांतिसे कुंदकी कलीके समान दंतपाँतिपर अरुणाई छाई हुई, राजहंसके समान गतिसे और झनकार शब्द करते नूपुरोंकी प्रभासे शोभित चरणोंसे गमन करती हुई रुक्मिणीको देख संगमें जो बड बडे तेजस्वी शूर वीर योद्धा आये थे, वह सबके सब कामदेवसे पीडित हो मोहित हो गये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इन रुक्मिणीजीकी उदार हँसन

और लज्जापूर्वक चितवनसे समस्त राजाओंके मन हर गये और वह अस्त्रशस्त्रोंको छोड़कर रथ घोडे इत्यादिसे मूढ़ होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार चलायमान कमलकोशके समान कोमल चरणोंसे धीरे धीरे चली, उस समय श्रीकृष्णचन्द्रके आनेका मार्ग देखती हुई रुक्मिणीजीने बायें हाथके नखोंसे अलकोंको उठाय सब आये हुए राजाओंको देख सम्मुख खडे हुए वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको देखा ॥५५॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी ज्यों ही रथपर चढने लगी त्यों ही भगवान् श्रीकृष्णचंद्र उसे हरण कर अपने गरुडचिह्नवाले रथमें चढाय क्षत्रियोंकी सेनाका तिरस्कार कर उसे इस प्रकार निकाल कर ले गये कि, जैसे सियारोंके बीचमें अपने भागको लेकर सिंह बेधडक होकर चला जाता है, फिर बलरामादि सब यदुवंशियों सहित रुक्मिणीको लेकर धीरे धीरे चलने लगे॥५६॥हे नृपोत्तम! महामानी जरासन्धादि राजा, यशका नाश करनेवाला यह अपना अपमान न सह सके और बोले कि, अहो ! हमको धिक्कार है, जिस प्रकार केसरीके भागको कुत्ता चुराकर ले जाता है, वैसे ही हम धनुषधारियोंके यशका नाश कर यह गँवार ग्वालिया राजकुमारी रुक्मिणीको चुराकर लिये जाता है ॥५७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्ध भाषाटीकायां रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपांगैः प्राप्तान्ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा॥५५॥तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रंपरिभूय माधवः॥ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥ अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

दोहा–चौवनमें रिपुपक्षके सब राजनको जीति । रुक्मिणिको लै द्वारका, करी ब्याहकी रीति ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सब राजा अत्यन्त क्रोधित होकर कवच पहर अपने अपने वाहनोंपर चढ़कर श्रीकृष्णचंद्रके पीछे दौडे ॥ १ ॥ हे परीक्षित् ! जब यादवोंके सेनाध्यक्षने इनकी सेनाको आती हुई देखा तो वह लोग भी अपने धनुषकी टंकार करके उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥२॥ युद्धविद्यामें अत्यन्त प्रवीण वह राजा लोग घोडे, हाथी और रथोंपर बैठकर जिस प्रकार मेघ पर्वतोंपर जल वर्षाते हैं उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥३॥ सुन्दर कटिभागवाली रुक्मिणी अपने स्वामी कृष्णचन्द्रकी सब सेनाको बाणोंसे ढकी हुई देख अति भयभीत और विह्वल नेत्र हो लाजसहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुख देखने लगीं *॥ ४ ॥ तब भगवान् वासुदेव रुक्मिणीको डरी हुई जान कहने लगे कि, हे वामलोचने ! हे सुनयनी ! तुम कुछ भय मत करो, क्योंकि हमारी ओरके यादव इनकी समस्त सेनाको क्षणभरमें विध्वंस कर देंगे॥५॥हे राजन् ! गद, संकर्षणादि शूर वीर इन राजाओंका पराक्रम न सह सके और उनके घोडे हाथी और रथोंको महातीक्ष्ण बाणोंसे नाश करने लगे ॥६॥

श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दर्शिताः ॥ स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रांता अन्वीयुर्धृतकामुकाः ॥१ ॥ तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते॥२॥ अश्वपृष्ठे गजस्कंधे रथोपस्थे च कोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥४॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ॥ विनक्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥

---

* शंका–श्रीकृष्णकी स्त्री रुक्मिणी श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाली फिर युद्ध देखकर दुःखी क्यों हुई ? यह बडे अचम्भकी बात है।

उत्तर–युद्धमें बडे बडे शूरमाओंका और वीरलोगोंका नाश हुआ, यह कलंक अपने ऊपर विचारकर रुक्मिणी बहुत दुःखी हुई कि, यह कलंक मुझको जन्म जन्मको लगा और संसारके लोग कहेंगे कि, रुक्मिणीके विवाहमें बहुतसे शूरवीर मारे गये ॥

रथी, घुड़चढे और हाथियोंपर विराजमान योद्धाओंके पगडियों सहित सहस्रों शिर कटकर गिरने लगे ॥ ७ ॥ तलवार, गदा और धनुषसे हाथ कट कटकर गिरने और करभके समान जंघायें कट कटकर गिरने लगीं, अनेक घोडे, खच्चर, हाथी, गधे, मनुष्य इनके शिर कटकर पृथ्वीपर गिर गये ॥८॥ हे भारत! जीतनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंने जब इस प्रकार शत्रुसेनाका संहार किया तब अत्यन्त डरकर जरासन्धादि राजा रण छोडकर भाग गये ॥ ९ ॥ जब स्त्री हर जानेसे व्याकुल तेजहीन, उत्साहरहित शिशुपालका मलिन मुख हो गया, तब सब राजा उसके पास आकर समझाने लगे ॥ १० ॥ कि हे पुरुषसिंह! तुम अपने मनकी उदासीको छोड दो, क्योंकि देहधारण करनेवालोंको

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुंडलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोंऽघ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥ हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः ॥ राजानो विमुखा जग्मुर्जरासंधपुरस्सराः ॥९॥ शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥१०॥ भो भो पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥११॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ॥ एवमीश्वरतंत्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥१२॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥१३॥ तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥ कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥ अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतंत्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥१५॥ रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥१६॥

सुख और दुःख सर्वदा नहीं रहते हैं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार काठकी पुतली नचानेवालेकी इच्छासे नाचती है, ऐसे ही ईश्वरके अधीन जीवको सुख दुःख होता है ॥ १२ ॥ जरासंध बोला कि, हे शिशुपाल! देखो! इसी कृष्णसे मैंने सत्रह बार तेइस २ अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध किया, परन्तु मेरी हार ही हुई और कुछ शोच न हुआ, केवल एक बार जीता, उसका कुछ हर्ष भी न हुआ; दैवके वश कालने समस्त जगत् चलायमान किया है, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन्! यद्यपि बडे बडे शूरवीर यूथनाथोंके पतियोंके भी हम पालन करनेवाले थे, तो भी थोडा सेनावाले कृष्णपालित यदुवंशियोंसे हार गये ॥ १५ ॥ जान पडता है कि इस समय इनके दिन अच्छे हैं,

इसी कारण उन्होंनें हमऐसे बलवान् शत्रुओंको जीत लिया, जब हमारे दिन भले आवेंगे तो हम भी जीतेंगे ॥ १६ ॥ हे महाराज ! जब इसी प्रकार अनेक राजाओंनें शिशुपालको समझाया तब अपनें बचे बचाये नौकर चाकर और सेनाको लेकर शिशुपाल अपने देशको चला गया और मरनेसे बचे बचाये राजा भी अपने अपने स्थानोंको चले गये॥ ॥ १७॥ इधर एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्णका शत्रु रुक्मी अपनी बहनके हरनेके अपराधको न सहकर श्रीकृष्णके पीछे दौड़ा ॥ १८ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हो कवच पहर धनुष ग्रहण कर सब राजाओंके सुनानेको महाबलवान् रुक्मीने यह प्रतिज्ञा की ॥१९॥ कि, युद्धमें श्रीकृष्णको मारे विना और रुक्मिणीको लाये विना मैं कुंडिन

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ॥ हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृप ॥१७॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥ रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् । प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥२०॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ चोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत ॥२१॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविंदं तिष्ठतिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ॥ आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४ ॥

पुरमें न आऊंगा ॥ २० ॥ इस प्रकार रुक्मी प्रतिज्ञा कर रथमें चढ सारथीसे बोला कि, जहां कृष्ण हैं वहाँ शीघ्र ही घोडोंको हांककर ले चलो, क्योंकि मुझे उससे युद्ध करना है ॥२१॥ मैं आज उस मन्दबुद्धि ग्वालके पराक्रमका मद अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चूर्ण करूंगा, जो मेरी बहन रुक्मिणीको बलात्कार हरके ले गया है ॥२२॥ खोटी बुद्धिवाला रुक्मी, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके बलको न जान कटु वाक्य कहता हुआ अकेला रथ दौड़ाकर "खडा रहु, खडा रहु" इस प्रकार भगवान् वासुदेवको पुकारने लगा ॥२३॥ इसके उपरांत अपने दृढ धनुषको

खींचकर रुक्मीने श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा कि, हे यादवकुलकलंक ! एक क्षणमात्र खडा होकर मुझसे युद्ध कर ॥ २४ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! जिस प्रकार होमकी सामग्रीको कौवा ले जाता है इसी प्रकार तू मेरी बहनको कहाँ चुराकर लिये जाता है ? अरे कपटयुद्ध करनेवाले छली ! तेरे घमंडको मैं अभी चूर्ण करता हूँ ॥ २५ ॥ और तेरे भले दिन हैं तो मेरे बाणोंसे पीडित होकर युद्धक्षेत्रमें मत सो और रुक्मिणीको छोडकर जहां तेरे सींग मायँ वहां चला जा. तब श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें मुसकाय, उसके धनुषको काट छः बाणोंसे रुक्मीको छेदन किया ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे रथके घोडोंको दो बाणोंसे रथवान्‌को बाँध डाला और तीन बाणोंसे ध्वजा काट डाली कि, इतनेमें रुक्मने और धनुष लेकर पाँच बाण श्रीकृष्णके शरीरमें मारे ॥२७॥ तब भगवान् वासुदेवने उसका वह धनुष भी काट डाला, फिर रुक्म और

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वांक्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मंद मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो
बाणैः शयीथा मुंच दारिकाम् ॥ स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥२६॥ अष्टभिश्चतुरो वाहान्द्वा
भ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पंचभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद
धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुध
मादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंग इव
पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ भित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हंतुमुद्यतः ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥

750

धनुष ले आया, उसको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी संमय काट दिया ॥ २८ ॥ रुक्मने जो जो परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाले हाथमें लिये वह सब भगवान् देवकीनन्दनने काट गिराये ॥२९॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त रथसे कूदकर और हाथमें तलवार लेकर मारनेकी इच्छासे, जिस प्रकार पतंग अग्निके सन्मुख झपटता है, उसी प्रकार रुक्म श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥ झपटते हुए उस रुक्मीकी ढाल तलवारको तिल तिलभर बाणोंसे काटकर पैनी धारकी तलवार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मीका प्राणसंहार करनेको उपस्थित हुए ॥३१॥ भाईके मारनेकी इच्छा देख भयसे व्याकुल होकर पतिव्रता रुक्मिणी नेत्रोंमें आँसू भरके श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंपर

गिर यह करुणाभरे वचन कहने लगी ॥ ३२ ॥ कि, हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे देवदेव ! हे जगत्पालक श्रीकृष्णचन्द्र ! हे महाभुज ! मेरे भाईको तुम मत मारो, क्योंकि यह तुम्हारे मारने योग्य नहीं है ॥३३॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि,हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! त्राससे कम्पायमान सब अंग, शुष्क मुख, गद्गद् कण्ठ कि, जिसकी व्याकुलतासे सुवर्णकी माला गिरी जाती थी, इस प्रकार रुक्मिणीको अपने चरणों पर गिरी हुई देख करुणावश हो श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥ उन्होंने उस दुष्ट कर्म करनेवाले रुक्मीको वस्त्रसे बाँध और मूछों सहित शिर मूँड अभद्र कर अपने रथके पीछे बाँध लिया कि,इस बीचमें ही सब यदुवंशियों सहित बलराम सुखधामने रुक्मकी सेनाको जिस प्रकार हाथी कमलिनियोंको मर्दन करता है उसी प्रकार मर्दन किया ॥३५॥ इसके उपारन्त रुक्मकी समस्त सेनाका संहार कर

योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव जगत्पते॥हंतुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥३३॥ श्रीशुक उवाच॥तया परित्रास
विकंपितांगया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकंठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥३४॥ चैलेन
बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत्॥तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः॥३५॥
कृष्णांतिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवा
न्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥
॥ ३७ ॥ मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिंतया ॥ सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक्पुमान् ॥ ३८ ॥

बलदेवजीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर रुक्मको देखा कि उसका शिर मुड़ गया है और मृतकके समान रथके पीछे बँधा हुआ देखकर सामर्थ्यवान् बलभद्रजीने उसे छोड दिया ॥३६॥ और अत्यन्त झुँझलाकर कहा कि हे कृष्ण ! आपने यह बड़ा निन्दित कर्म किया, जो सालेको पकड बाँधा, हमारी इसमें बहुत निन्दा होगी, क्योंकि शिर,मूँछ, दाढी मुड़वाकर विरूप कर देना यही अपने नातेदारका मारना है ॥३७॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि, हे सुशीले ! तुम्हारे भाईके कुरूप होनेमें हमारा कुछ दोष नहीं है क्योंकि यह पुरुष अपने कर्मोंका फल भोगता है; सुख दुःखका देनेवाला और कोई नहीं है॥ ३८ ॥

इसके उपरान्त बलदेवजी श्रीकृष्णको समझाने लगे कि, हे भाई! अपने नातेदारका मारना अपराध करनेपर भी उचित नहीं, उसको
अपराधी जानकर छोडदे, क्योंकि वहतो अपने पहले ही दोषोंसे मर रहा है, फिर उसके मारनेकी क्या आवश्यकता है? ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मि
णीसे बोले हे सुमुखि! क्षत्रियोंका यही धर्म विधाताने बनाया है कि, जिस धर्मके कारण भाई भाईका प्राण संहार कर देता है, फिर साले
श्वशुरोंकी तो बात ही क्या है? इस लिये हमारा क्या दोष है? ॥४०॥ तिसके पीछे श्रीकृष्णसे बोले कि, हे कृष्ण! राज्य, पृथ्वी, धन, स्त्री,
प्रतिष्ठा, तेज और और वस्तुके हेतु श्रीमदान्ध अभिमानी राजा लड़ते हैं परन्तु हमको यह बात उचित नहीं ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणीसे
बोले कि, सब प्राणियोंमें दुष्टहृदय, अर्थात् सब बातका बुरा विचारनेवाला जो शिशुपाल उसका बुरा और अपने भाईका भला चाहती

बंधुर्वधार्हदोषोऽपि न बंधोर्वधमर्हति॥त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः॥३९॥क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापति
विनिर्मितः ॥ भ्रातापि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्ततः ॥४०॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः॥ मानि
नोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदांधाः क्षिपंति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ॥ यन्मन्यसे सदाऽभद्रं
सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्पते देवमायया॥ सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम्॥४३॥
एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥४४॥ देह आद्यंतवानेष द्रव्य
प्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥

हो, यह बात तुमको उचित नहीं. हे रुक्मिणी! तुम्हारी विषम बुद्धि है, जैसी कि, अज्ञानी पुरुषोंकी होती है इसीलिये तुम्हारा भाई जो
सब जीवोंका शत्रुरूप है, उसका तुम अज्ञानी पुरुषोंके समान भला चाहती हो, सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है, क्योंकि उसका भला
चाहनेसे और सम्बंधियोंका बुरा होगा ॥ ४२ ॥ यह हमारा मित्र, यह शत्रु और यह समान है, इस प्रकार देहाभिमानी पुरुषोंको मोह
उत्पन्न हो जाता है ॥ ४३ ॥ जैसे जलभरे घडेमें एक ही सूर्यके अनेक प्रतिबिम्ब दीखते हैं, आकाश एक ही है, परन्तु तो भी घट आदिमें
बहुतसे दीखते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंमें एकही शुद्ध आत्मा है, उसीको अज्ञानी पुरुष अनेक रूपसे मानतेहैं॥४४॥ यह जो द्रव्य अर्थात्

अधिभूत, प्राण, इन्द्रिय, और आध्यात्मिक गुण, अधिदैव इतने स्वरूप आत्माके अविद्याने रचे हैं, वह देहधारियोंको संसारमें भटकाते हैं ॥४५॥ हे पतिव्रता रुक्मिणी ! मिथ्या देहसे आत्माका संयोग नहीं है, और इस देहसे वियोग भी नहीं है, यदि कोई कहे कि, देह मिथ्या कैसे है ? तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है उसी प्रकार देहका प्रकाश आत्मासे होता है ॥ ४६ ॥ जन्म मरणादि छः विकार देहके हैं, आत्माके कदाचित् नहीं हैं, जैसे चन्द्रमाकी कला घटती बढती है, चन्द्रमा कभी नहीं घटता बढता, क्योंकि वह तो पूर्णरूप है और जैसे अमावस्याके दिन चन्द्रमाकी कला घटनेसे चन्द्रमाका नाश मानते हैं, उसी प्रकार देहके नाश तिरोभावसे आत्माका नाश कहनेमें आता है ॥ ४७ ॥ जैसे स्वप्नावस्थामें पुरुष अपने आपको विषयके भोगनेके सुखका मिथ्या भोग करता है, उसी

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ॥ तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य
विक्रिया नात्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेंदोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥ यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव
च ॥ अनुभुंक्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ॥ तत्त्वज्ञानेन
निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ॥ वैमनस्य
परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्म
मनोरथः ॥ ५१ ॥ अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥
भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ॥ पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥

प्रकार अज्ञानी पुरुष संसारको प्राप्त होता है ॥ ४८॥ हे सुहागिनी ! इस लिये तुम अज्ञानसे उत्पन्न हुए आत्माको क्लेश और मोह देनेवाले शोकका तत्त्वज्ञानसे त्याग करो और स्वस्थ होओ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् बलदेवजीने जब समझाया तब सुकुमारी श्रीरुक्मिणीजीने मनकी उदासी त्याग बुद्धिसे मनको सावधान किया ॥ ५० ॥ हे राजन् ! शत्रुसे छूटा, हत सैन्य, केवल प्राण ही जिसके शेष रहे हैं, प्रभाव और मनोरथहीन, मुण्डित शिर, दुष्टबुद्धि रुक्म विचार करने लगा कि, मैं प्रतिज्ञा करके आया था कि, कृष्णको विना मारे और विना रुक्मणीको लाये कुण्डिनपुर नहीं आऊंगा, सो अब क्या करूं ? यह विचार वहां ही भोजकट पुर बसाकर रहनेलगा ॥ ५१॥५२॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार समस्त राजाओंको जीत कर

॥१९८॥

राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मणीको द्वारकापुरीमें लाकर विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ५३॥ हे महाराज परीक्षित् । इस समय द्वारकापुरीमें घरघर बडा उत्सव होने लगा,क्योंकि यदुवंशियोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अनन्यभक्ति थी ॥५४॥ आनन्दमें मग्न, उज्ज्वल उज्ज्वल मणियोंके जड़ाऊ गहने पहरेहुए स्त्री पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये कृष्ण रुक्मिणीके देनेके लिये सुन्दर सुन्दर वस्तु लाने लगे॥५५॥ ऊंची ऊंची ध्वजा और चित्र विचित्र माला,वस्त्र रत्नोंकी बन्दनमालाओंसे और द्वार द्वारपर धानकी खीलें, अंकुर,फूल और जलके भरे कलश और अगर व धूप दीप इत्यादिकोंसे द्वारकापुरी अत्यन्त शोभायमान होने लगी॥५६॥स्थान स्थानपर छिड़काव हो रहा है, दरवाजोंपर केले सुपारियोंके

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ॥ अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप॥५४॥ नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्ट
मणिकुण्डलाः ॥ पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥५५॥ सा वृष्णिपुर्युत्तभितेंद्रकेतुभिर्विचित्रमाल्यांबररत्नतोरणैः॥
बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमंगलैरापूर्ण.कुंभागुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥ सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ॥ गजैर्द्वाःसु
परामृष्टरंभापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृंजयकैकेया विदर्भयदुकुंतयः ॥ मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम्
॥ ५८ ॥ रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ॥ राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥५९॥ द्वारकाया
मभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ॥ रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥६०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे
दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवो नाम चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४ ॥

घने वृक्ष लग रहे हैं और जो सुहृद् राजा बुलाये गये हैं,उनके मद झरते हाथियोंसे ऊंचे उठाये सुपारी और केलोंके वृक्षोंसे बडी शोभा हो रही है॥५७॥ अत्यंत प्रसन्नताके मारे द्वारकावासी दौड़ दौडे फिरते हैं और उनके बीचमें कुरुदेश,सृंजय देश,केकयदेश और विदर्भदेशके राजा भी विवाहमें मिलकर आनंद प्राप्त करनेलगे॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार जहां तहां रुक्मिणी हरके लेजानेके चरित्रको श्रवण कर राजा और राजाओंकी कन्या बडा आश्चर्य मानने लगीं॥ ५९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! द्वारकांपुरीमें पुरवासियोंको लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रका लक्ष्मीसहित दर्शन कर बडा आनंद प्राप्त हुआ॥ ६० ॥इति श्रीभा०महापु०दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीविवाहोत्सववर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

दोहा–पचपनमें प्रद्युम्नको, भयो जन्म उत्साह । शंबासुर हर ले गयो, ताहि मारि किय व्याह ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! वासुदेवका अंश जो कामदेव सो प्रथम महादेवजीके क्रोधसे भस्म होगया था, वही अब फिर देह पानेके लिये वासुदेवके यहाँ आया ॥ १ ॥ और वही कामदेव श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें जन्म ले प्रद्युम्ननामसे विख्यात हुआ, जो कि अपने पिता श्रीकृष्णचंद्रसे किसी प्रकार न्यून नहीं था॥२॥ हे राजन्! एक शंबरनाम दैत्य उसे अपना वैरी जान दश दिनके भीतर कुमार प्रद्युम्नको हरण कर समुद्रमें डाल अपने घरको

श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥१ ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥ तं शंबरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ॥ स विदित्वाऽऽत्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद् गृहम्॥ ३ ॥ तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शंबराय कैवर्ता उपजहुरुपायनम् ॥ सूदा महानसं नीत्वाऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शंकितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

चला गया ❀ ॥ ३ ॥ एक बडा बलवान् मत्स्य इस बालको निगल गया, उस मत्स्यको धीवरोंने बडा जाल डालकर और मछलियों सहित पकडा॥४॥ इस बडे मत्स्यको लाकर धीवरोंने शंबरासुरकी भेंट किया और शंबरासुरने रसोई बनानेवालोंको दिया उन्होंने रसोईमें लाकर छूरीसे इस अद्भुत मत्स्यका हृदय विदीर्ण किया॥५॥ तो इस मत्स्यके पेटमें बालकको निहार उन्होंने मायावतीको दे दिया तब मायावतीको अत्यंत

---

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रकी बसाई हुई द्वारकापुरीमें कपट करके कोई प्राणी वहां नहीं जासकता और कपटवेषधारी जो कोई द्वारकाके भीतर चला भी जाय तो वह उसी समय भस्म होजाय है क्योंकि क्षण क्षणमें द्वारकापुरीके चारों ओर सुदर्शनचक्र घूमता रहता है, वही द्वारकापुरीकी रात दिन रक्षा करता है, ऐसी कठिन द्वारकापुरीमें शम्बर नाम दैत्य कैसे चला गया ? और भगवान्के पुत्रको कैसे हर लेगया ! यह महाआश्चर्यकी बात है?

उत्तर –जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको बसाया था उस समय यह आज्ञा दी थी कि, हे सुदर्शनचक्र ! तुम रात दिन द्वारकापुरीके चारों ओर घूमते रहना और रक्षा करते रहना, परन्तु ब्राह्मणवंश चाहै तो उसको पुरीमें जानेके लिये मत रोकना और ब्राह्मणकपटरूप धारण करके आवे तो उसको भी मत रोकना इस प्रकारकी श्रीकृष्णकी आज्ञाको शंबरासुर जानके ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारकापुरीमें चला गया और श्रीकृष्णके पुत्रको चुराकर ले आया ॥

शंका हुई तब देवर्षि नारदने आकर उससे सब वृत्तांत कहा कि, यह बालक तेरा स्वामी कामदेव है और श्रीकृष्णचंद्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें उत्पन्न हुआ है,इसप्रकार उत्पत्ति और शंबरासुर जैसे समुद्रमें डाल आया था वहां जिस प्रकार इसे मत्स्य निगल गया सो सब कह सुनाया ॥ ६ ॥ "शिवजीने जब कामदेवको भस्म किया था, तब रतिके विलाप करनेपर उसे समझाकर कहा था कि, तू शंबरासुरके यहां जाकर वास कर, वहां तेरा पति तुझे रसोईघरमें मिलेगा, तू उसे पाल लीजियो, मच्छलीके उदरसे प्राप्त होगा, तबसे रति रूप छिपाये वहां रहती थी" वह जो कामदेवकी स्त्री थी,सो बडी पतिव्रता और उसका नाम रति था, अपने पति कामदेवका जो देह भस्म होगया था, सो उसके उत्पन्न होनेके लिये प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ उस मायावती कामदेवकी स्त्रीको शंबरासुरने दाल भात करनेके लिये अपने पास रक्खा था, सो वह उस

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शंबरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्धा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥ ८ ॥ नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षंतीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबबाहुं नरलोकसुंदरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरंग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शंबरेणाहृतो गृहात् ॥ अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥

बालकको कामदेव जान उससे अत्यन्त स्नेह करने लगी ॥ ८ ॥ हे राजा परीक्षित ! थोडे ही दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका पुत्र प्रद्युम्न देखनेवाली स्त्रियोंको मोह उत्पन्न करने लगा ॥ ९ ॥ कमलदलसे बडे नेत्र, लम्बी भुजायें, मृत्युलोकमें सुन्दर ऐसे अपने पति प्रद्युम्नको लाजभरी मुसकान और उठी भृकुटीसे देख प्रीति करके सुरतसम्बन्धी जो भाव हैं, उनसे वह रति सेवन करने लगी ॥ १० ॥ तब श्रीकृष्णचंद्रके पुत्र प्रद्युम्नजीने कहा कि हे माता! जान पडता है कि,तुम्हारी मति और प्रकारकी होगई है, इसीलिये मातृभावको त्यागकर स्त्रीके समान आचरण करती हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर रतिने कहा कि, तुम भगवान् वासुदेवके पुत्र हो, शंबरासुर तुम्हें चुराकर ले आया है, मैं

तुम्हारी स्त्री हूँ, रति मेरा नाम है, आप कामदेव हो ॥ १२॥ तुम जब दश दिनके भी नहीं थे, तब शंबरासुर समुद्रमें डाल आया था और वहां तुम्हें एक मत्स्य निगल गया, हे प्रभो ! यहां आप मत्स्यके पेटमेंसे आये हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारा शत्रु शंबरासुर बड़ा मायावी है, सैकडों माया जानता है इसलिये असह्य और दुर्जय है, उसको पोहरादि मायासे आप मारिये ॥ १४ ॥ क्योंकि तुम्हारे ढूँढ़नेके लिये स्नेहसे अति व्याकुल परमदीन तुम्हारी माता टिटिहरीके समान शोच कर रही है और विना बछडेके गौकी समान आतुर है ॥ १५॥ इस प्रकार मायावती स्त्रीने कह सब मायाओंको नाश करनेवाली महामाया महात्मा प्रद्युम्नजीको दी ॥ १६॥ तब प्रद्युम्नजीने शंबरासुरके पास आकर और उसका असह्य वचनों

एष त्वाऽनिर्दशं सिंधावाक्षिपच्छंबरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिम जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ॥ मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ॥ पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५ ॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥ स च शंबरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम् ॥१७ ॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदा हत इवोरगः ॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षी ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतंतीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥

से तिरस्कार कर कलह उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये बुलाया ॥१७॥ हे राजन् ! खोटे वचनोंसे तिरस्कार पाय शंबरासुर जिस प्रकार ठोकर लगनेसे सर्प फुंकार मारता है, उसी प्रकार अत्यंत क्रोधित हो लाल लाल नेत्र किये और गदा हाथमें लेकर निकला ॥१८॥ इसके उपरांत शंबरासुरने गदाको फिराय महात्मा प्रद्युम्नजीके ऊपर डालकर वज्रपातके समान कठोर शब्द किया ॥ १९ ॥ हे परीक्षित ! भगवान् प्रद्युम्नजीने अपने ऊपर आती हुई उस गदाको चूर्णकर और महाक्रोधित हो एक गदा शंबरासुरको मारी ॥ २० ॥

तब शंबरासुर मयदैत्यकी बताई मयाका आश्रय ले आकाशमें जाकर श्रीकृष्णचंद्रके पुत्र प्रद्युम्नजीके ऊपर अस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा ॥ २१ ॥ उन अस्त्रोंकी वर्षासे पीड़ित होकर कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने सब मायाओंको नाश करनेवाली अपनी सत्त्व गुणी मायाको बुलाया ॥ २२ ॥ इसके उपरांत शंबरासुरने गुह्यक,गंधर्व, पिशाच,सर्प और राक्षसोंकी सहस्रों माया छोडीं, परन्तु कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने उसी समय सब मायाओंका नाश कर दिया॥२३॥हे राजा परीक्षित्।महात्मा प्रद्युम्नजीने महातीक्ष्ण पैनी धारकी तलवार लेकर कुण्डल,किरीट और लाल दाढी मूछों सहित शंबरासुरका मस्तक काट लिया ॥ २४ ॥ तब आकाशसे देवता लोगोंने फूल वर्षाये और स्तुति करी और फिर आकाशमें विचरने

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण
रौक्मिणेयो महारथः ॥ सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥२२॥ ततो गौह्यकगांधर्वपैशाचोरगराक्षसीः ॥
प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २३ ॥ निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुंडलम् ॥ शंबरस्य शिरः
कायात्ताम्रश्मश्र्वोजसाऽहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ॥भार्ययांबरचारिण्या पुरीं नीतो
विहायसा ॥ २५ ॥ अंतःपुरवरं राजँल्ललनाशतसंकुलम् ॥ विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा
जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलंबबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखांभोजं नीलव
क्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ॥
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥

वाली स्त्रियोंने आकाशमार्गमें होकर महात्मा प्रद्युम्नजीको द्वारकापुरीमें पहुँचादिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! सहस्रों स्त्रियोंसे सुशोभित अन्तःपुरमें आकाशसे उतर कर बिजली सहित जैसे मेघ आता है, उसी प्रकार आये ॥ २६ ॥ वर्षाकी घटाओंके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीतवस्त्र धारण किये,लम्बी भुजा, अरुण नेत्र, सुन्दर मुसकान, मनोहर मुख, नीली टेढी अलकावलीसे शोभायमान मुखारविन्दवाले प्रद्युम्नजीको देखकर "श्रीकृष्ण आये" यह जान स्त्रियें लज्जित होकर जहाँ तहाँ छिप गईं ॥ २७॥२८॥ और कुछ एक स्त्री कोई न्यूनाधिक बात देखक

"यह कृष्ण नहीं है" यह निश्चय कर प्रसन्न हो आश्चर्यमें हो स्त्रियोंमें श्रेष्ठ रतिसहित कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीके पास आई॥ २९॥ इसके उपरांत स्नेहसे जिसके स्तनोंसे दूध चुवै नील कटाक्ष और मनोहर वचनवाली, राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी अपने नष्ट हुए पुत्रको स्मरण करके कहने लगी ॥३०॥ कि, मनुष्योंमें श्रेष्ठ कमलके समान नेत्रवाला यह बालक किसका है? और किस स्त्रीने इसे गर्भमें धारण किया है? और इसे यह स्त्री कौन मिली है? ॥ ३१ ॥ मेरा भी पुत्र नष्ट हो गया है और सूतिकागृहसे ही उसे कोई ले गया है, जो कदाचित् जीवित होगा तो इसीके समान बडा और ऐसा ही उसका स्वरूप होगा ॥ ३२ ॥ परंतु यह बडा आश्चर्य है कि, शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीकृष्णचन्द्रके समान रूप इसने कैसे पाया। इसका स्वरूप और हाथ पाँव चलाना, बोलना हँसना चितवन इत्यादि भी सब श्रीकृष्णचन्द्रकेही समानहैं॥३३॥

अथ तत्रासितापांगी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य
वा कमलेक्षणः ॥ धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा॥३१॥ मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥
एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित्॥३२॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ंगधन्वनः ॥ आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वर
हासावलोकनैः ॥३३॥ स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥
॥३४॥एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्याऽऽनकदुंदुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि
भगवान्तूष्णीमासीज्जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं शंबराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥

जान पडता है कि, जो बालक मैंने गर्भमें धारण किया था, वह निश्चय यही है, क्योंकि प्रतिक्षण इसमें मेरी प्रीति बढती ही जाती है और मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है ॥ ३४ ॥ हे राजा परीक्षित्! विदर्भदेशके राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी बैठी हुई इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि, इतने हीमें उत्तम यशवाले, भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वसुदेव देवकी को संग लेकर वहां आये ॥३५॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र यह स्वयं जानते थे कि, पत्नी सहित पुत्र आया है, परंतु तो भी चुप रहे, इतनेमें ही देवर्षि नारदजीने आकर जिस प्रकार इनको शंबरासुर चुरा ले गया और समुद्रमें डाल गया, वहां मछली निगल गई वह सब वृत्तांत सुनाया ॥ ३६ ॥

कृष्णके अन्तःपुरमें बास करनेवाली स्त्रियें बहुत कालके पीछे जैसे मृत शरीरमें प्राण आते हैं,उसी प्रकार प्रद्युम्नजीको आया हुआ श्रवण कर बडा आश्चर्य मान उनकी बडाई करने लगीं ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित्। वसुदेव देवकी और कृष्ण बलदेव तथा रुक्मिणीजी व और स्त्री पुरुष प्रद्युम्नजीसे मिलकर आनंदमें मग्न हो गये॥३८॥इस समय सब द्वारकावासी प्रद्युम्नजीको आया हुआ सुन"अहो। बडा आश्चर्य है। " मृतकके तुल्य यह बालक आया है, इस प्रकार कहने लगे॥३९॥ अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रके समान स्वरूपवानको प्रद्युम्नजी हमारे पुत्र हैं यह न जान एकांतमें अत्यन्त प्रेमसे प्रद्युम्नजीकी माता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानी भ्रांत हो प्रद्युम्नजीकी सेवा करने लगीं,सो यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचंद्रजीके पुत्र कामदेवका स्मरण करते ही मन चलायमान हो जाता है,फिर साक्षात् मूर्तिका दर्शन करते ही यदि स्त्रियें सेवा करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ।॥ ४० ॥ इति श्रीभा० महापु० दशमस्कन्धे उ० भाषाटीकायां प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ दोहा—छप्पनमें हरिको वृथा, मणिको लगो कलंक। सत्राजितको मणि दई, लई सुता सुमयंक ॥ १ ॥ इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित।अब सत्राजित्की कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये कि,

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णांतःपुरयोषितः ॥ अभ्यनंदन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेवश्च
कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दंपती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम्॥३८॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥
अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति ह्यब्रुवन् ॥ ३९ ॥ यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन्रह
रूढभावाः ॥ चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिंबबिंबे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महा
पुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे समुद्रक्षिप्तप्रद्युम्नप्रत्यागमनं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
सत्राजितः स्वतनयां कृष्णस्य कृतकिल्बिषः ॥ स्यमंतकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

[illegible] सूर्यस्य -

प्रथम अपराध करके सत्राजितने अपने पापकी निवृत्तिके लिये पीछे अपनी कन्याको स्यमंतकमणिके साथ श्रीकृष्णचन्द्रको देनेका उपाय किया था ॥ १ ॥ तब राजा परीक्षित् कहने लगे कि, हे योगीश्वर शुकदेवजी ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णचन्द्रका क्या अपराध किया और स्यमन्तकमणि उसने कहांसे पाई ? और पीछे किसलिये अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रको दी, यह सब हमारे आगे विस्तारसहित वर्णन करो ॥२॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्यनारायणका परम भक्त और मित्र था, इसलिये प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने सत्राजित्को स्यमन्तकमणि दी॥३॥हे महाराज! सत्राजित् उस मणिको कण्ठमें पहर सूर्यके समान प्रकाशमान् हो द्वारकापुरीमें आया उस समय

राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् ॥ स्यमंतकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ आसीत्सत्राजितः सूर्यभक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमंतकम् ॥३॥
स तं बिभ्रन्मणिं कंठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना
दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशंकिताः ॥ ५ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर ॥
दामोदरारविंदाक्ष गोविंद यदुनंदन॥६॥एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूं
षि तिग्मगुः॥७॥नन्वन्विच्छंति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥८॥

उसके तेजसे यह भी ज्ञात नहीं होता था कि, यह सत्राजित आ रहा है ॥४॥ तेजकी चकचौंधीके कारण दृष्टि चौंध जानेसे मनुष्य सत्राजितको दूरसे आता हुआ देखकर उग्रसेनकी सभामें चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे "यह सूर्यभगवान् आ रहे हैं" इस प्रकार कहने लगे॥५॥हे नारायण! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र! हे गोविंद ! हे यादओंके आनंददायक ! आपको नमस्कार है॥६॥हे जगत्पति! तुम्हारे दर्शन करनेके लिये सूर्य भगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणोंके समूहसे मनुष्योंके नेत्रोंको चुराते हुए चले आते हैं ॥७॥ हे प्रभो! त्रिलोकीके देवताओंमें श्रेष्ठ देवता भी आपका मार्ग ढूँढते हैं और इसीलिये यादवोंमें छिपा जान आपके ढूँढनेको सूर्य भगवान् आ रहे हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपोत्तम परीक्षित ! कमलदलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अज्ञानी पुरुषोंकी यह बात सुन हँसकर कहने लगे कि,यह सूर्य देव नहीं है मणि करके प्रकाशमान् सत्राजित आ रहा है ॥ ९ ॥ इसके उपरांत सत्राजितने अपने घरमें मांगलिक कर्म कर वाय और देवमन्दिरमें ब्राह्मणोंसे पूजा कराय वहां उस मणिको स्थापित किया ❋ ॥ १० ॥ हे भारत ! वह मणि नित्यप्रति चार मनका भार आठ भार सुवर्ण उगलती थी, उस मणिमें एक यह भी प्रभाव था कि, जहाँ वह मणि रहै, उस देशमें कभी दुर्भिक्ष न पडे, अकालमृत्यु तथा अरिष्ट न हो, सर्प नहीं काटैं, मनुष्यके देहमें दुःखप्न हो, अशुभ दृष्टि न आवै और मायावी पुरुष अर्थात् माया जाननेवाले भी उस देशमें वास नहीं कर सकते हैं ॥ ११ ॥ एक समय श्रीकृष्णचंद्रनें वह मणि राजा उग्रसेनके लिये सत्राजित्से माँगी, परंतु सत्राजित्ने लोभके वश होकर वह मणि श्रीकृष्णचंद्रको नहीं दी और अपने मनमें "श्रीकृष्णको कैसे मना करूं, यह भी विचार न किया ॥ १२ ॥ इसके उपरांत कुछ समय व्यतीत होनेपर सत्राजित्का भाई प्रसेन उस महाप्रकाशवाली मणिको कण्ठमें पहर घोडेपर चढकर वनमें शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्यांबुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥
सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमंगलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥ दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ
स सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ॥ न संति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥
॥ ११ ॥ स याचितो मणिं कापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभंगमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदा
मणिं कंठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥

❋ शंका–सत्राजित्ने यादव देवताके मन्दिरमें ब्राह्मणोंसे मणिको क्यों स्थापन कराया? देवमंदिरमें उस मणिको आपही आप क्यों स्थापन नहीं किया ?

उत्तर–सूर्यने सत्राजित्को मणि देके पीछेसे सत्राजित्से कहा कि,इस मणिको रात दिन धारण मत करना.जो तुम्हारी अग्निहोत्रकी कोठरी है उसमें इस मणिको रख देना,सत्राजित सूर्यका ऐसा वचन सुनके अपने घरको आया और विचार किया कि, विना दूसरा स्नान किये देवमन्दिरमें कैसे जाऊं, ऐसा विचार करके जबतक स्नान करनेकी तैयारी की, तबतक ऋषिलोगोंने मणिको रखायके आप स्नान कर तब अग्निहोत्रकी कोठरीमें होम करनेको गया, इसलिये देवमन्दिरमें ब्राह्मणों करके सत्राजित्ने मणिको स्थापन किया ॥

कि, इतनेहीमें एक सिंह घोडे सहित प्रसेनको मार मणि लेकर पर्वतकी कंदरामें जानेलगा, उसी समय मणि लेनेकी इच्छासे जाम्बवान् ऋच्छने उसे मार डाला ॥ १४ ॥ और अपने बिलमें जाकर उस मणिको पुत्रीका खिलोना किया, इधर सत्राजित् अपने भाई प्रसेनको शिकार खेलकर वनसे न आया हुआ जान चिन्ता करने लगा ॥ १५ ॥ कि,मणि कण्ठमें धारण करके मेरा भाई वनमें शिकार खेलनेको गया है और इस मणिपर कृष्णका दाँत है इसलिये जान पड़ता है कि,भाईको कृष्णने मारडाला इस बातको सत्राजित्ने अपनी स्त्रीसे कहा तो उसके

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशञ्जांबवता निहतो मणिमिच्छता॥१४॥सोऽपि चक्रे कुमारस्य
मणिं क्रीडनकं बिले ॥ अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत॥१५॥प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ॥
भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णेकर्णेऽजपञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुंप्रसेनपदवीं
मन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥
ऋक्षराजबिलं भीममंधेन तमसा वृतम् ॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥

मुखसे सुनकर मनुष्य गुप्त रीतिसे बातें करनेलगे ❋ ॥ १६ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यह यशका नाश करनेवाला कलंक लगा सुन और बहुतसे द्वारकावासियोंको संग ले प्रसेनके ढूँढ़नेको चले ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वनमें सिंहसे मारे प्रसेन व घोडेको देख और आगे पर्वतके ऊपर ऋच्छसे मारे हुए सिंहको सब द्वारकावासी देखनेलगे ॥ १८ ॥ बडी अंधेरी भयानक ऋच्छराज जाम्बवान्के बिलपर सब प्रजाको बाहर खड़ी

---

*दृष्टांत-सत्राजितने स्त्रीसे कहा कि घरकी बात किसी स्त्रीसे नहीं कहना (दृष्टांत)एक बनियाँ था सो दिशाको गया, वहां उसने दोनों घोटोंके बीचमें नीचे कौवेका पंख पडा था,देखकर यह वहम हुआ कि,यह हमारे पेटसे निकला है,सो घर आय अपनी घरवालीसे बोले कि, आज हमारे पेटसे कौवेका पंख निकला;जाने क्या रोग हुआ,उसने टहलनियोंसे कही, टहलनियाँ औरके घर जाकर बोली कि फलाने साहजीके पेटमेंसे पांच कौवे निकले ! यह हमने अपनी आंखोंसे देखा,उस स्त्रीने औरसे कहा कि,साहजीके पेटमेंसे पचास कौवे रोज निकलते हैं उसने औरसे पांचसौ केह कहांतक कहैं, जब वह लाला बाहर निकले,तो लोग कहने लगे कि,जब यह लाला दिशाको जाते हैं,तो इनके पेटमेंसे दो दो हजार कौवे निकलते हैं,सारांश स्त्रीसे बात कहनेमें यह दोष है कि,निकली होठों चढगई कोठों.

करके आप अकेले ही उसके भीतर गये॥१९॥तहाँ उस मणिसे बालकको खेलता हुआ देख, मणि लेनेकी इच्छासे आप भी बालकके समीप ही खडे हो गये॥२०॥ प्रथम कभी न देखनेके कारण मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर डरपोककी नाईं धाई पुकारने लगीं तब महाबलवान् जाम्बवान् धाईका पुकारना सुन क्रोधित हो सामने दौड़कर आया ॥ २१ ॥ क्रोधी जाम्बवान् श्रीकृष्णके प्रभावको न जान और उनको साधारण पुरुष जान,अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करने लगा ॥ २२ ॥ परस्पर जीतनेकी इच्छासे श्रीकृष्ण और जाम्बवान्का शस्त्र,पत्थर, वृक्ष और भुजाओंसे महा घोर संग्राम होनेलगा,जिस प्रकार मांसके लिये दो शिकारी पक्षी लड़ते हैं ॥ २३ ॥ वज्रपातके समान कठोर दृष्टिसे खेद

तत्र दृष्ट्वा मणिं श्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकांतिके ॥ २० ॥ तमपूर्वंनरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत ॥ तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जांबवान्बलिनां वरः ॥२१॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित्॥२२॥द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टि विनिष्पातनिष्पिष्टांगोरुबंधनः ॥ क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५ ॥ जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहोबलम्॥ विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम्॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम्॥ २७ ॥

रहित अट्ठाइस दिनरात परस्पर युद्ध हुआ ॥ २४ ॥ जब श्रीकृष्णके मुष्टिकके प्रहारसे उसके सब अंग शिथिल होगये, बल घटगया और पसीना आगया,तब जांबवान् महा आश्चर्य मानकर कहने लगा ॥ २५ ॥ कि, समस्त प्राणियोंके प्राणमें जो बल है और सहोबल अर्थात् इन्द्रिय, हृदय, देह इत्यादिकोंका बल आप ही हो और विष्णुभगवान् पुराणपुरुष कृपालु सबके ईश्वर आप ही हो ॥ २६ ॥ विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकके तुम निश्चय निमित्तकारण हो और उत्पत्तिके योग्य पदार्थके उपादानकारण हो और समस्त प्रेरणावालोंके ईश्वर तुम कालरूप हो, तथा आत्मा जीवके उत्कृष्ट आत्मा हो ॥ २७ ॥

विष्णु पुराण हो,इसीलिये मेरे इष्टदेव रघुनाथ हो,जिन रघुनाथजीके कुछेक क्रोधसे भ्रूके कटाक्षपातसे मगर और बडे२ ग्राह दुःखित होगये, तब समुद्रने मार्ग दिया और जिन श्रीरामचंद्रजीने अपना यश प्रगट करनेके लिये पुल बाँधा,लंका जलाई,महातीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काटकर पृथ्वीमें डाले,सो मुझे निश्चय विदित होता है कि, आप मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित्! जब इस प्रकार जाम्बवान्को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र उससे कहने लगे॥२९॥कमलनेत्र श्रीकृष्णचंद्र सुखके देनेवाले अपना हाथ परम कृपा कर अपने भक्त जाम्बवान्के ऊपर धर प्रेमगर्भित वाणीसे कहने लगे ॥ ३० ॥ हे ऋच्छराज जाम्बवान् ! हम मणि लेनेके लिये यहाँ तेरे बिलमें

यदुस्येषत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगिलोऽब्धिः॥सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लंका रक्ष
श्शिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ॥ व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः
॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविंदाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ॥ कृपया परया भक्तं प्रेमगंभीरया गिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिह
प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनाऽमुना॥३१॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जांबवतीं
मुदा ॥ अर्हणार्थं समणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ॥ प्रतीक्ष्य द्वादशा
हानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥३३॥ निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुंदुभिः॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णम
निर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपंतस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥

आये हैं क्योंकि हमें एक मिथ्या कलंक लगा है,उसे मणि ले जाकर दूर करेंगे ॥ ३१ ॥ यह वचन सुनते ही जाम्बवान्ने बडे आनंदपूर्वक मणि सहित अपनी कन्या जाम्बवती सेवा करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको दी॥ ३२ ॥ हे राजन्! जिन द्वारकावासियोंको श्रीकृष्णचंद्र बिलके बाहर खडा कर गये थे, उन्हें श्रीकृष्णका मार्ग देखते जब बारह दिन होगये, तब उन्होंने जाना कि, श्रीकृष्ण अब नहीं निकलेंगे इसलिये सब दुःखित होकर द्वारकापुरीको चलेगये ॥ ३३ ॥ बिलमेंसे श्रीकृष्णचन्द्र नहीं निकले, यह बात द्वारकावासियोंके मुखसे श्रवण कर देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव और सुहृज्जन तथा जातिके मनुष्य सब ही अत्यन्त चिन्ता करनेलगे ॥ ३४ ॥ और सब द्वारकावासी दुःखित

होकर सत्राजितको दुर्वाक्य कहते श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनेके लिये महामाया दुर्गादेवीकी पूजा करने लगे॥ ३५॥जब देवीकी पूजा करनेसे "श्रीकृष्णको देखोगे" इस प्रकार द्वारकावासियोंको देवीने आशीर्वाद दिया तब उसी समय सिद्धमनोरथ श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकावासियोंको आनंद देते स्त्रीसहित आये॥ ३६ ॥हे राजन्।जिस प्रकार कोई मृतक पुरुष फिर लौट आवे, उसी प्रकार मणि पहरे स्त्रीको लिये श्रीकृष्णचंद्रको आया हुआ देख समस्त द्वारकावासी परम आनंदित हुए॥३७॥इसके उपरांत सभामें राजा उग्रसेनके पास सत्राजित्को बुलाकर " जाम्बवान् ऋक्षसे मणि लाये हैं" यह कहकर वह मणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्को दे दी ॥ ३८ ॥ सत्राजित् मणि ले अत्यन्त लज्जित हो और मुख नीचा कर पछताता हुआ घरको चला गया॥३९॥महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे विरोध हुआ जान व्याकुल हो,सत्राजित् अपने पूर्व अपराधको

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्य हृषीकेशं
मृतं पुनरिवागतम् ॥ सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ॥
प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥ स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो
भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽ
च्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥
दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शांतिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥

बारंवार स्मरण करके यह पाप कैसे दूर हो और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कैसे प्रसन्न हों ? इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥ ४० ॥ अब मैं क्या कर्म करूँ कि, जिससे मेरा कल्याण हो ? क्योंकि, मैंने विना विचारे श्रीकृष्णचंद्रको दोष लगाया है, मैं अत्यन्त कृपण मंदबुद्धि और द्रव्यका लोभी हूँ, इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि, जिससे मनुष्य मुझे बुरा न कहें ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशावतंस ! इस प्रकार सत्राजित्ने विचार करके यह निश्चय किया कि, श्रीकृष्णचन्द्रको मैं अपनी कन्या दूंगा और पीछेसे दहेजमें मणिभी

देदूंगा यही अच्छा उपाय है, इसके अतिरिक्त और उपायसे मेरा अपराध दूर न होगा, इस प्रकार बुद्धिसे स्थिर करके सत्राजित्ने मंगलरूप
अपनी कन्या और मणिको स्वयं ही उपाय करके श्रीकृष्णचंद्रको अर्पण करी॥४२॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने भी सुन्दर स्वभाव रूप
उदारतादि गुणयुक्त सत्यभामाका पाणिग्रहण किया; जिसको पहले कृतवर्मादि कई यादव माँग चुके थे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे
महाराज परीक्षित्! तब श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्से कहा कि, यह मणि हमको नहीं चाहिये, क्योंकि तुम सूर्यके भक्त हो इसलिये
यह मणि तुम्हारे ही पास रहेगी और इससे जो सुवर्ण होगा सो हमारे यहाँ भिजवा देना कारण कि, तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है इस कारण
तुम्हारा जो धन है सो हमारा ही है, यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गूढ़ अभिप्राय था ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापु० दशमस्कन्धउ०

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥ तां सत्यभामां
भगवानुपयेमे यथाविधि॥बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं
नृप ॥ तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे जाम्बवती
विवाहो नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविंदो दग्धानाकर्ण्य पांडवान् ॥
कुंतीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥१॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गांधारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च संगम्य
हा कष्टमिति होचतुः ॥२॥ लब्ध्वैतदंतरं राजञ्शतधन्वानमूचतुः ॥ अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥ दोहा—शतधन्वाके हतनको, जो कुछ लगो कलंक । मणि मँगाय अक्रूरसे, मेट सतावन अंक ॥१॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! यद्यपि पांडवगण बिलमें होकर, लाक्षाभवनसे बाहर निकल गये, यह बात आप भले प्रकार जानते थे,
परंतु तो भी पांडव और कुन्तीको जलाहुआ सुन कुलोचित व्यवहार करनेके लिये बलरामजीको संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुरुदेशको
गये ॥ १ ॥ भीष्म पितामह, विदुर सहित कृपाचार्य, गान्धारी, द्रोणाचार्य इनसे श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि, हाय ! पांडव जल गये और बडा
ही कष्ट उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ हे राजन्! कुछ दिनोंके पीछे अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनों अवसर पाय शतधन्वासे कहने लगे कि, इस समय

सत्राजितसे मणि क्यों नहीं छीन लेता, क्योंकि जिस सत्राजितने अपनी कन्यारत्न हमको देनी स्वीकार कर फिर कृष्णको ब्याह दी, वह सत्राजित् अपने भाई प्रसेनके पीछे क्यों न जाय अर्थात मरे क्यों नहीं ! ॥ ३ ॥४ ॥ इस प्रकार अक्रूर और कृतवर्माके बहँकानेसे बुद्धिहीन और क्षीणजीवन हो पापी असाधु शतधन्वाने शयन करते सत्राजित्का शिर काट लिया॥ ५ ॥ कसाई जिस प्रकार पशुका वध करता है, ऐसे ही सत्राजितको जब शतधन्वा मारकर चला गया तब सत्राजितकी स्त्री अनाथके सम न पुकार पुकार कर रोदन करने लगी ॥ ६ ॥ इसके पीछे अपने पिता सत्राजितको मारा हुआ देख सत्यभामा "हाय पिता ! हाय पिता !" कहकर अत्यन्त विलाप करने लगी ॥ ७॥ फिर मृतक पिताकी देहको तेलकी नावमें रखकर सत्यभामा हस्तिनापुरको चलीगई, यद्यपि शतधन्वाने सत्राजितको मारा है यह बात अंतर्यामी

योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नम
तिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥ ५ ॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रंदती
नामनाथवत् ॥ हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचाऽर्पिता ॥
व्यलपत्ताततातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम्॥ कृष्णाय विदितार्थाय
तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम्॥८॥तदाकर्ण्येश्वरो राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः
॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हंतुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि
कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

श्रीकृष्णचंद्रने प्रथम ही जानली थी, परंतु तोभी सत्यभामा "मेरे पिताको शतधन्वाने मारा है" यह बात दुःखित होकर कहने गई ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा प त ! भगवान् श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजी सत्राजित्का मरण सुन और अपने मनुष्यावतारका कारण जान "हमको महाकष्ट उपस्थित हुआ है" इस प्रकार कह और आंखोंमें आंसू भरकर विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ इसके उपरांत सत्यभामा और अपने भाई बलदेवजीको साथ लेकर श्रीकृष्णचंद्र हस्तिनापुरसे द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाके मारने और उससे मणि लेनेका उपाय करने लगे ॥ १० ॥ यहाँ शतधन्वाने सुना कि, श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे मारनेका उपाय किया तब वह अत्यंत भयभीत होकर प्राण बचानेके

लिये कृतवर्मासे सहायके निमित्त कहा, तब कृतवर्माने उत्तर दिया ॥ ११ ॥ कि, भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजीका अपराध मैं कभी न करूंगा, क्योंकि उनका अपराध करके किसका कल्याण होगा ॥ १२ ॥ देखो इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे द्वेष करके कंस लक्ष्मीसे भ्रष्ट होकर अपने भाइयों सहित मारागया और मगधदेशके राजा जरासन्धने तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रह बार युद्ध किया,परंतु युद्धमें हार अंतको विरथ होकर चलागया॥॥ १३ ॥ जब कृतवर्मासे कोरा जवाब पाया तब यह निपट उदास हो, अक्रूरजीके पास जाकर कहने लगा, तब अक्रूरजीने कहा कि, भाई भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका पराक्रम जान लेनेपर कौन पुरुष उनसे विरोध करेगा ? ॥ १४॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करता है,उसकी मायासे मोहित होकर उसकी चेष्टाको ब्रह्मादिक भी नहीं जानते॥१५॥

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन्॥१२॥ कंसः सहानुगोऽपीतो
यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ॥ जरासंधः सप्तदश संयुगान्विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमया
चैत ॥ सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हंति च ॥ चेष्टां
विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः शैल मुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल
उच्छिलींध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनंतायादिभूताय कूटस्थायात्मने
नमः ॥१७॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥
गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ॥अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन्गुरुद्रुहम्॥१९॥

देखो ! सात वर्षकी ही अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़कर जिस प्रकार बालक छत्राकको उठाता है, उसी प्रकार उठा लिया ॥ १६ ॥ उन्हीं अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये नमस्कार है और जो सबके आदिकारण, निर्विकार सबके आत्मा हैं, उन्हें हम केवल नमस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार जब अक्रूरजीने भी सूखा उत्तर दिया, तब शतधन्वा अति घबराय मणि अक्रूरके पास रख, चारसौ कोस चलनेवाले घोडेपर चढकर भाग गया॥ १८॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार शतधन्वा भागा तब राम कृष्ण गरुडध्वजवाले रथमें बैठ शीघ्रगामी घोड़ोंसे श्वशुरके मारनेवाले शतधन्वाके पीछे दौडे ॥ १९ ॥

मिथिलाया उपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावन्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥पदातेर्भगवांस्तस्य
पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥२१॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाऽग्रज
तिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना॥कस्मिंश्चित्पुरुषे
न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज॥२३॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनंदनः
॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः॥उवास तस्यां कतिचिन्मि
थिलायां समा विभुः॥२५॥मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना॥ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः॥२६॥

जब शतयोजनसे अधिक घोड़ेसे न चला गया और मिथिलापुरीके बागमें गिर पडा,तब शतधन्वा उस घोडेको छोड भयभीत हो पांवप्यादे भागने लगा और श्रीकृष्ण भी अत्यंत क्रोधित होकर उसके पीछे दौडने लगे॥ २०॥इसके उपरांत श्रीकृष्णचंद्र शतधन्वाको पकड़ और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका शिर काट वस्त्रोंमें मणि ढूँढने लगे ॥ २१॥ जब शतधन्वाके वस्त्रोंमें मणि न निकली,तब श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसे आकर कहा कि,देखो भाई!शतधन्वाको वृथा ही मारा और उसपर मणि न निकली॥२२॥इसके पीछे बलदेवजी कहने लगे कि,शतधन्वा और किसीके पास मणि धर आया है, इस कारण उस पुरुषको ढूँढनेके लिये तुम द्वारका जाओ॥२३॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र सब बातको जानते हैं परंतु तो भी "मणिका मुझसे छिपाव किया है यह मनमें निश्चय कर बलदेवजी क्रोध करके कहने लगे, "तात्पर्य यह है कि,द्रव्य ऐसा निषिद्ध पदार्थ है,जिसके लिये कृष्ण बलदेवका भी मन बिगड़ गया, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है!" कि मेरा परम प्यारा विदेह राजा बहुलाश्व है,उसके देखनेको मेरा चित्त बहुत भटक रहा है,इसलिये मैं वहां जाऊंगा, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रसे कह यादवोंके आनंददायक महात्मा बलदेवजीने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया ॥२४ ॥ प्रसन्नमन मिथिलापुरीका राजा बलदेवजीको आया हुआ देख शीघ्र उठ पूजन करनेके योग्य बलदेवजीकी पूजा करनेकी सामग्रियोंसे पूजा करने लगा,तब सामर्थ्यवान् बलदेवजी कितने एक वर्षतक वहां रहे ॥ २५ ॥ प्रीतियुक्त महात्मा जनकजीसे सत्कार पाय धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन वहां आय महात्मा बलदेवजीसे गदा चलानेकी विद्या सीखने लगा ॥ २६॥

इसके उपरांत प्रिय कार्य करनेवाले सामर्थ्यवान् भगवान् केशवमूर्तिने द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाका नाश और मणिका न मिलना अपनी प्यारी भार्या सत्यभामासे कहा ॥ २७ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपने सुहृदोंको संग लेकर मृतक सत्राजितके परलोकसाधनकी क्रिया कराने लगे ॥ २८ ॥ सत्राजितसे मणि छीन लेनेकी शिक्षा देनेवाले अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वाका मरना सुनकर श्रीकृष्णचंद्रसे अत्यंत भयभीत होकर भागगये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! जब द्वारकापुरीसे अक्रूरजी चले गये तब द्वारकावासी मनुष्योंकेमनमें ताप और अरिष्ट बारम्बार होने लगे ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कितने एक ऋषि जिन्होंने प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रकी

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः॥अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७॥ ततः स कारयामास क्रियां बंधोर्हतस्य वै ॥ साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः सांपरायिकाः॥२८ ॥ अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ॥शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥३०॥इत्यंगोपदिशंत्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतां गांदिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ॥ देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥३३॥

महिमा वर्णन की है, वह श्रीकृष्णके मात्म्यको भूलकर ऐसा कहते हैं, क्योंकि मुनियोंके निवास श्रीकृष्णचन्द्रके विद्यमान रहते अरिष्ट किस प्रकार हो सकते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दूषित करके फिर और ऋषियोंका मत वर्णन करते हैं, कोई कोई ऋषि कहते हैं कि, एक समय जब इन्द्रने जल नहीं वर्षाया तब काशीके राजाने अपनी कन्या गांदिनीको ले, पुरीमें आयेहुए श्वफल्कको दी, तब काशीके सम्पूर्ण देशोंमें खूब वर्षा हुई ॥ ३२ ॥ पिता श्वफल्कके समान प्रभावशाली अक्रूरजी जहां वास करते हैं, उस देशमें खूब वर्षा होती है और महामारी

इत्यादि किसी प्रकारका खेद प्राणियोंको नहीं होता है ❀ ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर "केवल अक्रूर ही यहाँसे गया है और मणिको भी वही लेगया है" यह बात निश्चय करके अक्रूरको काशीसे बुलानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ ३४ ॥ उसके पीछे सब विश्वके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आपही अक्रूरकी पूजा कर हे काका अक्रूर! इस प्रकार सम्बोधन देकर प्यारी प्यारी बात कह अक्रूरके मनकी बात जान मुसकाकर कहने लगे॥ ३५॥ कि, हे दानोंके पति अक्रूर! हम निश्चय जानते हैं कि, स्यमंतकमणि शतधन्वा तुम्हारे

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः॥ ३४ ॥ पूजयित्वाभिभाष्यैनं
कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतध
न्वना ॥ स्यमंतको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद् गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ॥
दायं निनीयाऽपः पिंडान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किंतु
मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥

पास रख गया है और वह तुम्हारे पास है ॥ ३६ ॥ सत्राजितके कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उसे पिंड जलदान और ऋण चुकाकर जो शेष धन रहेगा उसे शास्त्रानुसार उसकी कन्याके पुत्र लेंगे ॥ ३७ ॥ हे अक्रूर! यद्यपि तुम हमसे कहो मत परन्तु तो भी हम जानते हैं कि, मणि तुम्हारे अतिरिक्त और किसीपर रह सकती नहीं क्योंकि आप सुन्दर व्रत धारण करनेवाले हैं, तब अक्रूरजीने कहा कि, अच्छा मेरे ही पास सही. तुम्हें क्या

❀शंका-बडे बडे आश्चर्यकी बातें भागवतमें सुनी जाती है कि, जिस जिस गांवमें अक्रूर वास करता है, उसी उसी गांवमें इन्द्र जलकी वर्षा करता है, फिर उस गांवमें महामारीकी बीमारी नहीं होती तब अक्रूर तो मथुरा छोडके दूसरे गांवको नहीं गये, फिर मथुरा छोडके द्वारकामें वास किया दूसरे गांवमें वास नहीं किया, फिर सातद्वीपमें तो अक्रूर नहीं है, तब सात द्वीपमें इन्द्र जलकी वर्षा क्यों करताहै ?

उत्तर-अक्रूरकी माता गांदिनीने ब्रह्माका तप करके ब्रह्मासे यह वरदान लिया कि, जिस स्थानपर तू (गांदिनी) वा तेरे पति, अथवा तेरा पुत्र निवास करेगा और अपने मनमें जब बर्षनेकी इच्छा करेगा उसी समय जिस स्थानपर चाहेगा वर्षा बहुत होगी और जब अपने मनमें अभिमान करके प्रजाकी बुराई विचारेगा, वा वर्षा होनेकी इच्छा नहीं करेगा उसी समय तुम्हारा प्राण छूट जायगा, इसलिये बुद्धिमान् अक्रूर रात दिन प्रजाको सुख देनेके लिये अपने मनमें रात दिन वर्षा होनेकी इच्छा करते थे ॥

प्रयोजन है? यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, बड़े भाई बलदेवजी इस मणिके पीछे मेरा विश्वास नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥ हे बड़भागी अक्रूर! तुम मणि दिखाकर शीघ्र ही मेरे भाईको शान्त करो और मेरे पास मणि नहीं है यह मत कहो, यदि कदाचित मणि तुम्हारे पास न होती तो सुवर्णकी वेदी बनाकर काशीमें जाकर अखण्ड यज्ञ काहेसे करते? ॥ ३९ ॥ जब इस प्रकार साम भेदसे समझाया, तब अक्रूरजीने सूर्यके समान तेजवाली, वस्त्रसे ढकीहुई वह मणि निकालकर श्रीकृष्णचन्द्रको देदी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्यमंतकमणि अक्रूरजीसे लेकर जातिके बन्धुबांधवोंको दिखाय अपना मिथ्या कलंक दूरकर वह मणि अक्रूरजीको समर्पण करदी ॥ ४१ ॥ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी लीलामय मनुष्योंके दुःखोंका हरनेवाला सुंदर मंगलरूप इस स्यमंतकमणिके प्रसंगको जो कोई पुरुष

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शांतिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तंते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ॥ आदाय वाससा छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ॥ विसृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमंगलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शांतिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे स्यमन्तकोपाख्यानं नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पांडवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥ इंद्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

पढे वा श्रवण करे अथवा स्मरण कर वह कुत्सित पापोंके कलंकको दूर करे कल्याणको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० भाषाटीकायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

दोहा—सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा, मित्रविन्द कालिन्द । अट्ठावन अध्यायमें, वरी सकल गोविन्द ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! लाक्षागृहमें पाण्डव जलगये यह बात होनेपर फिर द्रुपदराजाके यहां पीछे दिखाईदेये, इस प्रकार पाण्डवोंकी खबर पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग ले एक समय इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥

सबके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखते ही, जिस प्रकार मृतकशरीरमें प्राण आनेसे इन्द्रियें चैतन्य होजाती हैं, उसी प्रकार बलवान पाण्डव उठ खडे हुए ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलकर पापरहित होनेके कारण बीर पाण्डव स्नेहभरी मुसकान सहित श्रीकृष्ण चन्द्रका मुखारविन्द देखकर परमानन्दको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्र बडे युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें नमस्कार करके फिर अपने समान अर्जुनसे मिले, इसके उपरांत छोटे नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णचंद्रको नमस्कार किया ॥ ४ ॥ फि इसके उपरान्त श्रेष्ठ आसनपर विराजमान श्रीकृष्णचन्द्रकोनवविवाहिता, निन्दारहित, लज्जावती द्रौपदीने आकर धीरे धीरे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ इसी प्रकार सात्यकीको भी पांडवोंने

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणं मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा
अंगसंगहतैनसः ॥ सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवंदनम्॥
फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवंदितः ॥४॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिंदिता॥नवोढा व्रीडिता किंचि
च्छनैरेत्याभ्यवंदत ॥ ॥ ५ ॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवंदितः॥ निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥
॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरंभितः ॥ आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं
परिपृष्टबांधवः ॥ ७ ॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकंठाश्रुलोचना ॥ स्मरंती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥
तदैव कुशलं नोऽभूत्सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥

आकर पूजन कर आसनपर बैठाला फिर और मनुष्योंका भी आदर सन्मान किया ॥ ६ ॥ फिर श्रीकृष्णचंद्रने कुंतीके पास आकर प्रणाम किया तो कुंतीने भी स्नेहभरी चितवनसे आलिंगन किया, फिर श्रीकृष्णचंद्रने कुंतीसे बहुओं सहित उसकी पूछी और इसके उपरांत कुंती श्रीकृष्णचंद्रसे भाइयोंकी कुशल पूछने लगी ॥ ७ ॥ प्रेमकी व्याकुलतासे गद्गद कण्ठ हो नेत्रोंमें आंसू भर, कौरवोंके दिये कष्टकी सुध करके कुंती भक्तोंके क्लेशोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णचंद्रसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कि, हे कृष्ण ! जातिके बंधु हमको स्मरण

करके जिस समय तुमने मेरे भाई अक्रूरको खबर लेने भेजा, उस समय हमारी सब कुशल होगई और तुमने हमको सनाथ कर दिया॥ ९ ॥ यद्यपि सब विश्वके हितकारी आत्मा तुम“यह अपना है,यह पराया है”इस भ्रमसे रहित हो परन्तु तो भी जो कोइ तुम्हारा सर्वदा स्मरण करता है, तुम उसके हृदयमें स्थित होकर समस्त क्लेशोंका नाश कर देते हो॥१०॥राजा युधिष्ठिर कहने लगे कि,हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! नहीं ज्ञात होता कि मैंने क्या कल्याणकारी कार्य किया है, क्योंकि योगेश्वरोंको जिनका दर्शन होना महाकठिन है, उनका हम सरीखे कुमतियोंको दशन हुआ ॥ ११॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार राजा युथिष्ठिरके प्राथना करनेपर श्रीकृष्णचन्द्र

न तेऽस्ति स्वपरभ्रांतिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथाऽपि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर
उवाच ॥ किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वरः॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम्॥११॥ इति वै वार्षि
कान्मासान्राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानंदमिंद्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो
वानरध्वजम् ॥ गांडीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥१३॥ साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं गहनं वनम् ॥ बहुव्याल
मृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥१४॥ तत्र विध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् ॥ शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणाञ्श
शशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते॥तृट्परीतः परिश्रांतो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥
तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरंतीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥

इन्द्रप्रस्थनिवासियोंके नेत्रोंको आनन्द देते वर्षा कालतक वहीं विराजे ॥ १२ ॥ एक समय महाबलवान् शत्रुओंका मारनेवाला अर्जुन कपिध्वजावाले रथमें चढ़कर, गांडीवधनुष और बाणोंसे भरा तरकस ले, कवच पहर बहुत सर्प और मृगवाले बडे वनमें श्रीकृष्णचन्द्रके संग शिकार खेलनेको गया॥१३॥१४॥और उस वनमें पहुँचकर व्याघ्र,सूकर,भैंसा,रुरु अर्थात् हारिण, शरभ,रोज, गैंडा, मृग और खरहा इनको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे छेदन करने लगा॥१५॥हे राजन् ! अमावास्या पौर्णमासी यह पर्व जब आकर प्राप्तहुए तब सेवकलोग उन पवित्र पशुओंको राजा युधिष्ठिरके पासलाये और जब अर्जुनको प्यास लगी तो थका हुआ यमुनाजीपर आया॥१६॥महारथी अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र

यमुनाके निमल जलका आचमन कर और जल पीकर जब खड़े हुए, तब इन्होंने एक सुन्दर कन्या बैठी देखी ॥ १७॥ सुन्दर जंघा, श्रेष्ठ दांत, मनोहर मुख, ऐसी प्रमदा कन्याके पास श्रीकृष्णका भेजा अर्जुन जाकर पूँछनें लगा ॥ १८ ॥ कि, हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो, कहाँसे आई हो और तुम्हारे मनमें क्या करनेकी इच्छा है ? सो सब वृत्तान्त कहो. मुझे निश्चय जान पडता है कि, तुम्हारे पति करनेकी इच्छा है ॥ १९ ॥ इतना पूछने पर कालिन्दीने कहा कि, मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूँ, कालिन्दी मेरा नाम है और वरको देनेवाले विष्णुभगवान्को पति करनेकी इच्छासे तप कर रही हूँ ॥२०॥ हे वीर ! अत्यन्त स्वरूपवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और किसीको मैं नहीं वरूंगी, वह अनाथके

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम्॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८॥ का त्वं कस्यासि
सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छंतीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥ कालिंद्युवाच ॥ अहं देवस्य
सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेत
नम् ॥ तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिंदीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ॥ निमिते
भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ॥ रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्म
राजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥
भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खांडवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥

976

आश्रय मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥२१॥ मैं कालिन्दी नामसे विख्यात् हूँ और मेरे पिता सूर्यदेवने यमुनाजलमें स्थान बना दिया है, इसलिये जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन न होगा, तबलों यहाँ वास करूंगी ॥२२॥ यह सुन अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रके पास जाकर कालिन्दीके सब वचन कहे, कालिन्दी मेरे लिये तप करती है, यह बात जान श्रीकृष्णचन्द्र कालिन्दीको रथमें बैठाय धर्मराज राजा युधिष्ठिरके पास आये ॥ २३ ॥ उस समय पाण्डवोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके कारीगर विश्वकर्मासे कहकर पाण्डवोंके लिये अद्भुत नगर बनवाये ॥२४॥ पाण्डवोंका भला चाहनेके लिये इन्द्रप्रस्थमें वास करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् अग्निको खांडववन चरानेके

लिये अर्जुनके सारथी हुए॥ २५॥हे कुरुकुलभूषण परीक्षित! तब इस अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको धनुष,श्वेत घोड़े, तीरोंसे भरा तरकस
और जो अस्त्रवालोंसे भी न कटे ऐसा एक कवच दिया॥॥ २६ ॥और वहां इन्होंनें अग्निसे मयनाम दैत्यको बचाया, इसलिये उसने प्रसन्न
होकर पाण्डवोंको एक सभा दी, जिस सभामें जलमें स्थल और स्थलमें जल इस प्रकार देखकर दुर्योधनकी दृष्टिमें भ्रम हुआ ॥२७॥
राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा पाय और सुहृदोंमें बडाई पाय श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग लेकर फिर द्वारकापुरीमें आये॥ २८ ॥

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्श्वेतान्रथं नृप॥अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः॥२६॥मयश्च मोचितो वह्नेः सभां
सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ॥
आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः॥२८॥अथोपयेमे कालिंदीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ॥वितन्वन्परमानंदं स्वानां
परममंगलम् ॥ २९ ॥ विंदानुविंदावावंत्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम्
॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ॥ प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ३१ ॥
नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद्राजातिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ ३२ ॥

इसके उपरान्त सुंदर पवित्र ऋतु नक्षत्रमें कालिन्दीका पाणिग्रहण किया और फिर अनेक प्रकारसे परममंगलरूप श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको
सुख देने लगे ॥ २९ ॥ उज्जैनपुरीके रहनेवाले राजा विन्द और अनुविन्दकी बहनने श्रीकृष्णचन्द्रको स्वयंबरमें बरनेकी इच्छा की परन्तु उन
दोनों भाइयोंने मना किया, क्योंकि वह दुर्योधनके अधीन थे ॥ ३० ॥ हे राजन्! वसुदेवकी बहन राजाधिदेवीकी पुत्री मित्रविन्दाको
श्रीकृष्णचन्द्र सब राजाओंके देखते बलपूर्वक हरण करके लेगये * ॥ ३१ ॥ हे राजा परीक्षित! अयोध्यापुरीका पालन करनेवाला बड़ा धर्मात्मा

---

* शंका-धर्मशास्त्रमें लिखा है कि, फूफीकी लडकी बहिन होती है, फिर श्रीकृष्णने फूफीकी लडकीके साथ विवाह क्यों किया ?
उत्तर-पूर्व जन्ममें वसुदेवजी तप करते थे, तब वसुदेवजीकी जो दासी थी सो सब वसुदेवजीकी सेवामें लग रही थीं, तब भगवान्ने वसुदेवको वरदान दिया कि,हम तुम्हारे पुत्र होंगे, तब लक्ष्मीजीने
मे वसुदेवकी दासियोंको वरदान दिया कि, हे दासियो! तुम्हारी सबकी हम बहुतसी कन्या होंवेंगी, इस प्रकार भगवान् और लक्ष्मीके वचनसे प्रथमकी जो वसुदेवजीकी दासी थीं सो सब इस जन्ममें

राजा नग्नजित् नामसे विख्यात था, उस राजाके प्रकाशमान सत्यानामक एक कन्या उत्पन्न हुई कि, जिसका उपनाम नाग्नजिती भी प्रसिद्ध था ॥३२॥ राजाने यह प्रतिज्ञा करी कि, जो वीर पुरुषकी गंध भी न सह सकें ऐसे दुष्ट, तीखे सींगवाले अति दुर्धर्ष सात बैलोंको जीते, वह मेरी पुत्रीसे विवाह करेगा, अनेक राजा मार खाकर फिर गये, परन्तु कोई भी जीतनेको समर्थ न हुआ ॥ ३३ ॥ यहां यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुना कि, जो बैलोंको जीते, उससे कन्या विवाह करे, यह सुनकर बडी भारी सेनाको संग लेकर अयोध्यापुरीमें आये ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! राजा नग्नजित्ने देखा कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं, इसलिये अत्यन्त प्रसन्न हो उठकर "भले आये महाराज !" इस प्रकार

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृंगान्सुदुर्धर्षान्वीरगंधासहान्खलान् ॥ ३३ ॥ तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्त्वतां पतिः॥जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥ ३४॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणापूजयत्प्रतिनंदितः ॥३५॥ वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेंद्रकन्या चकमे रमापतिम्॥ भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः॥३६॥यत्पादपंकजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥

972

प्रशंसा करके सुन्दर आसन बिछाय चरण धोकर पूजाकी सामग्रियोंसे उनका पुजन करने लगा ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रको आया हुआ देख और अपने योग्य वर जान इनकी इच्छा करके कहने लगी कि, जो मैंने श्रद्धासहित व्रत किये हैं, तो कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों और मेरा मनोरथ सत्य हो ॥३६॥ जिन भगवान्के चरणकमलकी रजको लक्ष्मी और कमलयोनि ब्रह्मा वा महादेव और लोकपाल संपूर्ण शिरपर धारण करते हैं, और जो अपनी बँधीहुई मर्यादा पालनेकी इच्छासे समयानुसार लीलापूर्वक नृसिंहादिअवतार धारण करते हैं, वह भग्वान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥

—वसुदेवजीकी बहिनें हुईं, उन वसुदेवकी बहिनकी पुत्री लक्ष्मी हुई, अपने वचनके प्रमाणसे. लक्ष्मीरूप जो वसुदेवकी बहिनकी लडकी उनका भगवान् विना दूसरा पुरुष कैसे विवाह करेगा ? इसलिये भगवान्ने जाना कि, हमारी बहिन है इनको हम विवाह लेवेंगे तो बडा पाप होगा ऐसा जानते थे तो भी विवाह किया ॥

इसके उपरांत भलीभांति विधिपूर्वक पूजा करके राजा नग्नजित् कहने लगे कि, हे नारायण । हे जगत्पते । हे आनन्दसे पूर्ण। आपकी मैं तुच्छ क्या पूजा करूं ? ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् । आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुसकाते हुए मेघके समान गंभीर वाणीसे राजा नग्नजित्के प्रति कहा ॥३९॥ हे राजन् नग्नजित् । विद्वान् पुरुष कहते हैं कि, मांगना अत्यन्त बुरा है, तो भी स्नेहके वश होकर मैं आपकी कन्या मांगता हूँ. कुछ मूल्यके देनेवाले हम नहीं हैं ॥४०॥ राजा नग्नजित्ने कहा कि, हे नाथ । सब गुण जिनमें विद्यमान और लक्ष्मी सदा जिनके अंगमें वास करें ऐसे सर्वगुणालंकृत तुमसे अधिक संसारमें कौन वर हैं, जिनको मैं अपनी कन्या दूंगा ? ॥४१॥ हे यादवोंमें श्रेष्ठ। पुरुषोंमें पराक्रमकी परीक्षा लेनेके कारण और कन्याके वरकी परीक्षाके लिये हमने प्रथम एक प्रतिज्ञा करी है ॥ ४२ ॥ हे वीर कृष्ण। इन शिक्षारहित और पकडनेमें न आवें, ऐसे बैलोंको जो जीतें वह कन्याको वरे, यह बात सुन बहुतसे राजपुत्र यहां आये, परन्तु इनसे अपना शरीर जर्जरित ही कराकर चले गये ॥४३॥ हे यदुनन्दन । हे लक्ष्मीपति। जो तुम इन बैलोंको जीत लो, तो निश्चय मेरी कन्याका विवाह करो ॥ ४४ ॥ सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजा नग्नजित्का वचन सुनकर फेंट बाँध अपने सात रूप धारण कर लीलापूर्वक ही बैलोंको पकडने लगे ॥ ४५ ॥

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ॥ आत्मानंदेन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः॥३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह
भगवान्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगंभीरया वाचा सस्मितं कुरुनंदन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच॥नरेंद्र याच्ञा कवि-
भिर्विगर्हिता राजन्यबंधोर्निजधर्मवर्तिनः॥तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां नहि शुल्कदा वयम् ॥४०॥
राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्यांगे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥
किंत्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्त्वतर्षभ॥पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया॥४२॥ सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता
दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः॥४३॥यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनंदन॥वरो भवानभिमतो
दुहितुर्मे श्रियःपते॥४४॥एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः॥आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान्॥ ४५॥

गर्व और शक्ति नाश करके उन बैलोंको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने रस्सियोंसे बांधकर,जैसे बालक काष्ठके बैलको खैंचता है,ऐसे ही खैंचने लगे ॥४६॥ इसके उपरांत अत्यन्त:आश्चर्य मान राजा नग्नजित् प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी कन्या देनेका उद्योग करने लगा और सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ राजा नग्नजित्की रानी अपनी कन्याके प्रिय पति श्रीकृष्णको वर पाकर परम आनन्दित हुई और बडा उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, नगारे बजने लगे, गीतोंका शब्द सुनाई दिया, ब्राह्मणोंनें अनेक आशीर्वाद दिये, सुन्दर वस्त्र मालाओंसे शोभायमान सब नर नारी प्रसन्न होगये ॥ ४९ ॥ सामर्थ्यवान् राजा नग्नजित्ने यौतुकमें दश हजार

बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्हतदर्पान्हतौजसः ॥ व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां
राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं
लब्ध्वा प्रियं पतिम् ॥ लेभिरे परमानंदं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शंखभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नरा
नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥
॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥
॥ ५१ ॥ दंपती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः॥ ५२ ॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा
नयंतं पथि कन्यकाम् ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥

गौवें दीं और धुकधुकी कण्ठमें पहरे, सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान तीन हजार दासियें दीं ॥ ५० ॥ नौहजार हाथी और हाथियोंसे सौगुणे अर्थात् नौ लाख रथ, रथोंसे सौगुणे अर्थात् नौ करोड घोडे दिये और घोडोंसे सौगुणे अर्थात् एक अर्ब मनुष्य दिये॥५१॥स्नेहसे व्याप्त हृदय कौशलदेशका राजा नग्नजित् अपनी कन्या सहित श्रीकृष्णको रथमें बैठाल और बहुतसी सेना संग लेकर पहुँचाने चला ॥५२॥ जिनका पुरुषार्थ प्रथम यादव और बैलोंसे भंग होगया था वह राजा यह बात सुनकर न सह सके और कन्याको लेजाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण

चंद्रको मार्गमें रोक लिया ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके प्यार करनेवाले गांडीव धनुषधारी अर्जुनने बाण चलाकर समस्त राजाओंको क्षणभरमें सिंह जैसे वनके छोटे छोटे जीव व मृगोंको भगा देता है इसी प्रकार भगा दिया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र दहेज लेकर द्वारकापुरीमें आय सत्यारानीसे रमण करने लगे ॥ ५५॥ वसुदेवकी बहन श्रुतिकीर्तिकी पुत्री केकयदेशोत्पन्न भद्राको संतर्दनादि भाइयों के देनेपर श्रीकृष्णचंद्रने ब्याहा ॥ ५६ ॥ सुन्दर लक्षणवाली मद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाको गरुड जैसे अमृत लाते हैं, इसी प्रकार अकेले श्रीकृष्णचंद्र हरकर ले आये ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! भौमासुरके बंदीखानेसे छुडाई हुई सुंदर

तान स्यतः शरव्रातान्बंधुप्रियकृदर्जुनः॥गांडीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव॥५४॥पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य
सत्यया ॥रेमेयदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः॥५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां
कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ॥ स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव॥
॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥ इति
श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥ राजोवाच ॥यथा
हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥ निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः॥१॥श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रेण हत
च्छत्रेण हृतकुण्डलबंधुना ॥ हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥ २ ॥

स्वरूपवान् हजारों स्त्रियां और भी थीं ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामष्टमहिष्युद्वाहो नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ दोहा—उनसठवें अध्यायमें, भौमासुरको मार । इंद्रपराभव कर हरी, कन्या वरीं हजार ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा कि, हे व्यासपुत्र शुकदेवजी ! श्रीकृष्णचंद्रने जिस प्रकार भौमासुरको मारा और जैसे भौमासुरने वह स्त्रियें रोकीं यह सम्पूर्ण कथा और शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका पराक्रम हमारे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! जब देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णचन्द्रसे आकर कहाकि, हे भगवन् ! मेरा छत्र, अदितिके कुण्डल भौमासुर हरकर

लेगया और अमराद्रि सुमेरुके मणिपर्वत स्थानमें इसने अपना अधिकार कर लिया है और हमें अत्यन्त ही दुःखित कर दिया है. देवराजकी
यह बात सुनकर ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र पक्षिराज गरुडपर सवार हो सत्यभामा रानीको संग ले प्राग्जोतिष नामक भौमासुरके नगरमें गये; जहां
पर्वत, शस्त्र, जल, अग्नि और पवनके किले हैं, जिनमें कोई प्रवेश न करसके ऐसा भयानक गढ और मुर दैत्यकी हजारों दृढ फाँसियों
करके चारों ओरसे व्याप्त है ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने गदासे गिरिदुर्ग तोड़ा, शस्त्रदुर्ग बाणोंसे, चक्रसे अग्निदुर्ग तोडा. इसके उपरांत जलदुर्ग
और पवनदुर्गको तोड, इसीप्रकार मुरदैत्यकी फाँसियोंको काट डाला ॥ ४॥ शंख बजनेके शब्दसे अनेक युद्धके यंत्र उलटे चलने लगे और

सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ॥ गिरिदुर्गैश्शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम्॥ मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत्रआवृतम्॥३॥
गदया निर्बिभेदाद्रीञ्शस्त्रदुर्गाणिसायकैः ॥ चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना॥४॥ शंखनादेन यंत्राणि हृदयानि
मनस्विनाम् ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः॥५॥ पांचजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगांताशनिभीषणम्॥ मुरः शयान
उत्तस्थौ दैत्यः पंचशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगांतसूर्यानलरोचिरुल्वणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव
पंचभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥ आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पंचभिः ॥
स रोदसी सर्वदिशोऽम्बरं महानापूरयन्नंडकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥

शूरवीरोंके हृदय व मन थरथर कांपने लगे, तब गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने बडी गदासे भौमासुरकी नगरीके कोटको तोड डाला ॥ ५ ॥
प्रलयकालीन वज्रके शब्दके समान भयंकर शब्दवाले पाञ्चजन्य शंखका शब्द सुनकर पांच मुखवाला मुरदैत्य जो जलके भीतर सोरहा था
सो उठा ॥ ६ ॥ अति खोटी दृष्टि प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान तेज, भयंकर रूपवाला मुरदैत्य त्रिशूल हाथमें ले पांचों मुख फाड़कर,
मानों त्रिलोकीको निगल जायगा इस प्रकार दौडता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके सम्मुख आया, जैसे गरुड़ सर्पोंके सम्मुख जाता है ॥ ७ ॥
और बडे जोरसे त्रिशूलको फिराय गरुड़पर चला, पांचों मुख फाडकर महाघोर शब्द किया, उस शब्दका नाद अन्तरिक्ष, पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशाओंमें

फैलकर ब्रह्माण्डमें व्याप्त होगया ॥ ८ ॥ उस समय कृष्णचन्द्रने गरुडके ऊपर त्रिशूल आता देखकर अपने बाणोंसे तीन टुकडे कर दिये और मुर दैत्यके पांचो मुखमें पांच बाण मारे, तब मुरदैत्य अत्यन्त क्रोधित होकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर गदा चलाने लगा॥ ९॥ तब भगवान्‌ने संग्राममें आती हुई उस गदाके हजारों टुकडेकर डाले, उस समय भुजाओंको उठाय दौडकर सम्मुख आयेहुए मुरदैत्यका शिर श्रीकृष्णचंद्रने लीलापूर्वक अपने चक्रसे काट लिया॥ १० ॥ जिस प्रकार इंद्रके वज्रसे पर्वतका शिखर कटकर गिर पडता है, उसी प्रकार मस्तक कटनेपर प्राणमुक्त हो वह जलमें गिर गया, उसके जो अतिबलवान् सात पुत्र थे, वह पिताके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो, क्रोध कर बदला लेनेके लिये आये ॥ ११ ॥

तदा पतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्याममभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा
व्यमुञ्चत॥९॥ तामापतंतीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ॥ उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि
चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥ व्यसुः पपातांभसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृंगोऽद्रिरिवेंद्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाः सप्त पितुर्व
धातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं
पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुंजतासाद्य शरानसीन्गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्य
जिते रुषोल्बणाः॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥ तान्पीठमुख्याननय
द्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजांघ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥ १४ ॥

ताम्र, अंतरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और सातवां अरुण यह सब पीठनाम सेनापतिको आगे कर भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र लेलेकर रणभूमिमें आये ॥ १२ ॥ अत्यन्त क्रोध करके भयानक मुरदैत्यके पुत्र आकर श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर बाण, तलवार, गदा, बर्छी, गुर्ज और त्रिशूल इत्यादि शस्त्र चलाने लगे, तब महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बाणोंसे उनके चलाये हुए शस्त्रोंको क्षणभरमें तिलके समान काट डाला ॥ १३ ॥ पीठ आदि मुरदैत्यके पुत्रोंके शिर, ऊरू, भुजा, पांव, कवच इत्यादि काट और उनको मारकर श्रीकृष्णचंद्रने यमलोककी

भेज दिया, तब पृथ्वीका पुत्र नरकासुर श्रीकृष्णचन्द्रके चक्र और बाणोंसे अपने सेनापतियोंका नाश देखकर महाक्रोधित हो समुद्रसे प्रगट हुए मद झरते हाथियोंकी सेना लेकर बाहर निकला ॥ सूर्यके ऊपर जिस प्रकार बिजली सहित मेघ आता है, इसी प्रकार गरुडके ऊपर सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रको विराजमान देख भौमासुर बरछी चलाने लगा और सम्पूर्ण योद्धा भी प्रहार करने लगे॥ १४ ॥ १५ ॥ गदके बडे भाई श्रीकृष्णचन्द्रने चित्र विचित्र पंखवाले बाणोंसे भौमासुरकी सेनाको काट फिर क्षणमात्रमें तीखे बाणोंसे भुजा, ऊरू, गर्दन और अंग काट हाथी घोडोंको मार छिन्न भिन्न कर दिया ॥ १६ ॥ हे कौरवोंके आनंद देनेवाले परीक्षित् ! जो जो शस्त्र योद्धाओंने चलाये, इन सबका भगवान्

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोऽङ्घ्रिविग्रहं चकार तत्रैव हताश्वकुंजरम् ॥ १६ ॥ यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्याच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुंडपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्त्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छत्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ नाकंपत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥

श्रीकृष्णचंद्रने तीक्ष्ण तीन तीन बाणोंसे एक एक टूक कर काटडाला॥ १७॥ श्रीकृष्णको अपने ऊपर चढाये हुए गरुडजीने भी अपनी चोंच और पंखोंसे हाथियोंको मार मारकर व्याकुल कर दिया ॥ १८॥ और वह अत्यन्त पीडित होकर पुरमें प्रवेश कर गये, तब नरकासुरने युद्ध करते हुए गरुडसे पीडित अपनी सेनाको भागी हुई देखकर॥ १९ ॥ भौमासुरने महापैनी धारवाली गरुडजीको बरछी मारी, जिससे वज्र रुक गया था, परन्तु जैसे मालाके प्रहारको हाथी कुछ नहीं गिनता, इसी प्रकार गरुडजी उसके प्रहारसे कुछ भी व्यथित नहीं हुए ॥ २० ॥

तब भौमासुरने अपना उद्यम वृथा देख श्रीकृष्णके मारनेको त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु हे परीक्षित् ! उस शूलको छोडनेसे प्रथम ही भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने अपने चक्रसे हाथीपर बैठेहुए भौमासुरका शिर काटडाला ॥२१॥ हे राजन् ! जिस समय कुण्डलों सहित मनोहर किरीटसे शोभायमान प्रकाशंमान भौमासुरका शिर कटकर पृथ्वीमें सुशोभित हुआ, उस समय दैत्य हाहाकार और ऋषि देवता धन्य धन्य कहते भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ भौमासुरके मरनेपर पृथ्वीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर तपायमान सुवर्णमें जड़े रत्नोंसे प्रकाशमान कुण्डल वैजयन्ती माला और वरुणका छत्र तथा महामणि दी ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम! उस समय पृथ्वी विश्वके ईश्वर, देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मादिकोंसे पूजित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख दोनों हाथ जोड नम्र हो, भक्ति और श्रद्धासहित स्तुति करने लगी ॥ २४ ॥ “पृथ्वीने पुत्रके लिये तपस्याकी थी, तब देवताओंने प्रसन्न होकर पुत्र होनेका वर दिया, उसी वरके प्रभावसे भौमासुर उत्पन्न हुआ” पृथ्वीने कहा कि, हे देवदेव ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी ! हे परमात्मन् ! भक्तोंकी वैक्षा करनेके लिये साकार रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २५॥ जिनकी नाभिमें कमल, कमलकी माला धारण करनेवाले, कमलनेत्र और कमलके समान चरण रखनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण प्राणी जिनमें वास करें, विष्णु अर्थात् सबके हृदयमें व्यापक, समस्त कार्योंके आदि कारण, पूर्णज्ञान स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥

शूल भौमोऽच्युतं हंतुमाददे वितथोद्यमः ॥ तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण
क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुंडलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ॥ हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा
माल्यैर्मुकुंदं विकिरंत ईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुंडले प्रतप्तजांबूनदरत्नभास्वरे॥ सवैजयंत्या वनमाल
याऽऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्रांजलिः प्रणता राजन्भ
क्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्न
मोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये॥ २६ ॥
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥

आप जन्मरहित हो, इस विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हो, ब्रह्म हो, इसलिये अजन्मा हो, अनंतशक्ति हो, इसीसे विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हो, यदि कोई कहे कि, पित्रादि तो पुत्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता हैं और पित्रादिकोंके उत्पत्ति कर्ता उनके पूर्वपुरुष हैं और पूर्व पुरुषोंके उत्पत्तिकर्ता पंचभूत हैं और पञ्चभूतोंका अपने कर्मद्वारा जीव है। मैं क्या कहूं इसके उत्तरमें पृथ्वी कहै है कि, हे कार्यकारणरूप! हे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा! हे परमात्मन्! तुम सर्वरूप हो, इस लिये तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २८ ॥ यहां यह शंका है कि तीन गुणोंसे इस विश्वको उत्पन्न पालन और संहार करते हैं और तीनों गुण मायाके अधीन हैं और मायाका क्षोभ करनेवाला पुरुष है, काल निमित्त है और यह बात प्रसिद्ध है; फिर मैं क्या करता हूँ इसके उत्तरमें पृथ्वी कहती है कि, तुम आवरणरहित हो, हे समर्थ! जिस समय आप विश्वके रचनेकी इच्छा करते हो, तब

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनंतशक्तये॥परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८॥ त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं
प्रभो तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥ २९ ॥ अहं
पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इंद्रियाणि ॥ कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं
भ्रमः॥ ३० ॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपंकजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ॥ तत्पालयैनं कुरु हस्तपंकजं शिरस्य
मुष्याखिलकल्मषापहम्॥ ३१ ॥

रजोगुणको धारण करते हो और हे जगत्पति! जगत्के 'पालन करनेको सत्वगुण धारण करते हो तथा नाश करनेके लियँ तमोगुणको धारण करते हो, कालरूप हो, पुरुषरूप और सबसे परे हो इसलिये सबके उत्पन्नकर्त्ता तुम ही हो ॥ २९ ॥ हे ईश! मुझे (पृथ्वी), जल, ज्योति, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस,, गन्ध, देवता, मन, इंद्रियां, अहंकार, तत्त्व और समस्त स्थावर जंगम आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमसे भासते हैं ॥ ३० ॥ हे शरणागतोंके दुःखहर्त्ता! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीत होकर तुम्हारे चरणोंमें आकर पड़ा है, सो तुम इसका पालन करो और सब क्लेशोंका शमन करनेवाला अपना हस्तकमल इसके मस्तक पर रक्खो ॥ ३१ ॥

भक्तिपूर्वक नम्र हो मधुरवाणीसे पृथ्वीनें जब इस प्रकार स्तुति और प्रार्थना की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे अभयदान दे सर्व सम्पत्तियुक्त भौमासुरके स्थान पर गये ॥ ३२ ॥ वहां जाकर श्रीकृष्णचंद्रने सोलह हजार एक सौ कन्या भौमासुरके मंदिरमें देखीं, जिन्हे भौमासुर अपने पराक्रमसे बलात्कार हर लाया था * ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत बलवान् श्रीकृष्णचंद्रको आया हुआ देख संपूर्ण स्त्रियें मोहित होकर दैवसे प्राप्त हुए

श्रीशुक उवाच ॥ इति भूम्याऽर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥
॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥
तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयं मह्यं
धाता तदनुमोदताम् ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५ ॥ ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजांबराः ॥
नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥ ३६ ॥

मनोवांछित पति श्रीकृष्णचंद्रको मनसे पति वरण करने लगीं ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! इन्हे ऐसी अनुमति दो कि, यह हमारे पति हों इस प्रकार सब कन्याओंने भक्तिभाव सहित अपना अपना मन श्रीकृष्णचन्द्रमें लगाया ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उन्हे उज्ज्वल व स्वच्छ

---

* शंका—भौमासुर तो बडा बुद्धिमान् था, फिर कुमारी कन्याओंको क्यों हर हर इकठा किया ? वह तो सब लडकियां थीं, उनका विवाह नहीं हुआ था, उनको राक्षसकर्म करनेके लिये हरकर लेगया उत्तर—राजाओंका अभिमान भञ्जन करनेके लिये सब राजाओंकी कन्याओंको हरकर वह अपना विवाह करनेके लिये लाया था और राजालोग उसका कुछ भी नहीं कर सके, तब नारदमुनिने विचारा कि, यह सब कन्या तो भगवान्की स्त्री होंगी, ऐसा विचारके भौमासुरसे मना करदिया कि हे भौमासुर ! विना हमारी आज्ञा लिये इन कन्याओंके संग अपना विवाह मत करना, ऐसे कहकर भौमासुरको विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी, इन लडकियोंके संग विवाह करनेको चाहते ही चाहते भौमासुरको श्रीकृष्णने मारडाला और कन्याओंको अपने आप वर लिया इसलिये भौमासुरने राजकन्याओंको हरण किया था ॥

वस्त्र पहराय पालकियोंमें बैठाय द्वारकापुरीको भेजदिये और साथ ही बडे बडे खजाने रथ, घोडोंको भी भेजे ॥३६॥ इसके उपरांत चार चार दाँतके श्वेतरंग शीघ्रगामी चौंसठ ऐरावतकुलके हाथी श्रीकृष्णचंद्रने द्वारकापुरीमें भेजे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे जब भगवान् वासुदेवने इन्द्रलोकमें जाकर अदितिको कुण्डल दिये, तब इंद्रायणीसहित देवराज इंद्रने सत्य भामा सहित श्रीकृष्णचंद्रकी विधिपूर्वक पूजा करी ॥ ३८ ॥ सत्यभामाके कहनेसे श्रीकृष्णचंद्रने कल्पवृक्षको उखाड गरुडके ऊपर रख और इंद्रसहित समस्त देवताओंको जीति द्वारका पुरीमें लेआये ॥ ३९॥ और सत्यभामाके बगीचेको शोभायमान करनेके लिये कल्पवृक्ष उसके बगीचेमें लगाया, उसकी सुगन्धके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे पीछे चले आये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! प्रथम तो देवराज इंद्रनें कार्य सिद्ध करनेकें लिये अपने किरीटोंके अग्रभाग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगा नमस्कार करके उनकी प्रार्थना की और कार्य सिद्ध होनेपर भगवान्से विरोध किया, अहो ! दैवताओंको बडा क्रोध आता है, धनिकताको ही धिक्कार है ॥ ४१ ॥ इसकें उपरांत एक मुहूर्तमात्रमें सोलहहजार एकसौ आठ महलमें सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जितनी स्त्रियें थीं उतने ही स्वरूप धारण कर सबका यथायोग्य पाणिग्रहण किया ॥ ४२॥ जिनके घरके समान और कोई घर नहीं है, इस प्रकार उन रानियोंके घरोंमें सदा पूर्ण आनन्दस्वरूप रहते भी औरोंके समान गृहस्थधर्म करते अचिन्त्य कार्य कर्ता अविनाशी भगवान् लक्ष्मीके अंश

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दंतांस्तरस्विनः ॥ पांडुरांश्च चतुष्षष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेंद्रभवनं दत्त्वा
ऽदित्यै च कुंडले ॥ पूजितस्त्रिदशेंद्रेण सहेंद्राण्या च स प्रियः ॥ ३८ ॥ चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥
आरोप्य सेंद्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमराः
स्वर्गात्तद्गंधासवलंपटाः ॥ ४० ॥ ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन
972 विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे
5 भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निज
कामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥

स्त्रियोंके साथ विहार करते थे ॥ ४३ ॥ हे परीक्षित् । ब्रह्मादिक देवता जिनके मार्गको नहीं जानते, उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रको पति पाय वे स्त्रियां उनका निरन्तर बढी हुई प्रीति और स्नेह भरे हास्यपूर्वक अवलोकन करती थीं और आनन्दपूर्वक नवीन २ भाषण और लज्जाका सेवन करती थीं ॥४४॥ यद्यपि एक एक रानीके पास सौ सौ दासी हाथ जोडे खडी रहती थीं, परंतु तो भी सामने जाकर लिवा लाना, आसन को विछाना; सुंदर पूजा करनी, चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, फूल चढ़ाना, केशोंको संभालना, शय्या विछाना, स्नान कराना और भेंट देना, यह सब सेवा भले प्रकार आप ही करती थीं ॥ ४५ ॥ इति श्रीम० महापुराणे दशमस्कन्धे

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिंस्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम्॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम्॥ ४५ ॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नरकवधपारिजातहरणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥ पतिंपर्यचरद्भैष्मी व्यैजनेन सखीजनैः॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥२॥ तस्मिन्नंतर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलंबिना ॥ विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ॥ जालरंध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चंद्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥

उत्तरार्द्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥ दोहा–साठ हँसीसे कुछ कही, हरि रुक्मिणि सो बात। रूठ गई तब रुक्मिणी, कृष्ण मनावन जात॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! किसी समय सुखपूर्वक एक शय्यापर बैठे हुए जगद्गुरु अपने पति श्रीकृष्णचंद्रकी रुक्मिणी सखियों सहित चमरकरके सेवा करने लगीं॥ १॥ जो जन्मर[illegible]त भगवान् लीलापूर्वक इस विश्वको उत्पन्न पालन, और संहार करते हैं, वही भगवान् अपनी मर्यादा की रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें आकर प्रगट हुए॥२॥ वहां गृहोंके भीतर अत्यंत देदीप्यमान मालायें लटक रही थीं, अत्यन्त शोभायमान छत बँधी थीं और मणिमय दीपक जगमगा रहे थे॥३॥ मधुमल्लिकाके पुरुषोंकी मालाओंपर भौंरोंके झुण्डके झुण्ड गूँज रहे थे और झरोखोंकी जालियोंमें

होकर चन्द्रमाकी निर्मल किरणें झिलमिला रही थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंध लिये उद्यानसे सुगंधसनी वायु चली आती थी, हे राजन्! झरोखे जालियोंमें अगर तगरके धूपका धुवाँ निकल रहा था ॥५॥ इस मंदिरके भीतर शय्या बिछी थी, उसपर दूधके फेनके समान कोमल श्वेत बिछौना बिछ रहा था, उसके ऊपर सुखपूर्वक बैठे हुए जगतके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सेवा करती थी ॥ ६ ॥ हीरेकी दंडीवाला चमर सखीके हाथमेंसे लेकर उससे पवन करती रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी ओरको देख रही थी ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट मणियोंके जड़ाऊ नूपुरोंका शब्द करती अत्यन्त शोभायमान लगती थीं, कैसी रुक्मिणी हैं, उँगलियोंमें मुंदरी पहरे; कलाइयोंमें चूडी व

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजै राजञ्जालरंध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभे शुभ्रपर्यंके कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥ वालव्यजनमादाय रत्नदंडं सखीकरात् ॥ तेन वीजयती देवी उपासांचक्र ईश्वरम् ॥ ७॥ सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेंऽगुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रांतगूढकुचकुंकुमशोणहारभासा नितंबधृतया च परार्ध्यकांच्या ॥ ८ ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्यया लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककंठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ राजपुत्रीप्सितां भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भीरूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ १० ॥

कंकण पहरे और हाथोंमें बीजना ले रही हैं, सारीके छोरसे ढके जो स्तन तिनकी केशरसे रंगा हुआ अरुण जो मोतियोंका हार और कटिमें पहरे हुए जो अमूल्य मेखला उससे शोभायमान हो रही थीं ॥८॥ लीला पूर्वक देह धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य जिसका रूप है और श्रीकृष्णके विना जिसका कोई आश्रय नहीं है, ऐसी रूपवती साक्षात् लक्ष्मीके समान रुक्मिणीजीको देखकर कि, जिसकी अलकें कुण्डल धुकधुकी युक्त कंठसे शोभायमान मुखारविन्दमें मंद मुसकानरूप अमृत झलक रहा था, उसे देख प्रसन्न हो हँसकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजपुत्री ! लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवाले महानुभाव लक्ष्मीवान् रूप, उदारता और बलसे बढे हुए राजा तुम्हारी

चाहना करते थे ॥ १० ॥ और मदसे व्याकुल शिशुपालादि राजा तुम्हारे लेनेंके लिये आये. जिन्हें तुम्हारे पिता दे भी चुके थे फिर तुमने किस कारण उन्हें छोड़कर हमें जो तुम्हारी बराबरके भी नहीं हैं, वरण किया? ॥ ११ ॥ हे सुन्दर भ्रुकुटियोंवाली! बहुधा राजाओंसे डरकर तो हमने समुद्रकी शरणली है और बलवानोंके साथ विरोध होनेसे ही हमने राजगद्दी त्यागन कर रक्खी है ॥ १२ ॥ हे सुभ्रु! जिनकें आचरणकी खबर नहीं और जो स्त्रियोंके कहेमें न चलें, जिनका मार्ग जगतसे निराला है, ऐसे पुरुषोंका जो स्त्रियें अनुसरण करती हैं; वह बहुधा क्लेश पाती हैं ॥ १३ ॥ और हम निष्किंचन हैं, जो निष्किंचन है वह जन हमे अत्यन्त प्रिय है, इसलिये हे सुमध्यमे ! धनवान् पुरुष कहते हैं

तान्प्राप्तानार्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥ राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदंति योषितः ॥ १३ ॥ निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचनजनप्रियाः ॥ तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजंति सुमध्यमे ॥ १४ ॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥ वैदर्भ्यैतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ॥ वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ॥ येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥

कि, हम दरिद्री होजायँगे, इस भयसे बहुधा मेरा भजन नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनके बराबर धन, बराबर जन्म, बराबर ऐश्वर्य और बराबरकी रूप, जाति हैं और सदा जिनका एकसा निर्वाह होता है, उन्हींसे विवाह और मित्रता होती है, छोटे बडोंकी कदापि नहीं हो सकती ॥ १५ ॥ हे राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी! तुमने कुछ विचार न किया और बराबरका संबंध होता है, यह बात जाने बिना गुणहीन हमको भिक्षुकके सराहनेसे भूलकर वर लिया ॥ १६ ॥ हे सुन्दरी ! अब भी तुम अपनी बराबरीका क्षत्रिय देखकर उसके हाथ पकड लो, उस क्षत्रियसे इस लोक और पर लोकके मनोरथोंको प्राप्त होगी ❀ ॥ १७ ॥

❀शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने रुक्मिणासे कहा कि, तुम हमको छोडकर और कोई दूसरा पति करलो ऐसा मूर्खों और अज्ञानियोंकी नाई कुवाच्य भगवान् तो अपनी लक्ष्मीको कभी नहीं रह सकते, न कभी

तब रुक्मिणीने कहा कि, आप मुझे क्यों ले आये? श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, वामोरु! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दंतवक्रादि समस्त राजा हमसे शत्रुता रखते हैं और तेरा भाई रुक्मी भी वैर करता है॥ १८॥ हे मंगलरूपिणी! पराक्रमके मदसे अंधे गर्ववन्त राजाओंका गर्व दूर करनेके लिये और दुष्टोंका तेज हरण करनेके लिये मैं तुम्हें हर लाया था॥ १९॥ हम घर और देहमें उदासीन हैं, हमको स्त्री पुत्रोंकी चाहना नहीं है; क्योंकि आत्माके आनन्दसे सदा परिपूर्ण हैं और ज्योतिके समान साक्षीमात्र क्रियारहित वर्त्तते हैं॥ २०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्!

चैद्यशाल्वजरासंधदंतवक्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषंति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदांधानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ॥ आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिंतां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥

रुक्मिणीका मन हरनेवाले और जो आपसे कभी अलग न होय, इसलिये आपको अपना प्राणवल्लभ जाननेवाली रुक्मिणीका गर्व दूर करनेके लिये इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चुप होगये॥ २१॥ इस प्रकार त्रिलोकीके ईश्वरोंका पालन करनेवाले अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रका जो पहले कभी न सुना था, ऐसा कटुवाक्य सुनकर हृदयमें रुक्मिणीजी काँपने लगीं और भयभीत हो रुदन करके बडी चिन्ता करने लगीं ॥ २२ ॥

—शङ्का, फिर इस अवतारमें क्यों कहा? जो कोई कहै कि, रुक्मिणीका मानभंग करनेके लिये यह वचन श्रीकृष्णने कहा तो कृष्णके सामने तो रुक्मणीने कभी मान भी नहीं किया, फिर ऐसा खोटा वाक्य भगवान्ने रुक्मणीसे क्यों कहा?

उत्तर- श्रीकृष्णने समझा कि, कलियुगका राज्य थोडे ही दिनोंमें आनेवाला है, यह जानकर संसारके कल्याणार्थ और कलियुगकी स्त्रियोंके मानभंग करनेके लिये रुक्मणीसे ऐसा अनुचित वाक्य कहा, श्रीकृष्णने कहा कि, स्त्रीका अभिमान भंजन करनेवाले मेरे इस वचनको कलियुगमें जो कोई स्त्री पुरुष सुनेंगे वह स्त्रीभी डरेगी और वह पुरुष भी डरेगा और कहेंगे, स्त्री पुरुषका प्रेम सबसे बडा है, देखो तुच्छ बातपर रुक्मिणीको भगवान्ने त्यागनेके लिये हँसी की थी. तो भी रुक्मिणी प्राण त्यागनेके लिये उपस्थित हुई ऐसा विचार करके स्त्री तो अपने पतिसे प्रेम करे और पुरुष स्त्रीसे प्रेम करें, इस धर्मसे दूसरा कोई भी बडा धर्म नहीं है, कलियुगके जीव ऐसा मानलेंगे. इसलिये कृष्णावतारमें रुक्मीजीको कुवाक्य श्रीकृष्णने कहा कुछ छलसे नहीं कहा ॥

नखकी अरुण कांतिवाले सुकुमार चरणोंसे पृथ्वी लिखने लगीं, आंखोंमें अंजन लगनेके कारण श्याम आँसू बहने लगे, उनके केशरयुक्त स्तनोंको भिजाती, नीचेको मुख किये अत्यन्त दुःखित हो वाणी रुकनेसे रुक्मिणी व्याकुल हो कर चुप होगई ॥ २३ ॥ अप्रिय वचन सुननेके कारण अत्यन्त दुःख और त्याग करनेकी आशंकाके शोकसे बुद्धिरहित होके रुक्मिणी व्याकुल होगई, तब उनके हाथसे पंखा गिरगया, कंकण शिथिल हो गिरने लगे और महाव्याकुलतासे मोहित हो पवनसे गिराई हुई कदलीके समान रुक्मिणी मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पडीं और उस समय उनके केश भी खुल गये ॥ २४ ॥ हास्यकी गंभीरता न जाननेवाली अपनी प्यारी रुक्मिणीका प्रेमबन्धन देख करुणाकर श्रीकृष्ण

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखंत्यश्रुभिरंजनासितैः॥आसिंचती कुंकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःख रुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्रंभेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबंधनम् ॥ हास्यप्रौढिमजानंत्याः करुणः सोऽन्वकंपत ॥ २५ ॥ पर्यंकादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिषद्बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥ सांत्वयामास सांत्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा मां वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ॥ त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमंगने ॥ २९ ॥

चन्द्र द्रवीभूत होगये ॥२५॥ और चार भुजा धारण कर शीघ्र पलँगसे नीचे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठाय एक हाथसे उसके केशोंको सँभालकर, कमलके समान मुखको कोमल कमलसी भुजासे पोंछने लगे ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! आंसू भरे नेत्र और शोकसे ताडित स्तनोंको पोंछ अनन्यआश्रय पतिव्रता रुक्मिणीको भुजाओंसे आलिंगन कर ॥ २७ ॥ हँसीसे चलायमान चित्त और कठोर हँसीके अयोग्य दीन रुक्मिणीको साधु पुरुषोंकी गति सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समझाने लगे ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम मुझसे ईर्षा मत करो और यह बात मैं निश्चय जानता हूँ कि, मेरे अतिरिक्त तुम और किसीको नहीं जानती हो, हे सुन्दरी ! तुम क्या

कहोगी, यह जाननेके लिये मैंने हँसी करी थी॥२९॥स्नेहके कोपसे फडकतेहैं अधर जिसमें और चलायमान अरुण कटाक्षसे टेढी भ्रुकुटिवाले मुखकी शोभा देखनेके लिये हँसी करी थी ॥३०॥ हे भीरु प्रिये ! अपनी प्राणप्यारीके संग हँसी करके समय व्यतीत करना गृहस्थियोंके घरमें यही लाभ है॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् !इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जब शांत करी, तब रुक्मिणीने "प्यारेने मुझसे हँसी करी है" यह बात जानकर त्यागनेके भयको छोडदिया ॥३२॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित्! लाजभरी मधुर मुसकान और शोभायमान स्निग्ध कटाक्षोंसे सुन्दर मुख देखती हुई रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे कहने लगी ॥ ३३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचंद्रने कहा था कि, तुम

मुखं च प्रेमसंरंभस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥कटाक्षेपारुणापांगं सुंदरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसांत्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२॥ बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षंती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥३२॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविंदविलोचनाऽऽह यद्वै भवान्भगवतोऽसदृशी विभूम्नः॥क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा॥३४॥सत्यं भयादिवगुणेभ्यउरुक्रमांतः शेते समुद्र उपलंभनमात्र आत्मा ॥ नित्यं कदिंद्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम्॥ ३५॥

हमारे समान नहीं हो फिर हमारा हाथ क्यों पकडा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणी बोली कि,हे कमलदललोचन ! तुम्हारे समान मैं नहीं हूँ, छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त आपकी बात सत्य है।अपनी महिमासे आवृत तीनों ब्रह्मादिकोंके ईश्वर आप कहां? और सकाम पुरुषोंने जिसके चरण पकडे ऐसी सत्त्वगुणी तमोगुणी रूपवाली मैं माया कहां? मुझमें और आपमें बडा अंतर है॥३४॥ और श्रीकृष्णचंद्रने यह जो कहा था कि, राजाओंके डरके मारे समुद्रमें आकर रहे हैं, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, हे उरुक्रम ! यह सत्य है, सत्व रज और तम यह तीन गुण ही राजा हैं उनके भयसे ही मानो सागरके समान अगाध विषयोंसे अक्षोभित हृदयमें चैतन्यघन तुम निश्चलतासे प्रकाश करते हो और बलवानोंसे

हमने वैर किया है; यह बात जो आपने कही, सो भी सत्य है, क्योंकि विषयमें जिनकी इन्द्रियें लग रही हैं ऐसे पुरुषोंने तुमसे विरोध किया है, सो उनमें तुम्हारी अप्रीति है और जो श्रीकृष्णचंद्रने कहा था कि, हमको राज्याधिकार नहीं है इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि महाअविवेकका स्थान राज्य है, इसलिये तुम्हारे सेवक लोग इसको छोड देते हैं, फिर आपने छोड दिया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है॥३५॥ श्रीकृष्णचंद्रने यह जो कहा था कि, हमारा मार्ग जाननेमें नहीं आता और स्त्रीके वशमें नहीं हूँ, इसके उत्तरमें रुक्मिणीने यह कहा कि, तुम्हारे चरणारविन्द मकरन्दका सेवन करनेवाले मुनिलोगोंका आचरण भी पशुतुल्य मनुष्योंकी समझमें नहीं आता, यदि तुम्हारा मार्ग जाननेमें न आवे तो इसमें क्या आश्चर्य है क्योंकि तुम्हारे अनुवर्ती भक्तोंकी और तुम्हारी चेष्टा अलग है, फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥३६॥ और निष्किंचन

त्वत्पादपद्ममकरंदजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्त वेहितमथो अनु ये भवंतम् ॥ ३६ ॥ निष्किंचनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किंचिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरंत्य जाद्याः ॥ न त्वा विदंत्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतांधाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वं वै समस्त पुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वांछया सुमतयो विसृजंति कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्नः ॥ ३८ ॥

पुरुषोंके हम प्रिय हैं और धनवान् पुरुष यह समझकर कि हम दरिद्री हो जायँगे, इस डरके मारे हमारा भजन नहीं करते, यह वार्ता जो श्रीकृष्णचन्द्रने कही थी उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, आपसे भिन्न कुछ नहीं; इसलिये तुम निष्किंचन हो, दरिद्रतारूपी निष्किंचनता तुममें नहीं बनती है, प्रजा लोगोंसे भेंट लेनेवाले ब्रह्मादिक देवता आपको भेंट देतेहैं और जो आपने कहा कि, हम निष्किंचनोंके प्यारेहैं और वे मुझको प्रिय है, सो भी सत्य है क्योंकि, जिसको किंचित् भी देहाभिमान नहीं है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मादिकोंको आप प्यारे हैं, वे आपके प्रिय हैं और जो आपने कहा कि, धनवान् लोग हमारा भजन नहीं करते; यह बात भी सत्य है, क्योंकि धनपात्रताके अभिमानसे अंधेलोग कालस्वरूप आपको नहीं जानते, इसलिये वह इन्द्रियोंको तृप्त करते है, आपका भजन नहीं करते ॥३७॥ जिनका बराबरका जन्म है, उनसे विवाह और मित्रता

होती है, यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था, सो इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहने लगी कि, हे पूर्णस्वरूप। तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थ और परमानन्दरूप हो, सुन्दर बुद्धिवाले मनुष्य तुम्हारी प्राप्तिके लिये सब वस्तु त्याग देते हैं, हे प्रभो। इन पुरुषोंका और तुम्हारा सेव्य सेवकभाव है, सुख दुःखसे व्याकुल व परस्पर प्रीतिकी ग्रंथि बांधेहुए पामर स्त्री पुरुषोंके योग्य नहीं ॥ ३८ ॥ और भिक्षुकोंने झूठी बड़ाई करी है, यह जो श्रीकृष्णचंद्रने कहा था, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, सबको अभयदान देकर संन्यासी और मुनिजन आपकी सराहना करते हैं और यह जो आपने कहा कि, तुमने विनाजाने हमें वरा सो यह ऐसे नहीं है क्योंकि, आपको जिसके लिये सब वस्तु प्रिय लगती है, उस जगत्के आत्मारूप और अपना स्वरूप देनेव आप हो इसलिये आपको वरा और भूलकर वरा यह भी आपका कथन ठीक नहीं औरोंकी तो बातही क्या है। ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवताओंको भी कि, जिनका आपकी भ्रुकुटीसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होता है, यह विचार इन्हें छोड मैंने

त्वं न्यस्तदंडमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकाल
वेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन
९४/ जहर्थ मां त्वम् ॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥ यद्वांछया
नृपशिखामणयोऽङ्ग वैन्यजायंतनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ॥ राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमंबुजाक्ष सीदंति तेऽनु पदवीं
त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥

आपको वरण किया. इसकारण जो आपने मुझपर अविचारिताका दोष लगाया, सो ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित्। अपने अज्ञानको दूर करके और पुरुषोंकी बडाईसे क्रोधित हो श्रीकृष्णचन्द्रसे रुक्मिणी कहनेलगी कि, हे गदाग्रज। तुमने शार्ङ्ग धनुषके शब्दसे जरासन्धादिक राजाओंको भगाकर जिस प्रकार सिंह पशुओंको भगाकर अपना बलि लाते हैं, उसी प्रकार आप अपना भागरूप मुझे ले आये इसलिये तिन राजाओंसे डरकर हम समुद्रमें आकर रहे हैं, यह भी आपका कहना नहीं बनता ॥ ४० ॥ आपने कहा कि, जो हमारे चरणोंमें पडते हैं, वह दुःख पाते हैं सो भी नहीं बनता, हे कमलदललोचन। तुम्हारे भजनकी इच्छासे राजाओंके मुकुटमणि राजा अंग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि चक्रवर्ती राजा राज्यको त्याग कर वनको चले गये, तुम्हारा भजन करनेवाले राजाओंको कहाँ दुःख हुआ है।

किन्तु सुख ही हुआ और वैकुण्ठधामकी प्राप्ति हुई है ॥४१॥और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड लो,इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि,साधुओंसे वर्णित जनोंको मोक्षका देनेवाला और लक्ष्मी जिनका सेवन करे,ऐसे गुणोंकी खानि तुम्हारे चरणारविन्दकी सूँघकर फिर त्याग सके मरणधर्मिणी कौन विवेकिनी स्त्री है,जो सदा मृत्युसे डरनेवाले पुरुषकी सेवा करेगी ? इसलिये मैंने तुम्हारा हाथ पकडा है ॥ ४२ ॥ हे जगदीश्वर ! आत्मारूप भजन करनेवालोंको इस लोक और परलोकमें कामनाओंके पूर्ण करनेवाले अपने योग्य तुम्हारा ही मैंने सेवन किया है, चाहे अनेक प्रकारकी योनियोंमें मेरा जन्म हो,परन्तु उन जन्मोंमें भी मिथ्या संसारके भयका नाश करनेवाले और भक्तोंको अपनानेवाले तुम्हारे चरणोंकी शरण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥४३॥ हे शत्रुदमन ! हे अखण्डरूप ! आपने

काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगंधमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् ॥ लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवांघ्रिररणं श्रुतिभिर्भ्रमंत्या यो वै भजंतमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिंचसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमंतर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कांतमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरंदमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥

कहा कि, बडे बडे वैभववाले राजा आपकी इच्छा करते थे, सो उन्हे किसलिये छोड दिया यह आपका कहना असंगत है क्योंकि आपने जो राजा बताये हैं वह कैसे हैं, कि जो स्त्रियोंके गृहोंमें गंधके समान केवल भार उठानेवाले बैलके तुल्य, सर्वदा क्लेश उठानेवाले श्वानकी नाईं, अपमान पानेवाले बिडालके समान कृपण और क्रूर सेवककी भांति पराधीन हैं।वह तो उस मंदभागिनी स्त्रीको पति मिलने चाहिये कि, जिसके कानमें शंकर और ब्रह्माजीकी सभाओंमें गाई जाती आपकी कथा न आई हो, अर्थात् जिसने तुम्हारे गुण न सुने हों, वह तो कदाचित् भूल जाय, परंतु मैंने तो प्रथम ही आपके गुणानुवाद सुन लिये थे ॥४४॥और जिस स्त्रीने तुम्हारे चरणारविंदकी सुगंधि

नहीं सूँघी है वह स्त्री जीवित ही मृतक पुरुषको पति मानकर भजें, जो कि, बाहर तो चर्म, रोम, नख और केश इनसे ढका है और भीतर मांस, हाड, रुधिर, कीडे, विष्ठा, कफ और वात, पित्तसे भरा है उसे अपना पति मानकर कौन सेवन करे ?॥४५॥भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हम घर और देहमें उदासीन हैं, रुक्मिणीने कहा कि, हे कमलदललोचन !तुम अपने स्वरूपमें रमण करते हो और मुझमें आसक्त नहीं है दृष्टि जिनकी अर्थात् मेरी चाहना नहीं हैं,तो भी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मेरा स्नेह हो. तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, स्नेह होनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा।इसके उत्तरमें रुक्मिणीजीने कहा कि, तुम्हारे चरणारविन्दोंमें अनुराग होना ही बड़ा लाभ है, और जिस समय इस विश्वको बढ़ानेके लिए गुणको ग्रहणकर मुझे मायाकी ओर देखोगे,वही बड़ा अनुग्रह है ॥४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार

अस्त्वबुंजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन्रतस्य मयि चानतिरक्तदृष्टेः ॥ यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो
मामीक्षसे तदु ह नः परमाऽनुकंपा ॥४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ॥ अंबाया इव हि प्रायः कन्यायाः
स्याद्रतिः क्वचित्॥४७॥व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम्॥बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः॥४८॥
श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलंभिता ॥ मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि॥४९॥
यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ॥ संति ह्येकांतभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो बातें कहीं,उन सबका यथायोग्य उत्तर देकर रुक्मिणी बोली कि,हे मधुसूदन ! आपने कहा कि, अपने समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़ लो यह मैं झूंठ नहीं मानती, जैसे काशीके राजाकी पुत्री अंबा,अम्बिका और अम्बालिका इन तीनों कन्याओंमेंसे अम्बा कन्याकी शाल्व राजासे जैसी प्रीति हुई, उसी प्रकार मेरी प्रीति आपमें हुई है ॥४७॥ और हे अच्युत ! विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीके मन नवीन पुरुषोंमें जाते हैं,ऐसी बहुत कथा हैं, विवेकी पुरुष इस प्रकारकी खोटी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं रखते हैं, यदि रक्खें भी तो इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट होजायँ ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम्हारी बात सुननेके लिये मैंने ऐसी २ बातें कही थीं और मेरे वचनका जो जो उत्तर तुमने दिया सो सब सत्य है॥४९॥हे भामिनी! हे मंगलरूपिणी! जिस जिस वस्तुकी तुम चाहना करती हो,सो सो मुझमें

एकान्तभक्ति होनेसे तुमको प्राप्त ही हैं, हे कल्याणी! मुक्तिपर्यन्त तुम्हारे सब मनोरथ प्राप्त होंगे ॥५०॥ हे निष्कलंक रुक्मिणी! तुम्हारा पति पर प्रेम और पतिव्रतापन हमने भले प्रकार जान लिया, क्योंकि हमने यद्यपि वचन कहकर तुमको चलायमान भी किया, परंतु तो भी तुम्हारी बुद्धि मुझसे चलायमान न हुई ॥ ५१ ॥ विषयोंमें आत्मा और मन लगाये जो पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य करके स्त्री पुरुष भोगार्थ सुखके लिये मेरा भजन करते हैं, वह मेरी मायासे मोहित होकर भूल रहे हैं॥५२॥हे भामिनी । मोक्ष सहित संपूर्ण संपत्तियोंका दाता मुझे पाकर भी विषयोंकी चाहना करते हैं और मेरी चाहना नहीं करते, वह पुरुष अभागे हैं, क्योंकि विषयोंका सुख तो कुत्ते और शूकरों की योनिमें भी मिल

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजंति दांपत्ये तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया॥५२॥मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वांछंति ये संपद एव तत्पतिम् ॥ ते मंदभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ॥सुदुष्कराऽसौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुंभराया निकृतिंजुषः स्त्रियाः ॥५४॥ न त्वा दृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ॥ प्राप्तान्नृपानविगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाह पर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥

जाता है, विषयोंमें मन रहनेसे नरक होता है॥५३॥हे घरकी महारानी!संसारकी छुडानेवाली चाहना रहित मनकी वृत्ति जो तैंने मुझमें लगाई यह भली बात है, खोटे अभिप्राय और अपने प्राणोंका भरण पोषण कर औरको ठगानेवाली स्त्रीके मनकी वृत्ति मुझमें नहीं लगती है॥५४॥ हे प्राणेश्वरी!सोलह हजार एकसौ आठ महलोंमें तुम्हारे समान प्यार करनेवाली मैं और स्त्री नहीं देखता, क्योंकि, विवाहके समय आये हुए राजाओंको त्यागकर मेरी ओर देख पाती लिखकर मेरे पास ब्राह्मणको भेजा ॥५५॥ युद्धमें तुम्हारे भाईको जीत उसका शिर मूँडकर विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहमें चौपड खेलते खेलते उसे मार डाला, यह भाईका दुःख हमारे त्यागनेके भयसे तुमने सहन कर लिया और

मुझसे कुछ न कहा, ऐसी तुम्हारी बातोंने हमको वश कर लिया है ॥५६॥ हे प्राणवल्लभे ! मेरे बुलानेके लिये सबसे छिपाकर दूतको मेरे पास भेजा और जब मुझे आनेमें विलम्ब हुआ तब इस विश्वको शुन्य मानकर "और राजा मेरे योग्य नहीं हैं" यह निश्चय कर शरीर त्यागनेकी इच्छा करने लगी, यह बात तुम्हारे अतिरिक्त और किसीसे हो सकती है,हम तुम्हारी क्या प्रशंसा करें ? ॥५७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! इस प्रकार जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्यलोककी लीलाका अनुकरण कर हास्यकी बातें करिके रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ रमण करते थे ॥५८॥ सामर्थ्यवान् संपूर्ण लोकोंके गुरु सबका दुःख हरनेवाले श्रीकृष्णचंद्र इसी प्रकार और रानि

दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमंत्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ॥ मत्वा जिहास इदमंगमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनंदयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडंबयन् ॥ ५८ ॥ तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ आस्थितो गृहमेधीयान्धर्माँल्लोकगुरुर्हरिः ॥५९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दशदशाबलाः ॥ अजीजनन्ननवमात्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ॥ प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥२॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ॥ संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः ॥३॥

योंके महलोंमें भी रहकर गृहस्थाश्रमकेसा धर्म सिखाते थे॥५९॥ इति श्रीमद्भागवते महापु० दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥ दोहा-इकसठमें परिवार हरि, वरणों सब सन्तान । विवाहमें अनिरुद्धके, हनो रुक्म बलवान् ॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एक एक रानीने श्रीकृष्णचंद्रके ही समान रूप, गुणवाले दश दश पुत्र उत्पन्न किये॥१॥ घरसे कहीं बाहर न जाय अपने पास ही रहैं,ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर राजाओंकी पुत्री "श्रीकृष्ण आत्माराम हैं"इस बातको न जान अपना अपना प्यारा मानने लगी ॥ २ ॥ व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने कमलकोशके समान सुकुमार मुख, बडी भुजा, बडे नेत्र और

प्रेम सहित मंद मुसकान, रसभरी चितवन, मनोहर वाणी इत्यादिकोंसे मोहित होकर जो स्त्री अपने २ अनेक विलासोंसे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रका मन मोहित करनेको समर्थ नहीं हुईं ॥ ३ ॥ गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्षसे जताये अभिप्रायसे मनके हरनेवाले भ्रुकुटीरूप मण्डलप्रेरित जो सुरत संबंधी विचार उनमें प्रगल्भ जो मन्मथ (कामदेव) के बाण और दूसरे भी कामशास्त्रमें प्रसिद्ध जो उपाय; उनसे यह सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियें भी भगवान् वासुदेवका मन वश करनेको समर्थ न हुईं ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक देवता भी जिनके मार्गको नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मी पति श्रीकृष्णचन्द्रको इसप्रकार पति पाकर यह स्त्रियें निरंतर बडे आनंदसे स्नेहभरी हँसन, चितवन पूर्वक नवीन संगम उस नवीन सगम में बोलना इत्यादि विलाससमूहोंका सेवन करती थीं ॥ ५ ॥ यद्यपि एक एक रानीके संमुख सौ सौ दासी हाथ जोडे खडी

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः॥४॥इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम्॥भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम्॥६॥तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः॥ अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥७॥चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान्॥सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥८॥चारुचंद्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः॥९॥

रहती थीं, परंतु तोभी संमुख जाकर लिवालाना, आसन बिछाना, पूजन करना, चरण धरना, बीरा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, पुष्प चढाना, केश सुधारना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना इत्यादि यह श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा आप ही करती थीं॥६॥हे राजन्! दश दश पुत्रोंवाली श्रीकृष्णचंद्रकी रानियें थीं, इनमें आठ पटरानी प्रथम वर्णन कर आये हैं इनके प्रद्युम्नादि पुत्रोंके नाम तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ ७ ॥ यथा-प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, बलवान् चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु ॥ ८ ॥ चारुचंद्र, विचारु और चारु यह दश पुत्र श्रीकृष्णचंद्रके रुक्मिणीसे उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चंद्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु ॥ १० ॥ श्रीभानु और प्रतिभानु यह दश पुत्र सत्यभामाने उत्पन्न किये और साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, ॥ ११ ॥ विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु यह साम्बसे आदि लेकर श्रीकृष्णचंद्रके समान गुणवाले दश पुत्र जाम्बवतीके उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ और वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्, वृष, आम, शंकु शोभायमान वसु और कुंति यह दश नाग्नजितीके पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास, और इन सबसे छोटा सोमक यह दश पुत्र कालिन्दीके हुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित् इन दश पुत्रोंने

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः॥१०॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्य
भामात्मजा दश ॥ सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ॥
जांबवत्याः सुता ह्येते सांबाद्याः पितृसंमताः ॥१२॥ वीरश्चंद्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः ॥ आमः शंकुर्वसुः श्रीमा
न्कुंतिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ॥ शांतिर्दर्शः पूर्णमासः कालिंद्याः सोम
कोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ॥ माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥१५॥
वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ॥ महाशः पावनो वह्निर्मित्रविंदात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥ संग्रामजिद् बृहत्सेनः
शूरः प्रहरणोऽरिजित् ॥ जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया
हरेः ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥

लक्ष्मणासे जन्म ग्रहण किया ॥ १५ ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महाश, पवन, वह्नि और क्षुधि यह दश पुत्र मित्रविन्दासे जन्मे ॥ १६ ॥ संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश पुत्र भद्रानाम रानीसे उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् । यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आठ रानियोंके पुत्रोंका वर्णन किया । अब बलदेवजीकी रानी रेवतीके दीप्ति

मान् ताम्रतप्तादि पुत्र उत्पन्न हुए। भोजकटपुरवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नसे महाबलवान् अनिरुद्धनाम पुत्र उत्पन्न हुआ है परीक्षित्! यह श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र और उनके पुत्र और नाती करोड़ों हुए और श्रीकृष्णचंद्रसे उत्पन्न हुए पुत्रोंकी सोलह हजार माता हुईं॥१८॥ ॥१९॥ राजा परीक्षित्नें कहा कि, हे भगवन्! रुक्मीने अपने वैरीके पुत्रको अपनी कन्या कैसे ब्याही? वह तो युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे पराजित होकर उनके मारनेका उपाय देख रहा था॥२०॥हे विद्वन्! इन दोनों शत्रुओंके बीचमें विवाहका सम्बन्ध कैसे हुआ? यह विस्तार सहित हमारे आगे वर्णन कीजिये कदाचित् आप कहें कि, हम इस बातको क्या जाने, इसका उत्तर यह है कि, योगीश्वर तो भूत, भविष्य,

पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां
सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद् दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हंतुं रंध्रं
प्रतीक्षते॥२०॥एतदाख्याहि मे विद्वन्द्विषोर्वैवाहिकं मिथः॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतींद्रियम्॥विप्रकृष्टं व्यवहितं
सम्यक् पश्यंति योगिनः॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनंगोऽङ्गयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान्निर्जित्य
जहारैकरथो युधि॥२२॥यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम्॥२३॥
रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानि
रुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः॥रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया॥जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबंधनः॥२५॥

वर्तमान, इंद्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो, उसे भी भले प्रकार जानते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाभागवत परीक्षित्! रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्तिमान् कामदेवका अवतार प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वर लिया, तो वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एक ही रथसे जीत उसे हरण करके लेगये॥२२॥ यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णचंद्रके तिरस्कारका वैर स्मरण रखता था, परन्तु तो भी बहनको प्रसन्न करनेके लिये भानजेको अपनी कन्या दी ॥ २३ ॥ हे महाराज, परीक्षित! सुन्दरबुद्धि, विशालनेत्रवाली रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीका बलवान् कृतवर्माके पुत्रने पाणिग्रहण किया ॥२४॥ यद्यपि रुक्मी वैर बांध रहा था, परन्तु तोभी अपनी बहनको राजी करनेके लिये श्रीकृष्णके

नाती अपने दौहित्र अनिरुद्धको अपनी पोती रोचना नामक कन्या दी ऐसा सम्बन्ध करना अयोग्य है;इस बातको स्वयं रुक्मी जानता था, परन्तु स्नेहके पाशसे बँधकर विवाह कर दिया* ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित्! उस अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, श्रीकृष्ण,बलदेव और साम्ब प्रद्युम्नको आदि लेकर सब यादव भोजकटपुरको बरातमें गये ॥ २६ ॥ जब विवाह होचुका, तब कलिंगदेशके राजाको आदि ले घमंडी राजा रुक्मीसे कहने लगे कि, हे रुक्मिन्! बलदेवजीको जुएमें जीतलो ॥२७॥ हे राजा रुक्मी। यह बलदेव पाँसेका खेल नहीं जानता,

तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ॥ पुरं भोजकटं जग्मुः सांबप्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे
कालिंगप्रमुखा नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ॥
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥२८॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ॥ तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिंगः
प्राहसद्बलम् ॥ दंतान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥ २९ ॥

परन्तु इसको खेलनेका व्यसन बड़ा है, यह सुनते ही रुक्मी बलदेवजीको बुलाय उनके संग जुआ खेलने लगा ॥ २८॥ बलरामजीने वहां प्रथम सौ, फिर हजार, इसके पीछे दश हजार रुपयेका दाँव लगाया, परंतु वह दांव रुक्मी ही धाँधलबाजी करके जीतगया उस समय कलिंगदेशका राजा दांत दिखाकर बलदेवजीकी बहुत हँसी करके कहने लगा कि रे। जुँवाका खेल और पाशोंकी सार तुम गँवार क्या जानोगे, क्योंकि,

---

* शंका–भागवतमें लिखा है कि,राजा रुक्मी जानता था कि,फूफीकी लडकीके साथ विवाह करनेका तथा मामाकी लडकीके साथ विवाह करनेका महादोष है, इस धर्मको विना जाने जो विवाह करेगा तो पाप होगा.और जो जानबूझके करेगा तो उसको महापाप होगा फिर जानबूझकर अपने पुत्रकी लडकीको अनिरुद्धके संग क्यों विवाहदी ? क्योंकि,वह कन्या अनिरुद्धके मामाकी थी और जो कोई कहे कि रुक्मीने श्रीकृष्णचन्द्रजीके स्नेह करके अधर्मरूप कन्यादान किया है तो भी यह बात ठीक है, परन्तु जिस स्नेहसे संसारमें निन्दा हो और मृत्यु होनेके पीछे प्राणीको रौरवनरकमें जाना पडे, ऐसे स्नेहकी मुनिलोग प्रशंसा नहीं करते ॥

उत्तर–राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मैं अपने लडकेकी लडकीको श्रीकृष्णके पोतेको विवाह दूंगा तो श्रीकृष्ण मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होंगे, ऐसा विचारके अपने ऊपर श्रीकृष्णका स्नेह समझकर अधर्मरूप विवाह किया और लोककी निन्दा और नरककी त्रास दोनोंका त्यागकर अपनी पोतीका विवाह श्रीकृष्णके पोतेके संग कर दिया । राजा रुक्मीने विचार किया कि,जो मेरे ऊपर कृष्ण प्रसन्न रहेंगे तब लोकमें मेरी निन्दा कौन कर सकता है!और नरकमें भी कृष्णके सामने मुझे कौन बक सकता है।ऐसा विचारके रुक्मीने अधर्मरूप विवाह किया था.

जुँआ खेलना और युद्ध करना तो राजाओंका काम है । तुम गोपग्वाल तो गौवोंको पहचानते हो।ऐसे सुन तब बलरामजी उस हँसीको सहन न कर सके॥ २९ ॥ इसके उपरांत रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दांव लगाया, उसे बलदेवजी जीते, परंतु उस समय कपट करके "मैंने जीता" इस प्रकार रुक्मी कहने लगा॥३० ॥ जिस प्रकार अमावस व पूर्णमासीको समुद्र क्षोभयुक्त होता है उसी प्रकार श्रीमान् बलदेवजी अत्यन्त क्रोधसे क्षुभित होगये और स्वभावहीसे जिनके अरुण नेत्र हैं ऐसे बलरामजीने अति क्रोधकर दश करोडका दांव लगादिया॥३१॥ और वास्तव में बलदेवजी वह दांव जीत गये तब फिर रुक्मने कपट करके कहा कि मैं जीता हूँ, इस विषयमें यह जो सभासद उपस्थित हैं, इनसे बूझ लो.

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद्बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः
श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमा
श्रितः ॥ रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो
वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ संकर्षणं परिहसन्बभाषे
कालचोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यंति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥३५॥
रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥ क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिंगराजं तरसा
गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दंतानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार बलदेवजी और रुक्मीका विवाद हो रहा था कि,इतने ही में आकाशवाणी हुई कि बलदेवजी जीते हैं और रुक्मीका वचन मिथ्या है ॥ ३२ ॥३३॥ उस समय आकाशवाणीका निरादर करके दुष्ट राजाओंका सिखाया रुक्मी महात्मा बलदेवजीकी हँसी करता कालसे प्रेरित होकर यह वचन कहने लगा कि,॥ ३४ ॥ गौओंके चरानेवाले तुम पाँसे खेलना नहीं जानते, पांसोंसे और बाणोंसे तो राजा लोग खेलते हैं, आप सरीखे पांसे खेलना क्या जानें ? ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार रुक्मीने अनादर और राजाओंने हँसी करी, तब महाबलवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो, परिघ उठाय मंगलसभामें रुक्मीका संहार किया और कहा ॥३६॥ हे राजन्! जब बलरामजीने सब राजाओंके

देखते २ रुक्मीको मार डाला उस समय कलिंग देशका राजा अत्यन्त भयभीत होकर भागा, तब झुंझलाकर बलरामजीने उसे दश ही पगपर पकड़ लिया और जौनसे दांत फाडकर वह हँसा था वह दांत तोडदिये॥ ३७ ॥ और राजा भीबलदेवजीके परिघसे पीडित हो डरकर भागगये, जिनके हाथ, जंघा और शिर टूट गये थेऔर रुधिरसे उनका शरीर भीज रहा था ॥३८॥ हे परीक्षित्! जब श्रीकृष्णका साला रुक्मी मारा गया, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने न तो अच्छा कहा न बुरा कहा.क्योंकि, जो अच्छा कहते तो रुक्मिणी अप्रसन्न होती और बुरा कहते तो बलदेवजी अत्यन्त बुरा मानते, इस लिये कुछ न कहा चुपचाप रहे ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत दुलहिनके साथ अनिरुद्धजीको रथमें बिठाय

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि
श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिणीबलयो राजन्स्नेहभंगभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया
वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥ रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥
इति श्रीमद्भा० महापु० दशमस्कंधे उत्त० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ राजोवाच ॥
बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥ एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्व
मर्हसि ॥१॥ श्रीशुक उवाच॥बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ॥ येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी॥२॥

बलरामादि सब यादव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका आश्रय पाय सब मनोरथ सिद्ध कर भोजकटपुरसे चल द्वारकापुरीमें आये॥४०॥इति श्रीमद्भा० महापु० दशमस्कन्धे उ० भाषाटीकायामनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ दोहा–बासठवें अध्यायमें, बाणासुर बलवान् । बाँधिलियो अनिरुद्धको, सो सब कहौं बखान ॥ ६१ ॥ राजा परीक्षित पूँछने लगे कि, हे योगिन्! बाणासुरकी पुत्री ऊषाने अनिरुद्धके साथ विवाह किया, इसमें श्रीकृष्णका और महादेवजीका बडा युद्ध हुआ उस कथाको कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् भागवान् विष्णुने जब वामनरूप धारण करके राजा बलिसे पृथ्वी मांगी तब सब पृथ्वी जिनने दान करदी ऐसे महात्मा

राजा बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें ज्येष्ठ पुत्र, भगवान् महादेवजीका अत्यन्त भक्त सबका मान्य, ज्ञानवान्, बुद्धिमान्, सत्य संकल्प, दृढव्रत, बाणासुर नामसे प्रसिद्ध था ॥ २ ॥ ३ ॥ और शोणितनाम रमणीकपुरमें राज्य करता था। उस बाणासुरके सम्मुख भगवान् महादेवजीकी कृपासे संपूर्ण देवता सेवकोंकी भांति खडे रहते थे, एक समय ताण्डवनृत्यमें हजार भुजाओंसे बाजे बजाय भोलानाथको बाणासुरने प्रसन्न किया, तब सब प्राणियोंके ईश्वर भक्तवत्सल भगवान् महादेवजी बाणासुरको वर देनेकी इच्छा करने लगे, तब शिवजीसे "मेरे पुरकी तुम रक्षा करो" यह बाणासुरने वर माँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ पराक्रमके दुर्मदसे बाणासुर अपने पास रहनेवाले शिवजीके चरणारविन्दोंको सूर्यके

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ॥ मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधो दृढव्रतः ॥३॥ शोणिताख्यपुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा ॥ तस्य शंभोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन तांडवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ वरेण च्छंदयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥ स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ॥ किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदांबुजम् ॥ ६ ॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ॥ पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामरांघ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोस्सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥ कंडूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ आद्यायां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥

तेजके समान किरीटसे स्पर्श करके एक समय कहने लगा ॥६॥ कि, हे सब लोकोंके गुरु महादेव ! जिनके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए हैं, तुम उन पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हो इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ और हे देव ! आपने जो कृपा करके हजार भुजा मुझे दीं, सो इनका अबतक केवल बोझ ही हुआ है, इसलिये त्रिलोकीमें तुम्हारे विना और कोई मुझे बराबरका युद्ध करनेवाला नहीं मिलता ॥८॥ हे आदिपुरुष ! जब मेरी भुजाओंमें बहुत खुजली उठी, तब मैं युद्ध करनेके लिये पर्वतोंको तोडता फाडता दिग्गजोंके पास गया परन्तु वह भी मेरे भयसे भीत हो दिशाओंको छोड कर भाग गये इस कारण कृपा करके आप मुझसे युद्ध कर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥ ९ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार बाणासुरका वचन सुन भगवान् महादेवजी अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि, मूढ ! जिस समय मेरी दी हुई ध्वजा तेरे महल परसे टूटकर गिर पड़ेगी, उस समय तेरी बराबरीके बलवान्से तेरा युद्ध होगा और तेरा गर्व भी उसी समय चूर्ण होजायगा ॥ १० ॥ हे परीक्षित् ! जब भगवान् भूतनाथ महादेवजीने इस प्रकार कहा तब कुबुद्धि बाणासुर शिर नवाय अपने घरको चला गया और अपने बल बुद्धि, पराक्रमके नाश करनेवाली महादेवजीकी आज्ञाका पैंडा देखने लगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस बाणासुरकी एक ऊषानामक कन्या थी उसके पहले कभी जिसको न देखा और न कभी सुना ऐसे सुन्दर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें समागम हुआ ॥ १२ ॥ इसके उपरांत जागने पर

तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥ इत्युक्तः
कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ॥ ११ ॥ तस्योषा नाम दुहिता
स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम्॥कन्याऽलभत कांतेन प्रागदृष्टश्रुतेन च ॥१२॥ सा तत्र तमपश्यंती क्वासि कांतेति वादिनी॥
सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ १३ ॥ बाणस्य मंत्री कुंभांडश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्यपृच्छ
त्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥१४॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपल
क्षये॥ १५॥ ऊषोवाच ॥ दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥ १६ ॥

वहाँ अनिरुद्धको न देख अत्यन्त लज्जित हो, हे कान्त ! तुम कहाँ गये ? इस प्रकार पुकारती पुकारती विह्वल होकर सखियोंके बीचमें गिर पड़ी ॥ १३ ॥ तब बाणासुरके मन्त्री कुम्भांडकी पुत्री चित्ररेखा आश्चर्य मानकर अपनी प्रियसखी ऊषासे पूछने लगी ॥ १४ ॥ कि, हे सुभ्रु ! हे प्यारी ऊषा ! तू किसे ढूँढ़ती है और तेरा क्या मनोरथ है ! हे राजकुमारि ! अभी तो तेरा विवाह भी नहीं हुआ है, फिर किस प्रकार पति पति पुकारती फिरती है ? ॥ १५ ॥ इस प्रकार चित्ररेखाका वचन सुनकर ऊषा बोली कि, श्यामस्वरूप, कमलके समान नेत्र, पीताम्बर

धारण किये, बड़ी भुजा और स्त्रियोंके मनका मोहित करनेवाला ऐसा पुरुष मैंने स्वप्नमें देखा है ॥ १६ ॥ मैं उसी प्रीतमको ढूँढ़ रही हूँ, वह मुझे अधरामृत पिलाय मुझ अभिलाषिणीको दुःखके समुद्रमें पटककर कहीं चला गया ॥ १७ ॥ यह वचन सुनकर चित्ररेखा बोली कि, हे ऊषा। तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, जिस पुरुषने तेरा चित्त चुराया है, यदि वह त्रिलोकीमें कहीं होगा तो ढूँढ कर ले आऊँगी, परंतु उसे बता दे ॥ १८ ॥ इसके उपरांत चित्ररेखा देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण और पन्नग इनके चित्र लिखकर फिर दैत्य, विद्याधर, यक्ष, मनुष्य इन सबके चित्र लिखने लगी ॥ १९॥ मनुष्योंमें भी वृष्णि और वृष्णियोंमें भी शूरसेन, वसुदेव,राम,कृष्ण और प्रद्युम्नका चित्र लिखा । उसको

तमहं मृगये कांतं पाययित्वाऽधरं मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगंधर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथालिखत् ॥ १९ ॥ मनुजेषु च सा वृष्णीञ्छूरमानकदुंदुभिम् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता॥२०॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया॥ सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यंके प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥

देखते ही "यह श्वशुर हैं" ऐसा समझकर लज्जित हो गई ॥२० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पृथ्वीपति। ऊषा अनिरुद्धका चित्र देखकर अत्यन्त लाजसे नीचेको मुख किये "मेरा चित्तचोर यही है" ऐसे मुसकराकर सखीसे कहने लगी ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् । योगकी ज्ञाता चित्ररेखा उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पौत्र जान आकाश मार्गसे होकर कृष्णपालित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ उस समय अनिरुद्ध कुमार पलंग पर शयन कर रहे थे, उन्हें योगके बलसे उठाय शोणितपुरमें ले आई और सखी ऊषाको दर्शन

कराया ❋ ॥ २३ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान् सुन्दर वर अनिरुद्धजीको देख प्रसन्नमुख ऊषा, पुरुषोंके देखनेमें न आवे इस प्रकार अपनेघरमें अनिरुद्धके संग रमण करने लगी ॥ २४ ॥ और बडे मोलके वस्त्र, माला, सुगन्ध, धूप, दीप, आसन इत्यादि और पीनेकी सामग्री तथा भोजन, भक्ष्य वचनोंसे उनकी पूजा करने लगी ॥ २५ ॥ अत्यन्त बढ़ा है स्नेह जिसका ऐसी ऊषाने हरी हैं इंद्रियें जिनकी

सा च तं सुंदरवरं विलोक्य मुदितानना ॥ दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुंभी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २४ ॥ परार्ध्यवासस्स्रग्गं
धधूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहयातया ॥
नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयाऽपहृतेंद्रियः ॥२६ ॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ॥ हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीता
दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥ भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २८ ॥

ऐसे अनिरुद्धजीको मोहित होकर वास करते कितने ही दिन रात बीत गये, परन्तु उन्हें कुछ सुध न हुई ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! यादवोंमें वीर अनिरुद्धजीके भोग करनेसे जिसका कन्यापनेका व्रत दूर होगया तब उस अत्यन्त प्रसन्नमन ऊषाको गुप्त न रहनेवाले लक्षणोंसे पहरेदारोंने पहिचान लिया और उसी समय बाणासुरसे आकर कहा कि हे राजन् ! जिस प्रकार कुलको कलंक लगे,

---

❋ शंका-श्रीकृष्णके तेजसे रचीहुई द्वारकापुरी, जिसके चारोंओर समुद्र; रात दिन सुदर्शन चक्र घूमता रहे ऐसी अद्भुत द्वारकापुरीमें जो कोईपुरुष कपटवेष धारण करके उस पुरीमें जानेकी इच्छा करना चाहे तो कभी नहीं जासकता, जो ब्रह्मदेवके बनाये जीव हैं उनका तो सामर्थ्य ही नहीं जो कपट करके द्वारकाके भीतर जासकें, फिर क्या कारण जो चित्ररेखाने रक्षा करनेवाले प्राणियोंकी आज्ञा नहीं ले,- बिना बूझे कपट करके द्वारकामें जाकर सोतेहुए अनिरुद्धकुमारको पलंगसहित उठाय बडे सुखसे लेकर चलीगई, कोई दूसरा यादव नहीं, वह स्वयं श्रीकृष्णके पोतेहीको हरकर लेगई, किसी और दूसरे यादवको लेजाती तो थोडी ही शंका होती कि, कोटके बाहर सोताहुआ रहगया होगा। वह तो कोटके भीतर इक्कीस ड्योढीवाले मन्दिरमेंसे अनिरुद्धका लेगई अरु किसीको सुध भी न हुई यह बडा अचंभा है !

उत्तर-बाणासुरकी मृत्युका उपाय भगवान्ने विचारकर और उसकी कन्याके संग अपने पोतेका विवाह विचारकर, सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी कि, द्वारकापुरीको चित्ररेखा राक्षसी आवेगी, उसको तुम द्वारकाके भीतर जानेसे मत रोकना, एक बार द्वारकासे बाहरको जाय तो चली जानेदेना और भीतरसे कोई वस्तु बाहरको लेजाय तो लेजाने देना वर्जना मत, ऐसी भगवान्की आज्ञाको मानकर सुदर्शनचक्रने चित्ररेखाको नहीं वर्जा, इसलिये चित्ररेखा अनिरुद्धको हरकर लेगई ॥

ऐसी तुम्हारी कन्याकी कुचेष्टा हमको दीख पडती है ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे समर्थ बाणासुर ! हम लोग तो घरका अखंड पहरा देते हैं और राजकुमारी ऊषाकी रक्षा करते हैं, इसे कोई मनुष्य देख भी नहीं सकता इतनेपर भी कन्याको यह दूषण कहांसे लग गया ? सो हम हीं जानते ॥ २९ ॥ इस प्रकार कन्याका दोष सुन अत्यन्त दुःखी हो बाणासुरने शीघ्र ही कन्याके घरमें जाकर यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! कामदेवका पुत्र, त्रिभुवनमें एक सुंदर, श्यामस्वरूप, पीताम्बर धारण किये, कमलके समान नेत्र, बड़ी भुजा, कानोंमें दीप्तिमान् कुण्डल और केशोंकी कांति व मुसकानपूर्वक चितवनसे शोभायमान मुख ॥ ३१ ॥ और सब

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्ष्याया न विद्महे ॥२९॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ॥ त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशंगांबरमंबुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुंडलकुंतलत्विषा स्मितावलोकेन च मंडिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यंतमक्षैः प्रियया ऽभिनृम्णया तदंगसंगस्तन कुंकुमस्रजम् ॥ बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२ ॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनेकैरवलोक्य माधवः ॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथाऽन्तको दंडधरो जिघांसया ॥३३॥ जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ॥ ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥

मंगलरूप प्यारीके साथ पांसोंसे खेलता, उस प्यारीके अंगसंगसे जिसमें स्तनोंकी केशर लग गई थी ऐसी मनोहर जो वसन्त ऋतुकी मालती है उसके पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण किये, कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजीको ऊषाके निकट बैठा देखकर बाणासुर अत्यन्त आश्चर्य करने लगा ॥ ३२ ॥ शस्त्रोंको लिये अनेक पैदलोंसहित बाणासुरको मन्दिरमें आता देखकर मधुवंशोत्पन्न अनिरुद्धजी लोहेका परिघ उठाय मारनेके लिये दंड धारण करके कालके समान खड़े हो गये ॥ ३३ ॥ पकड़नेके लिये चारों ओरसे चले आते, सूकरोंके यूथका पालन करनेवाले

मुख्य सूकर जैसे कुत्तोंको मारता है, इसी प्रकार मारने लगे और मार पड़नेके कारण शिर, हाथ, पाँव टूटनेसे वह सिपाही घरमेंसे निकलकर भागगये ॥ ३४ ॥ राजा बलिके पुत्र बली बाणासुरने क्रोध करके अपनी सेनाको मारतेहुए अनिरुद्धकुमारको नागफांससे बांध लिया इस समय अनिरुद्धजीको बँधा देखकर शोक और खेदसे व्याकुल हो नेत्रोंमें जल भरकर ऊषा रोने लगी ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामनिरुद्धबन्धनोनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ दोहा–तिरसठमें यादवन अरु, बाणासुरको युद्ध । सहसभुजा तेहि काटि हरि, वरो बहुरि अनिरुद्ध ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित ! अनिरुद्धजीको देखे विना बन्धु

त नागपाशैर्बलिनंदनो बली घ्नंतं स्वसैन्यं कुपितो बबंध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकला
क्ष्यरौदिषीत्॥३५॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे अनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥
श्रीशुक उवाच ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बंधूनां च भारत॥चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥१॥ नारदा
त्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥२ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः सांबोऽथ
सारणः ॥ नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः॥३॥अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् ॥रुरुधुर्बाणनगरं
समंतात्सात्त्वतर्षभाः ॥४॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ॥५॥

बांधवोंको शोच करते वर्षाऋतुके चार महीने व्यतीत होगये॥ १॥ हे राजन्! जिस समय सब यदुबंशी शोचसागरमें निमग्न पडे थे, उसी समय देवर्षि नारदजीने आनकर अनिरुद्धके बँधनेका सबसमाचार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा, सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र बहुतसे यादवोंको साथ ले बाणासुरके शोणितपुरको गये ॥ २ ॥ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नंद, उपनन्द और भद्रादि राम कृष्णके आज्ञाकारी मुख्य मुख्य यादवोंको श्रीकृष्णचंद्रने संग ले बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके नगरको चारोंओरसे घेरलिया ॥ ३॥ ४॥ हे परीक्षित् ! यादवोंसे अपने पुरके बाग, परकोटे अटारी, द्वार आदि टूटे देख अत्यन्त क्रोधित हो, बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाणासुर पुरसे बाहर निकला ॥५॥

इसके उपरांत अपने भक्त बाणासुरपर विपत् पडी जान अपने पुत्र स्कंद और बहुतसे भूत,पिशाच,डाकिनी,शाकिनी इत्यादि साथ ले नन्दी-
श्वरपर चढ़कर कृष्ण बलदेवसे युद्ध करनेके लिये भगवान् महादेवजी रणभूमिमें आकर सुशोभित हुए ॥ ६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! अब वहाँ
परस्पर बड़ा अद्भुत व भयानक जिसको देखते ही रोमाञ्च खडे होजायँ, इस प्रकार युद्ध होने लगा, श्रीकृष्णचंद्र महादेवजीके सम्मुख, प्रद्युम्न
स्वामिकार्त्तिकजीके सम्मुख ॥७॥ कुम्भांड और कूपकर्णका युद्ध बलदेवजीसे होनेलगा, साम्बका बाणासुरके पुत्रके संग और बाणासुरका युद्ध
सात्यकीके साथ होनेलगा ॥ ८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक और मुनि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष यह सब विमानोंपर चढ़कर युद्ध

बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नंदिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं
युद्धमद्भुत रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशंकरयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां बलेन
सह संयुगः ॥ सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ॥ गंधर्वा-
प्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥९॥ शंकरानुचराञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविना-
यकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥
पृथग्विधानि प्रायुंक्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च
ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं निजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥

देखनेकी इच्छासे आये॥९॥ उस समय भगवान् भूतेश्वरके अनुचर भूत, प्रेत, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वैताल, विनायक ॥ १० ॥ प्रेत,मातृ,
पिशाच,कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षस इन सबको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र पैनी धारके भालोंसे मार मारकर भगानेलगे ॥११॥ पिनाक धनुषधारी
महादेवजी श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर अलग ही अस्त्र शस्त्र चलाने लगे,परन्तु आश्चर्यरहित श्रीकृष्णचंद्रजीने उन सब अस्त्रशस्त्रोंको शान्त कर दिया
॥ १२ ॥ श्रीभोलानाथने ब्रह्मास्त्र चलाया उसे श्रीकृष्णजीने ब्रह्मास्त्रसे शांत कर दिया । इसके उपरांत जब महादेवजीने वायु देवताका अस्त्र

चलाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतदेवताका अस्त्र छोड़ा उस समय पर्वतसे रुककर पवन थम गया, इसके पीछे महाक्रोधित हो शिवजीने अग्निदेवताका अस्त्र चलाकर आग लगा दी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रनें उसी समय मेघास्त्र छोडकर क्षणमात्रमें सब अग्निको शांत कर दिया. फिर भगवान् भूतनाथने अपना पाशुपत अस्त्र चलाया, इनको श्रीकृष्णचन्द्रने अपने नारायणास्त्रसे काट डाला ॥ १३ ॥ फिर भगवान् वासुदेवने जृम्भणास्त्र चलाया, उससे शिवजी जँभाई लेने लगे। इस प्रकार उन्हें मोहित करके बाणासुरकी सेनाको तलवार, गदा और बाणोंसे मारने लगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! प्रद्युम्नजीके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर स्वामि कार्त्तिकजीके अंगोंमेंसे रुधिर बहने लगा, तब वह समर छोड़ मोरपर चढ़कर

मोहयित्वा तु गिरिशं जृंभणास्त्रेण जृंभितम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिंजघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥ स्कंदः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समंततः ॥ असृग्विमुंचन्गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥ कुंभांडः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ॥ दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथा निसर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पंचशतानि वै ॥ एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान्धनूंषि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥

भाग गये ॥ १५ ॥ कुम्भाड और कूपकर्ण मूसलके लगनेसे पृथ्वीपर गिर गये, तब स्वामीके मर जानेसे उनकी सम्पूर्ण सेना चारों ओरको भाग गई ॥ १६ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार अपनी सेनाको जहाँ तहाँ भागते देख बडी असहनतासे बाणासुर संग्राममें सात्यकीयादवको छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ १७ ॥ और रणमें बडे गर्वसे बणासुरने एक संग पाँचसौ धनुष खैंच एक एक धनुषमें दो दो बाण लगाये ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उसी समय बाणासुरके वह पाँचसौ धनुष काटडाले फिर सारथी और घोडोंको मार रथको चूर्ण कर शंखध्वनि करी ॥ १९ ॥ उस समय कोटरानाम बाणासुरकी माता अपने बालोंको खोल, नग्न हो, पुत्रके प्राण बचानेके लिये श्रीकृष्णचंद्रके

सम्मुख आकर खडी होगई * ॥ २० ॥ हे राजन् ! नंगी स्त्रीको देखना शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुख फेर कर खडे होगये, इस बीचमें जिसका रथ टूट गया धनुष कटगया, ऐसा बाणासुर रणभूमि छोड पुरमें भाग गया ॥ २१ ॥ भूतोंके गण जिस समय भाग गये, तब तीन शिर और तीन पाँवका ज्वर दशों दिशाओंको जलाता शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ २२ ॥ तब नारायण देव श्रीकृष्णचंद्रने शिवजीके ज्वरको आया देख अपना शीतज्वर छोडा, इसके उपरांत शिवजीका ज्वर और भगवान्का ज्वर

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३॥ माहेश्वरः समाक्रंदन्वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयतांजलिः ॥ २४॥ ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनंतशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिंगं प्रशांतम् ॥ २५ ॥

दोनों परस्पर मिलकर युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ जब विष्णुके ज्वरने शिवजीके ज्वरको बलपूर्वक दबा लिया,तब अत्यन्त पीडित होकर पुकारने लगा और अपनी रक्षाके लिये कोई निर्भय स्थान न पाय, हाथ जोड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ ज्वर बोला कि, अनन्तशक्ति, ब्रह्मादिकोंके ईश्वर, सबके आत्मा, शुद्ध, चैतन्यघन, जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण, वेदसे गम्य, शांत मूर्त्ति, ब्रह्म जो आप हैं, सो मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥

---

* **शंका**—अपने पुत्रकी रक्षा करने के लिये बाणासुरकी माता नंगी होकर श्रीकृष्णके सामने क्यों खडी होगई नग्न होकर खडी होनेसे क्या जान पडता है,जैसे किसी कामीके. सामने स्त्री नग्न होकर खडी होजाय तो वह कामी स्त्रीको देखकर मोहित होजाय तो स्त्री जो कुछ आज्ञा करे सो सो आज्ञा वह कामी पुरुष उसे पूर्ण किया करै वही काम बाणासुरकी माताने किया,यह शंका भारी है ॥

उत्तर—ब्रह्माने कोटराको वरदान दिया था कि, हे कोटरे ! तीन लोकमें जो पुरुष हैं ब्रह्मा, विष्णु,शिव,और चौरासी लक्ष योनिके पुरुषमात्र तुमको नंगी देखेंगे तब उसी समय भस्म होजायँगे केवल एक तेरा पति ही भस्म न होगा और सब जल्दी भस्म होंगे, कोटरा ऐसा जानकर श्रीकृष्णको भस्म करनेके लिये श्रीकृष्णके सम्मुख खडी हुई ॥

काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, द्रव्य, शरीर, प्राण, अहंकार, विकार और मन अर्थात् ग्यारह इन्द्रियें और पञ्चमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन तत्त्वोंका बन यह देह जैसे बीजसे अंकुर और अंकुरसे फिर बीज होता है, इसी प्रकार कर्मोंसे देह, फिर देहसे कर्म, फिर कर्मसे देह ऐसे जलकासा प्रवाह चला जाता है, बस यही तुम्हारी माया है, तुम उसके निषेधके अवधि हो, इसलिये मैं आपकी शरण आया हूँ ॥२६॥ यदि कहो कि, मैं देवकीका पुत्र हूँ सो यह मुझसे कैसे बनसकता है इसका उत्तर यह है कि, आप लीलापूर्वक मत्स्यादि अवतार धारण करके देवताओंका पालन और वर्णाश्रमके धर्मकी रक्षा करते हो और धर्म करनेवाले साधु लोगोंका पालन व हिंसास हित पापमार्गका नाश करते हो, इसकारण पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये तुम्हारा जन्म है ॥ २७ ॥ आपके उत्पन्न किये दुःसह भयंकर उग्र

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ॥ तत्संघातो बीजरोहैः प्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं
प्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतून्बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानाञ्जन्मैतत्ते भार
हाराय भूमेः ॥ २७ ॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शांतोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ॥ तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवे
रन्यावदाशाऽनुबद्धाः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ॥ यो नौ स्मरति
संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्यो
त्स्यञ्जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥

शीतज्वरसे मैं तपायमान हुआ हूँ क्योंकि, देहधारियोंको तबतक ही ताप है जबतक आशा बांधकर आपके चरणकमलोंका सेवन न करें ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! जब इस प्रकार शिवज्वरने भगवान् वासुदेवकी स्तुति करी तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे तीन शिरके ज्वर! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ हूँ और मेरे ज्वरसे जो तुझे भय हुआ है वह डर निवृत्त हो परन्तु जो पुरुषगण इस संवादका स्मरण करें उनको तू मत व्यापना ॥२९॥ इस प्रकार जब कहा तो शिवज्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके चला गया। इसके उपरान्त बाणासुर रथमें चढ़ श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया॥३०॥ हे महाराज! हजार भुजाओंमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण कर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित

हो, चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥ निरंतर शस्त्रोंको चलाते बाणासुरकी भुजाओंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने छूरीके समान पैनी धारके चक्रसे जैसे माली वृक्षोंको काटता है, उसी प्रकार काट डालीं ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! जब बाणासुरकी भुजा कट गईं, तो उस समय भक्त बाणासुरपर कृपा करनेवाले भगवान् भूतनाथ आकर चक्रधारी श्रीकृष्णचंद्रकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ महादेवजीने कहा कि, हे परब्रह्म ! आपके विना जाने इस बाणासुरने युद्ध किया है, इसमें आश्चर्य नहीं, इस कारण वाणीमय वेदमें तुम छिपे हुए परब्रह्म हो और ज्योति सूर्यादिकोंके तुम प्रकाशक हो, इसलिये किसीके जाननेमें नहीं आते, यदि कहो कि, प्रतीत कैसे हो ? इसके

तस्याऽस्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान्बाहूञ्छाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२॥ बाहुषु च्छिद्यमानेषु
बाणस्य भगवान्भवः ॥ भक्तानुकंप्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं
ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यंत्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमंबु रेतो द्यौः शीर्षमाशा
श्रुतिरंघ्रिरुर्वी ॥ चंद्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेंद्रः ॥ ३५ ॥ रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः
केशा विरिंचो धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयम
कुंठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥

उत्तरमें शिवजी कहते हैं कि, निर्मल मन, बुद्धिवाले पुरुष आकाशके समान निर्लेप, निर्गुण तुम्हें देखते हैं ॥ ३४ ॥ निर्गुण ज्ञानकी बात तो एक ओर है, परंतु तुम्हारी लीलाका आश्रय ब्रह्माण्ड भी जाननेमें नहीं आता, जैसे गूलरफलके भीतरके जीव गूलरके फलको नहीं जानते इसी प्रकार इस अभिप्रायसे ब्रह्मांडरूप करके शिवजी स्तुति करते हैं कि, आकाश आपकी नाभि, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशा कान, पृथ्वी चरण, चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र, मैं (शिव) अहंकार, समुद्र उदर, इंद्र भुजा, औषधी रोम, मेघ केश, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति लिंग और धर्म हृदय है. लोकोंकी कल्पनासे विराट पुरुष तुम हो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सो हे अखण्डरूप ! यह तुम्हारा अवतार धर्मकी रक्षा

और जगत्का कल्याण करनेके लिये हुआ है और हम सब लोकपाल आपसे ही रक्षित होकर सब लोकोंका पालन करते हैं॥३७॥ जाग्रत्,
स्वप्न,सुषुप्ति तीनि अवस्थानोंमें पुरुषके आप कारण हो और शुद्ध हो इस लिये,अद्वितीय पुरुष हो और सब विश्वके कारण हो, स्वयं कारण
रहित हो परन्तु तो भी संपूर्ण विषय प्रकाश करनेके लिये अपनी मायासे जो देह धारण किया है, उसमें ऐसे ही प्रतीत होते हो ॥३८॥ जैसे
सूर्य अपनी मेघरूपी छायासे ढकाहुआ होने पर भी बादलोंको प्रकाशित करता हो और बादलोंके बाहर भी रूपको प्रकाशमान करता है,उसी
प्रकार हे भूमन्! स्वयंप्रकाश आप जीवकी दृष्टिमें अपने कार्यरूप अहंकारसे ढकेहुए प्रतीत होनेपर भी सत्व, रज, तम गुण रूप उपाधि

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ॥ प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै
॥३८॥ यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छाया च रूपाणि च संचकास्ति ॥ एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्म
प्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥३९॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु॥उन्मज्जंति निमज्जंति प्रसक्ता वृजिनार्णवे॥
॥ ४० ॥ देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेंद्रियः॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवंचकः ॥ ४१ ॥ यस्त्वां
विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ॥ विपर्ययेंद्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥ अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनय
श्चामलाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तं त्वां जगत्स्थित्युदयांतहेतुं समं प्रशांतं सुहृदा
त्मदैवम् ॥ अनन्यमेकं जगदात्मकेतुं भवापवर्गाय भजाम देवम्॥ ४४ ॥

और उनके जीवोंको भी प्रकाशित करते हो ॥ ३९ ॥ तुम्हारी मायासे मोहित होकर स्त्री, पुत्र और घरादिमें लगेहुए लोग दुःखमय संसार
सागरमें ऊँच, नीच योनियोंको पाते हैं ॥ ४० ॥ भगवान्की दीहुई मनुष्यदेहको पाकर जिसने अपनी इंद्रियोंको नहीं जीता और जिस
पुरुषने तुम्हारे चरणोंका भलीभाँति पूजन नहीं किया उस पुरुषको शोच करनेयोग्य औरआत्माका ठगनेवाला समझना चाहिये ॥ ॥ ४१ ॥
प्यारे पुत्रादिकोंके लिये जो पुरुष प्रिय आत्मा आपका त्याग करता है, वह पुरुष अमृत छोडकर विष पीता है ॥ ४२ ॥ मै (शिव) ब्रह्मा
और देवता निर्मल अन्तःकरणवाले मुनि भी प्रिय ईश्वर और आत्मरूप आपका ही भजन करते हैं ॥ ४३ ॥ जगत्के उत्पत्ति,पालन और

नाशके कारण सबमें समान, शान्तस्वरूप, हितकारी आत्मा, ईश्वर, अनन्य और दूसरा जिनके समान नहीं, बडा नहीं, जगतके आत्मा आश्रय देव तुम हो। सो तुम्हें संसार त्यागनेके लिये हम भजते हैं ॥४४॥ हे प्रकाशमान ! यह बाणासुर मेरा अत्यन्त प्रिय और इष्ट भक्त है, इस कारण मैंने इसे अभयदान दिया है, जैसे आपने प्रह्लादपर दयाकी, उसी प्रकार इसपर भी दया करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ यह प्रार्थना सुनकर भगवान् वासुदेवने कहा कि, हे भगवन्! आपने जिस प्रकार कहा मैं वैसे ही आपको प्रसन्न करूंगा, आपने जिस बातका विचार किया है मैं उसमें भलीभाँति सम्मति देता हूँ ॥ ४६ ॥ विरोचनके पुत्र राजा बलिका बेटा यह बाणासुर है, इसलिये मारने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दिया है कि, जो तेरे वंशमें उत्पन्न होगा, मैं उसको नहीं मारूंगा ॥ ४७ ॥ अभिमान दूर करनेके लिये मैंने इसकी सहस्र भुजा काटी हैं और जो पृथ्वीपर भारी बोझ हो रहा था उसको भी मैंने उतार दिया ॥४८॥ कटनेसे इसकी जो चार भुजा शेष रह गई हैं, सो अजर अमर होंगी और यह दैत्य बाणासुर भयरहित आपके पार्षदोंमें मुख्य पार्षद होगा ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! इस प्रकार अभय पाकर बाणासुरने श्रीकृष्णचन्द्रको बारंबार प्रणाम करके ऊषासहित अनिरुद्धको रथमें बैठालकर बिदा कर दिया ॥५०॥ और बाणासुरकी दी हुई एक

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव॥ संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथाहि ते दैत्यपतौ प्रसादः॥४५॥
श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥
अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ॥ प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य
प्रवृक्णा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यंत्यज
रामराः ॥ पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९॥ इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं
रथमारोप्य स वध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ
रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥

अक्षौहिणी सेना संग लिये सुन्दर वस्त्रालंकारोंसे शोभायमान स्त्री सहित प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको आगे कर शिवजीसे अनुमोदन पाय श्रीकृष्णचन्द्रने वहांसे पयान किया ॥ ५१ ॥ नगरके मनुष्य, सम्बन्धी और ब्राह्मणों ने:दिये बधाये,ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रने शंख, आनक, नगारे बजाते तोरण व ध्वजाओंसे शोभायमान मार्गमें जहां छिडकाव होगया है,ऐसी अपनी नगरी द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥५२॥ हे राजन् ! यह श्रीकृष्णचन्द्रकी जीत और श्रीकृष्णका शिवजीसे युद्ध जो पुरुष प्रातःकाल उठकर स्मरण करेंगे, उनकी कभी हार नहीं होगी ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां मूषाचरित्रवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ दोहा–चौसठमें श्रीकृष्णने,

स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ॥ विवेश शंखानकदुंदुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥ संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बाणनिग्रहो नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं सांबप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥१॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वंतः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥२॥ कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥ चर्मजैस्तांतवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविंदाक्षो भगवान्विश्वभावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥

नृगको शाप छुटाय । ब्रह्मअंशकी लगनको, सब फल दियो दिखाय ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! सांब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद इत्यादि यादवोंके पुत्र विहार करनेके लिये वनको गये ॥ १ ॥ उस वनमें बहुत देरतक क्रीडा करते रहे जब प्याससे पीडित हो यादवोंके पुत्रोंने जलको ढूँढा तब विना जलके कुएँमें एक अद्भुत जीव पडा देखा॥२॥पर्वतके समान करकेटा देख आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्त हो यादवोंके बालक उसके निकालनेका यत्न करने लगे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! यह बालक उस करकेटेको चाम और सूतके रस्सोंसे बाँधनेपर भी निकालनेको नहीं समर्थ हुए तब उत्कंठायुक्त बालक श्रीकृष्णचन्द्रसे आकर कहने लगे ॥ ४ ॥ तब विश्वके उत्पन्न करनेवाले

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वहां आकर लीलापूर्वक ही बायें हाथसे उस करकेटेको निकाल लिया ॥५॥ उत्तमश्लोक श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगते ही करकेटाका रूप त्याग तप्त सुवर्णके समान सुन्दर वर्ण, अद्भुत आभूषण और वस्त्र मालाओंको धारण किये वह देवस्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि उसके करकेटा होनेका कारण जानते भी थे, परन्तु तो भी सबको दिखानेके लिये पूछने लगे कि, हे बडभागी ! सुन्दर स्वरूपवान् आप कौन हो ? मुझे तुम देवताओंमें उत्तम देवता जान पडते हो ॥७॥ हे मंगलरूप ! इस योग्य तुम नहीं हो, किस अपराधसे तुम्हें यह करकटेकी योनि प्राप्त हुई, जो हमको कहनेयोग्य समझो तो हमारे सम्मुख अपना सब वृत्तांत वर्णन करो ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जब अनन्तमूर्ति श्रीकृष्णचंद्रने इस प्रकार पूँछा, तब राजा नृग सूर्यके समान तेजवाले करीटसे श्रीकृष्ण चंद्रको प्रणाम करके कहने लगा ॥ ९ ॥ राजा नृगने कहा कि, हे समर्थ ! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र नृग नाम राजा हूँ,जब कभी दानी राजाओंकी बात चली होगी,तो मेरा नाम भी आपके सुननेमें आया होगा॥ १०॥ हे नाथ ! सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी और सर्वांतर्यामी आप हैं, सो तुम क्या नहीं जानते ? और कालसे तुम्हारे ज्ञानका नाश नहीं होता, तो भी आपने जो पूँछा है, सो आपकी आज्ञानुसार मैं वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ॥ संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणांबरस्रक् ॥ ॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदान जनेषु विख्यापयितुं मुकुंदः ॥ कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥ आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानंतमूर्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगो नाम नरेंद्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ कालेनाऽव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥

हे भगवन्! जितनी पृथ्वीकी रेणुका और जितने आकाशमें तारे अथवा जितनी वर्षाकी बूँदें हैं इतनी ही गायोंका मैंने दान किया है *॥ १२॥ दूध देनेवाली, तरुण अवस्था, शील स्वभाव रूप गुणसे भरी, कपिला और नीति पूर्वक संचय करी, सुवर्णसे सींग, रूपेसे खुर मढे, बछडे साथ और वस्त्र, माला, गहने पहराय, ऐसी गायें मैंने दान की थीं॥ १३॥ भले प्रकार शोभायमान गुण शीलयुक्त, दूध विना दुःखित कुटुम्बी पाखण्डरहित आचारवाले, तपस्या करके प्रसिद्ध, वेदपाठी. तरुण अवस्थावाले द्विजोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दानकरके दी थीं ॥ १४ ॥ गौ, पृथ्वी सुवर्ण, महल, हाथी, घोडे इत्यादि दान कर और दासियों सहित कन्या दान करीं, तिल, रूपा, शय्या, वस्त्र, रत्न और आच्छादनके श्रेष्ठ वस्त्र

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ॥ यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृंगीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुंबेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुंगवेभ्यः ॥ १४॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥

११४

*शंका–जो वचन श्रीकृष्णसे राजा नृगने गोदान देनेवाले कहे थे, उन वचनोंको सुनकर हमारा सबका मन कांपता है, ऐसे मूर्ख समान राजा नृगने वचन क्यों कहे? भला रेतेके कणका क्या प्रमाण एक मूठीभर रेता हाथमें ले तो दश बीस कोटि कण मूठीभर रेतमें होंगे, फिर गंगा आदि नदियोंमें अथवा रेतवाले देशमें रेतके सिवाय और दूसरी मृत्तिका नहीं, तहाँ कणकी क्या गणना है फिर तारा भी गणनासे हीन हैं, वर्षाकी धारा पृथ्वीपर पडती हैं उनकी भी गिनती नहीं है, ऐसा वचन बडा अयोग्य है ॥

उत्तर–मेदिनीकोशमें सत्रह १७ श्लोकसे लेकर बयालीस ४२ श्लोकतक भूमिका और द्वीप आदिका, पर्वतोंका नाम लिखा है, 'सिकता, सात द्वीपका नाम लिखा है और 'तारका' बडी बडी नदियोंका नाम लिखा है, 'अदिव' मर्त्यलोकका नाम लिखा है मर्त्यलोक और भरतखण्डका नाम भी अदिव है 'वर्ष धार' पर्वतका नाम लिखा है और राजा नृग भरतखण्डमें बसता था इसलिये भरतखण्डकी नदियोंके पर्वतोंके और सात द्वीपोंके बहानेसे गोदान करनेकी गिनती श्रीकृष्णसे गुप्त करके बताई थी कि, सबको प्रगट होनेसे पुण्यका नाश हो जाता पंचमस्कन्धके उनीसवें अध्यायमें लिखा है कि, मर्त्यलोकमें भरतखण्डमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ २७ पर्वत हैं और नदियोंमें श्रेष्ठ नदी ४९ हैं. और पंचमस्कन्धके प्रथम अध्यायमें लिखा है कि पृथ्वीमें सात द्वीप हैं इसलिये गुप्त करके श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था कि महाराज जितने भूमिके सिकता कहिये द्वीप हैं उतनी गायें मैंने दी हैं और भारतखण्डमें जितने तारका कहिये गंगा आदि बडी बडी नदी हैं उतनी गायें मैंने दी और जितने वर्षधार कहिये पर्वत मर्त्यलोकके भरतखण्डमें हैं उतनी गायें ब्राह्मणोंको दी हैं. सब गायोंकी संख्या इतनी हुई विद्वान् लोगों विचार लेना, अंककी उलटी रीतिसे प्रथम सात ७ दूसरे ४९ तीसरे सत्ताईस सब जोडकर २७४९७ सत्ताईस सहस्र चारसौ सत्तावन गायें देनेको श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था. रेतके कण, आकाशके तारे, जलवृष्टिके लिये नहीं कहा था ॥

और रथोंका दान किया, यज्ञ किये. कुआ,तालाब, सरोवर बनवाये ॥१५॥ ऐसा मैं दानी था, परन्तु मुझे एक संकट आकर प्राप्त हुआ
सो सुनो, किसी एक अयाचक ब्राह्मणकी गौ भागकर मेरी गायोंमें मिल गई; वह गाय विना जाने मैंने ब्राह्मणको दान कर दी ॥ १६॥ उस
गौका स्वामी गौको लेजाता देखकर "यह गौ मेरी है" इस प्रकार कहने लगा, दूसरा ब्राह्मण बोला कि, भाई यह गौ मुझे राजा नृगने दान
करके दी है ॥ १७ ॥ हे दीनबन्धु ! इस प्रकार आपसमें विवाद कर अपने अपने प्रयोजनको सिद्धकरनेवाले वह दोनों ब्राह्मण मेरे निकट
आये, तब जिस ब्राह्मणको गाय दान करके दी थी वह बोला कि, हे राजन् ! इस गायके आप ही दाता हैं और जिसकी गाय थी, वह
बोला कि, यह क्या दाता है,जो पराई गौका दान करता है, हे भगवन् ! यह बात सुनकर मुझे अत्यंत भ्रम हुआ ॥ १८ ॥ इसके उपरांत धर्मसे

कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥ तां नीयमानां
तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति॥१७॥विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसा
धकौ ॥ भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं
प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवंतावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ॥ समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतंतं
निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ॥ नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो
ययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नंतरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥

कष्टित मैंने उन दोनों ब्राह्मणोंको बहुत विनती करके कहा कि,हे महाराज ! इस गौके बदलेमें सुन्दर २ एक लाख गौ दूँगा, यह गौ दे दीजिये॥
॥१९॥ मैं तुम्हारा दास हूँ,मैंने यह नहीं जाना कि,यह गौ तुम्हारी है सो मेरे ऊपर अनुग्रह करके घोर नरकमें गिरते हुए मेरी रक्षा करो॥२०॥
तब ब्राह्मण बोला कि, हे राजा नृग ! तेरी लाख गौकी मुझे आवश्यकता नहीं है यह कह अयाचक ब्राह्मण चला गया और जो दानकरके
दी है, सोई लूंगा यह कहकर जिस ब्राह्मणको गौ दी थी वह उस गौको त्यागकर घरको चला गया ॥२१॥ हे देवदेव ! इसके उपरांत जब मेरा
देहान्त हुआ, तब यमदूत आकर यमराजके पास मुझे ले गये, वहां धर्मराजने मुझसे पूँछा कि, ॥ २२ ॥

हे राजा नृग ! मैं तुम्हारे दान और धर्मका लोकके प्रकाशकोंमें अन्त नहीं देखता, परंतु यत्किंचित तुम्हारा पाप भी है और सम्पूण शुभ है सो प्रथम तुम पाप भोगोगे अथवा पुण्य॥२३॥इस प्रकार जब धर्मराजने कहा तब प्रथम पाप भोगूंगा ऐसा मैंने कहा उसी समय धर्मराजने आज्ञा करी कि, इसको करकेटकी योनिमें गिरादो. हे प्रभो! तब मैंने गिरते ही अपनेको करकेटके रूपमें देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणोंका भक्त और दाता तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा अबतक मुझे लग रही थी. क्योंकि आपकी कृपासे स्मृतिका नाश नहीं हुआ था २५ ॥ हे योगेश्वर ! वेदरूप नेत्र करके निर्मल हृदयमें जिनकी भावना करें और इंद्रियोंकी जिनमें पहुँच नहीं ऐसे परमात्मा तुम अति दुःखोंसे अँधेरी

पूर्वं त्वमशुभं भुंक्षे उताहो नृपते शुभम् ॥ नांतं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वं देवाशुभं भुज
इति प्राह पतेति सः ॥ तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तवदासस्य केशव ॥
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽम
लहृद्विभाव्यः ॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनांधबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य ममापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेव जगन्नाथ
गोविंद पुरुषोत्तम ॥ नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥अनुजानीहि मां कृष्ण यांतं देवगतिं प्रभो ॥
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ कृष्णाय वासुदेवाय
योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥

बुद्धिवाले मुझे कैसे दिखाई दिये क्योंकि इस संसारमें जिस मनुष्यका संसार छूटनहार होता है उसको ही आपके दर्शन मिलते हैं ॥ २६ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण! हे इंद्रियोंके प्रेरनेवाले ! पवित्रयशी ! श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अखण्डरूप ! हे अविनाशी ! ॥ २७ ॥ हे कृष्ण ! हे समर्थ ! अब मैं स्वर्ग जाऊँ, मुझे आज्ञा दो और जहां कहीं मैं रहूँ वहां मेरा चित्त तुम्हारे चरणोंमें लगा रहे ॥ २८ ॥ आप सब कार्योंके उत्पन्न करनेवाले विश्वके कर्त्ता और विकाररहित हो, अनन्त मायाशक्तिमान् वासुदेव अर्थात् सब प्राणियोंके आश्रय कृष्ण अर्थात् सर्वदा आनन्दरूप, वेदोंके कहे जो यज्ञादिक कर्म और स्मृतियोंके कहे जो कूआँ, बावली, तलाब इत्यादि

कर्मोंके फलदाता,योगोंकेपतिआपको नमस्कार है ॥२९॥राजा नृग इस प्रकार कह श्रीकृष्णचन्द्रकोपरिक्रमा दे अपने मुकुटसेउनकेचरणोंकास्पर्श कर, आज्ञा ले सब प्राणियोंके देखतेही विमान पर बैठकर स्वर्गको चला गया ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंके भक्त,धर्मात्मा, देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र क्षत्रियोंकी शिक्षाके लिये अपने कुटुम्बी यादवोंसे कहने लगे॥३१॥कि, देखो अग्निके समान तेजस्वी पुरुषोंको भी ब्रह्मअंश नहीं पचता और अपनेको ईश्वर माननेवाले राजाओंकी तो बात ही क्या है!॥३२ ॥ मैं विषको हलाहल नहीं मानता क्योंकि उसके दूर करनेकी ओषधी है, परन्तु ब्रह्मअंश विषसे भी अधिक विष है और इस पृथ्वीमें ब्रह्मअंशके दूर करनेका कोई उपाय नहीं है॥३३॥ विष तो केवल खानेवालेकोही मारता है और अग्नि भी जलसे शांत होजाती है, व अग्निके जलानेमें जड बाकी रह जाती है, परन्तु ब्रह्मअंशरूप लकडीमेंसे उत्पन्न हुई अग्नि मूलसहित कुलको भस्म कर डालती है॥ ३४ ॥ ब्राह्मणकी पूर्ण आज्ञा लिये विना उसका धन खायाजाय तो तीन पीढीको नरकमें गिराता है और हठसे वा राजा आदिकी सहायतासे भक्षण किया जाय तो दश प्रथम और दश पीछेकी पीढियोंको और एक अपनी,इस प्रकार इक्कीस पीढीको नरकमें डालता है॥ ३५॥ इसलिये ब्राह्मणका पूजन ही करे,इस कथा पर एक दृष्टान्तभी लिखते हैं *जो कि लक्ष्मीसे अंधे

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ॥ अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥३०॥कृष्णः परिजनं
प्राह भगवान्देवकीसुतः ॥ ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं बत ब्रह्मस्वंभुक्तमग्नेर्मनागपि ॥
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ॥ ब्रह्मस्वं हि विषं
प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपा
वकः ॥३४॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हंति त्रिपूरुषम् ॥ प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ३५ ॥ राजानो राज
लक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥

---

* दृष्टान्त-एक राजा परदेशी ब्राह्मण जो द्वारपर आता उसे लाख रुपया दिया करते थे,तो एक दरिद्री ब्राह्मणकी स्त्रीने यह सुनकर अपने पतिको इस राजाके नगरमें भेजा,यह चले, राजा शिकार खेलकर आ रहे थे, मार्गमें ब्राह्मणसे भेंट हुई,राजाने कहा कि, महाराज! आप कहांसे आये और कहां जाओगे? ब्राह्मणने कुछ उत्तर न दिया,तब राजाने प्रार्थनाकर चरण पकडकर पूँछा कि, क्या काम है?—

हुए राजा हैं; सो अपना नरकमें गिरना नहीं देखते और जो पुरुष ब्रह्मअंशपर मन ललचाते हैं, सो नरकमें जानेकी इच्छा करते हैं॥ ३६॥ कुटुम्बी, उदार ब्राह्मण जीविका हरजानेसे जो रुदन करते हैं, उनके नेत्रोंसे आँसुवोंकी बूँद गिरकर जितनी पृथ्वीकी रेणुका भीजती हैं, उतने वर्षतक ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले निरंकुश राजा और उनके मंत्री व जो प्रधान टहलुए हैं, सो सब कुम्भीपाक नरकमें गिरते हैं॥ ३७॥ ३८॥ जो पुरुष अपनी दान की हुई अथवा औरकी दी हुई ब्राह्मणकी जीविका हरे, वह पुरुष साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाका कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ मेरे घरमें

गृह्णंति यावतः पांसून्क्रंदतामश्रुबिंदवः ॥ विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुंबिनाम् ॥३७॥ राजानो राजकुल्याश्च
तावतोऽब्दान्निरंकुशाः ॥ कुंभीपाकेषु पच्यंते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥३९॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद् गृध्वाल्पायुषो नराः॥ पराजिताश्च्युता राज्या
द्भवंत्युद्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः॥ घ्नंतं बहु शपंतं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणका धन न आवे, जिस धनके लोभसे राजा अल्प आयुष्यवाले. पराजयको प्राप्त हुए और राज्यसे भ्रष्ट होकर मनुष्योंको भय देनेवाले सर्प होजाते हैं ॥ ४० ॥ हे मित्र ! जो ब्राह्मण अपराध करे, मारता ही जावै और गालियें भी बहुत दे ऐसे ब्राह्मणसे भी द्रोह करना उचित नहीं वरन् उसको नित्य प्रति नमस्कारही करना चाहिये ॥ ४१ ॥

—कहो तो, तब यह बोले कि, हम पण्डित हैं और काशीजीसे आये हैं, इस राजाके शिरपर पनही मार लाख रुपये लेजायँगे, राजाने कहा कि, ब्राह्मण बुरे, जो लाख रुपया लेजायँ और पनही मारैं, सो महलोंमें जाकर ड्योढीवानोंसे कहा कि, किसी ब्राह्मणको भीतर मत आने दो, अब उन पंडितजीकी यहांतक दशा हुई कि, थाली, कटोरा बेचकर खागये, परन्तु भीतर न घुस सके, तब फिर लौटकर अपने घर जाय सब समाचार सुनाये. यह राजा वैष्णव था और कृष्ण, बलदेवका पूजन करता था, एक दिन अकस्मात् बलदेवजी सिंहासनपरसे गिर पडे, यह देख राजा अत्यन्त भयभीत हुआ । उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर पूँछा कि, क्या उत्पात होगा ? कोई कुछ कोई कुछ कहने लगे, परन्तु यथार्थ उत्तर कोई न दे सका, तब राजाने ढँढोरा पिटवाया कि, जो समाधान करेगा, उसे बडा द्रव्य मिलेगा, इसके उपरान्त फिर उस ब्राह्मणकी स्त्रीने प्रार्थना करी, तब वही ब्राह्मण राजाके प्रश्नका उत्तर देनेको आये और बोले कि, राजा ! तू कुछ मत डरे, कुछ उत्पात नहीं होगा; जगन्नाथजी गिरते तो उत्पात होनेकी सम्भावना थी और बलदेवजी तो नित्य वारुणी पिये उन्मत्त रहते हैं, इनके गिरनेका क्या आश्चर्य है. तब राजाने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणको लाख रुपये देदिया और कहा कि, ब्राह्मणको आनेसे कोई मत रोकिओ यह पनही मार करही द्रव्य लेते हैं, यदि यह ब्राह्मण न होते तो मेरे प्रश्नका उत्तर कौन देता ? ॥

जैसे सावधान होकर समय समय पर ब्राह्मणोंको मैं नमस्कार करता हूँ, उसी प्रकार तुम भी नमस्कार करो और जो कोई मेरी इस आज्ञाको उल्लंघन करेगा, वह पुरुष मुझसे दण्ड पवेगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिराया जाता है, इस बातको कोई मिथ्या मत समझना, क्योंकि जैसे विना जाने नृग राजाने ब्राह्मणकी गाय यद्यपि ब्राह्मणको ही दान कर दी थी; परन्तु तो भी नरकमें गिरा इसी प्रकार और भी जो ब्रह्मअंश लेते हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! सब लोकोंको पवित्र करनेवाले मुकुन्द भगवान् इस प्रकार द्वारकावासी यदुवंशियोंको समझाकर अपने मन्दिरमें चले गये ॥४४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ॥ तथा नमतयूयं च योऽन्यथा मे स दंडभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ॥ अजानंतमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव॥४३॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुंदो द्वारकौकसः ॥ पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमंदिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्त० नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कंठः प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कंठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ॥ रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनंदितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ॥ इत्यारोप्यांकमालिंग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवंदितः ॥ यथावयो यथासख्यं यथासंबंधमात्मनः ॥ ४ ॥

उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ दोहा—पैंसठमें बलरामने, वृन्दावनमें आय । रास रचो यमुना निकट, सबको ताप मिटाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! एक समय भगवान् बलदेवजी अपने सुहृदोंके देखनेके लिये रथमें चढकर गोकुलको गये ॥१॥ और बहुत दिनोंके आशा लगाये गोप गोपियोंसे मिले. इसके उपरान्त बलदेवजीने पिता माताको प्रणाम किया, तब उन्होंने इनको आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न जगदीश्वर। छोटे भाई कृष्ण सहित तुम हमारी बहुत कालतक रक्षा करो, इस प्रकार गोदमें बैठाल छातीसे लगा, नेत्रोंके आसुओंसे बलदेवजीको भिजोने लगे ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक वृद्ध गोपोंको

प्रणाम करके छोटे गोपोंने इनको प्रणाम किया, इस प्रकार बलदेवजी जसी जिसकी अवस्था और जैंसी जिससे मित्रता, जैसा जिससे सम्बन्ध था ॥४॥ उसी प्रकार उनको प्राप्त होकर हास्य और हाथ पकड़ना इत्यादिकोंसे मिलकर जब बलरामजी विश्राम ले चुके, तब सुख पूर्वक बैठे और कुशल पूँछी उस समय सब गोप कि, जिन्होंने कमललोचन श्रीकृष्णके लिये सब विषय त्याग दिये हैं, वे सब बलदेवजीके निकट आय चारों ओर बैठ गये और प्रेमसे गद्गद वचन हो अपने बन्धु यादवोंकी कुशल पूँछने लगे ॥ ५॥ ६ ॥ कि, हे राम ! हमारे सब बन्धु तो कुशल हैं ? स्त्री और पुत्र सहित तुम हमारी भी कभी सुध करते हो ? ॥ ७ ॥ यह बड़ी प्रसन्नताकी बात हुई जो महादुराचारी पापी

समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः ॥ विश्रांतं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु
प्रेमगद्गदया गिरा ॥ कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नो बांधवा राम सर्वे कुशलमासते ॥
कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ॥७॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ॥ निहत्य
992 निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्यो हसंत्यः पप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः ॥ कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः
पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बंधून्पितरं मातरं च सः ॥ अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥
अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि ॥ यदर्थं जहिम दाशार्ह
दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥

कंस मारा गया और यह भी बहुत अच्छा हुआ जो सुहृद् लोग बन्दीखानेसे छूट गये, फिर वैरियोंका नाश कर समुद्रमें द्वारकापुरी बसाई यह भी अत्यन्त मंगलकी बात है ॥ ८ ॥ बलरामजीके दर्शनसे गोपियें प्रसन्न हो हँसकर पूँछने लगीं कि, जिनको नगरकी स्त्रियें अत्यन्त प्यारी हैं, वह श्रीकृष्ण तो अच्छे हैं ! ॥ ९ ॥ वह श्रीकृष्ण कभी अपने बन्धु बाधवोंकी भी सुध करते हैं ? क्या अपनी माताका दशन करनेको एकवार भी वह यहां आवेंगे ? और बडी भुजावाले श्रीकृष्णचन्द्र कभी हमारी भी सुधि करते हैं ॥ १० ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न समर्थ बलदेवजी ! जिसके कारण हमने दुस्त्यज माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, बहन और सुहृद् यह सब त्याग दिये ॥ ११ ॥

वह हम सबको त्याग शीघ्र ही चले गये और स्नेह तोड़ दिया परन्तु उनके वैसे मनोहर कहनेपर कौन स्त्री भरोसा न करे ॥ १२ ॥ हमैं अचम्भा होता है कि, कृतघ्न और जिसका मन स्थिर नहीं, ऐसे श्रीकृष्णके कहनेको बुद्धिमान् द्वारकाकी स्त्रियें किस प्रकार स्वीकार करती होंगी ? परन्तु हम कल्पना करती हैं कि, चित्र विचित्र कथावाले श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमान हास्यपूर्वक भौंहे चलानेसे बढा जो कामदेव उससे आतुर हो स्वीकार करती होंगी * ॥ १३ ॥ और गोपियें बोलीं कि, उनकी बातसे हमें क्या काम ? और बात क्यों नहीं

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ॥ कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥ कथं नु गृह्णंत्यनव
स्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः॥ गृह्णंति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥
किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ॥यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं
शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वंगं स्मरंत्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयं
गमैः ॥ सांत्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥

कहती क्योंकि हमारे बिना जैसे उनका समय व्यतीत होता है उसी प्रकार उनके बिना हमारा काल भी व्यतीत होता है, उनका सुखसे बीते है. हमार दुःखसे, अन्तर इतनाही है ॥ १४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचंद्रकी हँसन बोलन, सुन्दरचितवन, शोभायमान चलना और प्रेमपूर्वक आलिंगन इन बातोंको स्मरण कर सब गोपियें रोने लगीं ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारसे समझानेमें निपुण, भगवान् संकर्षण श्रीकृष्णचंद्रके संदेशको कहकर समझाने लगे ॥ १६ ॥

---

* दृष्टान्त—एक लालाने बिल्ली पाली थी और उसको नित्यप्राति दूध मलाई खिलाते थे. एक दिन लाला कार्यवश गांवको गये और बिल्ली को डोरीसे खम्भेमें बांध गये और उसका स्मरण न रहा और कई दिन लगगये बिल्लीका भूखके मारे प्राणान्त होनेलगा, इसके पीछे घरमें कहीं दलानके कोनेमें एक रुईका गाला धरा था, सो बिल्लीने जाना कि, यह घीका लोंदा है, सो उछल उछलकर बिल्ली उस रुईके गालेपर जाय परन्तु वह हाथ न आवे, "अब लिया अब लिया" इसी आशामें अठारह दिन व्यतीत होगये. इधर लाला अठारह दिनके उपरान्त आकर कहनेलगे कि, हरे राम बिल्लीकी तो इतिश्री होगई होगी, ताला खोलकर देखें तो अभी जीवित है यह विचार ज्यों उसकी डोरी खोली कि, वह झपटकर रुईके गालेपर गिरी परन्तु वह तो रुईही थी इसलिये निराश हो झट बिल्लीके प्राण निकल गये. इसलिये, "जीवित है आशा मरे निराशा" यह बात सत्य है।

इसके उपरांत भगवान् बलदेवजीने इस ब्रजमें गोपियोंको अनेक प्रकार आनन्द देते चैत्र और वैशाख दो महीने तक वास किया ॥ १७ ॥
पूर्ण चन्द्रमाकी कलासे शोभायमान कुमुदिनियोंकी सुगन्धयुक्त पवन जहां आरही थी इस प्रकार शोभायमान यमुनाजीके बागमें स्त्रियोंको संग
लेकर बलदेवजी रमण करने लगे॥ १८॥ इस समय वरुणजीकी भेजी वारुणी मदिरा वृक्षोंकी खोतरियोंमेंसे गिरकर सब वनको अपनी गन्धसे
सुगंधित करने लगी ॥ १९ ॥ पवनसे प्राप्त मधुधाराकी सुगन्ध सूँघकर बलदेवजी वहां आय स्त्रियोंके साथ मदिरापान करने लगे ॥ २० ॥
स्त्री जिनके चरित्र गान कर रहीं और हलायुध धारण करनेवाले मतवाले, अमलसे विह्वल नेत्र हो बलदेवजी अपने मनमें विचार करने लगे॥ २१॥

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचंद्रकलामृष्टे
कौमुदीगंधवायुना ॥ यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतंती
तद्वनं सर्वं स्वगंधेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥ तं गंधं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपागतस्तत्र ललनाभिः
समं पपौ ॥ २०॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुं
डलो मत्तो वैजयंत्या च मालया॥ बिभ्रत्स्मितमुखांभोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडा
र्थमीश्वरः ॥ निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २३॥ पापे त्वं माम
वज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ॥ नेष्ये त्वां लांगलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥

वनमाला और कानोंमें कुण्डल पहरे, मतवाले, वैजयन्तीमाला धारण किये इससे अधिक शोभायमान और पसीनेकी बिन्दसे सुन्दर, मन्द
मन्द हास्ययुक्त, कमल रूप मुख धारण किये ॥ २२ ॥ जलक्रीडा करनेके लिये सामर्थ्यवान् बलदेवजी यमुनाजीको बुलाने लगे "यह मतवाले
हैं" इसलिये बलदेवजीके वचनका अनादर करके यमुना नहीं आई, तब भगवान् बलरामजी अत्यन्त क्रोधित हो, हलके अग्रभागसे खैंच
लिया ॥ २३ ॥ और बोले कि, रे पापिनि ! मैंने तुझे बुलाया और तुन आई, इसलिये स्वच्छन्द फिरनेवाली तुझको मैं हलके अग्रभागसे

खण्डित कर दूंगा* ॥ २४ ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार बलदेवजीने कहा तब यमुना अत्यन्त भयभीत और चकित हो उनके चरणोंमें गिरकर कहने लगी ॥ २५ ॥ हे राम ! हे राम ! ! हे महाबाहो ! ! ! मैं तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं जानती; जिन आपके अंश शेषजीने संपूर्ण पृथ्वीको सहस्र फणोंमेंसे एक फणपर धारण कर रक्खा है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मैं आपके श्रेष्ठ प्रभावको नहीं जानती परन्तु आपकी शरण आई हूँ सो आप मुझे छोडनेके योग्य हो ? ॥ २७ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! जब इस प्रकार प्रार्थना करी तब प्रसन्न होकर भगवान् बलदेवजीने यमुनाजीको छोड दिया और जिस प्रकार हाथी हथिनियोंके संग विहार करता है उसी प्रकार यमुनामें गोपियोंके साथ विहार करने लगे ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक विहार करके जब बलदेवजी जलमेंसे बाहर निकले तब लक्ष्मीजीने इनको दो नीलाम्बरी वस्त्र अमूल्य आभूषण और शोभायमान माला दी ॥ २९॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र पहर और सुवर्णकी माला धारण कर, अच्छे प्रकार चंदन लगाय इंद्रके ऐरावत हाथीके समान शोभायमान होने लगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! महावीर्यवान् भगवान् बलरामजीने यमुनाजीको खैंचा, इस कारण वह स्थान अबतक अनन्तपराक्रम बलरामजीके पराक्रमको जताता वैसे ही देखनेमें आता है ॥ ३१ ॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनंदनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २५ ॥ राम राम महाबाहो
न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् ॥
मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥२७॥ ततो व्यमुंचद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः
करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासितांबरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कांतिः शुभां
स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य कांचनीम् ॥ रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेंद्र इव वारणः ॥ ३० ॥
अद्यापि दृश्यते राजन्यमुनाऽऽकृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानंतवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥

---

* शंका–शेषावतार बलदेवजीका मुनियोंने वर्णन किया है, सो बलदेवजी बडे कामीकी नाईं यमुनाको क्यों खैंचा? मर्यादाको भी नाश किया यह बडी शंका है ।

उत्तर–श्रीकृष्णने जब यमुनासे कालियनागको बाहर निकाल दिया तब यमुना बहुत अभिमान करने लगी, बिनाही वर्षाके अधिक मर्यादाको छोडकर चढने लगी, मुनिजन मथुराको और वृन्दावनको जाते जाते तो रात दिन भरी पाते, नौकाको चलने नहीं दे, इसप्रकार यमुनाको उन्मत्त जानकर जलक्रीडाके मिस करके बलदेवजीने यमुनाको दण्ड दिया ॥

ब्रजकी स्त्रियोंके संग विलास करके चलायमान चित्त बलदेवजीको ब्रजमें रमण करते एक रात्रिके समान सम्पूर्ण रात्रियें व्यतीत होगई ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भाषाटीकायां बलदेवकृतयमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ दोहा—छासठ काशी जायहरि, पौंड्रक नृपको मार । मित्र सुदक्षिण सहित सब, हनो तासु परिवार ॥ १ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब बलरामजी नन्दरायके ब्रजमें आये तब अज्ञानी करूषदेशके राजा पौंड्रकने "मैं वासुदेव हूँ" इस प्रकार मनमें विचारकर श्रीकृष्णचंद्रके पास दूत भेजा ॥ १ ॥ आप जगत्पति भगवान् वासुदेव प्रगट हुए हो ऐसे मूर्ख मनुष्योंकी प्रशंसासे उत्साह दिला

९९९

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंद व्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥ वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥ त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः॥इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥२॥ दूत च प्राहिणोन्मंदः कृष्णायाऽव्यक्तवर्त्मने ॥ द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः॥ ३ ॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसंदेश मब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ॥ भूतानामनुकंपार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज ॥ ५ ॥

नेपर उसने अपने आपको वासुदेव समझलिया ॥२॥ अचिन्त्यमार्ग वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास द्वारकापुरीमें अज्ञानी पौंड्रकने दूत भेजा, जैसे खेलमें बालक एक बालकको राजा बना देता है और वह अपनेको राजा मानता है, उसी प्रकार अपने आपको पौंड्रक वासुदेव मानने लगा ॥ ३ ॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णचंद्रको दूत सभामें बैठा देखकर राजा पौंड्रकका सन्देशा कहने लगा॥ ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेके लिये मैं एक ही वासुदेव उत्पन्न हुआ हूँ दूसरा नहीं है इस कारण तैंने जो अपना मिथ्या नाम

वासुदेव धर रक्खा है उसे त्यागदे ॥ ५ ॥ हे यादवमूढ़ ! तैंने मेरे चिह्न गदा पद्मादि जो धारण कर रक्खे हैं, उन्हैं शीघ्रही त्याग कर मेरी शरणमें आ और जो इन्हैं त्याग न दे और मेरी शरण न आवैं तो मुझसे युद्ध करनेके लिये तैयारी कर ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस प्रकार मन्दबुद्धि पौंड्रकका सन्देशा सुन उग्रसेनादि सब सभासद इस बातको असत्य जानकर हँसने लगे ॥ ७ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर दूतसे कहने लगे कि, हे मूर्ख ! कृत्रिम सुदर्शनादि चिह्नोंसे तू अपनी ऐसी बड़ाई करता है, उन चिह्नोंको मैं तुझपरसे छुड़ा दूँगा ॥ हे अज्ञानी ! जिस समय तू अपने मुखको ढककर और काक, गृध्र, बगलोंसे घिरकर तू मरके सोवेगा, उस समय तू कुत्तोंकी

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ॥ त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाच दूतं भगवान्
परिहासकथामनु ॥ उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कंकगृध्रवटैर्वृतः ॥
शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ॥ कृष्णोऽपि रथमास्थाय
काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥ पौंड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम्
॥ ११ ॥ तस्य काशीपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ॥ अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौंड्रकं हरिः ॥ १२ ॥

शरण लेगा अर्थात् वह तुझको भक्षण करेंगे ॥९॥ उस समय जो श्रीकृष्णचन्द्रने अनादर करके कहा, सो उसी प्रकार दूतने अपने स्वामी मिथ्या वासुदेवसे जाकर सब कहा और श्रीकृष्णचन्द्र भी रथमें चढ़कर काशीपुरीको गये क्योंकि उस समय पौंड्रक भी अपने मित्र काशीनरेशके यहां आया था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र भी वहां पहुँचे ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस समय महारथी पौंड्रक भी श्रीकृष्णचन्द्रके युद्धका उद्यम जान, दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर शीघ्र ही काशीपुरीसे बाहर निकला ॥ ११ ॥ उस पौंड्रकका मित्र काशीनरेश मित्रकी

सहायता करनेके लिये पीछेसे आया, तब तीन अक्षौहिणी सेना संग लिये पौंड्रकको भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने देखा ॥ १२ ॥ शख, चक्र, तलवार, गदा, धनुष, भृगुलता आदि चिह्नयुक्त और कौस्तुभमणि धारण किये बनमालासे देदीप्यमान ॥ १३ ॥ रेशमी पीली धोती, उपरना पहरे, गरुडध्वज, बडे मोलका मुकुट और आभूषण पहरे, मकराकृति कुण्डलोंसे प्रकाशमान है * ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! जैसे रंगभूमिमें वेष बनाकर नट आता है, उसी प्रकार अपने समान वेष बनाये मिथ्या वासुदेवको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगे क्योंकि, नकलीने ज्योंकी त्यों नकल उतारी थी ॥ १५ ॥ इसके उपरांत शत्रुलोग भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर त्रिशूल,

शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ॥ अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥१४॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रंगगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ॥ असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत्पौंड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यंदनवाजिपत्तिमत् ॥ गदासिचक्रेषुभिरार्दयन्भृशं यथा युगांते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७ ॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुंजरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणाऽवखंडितैः ॥ बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥

गदा, बेडे, बर्छी, गुर्ज, नेजा, तलवार, पटा, बाण, आदि शस्त्र चलाने लगे ॥ १६ ॥ जैसे प्रलयाग्नि जरायुज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको पीडा देती है, उसी प्रकार भगवान् वासुदेव मिथ्यावासुदेव और काशीनरेश व उनके हाथी, घोडे, प्यादे इत्यादि सम्पूर्ण चतुरंगिणी सेनाको गदा, तलवार, चक्र, बाणादिसे पीडा देने लगे ॥ १७ ॥ हे महाराज! चक्रसे कटे हुए रथ, घोडे, हाथी और प्यादे जिसमें पडे, वह भूमि उस समय भगवान् भूतनाथकी क्रीडाभूमिके समान भयंकर लगने लगी, जिसको देखकर वीर

---

* शंका—योगियोंको बडे दुःखसे प्राप्त होने योग्य जो भगवान् वासुदेवका रूप, उस रूपको पौंड्रक नाम राजा क्यों प्राप्त हुआ?

उत्तर—पूर्वजन्ममें पौंड्रकनाम राजा भगवान्का बडा भारी तप करता था. जब भगवान् प्रसन्न होकर वर देनेको आये तब उसने यह वरदान मांगा कि, आपका स्वरूप बनानेकी बुद्धि मुझको दीजिये, तथा पृथ्वीमें जन्म धारण करके आपके हाथसे मेरी मृत्यु हो तब भगवान्ने यह वरदान दिया इसलिये पौंड्रकने भगवान्का रूप बनाया था ॥

पुरुषोंके हृदयमें अति आनंद प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ सेना मारने उपरांत शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधित होकर पौंड्रकसे कहनें लगें कि, रे ।रे । पापिष्ठ । जो तैंने दूतसे कहलाया था, वह शस्त्र अब तुझपर ही छोड़ता हूँ ॥ १९ ॥ अरे अज्ञानी । जो तैंने हमारा मिथ्या नाम वासुदेव रखलिया है यह तेरा नाम शीघ्र ही छूट जायगा और यदि तेरे सम्मुख युद्ध न करूं तो तैरी शरण लूँगा ॥ २० ॥ हे राजन् । इस प्रकार तिरस्कार कर अत्यंत तीक्ष्णधार वाले बाणोंसे पौंड्रकका रथ तोड जिस प्रकार देवराज इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतका शिखर काटते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथ्यावासुदेव पौंड्रकका शिर काट डाला ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित् । काशीनरेश

अथाह पौंड्रकं शौरिर्भो भो पौंड्रक यद्भवान् ॥ दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥
त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाऽज्ञ मृषा धृतम् ॥ व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वा
शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौंड्रकम् ॥ शिरोऽवृश्चद्रथांगेन वज्रेणेंद्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर
उत्कृत्य पत्रिभिः ॥ न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः ॥ द्वार
कामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथाऽमृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबंधनः ॥ बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं
तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुंडलम् ॥ किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशयिरे जनाः ॥ २५ ॥
राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबांधवाः ॥ पौराश्च हा हता राजन्नाथनाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥

का बाणोंसे शिर उखाड काशी पुरीमें ऐसे पटक दिया कि, जिस प्रकार कमलकोशको पवन पटक देता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार मित्र सहित मिथ्यावासुदेवको मार सिद्धोंसे गाई हुई अपनी कीर्तिको श्रवण करते हुए भगवान् वासुदेव द्वारकापुरीमें आये ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् । सदा भगवान्का ध्यान करनेके कारण कट गये हैं सब बन्धन जिसके, ऐसा वह मिथ्यावासुदेव पौंड्रक श्रीकृष्णचन्द्रका रूप धारण किये तद्रूप हो गया ॥ २४ ॥ हे महाराज । काशीके राजद्वारपर कुण्डलोंसहित पडे शिरको देखकर "यह क्या है ? किसका शिर है ! इस प्रकार मनुष्य सन्देह करने लगे ॥ २५ ॥ हेकुरुकुलकी शोभारूप परीक्षित् । पीछे काशीपुरीके राजाका शिर जानकर रानी, पुत्र, भाई और

पुरवासी हे नाथ ! हे नाथ ! हम मरे इस प्रकार कह रोदन करने लगे । इसपर एक दृष्टान्त है * ॥२६॥ काशीनरेशका सुदक्षिण नाम पुत्र अपने पिताके मरनेसे अत्यन्त शोकाकुल हो "पिताके मारनेवाले कृष्णको मारकर पिताका ऋण चुकाऊँगा" ॥२७॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके उपाध्यायों सहित सुदक्षिण परमसमाधि लगाकर भगवान् महादेवजीका पूजन करने लगा ॥ २८ ॥ विशेष करके मुक्त भगवान् भूतेश्वर

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ॥ निहत्य पितृहंतारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥
इत्यात्मनाऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ॥ सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥ प्रीतोऽविमुक्तो भगवां
स्तस्मै वरमुदाद्भवः ॥ पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ॥
अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ॥ इत्यादिष्टस्तथा चक्रे
कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥

1001

प्रसन्न होकर सुदक्षिण "वर माँग" इस प्रकार कहने लगे, तब सुदक्षिणने "पिताके मारनेवालेके मारनेका उपाय बताओ" यह वर माँगा ॥२९॥ तब भगवान् भोलानाथ बोले कि, तू ब्राह्मणोंके संग ऋत्विक्के समान आज्ञाकारी दक्षिणाग्निका मारणकी विधिसे पूजनकर, वह अग्नि प्रमथोंके साथ ॥ ३० ॥ तेरे सब मनोरथोंको पूर्ण करेगा परन्तु यह प्रयोग ब्राह्मणकी भक्तिसे रहित पुरुषपर चलावेगा, तो तेरा संकल्प सिद्ध होगा

---

* दृष्टान्त–एक बनियेंने देखा देखी अपनी दण्डी तोलनी छोड दी ओर चोरोंके साथरह कमर बांध चोरी करने लगा, अपने मनमें विचार किया कि, भला रोजगार है, घडीभरमें ही हजारोंका माल मिल जात है सो कहीं किसी चोरोंके संग कुमलदे भीतर घुसे तो जाग होगई, राजाके सिपाही दौड पडे, सो वह चोर तो संगके सब रफू चक्कर होगये, परन्तु इस बनियेसे न भागा गया तब निकट ही एक तालावमें तलवार डाल वह बनियाँ जलमें घुसा. अब सिपाहियोंको चोर तो मिले नहीं और प्यास लँगी तो वह तालावके निकट आये, सो वहां लालाको देखकर पकडा कि, तुम यहां कैसे आये ! बनियां बोला कि, महाराज ! मैं शौचके लिये यहां आया था सो चोरोंको देख डरके मारे तालावमें घुसगया फिर आपसे डरा कि कहीं चोर जानकर मुझे भी न पकड लें और चोरोंको मैंने पहचान लिया है, जिनके नाम भी आपको बतलाताहूँ, परसा, सद्दू, रामसहा, फकीरा, ऊधा, लल्ला, बाँके शंकर, सिपाहीलाल, ज्ञानी, बाबू, सुन्नासिंह, चोखे, गौरी, और मक्खन इत्यादि पचास आदमियोंके नाम लिखवाकर सबको पकडवा दिया और अब बनियेपर भी गंगाराम घूमें, इसलिये अपना काम छोडकर पराया काम नहीं करना चाहिये, देखो पराया काम करनेसे पौंडूक मारा गया ॥

अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रपर चलावेगा तो उलटा पड़ेगा, क्योंकि, वह तो ब्राह्मणोंके सेवा करनेवाले और उनके अत्यन्त प्रिय हैं, इस प्रकार आज्ञा पाय, नेम ग्रहण कर सुदक्षिण श्रीकृष्णकी घात और उनके मारनेके लिये जैसे शिवजीने आज्ञा दी थी उसीप्रकार करने लगा ॥ ३१॥ हे राजन्! तब कुण्डमेंसे अत्यन्त भयानक मूर्त्तिमान् अग्नि निकला, जिसकी तप्त ताम्रके समान शिखा और दाढी मूँछें थीं, नेत्र और मुखसे अंगारे उगलता था ॥ ३२ ॥ जिसका मुख, दाढ़ और बडी तीक्ष्ण भ्रुकुटी दंडसे विकराल हैं, इस प्रकार अपनी जीभसे होठोंको चाटता नग्न और देदीप्यमान त्रिशूलको घुमाता ॥ ३३ ॥ बडे तालके समान लम्बे पाँवोंसे पृथ्वीको कम्पायमान और दशों दिशाओंको चलाता, भूत प्रेतोंको संग लिए वह अग्नि द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ ३४ ॥ वनके जलनेसे मृग जैसा त्रास पाते हैं, ऐसी कृत्याग्निको देखकर उसी प्रकार सब द्वारकावासी लोग त्रास पाने लगे ॥ ३५ ॥ और वह सब भय भीत हो, सभामें पांसोंसे खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कहने लगे कि, हे त्रिलोकीनाथ! अग्निसे सब पुरी भस्म हुई जाती है, इसकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ मनुष्योंकी अधिक व्याकुलता सुन और अपने पुरवासियोंकी घबराहट देखकर, शरणागतोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्र हँस कर "भय मत करो, मैं रक्षा करूंगा" इसप्रकार कहने लगे ॥ ३७ ॥ सबके भीतर बाहरके देखनेवाले सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे श्रीमहादेवजीकी कृत्याग्नि जान उसका नाश करनेके लिये समीप ही खडेहुए चक्रसे आज्ञा करने लगे ॥ ३८ ॥

ततोऽग्निरुत्थितः कुंडान्मूर्तिमानतिभीषणः ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरंगारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदंडकठोरास्यः स्वजिह्वया ॥ आलिहन्सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कंपयन्नवनीतलम् ॥ सोऽभ्यधावद् वृतोभूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥ ३४ ॥ तमाभिचारदहनमायांतं द्वारकौकसः ॥ विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥ अक्षैः सभायां क्रीडंतं भगवंतं भयातुराः ॥ त्राहि त्राहि त्रिलोकेशः वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ॥ शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यविताऽस्म्यहम् ॥ ॥३७॥ सर्वस्यांतर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ॥ विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥

करोड सूर्यके समान तेजस्वी, प्रलयकालको अग्निके तुल्य कान्तिमान्, अपने तेजसे आकाश, दिशा, स्वर्ग और पृथ्वीको प्रकाशमान करता भगवानका अस्त्र सुदर्शनचक्र उस अग्निको पीड़ा देने लगा ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्णचन्द्रके अस्त्रके तेजसे प्रतिहत और भग्नमुख होकर वह अग्नि पीछेको लौट गई और काशीमें आकर यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोंसहित सुदक्षिणको जलाने लगी, क्योंकि अपना किया अभिचार है, इसका यही स्वभाव है कि, जो शत्रुपर चल जाय तो चल जाय, नहीं तो जो चलावे उसको भस्म करे, सो सुदक्षिणको क्षणमात्रमें भस्म कर दिया ॥ ४० ॥ उस अग्निके पीछे पीछे आय श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रने मंचानहित सभा, हवेली, दूकान, पुरके

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ॥ स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत्॥३९॥ कृत्यानलः प्रतिहतः स रथांगपाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ॥ वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥ ४०॥ चक्रं च विष्णोस्तदनु प्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ॥ सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥ समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दरवाजे और खजाने सहित अटारी, कोठें, घोडे, अन्न इनकी शालावाली काशीपुरीको क्षणमात्रमें भस्म कर दिया ॥ ४१ ॥ सरलकर्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सुदर्शनचक्र संपूर्ण काशीको भस्म कर फिर निकट आकर खड़ा हो गया ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह पराक्रम जो मनुष्य सावधान होकर श्रवण करते हैं, अथवा औरको श्रवण कराते हैं वह संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दोहा-सरसठमें बलरामजी,रैवत गिरिपर जाय। नारिन सँग क्रीड़ा करत, हनो द्विविद कपिराय॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! अद्भुतकर्मा अनन्त अप्रमेय बलदेवजीने जो जो चरित्र किये इनके सुननेकी फिर मेरी अभिलाषा है,सो कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजा परीक्षित्! नरकासुरका मित्र, सुग्रीवका मंत्री और मयंदका भ्राता बड़ा, पराक्रमी कोई वानर द्विविद नामसे प्रसिद्ध था * ॥ २ ॥ सो अपने मित्र नरकासुरका ऋण चुकानेके लिये इस बंदरने पुर, ग्राम, खानि, खिरक, छपरोंको और देशोंका नाश

राजोवाच ॥ भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ॥ सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥
सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ॥ पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥ क्वचित्स शैलानुत्पाट्य
तैर्देशान्समचूर्णयत्॥आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः॥४॥क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ॥
देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलान्मज्जयत्॥५॥आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ॥ अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वै
तानिकान्खलः॥ ६ ॥

कर दिया ॥ ३ ॥ कभी यह बंदर पर्वतोंको उठाय, उनसे देशोंका चकनाचूर कर देता और विशेष करके आनर्त्तदेशोंको महाकष्ट देने लगा, क्योंकि नरकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्ण वहीं विराजते थे ॥ ४ ॥दश हजार हाथीके बलवाला द्विविद बन्दर समुद्रके बीचमें खड़ा होकर भुजाओंसे जलको उछालता समुद्रके तटपर जो देश थे,उनको डुबोने लगा ॥५॥वह दुष्ट वानर बड़े बड़े ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वृक्षोंको

---

* शंका-द्विविद नाम वानर श्रीकृष्णका बडा प्यारा था,तब सब वानर तो त्रेतामें स्वर्गको चलेगये, द्विविदको श्रीराघवजी स्वर्गको क्यों नहीं लेगये?

उत्तर-रामचन्द्र और रावणका युद्ध होता था,उस समय अर्द्धरात्रि थी,द्विविद नाम वानरने रामचन्द्रसे बूझा भी नहीं, अपनी सेना लेके रावणके मन्दिरमें घुस गया और बहुतसी रावणकी रानियोंको पकडकर नंगी कर दिया और मारा भी. कुछ देर पीछे श्रीमर्यादापुरुषोत्तम जो श्रीरघुनाथजीये उनको यह खोटा कर्म द्विविदने किया ऐसा जान पडा;तब उसी समय श्रीरघुनाथजीने अपनी सेनासे उसको निकाल दिया. द्विविदने पीछेसे अपने मोक्ष होनेके लिये श्रीरघुनाथजीकी विनय की,तब रामचन्द्रजीने कहा द्वापरमें तेरी मुक्ति होगी.हे दुष्ट! आजसे हम तेरा मुख नहीं देखेंगे परन्तु शेषजी तुझको द्वापरमें मारेंगे तब तेरी मोक्ष होगी.इसलिये द्विविदको बलदेवजीने मारा और त्रेतामें स्वर्गको नहीं गया ॥

तोड़, मल, मूत्र करके यज्ञकी अग्निको दूषित करने लगा ॥ ६ ॥ महाघमण्डी वह बन्दर स्त्री और पुरुषोंको पकड़ पकड़कर पर्वतोंकी गुफा व कंदराओंमें रखकर जैसे भ्रमरी कीड़ेको मूँद देती है इसी प्रकार मूँद दिया ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह बन्दर देशोंमें उपद्रव करता और कुलकी स्त्रियोंको दोष लगाय, मनोहर गीत सुनकर रैवत नाम पर्वतपर चला गया ॥ ८ ॥ वहाँ जाकर यादवोंके पालन करनेवाले, कमलकी माला धारण किये, सुन्दर अंग स्त्रियोंके बीचमें बैठे बलरामजीको देखा ॥ ९ ॥ वारुणी मदिरा पीकर गान करते, मदसे विह्वल नेत्र, मतवाले हाथियोंके समान शरीरसे प्रकाशमान हैं ॥ १० ॥ दुष्ट शखामृग बंदर वृक्षकी शाखाओं पर चढ़ कर उनको हिलाता हुआ आपको दिखाकर किंचिरशब्द करने

609 पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ॥ निःक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन् दूषयंश्च कुलस्त्रियः ॥ श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ॥ सुदर्शनीयसर्वांगं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायंतं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ॥ विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ १० ॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कंपयन्द्रुमान् ॥ चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ॥ हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः संमुखादिभिः ॥ दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥ १३ ॥ तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ॥ स वंचयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ॥ निर्भिद्य कलशं धृष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ १५ ॥

लगा ॥ ११ ॥ उस बंदरकी धृष्टता देख, स्वभावसे चंचल जो हास्यप्रिय श्रीबलदेवजीके संगकी स्त्रियां वेभी हँसने लगीं ॥ १२ ॥ वह बन्दर भ्रुकुटी चढ़ाकर सामने ही घुड़ककर स्त्रियोंको अपनी गुदा दिखलाय बलदेवजीके देखते ही स्त्रियोंकी अवज्ञा करने लगा ॥ १३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने क्रोधित होकर उस बन्दरके पत्थर मारा, परन्तु वह धूर्त बंदर पत्थरको बचाय, मदिराके कलशको फोड़ ॥ १४ ॥ उसे लेकर हँसकर बलदेवजीको क्रोध उत्पन्न कराय अवज्ञा करने लगा, इसके पीछे वह धृष्ट बन्दर मदिराके कलशको फोड स्त्रियोंके वस्त्रोंको खैंचकर

फाडने लगा ॥ १५ ॥ बडा बलवान्,मदसे उद्धत बन्दर बलदेवजीकी कदर्थना करके दुःख देने लगा। उस बन्दरकी अनम्रता देख और उसका किया देशोंमें उपद्रव देख अत्यन्त क्रोधित हो बलदेवजीने उस वैरीको मारनेके लिये अपने हाथमें हल, मूसल ग्रहण किया ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उस बडे पराक्रमी बंदरने भी हाथसे शालवृक्षको उखाड और शीघ्रतासे निकट आय उस वृक्षकी चोट भगवान् बलरामजीके माथेमें मारी ॥ १७ ॥ पर्वतके समान माथेपर पडते हुए शालवृक्षको भगवान् बलरामजीने बलपूर्वक पकड लिया और अपने मूसलको घुमाकर उस बंदरको मारा ॥ १८॥ मूसलसे बंदरका शिर फूट गया, तब जलप्रवाहके समान रुधिरकी धारा बहने लगी, जिससे वह गेरू निकलते पर्वतके समान शोभायमान होने लगा और उस प्रहारको कुछ न विचारकर उस बन्दरनें॥ १९ ॥ अत्यन्त क्रोधसे फिर बलपूर्वक और वृक्षको उखाड उसके सब पत्तोंको छुडाकर बलदेवजीको मारा,बलदेवजीने उसी समय उस वृक्षके टुकड़े टुकड़े कर दिये,इसके उपरान्त इस बन्दरने और वृक्षको उखाड महावीर्यवान् बलदेवजीके ऊपर प्रहार किया,परन्तु बलदेवजीने उसकेभी सौ खण्ड करदिये, इस प्रकार भगवान् बलदेवजीके साथ युद्ध करके बारम्बार जब वृक्ष कट गये॥२०॥२१॥तब यह चारों ओरसे वृक्षोंको उखाड कर निर्वृक्ष बन करनेलगा इसके उपरान्त असहनतासे वह बन्दर महात्मा बलदेवजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा, तब मूसलधारी बलदेवजीने लीलापूर्वक ही बन्दरके वर्षाये पत्थरोंको चूर्ण करदिया॥२२॥

कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ त तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥ क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजि
घांसया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥
तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतंतमचलो यथा ॥ प्रतिजग्राह भगवान्सुनंदेनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को
विरेजे रक्तधारया ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिंतयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥
तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ॥ एवं युध्यन्भ
गवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ॥ २१ ॥ आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्य
मर्षितः ॥ तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥ २२ ॥

बन्दरोंके स्वामी इस बन्दरने तालवृक्षके समान बडी भुजाओंकी मुट्ठी बाँध, रोहिणीके पुत्र बलरामजीके पास जाकर उनकी छातीमें एक घूँसा मारा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यादवोंके इन्द्र बलरामजी भी हल मूसलको छोड और अत्यन्त क्रोधितहोकर भुजाओंसे उसके कंठको मर्दन करनेलगे, उस समय वह बन्दर रुधिरको वमन करताहुआ पृथ्वीमें गिरकर मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ २४ ॥ हे कुरुशार्दुल ! जिस समय वह बन्दर गिरा तब जैसे जलमें नाव काँपती है, उसी प्रकार टंक और वृक्षोंसहित वह पर्वत काँपने लगा ॥ २५ ॥ आकाशमार्गमें देवता, सिद्ध, मुनीश्वर फूलोंकी वर्षा कर जयशब्द और नमःशब्द और भले भले शब्द करने लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार जगतके नाश करनेवाले बन्दरको मार और जनोंसे स्तुतिको

स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत ॥ २३ ॥ यादवेंद्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललांगले ॥ जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकंपे तेन पतता सटंकः सवनस्पतिः ॥ पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवांभसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुसाध्विति चांबरे ॥ सुरसिद्ध मुनींद्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २६ ॥ एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥ संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुर माविशत् ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजंल्लक्ष्मणां समितिंजयः ॥ स्वयंवरस्थामहरत्सांबो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥

प्राप्त होकर ऐसे भगवान् बलदेवजी अपनी पुरी द्वारकामें आये ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ दोहा–अरसठमाहीं साम्बको, कौरव कीन्हों बन्द । हलधर गजपुर उलटकर, लाये सुत निरद्वन्द ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! युद्धमें जीतनेवाला जाम्बवतीका पुत्र साम्ब दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको जब स्वयंवरमेंसे हर लाया, उस समय सम्पूर्ण कौरव क्रोधित होकर कहने लगे कि, यह बालक बडा अनम्र है, क्योंकि हमारा अनादर करके इच्छा न

करती हमारी कन्याको बलात्कार हरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ इसलिये इस अनम्र बालकको पकड़कर बांध लो, यादव हमारा क्या करेंगे, क्योंकि वह तो हमारी ही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुए हैं और हमारी ही दी हुई पृथ्वीका भोग करते हैं ॥ ३ ॥ इस बालकको बँधा सुनकर जो यहां यादव आवेंगे,तो जैसे प्राणायाम करनेपर इन्द्रियें शांत हो जाती हैं, उसी प्रकार गर्वभंजन होनेपर शांतिको प्राप्त होंगे ॥४॥ हे महाराज ! इस प्रकार भीष्मजीकी सम्मतिसे कर्ण,शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन यह बांधनेका उपाय करने लगे ॥५ ॥ महारथी साम्ब पीछे आते छः धृतराष्ट्रके अनुयायियोंको देखकर सुन्दरधनुष हाथमें ले सिंहके समान अकेला ही खड़ा हुआ॥६॥इसके उपरांत कर्णादि धनुषधारी

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यंति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुंजते महीम् ॥ ३ ॥
निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यंतीह वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यांति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥
इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ सांबमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः सांबो
धार्तराष्ट्रान्महारथः ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥ तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेति भाषिणः ॥
आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽपाविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनंदन ॥ नामृष्यत्तद
चिंत्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन्षड्रथान्वीरस्ताव
द्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥

वीर क्रोधमें भर साम्बको पकड़नेके लिये“खड़ा रह,खड़ा रह”इस प्रकार कहते हुए निकट आकर बाणोंकी वर्षा करनेलगे॥७॥हे कुरुकुलभूषण ! यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके पुत्र साम्बके जब कौरवोंने बाण मारे तब वह,क्षुद्र, पशुओंके पराक्रमको सिंह जैसे सहन नहीं करता है उसी प्रकार सांब उनका बल नहीं सह सके ॥ ८ ॥ इसके पीछे वीर सांबने मनोहर धनुष चढ़ाकर कर्णादिक छः वीरोंको छः बाणोंसे एकसंग बींध डाला॥९॥ चार बाणोंसे रथके चारों घोंडोंको और एक बाणसे रथवान्को बाँध डाला, तब बडे बडे धनुषधारीछः रथी

साम्बके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ उन कौरवोंमेंसे चार जने तो सांबके चारों घोडोंको और एक जनेने रथवानको मारा, एकने धनुषको तोड़ दिया इस प्रकार मिलकर सांबको विरथ करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरांत हे परीक्षित् ! कौरववीर युद्धमें बालक सांबको विरथ कर उन्हें बांध जीतके अपनी कन्या ले अपने पुरमें चले गये ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! देवर्षि नारदजीके मुखसे साम्बको बँधा सुन यादव अत्यन्त क्रोधित हो; राजा उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे लड़नेका उद्यम करनेलगे ॥ १३ ॥ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले बलदेवजी, कौरव और यादवोंका विरोध न हो, यह विचार कवच पहरे हथियार बांध, यादवोंको समझाय ॥ १४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ॥ एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥११॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥ कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः ॥ कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥ सांत्वयित्वा तु तान्रामः सन्नद्धान्वृष्णिपुंगवान् ॥ नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥१४॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चंद्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामासधृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवंद्यांबिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मंगलपाणयः ॥ १८ ॥

रथमें बैठ, ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको संग लेकर, जैसे ग्रहों सहित चंद्रमा जाता है, उसी प्रकार हस्तिनापुरको चले गये ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महाबलवान् बलरामजीने हस्तिनापुरमें पहुँच और पुरके बाहर बगीचेमें ठहरकर कौरवोंका अभिप्राय जाननेके लिये धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीको भेजा ॥ १६ ॥ उद्धवजीने अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको प्रणाम कर भीष्मजी और बाह्लीक सहित द्रोणाचार्य व दुर्योधनको विधिपूर्वक प्रणाम करके "बलदेवजी आये हैं" यह कहा ॥ १७ ॥ अत्यन्त हितकारी बलरामजीको आया हुआ सुन सब कौरव अतिप्रसन्न हो उद्धवजीका पूजनकर और भट हाथमें ले ले भगवान् बलरामजीके सम्मुख गये ॥ १८ ॥

और सम्पूर्ण कौरवोंने यथायोग्य बलदेवजीसे मिलकर गौ और धन दिया और कौरवोंमें बलरामजीके प्रभावको जाननेवाले इन्हे शिर नवाकर प्रणाम करने लगे ॥ १९ ॥ समस्त बन्धु बांधवोंकी कुशल श्रवण कर, परस्परकुशल क्षेम पूछ, इसके पीछे जिनके सुननेसे व्याकुलता उत्पन्न हो ऐसा वचन बलरामजी कहने लगे ॥ २० ॥ बलरामजीने कहा कि, सामर्थ्यवान् पृथ्वीके ईश्वर राजा उग्रसेनने जो तुम्हे आज्ञा की है, उसे एकाग्रचित्तसे श्रवण कर शीघ्र उसका पालन करो ॥ २१ ॥ राजा उग्रसेनने यह कहा है कि, तुम बहुत जनोंने जो अधर्म कर उस धर्मात्मा बालकको बांध लिया है, यह तुम्हारा अपराध भाइयोंकी परस्पर एकता रहै, विरोध न हो, इस लिए हमने सहन कर लिया

तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥ १९ ॥ बंधून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलंबितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥ अबध्नीताथ तन्मृष्ये बंधूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥ अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः ॥ वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥ चामरव्यजने शंखमातपत्रं च पाण्डरम् ॥ किरीटमासनं शय्यां भुंजंत्यस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥

अब तुम शीघ्र साम्बको लाकर हमारे अर्पण करो ॥२२॥ इस प्रकार पराक्रम शूरता, बलयुक्त और अपने सामर्थ्यके समान बलरामजीके वचन सुन अत्यन्त कुपित होकर कौरव कहने लगे ॥ २३ ॥ कि, अहो ! बडे आश्चर्यकी बात है, देखो ! कालकी गति बडी दुरत्यय है जो मुकुटके सेवा करने योग्य मस्तकपर जूती अपना अधिकार करना चाहती है ॥२४ ॥ इनके यहांसे जबसे पृथाको ब्याह कर लाये तबसे ही यादवोंसे सम्बन्ध हुआ और हमने ही पलंगपर सुवा, संग बिठा, संग भोजन करा, राज्यसिंहासन दे यादवोंको अपने समान करलिया है॥२५॥ चँमर, पंखा,

श्वेतछत्र, किरीट, आसन और शय्या इत्यादि हमारी दी हुई वस्तु यादवलोग भोग करते हैं ॥ २६ ॥ जैसे कोई सर्पोंको दूध पिलाता है और वह पिलानेवालेको ही काटते हैं, इसीप्रकार इन्होंने हमारे साथ वर्त्ताव किया, ऐसे यादव राज्यकी वस्तु छत्र, चामरादिसे परिपूर्ण हो और हमारी ही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुए, अब हमको ही आज्ञा करते हैं.बडे कष्टकी बात है कि,इन्हें लाज न आई, इसलिये यादव बडे निर्लज्ज हैं ॥ २७ ॥ भीष्म, द्रोण और अर्जुन आदि कौरवोंकी न दी हुई वस्तु क्या इंद्र भी ले सकता है । कभी नहीं जिस प्रकार सिंहकी वस्तु उसके दिये विना भेड़ नहीं ग्रहण कर सकती ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे भरतवंशावतंस परीक्षित् । इस प्रकार जन्मबन्धु और लक्ष्मीसे

अलं यदूनां नरदेवलांछनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम्॥ येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयंत्यद्य गतत्रपा
बत॥२७॥कथमिंद्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः॥ अदत्तमवरुंधीत सिंहग्रस्तमिवोरणः॥२८॥श्रीशुक उवाच ॥
जन्मबंधुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ॥ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥२९॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं
श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः ॥ अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३०॥ नूनं नानामदोन्नद्धाः शांति नेच्छंत्य
1026 साधवः ॥ तेषां हि प्रशमो दंडः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१॥ अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ॥ सांत्वयि
त्वाऽहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥

मदोन्मत्त वह असभ्य कौरव बलरामजीसे दुर्वचन कहकर हस्तिनापुरको चले गये ॥ २९ ॥ कौरवोंकी दुष्टता देख और न कहने योग्य वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो, देखनेमें न आवैं इस प्रकार बलरामजी वारंवार हँसकर कहने लगे ॥ ३० ॥ कि, अनेक प्रकारके मदसे मर्यादारहित असाधु कौरव निश्चय ही शांति नहीं चाहते, पशु जैसे लाठीसे ही शांत होते हैं, उसी प्रकार दुष्टोंके शांति करनेका उपाय दण्ड ही है॥ ३१ ॥ अत्यन्त क्रोधी यादवोंको धीरे २ समझाकर और क्रोधमें भरे श्रीकृष्णको समझाकर इन कौरवोंका मिलाप करानेके लिये मैं यहां आया हूँ ॥ ३२ ॥

और यह मन्दबुद्धि, कलहप्रिय, दुष्ट, अभिमानी कौरवोंने मेरा अपमान करके मुझे निन्दित वचन कहे ॥ ३३ ॥ भोज, वृष्णि, अंधक कुलके ईश्वर, उग्रसेनकी आज्ञाको इंद्रादि बडे बडे लोकपाल भी मानते हैं. सो क्या वह कौरवोंको आज्ञा करनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रने देवराज इन्द्रकी सभाको पांवोंसे खूंद और देवताओंका कल्पवृक्ष लाकर अपनें महलके बगीचेमें लगाया, वह क्या समर्थ नहीं है ? ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी लक्ष्मी साक्षात् जिनके चरणारविन्दोंका सेवन करें वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र क्या राजाओंकी वस्तुके योग्य नहीं हैं ? ॥ ३६ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी रज, सब लोकोंका पालन करनेवाले ब्रह्मादिक अपने मुकुटयुक्त माथेपर धारण

त इमे मंदमतयः कलहाभिरताः खलाः ॥ तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किल विभुर्भो
जवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥३४॥ सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमरांघ्रिपः ॥
आनीय भुज्यते सोऽसा न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ॥ स नार्हति
किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ॥
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाःकलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क॥३७॥भुंजते कुरुभिर्दत्तं भूखंडं वृष्णयः किल॥
उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥३८॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ॥ असंबद्धा गिरो रूक्षाः
कः सहेतानुशासिता॥३९॥अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः॥गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निवजगत्त्रयम्॥४०॥

करते हैं और जो गंगा तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाली हैं, जिनके अंशके अंश ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी और हम संपूर्ण बहुत दिनों तक चरणारविंदकी रजको माथेपर धारण करते हैं; उन श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख राजसिंहासन क्या पदार्थ है ? ॥ ३७ ॥ कौरवोंने पृथ्वीके खण्ड कर दिये हैं, उसका यादव भोग करते हैं और हम पांवकी जूती और कौरव शिर ठहरे ॥ ३८ ॥ अहो ! ऐश्वर्यसे मतवालोंके समान अभिमानी कौरवोंके कर्कश टेढे वचनोंको सुनकर दण्डका देनेवाला कौन पुरुष सह सकेगा ? ॥ ३९ ॥ इसलिये अब कौरवोंसे रहित पृथ्वी करूंगा, इस प्रकार

भगवान् बलदेवजी मनमें निश्चय कर हल हाथमें ले मानों त्रिलोकीको भस्म करदेंगे, ऐसे अत्यन्त क्रोधित हो खडे हो गये ॥४० ॥ असहनतासे बलदेवजीने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको उखाड़कर नाश करनेके लिये गंगाजीकी ओर खैंचा *॥४१॥ नौकाके समान भ्रमण करके गंगाजीमें गिरते नगरको देख अत्यन्त भ्रमित हो, कौरव लक्ष्मणा सहित साम्बको आगे कर हाथ जोड कुटुम्बसहित जीवनकी इच्छा करके सामर्थ्यवान् भगवान् बलरामजीकी शरण आये ॥ ४२॥४३ ॥ और आकर कहने लगे कि, हे राम। हे राम। हे सबके आश्रय।

लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ॥ विचकर्ष स गंगायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥४१॥ जलयानमिवाघूर्णं गंगायां नगरं पतत् ॥ आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः॥४२॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुंबा जिजीषवः॥ सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य सांबं प्रांजलयः प्रभुम्॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ॥ मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षंतुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ॥ लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदंति हि॥४५॥

त्वमेव मूर्ध्नीदमनंत लीलया भूमंडलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ॥ अंते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः शेषोऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥

हम तुम्हारा प्रभाव नहीं जानते थे, इसलिये हमारे ऊपर तुम क्षमा करने योग्य हो ॥ ४४ ॥ स्थिति, उत्पत्ति और नाश इनके तुम निराश्रय कारण हो. हे ईश। यह लोक तुम्हारी लीला करनेका खिलौना है ॥ ४५ ॥ हे अनन्त। हे सहस्रमूर्द्धन्। तुम इस भूमण्डलको लीलापूर्वक ही मस्तकपर धारण करते हो और अन्त समय सब विश्वको उदरमें धारकर शेषशय्यापर शयन करते हो, इसलिये आप अद्वितीय

---

* शंका—हस्तिनापुरमें अनेक प्रकारके प्राणी तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, साधु, सन्यासी गाय, पशु और अनेक जातिके पशु पक्षी बसते थे, ऐसे हस्तिनापुरको जलमें डुबानेके लिये बलदेवजी उपस्थित हुए, इस पापसे नहीं डरे कि, हस्तिनापुरको जलमें डुबोवेंगे तो असंख्य जीवोंकी हत्या होगी यह विचार क्यों नहीं किया? अकेले कौरवोंको डुबोनेकी क्यों नहीं इच्छा की, सब पुरवासियोंने क्या अपराध किया था. अपराध तो कौरवोंने किया था?

उत्तर—कौरवोंने उग्रसेनकी और यदुवंशियोंकी निन्दा करी। तब बलदेवजी अपने बडोंकी और सब कुलकी निन्दा सुनके बडे क्रोधित हुये उसी क्रोधसे व्याकुल होकर जीवोंकी हत्याको भूलगये ॥

ब्रह्म हो ॥ ४६ ॥ हे भगवन्! सत्वगुणी तुम्हारा क्रोध सबकी रक्षा देनेके लिये है, कुछ द्वेष और मत्सरता नहीं है, हे राम! विश्वकी स्थिति और पालन करना कोपका तात्पर्य है ॥ ४७ ॥ हे संपूर्ण प्राणियोंके आत्मा! हे सम्पूर्ण शक्तिके धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है. हे विश्वके धारण करनेवाले!हम आपकी शरण आये हैं॥४८॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम! उद्वेगयुक्त शरण आये कौरवोंने कि,जिनका नगर कम्पित हो रहा था, जब इस प्रकारसे भगवान् बलरामजीको प्रसन्न किया, तब बलरामजीने प्रसन्न होकर उनको, "भय मत करो" यह अभयदान दिया ॥४९॥ इसके उपरान्त राजा दुर्योधनने अपनी कन्याके दहेजमें साठ साठ वर्षकी अवस्थाके बारह सहस्र हाथी और बारह हजार घोडे दिये ॥५०॥ हे राजन्! सुवर्णके साजसे शोभायमान, सूर्यके समान चमचमाहट ऐसे छः हजार रथ दिये और पुत्रीपर प्यार अधिक होनेके कारण दुर्योधनने धुकधुकी कण्ठमें पहरे हजार दासी दीं ॥ ५१॥ यादवश्रेष्ठ बलदेवजीने सम्पूर्ण दहेज ग्रहण कर और बेटा बहूको संग ले कौरवोंका अभिवादन ग्रहण कर वहांसे प्रस्थान किया ॥ ५२ ॥ हे नृप! सम्पूर्ण कौरवोंसे बिदा हो हलधारी बलदेवजी अपने पुरमें आय, स्नेह भरे चित्तसे,सब बंधु बांधवोंसे मिल, उत्तम यादवोंकी सभामें बैठ कौरवोंने जो जो बातें की थीं, सो सब कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे राजा परीक्षित्! इस कारण अबतक हस्तिनापुर, बलरामजीके पराक्रमको सूचना कराता दक्षिण दिशाकी ओरसे गंगाजीमें

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ॥ बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥४७॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय ॥ विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ॥ प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुंजरान्षष्टिहायनान् ॥ ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरंगमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ॥ दासीनां निष्ककंठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनंदितः ॥ ५२॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः॥ शशंस सर्वं यदुपुंगवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ॥ समुन्नतं दक्षिणतो गंगायामनु दृश्यते ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे हस्तिनापुरकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

झुका दिखाई देता है ॥५४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भाषाटीकायां संकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ दोहा–उनहत्तरवें देखकर, घर घर कृष्णविहार । अति विस्मित भये देवऋषि, पुनि सब मिटो विकार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! नरकासुरका वधकर अकेले भगवान्ने बहुत स्त्रियोंके साथ विवाह किया यह बात सुन देखनेकी इच्छासे देवर्षि नारद द्वारकापुरी आये * ॥ १ ॥ नारदजी विचार करने लगे कि, बडे आश्चर्यकी बात है. एक देहसे एक संग अलग अलग घरोंमें सोलह

श्रीशुक उवाच ॥ नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥ कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ॥ गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ॥ पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेंदीवरांभोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥

1008 सहस्र स्त्रियोंका कृष्णचन्द्रने एक ही साथ पाणिग्रहण किया ॥ ॥२॥ इस प्रकार उत्कंठासे नारदजी द्वारकापुरीमें आये, जिस द्वारकापुरीमें, फूली फुलवारी और बागमें पक्षी तथा भौंरोंके झुण्ड गुञ्जार रहे थे ॥ ३ ॥ फूले हुए इन्दीवर, अम्भोज, कह्लार, कुमुद और उत्पलोंसे सरोवर व्याप्त थे, उनमें उच्च स्वरसे हंस, सारस बोलते थे, उनका शोर हो रहा था ॥ ४ ॥

---

* शंका– मुनीश्वर नारदकी बुद्धि क्या भ्रष्ट होगई ! त्रिलोकीनाथको षोडश सहस्र १६००० स्त्रियोंके संग क्रीडा सुनके आश्चर्य मानना बिना प्रयोजन दुःखी होना यह काम साधुलोगोंका नहीं है, यह काम तो मूर्खोंका है, जो कोई कहे कि,नारदको माया ग्रसित कर रही है. तो यह बात वृथा है, माया तो बारंबार ग्रसित नहीं करती है, एकवार पाप ग्रसित करता है ॥ उत्तर–जो कोई प्राणी भूलकर थोडासा भी पाप करलेता है, फिर वह पाप करनेसे नहीं डरता, ऐसे ही बहुतसे जीवोंको बिना विचार किये नारदने शाप दे २ कर दुःख दिया, उन्ही पापोंसे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भगवान्में दुष्टबुद्धि करने लगे, पापसे सम्पूर्ण मूर्ख हो गये ॥

स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाशमान, सुवर्ण व रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौ लाख महल बन रहे थे ॥ ५ ॥ अलग २ राजमार्ग और
गली, कूचे, बाजार, शाला, सभा और देवतालोगोंके मंदिर बन रहे थे उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगती थी, मार्ग, आंगन, गली
और देहलियोंमें छिड़काव हो रहा था, छोटी छोटी पताका और बडी बडी ध्वजाओंके फहरानेसे वहां धूप नहीं आती थी॥६॥ इस द्वारकापुरीमें
सम्पूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तःपुरकी रचनामें विश्वकर्माने अपनी सम्पूर्ण चतुराई दिखाई थी ॥ ७ ॥ इस प्रकार सोलह
हजार महलोंसे शोभायमान अन्तःपुरमें श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनपर देवर्षि नारदजी गये ॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है, जहां मूँगोंके

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः
शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलिं पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं
श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलं
कृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तंभैर्वैडूर्यफलकोत्तमैः ॥ इंद्रनीलमयैः कुड्यै
र्जगत्या चाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलंबिभिः ॥ दांतैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १०॥
दासीभिर्निष्ककंठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ॥ पुंभिः सकंचुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥

खम्भ लग रहे थे और वैडूर्यमणियोंके फलकोत्तम अर्थात् खम्भ धरनेकी चौकियें बन रही थीं, इन्द्रनीलमणियोंकी भीतें और अत्यन्त
शोभायमान नीलमणिकी भूमि बन रही थी ॥ ९ ॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लगीं, ऐसे विश्वकर्माके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक
शोभायमान था, मणियोंसे शोभायमान हाथीदांतकी चौकी और पलंग बिछ रहे थे, उनकी अलग ही शोभा हो रही थी ॥ १० ॥ धुकधुकी
कण्ठमें पहरे, सुन्दर वस्त्र धारे दासियोंसे तथा जामा, पगड़ी, पटका और मणियोंके कुण्डलोंको पहरे पुरुषोंसे शोभायमान था ॥ ११॥

हे राजा परीक्षित् ! रत्नोंके दीपकोंकी पंक्ति लग रही थीं,उनके प्रकाशसे उस भवनमें अन्धकार नहीं था और घरोंके भीतर अगरकी धूपका धुआँ जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था, उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र विचित्र छज्जोंके ऊपर नृत्य कर रहे थे ॥ १२ ॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान, गहना पहरे, सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी दण्डीका चँमर,पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर चँवर कर रही थी,इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ १३ ॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलंगपरसे शीघ्र उठ किरीटयुक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु शिखंडिनोऽङ्ग॥नृत्यंति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यांतमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥ तस्मिन्समानगणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्त्वतपतिं परिवीजयंत्या ॥ १३ ॥ तं संनिरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम्॥१५॥ सम्पूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥ १६ ॥

नमस्कार कर हाथ जोड उन्हें अपने आसनपर बैठाला ॥ १४॥ जगत्के अतिशय गुरु, साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके चरण धो, चरणामृत अपने मस्तक पर चढ़ाया,जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करती हैं उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥ १५ ॥ नरके सखा, ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण नारदजीका शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजन कर अमृतकी तुल्य प्रमाणीभूत मधुर वाणीसे कहने लगे कि,हे नारदजी ! आपके आनेसे मंगल हुआ. हे समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारा क्या पूजन करें ? यह कहने लगे ॥ १६ ॥

नारदजी बोले कि,हे समर्थ भगवन्।हे उरुगाय आप सब जीवोंसे मित्रता रखते हो और दुष्टोंको दण्ड देतेहो,सब लोगोंके नाथ तुममें यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जगत्की स्थिति और रक्षासहित कल्याण करनेके लिये अपनी इच्छानुसार अवतार लेते हो, यह मैं भले प्रकार जानता हूँ कि, दुष्टोंको दण्ड और साधुओंका सत्कार करना, यही तुमको योग्य है ॥१७॥ मनुष्योंको मोक्षके देनेवाले और बडे ज्ञानी, ब्रह्मादिक देवता जिनका हृदयमें ध्यान धरते हैं, जो संसाररूपी कूपमें पड़े जीवोंको निकालनेके आश्रयभूत तुम्हारे चरणारविन्दोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ,अब ऐसी कृपा करो कि, 'मुझे सदा तुम्हारा स्मरण बना रहे और तुम्हारे चरणारविंदोंका ध्यान करता हुआ सुखसे विचरूं ॥ १८ ॥

नारद उवाच॥ नैवाद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम्॥निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥१७॥ दृष्टं तवांघ्रियुगलं जनताऽपवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ॥ योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥ दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः॥२०॥पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति॥ क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः॥२१॥अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनं कुरु॥स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद् गृहम्॥२२॥तत्राप्याचष्ट गोविंदं लालयंतं सुताञ्छिशून्॥ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम्॥२३॥

हे राजा परीक्षित।इस प्रकार कह नारदजी योगेश्वर श्रीकृष्णचंद्रकी योगमाया जाननेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर रानियोंके महलमें गये॥१९॥उस महलमें भी प्यारी सत्यभामाके संग और उद्धवजीके संग चौपड खेलते श्रीकृष्णचंद्रको देवर्षि नारदजीने देखा। इनको देखतेही श्रीकृष्णचन्द्र परम भक्तिपूर्वक उठ,आसन बिछाय,अर्घ्य देकर पूजन करने लगे॥२०॥"तुम कब आये"इस प्रकार अज्ञानीके समान श्रीभगवान् नारदजीसे पूँछने लगे, पूर्ण आपका हम अपूर्ण क्या पूजन करें॥ २१॥ हे ब्रह्मन्! हम पूर्ण नहीं है,परन्तु तो भी हमसे कुछ आज्ञा कर हमारा जन्म सार्थक करो। यह सुन नारदजी आश्चर्य मानकर वहांसे और मन्दिरमें गये॥ २२॥उस महलमें भी छोटे छोटे बालकोंको खिलाते श्रीकृष्ण

चन्द्रजीको देखा। इसके उपरान्त और महलोंमें जाकर देखें तो स्नानका उपाय कर रहे हैं ॥२३॥ किसी महलमें श्रीकृष्णचन्द्र अग्निहोत्र कर रहे हैं, किसीमें पंचयज्ञ कर रहे और किसी महलमें ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय उनका बचा प्रसाद आप भोजन कर रहे हैं, इस प्रकार श्रीकृष्णचंद्रका दर्शन किया ॥ २४ ॥ किसी महलमें संध्या और किसीमें मौन होकर गायत्री जप रहे हैं, एक महलमें ढाल तलवार लेकर फिर रहे हैं इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ ॥ २५ ॥ किसी महलमें घोडे, हाथी, रथोंपर चढ़कर फिर रहे हैं और किसी महलमें शयन कर रहे हैं, बन्दीजन स्तुति कर रहे हैं इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका नारदजीने दर्शन किया ॥ २६ ॥ किसी महलमें उद्धवादिक मंत्रियोंके संग विहार करते देखा और किसी महलमें मुख्य मुख्य वारांगना स्त्रियोंके संग जलमें विहार करते श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया

जुह्वंतं च वितानाग्नीन्यजंतं पंचभिर्मखैः॥भोजयंतं द्विजान्क्वापि भुंजानमवशेषितम्॥२४॥क्वापि संध्यामुपासीनं जपंतं ब्रह्म वाग्यतम् ॥ एकत्र चासिचर्मभ्यां चरंतमसिवर्त्मसु ॥२५॥ अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरंतं गदाग्रजम्॥क्वचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानं च बंदिभिः ॥ २६ ॥ मंत्रयंतं च कस्मिंश्चिन्मंत्रिभिश्चोद्धवादिभिः ॥ जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ॥ इतिहासपुराणानि शृण्वंतं मंगलानि च ॥ २८ ॥ हसंतं हासकथया कदाचित्प्रियया गृहे ॥ क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥ ध्यायंतमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ शुश्रुषंतं गुरून्क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥३०॥ कुर्वंतं विग्रहं कैश्चित्संधिं चान्यत्र केशवम् ॥ कुत्रापि सह रामेण चिंतयंतं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥

॥२७॥ किसी महलमें शृंगार करके ब्राह्मणोंको गौ दान कर रहे हैं और किसी महलमें इतिहास, पुराण, मंगलरूपी वाक्य श्रवण करते श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये॥ २८॥ किसी महलमें हँसीकी बात कहकर श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीके संग हँस रहे हैं, किसी महलमें अपने धर्मकी सेवा करते हैं और किसी महलमें अर्थ और कामका संपादन कर रहे हैं ॥ २९ ॥ किसी महलमें मायासे अतीत परब्रह्मका एकासनपर बैठे ध्यान कर रहे हैं और किसी महलमें काम, भोग, पूजन इत्यादिसे गुरुकी शुश्रूषा कर रहे हैं ॥ ३० ॥ किसी महलमें युद्ध और किसीमें मिलापकी बातें कर रहे और किसी महलमें बलदेवजीके संग साधुओंके सुखार्थ यत्न कर रहे हैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया॥ ३१ ॥

किसी महलमें समयपर सदृश स्त्रियोंको देखकर पुत्रोंका विवाह करते हैं और किसी महलमें अपनी कन्याके समान वर देख द्रव्यों करके विवाह करते हैं॥३२॥ किसी महलमें कन्या और जमाईको बिदा कर रहे हैं और किसी महलमें पुत्रोंको सुसराल भेजकर उनकी स्त्रियोंको बुलाते हैं,इस प्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंका बड़ा उत्सव देख लोग आश्चर्यको प्राप्त हो गये ॥३३॥ किसी महलमें बडे यज्ञोंसे अपनी कला देवताओंका पूजन कर रहे हैं और किसी महलमें, अमुक रास्तेमें कुआँ बनाओ, बाग लगाओ और नवीन मंदिर बनवाओ इस प्रकार धर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा ॥३४॥ किसी महलसे सिंधुदेशके घोडेपर चढ यादवोंको संग ले शिकार खेलनेको जा रहे हैं, वहां चित्र विचित्र पशुओंको मारते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३५ ॥ किसी महलमें अपना रूप छिपाकर अंतःपुरके भीतर गृहादिमें प्रजाका अभिप्राय जाननेके लिये विचरते योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥३६॥ इस प्रकार मनुष्यदेहको प्राप्त हुए श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका वैभव देख संपूर्ण लीला देखनेके उपरान्त नारदजी हँसकर कहने लगे ॥ ३७ ॥ योगेश्वर ! तुम्हारे चरणारविन्दोंकी सेवा करके मेरे मनमें प्रकाशमान तुम्हारी योगमाया ही केवल हम जानते हैं और तुम्हारा सत्यरूप नहीं जानते ॥३८॥ हे देव ! तुम्हारे यशसे व्याप्त लोकमें सब लोकोंमें पवित्र करने वाली तुम्हारी लीला मैं गाता फिरूं, यह आज्ञा तुम मुझे दो इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ३९ ॥

पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ॥ दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयंतं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥ प्रस्थापनोपानय
नैरपत्यानां महोत्सवान् ॥ वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजंतं सकलान्देवा
न्कापि क्रतुभिरूर्जितैः ॥ पूर्तयंतं क्वचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥ ३४ चरंतं मृगयां कापि हयमारुह्य
सैन्धवम् ॥ घ्नंतं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुंगवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगं प्रकृतिष्वंतःपुरगृहादिषु ॥ क्वचिच्चरंतं
योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ॥ योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो
गतिम् ॥ ३७ ॥ विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ॥ योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥
अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाऽऽप्लुतान्॥ पर्यटामि तवोद्गायंल्लीलां भुवनपावनीम् ॥ ३९ ॥

1011

तब श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन्! धर्मका करनेवाला हूँ और दूसरेको धर्म करता देखकर प्रशंसा करता हूँ; इस कारण सब लोकोंके सिखानेके लिये मैं कर्म करता हूँ इसलिये हे अंग! तुम अपने मनमें खेद मत करो ॥४०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित्! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषोंके पवित्र करनेवाले, श्रेष्ठ धर्मके कर्त्ता अकेले श्रीकृष्णचन्द्रको सब घरोंमें नारदजीने देखा ॥ ४१ ॥ अनन्त पराक्रम श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका बडा उदय वारंवार देखकर लीलापूर्वक ही नारदजीको बडा आश्चर्य प्राप्त हुआ ॥४२॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें श्रद्धा सहित मन लगाये श्रीकृष्णचन्द्रसे भले प्रकार पूजित होकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको मनमें स्मरण करते चले गये॥४३॥हे राजन्!

श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ॥ तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरंतं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् ॥ तमेव सर्वगेहेषु संतमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानंतवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ॥ मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥ इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ॥ सम्यक्सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ॥ रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवरांगनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ॥ यस्त्वंग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ॥ गृहीतकंठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

इस प्रकार मनुष्योंका मार्ग चलनेवाले, सब जीवोंका कल्याण करनेके लिये अनेक मूर्ति धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र सोलह हजार श्रेष्ठ स्त्रियोंके बीचमें लाजभरी स्नेहकी चितवन, हँसन इनसे सेवित होकर रमण करने लगे ॥४४॥ हे परीक्षित्! विश्वकी प्रलय और उत्पत्तिके कारण हरि भगवान्के दूसरोंको अगम्य साधारण कर्म इस संसारमें जो पुरुष गावें अथवा सुनें या बडाई करें उन पुरुषोंको मोक्षके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी भक्ति प्राप्त होती है ॥४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ दोहा–सत्तरमें गोविन्दको, भारी परा विचार। इतते आयो दूत इक, उत नारद अविकार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,

हे परीक्षित ! स्वामियोंके गलेमें भुजा डाले, हृदयसे चिपटाये श्रीकृष्णचंद्रकी स्त्रियें प्रातःकालके समय अरुणशिखाओंका (मुर्गोंका) शब्द सुन “श्रीकृष्णचंद्र जाग उठेंगे” इस प्रकार जानकर विरहसे आतुर हो उन मुर्गोंसे क्रोध कर कहने लगीं कि, अरे अभागे ! तुम अभीसे बोलने लगे, श्रीकृष्णचंद्र प्रातःकाल जानकर कहीं उठ न बैठें ? ॥ १ ॥ इसके उपरान्त प्रातःसमय सब पक्षी नींदको त्याग बोलने लगे और कल्पवृक्षकी पवन सूँघकर भौंरे गुञ्जार करने लगे; उनके मनोहर शब्दकी ऐसी शोभा होती थी कि मानों बंदीजन श्रीकृष्णको जगा रहे हैं ॥ २ ॥ अपने प्यारे श्रीकृष्णचंद्रकी भुजाओंके बीचमें प्राप्त हुई रुक्मिणीने आलिंगनका वियोग देख अति सुन्दर प्रातःकालके समयका सहन न किया ॥ ३ ॥ प्रसन्न इन्द्रिय, मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्म मुहूर्त्त अर्थात् सूर्योदयसे दो तीन घडी पहले उठ जलका आचमन कर मायासे परे अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे ॥ ४ ॥ कैसे स्वरूपका ध्यान किया सो कहते हैं. एक अखण्ड स्वयं ज्योतिस्वरूप उपाधिरहित अविनाशी सर्वकाल अविद्यारहित ब्रह्म विश्वकी उत्पत्ति और नाशके कारण अपनी शक्तिसे देखनेमें आवे सत्तामात्र आनन्दरूप ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त निर्मल जलमें स्नान कर धोती पहर श्रीकृष्णचंद्र सन्ध्योपासनादि कर्म और अग्निहोत्र कर मौन हो गायत्रीका जप करने लगे, फिर सूर्यनारायणको अर्घ्य दे अपने अंशके जो देवता, ऋषि पितृ थे उनका तर्पण करके ज्ञानवान् श्रीकृष्णचंद्र ब्राह्मणोंका पूजन करने लगे ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सुवर्णसे सींग मढे अत्यन्त सूधी मोतियोंकी माला पडी दूध देनेवाली और एक ही बारकी ब्याई

वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयंतीव बंदिनः॥ गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मंदारवनवायुभिः॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यद्
तिशोभनम् ॥ परिरंभणविश्लेषात्प्रियबाह्वंतरं गता ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ॥ दध्यौ
प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥ एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ॥ ब्रह्मा
ख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्व शक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतम्॥५॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय
वाससी॥चकार संध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः॥६॥उपस्थायार्कमुद्यंतं तर्पयित्वात्मनः कलाः ॥
देवानृषीन्पितन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मशृंगीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ॥ पयस्विनीनां
गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥

शोभायमान बछडों सहित सुन्दर वस्त्र उढाय ॥ ८ ॥ रूपेसे खुरोंके अग्रभाग मढे ऐसी तेरह हजार चौरासी १२०८४ गौ एक एक महलमेंसे प्रतिदिन शोभायमान सत्पात्र ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र मृगछाला और तिलसहित दान करते थे ॥ ९ ॥ अपनी विभूति गो ब्राह्मण देवता और वृक्षोंको नमस्कार करके मंगल वस्तु कपिलादि गौका स्पर्श करत थे ॥ १० ॥ और नरलोकका भूषणरूप अपने शरीरको वस्त्र और चन्दन इत्यादिसे शोभायमान करते थे ॥ ११ ॥ घीमें मुख देख व कांचन, गाय, वृषभ अथवा देवतालोंगोंका दर्शन कर पीछे नगरनिवासी व सब प्रजागणकी अभिलाषा सिद्ध कर फिर मन्त्री और प्रधानोंका मनोरथ पूर्ण व प्रसन्न कर उनका यथायोग्य आदर सत्कार करते थे, फिर

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ॥ अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने ॥ ९ ॥
गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानि सर्वशः ॥ नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मंगलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास
नरलोकविभूषणैः ॥ वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ॥
10/2
कामांश्च सर्ववर्णानां पौरांतःपुरचारिणाम् ॥ प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनंदत ॥ १२ ॥ स विभज्याग्रतो
विप्रान्स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुंक्त ततः स्वयम् ॥ १३॥तावत्सूत उपानीय स्यंदनं परमाद्भुतम् ॥
सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः॥१४॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं सारथेस्तमथारुहत् ॥ सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वा
द्रिमिव भास्करः ॥१५॥ ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ॥ कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः॥१६॥

कुछ और कार्यको देखते थे ॥ १२ ॥ पहले विप्र फिर मित्र और कार्याधीश व स्त्रियें इनको पान, पुष्प और अरगजा दे, सबसे पीछे उन वस्तुओंको आप अंगीकार करते थे ॥१३॥ हे राजन्! इतनेहीमें सारथीने सुग्रीवादि घोडे जोत परम अद्भुत रथ ला प्रणाम करके सन्मुख खडा कर दिया ॥१४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे रथवान्का हाथ पकड सात्यकी और उद्धवको संग ले जैसे सुर्यनारायण सुमेरु पर्वतके ऊपर चढते हैं, इसी प्रकार रथमें चढ़ गये ॥ १५ ॥ लाजभरी प्रेमकी चितवनसे अन्तःपुरकी स्त्रियोंके देखनेसे मुसकाते

श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त कष्टसे उनको छोड और उनके मन हरकर बाहर निकले ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब घरोंसे अलग अलग निकल, पीछे सब एकरूप हो सब यादवोंको साथ ले भगवान् वासुदेव सुधर्मा सभामें गये. हे राजन् ! इस सुधर्मा सभामें बैठे हुए पुरुषोंको क्षुधा, पिपासा, शीत; गर्मी, शोक और मोह इत्यादि बाधा नहीं व्यापती हैं ❀ ॥ १७ ॥ इस सभामें यादवोंसे वेष्टित व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासनपर बैठ अपनी कांतिसे सब दिशाओंको प्रकाशमान करने लगे,जैसे तारागणोंके बीचमें निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है उसी प्रकार यादवोंके बीचमें बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा होने लगी ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस सभामें भाट अनेक प्रकारसे हँसीकी बातें कर श्रीकृष्णचन्द्रका सेवन करते थे और नटोंमें मुख्य और नृत्य करनेवाली स्त्रियें अलग ही अपने अपने गवैयोंको संग ले सम्मुख

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ प्राविशद्यन्निविष्टानां न संत्यंग षडूर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ॥ वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ ॥ १८ ॥ तत्रोपमंत्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यास्तांडवैः पृथक् ॥ १९ ॥

❀ शंका–सुधर्मासभामें बैठनेवाले जीवोंके हृदयमें काम,क्रोध,लोभ, मद,मोह,मत्सर यह छः वैरी उत्पन्न नहीं होते थे,फिर श्रीकृष्णके हृदयमें वही छहो वैरी क्यों उत्पन्न हुए, जिन छः वैरियोंको ग्रहण करके श्रीकृष्णजीने बडे बडे दुष्टोंको मारा ? यह बडी शंका है।

उत्तर–तीन लोकमें इसलोकका काम तथा परलोकका काम विना काम आदि छहों वैरियोंका सेवन किये कभी भी नहीं सिद्ध होगा इसलिये कामादिक छः शत्रुओंका सेवन अवश्य करना चाहिये परन्तु विचार करके सेवन करना.क्योंकि यह छःशत्रु सुंदर काममें भी हैं,सो सुन्दर काममें छहोंको ग्रहण करना,जैसे सुन्दर कामकी इच्छामें काम इसी प्रकारसे जानलेना चाहिये.और बुरे काममें त्यागना चाहिये। सुधर्मा सभामें बुरे कामवाले छः शत्रु नहीं थे, सुन्दर कामवाले कामादिक छः वैरी थे,इसलिये सुन्दर कामोंके छहों वैरियोंको श्रीकृष्णचंद्रने ग्रहण किया और बुरे कामवालोंको त्याग दिया क्योंकि,यह कामादिक छः वैरी सुन्दर कर्ममें सुंदरफल देते हैं बुरे कर्ममें बुरा फल देते हैं इसलिये कृष्णने सुधर्मा सभामें बैठकर छहों वैरियोंको ग्रहण करके दुष्टोंको जीता और मारा ॥

खडी हुई ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त मृदंग, वीणा, मुरज, बांसुरी, झांझ, शंख इत्यादि बजाकर नृत्य करने लगे और सूत, मागध, बन्दीजन श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ उस समय कोई चतुर ब्राह्मण वेदकी ऋचा पढ़कर व्याख्या देने लगे और कोई कोई ब्राह्मण पवित्र वंशवाले राजाओंकी कथा कहने लगे ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस समय एक अजान मनुष्य उस स्थानपर कहींसे आया, तब ड्योढ़ीवानोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर खबर की, श्रीकृष्णनें आज्ञा दी कि, जाओ उसे लिवा लाओ. तब उस मनुष्यको सभाके भीतर पहुँचाया ॥ २२ ॥ ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख उस पुरुषने हाथ जोड़ नमस्कार करके जरासन्धके कैद किये हुए बीस हजार आठ सौ राजाओंका दुःख कहा ॥ २३ ॥ जब जरासन्धने दिग्विजय किया था, उस समय जिन राजाओंने आकर भेंट नहीं दी थी इसलिये

मृदंगवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ॥ ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधबंदिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ॥ पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ॥ विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२॥ स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृतांजलिः ॥ राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ॥ प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन॥वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः॥२५॥लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥ लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ॥ कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ २७ ॥

10/3

उन बीस हजार आठ सौ राजाओंको पकड़कर गिरिव्रज नाम किलेमें कैद कर दिया है ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे शरणागतका भय काटनेवाले ! इस संसारसे भयभीत, तुमसे प्रेम न करनेवाले हम आपकी शरण आये हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि, यह लोग अतिशय पापकर्ममें लग रहे हैं, सो तुम्हारे बताये कल्याणरूप पूजन सेवनरूप कर्ममें भूल रहे हैं. इस संसारमें जीनेकी आशा काटनेवाले सामर्थ्यवान् कालरूप आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! जगत्के ईश्वर तुमने इस संसारमें साधु पुरुषोंकी रक्षा और दुष्ट पुरुषोंको दण्ड

देनेके लिये अपने अंशसे अवतार धारण किया है और आपके विद्यमान रहते भी जरासन्ध सरीखा बलवान् तुम्हारी आज्ञाको नहीं मानता, आपकी रक्षामें रहे जीव अपने कर्मजनित दुःखोंको प्राप्त होते हैं यह किसलिये होते हैं ? सो हम नहीं जान सकते ॥ २७ ॥ हे ईश ! यह राज्यके सम्बन्धका सुख विषयसाध्य है इसीसे परतन्त्र है, इसी लिये यह स्वप्नसुखके समान है और यह शरीर भी सदैव भयसे युक्त मृतकके समान है, परंतु तो भी हम इस शरीरसे केवल भार्या सन्तानादिकी चिंता करते रहते हैं, निष्काम भक्त जिस स्वतः सुखको आपसे प्राप्त होते हैं, उसे त्याग अत्यन्त कृपण बने आपकी मायासे दुःख पाते हैं क्योंकि पहले निष्काम हो आपके चरणोंकी शरण न ली ॥ २८ ॥ इसलिये दुःखी पुरुषोंका शोक हरनेवाले जिनके चरणकमल हैं, ऐसे आप हम बँधे हुओंको जरासन्धरूपी कर्मबंधनसे

स्वप्रायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ॥ हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहे
ऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥ तन्नो भवान्प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो बद्धान्वियुंक्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ॥ यो भूभुजो
ऽयुतमतंगजवीर्यमेको बिभ्र द्रुरोध भवने मृगराडिवाऽवीः ॥२९॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु
भवंतमनंतवीर्यम् ॥ जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥
इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः ॥ प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ॥ बिभ्रत्पिंगजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥

छुडाओ. दश हजार हाथियोंका बल धारण करनेवाले इस जरासन्धने सिंह जिस प्रकार भेडोंको घेर लेता है, उसी प्रकार अपने दुर्गमें हम राजाओंको रोक रक्खा है ॥ २९ ॥ हे चक्रधर ! हे कृष्ण ! आपसे अठारह बार जरासंधने संग्राम किया और सत्रह वार आपने हरा दिये परंतु अठारहवीं बार संग्राममें आप मनुष्यलीला कर रण छोड गये, आपको यह एक बार जीत महागर्वको प्राप्त हुआ है इसलिये आपकी प्रजा हमको बहुत दुःख को देता है, अब जो आप उचित समझो सो करो ॥३०॥ दूत बोला कि,इस प्रकार जरासंधके रोंके आपके दर्शनकी अभिलाषा किये राजालोग आपके चरणकमलकी शरण लिये हुए ही इन दीनोंका बहुत शीघ्र उद्धार करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार राजाओंका दूत कहही रहा था कि,इतनेहीमें श्रेष्ठ कांतिवाले पीली जटायें धारण किये श्रीमन्नारदजी सूर्यके समान वहां

आय प्रगट हुए ॥३२॥ सब लोकोंके महान् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नारदजीको आया देख अपने सभासदोंसहित शिर नवाकर प्रणाम करने लगे॥३३॥ आसनपर विराजमान नारदजीका विधिपूर्वक सत्कार करके श्रद्धासहित मधुर मधुर वचनोंसे भगवान् तृप्त करने लगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, नारदजी ! त्रिलोकीमें कहीं भय तो नहीं है ? लोकोंमें तुम्हारे भ्रमण करनेसे हमे बडा लाभ है, क्योंकि घर बैठे ही सब समाचार मिल जाते हैं॥ ३५ ॥ ईश्वरके बनाये लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसको तुम न जानो इसलिये हम तुमसे पूछते हैं कि, पाण्डवोंकी क्या करनेकी इच्छा है ? ॥ ३६ ॥ यह सुनकर नारदजीने कहा कि, हे समर्थ ! आप अपनी मायासे

तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ववंद उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥३३ ॥ सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् ॥ बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ॥ ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥३५॥ नहि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ॥ अथ पृच्छामहे युष्मान्पांडवानां चिकीर्षितम्॥३६॥नारद उवाच॥दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः॥ भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिवच्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥३७॥ तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ॥ यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतोऽविमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ॥ लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥

ब्रह्माको भी मोहित करते और अपनी अचिन्तनीय शक्तिसे प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे रहनेपर भी काष्ठमें रहे अग्निके समान गुप्त प्रकाशवाले हो, आपकी माया मैंने कई बार अवलोकन की है, इसलिये यह आपका चरित्र कुछ अद्भुत विदित नहीं होता ॥३७॥ यह संसार जो कि, मिथ्या होनेपर भी आपकी मायासे विद्यमान प्रतीत होता है, इसके उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले आपके अभिप्रायको कौन पुरुष भली भांतिसे जान सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं जान सकता, ऐसे अचिन्त्य स्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३८ ॥ जिन आपने बहुत प्रकार जन्म, मरण पाते और विविध अनर्थकारक शरीरसे मुक्त होनेका उपाय न जननेवाले जीवोंका अज्ञानरूपी

अंधकारका मिटानेवाला अपना यशरूपी दीपक लीलासे अवतार प्रगट किया है, ऐसे आपकी मैं शरण प्राप्त हुआ हूँ॥ ३९ ॥ परन्तु तो भी हे ब्रह्मन्! मनुष्यके अनुकरण करनेवाले आपसे आपकी फूफीके पुत्र भक्त राजा युधिष्ठिर जो कुछ करना चाहते हैं सो मैं कहकर सुनाता हूं ॥ ४० ॥ पाण्डुके पुत्र चक्रवर्ती राज्य करनेकी इच्छा करनेवाले राजा युधिष्ठिर यज्ञराट् राजसूययज्ञ करके तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं;यह आप अनुमोदन करो ॥ ४१ ॥ हे देव ! इस यज्ञमें तुम्हारा दर्शन करनेके लिये इन्द्रादिक देवता आवेंगे और बडे बडे यशस्वी राजा लोग तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे आवेंगे ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! ब्रह्मरूप तुम्हारी कथाओंके श्रवण करनेसे और तुम्हारा ध्यान करनेसे चाण्डाल

अथाप्याश्रावये ब्रह्मन्नरलोकविडंबनम् ॥ राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥४०॥ यक्ष्यति त्वा मखेन्द्रेण
राजसूयेन पांडवः ॥ पारमेष्ठ्यकामो नृपतिर्दस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देव क्रतुवरे भवंतं वै सुरादयः ॥
दिदृक्षवः समेष्यंति राजानश्च यशस्विनः ॥ ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयंतेऽन्तेवसायिनः ॥ तव ब्रह्ममयस्येश
किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥ यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमंगल दिग्वितानम्॥मंदाकिनीति
दिवि भोगवतीतिचाधोगंगेति चेह चरणांबु पुनाति विश्वम् ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजि
गीषया॥ वाचःपेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥

भी पवित्र हो जाते हैं, और जो तुम्हारे दर्शन करनेसे पवित्र हो जायँ तो इसमें कहनेकी बात ही क्या है ? ॥४३॥ हे त्रिलोकीके मंगलरूप ! तुम्हारा निर्मल यश स्वर्ग, रसातल और सम्पूर्ण पृथ्वीमें फैल रहा है और दिशाओंको चँदोवेके समान शोभायमान कर रहा है । स्वर्गमें मंदाकिनीरूप, पातालमें भोगवतीरूप और इस संसारमें आपका चरणोदक गंगारूप होकर सब विश्वको पवित्र कर रहा है इसलिये तुम्हारे चलते ही यज्ञमें बडा मंगल होगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार देवर्षि नारदजीने जब कहा तब इस सभामें अपनी ओरके यादवोंने जरासन्धके जीतनेकी इच्छासे जब यज्ञमें जानेकी अनुमति न दी,तब मनोहर वचनोंसे कुछेक मुसकाते

हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले ॥४५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, उद्धव ! तुम हमारे परममित्र और परमहितकारी हो और गुह्य बातोंके अभिप्रायको भलीभाँति जानते हो, इसकारण इस विषयमें हमको क्या करना चाहिये सो कहो, उसको हम श्रद्धापूर्वक करेंगे ॥ ४६ ॥ सब बातके जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने मानों कुछ नहीं जानते, इस कारण अनजानके समान जब पूछा, तब उद्धव जी श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा शिरपर धारण कर बोले ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे भाषाटीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ दोहा-इकहत्तर उद्धव चतुर, हरिकी सम्मति मान । इन्द्रप्रस्थ गवने तुरत, पांडव बुद्धिनिधान ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार बडी बुद्धिवाले उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन और नारदजीकी सम्मति यज्ञमें जानेकी जान

10/S

श्रीभगवानुवाच॥ त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मंत्रार्थतत्त्ववित् ॥ तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥ ४६ ॥इत्युपामंत्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥ निदेशं शिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधोत्तरार्धे भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ॥ सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ॥ कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥ यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ॥ अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥३॥ अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ॥ यशश्च तव गोविंद राज्ञो बद्धान्विमुंचतः॥४॥

और सभामें बैठनेवाले यादवोंकी सम्मति राजाओंकी रक्षा करनेकी देख और श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छा दोनों कार्य करनेकी देखकर कहने लगे ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रकाशमान श्रीकृष्ण ! देवर्षि नारदजीने जो कहा कि, राजा युधिष्ठिर तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं, सो इनकी भी सहायता करनी योग्य है और शरणागत राजाओंकी भी रक्षा करनी योग्य है ॥ २ ॥ हे समर्थ ! सम्पूर्ण दिशाओंके राजाओंका जीतनेवाला राजसुय यज्ञ करके पूजन होगा इसकारण जरासन्धको भी अवश्य जीतना पड़ेगा,इसमें दोनों कार्य सिद्ध हो जायँगे, यज्ञ भी हो जायगा और शरणागत राजाओंकी रक्षा भी हो जायगी ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! यज्ञमें आप चलेंगे तो हमारे मनोरथ इसीसे

सिद्ध हो जायँगे और हे गोविंद ! बँधे राजाओंको जो छुडाओगे, इसमें आपका बडा ही यश होगा ॥ ४ ॥ बडी चाहनासे जरासन्धके मारनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंको देखकर कहते हैं कि,जरासन्धके समान बलवान् भीमसेनके बिना दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाला जरासन्ध और राजाओंसे नहीं जीता जायगा, क्योंकि भीमसेनके हाथसे ही विधाताने उसकी मृत्यु रची है ॥ ५ ॥ द्वंद्वयुद्धमें जरासन्ध जीता जायगा और सेनाको संग लेकर जो पुरुष उसके जीतनेकी आशा करे तो यह आशा कदापि फलवती न होगी. वह जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त है इस कारण भीमसेन ब्राह्मणका रूप धरकर जो उससे द्वंद्वयुद्ध माँगे तो आशा है कि, वह निषेध नहीं करेगा ॥ ६ ॥ वृक नामा अग्नि जिसके उदरमें रहे सो भीमसेन ब्राह्मणका वेष धारण कर जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा माँगे कि, तुम्हारे साथ मैं द्वंद्वयुद्ध करूंगा, तुम निकट

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ॥ बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥ द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ॥ ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥६॥ ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ॥ हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव संनिधौ ॥७॥ निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ॥ हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥ गायंति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ॥ गोप्यश्च कुंजरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥

रहो तो भीमसेन जरासन्धको अवश्य मारेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ प्राकृत रूपरहित तुम ही तो उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, ब्रह्मा और महादेव तो नाममात्र हैं इसलिये तुम ही पास रहकर जरासन्धका संहार करोगे, भीमसेनका तो केवल नाम ही होगा ॥ ८ ॥ बन्दी हुए राजाओंकी रानियें तुम्हारे निर्मल यशको गाती हैं और जब उनके बालक रोते हैं, तब वह कहती हैं कि, हे पुत्र ! तुम किसलिये रोते हो जो कोई अनाथ हो सो रोवे, तुम्हारे शिरपर तो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र विद्यमान हैं, तुम मत रोओ, जैसे गोपी शंखचूडका मारना और अपना छूटना गाती हैं और गजराजका छूटना व ग्राहकी मृत्यु गाती हैं और जनकनन्दिनी जानकीका छूटना व रावणका मरना जैसे गावे हैं और माता पिताका छूटना, कंसका मरना शरणागत मुनि और हम भक्त गान करते हैं उसी प्रकार जरासन्धका मरना और

616

अपने पतियोंका छूटना राजाओंकी स्त्रियें वारंवार गाती हैं ॥ ९ ॥ हे कृष्ण! जरासन्धके मरनेसे बड़ा कार्य सिद्ध होगा और फिर यज्ञ हो
यह आपकी इच्छा है ही, राजा युधिष्ठिरके पास जानेसे सब काम बन जायगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! सब ओरसे मंगलरूप
बडी युक्ति सहित उद्धवजीका वचन सुन नारदजी बड़ाई करने लगे, इसके उपरान्त मुख्य यादव और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी प्रशंसा
करने लगे॥ ११ ॥ इसके पीछे देवकीनन्दन सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चलनेके लिये सेवक दारुक रथवान् और हाथियोंके महावत इनको
आज्ञा करने व वसुदेव इत्यादि बड़ेसे आज्ञा मांगने लगे॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! पुत्र, दासी, दास और सामग्रियोंसहित प्रथम अपनी रानियोंको

जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ॥ प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धव
वचो राजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् ॥ देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥ अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देव
कीसुतः ॥ भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् ॥
संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ॥ सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततो रथद्विपभटसा
दिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया ॥ मृदंगभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोषघोषत्ककुभो निराक्रमत् ॥ १४ ॥ नृवा
जिकांचनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः॥ वरांबराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपा
णिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवारयोषितः ॥ स्वलंकृताः कटकुटिकंबलांबराद्युपस्करा
ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥

भेज बलराम और राजा उग्रसेनसे आज्ञा ले श्रीकृष्णचन्द्र सारथीके लाये गरुड़ध्वज रथमें चढे ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त रथ, हाथी, प्यादे
और महातीव्र सवारोंकी सेना ले मृदंग, भेरी, नगारे, शंख और रणसिंहोंके शब्दसे शब्दायमान दिशामेंसे भगवान् निकले ॥ १४ ॥ सुन्दर
वस्त्र गहने और चन्दन माला पहरे, ढाल तलवार, हाथमें लिये, दोनों ओर सिपाहियोंसे रक्षित रथ और पालकियोंमें बैठ पतिव्रता
कृष्णकी रानियें अपने पुत्रोंको साथ ले अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे चलीं॥ १५ ॥ नौकरोंकी स्त्रियें और वेश्या शृंगारकर चटाइयोंके

बने घर तथा कम्बल और बनातोंके डेरे तम्बु इत्यादि सब वस्तुको मनुष्य ऊंट, भैंसे, गधे, खच्चर, गैंडे व हाथियोंपर लादकर चले ॥ १६॥ बडे शब्दवाली सेना बडी बडी ध्वजाओंके वस्त्र, छत्र, चामर और सुन्दर हथियार, गहने, किरीट इत्यदिकोंकी चमकसे और सूर्यकी किरणोंसे जैसे समुद्र क्षुभित हुए मत्स्यों और कलोलोंसे शोभायमान होता है उसी प्रकार शोभा देती थी ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे सत्कार पाय पूजा ले, श्रीकृष्णके दर्शनसे सुखी इन्द्रिय हो नारदमुनि श्रीकृष्णको प्रणाम कर उनके निश्चयको सुन और श्याम स्वरूपको हृदयमें धारण कर आकाशमार्गमें होकर चले गये ॥ १८ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूतको प्रसन्न करनेके लिये

बलं बृहद्ध्वजपटच्छत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ॥ दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथार्णवः क्षुभित
तिमिंगिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ॥ निशम्य तद्व्यव
सितमाहृतार्हणो मुकुंदसंदर्शननिर्वृतेंद्रियः ॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान्प्रीणयन्गिरा ॥ मा भैष्ट दूत भद्रं वो
घातयिष्यामि मागधम् ॥१९॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ॥ तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः
॥ २० ॥ आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ॥ गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततो दृषद्वतीं
तीर्त्वा मुकुंदोऽथ सरस्वतीम् ॥ पंचालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं
नृणाम् ॥ अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥

बोले कि, हे दूत! तुम सब राजाओंसे जाकर कह दो कि, किसी प्रकारका भय मत करो, क्योंकि मैं शीघ्र ही जरासन्धको मार तुम्हारा कल्याण करूंगा ॥ १९ ॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब दूत वहांसे चल राजाओंके पास आकर कहने लगा कि, किसी प्रकारका भय मत करो श्रीकृष्णचन्द्र आते हैं, तब वह छूटनेकी इच्छासे भगवान्के आनेका पैंडा देखने लगे ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनर्त, सौवीर, मरुदेशको पीछे दे कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियें, पुर, गाँव, ब्रज और खानोंके देशोंको लाँघकर दृषद्वती व सरस्वतीके पार उतर पांचाल तथा मत्स्य देशको छोड इन्द्रप्रस्थ पहुँचे ॥२१॥२२॥ मनुष्योंको जिनका दर्शन दुर्लभ है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुन प्रसन्न हो अजातशत्रु

राजा युधिष्ठिर उपाध्यायोंको संग ले पुरके बाहर निकले ॥ २३ ॥ गाते बजाते और भारी वेदध्वनिके साथ राजा युधिष्ठिर जैसे आदरयुक्त इन्द्रिय प्राणको लेने आवें, उसी प्रकार श्रीकृष्णके सन्मुख लिवानेको आये * ॥२४॥ श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन कर आर्द्रहृदय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने बहुत दिनोंमें देख अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको बारम्बार आलिंगन किया॥२५॥लक्ष्मीके रहनेका निर्मल स्थान श्रीकृष्णचन्द्रके अंगको भुजाओंसे आलिंगन कर पापरहित, प्रसन्नवदन, नेत्रोंमें अश्रुयुक्त सब लौकिक व्यवहार बिसार राजा युधिष्ठिर अत्यन्त सुख पाने लगे

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणः प्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः
कृष्णं स्नेहेन पांडवः ॥ चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥ २५ ॥ दोर्भ्यां परिष्वज्य रमाऽमलालयं मुकुंदगात्रं
नृपतिर्हताशुभः ॥ लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६ ॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो
भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेंद्रियः ॥ यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेन
परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः ॥ २८ ॥ मानितो मानयामास कुरु
सृंजयकेकयान् ॥ सूतमागधगंधर्वा बंदिनश्चोपमंत्रिणः ॥ २९ ॥

॥२६ ॥ मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन कर प्रसन्न भीमसेन प्रेमके वेगसे आकुलइन्द्रिय हो गया, इसके उपरान्त बडे २ नेत्रोंमें आंसू भरे नकुल सहदेव और किरीटधारी अर्जुन यह सब अत्यन्त हितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको आनन्दपूर्वक आलिंगन करने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अर्जुन बराबरका होनेके कारण श्रीकृष्णको छातीसे लगाकर मिला और नकुल सहदेवने नमस्कार किया, पीछे यथायोग्य ब्राह्मण और वृद्धोंको नमस्कार करके॥२८॥मानने योग्य कुरुदेश और सृंजयदेशके राजाओंका मान किया सूत, मागध, गंधर्व, भाट, बन्दीजनों

---

* शंका—हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णका और पांडवोंका मिलाप हुआ, तब उस समय शूद्र अन्त्यज चर्मकार आदि और सब नीच जाति तथा म्लेच्छ तमासा देखनेके लिये तथा अनेक प्रकारके सांसारिक काम करनेके लिये उस सेनामें रहते थे, इन सबको सुनाकर ब्राह्मणोंने ब्रह्म अर्थात् वेदोच्चारण क्यों किया ?

उत्तर—वेदका श्रवण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके सिवाय दूसरेको नहीं करना चाहिये, दूसरा कोई भी दोष नहीं, सो वेदका पाठ कोई भी नहीं उस समय सुनता था, क्योंकि जब श्रीकृष्णचन्द्र और पाण्डवोंका मिलाप हुआ तब ऐसा शब्द मनुष्योंका परस्पर होने लगा कि, उस कोलाहलमें तोपका शब्द तो किसीको सुनाई ही नहीं पडता था तब वेदपाठ कैसे लोगोंको सुनाई देता ! किसीको भी कुछ सुनाई नहीं पडा, इस लिये ब्राह्मणोंने वेदपाठ किया ॥

ने ॥ २९ ॥ मृदंग, शंख, ढोल, वीणा, नगाड, बाँसुरी इनको बजाकर ब्राह्मण स्तुति करने लगे और नाचने गाने लगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार सुहृदोंको संग ले पुण्ययश युधिष्ठिरादिकोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सबसे स्तुति और सत्कार पाय शोभायमान राजा युधिष्ठिरके पुरमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ हाथियोंके मद और सुगन्धयुक्त जलसे जिनमें छिडकाव हो रहा ऐसे मार्ग और चित्रविचित्र ध्वजाओंसे सुवर्णके तोरण और जलसे पूर्ण कलश तथा नवीन वस्त्र, गहने,माला, केशर,अतर,अरगजा लगाये स्त्री और पुरुषोंसे शोभायमान कौरवोंके

मृदंगशंखपटहवीणापणवगोमुखैः ॥ ब्राह्मणाश्चारविंदाक्षं तुष्टुवुर्नन्तुर्जगुः॥ ३० ॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥ संस्तूयमानो भगवान्विवेशाऽलंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्म करिणां मदगंधतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुंभैः ॥ मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गंधैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्म जालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम्॥मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृंगैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबंधाः ॥ सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेंद्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ॥ नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥

राजा युधिष्ठिरको देखा ॥ ३२ ॥ कैसा महल है कि, जहां प्रकाशमान दीपकोंकी पंक्ति और महलके झरोखोंमेंसे निकली धूपकी सुगन्धसे शोभायमान हो रहा है और प्रकाशमान पताका तथा रूपेके शिखरोंके ऊपर सुवर्णके कलश संयुक्त कौरवराज युधिष्ठिरके महल देखे ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके नेत्रोंका सौन्दर्यरूपी अमृत पीनेके पात्र श्रीकृष्णचन्द्रको आया श्रवण कर उत्कंठासे जिनके केश और वस्त्रोंके बंधन ढीले हो गये,वह स्त्रियें घरोंके कार्योंको शीघ्र त्याग और शय्याओंके ऊपर पतियोंको त्याग देखनेके लिये राजमार्ग बाजारमें आईं॥ ३४ ॥ हाथी,घोड

---

* सब लोग उत्सव छोड छोडकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनको दौडे,कहीं विवाहसे अधिक उत्सव तो हैही नहीं तथापि एक कन्याका विवाह था,द्वारेपर नौबत बजरहीथी, व भाई बिरादरीके लोग बैठे थे और मंडपके नीचे वर कन्या बैठे थे, ब्राह्मण हवन कररहेथे. सो नौबतवालोंने सुना कि, श्रीकृष्ण बलदेव आयेहैं,सुनतेही नगारको छोडकर भागे और जो भीतर नाई,बारी, झगडा कर रहेथे, वह भी सुनतेही भागे,पाधा (पुरोहित) पोथा पटक कृष्णके दर्शनको दौडे,अधिक क्या कहैं?बराती भी चले गये,अब दुलहनने सोचा कि,इस ब्याहके दूलहको क्या करना है?जाकर उस दूलहके दर्शन करूं, सो आंचल छुडाकर दुलहन भी पहुँचगयी,पीछे दूलह भी चलागया ॥

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुंदपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यमूभिः ॥ यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३६ ॥ तत्र तत्रोपसंगम्य पौरा मंगलपाणयः ॥ चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अंतःपुरजनैः प्रीत्या मुकुंदः फुल्ललोचनैः ॥ ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमंदिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ प्रीतात्मोत्थाय पर्यंकात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३९ ॥ गोविंदं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ॥ पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ॥ स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवंदितः॥४१॥ श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ॥ आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जांबवतीं तथा ॥ ४२ ॥

रथ और पैदलोंकी भीरसे युक्त राजमार्गमें रानीसहित श्रीकृष्णचन्द्रको देख कोठोंके ऊपर चढ़ी स्त्रियें फूल वर्षाय मनसे आलिंगन कर मुसक्यानपूर्वक चितवनसे देखकर "भले आये" इस प्रकार कहने लगीं ।। ॥३५॥ जैसे चन्द्रमासहित तारागण, इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंको मार्गमें देख "इन रानियोंने क्या पुण्य किया है,जिनके नेत्रोंको पुरुषोंमें मुकुट समान श्रीकृष्णचन्द्र उदार हास्य लीलापूर्वक अवलोकनकी कलासे आनन्द देते हैं" इसप्रकार सब स्त्रियें कहने लगीं ॥ ३६ ॥ पापरहित पुरवासी पान,सुपारी, बतासे और नारियल इन सब मंगल वस्तुओंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करने लगे ॥ ३७ ॥ प्रफुल्लित नेत्र खुशीके मारे घबराहटसे अंतःपुरके वासियोंने प्रीतिपूर्वक सम्मुख आकर जब सत्कार किया,तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राजाके मन्दिरमें चले गये ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीके ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णचन्द्रको देख प्रसन्नमन कुन्ती अपनी बहू द्रौपदी सहित पलंगपरसे उठकर श्रीकृष्णचन्द्रसे मिली ॥३९॥ देवोंके देव और ब्रह्मादिकोंके ईश्वर गोविंद श्रीकृष्णचन्द्रजीको घरमें ला आनन्दसे सुधि बिसार राजा युधिष्ठिर पूजा करनेकी विधि भी भूल गये ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपोत्तम परीक्षित ! द्रौपदी और बहन सुभद्राके प्रणाम करनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता वसुदेवकी बहन कुन्ती और बडे पुरुषोंकी स्त्रियोंको प्रणाम किया॥४१॥सास कुन्तीकी आज्ञा पाय द्रौपदी संपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रकी रानी रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती इत्या

दिका पूजन करने लगी ॥ ४२ ॥ कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, पतिव्रता और नाग्नजिती इनकी, और जो संग आई है उनकी वस्त्र, माला, अतर, अरगजा, चन्दन इत्यादिकोंसे पूजा करने लगीं ॥४३॥ धर्मराज राजा युधिष्ठिर भी सेना सहित मंत्री तथा सेवक और रानियों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको नित्य प्रति नये सुखमें रखने लगे ॥४४॥ अर्जुन सहित श्रीकृष्णचंद्रने खांडववनसे अग्निको तृप्त करके मयनामा दैत्यको बचाया, उसने राजा युधिष्ठिरको दिव्य सभा बनाकर अर्पण की ॥४५॥ रथमें बैठ अर्जुन तथा और योद्धाओंको संग ले विहार करते श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये कितने ही महीने इन्द्रप्रस्थमें रहे ॥ ४६ ॥ इति श्रीद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे

कालिंदीं मित्रविंदां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ॥ अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मंडनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ॥ ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वा खांडवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥ मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥४५॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥४७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठरः ॥१॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसंबंधिबांधवैः ॥ शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेन गोविंद राजसूयेन पावनीः ॥ यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्संपादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

भाषाटीकाकायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ दोहा—जरासन्धकी विजय लख, कृष्ण बहत्तर अंक । भीमसेनको सैन दे, करवाये द्वै फंक ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! एक समय मुनीश्वर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई,आचार्य और कुलमें वृद्ध तथा जातिके सम्बन्धी बांधव इन सहित सभामें बैठे हुए राजा युधिष्ठिर इन सबके सुनते हुए हे कृष्ण! हे भक्तवत्सल! इस प्रकार संबोधन देकर बोले ॥ १ ॥ २ ॥ कि, हे समर्थ ! यज्ञोंके राजा राजसूय यज्ञ करके मैं पवित्र कर्मवाले आपका पूजन करूंगा, इस कारण आप इस कार्यको सिद्ध करो ॥ ३ ॥

अभद्रके नाश करनेवाली तुम्हारी चरणपादुकाका जो पुरुष सेवन, ध्यान और पवित्र होकर वाणीसे नाम लेते हैं, हे कमलनाभ। वही पुरुष संसारसे छूट जाते हैं और जो चाहना करते हैं वह मनोरथ भी इनके सिद्ध हो जाते हैं और कैसा ही चक्रवर्ती क्यों न हो, विना भक्तिके कुछ नहीं होता ॥ ४ ॥ इस कारण हे देवदेव । यह लोग इस संसारमें तुम्हारे चरणारविन्दकी सेवाके प्रभावको देखें, हे समर्थ ! कितने ही कुरु सृंजय वंशी लोग जो कि, कर्मादिकको प्रधान मानकर आपकी भक्तिको उत्तम नहीं समझते, इनका अज्ञान दूर करनेको जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनोंकी स्थिति दिखाओ ॥५॥ सबके आत्मा, समदर्शी, आत्मसुख अनुभवरूप ब्रह्म

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरंति ध्यायंत्यभद्रनशने शुचयो गृणंति॥विन्दंति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥४॥ तद्देवदेव भवतश्चरणारविंदसेवाऽनुभावमिह पश्यतु लोक एषः ॥ ये त्वां भजन्ति न भजंत्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृंजयानाम् ॥ ५ ॥ न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ॥ संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितं राजन्भवता शत्रुकर्शिना ॥ कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥७॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ॥ सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे ॥ संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम्॥ ९ ॥

तुम हो, आपके अपना बिराना यह भेदबुद्धिकुछ नहीं है, जैसे कल्पवृक्षका जो सेवन करे उसीको फल प्राप्त हो उसी प्रकार जो तुम्हारा सेवन करे तुम उसीपर प्रसन्न होते हो, जो जैसी सेवा करे, उसे वैसा ही फल देते हो, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजा युधिष्ठिर । हे शत्रुनाशक ! तुमने यह भला निश्चय किया है क्योंकि इस यज्ञके करनेसे सब लोकोंमें तुम्हारी मंगलरूप कीर्ति फैलेगी ॥ ७ ॥ हे समर्थ राजा युधिष्ठिर ! यह सम्पूर्ण यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ तुमने करना विचारा है, सो ऋषीश्वर और पितृ तथा देवता और सुहृद् तथा हम और समस्त प्राणियोंको प्यारा है ॥ ८ ॥ संपूर्ण राजाओंको जीत और सम्पूर्ण पृथ्वीको वशमें कर और सब

सामग्रियें इकट्ठी करके तुम इस यज्ञको करो ॥ ९ ॥ हे राजा युधिष्ठिर । यह तुम्हारे भाई लोकोंका पालन करनेवाले देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए और दूसरे मैं भी जिसको अजितेन्द्रिय पुरुष कभी वशमें नहीं कर सकते, तुम्हारे जितेन्द्रियपनसे तुम्हारे वशमें हूँ इसलिये शीघ्र ही यज्ञ पूर्ण होगा ॥ १० ॥ मेरे आश्रयवाले पुरुषोंको लोकमें तेज, वैभव, सेनासे कोई देवता भी पराभव नहीं कर सकते हैं, तो राजा क्या कर सकते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन प्रसन्नतासे प्रफुल्लितवदन राजा युधिष्ठिरने भगवान्के तेजसे बढ़े हुए अपने भ्राताओंको दिशाओंके जीतनेको भेजा ॥ १२ ॥ सृंजय देशके राजाओंको संग करके दक्षिण देशके

एते ते भ्रातरो राजँल्लोकपालांशसंभवाः ॥ जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥१०॥ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ॥ विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखांबुजः ॥ भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुंक्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥ सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सहसृंजयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ॥ प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ ॥ १३ ॥ ते विजित्य नृपान्वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ॥ अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितं जरासंधं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ॥ आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरास्त्रयः ॥ जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥

राजाओंको जीतनेके लिये सहदेवको आज्ञा दी. हे परीक्षित ! सहदेव, अर्जुन, नकुल और भीमसेनने संपूर्ण दिशाओंके राजाओंको बलपूर्वक जीत यज्ञ करनेकी इच्छावाले अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको बहुत द्रव्य लाकर दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ सब दिशाओंके राजा तो जीतेगये रपरन्तु पूर्व दिशाका राजा जरासन्ध जीतनेमें नहीं आया, इस बातको श्रवण कर अतिचिन्ता को प्राप्त हुए राजा युधिष्ठिरसे जो उपाय उद्धवजीने श्रीकृष्णचन्द्रको बताया था, सो उपाय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥१५॥ हे राजन्। तब तो भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र

तीनों ब्राह्मणका रूप धारण कर जहां बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध गिरिव्रजनाम किलेमें रहता था वहां गये ॥१६॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये इन क्षत्रियोंने भिक्षुकोंके आनेके समय ब्रह्मभक्त गृहस्थ घरमें स्थित राजा जरासन्धसे भिक्षाकी प्रार्थना की॥ १७॥ कि, हे राजा जरासन्ध ! हम बहुत दूरसे अतिथि आये हैं सो तुम जानो और जिस वस्तुकी हम चाहना करते हैं वह वस्तु हमको दो, इसमें तुम्हारा कल्याण होगा * ॥१८॥ सहनशील पुरुष क्या नहीं सह सकते हैं ? और देवताओंको कौन वस्तु देने योग्य नहीं है और समदर्शियोंका कौन दूसरा शत्रु है । इसलिये नाम लेनेसे क्या प्रयोजन जो मांगैं सो दो ॥ १९ ॥ साधुवोंसे गाने योग्य नित्य यशको जो पुरुष अनित्य देहसे आप समर्थ होकर नहीं करै

ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ॥ ब्रह्मण्यं समयाचेरन्राजन्या ब्रह्मलिंगिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ॥ तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे॥१८॥ किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ॥ किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम्॥ नाऽऽचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥ २० ॥ हरिश्चंद्रो रंतिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ॥ व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ॥ राजन्यबंधून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिंतयत् ॥ २२ ॥ राजन्यबंधवो ह्येते ब्रह्मलिंगानि बिभ्रति॥ ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम्॥२३ ॥

वह पुरुष निन्दा और शोच करने योग्य है ॥ २० ॥ राजा हरिश्चन्द्र तथा रंतिदेव और मुद्गल ऋषि, राजा शिबि, तथा बलि, वधिक और कपोत पक्षी और ऐसे बहुत महात्मा अनित्य देहसे ध्रुव यशको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जरासन्ध कर्कश बोलना और स्वरूप तथा धनुषको प्रत्यंचाके गट्टेके चिह्नवाले पहुँचोंको देखकर "यह क्षत्रियोंमें नीच हैं" यह जानकर द्रौपदीके स्वयंवरमें मैंने पहले देखे हैं, यह विचार करने लगा ॥ २२ ॥ यद्यपि यह क्षत्रियोंमें नीच हैं, परन्तु तो भी ब्राह्मणोंका वेष

२०

---

* शंका—श्रीकृष्णने ब्राह्मणका रूप धारण कर जरासन्धसे कहा कि, हे राजन्! तुम्हारा कल्याण होगा, फिर उसी समयमें युद्ध करके कुछ दिन पीछे अमंगलरूप मरणको क्यों प्राप्त हुआ ? जब भगवान्ने अपने मुखसे मंगल होना कहा फिर वह एक महीने भी जीता न रहा, यह कैसा मंगल ?

उत्तर—शूरवीर योद्धा युद्धमें मरनेको अशुभ और अमंगल नहीं समझते, युद्धमें मरणकोही अपना बडा कल्याण मानते हैं. इसलिये श्रीकृष्णके वाक्यके प्रमाणसे युद्धमें मरणरूप कल्याण जरासन्धको प्राप्त होगया॥

धारण किया है, इसलिये अदेय अपनी आत्मा भी यदि यह मांगें तो इनको भिक्षा दूंगा ॥ २३ ॥ विष्णु भगवान्‌ने ब्राह्मणका स्वरूप वामन अवतार धर दैत्यराज बलिका ऐश्वर्य भ्रष्ट किया, परन्तु उसकी निर्मल कीर्ति पृथ्वीपर अबतक श्रवणगोचर होतीहै ॥ २४ ॥ देवराज इन्द्रकी शोभा हरनेके लिये ब्राह्मणका रूप धरके आयेहुए विष्णु भगवान्‌कोयद्यपि जानता भी था कि,मेरे छलनेके लिये आयेहैं और शुक्राचार्यने मने भी किया, परंतु तो भी दैत्योंके राजा बलिने वामनजीको पृथ्वीका दान दिया ॥ २५ ॥ एक दिन तो अवश्य ही यह देह पतित होगा, फिर जीवित ही क्षत्रियके देहसे ब्राह्मणके लिये निर्मल यशको न करै तो इस देहसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥ २६ ॥ इस प्रकार निश्चय करके उदारबुद्धि जरासन्ध श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमसेनसे कहने लगा कि, ह ब्राह्मणो ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो वरमांगो.तब श्रीकृष्णचन्द्र फिर पक्की करते हैं,कि हे राजन् ! हम जो मांगेंगे सो दोगे? तब जरासन्ध बोला कि, वारम्बार क्या कहते हो,यदि आपको मेरे शिरकी भी आवश्यकता होगी, तो वह भी काटकर समर्पण करूंगा॥ २७ ॥ तब तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजाओंके इन्द्र राजन् जरासन्ध ! यदि तुम्हारे मनमें आवै तो द्वन्द्वयुद्ध हमको दो और युद्धके लिये ही हम क्षत्रिय तुम्हारे पास आये हैं, अन्नके लेनेवाले हम ब्राह्मण नहीं हैं। २८॥ तब जरासन्धने पूछा तुम कौन हो ? यह सुन श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें ऐसा यह भीमसेन है, इसका भाई यह अर्जुन है और इनके मामाका पुत्र तेरा पहला वैरी मैं श्रीकृष्ण हूँ, सो मुझे तो तुम भलीभांति जानते होंगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार सुनकर मगधदेशका राजा जरा

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा ॥ ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियं जिहीर्षतेंद्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ॥ जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबंधुना ॥ देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥२६॥ इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ॥ हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेंद्र द्वंद्वशो यदि मन्यसे ॥ युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः॥२८॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम ॥ अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम्॥२९॥एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः॥आह:चामर्षितो मंदा युद्धं तर्हि ददामि वः॥३०॥

॥ २५९ ॥

सन्ध बहुत हँसा इसके उपरान्त क्रोधमें भरकर हे मूर्खो ! मैं तुमको युद्ध दूंगा, इसप्रकार कहने लगा॥ ३०॥अरे डरपोक कृष्ण !व्याकुलचित्त तेरे संग मैं युद्ध नहीं करूंगा,क्योंकि मेरे डरसे तो तू प्रथम ही मथुरापुरीको त्याग समुद्रमें जा बसा है ॥ ३१ ॥ अर्जुन मुझसे उमरमें न्यून है और न मेरे समान बलवान है, इसलिये अर्जुन योद्धा नहीं है, हां भीमसेन कुछेक मेरे समान बलवान् है, इसके संग युद्ध करूंगा ॥ ३१ ॥ इतनी बात कह जरासन्ध भीमसेनको बडी गदा दे और आप दूसरी गदा लेकर पुरसे बाहर निकला ॥ ३३॥ इसके उपरांत हे परीक्षित् ! बडे मद वाले भीमसेन और जरासन्ध परस्पर मिलकर रणभूमिमें वज्रके समान गदाका प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥ रंगभूमिमें प्राप्त हुए नटोंके समान बायें

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ॥ मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः॥३१॥ अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ॥ अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम॥ ३२॥ इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ॥ द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥ ततः समे खले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ ॥ जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मंडलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ॥ चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रंगिणोः॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः॥ गदयोः क्षिप्तयो राजन्दंतयोरिव दतिनोः ॥ ३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ॥ चूर्णी बभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे सयुध्यतो द्विरदयोरिव दीप्तमन्य्वोः ॥ ३७ ॥इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम् ॥ शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥

दायें विचित्र मण्डलमें फिरते इन दोनोंका युद्ध अत्यन्त शोभायमान लगने लगा ॥ ३५ ॥ हे महाराज परीक्षित ! दांतवाले हाथियोंका जैसा शब्द होता है उसी प्रकार इन दोनों वीरोंके गदा चलानेका वज्र जैसे पिसे ऐसे ही शब्द होने लगा ॥ ३६ ॥ युद्ध करनेसे बढ़ा है क्रोध जिनका ऐसे हाथियोंकी लड़ाई में आकड़ी जैसे चूर्ण हो जाती है, भुजाओंके वेगसे आपसमें बडा क्रोध कर लड़नेवाले हाथियोंके शरीरपर पछाडकर जैसे आककी गुद्दियां टूट जाती हैं. उसी प्रकार बाँहोंके वेगसे चलायमान गदा कन्धा, कमर,पांव, हाथ, जंघा इनसे लगकर चूर्ण हो गईं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब दोनों वीरोंकी गदा टूट गईं,तब क्रोधी मनुष्योंमें वीर भीमसेन और जरासन्ध लोहेके समान स्पर्शवाले

घूंसोंकी मार शरीरमें मारनें लगे,हाथियोंके समान आपसमें मारते जरासन्ध व भीमसेनके प्रहारसे उठा शब्द जैसे बिना बादल वज्रपातका शब्द होता है, इसी प्रकार कठोर युद्ध होने लगा ॥३८॥ हे राजा परीक्षित्। नहीं घटा है बल जिनका और बराबर है दांव, पेच, बल, प्रभाव जिनका इसी प्रकार घूंसोंकी मारसे भीमसेन और जरासन्धका बराबर युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् परीक्षित्। इस प्रकार दिनमें तो युद्ध करें और रातको मित्रके समान एक स्थानपर रहें ऐसे जरासन्ध और भीमसेन दोनों वीरोंको युद्ध करते सत्ताईस दिन बीत गये ॥ ४० ॥ हे राजा परीक्षित्।एक समय मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रसे भीमसेननें:कहा कि, हे माधव । युद्धमें जरासन्धको मैं :नहीं जीत सकता ॥ ४१ ॥

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ॥ निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युध्यतोः
सप्तविंशतिः ॥ दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ॥ न
शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् ॥ पार्थमाप्या
ययन्स्वेन तेजसाऽचिंतयद्धरिः ॥ ४२ ॥ संचिंत्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ॥ दर्शयामास विटपं पाटयन्निव
संज्ञया ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतांवरः ॥ गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥
एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ॥ गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥ ४५ ॥

जरासन्धका दो भाग होकर जन्म आ है और उन खण्डोंको जरा नाम राक्षसीने जोड दिया है, इस कारण यह दो खण्ड होनेसे ही मरेगा, इस बातके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने भीमसेनको अपने तेजसे बढ़ाया और जरासन्धके चीरनेका विचार किया ॥ ४२ ॥ सफल ज्ञान श्रीकृष्णचन्द्र वैरी जरासन्धके मारनेका चिंतवन कर तिनुका चीरकर भीमसेनको सैनसे जताया कि, जैसे मैंने तिनुका चीरा उसी प्रकार तू इसको चीर डाल ॥४३॥ मारनेवालोंमें श्रेष्ठ महाबलवान् भीमसेनने श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतको जान वैरी जरासंधका पांव पकडकर पृथ्वीमें पटक दिया ॥४४॥ हे महाराज । जैसे बड़ा हाथी वृक्षकी शाखाको पकड़कर चीर डालता है,उसी प्रकार अपने पांवसे उसके एक

पांवको दाब और दूसरे पांवको भुजाओंसे पकड गुदाके बीचसे चीर डाला ॥४५॥ एक २ पांव, जंघा, अंडकोश, कमर, पीठ, स्तन, कन्धा, एक एक भ्रुकुटी और कान ऐसे दो खण्ड किये सब प्रजाने देखा॥ ४६ ॥ मगधदेशका राजा जरासन्ध जिस समय मारा गया, उस समय महा हाहाकार शब्द होने लगा, इसके पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र भीमसेनको आलिंगन करके पूजा करनेलगे ॥ ४७ ॥ अप्रमेय स्वरूप, समर्थ, सब प्राणियोंके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचंद्रने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधदेशका राज्यतिलक दिया, इसके उपरान्त जरासंधने जो बीस हजार आठसौ राजाओंको बन्दी करलिया था उन्हैं भी बंदीखानेसे छुडा दिया ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ॥ एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णौ शकले ददृशुः प्रजाः ॥४६॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे॥पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ॥४७॥सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ॥ अभ्यषिंचदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥ मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे जरासंधवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥ ते निर्गता गिरिद्रोण्या मलिना मलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ॥ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्सांकं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपलक्षितम् ॥ किरीटहारकटककटिसूत्रांगदाचितम् ॥ ४ ॥

1022

भाषाटीकायां जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ दोहा--तेहत्तर हरि बन्दिसे, सब नृप दिये छुटाय । भोग्य योग्य बहु वस्तु दै, दिये घरन पहुँचाय ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! मलिनरूप, क्षुधासे कृश, सूखे मुख ऐसे बीस हजार आठसौ राजा जो गिरिद्रोणी नाम दुर्गमें कैद थे उन्हैं लीलापूर्वक ही छुडा दिया, तब उन सब राजाओंने बन्दीखानेसे बाहर निकलकर मेघके समान श्यामरूप, पीले वस्त्र धारण किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ अब जैसे स्वरूपसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया सो वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करो, हृदयमें शोभायमान भृगुलताका चिह्न, चार भुजा और कमलके गर्भके समान अरुणनेत्र, सुन्दर प्रसन्न मुख और प्रकाशमान

मकराकृत कुण्डल धारण किये,कमल हाथमें लिये विराजमान, शंख, चक्र, गदा धारण करे और किरीट, हार, कड़ा, करधनी व बाजूबन्द पहरे ॥३॥४॥ प्रकाशमान सुन्दर मणि ग्रीवा तथा गलेसे पाँवतक वनमालासे शोभायमान इसप्रकार रूपको देखकर राजाओंमें लूटसी पड़गई और नेत्रोंको ऐसे चलाने लगे, मानो रूपको पीजांयगे ॥ ५ ॥ जीभ ऐसी चलावैं मानो चाट जांयगे, नाक ऐसी फुलावैं मानो सूँघ जांयगे, भुजा ऐसी चलावैं मानों स्वरूपको आलिंगन करलेंगे,इस प्रकार पाप दूर होनेसे वह राजा मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन्। इन राजा लोगोंके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण बन्दीखानेके सब क्लेश मिट गये, तब यह सब राजा हाथ जोड हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ राजा लोग कहने लगे कि,हे देवदेव

भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया॥५॥जिघ्रंत इव नासाभ्यां रंभंत इव
बाहुभिः ॥ प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ॥ प्रशशंसुर्हृषीकेशं
गीर्भिः प्रांजलयो नृपाः ॥ ७ ॥ राजान ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ॥ प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्वि-
ण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ॥ अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥
राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विंदते नृपः ॥ त्वन्मायामोहितोनित्या मन्यते संपदोऽचलाः ॥ १० ॥ मृगतृष्णां यथा
बाला मन्यंत उदकाशयम् ॥ एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषया
ऽस्या इतरेतरस्पृधः ॥ घ्नंतः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाऽऽविगणय्य दुर्मदाः ॥ १२ ॥

हे शरणागतका कष्ट हरनेवाले ! हे अविनाशी ! हे कृष्ण ! इस घोर संसारसे दुःखी हुए और तुम्हारी शरणमें आये हमारी रक्षा करो ॥ ८॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हम लोग जरासन्धको दोष नहीं लगाते क्योंकि हे प्रभो ! राजाओंका जो राज्य भ्रष्ट होवे, यह आपका अनुग्रह समझना चाहिये. राज्यसंबन्धी ऐश्वर्यसे मदमत्त राजा आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य पदार्थोंको स्थिर मानते हैं और इसीसे कल्याणको प्राप्त नहीं होते ॥९॥१०॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सूर्यकी किरणोंसे चमकते हुए वालूके जलका सरोवर मानते हैं, इसी प्रकार अज्ञानी पुरुष नानासृष्टि असद्रूपी जो माया है, उसको सत्य मानते हैं ॥ ११ ॥ हे समर्थ ! हम लक्ष्मीके मदसे अन्धे हो इस पृथ्वीके

जीतनेकी इच्छासे परस्पर द्वेष करते और मृत्युके समान शिरपर खडे कालरूप आपको नहीं गिनते थे और मदसे उन्मत्त हो निर्दयीपनसे अपनी प्रजाको महाकष्ट देते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! गंभीर वेग और बडे पराक्रमवाली तुम्हारी कालमूर्तिने हमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट कर दिया, परंतु अब तुम्हारी कृपासे गर्वरहित होकर आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं * ॥ १३ ॥ इसके उपरांत नित्य आयु जिसकी क्षीण हो और एक न एक रोग जिसमें उत्पन्न हो, ऐसे देहसे मृगतृष्णारूप मिथ्या राज्यकी हम इच्छा नहीं करते- केवल राज्यकी इच्छा नहीं करते

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरंतवीर्येण विचालिताः श्रिया॥कालेन तन्वा भवतोऽनुकंपया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम
॥ १३ ॥ अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा॥ उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं
प्रेत्य च कर्णरोचनम्॥१४॥तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः॥ स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह॥१५॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमोनमः ॥१६॥ श्रीशुकउवाच ॥ संस्तूयमानो
भगवान्राजभिर्मुक्तबंधनैः ॥ तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७ ॥

इतना ही नहीं, बरन् परलोकमें क्रियाके फलरूप कर्णप्रिय स्वर्गादिक भोग भी नहीं चाहते ॥१४॥ और हे भगवन् ! इस संसारमें भूले हम राजा लोग किसी योनिमें भी तुम्हारे चरणारविंदोंको न भूलें ऐसा उपाय बताओ ॥ १५ ॥ भक्तोंके क्लेशको दूर करनेवाले, शुद्ध अन्तःकरणके प्रकाशक हरि परमात्मा और अपने भक्तोंके क्लेश काटनेवाले गोविंद आपको हम प्रणाम करते हैं ॥१६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,

---

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धका वध करके वीससहस्र२०००० राजाओंको कारागारसे छुटाया तो सब राजा भगवान्को हे कृष्ण ! कहिकर क्यों पुकारे ? जैसे कोई मनुष्य अपने बराबरवालेको पुकारते हैं इस प्रकार क्यों पुकारा ? यह बडा अयोग्य वचन कहा ? राजाओंको ऐसा वचन कहना नहीं चाहिये था, उनको इसप्रकार कहना चाहिये था कि, हे महाराज ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे दीनपालक ! हे दीनदयालु ! हे करुणासागर ! हे भक्तवत्सल ! ऐसे वाक्योंसे और अनेक प्रकारका दुलार करके श्रीकृष्णको पुकारना चाहिये था ?

उत्तर—राजालोग प्रथम तो अपने२राज्यसिंहासनपर बैठे थे तब तो अभिमानसे सत्संग किया नहीं इस कारण मूर्ख तथा गँवार होगये, पीछे जब जरासंध पकडकर लाया और बेडी पहराकर बन्दीगृहमें डालदिया तब दुःखी होकर सुधिबुधि भूलगये, दोनों भांतिसे उनको बोलनेकी चतुराई न आई, वे बिना सींगके पशु हैं इसलिये उन राजाओंके मुखसे जो वचन निकले सोई अच्छे हैं क्योंकि, दुःखी और अभिमानी जो न कहे सो थोडा इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ एक ब्राह्मणको किसी प्रेमीने बडी शुश्रूषासे न्योता और अनेक प्रकारके भोजन उसको जिमाये जब उसका पेट बहुत भरगया तब वह बोला बडे सत्यानाशीके यहां भोजन किया, इससे मूर्खोंके दुर्वाक्योंपर ध्यान न करै ।

हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जरासन्धके बन्दीखानेसे छूटे राजाओंने इस प्रकार स्तुति करी तब शरणके योग्य करुणावान् भगवान्
श्रीकृष्णचन्द्रने मनोहर वाणीसे राजाओंसे कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजाओ ! जैसे तुमने चाहना करी उसी प्रकार सबका ईश्वर
और आत्मा जो मैं हूँ,सो मुझमें तुम्हारी आजसे दृढ भक्ति हुई ॥१८॥ हे राजालोगो ! सत्यवादी तुमने मेरा भजन करना, यह भला सत्य
संकल्प निश्चय किया है, क्योंकि मनुष्य धन और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो इच्छानुसार बिचरते देखे जाते हैं ॥ १९ ॥ कृतवीर्यका पुत्र
चक्रवर्ती राजा सहस्रबाहु एक समय जमदग्नि ऋषिकी गौ हरके ले आया तब उसका परशुरामजीने पुत्रोंसहित संहार किया और राजा
नहुष मदोन्मत्त होकर इन्द्राणीके पास जानेके लिये ब्राह्मणोंको पालकीमें जोतकर चला,तब ब्राह्मणोंने उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट करके सर्प कर दिया और

श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ॥ सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा॥१८॥ दिष्ट्या
व्यवसितं भूपा भवंत ऋतभाषिणः ॥ श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम्॥१९॥हैहयो नहुषो वेनो रावणो नर
कोऽपरे ॥ श्रीमदाद् भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥२०॥ भवंत एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमंतवत् ॥ मां यजंतोऽध्वरै
र्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ॥ २१ ॥ संतन्वंतः प्रजातंतून्सुखं दुःखंभवा भवौ ॥ प्राप्तं प्राप्तं च सेवंतो मच्चित्ता विचरिष्यथ
॥२२॥ उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यङ्मामंते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान्भुवनेश्वरः ॥ तेषां न्ययुंक्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥

राजा वेनने मदोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया, तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त क्रोधित होकर हुंकार शब्दसे उसका प्राण संहार किया और
राक्षसराज रावणने सीताकी आकांक्षा करी, तब महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने उसका वध किया और दैत्यराज नरकासुरने जब अदिति के कुण्डल
हरलिये तब उसे मैंने ही मारा और कितने ही देवता और राजा धनके मदसे स्थानभ्रष्ट होगये ॥२०॥ और तुम समस्त उत्पन्न देहादिकसे
नाशवान् हैं यह जान सावधान हो यज्ञ करके मेरा पूजन और प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ और पुत्रादिकोंको उत्पन्न करो.जन्म, मृत्यु,
सुख दुःख जो प्राप्त हो उसका सेवन करो और मुझमें चित्त लगाकर विचरो ॥ २२ ॥ आत्मामें रमण करते व्रत धारण किये देह और घरोंमें
उदासीन होकर भले प्रकार मुझमें मन लगाओगे तो अन्तमें परब्रह्मरूप मुझे प्राप्त होगे॥२३॥श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे भारत ! त्रिलोकीके ईश्वर

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजाओंको आज्ञा कर और उनको उबटन स्नान और क्षौर इत्यादि कर्म करानेके लिये स्त्री पुरुषोंको भेजा ॥ २४ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! राजाओंके स्नान कर चुकनेपर जरासन्धके पुत्र सहदेवसे राजाओंके योग्य वस्त्र आभूषण माला और चंदनादिकसे उनकी पूजा कराने लगे॥ २५॥ सुन्दर स्नान कर वस्त्र आभूषणोंसे शोभित और अनेक प्रकारके भोगोंसे युक्त राजाओंको श्रेष्ठ अन्न भोजन कराय राजाओंके योग्य तांबूलादिक देने लगे ॥२६॥ मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे पूजित और प्रकाशमान कुंडलोंको पहरे बन्दीखानेके क्लेशसे छुटाये राजा वर्षाऋतुके पीछे आकाशमें तारागणोंके समान शोभायमान लगने लगे ॥ २७ ॥ मणि और सुवर्णके

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ॥ नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलंकृतान् ॥ भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्तांबूलाद्यैर्नृपोचितैः॥२६॥ते पूजिता मुकुंदेन राजानो मृष्टकुंडलाः ॥ विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडंते यथा ग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान्सदश्वानारोप्य मणिकांचनभूषितान् ॥ प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥ त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ॥ ययुस्तमेव ध्यायंतः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ॥ यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतंद्रिताः ॥ ३० ॥ जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ॥ पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥

गहनोंसे शोभायमान राजाओंको सुन्दर घोडे जुते रथोंमें चढाय और मनोहर वचनोंसे प्रसन्न कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें अपने देशोंको भेज दिया ॥ २८ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार जगत्पति महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके छुडाये हुए कष्टमुक्त राजालोग भगवान्का और उनके चरित्रोंका ध्यान करते अपने २ नगरको चले गये ॥ २९ ॥ वह समस्त राजा जैसे महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने छुडाये थे और जैसे पूजा कराई थी इसी प्रकार वह सब वृत्तांत अपनी प्रजाके सम्मुख वर्णन किया और जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने शिक्षा दी थी, इसी प्रकार आलस्य छोडकर करने लगे ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार भीमसेनके हाथसे जरासन्धको मरवाय और सहदेवसे अपना पूजन

कराय भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ आये ॥ ३१ ॥ दुष्टहृदय शत्रुओंको दुःख देनेवाले और अपने सुहृदोंको आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण, भीम, अर्जुन यह सब वैरी जरासन्धको मार इंद्रप्रस्थमें आनकर शंखध्वनि करने लगे ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! शंखका शब्द सुन प्रसन्नमन इन्द्रप्रस्थनिवासी "जरासन्धकी मृत्यु हुई" यह जान गये और धर्मराज राजा युधिष्ठिरके मनोरथ पूर्ण होगये ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत भीम, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रने आय राजा युधिष्ठिरको प्रणाम कर आपने जो कुछ किया सो सब कहा ॥ ३४ ॥ धर्मराजके पुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मा महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो २ कार्य किया उसे सुन, नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी धार बहाते, प्रेमसे विह्वल

गत्वा ते खांडवप्रस्थं शंखान्दध्मुर्जितारयः ॥ हर्षयंतः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इंद्रप्रस्थनिवासिनः ॥ मेनिरे मागधं शांतं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवंद्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ॥ सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकंपितम् ॥ आनंदाश्रुकलां मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा०महा० दशमस्कंधोत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं युधिष्ठिरो राजा जरासंधवधं विभोः ॥ कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ॥ वहंति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविंदाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ॥ धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यंतविडंबनम् ॥ ३ ॥

हो कुछ न बोले ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ दोहा—चौहत्तरमें राजसुय, कियो युधिष्ठिर यज्ञ । तबहिं हनो शिशुपाल नृप, कृष्णचन्द्र सर्वज्ञ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जरासन्धका वध और श्रीकृष्णका प्रभाव सुन अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि ॥ १ ॥ जो पुरुष त्रिलोकीके गुरु हैं, सब लोकोंमें बड़े ईश्वर हैं, वह भी दुर्लभ मानकर तुम्हारी आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक कमलनयन ! आप हम दुःखी और सामर्थ्यपनका अभिमान रखनेवालोंकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हो, यह विडम्बना

मात्र है,वास्तवमें आपको यह बात संभव नहीं होसकती ॥ ३ ॥ एक अद्वितीय अर्थात् कोई जिनकी बराबर नहीं और कोई जिनसे बड़ा नहीं ऐसे परमात्मा तुम हो आपका तेज परोपकारके लिये कर्मोंसे न्यून भी नहीं होता, जैसे सूर्यका उदय अस्तमें तेज बढ़ता ही है घटता नहीं ॥ ४ ॥ यदि कहो कि, मैं परमेश्वर हूँ सो सबकी आज्ञा माननी, यह मंद कर्म करना योग्य नहीं है, सो कहते हैं कि, हे मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अजित ! जैसे अज्ञानी पुरुषोंके देहमें अहंकार और देहके संगमें ममता रहती है, उसी प्रकार तुम्हारे भक्तोंके " तू और तेरा मैं और मेरा " यह बुद्धि नहीं होती ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यह वचन कह और उनकी सम्मति ले यज्ञ करनेके योग्य वसंतादि कालमें वेदके पढनेवाले योग्य ब्राह्मणोंको होता, उद्गाता, अध्वर्यु इत्यादिकोंमें वरण किया ॥ ६ ॥ द्वैपायन, भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन,कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित ॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशंपायन ॥ ८ ॥ अथर्व, काश्यप, धौम्य,परशुराम, भार्गव,आसुरि,वीतिहोत्र, मधुच्छन्द, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ इसी प्रकार बुलाये हुए द्रोणाचार्य भीष्मजी तथा कृपाचार्यादि ऋषि आये तब पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र और बडे बुद्धिमान् विदुरजी भी आनकर सुशोभित हुए॥ १० ॥ हे राजन् ! और भी यज्ञ देखनेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व सब राजा और

1025

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ॥ त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः ॥ कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमंतुर्गौतमोऽसितः ॥ वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः॥७॥विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः॥पैलः पराशरो गर्गो वैशंपायन एव च ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ॥ वीतिहोत्रो मधुच्छंदा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥९॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ॥ धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥१० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ॥ तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥

इनके प्रधान दीवान आये ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मण लोग यज्ञ करनेकी भूमिमें सुवर्णका हल चलाय भूमि शोधन कर राजा युधिष्ठिरको यज्ञदीक्षा देने लगे ॥ १२ ॥ जैसे पहले वरुणके यज्ञमें सुवर्णकी सामग्री और सुवर्णके पात्र थे इसी प्रकार इस यज्ञमें भी थे और ब्रह्मा, महादेव, तथा इन्द्रादिक देवताओंको संग लेकर लोकपाल भी आये ॥ १३ ॥ गणों सहित सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बडे बडे सर्प, मुनीश्वर, यक्ष, राक्षस, खग, किन्नर, चरण इनके समूहके समूह आये ॥ १४ ॥ और आये हुए राजाओंकी सब स्त्रियें भी पांडुपुत्र राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आईं ॥ १५ ॥ हे महाराज। इस बातको कोइ आश्चर्य न करे क्योंकि, हरिभक्तकी सब वार्ता सिद्ध हो सकती है इसी लिये इन्होंने युधिष्ठिरके यज्ञमें विस्मय न किया, जैसे देवताओंने वरुणका यज्ञ कराया था उसी प्रकार देवताओंके समान कान्तिवाले ऋत्विज राजसूय यज्ञ करके विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरसे यजन कराने लगे ॥ १६ ॥ अतिशय करके सावधान पृथ्वीका पालन करनेवाले राजा युधिष्ठिरने जिस दिन सोमवल्ली कूटी गई उस दिन यज्ञ करानेवालोंका तथा बड़भागी जो सभामें मुख्य थे उनका पूजन किया ॥ १७ ॥ सभाके बैठनेवालोंने प्रथम किसकी पूजा करनी चाहिये यह विचार करते २ एककी अपेक्षा एक बडा है, इस कारण जब किसीका निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिरके भाई सहदेवने कहा ❋ ॥१८॥

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलांगलैः ॥ कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयांचक्रिरे नृपम्॥१२॥हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा॥ इंद्रादयो लोकपाला विरिंचभवसंयुताः ॥१३॥सगणाः सिद्धगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः॥१४॥राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः॥ राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पांडुसुतस्य वै ॥१५॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥ १६ ॥ राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ॥ सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ॥ अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशंतः सभासदः ॥ नाध्यगच्छन्ननैकांत्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत ॥१८॥

❋ शंका-पृथिवीपर युधिष्ठिरने कुछ पहिले यज्ञ नहीं किया, यज्ञ तो सतयुगसे अनेक राजा करते चले आये, हैं फिर युधिष्ठिरके यज्ञमें पहिले पूजन करनेके लिये देवताका विचार क्यों किया ? कुछ ब्राह्मण भी प्रथम ही यज्ञ करनेके लिये नहीं आये थे, पहिले सतयुगमें ब्राह्मण सहस्रों यज्ञ करा चुके थे फिर धर्मराजके यज्ञमें इतना विचार क्यों किया ? जो नई बात हो उसका विचार करना चाहिये और सैकडों वर्षसे जिस बातकी रीति चली आती हो, उस बातमें क्या सन्देह ?

भक्तोंका पालन करनेवाले अखण्डरूप समस्त देवता देश काल धनादिकरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही इस यज्ञमें पूजा करनेके योग्य हैं ॥ १९ ॥ यह सब विश्व कृष्णका ही रूप है और यज्ञादिक भी कृष्णरूप ही हैं और अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, उपासनादि भी सब कृष्णपरायण हैं ॥ २० ॥ हे सभाके बैठनेवालो ! अजन्मा एक अद्वितीय यह कृष्ण हैं, सो अपने स्वरूप विश्वको अपने आत्मासे ही दूसरेकी सहायता विना उत्पन्न पालन और नाश करते हैं ॥ २१ ॥ सब जनोंके अनुग्रहसे इस संसारमें

1026

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९॥यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ॥ अग्निराहुतयो मंत्राः सांख्यं योगश्च यत्परः॥२०॥एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीह कर्माणि जनयन्यदवेक्षया ॥ ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम्॥२२॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ॥ एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत्॥२३॥ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने॥देयं शांताय पूर्णाय दत्तस्यानंत्यमिच्छता ॥२४॥ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ॥ तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधुसाध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥

अनेक प्रकारके तप योगादिक कर्म करके धर्मादिक रूप कल्याणको करते हैं और अनेक प्रकारके सब कर्मोंके फल भी सब कृष्णके अधीन ही हैं ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे बडे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी ही पहले पूजा करनी योग्य है और इनकी पूजा करनेसे सब प्राणियोंकी पूजा हो जायगी ॥२३॥ और जो कोई पूजाके योग्य होगा उसकी भी पूजा हो जायगी, इस कारण जो पुरुष पूजाके अनन्त फलकी चाहना करे वह पुरुष सब प्राणियोंके आत्मा भेदभाव रहित और शान्त परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकी पूजा करे ॥२४॥ हे महाराज ! इतनी बात कह

उत्तर–सब ब्राह्मण भगवान्को भूल नहीं गये थे सब जानते थे कि, सब कामोंमें और यज्ञमें भगवान्का पूजन करना चाहिये ऐसा सब जानते थे परन्तु दैवयोगसे शिशुपालने कालवश मुनियोंको और यज्ञकी सभामें बैठनेवाले प्राणियोंको मोहित कर लिया काल करके सबमुनिजन मोहित होगये सब मनुष्योंने बालक सरीखा काम कियां, क्योंकि जो यज्ञमें पहिले पूजन करने योग्य कौन है ऐसा विवाद न होतातो शिशुपालश्रीकृष्णकीनिन्दा क्यों करता?और विना निन्दा किये भगवान् उसको क्यों मारते?शिशुपालकेकालकरके मोहित मुनि,और सब सभाकेबैठनेवाले प्रथम पूजन करने योग्यका विचार करनेलगे।

श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको जाननेवाला सहदेव चुप होगया और उससमय सब श्रेष्ठ पुरुष सहदेवका वचन सुनकर “ सत्य कहा सत्य कहा ” इसप्रकार कहकर बडाई करने लगे ॥ २५ ॥ स्नेहसे विह्वल और प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंके कहे वचन सुन और सभामें बैठ हुए पुरुषोंके हृदयका अभिप्राय जान इन्द्रियोंकी प्रेरणा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया ॥ २६ ॥ स्त्री, भाई, मंत्री और सब कुटुम्बके पुरुषोंसहित राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंको धोय सब लोकोंके पवित्र करनेवाले चरणारविंन्दका धोवन जल अपने मस्तकपर चढाय ॥२७॥ पीले रेशमी वस्त्र और बहुत मोलके आभूषणोंसे भी पूजा कर आँसु भरे नेत्रोंसे राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करनेको समर्थ न हुए ॥२८॥ इस प्रकार जब राजा युधिष्ठिरने पूजा करी, तब श्रीकृष्णचंद्रका दर्शन कर सब जन हाथ जोड“ नमो

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ॥ समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥ तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ॥ सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुंबोऽवहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ॥ अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्रांजलयो जनाः ॥ नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥२९॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ॥ उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः॥३०॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ॥ वृद्धानामपि यद् बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१॥ यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् ॥ सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥

नमः” और जय२ शब्दसे श्रीकृष्णचंद्रको प्रणाम करके फूलोंकी वर्षा वर्षाने लगे ॥ २९ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा हुई, तब उस समय दमघोषका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णचंद्रके गुणोंका वर्णन सुन अत्यन्त क्रोधित हो भुजा उठाय ईर्षा कर निर्भय हो श्रीकृष्णचंद्रको कठोर वचन सुनाकर यह कहने लगा ॥३०॥ नाशरहित श्लाघ्य सामर्थ्यवान् काल बडा प्रबल है, वास्तवमें यह वेदकी श्रुति सत्य है, क्योंकि कालसे ही वृद्ध वृद्ध सभामें बैठनेवालोंकी बुद्धि इस बालक सहदेवके कहनेसे चलायमान हो गई ॥ ३१ ॥ हे पात्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सभापतियो! भला यह कृष्ण पूजाके योग्य है, कदापि नहीं. इस कारण इस बालकका वचन मानना उचित नहीं॥ ३२ ॥

क्योंकि तप करनेवाले विद्वान्, व्रती, ज्ञानी, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ और लोकपालोंसे पूजित ब्रह्मर्षि ॥ ३३ ॥ इस सभामें विराजते हैं, इन सबको त्याग गायोंका चरानेवाला और कुलको दोष लगानेवाला पूजाके योग्य कैसे हो सकता है? और यज्ञमें देवताओंके योग्य बलिको कौआ कैसे ग्रहण करनेके योग्य है?॥३४॥न जिसका कोई वर्ण,न आश्रम और न कोई कुल है,संपूर्ण धर्मसे बहिष्कृत,जैसे मनमें आवै वैसे ही करै गुणहीन,ऐसा कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सकता है?॥३५॥राजा ययातिने इसके कुलको शाप दिया और सत्पुरुषोंने जातिबहिष्कृत किया और सर्वदा वृथा मदिरापान करनेवाला इसका कुल है,फिर इस कुलमें आज कृष्ण कैसे पूजाके योग्य होता है ॥३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेवित देशोंको त्याग

तपोविद्याव्रतधराञ्ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ॥ परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्च पूजितान् ॥३३ ॥ सदसस्पतीनतिक्रम्य
गोपालकुलपांसनः॥ यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति॥३४॥वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥स्वैरवर्ता गुणै-
र्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ॥ वृथापानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति
॥३६॥ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान्हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ॥ समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधते दस्यवः प्रजाः ॥३७॥ एवमादीन्यभद्राणि
बभाषे नष्टमंगलः ॥ नोवाच किंचिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥ भगवन्निंदनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ॥
कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपंतश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥ निंदां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततो नापैति यः
सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥

ब्रह्मतेजरहित समुद्रके किलेका आश्रय लेकर यादवोंमें चोरके समान बाधा देता है ॥३७॥ हे भूपाल ! नष्टमंगल शिशुपाल और भी अनेक प्रकारके अमंगल वचन कहता रहा,परन्तु जैसे सिंह सियारोंके बोलनेपर ध्यान नहीं देता है इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ न बोले ॥३८॥ सभासद दुस्सह भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी इस प्रकार निन्दा सुन कर्ण मूंदि अत्यन्त क्रोधित हो शिशुपालको गाली देने लगे ॥३९॥ भगवान्की निन्दा सुन अथवा भगवत्परायण पुरुषोंकी निन्दा सुनकर जो पुरुष इस स्थानसे न उठ जायँ वह पुरुष अपने

पुण्यसे भ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं ॥४०॥ इसके उपरांत हे परीक्षित् ! क्रोधसे पाण्डुके पुत्र और मत्स्यदेश व सृञ्जय देशके राजा अपने अपने शस्त्रोंको उठाकर शिशुपालके मारनेको उपस्थित हुए ॥४१॥ हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! इसके पीछे घबराहट रहित शिशुपालने श्रीकृष्णचन्द्रके पक्षी राजाओंको मारनेके लिये ढाल और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली तलवार ग्रहण की ॥ ४२ ॥ यह मेरा पार्षद है और मेरे समान बलवान् है यह सबको मारेगा इससे मैं ही इसको मारूं यह विचार उसी समय उठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी ओरके राजाओंको निवारण करके सम्मुख आते अपने वैरी शिशुपालका शिर छूरेके समान पैनी धारवाले चक्रसे काट लिया॥ ४३ ॥ उस समय बडा कोलाहल शब्द हुआ और शिशुपालके पिछलगू राजा जीनेकी इच्छा करके भाग गये ॥४४॥ उस समय शिशुपालके देहमेंसे निकली हुई ज्योति

ततः पांडुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ॥ उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥ ततश्चैद्यस्त्व
संभ्रांतो जगृहे खड्गचर्मणी ॥ भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान्राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य
स्वयं रुषा ॥ शिरः क्षुरांतचक्रेण जहारापततो रिपोः॥ ४३ ॥ शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् ॥
तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥ ४४ ॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ पश्यतां सर्वभूताना
मुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥ ४५ ॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ॥ ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि
भवकारणम् ॥४६॥ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ॥सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥४७॥
साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥

सब प्राणियोंके देखते श्रीकृष्णचन्द्रमें मिल गई, जिस प्रकार अकाशसे गिरे तारे पृथ्वीमें मिल जाते हैं ॥ ४५ ॥ पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए, दूसरे जन्ममें रावण कुम्भकर्ण हुए, तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दंतवक्र हुए, इस प्रकार तीन जन्मके चले आये वैरसे तन्मय बुद्धिसे रूपका ध्यान करते करते उसी रूपको प्राप्त हुए, अर्थात् पार्षद हो गये, क्योंकि जैसी जो भावना करता है, वैसा ही उसका जन्म होता है ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत चक्रवर्त्ती राजा युधिष्ठिरने यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणोंको और बडे सभामें बैठनेवालोंको बडी दक्षिणा दी और विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञांत स्नान किया ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्रने राजा युधिष्ठिरका यज्ञ सिद्ध

करके और सुहृदोंकी विनयसे कितने ही मास पर्यन्त वहां वास किया ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त जाने देनेकी इच्छा न करनेवाले राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा मांग सामर्थ्यवान् भगवान् देवकीनंदन श्रीकृष्णचंद्र अपने स्त्री पुत्रोंको संग लेकर द्वारकापुरीमें आये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! वैकुण्ठके वास करनेवाले जय विजय पार्षदोंको सनकादिकका शाप लगा, इसकारण वारंवार जन्म हुआ, प्रथम यह कथा तुम्हारे आगे विस्तार सहित वर्णन कर चुके हैं ॥ ५० ॥ राजसूय यज्ञ कर चुकनेके पीछे स्नान कर राजा युधिष्ठिर और ब्राह्मण क्षत्रियोंके मध्यमें बैठे हुए इन्द्रके समान सभामें शोभायमान लगने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरसे सत्कार पाय सब देवता

ततोऽनुज्ञाप्यराजानमनिच्छंतमपीश्वरः ॥ ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥४९॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ॥ वैकुंठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥५०॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ॥ ब्रह्मक्षत्रसभा मध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥५१॥ राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ॥ कृष्णं क्रतुं च शंसंतः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ॥ यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पांडुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥ य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥ राजमोक्ष वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

और आकाशके विचरनेवाले मनुष्य, प्रमथगण श्रीकृष्णचन्द्र और सभा तथा यज्ञ इनकी प्रशंसा करते आनन्दपूर्वक अपने अपने लोकोंको चले गये ॥ ५२ ॥ परन्तु कौरवोंके कुलमें कलियुगरूप कुलका नाशक धर्मद्वेषी दुर्योधन पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिरकी बडी शोभाको देख अपने मनमें बहुत कुढा ॥ ५३ ॥ शिशुपालके वध आदिक जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म बीस हजार आठसौ राजा कैदसे छुटाये और राजा युधिष्ठिरका यज्ञ कराया, इस प्रसंगको जो पुरुष कहैं अथवा सुनैंगे, वह सब पापोंसे छूट जायँगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

दोहा–पिचहत्तर भ्रममें पडो, अवभृथको अस्नान। दुर्योधनको क्षमाबिन, भयो मान अपमान ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी ! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके राजसुय यज्ञकी बडी शोभा देखकर जो राजा आये थे, वह सब प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ और सम्पूर्ण देवताओंने भी आनन्द पाया, केवल दुर्योधन ही आनन्दसे वंचित रहा, यह हमने आपके ही मुखसे सुना, सो दुर्योधनको आनन्द क्यों न हुआ. इसका कारण कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! महात्मा तुम्हारे दादे राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सब बंधुबांधव प्रेमवश होकर सबहीकी टहल करते थे ॥ ३ ॥ किसने कौन काम किया सो कहते हैं, भीमसेनको रसोईका अधिष्ठाता, दुर्योधनको खर्च करनेका स्वामी कोशाध्यक्ष किया, क्योंकि यह हमको शत्रु जानकर बहुत द्रव्य उठावेगा,

राजोवाच ॥ अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥ सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ॥ इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥२॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ॥ बांधवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबंधनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ॥ सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ॥ परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ॥ बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च संतर्दनादयः ॥ ६ ॥ निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ॥ प्रवर्तंते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

तो इसमें हमारा यश होगा, सहदेवको आये गयेकी पूजा करनेका काम सौंपा और नकुलको अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका सम्पादक बनाया ॥ ४ ॥ साधुओंकी सेवा अर्जुन करता था और श्रीकृष्णचन्द्र यज्ञमें आनेवालोंके पांव धोकर पोंछ देते थे, परोसा परोसीमें द्रौपदी लग रही थी, उदारमन कर्ण दान देनेकी टहलमें लग रहा था ॥ ५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादिक, भूरिश्रवादि बाह्लीक राजाके पुत्र और सन्तर्दन आदि इस बडे यज्ञमें अनेक प्रकारके कामोंमें लगा दिये, उस समय वह सब महाराज युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये प्रवृत्त हो गये ॥ ६ ॥ ऋत्विक् और सभासद् तथा विवेकी सुहृज्जनोंने सुन्दर मनोहर वचन कहने और दक्षिणासे पूजित

होकर शिशुपालको श्रीकृष्णचंद्रके चरणकी प्राप्ति होनेके उपरान्त स्वर्गनदी गंगामें यज्ञकी समाप्तिका स्नान किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ यज्ञकी समाप्तिके उत्सवमें मृदंग, शंख, ढोलक, खञ्जरी, नगारे, गोमुख, नरसिंहादिक चित्र विचित्र बाजे बजने लगे ॥ ९ ॥ नाचनेवाली नाचने लगीं और आनन्दपूर्वक गवैयोंके झुण्डके झुण्ड गाने लगे तिनके वीणा वेणु और हथेलीका शब्द स्वर्गतक व्याप्त हो रहा था ॥ १० ॥ चित्र विचित्र छत्र, ध्वजा, पताका जिनके ऊपर ढकीं, ऐसे बडे बडे रथ हाथी और घोडोंपर चढ सुवर्णकी माला पहरे सेनाको संग लेकर राजा निकले ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरको आगे किये यदु, सृंजय, कांबोज, कुरु, केकय और कोशल देशके राजा पृथ्वीको कम्पायमान करते सेना सहित चले॥

1029

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ॥ चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥८॥ मृदंगशंखपणवधुंधुर्यानकगोमुखाः ॥ वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥९॥ नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ॥ वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेंद्रस्यंदनार्वभिः ॥ स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥ यदुसृंजयकांबोजकुरुकेकयकोसलाः ॥ कंपयंतो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥ १२ ॥ सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ देवर्षिपितृगंधर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ॥ १३ ॥ स्वलंकृता नरा नार्यो गंधस्रग्भूषणांबरैः ॥ विलिपंत्योऽभिषिंचंत्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥१४॥ तैलगोरसगंधोदहरिद्रासांद्रकुंकुमैः ॥ पुंभिर्लिप्ताः प्रलिंपंत्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥१५॥ गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ॥ ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥

॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज तथा ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करते चले और ऋषि, पितृ, गन्धर्व पुष्पोंकी वर्षा कर करके स्तुति करते थे ॥ १३ ॥ चन्दन, माला, गहने और वस्त्रोंसे शृंगार कर स्त्री पुरुष अनेक प्रकारके दूध, दही आदि रसोंका लेपन और छिरकाव करते थे ॥ १४ ॥ तेल और माखन सुगंधिके जल हरदी व केशर इत्यादिकोंको लेपन करते और छिड़कते परस्पर विहार करते थे ॥ १५ ॥ इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम विमानोंपर बैठकर देवांगना आई हों उसी प्रकार वीर और रावतोंसे रक्षित हो राजा युधिष्ठिरकी रानियें रथ और पालकियोंमें

बैठकर निकलीं, यह रानियें मामाके पुत्रोंसे और सखियोंसे भिगोयी हुई लाजभरी मुसकान व प्रफुल्लित मुखसे शोभायमान हो रही थीं ॥ ॥ १६ ॥ भीजनेसे और शरीरमें चिपटनेसे इन स्त्रियोंके अंग, कुच, जंघा और मध्यभाग स्पष्ट दिखाई देते थे, उत्सुकतासे चोटी शिथिल होनेके कारण उससे फूल बिखर रहे थे, देवर और सखीजन इन्हें डोलचियोंसे भिगो रहे थे, उनकी लीला देखकर मलीनमन कामी जनोंके चित्त अत्यन्त क्षुभित होते थे ॥ १७ ॥ सुवर्णकी माला पहरे और सुन्दर घोडे जुते रथमें बैठे राजा युधिष्ठिर जैसे क्रियाओं सहित यह

ता देवरानुत सखीन्सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नांबरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ॥ औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७ ॥ स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ॥ व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥१८॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥ आचांतं स्नापयांचक्रुर्गंगायां सह कृष्णया ॥१९॥ देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुंदुभिभिः समम् ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥२०॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ॥ महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥२१॥ अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ॥ ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणांबरैः ॥ २२ ॥

सुन्दर लगता है उसी प्रकार स्त्रियों सहित शोभायमान लगने लगे ❋ ॥ १८ ॥ ऋत्विजोंने वे पत्नी संयाज और आवभृथ्य नाम दो यज्ञांग करके गंगामें द्रौपदी सहित आचमन करा राजा युधिष्ठिरको स्नान करवाया ॥१९॥ देवता तथा मनुष्योंके नगारे बजने लगे और देवता ऋषि पितृ मनुष्यादि फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥२०॥ वर्णयुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारो वर्ण और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन चार आश्रमोंने भी गंगामें स्नान किया क्योंकि इस गंगामें स्नान करनेसे महापापी पुरुष भी शीघ्र पापसे छूट जाते हैं ॥२१॥ स्नान करने

❋ शंका—शास्त्रमें और लोकमें भी ऐसा सुना है कि, राजा युधिष्ठिरने एक: स्त्रीके सिवाय दूसरी स्त्रीके संग अपना विवाह नहीं किया, फिर यज्ञमें बहुत स्त्रियों करके शोभायमान युधिष्ठिर क्यों हुआ? उत्तर—द्रौपदीने युधिष्ठिरकी सेवा ऐसी की, जो सेवा करोडों स्त्रियोंके करनेसे नहीं हो सकती ऐसी द्रौपदीके पतिव्रतको युधिष्ठिरने देखकर मनमें जाना कि, हमारे करोडों स्त्री हैं और व्यासजीने भी युधिष्ठिरके मनकी बात जानकर कहा कि, युधिष्ठिर मनकी बहुतसी स्त्रियों करके अपने यज्ञमें शोभित हुए ॥

उपरांत राजा युधिष्ठिर नवीन रेशमी धोती पहर भलेप्रकार शोभायमान होकर ऋत्विज सभासद् और ब्राह्मणादिकोंकी वस्त्र सहित पूजा करने लगे ॥ २२॥नारायणके आश्रर्या राजा युधिष्ठिरने भाई बन्धु,जातिके राजा, मित्र, सुहृद् और भी सब मनुष्योंका वारंवार पूजन किया ॥ २३ ॥ देवताओंके समान कान्तिवाले मणियोंके जड़ाऊ कुण्डल,माला, पगडी; जामा,पटुका और बडे मोलके हार पहरे पुरुष और दोनों कुण्डल अलकोंके समूहसे शोभायमान मुखवाली स्त्रियें सुवर्णकी कौंधनी पहरे सब शोभायमान लगती थीं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! स्नान करे पीछे राज युधिष्ठिरसे पूजित हो शीलस्वभाववाले ऋत्विज, सभासद्, वेदपाठी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और राजा ॥ २५ ॥ देवता,

बंधुज्ञातिन्नृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ॥ अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुंडलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ॥ नार्यश्च कुंडलयुगाल कवृंदजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ॥ पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ॥ नैवातृप्यन्प्रशंसंतः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥ २८ ॥भगवानपि तत्रांग न्यवात्सीत्तत्प्रियंकरः ॥ प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च सांबादींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥ इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ॥ सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥३०॥

ऋषि,पितृ सब प्राणी अनुचरों सहित लोकपाल राजा युधिष्ठिरसे पूजन कराय आज्ञा मांग अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥ हरि भगवान्के भक्तोंमें राजर्षि राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी बडी शोभाकी प्रशंसा करते २ तृप्त नहीं हुए, जिस प्रकार मनुष्यका चित्त अमृत पीते २ तृप्त नहीं होता ॥ २७ ॥ सुहृद्, सम्बन्धी बन्धु और श्रीकृष्णचन्द्रके बिछुड़नेसे कायरमन हो राजा युधिष्ठिरने प्रेमसे रक्खा ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इन राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये सांब आदि पुत्र और यादवोंमें शूरवीरोंको द्वारकामें भेज आप श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रहने लगे ॥ २९ ॥ धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने दुस्तर मनोरथरूपी बडा समुद्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी

सहायतासे तरकर सब खेद दूर किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! एक समय भगवद्भक्त राजा युधिष्ठिरके रनवासकी लक्ष्मी व राजसूय यज्ञकी महिमा देखकर दुर्योधन सन्ताप करने लगा ॥३१॥ राजा युधिष्ठिरका अंतःपुर कि जहां मयदैत्यरचित नरपति, दैत्यपति और देवपतियोंकी नाना प्रकारकी विभूतियां प्रकाशमान हो रही थीं और जहां उन विभूतियोंके साथ द्रौपदी अपने स्वामियोंकी सेवा करती थी उसे देख दुर्योधनका मन अत्यन्त तापको प्राप्त हुआ ॥३२॥ राजा युधिष्ठिरके अंतःपुरमें उस समय मधुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके समूह नितम्बोंके भारसे धीरे २ चलनेमें बजते नूपुरोंसे शोभित चरण कुचोंकी केशरसे अरुण हार धारण किये चंचल कुंडल और केशपाशसे युक्त सुन्दर

एकदांतःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ॥ अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेंद्रदितिजद्रसुरेंद्रलक्ष्मीर्नाना विभांति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ॥ ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् ॥ मध्ये सुचारुकुचकुंकुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुंतलाढ्यम् ॥३३॥ सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ॥ वृतोऽनुजैर्बंधुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः कांचने साक्षादासने मघवानिव ॥ पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ॥ किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन्रुषा ॥ ३६॥ स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रांतं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ॥ जले च स्थलवद्भ्रांत्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥

मुख, रमणीय कटिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रकी सहस्रों रानियें वहां फिरती थीं ॥ ३३ ॥ मयदैत्यकी बनाई सभा, उसमें किसी समय अपने आज्ञाकारी भाई बन्धुसहित और हित अहितके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसहित धर्मपुत्र राजा चक्रवर्ती युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥ साक्षात सिंहासनपर जैसे इन्द्र विराजमान होता है, उसी प्रकार सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान होकर राज्यकी शोभासे सेवित और बंदीजनोंसे स्तुति पाय शोभायमान होने लगे ॥३५॥ हे राजा परीक्षित ! उसी समय भाइयोंको संग ले किरीट धारण किये माला पहरे और हाथमें तलवार लिये क्रोध कर द्वारपालोंको डाटता हुआ अभिमानी दुर्योधन सभामें आया ॥ ३६ ॥ वहां मयदैत्यकी बनाई सभामें सूखेमें जल दीखे

103

और जलमें सूखा दीखे, ऐसी मयरचित सभामें मयदैत्यकी मायासे मोहित होकर दुर्योधनने भ्रमसे सूखेमें जल जान अपना जामा उठाया और सूखा जानकर जलमें छोड़ दिया और जलमें गिर गया॥ ३७॥ हे राजा परीक्षित्। दुर्योधनको गिरा देखकर भीमसेन व सब स्त्रियें हँसने लगीं. यह देख राजा युधिष्ठिरने यद्यपि मने भी किया, परंतु तो भी श्रीकृष्णचंद्रकी सैन देनेसे पहिले भीमसेन हँसे फिर पीछे सब राजा हँसने लगे ॥ ३८ ॥ इन राजाओंको हँसता देख दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हो नीची नार कर क्रोधाग्निसे भभकता हुआ सभासे निकल चुपचाप हस्तिनापुरको चला गया, उस समय साधुओंके बीच बडा हाहाकार शब्द हुआ और अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर उदास हो गये, जिनकी दृष्टिसे सब जगत् भ्रमण करता है वह भगववान् तो चुप होकर बैठ गये,क्योंकि उनकी इच्छा पृथ्वीका भार उतारनेकी थी कि, किसी न किसी

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ॥ निवार्यमाणा अप्यंग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥३८॥ स व्रीडितोऽवागवदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णींप्रययौ गजाह्वयम् ॥ हाहेति शब्दः सुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत्॥ बभूव तूष्णीं भगवान्भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥३९॥ एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया॥ सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० दुर्योधनमानभंगो नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥ श्रीशुक उवाच॥ अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥ क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥ शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ॥ यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासंधादयस्तथा ॥ २ ॥

प्रकार यह पृथ्वीका भार उतरै,सो यह समागम सहजमें बन गया- प्रथम यही भारतका बीज जमा ॥३९॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जो आपने प्रश्न किया था कि,राजसुय यज्ञमें दुर्योधन कैसे कुढ़ा सो उसका उत्तर मैंने सब आपके सम्मुख वर्णन कर दिया ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां दुर्योधनमानभंगो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ दोहा-युद्ध छिहत्तरमें भयो, यादव शाल्व अपार । घूमत गदा प्रहारसे, गये प्रद्युमन हार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! इसके उपरान्त क्रीडासे ही मनुष्यशरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके और भी अद्भुत कर्म हैं, जिस प्रकार सौभविमानके पति शाल्वको मारा, सो श्रवण करो ॥ १ ॥ शिशुपालका मित्र शाल्व रुक्मिणीके विवाहमें आया था तब उसको संग्राममें

यादवोंने जीत लिया और इसी प्रकार जरासन्धादि राजा भी जीते॥२॥सब राजाओंको सुनाकर राजा शाल्वने यह प्रतिज्ञा करी कि,सम्पूर्ण पृथ्वी यादवकुलरहित करूंगा, अब तुम सब मेरे पराक्रमको देखो ॥ ३ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार मूर्ख शाल्व प्रतिज्ञा कर केवल धूलकी एकमुष्टी फांकता हुआ पशुपति शिवजीकी आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ शीघ्र सन्तुष्ट होनेवाले शिवजी श्रीकृष्णके द्वेषी शाल्वको वर देना निष्फल जान शीघ्र प्रगट न हुए परन्तु शरण आये शाल्वसे एक वर्ष पीछे यह कहने लगे कि, वर मांग ॥ ५ ॥ उस समय देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस इनसे न टूटै और जहांकी इच्छा हो वहां पहुँचावै, यादवोंको भयका देनेवाला ऐसा विमान दो, यह वर मांगा

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥३॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम्॥आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद् ग्रसन् ॥४॥ संवत्सरांते भगवानाशुतोष उमापतिः ॥ वरेण च्छंदयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥ ५ ॥ देवासुरमनुष्याणां गंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम्॥६॥तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरंजयः॥पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम्॥७॥स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम्॥ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन्॥८॥ निरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ॥पुरीं बभंजोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥९॥ सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ॥ विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः॥ प्रचंडचक्रवातोऽभूद्रजसाऽऽच्छादिता दिशः ॥११॥

॥ ६ ॥ तब ऐसा ही होगा, यहकह भगवान् महादेवजीने मय दानवको आज्ञा दी, उसने झट वैरियोंके पुरको जीतनेवाला सौभनाम लोहेका बना विमान शाल्वको दिया॥७॥ अन्धकारका घर, दुष्प्राप्य और इच्छानुसार चलनेवाला विमान पाय वह शाल्व कृष्णके वैरका स्मरण करके द्वारकापुरीकी ओरको चला ॥ ८ ॥ हे राजन् ! शाल्व बडी सेनासे द्वारकापुरीको घेरकर सम्पूर्ण फूलोंके बाग और उद्यानोंको तोड़ने लगा ॥ ९ ॥ गोपुर,दरवाजे, महल, अटा इनकी भीतें व विहारस्थान तोड़ने लगा और उस उत्तम विमानपरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥ १० ॥ और शिला, वृक्ष बिजली, सर्प, ओले बरसने लगे और प्रचण्ड पवन चलनेके कारण सम्पूर्ण दिशायें आच्छादन

होगई ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् । इस प्रकार सौभ विमानसे पीडित श्रीकृष्णचन्द्रकी द्वारकापुरी जैसे त्रिपुर दैत्यसे पृथ्वी दुःखी हुई थी, उसी प्रकार दुःखी हो गई. सुखका कहीं लेश भी न रहा ॥ १२ ॥ बडे यशी महारथी भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको दुःखी देखकर “भय मत करो” इस प्रकार कहकर सम्मुख आये ॥ १३ ॥ और सात्यकी, चारुदेष्ण, सांब और छोटे भाई अक्रूर तथा हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुकसारण ॥ १४ ॥ बडे धनुषधारी महारथी योद्धा कवच पहर रथ, हाथी, घोडे और पैदल इत्यादिकोंको संग लेकर निकले ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त हे राजन् ! असुरोंका जैसे देवताओंके संग युद्ध हुआ था, उसी प्रकार रोमाञ्चकारक महाभयानक युद्ध शाल्वकी सेनाका यादवोंके संग होने लगा ॥१६॥ जैसे रात्रिके अंधकारको भगवान् सूर्य दूर कर देते हैं वैसे ही रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने सौभ विमानके पति शाल्वकी मायाओंका क्षणभरमें नाश कर दिया ॥ १७ ॥ सोनेके पुंख,लोहेकी भाली और छोटी छोटी गांठवाले पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको शीघ्र बींध डाला ॥ १८ ॥ इसके उपरांत भगवान् प्रद्युम्नजीने सौ बाण शाल्वके और एक एक बाण प्यादोंके तथा दश दश बाण सारथी और तीन तीन बाणोंसे घोडे हाथियोंको बींध डाला ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्नजीका यह अद्भुत पराक्रम देखकर अपनी पराई सेनाके

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ॥ नाभ्यपद्यत शं राजस्त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥ प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य
बाध्यमाना निजाः प्रजाः ॥ मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥१३॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च सांबोऽक्रूरः सहा
नुजः ॥हार्दिक्यो भानुविंदश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥ अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ॥ निर्ययुर्दंशिता गुप्ता
रथेभाश्वपदातिभिः॥१५॥ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ॥ यथाऽसुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥
ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ॥ क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥ विव्याध पंचविंशत्या
स्वर्णपुंखैरयोमुखैः ॥ शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१८॥ शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ॥
दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे
स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥

योद्धा सब ही प्रद्युम्नजीकी बडाई करने लगे ॥ २० ॥ * मयदैत्यका बनाया वह मायामय विमान कभी तो नानारूपसे और कभी एकरूपसे दिखाई देता, कभी बिलकुल दीखता ही नहीं,इस लिये शत्रु जो यादव उनको उसका तर्क करना महा कठिन हो गया ॥ २१ ॥ वह विमान कभी भूमिपर, कभी आकाशमार्गमें कभी, पर्वतोंके शिखरपर और कभी जलमें अलातचक्रके समान भ्रमण कर रहा था,इस कारण इसकी व्यवस्थाका ठिकाना लगना अत्यन्त कठिन हो गया ॥ २२ ॥ विमान और सेनासहित जहाँ जहां शाल्व दिखाई देता था, वहाँ वहाँ यादवोंमें

बहुरूपैकरूपं तद् दृश्यते न च दृश्यते ॥ मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत्॥२१॥क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ॥ अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥ २२ ॥ यत्रयत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ॥ शाल्वस्ततस्ततोऽमुंचञ्छरान्सात्त्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ॥ पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥ २४ ॥ शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ॥ न तत्यजू रणं स्वंस्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥ २५ ॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः ॥ आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली ॥२६॥ प्रद्युम्नं गदयाशीर्णवक्षस्थलमरिंदमम् ॥ अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥

मुख्य वीरगण बाणोंको छोड़ते थे॥ २३ ॥ अग्नि सूर्यके समान गरम स्पर्शवाले विषके तुल्य असह्य वैरियोंके चलाये बाणोंसे शाल्वकी सेना अत्यन्त पीडित होगई और शाल्व भी व्याकुल हो गया ॥२४॥ शाल्वकी सेनाके शस्त्रोंके समूहसे अत्यन्त पीडित होकर भी लोक परलोकके जीतनेकी इच्छावाले यादव शूरवीरोंने अपनी अपनी युद्धभूमिको नहीं छोडा ॥ २५ ॥ प्रद्युम्नके पहले गदाप्रहारसे पीडित हुआ शाल्वका बली द्युमाननाम मंत्री लोहेकी गदा छातीमें मारकर पुकारने लगा ॥ २६ ॥ वैरीकोशांत करनेवाले प्रद्युम्नजीका वक्षस्थल गदाके लगनेसे

---

* शंका–प्रद्युम्नने बाणोंसे शाल्वको और शाल्वकी सेनाको मूर्छित करदिया तब प्रद्युम्नके ऐसे पराक्रमको देखकर शाल्वकी सेना और प्रद्युम्नकी सेनाने क्यों आश्चर्य माना? प्रद्युम्नका क्या नवीन कर्तव्य था ऐसा कर्तव्य तो प्रद्युम्नने अनेक बार किया था।

उत्तर–शाल्वको ब्रह्माने किसी समय वर दिया था कि,तुझको और तेरी सेनाको संग्राममें श्रीकृष्णजी मूर्छित करेंगे और त्रिलोकीमें कोई प्राणी तुझको और तेरी सेनाको दुःखित नहीं कर सकेगा,जब प्रद्युम्नने शाल्वको और उसकी सेनाको मूर्छित कर दिया तब ब्रह्मादिक सब देवता आश्चर्य मानने लगे और प्राणियोंने आश्चर्य माना तो क्या बडी बात है ?

विदारित हो गया, तब धर्मका जानने वाला दारुकका पुत्र सारथी प्रद्युम्नजीको लेकर रणभूमिसे बाहर निकल आया ॥ २७ ॥ दो घडीमें चैतन्य हो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजी सारथीसे बोले कि, अहो रथवान्! तू रणमेंसे जो मुझे भगाकर ले आया,यह बुरा काम किया ॥२८॥ व्याकुल चित्तव ले तुझ रथव नने मुझे कलंक लगाया, क्योंकि मुझ विना यादवोंके कुलमें जन्म ले रणमेंसे भागा और किसीको नहीं सुना परन्तु मेरा इसमें क्या दोष , यह कलंक तो सारथीने लगाया ॥ २९ ॥ पिता राम कृष्णसे मिलूंगा तो क्या कहूँगा ? वह पूछेंगे तब युद्धमेंसे भागकर निकला हुआ मैं अपनी योग्यताके विषयमें किस प्रकार निवेदन करूंगा ? ॥३०॥ भाइयोंकी स्त्रियें भाभी, हे वीर ! युद्धमें शत्रुओंके सम्मुखसे नपुंसक हो कैसे आज भाग आये ! हमसे तो कहो,इस प्रकार हँस कर मुझसे कहगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर रथवान्

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ॥अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम्॥२८॥न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ॥विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात्॥२९॥किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ ॥ युद्धात्सम्यगपक्रांतः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यंति हसंत्यो भ्रातृजामयः ॥ क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानताऽऽयुष्मन्कृतमेतन्मया विभो ॥ सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥ एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात ॥ उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकामुकः ॥ नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

बोला हे चिरंजीवी । हे समर्थ ! धर्मका ज्ञाता मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया, क्योंकि धर्ममें ऐसा ही कहा है कि, रथमें बैठनेवालेको कष्ट आनकर उपस्थित हो तो रथवान् रक्षा करे और सारथीके ऊपर कष्ट आवे तो बठनेवाला उसकी क्षा करे ॥ ३२ ॥ हे वीर ! शत्रुने आपके गदा जो मारी तो आप अति पीडित होकर मूर्छित हो गये, इसलिये धर्म जानकर मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥दोहा–सतहत्तर अध्यायमें,शाल्ववीरको मार । तोरो सौभ विमान पुनि,यदुपति परम उदार ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरान्त प्रद्युम्नजीने हाथ पाँव धो कवच पहर और धनुष हाथमें लेकर

कहा कि, हे रथवान्! वीर द्युमानके पास मुझे ले चल ॥ १ ॥ रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने मुसकाकर अपनी सेनाके योद्धाओंको मारते हुए द्युमानको अत्यन्त तीक्ष्ण आठ बाण मारे ॥ २ ॥ चार बाणोंसे चारो घोडोंको,एक बाणसे रथवान्को मारा,दो बाणोंसे धनु और ध्वजाको काट डाला और एक बाणसे महारथी प्रद्युम्नजीने द्युमानका शिर काट लिया ॥३॥ गद,सात्यकी और सांब आदि यादव विमानका पालन करनेवाले शाल्वकी सेनाको मारने लगे और शिर कटनेसे संपूर्ण विमानके बैठनेवाले समुद्रमें गिर गये ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तम! इस प्रकार २७ सत्ताईस दिनतक यादव और शाल्वकी सेनाका महाभयानक युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! धर्मके पुत्र राज

विधमंतं स्वसैन्यानि द्युमंतं रुक्मिणीसुतः ॥ प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्वयम् ॥ २ ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान् सूतमेकेन चाहनत ॥ द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥३॥
गदसात्यकिसांबाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ॥ पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकंधराः ॥ ४ ॥
एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥
इंद्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ॥ राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥
कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन्द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥
आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसंगतः ॥ राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥
वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ॥ सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरके बुलाये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें गये थे, वहां जब राजसूययज्ञ हो चुका और शिशुपाल मर चुका ॥६॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंमें वृद्धोंसे और मुनियोंसे और पुत्रोंसहित कुन्तीसे आज्ञा माँग मार्गमें कुत्सित शकुन देख द्वारकापुरीको प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ और मार्गमें खोटे शकुन देखकर विचार करने लगे कि, बडे भाई बलदेवजीसहित मैं यहाँ यज्ञमें आया हूँ, इससे शिशुपालकी ओरके राजा निश्चय मेरी पुरीका नाश करते होंगे ॥ ८ ॥ अपने यादवोंका कष्ट देख बलदेवजीको द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिय कहकर सौभ विमानमें बैठ हुए शाल्वको देख केशव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्से कहनेलगे कि ॥ ९ ॥

हे रथवान्! शीघ्र मेरे रथको शाल्वके समीप पहुँचा दे. इस विमानका राजा शाल्व बडा मायावी है, इससे तू घबराना मत ॥ १० ॥
इसप्रकार वचन सुन रथवान् रथपर बैठकर रथको हाँकने लगा और अपनी पराई सेनाके लोगोंने रथकी ध्वजामें गरुडको आता देखा ॥ ११ ॥
शाल्वकी बहुतसी सेना नाश हो गई,इस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको युद्धमें आया देखकर शाल्वने उनके सारथीपर अत्यन्त भयंकर वेग
वाली शक्ति फेंकी ॥ १२ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दिशाओंका प्रकाश करती, बड़े तारेके समान आकाशमें चली आती बरछीको
अपने बाणोंसे सौ खण्ड कर दिये ॥ १३ ॥ और अत्यन्त कुपित हो सोलह बाणोंसे शाल्वको बींध डाला, फिर आकाशमार्गमें भ्रमण करनेवाले

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यांतिकमाशु वै ॥ संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥१०॥ इत्युक्तश्चोदयामास
रथमास्थाय दारुकः ॥ विशंतं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ॥
प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥ तामापतंतीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ॥ भासयंतीं दिशः शौरिः
सायकैः शतधाऽच्छिनत् ॥१३॥ तं च षोडशभिर्विद्धा बाणैः सौभं च खेभ्रमत् ॥ अविध्यच्छरसंदोहैः खं सूर्य इव
रश्मिभिः ॥१४॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ॥ बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥१५॥
हाहाकारो महानासीद् भूतानां तत्र पश्यताम् ॥ विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥ यत्त्वया मूढ नः
सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥

विमानको सूर्यकी किरणोंसे बिंधे हुए आकाशके समान बाणोंके समूहोंसे वेध दिया ॥ १४ ॥ शार्ङ्गधनुषधरी शौरि श्रीकृष्णचन्द्रकी
धनुष सहित वाम भुजाको शाल्वने बींध दिया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके हाथसे धनुष गिर गया, यह बडे ही आश्चर्यकी बात हुई ॥ १५ ॥
हाथमेंसे धनुष गिरा देख प्राणियोंमें बडा हाहाकार शब्द हुआ और उसी अवसरमें विमानका राजा शाल्व अत्यन्त ऊँचे स्वरसे गर्जना
कर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि ॥ १६ ॥ हे मूर्ख! जो तू हमारे भाई अथवा सखा शिशुपालकी स्त्रीको हमारे देखते ही हरकर ले गया
और सभाके बीच असावधान विराजमान तैंने हमारे सखाको मारा ॥ १७ ॥

अपनेको अजित माननेवला तू जो आज मेरे सन्मुख खडा रहेगा तो निश्चय यमलोक पहुँचा दूंगा ॥ १८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अधम ! तू वृथा बकवाद करता है,और निकट ही जो तेरी मृत्यु उपस्थित है उसे नहीं देखता.शूरवीर बहुत बकते नहीं, अपना पुरुषार्थ दिखाते हैं ओर जो बहुत बकते हैं सो कुछ पराक्रम नहीं करते ॥ १९॥ इस प्रकार कह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्रोध करके बड़े वेगकी गदा कण्ठके नीचे हाडमें मारी कि जिसके लगनेसे शाल्व रुधिर वमन करता हुआ कांपने लगा ॥ २० ॥ और तत्काल ही शाल्व अन्तर्धान हो गया, फिर दो घडी पीछे एक पुरुष आय शिर झुकाय श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर रोता हुआ "मुझे देवकीने भेजा है" यह कहने

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ॥ नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥१८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृथा त्वं कत्थसे मंद न पश्यस्यंतिकेऽन्तकम् ॥ पौरुषं दर्शयंति स्म शूरा न बहुभाषिणः॥१९॥इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया भीमवेगया ॥ तताड जत्रौ संरब्धः स चकंपे वमन्नसृक् ॥२०॥ गदायां संनिवृत्तायां शाल्वस्त्वंतरधीयत॥ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम्॥देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥ २१॥ कृष्णकृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल॥ बद्ध्वाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः॥२२॥निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः॥ विमनस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसंभ्रांतं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः॥ शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान्विधिः॥२४॥इति ब्रुवाणे गोविंदे सौभराट् प्रत्युपस्थितः॥वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥

लगा ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे पिताका हित करनेवाले ! जैसे कसाई पशुको बांधकर ले जाता है, उसीप्रकार शाल्व तुम्हारे पिताको बांधकर लेगया ॥ २२ ॥ ऐसा अप्रिय वचन सुन मनुष्य स्वभावमें प्राप्तमन दयावान् श्रीकृष्णचन्द्र विमन होकर प्राकृत मनुष्यके समान कहने लगे ॥२३ ॥ कि, संभ्रम रहित देवता असुरोंके अजय बलदेवजीको जीतकर तुच्छ शाल्व मेरे पिताको कैसे बाँधकर ले गया ! विधाता बलवान् है, कदाचित् ले गया होगा॥२४॥श्रीकृष्णचन्द्र इतना कहते ही थे कि, इतनेमें मायाके वसुदेवको लेकर शाल्व

आया और श्रीकृष्णचन्द्रसे बोला कि हे नीच! यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है, जिसके लिये तू जीवित है सो अभी तेरे देखते इसे मारूंगा, यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो इसकी रक्षा कर * ॥२६॥ ॥ २६ ॥ मायावी शाल्वने इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको कटु वाक्य कह तलवारसे वसुदेवजीका मस्तक काटडाला और उस मस्तकको ले आकाशमें स्थित सौभ विमानमें पहुँचा ॥ २७ ॥ स्वतः सिद्ध ज्ञानवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने जनोंके संग दो घड़ी तक मनुष्योंके स्वभावसे शोकमें डूबे रहे इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मय दैत्यकी प्रगट करी

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ॥ वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६॥ एवं निर्भर्त्स्य
मायावी खड्गेनानकदुंदुभेः ॥ उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः
स्वबोध आस्ते स्वजनानुषंगतः ॥ महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥
न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः॥ स्वाप्नं यथा चांबरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहंतु
मुद्यतः ॥ २९॥ एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः ॥ यत्स्ववाचो विरुध्येत नूनं तन्नः स्मरंत्युत ॥ ३० ॥

शाल्वकी चलाई आसुरी मायाको जान लिया ॥२८॥ जब इस प्रकार चेते तो जैसे जागता हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थको न देखे उसी प्रकार रणभूमिमें श्रीकृष्णचन्द्रने न तो दूतको देखा और न पिताके देहको देखा, वरन् सौभ विमानमें विराजमान आकाशमें भ्रमण करते हुए शत्रुको देखकर उसके मारनेका उपाय करनेलगे ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे महाभागवत परीक्षित्! पूर्वापरका अनुसंधान न रखने वाले कितने एक ऋषिलोग यह कहते हैं, पर वह अपनी वाणीमें जो विरोध आता है उसका ध्यान नहीं करते, उन्होंने पहले कहा

---

* शंका– शाल्वने माया करके वसुदेवजीकी मूर्ति साक्षात् बनाली यह बडी शंका है, क्या माया रात दिन सबकी बुद्धि भ्रमाती है? क्योंकि राक्षस मायाके द्वारा अनेक प्रकारकी वस्तु बनालेते हैं, परन्तु शास्त्रोंमें लिखा है कि वसुदेव सरीखे तपधारी और श्रीकृष्ण भगवान् भक्तहितकारी वैकुण्ठनाथसे जिनके पुत्र, ऐसे धर्मात्माकी मूर्तिको मायासे क्षुद्र राक्षसने बनालिया यह महाआश्चर्यकी बात है ।

उत्तर–ब्रह्माने किसी समय शाल्वको वर दिया था कि, ब्रह्मा, विष्णु महादेवकी मूर्ति तो तुझसे बनेगी नहीं और त्रिलोकीमें जिसकी मूर्ति बनाया चाहेगा उसकी बना लेगा और ब्रह्माने वरदानके देते समय शाल्वसे यह भी कहा था कि, जब तू वसुदेवकी मूर्ति बनावेगा उसी समय तू मारा जायगा, उस ब्रह्माके वचनको कालवश होकर भूलगया और वसुदेवकी मूर्ति बनाई उसी समय वृन्दावन विहारी श्रीगोवर्धनधारीने शाल्वको मारडाला, देखो जब मृत्युके दिन आते हैं, तब परमेश्वर वैसाही बना देता है, इसलिये शाल्वने वसुदेवकी मूर्ति क्या बनाई थी अपना काल बुलाया था ॥

कि "बलदेवजीकी आज्ञा ले और उन्हें हस्तिनापुरमें छोड आप इन्द्रप्रस्थ गये" इसके उपरांत कहते हैं कि "इन्द्रप्रस्थसे आ शाल्वको युद्ध करता देख बलदेवजीको द्वारकाकी रक्षा करनेके लिये भेजा" यह उनके वचनमें ही भेद होता है, सो शुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजन्! यह हमारा मत नहीं है और ऋषियोंका है ॥ ३० ॥ शोक, मोह, स्नेह, भय यह कहाँ ? और अखण्ड विज्ञान ऐश्वर्य देवता जिनकी स्तुति करें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ ॥ ३१ ॥ जिनके चरणारविंदकी सेवासे पुष्ट हुई आत्मविद्याके प्रभावसे सज्जन पुरुष अनादिकालकी देहात्मबुद्धिको त्याग अनन्त ईश्वरसम्बन्धी पद आत्माको पाते हैं, उन सर्वोत्तम शरणागतपालक श्रीकृष्णचन्द्रमें कदाचित् मोह नहीं हो

क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः ॥ क्व चाखंडितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखंडितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितयाऽऽत्मविद्यया हिन्वंत्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ॥ लभंत आत्मीयमनंतमैश्वरं कुतो न मोहः परमस्य सद्गतेः ॥ ३२ ॥ तं शस्त्रपूगः प्रहरंतमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः॥ विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥३३॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा ॥ विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद्द्रुतम्॥३४॥आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाथ रथांगमद्भुतम् ॥ वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुंडलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ॥ वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरंदरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥ ३६ ॥

सकता ॥ ३२ ॥ यही यथार्थ है कि, बड़े पराक्रमी शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने बलपूर्वक शस्त्रोंके प्रहारसे शाल्वको वेध उसका कवच धनुष और उसके शिरकी मणि काटकर उसके विमानको गदासे चूर्ण कर दिया॥ ३३॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथकी चलाई हुई गदासे हजारों खण्ड होकर वह विमान चूर्णीभूत हो पृथ्वीमें गिर गया, उस समय शाल्व विमान छोड़ गदा हाथमें ले श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपरको दौडा ॥ ३४ ॥ दौडते हुए शाल्वका गदासहित हाथ भालेसे काटकर उसके मारनेके लिये प्रलयकालके सूर्यके समान सुदर्शनचक्रको ग्रहण कर उदयाचल पर्वतपर सूर्यके समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शोभायमान लगने लगे ॥३५ ॥ जैसे देवराज इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरका माथा

काटा था, उसी प्रकार अत्यन्त मायावी शाल्वका कुण्डलों सहित शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट लिया, उस समय मनुष्योंमें बडा हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३६ ॥ इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! जिस समय गदासे विमान टूटा और अत्यन्त पापी दुराचारी शाल्व पृथ्वीमें गिर पडा, तब स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजने लगे. इसके उपरांत मित्र शिशुपाल और शाल्व तथा पौण्ड्रक इनका ऋण चुकानेके लिये क्रोधित हो दंतवक्र आया ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां सौभशाल्ववधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ दोहा—दन्तवक्र हरि मार पुनि, हनो विदूरथ वीर । रोमहर्ष हलधर वधो, अठहत्तर रणधीर ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! परलोकमें प्राप्त हुए शिशुपाल और शाल्व तथा पौण्डकके परोक्षमें मित्रता

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥ नेदुर्दुंदुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥ सखीनामपचितिं कुर्वन्दंतवक्रो रुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० म०द०उ० सौभशाल्ववधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिशुपालस्य शाल्वस्य पौंड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥ परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकंपयन् ॥ पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥ तं तथाऽऽयांतमालोक्य गदामादाय सत्वरः ॥ अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिंधुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्य कारूषो मुकुंद प्राह दुर्मदः ॥ दिष्ट्यादिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथ गतः ॥ ४ ॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ् मां जिघांससि ॥ अतस्त्वां गदया मंद हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥ तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ॥ बंधुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

का जाननेवाला दुष्टबुद्धि दंतवक्र क्रोध कर अकेला ही पांवप्यादा महाबलवान् गदा हाथमें लिये पृथ्वीको कम्पायमान करता अत्यन्त शीघ्रतासे आता हुआ दिखाई दिया ॥ १ ॥ २ ॥ इसप्रकार दंतवक्रको आता हुआ देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गदा हाथमें ले रथसे उतर समुद्रको जैसे किनारे रोकै है उसी प्रकार दंतवक्रको रोक दिया ॥ ३ ॥ दुर्मद करूषदेशका राजा दंतवक्र मुक्तिके देनेवाले भगवान श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि, तू जो मेरे नेत्रोंके सम्मुख आया यह बड़ा ही मंगल हुआ ॥ ४ ॥ हे कृष्ण! तू हमारे मामाका पुत्र और हमारे मित्रका मारनेवाला है और मुझे भी मारना चाहता है, इसलिये हे मूर्ख! वज्रके समान इस गदासे तेरा प्राण संहार करूंगा ॥ ५ ॥ हे अज्ञानी! देहमें रहे रोगको जिस प्रकार

नाश करते हैं; इसी प्रकार बन्धुरूप वैरी जो तू है, उसे मारूंगा. तब मित्रवत्सल मैं मित्रोंके ऋणसे उऋण हूँगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार कठोर
वाक्य कह श्रीकृष्णचन्द्रके माथेमें गदा मारकर सिंहके समान दन्तवक्र गर्जने लगा, जैसे हाथीके अंकुश लगे ऐसे ही वह गदा लगी ॥ ७ ॥
संग्राममें गदा लगनेसे भी श्रीकृष्णचन्द्र न गिरे, इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने भी कौमोदकी बडी गदाको ले दंतवक्रकी
छातीमें मारी ॥ ८ ॥ अत्यन्त वेगवान् गदा पडनेके कारण हृदय विदीर्ण होनेसे दंतवक्र मुखसे रुधिरका वमन करता हुआ प्राणोंको छोड़
केश, हाथ, पांव फैलाकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ९ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरांत दंतवक्रके शरीरसे अद्भुत सुक्ष्म ज्योति निकलकर सब

एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ॥ गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद् व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतो
ऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ॥ कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनांतरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रु
धिरं मुखात् ॥ प्रसार्य केशबाह्वंघ्रीन्धरण्यां न्यपतद् व्यसुः ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ॥
पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप॥१०॥विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसं
स्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ शिरो जहार राजेंद्र सकिरीटं सकुंडलम् ॥ १२ ॥
एवं सौभं च शाल्वं च दंतवक्रसहानुजम् ॥ हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः सिद्धगंधर्वै
र्विद्याधरमहोरगैः ॥ अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥१४॥

प्राणियोंके देखते शिशुपालके वधके समान श्रीकृष्णचंद्रमें प्रवेश कर गई ॥ १० ॥ इसके उपरांत भाई दंतवक्रके शोकसे व्याकुल विदूरथ
ढाल, तलवार ले श्रीकृष्णचंद्रको मारनेके लिये बडे २ श्वास लेता हुआ आया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! विदूरथको इस प्रकार आता हुआ
देख मुकुट और कुण्डलोंसहित उसका शिर छुरेके समान धारवाले चक्रसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट लिया ॥१२॥ इस प्रकार सौभ
विमान और शाल्व तथा भ्राताओंसहित दंतवक्रको जब भगवान् वासुदेव मार चुके, तब देवता और मनुष्य स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥
मुनीश्वर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बडे सर्प, अप्सरा, पितरोंके गण, यक्ष, किन्नर, चारण ॥ १४ ॥

यह सब कोई श्रीकृष्णचंद्रकी विजय गाय फूल बरसायकर चले गये. इसके उपरांत श्रीकृष्णचंद्र सब यादवोंको संग ले शोभायमान द्वारकापुरीको गये ॥ १५॥ इस प्रकार योग और जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सदा जयको ही प्राप्त करते हैं, पशुओंके समान दृष्टिवाले अज्ञानी पुरुषोंको जरासंधसे हारे जीते प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ पीडित कौरवोंको एक तुल्य माननेवाले बलदेवजी इनके युद्धका उद्यम सुनकर तीर्थयात्राका बहाना कर द्वारकासे चले गये, क्योंकि यहां रहनेसे जिसकी ओर न हूँगा वही बुरा मानेगा ॥१७॥ प्रभास तीर्थमें स्नान कर देवता, ऋषि, पितृ, मनुष्योंका तर्पण कर और ब्राह्मणोंको संग ले सरस्वतीके प्रवाहके सन्मुख महात्मा बलदेवजी गये ॥

उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ॥ वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीम् ॥१५॥ एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवा
ञ्जगदीश्वरः ॥ ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥१६॥श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पांडवैः ॥तीर्थाभिषे
कव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥१७॥ स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान्॥सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मण
संवृतः ॥१८॥ पृथूदकं बिंदुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ॥ विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९॥ यमुनामनु
यान्येव गंगामनु च भारत ॥ जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २०॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥
अभिवंद्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चाऽर्चयन् ॥२१॥सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ॥ रोमहर्षणमासीनं महर्षेः
शिष्यमैक्षत ॥२२॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणांजलिम् ॥ अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥

॥ १८ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! पृथूदक, बिंदुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन तीर्थ, विशाल ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती व यमुनाके तीर्थ, गंगाके तीर्थ और जहां ऋषि यज्ञ करैं इस नैमिषारण्यमें बलदेवजी गये ॥ १९ ॥ २० ॥ बडे यज्ञवाले मुनि बलदेवजीको आया हुआ देख प्रशंसा करते हुए शीघ्र उठ प्रणाम कर यथायोग्य इनका पूजन करने लगे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंसहित पूजा पाय और आसनपर बैठ महात्मा बलदेवजीने वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षणको बैठा देखा ॥ २२ ॥ यह सूत जाति होकर इन सब ब्राह्मणोंसे ऊँचे आसनपर विराजमान था, न तो इसने प्रत्युत्थान किया और न विनय की और न हाथ जोडकर स्तुति करी, तब इसको देखकर भगवान्

बलरामजीको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ और अपने मनमें विचार करने लगे कि, यह प्रतिलोम जाति होकर इन ब्राह्मण
और धर्मपालक हमसे भी ऊँचे आसनपर विराजमान है,इस अपराधसे यह दुर्बुद्धि मार डालनेके योग्य है ॥ २४ ॥ क्योंकि भगवान्
वेदव्यासजीका शिष्य होकर इतिहास और पुराणों सहित धर्मशास्त्र पढकर यह सूत ऐसा आचरण रखता है ॥ २५ ॥ सत्य है जो नटके
समान वेष धारण करनेवाले अजितेन्द्रिय, अजितमन, विनयरहित, वृथा पंडिताभिमानी पुरुष हैं। उनको शास्त्राभ्यास भी गुणकारक

कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः॥धर्मपालांस्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः॥ २४ ॥ ऋषेर्भगवतो भूत्वा
शिष्योऽधीत्य बहूनि च ॥ सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ अदांतस्याविनीतस्य वृथापंडितमानिनः॥
न गुणाय भवंति स्म नटस्येवाजितात्मनः॥२६॥एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः॥वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते
हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ॥ भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः
॥ २८ ॥ हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ॥ ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥२९॥ अस्य ब्रह्मासनं
दत्तमस्माभिर्यदुनंदन ॥ आयुश्चात्माऽक्लमं तावद् यावत्सत्रं समाप्यते॥अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥३०॥

नहीं होता॥२६॥इस लोकमें मैंने इसलिये अवतार लिया है कि, ऐसे धर्मध्वजी पुरुषोंका विनाश करना; क्योंकि वह सबसे अधिक पापी
होते हैं॥२७॥ हे राजन्! यद्यपि महात्मा बलरामजीनें दुष्टोंको मारना छोड दिया था, परन्तु तो भी होनी ऐसी ही थी, इस कारण इतना
कहकर उन्होंने हाथमें स्थित डाभके अग्रसे उसको मार डाला *॥ २८ ॥ तब उसके मरते ही सब मुनिलोग महा हाहाकार करने लगे और
खेदको प्राप्त होकर बलरामजीसे बोले कि, हे भगवन्! यह आपने बडा अधर्म किया ॥२९॥ हे प्रभो! जब तक यज्ञ सम्पूर्ण हो, तब तक

---

* शंका-भावी प्राकृत जीवोंके लिये है उनहीसे भला,बुरा कर्म करा सकती है कुछ भगवान्के ऊपर भावी नहीं चल सकती।फिर भगवान् शेषजी तो बलदेवजी थे सो भावीके वश कैसे हो गये ? जो सूतजीको मार डाला यह बडी शंका है ?

उत्तर—ब्रह्मा, विष्णु, महेशके ऊपर भावी कुछ भी नहीं कर सकती,तो भी भावीकी मर्यादा पालन करनेवाले तीनों देव संसारमें भावीके वश होकर अनेक प्रकारका काम करते हैं, इसलिये अनन्तरूप बलदेवजीने मायाके वशीभूत हो सूतको मार डाला॥

हमारे पास पुराणोंकी कथा कहनेके लिये हम लोगोंने इस सूतको ब्रह्मासन दिया था और शरीर खेदित न हो, ऐसी आयु दी थी, परन्तु आपने बिना जाने यह ब्रह्महत्याकासा कार्य किया ॥ ३० ॥ हे लोकपावन बलरामजी ! तुम योगेश्वर हो इस कारण आपको वेदमें कही ब्रह्महत्याका भी दोष नहीं लगता परंतु तो भी अपस्वयं इस ब्रह्महत्याके समान पापका प्रायश्चित्त करोगे तभी संसारकी मर्यादा रहेगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर बलरामजीने कहा जगत्की मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये मैं प्रायश्चित्त करूंगा, इस कारण मुख्य पक्षमें जो नियम होवे सो मुझे बताओ ॥ ३२ ॥ इस रोमहर्षणकी दीर्घ आयु, बल, इंद्रिय और सामर्थ्य होनेमें जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो वर्णन करो,

योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः॥ यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन॥चरिष्यति भवांल्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम् ॥ ३२ ॥ दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिंद्रियमेव च ॥ आसादितं यत्तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च॥यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम्॥३४॥श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम्॥ तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिंद्रियसत्त्ववान्॥३५॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ॥ अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिंत्यतां बुधाः ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ॥ स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३७ ॥

10३८

क्योंकि जैसी आप आज्ञा करेंगे वैसा ही मैं योगमायाके प्रभावसे करूंगा ॥ ३३ ॥ तब मुनि बोले कि,हे राम ! जिस प्रकार तुम्हारे अस्त्रकी पराक्रमकी और मृत्युकी सत्यता हो और तुमने जो वचन हमसे कहा है, वह भी सत्य हो जाय इसी प्रकार करो ॥ ३४ ॥ बलरामजी बोले कि, "पिताही पुत्ररूप उत्पन्न होता है" इस प्रकार वेदकी आज्ञा है,सो इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हें पुराण श्रवण करावेगा और आयुष्य इंद्रियशक्ति व शरीरके बलसे परिपूर्ण होगा ॥ ३५ ॥ हे मुनिजनो ! आपको दूसरी किस बातकी अभिलाषा है ? सो हमसे कहो, आप जो कहेंगे सो मैं करूंगा,हे बुधलोगो ! मैं प्रायश्चित्त नहीं जानता, इस कारण इसका भी विचार करो ॥ ३६ ॥ तब ऋषीश्वर बोले कि, हे राम ! घोररूप

इल्वलका पुत्र बल्वल नाम दानव अमावस पूनोंको आकर हमारे यज्ञको भ्रष्ट करता है ॥ ३७ ॥ सो हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलदेवजी । पीब, रुधिर, मूत्र, विष्ठा, मदिरा और मांस इनकी वर्षा करनेवाले पापी बल्वलको मारो, यही हमारी सेवा है ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त सावधान होकर काम क्रोधादिकोंको त्याग भरतखण्डकी परिक्रमा कर जब एक वर्षतक तीर्थोंमें स्नान करोगे तब शुद्ध होगे ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे भाषाटीकायां बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ दोहा- उन्नासी अध्यायमें, बल्वलको वध राम । बहुरि तीर्थयात्रा करी, जहां जहां शुभधाम ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् !

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ॥ पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३८ ॥ ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥ चरित्वा द्वादशमासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भा० दशमस्कंधे उत्तरार्धे बलदेवचरित्रे सूत०बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचंडः पांसुवर्षणः ॥ भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगंधस्तु सर्वशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ॥ अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नांजनचयोपमम् ॥ तप्ततामशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥ सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ॥ हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ॥ मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥

इसके उपरान्त जब अमावास्याकी पूर्णमासीका पर्व आया तो धूरिवर्षासहित अत्यन्त भयानक प्रचण्ड पवन चलने लगा और चारो ओरसे राधकीसी दुर्गन्ध आई ॥ १ ॥ इसके पीछे बल्वल दैत्यकी करी विष्ठा और मूत्रकी वर्षा यज्ञशालामें होने लगी, फिर त्रिशूल हाथमें लिये वह बल्वल भी देख पड़ा ॥ २ ॥ टूटेहुए अंजनके ढेरके समान बडे शरीरवाला, तपे तांबेसी लाल शिखा, दाढी मूँछवाला और भ्रुकुटीसे डरावने मुखवाले उस दैत्यको देख ॥ ३ ॥ शत्रुकी सेनाके विदीर्ण करनेवाले मूशलको स्मरण कर दैत्योंको मारनेवाले हलका स्मरण किया. इसके उपरान्त पार्षदरूप हल मूशल आप ही आकर उपस्थित हो गये ॥ ४ ॥ आकाशमें विचरनेवाले बल्वलको हलके अग्रभागसे खैंच और

अत्यन्त क्रोधमें भरकर महात्मा बलदेवजीने ब्रह्मद्रोही बल्वलके माथेमें मूशल मारा ॥ ५ ॥ उसके लगते ही माथेके फूटनेसे बल्वल रुधिर वमन करता हुआ वज्रके मारे गेरूके पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥६॥ तब मुनीश्वरोंने बलदेवजीकी स्तुति कर सफल आशीर्वाद दे,जैसे बड़भागी देवतालोगोंने वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रका अभिषेक किया था, उसी प्रकार बलदेवजीका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ लक्ष्मीके निवास कोमल कमलोंकी वैजयन्ती माला और दिव्य नीलाम्बर धोती उपरना और अनेक प्रकारके आभूषण उन मुनियोंने महात्मा बलदेवजीको दिये॥

सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक् समुत्सृजन् ॥ मुंचन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥ संस्तुत्य मुनयो रामं
प्रयुज्यावितथाशिषः ॥ अभ्यषिचन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥७॥ वैजयतीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपंकजाम् ॥
रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ॥ स्नात्वा सरोवर
मगाद्यतः सरयुरास्रवत्॥९॥अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ॥ स्नात्वा संतर्प्य देवादीञ्जगाम पुलहाश्रमम्॥१०॥
गोमतीं गंडकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः॥ गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गंगासागरसंगमे ॥११॥ उपस्पृश्य महेंद्राद्रौ
रामं दृष्ट्वाऽभिवाद्य च ॥ सप्तगोदावरीं वेणां पंपां भीमरथीं ततः ॥ १२ ॥

॥ ८ ॥ इसके उपरान्त मुनियोंसे आज्ञा पाय बलदेवजी ब्राह्मणोंको संग ले कौशिकी नदीमें आय स्नान कर जिस सरोवरसे सरयू निकली है, वहां गये ॥ ९ ॥ और सरयूप्रवाहके किनारे किनारे हो प्रयागमें आय स्नान व देवादिकोंका तर्पण कर पुलहऋषिके आश्रम हरिक्षेत्रको गये ॥ ॥ १० ॥ वहांसे गोमती और गण्डकी तथा विपाशा व शोणनदीमें स्नान कर बलदेवजी गयातीर्थमें गये और वहांसे पितरोंका पूजन कर गंगा और समुद्रके संगममें पहुँचे * ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त महेंद्राचल पर्वतमें भृगुवंशावतंस परशुरामजीका दर्शन व प्रणाम कर सप्तगोदावरी

---

* शंका-बलदेवजी सब तीर्थोंमें गये,परन्तु काशीको और उज्जनको क्यों नहीं गये ? और काशी और उज्जैनके जो आसपास तीर्थ थे उनको गये फिर क्या कारण जो दोनों मोक्षदायक तीर्थोंको छोड दिया ?॥

उत्तर-शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि विना स्त्रीके जो मनुष्य अकेला इन तीर्थोंमें जाय और उनका दर्शन करे तो उसको आधा फल मिलता है। (शङ्का) आधे फलमें क्या हानि थी वहांका तो किंचित्फल परमानन्दका देनेवाला है ! (उत्तर) वहां जानेसे सब तीर्थोंका आधा फल रहजाता इसलिये नहीं गये, क्योंकि यह अकेले ही गये थे, स्त्री संग नहीं थी, बलदेवजीने विचारा कि, स्त्रीको संग लेकार आवेंगे उस समय काशी और उज्जैनका दर्शन करेंगे,इसलिये काशी और उज्जैनको नहीं गये॥

वेणा तथा पंपामें जाकर भीमरथीमें गये ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त स्वामिकार्तिकका दर्शन कर जहांपर भगवान् महादेवजी विराजते हैं, ऐसे श्रीशैलपर्वतको गये और द्रविड़ देशोंमें परमपवित्र वेंकट पर्वतका दर्शन कर कामकोष्णी पुरीमें गये, फिर कावेरीमें स्नान कर बडे पवित्र और जहां नित्य हरि विराजते है, ऐसे श्रीरंगनाम विख्यात स्थानको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहांसे ऋषभादि पर्वत हरिक्षेत्रमें आय, दक्षिण मथुरामें जाकर फिर बडे पापोंके नाश करनेवाले सेतुबंध रामेश्वरको गये ॥ १५ ॥ वहां जाकर हलायुध धारण करनेवाले बलदेवजीने दशहजार गायें ब्राह्मणोंको दान किया, पीछे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियोंमें होकर मलयाचल कुलाचल, पर्वतोंमें गये ॥ १६ ॥ वहाँ पहुँच विराजमान

स्कंदं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ॥ द्रविडेषु महा पुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः॥१३॥कामकोष्णीं पुरीं कांचीं
कावेरीं च सरिद्वराम् ॥ श्रीरंगाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः॥१४॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ॥
सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ॥ कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं
च कुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ॥ योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥ दक्षिण
तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥ १७ ॥ ततः फाल्गुनमासाद्य पंचाप्सरसमुत्तमम् ॥ विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वा
ऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ॥ गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः
॥ १९ ॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ॥ तापीं पयोष्णीं निर्विंध्यामुपस्पृश्याथ दंडकम् ॥ २० ॥

अगस्त्यमुनिकी नमस्कारपूर्वक स्तुति की, फिर अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और आज्ञा पाय बलदेवजीने दक्षिणदेशमें समुद्रके तटपर जाय कन्यानाम दुर्गादेवीका दर्शन किया॥ १७॥ इसके पीछे फाल्गुन अनंतपुरमें जाय जहाँ विष्णु भगवान् सदा विराजते है ऐसे श्रेष्ठ पंचाप्सरस नाम सरमें स्नान कर दश हजार गायोंका संकल्प किया ॥ १८ ॥ वहाँसे चलकर भगवान् बलदेवजी केरल और त्रिगर्त देशमें हो धूर्जटी शिवसे नित्य सन्निहित गोकर्ण नाम शिवक्षेत्रमें गये ॥ १९ ॥ वहाँसे आर्याद्वीपवासिनी देवीका दर्शन कर शूर्पारक क्षेत्रमें आये, वहांसे तापी और पयोष्णी नदीमें हो दण्डकारण्यमें आये ॥ २० ॥

जहां माहिष्मती पुरी है, वहां पहुँच रेवा नदीपर गये फिर मंनु तीर्थमें आचमन कर प्रभासक्षेत्रमें आये॥२१॥तब कौरव और पाण्डवोंके संग्राममें सब क्षत्रियोंका नाश हो गया यह ब्राह्मणोंका वचन सुन बलदेवजीने अपने मनमें जानलिया कि, पृथ्वीका भार उतर गया ॥२२॥ यादवोंको आनन्द देनेवाले बलदेवजी संग्राममें गदाओंसे युद्ध करते भीमसेन और दुर्योधनको समझानेके लिये कुरुक्षेत्रको गये ॥२३॥ राजा युधिष्ठिर, नकुल,सहदेव और श्रीकृष्णचन्द्र व अर्जुन बलदेवजीको आया हुआ देख प्रणाम कर पूछने लगे कि,हे बलदेवजी ! आप कहां कहां हो आये ? तो यह भयके मारे चुप हो गये ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त क्रोधमें भरे एकको एक जीतना चाहैं,चित्रविचित्र मण्डलोंमें फिरते भीमसेन और

प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी ॥ मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपांडवसंयुगे ॥ सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥२२॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ॥ वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनंदनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ॥ अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥२४॥ गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ॥ मंडलानि विचित्राणि चरंताविदमब्रवीत् ॥२५॥ युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन्हे वृकोदर ॥ एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥२६॥ तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ॥ न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥ २७ ॥ न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ॥ अनुस्मरंतावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥ दिष्टं तदनु मन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ॥ उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥

दुर्योधनको देख बलदेवजी कहने लगे॥२५॥ हे राजा दुर्योधन और भीमसेन ! तुम दोनों शूरवीर हो और समान तुम्हारा बल है, भीमसेनमें कुछ बल अधिक है, दुर्योधनमे दाव पेंच अधिक हैं, यह मैं जानता हूँ ॥ २६ ॥ इसलिये बराबर पराक्रमवाले तुम दोनोंके बीचमें एककी भी जीत हार न होगी, इस कारण इस निष्फल युद्धको शान्त करो ॥ २७ ॥ हे राजन् ! परस्पर कुत्सित वचनोंको स्मरण कर वैरमें भरे भीमसेन और दुर्योधनने बलरामजीके प्रयोजन भरे वाक्यको नहीं माना ॥ २८ ॥ भीमसेन और दुर्योधनका पिछल कर्म ऐसा ही है, यह जानकर बल

देवजी द्वारकापुरीमें आये और वहां उग्रसेनसे आदि ले प्रसन्नमन यादवोंसे मिले ॥ २९ ॥ समस्त विरुद्ध रहित यज्ञमूर्ति भगवान् बलदेवजी फिर नैमिषारण्यमें आये, तब उन्हें आनन्दपूर्वक सब ऋषीश्वरोंने यज्ञोंसे यजन करवाया ॥ ३० ॥ तब सामर्थ्यवान् भगवान् बलदेवजीने उन ब्राह्मणोंको विशुद्ध ज्ञान दिया जिस ज्ञानसे आत्मामें विश्व और विश्वमें पुरुष आत्माको जानता है ॥३१॥ यज्ञ करनेके पीछे स्नान कर सुन्दर वस्त्र आभूषणोंसे अलंकृत ज्ञाति बंधु सुहृदोंको संग ले अपनी चाँदनीसे शोभित चन्द्रमाके समान बलदेवजी अपनी स्त्रियोंसहित अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ बलवान् अनन्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाण करनेमें न आवे मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले बलदेवजीके अनेक

तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयोजयन्मुदा ॥ क्रत्वंगं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान् व्यतरद्विभुः ॥ येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥ स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबंधुसुहृद्वृतः॥ रेजे स्वज्योत्स्नयेवेंदुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य संति हि ॥३३॥ योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥ सायं प्रातरनंतस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्यानि चान्यानि मुकुंदस्य महात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो॥१॥ को नु श्रुत्वा सकृद् ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ॥ विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥

अनेक लीला और चरित्र हैं ॥३३॥ हे भारत ! अद्भुतकर्मकारी अनंत बलदेवजीके कर्मोंको जो पुरुष सायंकाल अथवा प्रातःकालके समय स्मरण करेगा, वह श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त प्यारा होगा ॥ ३४ ॥ इति श्रीभाषाभा० महापु० दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९॥ दोहा–अस्सीमें धन लोभसे, विप्र सुदामा रंक । गयो द्वारका कृष्णपै, धोवन हेत कलंक॥ १॥ राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे भगवन् ! समर्थ अनंतपराक्रम मुक्तिके देनेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रमको और भी सुननेकी मेरी अभिलाषाहै॥ १॥ हे श्रीशुकदेवजी! उत्तमयश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी विषयोंमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली जो मनोहर कथा है,उसको निरन्तर सुनकर कामके बाणोंसे

खेदित हो त्रास पावें ऐसे सारके जाननेवाले कौन पुरुष हैं जो श्रवण न करें॥२॥जिस वाणीमें भगवान्के नाम और गुण निकलें वही वाणी सफल है और जिन हाथोंसे भगवान् वासुदेवकी सेवा पूजाका कर्म बने वही हाथ सफल हैं और स्थावर जंगम जीवोंमें अन्तर्यामीरूप होकर बसे भगवान्का जो स्मरण करे वही मन सफल है और जिन कानोंसे भगवान् हरिकी पवित्र कथा सुनें वही कान सफल हैं॥३॥स्थावर,जंगम सब भगवान्के रूप हैं यह जानकर जो पुरुष शिरसे प्रणाम करे वही शिर धन्य है, जिन नेत्रोंसे देखे वही नेत्र धन्य हैं और भगवान् अथवा भक्त जनोंके चरणोंका धोवन जल नित्य जिन अंगोंमें लगै वही अंग धन्य है॥४॥श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहने लगे कि,विष्णुरात राजा

सा वाग् यया तस्य गुणान्गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ॥ स्मरेद्वसंतं स्थिरजंगमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥ शिरस्तु तस्योभयलिंगमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥ अंगानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजंति नित्यम् ॥ ४॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः ॥ वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयो ऽब्रवीत् ॥५॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ विरक्त इंद्रियार्थेषु प्रशांतात्मा जितेंद्रियः ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ॥ तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥ ७ ॥ पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ॥ दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्त्वतर्षभः ॥ ९ ॥

परीक्षित्के यह प्रश्न करनेपर वासुदेव भगवान्में निमग्नहृदय हो वेदव्यासके पुत्र श्रीशुकदेवजी बोले॥५॥कि, हे परम भागवत राजा परीक्षित् ! कोई एक ब्राह्मण ब्रह्मके जाननेवालोंमें उत्तम, विषयोंमें वैराग्यवान् शांतमन जितेन्द्रिय श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र था॥६॥ गृहस्थाश्रमको वर्त्ते और जो कुछ अनायास प्राप्त हो उसीसे अपना निर्वाह करै,जीर्ण वस्त्रको धारण करे उसी प्रकार उसकी स्त्री भी थी.क्षुधाके मारे पीडित होनेसे समस्त अंगोंसे कृशित और जो अन्न प्राप्त हो उसे पतिको परोस दे आप भूखी रह जाय ॥७॥ बहुत दुःखित और भयके मारे थरथर कांपती वह पतिव्रता स्त्री दारिद्री पतिके समीप बोली ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण ! साक्षात् लक्ष्मीके पति ब्रह्म भक्त शरणागतके पालक यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृ

ष्णचन्द्र तुम्हारे सखा सुने हैं ॥ ९ ॥ अहो बड़भागी साधुओंके परमआश्रय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास तुम जाओ, दुःखित कुटुम्बी तुमको वह बहुतसा धन देंगे॥ १० ॥ भोज, वृष्णि, अन्धक यह यादवोंके गोत्र हैं, तिनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अब द्वारकापुरीमें विराजते हैं, वह अपने चरणकमलोंके स्पर्श करनेवालोंको आत्मातक देनेको समर्थ है॥ ११ ॥ जगतके गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको भजन करनेवाले अपने भक्तोंको परिणाममें दुःखरूप धन और विषयका देना कुछ बहुत नहीं है, इस प्रकार कोमल वचनोंसे स्त्रीने बहुत प्रार्थना करी ॥ १२ ॥ तब तो सुदामा ब्राह्मण उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होगा यह बड़ा लाभ है, इस प्रकार मनमें विचार कर जानेकी इच्छा करने लगा और स्त्रीसे बोला

तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् ॥ दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुंबिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ ११ ॥ किं त्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः ॥ स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदुः ॥ १२ ॥ अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ इति संचिंत्य मनसा गमनाय मतिं दधे ॥ अप्यस्त्युपायनं किंचिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥ १३ ॥ याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतंडुलान् ॥ चैलखंडेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ॥ कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिंतयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ॥ विप्रोऽगम्यांधकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ॥ विवेशैकतमं श्रीमद् ब्रह्मानंदं गतो यथा ॥ १७ ॥

कि, हे मंगलरूपिणी ! तेरे घरमें कुछ भेट देनेको होय तो ला ॥ १३ ॥ यह सुन सुदामाकी स्त्री किसी पड़ोसी ब्राह्मणके घरसे चार मूठी चावल मांग लाई और सुदामाके कपडेमें बांधने लगी, हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको भेट देकर सुदामाको बिदा किया॥ १४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठ सुदामा चावलोंको ले "श्रीकृष्णचंद्रका दर्शन मुझे कैसे होगा!" ऐसा विचार करता हुआ द्वारकापुरीमें पहुँचा॥ १५ ॥ सुदामा ब्राह्मण तीन चौकी और तीन डचोढीवानोंको उल्लंघन कर कृष्णके धर्मधारी और अगम्य अंधक और वृष्णियोंके घरोंके बीचमें हो॥ १६ ॥ उन घरोंके

बीचमें सोलह हजार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके घरमेंसे एक अत्यन्त सुन्दर घरमें सुदामाने प्रवेश किया, उस समय ब्रह्मकी प्राप्तिके समान आनन्द पाया ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित्! प्यारी रुक्मिणीकी शय्यापर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने द्वारपालके मुखसे यह संदेशा सुन और निकट खड़े अपने प्राचीन मित्र सुदामाको देख शीघ्र उठ भुजा पसारके मिले ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! अपने अत्यन्त प्यारे मित्र सुदामा ब्राह्मणके मिलनेसे अतिआनन्दित और प्रसन्न हुए कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे आंसुओंकी बूँदें टपकने लगीं ॥ १९ ॥ हे राजन्! लोकोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने सुदामासे मिल और उनको पलंगपर बैठाय भेंट दे उस चरणका धोवन जल

तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः ॥ सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरंगसंगातिनिर्वृतः ॥ प्रीतो व्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ १९ ॥ अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम् ॥ उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन्भगवान्लोकपावनः ॥ व्यलिंपद्दिव्यगंधेन चंदनागुरुकुंकुमैः ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ॥ अर्चित्वाऽऽवेद्य तांबूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ॥ देवी पर्यचरच्छैब्या चामरव्यजनेन वै ॥ २३ ॥ अंतःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ॥ विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥

अपने मस्तकपर चढाया और दिव्य गंध, अतर, चंदन, केशर इत्यादि सुदामाजीके लगाया ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ गंधयुक्त धूप दी और बराबर दीपक जलाकर धर दिये और बडे आनन्दसे मित्र सुदामाकी पूजा कर तांबूल दे सन्मुख खडे हो " मित्र भले आये " इस प्रकार कृष्ण कहने लगे ॥ २२ ॥ फटे मलिन वस्त्र पहरे और दुर्बलताके कारण अंगोंकी नसें निकल रहीं, एसे सुदामा ब्राह्मणकी साक्षात् देवी रुक्मिणी चमर ढोर पंखा इत्यादिसे सेवा करने लगीं ॥ २३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार निर्मल कीर्त्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब सत्कार किया तब अवधूत सुदामाको देख सब द्वारकावासी जन आश्चर्य मानने लगे * ॥ २४ ॥

---

* शंका-श्रीकृष्ण भगवान्के द्वारपर मूर्ख लोग रहते थे, क्योंकि जो मूर्खलोग पहरा नहीं देते होते तो भगवान्ने सुदामाका पूजन किया तो उन लोगोंने आश्चर्य क्यों माना ? क्योंकि सज्जन लोग तो जानतेहैं कि भगवान् तो सदा ब्राह्मणोंका पूजन करते थे वह आश्चर्य क्यों मानते ?

और कहने लगे कि,भिक्षा मांगनेवाले दरिद्री निंदित अधम फटे वस्त्र इस सुदामाने ऐसा क्या पुण्य किया है ? ॥ २५ ॥ क्योंकि जैसे बडे भाई बलदेवजीसे मिलें उसी प्रकार त्रिलोकीके गुरु लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्र शय्याके ऊपर बैठी अपनी प्रियतमा रुक्मिणीको त्यागकर इससे मिले ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरान्त सुदामा और श्रीकृष्णचन्द्र परस्पर हाथ पकड जब गुरुकुलमें वास किये थे तबकी बात कहने लगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, धर्मके जाननेवाले ब्राह्मण ! दक्षिणा दे गुरुके पाससे जब हम तुम विद्या पढकर आये तबसे तुमने

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ॥ श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन्गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः ॥ पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा॥२६॥कथयांचक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ॥ आत्मनोर्ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद् भवता लब्धदक्षिणात् ॥ समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ॥ नैवातिप्रीयसे विद्वन्धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥केचित्कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ॥ त्यजंतः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन्स्मरसि नौ यतः ॥ द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥

घर आय अपने योग्य स्त्रीसे विवाह किया या नहीं ? ॥२८॥ हे विवेकी मित्र सुदामा ! मैं निश्चय जानता हूँ कि,तुम्हारा चित्त विषयोंमें बहुत लायमान नहीं है और घरमें वस्त्रादिकोंसे भी तुम प्रसन्न नहीं हो, विवेकी हो,तुमको ऐसा ही योग्य है ॥२९ ॥ यदि कहो कि, चाहना नहीं तो घरमें रहनेसे क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि जैसे मैं ईश्वर हूँ उसी प्रकार ईश्वरकी मायासे रची विषयवासना त्यागकर कितने एक पुरुष मेरे समान लोकमर्यादाके लिये विषयोंमें आसक्त न होनेपर भी कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! हम तुम जब गुरुके

उत्तर-श्रीकृष्णके स्थानपर मूर्ख लोग नहीं रहते थे, गोलोकवासी थे, उन लोगोंकी यह प्रतिज्ञा थी कि, त्रिलोकीमें श्रीकृष्णसे बडा कोई नहीं है सर्वोपरि श्रीकृष्णचन्द्रकोही जानते थे, ब्रह्मादिक देवताओंको तथा योगियोंको ब्राह्मणोंको भी श्रीकृष्णचन्द्रसे बडा नहीं जानते थे इसलिये सुदामाका पूजन जब श्रीकृष्णजीने किया तो सब आश्चर्य मानने लगे कि, इनसे बडा यह कौन आया जिसका पूजन आप श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् त्रिलोकीनाथ करते ह ?

घरमें जाकर रहे थे तबकी भी कुछ याद है कि नहीं ? जिन गुरुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जानने योग्य आत्माका स्वरूप जानकर संसारसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें तीन गुरु हैं जन्मदाता पिता, दूसरा यज्ञोपवीत कर वेद पढा संध्या गायत्री सुन्दर कर्म सिखानेवाला और तीसरा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, तुम जब गुरुके संन्यासी इन चारो आश्रमोंको ज्ञान देनेवाला गुरु है, इनमेंसे प्रथम गुरु पूज्य है, दूसरा मेरे बराबर पूज्य और तीसरा गुरु साक्षात् मेरा ही स्वरूप है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष मनुष्यरूप धारणकरके गुरुरूप मेरे उपदेशसे संसाररूपी समुद्रके पार लगते हैं, ब्राह्मण ! वह पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारो वर्णोंमें और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन चारो आश्रमोंमें चतुर है ॥ ३३ ॥ ज्ञानके देनेवाले गुरुसे अधिक और सेवा योग्य कोई नहीं है, इस लिये उन गुरुके भजनसे और कोई अधिक धर्म

स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजातेरिह संभवः ॥ आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥ नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ॥ ये मया गुरुणा वाचा तरंत्यंजो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन्वृत्तं निवसतां गुरौ ॥ गुरुदारश्चोदितानामिंधनानयने क्वचित् ॥ ३५ ॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद् द्विज ॥ वातवर्षमभूत् तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तंगतस्तावत्तमसा चावृता दिशः ॥ निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥३७॥ वयं भृशं तत्र महानिलांबुभिर्निहन्यमाना मुहुरंबुसंप्लवे ॥ दिशोऽविदंतोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥

नहीं है, सब प्राणियोंका आत्मा मैं जैसा गुरुकी सेवासे प्रसन्न होता हूँ वैसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासधर्मसे भी प्रसन्न नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण ! हम और तुम जब गुरुके घर रहा करते थे उस समय हमें तुम्हें गुरुकी स्त्रीने लकडी काटनेको वनमें भेजा, वहां दैवइच्छासे जो कुछ हुआ वह तुम्हें स्मरण है ॥ ३५ ॥ हे मित्र ! लकडी लेनेको हम तुम एक महावनमें गये, यद्यपि वहां वर्षा ऋतु नहीं थी परंतु तो भी महातीव्र पवनके साथ वर्षा होने लगी और अत्यन्त घोर कठोर गर्जना हुई ॥ ३६ ॥ इतने ही में भगवान् सूर्य अस्त हो गये और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धेरा छा गया, सब स्थलमें जल ही जल दृष्टि आने लगा, इस कारण ऊँचा नीचा कुछ दिखाई न दिया ॥ ३७ ॥ जलमय उस वनमें अति प्रचण्ड वायु तथा वर्षासे हम तुम दोनों पीड़ाको प्राप्त हुए दिशाओंकी कुछ सुधि न रही तब आतुर हो आपसमें

हाथ पकड़ मस्तकपर लकडीके बोझोंको धरकर फिरने लगे ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण । जब गुरुजीको इस बातकी खबर हुई तब सूर्योदय होते ही सांदीपन गुरु हमें तुम्हें ढूँढ़ते २ आये और आतुर अपने शिष्योंको बैठा देखा ॥ ३९ ॥ और उस समय कृपा करके तीन श्लोक कहे, जिनसे हम कृतार्थ होगये. हे पुत्रो । तुम हमारे लिये बहुत दुःखित हुए, क्योंकि प्राणियोंको देह बहुत प्यारा है, उसका निरादर करके तुमने हमारी सेवा करी ॥ ४० ॥ सत्पात्र शिष्योंको इसी प्रकार गुरुकी सेवा करनी योग्य है शुद्ध भावना करके धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष यह चारों पदार्थ जिससे प्राप्त हों ऐसे देहको गुरुके अर्पण करदे ॥ ४१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ । तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूँ. तुम्हारे मनोरथ सब सत्य हों, तुमने मुझसे

एतद्विदित्वा ह्युदिते रवौ सांदीपनिर्गुरुः ॥ अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ॥ आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ॥ यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः संतु मनोरथाः ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ॥ गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्न पूर्णः प्रशांतये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ॥ भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत्॥४४॥

जो वेद पढे हैं,सो इस लोक और परलोकमें सारभरे नवीन पढे यादबने रहैं ॥४२॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे मित्र । कलियुगमें चेले गुरु दोनों लोभी लालची होते हैं यहाँ एक दृष्टान्त है, * गुरुके घर जब हम रहते थे, तबके ऐसे अनेक चरित्र हैं, वह आपको याद हैं ? गुरुओंकी कृपासेही मनुष्य पूर्णमनोरथ होकर शांतिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ तब सुदामा बोले कि, हे देवदेव ! हे जगत्‌के गुरु । सत्यसंकल्प तुम्हारे संग हमारा गुरुके पास वास हुआ था, फिर हमको कौन वस्तुकी प्राप्ति न हुई अर्थात् सब वस्तु पाचुके ॥ ४४ ॥

---

* दृष्टान्त–एक चेला गुरुजीके पास आया और सेवा करने लगा सेवा करनी पडी पर माल भी बहुत मिलते थे, नया जानकर पुराने चेलाने सब कामधन्धा उसीपर डाल दिया,एक दिन उसने गुरुजीसे कहा कि,महाराज ! एक बात कहता हूं, गुरुजी बोले कह,चेलेने कहा कि, महाराज ! ऐसा भी कोई उपाय है कि, जो मैं गुरु हो जाऊँ और तुम्हारे समान गद्दीपर बैठ हलुआ पूरी उडाऊँ, चेलोंसे काम कराऊं,गुरुजीने सुनतेही क्रोधकर उसे निकाल दिया और फिर अपने यहां न आने दिया.चेलेको तो चाट लग रही थी एक दिन एक पल्लेदारको बुला दो पैसे दे उससे कहा कि, रेता पल्लेमें भरकर लेचलो उसने पल्ला भरलिया यह गुरुजीके दरवाजे पर पहुँच खबर दी कि चेला आया है,गुरुजी बोले कि,हम दर्शन नहीं देंगे, तब चेलेने कहा कि महाराज ! एक पल्लेमें कुछ लाया भी है, हम नहीं जानें बूरा या,

हे समर्थ! संपूर्ण कल्याणदायक छन्दोमय वेद आपकी मूर्ति हैं,ऐसे आपने गुरुके यहाँ वास किया, यह तो लीलामात्र है॥४५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे भाषाटीकायां सुदामउपाख्याने अशीतितमोऽध्यायः॥८०॥दोहा-इक्यासी हरि विप्रके,तन्दुल भोग लगाय। किये समर्पण लोक द्वै, तौहू रहे लजाय॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! सब प्राणियोंके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्विजोंमें मुख्य सुदामाके संग बातें करते मुसकराकर बोले ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले साधु पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमभरी चितवनसे देखते और हँसते हुए ब्राह्मण सुदामासे बोले कि ॥ २ ॥ हे ब्राह्मण! तुम मेरे लिये क्या भेंट लाये हो? क्योंकि भक्ति प्रेमपूर्वक

यस्य च्छंदोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो ॥ श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यंतविडंबनम्॥४५॥ इति श्रीमद्भा०म०द०उ०
अशीतितमोऽध्यायः॥८०॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः ॥ सर्वभूतमयोऽभिज्ञः स्मयमान
उवाच तम् ॥ १॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ॥ प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ॥ अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥ भूर्यप्य
भक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि
प्रयतात्मनः॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ॥ पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥
सर्वभूतात्मदृक् साक्षात्तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञाय चिंतयन्नायं श्रीकामो माभजत्पुरा ॥ ६ ॥

जो मुझे थोडीसी भी भेंट देता है, सो बहुत हो जाती है और जो भक्ति विना मुझे बहुत भी दे, तो उससे मुझे संतोष नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्ति करके पत्र,पुष्प,फल मुझे देते हैं,सो भक्तिसे भेंट करनेके कारण मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता हूँ ॥ ४ ॥ हे राजन् परीक्षित्! इस प्रकार भगवान्ने जब कहा तो भी लज्जाके मारे नीचेको मस्तक कर विराजमान सुदामाने लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको तंडुल नहीं दिये ॥ ५ ॥ हे राजन्! साक्षात् सब प्राणियोंके साक्षी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाके आनेका विचार करने लगे कि, धनकी

खांड है, इससे बुलालो, फिर भगा दीजो, गुरुजी बोलेतो तो बुलालो, चेला सुनतेही बुलाने गया, उसने आतेही आंगनमें पल्ला गिरवाया और गुरुजीकी ओर चरणकर पल्लेको दण्डवत् करी. गुरुजी बोले कि मूर्ख यह क्या करता है? चेलेने कहा कि महाराज! मुझे तो यह पल्ला ही लाया है यह कहकर भाग गया. गुरुजी रेता देख अत्यन्त लज्जित हुए,कलियुगमें गुरु चेले बहुधा कुपात्रही हैं ॥

चाहना करके इस सुदामाने मेरा भजन नहीं किया ॥ ६ ॥ पर अभी अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये मेरे पास आया है, इसलिये जो संपत्ति देवताओंको भी दुर्लभ है सो इसे दूँगा ॥ ७ ॥ इस प्रकार विचार कर चीरमें बँधे चावलोंको "यह क्या है"? ऐसे कह वह चावल सुदामाके वस्त्रमेंसे आप ही ले लिये ॥ ८ ॥ और एक मुट्ठी चावल खाकर केशवमूर्ति बोले कि, हे मित्र। सुदामा! यह जो तुम चावल लाये हो सो मुझे अत्यन्त प्यारे लगे हैं, इनको थोड़ा मत जानो, यह चावल मेरे सब बिश्वका पेट भर देंगे ॥ ९ ॥ ऐसे कह एक मुट्ठी चावलोंका भोजन कर और दूसरी मुट्ठी खा जब तीसरी मुट्ठी खाने लगे तबहीं कृष्णपरायण रुक्मिणी परमेष्ठी श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ पकड़ कर कहने लगी

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियश्चिकीर्षया ॥ प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥७॥ इत्थं विचिन्त्य
वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ॥ स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतंडुलान् ॥ ८ ॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे॥
तर्पयंत्यंग मां विश्वमेते पृथुकतंडुलाः ॥९॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ॥ तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा
परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये अस्मिल्लोकेऽथवामुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥
ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमंदिरे ॥ भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेन आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभा
वेन स्वसुखेनाभिवंदितः ॥ जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नंदितः ॥ १३ ॥

कि मित्रके घरकी सब वस्तु आप ही भोजन कर जाओगे या कुछ हमको भी रहने दोगे? एक तो इसलिये आकर हाथ पकडा दूसरा कारण आगे कहते हैं ॥ १० ॥ रुक्मिणी बोली कि हे विश्वके आत्मा! एक मुट्ठी चावल भोजन करके तो सब विश्वकी संपत्ति इसे दे चुके, तीसरी मुट्ठी भोजन करके क्या मुझे भी दे चुकोगे? क्योंकि इस लोक और परलोकमें तुम्हारे संतुष्ट होनेसे ही संपत्ति प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित्! ब्राह्मण सुदामाने उस रात्रिको श्रीकृष्णचन्द्रके मन्दिरमें रह, भोजन कर जल पी स्वर्गकी प्राप्तिके समान सुख पाया ॥ ॥ १२ ॥ जब प्रातःकाल हुआ तो विश्वके पालन करनेवाले आत्माके आनन्दमें मग्न श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाको प्रणाम कर मार्गमें पहुँचानेको पीछे पीछे संग आये और बोले कि, मित्र सुदामा! तुमने भला दर्शन दिया, और इस प्रकार स्वाधीन वचनोंसे आनंद हो सुदामा अप

घरको चला ॥ १३ ॥ हे नृप ! न तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे धन दिया और न उसने लाजके मारे मांगा, श्रीकृष्णके दर्शनसे ही सुख पाकर अपने घरकी ओरको चला ॥ १४ ॥ चलते समय चित्तमें शोचने लगा कि अहो ! ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवालोंके दैवत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति मैंने देखी, क्योंकि लक्ष्मीको छातीमें धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अतिदरिद्री मुझ सुदामाको छातीसे लगाकर मिले ॥ १५ ॥ कैसा आश्चर्य है कि, दरिद्री पापी ब्राह्मण मैं कहां ? और लक्ष्मी जिनके अंगमें वास करें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहां ? मुझमें उनमें बड़ा अंतर है, सो भुजा पसार कर मुझसे मिले ॥ १६ ॥ अपनी प्रिय भार्यांके सेवा करने योग्य शय्यापर जैसे अपने भ्राता बलदेवजीको

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्नतु याचितवान्स्वयम् ॥ स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४॥ अहो ब्रह्मण्यदे
वस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ॥ यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ काहं दरिद्रः पापीयान्क कृष्णः
10 श्रीनिकेतनः ॥ ब्रह्मबंधुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरंभितः ॥ १६ ॥ निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यंके भ्रातरो यथा ॥ महिष्या
वीजितः श्रांतो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ॥ पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन
देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥
अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ॥ इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति तच्चिंतयन्नंतः
प्राप्तो निजगृहांतिकम् ॥ सूर्यानलेंदुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥

बैठालते थे, इसीप्रकार मुझे बैठाया और मार्गकी थकावट दूर होनेको श्रीकृष्णचन्द्रकी भार्या रुक्मिणीने चमर हाथमें लेकर मेरे पवन करी ॥ १७ ॥ बडी सेवा करके पावोंका दाबना, धोना, पोंछना इत्यादि सत्कार करके देवोंके देव ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके समान मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी शोभा मनुष्योंको स्वर्ग, मोक्ष और पाताल, पृथ्वीकी संपत्ति तथा सर्व सिद्धियोंका कारण है, परन्तु तो भी ॥ १९ ॥ दरिद्री सुदामा धनको पाय, बहुत मतवाला होकर मुझे भूल जायगा, इस कारण करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुझे यत्किंचित् भी धन न दिया ॥ २० ॥ हे महाराज ! इस प्रकार सुदामा मन ही मनमें विचार करता हुआ अपने

नगरमें पहुँचा तो क्या देखता है कि–सूर्य, अग्नि, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान चारों ओर विमान शोभित हो रहे हैं ॥ २१ ॥ चित्र विचित्र बगीचे शोभायमान, तिनमें पक्षियोंके झुंडके झुंड बोल रहे हैं और कुमुद, अम्भोज, कह्लार, उत्पलसे शोभायमान सरोवर भर रहे हैं ॥२२॥ शृंगार किये पुरुष और हरिणके तुल्य नेत्रवाली स्त्रियें जहां तहाँ फिर रही हैं, ऐसी शोभा और विमानोंका प्रकाश देख आश्चर्य मान "यह क्या है ? किसका स्थान है ? " फिर अपने मनमें विचार किया कि यह तो हमारे ही रहनेका स्थान है, ऐसा कैसे हो गया ॥ २३ ॥ इस प्रकार बड़भागी सुदामाको देवताओंके समान शोभावाले स्त्री पुरुष गाते बजाते सम्मुख लिवानेको आये ॥ २४ ॥ पतिका आगमन सुन आनन्द

विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ॥ प्रोत्फुल्लकुमुदांभोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुंभिः
स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ॥ किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्यो
ऽमरप्रभाः ॥ प्रत्यगृह्णन्महाभाग गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा ॥ निश्चक्राम
गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कंठाश्रुलोचना ॥ मीलिताक्ष्यनमद् बुद्ध्या
मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरंतीं देवीं वैमानकीमिव ॥ दासीनां निष्ककंठीनां मध्ये भांतीं स
विस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमंदिरम् ॥ मणिस्तंभशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥
पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ पर्यंका हेमदंडानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥

और घबराहटसे सुदामाकी स्त्री साक्षात् कमलवनमेंसे रूप धरे लक्ष्मीके समान शीघ्र ही घरसे बाहर निकली. श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गको सुदामाके महलमें लाये थे इसलिये सुदामा और सुदामाकी स्त्री दोनों देवस्वरूप हो गये॥२५॥प्रेम और उत्कण्ठासे नेत्रोंमें आंसू भरे पतिव्रता सुदामाकी स्त्रीने पतिको आया देख नेत्र मूँद, बुद्धिसे विचार मनसे आलिंगन कर नमस्कार किया ॥ २६ ॥ जैसे विमानमें बैठी देवी प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार धुकधुकी कण्ठमें धारण किये दासियोंके मध्यमें प्रकाशमान अपनी स्त्रीको देख सुदामाजीने बहुत आश्चर्य माना ॥२७ ॥ और प्रसन्न हो अपनी स्त्रीके साथ अपने घरमें गये, जहां सहस्रों मणियोंके खंभ लग रहे थे, मानों इन्द्रभवन है ॥२८ ॥ दूधके श्वेत झागोंके समान

कोमल श्वेत बिछौने बिछ रहे, हाथीदाँत व सुवर्णके पलँग जिस मंदिरमें बिछ रहे और सुवर्णकी ही डण्डीके चमर पंखे धरे हैं ॥२९॥ कोमल कोमल पथरनोवाले सुवर्णके सिंहासन और मोतियोंके झालरदार प्रकाशमान चँदोवे तन रहे थे॥३०॥और निर्मल स्फाटिकमणियोंकी भीतोंमें महामरकतमणियोंकी तथा स्त्री सहित मंदिरमें रत्नोंके दीपक प्रकाशमान हो रहे थे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस मंदिरमें संपत्तियोंकी वृद्धि देख स्थिर हो "अकस्मात् इतनी संपत्ति कहांसे आई" ऐसे सुदामाजी विचार करने लगे ॥ ३२ ॥ सदाके दरिद्री भाग्यहीन मुझे बडे ऐश्वर्यवान् यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवन विना निश्चय और कोई इस सम्पत्तिका कारण नहीं है ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार समुद्रको पूर्ण करनेवाला महाउदार मेघ किसी समय अधिकतर वृष्टिको भी सूक्ष्म जानकर मानो लज्जित होता हो ऐसे समक्षमें नहीं बरसता, रात्रिको नगरके लोगोंके सोजानेपर उनके खेतोंको जलसे पूर्ण करता है, उसी प्रकार मेरे सखा पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णचंद्र भी भक्तको देनेके लिये इन्द्रादिक पदको भी तुच्छ और उसके किए भजनको अधिक मानकर समक्षमें न कहते हुए सब सम्पदायें प्रदान करते हैं॥ ३४ । आप बहुत दें, उसे थोडा मानें और सुहृदोंके थोडे दियेको भी बहुत मानते हैं क्योंकि मैं एक मुट्ठी चावलोंको ले गया था उसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर लिया ॥ ३५ ॥ मुझे जन्म जन्ममें उन्हींके विषयमें प्रेम हितेच्छुता मैत्री व दासपन प्राप्त हो और महानुभाव

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ॥ मुक्तादामविलंबीनि वितानानि द्युमंति च ॥३०॥ स्वच्छस्फटिककुडयेषु
महामारकतेषु च ॥ रत्नदीपान्भ्राजमानाँल्ललनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसंपदाम् ॥
तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥ ३२॥ नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ॥ महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥ ३३ ॥ नन्वब्रुवाणो दिशतेऽसमक्षं याचिष्णवे भूर्य्यपि भूरिभोजः ॥
पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥ किंचित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि
भूरिकारि ॥ मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टि प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्रीदास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ॥ महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसंगः ॥ ३६ ॥

व गुणोंके धाम भगवान् वासुदेवमें आसक्त होते उनके भक्तोंका सत्संग प्राप्त हुआ करे यही उनसे विनय है ॥ ३६ ॥ धनी पुरुषोंके धनके अभिमानसे नीच जन्म होते देखकर विवेकसे श्रीकृष्णचन्द्र अपने अज्ञानी भोरे भक्तोंको विचित्र संपदा और राज्यके ऐश्वर्य नहीं देते, किन्तु दृढ भक्ति देते हैं.मुझे भक्ति नहीं थी,इससे संपदाका सुख मिला परन्तु अब भक्तिकी ही प्रार्थना करता हूँ॥३७॥इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त भक्त सुदामा विषयोंका धीरे धीरे त्याग करता अति आसक्त न होकर स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ॥३८॥ देवदेव तथा यज्ञपति इन प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके ब्राह्मण ही प्रभु और इष्टदेवता हैं, इन ब्राह्मणोंसे अधिक और कोई देवता नहीं है॥३९॥

भक्ताय चित्रा भगवान्हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समृद्धयत्यजः ॥ अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥३७॥ इत्थं व्यवसितो बुद्धया भक्तोऽतीव जनार्दने ॥ विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलंपटः॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ॥ ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥३९॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम्॥तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबंधनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥ एतद्ब्रह्मण्य देवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥ लब्धभावो भगवति कर्मबंधाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कंधोत्तरार्द्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥ सूर्योप रागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र वह ब्राह्मण सुदामा उस समय अजित भगवान्को भी भक्तोंके सम्मुख पराजित होते देखकर उनके ध्यानके वेगसे अहंकार दूरकर शीघ्र ही सत्पुरुषोंके शरणरूप श्रीकृष्णचन्द्रके धामको चला गया॥४०॥जो पुरुष ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्रकी, ब्राह्मणकी गौरवता प्रतिपादन करनेवाली यह लीला मन लगाकर सुनते हैं, वह भगवान् वासुदेवकी भक्तिको प्राप्त होकर कर्मबंधनसे छूट जाते हैं ॥४१॥ इति श्रीमद्भागवते महापु० दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां सुदाम्न उपाख्याने एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ दोहा–अंक बयासीमें भयो, कुरुक्षेत्र रविपर्व । मिले प्रेम अरु प्रीतिसों,यादव औ नृप सर्व॥ १॥श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! इसके उपरान्त

द्वारकापुरीमें वास करते राम कृष्णको एक समय प्रलयकालके समान बडा भारी सूर्यग्रहण आया॥ १॥हे महाराज । ज्योतिषियोंसे इस ग्रहणको पहले ही जानकर मनुष्य सब ओरसे दान, पुण्य, स्नान करनेके लिये कुरुक्षेत्रको जाने लगे॥२॥जहाँ शस्त्रके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीस वार निःक्षत्रिय करके राजाओंके रुधिरसमूहसे कुण्ड भर दिये थे ॥३॥ यद्यपि पापरहित हैं, परन्तु तो भी समर्थ भगवान् परशुरामजीने अपने पाप दूर करनेके लिये अज्ञानी पुरुषके समान सब लोगोंको शिक्षा देनेके कारण जाकर कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किये ॥४॥ बडी तीर्थयात्रामें संपूर्ण भरतखण्डकी प्रजा आई, इसी प्रकार वृष्णि, अक्रूर, वसुदेव, राजा उग्रसेनादि यादव ॥५॥ अपना २ पाप दूर करनेके

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ॥ स्यमंतपंचकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन्
रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान्रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥
लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥४॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्राऽऽगन् भारतीः प्रजाः ॥ वृष्णयश्च तथा
क्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ गदप्रद्युम्नसांबाद्याः सुचंद्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥
आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥७॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्या
धरद्युभिः ॥ व्यरोचंत महातेजाः पथि कांचनमालिनः ॥ ८ ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ तत्र
स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासस्स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥

लिये कुरुक्षेत्रमें आये. गद,प्रद्युम्न, सांबादि श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र आये, परन्तु सुचन्द्र शुकसारण सहित अनिरुद्ध और कृतवर्मा यह दोनों द्वारका पुरीकी रक्षा करनेके लिये रह गये ॥६॥ बडे तेजस्वी सुवर्णकी माला और दिव्य फूलोंकी माला वस्त्र कवच धारण किये देवताओंके विमानोंके समान प्रकाशमान और जलतरंगके समान चंचल घोड़े और बादलोंकीसी कान्ति ऐसे हाथियोंके ऊपर विद्याधरोंकीसी कान्तिवाले सिपाहियों सहित यादव मार्गमें जाते हुए देवांगना सहित देवताओंके समान शोभायमान होने लगे ॥ ७ ॥८ ॥ बडे भाग्यवान् बहुत सावधान यादवोंने कुरुक्षेत्रमें व्रत स्नान कर वस्त्र और फूल सुवर्णकी माला पहराय गौ ब्राह्मणोंको दान करके दीं ॥ ९ ॥

1017

इसके उपरान्त यादवोंने परशुरामजीके सरोवरोंमें मुक्तस्नान कर "श्रीकृष्णचन्द्रमें हमारी भक्ति हो" यह संकल्प करके ब्राह्मणोंको बहुतसा सुवर्ण दान किया ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा पाय यादव आप यथेच्छ भोजन कर शीतल छाया युक्त वृक्षोंके नीचे बैठ गये ॥ ११ ॥ हे परीक्षित ! वहां मत्स्य, उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, कांबोज, केकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त्त, केरल देशके वासी अपने मित्र, बांधव व राजा और दूसरे भी अपने पक्षके और परपक्षके सैकडों मनुष्य और नन्द आदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल व बहुत दिनोंकी उत्कंठावाली गोपियें प्रभृति जो आये, उन सबको देखा ॥ १२ ॥ १३ ॥ परस्पर दर्शनसे उत्पन्न हुए आनन्दके वेगसे

रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥ ददुः स्वर्णं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥१०॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु ॥ ११ ॥ तत्रागतास्ते ददृशुः सुहृत्संबन्धिनो नृपान् ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृंजयान् ॥ १२ ॥ कांबोजकेकयान्मद्रान्कुंतीनानर्तकेरलान् ॥ अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान् परांश्च शतशो नृप ॥ नंदादीन्सुहृदो गोपान्गोपीश्चोत्कंठिताश्चिरम् ॥ १३ ॥ अन्योन्यसंदर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ॥ आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥१४॥ स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापांगदृशोऽभिरेभिरे ॥ स्तनैः स्तनान्कुंकुमपंकरूषितान्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १५ ॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान्यविष्ठैरभिवंदिताः ॥ स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथां मिथः ॥ १६ ॥

प्रफुल्लितहृदय और कमलसा मुख शोभायमान, पुलकित शरीर, प्रेमसे रुद्ध कंठ, नेत्रोंसे जल बहाते परस्पर आलिंगन करते यादव और दूसरे लोग बड़े आनन्दमें मग्न होगये॥१४॥ अत्यन्त स्नेह भरी मुसकान निर्मल कटाक्ष युक्त दृष्टि और स्नेहके आंसू नेत्रोंमें भरे स्त्री स्त्रियोंको देख केशर लगे स्तनोंको स्तनोंसे लगाय भुजा पसार परस्पर मिलने लगीं ॥ १५ ॥ छोटी अवस्थावाले बड़ोंको प्रणाम करके वह यादव वृद्धोंको प्रणाम कर "भले आये" प्रसन्न हो इस प्रकार कुशल पूँछ आपसमें कृष्णकथाओंको पूछनें लगे ॥ १६ ॥

कुन्ती भाई, बहन, भतीजे, माता, पिता और भाइयोंकी बहुओंको देख तथा मुकुन्द श्रीकृष्णचंद्रको देख आपसमें प्रेमकी बातचीत कर नेत्रोंसे आंसू बहाने लगी॥१७॥ कुन्ती बोली कि हे आर्य ! मैं अपनेको अपूर्ण मनोरथ मानती हूँ, क्योंकि जब मुझपर विपत्ति पड़ती है तो श्रेष्ठ लोग मेरी बातको स्मरण भी नहीं करते ॥१८॥ जिससे दैव रुष्ट हो जाता है, उसको कोई भी सम्बन्धी अर्थात् जातिवाले, पुत्र, भाई, माता, पिता यह स्मरण नहीं करते ॥१९॥ वसुदेवजी बोले कि,हे बहन ! दैवके खिलौने ऐसे हम मनुष्योंको दोष मत लगावे, क्योंकि लोक

पृथा भ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ॥ भ्रातृपत्नीर्मुकुंदं च जहौ संकथया शुचः ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ॥ यद् वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १८ ॥ सुहृदो ज्ञातयः पुत्राः भ्रातरः पितरावपि ॥ नानुस्मरंति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥१९॥ वसुदेव उवाच ॥ अंब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान्नरान् ॥ ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २० ॥ कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशो दश ॥ एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ॥ आसन्नच्युतसंदर्शपरमानंदनिर्वृताः ॥ २२ ॥ भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गांधारी ससुता तथा ॥ सदाराः पांडवाः कुन्ती सृंजयो विदुरः कृपः ॥ २३ ॥

ईश्वरके अधीन होकर कर्म करता है और ईश्वर ही कर्म कराता है ॥२०॥ प्रथम हम कंससे अत्यन्त दुःखित हो सब दिशाओंमें चले गये थे, दैवकी इच्छासे अभी अपने स्थानपर आये हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! वसुदेव उग्रसेनादिक यादवोंसे पूजित हो वह राजा लोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर सुख पूर्वक परमानन्दमें मग्न हो गये ॥ २२ ॥ भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, अम्बिकाका पुत्र धृतराष्ट्र, पुत्रोंसहित गान्धारी, स्त्रियोंसहित पांडव, कुन्ती,सञ्जय, बुद्धिमान् विदुर, कृपाचार्य ॥ २३ ॥

कुतिभोज, राजा विराट्, भीष्मक और नग्नजित्, पुरुजित, द्रुपद, शल्य, काशीनरेश सहित धृष्टकेतु, बडे नेत्रवाला राजा दमघोष, मिथिला देशका राजा, मद्रदेशका राजा और कैकयदेशका राजा युधामन्यु, सुशर्मा और पुत्रों सहित बाह्लीकादिक हे राजाओंके इन्द्र राजा परीक्षित् ! महाराज युधिष्ठिरके आज्ञाकारी सम्पूर्ण राजा रानियों सहित अत्यन्त शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका रूप देखकर परम आश्चर्य मानने

कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ॥ पुरुजिद् द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः स काशिराट् ॥ २४ ॥
दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ॥ युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥२५॥ राजानो ये च राजेंद्र
युधिष्ठिरमनुव्रताः ॥ श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २६ ॥ अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तस
मर्हणाः ॥ प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥२७॥ अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ॥ यत्पश्यथा
सकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८ ॥ यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ॥भूः
कालभर्जितभगापि यदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ २९ ॥

लगे *॥२४॥२५ ॥ २६ ॥ दर्शन करनेके उपरांत राम कृष्णसे भले प्रकार सत्कार पाय राजालोग श्रीकृष्णचन्द्रादि यादवोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २७ ॥ "अहो ! महाराज उग्रसेन ! यहां मनुष्योंमे जन्म तो आपका ही सफल है, क्योंकि जिनके दर्शन योगीजनोंको भी दुर्लभ हैं उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आप नित्यप्रति दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ वेद जिनकी स्तुति कीर्ति वर्णन करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रके

---

* शंका-मुनिसत्तम युधिष्ठिरकी आज्ञा करनेवाले राजा श्रीकृष्णको स्त्री सहित देखकर विस्मयको क्यों प्राप्त हुए ?

उत्तर-सब शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके वचनको राजा लोग मुनियोंके मुखसे सुनते थे कि स्त्री सदा नरककी देनेवाली है, जो कोई प्राणी मोक्षकी अभिलाषा करे वह स्त्रीकी संगति न करे, फिर स्त्रियों सहित श्रीकृष्णको देखकर राजाओंने कहा कि जिस जिस कामको श्रीकृष्ण बुरा कहते हैं उसी कामको आप करते हैं;इस प्रकार स्त्रियोंके वश हुए श्रीकृष्णको देखकर राजा लोगोंने बड़ा सन्देह किया।

चरणारविन्दका धोवन गंगाजल और मुखारविन्दका वचनरूप वेद इस विश्वको अत्यन्त पवित्र करते हैं और कालसे दग्ध माहात्म्य जाननेवाली पृथ्वी भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलके स्पर्शसे शक्तिमती हो हमारी चारो ओरसे सम्पूर्ण कामना पूर्ण करती है ॥ २९ ॥ इन श्रीकृष्णचन्द्रके संग दर्शन, स्पर्शन, अनुसरण, आसन, गोष्ठी, पलँग, भोजन, विवाह और सपिंडताके संबंधसे बँधे हुए हो और आप यद्यपि नरकके मार्गरूप गृहमें वास करते हो परन्तु तो भी तुम्हारे घरमें स्वर्ग व मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णु भगवान् आप ही प्रगट हुए हैं, इसलिये तुम्हारा जन्म सफल है" ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित्! नन्दरायजी कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णादि यादवोंका

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिंडबंधः ॥ येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३० ॥ श्रीशुकउवाच ॥ नंदस्तत्र यदून्प्राप्ताञ्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ॥ तत्रागमद् वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ॥ परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३२ ॥ वसुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः ॥ स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३३ ॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ॥ न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकंठौ कुरूद्वह ॥ ३४ ॥ तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३५ ॥

आगमन जान गोपों सहित और गाडियोंमें लदी वस्तु सहित देखनेके लिये यादवोंके पास आये ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंसे जिनका दर्शन न हुआ ऐसे कायरचित्त यादव नन्दरायजीको देख अत्यन्त प्रसन्न हो, जैसे प्राण देहमें आनेसे इन्द्रियें उठकर सम्मुख होती हैं उसी प्रकार सम्मुख जाय चिरकालसे दर्शन न पानेसे उत्कंठित हो गाढ आलिंगन कर परस्पर मिले ॥ ३२ ॥ वसुदेवजी नन्दरायजीसे मिल प्रसन्न हो प्रेममें विह्वल हो गये और कंसके दिये कष्टको और गोकुलमें जैसे कृष्णको पहुँचा आये थे, उसका स्मरण किया ॥ ३३ ॥ हे राजन्! कृष्ण बलदेव माता पिता नन्द व यशोदासे मिल प्रणाम कर ऐसे प्रेममें विह्वल हो गये कि, आंसुओंसे कंठ रुक गये, इसलिये कुछ भी न बोला गया ॥ ३४ ॥ महाभाग यशोदा और नन्दजी कृष्ण बलदेवको अपनी गोदपर बैठाय भुजाओंसे आलिंगन कर नेत्रोंसे आंसू बहाने लगे ॥ ३५ ॥

पीछे रोहिणी और देवकी व्रजकी रानी यशोदासे मिल व यशोदाकी करी मित्रताका स्मरण कर आंसू भर यह कहने लगीं ॥ ३६ ॥ कि, हे व्रजकी महारानी ! जिसका बदला न हो सके, ऐसी तुम्हारी मित्रताको कौन भूल सकता है ? और देवराज इंद्रका ऐश्वर्य पाकर भी इस संसारमें तुम्हारी मित्रताका बदला नहीं हो सकता. हे यशोदे ! जिन्होंने अपने माता पिताको नेत्रोंसे नहीं देखा, ऐसे कृष्ण बलदेवको माता पितारूप तुम्हारे पास रक्खे, तब तुमसे लालन, पालन, पोषण, वृद्धि पाय निर्भय तुम्हारे पास वास करने लगे, जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार तुमने इनकी रक्षा करी. यह तुमको योग्य ही है, क्योंकि साधुओंको अपना बिराना इस प्रकार बुद्धि नहीं होती ॥

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ॥ स्मरंत्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकंठ्यौ समूचतुः ॥३६ ॥ का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ॥ अवाप्याप्यैंद्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥३७॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ॥ प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपंति ॥ दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम्॥३९॥भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः॥ आश्लिष्याऽनामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत्॥४०॥अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया॥ गतांश्चिरायिताञ्शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४१ ॥

॥ ३७ ॥ ३८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! जिनके दर्शनमें पलकोंकी ओट पड़नेसे पलकोंके रचनेवाले विधाताको गालियां देती हैं, क्योंकि वह अतिप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र बहुत दिनोंमें दृष्टिगोचर हुए, इसलिये नेत्रद्वारा उन्हे हृदयमें स्थापित कर समाधिनिष्ठ योगियोंको भी जिसकी प्राप्ति बहुत कठिन है, उन श्रीकृष्णचंद्रके भाव (अर्थात श्रीकृष्णचंद्रके रूप) को उन गोपियोंने प्राप्त किया ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार प्रेमभरी गोपियोंके पास एकांतमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जाय आलिंगन कर कुशल पूँछ मुसकाकर यह वचन बोले कि ॥ ४० ॥ हे सखियो ! हम अपने बांधवोंके कार्य करनेकी कामनासे गये थे और वहां वैरियोंके पक्षका नाश करनेमें लग गये, जिससे बहुत

दिनों तक रुकगये सो तुमने हमारा भी कभी स्मरण किया ? ॥ ४१॥ "यह कृतघ्नी है" क्या ऐसे तुमको हमपर कुछ क्रोध तो नहीं उत्पन्न होता ? हाँ हमको त्यागकर आप चले गये, इससे यह बात सत्य है, इस प्रकार गोपियोंकी ओरसे संभावना करके कहते हैं कि, दैव ही प्राणियोंको मिलाता है, और वही वियोग करा देता है ॥ ४२ ॥ जैसे वायु बादलोंके समूहको, तृणोंको, रुईको और धूलिको उड़ाकर संयोग करता है, फिर वियोग करता है, उसी प्रकार सब प्राणियोंका उत्पत्तिकर्त्ता ईश्वर सबको मिलाता है और फिर अलग अलग कर देता है, इसमें मेरा क्या दोष है ? ॥ ४३ ॥ प्राणियोंकी मुझमें भक्ति ही जन्म और मृत्युसे छुड़ाती है, तुम्हारा मुझमें स्नेह हुआ है इसलिये मुझे प्राप्त होगी, यही बड़ा मंगल है ॥४४॥ कैसे तुम हो, जिन्हें स्नेह करके हम पावेंगी ऐसी इच्छा सब गोपियोंकी हुई तो अपना रूप कहते हैं कि हे गोपियो ! जैसे पञ्चभूतोंके बने घटादिकके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये आदिमें भी और अंतमें भी हैं, इसी प्रकार जरायुज

अप्यवध्यायथास्मान्स्विदकृतज्ञा विशंकया ॥ नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥४२॥ वायुर्यथा घनानीकं
तृणं तूलं रजांसि च ॥ संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥४३॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥४४॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरंतोऽन्तरं बहिः ॥ भौतिकानां यथा खं वा
भूर्वायुर्ज्योतिरंगनाः ॥ ४५ ॥ एवंह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः ॥ उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥४६॥

मनुष्य तथा पशु आदि और अण्डोंसे जन्म पानेवाले पक्षी इत्यादिक और पसीनेसे जन्मवाले खटमल, जुएँ इत्यादि और उद्भिज्ज अर्थात् वृक्षादि चार प्रकारके आदिमें भी मैं हूँ और अन्तमें भी मैं हूँ. भीतर बाहर होनेके कारण व्यापक हूँ ऐसे मुझे तुम प्राप्त हुई हो ॥ ४५ ॥ यहाँ एक शंका है कि, चार प्रकारके प्राणियोंका भोक्ता आत्मा आदि अन्तमें है और व्यापक आत्मामें सब प्राणी वास करते हैं, फिर तुम्हारी प्राप्ति हमें कैसे हुई ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, मृत्तिका घटादिके आदिमें भी है और अन्तमें भी है ऐसे चार प्रकारके प्राणी अपने कारणसे भूतोंमें वर्त्तमान रहते हैं, भोक्ता आत्मामें नहीं रहता है, आत्मा देहमें भोक्तारूपसे व्यापक है. पञ्चभूत रूप देहरूप भोग करने योग्य पदार्थ और भोग करनेवाले आत्मा परिपूर्णरूप मुझमें प्रकाशित देखो ॥ ४६ ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् । इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपका उपदेश कर गोपियोंको समझाया तब श्रीकृष्णचन्द्रके स्मरणसे उनके लिंगदेह छूट गये, उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति की ॥ ४७ ॥ गोपी बोलीं कि, हे कमल-नाभ श्रीकृष्ण ! बडे ज्ञानी योगीश्वरोंके ध्यान करने योग्य और संसाररूपी कुएँमें गिरे प्राणियोंके निकलनेका आश्रय तुम्हारे चरण कमल घरमें रहनेपर भी सदा हमारे मनमें स्मरण बना रहैं, यही वर माँगती हैं ॥ ४८ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे

श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ॥ तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन्॥४७॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविंदं योगेश्वरैर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराण दशमस्कंधोत्तरार्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥ युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥ त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ॥ प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

भाषाटीकायां वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥ दोहा–कही नारियोंकी कथा, सकल तिरासी अंक पाणिग्रह जैसे कियो, श्रीब्रजचन्द निशंक ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशीय राजा परीक्षित् । गोपियोंके गुरु और शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोपियोंपर अनुग्रहकरके पीछे राजा युधिष्ठिरसे और सब सुहृदोंसे कुशल पूंछी * ॥१॥ इस प्रकार लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कुशल पूँछने और

---

* शंका–वेद, शास्त्र पुराणोंका यह प्रमाण है कि, तीन लोकमें जो चराचर जीव हैं उन सब जीवोंके भगवान् गुरु हैं और गतिभी हैं, फिर व्यासजीने सब जीवोंको त्यागके भगवान्को गोपियोंका गुरु तथा गति क्यों कहा ? यह बडा भारी सन्देह है ।

उत्तर–'गोपीनांस गुरुर्गतिः" इस श्लोकमें व्यासजी ब्रजकी गोपी जो श्रीकृष्णकी प्यारी थीं उनको गोपी नहीं कहे थे, उस श्लोकका अर्थ तो व्यासजीने ऐसा किया है कि, गो शब्दको संसार भी कहते हैं शास्त्रोंमें ऐसा कहा है–गो कहिये चराचर संसार, उसका जोपालन करै उसका नाम गोप है। गोप भगवान् हैं तथा गोपी भगवान्की माया है सोई मायारूप लक्ष्मी हैं ऐसा अर्थ गोपीका व्यासभगवान्ने किया है। मायाके और जगत्के पति जो भगवान् हैं सो श्रीकृष्ण होकर पृथ्वीमें विराजमान थे इसलिये मायाके पति और गुरु भी भगवान् हैं क्योंकि मायारूप संसार है इसलिये श्रीकृष्णको गोपीपति और गुरु व्यासजीने कहा था अकेले ब्रजवासियोंको पति गुरु नहीं कहा था ॥

सत्कार करनेसे भगवान्के चरणकमलके दर्शनसे पापरहित हो वह सब लोग प्रसन्न होकर कहने लगे ॥१॥ हे प्रभो । तुम्हारे चरणारविन्दका रस जो कि,अभी महात्मा लोगों केमनद्वारा प्रगट हुआ है,और जो देहधारण करनेवालोंके देहमें अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्याको काटता है, उसे जो कर्णरूप दोनाओंसे पान करते हैं,उन पुरुषोंके अमंगल कहां ।॥२॥स्वरूपके प्रकाशसे बुद्धिकृत जाग्रत,स्वप्न,सुषुप्ति अवस्था दूर होनेके कारणसम्पूर्ण आनंदके समूहरूप,आवरणरहित, अकुण्ठ चैतन्य,शक्तिमान् कालसे नष्ट हुए वेदकी रक्षा करनेके लिये योगमायाको अंगीकार कर मनुष्यदेह धारण करनेवाले और परमहंसकी प्राप्तिके योग्य तुमको हम बारंबार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे

कुतोऽशिवं त्वच्चरणांबुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ॥ पिबंति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥३॥ हित्वाऽऽत्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानंदसंप्लवमखंडमकुंठबोधम् ॥ कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्मः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वंधककौरवस्त्रियः ॥ समेत्य गोविंदकथा मिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥५॥ द्रौपद्युवाच ॥ हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जांबवति कोसले ॥ हे सत्यभामे कालिंदि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान्स्वयम् ॥ उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरितांघ्रिरेणुः ॥ निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ परीक्षित । इस प्रकार निर्मलकीर्त्ति पुरुषोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लोग प्रशंसा कर रहे थे इतनेमें अन्धक और कौरवोंकी स्त्रियें एकत्र हो परस्पर भगवत्सम्बन्धी जो बातें करती थीं,जो त्रिलोकीमें गाई हैं, वही कथा तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं,तुम सावधान होकर सुनो ॥५॥ द्रौपदी बोली कि, हे रुक्मिणि । हे भद्रे । हे जाम्बवति । हे सत्यभामा । हे सत्या । हे कालिंदि । हे मित्रविंदा । हे रोहिणी । हे लक्ष्मणा । और हे सोलहसहस्र श्रीकृष्णकी रानियो । स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मायासे मनुष्यलीला कर जैसे तुम्हारे साथ विवाह किया सो सब बातें हमारे सम्मुख कहो ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणी बोली कि,जरासन्धादिक राजाओंके संग जब धनुष उठाय शिशुपाल मुझे ब्याहनेके लिये आया तो

अजित योद्धाओंके मस्तकपर चरण धर जैसे भेड़ बकरियोंके समूहमेंसे सिंह अपने बलिको बेखटके ले जाता हैउसी प्रकार मुझे ले आये, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मीनिवासके चरणोंकी मैं पूजा करती हूँ॥ ८ ॥ इसके उपरांत सत्यभामा अपने विवाहकी बात कहने लगी कि, भ्रातृवधके परितापसे दुःखितहृदय मेरे पिता सत्राजितने मिथ्या कलंक लगाया, इसको मिटानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ऋक्षराज जाम्बवान्को जीत मणि लाकर मेरे पिताको दी तो मिथ्या कलंक लगानेसे मेरे पिताने भयभीत हो अक्रूरादिको देना स्वीकार करके भी मुझे श्रीकृष्णचन्द्रको ही दिया ॥९॥ जाम्बवतीने कहा, मेरे पिताने इन वासुदेवको "यह अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं" ऐसे न जानकर इनसे सत्ताईस दिनतक संग्राम किया, इसके उपरांत "यह अपने स्वामी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी हैं" इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय होनेपर मेरे पिताने

सत्यभामोवाच ॥ यो मे सना मिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात् स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥ जांबवत्युवाच ॥ प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत् ॥ ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ॥ १० ॥ कालिंद्युवाच ॥ तपश्चरंतीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाऽऽशया ॥ सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमाजनी ॥ ११ ॥ मित्रविंदोवाच ॥ यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ॥ भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमंघ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥

चरणोंमें गिरकर भेंटकी नाईं मणिसहित मुझे भी अर्पण कर दिया यह सुनकर द्रौपदीने कहा कि, तुम बडी श्रेष्ठ हो, इसके उत्तरमें जाम्बवती बोली कि, मैं तो इनकी दासी हूँ ॥१०॥ कालिंदी बोली कि, मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणस्पर्शकी आशासे तप कर रही थी कि, भगवान्ने अर्जुन सहित आकर मेरा हाथ पकड़ लिया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं बुहारी देनेवाली हूँ ॥ ११ ॥ मित्रविंदा बोली कि, लक्ष्मीके वक्षनिवास भगवान् श्रीकृष्णचंद्र स्वयंवरमें जा राजाओंको जीत और उनका तिरस्कार कर मेरे भाइयोंको भी जीत हाथियोंका शत्रु सिंह जैसे कुत्तोंके बीचमेंसे अपने भक्ष्यको ले आता है उसी प्रकार मुझे अपने पुरमें ले आये, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरण धोनेकी सेवा मुझे जन्म

जन्ममें प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है॥ १२ ॥ सत्या बोली कि,बड़े बलवान् पराक्रमी बडे पैने सींगवाले और शूरवीरोंके घमण्डको चूर्ण करनेवाले राजाओंकी परीक्षा लेनेके कारण मेरे पिताके पाले हुए सात बैलोंको पकड़ जैसे बालक काष्ठकी बकरियोंके बच्चोंको बाँधता है, इसी प्रकार भगवान्ने बाँध लिये ॥ १३ ॥ पराक्रम ही है मोल जिसका ऐसी मुझे हाथी, घोडें, प्यादों सहित व दासियों सहित मार्गमें क्षत्रियोंको जीत श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार लाये इनकी मैं सदा दासी रहूँ,यही प्रार्थनाहै॥१४॥भद्रा बोली कि,हे द्रौपदी ! मेरा मन श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त जान मेरे पिताने मेरे मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाय मुझे अक्षौहिणी सेना सहित दे दिया ॥ १५॥ अनेक कर्मोंसे भटकनेवाली मुझे जन्म

सत्योवाच ॥ सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृंगान्पित्रा कृतान्क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ॥ तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा
वगृह्य क्रीडन्बबंध ह यथा शिशवोऽजतोकान्॥१३॥य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम् ॥ पथि निर्जित्य
राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥ भद्रोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् ॥ कृष्णे कृष्णाय
तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥ १५ ॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन
तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तं मुकुंदे
किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥१७॥ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ॥ बृहत्सेन
इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥

जन्ममें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हो,जिन चरणारविन्दोंके स्पर्शसे मोक्षनाम कल्याण मुझे प्राप्त हो;यही मेरी प्रर्थनाहै ॥ १६ ॥ लक्ष्मणा बोली कि, हे रानी द्रौपदी ! वारंवार देवर्षि नारदजीके गाये हुए भगवान् वासुदेवके जन्म, कर्म श्रवण कर आश्चर्य है कि, लक्ष्मीजीने भी लोकपालोंको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रकोही वरण किया है,इस प्रकार विचार कर,मेरा मनभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लग गया ॥ १७॥ हे सुशीले द्रौपदी ! पुत्रीपर हित करनेवाले बृहत्सेन नाम विख्यात मेरे पिताने मेरे मनकी बात जान श्रीकृष्णचन्द्रके आनेके लिये

उपाय किया ॥१८॥ हे रानी द्रौपदी। जैसे तुम्हारे स्वयंवरमें अर्जुनके आनेके लिये मत्स्य रचा गया था, उसी प्रकार मेरे पिताने भी मत्स्य रचा, यह सुन द्रौपदी बोली कि, फिर अर्जुनने उस मत्स्यको क्यों नहीं वेधा ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणाने कहा कि, तुम्हारे स्वयंवरकी मछली बाहर ढकी थी, भीतरसे नहीं ढकी थी इसलिये खंभमें लगाकर ऊपरको दृष्टि करके देखनेसे दिखाई देती थी और मेरे स्वयंवरकी मछली ऐसी नहीं थी किन्तु खंभकी जड़में धरे कलशके जलमें केवल परछाई दिखाई देती थी, देखना तो नीचे जलमें और वेधना ऊपर, ऐसी मछलीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना और कौन वेध सकता ? ॥१९॥ स्वयम्बर रचा है, यह बात सुनकर संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले उपाध्याय अर्थात् सिखानेवालोंको संग ले सहस्रों राजा मेरे पिताके पुरमें आकर उपस्थित हुए; उस समय जैसा जिसका पराक्रम और जैसी जिसकी अवस्था

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ॥ अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो
भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं
यथावयः ॥ आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥ २१ ॥ आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः ॥
आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥ २२ ॥ सज्यं कृत्वाऽपरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ॥ भीमो दुर्योधनः
कर्णो नाविंदंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥ मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ॥ पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं
नाच्छिनत्पस्पृशे परम् ॥ २४ ॥

थी उसी प्रकार उसका पूजन मेरे पिताने किया, इसके पीछे कोई भी राजा मुझमें मन लगनेके कारण हाथमें धनुष उठाय मत्स्यके वेधनेको सभामें समर्थ न हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ बहुत राजाओंने तो धनुष हाथमें ले पटक दिया, बहुतसे प्रत्यंचाको खैंच धनुषके चपेटसे ही गिर पडे ॥२२॥ और जो शूरवीर जरासंध, अंबष्ठ, चंदेलीका राजा, भीम, दुर्योधन, कर्ण यह लोग भी अपने अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढाय मछली कैसे लगी है ? यह भी जाननेको समर्थ न हुए ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त जलमें मछलीकी परछाईं देख 'ऐसे मछली लगी है' सो जान उपाय करनेवाले अर्जुनने बाण चलाया वह बाण मछलीसे स्पर्श तो हो गया परन्तु मछली कटी नहीं ॥ २४ ॥

जब समस्त क्षत्रिय हारकर बैठ रहे तब अभिमानियोंका अभिमान दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धनुष हाथमें ले लीलापूर्वक प्रत्यंचचढाय धनुषमें बाण लगाय और एक ही बार मछलीको जलमें देख मध्याह्न समय अभिजित् नक्षत्रमें अर्थात् सब कार्य सिद्ध करनेवाले मुहूर्त्तमें मछलीको बाणसे काट कर पटक दिया ॥२५॥ २६॥ इस समय स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजने लगे, पृथ्वीमें "जय हो जय हो" इस प्रकार शब्द होने लगा और देवतालोग आनन्दमें मग्न हो आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥२७॥ हे द्रौपदी ! इसके उपरान्त लाजभरी हँसनयुक्त मुख और चोटीमें पुष्पमाला गुहे नवीन रेशमी सुन्दर धोती, चद्दर पहर सुवर्णकी जडी रत्नोंकी माला हाथमें ले और मनोहर नूपुरवाले चरणोंसे मैं रंगा

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु॥ भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥ २५ ॥ तस्मिन्संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ॥ छित्त्वेषुणाऽपातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ॥ देवाश्च कुसुमासारान्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रंगमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वल रत्नमालाम् ॥ नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कवरीधृतस्रक् ॥२८॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुंतल कुण्डलत्विड् गंडस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः॥राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥ तावन्मृदंगपटहाः शंखभेर्यानकादयः॥ निनेदुर्नटनर्तक्यो नन्नृतुर्गायका जगुः ॥ ३० ॥ एवं वृते भगवति मयेशो नृपयूथपाः ॥ न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥

भूमिमें आई॥ २८ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तहृदय मैं बडे केश और कुण्डलोंसे शोभायमान कपोलवाले मुखको उठा संतापको दूर करनेवाले हास्य कटाक्ष पूर्वक चितवनसे चारो ओरके राजाओंको देख धीरे धीरे जाकर मुरारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें माला डाली ॥ २९ ॥ इस समय मृदंग, शंख, भेरी, नगारे आदि बाजे बजने लगे, नट और नृत्यकारी नाचने लगे और गाने लगे ॥ ३० ॥ हे यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदी ! इस प्रकार मैंने जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने वशमें किया तब ईर्षा और कामसे आतुर राजाओंके यूथने यह बात नहीं सहन की ॥ ३१ ॥

इसके उपरान्त अत्यन्त शोभायमान चार घोडे जुते रथमें उस समय मुझे बैठाय शार्ङ्गधनुषको ले कवच पहर चारभुजायुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र खडे हो गये ॥३२॥ हे रानी द्रौपदी ! तब रथवान्ने सुनहरी साजका रथ हांक दिया और जैसे मृगोंके देखते सिंह चला जाता है,उसी प्रकार राजाओंके बीचमेंसे उनके देखते ही चले गये ॥ ३३ ॥ इनको जाता देखकर बडे बडे क्षत्रिय राजा पकड़नेके लिये पीछे दौड़े और कोई राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके रोकनेको आगे जाय धनुषको ऊँचा उठाय, जैसे सिंहके रोकनेको कुत्ता खडा होता है,उसी प्रकार मार्गमें सावधान होकर खडे हो गये ॥ ३४ ॥ शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समूहसे भुजा,पांव, नार कटनेसे अनेक क्षत्रिय युद्ध में गिर गये और

मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ॥ शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामास कांचनोपस्करं रथम् ॥मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥ तेऽन्वसज्जत राजन्या निषेद्धु पथि केचन ॥ संयत्ता उद्धतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम्॥३४॥ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वंघ्रिकंधराः ॥ निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥३५॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ॥ कुशस्थलीं दिवि भुवि चापि संस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ महार्हवासोलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥३७॥ दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ॥ आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहादासिकाः ॥ सर्वसंगनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥

बहुतसे संग्रामको छोड़कर भाग गये ॥३५॥ इसके उपरान्त यादवोंके पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शोभायमान सूर्यका आवरण करनेवाली, ध्वजाके वस्त्रोंसे शोभित और चित्रविचित्र बन्दनवार माला बँधी स्वर्ग :और पृथ्वीमें जिसकी स्तुति हो ऐसी द्वारकापुरीमें अस्ताचलमें सूर्यके समान प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त मेरे पिताने सुहृदयतासे गोत्री और बंधुओंका बडे मोलके वस्त्र, गहने, शय्या, आसन और साजसे पूजन किया॥ ३७ ॥ संपूर्ण संपत्तिमान् दासी और प्यादे, रथ, हाथी, घोडे और बहुत मोलके शस्त्रों सहित मुझे मेरे पिताने परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको दिया ॥ ३८ ॥ यह आठो हम आत्मा में रमण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सब संग त्याग अपने

धर्मसे साक्षात् घरकी दासी हुई हैं ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त सोलह हजार एक सौ रानियां कहने लगीं कि, भौमासुरने दिग्विजयमें जिन
हम राजकन्याओंको जीतकर रोक रक्खा था, उन्हें संसारसे छुड़ानेवाले अपने चरणारविन्दका स्मरण करते जान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र
स्वयं पूर्णकाम रहते भी संग्राममें भौमासुर और उसके कुटुम्बको मार हमारे साथ विवाह किया ॥ ४० ॥ हे द्रौपदी । हम चक्रवर्ती राज्य
और इन्द्रपदके भोगका भोगना नहीं चाहतीं और अणिमादिक सिद्धि, ब्रह्मलोक, मोक्ष तथा वैकुण्ठ धामकी भी चाहना नहीं करतीं, किन्तु
गदाके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मीके कुचोंकी केशर लगे सुन्दर चरणारविन्दोंकी रज अपने माथेके ऊपर चढानेकी चाहना करती हैं

महिष्य ऊचुः ॥ भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ॥ निर्मुच्य संसृ
तिविमोक्षमनुस्मरंतीः पादांबुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥४०॥ न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ॥
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनंत्यं वा हरेः पदम् ॥४१॥ कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ॥ कुचकुंकुमगंधाढ्यं
मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥४२॥ व्रजस्त्रियो यद्वांछंति पुलिंद्यस्तृणवीरुधः ॥ गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥
॥ ४३॥ इति श्रीमद्भाग० महा० दशमस्कंधोत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वा पृथा सुब
लपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥ कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबंधं सर्वा विसिस्म्युरल
मश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १॥ इति संभाष्यमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ॥ आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥२॥

॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महात्मा होते भी गाय चराते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणरजको जैसे गोप, गोपियें, भीलनियें, तृण और लतायें चाहना
करती हैं उसीप्रकार हम भी उनकी चाहना करती हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भाषाटीकायां स्वयंवरादिवर्णनो नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ दोहा–भयो समागम मुनिनसों, चौरासी अध्याय । संस्कार वसुदेवको, कियो सबनि सुख पाय ॥८४॥ श्रीशुकदेवजी
बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित । कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियें और भक्त गोपियोंने सबके महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें
रानियोंका इस प्रकार प्रेम सुन नेत्रोंमें आंसु भर बड़ा आश्चर्य माना ॥ १ ॥ उस कुरुक्षेत्रमें इस प्रकार स्त्रियोंके संग स्त्री, पुरुषोंके संग पुरुष बातचीत

करते ही थे कि, इतनेमें श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करनेको मुनिलोग आये ॥ २ ॥ उनके नाम यह हैं, यथा–वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज और गौतम ॥ ३ ॥ शिष्यों सहित भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति ॥ ४ ॥ द्वित, त्रित, एकत तथा ब्रह्माके पुत्र अंगिरा गस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा वासुदेवादि और मुनि भी संपूर्ण आये ॥ ५ ॥ विश्वपूजित ऐसे मुनियोंको आया देख राजा आदि जो प्रथम बैठे थे और पांडव अर्थात् राजा युधिष्ठिरादि तथा कृष्ण बलदेवने शीघ्र उठकर प्रणाम किया ॥६॥ इसके उपरान्त इन मुनियोंका यथायोग्य सब जनोंने पूजन किया और बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र 'भले आये' इस प्रकार मुनियोंसे कह आसन दे अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप और चन्दन इत्यादिसे पूजा करने लगे ॥ ७ ॥ चुपचाप हो सम्पूर्ण जिसमें बैठे ऐसी सभामें धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ब्राह्मणोंसे कहने लगे॥८॥ श्रीभगवान् बोले कि, अहो ! बड़ा आश्चर्य है, आज हम सफलजन्म हुए और सब जन्मका साफल्य हमको प्राप्त हुआ क्यों कि, जिनका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है उन योगीश्वरोंका दर्शन हुआ ॥९॥ केवल तीर्थस्नानादिकोंको तप जानें, प्रतिमाको ही देवतास्वरूप मानें, आपसरीखे मनुष्योंका दर्शन, स्पर्शन व वार्त्तालाप प्रश्न, नमस्कार, चरणपूजा आदिकी प्राप्ति कहाँ हो सकती है ! अर्थात् नहीं हो सकती ॥ १० ॥

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ॥ विश्वामित्रः शतानंदो भारद्वाजोऽथ गौतमः ॥३॥ रामः सशिष्यो भगवान्व
सिष्ठो गालवो भृगुः ॥ पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कंडेयो बृहस्पतिः ॥४॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रस्तथांगिराः ॥
अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ॥ पांडवाः कृष्णरामौ
च प्रणेमुर्विश्ववंदितान् ॥६॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥७॥
उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥ सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो
वयं जन्मभृतो लब्धंकार्त्स्न्येन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किंस्वल्पपतपसां नृणामर्चायां
देवचक्षुषाम् ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥

जलमय तीर्थ नहीं है सो नहीं है, मृत्तिका शिलाओंके देवता नहीं हैं सो नहीं हैं, क्योंकि जब बहुत दिनोंतक देवताओंकी पूजा करै तब वह पवित्र करते हैं और साधु महात्मा लोग तो केवल दर्शनसे ही पवित्र कर देते हैं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, पवन, वाणी, मन यदि इनकी भली भाँतिसे उपासना की जाय तो भेदबुद्धिके कर्त्ता होनेसे पुरुषके अज्ञानको दूर कर सकते हैं और विवेकी पुरुष तो केवल दो घडीकी सेवा करते ही अज्ञानको दूर कर देते हैं॥ १२॥ जो पुरुष वात, पित्त, कफमय देहको ही आत्मरूप समझते हैं

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चंद्र
तारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥ उपासिता भेदकृतो हरंत्यघं विपश्चितो घ्नंति मुहूर्त्तसेवया॥१२॥
यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ॥ यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु
स एव गोखरः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुंठमेधसः ॥ वचो दुरन्वयं विप्रास्तू
ष्णीमासन्भ्रमद्धियः ॥ १४ ॥

1055

और स्त्री पुत्रादिको ही अपना मानते हैं वा मूर्त्तिको ही पूज्य समझते हैं और जलको ही तीर्थ जानते हैं, और विवेकी पुरुषोंको आत्मारूप व पूज्य तीर्थ इत्यादि नहीं समझते वह गायोंका चारा ढोनेवाले बैल और गधेके समान हैं * ॥१३॥ "यहाँ साधुओंकी महिमा दिखानेका तात्पर्य है, मूर्त्ति तथा तीर्थका निषेध नहीं और विशेष करके यह दिखाया है कि तीर्थको जानेमें बहुतेरा द्रव्य उठावें पूजामें घंटों बैठें परन्तु

---

* शंका-श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणोंसे कुरुक्षेत्रमें कहा कि, भौम जो प्रतिमा देवताओंकी होती है, उसमें जो प्राणी देवता मानते हैं कि इस प्रतिमामें भगवान् वसे हैं, यह प्राणी नहीं हैं ऐसा माननेवाले प्राणी बैल वा गधा ही हैं, तथा जलमें तीर्थ मानते हैं कि, मैंने इस तीर्थमें स्नान किया मेरी मुक्ति होगी नहीं तो कभी मोक्ष न होगी वह बैल गधा ही होगा, मुझको यह बडा आश्चर्य है कि, भगवान्ने वेद और शास्त्रके विरुद्ध वचन क्यों कहे ? प्रतिमाकी तथा गंगादिक तीर्थोंकी निन्दा क्यों की ? यह बडा भारी सन्देह है।

उत्तर-वेदमें और शास्त्रमें दो मार्ग हैं, एक कर्ममार्ग दूसरा मोक्षमार्ग संसारी जीव दोनों मार्गोंका सेवन करते हैं, जो जीव कर्ममार्गका सेवन करता है, जैसे गृहस्थादिक प्राणी प्रतिमामें देवताको मानते हैं तब सेवन करते हैं. वह पुरुष प्रतिमामें देवताको जानते हैं तथा प्रतिमाका पूजन करैंगे या जलमें स्नान कियेसे मोक्ष होना मानेंगे तब निश्चयसे कर्म करनेवाले मनुष्यको गिनतीसे हीन सुख होगा और जो प्राणी प्रतिमाको देवस्वरूप और जलको मोक्षरूप मानें तो वह प्राणी बैल गधा हैं, श्रीकृष्णने कर्ममार्ग सेवन करनेवाले जीवके लिये यह वचन नहीं कहा, जो जीव संसारके कर्म त्यागकर ईश्वरका भजन करता है उसके लिये यह वचन कहा है, श्रीकृष्णके वचनमें भ्रम नहीं है।

महात्मा और हरिभक्तोंको देखते ही दुर्वाक्य कहैं उन्हैं अन्न तो क्या जल भी न दें, ऐसे भेदबुद्धिवालोंके लिये यह वाक्य है, ज्ञानी पुरुष तो सबमें ही उसका प्रकाश देखते हैं" श्रीशुकदेवजी बोले कि; हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चकितबुद्धि हो वह सब ब्रह्मण चुप हो गये ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कर्मोंमें अधिकार बहुत देरतक विचार करके समझा कि, लोकोंको शिक्षा देनेके कारण हमारी स्तुति करते हैं इस प्रकार मुनीश्वरं लोग बुद्धिसे निश्चय कर कुछेक मुसकाय जगत्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ कि तत्त्वके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हम और विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक जिनकी मायासे मोहित हुए हैं क्योंकि, जिस मायासे आप मनुष्यलीला करनेको गूढ़ रहकर मुनीश्वरके समान चेष्टा करते हो, इस लिये आपकी लीला बडी विचित्र है ॥

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ॥ जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयंतस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥ यन्मायया तत्त्व
विदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ॥ यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥१६॥
अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा॥भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडंब
नम् ॥१७॥ अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ॥स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा
पुरुषः परो भवान् ॥१८॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम्॥१९॥

॥ १६ ॥ चेष्टारहित और एक होकर भी तुम अपने आत्मासे इस विश्वको बहुत प्रकार पालन, उत्पत्ति और क्षय करते हो जैसे पृथ्वी घटादि विकारोंसे बहुत नामकी होती है, यदि तुम कहो कि, मैं कैसे उत्पत्ति पालन व संहार करता हूं ? मैं तो वसुदेवका पुत्र हूं इसके उत्तरमें कहते हैं कि, परिपूर्णरूप तुमने वसुदेवके घर जन्म लिया है, यह विचित्र लीलामात्र है सत्य नहीं है ॥१७॥ समयपर अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंको दंड देनेके लिये आप शुद्ध सतोगुण रूपको धारण करते हो और अपनी लीलासे सनातन वेदमार्गको प्रवृत्त करते हो, यद्यपि तुम किसीके पुत्र नहीं हो, परन्तु तो भी चार वर्ण और चार आश्रमके आत्मा परमपुरुष तुम हो, इसी लिये ब्राह्मणोंका बहुत सत्कार करते हो ॥ १८ ॥ शुद्ध वेद तुम्हारा भीतरका रूप है, क्योंकि तप करना, वेद पढ़ना, इंद्रियोंका रोकना इन कार्य और कारण

दोनोंसे परे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! वेदके कारण आत्मा तुम हो और अपने बतानेवाले ब्रह्मकुलका पूजन करते हो और इसीलिये ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ इस कारण ईश्वर होकर जो तुम हमारा सत्कार करते हो सो पुरुषोंकी शिक्षा करनेके लिये है और हम तुम्हारे संगसे कृतार्थ हुए. साधुओंकी गति आपका संग हुआ इसलिये हमारे जन्म, विद्या, तप, दृष्टि, यह संपूर्ण सफल हुए, क्योंकि तुम सब कल्याणकी अवधि हो ॥ २१ ॥ अकुंठितबुद्धि और अपनी योगमायासे गूढ महिमावाले परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ॥२२॥मायारूपी चित्रसे ढके सृष्टि इत्यादिकोंके कारण ईश्वर आत्मा तुमको आपके साथ एक ही

तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मञ्शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ॥ सभाजयसि सद्धाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसा
फल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ॥ त्वया संगम्य सद्गत्या यदंतः श्रेयसां परः ॥ २१ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमे
धसे ॥ स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्ने परमात्मने॥२२॥ न यं विदंत्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ॥ मायाजवनिकाच्छ
न्नमात्मानं कालमीश्वरम्॥२३॥ यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ॥ नाममात्रेंद्रियाभातं न वेद रहितं परम्
1056
॥२४॥ एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विंद्रियेहया ॥ मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते
ददृशिमांघ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदिकृतं सुविपक्वयोगैः ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गति
मथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥

स्थानमें रहनेवाले यह यादव और राजा लोग नहीं जानते हैं॥२३॥ जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें मिथ्या पदार्थको सत्य मानता है, मनसे सिंह व्याघ्रादिरूप आप बन जाता है और जाग्रत् अवस्थाके स्वरूपको नहीं जानता॥२४॥उसी प्रकार स्वप्नादि तुल्य विषय पदार्थमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे चलायमानचित्त पुरुष विवेकके नाशसे आपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ पापोंके समूहोंको दूर करनेवाले गंगारूपी तीर्थ जिनमेंसे प्रगट हुआ और दृढ योगवाले योगीजन भी जिनका केवल हृदयमें ध्यान करते हैं परन्तु तुम उनको भी दिखाई नहीं दिये उन तुम्हारे चरणारविन्दोंका हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया, इसलिये हमें भक्ति करनेका अनुग्रह करो । यदि कहो कि भक्ति करके क्या करोगे?पहले समान

तप करे जाओ इसका उत्तर देते हैं कि, वृद्धिको प्राप्त हुई भक्तिसे जिनके लिंगशरीरका नाश हो गया है, वही पुरुष तुम्हारे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं और नहीं *॥२६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज! इस प्रकार मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और राजा धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिरसे आज्ञा मांग अपने २ आश्रमोंमें जानेकी इच्छा करने लगे ॥ २७ ॥ तब महायशवान् वसुदेवजी उन मुनियोंको जाते देख कर उनके समीप आय सावधान होकर कहने लगे ॥ २८ ॥ वसुदेवजी बोले कि, सम्पूर्ण देवतारूप तुम हो सो आपको मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ, हे

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ॥ राजर्षे स्वाश्रमान्गंतुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ॥ प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयंत्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ॥ कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छंति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥

ऋषीश्वरो! मेरी एक आपसे प्रार्थना है सो कृपा करके सुनिये, जिन कर्मोंके करनेसे कर्मोंका नाश होता है, सो हमें बताओ ?॥२९॥ श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर हमसे कल्याण पूँछने आयेहैं इसप्रकार आश्चर्य मान नारदजी बोले कि, हे ब्राह्मणो! जो वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको अपना पुत्र जाननेके कारण अपना कल्याण हमसे पूछते हैं यह आश्चर्य नहीं है ॥ ३० ॥

---

* दृष्टान्त–एक महात्माने कृष्ण नामकी बहुत प्रशंसा करी कि, एकवार नाम लेनेसे अनेक पाप दूर होजाते हैं. चेला बोला महाराज! फिर यह मनुष्य तो दिनरात नामका स्मरण करते हैं, यह क्यों दुःख पाते हैं ? गुरुजी बोले महिमा नहीं जाननेसे यह दशा है, चेला मनमें संदेह करने लगा तो बाबाजीने अपने पाससे एक अमूल्य रत्न दे चेलेसे कहा, कुंजडीसे पूछ, इसका कितना शाक देगी, चेलेने जाकर पूछा, उसने सेरभर शाक देनेको कहा, फिर गुरुजीने सराफपर भेजा, उसने बीस रुपये कहे फिर गुरुजीने जौहरीके पास भेजा उसने करोड रुपये कहे फिर गुरुजीने सबसे बडे जौहरीके पास रत्न लेकर भेजा, तब उसने कहा, मेरे यहां असंख्य द्रव्य है, परन्तु यह तो इसके द्रव्यके व्याजमें है मेरे यहां इसका मूल्य देनेको द्रव्य नहीं, यह अमूल्य है, चेलेने गुरुजीसे सब वृत्तान्त कहा, तब गुरुजी बोले इसी प्रकार कृष्णनामकी महिमा है. जो जानते हैं, वह संसारसागरके पार हो जाते हैं और जो नहीं जानते वह कर्म भोगते हैं ॥

क्योंकि श्रीकृष्णचंद्रको बालक मानना अविद्यासे है. इस संसारमें मनुष्योंके पास रहनेसे अनादर होता है, जैसे गंगातटका रहनेवाला पुरुष गंगाको छोड़ शुद्ध होनेके लिये और जलमें स्नान करनेको जाता है ।॥ ३१ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रका ज्ञान किसी कारणसे भी नष्ट नहीं होता सोई कहते हैं, जैसे कालसे काँकरी फट जाती हैं और इस विश्वको उत्पन्न कर पालन और नाश करनेसे भी तुम्हारा ज्ञान नहीं जाता है और जैसे बिजली चमककर बिलाय जाती है और जिस प्रकार गुणोंसे पूर्वरूपका नाश और रूपांतरकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार नहीं जाय है ॥ ३२ ॥ ऐसे जो कृष्ण अद्वितीय ईश्वर और अखंडित ज्ञानस्वरूप हैं इन्हे और मनुष्य जैसे रविमण्डलको बालक राहु वा

सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ॥ गांगं हित्वा यथऽन्यांभस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥३१॥ यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनास्य वै ॥ स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ॥ प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगुढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुंदुभिम् ॥ सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥३४॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एषसाधु निरूपितः ॥ यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ॥ दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥३६॥ अयं स्वस्त्ययनः पंथा द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥

1087

हिमसे अच्छादित मानै उसी प्रकार क्लेश कर्म सुख दुःख गुणोंका प्रवाह और अपने कार्यरूप प्राणादिकसे आच्छादित मानै तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत वह मुनि सब राजा और श्रीकृष्णबलदेवके सुनते वसुदेवजीको संबोधन देकर बोले ॥ ३४ ॥ मुनि बोले कि, सब यज्ञोंके ईश्वर विष्णु भगवान्का यज्ञोंद्वारा श्रद्धासहित यजन करना यही सर्वोत्कृष्ट कर्मसे कर्म मिटानेका उपाय कहा है ॥३५॥ पंडित लोगोंने शास्त्ररूप नेत्रोंसे चित्तोपशम और मोक्षका उपाय व शनैःशनैः अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला सुगम स्वधर्म भी यही दिखाया है ॥ ३६ ॥ गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको यही कल्याणका मार्ग है कि, निष्काम होकर प्राप्त हुए शुद्ध द्रव्यसे

ईश्वरका पूजन करें, क्योंकि महात्मा पुरुषोंका ही द्रव्य यज्ञादिकोंमें लगता है और लोभियोंका धन वृथा जाता है ॥ ३७ ॥ हे वसुदेवजी ! बुद्धिमान्‌को उचित है कि, धनके फलरूप यज्ञ और दान करके धनकी इच्छाका त्याग करे, घरके भोग भोगकर स्त्री पुत्रकी तृष्णा त्यागे और संसारको नाशवान् जानकर अपनी प्रतिष्ठा और स्वर्गादिककी कामना त्यागे* ॥३८॥ग्राममें चाहना त्याग कर समस्त वीरपुरुष तप करनेके लिये वनको चले गये. हे वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,देव, ऋषि, पितृ इन तीनों ऋणोंसे इस जन्ममें उद्धार हो यज्ञ करके

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ॥ आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ॥३८॥ ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितॄणां प्रभो ॥ यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत ॥ ३९ ॥ त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ॥ यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ॥ ४० ॥

देवताओंका ऋण और विद्या पढ़कर ऋषियोंका ऋण तथा पुत्र उत्पन्न करके पितरोंका ऋण चुकावे । इन ऋणोंके चुकाये विना जो कर्मोंका त्याग करे तो वह पुरुष नरकमें गिरता है ॥ ३९ ॥ हे मतिमान् वसुदेव ! अब तुम दो ऋणोंसे तो छूट गये, विद्या पढे इसलिये ऋषियोंके ऋणसे उद्धार होगये और पुत्र होनेके कारण पितरोंके ऋणसे उद्धार हो गये, अब यज्ञ करके देवताओंके ऋणसे उद्धार हो गृहको

---

* दृष्टान्त–कपीपलसाहके छप्पन कोटि द्रव्य था परन्तु रहे बड सूम,बेटे कहैं पिताजी ! गंगा पुष्कर स्नान करनेको चलो पुण्य करो,वह कहैं कि. पुण्य करनेसे कुछ नहीं होता है और जो हम चलें तो पीछे घर चोर लूटकर ले जायँगे, रास्तेमें लूट जाओगे, बेटोंने कहा हम तो जायँगे, संतोंके दर्शन करेंगे. वह बोले तुम मेरा धन लुटानेको फिरते हो, तब बेटे बोले हम भीख माँगते चले जाँयगे, वह बोले तो नाम ले जाओगे एक काम करो, गहना कपडा सब उतार धरो मैले कपडे पहरो उन्होंने वैसा ही किया, तो इन्होंने भोजनमात्र खर्च दिया और कह दिया कि,पुण्य मत कीजो जल्दी आइयो वे सब स्त्री बालक गये पीछे इन्होंने गढा खोद सब गहना द्रव्य गाड दिया जब वे स्नान कर आये तब यह बोले तुम नहाने गये पीछे चोरी हो गई, अब बनियेसे उधार लेकर खाते हैं, हमारे पास कुछ नहीं रहा ऐसा कह बागमें जा बैठे अब यह विलाप करनेलगे कि, परमेश्वर ! भले स्नान करनेको गये भोजनसे ही बैठ रहे संध्यासमयतक रोते रहे, उस समय महादेवजी सैरको आये और इनको देखकर बोले कि, द्रव्य तो कोठेमें दब रहा है, यह कह गये, उन्होंने झट गढा खोद सब धन निकाल लिया और बाँटनेलगे पीछेसे पीपलसाह बोले अरे दुष्टो ! जल्दी किवांड खोलो नहीं तो इसी जगह अपना मस्तक फोडकर मर जाऊंगा इन्होंने किवांड खोलनेमें विलम्ब किया उन्होंने जाना कि सब धन लुट गया सो शिर फोडकर मर गये ॥

त्याग संन्यास ग्रहण करो ॥ ४० ॥ और हे वसुदेवजी ! तुमने बडी भक्तिसे जगत्के ईश्वर हरि भगवान्का पूजन किया था इसी लिये स्वयं भगवान् हरिने आकर तुम्हारे यहां अवतार लिया ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उदारमन वसुदेवजी इस प्रकार ब्राह्मणोंका वचन सुन मस्तक नवाय नमस्कार कर उन ऋषियोंसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजजनोंका वर्णन करने लगे ॥ ४२ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित ! धर्मसे वर्णनोंको प्राप्त हो ऋषि महात्माओंने वसुदेवजीको कुरुक्षेत्रमें उत्तम सामग्रियोंसे यजन कराया ॥ ४३ ॥ हे राजन ! जिस समय वसुदेवजीको यज्ञदीक्षा दी गई, उस समय कमलोंकी माला पहरे यादव स्नान कर शोभायमान वस्त्र धारण कर शृंगार किये हुए बहुतसे राजा आये॥४४॥

वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् ॥ जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति
तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महात्मनाम् ॥ तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ एनमृषयो राजन्वृता
धर्मेण धार्मिकम् ॥ तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥४३॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ॥ स्नाताः
सुवाससो राजन्राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ दीक्षाशालामुपाज
ग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥ नेदुर्मृदंगपटहशंखभेर्यानकादयः ॥ ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ॥ जगुः
सुकंठ्यो गंधर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिंचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ॥ पत्नीभिरष्टादशभिः
सोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुंडलैः ॥ स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः॥ ४८ ॥

और कंठमें धुकधुकी व सुन्दर वस्त्र पहरे केशर चन्दन लगाये राजाओंकी स्त्रियें पूजासामग्री हाथमें लिये यज्ञशालामें आईं ॥ ४५ ॥ मृदंग ढोल, शंख, भेरी नगारे आदि बाजे बजने लगे, नट और नृत्य करनेवाली नाचनेलगीं, सूत तथा मागध स्तुति करने लगे और स्वरीले कण्ठवाली गंधर्वपत्नियें अपने पति सहित सुंदर गीत गाने लगीं ॥ ४६ ॥ नेत्रोंमें अञ्जन लगाये हुए शरीरमें मक्खन मले वसुदेवजीका विधिपूर्वक अठारह स्त्रियों सहित ऋत्विजोंने अभिषेक किया, जैसे तारागणोंसहित चन्द्रमाका अभिषेक करते हैं॥४७॥ हे राजन् ! उस समय वस्त्र, कंकण,

हार, नूपुर, कुण्डल पहरे स्त्री सहित दीक्षा लिये मृगछाला ओढे वसुदेवजी अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ४८ ॥ हे महाराज । रत्नोंके गहने और वस्त्र धारण किये वसुदेवजी यज्ञ करनेवाले तथा सभामें बैठे पुरुषों सहित वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ भगवान् कृष्ण बलदेवजी भी संपूर्ण जीवोंके ईश्वर, अपने २ बांधवोंको संग लिये और अपने २ पुत्र स्त्रियों सहित अपने २ ऐश्वर्यसे सुंदर लगने लगे ॥ ५० ॥ यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादि प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञ अर्थात् समस्त अंगके ज्योतिष्टो मदर्श पौर्णमास आदि यज्ञ और थोडे अंगवाले शौर्यसत्रादिक द्रव्य अर्थात् सांकल्यमन्त्र कर्मसे ईश्वर भगवान्का पूजन करने लगे ॥ ५१ ॥

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बंधुभिरन्वितौ ॥ रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञं विधिना ह्यग्निहोत्रादिलक्षणैः॥ प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ॥ स्वलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो गोभूकन्या महाधनाः ॥५२॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ॥ सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥५३॥ स्नातोऽलंकारवासांसि बंदिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ॥ ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥५४॥ बंधून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा ॥ विदर्भकोसलकुरून्काशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥

इसके उपरांत वसुदेवजीने समयपर आभूषणोंसे शोभायमान यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको आभूषणोंसे शोभायमान कर गौ, पृथ्वी, कन्या और बडे धनकी बडी दक्षिणा वेदविधिसे दी ॥५२॥ इसके उपरांत पत्नीसंयाजावभृथ्य यज्ञांग करा कर बडे ऋषि ब्राह्मणोंने यजमान वसुदेवजीको आगे कर रामह्रदमें स्नान कराया ॥५३॥ स्नान कर वसुदेव और इसी प्रकार उनकी स्त्रीने बन्दीजनोंको अपने अंगके आभूषण इत्यादि दियें । इसके उपरांत वसुदेवजीने और आभूषण पहर चारो वर्णोंको दानकरके पूजन किया और जीवोंमें श्वानको भी अन्न दिया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त स्त्री पुत्रों सहित अपने बन्धुओंकी बहुत द्रव्यसे पूजा की. फिर विदर्भ, कोशल, कुरु, काशि, केकय, सृंजय इन देशोंके राजा और

सभासद, तथा यज्ञकरनेवाले देवतागण, मनुष्य, भूत, पितर, चारण गणका पूजन किया और फिर सब राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको,
सम्बोधन दे, यज्ञकी प्रशंसा कर अपने २ देशोंके जानेकी इच्छा करने लगे ॥५५॥५६॥ इसके उपरान्त धृतराष्ट्र, विदुर, पृथाके पुत्र--युधिष्ठिर
भीमसेन, अर्जुन, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कुंती; नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासजी और सुहृद्, इनसे तथा नाते गोतेवाले बन्धु यादव
सबसे मिल स्नेह कर, खेदित विरहके कष्टसे अपने अपने देशोंको चले गये और जो मनुष्य वहां पर थे वह भी अपने अपने देशोंको
चले गये ॥५७॥॥५८॥ राम कृष्ण उग्रसेनादिक यादवोंसे बडी पूजा और सत्कार पाय गोप ग्वालों सहित नन्दरायजीने बन्धु बांधवोंके

सदस्यर्त्विक्सुरगणान् नृभूतपितृचारणान् ॥ श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसंतः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥ धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था
भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ॥ नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्संबंधिबांधवाः ॥५७॥ बंधून् परिष्वज्य यदून् सौहृदाऽऽक्लिन्न
चेतसः ॥ ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥ ५८ ॥ नंदस्तु सहगोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ॥ कृष्णरामोग्रसे
नाद्यैर्न्यवात्सीद्बंधुवत्सलः ॥५९॥ वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतः प्रीतमना नंदमाह करे स्पृशन् ॥
॥ ६० ॥ वसुदेव उवाच ॥ भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ॥ तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम्
॥६१॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः ॥ मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥ प्राग
कल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ॥ अधुना श्रीमदांधाक्षा न पश्याम पुरः सतः ॥ ६३ ॥

निकट स्नेहके कारण कुछ दिन तक वहीं वास किया ॥ ५९ ॥ अनायाससे मनोरथरूप महासागरको पार उतर प्रसन्नचित्त और सम्बन्धी
लोगोंसे आवृत वसुदेवजी हाथ पकड नन्दजीसे बोले ॥६०॥ कि हे भाई नन्दजी ! मनुष्योंको स्नेहरूपी फांसी ईश्वरने रची है, इस कारण
इसे शूरवीर बलसे और ज्ञानी ज्ञानसे भी नहीं काट सकते ॥६१॥ तुमसे महात्माने जो अकृतज्ञ हमारे साथ मित्रता करी है, उसका पलटा
हम किसी प्रकार नहीं दे सकते, तो भी वह सदा एकरूप बनी रहती है कभी निवृत्त नहीं होती ॥ ६२ ॥ हे नन्दरायजी ! पहले तो हम असमर्थ
थे, इसलिये तुम्हारा कुछ उपकार न कर सके और अब धनसे अंन्धे हो सम्मुख बैठे तुमसे महात्माओंकी ओरको देखते भी नहीं ॥ ६३ ॥

हे मान देनेवाले भाई नन्दजी! कल्याणकी अभिलाषा करने वाले मनुष्यको राजलक्ष्मी चाहै न मिलै, क्योंकि इससे अंधा होकर पुरुष अपने आश्रित तथा बन्धु बांधवोंको भी नहीं देखता ॥६४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! इस प्रकार स्नेहसे शिथिलचित्त आंसू नेत्रोंमें भरे वसुदेवजी नन्दजीकी मित्रताको स्मरण कर रोने लगे ॥ ६५॥ नन्दरायजी यादवोंसे मान पाकर अपने मित्र वसुदेवजीको प्रसन्न करते भगवान् कृष्ण बलदेवजीके प्रेमसे “आज कल आज कल” करते तीन महीने तक वहीं रहे ॥६६ ॥ इसके उपरान्त बडे मोलके आभूषण रेशमी वस्त्र तथा अनेक प्रकारके बडे मोलकी वस्तुसे व्रजवासियों सहित नन्दरायजीको पूर्ण कर दिया ॥६७॥ और वसुदेव उग्रसेन

माराज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ॥ स्वजनानुत बन्धून् वा न पश्यति ययांधदृक् ॥६४॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुंदुभिः ॥ रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥ नंदस्तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविंदरामयोः ॥ अद्य श्व इति मासांस्त्रीन् यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबांधवः ॥ पराद्ध्यीभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥६७॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ॥ दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ॥ ६८ ॥ नंदो गोपाश्च गोप्यश्च गोविंदचरणांबुजे ॥ मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः॥६९॥ बंधुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥ जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥ यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

तथा कृष्ण बलदेवादि यादवोंकी दी हुई प्रीति सहित सामग्रीको ग्रहण कर जिस समय नन्दरायजी बिदा हुए, उस समय यादवोंने इनके संग एक बडीभारी सेना कर दी थी॥६८॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदमें लगे मनको हटानेमें असमर्थ नन्दरायजी व गोपी गोपियें मथुराको चले॥ ६९॥ बन्धुलोगोंके जानेपर श्रीकृष्णचन्द्रको इष्टदेव माननेवाले यादव वर्षाऋतु निकट आई देख पीछे द्वारकाको चले गये॥७०॥ और जाकर सब यादवोंने वसुदेवजीका यज्ञ और कुरुक्षेत्रकी यात्रामें सुहृदोंका मिलाप यह सब प्रजासे कहा ॥७१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वसुदेवयज्ञसमाप्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४ ॥

दोहा–विनय पचासीमें करी, कृष्ण और बलराम । मरे पुत्र मातहि दिये, पितुहि ज्ञान सुखधाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजा परीक्षित ! कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनेके उपरांत एक समय वसुदेवजी चरणोंमें प्रणाम किये रामँ कृष्णकी प्रशंसा कर प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ ॥ १ ॥ पुत्रोंके प्रभावको जाननेवाला जो मुनियोंका कहा वचन कि, तुम्हारे पुत्र परमेश्वर हैं, सुनकर श्रीकृष्ण बलदेवका पराक्रम देख विश्वासयुक्त वसुदेवजी सम्बोधन देकर बोले ॥ २ ॥ कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे राम ! हे महायोगिन् ! हे संकर्षण ! हे सनातन ! इस विश्वके कारण प्रकृति पुरुषके भी कारण साक्षात् ईश्वर तुम हो,यह मैं जानता हूँ ॥ ३॥ जिसमें,जिस साधनसे, जिससे,जिस कारणसे, जिसका, जिसके लिये, जिसको, जो,जैसे और जब यह संसार स्थित है और स्थित किया जाता है उस सब भोग्य और भोक्ताके नियंता साक्षात्

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवंदनौ ॥ वसुदेवोऽभिनंद्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥
मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम्॥तद्वीर्यैर्जातविश्रंभः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्
सकर्षण सनातन ॥ जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ॥३॥यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा॥ स्यादिदं
भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४ ॥एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ॥ आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो
बिभर्ष्यजः ॥५॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ॥ पारतंत्र्याद्वै सादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥

आपही हो॥४॥ हे अधोक्षज ! आप जो अजन्मा हो, वे अपने रचे हुए इस अनेक प्रकारके जगत्में अपने रूपसे प्रवेश कर क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिरूप होकर उसका पोषण और भरण करते हो॥५॥पृथक् २ शक्तिवाले प्राणादिक इस विश्वके कारण जाननेमें न आवें परमेश्वरको कारणरूपसे सर्वरूप कैसे कहते हो यह शंका जब हुई तो उसका समाधान यह है कि, प्राणादिकोंमें जो शक्ति है सो ईश्वरके रचे प्राण आदि तत्त्वमें जो शक्ति है सो परमकारण ईश्वरकीही है क्योंकि, प्राणादिक ईश्वरके अधीन हैं और जैसे तीरमें वेधनेकी स्वतंत्र शक्ति नहीं है किन्तु पुरुषकी शक्तिसे वेधता है उसी प्रकार प्राणादिकोंमें ईश्वरकी शक्ति है. प्राणादिक जड़ हैं, और ईश्वर चैतन्य है और जड़ पदार्थको चैतन्यकी अधीनता योग्य है. वहां कहते हैं कि,प्राणादिकोंमें शक्ति नहीं है तो क्रिया कैसे कहतेहैं ? उसका उत्तर यह है कि,चेष्टा करनेवाले

प्राणादिककी चेष्टा यहां कुछ शक्ति नहीं है, जैसे पवनकी शक्तिसे तृण हिलतेहैं,उसी प्रकार क्रिया करते हैं ॥ ६ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र, व बिजलियोंकी स्फुर सत्ता,पर्वतोंकी स्थिरता और पृथ्वीकी आधारता तथा गंध यह संपूर्ण तुम्हारी ही शक्तियें हैं ॥ ॥७॥हे देव ! जल,उसकी तृप्ति करनेकी शक्ति, जीवित करनेकी शक्ति व उसका रस यह सब तुमही हो. हे ईश्वर ! वायुके ओज, सह, बल, चेष्टा और गतिहैं यह सब तुम्हाराही रूप हैं॥८॥दिशाओंमें जो खालीपन और दिशायें समस्त तुम्हारेही रूप हैं और आकाश तथा आकाशमें शब्द रूप गुण सब तुम्हारेही रूप हैं,वाणी आकार और नाम रूप कहनेमें न आवे सो सब तुमही हो ॥ ९ ॥ नेत्रोंमें दर्शनशक्ति और कानोंमें श्रवणशक्ति तथा जिह्वामें रसकी ग्रहणशक्ति इत्यादिक इंद्रियोंमें विषयोंके ग्रहण करनेकी शक्ति तुमही हो और इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता

कांतिस्तेजःप्रभा सत्ता चंद्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम्॥यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गंधोऽर्थतो भवान्॥७॥तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं
ताश्चतद्रसः ॥ ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ॥
नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इंद्रियंत्विंद्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ॥ अवबोधो भवान्
बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥१०॥ भूतानामसि भूतादिरिंद्रियाणां च तैजसः ॥ वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशा
यिनाम् ॥ ११ ॥ नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ॥ यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥ सत्त्वं
रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ॥ त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परें कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥

तुमही हो देवता इंद्रियोंको प्रेरणा करते हैं, यह तुम्हारी शक्ति है,बुद्धिमें निश्चय करनेकी शक्ति तुम ही हो, और जीवोंको श्रेष्ठवार्ता जो स्मरण रहती है,यह तुम्हारीही शक्ति है ॥१०॥ पञ्चभूतका कारण तामसाहंकार इंद्रियोंके देवताओंका कारण सात्त्विकाहंकार, इंद्रियोंका कारण, राजसाहंकार और जीवोंके संसारका कारण प्रधान यह सब तुमही हो ॥ ११ ॥ नाशवान् पदार्थमें जो शेष रहे अर्थात् जिसका नाश न हो सो तुमही हो, जैसे मृत्तिका, सुवर्णके बने घडे, मूँदरी, कडे इत्यादि सब नाशवान् हैं, मृत्तिका सुवर्णका नाश नहीं होता ॥१२॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृत्ति साक्षात् परब्रह्ममें योगमायासे कल्पित हैं ॥ १३ ॥

॥२९९॥

इसी कारण यह पदार्थ आपसे अलग नहीं हैं, जब यह पदार्थ कल्पना किये जातेहैं, तभी प्रतीतिमात्रसे आपमें हैं और आप कारणतासे उनमें अनुगत हो और जब कल्पना नहीं किये जाते, तब निर्विकल्प आप ही अवशेष रहते हो ॥१४॥ यह जो गुणोंका प्रवाहरूप संसार है, उसमें सबके आत्मा तुम्हारी संसारसे अलग गतिको नहीं जाननेवाले अज्ञानी पुरुष देहमें अभिमानसे करे कर्मसे इस संसारमें जन्मे हैं ॥१५॥ हे ईश्वर ! शोभायमान हाथ, पांव, नाक, कान सब इंद्रिययुक्त बहुत दुर्लभ देहको इस संसारमें कोई एक पुण्यके फलसे पाकर स्वार्थमें भूलकर मैंने अपनी अवस्था तुम्हारी मायासे वृथा ही गँवाई ॥ १६ ॥ मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ इस प्रकार देहमें अभिमान और इस देहके सम्बन्धी स्त्री पुत्रादिक मेरे हैं इस अभिमानसे स्नेहके रस्सोंमें यह जगत् तुमने बाँध रक्खा है ॥१७॥ हम तुम्हारे पुत्र हैं,तुम क्यों हमारी

तस्मान्न सत्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ॥ त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाऽव्यावहारिकः ॥ १४ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ॥ गतिं सूक्ष्मावबोधेन संसरंतीह कर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ॥ स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥१६॥ असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ॥ स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥ युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ॥ भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥ ॥ १८ ॥ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविंदमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबंधो ॥ एतावताऽलममलमिंद्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक्त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥१९॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ॥ नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥

स्तुति करते हो? उसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि, तुम हमारे पुत्र नहीं हो, किन्तु प्रधानपुरुष ईश्वर हो और पृथ्वीके भाररूप क्षत्रियोंका नाश करनेको आपने अवतार धारण किया है, क्योंकि आप ऐसे ही हैं ॥ १८ ॥हे दीनबन्धु ! शरण प्राप्त हुए पुरुषके संसारी भयको दूर करनेवाले ! मैं तुम्हारे चरणारविंदकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ "तुम तो बडे सुखी हो वृथा क्यों खेद करते हो ऐसे जो कदाचित श्रीकृष्ण कहैं" इसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि, विषयकी लालसा इतनी ही है कि,मरण धर्मा शरीरको आत्मा माना और तुम परमेश्वरको पुत्र माना ॥ १९ ॥ तुमने सूतिकागृहमें ही हमसे कहा था कि, "जब तुम सुतपा और पृश्नि व कश्यप, अदितिरूप दंपती हुए तब और अभी वसुदेव देवकी

रूप दंपती हो, मैं अजन्मा प्रथम निज धर्मकी रक्षाके ‘लिये आपसे प्रगट हुआ और अब भी प्रगट हुआ हूँ” आप असंग रहकर भी अनेक
अवतार धारण करते हो और छोड़ते हो, सर्वव्यापक आपकी विभूतिरूप मायाको कौन जान सकता है ? ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,
हे राजन् ! यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पिताके वचन सुन अधीनतापूर्वक नम्र हो मनोहर वाणीसे कहा ॥२१॥ श्रीभगवान्
बोले कि, हे पिता ! हम पुत्रोंके विषयमें आपने जो तत्त्वसमूहका भलीभाँति निरूपण किया सो तुम्हारे वचनको हम यथार्थ मानते हैं॥२२॥
हे यदुश्रेष्ठ पिता ! तुम और बडे भ्राता बलदेवजी तथा सब द्वारकावासी यादव और स्थावर जंगम जगत्को ब्रह्मरूप जानो ॥ २३ ॥ यहाँ

श्रीशुक उवाच ॥ आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्त्वतर्षभः ॥ प्रत्याह प्रश्रयाऽऽनम्रः प्रहसञ्छ्लक्ष्णया गिरा ॥
॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ॥ यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥
॥ २२ ॥ अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ॥ सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्मा ह्येकः
स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥२४॥ खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु
यथाशयम् ॥ आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन्वसुदेव
उदाहृतः ॥ श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥ २६ ॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ॥ श्रुत्वा
ऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥

एक शंका है, नाना विकारवान्को ब्रह्मरूपता कैसे बने ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, आत्मा एक स्वयंप्रकाश नित्य सबसे पृथक् निर्गुण है, अपने
रचे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे उत्पन्न देहमें बहुत प्रकार प्रतीत हो फिर जैसी देह उसमें वैसा ही प्रतीत होता है. जैसे आकश, पवन, ज्योति
जल, पृथ्वी यह पंचभूत घट पटादि पदार्थोंमें कहीं प्रगट कहीं अंतर्द्धान, कहीं थोडे, कहीं बहुत प्रतीत होय हैं ऐसे एक आत्मा ब्रह्मस्वरूप अनेक
रूपसे प्रतीत होता है ॥ २४॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन
भेदभाव त्याग प्रसन्नमन हो वसुदेवजी चुप हो गये॥२६॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! फिर अपने पुत्र गुरुपुत्रको पीछे ले आये, यह वृत्तान्त सुन अत्यन्त

आश्चर्य मान कंसके मारे पुत्रोंकी सुध करके सब जगत्की देवतारूप देवकी व्याकुल हो नेत्रोंमें आँसू भर श्रीकृष्ण बलदेवको बतलाकर इस प्रकार दीन वचन कहने लगी ॥ २७ ॥ २८ ॥ देवकी बोली कि, हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेय आत्मन् ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! आप विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर और आदिपुरुष हो, तुमको मैं जानती हूँ ॥२९॥ कालसे सत्त्वगुणका नाश होनेपर शास्त्रकी मर्यादा त्यागनेवाले पृथ्वीपर भाररूप राजाओंका नाश करनेके लिये तुम मेरे यहाँ आकर प्रगट हुए हो ॥ ३० ॥ हे सबके कारण ! हे विश्वके आत्मा ! तुम्हारा अंश पुरुष है, उसका अंश माया, उस मायाके अंश सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंके परमाणुमात्र लेशसे इस विश्वकी

कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ॥ स्मरंती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच ॥ राम
रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर ॥ वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञा
मुच्छास्त्रवर्तिनाम् ॥ भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥ यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः॥
भवंति किल विश्वात्मंस्तं त्वाऽद्याहं गतिं गता ॥३१॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ ॥ आनिन्यथुः पितृ
स्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम्॥३२॥ तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ॥ भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान्
॥३३॥ श्रीशुक उवाच॥एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ॥ सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ॥३४॥

1062

उत्पत्ति, पालन और प्रलय होती है, ऐसे तुम हो सो मैं तुम्हारी शरण आई हूँ ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वर ! चिरकालसे मरे हुए पुत्रको लानेके लिये गुरुने आज्ञा की तब तुमने यमराजके लोकमेंसे उस पुत्रको लाकर गुरुके गुरुदक्षिणारूप अर्पण किया, उसी प्रकार मेरी कामना भी पूर्ण करो अर्थात् कंसके मारे हुए पुत्रोंको मैं यहाँ देखना चाहती हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब माता देवकीने इस प्रकार कहा, तब राम कृष्ण योगमायाका आश्रय ले सुतल लोकमें गये ॥ ३४ ॥

वहाँ दैत्यराज बलिने विश्वके आत्मा देवता अपने इष्टदेव कृष्ण बलदेवको सुतललोकमें आया देख और उनके दर्शनसे आनन्द हो परिपूर्ण अंतःकरणसे परिवार सहित शीघ्र उठकर नमस्कार किया ॥ ३५ ॥ और प्रीतिसहित आसन लाकर उन महात्माओंको आसनपर बैठाया फिर चरण पखार ब्रह्मपर्यन्त जगत्को पावन करनेवाला जल दैत्यराज बलिने और उसके परिवारने अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥ ३६ ॥ उत्तम वस्त्र, आभूषण, लेपन, तांबूल, दीप और अमृतसे भोजन आदि अनेक वैभवसे उनकी पूजा की और अपना तन, धन, कुटुम्ब सब अर्पण किया॥३७॥ हे नृप ! राजा बलि भगवान्के चरणारविन्दको बारम्बार मस्तकपर धर प्रेमसे द्रवीभूत हुई बुद्धिसे आनन्दके आँसू नेत्रोंमें भरे पुलकितशरीर हो इस प्रकार कहने लगे ॥ ३८ ॥ राजा बलि बोले कि, समस्त विश्व फणके ऊपर धारण करनेवाले शेषरूप तुमको प्रणाम है और सब जगत्के रचनेवाले तुमको नमस्कार है, सांख्यशास्त्र योगशास्त्रके विस्तार करनेवाले ब्रह्म परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥३९॥ योगीश्वरोंको भी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है सो हमको हुआ, यह आश्चर्य नहीं है, यद्यपि प्राणियोंको तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, परन्तु तो भी तुम्हारी कृपासे किसी किसीको सुलभ हो जाता है, इसलिये रजोगुणी, तमोगुणी स्वभाववाले हम असुरोंको अकस्मात् आपने दर्शन दिया ॥ ४० ॥ बड़ा आश्चय है, हम शत्रु सत्त्वगुणी भक्तोंसे भी बड़भागी हैं, दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और

तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराट् विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृंद आब्रह्म पुनद्यदंबु ह ॥ ३६ ॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ तांबूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥ स इंद्रसेनो भगवत्पदांबुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ॥ उवाच हाऽऽनंदजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनंताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ॥ राजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगंधर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥

प्रमथोंमें मुख्य हैं ॥ ॥ ४१ ॥ हम और हमसे दूसरे लोगोंने शास्त्रके रक्षा करनेवाले सत्त्वगुणी स्वभाव तुमसे नित्य शत्रुता कर रक्खी है, इन्हें भी आपका दर्शन प्राप्त हो जाता है ॥४२॥ कोई एक (शिशुपालादि) वैर भक्तिसे तुमको जैसे पा गये और गोपी आदिकोंने कामभक्तिसे जैसे तुम्हें पाया उसी सत्त्वगुणसे देवता तुमको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! इस प्रकार तुम्हारी योगमायाको जब योगेश्वर भी नहीं जानते तो हम असुर क्या जान सकते हैं ॥ ४४ ॥ इसलिये हमपर आप ऐसी दया करो कि, जिससे निष्काम पुरुषोंके ढूंढने योग्य तुम्हारे चरणारविन्दका आश्रय ले चरणारविन्दसे अलग घररूप कुएँसे निकलकर विश्वकी रक्षा करनेवाले वृक्षकी जडोंमें आपहीसे गिरे फल

विशुद्धसत्त्वधामन्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ॥ नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ॥ न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः॥ ४३ ॥ इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ॥ न विदंत्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥४४॥ तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहांधकूपात् ॥ निष्क्रम्य विश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिः शांतो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥ शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो ॥ पुमान्यच्छ्रद्धयाऽऽतिष्ठञ्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे ॥ देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा ॥ हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥

फूलको भोजन कर मैं शान्तचित्त होकर अकेला विचरूं अथवा सबके सहाय करनेवाले महात्मा पुरुषोंके संग विचरूं ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! सब जीवोंके स्वामी ! हमें शिक्षा देकर निष्पाप करो, जिस शिक्षाको श्रद्धापूर्वक पालनेसे पुरुषोंके विधिनिषेधरूप बन्धन छूट जाते हैं ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, इस स्वायंभुव मन्वन्तरमें मरीचि प्रजापतिकी ऊर्णा स्त्रीमें छः पुत्र हुए. एक समय देवतारूप छहो पुत्र अपनी कन्याके पीछे भाजे ब्रह्माजीको देखकर हँसे ॥ ४७ ॥ इस पापकर्मसे असुरयोनिको प्राप्त हुए फिर उन्होंने हिरण्यकशिपुके जन्म लिया, सोई छहोंने हिरण्यकशिपुके यहाँसे योगमायाके प्रेरें ॥ ४८ ॥

1063

देवकीके उदरमें जन्म लिया, जो कंसके हाथसे मारे गये सो अब तुम्हारे पास हैं, इन्हें देवकी अपना पुत्र मानकर शोच करती है ॥४९॥ माता देवकीके शोक दूर करनेके लिये यहाँसे इन छहो पुत्रोंको लेजायँगे, इसके उपरान्त शापसे छूट खेदरहित होकर यह देवलोकमें जायँगे॥ ॥ ५० ॥ स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृद् और घृणी ये जो छः पुत्र हैं सो मेरे प्रसादसे मुक्त हो जायँगे ॥ ५१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस प्रकार जब कहा तब राजा बलिसे पूजित हो श्रीकृष्ण बलदेवने उन पुत्रोंको संग ले द्वारकापुरीमें आयमाता देवकीको दे दिये॥५२॥ पुत्रोंके स्नेहसे स्तनोंमें दूध चुवे,ऐसी देवकी उन बालकोंको देख गोदमें बैठाय छातीसे लगाया बारम्बार माथा सूँघने लगी॥५३॥सृष्टिको उत्पन्न

देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ॥ सा ताञ्छोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥ इत
एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ॥ ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यंति विज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वंगः
पतंगः क्षुद्रभृद् घृणी॥ षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यंति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इंद्रसेनेन पूजितौ ॥
पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य
मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ॥ मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः
प्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणांगसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते
नमस्कृत्य गोविंदं देवकीं पितरं बलम्॥ मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥

करनेवाली विष्णुभगवान्की मायासे मोहित और पुत्रोंको छातीसे लगानेके कारण मग्न देवकी प्रसन्न होकर पुत्रोंको स्तन पिलाने लगी॥५४॥ गदाके धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके पीनेसे बचा अर्थात् भगवान्का प्रसाद वह अमृतरूप देवकीका दुग्ध पान कर और श्रीकृष्णके अंगस्पर्श करनेसे "हम देवता हैं" यह ज्ञान होनेसे वह देवता गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र और देवकी तथा वसुदेवजीको नमस्कार कर सब प्राणियोंके देखते देवताओंके धाम देवलोकमें चले गये ❋ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

❋ शंका–देवकीके सब बालकोंको श्रीकृष्णने ला दिया,तब वह सब बालक देवकीके स्तनका दूध पीने लगे.श्रीमद्भागवतमें लिखाहै कि,कैसा देवकीके स्तनोंका दूध था जिसको बालक पी रहे थे,कि पहिले तो भगवान्ने देवकीके स्तनोंका दूध पिया था. जो दूध शेष रहा उसको देवकीके और बालकोंने पिया। अब यहां मुझको यह सन्देह है कि, श्रीकृष्ण तो जन्म लेते ही गोकुलको चले गये देवकीका दूध नहीं पिया, फिर व्यासजी क्यों कहते हैं, देवकीके स्तनोंका दूध भगवान्ने पिया, और जो बाकी रहा उसको और पुत्रोंने पिया।

हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित्! मरे हुए पुत्रोंका आगमन और फिर गमन देखकर विस्मित देवकीने जान लिया कि, यह सब श्रीकृष्णकी रची हुई माया है ॥ ५७ ॥ अनंतशक्ति परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे ऐसे आश्चर्ययुक्त अनंत चरित्र हैं ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक ऋषीश्वरो! व्यासनन्दन महात्मा शुकदेवजीके कहे हुए और सब जगतके पापोंके दुर करनेवाले, भक्तोंके कानोंको आनन्द दायक अमृतरूपी कीर्ति मुरारी भगवान्के चरित्रोंको भगवान्में चित्त लगाकर जो पुरुष श्रवण करै अथवा श्रवण करावे, वह पुरुष काल और मायासे रहित भगवान्के परमधामको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भाषाटीकायां मृताग्रजानयनं

तद् दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ॥ मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य संत्यनंतानि भारत ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति 1064 तत्क्षेमधाम॥५९॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरर्द्धे मृताग्रजानयनं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥ यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ॥ गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥ दोहा–हरण सुभद्राको कियो, छयासी अर्जुन धीर। कियो सुखी श्रुतदेवको, अरु द्विजको यदुवीर ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि, हे योगीश्वर श्रीशुकदेवजी! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रकी भगिनी सुभद्रा जो मेरी दादी थी, उसके संग अर्जुनने जिस प्रकार विवाह किया, सो मेरी सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! एक समय सामर्थ्यवान् अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये पृथ्वीपर भ्रमण करता करता प्रभास तीर्थमें पहुँचा ॥ २ ॥

उत्तर–शास्त्रमें लोकमें तीन प्रकारका कर्म वर्णन होता है; एक वचनसे कर्म होता है, दूसरा मनसे कर्म होता है,तीसरा शरीरसे कर्म होता है, इन तीनों कर्मोंमें कोई कर्म छोटा नहीं है अरु कोई बडा भी नहीं है. यह तीनों कर्म समान हैं, देवकीके दूधको भगवान् सदा मनसे पीते रहे, जो मनसे दूध पिया तो वचन तथा शरीरसे दूधका पीना सत्य हो गया, इसलिये व्यासजीने देवकीके दूध को कहा

वहां जाय अपने मामाकी पुत्री सुभद्राको बलदेवजी दुर्योधनको ब्याह देंगे और वसुदेवादिकोंकी इसमें सम्मति नहीं है, यह बात सुन उस सुभद्राके लेनेकी इच्छासे अर्जुन संन्यासी बन तीन दंड धारण कर द्वारकापुरीमें आया ॥ ३ ॥ अपने कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छासे अर्जुनने चार महीने वर्षा ऋतुके द्वारकापुरीमें बिताये, पर वहांके मनुष्योंको और बलरामजीको भी इस छलकी खबर न हुई, इस कारण वह उसका नित्यप्रति सन्मान करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन संन्यासीभावसे अर्जुनका निमन्त्रण कर घरमें बुला श्रद्धापूर्वक बलदेववजीने जो भोजन परोसा सो अर्जुनने भोजन किया ॥ ५ ॥ वहाँ शूरवीरोंके मनको हरनेवाली एक अत्यन्त सुन्दर कन्या अर्जुनने देखी, जिसपर दृष्टि पडते

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ॥ तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदंडी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ॥ पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥ एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमंत्र्य तम् ॥ श्रद्धयोपाहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥५॥ सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ॥ प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥ सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् ॥ हसंती व्रीडितापांगी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥ तां परं समनुध्यायन्नंतरं प्रेप्सुरर्जुनः ॥ न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चाऽऽरुंधतो भटान् ॥ विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥

ही उसके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित हो गये और रतिके अभिप्रायसे चलायमान मन सुभद्रामें लग गया ॥ ६ ॥ स्त्रियोंका मन हरनेवाले अर्जुनको देख सुभद्राने भी अपना मन अर्जुनमें लगाया और लाजभरे नेत्रोंसे कटाक्षसहित उसकी ओर देखने लगी ॥ ७ ॥ बडे बलवान् कामदेवसे चलायमान चित्त अर्जुनने केवल सुभद्राका ध्यान और हरण करनेका अवसर देखते बलदेवजीके किये सन्मानसे कुछ सुख नहीं पाया ॥८॥ इसके उपरांत बडी देवीकी यात्रामें रथमें बैठकर निकली सुभद्राको माता, पिता देवकी, वसुदेव और श्रीकृष्णकी सम्मतिसे महारथी अर्जुनने हरण किया ॥९॥ रथमें बैठ धनुष हाथमें ले अर्जुन चारो ओरसे रोके प्यादोंको भजाय उनके पुकारते ही जैसे सिंह अपने भागको ले जाता

है, उसी प्रकार ले गया ॥१०॥ अर्जुन सुभद्राको ले गया, यह बात श्रवण कर जैसे पूर्णमासीको समुद्र उमड़ता है, उसी प्रकार क्रोधित हुए बलदेवजोको सुहृदोंसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शान्त किया ॥ ११ ॥ फिर बलदेवजीने अति आनन्दपूर्वक दहेजमें उन दूलह दुलहनके लिये अमूल्य सामान, हाथी, घोडे, रथ, दास और दासियें आदि भेजे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे महाराज परीक्षित् ! श्रीकृष्णचंद्रकी एक भक्तिसे सम्पूर्णमनोरथ, शान्तस्वभाव, विवेकी, विषयोंमें अनासक्त एक श्रुतदेव नाम प्रसिद्ध ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था ॥ १३ ॥ विना उपाय करे मिले भोजनसे ही निर्वाह करके अपने कर्मोंको करे, ऐसा गृहस्थी ब्राह्मण विदेहदेशकी मिथिला

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ॥ गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि
वरवध्वोर्मुदा बलः ॥ महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव
इति श्रुतः ॥ कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शांतः कविरलंपटः ॥ १३ ॥ स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ॥ अनी
हयाऽऽगताऽऽहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ॥ नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे
यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः ॥ मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥
तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् ॥ आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः १७ ॥ नारदो वामदे
वोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ॥ अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥ १८ ॥

पुरीमें वास करता था ॥ १४ ॥ जितनेमें शरीरका निर्वाह हो उतना भोजन प्रतिदिन अकस्मात् उसके लिये आ जाता था और अधिक नहीं, परंतु उतनेमें ही सन्तोष करके यथायोग्य सन्ध्योपासनादि कर्म करता था ॥ १५ ॥ हे परीक्षित् ! जैसा श्रुतदेव ब्राह्मण भक्त था उसी प्रकार मिथिलादेशका पालन करनेवाला जनकके वंशमें हुआ निरभिमान बहुलाश्व नामसे विख्यात राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था, ब्राह्मण और राजा यह दोनों श्रीकृष्णचंद्रके प्यारे थे ॥ १६ ॥ उन दोनों भक्तोंके ऊपर प्रसन्न हुए सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र रथवान्के लाये रथमें बैठ मुनियोंको संग ले विदेहदेशको चले गये ॥ १७ ॥ तब नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, अरुणि,

मैं (शुकदेवजी), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदि ऋषि भी संग गये थे॥१८॥ हे राजन्! मार्गमें मुनियोंको संग लिये श्रीकृष्णचन्द्र जहां जहां गये तहां तहां पुरवासी उनके लिये अर्घ्य हाथमें लेकर उनकी स्तुति करते थे, जैसे ग्रह उदय होकर सूर्यको अर्घ्य देते हैं॥१९॥ आनर्त्तदेश, धन्व, कुरु, जांगल, कंक, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, केकय, कोशल, अर्ण इन देशोंके वासी स्त्री पुरुष उदार हँसनियुक्त स्नेहभरी चितवनवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द दृष्टि भर कर देखने लगे॥२०॥ अपनी कृपादृष्टिसे अज्ञान दूर कर पुरुषोंकी दृष्टिको कल्याण और

तत्रतत्र तमायांतं पौरा जानपदा नृप॥ उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम्॥१९॥ आनर्तधन्वकुरुजांगलकंकम
त्स्यपांचालकुंतिमधुकेकयकोसलार्णाः॥ अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः॥२०॥
तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन्॥ शृण्वन्दिगंतधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं
सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान्॥२१॥ तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपा
णयः॥२२॥ दृष्ट्वा ते उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः॥ कैर्धृतांजलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन्॥२३॥

तत्त्वज्ञान देते, दिशाओंके अन्ततक व्याप्त पापनाशक देवता और मनुष्योंसे गाये अपने यशको श्रवण करते त्रिलोकीके गुरु श्रीकृष्णचन्द्र धीरे २ विदेहादिक देशोंमें पहुँचे॥२१॥ हे राजा परीक्षित्! वह सम्पूर्ण पुरवासी देशवासी जन श्रीकृष्णचन्द्रको आया सुन हर्षित हो पूजाके योग्य सामग्रियोंको हाथमें ले सम्मुख आये॥२२॥ उत्तमयशी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर प्रफुल्लित मुख और अन्तःकरण वाले पुरुष हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगे और उक्त मुनियोंको भी प्रणाम किया *॥२३॥

---

* शंका–मुनीश्वर लोग विदेह राजाके नगरको सदा आते थे और नगरमें कुछ दिन वास करके अपने अपने आश्रमोंको चले जाते थे जब कि, जनकपुरमें बडे बडे महात्मा और प्रजागण बसते थे तब वह पुरवासी प्रजागण और महात्माजन मुनियोंको देखते थे और पहिचानते थे, फिर व्यासजीने क्यों कहा कि, प्रथम जिन मुनियोंको सुन रक्खा था उन मुनियोंका पूजन किया, इस बातसे यह जान पड़ता है कि, नारदादि मुनि जनकपुरीको कभी भी नहीं गये, नये नये कृष्णके साथ गये हैं इसलिये व्यासजी कहते हैं कि, जनकपुरवासी प्रजाने देखे नहीं थे परन्तु सुने तो थे कि, अमुक अमुक मुनि पृथ्वीपर हैं, यह शंका बड़ी भारी है?

उत्तर–"श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" इस श्लोकमें विद्वान् पुरुष सब दिन तथा वर्षको तथा बहुत दिनको बहुत पहिले नहीं मानते थे. बहुत दिन तथा वर्षसे तो पुरवासी प्रजा सब मुनियोंको जानते थे परन्तु जब श्रीकृष्णके साथ सब मुनि आये तब सब मुनियोंको पुरवासी प्रजाने देखा, उस समयसे पहिचाना और पहिलेसे तो सुन रक्खा था. ऐसा भी है क्योंकि जनकपुरमें बडा कोलाहल मच गया था कि श्रीकृष्णचन्द्र जनकपुरको आते हैं, उनके संग अमुक२मुनि लोग भी आते हैं, ऐसा पुरवासियोंने सुना था सो अब आ गये, उन सबका यथायोग्य पूजन किया "श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" का अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है और ऐसा नहीं किया कि कभी देख नहीं थे सुने ही थे॥

जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये आये हैं, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें आकर गिर पडे ॥ २४ ॥ मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेवजी इन दोनोंने एक संग हाथ जोड़ ब्राह्मणोंसहित श्रीकृष्णचन्द्रका आतिथ्यभाव कर निमंत्रण किया॥२५॥भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंका निमंत्रण मान इनका प्रिय करनेके लिये ब्राह्मणों सहित दो रूप धर दोनोंके घर गये उस समय राजा और ब्राह्मणोंने यह नहीं जाना कि इन्होंने दो रूप कर लिये हैं ॥ २६ ॥ उदारमन बडी भक्तिसे हृदयमें हर्ष, नेत्रोमें आंसू भरे जनकवंशी राजा बहुलाश्व असत् पुरुषोंके सुननेमें भी न आवें,

स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥२४॥ न्यमंत्रयेतां दाशार्हमाति
थ्येन सह द्विजः॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहतांजली ॥२५॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ॥ उभयोरावि
शद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥२६॥ श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान् ॥ आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्म
हामनाः॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ॥ नत्वा तदंघ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः॥२८॥सकुटुंबोऽ
वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् ॥ गंधमाल्यांबराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नत
र्पितान्॥पादावंकगतौ विष्णोः संस्पृशञ्छनकैर्मुदा॥३०॥राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ॥
अथ नस्त्वत्पदांभोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥

ऐसे भगवानको अपने घर लाय सुखासनपर सुखसे बैठाया और वह सुखसे योग्य आसनपर बैठे ॥ २७ ॥ इसी प्रकार मुनियोंको नमस्कार कर उनके चरणोंको धोय लोकोंको पवित्र करनेवाले चरणोंका जल॥ २८ ॥ कुटुम्बसहित राजा बहुलाश्वने अपने माथेपर चढाय ईश्वर और ईश्वरके समान ब्राह्मणोंका गंध, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ, बैल इन सामग्रियोंसे पूजन किया ॥ २९ ॥ भोजन कर तृप्त हुए उन ब्राह्मणों व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रसन्न करता गोदमें धरे श्रीकृष्णके चरण धीरे धीरे दाबता वह यह कहने लगा ॥ ॥ ३० ॥ राजा बहुलाश्वने कहा कि, हे समर्थ ! सब प्राणियोंके आत्मा साक्षी स्वयंप्रकाश तुम्हीं हो, इसलिये तुम्हारे चरणारविन्दका स्मरण

करनेवाले मुझे तुमने दर्शन दिया ॥ ३१ ॥ "मेरे एकान्तभक्तसे बढ़कर शेषजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माजी भी प्यारे नहीं हैं" यह जो तुमने कहा सो अपना वचन सत्य करनेके लिये आपने हमको दर्शन दिया ॥ ३२ ॥ भक्त तुम्हें प्रिय हैं इस प्रकार जानकर कौन पुरुष तुम्हारे चरणारविंदको त्यागन करेगा ? निष्किंचन अर्थात् जिनके पास कुछ नहीं है, शान्त शील स्वभाव मुनियोंको तुम अपना पद दे चुके हो ॥ ३३ ॥ ऐसे तुम यदुवंशमें अवतार लेकर संसारी जीवोंके संसार छुडानेके लिये त्रिलोकीका दुःख दूर करनेवाले यशका विस्तार करते हो॥३४॥ऐसे अकुंठबुद्धि शान्त तप करनेवाले नारायण ऋषि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे व्यापक ! सब ब्राह्मणों

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान्॥ यदात्थैकांतभक्तान्मे नानंतः श्रीरजः प्रियः ॥३२॥को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवं
विद्विसृजेत्पुमान्॥ निष्किंचनानां शांतानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥ योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ॥
यशो वितेने तच्छांत्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ नारायणाय
ऋषये सुशांतं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान्नो निवस द्विजैः ॥ समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः
कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ॥ उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥श्रुत
देवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहाञ्जनको यथा ॥ नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥३८॥ तृणपीठबृसीष्वेतानानीते
षूपवेश्य सः ॥ स्वागतेनाभिनंद्यांघ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥

सहित कुछ काल हमारे घरमें वास कर अपने चरणकमलकी रजसे इस निमि राजाके कुलको पवित्र करो ॥ ३६ ॥ राजा बहुलाश्वने जब इस प्रकार बहुत प्रार्थना की तब लोकोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथिलापुरीके पुरुष स्त्रियोंका कल्याण करनेके लिये कुछेक दिनतक वास किया ॥ ३७ ॥ जैसे जनकवंशोत्पन्न बहुलाश्व राजाको प्राप्त हुए, इसी प्रकार श्रुतदेव ब्राह्मण भी आया देख श्रीकृष्णचन्द्र तथा मुनियोंको नमस्कार कर अत्यन्त हर्षित हो नाचने लगा ॥ ३८ ॥ तृण पत्र लाकर बिछाय और कुशाके आसनपर ब्राह्मणों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको बैठाय " भले आये" इस प्रकार बड़ाई कर स्त्रीसहित श्रुतदेव ब्राह्मण इनके चरण धोने लगा ॥ ३९ ॥

और अति प्रसन्नतासे पूर्णमनोरथ हो बड़भागी श्रुतदेव ब्राह्मणने चरणारविन्दके धोवन जलसे आत्मासहित संपूर्ण कुलको पवित्र किया ॥ ४० ॥ आमले आदि फलोंसे और मंगलरूप अमृतके समान मधुर जलसे तथा सुगन्धयुक्त मृत्तिका, तुलसी, कुश और अनायासलब्ध पूजाकी सामग्रीसे सत्त्वगुणको बढानेवाले शुद्ध अन्नसे श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करके आराधना करने लगा ॥ ४१ ॥ जिनकी चरणरेणु सर्वतीर्थरूप ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र उनके रहनेके स्थान ब्राह्मणोंका संग घररूप अँधेरे कुएमें पडे मुझे किस कारणसे प्राप्त हुआ इस प्रकार ब्राह्मण तर्क करने लगा ॥ ४२ ॥ आतिथ्य कर भली भांति विराजमान ब्राह्मणोंके निकट स्त्री कुटुम्ब और पुत्र सहित उपस्थित हो श्रीकृष्ण

तदंभसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् ॥ स्नापयांचक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥४०॥ फलार्हणोशीरशिवामृतां
भसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशांबुजैः ॥ आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनांधसा ॥ ४१ ॥ स तर्कया
मास कुतो ममान्वभूद् गृहांधकूपे पतितस्य संगमः ॥ यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥
॥४२॥ सूपविष्टान्कृतातिथ्याञ्श्रुतदेव उपस्थितः ॥ सभार्यस्वजनापत्य उवाचांघ्र्यभिमर्शनः ॥४३॥श्रुतदेव उवाच॥
नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ॥ यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो
मनसैवात्ममायया ॥ सृष्ट्वा लोकं परं स्वात्ममनुविश्यावभासते ॥४५॥ शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवंदताम् ॥
नृणां संवदतामंतर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥

चंद्रके चरणोंका स्पर्श करता श्रुतदेव यह वचन कहने लगा ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव बोला कि, जिस समय शक्तिसे इस विश्वको रचकर अपनी सत्तासे इसमें प्रविष्ट हुए, उसी समय तुम परमपुरुष हमको प्राप्त हुए, परंतु इस सांवरे स्वरूपका दर्शन अभी प्राप्त हुआ है ॥ ४४॥ जिस प्रकार सोते हुए पुरुषने अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनसेही दूसरे शरीरको रचकर उसमें मानो प्रवेश किया हो,उसी प्रकार तुमने भी इस संसारको निर्माण कर मानो इसमें घुसे हो,मुझको ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ तुम्हारी कथाओंको श्रवण करैं, तुम्हारे नामका कीर्त्तन करैं, दास तुम्हारी पूजा करैं, तुमको प्रणाम करैं; उन शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंको भी आप हृदयमें ही दर्शन देते हो, परन्तु मुझे तो आपने प्रत्यक्ष ही

दर्शन दिया इस कारण मुझे जान पड़ता है कि मैं सबसे बढ़कर आज दिन भाग्यशाली पुरुष हूँ॥४६॥ कर्मोंसे चलायमानचित्त पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित हो, परन्तु अति दूर हो और तुम्हारी कथाको सुनने और तुम्हारे नाम लेनेसे जिनके निर्मल अंतःकरण हो गये हैं, उन पुरुषोंके तुम सदा समीप रहते हो ॥ ४७ ॥ देह और गेहमें अभिमानरहित पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले और देह गेहमें अभिमानी पुरुषोंको आप संसार देते हो. कार्य महदादिक और कारण माया इन दोनों उपाधियोंको सेवन करते हो. अपनी मायासे आप ढके नहीं हो और जीवोंका ज्ञान मायासे आच्छादित करनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ, हम भक्तोंको आज्ञा दो तुम्हारा क्या पूजन करैं ? जबतक तुम नेत्रोंके सन्मुख नहीं आते

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ॥ आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यंत्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिंगमीयुषे स्वमाययाऽसंवृतरुद्धदृष्टये॥४८॥ स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे ॥ एतदंतो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥४९॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् ॥ संचरंति मया लोकान्पुनंतः पादरेणुभिः ॥ ॥ ५१ ॥ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ॥ शनैः पुनंति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥

तबतक ही मनुष्यको क्लेश रहता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार श्रुतदेव ब्राह्मणका कहा वचन सुन शरणागतोंका दुःख करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड हँसकर यह वचन बोले ॥ ५० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्राह्मण ! यह मुनिलोग तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ आये हैं यह तुम निश्चय जानो, क्योंकि यह पुरुष अपने चरणारविंदकी रजसे मनुष्योंको पवित्र करते मेरे साथ भ्रमण किया करते हैं॥५१॥ देवता, क्षेत्र, तीर्थ ये दर्शन, स्पर्शन, अर्चन करनेसे बहुत कालमें धीरे धीरे पवित्र करते हैं, सो भी महात्माओंकी इच्छा होय तो और ब्राह्मण तो शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं ॥ ५२ ॥

इस संसारमें समस्त प्रणियोंकी अपेक्षा ब्राह्मण जन्मसे श्रेष्ठ है और जो तप करके श्रेष्ठ हो तो इसमें कहना ही क्या है ? ॥ ५३ ॥ यह मेरा चतुर्भुज रूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे विशेष प्यारा नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और देवतारूप मैं हूँ और देवताओंकी सिद्धि वेदके अधीन होनेसे ब्राह्मण मुझे इस रूपसे भी अधिक प्रिय हैं॥५४॥दुष्टबुद्धि जन ऐसा न जानकर दोषको देखते हैं, उत्तम बुद्धिवाले मेरा गुरु,ब्राह्मण और आत्माका पूजन करते हैं ॥ ५५ ॥ स्थावर जंगमरूप यह विश्व और विश्वके कारण महदादिक पदार्थ सब ईश्वररूप ही हैं, इस प्रकारसे

ब्राह्मणो जन्मन श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ तपसा विद्यया तुष्टचा किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥ न ब्राह्मणान्मे
दयितं रूपमेतचतुर्भुजम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानंत्यसूयवः ॥
गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टय ॥ ५५ ॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ॥ मद्रूपाणीति
चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय ॥ एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा
नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् ॥ आराध्यै
कात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥ ५८ ॥

ब्राह्मण सब ओर अपनी दृष्टिसे देखते हैं ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मण श्रुतदेव ! जैसी श्रद्धा मुझमें है, इसी प्रकार श्रद्धासहित ब्रह्मर्षियोंका पूजन करो, मुझमें इनमें एकसा भाव करोगे तो मेरी साक्षात् पूजा हो जायगी और जो भेदभावसे बहुतसी संपत्तियोंसे भी मेरी पूजा करोगे तो भी प्रसन्न न हूँगा ॥ ५७ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाय श्रुतदेव ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रसहित सब ब्राह्मणोंका एकभावसे आराधन कर सुन्दरगतिको प्राप्त हुआ और मिथिलापुरीके राजाने भी सुन्दर गति पाई ॥ ५८ ॥

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ॥ उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥ कथं चरंति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धींद्रियमनःप्राणाञ्जनानामसृजत्प्रभुः ॥ मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥ २ ॥

हे राजन् । इस प्रकार भक्तोंपर प्रीति करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने भक्त बहुलाश्व और श्रुतदेवके यहां वास कर सन्मार्ग अर्थात् उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड इन तीनोंका उपदेश कर फिर द्वारकापुरीमें आकर सुशोभित हुए ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ दोहा--सत्तासी अध्यायमें, नारद हरि सुखधाम । परब्रह्म निश्चय कियो, वेदस्तुति परिणाम ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् । पहले अध्यायके अन्तमें भगवान् वेदका अर्थ ब्रह्मपर है इस प्रकार उपदेश करके द्वारकाको चले गये, परन्तु शब्दरूप वेदोंका ब्रह्मपरत्व नहीं बनता, क्योंकि मुख्या, लक्षणा, और गौणी, इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे शब्दकी प्रवृत्ति होती है, मुख्यावृत्ति, भी दो प्रकारकी है, रूढि, और योग, जो वस्तु स्वरूप, जाति अथवा क्रियासे वा गुण निर्देश की जाय उसमें रूढिकी प्रवृत्ति होती है, जिसका स्वरूप जाति, क्रिया, गुणसे निर्दिष्ट न हो उसमें यह सम्भव नहीं हो सकता, सो ब्रह्म तो जाति, गुण, क्रिया अथवा स्वरूपसे निर्दिष्ट नहीं होता इससे ब्रह्ममें रूढिकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती, और कार्य कारणसे परे तथा असंग होनेसे योगवृत्तिका भी संभव नहीं हो सकता और लक्षणामें सम्बन्धकी आवश्यकता है, ब्रह्म सब सम्बन्धसे रहित है इस लक्षणावृत्तिका भी संभव नहीं हो सकता और जो श्रुति गुणका निरूपण करे तो ब्रह्म स्वयं निर्गुण है, इससे गौणीवृत्तिसे ब्रह्मका निरूपण नहीं हो सकता, फिर ब्रह्मको श्रुति किस प्रकारसे प्रतिपादन करती है । ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्का यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् । नित्यमुक्त सर्व शक्तिमान् ईश्वरने प्रलयकालमें अपनेमें लीन हुए प्राणियोंके विषयभोगरूप अर्थ, जन्मसे कर्म पर्यन्त रूप धर्म परलोकमें उनके सुखभोगरूप काम और कल्पनानिवृत्तिरूप मोक्ष, पुषार्थ देनेके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण इनकी रचना की है, यदि यह न हों तो अर्थ धर्म कामकी

प्राप्ति नहीं हो सकती और जो स्वरूपका विचार न हो तो मोक्ष भी नहीं मिल सकता है “यः सर्वज्ञः सशक्तिमान्” इस लक्षणका निरूपण करनेवाली श्रुति सगुणब्रह्मका निरूपण करती है और जीवोंकी संसारनिवृत्तिके लिये (तत्त्वमसि) वह तू है, यह वाक्य ईश्वरकी ईश्वरता प्रतिपादन करता है, इससे नित्यमुक्त ईश्वरका वाचक ‘तत्’शब्द और संसारी जीवका वाचक त्वंपदका सामानाधिकरण्य प्रतीत होता है सो यह जहदजहत्स्वार्था लक्षणासे अथवा भागत्याग लक्षणासे बन सकता है तत्पद तो सर्वज्ञादि गुणवाले ईश्वरका और त्वंपद अल्पज्ञादि गुणवाले पदार्थका वाचक है, इन परस्पर विरुद्धगुणवाले शब्दोंमेंसे परस्पर विरुद्धरूप अंशका त्याग करनेसे दोनोंमें प्राप्त चेतन्यरूपका समान अंश ग्रहण करके तत्, त्वम् यह दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके प्रतिपादक होकर एकताका निरूपण कर शुद्ध ब्रह्मको कथन करते हैं और ‘स्थूल मनण्वह्रस्वम्’ इत्यादि निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुति तत्पदार्थके शोधन करनेमें चरितार्थ हो उपाधिके निषेधसे साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें पर्यवसान होती है,उत्पत्ति पालन और प्रलयकी प्रतिपादक श्रुति भी आवागमनरूप सृष्टिका; निरूपण कर इसीसे वैराग्यरूप ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती ज्ञानके परम्परा सम्बन्धसे ब्रह्मको ही प्रतिपादन करती; है. उपासनाकी निरूपण करनेवाली श्रुति उपासनाद्वारा अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञानसाधनका उपदेश देती ज्ञानद्वारा ब्रह्मका ही प्रतिपादन करती है इस कारण सर्वथा श्रुति ब्रह्मको ही प्रतिपादन करती है;यह अभिप्राय है॥२॥यह जो ब्रह्मपर उपनिषद् है,सो प्रथम हुए सनकादिकोंने पहले धारण करे है, जो पुरुष निष्किंचन होकर श्रद्धा पूर्वक इन्हे धारण करेंगे, सो मोक्षको प्राप्त होंगे॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम ! यहां तुम्हें नारायण संबंधी गाथा हम सुनाते हैं, जिसमें नारदजी और ऋषि नारायणजीका संवाद है ॥ ४ ॥ एक समय भगवान्के प्यारे नारदजी समस्त लोकोंमें फिरते २ सनातन ऋषिको देखनेके लिये नारायणके आश्रम बदरिकाश्रममें आये ॥ ५ ॥ जो नारायण भरतखण्डमें लोकोंके कारण क्षेम और मंगलके लिये धर्मज्ञानसे युक्त कल्पपर्यन्त तप

सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ॥ श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥
अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ॥ नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ॥ सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥
यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ॥ धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥

करते हैं ❀ ॥ ६ ॥वहां कलाप ग्रामके वासी ऋषियों सहित विराजमान नारायणजीसे नम्र होकर पूछने लगे ॥ ७ ॥ इस समय जनलोक निवासी सनकादिकोंमें जो ब्रह्मविचार हुआ था सोई भगवान्‌'नव ऋषियोंके' श्रवण करते नारदजीसे कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नारदजी ! पहले जनलोकमें ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिक मुनियोंका ब्रह्मसूत्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका विचार हुआ था ॥ ९ ॥ परन्तु हे नारद!इस समय श्वेतद्वीपके ईश्वर अनिरुद्धमूर्तिके देखनेके लिये श्वेतद्वीपमें तुम गये थे, तब ब्रह्मवाद हुआ था

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ॥ परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥ तस्मै ह्यवोचद्भगवान्नृषीणां
शृण्वतामिदम् ॥ यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोके
ऽभवत्पुरा ॥ तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥९ ॥ श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ॥ ब्रह्मवादः
सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते॥ तत्र हाऽयमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनु पृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीया
रिमध्यमाः ॥ अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥ ११ ॥ सनंदन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह
शक्तिभिः ॥ तदंते बोधयांचक्रुस्तल्लिंगैः श्रुतयः परम् ॥ १२ ॥

इस ब्रह्मवादमें श्रुति भगवान्‌का प्रतिपादन करती है, वहां यही प्रश्न हुआ जो तुमने मुझसे पूछा है ॥ १० ॥ यद्यपि श्रवण, तप, शील, शास्त्राभ्यास, मित्र, शत्रु, मध्यम इन सबमें सनकादिक समान ही हैं परन्तु तो भी एकको वक्ता बनाकर संपूर्ण श्रोता हो गयें ॥ ११ ॥ सनन्दनजी बोले कि, अपने निर्माण किये इस संसारका नाश कर अपनी शक्ति सहित सोये भगवान्‌को प्रलयके अन्त समयमें ब्रह्मके

---

* शंका-वदरिकाश्रममें नारायणनाम मुनि मनुष्योंके कल्याणके लिये बहुत युग कल्प कल्पांतसे तप करते हैं सो उस तप करनेसे मनुष्योंका क्या कल्याण होता है?
उत्तर-सब जीवोंको इन्द्रियोंको विषयसुख अलग २ सब लोकमें हैं, परन्तु नारायणनाम मुनि भरतखण्डमें तप करते हैं इसलिये मनुष्योंको ज्ञानका सुख तथा मोक्षरूप कल्याण ज्ञानसे होना सिवाय भरतखण्डके दूसरे द्वीप तथा और लोकमें नहीं है. श्रोताओ ! ज्ञानसे अधिक दूसरा कल्याण मनुष्योंको कोई भी नहीं है इसलिये मनुष्योंके कल्याण होनेके कारण नारायण मुनि तप करते हैं. ऐसा लिखा है ।

प्रतिपादक वचनोंसे श्रुतियें जगाने लगीं॥ १२ ॥ जैसे रात्रिके सोये चक्रवर्ती राजाको प्रातःकाल राजोपजीवी बन्दीजन उठ उसके पराक्रमके सुन्दर यशको वर्णन करके जगाते हैं ॥ १३ ॥ श्रुतिय बोलीं कि, हे सर्वविजयी ईश्वर ! तुम्हारी जय हो, आप अपने वैभवको प्रगट करो और इस घोरनिद्राको त्यागकर हमारा प्रतिपालन करो, जिस प्रकार स्त्री दूसरे पुरुषको छलनेके लिये अनेक प्रकारके रूप और गुण धारण करती है उसी प्रकार आनन्दादिकका आवरण करनेके लिये गुण ग्रहण करनेवाली स्थावर और जंगम शरीराश्रित जीवोंकी अविद्याका नाश करो, क्योंकि, अनादिकालसे यह अविद्या संसारके जीवोंको मोहित करके अनेक प्रकारके दुःख दिखाती है इसी कारण प्राणियोंको अनेक योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है, यह सब अविद्याका ही प्रभाव है,क्योंकि यह अविद्या महाबलवान् है, मनुष्योंकी तो क्या सामर्थ्य है, देवताओंके मनको भी मोहनेवाली है, वह भी इसके दूर करनेंका सामर्थ्य नहीं रखते, आप ही इसको दूर

यथा शयानं सम्राजं बंदिनस्तत्पराक्रमैः ॥ प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयंत्यनुजीविनः॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥१४॥ वृहदुपलब्धमेतदवयत्यवंशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाऽविकृतात्॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथा भवंति भुवि दत्तपदानि नृणाम्॥ १५॥

कर सकते हो, क्योंकि आप सर्वांतर्यामी और मायासे रहित हो और इस महागम्भीर संसार सागरसे पार उतार मोक्षके देनेवाले आप ही हो,इसी लिये वारंवार आपसे यह निवेदन है कि, आप इन जीवोंपर अनुग्रह करके इस महाप्रबल अविद्याका नाश करो,क्योंकि माया आपके वश होनेसे सब ऐश्वर्य आपको स्वरूपसे ही प्राप्त हैं इसी कारण अविद्या आपमें किसी प्रकारका दोष नहीं लगा सकती और आप सनातन धर्मके पालने और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये जगत्में अनेक अवतार धारण करते हो. सर्व प्राणियोंके बोध करनेवाले परमेश्वर ! सृष्टिके आदि समयमें माया करके क्रीड़ा करते हो और आनन्द स्वरूप आत्मा करके वर्तमान आपका वेद प्रतिपादन करै है और आप ही सम्पूर्ण शक्तियोंके जगानेवाले हो, आप अखण्ड विभव और ज्ञानशक्तिसे जीवोंका अज्ञान दूर करों हो,इस विषयमें हम (श्रुति) ही प्रमाण हैं ॥ १४ ॥ (१) यदि कहो कि, मन्त्रोंमें अग्नि आदि देवताओंका प्रतिपादन देखनेमें आता है वे भी सब तुम्हारे ही रूपके हैं, ऐसा ज्ञानी

1870

जानते हैं,क्योंकि यह जो कुछ दृश्यमान है, इसके न होनेपर आप ही अवशेष रहते हो,इस सब जगत्की उत्पत्ति नाश आपमें ही होते हैं, जैसे घटादिकोंका उदय, अस्त मृत्तिकामें होता है, मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके मन और वचनका तात्पर्य तुम्हारे विषय हैं, अन्यमें नहीं, जैसे मनुष्य अपने चरण मृत्तिका, पाषाण, ईंट इनके ऊपर धरता है,परन्तु भूमिसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार जो कुछ विचार है सो सब तुम्हींसे हुआ है सर्वकारण परमार्थरूप तुम हो इस प्रकार हम (वेद) प्रतिपादन करते हैं ॥ १५ ॥ (२) हे त्रिगुण मायामृगीके नचानेवाले ! विवेकी पुरुष तुम्हारे अखिल लोकोंमें मल नाश करनेवाले कथारूपी अमृतके समुद्रको सेवन करके पाप और दुःखोंको त्याग देते हैं. जब तुम्हारी कथामात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता है तब स्वरूपका स्मरण कर अन्तःकरणके गुण रागादिक और कालके गुण जरादिक जिनके निवृत्त हो गये इसमें फिर क्या ? और हे प्रभो ! तुम्हारे परम अखण्ड आनन्द अनुभव स्वरूपका भजन करके दुःखोंको त्यागे तो इसमें कहना ही क्या है,

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः॥किमुत पुनः स्वधामविधुताशयका
लगुणाः परम भजंति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥१६॥दृतय इव श्वसंत्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽण्डम
सृजन्यदनुग्रहतः॥ पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम्॥ १७ ॥

॥ १६ ॥ (३) जो पुरुष तुम्हारा भजन नहीं करते उनकी निन्दा है और जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करते हैं, उनका जन्म सफल है, इस प्रकार स्तुति करते हैं, अथवा जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करके श्वासोंको पूर्ण करते हैं, वही सफलजन्मा हैं और जो विना भजन किये श्वास लेते हैं, वह लुहारकी धौंकनीके समान वृथा श्वास हैं,तुम्हारे भजनके विना कृतघ्नियोंको फलकी सिद्धि नहीं होती, फिर जिसके अनुग्रहसे महत्तत्त्व अहंकारादिक तत्त्व इस प्रकार देहको रचते हैं,उस देहमें अन्नमय,प्राणमय,मनोमय,विज्ञानमय,और आनन्दमय,कोश जो देह, प्राण, मन,बुद्धि,और ज्ञान,कहलाते हैं उनमें प्रवेश करके उन्हीं उन आकारोंसे चेतन करनेवाले तुम्हीं हो इस प्रकार वेदने अंतमें वर्णन किया है. अन्नमयादिकोंके आकारवाला पुरुष अन्नमयादिकोंमें मिल रहा है, यद्यपि यह बात सत्य है,परन्तु तो भी तुम्हारा असंगत्व नहीं मिटता तो अन्नमयादिकोंके अन्तमें ही इसलिये पुच्छसे वर्णन करते हैं. स्थूल सूक्ष्मसे परे हो और इनमें अविशेषरूप हो, इस कारण सत्य हो, शाखा

चन्द्रके तुल्य शुद्धरूप दिखानेके लिये अन्नमयादिकोंमें सम्बन्ध कहा है,जैसे शुद्ध चन्द्रमाके दिखानेको वृक्षकी शाखाका अवलम्बन करते हैं उसी प्रकार ब्रह्मके दिखानेको कोशादिका अवलम्बन है ॥ १७ ॥ (४) हे अनन्त ! जो मनुष्य ऋषिवर्त्म अर्थात् वेदोक्त कर्ममार्गमें स्थित होकर वेदके उदररूपी कर्मकी उपासना करते हैं अर्थात् अग्निहोत्र याग करते हैं, भगवद्दर्शनमें रुचि नहीं करते वह कूर्पदृश हैं अर्थात् उनके नेत्रोंमें धूरि पडी हुई है,इसलिये सूक्ष्म वस्तुका दर्शन नहीं कर सकते "यज्ञो वै विष्णुः" इस श्रुतिके अनुसार वह भी भगवदुपासक ही हैं और योगीजन नाडियों द्वारा हृदयमें भगवदुपासना करते हैं,इसलिये वे आरुणी अर्थात् अरुणोदयमें थोडा प्रकाश हो जाता है,इसी प्रकार इनकी उपासना है और आपकी प्राप्तिका स्थान सुषुम्ना नाडी जो मूलाधारसे हृदयमें हो ब्रह्मरंध्रतक गई है; जिसको पाकर फिर प्राणी संसारमें नहीं आते उसीका नाम मुक्ति है ॥ १८ ॥ (५) तुम सबके उपादान कारण हो इसलिये प्रथम ही सबमें वर्तमान हो, यद्यपि तुम्हारे निर्मित किये ऊंच,नीच,मध्यम देहोंमें तुम्हारा प्रवेश होना संभव नहीं,तो भी जैसे उनमें प्रवेश किये हो,इसी प्रकारसे देहादिकोंका अनुसरण करते न्यूनाधिक प्रतीत होते हो,जैसे अग्नि तारतम्यरहित है परन्तु काष्ठमें व्याप्त होनेसे उसीके समान प्रतीत होती है, इसी प्रकार आपको सब उपाधिसे रहित,समान, एकरस जानकर दोनों लोकके कर्मफल रहित उज्ज्वल बुद्धिवाले मनुष्य असत्य देहादिमें आपको ही सत्य मानकर आपकी ही उपासना करते हैं ॥ १९ ॥ (६) अपने कर्मोंसे प्राप्त हुए नरकादिक देहमें यह जीव भोक्तृत्वसे वर्तमान है और भीतर बाहर आवरणरहित सपूर्ण शक्तियोंके धारण करनेवाले तुम्हारा अंश ही है.इस प्रकार पंडित,जीवकी गतिको विचार वेदोंके उत्पत्तिस्थान और संसारसे छुडानेवाले

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥ तत उदगादनंत तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतंति कृतांतमुखे ॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्त्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयंत्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ १९ ॥ स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरंतरसंवरणं तव पुरुषं वदंत्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ॥ इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेंऽघ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥

तुम्हारे चरणोंकी उपासना करते हैं. इसीकार विश्वासपूर्वक अर्चन वन्दन करना यही मर्त्यलोकम उचित है॥ २० ॥ (७) हे ईश्वर! दुर्बोध आत्मतत्त्वके जाननेके लिये अवतार धारण करनेवाले तुम्हारे चरित्ररूपी अमृतसमुद्रमें अवगाहन कर श्रमरहित हो कोई एक तुम्हारे भक्त मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते और तुम्हारे चरणकमलमें अवगाहन कर हंसके समान रमण करते हैं; ऐसे भक्तोंके संगके लिये घर भी उन्होंने त्याग दिये हैं, जब गृहादिका त्याग कर दिया तो परलोकके सुखकी क्या कथा है? इसलिये आपकी भक्ति मुक्तिसे भी अधिक है ॥ २१ ॥ (८) तुम्हारी सेवाका साधक यह शरीर यद्यपि आत्मा सुहृद् और प्रियके समान स्वाधीन है, तो भी सन्मुख स्थित हितकारी प्यारे आत्मारूप आपका साक्षात् भावसे भजन नहीं करते हैं और देहादिके लालन पालन करनेमें पडे रहते हैं, यह बडे कष्टकी बात है, मिथ्याभूत देहादिकोंके सेवनसे असत् उपासनामें वासनावाले नीच देहको धारण करनेवाले बडे भयरूप संसारमें भ्रमण करते हैं, इस लिये वह आत्मघाती हैं ॥ २२ ॥ (९) प्राण, मन, इंद्रिय जीतकर दृढ़ योगके करनेवाले मुनिलोग हृदयमें जिसकी उपासना करते हैं वह जिस तत्त्वको योगद्वारा प्राप्त हुए हैं, उसी प्रकार शत्रु भी तुम्हारे स्मरणसे तुमको प्राप्त हुए हैं तथा शेषके शरीरके तुल्य तुम्हारे भुजदण्डमें आसक्तबुद्धि भी तुमको प्राप्त हुई हैं. इसी कारण हम कहते हैं कि, आपकी कृपादृष्टि सबपर समान है और हम तुम्हें देश काल परिच्छेद रहित देखते हैं. तुम्हारा प्रताप ऐसा है कि, जो जिस भावसे आपका ध्यान करै, उन सबको तुम्हारे चरणकमलकी प्राप्ति होती है ॥२३॥ (१०) हे भगवन्! इस संसारमें पूर्वसिद्ध तुमको आधुनिक उत्पत्ति विनाशसे युक्त पुरुष कैसे जानेंगे? अर्थात् नहीं जानेंगे. तुमसे ब्रह्मा

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ॥ न परिलषंति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥२१॥ त्वदनुपथं कुलयामिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय
आत्मनि च ॥ न बत रमंत्यहो असदुपासनयाऽत्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥ निभृतमरु
न्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ॥ स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदंडविषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोंघ्रिसरोजसुधाः ॥२३॥ क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देव
गणा उभये ॥ तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

उत्पन्न हुआ है, ब्रह्माके पीछे आध्यात्मिक आधिदैविक देवताओंके गण उत्पन्न हुए, इसके पीछे सब चराचर उत्पन्न हुए, इसलिये इन सबका वृत्तांत आप भलीभांति जानते हो, क्योंकि आप तो सबसे पूर्व अनादि हैं, फिर आपको पीछे उत्पन्न होनेवाला और नाशवान् कौन मूर्ख कह सकता है ? जिस समय तुम सबका संहार करके शयन करते हो, उस समय जीवोंको ज्ञान साधन नहीं रहता, प्रलयके समय स्थूल आकाशादि नहीं तथा स्थूल सूक्ष्मसे आरब्ध शरीर भी नहीं और शरीरका कारणरूप कालका विषमभाव भी नहीं रहता उस समय इन्द्रिय प्राणादिक कुछ नहीं और सबका जाननेवाला पुरुष भी नहीं रहता, तात्पर्य यह है कि, पूर्व कालके पुरुष अपने पीछे हुओंके वृत्तान्तको जानते हैं परन्तु पीछे उत्पन्न हुए पूर्वजोंका चारित्र नहीं जान सकते, जिस प्रकार पिता तो पुत्रके वृत्तान्तको भले प्रकार जानता है, क्योंकि उसके सामने इसका जन्म और सब कार्य हुए, परन्तु पुत्र पिताका वृत्तान्त किसी रीतिसे नहीं जान सकता, क्योंकि जब उसका जन्म कर्म ही उसके आगे नहीं हुआ, फिर इसके भेदभावको वह कैसे जान सकता है ? इसी प्रकार आपके पीछे हुए सब प्राणी आपको नहीं जान सकते इससे आपका भजन ही करना उचित है ॥ २४ ॥

1022

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरंत्युपदिशंति त आरुपितैः ॥ त्रिगुणमयः पुमानितिभिदायदबो
धकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥ सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशंत्यशेषमि
दमात्मतयात्मविदः ॥ नहि विकृतिं त्यजंति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥

(११) मिथ्याभूत जगत्की उत्पत्ति है, अर्थात् यह पहले कुछ नहीं था इस प्रकार वैशेषिकादिक आचार्य कहते हैं। और जीवोंमें ब्रह्मत्व नहीं है, परन्तु योगसाधनसे हो जाता है, यह योगशास्त्रवाले कहते हैं। और इक्कीस प्रकारके दुःखोंका नाश मोक्ष है, इस प्रकार नैयायिक कहते हैं। और सांख्याचार्य आत्मामें भेदभाव मानते हैं। और कर्मफलके व्यवहारको मीमांसक सत्य कहते हैं, सो सम्पूर्ण आरोपित भ्रमसे ही उपदेश करते हैं, तत्त्वदृष्टिसे उपदेश नहीं करते। वास्तवमें वह पुरुष त्रिगुणमय हो तो इनका कहना सत्य है, सो नहीं, त्रिगुणमय पुरुष यह भेद तुम्हारे विषे अज्ञानसे किया है, तुम अज्ञानसे परे संगरहित ज्ञानघन हो, इसलिये तुममें अज्ञानका होना संभव नहीं ॥ २५ ॥ (१२) जो असत् नहीं उपजे और त्रिगुणमय पुरुष नहीं है तो इससे यह विदित हुआ, यह सब प्रपंच और पुरुष संपूर्णतः तुमसे भिन्न नहीं हैं, सो उनके स्वरूपसे सत्यकी प्रतीति कैसे संभव है ? मनोमात्र विलसित, त्रिगुणात्मक प्रपञ्च मिथ्या ही है

तो सत्य कैसे प्रतीत हो सकता है। इसके उत्तरमें कहते हैं तुम अधिष्ठान हो इस कारण तुम्हारी सत्तासे सत्यसा प्रतीत होता है, यह केवल निषेधसे प्रतीत हुआ है, अर्थात् अभिप्रायसे मनुष्यसे पुरुषकी भिन्न जो सत्त्वप्रतीति होती है, सो मनोमात्रका विलास है, आत्माके जाननेवाले इस भोक्ता और भोग्यरूप जगत्को स्थिर हुए आत्माकी सत्तासे ही सत्तावाला कहते हैं, आत्मासे भिन्न सत्तावाला नहीं मानते. आत्माका कार्य है इसलिये भिन्न नहीं है, जैसे स्वर्णके विकार कुण्डलादिक आभूषणोंको स्वर्णके लेनेवाले त्याग नहीं करते किन्तु स्वर्ण ही जानकर ग्रहण करते हैं इसी कारण अपने किये विश्वमें प्रविष्ट पुरुषरूप जीव भी आत्मा ही है, यह निश्चय है ॥२६॥ (१३) परमात्माको सर्वत्र जान लेना और भक्ति न करना यह बात नहीं किन्तु उसकी सदा भक्ति करनी, क्योंकि जो आपको सम्पूर्ण पदार्थोंमें स्थित जानकर तुम्हारी सेवा करते हैं वे संसारको तिरस्कार कर मृत्युके मस्तकपर चरण धर मुक्त हो जाते हैं और जो तुमसे विमुख हैं और तुम्हारे अभक्त हैं, उन्हें

-तव परि ये चरंत्यखिलसत्त्वनिकेततया त उतपदाऽऽक्रमंत्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः॥परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधा
नपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनंति न ये विमुखाः ॥२७॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहं
ति समदंत्यजयाऽनिमिषाः॥वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः॥२८॥
स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥ नहि परमस्य कश्चिदपरो न
परश्च भवेद्वियत इवाऽपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥

पशुओंके समान वाणीसे तुम बांधते हो और जिनने आपसे प्रेम किया है वह निश्चय अपनेको और दूसरोंको पवित्र कर सकते हैं॥२७॥ (१४) हे प्रभो ! तुम इन्द्रियोंके सम्बन्धसे रहित हो और समस्त प्राणियोंकी इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्रवृत्त करते हो, अपने स्वरूपसे ही प्रकाशमान हो, स्वतःसिद्ध ज्ञानशक्ति होनेसे तुमको इन्द्रियोंकी अपेक्षा नहीं है, इसी कारण विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक और इन्द्रादिक देवता सम्पूर्ण माया सहित तुम्हारी पूजा करते हैं और मनुष्योंका दिया हव्य कव्यादिक बलि भक्षण करते हैं, जैसे सम्पूर्ण पृथ्वीके ईश्वर चक्रवर्ती राजाको खण्ड मंडलोंके राजा भेंट देते हैं और आप अपनी प्रजासे भेंट लेते हैं उसी प्रकार ब्राह्मणादिक तुमको भेंट देते हैं और जिन्हें आपने अधिकार दे रक्खा है, उसी अधिकारको तुम्हारे भयसे पूर्ण करते हैं ॥ २८ ॥ (१५) हे नित्यमुक्त ! जिस समय मायासे तुम्हारा विहार होता है,

इसी समय आपकी दृष्टिसे प्रगट हुए कर्म अथवा कर्मयुक्त लिंगशरीरसे स्थावर, जंगम जातिके जीव उत्पन्न होते हैं यदिउत्तम, मध्यम, अधम सृष्टि होनेमें उन जीवोंके पूर्व कर्म निमित्त न मानै तो मन वाणीसे परे शून्यभावसे बराबरीके करनेवाले आकाशके सदृश संपूर्णमें सब भाव और परमदयालु आपमें विषमताका लेश भी नहीं है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टिमें कोई अपना पराया नहीं है इसलिये आपका भजन ही मुख्य है ॥ २९ ॥ (१६) जो जीव अनंत और रूपसे नित्य हैं और सर्वव्यापी हैं तो यह पक्ष हमारा नहीं क्योंकि यदि जीव वास्तवमें अनंत नित्य और इसी रूपसे व्यापक हो तो वे व्यापकतादि गुणोंसे आपके समान हो गये, जब समान हुए तो आप उनके नियन्ता नहीं हो सकते, जो यह न मानें तो आपसे उनका नियम संभव न हो क्योंकि जो वस्तु उपाधिसे जिस पदार्थका विकाररूप है, वह पदाथ उस वस्तुका निश्चय नियन्ता होगा, क्योंकि इसमें अनुस्यूत रहा, वह पदार्थ कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करता, तुम्हारे स्वरूपसे

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुवं नेतरथा॥ अजनि च यन्मयं तदविमुच्य
नियंतृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ १७ ॥ ३० ॥ न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरुभययुजा भवंत्यसु
भृतो जलबुद्बुदवत्॥ त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥

“यत्,तत्” शब्दके अतिरिक्त कुछ भी कहा जाय ऐसेनहीं हैं,क्योंकि हम ब्रह्मको जानते हैं इस प्रकार जो कहते हैं वह ब्रह्मस्वरूपको कुछ भी न नहीं जानते,क्योंकि ब्रह्म किसीका विषय नहीं और जो जाननेमें आता है वह अनात्म पदार्थ है ॥ ३० ॥ (१७) प्रकृति और पुरुषका जन्म संभव नहीं, क्योंकि प्रकृति पुरुष अजन्मा हैं इसलिये प्रकृति पुरुषके सम्बन्धसे जीव जन्म लेता है, जैसे जलमें बबूला केवल जलसे और पवनसे भी नहीं उत्पन्न होता किन्तु दोनोंसे उत्पन्न होता है, तुम कारणरूप ईश्वर हो, तुम्हारे विषे अनेक नाम रूप गुण सहित जीव लीन होते हैं, जैसे शहदमें संपूर्ण वनस्पतियोंके रस लीन होते हैं जैसे मधुमें संपूर्ण फलोंके रस विशेषतासे दृष्टि नहीं आते परन्तु सामान्य रूपसे दीख सकते हैं, वैसे ही निद्रामें और प्रलयकालमें आपमें लय हुए जीव विशेषरूपसे नहीं रहते और मोक्ष तो आपके निरुपाधिक रूपमें लीन होते हैं, जैसे समुद्रमें संपूर्ण नदी लीन होती हैं, ऐसे वह मुक्तिदशामें आपमें लीन हो जाते हैं ॥ ३१ (१८)

जीवोंके विषे तुम्हारी मायासे बारंबार जन्म मरण रूप यह भ्रमण जानकर सुबुद्धि पुरुष संसारसे निवृत्त करनेवाले तुम्हारे विषे भावना करते हैं और जो तुम्हारी शरण होकर भजन करते हैं, उनको संसारका भय नहीं होता, क्योंकि शीत, उष्ण, वर्षावाला संवत्सररूपी काल तुम्हारा भ्रूभंगरूप है और जो तुम्हारे शरण नहीं हैं उनके रक्षक नहीं, किन्तु भयकारक हो इसलिये बुद्धिमान् पुरुष तुममें भाव करते हैं ॥ ३२॥ (१९) हे अजित ! मनके निग्रह करनेसे ऐसा सेवन बन सकता है, परमदेव गुरुके चरणकी शरण लिए विना जो इन्द्रिय प्राणोंको जीतकर अतिचंचल दुर्जय मनरूपी घोड़ेके जीतनेका यत्न करते हैं वह उपायसे खेद पाते हैं और विघ्नोंसे व्याकुल होते हैं, क्योंकि मनका जीतना गुरुकी कृपासे ही होता है, जैसे जो व्यापारी मल्लाहको नहीं रखते, वह समुद्रमें पडे दुःख पाते हैं ॥ ३३ ॥ (२०) जो प्राणी आपका आश्रय लेते हैं उनको सर्व सुखके स्थान आत्मरूप आपके होते सुजन, पुत्र, देह, घर, पृथ्वी, प्राण, रथ इत्यादि वस्तुसे क्या प्रयोजन है ? जो पुरुष आत्माका सेवन करता है, उसका इन तुच्छ पदार्थोंसे क्या प्रयोजन ? सत्य परमार्थ सुखको न जान स्त्री पुरुष मिलकर रतिके लिये विचरते हैं, उनको इस संसारमें तुम्हारे सिवाय कौन सुख है ? अर्थात् कोई नहीं. यह संसार मिथ्याभूत और साररहित है इसलिये तुम्हारा ही भजन करना उचित है ॥३४॥ (२१) अहंकारको त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दको हृदयमें धारण करना, तुम्हारे भक्त

नृषु तव मायया भ्रमममीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्॥ कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥ १९ ॥ ३२ ॥ विजितहृषीकवायुभिरदांतमनस्तुरगं य इह यतंति यंतुमतिलोल मुपायखिदः ॥ व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाऽज संत्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥ २० ॥ ३३ ॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥ इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥ भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदांबुजहृदोऽघभिदंघ्रिजलाः ॥ दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान्॥ ३५ ॥

ऋषि मुनि कि, जिनके चरणोंका जल स्वतः पापनाशक है, परन्तु तो भी इस पृथ्वीमें आपका भजनरूप महापुण्य करनेवाले महात्मा जनोंके आश्रमोंका और अतिपावन तीर्थ क्षेत्रोंका सेवन करते हैं और पुरुषोंके ज्ञान वैराग्यके नाश करनेवाले गृहादिकोंका सेवन नहीं करते, जिन्हें गुरुकी कृपासे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति और संसारकी मिथ्या प्रतीति हो गई है वह महात्माओंकी संगति करते हैं, क्योंकि जिसे एक बार भी आत्माके सुखका अनुभव हुआ है, वह कदाचित् गृहमें आसक्त नहीं होता, तब उत्तम पुरुष किस प्रकारसे घरमें आसक्त हो सकते हैं ॥ ॥३५॥ (२२)यह जगत् सत्यसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये सत्य है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्न हुए कुण्डलादि सुवर्ण ही हैं, इस प्रकार मानोगे तो व्यभिचार प्राप्त होगा, जैसे पितासे पुत्र होता है, सो प्रथम क्यों मरजाता है तथा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घटादिक क्यों फूट जाते हैं ? इससे यह जगत् मिथ्या है तो कहते हैं कि, उत्पन्न नाम उपादान कारण नहीं, निमित्त कारण है, इससे कुछ दोष नहीं इसमें दोष देकर समाधान करते हैं कि, जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह वस्तु उस उपादानसे भिन्न नहीं होती, यह भी नियत नहीं. क्योंकि रज्जुरूप उपादानसे

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क च क च मृषा न तथोभययुक् ॥
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरंपरया भ्रमयति भारतीत उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥

हुआ सर्प रज्जुसे पृथक होता है, रज्जु सत्य और सर्प मिथ्या होता है. यदि सर्प सत्य हो तो जिस प्रकार कुण्डलका बाध नहीं होता उसी प्रकार सर्पका भी बाध न हो । शंका–रज्जुमें हुए सर्पमें केवल रज्जु ही उपादान कारण नहीं किन्तु अज्ञान भी उपादान कारण है, इस प्रकारके उपादान कारणसे हुई वस्तुका मिथ्यापन बन सकता है. जो केवल सत्य उपादानकारणसे उत्पन्न हो उसको मिथ्यापन सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये द्वैत असत्य नहीं । उत्तर–यह द्वैत भी सत्यरूप ब्रह्म और उसके साथ अज्ञानरूप उपादान कारणसे हुआ है । शंका–जो इस प्रकार जगत् नित्य कहा है तो मिथ्या किस प्रकार है ? । समाधान-कर्मफलको नित्य कहना वेदका तात्पर्य नहीं किन्तु उन वाक्योंसे कर्मकी स्तुति की है, यदि वेद कर्मफलको नित्य मानता तो जैसे यहां परिश्रमसे उत्पन्न किये पदार्थ कालान्तरमें क्षीण हो जाते हैं उसी प्रकार परलोकमें पुण्यका सुख कालान्तरमें नष्ट हो जाता “ क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति” इस कारण कर्मश्रद्धाके भारसे जिनकी बुद्धि मन्द हो गई है, उन्हें वेदवाणी गौणी और लक्षणा वृत्तिमें डालकर भ्रमयुक्त कर देती है, इससे वह यथार्थ वेदके तात्पर्यको न जानकर कर्म

फलको नित्य मानते हैं, कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, इस बातको नहीं जानते. आशय यह है कि,जैसे मकरी अपनेमेंसे तन्तु निकाल फिर आप ही ग्रहण कर लेती है,उसी प्रकार ईश्वर जगत्को उत्पन्न कर अपनेमें लय कर लेता है;वास्तवमें शुद्ध है,इसलिये अद्वैत सिद्ध है,मिथ्यासे द्वैत भासता है ॥३६॥ (२३) हम और कारणसे सत्य कहेंगे कि जगत् सत्य है, क्योंकि अर्थक्रियाका करनेवाला है, यदि न हो तो सीपीमें रूपेकी प्रतीति कैसे होती है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि,व्यवहारके लिये अर्थक्रियाके लिये भ्रम इष्ट है, जैसे खोटे रुपयेसे व्यवहार होजाता है, तो कहते हैं,जो एक ठौर सत्य है उसको और ठौर भ्रम होता है, यह प्रसिद्ध है, अत्यन्त झूठा प्रपंच हो तो भ्रम न हो इससे सत्य है. तो कहते हैं, सत्य नहीं है, किन्तु अंधपरम्परासे भ्रम किया है, तहाँ वेद कर्मफलकी सत्यताका प्रतिपादन करता है कि 'चातुर्मासके पूजन करनेवालोंको अक्षय पुण्य होता है और अमृतपान करेंगे'' इत्यादि वचनसे कर्मफलका यह द्वैत सृष्टिसे पहले भी नहीं था और आगे भी न होगा, मध्यमें आपके शुद्ध अद्वैतरूपमें मिथ्याही प्रतीत होता है, यह निश्चय है. इसी कारण मृत्तिका, सुवर्ण लोह आदि पदार्थोंके

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमंतरा त्वयि विभाति मृषैकरसे॥ अत उपमीयते द्रविणजातिवि
कल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयंत्यबुधाः ॥३७॥ स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां
तदनु मृत्युमपेतभगः ॥ त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥

घट, कुण्डल, परशु आदि निर्माण किये हुए आकारसे नाममात्र ही है, उनके कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोहादि सत्य हैं इसलिये पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाशादि कार्य नाममात्र है, उनका कारण ब्रह्म सत्य है इसकारण द्वैतकी सत्यतामें कुछ प्रमाण नहीं, मनके विलाससे इस मिथ्याभूत द्वैतको जो सत्य मानते हैं, वह अज्ञानी है ॥ ३७ ॥ (२४) जब द्वैत कोई वस्तु नहीं तो इसमें चैतन्यका संबंध लेशमात्र भी न होना चाहिये, फिर जीव किस अपराधसे जन्म, मरण, सुख, दुःखकी प्राप्ति करते हैं और ईश्वर नित्यमुक्त किस प्रकार है ? कर्मकाण्ड किस कारण है ? इसपर कहते हैं कि जीव मायामें पडे अविद्याका आलिंगन करते हैं इसलिये देह इन्द्रियादिकोंका सेवन करते उन्हें अपना ही स्वरूप मानते हैं, इसीलिये देह और इन्द्रियोंके धर्मसे युक्त हो आनन्दादि गुणोंके आवरणसे जन्म मरणकी प्राप्ति करते हैं, यह सब काण्ड अविद्यायुक्त जीवमें है और आप तो मायाकी असत्यता जानते हो जैसे सर्प केंचुलीको सत्य नहीं समझता और उसे त्याग देता है उसी

प्रकार आप मायाको त्याग देते हो, इस कारण तुम नित्य अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त अप्रमेय अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यवान् अपनेमें आप ही विराजते हो ॥३८॥ (२५)हे भगवन्! जो संन्यासी यती अपने हृदयमें स्थित कामकी वासनाओंको नहीं उन्मूलित करते तो उन असाधुओंके हृदयमें तुम स्थित होकर भी नहीं मिलते, जैसे स्मृति न रहनेपर कंठस्थित मणि नहीं मिलती उन दुष्ट असाधुओंको आपकी प्राप्ति नहीं होती इतना ही नहीं किंतु जो इन्द्रियके तृप्त करनेवाले हैं उनको इसलोक तथा परलोकमें दुःख ही होता है, क्योंकि लोकोंको प्रसन्न करना, धनसंचय करना, भोग करना, गुप्त कार्य करना इत्यादिमें यहां दुःख होता है और आपकी प्राप्तिके लिये संन्यास लेनेपर यदि आपकी प्राप्ति न हुई ओर धर्मका अतिक्रमण किया तो तुम्हारे दण्डरूप नरककी प्राप्ति हुई इससे परलोकमें भी सुख नहीं, वह दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुए ॥ ३९॥ (२६)हे भगवन्!

यदि न समुद्धरंति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदिगतोऽस्मृतकंठमणिः॥ असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्य
सुखं भमवन्नपगतांतकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि
देहभृतां च गिरः ॥ अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरंपरया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥ द्युपतय एव
ते न ययुरंतमनंततया त्वमपि यदंतरांडनिचया ननु सावरणाः ॥ ख इव रजांसि वांति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि
हि फलंत्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥

107S

जिन भक्तोंको तुम्हारा ज्ञान हो गया वे आपसे प्रगट हुए अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप दुःखसुखके संबंधको कुछ नहीं समझते और देहाभिमानियोंके संबंधी प्रवृत्तिनिवृत्तिके करनेवाले विधिनिषेधके वचनोंको नहीं सुनते, देहाभिमानरहित हो जानेसे कार्याकार्यका संबन्ध नहीं रहता. हे ऐश्वर्यवान् ! आप प्रत्येक युगमें अवतार धारण करके सन्मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको, जो प्रतिदिन तुम्हारे चरित्र श्रवण कर हृदयमें धारण करते हैं श्रेष्ठ गति देते हो, जब ऐसे पुरुषोंको भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं रहती तो तत्ववेत्ताओंको कर्मकी शंका भी नहीं हो सकती और जो पुरुष कपट प्रबन्धकर इन्द्रियोंका भोगसे पूजन करते हैं वे इस लोक और परलोकमें दुःख पाते हैं ॥ ४० ॥ (२७) हे भगवन् ! स्वर्गलोकादिके पति ब्रह्मादिक तुम्हारे प्रतापके अन्तको नहीं पाते और आप भी अपने अन्तको नहीं पाते तो ब्रह्मादिक आपके

अन्तको नहीं जानते इसमें क्या आश्चर्य ? अपने अन्तको न जाननेसे आपकी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता नष्ट नहीं होती, जैसे शशकके सींग न मिलनेसे सर्वज्ञका सर्वज्ञपन नहीं जाता, क्योंकि शशकके सींग हैं ही नहीं फिर मिलैं कहांसे ? इसी प्रकार आपका अन्त जब है ही नहीं तो कोई जानै कहाँसे ? क्योंकि तुम्हारे स्वरूपमें आकाशमें रजकणके सदृश दशदश गुण उत्तर अधिक सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डोंके समूह कालचक्रसे भ्रमण करते हैं इस कारण श्रुति तात्पर्यसे आपका ही प्रतिपादन करती हैं साक्षात् नहीं कह सकती. सगुण स्वरूपके तो गुण अपार हैं और निर्गुणमें वाणीकी गति नहीं इस कारण तुम्हारा संपूर्ण और साक्षात् निरूपण ही हो सकता अनात्म पदार्थोंका निषेध कर अन्तमें इम श्रुति आपका ही वर्णन करती हैं, क्योंकि अविद्याके विना निषेध नहीं हो सकता इस कारण निषेधकी अवधिरूप आपमें ही इम वेदोंका तात्पर्य निकलता है ॥ ४१ ॥ (२८) श्रीभगवान् बोले कि, हे नारदजी ! इस प्रकार ब्रह्माके पुत्र सनकादिक वेदोंकी स्तुति सुनकर आत्माकी गति जान सनंदनजीकी पूजा करने लगे ॥४२॥ इस प्रकार आकाशमें गमन करनेवाले सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न हुए महात्मा सनकादिकोंने समस्त वेद, पुराण और उपनिषद्का रस उद्धृत किया है ॥४३॥ हे ब्रह्माके पुत्र नारदजी ! तुम श्रद्धापूर्वक आत्माके अनुशासनको धारण करके पृथ्वीमें यथेच्छ बिचरो, यह आत्मानुशासन मनुष्योंकी विषयवासनाका नाश करनेवाला है ॥४४॥ इतनी कथा सुनकर योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले, हे महाराज परीक्षित ! इस प्रकार श्रीनारायणके उपदेशको सुनकर कृतार्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रुतियोंके धारण करनेवाले नारदमुनि कहने लगे ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्ण भूतोंके कल्याणके लिये सुन्दर अवतार धारण

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ॥ सनंदनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम्॥४२॥
इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः ॥ समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥४३॥ त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानु
शासनम् ॥ धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा
श्रद्धयात्मवा ॥ पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णाया
ऽमलकीर्तये ॥ यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ४६ ॥

करते हैं, उन निर्मलकीर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके अर्थ नमस्कार है ॥४६ ॥ उदारमन नारद आदि ऋषि नारायण और उनके शिष्योंको नमस्कार कर साक्षात् मेरे पिता व्यासदेवके आश्रममें गये ॥ ४७ ॥ व्यासदेवने सन्मान कर आसन दिया, उसको ग्रहण कर नारदजीने नारायणके मुखसे जो श्रवण किया था वह सब व्यासजीसे वर्णन किया ॥४८॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तुमने पूछा था सो हमने वर्णन किया, जैसे अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियें प्रवृत्त होती हैं ॥ ४९ ॥ मायाके दूर करनेवाले भक्तोंके भयनाशक नारायण, जो कि अपने स्वरूपमें शयन करते जीवोंके पुरुषार्थ सिद्ध करनेके लिये सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं,जो इस संसारके आदि, मध्य और अंतमें भी रहते हैं, जो प्रकृति पुरुषके भी उपादान कारण हैं और जो इस जगत्को उत्पन्न करके जीवके साथ ही प्रवेश कर रहे हैं, जिन्होंने जीवोंको भोग देनेके लिये

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥ ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः॥ तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितं राजन्यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥ यथा ब्राह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि श्रुतिश्चरेत् ॥ ४९ ॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनु प्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः॥ यं संपद्य जहात्यजामनुशयां सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम्॥५०॥इति श्रीमद्भा० म०द०उ०नारदनारायणसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजंत्यशिवं शिवम् ॥ प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥

पृथक् २ शरीर बनाये हैं, जो जीवोंको अनेक भोग देके शरीरोंका पालन करते हैं और प्रणामादिक भक्ति करनेवाले जीव उन्हें प्राप्त होकर, जैसे सुषुप्तिमें सोता हुआ शरीरके सम्बन्धसे रहित होता है उसी प्रकार देहादिरूप अविद्याका त्याग करते हैं, उन्हीं नारायणका भजन करना चाहिये ॥५०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भाषाटीकायां नारदनाराणसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

दोहा-विष्णुभक्तिसे मुक्ति है, अन्यदेवसे भोग ॥ अट्ठासी अध्यायमें, कहौं भक्तिके योग ॥ १ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! देवता, असुर,मनुष्योंमें जो भोग सुखके तिरस्कार करनेवाले शिवका भजन करते हैं वे धनवान् होते हैं और लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका

भजन करनेवाले नहीं,सो क्यों ? यह जाननेकी हमारी इच्छा है, शिव और विष्णुके भजन करनेवालोंको संपूर्णतः विरुद्ध फल मिलते हैं,क्योंकि जो शिवजी विभूति लगा श्मशानमें वास करनेवाले अमंगलरूप, पासमें कुछ नहीं, उनका जो पुरुष भजन करें वे लक्ष्मीवान् हों और भोग भोगें, और जो लक्ष्मीपति अच्छे भोग भोगें, सुन्दर वस्त्र पहरें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका जो भजन करें वे दरिद्र हों ? यह स्वामियोंकी गति है, और सेवकोंकी गति और है, उचित तो यह है कि,जैसा स्वामी हो उसी प्रकार सेवक हो॥ १ ॥२॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! शिवमें शक्ति रहती है, गुणोंके परस्पर आपसमें संघर्षणसे तमोगुण तीन प्रकारका है, सात्त्विक अहंकार,राजस अहंकार और

एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान्हि नः ॥ विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिंगो गुणसंवृतः ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभव न्षोडशामीषु कंचन ॥ उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ॥ शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छ दिदमच्युतम् ॥ ६ ॥ स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥

तामस अहंकारसे तीन प्रकारके अहंकारके अधिष्ठानसे विष्णु, ब्रह्मा,शिव यह तीन रूप धारण करते हैं ॥ ३ ॥ उस अहंकारसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु,आकाश यह पंचभूत और दश इन्द्रिय तथा एक मन सोलह विकार हुए, इन विकारोंमें किसी एक विकारवान् उपाधिरूप विकारके भजन करनेसे संपत्ति मिलती है और उपाधिवालेका भजन करनेसे उपाधि मिलती है ॥ ४ ॥ निर्गुण साक्षात् मायासे परे सबके देखनेवाले साक्षीभूत हरि भगवान्का जो पुरुष भजन करें वह निर्गुण होते हैं॥५॥अश्वमेध यज्ञ जब पूर्ण हो चुका तब तुम्हारे दादा राजा युधिष्ठिरने वैष्णव धर्मको श्रवण कर पीछे श्रीकृष्णचन्द्रसे यही बात पूछी थी॥ ६॥तो मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये यदुकुलमें अवतारधारी समर्थ

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरसे कहने लगे ॥७॥ श्रीभगवान् बोले कि, जिस पुरुषके ऊपर मैं कृपा करता हूँ उसका धन धीरे
धीरे हर लेता हूँ इसके उपरान्त जब दरिद्री हो जाता है तब दुःखोंके तुल्य और निर्धन जानकर उसे उसके भाई बन्धु सब त्याग देते हैं॥८॥
यह भक्त भाई लोगोंके आग्रहसे धन उपार्जन करनेका फिर उद्योग भी करै, परन्तु मेरे अनुग्रहसे उसके सब उद्योगव्यर्थ हो जाते हैं औरे
जब इसमें प्रबल वैराग्य उत्पन्न होता है तो वह भक्त मेरे और भक्तोंके संग मित्रता करता है, तब उस पुरुषके ऊपर मैं असाधारण अनुग्रह
करता हूँ ॥ ९ ॥ मेरी कृपासे उसे परब्रह्म सूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी नाशरहित आत्माका ज्ञान होता है, इसी लिये मेरा आराधन बहुत कठिन है
और इसी कारण मुझे त्यागकर वह पुरुष और देवताको भजता है ॥ १० ॥ सेवन करनेसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवताओंसे राज्य और धन

श्रीभगवानुवाच ॥ यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ॥ ततोऽधनं त्यजंत्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥८॥ स
यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ॥ मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं
चिन्मात्रं सदनंतकम् ॥ अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः॥१०॥ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियो
द्धताः ॥ मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरंत्यवजानते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः॥१२॥अत्र चोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ वृकासुराय गिरिशो वरं
दत्त्वाऽऽप संकटम्॥१३॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ॥ दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः॥१४॥

प्राप्ति होनेसे उद्धत मतवाले उन्मत्त होकर वे प्राणी वरके देनेवाले देवताओंको भूलकर अवज्ञा करते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे
श्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादिक देव शाप और अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं.शिव, ब्रह्मा दोनों शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ही शाप देते
हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र प्रसन्न नहीं होते और जिसपर प्रसन्न होते हैं फिर उसे शाप नहीं देते ॥ १२ ॥ इस विषयमें एक प्राचीन
इतिहास है सो वर्णन करते हैं, जैसे शिवजीने वृकासुरको वर देकर कष्ट पाया ॥ १३ ॥ दुष्टबुद्धि शकुनिका पुत्र वृकासुर मार्गमें देवर्षि
नारदजीको देख ब्रह्मा, विष्णु,महादेव इन तीनों देवताओंमें शीघ्र कौन प्रसन्न होता है,यह पूछने लगा ॥ १४ ॥

तब देवर्षि नारदजीने कहा कि तू भगवान् भूतनाथ महादेवजीकी पूजा कर यह करनेसे शीघ्र तेरा मनोरथ सिद्ध होगा क्योंकि शिवजी थोडे ही गुणोंसे शीघ्र प्रसन्न और थोडे ही दोषसे क्रोधित होते हैं ॥१५॥ बंदीजनोंके समान स्तुति करनेवाले राक्षसराज रावण और बाणासुरके ऊपर प्रसन्न होकर शिवजीने बड़ा ऐश्वर्य दे फिर उन असुरोंसे आप ही कष्ट पाया,रावणने तो कैलास उखाड लिया और बाणासुरने कहा, मेरे पुरकी रक्षा करो ॥१६॥ इस प्रकार जब देवर्षि नारदजीने कहा तो उसी समय वृकासुर शिवजीका सेवन करने लगा इसके उपरान्त केदारतीर्थमें शिवजीके लिये अपने शरीरका मांस काटकर अग्निमें हवन करने लगा॥ १७॥जब महादेवकीप्राप्ति न हुई तो सातवें दिन तीर्थमें स्नान करनेसे भीजे

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिध्यति ॥ योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्बंदिनोरिव ॥ ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आपं सुसंकटम् ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ॥ केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि ॥ शिरोवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ॥ निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाह चांगाऽलमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ॥प्रीये यतो येन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयाऽऽत्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥२०॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् ॥ यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥

केशवाले शिरको छुरी लेकर काटनेलगा ॥ १८ ॥ उससमय अत्यन्त करुणानिधान शिवजी हेमसरीखे मूर्तिमान् अग्निके समान प्रकाशयुक्त अग्निकुण्डमेंसे निकल, हाथोंसे असुरकी भुजा पकड,जैसे कोई दुःखके मारे मरनेको आवे उसे मने करे उसी प्रकार मने करने लगे और शिवजीका हाथ लगते ही उसका देह ज्योंका त्यों हो गया॥१९॥वृकासुरसे शिवजी बोले कि,हे वृकासुर! तू तप करके पूर्णहो गया,अब वर मांग, जो तेरी इच्छा हो सोई वर दूंगा,क्योंकि जो मनुष्य मेरी शरण आते हैं,उनके ऊपर जलपात्रके चढाते ही मैं प्रसन्न हो जाता हूँ.बड़ा आश्चर्य है! तैंने वृथा ही अपने शरीरको कष्ट दिया ॥ २० ॥ तब वृकासुरने जिस जिस पुरुषके शिरपर मैं हाथ धरूं, वह पुरुष उसी समय मर जावे इस

प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंको भयका देनेवाला वर मांगा ॥ २१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! इस प्रकार वृकासुरका वचन सुन उदासीनसे हो " अच्छी बात है " इस प्रकार शिवजीने मुसकाकर सर्पको दूध पिलानेके समान वृकासुरको वर दे दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार सुनते ही जगज्जननी पार्वतीके लेनेकी चाहनासे वह असुर वर मिथ्या है वा सत्य है, यह परीक्षा लेनेके लिये महादेवजीके माथेपर हाथ धरनेका उपाय करने लगा, उस समय अपने कर्त्तव्यसे भयभीत होकर भगवान् शिवजी भागने लगे ॥ २३ ॥ असुर जिनके पीछे लगा, ऐसे शिवजी डरकर

तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत ॥ ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः ॥ स तद्वरपरीक्षार्थं शंभोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥ २३ ॥ स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावत्सवेपथुः ॥ यावदंतं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥ अजानंतः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः ॥ ततो वैकुंठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ॥ शांतानां न्यस्तदंडानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः ॥ दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥ २७ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ॥ अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥

1078

स्वर्गतक भागे और पृथ्वीका जहांतक अन्त है, वहांतक भागे, फिर उत्तर दिशामें भागकर गये ॥ २४ ॥ उस समय उपायको न जान सम्पूर्ण देवता चुप हो गये। इसके उपरान्त प्रकाशमान मायासे परे वैकुण्ठधाममें शिवजी गये ॥ २५ ॥ जिस वैकुण्ठधाममें शान्तस्वभाव और कालके दंड रहित संन्यासियोंकी परमगति अर्थात् प्राप्त होने योग्य नारायण विराजमान हैं ॥ २६ ॥ दुःखोंके दूर करनेवाले भगवान् नारायण शिवजीके पीछे दौड़े चले आते वृकासुरको दूरसे देख अपनी योगमायासे ॥ २७ ॥ ब्रह्मचारीका वेष धर मूंजकी करधनी मृगछाला

दण्ड मालाओंको पहर तेजसे अग्निके समान प्रकाशमान कुश हाथमें लिये भगवान् नम्र हो अभिवादन कर उनसे बोले *॥२८॥श्रीभगवान् बोले कि, हे शकुनिके पुत्र!तुझे निश्चय खेद है तू इतनी दूर क्यों आया ? थोड़ी देर विश्राम ले क्योंकि समस्त कामनाओंका देनेवाला यह देह है, इसे पीड़ा मत दे ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! जो तुम्हारा अभिप्राय हमारे आगे सुनाने योग्य हो तो कहो, क्योंकि बहुधा दूसरोंकी सहायतासे पुरुष अपना कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अमृतरूप वचनसे जब भगवान्ने पूँछा, तब खेदरहित वृकासुरने अपना सब वृत्तान्त सुना दिया ॥ ३१ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, शिवने तुमको वर दिया है तो शिवके वचनको हम सत्य नहीं मान सकते, क्योंकि यह शिव दक्षके शापसे पिशाचोंकी दशाको प्राप्त हुआ है और प्रेत पिशाचोंका राजा है ॥३२॥ हे दानवेन्द्र वृकासुर ! यदि शिवके वचनमें तुझे विश्वास है तो तू शीघ्र अपने मस्तकपर हाथ धर परीक्षा लेले ॥ ३३ ॥ हे दानवश्रेष्ठ ! इस महादेवका वचन कैसे सत्य होगा यह तो मिथ्यावादी है, पीछे जो किसी प्रकार भी महादेवका वचन असत्य विदित हो तो महादेवको मार, जो फिर कभी मिथ्या न बोले ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥शाकुनेस भवान् व्यक्तं श्रांतः किं दूरमागतः॥क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ॥२९॥
यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ॥ भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा ॥ गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथा पूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ॥ यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२ ॥
यदि वस्तत्र विश्रंभो दानवेन्द्र जगद्गुरौ ॥ तर्ह्यंगाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥ यद्यसत्य वचः शंभोः
कथंचिद्दानवर्षभ ॥ तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥ ३४ ॥

---

* शंका-वृकासुरको छलनेके लिये परमेश्वरने ब्रह्मचारीका स्वरूप क्यों धारण किया?क्योंकि वेदमें ब्रह्मचारीके लिये झूठ बोलना बुरा लिखा है, इसलिये और अनेकरूप भगवान्के बनाये संसारमें बहुत है दूसरा रूप धारण करके छल करना था, ब्रह्मचारी बनकर क्यों छला?

उत्तर-वृकासुरको त्रिलोकीमें किसीका विश्वास नहीं था, क्योंकि वह बडा धूर्त था और उसको अपने बलका बडा घमण्ड था,परन्तु त्रिलोकीमें उसको दो जनोंका विश्वास था एक नारदमुनिका और दूसरे ब्रह्मचारी वेषका भगवान्ने विचारा कि,इस दैत्यने नारद मुनिकी आज्ञा मानके यह कर्म किया है, इसलिये ब्रह्मचारीका रूप धर भगवान्ने सब काम किये ॥

इस प्रकार मनोहर विचित्र भगवान्‌के वचनोंसे भ्रष्टबुद्धि हो कुबुद्धि वृकासुरने भूलकर अपने ही शिरपर अपना हाथ रक्खा ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! शिरपर हाथ धरते ही वज्रके मारेके समान क्षणभरमें शिर फूटनेसे वह वृकासुर मर गया, उस समय स्वर्गमें जय जय और नमःनमः तथा साधु शब्द होने लगा ॥ ३६ ॥ जिस समय पापात्मा वृकासुर मर गया उस समय देवता, पितृ,ऋषि गंधर्व फूलोंकी वर्षा करने लगे और भगवान् महादेवजीको भी कष्टसे छुडा दिया ॥ ३७ ॥ जब शिवजी कष्टसे छूट गये तो श्रीपुरुषोत्तम भगवान् बोले कि अहो ! देव महादेव !

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलः ॥ भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ॥ देवर्षिपितृगंधर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥ हतः को नु महत्स्वीशे जंतुर्वै कृतकिल्बिषः॥ क्षमी स्यात्किमु विश्वेश कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥ गिरित्रमोक्ष कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

1079

यह वृकासुर पापी अपने ही पापसे मरा है । ईश्वर और बडोंका अपराध करनेसे कौन पुरुष कल्याणको प्राप्त होता है ? देखो विश्वके ईश्वर जगत्के गुरु तुम्हारा अपराध करनेसे कदापि भला नहीं होगा ॥३८॥३९॥ इस प्रकार वाणीके अगोचर अनन्तशक्ति साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीको कष्टसे छुड़ाया, यह चरित्र जो पुरुष कहते और सुनते और उनपर भरोसा करते हैं, वह संसार तथा शत्रुओंसे छूट जाते हैं ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां वृकासुरवधो नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

दोहा–तीन देवमें को बडो, सबको यही विचार भृगु मुनिने सबसे कह्यो, विष्णु जगतआधार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! एक समय सरस्वती नदीके तटपर ऋषि यज्ञ कर रहे थे, वहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनों देवताओंमें कौन बड़ा है ? इस प्रकार परस्पर झगडा होने लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! इनमें कौन बडा है, इसकी परीक्षा करनेके लिये ब्रह्माके पुत्र भृगुको भेजा, सो भृगु परीक्षाके कारण ब्रह्माकी सभामें गये * ॥ २ ॥ भृगुजीने ब्रह्माके स्वभावकी परीक्षा लेनेके लिये स्तुति प्रणाम कुछ भी नहीं किया, तब ब्रह्माजीने अपने

श्रीशुक उवाच ॥ सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥ वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥ तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ॥ तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ॥ तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ॥ अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणाऽऽत्मभूः ॥ ४ ॥

क्रोधसे प्रज्वलित हो भृगुके ऊपर अत्यन्त क्रोध किया ॥ ३ ॥ परन्तु ब्रह्मा अपने पुत्रके लिये चित्तमें उठे क्रोधको आप ही शान्त करने लगे, जैसे अपने कारण जलसे अग्नि शान्त होती है और अग्निके शान्त करनेमें जैसे अग्निसे उत्पन्न जल काम आता है, उसी प्रकार ब्रह्माका क्रोध शान्त करनेमें उन्हींसे उत्पन्न हुए भृगुजी काम आये ॥ ४ ॥

---

* शंका–तीनों देवताओंमें बडा देवता कौन है ? ब्रह्मा बडे हैं कि, विष्णु बडे हैं कि, शिव बडे हैं, ऐसा विचार मुनि लोगोंने क्यों किया ? क्योंकि, ऐसा विचार तो बडे बडे अज्ञानी तथा बालक और बडे बडे मूर्ख किया करते हैं, मुनि लोग ऐसा विचार कभी नहीं करते फिर उन लोगोंने क्यों किया ?

उत्तर–सारस्वत मुनिके वशमें जो जन्म लिये ब्राह्मण हैं सो सब ब्रह्मकर्ममें बडे निपुण होते थे, ऐसा ब्रह्मकर्मका अभिमान करके सब देवताओंका और मुनिजनोंका अनादर करने लगे, वचनोंसे भी किसीको आदर नहीं करते थे, ऐसा सारस्वत ब्राह्मणोंका अभिमान जानकर विचार किया कि ऐसा अभिमान करके सब सारस्वत ब्राह्मण नरकमें पडेंगे, क्योंकि हमें आदिलेके जितने देवता तथा ब्राह्मण हैं उन सबको यह ब्राह्मण कुछ भी नहीं जानते, ऐसा विचार करके उन्हीं ब्राह्मणोंकी यज्ञमें कृपा करके उन्हीं ब्राह्मणोंकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया, तब उन ब्राह्मणोंने ज्ञान त्याग दिया और मूर्ख होगये और उस मूर्खतासे भस्महोने लगे, कुछ कालोपरान्त भगवान्का चरित्र भृगुजीनेवर्णन किया, तब सब सारस्वत ब्राह्मण अभिमान रहित हो गये. इसलिये सारस्वत ब्राह्मण बुद्धिभ्रष्ट हो गये ॥

वहांसे भृगुजी कैलास पर्वतपर शिवजीके पास गये, उस समय शिवजी भाई भृगुसे प्रीतिपूर्वक उठकर मिलनेको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ तब भृगुजीने महादेवजीसे मिलनेकी इच्छा न की और कहा तुम कुमार्गमें चलते हो,हम तुमसे नहीं मिलेंगे. यह सुनते ही महादेवजी क्रोधसे लाल नेत्र कर हाथमें त्रिशूल ले मारनेको प्रस्तुत हुए ॥ ६ ॥ उस समय पार्वती महादेवजीके चरणोंमें गिरकर बोलीं कि, महाराज ! तुम्हारा भ्राता है, इसे कैसे मारते हो ? इस प्रकार वाणीसे शान्त करने लगीं, इसके उपरांत भृगु वैकुण्ठमें गये, जहां जनार्दन भगवान् वास करते हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मीकी गोदीमें शयन करते विष्णु भगवान्के हृदयमें भृगुने जाकर लात मारी, तदनन्तर साधुओंकी गति

ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः ॥ परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ॥ शूलमुद्यम्य तं हतुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वा पादयोर्देवी सांत्वयामास तं गिरा ॥ अथो जगाम वैकुंठं यत्र देवो जनार्दनः ॥७॥ शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत्॥तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ ८ ॥ आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ॥ अजानतामागतान्वः क्षंतुमर्हथ नः प्रभो ॥९॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ॥ इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान्॥ पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा॥११॥

विष्णु भगवान्ने लक्ष्मीसहित पलँगपरसे उठ पृथ्वीमें मस्तक धर भृगुजीको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ और कहने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! तुम भले आये, आसन ग्रहण करो. हे समर्थ ! आपके आनेको हमने नहीं जाना सो अपराध क्षमा करो ॥ ९ ॥ हे तात ! हे महामुनि ! तुम्हारे चरण कोमल हैं और मेरी छाती अत्यन्त कठोर है,तुम्हारे चरणोंमें चोट लगी होगी, इस प्रकार कह अपने हाथोंसे ब्राह्मणके चरण सहलाने लगे ॥ १० ॥ गंगादिक तीर्थोंको पवित्र करनेवाले अपने चरणोंके जलसे मुझे और मुझमें अधिष्ठित लोक और लोकपालोंको पवित्र करो॥ ११॥

हे ब्राह्मण! अब मैं लक्ष्मीके वास करनेका अत्यन्त पात्र हुआ और तुम्हारे चरणस्पर्शसे पाप दूर हुए, इसलिये मेरी छातीमें सदा लक्ष्मी वास करेगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार श्रीनारायणकी कही मनोहर वाणीसे तृप्त होकर भक्तिसे आनन्दमें मग्न हो भृगुजी नेत्रोंमें आंसू भरकर चुप हो गये ॥१३॥ हे राजन्! भृगुजीने फिर अपने यज्ञमें आय वेदपाठी मुनियोंसे तीनोंकी जो बात देखकर आये थे सो कही ॥ १४ ॥ भृगुकी बात सुन आश्चर्यको प्राप्त हो सन्देहको त्याग मुनियोंने कहा कि, इतना उनका अपराध किया परन्तु क्रोध न आया तो विष्णु भगवान्में ही शांति है और किसी देवतामें नहीं, इसलिये सबसे बडे विष्णु भगवान् ही हैं, यह निश्चय है ॥ १५ ॥

अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकांतभाजनम् ॥ वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं
ब्रुवाणे वैकुंठे भृगुस्तन्मंद्रया गिरा॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कंठोऽश्रुलोचनः॥१३॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां
ब्रह्मवादिनाम् ॥ स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥१४॥ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ॥ भूयांसं
श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शांतिर्यतोऽभयम् ॥१५॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ॥ ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्य
शश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्यस्तदंडानां शांतानां समचेतसाम् ॥ आकिंचनानां साधूनां यमाहुः परमां
गतिम् ॥१७॥ सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ॥ भजंत्यनाशिषः शांता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥
त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा आसुराः सुराः ॥ गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥

साक्षात् धर्म और धर्मके लिये ज्ञान तथा वैराग्य और आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माके मलोंका दूर करनेवाला यश यह सब भगवान्में ही विद्यमान हैं ॥ १६ ॥ कालदंडके भयसे रहित शान्तस्वभाव और समानचित्त, निष्किंचन अर्थात् किसी वस्तुकी जिनमें चाहना नहीं, साधु मुनियोंको जिन भगवान्की परमगति कहते हैं ॥ १७ ॥ सत्त्वगुण भगवान्का प्यारा रूप है और ब्राह्मण भगवान्के इष्ट देव हैं, शांत और निष्काम बड़ी बुद्धिवाले जिनका भजन करते हैं वही सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ जिन भगवान्ने अपनी मायासे सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी

तीन प्रकारके देवता असुर राक्षस बनाये हैं, सब ही उनका रूप हैं परन्तु उनमें सत्त्वगुणी रूप कल्याणका देनेवाला है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार सरस्वतीके तीरवासी ब्राह्मण मनुष्योंका सन्देह दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दकी सेवा करके श्रीकृष्णचन्द्रकी गतिको ही प्राप्त हुए ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषीश्वरो ! व्यासदेवके पुत्र श्रीशुकदेवजीके मुखकमलकी सुगंधिसे युक्त अमृतके समान संसारके भयका काटनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका यश कानरूपी दोनोंमें भरकर जो श्रेष्ठ पुरुष पान करेगा, वह संसारके आवागमनके परिश्रमसे छूट जायगा ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस चरित्रमें श्रीकृष्णचन्द्रका उत्कर्ष कहा,

श्रीशुक उवाच ॥ एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ॥ पुरुषस्य पदांभोजसेवया तद्गतिं गताः॥२०॥सूत उवाच॥ इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगंधपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः ॥ सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबंत्यभीक्ष्णं पांथोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ॥ जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥ २२ ॥ विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ॥ इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ॥ क्षत्रबंधोः कर्मदोषात्पंचत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २४ ॥ हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेंद्रियम् ॥ प्रजा भजंत्यः सीदंति दरिद्रा नित्यदुःखिताः॥२५॥ एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ॥ विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २६ ॥

फिर उत्कर्षकारक श्रीकृष्णचन्द्रका ही और चरित्र वर्णन करते हैं. हे राजन् ! एक समय द्वारकामें एक स्त्रीके पुरुष उत्पन्न होकर पृथ्वीका स्पर्श करते ही मर गया ॥ २२ ॥ वह ब्राह्मण मरे पुत्रको ले राजा उग्रसेनकी ड्योढीपर धर विलाप कर आतुर दीनमन होकर कहने लगा ॥ ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंका द्वेषी शठबुद्धि लोभी विषयोंमें आसक्तमन क्षत्रियोंमें अधम इस राजाके दोषसे ही मेरा पुत्र मरा है, मेरा कुछ दोष नहीं ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले दुःस्वभाव अजितेंद्रिय राजाके सेवन करनेसे प्रजा दुःखी और दरिद्री होती है ॥ २५ ॥ इसी प्रकार वह ब्राह्मण दूसरे पुत्रको फिर तीसरे पुत्रको लेकर राजाके द्वारपर धरकर यही कहने लगा, कि मेरा कुछ दोष नहीं है, इस राजाके दोषसे यह सब मेरे पुत्र

मरे हैं ॥ २६ ॥ किसी समय अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ब्राह्मणकी बात श्रवण कर नवम बालक जब मर चुका तब ब्राह्मणसे कहने लगा ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मण ! तू किसलिये रुदन करता है, क्या तेरे रहनेके स्थान द्वारकामें धनुषका धारण करनेवाला कोई क्षत्रिय नहीं है ? धन, स्त्री और पुत्रोंमें आसक्त यह यादव तो यज्ञमें भोजनको आये हुए ब्राह्मणोंके समान बैठे हैं ॥ २८ ॥ क्षत्रियोंके जीवित रहते भी धन, स्त्री, पुत्र संयुक्त ब्राह्मण जहां शोच करते हैं, वे उदरपोषक क्षत्रिय वेषसे नट ही जीते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम दीन हो इस लिये तुम्हारे पुत्रकी मैं रक्षा करूंगा और जो मुझसे रक्षा न होगी अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी तो ब्राह्मणकी प्रीतिसे पापरहित हो मैं अग्निमें प्रवेश

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवांतिके ॥ परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥ २७ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवास इह
नास्ति धनुर्धरः ॥ राजन्यबंधुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजाऽपृक्ता यत्र शोचंति ब्राह्मणाः ॥ ते वै
राजन्यवेषेण नटा जीवंत्यसुम्भराः ॥ २९ ॥ अहं प्रजां वां भगवन्रक्षिष्ये दीनयोरिह ॥ अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये
हतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥ अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवंति
यत् ॥ ३१ ॥ तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ॥ चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥
अर्जुन उवाच ॥ नाहं संकर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ अहं वा अर्जुनो नाम गांडीवं यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥

कर जाऊंगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोला कि, हे महाराज ! संकर्षण, वासुदेव और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी तथा जिनके समान कोई योद्धा नहीं ऐसे अनिरुद्ध यह सभी मेरे बालकोंकी रक्षा करनेको समर्थ न हुए ॥ ३१ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी जिस कर्मको न कर सके, हे अर्जुन ! उस कर्मको तू कैसे कर सकेगा ? तू अज्ञानसे करना चाहता है इस कारण तेरी बातका मुझे विश्वास नहीं होता ॥ ३२ ॥ अर्जुन बोले कि, हे ब्राह्मण ! मैं संकर्षण कृष्ण प्रद्युम्न नहीं हूँ, गांडीव धनुषधारी अर्जुन नामक क्षत्रिय हूँ ॥ ३३ ॥

हे ब्राह्मण ! तू मेरा अपमान मत करे, महादेवको प्रसन्न करनेवाला मेरा पराक्रम है; हे समर्थ ब्राह्मण ! संग्रामके बीच मृत्युको जीतकर तेरे पुत्र ला दूंगा ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार धृष्टताके वचनोंसे विश्वासको प्राप्त हो वह ब्राह्मण अर्जुनके पराक्रमको श्रवण कर प्रसन्न हो अपने घरको चला आया ॥ ३५ ॥ जब स्त्रीके प्रसूतिकालका समय आया, तब ब्राह्मण "मृत्युसे पुत्रकी रक्षा कर" इस प्रकार वारंवार आतुर हो अर्जुनसे कहने लगा ॥ ३६ ॥ उस समय अर्जुनने पवित्र जलका स्पर्श कर, हाथ पाँव धो, आचमन कर, शिवजीको नमस्कार करके दिव्य शस्त्रोंका स्मरण कर प्रत्यंचा चढाय गांडीव धनुषको हाथमें लिया ॥ ३७ ॥ अनेक शस्त्रोंमें मिलाये बाणोंसे सोवरके घरका पिंजरा बना दिया,

माऽवमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यंबकतोषणम् ॥ मृत्युं जिवित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रंभितो विप्रः फाल्गुनेन परंतप ॥ जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ॥ पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३६ ॥ स उपस्पृश्य शुच्यंभो नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गांडीवमाददे ॥ ३७ ॥ न्यरुणत्सूतिकाऽगारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपंजरम् ॥ ३८ ॥ ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ॥ सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥ तदाऽह विप्रो विजयं विनिंदन्कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ॥ यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥

तिरछे बाण चलाय ऊपरको चलाये और नीचेको चलाकर घरके ऊपर बाणोंका पिंजरा कर दिया ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत ब्राह्मणकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ बालक वारंवार रुदन कर शीघ्र ही शरीरसहित आकाशमार्गमें होकर चला गया और बार तो देह पडा रहता था, अबकी बार देह भी न रहा ॥ ३९ ॥ उस समय ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ही अर्जुनकी निंदा करके यह कहने लगा कि, मेरी मूढ़ता देखो, मैंने इस नपुंसक अर्जुनका कहना सत्य माना ॥ ४० ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलदेवजी और श्रीकृष्णचंद्र यह सब मिलकर भी जिसकी रक्षा न कर सके, उसकी रक्षा करनेको

और कौन समर्थ है ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है, इस अपनी श्लाघा करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है, यह दुर्बुद्धि दैवके विनाश किये पदार्थको मूर्खतासे बचाना चाहता है ॥४२॥ इस प्रकार जब ब्राह्मणने खोटा वचन कहा तब अर्जुनने योगविद्याको धारण कर यमराज भगवान्की संयमनीपुरीमें शीघ्र प्रवेश किया ॥४३॥ वहां यमराजकी पुरीमें पुत्रोंको न देखा, तब वहांसे अर्जुन इंद्रकी पुरीमें गया, फिर अग्निकी पुरीमें गया, वहांसे कुबेरकी पुरीमें गया, वायु तथा वरुणकी पुरीमें गया, इसके उपरांत रसातल और स्वर्गमें गया, फिर धनुषको उठाये और स्थानोंको गया ॥ ४४॥ सब स्थानं ढूंढ़े परंतु कहीं ब्राह्मणके पुत्रका पता न मिला तब प्रतिज्ञासे अर्जुन अग्निमें प्रवेश करनेकी

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥ दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः॥४२॥ एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ॥ ययौ संयमिनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः॥४३॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐंद्रीमगात्पुरीम् ॥ आग्नेयीं नैर्ऋतिं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ॥ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४५ ॥ दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ॥ ये ते हि कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयंति नः ॥ ४६ ॥ इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ॥ दिव्यस्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥४७॥ सप्त द्वीपान्सप्त सिंधून्सप्त सप्त गिरीनथ ॥ लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥ तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ॥ तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥

इच्छा करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसे मने करके बोले ॥ ४५ ॥ कि ब्राह्मणके पुत्रको मैं ला दूंगा, तू अग्निमें मत जले, जो तेरी निन्दा करते हैं वे ही तुम्हारी निर्मल कीर्तिको हमारे साथ पृथ्वीपर निरन्तर गान करेंगे, कि अन्तमें श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने ब्राह्मणके पुत्रोंको लाही दिया ॥ ४६ ॥ सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार कह और अर्जुनको संग ले अलौकिक अपने रथमें चढ़ पश्चिमदिशाको गये ॥ ४७ ॥ और सात सात पर्वतके सात द्वीप उल्लंघन कर तथा सात समुद्रोंको और लोकालोक पर्वतका उल्लंघन कर बड़े अंधकारमें घुसे ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस अंधकारमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक इन रथके घोडोंकी गति

शिथिल हो गई ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने घोडोंकी शिथिल गतिको देख हजार सूर्यके तेजवाले अपने सुदर्शन चक्रको रथके आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ अति घोर सघन प्रकृतिके परिमाणरूप अन्धकारको अपनी उत्कृष्ट कांतिसे विदीर्ण कर मनके तुल्य भगवान् सुदर्शनचक्रने प्रत्यंचासे छूटे सेनापर श्रीरामचन्द्रके बाणके समान प्रवेश किया ॥५१॥ चक्रके पीछे गमन करके उस अंधकारसे परे वर्तमान श्रेष्ठ व्याप्त भगवान्‌का प्रकाशरूप देख चकाचौंधीसे अर्जुनने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त बडे पवन चलनेसे उठी लहरोंसे शोभायमान जलमें वह रथ गया, उस जलमें प्रकाशमान वस्तुमें श्रेष्ठ और दीप्तिमान् सहस्रों मणियोंके

तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ॥ सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥ ५० ॥ तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ॥ मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥५१॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमःपरं परं ज्योतिरनंतपारम् ॥ समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे॥५२॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम्॥तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तंभसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनंतमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ॥ विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं सिताचलाभं शितिकंठजिह्वम् ॥ ५४ ॥ ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ॥ सांद्रांबुदाभं सुपिशंगवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥

१०४३

खम्भ लग रहे हैं, उनसे शोभायमान अद्भुत भवन देखा ॥५३॥ उस भवनमें बडी देहवाले अद्भुत सहस्र मस्तकोंमें मणियोंकी कान्तिसे प्रकाशमान दो सहस्र नेत्रोंसे शोभायमान स्फटिकमणिके श्वेतपर्वतके तुल्य कांति और श्याम कण्ठ तथा जिह्वा संयुक्त शेषनागको अर्जुनने देखा ॥५४॥ उन शेषनागके देहका सुखदायक आसन बनाये बडे प्रभाववाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ उत्तम भूमा पुरुषको शयन करते अर्जुनने देखा, जिनकी वर्षाऊ मेघके समान कान्ति, सुन्दर पीत वस्त्रोंको धारण किये, मुख प्रसन्न, मनोहर और बडे बडे नेत्र हैं ॥ ५५ ॥

जिनके केश बड़े, मणियोंसे जटित किरीट और कुण्डलोंकी कांतिसे शोभायमान, लंम्बी सुन्दर आठ भुजा, कौस्तुभमणिको धारण किये औ भृगुलताके चिह्न संयुक्त वनमाल पहर रहे थे ॥ ५६ ॥ सुनन्द, नन्द मुख्य अपने पार्षद और मूर्तिमान चक्रादि अपने शस्त्र और पुष्टि, श्री, कीर्ति, माया तथा समस्त अणिमादिक विभूतियोंसे सेवित ब्रह्मादिकोंके पालन करनेवाले ॥५७॥ इस प्रकार अनन्त भूमा भगवान्‌के दर्शन कर सब लोगोंके पति श्रीकृष्णचंद्रने अपने स्वरूपको प्रणाम किया और भयभीत अर्जुनने भी प्रणाम किया इसके उपरान्त श्रीकृष्ण और अर्जुनको हाथ जोडे खड़ा देख वह पुरुष गम्भीर वाणीसे मुसकाते हुए बोले ॥ ५८ ॥ कि तुम्हारे देखनेके लिये ब्राह्मणके पुत्रोंको मैं ले आया हूँ,

महामणिव्रातकिरीटकुंडलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुंतलम्॥ प्रलंबचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्या वनमालयावृतम्
॥ ५६ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ॥ पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाऽखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमाणं
परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५७ ॥ ववंद आत्मानमनंतमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ॥ तावाह भूमा परमेष्ठिनां
प्रभुर्बद्धांजली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥ कलावती
र्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमंति मे ॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ॥ धर्ममाचरतां स्थित्यै
ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ॥ ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदार
कान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् ॥ विप्राय ददतुः पुत्रान्यथारूपं यथावयः ॥६२॥ निशाम्य
वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ॥ यत्किंचित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकंपितम् ॥ ६३ ॥

पृथ्वीमें मेरी कला अवतीर्ण हुए तुम पृथ्वीके ऊपर बोझरूप असुरोंको मार शीघ्र मेरे पास आ जाओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों पूर्णमनोरथ महाश्रेष्ठ नर नारायण ऋषि हो तो भी लोकोंको शिक्षा करनेके लिये धर्म करते हो ॥ ६० ॥ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान भगवान् भूमापुरुषने जब इस प्रकार आज्ञा दी तो श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनने धर्म भूमापुरुषको प्रणाम कर ब्राह्मणके बालकोंको संग ले अपने धाम द्वारकापुरीमें आय ब्राह्मणको उसी अवस्था और रूपवाले पुत्र दे दिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव देख अर्जुनने महाआश्चर्य

मानकर पुरुषमें जो कुछ पराक्रम है सो श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे ही है यह निश्चय किया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार अनेक पराक्रम इस संसारमें दिखाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जगत्के विषयोंको भोग किया और बडे यज्ञोंसे यजन किया ॥ ६४ ॥ समयके अनुसार धर्ममार्गमें स्थित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणसे आदि ले सब प्रजाके मनोरथको जैसे इन्द्र वर्षासे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं उसी प्रकार पूर्ण किया ॥ ६५ ॥ अधर्मी राजाओंको मारकर और कितनोंको अर्जुन भीमसेनादिकोंके द्वारा घात कराया, धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि धार्मिक राजाओंके द्वारा अनायास संसारमें धर्म प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कंधोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ॥ बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु ॥ यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवाञ्छ्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वाऽर्जुनादिभिः ॥ अंजसा वर्तयामास धर्मं धमसुतादिभिः ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधोत्तरार्द्धे द्विजकुमारानयन नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियः पतिः ॥ सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकांतिभिः ॥ कंदुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडंतीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतंगजैः ॥ स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥ उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ॥ निर्विशद्भृंगविहगैर्नादितायां समंततः ॥ ४ ॥

नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ दोहा–नब्बेके अध्यायमें, यदुकुलको विस्तार । हरिलीला संक्षेपसे, वरणों बारम्बार ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् । सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे भरी और श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित द्वारकापुरीमें ॥ १ ॥ जहाँ नवयौवनकी शोभासे शोभायमान और बिजलीके समान कांतिवाली स्त्रियें महलोंमें गेंदकी क्रीड़ा कर रही हैं और शृंगारसे मनोहर वेष धारण कर रही हैं ॥ २ ॥ जहाँके मार्गोंमें मद चुआते हाथी और उत्तम वेष किये योद्धा घोडे और सुवर्णसे दीप्तिमान् रथोंकी सदा भीड बनी रहती है ॥ ३ ॥ जहाँ फूलोंसे संयुक्त

अत्यन्त शोभायमान बगीचे लग रहे हैं और फूले वृक्षोंकी पंक्तियोंमें चारो ओरसे भौंरे और पक्षी निरन्तर गुञ्जार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ ऐसी द्वारकापुरीमें सोलह सहस्र पत्नियोंके प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र स्त्रियोंके जितने सम्पन्न महल हैं, उनमें उतने ही विचित्ररूप धारण कर उनके संग रमण किया * ॥ ५ ॥ उन घरोंमें फूले हुए उत्पल, कह्लार, कुमुद, अम्भोजके परागकी सुगंधियुक्त निर्मल जलवाले सरोवरोंमें

रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ॥ तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदांभोजरेणुभिः ॥ वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥६॥ विजहार विगाह्यांभो ह्रदिनीषु महोदयः ॥ कुचकुंकुमलिप्तांगः परिरब्धश्च योषिताम् ॥७॥ उपगीयमानो गंधर्वैर्मृदंगपणवानकान् ॥ वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवंदिभिः॥ ८ ॥

पक्षियोंके समूह शब्द कर रहे ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके आलिंगनसे कुचोंकी केशर जिनके लग रही, ऐसे महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सरोवरोंके भीतर विहार करते हैं ॥ ७ ॥ मृदंग, ढोलक आदि बाजे और वीणाओंको गन्धर्वगण बजा रहे हैं और सूत, मागध, बन्दीजन स्तुति कर रहे हैं ॥ ८ ॥

---

* शंका-श्रीकृष्ण भगवान् अपनी स्त्रियोंके साथ मनुष्योंके समान क्रीडा क्यों करते थे ?

उत्तर-श्रीकृष्णने विचार किया कि, अब कलियुगके आनेके थोडे ही दिन और रहे हैं, जब कलियुग आवैगा तो बडे बडे दुष्ट अधर्मी मनुष्य जन्मैंगे और अपनी स्त्रियोंको छोडकर दूसरी स्त्रियोंसे मन लगावेंगे और उनहींको अनेक २ प्रकारके वस्त्र आभूषण पहिरावगे और अपनी स्त्रियोंको भर पेट रोटी भी न देंगे और हरेक वस्तुको तरसावेंगे और बात बातमें लात और घूंसोंसे मार लगावेंगे तब वेदमें जो विवाहिता स्त्री पुरुषोंका धर्म लिखा है सो सब नष्ट हो जायगा सनातनधर्म नष्ट होनेके पीछे सब प्रजा वर्णसंकर हो जायगी, पृथ्वी रसातलके जानेकी इच्छा करैगी तब मुझको अवतार लेना पडेगा, ऐसा भगवान् विचारके कलियुगके मनुष्योंको सिखानेके लिये और स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी स्त्रियोंके साथ अत्यन्त क्रीडा और विहार करते थे, श्रीकृष्णने विचारा कि अपनी स्त्रियोंकी क्रीडाको कलियुगके मनुष्य सुनके जारकर्म छोडके अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ इसी प्रकार विहार करैंगे और आदर सत्कार सहित उनका प्यार करेंगे. अपनी स्त्री हस्थीमें परमोत्तम है, क्योंकि श्रीकृष्णने भी उनके साथ अत्यन्त प्रीति की थी उसी प्रकार हम भी प्यार करैं और जो परमोत्तम न होती तो श्रीकृष्ण अपनी स्त्रियोंका सन्मान क्यों करते ? इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा की थी, कामदेवके वश होकर नहीं की थी ।

हँसती हुई स्त्रियें अपनी २ पिचकारियोंसे भिजोती और श्रीकृष्णचंद्र भी स्त्रियोंको छिड़कते यक्षराज कुबेरके समान क्रीड़ा करने लगे ॥ ९ ॥ भीगे वस्त्रोंसे उर, कुच प्रगट होने और ढीली चोटियोंसे फूल गिरनेसे स्त्रियें पिचकारीसे बचनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको आलिंगन करते ही कामदेवके उत्सवसे प्रकाशमान मुखवाली हो गईं और भगवान्को भिगोती शोभा पाने लगीं ॥ १० ॥ स्त्रियोंके स्तनोंकी केशरसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी माला भर गई और हथिनियोंके संग विहार करनेवाले हाथीके समान शोभायमान होने लगे ॥ ११ ॥ नट और नाचनेवालियोंको, गीत गाने तथा बाजे बजाकर जीविका करनेवालोंको श्रीकृष्णचंद्र और उनकी स्त्रियोंने क्रीड़ा करनेके अलंकार और

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसंतीभिः स्म रेचकैः ॥ प्रतिषिंचन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥ ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिंचंत्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ॥ कांतं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुंकुमस्रक्क्रीडाभिषंगधुतकुंतलबृंदबंधः ॥ सिंचन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ॥ क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ॥ नर्मक्ष्वेलिपरिष्वंगैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुंदैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ॥ चिंतयंत्योऽरविंदाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥ वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

वस्त्र दिये ॥१२॥ इस प्रकार विहार करते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी चलन, बोलन, मुसकान और हास्यकी वार्त्ता, क्रीड़ा, आलिंगनसे स्त्रियोंकी बुद्धि हर गई थी ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें बुद्धिवाली स्त्रियोंने पहले चुप होय फिर भगवान् वासुदेवका ध्यान कर उन्मत्त हो जड़की नाईं जो वचन कहे थे, उन वचनोंको मैं वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियें बोलीं कि, हे टिटहरी ! संसारमें तबोध भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो शयन कर रहे हैं और तू निद्रारहित हो विलाप करके उनकी नींदमें बाधा देती है, शयन नहीं करती सो

यह ठीक नहीं. हे सखी ! क्या हमारी ही नाईं कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्रके हास्य लीलापूर्वक चितवनसे तेरा भी चित्त बँध गया है, जिससे पुकारती है?॥१५॥ हे चकवी ! तैंने क्यों नेत्र मूँद लिये हैं, रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणाके मारे रुदन करती है अथवा दास्यभावको प्राप्त हुई हमारे समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्रसादी माला अपनी चोटीपर चढ़ानेकी इच्छा करती है, जिस लिये रोती है ?॥ १६ ॥ हे समुद्र! निद्राके न आनेसे क्या तुझे भी प्रजागर हो गया, जो सदा चिल्लाता रहता है, अथवा हमारीसी दशा तेरी भी है? जैसे भोगसे मुकुन्दने हमारे कुचोंकी केशर लेली है, क्या इसी प्रकार तुझे भी मथकर तुझमेंसे लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकाल ली है ? ॥ १७ ॥ हे चन्द्रमा !

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबंधुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रज स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भोभोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किंवा मुकुंदापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तो दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम्॥१७॥त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ॥ कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः॥१८॥किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥ गोविंदापांगनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्सांकं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ॥ अत्युत्कंठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराःस्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसंगः ॥ २० ॥

जान पड़ता है कि, तुझे बलिष्ठ क्षयीके रोगने ग्रहण कर लिया है, इसी कारण तू क्षीणताको प्राप्त हुआ है, अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर नहीं करता हमारे ही समान मुकुन्दकी रहस्य वार्त्ताओंको भूल उसी चिन्ताके मारे क्षीण हो गया है और हमें निश्चय है कि तेरी वाणी भी हमारे समान बन्द हो गई है॥१८॥ हे मलयाचलके पवन! हमने ऐसा तेरा क्या अप्रिय कार्य किया है, जिससे तू गोविंदके अंगमें लगकर हमारे हृदयमें कामाग्निको प्रगट करता है? ॥१९॥ हे मेघ ! हे श्रीमन्! हम जानती हैं तू यादवोंके इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्यारा मित्र है, इसी लिये जो ताप दूर करनेको भगवान्का गुण है, सो तुझमें भी है, हमारे समान भगवान्के प्रेममें बँधकर तूभी नारायणका चितवन करता है, क्योंकि

तेरे हृदयमें जो अति उत्कंठा है इससे भृगुलताके चिह्नवाले श्रीकृष्णका स्मरण कर अश्रुकी धारा बहाता है तेरा हृदय भी श्याम हो रहा है, तने उनके संग मित्रता क्यों करी ? उनका संग तो दुःखदायी है ॥ २० ॥ हे शोभायमान कण्ठवाले कोकिल ! मृतकको जिलानेवाली कोमल वाणीसे प्यारी बातें करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वचन कहती है तेरा मैं क्या प्रिय करूं ? सो मुझसे कह ॥२१॥ हे उदारबुद्धे ! हे पर्वत ! तू चलता और बोलता भी नहीं है और बड़ी चिंता करता है, जैसे वसुदेवनन्दनके चरण हम अपने हृदयमें धरनेकी चाहना करती हैं इसी प्रकार तू भी अपने शिखरपर धरनेकी इच्छा करता है ? यदि धरेगा तो हमारीसी दशा तेरी भी होगी॥२२॥ हे समुद्रपत्नियो नदियो! इस समय ग्रीष्मके आनेसे मेघद्वारा समुद्रका जल न पानेसे दुर्बल, सूखे ह्रद और कमलोंकी शोभासे हीन हो गई हो, धारा वर्षा कर तुम्हें आनन्द नहीं देती, यह बड़ा कष्ट है, इसीसे तुम्हारे हृदय सूख कर लट गये हैं, जैसे वांछित पति यदुपति श्रीकृष्णचंन्द्रकी स्नेहभरी चितवनके पडे बिना हृदय चुराये जानेसे हम दुर्बल हो गई हैं ॥२३॥ अकस्मात् आये हंसको दूतकल्पना करके कहती हैं कि, हे हंस ! तुम अच्छे आये, आओ विराजो, पयपान करो, श्रीकृष्णचंद्रकी वार्ता कहो, तुम दूत बनकर आये हो सो हमको विदित है, श्रीकृष्णचन्द्र भले प्रकार तो हैं ? क्षणिक प्रीति रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आप ही हमसे जो कुछ कह गये थे उसका किसी समय स्मरण करते हैं ? हे दूत ! हमारा भगवान् वासुदेवसे क्या अर्थ ? जो हमें कामके सुखके लिये बुलाते हों तो उन्हींको हमारे निकट बुलाकर ले आ. परन्तु बात यह है कि, लक्ष्मी हमसे छल कर

**प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसंजीविकयाऽनया गिरा ॥ करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकंठ कोकिल ॥ २१ ॥
न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिंतयसे महांतमर्थम्॥ अपि बत वसुदेवनंदनांघ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विध
तुंम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्ध्रदाः कृशतरा बत सिंधुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ॥ यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलो
कमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्मः ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यंग शौरेः कथां दूतं त्वां नु
विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ॥ किंवा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं
श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥ २४ ॥**

1086

श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करती है इस कारण लक्ष्मीरहित श्रीकृष्णचन्द्रको ही बुला कर ला, 'कमला एकनिष्ठावाली है सो उसको किस प्रकार छोड़ा जाय ? 'यदि तेरे मनमें यह बात हो तो क्या स्त्रियोंमें केवल लक्ष्मी ही निष्ठावाली है, हम वैसी नहीं हैं ? ॥ २४॥ योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें इस प्रकार भाव कर श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्रियें वैष्णवगतिको प्राप्त हुईं ॥२५॥ जो श्रीकृष्णचन्द्र कीर्त्तन करने और श्रवण करनेसे ही स्त्रियोंके मनको हर लेते हैं, यदि दर्शन करनेवालियोंके मनको हर लें तो क्या आश्चर्य है ? ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो स्त्री जगतके गुरु श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पति मान प्रेमपूर्वक उनकी चरणसेवा आदि करती थीं, उनका तप और भाग्य कहांतक वर्णन करैं ।

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम्॥२५॥श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ॥ उरुगायोरुगीतो वा पश्यंतीनां कुतः पुनः ॥ २६ ॥ याः सपर्यंचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ॥ जगद्गुरुं भर्तृबुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः॥२७॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतांगतिः ॥ गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ॥ आसन्षोडशसाहस्रं महिष्योऽष्टशताधिकम् ॥ २९ ॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ॥ रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ॥ यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ॥ आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥

॥२७॥ इस प्रकार साधुओंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वेदविहित धर्मका अनुष्ठान कर घरमें रह धर्म, अर्थ, विषय सेवन करनेवाले संसारी पुरुषोंको वारंवार दिखाया ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र गृहस्थियोंके उत्तम धर्मका पालन करते थे, उस समय भगवान्के सोलह सहस्र एक सौ आठ (१६१०८) रानियें थीं ॥२९॥ हे राजन् ! स्त्रियोंमें रत्नके समान सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानी थीं; जिनके पुत्रोंके नाम भी पहले वर्णन कर चुके हैं ॥ ३० ॥ अप्रमेयगति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जितनी भार्या थीं, उन एक एक भार्यामें दश २ पुत्रोंको उत्पन्न किया, वे सब मिलकर एक लाख इकसठ हजार और अस्सी १६१०८० हुए ॥ ३१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् !

उनमें बडे पगक्रमी उदार यशस्वी अठारह १८ महारथी हुए,उनके नाम सुनो ॥ ३२ ॥ यथा प्रद्युम्न अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण ॥३३॥ पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनंदन, चित्रबाहु, निरूप, कवि और न्यग्रोध ॥३४॥ हे राजन् ! मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सब पुत्रोंमें रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजी श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुणी हुए ॥३५॥ महारथी प्रद्युम्नजीने रुक्मीकी पुत्रीसे विवाह किया,उन प्रद्युम्नजीसे रुक्मीकी पुत्रीमें दश हजार हाथियोंके बलवाले अनिरुद्ध पुत्र हुए ॥ ३६॥ अनिरुद्धने रुक्मीकी पोती रोचनाको ब्याहा, उस रोचनामें अनिरुद्धके वज्रनाम पुत्र हुआ, जो वज्र प्रभासक्षेत्रकी मुसललीलामें शेष रहा ॥ ३७ ॥ उस वज्रके प्रतिबाहु,

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥ साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥३३॥ पुष्करो देवबाहुश्च श्रुतदेवः
सनंदनः॥चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च॥३४॥एतेषामपि राजेंद्र तनुजानां मधुद्विषः ॥ प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः
पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः॥तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥३६॥
स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ॥वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः॥३७॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबा
हुस्तस्य चात्मजः ॥ सुबाहोः शांतसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥३८॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः॥
अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥३९॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्त्तु
मपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥ तिस्रः कोटचः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ॥ आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति
श्रुतम् ॥ ४१ ॥ संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ॥ यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥

पुत्र हुआ,प्रतिबाहुके सुबाहु हुआ, सुबाहुके शांतसेन हुआ, शांतसेनके शतसेन हुआ ॥ ३८ ॥ इस यदुकुलमें धनहीन प्रजाहीन किसीने जन्म नहीं लिया और थोडी आयु, पराक्रमरहित, ब्राह्मणभक्तिहीन ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ ॥३९॥ हे राजा परीक्षित् ! यदुवंशमें उत्पन्न हुए विख्यातकर्मा पुरुषोंकी संख्या दश हजार वर्षोंमें भी कहनेको समर्थ नहीं हो सकते ॥ ४० ॥ क्योंकि तीन करोड आठ सहस्र आठ सौ ३०००८८०० यदुकुलके बालकोंको पढानेवाले आचार्य नियत थे,यह मैंने सुना है ॥ ४१ ॥ महात्मा यादवोंकी संख्या कौन कर सकता है!

क्योंकि जिस कुलमें हजारोंके दश हजार उनके लाख इतने यादवोंको लेकर द्वारकापुरीमें उग्रसेनने वास किया ॥ ४२ ॥ देवता और असुरोंके युद्धमें मरे दारुण दैत्य ही मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्ववंत होकर प्रजाको बाधा देने लगे थे॥४३॥ हे महाभागवत परीक्षित् ! उन असुरोंको दंड देनेके लिये हरि भगवान्‌की आज्ञा पाय देवताओंने यदुकुलमें अवतार लिया था ॥ ४४ ॥ इन यादवोंकी प्रभुतामें भगवान् ही प्रमाण हुए, उन श्रीकृष्णचन्द्रके आज्ञानुवर्ती सब यादव वृद्धिको प्राप्त हुए ॥४५॥ सोते, बैठते, बोलते, क्रीडा स्नान भोजनादि कर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रमें चित्त लगाये यादवोंने अपने आत्माको नहीं जाना ॥ ४६ ॥ इससे प्रथम श्रीगंगाजी ही अधिक तीर्थ रहीं, जब यादवोंमें श्रीकृष्णचन्द्रका यशरूपी तीर्थ प्रगट हुआ तबसे अपने चरणोदकरूप गंगातीर्थको भी न्यून करने लगे और आप ही संपूर्ण तीर्थोंके ऊपर विराजने लगे.

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः॥ ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे॥४३॥तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा
यदोः कुले ॥ अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥४४॥ तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥ ये वानुवर्तिन
स्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः॥४५॥शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु॥न विदुः संतमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः
॥४६॥तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपराः श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः॥
यन्नामाऽमंगलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥
जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ॥ स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितः श्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे जिन पुरुषोंने वैर किया और जिसने स्नेह किया सभी तद्रूपताको प्राप्त हुए. देखो ! जिस लक्ष्मीके लिये ब्रह्मादिक उपाय करते हैं और किसीको प्राप्त न हुई, वही लक्ष्मी श्रीकृष्णचंद्रको त्यागकर कहीं नहीं जाती. जिन श्रीकृष्णचन्द्रका नाम श्रवण करनेसे अथवा कथन करनेसे सब पापोंका नाश कर देता है, फिर उनके स्वरूपका तो कहना ही क्या है और ऋषियोंके वंशमें धर्म चलाया, कालचक्र आयुधधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दुष्टोंका मारना और पृथ्वीका बोझ उतारना, यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ४७ ॥ सब जीवोंमें अंतर्यामीरूप होकर वास करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा उत्कर्षतापूर्वक विराजमान हैं, देवकीमें जन्म हुआ, यह तो

कथनमात्र है, श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित इच्छामात्रसे अधर्मके नाश करनेमें समर्थ हैं परन्तु तो भी क्रीडाके लिये अपनी भुजाओंसे अधर्मको
दूर कर स्थावर जंगम सब जीवोंका दुःख दूर कर सुन्दर मुसकानयुक्त अपने श्रीमुखसे व्रजकी स्त्री गोपिका और पुरी मथुरा, द्वारकाकी
स्त्रियोंको कामदेव बढ़ानेवाले सर्वदा विराजमान रहते हैं, ऐसे सर्वोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो ॥ ४८॥ अपने धर्मकी रक्षा करनेके
लिये मत्स्य कूर्मादिक अवतार धारण करनेवाले यादवोंमें उत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो रूप धर कर योग्य कर्म किये थे, उनको
सुनकर पुरुष पापकर्मसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ तीनों कालमें बडी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभायमान कथाका श्रवण
कीर्त्तन और विचार करके पुरुष कालकी गतिरहित भगवान्के धामको प्राप्त होता है यह श्रवण करके चक्रवर्ती राजा भी अपना राज्य

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडंबनानि ॥ कर्माणि कर्मकषणान यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य
पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥४९॥ मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुंदश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिंतयैति ॥ तद्धाम दुस्तरकृतां
तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैया
सिक्यां दशमस्कंधोत्तरार्द्धे कृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ॥ दशमस्कन्धः समाप्तः ॥

त्याग श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्तिके लिये ग्रामके बाहर वनको चले गये ॥ ९० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे भाषाटीकायां
अष्टादशसाहस्र्यां संहितायामानन्दकन्दश्रीकृष्णचन्द्रचरित्रवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ इति दशमस्कन्ध समाप्त ॥ १० ॥
दोहा–श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज गुणग्राम । विद्वत्तम उपकारचित, सकल सुलक्षणधाम ॥ १ ॥ कहां होत हैं जगतमें, ऐसे पुरुष उदार ।
देशदेशमें छा रह्यो, जिनको सुयश प्रचार ॥ २ ॥ कुटुंब सहित रक्षा करैं, जिनकी श्रीजगदीश । बार बार यह देत हैं, शालिग्राम अशीश ॥ ३॥
भई दशम अस्कन्धकी, भाषा पूरण आज । विरची शालिग्राम कवि, सुमिरन करि व्रजराज ॥ ४ ॥

1088

इस ग्रन्थका रजिस्टरी सर्व प्रकारका हक सन् १८६७ वें के ऐक्टके सर्कारी नियमानुसार "श्रीवेङ्कटेश्वर" प्रेसाध्यक्षने स्वाधीन रखा है।

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम् । संवत १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धोत्तरार्धं समाप्तम् ॥

1089

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धप्रारम्भः ॥

एकादशस्कंधः

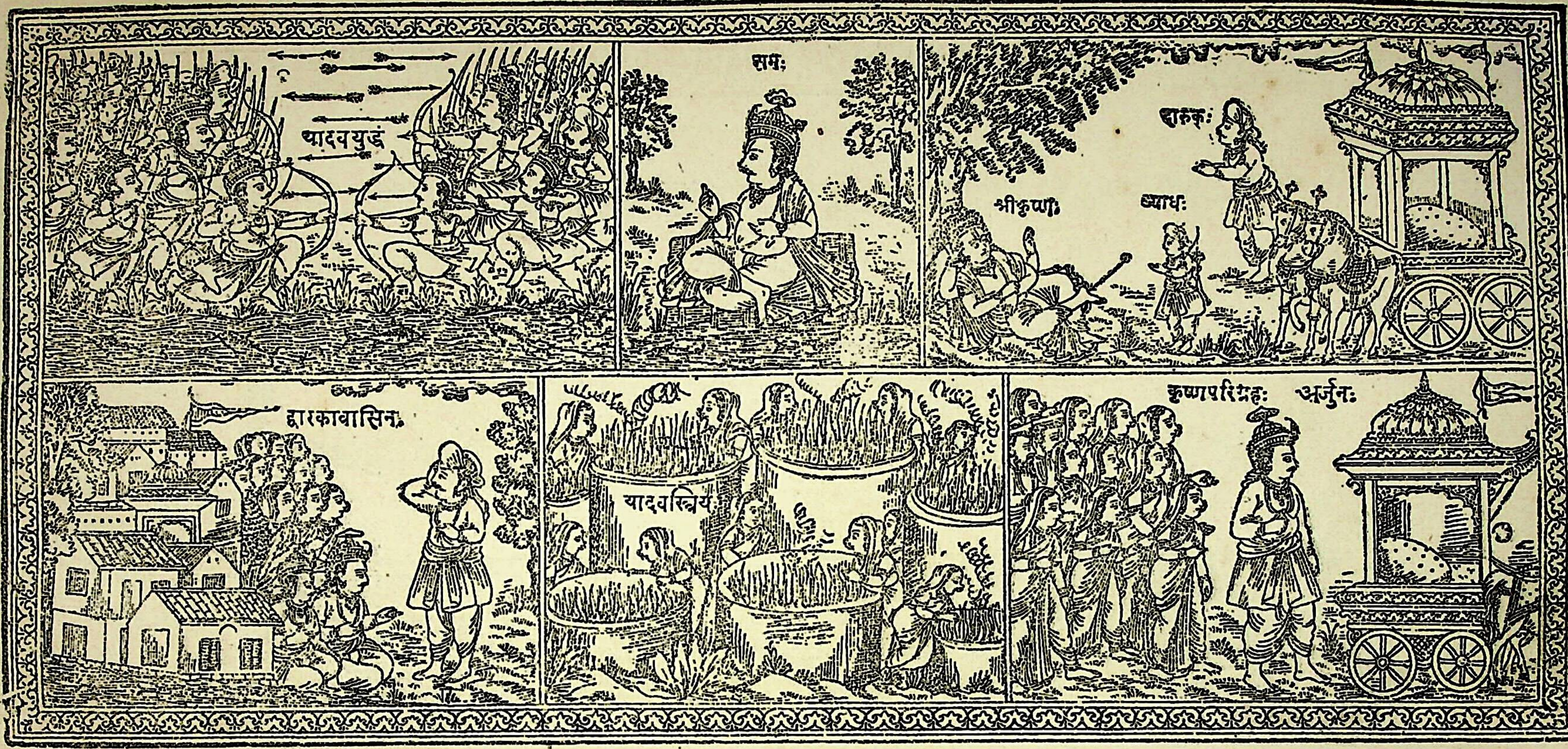
यादवयुद्धं
रामः
दारुकः
श्रीकृष्णः
व्याधः
द्वारकावासिनः
यादवस्त्रियः
कृष्णपरिग्रहः
अर्जुनः

श्रीगणेशाय नमः॥दोहा—जय गणेश वारणवदन, विघ्नहरण सुखमूल। अनुपम भाल विशाल मुख,सोहत हाथत्रिशूल॥१॥जय जगजननी शारदा, सुखदानी गुणखान। शीघ्र पूर्ण हो भागवत, दीजै यह वरदान ॥२॥जय शिव काशीनाथपद, करन अनाथ सनाथ। बारबार वर मांगहूँ, तिनपर धरकर माथ ॥ ३ ॥ सो०—जय हरि कृपानिधान, अधम उधारन सुखसदन। भाषत वेद पुरान, अस दयालु नहिं दूसरो ॥ १ ॥ प्रभुपद पोतहिं पाय, अगम अथाह भवाम्बुनिधि। मोसम पतित निकाय, तरन चहत गोपद सरिस ॥२॥ दोहा—गुरुपदरज शिर धरि कहौं, एकादश अस्कन्ध। हरि उद्धव संवाद वर, ज्ञान विराग प्रबन्ध ॥ ४ ॥ कहों प्रथम अध्यायमें, बहु अद्भुत इतिहास। जैसे ऋषिके शापसे, यदुकुल भयो विनास ॥ ५ ॥ पहले दशम स्कन्धमें भक्तोंका उद्धार और भूमिका भार उतारनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हुए, उनकी लीला कही, अब एकादश स्कन्धमें भक्तोंको आत्मतत्त्वका उपदेश और पूजामार्ग, भक्तिमार्ग, इनके फल निर्णय करके कहैंगे और सब भक्त पुरुषोंको अपने स्थानपर प्राप्त करैंगे इस प्रकार इस एकादश स्कन्धमें मुक्तिलीला कहते हैं, तहां प्रथम कुरुक्षेत्रमें जैसे वसुदेवजीने नारदजीसे कर्मयोग

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

पूछा तब नारदजीने सब कहा उससे जब चित्त शुद्ध हुआ तब वसुदेवजीको ज्ञान हुआ, अर्थात् राम, कृष्ण ये दोनों साक्षात् ईश्वर हैं ऐसा जाना और जब यह ब्रह्मज्ञान नहीं रहेगा तो फिर नारदजीसे पूछेगे तो नारदजी पांच अध्यायोंमे वर्णन करैंगे सो पहिले अध्यायमें वैराग्य उत्पन्न करानेके लिये यदुकुलको ब्रह्मशापके बहानेसे विषयसुखको अनित्य कहते हैं, इसके उपरान्त चार अध्यायोंमें राजा जनक और नव योगीश्वरोंका संवाद कहैंगे, उसमें परमतत्त्व निरूपण करैंगे, फिर छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण और उद्धवका संगम कहैंगे, इसके पीछे तेईस अध्यायोंमें उद्धवको श्रीकृष्ण परमतत्त्व निरूपण करेंगे, फिर दो अध्यायोंमें यादवोंका संहार कहैंगे, इसी प्रकार इकतीस अध्यायोंमें "एकादश स्कन्ध" वर्णन करैंगे इसलिये पहले पूर्वस्कन्धकी कथा स्मरण करके श्रीशुकदेवजी प्रारम्भ करते हैं ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने और बलदेवजीने मिलकर यादवों सहित शीघ्र कलह उत्पन्न करा सम्पूर्ण पृथ्वीका भार उतारा सो हम तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं ❀ ॥ १ ॥

---

* शंका—श्रीकृष्णचन्द्र त्रिलोकीके स्वामी होकर अनेक प्रकारके पुत्र. पौत्र. प्रपौत्र उत्पन्न करके फिर इनका विनाश क्यों किया ? जो कोई कहै कि, कृष्णचन्द्रने विचार किया कि, इन यदुवंशियोंको छोड़कर परमधामको जायँगे तो यह सब पृथ्वीके मनुष्योंको दुःख देंगे वे मूर्ख हैं, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज तो घट घटके जाननेवाले थे, कुछ मनुष्य नहीं थे, जानते थे कि हम वैकुण्ठधामको जायँगे

जो पाण्डुके पुत्र शत्रुओंसे बहुत कुपित किये गये, जुआ खेलनेसे जिनका राज्य जाता रहा, अवज्ञासे द्रौपदीके केश खैंचे गये, लाक्षाभवनमें बन्द करके आग लगा दी गई, जहाँतक हो सका वहाँतक कष्टपर कष्ट दिये, इन्हींके लिये दोनों पक्षोंमें मिले राजाओंको मार पृथ्वीका भार उतारा, परन्तु तो भी विचारने लगे ॥ २ ॥ कि, यद्यपि पृथ्वीका भाररूप जो राजाओंकी सेना थी सो अपनी भुजाओंसे पालित यादवोंसे नाश

ये कोपिताः सुबहु पांडुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ॥ कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिंतयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अंतःकलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तंबस्य वह्निमिव शांतिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥

भी करवाई परन्तु तो भी भार न गया, क्योंकि यदुकुल अभी अनन्त शेष है, जिसका पृथ्वीपर बड़ाभारी भार है ॥ ३ ॥ जिसका मैं आश्रय हूँ, उसका पराजय तो और दूसरेसे होही नहीं सकता और यह सम्पूर्ण यादव वैभवसे उद्धत हो गये हैं इसलिये बिना इनका संहार किये किसी प्रकार पृथ्वीका भार उतर नहीं सकता इस कारण इनमें परस्पर कलह उत्पन्न करा, जैसे बांसोंमें अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार सुलगाय

सर्वान्तर्यामी ईश्वर थे, विचारा कि यह हमारे अंशसे जो जन्मे यादव हैं सो पृथ्वीको अत्यन्त दुःख देंगे, ऐसा जानते थे तो उन सबको उत्पन्न क्यों किया ? क्योंकि आप ही उत्पन्न करके आप ही नाश करना यह बडा अयोग्य कर्म है. शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, विषके खानेसे प्राणी मर जाते हैं, विष ऐसी बुरी वस्तु है, परन्तु जो अपने हाथसे ऐसे विषका वृक्ष भी लगाते हैं, अपने हाथसे उसको भी नहीं काटते और चेतनस्वरूपको उत्पन्न करके आपसे आप ही विनाश करना यह बडा अनिष्ट कर्म है, फिर श्रीकृष्णने ऐसा क्यों किया ?

उत्तर-श्रीकृष्णने ऐसा विचार किया कि. जिस दिन हम इस लोकसे परलोकको जायँगे उसी दिन महाघोर कलियुग इस मर्त्यलोकका राजा होगा और यह सब यादव हमारे अंशसे जो उत्पन्न हुए हैं, कलियुगमें सब ऐसे ही रहेंगे तो अनेक दुःख पावेंगे, इसलिये इन सबका प्रबन्ध ऐसा करें कि, प्रथम ही अपने लोकमें भेजकर पीछे हम जायें. क्योंकि यादवोंके नाश होनेसे दुःख तो होगा ही परन्तु पीछे सुख होगा. कैसा ? कि जैसे कोई औषधि खानेके समय कडुआ मुख हो जाता है परन्तु पीछेसे सुख होता है. फोड़ेको चीरनेके समय जीव दुःख मानता है परन्तु पीछे सुख पाता है. इस बातको विचारके पृथ्वीके भारके कारण अपने अंशसे जो यादव उत्पन्न किये उन सबको नष्ट करके अपने संग लेकर चले गये, कुछ निर्दयपनसे यादवोंका विनाश नहीं किया।

शान्तिको प्राप्त हो पीछे अपने परमधामको जाऊँ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर सत्यसंकल्प भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मशापके मिससे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ जिनके समान लोकमें कहीं लावण्यता नहीं और जिनके संबंधसे ही लोकोंको शोभा मिलती है, इस प्रकार अपने देहसे पुरुषोंके चित्त हरकर जिससे चित्त औरको स्मरण न करै और जो चरणारविन्द देखते हैं,उनकी योग और क्रियां चरणोंके देखनेसे हर ली, फिर भक्तोंकी सब इंद्रियें वृत्तिमें और अपने संसारी जीवोंका अज्ञानरूपी अँधेरा दूर कर, उनके लिये पृथ्वीमें अतिविमल कीर्त्ति विस्तार कर श्रीकृष्णचन्द्र व बलरामजी अपने धामको चले गये ॥६॥७॥राजा परीक्षित पूँछने लगे कि,

एवं व्यवसितो राजन्सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्य
निर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥६॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य
ह्यंजसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यंतीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥७॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसे
विनाम् ॥ विप्रशापः कथमभूद् वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥८॥यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ॥ कथमेका
त्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुंदरसन्निवेशं कर्माऽऽचरन्भुवि सुमंगल
माप्तकामः ॥ आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥

हे ब्रह्मन् ! यादव तो ब्राह्मणोंके भक्त, अतिदानी और नित्यप्रति वृद्धोंकी सेवा करते थे, इतनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जिनके मन लग रहे थे उन्हें किसलिये ब्राह्मण लोगोंने शाप दिया ॥८॥हे भगवन् ! इस शापका क्या कारण है,क्यों हुआ?और यह सब लोग एकचित्त थे, मनमें भेद क्यों उत्पन्न हुआ ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यह सब मुझसे कहो ॥ ९ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! प्रथम भक्तोंको सुख देनेके लिये पूर्ण शोभायमान स्वरूप धारण कर भूमिपर अत्यन्त मंगल कर्म किये और यद्यपि आप पूर्णकाम हैं तो भी फिर द्वारकापुरीमें घर बनाय अनेक क्रीडा कर सब भक्तोंको सुख दिया, इसका तात्पर्य यह है कि,पहले जीवोंका उद्धार करनेके लिये उदार कीर्त्तिका

विस्तार किया, फिर अपने कुलका संहार करनेकी इच्छा करने लगे, यही काम शेष रहा था ॥ १० ॥ जब श्रीकृष्णचंद्रने इस प्रकार इच्छा करी तभी ब्रह्मशापका निमित्त हुआ, क्योंकि जो कर्म अत्यन्त पुण्यरूप मंगलरूप गानेवालोंके संपूर्ण पाप दूर करे, ऐसे कर्म करनेको जो मुनि बुलाये थे, वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे पिंडारक तीर्थको चले गये. श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं कालरूप होनेसे वसुदेवजीके घरमें वास कर निजकुलका नाश करना चाहते थे इसी लिये मुनिलोगोंको पिंडारक स्थानको भेजा ॥ ११ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव; अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदि ऋषि श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार पिंडारक स्थानमें वास करते थे ॥ १२ ॥ एक समय इन ऋषीश्वरोंके पास खेलते खेलते सब यदुकुमारोंने आय नमस्कार कर, चरण पकड पूछा परन्तु मनमें इन लोगोंके कपट भरा हुआ था ॥ १३ ॥ वह सब बालक जाम्बवतीके पुत्रको ऐसी सुंदर स्त्री बनाय मुनियोंके सम्मुख ले जाय हाथ जोडकर पूँछने लगे कि, अहो मुनीश्वरो ! तुम सर्वज्ञ हो, यह स्त्री गर्भवती है, इसको पुत्रकी इच्छा है और प्रसव होनेवाला है, तुम्हारे संमुख आते इसे लज्जा होती है; इस कारण आप कृपा करके बताइये. इसके लडका होगा या लडकी ? ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार जब छलसे पूँछा तब यादवोंके बालकोंपर अत्यन्त क्रोधित होकर मुनि बोले कि, हे मूर्खों ! यह तुम्हारे कुलनाशक मूशलको उत्पन्न करेगी ॥ १६ ॥

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ॥ कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिंडारकं समगमन्मुनयो विसृष्टाः ॥ ११ ॥ विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरंगिराः ॥ कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥ क्रीडंतस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनंदनाः ॥ उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥ ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः सांबं जांबवतीसुतम् ॥ एषा पृच्छति वो विप्रा अंतर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥ प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ॥ प्रसोष्यंती पुत्रकामा किंस्वित्संजनयिष्यति ॥१५॥ एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ॥ जनयिष्यति वो मंदा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

यह सुन वह बालक अत्यन्त भयभीत हो उतावलीसे सांबके उदरको खोल लोहेका मूशल देख त्रसित हो गये ॥१७॥ और परस्पर कहने लगे कि, हमने यह क्या किया ! हमको मनुष्य क्या कहेंगे, इस प्रकार विह्वल हो मूशलको ले आये॥१८॥ जिनके मुखकी शोभा मलिन हो गई ऐसे सब बालक उस मूशलको सभाके बीचमें लाय सब यादवोंके निकट राजा उग्रसेनसे कहने लगे परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रसे न कहा॥१९॥ हे महाराज परीक्षित् ! मुनियोंका अमोघ शाप श्रवण कर और मूशल देख सब द्वारकावासियोंने बडा अचरज माना और भयभीत हो गये ॥ २० ॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रके विना पूछे ही उस मूशलको राजा उग्रसेनने चूर्ण करवाकर समुद्रके जलमें बहा दिया और रेतनेसे शेष जो बचा

तच्छ्रुत्वा तेऽतिसंत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ॥ सांबस्य ददृशुस्तस्मिन्मुसलं कुलनाशनम् ॥ १७ ॥ किं कृतं मंदभाग्यैर्नः किं वदिष्यंति नो जनाः ॥ इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८॥ तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ॥ राज्ञ आवेदयांचक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप ॥ विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥ तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ॥ समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥२१॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ॥ उह्यमानानि वेलायं लग्नान्यासन्किलैरकाः॥२२॥ मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ॥ तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥ कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

1092

उसे भी समुद्रके जलमें डाल दिया॥२१॥ वहाँ कोई मत्स्य उस लोहेको निगल गया और उसका चूरा अपनी तरंगोंसे बहता २ समुद्रके तीरपर आ लगा. उससे ही सब पटेले उत्पन्न हुए॥२२॥ उस मत्स्यको भी और मत्स्योंके संग धीमरोंने जालमें पकड़ा, उस मत्स्यके पेटमेंसे लोहा जो निकला उससे उसने अपने तीरकी भाली करी ॥२३॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्ण बातोंको जानते थे, तो भी निवारणकी इच्छा न करी, विप्रशापको ही मुख्य रक्खा इस कारण इस समय आप ही कालरूप हैं ॥२४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विप्रशापो

नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा—दुसरेमें वसुदेव अरु, नारद प्रश्न सुस्वाद । योगेश्वर अरु जनकसों, भयो धर्मसंवाद ॥ १ ॥ दूसरे अध्यायमें भक्तिसे पूछे वसुदेवजीको नारद जनक और नव योगियोंके संवादसे शुद्ध धर्म कहेंगे. श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! गोविन्दकी भुजासे पालित द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें प्रेम करनेवाले नारदजी निरन्तर वास करते थे ॥ १ ॥ क्योंकि, ऐसा कहा भी है, जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें मुक्त पुरुषोंको भी उत्कंठा होती है, उनको कौन नहीं भजता, सर्वत्र मृत्युसे त्रासित कौन इन्द्रियवन्त भगवान्के चरणारविन्दका भजन नहीं करता, जिन चरणकमलोंकी देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक सेवा करते हैं ॥ २ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजी वसुदेवजीके घर आये, तब वसुदेवजीने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाय पूजा और नमस्कार करके पूँछा॥३॥ कि, हे भगवन् ! जैसे हरिकी प्राप्तिका

श्रीशुक उवाच ॥ गोविंदभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥ अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥१॥ को नु
राजन्निंद्रियवान्मुकुंदचरणांबुजम् ॥ न भजेत्सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥ तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहाग
तम् ॥ अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ॥
कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम्॥४॥भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च॥सुखायैव हि साधूनां त्वादृशा
मच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥ भजंति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ॥ छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः॥६॥

मार्गरूप महत् पुरुष हैं, उनका आगमन दीनोंका कल्याण करनेके लिये है और जैसे पिताका आना पुत्रादिकोंके सुखके लिये है, उसी प्रकार तुम्हारा आगमन सब देहधारियोंके कल्याणार्थ है ॥ ४ ॥ महात्मा लोगोंको देवताओंकी उपमा भी अनुचित है क्योंकि देवताओंका चरित्र बहुत वृष्टि आदिसे दुःख और सुख दोनों करता है परन्तु साधुओंका चरित्र तो सदा सुख ही करता है, इस कारण तुमसरीखे अच्युतरूप पुरुषोंका आगमन सुखके ही लिये है ॥ ५ ॥ यद्यपि देवतालोग सुख देते हैं, परन्तु तो भी जिसने जितना भजन किया हो, उसे उस भजनके अनुसार ही सुख देते हैं. क्योंकि जैसे मनुष्य जितना कार्य करे, उतना ही उसकी परछाहीं कार्य करें, ऐसे ही मनुष्य जैसा और जितना काम करे, उसे देवतालोग कर्मानुसार ही फल देते हैं, परन्तु आप सरीखे साधु पुरुष तो दीनोंको देखते ही कृपालु हो जाते हैं ॥६॥

हे नारद ! यद्यपि हम तुम्हारे आनेसे ही कृतार्थ हो गये, परन्तु तो भी आपसे जिन धर्मोंसे भगवान् प्रसन्न हों, उन वैष्णव धर्मोंको पूँछते हैं, जिन धर्मोंको श्रद्धासहित श्रवण करनेसे मनुष्य संसारसे छूट जाता है ॥ ७ ॥ यदि तुम कहो कि, भगवान्की प्रसन्नताके पात्र तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं सो इसका उत्तर यह है कि, मुक्तिदाता अनन्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रथम मैंने पुत्रकामनासे आराधन किया था, देवमायासे मोहित हो मोक्षप्राप्तिके लिये आराधन नहीं किया, यह बात सूतिकागृह (सोवर) में ही श्रीकृष्णचन्द्रने मुझसे कही थी सो मुझे याद है॥८॥हे नारद ! इसलिये अनेक दुःखसंयुक्त सब ओरसे भय देनेवाले संसारसे जिसमें हम विना श्रमके ही छूट जायँ, वैसी ही तुम शिक्षा दो॥९॥श्रीशुकदेवजी

ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ॥ याञ्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते विश्वतो भयात् ॥ ७ ॥ अहं किल
पुरानंतं प्रजार्थो भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्वि
श्वतो भयात् ॥ मुच्येम ह्यंजसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता॥
प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥१०॥ नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्त्वतर्षभ ॥ यत्पृच्छसे
भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥११॥ श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वाऽनुमोदितः ॥ सद्यः पुनाति सद्धर्मो देववि
श्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥१३॥

बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार जब अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने पूँछा, तब भगवान्के गुणोंको स्मरण करानेसे प्रसन्न हो देवर्षि नारदजी वसुदेवजीसे कहने लगे ॥ १० ॥ कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ वसुदेवजी ! तुमने यह निश्चय बहुत उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि सबके चित्तको शुद्ध करनेवाला वैष्णव धर्म पूछा ॥ ११ ॥ यह धर्म सुननेसे, स्मरण करनेसे, श्रद्धापूर्वक आदरसे ध्यान करनेसे, सम्मति देनेसे समस्त विश्वके पातकी जनोंको शीघ्र पवित्र कर देता है, क्योंकि यह भगवत्सम्बन्धी धर्म है ❋ ॥ १२ ॥ हे वसुदेव ! परमकल्याणरूप, जिनके

❋ शंका—ऐसा उत्तम कौनसा धर्म है, जो शीघ्र ही दुष्टोंको पवित्र करता है ? जो दुष्ट तीन लोककी और देवताओंकी बुराई करते हैं उनको पवित्र करना महाकठिन है. क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि, जो प्राणी किसी दूसरेकी बुराई करेगा तो वह कभी पवित्र नहीं होगा, चाण्डालके सदृश बना रहेगा और जो तीन लोककी तथा तीनलोकके देवताओंकी निन्दा करेगा वह कैसे पवित्र हो सकता है ?

श्रवण और कीर्त्तन अत्यन्त पवित्र हैं, ऐसे भगवान् नारायणका स्मरण कराकर मेरा आपने बड़ा ही उपकार किया ॥ १३ ॥ अब मैं तुमसे एक प्राचीन कथा कहता हूँ, जिसमें उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरोंका संवाद है ॥ १४ ॥ स्वायंभुव मनुका प्रिय व्रतनाम एक पुत्र हुआ उसके अग्नीध्र, इनके नाभि और नाभिके ऋषभदेवजी हुए ॥ १५ ॥ यह वासुदेवके अंशरूप ऋषभदेवजी मोक्षसम्बन्धी धर्म कहनेकी कामनासे प्रकट हुए थे, इनके सौ १०० पुत्र हुए सो सब वेदके जाननेवाले थे ॥ १६ ॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ भरतजी परमेश्वरके

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥ प्रियव्रतो नाम सुतो
मनोः स्वायंभुवस्य यः ॥ तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः॥ १५ ॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना
भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभ वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥
॥ १८ ॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समंततः ॥ कर्मतंत्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा
मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥

बड़े भक्त हुए, अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं, यह अजनाभ खंड ही जिनके नामसे (भरतखण्ड) प्रसिद्ध हो गया ॥ १७ ॥ सो राजा भरत पृथ्वीका भले प्रकार भोग कर अंतमें पृथ्वीको छोड़ तपस्या करनेको चले गये और भगवान् हरिकी उपासना करते करते तीन जन्ममें हरिकी पदवीको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ शेष निन्नानबे पुत्रोंमें नौ पुत्र इस भरतखण्डके मध्य नवो द्वीपोंके पति हुए और इक्यासी पुत्र कर्ममार्गके प्रवर्तक ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ और जो नौ पुत्र महाभाग मुनि थे, वह परमार्थके उपदेश करनेवाले आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर दिगंबर वेष

उत्तर—जो धर्म तीनलोक अथवा सब देवताओंकी निन्दा करनेवाले प्राणीको पवित्र करता है वह धर्म यह है कि, मनमें दया करके भगवान्का भजन करना. यह ऐसा सुन्दर धर्म है कि, सब पापोंका नाश करता है जैसे रुईके ढेरको एक सरसों प्रमाण अग्नि भस्म कर देती है, ऐसा ही भगवान्के नामका जप है, थोड़ा भी करैगा तो अनेक जन्मके पापोंका नाश कर देगा, ऐसा लिखा है।

उन धर्मोंका आश्रय कर मनुष्य कभी विघ्नोंसे पीडित नहीं होता, हे राजन्! नेत्र बन्द करके दौड़े तो भी नहीं गिरता और यदि वर्णाश्रम धर्म न बन पडे तो भी प्रतिवादी नहीं होता और न फलसे भ्रष्ट होता है ॥ ३५ ॥ शास्त्रोक्त विधिसे बताये कर्म ही नारायणके अर्पण करै, यह नियम नहीं है, किन्तु शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, अहंकार और अध्याससे माने हुए ब्राह्मणत्वादिसे भी जो कुछ कर्म करनेमें आवे, वह सब परमेश्वरके अर्पण करनेसे शारीरिक क्रिया सब नारायणसम्बन्धी धर्मरूप हो जाती हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसे विमुख पुरुषको ईश्वरकी मायासे भगवत्स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, बरन् इससें 'अहं देहः' मैं देह हूँ, अभिमान होता है तब दूसरेके अभिनिवेशसे भय होता है, जिस कारण कि, उनकी मायासे भय होता है, इससे गुरु देवता और इष्ट माननेवाले बुद्धिमान् निश्चय करके भक्तिसहित ईश्वरको ही भजैं, तहां पूर्वपक्षमें

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मन
सेंद्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुश्रितस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलंपरस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभि
निवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥
अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं
ततः स्यात् ॥ ३८ ॥ शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ॥ गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ॥ ३९ ॥

कहते हैं कि, चित्त तो विषयोंसे चंचल है फिर निश्चल भक्ति कैसे हो? और भक्ति न हो तो भय कैसे जाय? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, विषय कुछ वस्तु नहीं है, केवल मनका विलासमात्र है, इसलिये मनका निग्रह करके जो भजन करे तो अभय हो, यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्मरूप ही है दूसरा कोई नहीं ॥ ३७ ॥ परन्तु तो भी अविद्यासे द्वैत भासता है, जैसे ध्यान करनेवाले पुरुषको मनसे स्वप्न और मनोरथ दीखते हैं, इस कारण संकल्प विकल्पके कर्त्ता मनको बुद्धिमान् पुरुष रोकै, तब निश्चल भक्तिसे भजन करै, तो अभय होवे ॥ ३८ ॥ जो जगदीशके शुभ जन्म कर्म हैं और जो जन्म कर्मसे हुए नाम लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनको लज्जा छोड निस्पृह होकर गाता फिरै ॥ ३९ ॥

इसप्रकार भजन करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तियोगको प्राप्त होनेसे उसकी संसारसे न्यारी ही गति हो जाती है, ऐसा जिसका आचरण है और भगवान् वासुदेवके नामकीर्तनसे अनुराग बढ़ने और चित्त अतिकोमल होनेसे वह भक्त भगवान्को जीत लेते हैं, तब उनकी यह दशा हो जाती है कि, कभी भगवान्को अपने वशमें जानकर हँसते हैं और कभी इतना समय व्यर्थ गया, यह जानकर रोते हैं, कभी अति उत्कण्ठासे पुकारते हैं कभी आनंदमें मग्न हो उच्चस्वरसे गाते हैं और कभी नाचते हैं, इस प्रकार अलौकिक उन्मत्तकीसी चेष्टा करते हैं ॥ ४० ॥ आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी, ज्योति, सब प्राणि मात्र, दिशा, वृक्ष, नदी सबको हरिका ही शरीर जाने, अनन्यचित्त होकर प्रणाम करे, यह वैष्णवोंके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ यदि कोई कहै कि, यह धर्म तो योगेश्वरोंको भी दुर्लभ है, अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं हो सकता, तो एक

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः॥हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥ ॥४०॥ खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सर्वाणि दिशो द्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥४१॥ भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवंति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शांतिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ॥ यथाचरति यद्ब्रूते यैर्लिंगैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥

नाममात्रका कीर्तन करनेसे एक ही जन्ममें कैसे हो सकता है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, प्रेमलक्षणा भक्ति और प्रेमाश्रय भगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकोंमें वैराग्य, यह तीनों हरिके भजनकर्ता पुरुषको एक ही समय होते हैं जिस प्रकार भोजन करनेसे सुख, पुष्टि, भूँखकी निवृत्ति यह तीनों एक ही कालमें ग्रासविषे होते हैं ॥ ४२ ॥ फिर भगवान्के प्रसादसे कृतार्थ होता है सो कहते हैं—इस प्रकार जब पुरुष हरिचरणारविन्दका नित्य भजन करे तो उसे प्रेमलक्षणा भक्ति तथा वैराग्य और साक्षात् भगवत्स्वरूपका ज्ञान तीनों होते हैं तब पुरुष परमशांतिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर राजा जनकने पूछा कि, हे मुनिश्रेष्ठ! वैष्णव मनुष्योंके बीचमें कैसे होते हैं, किस धर्मके

आत्मविद्यामें निपुण हुए॥२०॥ इनके नाम यथा- कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ॥२१॥ यह सब इस विश्वको भगवद्रूपसे देखने लगे, स्थूल सूक्ष्मको आत्मासे भिन्न देखने लगे, अधिक क्या कहैं, वह सब आत्मरूपको ही देखते संपूर्ण पृथ्वीमें फिरने लगे ॥ २२ ॥ अप्रतिहत गतिसे आसक्तिरहित यह योगीश्वर देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओंके लोकोंमें अपनी इच्छासे विचर रहे थे ॥ २३ ॥ विचरते २ यह सब अपनी इच्छासे एक दिन ऋषियोंसे विस्तृत उदारचित्त अजनाभ राजा जनकके यज्ञमें आये ॥ २४ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी परमभागवत इन ऋषियोंको

कविर्हरिरंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यंतो व्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगंधर्व यक्षनरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ताश्चरंति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभेर्महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशा न्महाभागवतान्नृप ॥ यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरा यणान् ॥ प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ पर मप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरंति हि ॥ २८ ॥

देख यजमान, अग्नि, ब्राह्मण सब उठकर खड़े हो गये ॥२५॥ इसके उपरान्त राजा जनक उनको नारायणपरायण जान अतिप्रसन्न हो आसन दे यथायोग्य पूजा करने लगे ॥२६॥ अपनी कांतिसे शोभासंयुक्त सनकादिकोंके समान उन नव योगीश्वरोंको देख प्रसन्न हो विनय कर पूछने लगे ॥ २७ ॥ प्रथम उनकी स्तुति की कि; तुम साक्षात् मधुदैत्यके द्वेषी भगवान्के पार्षद हो, जिससे विष्णुभक्त लोकोंके पवित्र करनेको सब ठौर विचरते हो ॥ २८ ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम्॥२९॥अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो
भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये
क्षमम्॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥३१॥ नारद उवाच॥ एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः॥
प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम्॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादांबुजोपासनमत्र
नित्यम्॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥३३॥ ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये॥
अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान्॥ ३४ ॥

मैंने दुर्लभ वस्तु पाई है इसलिये मेरा बड़ा भाग्य है, क्योंकि देहधारियोंको मनुष्यदेह दुर्लभ है,सो भी क्षणभंगुर है, उसमें भी भगवान्के प्रिय भक्तोंका दशन तो अत्यन्त दुर्लभ है ॥२९॥ हे निष्पाप! इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ कि,संसारमें सबसे उत्तम कल्याणका साधन क्या है क्योंकि इस संसारमें अर्द्धक्षणका सत्संग भी मनुष्योंको बडी निधि है॥ ३० ॥ इस कारण यदि आप सुननेका अधिकारी समझो तो हमसे वैष्णवधर्म कहो, जिन धर्मोंसे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तोंको अपना आत्मातक दे देते हैं ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि हे वसुदेव! इस प्रकार जब राजा जनकने पूछा तब उन महंत ऋत्विजोंने सभासदों सहित राजा जनककी स्तुति करके प्रीतिपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ जनकजीने नौ प्रश्न किये, प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरा पमेश्वरकी भक्ति, तीसरे माया, चौथे मायाके तरनेका उपाय, पांचवां ब्रह्म, छठा कर्म, सातवां अवतारचरित्र, आठवां भक्तिप्राप्ति, नववां युग, इन एक एक प्रश्नका उत्तर नवो मुनीश्वरोंने दिया. प्रथम अति कल्याणरूप धर्म कवि योगेश्वर बोले कि, हरिके चरणारविन्दकी उपासना ही सब प्रकारके भय दूर करती है, जिसके करनेसे देहादि भिन्न पदार्थोंके गर्वसे सदा उद्वेगको प्राप्त होकर यह पुरुष संसारके भयसे छूट जाता है ॥ ३३ ॥ अब वैष्णवधर्मके लक्षण कहते हैं, प्रथम मनु आदि ऋषियोंके मुखसे सब वर्णाश्रम धर्म कहते हैं फिर अति रहस्यसे अपने मुखसे भगवान्ने अज्ञानियोंको सुखपूर्वक आत्मज्ञान पानेके जो उपाय कहे हैं, वह सब वैष्णवधर्म हैं ॥ ३४ ॥

विषे स्थित, कैसा स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा बोलना और कैसे चिह्न हैं, जिससे भगवान्के प्रिय होते है ? कृपापूर्वक सम्पूर्ण मेरे आगे वर्णन करो ॥ ४४ ॥ इसका उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीन श्लोकोंसे देते हैं कि, जो अपनेको सब प्राणिमात्रमें ब्रह्मस्वरूप स्थित देखे और ब्रह्मरूप अपनेमें सर्व प्राणिमात्रको देखे सो उत्तम भागवत है॥ ४५ ॥ ईश्वरमें प्रेम करे, भगवान्के भक्तोंसे मित्रता करे, मूर्खोंपर कृपा करे और शत्रुओंकी उपेक्षा करे वह मध्यम वैष्णव है ॥ ४६ ॥ भेदबुद्धिसे केवल प्रतिमामें ही श्रद्धा रखता है और जीवोंमें तथा भक्तोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं है वह प्राकृत भक्त है ॥ ४७ ॥ अब आठ श्लोकोंमें उत्तम वैष्णवोंके लक्षण कहते हैं, जो इंद्रियोंसे विषयोंका भोग करते हैं,

हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥४५॥ ईश्वरे तदधीनेषु
बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न
तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥४७॥ गृहीत्वापींद्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति॥विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स
वै भागवतोत्तमः ॥४८॥ देहेंद्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरे
र्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥
न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥

परन्तु न किसीसे द्वेष है, न प्रीति है, सब वस्तुमात्रको ईश्वरकी माया जानते हैं, सो भक्तोंमें उत्तम हैं ॥ ४८ ॥ देहके संसारी धर्म जन्मा, मरण, इंद्रियोंको कष्ट, प्राणोंको भूख, मनको भय, बुद्धिको तृष्णा, इन संसारके धर्मोंसे जो मोह न पावैं और निरन्तर भगवान् हरिका, स्मरण करैं सो वैष्णव भक्तोंमें मुख्य हैं ॥ ४९ ॥ जिसके मनमें काम, कर्म और वासना न उत्पन्न हो, चित्त केवल भगवान् वासुदेवके स्वरूपमें ही बसता रहे सो वैष्णवोंमें उत्तम है. इन तीन श्लोकोंमें भक्तोंके आचरणको उत्तम कहा ॥५०॥ जिसके इस देहमें कुल, तप, वर्ण, आश्रम और जातिका अभिमान नहीं है सो भगवान्का अतिप्यारा भक्त है ॥ ५१ ॥

जिसके चित्त और आत्मामें अपनी पराई बुद्धि नहीं और सब प्राणीमात्रमें समानदृष्टि होकर शांत हो सो वैष्णवोंमें उत्तम है ॥ ५२ ॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये भगवान् वासुदेवमें ही जिनका चित्त है और जो देवताओंको दुर्लभ भगवान्‌के चरणकमलके भजन विना लवमात्र भी नहीं व्यतीत करते सो वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इनको ऐसा दृढ ज्ञान है कि, भगवान् वासुदेवके चरणोंसे अधिक और कुछ सार नहीं ॥ ५३ ॥ यदि विषयके संगसे और कामसे सन्तापित हुए भक्तोंके मन चञ्चल हों तो क्या ? इसपर कहते हैं कि, हरिसेवामें सुख माननेवालेका तो मन नहीं चलायमान होता, परन्तु अनन्तपराक्रम भगवान् वासुदेवके चरणकी शाखारूप अंगुलियोंके नखरूप मणिकी चंद्रिकासे सब कामादि ताप दूर होनेसे भक्तके हृदयमें ताप उत्पन्न नहीं होता,जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे सूर्यका ताप दूर हो जाता है. और भी मुख्य

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ॥ सर्वभूतसमः शांतः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुंठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्॥न चलति भगवत्पदारविंदाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवत उरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचंद्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चंद्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधानउक्तः॥५५॥इति श्रीमद्भाग०म० एका० नारदवसुदेवसंवादांतर्गतनिमिजायंतेयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः॥ ॥२॥राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामि भगवंतो ब्रुवंतु नः ॥१॥

लक्षण कहते हैं ॥ ५४ ॥ केवल नाममात्रके लेते ही संपूर्ण पापोंके समूहके नाश करने वाले साक्षात् भगवान् वासुदेवको हृदयसे न त्यागे वही वैष्णवोंमें उत्तम है, क्योंकि इसने प्रेमडोरसे हरिके चरणकमल हृदयमें बांध रक्खे हैं ॥ ५५ ॥ इति श्रीभाषाभा०महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा-माया मायासे तरन, ब्रह्म कर्म यह चार ॥ इनको उत्तर देत अब, योगेश्वर सुविचार ॥ १ ॥ माया और मायासे तरनेका उपाय, ब्रह्म तथा कर्म इन चार प्रश्नोंका उत्तर ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरे अध्यायमें कहेंगे. राजा जनकजी बोले कि, हे भगवन् ! परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाको मैं जानना चाहता हूँ सो कृपापूर्वक तुम मुझसे कहो, जो माया बड़े जान

नेवालोंको भी मोहित कर लेती है ॥ १ ॥ यदि तुम कहो कि, उक्त (जिसको प्रथम कह आये हैं) लक्षणवाला भक्त होकर कृतार्थ हो तो बहुत परिश्रम करनेसे क्या ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि मरणधर्म संसारके तापसे अत्यन्त ताप होता है, उसके औषध हरिकथारूप अमृतको तुम्हारे वचनों द्वारा पीनेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ २ ॥ यह सुनकर अन्तरिक्षनामा योगेश्वर बोले कि, हे राजन् ! आदिपुरुष भगवान् सब प्राणिमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवोंको मोक्षके अर्थ पञ्चमहाभूतोंकी शक्तिसे बुद्धि, इंद्रिय, मन, प्राण और शरीर उत्पन्न करते हैं. सो शक्ति मायाका रूप है ॥ ३ ॥ इस प्रकार पञ्च महाभूतोंसे सृष्टि रच सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यमें भगवान् अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होकर एक

नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अंतरिक्ष उवाच ॥
एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि
प्रविष्टः पंचधातुभिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान्स भुंजान आत्मप्रद्योतितैः
प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्म
फलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः
॥७॥ धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षा ह्यना
वृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

प्रकार मन और दस इन्द्रियरूपसे जीवोंको भिन्न भिन्न विषय भोग कराते हैं ॥ ४ ॥ तब जीवात्मा अन्तर्यामीसे प्रकाशित इन्द्रियोंसे विषय भोग करते मायारचित शरीरको आत्मा मान उसी शरीरमें आसक्त होते हैं ॥ ५ ॥ यह जीव कर्मेन्द्रियोंसे वासनासहित कर्म करते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सुख दुःखरूप फलको भोग करते संसारमें भ्रमण करते हैं, परन्तु मुक्त नहीं होते, यह परमेश्वरकी माया है ॥ ६ ॥ इस भांति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा परवश होकर महाप्रलयतक जन्म मरणको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ अब प्रलय कहते हैं-पञ्चमहाभूतोंके नाशका काल जब निकट आता है तब आदि अन्त रहित कालमें लीन करनेको इस स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्चको खैंच लेते हैं ॥ ८ ॥ अब नाशका

कारण कहते हैं, पहले पृथ्वीमें सौ १०० वर्षतक अतिदारुण अनावृष्टि होगी, पीछे उस कालमें बड़ी उष्णतासे सूर्य तीनों लोकोंमें तपैगा ॥ ९ ॥ और पातालतलसे आरंभ होकर जलाता हुआ अग्नि ऊंची शिखा किये वायुसे प्रेरा हुआ चारो दिशाओंमें बढैगा ॥ १० ॥ इसके उपरांत सांवर्त्तक नाम प्रलयकालके मेघगण सौ १०० वर्षतक हाथीकी सूँड़के समान धारा वर्षेंगे, तब उस जलमें यह ब्रह्माण्ड लीन हो जायगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि काष्ठ न हो तो शुद्ध अग्निमें मिल जाती है, उसी प्रकार ब्रह्माण्डरूप शरीरवाला विराट् पुरुष ब्रह्माण्डरूप अपने शरीरको छोडकर सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश कर जाता है ॥ १२ ॥ पृथ्वीका गुण गन्ध है. उसको प्रलयाकारका पवन हर लेता है तब पृथ्वी गुणरहित होकर जलमें लीन हो जाती है, पीछे जलके गुण रसको वही पवन सोख लेता है तब जल तेजमें लीन हो जाता है ॥ १३ ॥

पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः॥दहन्नूर्द्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥१०॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिंधन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगंधा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशंति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णितास्माभिर्भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥

प्रलयकालके अन्धकारसे रूपरहित हो तेज वायुमें लीन हो जाता है, पीछे आकाशसे स्पर्शगुण हर जानेसे वायु आकाशमें लीन हो जाता है, इसके उपरांत आकाशके गुण शब्दको कालरूप ईश्वर हर लेते हैं तब आकाश तामसाहंकारमें लीन हो जाता है ॥ १४ ॥ फिर इंद्रियें और बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होती हैं, मन इन्द्रियोंके देवताओं सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन होता है. हे राजन्! इसी प्रकार तामस, राजस और सात्त्विक यह तीनों गुणोंका कार्य इन्द्रियादिक सहित अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होता है और वह महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन होता है ॥ १५ ॥ सात्त्विक, राजस, तामस तीनों गुण युक्त उत्पत्ति, पालन और प्रलय करनेवाली यह भगवान्की माया है, सो मैंने तुमसे इसका रूप वर्णन किया,

अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित ! इस प्रकार अति दयायुक्त मुनिको देख इस संसारकी मायासे तरनेका उपाय राजा जनक पूछने लगे, कि यह ईश्वरकी माया अजितेन्द्रियोंको अति दुस्तर है; इसलिये देहाभिमानी भी जिस प्रकार इसे सुखपूर्वक तर सके सो हे महाऋषि ! वही उपाय तुम मुझे बताओ ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगेश्वर बोले कि, हे राजन् ! भगवान् वासुदेवकी भक्ति विना मायाके तरनेका और उपाय नहीं है, यह जान साधन सहित भक्तिको वर्णन करते हैं, पहले वैराग्यसे गुरुओंके निकट जाय, सो चार श्लोकोंमें कहते हैं—हे राजन् ! स्त्री पुरुष मिलकर अपने सुखको और दुःख दूर करनेके कर्मोंका आरम्भ करते हैं और फिर उन कर्मोंके फलमें दुःख ही देखते हैं ॥१८॥ कर्मके साधनसे धनादिक मिलकर भी सुख नहीं देते, इसपर कहते हैं कि, नित्य दुःखदायी

राजोवाच॥ अथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः॥तरंत्यंजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम्॥१७॥प्रबुद्ध उवाच॥
कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन
दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१९॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम्॥सतु
ल्यातिशयध्वंसं यथा मंडलवर्तिनाम् ॥२०॥ तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्म
ण्युपशमाश्रयम् ॥२१॥ तत्र भागवतान्धर्मांञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः॥२२॥

उसपर भी दुर्लभ अपनी मृत्युकारक धन, गृह, पुत्र, बन्धु और पशुओंके पायेसे क्या सिद्धि है ? यह तो सब मिथ्या है ॥१९॥ इसी प्रकार कर्मोंसे उत्पन्न हुए परलोकको भी मिथ्या जाने, जिसमें अपने समानसे ईर्षा, अधिककी निन्दा, स्वर्गसे गिरनेका भय, इतने दुःख स्वर्गके विषे भी हैं, जैसे थोडी भूमिके राजाओंको समान देखकर ईर्षा, अधिककी निन्दा और चक्रवर्ती राजासे भय इत्यादि दुःख होते हैं ॥ २० ॥ इसलिये अपना उत्तम कल्याण चाहै तो भक्तिपूर्वक गुरुकी सेवा करे. गुरुके लक्षण कहते हैं, मुख्यतो वेदका अर्थ अतिश्रेष्ठ जानता हो, जिससे कि, सब सन्देह दूर कर सके और परब्रह्म भगवान्के स्वरूपको जाने, जो आप ब्रह्मको न जाने तो औरको कैसे ज्ञान देगा ? अतिशांत स्वरूप हो, क्योंकि ब्रह्मज्ञान उसे ही होगा जो पुरुष शांत होगा॥२१॥ भक्तोंको आत्माके देनेवाले परमात्मा भगवान् हरि जिन वैष्णवधर्मसे सन्तुष्ट होते हैं, उन धर्मोंकी गुरुको आत्मा और इष्ट जानकर भक्त जन गुरुकी निष्कपट सेवा करनी सीखे ॥ २२ ॥

1098

पहले तो संपूर्ण वस्तुओंमें मनको चलायमान न करे, इसके उपरांत सत्संग करे, फिर सब प्राणियोंमें और दीनोंपर मन वचनसे दयायुक्त चित्तमें सबसे मित्रता करे और उत्तमोंमें नम्रता सीखे ॥ २३ ॥ बाह्य शौच सीखे (मृत्तिकासे हाथ पाँव आदि धोवे), अन्तर शौच सीखे, (मनमें दंभ अहंकार न रक्खे), धर्मका आचरण, क्षमा, यथायोग अध्ययन, ब्रह्मचर्य, सीखे, वृथा वार्ता न करे, कुटिल न रहे, द्रोह न करे, सुख दुःखमें समान बुद्धि रक्खे ॥ २४ ॥ सब प्राणीमात्रमें समान चैतन्य आनंदरूपसे ब्रह्मको विचारे, नियंता समझकर ईश्वरको विचारे, एकान्तमें वास करे,गृहादिकोंमें अभिमान न करे,निर्जन मार्गमें पडे हुए वस्त्र अथवा वल्कलको पहरे, अधिक क्या कहें, जो वस्तु प्राप्त हो उसीमें सन्तोष रक्खे औरकी इच्छा न करे॥२५॥जो शास्त्र केवल भगवान् ही बताते हैं,वह भागवत शास्त्र हैं,इसे सुननेकी श्रद्धा रक्खे, औरकी

सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु ॥ दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचं
तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वंद्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वर
न्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विविक्तचीरवसनं संतोषो येन केनचित् ॥ २५ ॥ श्रद्धां भागवते शास्त्रे
ऽनिंदामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्कर्मदंडं च सत्यं शमदमावपि ॥२६॥श्रवणं कीर्त्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्म
कर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥२७॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्प
रस्मै निवेदनम् ॥ २८॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

निन्दा भी न करे और मन, वचन,कर्म इन तीनोंको दण्ड दे, मनको तो प्राणायाम करके रोके, वाणीका दण्ड यह है कि, मिथ्या वचन न कहे, कर्मका दण्ड चेष्टा न करे, सत्य वचन सीखे, अंतःकरण और सब इंद्रियोंका निग्रह करे ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् हरिके जन्म कर्म गुणका श्रवण कीर्तन तथा ध्यान करे, और भी जो कर्म करे सो सब भगवान् वासुदेवमें अर्पण करे ॥ २७ ॥ यज्ञ, दान, तप, सदाचार और आपको जो प्रिय वस्तु हो सो सब गंध पुष्पादिक और स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण यह सब परमपुरुष भगवान् वासुदेवको निवेदन करे और यह सब धर्म गुरुके पाससे सीखे ॥ २८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आत्मा माननेवाले मनुष्योंसे मित्रता और स्थावर जंगम

प्राणियोंमें सेवा विशेष करके मनुष्योंकी और इनमें भी महात्मा तथा साधुओंकी सेवा करे ॥ २९ ॥ इन साधुओंका सत्संग करके भगवान् वासुदेवके पवित्र यशको परस्पर कहना सीखे,फिर ईर्षा छोड़ आपसमें प्रीति, सबसे सन्तोष,परस्पर सुख, समस्त दुःखोंकी निवृत्ति सीखे ॥ ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण पापसमूहके नाश करनेवाले भगवान् हरिको आप निरंतर स्मरण करे तथा औरोंको स्मरण करावे तब स्मरण, कीर्तनरूप भक्तिके करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तिसे रोमांचयुक्त शरीर हो जाता है * ॥३१॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवका चिंतवन करनेवाले कभी रोवैं हैं

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरंतः स्मारयंतश्च मिथो
ऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदंत्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति
नंदंति वदंत्यलौकिकाः ॥ गायंति नृत्यंत्यनुशीलयंत्यजं भवंति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्मा
ञ्छिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥३३॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः
परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥

कभी हँसै हैं, कभी आनन्दको प्राप्त होते हैं, कभी बालकोंके समान वचन कहते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं; कभी भगवान्के स्वरूपकी लीला करते हैं, कभी परमसुखमें मग्न होते हैं और कभी चुपचाप रहते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह वैष्णव धर्म सीखकर प्राप्त हुई भक्तिसे नारायणपरायण होकर सुखपूर्वक दुस्तर मायासे तरे ॥ ३३ ॥ यह सुनकर राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! तुमने कहा कि, नारायणपरायण होकर मायाको तरै सो नारायणके तो तीन नाम सुने हैं,एक तो नारायण, दूसरा ब्रह्म, तीसरा परमात्मा सो इन तीन नामोंसे निर्विशेष वस्तु

---

* शंका–भक्ति करके उत्पन्न जो भक्ति है, उस भक्तिसे भगवान्के भक्तोंका रोम रोम खडा हो जाता है, ऐसी रोमांच हुई देहको धारण करके भक्तजन भगवान्का भजन करते हैं, ऐसी उत्तम भक्ति कौनसी है ?

उत्तर–भगवान्में बडी भक्ति जैसी अम्बरीष आदिक भक्त भक्ति करते थे वैसी भक्तिसे भगवान्के चरणकमलमें प्रीति उत्पन्न हो, उसी प्रीतिका नाम भक्तिसे उत्पन्न भक्ति है, ऐसी भक्ति करके भगवान्का भजन करेगा तो प्राणी मोक्षको प्राप्त हो जायगा ॥

कहिये अथवा इनमें कुछ भेद है ? सो विशेष करके मुझसे कहो, क्योंकि तुम ब्रह्मको भले प्रकार जानते हो ॥ ३४ ॥ तब पांचवें पिप्पलायन ऋषि उत्तर देते हैं, कि, हे राजा जनक ! जो इस विश्वके उत्पत्ति, पालन तथा प्रलयके कारण हैं और आप कारणरहित हैं सो नारायण हैं। वही परमतत्त्व हैं, जो स्वरूप स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्तिमें एकरस है, सो ब्रह्म है। वही परमतत्त्व है, समाधिमें जिसको मुनीश्वर देखते हैं उसीको ब्रह्म कहते हैं। वही परमतत्त्व है और जिससे देह, इंद्रिय, मन, प्राण यह सब चैतन्य हो कार्यको समर्थ होते हैं सो परमात्मा है, । वही भगवानका स्वरूप है, इस प्रकार तीनों नामके भेदसे एक ही तत्त्व जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यदि तुम कहो कि, इससे ब्रह्मको विषयता प्राप्त हुई तो इसका निषेध करते हैं कि, इस ब्रह्मको वाणी, नेत्र, बुद्धि, प्राण और सब इंद्रियें स्पर्श नहीं कर सकते। जैसे छोटी चिनगारी महाभूत अग्निको नहीं प्रकाश कर सकती और न जला सकती है, ऐसे ही मन आदि जड इंद्रिय सृष्टिके प्रकाशक ब्रह्मको जड़ इन्द्रिय क्यों कर सकेगी ? तहां

पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेंद्रियासुहृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेंद्र ॥ ३५ ॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥३६॥ सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदंति जीवम्॥ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत्॥३७॥

पूर्वपक्ष करते हैं कि, अहो वेद तो ब्रह्मको बताते हैं तों कहते हैं, वेद भी प्रगट नहीं. कारण यह है कि, वेद स्वयं ही कहता है कि, वाणी मन आदिसे जो पदार्थ जाने जाते हैं, जो इनके बोधन करनेवाले हैं, वह ब्रह्मको नहीं प्राप्त हो सकते, इससे यह न समझ लेना कि, वेद ब्रह्मको नहीं कहते किन्तु वेद कहते हैं, स्थूल भी ब्रह्म नहीं है, अणु भी ब्रह्म नहीं, जो वाणीसे कहा जाय सो भी ब्रह्म नहीं इत्यादि इस निषेधकी जो अवधि है, वही ब्रह्म है, विना अवधिके निषेध नहीं हो सकता ॥ ३६ ॥ फिर कहते हैं कि, जो सबका प्रमाण जहां वेदकी भी गम्य नहीं तो ब्रह्म ही न होगा, इसका उत्तर देते हैं कि, ब्रह्म नहीं यह नहीं कहा जाता, जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखा जाता है सो सब ब्रह्म ही भासता है, इसलिये सब विश्वके कारण भगवान् वासुदेव ही हैं. यहां पूछते हैं कि एक ब्रह्म बहुविध विश्वका कारण क्यों है ? सो कहते हैं कि, ब्रह्मकी शक्ति अनंत

सामर्थ्यसे अनंतरूप है, पहले एक रूप होकर पीछे सत, रज, तम मायाके रूप हुए, पीछे क्रियाशक्तिसे प्राणरूप हुए, फिर ज्ञानशक्तिसे महत्तत्त्व हुए, फिर अहंकाररूप हुए, जिसमें जीव बँधा है. इसके उपरान्त इंद्रियरूप हुए, फिर इंद्रियोंके देवतारूप हुए, फिर कर्मोंके फल सुखदुःखरूप हुए, इस भांति सब रूप ब्रह्म ही है और सर्वरूप आपसे प्रकाशमान ब्रह्मकी स्थापनाविषे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥ ३७ ॥ तहाँ पूर्वपक्ष करते हैं,सम्पूर्णरूप आप ही हैं तो यह सब विश्व तो मरता है,फिर उत्पन्न होता है. इससे ज्ञात होता है कि, ब्रह्मका भी जन्म मरण होता है, इसके उत्तरमें कहते हैं कि, यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न बढता है,न क्षीण होता है इस कारण आगमापायी बालयुवादिक देहोंकी अवस्थाका साक्षी है और साक्षीको ये अवस्था नहीं लगती, केवल ज्ञानरूप है, यदि कोई कहै कि, ज्ञान तो एक क्षणमें उत्पन्न होता है, एक ही क्षण रहता है और एक ही क्षणमें नाशको प्राप्त हो जाता है तो कहते हैं, यह ज्ञान सदा रहता है. जो कोई कहै कि, नीलज्ञान उत्पन्न

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो
यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥ अंडेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्रतत्र ॥ सन्ने
यदिंद्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥

हुआ पीतज्ञान गया, ऐसे ज्ञानका भी उत्पत्ति और नाश सुना है इसके उत्तरमें कहते हैं कि, नील पीत इंद्रियोंकी वृत्ति उत्पन्न होती हैं और वृत्तियोंका ही नाश होता है, ज्ञान तो एकरूप है, यह प्राणके दृष्टान्त कहे गये ॥ ३८ ॥ इंद्रियादि केवल हरिको ही दिखाती हैं. जैसे पशु, पक्षी, स्वेदज,वृक्षादिकोंमें सर्वत्र जहाँ जहाँ जीव जाता है, उसी उसी स्थानमें इसके संग प्राण भी जाते हैं. परन्तु प्राण निर्विकार हैं, जैसे आत्मा निर्विकार रहता है। यहाँ शंका है कि, मनुष्यादिक देहोंमें आत्मा सब विकारसा क्यों दीखता है ? तो कहते हैं कि, जाग्रतमें इंद्रियगणके दोषसे, स्वप्नमें अहंकारसे सब विकारसा दीखता है, सुषुप्तिमें तो इंद्रियगण और अहंकारके लयसे निर्विकार आत्मा है, इससे विकारके हेतु लिंगशरीरकी उपाधिका अभाव है। यहां शंका है-सब नष्ट होनेसे आत्मा रहता है यह कैसे जानैं ? सो इसका उत्तर यह है कि,जब जागता है तो जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव हुआ है उसका स्मरण होता है'आज मैं बहुत सुखसे सोया'यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना नहीं

1100

होता, इसलिये सुषुप्तिमें आत्माका अनुभव निर्विकार होता है, पर विषयका सम्बन्ध नहीं, इसलिये वह अनुभव प्रगट नहीं होता ॥३९॥ फिर पूछते हैं कि, इसका सुस्वप्नमें निर्विकार अनुभव होय तो संसार फिर क्यों होता है ? यदि कहो कि, इसकी अविद्या नहीं गई, उसकी वासनासे संसार होता है तो अविद्या कैसे जाय ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जब गृह, पुत्र, धनादिकी वासना छोड़कर केवल भगवान् वासुदेवकी इच्छा करे, ऐसा करनेसे भक्ति बढ़ती है, उस भक्तिसे चित्तके गुण कर्मसे उत्पन्न हुए सब पाप दूर होजाते हैं, तब चित्त शुद्ध होकर प्रगट आत्मतत्त्वको प्राप्त करता है, जैसे निर्मल दृष्टि होनेसे सूर्यमण्डलका प्रकाश दीखता है ॥ ४० ॥ राजा जनक बोले कि, भक्ति तो कर्मयोगके अधीन है, इसलिये प्रथम मुझसे कर्मयोग कहो, जिस कर्मके करनेसे शुद्ध होकर फिर कर्मका वेग दूर करके पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पाता है, जिससे

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विंदते परम् ॥४१॥ एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरंतिके ॥ नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥४२॥ आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यंति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥

सब कर्म निवृत्त हों सो कर्मयोग कहो ॥४१॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगे जब सनकादिक आये थे तब किया था, उन्होंने भी मुझे कुछ उत्तर न दिया इसका क्या कारण सो मुझसे कहो ॥४२॥ आविर्होत्र बोले कि, हे राजन् ! वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वह कर्म है, जिसका निषेध है वह अकर्म है और जिसके करनेकी आज्ञा है वह न करे तो विकर्म कहा जाता है, यह तीनों भेद वेदको ही गम्य हैं, इसका निर्णय मनुष्योंको अशक्य है, इससे वेद साक्षात् ईश्वररूप हैं, पुरुषके वचनमें वक्ताका अर्थ जानना अति कठिन है, यहां पण्डित भी मोहको प्राप्त होते हैं तो तुम तो बालक थे, इसलिये तुमसे न कहा ॥४३॥ वेदका तात्पर्य क्यों नहीं जाना जाता सो कहते हैं, यह वेद सब परोक्षवाद हैं, अर्थ जो और भाँति होता हो उसके छिपानेको और भांति कहै, इसे परोक्षवाद कहते हैं, उसी प्रकार वेदमें कर्म छुटानेका कर्म कहा है, मूर्ख उसी कर्मको

जानता है। यहां पूछते हैं कि, कर्मका तो स्वर्गादिक फल सुना जाता है, फिर कर्मको त्यागकर फल कैसे जानै ? इसका उत्तर कहते हैं कि, यह जो कर्म कारण कहे हैं सो मूर्खोंकी शिक्षाके लिये हैं, नहीं तो धर्ममें किसीकी भी प्रवृत्ति न हो, जैसे बालकोंको औषध खिलाना चाहै तो लड्डू दिखाइये और दीजिये, उस लड्डूके लोभसे वह बालक औषध पी लेगा. औषधका यह फल नहीं, कि लड्डू खाय, उसका तो यही फल है कि, आरोग्य कर देगा, उसी प्रकार जीव सब विषयी हैं और लोभी हैं उनको स्वर्गादिकका लोभ दिखाय कर्ममें प्रवृत्त करते हैं, पीछे इससे भी निवृत्तिका फल उत्तम है, इस ज्ञानसे उन कर्मोंको छुड़ाते हैं, यह वेदका तात्पर्य है ॥×४४॥ जो कर्म त्यागना ही मुख्य है तो पहिले ही कर्म त्याग कीजिये, तो कहते हैं कि, स्वयं अज्ञ हो, अजितेन्द्रिय हो और वेदोक्त कर्म न करै तो कर्मके विना अधर्मसे मरकर

नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेव कुर्वाणो
निःसंगोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥४६॥ य आशु हृदयग्रंथिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः॥
विधिनोपचरेद्देवं तंत्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥ ४८ ॥

1101

फिर मृत्युको ही प्राप्त होता है और सदा कालके ही मुखमें रहता है ॥ ४५ ॥ इसलिये वेदोक्त कर्म ही करै, निषिद्ध कर्म न करै और कर्मके फलकी इच्छा न रक्खै, जो कुछ कर्म करै सो सब ईश्वर भगवान् वासुदेवमें ही समर्पण करै तो पुरुष मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्त हो। तहां पूर्वपक्ष कहते हैं कि, अहो वेदविषे जो फल सुने जाते हैं, जैसे औषध पिलानेके लिये बालकोंको लड्डू देता है उसी प्रकार कर्म करनेसे फल अवश्य होगा. तो कहते हैं कि, यह मत कहो, कर्मोंमें प्रीति उपजानेका फल सुनाना है, जैसे औषध देनेके समय बालकोंको मीठी चीज दिखाते हैं अब वैदिककर्म कहकर आगमकी विधि कहते हैं ॥ ४६ ॥ जो कोई निर्विकार जीवके अहंकारकी गांठ छुड़ाना चाहै सो आगम और वेदोक्तके प्रकारसे सबकी पुजा करै ॥ ४७ ॥ पूजाकी विधि कहते हैं, जब इस पुरुषपर ईश्वर अनुग्रह करै तो सद्गुरु मिलते हैं, फिर उन

गुरुओंसे पूजाकी विधि जाने तब आपको जैसी मूर्ति रुचे उसी प्रकार बनाकर भगवान् वासुदेवकी पूजा करै ॥ ४८ ॥ सो विधि कहते हैं कि पहले तो स्नानादिक करके पवित्र हो और फिर उस मूर्तिके सन्मुख बैठ प्राणायाम और भूतशुद्धि कर देहको शुद्ध करै,इसके उपरान्त उत्तम न्यासोंको कर अपनी रक्षा करके भगवान् हरिकी पूजा करै ॥ ४९ ॥ पुष्पादिक द्रव्यके जन्तु आदि शोधन कर भूमिका संमार्जन और मनको सावधान कर मूर्तिको स्नानादिक कराय आसनका प्रोक्षण कर प्रतिमादिक विषे अथवा हृदयमें यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजा करै ॥ ५० ॥ पाद्य, अर्घ्य इत्यादि सब विधिपूर्वक देनेके उपरांत पहले अपने हृदयमें पूजित भगवान् वासुदेवको संनिधापन मुद्रासे दृढ धर सावधान होकर ध्यान करै, इसके पीछे हृदय, शिर,शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, मन्त्र और मूलमन्त्रसे पूजा करै ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त हृद

शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिंडं विशोध्य सन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥४९॥ अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ॥ द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमंत्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥ सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमंत्रतः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गंधमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ सांगं संपूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

यादिक अंग उपांग न्यास, सुदर्शन आदि पार्षदपरिवार, देवतासहित उस मूर्तिको पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण उपचार कर ॥ ५२ ॥ गन्ध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करै,फिर स्तोत्रोंसे स्तुति कर नमस्कार करै और अक्षतसहित उस मूर्तिको तिलक करके पूजै और [illegible] न पूजै; क्योंकि अक्षतसे भगवान् हरिकी और केतकीसे महादेवजीकी पूजा निषिद्ध है ॥ ५३ ॥ और फिर मूर्तिरूप भगवान् वासुदेवका ध्यान करके पूजा करै, इसके उपरान्त उस निर्माल्यको मस्तकपर चढा देवताका स्वरूप हृदयमें धारण कर पूजी हुई मूर्त्तिका विसर्जन करके अपने स्थानमें रक्खै ॥ ५४ ॥

इस प्रकार अग्नि, सूर्य, जल आदिमें और अतिथिमें, हृदयमें आत्मारूप ईश्वर भगवान् वासुदेवकी जो पुरुष पूजा करे सो थोडे ही कालमें संसारी बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाय, यह आगमकी विधि वर्णन की ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा० महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–इस चौथे अध्यायमें, द्रुमिल नाम योगीश । लीला हरिअवतारकी, कहत चरन धर शीश॥ १ ॥ राजा जनक बोले कि, हे भगवन् ! आपने प्रथम कहा कि, भगवान् हरिकी मूर्तिको जैसे मन माने वैसा बनाकर पूजा और स्तुति करै, सो हमको न तो मूर्त्तिका ज्ञान है, न गुण कर्मका ज्ञान है कि स्तुति करैं. इसलिये तुम उनके अवतार और कर्म कहो. भगवान् वासुदेवने जो जो

एवमभ्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥ यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते च सः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे वसुदेवनारदसं० नि० जा० संवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छंदजन्मभिः ॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ यो वा अनंतस्य गुणाननंतानुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ॥ रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

1102

जन्म लिये हैं और जो जो कर्म किये हैं और अब करते हैं और जो आगेको करेंगे सो सब वर्णन कीजिये * ॥ १ ॥ राजा जनकने जब इस प्रकार पूछा तो द्रुमिल योगीश्वर बोले कि, जो पुरुष अनंतरूप भगवान् वासुदेवके चरित्रको गिनना चाहै वह अज्ञानी है, क्योंकि पृथ्वीके परमाणुओंको तो बहुत कालतक परिश्रम करके कोई बुद्धिमान् गिन भी सकता है, परन्तु अनंत शक्तिके आश्रय भगवान् वासुदेवके गुणोंको कोई नहीं गिन सकता ॥ २ ॥

---

* शंका–राजा जनक बड़े ब्रह्मके जाननेवाले थे, ऐसे ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्मकी कथाको त्यागकर मुनिराजसे सगुण अवतारकी कथा क्यों बूझी? क्योंकि ब्रह्मज्ञानी महात्मा पुरुष सगुणमें प्रीति नहीं करते॥ उत्तर–तीन लोकमें जो चर अचर जीव हैं, उन सबका बीज विना जन्म नहीं हो सकता, किसीका जन्म आजतक बीज विना न सुना तैसे ही ब्रह्मज्ञानका बीज सगुण ब्रह्मका कीर्तन है, सगुणके कीर्तनसे ब्रह्मज्ञान होता है, इसलिये राजा जनकने ब्रह्मज्ञानी होकर सगुण भगवान्के अवतारकी कथा बूझी ॥

परन्तु तो भी संक्षेपसे उनके कुछेक गुणका वर्णन करता हूँ। जब स्वयं भगवान् वासुदेव पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्माण्डरूप नगर बनाय उसमें लीलापूर्वक प्रविष्ट हुए तो इनका आदिदेव नारायण पुरुष नाम हुआ॥३॥यह तीन लोककी स्थापना जिस पुरुषको देता है और जिसकी इन्द्रियोंसे सब देहधारियोंकी इन्द्रियें होती हैं, जिसके स्वरूपसे भूत सत्त्वगुणसे ज्ञान होता है,प्राणसे देहशक्ति और इन्द्रियशक्ति तथा चेष्टा इत्यादि यह सब होती हैं. इससे ज्ञात होता है कि, विश्वका कर्त्ता भी कोई है ॥ ४ ॥ प्रथम इस विश्वके उत्पन्न करनेको रजोगुणसे ब्रह्मा, सतोगुणसे यज्ञके फलदाता ब्राह्मण धर्मकी रक्षा करनेवाले विष्णु,और तमोगुणसे संहार करनेको रुद्र हुए।इस प्रकार प्रजाओंके बीच जिससे

भूतैर्यदा पंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥
॥ ३ ॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेंद्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज
ईहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्त्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुप
तिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहित
र्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशांतः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिव
र्यनिषेवितांघ्रिः ॥ ६ ॥ इंद्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुंक्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाप्सरो
गणवसंतसुमंदवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

निरंतर जन्म, पालन और नाश होता है, वही आदिपुरुष है ॥ ५॥वही आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्रीके विषे ऋषियोंमें श्रेष्ठ अतिशान्तस्वरूप नरनारायण अवतार हुआ और जिससे कर्म नष्ट न हो, ऐसा निष्कर्म ज्ञान बनाया और आपने भी उसीके अनुसार कर्म किया, ऐसे श्रेष्ठ ऋषियोंसे सेवित जिनके चरण, सो भगवान् नरनारायणरूपसे बद्रिकाश्रममें आजतक विराजमान है ॥ ६ ॥ हे महाराज! इस समय एकभगवान् वासुदेवके अवतारोंका बतानेवाला.परमशक्ति दिखानेवाला इतिहास कहते हैं, सो आप मन लगाकर श्रवण करें.

एक समय नरनारायणको परमशान्त तप करते देख देवराज इन्द्रने विचार किया कि, यह मेरा स्थान तप करके लेना चाहते हैं, यह विचार तपस्यामें विघ्न करनेके लिये परिवारसहित कामको भेजा और भगवान् वासुदेवकी महिमाको नहीं जाननेके कारण कामदेव उनके स्थानमें अप्सराओंके गण वसंत और मंदवायु सहित जाकर स्त्रियोंके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको मारने लगा ॥ ७ ॥ तब गर्वरहित नरनारायण इन्द्रका किया हुआ अपराध जान शापके भयसे काँपते हुए कामादिक देवताओंसे हँसकर बोले कि, हे कामदेव ! हे देवांगनाओ ! भय मत करो, हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमारे आश्रमको सुशोभित करो, क्योंकि जिस स्थानपर अतिथिका आदर सन्मान नहीं होता वह स्थान शून्य कहलाता है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! अभयके देनेवाले श्रीभगवान् हरि के इस प्रकार कहनेपर लज्जा सहित और नम्रशिर हो, कामादिक

विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ॥ माभैष्ट भो मदनमारुतदेववध्वो गृह्णीत
नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ॥ नैतद्विभो
त्वयि परेऽविकृते विचित्रंस्वाराम धीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥ त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तराया स्वौको
विलंघ्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥
क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित्॥क्रोधस्य यांति विफलस्य वशं पदे गोर्म
ज्जंति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजंति ॥ ११ ॥

देवता दयासंयुक्त श्रीनारायणसे बोले कि, हे प्रभो ! तुम्हारा इस प्रकार कहना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि तुम मायासे परे हो, निर्विकार हो, आत्माराम और धीर मुनियोंके समूह तुम्हारे चरणकमलको नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हमारे अपराधका आचरण भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि हमारा स्वभाव ही ऐसा है तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष देवताओंके स्थानको उल्लंघन कर आपके जो परमधाम वैकुण्ठमें जाते हैं, उनको इन्द्रादिक देवता बहुत विघ्न करते हैं, तुम्हारी सेवा नहीं करनेवाले दूसरे पुरुष जो यज्ञमें देवताओंको उनके भागरूप कर देते हैं, उनको विघ्न नहीं करते, परन्तु जिसके तुम रक्षक हो, वह तुम्हारा भक्त निश्चय विघ्नोंके माथेपर चरण धरकर तुम्हैं प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ अभक्तोंको काम क्रोधादिक सब वशमें कर लेते हैं, उनमें जो हमारे वश होते हैं, सो भोग भी करते हैं और

जो क्रोधके वश हैं, वह तो अतिमूर्ख हैं. क्षुधा, तृष्णा, शर्दी, गर्मी, वर्षा, पवन, जीभका रस और शिश्नका रस ये रूप हैं, इनको लाँघकर जो पुरुष निष्फल क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं वह अपार समुद्रके पार उतरकर गायोंके खुरोंके गढ़ोंमें डूब जाते हैं, यह लोग शाप आदि देकर अतिकठिन तपस्याको वृथा छोड देते हैं न तो मोक्षके अर्थ, न भोगके अर्थ ॥ ११ ॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवने कामादिककी अद्भुत स्तुति सुन अपने योगबलसे उत्पन्न रूपवाली सेवा करती आभूषणों सहित स्त्रियें कामादिकको दिखाईं॥१२॥ वह देवताओंके सेवक मूर्तिमान लक्ष्मीके समान उन स्त्रियोंको देख उनकी गंधसे मोहित हो उनके रूप गुण उदारतासे इनकी शोभा दर्प सब जाता रहा ॥ १३ ॥ तब देवोंके देव प्रभु भगवान् वासुदेव हँस कर नम्र हुए कामादिक देवताओंसे बोले कि, इन स्त्रियोंमेंसे किसीको तुम वरो, यह सुनकर देवताओंने कहा

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ॥ गंधेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादायनत्वा तं सुरवंदिनः ॥ उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥१५॥ इन्द्रमानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवदद‌च्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥

कि, हम तुच्छ हैं, कहां ऐसी स्त्रियें, कहां हम ? तब नारायण बोले कि तुम्हारे समान जो हो उसे ग्रहण करो तब कामादिक देवताओंने फिर कहा कि हे महाराज ! इनमें हमारे समान एक भी नहीं है. भगवान्ने कहा कि, एक तो तुम लो, तुम्हारे स्वर्गका भूषण होगी ॥१४॥ तब कामादिक देवता भगवान् नरनारायणकी आज्ञा मान अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको ले प्रभुको नमस्कार कर स्वर्गको चले गये ॥१५॥ स्वर्गमें जाय देवराज इन्द्रको प्रणाम कर सभामें सब देवताओंके सुनते नारायणका बल कहा तब इन्द्र अति आश्चर्य मान. अत्यन्त भयको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ इन्हीं प्रभुने हंसावतार लेकर संपूर्ण आत्मयोग कहा, फिर एक दत्तात्रेय, एक सनकादिक, एक भगवान् ऋषभदेव,

हमारे पिता यह सब विष्णुरूप ही अपने अंशसे जगत्का कल्याण करनेको प्रगट हुए थे और इन्हीं विष्णुने एक समय हयग्रीव अवतार ले मधुदैत्यको मार वेदोंका उद्धार किया था ॥ १७ ॥ एक समय प्रलयके समुद्रमें मत्स्यरूप धारण कर मनु, पृथ्वी और औषधियोंकी रक्षा की थी, वाराह अवतार ले हिरण्याक्षको मार जलसे पृथ्वीका उद्धार किया, कूर्मावतार ले अमृत मथनेको अपनी पीठपर मंदराचल पर्वत धारण किया, इसके उपरान्त दुःखित होकर शरण आये हुए गजेन्द्रको ग्राहसे छुडाया ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजीके लिये काष्ठ लेने गये वहां गायके खुरके गढ़ेमें पानी भरा था, उसमें डूबने लगे तब इन्होंने बहुत स्तुति की, वहाँसे आत्मविद्यामें तत्पर ऋषियोंको छुड़ाया और वृत्रासुरके मारनेसे जो ब्रह्महत्या हुई थी उससे देवराज इन्द्रको छुडाया. अनाथ देवताओंकी स्त्रियें असुरोंके घरमें रुक रही थीं,

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौड हतो दितिज उद्धरतांभसः क्ष्माम् ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने
स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि
प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेंद्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥ देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे
हत्वांतरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥
निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबंध दशवक्त्रमहन्सलंकं
सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥

उन सबको अनेक अवतार लेकर छुड़ाया, फिर नृसिंहरूप धारण कर भक्तोंको अभयदान देनेके लिये हिरण्यकशिपुका वध किया ॥ १९ ॥ मन्वन्तरोंमें देवता और दैत्योंके संग्राममें देवताओंके लिये अपनी कलासे दैत्यपतियोंका संहार किया, सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा की और वामन रूप धरकर राजा बलिसे भीखके मिष इस पृथ्वीको लेकर देवताओंको दे दी ॥ २० ॥ परशुरामका अवतार ले इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहित किया, हैहयकुलके नाशको भृगुवंशमें अग्निरूप प्रगट हुए. उन्होंने ही फिर रामावतार लेकर समुद्र बाँधा और लंकापुरीमें स्थित परिवारसे राक्षसराज रावणका वध किया, जिनकी कीर्ति संसारके पापको नाश करती है, सोइ रघुनाथजी अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥

भूमिका भार उतारनेके लिये अजन्मा आप यादवकुलमें जन्म ले जो देवताओंसे भी न किये जायँ ऐसे कर्म करेंगे- पीछे यज्ञादिक करनेके अयोग्य दैत्योंको बौद्धरूप धर मोहित करेंगे, इसके उपरांत कलियुगके अन्तमें कल्कि अवतार लेकर शूद्रजातिके राजाओंको मारेंगे ॥२२॥ हे महाराज ! इस प्रकार महाभुज जगत्पति भगवान् वासुदेवके जन्म और कर्म अनन्त हैं, मैंने तो संक्षेपसे वर्णन किये॥२३॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां निमिजायंतेयसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा–पंचम हरिकी भक्ति विन, नरकी गति है कौन। सो सब वर्णन करत हौं, पूजन सेवन जौन ॥ १ ॥ राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जिनकी कामना नहीं छूटी वह पुरुष बहुधा भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते, इनकी क्या गति होगी ? सो कृपापूर्वक आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ तब आठवें चमस ऋषिने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! पहले परमपुरुषके मुखद्वारा सतोगुणसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओंसे सत रजसे क्षत्रिय हुए, ऊरुद्वारा रजोगुण तमोगुणसे वैश्य हुए, चरणद्वारा केवल तमोगुणसे शूद्र हुए और आश्रमसहित भिन्न २ वर्ण उत्पन्न हुए । २ ॥ अपना जन्मदाता पुरुष ईश्वरका इन वर्णोंके मध्य जो भजन नहीं करता और जान बूझकर निरादर करता है वह पुरुष वर्ण आश्रमसे भ्रष्ट होकर अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ॥ ३ ॥ कोई एक पुरुष इस प्रकारके हैं,जिनको हरिकथा सुनना बहुत कठिन है, किसी किसीको हरिका कीर्तन बहुत कठिन है,इस प्रकार

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छूद्रान्कलौ
क्षितिभुजो न्यहनिष्यदंते॥२२॥एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज
॥२३॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः॥४॥राजोवाच ॥ भगवंतं हरिं प्रायो न भजंत्यात्म
वित्तमाः॥ तेषामशांतकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः
सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥२॥ य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजंत्यवजानंति
स्थानाद्भ्रष्टाः पतंत्यधः॥३॥दूरे हरिकथाःकेचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकंप्या भवादृशाम्॥४॥

कितने एक द्विजलोग और स्त्रियें तथा शूद्रादिक जो भगवान् वासुदेवको न जाननेसे नहीं भजते, उनके ऊपर आप सरीखे ही कृपा करते है ॥ ४ ॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञोपवीतरूप दूसरे जन्मसे और वेदाध्ययनसे हरिभजनके उत्तम अधिकारी हैं,परन्तु तो भी वेदकी फलस्तुतिके वचनोंमें मोहित होकर जाननेपर भी भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते और कर्मोंमें आसक्त हो रहे हैं,इन अर्द्धदग्ध लोगोंके सुधारनेका कोई उपाय न होनेसे आप सरीखे पुरुषोंको उनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ कर्म करनेमें अकुशल मूर्ख अपनेको पण्डित माननेवाले अनम्र ऐसी मनोहर बातें कहते हैं कि जिनमें मोह उत्पन्न हो. वह यह है कि, यज्ञादिकोंका फल अक्षय होगा, न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलिनता है, न पराजय है और वचनसे उत्कंठित होकर कहते हैं कि, हम अप्सराओंसे विहार करेंगे, यह कहते हुए कर्ममें बँधे रहते हैं ॥ ६ ॥ उनको उस फलके भ्रमसे कर्ममें ही आदर होता है, उससे काम, क्रोध, मदादिक वृद्धिको प्राप्त होते हैं और यह भी कहा है

विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदांतिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यंत्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाः
स्तब्धा मूर्खाः पंडितमानिनः ॥ वदंति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥६॥ रजसा घोरसंकल्पाः कामुका
अहिमन्यवः ॥ दांभिका मानिनः पापा विहसंत्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥ वदंति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्य
सुखेषु चाशिषः ॥ यजंत्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नंति पशूनतद्विदः ॥ ८॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया
त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनांधधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यंति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥

कि, रजोगुणसे राग द्वेष उत्पन्न होते हैं, उनसे अभिचारके कर्मोंपर मन होता है तब वह घोर संकल्पी महातृष्णावाले सर्पके समान क्रोधी महाअभिमानी दुष्ट स्वभावसे अधजले लोग नारायणके भक्तोंको हँसते हैं ॥७॥ जो सदा स्त्रियोंकी ही सेवा करते हैं, वृद्धोंकी सेवा नहीं करते, केवल मैथुनमें ही सुख माननेवाले अतिथिकी पूजा रहित घरोंमें रहकर मनके मनोरथवाले लोग कहा करते हैं कि, आज मैंने यह पाया, यह मनोरथ फिर प्राप्त करूंगा और जो कदाचित् किसी देवताकी पूजा करें तो अपने स्वार्थके लिये पशुकी हिंसा करते हैं,न कुछ विधि न दक्षिणा, न अन्नदान करें ऐसे मूर्ख हैं, जो हिंसादोषको नहीं जानते ॥ ८ ॥ धन, ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मोंसे उनको गर्व उत्पन्न होता है, इससे मन्दबुद्धि दुष्ट ईश्वरसहित साधु परमेश्वरके भक्तोंका निरादर करते हैं ॥ ९ ॥

यह दुष्ट पुरुष वेदके अर्थको नहीं जानते. वेद कहते हैं कि,यद्यपि सब देहधारियोंमें यह आत्मा सदा आकाशकी भाँति व्याप रहा है और अपने प्रिय ईश्वरको फिर वेद प्रगट बताते हैं परन्तु तो भी यह मूर्ख नहीं सुनते, अपने मनोरथोंकी ही बातोंमें वाद विवाद करते हैं ॥ १० ॥ तहाँ पूर्वपक्ष कहते हैं कि, स्त्रीसंभोग तो कहा है कि रजस्वला होनेपर मैथुन करे, देवताका बचा हुआ भोजन करे फिर तुम क्यों निन्दा करते हो ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि, लोकमें स्त्रीप्रसंग मांसभक्षण और मदिराका सेवन नित्य है और विषयासक्तोंको अनुराग स्वभावसे ही

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां प्रवदंति वार्तया ॥ १० ॥ लोके व्यवायाऽऽमिषमद्यसेवा नित्यास्तु जंतोर्नहि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञ सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशांतिः ॥ गृहेषु युंजंति कलेवरस्य मृत्यु न पश्यंति दुरंतवीर्यम् ॥ १२ ॥

प्राप्त है, फिर कुछ विधि नहीं, बस एक यही चाहिये और जहां विधि कही है तहाँ ऋतुकालके दिन स्त्रीसंग करे, यज्ञमें ही मांस मद्य ग्रहण करे, और दिन न करे इस नियमसे करे, परन्तु दिनका निषेध किया है, इसे विषयी मूर्ख लोग नहीं समझते. जो कामी अरुचिसे अथवा द्वेषसे स्त्रीप्रसंगादिक करते हैं उनका यह नियम है और जिनके यह कामना नहीं उनका नियम नहीं. वेदका अभिप्राय तो सब दिन छुड़ानेका ही है. उसे मूर्ख नहीं समझते * ॥ ११ ॥ धर्म करना ही धर्मका फल है, क्योंकि धर्मानुष्ठान करनेसे परोक्ष(नहीं दीखनेवाला) ज्ञान और

---

* दृष्टान्त–वास्तवमें उसका तात्पर्य यह है, जैसे किसीका लडका खेलमें अत्यन्त मतवाला हो और वेश्याके घर दिनरात पडा रहता हो और पढनेमें उसकी रुचि न हो तो उसके पिताको कहना चाहिये कि,तू प्रातःकाल उठकर तो वेश्याके घर जाया कर फिर एक घंटा भर खेलाकर और जो तू प्रातःकाल वेश्याके घर नहीं गया और एक घंटाभर न खेला तो मैं तुझको बहुत मारूंगा क्योंकि इन दोनों कामोंसे दो घंटेमें निश्चिन्त होकर फिर अपना चित्त कहीं इधर उधर मत भटकाना और जो फिर भटकावेगा तो पिटेगा, यह वाक्य निवृत्तिका निरूपण करता है. इसी प्रकार वेद भी निवृत्तिका निरूपण करता है प्रवृत्तिका निरूपण नहीं करता, जो मनुष्य समीप आनेपर भी ऋतुस्नात भार्यासे प्रसंग न करे, तो गर्भहत्याका जो महापाप होता है, उस मनुष्यको लगता है, अनेक श्रुतियोंके वचन तो यह हैं कि मनमें कामना होनेपर भी स्त्रीके विषे अरुचि अथवा द्वेषादिक होनेसे उसके साथ प्रसंग न करे, ऐसे जानना॥

तत्काल शांतिदायक अपरोक्ष ज्ञान दोनों प्राप्त हो जाते हैं, ऐसे सुखदायक धनको यह पुरुष देहादिकके लिये घरोंमें वृथा खो देते हैं, न तो इसका विचार करते हैं और न शिरपर घूमती हुई मृत्युको देखते हैं ॥ १२ ॥ और वेदका तात्पर्य नहीं जानते कि, ऋतुके दिन भी स्त्रीप्रसंग गर्भाधानहीको कहा है, कुछ यथेष्ट कामभोगको नहीं कहा और सुरापान भी नहीं कहा है, आघ्राण कहा है, पशुकी हिंसा देवताके लिये करै अपने लाभसे न करै, ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्तिसे न करै इस बातको यह मूर्ख नहीं जानते ॥ १३ ॥जो इस धर्मको नहीं जानते सो असाधु अनम्र हैं, वैसे ही अपनेको साधु करके मान लेते हैं, विश्वाससे पशुओंका वध करते हैं और कहते हैं कि, इससे मनोरथ सिद्ध होगा,

यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा॥एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम्॥१३॥ये त्वनेवंविदोऽसंतः स्तब्धाः सदभिमानिनः॥पशून्द्रुह्यति विस्रब्धाः प्रेत्य खादंति ते च तान्॥१४॥द्विषंतः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम्॥ मृतके सानुबंधेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतंत्यधः॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम्॥ त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयंति ते॥ १६ ॥ एत आत्महनोऽशांता अज्ञाने ज्ञानमानिनः॥ सीदंत्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः॥ १७ ॥

1106

परन्तु ऐसा कहा गया है कि,इस जन्ममें उसका मांस यह खातेहैं,अगले जन्ममें वह इनका मांस भक्षण करेगा,इसलिये इसका नाम मांस है॥ १४॥ मृतक समान अपने और पुत्रादिकोंमें स्नेहसे बद्ध हो पराये भी देहोंमें विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसे जो पुरुष द्वेष करते हैं, वह मरनेके पीछे नरकमें पड़ते हैं ॥ १५ ॥ जो अज्ञ हैं, वह ज्ञानी पुरुषोंकी कृपासे संसारसागरको तर जाते हैं और जो मध्यवर्ती हैं सो नरकमें गिरते हैं. अधिक क्या कहैं, जो २ तत्त्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुए, मूढ़ताको ही प्राप्त हुए और अपने स्वार्थके ही लिये धर्म, अर्थ, कामादिक करे वह पुरुष वारंवार जन्म मरणको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष आत्मघाती व अशांत हैं, अज्ञानको ही ज्ञान मानते हैं और कृतकृत्य

---

१ अत्र मनुः—मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः।

नहीं हुए, सो कालसे नष्टमनोरथ हो दुःख ही पाते हैं॥१७॥ और जो पुरुष भगवान् वासुदेवसे विमुख हैं, वह अतिश्रमसे गृह, पुत्र, मित्र, धन, सम्पूर्ण वस्तुको प्राप्त होकर इच्छा न रहनेपर भी नीच योनि अन्धतममें पड़ते हैं* ॥१८॥ राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आपने जो सब

हित्वाऽऽत्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो विशंत्यनिच्छंतो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥१९॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ॥ नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते॥ २० ॥

त्यागकर केवल भगवान् नारायणकी भक्ति करनेको कहा सो यह भगवान् किस समयमें, कैसे वर्णके, कैसी आकृतिके, कौनसे नामसे और किस विधिसे लोकोंमें पूजे जाते हैं सो मुझे भलीभाँति समझाकर आप कहिये॥१९॥तब करभाजन ऋषीश्वर नौवें प्रश्नका उत्तर देते हैं कि, हे राजन् !

---

* शंका-राजा जनकने मुनियोंसे भगवान्का भजन और सेवन आदि सब कर्म, युग युगके अलग २ बूझे कि, सतयुगमें किस प्रकारका भजन सेवन होता है और त्रेतामें, द्वापरमें और कलियुगमें किस प्रकारका भजन और सेवन होना चाहिये? और मुनि भी चारों युगोंमें भिन्न भिन्न पूजन भजन आदि करते हैं, यह बड़ा अनुचित कर्म है. किसलिये कि, शास्त्रमें भगवान् सर्वव्यापी निरञ्जन लिखे है. भिन्न भिन्न कर्म तो जीवोंके लिये होते हैं ईश्वरके नहीं होते यह बड़ी शङ्का है ॥

उत्तर-भगवान् तो भक्तवत्सल और दीनदयालु है. त्रिलोकीमें जो चराचर प्राणी हैं. उन सब प्राणियोंमें भगवान् किसी युगमें भी भिन्न भाव नहीं रखते. सबको एक समान मानते हैं ऐसे कृपासिंधु हैं. परन्तु मनुष्योंमें अनेक प्रकारके जीव हैं. जितने मनुष्योंके देह है उतने ही जीव हैं इसलिये सब जीवोंमें भगवान्की भक्ति अलग अलग होती है, सब युगोंमें कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है, कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है और भगवान्के नाम और चरित्रोंका भी अन्त नहीं, जिस नामपर जिस प्राणीकी भक्ति हुई उसी नामको जपने लगा, युग युगमें भगवान् उस अपने नाम जपने वाले प्राणीकी रक्षा कैसे करते हैं ? जैसे गाय अपने वत्सकी रक्षा करती है और राजा जनक भी भगवान्की भक्तिकी लीला करके उन्मत्त हो रहे थे, भगवान्की भक्तिकी वृद्धि होनेके लिये युग युगमें भिन्न भिन्न भगवान्के नाम और सेवन बूझने लगे, भिन्नभाव मानकर नहीं बूझा ॥

सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चार युगोंमें नाना वर्ण, नाम, आकारयुक्त भगवान् केशव अनेक विधिसें पूजे जाते हैं ॥ २०॥ सतयुगमें शुक्लवर्ण चतुर्भुज, जटा धारण करे, वल्कल वस्त्र पहरे, काले मृगका चर्म यज्ञोपवीत रुद्राक्ष दण्ड कमण्डलु धरें, ब्रह्मचारीके रूपसे दर्शन देते हैं॥२१॥ इसयुगमें मनुष्य सब शांत,निर्वैर,सुहृदय,समदृष्टि, शम,दम और ध्यानसे देवताको पूजते हैं ॥ २२॥ उस कालमें इन नामोंसे भगवान् हरि गाये जाते हैं. हंस, सुपर्ण, वैकुंठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा ॥ २३ ॥ त्रेतामें आरक्त, चार भुजा, तीन मेखला धारण करे,सुवर्णके समान केशवाले, वेदत्रयीमय मूर्ति और स्रुक् स्रुवा आदि चिह्नोंको धारण करते हैं ॥ २४ ॥ जो अतिधर्मात्मा

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलांबरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दंडकमंडलू ॥ २१ ॥ मनुष्यास्तु तदा शांता
निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ यजंति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥ हंसः सुपर्णो वैकुंठो धर्मो योगेश्वरो मनुः ॥
ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा
स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ॥ यजंति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥
॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृषाकपिर्जयंतश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवाञ्छ्यामः
1107 पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादिभिरंकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥
यजंति वेदतंत्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं
भगवते नमः ॥ २९ ॥

वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं वे सर्व वेदरूप भगवान् वासुदेवका तीनों वेदोंके कर्मसे त्रेतामें पूजन करते हैं ॥ २५ ॥ और विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय यह नाम गाये जाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापरमें भगवान् वासुदेव श्याममूर्ति, पीतांबर धरे श्रीवत्सादि चिह्न और कौस्तुभादिक लक्षण धारण करते हैं॥ २७ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य ईश्वरके जाननेकी इच्छा रखते हैं वह मनुष्य उस समय महाराजोंके लक्षण संयुक्त उन महापुरुषकी वेदमन्त्र और आगमके मन्त्रोंसे पूजा करते हैं ॥ २८ ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप

भगवान्को नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ नारायण, ऋषि, पुरुष, महात्मा, विश्वेश्वर, विश्वरूप, सर्वभूतोंके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार द्वापरमें भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हैं, अब नाना आगम मार्गोंसे कलियुगमें भी जैसे पूजे जाते हैं, सो सुनो ॥ ३१ ॥ कलियुगमें कृष्णवर्ण, कांतिसे अतिनिर्मल और जैसे नीलमणि होती है, इसी प्रकार अंग हृदयादि उपांग कौस्तुभ तथा सुदर्शनादिक अस्त्र पार्षद सुनन्दनादिक नामका कथन और स्तुति आदिक प्रधान पूजासे अतिबुद्धिमान् मनुष्य भगवान् हरिकी पूजा करते हैं ॥ ३२ ॥ इसके उपरांत स्तुति करते हैं कि, हे प्राणियोंके रक्षक ! हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविन्दको नमस्कार है, जो चरणारविन्द सदा ध्यान करनेके योग्य हैं, इंद्रिय कुटुम्बके संगसे अनिष्टको दूर करते हैं, मनके अभिलाष पूर्ण करते हैं, गंगादिक तीर्थके स्थानभूत हैं, शिव ब्रह्मादिकसे स्तुति

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवंति जगदीश्वरम् ॥ नानातंत्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजंति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिंचिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥

किये हुए हैं और जो दीन होकर शरण जाता है, उसके रक्षक हैं. सेवककी पीड़ाको दूर करते हैं और संसारसागरसे तरनेको नौकारूप हैं ॥ ॥ ३३ ॥ हे धर्मात्मन् ! हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप जो देवताओंसे भी न त्यागी जाय, देवता जिसकी अभिलाषामें ही रहते हैं, ऐसी राज्य लक्ष्मी पिताकी आज्ञासे छोड़कर धर्मकी रक्षा करनेके लिये वनको चले गये और प्रिय सीताके प्रेम तथा वचनसे मायामृगके पीछे दौडे, इन भक्तप्रिय आपके चरणारविन्दोंको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजा जनक ! इस प्रकार चारों युगमें ही नाम रूप भेदसे उस २ युगके मनुष्योंसे कल्याणके देनेवाले हरि भगवान् पूजे जाते हैं ॥ ३५ ॥

अब चारों युगोंमें कलियुग श्रेष्ठ है क्योंकि जो श्रेष्ठ, गुणज्ञ सारग्राही हैं, वह कलियुगकी स्तुति करते हैं, और युगोंमें ध्यान, यज्ञ, पूजा आदिसे जो फल होता है, सो सब स्वार्थ कलियुगमें भगवान्के भजन कीर्तनमात्रसे ही प्राप्त हो जाते हैं॥ ३६ ॥ यह प्राणी देहके अभिमानसे संसारमें भ्रमण करते हैं, उनको इससे परम और लाभ नहीं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! संतयुगादिकी प्रजा कलियुगमें जन्म पावैं, ऐसी इच्छा करते हैं, इस कारण निश्चय ज्ञात होता है कि,कलियुगमें सब जीव नारायणपरायण होंगे ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! कहीं कहीं महाराष्ट्र देशमें भी भक्त होंगे और द्रविडदेशमें भी बहुत होंगे, जहां ताम्रपणा नदी कृतमाला और पयस्विनी है ॥ ३९ ॥ कावेरी आदि परमपवित्र नदियें हैं

कलिं सभाजयंत्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ न ह्यतः परमो लाभो
देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो विंदेत परमां शांतिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छंति
सम्भवम् ॥ कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः॥३८॥क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी
नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबंति जलं तासां मनुजा
मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भविष्यन्ति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥४० ॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी
च राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुंदं परिहृत्य कर्तम् ॥४१॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्य
भावस्य हरिः परेशः॥ विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

इनका जल पान करते हैं. हे मनुजेश्वर ! वह मनुष्य निर्मल चित होकर श्री भगवान् वासुदेवमें बहुधा भक्त हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य सर्वथा भेद छोड़कर केवल शरणदाता मुकुन्द भगवान्के शरण जाते हैं, उनपर देवता, ऋषि, भूत, कुटुम्बी मनुष्य और पितरोंका ऋण नहीं रहता. हे राजन् ! उनके लिये पञ्चयज्ञादिकोंके करनेकी भी प्रबल विधि नहीं जो सर्वत्र एक हरिको ही देखते हैं ॥ ४१ ॥ यहां यह सन्देह राजा जनकने किया कि, हे महाराज ! जो कि सब कर्म छोड़कर केवल भजन करै तो कर्म छोड़नेका पाप लगेगा. इसका समाधान यह है कि, जो सब देवादिकोंको छोड़कर एक हरिके ही चरणारविंदको भजन करते हैं उनको विकर्म सर्वथा नहीं होते, जो कदाचित् प्रमादसे हो तो उसके

हृदयमें भगवान् हरि बैठ जाते हैं, यह यमादिकोंके भी नियंता हैं और उनके भी सब कर्म नाश करते हैं इससे भगवान्को भक्त ही प्यारे हैं ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरोंका संवाद कहकर श्रीनारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इस प्रकार भगवद्धर्म सुन संतुष्ट होकर राजा जनकने अपने गुरुओंसहित जयंतीपुत्र योगीश्वरोंकी पुजा की ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त वह योगीश्वर संपूर्ण मुनि सिद्ध लोगोंके देखते देखते अंतर्धान हो गये और राजा जनक भी उन्हीं धर्मोंके करनेसे परमगतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि, हे महाभाग वसुदेव ! तुम भी यह वैष्णवधर्म करो, इन धर्मोंमें श्रद्धा करनेसे निःसंग परम मंगलको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकोंकी रीतिसे सब तुमसे कहा है,परन्तु हे वसुदेवजी ! तुम तो विना ही शास्त्रके क्रम कृतार्थ हो, तुम दोनों स्त्री पुरुष परमभागवत हो, तुम्हारे यशसे सब जगत् पूर्ण हो रहा है, क्योंकि तुम्हारे यहां स्वयं भगवान् ईश्वरने आकर अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ तुमको और लोगोंके समान भ्रान्ति, सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णव धर्मोंसे चित्त शुद्ध करना नहीं पडेगा. क्योंकि दर्शन, आलिंगन, आलाप, शयन, आसन, भोजनसे श्रीकृष्णमें पुत्रस्नेह करनेसे तुम्हारा भगवान् ईश्वर, आत्मा पवित्र हो गया ॥ ४७ ॥ शिशुपाल, पौण्ड्रक तथा शाल्व आदि राजा शय्या आसन आदिमें जिसका वैरसे भी ध्यान कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति चिंतवन आदिसे तदाकार हुई बुद्धिसे सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हो गये, तो जो पुरुष स्नेहसे इनमें चित्त रखते हैं, वह सारूप्य गतिको प्राप्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ४८ ॥

नारद उवाच ॥ धर्मान्भागवतानित्थं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः ॥ जायंतेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत ॥
॥४३॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥४४॥ त्वमप्येतान्महा
भाग धर्मान्भागवाञ्छ्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसंगो यास्यसे परम् ॥ ४५॥ युवयोः खलु दंपत्योर्यशसा
पूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६ ॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मा
वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोक
नाद्यैः ॥ ध्यायंत आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

अहो ! जो पुत्रस्नेह मुक्तिका कारण है तो सब ही मुक्त होने चाहिये तो कहते हैं कि, हे वसुदेवजी ! तुम इनपर पुत्रबुद्धि मत रक्खो, यह तो सर्वात्मा ईश्वर हैं, मायासे मनुष्याकार दिखाई देते हैं, अलौकिक ऐश्वर्य इनका गुप्त है,यह श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी परम पुरुष हैं ॥ ४९ ॥ यह पृथ्वीका भाररूप राजाओंके मारनेको और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेको तथा मोक्ष देनेको अवतार लेकर लोकोंमें यश विस्तार करते हैं ॥ ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यह सुन महाभाग वसुदेव देवकीने अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हो अपने आपका मोह स्नेह छोड़ दिया ॥ ५१ ॥ यह इतिहास अति पुण्यजनक है,जो पुरुष नेमसे इसे मनमें धारते हैं, सो इसी देहमें मोह दूर कर

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहंतवे गुप्तये सताम् ॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्त्यै यशो लोके वितन्यते ॥ ५० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ॥ देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा०म०एकादशस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इंद्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः

1109

सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥

ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० महापु० एकादशस्कन्धे भाषा० निमिजायंतेयसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा–छठयेंमें ब्रह्मादिकन, विनय करी कर जोरि । मोहिं संग लीजे प्रभू, उद्धव कही निहोरि ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीसे नारदजी कहकर चले गये. इसके उपरान्त द्वारकामें ब्रह्मा,सनकादिक और संपूर्ण देवता मिलकर आये ॥ १ ॥ सृष्टिभूतोंके ईश्वर महादेव भूतगणोंसे मिलकर देवराज इन्द्र आये, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अंगिरा, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्य ॥ २ ॥ गंधर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर, किन्नर यह सब श्रीकृष्णचंद्रका दर्शन करनेको द्वारकामें आये ॥ ३ ॥

जिस देहसे भगवान्‌ने मनुष्यलोकमें परमसुन्दर मूर्तिसे सब लोगोंका पाप दूर करनेवाले यज्ञका विस्तार किया; उसी मूर्तिके देखनेको आये ॥४॥ अत्यन्त स्वरूपवान्, धनी पुरुषोंसे अति समृद्ध द्वारका आय अतृप्तरूप देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त नंदनवनके फूलोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा और विचित्र पद तथा अर्थयुक्त वाणियोंसे जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ देवता बोले कि, हे नाथ ! जो जीव कर्मरूप बडे पापसे छूटनेको बुद्धि; प्राण, इन्द्रिय, मन, वचनके भावयुक्त हो जिनका हृदयमें सदा चिंतवन करते हैं, परन्तु तो भी दर्शन नहीं पाते और हम तुम्हारा प्रगट दर्शन कर रहे हैं, हमारा अहोभाग्य है, इसलिये हम तुम्हारे चरणारविन्दको बारबार नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ तहां हरि यह एक तर्क करते हैं कि, मोक्षके लिये मेरे चरणारविन्दका चिंतवन क्यों करते हो ? क्योंकि मैं तो अनेक दुष्ट कर्म करता हूं, मेरा तो कर्म छूटता ही नहीं तो तुम्हारे कर्म क्या छुडाऊंगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, हे अजित ! तुम ऐसी बात मत कहो, क्योंकि जो औरोंपर मनसे भी न जाने जायँ ऐसे महतत्त्वादि प्रपंचको त्रिगुण अपनी मायासे आपमें ही उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहार करते हो, परन्तु तो भी इन कर्मोंमें लिप्त नहीं होते तुम मायाके गुणोंमें नियंतास्वरूपसे स्थित हो, परन्तु रागादिरहित हो और नित्य अपने आनंदस्वरूप विषे मग्न रहते हो ॥ ८ ॥ तो मुझको कर्म करनेका क्या प्रयोजन है ? मैं तो आत्माराम हूँ तो कहते हैं कि, हे स्तुति

द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥
तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥
स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयंतो यदूत्तमम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥
देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदारविंदं बुद्धींद्रियप्राणमनोवचोभिः ॥ यच्चिंत्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥
त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुंपसि तद्गुणस्थः ॥ नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥
शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

योग्य । हे परमश्रेष्ठ देव ! विषयी पुरषोंके चित्त विद्या, श्रवण, अध्ययन, दान, तप और कर्म करनेसे वैसे शुद्ध नहीं होते जैसे साधु पुरषोंके चित्त तुम्हारे यश श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ९ ॥ अब प्रार्थना करते हैं कि, तुम्हारे चरणकमल हमारी अशुभ वासना जलानेके लिये अग्निरूप हों, जिन चरणोंका संपूर्ण मुनि अत्यन्त प्रेमपूर्वक कोमलहृदय हो मोक्षके कारण ध्यान करते हैं और भक्तजन साहूप्य मुक्तिकी इच्छासे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहसे तीन कालमें पूजा करते हैं और इनके बीचमें भी जो ज्ञानी हैं, वह इन्हींसे स्वर्गको उल्लंघन करके वैकुण्ठ जानेके लिये पूजते हैं ॥ १० ॥ हे ईश ! सदा तुमको यज्ञ करनेवाले कर्ममार्गमें हाथ जोड यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधिसे हविको लेकर चिंतवन करते हैं और योगिराज अध्यात्मयोगसे तुम्हारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य जाननेका चिंतवन करते हैं और परम

स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ॥ यः सात्त्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहे
ऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ॥
अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं
संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥
केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः
पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥

भक्त सर्वत्र पूजते हैं ॥ ११ ॥ हे विभो ! तुम्हारे सब अंगोंमें व्याप्त जो वनमाला है इससे भगवती लक्ष्मीजी सौतकी समान ईर्षा रखती हैं और यह वनमाला भक्तोंने अर्पण करी है, इसी कारणसे तुम इसको धारण करते हो उसी मालासे पुजाको ग्रहण करते हो, तुम्हारे चरण हमारी विषयवासनाके जलानेको अग्नि हैं ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! जब तुम त्रिविक्रमरूप हुए, तब आपने बलिराजको बाँधा, तब तुम्हारा एक चरण सत्यलोकमें रहा सो वह चरण जैसे विजयपताका हो इसी प्रकार दिखाई देता था और उसी चरणसे गंगाजीके तीन प्रवाह छूटे सोप ताका हुई, चरण ध्वजदण्ड हुआ सो सुर असुर सबकी सेनाको भय अभयका देनेवाला हुआ, देवता और साधुओंको अभयका दाता स्वर्ग दिया, असुर दुष्टोंको

भयदायक अधोगति दी वह आपका चरण हम कि जो भजन कर रहे हैं, उनके पापको दूर करो और हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ यदि कहो कि युद्धमें देवता,दैत्य परस्पर जीतते हैं,हारते हैं, मेरा वहां क्या निमित्त है ? तो कहते हैं कि, ब्रह्मासे आदि लेकर देहधारी सब जगत् परस्पर युद्धसे जब पीड़ित होते हैं तब तुम्हारे वशमें आते हैं,इसलिये कालरूप तुम हो और कालके अधीन सब है इससे जय पराजय सब आपके ही अधीन हैं, जैसे नाथके अधीन बैल है, इसीप्रकार सब तुम्हारे अधीन हैं,तुम प्रकृतिपुरुषसे भी परे हो, पुरुषोत्तम हो, तुम्हारे चरण हमको सुखकारी हो ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! तुम इस जगत्के उत्पत्ति,पालन और प्रलयके कारण हो और प्रकृतिपुरुष महत्तत्त्वके भी नियंता हो,यह काल संवत्सर है सो चक्ररूप है,इसके ग्रीष्म,वर्षा,शरद् तीन नाम हैं,सबका नाश करनेको प्रवृत्त है,इसका वेग अत्यन्त गम्भीर है सो काल तुम्हारा ही रूप है इसलिये

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवंति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महांतमिव गर्भममोघवीर्यः ॥ सोऽयं तयानुगत आत्मन आंडकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥ तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ॥ अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

तुम उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥ अब सृष्टिका प्रकार कहते हैं, प्रथम तुमसे सफलवीर्य एक पुरुष उत्पन्न होता है, सो तुमसे शक्तिको प्राप्त हो मायासे मिलकर विश्वका गर्भरूप महत्तत्त्व उत्पन्न करता है और वही महत्तत्त्व मायासे मिल आत्मासे यह स्वर्णमय अण्डकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त सृजता है ॥१६॥ इसलिये सब तुमसे ही प्रगट हुआ है और इसी कारण इस स्थावरजंगमरूप विश्वके अधीश तुम हो,हे सम्पूर्ण इन्द्रियोंके पति ! मायासे उत्पन्न हुई इंद्रियवृत्ति करके विषयभोग करते भी तुम निर्लेप हो, यद्यपि योगीश्वर योगसे विषयको छोड़ देते हैं, परन्तु तो भी डरते हैं कि,कदाचित् हमको विषयवासना उत्पन्न न हो जाय क्योंकि तुम प्रपञ्चसे मिल रहे हो और विषयसम्बन्ध नहीं यह, तुम्हारा

विशेष धर्म है॥ १७॥ क्योंकि जो सोलह हजार (१६०००) स्त्रियें अपने मन्दं हास्य सहित चितवनके कटाक्षसे दिखाये अभिप्रायसे मनको हरनेवाली भूमण्डलसे प्रेरे सम्भोगमन्त्रोंके विषे निपुण, कामके बाण और कामकी कलासे भी वशमें न कर सकीं तो तुम विषयोंसे निर्लिप्त ही हो ॥ १८ ॥ इसलिये तुम्हारी अमृतरूपी कथा,कीर्तिरूप जलभरी नदी और तुम्हारे चरणोदकरूपी गंगा, यह दोनों त्रिलोकीका पाप दूर करनेको समर्थ हैं. श्रवणेन्द्रियसे वेदमें गाये तुम्हारे यशके सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं, गंगामें स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, इस प्रकार जो पुरुष धर्म जानते हैं सो इन दोनों तीर्थोंका सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार ब्रह्मा महादेव सहित देवताओंसे मिल स्तुति और

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येंद्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हंतुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमंगसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशंति ॥१९॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविंदं प्रणम्यांबरमाश्रितः ॥२०॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥ धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥२३॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वंतः कीर्तयंतश्च तरिष्यंत्यंजसा तमः ॥ २४ ॥

नमस्कार कर आकाशमें ही खडे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि, हे प्रभो ! हे सर्वांतर्यामी ! हमने भूमिका भार उतारनेके लिये प्रथम आपसे विनती की थी सो भार तुमने इसी प्रकार दूर किया॥ २१ ॥ संतोंमें धर्मस्थापन किया, साधुओंमें सत्य रक्खा और सबका पाप दूर कर दशो दिशाओंमें कीर्तिका विस्तार किया॥२२॥यदुवंशमें अवतार ले उत्तम रूप धर जगत्का हित करनेके लिये अतिउदार चरित्र और कर्म किये ॥२३॥ हे ईश ! जिन कर्मोंको कलियुगमें साधुजन श्रवण कीर्त्तन करके सुखपूर्वक संसारसागरसे तरेंगे ॥२४॥

हे विभो ! हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार लिये तुमको एक सौ पचीस (१२५) वर्ष बीत गये ॥२५॥ हे सर्वाश्रय ! अब तुमको कोई देव कार्य भी करना शेष नहीं है और यह तुम्हारा कुल भी ब्रह्मशापसे नष्ट हो रहा है॥२६॥ इसलिये यदि अब आपकी इच्छा हो तो अपने वैकुण्ठ धामको चलो. हे वैकुण्ठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर हैं, लोकसहित लोकपालोंकी रक्षा करो * ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे देव

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥ नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुंठकिंकरान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥ यदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥ लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥

ताओंके ईश्वर ! तुमने जो कहा सो मैंने मनमें धारण किया, तुम्हारा सब काम पूर्ण कर दिया और भूमिका भार उतारा॥२८॥परन्तु अभी यह यादवकुल बल, शूरता और श्रीसे अति उद्धत है, लोकको ग्रसा चाहता है, उसे भी जैसे महासमुद्रको वेला (तट) रोक रक्खे, उसी प्रकार

---

* शंका-भगवान्ने अनेक अवतार धारण करके पृथ्वीपर अनेक प्रकारके चरित्र किये, परन्तु पृथ्वीसे भगवान्को वकुण्ठधामके जानेके लिये किसी अवतारमें ब्रह्माने प्रार्थना नहीं की कि महाराज! आप अब परमधामको चलो ! और इन्द्रको तथा ब्राह्मणोंको ब्रह्माने अपने संग लेकर वैकुण्ठको चलनेके लिये श्रीकृष्णसे याचना क्यों किया कि, आप वैकुण्ठको चलो ॥

उत्तर-संसारको सुख देनेके लिये भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये, ऐसे ही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीकृष्णरूप धरकर मर्त्यलोकमें आये, जब श्रीकृष्ण मर्त्यलोकमें आये तब तारकनाम राक्षस वैकुण्ठपुरीको भगवान्से हीन देखकर दुःख देनेका बिचार करनेलगा आज दुःख दें कल दुःख दें,ऐसा विचार करते करते एक सौ चौबीस १२४वर्ष,दश १० महीने बीत गये, परन्तु जिस दिन निश्चय करके दुःख देनेको चला तो कुछ थोडा थोडा उत्पात वैकुण्ठमें हुआ, तब सुदर्शनचक्र तारकके मारनेके लिये उसके पीछे दौडा उस समय सुदर्शनके डरके मारे तारक भाग निकला उसी दिन ब्रह्माने विचार किया कि, आज दुष्ट राक्षसन वकुण्ठमें उपद्रव किया है, न जानिये क्या हो ? ऐसा विचारकर ब्रह्माने श्रीकृष्णसे वैकुण्ठ जानेके लिये प्रार्थना की ।

मैंने रोक रक्खा है॥२९॥जो मैं ऐसे गर्वसे उद्धत यादवके विशाल कुलका संहार किये बिना अपने लोकको चला जाऊंगा तो यह लोक मर्यादा रहित या यदुकुलसे नष्ट हो जायगा॥३०॥सो विप्रशापसे इस कुलके नाशका अब आरंभ किया है. हे ब्रह्मा ! इनको संहार करके मैं वैकुण्ठ जाऊंगा. हे निष्पाप ! तुम्हारे घर आऊंगा ॥३१॥ लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इस प्रकार वाणी सुनकर स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार कर देवताओंसे मिल अपने धामको चले गये ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त द्वारकापुरीमें बडे २ उत्पात होने लगे, उन्हें देखकर बडे वृद्ध

यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥ गंतास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनंक्ष्यति ॥ ३० ॥ इदानीं नाश आरब्धः
कुलस्य द्विजशापजः ॥ यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदंते तवानघ ॥ ३१॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तो लोकनाथेन
स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् ॥ सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥३२॥ अथ तस्यां महोत्पातान्द्वारवत्यां समुत्थितान् ॥
विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठंतीह सर्वतः ॥
शापश्च नः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमह
त्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषा
त्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोजयित्वोशिजो
विप्रान्नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥

1112

यादव इकट्ठे हुए, उन यादवोंको एकत्र देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ३३ ॥ कि, सब ओरसे यहां बड़े २ उत्पात उठते हैं और अपने कुलको ब्राह्मणोंका शापभी हुआ है॥३४॥इसलिये हे यादवो ! जो जीनेकी इच्छा है तो हमको यहां रहना नहीं चाहिये, अतिपुण्य प्रभासतीर्थको आज ही चलो, विलम्ब मत करो ॥३५ ॥जिस तीर्थमें स्नान करके दक्षके शापसे क्षयरोगसे ग्रसा चन्द्रमा पापसे छूटा और तत्काल फिर कलाओंकी वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥३६॥ हम भी वहां स्नान और पितरोंका तर्पण कर अनेक गुणसंयुक्त अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करवा ॥३७॥

श्रद्धासहित महान् सत्पात्रों विषे बीजबोय उन दानोंसे पापोंको तरैंगे,जैसे नावमें बैठकर समुद्रको तरते हैं ॥३८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजा परीक्षित ! इस प्रकारजब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दीतबसब यादव भगवान्की आज्ञामान चलनेका उद्यम करनेलगे तीर्थजानेकी इच्छासे रथ जुतवाने लगे ॥३९॥ हे राजन् ! उस समय यादवोंके प्रभासतीर्थ जानेका उद्यम देख और श्रीकृष्णके वचन सुन और घोर उत्पातोंको देख नित्य श्रीकृष्णके निकट रहनेवाले उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकांतमें निकट जाय जगत्के ईश्वरोंके ईश्वरको नमस्कार कर हाथ जोड कहने लगे ॥४१॥ हे देवदेवेश ! हे योगेश ! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन ! तुम्हारी ऐसी इच्छा जानी जाती है कि, इस कुलका संहार कर निश्चयसे भूलोकको

तेषु दानातिपात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महांति वै ॥ वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनंदन ॥ गंतुं कृतधियस्तीर्थं स्यंदनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्त उपसंगम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ प्रांजलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच ॥ देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि॥४३॥तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भास्त्यजेमहि ॥४५ ॥

छोडना चाहते हो. यद्यपि तुम ईश्वर संपूर्ण कार्य करनेको समर्थ हो,परन्तु तो भी विप्रशापको निवारण नहीं किया ॥४२॥ हे केशव ! हे नाथ ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोडनेको असमर्थ हूँ अर्थात् आधे क्षणको भी नहीं छोड सकता इसलिये मुझे भी अपने धामको ले चलो॥४३॥हे कृष्ण ! तुम्हारी लीला मनुष्योंको परममंगलदायक है, श्रवणेंद्रियको अमृतरूप है, उसका आस्वाद ले मनुष्य औरकी इच्छाको छोडतेहैं,हम तुम्हारे दिन रात्रिके सेवक हैं ॥४४॥ शयन, आसन, गमन, स्नान, क्रीडा, भोजन आदि और भी क्रियाओंमें सदा संग रहे हैं सो हम भक्तप्रिय आत्मारूप

तुमको कैसे छोड सकते हैं॥४५॥ तुम्हारे समीप तुम्हारे प्रसादकी माला सुगंध चन्दन और प्रसाद वस्त्रसे चर्चितहोकर बाह्य शुद्ध होते हैं,पीछे तुम्हारे उच्छिष्ट महाप्रसाद भोजनेसे अन्तर शुद्ध करके तुम्हारीमायाको जातते हैं॥४६॥ हे महायोगिन् ! जो केवल वायु भक्षण करकेरहते हैं वह दिगंबर हैं, शमयुक्त हैं,जितेन्द्रिय हैं,संन्यासी हैं, निर्मलचित्त हैं,आत्मविद्यामें जिनने श्रम किये हैं वे ऋषि अनेक क्लेशसे तुम्हारे वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ हे महायोगीश्वर ! हम तो तुम्हारे भक्तोंके संग तुम्हारी ही वार्ता करते सकल कर्मोंमें भ्रमते भी तुम्हारी दुस्तर मायाको तरैंगे ॥४८॥ मनुष्यलोकको आश्चर्यदायक तुम्हारे कर्म वचन गाते हास्य चितवन हास्यकी वार्त्ता और जो कुछ मनुष्यलोकमें लीला की है,

त्वयोपभुक्तस्रग्गंधवासोलंकारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वाताशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्द्ध्वमंथिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यांति शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७॥ वयं त्विह महायोगिन्भ्रमंतः कर्म वर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः॥ ४८ ॥ स्मरंतः कीर्तयंतस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलीर्यन्न लोके विडंबनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः ॥ एकांतिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० स्कं० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकांक्षिणः ॥ १ ॥

उसका स्मरण कीर्तन करैंगे, इससेही तर जायँगे, मैं यह आपके भयसे प्रार्थना नहीं करता हूँ, परन्तु आपका संग नहीं छोड़ा जाता ॥४९॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजापरीक्षित् ! इस प्रकार उद्धवजीकी विनती सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा निकटवर्ती परमप्रिय भक्त उद्धवजीसे बोले॥५०॥इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां ब्रह्मादिस्तुतिनाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ दोहा-हरि विवेककी सिद्धिको, वरणों जस इतिहास । सो सप्तम अध्यायमें, वर्णत सहित हुलास ॥१॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोलेकि हे महाभाग उद्धव! तुमने जो मुझसे कहा,सोसब मुझे करना है, क्योंकि ब्रह्मा, महादेव और लोकपाल यह सब स्वर्ग जानेकेलिये मेरी प्रार्थना कर गये हैं ॥१॥

मैंने यहाँ सब देवकार्य सिद्ध किया, जिसके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे बलदेवसहित अवतार लिया था ॥ २ ॥ हमारा कुल शेष रहा है सो भी विप्रशापसे जल रहा है, इससे निश्चय ही परस्परकी लड़ाईसे नष्ट हो जायगा और आजसे सातवें दिन इस द्वारकापुरीको समुद्र डुबावेगा ॥ ३ ॥ जिस दिन मैं इस लोकको छोडूंगा उस दिन यह मंगल नष्ट हो जायगा. हे उद्धव ! इसके उपरान्त फिर कलियुग भी प्रवृत्त होकर सब धर्मको दूर करेगा और थोडेही कालमें इस लोकका निरादर करेगा॥ ४॥ हे उद्धव। मेरे त्याग किये महीतलविषे तुम मत वास करना, क्योंकि

मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ॥ यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः॥२॥ कुलं वै शापनिर्दग्धं नक्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ तर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः ॥ भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः ॥ ४ ॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक्समदृग्विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥ पुंसो युक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

कलियुगमें मनुष्योंकी प्रीति अधर्ममें होगी * ॥५॥ हे उद्धव ! तुम तो स्वजन, बन्धु और कुटुम्बका स्नेह छोड़ मेरे स्वरूपमें चित्त रख समदृष्टि होकर पृथ्वीमें विचरण करो ॥ ६ ॥ इस संसारमें दृष्टि मत रखना, क्योंकि वचन, नेत्र श्रवणादिक करके जो ग्रहण किया है सो सब झूठी मायाका रचा यह मनभी मिथ्या है, ऐसा जानो ॥७॥ विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषको वेदार्थ अनेक प्रकारसे मानते हैं सो भ्रमते हैं, गुण दोष

---

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवसे कहा कि, हम पृथ्वीको त्याग परमधामको जायँगे तब तुम पृथ्वीपर वास मत करना, तब श्रीकृष्णके वैकुण्ठ जानेके पीछे बद्रिकाश्रममें उद्धवने वास क्यों किया ?, उत्तर–वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, नैमिषारण्य, द्वारका, काशी, बद्रिकाश्रम इन सब क्षेत्रोंकी सात द्वीपोंकी पृथ्वीपर गिनती नहीं है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है. यह सब मोक्षभूमि हैं, सात द्वीपके सदृश भूमि नहीं, इसलिये बद्रिकाश्रममें उद्धवजीने वास किया।

संयुक्त हो कर्म, अकर्म, विकर्म भेद गुणदोषबुद्धिवालेको हैं, समदृष्टि आत्मज्ञानी को यह भेद नहीं ॥ ८ ॥ इसलिये इंद्रियोंके समूहको और चित्तको वश करके इस विशाल जगत्को अपने आपमें देखो, अपनेको परमेश्वरमें ब्रह्मरूपसे देखो ॥९॥ यदि कहो कि, विघ्न बहुत हैं, कैसे देखैं ? इसका उत्तर यह है कि, वेदके अभिप्रायका निश्चय और उसके अर्थका अनुभव मिलाय आत्माके ज्ञानसेही सन्तुष्ट और दीनता आदि भी आत्मरूप जानोगे तो कोई विघ्न न होगा और जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न हो तबतक वर्णके अनुसार कर्म करे अनुभव प्राप्त होनेपर विघ्नों से कुछ नहीं होता ॥ १० ॥ इससे यह न समझ लेना कि, "ज्ञानी मनुष्य यथेष्ट आचरण करें" क्योंकि जैसे बालक संकल्प. विकल्पसे

तस्माद्युक्तेंद्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ अत्मानुभवतुष्टात्मा नांतरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्योभयातीतो निषधान्न निवर्तंते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्यन्मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥

1114

रहित होनेपर भी कोई कर्म करता है, कोई नहीं करता; इसी प्रकार गुणदोषबुद्धिसे रहित हुआ यह पहले कर्मोंके संस्कारसे प्रवृत्त होता है, किन्तु न दोषबुद्धिसे बहुधा विहित कर्मको कर्त्ता है, न गुणबुद्धिसे ॥ ११ ॥ सब प्राणियोंका मित्र हो ज्ञान विज्ञानका निश्चयवाला हो सब विश्वको मेरा ही रूप समझ देखै वह पुरुष फिर कभी इस संसारमें न आवे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि महाभागवत राजा परीक्षित् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने समझाया तो परमभागवत उद्धवजी प्रणाम कर तत्त्वज्ञानकी इच्छा किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगे ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे योगके फलदाता ! हे योगके आधार ! हे योगरूप ! हे योगके कारण ! मोक्षके अर्थ यह संन्यासरूप त्याग मुझसे कहा

सो अपनी सहजदयासे कहा, क्योंकि मैंतो ऐसा अधिकारी नहीं था॥ १४॥ हे सर्वव्यापक ! हे सर्वात्मा ! मेरीबुद्धि तोऐसी है कि, जिन पुरुषोंका मन विषयोंमें लगाहुआ है,उनसे ऐसा त्याग बनना अशक्य है और जो इसमें भी तुम्हारे भक्त नहीं उनको तो बहुत ही कठिन है॥ १५॥ और जो मुझसे तुम त्याग कहते हो सो महाराज ! मैं अहंता ममतासे मूढमति हूँ,तुम्हारी मायासे उत्पन्नहुए पुत्र कलत्र देह आदिमें मग्नहूँ इसलिये हे भगवन्! जैसे यह सब तुम्हारी आज्ञा विना परिश्रम कर सकूं उसी प्रकार तुम मुझे शिक्षा दो॥ १६॥ तुम समानरूप हो, स्वप्रकाश हो, आत्मा हो इसलिये हे ईश ! मुझे और ऐसा वक्ता देवताओंमें भी कोई नहीं देख पडता है, क्योंकि यह ब्रह्मादिक देहधारी तो तुम्हारी मायासे मोहितबुद्धि

त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥१५॥ सोऽहं ममाहमिति
मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबंधे ॥ तत्त्वंजसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननु
शाधि भृत्यम् ॥१६ ॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहित
धियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥ तस्माद्भवंतमनवद्यमनंतपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुंठविकुं
ठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण
मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ समुद्धरंति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य
विशेषतः ॥ यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥ २० ॥

हैं और बाहरके विषयोंमें इनकी अर्थबुद्धि है ॥ १७ ॥ कोई दुष्टबुद्धि हैं और कोई ऐसे हैं जो सेवा करनेपरभी फलदेनेके समय नष्ट हो जातेहैं;कोई अज्ञानी हैं,कोई रक्षा करनेमें असमर्थ हैं,कोई स्थानभ्रष्ट हैं इसलिये संसारके दुःखसे अतीत नहीं,मैं अतिविरक्तचित्त हूँ इसकारण तुम्हारी शरण आया हूँ,क्योंकि तुम तो निंदा रहित हो, तुम्हारा कालसे अन्त और देशसे पार नहीं,सर्वज्ञ हो,ईश्वरहो,तुम्हारा नाशरहित वैकुण्ठ स्थान है,तुम सब जीवोंके आश्रय हो, जीवके सखा हो ॥१८॥ श्रीभगवान् बोले कि, जो लोग तत्त्वको अतिश्रेष्ठ जानते हैं वह मनुष्य बहुधा गुरुविना ही अपने आत्माको संसारसे उद्धृत करते हैं,गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥ १९ ॥ अपने गुरु आप ही हैं,क्योंकि विशेषकर

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यंति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो
बहुपादस्तथाऽपदः ॥ बह्व्यः संति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥ अत्र मां मार्गयंत्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्व
रम् ॥ गृह्यमाणैर्गुणैर्लिंगैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य संवादं यदो
रमिततेजसः॥२४॥अवधूतं द्विजं कंचिच्चरंतमकुतोभयम् ॥कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५॥ यदु
रुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥ प्रायो धर्मार्थ
कामेषु विवित्सायां च मानवाः॥ हेतुनैव समीहंते आयुषो यशसः श्रियः॥२७॥

पुरुष जो यह प्रत्यक्षसे अथवा अनुमानसें विचारै तो आपहीसे सुख पावै और सहजमें अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो, पशुओंको अपने हितज्ञानका कौन गुरु है,आपसेही अपने हितमें प्रवृत्त होतेहैं,इसलिये अपने आपही गुरु हैं,तहां प्रत्यक्ष ज्ञानदिखलाते हैं कि,जब जीव पुरुषजन्म प्राप्त करता है तब यह ज्ञानमार्गमें निपुण हो जाता है ॥२०॥ मनुष्यके शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है, यह सांख्ययोगमें चतुरबुद्धिवाले धीरपुरुषोंका निश्चय है ॥ २१ ॥ वह शक्तियुक्त मुझे प्रत्यक्ष देखते हैं, मेरे उत्पन्न किये बहुत रूप और बहुत शरीर हैं, कोई एकचरण है कोई अर्द्धचरण हैं, कोई नीचे चरण हैं, कोई चार चरण हैं, कोई बहुत चरण हैं, कोई चरणरहित हैं, परन्तु इन सबोंमें जो पुरुषरूप देह है सो मुझे अतिप्रिय है ॥ २२ ॥ इस पुरुषदेहमें जो सावधान हैं सो अहंकारादिकोंसे रहित मुझे प्रगट ढूँढ लेते हैं बुद्धि आदि यत्नोंको एक स्वप्रकाश आतमा विना प्रकाश नहीं होसकता ऐसा अनुमान करके मुझे ढूंढ लेते हैं ॥ २३ ॥ इस विषयमें एक बडे तेजस्वी राजा यदु और अवधूतका संवाद रूप प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ २४ ॥ अवधूत वेष किये महा पंडित और सदा तरुण अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी, कि जो निर्भय रीतिसे संसारमें घूम रहे थे उन्हें देखकर धर्मके ज्ञाता राजा यदुने इस प्रकार पूछा ॥ २५ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! अकर्ता तुमको ऐसी निपुणमति कहांसे प्राप्त हुई है, जिसको पाकर अवधूत पंडित तुम बालकके समान इस लोकमें विचरते हो ? ॥२६॥ बहुधा मनुष्य धर्म अर्थ कामना

विषे और आत्माके विचारविषे आयु, कीर्ति और श्रीकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं ॥२७॥ परन्तु तुम तो कुछ नहीं चाहते हो न कोई कर्म करते हो और जड़ उन्मत्त पिशाचके समान हो और सब कार्य करने समर्थ और पूर्ण ज्ञानवान् हो, अतिप्रवीण हो, सुन्दर हो, आपकी उत्तम मधुर वाणी है॥२८॥मनुष्य काम, लोभरूप दावानलसे जलता है, उसमें तुम उस तापसे संतप्त नहीं हो, जैसे अग्निसे छूटकर गंगामें खडा हाथी उस तापसे तप्त नहीं होता है ॥२९॥ हे ब्रह्मन् ! तुम विषयभोगरहित हो, कलत्र आदिसे शून्य हो, आनन्दरूप हो इसलिये हम आपसे पूछते हैं कि, तुम्हारे आनन्दका कारण क्या है ? सो हमसे कहो ॥३०॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इस प्रकार जब अतिब्रह्मण्य सुबुद्धि राजा यदुने

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु
कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गंगांभःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानंदका-
रणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥३०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥
पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो
बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान्छृणु ॥३२॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चंद्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिंधुः पतंगो
मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥
एते मे गुरवो राजश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥

विनयपूर्वक पूजाकर पूँछा तब महाभाग अवधूतजी राजा यदुसे बोले ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! अपनी बुद्धिकरके मेरे बहुत गुरु हैं जिनसे मैं बुद्धि पाकर मुक्त हुआ हूँ और इस लोकमें फिरता हूँ उनको सुनो॥३२॥पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सिंधु, पतंग, मधुकृत, गज ॥ ३३ ॥ मधुहा, मृग, मीन, पिंगला, कुररपक्षी, बालक, कुमारी, कडेरी (बाणका बनानेवाला) सर्प मकरी और भृंगी ॥३४॥ हे राजा यदु! मैंने यह चौवीस गुरु सेवन किये हैं, इनके आचरणोंसे मैंने शिक्षा ग्रहण कर ली है ॥ ३५ ॥

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि
धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकांतसंभवः ॥ साधुः
शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ २८ ॥ प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत
नावकीर्येत वाङ्मनः ॥३९॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥
॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः॥ गुणैर्न युज्यते योगी गंधैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥

हे ययातिपुत्र। हे पुरुषसिंह। मैंने जाते हुए जहां जो शिक्षा जैसे ग्रहण की है सो उसी प्रकार कहता हूँ,तुम श्रवण करो ॥३६॥ प्रथम भूमिसे क्षमा सीखी है सो कहते हैं कि, पृथ्वीको सब प्राणी खूँदते हैं, परन्तु तो भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती, इसी प्रकार दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट द तो भी उनके दैवाधीनपनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियमसे चलायमान होना उचित नहीं,यह पृथ्वीसे सीखा है ॥३७॥ पृथ्वी दो प्रकारकी है, एक तो पर्वतरूप;एक वृक्षरूप. यहाँसे जो सीखा है सो कहते हैं कि, पर्वतकी जो वस्तु हैं वृक्ष, तृण, झरना, फूल ये सदा पराये अथ हैं और पर्वतका जन्म भी केवल पराये ही अर्थ है, अपना स्वार्थ कुछ नहीं, इसी प्रकार अपनी वस्तु और देह सब परोपकारार्थ लगा दीजिये,यह पर्वतरूप भूमिसे सीखा है और वृक्ष भी पराये अधीन हैं, यदि उनको कोई काटे,उखाड़े तो वह सह लेते हैं और क्षमाको नहीं तजते, इसी प्रकार साधुपुरुष भी जो अपने संग भलाई बुराई करै तो उसे सहन कर लें (१) ॥ ३८ ॥ वायु भी दो प्रकारका है, एक तो प्राणरूप है, दूसरा बाहर फिरता है, सो प्राण जैसे आहारमात्रसे सन्तुष्ट रहते हैं और इंद्रियोंके भोग नहीं चाहते, इसी प्रकार मुनीश्वर भी रहैं, आहार जो न मिलै तो मन वचनसे विक्षिप्त होकर ज्ञानसिद्धि न हो इसलिये एक आहारमात्रसे ही सन्तोष मानलें, इससे अधिककी चाहना न करैं, यह विद्या प्राणवायुसे सीखी है ॥ ३९ ॥ जैसे पवन सब जगह चलता है, पर कहीं आसक्त नहीं होता, इसी प्रकार योगिराज भी शीत उष्ण आदि नानाधर्मवाले विषयभोग करते भी आसक्त नहीं होते, सबमें गुणदोषरहित मन होय,यह विद्या बाहरकी वायुसे सीखी है ॥४०॥ और भी एक बात पवनसे सीखी है सो कहते हैं कि, यद्यपि वायु सुगन्धसे मिलीसी चलती है और ऐसा

ही जाना जाता है, परन्तु तो भी वायु गन्धसे मिला नहीं है, गन्ध कुछ वायुका नहीं है पृथ्वीका गुण है, इसी प्रकार आत्मा पृथ्वीका विकार देहमें प्रविष्ट है, देहके धर्मका आश्रय है पर मिला नहीं है, देहोंसे अलग है इस प्रकार समझे, और स्थानमें आत्माको ही देखे यह विद्या भी पवनसे ही सीखी इस लिये वायु गुरु हुआ(२)॥४१॥अब आकाशसे जो विद्या सीखी है सो कहते हैं, जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और बडा है परन्तु घटमें छोटा दिखाई देता है सो घटसे आकाशका कुछ सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वह निर्विकार है, तैसे ही आत्मा इस देहमें है और यह देहसे मिला है, इस कारण इतना ही है और ठौर नहीं ऐसे न समझे, क्योंकि जो आत्मा देहमें है सोई सर्वत्र है, जैसे आकाश सब ठौर है वैसे ही स्थावर जंगमविषे ब्रह्म व्यापक है, यह एक विद्या आकाशसे सीखी है ॥ ४२ ॥ द्वितीय वायु कहते हैं-जैसे पवनके प्रेरे तेज, जल, पृथ्वीमय

अंतर्हितश्च स्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसंगमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्टः उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुंक्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥

मेघादिक आकाशमें व्याप्त होते हैं, पर मेघादिकोंसे आकाशका स्पर्श नहीं होता वह निर्लेप है, वैसे ही यह पुरुष कालसे सृजे पञ्चभूतरूप इस देहसे संयुक्त है, उनका निजके साथ स्पर्श नहीं है, यह धर्म भी आकाशसे ही सीखा(३)॥४३॥ जैसे स्वभावसे ही जल अति निर्मल है, ऐसे ही मुनि भी निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह करें मीठा बोलैं. जल भी मधुर है, जैसे जल तीर्थस्थान है और मनुष्योंको पापसे छुडाता है उसी प्रकार मुनीश्वर भी दर्शन स्पर्श कीर्त्तनसे सबको पवित्र करैं, यह गुण जलसे सीखे है (४) ॥ ४४ ॥ अब अग्निसे सीखा सो कहते हैं, जैसे अग्नि अति तेजस्वी है, तेजसे दीप्त है, अति दुःसह है और उसका उदर ही पात्र है, क्योंकि जो होम करते हैं वह अग्निके उदरमें ही डालते हैं, इससे वही पात्र है, जो सम्पूर्ण वस्तुको भक्षण करता है और तो भी पवित्र करनेवाला है, ऐसे ही मुनीश्वर भी हों ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं गुप्त

है; कहीं प्रगट है, जो अपने कल्याणकी चाहना करते हैं उनको सेव्य है; दाताकी इच्छासे सर्वत्र हविष्य लेता है, उनके भूत, भविष्य, वर्त्तमान पाप सब दूर करता है, इसी प्रकार मुनि रहैं ॥ ४६ ॥ और भी अग्निसे सीखा है, जैसे अग्नि एकरूप है, बहुत ईंधनसे बहुत भांति बडा दिखाई देता है और जब ईंधन थोडा रहता है तो छोटा दीख पडता है, ऐसे ही जीवात्मा एकरूप है, न छोटा है न बडा है, अपनी अविद्यासे उपजाये ऊंच नीच भेदसंयुक्त देहमें प्रविष्ट हुआ ऊँच नीच रूपसे दिखाई देता है (५)॥ ४७ ॥ चन्द्रमासे जो सीखा है, सो कहते हैं-जन्मसे मरण पर्यन्त धर्म देहके ही हैं, आत्माके नहीं. इसमें दृष्टान्त कहते हैं, जैसे चन्द्रमाका मण्डल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखा जाता है सो कलाओंका है, जितना सूर्यमण्डलसे नित्य अलग पडता है उतना ही दीखता है और ज्यों ज्यों मण्डलके नीचे दबता है त्यों त्यों घटता है इसी प्रकार आत्मा एकरूप है, अप्रकटगति कालसे जन्म मरणादिक भाव देहको होते हैं, आत्माको नहीं, यह ज्ञान चन्द्रमासे पाया है इससे चन्द्रमा गुरु है (६) ॥ ४८ ॥ अग्निगुरुकी फिर प्रशंसा करते हैं, जैसा अग्निका स्वरूप है कि, नाश नहीं होता, अग्निकी ज्वालाओंका नाश होता है परन्तु दीखता नहीं वैसे ही काल नदीके वेगसे जन्म मरण इस देहको ही है आत्माको नहीं, क्योंकि आत्मा तो नित्य अर्थात् अमर है ॥ ४९ ॥ अब सूर्यसे जो सीखा है सो कहते हैं, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल सोखता है और फिर बर्षाके समय वही जल छोड़ देता है, परन्तु उसमें आसक्त नहीं है इसी प्रकार योगीजन इन्द्रिय अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करैं और कोई याचना करै तो तत्काल देदें ममता न रक्खें ॥ ॥ ५० ॥ जिस प्रकार सूर्य आकाशमें अपने स्वरूपमें रहता है और एक ही है परन्तु जलादिकमें प्रतिबिम्ब पडनेसे अनेकरूप दीखता है उसी

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरोवैधसि ॥ ४७ ॥ विसर्गाद्याः श्मशानांता
भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चंद्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥
नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुंचति ॥ न तेषु युज्यते
योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चाव
स्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥

कार आत्मा स्वरूपसे भिन्न नहीं है, देहादिकोंमें व्याप्त होनेसे स्थूल बुद्धिवालोंको अनेकरूपका प्रतीत होता है (७) ॥ ५१ ॥ अब कपोतसे जो सीखा है सो कहते हैं, कहीं किसीमें अधिक स्नेह न करै, किसीमें आसक्त न हो, जो संग करे तो सन्तापको प्राप्त होता है और दीनमति होती है, जैसे कपोतको हुआ ॥ ५२ ॥ कपोतकी कथा कहते हैं, एक कपोत वनमें किसी वृक्षपर अपना घर बनाय अपनी स्त्रीसे मिलकर कितनेक वर्षतक दोनोंने वास किया ॥५३॥ वह दोनों स्त्री पुरुष कपोत कपोतिनी परमस्नेहसे बँधे हुए दृष्टि दृष्टिसे बँधी, हृदय हृदयसे बँधा, अंग अंगसे बँधा, बुद्धि बुद्धिसे बँधी॥५४॥शयन, आसन, गमन, स्थान, वार्त्ता, क्रीडा, भोजन सब काम एक ही स्थानपर बैठकर करैं,अलग २ होकर

नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित ॥ कुर्वन्विंदेत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥५२॥ कपोतः कश्चनारण्ये
कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित्समाः ॥५३ ॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥
दृष्टिं दृष्ट्यांगमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबंधतुः॥५४॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ
चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयंत्यनुकंपिता ॥ तं तं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेंद्रियः ॥
॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अंडानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥५७॥ ते काले
व्यजायंत रचितावयवा हरेः ॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दंपती
पुत्रवत्सलौ ॥ शृण्वंतौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥

कभी न करैं-इस प्रकार एक संग निःशंक हुए फिरा करैं ॥ ५५ ॥ इसके उपरांत वह कपोतिनी अपने हावभाव, लावण्य,मधुर भाषणसे प्रसन्न कर कपोतसे दीन होकर जो २ वस्तु मांगे सो २ वह कपोत अतिकष्टसे भी ले आवै, इस भाँति अजितेंद्रिय उसके अधीन रहा करै ॥५६॥ एक समय प्रथम गर्भवती हुई पतिव्रता कपोतिनीने अपने समीप आये पतिके समीप ही अपने घरमें अंडे दिये ॥ ५७ ॥ कुछ समय बीतनेपर उन अण्डोंमेंसे अचिन्तनीय हरिकी शक्तियोंसे हाथ पांव आदि युक्त बच्चे उत्पन्न हुए और उनके कोमल अंगोंमें रुएँ हुए ॥५८॥ इसके उपरांत यह दोनों कपोत कपोतिनी प्रसन्न हुए और अपने बच्चोंका यत्नसहित पालन करने लगे,पुत्रोंमें स्नेह बहुत हुआ और दिन दिन अपने बच्चोंका

मधुर वचन सुननेसे उनको बड़ा संन्तोष प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ उनके पखोंसे जब अपना स्पर्श हो तब बहुत सुख पावैं, प्रसन्न हो जायँ, अपने पुत्रोंके मुखकी सुन्दर चेष्टा, उनके वचन और अपने निकट आनेसे परमसुख प्राप्त करने लगे॥ ६० ॥ उस स्नेहसे बद्धहृदय हो हरिकी मायासे परस्पर मोहित हुए अति दीनबुद्धि यह स्त्री पुरुष बच्चोंको पालने लगे॥ ६१॥ एक दिन यह दोनों कुटुम्बी कपोत वनके चारों ओर बालकोंके अन्नके लिये बडी देरतक अभिलाषासे फिरे ॥ ६२ ॥ अपनी इच्छासे वनमें फिरते किसी एक क्रुर वधिकने अपने घोंसलेके निकट चुगते बालकोंको देख जाल रोपकर पकड लिये ॥ ६३ ॥ इसके उपरांत यह कपोत कपोतिनी हर्षसंयुक्त जो प्रजाका चुग्गा चारा लेने गये थे, लेके

तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं
विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः॥६१॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुंबिनौ ॥ परितः
कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे जालमावृत्य
चरतः स्वालयांतिके॥ ६३ ॥ कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुप
111ए जग्मतुः ॥ ६४ ॥ कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकाञ्जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत्क्रोशंती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥
॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान्पश्यंत्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥
कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् ॥ भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहो मे
पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः॥ अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः॥ ६८ ॥

अपने घरमें आये ॥ ६४ ॥ तो वह कपोतिनी अपने बालकोंको जालमें अति दुःखित पुकारता देखकर आप भी पुकारती हुई दौडी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहसे बँधी दुःखितचित्त जालमें बँधे बालकोंको देख हरिकी मायासे ज्ञानरहित हो आप भी जालमें बँध गई॥ ६६॥ इसके उपरांत वह कपोत भी अपनेसे अधिक प्यारे बालकोंको और अपने समान स्त्रीको भी बँधी देख अति दुःखित हो विलाप करने लगा ॥ ॥ ६७ ॥ अहो ! देखो मैं अल्पपुण्य हूँ, मूर्ख हूँ, इन भोगोंसे अब भी तृप्त न हुआ, देखो मैंने कुछ पुण्य नहीं किया, इसी लिये धर्म, अर्थ,

कामसाधक मेरा घर नष्ट हो गया ॥ ६८॥ यह स्त्री मेरे अनुकूल और पतिव्रता थी सो आज मुझे सूने घरमें छोडकर साधु पुत्रोंसहित स्वर्गको जाती है ॥ ६९ ॥ मेरे स्त्री पुत्र सब मरे, मैं दीन, विधुर अर्थात् रँडुआ और अतिदुःखित हुआ अब किसलिये जीनेकी इच्छा करूं, मेरा जीवन दुःखरूप है ॥ ७० ॥ इस प्रकार वह कपोत बिलाप करता उन बालकोंको और अपनी प्रियाको मृत्युसे ग्रसे जालमें चेष्टा करते देख दीन हो आप भी उस पुरुषके देखते जालमें जा पड़ा ॥ ७१ ॥ इसके उपरांत उस गृहस्थ कपोतको और कपोतिनी तथा उसके बालकोंको ले कार्य सिद्ध होनेपर वह दुष्ट वधिक अपने घरको चला गया॥ ७२॥ अवधूत बोले कि, हे यदु ! जिस प्रकार कुटुम्बी कपोत अशान्तचित्त हुआ उसी प्रकार यह पुरुष सुखदुःखमें ही रतिमान दीन होकर कुटुम्बका भरण पोषण करते कुटुम्बसहित दुःख ही प्राप्त करते हैं, सुख कभी नहीं पाते किन्तु कपोतकी भांति बँध जाते हैं ॥ ७३ ॥ जो पुरुष मुक्तिके खुले द्वाररूप इस मनुष्यलोकको पाकर कपोतके समान गृहोंमें आसक्त होता है, वह उत्तम गति पाकर भी अधोगतिमें पड़ता है, घरकी आसक्ति पशुपक्षियोंको भी अनर्थ देती है तो मनुष्योंको दे तो इसमें कहना ही क्या है ! यह विद्या मैंने कपोतसे सीखी, इसलिये कपोत गुरु हुआ (८) ॥ ७४ ॥ इति श्रीभा० महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायामवधूतोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा-इस अष्टम अध्यायमें, दत्तात्रेय सुजान। नवमें अजगरकी कथा, सो सब कहौं बखान ॥ १ ॥ हे राजन् ! प्रारब्धके कर्मोंका भोग अवश्य करनेसे ही छूटता है, इसलिये कर्मोंके उद्यमसे वृथा आयु न खोवे, तहां अजगरकी सीख

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥७०॥ तांस्तथैवावृतान्वीक्ष्य मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुंब्यशांतात्मा द्वंद्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुंबं कृपणः सानुबंधोऽवसीदति ॥ ७३ ॥ यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैंद्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः ॥ १ ॥

अवधूतजी कहते हैं कि, हे राजन् ! जिन पुरुषोंको देहाभिमान है उन्हें इंद्रियोंका सुख नरकमें भी होता है, जैसे दुःख विना इच्छाके होता है, वैसे ही सुख भी होता है, इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि, सुखकी चाहना न करै ॥ १ ॥ उद्यम विना अनायाससे जो कुछ प्राप्त हो सरस अथवा विरस हो, थोडा या बहुत हो उसे प्रसन्नतापूर्वक ले, सबसे उदासीन रहै, शरीरके निर्वाहमात्र ही ग्रहण करै, इस प्रकार अजगर रहता है ॥ २ ॥ जिस दिन कुछ न प्राप्त हो उस दिन विना भोजन कियेही सो रहे तो अवश्य अजगरके समान ईश्वर देगा, उद्यम न करै इस प्रकार धैर्यसे रहै॥ ३ ॥ यद्यपि इंद्रिय समर्थ हों, मन तुष्ट हो, शरीर पुष्ट हो, परन्तु तो भी कुछ कर्म न करै, जागता ही पडा रहै, किसी वस्तुकी अपेक्षा हो तो भी यत्न न करै; इस भांति निरपेक्ष होकर रहै (९) ॥ ४ ॥ अब जो समुद्रसे सीखा है सो कहते हैं, जैसें समुद्रजल निश्चल है,

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महांतं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानि भूरीणि
निराहारोऽनुपक्रमः॥यदि नोपनमेद् ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक्॥३॥ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो
वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ४ ॥ मुनिः प्रसन्नगंभीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनंतपारोह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद
इवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेंद्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यंधे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

वैसे ही अन्तःकरणमें प्रसन्न रहे; समुद्र महागंभीर है, उसका पार और अन्त नहीं, जिसको कोई लांघ न सकै, कोई पकड न सकै, क्षोभ न कर सकै; यह सब गुण समुद्रसे सीखे हैं; यही महात्माओंको उचित है ॥ ५ ॥ जैंसे समुद्र चौमासेमें नदियोंके जलसे चढता नहीं, ग्रीष्ममें सूखता और घटता नहीं, इसी प्रकार योगिराजोंको चाहिये कि, जो कुछ मिलै उसीमें सन्तोष करै, यदि न मिलै तो खेद न करैं, केवल एक नारायणके विषे ही तत्पर होकर विषयोंसे दूर रहें (१०) ॥६॥ इंद्रियोंके पांच विषय हैं-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इनमें आसक्त होनेसे यह जीव नष्ट हो जाता है, जैसे पतंग, भ्रमर, गज, हरिण, मीन इत्यादिक नाशको प्राप्त होते हैं, इसलिये इन पांच विषयोंमें आसक्त न हो, यह बात इन पांचोंके पाससे सीखी है, इनमें पहले पतंगसे जो सीखी है सो कहते हैं, जैसे पतंग अग्निका रूप देख भ्रमके वश होकर उसमें

जा पडता है॥७॥ इसी प्रकार यह स्त्री देवमाया है. सुवर्ण, आभरण और वस्त्रादि माया विलास देख उसके हाव भावसे मोहित होकर अजितेंद्रिय लोभी पुरुष भोगकी इच्छासे अन्धकूपमें जा पड़ते हैं, इनकी दृष्टि नष्ट हो गई है इसलिये अन्धकूपको नहीं जानते, रूप देखते ही उन्मत्ततासे नष्ट हो जाते हैं, यह विद्या पतंगसे सीखी ॥ (११) ॥८॥ अब भ्रमरसे जो सीखी है सो कहते हैं, भ्रमर दो प्रकारका होता है, एक शहदकी मक्खी, दूसरा भौंरा, जो मुनि हो तो थोड़ा ग्रासमात्र मांगले जितनेसे देह रहै, परन्तु एक ही घरसे न मांगे जिससे गृहस्थको पीडा हो, जैसे भ्रमर सुगंधिके लोभसे एक कमलमें ही बसै तो उसमें बँध जाय, वैसे ही यह एक ठौर मांगनेसे बध जाते हैं ॥९॥ चतुर मनुष्यको चाहिये कि, सब शास्त्रोंसे सारवस्तु ग्रहण कर ले, शास्त्र छोटे हों अथवा बडे हों, सार सबका ले, जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे मकरंदका सार लेता है, यह

योषिद्धिरण्याभरणांबरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥८॥
स्तोकंस्तोकं ग्रसेद् ग्रासं देहो वर्तेत यावता ॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च
शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षि
तम् ॥ पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न सगृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव संगृ
ह्णन्सह तेन विनश्यति॥१२॥पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अंगसंगतः॥१३॥

बात भ्रमरसे सीखी है ॥ १०॥ भ्रमरका दूसरा नाम मधुकर है, मधुकर मधुमक्खियोंमें ही रहता है, इन मधुमक्खियोंसे जो सीखा है सो कहते हैं, मुनि भिक्षाको ले आवे परन्तु सांझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह न रक्खे, पाणिपात्रमें लेकर उदरपात्र पूर्ण कर, मधुमक्खीकी नाईं संग्रह न करे, देखो मधुकी मक्खी सब वृक्षोंके पुष्पोंका रस संग्रह करके एक मुहाल बनाती है, वह शहद अनेक रोगोंको दूर करता है, वैसें ही मुनि लोगोंको चाहिये कि, शास्त्रोंमेंसे ऐसा उत्तम सार निकालें जो मनुष्योंके मायारूप रोगोंको हरे ॥ ११ ॥ और जो मोहमें फँसकर संग्रह करे तो नष्ट हो, जैसे मधुमक्खी मधुसहित नष्ट हो जाती है (१२) ॥ १२ ॥ अब हाथीकी सीख कहते हैं, भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पाँवसे भी न छुवे और यदि छुवे तो बँध जाय, जैसे हाथी हथिनीके अंगसंगसे बँध जाते हैं, यह विद्या मैंने हाथीसे भी सीखी ॥ १३ ॥

जो बुद्धिमान् हो तो कभी स्त्रीके निकट न जाय, जाय तो अवलम्बन करके पिटे, क्योंकि स्त्री आत्माकी मृत्यु हैं, जैसे और बलवान् हाथियोंसे हाथी मारा जाता है (१३) ॥ १४ ॥ जो कोई मधुमक्खियोंके पास जाय, उन्हें छुड़ाय मधु हरकर ले आवे सो मधुहा कहावे, जो मनुष्य लोभी हैं और अनेक दुःखोंसे धनसंचय करते हैं, न दान करते हैं, न आप भोग करते हैं, तो उस धनका भोग और ही कोई करेगा, जैसे मक्खी ठौर ठौरसे मधु लाकर संग्रह करती हैं परन्तु भोग और ही कोई करता है, यह धनके उपाय जानने ॥ १५ ॥ अतिदुःखसे संचय किये हुए धनसे ग्रहण करें मनोरथोंकी चाहना करनेवाले गृहस्थोंके पहले संन्यासी भोजन करता है, जैसे मधुहा मक्खियोंसे प्रथम भोजन करता

नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोप
भोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसंचितम् ॥ भुंक्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ ॥ १५ ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां
गृहाशिषः ॥ मधुहेवाग्रतो भुंक्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत
हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानि जुषन्ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनको
1K0 राजन्नृष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मी
नस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥

है, संन्यासी और ब्रह्मचारी रांधे अन्नके स्वामी हैं, इनको पहले दिये विना जो पुरुष भोजन कर लेता है, वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है (१४) ॥ १६ ॥ संन्यासी वनमें फिरते हैं, गाँवके गीत प्राकृत कभी नहीं सुनते, यदि सुनें तो बंधनमें पडें, जैसे मृगगण वधिकके गीत सुनकर मर जाते हैं, यह विद्या हरिणसे सीखी ॥ १७ ॥ गाँवके गीत, नृत्य, वादित्र सुन और उनके वशमें हो बंधनमें पड़ते हैं, जैसे मृगीके पुत्र ऋष्यशृंग ऋषि वेश्याओंके विषयसम्बन्धी नाच वाद्य और गाना सुननेसे ही उन वेश्याओंके खिलौनेके सेवन कर वशमें हो गये (१९) ॥ १८ ॥ मीनसे जो विद्या सीखी सो कहते हैं, यह मूर्ख मनुष्य अतिबलवंत जिह्वाके वश हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, जैसे वंसीके लोहमें मांस लगाते

है, उसके स्वादसे मछली वंसीको पकडती है तो मृत्युको प्राप्त होती है ॥१९॥ पण्डितजन आहारको त्यागकर शीघ्र इन्द्रियोंको जीत लेते हैं परन्तु एक रसेन्द्रियको नहीं जीत सकते, क्योंकि आहार त्यागनेसे जिह्वाका लोभ बढ़ता है ॥ २० ॥ जिस पुरुषने और इन्द्रियें जीत ली हैं वह भी तबतक जितेन्द्रिय नहीं होता, जबतक जिह्वाको न जीते, क्योंकि जो जीभको जीते तो जानो कि, सब जीते यहाँ अभिप्राय यह है कि, जो आहार छोडिये तो केवल औरइन्द्रियोंकी जय हो रसेनेन्द्रिय बढ़े और भोजन करे तो रसकी आसक्तिसे सब इन्द्रियोंको लोभ हो इसलिये रसकी आसक्ति छोड़कर औषधके समान अन्न ले(१६) ॥ २१ ॥ अब पिंगलाका उपाख्यान कहते हैं, अवधूतजी बोले कि, हे महाराज। पिंगला नामक एक वेश्या पहले विदेह नगरमें थी उससे भी मने कुछ सीखा है॥ २२ ॥हे राजन्। एक दिन उस कामचारिणी वेश्याने

इंद्रियाणि जयत्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥२०॥ तावज्जितेंद्रियो न स्याद्वि
जितान्येंद्रियः पुमान् ॥ न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिंगला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा ॥
तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनंदन ॥ २२ ॥ सा स्वैरिण्येकदा कांतं संकेत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि
बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ तान्छुल्कदान्वित्तवतः कांतान्मेनेऽर्थका
मुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं
दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलंबती ॥ निर्गच्छंती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६॥

द्वारेपर नगारे धरकर यह संकेत किया कि, जो पुरुष इस नगाड़ेपर जितने डंके मारे वह रात्रिमें मेरे पास आकर उतने हजार रुपये देगा, इस प्रकार समस्या बनाई, इतनेमें ही मैंने जाकर उस नगाडेपर दस बीस डंडे लगा दिये और सामने जो दूकान खुली पडी थी उसमें जा बैठा, उस वेश्याने समझा कि, आज कोई बडा धनी पुरुष आया, इस आशापर कांतको रतिस्थानमें ले जानेकी इच्छासे अत्युत्तम रूप धारण किये सायंकालके समय द्वारपर आकर स्थित हुई ॥ २३ ॥ उस वेश्याने मार्गमें आते हुए धनवान् मोलके दाता पुरुषोंको देख अपने मनमें जाना कि, यह भोगके योग्य हैं, क्योंकि उसके तो अधिक अर्थकी ही कामना थी ॥ २४ ॥ उनको आये और गये देखकर और कोई धनवान् मुझे बडा दाता प्राप्त होगा, इस आशासे वह संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपर बैठी रही ॥ २५ ॥ इस प्रकार दुराशासे जागते हुए

द्वारपर आवे कभी भीतर जाय इस भांति अर्द्धरात्रि हो गई ॥२६॥ उसका धनकी आशासे चित्त दीन हो गया, मुख सूखने लगा और चिंतासे परमवैराग्य उत्पन्न हो गया, उस वैराग्यसे जो कहा सो सुनो * ॥ २७ ॥ इस प्रकार धनकी आशासे चित्त दीन हुआ, मुख सूखने लगा. निर्वेदचित्तसे उस समय कामकंदलाने जो गाया सो मैं कहता हूँ, तुम सुनो. वह मनमें विचार करते हैं, कि वैराग्य पुरुषके दुराशा पाश काटनेको

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः॥निर्वेदः परमो जज्ञे चिंताहेतुः सुखावहः ॥२७॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥ निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ नह्यंगाऽजातनिर्वेदो देहबंधं जिहासति ॥२८॥ पिंगलोवाच॥ अहो मे मोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ या कांतादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥ २९ ॥

खड्ग है. हे राजन्! जिसको वैराग्य नहीं उस पुरुषके देहके बन्धन नहीं छूटते ॥ २८ ॥ पिंगला बोली, अहो देखो! मेरे लोभका विस्तार कि, मैंने अपना मन न जीता, मैं विवेकरहित हूँ, जो ऐसे दुष्टोंका प्रिय कर अपना अभिलाष पूर्ण किया चाहती हूँ ॥ २९ ॥

1121

---

* शंका–ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुनियोंने अनेक जन्म तप किया और तपस्या ही करते करते अनन्त युग बीत गये, परन्तु ज्ञानकी प्राप्ति मुनियोंको नहीं हुई ज्ञान ऐसा महा कठिन है और पिंगला वेश्याने कभी भी सुन्दर कर्म नहीं किये कि, जिन कर्मोंसे परमेश्वर प्रसन्न हो ऐसी पतित महापवित्र पिंगला गणिका क्षणमात्रमें ज्ञानको कैसे प्राप्त हो गई ? यह बडे आश्चयकी बात है।

उत्तर–जो काम करनेके लिये ब्रह्माने जिस प्राणीको बनाया है, वह प्राणी उसी कामको करे तो किसी प्रकारका दोष नहीं लगे देखो ! हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी नौकरी की और मरघटमें मुर्दोंको उस समय फूंकने देता था, जब अपना दंड ले लेता था, परन्तु भगवान् उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और ऐसे ही सदन कसाईपर प्रसन्न हुए सो अपने कारबारमें किसी प्रकारका दोष नहीं, परन्तु अपने; कुलका धर्म करके कुछ देर भगवान्का प्रीतिसहित ध्यान करे तो निस्सन्देह भगवान् उससे प्रसन्न हों; ऐसे ही ब्रह्माने जो कर्म करनेके लिये पिंगलाको बनाया था वही कर्म पिंगला करती थी, क्योंकि जनकपुरीमें सब प्राणी अपने अपने कुलके धर्मको करके पीछे भगवान्में प्रीति करते थे ईश्वरको नहीं भूलते थे. स्त्री पुरुष सब भगवान्का नाम जपते थे और पिंगला भी पुरुषोंके संग रति कर पीछे स्नान करके दूसरे वस्त्र पहन भगवान्का ध्यान करती थी और ईश्वरकी प्रार्थना करके अपनी देहसे जो पाप होते थे, उनको वारम्बार क्षमा कराती थी, उसदिन भगवान्की कृपा हो गई जो उसने पापकर्मसे ग्लानि मानी और ज्ञानमें लय हो गई, एक क्षणमें पिंगलाको ज्ञान हुआ तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं ।

अपना अतिप्रिय निकट ही सदा रहता है अति सुखकारी रतिका दाता धनदाता नित्य प्रियको छोड दुःखित हुई, चिंता शोक मोहके देने वाले तुच्छ मनुष्योंका मैंने सेवन किया, न तो उनसे मेरा काम पूर्ण होता है, न सुख ही होता है, मैं मूढ हूँ ॥३०॥ अहो ! मैंने यह आत्मा वृथा सताया, जिससे अतिनिन्दा संयुक्त शोकसे ग्रसे धन और रतिकी इच्छासे मेरी देह बिकी ॥ ३१ ॥ हाथ पाँवोंके हाड़ थूनी पसलियोंके हाड़ बांस और पीठके हाड़ जहाँ बरेंडा हैं, ऐसा शरीररूप घर त्वचा रोम नखसे ढका है, जिसके नौ द्वार स्रवते हैं, सो विष्ठा मूत्रसे पूर्ण नरक रूप कांतको मेरे विना कौन स्त्री सेवेगी ? ॥३२॥ इस विदेह राजाके नगरमें एक मैं ही अति मूढ हूँ, क्योंकि जो मैं असाध्वी साक्षात् अच्युत

संतं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा॥३०॥
अहो मयात्मा परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रति
मात्मनेच्छती ॥ ३१ ॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं
मदुपैति काऽन्या ॥३२॥ विदेहानां पुरेह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यमिच्छत्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥
॥ ३३ ॥ सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥ तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥३४॥ कियत्प्रियं
ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यंतवंतो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३५ ॥ नूनं मे भगवान्प्रीतो
विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३६ ॥

परमात्माको छोड तुच्छ कामभोगकी इच्छा करती हूँ ॥ ३३ ॥ यह ईश्वर ही सब देहधारियोंका आत्मा और सुहृद है, परमप्रिय नाथ है, क्योंकि अपने देहको देकर दूसरेको मोल ले लेता है, इस लिये अब उसीसे लक्ष्मीके समान रमण करूंगी ॥ ३४ ॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता यह सब उत्पत्ति मरण संयुक्त हैं, कालसे ग्रसे हैं वह स्त्रीकी कामना क्या करेंगे ॥ ३५ ॥ अब अपने भाग्यकी सराहना करती हैं, मुझे जान पडता है कि, निश्चय मुझपर भगवान् विष्णु किसी कर्मसे प्रसन्न हुए हैं, जिससे दुष्ट आशासंयुक्त मुझे सुखदायक

ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ कदाचित् कहो कि, धनकी प्राप्ति न हुई, उसका खेद हुआ, विष्णु क्या प्रसन्न हुए ? तो कहते हैं कि, मंदभागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते, क्योंकि इसी प्रकार और भी पहले दिन हो गये थे, जब धनकी प्राप्ति न हुई थी, न कोई पुरुष आया था, आज मुझे क्लेशसे वह वैराग्य हुआ है, जिससे यह पुरुष गृहादिक बन्धन छोड़कर शांतिको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ ईश्वरने मेरा यह बडा उपकार किया है, इस उपकारको मैंने माथेपर चढ़ा लिया और नीच लोगोंके योग्य दुष्ट आशाओंको त्याग मैं उन्हीं जगदीशकी शरण लेती हूँ ॥ ३ ॥ अब मैं सन्तुष्ट हो परमेश्वरमें श्रद्धा करती यथालाभसे जीविका करती निश्चयसे आत्मामें ही रमण

मैवं स्युर्मंदभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः॥येनानुबंधं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति॥३७॥तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्य संगताः ॥ त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥३८॥ संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ॥ विहराम्यमुनै वाहमात्मना रमणेन वै ॥ ३९ ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४० ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कांततर्षजाम् ॥ छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ४२ ॥

1122

कर आनन्दसे विहार करूंगी ॥ ३९॥ जो पुरुष संसाररूप कुएँमें पडा है, विषयोंसे अन्ध दृष्टि है, कालस्वरूपसे ग्रस रहा है, ऐसे आत्माकी रक्षा करनेको इन आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ? ॥ ४० ॥ जब सबसे यह आत्मा विरक्त हुआ तब आप ही अपनी रक्षा करनेको सावधान हुआ इस जगतको, जो कालस्वरूपसे ग्रसित है, अप्रमत्त होकर देखे ॥ ४१ ॥ अवधूत बोले कि, हे महाराज ! इस भांति निश्चित मतिसे धन और विषयभोगकी आशा छोड़ शांतिको प्राप्त हो वह वेश्या शय्यापर सो गई ॥ ४२ ॥

इसमें मैंने फलितार्थ इतना लिया है कि, आशा परम दुखःरूप है, आशाको छोड़ बैठना ही परमसुख है, जैसे पिंगला कांतकी आशा छोड सुखसे सोई, साधुओंको संग्रह करना उचित नहीं है, इससे दुःख होता है (१७) ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धवसंवादे पिंगलोपगीतेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ दोहा–इस नववें अध्यायमें, कुररीसों उपदेश। जो पायो सो कहत हौं, सुनहु कृपालु नरेश ॥ १ ॥ अवधूतजी बोले कि, हे यदु। अब कुरर पक्षीसे जो मैंने सीखा है सो कहते हैं–मनुष्योंको जो जो वस्तु प्रिय हैं

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ यथा संछिद्य कांताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० एकाद० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥ अनंतं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ १ ॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिंता गेहपुत्रिणाम् ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ॥

सो २ मुझे दुःखदायी हैं, यह जानकर जो पुरुष संग्रहको छोडै वह अनंत सुखको प्राप्त होगा ॥ १ ॥ यहां एक दृष्टान्त कहते हैं, एक कुरर पक्षीने मांस पाया तो उससे बलवंत और पक्षी आय मांसहित उसको मारने लगे, तब इसने वह मांस डाल दिया, तो वह इसे छोड मांसमें लिपट गये, यह छूटकर अत्यन्त सुखी हुआ. मुनिजनोंको चाहिये कि, संसारके व्यवहारोंको मांसकी नाईं परित्याग करें (१८) ॥ २ ॥ अब बालककी सीख कहते हैं कि, हे राजन्। न तो मुझे मान अपमानका सुख दुःख है, न घरकी चिन्ता है, न पुत्रोंकी चिन्ता है, एक

---

* दृष्टांत–एक बाबाजीने महाकष्टसे पचीस अशरफी संग्रह कीं, जब तब निकाल चुटियामें धरा करते थे, एक दिन किसीने देख लिया सो बाबाजीसे आकर बोला, महाराज! आपका आज मेरे यहां निमन्त्रण है. बाबाजी बोले अच्छा, वह घर लिवा ले गया और इतना हलुवा पूरी खिलाया कि, बाबाजीसे उठातक न गया, उसने खाट बिछा दी और अपनी स्त्रीसे कहा कि, इनके चरण खूब दाबना और मैं जाता हूँ, यह तो सेवा करने लगी और वह पुरुष थोडी देरमें व्याकुलतासे घरमें आय आलेमें ढूँढने लगा. स्त्रीने कहा क्या ढूँढते हो? तो उसने कहा कि, यहां पचीस अशरफी रखी थीं सो कहां गईं? अब बाबाजी सकुचाये, वह स्त्रीको मारने लगा कि तैंने बाबाजीको दे दी होंगी, बाबाजी बोले हमारे कपडे देख लो, दो चार आदमी इकट्ठे हो गये इसने बाबाजीकी चुटिया देखी उसमेंसे अशरफी निकलीं, बाबाजी बड़े लज्जित हुए, धनका धन गँवाया, चोरके, चोर हुए, जब बाबाजी चले तो इसने हाथ जोडकर कहा कि, महाराज! फिर भी दर्शन देना, तो बाबाजी बोले कि पचीस और कर लूंगा तब आऊँगा ॥

आत्माके ही संग क्रीडा करता फिरता हूँ, जैसे बालक चिंतासे छूटकर आनन्दमें मग्न होते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दो ही मनुष्य चितारहित हो परमानन्दमें मग्न होते हैं, एक तो उद्यमसे रहित अज्ञ बालक, दूसरा गुणरहित ईश्वरको प्राप्त होनेवाला *(१९) ॥ ४ ॥ कुमारीसे जो विद्या सीखी सो कहते हैं, कहीं एक कन्या थी उसके भाई बन्धु पिता कहीं गये थे इसके पीछे कन्याको बिदा करानेके लिये घर पाहुने आये, तो उनका आतिथ्यभाव उसने आप ही किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कन्या उनके भोजन करानेके लिये एकान्तमें बैठकर धान कूटने लगी तो

द्वावेव चिंतया मुक्तौ परमानंद आप्लुतौ ॥यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः॥४॥कचित्कुमारी त्वात्मानं
वृणानान्गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बंधुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव ॥
अवघ्नंत्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभजैकैकशः
शंखान्द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नंत्याः स्म शंखयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्ना
भवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम ॥ लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥९॥ वासे बहूनां
कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥

उसकी चूडियोंका बडा शब्द होने लगा ॥ ६ ॥ वह कन्या आप धान कूटना निंदित दरिद्रका कर्म जान क्रमसे एक एक चूडी उतारने लगी, केवल हाथमें दो दो चूडी रक्खीं ॥ ७ ॥ परन्तु धान कूटनेमें दो दो चूडियोंका भी शब्द होने लगा, जब उसने उनमेंसे भी एक एक उतार दी तो शब्द न हुआ ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक ! लोकोंका तत्त्व जाननेकी इच्छासे सर्वत्र फिरते मैंने कुमारीको इस प्रकार धान कूटती देख यह उपदेश उससे सीखा ॥ ९ ॥ बहुतोंका जहां वास हो वहां अवश्य कलह होता है, जो दो हों तो भी आपसमें बातें करें, इसलिये

---

*शंका-उद्धवजीसे श्रीकृष्णने कहा था कि, बालकोंके मनमें चिन्ता नहीं रहती.इसमें हमको यह शंका है कि,जो बालकोंको चिन्ता न होती तो जन्मसे ही क्यों रोते, जिस समय माताके उदरसे पृथ्वीपर गिरते हैं उसी कालसे रात दिन रोते हैं, जो प्राणी चिन्तासे रहित हैं उनको रोनेसे क्या प्रयोजन ? और बालकोंका तो जबतक बालपन रहता है तबतक रोते हैं ?

उत्तर-ज्ञानकी वार्त्तामें सज्जन लोग बालकको बालक नहीं कहते,पंडित लोग बालक उसको कहते हैं कि: जो प्राणी संसारकी तथा अपने कुलकी लाजको तथा भयको त्याग दे, इस प्रकार पंडितोंके वचनके प्रमाणसे कृष्णचन्द्र भी उसी बालकको कहते हैं कि, चिन्ता नहीं रहती, जन्म लिये बालकको नहीं कहते॥

अकेला ही विचरण करे, जैसे कुमारीका कंकण (२०) ॥ १० ॥ अब बाण बनानेवालेसे जो सीखा है सो कहते हैं, मनको ईश्वरमें स्थिर कर प्राणोंको वश कर आसन जीते, वैराग्यके अभ्याससे मन स्थिर कर सावधान रहै ॥ ११ ॥ गुण और तिनके कार्य रहित यह मन परमानन्दरूप भगवान् विषे जब स्थान पावे तो शनैः शनैः कर्मवासना छोडै, जब इसको सतोगुण बढ़ै तो रजोगुण, तमोगुणको दूर करके ब्रह्ममें लीन हो, तब ब्रह्मविना और कुछ दृष्टिमें नहीं आता ॥ १२ ॥ इस प्रकार जब आत्मासे चित्त मिल जाय तो बाहर भीतरका भेद नहीं रहता, सब एकरूपसे दीखते हैं, जैसे बाण बनानेवालेका चित्त बाण बनानेमें ऐसा लगा था कि निकट होकर सेनासमेत

मन एकत्र संयुंज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतंद्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनो लब्ध
पदं यदेतच्छनैः शनैर्मुंचति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिंधनम् ॥ १२ ॥ तदैवमा
त्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरंतरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजंतमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एका
चार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥ गृहारंभो हि दुःखाय विफ
लश्च ध्रुवात्मनः ॥ सर्पः रकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १५ ॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य
कालकलया कल्पांत इदमीश्वरः ॥ १६ ॥

राजा चला गया परन्तु उसने न जाना, वैसे ही साधुओंको चाहिये कि, ईश्वरमें ऐसा मन लगावे कि और कुछ सुधि न रहे (२१) ॥ १३ ॥ अब जो सर्पसे सीखा है सो कहते हैं. जैसा सर्प सब लोकोंसे डरता हुआ अकेला ही रहता , एक ही ठौर घर बनाकर नहीं रहता, सदा सावधान रहता है, एकान्तमें ही रहता है, दूसरेकी सहायता नहीं चाहता, अपनी गति दूसरेसे छिपाये रखता है और विष निर्विष जाननेमें नहीं आता ऐसा रहता है. थोडा बोलता है इसी प्रकार मुनियोंको रहना चाहिये ॥ १४ ॥ यह देह अनित्य है, इसके लिये घर न करे, घर दुःख का रूप है और फल कुछ नहीं, जैसे सर्प पराये घरमें प्रविष्ट होकर सुखसे वसता है, परन्तु आप घर नहीं करता ॥ १५ ॥ एक नारायण

देव ईश्वर आप इस विश्वको अपनी मायासे सृजते हैं, फिर प्रलयमें कालशक्तिसे संहार करके आप ही रखते है ॥ १६ ॥ तब एक अद्वितीय आत्माधार सबका आश्रय एक आप ही रहते हैं, व अपने इस समतारूप कालसे सतोगुण आदि शक्ति मायामें लीन करते हैं, वही आदिपुरुष माया और पुरुषके ईश्वर हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिक और मुक्त पुरुषोंके पाने योग्य हैं, मोक्षके रूप केवल अनुभवानन्दके पात्र निरुपाधि और अनन्त हैं ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक ! जब सृष्टि उत्पन्न करते हैं, तो केवल अपने प्रभावसे अपनी त्रिगुण मायाको क्षोभ उपजाय उससे पहले सूत्ररूप महत्तत्त्व उपजाते हैं ॥ १९ ॥ इससे त्रिगुणरूप विश्व अहंकारद्वारा होता है, जिस महत्तत्त्वमें यह विश्व बँधा है, जिस प्राणसूत्रसे

एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्त्वादिष्वादिपुरुषः
प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानंदसंदोहो निरुपाधिकः॥१८ ॥केव
लात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥ १९ ॥ तमाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं
सृजंतीं विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां सन्तत्य वक्त्रतः ॥
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥ स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि
यांति तत्तत्स्वरूपताम् ॥२२॥ कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः ॥ याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्य
जन् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

पुरुष संसारको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ अब मकरीकी शिक्षाका दृष्टान्त कहते हैं. जैसे मकरी अपने हृदयसे उगलकर तागा मुखसे निकाल फैलाय उससे क्रीड़ा कर फिर निगल जाती है, इसी प्रकार ईश्वर स्वयं इस जगतको बनाय फिर संहार करते है (२२) ॥ २१ ॥ यह जीव स्नेहसे द्वेषसे अथवा भयसे युक्त बुद्धि कर जहां जहां एकाग्र मन धारण करता है उसी उसी रूपको प्राप्त होता है, इसलिये जो ईश्वरका ध्यान करै तो ईश्वररूप होवै, इसमें क्या आश्चर्य है (२३) ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे भृंगीसे भीतमें रक्खा कीट भृंगीका ध्यान करते उसी देहसे उस रूपको प्राप्त करता है (२४) ॥ २३ ॥ इस प्रकार इतने गुरुओंसे मैंने यह मति सीखी परन्तु हे राजन् ! एक बुद्धि अपनी देहसे सीखी है सो मैं कहता

हूँ, सुनो ॥ २४ ॥ देह मेरा गुरु है, क्योंकि इस देहसे मुझे वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है, यह देह पीड़ासहित सदा जन्म मरणको धारण करता है, इस देहसे यथार्थ तत्त्वोंका विचार करनेसे मुझे वैराग्य हुआ तो भी मैं इसपर प्रीति नहीं करता, क्योंकि यह कुत्ते और स्यारका भक्ष्य है, यह निश्चय कर सर्वसंगरहित हो विचरता हूँ ॥ २५ ॥ जिस देहको प्रसन्न करनेकी इच्छासे स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, गृह, बंधुके समूहोंका पोषण करते हैं और बहुत कष्टसे धन संचय करते हैं, इतनेपर भी अंतमें यह देह आप ही नष्ट हो जाता है, फिर देहके जानेपर भी दुःख नहीं जाता, दूसरे देहका कर्मबीज उपजाये जाता है, उस कर्मसे फिर दुःखरूप देह इस प्रकार उत्पन्न हो जाता है, जैसे वृक्ष अपना बीज छोड़ता है, उसीसे फिर वृक्ष उत्पन्न हो जाता है ॥ २६ ॥ और इस देहको एक ओरसे जिह्वा रसके लिये खैंचती

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्य
मित्यवसितो विचराम्यसंगः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥
स्वांते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः सदेहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥ जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति॥
॥ २७ ॥ सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवांते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं
यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

है, शिश्न स्त्रीसंगके लिये खैंचता है, त्वगिन्द्रिय एक ओरसे स्पर्शके लिये खैंचता है, श्रवण शब्दके लिये खैंचते हैं और घ्राण गंधके लिये खैंचते हैं, चंचल दृष्टि रूपके लिये खैंचती है, वहीं कर्मशक्ति अपने विषयके लिये खैंचती है,जैसे बहुत सौत गृहस्थको लूटती हैं, इसी प्रकार यह सब इन्द्रियें देहको लूटती हैं ॥ २७ ॥ हे देव ! अपनी शक्ति मायासे वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, डांस, मछली अनेक प्रकारके शरीरोंको उपजाकर ब्रह्मा संतुष्टहृदय न हुए, परन्तु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंकी देह रचकर आनन्दको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ उससे यह अतिदुर्लभ मनुष्यदेह अनेक जन्म पीछे पाया है, पुरुषार्थका दाता है पर अनित्य है यह जानकर शीघ्र मोक्षके लिये जबतक मृत्यु

न हो, शीघ्र यत्न करै. क्योंकि विषय तो इसको सब योनिमें प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥ इस प्रकार जब मुझे वैराग्य हुआ और ज्ञानका प्रकाश हुआ तो आत्मनिष्ठ हुआ, इसलिये संग और अहंकार छोडकर पृथ्वीपर फिरता हूं ॥ ३० ॥ यदि कहो कि, तुमने बहुत गुरु क्यों किये ? गुरु तो एक करना चाहिये तो कहते हैं कि, एक गुरुसे अतिनिश्चल ज्ञान विस्तारको प्राप्त नहीं होता इसलिये अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भांतिसे कहते हैं. कोई कहते हैं वह प्रपंचरहित है, कोई कहते हैं सप्रपंच है, जिससे भ्रम उत्पन्न होता है सो भ्रम इन गुरुओंसे निवृत्त हो जाता है, परमगुरु मुख्य ज्ञानका देनेवाला एक ही है परन्तु ज्ञानके लिये पीछे अपनी बुद्धिसे उपदेशके अनुकूल दृष्टान्त लेनेसे वह

एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहंकृतिः ॥ ३० ॥ न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामंत्र्य गभीरधीः ॥ वंदितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ ॥ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥ सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो वभूव ह ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धव संवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

ज्ञान दृढ़ हो जाता है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इतना वृत्तान्त कह यदुकी आज्ञा ले और गंभीर बुद्धिवाले राजासे प्रणामको प्राप्त हो उसको स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छासे जैसे आये थे वैसे ही चले गये ॥ ३२ ॥ यह अवधूत दत्तात्रेय हैं, इनके ही वचन सुन हमारे बडोंके भी बडे राजा यदु सब संग छोड समचित्त हो गये, यह सब भगवान्ने उद्धवजीसे कहा और कपोत, मत्स्य, मृग, कुमारी, हाथी, सर्प, पतंग, कुरर यह आठ तो त्यागके लिये गुरु किये. भ्रमर, मधुहा, पिंगला यह तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लिये गुरु किये ॥ ३३ ॥ इति श्रीभा० महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां अवधूतोपाख्याने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–दशवें तनुसम्बन्धसे, है सिगरो संसार । तत्त्वज्ञानसे होत है, साधन और विचार ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! मेरे कहे धर्मोंमें सावधान होकर मेरा आश्रय करै और वर्ण आश्रम कुलका आचरण निष्काम होकर करै ॥ १ ॥ जब अंतःकरण शुद्ध हो जाय तो पुरुषको उचित है कि, विषयोंमें लगे हुए प्राणी जो विषयोंको निश्चल मानकर उद्योग करते हैं उनके कार्योंके फल विपरीत होते हैं, उनको विचारता रहै, इससे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ ॥ २ ॥ जो विषय इन्द्रियोंसे जाने जाते हैं वह सदा नहीं रहते, इसीसे वह अनेक प्रकारके प्रतीत होते हैं और जो अनेक प्रकारके हैं वह अध्रुव हैं, जिस प्रकार मनसे उत्पन्न हुए स्वप्न और मनोरथ अनेक होनेसे चल हैं ऐसा

श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारंभविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मदभिज्ञं गुरुं शांतमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥

अनुमान करनेसे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ निष्काम कर्म करै, सकामका त्याग करै, मुझमें तत्पर हो आत्माके विचारमें रहै, कर्मकी विधिमें आदर करै ॥ ४ ॥ मेरे विषे तत्पर होकर आदरपूर्वक संयमोंको सेवै और सामर्थ्य हो तो शौचादिक नियमका भी सेवन करै, इससे भी विशेष धर्म यह है कि, सहनशील हो, मेरे स्वरूपको जानता हो, शान्त हो सो मेरा ही रूप है, ऐसे गुरुकी सेवा करै ॥ ५ ॥ अभिमान न रक्खे, आलस्य न करै, असहनता न करै, स्त्रीपुत्रादिकमें ममता न करै, गुरुओंमें सुहृदता रक्खै, कर्ममें चित्त व्यग्र न करै, परमार्थ जाननेकी इच्छा करै, किसीकी निंदा न करै, व्यर्थ बातें न करै ॥ ६ ॥ स्त्री, सम्पत्ति, घर, खेत, स्वजन, धन इत्यादि सबसे उदासीन रहै,

क्योंकि सबमें एक ही आत्मा है इससे अपनी ही भांति सबमें सुखादिक समान देखै ॥ ७ ॥ यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म देहसे भिन्न है, सबका द्रष्टा है, व्यापक है, स्वयं ज्ञानवान् है, आकाशवत् है, जैसे अग्नि दाह्य काष्ठके मध्य ही रहता है परन्तु काष्ठसे भिन्न है, प्रकाशक है और काष्ठका दाह करता है ॥ ८ ॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्नि ही काष्ठके संग उत्पत्ति, नाश; अल्पता, महत्त्व, नानात्व गुणको धारण करता है वैसे यह आत्मा भी इस देहके संगसे देहके गुणोंको धारण करता है, पर देहसे भिन्न और अमर है ॥ ९ ॥ यदि कोई कहै कि, देहसे आत्मा भिन्न है तो देहके गुण क्यों धारण करता है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, ईश्वरके अधीन मायाके गुणसे पुरुषका यह सूक्ष्मं स्थूल शरीर उपजाया हुआ है, जिस देहमें 'अहं' यह अभिमान करनेसे संसारमें गिरता है, जिस देहको 'मेरा' यह संसार काटनेको आत्मविद्या उपाय है ॥ १० ॥

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान्गुणान् ॥ अंतःप्रविष्टा आधत्ते एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥ योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबंधोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादंतेवास्युत्तरारणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासंधिः सुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत्स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः ॥ १३ ॥

1126

इसलिये अपनेमें ही स्थित देहसे भिन्न आत्मज्ञानकी इच्छासे आत्मामें चित्त मिलाय क्रमसे स्थूल सूक्ष्म देहादिकोंमें आत्मबुद्धिको छोडे ॥ ११ ॥ यह ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है सो कहते हैं, आचार्यरूप नीचेकी अरणी, शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मंथनका काष्ठ इनसे ब्रह्मविद्यारूप परमसुखदायक अग्नि उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ जिस समय बुद्धिमान् गुरुसे चतुर बुद्धिवाला शिष्य यह विद्या पाता है, तो यह विद्या गुणोंके कार्यरूप संसारकी ओर, जिनसे निर्मित होकर यह जगत् जीवके संसारका निमित्तरूप होता है, उन गुणोंको भस्म कर काष्ठरहित अग्निके समान आप भी शांत हो जाता है, उसी प्रकार कार्य, कारण और विद्याकी एकता होनेसे जीव परमानन्दरूप

होता है ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! आत्मा स्वयं प्रकाश ज्ञानस्वरूप नित्य और एक है,इसमें कर्ता भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसे प्राप्त होते हैं. आत्माके अतिरिक्त और पदार्थ मायारचित हैं, इनसे विरक्त हो पुरुष मुक्तिको प्राप्त होता है परन्तु मीमांसक कहते हैं कि 'मैं हूं' ऐसी प्रतीति करनेवाला आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है,कहीं कर्मकर्ता और सुख दुःखका भोक्ता है, इसका स्वरूपभूत कोई दूसरा निर्विकार परमात्मा नहीं है, भोगके स्थानरूप लोक, भोगका काल भोगरूप कर्मोंका बतानेवाला वेद, भोगके साधन और भोग भोगनेवाला आत्मा यह अनित्य होवैं तो वैराग्य होना सम्भव है परन्तु वह सब नित्य हैं इससे वैराग्य होना सम्भव नहीं. भोग्य पदार्थ बीचमें नष्ट हो जाते हैं अथवा मायामय हों तो भी वैराग्य होना सम्भव है ॥ १४ ॥ माला, चन्दन आदि भोगोंकी स्थिति प्रवाहरूपसे नित्य है और यथार्थ है, इससे वैराग्य होना असंभव है, क्योंकि जिस दिशामें यह संसार देखा जाता है उस दिशामें पहले भी था, इस

अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्व
भावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥ तत्तदाकृतिभेदेन जायते विद्यते च धीः ॥ १५ ॥ एवमप्यंग सर्वेषां देहिनां
देहयोगतः ॥ कालावयवतः संति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातंत्र्यं च लक्ष्यते ॥
भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥

कारण जगतका कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं, आत्मा ज्ञानमय नहीं, उसमें अनेक ज्ञानका विपर्यास होता है, एक क्षणमें घटका ज्ञान नष्ट होकर पटका ज्ञान होता है इस प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहते हैं, पूर्वज्ञानसे पृथक् हो जाता है, इससे आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं सो कहते हैं कि, ज्ञानका विपर्यास होनेसे क्या आत्मा अनित्य हो जाता है? नहीं। आशय यह है कि, ज्ञानरूप विकार कुछ बाधा नहीं कर सकता, मुक्तिमें आत्मा इंद्रियरहित है इससे उसमें ज्ञानका परिणाम न होनेके कारण जडता हो जायगी. इसमें मुक्तिकी आत्मामें प्राप्ति होना पुरुषार्थरूप नहीं, प्रवृत्तिमार्ग ही इससे श्रेयस्कर है निवृत्ति नहीं ॥ १५ ॥ हे उद्धव! सत्य प्रवृत्ति मार्ग ऐसा ही है, परन्तु आगे अनर्थका हेतु है, इन देहियोंको देहके संयोगसे संवत्सररूप कालसे जन्ममरणादि भाव वरंवार होते हैं ॥ १६ ॥ तुम्हारे ही मतसें

कर्मोंके कर्त्ताओंको और सुखदुःखके भोक्ताओंको पराधीनता देखी जाती है इस लिये ऐस परवशका जो भजन करता है वह क्या सिद्ध है ? और जीव स्वतन्त्र हो तो उसे दुष्टकर्म वा दुःखकी प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती ॥ १७ ॥ इस प्रकार इस लोकमें सुख नहीं तथा और लोकोंमें भी सुख नहीं सो कहते हैं-ईर्षा, निन्दा नाश होनेसे स्वर्गादिकमें भी कर्मोंकी विधिके जाननेवाले विद्वान् अभिमानीको किञ्चित् सुख भी प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार मूर्खोंको दुःख देखनेमें नहीं आता, जो कहते हैं कि हम कर्ममें निपुण हैं इससे सुखी हैं, यह उनका वृथा अहंकार है, इससे श्रेष्ठ कर्म करनेसे सुख मिलता है, यह नियम भी न रहा ॥ १८ ॥ और जो कदाचित् सुखदुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशको जानते हैं, वह भी इस उपायको नहीं जानते, जिससे साक्षात् मृत्यु न हो ॥ १९ ॥ क्योंकि जब मृत्यु अपने निकट है

न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि॥तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम्॥१८॥यदि प्राप्तिं विघातं च जानंति
सुखदुःखयोः ॥ तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥ को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरंतिके ॥
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥२०॥ श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ॥ बह्वन्तरायकामत्वात्कृषि
वच्चापि निष्फलम्॥२१॥अंतरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः॥तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु॥२२॥
इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुंजीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान्॥२३॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे
विमान उपगीयते ॥ गंधर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४॥

तो अर्थ अथवा कामके प्राप्त होनेसे कौन सुखी हो सकता है ? जैसे अपराधीको मारनेको ले जाते हैं, उस समय उस पुरुषको अथ कामादि सुख नहीं देते ॥२०॥ उसी प्रकार जसे यहां सुख नहीं ऐसे ही परलोकमें भी नहीं, स्वर्गादिकमें भी पराये सुखकी असहनता और ईर्षादिक रहती ही हैं इससे यहाँके समान वहां भी दोष है, जैसे कृषीके सफल होनेमें अनेक विघ्न होते हैं ऐसे ही यजनसे मिलनेवाले स्वर्गमें भी भूलचूकके अनेक विघ्न होते हैं ॥ २१ ॥ इतनेपर भी विघ्नको निवारण कर जो धर्म अच्छीभाँति करें, उन धर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्थानोंमें जैसे यह प्राणी जाते हैं सो सुनो ॥ २२॥ इस लोकमें देवताओंको यज्ञसे संतुष्ट कर यज्ञके कर्त्ता स्वर्गमें जाते हैं और देवताओंके समान अपने उपार्जन किये हुए दिव्य भोग भोगते हैं॥२३॥ और वहां अपने पुण्यसे प्राप्त हुए उत्तम विमानमें बैठ सुन्दर वेष धरे अप्सराओंके विषे विहार

करते फिरते हैं, गन्धर्व उनकी बडाई करते हैं ॥ २४ ॥ किंकिणी अर्थात् घुँघुरुओंके समूहसे शोभित और मनकी रुचिके अनुसार चलनेवाले विमानमें बैठ सुखको प्राप्त हो देवताओंके बागोंमें देवस्त्रियोंके संग विहार करते फिरते हैं, परन्तु आत्मपातको नहीं जानते * ॥ २५ ॥ स्वर्गमें वहांतक सुख करते हैं, जहाँतक पुण्य पूर्ण हो, जब पुण्य क्षीण हो जाता है तब कालसे अनचाहत नीचे डाल दिये जाते हैं ॥ २६ ॥ यह फल जो सकाम कर्म करता है इसको है, तहां भी जो निषिद्ध प्रकार न करे, जब हो और जो असत् संग करे तो अधर्मी हो, जितेन्द्रिय न हो, स्त्रीलंपट हो, काममें ही चित्त हो, प्राणियोंको दुःख देता हो, लोभी हो, कृपण हो ॥ २७ ॥ और जो अविधिसे पशुओंको मारकर भूत प्रेतगणको पूजते हैं, ऐसे जीव परवश हो नरकमें पड स्थावरके भावको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥ उन कर्मोंमें दुःख फल है, ऐसे कर्मोंको देहसे करते मरे पीछे फिर उन कर्मोंसे दुःख भोगकर वैसा ही देह धरते हैं, इस लिये जो मरेगा उसको क्या सुख है ? ॥ २९ ॥ यद्यपि लोकपाल कल्पपर्यन्त जीते हैं परन्तु तो भी उनको मुझ कालरूपसे भय रहता है

स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः संगादसतां वाऽजितेन्द्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥ पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् ॥ नरकानवशो जंतुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥ २८ ॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन्देहेन तैः पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥

---

* शंका–श्रीकृष्ण भगवान्ने उद्धवसे कहा था कि, ईर्षा निन्दा आदि जो बुरे कर्म हैं, उन कर्मोंसे वेदोंके वचन नष्ट हो गये, इसमें यह शंका होती है कि, ईर्षा आदि बुरे कर्म सतयुग, त्रेता, द्वापरमें भी थे ? उत्तर–शास्त्रमें लिखा है कि, भगवान्की देहमें धर्म और अधर्म दोनों रहते हैं, सतयुगमें अथवा और युगोंमें थोडा बुरा कर्म भगवान्की देहमें रहता है और किसी युगमें अधिक रहता है, क्योंकि युगोंकी मर्यादा पालन करनेके लिये दूसरी बात मत जानना, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवजीसे कहा था।

और कल्पपर्यन्त जीनेवाले लोकपालोंको भी वही भय रहता है, मेरे भयसे यह सब देवता अपना २ काम करते हैं, ब्रह्माकी आयु दो ही परार्द्ध है
परन्तु उसे भी मौतका डर है॥ ३० ॥ कर्म कुछ ईश्वर नहीं, ईश्वर नियन्ता फलका दाता मैं हूँ, परन्तु मुझसे और उन कर्मोंसे सम्बन्ध नहीं,
कर्मका सम्बन्ध इस देहसे है, सो प्रकार बताते हैं, प्रथम इंद्रियें कर्मोंसे सृजी हैं, गुण (सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण) इंद्रियोंको सृजते हैं,
आत्मा कुछ नहीं करता पर यह जीव तो इंद्रियोंके संगसे 'अहंकर्त्ता' अभिमान धारण करता है, इस लिये कर्मोंके फल भोगता है ॥ ३१ ॥
यदि कहो, आत्मा अनेक क्यों दिखाई देते हैं, आत्मा तो एक ही सुना है, तो कहते हैं कि, इन गुणोंके धर्मसे जबतक अहंभाव
है तबतक अनेक प्रतीत होते हैं और जब मायाके गुण छूट जायँगे तो आत्मा एक ही दिखाई देगा और जहांतक उसे आत्मा अनेक

गुणाः सृजंति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥यावत्स्याद् गुणवै
षम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतंत्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्यास्वतंत्रत्वं तावदीश्वरतो
11/8 भयम् ॥ य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यंति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ॥ इति मां
बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्त्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही
बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

लगते हैं, तभीतक पराधीन भी है ॥ ३२ ॥ जबतक इसे पराधीनता है तबतक ईश्वरका भय है, इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें दोष है, इसका जो
सेवन करते हैं वे ही मोहमें पडे शोकयुक्त हैं ॥ ३३ ॥ काल, आत्मा, शास्त्र, लोक, स्वभाव, धर्म यह नाम गुण तो सम्बन्धसे कहे,
परन्तु गुणसम्बन्ध छूटनेपर यह मेरे ही स्वरूप हैं, सबमें मैं ही हूँ, मायाके सम्बन्धसे अनेकरूप दीखते हैं इससे निवृत्तिमार्ग ही उत्तम
मुक्तिका कारण है ॥३४॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन् ! यद्यपि यह आत्मा गुणोंसे मिला हुआ है, परन्तु तो भी गुणका कार्य सुख दुःख
कर्मसे बद्ध नहीं है, इसलिये आकाशकी भांति सर्वत्र व्यापक है और निर्लेप है आवरणरहित तुम्हारे मतमें आत्मा एक ही है तो
वह कैसे बन्धनमें आता है ? कि, जिससे उसे मुक्तिकी अपेक्षा होती है, सो कहिये ॥ ३५ ॥

और बँधनेके पीछे किस प्रकारसे रहै, जब मुक्त हो जाय तब किस प्रकार रहै? सो कहो. किस भांति रहै, कैसे आहार विहार
करै, किस लक्षणसे जाना जाय, क्या भोजन करै, क्या छोडै, कहां सोवै, कैसे बैठे, कहां जाय, यह दोनों किन लक्षणोंसे दूसरोंके जाननेमें आवैं?
सो कहो ॥३६॥ हे अच्युत! हे विदांवर! इसके उपरान्त मेरे मनमें एक और सन्देह है कि, एक ही आत्मा शरीरादिकोंके अनादि सम्बन्धके
कारण अनादिकालसे बद्ध है, इस प्रकार निश्चय करना पड़ता है और इस भांति निश्चय कर फिर उसको मोक्ष हो जाता है इस प्रकार निश्चय करै
तो मुक्ति उत्पन्न हुई, मुक्तिहोनेके कारण मुक्तिमें अनित्यता आ जाती है, इसलिये वह आत्मा निरंतर मुक्तही है ऐसा भी मानना पड़ता है तो एक
समयमें ही बद्धत्व और मुक्तत्व यह दोनों होने कैसे सम्भव हो सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर कृपापूर्वक दीजिये ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते

कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुंजीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥३६॥ एतदच्युत मे ब्रूहि
प्रश्नं प्रश्नविदां वर॥नित्यबद्धो नित्यमुक्त एक एवेति मे भ्रमः॥३७॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे
भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः॥गुणस्य
मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बंधनम् ॥ १ ॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः
संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते
॥३॥ एकस्यैवममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बंधोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥४॥

महापुराणे एकादशस्कन्धे भा० टी० भगवदुद्धव संवादे दशमोऽध्यायः॥ १० ॥दोहा-इस ग्यारह अध्यायमें, बद्ध मुक्तको ज्ञान।साधु सन्त अरु
भक्तिके, लक्षण कहौं बखान ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धवजी ! आत्मा बद्धमुक्त है यह कथन मेरे गुणसंबन्धसे है सत्य नहीं. गुणका
मूल माया है, मैं तो मायाका नियंता हुँ इसलिये मुझे न बन्ध है न मोक्ष है ॥ १ ॥ हे उद्धव! मुझे मोह सुख दुःख देहको प्राप्त यह सब
संसारके धर्म मायासे होते हैं, जैसे स्वप्नसे बुद्धिका विवर्त्त है इसी प्रकार संसार है, सत्य नहीं है ॥२ ॥ हे उद्धव! एक विद्या दूसरी अविद्या
यह दोनों मेरी मायासे रची हैं, मेरी देहरूप शक्ति हैं, अनादि देहधारियोंको मोक्ष और बन्धन करती है॥३॥हे महाबुद्धिमान् उद्धव! यह सब मेरा

11२9

अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते॥विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥५॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ
यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मामन्यं
च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्यया युक्स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः॥७॥
देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान्स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा॥ ८ ॥ इंद्रियैरिंद्रिया
र्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः॥ ९ ॥

ही एक अंश जीव है, उसे अविद्यासे अनादि बन्ध है, विद्यासे मोक्ष है, मुझे तो न बन्धन है न मोक्ष है ॥ ४ ॥ अब इसका भेद बताते हैं, परस्पर आत्मा और परमात्मा विरुद्धधर्म होकर एक ही देहमें स्थित हैं, इनमें एक तो जीव ईश्वरका भेद, दूसरे जीवसे जीवका भेद यह दो भेद हैं, एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरका धर्म आनन्द और जीवका धर्म दुःख है, एक नियंता ईश्वर एक जीव है, देहाभिमान धरे वृद्ध हैं इन दोनोंका भेद दृष्टान्तसे कहते हैं ॥ ५ ॥ दोनों पक्षी हैं, चैतन्यरूपसे समान हैं, दोनों मित्र हैं. अपनी इच्छासे एक देहरूप वृक्षके ऊपर आ बैठे हैं, इनमें एक तो इस देहके फलको भोग करता है, दूसरा साक्षी हुआ देखता है, भोग नहीं करता, तो भी ज्ञानशक्तिसे अतिबलिष्ठ है, इस भांति एक ही रूपके दोनों विरुद्ध कर्म करते हैं ॥६॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है वह अपने स्वरूपको और जीवके स्वरूपकोभी जानता है और जीवात्मा न आपको जानता है न ईश्वरको, वह अज्ञ है, इसलिये जो अविद्यासे मिला है सो नित्य बद्ध है, जो विद्यासे संयुक्त है सो नित्यमुक्त है ॥७॥ ज्ञानकी विलक्षणता कहकर स्थितिकी विलक्षणता कहते हैं, वही पंडित है जो अपने स्वरूप और परमात्माको जानता हैं, सो यद्यपि देहहीमें है परन्तु देहसे न्यारा है, देहके धर्म उसे व्यापते नहीं जैसे स्वप्नसे उठेको स्वप्नके देहके धर्म नहीं लगते, जो अज्ञानी हैं सो यद्यपि वस्तुसे और देहसे अलग ही हैं परन्तु देहके अभिमानसे देहमें स्थित हैं सुख दुःखको भोग करते हैं, जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुखदुःख भोगते हैं ॥ ८॥ और भी विलक्षणता कहते हैं, यद्यपि इंद्रियाँ अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं, परन्तु तो भी राग द्वेषादि रहित मुक्त पुरुषमें इन विषयोंको भोगता हूँ ऐसे नहीं मानते, इसका कारण यही है कि विषयोंको जो इंद्रिय स्वीकार करती है

वह गुणोंके कार्यको गुण ही ग्रहण करते हैं,ज्ञानी उससे अपनेको निर्लिप्त मानते हैं ॥ ९ ॥ यह देह पूर्वकर्मके अधीन है, इसमें स्थित इंद्रियें अपने विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं, 'तहां मैं कर्त्ता हूँ' इस अभिमानसे यह आत्मा बँध जाता है, यह अज्ञ है, शयन, आसन, गमन, स्नान, दर्शन, स्पर्शन, आघ्राण, भोजन,श्रवण यह सब इन्द्रियोंके धर्म हैं, मेरे धर्म नहीं. वृथा अभिमान करनेसे बँध जाते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार वैराग्य और विवेक जिसे हो वह बद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो इंद्रियोंको विषय भोग कराता है,कुछ आप नहीं करता इसीलिये बन्धनमें नहीं पड़ता ॥ ११॥ यहां दृष्टान्त है कि,जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है पर सबसे निर्लेप है जैसे सूर्य जलादिकोंमें प्रतिबिंबित है परन्तु तो भी कम्परूप जलके धर्मसे भिन्न है जैसे वायु सर्वत्र फिरती है तो भी निर्लेप है; इसी प्रकार आत्मा इस देहमें स्थित है और इन्द्रियोंके

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबद्ध्यते ॥ १० ॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन्गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥ १२ ॥ वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम्॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः॥ १४॥ यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया ॥ अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न स्तुवीत न निंदेत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥ १६ ॥

स्वभावसे उन उन विषयोंको ग्रहण करता है;परन्तु तो भी उनसे भिन्न हैं ॥ १२॥ वैराग्यद्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसे सब संशय काट अनेक विधिके इस प्रपञ्चसे निवृत्त हो जैसे स्वप्नसे जाग स्वप्नके धर्मोंसे निवृत्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ जिसके प्राण, इंद्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्ति संकल्प विकल्प रहित होकर देहमें स्थित है तो भी देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥ १४ ॥ जिसका देह स्वेच्छासे दुर्जनसे पीडित वा किसीसे पूजित हो तो भी उसको सुख या दुःख न हो और कुछ विकार उत्पन्न न हो वही ज्ञानवान् है ॥ १५ ॥ कोई भला करै अथवा बुरा, अच्छा कहै वा खोटा परन्तु आप किसीकी निन्दा स्तुति न करै, लौकिक व्यवहारसे अलग रहै, समानदृष्टि होकर रहै वही मुनि और मुक्त है ॥ १६ ॥

कर्मादिकमें उदासीन रहे, न कुछ करे, न कुछ विचारे, भला बुरा मनमें न धरे, एक आत्मामें ही रमता रहे, इसी वृत्तिसे जडकी नाईं मुनिलोग फिरा करते हैं॥ १७॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण हैं, वही मुमुक्षुके साधन हैं, जो पुरुष वेदार्थमें निपुण हो वह प्रथम कहे साधनोंसे वेदमें

न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥
शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥

निष्ठा रखकर ईश्वरका ध्यानादिक करै तो उसका पढा हुआ शास्त्र जैसे बहुत दिनोंकी प्रसूता गौसे फिर दूध मिलना सम्भव न हो उसके दूधकी आशावाले पुरुषके श्रमका फल केवल श्रम ही होता है, इसी प्रकार क्रिया न करनेसे शास्त्राभ्यास व्यर्थ है *॥ १८ ॥

---

* शंका-शास्त्रमें और वेदोंमें ऐसा लिखा है कि, गाय ब्याती हो चाहै न ब्याती हो, ब्यानेपर भी दूध न देती हो, लात मारती हो परन्तु गायको तो चारा, मोदक, जल, अन्न और अनेक प्रकारकी वस्तु खिलाकर उसकी सेवा करना और दंश, मच्छर, मक्खी आदिसे उसकी रक्षा करना ही युक्त है, क्योंकि गाय सदा धर्मकी मूल है, फिर उद्धवसे श्रीकृष्णने यों कहा कि, जो गाय दूध देना बंद कर दे अथवा बाँझ हो, जो मनुष्य ऐसी गायका पालन पोषण न करैगा वह दुःखसे बडा जो महादुःख है उसको भोगेगा. श्रीकृष्णके मुखका ऐसा वचन सुनके हमको अत्यन्त शंका होती है।

उत्तर-"गां दुग्धदोहां यो ज्ञात्वा तामरक्षति दुर्मतिः। स नरो दुःखदुःखं वै भुनक्तीति विनिश्चितम्" इस श्लोकमें भगवान्की नीति वर्णन की है सो सुनिये हम कहते हैं, श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा था कि जो प्राणी गायको ऐसा जानकर कि, यह अब दूध नहीं देती अथवा बांझ है, ब्यायगी नहीं ऐसा समझकर उसकी रक्षा करना छोड देगा अथवा उसको खाने पीनेको नहीं देगा, भूखी प्यासी रक्खैगा तो इस लोकमें तो गायका मूल्य डूब जायगा क्योंकि पालन करता तो फिर ब्याती अथवा बाँझ होती तो भी गोबर करती. और अन्त समय रौरव नरकका वास होगा, इसी प्रकार जो स्त्री दुष्ट हो जाय तो उसका भी पालन करना अवश्य चाहिये क्योंकि जो उसने दुष्ट कर्म किया तो संसारमें उस प्राणीकी निन्दा होगी और परलोकमें नरक भोगना पडेगा और जो उसका पालन करैगा तो धीरे धीरे चाहै ज्ञान उपदेश होनेसे सुधर भी जाय और सन्तान भी उत्पन्न हो जायँ फिर न जानिये संतानमें कैसा महापुरुष निकले, ऐसी ही पराधीन समझकर हानि मानकर देहका पालन करना नहीं छोडे, क्योंकि, पालन न करनेसे उसका नाश हो जायगा और जो शरीरका पालन करैगा तो कभी न कभी सुख अवश्य होगा, ऐसे ही धनको मानले कि, इस धनमेंसे मैं पुण्य नहीं करता किस काममें आवेगा, ऐसा जानकर धनकी रक्षा करनी छोड देगा तो चोर चोरी करके ले जायँगे और जो धनकी रक्षा करता रहैगा तो कभी न कभी तो पुण्य होगा ही ऐसे ही वचनसे भगवान्का नाम नहीं लिया, ऐसा जानकर सत्संग छोड दिया तो भ्रष्ट हो जायगा और जो बिगडे वचनसे भी सत्संग करैगा और अच्छा प्रबन्ध करैगा तो कभी भगवान्का नाम वचनसे निकलैगा ही, ऐसा नीतियुक्त अर्थ भक्त उद्धवके सामने भगवान्ने किया है, यह नहीं कि, गाय दूध देना बन्द करदे तो उसका पालना नहीं करना।

हे उद्धव ! दूध दुही गौ, दुष्टा स्त्री, पराधीन देह, दुष्ट संग, पात्रविषे न दिया धन और मेरा नाम रहित वचन इतनी बातोंवाले सदा दुःखी ही रहते हैं और आगे भी दुःख पावेंगे ॥ १९ ॥ मेरा जिस वाणीमें नाम न हो वह बात न कहे, इस विश्वकी मर्यादा जन्म, पालन, नाशरूप मेरे पवित्र कर्म और लीला अवतारोंके विषे जगत्का प्रिय श्रीराम कृष्णादिक जन्म जिस वाणीमें न हो उसको बुद्धिमान् पुरुष धारण न करे ॥ २० ॥ इस प्रकार निश्चय कर आत्माविषे नाना, प्रकारका भ्रम दूर कर विचारसे निर्मलमन मुझ अन्तर्यामी विषे स्थिर होकर निवृत्त हो ॥ २१ ॥ जो मुझमें मन निश्चलकर धरनेको समर्थ हो तो सब कर्म मुझमें अर्पण कर निरपेक्ष हो कर्म करै ॥ २२ ॥ 'ज्ञानमार्ग कठिन है,

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहंपराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी
॥१९॥यस्यां न मे पावनमंग कर्मस्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य॥लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्वंध्यां गिरं तां बिभृयान्न
धीरः ॥ २० ॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥२१ ॥ यद्यनीशो
धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा
लोकपावनीः ॥गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते
निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां समुपासिता ॥ स वै मे दर्शितं सद्भिरंजसा
विंदते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोकमतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी
सद्भिराहृता ॥ २६ ॥

भक्तिमार्गसे ही कृतार्थ होगा, यह कहते हैं कि, प्रथम तो श्रद्धासंयुक्त हो, पीछे अतिसुन्दर लोकोंके पवित्र करनेको समर्थ मेरी कथा श्रवण करै, मेरे जन्म कर्म गावै, स्मरण करै, वारंवार वैसी ही लीला करै ॥ २३ ॥ हे उद्धव ! धर्म, अर्थ, काम मेरे लिये करै, विषय भोगार्थ न करै, मेरा ही आश्रय करै तो सनातन स्वरूप मेरें विषे निश्चल भक्तिको प्राप्त हो ॥ २४ ॥ इस प्रकार सत्संग कर प्राप्त हुई भक्तिसे मेरा सेवन करै तो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त हो, यह मेरे पानेका मार्ग साधन कर दिखाया है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधु और भक्तिके लक्षण पूछने

लगे कि, हे उत्तमश्लोक ! हे प्रभो ! साधु पुरुष कैसे होते हैं, उनके चिह्न क्या हैं और उनकी की हुई भक्ति कैसी होती है जिस भक्तिको आप मानते हैं ? और साधु आदर करते हैं ? ॥ २६ ॥ हे पुरुषके नियन्ता ! हे जगत्पते ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अनुरक्त हूँ, आपकी शरण आया हूँ इसलिये यह सब मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! तुम साक्षात् परब्रह्म प्रकट हुए हो, प्रकृतिसे परे हो, पुरुष हो, आकाशकी भांति निर्लेप हो, भक्तोंकी इच्छासे रूप धारण करते हो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जो पराया दुःख न देख सकें और किसीसे द्रोह न करै, क्षमावान् हो, सत्य ही बोले, निंदा आदि दोष रहित हो, समदृष्टि हो, सुख दुःखमें समान हो, यथाशक्ति सबका उपकार करे, सब प्राणियोंका अपराध सहै ॥ २९ ॥ कामकरके बुद्धि चञ्चल न हो, बाहरकी इंद्रियां जीते हो, कोमल शुद्धचित्त हो, परिग्रही न हो, व्यर्थ

एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोऽसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दांतो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥ अनीहो मितभुक् शांतः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ॥ धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥

कार्य न करे, भोजन थोडा करे, शांत हो, स्वधर्ममें स्थित हो, मेराही एक आश्रय करे, मेराही स्मरण करै ॥ ३० ॥ सावधान है, निर्विकार रहै, धैर्यवान हो, क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु यह सब जीते हो, अभिमानी न हो, दूसरेको मान देनेवाला हो, औरके प्रबोधनेको समर्थ हो, सबका मित्र हो, सबका भला चाहै, दयावान् हो, पूर्णज्ञानवान् हो ॥ ३१ ॥ ऐसे ही पुरुष साधु कहाते हैं मेरे स्वरूपभूत वेदके धर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, नहीं करनेमें दोष है, ऐसा जानने पर भी यह धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनेवाले हैं और जो धर्म मैं न करूं तो भक्तिसे ही सिद्ध हो जायँगे इस प्रकार भक्तिकी दृढताके लिये दृढ निश्चय कर अपने धर्मका अधिकार रुद्ध हो

जानेंसे इन धर्मोंको छोडकर जो प्राणी मेरा भजन करें वहभी महात्मा है ॥ ३२ ॥ तब जैसे मेरे चरित्र हैं इसी प्रकार मुझे जाने अथवा विना जाने भी जैसे हो तैसे जो कोई अनन्यभावसे मेरा भजन करते हैं, सो मेरे परम भक्त हैं ॥ ३३ ॥ साधुओंके लक्षण कहकर अब भक्तिके लक्षण कहते हैं कि मेरे चिह्न प्रतिमा आदि अनेक भांतिके और मेरे भक्तजनोंके दर्शन, स्पर्शन, पूजा, सेवा, स्तुति, प्रणाम, गुण-कर्म-कीर्तन ॥ ३४ ॥ हे उद्धव! मेरीकथा श्रवण करनेमें श्रद्धा मेरा ध्यान करें, जो कुछ मिले सो सब मुझे समर्पण करें, दास्यभावसे आत्मनिवेदन करै ॥ ३५ ॥ मेरे जन्म कर्म गावै, जन्माष्टमी आदि पर्वमें फूल नैवेद्य आदिसे मेरी पूजा करै, गीत नृत्य वादित्र गोष्ठीसे मेरे मंदिरमें उत्सव करै ॥३६॥ मेरेलिये यात्रा करै, पुष्पादिकोंसे पूजा करै, भेंट समर्पण करै, वर्ष प्रति वर्ष उत्सव करै, वैदिक तांत्रिक

ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥ भजंत्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्त
जनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥३४ ॥मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥
सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥ गीततांडववादित्रगोष्ठी
भिर्मद्गृहोत्सवः ॥३६ ॥ यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥ वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥३७ ॥
ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमंदिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां
सेकमंडलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदंभित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि
दीपावलोकं मे नोपयुंज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥

दीक्षा ले मेरे व्रत करै ॥३७॥ और प्रतिमामें श्रद्धा रक्खे, आपसे अथवा औरसे मिल कर मेरे लिये फूलोंका बाग, मंदिर, क्रीड़ास्थल, नगर, गांवके करनेमें उद्यम करै ॥ ३८ ॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देना, लीपना, छिड़काव करना, चौक पूरना और रंगवल्लीआदि चित्रांक करना, इस प्रकार मेरे गृहकी शोभा करै, दासकी भांति निष्कपट मेरी उपासना करै ॥ ३९ ॥ आप अभिमान तथा दंभ

न करै, जो करै सो कहै नहीं, मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसे अपने घरका काम न कर ॥ ४० ॥ जो वस्तु इस लोकमें आपको अतिप्रिय हो, निषिद्ध न हो सो मुझे अर्पण करै तो वह वस्तु अनन्त फल करैगी ॥ ४१ ॥ अब यह ग्यारह ठौर पूजाके कहते हैं कि, हे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, भूमि, आत्मा इत्यादि सब प्राणिमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥ ४२ ॥ अब जिसकी पूजा जिस प्रकार करनी चाहिये सो कहते हैं, वेदोक्त विद्यासे सूर्यकी पूजा करै, अग्निमें घृत होमकर मेरी पूजा करै, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतसे पूजै, गायमें सुन्दर तृणादिकसे सेवा करै ॥ ४३ ॥ वैष्णवोंमें अपने बन्धुके समान आदरसे मेरी पूजा करै, हृदय आकाशमें ध्यान धरके

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्याय कल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भूरात्मा सर्वभूतानि भद्रपूजापदानि मे ॥ ४२ ॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ॥ आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वंग यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बंधुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थंडिले मंत्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शांतं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयिसद्भक्ति मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥

पूजा करै, वायुमें प्राणबुद्धिसे पूजा करै, जलमें तर्पण आदि द्रव्यसे पूजा करै ॥ ४४ ॥ भूमिमेंगोप्य मन्त्र न्यासकर मेरी पूजा करै, अपने आपमें आत्माकी पूजा भोग करके जो भोग करै सो सब आत्माको समर्पण करदे, सब प्राणिमात्रमें समान दृष्टि रखकर मेरी पूजा करै, मैं अन्तर्यामी हूं ॥ ४५ ॥ एकाग्र मन हो इनस्थलोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धरे चतुर्भुज शान्तरूपका ध्यान कर मेरी पूजा करै ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य ऐसा करते हैं वे निश्चयमन होकर यज्ञ, वापी, कूप, तड़ाग, बागसे मेरी पूजा कर साधुओंकी सेवासे मेरा स्मरण करते मुझमें परमभक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषसे भक्तिमार्गको श्रेष्ठ कहते हैं कि, हे उद्धव ! पहले सत्संग करै कि, जिससे भक्ति उत्पन्न हो, संसार

1192

सागरसे तरनेका इससे उत्तम उपाय और कोई दूसरा नहीं है क्योंकि साधुओंका एक मैं ही आश्रय हूँ. इसलिये उत्तम वैष्णवोंका सत्संग अतिश्रेष्ठ है॥४८॥ हे उद्धवा तुम सर्व प्रकारसे मेरे उत्तम सुहृद सखा हो, इसलिये तुमसे कहा है कि, यह जो भक्तियोग गुप्त है सो तुमको सुनानेके लिये कहता हूं॥ ४९ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धव संवादे एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥ दोहा–बारहमें सतसंगकी, महिमा कहौं बखान।कर्म करन अरु त्यागको, वरणों आतमज्ञान॥ १॥श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव।योग और तत्त्वोंका विवेक और अहिंसा आदि धम विधाका अध्ययन, तप, त्याग, अग्निहोत्रादिक, वापी, कूप, तड़ाग, दक्षिणा॥१॥व्रत, यज्ञ,वेद,तीर्थ, नियम, संयम

अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनंदन॥सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥४९ ॥ इतिश्रीमद्भागवते म०
एकाद० भगवदुद्धवसवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव
च। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥१॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुंधे
सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्॥२॥सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारण
गुह्यकाः ॥३॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ॥ रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥४॥
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥५॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो
गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथाऽपरे ॥ ६ ॥

यह सब मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते, जैसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तका सत्संग वश करता है, क्योंकि सत्संग सब कुसंगोंका छुडानेवाला है ॥ २ ॥ दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ३॥ विद्याधर और मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री यह सब नीच जाति राजस, तामस स्वभाव युक्त भी इन इन युगोंमें ॥ ४ ॥ मेरे पदको प्राप्त हुए और भी बहुत हैं वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय, विभीषण ॥ ५ ॥ सुग्रीव, हनुमान्, जांबवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार, व्याध, कुब्जा, गोपी, व्रजमें यज्ञपत्नी ऐसे और भी अनेक

मुझ प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥ यह दोनों वेदार्थ नहीं पढे थे, महत्पुरुषोंकी उपासना नहीं करी थी, व्रत दान तप कुछ नहीं करते थे, एक मेरे संग सेही मुझे प्राप्त हुए ॥ ७ ॥गोपी,गाय, यमलार्जुन, मृग और मूढबुद्धि काली आदि नाग सिद्ध अनायास मुझे प्राप्तहो गये * ॥ ८ ॥ सांख्य, योग, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, अध्ययन इतने यत्नसे भी जिन्होंने मुझे न पाया,वे एक भावमात्रसे ही प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ अब

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो
गावो नगा मृगाः ॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥ ८ ॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोध्वरैः ॥
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥९॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ॥
विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥ तस्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृंदावनगो
चरेण ॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥

मुख्य उत्तम भाव गोपियोंका कहते हैं इस कारण पहले गोपियोंके भावकी स्तुति करते हैं.हे उद्धव। जब अक्रूर आकर बलदेवसहित हमको मथुरा ले गये तो दृढप्रीतिसे मुझमें आसक्त चित्तवाली वियोगसे दुःसहचित्त गोपियोंने सुखके लिये मेरे अतिरिक्त और किसीकी ओर न देखा ॥ १० ॥ हे उद्धव। वृन्दावनमें फिरते उनको अतिप्रिय मेरे संग जो रात्रियें एक क्षणके समान बीतती थीं वही मुझ बिना उन

---

* शंका-श्रीकृष्ण भगवान्ने उद्धवसे कहा कि, हे उद्धव! पर्वत, पक्षी, मृग यह सब सत्संगसे हमारे लोकको गये सो इस बातका हमको बडा सन्देह है कि, सत्संग तो बडे बडे महात्माओंको भी बडा दुर्लभ है सो इन तुच्छ जीवोंको क्योंकर हुआ ?

उत्तर-महात्मा पुरुष तो पर्वतोंपर बसते हैं इसलिये उनको पर्वतोंका सत्संग हुआ और महात्माओंके सम्मुख नित्य रात दिन पक्षी और मृग बसते थे, महात्माओंका नित्य दर्शन करते थे कुछ सत्संगकी बात कानोंसे सुन ली, कुछ भगवान्के पूजन आदिककी सामग्रीदेख ली इस प्रकार योगियोंको दुर्लभ सत्संग पर्वतोंको, पशुओंको तथा मृगोंको प्राप्त हुआ ऐसा कृष्णने कहा था॥

गोपियोंको कल्प समान बीतीं॥ ११ ॥ मुझमें गोपियोंकी बुद्धि अधिक आसक्त हो गई थी, इसलिये उन्हें पति पुत्रादि तथा देह और परलोकका भी कुछ ध्यान न रहा, जैसे समाधिमें मुनियोंको नाम स्वरूपका ध्यान नहीं रहता अथवा जैसे नदी समुद्रमें मिलजाती हैं, इसी प्रकार गोपियें मेरे स्वरूपमें लीन हो गईं॥ १२॥ इस प्रकार केवल मेरी इच्छावाली सहस्रों स्त्रियें यद्यपि मेरे स्वरूपको नहीं जानती थीं परन्तु तोभी जारबुद्धिसे माने हुए मुझ परब्रह्मके सत्संगकी महिमासे मुक्त हो गईं॥ १३॥ हे उद्धव! मेरे भजनका ऐसा प्रभाव है कि, गोपियें जारबुद्धिसे भजन करनेपर भी मुझे प्राप्त हुईं, इसलिये तुम श्रुति स्मृतिके विधिनिषेध छोड़ प्रवृत्ति निवृत्ति धर्म छोड़, सुना सुनाया छोड़॥ १४॥ सब देहधारियोंका आत्मा जो मैं हूं इस कारण सबोंमें मेरा भाव रख केवल मेरी शरणको प्राप्त होकर तुम निर्भय होगे ॥ १५ ॥ यह सुनकर उद्धवजी बोले कि, हे योगेश्वरोंके ईश्वर! तुम्हारी बात सुनकर आत्माविषयक मेरा संदेह निवृत्त नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो आपने कहा कि, मेरा भजन करो. अब कहते हो कि, सब धर्म छोडकर हमारी शरण आओ इन दोनोंमेंसे क्या करना उचितहै, त्याग करना चाहिये अथवा भजन करना चाहिये ? यह मुझे बडा भ्रम है सो निवारण करो॥ १६ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! पहले तो यह जीव ईश्वर है, ब्रह्म है परन्तु अविद्याके संगसे अपना धर्म भूल गया है, अविद्याके धर्मको ही अपना धर्म समझ 'अहं कर्त्ता' अभिमानसे बँधताहै, जब अविद्याके धर्म दूरहो जायँ तब शुद्ध चित्त हो उसके लिये निष्कामकर्म करना कहा है, जब चित्त शुद्ध हुआ तब कर्मका त्याग कहा जब 'विवेक उसको उत्पन्न हो तब विवेकसे

ता नाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥१२॥ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः॥ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्त्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥१७॥

सत्त्वगुणका उपशमरूप सत्त्वगुणसे नाश करना ॥१॥ रजोगुण तमोगुणके सम्मुख सत्त्वगुण कैसे बढ़ें सात्त्विक पदार्थोंकी उपासनासे सत्त्वकी वृद्धि होती है और जो सत्त्वगुण बढ़े तो मेरी भक्ति लक्षण धर्म हो ॥२॥ इसीसे रज, तम भी दूर हो, सत्त्वकी वृद्धि भी हो इस कारण भक्ति अति श्रेष्ठ है। रज तमके दूर होनेपर रज, तम मूलवाला अधर्म निश्चयसे शीघ्र दूर होता है ॥३॥ शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र, संस्कार यह सब गुणके हेतु हैं ॥ ४ ॥ यह भी दश सात्त्विक राजस तामस हैं, इनके मध्य जिसकी बड़ाई करते हैं सो सात्त्विक है, जिसकी निन्दा करते हैं सो तामस है और जिसकी न स्तुति करते हैं न निन्दा करते हैं सो राजस है ॥ ५ ॥ सत्त्वगुण बढ़ानेके लिये पुरुषको सात्त्विकवृत्ति शास्त्रका सेवन करना चाहिये, प्रवृत्तिमार्गके पाखण्डियोंके शास्त्र न देखे, जल तीर्थका ही सेवन करै, सुगंधित जलका सेवन न करै; संग निवृत्तिमार्गवालोंका ही करै, दुराचारियोंका न करै; देश एकान्त ही सेवै, चोर ठग और जुआ खेलनेवालोंका संग न करै; ध्यानका सेवन ब्राह्ममुहूर्त्त आदि कालमें करै, आधीरातके समय प्रदोष कालका सेवन न करै; कर्म नित्य ही करै, काम्य और अभिचारादि कर्म न करै; वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्म ले, क्षुद्र देवताओंकी दीक्षा न ले; भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ही गुरु करै, अस्त्रोंका और शत्रुओंका ध्यान न करै; जब प्रणव आदि उत्तम मंत्रको जपै उस समय काम्य मंत्र और क्षुद्र मंत्रको न जपै, जो संसारसे आत्माका शोधक होय सो करै, देह गृहको न करै इस प्रकार सब सात्त्विक सेवै तो सत्त्वगुणकी वृद्धि हो और राजस तामस छूटै तब भक्तिरूपी तप धर्म होवै, उससे मेरे स्वरूपका ज्ञान हो ॥६॥ जैसे बाँसोंके घनकी अग्नि आपसमें घिस और प्रज्वलित हो सब अरण्यको जला ईंधन घट जानेपर आप ही शान्त हो

सत्त्वाद्धर्मो भवेद् वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मो रजस्तमो
हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभय हते ॥ ३ ॥ आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च
जन्म च ॥ ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निंदंति तामसं
यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये ॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोह
नम् ॥ ६ ॥ वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

जाती है उसी प्रकार गुणके क्षोभसे उत्पन्न हुआ देह आप ही शांत हो जाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले, हे कृष्ण ! बहुधा सब मनुष्य कहते हैं कि, विषय दुःखरूप है, उससे दुःख पाते हैं तो फिर क्यों यह पुरुष कूकर, गर्दभ, बकरेके समान निर्लज्ज हो उसीमें प्रवृत्त होते हैं ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! जब यह विवेकसे रहित होते हैं तब इनके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सत्यसी होती है तो सात्त्विक मन भी दुःखरूप राजस धर्मसे व्याप्त होते हैं ॥ ९ ॥ यह पुरुष जब रजोगुणसे व्याप्त होता है तब मनमें संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं और संकल्से विषयका जो ध्यान करता है उससे इस दुष्टबुद्धि पुरुषको काम उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ इसके उपरांत उनके वश हो रजोगुणके वेगसे

उद्धव उवाच॥विदंति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथापि भुंजते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत्॥८॥श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धि दुर्मतेः ॥१०॥ करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः॥११॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः॥अतंद्रितो मनो युंजन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥ अप्रमत्तोऽनुयुजीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः॥१३॥एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः॥सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा ॥१४॥ उद्धव उवाच ॥यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥

मोहित हुआ अजितेन्द्रिय दुःख फलवाले कर्मोंको ही करता है ॥ ११ ॥ इसमें भी जो विवेकी हो सो यद्यपि रजोगुण तमोगुणसे विक्षिप्त मन है, परन्तु तो भी सावधान हो मनको खैंचकर रक्खे तो वह दोष जानकर विषयमें आसक्त न होगा ॥ १२ ॥ जो विवेकी स्नेहसे मुझमें मन लगाता है और आलस्य छोड श्वास रोक आसन दृढ कर मुझमें मन स्थिर करता है॥१३॥सो हे उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादिकोंने इतना ही योग बताया है कि, यह जीव सब ओरसे मन खैंच प्रत्यक्ष मुझमें रक्खै ॥१४॥ उद्धवजी बोले कि, हे केशव ! सनकादिकोंके रूपसे जिस समय तुमने यह योग कहा था सो तुम्हारा रूप और वह समय जाननेकी इच्छा है सो कहिये ॥ १५ ॥

सर्वत्र वह मेरा रूप जानता है, अब कर्म और ज्ञानका अधिकार हुआ इस कारण सब कर्म त्यागकर मेरी शरण आवै, यह उपदेश दिया. अब ईश्वरसे वाणी इन्द्रिय द्वारा जीवके संसारके कारणभूत प्रपंचकी उत्पत्ति कहते हैं सो ईश्वर आधारादि चक्रोंमें प्रकट होते हैं उस प्रकटताको भी कहते हैं, सो ईश्वर नादवन्त पर नाम प्राणसहित आधारचक्रोंमें प्रविष्ट होकर मनोमय सूक्ष्मरूप देखै और मध्यमा नाम मणिपूरक और विशुद्ध चक्र विषे आकर मुखमें हुँ, स्वरादिक मात्रा, उदात्तादिक स्वर, अकारादिक अक्षररूप वैखरी नाम अति स्थूल नानाविध रूप होते हैं ॥ १७ ॥ जैसे आकाशमें गर्मीरूप अग्नि अप्रकट है, बलपूर्वक काष्ठके मथनेसे वायुकी सहायतासे पहले सूक्ष्मरूपसे निकलती है, पीछे हविष्यसे वृद्धिको प्राप्त होती है. इसी प्रकार यह प्राणी मेरे प्रकट होनेके स्थान हैं॥ १८॥

यथाऽनलः खेऽनिलबंधुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणुः प्रजातो हविषा समिध्य ते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गद्धिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक्स्पर्शः श्रुतिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजः सत्त्वतमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरऽव्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तंतुवितानसंस्थः ॥ य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥

हाथोंका धर्म क्रिया, चरणका धर्म तीर्थ गमन करना और गुह्येन्द्रियका धर्म मलादि विसर्जन करना. आघ्राण, रस, दर्शन, श्रवण यह सब ज्ञानेन्द्रियोंके धर्म, संकल्प मनका धर्म विज्ञान और बुद्धि चित्तका धर्म, अभिमान अहंकारका धर्म, सूत्र मायाका धर्म, सत, रज, तम इन तीन गुणोंका विकार अधिदेव अध्यात्म अधिभूत यह सब मेरे प्रकट होनेके स्थान हैं ॥ १९ ॥ यह आत्मा ब्रह्म है, एक ही है, अप्रकट है, कालसे अलग कर वाणीरूप इंद्रियोंकी शक्तियोंको अनेक भाँतिसे प्रकाशै है, जिससे आदि है, तीन गुणोंका आश्रय है, सृष्टिकमलका कारणभूत है, जैसे बीज खेतको पाकर अनेक भाँति प्रकाशमान होता है उसी प्रकार यह आदिकारण ईश्वर भी कालकी गतिसे मायाको अंगीकार कर प्रपंचरूप हो जाते हैं ॥ २० ॥ इसमें दृष्टान्त कहते हैं, तंतुके विस्तारमें स्थितिमान् पट जैसे तंतुओंमें ओतप्रोत है और ततुओंसे पृथक् नहीं है उसी प्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें विद्यमान है, उससे भिन्न

नहीं है, ऐसे ही समष्टि व्यष्टि रूप अविद्यासे आत्मामें अध्यास किया हुआ प्रपंचरूप वृक्ष ही जीवके कर्त्ता भोक्ता आदि संसारका कारण है, इससे जब यथार्थरीतिसे आत्माकी सत्यता और प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आवै उस समय कामादि सबका त्याग करना कहा है, यह अनादि कालसे प्रवृत्तिवाला प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादिरूप पुष्प फलोंको उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ इसके पाप पुण्य दो बीज हैं, अनेक भांतिकी वासना इसकी जड है, तीनों गुण (रजोगुण, तमोगुण, सत्त्वगुण) इसकी पीडि हैं, रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द: यह पांच रस हैं, पांच महाभूत इसके स्कंध हैं, एकादश इंद्रिय शाखा हैं, दो पक्षी जीव और परमात्माका घर है, वात पित्त कफ यह तीनों वल्कल हैं. फल दो दुःख सुख हैं, सूर्यमण्डलतक यह वृक्ष है, इससे आगे संसार नहीं ॥ २२ ॥ अब इसके फलके भोक्ताको कहते हैं-इसके एक फल दुःखरूपका गृहस्थ

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कंधः पंचरसप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्के प्रविष्टः ॥२२॥ अदंति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः॥ हंसा य एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ ॥२३॥एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेणशितेन धीरः॥विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम्॥ ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥ सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

ग्रामचारी कामी गीदड़के समान भोग करते हैं, दूसरे फलका सुख अरण्यवासी परमहंस संन्यासी भोग करते हैं इससे यह एक ही परमात्मा मायामय अनंतरूप है, इतना तत्त्वार्थ गुरुद्वारा जिस पुरुषने जान लिया है, उसने सब वेद जान लिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार धीर सावधान होकर तुम भी गुरुकी सेवा करना और एकान्तभक्तिसे तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारसे त्रिगुणमय इस लिंगशरीरको काट परमात्मासे मिल पीछे सब साधन छोड देना ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ दोहा-इस तेरह अध्यायमें, हंसरूप इतिहास । बढ़ै अधिक जब सतोगुण, प्रगटै बुद्धिविलास ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीनों गुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं. इस कारण सत्त्वगुणकी वृद्धिसे रजोगुण तमोगुणकी वृद्धिका नाश कर सत्त्व दयादिरूप

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! एक समय ब्रह्माके मानसी पुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्म गति ब्रह्मदेवसे पूछने लगे ॥ १६ ॥ सनकादिक बोले कि, हे प्रभो ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभावसे ही रागादिकोंके हेतु विषयधर्ममें प्रविष्ट होता है और अनुभूत विषय वासना रूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं, अब विषयोंका त्याग करनेकी इच्छावाला मुमुक्षु पुरुष परस्पर इन दोनोंको किस प्रकार भिन्न भिन्न करे ? ॥ १७ ॥ इस प्रकार पुत्रोंके पूछनेपर ब्रह्माजीने जो कुछ कहा था वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे कहते हैं कि, इस भांति जब सनकादिकोंने कहा तो स्वयंभू ब्रह्मा बड़े देव विश्वके पालक विचारने लगे परंतु प्रश्नका पार न पाया इससे कर्मसे विक्षिप्त बुद्धि हुई ॥ १८ ॥ तब प्रश्नका उत्तर

श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकांतिकीं गतिम् ॥१६॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ॥ कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥ स मामचिंतयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥

देनेके लिये ब्रह्माने मेरा चिन्तवन किया तब मैं हंसरूप हो ब्रह्माके निकट गया ॥ १९ ॥ तब मुझे देखते ही सब प्रणाम कर ब्रह्माके आगेसे मेरे निकट आय 'तुम कौन हो ?' इस प्रकार पूछने लगे ॥ २० ॥ हे उद्धव ! तत्त्वके जाननेकी इच्छासे मुनिने जब इस प्रकार मुझसे पूछा तो मैंने जो उनसे कहा वह तुम सुनो ॥ २१ ॥ हंसरूप भगवान् सनकादिकोंसे बोले कि, तुम आत्माको आगे कर प्रश्न करते हो वा आत्माके उपाधिस्वरूप भूतसमूहको लेकर प्रश्न करते हो ? जो आत्माका अधिकार प्रश्न करते हो तो परमार्थसे आत्मामें अभेद होनेके कारण तुम कौन हो ? यह प्रश्न करना कि, जो अनेकोंमें एकका निश्चय करनेके लिये है, संभव नहीं हो सकता और मैं तुम्हें क्या विषय लेकर उत्तर

हूँ ? आत्मा कोई जाति वा गुणादिरूप हो तो उत्तर दिया जाय कि मेरी यह जाति और मुझमें यह गुण है, परन्तु आत्मामें कोई बात नहीं इससे तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं बन सकता ॥ २२ ॥ और जो पञ्चभूत सङ्घानका प्रश्न है वह अनर्थरूप है देव मनुष्यादि देह सब पंचभूतात्मक हैं वस्तुसे सब समान हैं अपने कारणसे न्यारे नहीं, वे सब कारणरूप एक ही हैं ब्रह्मरूप ही, यह नामरूप अलग अलग धर लिये हैं सो अज्ञान है इस कारण इसका मैं क्या उत्तर दूं ? ॥२३॥ मन, वचन, दृष्टि और इंद्रियोंसे जो ग्रहण किये जाते हैं सो मैं हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है,यह तत्त्वका विचार करके जानलो॥२४॥इस प्रकार उनके प्रश्नका खण्डन करनेके बहाने आत्माका स्वरूप कहा, अब ब्रह्माको भी जो अशक्य उत्तर है सो देते हैं कि, यह विषय और चित्त दोनों गुथे हैं, ब्रह्मरूप जीवका देह है सो उपाधि है, कुछ सत्य नहीं है, जो पुरुष

पंचात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवानिति वः प्रश्नो वाचारंभो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपींद्रियैः ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमंजसा ॥ २४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥२६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ ॥ २७॥ यर्हि संसृतिबंधोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥

अपने आपको ब्रह्मरूपसे विषयोंको मिथ्या करके जानतें हैं और वैराग्यसे भगवान्‌का भजन करते हैं वे उपाधि छोड़कर मुक्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि विषयोंकी ही सेवा करनेसे और उनकी वासनासे विषयोंमें चित्त प्रविष्ट होता है, इसलिये विषय और चित्त यह दोनों जब मेरा रूप जानैं तो छूटैं ॥ २६ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंसे रहित जीव शुद्ध आत्मरूप कैसे हो ? सो कहते हैं-यह अवस्था तीन गुणोंसे होती है, बुद्धिकी ही वृत्ति अवस्था है, जीव इन अवस्थाओंसे भिन्न है ऐसा निश्चय किया गया है, इसलिये जीव इन सबका साक्षी है ॥ २७ ॥ जो यह साक्षी हुआ तो भिन्न क्यों है ? और "मैं सोया, जागा" ऐसे क्यों कहता है ? क्योंकि जब अहंकारके धर्मसे संसारका बन्धन

है तो मैं जागता हूँ, सोता हूँ यह बुद्धि है, जब अहंकार देहसे छूटै और आत्माके मध्यमें दृष्टि हो तब यह अवस्था भी सब जाती रहै और विषय तथा चित्तका परस्पर त्याग हो ॥ २८ ॥ यह बन्धन देहके अभिमानसे है इसीसे आत्माको भी अनर्थ लगता है, इस प्रकार निश्चय कर वैराग्यसे आत्मामें चित्त लगाय संसारकी सब चिन्ताका त्याग करै ॥२९॥ जबतक भेदबुद्धि युक्तियोंसे निवृत्त नहीं है तबतक यह अज्ञानी पुरुष कर्मादिकोंमें जागता अर्थात् जानकर भी स्वप्नमें अपनेको जागृत् मानते हुए मनुष्यके समान स्वप्नको ही देखता है, क्योंकि उसे यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ यह सब देह और देहका किया सबसे भेद वर्ण, आश्रम, स्वर्ग आदि कर्म फल आत्माके धर्म नहीं हैं, यह देहके धर्म हैं, अविद्यासे उत्पन्न होते हैं, इस कारण मिथ्या हैं, उत्तम नहीं, जैसे स्वप्न देखनेवालेके सब मनोरथ मिथ्या हैं ॥३१॥ यह जीव जागतेमें

अहंकारकृतं बंधमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वान्निर्विद्य संसारचिंतां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥२९॥ यावन्नानार्थधीः पुंसो
न निवर्तेत युक्तिभिः ॥ जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता
भिदा ॥ गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्भुंक्ते समस्तकरणैर्हृदि
तत्सदृक्षान् ॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिंद्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवं विमृश्य गुणतो
मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ॥ संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत
माऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥

जो विषय भोग करता है वह भोग एक क्षण भरका है, कुछ नित्य नहीं, जैसे बाल्यावस्था और तरुणपन आये और गये. जाग्रत्के समान भोग करते हैं और सुषुप्तिमें यह सब धर्म लीन हो जाते हैं, केवल आत्मा ही रहता है, मैंने पहले तो स्वप्न देखा फिर सुखसे सोया, कुछ ज्ञान न रहा, इस अनुभवके स्मरणसे तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, इनका साक्षी एक आत्मा ही रहता है और सब लीन हो जाते हैं इस कारण आत्मा सब इन्द्रियोंका ईश्वर है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह तीनों अवस्था मनके वशमें हैं आत्माके वशमें नहीं, सो मेरी शक्ति अविद्यासे अपनेको मान लेती है, ऐसा निश्चय कर सब संदेहका स्थान अहंकार है तिसको विवेकसे अनुमानसे प्रमाण वचनसे उपजा जो ज्ञानरूपी खड्ग

उससे काटकर हृदयमें स्थित मेरा भजन करे ॥ ३३ ॥ अनुमान किस प्रकारका है, सो कहते हैं कि, यह जो जगत् दीखता है सो सब मनका विलास है, भ्रम और मिथ्या विलास है, यह द्वैत भी भ्रान्तिरूप है क्योंकि यह अति चंचल है और जो चंचल हो वह अलातचक्रके समान भ्रांतिरूप है, ब्रह्ममें द्वैतकी अनेक भ्रांति होती हैं इसलिये भ्रांतिका अधिष्ठानरूप एक ब्रह्म ही अनेक प्रकार दीखता है और जो यथार्थ विचारसे देखते हैं तो यह त्रिगुणात्मक मायाका भ्रम स्वप्नके समान है ॥३४॥ इससे हे उद्धव ! ऐसे प्रपंचसे दृष्टि फेर तृष्णा छोड़ आत्मसुखके विचारमें तत्पर हो इन्द्रियोंके सब धर्म छोड़ दो. यदि कहो कि, देहवान्से देहकी चेष्टा कैसे छूट सकती है ? और न छूटनेसे द्वैत हो जायगा तो कहते

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः॥ ३४ ॥ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥ देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ॥३६॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रति समीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥

कि, कहीं ऐसे भी देहकी चेष्टा देखी जाती है परन्तु वह चेष्टा अहंकार रहित है सत्य नहीं, जिससे प्रपंचमें उनकी मिथ्या बुद्धि है. जो मिथ्या जानकर छोड़ दिया जाता है वह फिर मोह उत्पन्न नहीं करता यह निश्चय है देहतक कर्मोंका संस्कार है; ॥ ३५ ॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष इस विनाशी देहको दैवगतिसे आसनसे उठा, आसनपर स्थित. उठकर खड़ा हुआ, बाहरको गया अथवा दैवगतिसे फिर आया हुआ नहीं देखते, जैसे मदिरापानसे मत्त हुआ पुरुष पहने वस्त्रको नहीं जानता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ब्रह्मको प्राप्त हो चुके हैं ॥ ३६ ॥ यहां तर्क करते हैं कि, देहको न जाने तो देह क्यों नहीं गिरे तो कहते हैं कि, देह भी दैवके अधीन है और जबतक इसका प्रारब्धकर्म है, तबतक प्राण

इन्द्रियो सहित देह रहता है इसलिये जो समाधियोगमें आरूढ हैं. परमार्थ वस्तु और आत्मस्वरूपको जानते हैं वह पुरुष प्रपंचसहित स्वप्नके समान इस देहको नहीं भजते ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! सांख्य और योगमार्गका जो रहस्य था वह मैंने आपसे वर्णन किया, तुम्हें धर्म और ज्ञानका उपदेश देनेके लिये मैं यज्ञरूप विष्णु आया हूँ, ऐसा जानो ॥ ३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! योग, सांख्य, सत्य, ऋत् अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म, तेज, प्रभाव, श्री, कीर्ति और इन्द्रियपन इन सब धर्मोंका मैं ही परमार्थस्थान हूँ, यह सब मुझहीमें रहते हैं ॥ ३९ ॥ सब गुण मेरे ही आश्रित हैं, मैं निरपेक्ष हूँ, सुहृद परमप्रिय हूँ, सबका आत्मा और सब मुझे समान हैं, संग किसीका नहीं, ऐसे गुण मुझमें हैं ॥ ४० ॥ इस

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः॥जानीत माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य
सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥ मां भजंति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपे
क्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्याऽसंगादयो गुणाः ॥ ४० ॥ इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः॥समाजयित्वा
परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः
परमेष्ठिनः॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चित्तगुणविश्लेषवर्णनं नामत्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥
उद्धव उवाच ॥ वदंति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥ तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

11/38

प्रकार मेरे वचन सुन सन्देह निवृत्त कर सनकादिक मुनियोंने अतिभक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥ ४१ ॥ जब उन ऋषियोंने भली भांति स्तुति और पूजा की, तब ब्रह्माके देखते २ मैं भी अपने धामको चला आया ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा-इस चौदह अध्यायमें, सबका यही विचार । सब साधनमें मुख्य है, भक्ति मुक्तिदातार ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! जो पुरुष ब्रह्मका विचार करते हैं, वह तो ब्रह्मका साधन बहुत बताते हैं, इन सबोंमें जो एक मुख्य साधन है सो कहो ॥ १ ॥

हे ईश्वर ! तुम निरपेक्ष भक्ति ही एक मुख्य साधन कहते हो कि, सब संग छोड़ भक्तियोगसे मुझमें चित्त रक्खे ॥ २॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ साधन है और जो अनेक साधन हैं वह अपनी इच्छानुसार संसारके लोगोंने मूर्खपनसे मुख्य मान रक्खे हैं, वह सब तुच्छ फलके देनेवाले हैं और मुख्य तो यह मेरी वेदरूप वाणी है जो प्रलयकालमें नष्ट हो गई थी. यह वह वाणी है, जिससे प्राणीका मन मुझमें लग जाय, यह पहले मैंने ब्रह्माजीसे कहा था ॥ ३ ॥ ब्रह्माने अपने बड़े पुत्र मनुसे वह वाणी कही, मनुने महर्षि भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु इन सात ब्रह्माके पुत्रोंसे कही ॥ ४ ॥ उनसे उनके पुत्र दैत्य, देवता, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर

भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः ॥ निरस्य सर्वतः संगं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय
मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥
मनुष्याः सिद्धगंधर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥ किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः ॥ बह्वयस्तेषां प्रकृतयो
रजःसत्त्वतमोभुवः ॥६॥ याभिर्भूतानि भिद्यंते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवंति हि॥७॥
एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यंते मतयो नृणाम् ॥ पारंपर्येण केषांचित्पाखंडमतयोऽपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः
पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदंत्यनेकांतं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ चारण, किंदेव (मनुष्यजातिमें देवतुल्य), किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुषादिक सबोंने वह वाणी ग्रहण की, जिनकी वासना रजोगुण तमोगुण आदिसे अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥ जिन वासनाओंसे देवतुल्य मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर भिन्न भिन्न होते हैं और उनकी बुद्धियोंमें भी भेद पड़ता है, उन सबोंने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न भिन्न वेदका व्याख्यान किया है ॥ ७ ॥ इस प्रकार प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्योंकी बुद्धि विचित्र होगई और शास्त्रोंमें भी भेद पड गये, किसी प्राणीके उपदेशकी परंपरासे वेदविरुद्ध पाखण्डबुद्धि हुई ॥ ८ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! मेरी मायासे मोहितबुद्धि पुरुष अनेक प्रकारसे इच्छानुसार कल्याणके साधन कहते हैं ॥ ९ ॥

कोई धर्मको ही मुख्य कहता है, कोई यशको, कोई कामको, कोई सत्यको, कोई शम दमको कोई ऐश्वर्यको और कोई स्वार्थको ही मुख्य
कहते हैं कोई दान करो भोग करो यही कहते हैं, कोई यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम, संयम यह सब साधन कहते हैं ॥ १० ॥ इन प्राणियोंको
अपने कर्मानुसार लोक, कर्मफल मिलते हैं वह सब परिणाममें दुःखसे पूर्ण किंचित् आनन्द युक्त शोकसे व्याप्त आदि अंतवाले हैं ॥ ११॥
हे सौम्य ! मुझमें जिन्होंने आत्मसमर्पण किया है. और जो सबसे निरपेक्ष हैं, उनको मेरे परमानन्द स्वरूपकी प्राप्तिसे सुख मिल रहा है,
वह सुख विषयोंमें लगे पुरुषोंको प्राप्त नहीं होता. क्योंकि जो भक्तोंका सुख है वह विषयी पुरुषोंको कहाँ ! ॥ १२ ॥ जो अकिंचन दांत

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदंति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ १० ॥ केचिद्यज्ञतपोदा
नव्रतानि नियमान्यमान् ॥ आद्यंतवंत एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानंदाः शुचा
र्पिताः ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनः सौम्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥
अकिंचनस्य दांतस्य शान्तस्य समचेतसः ॥ मया संतुष्टमनसः सर्वाःसुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न महेंद्र
धिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥१४॥ न तथा
मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ॥ न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥१५॥ निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं
समदर्शनम् ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥१६ ॥ निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शांता महांतोऽखिलजी
ववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषंति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥

समचित्त और संतुष्टमन हैं उनको सब दिशायें सुखरूप हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने मुझमें आत्मसमर्पण कर दिया है, उनको मेरे अतिरिक्त
और किसी वस्तुकी चाहना नहीं है, एक मैं ही उन्हें प्रिय हूँ, अधिक क्या कहें ब्रह्मलोक, इन्द्रका संपूर्ण राज्य, भूमिका राज्य, पातालका
राज्य, अणिमा महिमादिक योगसिद्धि व मोक्षतककी उनको चाहना नहीं है ॥ १४ ॥ इस लिये भक्तोंके समान मुझे कोई प्यारा नहीं. हे
उद्धव ! अब मैं तेरे आगे अधिक क्या कहूँ, मेरा आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं हे उद्धव ! जैसे तुम मुझे प्यारे हो वैसे मेरा पुत्र, ब्रह्मा, महादेव,
संकर्षण और लक्ष्मीजी भी मुझे प्यारे नहीं हैं. यह अतिसंतोषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ उत्तम भक्तोंकी तो कथा ही

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेंद्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥१८॥ यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः
करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥१९॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म
उद्धव ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥२०॥ भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भक्त्याऽपेतमा
त्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनानंदाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या
विनाऽऽशयः ॥२३ ॥ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च॥विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्ति
युक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥

क्या है, जो सामान्य भी मेरे भक्त हैं वह भी कृतार्थ हैं और जो मेरे भक्त विषयोंसे पीडित अजितेन्द्रिय हैं, उनको भी दृढ भक्ति होनेके कारण विषय पराभव नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देती है इसी प्रकार मेरी दृढ भक्ति सब पापों का नाश कर देती है ॥ १९ ॥ इससे भक्ति विना और कोई उपाय नहीं है. हे उद्धव ! योग, सांख्य, धर्म, पाठ, तप, त्याग यह कोई मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते जैसे एक दृढ भक्ति मुझे वश कर लेती है ॥ २० ॥ भक्तोंको प्रिय आत्मारूपमें श्रद्धासे उत्पन्न हुई भक्तिसे ही महात्माओंके वश हो जाता हूँ, यदि मेरी भक्ति चाण्डाल करे तो उसके भी जातिदोष पवित्र हो जाते हैं * ॥ २१ ॥ सत्य और दया संयुक्त धर्म और तपसे संयुक्त विद्या भी उस पुरुषको पवित्र नहीं कर सकती जिसके चित्तमें मेरी भक्ति नहीं ॥ २२ ॥ जिसके रोमांच न हों, द्रवीभूत चित्त न हो, आनन्दके आंसू न चलें, उसकी भक्ति कैसे जानी जाय और भक्ति विना हृदय कैसे शुद्ध हो ?॥ २३ ॥ अब भक्तिका लक्षण कहते हैं,

---

* दृष्टान्त-एक तिलोक सुनार बड़े साधुसेवी थे, जो कुछ वस्तु प्राप्त होती, सब साधुओंमें व्यय कर देते थे, एक समय राजाके यहांसे कुछ आभूषण बनानेको आये सो इनके यहां बहुत साधु आ गये, इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजनसामग्री मंगाकर साधुओंको खिला दी और आप टालूवाल करते रहे, जब राजाके यहां व्याहका दिन आया तो यह जंगलको भाग गये, भगवान्ने भक्तकी रक्षा की, तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घर गये वहांसे अच्छे आभूषण बनानेके कारण पुरस्कार पाया और गहना दिया. भगवान् वह पुरस्कारका द्रव्य तिलोकके घर दे जंगलमें जाकर उससे कहने लगे कि, घरको जा. राजाने बहुत द्रव्य दिया है, तिलोक सुनते ही घर आय अत्यन्त प्रसन्न हुए सो ईश्वरके भक्त कभी नष्ट नहीं होते ॥

जिसकी वाणी गद्गद हो चित्त द्रवीभूत कोमल हो, नेत्रोंसे वारंवार आंसू बहैं, कभी हँसे कभी लज्जा छोड़ उच्चस्वरसे गावे, नाचै इस प्रकार जो मेरी भक्तिसे युक्त हो वही लोकोंको पवित्र करता है ॥ २४ ॥ जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेसे श्यामता छोड निर्मल हो अपने रूपको प्राप्त होता है वैसे ही यह आत्मा मेरे भक्तियोगसे कर्मवासना त्यागकर मेरे ही स्वरूपको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ ज्ञान विना अविद्या नहीं जाती, अविद्याके गये बिना तुम नहीं मिलते इस प्रकार कहते हैं कि, यह पुरुष जैसे २ मेरी पुण्यकथा श्रवण कीर्त्तन करते हैं वैसे ही वैसे शुद्धचित्त होते हैं, नेत्र जैसे २ अंजनसे सूक्ष्म होते हैं वैसे ही वैसे सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आते हैं॥ २६ ॥ यद्यपि विषयके ध्यानमें मन विषयमें रहता है परन्तु तो

यथाऽग्निना हेममलं जहाति ध्मातं पुनः स्व भजते स्वरूपम्॥आत्मा च कमानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥ यथायथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथातथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ विषयान्ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥ तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथान् ॥ हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥ स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥ क्षेमे विविक्त आसीनश्चिंतयेन्मामतंद्रितः ॥ २९ ॥ न तथाऽस्य भवेत्क्लेशो बंधश्चान्यप्रसंगतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३० ॥ उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविंदाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

॥१०

भी मेरा ध्यान करनेसे शुद्धचित्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है क्योंकि मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होता और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी यही ज्ञान है ॥२७॥ हे उद्धव! इस लिये स्वप्नमनोरथके समान मिथ्या वस्तुका ध्यान छोड मेरी भावनासे चित्त शुद्ध कर मेरे स्वरूपमें रक्खै ॥ २८ ॥ स्त्रियोंका संग और स्त्रियोंके संगियोंका संग दूरसे छोड़ आत्माको जान धीर हो एकान्तमें बैठ परमकल्याणरूप मेरा चिंतवन करै ॥ २९ ॥ क्योंकि जैसा स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंके संगियोंके संगसे इसे क्लेशबन्ध होता है वैसा औरके संगसे नहीं होता ॥ ३० ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलनयन! जो मोक्ष चाहै, वह तुम्हारा ध्यान किस प्रकार करै, किस स्वरूपका करै? यह मुझसे कहो, क्योंकि

में तो आपके दासभावसे पुरुषार्थको प्राप्त हो चुका हूँ* ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! समान आसनपर बैठ अपनी देह सम रख जैसे सुख हो वैसे ही बैठ अपने दोनों हाथ गोदपर रख नासिकाके अग्रपर दृष्टि रक्खै ॥ ३२ ॥ इस प्रकार बैठ प्राणके मार्ग पूरक, कुम्भक, रेचक करके शुद्ध हो जितेन्द्रिय हो. शनैः शनैः प्राणायामका अभ्यास कर रेचक, पूरक, कुंभक क्रमसे अभ्यास करे ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकारका है, एक तो प्रणवसहित प्राणसे प्रकट करके ॐकारमें घण्टेके शब्दके समान उदात्त नाद स्थित करे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार प्रणवसंयुक्त प्राणके

श्रीभगवानुवाच ॥ सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुंभकरेचकैः ॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेंद्रियः ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घंटानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ॥ दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुंडरीकमंतःस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥

अभ्याससे प्रकट करै और प्रणवमें घटाना, बढाना, संधानका स्थित अभ्यास करै, दश प्रणायाम तीनों काल करै, इस प्रकार अभ्यास करनेसे एक महीनेमें प्राणवायु वशमें हो जाता है ॥ ३५ ॥ इस देहके भीतर हृदयकमल अधोमुख है, इसकी दंडी ऊपर रहती है, जैसे केलेका फल होता है, ऐसे ही कमलकी कली होती है, इसका ध्यान ऐसा करै कि, वह नीचे नालवाला और ऊपर मुखवाला खिला हुआ आठ पखुरीसे

---

* शंका-श्रीकृष्णसे उद्धवने बूझा कि, मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीजन भगवान्का ध्यान कैसे करते हैं ? तब श्रीकृष्णने उद्धवकी बातको त्यागकर सगुणरूपका वर्णन किया इसका क्या कारण ? उत्तर-श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया कि ब्रह्मका ध्यान मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगिराज करते हैं सो ध्यान सुननेसे और कहनेसे प्राप्त नहीं होता, वह ध्यान तो बहुत दिनोंतक सत्संग करनेसे प्राप्त होता है और उद्धवका हृदय ज्ञानमें कच्चा है और हमारी इच्छा परमधामके जानेकी है, जो कुछ अधिक दिन हमको मर्त्यलोकमें रहना होता तो भी उद्धव ब्रह्मज्ञान जाननेमें पक्का हो जाता ऐसा विचार करके सगुणका ध्यान वर्णन किया कि, धीरे धीरे सगुणका ध्यान करते करते ब्रह्मके ध्यानको उद्धव प्राप्त हो जायंगे इसलिये ब्रह्मके ध्यानको त्यागकर सगुणका ध्यान श्रीकृष्णचन्द्रने वर्णन किया ॥

युक्त है, कार्णिकासहित मनसे चिंतवन करे ॥ ३६ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं उस अग्निमें मेरे इस रूपका क्रमसे ध्यान करे, उसमें प्रथम अग्निके बीचमें वक्ष्यमाण ध्यानके मंगलरूप विषय मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सम, अति शान्त सुन्दर मुख, दीर्घ सुन्दर चार भुजा धारण किये, अतिसुन्दर ग्रीवा, उत्तम गोल कपोल, अति उज्ज्वल मन्दमुसुकान युक्त ॥ ३८ ॥ समान कानोंमें प्रकाशमान मकराकृति कुण्डल धारण किये, पीताम्बर पहरे, मेघकी भांति श्याम, सुन्दर श्रीवत्स संयुक्त लक्ष्मीको वक्षस्थलमें धरे ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमालासे भूषित, नूपुरोंसे शोभित चरण कमल, कौस्तुभ मणिकी कांतिसे संयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभासे दीप्त मुकुट,

कार्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥ समं प्रशांत सुमुखं
दीर्घचारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुंडलम् ॥
हेमांबरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभ
प्रभया युतम् ॥ ४० ॥ द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदाऽऽयुतम् ॥ सर्वांगसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥४१॥ सुकु
मारमभिध्यायेत्सर्वांगेषु मनो दधत् ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणये
न्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिंतयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मु
खम् ॥४३॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ ४४ ॥

कंकण, कटिमेखला, बाजूबन्द धरे, सर्वांगसुन्दर और मनोहर प्रसन्नताके कारण अति सुन्दर शोभित मुख और नेत्र अति सुकुमार रूपका ध्यान करे. सब अंगोंमें मन दे ॥ ४१ ॥ प्रथम इंद्रियोंको विषयोंसे खैंच मनमें मिलावै; मनको बुद्धि सारथीसे विषयोंसे निकाल मेरे स्वरूपमें मिलावै ॥ ४२ ॥ चित्त सर्वत्र व्याप्त है, अंग अंगमें फिरता है, उसको उन अंगोंसे निकाल मेरे मुखकी भावनामें रक्खै, मंदहास्य संयुक्त मेरे मुखका बहुत कालतक चिंतवन करै और कुछ मनमें न धरै ॥ ४३ ॥ जब मुखमें मन स्थिर हो जाय तो मुखसे भी खैंचकर

सबके मूलभूत साक्षात् मेरे स्वरूपमें रक्खै, उसे वहांसे छुड़ाय साक्षात् शुद्ध ब्रह्मरूप मेरे सम्पूर्ण स्वरूपमें संलग्न होय तब और कोई चिंतवन न करै ॥ ४४ ॥ इस प्रकार समाधिमें दृढ़मति हो अपने आत्मामें आत्मरूप मुझे ही देखै, जैसे ज्योतिमें ज्योति मिल जाती है उसी प्रकार सर्वात्मरूपमें अपने आत्माको मिला देखै॥४५॥इस प्रकार सुदृढ तीक्ष्ण ध्यानसे योगीजन मुझमें मन संयुक्त करै तब वह द्रव्य ज्ञानक्रियारूप भ्रम शीघ्र ही निवृत्त होनेसे शांतको प्राप्त होता है ॥४६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥दोहा–प्रथम धारणाअनुसरण, करत विष्णुपद प्रेम। विघ्नरूप सिद्धी सकल, समझ यही दृढ नेम ॥ १ ॥श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जो जितेंद्रिय हो और श्वास जीते, चित्त मुझमें रखता हो, योगी हो, स्थिरचित्त हो, उसे यह सिद्धियें प्राप्त होती हैं॥१॥तब उद्धवजी

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥ विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥४५॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युंजतो योगिनो मनः॥संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः॥४६॥इति श्रीमद्भागवते म०एकादशस्कंधे भक्तिध्यानयोर्वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥ श्रीभगवानुवाच॥जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः॥मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥१॥ उद्धव उवाच ॥ कया धारणया कास्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणायोगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिंद्रियैः ॥ प्राकाश्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

बोले कि, हे श्रीकृष्ण! कैसी धारणासे यह सिद्धि प्राप्त होती हैं और सिद्धि कितनी हैं? इनका रूप क्या है? सो सब मुझसे कहो,क्योंकि तुमने योगियोंको भी सिद्धियोंके देनेवाले हो ॥ २ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव! धारणा और योगके पारंगतोंने अठारह (१८) सिद्धि कही हैं. उनमें आठ मेरे आश्रय रहती हैं,वह मुझे ही प्राप्त होती हैं,अथवा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त हैं उन्हें होती हैं,परन्तु कुछेक न्यून हो और दश सिद्धि गुणोंका कार्य हैं, सतोगुणका उत्कर्ष बढ़ाती हैं ॥ ३ ॥ उनको कहते हैं अणिमा, महिमा, लघिमा यह तीनों देहकी सिद्धि हैं,प्राप्ति सिद्धि इंद्रियकी है,इंद्रियोंसे मिल इंद्रियोंके देवताओंका संग होना, परलोक और इस लोकके विषयोंके भोग देखनेकी

सामर्थ्य, तथा भूमिके गुप्त पदार्थका ज्ञान होना प्राकाश्य सिद्धि है, ईश्वरमें मायाकी और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेके सामर्थ्यको
ईशिता सिद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असंग हो, विषय भोग करै और संग दोष न लगे, उसे वशिता सिद्धि कहते हैं और जिसकी कामना कर
वही प्राप्त हो, उसे प्राकाम्य सिद्धि कहते हैं, हे उद्धव ! यह आठ सिद्धियें मेरे आश्रय रहती हैं ॥ ५ ॥ क्षुधा पिपासादिक शरीरमें न व्यापै,
उसको अनूर्मिमत्व सिद्धि कहते हैं (१) दूरकी सब बातें सुननेमें भले प्रकार, आवें, इसका नाम दूरश्रवण सिद्धि है (२) दूरके सब पदार्थ और
सर्वत्र स्थान घर बैठें दीखें उसका नाम दूरदर्शन सिद्धि है (३) जहाँ मन जाय वहाँ देह सहित पहुँचना इसका नाम मनोजव सिद्धि है (४)
जैसा रूप बनाना चाहे उसी प्रकारका रूप हो जाय इसका नाम कामरूप सिद्धि है (५) दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना इसका नाम परकाय
प्रवेशन सिद्धि है (६) ॥ ६ ॥ अपनी इच्छानुसार मरना, इसका नाम स्वच्छन्दमृत्यु सिद्धि है (७) देवता अप्सराओंके साथ क्रीड़ा

गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः॥५॥अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मि
न्दूरश्रवणदर्शनम्॥मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥६॥ स्वच्छंदमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम्॥यथासंकल्पसं
सिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः ॥७॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वंद्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टंभोऽपराजयः॥८॥

करते हैं उनको देखनेकी सामर्थ्य इसका नाम देवानां सह क्रीड़ानुदर्शन सिद्धि है (८) जो मनमें इच्छा हो वही वस्तु तत्काल प्राप्त हो, इसका
नाम यथासङ्कल्प सिद्धि है (९) किसी स्थलमें आज्ञाका भंग न हो इसका नाम अप्रतिहताज्ञा सिद्धि है (१०) यह दश सिद्धि सत्त्व
गुणकी वृद्धिसे मिलती हैं ॥ ७ ॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं सो कहते हैं, तीन कालका ज्ञान होना इसका नाम त्रिकालज्ञ सिद्धि है (१) शीत उष्ण
कुछ न लगना, इसका नाम अद्वन्द्व सिद्धि है (२) पराये मनकी बात जानलेना इसका नाम परचित्ताद्यभिज्ञता सिद्धि है (३) अग्नि,
सूर्य, जल, विष आदिसे देहको किसी प्रकारकी हानि न हो, इसका नाम प्रतिष्टम्भ सिद्धि है (४) और कहीं पराजय न हो, इसका नाम
अपराजय सिद्धि है (५) यह पांच क्षुद्र सिद्धि हैं * ॥ ८ ॥

---

* शंका-अग्नि, सूर्य, विष, जल इत्यादि और बड़े २ पदार्थोंका तेज रोकनेके लिये श्रीकृष्णने सिद्धियें वर्णन की हैं, ऐसी सिद्धियोंसे योगीजन अग्नि, सूर्य, विष, जल इन सबके सम्पूर्ण तेजको रोक लेते हैं. इसमें यह शंका है कि, भगवान् वासुदेवमें जिन योगीश्वरोंका मन लगा है उनको इन सब पदार्थोंके रोकनेसे क्या प्रयोजन ?

हे उद्धव ! यह सब योगधारणाकी सिद्धिमात्र कही अब ज्ञानधारणासे सिद्धि जो प्राप्त होती हैं, वह मैं आपके सामने वर्णन करता हूँ सो सुनो॥ ॥ ९ ॥ सूक्ष्म मेरे रूपमें सूक्ष्म भूत अर्थात् शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध सूक्ष्म तन्मात्राके आकारसे इस भूतसूक्ष्म उपाधिमान् मेरे स्वरूपमें धारण करनेसे सूक्ष्मरूपका उपासक पुरुष अणिमा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ ज्ञानशक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्तत्त्वरूप मनमें धारण करे तो महिमा सिद्धिको प्राप्त हो और भिन्न २ आकाशादिक भूतोंकेही रूपमें मन लगावै तो भूतोंकी गरिमा सिद्धिको प्राप्त हो ॥ ११ ॥ पञ्च भूतोंके

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ ययाधारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥ भूतसूक्ष्मात्मनि
मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो
दधत ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रंजयन् ॥ कालसू
क्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेंद्रियाणामात्मत्वं
प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥ महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे
विंदतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥

परमाणु अतिसूक्ष्म हैं; सो मेरा रूप है, उसमें चित्त अनुरक्त करे तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्त होता है; इसीका नाम लघिमा सिद्धि है ॥ १२ ॥ सात्त्विक अहंकार तत्त्वरूप मुझमें एकाग्रमन धरे तो सब इंद्रियोंका अधिष्ठाता होवे, मुझमें ही मन लगानेके प्रभावसे यह प्राप्तिसिद्धि प्राप्त होती है ॥ १३॥ प्रकृतिसे क्रियाशक्ति रूप महत्त्व होय है, सो रूप है, उसमें मन लगावे तो सबसे उत्तम प्राकाम्य सिद्धिको प्राप्त हो॥ १४॥

उत्तर-योग शास्त्रके जाननेवाले मुनिजन दो प्रकारके योगी होते हैं, एक तो गृहस्थ योगी जो घरमें बैठे २ योग करते हैं, जैसे राजाजनक, दूसरे विरक्त योगी जो घर त्यागकर योग करते हैं जैसे भूतनाथ शिव आठ सिद्धि भी आदिसे चली आती हैं, श्रीकृष्णने गृहस्थ योगीयोंके लिये इन सिद्धियोंको कहा था अग्नि, सूर्य, विष. जलका तेज रोकनेके लिये नहीं कहा जो कोई कहे कि, ऐसा भेद नहीं कहा कि, गृहस्थ योगियोंके लिये यह सिद्धि तो ठीक है, भगवान्को वैकुण्ठके जानेकी इच्छा थी इसलिये आतुरतासे योगियोंका नेम नहीं किया ।

त्रिगुण मायाके नियन्ता अन्तर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे स्वरूपमें मन लगावे तो सब जीव और चर,अचर शरीरका नियन्ता होवे, सो ईशित
सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १५॥ विराट्, हिरण्यगर्भ और कारणसे चौथे तुरीय ब्रह्म भगवान् नारायणमें जो मन लगावै तो वह योगी मेरे धर्मको
प्राप्त होवै, तब वशिता सिद्धिको पावे ॥ १६॥ निर्गुणब्रह्ममें निर्मल मन रक्खे तो परमानन्दको प्राप्त हो, जहां सब कामना समाप्त होती हैं ॥ १७॥
अब गुणहेतुसिद्धि कहते हैं-कि, श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन लगावे तो मनुष्य शुद्धताको प्राप्त हो और उसे क्षुधा पिपासा
आदि यह छः ऊर्मी लहरी नहीं व्यापतीं ॥ १८॥ आकाशरूप प्राण है, सो मेरा स्वरूप है, उसमें मन लगाकर शब्दका चिन्तवन करे तब वह

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये
भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन्विशदं
मनः ॥ परमानंदमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयञ्छ्वेततां
याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८॥ मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ॥ तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणो
त्यसौ ॥ १९ ॥ ॥ चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक्॥२०॥
मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः॥२१॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं
बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिंड हित्वा
विशेत्प्राणो वायुभूतः षडंघ्रिवत् ॥ २३ ॥

आकाशमें भूतोंकी वाणी प्रगट दूरसे ही सुनता है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलावै मनसे मेरा ध्यान करे तब सूक्ष्म दृष्टि हो विश्वको दूरसे ही
देखे ॥ २० ॥ मन वायुके संग देहको मुझमें संयुक्त करके जो मेरी धारणा करे तो इस धारणाके प्रतापसे जहां मन करे वहां ही देह चली जाय॥
॥ २१ ॥ जब मेरे विषे मनकी धारणासे धरे तब मेरे प्रभावसे जैसा रूप करना चाहे, वैसा ही रूप करे क्योंकि उसे मेरे योगबलका आश्रय
है ॥ २२ ॥ जो सिद्ध पराई कायामें प्रवेश करना चाहे, सो आत्माका चिन्तवन करे, तब अपनी देह छोड़ प्राणरूप हो बाहरकी वायुमें प्रविष्ट

11x3

हो वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पसे दूसरे पुष्पमें अनायास चले जाते हैं ॥ २३ ॥ अब स्वच्छन्द मृत्युकी क्रिया कहते हैं, योगधारणा करते समय प्रथम एँडीसे गुदाका द्वार दाबकर रोके, पीछे प्राणको हृदयमें ले आवे फिर हृदयमें उरु वक्षःस्थलमें मिलावे इसके पीछे कण्ठमें ले आवे, माथेमें लावे तब ब्रह्मरन्ध्रद्वारा इस देहको छोडे और जिस स्थानमें जाना चाहे वहाँ जाय ॥२४॥ और जो देवताओंके क्रीडास्थलमें विहार करना चाहे तों मेरी सतोगुणरूपी मूर्तिका ध्यान करे तब सत्त्वगुणके अंशसे वहाँ ही विमान समेत देवांगना आकर उपस्थित हो जाती हैं॥२५॥पुरुष मुझमें विश्वास कर बुद्धिसे मनोरथ करे,तब सत्यसंकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्त करे तब वैसे ही मनोरथको प्राप्त हो यथासंकल्प नाम सिद्धिको पाता है ॥ २६ ॥ मैं सबोंका ईश्वर और नियन्ता हूँ, स्वतन्त्र हूँ, मेरे भावको प्राप्त हुआ पुरुष

पार्ष्ण्याऽऽपीड्य गुदे प्राणं हृदुरःकंठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरंध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४॥ विहरिष्यन्सुराक्रीडे
मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ विमानेनोपतिष्ठंति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥२५॥ यथा संकल्पयेद् बुद्ध्या यदा वा मत्परः
पुमान् ॥ मयि सत्ये मनो युंजंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न
विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्म
मृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रांतचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥
मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्साद्यविभूषिताः ॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥

कहीं प्रतिहत नहीं होता, जैसे मेरी आज्ञा सब मानते हैं वैसे ही उसकी आज्ञा भी सब मानते हैं, कोई उल्लंघन नहीं कर सकता,यह पुरुष सब गुण हेतु अप्रतिहताज्ञा नाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ अब तुच्छसिद्धि कहते हैं, मेरी भक्तिसे शुद्धसत्त्वरूपमय होकर योगी और त्रिकालके ज्ञाता ईश्वर इस प्रकार मेरी धारणा करे, तब जन्म, मृत्यु सहित तीनों कालका ज्ञान होय और इसीसे दूसरेके चित्तकी सब बात जानी जाती है ॥ २८ ॥ मेरे योगसे जिसका चित्त युक्त हो उसकी देह योगमय हो अग्नि और अनेक उपाधिसे उपहत नहीं होती है, जैसे जलजंतुको जल बाधा नहीं करता, ऐसे ही इसको कोई बाधा नहीं कर सकता ॥ २९ ॥ श्रीवत्स,अस्त्र, ध्वज, छत्र, चमर युक्त मेरी विभूति

यदि कोई कहे कि, युद्धके समय इस प्रश्नका क्या प्रसंग था तो इसका उत्तर यह है कि, राज्यके लिये अपने जातिवालोंका वध करना अनुचित, अतिनिन्दित और अधर्मरूप जान कर कि.मैं इन्हें मारूंगा,यह मरेंगे इससे करुणाव्याप्त बुद्धि होनेसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करनेसे निवृत्त हो स्थित हुआ ॥ ७ ॥ तब मैंने युक्तिसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको समझाया कि, कौन मारता है और कौन मृत्युको प्राप्त होता है ? उस उपदेशके प्रसंगमें उसने भी इसी प्रकार मुझसे पूछा था; जैसे अभी तुमने पूछा. अब उससे जो मैंने वर्णन किया है वही मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! इन सब प्राणिमात्रका आत्मा मैं हूँ, सुहृद ईश्वर नियंता. मैं हूँ और सब प्राणिमात्रमें भी मैं हूँ, सबकी उत्पत्ति; स्थिति व

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो निवृत्तो हंताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥७॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो
युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥
अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥ अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं
साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥ गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जया
नामहं मनः ॥११॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मंत्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छंदसामहम् ॥ १२ ॥
इंद्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ॥ आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं
राजर्षीणामहं मनुः ॥ देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥

प्रलयकर्ता भी मैं ही हूँ ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी जो गति चलती फिरती हैं, उनका भी योग, मन और कर्म मैं ही हूँ, जो सबको वशमें करते हैं उनमें मेरा रूप है, अनंत गुण हैं, तिनमें समता गुण मेरा रूप है, गुणसंयुक्त पुरुषका स्वाभाविक गुण मैं हूँ ॥ १० ॥ गुणवाले पदार्थोंमें क्रियाशक्तिप्रधान जो महत्तत्त्व है वह मैं ही हूँ, सूक्ष्मोंमें प्रथम जीव हूँ, दुर्जयोंमें मन हूँ ॥ ११ ॥ देवोंका अध्यापक हूँ, मंत्रोंमें प्रणव हूँ, अक्षरोंमें अकार हूँ, छंदोंमें गायत्री हूँ ॥ १२ ॥ सब देवताओंमें इन्द्र हूँ, आदित्योंमें विष्णु हूँ, रुद्रोंमें नीललोहित हूँ ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षियोंमें भृगु हूँ, देवर्षियोंमें नारद हूँ, राजर्षियोंमें मनु हूँ, गायोंमें कामधेनु हूँ ॥ १४ ॥

सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव हूँ, पक्षियोंमें गरुड़ हूँ, प्रजापतियोंमें दक्षप्रजापति हूँ, पितरोंमें अर्यमा हूँ ॥ १५ ॥ हे उद्धव ! दैत्योंमें दैत्योंका राजा प्रह्लाद मैं हूँ, नक्षत्र औषधियोंका पति प्रभु चंद्रमा मैं हूँ, यक्ष राक्षसोंका प्रभु कुबेर मैं हूँ ॥ १६ ॥ गजेन्द्रोंमें ऐरावत हूँ, जलजंतुओंमें प्रभु वरुण हूँ, प्रतापवानोंमें और दीप्तिवंतोंमें सूर्य हूँ, मनुष्योंमें नराधिप हूँ ॥ १७ ॥ घोडोंमें उच्चैःश्रवा हूँ, धातुओंमें सुवर्ण हूँ, दण्डकर्त्ताओंमें यम हूँ, सर्पोंमें वासुकी हूँ ॥ १८ ॥ नागेन्द्रोंमें अनंत शेषनाग हूँ, सींग तथा डाढ़वालोंमें सिंह हूँ, आश्रमोंमें संन्यास हूँ, हे निष्पाप !

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥१६॥ ऐरावतं गजेंद्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७॥ उच्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मि कांचनम् ॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥ नागेन्द्राणामनंतोऽहं मृगेन्द्रः शृंगिदंष्ट्रिणाम् ॥ आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ॥ ॥ १९ ॥ तीर्थानां स्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥ २१ ॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कंदोऽहं सर्वसेन्यानामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मंत्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥

वर्णोंमें ब्राह्मण मैं हूँ ॥ १९ ॥ तीर्थ और प्रवाहोंमें गंगारूप मैं हूँ, स्थिर जलोंमें समुद्र मैं हूँ, आयुधोंमें धनुष मैं हूँ, धनुषधारियोंमें त्रिपुरका घाती महारुद्र मैं हूँ, निवासस्थानमें सुमेरु मैं हूँ, दुर्गम स्थलोंमें हिमालय मैं हूँ, वनस्पतियोंमें अश्वत्थ मैं हूँ, औषधियोंमें यव मेरा रूप है॥२०॥ ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ हूँ, वेदार्थज्ञाताओंमें बृहस्पति हूँ, सेनापतियोंमें स्वामिकार्त्तिक हूँ, उत्तम मार्ग प्रवर्तकोंमें ब्रह्मा मैं हूँ ॥२२॥ यज्ञमें ब्रह्मयज्ञ हूँ, व्रतमें हिंसारहित व्रत हूँ, शोधकोंमें वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी रूप शोधक मैं हूँ, यह सदा पवित्रकारी हैं॥२३॥ योगिजनोंमें समाधि

अवतारका ध्यान करे तो कभी उसकी पराजय न हो ॥ ३० ॥ इस प्रकार मेरी उपासना करे तो मेरी योगधारणा करनेसे पहले कही सब सिद्धि उसके आगे हाथ जोडे खड़ी रहती हैं ॥ ३१ ॥ अनेक भाँतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं, इस कारण एक ही धारणा ऐसी करे कि, जिससे सब सिद्धि प्राप्त हों सो कहते हैं, जितेन्द्रिय हो, दांत हो, श्वासजित् हो, मनोजित हो तुरीय ब्रह्म नारायणस्वरूप जो मैं हूं, मेरी धारणा करनेवाले पुरुषको कौन सिद्धि दुर्लभ है ? ॥ ३२ ॥ जो मेरे साक्षात्स्वरूपकी धारणा करते हैं, उनको मेरी प्रीति होनेके कारण यह सिद्धि विघ्न करती है, इसलिये इन सिद्धियोंसे व्यर्थ काल न खोवे,अर्थात् इन सिद्धियोंकी चाहना न करे ॥३३॥ एक सिद्धि जन्मसे ही होती है, जैसे देवताओंका सिद्धिसहित ही जन्म होता है,सहित ही सिद्धि हैं,एक मंत्रसे औषधसे तपसे जितनी सिद्धि होती हैं, यह सब योगसे पाते

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुने ॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठंत्यशेषतः ॥३१॥ जितेंद्रियस्य दांतस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥३२॥ अंतरायान्वदंत्येता युंजतो योगमुत्तमम् ॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमंत्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगति व्रजेत् ॥३४॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥३५॥ अहमात्मांतरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरंतः स्वयं तथा ॥३६॥ इति श्रीम० म० एकादशस्कंधेऽष्टादशसिद्धिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥१५ उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यंतमपावृतम् ॥ सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

हैं परन्तु इनसे सालोक्यादि मुक्तिको नहीं प्राप्त होते ॥ ३४ ॥ इसलिये हे उद्धव ! सब सिद्धियोंका एक मैं ही प्रभु हूँ, क्योंकि उनकी उत्पत्ति और पालन मैं ही करता हूँ,सिद्धियोंका ही प्रभु नहीं किन्तु मोक्ष, सांख्य, ज्ञान, धर्म और ब्रह्मके जाननेवालोंका पालक भी हूँ इसलिये सिद्धियोंकी अपेक्षा न रखकर मुझको प्राप्त होना यही योगका प्रधान फल है ॥३५॥ मैं सब जीवोंका आत्मा हूँ, क्योंकि सबका अंतर्यामी हूँ, सर्वत्र व्यापक हूँ, जैसे भूतोंमें महाभूत सर्वत्र व्याप्त है और आवरणरहित हैं ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे पंचदशोऽध्यायः॥१५॥ दोहा-इस सोलह अध्यायमें, ज्ञानप्रभाव विचार । वह विभूति वर्णन करूं, देत सदा फल चार॥१॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म निरावण तथा स्वतंत्र हो, जिसमें सब भूतमात्रकी उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और जीवन होता

है ऐसे तुम सबके कारण हो, आदि अंतसे रहित हो॥१॥ हे भगवन्! ब्राह्मण (जो वेदके तत्त्वको जानते हैं) सर्वत्र ऊँच नीच पदार्थोंमें कारणरूप तुम्हारी उपासना करते हैं * ॥ २ ॥ जो आत्मतत्त्वको नहीं जानते, उनके जाननेमें तुम नहीं आते और जिन जिन भावनाओंमें ऋषीश्वर भक्तिसे तुम्हारी उपासना करके सिद्धिको प्राप्त होते हैं सो मुझसे उन पदार्थोंके नाम कहो ॥ ३ ॥ हे भूतभावन! सब प्राणियोंके मध्य तुम गुप्त रीतिसे विचरते हो, तुम उनको देखते रहते हो पर तुम्हें सब भूत तुम्हारी मायासे मोहित होकर नहीं देखते ॥ ४ ॥ जिनमें गुप्त रहते हो

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ॥ उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ॥ उपासीनाः प्रपद्यंते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥ ३ ॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावनः ॥ न त्वां पश्यंति भूतानि पश्यंतं मोहितानि ते ॥ ४ ॥ याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूतेः ॥ ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मम् ॥५॥ श्रीभगवानुवाच॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदांवर ॥ युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

उन विभूतियोंको पूछते हैं-हे महाविभूतियोंके पति! जो तुम्हारी विभूति भूमिसे स्वर्ग, पातालादि दिशाओंमें निश्चय की हैं और जो विभूति तुम्हारे प्रताप संयुक्त हैं सो मुझसे कहो, तुम्हारे तीर्थरूप चरणारविन्दोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित! इसी प्रकार उद्धवका प्रश्न सुन अति संतुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे प्रश्नके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ! इसी भाँति शत्रुओंसे युद्ध करनेकी इच्छावाले अर्जुनने युद्धके समय कुरुक्षेत्रमें प्रश्न किया था॥ ६ ॥

---

* शंका-भक्तोंके प्यारे भगवान्का पूजन करें; भजन करें ध्यान करें और जो भगवान्की सेवा है सो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबको लिखी है, ऐसा नहीं लिखा है कि, ब्राह्मण ही अकेला भगवान्का पूजन करे हे ब्राह्मणोंमें उत्तम कुलभूषण! तो फिर श्रीकृष्णसे क्यों उद्धवजीने कहा कि, हे भगवन्! जिसविधिसे ब्राह्मण आपका पूजन करते हैं सो कहो, हमको यह बडी भारी शंका है क्योंकि, ब्राह्मणके पूजनमें और विधि है और शूद्रकी अलग है? भक्तिमार्गमें तो सबकी एक विधि है और उद्धव परमभक्त थे, भक्तिमार्गकी पूजाका वृत्तान्त बूझा था ॥

उत्तर-उद्धवने ब्राह्मणके शापसे यदुवंशियोंका क्षय देकखर ब्राह्मणोंको अधिक माना क्योंकि, श्रीकृष्णके देखते ब्राह्मणोंके शापसे यादवोंका नाश हो गया, श्रीकृष्णने कुछ सहाय नहीं की, इस वास्ते उद्धवजीने जाना कि ब्राह्मणोंके ऊपर भगवान्का भी कुछ वश नहीं चलता ॥

मैं हूँ, विजयकी इच्छावालोंका जो विचार है वह मैं हूँ, विवेकियोंमें आत्मा, अनात्माकी विवेककारिणी विद्या मेरा रूप है, पांच प्रकारके जो व्याख्यादिवादी हैं वह यह हैं,–आख्याति, अन्यथाख्याति, शून्यख्याति, असत्ख्याति और अनिर्वचनीयख्याति–इनमे अनेक प्रकार वाद विवाद करनेवालोंका 'यह इस प्रकारके हैं, वह उस प्रकारके हैं' इस रीतिके जो अनेक विकल्प हैं, वह मैं हूँ॥ २४ ॥ स्त्रियोंमें शतरूपा मैं हूँ, पुरुषोंमें स्वायंभुव मनु मैं हूँ, मुनियोंमें नारायण मुनि मैं हूँ, ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूँ ॥२५॥ धर्मोंमें अभयदान मेरा ही रूप है, निर्भय स्थानोंमें आत्मनिष्ठा मैं हूँ, अति रहस्योंमें प्रियवचन और मौन मैं हूँ, मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुषोंमें ब्रह्मा मैं हूँ, जिनके दो अर्द्धभागोंसे स्त्री और पुरुष प्रगट हुए हैं ॥ २६ ॥ जो पुरुष धर्ममें सावधान हैं उनका संवत्सररूपी काल मैं हूँ, ऋतुओंमें वसन्त मैं हूँ, महीनोंमें मार्गशीर्ष मैं हूँ,

स्त्रीणां तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥ धर्माणामस्मि
संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ॥ गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधु
माधवौ॥मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित् ॥२७॥ अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः॥द्वैपायनोऽस्मि
111 व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ॥ किंपुरुषाणां हनुमान्विद्याध्राणां
सुदर्शनः ॥२९॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम्॥ कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविष्ष्वहम्॥३०॥
व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ॥ तितिक्षाऽस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजः सहो
बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वताम् ॥ सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परः ॥ ३२ ॥

और सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें अभिजित् मैं हूँ ॥ २७ ॥ युगोंमें सतयुग मैं हूँ, धीरोंमें असित देवल मैं हूँ, वेदके विभागकर्त्ताओंमें द्वैपायन व्यास मैं हूँ, कवियोंमे शुक्राचार्य मैं हूँ॥२८॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलय गति अगति विद्या अविद्याका जाननेवाला वासुदेव मैं हूँ,हे उद्धव ! वैष्णवोंमें तुम मेरे रूप हो, किंपुरुषोंमें हनुमान् मैं हूँ, विद्याधरोंमें सुदर्शन मैं हूँ ॥ २९ ॥ रत्नोंमें पद्मराग मैं हूँ, अतिसुन्दर वस्तुओंमें पद्मकोश मैं हूँ, दर्भजातियोंमें कुश मैं हूँ, घृतोंमें गोका घृत मैं हूँ ॥ ३० ॥ उद्यमी पुरुषोंमें लक्ष्मी मेरा रूप है, द्यूतोंमें छल करके जो ग्रहण करना है, वह मेरा रूप है, क्षमावान् पुरुषोंमें क्षमा मैं हूँ,सत्यवादियोंमें सत्य मैं हूँ ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें इंद्रियबल और उत्साहबल मैं हूँ, भक्तोंमें भक्तिरूप कर्म मैं

हूँ. जो नौमूर्त्ति भक्तोंकी पूजाको प्रगट हैं इन वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह, ब्रह्मामें आदिमूर्ति वासुदेव मैं हूँ ॥ ३२ ॥ गन्धर्वोंमें विश्वावसु मैं हूँ, अप्सराओंमें पूर्वचित्ति मैं हूँ, पर्वतोंमें स्थैर्य मैं हूँ ॥ ३३ ॥ जलोंमें उत्तम माधुर्य रस मेरा ही रूप है, तेजस्वियोंमें अग्नि मैं हूँ, सूर्य चन्द्र और तारोंमें कांति मैं हूँ, आकाशमें परानाम शब्द मैं हूँ ॥३४॥ ब्राह्मणके भक्तोंमें बलिराजा मैं हूँ, वीरोंमें अर्जुन मैं हूँ- हे उद्धव ! निश्चय करके सम्पूर्ण भूतमात्रकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैं हूँ ॥ ३५ ॥ चरण, वाणी, गुदा, हस्त, लिंग इन पांच कर्मेन्द्रियोंका गमन, वचन, मलत्याग, आनंद लेना यह कर्म मैं हूँ, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, श्रवण, नासिका, ज्ञानेंद्रियोंके स्पर्श, चितवन, आस्वाद, सुनना, आघ्राण कर्म मैं हूँ, उन उनके अर्थ ग्रहण करनेकी शक्ति भी मैं हूँ ॥ ३६ ॥ विशेष कहकर अब सामान्यसे सब

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गंधर्वाप्सरसामहम् ॥ भूधराणामहं स्थैर्यं गंधमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां
विभावसुः ॥ प्रभा सूर्येंदुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां
स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥३५॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानंदस्पर्शलक्षणम् ॥ आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियें
द्रियम् ॥३६॥ पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥
अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥ मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ॥ सर्वात्मनाऽपि सर्वेण न भावो
विद्यते क्वचित् ॥३८॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ॥ न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥३९॥

विभूति कहते हैं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पाँच सूक्ष्म मात्रा हैं, अहंकार महत्तत्त्व आदि यह सात प्रकृतिके विकार हैं, पञ्च महाभूत और एकादश इंद्रिय यह सोलह तत्त्व हुए. एक पुरुष और प्रकृति दो यह हुए, इस प्रकार सब पचीस (२५) तत्त्व हुए, रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण यह तीन गुण, इनसे आगे परब्रह्म सो सब मैं ही हूँ, इनकी संख्या इनका लक्षण सहित ज्ञान और उसका फल तत्त्वका निश्चय सब मैं ही हूँ ॥ ॥ ३७ ॥ मैं ही सबका ईश्वर हूँ, सब जीवरूप हूँ, मैं ही गुणीरूप हूँ, मैं ही क्षेत्ररूप और क्षेत्रज्ञरूप हूँ इसलिये मुझ विना जीव, ईश्वर, गुण, गुणी क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ इत्यादिक भाव कहीं नहीं ॥ ३८ ॥ अहो ! तुम ऐसे संक्षेपसे क्या कहते हो अच्छी भाँति विस्तारसहित समझाकर कहो, तो इसका उत्तर यह देते हैं कि, पृथ्वीके परमाणुकी संख्या कितने ही कालमें मैं करता हूँ और करके कहनेको भी समर्थ हूँ परन्तु मेरी जो विभूतियें हैं

उनकी संख्या नहीं की जाती, मैं अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंको सृजता हूँ, जब ब्रह्मांडोंकी ही संख्या नहीं तब इनमें स्थित मेरी विभूतियोंकी संख्या कौन कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ परन्तु तो भी संक्षेपसे विशेष कर विभूति कहता हूँ कि, जहाँ जहाँ तेज, श्री, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, मान और नेत्रोंका आनन्द, भाग्य, वीर्य, क्षमा, विज्ञान इत्यादि ये धर्म हैं, सो ये सब मेरा ही अंश हैं ॥ ४० ॥ ये विभूतियाँ संक्षेपसे मैंने इस लिये कहीं कि, ये मनका विकार हैं, परमार्थरूप नहीं, जैसे आकाशके फूल आदि वाणीमात्रसे कहे हैं, उनके तुल्य हैं ॥ ४१ ॥ पुरुषको उचित है कि सत्त्वगुणयुक्त बुद्धिसे वाणीको रोके, मनका नेम करे, प्राणोंको रोके, इन्द्रियोंको निरोध करके बुद्धिको रोके तब फिर संसारके मार्गमें न पडे ॥ ४२ ॥ यदि जो पुरुष इन्द्रियोंका और बुद्धिका संयम नहीं करे तो दोष उपजै, सो कहते हैं, जो बुद्धि भली भांति वाणी और मनका

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥४०॥ एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेंद्रियाणि च ॥ आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥४२॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ॥ तस्य व्रतं तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटांबुवत् ॥४३॥ तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकाद० विभूतिव० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

९
117

संयम नहीं करै तो उसके व्रत और ज्ञान सब क्षीण हो जाते हैं, जैसे कच्चे घडेका जल क्षणक्षणमें क्षीण होता है ॥ ४३ ॥ इसलिये वचन, मन, प्राणको जीत मुझमें तत्पर हो बुद्धि मेरे विषे युक्त करै क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष कृतकृत्य हो जाता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा—इस सत्रह अध्यायमें, साधन भक्ति उपाय । हंसरूप धर जो कही, सो वरणी यदुराय ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलदललोचन ! तुमने पहले कह दिया है कि, धर्मरूप कर्म भक्तिका और मोक्षका साधन है, परन्तु इस प्रकार कर्म करनेवालोंको अवश्य भक्ति मिल जाती है, ऐसा नियम देखनेमें नहीं आता, इस कारण वर्ण आश्रमके

आचारवालोंका तथा उस आचारके अधिकारसे रहित सम्पूर्ण पुरुषोंका स्वधर्म वर्णन करो कि, वह धर्म जिसभाँति करनेसे पुरुषोंमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हो जाय सो श्रवण करनेकी इच्छा है,तुम्हें अवश्य वर्णन करना चाहिये ॥१॥ २ ॥ हे प्रभो ! हे महाभुज ! हे श्रीमाधव ! पहले आपने हंसरूप धारण कर जो कर्म ब्रह्माजीसे कहा था वह परमसुखरूप धर्म निश्चय करके कहो ॥३॥ हे शत्रुनाशक ! बहुधा पहले सिखाया भी धर्म बहुत कालसे अब मनुष्य लोकमें न होगा ॥४॥ इस धर्मका वक्ता, कर्त्ता, रक्षक तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा भूमिपर नहीं है, हे अच्युत ! हे प्रभो ! ब्रह्माजीकी सभामें भी तुम्हारे विना और नहीं, जहां मूर्तिमंत वेदादिक हैं ॥५॥ हे मधुसूदन ! सब धर्मके कार्यकर्त्ता, सब

यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वधर्मेणारविंदाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुरा किल महाबाहो
धर्मं परमकं प्रभो ॥ यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥ स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ॥ न
प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥ वक्ता कर्ताऽविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ॥ सभायामपि
वैरिंच्यां यत्र मूर्त्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥ कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ॥ त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रव
क्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥ श्रीशुक
वाच ॥ इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान्हरिः ॥ प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ८ ॥ श्रीभगवा
नुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥ आदौ कृतयुगे
वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥

धर्मके वक्ता,रक्षक जब तुम इस पृथ्वीको छोड़ोगे तो नष्ट हुए धर्मोंको कौन कहेगा ? ॥६॥ क्योंकि सब धर्मके ज्ञाता तुम हो इससे हे प्रभो ! तुम्हारी भक्ति जिस प्रकार करे सो सब धर्म जैसे जिसका कर्त्तव्य है वैसे ही मुझसे कहो॥७॥श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्!इस प्रकार भक्त उद्धवजीके पूछनेसे भगवान् हरि अतिसन्तुष्ट हो मनुष्योंका मरणधर्म दूर करनेवाला सनातनधर्म कहने लगे॥८॥श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मरूप है और वर्णाश्रमोंके आचारवंत पुरुषोंको भक्ति आनन्दकारी है, उसको मैं कहता हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ९ ॥ पहले सतयुगमें मनुष्योंका वर्ण हंसरूप था, तब सब प्रजा जन्मसे ही कृतकृत्य थी, इसीसे कृतयुग नाम

हुआ,और कर्म भी कुछ कर्त्तव्य था सो कहते हैं ॥ १० ॥ उस समय प्रणव(ओंकार)ही वेद था, चारों पांवोंसे धर्म वृषभरूप धारण किये मैं था, ये यज्ञादिक कर्म नहीं थे,एक तपस्यासे ही इन्द्रियोंको स्थिर कर एकाग्रचित्त हो हंसरूप शुद्ध मेरा ध्यान करते थे ॥११॥ हे महाभाग! जब त्रेतायुग हुआ तब विराट् मेरे प्राणसे और हृदयसे वेदत्रयी विद्या प्रगट हुई,उससे होता, अध्वर्यु,उद्गाता सहित त्रिरूप यज्ञ प्रगट हुआ, सो यज्ञ मेरा रूप है ॥ १२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारों वर्ण विराट् स्वरूपके मुख, बाहु, जंघा और चरणोंसे प्रगट हुए, और भी जो जिसका स्वधर्म था सो प्रगट हुआ ॥ १३ ॥ गृहस्थका तो आश्रम जंघासे प्रगट हुआ,ब्रह्मचर्य्यका धर्म हृदयसे हुआ, वानप्रस्थ वक्षस्थलसे हुआ, संन्यास मस्तकसे प्रगट हुआ ॥ १४ ॥ और सब वर्ण आश्रमके स्वभाव भिन्न भिन्न हुए, जिसने नीचयोनिमें जन्म धारण किया उसका स्वभाव नीच हुआ, जिसने उत्तम योनिमें जन्म लिया, उसका स्वभाव उत्तम हुआ ॥ १५ ॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, शुद्ध भाव, भक्ति, दया, सत्य यह सब ब्राह्मणका स्वभाव है ॥१६॥ तेज, बल, धैर्य, शौर्य्य, क्षमा, उदारता,उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्य यह क्षत्रियोंका स्वभाव है॥ १७॥आस्तिकता,दान,निर्दम्भ,ब्राह्मणकी सेवा,द्रव्यसंग्रहमें अतृप्ति यह वैश्यका स्वभाव है॥ १८॥गायोंकी,ब्राह्मणोंकी

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ॥ उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः॥११॥त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे
हृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥ विप्रक्षत्रियविट्छूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजा
त्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥ गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ॥ वक्षःस्थानाद्वने वासो न्यासः
शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमो
त्तमाः ॥ १५ ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥
तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यं दाननिष्ठा
च अदंभो ब्रह्मसेवनम् ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ॥
तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥

और देवताओंकी निष्कपट सेवा करे, जिससे जो पावै उसीमें सन्तोष रक्खै यह शूद्रका स्वभाव है ॥ १९ ॥ अशौच, मिथ्या वाणी, चोरी, नास्तिकता, वृथा कलह, काम, क्रोध, तृष्णा यह सब नीच जातिके स्वभाव हैं ॥ २० ॥ हिंसा न करै, सत्य बोले, चोरी न करे, काम, क्रोध, लोभ न हो, क्योंकि सबसे बड़ा जातिका धर्म है ॥ २१ ॥ अब चार आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारीके धर्म कहते हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके गर्भसे लेकर सब संस्कार हुए हों अर्थात् जन्म धारण करनेके उपरांत दूसरा जन्म गायत्री उपदेश होनेके पीछे गुरुके घर जाय रहे, इन्द्रियोंका दमन करे, जब गुरु बुलावे तब वेद पढै ॥ २२ ॥ मेखला, मृगचर्म, दंड, रुद्राक्ष माला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, जटा इत्यादि सब धारण किये रहै, तेलसे

अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥ २० ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वसन्गुरुकुले दांतो ब्रह्माधीयीत चाऽऽहुतः ॥ २२ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षब्रह्मसूत्रकमंडलून् ॥ जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान्दधत् ॥ २३ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ॥ न च्छिद्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २४ ॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णेऽवगाह्याऽप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्छुचिः ॥ समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग्जपन् ॥ २६ ॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥

स्नान न करे, दन्तधावन करे, वस्त्र क्षारसे न धोवे, आसनको न रंगे, दर्भ धारण करै ॥ २३ ॥ स्नान, भोजन, होम, जप, मूत्र, पुरीष जब करे तो मौन रहे; नख, रोम और क्षौरकर्म न करावे और कांखके उपस्थके केश दूर न करावे ॥ २४ ॥ वीर्यस्खलन न करै, आप ब्रह्मचर्यका धारण किये रहे और जो प्रमादसे स्वप्नमें वीर्य स्खलित हो जाय तो जलमें स्नान करके प्राणायाम करके गायत्रीका जप करे ॥ २५ ॥ अग्नि, सूर्य, आचार्य, गो, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, देवताओंकी पवित्र और एकाग्रचित्तसे उपासना करे और यतवाक् होकर जप करै ॥ २६ ॥ गुरुका मनुष्य

बुद्धिसे सेवन न करे, किन्तु मेरा स्वरूप जानकर सेवन करे, कभी अवज्ञा न करे, क्योंकि सम्पूर्ण देवता गुरुमें वास करते हैं ॥ २७ ॥ सांझ सबेरे भिक्षा ले आवे सो गुरुके आगे धरे, और भी जो कुछ प्राप्त हो सो सब गुरुको समर्पण करे और जब गुरुजीकी आज्ञा हो तो संयमसे भोजन करे ॥ २८ ॥ जो गुरु कहीं जायँ तो उनके संग जाय, जब गुरु सोवें तो उनके चरण दाबे; जब बैठें तब सावधान हाथ जोड बहुत दूर न बैठे, आचार्यका आदर सन्मान करे, अच्छी भांति सदा उपासना करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार विषयभोगरहित होकर गुरुकुलमें वास करे और जबतक विद्या न पूर्ण हो तबतक अखंडित व्रत धारण किये रहै ॥ ३० ॥ यह तो ब्रह्मचर्य आश्रमका सामान्य धर्म कहा, अब जो ब्रह्मलोकके जानेकी इच्छा करे सो मेरी निष्ठासे ब्रह्मचर्य्य व्रत करे, सो कहते हैं कि जो यह ब्रह्मचारी जहाँ मूर्त्ति धारण कर वेद रहते हैं ऐसे

सायं प्रातरुपानीय भक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥ शुश्रूषमाण आचार्यं
सदोपासीत नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृतांजलिः ॥ २९ ॥ एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ॥
विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखंडितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौ छंदसां लोकमारोक्ष्यन्ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं
स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः॥३१॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम्॥अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः॥३२ ॥
स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥३३॥ शौचमाचमनं स्नानं
संध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याऽभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ३४ ॥

1149

ब्रह्मलोकमें जाना चाहे तो गुरुके ही पास रहे, वेदाध्ययन करे, निष्काम ब्रह्मचर्य व्रत करे, अधिक क्या कहें ? अपना देहतक गुरुके समर्पण कर दे ॥ ३१ ॥ पूजाके स्थल कहते हैं-अग्नि, गुरु, आत्मा सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खे, मुझसे भिन्न न जानें इस प्रकार ब्रह्मतेजयुक्त निष्पाप मेरी उपासना करे ॥ ३२ ॥ स्त्रियोंका दर्शन, उनसे भाषण, परिहास न करे और जो कहीं कोई स्त्री-पुरुष इकट्ठे होकर बैठे हों तो उनको न देखे, आप गृहमें न रहे ॥ ३३ ॥ यह धर्म सब आश्रमोंका कारण है, शौच-मट्टीसे हाथ पाव धोवे, आचमन करे, स्नान, सन्ध्या, शुद्धभाव, तीर्थसेवन, तप, भिक्षा करे परन्तु स्पर्श किसीका न करे, जो असम्भाष्य हैं उन नीचोंका त्याग करे ॥ ३४ ॥

हे कुलनन्दन । सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव रक्खे, मन वचन इंद्रियोंको संयत करे, यह नेम सब आश्रमोंका है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार जो व्रत रक्खे सो अग्निके समान तेजस्वी हो सब कर्म जला निर्मल हो मेरी भक्तिको प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ यह निष्काम ब्रह्मचारीके लिये मोक्षका प्रकार कहा. जो सकाम हो वेदार्थ विचार ब्रह्मचर्य छोड़ गृहस्थ आश्रममें आना चाहे तो गुरुको दक्षिणा दे आज्ञा ले और अभ्यंगादिक करके मेखला, दण्ड, मौंजी छोड़े (इस कर्मका नाम समावर्त्तन कहते हैं)॥ ३७॥ तहां दोनों पक्ष कहते हैं कि, जो विवाहकी इच्छा हो तो गृहस्थ हो जाय, निष्काम हो तो वानप्रस्थ आश्रम ले अथवा संन्यास ले; आश्रमसे आश्रममें जाय, आश्रम बिना न रहे, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उस आश्रममें मेरी भक्ति करता हुआ विचरे और पिछले आश्रमसे पूर्वमें न आवे, अर्थात् संन्यासी गृहस्थ न हो ॥ ॥ ३८ ॥ जो गृहस्थ होना चाहे सो

सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनंदन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥३५॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ मद्भक्तिस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३६ ॥ अथानंतरमावेक्ष्यन्यथाजिज्ञासितागमः ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद् गुर्वनुमोदितः ॥ ३७ ॥ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३९ ॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः ॥ ४१ ॥

समावर्त्तन कर्मसे विवाह करे, गृहस्थ होकर लक्षणवन्त अपने कुलसमान कुलकी कन्या विवाहै; प्रथम तो अपने वर्णकी ब्याहै पीछे और भी करना चाहै तो अनुक्रमसे और ब्याहै ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन धर्म समान हैं. यज्ञ, अध्ययन, दान यह तीनों वर्णोंको समान हैं, परन्तु प्रतिग्रह, अध्यापन, यज्ञ कराना यह तीनों कर्म ब्राह्मणको ही करने उचित हैं ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहको तप, तेज, यशका नाशक माननेवाला पुरुष स्वामीसे छोडे खेतमें पडे कणसे आजीविका करे अथवा और किसी वस्तुसे आजीविका करे. यज्ञ करे करावें अथवा पढ़ावे यह दो वृत्ति करे, जो इनमें भी हीनता दोष देखे तो उंछवृत्ति ही करे ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणका यह देह निश्चय ही तपस्याके कष्ट सहनेको उत्पन्न किया है, क्षुद्र कामको न करै तो परलोकमें अनन्त सुख ब्राह्मणको प्राप्त होता है ॥४२॥ जो हाटमें अथवा क्षेत्रोंमें अन्न पड़ा रहे इसे बीन इसीसे निर्वाह करै और इसीसे संतोष रक्खे, उत्तम निष्काम धर्म करै, मुझमें चित्त रक्खे. घरमें तो रहै परन्तु बहुत आसक्त न हो, इस प्रकार शांतिको प्राप्त हो ॥ ४३ ॥ दरिद्रीके लिये इस प्रकार निर्वाह करनेको कहा है, जो सद्ग्रन्थ है, उसका प्रकार कहते हैं, जो ब्राह्मण दरिद्री हो और मेरी भक्ति करनेमें तत्पर हो उसका जो आपदासे उद्धार करते हैं, हे उद्धव ! इन

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ॥ कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ॥ ४२ ॥ शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचेता धर्मं महांतं विरजं जुषाणः ॥ मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शांतिम् ॥४३॥ समुद्धरंति ये विप्रं सीदंतं मत्परायणम् ॥ तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥ आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥

मनुष्योंका मैं थोडे ही कालमें उद्धार करूंगा, जैसे समुद्रमें डूबते हुओंको नाव पार लगाती है वैसे ही जो मनुष्य अथवा ब्राह्मणका निर्वाह करते हैं, मैं संसाररूप समुद्रसे इन मनुष्योंको निश्चय पार करूंगा *॥ ४४ ॥ राजा हो तो उसका आवश्यक धर्म यही है कि, जैसे पिताको कष्टसे छुड़ाता है तथा जैसे कीचड़में पडे हाथीको हाथी निकालता है, इसी प्रकार संपूर्ण प्रजाको दुःखसे उद्धृत करै, इसी प्रकार धैर्यवान् राजाको

---

* शंका–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि, हमारा भजन करनेवाले ब्राह्मणको दुःख दारिद्र्य आदि अनेक संकटसे जो कोई छुडाता है, उस छुडानेवाले मनुष्यको हम बहुत शीघ्र दुःख दारिद्र्यसे छुडा देते हैं, इस बातमें यह शंका होती है कि, अपने भजन करने वाले ब्राह्मणको आप दुःख दारिद्र्यसे क्यों नहीं छुडाते दूसरेको लोभ क्यों दिखाते हैं ? जैसे बनिये आढ़तीलोगोंसे काम करते हैं ऐसा वचन श्रीकृष्णचन्द्रने क्यों कहा ? ॥

उत्तर–बड़े बड़े पाप ब्राह्मणलोग करते हैं तो उन पापोंसे दुःख दरिद्र्य ब्राह्मणोंको होता है और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रको थोडे ही पापोंसे दुःख होता है, इस बातका भगवान्ने विचार किया कि, हम शीघ्र ब्राह्मणोंको अपना भजन करनेवाला जानकर दुःखदारिद्र्यसे छुडा सकेंगे तो ब्राह्मण और अभिमान करके पाप करेंगे और जान लेंगे कि भजनके प्रतापसे दुःखनाश जल्दी होजाता है फिर संसारका सुख क्यों नहीं भोगै, हमारा पाप क्या करैगा? ऐसा विचारकर ब्राह्मणोंका मान नष्ट करनेके लिये जबतक ब्राह्मण पापसे नहीं छूटता तबतक उस ब्राह्मणके दुःख दरिद्र्यको दूसरे मनुष्यसे दूर कराते हैं जिससे ब्राह्मणोंको विदित हो जाय कि, हमें भगवान्का ऐसा भजन करते हैं तो भी हमको पापी जानकर हमारे दुःख दारिद्र्यका नाश नहीं किया, जो हमारा पाप हमारे पास नहोता तो शीघ्रही भजनके प्रभावसे हमारे दुःखका नाश कर देते, अब पाप कभी नहीं करैंगे ऐसा विचार करके ब्राह्मण पापबुद्धिको त्यागदें इसलिये दूसरेसे ब्राह्मणका दुःखदारिद्र्य नाश करनेके लिये श्रीकृष्णने कहा।

विपत्तियोंसे अपने आप रक्षा करनी उचित है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार राजालोग इस लोकमें सब पाप दूर कर सूर्यके समान प्रकाशित विमानमें बैठ इन्द्रके संग आनन्द करते हैं ॥४६॥ यदि ब्राह्मण दरिद्रसे दुःख पाता हो तो उसको उचित है कि, वाणिज्यवृत्ति कर आपदासे छूटे, परन्तु मदिरा (शराब) और रसादिक न बेचे. यदि इसमें भी निर्वाह न हो तो क्षत्रियवृत्ति करे, परन्तु नीचसेवाकी वृत्ति कभी न करे, यह ब्राह्मणका धर्म कहा ॥ ४७ ॥ अब क्षत्रियका धर्म कहते हैं, जो आपदा आ पड़े तो वैश्यवृत्तिसे जीविका करे, या मृगया करके जीवन धारण करे वा ब्राह्मणका रूप धर अध्यापनसे जीविका करे, परन्तु नीचकी सेवा न करे ॥ ४८ ॥ वैश्यको यदि आपदा पडे तो शूद्रकी वृत्ति करे, उसमें भी आपदा हो तो चतुरताकी क्रियासे जीविका करे, जब आपदा निवृत्त हो जाय तो नीचवृत्ति छोड दे ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सबकी वृत्ति

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिंद्रेण सह मोदते॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ॥ खड्गेन वापदाक्रांतो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४७ ॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ॥४८॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यश्शूद्रः कारुकटक्रियाम् ॥ कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत्॥ ॥ ५० ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ॥ धनेनाऽपीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५१ ॥ कुटुंबेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुंब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥

कही, अब गृहस्थका आवश्यक पञ्चयज्ञ कर्त्तव्य कर्म कहते हैं कि, ब्रह्मयज्ञ करके तो ऋषियोंको सन्तुष्ट करे, श्राद्धमें स्वधासे पितृयज्ञ करे, होममें स्वाहा करके देवताओंका यज्ञ करे, बलिदानसे भूतयज्ञ करे, अन्न जलसे मनुष्योंको तृप्त करे, यथाशक्ति करे, सबमें मेरी बुद्धि रक्खे, यह कर्म सब अवश्य कर्तव्य हैं ॥ ५० ॥ शक्तिके अनुसार कर्तव्य कर्म कहते हैं, विना ही उद्यम अथवा उद्यमसे पाया हो और शुद्ध हो तो उस धनसे जिसमें कुटुम्बको पीडा न हो वैसे ही न्यायसे यज्ञोंको करे ॥ ५१ ॥ कुटुम्बमें आसक्त न हो पन्तु मेरे भजनमें सावधान रहे, इस संसारप्रपञ्चको मिथ्या जाने, स्वर्गको भी मिथ्या माने, आत्माको ही केवल सत्य जाने ॥ ५२ ॥

पुत्र, स्त्री, कुटुम्बी, बन्धु इत्यादिकोंका संग यात्रा करनेवालोंके, संगके समान है, जैसे निद्रामें स्वप्न देखते हैं और जागते ही नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही देहके नष्ट होनेपर यह सब चले जाते हैं ॥५३॥ इस प्रकार घरमें विचार करता अतिथिकी भांति रहै. 'यह मेरा घर है' ऐसा अहंकार न रक्खै, क्योंकि अहंता और ममता छोडनेसे ही पुरुष नहीं बँधता॥५४॥ गृहस्थके जो धर्म्म कहे हैं,उनसे मेरी पूजा करै मुझमें भक्ति करै और गृहस्थाश्रममें रहनेके उपरांत वानप्रस्थ होकर जो सन्तान हो तो संन्यास ले॥५५॥जो पुरुष केवल घरमें ही आसक्त हैं.पुत्र वितमें प्रीति कर स्त्रीके वश रहते हैं वह महाहीन हैं मूर्ख हैं और अहंता ममतासे बँधे हैं ॥५६॥ मेरी माता और मेरा पिता वृद्ध है,स्त्री छोटी है, बालक छोटे हैं, यह मेरे

पुत्रदाराप्तबंधूनां संगमः पांथसंगमः ॥ अनुदेहं वियंत्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५३ ॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५४ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधी मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ५६ ॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः ॥ अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवंति दुःखिताः ॥५७॥ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽन्धं विशते तमः ॥५८॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० ब्रह्मचर्यादि० सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ॥ वन एव वसेच्छांतस्तृतीयं भागमायुषः॥ १ ॥

1181

विना कैसे जीवन धारण करैंगे ? हम विना यह दीन अनाथ दुःखी हो जायँगे इस प्रकार जो शोचते हैं ॥ ५७ ॥ और ऐसे गृहकी आशा करके विक्षिप्तमन हो बुद्धि मूढ़ होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंका ध्यान करते हैं सो पुरुष कभी तृप्त न होकर मरनेके उपरांत अत्यन्त तामसी योनिमें पड़ते हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ दोहा--अष्टादश अध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास । कहूँ दोउनके धर्म मैं,करहु यही अभ्यास ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जब आयुका तीसरा भाग आवै अर्थात् सो वर्षकी आयुके हिसाबसे पिछत्तर (७५) वर्ष पूरे हों तो पुत्रोंको घर सौंपकर वनमें बसै, यदि स्त्री संग आवै तो उसे भी वनमें रक्खै, नहीं तो वह

पुत्रके पास रहे आप वनमें शांत होकर रहे ॥१॥ कंद, मूल, फलोंसे आत्माको तृप्त करे, वल्कल वस्त्र पहरे, तृण, पत्ते और मृगचर्म धारण करे, यह सब वनकी वस्तु अति पवित्र हैं ॥२॥ केश, रोम, नख, दाढी, मूछ दूर न करावें और इनको धोवे भी नहीं, जलमें तीन काल स्नान करें, भूमिमें शयन करे ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्नि तपै, वर्षामें जलवृष्टि सहै, जाडेमें कंठतक जलमें मग्न रहै इस प्रकार तप करे ॥ ४ ॥ अग्निसे पका हुआ पदार्थ खाय या समयके पक्व फलादि खाय, ओखली व पत्थरसे कुटी हो वह वस्तु खाय, दाँतसे कुटी वस्तुको न खाय॥५॥ अपनी सब आजीविकाकी वस्तु आप ही ले आवें और देश कालका बल देखे, पहला संग्रह न रक्खे, जब नवीन अन्न प्राप्त हो जाय तो पुरानेका त्याग करे

कंदमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि
बिभृयाद्दतः ॥ न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थंडिलेशयः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले ॥
आकंठमग्नः शिशिर एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥४॥ अग्निपक्वं समाश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टो वा दंतो
लूखल एव वा ॥५॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ॥ देशकालबलाभिज्ञो नाददीताऽन्यदाऽऽहृतम् ॥६॥
वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान् ॥ न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमा ॥ ७ ॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च
पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मासानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः ॥ मां
तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे
युंज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ वनकी वस्तुके चरु पुरोडाशसे देवताओंका यज्ञ करे, वनमें आश्रम बनाकर रहै, परन्तु वेदोक्त पशुसे मेरा यजन करे ॥ ७ ॥ पूर्ववत् नाम, गृहस्थाश्रम सरीखे अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमासेष्टि, चातुर्मास्य यज्ञ इतना ही वेदने गृहस्थाश्रमोंको अनुष्ठान कहा है॥८॥ इस प्रकार जीवनतक तपस्या करनेसे जिसका मांस सूख जानेसे सम्पूर्ण देहमें नसें दिखाई देने लगें, वह वानप्रस्थ तपोमय मेरा आराधन करनेसे प्रथम ऋषि लोकसे महर्लोकमें जाय, इसके उपरांत क्रमसे मुझे भी प्राप्त हो ॥ ९ ॥ इतने कष्टसे प्राप्त हुई मोक्षफलदायक तपस्या तुच्छ काममें न लगावें,

जो लगावै तो उससे मूर्ख कौन है? ॥ १० ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण धर्म निष्काम करै तो निश्चय मोक्ष हो जाय और जो आयुके तीसरे भागमें वैराग्य थोड़ासा उत्पन्न हो तो संन्यास ले, यदि शरीरका सामर्थ्य पहले ही घट जाय तो विरक्त होकर रहै संन्यास ले. और जो विरक्त भी न हो उसे क्या करना चाहिये? तो कहते हैं कि, जब यह धर्मके नियम करनेमें असमर्थ हो, वृद्धावस्था हो तो अग्निहोत्रकी अग्नि आपमें रखकर चित्त मुझमें स्थिर कर अग्निमें प्रविष्ट हो शरीरको छोड़ दे ॥ ११ ॥और जो विरक्त हो सो कर्मोंका फल तथा देवताओंके लोकको नरकके समान जानैं, ऐसा करनेसे यह सब अग्निहोत्रादिक कर्म छोड़ अच्छी भांति संन्यास ले ॥ १२ ॥ संन्यासके आरम्भके उपदेशके अनुसार मेरा पूजन करै, ऋत्विजोंको सर्वस्व दे, अग्निहोत्रको अपने प्राणोंमें प्रविष्ट कर आ पनिरपेक्ष हो संन्यास ले ॥१३॥ जब ब्राह्मण संन्यास लेता है तो देवता स्त्री पुत्ररूप होकर उसको इस कारण विघ्न करते हैं कि, यह हमारी अवज्ञा करके आगे चलना चाहता है, परन्तु तो भी पुरुष उन विघ्नोंको लाँघ संन्यास ग्रहण करै, उनके विघ्न न माने * ॥ १४ ॥ यदि संन्यासी वस्त्र पहरना चाहै तो जितनेसे कौपीन ढकै उतना वस्त्र

यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यङ्‍ न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवादारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वंत्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥१४॥ बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दंडपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥

1152

---

* शंका–जो ब्राह्मण वैराग्यमें मन लगाकर संन्यास लेनेकी इच्छा करते हैं उनके विघ्न स्त्री आदि परिवार कैसे, करैंगे? क्योंकि मन कच्चा हो तब तो जो चाहै सो विघ्न कर देवै और जो मन पक्का होकर वैराग्यमें लग गया तो किसीका किया विघ्न नहीं हो सकता।

उत्तर– भाई, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बसे उत्पन्न हुई जो फाँसी है उसको सब चर अचर जीव जन्तु काटा चाहैं तो किसीकी काटी नहीं कट सकती, जो कोई महात्मा काटनेकी इच्छा करैं तो बडी कठिनतासे वह फांसी कट सकती है, क्योंकि स्त्री पुत्रके मोहमें पशु पक्षी भी बँध गये हैं तो मनुष्य बँध गया तो क्या आश्चर्यकी बात है? इसलिये श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा कि ब्राह्मणका मन वैराग्यमें लगा हो तो भी स्त्री पुत्र आदि परिवार संन्यासमें विघ्न करते हैं।

पहरे और कुछ धारण न करे, एक दण्ड धारण करे, एक जलपात्र अर्थात् कमण्डलु अपने पास रक्खे और कुछ नहीं ॥ १५ ॥ पृथ्वीमें देखकर पाव धरे, वस्त्रसे छना जल पान करे, वचन सत्य बोले और आचरण मनमें विचार जब शुद्ध मन हो तब करे ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! वचनका दण्ड मौन रहना, देहका दण्ड सकाम कर्म नहीं करना, चित्तका दण्ड प्राणायाममें स्थिरता, जिसके यह दण्ड नहीं वह बाँसके दण्डका संन्यासी कहलाता है ॥१७॥ ब्राह्मणोंमें ही प्रतिग्रह, यजन, अध्ययन, शिलोंछवृत्ति यह चार आचार होते हैं, उनके घर भिक्षा करै और जो निन्दित हो उसके घर भिक्षा न करे. 'यहांसे मुझे यह अलभ्य लाभ होगा' इस उद्वेगसे रहित सात घर भिक्षा करे, जो कुछ प्राप्त हो उसीमें सन्तोष करे ॥ १८ ॥ भिक्षा ले जहां जलाशय हो वहां जाय पाव धो आचमन कर मौन होकर मार्जन करे, मार्गके दोषकी शुद्धि करे, पीछे

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१६ ॥ मौनाऽनीहानिलायामा दंडा वाग्देहचेतसाम् ॥ न ह्यते यस्य संत्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ॥ सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं भुंजीताऽशेषमाहृतम् ॥१९॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेन्द्रियः ॥ आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः॥२०॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः॥आत्मानं चिंतयेदेकमभेदेन मया मुनिः॥२१॥ अन्वीक्षेतात्मनो बंधं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बंध इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरन्मुनिः ॥ विरक्तः क्षुद्रकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥

विभाग कर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, भूतोंको समर्पण करे, थोड़ा २ अलग अलग करके रक्खे, बाकी सब भोजन करे ॥१९॥ अब एक दूसरी क्रिया और भी है कि, संपूर्ण पृथ्वीमें फिरे, परन्तु संग किसीका न करे, जितेन्द्रिय रहे, आत्मामें ही संतुष्ट धीर और समदृष्टि हो ॥ २० ॥ एकांत निर्भय स्थलमें रहे, मेरी भावनासे चित्त निर्मल रक्खे, आत्मामें और मुझमें भेद नहीं देखे, अभेदसे एक आत्मा विचारे ऐसा विचारशील हो ॥२१॥ ज्ञाननिष्ठासे अपने बंध मोक्षका विचार करे (इन्द्रियोंके विक्षेपको बंध कहते हैं और इन्द्रियोंके संयमको मोक्ष कहते हैं) ॥ २२ ॥ इन्द्रियोंको निग्रह करके मुझमें चित्त रक्खे, तुच्छ कामनाओंसे विरक्त रहे तो मुनि अतिउत्तम आत्मसुखको प्राप्त हो सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक

विचरै ॥ २३ ॥ नगर, ग्राम, ब्रजमें भिक्षाको जाय, जहां कहीं बहुतसे मनुष्योंका संग आया हो या यात्रियोंका संग हो तहां भिक्षाको जाय, जो पुण्य देश, नदी, पर्वत, वन, आश्रम हैं, वहां पृथ्वीमें फिरै ॥ २४ ॥ वानप्रस्थके आश्रममें जाय नित्य भिक्षा करै, उसका अन्न शुद्ध है उससे सत्त्व शुद्ध होता है तो शीघ्र ही सिद्धि मिलती है और मोह संपूर्ण घट जाता है ॥२५॥ गृहस्थके घर उत्तम सामग्री मिष्टान्न पावै, वह भिक्षा छोड उंछवृत्तिके अन्नकी भिक्षाको मन कैसे चलै ? तो कहते हैं कि, इन मिष्टान्नादिकोंको वस्तु करके न देखे, इससे नाशको प्राप्त होता है, इस लोक तथा परलोकमें मन आसक्त न करै, मिष्टान्नादिकके लिये उपाय न करै ॥२६॥ जो यह जगत् और शरीर मन, वचन, प्राणसे युक्त है, अहंता ममताके धर्म यह आत्मामें सब मायामात्र हैं, यथार्थ नहीं, ऐसी युक्तियोंसे आत्मनिष्ठ हो फिर देहादिकका स्मरण न करै,

पुरग्रामव्रजान्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्व
भीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलांधसा ॥२५॥ नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति॥
असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ॥ सर्वं मायेति तर्केण
स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदवि
धिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९॥ वेदवा
दरतो न स्यान्न पाखंडी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादे न कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥

क्योंकि स्मरणसे वैराग्यमें प्रतिबंध होता है ॥ २७ ॥ अब परमहंसधर्म कहते हैं, एक वैराग्यसे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पूर्ण ज्ञानी अथवा मुक्ति भी न चाहनेवाले मेरी दृढ भक्ति करनेवाले भक्त दंडादिककी आवश्यकतावाले आश्रमधर्मोंकी आसक्ति त्यागकर जितना अपनेसे हो सकै उतना आश्रमसम्बन्धी धर्म करैं, परन्तु अत्यन्त उसमें लिप्त न हों ॥ २८ ॥ विवेकी होनेपर भी बालकके समान फिरते हैं, मान अपमानसे शून्य रहते हैं, अति चतुर हैं परन्तु तो भी जडकी भाँति रहते हैं, फलका अनुसंधान नहीं रखते सो बुद्धिमान् हैं, उन्मत्तके समान वेदके धर्मोंमें निष्ठ हैं परन्तु कुछ आचारका नियम नहीं है ॥ २९ ॥ कर्म करना ही मुख्य है, ऐसे वेदके वादमें आसक्त न

हो, पाखण्डी न हो, केवल तर्क ही सब जगह न करै और जहां प्रयोजन विना वाद होता हो वहां किसीका पक्ष न करै॥३०॥किसी मनुष्यको उद्विग्न न करै न मनुष्योंसे आप उद्विग्न हो, अपमान किसीका न करै, आप अपमान सहै, इस देहके लिये पशुके समान किसीसे वैर न करै ॥ ॥ ३१ ॥ क्योंकि सबमें आत्मा एक ही है वैर किससे करै ? ऐसे समझकर निवृत्त हो, जैसे जलके पात्र अनेक होते हैं और उनमें अनेक चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब दीखते हैं परन्तु चन्द्रमा एक ही है, इसी प्रकार आत्मा भी एक ही है और अनंतसा भासै है ॥ ३२ ॥ और जो समय समयपर भोजन न मिलै तो खेद न करै, पावै तो हर्ष न करै, धैर्य रक्खै क्योंकि प्राप्ति अप्राप्ति दोनों दैवाधीन हैं ॥ ३३ ॥ आहार तो अवश्य

नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं नोद्वेजयेन्न तु॥अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥ ३१ ॥ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२॥ अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं कचित् ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धतिमानुभयं दैवतंत्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ॥ तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥ तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥ अन्यांश्च नियमाञ्ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ नहि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आदेहांतात्कचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥ ३७ ॥

चाहियें, जिससे जीवन हो. प्राण धारणका प्रयोजन यह है कि, तत्त्वको विचारे, जिससे मुक्त हो ॥ ३४ ॥ ईश्वरेच्छासे जो कुछ मिलै सोई भक्षण करै, भला हो वा बुरा. इसी प्रकार मुनि भी वस्त्र, शय्या जैसी पावै उसे ही ग्रहण करै ॥ ३५ जैसे मुझे कुछ चाहना नहीं परन्तु लीलापूर्वक धर्म करता हूँ, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी आसक्ति छोड़ शौच, आचमन, स्नान, और भी नियम करै, विधिके वश होकर न करै ज्ञानदृष्टि रखकर करै ॥ ३६॥ ज्ञानीको भेदकी प्रतीति नहीं होती और जो होती है वह पहले ही मेरे ज्ञानसे नष्ट हो जाती है. यद्यपि देह गिरने तक कभी कभी आहारादिकमें भेदप्रतीति देखी जाती है,परन्तु तो भी वह अयथार्थरूप जानी हुई है,देहके गिरनेपर मुक्ति हो जाती है ॥३७॥

अब केवल वैराग्ययुक्त हो ज्ञानकी इच्छा रखनेवालेका कर्त्तव्य कहते हैं कि, जो यह गृह पुत्र आदि सबको दुःखरूप जान वैराग्ययुक्त हो और ज्ञानकी इच्छा करता हो, मेरे धर्म भी कुछ जानता हो सो उत्तम गुरुका सेवन करै ॥ ३८ ॥ जबतक ब्रह्मज्ञान न मिले तबतक श्रद्धा और भक्ति रखकर ईर्षा छोड गुरुको मेरा ही स्वरूप जान अत्यन्त आदर सत्कारसे उसकी सेवा करै ॥ ३९ ॥ अब अधिकार विना जो संन्यास लेता है, उसकी निंदा करते हैं-इन्द्रियोंका निग्रह न किया हो, बुद्धि अति आसक्त हो,ज्ञान वैराग्यसे रहित हो ऐसा जो संन्यास लेता है वह संन्यास जीविकाके अर्थ है, इसी कारण निंदित है ॥४०॥ वह अधर्मी संन्यासी है जिन्होंने देवताओंकी वंचनाकी है, जो गृहस्थधर्ममें देवता अतिथि पूजन करना था सो छोड दिया, संन्यासधर्म भी नहीं करते इससे सबकी अवज्ञा ही करते हैं,उनकी वासना दग्ध नहीं और आत्मरूप हृदयमें स्थित मेरी भी वंचना करते हैं, इसी लिये इस लोक और परलोकसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ संन्यासीका मुख्य धर्म शम और अहिंसा है, वानप्रस्थका मुख्य धर्म तपस्या और विचार है, गृहस्थका मुख्य धर्म प्राणिमात्रमें दया,, रक्षा और देवताओंका यज्ञ है और ब्रह्मचारीका धर्म यही है कि, गुरुओंकी सेवा करै ॥ ४२ ॥ यहां गृहस्थका और भी धर्म कहते हैं-ब्रह्मचर्य, तप, शौच, संतोष, प्राणिमात्रसे सुहृदताई और ऋतुके दिन स्त्रीसंग करै, यह गृहस्थके धर्म हैं, मेरी सेवा करनी तो सबका ही धर्म है ॥ ४३ ॥ हे उद्धव ! इस प्रकारके स्वधर्मसे मेरा नित्य भजन करै और स्त्री पुत्रादिकोंमें प्रीति न रक्खै, सब प्राणिमात्रमें मेरी भावना रक्खै उस पुरुषको शीघ्र ही मेरी भक्ति मिल जाती है ॥ ४४ ॥

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥ तावत्परिचरेद्भक्तः
श्रद्धावाननसूयकः ॥ यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचंडेंद्रियसारथिः ॥ ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदंडमुपजीवति ॥ ४० ॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ॥ अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च
विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ॥ गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥
ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ गंतुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण
भजन्नित्यमनन्यभाक् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्ति विंदतेऽचिरात् ॥ ४४ ॥

हे उद्धव । ऐसी अव्यभिचारिणी भक्तिसे सब लोकके महेश्वरको जो सबकी उत्पत्ति, पालन और प्रलयका कारण ब्रह्मरूप मुझको प्राप्त हो जाता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार स्वधर्मसे शुद्धचित्त होनेसे मेरा स्वरूप जाननेमें आताहै, विज्ञान और वैराग्य युक्त होकर शीघ्र मुझे प्राप्त होगा ॥४६॥ अब सबका निर्धार तात्पर्य कहते हैं कि, वर्णाश्रमवालोंका यह आचाररूप धर्मका फल पितृलोककी प्राप्ति करानेवाला है, यही धर्ममें ही भक्तिसे मुझे समर्पण करे तो परम फल मोक्षानंदको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ हे साधो । यह सब धर्म मैंने तुमसे कहा, जो तुमने मुझसे पूछा था, जो भक्त स्वधर्मसंयुक्त होकर इसे करै, वह मेरे परब्रह्मरूपको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापु० एकादशस्कंधे भाषाटीकायां

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥ ४५ ॥ इति स्वधर्मनिर्णिक्त
सत्वोनिर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ॥
स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥४७॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम्॥ यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो
मां समियात्परम्॥४८॥ इति श्रीमद्भा० महापु० एकादशस्कन्धे वनस्थयत्यादिधर्मनिरूपणं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥
श्रीभगवानुवाच ॥ यो विद्याश्रुतसपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥
ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः॥ स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मद्दते प्रियः ॥२॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं
विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥

श्रीभगवदुद्धवसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, पूर्वधर्म निर्वाह । सो सब वर्णन करतहूँ, सुनो सहित उत्साह ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जिसको विद्या करके, श्रवण करके आत्मतत्त्वका अनुभवतक ज्ञान प्राप्त हो गया है सो प्रपंचकी निवृत्तिका साधन मुझमें मायामात्र जाने, और ज्ञानके साधन सब छोडे इसको विद्वान् संन्यास कहते हैं॥ १॥ ज्ञानी पुरुषका आत्मरूप मैं ही प्रिय हूँ, इसको और स्वार्थका हेतु कुछ नहीं है, परस्वार्थका हेतु मुझे ही चाहते हैं इससे स्वर्ग और मोक्ष तथा और भी अर्थ मुझ विना उन्हें प्रिय नहीं, इस कारण उसका न कुछ कर्तव्य है, प्राप्त न करना है॥ २ ॥ यहां ज्ञानका अनुभवप्रमाण बताते हैं, ज्ञान विज्ञानसे जो सिद्धिको प्राप्त हुए हैं वह मेरे स्थानोंको

जानते हैं इस कारण मुझे ज्ञानी अतिप्रिय हैं वह ज्ञानसे ही मुझे हृदयमें धारण किये रहते हैं ॥ ३ ॥ तप, तीर्थ, जप, दान और पवित्र साधन उस सिद्धिको नहीं करते जो सिद्धि ज्ञानके लेशसे होती है * ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम ज्ञानके रूपको जान ज्ञान विज्ञान युक्त होकर भक्तिसे मेरा भजन करो ॥ ५ ॥ सब यज्ञोंके स्वामी और आत्मा मुझको अपने आपमें ही ज्ञान वा विज्ञानरूप यज्ञसे यजन करके मुनिगण मेरे रूपकी सिद्धि पा चुके हैं ॥ ६ ॥ इसलिये तुम भी इसी ज्ञानसे धर्ममें प्रवृत्त हो. हे उद्धव ! यह देह और इंद्रियोंके विकार सब मायिक

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ॥ नाऽलं कुर्वंति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपति मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायांतराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव यस्य किं स्युराद्यंतयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव वाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥

हैं, कुछ परमार्थवस्तु नहीं हैं. यह विकार देहसे पहले भी आत्माके नहीं हैं, पीछे भी नहीं हैं, मध्यमें हैं सो भ्रम जानिये. आत्मा शुद्ध है, जन्मादिक भी जो देखे जाते हैं, सो देहके ही हैं, कुछ आत्माके नहीं हैं, देहको जन्म मरण नहीं, देह भी मायारूपी है, देहके आदि अन्त जो ब्रह्म हैं सो मध्यमें रहते हैं, जब देह ही नहीं तो सब ब्रह्म होते हैं तो फिर देहके जन्म मरण कहांसे हो सकते हैं ? जब यथार्थसे देहके भी जन्म मरणादिक नहीं, सब ब्रह्मरूप हैं तो ब्रह्म न जन्मै है न मरै है, निर्विकार ब्रह्म ही है इसमें क्या कहना ? ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे विश्वेश्वर !

---

* शंका-तप, तीर्थ, जप, दान आदिक जो अनेक अनेक सुन्दर क्रिया हैं, उन सबको त्यागकर अकेले ज्ञानको ही श्रीकृष्णने बडा क्यों कहा ?

उत्तर-जितने संसारमें उत्तम क्रिया कर्म हैं तप तीर्थ आदि वह सब बहुत जन्ममें फल देते हैं, क्योंकि जप शीघ्र फल नहीं देता, तीर्थमें स्नान करने मात्रसे स्वर्ग नहीं प्राप्त होता और जिस समय शरीरमें ज्ञान उत्पन्न होगा उसी समय अनेक जन्मोंका दुःख दूर होकर शीघ्र सुख प्राप्त होगा और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने अपना और उद्धवका समागम थोडे दिनोंका समझा इसलिये अपने परममित्र उद्धवको सुख होनेके निमित्त ज्ञानकी उपासना बताई, क्योंकि श्रीकृष्णके वियोगका दुःख जप, तप, तीर्थ करनेसे दूर नहीं हो सकता और उस दुःखको ज्ञान बहुत शीघ्र कर सकता है इसलिये जप तपको त्यागकर श्रीकृष्णने ज्ञानको श्रेष्ठ कहा ।

हे विश्वमूर्त्ते ! जिस प्रकार मुझे निश्चय हो वैसे ही वैराग्ययुक्त और विज्ञानयुक्त पुरातन विशुद्ध ज्ञान तुम कहो और जिसको ब्रह्मादिक खोजते हैं, ऐसे भक्तियोगको कहो ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! इस घोर संसारमार्गमें तीन तापसे तपा हुआ मुझे तुम्हारे चरण द्वन्द्वरूप छत्रके अतिरिक्त और शरण नहीं दिखाता. यह छत्र केवल छाया ही नहीं करता बरन् सब ओरसे अमृत बरसाता है ॥ ९॥ हे महानुभाव ! यह पुरुष इस संसार रूप बिलमें गिरा हुआ है और कालरूपी सर्पने इसे काट लिया है, तुच्छ सुखोंमें बहुत तृष्णा है, ऐसे इस जनका कृपापूर्वक उद्धार करो और मोक्षरूप अपने वचनामृतसे सींचो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार प्रार्थना की तो भगवान्

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश॥ पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रिद्वंद्वातपत्रादमृताभिवर्षात्॥९॥
दष्टंजनं संपतितं बिलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम्॥ समुद्धरैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ॥१०॥
श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥ अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥११॥
निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं तेऽभिधास्यामि
देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥ नवैकादश पञ्च त्रीन्भावान्भूतेषु येन वै ॥
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! इसी भांति पहले राजा युधिष्ठिरने हमारे सबके सामने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहसे पूछा था ॥ ॥ ११ ॥ भारतयुद्ध निवृत्त होनेके उपरांत बन्धुवधसे व्याकुल हो राजा युधिष्ठिरने पूछा ॥ १२ ॥ वहां भीष्मने जो धर्म युधिष्ठिरसे वर्णन किया वह हमने भी सुना, सोई हम तुमसे कहते हैं. जो ज्ञान विज्ञान और वैराग्य, श्रद्धा, भक्तिसे संयुक्त है ॥ १३ ॥ यहां प्रथम ज्ञान कहते हैं, प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह नौ तत्त्व हुए और एकादश इन्द्रियें, पञ्च महाभूत, तीन गुण यह सब मिलकर अट्ठाईस (२८) तत्त्व हुए, सो यह सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं, ज्ञानसे देखे और इन तत्त्वोंमें भी एक परमात्माको जिस

ज्ञानसे व्याप्त देखैं सो निश्चय मेरा ज्ञान है ॥ १४ ॥ जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ देखनेमें आते हैं वैसे यहां पदार्थ देखनेमें नहीं आते, केवल एक परब्रह्म देखनेमें आता है, वही ज्ञान विज्ञान कहा जाता है और उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति होनेसे पदार्थ त्रिगुणात्मक नाशवान् है ऐसा देखै ॥ १५ ॥ यदि कोई कहै कि, सब ब्रह्मरूप ही हैं तो जन्मादिक क्यों होता है ? उत्पत्ति तथा दूसरे रूपकी प्राप्तिके मध्य सबका आश्रय कारण होनेसे जो कार्य और कार्यांतरमें रहता है, जो उत्पत्तिमें व्याप्त होता है और इनके प्रलयमें जो अवशेष रहता है सो ब्रह्म है, उसेही देखै ॥ १६ ॥ अब विज्ञान कहकर वैराग्य कहते हैं-वेद, प्रत्यक्ष, परंपराकी प्रसिद्धि और अनुमानसे यह प्रपञ्च मिथ्या है, अद्वैतही सत्य है, जैसे यह दृश्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे उत्पन्न है, जो जिससे उत्पन्न है वह उससे भिन्न नहीं, जैसे मिट्टीके बने घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं, इस प्रकार

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥१५॥ आदावंते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ॥१६॥ श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ॥ प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥ कर्मणां परिणामित्वादाविरिंचादमंगलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत्॥ १८ ॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥१९॥ श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥ आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवंदनम्॥ मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥

भ्रमरूप द्वैत जानकर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ कदाचित् स्वर्गादिकमें सुखभोग हैं, वहांकी इच्छा हो तो विरक्त होना किस प्रकार सम्भव है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, स्वर्गादि ब्रह्मलोकतकका सुख भी इसी लोकके समान पंडित जन दुःखरूप मिथ्या ही देखते हैं, क्योंकि यह विनाशी कर्मोंके फल हैं ॥ १८ ॥ अब वैराग्य कहकर भक्ति कहते हैं, हे निष्पाप उद्धव ! मैंने भक्तियोग पहले भी तुमसे कहा था और अब फिर अपनी भक्तिके परमकारणसे प्रीतियुक्त तुमसे कहता हूँ ॥ १९ ॥ हे उद्धव ! प्रथम अमृतरूप मेरी कथामें श्रद्धा हो, कथा सुननेमें आदर हो, सुननेके उपरांत निरंतर मेरा कीर्त्तन करै ॥ २० ॥ मेरी पूजामें तत्पर हो, सर्वांगसे नमस्कार करै, आदरपूर्वक

मेरे भक्तकी अधिक पूजा करै,सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खे ॥ २१ ॥ लौकिक कार्योंको मेरे लिये करै, वचनसे मेरे गुणानुवाद कहै,
मन मेरे रूपमें ही अर्पित करै, सब कामनाओंका त्याग करै ॥ २२ ॥ मेरे लिये अर्थका त्याग करै, भोग और सुखका त्याग करै, विषयभोग
न करै,यज्ञ, दान, होम, जप, तप सब मेरे लिये ही करै ॥ २३ ॥ हे उद्धव ! इस प्रकार धर्मसहित जो मनुष्य मुझमें आत्मनिवेदन करते हैं,
उन मनुष्योंको प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, फिर उनको कुछ करना शेष नहीं रहता॥२४॥क्योंकि जब शांत सत्त्वगुणसे बढ़ा चित्त मुझमें
लगा दिया तब और सब ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आप ही प्रगट हो जाते हैं ॥ २५ ॥ और यही चित्त जब गृह कुटुंबादिमें आसक्त होता है तब

मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम्॥मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च
सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम्॥ मयि सञ्जायते
भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥ २४ ॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् ॥ धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं
चाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितं तद्विकल्प इन्द्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥
धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥ गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥२७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः
कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन ॥ कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥२८॥ किं दानं किं तपः
शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ॥ कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥२९॥ पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन्भगो
लाभश्च केशव ॥ का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥

इंद्रियों द्वारा विषयोंमें भ्रमण करता है,जिससे अधर्म, अज्ञान,अनुरक्तता और कुभाग्यता प्राप्त होती है॥२६॥धर्म वही है जो मेरी भक्तिके सहित हो,
ज्ञान वही है, जिससे आत्मरूप दीखे, इन्द्रियोंके धर्मोंमें आसक्त न होना वैराग्य और अणिमादिकका होना ऐश्वर्य है ॥२७॥ उद्धवजी
बोले कि, हे शत्रुनाशक ! हे कृष्ण ! हे प्रभो ! संयम नियम कितने प्रकारके हैं?शम दम किनको कहते हैं ? क्षमा, धैर्य क्या है॥ २८॥दान,तप,
शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग, धन,इष्ट,यज्ञ,दक्षिणा इत्यादि क्या हैं ?॥ २९ ॥ हे श्रीमन् ! पुरुषका बहुत भाग्य क्या है ? परम विद्या क्या है ?

लज्जा, श्री, दुःख, सुख, क्या है ? ॥३०॥ पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? मार्ग उन्मार्ग कौन हैं ? स्वर्ग नरक कौन हैं, बन्धु गृह कौन है ? ॥ ३१ ॥ धनी दरिद्री कौन है ? कृपण ईश्वर कौन है ? हे साधुओंके पति ! यह प्रश्न मुझसे समझाकर कहो ॥ ३२ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, हे उद्धव ! जीवमात्रकी हिंसा न करे, सत्य बोले, मनसे भी पराई वस्तुको न चुरावै, आसक्ति कहीं न रखैं; लज्जा, असञ्चय, धर्ममें विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा यह बारह संयम हैं॥३३॥शौच दो भांतिके हैं अन्तःकरणकी शुद्धि और बाह्यशुद्धि; शौच, तप, जप, होम, श्रद्धा, अतिथि और मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, सन्तोष, आचार्यसेवा यह बारह नियम हैं॥३४॥ जो यह संयम, नियम नित्य करै तो जो कुछ चाहै सो पूर्ण हो ॥ ३५ ॥ अब शम, दम कहते हैं कि, मुझमें बुद्धि स्थिर हो सो शम है, केवल शांति ही शम नहीं कहाती; इन्द्रियोंका संयम दम है, चोर दुष्टका मारना दम नहीं; दुःखका सहना क्षमा है, बहुत भार सहना क्षमा नहीं; जिह्वा और उपस्थका वेग सहै सो धैर्य, उद्वेग मनमें न उत्पन्न हो इतना ही धैर्य नहीं ॥ ३६ ॥ प्राणिमात्रसे द्रोह त्यागनेको दान कहते हैं, धनका त्याग दान नहीं, कामका त्याग तप कहाता है, कृच्छ्रचान्द्रायण तप नहीं; स्वभावको जिसने जीत लिया वही शूर, पराक्रम शौर्य नहीं, ब्रह्मका दर्शन सत्य है॥ ३७ ॥पण्डितोंने सत्य और प्रियवाणीको ऋत कहा है, कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्यागको संन्यास कहा है ॥ ३८ ॥

कः पंडितः कश्च मूर्खः कः पंथा उत्पथश्च कः ॥ कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बंधुरुत किं गृहम् ॥३१॥ क आढ्यः
को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥३२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा
सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ॥ ३३ ॥ शौचं जपस्तपो होमः
श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम्॥३४॥ एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः॥
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहंति हि॥३५॥शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ॥ तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वो
पस्थजयो धृतिः ॥ ३६ ॥ दंडन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ॥ स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम्
॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥

1157

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो
लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ॥ विद्यात्मनि भिदा बाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखा
त्ययः ॥ दुःखं कामसुखापेक्षा पंडितो बंधमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पंथा मन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चि
त्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तम उन्नाहो बंधुर्गुरुरहं सखे ॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य
उच्यते ॥ ४३ ॥ दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः ॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥

मनुष्योंका श्रेष्ठ धन धर्म है,पशु पुत्रादिक धन नहीं; परमेश्वर ही यज्ञ है, मेरी बुद्धिसे यज्ञ करै, कर्मबुद्धिसे न करै; मेरे ज्ञानका उपदेश ही उस यज्ञकी दक्षिणा है, सुवर्णादि धन दक्षिणा नहीं;प्राणायामसे मनको वश करै वही परमबल है ॥ ३९ ॥ मेरा ऐश्वर्य सौभाग्य है, कुछ लौकिक संपत्ति सौभाग्य नहीं; मेरी भक्ति पावै सोई परमलाभ है,कुछ धनका लाभ नहीं. आत्मामें भेदबुद्धि दूर हो सो विद्या है, केवल ज्ञानमात्र विद्या नहीं; कुत्सित कर्मका करना लज्जा है, केवल लाज लज्जा नहीं ॥ ४० ॥ गुण अच्छे हों वही शोभा है कुछ आभूषण शोभा नहीं; दुःख सुखका स्मरण करै वही सुख है, भोग सुख नहीं; बंध मोक्षको जानैं सो पण्डित है,केवल शास्त्र पढे पण्डित नहीं, सुख भोगकी इच्छा दुःख है, अग्नि दाहादिक दुःख नहीं ॥ ४१ ॥ जिसके देहादिक अहंकार है सो मूर्ख है, जिस मार्गमें मुझे पावै वही उत्तम मार्ग है, काँटोंसे रहित सन्मार्ग नहीं; जहाँ मन चंचल हो संसारमें फिर प्रवृत्त होय ऐसे मार्गको कुत्सित मार्ग कहते हैं, चौरादिकोंसे व्याप्त उत्पथ मार्ग नहीं;सत्त्वगुण अधिक हो, राजस तामस गुण न हो सोई स्वर्ग है, कुछ इन्द्रलोक सुख नहीं ॥ ४२ ॥ तमोगुण अधिक हो सोई नरक है, और नरक नहीं और बंधु सब बंधु नहीं परमबंधु गुरु है, सो गुरु मैं हूँ; मनुष्यका शरीर गृह है, और गृह नहीं; जो गुणसे सम्पन्न है वही धनी है, और धनी नहीं ॥ ४३ ॥ जो सदा असंतोष रक्खैं सो दरिद्री हैं, धनहीन दरिद्री नहीं; जो इन्द्रियोंको न जीत सकै सोई कृपण है,

दीन कृपण नहीं; विषयोंमें आसक्त न होकर जो स्वाधीन है सो ईश्वर है, राजा स्वाधीन नहीं; जो गुणमें आसक्त है वही परवश है ॥ ४४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! यह तुम्हारे सब प्रश्न तुमको अच्छे प्रकार समझाये, अब बहुत क्या वर्णन करें, गुण दोषका लक्षण इतना ही है, जो सबके गुण दोष विचारता रहे वही दोष है और गुण तथा दोष न देखे वही गुण है ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा० महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ दोहा—कहूँ बीस अध्यायमें, गुण दोषनके अथ । भक्ति ज्ञान औ कर्म यह, तीनों योग समर्थ ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण! विधि निषेध वेद कहते हैं सो वेद तुम्हारी आज्ञा है, तुम सबके ईश्वर हो, आपकी

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधेऽज्ञानत्यागो नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥ उद्धव उवाच॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते॥ अवेक्षतेऽरविंदाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम् ॥१॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ॥ द्रव्यदेशवयःकालान्स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥ गुणदोषभिदा दृष्टिमंतरेण वचस्तव ॥ निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥३॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४॥ गुणदोषभिदा दृष्टिर्निगमात्तेन हि स्वतः ॥ निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥५॥श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ॥ ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

आज्ञासे वेद कर्मोंके पुण्य पापोंको देखते हैं ॥ १ ॥ उन धर्मोंके अधिकारी उत्तम, मध्यम, हीन तीन प्रकारके हैं सो वह वर्णाश्रम अलग हैं, जिनका गुण दोष सब वेद देखते हैं ॥ २ ॥ अब आप कहते हो कि, गुण दोष छोडकर धर्ममें प्रवृत्त हो सो गुण दोष भेददृष्टि विना विधि निषेध तुम्हारा वचन मनुष्योंको कैसे फलदायक हो सकता है। ॥ ३ ॥ हे ईश्वर! पितृ, देवता तथा मनुष्योंको तुम्हारा वेद ही मोक्ष और स्वर्गादिकोंमें श्रेष्ठ प्रमाण है और साध्य साधन विषे प्रमाण है ॥ ४ ॥ और गुण दोषके भेदका ज्ञान तुम्हारे वेद ही हैं, आपसे नहीं माना है, गुण दोषोंपर दृष्टि न रक्खे यह अब तुम्हीं कहते हो, इसलिये भ्रम होता है ॥५॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव! मनुष्योंके

कल्याणार्थ वेदमें भेदसे तीन योग हमने कहे हैं, ज्ञान, कर्म, भक्ति इनसे परे और उपाय कहीं नहीं॥६॥ इनके अधिकारी अलग अलग हैं, एक ही नहीं सो कहते हैं-इनमें जो कर्मोंमें विरक्तता हो, फलकी कुछ चाहना न हो उसे ज्ञानयोग कहा है॥७॥यदृच्छासे मेरी कथामें जिसकी श्रद्धा हो, अतिविरक्त न हो, अति आसक्त भी न हो उसे भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥ ८ ॥ प्रथम कर्मयोगको कहते हैं, कर्म वहाँतक करे जहाँतक वैराग्य उत्पन्न न हो और मेरी कथा श्रवणादिकमें श्रद्धा न उपजै ॥९॥ हे उद्धव ! स्वधर्ममें स्थित हो फलकी इच्छा छोड निष्काम यज्ञ करै तो उसे न नरक हो न स्वर्ग हो, जो और आचरण न करै ॥१०॥ इस लोकमें स्वधर्ममें स्थित हो निषेधका त्याग करै, ऐसा करनेसे

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥७॥ यदृच्छया मत्क
थादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥८॥ तावत्कर्माणि कुर्वीत न
निर्विद्येत यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥९॥ स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ॥ न
याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥ ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति
मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥११॥ स्वागणोऽप्येनमिच्छंति लोकं निरयिणस्तथा ॥ साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाध
कम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं कांक्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ॥ नेमं लोकं च कांक्षेत देहाऽऽवेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥
एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ॥ अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥

जब मन शुद्ध हो तो विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करै या यदृच्छासे मेरी भक्ति पावै॥१३॥ज्ञानभक्तिका यह मनुष्यदेह कर्त्ता है इससे मनुष्यदेह उत्तम है सो कहते हैं-जो स्वर्गमें हैं और नरकमें हैं वह मनुष्यदेहकी बांछा करते हैं, जिस देहसे ज्ञानभक्ति करनेसे मोक्ष होता है, स्वर्ग और नरकमें भी शरीर है सो मोक्षसाधक नहीं ॥१२॥ चतुर मनुष्य हो सो स्वर्गकी गति न चाहै, जैसे मनुष्य नरककी गति नहीं चाहते और यह लोक भी नहीं चाहै, क्योंकि देहके आवेशसे प्रमाद होता है ॥ १३ ॥ अर्थसिद्धिका दाता भी मनुष्यदेहको जानकर मृत्युसे पहले सावधान मनुष्य

मोक्षका यत्न करे ॥ १४ ॥ जैसे पक्षी किसी वृक्षपर घर करै, इस वृक्षको कोई निर्दयी पुरुष आकर काटै, उसे काटता जान अनासक्त होकर घर छोड़ दे तो जियें ॥ १५ ॥ अहोरात्रसे काल आयुर्बलको काटै है, यह जान भयसे काँपते इस देहकी आसक्ति छोड शांतचित होकर रहै ॥ १६ ॥ देहको ऐसा जानकर भी जो सावधान नहीं होता उसकी निंदा करते हैं. यह मनुष्यदेह अत्यन्त दुर्लभ है, अनेक जन्मके पुण्यसे पाया है, साधन करनेको समर्थ है,संसारसमुद्रसे तरनेको नाव है, गुरु नावका चलानेवाला है,मैंने अनुकूल पवनसे प्रेरित की है,ऐसे साधनको पाय जो यह प्राणी संसार समुद्रसे न तरे तो वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥ यह कर्मयोग तो जो विरक्त न हों उनका कहा, अब जो विरक्त हों

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलंपटः ॥ १५ ॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति॥१६॥ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥ १७ ॥ यदारंभेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ॥ अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥१८॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम्॥अतंद्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत्॥१९॥ मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेंद्रियः ॥ सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥

उनका पहले जो कुछ कर्त्तव्य है सो प्रकार कहते हैं कि; जब कर्मोंमें उद्वेग हो वैराग्य उपजे तब इन्द्रियोंका निग्रह करै, स्थिरतासे आत्माके अभ्याससे मनका निग्रह करै तब यह योगी हो ॥ १८ ॥ मनका निग्रह करै तो भी चंचल होय तो सावधान हो कुछ मनकी अकांक्षा पूर्ण करके फिर मनको वश करै॥ १९ ॥ मनकी धारणा नहीं छोडै, प्राणवायु जीतैं, इन्द्रियाँ जीते और सत्त्वगुणी बुद्धिसे अपने मनको वश करै ॥ ॥ २० ॥ यह मनका निग्रह निश्चय उत्तम योग है, जैसे सवार दमन करने योग्य घोडेकी गतिको अपनी इच्छानुसार चाहता हुआ पहले उसे

इच्छानुसार जाने देता है फिर लगामको थामकर चलाता है वैसे ही शनैः शनैः मनको वश करे ॥ २१ ॥ सब तत्त्वोंके विवेकसे और प्रकृतिसे उत्पत्तिका क्रम विचारे, यह पृथ्वीआदि क्रमसे अनुलोम प्रतिलोमसे लीन होते हैं ऐसा ध्यान करता रहे, ऐसा ध्यान उस समय तक करे, जबतक चित्त प्रसन्न न हो ॥ २२ ॥ जब चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो तब गुरुके बताये धर्मका विचार करे, क्रमसे यह चित्त देहका अभिमान छोड़ देता है ॥ २३ ॥ संयम नियम आदि योगधारण, आत्मविचार और मेरी प्रतिमाकी सेवा इन उपायोंसे योग्य परमात्माका मनसे स्मरण करे, क्योंकि मेरे स्मरणका इससे अधिक और उपाय नहीं है ॥२४॥ जो प्रमादसे योगी कुछ निन्दित कर्म करे, उस योगीको योगभ्याससे

सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिंतितस्यानुचिंतया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥२४॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥ स्वेस्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः ॥ कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ॥ गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥ ततो भजेतमां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ॥ जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥

ही अपना पाप दूर करना चाहिये क्योंकि इसका और प्रायश्चित्त नहीं है ॥२५॥ अपने अधिकारमें रहना ही गुण है, प्रवृत्तिमार्ग स्वभावसे ही अशुद्ध है तथापि जो सहसा (एकाएकी) न छोड़ा जाय तो संगप्रवृत्तिके छुड़ानेकी इच्छासे गुण दोष कह इन कर्मोंके संकोचद्वारा निवृत्ति चाहिये, क्योंकि योगीको स्वाभाविक वृत्ति न होनेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं ॥ २६ ॥ मेरी कथामें श्रद्धा, कर्मोंमें वैराग्य होनेपर और काम्य कर्मोंको दुःखरूप जाननेपर भी उनका परित्याग न हो सके॥२७॥तो प्रीतिपूर्वक श्रद्धायुक्त हो दृढ निश्चयसे मेरा भजन करे,विषयभोग

करता हुआ भी आसक्त न हो;उनकी निंदा करता रहे- अब भजनका प्रकार कहते हैं ॥ २८ ॥ पहले मैंने भक्तियोग तुमसे कहा है, उसी रीतिसे जब निरन्तर मुनि मेरा भजन करे तो उसके हृदयमें मेरा वास होनेसे सब कामना नष्ट हो जायगी ॥ २९ ॥ सबके आत्मारूप जो मुझे देखे तो उसके हृदयकी गांठ छूट जाती है और सब सन्देह मिटकर सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं॥ ३० ॥इसलिये मेरी भक्ति संयुक्त मुझमें चित्त युक्त करनेवाले योगीको ज्ञान और वैराग्य कल्याणके साधन नहीं हैं, किन्तु भक्तियोग ही कल्याणका साधक है ॥ ३१ ॥ जो फल कर्म, तप,

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतोमाऽसकृन्मुनेः ॥ कामा हृदय्या नश्यंति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चाऽस्यकर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसाज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि॥ ३२॥सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा॥स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वांछति ॥ ३३ ॥न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकांतिनो मम ॥ वांछंत्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥

1160

ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और तीर्थयात्रादिकके साधनसे होता है ॥ ३२ ॥ वही फल केवल मेरी भक्ति करनेसे प्राप्त हो जाता है, मेरे भक्त सुखसे मेरा वैकुण्ठधाम पाते हैं, परन्तु कुछ चाहना नहीं करते * ॥ ३३ ॥ हे उद्धव ! जो पुरुष बुद्धिमान् हैं उनकी मुझमें अत्यन्त प्रीति है, वह परमसाधु हैं- यद्यपि मैं उनको अनेक विभव देता हूँ परन्तु तो भी वह कुछ चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ मेरी निरपेक्ष भक्ति ही

---

* शंका–पहिले तो श्रीकृष्णने ज्ञानकी प्रशंसा की फिर कुछ कालोपरान्त ज्ञान,वैराग्य,तप,जप,तीर्थ आदि और जो सुन्दर सुन्दर कर्म हैं उनको भी त्यागकर भक्तिकी प्रशंसा की कि. सबसे भक्ति ही बडी है, यह बडे सन्देहकी बात है, किसको श्रेष्ठ मानें और किसको मध्यम मानें ? भगवान् श्रीकृष्ण तो कभी कुछ कहते हैं. कभी कुछ कहते हैं, ऐसे वचन सुनकर हमको बडा भ्रम होता है।

उत्तर–श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि, थोडे ही दिनोंमें कलियुग आवेगा तो जप, तप, तीर्थादिक सब सुन्दर कर्मोंका नाश करदेगा परन्तु भक्तिका नाश नहीं हो सकता, इसलिये भगवान्ने भक्तिकी प्रशंसा की, कि कलियुगमें भक्तिके सिवाय मनुष्योंसे और कोई काम नहीं होगा ।

परमकल्याणरूप है, उसमें भी मेरी निष्काम भक्ति निष्काम भक्तको ही प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जो मेरे विषे एकान्त भक्त रागद्वेषादिक रहित समचित्त हैं और बुद्धिसे परे ईश्वरको प्राप्त हैं, उनको विधिनिषेधके गुणदोषसे उत्पन्न हुए पुण्य पाप नहीं लगते ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मेरे कहे मार्गोंमें जो पुरुष चलते हैं, वे परमकल्याणरूप मेरे धामको, जिसको परब्रह्म कहते हैं, प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीभा० महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ दोहा—इक्किसवें अध्यायमें, कम भक्ति अरु ज्ञान । सबके गुण अरु दोष मैं, वरणौं सहित विधान ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि,हे उद्धव ! जो पुरुष मेरे बताये मार्ग, भक्ति, ज्ञान, निष्काम कर्मको

न मय्येकांतभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६॥एवमेतान्मयादिष्टाननु तिष्ठंति मे पथः ॥ क्षेमं विंदंति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः॥३७॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० योगत्रयभक्त्यादिनि० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषंतः संसरंति ते ॥ १ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीतेये समानेष्वपि वस्तुषु ॥ द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चाऽनघ ॥ दार्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

छोडकर इन चंचल प्राणोंसे तुच्छ कामनाओंका सेवन करते हैं, वह संसारको ही फिर प्राप्त हैं होते ॥ १ ॥ जिस प्रकार अग्निसे किसीको ताप होना और किसीको न होना संभव नहीं इसी प्रकार इन्हीं कर्मोंसे किसीके गुण और किसीके दोष होना संभव नहीं यह सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि निज अधिकारमें निष्ठा रखनेको गुण और न रखनेको दोष कहते हैं, गुण दोषके विचारका यही निश्चय है॥२॥ 'यह शुद्ध है लीजिये, य अशुद्ध है, न लीजिये' ऐसे सन्देहसे स्वाभविक प्रवृत्तिको निवृत्त करनेके लिये समान वस्तुओंमें भी वेदमें शुद्धि और अशुद्धिका विधान किया है इसी. लिये उनमें गुण दोष माने हैं, इसीसे पुण्य और पाप मानते हैं ॥ ३ ॥ हे निष्पाप ! धर्मका भार

धारण करनेवाले पुरुषोंको मैंने ही मनु आदि रूपसे यह आचार दिखाया है, यह शुद्धि और अशुद्धि धर्मव्यवहार तथा निर्वाहके लिये गुण और दोषरूपसे प्रतिपादन की हैं, धर्मके लिये शुद्धिसे धर्म, अशुद्धिसे अधर्म. व्यवहारमें अशौचादिसे अशुद्ध भी राजव्यवहारमें न्याय करनेको शुद्ध और दूसरे कार्योंमें अशुद्ध हैं, आपदामें निर्वाहमात्र पदार्थ लेनेसे शुद्धि और अधिक लेनेसे अशुद्धि होती है ॥ ४ ॥ यद्यपि यह सब वस्तु समान हैं, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, ब्रह्म आदि जड़ तक सब देहके कारण पंचमहाभूत हैं और आत्मा भी सब एक ही हैं॥५॥ परन्तु तो भी हे उद्धव ! देहविषे समान भी वेदने नाम, रूप, वर्ण, आश्रम सम्पूर्ण इन जीवोंकी स्वार्थसिद्धिके लिये पृथक् पृथक् किये हैं॥ ६॥

भूम्यंब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥५॥ वेदेन नामरूपाणि
विषमाणि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यंत एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥६॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुण
दोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥७॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ॥ कृष्णसारोऽप्यसौवीरकी
कटासंस्कृतेरिणम् ॥८॥ कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा॥यतो निवर्त्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः॥९॥

केवल देहमें ही विभाग नहीं, किन्तु देश काल आदि सम्पूर्ण वस्तुओंमें कर्मके संकोचके किये गुण दोषका विधान किया है, अब शुद्धि अशुद्धिका विषय कहते हैं ॥ ७ ॥ जिस देशमें काला मृग न हो वह देश अशुद्ध है और सत्पात्ररहित देश, मार्जनरहित देश, ऊषर देश यह अशुद्ध हैं और जहां ब्राह्मणोंमें भक्ति न हो वह तो अत्यन्त ही अशुद्ध है. अंग, वंग, कलिंगादिक देश भी अशुद्ध हैं, जहां काले मृग और सत्पात्र हों सो अशुद्ध भी देश शुभ है, देशकी शुद्धि अशुद्धि कहकर काल (समय) की शुद्धि कहते हैं * ॥ ८ ॥ जो काल द्रव्यकी संपत्तिसे कर्मके योग्य है अथवा स्वतःही प्रातः पूर्वाह्ण, मध्याह्नादि कर्मके योग्य है सो काल उस कर्मको शुद्ध है, जो सूतकादि काल कर्मके योग्य नहीं है,

---

* शंका–श्रीकृष्णने कहा था कि, जिस देशमें काला मृग नहीं होता वह देश भ्रष्ट है. यह बडे आश्चर्यकी बात है कि, जिस देशमें गंगा यमुना आदि नदी, प्रयाग पुष्कर आदि तीर्थ, बद्रीनारायण आदि आश्रम हैं वह देश भी काले मृग विना भ्रष्ट है तो इस बातसे यह सिद्ध हुआ कि काला हरिण ही सबोंमें मुख्य ठहरा, यह गंगा और प्रयागादिक तीर्थ किसीको शुद्ध नहीं कर सकते।

उत्तर–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा सो सब सत्य है, परन्तु विना व्याकरण पढेसे अर्थ करनेकी शक्ति नहीं हो सकती, वह पुरुष अर्थका अनर्थ कर देते हैं क्योंकि भागवतमें अकृष्णसार का अर्थ ऐसा—

यद्यपि काल सब एक है परन्तु तो भी यह भेद किया गया है कि,कर्मके अयोग्य काल अशुद्ध है ॥ ९ ॥ अब द्रव्यकी शुद्धि कहते हैं–द्रव्यकी शुद्धि अशुद्धि द्रव्य,वचन,संस्कार,बड़ेपन और छोटेपनसे मानी जाती हैं, द्रव्यको शुद्ध जल करता है, मूत्रादिक अशुद्ध करते हैं. ब्राह्मणका वचन प्रमाण है,वह कहैं यह वस्तु शुद्ध है तो वह शुद्ध है,अशुद्ध कहैं तो अशुद्ध ही है,पुष्पादि पुरुष सूंघ ले तो अशुद्ध हो जाय,प्रोक्षणादिक संस्कारसे शुद्ध हो,काल(दशाहादि)सेनये जलादिकी शुद्धि चातुर्मास्यमें तीन दिनसे शुद्धता.बडेपनसे तालाब,नदी आदिका जल चाण्डालदिकके स्पर्शसे भी जल शुद्ध ही है, छोटेपनसे घटादिका जल चाण्डालादिके स्पर्शसे अशुद्ध हो जाता है ॥ १० ॥ अब शक्ति अशक्तिसे शुद्धाशुद्धि कहते हैं, सूर्यग्रहणमें शक्तिमानको सूतक लगता है, स्नान दानसे शुद्धि होती है और जो अशक्त हैं उन्हें नहीं; बुद्धिसे पुत्रजन्मादि आशौचके

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ॥ संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ॥ अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितंतूनां रसतैजसचर्मणाम् ॥ कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥

दशदिनके भीतर जाननेसे अशुद्धि,उपरान्त शुद्धि,समृद्ध होनेके कारण जीर्ण व मलिन वस्त्र श्रीमन्तको अशुद्ध हैं,दरिद्रको शुद्ध हैं सूतकका अन्न समर्थको तो अशुद्ध है,असमर्थको शुद्ध, यह द्रव्य वचन आदि द्रव्यकी अशुद्धिसे आत्माको पातक लगाते हैं सो देश काल अवस्थाके अनुसार ही तथा निर्भय देशमें. पापी चौरादिके उपद्रवयुक्त देशमें नहीं लगाते, युवा अवस्थामें यही पापदायक और वृद्धावस्था तथा बालकपनमें शुद्ध है ॥११॥ इस प्रकार द्रव्यकी शुद्धि द्रव्योंसे कही वचन शुद्धि एक ही भांति है, द्रव्यकी शुद्धि बहुत प्रकार है सो कहते हैं-अन्न, काष्ठ, हाथीदांत, सूत्र, रस, तैल, घृत आदि सुवर्ण और मार्गकी कीच, कलश, ईंट यह सब काल वायु,अग्नि जलसे यथायोग्य शुद्ध

—व्यासजीने कहा है कि, जिस देशमें काला मृग न हो वह देश भ्रष्ट हो,जो मनुष्य संसारको कुछ भी नहीं मानते इससे कुछ भी सार नहीं है ऐसा जानकर बडे निश्चयसे श्रीकृष्णको ही सार जानते हैं कि: सब झूठा है: श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका आश्रय सत्य है, ऐसे जाननेवाले पुरुष जिस देशमें नहीं हैं वह देश भ्रष्ट है सो श्रीकृष्णने ऐसा कहा था, कुछ ऐसा नहीं,कहा था कि, जिस देशमें काला मृग नहीं हैं वह देश भ्रष्ट है।

हैं, अर्थात् धान्यकी शुद्धि वायुसे, यज्ञपात्र तथा काष्ठकी जलसे, हाथीदांत आदिकी कालसे, तैल घृत सुवर्णादिकी अग्निसे, तन्तुओंकी जलसे चामकी काल और रंगसे, पार्थिव विकार ईंट आदिकी कालसे शुद्धि होती है, कहीं तो यह सब मिलकर शुद्धि करते हैं और कभी अकेले करते हैं, तो भी जो काक और चाण्डालादिक नीच जातिका स्पर्श हुआ हो तो उसके देश अवस्था देखकर विचार करे तब शुद्ध हो॥ १२॥ और भी शुद्धि कहते हैं-पीढ़ा, पात्र, वस्त्र आदिमें जो अपवित्र वस्तु लग जाय तो काष्ठ छिलायेसे शुद्ध हो, द्रव्यकी शुद्धि राख और खटाईसे धोवै तब शुद्ध हो, वस्त्र खारसे गन्ध और लेप छूटनेतक धोवै तब शुद्ध हो, जब दुर्गंध न रहे स्वच्छ हो जाय तब शुद्ध है ॥१३॥ अब कर्त्ताकी शुद्धि कहते हैं-स्नान, ध्यान, तप, अवस्था (बाल्य, कौमारादि), वीर्य, संस्कार, गायत्री उपदेश, कर्म, सन्ध्या, दीक्षादिक कर्मसे ब्राह्मण जब शुद्ध हो तब

अमेध्यलिप्तं यद्येन गंधं लेपं व्यपोहति ॥ भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मंत्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः ॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥

116 2

कर्म करै और आत्माकी शुद्धि मेरे स्मरणसे होती है और प्रकारसे नहीं, ब्राह्मणादिककी देह शुद्धि संस्कारोंसे होती है और प्रकार नहीं, देहकी शुद्धि संस्कारोंसे होती है, सो भी व्यवहारके लिये ही है, उसके निमित्त विहित कर्म करे ॥ १४ ॥ अब मन्त्रकी शुद्धि कहते हैं, श्रेष्ठ गुरुके मुखसे सुने, इसके उपरान्त उस मंत्रका अच्छे प्रकार ज्ञान हो तो मन्त्रकी शुद्धि हो, जो कुछ कर्म भले अथवा बुरे करै सो सब मुझे समर्पण करे, यह कर्मशुद्धि है. देश काल द्रव्य कर्त्ता मन्त्र कर्म इन छः पदार्थोंके शुद्ध होनेसे धर्मकी शुद्धि होती है, यही अशुद्ध हों तो अधर्म होता है ॥ १५ ॥ यह गुण दोषका विभाग यथार्थ नहीं है, कहीं आपदामें प्रतिग्रह लेनेसे दोष गुण हो जाता है, धन होनेसे निषेध होनेके कारण कहीं दोष है और कहीं दोष भी विधिसे गुण हो जाता है, जैसे कुटुम्बका त्यागना दोष है, परन्तु विरक्तको कुटुम्ब त्यागना दोष नहीं, गुण

दोषके कहनेवाले शास्त्र गुण दोषके साधक हैं ॥१६॥ दोष भी कहीं दोष नहीं होता, यहां एक दृष्टान्त कहते हैं, जो सुरापानसे पतित नहीं हैं इन पतितोंको सुरापानसे दोष नहीं होता, क्योंकि वह जातिकर्मसे पहले ही पतित हैं, उनको सुरापान अधिक पातक क्या करेगा ? और जो धर्मशील हैं उन्हें उसका संग भी पातक है, संन्यासीको संग भी बन्धनमें डाल देता है, सोई गृहस्थका गुण है, क्योंकि गृहस्थको संग करना होता है, जैसा कि वेदमें कहा है "ऋतुके दिन स्त्रीसंग करे" परन्तु जो पहले पृथ्वीपर सोया है वह नीचे नहीं गिरता ॥ १७ ॥ इस प्रकार गुण दोषका विचार प्रवृत्तिमार्ग है, निवृत्ति होनेके उपरांत कुछ नहीं, सो कहते हैं, वेदका यही तात्पर्य नहीं है कि, सदा प्रवृत्तिमें ही रहे वेद प्रवृत्ति छुटाकर निवृत्ति बताते हैं इस कारण जिस २ विषयसे निवृत्त हुआ उससे मुक्त हो जाता है, यह धर्म मनुष्योंको अत्यन्त शुभकारी

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥ यतो यतो निवर्त्तेत
विमुच्येत ततस्ततः ॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत् ॥
संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥ कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना
व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ॥ ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य
च ॥२१॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ॥ वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

और शोक, मोह तथा भयको दूर करनेवाला है ॥ १८ ॥ प्रवृत्तिमार्ग अनर्थरूप है सो कहते हैं कि, जब मनुष्योंको विषयमें इन्द्रियोंका अभ्यास हो जाता है तब आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्तिसे काम और कामहीसे कलह उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ कलहसे अति असह्य क्रोध होता है, क्रोधसे तम और अज्ञान होता है, अज्ञानसे पुरुषकी चेतना जो सब देहमें व्याप रही है, शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हे साधो। जब वह चेतनासे रहित हुआ, तब यह जीव असाधुके तुल्य हो मूर्च्छित होता है, मूर्छा होते ही मृतक समान होनेसे इसके पुरुषार्थकी हानि होती है ॥२१॥ जो मृतक समान है उसका स्वरूप कहते हैं, जो विषयोंमें आसक्त होनेके कारण आत्माको तथा औरको भी नहीं जानते, सो वृक्षोंकी जीविकाकी नाईं वृथा जीते हैं, धौंकनीके समान श्वास लेते भी मृतक समान हैं ॥ २२ ॥

यह जो प्रवृत्तिमार्गकी आज्ञा है, सो वेदने यहां कर्मोंके फल रुचि दिखानेके लिये वर्णन किये हैं, जैसे रोगीको औषधि रुचि उपजाकर पिलाते हैं, तात्पर्य आरोग्यतासे है. सदा औषधि सेवनसे नहीं. इसी प्रकार जब तक ज्ञान न हो तब तक कर्म करनेकी वेद आज्ञा करता है, सब काल कर्म करनेसे तात्पर्य नहीं ॥ २३ ॥ मनुष्य स्वभावसे ही पशु आदिमें और इन्द्रिय,बल, वीर्यमें, पुत्रादिकोंमें आसक्त चित्त हो जाता है सो सब अपने आपको अनर्थका हेतु है ॥ २४ ॥ इससे स्वार्थ अर्थात् परमसुखको जो पुरुष नहीं जानते, वह अनेक पापरूप मार्गोंकी उन २ योनियोंमें भ्रमण करते हैं, इसके पीछे जड़ रूप वृक्ष आदि योनियोंमें प्रविष्ट होते हैं, उनको फिर वेद भी धर्मोंमें नहीं प्रवृत्त करे, जिससे अनिष्ट हो उसीमें वेद प्रवृत्त करे तो हितकारी हो ॥ २५ ॥ कर्ममार्गी कैसे फल बताते हैं; सो कहते हैं, इस प्रकार वेदका अभिप्राय जाने विना

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ॥ श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥२३॥ उत्पत्त्येव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ॥ आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥२४॥ न तानविदुषःस्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ॥ कथं युंज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥२५॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ॥ फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥२६॥कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ॥ अग्निमुग्धा धूमतांताः स्वं लोकं न विंदति ते ॥ २७ ॥ न ते मामंग जानंति हृदिस्थं य इदं यतः ॥ उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८॥ ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ॥ हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥

कुबुद्धि ही यह फल बताते हैं, और जो वेदके तात्पर्यको जानते हैं; वह व्यास आदि ऋषि ऐसा नहीं कहते ॥ २६ ॥ कामी, कृपण, लोभी पुष्परूपी स्वर्गादि सुखरूप अवान्तर फलको मुख्य माननेवाले अग्निहोत्रादिसे मुग्ध धूम्र युक्त चित्तवाले अपने सुखदायक लोकको नहीं जानते ॥ २७ ॥ हे उद्धव । जिससे यह जगत प्रगट है और जो जगत् रूप है, ऐसे मुझ परमात्माको वे हृदयमें स्थित नहीं जानते, कर्मरूप शास्त्रोंसे पशुहिंसा कर बकवत् प्राण पुष्ट करते हैं जैसे कुहरेसे कुछ नहीं दीखता, वैसे ही अज्ञानसे उनके नेत्र व्याप्त हैं, क्योंकि जो समीपमें स्थित मुझे नहीं जानते ॥ २८ ॥ इसी कारणसे मेरे वाक्यरूप वेदके गूढ तात्पर्यको विषयी नहीं जानते.मेरा मत यह है कि यदि मांस भक्षणके

लिये हिंसाकी विधिमें वेदकी प्रीति होती तो वेद यज्ञमें ही मांस भक्षणकी विधि नहीं, करता, किन्तु सदाके लिये आज्ञा देता,मनुष्योंकी मांसमें अधिक प्रवृत्ति देख उनको इससे छुडानेके लिये कि, एक संग तो छूट नहीं सकता इस कारण छुडानेका उपाय प्रतिपादन करता है कि,पशुको यज्ञमें हो मारना और स्थलमें नहीं उसमें भी अमुक पशु मारना, इससे वेदका अभिप्राय पशु, हिंसासे निवृत्ति ही करनेका है ॥ २९ ॥ हिंसामें जिनके व्यवहार हैं, अपने विषय भोगोंके लिये पशुओंकी हिंसा करके देवता, पितृ, भूतपतियोंका जो पुरुष पूजन करते हैं वह अतिदुष्ट हैं ॥ ॥३०॥स्वप्नके समान कानोंको सुखदायक परलोकको और इस लोककी कामनाओंका मनमें संकल्प करके अपने धनको सकाम कर्मोंमें व्यय करते है और दोनों लोकसे भ्रष्ट हो जाते हैं, जैसे बनियाँ दुस्तर समुद्रके उल्लंघन करनेमें बहुत धन प्राप्तिकी इच्छा कर अपने सञ्चित किये धनको छोड़ दोनों ओरसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥ और जो रजो गुण, सतो गुण, तमोगुणसे युक्त होकर जैसे इन्द्रादिक देवताओंकी सेवा करते हैं वैसे मेरी सेवा नहीं करते ॥ ३२ ॥ मन अनेक मनोरथ करते हैं कि, "यहां यज्ञसे देवताओंको सन्तुष्टकर स्वर्गमें जाकर विहार करेंगे और फिर यह भोग भोगकर अंतमें यहां आय बड़े गृह तथा बडे कुलमें स्थित होंगे" ॥ ३३ ॥ इस प्रकार फूली बातोंसे चञ्चल चित्त मनुष्य मान अहंकार भरे गृहमें अनम्र रहते हैं, उनको मेरी वार्ता अच्छी नहीं मालूम होती ॥३४॥ इस कारण वेदका तात्पर्य ब्रह्मविषे है, निवृत्ति ही बताते हैं, यद्यपि कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, उपासनामार्ग भिन्न भिन्न कहे हैं परन्तु तो भी तात्पर्य ब्रह्ममें ही है. मन्त्र और मंत्रोंके द्रष्टाऋषि परोक्षरीतिसे ही पदार्थका प्रतिपादन करते हैं, इस ब्रह्म आत्मामें गूढ होनेके कारण प्रकाशित नहीं होता. परोक्षरीतिसे कहनेका कारण यह है

-हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया॥यजंते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन्खलाः॥३०॥स्वप्नोपममसुं लोकमसन्तं-
श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजत्यर्थान्यथा वणिक् ॥३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ॥
उपासत इन्द्रमुख्यान्देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥ तस्यांत इह भूयास्म
महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ॥ मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि
न रोचते ॥ ३४॥ वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे ॥ परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५॥

मुझे परोक्ष प्रिय है. जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं वही इसको जान सकते हैं, दूसरे नहीं. दूसरोंके जाननेमें हित तो दूर रहे, किन्तु कर्मभ्रष्टहोनेकी आपत्ति आ पड़ती है ॥ ३५ ॥ तो कहते हैं कि, जैमिनि आदि ऋषि वेदके ज्ञाता थे, इन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यह है कि, वेदका तत्त्व मुझ विना कोई नहीं जानता, क्योंकि शब्दब्रह्म अति दुर्ज्ञेय है, वही सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकारका है, सूक्ष्मका तो स्वरूप जानना भी अति कठिन है क्योंकि प्रथम तो वह परा नामक प्राणमय है, दूसरा पश्यंती नाम मनोमय है, तीसरा मध्यम नाम इंद्रियमय है, देहमें यह तीनों स्वरूप सूक्ष्मरूपसे रहते हैं इस लिये इनका जानना कठिन है, चौथा वैखरीस्वरूप है जिससे मनुष्य बोलते हैं. समष्टि प्राणमय वेदब्रह्मका देशकालसे परिच्छेद न होनेके कारण उसके पारका अंत नहीं है, जिस प्रकार शब्दसे वेदब्रह्मका जानना कठिन है, उसी प्रकार अर्थसे

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ॥ अनंतपारं गंभीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत ॥३६॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनं
तशक्तिना ॥ भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥३७॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ॥ आकाशाद्घोषवा
न्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छंदोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यंजितस्पर्शस्वरोष्मांतःस्थभू
षिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनंतपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम ॥ ४० ॥

1164

भी यह महागंभीर समुद्रके समान अवगाहन करनेको दुस्साध्य है ॥ ३६ ॥ अनन्तशक्ति व्यापकरूप अन्तर्यामी ब्रह्मसे यह नादवन्त वाणीरूप कमलनालमें तन्तुके समान सब प्राणिमात्रमें प्रतीत होता है, इसी स्वरूपका विद्वान् पुरुष बिचार करते ॥३७॥ जैसे मकरी हृदयसे निकाल मुखद्वारसे जालको प्रगट करती है उसी प्रकार प्राणोपाधि हिरण्यगर्भ प्रभु भगवान् वेदमूर्ति अमृतमय नादवंत स्पर्शादिकोंके कर्ता मन करके हृदयाकाशसे वैखरी नाम वाणीको उपजाते हैं, जो बृहती वा वैखरी नामक वाणी उपजाते हैं फिर आपही संहार करते हैं वह कैसी वाणी है कि जिसके अनेक मार्ग हैं ॥३८॥ हृदयमें प्राप्त अतिसूक्ष्म प्रणवसे प्रगट हुए जो स्पर्श, स्वर, ऊष्मा, अंतस्थसे शोभित ॥ ३९ ॥ अनेक लौकिक भाषाओंसे फैले उत्तरोत्तर चार चार अक्षर जिनमें बढैं ऐसे गायत्री आदि छंदोंसे युक्त पारावार रहित हैं, वह प्राण उसे आप ही प्रगट करके

उपसंहार करते हैं ॥४० ॥ इनमें कितने ही छन्दोंको दिखाते हैं-गायत्री, उष्णिक्,अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अत्यष्टि, अतिजगत् और अतिविराट् इत्यादि छन्द हैं. चार चार अक्षर बढ़ानेसे बनते हैं,जैसे चौबीस २४ अक्षरोंका गायत्री छंद होता है, अट्ठाईस २८ अक्षरका उष्णिक् छंद होता है, बत्तीस ३२ अक्षरका अनुष्टुप् छंद होता है इसी प्रकार चार चार अक्षरोंको अधिक करके छन्दोंका लक्षण जान लेना ॥ ४१ ॥ यह वेदवाणी कर्मकाण्डोंमें विधिवाक्योंसे क्या प्रतिपादन करती है और मन्त्रवाक्योंसे देवताकाण्डमें किसका प्रकाश करती है ज्ञानकाण्डमें यही:वेदवाणी किसका अनुवाद करके विकल्प बताती है, इस प्रकार वेद वाणीके तात्पर्यको मेरे अतिरिक्त जाननेका किसीमें सामर्थ्य नहीं॥४२॥वेदवाणी देवतारूप मेरा ही प्रतिपादन करती हैं और उससे आकाश उत्पन्न हुआ इत्यादि वाक्योंसे विकल्प कथन कर पीछे

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छंदो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट्॥४१॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥४२॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम्॥ एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यांते प्रतिषिध्य प्रसीदति॥४३॥इति श्रीभा० म० एका० गुणदोषव० एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ उद्धव उवाच ॥ कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पंच त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

निराकरण कहते हैं, सो भी मेरा ही स्वरूप है सब वेदका तात्पर्य यही है कि, परमेश्वर परमार्थरूप है,भेद मायामात्र है; इस प्रकार जो ॐकारमें अर्थ है वही सब काण्डोंमें है, जैसे अंकुरका रस शाखा प्रशाखा फल पुष्पादि सबमें आ जाता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते माहापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे एकविंशोऽध्यायः॥२१॥दोहा–बाइसवें अध्यायमें, प्रकृतीपुरुष विचार । तत्त्वोंकी संख्या सकल, अरु अविरोध प्रकार ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन् ! हे विश्वेश्वर ! हे प्रभो ! कितने एक महात्मा तत्त्वोंकी संख्यामें विवाद करते हैं, उन्होंने अपने शास्त्रोंमें तत्त्वोंकी संख्या पृथक् २ की है, आप सब मिलाकर तत्त्वोंकी संख्या अट्ठाईस २८ कहते हैं, यह आपके ही

श्रीमुखसे सुना है ॥१॥ कोई छब्बीस २६ कहता है, कोई सात ७ कहता है,कोई नौ ९ कहता है, कोई छः ६ कहता है,कोई चार कहता है, कोई ग्यारह ११ कहता है, कोई सत्रह १७ कहता है, कोई सोलह १६ कहता है,कोई तेरह १३ कहता है॥ २॥ ऋषीश्वर जिस प्रयोजनके अर्थ इतनी संख्या भिन्नभिन्न कहते हैं सो हे चिरंजीव । यह मुझे समझाकर कहो॥ ३॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्।जब इस प्रकार पूँछा तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव । ब्राह्मण जो कहते हैं सो युक्त है यह तत्त्व सर्वत्र हैं, मेरी मायाको अंगीकार करके कहते हैं, जिस मायामें किसी प्रकारका कहना अशक्य नहीं है ॥ ४ ॥ तुम जैसे कहते हो सो ऐसे नहीं, जो मैं कहता हूँ सो सत्य है, इस प्रकार उन तत्त्वोंके मूल

केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम्॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके
त्रयोदश॥ एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया॥ गायंति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥३॥ श्रीभगवानुवाच॥
युक्तं च संति सर्वत्र भाषंते ब्राह्मणा यथा ॥मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम्॥४॥नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं
वच्मि तत्तथा ॥ एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ॥ प्राप्ते
शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षि
तम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपि दृश्यंते प्रविष्टानीतराणि च ॥ पूर्वस्मिन्वा परस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥
पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ॥ यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥

कारणोंमें जो ब्राह्मणोंका विवाद है वह यथार्थरूपसे देखा जाय तो अपने अपने स्वभावके अनुसार परिणाम होनेवाले मायाके सत्त्वादि गुण ही विवादके कारण हैं ॥५॥ जिन शक्तियोंके क्षोभसे विवादकर्त्ताओंका भेद आश्रय हुआ है, जब शम प्राप्त होनेसे भेद दूर हो तो भेद जानकर पीछे विवाद शान्त हो जाय ॥ ६ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ । तत्त्वोंके परस्पर अनुप्रवेशसे कार्य कारणरूप तत्त्वोंकी संख्या वक्ताकी इच्छानुसार हो सकती है ॥ ७ ॥ अब अनुप्रवेशको कहते हैं, एक ही तत्त्वमें सब तत्त्व कारणमें अथवा कार्यमें प्रविष्ट दीखते हैं,जैसे मृत्तिकामें घट और घटमें मृत्तिका अन्योन्य प्रविष्ट है ॥ ८ ॥ इन तत्त्वोंका कार्य कारणभाव और न्यून आदिक संख्यावादियोंके मध्य कहनेकी इच्छासे जिह्वा जिस

प्रकार प्रवृत्त होती है, वैसी ही सिद्धि कर सकती है, हम इन सबको सम्भव जानते हैं ॥ ९ ॥ जीव ईश्वर जो चैतन्य रूप है, उसके भेद अभेद माननेके कारणको कहता हूँ कि, जो जीव अनादिकालसे अविद्यासे संयुक्त है, इसलिये उसे अपने स्वरूपका ज्ञान स्वयं नहीं हो सकता, उसे ज्ञानदाता सर्वज्ञ ईश्वर पृथक् है, ऐसा जानकर जीव ईश्वरमें भेद माननेवालोंके मतमें चौबीस तत्त्व और पचीसवां जीव तथा छब्बीसवां ईश्वर तत्त्व है ॥ १० ॥ स्वयं संख्याविषे भेदकल्पना व्यर्थ है क्योंकि जीव ईश्वर दोनों चैतन्य होनेसे इनमें कुछ भेद नहीं और ऐसा माननेवाले पचीस तत्त्व कहते हैं, ज्ञान प्रकृतिका गुण है इसीसे प्रकृतिमें गिना है, यह एक पक्ष है ॥ ११ ॥ अहो ! ज्ञान तो जीवकाधर्म है, प्रकृतिका गुण कैसे है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, तीनों गुणोंके समान अवस्था प्रकृति है, गुण प्रकृतिके ही हैं, आत्माके नहीं. सत्त्व, रज, तम गुण उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हैं॥ १२ ॥ सत्त्वमय ज्ञान प्रकृतिका गुण है, कर्म रजोगुणका गुण है, अज्ञान तमोगुणका गुण है और स्वभाव महत्तत्त्वका स्वरूप है, काल ईश्वरका स्वरूप है, इसलिये काल स्वभाव भिन्न तत्त्व नहीं है, मैंने जो अट्ठाईस तत्त्व कहे हैं, उनमें पूर्वोक्त पचीस और तीन गुण यह सब मिलाकर अट्ठाईस होते हैं ॥ १३ ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी यह मैंने नौ तत्त्व कहे हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका यह पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं. वाणी, हाथ, पांव, उपस्थ, गुदा यह पांच कर्मेंद्रिय हैं. हे उद्धव ! ज्ञान और कर्मरूप मन यह ग्यारह ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पांच ज्ञानेंद्रियके विषय हैं. गति, वचन, मल

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ॥ स्वतो न संभवेदन्यस्तत्त्ववदो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥ १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ॥ ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिः कर्माण्यंगोभयं मनः ॥ १५ ॥ शब्दः स्पर्शो रसो गंधो रूपं चेत्यर्थजातयः ॥ गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥

त्याग, ग्रहण, आनंद यह पांच कर्मेंद्रियोंके फल हैं, भिन्न नहीं इससे अट्ठाईसके भीतर हैं, तत्त्व नहीं है ॥ १६ ॥ इस विश्वके आदिमें कार्य कारणरूपिणी प्रकृति सत्त्वादि गुणसे इस विश्वकी उत्पत्ति आदि अवस्था धारण करती है, निर्विकार पुरुष केवल साक्षी हुआ देखता है, इस कारण विकारयुक्त प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है ॥ १७ ॥ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वादि धातु विकारको पाकर पुरुषकी चितवनसे बल पाय महत्तत्त्वादिक परस्पर मिल प्रकृतिके आश्रयसे ब्रह्माण्डरूप कार्यको उत्पन्न करते हैं इससे संघातको प्राप्त होकर इनके उत्पन्न किये देहादिक पदार्थ उन्हींके अन्तर्भूत हो जाते हैं, इससे देहादिक पृथक् तत्त्व नहीं हैं ॥ १८ ॥ किसीके मतमें आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी यह पांच पदार्थ और द्रष्टा जीव आकाशादि पदार्थोंका और जीवका आधार आत्मा, यह सात तत्त्व हैं, इस मतमें प्रकृति, महत्तत्त्व और अहंकार

सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजंत्यंडं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पंच खादयः ॥ ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेंद्रियासवः ॥१९ ॥ षडित्यत्रापि भूतानि पंच षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत्॥२०॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ॥ जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेंद्रियाणि च ॥ पंचपंचैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ॥ भूतेंद्रियाणि पंचैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥

इन कारण तत्त्वोंका आकाशादिमें अन्तर्भाव माना है, इन्हीं सातो देह इन्द्रियादिकी उत्पत्ति मानी है ॥ १९ ॥ जिनके मतमें छः तत्त्व हैं वह पांच तो पंचमहाभूत और छठे परमात्माको मानते हैं, इस मतमें परमात्मा अपनेसे उत्पन्न हुए भूतोंसे जगत्‌को रचकर उसमें प्रविष्ट है इससे सब पदार्थोंका परमात्मामें अंतर्भाव है ॥ २० ॥ जिनके मतमें चार तत्त्व हैं उनमें आत्मा और आत्मासे प्रादुर्भूत वायु, तेज, जल, पृथ्वी यही चार तत्त्व हैं, इन्हींसे सब जगत् उत्पन्न है, सब कार्यका इन्हींमें अंतर्भाव है ॥ २१ ॥ सत्रह तत्त्वके मतमें पञ्चमहाभूत, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन, सत्रहवां आत्मा ॥ २२ ॥ सोलह तत्त्वके मतमें आत्माको ही मन कहा है और तेरहके मतमें

पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन, जीवात्मा और परमात्मा यह तेरह हैं ॥ २३ ॥ ग्यारहके मतमें पचमहाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय, एक आत्मा. नौके पक्षमें पांच महाभूत, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पुरुषसे कहते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार ऋषियोंने तत्त्वोंकी पृथक् पृथक् संख्या कही है.यह सब प्रकृतिसे पुरुषको भिन्न जाननेको हैं, यह सब यथार्थ हैं,क्योंकि विद्वानोंका कहा और न्यायसिद्ध है, विद्वान् क्या नहीं कह सकते ? ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष जिनमें एक जड़ और एक चैतन्य है, यद्यपि यह स्वभावसे ही भिन्न हैं परन्तु तो भी परस्परका त्याग करते उनकी प्रीति नहीं होती इससे भेद नहीं देखा जाता ॥ २६ ॥ हे पंकजलोचन ! आत्मा देहमें

एकादशत्वमात्मासौ महाभूतेंद्रियाणि च ॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वा-
नामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ
यद्यप्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ २६ ॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च
तथात्मनि ॥ एवं मे पुंडरीकाक्ष महांतं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि
जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः
पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥ ममांग माया गुणमय्यनेकधा
विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥

भासता है, देहको ग्रहण किये प्रतीत होता है "मैं हूँ" इस प्रकार दोनोंके अभेद प्रकाशसे देहका आत्मासे भेद नहीं देखा जाता,हे सर्वज्ञ ! मेरे संदेहको युक्तिके वचनोंसे दूर करो ॥ २७ ॥ तुम्हारी कृपासे ही संसारी जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है, तुम्हारी मायासे ही अज्ञान होता है, आपके अतिरिक्त आपकी मायाकी गति कोई नहीं जानता ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, देह और आत्मामें बहुत विलक्षणता है, गुणोंके क्षोभसे होनेवाला यह देह तो विकारी है, आत्मा विकाररहित है ॥ २९ ॥ हे उद्धव ! मेरी गुणमयी मायाने अनेक भांति भेद और भेदके

ज्ञान रचे हैं, यद्यपि इस देहमें अनेक भेदहैं परन्तु तो भी तीन प्रकारके कहे हैं–एक अध्यात्मरूप, एक अधिदैवपरूप,एक अधिभूतरूप॥३०॥ दृष्टि अध्यात्म है और अधिभूत नेत्रगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदैव है, नेत्रोंसे रूप जानना, सो नेत्रोंकी प्रवृत्ति प्रेरणावाले देवता बिना होती नहीं, इससे अधिष्ठात्री देवतासे नेत्रोंकी प्रवृत्ति, इससे रूपज्ञान होता है, इस प्रकार तीनों परस्पर सिद्ध होते हैं, जो सूर्य आकाशविषे आपसे ही सिद्ध है इसलिये आत्मा अध्यात्मादिकोंका कारण है इससे भिन्न है. अपने आप सिद्ध, प्रकाश करके परस्पर प्रकाश करनेवालोंका भी प्रकाशक है, जैसे नेत्रमें तीन प्रकार हैं ऐसे ही त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, वायु अधिदैव, श्रवण अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदैव, जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, वरुण अधिदैव, श्रवण अध्यात्म, गंध अधिभूत, अश्विनीकुमार अधिदैव, चित्त

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रंध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे॥ आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्ध
सिद्धिः॥ एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम्॥ ३१ ॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधान
मूलान्महतः प्रसूतः॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐंद्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मा परिज्ञानमयो विवादो
ह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः॥ व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात्॥३३॥ उद्धव उवाच ॥
त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतः कर्मभिः प्रभो॥ उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णंति विसृजंति च ॥ ३४ ॥

अध्यात्म, जिसके चित्तसे जानिये ऐसा अधिभूत, वासुदेव, अधिदैव मन अध्यात्म, जिसको मन कीजै सो अधिभूत चन्द्रमा,अधिदैव बुद्धि, अध्यात्म जो जानिये, ऐसे ही अधिभूत ब्रह्मा, अधिदैव अहंकार, अध्यात्म अहंकारसे जो कीजिये सो अधिभूत, रुद्र अधिदैव ॥ ३१ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है, सात्त्विक, राजस, तामस. गुणके क्षोभकर्ता काल और प्रकृतिसे मूल महत्तत्त्वसे उत्पन्न हुए विकार हैं, यही अधिदैव अध्यात्म अधिभूतरूपी मोहसे देहादिके विकल्पका कारण है, जब देहादि अहंकार मिट जाय तब आत्माकी प्रतीति हो सकती है ॥ ३२ ॥ आत्माका न जानना इसका रूप है, यह नहीं ऐसा विवाद मेटके अधर्ममें निष्ठा और यह विवाद व्यर्थ ही है परन्तु तो भी स्वरूपभूत मुझसे विमुख जिनकी बुद्धि है उनको निवृत्ति नहीं होती परन्तु विवादसे किये कर्मोंसे ऊंच नीच देहमें जन्म,मरणको प्राप्त होते हैं॥३३॥उद्धवजी बोले

कि, हे प्रभो ! तुमसे जिनकी बुद्धि विमुख है वह अपने किये कर्मोंसे आप ही नीच देहोंको ग्रहण करते हैं. व्यापक आत्माको देहसे और देहमें जाना अकर्त्ताका कर्म और नित्यका जन्म, मरण कैसे संभव हो सकता है ? ॥३४॥ हे गोविन्द ! अजितेन्द्रियोंसे जो जानने योग्य है वह मुझसे कहो, क्योंकि लोकमें बहुधा इसके जाननेवाले नहीं हैं और हैं भी सो मायासे मोहित हैं * ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! कर्ममय मनुष्योंका मन पांच इन्द्रियोंके सहित इस लोकसे और लोकमें जाता है और मनसे भिन्न आत्मा अहंता ममतासे मनके पीछे जाता है,लिंगदेहसे यह सब बन सकता है ॥ ३६ ॥ कर्मोंके अधीन मन इस लोक और परलोकके विषे ध्यान करता इन विषयोंमें प्रगट होता है और पहले विषयोंमें लीन हो जाता है,इसके उपरान्त उसको पहले पिछलेका स्मरण जाता रहता है ॥ ३७ ॥ कर्मोंके द्वारा दूसरे देहमें अत्यन्त अभिनिवेश होनेपर वह देवतादिक देह हो तो हर्षसे, अधम हो तो शोकके भयसे जीवको प्रथम देहका विस्मरण होना और उस देहका अहंकार नष्ट होना यही आत्माका मरण है, कुछ देहके समान उसका मरण नहीं होता॥३८॥हे दानी!मनका दूसरे देहके साथ सम्बन्ध होनेपर उसमें अत्यन्त अहंकार प्रादुर्भूत होता है,मनके अध्याससे आत्मामें देहका ममत्व होता है, यही आत्माका जन्म है ॥ ३९ ॥

तन्ममाख्याहि गोविंद दुर्विभाव्यमनात्मभिः ॥ न ह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः संति वंचिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानु-
वाच ॥ मनः कर्ममयं नृणामिंद्रियैः पंचभिर्युतम् ॥ लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥ ध्यायन्मनो
ऽनु विषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ ॥ उद्यत्सीदत्कर्मतंत्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं
यत्स्मरेत्पुनः ॥ जंतोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यंतविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥ विषय
स्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथाः ॥ ३९ ॥

---

* शंका-श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि,पृथ्वीमें विद्वान् नहीं हैं,एक विद्वान् वे हैं जो व्याकरण आदि शास्त्रको पढते हैं,ऐसे विद्वान् तो पृथ्वीपर बहुत हैं परन्तु उद्धव जिनको विद्वान् कहें वह विद्वान कौन हैं? उत्तर-शास्त्र पढनेवालेको विद्वान् योगीश्वर लोग नहीं कहते, विद्वान् उसका नाम है,जो पुरुष मोक्ष विद्याको जानता हो. मोक्ष विद्या कैसी है कि,जिस मोक्षविद्याकी प्राप्तिके लिये बडे बडे चतुर योगीजन अनेक उपाय कर करके हार गये, परन्तु मोक्षविद्या प्राप्त नहीं हुई और जो योगी पुरुषको हो भी गई तो बडी कठिनतासे, ऐसी विद्या जाननेवाले विद्वान् पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये उद्धवजीने कहा, शास्त्र पढानेवाले विद्वानोंके लिये नहीं कहा।

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ॥ तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥ इंद्रियायनसृष्ट्येदं-
त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ॥ बहिरंतर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥ ४१ ॥ नित्यदा ह्यंग भूतानि भवंति न भवंति च ॥
कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥ यथाऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ॥ तथैव सर्वभूतानां
वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥

जैसे एक स्वप्न देखनेके उपरान्त दूसरा स्वप्न होता है तथा एक मनोरथके उपरान्त दूसरा होता है तो पहला मनोरथ और स्वप्न विस्मृत हो जाता है इसी प्रकार आत्मा मनके अभ्याससे अपने आपको नवीन उत्पन्न मानता है. इस भांतिकी दशा होनेसे मनके अभ्यासके कारण एक देहका अभिमान नष्ट होनेपर दूसरे देहका तीव्र अभिमान होनेसे यह अपने पूर्वजन्मको नहीं जानता ॥ ४० ॥ इंद्रियोंका आश्रय जो मन और देहके अभिनिवेशसे उत्पत्तिद्वारा आत्मामें उत्तम, मध्यम, नीचता मिथ्या होनेपर भी प्रकाशित होते हैं. उन्हींके द्वारा आत्मा बाह्यविषयोंको और अन्तरमें सुखादिकोंको देखता है. जैसे जीव स्वप्नमें झूठे बहुत देहोंका कर्ता देखता बहुत रूप भासै है अथवा जैसे दुष्ट पुत्रका पिता पुत्रके प्रेमसे पुत्रके शत्रु मित्रोंको अपना शत्रु मित्र मान लेता है, इसी प्रकार आत्मा मनके अभिनिवेशसे देहको अपना जानता है ॥ ४१ ॥ जिसकी तीव्र गति जाननेमें नहीं आती, ऐसे कालके लिये यह शरीर क्षणक्षणमें उत्पन्न होते और मरते हैं परन्तु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी इस जन्म मरणको नहीं जानते ॥ ४२ ॥ नित्य जन्म मरण होता है. यद्यपि इसका प्रमाण कहीं देखनेमें नहीं आता है परन्तु तो भी अनुमानसे जन्म बताते हैं, जैसे ज्योति पहले कोमल होती है, फिर कुछेक अधिक होती है, इसके उपरांत अतिक्षीण हो जाती है, जैसे वृक्षका फल पहले कच्चा हुआ, फिर कुछेक पीला पडा, इसके उपरांत पक्क गया, जिस प्रकार क्रमसे भिन्न अवस्था कालसे होती है पर जानी नहीं जाती. ऐसे ही इसी अनुमानसे शरीरको भी कालसे नित्य वय अवस्थादिक होती है, परन्तु जानी नहीं जाती है. प्रथम अवस्थाका त्याग दूसरीका ग्रहण यही जन्म मरण नित्य होता है, यही जगत् अवस्थाका भेदवाला है, इसीसे क्षण२में उत्पत्ति और नाशको प्राप्त होता है. अवस्थाके भेदवालोंकी यही दशा है ॥ ४३ ॥

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥ मा
स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ॥ म्रियते वाऽमरो भ्रांत्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥४५॥ निषेकगर्भजन्मानि
बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता मनोरथमयीर्हान्यस्योचावचास्तनूः ॥
गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥४७॥ आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भवाप्ययवस्तूनामभि
ज्ञो द्वयलक्षणः ॥४८॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ॥ तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥४९॥

यहां तर्क करते हैं कि, नित्य अवस्थाभेदसे जन्म मरण होनेवालेको ऐसा ज्ञान क्यों होता है ? कि यही देह है, सो यहां दृष्टांत दिखाकर कहते हैं कि, जातियोंके सादृश्यसे यह वही दोष है ऐसा ज्ञान होता है, जिस प्रकार जल क्षणक्षणमें बदलता है, परन्तु नया जल आनेपर भी उन्हें वही जल है यह भ्रांति होती है, इसी प्रकार शरीर क्षणक्षणमें परिवर्तित होता है परन्तु यह वही शरीर है ऐसी वाणी अज्ञानी पुरुष भ्रांतिसे कहा करते हैं ॥ ४४ ॥ अहो ! बडा आश्चर्य है, जिसको देहाभिमान है उसको कर्म जन्म मरण सब है, औरोंको नहीं सो कैसे सम्भव हो सकता है ? तो उत्तरमें कहते हैं कि, वस्तुसे देहाध्यासवत्का भी जन्म मरण नहीं अध्यासवत् पुरुष अपने कर्म बीजसे न उत्पन्न होता न जन्म लेता है, भ्रांतिसे अजन्मा होनेपर भी जन्मतासा और होनेपर भी मरतासा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ अब देहकी अवस्थानको कहते हैं, देहका प्रथम तो उदरमें प्रवेश और फिर गर्भवास होता है, पीछे जन्म फिर बाल्य, कौमार, यौवन पैंतालीस वर्षसे पीछे साठ वर्षतक मध्यम वय, उपरांत जरा, पीछे मृत्यु यह तो देहकी अवस्था है ॥ ४६ ॥ यह मनोरथमयी अवस्था ऊँच नीच देहको हैं. सत, रज, तम गुणके संगसे आपको ज्ञान लेते हैं, इनमें कोई एक ईश्वरके अनुग्रहसे भक्त इन अवस्थाओंको बहुत विवेक ज्ञानसे छोड़ देते हैं ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि, देहके जन्म मरणमें तो वह मूर्च्छित रहता है, इसे इतना ज्ञान कैसे हो सके ? तो सुनो, पिता मारता है, उसकी क्रिया करते हैं तब देहका नाश देखते हैं, पुत्रजन्म होता है तब जातकर्म करते हैं, तहां देहका जन्म देखते हैं इस अनुमानसे अपने देहका जन्म मरण जानते हैं, परन्तु जन्म मरण खाली देहको है, द्रष्टाको जन्म मरण नहीं होते ॥ ४८ ॥ जैसे धानादिके बीजसे जन्मका और पकजानेसे मरणका जाननेवाला जो द्रष्टा है, वह वृक्ष और फलसे भिन्न है इसी प्रकार देहके जन्म मरण जाननेवाला द्रष्टा

प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान्रजसाऽसुरमानुषान् ॥
तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः॥५१॥नृत्यतो गायतः पश्यन्यथैवानुकरोति तान् ॥
एवं बुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथांभसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन
दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥ ५३ ॥ यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः॥
॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥

देहसे पृथक् है ॥ ४९ ॥ इस भांति शरीरादिसे आत्माका यथार्थ विचार करना चाहिये. यदि यह विचार न किया जाय तो विषयमोहमें गिरनेके कारण यह मूढ प्राणी संसारमें गिरता है ॥ ५० ॥ गुणके भेदसे त्रिविध संसार कहते हैं, तहां एक एकके दो दो भेद हैं सो कहते हैं कि, सत्त्वगुणके संगसे ऋषि देवता होते हैं,रजोगुणसे असुर और मनुष्य होते हैं, तमोगुणसे भूत, पशु, पक्षी इत्यादि सब उत्पन्न होते हैं सो वह अपने कर्मोंसे भ्रमण करते हैं, उन ही उन योनियोंमें पड़े हैं ॥ ५१ ॥ अहो ! आत्मा तो करता नहीं तो कर्मोंसे क्यों भ्रमण करता है ! इसपर कहते हैं कि, जैसे नाचते और गाते पुरुषको देखकर यह पुरुष उनमें स्थित गाने और तालको अपने मनमें अनुवर्तन करता है इसी प्रकार बुद्धि और गुणोंके अवलोकनसे गुणोंकी सामर्थ्यसे अकर्ता पुरुष उन्हें अपने आपमें मान लेता है॥५२॥ जैसे जलमें तीरके वृक्ष दौडते से दीखते हैं, जैसे दृष्टिके भ्रमसे पृथ्वी भी भ्रमतीसी दिखाई देती है,तो यह धर्म वृक्षमें भूमिमें नहीं, यह अपने दोषसे दीखते हैं इसी प्रकार दृश्यका धर्म द्रष्टामें स्फुरण होता है और आनन्दादि आत्माके लक्षण होनेपर भी विषयोंके गुणसे प्रतीत होते हैं ॥५३॥ यदि कोई कहे कि,आत्मा भोग करता है सो भी मिथ्या है, जैसे मनोरथकी बुद्धि मिथ्या है और स्वप्नमें देखी बुद्धि सब मिथ्या है, इसी प्रकार आत्मामें प्रतीत होता हुआ विषयोंका अनुभवरूप संसार भी असत्य है ॥५४॥तो निवृत्तिके उपायका प्रयोजन क्या है ? इसपर कहते हैं कि,यद्यपि स्वप्न असत्य है परन्तु तो भी उन विषयोंके ध्यान करनेवाले पुरुषकी उन अवस्थामें स्वप्नके दुःख नहीं जाते, इसी प्रकार संसारके मिथ्या होनेपर ही विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके जन्म मरण नहीं जाते ॥ ५५ ॥

हे उद्धव । इसी लिये तुम इन दुष्ट इंद्रियोंसे विषय भोग मत करो, आत्माके ज्ञान विना यह संसारका भ्रम हुआ है, ऐसा जानो ॥५६॥ कोई निन्दा करो, कोई अपमान करो, कोई उपहास करो, कोई वंचना करो, कोई ताडना करो, कोई रोक रक्खो, वृत्ति छीन लो ॥५७॥ कोई मुत्र डालो, जूँठन डालो, ब्रह्मनिष्ठा बिगाडै परन्तु अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष इतने कष्ट सहै और आत्मासे आत्माका उद्धार करै, क्रोधित होकर अपने धर्मको न खोवे ॥ ५८ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ। जैसे तुम्हारा वचन हम अच्छी रीतिसे समझ सकैं उसी प्रकार समझाकर कहो कि, नीच अधम पुरुष इस प्रकार पांडित्य करै तो उसका सहन करना महाकठिन है ॥ ५९ ॥ हे विश्वके आत्मरूप ! जो

तस्मादुद्धव मा भुंक्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः॥आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वै कल्पितं भ्रमम्॥५६॥क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः
प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा॥ ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः॥५७॥निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकंपितः॥
श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥५८॥उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर ॥ सुदुःसहमिमं
मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥५९॥विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥ ऋते त्वद्धर्मनिरताञ्छांतांस्ते चरणाल
यान् ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भा० म० एका० तत्त्वसंख्याविरोधादिव० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ स
एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ॥ दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥

तुम्हारे चरणके आश्रय हैं, तुम्हारे धर्ममें तत्पर और शांत हैं उनको छोडकर अति पंडितको भी ऐसे अपराधोंका सहन होना अतिकठिन है ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि स्वभाव बडा बली होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ दोहा-तेइसवें अध्यायमें, सहन सीख अपमान । बुद्धिहिसे मनको करै, निग्रह मुनि विद्वान ॥ १ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम राजा परीक्षित् ! इस प्रकार भक्तोंमें मुख्य यादवोंमें श्रेष्ठ उद्धवजीके पूछनेपर मुकुन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उत्तर देने लगे, जिन भगवान्के चरित्र श्रवण करनेमें अत्यन्त सुखकारी हैं॥१॥श्रीभगवान् बोले कि, हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव ! इस लोकमें वह साधु

नहीं है जो दुष्टवचनसे खेदयुक्त मनको समाधान न कर सके॥ २ ॥ मर्मस्थानमें लगे बाणोंसे विद्ध पुरुष ऐसा ताप नहीं पाते, जैसे मर्ममें लगे दुष्टवचनसे व्यथा पाते हैं ॥ ३ ॥ तथापि मेरे कहे उपाय करै, उपाय कहता हूँ- हे उद्धव ! इस विषयमें एक अतिपवित्र इतिहास है सो मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, भले प्रकार सावधान होकर सुनो॥ ४॥ कोई एक भिक्षुक दुर्जनसे पीडित हो धैर्य धारण कर अपने प्रारब्धकर्मोंका भोग मान कर यह कहने लगा ॥ ५ ॥ परन्तु वह भिक्षुक पहिले बड़ा धनवान् और सज्ञान था, अत्यन्त दुःखसे जो धन प्राप्त किया था उसके विनाश हो जानेसे वह अत्यन्त पीडित और संतप्त हो गया, फिर चित्तमें धैर्य बढाने और वैराग्य आनेसे संन्यास धारण कर भिक्षावृत्तिसे अपना

न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः ॥ यथा तुदंति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३॥ कथयंति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ॥
तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ॥ स्मरता
धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५॥ अवंतिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ॥ वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी
लुब्धोऽतिकोपनः ॥६॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ॥ शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः
॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यते पुत्रबांधवाः दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन्प्रियम् ॥ ८ ॥

1170

निर्वाह करने लगा, परन्तु नगरनिवासी उसको पिछले वैरभावसे अनेक प्रकारके दुःख देने लगे, तब उस भिक्षुकने एक कथा कही सो उसके चरित्र हम आपके आगे कहते हैं, अवन्तिका (उज्जैन) नगरमें एक ब्राह्मण लक्ष्मीसे अतिसंपन्न कामी, लोभी, महाक्रोधी और कदर्य था. कदर्यका लक्षण स्मृतिमें कहा है-आत्मा, धर्मकार्य,पुत्र,स्त्री,देवता, अतिथि और सेवकोंको दुःख दे सो कदर्य है*॥६॥ बांधव और अतिथिको वचनसे भी न पूजै, धर्म, काम करके शून्य देहरूप घरमें भोगोंसे कभी आत्माकी पूजा नहीं की ॥ ७ ॥ ऐसे दुःशील कदर्यके पुत्र, बांधव, स्त्री, बेटी, सेवक सब द्रोह करैं, कोई उसका प्रिय न करै ॥ ८ ॥

---

* कदर्यका लक्षण स्मृतिमें कहा है आत्माका धर्म कार्य न करना पुत्र स्त्री देवता अतिथि और सेवकोंको दुःख दे सो कदर्य है ॥

फिर वह इस प्रकार दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुआ, धर्म, अर्थ, कामसे हीन केवल भूतके द्रव्यकी रक्षा करता रहे, ऐसे पुरुषपर नित्यकर्तव्य पंच महायज्ञोंके अंशके भागी देवता अत्यन्त क्रोधित हुए. देवताओंके तिरस्कार करनेसे पुण्यका विस्तार सब क्षीण हो गया तब अनेक परिश्रमसे युक्त खेती आदिसे कमाया द्रव्यभी नष्ट हो गया ॥ ९ ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! कुछेक द्रव्य उसके घरका बांधव ले गये, कितना ही द्रव्य चोर ले गये, कितना एक द्रव्य गृहदाहसे जाता रहा, कितना ही जहां गाड दिया था, वहांसे गया, कुछ द्रव्य

तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पंच भागिनः ॥९॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कंधस्य भूरिद ॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥ ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिद्दस्यव उद्धव ॥ दैवतः कालतः किंचिद्ब्रह्मबंधोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ॥ खिद्यतो बाष्पकंठस्य निर्वेदः सुमहानभूत ॥ १३ ॥ स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥

अधर्मी ब्राह्मण और मनुष्य ले गये, कितना ही द्रव्य राजद्वारमें गया॥ ११॥ इस प्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे धर्म, अर्थ, कामसे रहित हुआ, स्वजन कुटुम्बी इसका अनादर करने लगे, तब यह अपार चिंताको प्राप्त हुआ॥ १२ ॥ द्रव्य जानेसे वह ब्राह्मण अतिचिन्ता करके उस धनका बहुत ध्यान करता सन्तप्त हुआ और गद्गद कण्ठ होकर इसको बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ * ॥ १३ ॥ तब कहने लगा कि, अहो! यह देखो बड़ा ही कष्ट

---

* शंका–महादुष्ट, नीचबुद्धि, अत्यन्त कृपण, भगवान्में प्रीति नहीं. ऐसा दुष्ट ब्राह्मण मुनियों करके बडे दुःखसे प्राप्त होने योग्य ज्ञानको क्यों प्राप्त हुआ? यह भ्रम है ॥
उत्तर–धनका नाश हो गया तो ब्राह्मण दुःखी होकर मनमें भ्रमता भ्रमता सन्ध्या हो गई तो क्या देखता है कि, एक गाय कीचमें फसी हुई पडी है और दलदलसे किसी प्रकार निकल नहीं सकती. उस गायको देखकर ब्राह्मणको बडी दया आई और यह विचार किया कि, किसी प्रकार यह इस दलदलसे बाहर निकले, उसने हाय हाय शब्द करके बडे परिश्रमसे उस गायको दलदलसे बाहर खैंच खांचकर निकाल लिया, गाय प्रसन्न हो ब्राह्मणको आशीर्वाद देती हुई धीरे धीरे चली गई, गायकी कृपासे बहुत शीघ्र ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त हो गया, वह ज्ञान मुनिलोगोंको भी महा कठिनतासे प्राप्त होता, गृहस्थीसे जो कुछ कर्म ब्राह्मणने किये थे उन कर्मोंसे धनका नाश हुआ, अनेक विघ्न हुए परन्तु ज्ञानको पाकर आनन्द हो गया इस उपायसे दुष्ट ब्राह्मणको ज्ञान हुआ था।

है, इतना बडा मेरा द्रव्यका परिश्रम वृथा ही गया, जो यह आत्मा संतप्त किया न तो धर्मार्थ ही हुआ न कामार्थ ही सब वृथा ही गया॥ १४॥
बहुधा जो कदर्य है उनको द्रव्यका सुख कभी नहीं होता, जीवित इस लोकमें आपको सन्ताप होता है और मरनेपर नरक मिलता है ॥ १५ ।
जो यशस्वी हैं, उनका यश अतिनिर्मल है और गुणियोंका गुण है सो बडाईके योग्य है, परन्तु जो थोड़ा भी लोभ होय तो सब गुण यशको
दूर करै, जैसे उत्तम रूपको थोड़ा भी कोढ़ दूर कर देता है ॥ १६ ॥ इसलिये द्रव्य सब दुःखरूप है, प्रथम तो साधनमें कष्ट है, इसके उपरांत
सिद्ध होनेपर वह द्रव्य बढ़ाना चाहै उसमें भी कष्ट है, फिर उसकी रक्षा करनी चाहिये, भोगमें व्यय होता है, नाश होता है, इस प्रकार आदिसे
अन्ततक श्रम, भय, चिन्ता, भ्रम मनुष्योंको रहते हैं, इस कारण कभी अर्थ सुखकारी नहीं है॥ १७ ॥ और भी दोष कहते हैं, चोरी, हिंसा,

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ॥ इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥१५॥ यशो यशस्विनां शुद्धं-
श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान्हंति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्॥१६॥ अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे-
रक्षणे व्यये॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम्॥१७॥स्तेयं हिंसाऽनृतं दंभः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥ एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥ तस्मादनर्थमर्थाख्यं
श्रेयोर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥१९॥ भिद्यंते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः
कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यजंत्याशुस्पृधो घ्नंति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥

दंभ, झूठ, काम, क्रोध धनके साधनमें हैं। गर्व, अहंकार, भेद, वैर, अविश्वास, अश्रद्धा ये छः अनर्थ पाये पीछे होते हैं और तीन व्यसन
स्त्री, मद्य, जुआ इसी धनसे होते हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार पन्द्रह अनर्थ अर्थसे (द्रव्यसे) होते हैं. सुनो उद्धवजी ! इसका नाम तो अर्थ है पर
अनर्थरूप है, इस लिये जो पुरुष अपना भला चाहै तो वह दूरसे ही अर्थका त्याग करै ॥ १९ ॥ दोष यह है कि, माता, पिता, भ्राता, स्त्री,
सम्बन्धी जो स्नेहके कारण एक चित्त होकर मिले रहते हैं वह भी धनके लिये पृथक् हो जाते हैं और बीस कौडीके ऊपर तत्काल वैरी हो जाते
हैं ॥ २० ॥ यह प्राणी थोडे ही द्रव्यके लिये क्षोभको प्राप्त हो महाक्रोध कर श्रद्धासे एक साथ सुहृदता और स्नेह छोड़कर परस्पर मारने

लगते ॥ २१ ॥ इस लोकमें जो अनर्थ उठे हैं और जो परलोकमें भी अनर्थ होंगे सो कहते हैं, देवताओंके प्रार्थनीय मनुष्यजन्मको पाकर उसमें भी उत्तम ब्राह्मणजन्मको पाय उस जन्मका अनादर कर अपना स्वार्थ खो देते हैं, वह अधमगतिको प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥ इसलिये स्वर्ग और मोक्षका द्वार यह देह पाय इस अनर्थके घर द्रव्यमें कौन मरणधर्मा पुरुष आसक्त हो ? ॥ २३ ॥ देवता, ऋषि, पितर, भूत, जाति, बन्धु और जो अंशके भागी हैं उनको और अपने आत्माको जो न दे सो अधम गतिमें जाय इससे वे भूतकी नाईं द्रव्यके रक्षक हैं ॥२४॥ अब अपनी अवस्था कहता हूँ, मैं व्यर्थ अर्थकी क्रियासे सदा असावधान रहा, मेरा द्रव्य व्यर्थ ही गया और वयः क्रम अवस्था भी व्यर्थ

लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नंति यांत्यशुभां गतिम् ॥२२॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ॥ द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बंधूंश्च भागिनः ॥ असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयाऽर्थेहया चित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ॥ कुशलायेन सिध्यंति जरठः किं नु साधये ॥२५॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयाऽर्थेहयाऽसकृत् ॥ कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥ किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ॥ मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ॥ येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

गई. जो विवेकी हैं वह अर्थसे मोक्षके अधिकारी होते हैं. और मेरा बल भी व्यर्थ गया अब मैं वृद्ध हो गया, हाय ! मैं कुछ भी न कर सका ॥२५॥ यह अर्थकी चेष्टा व्यर्थ होनेपर भी जानबूझकर इसकी तृष्णासे ज्ञानी पुरुष भी क्यों क्लेश पाते हैं, इससे विदित होता है कि, किसीकी मायासे यह प्राणी अत्यन्त मोहित हो रहे हैं ॥२६॥ यद्यपि धनसे संसारी भोगोंको भोगते हैं परन्तु जब इस प्राणीके निकट प्रतिदिन मृत्यु चली आती है तब इसे धनसे, धनके देनेवालेसे, सुखसे, सुखके देनेवालोंसे तथा बारबार जन्मदाता कर्मोंसे क्या सिद्ध है ? ॥ २७ ॥ मेरे ऊपर

निश्चय ही सर्वदेवरूप भगवान् सन्तुष्ट हुए जिससे मैं इस दशाको प्राप्त हुआ, मुझे वैराग्य उपजा, वैराग्य संसारसमुद्रसे तरनेको नौका है ॥ २८ ॥ अब मेरा जितना समय शेष रहा है, उस कालसे तपस्या करके मैं अपने अंगोंको क्षीण करूंगा, आत्मासे ही सन्तोष मान समस्त धर्मोंमें सावधान रहूँगा ॥ २९ ॥ मुझपर त्रिलोकीके ईश्वर तथा देवता अनुग्रह करते हैं. कदाचित् कहो कि, देवताओंके अनुग्रह करनेसे वृद्ध हुआ, सो समय थोड़ा रह गया, अब क्या कर सकूंगा ? तो कहते हैं कि, खट्वांग राजाने एक मुहूर्त्तमें ब्रह्मलोकको साध लिया था ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जब अवन्ती नगरीका ब्राह्मण इस प्रकार मनमें निश्चय कर हृदयकी गाँठ अहन्ता ममताकी खोल

सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः ॥ अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्र मामनु
मोदेरन्देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य मनसा
ह्यावंत्यो द्विजसत्तमः ॥ उन्मुच्य हृदयग्रंथीन्छांतो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥ स चचार महीमेतां संयतात्मेंद्रियानिलः ॥
भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन्भद्र
बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमंडलुम् ॥ पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कंथां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥
प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयंति च पापिष्ठाः
ष्ठीवंत्यस्य च मूर्धनि ॥ यतवाचं वाचयंति ताडयंति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥

शान्तमन हो संन्यासी हो गया ॥ ३१ ॥ इन्द्रिय, वायु, मनको निश्चल करके पृथ्वीपर फिरने लगा, इसके उपरान्त भिक्षाके लिये एक नगरमें आया ॥ ३२ ॥ वहां भी कहीं आसक्त नहीं और न किसीको अपनी श्रेष्ठता दिखावै, विचरता रहै. कल्याणरूप वह ब्राह्मण अतिवृद्ध भिक्षुक अवधूतवेषसे रहै, इसको देखकर दुष्ट जन अनेक प्रकारके तिरस्कार दुःख देने लगे ॥ ३३ ॥ अब सात श्लोकोंमें इसका उत्तर कहते हैं, किसीने तो उसका त्रिदंड ले लिया और कई आसन पीढ़ा ले लेकर चले गये ॥ ३४ ॥ हे महापुरुष ! पहले इस प्रकार दिखाकर मुनिको देखकर फिर ले लिया और जब भिक्षा माँग अन्न ले नदीके तीर भोजन करै ॥ ३५ ॥ तब पापी इसके माथेपर मूत्र करदें. फिर वह जो मौन रहै तो बुलावें,

यदि न बोले तो मारें, कोई इस प्रकार डरावें कि, यह चोर है, ऐसे वचन कहैं ॥३६॥ कितने एक यह कहने लगे कि इसे बांधो ऐसे कहकर उसको रस्सियोंसे बांधते थे, कितने एक कहने लगे कि मारो मारो क्योंकि यह धर्मका ढोंग बनानेवाला और लोगोंको ठगनेवाला है, इस प्रकार तिरस्कार करके उसकी निंदा करने लगे. यह पाखण्डी है, धूर्त्त है, अब द्रव्य तो सब गया स्वजन संबंधियोंने सबने छोड़ दिया अब यह वृत्ति ग्रहण की है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अहो! देखो यह बड़ा ढीठ और अतिबली है, क्योंकि पर्वतके समान धैर्यवान् मौनसे बकध्यानी होकर अपना स्वार्थ साध रहा है, इसका दृढ़ निश्चय है ॥३९॥ इस प्रकार एक तो हँसैं, कोई उसके ऊपर अधोवायु छोड़े, कोई बांधे कोई रोक रक्खैं ॥४०॥ इस

तर्जयंत्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ॥ बध्नंति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतां बध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपंत्येके ऽवजानंत एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः॥३८॥अहो एष महासारो धृतिमान्गिरिराडिव ॥ मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥३९॥ इत्येके विहसंत्येनमेके दुर्वातयंति च ॥ तं बबंधुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम्॥४०॥एवं स भौतिकं दुःखं दैहिकं दैविकं च यत् ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत॥४१॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम्॥४२ ॥द्विज उवाच॥ नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं कारणमामनंति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥४३॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि॥शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवंति॥४४॥

भांति बहुत दुःख दुर्जनोंने दिया, देहका दुःख ज्वरादिकोंका किया, दैवके दुःख शीत, उष्ण " यह सब अपना प्रारब्ध भोग है " दुःख पाकर उस ब्राह्मणने ऐसे समझ लिया ॥४१॥ यद्यपि यह ब्राह्मण नराधम दुर्जनोंसे तिरस्कृत हुआ परन्तु तो भी सात्त्विक धैर्यसे अपने धर्ममें रहकर इस कथाको गाने लगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण बोला कि, यह जन, देवता, आत्मा, ग्रह और काल कोई भी मेरे सुख दुःखका कारण नहीं है, मन ही केवल कारण है, जो यह संसारचक्रको फिराता है ॥ ४३ ॥ सोई कारण कहते हैं, बलवान् मन ही गुणकी वृत्ति सृजता है, फिर उन

गुणोंसे ही सात्त्विक, राजस, तामस भिन्न २ कर्म होते हैं और उन्हीं कर्मोंसे सात्त्विक, राजस, तामस देवता मनुष्य पक्षियोंकी जाति होती है ॥ ४४ ॥ अब कहते हैं कि, मनका ही संसार होता है आत्माका संसार कैसे हो सक्ता है ? तो कहते हैं कि, अविद्या और मनके अभ्याससे आत्माका संसार है, आपसे संसार नहीं, इससे वासना सहित मन है उसके संग नियन्ता होकर रहते है तथापि आत्माके संग नहीं कर्म भी नहीं, क्योंकि वह ज्ञानरूप है, जीवका सखा है और यह जो जीव है सो मनके धर्मोंको ग्रहण कर अहंकार और गुणके संगसे विषयोंका सेवन करनेसे बँधा है ॥ ४५ ॥ मनका निग्रह किये विना सब व्यर्थ हैं सो कहते हैं–दान, स्वधर्म, नेम, आचार, विद्याध्ययन कर्म, उत्तम व्रत आदि यह सब एक मनके निग्रह करनेके उपाय हैं इससे निश्चय करके परमयोग मनका निग्रह ही है ॥ ४६ ॥ जिसका मन स्थिर और शांत

अनीहआत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान्जुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ
॥४५॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणांताः परो हि योगो मनसः
समाधिः ॥ ४६ ॥ समाहितं यस्य मनः प्रशांतं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दा
नादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवन्स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ॥ भीष्मो हि देवः
सहसः सहीयान्युंज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ॥ कुर्वंत्य
सद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः ॥ ४९ ॥

है उसे दान आदि करनेसे क्या प्रयोजन है ? मन तो समाधिमें स्थिर हुआ है और जिसका मन विक्षिप्त है तथा आलस्ययुक्त है सो उसे दानादिकोंसे और जपसे क्या होगा ? ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि, दान आदि धर्मसे और इंद्रियोंका तो जय होगा, वहां उनको जय तो नहीं होता ऐसा कहते हैं और जो देवता, इंद्रिय यह सब मनके वश हैं कुछ मन उनके वशमें नहीं है, यह मन आप ही देव है, महाबलिष्ठ है, योगीजनोंको भी महाभयंकर है, इसको जो पुरुष अपने वशमें कर लेते हैं, वह देवको भी देख लेते हैं ॥ ४८ ॥ अब मनरूप शत्रु दुर्जय है इसका वेग नहीं सहा जाता है, सबको पीड़ा करता है, सबको जीते विना और मनुष्योंसे युद्ध करता है, इसमें और भी अनुकूल प्रतिकूल मित्र उदासीन शत्रु कर लेते

11२9

हैं, वे मूर्ख हैं ॥ ४९ ॥ और इसीसे संसारमें भ्रमण करते हैं,यह देही एक मनकी वासनासे इस देहको ग्रहण करके “यह मेरी देह है” इस ममतासे अहंकारसे अंधबुद्धि मनुष्य“यह मैं, यह तू” इस भ्रमसे अंत पारसे रहित संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ इससे सुख दुःखका कारण मन है और कोई नहीं है. यह कहते हैं कि, सुख दुःखका कारण मन है तो आत्माका कारण क्या है ? दोनों देह मट्टीके विकार हैं, उनको सुख दुःखही कारणता है आत्माका कुछ नहीं लगता है,जीव तो देहके अभिमानसे मानलेता है, आत्माके मूर्ति नहीं,क्रिया नहीं, किसको मारै ? किसको सुख दे,परमात्मा दोनों जगह एक है,उसका कुछ नहीं लगता तो कहते हैं जैसे अपनी जीभ आप काटे तो क्रोध किसपर करे इसी प्रकार देहसे देहका सुख दुःख मानले तो आत्मा क्या करै ? ॥ ५१ ॥ जो सुख दुःखके हेतु देवता हैं तो यह आत्माको क्या ? दुःखका

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यंधधियो मनुष्याः ॥ एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरंतपारे तमसि भ्रमंति ॥
॥ ५० ॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हि भौमयोस्तत् ॥ जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां
कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥ दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ॥ यदंगमंगेन निहन्यते क्वचि
त्क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ न ह्यात्मनो
ऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात्क्रुध्येत कस्मै न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य
जनस्य ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदंति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥

कारण तो देवताओंको है और देवता विकारी हैं, जैसे अंगसे अंगको मारिये तो पुरुष अपनी देहमें किसपर क्रोध करे, जैसे एकके मुखमें हाथ डाले, वह काट खाय तो मुखका देवता अग्नि है, हाथका देवता इन्द्र है उनका किया दुःख है, अविकारी अहंकाररहित आत्माको कुछ नहीं लगता ॥ ५२ ॥ जो आत्माको ही सुख दुःखका कारण मानो तो औरसे क्या है जिसके ऊपर कोप करे ? इस पक्षमें भी औरसे दुःख हुआ, यह कहना संभव नहीं हो सकता,क्योंकि वह अपना ही स्वभाव है,आत्मा तो सर्वत्र एकही है, आत्मासे और दूसरा नहीं. कदाचित् कहो कि, जो कुछ यह दीखता है सो मिथ्या है. जब अपना आत्मा और दूसरेका आत्मा एक ही है तो क्रोध किसपर करे ? इससे निमित्त नहीं दुःख भी नहीं ॥ ५३ ॥ जो कहो कि, ग्रह सुख दुःखका निमित्त है तो भी आत्माको क्या ? ग्रह तो लगे हैं जिसका जन्म है. जन्म तो देहका है

आत्माका नहीं, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है, जिस लग्नमें देह जन्म लेता है उस लग्नमें जैसे ग्रह हों, उसीके अनुसार सुख दुःखका निमित्त है, जिसको देहाभिमान है उसको ग्रह हैं इससे ग्रह तो अंतरिक्षमें हैं, ग्रह परस्पर दृष्टि पड़नेसे ग्रहको पीडा देते हैं, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं, परन्तु आत्माको क्या ? आत्मा ग्रह और देहसे भिन्न है, इसलिये पुरुष क्रोध किसपर करै ? ॥ ५४ ॥ जो कर्म ही सुखदुःखका हेतु है, तो भी आत्माको क्या ? आत्मा तो कर्मसे भिन्न है, सो कर्म हो तो दुःख होय और कर्म ही नहीं तो दुःखका हेतु कहांसे हो ? सो कहते हैं कर्म तब होय जब एक देहको ही जड़रूपता और अजड़रूपता हो, जडरूपसे तो विकारी हो अजड़रूपसे हितकारीपन, यह दोनों धर्म आने चाहिये, उनमें विकारता जडतावालोंको हो और हितका अनुसंधान जड़तारहितोंको हो और जो कहै कि, देह कर्म करता है. तो देह जड़ होनेसे उसमें अपने हितका अनुसंधान नहीं और आत्माका भी कर्म करना नहीं बनसकता, क्योंकि वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, जब सुख दुःख का कारणरूप कर्म सिद्ध नहीं

कर्माऽस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ॥ देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै नहि कर्म
मूलम् ॥५५॥ कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ॥नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रुद्ध्येत
कस्मै न परस्य द्वंद्वम् ॥ ५६ ॥ न केनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वंद्वोपरागः परतः परस्य ॥ यथाऽहमः संसृतिरू
पिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥

तो फिर पुरुष किसपर क्रोध करै ? ॥ ५५ ॥ जो काल सुख दुःखका हेतु है, तो भी आत्माको क्या ? क्योंकि आत्मा भी कालरूप ही है काल भी ब्रह्मका अंश है, आत्मा ब्रह्म ही है, अपने अंशको आपसे भय उत्पन्न नहीं होता, जिस प्रकार अग्निकी ज्वालाका ताप अग्निको नहीं व्यापता और हिमकण तुषारका शीत हिमको नहीं व्यापता, ऐसे ही कालके किये सुखदुःखसे आत्माको सुख दुःख नहीं होता, आत्मा असंग है इस कारण उसमें सुखदुःखका द्वन्द्व नहीं व्यापता, दुःख सुखका कारण अज्ञान है, आत्मा नहीं ॥ ५६ ॥ इन छः दुःखसुखके कारण विना जो कोई और हेतु कहै सो ईश्वरकी महिमा जानकर संभव नहीं, यह कहते हैं, जो प्रकृतिसे भी परे है, उसे किसी भांति भी सुखदुःखका संबंध नहीं, जैसे अहंकार संसाररूपी है, उसीसे सुख दुःख होता है, जो इस प्रकार समझता है वह किसीसे नहीं डरता, उसको डर ही नहीं,

इस भांति मैं परमात्मामें चित्त रखकर समुद्र तरूंगा ॥ ५७ ॥ पूर्व महर्षियोंकी यह जो परमात्माकी निष्ठा है इस निष्ठाको धारण कर साक्षात
मोक्षके देनेवाले भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंकी सेवा करके पारसे रहित संसारसमुद्रके पार जाऊंगा ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव!
इस प्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे द्रव्यका लेश दूर कर संन्यास लेकर वह ब्राह्मण पृथ्वीपर फिरता रहा, यद्यपि दुष्टोंने उसका बहुत अपमान किया,
परन्तु तो भी उसका चित्त अपने स्वधर्मसे चलायमान न हुआ, तब यह गाथा गाई ॥ ५९ ॥ कि, पुरुषको सुख दुःखका दाता मनके भ्रम
विना और दूसरा कोई नहीं है, मित्र उदासीन यह जो संसार है सो अज्ञानसे होता है, तत्त्वविचारसे कुछ नहीं ॥ ६० ॥ हे उद्धव ! इस

एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः॥अहं तरिष्यामि दुरंतपारं तमो मुकुन्दांघ्रिनिषेवयैव॥५८॥
श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम्॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकंपि
तोऽमुं मुनिराह गाथाम् ॥५९॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ॥ मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः
॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ॥ मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ य एतां
भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः॥ धारयञ्छ्रावयञ्छृण्वन्द्वंद्वैर्नैवाभिभूयते॥६२॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एका०
भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनि
श्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

लिये तुम सब भावसे मुझमें बुद्धि रखकर मनका निग्रह करो; इतना ही योगका तात्पर्य है ॥६१॥ जो कोई यह भिक्षुककी गाई ब्रह्मनिष्ठाको
सावधान होकर धारण करेंगे, सुनेंगे अथवा सुनावेंगे वह सुख दुःख आदि द्वन्द्वधर्मोंसे पराभव नहीं पावेंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते
महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ दोहा—चौविसवें अध्यायकी, कथा कर्म आधीन।
आत्मासे सब होत है, आत्माहीमें लीन ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! अब मैं तुमसे कपिलदेव आदि पहले आचार्योंका निश्चय
किया हुआ सांख्य वर्णन करूंगा, जिस सांख्यके जाननेसे पुरुष शीघ्र भेदबुद्धिसे उत्पन्न हुई सुखदुःखादिकी भ्रांतिको त्याग देता है ॥ १ ॥

महाप्रलयमें द्रष्टा और दृश्य भेदरहित एक ब्रह्ममें लीन हो गया, इसके उपरान्त प्रथम सतयुगमें जब सब प्राणी विवेकसे निपुण थे तब भी कुछ भेद न होनेसे सब ईश्वररूप ही जाना जाता था, भेद नहीं था ॥ २ ॥ पीछे जब बहुत सृष्टिकी इच्छा हुई तो वह अक्षरब्रह्म भेदरहित केवल आनन्दमय एकरूप अपने रूपके द्रष्टा और दृश्य भेद रहित दो रूप कर दिये, एक मायाके फलरूप वाणी मनको गम्य प्रपञ्चरूप कर दिया, एक सत्यरूप, दो हुए ॥ ३ ॥ ब्रह्मसे हुए इनके मध्य एक कार्यकारणरूपिणी प्रकृति हुई, दूसरे भावसे ज्ञानरूप पुरुष हुआ, जो प्रकृतिपुरुष कहाता है ॥४॥ पुरुषरूप मेरे देखनेसे क्षुभित हुई प्रकृति द्वारा सतोगुण रजोगुण,तमोगुण, प्रकट हुए ॥ ५ ॥ प्रथम इन तीनों गुणोंसे सूत्र क्रिया

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥२॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं
निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद् बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥४॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायाः
पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥६॥
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेंद्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे
तामसादिंद्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥८॥ मया संचोदिता भावाः सर्वे सहत्यकारिणः ॥
अंडमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥

शक्तिरूप हुआ, पीछे वह सूत्र ज्ञानशक्तिरूप तत्त्व प्रकट हुआ. एक ही तत्त्वज्ञान क्रियाभेदसे दोनों रूप हुए, उस महतत्त्वसे अहंकार हुआ, जो सबको मोह उत्पन्न करता है और जीवको भ्रमण करा रहा है ॥ ६ ॥ सो अहंकार तीन प्रकारका है, सो सात्त्विक, राजस, तामस यही अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इंद्रिय, मन तथा देवताओंका कारण है, जीव और देहकी ग्रन्थिरूप यही है ॥ ७ ॥ अब इस त्रिविध अहंकारसे त्रिविध प्रपंचकी उत्पत्ति हुई सो दिखाते हैं. इनमें तामस अहंकारसे पहले सूक्ष्म भूत प्रकट हुए इसके उपरांत पंचमहाभूत हुए, प्राणियोंके आवरणरूप दश अहंकार हुए, प्रवृत्ति-स्वभाव-रूप सात्त्विक अहंकारसे देवता,दश इंद्रियोंके अधिष्ठाता दिशा, वायु,

सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, प्रजापति यह सब दश, मनका देवता चन्द्रमा मिलकर ग्यारह देवता हुए, क्योंकि मन विना इंद्रियोंका प्रकाश नहीं होता, वह प्रकाशक है; इस प्रकार सब तत्त्व भिन्न भिन्न हुए, पीछे एक अण्ड उत्पन्न किया सो ब्रह्माण्ड विराट् पुरुष अन्तर्यामीका (मेरा) उत्तम घर है ॥८॥९॥ जलमें अण्ड हुआ, इस अंण्डमें श्रीनारायणरूप लीलाशरीरसे मैं स्थित हुआ, वहां मेरी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ सो पद्म जगत्‌रूप तत्त्वात्मक लोकोंका कारणभूत है, कमलमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए * ॥ १० ॥ उन ब्रह्माजीने विश्वरूप तपस्या करके गुणसे युक्त मेरे अनुग्रहसे लोकपाल समेत तीन लोक भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्गको सृजा, उन लोकोंमें ही चौदह लोक समझ लेना, सो भूमि कहनेसे पाताल लोक नीचेके आये, भुवः कहनेसे अंतरिक्ष कहा और स्वर्ग कहनेसे महर्लोकसे सत्यलोकतक सब कहे ॥ ११ ॥

तस्मिन्नहं समभवमंडे सलिलसंस्थितौ ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो
रजसा मदनुग्रहात ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः
पदम् ॥ मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ॥ १२ ॥
त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ १३ ॥

लोकसृष्टिका प्रयोजन कहते हैं–देवताओंका लोक (स्थान) स्वर्ग हुआ; भूतप्राणियोंका स्थान अन्तरिक्ष हुआ, मनुष्योंका लोक भूमि हुई, जो सिद्ध हैं और योगसाधना करते हैं उनका स्थान महर्लोक आदि जान लेना. महात्मा ब्रह्माजीने नाग तथा असुरोंका निवासस्थान पृथ्वीके नीचे अर्थात् पाताल बनाया है ॥ १२ ॥ त्रिगुणात्मक कर्म करनेसे जो गतियें होती हैं वह सब त्रिलोकीके ही मध्य हैं, इस प्रकार लोक भिन्न भिन्न रचे हैं ॥ महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोकमें योग संन्यास ज्ञानसे निर्मल गति होती है, वैकुंठकी गति मेरी भक्ति विना नहीं होती, भक्तियोग करनेसे होती है तहां वैकुण्ठकी गति विना और सब स्थान चंचल है

---

* शंका–श्रीकृष्णने वारंवार मम ऐसा वचन क्यों कहा ? क्योंकि. परमेश्वर होकर अभिमानयुक्त वचन कहना यह बडे आश्चर्यकी बात है ? ऐसी बात तो मूर्ख कहते हैं।

उत्तर–पहिले ही उद्धवने श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रार्थना की थी कि. हे महाराज! मेरे सामने आप किसी दूसरे देवताकी और अपने दूसरे अवतारकी कथा मत कहना और कहना भी तो अपनी ही कथा कहना, क्योंकि आपके नामके रसके सुखमें मैं मग्न हो गया हूँ दूसरेका चरित्र मुझको अच्छा नहीं जान पडता, ऐसी उद्धवकी प्रार्थनाको मानकर श्रीकृष्णचन्द्रने मम शब्द कहा था कुछ अभिमानसे नहीं।

स्थिर नहीं. एक स्थिर तो मेरी गति है इससे और ठौर वैराग्य रखना उचित है, मैं कालरूप परमेश्वर हूँ, यह सब जगत् मैंने ही कर्मयुक्त किया है सो मायाके गुणप्रवाहमें सब विश्व डूबता उछलता है. इस लोकसे और लोकमें जाकर फिर गिरता है, इसलिये इसमें चित्त न लगावै॥१३॥१४॥इसको ब्रह्मरूप कहते हैं, जो पदार्थ सूक्ष्म है, जो बड़ा है, जो स्थूल है, दुर्बल है सो प्रकृति और पुरुष इन दोनोंसे युक्त है ॥ १५ ॥ जिस कार्यका जो आदि कारण है और जो पीछे भी रहनेका स्थान है सोई इसके मध्य है, वह इसीका रूप है. व्यवहारमें और प्रकार भासे हैं, जैसे सुवर्णके भूषण और मट्टीके घडे सरैये हैं. नाम अलग हैं, वस्तुतः सुवर्ण और मिट्टी ही हैं;इस प्रकार सब समझकर नामभेदसे जो व्यवहार है वही विकार है सो मिथ्या है, इतना ही समझना चाहिये ॥ १६ ॥ यहां तर्क करते हैं कि, जो तुम इस प्रकार

महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः॥मयाकालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत्॥गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति
निमज्जति ॥१४॥अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिद्ध्यति॥सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १५ ॥
यस्तु यस्यादिरंतश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्था यथा तैजसपार्थिवाः ॥१६ ॥यदुपादाय पूर्वस्तु
भावो विकुरुतेऽपरम् ॥ आदिरंतो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥१७॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥
सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत्रितयं त्वहम् ॥१८॥ सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥ महान्गुणविसर्गोऽर्थः
स्थित्यंतो यावदीक्षणम् ॥ १९ ॥

1170

कार्यको एकरूप कहकर सत्य कहते हो अपने अपने कार्यमें महत्तत्त्व आदि लेके सब तत्त्व आदि मध्यमें संयुक्त हैं तो महत्तत्त्वादिकोंको सत्यता हो सकती है.तो कहते हैं कि. वे कारणरूप ब्रह्मभावको अङ्गीकार करके कार्यको सृजते हैं. जैसे मृत्तिकाके पिंड निमित्त कारण घटको सृजते हैं आदि अंतमें उसके मृत्तिका ही है, जो जिसका आदि अंत है सो सत्य है, इससे सबके आदिसे मृत्तिकाको ही लेकर सृजते हैं, अंत ब्रह्म ही है ॥ १७ ॥ प्रकृति इस जगत्का उपादान कारण है, उत्पत्तिस्थान है, पुरुष आधार अधिष्ठाता है और काल गुणोंके क्षोभसे उसको प्रगट करनेवाला है सो यह तीनों ब्रह्मरूप मैं ही हूँ, मुझसे यह भिन्न नहीं हैं, प्रकृति मेरी शक्ति है, पुरुष और काल मेरी अवस्था है, मेरा रूप होनेसे मैं ही अद्वितीय स्वरूप हूँ ॥ १८ ॥ अब इस सृष्टिकी अवधि कहते हैं, जीवोंके भोग देनेके लिये प्रगट हुई

यह मेरी सृष्टि जबतक इसका अंत न आवै तबतक पितापुत्ररूपसे निरन्तर चलती है और जबतक परमात्माका ईक्षण हो तबतक रहती है, इसके उपरान्त प्रलय हो जाती है सो कहतेहैं ॥१९॥ यह ब्रह्माण्ड विराट्रूप जिसमें लोकोंकी कल्पना है, जब इसके निकट मेरा स्वरूप भूत काल पहुँचने लगता है तब मुझसे पीडचमान हो सब लोक नाशको प्राप्त होते हैं, जैसे उत्पन्न हुए हैं उसी क्रमसे तत्त्व भिन्न भिन्न होकर अपने कारणसे मिलकर नष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥ यह शरीर अन्नसे हुआ है इस कारण शतवर्ष अनावृष्टिके होनेसे क्षीण हो उस अन्नमें लीन होता है अन्न बीजमें लीन होता है बीज भूमिमें लीन होता है, जब बोनेसे न उपजे. भूमि गन्धमें, महाप्रलयकी अग्निसे दग्ध हो गंधमात्र

विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पंचत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २० ॥ अन्ने प्रलीयते मर्त्य
मन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्रलीयंते भूमिर्गंधे प्रलीयते ॥ २१ ॥ अप्सु प्रलीयते गंध आपश्च स्वगुणे रसे ॥
लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते॥२२॥रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चांबरे ॥ अंबरं शब्दतन्मात्रे
इंद्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २३ ॥ योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः
॥ २४ ॥ न लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयंते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २५ ॥ कालो
मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २६ ॥

रहता है ॥२१॥ गंध जलमें लीन होता है,जल अपने गुणमें लीन होता है रस ज्योतिमें लीन होता है ज्योति रूपमें लीन होती है ॥ २२ ॥रूप वायुमें लीन होता है, वायु स्पर्शमें लीन होता है, स्पर्श आकाशमें लीन होता है और आकाश शब्दमें लीन हो जाता है इन्द्रियें उत्पत्त्यनुसार उस उस देवतामें लीन होती हैं ॥ २३ ॥ देवता और मन सात्त्विकाहंकारमें और शब्द अहंकारमें लीन होजाताहै. त्रिविध अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होजाताहै ॥ २४ ॥ महत्तत्त्व अपने अपने उत्पत्तिके गुणानुसार उस उस गुणमें, त्रिविध गुण प्रकृतिमें और प्रकृति अव्यक्तमें एकत्र होके रहती है ॥ २५ ॥ काल ज्ञानरूप महापुरुषमें लीन होता है, पुरुष आत्मारूप जन्मरहित मुझमें लीन होता है तब आत्मा एक शुद्ध

विकल्पसंकल्परहित अपने ही आनन्दमें स्थित होकर रहता है, इस भांति सब सृष्टिका प्रकार कहा, अब इसका प्रयोजन कहते हैं ॥ २६ ॥ जब इस प्रकार ज्ञानसे देखै तब उसके मनका कल्पना किया हुआ भ्रम क्यों हो और हुआ भी भ्रम हृदयमें क्यों रहे ? जैसे आकाशमें सूर्योदयके भयसे अन्धकार नहीं रहता है ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि, हे उद्धव ! यह सांख्यज्ञानकी विधि मैंने तुमसे वर्णन की इसके जानते ही हृदयकी गांठ छूट जाती है और इसीलिये उत्पत्ति तथा प्रलयके प्रकार तुमको समझाकर कहे, क्योंकि मुझे सब ज्ञान पूर्ण है॥२८॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥दोहा–पचिसमें कुछ निर्गुणता, अरु कुछ सत्य विवेक। मनमें प्रगटत है सदा, सत रज वृत्ति अनेक ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जबतक प्रकृति पुरुषका

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २७ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रंथिभेदनः॥प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥२८॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कंधे सांख्यनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥ शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ॥ तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः॥२॥काम ईहा मदस्तृष्णा स्तंभ आशीर्भिदा सुखम् ॥ मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥३॥

1177

निर्गुणता, ज्ञान न हो, जबतक तीनों गुणोंके स्वभाव न जीते हो, तबतक सुख दुःख आदि द्वन्द्व धर्म नहीं जाने जाते. इससे जैसे गुणके स्वभाव जाने जाते हैं उस उपाय करनेको प्रथम गुणके स्वभाव कहते हैं. हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धव ! तीनों गुण भिन्न भिन्न होते हैं, जब जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, सो आप मन लगाकर सुनिये, मैं कहता हूँ॥ १॥जिसका सत्त्वगुणी स्वभाव हो,उसके यह धर्म होते हैं. शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया, पहला और पिछला स्मरण, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिक्य बुद्धि,अनुचितकर्ममें लज्जा, दान, आत्मासे रति यह सत्त्वगुणकी वृत्ति कही ॥ २ ॥ अब रजोगुणकी वृत्ति कहते हैं. कामना, चेष्टा, दर्प, तृष्णा, गर्व, देवताओंसे सुखकी आकांक्षा,

विषयभोग, बुद्ध्यादिकोंका उत्साह, जगमें प्रीति, हास्य, वीर्य्य, बलका उद्यम इत्यादि यह सब रजोगुणकी वृत्ति कही ॥ ३ ॥ अब तमोगुणकी वृत्ति कहते हैं. क्रोध, लोभ, मिथ्या, हिंसा, याच्ञा, दंभ, अनुद्यम, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दुःख, हीनता, निद्रा, आशा, भय यह तमोगुणकी वृत्ति भिन्न भिन्न कही अब जो एक मिली है, वह वृत्ति सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! "अहं मम" यह जो बुद्धि है, इसमें मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इंद्रिय और प्राण यह सात्त्विक, राजस, तामस हैं, इनसे जो कार्य है, उसे सन्निपातजनित कार्य कहना चाहिये, क्योंकि तीनों गुणोंके मिले कार्य हैं. मैं शांत हूँ, मैं कामी हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मुझे शांति है, काम है, क्रोध है इस प्रकार व्यवहार तीनों गुणोंका सन्निपात कहाता है ॥ ६ ॥ जब यह पुरुष धर्म अर्थ काममें स्थित हो, तब जान लीजिये कि, तीनों गुणोंकी एकता है, धर्म सात्त्विक, अर्थ

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दंभः क्लमः कलिः ॥ शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥४॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥५॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ॥ व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेंद्रियासुभिः ॥६॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः ॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥७॥ प्रवृत्तिलक्षणं निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥८॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥ १० ॥

राजस, काम तामस, धर्ममें श्रद्धा हो, अर्थमें प्रीति हो; काममें धन हो ॥ ७ ॥ प्रवृत्ति सकाम धर्ममें निष्ठा रक्खै, गृहस्थाश्रम धर्ममें निष्ठा रक्खै यह भी गुणोंके सन्निपातसे होता है, क्योंकि सकाम धर्म रजोगुणमय है, घरमें आसक्ति तमोगुणमय है, नित्य नैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है, सो सत्त्वगुणमय हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार भिन्न २ और मिले गुणोंकी अवस्था कहकर जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, सो कहते हैं कि, पुरुषके जो शम, दम, क्षमा, दया यह धर्म होते हैं, सो सात्त्विक जानना, काम अनुरागसे राजस समझ लेना, क्रोधादिसे तामस जानना ॥ ९ ॥ और जो भक्ति पूर्वक निरपेक्ष हो स्वकर्मसे मेरा भजन करे, सो पुरुष हो अथवा स्त्री हो, उसका सत्वगुणरूपी स्वभाव जानना ॥ १० ॥

जो स्वकर्मसे मेरा भजन करतेहैं और मुझसे कुछ चाहना करते हैं सो रजोगुण स्वभाव जानना और जो किसीके मारनेको मेरा भजन करे उसे तमोगुणी स्वभाववाला जानना ॥ ११ ॥ अब कहत है कि, इन गुणोंके वश तो तुम भी देख पड़ते हो, और जो नहीं हो तो तुम सेव्य क्यों हुए ? और जीव सेवक क्यों हुआ ? सो कहो. इसका उत्तर देते हैं कि, यह तीनों गुण जीवको है, कुछ मुझे नहीं हैं, यह सब चित्तके विकारसे होते है, जिसमें प्राणी आसक्त होकर बँध जाता है, मैं तो आसक्त नहीं हूँ, नियंता हूँ और द्रष्टा हो रहा हूँ इससे बन्धनमें नहीं, इसीलिये अपना भजन करनेके लिये वारम्वार कहता हूँ ॥ १२ ॥ जब एक गुणकी अधिकता

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः॥ तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥११॥ सत्त्वं रजस्तम
इति गुणा जीवस्य नैव मे ॥ चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥१२॥ यदेतरौ जयेत्सत्वं भास्वरं विशदं
शिवम् ॥ तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥१३॥ यदा जयेत्तमः सत्वं रजः संगं भिदा बलम् ॥ तदा
दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया॥१४॥यदा जयेद्रजः सत्वं तमो मूढं लयं जडम्॥युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया
हिंसयाऽऽशया ॥१५॥ यदा चित्तं प्रसीदेत इंद्रियाणां च निर्वृतिः ॥ देहेऽभयं मनोऽसंगं तत्सत्वं विद्धि मत्पदम्॥१६॥

1170

होती है, उसका कार्य दिखाते हैं कि, जब प्रकाशरूप निर्मल शान्त सत्त्वगुण बढ़कर रजोगुणको जीते, तब पुरुष धर्मज्ञानसे परम सुखयुक्त होता है. जब रजोगुण सतोगुण तमोगुणको जीते, तब पुरुष धर्मज्ञानसे परम सुखयुक्त हो॥ १३॥ जब रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुणको जीते, तब रजोगुणसे संग हो उस संगसे भेदबुद्धि सर्वत्र हो, उससे प्रवृत्तिमार्गका स्वभाव हो, कर्म, यश, श्री और दुःखसे युक्त होता है॥ १४॥ जब तमोगुण सतोगुण और रजोगुणको जीते, तब अज्ञानसे मोहको प्राप्त हो शोक, मोह, निद्रा, हिंसा, आशासे युक्त हो विवेक तज अनुद्यम रूप जड़सा होकर रहता है और लय हो जाता है॥ १५॥ जब चित्त निर्मल होकर इंद्रियोंके विषयोंसे निवृत्ति हो, देहमें अभय हो, मनकी आसक्ति कहीं न हो, वह सतोगुण मेरी

प्रातिका स्थान जानना चाहिये ॥ १६ ॥ जब क्रियासे विकारको प्राप्त हो, बुद्धिका विक्षेप हो, ज्ञानेन्द्रियोंको शांति न हो, कर्मेन्द्रियोंकी निश्चलता न हो, मन भ्रमै तब जानलो कि, रजोगुण बहुत बढ़ गया है॥ १७॥ जब चित्त अन्तर्धान होकर लीन होजाय, ज्ञानसे पादर्थ ग्रहणको असमर्थ हो, मनमें भी संकल्प विकल्प उपजते रहैं, नष्ट होकर शून्यसा रहै, अज्ञान ग्लानि दुःख हो तब जानिये कि, तमोगुण बढ़ा है ॥ १८ ॥ हे उद्धव! यदि सतोगुण बढै तो देवताओंका बल बढ़ता है,, रजोगुण बढै तो असुरोंका बल बढता है और तमोगुण बढ़ै तो सब राक्षसोंका बल बढ़ जाता है॥ १९॥ सतोगुणसे जाग्रत्, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्तिकी अवस्था होती है, इन तीनों

विकुर्वन्क्रियया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ॥ गात्रास्वास्थ्यं मनोभ्रांतं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥ सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥१८॥ एधमाने गुणे सत्वे देवानां बलमेधते ॥ असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत ॥ प्रस्वापं तमसा जंतोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छंति सत्वेन ब्राह्मणा जनाः ॥ तमसाऽधोऽध आ मुख्याद्रजसां ऽतरचारिणः ॥ २१ ॥ सत्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः॥तमोलयास्तु निरयं यांति मामेव निर्गुणाः॥२२॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्विकं निजकर्म तत् ॥ राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥

अवस्थामें व्याप्त एक चतुर्थ अवस्थारूप आत्मतत्त्व है सो वह तुरीय निर्गुण अवस्था है॥२०॥गुणके उत्कर्षसे कर्मफलको दिखाते हैं, सतोगुणके उत्कर्षसे ब्राह्मण वेदोक्त कर्मके कर्ता ऊपर ब्रह्मलोक तक जाते हैं,तमोगुणसे नीचेके लोकोंमें जाते हैं और रजोगुणसे मनुष्यदेहको प्राप्त होते हैं, ॥ २१ ॥ अब जिस गुणकी अधिकतामें मरनेसे जो गति होती है,सो कहते हैं, सतोगुणमें मरै तो स्वर्गमें जाय, रजोगुणमें मरै तो मनुष्यलोकमें जाय, तमोगुणमें मरै तो नरकमें जाता है और निर्गुण हो तो मुझे ही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जो स्वकर्म करै और उसका फल न चाहै अथवा मुझ अर्पण करै, वह सात्त्विक कर्म है, जिस कर्ममें फलकी याचना है वह राजस है, जिसमें

हिंसा अधिक है सो तामस कर्म है ॥ २३॥ अब सब गुण निर्गुण भेदसे ज्ञान और भक्ति भी चार प्रकारकी हैं, सो कहते हैं. केवल आत्मनिष्ठ ज्ञान सात्त्विक है, जो ज्ञान देह इंद्रियोंके सम्बन्धसे लीन होता हैं सो राजस और जो बालक गूँगेका ज्ञान है, यह तामस है, केवल शुद्ध पुरुषोत्तमनिष्ठ ज्ञान हो सो निर्गुण कहलाता है ॥ २४ ॥ वनमें वास है सो सात्विक है, ग्रामका वास राजस है, जुएके घरमें वास तामस है, और भगवत् मंदिरमें निर्गुण वास है॥ २५॥ आसक्ति विना कर्मका कर्ता सात्त्विक कहलाता है, आसक्तिसे अंधा होकर कर्म करना राजस है, स्मरणसे रहित कर्ता तामस है और केवल एक मेरी शरणको प्राप्त हो, अहंकार छोड़कर कर्म करै सो निर्गुण व

केवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ॥ प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ वने
तु सात्त्विको वासो ग्रामे राजस उच्यते ॥ तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्विकः कारकोऽसंगी
रागांधो राजसः स्मृतः ॥ तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६॥सात्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु
राजसी ॥तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा॥२७॥ पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम्॥राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाऽशुचि ॥ २८ ॥ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ॥ तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं
मदपाश्रयम् ॥२९ ॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः॥ श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि॥३०॥

॥ २६ ॥ आत्माकी श्रद्धा सात्त्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी, अधर्ममें श्रद्धा तामसी और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण है ॥ २७ ॥ जो आहार भक्ष्य भोज्य वस्तु हो, पवित्र हो, विना श्रम प्राप्त हुई हो सो सात्त्विक कहलाती है, और इन्द्रियोंका परमप्रिय मधुर, कटु, अम्ल, लवण यह सब राजस हैं, जिससे पीडा हो, अशुद्ध हो उसे तामस कहते हैं और जो वस्तु मुझे निवेदन की हो वह निर्गुण कहलाती है ॥ २८ ॥ आत्माके अनुभवसे हुआ सुख सत्त्वगुणरूपी है, विषय अनुभवसे हुआ सुख राजस है, मोह दीनतासे सुख हो सो तमोगुणी है और केवल मेरे आश्रयका सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ यह जितने पदार्थ कह आये हैं, द्रव्य, पवित्र, वस्तु, देश, वन, ग्राम, फल, काल, ज्ञान,

कर्म, कर्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति, मरण यह सब त्रिगुणमय है ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ । यह सब प्रपंचरूप भाव गुणमय जानना पुरुष और प्रकृतिसे अधिष्ठित है, जितना देखा है, सुना है, बुद्धिसे ध्यानमें रहता है सो सब गुणमय है ॥ ३१ ॥ यह गुण कर्मसे बँधे पुरुषको संसारकी गति हैं, हे सौम्य। जो जीव चित्तसे उपजे गुण जीतै सो भक्तियोग करके निष्ठासे मेरे भावको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये विवेकी पुरुष जीतनेका ही उपाय करते हैं, सो कहते हैं,-ज्ञान विज्ञानकी देनेवाली मनुष्यदेह या गुणसंगको दूर कर निपुण मेरा भजन करे ॥ ३३ ॥ ज्ञानवान् सावधान जितेन्द्रिय पुरुष सब संग छोड़कर निस्संग हो मेरा भजन करे सत्त्वगुणकी सेवासे रजोगुण तमोगुणको जीतै इसके उपरांत निरपेक्ष और शांतबुद्धि हो मुझमें चित्त रखकर सतोगुणको भी जीते * ॥ ३४ ॥ तब इस प्रकार मुझे प्राप्त हो सो कहते हैं कि, जब यह जीव गुणोंसे छूटै तब अपने वासना देहको छोड मुझे प्राप्त हो और जब मुझे प्राप्त हुआ फिर उसे संसारका आवागमन नहीं रहता, लिंग शरीरसे और चित्तसे उत्पन्न हुए गुणसे मुक्त हुए अथवा मैं कि जो परब्रह्म हूं, उसीमें पूर्ण हुआ जीव विषयभोग नहीं करता और विषयभोगोंका स्मरण भी नहीं करता ॥ ३५ ॥ इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धसंवादे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाऽव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबंधनाः ॥ येन मे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥ गुणसंगं विनिर्धूय मां भजंतु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥ निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ॥ रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शांतधीः ॥ ३४ ॥ संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नांतरश्चरेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कंधे वृत्तिभेदनि० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

* शंका-जीव क्या वस्तु है जो जीव छूट जाता है?

उत्तर-जीव ब्रह्मका रूप है; अजीव देह है. जबतक देहके सुखकी इच्छा करता है तबतक दुःख भोगता है और देहसे बँधा; भी रहता है और देहके सुखकी इच्छाको जब त्याग देता है. तब देहको भी त्यागके ब्र० सुखको प्राप्त हो जाता है यह अर्थ "जीवोऽजीवं विहाय माम्" इस श्लोकमें है ॥

दोहा—छब्बिस माहिं कुसंगते, होत योगमें भंग ॥ योग भोग पूरण करै, संतनको सतसंग ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जिससे मेरा स्वरूप जाना जाय, ऐसे मनुष्य देहको पाकर मेरे धर्ममें स्थित हो सो अपने आत्मामें स्थित आनंदरूप परमात्माको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाके प्रभावके कारण गुणमय लिंगशरीरसे मुक्त हुआ पुरुषकी गुणकी जो मायामात्र और वास्तविक रीतिसे प्रतीत हो रहे हैं उनमें निवास करनेपर भी इस मिथ्या गुणोंके संगको प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ यद्यपि उसे सर्वत्र वस्तुकी इच्छा नहीं है, परन्तु तो भी संग न करे, जो केवल उपस्थ इन्द्रिय और उदरको तृप्त करनेवाले हैं, ऐसे दुष्टोंका कभी संग न करे, क्योंकि जो एक भी दुष्टजनका संग हो तो भी महाघोर अंधतम नरकमें पड़ता है, जिस प्रकार एक अंधेके पीछे दूसरा अंधा गिरता है और बहुतोंका संग बाधा करता है,

श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनंदं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥
गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्तमानोऽपि न पुमान्यु
ज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥२॥ संगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ॥ तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगोऽधवत् ॥३ ॥
ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ॥उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥४॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजंतीं तां नग्न
उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥ ५ ॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद
यांतीर्नायांतीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥

इसमें तो कहना ही क्या है ? ॥३॥ इलाका पुत्र बड़ा यशस्वी राजा पुरूरवा जब प्रथम उर्व्वशीके विरहसे मोहित हुआ था, तब अत्यन्त दुःखसे कातर हो कुरुक्षेत्रमें पहुँचा और वहां उर्व्वशीको देख प्रार्थना की उर्वशीने उपासना बताई, उसके द्वारा राजा गंधर्वलोकमें प्राप्त हुआ, जब वहां उसका शोक निवृत्त हुआ तब उसने यह गाथा गाई ॥४॥ पुरूरवा राजाको छोड़कर जब उर्व्वशी चली गई, तब उन्मत्तकी नाई नग्न उसके पीछे विलाप करता जाय कि, हे घोरे ! तिष्ठ तिष्ठ, इस प्रकार विह्वल हो उठकर उसके पीछे चला ॥ ५ ॥ पुरूरवा राजा अपनी पहली अवस्था कहता है कि, तुच्छ कामनाओंका सेवन करनेमें मैं अभी तृप्त न हुआ, क्योंकि अनेक वर्षोंकी रात्रियें आकर बीत गईं, परन्तु मैंने नव

जाना, चित्त उर्व्वशीसे हर रहा था, जब ज्ञान हुआ तब जैसे वचन कहे सो कहते हैं ॥ ६ ॥ पहले आठ श्लोकोंमें राजाका पश्चात्ताप कहते हैं,
अहो ! देखो मेरे मोहका विस्तार कि, मैंने इतना विषय किया परन्तु तो भी कामसे मलीन चित्तमें उर्व्वशीने मेरे कंठका आलिंगन किया सो
इसीमें मेरी इतनी आयु व्यर्थ गई, मैंने कुछ नहीं जाना ॥ ७ ॥ अब अत्यन्त खेदित होकर कहता है कि, देखो ! इस उर्व्वशीसे मैं वंचित
हुआ, सूर्य उदय हुआ वा अस्त हुआ यह भी मैंने न जाना, बहुत वर्षोंके इतने दिन बीत गये, परन्तु मैंने कुछ न जाने ॥ ॥८॥ हे उद्धव ! व
फिर कहने लगा अहो! मेरे मनको देखो कि, मेरा आत्मा इन स्त्रियोंने खेलनेको हरिण किया, मैं राजाओंका राजा हूँ सो मैं इस प्रकार पराधीन

ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ॥ देव्या गृहीतकंठस्य नायुःखंडा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥ नाहं
वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया॥ मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत॥८॥अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा
योषितां कृतः ॥ क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः॥९॥सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यांतीं स्त्रियं
चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा ॥ योऽन्वगच्छन्स्त्रियं यांतीं खरव
त्पादताडितः॥११॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्
॥१२ ॥स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पंडितमानिनम् ॥ योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥

हुआ ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित चक्रवर्ती मुझे देखो, जो तृणके समान मुझे छोड उठकर चली गई, उस स्त्रीके पीछे नग्न उन्मत्तकी भांति मैं
भी उठ चला ॥ १० ॥ ऐसे मुझे प्रताप, तेज, ऐश्वर्य कहांसे हो ? कि, जो मैं चली जाती हुई स्त्रीके पीछे लगा ही चला आया, गधैयाके
समान वह तो लातोंसे मारती जाती है और गधा उसके पीछे जैसे चला जाता है, ऐसे ही मैं चला गया ॥ ११ ॥ जिसका मन स्त्रियोंसे
हर गया है, उसको विद्या, तप, दान, अध्ययन, एकान्तवास, मौन इन साधनोंसे क्या होता है ॥ १२॥ इससे मैंने अपना स्वार्थ न जान
और आपको पण्डित मान लिया, इसलिये मैं अतिमूर्ख हूँ, मुझे धिक्कार है कि, जो ऐश्वर्यको प्राप्त होकर भी स्त्रीसे बैल गधेकी भाँति

अधीन हुआ ॥ १३ ॥ यद्यपि अनेक वर्षोंके समूहसे मैंने उर्व्वशीका अधर मधु पिया, परन्तु तो भी यह काम तृप्त नहीं होता है
जैसे आहुतियोंसे अग्नि तृप्त नहीं होता ॥ १४ ॥ इस प्रकार आठ श्लोकोंमें वैराग्य कहा । अब दश श्लोकोंमें विवेक कहते हैं कि, जिनके
चित्त वेश्याओंने हर लिये हैं,उन्हें छुडानेको आत्माराम ईश्वर अधोक्षज भगवान्‌के विना और कौन समर्थ है ? इसलियें एक परमेश्वरका ही
भजन करना उचित है, क्योंकि बहुतेरोंने यज्ञोंसे देवता प्रसन्न किये, परन्तु अंतसमयमें दुःख ही पाया ॥ १५ ॥ ईश्वरके प्रसाद विना
मोह निवृत्त नहीं होता, इसलिये उन्हींका भजन करना चाहिये, देखो उर्व्वशीने मुझे उत्तम वाक्योंसे समझाया था, परन्तु तो भी मेरे

सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं
को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामेश्वरमृतेभगवंतमधोक्षजम् ॥१५॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः
मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः॥ रज्जुस्वरूपाविदुषो
॥8। योऽहं यदजितेन्द्रियः॥१७॥क्वायं मलीमसः कायो दौर्गंध्याद्यात्मकोऽशुचिः॥क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया
कृतः॥१८॥ पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते
॥ १९ ॥ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ॥ अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियाः ॥ २० ॥

मनका मोह न गया, मैं अजितेन्द्रिय महामूढ हूँ ॥ १६ ॥ उर्व्वशीका अपराध नहीं, यह मेरा ही अपराध है. क्योंकि मैं अपने
अजितेन्द्रियपनसे ही दुःखी हुआ हूँ, उसने मेरा क्या अपराध किया है ? रस्सीको न जान जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम करै तो विद्यमा,
रस्सीका क्या अपराध है ॥ १७ ॥ यदि कहो कि, इसने अपने रूप गुणसे मोह उत्पन्न किया, यह दोष इसीका है, यह दोनों दोष
मनमें रचे हैं, अज्ञानसे हैं सो कहते हैं, यह अति मलीन दुर्गंधादिसे भरी देह कहां और पुष्पकी सुगंधके तुल्य आत्माके गुण कहाँ, सब ठौ
ममत्व अविद्याका किया है, वस्तुतः विचारसे सब मिथ्या है ॥ १८ ॥ यह देह माताकी है अथवा स्त्रीकी है व स्वामीकी है वा अग्निकी है
या कूकर गिद्धोंकी है वा आत्माकी है वा मित्रकी है,किसकी कहनी चाहिये,इतना तो इसका निश्चय होता ही नहीं और न होगा॥ १९॥ जैसे

अपवित्र तुच्छ देहमें आसक्त होते हैं सो कहते हैं कि, देखो तो:कैसा सुन्दर मुख है, कैसी सुन्दर नासिका है, कैसा सुन्दर हँसना है, यों भूले हैं और यह तो सब कृमि विष्ठा भस्मरूप है ॥ २० ॥ त्वचा, मांस,रुधिर, आंत, मेद, मज्जा, हड्डीके संघातरूप देहमें जो आसक्त हैं इनमें और विष्ठा मूत्र पीवमें जो रमते हैं, इनमें क्या अन्तर है कुछ नहीं. हमें जैसे कृमि, ऐसे वह मनुष्य हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि इस प्रकार स्त्री कदर्यमयी जाने हैं परंतु तो भी उनके गुरु स्त्रीलम्पटोंके निकट जो विवेकी हो तो न जाय, विषय असत् इंद्रियोंके संगसे मन सर्वथा विकारको प्राप्त हो, संग न हो तो न हो इससे दूर रहे ॥२२॥ जो वस्तु देखी सुनी नहीं है, इसमें मनकी इच्छा नही होती, इस कारण जो पुरुष इंद्रियोंको रोकता है, इस पुरुषका मन निश्चल होकर शान्त हो जाता है ॥२३ ॥ इससे इंद्रियोंका, स्त्रियोंका और स्त्रीलम्पटोंका

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ॥विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदंतरम् ॥ २१ ॥ अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित्॥विषयेंद्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते ॥ असंप्रयुञ्जतः प्राणाञ्छाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ सन्तएतस्य छिंदंति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥२६ ॥ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रणताः समदर्शनाः॥ निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

संग न करै, जो ज्ञानवन्त हैं उनको भी इन इन्द्रियोंका विश्वास करना योग्य नहीं है मुझ सरीखोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि,हे उद्धव ! इस प्रकार गाता हुआ वह राजाधिराज पुरूरवा उर्वशीलोकको छोड़ अपने आपमें आत्मरूपको जान ज्ञानसे मोहनिवृत्ति कर निवृत्त हो गया ॥ २५ ॥ इसलिये दुःखदायी संगको छोड़ बुद्धिमान् होकर साधुओंका संग करै, वह अपने वचनसे इसके मनकी गांठ काट देते हैं ॥ २६ ॥ साधु पुरुष कुछ चाहना नहीं करते हैं क्योंकि वह तो निरपेक्ष हैं और उनके चित्त मुझमें लग रहे हैं, ह समदृष्टि और ममता, अहंकार रहित शांत हैं, सुख दुःख परिग्रह हीन हैं इस कारण उनका संग ही इन मनुष्योंको तार देता है ॥ २७ ॥

हे महाभाग। वह बड़े भाग्यवन्त हैं, जो निरन्तर मेरी कथाओंको श्रवण करते हैं, वह कथामनुष्यके मनके सम्पूर्ण पाप दूर करते है ॥ २८ ॥ जो कोई मेरी कथा सुनेंगे, गावेंगे, स्तुति करेंगे अथवा आदर करेंगे, वह मुझमें तत्पर हो श्रद्धा सहित मेरी भक्तिको प्राप्त होंगे॥ ॥ २९ ॥ अनन्तगुण पूर्ण आनन्द और अनुभवरूप मुझमें जिस साधुने भक्ति प्राप्त की, फिर उसे और क्या बाकी रहा ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निकी सेवासे अन्धकार शीत जाता रहता है, इसी प्रकार साधु पुरुषोंकी सेवा करनेसे संसारका भय जाता रहता है ॥३१॥ प्राणी

तेषु नित्यं महभाग महाभागेषु मत्कथाः॥संभवंति हिता नृणां जुषतां प्रपुनंत्यघम्॥२८॥ता ये शृण्वंति गायंति ह्यनुमो-
दंति चादृताः ॥ मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विंदंति ते मयि ॥२९॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते॥
मय्यनंतगुणे ब्रह्मण्यानंदानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवंतं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति
साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ सतो ब्रह्मविदः शांता नौर्दृढेवाप्सु
मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य संतोऽर्वाग्बिभ्यतोऽरणम्
॥ ३३ ॥ संतो दिशंति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बांधवाः सन्तः संत आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥

घोर संसाररूपी समुद्रमें डूबते उछलते हैं उनको ब्रह्मके ज्ञाता शान्त साधु ही परमगति हैं, जैसे जलमें डूबते पुरुषको दृढ नाव परमगति होती है ॥ ३२ ॥ प्राणियोंका जैसे अन्न प्राण हैं, ऐसे ही आर्त पुरुषको शरण मैं हूँ, मनुष्यको परलोकका धर्म ही धन है. ऐसे ही संसारसे डरे पुरुषको शरण देनेवाले साधु हैं * ॥ ३३ ॥ सूर्य तो भली भांति उदय होनेपर भी बाहरी एक चक्षु इन्द्रियको ही देता है और साधुपुरुष तो सगुण तथा निर्गुण ज्ञान रूप आंतरीय अनेक चक्षुओंको देते हैं, इस कारण देवता बन्धुरूप साधु पुरुष ही हैं और आत्मा तथा तद्रूप भी

---

* शंका-सब वेद और शास्त्रोंमें लिखा है कि, भगवान तीन लोक और १४ भुवनके प्राणियोंके स्वामी हैं तो फिर श्रीकृष्णने अपनेमुखसे क्यों कहा कि, दुःखी प्राणीकी शरण हम हैं, यह बडी शंकाहै? उत्तर-तुम्हारी सबकी बात सत्य है, परन्तु अभिमानी कामी दुष्ट यह सब परमेश्वरको नहीं जानते और दीन- रात दिन परमेश्वरको जानते हैं, इसलिये दीन लोग परमेश्वरको प्यारे हैं, अभिमानी द्रोही है इसलिये श्रीकृष्णने कहा कि, मैं दीनलोगोंका स्वामी हूं।

साधुओमें ही है ॥ ३४ ॥ प्रथम इसका पिता शुद्ध मनसे स्त्रीरूप होकर पार्वतीके वनमें गया था, इस लिये उसके पुत्र पुरूरवाका नाम वैतसेन कहा सो उस उर्वशीलोकसे इस प्रकार निस्पृह होकर संग छोड़ आत्माराम हो इस पृथ्वीमें विचरण करने लगा ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भा० टी० भगवदुद्धवसंवादे षड्विंशोऽध्यः॥२६॥ दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, स्वस्थचित्तकी मूल सब फलदायक कहतहौं, पूजा हरिअनुकूल ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! अपना आराधनरूप क्रियायोग मुझसे कहो और तुम्हारे भक्त

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिःस्पृहः ॥ मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० एकादशस्कन्धे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथार्चंति सात्त्वताः सात्त्वतर्षभ ॥ १ ॥ एतद्वदंति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान्व्यास आचार्योऽगिरसः सुतः ॥ २ ॥ निस्सृतं ते मुखांभोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान्भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

जैसे तुम्हारी पूजा करते हैं,सो सब कहो॥ १ ॥तुम्हारा यह पूजन मनुष्योंकोपरमश्रेयदायक है,नारद भगवान् व्यास और अंगिराके पुत्रबृहस्पति यह सब मुनीश्वरबारबार कहते हैं॥२॥जो वाणी तुम्हारे मुखकमलसे निकली वही भगवान् अजन्मा ब्रह्माजीने अपनेपुत्र भृगुआदिसबसे कही,जो महादेवजीने पार्वतीजीसेकहा था सोई तुमने हमसे कहा है॥३॥हे मानके दाता ! यह सब वर्ण आश्रमोंका सम्मत है❋ और स्त्री शूद्रोंको परमक

❋ शंका–छहों शास्त्रोंका चारो वणाका चारो आश्रमोंका मत यह है कि,स्नान,चन्दन, पुष्प,धूप,दीप,नीरांजन और अनेक सामग्रीकरके ईश्वरका पूजन करना योग्य है,परन्तु तीन आश्रम जैसे, ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ यह तो तीनों भगवान्का पूजन करना मानतेहैं, परन्तु इन तीनोंसे बडे जो संन्यासी लोग हैं, वह भगवान्का पूजन करना क्यों मानेंगे ? उन्होंने तो सब कर्म त्याग दिये हैं तो फिरउद्धवजीने क्यों कहा कि, भगवान्का पूजन करना चारों आश्रमोंका मत है।

उत्तर–मुनिजन पहिले तो बडी २ विधियोंसे वैकुण्ठनाथका पूजन करते हैं पीछे संन्यास लेते हैं,संन्यास लियेपर फिर उनका मतयह नहीं है कि, अब भी पहिलेकी नाई सामग्री संग्रह करके भगवान्का पूजन करना, परन्तु जो कोई सज्जन भगवान्की पूजा करनेकी विधि उनसे बूझता है तो वह उसको बता देते हैं, इसलिये उद्धवने कहा कि, संन्यासी देहसे पूजन नहीं करते परन्तु मनमें तो जानते है कि, पूजनको भूले नहीं, जो भूल जाते तो दूसरेको कैसे बताते ? इसलिये चारो आश्रमोंका मत पूजन करनेको उद्धवने कहा ॥

ल्याणकारी हैं॥४॥ हे कमलदललोचन।हे विश्वेश्वरोंके ईश्वर। इस कर्मबन्धनका छुडानेवाला पूजाविधान मुझसे कहो क्योंकि मैं तुम्हारा भक्त हूँ और तुम्हींमें अनुरक्तहूँ॥५॥ श्रीशुकदेवजीबोले कि,हे नृपोत्तम परीक्षित्। जब इसप्रकार उद्धवजीने प्रार्थना करी तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव।यह कर्मकाण्ड अनंत है इसका पार नहीं इसलिये जैसे है वैसेहीक्रमकरके संक्षेपसे कहता हूँ॥६॥वैदिक, तांत्रिक,मिश्रित तप यह तीन प्रकारका पूजन है,इन तीनोंमें जिसकी जो इच्छा हो, उस विधिसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजनकरै॥७॥जब ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य तीनों वर्ण अपनी विधिसे भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करना चाहैं, उसका प्रकार सुनो, प्रथम गर्भसे अष्टम एकादश द्वादश वर्षमें अपने वेदमें कहा गायत्री

एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबंधविमोचनम् ॥ भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न ह्यंतो
ऽनंतपारस्य कर्मकांडस्य चोद्धव ॥ सक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तांत्रिको मिश्र इति मे
त्रिविधो मखः ॥ त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा
यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥८॥ अर्चायां स्थंडिलेऽग्नौवा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चे
त्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदंतोंऽगशुद्धये ॥ उभयैरपि च स्नानं मंत्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः
॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाऽऽचोदितानि मे ॥ पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥ ११ ॥
शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

उपदेश पाकर पुरुषकोजिस प्रकार भक्तिपूर्वक मेरा भजन करना चाहिये,सो तुम मुझसे श्रवण करो॥८॥प्रतिमामेंपूजायोग्य भूमिमें,अन्नमें,हृदयमें, सूर्यमें, जलमें, ब्राह्मणमें द्रव्य करके भक्तिसे निष्कपटहोकर अपने गुरुजीकी पूजा करै॥९॥आप प्रथम तो दन्तधावन करै और फिर मट्टीले अंगशुद्धिके लिये स्नान करै, इसके उपरान्त वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंसे स्नान करै ॥१०॥इसके उपरांत वेदविहित सन्ध्योपासनादि कर्म सबकरै, इसके पीछे उन कर्मों करके कर्मकी दूर करनेवाली मेरीपूजा करै, मनका संकल्प मुझमें रक्खै ॥११॥ अब प्रतिमाके भेद कहते हैं, शिलाकी,

काष्ठकी, धातुकी, मट्टीकी, चन्दनकी, चित्रकी, रेतकी, मानसी, मणिजटित हो यह आठप्रकारकी प्रतिमा कही हैं ॥ १२ ॥ हे प्यारे उद्धव ! भगवान्‌की मानसी पूजा करना होतो हृदयमें मनोमयी मूर्तिकी पुजा करनी। प्रतिमा दो प्रकारकी है, एक तो चर, दूसरी अचर, तहां स्थिर मूर्तिकी पूजामें आवाहन विसर्जन नहीं हैं ॥ १३ ॥ शालिग्राममें आवाहन विसर्जन न करे और स्थानमें करे स्थिर प्रतिमामें भी आवाहन विसर्जन है। कहीं नहीं भी है, मिट्टी और चन्दनकी प्रतिमामें तथा चित्रकीमें मार्जनमात्र करे, स्नान नहीं करावे ॥ १४ ॥ अब सकाम निष्काम भेदसे विशेष कहते हैं; सकामका प्रसिद्ध द्रव्य पूजामें कहते हैं उनसे मेरी प्रतिमामेंपूजा करे, जो भक्त निष्काम हो सो जो सामग्री

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमंदिरम् ॥ उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥१३॥ अस्थिरायां विकल्पः
स्यात्स्थंडिले तु भवेद्द्वयम्॥स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम्॥१४॥द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः॥
भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥ स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ॥ स्थंडिले तत्त्वविन्यासो
वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ॥ श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि
॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गंधो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः॥१८॥शुचिः संभृ
तसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः॥आसीनः प्रागुदग्वार्चेदर्चायामथ संमुखः॥ १९ ॥

यथालाभ पावे सो सब मुझे समर्पण करे, न पावे तो वह हृदयमें भावना करके पुजा करै तो वह पूजा मैं उसके भावसे ही स्वीकार करलेता हूँ ॥१५॥ स्नान अलंकार यह सब प्रतिमामें ही मुझे प्रिय हैं. हे उद्धव ! स्थंडिलमें मन्त्रोंसे ही अपने स्थानमें उन उन देवताओंका स्थापन है, अग्निमें घृत संयुक्त हविसे होम करै ॥ १६ ॥ सूर्यमें अर्घ्य उपस्थान करै, जलमें तर्पणादि करै, भक्तोंका दिया श्रद्धासे जलमात्र भी मुझे अत्यन्त प्रिय है॥ १७ ॥सुगन्ध, फूल, धूप, दीप, अन्नादिक समर्पण करै तो उसकी तो बात ही क्या । मेरा भक्त न हो, बहुत समर्पण करै तो मैं उससे सन्तुष्ट नहीं होता॥ १८॥अब पूजा का प्रकार कहते हैं कि, प्रथम तो आप स्नानादिक शौचसे शुद्ध हो, इसके उपरांत पूजाकी

सब सामग्री शुद्ध करके रक्खे, फिर पूर्वमुख वा उत्तरको मुख करके बैठे, पूर्व मुखको अग्र करके दर्भोंसे आसन बनाय प्रतिमाके सम्मुख स्थिरहोकर पूजा करै॥ १९ ॥प्रथम तो न्यास करै, फिर मूलमंत्रोंसे न्यासकृत मेरी प्रतिमाको हाथसे स्पर्श करै, रातके निर्माल्य फूल पत्र जो कुछ हो तो दूर करै, अपने आगे जल भरा कलश रक्खै और प्रोक्षणीपात्र रक्खै उसे चन्दन, तुलसीपत्र तथा पुष्पसे शोधन करै ॥२०॥ इसके उपरांत प्रोक्षणीके जलसेपूजाका स्थान शुद्ध करै उसीसे द्रव्यका और अपने आपका प्रोक्षण करै, फिर पाद्यके लिये उस कलशके जलसे तीन पात्र भरकर रक्खै उनको भी इन वस्तुओंसे शोधन करै, पाद्यके पात्रमेंश्यामा दूब, कमल और विष्णुक्रान्ता आदि पदार्थ डालना, गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों यह अर्घ्यके आठ द्रव्य चाहिये. जावित्री, लौंग, कंकोल यह आचमनको चाहिये॥ २१ ॥पाद्य, अर्घ्य और आचमनके

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ॥ कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥ तदद्भिर्देवयजनं
द्रव्याण्यात्मानमेव च ॥ प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥२१॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि
दैशिकः ॥ हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमंत्रयेत् ॥ २२ ॥ पिंडे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ॥
अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादांते सिद्धभाविताम्॥२३॥तयात्मभूतया पिंडे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः॥ आवाह्यार्चादिषु
स्थाप्य न्यस्तांगं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् ॥ धर्मादिभिश्च नवभिः कल्प
यित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥

तीन पात्रोंका हृदय, मस्तक, शिखा मन्त्रोंसेतथा गायत्रीसे अभिमन्त्रण करै ॥२२ ॥ इसके उपरान्त देहको कोष्ठगतवायुसे शोधन करै, मूलाधारमें स्थित अग्निमें जलावै फिर ललाटमें स्थित चन्द्रमण्डल है तहां अमृत प्रवाह करके अमृतमय करै, वहां हृदयकमलमें स्थित जीवकला श्रीनारायणजीकी मूर्ति है, उसका ध्यान करके प्रणव अक्षरके अकार उकार मकार कि जिसका सिद्ध ध्यान करते हैं, ध्यान करै ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसे घरके समान अपने स्वरूपकी भावनासे जब देह व्याप्त हो, तो प्रथम उस देहमेंही पूजा करके आप तन्मय होय, इसके उपरांत आवाहन करके प्रतिमामें स्थापन करै, फिरन्यास करनेके पीछे मेरी पूजा करै ॥२४॥ फिर आवाहनसे प्रतिमामें पाद्य, आचमन, अर्घ्यादि सब

उपचार. करै, धर्मादिक नव शक्ति हैं उनसे मुझे आसन दे ॥२५॥अष्टदलकमल बनावै,केशरसे उज्ज्वल सुन्दर कर्णिकामें वेद आगममें कथित मुक्ति पाने और फलकी सिद्धिके लिये वैदिक तांत्रिक मार्गोंसे मेरी पूजा करै, वह आसन सुखशय्या है, उसके चार कोने हैं, चार पाँव हैं, वहां धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, आग्नेय,नैऋत्य, वायव्य,ईशान इन चारो कोनोंमें रक्खे॥२६॥इसके उपरांत सुदर्शनचक्र,पांचजन्य शंख,गदा, खड्ग,बाण, धनुष, हल, मूशल,कौस्तुभ माला, श्रीवत्सादि आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये तहां सुदर्शन आदिआठ आयुधोंका आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ आदि तीनको वक्षस्थलमें पूजा करै॥२७॥नन्द,सुनन्द,गरुड़, चण्ड,प्रचण्ड, महाबल,कुमुद, कुमुदेक्षण यह आठ पार्षद हैं.इनकी

पद्ममष्टदलं तत्र कार्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥ उभाभ्यां वेदतंत्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुदर्शनं पाञ्चजन्यं
गदासीषुधनुर्हलान् ॥ मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नंदं सुनंदं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ॥
महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥२८॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून्सुरान् ॥ स्वे स्वे स्थाने त्वभि
मुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ॥ सलिलैः स्नापयेन्मंत्रैर्नित्यदा विभवे सति
॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीता
भरणपत्रस्रग्गंधलेपनैः॥अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥

आठो दिशाओंमें पूजा करै॥२८॥दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेनको कोनोंमें रक्खे, गुरुको वामभागमें रक्खे,देवता इंद्र आदि लोकपालोंको पूर्वसे लेकर अपनी २ दिशाओंमें ईश्वरके सम्मुख रक्खे और अर्घ्य, पाद्य देकर पूजा करै ॥२९॥ चन्दन, उशीर, कपुर, कुंकुम, अगर, इन सुगन्धियों करके रक्खें,मन्त्रोंके जलसे स्नान करावै जो वैभव हो तो यह सामग्रियें करै,न हो तो जो होय उससे ही करै ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाक और महापुरुष विद्या.तथा सहस्रशीर्षा और राजाओंकीसी सामग्रियोंसे मेरी पूजा करै ॥ ३१ ॥ स्नान करनेके उपरांत वस्त्र,यज्ञोपवीत, आभूषण, मकराकृति कुण्डल, माला, सुगन्ध, लेपन आदि करके शृंगार करै,इस प्रकार प्रेमपूर्वक मेरे भक्तको मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

पाद्य, आचमन, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य यह सब श्रद्धासहित मेरे भक्तको मुझे देने चाहियें ॥३३॥ यदि वैभव हो तो नैवेद्यको अनेक प्रकारकी सामग्री बनावै. गुड़, मिश्री, खीर, घृत, पूरी, पूआ, लड्डू, गेहूँकी खीर, दही आदि व्यंजन करै ॥ ३४ ॥ पर्वमें उत्सवमें अथवा नित्य फुलेलसे अभ्यंग, उबटन, दर्पण, दन्तधावन, स्नान, अन्नादि पाकसामग्री,गीत, नृत्य यह सब करने चाहिये.यदि सदा न हो सके तो पर्वमें वा उत्सवमें तो अवश्य ही करै॥३५॥ इस प्रकार प्रतिमामें पूजा कही है.अब अग्निमें पूजा कहते हैं–विधिपूर्वक कुण्ड बनावै.मेखला,गर्त्त और वेदी कर उसमें अग्नि रक्खै,प्रथम हाथमें जब एकत्र कर ले तब कुण्डमें रक्खै ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत कुशा बिछाकर चारो दिशामें छिडकै,

पाद्यमाचमनीयं च गंधं सुमनसोऽक्षतान् ॥ धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कु
ल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥ अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदंतधावाभिषेचनम् ॥
अन्नाद्यं गीतनृत्यानि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः ॥ अग्निमाधाय परितः
समूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ॥प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत
माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ लसच्चतुर्भुजं शांतं पद्मकिंजल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरी
टकटककटिसूत्रवरांगदम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषा
ऽभिघृतानि च ॥ प्रास्याऽऽज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

अन्वाधान नाम कर्म समिधसे होम करे, फिर जल छिडककर मेरा ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इस प्रकार मेरे रूपका ध्यान करना चाहिये, सो कहते हैं कि, जैसा तप्त सुवर्ण लाल होता है, उसी प्रकारका रूप पीतांबर पहरे, शांत रूप, शंख, चक्र, गदा, पद्मसे चारो भुजा शोभायमान ॥३८॥ प्रकाशित मुकुट, कंकण, मेखला, बाजूबंद, श्रीवत्सका वक्षस्थलमें चिह्न,शोभायुक्त वनमाला धारण किये हुए ॥३९॥ इस प्रकारके रूपका ध्यान करनेके उपरान्त घृत मिठाई समिध इत्यादिसे होम करे, फिर आज्यभाग और अघोर नामक होम करे और घृतमें डूबी हविष्य

ले ॥ ४० ॥ मूलमन्त्रके द्वारा सहस्रशीर्षाकी ऋचाओंसे धर्मादिक देवताओंके लिये यथायोग्य हवन करे ॥ ४१ ॥ पार्षदोंको बलि दे, नारायणरूप ब्रह्मका स्मरण कर देवताओंके समीप बैठ मूलमन्त्र जपे, फिर नैवेद्य करके भोजनकी सामग्रियोंका ध्यान करे ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त आचमन दे और वह बचा हुआ उच्छिष्ट भाग विष्वक्सेनके आगे रख उनकी आज्ञासे आप ग्रहण करे, इसके पीछे मुखवासार्थ सुगन्ध ताम्बूल समर्पण करे ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त मेरे चरित्रोंका गान करे, नृत्य करे, मेरे कर्मोंका अभिनय दिखावे, मेरी कथा मुझे सुनावे और आप भी सुनै, एक मुहूर्त्तभर निश्चलचित्त होकर रहै ॥ ४४ ॥ वेद, पुराण तथा प्राकृत भाषाके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करे "हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिए" इस प्रकार कहकर दण्डवत् प्रणाम करे ॥ ४५ ॥ प्रणाम इस प्रकार करै कि, मेरे चरणोंपर शिर रख दोनों हाथ बांधकर पीठपर रक्खे "अपराधीके समान तुम्हारी शरण हूँ, हे प्रभो ! मुझे शरणमें रखलो, क्योंकि मृत्युरूप जहां ग्राह हैं, ऐसे संसारसमुद्रसे भयभीत हूँ" ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पूजा करके शेष प्रसाद पुष्प तुलसीदल मुझे दे ऐसा ध्यान करे, उसको माथेपर धर आदरपूर्वक विसर्जन कर ज्योति ज्योतिसे मिलावे ॥ ४७ ॥ इतने स्थल तथा प्रतिमादिकोंमें कौन मुख्य हैं, इसपर कहते हैं कि, जिसकी जहाँ श्रद्धा हो वहाँ पूजा करे, क्योंकि सर्वभूतोंमें सर्वरूप में ही स्थित हूँ और सब भूत मुझमें निवास करते हैं ॥ ४८ ॥

जुहुयान्मूलमंत्रेण षोडशर्चोऽवदानतः ॥ धर्मादिभ्यो यथा न्यायं मंत्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥ मूलमंत्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्तांबूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम ॥ मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन्मुहूर्त्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वंदेत दंडवत् ॥ ॥ ४५ ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ॥ उद्वासयेच्चदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार क्रियायोगके मार्ग तथा वैदिक तांत्रिक प्रकारसे पूजा करनेवाले पुरुष मुझसे इस लोक और परलोककी वांछित सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके दृढ मंदिर बनावै, पीछे फूलोंका उत्तम बाग बनावै, जहाँ मेरी यात्राका उत्सव होता है॥५०॥ नित्य अथवा बडे पर्वोंमें पूजा सदा चली जाय, उसके लिये क्षेत्र वा पुर ग्राम लगा दे तो मेरे समान ऐश्वर्यको प्राप्त हो ॥ ५१ ॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करै तो सब पृथ्वीका राजा हो, मंदिर बनानेवाला त्रिलोकीका राज्य पावै,पूजा आदि यह सब कृत्य करै तो ब्रह्मलोकको प्राप्त हो और तीनों प्रकार करनेसे मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है॥५२॥ इस प्रकार पूजाका फल मुक्तितक कहा, अब जो निष्काम हैं उनकी भक्तिका फल कहते हैं, निरपेक्ष भक्तियोग करके मुझे ही पावै सो भक्ति कैसे हो ? तो कहते हैं,भक्ति तब हो,जब इस भाँति मेरी पूजा करै॥५३॥

एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिक तांत्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विंदत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मंदिरं कारयेद्दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाऽऽश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान्दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं दानेन भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्समतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विंदति ॥ भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥५३॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥ कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे प्रतिमापूजानि० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दाताका फल कहा, अब जो देकर फिर छीन लेता है उसका निंदित कर्म कहते हैं कि, जो अपनी दी तथा पराई दी ब्राह्मण, देवताकी वृत्तिका हरण कर लेता सो अयुत वर्षतक विष्ठा भोजन करता है ॥ ५४ ॥ जो फल कर्ताको होता है वही सहाय करनेवालेको भी होता है प्रेरक, अनुमोदनकर्ता इन सबोंको परलोकमें फल होता है.कारण यह है कि, यह सब कर्मके विभागी हैं,जिसने जितना अधिक किया उसे उतना ही अधिक फल मिलता है, यदि सहाय आदिबहुत कर्म किया हो तो बहुत फल मिलता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भावते महापु० एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां श्रीभगवदुद्धवसंवादे पुरुषार्चनविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७ ॥

1186

दोहा–अट्ठाइस अध्यायमें, ज्ञानयोग विस्तार । अब वरणौं संक्षेपसों, सज्जन लेहु विचार ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जो मेरी भक्तिमें अथवा पूजामें रहे सो यह ज्ञाननिष्ठा करै, पराये स्वभाव कर्मोंकी स्तुति और निन्दा न करै,संपूर्ण विश्वको प्रकृति पुरुष करके जाने, मुझसे भिन्न न जाने * ॥ १॥जो पराये स्वभाव और कर्मकी निन्दा करता है अथवा सराहना करता है सो मिथ्याभूत प्रपंचदृष्टि होकर शीघ्रही ज्ञानसे भ्रष्ट हो जाता है॥ २ ॥जब इन्द्रियगण निद्रासे व्याप्त होता है तब मनसे यह जीव स्वप्न देखता है, मायारूप स्वप्न है पीछे मन भी लीन हो जाता है तब चेतना नष्ट हो जाती है, तब मनुष्य मृतकसमान सुषुप्ति दशाको प्राप्त होता है, इसलिये जिसकी बुद्धि इस विश्वको नाना प्रकारसे जानती है सो विक्षेप लयको प्राप्त होता है व स्वप्नमें जो होता है सोई भ्रमरूप यह है ॥ ३ ॥ और जो वस्तु ही नहीं केवल भ्रम है, उसमें यह भला हुआ यह बुरा हुआ इतना भला इतना बुरा इसका क्या कहना ? इसका धरा हुआ नाम सब मिथ्या है, मनसे ध्यान करते हैं और नेत्रोंसे जो देखते हैं सो सब मिथ्या हैं, तहां भला बुरा कहै तो सब अपना ही अज्ञान भ्रम है॥४॥जैसे प्रतिबिम्बकी झाईं सीपीमें

श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्नगर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निंदति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्याभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिंडस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक्पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥ छाया प्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छंत्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥

---

* शंका–श्रीकृष्णने कहा कि, कोई सुन्दर कर्म करै तो उसकी बड़ाई नहीं करना और जो कोई बुरा कर्म करै तो उसकी निन्दा भी नहीं करना, क्योंकि जैसा स्वभाव जिस जीवका होताहै,वह वैसा ही कर्म करता है तो सुन्दर वचन श्रीकृष्णचन्द्रने किसके लिये कहा, गृहस्थ किसीकी निन्दा स्तुति न करै कि,विरक्त किसीकी निन्दा स्तुति न करै यह बात बताओ ?

उत्तर–यह वचन भगवान्ने विरक्तोंके लिये कहा है और विरक्तोंमें जो कोई संन्यासी हो तो उसके लिये भी कहा है और संन्यासियोंमें जो कोई परमहंस हो जाते हैं उनके लिये तो निश्चय ही कहा है. यह अर्थ है कि सब साधु महात्माओंको किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करनी चाहिये,यह श्रीकृष्णके वचन गृहस्थ लोगोंके लिये नहीं हैं ॥

रूपकी बुद्धि मिथ्या है,कार्यको करते हुए इसी प्रकार यह देहादिक भाव मरनेतक भय देते हैं ॥ ५ ॥ वेदमें जो सृष्टि कही है सो आप ही ब्रह्म विश्वरूप होकर प्रगट होते हैं आप ही उत्पन्न हो आप ही सृजते हैं और आप ही रक्षा करते हैं आप ही संहार करते हैं और जिसका संहार करते हैं वह आत्मा ही है ॥ ६ ॥ आत्मा जो सबसे पृथक् निरूपण किया है इससे कोई पदार्थ पृथक् नहीं है, यह अध्यात्म अधिदेव और अधिभूतरूप जो प्रतीत होता है, सब मायारचित होनेसे निर्मूल है,यह अध्यात्मादि तीन प्रकारका गुणयुक्त संसार आत्मामें मायाके द्वारा भासता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष यह मेरी कही हुई ज्ञान विज्ञानकी चेष्टाको जानते हैं, वह किसीकी निंदा स्तुति नहीं करते, सूर्यकी भांति समान होकर लोकोंमें विचरण करते हैं ॥ ८ ॥ वह कैसे हो ? सो प्रकार कहते हैं,जो वस्तु आदि अन्त युक्त है सो मिथ्या है, यह जानकर प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट हुए

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥ तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ॥ निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥७॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निंदति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यंतवदसज्ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११

1187

जगत्को अनुमान वेद और अपने अनुभवसे ऐसे जाने कि,जो यह दीखता है सो सब मिथ्या है,यह ज्ञान जब दृढ हो जाय तब निःसंग होकर विचरण करे ॥ ९ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन् ! आत्मा स्वयंप्रकाश है ज्ञानरूप है, देह तो जड है तो यह संसार किसको लगता है ? हे प्रभो ! यह संसार आत्माका है अथवा देहका है ? इनका आत्मा ही द्रष्टा है वही देखता है, देह तो जड है आत्मा जड नहीं परन्तु देखनेवाला है॥ १०॥आत्मा अव्यय है, सगुण हैं, शुद्ध है, स्वयंज्योति है,आवरणरहित है और देह तो जड है परन्तु इसका संयोग काष्ठ और अग्निसे है, अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं हैं,इसी प्रकार आत्मामें एकता है,इन दोनोंमें संसार किसीको भी संभव नहीं और जो संभव है तो भी अग्नि प्रका

श्रीभगवानुवाच ॥ यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥१३॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ अहंकारस्य दृश्यंते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानो जीवोंऽतरात्मा गुणकर्म मूर्त्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतंत्रः ॥ १६ ॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनया शितेन च्छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥

राक है,काष्ठ प्रकाश्य है ॥:११॥ यद्यपि सत्य है परंतु तो भी संसारका अविवेक कारण है, तो इसके उत्तरमें कहते हैंकि जहांतक देह इन्द्रिय और प्राणसे आत्माका सम्बन्ध है तहांतक मिथ्या भी संसार भासता है, यद्यपि आत्माका और इंद्रियोंका सम्बन्ध नहीं परन्तु तो भी अविवेकसे मान लेते हैं॥१२॥उद्धवजी बोले कि, देह तो असत्य है, इसको संसार क्या भासता है ? तो इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि, यद्यपि विषयभोगकी वस्तु पास नहीं परन्तु तो भी संसार नहीं जाता, क्योंकि इसका ध्यान विषयोंमें रहता है इससे संसार होता है और स्वप्नमें अनर्थको देखता है ॥१३॥ अब तर्क करते हैं कि, ध्यानसे जो बिषयकी स्फूर्ति है सो तो जीवन्मुक्तिसे भी निवारण नहीं होती तो मोक्ष किसीका हो ही नहीं सकता ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे शोचनेवालेको स्वप्न भी अनर्थ देता है,सोई जो जागता रहे तो जागनेवालेको वह अनर्थ नहीं होते. जीवन्मुक्त पुरुषोंको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं कर सकती ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह,काम,जन्म और मृत्यु यह सब अहंकारसे हैं, आत्माको यह कुछ नहीं लगते ॥१५॥ देह, इंद्रिय, प्राण और मनका अभिमान कर यह आत्मा ही उनके मध्यमें स्थित जीव है, इसीसे गुणकर्ममय मूर्ति है और इन्हीं गुणकर्मसे पुरुष बँध रहा है, इसी कारण ईश्वरके आधीन होकर सब संसारमें दौडते फिरते हैं.सूत्र और महत्त्व आदि नानारूपसे अनेक प्रकारका कहा है ॥१६॥ इस प्रकारके अहंकारसे जब यह जीव बँध रहा है तब ज्ञानसे मुक्ति होती है सो कहते हैं कि,वचन मन प्राणीमें अहंकार निर्मूल है, अज्ञानमें बहुत रूप प्रकाशते हैं,इसलिये गुरुकी सेवा कर तीक्ष्ण ज्ञानरूप

खड्ग हाथमें ले इस अहंकार बंधनको काट संग छोड पृथ्वीमें फिरे, इस कारणका यही उपाय है ॥ १७ ॥ अब वही ज्ञान कहते हैं, जिसका साधन करनेवाला वेद है, सो वेदके कहे धर्म करे तब विवेक उत्पन्न हो, तब स्वधर्म, अपना अनुभव, उपदेश, तर्क इतने साधनसे जो उत्पन्न हो उस ज्ञानका फल कहते हैं कि, योग तप है और कारण है और जगत्के आदि अन्त मध्यमें वही है ॥१८॥ नाना भेदके व्यवहार भी ब्रह्म में ही होते हैं सो कहते हैं, जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण बनते हैं और उसकी उत्पत्ति प्रथम भी और पीछे भी सुवर्ण ही है, अनेक भाँति होनेके उपरांत भी सुवर्ण ही रहता है,क्योंकि सुवणसे और कोई वस्तु तो नहीं,इसी प्रकार यह विश्व अनेक रूपसे दीखता है सो भी मैं ही हूँ,ऐसा जानना चाहिये ॥ १९ ॥ इस प्रकार विश्वका रूप कहकर इन देह इंद्रियोंमें जिससे प्रकाश होता है उसका तद्रूप कहते हैं, इस मनकी तीन

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यंतयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥
॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य
तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमंग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव
सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव
तत्स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

1188

अवस्था कारण हैं. सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह गुण हैं, जो सब कार्य-कारण-कर्त्तारूप है, अध्यात्म कारण, कार्य अधिभूत, कर्त्ता अधिदैव इस प्रकार त्रिगुणरूप जगत् है, इस प्रकार भी जिससे होता है और जिसके अनुभवसे प्रकाशै है सो चतुर्थ स्थान ब्रह्म है, इंद्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषे हैं सोई सत्य हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार ज्योतियोंमें भी और भांति न हो सो सत्य है यह कहा, अब जो और प्रकार होता है सो असत्य है इसपर कहते हैं कि, जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछे भी नहीं मध्यमें भी नहीं केवल नाममात्र ही कहनेको है, जिससे प्रकट हुई और प्रकाशी सो वही है ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ २१ ॥

प्रपञ्चका ब्रह्मसे अभेद कहते हैं कि, यद्यपि प्रथम मैं ही हूँ, यह रजोगुणसे उत्पन्न हुआ विकारका समूह ब्रह्मका कार्य है परन्तु तो भी ब्रह्मके प्रकाशसे भासता है, ब्रह्म स्वयंज्योति है इससे इंद्रिय, विषय, आत्मा, देवता, पञ्चभूत यह सब तत्त्व ब्रह्मरूप होकर भासते हैं, यह विचित्रता ब्रह्मका ही कार्य है ॥२२॥ इस प्रकार ब्रह्म विवेकके हेतुसे और देहादिकमें आत्मबुद्धि त्यागकर गुरुद्वारा अपना सन्देह काट सब कामनाओंसे निवृत्त हो आत्माके आनन्दसे सन्तुष्ट होकर रहे ॥ २३ ॥ जो छोडने चाहिये उनका स्वरूप कहते हैं–यह देह आत्मा नहीं, पृथ्वीका विकार है, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह कोई आत्मा नहीं है, क्योंकि अन्नमात्रके आश्रयसे रहता है,

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः॥ ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेंद्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानंदतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिंद्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम्॥२४॥समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः॥विक्षिप्यमाणैरुत किन्तु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥ यथा नभो वाय्वनलांबुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

इससे विकारयुक्त है और वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी यह पञ्चभूत, शब्द स्पर्श, रूप, रस गन्ध, प्रकृति ये भी आत्मा नहीं, क्योंकि जड़ हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकारके विवेकवंत ज्ञानी मुक्त पुरुषको इंद्रियोंका किया गुण दोष नहीं होता सो कहते हैं कि, जो विवेकी ज्ञानवंत हैं जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं उन्होंने गुणरूप इन इंद्रियोंका निग्रह किया हो अथवा न किया हो, उन्हें न तो गुण है न दोष है, जैसे मेघके आकाशमें आनेसे सूर्यको कुछ दोष नहीं लगता है और मेघ जानेके उपरांत कुछ गुण भी नहीं लगता ॥ २५ ॥ जो निःसंग हैं और ब्रह्मरूप हो रहे हैं, उनको किसीसे गुण दोष नहीं लगता, जैसे आकाश भूमिमें आते जाते ऋतुके गुण शीत, उष्णादिक और वायु,अग्नि,जलसे

बंध नहीं होते इसी प्रकार अक्षय ब्रह्म, सत्त्व, रज, तम यह गुण अहंकारके हैं, संसारका हेतु कारणसे नहीं मिलता, इनसे भिन्न भिन्न है ॥ २६ ॥ तथापि तबतक मायाके गुणोंका संगम करै, जहांतक मेरे दृढभक्तियोग करके मनकी विषयासक्ति न जाय ॥ २७ ॥ जैसे रोगको भले उपचारोंसे दूर न किया हो तो वारंवार वह रोग उत्पन्न होकर दुःख देता है, उसी प्रकार रागादिक और कर्म जिसके दग्ध नहीं हुए तो और सब विषयोंमें आसक्त मन भी योगी पुरुषको फिर बाधा करता है ॥ २८ ॥ और जो योगसे भ्रष्ट हो गया हो तो उसका क्या उपाय ? तो कहते हैं कि, योगीको देवताओंके प्रेरे जो बन्धुरूप भ्रष्ट करते हैं, योगके भ्रष्ट होनेसे फिर पूर्व अभ्यासबलसे योग करै परंतु कर्ममार्गके धर्म न करै, केवल धर्मकी ही साधना करै ॥ २९ ॥ जो किसीसे प्रेरित हो तो मरनेतक कर्मोंसे सुख दुःख जाता है, विकारको पावै, जो विवेकी हो तो देहमें स्थित भी आत्मसुखके अनुभव करके तृष्णासे निवृत्त हुए विकारको प्राप्त नहीं हो ॥ ३० ॥ जिसकी मति आत्मामें स्थित है सो खडे होते, चलते, सोते, मूत्र करते, अन्न भोजन करते और भी स्वभावसे दर्शन आदिक करते देहको नहीं जानते ॥ ३१ ॥ जो इंद्रियवन्त हैं सो विना देखे क्यों रहैं ? सो कहते हैं कि,जो विवेकयुक्त हैं सो यद्यपि इन इंद्रियोंके विषयोंको देखते हैं परन्तु तो भी अनुमानसे

तथापि संगः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः॥२७॥
यथेऽऽमयोऽसाधुचिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ॥ एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्व
संगम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहतांतरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युंजंति योगं न तु
कर्मतंत्रम्॥२९॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आ निपातात् ॥ न तत्र विद्वान्प्रकृतौ स्थितोऽपि
निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥३०॥ तिष्ठंतमासीनमुत व्रजंतं शयानमुक्षंतमदंतमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत्किमपीहमान
मात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥३१॥ यदि स्म पश्यत्यसदिंद्रियार्थं नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया
मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥३२॥

विरुद्ध जान आत्मासे और वस्तुसे मानते हैं, वह स्वप्नकी भांति सब मिथ्या जानते हैं, जैसे जागनेपर स्वप्नके विषय सब आप ही अंतर्धान हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्मामें मुक्तावस्थादिमें भी विकार नहीं होता, क्योंकि मुग्धावस्थामें गुण और कर्मोंसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप देहेन्द्रियादि अध्याससे अपने स्वरूपमें मिले हुए माने गये हैं, वही देहेन्द्रियादि मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त हो जाते हैं, यह आत्मा किसीसे त्याग और ग्रहण नहीं किया जाता, यदि मुक्तिको क्रियाका फल माने तो आत्मामें विकार होता है इससे मायिक पदार्थोंकी निवृत्तिका होना ही मोक्ष है. बंध मोक्ष आत्माका स्पर्श नहीं करते इस कारण आत्मा निर्विकार है ॥ ३३ ॥ परंतु प्रथमसे ही विद्यमान

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥३३ ॥
यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते॥एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः
॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसव
श्चरंति ॥ ३५ ॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलंबो न यस्य हि ॥ ३६ ॥

घटादिक पदार्थोंमें कुछ विकार नहीं करता इसी प्रकार मेरी अध्यात्मविद्या मनुष्योंके मनके अंधकारको दूर करती है परन्तु आत्मामें कुछ विकार नहीं होता, आत्मा तो जिस स्थितिमें स्थित है, उसीमें रहता है ॥ ३४ ॥ यह स्वयंप्रकाश जन्मरहित ज्ञान विज्ञानसे भी जाना नहीं जाता, महान् प्रतापयुक्त किसी विकारसे न बढै न घटै, सदा एक रूप रहै और सबोंका प्रकाशक एक है, वह दूसरेसे रहित है जिसमें वचनकी गति नहीं, श्रुति भी कहती है कि; जब आगे गम्य नहीं, वहांसे मन समेत वाणी फिर आती है जिसके प्रेरे वाणी और प्राण कार्य करते हैं ॥३५॥ केवल भेदरहित आत्मा है उसमें भेद देखना इतना ही भ्रम मनका है, अपने आत्माके बिना इस भेदका आश्रय है ही

नहीं॥३६॥और जो भेद मानते हैं, उनका मन दुःखित है, क्योंकि रूप और नामसे जो वस्तु कही जाती है,सो पञ्चभूत रूप है, देह, इंद्रिय, दूसरा पदार्थ यह मत पंडित लोगोंका वाद है. तत्त्व जाननेवालोंके लेखे वस्तु विचारकर देखो तो सब मिथ्या हैं ॥ ३७ ॥ जो कच्चा योगी योग साधे है, उसे उसकी देहसे उठे रागादिक उपद्रव करके योगभ्रष्ट कर देते हैं,उनको मैंने यह आगे लिखी विधि कही है ॥ ३८ ॥ सो कहते हैं कि, योगकी धारणासे चन्द्रमा तथा सूर्यके तापको जीते,आसनसे प्राणवायु और धारण वायुसे वात रोग जीते. तप,ग्रह, ओषधीसे पापग्रह कृत सब अशुभ दूर करै ॥ ३९ ॥ चित्तका दोष मेरा ध्यान करके दूर करे, मेरे नाम कीर्त्तन आदिसे काम क्रोधादिकोंको दूर करै और

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पंचवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाऽप्यर्थवादोऽयं द्वयं पंडितमानिनाम् ॥ ३७॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युंजतःकायउत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः॥३८॥योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ॥ तपो मंत्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥३९॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः ॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥४०॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरथ युंजंति सिद्धये ॥४१॥ नहि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अंतत्त्ववाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् ॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान्योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥

1190

कितने ही योगीश्वरोंकी सेवा करके सब दंभ अहंकारादिक अशुभोंको शनैः शनैः दूर करै ॥ ४० ॥ कितने ही योगीश्वर इस देहको समर्थ तरुणतामें अनेक उपायोंसे स्थिर करके परकायाप्रवेशकी सिद्धिके लिये योग करते हैं ज्ञानकी निष्ठा नहीं करते ॥ ४१ ॥ और जो कुशल ज्ञाता हैं, सो उनका आदर नहीं करते, क्यों कि देह अनित्य है, इस कारण निश्चय मनसे योग करके इसके रखनेका श्रम निरर्थक है, जैसे वट वृक्षके फल मिथ्या हैं ॥ ४२ ॥ यद्यपि योगसिद्धिका नित्य सेवन करते करते प्राणायामादिके प्रभावसे शरीरमें हो ही जाय, परन्तु तो

भी बुद्धिमान् मेरे भक्त पुरुषको समाधि त्यागन कर इस शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करना योग्य नहीं ॥ ४३ ॥ इसलिये योगीजनोंको चाहिये कि, मेरे आश्रयसे यह योग करैं तो विघ्न न हो, निस्पृह होकर आत्माका अनुभव प्राप्त हो जब मेरे आश्रयसे सब विघ्न निवृत्त हो तो वह योगी आनंदसे परिपूर्ण होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां भगवदुद्धवसंवादे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ दोहा--उनतिसवें अध्यायमें, भक्तियोग विस्तार। प्रथम निरूपण कर चुके, अब संक्षेप विचार ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण। यह तुमने योगकी क्रिया कही सो जिस पुरुषका मन वशमें नहीं उसको तो अतिकठिन लगती है, क्योंकि वे अज्ञानी हैं, इसलिये जिससे शीघ्र सिद्धि हो और सुगम हो सो उपाय मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे कमलनेत्र। बहुधा जो योग करते हैं वे मनका निग्रह करनेमें अत्यन्त क्लेशको प्राप्त होते हैं, तो भी मनका निग्रह नहीं होता तो थकित हो विषादयुक्त होते हैं ॥ २ ॥ योगमें अति क्लेश है, जो परमहंस हैं वह सार असारको जानते हैं. हे कमलदललोचन। जो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रय करते हैं तो यह चरणारविन्द ही उनके आनंदको पूर्ण करते हैं, हे कमलदललोचन। आप भक्तोंको सुखरूप हो और जो योगीश्वर तुम्हारी मायासे मोहित योग कर्म करके अभिमानको धारण करते हैं वह सिद्ध नहीं ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्ण। हे सबके बंधु। जो अनन्यशरण तुम्हारे दास हैं, उनके तुम वश हो इसमें आश्चर्य नहीं, जैसे नंद यशोदाके घर खेलते फिरे, रामरूप धारण कर बंदरोंसे मित्रता की, ब्रह्मा आदि देवताओंके शोभासंयुक्त

योगचर्यामिमां योगी विचरन्मद्व्यपाश्रयः ॥ नांतरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥४४॥ इति श्रीमद्भा०म०एका० ज्ञानयोगनि० नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ उद्धव उवाच ॥ सुदुष्करामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥ यथांजसा पुमान्सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यंजसाऽच्युत ॥ १ ॥ प्रायशः पुंडरीकाक्ष युंजंतो योगिनो मनः ॥ विषीदंत्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनंददुघं पदांबुजं हंसाः श्रयेरन्नरविंदलोचन ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबंधो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥

मुकुटोंके अग्रभागने तुम्हारे चरणारविन्दका सिंहासन पीड़ित किया है ऐसे तुम हो ॥४॥ तुम भक्तोंकी सेवा जानते हो, सबके आत्मा हो इसी
कारण अतिप्रिय हो, ईश्वर हो,जो पुरुष केवल तुम्हारे ही आश्रय रहते हैं उनको सब अर्थ देते हो. प्रह्लाद आदि भक्तोंमें किया उपकार जान
कौन आपको छोड सकता है ? तो क्या फलके लिये मेरा सेवन करै ? तो कहते हैं.नहीं नहीं, और देवता अथवा धर्मज्ञानादि साधन तो ऐश्वर्य
अथवा मोक्षके अर्थ हैं इसलिये कौन भजै ? कहते हैं कि, साधन विना मोक्षादिका फल कैसे हो ? तो तुम्हारे चरणारविन्दकी रेणुके सेवन करने
वालेको क्या फल नहीं होता ? जो चाहते हैं सो होता है ॥ ६ ॥ अब कहते हैं कि, और भजनकी बात तो दूर रहे, तुम्हारे किये उपकारका
तुम्हारे विषे आत्मनिवेदन करै तभी प्रत्युपकार हो और प्रकारसे नहीं होता सो कहते हैं. आनंदबद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करके

तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं
वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥५॥ नैवोपयंत्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ॥ योऽन्तर्ब
हिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्त्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा
पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगादसप्रेम मनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
हंत ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमंगलान् ॥ याञ्छ्रद्धयाचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

ब्रह्माकी आयुसे भी तुम्हारे उपकारसे उऋण नहीं हो सकते. उपकारको कहते हैं कि, जो तुम बाहर गुरुरूप हो और मध्यमें अंतर्यामीरूपसे प्राणि
योंकी वासना दूर करते हो, अपना आनन्द रूप प्रगट करते हो, हम इसका प्रत्युपकार क्या करैं ? ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज
परीक्षित् ! जब अनुरक्तचित्त उद्धवने इस प्रकार पूछा तब ईश्वरके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि, जो भगवान् सत्त्व, रज,तम
इन शक्तियोंसे ब्रह्मादि तीन मूर्ति धारण करते हैं और जगत् जिनका खिलौना है ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! मैं सुमंगल अपने
धर्म तुमसे कहूँगा, जिन धर्मोंको श्रद्धासहित करनेसे यह मनुष्य दुर्जय मृत्युको भी जीत लेता है ॥ ८ ॥

मेरा स्मरण करते करते शनैः शनैः सब कर्म करै, पर सब कर्म मेरे लिये करै, मुझमें ही मन तथा बुद्धि अर्पित करै तथा धर्ममें ही आत्माकी और मनकी प्रीति रक्खै ॥ ९ ॥ जहाँ मेरे भक्त साधु पुरुष निवास करते हों उन्हीं पुण्यदर्शनोंमें जाकर वास करै, देव, असुर, मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हैं उनके कर्मोंका आश्रय करै ॥१०॥ उन भक्तोंसे मिलकर उत्सव करै, अथवा अलग आप ही सबकी यात्रा उत्सव करै, नृत्य गीत सत्र करावै, महाराजके छत्र चामरादि उपचारसे सब करावै ॥ ११ ॥ निर्मलचित्त पुरुष सब भूतमात्रमें अपनेमें तथा बाहर भीतर मुझे ही देखै, मैं आकाशकी नाईं असंग होनेके कारण सबमें स्थिर भी आवरणरहित और बाहर भीतर सदा पूर्ण हूँ ॥ १२ ॥ जो इस प्रकार ज्ञानमें

-कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यान्संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरंतरपावृतम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ ॥ १३ ॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्यर्के स्फुलिंगके ॥ अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पंडितो मतः ॥ १४ ॥ नरेष्वभीक्ष्णं× मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात ॥ स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियंति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं ; व्रीडां च दैहिकीम् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचांडालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ॥ तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

स्थित हो सब प्राणिमात्रको मेरा ही भाव जानकर पूजै, वही पण्डित है ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, नीच जाति, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्निके कणिका यह क्रूर हों वा न हों इनमें जो समदृष्टि हो वही पण्डित है॥१४॥ मनुष्योंमें मेरे भावकी भावना रक्खै तो वेगि ही पुरुषके ईर्षा, निंदा, तिरस्कार, अहंकार यह सब निश्चय नष्ट हो जावें ॥ १५ ॥ इसलिये अन्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसे सबको प्रणाम करै, हँसी करते अपने मित्रोंको छोड़ और अपनी ऊंच नीच दृष्टि लज्जा छोड़ भूमिको दण्डवत् करै. कूकर, चाण्डाल, बैल, खर ऐसे नीचोंको भी मेरी बुद्धिसे प्रणाम करै॥१६॥ जबतक सब भूतमात्रमें मेरा भाव न उत्पन्न हो तबतक पुरुषको चाहिये कि, वाणी मन और देहकी प्रवृत्तिसे मेरी उपासना करै ॥ १७ ॥

इस प्रकार उपासना करके उसे सब विश्व ब्रह्मरूप ही भासता है,आत्मविद्यासे सर्वत्र ब्रह्म ही देखते सब संदेह दूर हो जाते हैं और आप सबसे
विरक्त हो जाता है ॥१८॥ यह सब पक्षोंसे निश्चय किया हुआ मेरा उत्तम पक्ष है कि, देह प्राण मनसे सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव हो ॥ १९ ॥
हे उद्धवजी ! यदि निष्काम मेरे धर्म करते करते कुछ भूल चूक हो जाय तो भी हानि नहीं क्योंकि यह उत्तम धर्म निर्गुणपनके लिये मैंने
निश्चय किया है ॥ २० ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! जो व्यर्थ भी लौकिक परिश्रम करते हैं सो भी जो मुझे समर्पण करै, फलवांछा विना मेरे लिये
करैं, जैसे भय शोकादिसे दौडना, रोना क्लेश व्यर्थ है सो भी मुझे समर्पण कर देनेसे धर्म हो जाते हैं ॥ २१ ॥ वही बडे बुद्धिमानोंकी बुद्धि

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयं हि सर्वकल्पानां
सध्रीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनो वाक्कायवृत्तिभिः ॥१९॥ न ह्यंगोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥
मया व्यवसितः सम्यक् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २०॥ यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो
निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥ एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति
माऽमृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥
अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥ सुविविक्तं तव प्रश्नं
मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥

और चतुरोंकी चतुरता है, जो असत्यरूप इस मनुष्यदेहसे सत्यरूप मुझे इस जन्ममें प्राप्त हो ॥२२॥ हे उद्धव ! यह ब्रह्मवादका संपूर्ण संग्रह
मैंने तुमसे संक्षेप और विस्तारसहित वर्णन किया, जो कि देवताओंको भी दुर्लभ था ॥ २३ ॥ वारंवार मैंने तुमसे प्रगट करके युक्तियोंसे यह
ज्ञान कहा है, क्योंकि यह ब्रह्मवाद रीतिका ज्ञान जानकर पुरुष सन्देहसे रहित और मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ जो इसका स्मरण रक्खै, कहै,
सुनै, पढ़ै तो भी इसका फल होता है सो कहते हैं. हे उद्धव ! मैंने यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दिया, इसे जो कोई चित्तमें धारण करै वह नित्य
वेदमें भी गोप्य परब्रह्मको प्राप्त होगा ॥ २५ ॥

जो पुरुष मेरे भक्तोंसे विस्तारसहित यह ज्ञान कहता है उसे मैं अपना आत्मातक दे देता हूँ, क्योंकि वह भक्तोंका दाता है ॥ २६ ॥ जो कोई परममित्र साधकको इस ज्ञानरूपी दीपकसे मेरा दर्शन करावै सो दिन प्रतिदिन शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इसको श्रद्धासहित नित्य सावधान होकर श्रवण करते हैं सो मुझमें परमभक्तिको प्राप्त होकर कर्मोंसे बद्ध नहीं होते ॥ २८ ॥ हे उद्धव ! हे मित्र ! तैंने यह ज्ञान अच्छे प्रकार मनमें धर लिया है इसलिये तेरे मनका मोह शोक गया ॥ २९ ॥ बुद्धिमान्‌को चाहिये कि, यह ज्ञान दंभी, नास्तिक, धूर्त्त इत्यादि और जिसके सुननेकी इच्छा न हो उसे कभी न सुनावै ॥ ३० ॥ हे उद्धव ! जो इन दोषोंसे रहित हो, ब्रह्मण्य हो अतिप्रिय साधु हो,

य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम् ॥ तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना॥२६॥य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि॥स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥२७॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः श्रृणुयान्नरः ॥ मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ॥ अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥२९॥ नैतत्त्वया दांभिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥ अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दंडधारणे ॥ यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

दोषै

शुद्ध हो उससे यह ज्ञान कहना चाहिये, जो भक्त होय तो स्त्री शूद्रसे भी कहे ॥ ३१ ॥ जाननेवालेको इसके जाननेके उपरान्त फिर कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं, जैसे सुस्वादु अमृत पीनेके पीछे और पीनेके योग्य नहीं रहता ॥३२॥ भक्तोंको और साधना कुछ नहीं चाहिये, क्योंकि भक्तोंका तो सब मैं ही हूँ, ज्ञानसे मोक्ष होता है, विहित कर्म करनेसे धर्म होता है, योग करै, अणिमादि सिद्धि हो, सहजके कर्म करनेसे काम हो, खेती करै अर्थ हो, दण्डनीति करै ऐश्वर्य हो और इन साधनोंसे चारो पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, हे उद्धव ! सब पुरुषा

थरूप तुमको मैं हूँ, इस लिये तुमको और कुछ नहीं करना चाहिये, केवल मेरी शरण रहो ॥ ३३ ॥ जब यह मनुष्य सब कर्मोंको छोडकर मुझे आत्मनिवेदन करै तब मेरे श्रेष्ठ करनेके योग्य होता है, उसीसे फिर मोक्षको प्राप्त होता है और निश्चय मेरे समान ऐश्वर्यके योग्य हो जाता है ॥ ३४ ॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने सफल योगमार्गका स्वरूप दिखाया तब उत्तमयश श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन हाथ जोड प्रीतिपूर्वक गद्गदकण्ठ हो नेत्रोंसे अश्रुपात करते गला रुक जानेके कारण उद्धवजी कुछ भी न बोल सके ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी बोले

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धांजलिः प्रीत्युपरुद्धकंठो न किंचिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः ॥ कृतांजलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविंदम् ॥ ३६ ॥ उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहांधकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ॥ विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवंत्यजाद्य ॥ ३७ ॥

कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित ! अतिस्नेहसे विह्वल चित्तको धैर्य कर थामकर अपनेको कृतार्थ मानने लगे. इसके उपरान्त हाथ जोड माथेसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदका स्पर्श कर उद्धवजी बोले॥ ३६ ॥ कि, हे ब्रह्मादिकोंके उत्पन्नकर्त्ता ! मैंने जो मोहरूपी अन्धकारका आश्रय किया था सो तुम्हारे समीपसे जाता रहा जैसे सूर्यके समीप अंधकार, शीत, भय कहां हो सकते हैं ! * ॥ ३७ ॥

---

* शंका-श्रीकृष्णसे उद्धवने कहा कि,महाराज ! मेरा मोह अब मेरे शरीरको छोडकर भाग गया,मोहसे अब मैं छूट गया, तो फिर यमुनाके तटपर विदुरजीने उद्धवसे श्रीकृष्णका वृत्तान्त बूझा तो क्यों मोहग्रसित हो गये ? श्रीकृष्णका वृत्तान्त भी पूरा नहीं कह सके,हाल भी कुछ देर पीछे कहा,जो कोई कहे कि, ज्ञान पानेके पीछे फिर मोहने घेर लिया होगा तो सत्य है जो बहुत दिन हो गये होंगे तो आश्चर्य नहीं था, परंतु ज्ञान पाकर कृष्णके पाससे दो अथवा तीन ही दिन बीतेथे जब विदुरजीका समागम हुआ था यह शंका है।

उत्तर-निस्सन्देह उद्धवजीका मोह नाश हो गया था परन्तु मनुष्यके स्वभाव करके क्षणक्षणमें मोहके वश होकर श्रीकृष्णका स्मरण कर फिर मोहको त्याग दिया और श्रीकृष्णका मोह भी इस लिये किया कि,श्रीकृष्ण ही भक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं; इसलिये यमुनाके निकट उद्धवको मोह प्राप्त हुआ, कुछ अज्ञानपनसे मोह उत्पन्न नहीं हुआ।

तुमने अति दया करके मुझ अपने सेवकको विज्ञानदीपक दिया, इस कारण कौन तुम्हारे उपकारका ज्ञाता है,अब तुम्हारे चरणारविन्द मूलको छोड़कर और मैं किसकी शरण जाऊँ ? ॥ ३८ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! जो सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुमने अपनी मायासे मेरा स्नेहरूप पाश दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, सात्वतनमें बढाया था सो आत्मज्ञान शस्त्रसे तुमने ही काटकर दूर कर दिया ॥ ३९ ॥ हे महायोगिन् ! तुमको प्रणाम है, मैं शरण हूँ, मुझे इतनी शिक्षा दो कि मेरी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें दृढ प्रीति हो ॥ ४० ॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करके लोकसंग्रहके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी कि, हे उद्धव ! मेरी यह आज्ञा है कि, तुम बद्रिकाश्रमको जाओ, क्योंकि वहां मेरे

प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकंपिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥३८॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यंधकसात्त्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना॥३९॥ नमोऽस्तुते महायोगिन्प्रपन्नमनुशाधि माम् ॥ यथा त्वच्चरणांभोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम्॥तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः॥४१॥ईक्षयाऽलकनंदाया विधूताशेषकल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यंग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥ तितिक्षुर्द्वंद्वमात्राणां सुशीलः संयतेंद्रियः ॥ शांतः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव॥अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम्॥४४॥श्रीशुक उवाच॥स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिंचदद्वंद्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥

चरणतीर्थ गंगाजलसे स्नान आचमन करके शुद्ध होगे ॥ ४१ ॥ हे उद्धव ! अलकनन्दाके दर्शनसे सफल हो पाप दूर कर वल्कल वस्त्र पहर वनके फल खाय सुखमें निष्ठ होओ ॥ ४२ ॥ वहां सब इंद्रियोंके निग्रहसे शीत, उष्ण सह सुशील शान्त हो, ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त समाधि बुद्धि स्थिर करो ॥ ४३ ॥ और मुझसे तुमने जो जो सीखा है, तथा अच्छी भांति विचारा है उसकी भावना करते आवेशयुक्त वचन चित्तसे मेरे धर्ममें तत्पर हो,इन तीनों गुणोंकी गतिका अतिक्रम करके आगे मुझे प्राप्त होगे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार

भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके कहनेसे उद्धवजी प्रदक्षिणा कर माथा भगवान्‌के चरणोंमें रख अश्रुपातके जलसे भगवान्‌के चरणको अभिषेक करने लगे, यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं, परन्तु तो भी चलनेके कारण स्नेहसे कोमल बुद्धि हो गये ॥ ४५ ॥ अत्यन्त दुस्त्यज स्नेहके वियोगसे अति अधीर हो अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके छोडनेको समर्थ न हुए और इसके उपरान्त अति कष्ट पाय फिर अपने स्वामीकी पादुका माथेपर धर प्रणाम करके चले, इस प्रकार वारंवार प्रणाम करके चले ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अपने अंतःकरणमें श्रीकृष्णको धारण कर परमभागवत उद्धव बद्रिकाश्रमको चले गये और जगद्बन्धु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे इस भांति उपदेश पाय उसी भांति तपस्याको साथ हरिकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरणकमलोंका योगीश्वर सेवन करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह ज्ञानरूप अमृत आनंद समुद्र परमभागवत उद्धवजीसे कहा. जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं, सो संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥४८॥ जिन वेदकर्ता भगवान्‌ने संसारका भय दूर करनेके लिये एक ज्ञानरूप वेदसार अमृतका भ्रमरकी भांति उद्धार किया. एक अमृत तो समुद्रसे निकाला था सो तो देवताओंको पिलाया अब दूसरा यह वाणीरूप अमृत अपने सेवक तथा भक्तोंको पिलाया ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः॥ कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥४६॥ ततस्तमंतर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकबंधुना तपः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥४७॥ य एतदानंदसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेवितांघ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥४८॥ भवभयमपहंतुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥ अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भक्तियोगसंग्रहो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥७१

दोहा–तीसमाहिं वैकुण्ठकी, सुरति करी करतार। कुशलयुद्ध मिस सबनको, क्षणमें कियो सहार ॥ १ ॥ राजा परीक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन्! परमभागवत उद्धवजीके वन चलेजानेपर विश्वके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्या किया ॥ १ ॥ अपने कुलको ब्रह्मशापसे व्याप्त देख सबके नेत्रोंके परमप्रिय शरीरको यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने कैसे छोड दिया ? ॥ २ ॥ जिस रूपमें लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियें खैंचनेको समर्थ न हुईं, जो स्वरूप कर्णद्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ और साधु पुरुषोंके मनमें तो लिखासा रहता है, जिस रूपकी शोभा वर्णन करनेसे पंडितोंकी वाणीमें प्रीति उत्पन्न होती है, अर्जुनके रथपर स्थित जिस स्वरूपको देखकर भारतमें युद्ध विषे मरे जो योद्धा थे, वह सारूप्यमुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥

राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दिवि भुव्यंतरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुंगवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजंत्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥

यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गमें सूर्यके मण्डल आदि, भूमिमें कम्पादि, अन्तरिक्षकी दिशामें दाहादिक उठे बड़े बड़े उत्पातोंको देख सुधर्मा सभामें बैठे यादवोंसे यह कहने लगे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ! यह घोर मृत्युको बतानेवाले उत्पात उठ रहे हैं इसलिये अब हमको दो घडी भी द्वारकामें वास करना योग्य नहीं है ॥ ५ ॥ इस कारण सब स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धारको जाओ और हम भी प्रभासक्षेत्रको जांयगे, जहां पश्चिमवाहिनी सरस्वती हैं ॥ ६ ॥ वहां स्नानसे पवित्र हो, उपवास कर भलीभांति सावधानतासे स्नान कराय चन्दन और पूजाकी सामग्रियोंसे देवताओंका पूजन करेंगे ॥ ७ ॥

बडे भाग्यवान् ब्राह्मणोंको गो, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र और हाथी घोडे रथोंसे पूजेंगे॥८॥ निश्चय करके यह विधि अरिष्टकी नाशक है और उत्तम मङ्गलका आश्रय है, प्राणियोंमें देवता, ब्राह्मण, गोकी पूजा कल्याणका हेतु है ॥ ९ ॥ यादवोंमें सब वृद्ध इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन "ऐसे ही है" इस भांति स्तुति कर, नावों द्वारा समुद्र उत्तर सब प्रभासक्षेत्रको चले गये ॥ १० ॥ यादवोंके देव भगवान्के उपदेशको सब यादव मंगलोंसहित परमभक्तिसे प्रभासक्षेत्रमें करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त प्रभासक्षेत्रमें दैवसे हतबुद्धि यादवोंने सुरस मदिराका महापान किया, जिस मदिराके रससे बुद्धि दुष्ट हो जाती है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित मद्यपानसे अतिगर्वयुक्त चित्त

ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रंश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताके रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ॥ मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहन्छरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥१५॥ प्रद्युम्नसांबौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ॥ सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

1195

यादवोंका अति बडा कोलाहल हुआ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त क्रोधित हो वधको उद्यत यादव समुद्रतटपर धनुष, खड्ग, गदा, तोमर और ऋष्टियोंसे युद्ध करने लगे ॥१४॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजावाले रथ, हाथी, खच्चर, ऊँट, बैल और भैंसोंसे परस्पर मिलकर बाणोंसे मारनेलगे, जैसे वनमें हाथी दांतोंसे परस्पर हाथियोंको मारते हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्त हो प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर तथा भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित अतिदारुण होकर गद श्रीकृष्णका भाई, एक श्रीकृष्णका पुत्र सुमित्र और सुरथ यह अति क्रूरस्वभाव

मत्सरसे व्याप्त होकर परस्पर घोर युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार और भी निशठ, उल्मुख, सहस्रजित, शतजित, भानु आदि यादव जो भगवान्की इच्छासे मोहित हो गये थे, वह वारुणीके पानसे मत्त और अन्धप्राय हो परस्पर युद्ध कर करके लडने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधुके वंशके और अर्बुद मथुरा शूरसेन देशके विसर्जन, कुकुर, कुन्ति देशके स्नेहको तोड परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पितासे और भाई भानजेसे, धेवतोंसे, काकाओंसे, मित्रोंसे, सुहृदोंसे युद्ध करने लगे, मूर्ख जाति जातियोंको ही मारने

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ॥ अन्योऽन्यमासाद्य मदांधकारिता जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥ दाशार्हवृष्ण्यंधकभोजसात्त्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ॥ विसर्जनाः कुकुराः कुंतयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥१८॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहञ्ज्ञातय एव मूढाः ॥१९॥ शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ॥ शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥ २० ॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः ॥ जघ्नुर्द्विषस्ते कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ ॥२१॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हंतुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनंदन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरंतौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्द्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥

लगे ॥ १९ ॥ बाणोंसे हीन होनेके उपरान्त धनुषके टूटनेसे, शस्त्रोंके छीन जानेसे पटेरोंको ग्रहण करने लगे ॥ २० ॥ वह पटेरे यादवोंके हाथमें लेते ही वज्रके समान दुधारा खांडे हो गये, उससे यादव वैरियोंको मारने लगे ॥२१॥ और जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें वरजा, तब हे परीक्षित! वह श्रीकृष्ण और बलदेवजीको वैरी मान मारनेकी बुद्धिसे यादव मोहित हो शस्त्र ले सम्मुख आये ॥ २२ ॥ हे कुरुनन्दन! इसके उपरांत दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो खड्गरूप पटेरोंको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते मारने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसे व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासे

1196

मोहित आत्मा यादवोंको स्पर्द्धासे उत्पन्न हुए क्रोधने क्षय कर दिया, जैसे बांसका अग्नि वनका क्षय कर डालता है ॥२४॥ इस प्रकार अपना सब कुल नाश हो जानेके पीछे एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही केवल अवशेष रह गये तब श्रीकृष्णने जाना कि, अब भूमिका भार उतर गया॥२५॥ महात्मा बलदेवजीने समुद्रके तटपर परम पुरुषके ध्यानरूप योगसे आपको आपमें युक्त कर मनुष्यलोक छोड दिया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, बलरामजीका चलना देख पीपलका आश्रय ले मौन होकर भूमितलमें बैठ गये ॥२७॥ शोभायमान चतुर्भुजरूप धारण किये अपनी कांतिसे दिशाओंका अन्धकार दूर करते निर्मल अग्निसे दिखाई देने लगे ॥ २८ ॥ अब चतुर्भुज रूपका वर्णन करते हैं, श्रीवत्सका चिह्न, मेघके समान श्याम, सुवर्णके समान कांतिवाले, पीताम्बर पहरे, परममंगल ॥ २९ ॥ सुन्दर हास्ययुक्त मुखकमल नील केशसे शोभित, कमलसे सुन्दर नेत्र, देदीप्यमान मकराकृति कुण्डल ॥३०॥ कटिसूत्र, जनेऊ, मुकुट, कंकण, विराजमान हार, नूपुर, मुद्रिका; कौस्तुभसे शोभित ॥ ३१ ॥ वनमालासे व्याप्त अंग, मूर्तिमत् अपने आयुधोंसे युक्त, लालकमलकीसी शोभावाला वाम चरण दाहिनी जांघपर धरकर बैठे ॥ ३२ ॥ मूशलके अवशेष लोहके खण्डसे जिसने बाण बनाया था उस जरानाम बधिकने मृगके आकारवाले

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ॥ दिशो वितिमिराः कुर्वन्विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयांबरयुग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥ सुंदरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुंतलमंडितम् ॥ पुंडरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीतांगं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुसलावशेषायःखंडकृतेषुर्लुब्धको जरा॥ मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ॥ ३३ ॥

उस चरणको मृगकी शंकासे बींध डाला "यह व्याधा कुछ बहुत समयका नहीं था, यह उसी समय स्वर्गसे भगवत्की इच्छानुसार अंगद व्याधके रूपमें आया और मोहित हो बाण मार पिताके ऋणसे मुक्त हुआ" * ॥ ३३ ॥ फिर भगवान्के समीप आय चतुर्भुज श्रीभगवान्को देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ. इसके उपरान्त वह अपराधी वधिक माथेसे दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें गिर

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ॥ भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ॥ क्षंतुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ॥ ३५ ॥ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वांतनाशनम् ॥ वदंति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ तन्माशु जहि वैकुंठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ॥ यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

पडा ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन ! पापबुद्धि मैंने यह अपराध अज्ञानसे किया है, हे उत्तमयश ! मुझ निष्पाप पापीको क्षमा करो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! जिसका स्मरण मनुष्योंके अज्ञानतमका नाश करता है. उन्हीं आप विष्णुका मैं अपराधी हूँ ॥ ३६ ॥ हे वैकुण्ठनाथ ! इस लिये

---

* शंका-वधिकको मनुष्यके और मृगके पहँचाननेमें भेद क्यों न हुआ ? जिस भ्रमसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दको मृग समझकर महाराजके चरणमें बाण क्यों मारा ? निशाना लगानेवाले मनुष्य कभी नहीं चूकते. छोटी वस्तु होती है तो भी देख दृष्टिसे खेलते हैं और त्रिलोकीनाथकी देह तो बडी थी वह वधिक कैसा मूर्ख हो गया ? मृग और मनुष्य उसको नहीं जान पडे ? बडे सन्देहकी बातहै।
उत्तर-अंगद वालिका पुत्र श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंकी सेवा करके स्वर्गको जानेलगा तो रघुनाथजीने अंगदसे कहा कि, जो वरदान तुझको चाहिये सो मांग, तब अंगदने कहा कि, हे रघुनन्दन ! हे दीनबन्धु ! मेरे पिताको आपने बिना अपराध मारडाला. सो उसका बदला आपसे लिया चाहता हूँ. तब रघुनाथजी बोले कि, हम कुछ युगबीते द्वापरमें कृष्णावतार धारण करेंगे तब तुम्हारे पिताका ऋण तुमसे चुकावेंगे और तुम्हारे हाथके बाणसे हम प्राण तजकर परमधामको जायँगे जिस समयको श्रीरघुनाथजी कहगये थे वही समय देखकर वीर अंगदने स्वर्गलोकसे उसी वनमें आकर वधिकका रूप धारण कर लक्ष्मीपति भगवान्के चरणमें बाण मारा इसलिये व्याधेको मनुष्यकी और मृगकी पहँचान नहीं हुई, क्योंकि बहुत दिनका व्याधा नहीं था वह तो नया वधिक था केवल पिताका बदला लेनेको आया था।

मुझ मृगलोभी पापीको शीघ्र मारो, जिससे फिर कभी साधुओंका ऐसा अपराध न करूँ ॥ ३७ ॥ जब तुम्हारी स्वाधीन मायाकी रचनाको
ब्रह्मा और ब्रह्माकेपुत्र रुद्रादिक तथा वेदके द्रष्टा भी नहीं जानते, उन्हें ब्राह्मणोंके शापका लगना मायासे अन्धे हुए पुरुषोंसे किस प्रकार कहा
जा सकता है ! इससे यह बात चाहे कुछ भी हो, परन्तु आप मुझे मार डालिये ॥ ३८ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे जरा ! तू भय मत
कर, उठकर खड़ा हो तैंने तो यह मेरी इच्छानुसार ही कार्य किया है,इस लिये तू मेरी आज्ञासे पुण्यवानोंके स्थान स्वर्गको जा ॥ ३९ ॥
इच्छा करके शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाय, वह वधिक श्रीकृष्णकी तीन परिक्रमा दे नमस्कार कर विमानमें बैठ स्वर्गको
चला गया ॥ ४० ॥ इसके उपरांत दारुक मार्गमें भगवान्को विना पाये तुलसी चन्दनकी गन्ध मिली वायुको सूंघता श्रीकृष्णचन्द्रके

यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरिंचो रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ॥ त्वन्माययापिहितदृष्टय एतदंजः किं
तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ॥ याहि त्वं
मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम्॥३९॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा॥ त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन
1192
दिवं ययौ ॥४०॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ॥४१॥ तं
तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ॥ स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य सवाष्पलोचनः॥४२॥
अपश्यतस्त्वच्चरणांबुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शांतिं यथा निशायामुडुपे
प्रनष्टे ॥ ४३ ॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ॥ खमुत्पपात राजेंद्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥४४॥

सम्मुख आया ॥४१॥ उस पीपलके वृक्षके नीचे तीक्ष्ण कांतियुक्त आयुधोंसे व्याप्त अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रको बैठा देख स्नेहसे मग्न आत्मा,
नेत्रोंमें जल भर दारुक रथसे उतर उनके चरणोंमें गिरा ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्द विना देखे मेरा सब ज्ञान नाशको प्राप्त हो
गया और मोहमें प्रविष्ट हुआ मैं दिशाओंको भी नहीं जानता हूँ तथा शान्ति भी मुझे नहीं है.जैसे रात्रिमें चन्द्रमाके गये पीछे दिशा नहीं
जानी जाती है॥४३॥हे राजन् ! जब इस प्रकार दारुक सारथीने कहा तब सारथीके देखते ही गरुडचिह्नयुक्त रथ घोडे ध्वजा सहित आकाशको
उड गया ॥ ४४ ॥

इसके उपरान्त विष्णुके दिव्य आयुध चले गये इससे विस्मित सारथीसे भगवान् जनार्दन कहने लगे ॥ ४५ ॥ कि, हे सूत। तू द्वारकाको जा बांधवोंसे परस्पर जातिका मरण, योगमार्गसे बलदेवजीका प्रस्थान और मेरी दशा जो कुछ तैंने देखी है सो कहना ॥ ४६ ॥ तुम बांधवों सहित, द्वारकामें मत रहना, क्योंकि मुझसे छोडी हुई द्वारकाको अब समुद्र बोरेगा ॥ ४७ ॥ इसलिये अपनी सब सामग्री तुम हमारे माता पिताको लेकरके अर्जुनसे रक्षित हो इन्द्रप्रस्थ जाओ, इस प्रकार बांधवोंसे कहो ॥४८॥ तुम ज्ञाननिष्ठ निस्पृह हो मेरे धर्मसे और यह मेरी मायाकी

तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ संकर्षणस्य निर्याणं बंधुभ्यो याहि मद्दशाम् ॥४६॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः स्वस्व बन्धुभिः॥मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वंस्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः॥ अर्जुनेनाविताः सर्वे इन्द्रप्रस्थं गमियष्थ ॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः॥ मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनःपुनः ॥ तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम्॥ ५० ॥इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः॥ महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥

रचना जान शांतिको प्राप्त होओ ॥ ४९ ॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब दारुक श्रीकृष्णचन्द्रकी वारंवार परिक्रमा दे माथानवाय कुलके नाश होनेसे मलिन चित्त हो द्वारकापुरीको चला गया ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भा० टी० यादवनिर्याणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ दोहा—इकतिसमें नरलोकते, कृष्ण गये निज धाम । गये देव निज निज भवन, तब द्वारका ललाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! दारुक सारथीके जाने उपरांत वहां ब्रह्मा, पार्वती सहित महादेव, इन्द्रादि[illegible] देवता,

सनकादिक मुनि, मरीचि आदि प्रजापति ॥ १ ॥ पितर, गंधर्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, पक्षी ॥ २ ॥ भगवान्‌का प्रस्थान देखनेकी इच्छासे परम उत्कंठित श्रीकृष्णके जन्म कर्म गाते और कहते वहां आये ॥ ३ ॥ हे राजन्! फूलोंकी वर्षा करते परमभक्तिसे युक्त, विमानोंकी पंक्तिसे आकाशको संकुल करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त प्रभु सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मा इन्द्रादिक अपनी विभूतिको देख अपने आपको अपने आपमें संयुक्त कर, अपने लोक ले जानेके लिये आये हुए बहुतसे देवताओंको देख समाधि लगाकर अपने नेत्रकमल मूंद लिये ॥ ५ ॥ जैसे स्वेच्छामृत्युवाले योगी अपने शरीरको योगधारणासे जलाय लोकोंमें प्रवेश करते हैं, परंतु श्रीकृष्णने वैसे नहीं

पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥ द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं
परमोत्सुकाः ॥ गायंतश्च गृणंतश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥
कुर्वंतः संकुलं राजन्भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥ भगवान्पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्यात्मनि
चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम् ॥ योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा
धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः
1190 ॥ ७ ॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशंतं स्वधामनि ॥ अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥ सौदामन्या
यथाकाशं यांत्या हित्वाऽभ्रमंडलम् ॥ गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

किया, किन्तु उसी शरीरसे अपने परमधामरूप वैकुण्ठको चले गये. कारण यह था कि, यदि इस शरीरको योगधारणासे जला देते तो उसमेंका सम्पूर्ण जगत् भी भस्म हो जाता और उस शरीरका ध्यान व धारणा करनेवाले उपासक लोगोंको पीछे उस देहका साक्षात्कार और फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वधाम पधारे, उस समय देवलोकमें नगाड़े बजने लगे, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे भूमिसे सत्य, धर्म, धैर्य कीर्त्ति, लक्ष्मी यह सब चले गये ॥ ७ ॥ परन्तु ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको स्वधाममें प्रवेश करते न देखा, इसकारण यह अति आश्चर्यको प्राप्त हुए, क्योंकि श्रीकृष्णकी गति किसीने न जानी ॥ ८ ॥ जैसे मेघमण्डलीको

छोड़कर आकाशमें जाती बिजलीकी गति मनुष्योंसे नहीं देखी जाती, इसी प्रकार देवताओंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति नहीं देखी गई, उनकी गति उनके पार्षद ही जानते हैं ॥ ९ ॥ सो ब्रह्मा रुद्रादिक देवता श्रीकृष्णचन्द्रकी योगगति देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए और उस गतिकीस्तुति करते अपने अपने लोकोंको चले गये॥ १० ॥हे राजा परीक्षित् ! यादवोंमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म धारण करना मायासे अनुकरणमात्र जानना, जैसे नट निर्विकार है,परन्तु नानारूपोंसे अनुकरण करता है, इस प्रकार आप ही इस जगत्को उत्पन्न कर और अन्तर्यामीभावसे उसमें आवेश कर अंतकालमें संहार करते हैं, परंतु आप अपनी महिमासे निर्विकार हैं ॥ ११ ॥ तुम और मूर्त्ति मत जानो इसी अवतारमें श्रीकृष्णचन्द्रका प्रताप बहुत बड़ा देखा है, जिन्होंने परलोकसे सांदीपनका पुत्र प्राप्त किया और उसे उसी शरीरसे शरणागतरक्षक

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां प्रशंसंतः स्वंस्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्य तनुभृज्ज
ननाप्ययेहा मायाविडंबनमवेहि यथा नटस्य ॥ सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चांते संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स
आस्ते॥ ११ ॥मर्त्येन यो गुरुसुतंयमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदःपरमास्त्रदग्धम्॥जिग्येऽन्तकांतकमपीशमसावनीशः
किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥ तथाऽप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छ
त्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण ले आये, ब्रह्मास्त्रसे दग्ध तुम्हारी रक्षा की, फिर कालोंके महाकाल रुद्र भगवान् महा देवजीको बाणासुरके संग्राममें जीत लिया और जरानाम वधिकको देहसहित स्वर्गको भेज दिया तो वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे ? ॥ १२ ॥ अहो ! जो श्रीकृष्णचंद्र समर्थ थे तो कुछ काल अभी यहां ही क्यों न रहे ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, संपूर्ण जगत्के सृष्टि प्रतिपालन और संहारमें आप ही कारण हैं औरकी आकांक्षा वह नहीं रखतेहैं, अनेक शक्तियोंको धारण करते हैं. यद्यपि ऐसेहैं,परन्तु तो भी यादवोंका संहार हो जानेसे अपने देहको इस लोकमें रखनेकी इच्छा न की आपही निजधाममें अपने देहको प्राप्त किया.यहां हेतु कहते हैं भगवान्ने विचारा कि,अब इस

देहका यहां क्या काम है ? स्वधर्मी आत्मनिष्ठोंकी जो रीति थी सो दिखाई, और भांति वह आत्मनिष्ठ दिव्यगतिके अनादरसे, योगबलसे देहकी सिद्धि कर कहीं यहां ही क्रीडा करनेको मन करैं, इस कारण भगवान् आप भी चले गये॥ १३॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर सावधान मनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रकी परमगतिको कहेगा सो परम उत्तम गतिको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ अब वसुदेवादिककी गति कहते हैं, इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे बिछुडा हुआ दारुक नाम सारथी द्वारकामें आय वसुदेव उग्रसेनके चरणोंमें पड़ अपने अश्रुजलसे उनके चरणोंको

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ॥ प्रयतः कीर्त्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥१४॥ दारुको द्वारकामेत्य
वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिंचत्कृष्णविच्युतः ॥ १५॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥
तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः॥ १६॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ॥ व्यसवः शेरते
॥११ यत्र ज्ञातयो घ्नंत आननम् ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ॥ कृष्णरामावपश्यंतः शोकार्ता
विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ॥ उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥१९॥

सींचने लगा॥ १५॥ हे राजा परीक्षित ! इसके पीछे उस सारथीने सब यादवोंके नाश होनेका वृत्तान्त कहा, वह सुनकर वसुदेवादिकोंके हृदयमें अत्यन्त उद्वेग हुआ और शोकसे मूर्च्छित हो ॥ १६॥ मुख काटते श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल उतावले वहीं आये, जहां बांधव प्राणरहित शयन कर रहे थे॥ १७॥ देवकी रोहिणी और वसुदेव, श्रीकृष्ण और बलदेव अपने पुत्रोंके विना देखे शोकसे आतुर हो बेसुध होगये॥ १८॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगसे अत्यन्त आतुर हो वहां ही प्राण छोड दिये और अपने अपने पतियोंसे मिलकर स्त्रियाँ चितामें प्रवेश करगईं ॥ १९॥

बलदेवजीकी स्त्री बलदेवजीके देहको आलिंगन कर चितामें प्रवेश कर गई और वसुदेवकी स्त्री वसुदेवसे श्रीकृष्णकी पुत्रवधू प्रद्युम्न आदि अपने २ पतियोंसे मिलकर रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी स्त्री श्रीकृष्णमय हो अग्निमें प्रवेश करगईं॥२०॥ अर्जुनने अपने परमप्रिय सखा श्रीकृष्णचन्द्रके विरहसे आतुर होनेपर भी सच्ची मुक्ति देनेवाले भगवान्के वचनोंका स्मरण करके उसने अपने आत्माको सांत्वना दी॥ २१ ॥ जिनकी संपत्ति नाशको प्राप्त हुई और आप भी नाशको प्राप्त हुए, इन बांधवोंका अर्जुनने पिंडदान, तर्पण आदि कार्य विधिपूर्वक क्रमसे किया ॥ २२ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इसके उपरांत श्रीयुत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मंदिरको छोड़कर श्रीकृष्णसे त्यागी सम्पूर्ण द्वारकाको समुद्रने क्षणभरमें डुब

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ॥ वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥२०॥ अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं सांत्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बंधूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् ॥ हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम्॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान्धनञ्जयः ॥ इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राऽभ्यषेचयत्॥२५॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ॥ कीर्त्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२७ ॥

दिया ॥ २३ ॥मंदिर बचानेका कारण है कि, भगवान् मधुसूदन वहां नित्य विराजते हैं और वह मंदिर कैसा है कि, जिसका स्मरणमात्र करनेसे ही सम्पूर्ण अमंगल नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥२४॥ मरनेसे बचे हुए स्त्री, बालक, वृद्धको अर्जुनने लेकर इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश कराय वहां वज्रका अभिषेक किया ॥ २५॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परमभागवत परीक्षित् ! तुम्हारे पितामह पांडव अर्जुनके मुखसे सुहृदोंका वध सुनकर तुमको वंशधारी समझ महाप्रस्थानको चले गये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासहित देवदेव भगवान् विष्णुके जन्म और

कर्मोंको सुनैंगे अथवा कहैंगे,वह संपूर्ण पापोंसे छूट जायँगे॥२७॥इस प्रकार इस ग्रन्थमें और दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णन कियेहुए परममंगल भगवान् वासुदेवके सुन्दर अवतारोंके चरित्र जो मनुष्य कहैंगे सो परमहंसोंके शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त होंगे *॥२८॥

इत्थं हरेर्भगवतोरुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ॥ अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदन्तर्द्धानं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयं श्रीमद्भागवतस्यैकादशः स्कन्धः ॥

1900

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां भा० टी० श्रीकृष्णपरिवारनिर्यापणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

* भजन–जनप्रतिपाल दयाल दयानिधि क्यों चितवत नहिं ओर हमारी। कीजै कृपा जान जन हमपर हे व्रजेश गोपाल मुरारी। जबसे सत शिक्षा हम त्यागी। बुधिबल औ सुख सम्पति भागी। पीछे विपति अविद्या लागी। निशिदिन देत रहत दुख भारी॥ १ ॥ कुमति कलह घटघटमें छाई। शुभगुण सुमति समूल नशाई। करत परस्पर द्वेष बुराई। हानिलाभ नहिं तनक विचारी॥२॥ हम सब तुम्हरी ओर निहारैं। त्राहि त्राहि दिन रात पुकारैं। तुम विन जाको जाय जुहारैं। एसो को भक्तन हितकारी ॥ ३ ॥ वेग जननकी ओर निहारो। कलह कुमतिकी मूल उखारो। दारिद दुर्गुण दुर्ग बिदारो। दुष्टदलन दीनन दुखहारी ॥ ४ ॥ नाथ विनय मम स्वीकृत कीजै। विद्यादान दया कर दीजै। चरण शरणमें हमको लीजै। लाग रही दृढ आश तुम्हारी।

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम्। संवत १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥

पुस्तकालय, मुमुक्षु भवन, काशी

॥ अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते द्वादशस्कन्धप्रारम्भः ॥

द्वादशस्कंधः

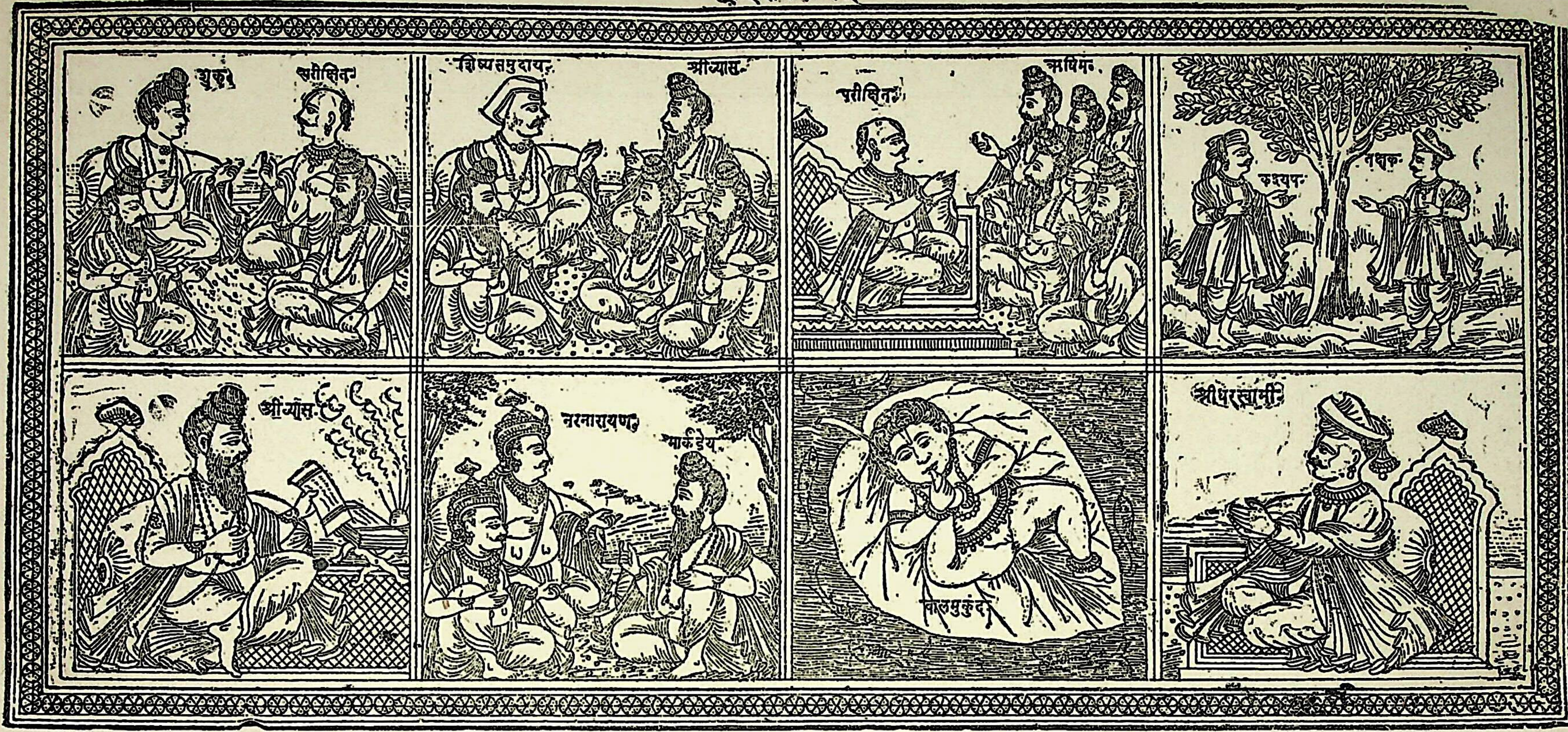
शुकः
परीक्षितः
शिष्यसमुदाय
श्रीव्यास
परीक्षितः
ऋषिगः
कश्यप
तक्षक
श्रीव्यास
नरनारायण
मार्कंडेय
बालमुकुंद
श्रीधरस्वामी

श्रीगणेशाय नमः॥दोहा—आदि ब्रह्म अद्वैत अज, अविनाशी अविकार।श्रीमुकुन्द गोविन्दपद,भज मन वारंवार॥ १ ॥कबित्त—काहूको सहारो है भवानी राजरानीजूको,काहूको सहारो गिरिजाजूके पियारेको। काहूको सहारो अहै काली विकरालीजूको, काहूको सहारो भूतनाथ बैलवारेको ॥ काहूको सहारोकाल भैरो हनुमानजीको,काहूको सहारो है पूरण नाथद्वारेको।जाने गिर धारो औ उबारो व्रजशालिग्राम,मोहिं तो सहारो वाहीनन्दके दुलारेको॥१॥काहूकी उमा रमा त्यों शारदामें बड़ी प्रीति,काहूको भवानी और लक्ष्मीमें मन है।काहूको गणेश औ महेशमाहिं लागो चित्त,काहूकेर इष्ट देव पानी औ पवन है ॥ काहूकेर ध्यान हनुमान और भैरवको, काहूकेर पूज्य शम्भुपुत्र गजानन है। काहूकेर शालिग्राम रामनाम सुखमूल, मेरे तो केवल एक राधाजूही धन है ॥ २ ॥ सोरठा—जय व्रजचन्द मुकुन्द, आनँदनिधि ऋधि सिधि भवन ॥ जय वृन्दावनचन्द, नन्दसुवन

श्रीकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच ॥ स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ योऽन्त्यः पुरंजयो नाम भाव्यो बार्हद्रथो नृप॥ तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ २ ॥ विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ नंदिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे॥३॥अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यंति पृथिवीं नृपाः॥शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः॥ क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ४ ॥

१२०२

त्रिभुवनपति॥१॥ दोहा—अहै प्रथम अध्यायमें,भावी मागध वंश। धरा भोग करिहै सविधि,सो वर्णब विनशंस॥१॥ राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे मुने।यदुकुलके भूषणरूप श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद जब अपने परमधामको चले गये तब पृथ्वीपर आगेको किसका वंश चला ? यह मुझको समझाकर कहो॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बृहद्रथके कुलके अन्तमें पुरञ्जय नाम राजा होगा,जिसका वर्णन प्रथम नवम स्कन्धमें आपको सुना चुका हूँ,उसका मन्त्री शुनक पुरञ्जयको मारकर प्रद्योतनाम अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बैठावेगा, उसके पालक नाम पुत्र होगा ॥२॥उसके विशाखयूप नामक पुत्र होगा,उसके राजक नाम एक पुत्र होगा राजकके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा,यह पांच राजा प्रद्योतन नामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ३ ॥ और एक सौ अड़तीस (१३८) वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करैंगे, उनके पीछे शिशुनाग नाम राजा होगा, उसके काकवर्ण

नाम राजा होगा, काकवर्णके क्षेत्रधर्मा नाम पुत्र होगा, उसके क्षेत्रज्ञ नाम पुत्र उत्पन्न होगा॥४॥क्षत्रज्ञके विधिसार नाम पुत्र उत्पन्न होगा,उसके अजातशत्रु नाम पुत्र होगा, उसके दर्भक नाम पुत्र होगा,उसके अजय नाम पुत्र होगा॥५॥अजयके नन्दिवर्धन नाम पुत्र होगा, उसके महानंद नाम पुत्र होगा. हे कुरुवंशभूषण।यह शिशुनागादिवंशी दश राजा तीनसौ साठ (३६०) वर्षतक कलियुगमें राज्यभोग करैंगे ॥ ६ ॥ हे महाराज। महानन्दका पुत्र शूद्रीके गर्भसे बडा तेजस्वी और पराक्रमी॥७॥ महापद्म सेनाका पति नन्दनाम क्षत्रिय वंशका विध्वंस करनेवाला होगा, इस नन्दराजासे लेकर आगेको शूद्रके तुल्य अधर्मी राजा होंगे॥८॥सो यह नंद पृथ्वीपर एक महाछत्रधारी राजा होगा और कोई संसारमेंउसकी अज्ञाको उल्लंघन न करैगा, मानो क्षत्रियोंका मानभंग करनेमें दूसरा परशुराम होगा ॥९॥ उस नन्दराजाके सुमाल्यादिक आठ पुत्र होंगे, वह सब राजा होकर सौ(१००)वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करैंगे॥१०॥अपने अनुगत उन नवो नन्दराजाओंको कोई एक चाणक्य नाम ब्राह्मण मारेगा, तिनके मरणोपरांत कलियुगमें मौर्य नाम राजा पृथ्वीका राज्य करैगा ॥ ११ ॥ फिर वही नवनंदका मारनेवाला चाणक्य नाम ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्यको राजसिंहाठासन पर बैठेगा, उस चन्द्रगुप्तके वारिसार नाम पुत्र होगा, उसके अशोकवर्द्धन नाम पुत्र होगा॥१२॥अशोकवर्द्धनके सुयशा

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ॥ दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ५ ॥ नंदिवर्धन आजेयो महानंदिः सुतस्ततः ॥ शिशुनागो दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ६ ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः॥ महानंदिसुतो राजञ्छूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ७ ॥ महापद्मपतिः कश्चिन्नंदः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ततो नृपा भविष्यंति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ८ ॥ स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लंघितशासनः ॥ शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ ९ ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यंति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ॥ य इमां भोक्ष्यंति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ १० ॥ नव नंदान्द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ॥ तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यंति वै कलौ ॥ ११ ॥ स एव चंद्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ तत्पुत्रो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १२ ॥ सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशाः सुतः ॥ शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १३ ॥

नाम पुत्र होगा, उसके संगत नाम पुत्र उत्पन्न होगा, संगतके शालिशूक नाम पुत्र होगा उसके सोमशर्मा नाम पुत्र होगा ॥ १३ ॥ सोमशर्माके शतधन्वा पुत्र होगा, उसके दूसरा बृहद्रथ पुत्र होगा यह दस मौर्यवंशी राजा कलियुगमें एकसौ सैंतीस १३७ वर्षतक पृथ्वीपर आनन्द भोगेंगे. हे कौरवकुलमार्त्तण्ड। इन सब मौर्यमें पहले एकसे दश मौर्य होंगे, यह जानने योग्य बात है ॥१४॥ फिर मौर्य वंशके राजा बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको मारकर अपने पुत्र पौष्पमित्रको वहांका राज्यसिंहासन देगा, पौष्पमित्रका पुत्र अग्निमित्र राजा होगा उसका सुज्येष्ठ नाम पुत्र होगा ॥ १५ ॥ सुज्येष्ठका पुत्र वसुमित्र होगा वसुमित्रका भद्रक नाम पुत्र होगा भद्रकका पुत्र पुलिन्द होगा पुलिन्दका पुत्र घोष

शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ॥ मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं
कलौकुरुकुलोद्वह ॥१४॥ अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिंदो भविता सुतः ॥
॥ १५ ॥ ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः ॥ १६ ॥ शुंगा दशैते
भोक्ष्यंति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ ततः काण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप ॥१७॥ शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमा
त्यस्तु कामिनम् ॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ १८ ॥ तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ॥
काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ शतानि त्रीणि भोक्ष्यंति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ १९ ॥ हत्वा काण्वं
सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषणो बली ॥ गां भोक्ष्यत्यंध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः ॥ २० ॥

होगा, घोषका पुत्र वज्रमित्र होगा वज्रमित्रका पुत्र भागवत होगा, भागवतका पुत्र देवभूत होगा॥ १६॥ यह दश शुङ्गा राजा कहाये जायँगे और दशो राजा एक सौ बारह ११२ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेंगे, हे कुरुकुलभूषण। इन सबमें शुङ्गा नाम राजा पहिले होगा, हे नरेन्द्र। फिर यह भूमि अल्पगुणवाले कण्व नाम राजाओंके अधीन रहेगी॥ १७॥ देवभूति नाम शुंगाका मन्त्री बड़ा बुद्धिमान् वसुदेव नाम होगा सो परस्त्रीगामी देवभूति शुंगाको मारकर आप ही राज्य करेगा, उसके भूमित्र पुत्र होगा भूमित्रके नारायण नाम पुत्र होगा ॥ १८ ॥ नारायणके सुशर्मा नाम पुत्र होगा यह कण्ववंशी चार राजा कलियुगमें तीन सौ पैंतालीस ३४५ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेंगे॥ १९॥ सुशर्माका कोई महानीच चाकर

1203

शूद्रजाति असत्तम बली नाम कण्ववंशी सुशर्माको मारकर कुछेक वर्षतक आप पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ २० ॥ फिर उसके पीछे उस बली नाम राजाका भ्राता कृष्णनाम पृथ्वीका पति होगा, उसके श्रीशांतकर्ण नाम पुत्र होगा, श्रीशांतकर्णके पौर्णमास नाम पुत्र होगा, ॥ २१ ॥ उसके लम्बोदर नाम पुत्र होगा, लम्बोदरका पुत्र चिविलक होगा चिविलकके मेघस्वाति नाम पुत्र होगा, उसके अटमान नाम पुत्र होगा ॥ २२ ॥ अटमानके अनिष्टकर्मा नाम पुत्र होगा उसके हालेय नाम पुत्र होगा, हालेयके तलक नाम पुत्र होगा, तलकके पुरीषभीरु नाम पुत्र होगा, उसके सुनन्दन नाम पुत्र होगा ॥२३॥ सुनन्दनके चकोर नाम तनय होगा, चकोरके नवमा शिवस्वाति नाम पुत्र होगा, हे रिपुदमन ! उसके

कृष्णनामाऽथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ॥ श्रीशांतकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ लंबोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिविकलो नृपः ॥ मेघस्वातिश्च विकलादटमानस्तु तस्य च ॥ २२ ॥ अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ॥ पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २३ ॥ चकोरो नवमो यत्र शिवस्वातिररिंदम ॥ तस्यापि गोमती पुत्रः पुरीमान्भविता ततः॥२४॥ मेदः शिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ॥ विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २५ ॥ एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ॥ षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यंति कुरुनन्दन ॥२६॥ सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ॥ कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यंति च लोलुपाः ॥२७ ॥ ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ॥ भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ २८ ॥

गोमती नाम पुत्र होगा, गोमतीके पुरीमान् नाम पुत्र होगा ॥ २४ ॥ उसके मेदशिरा नाम पुत्र होगा, मेदशिराके शिवस्कन्द नाम पुत्र होगा, ताके यज्ञश्री नाम पुत्र होगा, यज्ञश्रीके विजय नाम पुत्र होगा. उसके चन्द्रविज्ञ नाम पुत्र होगा और उसके सलोमधि नाम पुत्र होगा ॥ २५ ॥ हे कुरुनन्दन ! यह तीस राजा चारसौ छप्पन (४५६) वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ २६ ॥ इसके उपरांत आवभृति नाम नगरीमें सात आभीर जातिके राजा होंगे, उनके फिर दश गर्दभ नाम राजा होंगे, उनके उपरान्त कंक जातिके सोलह राजा महालोभी होंगे ॥ २७ ॥ उनके पीछे आठ यवन राजा होंगे, उनके पीछे चौदह तुरुष्क (तुरक, तुरकिस्तानके वासी राजा होंगे) फिर दश गुरण्ड (अंगरेज, इंगिलस्तान निवासी)

राजा होंगे, उनके पीछे ग्यारह मौन राजा होंगे ॥ २८ ॥ यह सब राजा एक सहस्र निन्यानवे १०९९ वर्ष क पृथ्वीपर राज्य करैंगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ग्यारह मौन राजा तीनसौ ३०० वर्षतक पृथ्वीका भोग करैंगे, उनके मरनेके पीछे किलकिला नगरमें भूतनन्द नाम राजा होगा, उसके पीछे वंगिर नाम राजा होगा ॥ ३० ॥ फिर उसके पीछे उसका भाई शिशुनंदि और शिशुनंदिके पीछे यशोनंदि यशोनन्दिके पीछे प्रवीरक, यह सब राजा एकसौ छः १०६ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करैंगे ॥३१॥ इस शिशुनंदिके तेरह पुत्र होंगे और वह सब बाह्लीक ही कहलावेंगे और आनन्दपूर्वक पृथ्वीका राज्य करैंगे, फिर और एक दूसरा पुष्पमित्र नाम राजा होगा, उसके दुर्मित्र नाम पुत्र होगा ॥ ३२ ॥ फिर सात तो

एते भोक्ष्यंति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ॥ नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥२९॥ भोक्ष्यंत्यब्दशतान्यंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः॥किलिकिलायां नृपतयो भूतनंदोऽथ वंगिरिः॥३०॥शिशुनंदिश्च तद्भ्राता यशोनंदिः प्रवीरकः॥ इत्येते वै वर्षशतं भविष्यंत्यधिकानि षट् ॥३१॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ॥ पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ॥३२॥ एककाला इमे भूपाः सप्तांध्राः सप्त कौशलाः ॥ वैदूरपतयो भाव्या नैषधास्तत एव हि ॥३३॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः ॥ करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिंदयदुमद्रकान् ॥३४॥ प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥ वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥ अनुगंगामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यंति मेदिनीम् ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रावंत्यभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः ॥ व्रात्या द्विजा भविष्यंति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३६ ॥

१२०१

अंध्र, सात कौशल और एक वैदूर्य नगरका नरेश नैषध यह सब खण्ड मण्डलेश्वर राजा एक ही समयमें होंगे ॥ ३३ ॥ फिर मगध देशमें विश्वस्फूर्जित पुरंजय नाम राजा होगा, सो बडा पराक्रमी विदुर्मति होगा और ब्राह्मण आदि चारो वर्णोंको धर्मसे भ्रष्ट करके पुलिन्द, यदु और मद्रक म्लेच्छके तुल्य कर देगा ॥ ३४ ॥ और जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य न हों ऐसी नीच प्रजाको स्थापन करैगा, यह वीर्यवान् पुरंजय क्षत्रियोंका विध्वंस करके पद्मावती नाम पुरीमें वसकर हरद्वारसे लेकर प्रयागतक राज्य करैगा ॥ ३५ ॥ सोराष्ट्र देश, उज्जैन, आभीर, शूर, अर्बुद, मालवादेशनिवासी द्विज अर्थात् तीनों वर्ण यज्ञोपवीतक्रिया न करके संस्कारहीन हो जायँगे और राजा भी शूद्रके समान काम करने

होंगे॥३६॥सिन्धु नदीसे लेकर चन्द्रभागा नदीके किनारेतक और कौंतीपुरी काश्मीर आदि सब देशोंमें शूद्र क्रियाहीन म्लेच्छप्राय वेद मर्यादा रहित तेजहीन राजा होंगे ॥७॥ हे राजन् । यह सब एक ही कालमें म्लेच्छप्राय अधर्मी, असत्यपरायण, अल्पदाता, महाक्रोधी ॥३८॥ स्त्री,बालक,गो, ब्राह्मणको मारनेवाले, परनारी पराये द्रव्यके हरनेवाले उत्पन्न होंगे और मरेंगे, अल्प पराक्रम अल्प आयुर्बलवाले होंगे ॥३९॥ गर्भाधान आदिक संस्कारोंसे रहित, सन्ध्या तर्पणादि क्रियाओंसे हीन, रजोगुण तमोगुणसे आवृत, म्लेच्छ राजाओंका रूप धारण किये प्रजाको अनेक अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले होंगे ॥ ४० ॥ इन पालनेवाले राजाओंके सब देश उन राजाओंके भाव और आचरणको और

सिंधोस्तटं चंद्रभागां कौंतीं काश्मीरमंडलम् ॥ भोक्ष्यंति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३७ ॥ तुल्य
काला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ॥ एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥३८॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदार
धनादृताः ॥ उदितास्तमितप्राया अल्पसत्वाल्पकायुषः ॥३९॥ असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः ॥ प्रजास्ते
भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४० ॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥ अन्योन्यतो राजभिश्च
क्षयं यास्यंति पीडिताः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वाद० कलौ भाविनृपान्वय० प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ कालेन बलिना राजन्नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतीः ॥ १ ॥
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ॥ धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

अपवाद करनेवाले लोगोंको परस्परके क्लेशोंसे और राजाओंके किये हुए दुष्ट कर्मोंसे दुःखी होकर क्षयको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां राजवंशवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दोहा–दुसरे जब कलिकालको, बढ़ै दोष अत्यन्त । तब हरि कल्की रूप धर, मारहिं दुष्ट असन्त॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजो बोले कि, हे राजन् । इसके उपरान्त फिर महाबलवान् कालके प्रभावसे दिनपर दिन धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल, स्मरण आदि घटता चला जायगा ॥ १ ॥ कलियुगके विषे जिस पुरुषके पास धन होगा, वही बलवान्, गुणनिधान, आचारवान् और बुद्धिमान् कहलावेगा और जो महाबलवान् होगा, वही धर्माध्यक्ष और न्यायशाली हो

सबको जीतेगा ॥ २ ॥ रीति प्रीति केवल एक स्त्री और पुत्रमें ही रहेगी और सुहृद,मित्र, कुल, गोत्रादिकमें कपट व्यवहार रह जायगा. स्त्री, पुरुष होनेमें कुछ श्रेष्ठ कुल आचार विचार न होगा,केवल रति करनेमें कुशल देखलेंगे और ब्राह्मणपनमें केवल जनेऊ मात्र ही रह जायगा॥३॥ आश्रम चिह्नमात्र ही करके पहिचाने जायँगे, परस्पर स्नेह कहीं नहीं रहेगा, धनहीन न्यायमें नित्यप्रति हारते ही रहा करेंगे, क्योंकि न्यायाध्यक्ष जबतक धनपात्रोंसे द्रव्य पाते रहेंगे तबतक धनहीनको हराते ही रहा करेंगे और अधिक बोलनेवालेको ही लोग पंडित कहेंगे ॥ ४ ॥ निर्धनोंका नाम लोग असाधु रक्खेंगे, दम्भवान् और कपटीको ही लोग साधु कहेंगे, विवाह स्वीकारमात्र ही समझा जायगा और स्नान ही सब शृंगार मात्र होगा ॥ ५ ॥ जो ताल वा सरोवर दूर होगा, वही तीर्थ माना जायगा, माता, पिता और गुरुको कोई तीर्थ नहीं मानेंगे, सब

दांपत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ॥ स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिंगमेवाश्रमख्यातावा
न्योन्यापत्तिकारणम् ॥ अवृत्त्यां न्यायदौर्बल्यं पांडित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥ अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दंभ एव
तु ॥ स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्ये केशधारणम् ॥ उदरंभरिता स्वार्थः
सत्यत्वे धाष्ट्र्यमेव हि ॥ ६ ॥ दाक्ष्यं कुटुंबभरणं यशोर्थं धर्मसेवनम् ॥ एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमंडले ॥७॥
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ प्रजा हि लुब्धे राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा
यास्यंति गिरिकाननम् ॥ शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥

120

शिरपर बाल रखना यही सुन्दरता कहावेगी, जैसे तैसे पेट भर लेना परम चतुरता और पराक्रम गिना जायगा और ढीठ पुरुष ही सत्यवादी कहलावेंगे ॥ ६ ॥ कुटुम्बका उदरपूर्ण करना ही स्यानपन और चतुराईका मूल समझा जायगा, धर्मका सेवन केवल इसी लिये किया जायगा जिससे संसारमें यश हो,इस प्रकार जब सर्वत्र भूमण्डल प्रजाओंसे व्याप्त हो जायगा ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इनमें जो बली होगा वही भूपाल कहा जायगा, लोभी, निर्दयी, लुटेरोंसे और राजाओंसे ॥ ८ ॥ अपना स्त्री, धन छीन लेनेके भयसे सब प्रजा भागकर पर्वतोंमें, वनोंमें जा छिपैगी और वहां शाक, कन्दमूल, फल, मधु, मांस, पुष्प, बीज इनसे अपना उदर पूर्ण करैगी ॥ ९ ॥

अकाल और राजाओंके दण्डसे कष्ट पाकर अनावृष्टि, शीत, वायु, धूप, वर्षा और हिमसे परस्पर अत्यन्त पीडित हो क्लेश पाकर सम्पूर्ण नष्टहो जायगा ॥ १० ॥ भूख,प्यास, रोग, संताप और चिन्तासे प्रजा अत्यन्त पीडित हो जायगी और मनुष्योंकी पूर्ण अवस्था कलियुगमें बीस २० अथवा तीस ३० वर्षकी हुआ करैंगी ॥ ११ ॥ जब कलियुगका महादोष बढैगा तब प्राणी तनु क्षीण और महामलीन हो जायँगे ॥ १२ ॥ धर्मके बदलेमें पाखण्ड ही पाखण्ड रह जायगा,राजा लुटेरे होंगे,वृथा हिंसा और बात बातमें झूंठ बोलकर नाना प्रकारकी वृत्तियोंको करैंगे और सदा बुरे कामोंमें निष्ठा रहैगी ॥१३॥ सब वर्णाश्रम शूद्रके सदृश हो जायँगे और गायें बकरीके समान छोटी छोटी होंगी, चारो

अनावृष्ट्या विनंक्ष्यंति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतापेन च चिंतया ॥ त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥११॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः॥ वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाखंडप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ॥ गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बंधुषु ॥१४॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ॥ विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥ इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ॥ धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति॥ १६ ॥ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः॥ धर्मत्राणाय साधूनां जन्मकर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥

आश्रम गृहस्थप्राय हो जायँगे और स्त्रीके भाइयोंसे लोग प्यार करैंगे और घरको सम्बन्ध मात्र मानैंगे ॥ १४ ॥ अन्न और औषधियें सब क्षीण हो जायँगी, वृक्षोंमें प्रायः केवल शमीके वृक्ष ही रह जायँगे, वर्षाकालमें बिजली अधिक चमकेगी वर्षा बहुत थोडी हुआ करैंगी, गृहस्थियोंके घर धर्मकर्मसे शून्य हो जायँगे ॥ १५॥ इस प्रकार कलियुगमें सब मनुष्य अधर्मी हो गधेके समान हो जायँगे और महाभयंकर कलियुगके अन्तका समय आवेगा, तब धर्मकी रक्षा करनेके लिये आदिपुरुष भगवान् शुद्ध सतोगुण मूर्ति धारण करके निष्कलंकरूपसे प्रगट होंगे ॥ १६ ॥ चराचरके गुरु सबके आत्मा ईश्वर विष्णुका अवतार महात्मा पुरुषोंके धर्मकी रक्षा और उनके कर्मोंके प्रचारके लिये

होगा ॥ १७ ॥ उस विष्णुयशा ब्राह्मणके घरमें चैत्र शुक्ला द्वादशीको विष्णु भगवान् कल्कि अवतार धारण करेंगे उसी समय देवतालोग अत्यन्त शीघ्रगामी देवदत्त नाम एक घोडा लेकर उनके सम्मुख उपस्थित होंगे, भगवान् उस घोड़ेपर चढ़कर खड्ग हाथमें ले दुष्टोंके दमनकर्त्ता अणिमादिक अष्टसिद्धियोंसे संयुक्त ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ जगदीश्वर अनुपम कांतिवाले महातेजस्वी कल्किरूपसे राजाओंकासा वेष धारण किये उस घोड़ेपर चढ़ करोडों चोरोंका विध्वंस करेंगे ॥ २० ॥ जब सब चोरोंका संहार हो जायगा तब देश देशांतरके मनुष्योंके अतिपुण्यरूप सुगंधयुक्त पवनके लगनेसे उन मनुष्योंके मन उज्ज्वल हो जायँगे ॥ २१ ॥ और उन नगरनिवासियोंके हृदयमें शुद्ध चैतन्य

शंभलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुग
मारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ॥ असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥ विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिम
द्युतिः ॥ नृपलिंगच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥ अथ तेषां भविष्यंति मनांसि विशदानि वै ॥ वासु
देवांगरागातिपुण्यगंधानिलस्पृशाम् ॥ पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः
1206 संभवियषति ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्त्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥ यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ॥ कृतं
भवियषति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३ ॥ यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥ एकराशौ समेष्यंति
तदा भवति तत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यंति च पार्थिवाः ॥ ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोम
सूर्ययोः ॥ २५ ॥ आरभ्य भवतो जन्म यावन्नंदाऽभिषेचनम् ॥ एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ॥ २६ ॥

सत्त्वमूर्त्ति भगवान् वासुदेव स्थित होंगे तो उन प्रजाओंके पुत्रादिक उत्तम और पुष्ट होंगे ॥ २२ ॥ जब धर्मके पालनेवाले कल्कि भगवान् प्रकट होंगे तब सतयुग वर्त्तने लगेगा और प्रजाकी सन्तान सात्त्विकी होगी ॥ २३ ॥ जब चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति यह सब पुष्य नक्षत्रके योग करके एक राशिमें आवेंगे तब सतयुग होगा ॥ २४ ॥ जो चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं और जो इस समय विद्यमान हैं तथा आगेको होंगे, उन सबके नाम संक्षेपसे भिन्न भिन्न मैंने आपको सुनाये ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्मसे लेकर नन्दके राज्यतक पन्द्रह सौ दश १५१० वर्ष

बीत गये॥२६॥आकाशमें सप्त ऋषियोंके मध्य जो दो तारे पुलह और ऋतु पहले दीखते हैं उन दोनोंके मध्यमें रात्रिके समय दोनोंको समान रखदेनेवाले ॥ २७ ॥ अरुन्धतीके नक्षत्रसहित सप्तऋषि मनुष्योंके १०० वर्षतक प्रत्येक नक्षत्रपर रहा करते हैं, अर्थात् जैसे चंद्रमा एक नक्षत्रपर एक दिवस रहता है उसी प्रकार सप्तऋषि सौ १०० वर्षके अनुमान एक नक्षत्रपर रहते हैं, यही सप्तऋषि तुम्हारे जन्मके समय मघा नक्षत्रपर थे और इस समय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥२८॥ कलियुगके आनेका समय ठीक ठीक इस प्रकार निश्चय किया है कि; जब महातेजस्वी शुद्ध सत्त्वमूर्त्ति श्रीकृष्ण भगवान् अपने परमधामको सिधारे, उसी समय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, जिस कलियुगके

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ॥ तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥२७॥ तेनैव ऋषयो युक्त
स्तिष्ठंत्यब्दशतानि च ॥ ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥२८॥ विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ
दिवं गतः ॥ तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ॥
तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रांतुं न चाशकत ॥३०॥ यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरंति हि ॥ तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वाद
शाब्दशतात्मकः॥ ३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यंति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥ तदा नंदात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥
॥ ३२ ॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥ प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

आते ही मनुष्योंकी पापमें रुचि हुई ॥ २९ ॥ हे राजन्। जबतक रमापति भगवान् अपने चरणारविन्दोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए इसपर विराजमान रहे तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना कुछ कर्तव्य न कर सका ॥ ३० ॥ जबसे मघा नक्षत्रमें सप्तऋषि वर्तमान होते हैं तभीसे प्रवृत्त होकर देवताओंके बारह सौ १२०० वर्षतक कलियुग रहता है ॥ ३१ ॥ अब सप्तऋषि मघा नक्षत्रसे निकल पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायँगे तब नन्दका राज्य वर्त्तेगा और उसी नन्दके राज्यसे कलियुगका अत्यन्त प्रताप बढेगा ॥ ३२ ॥ जिस दिनसे जिस मुहूर्त्तसे जिस क्षणसे श्रीकृष्ण भगवान् अपने परमधामको सिधारे उसी दिन और उसी समय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, ऐसे भूतकालके

जाननेवाले ऋषि लोग कहते हैं ॥ ३२ ॥ जब देवताओंके एक सहस्र १००० वर्ष व्यतीत हो जायँगे, जो कलियुगका प्रमाण है, फिर पीछे सतयुगका प्रवेश होगा और सतयुगके आनेका यही लक्षण दिखाई देगा कि, मनुष्योंके मनमें आपसे आप आत्माका प्रकाश हो जायगा ॥ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार पृथ्वीपर मनुका वंश हुआ और आपसे कहा, इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंका वंश युग युगमें जाननेके योग्य है॥ ३५ ॥जो आजतक नाममात्रसे ही जाने जाते हैं, उन जाननेवालोंकी केवल कथामात्र ही कहनेको रह गई है, ऐसे महात्मा पुरुषोंकी कीर्त्ति ही संसारमें आजतक चली जाती है, वह लोग पृथ्वीपर न रहे. इसलिये प्राणियोंको चाहिये कि, राज्य और पुत्रादिकी मोह

दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ॥ भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो
वंशो यथा संख्यायते भुवि ॥ तथा विट्छूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगेयुगे ॥ ३५ ॥ एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां
महात्मनाम् ॥ कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥ देवापिः शंतनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ॥
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरंते वासुदेवानुशिक्षितौ ॥ वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्
प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्त्तते ॥ ३९ ॥
राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वांते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

ममताको त्यागकर अपने धर्म कर्ममें तत्पर रहैं ॥ ३६ ॥ चन्द्रवंशी शन्तनुका भ्राता देवापि और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी राजा मरु यह दोनों राजा अत्यन्त योगबलके प्रतापसे कलाप ग्राममें वास करते है ॥ ३७ ॥ यह दोनों राजा कलियुगके अन्तमें भगवान्की शिक्षा पाकर पहलेके समान सब वर्णाश्रम धर्मोंका विस्तार करेंगे ॥ ३८ ॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग यह चारो युग इसी क्रमसे पृथ्वीपर मनुष्योंके विषे वर्त्तते रहते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! यह जो राजा मैंने आपके आगे वर्णन किये, इनके सिवाय और भी जो हुए सो सब इस भूमिमें ममता करके और इसको यहीं छोड़कर आप रीते हाथों नाशको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥ जिस देहका नाम राजा था

इसी देहके अन्त समय कृमि, विष्ठा, खाक यह नाम हुए, ऐसे शरीरसे जो कोई शरीरधारी दूसरेसे द्रोह करते हैं, उनका कौनसा स्वार्थ सिद्ध होता है ? नरकमें वास करनेके सिवाय कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता॥ ४१ ॥ किस प्रकार इस अखण्ड भूमिको हमारे पूर्वपुरुषोंने पाली थी और अब किस प्रकार हमारे पुत्र पौत्रों और वंशजोंके पास स्थिर रहेगी ? ॥ ४२ ॥ वह मूर्खलोग पञ्चभूतमय इस देहको अपना मानकर भूमिमें ममता कर अन्तसमय दोनोंको छोड़कर आप अकेले ही गये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जो जो भूपति हो अपने पराक्रमसे भूमिका भोग करते रहे, इस महाविकराल कालने उन सबकी भी कथामात्र ही शेष रक्खी ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे

कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽन्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥४१॥ कथं सेयमखंडा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ॥ मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य च ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः॥ महीं ममतया चोभौ हित्वांतेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ येये भूपतयो राजन्भुंजंति भुवमोजसा । कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वा० कल्क्यवतारादि० द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ श्रीशुक उवाच ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥ अहो मां विजिगीषंति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेन्द्राणां मोहः स्याद्विदुषामपि ॥ येन फेनोपमे पिंडे येऽतिविश्रंभिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमंत्रिणः ॥ ततः सचिवपौराप्तकरींद्रानस्य कंटकान् ॥ ३ ॥

द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां कल्क्यवतारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा–तिसरेमें वसुधावचन, राज्यदोष गुणग्राम । कुलकलंक कलि कालके, मेटन हरिका नाम ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह पृथ्वी अपने जीतनेको परिश्रम करते हुए राजाओंको देखकर मनही मन ठट्ठे मार हँसती है कि, अहो ! यह सब मृत्युके खिलौने राजा मुझको जीतना चाहते हैं, नहीं जानते कि, मेरे समान अनन्त राजा मरकर खप गये ॥ १ ॥ जिस कामनाने बुद्बुदके समान इस देहविषे जिन राजाओंको विश्वास उपजाया, उनकी भी कामना निष्फल हुई ॥ २ ॥ मुख्य तो राजाओंका यह विचार है कि, पहले पांचो इन्द्रिय और छठे मनको जीतकर मन्त्री, प्रधान, सचिव, पुरवासी और

कुटुम्बादिक अपने वशमें करके शत्रुओंकी जडको उखाड़ महाव्रत और कटककी ओरसे बेखटक हो राज्य करेंगे ॥ ३ ॥ और इसी रीतिसे समुद्रतककी भूमिको जीतेंगे, इस प्रकार आशावेष्टित हृदयवाले राजा अपने निकट रात दिनडंका बजानेवाले कालका कुछ ध्यान नहीं करते ॥ ४ ॥ अनेक राजा तो समुद्रके पारतक मुझको अपने पुरुषार्थसे जीतकर अत्यन्त तृष्णासे समुद्रके (देशोंमें) भी प्रवेश करते हैं, इंद्रिय और मनके जीतनेपर राज्य साधनेकी इच्छा करनी मूर्खता है और आत्मजयका फल तो एक मुक्ति ही है ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! वसुधा कहती है कि, देखो ! जो मुझको छोड़कर मनु और मनुकी सन्तान मेरे ऊपर जैसे आये वैसे ही हाथ

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ इत्याशाबद्धहृदया न पश्यंत्यंतिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥ समुद्रावरणां जित्वा मां विशंत्यब्धिमोजसा ॥ कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ॥ गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यंत्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विग्रहः ॥ जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ॥ स्पर्धमाना मिथो घ्नंति म्रियंते मत्कृते नृपाः ॥ ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ॥ मांधाता सगरो रामः खट्वांगो धुंधुहा रघुः ॥९॥ तृणबिंदुर्ययातिश्च शर्यातिः शंतनुर्गयः ॥ भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ॥ नमुचिः शंबरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥

पसारे चले गये, ऐसी अचलाको यह कुबुद्धि राजा युद्धमें जीतना चाहते हैं ॥६॥ देखो ! राज्यकी ममतामें बँधे हुए असत् राजा मेरे लिये पिता, पुत्र, भ्राता यह सब परस्पर भी क्लेश करते हैं ॥ ७ ॥ हे मूढ़ ! यह बसुधा मेरी है, इसमें तेरी किंचिन्मात्र भी नहीं है, यह कहते कहते और परस्पर स्पर्द्धा करते मेरे लिये अनेक राजा युद्ध ही करते करते मर गये ॥ ८ ॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष अर्जुन, भरत, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, धुन्धुमार, रघु ॥९॥ तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, नरकासुर, शम्बर, हिरण्याक्ष, तारक ॥ ११ ॥

ऐसे२अनेक दैत्य और राजा जो कि, बड़े बडे बलवान् और सर्वगुणनिधान, योद्धाओंके पराजय करनेवाले, जिन्होंने कहीं भी हार नहीं मानी, सबही अजित हो गये ॥ १२ ॥ हे समर्थ ! सब मरणधर्मा मेरे विषे अत्यन्त ममता करके वर्त्तते थे सो सब विना ही मनोरथ पूर्ण किये कालके गालमें चले गये. और सबकी एक कथा ही मात्र रह गई ॥ १३ ॥ हे विभो ! लोकोंमें यशविस्तार करके जो परलोकको चले गये, ऐसे बडे बडे राजाओंकी कथा मैंने तुमसे कही, सो केवल विषयोंकी असारता और विज्ञान और वैराग्यका निरूपण करनेके लिये इसमें केवल वाणीका विलास है, कुछ परमार्थ नहीं ॥ १४ ॥ जिस अमंगलके दूर करनेवाले उत्तमश्लोक भगवान्के गुणोंको कवीश्वर लोग

अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ॥ सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्यवर्त्तत कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ॥ कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥ कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ॥ विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः ॥ तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ॥ विधमिष्यंत्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ॥ कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृते प्रवर्त्तते धर्मश्चतुष्पात्तैर्जनैर्धृतः ॥ सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥ संतुष्टाः करुणा मैत्राः शांता दांतास्तितिक्षवः ॥ आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

सदा गाते हैं, जो कोई श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी निर्मल भक्तिको चाहै सो निरन्तर इन गुणोंको सुनै ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित् बोले, हे भगवन् ! हे महामुने ! कलियुगके बडे बडे दोषोंको कलियुगके मनुष्य कौनसे उपायसे दूर कर सकते हैं ! सो तुम हमसे कहो ॥ १६ ॥ और युगोंके धर्मका, प्रलयकल्पका प्रमाण और महात्मा कालरूप विष्णुभगवान्की गति कहो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नरेन्द्र ! सतयुगमें मनुष्योंका धर्म चार चरण करके बर्तें है. सत्य, दया, तप, दान यह धर्मके चार चरण हैं ॥ १८ ॥ सतयुगके मनुष्य सन्तोषी, करुणावान्, सब प्रेम प्रीति

रखनेवाले, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, सहनशील, आत्माराम, समदृष्टि और परमार्थमें निरालस्य युक्त और परिश्रमी होते हैं॥ १९॥त्रेतायुगके विषे झूठ, हिंसा,तृष्णा,विग्रह इन चार अधर्मके चरणोंसे सत्य,दया, तप,दान यह धर्मके चरण हैं,इनमेंसे धीरे धीरे चौथा भाग क्षीण होता जाता है ॥२०॥हे राजन्!क्रिया तपमें निपुण न तो अतिहिंसक और न अत्यन्त लम्पट,धर्म,अर्थ,काममें निष्ठा,वेदत्रयी धर्मपरायण ब्राह्मण वर्ण जिनमें मुख्य त्रेता युगकी प्रजा होतीहै॥२१॥द्वापरयुगमें अधैर्य,हिंसा, झूठ बोलना और द्रोह इन धर्मके चार चरणोंसे दया,तप,सत्य,दान यहधर्मपद आधे आधे घटगए॥२२॥इससे द्वापर युगमें यशस्वी,बडे शीलवान्,वेदाध्ययनमें निपुण, अति ऐश्वर्यवाले,कुटुम्बी, प्रसन्नमुख ब्राह्मण और क्षत्रिय

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ॥ अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥२०॥ तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लंपटाः ॥ त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ॥ हिंसातुष्टयनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ॥ आढ्याः कुटुंबिनो हृष्टाः वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ॥ एधमानैः क्षीयमाणो ह्यंते सोऽपि विनंक्ष्यति ॥२४॥तस्मिल्लुँब्धा दुराचारा निर्दया शुष्कवैरिणः ॥ दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यंते पुरुषे गुणाः । कालसंचोदितास्ते वै परिवर्तंत आत्मनि ॥ २६ ॥ प्रभवंति यदा सत्त्वे मनोबुद्धींद्रियाणि च ॥ तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥ २७ ॥ यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम ॥ तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

चारो वर्णोंमें मुख्य माने जायँगे ॥२३॥ कलियुगमें जब अधर्मकी वृद्धि होगी तब धर्मका एक चरण रह जायगा। सो भी शनः शनैः अन्तमें नष्ट हो जायगा॥२४॥कलियुगमें लोग लोभी,दुराचारी,निर्दयी,झूँठी लडाई करनेवाले,दुर्भागी,अत्यन्त तृष्णावाले,शूद्र और दास जिनमें मुख्य माने जायँगे॥२५॥सत्त्वगुण,रजोगुण,तमोगुण,यह तीनों गुण ईश्वरके अधीन हैं, कालकरके प्रेरितहैं,प्राणियोंमें सदा फिरते,दिखाई देते हैं॥२६॥ जब मन,बुद्धि और इन्द्रिय सत्त्वगुणमें स्थित होयँ तब सतयुग समझना चाहिये, सतयुगके प्रभावसे ज्ञानमें रुचि होती है॥२७॥ हे बुद्धिमन्

नृप ! जब प्राणियोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें होय तब रजोगुणयुक्त त्रेतायुग जानिये ॥ २८॥ जब लोभ,तृष्णा, अभिमान, दम्भ, मत्सरता और काम्यकर्ममें प्रवृत्ति हो तब रजोगुण तमोगुणका उत्पन्न करनेवाला मुख्य द्वापरयुग समझना चाहिये॥२९॥जबमनुष्योंके मनमें कपट,झूठ,आलस्य, निद्रा, हिंसा,दुःख, शोक, मोह, भय, दीनता होतब तमोगुणका प्रगट करने वाला मुख्य कलियुग जानिये॥३०॥ सो प्राणीकलियुगके हेतुको पाकर मन्दबुद्धि भाग्यहीन बहुत भोजन करनेवाले कामी और निर्धन होंगे और स्त्री असाध्वी और व्यभिचारिणी होंगी॥३१॥देश देशान्तरोंमें चोरोंका बडा भय होगा, वेद पाखण्डसे अत्यन्त दूषित होंगे, राजा प्रजाके लूटनेवाले होंगे, ब्राह्मण स्त्रीलम्पट उदरपरायण होंगे॥३२॥ब्रह्म

यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः॥कर्मणां चापिं काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः॥२९॥ यदा मायान्टतं तंद्रा
निद्रा हिंसा विषादनम् ॥ शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥३०॥यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या
महाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥ दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखंडदूषिताः ॥
राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥३२॥ अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुंबिनः ॥ तपस्विनो ग्रामवासा
न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः ॥३३॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ॥ शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः
॥३४॥पणयिष्यंति वै क्षुद्राः किरीटाः कूटकारिणः ॥ अनापद्यपि मंस्यंते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिं
त्यक्ष्यंति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ॥ भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

चारी व्रत आचारभ्रष्ट होंगे, गृहस्थ भिखारी होंगे, तपस्वी ग्रामवासी होंगे,संन्यासी द्रव्यके लोभी होंगे॥३३॥कलियुगकी नारी अत्यन्त ठिंगनी और बहुत भोजन करनेवाली, काली काली, बहुत सन्तान उपजानेवाली, महानिर्लज्ज, सदा कटुक वचन बोलनेवाली, चोर,ढीठ, कपटकी भरीहुई अनेक प्रकारकी माया दिखानेवाली होंगी ॥३४॥तुच्छ,किरातादि,कपटी, दुराचारी,म्लेच्छ व्यापारी होंगे, आपदा बिना ही सब लोक निन्दित जीविकाको श्रेष्ठ समझेंगे,जिस वृत्तिको सत्पुरुष स्वप्नमें भी धिक्कार करते थे॥३५॥धनहीन उत्तम पतिको भी स्त्री त्यागदेंगी और अपने

स्वामियोंकी नौकरी छोडकर औरोंकी नौकरी करेंगे और नौकर रोगी हो जायँगे तो स्वामी लोभके मारे नौकरीसे हटा देंगे, विना दूधकी गायोंको लोग म्लेच्छोंके हाथबेंच डालेंगे॥ ३६ ॥ पिता, भ्राता, सुहृद और जातिवालोंको छोडकर स्त्रीके सम्बन्धियोंसेप्यार करेंगे और स्त्रीकी बहिन

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ॥ ननांदृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥

(साली) स्त्रीका भ्राता (साला)और उसकी स्त्री (सलेहज)के साथ गुप्त मतकी बातें करेंगे. दीन स्त्री और लम्पट नर कलिमें होंगे.❋ ॥ ३७॥

1210

❋ लावनी–धनि कलियुग महाराज आपने लीला अजब दिखाई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ नीतिपंथ उठगया कचहरी पापन आन लगाई है। धर्म गया पाताल सबके मनमें बेधरमी छाई है॥ गुप्त हुए सच्चे वकील झूठोंकी बात सवाई है। सच्चोंकी परतीति नहीं झूठोंने सनद बनाई है॥ न्याय छोड अन्याय करैंराजोंने नीति गवांई है। हकदारोंका हक्क मेट बेहकपर कलम उठाई है॥ जो जालीहैं फरेबवाले उनकीही बनिआई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥१॥ गूजर जाट बने संन्यासी पोथी बगल दबाई है। मूँड मुँडाकर इक धेलेमें कफनी लाल रँगाई है॥ पन्थ चले लाखों पाखण्डी अद्भुत कथा बनाई है॥ मुँह काला कर लिया किसीने शिरपर जटा रखाई है॥ हुए नीच कुरसीनसीन ऊँचोंको नहीं तिपाई है। जुगनू पहुँचें आसमान पर जाकर दुम चमकाई है॥ फांके करते सन्त मिलैं भडुओंको दूध मलाई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ २ ॥ सास बहूसे लडै बहू भी आँख फेर झुँझलाई है। लेकर मूसल हाथ कोसती दाँत पीस उठधाई है॥ घरवालेको छोडै इस्त्री कुलकी लाज गँवाई है। निजपतिकी सेवा तजकर परपतिसे प्रीति लगाई है॥ पुरुष हुए ऐसे व्यभिचारी विषय वासना छाई है। वेश्याओंके फन्देमें पड घरकी तजी लुगाई है। मात पिताकी करैं बुराई नारि परमसुखदाई है॥ उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ३॥ व्याह बुढापेमें जो करते उनपर गजब खुदाई है। साठ बरसके आप करी कन्याके संग सगाई है॥ कुछ दिन पीछे आप मरगये करके राँड बिठाई है। लगी करन व्यभिचार स्त्री घर घर लोग हँसाई है॥ पण्डित पाधा करैं दलाली मंत्री जिनका नाई है। शर्म रही नहिं बेशर्मोंको बेटी बेचकर खाई है॥ बहन भानजी त्यागन करके साली न्योति जिमाई है।उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है॥ ४ ॥ गंगाजल गोरसको छोडकर गाढी भाँग छनाई है। भक्ष्य अभक्ष्य लगे खाने मदिराकी होति छकाई है॥ श्वशुर बहूको कुदृष्टि देखैं अपनी नियत डुलाई है। ठट्ठा अरु मसखरी करै सासूसे ज्वान जमाई है॥ कहै भतीजा चचासे अपने तू मूरख सौदाई है।हमैं चैन करनेसे मतलब किसकी चाची ताई है॥ बहिन बहिनसे लडैं और लडता भाईसे भाई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥५॥ जामा अंगा दिया त्याग अरु पगडी फाड बहाई है।पहन कोट पतलून शीशपर टोपी गोल जमाई है॥ तोड तख्त अरु सिंहासनको लाके बेञ्च बिछाई है। खीर खाँडको त्यागन करके रोटी डबल पकाई है॥ तोडके ठाकुरद्वारा मसजिद सबकी करी सफाई है। गिरजाघरमें जाकरके ईसाकी करी बडाई है॥ बात करैं सब अंगरेजी में निज भाषा बिसराई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ६ ॥ मित्र शत्रुसम हुए प्रीतिकी डाली तोड जलाई है। विद्याहीन होगये विप्र गायत्री तलक भुलाई है॥ क्षत्रिय बैठे नारी बनकर ले तरवार छिपाई है॥ बन आई ना कुछ बनियासे माया मुफ्त लुटाई है॥ शूद्र हुए धनवान ब्राह्मणोंने कीन्ही स्योकाई है। गयावाल और मथुराके चौबोंकी बात बन आई है॥ चारों युगोंसे कलिने अपनी नई रीति दिखलाई है। उलटा चलनचला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥७॥ अपूज पुजने लगे कहैं सब शिरपर देवी आई है। घर घरमें गुलगुले शेख सद्दोंकी चढी कढाई है॥ परब्रह्मको छोड भूत प्रेतोंकी दई दुहाई है। मूँड हिलाती कहीं मलनियां कहै कुसुम्भी माईहै। बालभोग ठाकुरको नहीं सन्तयदके लिये मिठाई है। सन्तको कम्बल नहीं पतुरियाको कुरती सिलवाई है॥ गुरु हरै चेलोंका धन चेला करता चतुराई है। उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है॥ ८ ॥ बिधवा लग गईं पान चबाने दे सुर्मा मुसकाई है। नित करती शृंगार देखकर अहिवाती शरमाई है॥ बैठे ज्वारी और अगामी हुआ जगत अन्यायी है। सब लक्षण विपरीत और घरघरमें होत लडाई है॥ गाय जायँ लाखों मारी करता नहिं कोइ सुनाई है। इसीसे पडता काल सृष्टिमें संपति सकल बिलाई है॥ हो दयालु हे नाथ आज कलियुगकी महिमा गाई है। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है॥ ९ ॥

शूद्र तपस्वियोंका वेष धारण करके जीविका करगे औरप्रतिग्रह लेंगे और अधर्मी लोगऊंचे आसनोंपर बैठके अपने धर्मका उपदेश करेंगे॥३८॥ हे राजन्! जब पृथ्वी अन्नहीन हो जायगी तब प्राणी अनावृष्टिके भयसे अत्यन्त पीडित और सदा दुर्भिक्ष और राजाओंके करसे क्लेशवान् और अत्यन्त व्याकुल हो जायँगे॥३९॥और वसन,भूषण,खान,पान,स्नान,शयन, मैथुन आदि सुखोंसे हीन दीन पिशाचसे दिखाई देंगे, सब प्रजा कलियुगमें इसप्रकार होजायगी॥४०॥कलियुगमें बीस कौडियोंके लिये मित्रता छोडकर परस्पर लडैंगेऔर इसीकोधन समझकर मरने मारनेको

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यंति तपोवेषोपजीविनः ॥ धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥३८॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः॥निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥ वासोन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यंति कलौ प्रजाः ॥४०॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थेविगृह्य त्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यंति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यंति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यंति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ॥ पुत्रान्सर्वार्थकुशलान्क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥४२॥ कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं त्रैलोक्यनाथानतपादपंकजम् ॥ प्रायेण मर्त्या भगवंतमच्युतं यक्ष्यंति पाखंडविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

उपस्थित होंगे॥४१॥और अपने माता पिताका पालन नहीं करेंगे सब अर्थोंसे निपुण पुत्रकी भी रक्षा न करेंगे, केवल स्त्रीसंग और उदरपूर्ण करके सब प्रजा क्षुद्र हो जायगी॥४२॥ हे महाराज ! सब सृष्टिके परमगुरु और त्रिभुवनके पति जिनके चरणकमलको ब्रह्मादिक देवता नित्य

प्रति नमस्कार करते हैं,ऐसे जगदीश्वर भगवान् अच्युतको कलियुगमें मरनेके समय पाखण्डोंसे दूषित हो बहुत पूजन न करैंगे, कभी रामनवमी नृसिंह चौदश, जन्माष्टमीको भगवान्की पूजा कर लिया करैंगे॥ ४३॥ वा जब मरण समय आतुर होकर अथवा ऊँचेसे गिरकर वा मार्गमें रपटनेके समय विवश होकर कहेंगे कि. हे भगवन् ! ऐसा नाम लेते ही वह मनुष्य कर्मबन्धनसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होंगे परन्तु तो भी उन भगवान्का कलियुगमें लोग पूजन नहीं करैंगे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अब कलिकालके सम्पूर्ण दोषोंके दूर करनेका उपाय आपके सामने वर्णन करता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये, द्रव्य देश शरीरसे उत्पन्न हुए कलियुगके सब दोषोंको पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें स्थित होकर सब दोषोंको हर लेते हैं ॥ ४५ ॥ जो प्राणी परमेश्वरका श्रवण, कीर्तन, पूजन, ध्यान और सत्कार करते हैं,भगवान् उन पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर दशसहस्र जन्मके पापोंको दूर कर देते हैं ॥४६॥ जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होकर और सब धातुओंको मिले हुए मलिनपनको दूर कर देता है ऐसे ही विष्णुभगवान् हृदयमें स्थित होकर सब अशुभ वासनाओंको कलियुगमें दूर करैंगे ॥ ४७ ॥ विद्या अर्थात् अन्यदेवकी उपासना तप, प्राणायाम, मित्रता,तीर्थस्नान, व्रत, दान,जप आदिकके करनेसे वैसा मन शुद्ध नहीं होता, जैसा कि अनन्त भगवान् जब हृदयमें वास करैं तब शुद्ध होता है ॥ ४८ ॥ इसलिये हे राजन् ! आपका मरणसमय निकट आगया है अब तुम सब प्रकारसे सावधान हो वासुदेव भगवान्का हृदयमें ध्यान धरो तब तुम परमगतिको प्राप्त होगे ॥ ४९ ॥

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ॥ विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यंति
न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसंभवान् ॥ सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः
॥ ४५ ॥ श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ॥ नृणां धुनोति भगवान्हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥
यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हंति धातुजम् ॥ एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशुभम् ॥ ४७ ॥ विद्यातपःप्राणनिरो
धमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यः ॥ नात्यंतशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनंते ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वात्मना
राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् ॥ म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

हे राजन्! मनुष्यको चाहिये कि, जिसकी मृत्यु निकट आजाय, वह सर्वाश्रय, सर्वात्मा, सर्वेश्वर भगवान्‌का ध्यान करनेसे आदिपुरुष अविनाशी परमात्माके विषे लय हो जाता है ॥ ५० ॥ हे राजन्! यह महाघोर कलियुग अनेक दोषोंकी खानि है परन्तु इसमें भी एक गुण बडा भारी है कि, इस युगमें केवल परमेश्वरका कीर्त्तन करनेसे ही मनुष्य सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूटकर तीन ही दिनमें श्रीकृष्णचन्द्र आनदकन्दके परमधामको चला जाता है ॥ ५१ ॥ सतयुगमें विष्णुभगवान्‌के ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, त्रेतामें यज्ञोंके करनेसे जो फल होता है, द्वापरमें परिचर्या करनेसे जो फल होता है, वह सब फल कलियुगमें केवल हरिके कीर्तन करनेसेही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भा० टी० कलियुगदोषवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा–नैमित्तिक प्राकृतिक अरु, आत्यन्तिक औ नित्य। चौथे चार प्रकारके, प्रलय कहूँ हरिवित्य ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जो कि, आपने दो प्रश्न किये थे कि, कलियुगका दोष किस उपायसे निवारण होसकता है? और कलियुगमें कौनसा धर्म मुख्य है जो पालना चाहिये? इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर तो मैंने आपसे वर्णन किया, अब प्रलयकालको निरूपण करता हूँ, परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्धतक काल और युगोंके प्रमाण मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ, अब कल्प और प्रलय (सृष्टिका अन्त) का प्रमाण सुनो ॥ १ ॥ हे प्रजापालक! युगोंकी सहस्रचौकड़ीका ब्रह्माका एक दिन होता है, इसीको कल्प कहते हैं, जिसमें चौदह मनु राज्य करतेहैं ॥ २ ॥ फिर अन्तमें चार सहस्र युगवाली ब्रह्माकी रात्रि होती है, इस रातमें इस त्रिलोकीकी प्रलय हो जाती है ॥ ३ ॥

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ॥ आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ॥ कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥ द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० कलिदोषादिव० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्द्धावधिर्नृप ॥ कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥ तदंते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ॥ त्रयो लोका इमे तत्र कल्पंते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

इस प्रलयको विद्वान् लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, इस प्रलयमें विश्वस्रष्टा श्रीनारायण ब्रह्मा सहित त्रिलोकीको अपने उदरमें धारण करके अनन्त भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥ ४ ॥ अब प्राकृतिक प्रलयका वृत्तान्त सुनिये, परमेष्ठी ब्रह्माजीके द्विपरार्द्धका जब अन्त होता है तब महत्तत्त्व अहंकार और पंचतन्मात्रा इन सातो प्रकृतियोंका प्रलय होता है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसलिये इस प्रलयको पंडित लोग प्राकृतिक प्रलय कहते हैं जिस प्रलयमें नाशका कारण प्राप्त होनेसे सातों प्रकृतियाँ और उनके कार्यरूप सब ब्राह्माण्ड भी लय हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जब प्रलय होगा उस समय सौ १०० वर्षतक मेघ नहीं बर्षेंगा, तब सब पृथ्वी अन्नरहित हो जायगी,उस समय सब प्रजा

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ॥ शेतेऽनंतासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥ द्विपरार्द्धे त्वति
क्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ तदा प्रकृतयः सप्त कल्पंते प्रलयाय वै॥ ५ ॥ एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ॥
आंडकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥६॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ॥ तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं
भक्ष्यमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ ७ ॥ क्षयं यास्यंति शनकैः कालनोपद्रुताः प्रजाः ॥ सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवत्तको
रविः ॥ रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥८॥ ततः संवर्त्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः
शून्यान्भूविवरानथ ॥ ९ ॥ उपर्यधः समंताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ दह्यमानं विभात्यंडं दग्धगोमयपिंडवत् ॥
॥ १० ॥ ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ परः संवर्तको वाति धूम्रं खं रजसा वृतम् ॥ ११ ॥

1212

क्षुधासे पीड़ित हो एक एकका भक्षण करने लगेगी. इस प्रकार कालाधीन हो सहज सहजमें सब नाशको प्राप्त हो जायगी ॥ ७ ॥ फिर प्रलय कालका मार्त्तण्ड अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रके और सब शरीरोंके रसोंको खैंच लेगा किञ्चिन्मात्र भी नहीं छोडेगा ॥८॥ फिर संकर्षण भगवान्के मुखमें स्थित लयका जो अग्नि वायुके वेगसे भडककर इस शून्य मण्डलको सातो पाताल सहित जला देगा॥ ९ ॥ फिर ऊपर नीचे सब ओर सूर्यकी मित्राग्निसे जलकर ऐसा शोभित होगा जैसे जलता हुआ उपला(सूखा हुआ गोबर)शोभित होता है॥ १० ॥फिर इसके पीछे प्रल

यकालकी महाप्रचण्ड पवन सौ वर्षतक चलेगी, उस समय आकाश धूरिसें आवृत होकर धूम्रवर्ण हो जायगा ॥११॥ हे अंग ! फिर पीछे विचित्र वर्णवाले अनेक प्रकारके मेघोंके समूह गम्भीर गर्जन शब्द करते सौ१००वर्षतक बरसेंगे; फिर पीछे यह ब्रह्माण्ड टूट फूटकर सब विश्व जलमय हो जायगा॥ १२ ॥ उस समय भूमिका गन्ध गुण जलग्रस्त हुआ सो पृथ्वी गन्धहीन होकर प्रलयको प्राप्त होगी ॥१३॥ जलके रसको तेजने ग्रस लिया सो जल निरस होकर प्रलयको प्राप्त होगा,तेजका रूप गुण वायुने ग्रस लिया सो तेज रूपहीन हो पवनमें लीन होगा॥ १४॥ पवनका स्पर्श गुण आकाशने लिया, सो वायु आकाशमें लीन होगा ॥१५॥ हे राजन्! फिर आकाशका शब्द गुण उसको तामस अहंकारने ग्रस लिया, सो

ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ शत वर्षाणि वर्षति नदंति रभसस्वनैः॥१२॥ तदा भूमेर्गंधगुणं ग्रसंत्याप उपप्लवे ॥ ग्रस्तगंधा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १३ ॥ अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः ॥ ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १४॥ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ॥ स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १५ ॥ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनु लीयते ॥ तैजसश्चेन्द्रियाण्यंग देवान्वैकारिको गुणैः ॥१६ ॥ महान्ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ॥ ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेन चोदितम्॥ १७ ॥न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ॥ अनाद्यनंतमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १८ ॥ न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ॥ न प्राणबुद्धींद्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ १९ ॥

आकाश गुणहीन होकर अहंकारमें लीन होगा,राजस अहंकारने वृत्तियों सहित इंद्रियोंका ग्रसलिया,सात्त्विकअहंकारने इंद्रियोंके देवताओंको ग्रस लिया,तब देवता सात्त्विक अहंकारमें लीन हो जायँगे॥१६॥हे राजन् ! तीनों प्रकारके अहंकारको महत्तत्त्वने ग्रस लिया, तब अहं महत्तत्त्वमें लीन हो जायगा और महत्तत्त्वको सत्त्वादि गुणोंने ग्रस लिया,तब सत्त्वादिक गुणोंको कालकी प्रेरित माया ग्रस लेगी॥१७॥इस मायाका कालके वेगसे राति दिन घट बढ़ नहीं होता और यह माया आदि अन्त करके अव्यक्त नित्य है,एक रस है,न स्पष्ट देखनेमें आती है,सर्वत्र जगत्की कारणरूप है ॥ १८ ॥ जहां वाणी मन सत्त्व रज तम तीनों गुण महत्तत्त्वादिक नहीं हैं और प्राण, बुद्धि इंद्रियोंके देवता विश्वकी रचना भी

नहीं है॥१९॥जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति,आकाश,पवन,अग्नि,जल,भूमि और सूर्य भी वहां नहीं हैं,सुषुप्ति शून्यकी समान है,उसको कविलोग अतर्क्य मूल पद कहते हैं॥२०॥प्राकृतिक प्रलय यह आपसे कहो ,जिस प्रलयके पुरुष प्रकृतिकी शक्ति सब कालसे प्रेरित होकर लीन हो जाती है यह माया ईश्वरकी शक्ति है,इससे सबके कारणरूप एक परब्रह्म परमेश्वर ही हैं ॥२१॥ हे राजन्।अब आपसे आत्यंतिकप्रलय कहते हैं.बुद्धि,इंद्रिय, विषयरूप इन सबका आश्रय ज्ञान ही भासै है,जिससे अन्वयव्यतिरेक करके जो आदि अन्तवान् हैं सो सब वस्तु हैं,विचारकरके देखोतो यहीमोक्ष आत्यन्तिक प्रलय है,क्योंकि यह मोक्ष आत्मज्ञानसे सब प्रपञ्चका लयरूप है.यहां प्रलय अर्थात् मृत्तिकाके ज्ञानसे जैसे घट वारुणी आदिका प्रतिरोध होता है,इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानसे और दूसरे सबका प्रतिरोध समझना,जो आत्माके सदृश प्रपञ्च यथार्थ होय तो उसका प्रतिरोध होना

न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ॥ संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनंति॥२०॥
लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा॥ शक्तयः संप्रलीयंते विवशाः कालविद्रुताः॥२१॥बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति
तदाश्रयम्॥ दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यंतवदवस्तु यत्॥२२॥दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत्॥एवं धीः
खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥२३॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ॥ मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं
प्रत्यगात्मनि ॥ २४ ॥यथा जलधरा व्योम्नि भवंति न भवन्ति च ॥ ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात्॥२५॥

ठीक नहीं इससे ज्ञात होता है कि, प्रपञ्च परब्रह्मसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है, यह ब्रह्मसे भिन्न सत्ताको नहीं रखते, इसलिये यह बुद्धि आदि प्रपञ्च भी दृश्यपनके हेतु और आदिअन्तवान् होनेके कारण और अपने कारणभूत परब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं, इसलिये वास्तविक भी नहीं हैं ॥२२॥ जैसे दीपक, नेत्र, रूप यह सब ज्योतिसे भिन्न नहीं हैं ऐसे ही बुद्धि, इंद्रिय, तन्मात्रा ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥२३॥ हे राजन् ।जब यह बुद्धि परमात्मासे विलग नहीं है,तब उसकी अवस्थारूप जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति यह तीनों परमात्मासे किस प्रकार विलग होती हैं ? क्योंकि यह तीनों अवस्था बुद्धिकी ही हैं.सब विद्वान् लोग यही कहते हैं कि,तीनों अवस्थाओंके मानके लिये जगत् तैजस और प्राज्ञपन.जो आत्मामें माना जाता है वह केवल मायामात्र ही है॥२४॥जैसे किसी समय मेघ आकाशमें नहीं होते और कभी होते हैं,ऐसे ही ब्रह्ममें यह जगत् कभी दीखता है कभी नहीं

दीखता ॥२५॥हे राजन्।सब अवयवी जगत्में कारणभूत जो एक अवयव है वही मुख्य है,क्योंकि अवयवी विना भी अवयवकी प्रतीति होती है, इसी प्रकार जगत्विना ब्रह्म भी प्रतीत होता है,इसलिये जगत्का कारणरूप ब्रह्म ही है. देखो।तन्तुबिना वस्त्रका ज्ञान नहीं होता:परन्तु वस्त्र तन्तुओंसे भिन्न नहीं है,क्योंकि वस्त्र तन्तुरूप ही है,इस प्रकार ब्रह्म विना जगत्की प्रतीति नहीं होती,इसलिये जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं है॥२६॥कार्य.कारण मिलके जो कुछ होय सो सब भ्रमसे है,इसलिये आश्रयसे आदि लेकर अन्ततक जो कुछ है सो सब अवस्तु है॥२७॥यद्यपि विकारमय यह सब जगत् प्रकाशमान् भी है,परंतु ब्रह्मविना उसका किञ्चिन्मात्र भी प्रकाश नहीं हो सकता और जो ब्रह्म विना प्रकाश हो तो उस आत्मासे ब्रह्मरूप ही होगा,किसी प्रकार भिन्न होही नहीं सकता॥२८॥सत्य वस्तुमें अनेक रीति नहीं हो सकतीं और जिसमें अनेक रीति हैं उसमें सत्यता नहीं हो सकती

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ॥ विनार्थं न प्रतीयेरन्पटस्येवांग तंतवः ॥ २६ ॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुप
लभ्येत स भ्रमः॥ अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यंतवदवस्तु यत् ॥ २७ ॥ विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमं
तरा ॥ न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २८ ॥ नहि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते॥नानात्वं
छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ २९ ॥ यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ॥ एवं वचो
भिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३० ॥

यद्यपि आत्मामें और जीव ब्रह्ममें भेद दृष्टि आता है,परंतु यह जीव और ब्रह्मका भेद घटाकाश और महाकाशके समान है, घटाकाश परिच्छिन्न है और महाकाश अपरिच्छिन्न होनेपर भी जैसे दोनोंके मध्यमें भेद नहीं है इसी प्रकार जीव परिच्छिन्न और ब्रह्म अपरिच्छिन्न होनेपर भी जीवब्रह्ममें कुछ भेद नहीं.जैसे–जलके बीचमें सूर्य कम्पायमान विकार सहित और आकाशमें निर्विकार सूर्य होनेपर कुछ भेद नहीं,इसीप्रकार ब्रह्मकी सृष्टि आदि और जीवकी सृष्टि आदि क्रियामें अलग अलग होनेपर कुछ भेद नहीं जान पडता, यह सब उपाधि मात्र ही भेद है; जीव ब्रह्ममें भेद मानना मूर्खोंका काम है॥२९॥ जैसे सुवर्ण मनुष्योंके व्यवहारादिकोंमें मुकुट कुण्डलादि रूपोंसे अनेक प्रकारका दृष्टि आता है, इसी प्रकार अहंकाररूप उपाधिवाले मनुष्य ऐसे ही भगवान् अधोक्षजकी लौकिक वैदिक वाणियोंसे अनेक अनेक प्रकारकी महिमा वर्णन करते हैं ॥३० ॥

जैसे बादल सूर्यसे ही प्रगट हुए और सूर्यसे ही प्रकाशित हुए सूर्यके अंशरूप नेत्रोंका आवरण करता है, ऐसे ही ब्रह्मसे प्रगटे हुआ और ब्रह्मसे ही प्रकाशित अहंकार ब्रह्मके अंश जीवको उस ब्रह्मके दर्शनका आवरण करता है॥ ३१॥सूर्यसे उत्पन्न हुआ बादल जब विदीर्ण हो जाता है, तब चक्षु सूर्यको देखै हैं, ऐसे ही अहंकार रूप उपाधि जब तत्त्वविचार करके विनष्ट होय, तब यह जीव अपने ब्रह्मस्वरूपको पहँचानता है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार अविवेकरूप खड्गसे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धन को काटकर जब शुद्ध ब्रह्मका अनुभव करके स्थित होय तब उसको कविलोग आत्यन्तिक प्रलय (मोक्ष) कहते हैं ॥३३॥ हे शत्रुओंके ताप देनेवाले ! सूक्ष्मवेत्ता विद्वान्लोग कहते हैं कि, ब्रह्मा

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ॥ एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मवस्तुनः ॥ ३१ ॥ घनो यदाऽर्कप्रभवोविदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा॥ यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३२ ॥ यदैवमतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्मबंधनम् ॥ छित्त्वाऽच्युतत्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यंतिकमंग संप्लवम् ॥३३॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ॥ उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥३४॥ कालस्रोतो जवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ॥ परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३५ ॥ अनाद्यंतवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ अवस्था नैव दृश्यंते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३६ ॥ नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ॥ आत्यंतिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३७ ॥

दिक सब प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलय क्षणक्षण होती रहती है॥३४॥नदीका प्रवाह और दीपककी ज्वाला आदि परिणामी पदार्थोंकी जैसी क्षण क्षणमें लोट पोट होनेसे जो अवस्थायें हैं,वैसी ही अवस्थायें कालरूपनदीके वेगसे नित्य आयुर्बल हरे जानेसे देहादिक कीअवस्था नित्य जन्म मरणके कारणको प्राप्त होती हैं॥३५॥आदिअन्तसे हीन ईश्वरकी मूर्ति कालसे प्राणियोंकी सूक्ष्म अवस्था नहीं जानी जाती, जैसे आकाशमें नक्षत्रादिकी क्षणक्षणकी चालें दिखाई नहीं देतीं, इसी प्रकार कालसे झपटी हुई शरीरादिकोंकी क्षणक्षणकी अवस्थायें भी दिखाई नहीं देतीं ॥ ३६ ॥ नित्य नैमित्तिक प्राकृतिक औरआत्यन्तिक यह चार प्रकारकी प्रलय आपसे कही और कालकी गति भी आपसे कही ॥ ३७ ॥

1214

हे कौरवकुलभूषण! जगत्के कर्त्ता और सब प्राणियोंके जीवन आधार श्रीमन्नारायणकी लीला और कथा आपसे संक्षेपमात्र कही और सम्पूर्ण चरित्र कहनेकी तो ब्रह्माको सामर्थ्य नहीं॥३८॥जो प्राणी अनेक भांतिके दुःखरूपी दावाग्निसे कष्ट पाकर इस महादुस्तर संसाररूपी समुद्रकेपार

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कात्स्न्येंन नाजो ऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३८ ॥ संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ॥ लीलाकथारस निषेवणमंतरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ३९ ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ॥ नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४० ॥

उतरना चाहैं उनको भगवान् पुरुषोत्तमकी लीला और चरित्रोंकी कथारूपी रसपानके सिवाय इस संसार सागरसे पार होनेका दूसरा उपाय नहीं. विश्वासरूप नौकापर चढकर संसाररूपी समुद्रसे तर सकता है॥३९॥अव्ययरूप श्रीनारायण ऋषिने यह पुराणसंहिता पहिले नारदमुनिसे

---

* दृष्टान्त-एक गूजरी कहीं पण्डितजीकी कथा सुननेको गई, पण्डितजी उस समय यह कथा कह रहे थे कि, परमेश्वरके नाम लेनेसे प्राणी संसाररूपी समुद्रके पार हो जाता है. गूजरी इस बातको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, क्यों कि उसे प्रतिदिन यमुनाजीके उतरनेमें नाववालेको पैसा देना पडता था, वह विचारने लगी कि, जब श्रीकृष्णके नामसे समुद्रको तर जायँ हैं, तो क्या यमुनाजी नहीं तरी जायँगी? बस उसी समय श्रीकृष्णका नाम ले यमुनामें घुसपड़ी और क्षणमात्रमें पार उतर गई. इसी प्रकार प्रतिदिन यमुना उतर जाने लगी, तब एक दिन गूजरीने अपने मनमें विचार किया कि, पंडितजीने मेरे संग बडा उपकार किया जो विना ही नौका यमुनापार हो जाती हूँ, उनको निमन्त्रण देना चाहिये. सो उसने पंडितजीको निमन्त्रण दिया और भोजन करानेके लिये पंडितजीको अपने साथ लेकर घरको चली. पंडितजी उसको यमुनाजीमें घुसती देख आप भी उसके पीछे पीछे हो लिये और समझा कि घाट बहुत गहरा न होगा, जब कण्ठतक पानी आगया और पांवोंके नीचेका रेता निकलने लगा. परन्तु उस गूजरीके घुटनेतक न भीजे, तब तो पंडितजीने घबराकर पुकारा कि, अरी! तू किधरको ले आई? मैं तो डूबा, मुझे किसी प्रकार बचा. गूजरी बोली क्या तुमने श्रीकृष्णका नाम नहीं लिया? श्रीकृष्णका नाम लेलो क्या तुम उस दिनकी कथाके वृत्तान्तको भूलगये? आपने कहा था कि, एक श्रीकृष्णके नामसे प्राणी महादुस्तर समुद्रके पार होजाता है, पंडितजी बोले क्या यह नदी भी श्रीकृष्णका नाम लेनेसे तरी जाती है? गूजरीने कहा कि, क्या आप इतना भी नहीं जानते कि, जब समुद्रकेही पार होगये तो क्षुद्र नदी कहां रही? गूजरीने पंडितजीका हाथ पकडकर कहा कि श्रीकृष्णका नाम लो और संग संगचले चलो. देखो! विश्वासवाली गूजरीने इस प्रकार पंडितजीको पार उतार अपने घर लेगई और अत्यन्त प्रेम प्रीतिसे पंडितजीको भोजन कराया. इसीसे कहते हैं कि, विश्वास करके भक्ति करैं तो संसाररूप सागरके पार होय ॥

कही थी और नारदमुनिने श्रीवेदव्यासजीसे कही ॥४०॥ हे महाराज ! उन आत्मज्ञानी भगवान् वेदव्यासदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह
सब वेदोंके समान 'श्रीमद्भागवत' संहिता मुझको पढाई ॥ ४१ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! नैमिषारण्यमें बडे यज्ञके करनेवाले शौनकादि ऋषि जब
पूछैंगे तब सूतजी उन ऋषियोंको यह श्रीमद्भागवत पुराण कहेंगे ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां प्रलयवर्णनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ दोहा–पञ्चममें संक्षेपसों, परब्रह्म उपदेश ॥ सर्पडसन भय नृपतिको, काटो शुकदेवेश ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे
राजन् ! इस भागवतमें निरन्तर विश्व आत्माकाही वर्णन है जिन भगवान्के रजोगुणसे ब्रह्मा और तमोगुणसे रुद्र हुए ऐसे ब्रह्मा रुद्रादि सब सृष्टिके

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ॥ इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥ ४१ ॥ एतां वक्ष्यत्यसौ सूत
ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥ दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥४२ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वादशस्कन्धे प्रलयनि०
चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥ यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः
क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ॥ न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥२॥
न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ॥ बीजांकुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्ने यथा शिरश्छेदं
पंचत्वाद्यात्मनः स्वयम् ॥ यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः
स्याद्यथा पुरा ॥ एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥ ५ ॥

कर्त्ता भगवान्का गुणानुवाद जो हित चित्तसे सुनता है उसको किसी प्रकारका भय नहीं ॥१॥ हे राजन् ! हम मारेंगे इस पशु बुद्धिको छोड दो इसदे
हसे न तो तुम पहिले उत्पन्न हुए और न नष्ट होओगे यह आत्मातो अजर अमर अनादि है, यहतो न कभी मरता है न जीता ॥२॥ यह शरीर
बीज औरअंकुरकी नाईं पुत्र पौत्रादि रूप होकर जन्मता मरता रहता है,कभी बीजसे अंकुर होता है, कभी अंकुरसे बीज होता है, ऐसे तुम बीज
अंकुरवत् देहादिकोंसे भिन्न हो जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न है ॥३॥ जैसे कोई प्राणी स्वप्नमें अपना शिर काटा हुआ देखै,ऐसे ही जाग्रत् अवस्थामें
देहके मरणकोआप देखता है, इससे मैं मरूंगा, यह केवल भ्रांति है, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है ॥ ४ ॥ आत्माका जन्म मरणादिक जग

त्वकी भ्रांति देहरूप उपाधिके साथ है, इसलिये उपाधिकी निवृत्ति होनेसे इस जीवकी मुक्ति हो जाती है. जैसे घट फूट जानेसे घटाकाश महाकाशमें जा मिलता है, अर्थात् जैसा प्रथम महाकाशरूप था वैसा ही फिर हो जाता है, वैसे ही जब जीवको आत्मज्ञानहो जाता है, तो फिर वह ब्रह्मका ब्रह्म हो जाता है ॥ ५ ॥ आत्माके देह गुण और कर्मोंको मन ही उत्पन्न करता है और मनको माया उत्पन्न करती है और इसी करके जीवका जन्म मरण होता है और विचार करके देखो तो आत्मा निर्लेप है ॥ ६ ॥ जबतक तेल सरवा बत्ती और अग्निका संयोग बनारहता है, तबतक ही दीपक कहलाता है, ऐसे ही जबतक कर्म मन चैतन्य संसारादिक और इस देहको संयोग है, तबतक हीं संसार है और जब इन समुदायोंकी निवृत्ति हो जाती है, तब यह संसार भी नहीं रहता ॥ ७ ॥ यह देह ही सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जन्मता मरता है, आत्मा जन्मै न मरै,

मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः ॥ तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः॥६॥स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ॥ ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ॥ रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥ न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः॥आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनंतोपमस्ततः ॥८॥ एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ॥ बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिंतया ॥ ९ ॥ चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ॥ मृत्यवो नोपधक्ष्यंति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥१०॥ अहं ब्रह्म परं ब्रह्म ब्रह्माहं परमं पदम् ॥ एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥ ११॥ दशंतं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ॥ न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः॥१२॥

इससे स्थूल सूक्ष्म दोनों देहोंसे मरता है और स्वयंप्रकाश देहादिकोंका आश्रय, नित्य, निर्विकार, अनन्त, अनादि और निरुपम है, कभी नष्ट नहीं होता ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! अनुमानयुक्त बुद्धिसे भगवान् वासुदेवका चिन्तवन करते शरीर में स्थित शुद्ध आत्माको मनसे विचार करो ॥ ९ ॥ इस प्रकारका विचार करोगे तो ब्राह्मणके वाक्योंसे प्रेषित किया हुआ तक्षक सर्प तुमको नहीं जला सकेगा, क्योंकि परब्रह्मको मृत्यु भी नहीं जला सकती ॥ १० ॥ जो मैं हूँ सो परमधामरूप ब्रह्म है और जो परमधामरूप ब्रह्म है, वह मैं हूँ, यह विचार करके निरुपाधि ब्रह्ममें तुम अपने आपको रक्खोगे तो ॥ ११ ॥ विषयुक्त मुखसे अपने चरणमें काटतेहुए तक्षक नागको किसी प्रकार न देखोगे न इस

12/6

देहको देखोगे और न अत्मासे भिन्न विश्वको देखोगे ॥ १२ ॥ हे तात ! हे नृपेन्द्र ! विश्वके आत्मा भगवान्का चरित्र जो कुछ तुमने पूँछा वह सब मैंने आपसे कहा। अब आप क्या सुनना चाहते हो सो कहो ? ॥ १३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा टीकायां ब्रह्मोपदेशो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ दोहा—इस छठवें अध्यायमें, भये परीक्षित मुक्त ॥ सुतने अहि होमे सकल, इंद्रासन संयुक्त ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि ! सबकी बुद्धिको जाननेवाले निवृत्तिपरायण व्यासके पुत्र शुकदेवजीके गूढ वचन सुनकर विष्णुरात परीक्षित् शिर झुकाय चरणारविन्दोंकी वन्दना कर हाथ जोड़कर बोले ॥ १ ॥ हे मुने करुणानिधान ! आपने परम अनुग्रह करके मुझको कृतार्थ किया, कि आदि अंतसे हीन साक्षात् भगवान् परब्रह्मका चरित्र सुनाया जिसको सुनकर मैं सिद्ध हुआ ॥ २ ॥ आपसे मुक्तिरूप सज्जन इस संसाराग्निके तापोंसे तपे हुए अधम लोगोंका अच्युत भगवान्में मन लगानेवाले और उनपर अनुग्रह करना मैं इस बातको कुछ अद्भुत नहीं समझता ॥ ३ ॥ यह पुराणसंहिता आपके मुखारविन्दसे मैंने सुनी, इस 'श्रीमद्भागवत' संहितामें उत्तम यशवाले भगवान्का निरन्तर वर्णन है ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! तक्षकादिक मृत्युओंसे अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहा, क्योंकि आपने जो परमानन्द ब्रह्मरूप मुझे दिखा दिया मैं उसीमें लय हो गया ॥ ५ ॥

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥ हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वा० तत्त्वोपदेशेन मृत्युभीतिनिवारणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥ तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धांजलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ॥ श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥ नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ॥ अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ॥ यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ॥ प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

हे ब्रह्मन् ! जो मुझको आज्ञा हो तो वाणीको रोककर निष्काम चित्तको भगवान् अधोक्षजमें रखकर प्राणोंका त्याग कर दूँ? ॥६॥ ज्ञानविज्ञानकी निष्ठासे मेरा सब अज्ञान निवृत्त हो गया, जबसे आपने मंगलरूप भगवान्का परमपद मुझको दिखाया ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! राजा परीक्षित्ने इस प्रकार प्रार्थना कर श्रीशुकदेवजीका पूजन किया, तब भगवान् बादरायण परीक्षित्की पूजा स्वीकार कर बिदा माँग, मुनियों सहित वहांसे पधारे ॥८॥ पीछे राजऋषि परीक्षित्ने बुद्धिसे मनको रोक, परब्रह्ममें मन लगा, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानमें मग्न हो,

अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ॥ मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥६॥ अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ॥ भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ॥ जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ॥ समाधाय परं दध्यावस्पंदासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गंगाकूल उदङ्मुखः ॥ ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥१०॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ॥ हंतुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

इन्द्रियोंको निश्चल कर, सूखे वृक्षकी नाईं अचल हो गया ॥९॥ गंगाके किनारेपर पूर्व अग्र कुशासनपर बैठ, उत्तर दिशाकी ओरको मुख करके छिन्न संशय निस्संग महायोगी परब्रह्ममें तदाकार हो गया ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! क्रोधी ब्राह्मणके पुत्रका भेजा हुआ तक्षक राजाके काटनेकी इच्छा करके चला, तब मार्गमें कश्यपजीको देखा ॥ ११ ॥[1]कि, कश्यपजी राजा परीक्षित्के पासको जाते हैं और यह विषके उतारनेमें चतुर हैं

---

[1] जिस समय तक्षक ब्राह्मणका वेष धारण करके राजा परीक्षित्को काटनेके लिये चला तो मार्गमें उसको कश्यपजी मिले, तक्षकनेकश्यपजीसे बूझा कि, आज आप कहाँको चल दिये ? कश्यपजी बोले कि, राजा परीक्षित्को आज सर्प काटेगा, हम उसको अच्छा करने जाते हैं, तब तक्षकने कहा कि, तक्षकके काटेको आरोग्य करनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं आप तो क्या वस्तु हैं ? कश्यपजी बोले कि यदि वह होता तो हम उसको अपना कर्त्तव्य दिखाते. तक्षक बोला कि, मैं ही तक्षक हूं और इस वृक्षको काटता हूं. अब तुम इसको अच्छा करो ज्योंहीं वृक्षको डसा त्योंही वह जलकर भस्म हो गया

तब तक्षक ❋ ने उस विषके दूर करनेवाले कश्यपजीको धनसे तृप्त कर जानेसे रोंक लिया, तब इच्छारूपी तक्षकने ब्राह्मणका रूप धरके अपने आपको छिपाकर राजा परीक्षित्को जाकर काटा ॥ १२ ॥ ब्रह्मस्वरूप राजऋषि परीक्षित्की देह विषाग्निसे सबके देखते देखते उसी समय

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ॥ बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥
हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ॥ विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥

जलकर क्षार हो गई ॥१३॥ उस समय पृथ्वी, आकाश, सब दिशाओंमें बड़ा हाहाकार शब्द होने लगा, नगरमें कोलाहल मच गया. देवता,

---

—बरन् उस वृक्षपर सूखी लकडी तोडनेके लिये एक लकड़हारा चढा था वह भी उस वृक्षके संग जलकर भस्म हो गया' तब कश्यपजीने संजीविनी मन्त्र पढकर दो घडीमें लकडहारे सहित उस वृक्षको यथावत् कर दिया, तब तक्षक आश्चर्यमय होकर कहने लगा कि.आप कुछ ज्योतिषविद्या भी जानते हैं?कश्यपजी बोले हां ।तब तक्षकने कहा कि,विचारो तो राजाकी अवस्था कितनी और रही है कश्यपजी बोले कि,हमारे विचारमें ऐसा आता है कि,राजाका आयुर्बल दो घडी शेष है.तब तक्षकने कहा कि.मन्त्र अकालमृत्युवालेको जीवित कर सकता है ? परन्तु जिसकी मृत्यु ही निकट आगई हो उसको कोई नहीं बचा सकता, फिर वृथा उपाय करनेसे मानहानि होती है और जो आपको धनकी इच्छा है तो इसी वृक्षके नीचे बहुत गडा है,जितना चाहिये उतना ले जाओ.कश्यपजीको और किसी बातसे प्रयोजन नहीं था अपनी इच्छानुसार धन लेकर अपने आश्रमको लौट गये,तब तक्षक राजाके पास जाकर एक पुष्पमें कीडेका रूप धारण कर घुस बैठा और तक्षकके पुत्रने ब्राह्मणका रूप धरकर वह फूल राजाको दिया,राजा फूलको देखकर कहने लगे कि, संध्या हो गई और तक्षक अभीतक नहीं आया कहीं ब्राह्मणका वचन झूठा न हो जाय इस कारण इस कीडेसे ही मस्तकमें कटवालें,ज्यों राजाने कीड़ेसे कटवाया त्योंही तक्षकने अपना रूप धर राजाको डसा कि वह तुरन्त भस्म हो गया और तक्षक उसी समय उड गया,उस लकडहारेने जब सब वृत्तान्त कहा तब जनमेजयने तक्षकका अपराध विचार सर्पसत्र यज्ञ किया।

* शंका–द्वादशके पांचवें अध्यायमें शुकदेवजीने कहा कि,हे राजन् ! ब्राह्मणके शापकी आज्ञाको जिस सर्पने पाया वह सर्प तुमको नहीं डसेगा.भागवतके श्लोकमें'त्वाम्'शब्द लिखा है सो शुकदेवजीने'त्वाम्' किसको कहा था परीक्षित्की देहको कहा था कि जीवकोकहा था,जो जीवको 'त्वाम्'कहा तो भी अयोग्य है, क्योंकि जीव किसीके जलानेसे जल नहीं सकता, जो कदापि ऐसा देखकर कि संसारमें शरीरकी ही प्रशंसा है जीवको कोई नहीं जानता.शरीरको ही'त्वाम्'कहा था तो फिर सर्पके काटनेसे शरीर क्यों भस्म हो गया मुनिने तो कहा था कि, भस्म नहीं होगा ? यह शंका होती है ?

उत्तर–जो प्रश्न तुम लोगोंने किया सो सत्य है, संसारमें शरीरकी प्रशंसा देखकर कि, देहके सिवाय जीवको कोई भी नहीं जानता, इसलिये शुकदेवजीने देहको' त्वाम्' कहा था,अब देह भस्म होनेका कारण सुनो. शुकदेवजीका वचन सत्य था कि, राजाका देह सर्पके काटनेसे भस्म नहीं होता परन्तु परीक्षित्ने मरनेके समयमें शुकदेवजीसे भागवत सुनी, सर्पके काटनेसे नरक होता है भागवतके

12/7

असुर, मनुष्यादिक सब आश्चर्यमय हो गये ॥ १४ ॥ आकाशमें देवताओंके दुन्दुभी बजने लगे, गन्धर्व गाने लगे; अप्सरा नृत्य करने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और महात्मा पुरुष वारंवार धन्यवाद देने लगे ॥ १५ ॥ राजा जन्मेजय अपने पिता परीक्षित्को तक्षकसे डसा सुनकर महाक्रोधित हुआ और ब्राह्मणोंको बुला सर्पसत्रयज्ञमें सर्पोंका होम करने लगा ॥ १६ ॥ उस यज्ञकी महाप्रचण्ड अग्निमें बडे बड़े सर्पोंको जलता हुआ देखकर तक्षक डरके मारे अत्यन्त व्याकुल हो इंद्रकी शरण गया ॥१७॥ परीक्षित्के पुत्र राजा जन्मेजयने

देवदुंदुभयो नेदुर्गंधर्वाप्सरसो जगुः ॥ ववर्षुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥ जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ॥ तथा जुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥ सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ॥१७॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेंद्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तंभितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः॥ सहेंद्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

जब तक्षकको यज्ञमें न देखा तो ब्राह्मणोंसे बूझा कि, सर्पोंमें अधम तक्षक यहां आकर क्यों नहीं भस्म हुआ ? ॥ १८ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि, हे नरेन्द्र ! अपनी शरण गये तक्षककी इन्द्र रक्षा करता है और इन्द्रने ही उसको अपने समीप बैठाल रक्खा है इसी लिये वह अग्निमें आ कर नहीं पड़ा ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर उदारबुद्धि राजा जन्मेजय ब्राह्मणोंसे बोला कि, हे ब्राह्मणो ! इन्द्रसहित उस तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं डाल देते, क्या इतना सामर्थ्य आपमें नहीं है ? ॥ २० ॥

—प्रभावसे अब इसको नरक नहीं होना चाहिये, जो ऐसा करेंगे तो सर्पकी मर्यादा नाश हो जायगी, इसलिये भागवतकी, सर्पकी, शुकदेवजीकी इन तीनोंकी मर्यादा रखनेके लिये भगवान्‌ने परीक्षित्‌का तीन कर्म करके तीनोंकी मर्यादा राखी, सर्पके काटनेसे मृत्यु होती है तो उस प्राणीको नरकमें जाना पडता है सो श्रीमद्भागवत सुननेके प्रतापसे राजा परीक्षित्‌को भगवान्‌ने नरकवाससे छुटाया और शुकदेवजीका राजा शिष्य था इसलिये वैकुण्ठमें राजाको भेजा, सर्पकी मर्यादा रखनेके लिये राजाका देह भस्म किया, इसलिये राजाकी देह भस्म होगई कुछ शुकदेवजीका वाक्य झूंठा नहीं था; जो सर्पकी मर्यादा भगवान् न रखते तो कभी राजाकी देह भस्म न होती ?

जन्मेजयका यह वचन सुनकर सब ब्राह्मण इंद्रसहित उस तक्षकको आहुतिमंत्र पढ़कर आवाहन करने लगे "हे तक्षक ! मरुद्गणाधीश इंद्रके संग तू शीघ्र यज्ञाग्निमें आकर पड" इस प्रकार आहुतिमन्त्रोंसे इंद्रसहित तक्षकको बुलाया ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके कठोर वचनोंसे और मन्त्रोंके आकर्षणसे तक्षक सहित इंद्र अपने स्थानसे चलायमान हो विमान और तक्षक सहित अपने मनमें घबरा गया ॥ २२ ॥ इन्द्रको विमान और तक्षक सहित आकाशसे गिरता हुआ देख कर अंगिराके पुत्र बृहस्पतिजीने जन्मेजयसे कहा ॥२३॥ हे नरेंद्र ! यह सर्पराज आपके हाथसे वध करने योग्य नहीं है,क्योंकि इसने अमृतपान किया है इसलिये यह अजर अमर हैं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तक्षकके डसने पिताका मरण सुनकर आपको इतना क्रोध क्षतकपर करना नहीं चाहिये, क्योंकि जीवोंका जीवन मरण और परलोक अपने कर्मोंसे ही होता है, इसे सुख

तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेंद्रं तक्षकं मखे ॥ तक्षकाशु पतस्वेह सहेंद्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थाना
दिंद्रः प्रचालितः ॥ बभूव संभ्रांतमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतंतं विमानेन सहतक्षकमंबरात् ॥ विलोक्यां
गिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैष त्वया मनुष्येंद्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथवा अजरा
मरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जंतोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्प
चोराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पंचत्वमृच्छते जंतुर्भुंक्त आरब्धकर्म तत ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राज
न्संस्थीयेताभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते॥२७॥इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ॥
सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥

।२।७

दुःखका दाता और कोई दूसरा नहीं जान पड़ता ॥ २५ ॥ हे नरेश ! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, क्षुधा, तृषा,रोगादिकोंसे प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है सो वह अपने प्रारब्ध और कर्मोंका ही भोग भोगता है कुछ सर्पादिक स्वतंत्र नहीं हैं, इनको भी प्रारब्ध और कर्म ही प्रेरणा करता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह प्राणी अपने अदिष्टका ही भोग करता है इसलिये इस हिंसक अभिचार यज्ञको समाप्त करो. देखो ! इस यज्ञमें अनेक निरपराधी सब सर्प भस्म हो गये, परंतु इसमें आपका भी कुछ दोष नहीं, क्योंकि प्राणी सदा अपने प्रारब्ध और कर्मोंका भोग भोगते रहते हैं ॥ २७ ॥ जब बृहस्पतिजीने इस प्रकारके वचन कहे तब राजाने उसी समय उन वचनोंको आदर सन्मान दे, अभिचार यज्ञसे

निवृत्त हो देव गुरु बृहस्पतिजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ देखिये । ब्राह्मणके क्रोधसे परीक्षित्का मरण हुआ और परीक्षितके पुत्र जन्मेजयने कोप करके करोडों सर्पोंको जला डाला यह क्रोधरूप मोह ऐसे ऐसे महात्मा पुरुषोंको भी हुआ, इसमें कोई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है, क्योंकि विष्णुभगवान्‌की अलक्षित माया किसी प्रकार किसीसे निवारित नहीं हो सकती. देखो । उन्हीं विष्णु भगवान्‌की मायासे विष्णु भगवान्‌के ही अंशरूप जीव दूसरे जीवोंपर अपनी देहमें तीनों गुणोंकी वृत्ति क्रोधादिकोंसे मोहित हो संसारमें भ्रमते हैं ॥ २९ ॥ यह माया तत्त्ववादी ब्रह्मविचार करनेवालोंके सिवाय और सब स्थानोंमें निर्भय वास करती है और ब्रह्मवादी लोग जब तत्त्वविचार करते हैं तो वह लोग भलीभाँति जानते हैं कि, यह माया बडी कपटकारणी है और लोकोंकी वंचना करनेवाली है, जिन महात्मापुरुषोंने ऐसा समझ

सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया ॥ मुह्यंत्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः॥ २९ ॥ न यत्र दंभीत्यभया
विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥ न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च संकल्पविकल्पवृत्तिमत् ॥३०॥
न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ॥ तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमे
त्स्वयं मुनिः ॥३१॥ परं पदं वैष्णवमामनति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदाहृदोप
गुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

रक्खा है उनके सम्मुख निर्भय होकर अपना प्रकाश नहीं कर सकती, क्योंकि उनसे यह भय मानती है और मोह ममतादिक कार्योंको नहीं करती, अपने दिन पूरे करती है और जहाँ तत्त्वविचार है, माया कारणके अनेक वाद विवाद नहीं हैं और संकल्प विकल्प वृत्तियोंसे युक्त मन भी जहाँ नहीं है॥३०॥ सृष्टिके करनेवाले सब कारण और कर्मसे सिद्ध हुये फल इन तीनों सहित अहंकारयुक्त जीव जिस विष्णुमें विघ्न डालनेवाला विघ्न भी जहां नहीं रहता, अहंकारादि ऊर्मियोंके त्यागनेवाले मुनि लोग उसी विष्णुपदमें रमण करते हैं॥३१॥ और स्थान, सौहृद, दुष्टता और अनात्म पदार्थोंको त्याग नेति नेति कह, अहंभावकी निवृत्त कर सिवाय परमात्माके किसीसे स्नेह न रखनेवाले विवेकी

पुरुष परमतत्त्वरूपको ही विष्णुका परमपद कहते हैं, उसीका ध्यानादिक सावधानतासे विज्ञानीलोग हृदयमें धारण करते हैं ॥३२॥ विष्णुके परमपदको वही आत्म तत्त्ववेत्ता जानते हैं जिनके देह गेहमें अहंता, ममता, दुर्जनताका मिथ्या अभिमान नहीं है ॥ ३३ ॥ मनुष्यको उचित तो यह है कि, अज्ञानियोंके दुर्वाक्योंको सहन करे किसीकी अवज्ञा न करे और इस देहके कारण किसीसे शत्रुता न करे ॥ ३४ ॥ अकुण्ठित बुद्धिवाले भगवान् व्यासदेवजीको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूँ कि, जिनके चरणकमलके ध्यानसे मैंने यह "श्रीमद्भागवत-संहिता" पढी है ॥ ३५ ॥ शौनक ऋषि बोले, हे सौम्य ! व्यासदेवजीके शिष्य, वेदोंके आचार्य पैलादि महात्माऋषियोंने वेदोंका कितनी रीतिसे विभाग किया सो यह वृत्तांत हम बूझते हैं और पुराणोंकी संहिताओंके विभाग किसप्रकारसे किये गये हैं सो जाननेकी हमारी अभिलाषा है ॥३६॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! एकाग्रमन परमेष्ठी ब्रह्माके हृदय आकाशसे प्रथम एक नाद शब्द उत्पन्न हुआ जो कि, कानोंपर हाथ रखनेसे सुनाई आता है ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस नादकी उपासना करके योगी पुरुषका अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, इन तीनों मनके मलोंको दूर करके मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ उस नादशब्दसे स्वयंप्रकाश हुआ जिसकी उत्पत्ति स्पष्टरीतिसे किसीप्रकार जाननेमें न आवे ऐसा अव्यक्त तीन अक्षर युक्त ॐकार हुआ जो कि, भगवान् परमात्मा परब्रह्मका जतानेवाला है ॥ ३९ ॥ इन्द्रिय मनविना ही जो भगवान् हैं, सब शून्य

त एतदधिगच्छंति विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत
नावमन्येत कंचन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुंठमेधसे ॥
यत्पादांबुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥ शौनक उवाच ॥ पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ॥
वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥
हृदाकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ॥ द्रव्यक्रियाकारकाख्यं
धूत्वा यांत्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ॥ यत्तल्लिंगं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
॥ ३९ ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ॥ येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

होजानेपर भी आप ज्ञाता होनेसे कानोंके बन्द किये रहनेपर भी इस अव्यक्त ओंकारको सुनते हैं, जीव इन्द्रियोंके अधीन है इस लिये कान बन्द किये जानेपर भी कुछ नहीं सुनता, हृदयरूप आकाशमें आत्मासे उत्पन्न हुए ओंकारसे विस्तृत वैखरी वाणी प्रकट होती है ॥ ४० ॥ अपने आश्रयरूप व्यापक साक्षात् परमात्मा परब्रह्मका बतानेवाला सब मन्त्रोंका रहस्य, वेदोंका बीज, सनातन ओंकार है॥ ४१॥ हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! उस ओंकारसे अकार, उकार, मकार यह तीन वर्ण हुए तीन वर्णसे सत्त्व, रज और तम तीन गुण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद यह तीनवेद भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्गलोक यह तीनों लोक जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति यह तीनों अवस्था हुईं ॥ ४२ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इनहीं, वर्णोंसे अक्षरोंके समूह रचे सोलह १६ तो स्वर पचीस २५ स्पर्श चार ४ अन्तस्थ चार ४ ऊष्माण यह सब ह्रस्व दीर्घ जिह्वामूलीय करके युक्त हैं ॥४३॥ भगवान्

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ॥ स सर्वमंत्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा
अकाराद्या भृगूद्वह ॥ धार्यंते यैस्त्रयो भावा गुणानामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ॥ अंतः
स्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ॥ सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चा
तुर्होत्रविवक्षया ॥४४॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ॥ ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन्॥४५॥
ते परंपरया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥ चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥ क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वा
न्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥

ब्रह्माजीने इन्हीं अक्षरोंसे, चारों मुखोंसे और छन्दोंसे ओंकार सहित चारो वेदोंको रचा, चातुर्होत्र कर्मोंके लिये अथर्वण, यजुर्वेदी उद्गाथा, सामवेदी होता, ऋग्वेदी ब्रह्मा आहुति देनेवाले रचे॥४४॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंके उच्चारणादिकोंमें चतुर ब्रह्मर्षि अपने पुत्रोंकोवह वेदपढाये और धर्मोंके उपदेष्टा होकर अपने पुत्रादिकोंको वेदको पढ़ाने लगे॥४५॥उन सब वेदोंके हृदयमें धारण करनेवाले व्रतधारी शिष्योंकी परंपरायें चारो युगोंमें चली आई हैं, द्वापरके अन्तमें महाऋषियोंने वेदोंके विभाग क्यों किये॥४६॥इसका कारण यह है,भगवान्ने जाना कि कलियुगमें सब ब्रह्मर्षि कालसे क्षीण,अल्पआयु, वीर्यहीन, अशक्त और मन्दमति होंगे, यह विचारकर अच्युत भगवान्ने इनके हृदयमें विराजमान होकर

प्रेरणा की, तब इन ऋषियोंने वेदका विभाग किया॥४७॥हे ब्रह्मन् ! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् धर्मकी रक्षाके
लिये ब्रह्मा, शिवादिक लोकपालोंकी स्तुति करनेसे ॥४८॥ विभु भगवान् अपने अंशकलाओंसे पराशरमुनिके वीर्य करके सत्यवतीके गर्भमें
वेदव्यासरूपसे अवतीर्ण होकर वेदोंके चार विभाग किये ॥ ४९ ॥ जैसे रत्नपारखी अनेक मणियोंकी राशियोंसे पद्मरागादि मणियोंको
छांटछांटकर अलग कर लेता है ऐसे ही मन्त्रोंके समुदाय एक वेदमेंसे ऋग्,यजु, साम और अथर्वण नामके मन्त्रोंको उद्धारके इन मन्त्रोंसे चा
संहिता श्रीवेदव्यासजीने रचीं ॥ ५० ॥ हे शौनक ! फिर पीछे महामति व्यासदेवजीने अपने चार शिष्योंको बुलाकर एकएक संहिता दे

1220

अस्मिन्नप्यंतरे ब्रह्मन्भगवाँल्लोकभावनः ॥ ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशां
शकलया विभुः ॥ अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥ ऋगथर्वयजुः साम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ॥
चतस्रः संहिताश्चक्रे मंत्रैर्मणिगणा इव ॥५०॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ॥ एकैकां संहितां ब्रह्मन्ने
कैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥ वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥
॥ ५२ ॥ साम्नां जैमिनये प्राह तथा छंदोगसंहिताम् ॥ अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमंतवे ॥ ५३ ॥ पैलः स्वां
संहितामूच इंद्रप्रमितये मुनिः ॥ बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥५४॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय
याज्ञवल्क्याय भार्गव॥पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥

दी ॥ ५१ ॥ पैलनाम शिष्यको बहुत ऋचा होनेसे बह्वृचनाम ऋग्यवेदी संहिता दी, निगदानाम यजुर्वेदकी संहिता वैशंपायनको दी ॥ ५२ ॥
छन्दोगनाम सामवेदकी संहिता जैमिनीको पढाई और अंगिरसनाम अथर्वण वेदकी संहिता अपने शिष्य सुमंतुको पढाई ॥ ५३ ॥ पैलमुनिने
अपनी पढीहुई संहिता इन्द्रप्रमित और बाष्कलनाम अपने दोनों शिष्योंको दी ॥ ५४ ॥ हे ब्रह्मन् ! बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग
करके बोध्य, याज्ञवल्क्य,पराशर और अग्निमित्र,इन चारो अपने शिष्योंको पढ़ाई. महात्मा इन्द्रप्रमितने अपनी संहिता कवि मण्डूक ऋषिको

पढाई मण्डूकने देवमित्रको पढाई, देवमित्रने सौभर्यादि ऋषियोंको पढाई ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ मण्डूकके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताके पांच विभाग करके वात्स्य, मुद्गल, शालीन, गोखल्य, शिशिर नाम अपने पांचों शिष्योंको दीं ॥ ५७ ॥ शाकल्यके छठे जातूकर्ण्य नाम शिष्यने अपनी संहिताके तीन भाग किये और वैदिक पदार्थोंका व्याख्यानरूप निरुक्त नाम ग्रन्थ रचकर; बलाक, पैज, वैताल और विरज नाम अपने चार शिष्योंको पढाया ॥ ५८ ॥ बाष्कलि, बाष्कलके पुत्रने सब संहिताओंकी शाखाओंमेंसे बालखिल्य नाम संहिता बनाकर वह संहिता वालायनि, भज्य और काशार नाम अपने तीनों शिष्योंको दी॥५९॥यह सब ब्रह्मऋषि ऋग्वेदकी बह्वृचानाम संहिताके धारण करनेवाले

अध्यापयत् संहितां स्वां मांडूकेयमृषिं कविम् ॥ तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥ शाकल्य
स्तत्सुतस्तां तु पंचधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात्॥५७॥जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः
स निरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो बालखिल्याख्य
संहिताम् ॥ चक्रे बालाय निर्भंज्य काशाराश्चैव तां दधुः॥५९॥ बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥ श्रुत्वैनं
छंदसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६० ॥ वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ॥ यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरो
र्व्रतम् ॥६१॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ॥ चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥
इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ॥ विप्रावमंत्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

हुए. जो पुरुष इस वेदके विस्तारको सुनेगा वह सब पापोंसे निवृत्त हो जायगा ॥ ६० ॥ वैशंपायनके शिष्यने यजुर्वेद संहिता पढी, इस लिये उन्होंने यज्ञमें अध्वर्युकी पदवी पाई, जब उनके गुरु वैशम्पायनको ब्रह्महत्याका पाप लगा तब उस पापके निवारणके लिये अपने गुरुके बदले उन्होंने अपने आप प्रायश्चित्त किया उस दिनसे उनका नाम 'चरकाध्वर्यु' हुआ॥६१॥ याज्ञवल्क्यने ब्रह्महत्याका प्रायश्चित करानेके समय वैशंपायन अपने गुरुसे कहा कि, हे स्वामिन् ! अल्प दृढतावाले जो और आपके शिष्य हैं, जो आपके पापका प्रायश्चित करैं तो क्योंकर होगा यह महाकठिन प्रायश्चित्त मैं अकेला ही करूंगा॥६२॥याज्ञवल्क्यका यह वचन सुन कर वैशंपायन अत्यन्त कुपित होकर बोले, तू मेरे सामनेसे

चलाजा, तू दूसरे ब्राह्मणकी अवज्ञा करनेवाला शिष्य है, इसलिये मुझसे तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं । तैंने मुझसे जो कुछ पढा है, उसको इसी समय त्याग दे ॥ ६३ ॥ गुरुके मुखसे इस प्रकारके कठोर वचन सुनकर देवरातकेपुत्र याज्ञवल्क्यने अभिमानमें आकर यजुर्वेदके मन्त्रोंको उगल वहांसे चल दिया, उस समय मुनिगणोंने यजुर्वेदके अमूल्य मन्त्रोंको पडा देखा॥ ६४ ॥ जिन मन्त्रोंमें उन मुनियोंकी परमइच्छा थी, उनमन्त्रोंको उन मुनियोंने तीतर पक्षीका रूप धारण करके याज्ञवल्क्यके वमन किये हुए यजुर्वेदके मन्त्रोंको ग्रहण करलिया, इसी दिनसे उस यजुर्वेदकी तैत्तिरीय नाम शाखा हुई ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन्! याज्ञवल्क्यजीने गुरुसे भी अधिक वेद विद्या प्राप्त करनेके लिये श्री सूर्यनारायणकी उपासना

देवरातसुतः सोऽपिच्छर्दित्वा यजुषां गणम् ॥ ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥ यजूंषि तित्तिरा
भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ॥ तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मञ्छन्दांस्यधि
गवेषयन् ॥ गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ ॐनमो भगवते आदित्याया
खिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानामंतर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश
इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां
लोकयात्रामनुवहति ॥ ६७ ॥ यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखि
लदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥

।२२।

करनी आरम्भ की ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य बोले कि, हे सूर्यनारायण भगवन्! आदित्यस्वरूप आपको बारंबार नमस्कार है, आप ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके समुदायरूपसहित इस विश्वके हृदयमें निरुपाधि अंतर्यामी रूप हो और बाहर लवनिमेष क्षणके अनेक अवयववाले वर्षोंके समुदायवाले कालरूपसे आकाशकी सदृश उपाधिसे आच्छादित नहीं होते और प्रत्येक वर्षमें पानीके सोखने और वर्षानेसे एक ही आप इस जगत्की दिन रात यात्रा करते रहते हो ऐसे जो आप त्रिलोकीनाथ हो आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥ ६७॥ हे त्रिभुवनपते ! हे त्रयतापके नशानेवाले! हे नित्य त्रिकाल वेदविधिसे पूजन करनेवाले भक्तजनोंके अखिल पापोंके फल दूषण और

बीज अज्ञानके जाननेवाले। हे सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ। हे सविता भगवन्। आपका जो यह मण्डल त्रिलोकीमें प्रकाश करता है, ऐसे जो आप निशिवासर जगत्के तपानेवाले हैं सो मैं एकाग्रचित्तसे आपका ध्यान करता हुँ॥ ६८ ॥ हे भास्कर। आपके रहनेके स्थान स्थावर जंगम अनन्त समुदायके जड़रूप मन इंद्रियप्राणोंके समूहोंको आप ही अन्तर्यामी आत्मारूप होकर प्रेरणा करते हो, ऐसे तेजरूपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ ६९ ॥ हे विश्वतमनाशक। हे कृपानिधे। महाभयानक मुखवाले अन्धकाररूप अजगरसे ग्रसे हुए मृतकके समान संज्ञारहित अचेतन लोकोंको देखकर परमकरुणानिधान आप दयादृष्टिसे उनको उठाकर नित्य समय समयपर कल्याणरूप स्वधर्मनिष्ठामें प्रवृत्त करते

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइंद्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मांतर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवदनांधकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकंपया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्त्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥ परित आशापालैस्तत्रतत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वंदितमहमयातयामयजुष्काम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः ॥ यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥

हो और भूपतिकी तुल्य असाधु लोगोंको भय देतेहुये सब ओर घूमते रहते हो, ऐसे जो आप दयालु हो सो आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ॥ ७० ॥ हे सूर्य! जहां तहां दिक्पाल देवता कमलकोशयुक्त अंजलियोंसे आपको अर्घ्य देदे कर आराधना करते हैं, ऐसे जो सर्वान्तर्यामी आप हो आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७१ ॥ हे भगवन्। आप ऐसे दीनदयालु हो, त्रिलोकीके अधीश्वरोंसे पूजित आपके चरणारविन्दकी उत्तम यजुर्वेदकी कामनाके लिये मैं शरण आया हूँ॥ ७२ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादि ऋषियो। याज्ञवल्क्यने जब इस प्रकार सूर्यनारायणकी प्रार्थना की तब इस प्रार्थनाको सुन, सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर अश्वका रूप धारण किया और याज्ञवल्क्यको उसकी इच्छानुसार ही यजुर्वेदके मंत्र दिये॥ ७३ ॥

तब याज्ञवल्क्य मुनिने इस यजुर्वेदकी पन्द्रह (१५) शाखा करी, सूर्यनारायणने अपनी केशावलीसे जो मंत्र निकाले इसलिये यह शाखा वाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई इन शाखाओंको कण्व और माध्यंदिनादि ऋषियोंने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥ सामवेदके वेत्ता जैमिनिने सुमन्तु नाम अपने पुत्रको और सुन्वान् नाम अपने नातीको एक एक संहिता पढ़ा दी॥ ७५ ॥ फिर जैमिनिजीका दूसरा शिष्य सुकर्मा नाम द्विज बड़ा चतुर था उसने सामवेदवृक्षकी सहस्र संहिता बनाकर अलग २ शाखा रची॥७६॥हिरण्यनाभ, कौशल्या पौष्यंजि और वेदपाठी आवंत्य यह तीन शिष्य सुकर्माके हुए, इन्होंने सहस्रों संहिताओंको ग्रहण किया॥ ७७॥हिरण्यनाभ पौष्यजि और आवंत्यके महाचतुर पांचसौ ५००

1222

यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपंच शतैर्विभुः ॥ जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥७४॥ जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमन्तुस्तनयो मुनिः ॥ सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ॥ सहस्रं संहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः॥७६॥हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यंजिश्च सुकर्मणः॥शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवंत्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पंच शतानि च ॥ पौष्यंज्यावंत्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते॥७८॥लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ॥ पौष्यंजिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतंशतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ॥ शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवंत्य आत्मवान्॥ ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादशस्कंधे वेदशाखाविभागनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ अथर्ववित्सुमंतुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ॥ संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

शिष्य सामवेदके गानेवाले उदीच्यानाम (उत्तर दिशानिवासी) हुए, इनमें कोई २ पूर्वदिशाके वासी कहलाये॥७८॥पौष्यंजिके शिष्य लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुशीद, कुक्षी यह पांच शिष्य और थे इन्होंने सौ सौ संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ॥७९ ॥ हिरण्यनाभका कृत्त नाम दूसरा और शिष्य था इसने अपने शिष्योंको चौबीस संहिता पढाई और जो संहितामें अवशेष रह गई थीं वह ज्ञानवान् आवंत्यने अपने शिष्योंको पढ़ा दीं ॥८०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भा०टी० वेद शाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ दोहा–सप्तममाहिं अथर्वको, कहौं सहित विस्तार । फेर पुराणोंके कहौं, लक्षण सकल विचार ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, अथर्ववेदपाठी सुमन्तुने अपनी संहिता अपने कबन्ध

नामशिष्यको पढाई, कबन्धने अपनी संहिताके दो भाग करके पथ्या और वेददर्श नामको पढाई॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो। वेददर्शने अपनी संहिताके चार भाग किये और शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि नाम अपने चार शिष्योंको पढाई और पथ्यने अपनी संहिताके तीन भाग करके कुमुद,शुनक, और जाजलि नाम तीन शिष्योंको पढाई ॥ २ ॥ शुनकने बभ्रु और सैन्धवायन नाम दो शिष्योंको अपनी संहिताके दो विभाग करके पढाया.सैन्धवायन आदिक सावर्णि आदि शिष्य हुए॥३॥ नक्षत्रकल्प,शान्तिकल्प,कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य हुए, हे मुनिराज। यह तो मैंने आपसे अथर्ववेदके आचार्य्य कहें अब मैं आपके सामने पुराणोंके आचार्योंका वर्णन करता हूँ, सो आप

शौल्कायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ॥वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥ कुमुदः शुनको ब्रह्मञ्जाजलिश्चाप्यथर्ववित ॥२॥ बभ्रुः शिष्योऽथांगिरसः सैंधवायन एव च ॥ अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३॥ नक्षत्रकल्पः शांतिश्च कश्यपांगिरसादयः ॥ एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः॥ वैशंपायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयंत व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ॥ एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम्॥६॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ॥ अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥७॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ॥ शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

सावधान होकर सुनिये ॥४॥ त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि,अकृतव्रण,वैशंपायन और हारीत यह छः पुराणोंके आचार्य्य हुए॥ ५ ॥ वेदव्यासजीने पहिले पुराणोंकी छः संहिता रचकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढाई थीं, फिर रोमहर्षणके मुखसे इन छहो जनोंने छहो संहिताओंको पढ़ा; मैं इन छहो महात्माजनोंका शिष्य हुआ सबसे एक एक संहिता पढी ॥ ६ ॥ इनमें जो पुराणोंकी चार संहितायें मूल थीं उनको कश्यप, सावर्णि परशुरामजीका शिष्य अकृतव्रण और चौथा मैं इन चारो जनोंने व्यासजीके शिष्य मेरे पितासे चारो मूलसंहिताओंको पढा ॥ ७ ॥ हे शौनक। ब्रह्मऋषियोंने जो पुराणोंके लक्षण वर्णन किये हैं, वेद शास्त्रके अनुसार हम कहते हैं आप सावधान हो ध्यान लगाकर

सुनिये ॥ ८ ॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर राजाओंके वंश, उन वंशवाले राजाओंके चरित्र, निरोध, मुक्ति हेतु और अपाश्रय ॥ ९ ॥ जिसमें यह दश लक्षण हों विद्वान् लोग उसको महापुराण कहते हैं और कोई कोई आचार्य लोग पांच लक्षण (सर्ग, प्रतिसर्ग; वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र) वाले ग्रन्थको भी पुराण कहते हैं यह केवल छोटेबडेकी व्यवस्था है ॥ १० ॥ इस मायाके गुणक्षोभसे महत्तत्त्व, तीन प्रकारका अहंकार, पंचमहाभूत और इन्द्रियगणकी उत्पत्तिको सर्ग कहते हैं ॥ ११ ॥ ईश्वरके अनुग्रहसे महत्तत्त्व आदिसे प्रगट होता हुआ और बीजमेंसे बीजकी सदृश प्रवाहरूपसे चलते हुए स्थावर जंगमरूप प्रपंचको विसर्ग कहते हैं ॥ १२ ॥ जंगम प्रणियोंका स्थावर आहार है और जंगमोंकी मांसमें भी साधारण प्रीति है उनमें मनुष्योंके निमित्त रागसे अथवा शास्त्र वचनोंमें जो आजीविकाका विधान है, वह वृत्ति कहाती है ॥ १३ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवताओंमें भगवान् अवतीर्ण होकर युगयुगमें जो लीला करके विश्वकी रक्षा करते हैं, वही विश्वकी रक्षा कहलाती है और वही अनेक प्रकारके अवतार धारण करके वेदके द्रोही दुष्ट और पाखण्डियोंको मार पृथ्वीकी रक्षा करते हैं, वही रक्षा कहलाती है ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और हरिके अंशावतार यह छः मिलकर मन्वन्तर कहलाता है॥ १५॥ ब्रह्मासे उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओंकी भूत, भविष्य, वर्त्तमान कालकी सन्तानको वंश कहते हैं, उन राजाओंके वंशको और उन वंशोमें

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षांतराणि च ॥ वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ॥ केचित्पंचविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ॥ भूतसूक्ष्मेंद्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः॥ विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ॥ कृतास्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगेयुगे ॥ तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यंते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥ मन्वंतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ॥ ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः॥ वंश्यानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥ १६ ॥

हुए चरित्रोंको वंशानुचरित्र कहते हैं ॥ १६ ॥ नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक चार प्रकारके प्रलयको कविजन संस्था (निरोध) कहते हैं ॥ १७ ॥ अविद्याके कारण कर्मकर्त्ता जीव जिसे मुख्यवेत्ता अनुशयी और उपाधिवेत्ता अव्याकृत कहते हैं, उसकी वासना इस जगत्की सृष्टि होनेमें निमित्त है, वह मुक्ति हेतु (ऊति) कहलाती ॥ १८ ॥ जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्तिमें जीवरूपसे वर्तनेवाले ईश्वर मायामें विश्व तैजस और प्राज्ञमें प्रविष्ट हैं और समाधिमें उनसे पृथक् है. इसलिये वह अपाश्रय कहलाते हैं ॥ १९ ॥ जैसे घटादिक पदार्थमें मृतिकादि प्रविष्ट हैं उनके नाम रूपसे सत्तामात्र ही है, ऐसे ही जन्मसे लेकर मरणतक इन सब अवस्थाओंमें ब्रह्म युक्त भी है और अलग भी है॥ २० ॥जब सत्त्व,

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यंतिको लयः ॥ संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः॥१७॥हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ॥ यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु॥ मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ॥ बीजादिपंचतां तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ॥ योगेन वा तदात्मानं वेदेहा या निवर्त्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ॥ मुनयोऽष्टादशप्राहुः क्षुल्लकानि महांति च ॥ २२ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् ॥ नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कंडेयं सवामनम् ॥ वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

रज, तम तीनों गुणोंको वृत्तियोंको त्यागकर पुरुषका चित्त शांत हो अथवा योगाभ्यास करके शांत हो तब यह पुरुष अपने शुद्धरूपको जानकर संसारचेष्टाओंसे छूट जाता है॥२१॥इन छोटे बड़े लक्षणोंसे पुराण पहिचाने जाते हैं अठारह १८ महापुराण हैं और अठारह १८ लघु पुराण हैं, इस प्रकार बडे २ प्राचीन कविवर कहते हैं ॥२२॥ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुडपुराण, नारदीय पुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण,॥२३॥भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण,

कूर्म[१७]पुराण, ब्रह्माण्ड[१८]पुराण यह अठारह पुराण कहे *॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! वेदव्यासजीने और उनके शिष्योंने और उनके शिष्योंके शिष्योंने जो वेदकी शाखाओंका विस्तार किया है, वह वृत्तान्त मैंने आपको सुनाया, क्योंकि वह ब्रह्मतेज और भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां पुराणलक्षणवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ दोहा-मोह मार्कण्डेयको, तपचर्य्या अरु काम

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥ शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽथर्ववेदपुराणलक्षणादिनि० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ॥ तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥ आहुश्चिरायुषमृषिं मृकंडुतनयं जनाः ॥ यः कल्पांते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥

1291

इस अष्टम अध्यायमें, हरिअस्तुति सुखधाम ॥ १ ॥ शौनकादि मुनि बोले कि, हे साधो ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीसूतजी महाराज ! इस अपार संसारमें भ्रमनेवाले मनुष्योंको पार लगानेवाले तुम चिरजीवित रहो ॥ १ ॥ मृकण्डुके पुत्र मार्कण्डेयजीको लोग चिरजीवी कहते हैं, क्योंकि

---

* शंका-राजा जन्मेजयके यज्ञमें बृस्पतिजीने राजा जन्मेजयसे कहा कि, हे राजन् ! तक्षकने अमृत पी लिया है, आपके मारनेसे वह नहीं मरेगा. क्योंकि अमृतको जो प्राणी पी लेता है वह किसीके मारनेसे नहीं मरता, इस बातमें यह सन्देह है कि, अमृतका, स्वामी इन्द्र, जिसने रातदिन अमृत पिया, बरन् अमृत पीते पीते अनेक युग बीत गये ऐसे इन्द्रको तप और मन्त्रोंके प्रभावसे राजा जन्मेजयके यज्ञकुण्डमें स्वर्गसे गिराकर भस्म करनेका सामर्थ्य तो ब्राह्मणोंमें था और जिस तक्षकने राईभर अमृत पी लिया, क्या वह ब्राह्मणोंके मन्त्र और तपके प्रभावसे भस्म नहीं हो सकता ?

उत्तर-जो प्राणी बहुत दुःखी होकर भगवान्का नाम एक बार भी लेता है उसको असंख्य नामके जपनेका फल प्राप्त होता है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है. तक्षकने जाना कि, मैं बडे बडे देवताओंके पास गया, किसीने भी मेरी सहायता नहीं की ऐसा विचार कर इन्द्रलोकमें गया, महादुःखी हो रहा था, नेत्रोंसे आंसू चले जाते थे और अत्यन्त आतुर होकर 'हे भगवन् ! हे नारायण !' इस प्रकार बडे आदरसे वारंवार भगवान्का नाम जपा, वही भगवान्का नाम अमृत हो गया, उसी भगवन्नाम अमृतको तक्षकने पान किया इसलिये गुप्त करके बृस्पतिजीने कहा था कि, तक्षकने अमृत पी लिया है, तुम्हारे मारनेसे नही मरेगा, कुछ इन्द्रवाले अमृतको नहीं कहा था।

जिस प्रलयमें सब जगत् ग्रस्त हुआ तो उस कल्पातरमें मार्कण्डेयजी किस प्रकार बच रहे ? ॥ २ ॥ जो भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ इसी कल्पमें हमारे वंशज उत्पन्न हुए, उस दिनसे लेकर आजतक प्राणियोंका प्राकृतिक अथवा नैमित्तिक कोई भी प्रलय नहीं हुआ, फिर उनका प्रलयमें अवशेष रहना क्योंकर सम्भव हो सकता है ॥ ३ ॥ कोई कोई महात्मा जन ऐसा भी कहते हैं कि, मार्कण्डेय ऋषि अकेले ही प्रलयके समुद्रमें घूम रहे थे और वहां उन्होंने वटके पत्रके दोनेमें एक अद्भुत बालकको सोता हुआ देखा सो प्रलयकालमें वटका वृक्ष कैसे रह गया ! ॥ ४ ॥

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ॥ न वाऽधुनापि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल ॥ वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः ॥ तं नश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ॥ नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कंडेयः पितुः क्रमात् ॥ छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

हे सूत ! हे महायोगिन् ! हमको बड़ा सन्देह है और उसका उत्तर सुननेकी अभिलाषा है, आप सब पुराणोंके ज्ञाता और परमज्ञानी हो, हमारे इस संशयको निवारण करो ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि, हे महापुरुषो ! आपका यह प्रश्न सम्पूर्ण लोकोंके पापोंका दूर करनेवाला है, क्योंकि इस प्रश्नमें श्रीनारायणकी कथा कलियुगके दोषोंकी मिटानेवाली है * ॥ ६ ॥ क्रम करके पितासे द्विजन्म संस्कार पाय मार्कण्डेयने

---

* शंका-श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धके अष्टम अध्यायमें लिखा है कि,सूतके मुखसे ब्राह्मणोंने विद्या पढी तो इसमें यह शंका है कि क्या उस समय ब्राह्मणोंको विद्या पढानेके लिये ब्राह्मणवंश नहीं था ? क्या सब ब्राह्मण नष्ट हो गये थे, जो ब्राह्मणोंने सूतके मुखसे विद्या पढी यह बडा भाश्चर्य है ?

उत्तर-सूतने व्यासदेवजीकी सेवा बहुत वर्षतक की तब व्यासजीने सूतको अपना पुत्र मानकर शास्त्र और पुराण पढाये और यज्ञोपवीतकर्म भी सूतका किया; क्योंकि व्यासजी साक्षात् भगवान्के अवतार थे, संस्कार करके सूतको वरदान दिया कि, हे पुत्र सूत ! तुम्हारे मुखसे भगवान्की कथाको जो ब्राह्मण अभिमान त्यागकर सुनेंगे अथवा पढेंगे उन सुनने पढनेवाले ब्राह्मणोंको कथाका सहस्र गुणा फल होगा और विद्या पढनेका फल भी सहस्रगुणा ही होगा. इसलिये सब ब्राह्मण और सनकादिकोंने अभिमानको तजकर सूतसे कथा सुनी और विद्या पढी, ब्राह्मणोंका वंश नष्ट नहीं हुआ था पुण्यके लोभसे सब ब्राह्मणोंने पढा सुना।

तप स्वाध्याय पूर्वक वेदोंको पढा॥७॥नैष्ठिक, बालब्रह्मचारी, शांत, वल्कलवस्त्र धारण किये, जटा,दंड, कमण्डलु,उपवीत (जनेऊ) पहिरे॥८॥
कृष्ण मृगचर्म,कमलाक्षकी माला,नित्य नैमित्तिक सिद्धिके लिये कुशाओंको धारण किये,अग्नि,सूर्य, गुरु,ब्राह्मण और आत्मामें दोनों सन्ध्या
करके भगवत् आराधना करने लगे ॥ ९ ॥ सांझ सबेरे भिक्षा लाकर गुरुके सम्मुख रख देते और जब गुरु आज्ञा देते तब मौन साध एकबार
भोजन करलेते और जो गुरु कभी आज्ञा न देते तो उस दिन निराहारी रह जाते॥१०॥ इस प्रकार मार्कण्डेयजीने विद्याध्ययन परायण होकर
दश करोड़ १००००००००वर्षतक हृषीकेशका, आराधन करके तप किया और अतिदुर्जय मृत्युको जीत लिया॥११॥तब तो ब्रह्मा,महादेव,

बृहद्व्रतधरः शांतो जटिलो वल्कलांबरः ॥ बिभ्रत्कमण्डलुं दंडमुपवीतं समेखलम् ॥८॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च
निमयर्द्धये ॥ अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ॥ बुभुजे
गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥१०॥ एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं
सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ॥ नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थं
बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशांतरात्मना ॥१३॥ तस्यैवं युंजतश्चित्तं महायोगेन
योगिनः ॥ व्यतीयाय महान्कालो मन्वंतरषडात्मकः ॥ १४ ॥ एतत्पुरंदरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे ॥ तपोवि
शंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥ गंधर्वाप्सरसः कामं वसंतमलयानिलौ ॥ मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ
तदा ॥ १६ ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे॥पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

1225

भृगु,दक्ष और भी ब्रह्माके अनेक पुत्र, मनुष्य, देवता, पितर, भूत और संपूर्ण देहधारियोंको बडा आश्चर्य हुआ॥ १२॥ इस प्रकार नैष्ठिकब्रह्मचारी
व्रत धारण कर मार्कण्डेयजी तप अध्ययन संयमों करके क्लेशरहित मनसे अधोक्षज भगवान्का ध्यान करने लगे॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान्में
मन लगाये उन महायोगी मार्कण्डेयको छः मन्वन्तर बीत गये ॥१४॥ हे ब्रह्मन् । सातवें मन्वन्तरमें मार्कण्डेयके तपको देखकर इंद्र शंकायुक्त
हुआ और उनके तपमें विघ्न डालना चाहा ॥ १५ ॥ तब इन्द्रने उनका तप भंग करनेके लिये गन्धर्व,अप्सरा, मनोभव, वसन्तऋतु,मलयपवन,
रजोगुणके मित्र लोभ त्र मदको मार्कण्डेयमुनिके पास भेजा ॥१६॥ हे विभो । वह सब मिलकर हिमालयकी उत्तर ओर उन मुनिके आश्रममें

गये,जहां पुष्पभद्रा नदी और चित्र नाम शिला है॥१७॥ वह परमपवित्र मार्कण्डेयजीका आश्रम जहां सुन्दर सुन्दर वृक्ष और लतायें शोभायमान थीं, अनेक प्रकारके पक्षियोंके शब्दसे व्याप्त हो रहा था, जहां परमविद्वान् ब्राह्मणोंके कुल निवास करते थे, और सरोवरोंमें जहां तहां निर्मल जल झकोल रहे थे ॥१८॥ मतवाले भ्रमर गुञ्जार रहे थे,मदोन्मत्त कोकिला कुहू कुहू पुकार रही थीं,मदमाते मोर जहां तहां नटोंकी भाँति नाच रहे थे और मत्त पक्षियोंके समुदाय अपनी २ वाणी बोल रहे थे॥ १९ ॥शीतल जलके झरनोंके किनकाओंको लेकर वनपवन पुष्पोंको स्पर्श करता परम सुगंधवाला कामदेवको बढानेवाला कामदेवको देख कर सबके चित्तको प्रफुल्लित करने लगा॥२०॥चन्द्रमाके उदय होनेसे सन्ध्या

तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलतांचितम् ॥ पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ॥ मत्तबर्हिंनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥ वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झर शीकरान् ॥ सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तंभयन्स्मरम् ॥ २० ॥ उद्यच्चन्द्रनिशावक्रः प्रवालस्तबकालिभिः ॥ गोपद्रुम लताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥ अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः॥अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२॥ हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ॥ मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमंतमिवानलम् ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ॥ मृदंगवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥ संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ॥ मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकंपयन् ॥ २५ ॥

समयके सुन्दर नवीन पल्लव और फूलोंके गुच्छोंके समूह अनेक शाखा और वृक्ष लताओंसे युक्त वसन्तऋतु वहां आकर प्रगट हुई ॥ २१॥ गीत और वादित्रवाले गन्धर्व और अप्सराओंके समूहोंसे युक्त कामदेव हाथमें धनुष बाण लिये दिखाई दिया ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रसे निश्चित हो उस आश्रममें ध्यानसे नेत्र मूँदकर मूर्त्तिमान् अग्निके समान अनन्ततेजस्वी मार्कण्डेयजीको आसनपर विराजमान देखा ॥ २३ ॥ उस समय मार्कण्डेयजीके सामने अप्सरायें नाचने लगीं,गंधर्व गाने लगे, मृदंग,बीणा,ढोलकादि अनेक प्रकारके सुन्दर सुन्दर बाजे बजाने लगे॥२४॥ ऐसा सुन्दर समय पाकर कामदेवने शोषण,दीपन, संमोहन, संतापन,उन्मादन नाम यह पांच मुखवाले बाण अपने धनुषपर धारण किये और

वसन्त लोभादिसे सब इन्द्रके अनुचर मार्कण्डेयजीके मनको कम्पायमान करने लगे ॥२५॥ गेंदको उछालती अनेक प्रकारकी क्रीडा करती पुञ्जिकस्थली नाम अप्सरा स्तनोंके भारसे जिसकी लंक लचक रही थी कि, जिसके केशपाशसे शिथिल होनेके कारण पुष्प गिर रहे थे, गेंदको उछालती तिरछी चितवनसे चारों ओरको देखती भालती जब वह चंचल चित्तवाली चली तब कटिमेखला टूट जानेसे उसका वस्त्र भी छूट गया, पीछे समीरने उस वीरबालाका सूक्ष्म वस्त्र हरण कर लिया॥२७॥उस समय वह पञ्चशर मार्कण्डेयजीको अपने वशमें जानकर अपना महातीक्ष्ण शर चलाया,परन्तु उस अवसरमें कामदेवके सब उद्यम व्यर्थ हो गये, जैसे भाग्यहीनके सब उद्यम निष्फल हो जाते हैं ॥ २८ ॥ हे मुने । इस प्रकार मुनिके तिरस्कार करनेवाले मन्मथादिक मार्कण्डेयके तेजसे भस्म होने लगे,तब तो भयभीत होकर वह अभागे भागने लगे,

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कंदुकैः स्तनगौरवात् ॥ भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥ २६ ॥ इतस्ततो
भ्रमद्दृष्टेश्चलंत्या अनुकन्दुकम् ॥ वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥ विससर्ज तदा बाणं मत्वा
तं स्वजितं स्मरः ॥ सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥ त इत्थपमकुर्वंतो मुनेस्तत्तेजसा मुने ॥ दह्य
माना निवद्वृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः॥२९॥इतींद्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ॥ यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं
महत्सु हि ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ॥ श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥
तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्ज
लोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलांबरौ ॥ पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥

जैसे बालक सर्पको जगाकर भागता है ॥२९॥ हे ब्रह्मन् । इस प्रकार पुरन्दरके अनुचरोंके किये हुए कर्त्तव्यको वृथा देखकर मार्कण्डेयजीके मनमें किसी प्रकारका अहंकार और विकार नहीं उपजा, सो इस बातका महात्मा पुरुषोंमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ ३० ॥ गणों समेत कामदेवको निस्तेज देखकर और ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर इन्द्र अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुआ ॥३१॥ इस प्रकार तप, अध्ययन और संयमोंसे मनको वशमें रखनेवाले भगवान्में जिनका चित्त लग रहा ऐसे मार्कंडेयजीपर अनुग्रह करनेके लिये नर नारायण भगवान् वहां आ प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ शुक्ल श्याम नवीन कमलसे सुन्दर नेत्र, चतुर्भुज मृगचर्म वल्कलके वस्त्र, हाथमें कमण्डलु, जनेऊ सूधे बांसके दण्डको धारण किये ॥ ३३ ॥

कमलकी माला, जीव जन्तु न मर जांय उनको हटानेके लिये वस्त्रका झाडूव वेदको धरे, गौरवर्ण तेज धारी, बिजलीके समान प्रकाशवान्, साक्षात् मूर्त्तिमान्, तपरूप.शरीर, परमश्रेष्ठ, देवताओंके पूज्य दोनों ऋषीश्वर आये ॥३४॥ भगवत्स्वरूप नर नारायण ऋषीश्वरोंको देखकर, मार्कण्डेयजीने बहुत आदरपूर्वक उठकर दण्डके समान गिरकर दोनोंको दंडवत् साष्टांग किया ॥ ३५ ॥ नर नारायणके दर्शनके आनन्दसे बुद्धि, इंद्रिय, मनसे शांत हो और अंग प्रफुल्लित होनेसे और नेत्रोंमें जल भर आनेसे मार्कण्डेयजी भगवान्की ओर देखनेको समर्थ न हुए॥ ३६ ॥ फिर सँभल कर खडे हो, हाथ जोड नम्रता और उत्कण्ठासे आलिंगन कर गद्गद वाणीसे केवल 'नमो नमः' शब्द नरनारायणकी

पद्माक्षमालामुत जंतुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ॥ तपत्तडिद्वर्णपिशंगरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥३४॥ ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामांगेन दंडवत् ॥३५॥ स तत्संदर्शनानंदनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ॥ हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ॥ नमोनम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ॥ अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥३८॥ सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ॥ पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥३९॥ मार्कंडेय उवाच ॥किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पंदते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि॥स्पंदंति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

ओर देखकर कहा ॥ ३७ ॥ फिर उन दोनोंको आसनपर बैठाल चरण पखार, अर्घ्य दे, चन्दन, धूप, मालासे पूजन किया॥ ३८ ॥ सुखपूर्वक आसनपर बैठे प्रसन्नमुख, ऐसे दीनदयालु नरनारायणके चरणारविन्दोंमें मार्कण्डेयजीने फिर दंडवत् करके यह बचन कहा ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि,हे प्रभो ! मैं आपकी क्या स्तुति करूं ? जिन आपकी प्रेरणासे ब्रह्माके, शिवके, सब प्राणीमात्रके और मेरे भी प्राण चेष्टा करते हैं, उन प्राणोंके पीछे मन, वाणी इन्द्रियें चेष्टा करती हैं,तो भी आप अपने भजन करनेवालोंपर अधिक दया करते हो, क्योंकि आप दयाके सागर हैं, पिता आदिक तो इस शरीरके ही बन्धु परन्तु आप सदैव इस आत्माके बन्धु हो ॥ ४० ॥

हे भगवन् ! सदासे जैसे इस विश्वकी रक्षाके लिये आप अनेक प्रकारके स्वरूप धारण करते हो इसी प्रकार यहदो स्वरूप भी त्रिलोकीके मंगल करनेके निमित्त, सांसारिक तापोंके दूर करनेके अर्थ और मृत्युको जीतनेके लिये आपने धारण किये हैं,जैसे आप सृष्टिकी रक्षा करनेमें प्रसिद्ध हैं ,ऐसे ही विश्वके संहार करनेमें भी आप विख्यात हैं,जैसे मकरी जालेको रचकर पीछे आपही निगल जाती है ॥ ४१ ॥ स्थावर जंगमके रक्षा करनेवाले ईश्वर, आप के चरणारविन्दोंको मैं भजन करता हूँ,जिन चरणारविंदोंके आश्रयसे मनुष्योंको कालकर्म गुणोंके मान्य तापादिक कोई स्पर्श भी नहीं करते और बडे बडे वेदपाठी महात्मा लोग जिन चरणारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ध्यान करते हैं,यजन करते हैं और दिनरात स्तुति करते हैं॥४२॥हे ईश अपवर्गमूर्ति ! जिन प्राणियोंको चोरोंसे भयहै उन प्राणियोंके लिये आपके चरणकमलकी

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै॥नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वापुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः॥४१॥तस्यावितुःस्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजःस्पृशंति॥यद्वैस्तुवंतिनिनमंति यजंत्यभीक्ष्णं ध्यायंति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥ नान्यं तवांघ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः ॥ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्ध्यधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ॥ देहाद्यपार्थमसदंत्यमभिज्ञमात्रं विंदेत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबंधो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ॥ लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशांत्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

1227

प्राप्तिसे अधिक मंगल और निर्भय स्थान हम और कोई दूसरा नहीं समझते, दो परार्द्धकी आयुर्बलवाला ब्रह्मा भी आपकी भृकुटी बंकरूप कालसे अतिशय भयभीत रहता है, उसके सृजेहुए प्राणी भयभीत हों तो इसमें क्या आश्चर्य्य है ?॥४३॥आत्माके आवरण करनेवाले तुच्छ, नश्वर निष्फल भी हैं, परन्तु सत्यसे दृष्टि आते हैं, ऐसे देहादिकोंके भजनको छोड कर सत्य ज्ञान स्वरूप सब जीवोंके नियंता सबसे परे आपके उन चरणारविन्दोंको मैं भजता हूँ, जो आपके चरणकमलके भजनेवाले हैं, उनकी आपसे ही सब अभिलाषा पूर्ण होती हैं ॥ ४४ ॥ हे ईश ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तपोगुण यह तीनों गुण आपकी मायासे ही उत्पन्न हुए हैं और पालन, उत्पत्ति, संहारके कारण विष्णु

आदि सब आपकी ही लीलामूर्ति हैं, परंतु उनमें जो सत्त्वगुणकी मूर्ति है वह मनुष्योंके मनको शांत करनेवाली है और रजो-तमोगुणवाली मूर्ति मनको शान्त नहीं करती वरन् दुःख,मोह और भय उपजानेवाली है ॥ ४५ ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मादिक देवता और भक्तलोग शुद्ध सत्त्वमूर्तिका ही भजन करते हैं और सत्त्वगुणको ही ईश्वर मानते हैं, रजोगुण तमोगुणमें प्रवृत्त नहीं होते और ज्ञानी लोग इसीलिये आपकी इस नरनारायण नाम सत्त्वमूर्तिका भजन करते हैंकि, जिस सत्त्वगुणके प्रभावसे पुरुष निर्भय और सुखी होकर तुम्हारे लोकको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ विश्वका गुरु, विश्वरूप, सर्वोत्तम, पुरुष देव शुद्धस्वरूप, वाणीके नियता, वेदके प्रवर्त्तक, भगवान् नरनारायण ऋषि आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ कपटरूप इंद्रियोंके मार्गसे विक्षिप्त बुद्धिवाले और आपकी मायासे आवृतमतिवाले प्राणी अपने हृदय आका

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजंति॥यत्सात्त्वताः पुरुषरूपमुशंति सत्त्वंलोकोयतोऽभयमुतात्मसुखं न चाऽन्यत्॥ ४६ ॥ तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ॥ नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय॥४७॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः संतं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि सु दृक्पथेषु॥तन्मायायाऽऽवृतमतिःस उ एव साक्षादाद्यस्त्व तेऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥ यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यंति यत्र कवयोऽजपरा यतंतः॥तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वंदे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वादश० मार्कण्डेयोपाख्याने नरनारायणस्तुतिर्नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शमें प्राणोंमें, नेत्रोंमें निरन्तर विराजमान हों तो भी आपको नहीं जानते. हे भगवन् ! आदि पुरुष अखिलके गुरु ब्रह्माको भी जब आपने अपने प्रकाशसे वेद दिये तब ब्रह्माको भी आपके साक्षात् रूपका ज्ञान हुआ॥४८॥रहस्य तत्त्वका प्रकाश करनेवाला आपके दर्शनका ज्ञान एक वेदके ही जाननेसे होता है इसीसे सांख्ययोगादिकोंकी रीतिसे यत्नके करनेवाले ब्रह्मादिक कवि सब आपके दर्शनको पाते हैं, निर्गुण सगुणादिक सबके वचनके अनुकूल स्वभाव और देहादिकके अभिनिवेशसे गूढतत्त्वज्ञानवाले महापुरुष आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ॥४९॥

इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मार्कण्डेयतपोवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—नववेंमें भगवानकी, माया परम अनूप। बूड़त प्रलय समुद्रमें, देखेउ मुनि हरिरूप॥१॥ सूतजी बोले कि, बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इस प्रकार स्तुति करनेसे नरके मित्र भगवान् नारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर मार्कंडेय मुनिसे कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ! मनकी एकाग्रतासे और तप अध्ययन संयमोंसे और अनपायिनी हमारी भक्तिसे तुम सिद्ध हुए हो ॥ २ ॥ हे मुने! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कर्मसे हम बहुत सन्तुष्ट हुए, वरदान देनेवालोंके ईश्वर हम तुमको वरदान देनेके लिये आये हैं, तुम मनोवांछित वर मांगो, जो तुम्हारी इच्छा हो ॥ ३॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे देव! हे ईश! हे भक्तभयभञ्जन! हे अच्युत! आप जो वारं

सूत उवाच ॥ संस्तुतो भगवानित्थं मार्कंडेयेन धीमता॥नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भो भो ब्रह्मर्षिवर्योऽसि सिद्ध आत्मसमाधिना ॥ मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥२ ॥ वयं ते परितुष्टाः स्म तद्बृहद्व्रतचर्यया ॥ वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम्॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जितं ते देव देवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ॥ वरेणैतावताऽलं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥ ४ ॥ गृहीत्वाऽजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ॥ मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षिगोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यंबुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ॥ द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

वार वर देनेके लिये मुझसे कहते हो यह आप अपनी उत्कृष्टता(बड़ाई) प्रगट करते हो परन्तु मुझको किसी प्रकारके वरदानकी अभिलाषा नहीं, आपने जो मुझको दर्शन दिया यही महावरदान है, इससे अधिक और क्या वरदान होगा? ॥ ४ ॥ योगसे परिपक्व मन हो जिस आपके चरणारविंदके दर्शन पाकर ब्रह्मादिक देवता भी कृतार्थ होते हैं, वही आप साक्षात् मेरे नेत्रोंके आगे विराजमान हो, क्या इससे भी बढ़कर कोई और वरदान होगे? ॥ ५ ॥ हे कमलदललोचन! हे पुण्यशिखामणि! जो आपकी वर देनेकी ही इच्छा है तो यह वर दीजिये कि, जिस आपकी मायासे लोकों सहित लोकपाल मोहित हो जाते हैं, उसी मायाको मुझे दिखाओ ॥ ६ ॥

सूतजी बोले कि, ऋषियो ! इस प्रकार मार्कण्डेयसे स्तुति और वरदानका माँगना सुन भगवान् ईश्वर उन मुनिसे पूजित हो मुसकाकर वही वर दे बदरिकाश्रमको चले गये ❋ ॥७॥ तब मार्कण्डेयजी उस मायाके वरदानका चिन्तवन करने लगे और अपने आश्रममें बैठकर अग्नि, सूर्य, जल, चन्द्रमा, पृथ्वी, पवन, आकाश और मनमें भगवान्का ध्यान करने लगे ॥ ८ ॥ भावनारूपी द्रव्यसे नित्यप्रति भगवान्का पूजन किया करैं, कभी भक्तिके आवेशसे पूजाको भी भूल जाते ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! हे मुने !

सूत उवाच ॥ इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने ॥ तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेव चिंतयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ॥ वसन्नग्न्यर्कसोमांबुभूवायुवियदात्मसु ॥८॥ ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ॥ क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुने ॥ उपासीनस्य संध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान्॥ १० ॥ तं चण्डशब्दं समुदीरयंतं बलाहका अन्वभवन्करालाः ॥ अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनंत उच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ॥ ११ ॥ ततो व्यदृश्यंत चतुःसमुद्राः समंततः क्ष्मातलमाग्रसंतः ॥ समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्त्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥

हे ब्रह्मन् ! एक दिन सन्ध्यासमय पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कंडेयजी बैठे थे वहां बडा भयंकर पवन चलने लगा ॥ १० ॥ महावेगसे प्रचंड शब्द होने लगा, उस पवनके पीछे महाविकराल कालरूप प्रलयकीसी काली २ घटा चारो ओरसे उमड़ने लगीं, बडे गम्भीर शब्दसे बिजली कड़कड़ाने लगी, वज्रपात होने लगा, गजशुण्डके समान मोटी जलधारा वर्षने लगी ॥ ११ ॥ पवनके वेगसे पानीमें तरंगें उठने लगीं, पृथ्वी

---

* शंका—दुष्ट लोगोंका लक्षण यह है कि, बात करते २ मुसका देते हैं और जो कोई मनुष्य उन दुष्टोंके स्थानपर जाय तो उनको आता देखकर हँसते हैं और चलते समय भी वह दुष्ट मनुष्य उनके ठट्ठे उडाते हैं, वह दुष्ट उनके घर जायं तो भी हँसी करैं, चलते समय भी हँसी करते हैं, यह दुष्ट लोगोंकी पहिचानके लक्षण हैं, मार्कण्डेय मुनिके आश्रमसे नारायण जब अपने आश्रमको चले तब मुसकाते हुए क्यों चले ? बडे मुनीश्वर होकर ऐसा बुरा कम क्यों किया ?

उत्तर—नारायणमुनिने विचार किया कि, मार्कण्डेयजी मायाका प्रभाव देखना चाहते हैं, इनके मनमें ऐसा अभिमान है कि, मैंने मायाको तप करके जीत लिया है, ऐसा माया करके इनको मोह उपजाऊंगा जो यह युगानुयुग भूलैंगे नहीं, ऐसा विचारके अपने मनमें नारायण मुनि मुसकाये, कुछ दुष्टकर्मसे नहीं मुसकाये ।

डूबने लगी, उग्र ग्राह जहां तहां दिखाई देने लगे, महाभयानक भ्रमर जलमें पडने लगे, चारो ओर समुद्रकासा अरराहट होने लगा ॥ १२ ॥ आकाशके अतिक्रम करनेवाले जलसे और महातीक्ष्ण पवनसे और अत्यन्त दमकती हुई दामिनीसे चार प्रकारके जगत्को बाहर भीतरसे व्याकुल देख और पृथ्वीको पानीमें डूबी हुई, देखकर मुनि अपने मनमें घबराने लगे और विस्मित होकर त्रासको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ मार्कंडेयजीके देखते ही तरंगैं उठनेसे भयानक, पवनसे चलायमान, वर्षते हुए मेघोंसे पूर्ण हो समुद्र सब ओरसे द्वीप, खंड, पर्वतोंसहित पृथ्वीको डुबाने लगा ॥ १४ ॥ भूमि, अंतरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्र, दिशाओंसहित त्रिलोकी जलमय हो गई, उस समय केवल मार्कंडेयजी ही

अंतर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ॥ चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥ तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ॥ आपूर्यमाणो वरषद्भिरंबुदैः क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मांतरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सहदिग्भिराप्लुतम् ॥ स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडांधवत्॥१५॥ क्षुत्तृट्परीतैर्मकरैस्तिमिंगिलैरुपद्रुतो वीचिनभस्वता हतः ॥ तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥ क्वचिद्गतो महावर्त्ते तरंगैस्ताडितः क्वचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥

अवशेष रहे, वह अकेले ही अपनी बडी २ जटाओंको फैलाये जड़ अन्धके सदृश जलमें भ्रमने लगे ॥ १५ ॥ भूख और प्याससे पीडित, मकर और तिमिंगिलोंसे भयभीत, महाप्रचंड पवनके झकोरोंसे और जलकी तीव्र तरंगोंके प्रहारसे व्याकुल, अपार अन्धकारमें भ्रमण करते हुए आकाश और पृथ्वीको नहीं जानते भये ॥ १६ ॥ कभी महागम्भीर भवँरोंमें उछलते डूबते थे, कभी तरंगोंमें आकर इधर उधर चले जाते थे कभी भूखे जलजन्तु उनको खानेके लिये परस्पर लड़ते थे ॥ १७ ॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी दुःख, कभी सुख, कभी मरण, कभी जीवन, कभी रोगादिकोंसे ग्रसित हो अनेक प्रकारके क्लेश पाते थे ॥ १८ ॥

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः॥न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥ प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम्॥शयानं पर्णपुटके ग्रसंतं प्रभया तमः ॥२१॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपंकजम्॥ कंबुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुंदरभ्रुवम् ॥२२॥ श्वासैजदलकाभातं कंबुश्रीकर्णदाडिमम् ॥ विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥ पद्मगर्भारुणापांगं हृद्यहासावलोकनम् ॥ श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४॥ चार्वंगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणांबुजम् ॥ मुखे निधाय विप्रेंद्रो धयंतं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनांबुजः ॥ प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

नारायणकी मायासे आवृतचित्तवाले मार्कंडेयजीको इस जलमें भ्रमते २ अयुतायुतके सौ हजार अर्थात् एक शंख १०००००००००००००० वर्ष बीत गये ॥ १९ ॥ तब महाप्रलयके समुद्रमें भ्रमते २ एक टापू दिखाई दिया, इस टापूमें फल फूलोंसे अत्यन्त शोभायमान एक वटका वृक्ष दृष्टि आया ॥ २० ॥ इस वृक्षके पूर्व उत्तर (ईशान) के कोणकी शाखाके पत्रके जोड़ेमें सोता अपनी कांतिसे अन्धकारको दूर करनेवाला एक बालक देखा ॥ २१ ॥ महामरकत मणिके सदृश श्यामवर्ण, अत्यन्त शोभायमान मुखारविन्द, शंखके तुल्य तीन रेखाओंसे युक्त ग्रीवा, परम विशाल वक्षस्थल, सुन्दर नासिका और सुन्दर भौंहैं हैं ॥ २२ ॥ श्वाससे कांपती हुई अलकोंकी मनोहर छबि, भीतरकी ओरको शंखके तुल्य आँटी खाये हुए शोभित, कानोंमें दाडिमके फूलोंकी कली धरी, विद्रुमसे अरुण अधरोंकी कान्ति, सुधासरिस मन्द मुसकान॥२३॥ कमलकोशसे अरुण नेत्रोंको किये,सुन्दर हास्ययुक्त चितवन, श्वास लेनेमें चलायमान त्रिवलीसे शोभित गम्भीर नाभि अत्यन्त शोभा दे रही पीपलके समान सुन्दर उदर ॥ २४ ॥ अपने दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे दाहिने चरणके अँगूठेको थांभे हुए मुखसे पी रहा था, इस बालकको देखकर मार्कंडेयजी अत्यन्त विस्मित हुए॥२५॥ इसके दर्शनके आनन्दसे सब श्रम दूर हो गया, हृदयकमल खिल गया, शरीर पुलकायमान होने लगा, इस अद्भुत प्रभावको देख मुनि अति सशंकित होकर बूझनेके लिये इस बालकके समीप गये॥२६॥

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाऽविशत्॥तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुराऽमुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥ खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ॥ वनानि देशान्सरितः पुराकरान्खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महांति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ॥ यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥२९॥ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत ॥ विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ॥ तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपांगनिरीक्षणेन ॥ ३१॥ अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ॥ अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

उस समय वह भृगुवंशी मार्कण्डेय मुनि उस बालकके मुखके समीप बूझनेको झुके, इतनेमें बालकने श्वास जो लिया उसके श्वासके संग ही मच्छरकी नाईं बालकके मुखके मार्ग होकर उसके उदरमें पहुँच गये, वहां भी यह विश्व प्रलयसे पहिलेकी नाईं देखा । उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो मोहित हो गये ॥ २७ ॥ और वैसा ही आकाश,भूमि,स्वर्ग, वृक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खण्ड, दिशा,देवता, असुर, वन, देश, नदी, पुर, खान, किसानोंके ग्राम, गायोंके खरक, वर्ण, आश्रम और इन सबकी जीविकाको देखा॥२८॥पंच महाभूतोंके रचे प्राणी, युग, अनेक पदार्थ और कल्पोंकी कल्पना करनेवाला काल और भी जो व्यवहारोंके कारण थे वह सब उस बालककी सत्तासे सत्यसे प्रतीत होते मार्कण्डेयजीने देखे ॥ २९ ॥ घूमते घूमते हिमालयमें पहुँच गये, वहां पुष्पभद्रा नाम नदी और अपना आश्रम और उसमें रहनेवाले ऋषि और मुनियोंको भी देखा तब मार्कण्डेयजीने अपना स्थान जानकर रहनेका विचार किया, परन्तु मनमें यही सन्देह कि “यह क्या माया है” मार्कण्डेयजी यह विचार कर ही रहे थे इतनेमें बालकने ऊर्ध्व श्वास जो लिया तो फिर मुखसे बाहर निकलकर उसी प्रलयरूप समुद्रके जलमें आ पडे॥३०॥फिर वहां वही पृथ्वीका टापू और वही वटका वृक्ष और वही बालक उस वटके पत्तेपर सोताहुआ देखा और उस बालकने भी प्रेमरूप सुधासरस मन्द मुसकान सहित बांकी चितवनसे मुनिकी ओरको देखा ॥३१॥ तब तो मनको मोहित करनेवाले बालकको दोनों

नेत्रोंसे देखकर लज्जित हो अत्यन्त क्लेश मान मार्कण्डेयजी उन अधोक्षज भगवान्‌को आलिंगन करनेके लिये उनके सम्मुख धाये ॥२२॥ इतनेमें वह बालरूप साक्षात् योगके ईश्वर सर्वान्तर्यामी भगवान् मार्कण्डेयजीके देखते देखते अन्तर्धान हो गये, जैसे हरिविमुखोंकी क्रिया लोप हो जाती है ॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! तब तो उस वटवृक्ष और प्रलयके जलसे लोकोंके डूबनेका चिह्न भी न रहा, क्षणमात्रमें ही सब अन्तर्हित हो गये और मार्कंडेयजी पहिलेकी नाईं अपने आश्रममें बैठ गये ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९॥ दोहा-कहौं दशम अध्यायमें, शिवागमन मुनिधाम । अति प्रसन्न हो वर दिये, शिव अरु शिवकी वाम ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, मार्कण्डेयजी नारायणसे निर्मित योगमायाके वैभवका ऐसा अद्भुत चरित्र देखकर भगवान्‌की शरणमें आये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी

तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ॥ अंतर्दध ऋषे सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ २३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः ॥ तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ २४ ॥ इति श्रीभ० द्वादश० वटपत्रे शिशुदर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९॥ सूत उवाच ॥ स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥ वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यंघ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यंति ज्ञानकाशया ॥२॥ सूत उवाच ॥ तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ॥ रुद्राण्या भगवान्रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ॥ पश्येमं भगवन् विप्रं निभृतात्मेंद्रियाशयम् ॥४॥ निभृतोदझषव्रातं वातापाये यथार्णवम् ॥ कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धि सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥

बोले, हे ईश्वर ! शरणागतोंके अभयदान देनेवाले आपके चरणारविंदकी मैं शरण आया हूँ, देखो ! ज्ञानसी प्रकाशमान आपकी मायासे बडे बडे पण्डित ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं, क्योंकि अपने तप और पुरुषार्थके घमण्डमें आपका भजन नहीं करते, वह मेरे समान मायारूप समुद्रमें उछलते डूबते रहते हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि, एकदिन बैलपर चढे भवानीको संग लियेभगवान् महादेवजी आकाशमें गणोंसे वेष्टित पर्यटन करते फिरते थे कि, पुष्पभद्रानदीके निकट एकाग्रचित्तवाले मार्कण्डेय मुनिको बैठा देखा ॥३॥ शैलनन्दिनी भवानी मार्कण्डेयजीको देखकर शिवजीसे बोलीं कि,हे भगवन् ! जैसे पवन न चली हो उस समय समुद्रका जल और जन्तु आदि निश्चल रहतेहैं,ऐसे ही इसके

अंग,इंद्रिय और मन निश्चल हो गये हैं,ऐसे इस विप्रको देखो और इसके तपका फल इसको दो,क्योंकि तुम सब सिद्धियोंके दाता हो॥४॥५॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे पार्वती ! अव्यय अविनाशी आदिपुरुष भगवान्‌में प्रेमलक्षणा भक्ति होनेसे यह ब्रह्मऋषि मोक्षपर्यन्त कामनाको भी नहीं चाहता ॥ ६ ॥ तो भी हे भवानी ! इस साधु पुरुषसे कुछ सुखसंवाद करेंगे, क्योंकि मनुष्योंमें साधु पुरुषोंका समागम होना परम लाभदायक है ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! सर्व मुनि और साधुओंकी गति जाननेवाले, सर्व विद्याओंके और सम्पूर्ण जीवोंके ईश्वर भगवान् शिवजी पार्वतीसे यह बात कहकर मार्कण्डेयजीके सन्निकट गये ॥ ८ ॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंके रोकनेके कारण मार्कण्डेयजीको अपने आत्मा और विश्वकी ओर कुछ ध्यान नहीं था इसलिये साक्षात् ईश्वर और विश्वात्मा विश्वनाथ महादेव और पार्वतीके शुभाग

श्रीभगवानुवाच ॥ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत॥ भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥६॥ अथापि
संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ॥ अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः॥७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय
भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ॥
न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥९॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया ॥ अविशत्तद्गुहाकाशं वायु
श्छिद्रमिवेश्वरः ॥१०॥ आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिगजटाधरम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यंतमिव भास्करम् ॥
॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मांबरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ॥ अक्षमालाडमरुककपालपरशुं सह॥ बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य
हृदि विस्मितः ॥ १२॥ किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ॥१३॥

मनको भी उन्होंने नहीं जाना ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय ऋषिको समाधिनिष्ठ जानकर पवन जैसे छिद्रमें घुस जाता है, ऐसे ही कैलासपति भगवान् महादेवजीने योगमाया करके मुनिके हृदयाकाशमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ तीन नेत्र, दश भुजा, ऊँचा शरीर, बिजली सदृश पीत जटाओंको धारण किये, प्रातःकालके सुर्यके समान शोभायमान तेजस्वी ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मके वस्त्र पहिने, त्रिशूल,धनुष,बाण,खड्ग,ढाल,डमरू, रुद्राक्ष, कपालमाला और परशु हाथमें लिये, शिवजीको अकस्मात ही हृदयमें प्रकाशमान देख अत्यन्त विस्मित हो कर बोले॥ १२ ॥ क्या आश्चर्य है ? यह कौन हैं ? कहांसे आये ? इस विचार ही विचारमें मुनिकी समाधि निवृत्त हो गई तब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती और गणों सहित

शिवजी सम्मुख खडे हैं ॥ १३ ॥ त्रिभुवनका प्रधान गुरु शिवजीको समझेकर मार्कण्डेयजीने मस्तक नवाकर नमस्कार किया 'भले आये महाराज !' यह कह आसन दे चरणामृत ले अर्घ्य, चंदन, माला, धूप, दीपादिसे गण और गिरिजा सहित शिवजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ फिर कहा कि, हे विभो ! हे ईश ! हे नाथ ! आप तो अपने प्रभावसे ही पूर्णकाम और विश्वके आनन्ददाता हो, मैं आपका क्या पूजन करूं ? ॥ ॥ १५ ॥ आप निर्गुण, शान्त, सत्त्वके अधिष्ठाता, सबके परम सुखदाता और रजोगुण तमोगुणके धारण करनेवाले होकर भी अघोर हो, मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनिने स्तुति की तब संतुष्ट हृदयवाले महात्मा पुरुषोंके शरणरूप आदिदेव

रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ तस्मै सपर्यां व्यदधात्सगणाय सहोमया ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यगंधस्रग्धूपदी
पकैः ॥ १४ ॥ आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ॥ करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १५ ॥ नमः शिवाय
शांताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ॥ रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः
सतां गतिः ॥ परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ॥ अमोघं
दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विंदतेऽमृतम् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणाः साधवः शांता निःसंगा भूतवत्सलाः ॥ एकांतभक्ता अस्मासु
निर्वैराः समदर्शिनः ॥ १९ ॥ सलोका लोकपालास्तान्वंदंत्यर्चंत्युपासते ॥ अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः,
॥ २० ॥ न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ॥ नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २१ ॥

विश्वनाथ प्रसन्न होकर हास्यपूर्वक मुनिसे कहने लगे ॥ १७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे मुने ! तुम हमसे मनोवांछित वर मांगो; क्योंकि हम तीनों वर देनेवालोंके ईश्वर हैं, हमारा तीनों देवताओंका दर्शन अमोघ है, जिस कार्यके लिये भजता है, उसका कार्य सफल होता है और मरण धर्माओंको मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण, साधु, संत, शांतचित्त, रागरहित सब प्राणियोंपर दया रखनेवाले हमारे पूर्ण भक्त, वैरभावरहित, समदर्शी ॥ १९ ॥ उनका लोकसहित लोकपाल और देवता वन्दन करते हैं, पूजते हैं और दिन रात सेवन करते हैं सब इतना ही न समझना. नहीं, जो सबके अधिष्ठाता विष्णु, ब्रह्मा और हम भी उनका सेवन करते हैं ॥ २० ॥ आपके समान ब्राह्मण हम, विष्णु, ब्रह्मा, अपने आत्मा और

लोकोंमें किञ्चिन्मात्र भी भेददृष्टि नहीं रखते, इसी लिये हम आपका निरन्तर भजन करते हैं * ॥२१॥ जलमें क्या तीर्थ नहीं है ? क्या मूर्त्तियोंमें देवता नहीं है ? निश्चय हैं, परन्तु वह तत्काल फल नहीं देते, बहुत कालमें पवित्र करते हैं और हे महाराज ! आपसरीखे महात्मा तो दर्शनसे ही पवित्र करते हैं॥२२॥ चित्तकी एकाग्रता,तपस्या,स्वाध्याय, संयम,वेदत्रयी, यम, हमारे रूपको जो ब्राह्मण धारण करते हैं, उनको हम भी नमस्कार करते हैं॥ २३ ॥ जब कि, आपके श्रवण अथवा दर्शनसे ही महापातकी और चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं तो आपके

न ह्यम्मयानि तिर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २२ ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ॥ बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमः ॥ २३ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोऽपि वः ॥ शुध्येरन्नंत्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ॥ वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २५ ॥ स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ॥ शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत्॥२६॥ ऋषिरुवाच ॥ अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ॥ यन्नमंतीशितव्यानि स्तुवंति जगदीश्वराः ॥ २७ ॥

सम्भाषणसे शुद्ध हों तो उसमें कहना ही क्या है ?॥२४॥ सूतजी बोले, कि इस प्रकार चन्द्रभाल शिवजीके गूढ धर्ममय अमृतरूप वचनोंको श्रवणद्वारा पान करके मार्कण्डेयजी तृप्त न हुए ॥ २५ ॥ नारायणकी मायासे बहुत दिनतक भ्रमण करते और क्लेश पाते मार्कण्डेयजीने शिवजीकी सुधारूप मधुर सुधावाणीसे सम्पूर्ण क्लेशोंके समुदायसे निवृत्त होकर भवानीपतिसे यह वचन कहा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले अहो ! यह विष्णु भगवान्के चरित्र प्राणियोंके जाननेमें आने बहुत कठिन हैं,क्योंकि आप त्रिलोकीके ईश्वर होकर भी अपने शरणागत प्रजागणकी स्तुति

---

* शंका–जब मार्कण्डेय मुनिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवसे बूझा नहीं कि, तुम तीनों देवताओंमें कौन बडा कौन छोटा है अथवा तुम तीनों एकसे हो, फिर विना बूझे शिवजीने क्यों कहा, कि हे मार्कण्डेय ! ब्रह्मा, विष्णु और मुझमें कुछ भेद नहीं,हम तीनों एक ही देव हैं यह हमको सन्देह है ।

उत्तर–मार्कण्डेयजीके मनमें यह सन्देह था कि, तीनों देवोंमें कौन बडा है और कौन छोटा है, परन्तु लज्जाके मारे बूझ नहीं सके थे महादेवजीने मार्कण्डेयकी अन्तर्गति जानकर उनकी शान्तिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके एक स्वरूपकी कथा कहने लगे ॥

करके उनको नमस्कार करते हो ॥ २७ ॥ मुझको तो ऐसा जान पड़ता है कि ईश्वर भी धर्मके उपदेष्टा होकर धर्मके ग्रहण करानेके लिये प्राणियोंके आचरणोंकी स्तुति और अनुमोदन करते हैं और आप भी उन्हीं आचरणोंको करते हैं ॥ २८ ॥ आप अपनी मायामय वृत्तियोंसे और लोकोंको नमस्कारादि किया करते हैं, इससे आपकी महिमामें किसी प्रकारका दोष नहीं लगता, क्योंकि जैसे नट नाटकके विषे दूसरा रूप धारण करके अपने पुत्र पौत्र और दासदासियोंको दण्डवत् प्रणाम करता है और दीन वचन कहता है, उस दीनता और दण्डवत् करनेसे उसके महत्त्वमें किसी प्रकारका लांछन नहीं लग सकता वैसे ही आपको भी किसी प्रकारका दोष नहीं लगता ॥ २९ ॥ जो ईश्वर आपही अपने मनसे गुणोंके द्वारा इस सृष्टिको रचकर उसमें प्रविष्ट होकर कर्त्ताके समान जान पड़ता है, जैसे स्वप्नमें कोई पुरुष नया नगर बनाकर उसमें प्रविष्ट होकर कर्त्ताके ही सदृश प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ ऐसे त्रिगुणोंके नियन्ता शुद्धरूप अद्वितीय सबके गुरु ब्रह्ममूर्ति आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३१ ॥ हे सर्वोत्तम ! हे भगवन् ! मुझको आपका दर्शन हो गया, इससे अधिक और क्या वर है, जो मैं आपसे मांगूं ! जिस मनुष्यपर आपकी कृपादृष्टि होती है, उसके सब काम सत्य और पूर्ण हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ तो भी जो आप पूर्णकाम और भक्तोंकी कामनाओंको वर्षानेवाले हो तो मैं आपसे इतना वरदान मांगता हूँ, वह वरदान यह है कि अच्युत भगवान् और उनके भक्तोंमें और इसी प्रकार आपके चरणकमलमें मेरी निश्चल भक्ति रहे ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि, जब

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ॥ आचरंत्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवंति च ॥ २८ ॥ नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ॥ न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहुकं यथा ॥२९॥ सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ॥ गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तृवत्स्वप्नदृग्यथा ॥ ३० ॥ तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३१ ॥ कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३२ ॥ वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ॥ भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ॥ तमाह भगवाङ्शर्वः शर्वया चाभिनंदितः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार शिवजीकी स्तुति और पूजा मार्कण्डेयजीने की तब भगवान् महादेव और गिरिराजकुमारी अतिप्रसन्न हो मुनिसे कहने लगे॥ ३४ ॥ हे महर्षि । आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, क्योंकि आप तो पहिलेसे ही अधोक्षज भगवान्के भक्त हो, आपका यश और पुण्य कल्प कल्पांतर अखंड हो और सदा आप अजर अमर रहें ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम त्रिकालज्ञ हो और विज्ञान सहित पूर्ण वराग्यवान् हो, ब्रह्मतेजमें पूर्ण और पुराणाचार्य भी होगे ॥ ३६ ॥ सुनजी बोले: कि, इस प्रकार मुनिको वर देकर मुनिके पिछले चरित्र, जो कुछ भगवान्की मायाके वैभव देखे थे सो सब वृत्तान्त त्रिलोचन महादेवजी भवानीसे कहते हुए चले गये ॥ ३७ ॥ परमयोगकी महिमाको पाकर विष्णुभगवान्की एकान्त

कामस्तेऽयं महर्षेऽस्तु भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ॥ आकल्पांताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३५ ॥ ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् ॥ ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यताऽस्तु ते॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वरान्स मुनये दत्त्वाऽगात्त्र्यक्ष ईश्वरः ॥ देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरामुना ॥ ३७ ॥ सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ॥ विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकांततां गतः॥ ३८ ॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ॥ अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम्॥३९॥एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः॥अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते॥४० ॥

भक्तिसे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अबतक पृथ्वीपर विचरते हैं॥३८ ॥बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने भगवान् वासुदेवकी अद्भुत माया वैभव आदि जो देखा सो मार्कण्डेयजीका पवित्र चरित्र आपके सम्मुख वर्णन किया ॥३९ ॥ सृष्टिके जो उत्पत्ति प्रलय आदिक होते रहते हैं वह सब आदिपुरुष भगवान्की ही माया है, कोई कोई मूर्ख लोग इस बातको नहीं जानते. मार्कण्डेयजीने जो यह मायाका वैभव देखा सो केवल भगवदिच्छासे देखनेमें आया, कुछ प्राकृतिक वा नैमित्तिक कर्मोंका यह प्रलय नहीं था और अज्ञानी लोग अबतक उसे अनादि कालके समान सातवाँ नैमित्तिक प्रलय ही समझ रहे हैं इसीसे मार्कण्डेयजीकी सात कल्पकी अवस्था संसारमें विख्यात है, परन्तु यह सम्पूर्ण भ्रांति है और

जो मायाके वेत्ता हैं, वह उस कालको निमेषमात्र कहते हैं-अर्थात् मायाका कौतुक देखा था, वह सब एक क्षणमात्रका था ॥ ४० ॥ हे भृगुवंशियोंमें उत्तम ! भगवान्के प्रभावयुक्त मार्कण्डेयका यह चरित्र जो कोई प्रेम प्रीति एकाग्रचित्त हो सुने सुनावेगा उन दोनोंको कर्मवासनायुक्त संसारकी माया न व्यापैगी ॥४१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां शिववरदानं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ दोहा-इस ग्यारह अध्यायमें, महापुरुषका ध्यान । भिन्न भिन्न प्रतिमासमें, व्यूह सूर्य भगवान ॥ १ ॥ शौनकादिक बोले कि, हे भागवतोंमें श्रेष्ठ महामुनि सूतजी ! आप सर्व तंत्रशास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता हो इसलिये हे बहुज्ञ महात्माओंमें मुकुटमणि ! हम आपसे यह प्रश्न करते हैं

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथांगपाणेरनुभावभावितम् ॥ संश्रावयेत्संशृणुयादुताप्युभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० द्वा० मार्कंडे० शिवदत्तवरदानं० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ शौनक उवाच ॥ अथेममर्थं पृच्छामो भवंतं बहुवित्तमम् ॥ समस्ततंत्रराद्धांते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥ तांत्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ॥ अंगोपांगायुधाकल्पं कल्पयंति यथैव यः ॥ २ ॥ तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ॥ येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नमस्कृत्वा गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ॥ याः प्रोक्ता वेदतंत्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्व तंत्रोंके उपासक केवल हरि भगवान्की परिचर्या विषे अंग अर्थात् पादादिक, उपांग गरुड़ादिक, आकल्प चक्रादिक, अलंकार कौस्तुभादिक आभूषणोंकी रचना जिस २ भांति कल्पना करते हैं ॥२॥ उस क्रियायोगके जाननेकी हमारी इच्छा है, जिसकी निपुणतासे मरणधर्मा पुरुष अमरत्वको प्राप्त हो जाय, हे सूतजी ! आप उस विद्याके जाननेवाले हैं सो अनुग्रह करके हमको बतलाइये । आपका कल्याण होगा ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, गुरुको नमस्कार करके विष्णु भगवान्की विभूतियोंका वर्णन करूंगा, जिन विभूतियोंका वर्णन ब्रह्मादिक

देवताओंने भी वेद और तंत्रोंमें वर्णन किया है *॥४॥ माया, रूप, महत्तत्त्व, अहंकार; पांच तन्मात्रा इन नौ तत्त्वोंसे ग्यारह इन्द्रिय पञ्चमहाभूत रूप यह विराट् शरीर ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ जिस चैतन्यसे अधिष्ठित ब्रह्माण्डमें पृथ्वी आदि सब लोक देखनेमें आते हैं, इन्हीं पृथ्वी आदि लोकोंसे भगवान्के अंगोंकी पूजा करनेमें आती है ॥ ५ ॥ इस ब्रह्माण्डको भगवान्में कल्पित होनेके कारण भगवान्का देहरूप मानकर उसमें पृथ्वीको चरणरूप, स्वर्गको मस्तकरूप, अन्तरिक्षको नाभिरूप, सूर्यको नेत्ररूप, पवनको नासिकारूप,दिशाओंको कानरूप॥६॥ प्रजापतिको शिश्नेंद्रियरूप मृत्युको गुदेंद्रियरूप, लोकपालोंको भुजारूप,चन्द्रमाको मनरूप, यमको भ्रुकुटीरूप ॥ ७ ॥ लज्जाको ऊपरके ओष्ठरूप, लोभको

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ॥ निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥ एतद्वै पौरुषं रूपं भूः
पादौ द्यौः शिरो नभः ॥ नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः॥६॥प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशि
तुः ॥ तद्बाहवो लोकपाला मनश्चंद्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दंता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः॥ रोमाणि
भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ॥ तावानसावपि महापुरुषो लोक
संस्थया ॥ ९ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ॥ तत्प्रभा व्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥

1297

नीचेके ओष्ठरूप, चांदनीको दांतरूप, भ्रांतिको हास्यरूप, वृक्षोंको रोमरूप और मेघोंको केशरूप कल्पना करते हैं ॥८॥ ऐसे ब्रह्माण्डरूपका धूप, दीप,चन्दनादिसे पूजन और ध्यान एक बारमें नहीं बन सकता, इसलिये पाषाण, धातु आदिकी प्रतिमामें इस विराट् देहकी और अवयवोंकी कल्पना कर उसका पूजन और ध्यान ठीक २ करनेमें आता है, इस ब्रह्मांडरूप पुरुषका जो प्रमाण है, जैसी स्थिति है, वह प्रमाण और वह स्थिति भगवान्की छोटी मूर्तिमें भी जानी जाती है, इसलिये मूर्तिमें भगवान्का पूजन करते हैं ॥ ९ ॥ मूर्तिमें जो प्रभुने कौस्तुभमणि धारण

---

* शंका–बडे आश्चर्यकी बात है कि, सूतजी कहते हैं कि,अब अपने गुरुको दण्डवत् करके विष्णुकी विभूति ऐश्वर्यका मैं वर्णन करता हूँ यह मुझको संशय है कि, पहले स्कन्धसे बारहवें स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायतक विष्णुकी विभूतिका वर्णन नहीं हुआ,फिर किसकी विभूतिका वर्णन हुआ ? यह सन्देह मेरे मनको स्थिर नहीं होने देता।

उत्तर–पहिले ऐसा वर्णन हुआ है–तीन लोक चौदह भुवन चराचर यह सब ईश्वरका स्वरूप है,इसलिये विष्णुरूप जो सम्पूर्ण संसार है उसकी विभूतिका वर्णन हुआ है और अब अकेले भगवान्की महिम और चरित्रोंका वर्णन होगा इसलिये सूतने कहा था कि, अब हम भगवान् की विभूतिका वर्णन करते हैं।

की है, यही शुद्ध चैतन्य धारण किया है ऐसा मान रक्खा है और प्रतिमाके वक्षस्थलमें श्रीका चिह्न है, उनकी प्रभासे व्याप्त जीव है ॥ १० ॥ उनकी माया ही अनेक गुणमयी वनमाला है और वेद ही साक्षात पीतांबर है और अकार, उकार, मकाररूप त्रिमात्रावाला ओंकार ही यज्ञोपवीत है ॥ ११ ॥ सांख्य और योग यह दोनों मकराकृति कुण्डल हैं, सब लोकोंसे नमस्कृत और अभयदायक ब्रह्मलोक मुकुट मणि है ॥ १२ ॥ वसुधाके आधाररूप शेष भगवान् हैं, वह अनन्त नामसे प्रसिद्ध हैं, वही नारायणके विराजनेका कमलासन है और कोई कोई विद्वान् लोग ऐसा भी कहते हैं; अनेक रंगकी जो परमेश्वरकी माया है, वही अनन्त आसन है, कोई कहते हैं, धर्मज्ञानादि सहित सत्त्वगुण कमलासन है ॥ १३ ॥ इंद्रियोंकी निपुणता, मनका उत्साह, शरीरके बल सहित प्राण ही विराट्स्वरूपकी गदा है, जलका तत्त्व

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ॥ वासश्छन्दोमय पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥ बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ॥ मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥ १२ ॥ अव्याकृतमनंताख्यमासनं यदधिष्ठितः ॥ धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥ ओजःसहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ॥ अपांतत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥ नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ॥ कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्मम येषुधिम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यंदनम् ॥ तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥ मंडलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ॥ परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥ भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ॥ धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥

ही शंख है, तेजका तत्त्व ही सुदर्शनचक्र है ॥ १४ ॥ आकाश ही नीलवर्ण बिजलीयुक्त झमझमाता हुआ खड्ग है, आकाशरूप तत्त्व जो अन्धकार है वही ढाल है, काल ही शार्ङ्गधनुष है और कर्म ही बाणोंसे भरा हुआ तूणीर (तरकस) है ॥ १५ ॥ इंद्रियें ही भालवाले बाण हैं, मन ही रथ है, तन्मत्रा ही इस रथकी चाल हैं, अभयवरदानकी देनेवाली क्रिया ही विराट्ट पुरुषकी मुद्रा है ॥ १६ ॥ सूर्य, अग्नि, चन्द्रमण्डल परपुरुष भगवान्‌की पूजा करनेका स्थान है, गुरुकी दी हुई जो मन्त्रदीक्षा है वही पूजन करनेवालोंके संस्कार हैं, भगवान्‌की परिचर्या ही आत्माके पापोंको नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ छः प्रकारका भग शब्दका अर्थ लीलाकमल है, धर्म यश दोनों चामर और बीजना हैं ॥ १८ ॥

हे द्विजो ! छत्र निर्भय धाम वैकुण्ठ है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ही यज्ञपुरुष भगवान्‌का वाहन गरुड़ है॥ १९॥ साक्षात् भगवती लक्ष्मी जो भगवान्‌के पार्श्वमें विराजमान हैं वह हरिकी अनपायिनी शक्ति है, पार्षदोंमें अधीश्वर जो मुख्य विष्वक्सेन हैं वही तन्त्रशास्त्रकी मूर्ति है, अणिमादिक अष्टसिद्धियां जो हैं, वही नन्द सुनन्दादिक भगवान् वैकुण्ठविहारीके द्वारपाल हैं ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन् ! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यही श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी चार मूर्ति परम पवित्र हैं॥ २१ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय चार अवस्थाओंसे और इनके कारण विषय, मन, अज्ञान और ज्ञानसे विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय रूप भगवान् जाने जाते हैं, यही भावना ईश्वरसम्बन्धी है॥ २२॥ अंग, उपांग,

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम्॥ त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥ अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ॥ विष्वक्सेनस्तंत्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥ नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः॥ २०॥ वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ॥ अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते॥ २१ ॥ स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः॥ अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते॥ २२॥ अंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम्॥ बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः॥ २३॥ द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ॥ सृजति हरति पातीत्याख्ययाऽनावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलक्ष्यः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोपवनिताव्रजभृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवणमंगल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥

चरणादिक चार भुजावाली मनोहर मूर्ति, गरुड़ादिक, आयुध, आकल्प, अलंकार इन चारोंसे संयुक्त चतुर्मूर्ति भगवान् हरि ईश्वर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय इन चारों अवस्थाओंको धारण करते हैं, जो पुरुष इन चारो मूर्तियोंका ध्यान धरते हैं उनको भगवान् वासुदेव चार फल देते हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम ! भगवान् वेदके कारण स्वयंद्रष्टा, स्वमहिमासे परिपूर्ण, अपनी मायाहीसे सब जगत् उत्पन्न करत हैं, सँभारते हैं, और नष्ट करत हैं, क्योंकि ईश्वर सबके अंतर्यामी हैं ॥ २४॥ जिन मनोहर मूर्तियोंकी उपासना कही, अब उनकी सूतजी स्तुति करते हैं:-

हे श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अर्जुनके प्रियसखा ! हे यदुकुलभूषण ! हे वसुधाकेद्रोही राजाओंके वंशके विध्वंस करनेवाले ! हे अग्निरूप एकरस पराक्रमी ! हे गोविन्द ! हे श्रवणमंगल ! हे गोपवनिताओंके समुदाय और नारद भृत्यादिकोंसे पवित्र यश गाये हुए तीर्थोंके समान पवित्र कीर्त्तिवाले ! हे हरि ! हे वैकुण्ठविहारी ! हमारी इस कालरूप संसारसे रक्षा करो ॥ २५ ॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्त हो महापुरुष भगवान्के इन लक्षणोंको चित्तमें रखकर ध्यान करेगा वह सर्व घटवासी वासुदेव भगवान्को अपने हृदयमें विराजमान देखेगा, ॥२६॥ शौनकादिक बोले कि, हे सूतजी! मूर्तियोंके विषयमें जो व्यूह आपने कहा उसको सुनकर हमको सूर्यके व्यूह सुननेकी अभिलाषा हुई और राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने (पंचमस्कंधमें) वर्णन किया था कि, गंधर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, दैत्य, ऋषि और देवता इन सात सातका

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ॥ तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥ शौनक उवाच॥ शुको यदाह भगवान्विष्णुराताय शृण्वते ॥ सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७॥ तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः॥२८॥सूत उवाच ॥ अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ॥ निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्त्तते ॥ २९ ॥ एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः ॥ सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥ कालो देशः क्रिया कर्ता कारणं कार्यमागमः ॥ द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥

सूर्यसंबंधी गण मास २ प्रति कहा है ॥२७॥ इन गणोंके नाम और इनके स्वामी सूर्योंके नाम और कर्म हमको सुनाओ क्योंकि सूर्यनारायण भी नारायणके ही स्वरूप हैं, इसलिये उनका व्यूह श्रवण करनेकी हमारी श्रद्धा है ॥२८॥ सूतजी बोले कि, सर्वत्र जीवमात्रके आत्मा विष्णु भगवान्की जो माया है उस अनादि मायासे रचित सब लोकोंको सीमामें प्रवृत्त करनेवाले यह सूर्यनारायण लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं ॥२९॥ सब लोकोंके आत्मा और आदिकर्त्ता जो विष्णु भगवान् हैं, वही प्रगटरूपसे सूर्यनारायण हैं और यह भगवान् ही सब वेदोंकी क्रियाओंका कारण हैं, इसीसे ऋषि लोग उन उन क्रियाओंसे नानाप्रकारके कहते हैं ॥ ३० ॥ हे शौनक ! भगवान् ही सब कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये मायाके संग काल,

हैं, गन्धर्व सूर्यके आगे यश गान करते हैं और ऋषीश्वर मुनीश्वर ऋग्, यजु, सामवेदके मंत्रोंसे श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं॥ ४७ ॥ ॥४८॥साठ सहस्र ६०००० निर्मल वालखिल्य ब्रह्मऋषि अंगुष्ठप्रमाणमात्र स्वरूप सब मिलके स्तोत्रोंसे विभुके सम्मुख होकर पिछले पावों चलते श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं॥४९॥ आदिअंतरहित अजन्मा भगवान् हरि ईश्वर इस प्रकार कल्प कल्पमें अपने आपका सूर्यरूपसे विभाग करके सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं॥५०॥इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायामादित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

वालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥ पुरतोऽभिमुखं यांति स्तुवंति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥ एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥ एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ॥ भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥

दोहा-इस द्वादश अध्यायमें, श्रीभागवत पुराण । वरणों सब संक्षेपसों, जो शुक किय निर्माण ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, श्रेष्ठ धर्मको नमस्कार करके और सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके अब सब ब्राह्मणोंके चरणोंमें शिर धर इस 'श्रीमद्भागवत' पुराणमें जो जो सनातनधर्म और सब कथाओंकी अनुक्रमणिका हैं वह मैं आपसे कहता हूँ * ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! सम्पूर्ण प्राणियोंके सुनने योग्य यह विष्णु भगवान्का अद्भुत चरित्र इसमें जो जो प्रश्न आपने किये उन उनके उत्तर मैंने आपको दिये ॥ २ ॥

---

* शंका-सूतजीने मुनियोंसे कहा कि, अब हम सनातनधर्म कहते हैं आप सावधान होकर सुनो, इसमें हमको यह शंका है कि, पहले जो धर्म वर्णन हुआ सो सनातनधर्म नहीं है, क्या ये शीघ्रके बनाये हैं ? उत्तर-भागवतमें जो धर्म वर्णन किये हैं, सो सब सनातनधर्म हैं शीघ्रके बनाये हुए कोई भी नहीं हैं, परन्तु एक कारण है सो यह भी कहते हैं, मुनियोंने प्रथम इस धर्मको बहुत संक्षेपके साथ वर्णन किया था वारंवार वर्णन हुआ परन्तु जब हुआ तब संक्षेपसे ही हुआ और धर्मका विस्तार बहुत श्लोकोंमें कविलोग वर्णन करते हैं,इस अध्यायमें बारह स्कंधोंकी कथाको व्यासजीने थोडेहीमें वर्णन की है जैसे पहले मुनि जनोंने थोडे थोडे श्लोकोंमें सम्पूर्ण धर्म वर्णन किये थे इस लिये सूतजीने कहा था कि, अब मैं सनातनधर्म वर्णन करता हूँ क्योंकि सनातनधर्म तो वे ही हैं, जो मुनि लोग थोडे श्लोक करके वर्णन किये थे,बहुत विस्तार तो पीछेसे कविलोगोंने किया है, सूतने ऐसे विचारके नहीं कहा था कि, अबतक सनातनधर्म वर्णन नहीं हुआ, सनातनधर्म अब वर्णन करता हूँ ॥

इस पुराणमें सब पापोंके विध्वंस करनेवाले भक्तवत्सल हृषीकेश भगवान् हरि नारायणकी साक्षात् महिमा वर्णन कीहै ॥ ३॥ अब यहांसे आगे पहले कही हुई "बारहो स्कन्ध"की कथाको सुतजी शौनकादिकोंको फिर स्मरण कराते हैं, जिसमें जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार ऐसे परमगुह्य परब्रह्मके यशका गान और उस परब्रह्मका प्रकाशक विज्ञान और ज्ञानके साधन, इस महापुराणमें कहे हैं ॥ ४ ॥ भक्तियोग और भक्तियोगसे प्रगट होनेवाला वैराग्य भी कहा, नारदजीका आख्यान और परीक्षित्का उपाख्यान ॥ ५ ॥ ब्राह्मणके शापसे राजऋषि परीक्षित्का अनशन व्रत धारण करना उन राजर्षि सहित ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी महाराजका संवाद यह सब प्रथमस्कन्धमें वर्णन किया ॥ ६ ॥

अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः ॥ नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्त्वतां पतिः ॥ ३ ॥ अत्र ब्रह्म परं गुह्यं
जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥ भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ॥
पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥५॥ प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ॥ शुकस्यैव च ब्रह्मर्षेः
संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥ योगधारणयोत्क्रांतिः संवादो नारदाजयोः ॥ अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥
॥ ७ ॥ विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ॥ पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥ ततः प्राकृतिकः सर्गः
सप्त वैकृतिकाश्च ये ॥ ततो ब्रह्मांडसंभूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥ कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ॥
भुव उद्धरणेऽम्भोधौ हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥

योगधारणासे प्राणका छोडना, ब्रह्मा नारदका संवाद और अवतारोंका वर्णन, विराट्‌ पुरुषकी उत्पत्ति, यह सब द्वितीयस्कन्धमें वर्णन किया ॥ ७ ॥ विदुर और उद्धवका संवाद, फिर विदुर और मैत्रेयका सम्भाषण, पुराणसंहिताके विषयमें प्रश्न, विराट्‌ पुरुषकी रचना ॥ ८ ॥ पहिले मायाके गुणोंसे महत्तत्त्वादिक सात प्रकारकी सृष्टि रची गई, उससे फिर इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, जो कि, वैराज पुरुषके रहनेका स्थान है ॥ ९ ॥ स्थूल, सूक्ष्म कालकी गति, नाभिसे कमलकी उत्पत्ति, समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार, हिरण्याक्षका वध ॥ १० ॥

देश, क्रिया, कर्त्ता, अनुष्ठान, यजमान, साधन, यज्ञादिक, मंत्र, हविष्य यह नौ प्रकार हरिकी मायासे है, इसप्रकार कविलोग कहते हैं॥ ३१ ॥ कालरूप सूर्य भगवान् चैत्रादिक बारहो मास लोकोंके कर्मोंके विषे प्रवृत्त करनेको अपने गणोंको साथ लिये अलग अलग द्वादशरूप धारण किये घूमते रहते हैं ॥ ३२ ॥ चैत्रके महीनेमें कृतस्थली नाम अप्सरा, हेति नाम राक्षस, वासुकी नाग, तुम्बुरु गन्धर्व, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्य नाम ऋषि इनके साथ धाता नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३३ ॥ वैशाखमें पुंजिकस्थली नाम अप्सरा, प्रहेति नाम राक्षस, कच्छनीर नाम नाग, नारद नाम गन्धर्व, अथौजा यक्ष, पुलह ऋषि इनके साथ अर्यमा नाम सूर्य विचरण करता है ॥३४॥ ज्येष्ठमासमें मेनका नाम अप्सरा, पौरुषेय नाम राक्षस, तक्षक नाम नाग, हाहा नाम गन्धर्व, रथस्वन यक्ष, अत्रि ऋषि इनके साथ मित्र नाम सूर्य प्रकाश करता है॥३५॥

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् लोकतंत्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२ ॥ धाता कृतस्थली हेति
र्वासुकी रथकृन्मुने ॥ पुलस्त्यस्तुंबुरुरिति मधुमासं नयंत्यमी ॥ ३३ ॥ अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुंजिकस्थली॥
नारदः कच्छनीरश्च नयंत्येते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥ मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ॥ रथस्वन इति
ह्येते शुक्रमासं नयंत्यमी ॥३५॥ वसिष्ठो वरुणो रंभा सहजन्यस्तथा हुहूः ॥ शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयंत्यमी
॥ ३६ ॥ इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथांगिराः ॥ प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयंत्यमी ॥ ३७ ॥ विवस्वा
नुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ॥ अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयंत्यमी ॥ ३८ ॥ पूषा धनंजयो वातः
सुषेणः सुरुचिस्तथा ॥ घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥

आषाढ मासमें रम्भा नाम अप्सरा, चित्रस्वन नाम राक्षस, शुक्र नाम नाग, हूहू नाम गन्धर्व, सहजन्य यक्ष, वसिष्ठ ऋषि इनके साथ वरुण नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३६ ॥ श्रावण मासमें प्रम्लोचा नाम अप्सरा, वर्य नाम राक्षस, एलापत्र नाम नाग, विश्वावसु नाम गन्धर्व, श्रोता यक्ष, अंगिरा नाम ऋषि इनके साथ इन्द्र नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥३७॥ भाद्रपद महीनेमें अनुम्लोचा नाम अप्सरा, व्याघ्र नाम राक्षस, शंखपाल नाम नाग, उग्रसेन नाम गन्धर्व, आसारण यक्ष, भृगु नाम ऋषि इनके साथ विवस्वान् नाम सूर्य विचरण करता है॥३८॥ आश्विन मासमें घृताची नाम अप्सरा, वात नाम राक्षस, धनंजय नाम नाग, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, गौतम नाम ऋषि इनके साथ पूषा नाम सूर्य

ऋतुवर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा॥विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयंत्यमी॥४०॥अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वंशी॥विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयंत्यमी॥४१॥भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पंचमः॥कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयंत्यमी॥४२॥त्वष्टा ऋचीकतनयः कंबलश्च तिलोत्तमा॥ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद्धृतराष्ट्र इषंभराः॥४३॥ विष्णुरश्वतरो रंभा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ॥विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयंत्यमी॥४४॥एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ॥ स्मरतां संध्ययोर्नॄणां हरंत्यंहो दिने दिने ॥ ४५ ॥ द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ॥ चरन्समंतात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥४६॥ सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिंगैर्ऋषयः संस्तुवंत्यमुम् ॥ गंधर्वास्तं प्रगायंति नृत्यंत्यप्सरसोऽग्रतः॥४७॥उन्नह्यंति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः॥ चोदयंति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥ ४८ ॥

विचरण करता है ॥ ३९ ॥ कार्त्तिक महीनेमें सेनजित नाम अप्सरा, वर्चा नाम राक्षस, ऐरावत नाम नाग, विश्व नाम गन्धर्व, ऋतु यक्ष, भरद्वाज नाम ऋषि इनके साथ पर्जन्य नाम सूर्य भ्रमण करता है ॥ ४० ॥ अगहनके महीनेमें उर्वशी नाम अप्सरा, विद्युतशत्रु नाम राक्षस, महाशंख नाम नाग, ऋतुसेन नाम गधर्व, तार्क्ष्य यक्ष, कश्यप ऋषि इनके साथ अंशु नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ४१ ॥ पौषके महीनेमें पूर्वचित्ती नाम अप्सरा, स्फूर्ज नाम राक्षस, कर्कोटक नाम नाग, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ण यक्ष, आयु ऋषि इनके साथ भग नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४२ ॥ माघमासमें तिलोत्तमा नाम अप्सरा, ब्रह्मापेत नाम राक्षस, कंबल नाम नाग, धृतराष्ट्र नाम गन्धर्व, शतजित् यक्ष, जमदग्नि ऋषि इनके साथ त्वष्टा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४३ ॥ फाल्गुनमें रम्भा नाम अप्सरा, मखापेत नाम राक्षस, अश्वतर नाम नाग, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित यक्ष, विश्वामित्र ऋषि इनके साथ विष्णु नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४४ ॥ यह सब सूर्यरूप विष्णु भगवान्की विभूतियोंका जो पुरुष दोनों संध्याकालमें स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ यह सूर्यनारायण इन छहों गणों सहित बारह महीनेमें सब ओर घूमते हैं और लोगोंको इस लोकमें और परलोकमें उत्तम बुद्धि देते हैं ॥ ४६ ॥ अप्सरायें सुन्दर शृङ्गार कर करके सूर्यनारायणके सम्मुख नृत्य करती हैं, बलवान् राक्षस रथको पीछेसे ढकेलते हैं, यक्ष रथको जोडते हैं, नाग रथको बांधते

वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य इनकी सृष्टि; रुद्रकी सृष्टि, ब्रह्माके आधे अंगसे पुरुष और आधे अंगसे नारी (स्त्री) हुई, उसमें पुरुष तो स्वायंभुव मनु और स्त्री शतरूपा हुई, कर्दम प्रजापतिसे धर्मपत्नियोंकी सन्तान कही ॥ ११ ॥ १२ ॥ जिन प्रजापति कर्दमजीसे महात्मा भगवान् कपिलदेवजीका अवतार और उन बुद्धिमान् कपिलदेवजीसे देवहूतिका संभाषण, यह तीसरे स्कन्धकी कथा है॥१३॥ मरीच्यादिक ब्राह्मणोंकी सन्तानकी उत्पत्ति, दक्षके यज्ञका विध्वंस, ध्रुवजीका चरित्र, पृथु और प्राचीनबर्हि राजाके चरित्रका वर्णन, यह चौथे स्कन्धकी कथा है॥ १४॥ हे द्विजोत्तम ! नारद प्रियव्रतका संवाद,फिर राजा प्रियव्रतका चरित्र, नाभि राजाका आख्यान,ऋषभदेवजीका चरित्र, राजा भरतका इतिहास

ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ॥ अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायंभुवो मनुः ॥ ११ ॥ शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा ॥ संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥ अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ॥ देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥ नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ॥ ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥ नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ॥ नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ॥१५॥ ततो द्वीपसमुद्राद्रिवर्षनद्युपवर्णनम् ॥ ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥ दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च संततिः ॥यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः॥१७॥ त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ॥ दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥१८॥ मन्वंतरानुचरितं गजेंद्रस्य विमोक्षणम् ॥ मन्वंतरावतारश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥ कौर्मं मात्स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः ॥ क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २० ॥

॥ १५ ॥ द्वीप, समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियोंका वर्णन, ज्योतिश्चक्रका स्थापन, पातालकी रचना, नरकोंका वर्णन यह पञ्चमस्कन्धकी कथा है ॥१६॥प्रचेताओंसे दक्षका जन्म फिर उस दक्षकी पुत्रियोंका वृत्तान्त जिस सन्तानसे देवता, असुर, नर, पशु, वृक्ष,पर्वत पक्षी, आदिकी उत्पत्ति ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वृत्रासुरका जन्म और दितिके दोनों पुत्रोंकी उत्पत्ति, हिरण्यकशिपुका और महात्मा प्रह्लादका चरित्र, यह षष्ठ और सप्तम स्कन्धकी कथा है ॥ १८ ॥ मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेंद्रको छुडाना, मन्वन्तरोंमें विष्णुभगवान्के हयग्रीवादिक अवतारोंका वर्णन ॥ १९ ॥ उन विष्णुभगवान्के अवतार कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, वामनका उपाख्यान, देवताओंका समुद्रका मथना ॥ २० ॥

देवता,असुरोंका महाभयंकर संग्राम,यह अष्टमस्कन्धकी कथा हैं। राजाओंके, वंशोंका वर्णन राजा इक्ष्वाकुका जन्म और उनके वंशका वर्णन और महात्मा सुद्युम्नका इतिहास॥२१॥इला और ताराका आख्यान,शशादादि व नृगादि सूर्यवंशी राजओंका वर्णन ॥२२॥ सुकन्याका चरित्र, शर्यातिका चरित्र,बुद्धिमान् ककुत्स्थका उपाख्यान,खट्वांग मान्धाता सौभरि सगरका चरित्र॥२३॥कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी कथा,सब पापोंका नाशक निमिके शरीरका त्याग, जनकवंशियोंकी उत्पत्ति ॥२४॥ भृगुवशी परशुरामजीका पृथ्वीको निःक्षत्रिय करना, चन्द्रवंशी ऐलादि:ययाति राजा नहुषका वृत्तांत ॥२५॥ दुष्यन्तका पुत्र राजा भरत, शंतनु और शंतनुके पुत्रका चरित्र और राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्र राजा यदुके

देवासुरं महायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ॥ इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ॥ सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥२२॥सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः॥ खट्वांगस्य च मांधातुः सौभरेः सगरस्य च ॥२३ ॥ रामस्य कोशलद्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ॥ निमेरंगपरित्यागो जनकानां च संभवः ॥ २४ ॥ रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ॥ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नाहुषस्य च ॥२५॥ दौष्यंतेर्भरतस्यापि शंतनोस्तत्सुतस्य च ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥ २६ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ॥ वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥ २७॥ तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ॥ पूतनाऽसुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥२८॥ तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ॥ धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलंबस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥ गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ॥ दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नंदमोक्षणम् ॥ ३० ॥

वंशका वर्णन ये नवमस्कन्धकी कथा हैं ॥२६॥ जिस यदुके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जगदीश्वरने अवतार लेकर भूमिका भार उतारा था, वह वृत्तांत इस भांति है कि, वसुदेवके घर अवतीर्ण होकर गोकुल गये और वहां वृद्धि पाई॥२७॥ असुरोंके शत्रु श्रीकृष्णजीके अपार चरित्र हमने कहे, बाल अवस्थामें पूतनाके प्राणसहित स्तनोंका पान; लात मारकर शकटका तोड़ना, तृणावर्त्त और वत्सासुरका मारना, अघासुरका वध, ब्रह्माका वत्स और बालकोंका हरना, धेनुक प्रलम्बासुरका वध॥ २८ ॥ २९ ॥ सब ओर फैले हुए दावानलसे गोप गायोंको

बचाना, कालिय सर्पका दमन और महाअजगर सर्पसे नन्दजीको छुडाना ॥ ३० ॥ व्रजकन्याओंका व्रत करना और व्रतसे अच्युत भगवान्का प्रसन्न होना, द्विजपत्नियोंपर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणोंको पश्चात्ताप करना ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धनपर्वतका करपर धरना, सुरभियोंके सहित इन्द्रका किया श्रीकृष्णका अभिषेक और रात्रिके समय व्रजबालाओं सहित श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा ॥ ३२ ॥ दुर्बुद्धि शंखचूडका वध और केशी अरिष्टका संहार, अक्रूरका व्रजमें आना फिर रामकृष्णका मथुराको प्रस्थान ॥ ३३ ॥ उस समय व्रजयुवतियोंका विलाप, उसके

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ॥ प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम्॥३१॥ गोवर्धनोद्धारणं च
शक्रस्य सुरभेरथ ॥ यज्ञाभिषेकः कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु॥३२॥शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ॥
अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३॥ व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ॥ गजमुष्टिकचाणूरकंसा
दीनां च यो वधः ॥३४॥मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सांदीपनेर्गुरोः ॥ मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम्॥३५॥
कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ जरासंधसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ॥ घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या
1299 निवेशनम् ॥ ३६ ॥ आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात ॥ रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥३७॥
हरस्य जृंभणं युद्धे बाणस्य भुजकृंतनम् ॥ प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥

पीछे मथुराका देखना और मुष्टिक चाणूर, कंसादिक दैत्योंका वध ॥ ३४ ॥ सान्दीपनि गुरुके मरे हुए पुत्रको फेरकर ला देना, मथुरामें वसकर उद्धव बलदेव सहित मिलकर यादवोंसे स्नेह करना ॥ ३५ ॥ हे विप्रो ! जरासन्धकी लाई हुई सेनाका वारंवार वध करना और मुचकुन्दद्वारा कालयवनका मारना और समुद्रके टापूमें द्वारकापुरीका बसाना ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इन्द्रलोकसे पारिजात और सुधर्मा सभाका ले आना और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर रुक्मिणीको हर लाना ॥ ३७ ॥युद्धमें जृम्भास्त्र करके शिवको जम्भाई लेना, बाणासुरकी

भुजाओंका काटना, नरकासुरका मारना, सोलह सहस्र एकसो आठ (१६१०८) कन्याओंका उद्धार ॥ ३८ ॥ शिशुपालका वध, मिथ्या वासुदेवका मारना, शाल्वका संहार, दुर्मति दन्तवक्रका दमन, द्विविदका हनन, पीठासुरका प्राणहरण, मुरका मारण, पंचजनको मारकर कृतार्थ करना ॥ ३९ ॥ काशीका जलाना, दैत्योंका प्रभाव प्रगट करना, पाण्डवोंको निमित्त मात्र बनाकर पृथ्वीका भार उतारना, यह दशम स्कन्धकी कथा है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणके शापका बहाना रखकर अपने कुलका संहार करना, वासुदेव और उद्धवका उत्तम संवाद ॥ ४१ ॥ जिस संवादमें आत्मतत्त्वका निर्णय और धर्मका निर्णय फिर अपनी मायाके प्रभावसे मनुष्यलोकका छोड़ना, यह एकादशस्कन्धकी कथा है

चैद्यपौंड्रकशाल्वानां दंतवक्रस्य दुर्मतेः ॥ शंबरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥ माहात्म्यं च वधस्तेषां
वाराणस्याश्च दाहनम् ॥ भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पांडवान् ॥ ४० ॥ विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ॥
उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥ यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ॥ ततो मर्त्यपरित्याग
आत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥ युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ॥ चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा॥४३॥
देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ॥ शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कंडेयस्य सत्कथा ॥४४॥ महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य
जगदात्मनः ॥ इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः ॥ लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः॥४५॥पतितः
स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ॥ हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥ संकीर्त्यमानो भगवाननंतः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ॥ प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवाऽतिवातः ॥ ४७ ॥

॥४२ ॥ युगोंके लक्षण, उन युगोंमें जीविकाका वर्णन, कलियुगमें मनुष्योंका उपद्रव और चार प्रकारका प्रलय, मायासे और ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी उत्पत्ति ॥४३ ॥ बुद्धिमान् राजर्षि विष्णुरातका देहका त्यागना, व्यासजीसे वेदकी शाखाओंका विस्तार, मार्कण्डेय ऋषिकी सुन्दर कथा ॥ ४४ ॥ हे द्विजोत्तमो जगत्के आत्मा सूर्यनारायणका मास मासका वर्णन, तुमने जो कुछ हमसे बूझा सो सब कहा, इस भागवत पुराणमें भगवान्की लीला अवतारसम्बन्धी कर्मोंका यश गाया है ॥ ४५ ॥ गिरते, पडते, उठते, बैठते, विपत्तिके समय, छींकते, विवशतासे ऊंचे स्वरसे "हरये नमः" जो पुरुष इस प्रकार कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष भगवान्का कीर्तन

करता है, अथवा उनके गुणोंको गाता है, तो अनन्त भगवान् उसके चित्तमें प्रवेश करके सब पापोंको दूर कर देते हैं, जैसे सूर्यनारायण अन्धकारको, पवन मेघोंको दूर करता है ॥४७॥ जिस वाणीसे भगवान् अधोक्षजकी सत्कथा नहीं गाई जाती उस वाणीको मिथ्या और विषयवाली समझनी चाहिये, जिसमें भगवान्के नामका गुणानुवाद हो वही वाणी सत्य मंगलरूप और पवित्र करनेवाली है ॥४८॥ वही वाणी रमणीक और रुचिर नित्यनये २ मनको महाउत्सवरूप मनुष्योंके शोकसमुद्रकी सुखानेवाली है, जिस वाणीसे उत्तम श्लोक भगवान्का यश गाया जाता है ॥ ४९ ॥ जिस वाणीमें चित्र विचित्र पद भी हों और उत्तम रचना भी हो, परन्तु जगत्के पवित्र

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ॥ तदेव सत्यं तदु हैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥ तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ॥ तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ४९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्ध्वांक्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥५०॥ स वाग्विसर्गो जनताऽघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनंतस्य यशोर्कितानि यच्छृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ५१ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे नह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥५२॥ यशःश्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ॥ अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥

करनेवाले हरिका यश कुछ नहीं हैतो उस वाणीमें काककी तुल्य विषयी रमण करते हैं, हंसके समान साधुजन उस वाणीसे संतुष्ट नहीं होते साधुजन उसी पवित्र वाणीमें रमण करते हैं, जिस वाणीमें अच्युत भगवान्का वर्णन है ॥ ५० ॥ जिस वाणीमें श्लोक श्लोक विषे उत्तम पदरचना नहीं केवल हरियश और हरिनामहीका वर्णन है वह वाणी प्राणियोंके पापोंके समूहोंको नाश करनेवाली है, उस वाणीको निर्मल चित्तवाले सब सुनते हैं, गाते हैं और कहते हैं॥५१॥ब्रह्मका प्रकाश करनेवाला नैष्कर्म्य भी जो अच्युत भगवान्के भावसे रहित है वह किसी प्रकार शोभित नहीं होता, उत्तम कर्म भी ईश्वरके अर्थ अर्पणकिये विना अमंगलरूप है सो किसी प्रकार शोभित नहीं हो सकता॥५२॥वर्णाश्रमके आचार, तप,

1970

वेदाध्ययन आदिमें बडे परिश्रमसे केवल यश और ऐश्वर्य प्राप्त होता है,परंतु हरिके गुणका कथन और श्रवणादि करनेसे भगवान्के चरण कमलका नित्यप्रति स्मरण होता है॥५३॥श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्मरण सदा अमंगलका हरनेवाला,मंगलका विस्तार करनेवाला और अन्तःकरणको शुद्ध करता है,परमात्मामें स्नेह बढाता है और ज्ञान विज्ञान सहित वैराग्यको उपजाता है॥५४॥हे द्विजोत्तम! आप बडे भाग्यवान् हो जो अखिल लोकोंके आत्मा भगवान् सर्वोत्तम,सर्वान्तर्यामी सर्वहितकारी नारायण देवको निरन्तर हृदयमें धारण करके सदा अखंड

अविस्मृतिः कृष्णपदारविंदयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ॥सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ ५४ ॥ यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ॥ नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताऽऽविवेश्य॥५५॥ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ॥ प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥५६॥एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ॥ माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥ य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः ॥ श्रद्धावान्योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥

भावसे भजते रहते हो॥५५॥जब कि,राजा परिक्षित् अन्न पानी त्यागकर गंगाके किनारे जा बैठे,उस समय बडे ऋषीश्वर मुनीश्वर श्रीमद्भागवतके सुननेको उस सभामें विद्यमान थे,वहां श्रीशुकदेवजीके मुखसे पहले मैंने जो कुछ सुना था वह आत्मतत्त्वका ज्ञान मुझको आपने स्मरण कराया, यह आपने बडी कृपादृष्टि की ॥ ५६ ॥ विप्रो! जिनके सब कर्म और चरित्र वर्णन करनेके योग्य हैं उन वासुदेव भगवान्का कीर्त्तन और माहात्म्य सब अशुभोंका विनाश करनेवाला है सो मैंने आप लोगोंके सम्मुख वर्णन किया * ॥ ५७॥ जो कोई पुरुष अनन्य बुद्धि

---

* दृष्टांत-परन्तु ऐसी कथा नहीं सुननी चाहिये जैसी कथा एक पडितजीने कही और बुढिया स्त्रीने सुनी। एक पंडित किसी ठाकुरद्वारेमें कथा कहते थे और एक बुढिया कथा सुननेकोजाया करती थी और वहाँ बैठकर बहुत रोती, पडितजीने समझाकि, यह बुढिया बडी प्रेमिन है, कुछ अधिक दक्षिणा चढावेगी,जब कथा सम्पूर्ण होनेका दिन आया तो बुढिया नहीं आई. पंडितजीने कथामें कुछ विलम्ब भी किया बुढिया तब भी न आई अब कथा पूरी हो चुकी,पंडितजीने जाना कि बुढियाको कुछ होगया नहीं तो बुढिया अवश्य आती.दूसरे दिन पंडितजीने कहा कि,बुढियाके घरको चलैं कुछ दक्षिणा प्राप्त हो जायगी.यह विचार उसके द्वारेपर पहुँचे और जाकर पुकारा बुढिया चरखा कात रही थी बोली पंडितजी आओ बैठ जाओ कैसेकृपा करी! पंडितजी बोले बुढिया कैसे है? कल कथाभी समाप्त हो गई और तू न आई तू तो बडी प्रेमिन थी फिर न आनेका क्या करण? तू तो घंटोंतक कथामें बैठी रोये करैथीं.बुढिया बोली क्या कथाको सुन कर थोडेही रोती थी,पंडितजी बोले कि, फिर क्यों रोतीथी? बुढिया बोली कि जैसा तुम्हारी पोथी बांधनेका वस्त्र है ऐसा ही मेरी लल्ली मोहिनीके लालाका पाजामा था सो उसको देखते ही मोहिनीके लाला मुझको याद आ जाते थे इस लिये रोती थी पंडितजी सुनते ही सुन्न हो गये और उठकर सीधे अपने घरको चले गये॥

होकर नित्य एक पहर, वा एक क्षण इस माहात्म्यको सुने अथवा जो कोई श्रद्धापूर्वक इसको सुनावे, वह प्राणी अपने आपको पवित्र करता है ॥५८॥ जो पुरुष कोई एकादशी वा द्वादशीके दिन इस महापुराण भागवतको सुने उसका आयुर्बल अधिक होता है और जो कोई निर्जलव्रत धारण करके एकाग्रचित्त हो इसका पाठ करे वह सब पापोंसे छूटकर निष्पाप हो जाता है ॥५९॥ पुष्कर, मथुरा द्वारकामें वास करके एकाग्रचित्त हो जो इस संहिताको पढेगा वह सब भयादिकोंसे छूट जायगा ॥६०॥ जो कोई इस महापुराण संहिताको सुनाता है, कीर्त्तनकरता है उसको देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य और राजालोग यह सब मनोवांछित मनोरथको देते हैं ॥ ६१ ॥ द्विजवर्णोंको ऋग्वेद, यजुर्वेद

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् ॥ पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥ पुष्करे मथुरायां
च द्वारवत्यां यतात्मवान् ॥ उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥ देवता मुनयः सिद्धाः
पितरो मनवो नृपाः ॥ यच्छंति कामान्गृणतः शृण्वतो यत्र कीर्तनात् ॥ ६१ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि
द्विजोऽधीत्यानुविंदते ॥ मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥ पुराणसंहितामेतामधीत्य
प्रयतो द्विजाः ॥ प्रोक्तं भगवतो यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ॥
वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात् ॥ ॥६४॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभी
क्ष्णम् ॥ इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्त्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥

सामवेदके पढनेसे जो फल प्राप्त होताहै, और शहतकी नदी, घृतकी नदी, दूधकी नदीके दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है सो सब फल इस महापुराण संहिताके पढ़नेसे होता है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष पवित्र होकर इस महापुराण संहिताको पढते हैं, वह भगवान् वासुदेवके परम पदको प्राप्त होते हैं॥ ६३ ॥ इस महापुराणसंहिताको ब्राह्मण पढकर उत्तम बुद्धिको प्राप्त होते हैं, क्षत्रिय पढे तो उदय अस्ततक सर्वत्र भूमण्डलका राजा हो, वैश्य पढे तो निधिपति हो और शूद्र पढे तो सब पापोंसे छूट जाय ॥ ६४ ॥ कलिकालके मलके समूहोंका विध्वंस करनेवाले अखिलेश्वर वासुदेव भागवान् इस प्रकार और दूसरे शास्त्रोंमें वारंवार नहीं गाये गये और इस पुराणमें तो कथाओंके प्रसंग

1291

प्रसंगमें पद पदके विषे अशेष मूर्ति भगवान्के ही चरित्र गाये गये हैं इसीसे इस पुराणका नाम महापुराण है ॥ ६५ ॥ जगत्की उत्पत्ति पालन संहार करनेवाली जिनकी शक्ति है और ब्रह्मा इन्द्र शिवादिक देवताओंको जिनकी स्तुति दुर्लभ है, ऐसे अजन्मा अनन्त आत्मतत्त्वा अच्युत भगवानको नमस्कार है ॥ ६६ ॥ वृद्धिको प्राप्त हुई प्रकृति आदि शक्तियोंसे जिसने अपने स्वरूप स्थावर जंगम उत्पन्न किये हैं ऐसे सबमें व्यापक, देवताओंमें श्रेष्ठ, अनादि, ज्ञानमात्र स्वरूप भगवान्को मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ ॥ ६७ ॥ अपने आत्मसुखसे ही सम्पूर्णचित्त होनेसे अन्य पदार्थोंमें भाव न रखनेवाले कि जिन्होंने अपना मन नारायणकी सुन्दर लीलाओंमें आकर्षित हो जानेसे नारायणके तत्त्वका प्रकाशक यह पुराण संसारके उपकारके लिये अनुग्रह करके प्रगट किया है, उन सब जगत्के पाप दूर करनेवाले व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराजको प्रणाम करता हूँ॥६८॥इति श्रीमद्भा० महापु० द्वादशस्कन्धे भा०टी० द्वादशस्कंधार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२ ॥ दोहा–इस तेरह अध्यायमें, पूरण होत पुराण। संख्या सकल पुराणकी, वरणौं सहित प्रमाण॥१॥ सूतजी बोले कि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुत देवता दिव्य स्तोत्रोंसे जिन भगवान्की स्तुति करते हैं और सांगोपांग पदक्रम उपनिषद् सहित वेदोंसे सामवेदके गानेवाले जिनका गान किया करते हैं और ध्यानमें स्थित होकर मन लगाय योगी जन जिनको देखा करते हैं, देवता, असुरगण जिनका आदि अन्त नहीं जान सकते

तमहमजमनंतमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम्॥ द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥६६॥ उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिरजंगमालयाय ॥ भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥ स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ॥ व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥ ६८ ॥ इति श्रीमद्भा० म० द्वादश० द्वादशस्कन्धार्थ संग्रहो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ सूत उवाच ॥ यं ब्रह्मा वरुणेंद्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

ऐसे परमदेवको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ पीठपर भ्रमते श्रेष्ठ मंदराचलकी शिलाओंके अग्रसे गात्र खुजानेके समान निद्राका अनुभव करते कच्छपरूप भगवान्‌के श्वासोंकी पवन तुम सबोंकी रक्षा करो, जिस पवन संस्कारके लेश अनुवर्तनके वशसे समुद्रके क्षोभके मिस करके निरन्तर आना जाना बन्द नहीं होता, नित्य घटता बढता रहता है, आजतक विश्राम नहीं लेता, वह तुम्हारी रक्षा करो * ॥ २ ॥ पुराणोंकी संख्याका निरूपण और श्रीभागवतका विषय, प्रयोजन, दान और दानका माहात्म्य और पाठादिकोंका माहात्म्य अब सावधान होकर हमसे सुनिये ॥३॥ ब्रह्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है, पद्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचपन सहस्र ५५००० है,

पृष्ठे भ्राम्यदमंदमंदरगिरिग्रावाग्रकंडूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पांतु वः ॥ यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनांभसां यातायातमतंद्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥ २ ॥ पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने ॥ दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पंचोनषष्टि च ॥ श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥४॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पंचविंशति ॥ मार्कंडं नव वाह्नं तु दशपंचचतुःशतम् ॥५॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पंचशतानि च ॥ दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशैव तु ॥ ६ ॥

1292 विष्णुपुराणके श्लोकोंकी संख्या तेईस सहस्र २३००० है, शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४००० है॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८००० है, नारदपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचीस सहस्र २५००० है, मार्कण्डेयपुराणके श्लोकोंकी संख्या नव सहस्र ९००० है, अग्निपुराणके श्लोकोंकी संख्या पन्द्रह सहस्र चारसौ १५४०० है ॥ ५ ॥ भविष्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र पाँचसौ १४५०० है, ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८००० है, लिंगपुराणके श्लोकोंकी संख्या ग्यारह सहस्र ११०००

---

* शंका—श्रीमद्भागवतकी समाप्तिमें सूतजीने अपने गुरुको और सब देवताओंको ब्रह्मा विष्णु भगवान्‌के सब अवतारोंको इन सबको त्यागकर कच्छप भगवान्‌को नमस्कार क्यों किया ?

उत्तर—कच्छप भगवान्‌की कृपासे समुद्रको मथकर देवता लोगोंने अमृत पाया अमृत पाकर देवताओंका मनोरथ सिद्ध हुआ, तैसे सूतजी कूर्मका स्मरण करके समुद्ररूप भागवतके पार उतर गये; इसलिये सूतजीने अपने नेत्रोंसे प्रेमके आंसू बहाय सबको त्यागकर कूर्मभगवान्‌को नमस्कार किया और भगवान्‌के अवतारोंमें कुछ भेद नहीं समझा ॥

है ॥ ६ ॥ वाराहपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४००० है, स्कान्दपुराणके श्लोकोंकी संख्या इक्यासी सहस्र एकसौ ८१०००१ है, वामनपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है ॥ ७ ॥ कूर्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या सत्रह सहस्र १७००० है, मत्स्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र १४००० है, गरुडपुराणके श्लोकोंकी संख्या उन्नीस सहस्र १९००० है, ब्रह्माण्डपुराणके श्लोकोंकी संख्या बारह सहस्र १२००० है ॥ ८ ॥ इस प्रकार अठारह पुराणके श्लोकोंकी संख्याका प्रमाण-समाहार चार लाख ४००००० श्लोकका है यह प्रमाण कवीश्वरोंने कहा है, जिसमें भागवत अठारह सहस्र १८००० है ॥ ९ ॥ अपने नाभिकमलमें विराजसे हुए संसारसे भयभीत ब्रह्माजी

चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् ॥ स्कांदं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दशम् ॥ एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्मांडं द्वादशैव तु ॥८॥ एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ॥ तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते॥९॥इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे ॥ स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥ १० ॥ आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ॥ हरिलीलाकथाव्रातामृतानंदितसत्सुरम् ॥ ११ ॥ सर्ववेदांतसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ॥ वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥१२॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम्॥ ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥ राजंते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे॥ यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरः ॥ १४ ॥

यह भागवत पुराण भगवान्ने सुनाया था ॥ १० ॥ इस श्रीमद्भागवत महापुराणके आदि, मध्य और अन्तमें सम्पूर्ण वैराग्यके ही व्याख्यान कहे हैं, इस पुराणने हरिकी लीला और कथाओंके समूह अमृतसे साधुओंको और देवताओंको आनन्द कर रक्खा है, ऐसा आनन्ददायक और अघघातक यह श्रीमद्भागवत पुराण ही है ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण वेदान्तका सारभूत, ईश्वर जीवकी एकताको दर्शानेवाला जो यह अद्वितीय पदार्थ (परब्रह्म) है सो इस महापुराणका विषय है और मुख्य प्रयोजन इस महापुराणका केवल कैवल्य अर्थात् मोक्ष है॥ १२॥ भादों सुदी पूर्णमासीके दिन सोनेके सिंहासन सहित जो मनुष्य इस महापुराण श्रीमद्भागवतका दान करे वह परमोत्तम गतिको पाता है ॥ १३ ॥ उसी समयतक और

दूसरे पुराण महात्मा पुरुषोंकी मण्डलीमें शोभा पाते हैं. जिस समयतक अमृतका समुद्ररूप यह 'श्रीमद्भागवत' महापुराण सुननेमें नहीं आता ॥ १४ ॥ सब उपनिषद् और वेदान्तका सार श्रीमद्भागवतको माना है इसलिये इस पुराणके अमृतरससे जो प्राणी तृप्त हो रहे हैं उनकी प्रीति कभी और ठौर नहीं होती ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ माना है, देवताओंमें अच्युत भगवान् सर्वसुखदाता हैं, वैष्णवोंमें महादेव परमज्ञानी हैं ऐसे पुराणोंमें श्रीमद्भागवत बखाना है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें परमोत्तम काशी है ऐसे ही सब पुराणोंमें अत्युत्तम श्रीमद्भागवत पुराण है ॥ १७ ॥ परमहंसोंका परम प्रिय निर्मल और श्रेष्ठ ज्ञान जिसमें गाया है और निर्दोष परब्रह्मका निरूपण करके दर्शाया

सर्ववेदांतसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ॥ तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥ निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा ॥ वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥ क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ॥ तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥ कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥ योगींद्राय तदात्मनाऽथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

1213

है, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको एकत्र करके भगवत्तत्त्वको जिसमें झलकाया है ऐसे श्रीमद्भागवत पुराणको जो कोई भक्तजन भक्तिसे सुने वा पढे और हितचित्तसे विचारे, वह इस संसारसागरसे पार उतरकर परमधामको जाता है ॥ १८ ॥ प्रथम विष्णु भगवान्ने इस अतुल श्रीमद्भागवतरूप ज्ञानदीपकको करुणा करके ब्रह्माजीके सम्मुख प्रकाशित किया, ब्रह्माजीने ब्रह्मरूप धारण करके नारदजीके आगे प्रकाशित किया, फिर नारदरूप होकर व्यासजीके निकट प्रकाशित किया, फिर वेदव्यासरूपसे परमयोगेश्वर श्रीशुकदेवजीके समीप प्रकाशित किया, अन्तमे श्रीशुकदेवरूप धरकर करुणानिधान भगवान्ने करुणा करके विष्णुरात राजा परीक्षितके सामने प्रकाशित किया, उन शुद्ध सत्त्व, निर्मल,सदा

आनन्दमय, निरुपाधि, सर्वोत्तम, मोक्षरूप परब्रह्म वासुदेव भगवान्का हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ सर्वसाक्षी वासुदेव भगवान्ने जो अनुग्रह करके यह श्रीमद्भागवत पुराण संसारसे मुक्ति पानेवाले ब्रह्माजीके आगे वर्णन किया उन विष्णु भगवान्को बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥ ॥ २०॥ जिन्होंने संसाररूप सर्पसे डसे हुए विष्णुरात राजा परीक्षितको छुडाया, इन ब्रह्मरूप योगिराज श्रीशुकदेवजीको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ हे योगेश ! हे प्रभो ! जिस प्रकार जन्मजन्मान्तरमें आपके कोमल अमल चरणकमलकी भक्ति हो ऐसा कोई

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे ॥ य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥ योगींद्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ॥ संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥ भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ॥ तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥२२॥ नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वादशस्कन्धे पुराणसंख्यादानमाहात्म्यादिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ हरिः ॐ ॥ ॥

समाप्तोऽयं श्रीमद्भागवतस्य द्वादशः स्कन्धः ॥ १२ ॥

उपाय करो, क्योंकि हमारे ऊपर दया करने और कष्ट हरनेवाले आपही नाथ हो ॥ २२ ॥ जिन श्रीकृष्णभगवान्के नामका संकीर्तन स पापोंका नाशक है और जिनको नमस्कार करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शांति हो जाती है उन सर्वोत्तम सर्वान्तर्यामी भगवानको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां द्वादशस्कन्धे पुराणसंख्यादानमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-व्यासपुत्र शुकदेवको, बिनवत वारंवार। जिनकी कृपाकटाक्षसे, मिटत अनेक विकार ॥ १ ॥
संपूरण भई भागवत, गुरुप्रसादसे आज । पढे सुनेते जासुके, सिद्ध होत सब काज ॥ २ ॥
हरिलीलामृत जानिके,जहँ तहँ किय विस्तार। तामें दोष न दीजिये, सज्जन सकल उदार ॥ ३ ॥
यदपि मूलभर रचनको,निजमन कियो विचार । वर्णत वर्णत बढ गयो,कृष्णचरित्र आपार ॥ ४ ॥
होत न चितमें तृप्तता,निशिदिन यही विचार। बढै कृष्णलीला अधिक,मुद मंगल दातार ॥ ५ ॥
शशि शशिधरमुख निधि धरणि,संवत विक्रम व्याप्त ।ज्येष्ठ शुक्ल द्वितिको भयो,शुकनिधि ग्रन्थ समाप्त ॥ ६ ॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज निधिराज। छाय रह्यो जिनको सुयश, देश देशमें आज ॥ ७ ॥
वैश्यवंशमें जन्म ले, रविसम कियो प्रकाश । वास बम्बईमें करत, पूजत जनमन आश ॥ ८ ॥
जिन जिन ग्रन्थनको कभी,नाम सुनो नहिं कान। मुद्रित करिकरि ग्रंथ सो, निशिदिन करत प्रदान॥ ९ ॥
पुत्र पौत्र परपौत्र हों, बढै अधिक परिवार। मांगत शालिग्राम यह, हरिसों वर हर बार॥ १० ॥
मैं अजान जानत नहीं, गद्य पद्यको सार । पण्डित जन निज जान मोहिं, लीजो सकल सुधार॥ ११ ॥

1214

* * *

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा
प्रकाशितम् । संवत १९८०, शके १८४५.

॥ इति श्रीद्भागवते भाषाटीकायुते द्वादशस्कन्धसमाप्तिः ॥

1245

अत्रेयमभ्यर्थना.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयकी परमोपयोगी स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें ।

यह विषय आज २५।३० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें नगर २ गांव २ प्रसिद्ध है कि, इस यन्त्रालयकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं सो इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसेः—वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, व्याकरण, न्याय, मीमांसा, योगमार्ग, छन्द, ज्योतिष, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, साम्प्रदायिक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाके प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहते हैं। शुद्धता स्वच्छता तथा कागज़की उत्तमता और जिल्दकी बँधाई देशभरमें विख्यात है। इतनी उत्तमता होनेपर भी दाम बहुत ही सस्ते रक्खे गये हैं और कमीशन भी पृथक् काट दिया जाता है। ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभव है। संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मँगानेमें त्रुटि न करनी चाहिये। ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है। –) डाक खर्चके लिये भेजकर विना मूल्य "सूचीपत्र" मँगा देखो ॥

अधिकमस्मदीयसूचीपुस्तकानां भिन्नभिन्नविषयाणां प्रापणेन "श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार" पत्रिकाप्रापणद्वारा च ज्ञेयमिति शम् ।

मिलनेका पता-खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-मुंबई.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADAS, 'SHRIVENKATESHWAR' STEAM PRESS.

BOMBAY.

॥ इति श्रीमद्भागवतं भाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥